श्रीहरिः

यदुकुलगुरु-श्रीगर्गमहामुनिविरचिता

श्रीगर्गसंहिता

पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतया 'प्रियंवदा'ऽभिधया
भाषाटीकयाऽऽटीकिता

(दशखण्डात्मिका)

पं० राधेमोहनपाण्डेयेन संस्कृता

श्रीगर्गमहामुनिका आँखोंदेखा सम्पूर्ण श्रीकृष्णचरित्र

प्राक्कथन

आजसे अड़तालीस वर्ष पहले जब मैं गुरुदेव स्वर्गीय श्रीदामोदरलाल गोस्वामीजीके पास काव्यप्रकाश पढ़ता था तो एक दिन एक गुर्जरविद्वान् और परम वैष्णव श्रीलाड़िलीलालजी पधारे। सभी वेदों, पुराणों और छहों शास्त्रोंपर उनका अनोखा अधिकार था। गुरुदेव और उनमें जब धारावाहिक संस्कृतमें वार्तालाप होनेका क्रम चला तो मैं मंत्रमुग्ध होकर सुनने लगा। प्रसंग था श्रीमद्भागवतकी रासपंचाध्यायीका। धीरे-धीरे वे दोनों श्रीमद्भागवतसे श्रीगर्गसंहितापर उतर गये और उसके सरस प्रसंगोंपर ऊहापोह होने लगा। दोके दोनों जैसे अपने ज्ञानका खजाना खोलकर बैठ गये थे। जब कभी कोई संशयका प्रसंग आता तो गुरुदेव गोस्वामीजीके संकेतपर मैं सम्बद्ध ग्रन्थ उनकी इलमारीसे निकालकर दे देता था। विशेषता यह थी कि इतने जटिल प्रसंगपर दोनोंके परिसंवादमें तल्खी नाममात्रको भी नहीं दिख रही थी। कभी-कभी कोई रुचिकर बात आनेपर दोनों ठठाकर हँसते, परस्पर एक दूसरेको वाहवाही देते और पानकी गिलौरी जमाकर फिर अपने-अपने विषयकी व्युत्पत्तिपर डट जाते थे। यह क्रम लगभग तीन घंटे चला। उन ऋषितुल्य महानुभावोंका वह सरस और मृदुल संवाद मेरे जीवनका सम्बल बन गया।

जब उस रोजकी गोष्ठीका समापन हुआ और महापंडित लाड़िलीलालजी चले गये। तब मैंने गुरुजीसे पूछा—गुरुजी! 'गर्गसंहिता'में क्या विषयवस्तु है? कृपया संक्षिप्त दिग्दर्शन करा दीजिए। मेरे प्रश्नपर मन्द-मन्द हास्यके कुसुम बिखरते हुए गुरुदेव बोले—'बेटे! गर्ग-संहितामें सब कुछ है। श्रीमद्भागवतका तो यह महाभाष्य ही है। श्रीमद्भागवतमें कहीं भी राधारानीका नाम तक नहीं आया है, किन्तु यह ग्रन्थ राधाकृष्णकी दिव्य माधुर्यभावमिश्रित लीलाओंके विशद वर्णनसे ओत-प्रोत है। श्रीमद्भागवतमें जो कुछ सूत्ररूपसे कहा गया है, वह गर्गसंहितामें वृत्तिरूपमें वर्णित है। श्रीमद्भागवतमें भगवान् श्रीकृष्णकी पूर्णताके सम्बन्धमें महर्षि वेदव्यासने 'कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्' इतना ही कहा है, किन्तु इस महाग्रन्थके रचयिता गर्गाचार्यने—'यस्मिन् सर्वाणि तेजांसि विलीयन्ते स्वतेजसि। तं वदन्ति परे साक्षात्परिपूर्णतमं स्वयम्।' कहकर श्रीकृष्णमें समस्त भागवत-तेजःपुञ्जके प्रवेशका वर्णन करते हुए श्रीकृष्णकी परिपूर्णतमता-का प्रतिपादन किया है।

भगवान् श्रीकृष्णकी मधुर लीलाओंकी रचना हुई है दिव्य रसके द्वारा और उस रसका प्रकाश रासमें हुआ है। श्रीमद्भागवतमें उस रासका पाँच अध्यायोंमें केवल एक बार वर्णन मिलता है, किन्तु गर्गसंहिताके वृन्दावनखण्डमें, अश्वमेधखंडमें प्रभासमिलनके समय और इसी खंडके अनिरुद्ध-दिग्विजयके अनन्तर लौटते समय, इस तरह तीन बार कई अध्यायोंमें रास-लीलाका बड़ा सुन्दर वर्णन किया गया है। परम प्रेमस्वरूपा, श्रीकृष्णसे नित्य अभिन्नस्वरूपा एवं महाशक्तिमती श्रीराधारानीके मधुर आकर्षणसे श्रीमथुरानाथ तथा द्वारकाधीश श्रीकृष्णने बार-बार गोकुलमें पधारकर नित्य रासेश्वरी, नित्य निकुंजेश्वरीके साथ महारासकी दिव्य लीला की

है, जिसका इस ग्रन्थमें बहुत अच्छा वर्णन है। इसके माधुर्यखण्डमें भिन्न-भिन्न गोपियोंके पूर्वजन्मोंका चमत्कारी वर्णन किया गया है। इनके अतिरिक्त भी बहुतेरी नयी-नयी कथायें कही गयी हैं। यह संहिता भावुक भगवद्भक्तोंके लिए समादरकी वस्तु है। क्योंकि इसमें श्रीमद्भागवतके तत्त्वोंका स्पष्ट उल्लेख है।

गुरुदेवके निर्देशसे इस समुज्ज्वल महाग्रन्थके स्वाध्यायकी अभिलाषा जागृत होनेपर उन्हींके पुस्तकभाण्डारसे हस्तलिखित श्रीगर्गसंहिताकी पोथी पढ़ी तो हृदय गद्गद हो गया। इसकी ऐसी अमिट छाप हृदयमें पैठ गयी कि इतनी लम्बी अवधिके बाद इसका पीयूषरस भावुक भक्तों तथा इस रसके रसिक महानुभावों तक पहुँचानेके लिए मेरा मन मचल उठा। तदनुसार जिनकी लीलाकथायें प्रकटित करनेकी लालसा जागी थी, उन्हीं भगवान् नन्दनन्दनकी प्रेरणासे मैं इस कामपर जुट पड़ा और पूरे एक वर्षके अथक परिश्रमसे यह ग्रन्थ तैयार करके आज आपसरीखे कृपालु सज्जनोंके समक्ष उपस्थित कर रहा हूँ। यद्यपि मैंने अपने तन-मन-धनकी बाजी लगाकर इस ग्रन्थको सर्वथा सँवारनेकी भरपूर चेष्टा की है, तथापि यदि इसमें कुछ दूषण दिख जायँ तो उन्हें आप अपनी सहज दयालुतावश क्षमा कर दें।

किमधिकं विज्ञेषु।

काशीधाम
चैत्रनवरात्र-महापर्व
संवत् २०२८

वशंवद
पाण्डेय रामतेज शास्त्री

श्रीगर्गसंहिता-विषयानुक्रमणिका।

द्वारकाखण्ड ६

विश्वजित्खण्ड ७

बलभद्रखंड ८

विज्ञानखंड ९

अश्वमेधखण्ड १०

इति विषयानुक्रमणिका

-श्रीहरिः

कथारम्भे पठनीयाः केचन माङ्गलिकाः श्लोकाः

स्वच्छन्दसूत्पतितमत्स्यगणैर्वहन्ती सच्छयामलेन वपुषाऽघगणं हरन्ती ।
उत्तुङ्गलोललहरी कमलैर्लसन्ती कृष्णा नदी जयति कृष्णगृहे लुठन्ती ॥ १ ॥
वंशीवटं च कलकंठविहंगमैश्च कृष्णातटे च पुलिनं किल बालुकाढ्यम् ।
श्रीपाटलैर्मधुककिंशुकसत्प्रियालैरौदुम्बरैः क्रमुकद्राक्षकपित्थयुक्तम् ॥ २ ॥
लक्ष्मीकराब्जपरिलालितजानुदेशं रम्भोरु पीतवसनं तु कृशोदराभम् ।
रोमावलिभ्रमरनाभिसरस्त्रिरेखं कांचीधरं भृगुपदं मणिकौस्तुभाढ्यम् ॥ ३ ॥
श्रीपुण्डरीकदलनेत्रमनंगलीलं भ्रूमण्डलस्मितगुणावृतकामचापम् ।
विद्युच्छटोच्छलितरत्नकिरीटकोटिं मार्त्तण्डमण्डलविकुण्डलमंडिताभम् ॥ ४ ॥
रत्नाङ्गदं च मणिकंकणपद्महस्तं श्रीराजहंसवरकंधरशोभमानम् ।
श्रीवत्सहाररुचिरं नवमेघनीलं पीताम्बरं करिकरस्फुटबाहुदण्डम् ॥ ५ ॥
वंशीधरं त्वहिविलोलगुडालकाढ्यं राधापतिं सजलपद्ममुखं चलन्तम् ।
कन्दर्पकोटिघनमानहरं कृशाङ्गं वंशीवटे नटवरं भज राधिकेशम् ॥ ६ ॥
आरक्तरक्तनखचन्द्रपदाब्जशोभां मंजीरनूपुररणत्कटिकिंकिणीकाम् ।
श्रीघंटिकाकनककंकणशब्दयुक्तां राधां स्मरामि तरुपुञ्जनिकुञ्जमध्ये ॥ ७ ॥
नीलाम्बरैः कनकरश्मितटस्फुरद्भिः श्रीभानुजातटमरुद्धतिचंचलांगैः ।
सूक्ष्मस्वरूपललितैरतिगौरवर्णां रासेश्वरीं भज मनोहरमन्दहासाम् ॥ ८ ॥
बालार्कमण्डलमहांगदरत्नहारां ताटङ्कतोरणमणीन्द्रमनोहराभाम् ।
श्रीकण्ठभालसुमनोनवपंचदाम्नीं रत्नाङ्गुलीयललितां व्रजराजपत्नीम् ॥ ९ ॥
चूडामणिद्युतिलसत्स्फुरदर्द्धचन्द्रां ग्रैवेयकालपनपत्रविचित्ररूपाम् ।
श्रीपट्टसूत्रमणिपट्टचलद्द्विदाम्नीं स्फूर्जत्सहस्रदलपद्मधरां भजस्व ॥१०॥
एतादृशीं रतिवरां तु समेत्य कृष्णो गच्छन्निकुंजवनजालविलोकनाय ।
धावन्ति तत्र मणिछत्रधराश्च गोप्यो नीत्वा तथा चमरचारुपतत्पताकाः ॥११॥
यं वै स्तुवन्ति शिवधर्मसुरेशशेषलोकेशसिद्धिदगणेशसुरादयोऽपि ।
राधारमाप्रकृतिभूविरजास्वराद्या वेदा भजन्ति सततं तमहं भजामि ॥१२॥

श्रीपार्वती-शिवसंवादे सम्मोहनतन्त्रोक्तं—

श्रीगर्गसंहितामाहात्म्यम्

'प्रियंवदा'ऽभिधया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

प्रथमोऽध्यायः

(नारदका गर्गमुनिको संहितानिर्माणके लिए प्रेरित करना)

श्रीगर्ग उवाच

वृष्णीनां कृष्णदेवानामाचार्याय महात्मने । श्रीमद्गर्गकवीशाय तस्मै नित्यं नमो नमः ॥ १ ॥

शौनक उवाच

श्रुतं तव मुखाद्ब्रह्मन्पुराणानां च विस्तरात् । श्रेष्ठं श्रेष्ठं च माहात्म्यं कर्णयोः सुखवर्द्धनम् ॥ २ ॥
गर्गस्य च मुनेरद्य संहितायाः प्रयत्नतः । अस्माकं वद माहात्म्यं साररूपं विचार्य च ॥ ३ ॥
अहो धन्या भागवती मुनेर्गर्गस्य संहिता । राधामाधवयोर्यस्यां महिमा बहु वर्णितः ॥ ४ ॥

सूत उवाच

अहो शौनक माहात्म्यं नारदाच्च मया श्रुतम् । उक्तं संमोहने तन्त्रे शिवायै च शिवेन वै ॥ ५ ॥
कैलासशिखरे शुभ्रे यत्राक्षयवटाजिरे । तीरे चालकनंदाया नित्यं संराजते हरः ॥ ६ ॥
शंकरं चैकदा देवं गिरिजा सर्वमंगला । सिद्धानां शृण्वतां तत्र प्रपच्छ वांछितं मुदा ॥ ७ ॥

पार्वत्युवाच

यदेवं ध्यायसे नाथ तस्यापि चरितं परम् । जन्मकर्मरहस्यं च कथयस्व ममाग्रतः ॥ ८ ॥
पुरा त्वन्मुखतः साक्षाच्छ्रुतं नाम्नां सहस्रकम् । श्रीमद्गोपालदेवस्य तत्कथां वद मे हर ॥ ९ ॥

जिनके एकमात्र श्रीकृष्ण ही देवता थे, उन वृष्णिवंशी यादवोंके आचार्य (कुलगुरु) महात्मा तथा कवीश्वर श्रीगर्गमुनिको नित्यशः हमारा नमस्कार है ॥ १ ॥ शौनकजी बोले—हे ब्रह्मन् ! मैंने आपके मुखसे कानोंके लिए सुखदायक श्रेष्ठ-श्रेष्ठ पुराणोंके माहात्म्य विस्तारपूर्वक सुने ॥ २ ॥ हे मुने ! अब आप गर्गमुनि-रचित गर्गसंहिताका सारस्वरूप माहात्म्य विचारकर कहिए ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! भगवत्कथाओंसे ओत-प्रोत गर्गसंहिता धन्य है । क्योंकि उसमें राधा-माधवकी बड़ी महिमा कही गयी है ॥ ४ ॥ सूतजीने कहा—अहो शौनक ! गर्गसंहिताका माहात्म्य मैंने नारदजीके मुखसे सुना था । तदनन्तर स्वयं भगवान् शंकरने सम्मोहनतंत्रमें भगवती पार्वतीको यह माहात्म्य सुनाया था ॥ ५ ॥ कैलास पर्वतके शुभ्र शिखरपर अक्षयवटके नीचे और अलकनन्दाके तटपर शिवजी नित्य विराजमान रहते हैं ॥ ६ ॥ एक दिन सर्वथा मंगलमयी भगवती पार्वती समस्त सिद्धोंके समक्ष बहुत मुदित मन होकर शिवजीसे अपनी वांछित बात पूछी ॥७॥ पार्वतीजी बोलीं—हे नाथ ! जिनका आप इस प्रकार लौलीन होकर ध्यान करते हैं, उन प्रभुके जन्म-कर्म तथा गूढ़ रहस्यका आप मेरे समक्ष वर्णन करिए ॥ ८ ॥ पूर्वकालमें मैंने आपके मुखारविन्दसे गोपालकृष्णका सहस्रनाम सुना

महादेव उवाच

कथा गोपालकृष्णस्य राधेशस्य महात्मनः । गर्गस्य संहितायां च श्रूयते सर्वमंगले ॥१०॥

पार्वत्युवाच

बहूनि च पुराणानि संहितादीनि शंकर । सर्वान्विहाय गर्गस्य त्वं प्रशंससि संहिताम् ॥११॥
तस्यां का भगवल्लीला विस्तरेण तदुच्यताम् । कृतवान्संहितां गर्गः केन संप्रेरितः पुरा ॥१२॥
किं पुण्यं किं फलं चास्याः श्रवणेनापि लभ्यते । पुरा कैः कैर्जनैर्देव श्रुता मम वद प्रभो ॥१३॥

सूत उवाच

इति प्रियाया वचनं निशम्य प्रसन्नचित्तो भगवान्महेशः ।
विचार्य गर्गस्य कृतां कथां च प्रत्याह वाक्यं सदसि स्थितः सः ॥१४॥

महादेव उवाच

शृणु देवि सविस्तारं माहात्म्यं पापनाशनम् । राधामाधवयोश्चापि संहितायाः प्रयत्नतः ॥१५॥
पूर्वं चरित्रं स्वस्यापि ब्रह्मणा प्रार्थितो मुदा । राधायै कथयामास प्रव्रजन्भूतलं हरिः ॥१६॥
ततः शेषेण भगवान्गोलोके प्रार्थितः पुनः । तस्याग्रे कथयामास समस्तां स्वकथां हरिः ॥१७॥
शेषो ददौ ब्रह्मणे च ब्रह्मा धर्माय संहिताम् । धर्मः संप्रार्थितः प्राह स्वपुत्राभ्यां कथामृतम् ॥१८॥
नरनारायणाभ्यां च ह्येकान्ते सर्वमंगले । नारायणो नारदाय सेवने निरताय च ॥१९॥
जगाद कृष्णचरितं यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रतः । ततश्च प्रार्थितः प्राह गर्गाचार्याय नारदः ॥२०॥
नारायणमुखाल्लब्धां सर्वां श्रीकृष्णसंहिताम् । इति श्रुत्वा परं ज्ञानं हरेर्भक्तिसमन्वितम् ॥२१॥
चकार पूजनं गर्गो नारदस्य महात्मनः । उवाच नारदो गर्गं त्रिकालज्ञं च पार्वति ॥२२॥

नारद उवाच

मया तुभ्यं श्रावितं च यशः संक्षेपतो हरेः । वैष्णवानां प्रियं गर्ग त्वमेतद्विपुलं कुरु ॥२३॥

था । अब आप उनकी कथा सुनाइए ॥ ९ ॥ शिवजी बोले—हे सर्वमंगले ! उन राधावर गोपालकृष्णकी कथा गर्गसंहितामें कही गयी है ॥१०॥ यह सुनकर पार्वतीने कहा—हे शंकरजी ! आप अनेकानेक पुराणों तथा संहिताओंको त्यागकर गर्गसंहिताकी प्रशंसा क्यों कर रहे हैं ॥ ११ ॥ इस संहितामें श्रीकृष्णकी कौन-सी लीला वर्णित है, यह मुझे विस्तारसे बताइए । किसकी प्रेरणासे गर्गमुनिने यह संहिता रची ॥ १२ ॥ इसको सुननेसे कौन-सा पुण्य और क्या फल प्राप्त होता है ? हे प्रभो ! इस संहिताको पूर्वकालमें किसने सुना था, सो भी बताइए ॥ १३ ॥ सूतजी बोले—हे शौनक ! अपनी प्रेयसी पार्वतीके वचन सुनकर ऋषिमंडलीके मध्यमें विराजमान भगवान् शंकर प्रसन्न होकर गर्गरचित कथाओंका विचार करके बोले ॥ १४ ॥ श्रीशिवजीने कहा—हे देवि ! आप अब गर्गसंहिता और राधामाधवका पापनाशक माहात्म्य सुनिए ॥ १५ ॥ पूर्वकालमें ब्रह्माजीकी प्रार्थना सुनकर भूतलपर विचरते हुए स्वयं भगवान् कृष्णने राधारानीको अपनी आत्मकथा सुनायी थी ॥१६॥ तदनन्तर शेषभगवान्के पूछनेपर गोलोकमें उनके समक्ष उन्होंने अपनी समस्त कथा बड़े हर्षके साथ कही थी ॥ १७ ॥ आगे चलकर शेषभगवान्ने ब्रह्माजीको, ब्रह्माने धर्मको और धर्मने प्रार्थना करनेपर अपने दोनों पुत्रों नर-नारायणको यह कथामृत पान कराया ॥ १८ ॥ हे सर्वमंगले ! बादमें नरने नारायणको एकान्त यह कथा सुनायी और नारायणने अपनी सेवामें संलग्न नारदमुनिको इसे सुनाया ॥ १९ ॥ नारदजीने धर्मके मुखसे सुनी हुई यह कथा गर्गाचार्यके प्रार्थना करनेपर उन्हें सुनायी ॥ २० ॥ नारदजीके मुखारविन्दसे समस्त श्रीकृष्णसंहिता सुनकर गर्गमुनिको भगवद्भक्तियुक्त परम उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त हो गया ॥२१॥ हे पार्वती ! उन्होंने महात्मा नारदजीका पूजन किया । तब त्रिकालज्ञ गर्गमुनिसे वे बोले ॥ २२ ॥ नारदजीने कहा—

सर्वेषां कामदं शश्वत्कृष्णभक्तिविवर्द्धनम् । मम प्रियं कुरु विभो शास्त्रं तु परमाद्भुतम् ॥२४॥
वचसा मम विप्रेंद्र कृष्णद्वैपायनेन च । सर्वशास्त्रात्परं श्रेष्ठं श्रीमद्भागवतं कृतम् ॥२५॥
ब्रह्मन् यथा भागवतं गोपयिष्याम्यहं तथा । त्वत्कृतं श्रावयिष्यामि बहुलाश्वाय भूभृते ॥२६॥

इति श्रीसम्मोहनतंत्रे पार्वतीहरसंवादे श्रीगर्गसंहितामाहात्म्ये प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

(गर्गमुनि द्वारा गर्गसंहिताकी रचना)

महादेव उवाच

श्रुत्वा देवर्षिवचनं गर्गाचार्यो महामुनिः । विनयावनतो भूत्वा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ १ ॥

गर्ग उवाच

त्वया ब्रह्मन् वचश्चोक्तं कठिनं सर्वतः स्फुटम् । तथापि च करिष्यामि त्वं करोषि कृपां यदि ॥ २ ॥
इत्येवमुक्तो भगवान्नारदः सर्वमंगले । स्ववीणां वादयन्गायन्ब्रह्मलोकं ययौ मुदा ॥ ३ ॥
गर्गाचार्यः कविर्गर्गः शास्त्रं चक्रे महाद्भुतम् । निरूपितं च संवादं देवर्षिबहुलाश्वयोः ॥ ४ ॥
नानाकृष्णचरित्रैश्च विचित्रैः परिपूरितम् । श्लोकैर्द्वादशसाहस्रैः सुधामिष्टैरलंकृतम् ॥ ५ ॥
यच्छ्रुतं गुरुवक्त्राच्च यद्दृष्टं श्रीहरेर्महत् । तत्सर्वं चरितं गर्गः संहितायां समादधे ॥ ६ ॥
श्रीगर्गसंहितानाम्ना कथाऽभूत्कृष्णभक्तिदा । यस्याः श्रवणमात्रेण सर्वकार्यं च सिद्ध्यति ॥ ७ ॥
अत्रैवोदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् । यस्य श्रवणमात्रेण सर्वपापं प्रणश्यति ॥ ८ ॥
वज्रस्यापि सुतो राजा प्रतिबाहुर्नृपो ह्यभूत् । तस्य राज्ञः प्रिया देवी मालिनी नाम वर्तते ॥ ९ ॥

हे महामुने ! मैंने आपको संक्षेपमें भगवान् कृष्णका यश सुनाया । यह वैष्णवोंको परम प्रिय है । अतएव इसका आप विस्तृत रूपमें वर्णन करिए ॥ २३ ॥ यह कथानक सबकी समस्त कामनायें पूर्ण करनेवाला और नित्यके लिए भगवद्भक्तिवर्द्धक है । हे विभो ! आप इस परम अद्भुत शास्त्रका निर्माण करिए । क्योंकि यह मुझे बहुत प्रिय है ॥ २४ ॥ हे विप्रेन्द्र ! मेरे ही कहनेसे श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यासने सब शास्त्रोंसे परम श्रेष्ठ श्रीमद्भागवतकी रचना की थी ॥ २५ ॥ हे ब्रह्मन् ! भागवतके समान ही तुम्हारी रचित संहिताकी भी रक्षा करता हुआ मैं राजा बहुलाश्वको सुनाऊँगा ॥ २६ ॥ इति श्रीसम्मोहनतन्त्रे पार्वतीशिवसंवादे श्रीगर्गसंहिता-माहात्म्ये 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

श्रीशिवजी बोले—देवर्षि नारदकी बात सुनकर महामुनि गर्गाचार्य विनीतभावसे हँसते हुए कहने लगे ॥ १ ॥ गर्गजीने कहा—हे ब्रह्मन् ! आपने जो बात कही है, वह करना बड़ा कठिन काम है । तथापि यदि आपकी कृपा होगी तो मैं उसे करूँगा ॥ २ ॥ भगवान् नारद गर्गजीकी वाणी सुनकर अपनी वीणा बजाते और भगवद्गुण गाते हुए सहर्ष ब्रह्मलोक चले गये ॥ ३ ॥ गर्गाचलपर पहुँचकर कवि गर्गने महा-अद्भुत उस गर्गसंहिताशास्त्रका निर्माण किया, जिसमें देवर्षि नारद और राजा बहुलाश्वका संवाद था ॥ ४ ॥ विविध प्रकारके विचित्र कृष्णचरित्रका उसमें समावेश था । अमृत जैसे मधुर बारह हजार श्लोक उसमें थे ॥ ५ ॥ गर्गजीने जो कुछ गुरुजनोंके मुखसे सुना था और अपनी आँखों श्रीकृष्णकी जो लीलायें देखी थीं, उन सबको उन्होंने अपनी संहितामें लिख दिया ॥ ६ ॥ इस गर्गसंहिताकी कथा श्रीकृष्णकी भक्तिप्रदायिनी मानी गयी । इसके सुननेसे सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं ॥ ७ ॥ इस प्रसंगमें यह पुरातन इतिहास कहा गया है, जिसके श्रवणमात्रसे सब पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ ८ ॥ वज्रका पुत्र प्रतिबाहु नामका राजा था । उसकी प्रिय

मथुरायां कृष्णपुर्यां भार्यया सहितो नृपः । संतानार्थे विधानेन बहून् यत्नांश्चकार ह ॥१०॥
गावश्च बहवो दत्ताः सुपात्रेभ्यः सवत्सकाः । तथा तेन कृता यज्ञा दक्षिणाभिः प्रयत्नतः ॥११॥
गुरवो ब्राह्मणा देवाः पूजिता भोजनैर्धनैः । पुत्रो न जातस्तदपि ततश्चिंतातुरोऽभवत् ॥१२॥
तावुभौ दंपती नित्यं चिंताशोकपरायणौ । पितरोऽस्य जलं दत्तं कवोष्णमुपभुंजते ॥१३॥
राज्ञः पश्चान्न पश्यामो योऽस्माकं तर्पयिष्यति । इत्येवं स्मरतस्तस्य दुःखिताः पितरोऽभवन् ॥१४॥
न बांधवा न मित्राणि नामात्यसुहृदस्तथा । प्रीणयंत्यस्य भूपस्य न गजाश्वाः पदातयः ॥१५॥
नैराश्यं भूपतेस्तस्य नित्यं मनसि वर्तते । जनस्य सुतहीनस्य नास्ति वै जन्मनः फलम् ॥१६॥
गृहं शून्यं ह्यपुत्रस्य दुःखितं च मनः सदा । देवमानुषपितॄणां नानृणत्वं सुतं विना ॥१७॥
पुत्रमुत्पादयेत्प्राज्ञस्तस्मात्सर्वप्रयत्नतः । यशस्तेषां भूमिलोके परलोके गतिर्भवेत् ॥१८॥
येषां तु पुण्यकर्तॄणां पुत्रजन्म गृहे भवेत् । आयुरारोग्यसंपत्तिः तेषां गेहे प्रवर्धते ॥१९॥
एवं विचिंत्य मनसा न शर्म लभते नृपः । श्वेतान्स्वमूर्द्धजान्दृष्ट्वा चक्रे शोकमहर्निशम् ॥२०॥
तस्यैकदा मधुपुरे शांडिल्योऽपि मुनीश्वरः । स्वेच्छया स उपागच्छत्प्रतिबाहुं विलोकितुम् ॥२१॥
तं दृष्ट्वा सहसा राजा प्रत्युत्थानासनादिभिः । निवेद्य मधुपर्कादींश्चकार पूजनं मुदा ॥२२॥
उदासीनं नृपं दृष्ट्वा कृत्वा विस्मयमेव च । ऋषिस्तमभिनंद्याथ स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥२३॥
पप्रच्छ कुशलं राज्ये सप्तस्वंगेषु भूपते । निवेदितुं स्वकुशलं प्रत्याह नृपसत्तमः ॥२४॥

राजोवाच

पूर्वदोषेण यद्दुष्टं स्वदुःखं किं ब्रवीम्यहम् ।
ऋषयस्त्वादृशा ब्रह्मन्किं न जानंति सांप्रतम् ॥२५॥

पत्नी मालिनी थी ॥ ९ ॥ श्रीकृष्णकी पुरी मथुरामें पत्नीके साथ रहते हुए उस राजाने सन्तानके लिए बहुतेरे प्रयत्न किये ॥ १० ॥ उसने सुपात्र ब्राह्मणोंको बहुतेरी सवत्सा गौवें दान करके दीं और प्रचुर दक्षिणायें देकर बहुतसे यज्ञ किये ॥ ११ ॥ गुरुजनों और विप्रोंको भोजन तथा धन देकर सम्मानित किया। तथापि उसको पुत्रकी प्राप्ति नहीं हुई। तब राजा प्रतिबाहु बहुत चिन्तित हुआ ॥१२॥ अब वे दोनों नित्य चिन्ता तथा शोकमें मग्न रहने लगे। क्योंकि उस राजाके दिये जलको पितर उष्ण अश्रुसदृश पीते थे ॥ १३ ॥ इस राजाके बाद हमें श्राद्ध-तर्पणसे तृप्त करनेवाला कोई नहीं दिखायी देता। यह सोचकर उसके पितर भी सदा दुखी रहते थे ॥ १४ ॥ बन्धु, मित्र, अमात्य, सगे-सम्बन्धी, घोड़े, हाथी, पैदल सैनिक ये सब भी उसे नहीं भाते थे ॥ १५ ॥ उस राजाके मनमें सदा निराशा बनी रहती थी। उसका विचार था कि पुत्रहीन मनुष्यका जीवन व्यर्थ रहता है ॥ १६ ॥ क्योंकि निपूते मनुष्यका घर सूना रहनेके कारण उसका मन नित्य दुखी रहता है। देवता, मनुष्य तथा पितरोंके ऋणसे पुत्रहीन मनुष्य उऋण नहीं हो पाता ॥१७॥ अतएव मनुष्यको चाहिए कि सभी प्रकारसे प्रयत्न करके पुत्र उत्पन्न करे। क्योंकि पुत्रवान् पुरुषोंका ही धरतीपर यश फैलता है और परलोकमें सद्गति प्राप्त होती है ॥ १८ ॥ ऐसे ही पुण्यात्माओंके घरमें पुत्रका जन्म होता है और आयु, आरोग्य तथा सम्पत्ति बढ़ती है ॥१९॥ मन ही मन ऐसा सोचते रहनेके कारण राजा प्रतिबाहुको कहीं भी चैन नहीं मिलती थी। अपने सिरके सफेद बालोंको देखकर वह रात-दिन शोकाकुल रहा करता था ॥ २० ॥ एक दिन मुनीश्वर शांडिल्य मथुरापुरीमें राजा प्रतिबाहुसे मिलने आये ॥ २१ ॥ सहसा उन्हें देखकर राजा तत्काल उठ खड़ा हुआ और प्रत्युत्थान तथा आसनदान देकर मधुपर्क आदिसे सहर्ष उनकी पूजा की ॥ २२ ॥ राजाको उदास देखकर बड़े विस्मयपूर्वक मुनि शांडिल्यने अभिनन्दन तथा स्वस्तिवाचन करते हुए राज्य तथा उसके सातों अंगोंका कुशल-क्षेम पूछा। तब कुशल-क्षेम बताते हुए राजाने कहा ॥ २३ ॥ ॥ २४ ॥ नरपति प्रतिबाहु बोले—अपने पूर्व[illegible]त दोषोंसे प्राप्त दुःखके विषयमें क्या कहूँ। आप जैसे

सौख्यं न राष्ट्रे न पुरे मम नैव तु दृश्यते । किं करोमि क्व गच्छामि पुत्रप्राप्तिः कथं भवेत् ॥२६॥
राज्ञः पश्चान्न पश्यामो योऽस्माकं पालयिष्यति । इत्येवं स्मरतः सर्वा दुःखिता मेऽभवन्प्रजाः ॥२७॥
उपायं वद मे ब्रह्मंस्त्वं साक्षाद्दिव्यदर्शनः । येनापि निष्कलः पुत्रो वंशकर्त्ता भविष्यति ॥२८॥

महादेव उवाच

इति श्रुत्वा वचो देवि दुःखितस्य नृपस्य च । उवाच मुनिशांडिल्यः कश्मलं शमयन्निव ॥२९॥

इति श्रीसम्मोहनतंत्रे पार्वतीहरसंवादे गर्गसंहितामाहात्म्ये द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

(माहात्म्यश्रवणविधि)

शांडिल्य उवाच

उपायाश्च कृता राजन्बहवश्च पुरा त्वया । परंतु तैः सुतो ह्येको न जातः कुलदीपकः ॥ १ ॥
तस्माच्छृणु विधानेन भार्यया सहितः शुचिः । धनदां पुत्रदां राजन्मुक्तिदां गर्गसंहिताम् ॥ २ ॥
सर्वं ददात्यसौ विष्णुर्लघूपायेन वै कलौ । पुत्रादिसुखसंपत्तिः संहिताश्रोतॄणां नृणाम् ॥ ३ ॥

नरेंद्र शश्वन्मुनिसंहिताया नवाहयज्ञेन जनाः पुनीताः ।
इहैव सौख्यं परमाप्नुवंतस्ततस्तु गोलोकपुरं व्रजंति ॥ ४ ॥
रोगी पुमान्रोगगणात्प्रमुच्यते भीतो भयाद्बंधनगश्च बन्धनात् ।
श्रुत्वा कथां निर्धन एति वैभवं मूर्खो भवेत्पण्डित एव सत्वरम् ॥ ५ ॥
विप्रोऽथ विद्वान्विजयी नृपात्मजो वैश्यो निधीशो वृषलोऽपि निर्मलः ।
श्रुत्वा कथां प्राप्तमनोरथो भवेत्स्त्रीणां जनानामतिदुर्लभाऽपि हि ॥ ६ ॥
निष्कारणो भक्तियुतः शृणोति हि सर्वामिमां वै मुनिगर्गसंहिताम् ।
विजित्य विघ्नान्प्रविजित्य नाकपान्गोलोकधामप्रवरं प्रयाति सः ॥ ७ ॥

सर्वज्ञ ऋषि क्या नहीं जानते ? ॥ २५ ॥ अपने राष्ट्र और नगरमें कहीं भी मुझे सुख नहीं मिलता । मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? मुझे कहाँ पुत्र प्राप्त होगा ? ॥ २६ ॥ हमारे न रहनेपर कौन इस राज्यकी रक्षा करेगा ? मेरे दुःखको देखकर मेरी प्रजा भी दुखी रहती है ॥ २७ ॥ हे ब्रह्मन् ! आप दिव्यदर्शी हैं । सो आप मुझे कोई ऐसा उपाय बताइए कि जिससे मुझे निष्कलुष पुत्ररत्न प्राप्त हो और मेरा वंश चले ॥ २८ ॥ श्रीशिवजी बोले—हे देवि ! उस दुखी राजाकी बातें सुनकर मुनि शांडिल्यने जैसे उसका दुःख दूर करते हुए कहा ॥२९॥

इति श्रीसम्मोहनतंत्रे शिवपार्वतीसंवादे गर्गसंहितामाहात्म्ये 'प्रियंवदा' भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

शाण्डिल्यमुनि बोले—हे राजन् ! आपने बहुतेरे उपाय किये, किन्तु एक कुलदीपक पुत्र नहीं प्राप्त कर सके ॥ १ ॥ अब आप अपनी पत्नीके साथ पवित्रतापूर्वक धन, पुत्र और मुक्तिदायिनी गर्गसंहिता सुनिए ॥ २ ॥ इस कलिकालमें इस छोटेसे उपायसे गर्गसंहिताके श्रोताको विष्णुभगवान् पुत्र आदि समस्त सुखसम्पदायें प्रदान करते हैं ॥ ३ ॥ हे नरेन्द्र ! गर्गसंहिताके नवाहयज्ञसे पवित्र होनेवाले मनुष्य इस लोकमें परम सौख्य प्राप्त करके अन्तमें गोलोकधाम चले जाते हैं ॥ ४ ॥ इसे सुननेसे रोगी रोगोंसे, भयभीत प्राणी भयसे और बन्धनमें पड़ा प्राणी बन्धनमुक्त हो जाता है । यह कथा सुनकर निर्धन धनी और मूर्ख शीघ्र पंडित बन जाता है ॥ ५ ॥ गर्गसंहिता सुननेवाला विप्र विद्वान्, क्षत्रिय विजयी, वैश्य धनाढ्य तथा शूद्र निर्मल हो जाता है । कोई भी मनुष्य इसे सुनकर अपनी कामनायें पूर्ण कर लेता है । स्त्रीजनोंको इसे सुननेसे दुर्लभ वस्तु भी प्राप्त हो जाती है ॥ ६ ॥ जो मनुष्य निष्कामभावसे भक्तिपूर्वक समग्र गर्गसंहिता सुनता है,

प्रबन्धकल्पना गर्गसंहितायाश्च दुर्लभा । सहस्रजन्मपुण्येन लभ्यते भूतले नृप ॥ ८ ॥
श्रीगर्गसंहितायाश्च दिनानां नियमो न हि । सर्वदा श्रवणं चोक्तं भुक्तिमुक्तिकरं कलौ ॥ ९ ॥
न जाने समयेनापि प्रभाते किं भविष्यति । प्रोक्तं तु संहितायाश्च नवाहश्रवणं ततः ॥१०॥
ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण चैकभुक्तेन भूपते । एकान्नेन हविष्येण फलाहारेण वा पुनः ॥११॥
मिष्टान्नं पूरिकां चैव गोधूमस्य यवस्य वा । अश्नीयात्सैन्धवं कंदं दधि दुग्धं विधानतः ॥१२॥
विष्णुप्रसादं भुंजीत नाप्रसादं नृपोत्तम । श्रद्धया तु प्रकुर्वीत श्रवणं सर्वकामदम् ॥१३॥
भूमिशायी भवेत्प्राज्ञः क्रोधलोभविवर्जितः । कथां गुरुमुखाच्छ्रुत्वा सर्वकामफलं लभेत् ॥१४॥
गुरुभक्तिविहीनानां नास्तिकानां च पापिनाम् । अवैष्णवानां दुष्टानां कथायाश्च फलं न हि ॥१५॥
सुमुहूर्ते कथारंभं स्वगृहे कारयेन्नरः । ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रान्समाहूय स्वकान्स्वकान् ॥१६॥
मंडपं कदलीखण्डैः प्रकुर्य्याद्भक्तितः सुधीः । अग्रे तु कलशं धृत्वा जलपूर्णं सपल्लवम् ॥१७॥
पूर्वं विनायकं पूज्य तत्पश्चात्तु नवग्रहान् । ततश्च पुस्तकं पूज्य वक्तारं परिपूजयेत् ॥१८॥
सुवर्णदक्षिणां दत्त्वा ह्यशक्तो रजतस्य वा । कलशे श्रीफलं धृत्वा मिष्टान्नं तु निवेदयेत् ॥१९॥
प्रकुर्य्यादार्तिकं भक्त्या संपूज्य तुलसीदलैः । समाप्तिदिवसे राजन्प्रदक्षिणमुपाचरेत् ॥२०॥
परदाररतं धूर्तं वादिनं शिवनिन्दकम् । अवैष्णवं क्रोधपरं वक्तारं तु न कल्पयेत् ॥२१॥
वादी च निंदको मूर्खो गाथायां भंगमाचरेत् । दुःखदाता च सर्वेषां स तु श्रोता हतः स्मृतः ॥२२॥
गुरुशुश्रूषणे रक्तो विष्णुभक्तः कथार्थवित् । गाथां श्रोतुं मनो यस्य स श्रोता श्रेष्ठ उच्यते ॥२३॥

शुद्धः स आचार्यकुलप्रजातः श्रीकृष्णभक्तो बहुशास्त्रवेत्ता ।
कृपाकरः सर्वजनेषु नित्यं संदेहहारी कथितः स वक्ता ॥२४॥

वह विप्रों तथा देवताओंको पराजित करके उत्तम गोलोकधाम चला जाता है ॥ ७ ॥ गर्गसंहिताकी प्रबन्ध-कल्पना बड़ी दुर्लभ वस्तु है । हे राजन् ! हजारों जन्मके पुण्यसे भूतलपर इसकी प्राप्ति होती है ॥ ८ ॥ गर्ग-संहिता सुननेके लिए दिनोंका कोई नियम नहीं है । भुक्ति और मुक्ति प्रदान करनेवाली यह संहिता सदा सुनी जा सकती है ॥ ९ ॥ कल क्या होनेवाला है, इस बातकी निश्चित जानकारी न होनेके कारण नौ दिनोंमें इसको सुननेका विधान बताया गया है ॥१०॥ ज्ञानपूर्वक ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करता हुआ इसका श्रोता दिन-रातमें केवल एक बार भोजन करे । कथाश्रवणकालमें एक ही अन्न खाय या फलाहार करे ॥ ११ ॥ मिठाई, जौ या गेहूँके आटेकी पूड़ी, सेंधानमक, जिमीकन्द, दही और दूधका सेवन करे ॥ १२ ॥ हे राजन् ! विष्णु-भगवान्‌को भोग लगाकर उनका प्रसाद ही खाय । प्रसादके सिवाय और कुछ न खाय । श्रद्धापूर्वक गर्गसंहिता सुननेसे सब कामनायें पूर्ण हो जाती हैं ॥१३॥ कथा-श्रवणकालमें भूमिपर सोये । क्रोध तथा लोभ न करे । गुरुके मुखसे यह कथा सुननेवाला प्राणी अपनी समस्त कामनायें पूर्ण कर लेता है ॥ १४ ॥ गुरुभक्तिहीन, नास्तिक, पापी, अवैष्णव तथा दुष्ट मनुष्योंको इसे सुननेसे कोई लाभ नहीं होता ॥१५॥ किसी शुभ मुहूर्तमें पड़ोसके ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र तथा स्वजनोंको बुलाकर अपने घरपर ही यह कथा सुनना आरम्भ करे ॥ १६ ॥ सर्वप्रथम केलेके खम्भेसे भक्तिपूर्वक मण्डप बनाये । अपने समक्ष जल तथा पल्लवसे पूर्ण कलशकी स्थापना करे ॥ १७ ॥ फिर गणपति, नवग्रह, गर्गसंहिताकी पुस्तक तथा कथावाचककी पूजा करे ॥१८॥ वक्ताको सुवर्ण और सामर्थ्य न होनेपर चाँदीकी दक्षिणा दे । कलशपर नारियल रखकर मिष्टान्न अर्पण करे ॥ १९ ॥ तदनन्तर तुलसीदलसे पूजन करके आरती करे । कथासमाप्तिके दिन परिक्रमा करे ॥ २० ॥ परदारगामी, धूर्त, बकवासी, शिव-निन्दक, अवैष्णव तथा क्रोधी विद्वान्‌से कथा न सुने ॥ २१ ॥ बकवासी, निन्दक और कथामें बाधा डालनेवाला श्रोता निन्दित माना जाता है ॥ २२ ॥ गुरुसेवापरायण, विष्णुभक्त, कथाका अर्थ समझने-

वरणं ब्राह्मणानां तु यथाशक्त्या च कारयेत् । कथाविघ्ननिवृत्त्यर्थं द्वादशाक्षरविद्यया ॥२५॥
कथां तु धीरकंठेन वाचयेत्प्रहरत्रयम् । कथायास्तत्र विश्रामो द्विवारं कारयेद्बुधः ॥२६॥
लघुशंकादिकं कृत्वा भूत्वा नीरेण वै शुचिः । प्रक्षाल्य पाणी पादौ च मुखप्रक्षालनं चरेत् ॥२७॥
नवाहे पूजनं चोक्तं खण्डे विज्ञानके नृप । पुस्तकं पूजयित्वा च पुष्पनैवेद्यचंदनैः ॥२८॥
सुवर्णरजताद्यैश्च वाहनाद्यैः सदक्षिणैः । वस्त्रभूषणगंधाद्यैर्वाचकं पूजयेत्सुधीः ॥२९॥
विप्रान् वा नवसाहस्रांस्तथा नवशतान्नृप । तथा नवनवं वापि पायसैर्वा नव द्विजान् ॥३०॥
भोजयेत्तु यथाशक्त्या कथायाश्च फलं लभेत् । कथायास्तत्र विश्रामे कीर्त्तनं कारयेद्बुधः ॥३१॥
स्त्रीजनैः पुरुषैः सार्द्धं विष्णुभक्तिसमन्वितैः । कांस्यशंखमृदंगाद्यैर्जयशब्दैरितस्ततः ॥३२॥
श्रीगर्गसंहितायाश्च पुस्तकं गुरवे जनः । निधाय स्वर्णसिंहे च दद्यात्सोंते हरिं व्रजेत् ॥३३॥
इति ते कथितं राजन्किं भूयः श्रोतुमिच्छसि । संहिताश्रवणेनापि भुक्तिर्मुक्तिः प्रदृश्यते ॥३४॥

इति श्रीसंमोहनतन्त्रे पार्वतीहरसंवादे श्रीगर्गसंहितामाहात्म्यश्रवणविधिवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥



अथ चतुर्थोऽध्यायः

महादेव उवाच

इदं वचः श्रीमुनिशस्य श्रुत्वा प्रहस्य राजाऽवनतस्तु सम्यक् ।
कुरु त्वं सपुत्रं मुने मां शरण्यं त्वरं श्रावय त्वं हरेः संहितां च ॥ १ ॥
श्रुत्वा भूपवचश्चकार सुखदं पारायणं मंडपं कृत्वा श्रीयमुनातटे मुनिवरः श्रुत्वाऽऽययुर्माथुराः ।
पूर्णेनाथ दिने तथा परदिने राजाऽथ दानं त्वदाद्विप्रेभ्यो वरभोजनं बहुधनं श्रीयादवेंद्रो महान् ॥ २ ॥

वाला और कथामें जिसका मन लगता हो, ऐसा श्रोता श्रेष्ठ होता है ॥ २३ ॥ शुद्ध, आचार्यकुलमें उत्पन्न, श्रीकृष्णका भक्त, सब शास्त्रोंका ज्ञाता, सबपर कृपालु और संशय दूर करनेवाला वक्ता उत्तम माना जाता है ॥२४॥ यथाशक्ति ब्राह्मणोंका वरण करे । कथामें आनेवाले विघ्नोंको दूर करनेके लिए उनसे द्वादशाक्षर (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) मंत्रका जप कराया जाय ॥ २५ ॥ कथावाचक मन्द स्वरसे तीन पहर तक कथा बाँचे । इस बीचें दो बार कथाका विश्राम करे ॥ २६ ॥ लघुशंका आदि करके वक्ता जलसे आत्मशुद्धि करे और हाथ-पैर धोये ॥ २७ ॥ नवें दिन विज्ञानखण्डमें कही हुई विधिसे पुष्प, नैवेद्य तथा चन्दन आदिके द्वारा पुस्तकका पूजन करे ॥ २८ ॥ सोना, चाँदी, हाथी-घोड़ा आदि वाहन, दक्षिणा, वस्त्राभूषण तथा इत्र-चन्दन आदिसे वाचककी पूजा करे ॥ २९ ॥ नौ हजार, नौ सौ, नव्वे अथवा केवल नौ ब्राह्मणोंको खीर खिलाये ॥ ३० ॥ अथवा यथाशक्ति ब्राह्मणभोजन कराये । ऐसा करनेसे पूर्णतः कथाका फल प्राप्त होता है । कथाका विश्राम होनेपर हरिकीर्तन कराना चाहिए ॥ ३१ ॥ स्त्री-पुरुष सभी लोग झांझ, मृदंग, शंख तथा जय-जयकारके साथ कीर्तन करें ॥ ३२ ॥ कथाके अन्तमें श्रोता गर्गसंहिताकी पुस्तक स्वर्णसिंहासनपर रखकर गुरुको दान दे और उसके बाद श्रीकृष्णके मन्दिरमें जाय ॥ ३३ ॥ इस प्रकार मैंने आपको गर्गसंहिताका माहात्म्य सुनाया । अब और क्या सुनना चाहते हो ? गर्गसंहिता सुननेमात्रसे भुक्ति और मुक्ति दोनों सुलभ हो जाती है ॥ ३४ ॥ इति श्रीसम्मोहनतंत्रे पार्वतीहरसंवादे गर्गसंहितामाहात्म्ये 'प्रियंवदा'भाषा-टीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

महादेवजी बोले—हे देवि ! मुनीश्वर शांडिल्यके वचन सुनकर राजा प्रतिबाहु बहुत प्रसन्न हुए और विनयावनत होकर उन्होंने कहा—हे मुनिराज ! मैं आपकी शरणमें आया हूँ । आप ही मुझे गर्गसंहिता सुनाकर पुत्र प्रदान करिए ॥ १ ॥ राजाके वचन सुनकर मुनि शांडिल्यने यमुनातटपर विशाल मंडप

शांडिल्याय मुनीन्द्राय रथाश्वान्द्रविणं महत् ।
गोगजादीनि रत्नानि संपूज्य प्रददौ नृपः ॥ ३ ॥
श्रीमद्गोपालकृष्णस्य ममोक्तं सर्वमंगले ।
सहस्रनाम शांडिल्यः सर्वदोषहरं जगौ ॥ ४ ॥
कथावसाने राजेंद्रः शांडिल्येन प्रणोदितः ।
दध्यौ भक्त्या व्रजपतिं श्रीमन्मदनमोहनम् ॥ ५ ॥
ततः प्रादुरभूत्कृष्णः प्रियया पार्षदैः सह ।
वंशीवेत्रधरः श्यामः कोटिमन्मथमोहनः ॥ ६ ॥
दृष्ट्वाऽऽगतं तं शांडिल्यो राज्ञा च सर्वश्रोतृभिः ।
प्रणामं तु चकाराशु स्तुतिं चक्रे विधानतः ॥ ७ ॥

शांडिल्य उवाच

वैकुण्ठलीलाप्रवरं मनोहरं नमस्कृतं देवगणैः परं वरम् ।
गोपाललीलाभियुतं भजाम्यहं गोलोकनाथं शिरसा नमाम्यहम् ॥ ८ ॥

प्रतिबाहुरुवाच

गोलोकनाथ गिरिराजपते परेश वृंदावनेश कृतनित्यविहारलील ।
राधापते व्रजवधूजनगीतकीर्ते गोविंद गोकुलपते किल ते जयोऽस्तु ॥ ९ ॥

राज्ञ्युवाच

वृंदावनेश राधेश पुरुषोत्तम माधव । भक्तानां त्वं तु सुखदस्त्वामहं शरणं गता ॥१०॥

सर्वे श्रोतार ऊचुः

श्रीनाथ हे जगन्नाथ ह्यपराधं क्षमस्व नः । सुपुत्रं देहि भूपायास्मभ्यं भक्तिं स्वपादयोः ॥११॥

बनवाकर श्रीगर्गसंहिताका सुखदायक पारायण आरम्भ किया। यह समाचार सुनकर मथुराके सभी नागरिक उसमें सम्मिलित हुए। यादवोंके राजा प्रतिबाहुने कथाके प्रथम और अन्तिम दिन ब्राह्मणोंको प्रचुर धन दान दिया, भोजन कराया और दक्षिणा दी ॥ २ ॥ वक्ता शांडिल्य मुनिको रथ, घोड़े, पुष्कल धन, गौ, हाथी तथा विविध रत्न देकर पूजन किया ॥ ३ ॥ हे सर्वमंगले ! तदनन्तर महर्षि शांडिल्यने मेरे द्वारा निर्मित तथा समस्त दोष दूर करनेवाले गोपालसहस्रनामका पाठ किया ॥ ४ ॥ कथाकी समाप्तिपर राजेन्द्रने शांडिल्यमुनिकी प्रेरणासे व्रजराज श्रीमदनमोहनका ध्यान किया ॥ ५ ॥ उनके ध्यान करते ही अपनी प्रिया राधा तथा अपने पार्षदोंके साथ श्रीकृष्ण प्रकट हो गये। वे वंशी तथा वेत्र लिये हुए थे। उनका श्याम मुख करोड़ों कामदेवोंको भी मोहनेमें समर्थ था ॥ ६ ॥ उन्हें देखते ही मुनि शांडिल्य, राजा प्रतिबाहु तथा सभी श्रोताओंने उठकर भगवान्‌को प्रणाम किया और विधिवत् स्तुति की ॥ ७ ॥ शांडिल्य बोले—हे प्रभो ! वैकुंठलीलापरायण, परम मनोहर, सभी देवताओंसे नमस्कृत, सर्वश्रेष्ठ, गोपाललीलामें संलग्न और गोलोकनाथ आपको मैं नतमस्तक होकर प्रणाम करता हूँ ॥ ८ ॥ राजा प्रतिबाहुने कहा—हे गोलोकनाथ ! हे गिरिराजपते ! हे परेश ! हे वृन्दावनेश ! हे नित्य विहारलीला करनेवाले ! हे राधापते ! हे व्रजवधूटियों द्वारा गीतकीर्ते ! हे गोविन्द ! हे गोकुलपते ! आपकी जय हो ॥ ९ ॥ रानी बोली—हे वृन्दावनके स्वामी ! हे राधापते ! हे पुरुषोत्तम ! हे माधव ! आप भक्तोंके लिए सुखदायक हैं। मैं आपकी शरणागत हूँ ॥ १० ॥ सब श्रोताओंने कहा—हे श्रीनाथ ! हे जगन्नाथ ! आप हमारे अपराध क्षमा करिए।

महादेव उवाच

इति श्रुत्वा स्तुतिं देवि भगवान्भक्तवत्सलः । उवाच प्रणतान्सर्वान्मेघगंभीरया गिरा ॥१२॥

श्रीभगवानुवाच

मुनीन्द्र शृणु मद्वाक्यं राज्ञा सर्वजनैः सह । वचनं युष्मदादीनां सफलं च भविष्यति ॥१३॥
गर्गेण कथिता ब्रह्मन्नाम्नेयं गर्गसंहिता । सर्वदोषहरा पुण्या चतुर्वर्गफलप्रदा ॥१४॥
ये ये मनोरथं यं यं वांछंति मनुजाः कलौ ।
तं तं दास्यति सर्वेभ्यः श्रीमुनेर्गर्गसंहिता ॥१५॥

शिव उवाच

इत्युक्त्वा राधया सार्द्धं माधवोऽन्तरधीयत । मुनिभूपादयः सर्वे श्रोतारश्च मुदं ययुः ॥१६॥
शांडिल्यश्च मुनिर्द्रव्यं माथुरान्ब्राह्मणान्पृथक् । दत्त्वा राजानमाश्वास्य त्वरं चांतर्दधे प्रिये ॥१७॥
ततो भूपतिना राज्ञी गर्भमाधत्त शोभनम् ।
सूतिकाले सुतो जातो गुणवान्पुण्यकर्मतः ॥१८॥
हृष्टो राजा ब्राह्मणेभ्यः कुमारस्य च जन्मनि । गोभूसुवर्णवस्त्राणि गजाश्वादीनि दत्तवान् ॥१९॥
दैवज्ञैश्च स्वपुत्रस्य सुबाहुं नाम चाकरोत् । प्रतिबाहुर्नृपश्रेष्ठः कृतकृत्यो बभूव ह ॥२०॥
श्रीगर्गसंहितां श्रुत्वा भुक्त्वा सर्वसुखानि च ।
प्रतिबाहुर्ययावन्ते गोलोकं योगिदुर्लभम् ॥२१॥
स्त्रियं पुत्रं धनं वापि वाहनं च यशो गृहम् । राज्यं सौख्यं च मोक्षं च दद्याच्छ्रीगर्गसंहिता २२॥
इति सर्वां कथां देव्यै कथयित्वा च शंकरः । तूष्णीं बभूव मुनयः पुनस्तं प्राह पार्वती ॥२३॥

पार्वत्युवाच

श्रीगर्गसंहितायाश्च कथां वद ममाग्रतः । अद्भुतं चरितं यस्यां श्रूयते माधवस्य हि ॥२४॥

आप राजा प्रतिबाहुको सन्तान और हमलोगोंको अपने चरणोंकी भक्ति प्रदान करिए ॥ ११ ॥ महादेवजी बोले—हे देवि! उन लोगोंकी स्तुति सुनकर भक्तवत्सल भगवान् कृष्ण मेघसरीखी गंभीर वाणी बोले ॥ १२ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा—हे मुनीन्द्र! राजा प्रतिबाहु और समस्त श्रोताओंके साथ आप मेरी बात सुनिए। आप सभी लोगोंकी वाणी सफल होगी ॥ १३ ॥ गर्गमुनिकी कही हुई यह संहिता सभी दोषोंको हरनेवाली, पवित्र तथा अर्थ धर्म-काम-मोक्ष चारों पदार्थ देनेवाली है ॥ १४ ॥ कलियुगमें जो-जो मनुष्य जिस किसी वस्तुकी इच्छा करेंगे, उनको गर्गसंहिता वह वस्तु प्रदान करेगी ॥ १५ ॥ श्रीशिवजी बोले—ऐसा कहकर राधाके साथ माधव अन्तर्धान हो गये। इससे मुनि शांडिल्य, राजा प्रतिबाहु तथा सभी श्रोता बहुत प्रसन्न हुए ॥ १६ ॥ हे प्रिये! मुनीश्वर शांडिल्य भी राजासे प्राप्त सारा धन मथुराके ब्राह्मणोंमें बाँट तथा राजाको आश्वासन देकर अन्तर्धान हो गये ॥ १७ ॥ तदनन्तर रानीने राजाके सम्पर्कसे सुन्दर गर्भ धारण किया। समय पूरा होनेपर राजा-रानीके पुण्यकर्मसे बड़ा गुणवान् पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १८ ॥ राजपुत्रके जन्मपर राजाने सहर्ष ब्राह्मणोंको गौ, भूमि, सुवर्ण, वस्त्र, हाथी, घोड़े आदिका दान दिया ॥ १९ ॥ उसके बाद राजा प्रतिबाहुने ज्योतिषी ब्राह्मणोंके परामर्शसे राजपुत्रका सुबाहु नाम रक्खा और अपनेको कृतकृत्य समझा ॥ २० ॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताको सुन तथा समस्त ऐहिक सुखोंको भोगकर अन्तमें राजा प्रतिबाहु योगियोंके लिए भी दुर्लभ गोलोक चले गये ॥ २१ ॥ श्रीगर्गसंहिता अपने श्रोताको स्त्री, पुत्र, धन, वाहन, विपुल कीर्ति, घर, राज्य, सौख्य और मोक्ष प्रदान करता है ॥ २२ ॥ सूतजी कहते हैं—हे शौनकादि मुनियो! भगवती पार्वतीको इस प्रकार गर्गसंहिता-माहात्म्यविषयक सारी कथा सुनाकर शंकरजी मौन हो गये ॥२३॥ श्रीपार्वती बोलीं—हे नाथ! आप मुझे गर्गसंहिताकी पूरी कथा सुनाइए, जिसमें भगवान् श्रीकृष्णकी अद्भुत लीलायें

शांडिल्याय मुनीन्द्राय रथाश्वान्द्रविणं महत् ।
गोगजादीनि रत्नानि संपूज्य प्रददौ नृपः ॥ ३ ॥
श्रीमद्गोपालकृष्णस्य ममोक्तं सर्वमंगले ।
सहस्रनाम शांडिल्यः सर्वदोषहरं जगौ ॥ ४ ॥
कथावसाने राजेंद्रः शांडिल्येन प्रणोदितः ।
दध्यौ भक्त्या व्रजपतिं श्रीमन्मदनमोहनम् ॥ ५ ॥
ततः प्रादुरभूत्कृष्णः प्रियया पार्षदैः सह ।
वंशीवेत्रधरः श्यामः कोटिमन्मथमोहनः ॥ ६ ॥
दृष्ट्वाऽऽगतं तं शांडिल्यो राज्ञा च सर्वश्रोतृभिः ।
प्रणामं तु चकाराशु स्तुतिं चक्रे विधानतः ॥ ७ ॥

शांडिल्य उवाच

वैकुण्ठलीलाप्रवरं मनोहरं नमस्कृतं देवगणैः परं वरम् ।
गोपाललीलाभियुतं भजाम्यहं गोलोकनाथं शिरसा नमाम्यहम् ॥ ८ ॥

प्रतिवाहुरुवाच

गोलोकनाथ गिरिराजपते परेश वृंदावनेश कृतनित्यविहारलील ।
राधापते व्रजवधूजनगीतकीर्ते गोविंद गोकुलपते किल ते जयोऽस्तु ॥ ९ ॥

राज्युवाच

वृंदावनेश राधेश पुरुषोत्तम माधव । भक्तानां त्वं तु सुखदस्त्वामहं शरणं गता ॥१०॥

सर्वे श्रोतार ऊचुः

श्रीनाथ हे जगन्नाथ ह्यपराधं क्षमस्व नः । सुपुत्रं देहि भूपायास्मभ्यं भक्तिं स्वपादयोः ॥११॥

बनवाकर श्रीगर्गसंहिताका सुखदायक पारायण आरम्भ किया। यह समाचार सुनकर मथुराके सभी नागरिक उसमें सम्मिलित हुए। यादवोंके राजा प्रतिवाहुने कथाके प्रथम और अन्तिम दिन ब्राह्मणोंको प्रचुर धन दान दिया, भोजन कराया और दक्षिणा दी ॥ २ ॥ वक्ता शांडिल्य मुनिको रथ, घोड़े, पुष्कल धन, गौ, हाथी तथा विविध रत्न देकर पूजन किया ॥ ३ ॥ हे सर्वमंगले ! तदनन्तर महर्षि शांडिल्यने मेरे द्वारा निर्मित तथा समस्त दोष दूर करनेवाले गोपालसहस्रनामका पाठ किया ॥ ४ ॥ कथाकी समाप्तिपर राजेन्द्रने शांडिल्यमुनिकी प्रेरणासे व्रजराज श्रीमदनमोहनका ध्यान किया ॥ ५ ॥ उनके ध्यान करते ही अपनी प्रिया राधा तथा अपने पार्षदोंके साथ श्रीकृष्ण प्रकट हो गये। वे वंशी तथा वेत्र लिये हुए थे। उनका श्याम मुख करोड़ों कामदेवोंको भी मोहनेमें समर्थ था ॥ ६ ॥ उन्हें देखते ही मुनि शांडिल्य, राजा प्रतिवाहु तथा सभी श्रोताओंने उठकर भगवान्‌को प्रणाम किया और विधिवत् स्तुति की ॥ ७ ॥ शांडिल्य बोले—हे प्रभो ! वैकुंठलीलापरायण, परम मनोहर, सभी देवताओंसे नमस्कृत, सर्वश्रेष्ठ, गोपाललीलामें संलग्न और गोलोकनाथ आपको मैं नतमस्तक होकर प्रणाम करता हूँ ॥ ८ ॥ राजा प्रतिवाहुने कहा—हे गोलोकनाथ ! हे गिरिराजपते ! हे परेश ! हे वृन्दावनेश ! हे नित्य विहारलीला करनेवाले ! हे राधापते ! हे व्रजवधूटियों द्वारा गीतकीर्ते ! हे गोविन्द ! हे गोकुलपते ! आपकी जय हो ॥ ९ ॥ रानी बोली—हे वृन्दावनके स्वामी ! हे राधापते ! हे पुरुषोत्तम ! हे माधव ! आप भक्तोंके लिए सुखदायक हैं। मैं आपकी शरणागत हूँ ॥ १० ॥ सब श्रोताओंने कहा—हे श्रीनाथ ! हे जगन्नाथ ! आप हमारे अपराध क्षमा करिए।

महादेव उवाच

इति श्रुत्वा स्तुतिं देवि भगवान्भक्तवत्सलः । उवाच प्रणतान्सर्वान्मेघगंभीरया गिरा ॥१२॥

श्रीभगवानुवाच

मुनीन्द्र शृणु मद्वाक्यं राज्ञा सर्वजनैः सह । वचनं युष्मदादीनां सफलं च भविष्यति ॥१३॥
गर्गेण कथिता ब्रह्मन्नाम्नेयं गर्गसंहिता । सर्वदोषहरा पुण्या चतुर्वर्गफलप्रदा ॥१४॥
ये ये मनोरथं यं यं वांछंति मनुजाः कलौ ।
तं तं दास्यति सर्वेभ्यः श्रीमुनेर्गर्गसंहिता ॥१५॥

शिव उवाच

इत्युक्त्वा राधया सार्द्धं माधवोऽन्तरधीयत । मुनिभूपादयः सर्वे श्रोतारश्च मुदं ययुः ॥१६॥
शांडिल्यश्च मुनिर्द्रव्यं माथुरान्ब्राह्मणान्पृथक् । दत्त्वा राजानमाश्वास्य त्वरं चांतर्दधे प्रिये ॥१७॥
ततो भूपतिना राज्ञी गर्भमाधत्त शोभनम् ।
सूतिकाले सुतो जातो गुणवान्पुण्यकर्मतः ॥१८॥
हृष्टो राजा ब्राह्मणेभ्यः कुमारस्य च जन्मनि । गोभूसुवर्णवस्त्राणि गजाश्वादीनि दत्तवान् ॥१९॥
दैवज्ञैश्च स्वपुत्रस्य सुबाहुं नाम चाकरोत् । प्रतिबाहुर्नृपश्रेष्ठः कृतकृत्यो बभूव ह ॥२०॥
श्रीगर्गसंहितां श्रुत्वा भुक्त्वा सर्वसुखानि च ।
प्रतिबाहुर्ययावन्ते गोलोकं योगिदुर्लभम् ॥२१॥
स्त्रियं पुत्रं धनं वापि वाहनं च यशो गृहम् । राज्यं सौख्यं च मोक्षं च दद्याच्छ्रीगर्गसंहिता २२॥
इति सर्वां कथां देव्यै कथयित्वा च शंकरः । तूष्णीं बभूव मुनयः पुनस्तं प्राह पार्वती ॥२३॥

पार्वत्युवाच

श्रीगर्गसंहितायाश्च कथां वद ममाग्रतः । अद्भुतं चरितं यस्यां श्रूयते माधवस्य हि ॥२४॥

इति श्रुत्वा कथां सर्वां भवान्यै भगवान्भवः । गर्गस्य संहितायाश्च कथयामास हर्षितः ॥२५॥
पुनरूचे हरः साक्षाच्छृणु त्वं सर्वमंगले । बिल्वकेशवने सिद्धपीठे गंगार्द्धयोजने ॥२६॥
श्रीमद्भागवतादीनि संहितादीनि वै कलौ । गोकुलस्थैर्विष्णुजनैर्वारं वारं च श्रोष्यसि ॥२७॥

सूत उवाच

इतीतिहासं रुद्रस्य मुखाच्छ्रुत्वा महाद्भुतम् । वैष्णवी भगवन्माया प्रसन्नाऽभूच्च शौनक ॥२८॥
सकृच्छ्रोतुं हरेर्गाथां बिल्वकेशवने मुने । स्वात्मानं प्रकटं कर्तुं कलेरादौ मनो दधे ॥२९॥
तस्माच्छ्रीरूपिणी तत्र नाम्ना वै सर्वमंगला । गंगाया दक्षिणतटे प्रादुर्भूता भविष्यति ॥३०॥
श्रीगर्गसंहितायाश्च माहात्म्यं कथितं मुने । शृणोति यश्च पठति पापदुःखैः स मुच्यते ॥३१॥

इति श्रीसंमोहनतन्त्रे पार्वतीहरसंवादे श्रीगर्गसंहितामाहात्म्ये चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

कही गयी है ॥ २४ ॥ यह सुनकर भगवान् शंकरने बड़े हर्षके साथ पार्वतीजीको गर्गसंहिताकी समग्र कथा कह सुनायी ॥ २५ ॥ तदनन्तर श्रीशिवजीने पार्वतीसे कहा—हे सर्वमंगले ! कलिमें गंगाजीसे आधे योजन दूर बिल्वकेशनामक सिद्धपीठमें तुम श्रीमद्भागवत तथा अन्यान्य संहितायें गोकुलवासी वैष्णवोंके मुखसे बारम्बार सुनोगी ॥२६॥२७॥ सूतजी बोले—हे शौनक ! शिवजीके मुखसे इस महान् और अद्भुत इतिहासको सुनकर वैष्णवी भगवन्माया पार्वतीजी बहुत प्रसन्न हुईं ॥ २८ ॥ और एक बार फिरसे राधा-माधवकी गाथा सुननेके लिए कलिके आदिमें बिल्वकेश वनमें अपने आपको प्रकट करनेका निश्चय किया ॥ २९ ॥ तदनुसार सर्वमंगला पार्वती गंगाजीके दक्षिणी तटपर श्रीरूपसे पुनः प्रकट होंगी ॥ ३० ॥ हे मुने ! इस प्रकार मैंने गर्गसंहिताका माहात्म्य आप लोगोंको सुनाया । जो मनुष्य इसका पाठ करता अथवा सुनता है, वह सभी पापों और दुःखोंसे छूट जाता है ॥ ३१ ॥ इति श्रीसम्मोहनतंत्रे पार्वतीहरसंवादे श्रीगर्गसंहितामाहात्म्ये 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

श्रीगर्गसंहितामाहात्म्यं सम्पूर्णम्

॥ श्रीकृष्णः शरणं मम ॥

आचार्य-श्रीगर्गमहामुनिविरचिता—

श्रीगर्गसंहिता

'प्रियंवदा'ऽभिधया भाषाटीकयाऽऽटीकिता

(गोलोकखण्डः १)

प्रथमोऽध्यायः

(शौनक-गर्गसंवाद, राजा बहुलाश्वके प्रश्नपर नारदजीके द्वारा अवतारभेदका निरूपण)

ॐनारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥ १ ॥

शरदिकचपंकजश्रियमतीवविद्वेषकं मिलिन्दमुनिसेवितं कुलिशकंजचिह्नावृतम् ।
स्फुरत्कनकनूपुरं दलितभक्ततापत्रयं चलद्द्युतिपदद्वयं हृदि दधामि राधापतेः ॥ २ ॥

वदनकमलनिर्यद्यस्य पीयूषमाद्यं पिबति जनवरो यं पातु सोऽयं गिरं मे ।
बदरवनविहारः सत्यवत्याः कुमारः प्रणतदुरितहारः शार्ङ्गधन्वावतारः ॥ ३ ॥

कदाचिन्नैमिषारण्ये श्रीगर्गो ज्ञानिनां वरः । आययौ शौनकं द्रष्टुं तेजस्वी योगभास्करः ॥ ४ ॥

तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय शौनको मुनिभिः सह । पूजयामास पाद्याद्यैरुपचारैर्विधानतः ॥ ५ ॥

शौनक उवाच

सतां पर्यटनं धन्यं गृहिणां शांतये स्मृतम् । नृणामन्तस्तमोहारी साधुरेव न भास्करः ॥ ६ ॥

'भगवान् नारायण, नरश्रेष्ठ नर, देवी सरस्वती तथा महर्षि व्यासको नमस्कार करनेके पश्चात् जय (श्रीहरिकी विजय-गाथासे पूर्ण इतिहास-पुराण) का पारायण करना चाहिये ॥ १ ॥ मैं भगवान् श्रीराधा-कान्तके उन युगल-चरणकमलोंको अपने हृदयमें धारण करता हूँ, जो शरदृतुके प्रफुल्लित कमलोंकी शोभाको अत्यन्त नीचा दिखानेवाले हैं, मुनिरूपी भ्रमरोंके द्वारा जिनका निरन्तर सेवन होता रहता है, जो वज्र और कमल आदिके चिह्नोंसे विभूषित हैं, जिनमें सोनेके नूपुर चमक रहे हैं और जिन्होंने भक्तोंके त्रिविध तापका सदा ही नाश किया है तथा जिनसे दिव्य ज्योति छिटक रही है। जिनके मुख-कमलसे निकली हुई आदि कथारूपी सुधाका बड़भागी मनुष्य सदा पान करता रहता है, वे बदरीवनमें विहार करनेवाले, प्रणतजनोंका ताप हरनेमें समर्थ, भगवान् विष्णुके अवतार सत्यवतीकुमार श्रीव्यासजी मेरी वाणीकी रक्षा करते हुए उसे दोषमुक्त करें' ॥ २ ॥ ३ ॥ एक समयकी बात है, ज्ञानिशिरोमणि परम तेजस्वी मुनिवर गर्गजी, जो योगशास्त्रके सूर्य हैं, शौनकजीसे मिलनेके लिये नैमिषारण्यमें आये ॥ ४ ॥ उन्हें आया देख मुनियोंसहित शौनकजी सहसा उठकर खड़े हो गये और उन्होंने पाद्य आदि उपचारोंसे विधिवत् उनकी पूजा की ॥ ५ ॥ शौनकजीने कहा—साधुपुरुषोंका सब ओर विचरण धन्य है; क्योंकि वह गृहस्थ-जनोंको शान्ति प्रदान करनेका हेतु कहा गया है। मनुष्योंके भीतरी अन्धकारका नाश महात्मा ही करते हैं, न कि सूर्य ॥ ६ ॥

श्रीकृष्णदासस्य च दासदासः कदा भवेयं मनसाऽऽर्द्रचित्तः ।
यो दुर्लभो देववरैः परात्मा स मे कथं गोचर आदिदेवः ॥३२॥

श्रीनारद उवाच

धन्यस्त्वं राजशार्दूल श्रीकृष्णेष्टो हरिप्रियः । तुभ्यं च दर्शनं दातुं भक्तेशोऽत्रागमिष्यति ॥३३॥
त्वां नृपं श्रुतदेवं च द्विजदेवो जनार्दनः । स्मरत्यलं द्वारकायामहो भाग्यं सतामिह ॥३४॥

इति श्रीगर्गसंहितायां गोलोकखण्डे नारदबहुलाश्वसंवादे श्रीकृष्णमाहात्म्यवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥



अथ द्वितीयोऽध्यायः

(ब्रह्मादि देवोंद्वारा गोलोकधामका दर्शन)

श्रीनारद उवाच

जिह्वां लब्ध्वापि यः कृष्णं कीर्तनीयं न कीर्तयेत् । लब्ध्वापि मोक्षनिश्रेणीं स नारोहति दुर्मतिः ॥ १ ॥
अथ ते संप्रवक्ष्यामि श्रीकृष्णागमनं भुवि । अस्मिन्वाराहकल्पे वै यद्भूतं तच्छृणु प्रभो ॥ २ ॥
पुरा दानवदैत्यानां नराणां खलु भूभुजाम् । भूरिभारसमाक्रांता पृथ्वी गोरूपधारिणी ॥ ३ ॥
अनाथवद्रुदंतीव वेदयंती निजव्यथाम् । कंपयंती निजं गात्रं ब्रह्माणं शरणं गता ॥ ४ ॥
ब्रह्माऽश्वास्य तां सद्यः सर्वदेवगणैर्वृतः । शंकरेण समं प्रागाद्वैकुंठं मंदिरं हरेः ॥ ५ ॥
नत्वा चतुर्भुजं विष्णुं स्वाभिप्रायं जगाद ह । अथोद्विग्नं देवगणं श्रीनाथः प्राह तं विधिम् ॥ ६ ॥

श्रीभगवानुवाच

कृष्णं स्वयं विगणितांडपतिं परेशं साक्षादखण्डमतिदेवमतीवलीलम् ।
कार्यं कदापि न भविष्यति यं विना हि गच्छाशु तस्य विशदं पदमव्ययं त्वम् ॥ ७ ॥

श्रीब्रह्मोवाच

त्वत्तः परं न जानामि परिपूर्णतमं स्वयम् । यदि योऽन्यस्तस्य साक्षाल्लोकं दर्शय नः प्रभो ॥ ८ ॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्तोऽपि हरिः पूर्णः सर्वैर्देवगणैः सह । पदवीं दर्शयामास ब्रह्मांडशिखरोपरि ॥ ९ ॥
वामपादाङ्गुष्ठनखभिन्नब्रह्माण्डमस्तके । श्रीवामनस्य विवरे ब्रह्मद्रवसमाकुले ॥१०॥
जलयानेन मार्गेण बहिस्ते निर्ययुः सुराः । कलिङ्गविम्बवच्चेदं ब्रह्माण्डं ददृशुस्त्वधः ॥११॥
इंद्रायणफलानीव लुठंत्यन्यानि वै जले । विलोक्य विस्मिताः सर्वे बभूवुश्चकिता इव ॥१२॥
कोटिशो योजनोर्ध्वं वै पुराणामष्टकं गताः । दिव्यप्राकाररत्नादिद्रुमवृंदमनोहरम् ॥१३॥
तदूर्ध्वं ददृशुर्देवा विरजायास्तटं शुभम् । तरंगितं क्षौमशुभ्रं सोपानैर्भास्वरं परम् ॥१४॥
तं दृष्ट्वा प्रचलन्तस्ते तत्पुरं जग्मुरुत्तमम् । असंख्यकोटिमार्तंडज्योतिषां मंडलं महत् ॥१५॥
दृष्ट्वा प्रताडिताक्षास्ते तेजसा धर्षिताः स्थिताः । नमस्कृत्वाऽथ तत्तेजो दध्यौ विष्णवाज्ञया विधिः॥१६॥
तज्ज्योतिर्मंडलेऽपश्यत्साकारं धाम शान्तिमत् । तस्मिन्महाद्भुतं दीर्घं मृणालधवलं परम् ॥
सहस्रवदनं शेषं दृष्ट्वा नेमुः सुरास्ततः ॥१७॥
तस्योत्संगे महालोको गोलोको लोकवंदितः । यत्र कालः कलयतामीश्वरो धाममानिनाम् ॥१८॥
राजन्न प्रभवेन्माया मनश्चित्तं मतिर्ह्यहम् । न विकारो विशत्येव न महांश्च गुणाः कुतः ॥१९॥

अनन्त एवं अनिर्वचनीय हैं। उनकी कृपाके बिना यह कार्य कदापि सिद्ध नहीं होगा, अतः तुम उनके अविनाशी एवं परम उज्ज्वल धाममें शीघ्र जाओ ॥ ७ ॥ श्रीब्रह्माजी बोले—हे प्रभो ! आपके अतिरिक्त कोई दूसरा भी परिपूर्णतम तत्त्व है, यह मैं नहीं जानता। यदि कोई दूसरा आपसे उत्कृष्ट परमेश्वर है, तो उसके लोकका मुझे दर्शन कराइये ॥ ८ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—ब्रह्माजीके इस प्रकार कहनेपर परिपूर्णतम भगवान् विष्णुने सम्पूर्ण देवताओंसहित ब्रह्माजीको ब्रह्माण्ड-शिखरपर विराजमान गोलोकधामका मार्ग दिखलाया ॥ ९ ॥ वामनजीके पैरके बायें अँगूठेसे ब्रह्माण्डके शिरोभागका भेदन हो जानेपर जो छिद्र हुआ, वह 'ब्रह्मद्रव' (नित्य अक्षय नीर) से परिपूर्ण था ॥ १० ॥ सब देवता उसी मार्गसे वहाँके लिये नियत जलयान द्वारा बाहर निकले। वहाँ ब्रह्माण्डके ऊपर पहुँचकर उन सबने नीचेकी ओर उस ब्रह्माण्डको कलिङ्गविम्ब (तरबूज) की भाँति देखा ॥ ११ ॥ इसके अतिरिक्त अन्य भी बहुत-से ब्रह्माण्ड उसी जलमें इन्द्रायण-फलके सदृश इधर-उधर लहरोंमें लुढ़क रहे थे। यह देखकर सब देवताओंको विस्मय हुआ ॥ १२ ॥ वे चकित हो गये। वहाँसे करोड़ों योजन ऊपर आठ नगर मिले, जिनके चारों ओर दिव्य चहारदीवारी शोभा बढ़ा रही थी और झुण्ड-के-झुण्ड रत्नादिमय वृक्षोंसे उन पुरियोंकी मनोरमता बढ़ गयी थी ॥ १३ ॥ वहीं ऊपर देवताओंने विरजा नदीका सुन्दर तट देखा, जिसपर विरजाकी तरंगें टकरा रही थीं। वह तट-प्रदेश उज्ज्वल रेशमी वस्त्रके समान शुभ्र दिखायी देता था। दिव्य मणिमय सोपानोंसे वह अत्यन्त उद्भासित हो रहा था ॥ १४ ॥ तटकी शोभा देखते और आगे बढ़ते हुए वे देवता उस उत्तम नगरमें पहुँचे, जो अनन्तकोटि सूर्योंकी ज्योतिका महान् पुञ्ज जान पड़ता था ॥ १५ ॥ उसे देखकर देवताओंकी आँखें चौंधिया गयीं। वे उस तेजसे पराभूत हो जहाँ-के-तहाँ खड़े रह गये। तब भगवान् विष्णुकी आज्ञाके अनुसार उस तेजको प्रणाम करके ब्रह्माजी उसका ध्यान करने लगे ॥ १६ ॥ उसी ज्योतिके भीतर उन्होंने एक परम शान्तिमय साकार धाम देखा। उसमें परम अद्भुत, कमलनालके समान धवल-वर्ण और हजार मुखवाले शेषनागका दर्शन करके सभी देवताओंने उन्हें प्रणाम किया ॥ १७ ॥ हे राजन् ! उन शेषनागकी गोदमें महान् आलोकमय तथा लोक-वन्दित गोलोकधामका दर्शन हुआ, जहाँ धामाभिमानी देवताओंके ईश्वर तथा गणनाशीलोंमें प्रधान कालका भी कोई वश नहीं चलता ॥ १८ ॥ वहाँ माया भी अपना प्रभाव नहीं डाल सकती। मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार, सोलह विकार तथा महत्तत्त्व भी वहाँ प्रवेश नहीं कर सकते; फिर तीनों गुणोंके विषयमें तो

तत्र कंदर्पलावण्याः श्यामसुंदरविग्रहाः । द्वारि गंतुं चाभ्युदिता न्यषेधन्कृष्णपार्षदाः ॥२०॥

देवा ऊचुः

लोकपाला वयं सर्वे ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । श्रीकृष्णदर्शनार्थाय शक्राद्या आगता इह ॥२१॥

श्रीनारद उवाच

तच्छ्रुत्वा तदभिप्रायं श्रीकृष्णाय सखीजनाः । ऊचुर्देवप्रतीहारा गत्वा चान्तःपुरं परम् ॥२२॥
तदा विनिर्गता काचिच्छतचन्द्रानना सखी । पीतांबरा वेत्रहस्ता साऽपृच्छद्वांछितं सुरान् ॥२३॥

शतचन्द्राननोवाच

कस्यांडस्याधिपा देवा यूयं सर्वे समागताः । वदताशु गमिष्यामि तस्मै भगवते ह्यहम् ॥२४॥

देवा ऊचुः

अहो अंडान्युतान्यानि नास्माभिर्दर्शितानि च । एकमंडं प्रजानीमोऽथोऽपरं नास्ति नः शुभे ॥२५॥

शतचन्द्राननोवाच

ब्रह्मदेव लुठंतीह कोटिशो ह्यंडराशयः । तेषु यूयं यथा देवास्तथांडेंऽडे पृथक् पृथक् ॥२६॥
नामग्रामं न जानीथ कदा नात्र समागताः । जडबुद्ध्या प्रहृष्यध्वे गृहान्नापि विनिर्गताः ॥२७॥
ब्रह्मांडमेकं जानंति यत्र जातास्तथा जनाः । मशका च यथांतःस्था औदुंबरफलेषु वै ॥२८॥

श्रीनारद उवाच

उपहास्यं गता देवा इत्थं तूष्णीं स्थिताः पुनः । चकितानिव तान् दृष्ट्वा विष्णुर्वचनमब्रवीत् ॥२९॥

श्रीविष्णुरुवाच

यस्मिन्नंडे पृश्निगर्भोऽवतारोऽभूत्सनातनः । त्रिविक्रमनखोद्भिन्ने तस्मिन्नंडे स्थिता वयम् ॥३०॥

श्रीनारद उवाच

तच्छ्रुत्वा तं च संश्लाघ्य शीघ्रमन्तःपुरं गता । पुनरागत्य देवेभ्योप्याज्ञां दत्त्वा गताः पुरम् ॥३१॥

अथ देवगणाः सर्वे गोलोकं ददृशुः परम् । तत्र गोवर्द्धनो नाम गिरिराजो विराजते ॥३२॥
वसन्तमानिनीभिश्च गोपीभिर्गोगणैर्वृतः । कल्पवृक्षलतासंघै रासमण्डलमण्डितः ॥३३॥
यत्र कृष्णा नदी श्यामा तोलिकाकोटिमंडिता । वैदूर्य्यकृतसोपाना स्वच्छन्दगतिरुत्तमा ॥३४॥
वृंदावनं भ्राजमानं दिव्यद्रुमलताकुलम् । चित्रपक्षिमधुव्रातैर्वंशीवटविराजितम् ॥३५॥
पुलिने शीतले वायुर्मंदगामी वहत्यलम् । सहस्रदलपद्मानां रजो विक्षेपयन्मुहुः ॥३६॥
मध्ये निजनिकुञ्जोऽस्ति द्वात्रिंशद्वनसंयुतः । प्राकारपरिखायुक्तोऽरुणाक्षयवटाजिरः ॥३७॥
सप्तधा पद्मरागाग्राजिरकुड्यविभूषितः । कोटीन्दुमण्डलाकारैर्वितानैर्गुलिकाद्युतिः ॥३८॥
पतत्पताकैर्दिव्याभैः पुष्पमन्दिरवर्त्मभिः । जातभ्रमरसंगीतो मत्तबर्हिपिकस्वनः ॥३९॥
बालार्ककुंडलधराः शतचन्द्रप्रभाः स्त्रियः । स्वच्छन्दगतयो रत्नैः पश्यंत्यः सुंदरं मुखम् ॥४०॥
रत्नाजिरेषु धावंत्यो हारकेयूरभूषिताः । क्वणन्नूपुरकिंकिण्यश्चूडामणिविराजिताः ॥४१॥
कोटिशः कोटिशो गावो द्वारि द्वारि मनोहराः । श्वेतपर्वतसंकाशा दिव्यभूषणभूषिताः ॥४२॥
पयस्विन्यस्तरुण्यश्च शीलरूपगुणैर्युताः । सवत्साः पीतपुच्छाश्च व्रजंत्यो भव्यमूर्तिकाः ॥४३॥
घण्टामंजीरसंरावाः किंकिणीजालमण्डिताः । हेमशृंग्यो हेमतुल्यहारमालास्फुरत्प्रभाः ॥४४॥

करते हैं ॥ ३० ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—भगवान् विष्णुकी यह बात सुनकर शतचन्द्राननाने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और स्वयं भीतर चली गयी। फिर शीघ्र ही आयी और सबको अन्तःपुरमें पधारनेकी आज्ञा देकर वापस चली गयी ॥ ३१ ॥ तदनन्तर सम्पूर्ण देवताओंने परम सुन्दर धाम गोलोकका दर्शन किया। वहाँ 'गोवर्धन' नामक गिरिराज शोभा पा रहे थे ॥ ३२ ॥ गिरिराजका वह प्रदेश उस समय वसन्तका उत्सव मनानेवाली गोपियों और गौओंके समूहसे घिरा था, कल्पवृक्षों तथा कल्पलताओंके समुदायसे सुशोभित था और रास-मण्डल उसे मण्डित (अलंकृत) कर रहा था ॥ ३३ ॥ वहाँ श्यामवर्णवाली उत्तम यमुना नदी स्वच्छन्द गतिसे वह रही है। तटपर बने हुए करोड़ों प्रासाद उसकी शोभा बढ़ाते हैं तथा उस नदीमें उतरनेके लिये वैदूर्यमणिकी सुन्दर सीढ़ियाँ बनी हुई हैं ॥ ३४ ॥ वहाँ दिव्य वृक्षों और लताओंसे भरा हुआ 'वृन्दावन' अत्यन्त शोभा पा रहा है; भाँति-भाँतिके विचित्र पक्षियों, भ्रमरों तथा वंशीवटके कारण वहाँकी सुषमा और भी बढ़ रही है ॥ ३५ ॥ वहाँ सहस्रदल कमलोंके सुगन्धित परागको चारों ओर पुनः-पुनः बिखेरती हुई शीतल वायु मन्द गतिसे बहती रहती है ॥ ३६ ॥ वृन्दावनके मध्यभागमें बत्तीस वनोंसे युक्त एक 'निज निकुञ्ज' है।

तत्र कंदर्पलावण्याः श्यामसुंदरविग्रहाः । द्वारि गंतुं चाभ्युदिता न्यषेधन्कृष्णपार्षदाः ॥२०॥

देवा ऊचुः

लोकपाला वयं सर्वे ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । श्रीकृष्णदर्शनार्थाय शक्राद्या आगता इह ॥२१॥

श्रीनारद उवाच

तच्छ्रुत्वा तदभिप्रायं श्रीकृष्णाय सखीजनाः । ऊचुर्देवप्रतीहारा गत्वा चान्तःपुरं परम् ॥२२॥
तदा विनिर्गता काचिच्छतचन्द्रानना सखी । पीतांबरा वेत्रहस्ता साऽपृच्छद्वांछितं सुरान् ॥२३॥

शतचन्द्राननोवाच

कस्यांडस्याधिपा देवा यूयं सर्वे समागताः । वदताशु गमिष्यामि तस्मै भगवते ह्यहम् ॥२४॥

देवा ऊचुः

अहो अंडान्युतान्यानि नास्माभिर्दर्शितानि च । एकमंडं प्रजानीमोऽथोऽपरं नास्ति नः शुभे ॥२५॥

शतचन्द्राननोवाच

ब्रह्मदेव लुठंतीह कोटिशो ह्यंडराशयः । तेषु यूयं यथा देवास्तथांडेंऽडे पृथक् पृथक् ॥२६॥
नामग्रामं न जानीथ कदा नात्र समागताः । जडबुद्ध्या प्रहृष्यध्वे गृहान्नापि विनिर्गताः ॥२७॥
ब्रह्मांडमेकं जानंति यत्र जातास्तथा जनाः । मशका च यथांतःस्था औदुंबरफलेषु वै ॥२८॥

श्रीनारद उवाच

उपहास्यं गता देवा इत्थं तूष्णीं स्थिताः पुनः । चकितानिव तान् दृष्ट्वा विष्णुर्वचनमब्रवीत् ॥२९॥

श्रीविष्णुरुवाच

यस्मिन्नंडे पृश्निगर्भोऽवतारोऽभूत्सनातनः । त्रिविक्रमनखोद्भिन्ने तस्मिन्नंडे स्थिता वयम् ॥३०॥

श्रीनारद उवाच

तच्छ्रुत्वा तं च संश्लाघ्य शीघ्रमन्तःपुरं गता । पुनरागत्य देवेभ्योप्याज्ञां दत्त्वा गताः पुरम् ॥३१॥

कहना ही क्या है ॥ १९ ॥ वहाँ कामदेवके समान मनोहर रूप-लावण्यशालिनी, श्यामसुन्दर-विग्रहा श्रीकृष्णपार्षदा द्वारपालका कार्य करती थीं। देवताओंको द्वारके भीतर जानेके लिये उद्यत देख उन्होंने मना किया ॥ २० ॥ तब देवता बोले—हम सभी ब्रह्मा, विष्णु, शंकर नामके लोकपाल और इन्द्र आदि देवता हैं। भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनार्थ यहाँ आये हैं ॥ २१ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं – देवताओंकी बात सुनकर उन सखियोंने, जो श्रीकृष्णकी द्वारपालिकाएँ थी, अन्तःपुरमें जाकर देवताओंकी बात कह सुनायीं। तब एक सखी, जो शतचन्द्रानना नामसे विख्यात थी, जिसके वस्त्र पीले थे और जो हाथमें बेंतकी छड़ी लिये थी, बाहर आयी और उनसे उनका अभीष्ट प्रयोजन पूछा ॥ २२ ॥ २३ ॥ शतचन्द्रानना बोली—यहाँ पधारे हुए आप सब देवता किस ब्रह्माण्डके निवासी हैं, यह शीघ्र बताइये। तब मैं भगवान् श्रीकृष्णको सूचित करनेके लिये उनके पास जाऊँगी ॥ २४ ॥ देवताओंने कहा—अहो! यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है, क्या अन्यान्य ब्रह्माण्ड भी हैं? हमने तो उन्हें कभी नहीं देखा। हे शुभे! हम तो यही जानते हैं कि एक ही ब्रह्माण्ड है, इसके अतिरिक्त दूसरा कोई है ही नहीं ॥ २५ ॥ शतचन्द्रानना बोली—ब्रह्मदेव! यहाँ तो विरजा नदीमें ही करोड़ों ब्रह्माण्ड इधर-उधर लुढ़क रहे हैं। उनमें भी आप-जैसे ही पृथक्-पृथक् देवता निवास करते हैं ॥ २६ ॥ अरे! क्या आपलोग अपना नाम-गाँवतक नहीं जानते? जान पड़ता है—कभी यहाँ आये नहीं हैं; अपनी थोड़ी-सी जानकारीमें ही हर्षसे फूल उठे हैं। जान पड़ता है, कभी घरसे बाहर निकले ही नहीं ॥ २७ ॥ जैसे गूलरके फलोंमें रहनेवाले कीड़े जिस फलमें रहते हैं, उसके सिवा दूसरेको नहीं जानते, उसी प्रकार आप-जैसे साधारण जन जिसमें उत्पन्न होते हैं, एकमात्र उसीको 'ब्रह्माण्ड' समझते हैं ॥ २८ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन्! इस प्रकार उपहासके पात्र बने हुए सब देवता चुपचाप खड़े रहे, कुछ बोल नहीं सके। उन्हें चकित-से देखकर भगवान् विष्णुने कहा ॥ २९ ॥ श्रीविष्णु बोले—जिस ब्रह्माण्डमें भगवान् पृश्निगर्भका सनातन अवतार हुआ है तथा त्रिविक्रम (विराट्रूपधारी वामन) के नखसे जिस ब्रह्माण्डमें विवर बन गया है, वहीं हम निवास

अथ देवगणाः सर्वे गोलोकं ददृशुः परम् । तत्र गोवर्द्धनो नाम गिरिराजो विराजते ॥३२॥
वसन्तमानिनीभिश्च गोपीभिर्गोगणैर्वृतः । कल्पवृक्षलतासंघै रासमण्डलमण्डितः ॥३३॥
यत्र कृष्णा नदी श्यामा तौलिकाकोटिमंडिता । वैदूर्य्यकृतसोपाना स्वच्छन्दगतिरुत्तमा ॥३४॥
वृंदावनं भ्राजमानं दिव्यद्रुमलताकुलम् । चित्रपक्षिमधुव्रातैर्वंशीवटविराजितम् ॥३५॥
पुलिने शीतले वायुर्मंदगामी वहत्यलम् । सहस्रदलपद्मानां रजो विक्षेपयन्मुहुः ॥३६॥
मध्ये निजनिकुञ्जोऽस्ति द्वात्रिंशद्वनसंयुतः । प्राकारपरिखायुक्तोऽरुणाक्षयवटाजिरः ॥३७॥
सप्तधा पद्मरागाग्राजिरकुड्यविभूषितः । कोटीन्दुमण्डलाकारैर्वितानैर्गुलिकावृतिः ॥३८॥
पतत्पताकैर्दिव्याभैः पुष्पमन्दिरवर्त्मभिः । जातभ्रमरसंगीतो मत्तबर्हिपिकस्वनः ॥३९॥
बालार्ककुंडलधराः शतचन्द्रप्रभाः स्त्रियः । स्वच्छन्दगतयो रत्नैः पश्यंत्यः सुंदरं मुखम् ॥४०॥
रत्नाजिरेषु धावंत्यो हारकेयूरभूषिताः । क्वणन्नूपुरकिंकिण्यश्चूडामणिविराजिताः ॥४१॥
कोटिशः कोटिशो गावो द्वारि द्वारि मनोहराः । श्वेतपर्वतसंकाशा दिव्यभूषणभूषिताः ॥४२॥
पयस्विन्यस्तरुण्यश्च शीलरूपगुणैर्युताः । सवत्साः पीतपुच्छाश्च व्रजंत्यो भव्यमूर्तिकाः ॥४३॥
घण्टामंजीरसंरावाः किंकिणीजालमण्डिताः । हेमशृंग्यो हेमतुल्यहारमालास्फुरत्प्रभाः ॥४४॥

पाटला हरितास्ताम्राः पीताः श्यामा विचित्रिताः। धूम्राः कोकिलवर्णाश्च यत्र गावस्त्वनेकधा ॥४५॥
समुद्रवद्दुग्धदाश्च तरुणीकरचिह्निताः। कुरंगवल्लिंघद्भिर्गोवत्सैर्मंडिताः शुभाः ॥४६॥
इतस्ततश्चलंतश्च गोगणेषु महावृषाः। दीर्घकन्धरशृंगाढ्या यत्र धर्मधुरंधराः ॥४७॥
गोपाला वेत्रहस्ताश्च श्यामा वंशीधराः पराः। कृष्णलीलां प्रगायंतो रागैर्मदनमोहनैः ॥४८॥
इत्थं निजनिकुंजं तं नत्वा मध्ये गताः सुराः। ज्योतिषां मंडलं पद्मं सहस्रदलशोभितम् ॥४९॥
तदूर्ध्वं षोडशदलं ततोऽष्टदलपंकजम्। तस्योपरि स्फुरद्दीर्घं सोपानत्रयमंडितम् ॥५०॥
सिंहासनं परं दिव्यं कौस्तुभैः खचितं शुभैः।
ददृशुर्देवताः सर्वाः श्रीकृष्णं राधया युतम् ॥५१॥
दिव्यैरष्टसखीसंघैर्मोहिन्यादिभिरन्वितम्। श्रीदामाद्यैः सेव्यमानमष्टगोपालसेवितैः ॥५२॥
हंसाभैर्व्यजनांदोलचामरैर्वज्रमुष्टिभिः। कोटिचन्द्रप्रतीकाशैः सेवितं छत्रकोटिभिः ॥५३॥
श्रीराधिकालंकृतवामबाहुं स्वच्छन्दवक्रीकृतदक्षिणांघ्रिम्।
वंशीधरं सुन्दरमन्दहासं भ्रूमंडलामोहितकामराशिम् ॥५४॥
घनप्रभं पद्मदलायतेक्षणं प्रलंबबाहुं बहुपीतवाससम्।
वृंदावनोन्मत्तमिलिंदशब्दैर्विराजितं श्रीवनमालया हरिम् ॥५५॥

वे सुवर्ण-तुल्य हार एवं मालाएँ धारण करती हैं। उनके अङ्गोंसे प्रभा छिटकती रहती है ॥ ४४ ॥ सभी गौएँ भिन्न-भिन्न रंगवाली हैं—कोई उजली, कोई काली, कोई पीली, कोई लाल, कोई हरी, कोई ताँबेके रंगकी और कोई चितकबरे रंगकी हैं। किन्हीं-किन्हींका वर्ण धुँएँ जैसा है। बहुत-सी कोयलके समान काली हैं ॥ ४५ ॥ दूध देनेमें समुद्रकी तुलना करनेवाली उन गायोंके शरीरपर तरुणियोंके कर-चिह्न शोभित हैं, अर्थात् युवतियोंके हाथोंके रंगीन छापे दिये गये हैं। हिरनके समान छलाँग भरनेवाले बछड़ोंसे उनकी अधिक शोभा बढ़ जाती है ॥ ४६ ॥ गायोंके झुण्डमें विशाल शरीरवाले साँड़ भी इधर-उधर घूम रहे हैं। उनकी लम्बी गर्दन और बड़े-बड़े सींग हैं। उन साँड़ोंको साक्षात् धर्मधुरंधर कहा जाता है ॥ ४७ ॥ गौओंकी रक्षा करनेवाले चरवाहे भी अनेक हैं। उनमेंसे कुछ तो हाथमें बेंतकी छड़ी लिये हुए हैं और दूसरोंके हाथोंमें सुन्दर बाँसुरी शोभा पाती है। उन सबके शरीरका रंग श्याम है। वे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी लीलाएँ ऐसे मधुर स्वरोंमें गाते हैं कि उसे सुनकर कामदेव भी मोहित हो जाता है ॥ ४८ ॥ उस दिव्य 'निज-निकुञ्ज'को सम्पूर्ण देवताओंने प्रणाम किया और भीतर चले गये। वहाँ उन्हें हजार दलवाला एक बहुत बड़ा कमल दिखायी पड़ा। वह ऐसा सुशोभित था, मानो प्रकाशका पुञ्ज हो ॥ ४९ ॥ उसके ऊपर एक सोलह दलका कमल है तथा उसके ऊपर भी एक आठ दलवाला कमल है। उसके ऊपर चमचमाता हुआ एक ऊँचा सिंहासन है। तीन सीढ़ियोंसे सम्पन्न वह परम दिव्य सिंहासन कौस्तुभ-मणियोंसे जटित होकर अनुपम शोभा पाता है। उसीपर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र श्रीराधिकाजीके साथ विराजमान हैं। ऐसी झाँकी उन समस्त देवताओंको मिली ॥ ५० ॥ ५१ ॥ वे युगलरूप भगवान् मोहिनी आदि आठ दिव्य सखियोंसे समन्वित तथा श्रीदामा प्रभृति आठ गोपालोंके द्वारा सेवित हैं ॥ ५२ ॥ उनके ऊपर हंसके समान सफेद रंगवाले पंखे झले जा रहे हैं और हीरोंसे बनी मूँठवाले चँवर डुलाये जा रहे हैं। भगवान्की सेवामें करोड़ों ऐसे छत्र प्रस्तुत हैं, जो कोटि चन्द्रमाओंकी प्रभासे तुलित हो सकते हैं ॥ ५३ ॥ भगवान् श्रीकृष्णके वामभागमें विराजित श्रीराधिकाजीसे उनकी बायीं भुजा सुशोभित है। भगवान्ने स्वेच्छापूर्वक अपने दाहिने पैरको टेढ़ा कर रक्खा है। वे हाथमें बाँसुरी धारण किये हुए हैं। उन्होंने मनोहर मुसकानसे भरे मुखमण्डल और भ्रुकुटिविलाससे अनेक कामदेवोंको मोहित कर रक्खा है ॥ ५४ ॥ उन श्रीहरिकी मेघके समान श्यामल कान्ति है। कमलदलकी भाँति बड़ी विशाल उनकी आँखें हैं। घुटनोंतक लम्बी बड़ी भुजाओंवाले वे प्रभु अत्यन्त पीले वस्त्र पहने हुए हैं। भगवान् गलेमें सुन्दर वनमाला धारण किये हुए हैं, जिसपर वृन्दावनमें विचरण करनेवाले मतवाले भ्रमरोंकी

कांचीकलाकंकणनूपुरद्युतिं लसन्मनोहारि महोज्ज्वलस्मितम् ।
श्रीवत्सरत्नोत्तमकुन्तलश्रियं किरीटहारांगदकुंडलत्विषम् ॥५६॥
दृष्ट्वा तमानन्दसमुद्रमग्नवत्प्रहर्षिताश्चाश्रुकलाकुलेक्षणाः ।
ततः सुराः प्रांजलयो नताननाः नेमुर्मुरारिं पुरुषं परायणम् ॥५७॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायां गोलोकखंडे नारदबहुलाश्वसंवादे श्रीगोलोकधामवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

(भगवान कृष्णके श्रीविग्रहमें विष्णु आदिका प्रवेश और देवताओं द्वारा भगवान्की स्तुति)

बहुलाश्व उवाच

मुने देवा महात्मानं कृष्णं दृष्ट्वा परात्परम् । अग्रे किं चक्रिरे तत्र तन्मे ब्रूहि कृपां कुरु ॥ १ ॥

श्रीनारद उवाच

सर्वेषां पश्यतां तेषां वैकुंठोऽपि हरिस्ततः । उत्थायाष्टभुजः साक्षाल्लीनोऽभूत्कृष्णविग्रहे ॥ २ ॥
तदैव चागतः पूर्णो नृसिंहश्चण्डविक्रमः । कोटिसूर्यप्रतीकाशो लीनोऽभूत्कृष्णतेजसि ॥ ३ ॥
रथे लक्षहये शुभ्रे स्थितश्चागतवांस्ततः । श्वेतद्वीपाधिपो भूमा सहस्रभुजमंडितः ॥ ४ ॥
श्रिया युक्तः स्वायुधाढ्यः पार्षदैः परिसेवितः । संप्रलीनो बभूवाशु सोऽपि श्रीकृष्णविग्रहे ॥ ५ ॥
तदैव चागतः साक्षाद्रामो राजीवलोचनः । धनुर्बाणधरः सीताशोभितो भ्रातृभिर्वृतः ॥ ६ ॥
दशकोट्यर्कसंकाशे चामरैर्दोलिते रथे । असंख्यवानरेंद्राढ्ये लक्षचक्रघनस्वने ॥ ७ ॥
लक्षध्वजे लक्षहये शातकौंभे स्थितस्ततः । श्रीकृष्णविग्रहे पूर्णः संप्रलीनो बभूव ह ॥ ८ ॥

तदैव चागतः साक्षाद्यज्ञो नारायणो हरिः । प्रस्फुरत्प्रलयाटोपज्वलदग्निशिखोपमः ॥ ९ ॥
रथे ज्योतिर्मये दृश्यो दक्षिणाढ्यः सुरेश्वरः । सोऽपि लीनो बभूवाशु श्रीकृष्णे श्यामविग्रहे ॥१०॥
तदा चागतवान् साक्षान्नरनारायणः प्रभुः । चतुर्भुजो विशालाक्षो मुनिवेषो घनद्युतिः ॥११॥
तडित्कोटिजटाजूटः प्रस्फुरद्दीप्तिमंडलः । मुनींद्रमंडलैर्दिव्यैर्मंडितोऽखंडितव्रतः ॥१२॥
सर्वेषां पश्यतां तेषामाश्चर्यमनसा नृप । सोऽपि लीनो बभूवाशु श्रीकृष्णे श्यामसुंदरे ॥१३॥
परिपूर्णतमं साक्षाच्छ्रीकृष्णं च स्वयं प्रभुम् । ज्ञात्वा देवाः स्तुतिं चक्रुः परं विस्मयमागताः ॥१४॥

देवा ऊचुः

कृष्णाय पूर्णपुरुषाय परात्पराय यज्ञेश्वराय परकारणकारणाय ।
राधावराय परिपूर्णतमाय साक्षाद्गोलोकधामधिषणाय नमः परस्मै ॥१५॥
योगेश्वराः किल वदन्ति महः परं त्वं तत्रैव सात्वतमनाः कृतविग्रहं च ।
अस्माभिरद्य विदितं यददोऽद्वयं ते तस्मै नमोऽस्तु महसां पतये परस्मै ॥१६॥
व्यंग्येन वा न न हि लक्षणया कदापि स्फोटेन यच्च कवयो न विशंति मुख्याः ।
निर्देश्यभावरहितं प्रकृतेः परं च त्वां ब्रह्म निर्गुणमलं शरणं व्रजामः ॥१७॥
त्वां ब्रह्म केचिदवयंति परे च कालं केचित्प्रशांतमपरे भुवि कर्मरूपम् ।
पूर्वे च योगमपरे किल कर्तृभावमन्योक्तिभिर्न विदितं शरणं गताः स्मः ॥१८॥

विग्रहमें लीन हो गये ॥ ८ ॥ फिर उसी समय साक्षात् यज्ञनारायण श्रीहरि वहाँ पधारे, जो प्रलयकालकी जाज्वल्यमान अग्निशिखाके समान उद्भासित हो रहे थे ॥ ९ ॥ देवेश्वर यज्ञ अपनी धर्मपत्नी दक्षिणाके साथ ज्योतिर्मय रथपर बैठे दिखायी देते थे। वे भी उस समय श्यामविग्रह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें लीन हो गये ॥ १० ॥ तत्पश्चात् साक्षात् भगवान् नर-नारायण वहाँ पधारे। उनके शरीरकी कान्ति मेघके समान श्याम थी। उनके चार भुजाएँ थीं, नेत्र विशाल थे और वे मुनिके वेषमें थे ॥ ११ ॥ उनके सिरका जटा-जूट कौंधती हुई करोड़ों बिजलियोंके समान दीप्तिमान् था। उनका दीप्तिमण्डल सब ओर उद्भासित हो रहा था। दिव्य मुनीन्द्रमण्डलोंसे मण्डित वे भगवान् नारायण अपने अखण्डित ब्रह्मचर्यसे शोभा पा रहे थे ॥ १२ ॥ हे राजन्! सभी देवता आश्चर्ययुक्त मनसे उनकी ओर देख रहे थे; किंतु वे भी श्यामसुन्दर भगवान् श्रीकृष्णमें तत्काल लीन हो गये ॥ १३ ॥ इस प्रकारके विलक्षण दिव्य दर्शन प्राप्तकर सम्पूर्ण देवताओंको महान् आश्चर्य हुआ। उन सबको यह भलीभाँति ज्ञात हो गया कि परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्र स्वयं परिपूर्णतम भगवान् हैं। तब वे उन परम प्रभुकी स्तुति करने लगे ॥ १४ ॥ देवता बोले—जो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र पूर्णपुरुष, परसे भी पर, यज्ञोंके स्वामी, कारणके भी परम कारण, परिपूर्णतम परमात्मा और साक्षात् गोलोकधामके अधिवासी हैं, उन परम पुरुष श्रीराधावरको हम सादर नमस्कार करते हैं ॥ १५ ॥ योगेश्वर लोग कहते हैं कि आप परम तेजःपुञ्ज हैं; शुद्ध अन्तःकरणवाले भक्तजन ऐसा मानते हैं कि आप लीलाविग्रह धारण करनेवाले अवतारी पुरुष हैं; परंतु हमलोगोंने आज आपके जिस स्वरूपको जाना है, वह अद्वैत—सबसे अभिन्न एक तथा अद्वितीय है; अतः आप महत्तम तत्त्वों एवं महात्माओंके भी अधिपति हैं; आप परब्रह्म परमेश्वरको हमारा नमस्कार है ॥ १६ ॥ कितने विद्वानोंने व्यञ्जना, लक्षणा और स्फोट द्वारा आपको जानना चाहा; किंतु फिर भी वे आपको पहचान नहीं सके; क्योंकि आप निर्दिष्ट भावसे रहित हैं। अतः मायासे निर्लेप आप निर्गुण ब्रह्मकी हम शरण ग्रहण करते हैं ॥ १७ ॥ किन्हींने आपको 'ब्रह्म' माना है, कुछ दूसरे लोग आपके लिये 'काल' शब्दका व्यवहार करते हैं। कितनोंकी ऐसी धारणा है कि आप शुद्ध 'प्रशान्त' स्वरूप हैं तथा कतिपय मीमांसक लोगोंने तो यह मान रक्खा है कि पृथ्वीपर आप 'कर्म'रूपसे विराजमान हैं। कुछ प्राचीनोंने 'योग' नामसे तथा कुछने 'कर्ता'के रूपमें आपको स्वीकार किया है। इस प्रकार सबकी परस्पर विभिन्न उक्तियाँ हैं। अतएव कोई भी आपको वस्तुतः नहीं जान सका। (कोई भी यह नहीं कह

श्रेयस्करीं भगवतस्तव पादसेवां हित्वाऽथ तीर्थयजनादि तपश्चरन्ति ।
ज्ञानेन ये च विदिता बहुविघ्नसंघैः संताडिताः किमु भवन्ति न ते कृतार्थाः ॥१९॥
विज्ञाप्यमद्य किमु देव अशेषसाक्षी यः सर्वभूतहृदयेषु विराजमानः ।
देवैर्नमद्भिरमलाशयमुक्तदेहैस्तस्मै नमो भगवते पुरुषोत्तमाय ॥२०॥
यो राधिकाहृदयसुन्दरचन्द्रहारः श्रीगोपिकानयनजीवनमूलहारः ।
गोलोकधामधिषणध्वज आदिदेवः स त्वं विपत्सु विबुधान्परिपाहि पाहि ॥२१॥
वृंदावनेश गिरिराजपते व्रजेश गोपालवेषकृतनित्यविहारलील ।
राधापते श्रुतिधराधिपते धरां त्वं गोवर्द्धनोद्धरण उद्धर धर्मधाराम् ॥२२॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्तो भगवान् साक्षाच्छ्रीकृष्णो गोकुलेश्वरः । प्रत्याह प्रणतान्देवान्मेघगंभीरया गिरा ॥२३॥

श्रीभगवानुवाच

हे सुरज्येष्ठ हे शंभो देवाः शृणुत मद्वचः । यावदेषु च जन्यध्वमंशैः स्त्रीभिर्मदाज्ञया ॥२४॥
अहं चावतरिष्यामि हरिष्यामि भुवो भरम् । करिष्यामि च वः कार्यं भविष्यामि यदोः कुले ॥२५॥
वेदा मे वचनं विप्रा मुखं गावस्तनुर्मम । अंगानि देवता यूयं साधवो ह्यसवो हृदि ॥२६॥
युगे युगे च बाध्येत यदा पाखंडिभिर्जनैः । धर्मः क्रतुर्दया साक्षात्तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥२७॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्तवंतं जगदीश्वरं हरिं राधा पतिप्राणवियोगविह्वला ।
दावाग्निना दुःखलतेव मूर्छिताऽश्रुकंपरोमांचितभावसंवृता ॥२८॥

सकता कि आप यही हैं, 'ऐसे ही' हैं।) अतः आप (अनिर्देश्य, अचिन्त्य, अनिर्वचनीय) भगवान्‌की हमने शरण ग्रहण की है ॥ १८ ॥ हे भगवन् ! आपके चरणोंकी सेवा अनेक कल्याणोंको देनेवाली है। उसे छोड़कर जो तीर्थ, यज्ञ और तपका आचरण करते हैं, अथवा ज्ञानके द्वारा जो प्रसिद्ध हो गये हैं; उन्हें बहुत-से विघ्नोंका सामना करना पड़ता है; वे सफलता प्राप्त नहीं कर सकते ॥ १९ ॥ हे भगवन् ! अब हम आपसे क्या निवेदन करें, आपसे तो कोई भी बात छिपी नहीं है। क्योंकि आप चराचरमात्रके भीतर विद्यमान हैं। जो शुद्ध अन्तःकरणवाले एवं देहबन्धनसे मुक्त हैं, वे (हम विष्णु आदि) देवता भी आपको नमस्कार ही करते हैं। ऐसे आप पुरुषोत्तम भगवान्‌को हमारा प्रणाम है ॥ २० ॥ जो श्रीराधिकाजीके हृदयको सुशोभित करनेवाले चन्द्रहार हैं, जो गोपियोंके नेत्र और जीवनके मूल आधार हैं तथा ध्वजाकी भाँति गोलोकधामको अलंकृत कर रहे हैं, वे आदिदेव भगवान् आप संकटमें पड़े हुए हम देवताओंकी रक्षा करें, रक्षा करें ॥ २१ ॥ हे भगवन् ! आप वृन्दावनके स्वामी हैं, गिरिराजपति भी कहलाते हैं। आप व्रजके अधिनायक हैं, गोपालके रूपमें अवतार धारण करके आप अनेक प्रकारकी नित्य विहार-लीलाएँ करते हैं। श्रीराधिकाजीके प्राणवल्लभ एवं श्रुतिधरोंके भी आप स्वामी हैं। आप ही गोवर्धनधारी हैं। अब आप धर्मके भारको धारण करनेवाली इस पृथ्वीका उद्धार करनेकी कृपा करें ॥ २२ ॥ नारदजी कहते हैं— इस प्रकार स्तुति करनेपर गोकुलेश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र प्रणाम करते हुए देवताओंको सम्बोधित करके मेघके समान गम्भीर वाणीमें बोले ॥ २३ ॥ श्रीकृष्ण भगवान्‌ने कहा—हे ब्रह्मा, शंकर एवं (अन्य) देवताओं ! तुम सब मेरी बात सुनो। मेरे आदेशानुसार तुमलोग अपने अंशोंसे देवियोंके साथ यदुकुलमें जन्म धारण करो ॥ २४ ॥ मैं भी अवतार लूँगा और मेरे द्वारा पृथ्वीका भार दूर होगा। मेरा यह अवतार यदुकुलमें होगा और मैं तुम्हारे सब कार्य सिद्ध करूँगा ॥ २५ ॥ वेद मेरी वाणी, ब्राह्मण मुख और गौ शरीर है। सभी देवता मेरे अङ्ग हैं। साधुपुरुष तो हृदयमें निवास करनेवाले मेरे प्राण ही हैं ॥ २६ ॥ अतः प्रत्येक युगमें जब दम्भपूर्ण दुष्टों द्वारा इन्हें पीड़ा होती है और धर्म, यज्ञ तथा दयापर भी आघात पहुँचता

श्रीराधोवाच

भुवो भरं हर्तुमलं व्रजेर्भुवं कृतं परं मे शपथं शृणोत्वतः ।
गते त्वयि प्राणपते च विग्रहं कदाचिदत्रैव न धारयाम्यहम् ॥२९॥
यदा त्वमेवं शपथं न मन्यसे द्वितीयवारं प्रददामि वाक्पथम् ।
प्राणोऽधरे गंतुमतीव विह्वलः कर्पूरधूमः कणवद्गमिष्यति ॥३०॥

श्रीभगवानुवाच

त्वया सह गमिष्यामि मा शोकं कुरु राधिके । हरिष्यामि भुवो भारं करिष्यामि वचस्तव ॥३१॥

श्रीराधिकोवाच

यत्र वृंदावनं नास्ति यत्र नो यमुना नदी । यत्र गोवर्द्धनो नास्ति तत्र मे न मनःसुखम् ॥३२॥

श्रीनारद उवाच

वेदनागक्रोशभूमिं स्वधाम्नः श्रीहरिः स्वयम् । गोवर्द्धनं च यमुनां प्रेषयामास भूपरि ॥३३॥
तदा ब्रह्मा देवगणैर्नत्वा नत्वा पुनः पुनः । परिपूर्णतमं साक्षाच्छ्रीकृष्णं समुवाच ह ॥३४॥

श्रीब्रह्मोवाच

अहं कुत्र भविष्यामि कुत्र त्वं च भविष्यसि । एते कुत्र भविष्यंति कैर्गृहैः कैश्च नामभिः ॥३५॥

श्रीभगवानुवाच

वसुदेवस्य देवक्यां भविष्यामि परः स्वयम् । रोहिण्यां मत्कला शेषो भविष्यति न संशयः ॥३६॥
श्रीः साक्षादुक्मिणी भैष्मी शिवा जांबवती तथा । सत्या च तुलसी भूमौ सत्यभामा वसुंधरा ॥३७॥
दक्षिणा लक्ष्मणा चैव कालिन्दी विरजा तथा । भद्रा ह्रीर्मित्रविंदा च जाह्नवी पापनाशिनी ॥३८॥

है, तब मैं स्वयं अपने आपको भूतलपर प्रकट करता हूँ ॥ २७ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—जिस समय जगत्पति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र इस प्रकार बातें कर रहे थे, उसी क्षण 'अब प्राणनाथसे मेरा वियोग हो जायगा' यह समझकर श्रीराधिकाजी व्याकुल हो गयीं और दावानलसे दग्ध लताकी भाँति मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं। उनके शरीरमें अश्रु, कम्प, रोमाञ्च आदि सात्त्विक भावोंका उदय हो गया ॥ २८ ॥ श्रीराधिकाजीने कहा—आप पृथ्वीका भार उतारनेके लिये भूमण्डलपर अवश्य पधारें; परंतु मेरी एक प्रतिज्ञा है, उसे भी सुन लें—हे प्राणनाथ! आपके चले जानेपर एक क्षण भी मैं यहाँ जीवन धारण नहीं कर सकूँगी। यदि आप मेरी इस प्रतिज्ञापर ध्यान नहीं देते तो मैं दुबारा कह रही हूँ। अब मेरे प्राण अधरतक पहुँचनेको अत्यन्त विह्वल हैं। ये इस शरीरसे वैसे ही उड़ जायँगे, जैसे कपूरके धूलिकण ॥ २९ ॥ ३० ॥ श्रीभगवान् बोले—राधिके! तुम विषाद मत करो। मैं तुम्हारे साथ चलूँगा और पृथ्वीका भार दूर करूँगा। मेरे द्वारा तुम्हारी बात अवश्य पूर्ण होगी ॥ ३१ ॥ श्रीराधिकाजीने कहा—(परंतु) हे प्रभो! जहाँ वृन्दावन नहीं है, यमुना नदी नहीं है और गोवर्धन पर्वत भी नहीं है, वहाँ मेरे मनको सुख नहीं मिलता ॥ ३२ ॥ नारदजी कहते हैं—(श्रीराधिकाजीके इस प्रकार कहनेपर) भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपने धामसे चौरासी कोस भूमि, गोवर्धन पर्वत एवं यमुना नदीको भूतलपर भेजा। उस समय सम्पूर्ण देवताओंके साथ ब्रह्माजीने परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णको बार-बार प्रणाम करके कहा ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ श्रीब्रह्माजीने पूछा—भगवन्! मेरे लिये कौन स्थान होगा? आप कहाँ पधारेंगे? तथा ये सम्पूर्ण देवता किन गृहोंमें रहेंगे और किन-किन नामोंसे इनकी प्रसिद्धि होगी? ॥ ३५ ॥ श्रीभगवान्ने कहा—मैं स्वयं वसुदेव और देवकीके यहाँ प्रकट होऊँगा। मेरे कलास्वरूप ये 'शेष' रोहिणीके गर्भसे जन्म लेंगे—इसमें संशय नहीं है ॥ ३६ ॥ साक्षात् 'लक्ष्मी' राजा भीष्मकके घर पुत्रीरूपसे उत्पन्न होंगी। इनका नाम 'रुक्मिणी' होगा और 'पार्वती' 'जाम्बवती'के नामसे प्रकट होंगी। तुलसी 'सत्या' और पृथिवी 'सत्यभामा' होंगी ॥ ३७ ॥ यज्ञपुरुषकी पत्नी 'दक्षिणा देवी' वहाँ 'लक्ष्मणा' नाम धारण करेंगी। यहाँ जो 'विरजा' नामकी नदी है, वही 'कालिन्दी' नामसे विख्यात होंगी। भगवती 'लज्जा' का नाम 'भद्रा' होगा। समस्त पापोंका प्रशमन करनेवाली 'गङ्गा' 'मित्रविन्दा'

रुक्मिण्यां कामदेवश्च प्रद्युम्न इति विश्रुतः । भविष्यति न सन्देहस्तस्य त्वं च भविष्यसि ॥३९॥
नंदो द्रोणो वसुः साक्षाद्यशोदा सा धरा स्मृता । वृषभानुः सुचन्द्रश्च तस्य भार्या कलावती ॥४०॥
भूमौ कीर्तिरिति ख्याता तस्यां राधा भविष्यति । सदा रासं करिष्यामि गोपीभिर्व्रजमंडले ॥४१॥
इति श्रीमद्गर्गसंहितायां गोलोकखंडे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे आगमनोद्योगवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

(नन्द आदिके लक्षण और गोपीयूथका परिचय)

श्रीभगवानुवाच

नन्दोपनन्दभवने श्रीदामा सुबलः सखा । स्तोककृष्णोऽर्जुनोंऽशश्च नवनन्दगृहे स्थितः ॥ १ ॥
विशालर्षभतेजस्वी देवप्रस्थवरूथपाः । भविष्यंति सखायो मे व्रजे षड् वृषभानुषु ॥ २ ॥

श्रीब्रह्मोवाच

कस्य वै नन्दपदवी कस्य वै वृषभानुता । वद देवपते साक्षादुपनन्दस्य लक्षणम् ॥ ३ ॥

श्रीभगवानुवाच

गाः पालयन्ति गोपेषु सदा गोवृत्तयोऽनिशम् । ते गोपाला मया प्रोक्तास्तेषां त्वं लक्षणं शृणु ॥ ४ ॥
नन्दः प्रोक्तः सगोपालैर्नवलक्षगवां पतिः । उपनन्दश्च कथितः पंचलक्षगवां पतिः ॥ ५ ॥
वृषभानुः स उक्तो यो दशलक्षगवां पतिः । गवां कोटिर्गृहे यस्य नन्दराजः स एव हि ॥ ६ ॥
कोट्यर्धं च गवां यस्य वृषभानुवरस्तु सः । एतादृशौ व्रजे द्वौ तु सुचन्द्रो द्रोण एव हि ॥ ७ ॥
सर्वलक्षणलक्ष्याढ्यौ गोपराजौ भविष्यतः । शतचन्द्राननानां च सुन्दरीणां सुवाससाम् ॥
गोपीनां सद्व्रजे रम्ये शतयूथो भविष्यति ॥ ८ ॥

श्रीब्रह्मोवाच

हे दीनबंधो हे देव जगत्कारणकारण । यूथस्य लक्षणं सर्वं तन्मे ब्रूहि परेश्वर ॥ ९ ॥

श्रीभगवानुवाच

अर्बुदं दशकोटीनां मुनिभिः कथितं विधे । दशार्बुदं यत्र भवेत्सोपि यूथः प्रकथ्यते ॥१०॥
गोलोकवासिन्यः काश्चित्काश्चिद्वै द्वारपालिकाः । शृंगारप्रकराः काश्चित्काश्चिच्छय्योपकारकाः ॥११॥
पार्षदाख्यास्तथा काश्चिच्छ्रीवृंदावनपालिकाः । गोवर्द्धननिवासिन्यः काश्चित्कुंजविधायिकाः ॥१२॥
मे निकुंजनिवासिन्यो भविष्यन्ति व्रजे मम । एवं च यमुनायूथो जाह्नवीयूथ एव च ॥१३॥
रमाया मधुमाधव्या विरजायास्तथैव च । ललिताया विशाखाया मायायूथो भविष्यति ॥१४॥
एवं ह्यष्टसखीनां च सखीनां किल षोडश । द्वात्रिंशच्च सखीनां च यूथा भाव्या व्रजे विधे ॥१५॥
श्रुतरूपा ऋषिरूपा मैथिलाः कौशलास्तथा । अयोध्यापुरवासिन्यो यत्र सीतापुलिंदकाः ॥१६॥
यासां मया वरो दत्तो पूर्वे पूर्वे युगे युगे । तासां यूथा भविष्यंति गोपीनां मद्व्रजे शुभे ॥१७॥

श्रीब्रह्मोवाच

एताः कथं व्रजे भाव्याः केन पुण्येन कैर्वरैः । दुर्लभं हि पदं तासां योगिभिः पुरुषोत्तम ॥१८॥

श्रीभगवानुवाच

श्वेतद्वीपे च भूमानं श्रुतयस्तुष्टुवुः परम् । उशतीभिर्गिराभिश्च प्रसन्नोऽभूत्सहस्रपात् ॥१९॥

श्रीहरिरुवाच

वरं वृणीत यूयं वै यन्मनोवाञ्छितं महत् । येषां प्रसन्नोऽहं साक्षात्तेषां किं दुर्लभं हि तत् ॥२०॥

श्रुतय ऊचुः

वाङ्मनोगोचरातीतं ततो न ज्ञायते तु तत् । आनन्दमात्रमिति यद्वदंतीह पुराविदः ॥२१॥

॥ ७ ॥ ८ ॥ श्रीब्रह्माजीने कहा—भगवन् ! आप दीनजनोंके बन्धु और जगत्‌के कारण (प्रकृति) के भी कारण हैं। हे प्रभो ! अब आप मेरे समक्ष यूथके सम्पूर्ण लक्षणोंका वर्णन कीजिये ॥ ९ ॥ श्रीभगवान् बोले—हे ब्रह्माजी ! मुनियोंने दस कोटिको एक 'अर्बुद' कहा है। जहाँ दस अर्बुद होते हैं, उसे 'यूथ' कहा जाता है ॥ १० ॥ यहाँकी गोपियोंमें कुछ गोलोकवासिनी हैं, कुछ द्वारपालिका हैं, कुछ शृङ्गार-साधनोंकी व्यवस्था करनेवाली हैं और कुछ शय्या सँवारनेमें संलग्न रहती हैं ॥ ११ ॥ कोई तो पार्षदकोटिमें आती हैं और कुछ गोपियां श्रीवृन्दावनकी देख-रेख किया करती हैं। कुछ गोपियोंका गोवर्धन गिरिपर निवास है। कई गोपियां कुञ्जवनको सजाती-सँवारती हैं तथा बहुतेरी गोपियाँ मेरे निकुञ्जमें रहती हैं। इन सबको मेरे व्रजमें पधारना होगा। ऐसे ही यमुना-गङ्गाके भी यूथ हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥ इसी प्रकार रमा, मधुमाधवी, विरजा, ललिता, विशाखा एवं मायाके यूथ होंगे ॥ १४ ॥ हे ब्रह्माजी ! इसी प्रकार मेरे व्रजमें आठ, सोलह और बत्तीस सखियोंके भी यूथ होंगे ॥ १५ ॥ पूर्वके अनेक युगोंमें जो श्रुतियाँ, मुनियोंकी पत्नियाँ, अयोध्याकी महिलाएँ, यज्ञमें स्थापित की हुई सीता, जनकपुर एवं कोसलदेशकी निवासिनी सुन्दरियां तथा पुलिन्द-कन्याएँ थीं तथा जिनको मैं पूर्ववर्ती युग-युगमें वर दे चुका हूँ, वे सब मेरे पुण्यमय व्रजमें गोपीरूपसे पधारेंगी और उनके भी यूथ होंगे ॥ १६ ॥ १७ ॥ श्रीब्रह्माजीने पूछा—हे पुरुषोत्तम ! इन स्त्रियोंने कौन-सा पुण्य-कार्य किया है तथा इन्हें कौन-कौन से वर मिल चुके हैं, जिनके फलस्वरूप ये व्रजमें निवास करेंगी ? क्योंकि आपका वह स्थान तो योगियोंके लिये भी दुर्लभ है ॥ १८ ॥ श्रीभगवान् बोले—पूर्वकालमें श्रुतियोंने श्वेतद्वीपमें जाकर वहाँ मेरे स्वरूपभूत भूमा (विराट् पुरुष या परब्रह्मका) मधुर वाणीमें स्तवन किया। तब सहस्रपाद विराट् पुरुष प्रसन्न हो गये और बोले ॥ १९ ॥ श्रीहरिने कहा—हे श्रुतियो ! तुम्हें जो भी पानेकी इच्छा हो, वह वर मांग लो। जिनके ऊपर मैं स्वयं प्रसन्न हो गया, उनके लिये कौन-सी वस्तु दुर्लभ है ? ॥ २० ॥ श्रुतियां बोलीं—भगवन् ! आप मन-वाणीसे नहीं जाने जा सकते; अतः हम आपको

तद्रूपं दर्शयास्माकं यदि देयो वरो हि नः । श्रुत्वैतद्दर्शयामास स्वं लोकं प्रकृतेः परम् ॥२२॥
केवलानुभवानन्दमात्रमक्षरमव्ययम् । यत्र वृंदावनं नाम वनं कामदुघैर्द्रुमैः ॥२३॥
मनोरमनिकुंजाढ्यं सर्वर्तुसुखसंयुतम् । यत्र गोवर्द्धनो नाम सुनिर्झरदरीयुतः ॥२४॥
रत्नधातुमयः श्रीमान् सुपक्षिगणसंवृतः । यत्र निर्मलपानीया कालिन्दी सरितां वरा ॥
रत्नबद्धोभयतटी हंसपद्मादिसंकुला ॥२५॥
नानारासरसोन्मत्तं यत्र गोपीकदंबकम् । तत्कदंबकमध्यस्थः किशोराकृतिरच्युतः ॥२६॥
दर्शयित्वा च ताः प्राह ब्रूत किं करवाणि वः । दृष्टो मदीयो लोकोऽयं यतो नास्ति परं वरम् ॥२७॥

श्रुतय ऊचुः

कन्दर्पकोटिलावण्ये त्वयि दृष्टे मनांसि नः । कामिनीभावमासाद्य स्मरक्षिप्तान्यसंशयम् ॥२८॥
यथा त्वल्लोकवासिन्यः कामतत्त्वेन गोपिकाः । भजंति रमणं मत्वा चिकीर्षाऽजनि नस्तथा ॥२९॥

श्रीहरिरुवाच

दुर्लभो दुर्घटश्चैव युष्माकं तु मनोरथः । मयाऽनुमोदितः सम्यक् सत्यो भवितुमर्हति ॥३०॥
आगामिनि विरिंचौ तु जाते सृष्ट्यर्थमुद्यते । कल्पे सारस्वतेऽतीते व्रजे गोप्यो भविष्यथ ॥३१॥
पृथिव्यां भारते क्षेत्रे माथुरे मम मंडले । वृंदावने भविष्यामि प्रेयान्वो रासमंडले ॥३२॥
जारधर्मेण सुस्नेहं सुदृढं सर्वतोऽधिकम् । मयि संप्राप्य सर्वा हि कृतकृत्या भविष्यथ ॥३३॥

श्रीभगवानुवाच

ताश्च गोप्यो भविष्यंति पूर्वकल्पवरान्मम । अन्यासां चैव गोपीनां लक्षणं शृणु तद्विधे ॥३४॥

सुराणां रक्षणार्थाय राक्षसानां वधाय च । त्रेतायां रामचंद्रोऽभूद्वीरो दशरथात्मजः ॥३५॥
सीतास्वयंवरं गत्वा धनुर्भंगं चकार सः । उवाह जानकीं सीतां रामो राजीवलोचनः ॥३६॥
तं दृष्ट्वा मैथिलाः सर्वाः पुरन्ध्र्यो मुमुहुर्विधे । रहस्यूचुर्महात्मानं भर्ता नो भव हे प्रभो ॥३७॥
तामाह राघवेन्द्रस्तु मा शोकं कुरुत स्त्रियः । द्वापरान्ते करिष्यामि भवतीनां मनोरथम् ॥३८॥
तीर्थं दानं तपः शौचं समाचरत तत्त्वतः । श्रद्धया परया भक्त्या व्रजे गोप्यो भविष्यथ ॥३९॥
इति ताभ्यो वरं दत्त्वा श्रीरामः करुणानिधिः । कौसलान् प्रययौ धन्वी तेजसा जितभार्गवः ॥४०॥
मार्गे च कौसला नार्यो रामं दृष्ट्वाऽतिसुंदरम् । मनसा वव्रिरे तं वै पतिं कन्दर्पमोहनम् ॥४१॥
मनसाऽपि वरं रामो ददौ ताभ्यो ह्यशेषवित् । मनोरथं करिष्यामि व्रजे गोप्यो भविष्यथ ॥४२॥
आगतं सीतया सार्द्धं सैनिकैः सहितं रघुम् । आयोध्यापुरवासिन्यः श्रुत्वा द्रष्टुं समाययुः ॥४३॥
वीक्ष्य तं मोहमापन्ना मूर्छिताः प्रेमविह्वलाः । तेपुस्तपस्ताः सरयूतीरे रामधृतव्रताः ॥४४॥
आकाशवागभूत्तासां द्वापरान्ते मनोरथः । भविष्यति न सन्देहः कालिंदीतीरजे वने ॥४५॥
पितुर्वाक्याद्यदा रामो दंडकाख्यं वनं गतः । चचार सीतया सार्धं लक्ष्मणेन धनुष्मता ॥४६॥
गोपालोपासकाः सर्वे दंडकारण्यवासिनः । ध्यायन्तः सततं मां वै रासार्थं ध्यानतत्पराः ॥४७॥
येषामाश्रममासाद्य धनुर्बाणधरो युवा । तेषां ध्याने गतो रामो जटामुकुटमंडितः ॥४८॥
अन्याकृतिं ते तं वीक्ष्य परं विस्मितमानसाः । ध्यानादुत्थाय ददृशुः कोटिकन्दर्पसन्निभम् ॥४९॥

होंगी । अब अन्य गोपियोंके लक्षण सुनो ॥ ३४ ॥ त्रेतायुगमें देवताओंकी रक्षा और राक्षसोंका संहार करनेके लिये मेरे स्वरूपभूत महापराक्रमी श्रीरामचन्द्रजी अवतीर्ण हुए थे ॥ ३५ ॥ कमललोचन श्रीरामने सीताके स्वयंवरमें जाकर धनुष तोड़ा और उन जनकनन्दिनी श्रीसीताजीके साथ विवाह किया ॥ ३६ ॥ हे ब्रह्माजी ! उस अवसरपर जनकपुरकी स्त्रियाँ श्रीरामको देखकर प्रेमविह्वल हो गयीं । उन्होंने एकान्तमें उन महाभागसे अपना अभिप्राय प्रकट किया—'राघव ! आप हमारे परम प्रियतम बन जायँ ।' ॥३७॥ तब श्रीरामने कहा—'सुन्दरियो ! तुम शोक मत करो । द्वापरके अन्तमें मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा ॥ ३८ ॥ तुमलोग परम श्रद्धा और भक्तिके साथ तीर्थ, दान, तप, शौच एवं सदाचारका भलीभाँति पालन करती रहो । तुम्हें व्रजमें गोपी होनेका सुअवसर प्राप्त होगा ॥ ३९ ॥ इस प्रकार वर देकर धनुर्धारी तथा करुणानिधि श्रीरामने अयोध्याके लिये प्रस्थान कर दिया । उस समय मार्गमें अपने प्रतापसे उन्होंने भृगुकुलनन्दन परशुरामजीको परास्त कर दिया था ॥ ४० ॥ कोसल-जनपदकी स्त्रियोंने भी राजपथसे जाते हुए उन कमनीय-कान्ति रामको देखा । उनकी सुन्दरता कामदेवको मोहित कर रही थी । उन स्त्रियोंने श्रीरामको मन-ही-मन पतिके रूपमें वरण कर लिया ॥ ४१ ॥ उस समय सर्वज्ञ श्रीरामने उन समस्त स्त्रियोंको मन-ही-मन वर दिया—'तुम सभी व्रजमें गोपियाँ होओगी और उस समय मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा' ॥ ४२ ॥ फिर सीता और सैनिकोंके साथ रघुनाथजी अयोध्या पधारे । यह सुनकर अयोध्यामें रहनेवाली स्त्रियाँ उन्हें देखनेके लिये दौड़ आयीं ॥ ४३ ॥ श्रीरामको देखकर उनका मन मुग्ध हो गया । वे प्रेमसे विह्वल हो मूर्च्छित-सी हो गयीं । फिर वे श्रीरामके व्रतमें परायण होकर सरयूके तटपर तपस्या करने लगीं ॥ ४४ ॥ तब उनके सामने आकाशवाणी हुई—'द्वापरके अन्तमें यमुनाके किनारे वृन्दावनमें तुम्हारे मनोरथ पूर्ण होंगे, इसमें संदेह नहीं है' ॥ ४५ ॥ जिस समय श्रीरामने पिताकी आज्ञासे दण्डकवनकी यात्रा की, तब सीता तथा लक्ष्मण भी उनके साथ थे और वे हाथमें धनुष लेकर इधर-उधर विचर रहे थे ॥ ४६ ॥ वहीं बहुत-से मुनि थे । उनकी गोपाल-वेषधारी भगवान्‌के स्वरूपमें निष्ठा थी । रासलीलाके निमित्त वे भगवान्‌का ध्यान करते थे ॥ ४७ ॥ उस समय श्रीरामकी युवा अवस्था थी—वे हाथमें धनुष-बाण धारण किये हुए थे । जटाओंके मुकुटसे उनकी विचित्र शोभा थी ॥ ४८ ॥ अपने आश्रमपर पधारे हुए श्रीराममें उन मुनियोंका ध्यान लग गया । वे ऋषिगण गोपाल-वेषधारी भगवान्‌के उपासक थे । अतः दूसरे ही स्वरूपमें आये हुए श्रीरामको देखकर

कथं चास्मान्न गृह्णासि भजन्तीर्मैथिलीः सतीः । अर्धाङ्गीर्यज्ञकालेषु सततं कार्यसाधिनीः ॥६४॥
धर्मिष्ठस्त्वं श्रुतिधरोऽधर्मवद्धापरे कथम् । करं गृहीत्वा त्यजसि ततः पापमवाप्स्यसि ॥६५॥

श्रीराम उवाच

समीचीनं वचः सत्यो युष्माभिर्गदितं च मे । एकपत्नीव्रतोऽहं हि राजर्षिः सीतयैकया ॥६६॥
तस्माद्यूयं द्वापरान्ते पुण्ये वृंदावने वने । भविष्यथ करिष्यामि युष्माकं तु मनोरथम् ॥६७॥

श्रीभगवानुवाच

ता व्रजेऽपि भविष्यन्ति यज्ञसीताश्च गोपिकाः । अन्यासां चैव गोपीनां लक्षणं शृणु तद्विधे ॥६८॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायां गोलोकखण्डे भगवद्ब्रह्मसंवादे उद्योगप्रश्नवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

(भिन्न-भिन्न स्थानों तथा विभिन्न वर्गोंकी स्त्रियोंके गोपी होनेके कारण)

श्रीभगवानुवाच

रमावैकुण्ठवासिन्यः श्वेतद्वीपसखीजनाः । ऊर्ध्वं वैकुण्ठवासिन्यस्तथाऽजितपदाश्रिताः ॥ १ ॥
श्रीलोकाचलवासिन्यः श्रीसख्योपि समुद्रजाः । ता गोप्योपि भविष्यन्ति लक्ष्मीपतिवराद्व्रजे ॥ २ ॥
काश्चिद्दिव्या अदिव्याश्च तथा त्रिगुणवृत्तयः । भूमिगोप्यो भविष्यन्ति पुण्यैर्नानाविधैः कृतैः ॥ ३ ॥
यज्ञावतारं रुचिरं रुचिपुत्रं दिवस्पतिम् । मोहिताः प्रीतिभावेन वीक्ष्य देवजनस्त्रियः ॥ ४ ॥
ताश्च देवलवाक्येन तपस्तेपुर्हिमाचले । भक्त्या परमया ता मे गोप्यो भाव्या व्रजे विधे ॥ ५ ॥
अन्तर्हिते भगवति देवे धन्वन्तरौ भुवि । ओषध्यो दुःखमापन्ना निष्फला भारतेऽभवन् ॥ ६ ॥

लगीं—॥ ६३ ॥ 'ऐसा क्यों ? हम तो आपकी सेवा करने आयी हैं । हमारा नाम भी मिथिलेशकुमारी सीता है और हम उत्तम व्रतका आचरण करनेवाली सतियाँ भी हैं; फिर हमें आप ग्रहण क्यों नहीं करते ? यज्ञ करते समय हम आपकी अर्धाङ्गिनी बनकर निरन्तर कार्योंका संचालन करती रही हैं ॥ ६४ ॥ आप धर्मात्मा और वेदके मार्गका अवलम्बन करनेवाले महापुरुष हैं, यह अधर्मपूर्ण बात आपके श्रीमुखसे कैसे निकल रही है ? यदि आप स्त्रीका हाथ पकड़कर उसे त्यागते हैं तो आपको पापका भागी होना पड़ेगा' ॥ ६५ ॥ श्रीराम बोले—हे सतियो ! तुमने मुझसे जो बात कही है, वह बहुत ही उचित और सत्य है । परंतु मैंने 'एकपत्नीव्रत' धारण कर रक्खा है ? सभी लोग मुझे 'राजर्षि' कहते हैं । अतः मैं नियमको छोड़ नहीं सकता । एकमात्र सीता ही मेरी सहधर्मिणी है ॥ ६६ ॥ इसलिये तुम सभी द्वापरके अन्तमें श्रेष्ठ वृन्दावनमें पधारना, वहीं मैं तुम्हारी मनःकामना पूर्ण करूँगा ॥ ६७ ॥ भगवान् श्रीहरिने कहा—हे ब्रह्मन् ! वे यज्ञ-सीता ही व्रजमें गोपियाँ होंगी । अब अन्य गोपियोंका भी लक्षण सुनो ॥६८॥ इति श्रीगर्गसंहितायां गोलोकखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

मिथिलायां तास्तपस्तेपुः स्त्रियो भूत्वा मनोहराः । चतुर्युगं व्यतीतं तु प्रसन्नोऽभूद्धरिः परम् ॥ ७ ॥
वरं वृणीत चेत्युक्तं श्रुत्वा नार्यो महावने । तं दृष्ट्वा मोहमापन्ना ऊचुर्भर्ता भवात्र नः ॥ ८ ॥

श्रीहरिरुवाच

वृन्दावने द्वापरान्ते ता भूत्वा मनोहराः । भविष्यथ स्त्रियो गमे करिष्यामि वचश्च वः ॥ ९ ॥

श्रीभगवानुवाच

भक्तिभावसमायुक्ता भूरिभाग्या व्रजांगनाः । ता गोप्यो भविष्यन्ति वृन्दारण्ये पितामह ॥१०॥
जालन्धरस्य या नार्यो वीक्ष्य वृन्दापतिं हरिम् । ऊचुर्वाऽस्य हरिः साक्षादस्माकं तु वरो भवेत् ॥११॥
आकाशवाणीभूतानां भजतां रमापतिम् । यथा वृन्दा तथा यूयं वृन्दारण्ये भविष्यथ ॥१२॥
समुद्रकन्याः श्रीमत्स्यं हरिं दृष्ट्वा च मोहिताः । ता हि गोप्यो भविष्यन्ति श्रीमत्स्यस्य वराद्व्रजे १३॥
आसीद्राजा पृथुः साक्षान्ममांशश्चण्डविक्रमः । जित्वा शत्रून्नृपश्रेष्ठो धरां कामान्दुदोह ह ॥१४॥
बर्हिष्मतीमवाप्यात्र पृथुं दृष्ट्वा पुरस्त्रियः । अतः समीपमागत्य ता ऊचुर्मोहविह्वलाः ॥१५॥
अयं तु राजराजेन्द्रः पृथुः पृथुलविक्रमः । कथं वरो भवेन्नो वै तद्वद त्वं महामुने ॥१६॥

अत्रिरुवाच

गोदोहं कृत्वाथ पृथ्व्यायं धारणामयी । सर्वं दास्यति वो दुग्धं मनोरथमहार्णवम् ॥१७॥
मनोरथं प्रदुदुहुर्मनःपात्रेण ताश्च गाम् । तस्माद्गोप्यो भविष्यन्ति वृन्दारण्ये पितामह ॥१८॥
कामसन्मोहनार्थं दिव्या अप्सरसो वराः । नारायणस्य सहसा ययुर्गन्धमादने ॥१९॥
मनःकामाश्च ता आह सिद्धो नारायणो मुनिः । मनोरथो वो भविता व्रजे गोप्यो भविष्यथ ॥२०॥

स्त्रियः सुतलवासिन्यो वामनं वीक्ष्य मोहिताः । तपस्तप्ता भविष्यन्ति गोप्यो वृन्दावने विधे ॥२१॥
नागेन्द्रकन्या याः शेषं भेजुर्भक्त्या वरेच्छया । संकर्षणस्य रासार्थं भविष्यन्ति व्रजे च ताः ॥२२॥
कश्यपो वसुदेवश्च देवकी चादितिः परा । शूरः प्राणो ध्रुवः सोऽपि देवकोऽवतरिष्यति ॥२३॥
वसुश्चैवोद्धवः साक्षाद्दक्षोऽक्रूरो दयापरः । हृदीको धनदश्चैव कृतवर्मा त्वपांपतिः ॥२४॥
गदः प्राचीनबर्हिश्च मरुतो ह्युग्रसेन उत । तस्य रक्षां करिष्यामि राज्यं दत्त्वा विधानतः ॥२५॥

युयुधानश्चाम्बरीषः प्रह्लादः सात्यकिस्तथा ।
क्षीराब्धिः शन्तनुः साक्षाद्भीष्मो द्रोणो वसूत्तमः ॥२६॥

शलश्चैव दिवोदासो धृतराष्ट्रो भगो रविः । पाण्डुः पूषा सतां श्रेष्ठो धर्मो राजा युधिष्ठिरः ॥२७॥
भीमो वायुर्बलिष्ठश्च मनुः स्वायंभुवोऽर्जुनः । शतरूपा सुभद्रा च सविता कर्ण एव हि ॥२८॥
नकुलः सहदेवश्च स्मृतौ द्वावश्विनीसुतौ । धाता बाह्लीकवीरश्च वह्निर्द्रोणिः प्रतापवान् ॥२९॥
दुर्योधनः कलेरंशोऽभिमन्युः सोम एव च । द्रौणिः साक्षाच्छिवस्यापि रूपं भूमौ भविष्यति॥३०॥
इत्थं यदोः कौरवाणामन्येषां भूभुजां नृणाम् । कुले कुले च भवतः स्वांशैः स्त्रीभिर्मदाज्ञया ॥३१॥
ये येऽवतारा मे पूर्वं तेषां राज्यो रमांशकाः । भविष्या राजराज्ञीषु सहस्राणि च षोडश ॥३२॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तत्र ब्रह्माणं कमलासनम् । दिव्यरूपां भगवतीं योगमायामुवाच ह ॥३३॥

श्रीभगवानुवाच

देवक्याः सप्तमं गर्भं संनिकृष्य महामते । वसुदेवस्य भार्यायां कंसत्रासभयात्पुनः ॥३४॥

नन्दव्रजे स्थितायां च रोहिण्यां सन्निवेशय । नन्दपत्न्यां भव त्वं वै कृत्वेदं कर्म चाद्भुतम् ॥३५॥

श्रीनारद उवाच

श्रुत्वा ब्रह्मा देवगणैर्नत्वा कृष्णं परात्परम् । भूमिमाश्वास्य वाणीभिः स्वधाम च समाययौ ॥३६॥

परिपूर्णतमं साक्षाच्छ्रीकृष्णं विद्धि मैथिल । कंसादीनां वधार्थाय प्राप्तोऽयं भूमिमंडले ॥३७॥

रोममात्रं तनौ जिह्वा सर्वत्रैवं यदा नृप । तदापि श्रीहरेस्तस्य वर्ण्यते न गुणो महान् ॥३८॥

नभः पतंति विहगा यथा ह्यात्मसमं नृप । तथा कृष्णगतिं दिव्यां वदन्तीह विपश्चितः ॥३९॥

इति श्रीगर्गसंहितायां गोलोकखण्डे नारदबहुलाश्वसंवादे भगवद्गुणोद्योगवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

कालनेमिरुवाच

ब्रह्मांडे ये स्थिता देवा विष्णुमूला महाबलाः । तेषां हस्तैर्न मे मृत्युः पूर्णानामपि मा भवेत् ॥ ६ ॥

ब्रह्मोवाच

दुर्लभोऽयं वरो दैत्य यस्त्वया प्रार्थितः परः । कालान्तरे ते प्राप्तः स्यान्मद्वाक्यं न मृषा भवेत् ॥ ७ ॥

श्रीनारद उवाच

कौमारेऽपि महामल्लैः सततं स युयोध ह । उग्रसेनस्य पत्न्यां कौ जन्म लेभेऽसुरः पुनः ॥ ८ ॥
जरासंधो मागधेंद्रो दिग्जयाय विनिर्गतः । यमुनानिकटे तस्य शिबिरोऽभूदितस्ततः ॥ ९ ॥
द्विपः कुवलयापीडः सहस्रद्विपसत्त्वभृत् । बभंज शृंखलासंघं दुद्राव शिबिरान्मदी ॥ १० ॥
निपातयन्स शिबिरान्गृहांश्च भूभृतस्तटान् । रंगभूम्यामाजगाम यत्र कंसोऽप्ययुध्यत ॥ ११ ॥
पलायितेषु मल्लेषु कंसस्तं तु समागतम् । शुंडादंडे संगृहीत्वा पातयामास भूतले ॥ १२ ॥
पुनर्गृहीत्वा हस्ताभ्यां भ्रामयित्वोग्रसेनजः । जरासंधस्य सेनायां चिक्षेप शतयोजनम् ॥ १३ ॥
तदद्भुतं बलं दृष्ट्वा प्रसन्नो मगधेश्वरः । अस्तिप्राप्ती ददौ कन्ये तस्मै कंसाय शंसिते ॥ १४ ॥
अश्वार्बुदं हस्तिलक्षं रथानां च त्रिलक्षकम् । अयुतं चैव दासीनां पारिबर्हं जरासुतः ॥ १५ ॥
द्वंद्वयोधी ततः कंसो भुजवीर्यमदोद्धतः । माहिष्मतीं ययौ वीरोऽथैकाकी चंडविक्रमः ॥ १६ ॥
चाणूरो मुष्टिकः कूटः शलस्तोशलकस्तथा । माहिष्मतीपतेः पुत्रा मल्ला युद्धजयैषिणः ॥ १७ ॥
कंसस्तानाह साम्नापि दीयध्वं रंगमेव मे । अहं दासो भवेयं वो भवंतो जयिनो यदि ॥ १८ ॥

अहं जयी चेद्भवतो दासान्सर्वान्करोम्यहम् । सर्वेषां पश्यतां तेषां नागराणां महात्मनाम् ॥१९॥
इति प्रतिज्ञां कृत्वाथ युयुधे तैर्जयैषिभिः । यदागतं स चाणूरं गृहीत्वा यादवेश्वरः ॥२०॥
भूपृष्ठे पोथयामास शब्दमुच्चैः समुच्चरन् । तदायान्तं मुष्टिकाख्यं मुष्टिभिर्युधि निर्गतम् ॥२१॥
एकेन मुष्टिना तं वै पातयामास भूतले । कूटं समागतं कंसो गृहीत्वा पादयोश्च तम् ॥२२॥
भुजमास्फोट्य धावन्तं शलं नीत्वा भुजेन सः । पातयित्वा पुनर्नीत्वा भूमिं तं विचकर्ष ह ॥२३॥
अथ तोशलकं कंसो गृहीत्वा भुजयोर्बलात् । निपात्य भूमावुत्थाप्य चिक्षेप दशयोजनम् ॥२४॥
दासभावे च तान्कृत्वा तैः सार्द्धं यादवेश्वरः । मद्वाक्येन ययावाशु प्रवर्षणगिरिं वरम् ॥२५॥
तस्मै निवेद्याभिप्रायं युयुधे वानरेण सः । द्विविदेनापि विंशत्या दिनैः कंसो ह्यविश्रमम् ॥२६॥
द्विविदो गिरिमुत्पाट्य चिक्षेप तस्य मूर्द्धनि । कंसो गिरिं गृहीत्वा च तस्योपरि समाक्षिपत् ॥२७॥
द्विविदो मुष्टिना कंसं घातयित्वा नभो गतः । धावन्कंसश्च तं नीत्वा पातयामास भूतले ॥२८॥
मूर्च्छितस्तत्प्रहारेण परं कश्मलमाययौ । क्षीणसत्त्वश्चूर्णितोऽस्थिर्दासभावं गतस्तदा ॥२९॥
तेनैवाथ गतः कंस ऋष्यमूकवनं ततः । तत्र केशी महादैत्यो हयरूपो घनस्वनः ॥३०॥
मुष्टिभिस्ताडयित्वा तं वशीकृत्यारुरोह तम् । इत्थं कंसो महावीर्यो महेन्द्राख्यं गिरिं ययौ ॥३१॥
शतवारं चोज्जहार गिरिमुत्पाट्य दैत्यराट् । पुनस्तत्र स्थितं रामं क्रोधसंरक्तलोचनम् ॥३२॥
प्रलयार्कप्रभं दृष्ट्वा ननाम शिरसा मुनिम् । पुनः प्रदक्षिणीकृत्य तदङ्घ्र्योर्निपपात ह ॥३३॥
ततः शान्तो भार्गवोऽपि कंसं प्राह महोग्रदृक् । हे कीटमर्कटाडिम्भ तुच्छोऽसि मशको यथा ॥३४॥

रहूँगा; और कदाचित् मेरी विजय हो गयी तो तुम सबको मैं अपना सेवक बना लूँगा।' वहाँ जितने भी नागरिक महान् पुरुष थे, उन सबके सामने कंसने इस प्रकारकी प्रतिज्ञा की और विजय पानेकी इच्छा रखने-वाले उन वीरोंके साथ मल्लयुद्ध आरम्भ कर दिया। ज्यों ही चाणूर आया, यादवेश्वर कंसने उच्चस्वरसे गर्जना करते हुए उसे पकड़कर पृथ्वीपर दे मारा। उसी क्षण मुष्टिक भी वहाँ आ गया। वह रोषसे मुक्का ताने हुए था ॥ १८–२१ ॥ कंसने उसे भी एक ही मुक्केसे धराशायी कर दिया। अब कूट आया, कंसने उसके दोनों पैर पकड़ लिये और जमीनपर दे मारा। फिर ताल ठोंकता हुआ शल भी दौड़कर आ पहुँचा। कंसने उसे एक ही हाथसे पकड़ा और जमीनपर पटककर घसीटने लगा ॥ २२ ॥ २३ ॥ इसके बाद कंसने तोशलके दोनों हाथ बलपूर्वक पकड़ लिये और जमीनपर पटक दिया। फिर तत्काल उठाकर दस योजनकी दूरीपर फेंक दिया ॥ २४ ॥ इस प्रकार यादवेश्वर कंस उन सभी वीरोंको अपना सेवक बनाकर, मेरे (नारदजीके) कहनेसे उन योद्धाओंके साथ उसी क्षण श्रेष्ठ पर्वत प्रवर्षणगिरिपर जा पहुँचा ॥ २५ ॥ वहाँ वह वानर द्विविदको अपना अभिप्राय बताकर उसके साथ बीस दिनोंतक अविराम युद्ध करता रहा ॥ २६ ॥ द्विविदने पर्वतकी चट्टान उठाकर उसे कंसके मस्तकपर फेंका, किंतु कंसने उस शिलाखण्डको पकड़कर उसीके ऊपर चला दिया ॥ २७ ॥ तब द्विविद कंसपर मुक्केसे प्रहार करके आकाशमें उड़ गया। कंसने भी उसका पीछा करके उसे पकड़ लिया और नीचे लाकर जमीनपर पटक दिया ॥ २८ ॥ कंसके प्रहारसे द्विविदको मूर्छा आ गयी। उसकी सारी उत्साह-शक्ति जाती रही। हड्डियाँ चूर-चूर हो गयीं। फिर तो वह भी कंसका सेवक बन गया ॥ २९ ॥ तदनन्तर कंस द्विविदके साथ वहाँसे ऋष्यमूक वनमें गया। वहाँ 'केशी' नामसे विख्यात एक महादैत्य रहता था, जिसकी घोड़ेके समान आकृति थी। वह बादलके समान गर्जता था ॥ ३० ॥ उसे मुक्कोंसे मारकर अपने वशमें करके कंस उसपर सवार हो गया। इसके बाद वह महान् पराक्रमी कंस महेन्द्रगिरिपर जा पहुँचा ॥ ३१ ॥ दानवराज कंसने उस पर्वतको सौ बार उखाड़कर ऊपरको उठा लिया। फिर वहाँ रहनेवाले मुनिवर परशुरामजीको, जिनके नेत्र क्रोधसे लाल थे और जो प्रलयकालके सूर्यकी भाँति तेजस्वी थे, चरणोंमें मस्तक झुकाया और बारम्बार उनकी प्रदक्षिणा की। फिर उनके दोनों

अत्रैव त्वां हन्मि दुष्ट क्षत्रियं वीर्यमानिनम् । मत्समीपे धनुरिदं लक्षभारसमं महत् ॥३५॥
इदं च विष्णुना दत्तं शंभवे त्रैपुरे युधि । शंभोः करादिह प्राप्तं क्षत्रियाणां वधाय च ॥३६॥
यदि चेदं तनोपि त्वं तदा च कुशलं भवेत् । चेदस्य कर्षणं न स्याद्घातयिष्यामि ते बलम् ॥३७॥
श्रुत्वा वचस्तदा दैत्यः कोदंडं सप्ततालकम् । गृहीत्वा पश्यतस्तस्य सज्जं कृत्वाऽथ लीलया ॥३८॥
आकृष्य कर्णपर्यंतं शतवारं ततान ह । प्रत्यंचास्फोटनेनैव टंकारोऽभूत्तडित्स्वनः ॥३९॥
ननाद तेन ब्रह्मांडं सप्तलोकैर्बिलैः सह । विचेलुर्दिग्गजास्तारा ह्यपतन् भूमिमंडले ॥४०॥
धनुः संस्थाप्य तत्कंसो नत्वा नत्वाह भार्गवम् । हे देव क्षत्रियो नास्मि दैत्योऽहं ते च किंकरः ॥४१॥
तव दासस्य दासोऽहं पाहि मां पुरुषोत्तम । श्रुत्वा प्रसन्नः श्रीरामस्तस्मै प्रादाद्धनुश्च तत् ॥४२॥

श्रीजामदग्न्युवाच

यत्कोदंडं वैष्णवं तत्त्वेन भंगीभविष्यति । परिपूर्णतमो नात्र सोऽपि त्वां घातयिष्यति ॥४३॥

श्रीनारद उवाच

अथ नत्वा मुनिं कंसो विचरन्स मदोन्मदः । न कोऽपि युयुधुस्तेन राजानश्च बलिं ददुः ॥४४॥
समुद्रस्य तटे कंसो दैत्यं नाम्ना ह्यघासुरम् । सर्पाकारं च फूत्कारैर्लेलिहानं ददर्श ह ॥४५॥
आगच्छन्तं दशन्तं च गृहीत्वा तं निपात्य सः । चकार स्वगले हारं निर्भयो दैत्यराड् बली ॥४६॥
प्राच्यां तु वंगदेशेषु दैत्योऽरिष्टो महावृषः । तेन सार्द्धं स युयुधे गजेनापि गजो यथा ॥४७॥
शृंगाभ्यां पर्वतानुच्चांश्चिक्षेप कंसमूर्द्धनि । कंसो गिरिं संगृहीत्वा चाक्षिपत्तस्य मस्तके ॥४८॥

जघान मुष्टिनाऽरिष्टं कंसो वै दैत्यपुंगवः । मूर्च्छितं तं विनिर्जित्य तेनोदीचीं दिशं गतः ॥४९॥
प्राग्ज्योतिषेश्वरं भौमं नरकाख्यं महाबलम् । उवाच कंसो युद्धार्थी युद्धं मे देहि दैत्यराट् ॥५०॥
अहं दासो भवेयं वो भवन्तो जयिनो यदि । अहं जयी चेद्भवतो दासान्सर्वान्करोम्यहम् ॥५१॥

श्रीनारद उवाच

एवं प्रलंबो युयुधे कंसेनापि महाबलः । मृगेंद्रेण मृगेंद्रोऽग्रावुद्भटेन यथोद्भटः ॥५२॥
मल्लयुद्धे गृहीत्वा तं कंसो भूमौ निपात्य च । पुनर्गृहीत्वा चिक्षेप प्राग्ज्योतिषपुरं प्रति ॥५३॥
आगतो धेनुको नाम्ना कंसं जग्राह रोषतः । नोदयामास दूरेण बलं कृत्वाऽथ दारुणम् ॥५४॥
कंसस्तं नोदयामास धेनुकं शतयोजनम् । निपात्य चूर्णयामास तदंगं मुष्टिभिर्दृढैः ॥५५॥
तृणावर्तो भौमवाक्यात्कंसं नीत्वा नभो गतः । तत्रैव युयुधे दैत्य ऊर्ध्वं वै लक्षयोजनम् ॥५६॥
कंसोऽनंतबलं कृत्वा दैत्यं नीत्वा नभोंऽबरात् । भूमौ स पातयामास वमंतं रुधिरं मुखात् ॥५७॥
तुंडेनाथ ग्रसन्तं च बकं दैत्यं महाबलम् । कंसो निपातयामास मुष्टिना वज्रघातिना ॥५८॥
उत्थाय दैत्यो बलवान् सितपक्षो घनस्वनः । क्रोधयुक्तः समुत्पत्य तीक्ष्णतुंडोऽग्रसच्च तम् ॥५९॥
निर्गीर्णोऽपि स वज्राङ्गो तद्गलं रोधकृच्च यः । सद्यश्चच्छर्द तं कंसं क्षतकंठो महाबकः ॥६०॥
कंसो बकं संगृहीत्वा पातयित्वा महीतले । कराभ्यां भ्रामयित्वा च युद्धे तं विचकर्ष ह ॥६१॥
तत्स्वसारं पूतनाख्यां योद्धुकामामवस्थिताम् । तामाह कंसः प्रहसन्वाक्यं मे शृणु पूतने ॥६२॥

साथ कंस इस प्रकार जा भिड़ा, जैसे एक हाथीके साथ दूसरा हाथी भिड़ता है ॥ ४७ ॥ वह दानव अपनी सींगोंसे बड़े-बड़े पर्वतोंको उठाता और कंसके मस्तकपर पटक देता था। कंस भी उसी पर्वतको हाथमें लेकर अरिष्टासुरपर दे मारता था ॥४८॥ उस युद्धमें दैत्यराज कंसके मुक्केसे अरिष्ट मूर्च्छित हो गया। इस प्रकार उस अरिष्टासुरको पराजित करके उसके साथ ही कंस उत्तर दिशाकी ओर चल दिया ॥ ४९ ॥ प्राग्ज्योतिष-पुरके स्वामी महाबली भूमिपुत्र 'नरक'के पास जाकर युद्धार्थी कंसने उससे कहा—'हे दैत्येश्वर ! तुम मुझे युद्ध करनेका अवसर दो ॥ ५० ॥ यदि संग्राममें तुम्हारी जीत हो गयी तो मैं तुम्हारा सेवक बन जाऊँगा। साथ ही मुझे विजय प्राप्त होनेपर तुम सबको मेरा भृत्य बनना पड़ेगा' ॥ ५१ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! प्राग्ज्योतिषपुरमें सर्वप्रथम महापराक्रमी प्रलम्बासुर कंसके साथ इस प्रकार युद्ध करने लगा, जैसे किसी पर्वत-पर एक उद्भट सिंहके साथ दूसरा उद्भट सिंह लड़ता हो ॥ ५२ ॥ कंसने उस मल्लयुद्धमें प्रलम्बासुरको पकड़ा और पृथ्वीपर दे मारा। फिर उसे उठाकर प्राग्ज्योतिषपुरके स्वामी भौमासुरके पास फेंक दिया ॥ ५३ ॥ तदनन्तर 'धेनुक' नामसे विख्यात दानवने आकर कंसको रोषपूर्वक पकड़ लिया। उसने दारुण बलका प्रयोग करके कंसको दूरतक पीछे हटा दिया ॥ ५४ ॥ तब कंसने भी धेनुकासुरको बहुत दूर पीछे ढकेल दिया और सुदृढ़ घूँसोंसे मारकर उसके शरीरको चूर-चूर कर दिया ॥ ५५ ॥ तदनन्तर भौमासुरकी आज्ञासे 'तृणावर्त' कंसको पकड़कर लाख योजन ऊपर आकाशमें ले गया और वहीं युद्ध करने लगा ॥ ५६ ॥ कंसने अपनी अनन्त शक्ति लगाकर बलपूर्वक उस दैत्यको आकाशसे खींचकर पृथ्वीपर पटक दिया। उस समय तृणावर्तके मुँहसे खूनकी धारा बह चली ॥ ५७ ॥ इसके बाद महाबली 'बकासुर' आकर अपनी चोंचसे कंसको निगल जानेकी चेष्टा करने लगा। तब कंसने वज्रके समान कठोर मुक्केसे प्रहार करके उसे भी धराशायी कर दिया ॥ ५८ ॥ बलवान् बकासुर फिर उठ गया। उसके पंख सफेद थे। वह मेघके समान गम्भीर गर्जन करता था। क्रोधपूर्वक उड़कर तीखी चोंचवाले उस बकासुरने कंसको निगल लिया ॥ ५९ ॥ कंसका शरीर वज्रकी भाँति कठोर था। निगले जानेपर उसने उस दानवके गलेके नलीको रूँध दिया। फिर महान् बली बकासुरने कण्ठ छिद जानेके कारण कंसको मुँहसे बाहर उगल दिया ॥ ६० ॥ तदनन्तर कंसने उस दैत्यको पकड़कर धरतीपर पटका और दोनों हाथोंसे घुमाता हुआ उसे युद्धभूमिमें घसीटने लगा ॥ ६१ ॥ बकासुरकी एक बहन थी। उसका नाम था—'पूतना'। वह भी युद्ध करनेके लिये उद्यत हो गयी। उसे

स्त्रिया सार्द्धमहं युद्धं न करोमि कदाचन । वृकासुरः स्यान्मे भ्राता त्वं च मे भगिनी भव ॥६३॥
ततोऽनन्तबलं कंसं वीक्ष्य भौमोऽपि धर्षितः । चकार सौहृदं कंसे साहाय्यार्थं सुरान्प्रति ॥६४॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायां गोलोकखंडे नारदबहुलाश्वसंवादे कंसबलवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

(कंसके दिग्विजयप्रसंगमें शम्बर, व्योमासुर, बाणासुर, वत्सासुर, कालयवन तथा देवताओंकी पराजय)

श्रीनारद उवाच

अथ कंसः प्रलंबाद्यैरन्यैः पूर्वं जितैश्च तैः । शंबरस्य पुरं प्रागात्स्वाभिप्रायं न्यवेदयत् ॥ १ ॥
शंबरो ह्यतिवीर्योऽपि न युयोध स तेन वै । चकार सौहृदं कंसे सर्वैरतिबलैः सह ॥ २ ॥
त्रिशृंगशिखरे शैले व्योमो नाम्नाऽसुरो बली । कंसपादप्रबुद्धोऽभूत् क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ ३ ॥
कंसं जघान चोत्थाय प्रबलैर्दृढमुष्टिभिः । तयोर्युद्धमभूद्घोरमितरेतरमुष्टिभिः ॥ ४ ॥
कंसस्य मुष्टिभिः सोऽपि निःसत्त्वोऽभूद्भ्रमातुरः । भृत्यं कृत्वाऽथ तं कंसः प्राप्तं मां प्रणनाम ह ॥ ५ ॥
हे देव युद्धकांक्षोऽस्मि क्व यामि त्वं वदाशु मे । प्रोवाच तं तदा गच्छ दैत्य बाणं महाबलम् ॥ ६ ॥
प्रेरितश्चेति कंसाख्यो मया युद्धदिदृक्षुणा । भुजवीर्यमदोन्नद्धः शोणिताख्यं पुरं ययौ ॥ ७ ॥
बाणासुरस्तत्प्रतिज्ञां श्रुत्वा क्रुद्धो ह्यभून्महान् । ततड लत्तां भूमध्ये जगर्ज घनवद्बली ॥ ८ ॥
आजानुभूमिगां लत्तां पातालांतमुपागताम् । कृत्वा तमाह बाणस्तु पूर्वं चैनां समुद्धर ॥ ९ ॥

श्रुत्वा वचः कराभ्यां तामुज्जहार मदोत्कटः । प्रचंडविक्रमः कंसः खरदंडं गजो यथा ॥१०॥
तया चोद्धृतयोत्खाता लोकाः सप्ततला दृढाः । निपेतुर्गिरयोऽनेका विचेलुर्दृढदिग्गजाः ॥११॥
योद्धुं तमुद्यतं बाणं दृष्ट्वागत्य वृषध्वजः । सर्वान्संबोधयामास प्रोवाच बलिनंदनम् ॥१२॥
कृष्णं विनाऽपरं चैनं भूमौ कोपि न जेष्यति । भार्गवेण वरं दत्तं धनुरस्मै च वैष्णवम् ॥१३॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा सौहृदं हृद्यं सद्यो वै कंसबाणयोः । चकार परया शान्त्या शिवः साक्षान्महेश्वरः ॥१४॥
अथ कंसो दिक्प्रतीच्यां श्रुत्वा वत्सं महासुरम् । तेन सार्द्धं स युयुधे वत्सरूपेण दैत्यराट् ॥१५॥
पुच्छे गृहीत्वा तं वत्सं पोथयामास भूतले । वशे कृत्वाथ तं शैलं म्लेच्छदेशांस्ततो ययौ ॥१६॥
सन्मुखात्कालयवनः श्रुत्वा दैत्यं महाबलम् । निर्ययौ संमुखे योद्धुं रक्तश्मश्रुर्गदाधरः ॥१७॥
कंसो गदां गृहीत्वा स्वां लक्षभारविनिर्मिताम् । प्राक्षिपद्यवनेन्द्राय सिंहनादमथाकरोत् ॥१८॥
गदायुद्धमभूद्घोरं तदा हि कंसकालयोः । विस्फुलिंगान् क्षरंत्यौ द्वे गदे चूर्णीबभूवतुः ॥१९॥
कंसः कालं संगृहीत्वा पातयामास भूतले । पुनर्गृहीत्वा निष्पात्य मृततुल्यं चकार ह ॥२०॥
बाणवर्षं प्रकुर्वन्तीं सेनां तां यवनस्य च । गदया पोथयामास कंसो दैत्याधिपो बली ॥२१॥
गजांस्तुरंगान्सुरथान्वीरान् भूमौ निपात्य च । जगर्ज घनवद्वीरो गदायुद्धे मृधांगणे ॥२२॥
ततश्च दुद्रुवुर्म्लेच्छास्त्यक्त्वा स्वं स्वं रणं परम् । भीतान् पलायितान् म्लेच्छान्न जघानाथ नीतिमान् ॥

उच्चपादो दीर्घजानुः स्तंभोरुर्लघिमा कटिः । कपाटवक्षाः पीनांसः पुष्टः प्रांशुर्बृहद्भुजः ॥२४॥
पद्मनेत्रो बृहत्केशोऽरुणवर्णोऽसितांबरः । किरीटी कुंडली हारी पद्ममाली लयार्करुक् ॥२५॥
खड्गी निषंगी कवची मुद्गराढ्यो धनुर्धरः । मदोत्कटो ययौ जेतुं देवान्कंसोऽमरावतीम् ॥२६॥
चाणूरमुष्टिकारिष्टशलतोशलकेशिभिः । प्रलंबेन बकेनापि द्विविदेन समावृतः ॥२७॥
तृणावर्ताघकूटैश्च भौमबाणाख्यशंबरैः । व्योमधेनुकवत्सैश्च रुरुधे सोऽमरावतीम् ॥२८॥
कंसादीनागतान्दृष्ट्वा शक्रो देवाधिपः स्वराट् । सर्वैर्देवगणैः सार्द्धं योद्धुं क्रुद्धो विनिर्ययौ ॥२९॥
तयोर्युद्धमभूद्धोरं तुमुलं रोमहर्षणम् । दिव्यैश्च शस्त्रसंघातैर्बाणैस्तीक्ष्णैः स्फुरत्प्रभैः ॥३०॥
शस्त्रांधकारे संजाते रथारूढो महेश्वरः । चिक्षेप वज्रं कंसाय शतधारं तडिद्द्युति ॥३१॥
मुद्गरेणापि तद्वज्रं तताडाशु महासुरः । पपात कुलिशं युद्धे छिन्नधारं बभूव ह ॥३२॥
त्यक्त्वा वज्रं तदा वज्री खड्गं जग्राह रोषतः । कंसं मूर्ध्नि तताडाशु नादं कृत्वाऽथ भैरवम् ॥३३॥
स क्षतो नाभवत्कंसो मालाहत इव द्विपः । गृहीत्वा स गदां गुर्वीमष्टधातुमयीं दृढाम् ॥३४॥
लक्षभारसमां कंसश्चिक्षेपेन्द्राय दैत्यराट् । तां समापततीं वीक्ष्य जग्राहाशु पुरंदरः ॥३५॥
ततश्चिक्षेप दैत्याय वीरो नमुचिसूदनः । चचार युद्धे विदलन्नरीन्मातलिसारथिः ॥३६॥
कंसो गृहीत्वा परिघं तताडांसेऽसुरद्विपः । तत्प्रहारेण देवेन्द्रः क्षणं मूर्च्छामवाप सः ॥३७॥
कंसं मरुद्गणाः सर्वे गृध्रपक्षैः स्फुरत्प्रभैः । बाणौघैश्छादयामासुर्वर्षासूर्यमिवांबुदः ॥३८॥

दोःसहस्रयुतो वीरश्चापं टंकारयन्मुहुः । तदा तान्कालयामास बाणैर्बाणासुरो बली ॥३९॥
बाणं च वसवो रुद्रा आदित्या ऋभवः सुराः । जघ्नुर्नानाविधैः शस्त्रैः सर्वतोऽद्रिं समागताः ॥४०॥
ततो भौमासुरः प्राप्तः प्रलंबाद्यसुरैर्नदन् । तेन नादेन देवास्ते निपेतुर्मूर्च्छिता रणे ॥४१॥
उत्थायाशु तदा शक्रो गजमारुह्य रक्तदृक् । नोदयामास कंसाय मत्तमैरावतं गजम् ॥४२॥
अंकुशास्फालनात् क्रुद्धं पातयन्तं पदैर्द्विपः । शुंडादंडस्य फूत्कारैर्मर्दयन्तमितस्ततः ॥४३॥
स्रवन्मदं चतुर्दन्तं हिमाद्रिमिव दुर्गमम् । नदन्तं शृंखलां शुंडां चालयन्तं मुहुर्मुहुः ॥४४॥
घंटाढ्यं किंकिणीजालरत्नकंबलमंडितम् । गोमूत्रचयसिन्दूरकस्तूरीपत्रभृन्मुखम् ॥४५॥
दृढेन मुष्टिना कंसस्तं तताड महागजम् । द्वितीयमुष्टिना शक्रं स जघान रणांगणे ॥४६॥
तस्य मुष्टिप्रहारेण दूरे शक्रः पपात ह । जानुभ्यां धरणीं स्पृष्ट्वा गजोऽपि विह्वलोऽभवत् ॥४७॥
पुनरुत्थाय नागेन्द्रो दन्तैश्चाहत्य दैत्यपम् । शुंडादंडेन चोद्धृत्य चिक्षेप लक्षयोजनम् ॥४८॥
पतितोऽपि स वज्रांगः किंचिद्व्याकुलमानसः । स्फुरदोष्ठोऽतिरुष्टांगो युद्धभूमिं समाययौ ॥४९॥
कंसो गृहीत्वा नागेन्द्रं संनिपात्य रणांगणे । निष्पीड्य शुंडां तस्यापि दन्तांश्चूर्णीचकार ह ॥५०॥
अथ चैरावतो नागो दुद्रावाशु रणांगणात् । निपातयन्महावीरान् देवधानीं पुरीं गतः ॥५१॥
गृहीत्वा वैष्णवं चापं सज्जं कृत्वाऽथ दैत्यराट् । देवान्विद्रावयामास बाणौघैश्च धनुःस्वनैः ॥५२॥

ततः सुरास्तेन निहन्यमाना विदुद्रुवुर्लीनधियो दिशान्ते ।
केचिद्रणे मुक्तशिखा बभूवुर्भीताः स्म इत्थं युधि वादिनस्ते ॥५३॥
केचित्तथा प्रांजलयोऽतिदीनवत्संन्यस्तशस्त्रा युधि मुक्तकच्छाः ।

एक हजार भुजाओंसे युक्त बलवान् वीर बाणासुरने बारंबार धनुषकी टंकार करते हुए अपने बाणसमूहोंसे उन मरुद्गणोंको घायल करना आरम्भ किया ॥ ३९ ॥ बाणासुरपर भी वसु, रुद्र, आदित्य तथा अन्यान्य देवता एवं ऋभु चारों ओरसे टूट पड़े और नाना प्रकारके शस्त्रों द्वारा उसपर प्रहार करने लगे ॥ ४० ॥ इतनेमें ही प्रलम्ब आदि असुरोंके साथ गर्जन करता हुआ भौमासुर आ पहुँचा। उसके उस भयानक सिंहनादसे देवता-लोग मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़े ॥ ४१ ॥ उस समय देवराज इन्द्र शीघ्र ही उठ गये और लाल आँखें किये ऐरावत हाथीपर आरूढ़ हो उस मदमत्त गजराजको कंसकी ओर उसे कुचल डालनेके लिये प्रेरित करने लगे ॥ ४२ ॥ अङ्कुशकी मारसे कुपित वह गजराज शत्रुओंको अपने पैरोंसे मार-मारकर युद्धभूमिमें गिराने लगा। उसके गलेमें घंटे बँधे हुए थे, वह किङ्किणीजाल तथा रत्नमय कम्बलसे मण्डित था। गोरोचन, सिन्दूर और कस्तूरीसे उसके मुखमण्डलपर पत्ररचना की गयी थी ॥ ४३–४५ ॥ कंसने निकट आनेपर उस महान् गजराजके ऊपर सुदृढ़ मुक्केसे प्रहार किया। साथ ही उसने समराङ्गणमें देवराज इन्द्रपर भी दूसरे मुक्केका प्रहार कर दिया ॥ ४६ ॥ उसके मुक्केकी मार खाकर इन्द्र ऐरावतसे दूर जा गिरे; ऐरावत भी धरतीपर घुटने टेककर व्याकुल हो गया ॥ ४७ ॥ फिर तुरंत ही उठकर गजराजने दैत्यराज कंसपर दाँतोंसे आघात किया और उसे सूँड़पर उठाकर कई योजन दूर फेंक दिया ॥ ४८ ॥ कंसका शरीर वज्रके समान सुदृढ़ था। वह उतनी दूरसे गिरनेपर भी घायल नहीं हुआ। उसके मनमें किंचित् व्याकुलता हुई; किन्तु रोषसे होंठ फड़फड़ाता अत्यन्त क्रोधमें भरकर वह पुनः युद्धभूमिमें आ पहुँचा ॥ ४९ ॥ कंसने नागराज ऐरावतको पकड़कर समराङ्गणमें धराशायी कर दिया और उसकी सूँड़ मरोड़कर उसके दाँतोंको चूर-चूर कर दिया ॥ ५० ॥ अब तो ऐरावत हाथी उस समराङ्गणसे तत्काल भाग चला। वह बड़े-बड़े वीरोंको गिराता हुआ देवताओंकी राजधानी अमरावती पुरीमें जा पहुँचा ॥ ५१ ॥ तदनन्तर दैत्यराज कंसने वैष्णव धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर बाणसमूहों तथा धनुषकी टंकारोंसे देवताओंको खदेड़ना आरम्भ किया ॥ ५२ ॥ कंसकी मार पड़नेसे देवताओंके होश उड़ गये और वे चारों दिशाओंमें भाग निकले। कुछ देवताओंने रणभूमिमें अपनी शिखाएँ खोल दीं और 'हम डरे हुए हैं (हमें न मारो)'—इस प्रकार कहने लगे ॥ ५३ ॥ कुछ लोग हाथ

उच्चपादो दीर्घजानुः स्तंभोरुर्लंबिमा कटिः । कपाटवक्षाः पीनांसः पुष्टः प्रांशुर्वृहद्भुजः ॥२४॥
पद्मनेत्रो बृहत्केशोऽरुणवर्णोऽसितांबरः । किरीटी कुंडली हारी पद्ममाली लयार्करुक् ॥२५॥
खड्गी निषंगी कवची मुद्गराढ्यो धनुर्धरः । मदोत्कटो ययौ जेतुं देवान्कंसोऽमरावतीम् ॥२६॥
चाणूरमुष्टिकारिष्टशलतोशलकेशिभिः । प्रलंबेन बकेनापि द्विविदेन समावृतः ॥२७॥
तृणावर्ताघकूटैश्च भौमबाणाख्यशंबरैः । व्योमधेनुकवत्सैश्च रुरुधे सोऽमरावतीम् ॥२८॥
कंसादीनागतान्दृष्ट्वा शक्रो देवाधिपः स्वराट् । सर्वैर्देवगणैः सार्द्धं योद्धुं क्रुद्धो विनिर्ययौ ॥२९॥
तयोर्युद्धमभूद्घोरं तुमुलं रोमहर्षणम् । दिव्यैश्च शस्त्रसंघातैर्बाणैस्तीक्ष्णैः स्फुरत्प्रभैः ॥३०॥
शस्त्रांधकारे संजाते रथारूढो महेश्वरः । चिक्षेप वज्रं कंसाय शतधारं तडिद्द्युति ॥३१॥
मुद्गरेणापि तद्वज्रं तताडाशु महासुरः । पपात कुलिशं युद्धे छिन्नधारं बभूव ह ॥३२॥
त्यक्त्वा वज्रं तदा वज्री खड्गं जग्राह रोषतः । कंसं मूर्ध्नि तताडाशु नादं कृत्वाऽथ भैरवम् ॥३३॥
स क्षतो नाभवत्कंसो मालाहत इव द्विपः । गृहीत्वा स गदां गुर्वीमष्टधातुमयीं दृढाम् ॥३४॥
लक्षभारसमां कंसश्चिक्षेपेन्द्राय दैत्यराट् । तां समापततीं वीक्ष्य जग्राहाशु पुरंदरः ॥३५॥
ततश्चिक्षेप दैत्याय वेगे नमुचिसूदनः । चचार युद्धे विदलन्नरीन्मातलिसारथिः ॥३६॥
कंसो गृहीत्वा परिघं तताडांसेऽसुरद्विपः । तत्प्रहारेण देवेन्द्रः क्षणं मूर्च्छामवाप सः ॥३७॥
कंसं मरुद्गणाः सर्वे गृध्रपक्षैः स्फुरत्प्रभैः । बाणौघैश्छादयामासुर्वर्षासूर्यमिवांबुदः ॥३८॥

दोःसहस्रयुतो वीरश्चापं टंकारयन्मुहुः । तदा तान्कालयामास बाणैर्बाणासुरो बली ॥३९॥
बाणं च वसवो रुद्रा आदित्या ऋभवः सुराः । जघ्नुर्नानाविधैः शस्त्रैः सर्वतोऽद्रिं समागताः ॥४०॥
ततो भौमासुरः प्राप्तः प्रलंबाद्यसुरैर्नदन् । तेन नादेन देवास्ते निपेतुर्मूर्च्छिता रणे ॥४१॥
उत्थायाशु तदा शक्रो गजमारुह्य रक्तदृक् । नोदयामास कंसाय मत्तमैरावतं गजम् ॥४२॥
अंकुशास्फालनात् क्रुद्धं पातयन्तं पदैर्द्विपः । शुंडादंडस्य फूत्कारैर्मर्दयन्तमितस्ततः ॥४३॥
स्रवन्मदं चतुर्दन्तं हिमाद्रिमिव दुर्गमम् । नदन्तं शृंखलां शुंडां चालयन्तं मुहुर्मुहुः ॥४४॥
घंटाढ्यं किंकिणीजालरत्नकंबलमंडितम् । गोमूत्रचयसिन्दूरकस्तूरीपत्रभृन्मुखम् ॥४५॥
दृढेन मुष्टिना कंसस्तं तताड महागजम् । द्वितीयमुष्टिना शक्रं स जघान रणांगणे ॥४६॥
तस्य मुष्टिप्रहारेण दूरे शक्रः पपात ह । जानुभ्यां धरणीं स्पृष्ट्वा गजोपि विह्वलोऽभवत् ॥४७॥
पुनरुत्थाय नागेन्द्रो दन्तैश्चाहत्य दैत्यपम् । शुंडादंडेन चोद्धृत्य चिक्षेप लक्षयोजनम् ॥४८॥
पतितोऽपि स वज्रांगः किंचिद्व्याकुलमानसः । स्फुरदोष्ठोऽतिरुष्टांगो युद्धभूमिं समाययौ ॥४९॥
कंसो गृहीत्वा नागेन्द्रं संनिपात्य रणांगणे । निष्पीड्य शुंडां तस्यापि दन्तांश्चूर्णीचकार ह ॥५०॥
अथ चैरावतो नागो दुद्रावाशु रणांगणात् । निपातयन्महावीरान् देवधानीं पुरीं गतः ॥५१॥
गृहीत्वा वैष्णवं चापं सज्जं कृत्वाऽथ दैत्यराट् । देवान्विद्रावयामास बाणौघैश्च धनुःस्वनैः ॥५२॥

ततः सुरास्तेन निहन्यमाना विदुद्रुवुर्लीनधियो दिशान्ते ।
केचिद्रणे मुक्तशिखा बभूवुर्भीताः स्म इत्थं युधि वादिनस्ते ॥५३॥
केचित्तथा प्रांजलयोऽतिदीनवत्संन्यस्तशस्त्रा युधि मुक्तकच्छाः ।

पितृणां मानसी कन्यास्तिस्रोऽभूवन्मनोहराः । कलावती रत्नमाला मेनका नाम नामतः ॥१५॥
कलावतीं सुचन्द्राय हरेरंशाय धीमते । वैदेहाय रत्नमालां मेनकां च हिमाद्रये ॥
पारिबर्हेण विधिना स्वेच्छाभिः पितरो ददुः ॥१६॥
सीताऽभूद्रत्नमालायां मेनकायां च पार्वती । द्वयोश्चरित्रं विदितं पुराणेषु महामते ॥१७॥
सुचन्द्रोऽथ कलावत्या गोमतीतीरजे वने । दिव्यैर्द्वादशभिर्वर्षैस्तताप ब्रह्मणस्तपः ॥१८॥
अथ विधिस्तत्रागत्य वरं ब्रूहीत्युवाच ह । श्रुत्वा वल्मीकदेशाच्च निर्ययौ दिव्यरूपधृक् ॥१९॥
तं नत्वोवाच मे भूयाद्दिव्यं मोक्षं परात्परम् । तच्छ्रुत्वा दुःखिता साध्वी विधिं प्राह कलावती २०॥
पतिरेव हि नारीणां दैवतं परमं स्मृतम् । यदि मोक्षमसौ याति तदा मे का गतिर्भवेत् ॥२१॥
एतं विना न जीवामि यदि मोक्षं प्रदास्यसि । तुभ्यं शापं प्रदास्यामि पतिविक्षेपविह्वला ॥२२॥

श्रीब्रह्मोवाच

त्वच्छापाद्भयभीतोऽहं मे वरोऽपि मृषा न हि । तस्मात्त्वं प्राणपतिना सार्धं गच्छ त्रिविष्टपम् ॥२३॥
भुक्त्वा सुखानि कालेन युवां भूमौ भविष्यथः । गंगायमुनयोर्मध्ये द्वापरान्ते च भारते ॥२४॥
युवयो राधिका साक्षात्परिपूर्णतमप्रिया । भविष्यति यदा पुत्री तदा मोक्षं गमिष्यथः ॥२५॥

श्रीनारद उवाच

इत्थं ब्रह्मवरेणाथ दिव्येनामोघरूपिणा । कलावतीसुचन्द्रौ च भूमौ तौ द्वौ बभूवतुः ॥२६॥
कलावती कान्यकुब्जे भलन्दननृपस्य च । जातिस्मरा ह्यभूद्दिव्या यज्ञकुण्डसमुद्भवा ॥२७॥
सुचन्द्रो वृषभान्वाख्यः सुरभानुगृहेऽभवत् । जातिस्मरो गोपवरः कामदेव इवापरः ॥२८॥

सम्बन्धं योजयामास नन्दराजो महामतिः । तयोश्च जातिस्मरयोरिच्छतोरिच्छया द्वयोः ॥२९॥
वृषभानोः कलावत्या आख्यानं शृणुते नरः । सर्वपापविनिर्मुक्तः कृष्णसायुज्यमाप्नुयात् ॥३०॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायां गोलोकखंडे नारदबहुलाश्वसंवादे श्रीराधिकाजन्मवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः

(गर्गजीकी आज्ञासे वसुदेवजीके साथ देवकीका विवाह)

श्रीनारद उवाच

तत्रैकदा श्रीमथुरापुरे वरे पुरोहितः सर्वयदूत्तमैः कृतः ।
शूरेच्छया गर्ग इति प्रमाणिकः समाययौ सुन्दरराजमन्दिरम् ॥ १ ॥
हीराखचिद्धेमलसत्कपाटकं द्विपेन्द्रकर्णाहतभृंगनादितम् ।
इभस्रवन्निर्झरगण्डधारया समावृतं मण्डपखण्डमण्डितम् ॥ २ ॥
महोद्भटैर्धीरजनैः सकञ्चुकैर्धनुर्धरैश्चर्मकृपाणपाणिभिः ।
रथद्विपाश्वध्वजिनीबलादिभिः सुरक्षितं मण्डलमण्डलीभिः ॥ ३ ॥
ददर्श गर्गो नृपदेवमाहुकं श्वाफल्किना देवककंससेवितम् ।
श्रीशक्रसिंहासन उन्नते परे स्थितं वृतं छत्रवितानचामरैः ॥ ४ ॥
दृष्ट्वा मुनिं तं सहसासनाश्रयादुत्थाय राजा प्रणनाम यादवैः ।
संस्थाप्य सम्पूज्य सुभद्रपीठके स्तुत्वा परिक्रम्य नतः स्थितोऽभवत् ॥ ५ ॥

कान्यकुब्ज देश (कन्नौज) में राजा भलन्दनके यज्ञकुण्डसे प्रकट हुईं ॥ २७ ॥ उस दिव्य कन्याको अपने पूर्वजन्मकी सारी बातें स्मरण थीं । सुरभानुके घर सुचन्द्रका जन्म हुआ । उस समय वे 'श्रीवृषभानु' नामसे विख्यात हुए । उन्हें भी पूर्वजन्मकी स्मृति बनी रही । वे गोपोंमें श्रेष्ठ होनेके साथ ही दूसरे कामदेवके समान परम सुन्दर थे ॥ २८ ॥ परम बुद्धिमान् नन्दराजजीने इन दोनोंका विवाह-सम्बन्ध जोड़ा था । उन दोनोंको पूर्वजन्मकी स्मृति थी ही, अतः वे एक-दूसरेको चाहते भी थे और दोनोंकी इच्छासे ही यह सम्बन्ध हुआ ॥ २९ ॥ जो मनुष्य वृषभानु और कलावतीके इस उपाख्यानको श्रवण करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है और अन्तमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके सायुज्यको प्राप्त कर लेता है ॥ ३० ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां गोलोकखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! एक समयकी बात है, श्रेष्ठ मथुरापुरीके परम सुन्दर राजभवनमें गर्गजी पधारे । वे ज्यौतिष-शास्त्रके बड़े प्रामाणिक विद्वान् थे । सम्पूर्ण श्रेष्ठ यादवोंने शूरसेनकी इच्छासे उन्हें अपने पुरोहितके पदपर प्रतिष्ठित किया था ॥ १ ॥ मथुराके उस राजभवनमें सोनेके किवाड़ लगे थे, उन किवाड़ोंमें हीरे जड़े हुए थे । राजद्वारपर बड़े-बड़े गजराज झूमते थे । उनके मस्तकपर झुंडके-झुंड भौंरे आते और उन हाथियोंके बड़े-बड़े कानोंसे आहत होकर गुञ्जा-रव करते हुए उड़ जाते थे । इस प्रकार वह राजद्वार उन भ्रमरोंके नादसे कोलाहलपूर्ण हो रहा था । गजराजोंके गण्डस्थलसे निर्झरकी भाँति झरते हुए मदकी धारासे वह स्थान समावृत था । अनेक मण्डप-समूह उस राजमन्दिरकी शोभा बढ़ाते थे ॥ २ ॥ बड़े-बड़े उद्भट वीर कवच, धनुष, ढाल और तलवार धारण किये राजभवनकी सुरक्षामें तत्पर थे । रथ, हाथी, घोड़े और पैदल—इस चतुरङ्गिणी सेना तथा माण्डलिकोंकी मण्डली द्वारा भी वह राजमन्दिर सुरक्षित था ॥ ३ ॥ मुनिवर गर्गने उस राजभवनमें प्रवेश करके इन्द्रके सदृश उत्तम और ऊँचे सिंहासनपर विराजमान राजा उग्रसेनको देखा । अक्रूर, देवक तथा कंस उनकी सेवामें खड़े थे और राजा छत्र-चँदोवेसे सुशोभित थे तथा उनपर चँवर डुलाये जा रहे थे ॥ ४ ॥ मुनिको उपस्थित देख राजा उग्रसेन सहसा सिंहासनसे उठकर

दत्त्वाऽऽशिषं गर्गमुनिर्नृपाय वै पप्रच्छ सर्वं कुशलं नृपादिषु ।
श्रीदेवकं प्राह महामना ऋषिर्महौजसं नीतिविदं यदूत्तमम् ॥ ६ ॥

श्रीगर्ग उवाच

शौरिं विना भुवि नृपेषु वरस्तु नास्ति चिन्त्यो मया बहुदिनैः किल यत्र तत्र ।
तस्मान्नृदेव वसुदेववराय देहि श्रीदेवकीं निजसुतां विधिनोद्वहस्व ॥ ७ ॥

श्रीनारद उवाच

कृत्वा तदैव पुरि निश्चयनागवल्लीं श्रीदेवकः सकलधर्मभृतां वरिष्ठः ।
गर्गेच्छया तु वसुदेववराय पुत्रीं कृत्वाऽथ मंगलमलं प्रददौ विवाहे ॥ ८ ॥
कृतोद्वहः शौरिरतीव सुन्दरं रथं प्रयाणे समलंकृतं हयैः ।
सार्द्धं तया देवकराजकन्यया समारुहत्कांचनरत्नशोभया ॥ ९ ॥
स्वसुः प्रियं कर्तुमतीव कंसो जग्राह रश्मींश्चलतां हयानाम् ।
उवाह वाहांश्चतुरंगिणीभिर्वृतः कृपास्नेहपरोऽथ शौरौ ॥१०॥
दासीसहस्रं त्वयुतं गजानां सत्पारिबर्हं नियुतं हयानाम् ।
लक्षं रथानां च गवां द्विलक्षं प्रादाद्दुहित्रे नृप देवको वै ॥११॥
भेरीमृदंगोद्धरगोमुखानां धुन्धुर्यवीणानकवेणुकानाम् ।
महत्स्वनोऽभूच्चलतां यदूनां प्रयाणकाले पथि मंगलं च ॥१२॥
आकाशवागाह तदैव कंसं त्वामष्टमो हि प्रसवोऽञ्जसाऽस्याः ।
हन्ता न जानासि च यां रथस्थां रश्मीन् गृहीत्वा वहसेऽबुधस्त्वम् ॥१३॥

कुसंगनिष्ठोऽतिखलो हि कंसो हंतुं स्वसारं धिषणां चकार ।
कचे गृहीत्वा शितखड्गपाणिर्गतत्रपो निर्दय उग्रकर्मा ॥१४॥
वादित्रकारा रहिता बभूवुरग्रे स्थिताः स्युश्चकिता हि पश्चात् ।
सर्वेषु वा श्वेतमुखेषु सत्सु शौरिस्तमाहाशु सतां वरिष्ठः ॥१५॥

श्रीवसुदेव उवाच

भोजेन्द्र भोजकुलकीर्तिकरस्त्वमेव भौमादिमागधबकासुरवत्सबाणैः ।
श्लाघ्या गुणास्तव युधि प्रतियोद्धुकामैः स त्वं कथं तु भगिनीमसिनाऽत्र हन्याः ॥१६॥
ज्ञात्वा स्त्रियं किल बकीं प्रतियोद्धुकामां युद्धं कृतं न भवता नृपनीतिवृत्त्या ।
सा तु त्वयापि भगिनीव कृता प्रशांत्यै साक्षादियं तु भगिनी किमु ते विचारात् ॥१७॥
उद्वाहपर्वणि गता च तवानुजा च बाला सुतेव कृपणा शुभदा सदैषा ।
योग्योऽसि नात्र मथुराधिप हंतुमेनां त्वं दीनदुःखहरणे कृतचित्तवृत्तिः ॥१८॥

श्रीनारद उवाच

नामन्यतेत्थं प्रतिबोधितोऽपि कुसंगनिष्ठोऽति खलो हि कंसः ।
तदा हरेः कालगतिं विचार्य शौरिः प्रपन्नः पुनराह कंसम् ॥१९॥

श्रीवसुदेव उवाच

नास्यास्तु ते देव भयं कदाचिद्यद्देववाण्या कथितं च तच्छृणु ।
पुत्रान् ददामीति यतो भयं स्यान्मा ते व्यथाऽस्याः प्रसवप्रजातात् ॥२०॥

तेरा वध कर डालेगी—तू इस बातको नहीं जानता' ॥ १३ ॥ कंस सदा दुष्टोंका ही साथ करता था। स्वभावसे भी वह अत्यन्त खल (दुष्ट) था। लज्जा तो उसे छू भी नहीं गयी थी। वह निर्दय होनेके कारण बड़े भयंकर कर्म कर डालता था। अतः उसने तीखी धारवाली तलवार हाथमें उठा ली, बहिनके केश पकड़ लिये और उसे मारनेका निश्चय कर लिया ॥ १४ ॥ उस समय बाजेवालोंने बाजे बंद कर दिये। जो आगे थे, वे चकित होकर पीछे देखने लगे। सबके मुँहपर उदासी छा गयी। ऐसी स्थितिमें सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ श्रीवसुदेवजीने कंससे कहा ॥ १५ ॥ श्रीवसुदेवजी बोले—हे भोजेन्द्र ! आप इस वंशकी कीर्तिका विस्तार करनेवाले हैं। भौमासुर, जरासंध, बकासुर, वत्सासुर और बाणासुर—सभी योद्धा आपसे लड़नेके लिये युद्धभूमिमें आये; किंतु उन्होंने आपकी प्रशंसा ही की। वे ही आप तलवारसे बहिनका वध करनेको कैसे उद्यत हो गये ? ॥ १६ ॥ बकासुरकी बहिन पूतना आपके पास आकर लड़नेकी इच्छा करने लगी; किंतु आपने राजनीतिके अनुरूप बर्ताव करनेके कारण स्त्री समझकर उसके साथ युद्ध नहीं किया। उस समय शान्ति-स्थापनके लिये आपने पूतनाको बहिनके तुल्य बनाकर छोड़ दिया। तब यह तो आपकी साक्षात् बहिन है। किस विचारसे आप इस अनुचित कृत्यमें लग गये ? ॥ १७ ॥ हे मथुरानरेश ! यह कन्या यहाँ विवाहके शुभ अवसरपर आयी है। आपकी छोटी बहिन है। बालिका है। पुत्रीके समान दयनीय तथा दयापात्र है। यह सदा आपको सद्भावना प्रदान करती आयी है। अतः इसका वध करना आपके लिये कदापि उचित नहीं है। आपकी चित्तवृत्ति दीन-दुखियोंके दुःख दूर करनेमें ही लगी रहती है ॥ १८ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! इस प्रकार वसुदेवजीके समझानेपर भी अत्यन्त खल और कुसङ्गी कंसने उनकी बात नहीं मानी। तब वसुदेवजी, यह भगवान्‌का विधान है, अथवा कालकी ऐसी ही गति है—यह समझकर भगवत् शरणापन्न हो, पुनः बोले ॥ १९ ॥ श्रीवसुदेवजीने कहा—हे राजन् ! इस देवकीसे तो आपको कोई भय है नहीं। आकाशवाणीने जो कुछ कहा है, उसके विषयमें मेरा विचार सुनिये। मैं इसके गर्भसे उत्पन्न सभी पुत्र आपको दे दूँगा; क्योंकि उन्हींसे आपको भय है। अतः व्यथित न होइये ॥ २० ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे मिथिलेश ! कंसने वसुदेवजी-

श्रीनारद उवाच

श्रुत्वा स निश्चित्य वचोऽथ शौरेः कंसः प्रशंस्याशु गृहं गतोऽभूत् ।
शौरिस्तदा देवकराजपुत्र्या भयावृतः सन् गृहमाजगाम ॥२१॥

इति श्रीगर्गसंहितायां गोलोकखण्डे नारदबहुलाश्वसंवादे वसुदेवविवाहवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥



अथ दशमोऽध्यायः

(ब्रह्मादि देवों द्वारा गोलोकधामका दर्शन)

श्रीनारद उवाच

भीतः पलायते नायं योद्धारः कंसनोदिताः । अयुतं शस्त्रसंयुक्ता रुरुधुः शौरिमंदिरम् ॥ १ ॥
शौरिः कालेन देवक्यामष्टौ पुत्रानजीजनत् । अनुवर्षं चाथ कन्यामेकां मायां सनातनीम् ॥ २ ॥
कीर्तिमन्तं सुतं चादौ जातमानकदुंदुभिः । नीत्वा कंसं समभ्येत्य ददौ तस्मै परार्थवित् ॥ ३ ॥
सत्यवाक्ये स्थितं शौरिं दृष्ट्वा कंसो घृणी ह्यभूत् । दुःखं साधुर्न सहते सत्ये कस्य क्षमा न हि ॥ ४ ॥

कंस उवाच

एष बालो यातु गृहमेतस्मान्न हि मे भयम् । युवयोरष्टमं गर्भं हनिष्यामि न संशयः ॥ ५ ॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्तो वसुदेवस्तु सपुत्रो गृहमागतः । सत्यं नामन्यत मनाग्वाक्यं तस्य दुरात्मनः ॥ ६ ॥
तदाम्बरादागतं मां नत्वा पृष्ट्वाग्रसेनजः । पप्रच्छ देवाभिप्रायं प्रावोचं तं निबोध मे ॥ ७ ॥
नंदाद्या वसवः सर्वे वृषभान्वादयः सुराः । गोप्यो वेदऋचाद्याश्च संति भूमौ नृपेश्वर ॥ ८ ॥

वसुदेवादयो देवा मथुरायां च वृष्णयः । देवक्याद्याः स्त्रियः सर्वा देवताः सन्ति निश्चयः॥ ९॥
सप्तवारप्रसंख्यानादष्टमाः सर्व एव हि । ते हन्तुः संख्यया्ऽयं वा देवानां वामतो गतिः ॥१०॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा तं मयि गते कृतदैत्यवधोद्यमे । कंसः कोपावृतः सद्यो यदून् हंतुं मनो दधे ॥११॥
वसुदेवं देवकीं च बद्ध्वाऽथ निगडैर्दृढैः । ममर्द तं शिलापृष्ठे देवकीगर्भजं शिशुम् ॥१२॥
जातिस्मरो विष्णुभयाज्जातं जातं जघान ह । इति दुष्टस्वभावाच्च भूमौ भूतं ह्यसंशयम् ॥१३॥
उग्रसेनस्तदा क्रुद्धो यादवेन्द्रो नृपेश्वरः । वारयामास कंसाख्यं वसुदेवसहायकृत् ॥१४॥
कंसस्य दुरभिप्रायं दृष्ट्वोत्तस्थुर्महाभटाः । उग्रसेनानुगा रक्षां चक्रुस्ते खड्गपाणयः ॥१५॥
उग्रसेनानुगान्दृष्ट्वा कंसवीराः समुत्थिताः । तैः सार्द्धमभवद्युद्धं सभामंडपमध्यतः ॥१६॥
द्वारदेशेऽपि वीराणां युद्धं जातं परस्परम् । खड्गप्रहारैरयुतं जनानां निधनं गतम् ॥१७॥
कंसो गृहीत्वाऽथ गदां पितुः सेनां ममर्द ह । कंसस्य गदया स्पृष्टाः केचिच्छिन्नललाटकाः ॥१८॥
भिन्नपादा भिन्नमुखाश्छिन्नाशाश्छिन्नबाहवः । अधोमुखा ऊर्ध्वमुखाः सशस्त्राः पतिताः क्षणात्॥१९॥
वमन्तो रुधिरं वीरा मूर्छिता निधनं गताः । सभामंडपमारक्तं दृश्यते क्षतजस्रवात् ॥२०॥
इत्थं मदोत्कटः कंसः संनिपात्योद्भटान् रिपून् । क्रोधाढ्यो राजराजेन्द्रं जग्राह पितरं खलः ॥२१॥
नृपासनात्संगृहीत्वा बद्ध्वा पाशैश्च तं खलः । तन्मित्रैश्च नृपैः सार्द्धं कारागारे रुरोध ह ॥२२॥

जो गोपियाँ हैं, उनके रूपमें वेदोंकी ऋचाएँ आदि यहाँ निवास करती हैं ॥ ८ ॥ मथुरामें वसुदेव आदि जो वृष्णिवंशी हैं, वे सब-के-सब मूलतः देवता ही हैं। देवकी आदि सम्पूर्ण स्त्रियाँ भी निश्चय ही देवाङ्गनाएँ हैं ॥ ९ ॥ सात बार गिन लेनेपर सभी अङ्क आठ ही हो जाते हैं। तुम्हारे घातककी संख्यासे गिना जाय तो यह प्रथम बालक भी आठवाँ हो सकता है। क्योंकि देवताओंकी 'वामतो गति' है ॥ १० ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर ! उससे यों कहकर जब मैं चला आया, तब देवताओं द्वारा किये गये दैत्यवधके लिये उद्योगपर कंसको बड़ा क्रोध हुआ। उसने उसी क्षण यादवोंको मार डालनेका विचार किया ॥ ११ ॥ उसने वसुदेव और देवकीको मजबूत बेड़ियोंसे बाँधकर कैद कर लिया और देवकीके उस प्रथम गर्भजनित शिशुको शिलापृष्ठ-पर रखकर पीस डाला ॥ १२ ॥ उसे अपने पूर्वजन्मकी घटनाओंका स्मरण था, अतः भगवान् विष्णुके भयसे तथा अपने दुष्ट स्वभावके कारण भी उसने इस भूतलपर प्रकट हुए देवकीके प्रत्येक बालकको जन्म लेते ही मार डाला। ऐसा करनेमें उसे तनिक भी हिचक नहीं हुई ॥ १३ ॥ यह सब देखकर यदुकुलनरेश राजा उग्रसेन उसी समय कुपित हो उठे। उन्होंने वसुदेवजीकी सहायता की और कंसको अत्याचार करनेसे रोका ॥ १४ ॥ कंसके दुष्ट अभिप्रायको प्रत्यक्ष देख महान् यादव वीर उसके विरुद्ध उठ खड़े हुए। वे उग्रसेनके पीछे रहकर, खड्गहस्त हो उनकी रक्षा करने लगे ॥ १५ ॥ उग्रसेनके अनुगामियोंको युद्धके लिये उद्यत देख कंसके निजी वीर सैनिक भी उनका सामना करनेके लिये खड़े हो गये। राजसभाके मण्डपमें ही उन दोनों दलोंका परस्पर युद्ध होने लगा ॥ १६ ॥ राजद्वारपर भी उन दोनों दलोंके वीरोंमें परस्पर युद्ध छिड़ गया। वे सब लोग खुलकर एक दूसरेपर खड्गका प्रहार करने लगे। इस संघर्षमें दस हजार मनुष्य खेत रहे ॥ १७ ॥ तदनन्तर कंसने गदा हाथमें लेकर पिताकी सेनाको कुचलना आरम्भ किया। उसकी गदासे छू जानेपर ही कितने लोगोंके मस्तक फट गये ॥ १८ ॥ कितनोंके पाँव कट गये, मुख विदीर्ण हो गये, बाँहें कट गयीं और उनकी आशापर पानी फिर गया। कोई औंधे मुँह और कोई उतान होकर अस्त्र-शस्त्र लिये क्षणभरमें धराशायी हो गये ॥ १९ ॥ बहुत-से वीर खून उगलते हुए मूर्च्छित हो कालके गालमें चले गये। वहाँ इतना रक्त प्रवाहित हुआ कि सारा सभामण्डप रँग गया ॥ २० ॥ हे राजराजेश्वर ! इस प्रकार दुष्ट एवं मदमत्त कंसने कुपित हो, उद्भट शत्रुओंको धराशायी करके अपने पिताको कैद कर लिया ॥ २१ ॥ उन्हें राजसिंहासनसे उतारकर उस दुष्टने

मथुरनां शूरसेनानां देशानां सर्वसंपदाम् । सिंहासने चोपविश्य स्वयं राज्यं चकार ह ॥२३॥
पीडिता यादवाः सर्वे नवंश्रस्य सिपेस्त्वरम् । चतुर्दिशांतरं देशान् विविशुः कालवेदिनः ॥२४॥
देवक्याः सप्तमे गर्भे हर्षशोकविवर्द्धने । व्रजं प्रणीते रोहिण्यामनन्ते योगमायया ॥२५॥
अहो गर्भः क्व विगत इत्यूचुर्माथुरा जनाः ॥२६॥

अथ व्रजे पंचदिनेषु भाद्रे स्वातौ च षष्ठ्यां च सिते बुधे च ।
उच्चैर्ग्रहैः पंचभिरावृते च लग्ने तुलाख्ये दिनमध्यदेशे ॥२७॥
सुरेषु वर्षत्सु सुपुष्पवर्षं घनेषु मुंचत्सु च वारिबिन्दून् ।
बभूव देवो वसुदेवपत्न्यां विभासयन्नन्दगृहं स्वभासा ॥२८॥
नंदोऽपि कुर्वन् शिशुजातकर्म ददौ द्विजेभ्यो नियुतं गवां च ।
गोपान्समाहूय सुगायकानां रावैर्महामंगलमातनोति ॥२९॥
द्वैपायनो देवलदेवरातवसिष्ठवाचस्पतिभिर्मया च ।
आगत्य तत्रैव समास्थितोऽभूत्पाद्यादिभिर्नन्दकृतैः प्रसन्नः ॥३०॥

नंदराज उवाच

सुंदरो बालकः कोऽयं न दृश्यो यत्समः क्वचित् । कथं पंचदिनाज्जातस्तन्मे ब्रूहि महामुने ॥३१॥

श्रीव्यास उवाच

अहोभाग्यं तु ते नंद शिशुः शेषः सनातनः । देवक्यां वसुदेवस्य जातोऽयं मथुरापुरे ॥३२॥
कृष्णेच्छया तदुदरात्प्रणीतो रोहिणीं शुभाम् । नंदराज त्वया दृश्यो दुर्लभो योगिनामपि ॥३३॥
तद्दर्शनार्थं प्राप्तोऽहं वेदव्यासो महामुनिः । तस्मात्त्वं दर्शयास्माकं शिशुरूपं परात्परम् ॥३४॥

श्रीनारद उवाच

अथ नंदः शिशुं शेषं दर्शयामास विस्मितः। दृष्ट्वा प्रेंखस्थितं प्राह नत्वा सत्यवतीसुतः ॥३५॥

श्रीव्यास उवाच

देवाधिदेव भगवन्कामपाल नमोऽस्तु ते। नमोऽनन्ताय शेषाय साक्षाद्रामाय ते नमः ॥३६॥
धराधराय पूर्णाय स्वधाम्ने सीरपाणये। सहस्रशिरसे नित्यं नमः संकर्षणाय ते ॥३७॥
रेवतीरमण त्वं वै बलदेवोऽच्युताग्रजः। हलायुधः प्रलंबघ्नः पाहि मां पुरुषोत्तम ॥३८॥
बलाय बलभद्राय तालांकाय नमो नमः। नीलांबराय गौराय रौहिणेयाय ते नमः ॥३९॥
धेनुकारिर्मुष्टिकारिः कुंभांडारिस्त्वमेव हि। रुक्म्यरिः कूपकर्णारिः कूटारिर्बल्वलान्तकः ॥४०॥
कालिन्दीभेदनोऽसि त्वं हस्तिनापुरकर्षकः। द्विविदारिर्यादवेन्द्रो व्रजमंडलमंडनः ॥४१॥
कंसभ्रातृप्रहंताऽसि तीर्थयात्राकरः प्रभुः। दुर्योधनगुरुः साक्षात्पाहि पाहि जगत्प्रभो ॥४२॥

जयजयाच्युत देव परात्पर स्वयमनन्त दिगन्तगतश्रुत।
सुरमुनीन्द्रफणीन्द्रवराय ते मुसलिने बलिने हलिने नमः ॥४३॥
इह पठेत्सततं स्तवनं तु यः स तु हरेः परमं पदमाव्रजेत्।
जगति सर्वबलं त्वरिमर्दनं भवति तस्य जयः स्वधनं धनम् ॥४४॥

श्रीनारद उवाच

बलं परिक्रम्य शतं प्रणम्य तं द्वैपायनो देव पराशरात्मजः।
विशालबुद्धिर्मुनिबादरायणः सरस्वतीं सत्यवतीसुतो ययौ ॥४५॥

इति श्रीगर्गसंहितायां गोलोकखंडे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे बलभद्रजन्मवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

दर्शन मिला है ॥ ३३ ॥ मैं महामुनि वेदव्यास इनके दर्शनके लिये ही यहाँ आया हूँ। अतः तुम शिशुरूपधारी इन परात्पर देवताका हम सबको दर्शन कराओ ॥ ३४ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन्! तदनन्तर नन्दने विस्मित होकर शिशुरूपधारी शेषका उन्हें दर्शन कराया। पालनेमें विराजमान शेषजीका दर्शन करके सत्यवतीनन्दनने उन्हें प्रणाम किया और उनकी स्तुति की ॥ ३५ ॥ श्रीव्यासजी बोले—हे भगवन्! आप देवताओंके भी अधिदेवता और कामपाल (सबका मनोरथ पूर्ण करनेवाले) हैं, आपको नमस्कार है। आप साक्षात् अनन्तदेव शेषनाग हैं, बलराम हैं; आपको मेरा प्रणाम है ॥ ३६ ॥ आप धरणीधर, पूर्णस्वरूप, स्वयंप्रकाश, हाथमें हल धारण करनेवाले, सहस्र मस्तकोंसे सुशोभित तथा संकर्षणदेव हैं, आपको नमस्कार है ॥ ३७ ॥ हे रेवतीरमण! आप ही बलदेव तथा श्रीकृष्णके अग्रज हैं। हलायुध एवं प्रलम्बासुरके नाशक हैं। हे पुरुषोत्तम! आप मेरी रक्षा कीजिये ॥ ३८ ॥ आप बल, बलभद्र तथा तालके चिह्नसे युक्त ध्वजा धारण करनेवाले हैं; आपको नमस्कार है। आप नीलवस्त्रधारी, गौरवर्ण तथा रोहिणीके सुपुत्र हैं; आपको मेरा प्रणाम है ॥ ३९ ॥ आप ही धेनुक, मुष्टिक, कुम्भाण्ड, रुक्मी, कूपकर्ण, कूट तथा बल्वलके शत्रु हैं ॥ ४० ॥ कालिन्दीकी धाराको मोड़नेवाले और हस्तिनापुरको गङ्गाकी ओर आकर्षित करनेवाले आप ही हैं। आप द्विविदके विनाशक, यादवोंके स्वामी तथा व्रजमण्डलके मण्डन (भूषण) हैं ॥ ४१ ॥ आप कंसके भाइयोंका वध करनेवाले तथा तीर्थयात्रा करनेवाले प्रभु हैं। दुर्योधनके गुरु भी साक्षात् आप ही हैं। हे प्रभो! जगत्‌की रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ॥ ४२ ॥ अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले परात्पर देवता साक्षात् अनन्त! आपकी जय हो, जय हो। आपका सुयश समस्त दिगन्तमें व्याप्त है। आप सुरेन्द्र, मुनीन्द्र और फणीन्द्रोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। आप मुसलधारी, हलधर तथा बलवान् हैं; आपको नमस्कार है ॥४३॥ जो इस जगत्‌में सदा इस स्तवनका पाठ करेगा, वह श्रीहरिके परमपदको प्राप्त होगा। संसारमें उसे शत्रुओंका संहार करनेवाला सम्पूर्ण बल प्राप्त होगा। उसकी सदा जय होगी और वह प्रचुर धनका स्वामी होगा ॥ ४४ ॥

अंशांशकांशककलाद्यवतारवृन्दैरावेशपूर्णसहितैश्च परस्य यस्य ।
सर्गादयः किल भवन्ति तमेव कृष्णं पूर्णात्परं तु परिपूर्णतमं नताः स्मः ॥१०॥
मन्वन्तरेषु च युगेषु गतागतेषु कल्पेषु चांशकलया स्ववपुर्बिभर्षि ।
अद्यैव धाम परिपूर्णतमं तनोषि धर्मं विधाय भुवि मंगलमातनोषि ॥११॥
यद्दुर्लभं विशदयोगिभिरप्यगम्यं गम्यं द्रवद्भिरमलाशयभक्तियोगैः ।
आनंदकंद चरतस्तव मन्दयानं पादारविन्दमकरन्दरजो दधामः ॥१२॥
पूर्वं तथात्र कमनीयवपुष्मयं त्वां कंदर्पकोटिशतमोहनमद्भुतं च ।
गोलोकधामधिषणद्युतिमादधानं राधापतिं धरणिधुर्यधनं दधामः ॥१३॥

श्रीनारद उवाच

नत्वा हरिं तदा देवा ब्रह्माद्या मुनिभिः सह । गायन्तस्तं प्रशंसन्तः स्वधामानि ययुर्मुदा ॥१४॥
अथ मैथिलराजेन्द्र जन्मकाले हरेः सति । अंबरं निर्मलं भूतं निर्मलाश्च दिशो दश ॥१५॥
उज्ज्वलास्तारका जाताः प्रसन्नं भूमिमंडलम् । नदा नद्यः समुद्राश्च प्रसन्नापः सरोवराः ॥१६॥
सहस्रदलपद्मानि शतपत्राणि सर्वतः । विकचानि मरुत्स्पर्शैः पतद्गन्धिरजांसि च ॥१७॥
तेषु नेदुर्मधुकरा नदन्तश्चित्रपक्षिणः । शीतला मन्दयानाश्च गंधाक्ता वायवो ववुः ॥१८॥
ऋद्धा जनपदा ग्रामा नगरा मंगलायनाः । देवा विप्रा नगा गावो बभूवुः सुखसंवृताः ॥१९॥

परात्पर पूर्ण ब्रह्मस्वरूप आप भगवान्‌की हम शरणमें आये हैं ॥ ९ ॥ जिन परमेश्वरके अंशावतार, अंशांशावतार, कलावतार, आवेशावतार तथा पूर्णावतारसहित विभिन्न अवतारोंद्वारा इस विश्वके सृष्टिपालन आदि कार्य सम्पादित होते हैं, उन्हीं पूर्णसे भी परे परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णको हम प्रणाम करते हैं ॥ १० ॥ हे प्रभो ! अतीत, वर्तमान और अनागत (भविष्य) मन्वन्तरों, युगों तथा कल्पोंमें आप अपने अंश और कलाद्वारा अवतार-विग्रह धारण करते हैं । किंतु आज ही वह सौभाग्यपूर्ण अवसर आया है, जब कि आप अपने परिपूर्णतम धाम (तेजःपुञ्ज) का यहाँ विस्तार कर रहे हैं । अब इस परिपूर्णतम अवतारद्वारा भूतलपर धर्मकी स्थापना करके आप लोकमें मङ्गल (कल्याण) का प्रसार करेंगे ॥ ११ ॥ हे आनन्दकंद ! हे देवकीनन्दन ! आपकी जो चरणरज विशुद्ध अन्तःकरणवाले योगियोंके लिये भी दुर्लभ और अगम्य है, वही उन बड़भागी भक्तोंके लिये परम सुलभ है, जो अपने निर्मल हृदयमें भक्तियोग धारण करके, सदा प्रीतिरसमें निमग्न हो, द्रवित-चित्त रहते हैं । शिशुरूपमें मन्द-मन्द विचरनेवाले आपके चरणारविन्दोंके मकरन्द एवं परागको हम सानुराग सिरपर धारण करें, यही हमारी आन्तरिक अभिलाषा है ॥ १२ ॥ आप पहलेसे ही परम कमनीय कलेवरधारी हैं और यहाँ इस अवतारमें भी उसी कमनीय रूपसे आप सुशोभित होंगे । आपका रूप कोटिशत कामदेवोंको भी मोहित करनेवाला और परम अद्भुत है । आप गोलोकधाममें धारित दिव्य दीप्ति-राशिको यहाँ भी धारण करेंगे । सर्वोत्कृष्ट धरतीके धनके धारयिता आप श्रीराधावल्लभको हम प्रणाम करते हैं ॥ १३ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! उस समय मुनियोंसहित ब्रह्मा आदि सब देवता श्रीहरिको नमस्कार करके उनकी महिमाका गान तथा स्वभावकी प्रशंसा करते हुए प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने धामको चले गये ॥१४॥ हे मिथिलासम्राट् बहुलाश्व ! तदनन्तर जब श्रीहरिके प्राकट्यका समय आया तो आकाश स्वच्छ हो गया । दसों दिशाएँ निर्मल हो गयीं ॥ १५ ॥ तारे अत्यन्त उद्दीप्त हो उठे । भूमण्डलमें प्रसन्नता छा गयी । नदी, नद, सरोवर और समुद्रके जल स्वच्छ हो गये ॥ १६ ॥ सब ओर सहस्रदल तथा शतदल कमल खिल उठे । वायुके स्पर्शसे उनके सुगन्धयुक्त पराग सब दिशाओंमें फैलने लगे ॥ १७ ॥ उन कमलोंपर भ्रमर गुंजार करने लगे । शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु बहने लगी ॥ १८ ॥ जनपद और ग्राम सुख-सुविधासे सम्पन्न हो गये । बड़े-बड़े नगर तो मङ्गलके धाम बन गये । देवता, ब्राह्मण, पर्वत, वृक्ष और गौएँ—सभी सुख-सामग्रीसे परिपूर्ण हो गये ॥ १९ ॥ देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं । साथ ही जय-जयकार-

हरिमानकदुंदुभिस्तवैः स्तवनं तं प्रणिपत्य विस्मितः ।
अकरोदुदितप्रभूदयो गतभीः सूतिगृहे कृतांजलिः ॥३०॥

श्रीवासुदेव उवाच

एको यः प्रकृतिगुणैरनेकधाऽसि हर्ता त्वं जनक उतास्य पालकस्त्वम् ।
निर्लिप्तः स्फटिक इवाद्य देहवर्णैस्तस्मै श्रीभुवनपते नमामि तुभ्यम् ॥३१॥
एधःसु त्वनल इवात्र वर्तमानो योऽन्तस्थो बहिरपि चाम्बरं यथा हि ।
आधारो धरणिरिवास्य सर्वसाक्षी तस्मै ते नम इव सर्वगो नभस्वान् ॥३२॥
भूभारोद्भटहरणार्थमेव जातो गोदेवद्विजनिजवत्सपालकोऽसि ।
गेहे मे भुवि पुरुषोत्तमोत्तमस्त्वं कंसान्मां भुवनपते प्रपाहि पापात् ॥३३॥

श्रीनारद उवाच

परिपूर्णतमं साक्षाच्छ्रीकृष्णं श्यामसुन्दरम् । ज्ञात्वा नत्वाऽथ तं प्राह देवकी सर्वदेवता ॥३४॥

श्रीदेवक्युवाच

हे कृष्ण हे विगणितांडपते परेश गोलोकधामधिषणध्वज आदिदेव ।
पूर्णेश पूर्ण परिपूर्णतम प्रभो मां त्वं पाहि परमेश्वर कंसपापात् ॥३५॥

श्रीनारद उवाच

तच्छ्रुत्वा भगवान्कृष्णः परिपूर्णतमः स्वयम् । सस्मितो देवकीं शौरिं प्राह स वृजिनार्दनः ॥३६॥

श्रीभगवानुवाच

इयं च पृश्निः पतिदेवता च त्वं पूर्वसर्गे सुतपा प्रजार्थी ।
ब्रह्माज्ञया दिव्यतपो युवाभ्यां कृतं परं निर्जलभोजनाभ्याम् ॥३७॥

किया ॥ २९ ॥ सूतिकागारमें प्रभुका आविर्भाव प्रत्यक्ष हो गया, इससे वसुदेवजीका सारा भय जाता रहा। वे अत्यन्त विस्मित हो, हाथ जोड़कर आदि-अन्तरहित श्रीहरिको प्रणाम करके, स्तोत्रोंद्वारा उनका स्तवन करने लगे ॥३०॥ श्रीवसुदेवजी बोले—हे भगवन् ! जो एकमात्र तथा अद्वितीय हैं, वे ही परब्रह्म परमात्मा आप प्रकृतिके सत्त्वादि गुणोंके कारण अनेक रूपोंमें प्रतीत होते हैं। आप ही संहारक, आप ही उत्पादक तथा आप ही इस जगत्के पालक हैं। हे आदिदेव ! हे त्रिभुवनपते परमात्मन् ! जैसे स्फटिकमणि औपाधिक रंगोंसे लिप्त नहीं होती, उसी प्रकार आप देहके वर्णोंसे निर्लिप्त ही रहते हैं। ऐसे आप परमेश्वरको मेरा नमस्कार है ॥ ३१ ॥ जैसे ईंधनमें आग छिपी रहती है, उसी तरह आप अव्यक्तरूपसे इस सम्पूर्ण जगत्में विद्यमान हैं तथा जैसे आकाश सबके भीतर और बाहर भी रहता है, उसी प्रकार आप सबके भीतर और बाहर भी स्थित हैं। आप ही पृथ्वीकी भाँति इस समस्त जगत्के आधार हैं, सबके साक्षी हैं तथा वायुकी भाँति सर्वत्र जानेकी शक्ति रखते हैं ॥ ३२ ॥ आप गौ, देवता, ब्राह्मण, अपने भक्तजन तथा बछड़ोंके पालक हैं और उद्भट भूभारका हरण करनेके लिये ही मेरे घरमें अवतीर्ण हुए हैं। इस भूतलपर समस्त पुरुषोत्तमोंसे भी उत्तम आप ही हैं। हे भुवनपते ! पापी कंससे मुझे बचाइये ॥३३॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे मिथिलापते ! सर्वदेवतास्वरूपिणी देवकीको भी यह ज्ञात हो गया कि मेरे घरमें परिपूर्णतम भगवान् साक्षात् श्यामसुन्दर श्रीकृष्णका आविर्भाव हुआ है। अतः वे भी उन्हें नमस्कार करके बोलीं ॥ ३४ ॥ देवकीने कहा—हे सच्चिदानन्दघन श्रीकृष्ण ! हे अगणित ब्रह्माण्डोंके स्वामी ! हे परमेश्वर ! हे गोलोकधाममन्दिरकी ध्वजा ! हे आदिदेव ! हे पूर्णरूप ईश्वर ! हे परिपूर्णतम परमेश ! हे प्रभो ! आप पापी कंसके भयसे मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ॥ ३५ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! पिता-माताकी ओरसे किया गया वह स्तवन सुनकर पापनाशन साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण मन्द-मन्द मुस्कराते हुए देवकी तथा वसुदेवजीसे बोले ॥ ३६ ॥ श्रीभगवान्ने कहा—पूर्वसृष्टिमें ये पतिव्रता माता पृश्नि थीं और आप प्रजापति सुतपा।

कालेषु मन्वन्तरके व्यतीते तपः परं तत्तपसः प्रजार्थी ।
तदा प्रसन्नो युवयोरभूवं वरं परं ब्रूत मया तदोक्तम् ॥३८॥
श्रुत्वा युवाभ्यां कथितं तदैव भूयात्सुतस्त्वत्सदृशः किलावयोः ।
तथास्तु चोक्त्वाऽथ गते मयि प्रजापती ह्यभूत स्वकृतेन दम्पती ॥३९॥
न मत्समः कोऽपि सुतो जगत्यलं विचार्य तद्वाऽभवं परेश्वरः ।
श्रीपृश्निगर्भो भुवि विश्रुतः पुनर्द्वितीयकालेऽह्मुपेन्द्रवामनः ॥४०॥
तथाऽभवं ह्यद्यतने परात्परो नीत्वाऽथ मां प्रापय नन्दमन्दिरम् ।
अतो न भूयाद्भयमौग्रसेनतः सुतां समादाय सुखी भविष्यथः ॥४१॥

श्रीनारद उवाच

तूष्णीं भूत्वा हरिस्तत्र तद्भयः पश्यतोस्तयोः । दृश्यं ह्यप्रकटं कृत्वा बालोऽभूत्को यथा नटः ॥४२॥
प्रेंखे धृत्वाऽथ तं शौरिर्यावद्गंतुं समुद्यतः । तावद्व्रजे नन्दपत्न्यां योगमायाऽजनि स्वतः ॥४३॥
तया शयाने विश्वस्मिन् रक्षकेषु स्वपत्सु च । द्वार उद्घाटिताः सर्वाः प्रस्फुटच्छृङ्खलार्गलाः ॥४४॥
निर्गते वसुदेवे च मूर्ध्नि श्रीकृष्णशोभिते । सूर्योदये यथा सद्यस्तमोनाशोऽभवत्स्वतः ॥४५॥
घनेषु व्योम्नि वर्षत्सु सहस्रवदनः स्वराट् । निवारयन्दीर्घफणैरासारं शौरिमन्वगात् ॥४६॥
ऊर्म्यावर्ताकुलावेगैः सिंहसर्पादिवाहिनी । सद्यो मार्गं ददौ तस्मै कालिन्दी सरितां वरा ॥४७॥
नन्दव्रजं समेत्यासौ प्रसुप्तं सर्वतः परम् । शिशुं यशोदाशयने निधायाग ददर्श ताम् ॥४८॥

तत्सुतां समुपादाय पुनर्गेहाज्जगाम सः । तीर्त्वा श्रीयमुनां शौरिः स्वागारे पूर्ववत्स्थितः ॥४९॥
सुतं सुतां वा जातं चाज्ञात्वा गोपी यशोमती । परिश्रांता स्वशयने सुष्वापानन्दनिद्रया ॥५०॥
अथ बालध्वनिं श्रुत्वा रक्षकाः समुपस्थिताः । ऊचुः कंसाय वीराय गत्वा तद्राजमन्दिरम् ॥५१॥
सूतीगृहं त्वरं प्रागात्कंसो वै भयकातरः । स्वसाऽथ भ्रातरं प्राह रुदती दीनवत्सती ॥५२॥

श्रीदेवक्युवाच

सुतामेकां देहि मे त्वं पुत्रेषु प्रमृतेषु च । स्त्रियं हंतुं न योग्योऽसि भ्रातस्त्वं दीनवत्सलः॥५३॥
तेऽनुजाहं हतसुता कारागारे निपातिता । दातुमर्हसि कल्याण कल्याणीं तनुजां च मे ॥५४॥

श्रीनारद उवाच

अश्रुमुख्या मोहितया समाच्छाद्यात्मजां बहु । प्रार्थितोऽङ्काद्विनिर्भर्त्स्य तां स आचिच्छिदे खलः॥५५॥
कुसंगनिरतः पापः खलो यदुकुलाधमः । स्वसुः सुतां शिलापृष्ठे गृहीत्वांघ्र्योर्न्यपातयत् ॥५६॥
कंसहस्तात्समुत्पत्य त्वरं सा चांबरे गता । शतपत्रे रथे दिव्ये सहस्रहयसेविते ॥५७॥
चामरांदोलिते शुभ्रे स्थिताऽदृश्यत दिव्यदृक् । सायुधाऽष्टभुजा माया पार्षदैः परिसेविता ।
शतसूर्यप्रतीकाशा कंसमाह घनस्वना ॥५८॥

श्रीयोगमायोवाच

परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान् स्वयम् । जातः क्व वा तु ते हंता वृथा दीनां दुनोपि वै ॥५९॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा तं ततो देवी गता विन्ध्याचले गिरौ । योगमाया भगवती बहुनामा बभूव ह ॥६०॥

यशोदाजीकी शय्यापर शीघ्र सुलाकर उस दिव्य कन्याको देखा ॥४८॥ यशोदाजीकी उस कन्याको गोदमें लकर वसुदेवजी पुनः अपने घर लौट आये। वे यमुनाजीको पार करके पूर्ववत् अपने घरमें स्थित हो गये ॥ ४९ ॥ उधर गोपी यशोदाको इतना ही ज्ञात हुआ कि उसे कोई पुत्र या पुत्री हुई है। वे प्रसव-वेदनाके श्रमसे अत्यन्त थकी होनेके कारण अपनी शय्यापर आनन्दकी नींद लेती हुई सो गयी थीं ॥ ५० ॥ इधर बालकके रोनेकी आवाज सुनकर पहरेदार राजभवनमें उपस्थित हुए और जाकर वीर कंसको बालकके जन्म लेनेकी सूचना दी ॥ ५१ ॥ यह समाचार कानमें पड़ते ही कंस भयसे कातर हो तुरंत सूतीगृहमें जा पहुँचा। उस समय सती-साध्वी बहिन देवकी दीनकी तरह रोती हुई भाई कंससे बोलीं ॥५२॥ देवकीने कहा—भैया ! आप दीन दुखियोंके प्रति स्नेह और दया करनेवाले हैं। मैं आपकी बहिन हूँ, तथापि कारागारमें डाल दी गयी हूँ। मेरे सभी पुत्र मार डाले गये हैं। मैं वह अभागिनी माँ हूँ, जिसके बेटोंका वध कर दिया गया है। एकमात्र यह बेटी बची है, इसे मुझे भीखमें दे दीजिये। यह स्त्री है, इसका वध करना आप-जैसे वीरके योग्य नहीं है। हे कल्याणकारी भाई ! इस कल्याणी कन्याको तो मेरी गोदमें दे ही दीजिये। यही आपके योग्य कार्य होगा ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! देवकीके मुँहपर आँसुओंकी धारा बह रही थी। उसने मोहके कारण बेटीको आँचलमें छिपाकर बहुत विनती की—वह बहुत रोयी-गिड़गिड़ायी; तो भी उस दुष्टने बहिनको डाँट-डपटकर उसकी गोदसे वह कन्या छीन ली ॥ ५५ ॥ कंस यदुकुलका कलङ्क एवं महानीच था। सदा कुसङ्गमें रहनेके कारण उसका जीवन पापमय हो गया था। उस दुरात्माने अपनी बहिनकी बच्चीके दोनों पैर पकड़कर उसे शिलापर दे मारा ॥ ५६ ॥ वह कन्या साक्षात् योगमायाका अवतार देवी अनंशा थी। कंसके हाथसे छूटते ही वह उछलकर आकाशमें चली गयी और सहस्र अश्वोंसे जुते हुए दिव्य 'शतपत्र' रथपर जा बैठी ॥ ५७ ॥ वहाँ चँवर डुलाये जा रहे थे। उस शुभ्र रथपर बैठकर वह दिव्य रूप धारण किये दृष्टिगोचर हुई। उसके आठ भुजाएँ थीं और सबमें आयुध शोभा पा रहे थे। वह मायादेवी अपने पार्षदोंसे परिसेवित थी। उसका तेज सौ सूर्योंके समान दिखायी देता था। उसने मेघगर्जनतुल्य गम्भीर वाणीमें कहा ॥५८॥ श्रीयोगमाया बोलीं—अरे कंस ! तुझे मारनेवाले परिपूर्णतम परमात्मा साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण तो कहीं और जगह अवतीर्ण हो गये। इस दीन देवकीको तू व्यर्थ दुःख दे रहा है ॥ ५९ ॥ श्रीनारदजी कहते

आसमुद्राद्भूमितले विशंतश्च गृहे गृहे । कामरूपधरा दैत्याश्चेरुः सर्पा इवाभवन् ॥७३॥
उत्पथा उद्भटा दैत्यास्तत्रापि कंसनोदिताः । कपिः सुरापोऽलिहतो भूतग्रस्त इवाभवन् ॥७४॥
वैदेह मैथिल नरेन्द्र उपेन्द्रभक्त धर्मिष्ठमुख्य सुतपो जनक प्रतापिन् ।
एतत्सतां च भुवि हेलनमंग राजन् सर्वं छिनत्ति बहुलाश्व चतुष्पदार्थान् ॥७५॥

इति श्रीगर्गसंहितायां गोलोकखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीकृष्णचन्द्रजन्मवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

(कृष्णजन्मोत्सवकी धूम और गोप-गोपियोंका उपहार लेकर आगमन)

श्रीनारद उवाच

अथ पुत्रोत्सवं जातं श्रुत्वा नन्द उपःक्षणे । ब्राह्मणांश्च समाहूय कारयामास मंगलम् ॥ १ ॥
सविधिं जातकं कृत्वा नन्दराजो महामनाः । विप्रेभ्यो दक्षिणाभिश्च मुदा लक्षं गवां ददौ ॥ २ ॥
क्रोशमात्रं रत्नसानूंसुवर्णशिखरान् गिरीन् । सरसान्सप्तधान्यानां ददौ विप्रेभ्य आनतः ॥ ३ ॥
मृदंगवीणाशंखाद्या नेदुर्दुंदुभयो मुहुः । गायकाश्च जगुर्द्वारे ननृतुर्वारयोषितः ॥ ४ ॥
पताकैर्हेमकलशैर्वितानैस्तोरणैः शुभैः । अनेकवर्णैश्चित्रैश्च बभौ श्रीनन्दमन्दिरम् ॥ ५ ॥
रथ्या वीथ्यश्च देहल्यो भित्तिप्रांगणवेदिकाः । तोलिकामंडपसभा रेजुर्गन्धिजलांबरैः ॥ ६ ॥
गावः सुवर्णशृंग्यश्च हेममालालसद्गलाः । घंटामंजीरझंकारा रक्तकंबलमंडिताः ॥ ७ ॥

कहते हैं—हे राजन् ! कंसने दैत्योंको यह करनेकी आज्ञा दे दी । इस प्रकार उसका आदेश पाकर वे महान् उद्भट और दुष्ट दैत्य आकाशमें उड़ चले और गौ-ब्राह्मण आदिको पीड़ा देने तथा नवजात बालकोंकी हत्या करने लगे ॥ ७२ ॥ समुद्रपर्यन्त समस्त भूमण्डलमें वे इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले दैत्य सर्पों और चूहोंकी तरह घर-घरमें घुसने और विचरने लगे ॥ ७३ ॥ उद्भट दैत्य तो स्वभावसे ही कुमार्गगामी होते हैं, उसपर भी उन्हें कंसकी ओरसे प्रेरणा प्राप्त हो गयी थी । एक तो बंदर, फिर वह मद्य पी ले और उसपर भी उसे बिच्छू डंक मार दे तो उसकी चपलताके लिये क्या कहना ? यही दशा उन दैत्योंकी थी, वे भूतग्रस्त जैसे हो गये थे ॥७४॥ हे विदेहकुलनन्दन, मैथिलनरेश, विष्णुभक्त, धर्मात्माओंमें मुख्य, परम तपस्वी, प्रतापी, अङ्गराज, बहुलाश्व जनक ! भूमण्डलपर साधु-संतोंकी यह अवहेलना धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंका सम्पूर्णतया नाश कर देती है ॥ ७५ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां गोलोकखंडे 'प्रियंवदा'भाषा-टीकायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! तदनन्तर गोष्ठमें विद्यमान नन्दजीने अपने घरमें पुत्रजन्मोत्सव होनेका समाचार सुनकर प्रातःकाल ब्राह्मणोंको बुलवाया और स्वस्तिवाचनपूर्वक मङ्गल-कार्य कराया ॥ १ ॥ विधिपूर्वक जातकर्म-संस्कार सम्पन्न करके महामनस्वी नन्दराजने ब्राह्मणोंको आनन्दपूर्वक दक्षिणा देनेके साथ ही एक लाख गौएँ दान कीं ॥ २ ॥ एक कोस लंबी भूमिमें सप्तधान्योंके पर्वत खड़े किये गये । उनके शिखर रत्नों और सुवर्णोंसे सज्जित किये दे गये । उनके साथ सरस एवं स्निग्ध पदार्थ भी थे । वे सब पर्वत नन्दजीने विनीतभावसे ब्राह्मणोंको दिये ॥ ३ ॥ मृदङ्ग, वीणा, शङ्ख और दुन्दुभि आदि बाजे बारंबार बजाये जाने लगे । नन्दद्वारपर गायक मङ्गल-गीत गाने लगे । वाराङ्गनाएँ नृत्य करने लगीं ॥ ४ ॥ पताकाओं, सोनेके कलशों, चँदोवों, सुन्दर वंदनवारों तथा अनेक रंगके चित्रोंसे नन्द-मन्दिर उद्भासित होने लगा ॥ ५ ॥ सड़कें, गलियाँ, द्वार, देहलियाँ, दीवारें, आँगन और वेदियाँ (चबूतरे)—इनपर सुगन्धित जलका छिड़काव करके सब ओरसे वस्त्रों और झंडियोंद्वारा सजावट कर दी गयी थी, जिससे ये सब चित्रमण्डप या चित्रशालाके समान शोभा पा रहे थे ॥ ६ ॥ गौओंकी सींगोंमें सोना मढ़ दिया गया था । उनके गलेमें सुवर्णकी माला

श्रीनारद उवाच

श्रीनन्दराजसुतसंभवसद्धृतं च श्रुत्वा विसृज्य गृहकर्म तदैव गोप्यः ।
तूर्णं ययुः सबलयो व्रजराजगेहानुवत्प्रमोदपरिपूरितहृन्मनोज्ञाः ॥२३॥
आनन्दमंदिरपुरात्स्वगृहाद्व्रजंत्यः सर्वा इतस्तत उत त्वरमाव्रजन्त्यः ।
श्रान्तश्लथद्वसनभूषणकेशबन्धा रेजुर्नरेंद्र पथि भूपरि मुक्तमुक्ताः ॥२४॥
झंकारनूपुरनवांगदहेमचीरमंजीरहारमणिकुंडलमेखलाभिः ।
श्रीकंठसूत्रभुजकंकणबिंदुकाभिः पूर्णेंदुमंडलनवद्युतिभिर्विरेजुः ॥२५॥
श्रीराजिकालवणरात्रिविशेषचूर्णैर्गोधूमसर्षपयवैः करलालनैश्च ।
उत्तार्य बालकमुखोपरि चाशिषस्ताः सर्वा ददुर्नृप जगुर्जगदुर्यशोदाम् ॥२६॥

गोप्य ऊचुः

साधु साधु यशोदे ते दिष्ट्या दिष्ट्या व्रजेश्वरि । धन्या धन्या परा कुक्षिर्ययाऽयं जनितः सुतः ॥२७॥
इच्छा युक्तं कृतं ते वै देवेन बहुकालतः । रक्ष बालं पद्मनेत्रं सुस्मितं श्यामसुन्दरम् ॥२८॥

श्रीयशोदोवाच

भवदीयदयाशीर्भिर्जातं सौख्यं परं च मे । भवतीनामपि परं दिष्ट्या भूयादतः परम् ॥२९॥
हे रोहिणि महाबुद्धे पूजनं तु व्रजौकसाम् । आगतानां सत्कुलानां यथेष्टं हीप्सितं कुरु ॥३०॥

श्रीनारद उवाच

रोहिणी राजकन्याऽपि तत्कर्मे दानशीलिनी । तत्रापि नोदिता दाने ददावतिमहामनाः ॥३१॥

गौरवर्णा दिव्यवासा रत्नाभरणभूषिता । व्यचरद्रोहिणी साक्षात्पूजयंती व्रजौकसः ॥३२॥
परिपूर्णतमे साक्षाच्छ्रीकृष्णे व्रजमागते । नदत्सु नरतूर्येषु जयध्वनिरभून्महान् ॥३३॥
दधिक्षीरघृतैर्गोपा गोप्यो हैयंगवैर्नवैः । सिषिचुर्हर्षितास्तत्र जगुरुच्चैः परस्परम् ॥३४॥
बहिरन्तःपुरे जाते सर्वतो दधिकर्दमे । वृद्धाश्च स्थूलदेहाश्च पेतुर्हास्यं कृतं परैः ॥३५॥
सूताः पौराणिकाः प्रोक्ता मागधा वंशशंसकाः । बंदिनस्त्वमलप्रज्ञाः प्रस्तावसदृशोक्तयः ॥३६॥
तेभ्यो नंदो महाराज सहस्रं गाः पृथक् पृथक् । वासोऽलंकाररत्नानि हयेभानखिलान्ददौ ॥३७॥
बंदिभ्यो मागधेभ्यश्च सर्वेभ्यो बहुलं धनम् । ववर्ष घनवद्घोषे नंदराजो व्रजेश्वरः ॥३८॥
निधिः सिद्धिश्च वृद्धिश्च भुक्तिर्मुक्तिर्गृहे गृहे । वीथ्यां वीथ्यां लुठंतीव तदिच्छा कस्यचिन्न हि ३९॥
सनत्कुमारकपिलशुकव्यासादिभिः सह । हंसदत्तपुलस्त्याद्यैर्मया ब्रह्मा जगाम ह ॥४०॥
हंसारूढो हेमवर्णो मुकुटी कुंडली स्फुरन् । चतुर्मुखो वेदकर्ता द्योतयन्मंडलं दिशाम् ॥४१॥
तथा तमनु भूताढ्यो वृषारूढो महेश्वरः । रथारूढो रविः साक्षाद्गजारूढः पुरंदरः ॥४२॥
वायुश्च खंजनारूढो यमो महिषवाहनः । धनदः पुष्पकारूढो मृगारूढः क्षपेश्वरः ॥४३॥
अजारूढो वीतिहोत्रो वरुणो मकरस्थितः । मयूरस्थः कार्तिकेयो भारती हंसवाहिनी ॥४४॥
लक्ष्मी च गरुडारूढा दुर्गाख्या सिंहवाहिनी । गोरूपधारिणी पृथ्वी विमानस्था समाययौ ॥४५॥
दोलारूढा दिव्यवर्णा मुख्याः षोडशमातृकाः । षष्ठी च शिबिकारूढा खड्गिनी यष्टिधारिणी ॥४६॥

बेटी थीं। उनके हाथ तो स्वभावसे ही दानशील थे, उसपर भी यशोदाजीने दान करनेकी प्रेरणा दे दी। फिर क्या था ? उन्होंने अत्यन्त उदारचित्त होकर दान देना आरम्भ किया ॥ ३१ ॥ उनकी अङ्गकान्ति गौर-वर्णकी थी। शरीरपर दिव्य वस्त्र शोभा पाते थे और वे रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित थीं। रोहिणीजी साक्षात् लक्ष्मीकी भाँति व्रजाङ्गनाओंका सत्कार करती हुई सब ओर विचरने लगीं ॥ ३२ ॥ साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णके व्रजमें पधारनेपर सब ओर मानव-वाद्य बजने लगे। बड़े-जोर-जोरसे जै-जैकारकी ध्वनि होने लगी ॥ ३३ ॥ उस समय गोप दही, दूध और घीसे तथा गोपाङ्गनाएँ ताजे माखनके लोंदोंसे एक-दूसरेको हर्षोल्लाससे भिगोने और उच्चस्वरसे गीत गाने लगीं ॥ ३४ ॥ नन्दभवनके बाहर और भीतर सब ओर दहीकी कीच मच गयी। उसमें बूढ़े और मोटे शरीरवाले लोग फिसलकर गिर पड़ते थे और दूसरे लोग खूब ताली पीट-पीटकर हँसते थे ॥ ३५ ॥ हे महाराज ! वहाँ जो पौराणिक सूत, वंशोंके प्रशंसक मागध और निर्मल बुद्धिवाले तथा अवसरके अनुरूप बातें कहनेवाले वंदीजन पधारे थे, उन सबको नन्दरायजीने प्रत्येकके लिये अलग-अलग एक-एक हजार गौएँ प्रदान कीं। वस्त्र, आभूषण, रत्न, घोड़े और हाथी आदि सब कुछ दिये ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ समस्त वंदियों तथा मागधजनोंको धनी गोप व्रजेश्वर नन्दरायने बहुत धन दिया। धनराशिकी वर्षा कर दी। व्रजकी गली-गली और घर-घरमें निधि, सिद्धि, वृद्धि, भुक्ति और मुक्ति—ये लोटती-सी दिखायी देती थीं। किन्तु उन्हें पानेकी इच्छा वहाँ किसीके भी मनमें नहीं होती थी ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ उस समय सनत्कुमार, कपिल, शुक और व्यास आदिको तथा हंस, दत्तात्रेय, पुलस्त्य और मुझ (नारद) को साथ ले ब्रह्माजी वहाँ गये ॥ ४० ॥ ब्रह्माजीका वर्ण तप्त सुवर्णके समान था। उनके मस्तकोंपर मुकुट तथा कानोंमें कुण्डल जगमगा रहे थे। वे वेदकर्ता चतुर्मुख ब्रह्मा हंसपर आरूढ़ हो सम्पूर्ण दिङ्मण्डलको देदीप्यमान करते हुए वहाँ आये थे ॥ ४१ ॥ उनके पीछे भूतोंसे घिरे हुए वृषभारूढ़ महेश्वर पधारे। फिर रथपर चढ़े हुए साक्षात् सूर्य, ऐरावत हाथीपर सवार देवराज इन्द्र, खञ्जरीटपर चढ़े हुए वायुदेव, महिषवाहन यम, पुष्पकारूढ़ कुबेर, मृगवाहन चन्द्रमा, बकरेपर बैठे हुए अग्निदेव, मगरपर आरूढ़ वरुण, मयूरवाहन कार्तिकेय, हंसवाहिनी सरस्वती, गरुडारूढ़ लक्ष्मी, सिंहवाहिनी दुर्गा तथा गोरूपधारिणी पृथ्वी, जो विमानपर बैठी थीं, ये सब वहाँ आये ॥ ४२–४५ ॥ दिव्यकान्तिवाली मुख्य-मुख्य सोलह मातृकाएँ पालकीपर बैठकर आयी थीं। खड्ग, चक्र तथा यष्टि धारण करनेवाली षष्ठीदेवी शिबिकापर सवार होकर वहाँ पहुँची थीं ॥ ४६ ॥

मंगलो वानरारूढो भासारूढो बुधः स्मृतः । गीष्पतिः कृष्णसारस्थः शुक्रो गवयवाहनः ॥४७॥
शनिश्च मकरारूढ उष्ट्रस्थः सिंहिकासुतः । कोटिबालार्कसंकाश आययौ नंदमंदिरम् ॥४८॥
कोलाहलसमायुक्तं गोपगोपीगणाकुलम् । नंदमंदिरमभ्येत्य क्षणं स्थित्वा ययुः सुराः ॥४९॥
परिपूर्णतमं साक्षाच्छ्रीकृष्णं बालरूपिणम् । नत्वा दृष्ट्वा तदा देवाश्चक्रुस्तस्य स्तुतिं पराम् ॥५०॥
वीक्ष्य कृष्णं तदा देवा ब्रह्माद्या ऋषिभिः सह । स्वधामानि ययुः सर्वे हर्षिताः प्रेमविह्वलाः ॥५१॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायां गोलोकखण्डे नारदबहुलाश्वसंवादे श्रीनंदमहोत्सववर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

(पूतनाका उद्धार)

श्रीनारद उवाच

शौर्यनामयपृच्छार्थं करं दातुं नृपस्य च । पुत्रोत्सवं कथयितुं नंदे श्रीमथुरां गते ॥ १ ॥
कंसेन प्रेषिता दुष्टा पूतना घातकारिणी । पुरेषु ग्रामघोषेषु चरंती घर्घरस्वना ॥ २ ॥
अथ गोकुलमासाद्य गोपगोपीगणाकुलम् । रूपं दधार सा दिव्यं वपुः षोडशवार्षिकम् ॥ ३ ॥
न केऽपि रुरुधुर्गोपाः सुंदरीं तां च गोपिकाः । शचीं वाणीं रमां रंभां रतिं च क्षिपतीमिव ॥ ४ ॥
रोहिण्यां च यशोदायां धर्षितायां स्फुरत्कुचा । अंकमादाय तं बालं लालयंती पुनः पुनः ॥ ५ ॥
ददौ शिशोर्महाघोरा कालकूटावृतं स्तनम् । प्राणैः सार्द्धं पपौ दुग्धं कटु रोषावृतो हरिः ॥ ६ ॥
मुंच मुंच वदंतीत्थं धावंती पीडितस्तना । नीत्वा बहिर्गता तं वै गतमाया बभूव ह ॥ ७ ॥

मङ्गल देवता वानरपर और बुध देवता भास नामक पक्षीपर चढ़कर वहाँ पधारे थे। काले मृगपर बैठे बृहस्पति, गवयपर चढ़े शुक्राचार्य, मगरपर आरूढ़ शनिदेव और ऊँटपर आरूढ़ सिंहिकाकुमार राहु—ये सभी ग्रह, जो करोड़ों बालसूर्योंके समान तेजस्वी थे, नन्दमन्दिरमें पधारे ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ वहाँ बड़ा कोलाहल मच रहा था। वह नन्दभवन झुण्ड-के-झुण्ड गोपों और गोपियोंसे भरा हुआ था। देवतालोग वहाँ पहुँचकर क्षणभर रुके और फिर चले गये ॥ ४९ ॥ बालरूपधारी परिपूर्णतम परमात्मा साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णको देखकर, उन्हें मस्तक नवाकर, देवताओंने उस समय उनका उत्तम स्तवन किया ॥ ५० ॥ ब्रह्मा आदि सब देवता ऋषियोंसहित वहाँ श्रीकृष्णका दर्शन करके प्रेमविह्वल और हर्षविभोर होकर अपने-अपने धामको चले गये ॥ ५१ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां गोलोकखण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! नन्दजी राजा कंसका कर चुकाने, वसुदेवजीका कुशल पूछने और उन्हें अपने यहाँके पुत्रोत्सवका समाचार देनेके लिये मथुरा चले गये थे ॥ १ ॥ उसी समय कंसकी भेजी हुई बालघातिनी दुष्टा राक्षसी पूतना नगर, गाँवों और गोष्ठोंमें विचरती हुई गोपों और गोपियोंसे भरे हुए गोकुलमें आ पहुँची। उसकी नाकसे साँसके साथ 'घर्घर' शब्द निकलता था ॥ २ ॥ गोकुलके निकट आनेपर उसने मायासे दिव्य रूप धारण कर लिया। वह सोलह वर्षकी अवस्थावाली तरुणी बन गयी ॥ ३ ॥ उसका सौन्दर्य इतना दिव्य था कि वह अपनी अङ्गकान्तिसे शची, सरस्वती, लक्ष्मी, रम्भा तथा रतिको भी तिरस्कृत कर रही थी ॥ ४ ॥ चलते समय उसके उन्नत कुच दिव्य आभासे झलकते और हिलते थे। उसे देखकर रोहिणी तथा यशोदा भी हतप्रभ हो गयीं। उसने आते ही बालगोपालको गोदमें ले लिया और बारंबार लाड़ लड़ाती हुई उस महाघोर दानवीने शिशुके मुखमें हलाहल विषसे लिप्त अपना स्तन दे दिया। यह देख तीक्ष्ण रोषसे आवृत हो श्रीहरिने उसके प्राणोंसहित उसका सारा दूध पी लिया ॥ ५ ॥ ६ ॥ उसके स्तनोंमें जब असह्य पीड़ा हुई, तब 'छोड़ो-छोड़ो' कहती हुई वह उठकर भागी और बच्चेको लिये-दिये घरसे बाहर निकल गयी। बाहर जानेपर उसकी माया नष्ट हो गयी और वह अपने असली रूपमें दिखायी देने

पतन्नेत्रा श्वेतगात्रा रुदंती पतिता भुवि । ननाद तेन ब्रह्मांडं सप्तलोकैर्बिलैः सह ॥ ८ ॥
चचाल वसुधा द्वीपैस्तदद्भुतमिवाभवत् । षट्क्रोशं सा दृढान् दीर्घान् वृक्षान्पृष्ठतले गतान् ९ ॥
चूर्णीचकार वपुषा वज्रांगेण नृपेश्वर । वदंतस्ते गोपगणा वीक्ष्य घोरं वपुर्महत् ॥१०॥
अस्याअंगुलिगो बालो न जीवति कदाचन । तस्या उरसि सानंदं क्रीडंतं सुस्मितं शिशुम् ॥११॥
दुग्धं पीत्वा जृम्भमाणं तं दृष्ट्वा जगृहुः स्त्रियः । यशोदया च रोहिण्या निधायोरसि विस्मिताः १२॥
सर्वतो बालकं नीत्वा रक्षां चक्रुर्विधानतः । कालिंदीपुण्यमृत्तोयैर्गोपुच्छभ्रमणादिभिः ॥१३॥
गोमूत्रगोरजोभिश्च स्नापयित्वा त्विदं जगुः ॥ १४ ॥

गोप्य ऊचुः

श्रीकृष्णस्ते शिरः पातु वैकुंठः कंठमेव हि । श्वेतद्वीपपतिः कर्णौ नासिकां यज्ञरूपधृक् ॥१५॥
नृसिंहो नेत्रयुग्मं च जिह्वां दशरथात्मजः । अधरावबतां ते तु नरनारायणावृषी ॥१६॥
कपोलौ पातु ते साक्षात्सनकाद्याः कला हरेः । भालं ते श्वेतवाराहो नारदो भ्रूलतेऽवतु ॥१७॥
चिबुकं कपिलः पातु दत्तात्रेय उरोऽवतु । स्कंधौ द्वावृषभः पातु करौ मत्स्यः प्रपातु ते ॥१८॥
दोर्दंडं सततं रक्षेत्पृथुः पृथुलविक्रमः । उदरं कमठः पातु नाभिं धन्वन्तरिश्च ते ॥१९॥
मोहिनी गुह्यदेशं च कटिं ते वामनोऽवतु । पृष्ठं परशुरामश्च तवोरू बादरायणः ॥२०॥
बलो जानुद्वयं पातु जंघे बुद्धः प्रपातु ते । पादौ पातु सगुल्फौ च कल्किर्धर्मपतिः प्रभुः ॥२१॥
सर्वरक्षाकरं दिव्यं श्रीकृष्णकवचं परम् । इदं भगवता दत्तं ब्रह्मणे नाभिपंकजे ॥२२॥

लगी ॥ ७ ॥ उसके नेत्र बाहर निकल आये । सारा शरीर सफेद पड़ गया और वह रोती-चिल्लाती हुई पृथ्वी-पर गिर पड़ी । उसकी चिल्लाहटसे सातों लोक और सातों पातालसहित सारा ब्रह्माण्ड गूँज उठा ॥ ८ ॥ द्वीपोंसहित सारी पृथ्वी डोलने लगी । वह एक अद्भुत सी घटना हुई । हे नृपेश्वर ! पूतनाका विशाल शरीर छः कोस लंबा और वज्रके समान सुदृढ़ था । उसके गिरनेसे उसकी पीठके नीचे आये हुए बड़े-बड़े वृक्ष पिसकर चकनाचूर हो गये ॥ ९ ॥ उस समय गोपगण उस दानवीके भयंकर और विशाल शरीरको देखकर परस्पर कहने लगे— ॥ १० ॥ 'इसकी गोदमें गया हुआ बालक कदाचित् जीवित नहीं होगा ।' परंतु वह अद्भुत बालक उसकी छातीपर बैठा हुआ आनन्दसे खेलता तथा मुसकरा रहा था ॥ ११ ॥ वह पूतनाका दूध पीकर जम्हाई ले रहा था । उसे उस अवस्थामें देखकर यशोदा तथा रोहिणीके साथ जाकर स्त्रियोंने उठा लिया और छातीसे लगाकर वे सब-की-सब बड़े विस्मयमें पड़ गयीं ॥ १२ ॥ बच्चेको ले जाकर गोपियोंने सब ओर-से विधिपूर्वक उसकी रक्षा की । यमुनाजीकी पवित्र मिट्टी लाकर उसके ऊपर यमुना-जलका छींटा दिया, फिर उसके ऊपर गायकी पूँछ घुमायी । गोमूत्र और गोरजमिश्रित जलसे उसको नहलाया और निम्नाङ्कित रूपसे कवचका पाठ किया ॥ १३ ॥ १४ ॥ गोपियाँ बोलीं—हे मेरे लाल ! श्रीकृष्ण तेरे सिरकी रक्षा करें और भगवान् वैकुण्ठ कण्ठकी । श्वेतद्वीपके स्वामी दोनों कानोंकी, यज्ञरूपधारी श्रीहरि नासिकाकी, भगवान् नृसिंह दोनों नेत्रोंकी, दशरथनन्दन श्रीराम जिह्वाकी और नर-नारायण ऋषि तेरे अधरोंकी रक्षा करें ॥ १५ ॥ १६ ॥ साक्षात् श्रीहरिके कलावतार सनक-सनन्दन आदि चारों महर्षि तेरे दोनों कपोलोंकी रक्षा करें । भगवान् श्वेतवाराह तेरे भालदेशकी तथा नारद दोनों भ्रूलताओंकी रक्षा करें ॥ १७ ॥ भगवान् कपिल तेरी ठोड़ीको और दत्तात्रेय तेरे वक्षःस्थलको सुरक्षित रक्खें । भगवान् ऋषभ तेरे दोनों कंधोंकी और मत्स्यभगवान् तेरे दोनों हाथोंकी रक्षा करें ॥ १८ ॥ पृथुल-पराक्रमी राजा पृथु सदा तेरे बाहुदण्डोंको सुरक्षित रक्खें । भगवान् कच्छप उदरको और धन्वन्तरि तेरी नाभिकी रक्षा करें ॥ १९ ॥ मोहिनी रूपधारी भगवान् तेरे गुह्यदेशको और वामन तेरी कटिको हानिसे बचायें । परशुरामजी तेरे पृष्ठभागकी और बादरायण व्यासजी तेरी दोनों जाँघोंकी रक्षा करें ॥ २० ॥ बलभद्र दोनों घुटनोंकी और बुद्धदेव तेरी पिंडलियोंकी रक्षा करें । धर्मपालक भगवान् कल्कि गुल्फोंसहित तेरे दोनों पैरोंको सकुशल रक्खें ॥ २१ ॥ यह सबकी रक्षा

ब्रह्मणा शंभवे दत्तं शंभुर्दुर्वाससे ददौ । दुर्वासाः श्रीयशोमत्यै प्रादाच्छ्रीनंदमंदिरे ॥२३॥
अनेन रक्षां कृत्वाऽस्य गोपीभिः श्रीयशोमती । पाययित्वा स्तनं दानं विप्रेभ्यः प्रददौ महत् ॥२४॥
तदा नंदादयो गोपा आगता मथुरापुरात् । दृष्ट्वा घोरं पूतनाख्यां बभूवुर्भयविह्वलाः ॥२५॥
छित्वा कुठारैस्तद्देहं गोपाः श्रीयमुनातटे । अनेकाश्च चिताः कृत्वा दाहयामासुरेव ताम् ॥२६॥
एलालवंगश्रीखंडतगरागरुगंधिभृत् । धूमो दग्धस्य देहस्य पवित्रस्य समुत्थितः ॥२७॥
अहो कृष्णमृते कं वा व्रजाम शरणं त्विह । पूतनायै मोक्षगतिं ददौ पतितपावनः ॥२८॥

श्रीबहुलाश्व उवाच

केयं वा राक्षसी पूर्वं पूतना बालघातिनी । विषस्तना दुष्टभावा परं मोक्षं कथं गता ॥२९॥

श्रीनारद उवाच

बलियज्ञे वामनस्य दृष्ट्वा रूपमतः परम् । बलिकन्या रत्नमाला पुत्रस्नेहं चकार ह ॥३०॥
एतादृशो यदि भवेद्बालस्तं हि शुचिस्मितम् । पाययामि स्तनं तेन प्रसन्नं मे मनस्तदा ॥३१॥
बलेः परमभक्तस्य सुतायै वामनो हरिः । मनोरथस्तु ते भूयान्मनस्यपि वरं ददौ ॥३२॥
साऽभवद्द्वापरांते वै पूतना नाम विश्रुता । श्रीकृष्णस्पर्शसंभूता परं प्राप्तमनोरथा ॥३३॥

यः पूतनामोक्षमिमं शृणोति कृष्णस्य देवस्य परात्परस्य ।
भक्तिर्भवेत्प्रेमयुतापि तस्य त्रिवर्गशुद्धिः किमु मैथिलेंद्र ॥३४॥

इति श्रीगर्गसंहितायां गोलोकखंडे नारदबहुलाश्वसंवादे पूतनामोक्षो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

करनेवाला परम दिव्य 'श्रीकृष्ण-कवच' है। इसका उपदेश भगवान् विष्णुने अपने नाभि-कमलमें विद्यमान ब्रह्माजीको दिया था ॥ २२ ॥ ब्रह्माजीने शम्भुको, शम्भुने दुर्वासाको और दुर्वासाने नन्द-मन्दिरमें आकर श्रीयशोदाजीको इसका उपदेश दिया था ॥ २३ ॥ इस कवचके द्वारा गोपियोंसहित श्रीयशोदाने नन्दनन्दन-की रक्षा करके उन्हें अपना स्तन पिलाया और ब्राह्मणोंको प्रचुर धन दिया ॥ २४ ॥ उसी समय नन्द आदि गोप मथुरापुरीसे गोकुलमें लौटकर आये तो पूतनाके भयानक शरीरको देखकर वे सब-के-सब भयसे व्याकुल हो गये ॥२५॥ गोपोंने कुठारोंसे उसके शरीरको काट-काटकर यमुनाजीके किनारे कई चिताएँ बनायीं और उसका दाह-संस्कार किया ॥ २६ ॥ पूतनाका शरीर परम पवित्र हो गया था। जलानेपर उससे जो धुआँ निकला, उसमें इलायची, लवङ्ग, चन्दन, तगर और अगरकी सुगन्ध भरी हुई थी ॥ २७ ॥ अहो ! जिन पतितपावनने पूतनाको मोक्षगति प्रदान की, उन श्रीकृष्णको छोड़कर हम यहाँ किसकी शरणमें जायँ ? ॥२८॥ बहुलाश्वने पूछा—हे देवर्षे ! यह बालकघातिनी राक्षसी पूतना पूर्वजन्ममें कौन थी ? इसके स्तनमें विष लगा हुआ था तथा इसके भीतरका भाव भी दूषित ही था; तथापि इसे उत्तम मोक्षकी प्राप्ति कैसे हुई ॥ २९ ॥ नारदजी बोले—पूर्वकालमें राजा बलिके यज्ञमें भगवान् वामनके परम उत्तम रूपको देखकर बलिकन्या रत्नमालाने उनके प्रति पुत्रोचित स्नेह किया था ॥ ३० ॥ उसने मन-ही-मन यह संकल्प किया था कि 'यदि मेरे भी ऐसा ही बालक उत्पन्न हो और उस पवित्र मुसकानवाले शिशुको मैं अपना स्तन पिला सकूँ तो उससे मेरा चित्त प्रसन्न हो जायगा ॥ ३१ ॥ बलि भगवान्के परम भक्त थे, अतः उनकी पुत्रीको वामन-भगवान्ने यह वर दिया कि 'तेरे मनमें जो मनोरथ है, वह पूर्ण होगा।' ॥ ३२ ॥ वही रत्नमाला द्वापरके अन्तमें पूतना नामसे विख्यात राक्षसी हुई। अब भगवान् श्रीकृष्णके स्पर्शसे उसका उत्तम मनोरथ सफल हो गया ॥३३॥ हे मिथिलानरेश ! जो मनुष्य परात्पर भगवान् श्रीकृष्णके इस पूतनोद्धारसम्बन्धी प्रसङ्गको सुनते हैं, उसको भगवान्की प्रेमपूर्ण भक्ति प्राप्त हो जाती है। फिर उसे धर्म, अर्थ और कामरूप त्रिवर्गकी उपलब्धि हो जाय, इसके लिये तो कहना ही क्या है ॥३४॥ इति श्रीगर्गसंहितायां गोलोकखण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

(शकटभञ्जन; उत्कच और तृणावर्तका उद्धार तथा दोनोंके पूर्वजन्मोंका वर्णन)

श्रीगर्ग उवाच

इत्येवं कथितं दिव्यं श्रीकृष्णचरितं वरम् । यः शृणोति नरो भक्त्या स कृतार्थो न संशयः ॥ १ ॥

श्रीशौनक उवाच

सुधाखंडात्परं मिष्टं श्रीकृष्णचरितं शुभम् । श्रुत्वा त्वन्मुखतः साक्षात्कृतार्थाः स्मो वयं मुने॥ २ ॥
श्रीकृष्णभक्तः शांतात्मा बहुलाश्वः सतां वरः । अथो मुनिं किं पप्रच्छ तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥ ३ ॥

श्रीगर्ग उवाच

अथ राजा मैथिलेंद्रो हर्षितः प्रेमविह्वलः । नारदं प्राह धर्मात्मा परिपूर्णतमं स्मरन् ॥ ४ ॥

श्रीबहुलाश्व उवाच

धन्योऽहं च कृतार्थोऽहं भवता भूरिकर्मणा । संगो भगवदीयानां दुर्लभो दुर्घटोऽस्ति हि ॥ ५ ॥
श्रीकृष्णस्त्वर्भकः साक्षादद्भुतो भक्तवत्सलः । अग्रे चकार किं चित्रं चरित्रं वद मे मुने ॥ ६ ॥

श्रीनारद उवाच

साधु पृष्टं त्वया राजन् भवता कृष्णधर्मिणा । संगमः खलु साधूनां सर्वेषां वितनोति शम् ॥ ७ ॥
एकदा कृष्णजन्मर्क्षे यशोदा नंदगेहिनी । गोपीगोपान्समाहूय मंगलं चाकरोद्द्विजैः ॥ ८ ॥

रक्तांबरं कनकभूषणभूषितांगं बालं प्रगृह्य कलितांजनपद्मनेत्रम् ।
श्यामं स्फुरद्धरिनखावृतचंद्रहारं देवान् प्रणम्य सुधनं प्रददौ द्विजेभ्यः ॥ ९ ॥
प्रेंखे निधाय निजमात्मजमाशु गोपी संपूज्य मंगलदिने प्रतिगोपिकास्ताः ।
नैवाशृणोत्सुरुदितस्य सुतस्य शब्दं गोपेषु मंगलगृहेषु गतागतेषु ॥१०॥

गर्गजीने कहा—हे शौनक ! इस प्रकार मैंने भगवान् श्रीकृष्णके सर्वोत्कृष्ट दिव्य चरित्रका वर्णन किया। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इसका श्रवण करता है, वह कृतार्थ है, उसे परम पुरुषार्थ प्राप्त हो गया—इसमें संशय नहीं है ॥१॥ श्रीशौनकजी बोले—हे मुने ! भगवान् श्रीकृष्णका मङ्गल-मय चरित्र अमृत-रससे तैयार की हुई परम मधुर खाँड़ है। इसे साक्षात् आपके मुखसे सुनकर हम कृतार्थ हो गये ॥ २ ॥ हे तपोधन ! संतोंमें श्रेष्ठ राजा बहुलाश्व भगवान् श्रीकृष्णके परम भक्त थे। उनके मनमें सदा शान्ति बनी रहती थी। इसके बाद उन्होंने मुनिवर नारदजीसे कौन-सी बात पूछी, यह मुझे बतानेकी कृपा कीजिये ॥३॥ श्रीगर्गजीने कहा—हे शौनक ! तदनन्तर मिथिलाके महाराज बहुलाश्व हर्षसे उत्फुल्ल और प्रेमसे विह्वल हो गये। फिर उन धर्मात्मा नरेशने परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णका चिन्तन करते हुए नारदजीसे कहा ॥४॥ राजा बहुलाश्व बोले—हे मुने! आपने भूरि-भूरि पुण्य-कर्म किये हैं। आपके सम्पर्कसे मैं धन्य और कृतार्थ हो गया। क्योंकि भगवान्के भक्तोंका सङ्ग दुर्लभ और दुस्साध्य होता है ॥५॥ हे मुने ! अद्भुत भक्तवत्सल साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णने बाल्यावस्थामें आगे चलकर कौन-सी विचित्र लीला की, यह मुझे बताइये ॥ ६ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! तुम श्रीकृष्ण-सम्मत धर्मके पालक हो, तुमने यह उत्तम प्रश्न किया है। निश्चय ही संत पुरुषोंका सङ्ग सबके कल्याणका विस्तार करनेवाला होता है ॥ ७ ॥ एक दिन, जब भगवान् श्रीकृष्णके जन्मका नक्षत्र प्राप्त हुआ था, नन्दरानी श्रीयशोदाजीने गोपों और गोपियोंको अपने यहाँ बुलाकर ब्राह्मणोंके बताये अनुसार मङ्गल-विधान सम्पन्न किया ॥ ८ ॥ उस समय श्याम-सलोने बालक श्रीकृष्णको लाल रंगका वस्त्र पहनाया गया। अङ्गोंको सुवर्णमय भूषणोंसे भूषित किया गया। उन्हें गोदमें लेकर मैयाने उनके विकसित कमल-सदृश कमनीय नेत्रोंमें काजल लगाया और गलेमें बघनखायुक्त चन्द्रहार धारण कराया तथा देवताओंको नमस्कार करके ब्राह्मणोंके लिये उत्तम धनका दान दिया ॥ ९ ॥ तदनन्तर गोपी यशोदाजीने शीघ्र ही अपने लालको पालनेपर लिटा दिया और

तत्रैव कंसखलनोदित उत्कचाख्यो दैत्यः प्रभंजनतनुः शकटं स एत्य ।
बालस्य मूर्ध्नि परिपातयितुं प्रवृत्तः कृष्णोऽपि तं किल तताड पदाऽरुणेन ॥११॥
चूर्णं गतेथ शकटे पतिते च दैत्ये त्यक्त्वा प्रभंजनतनुं विमलो बभूव ।
नत्वा हरिं शतहयेन रथेन युक्तो गोलोकधाम निजलोकमलं जगाम ॥१२॥
नंदादयो व्रजजना व्रजगोपिकाश्च सर्वे समेत्य युगपत्पृथुकांस्तदाहुः ।
एष स्वयं च पतितः शकटः कथं हि जानीथ हे व्रजसुताः सुगताश्च यूयम् ॥१३॥

बाला ऊचुः

प्रेंखस्थोऽयं क्षिपन्पादौ रुदन्दुग्धार्थमेव हि । तताड पादं शकटे तेनेदं पतितं खलु ॥१४॥
श्रद्धां न चक्रुर्बालोक्ते गोपा गोप्यश्च विस्मिताः । त्रैमासिकः क्व बालोऽयं क्व चैतद्भारभृत्त्वनः ॥१५॥
बालमंके सा गृहीत्वा यशोदा ग्रहशंकिता । कारयामास विधिवद्यज्ञं विप्रैः सुतर्पितैः ॥१६॥

श्रीबहुलाश्व उवाच

कोऽयं पूर्वं तु कुशली दैत्य उत्कचनामभाक् । अहो कृष्णपदस्पर्शाद्गतो मोक्षं महामुने ॥१७॥

श्रीनारद उवाच

हिरण्याक्षसुतो दैत्य उत्कचो नाम मैथिल । लोमशस्याश्रमे गच्छन् वृक्षांश्चूर्णीचकार ह ॥१८॥
तं दृष्ट्वा स्थूलदेहाढ्यमुत्कचाख्यं महाबलम् । शशाप रोषयुग्विप्रो विदेहो भव दुर्मते ॥१९॥
सर्पकंचुकवद्देहोऽपतत् कर्मविपाकतः । सद्यस्तच्चरणोपांते पतित्वा प्राह दैत्यराट् ॥२०॥

मङ्गल-दिवसपर गोपियोंमेंसे प्रत्येकका अलग-अलग स्वागत किया। उस मङ्गल-भवनमें उस दिन बहुत-से गोपोंका आना-जाना लगा रहा, अतः उन्हींके सत्कारमें व्यस्त रहनेके कारण वे अपने रोते हुए बालकका रुदन-शब्द नहीं सुन सकीं ॥ १० ॥ उसी क्षण पापात्मा कंसका भेजा हुआ एक राक्षस आया। उसका नाम 'उत्कच' था। वह वायुमय शरीर धारण किये रहता था। वह आकर छकड़ेपर (जिसपर बड़े-बड़े वजनदार दही-दूधके मटके रखखे जाते थे) बैठ गया और बालकके मस्तकपर उस शकटको उलटकर गिरानेके प्रयासमें लगा। इतनेमें श्रीकृष्णने रोते-रोते ही उस शकटपर पैरसे प्रहार कर दिया ॥ ११ ॥ फिर तो वह बड़ा छकड़ा टूक-टूक हो गया और दैत्य मरकर नीचे आ गिरा। ऐसी स्थितिमें वह वायुमय शरीर छोड़कर निर्मल दिव्य देहसे सम्पन्न हो गया और भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम करके सौ घोड़ोंसे जुते हुए दिव्य रथपर बैठकर भगवान्के निजी परमधाम गोलोकको चला गया ॥ १२ ॥ उस समय व्रजवासी नन्द आदि गोप तथा गोपियाँ सब-के-सब एक साथ वहाँ आ गये और बालकोंसे पूछने लगे—'व्रजकुमारो ! यह शकट अपने-आप ही गिर पड़ा या किसीने इसे गिराया है ? कैसे इसकी यह दशा हुई है, तुम जानते हो तो बताओ ॥ १३ ॥ बालकोंने कहा—पालनेपर सोया हुआ यह बालक दूध पीनेके लिये रोते-रोते ही पैर फेंक रहा था। वही पैर छकड़ेसे टकराया, इसीसे यह छकड़ा उलट गया ॥१४॥ व्रज-बालकोंकी इस बातपर गोपों और गोपियोंको विश्वास नहीं हुआ। वे सभी आश्चर्यमग्न होकर सोचने लगे—'कहाँ तो तीन महीनेका यह छोटा-सा बालक और कहाँ इतने विशाल बोझवाला यह छकड़ा ! ॥ १५ ॥ यशोदाको यह शङ्का हो गयी कि बच्चेको कोई बालग्रह लग गया है। अतः उन्होंने बालकको गोदमें लेकर ब्राह्मणोंद्वारा विधिपूर्वक ग्रहयज्ञ करवाया। उसमें उन्होंने ब्राह्मणोंको धन आदिसे पूर्णतया तृप्त कर दिया ॥१६॥ श्रीबहुलाश्वने पूछा—हे महामुने ! इस 'उत्कच' नामके राक्षसने पूर्वजन्ममें कौन-सा पुण्यकर्म किया था, जिसके फलस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णके चरणका स्पर्श पाकर वह तत्काल मोक्षका भागी हो गया ? ॥ १७ ॥ श्रीनारदजीने कहा—हे मिथिलेश्वर ! यह उत्कच पूर्व-जन्ममें हिरण्याक्षका पुत्र था। एक दिन वह लोमशजीके आश्रमपर गया और वहाँ उसने आश्रमके वृक्षोंको चूर्ण कर दिया ॥ १८ ॥ स्थूलदेहसे युक्त महाबली उत्कचको खड़ा देख ब्राह्मण-ऋषिने रोषयुक्त होकर उसे शाप दे दिया—'ओ दुर्मते ! तू देह-रहित हो जा।' ॥१९॥ उसी कर्मके परिपाकसे उसका वह शरीर सर्प-शरीरसे केंचुलकी भाँति छूटकर गिर पड़ा। यह देख वह महान् दानव मुनिके चरणोंमें गिर पड़ा और बोला ॥ २० ॥

उत्कच उवाच

हे मुने हे कृपासिंधो कृपां कुरु ममोपरि । ते प्रभावं न जानामि देहं मे देहि हे प्रभो ॥२१॥

श्रीनारद उवाच

तदा प्रसन्नः स मुनिर्दृष्टं नयशतं विधेः । सतां रोषोऽपि वरदो वरो मोक्षार्थदः किमु ॥२२॥

श्रीलोमश उवाच

वातदेहस्तु ते भूयाद्व्यतीते चाक्षुषांतरे । वैवस्वतांतरे मुक्तिर्भविता च पदा हरेः ॥२३॥

श्रीनारद उवाच

तस्मादुत्कचदैत्यस्तु मुक्तो लोमशतेजसा । सद्भ्यो नमोऽस्तु ये नूनं समर्था वरशापयोः ॥२४॥
उत्संगे क्रीडितं बालं लालयंत्येकदा नृप । गिरिभारं न सेहे सा वोढुं श्रीनंदगेहिनी ॥२५॥
अहो गिरिसमो बालः कथं स्यादिति विस्मिता । भूमौ निधाय तं सद्यो नेदं कस्मै जगाद ह ॥२६॥
कंसप्रणोदितो दैत्यस्तृणावर्तो महाबलः । जहार बालं क्रीडंतं वातावर्तेन सुंदरम् ॥२७॥
रजोऽन्धकारोऽभूत्तत्र घोरशब्दश्च गोकुले । रजस्वलानि चक्षूंषि अभूवुर्घटिकाद्वयम् ॥२८॥
ततो यशोदा नापश्यत्पुत्रं तं मंदिराजिरे । मोहिता रुदती घोरान् पश्यंती गृहशेखरान् ॥२९॥
अदृष्टे च यदा पुत्रे पतिता भुवि मूर्छिता । उच्चै रुरोद करुणं मृतवत्सा यथा हि गौः ॥३०॥
रुरुदुश्च तदा गोप्यः प्रेमस्नेहसमाकुलाः । अश्रुमुख्यो नंदसूनुं पश्यंत्यस्ता इतस्ततः ॥३१॥
तृणावर्तो नभः प्राप्त ऊर्ध्वं वै लक्षयोजनम् । स्कंधे सुमेरुवद्बालं मन्यमानः प्रपीडितः ॥३२॥

उत्कचने कहा—हे मुने ! आप कृपाके सागर हैं। मेरे ऊपर अनुग्रह कीजिये। भगवन् ! मैंने आपके प्रभावव नहीं जाना। आप मेरी देह मुझे दे दीजिये ॥२१॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! तदनन्तर वे मुनि लोमः प्रसन्न हो गये। जिन्होंने विधाताकी सौ नीतियाँ देखी हैं, अर्थात् जिनके सामने सौ ब्रह्मा बीत चुके हैं, ऐ संतोंका रोष भी वरदायक होता है। फिर उनका वरदान मोक्षप्रद हो, इसके लिये तो कहना ही क्या है ॥२२ लोमशजी बोले—चाक्षुष-मन्वन्तरतक तो तेरा शरीर वायुमय रहेगा। इसके बीत जानेपर वैवस्वत-मन्वन्त आयेगा। उसी समय (अट्ठाईसवें द्वापरके अन्तमें) भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंका स्पर्श होनेसे तेरी मु हो जायगी ॥ २३ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! उक्त वरद शापके कारण लोमशजीके प्रतापसे दान उत्कच भी भगवान्के परम धामका अधिकारी हो गया। जो वर और शाप देनेमें पूर्ण स्वतन्त्र हैं, उन श्रे संतोंके लिये मेरा नमस्कार है ॥२४॥ हे राजन् ! एक दिन नन्दरानी यशोदाजीकी गोदमें बालक श्रीकृष्ण खे रहे थे और नन्दरानी उन्हें लाड़ लड़ा रही थीं। थोड़ी ही देरमें बालक पर्वतके समान भारी प्रतीत हो लगा। वे उसे गोदमें उठाये रखनेमें असमर्थ हो गयीं और मन-ही-मन सोचने लगीं—॥ २५ ॥ 'अहो ! इ बालकमें पहाड़-सा भारीपन कहाँसे आ गया ?' फिर उन्होंने बालगोपालको भूमिपर बैठा दिया, किंतु य रहस्य किसीको बतलाया नहीं ॥ २६ ॥ उसी समय कंसका भेजा हुआ महाबली दैत्य 'तृणावर्त' व आकर आँगनमें खेलते हुए सुन्दर बालक श्रीकृष्णको बवंडर बनकर उठा ले गया ॥ २७ ॥ तब गोकुलमें ऐ धूल उठी, जिसके कारण अँधेरा छा गया और भयंकर शब्द होने लगा। दो घड़ीतक सबकी आँखोंमें धू भरी रही ॥२८॥ उस समय यशोदाजी नन्द-मन्दिरके आँगनमें अपने लालको न देखकर घबरा गयीं और रो हुई महलोंके शिखरोंकी ओर देखने लगीं। वे बड़े भयंकर दीख रहे थे ॥ २९ ॥ जब कहीं भी अपना लाल नहीं दिखायी दिया, तब वे मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ीं और होशमें आनेपर उच्चस्वरसे इस प्रकार करुण- विलाप करने लगीं, मानो बछड़ेके मर जानेपर गौ क्रन्दन कर रही हो ॥ ३० ॥ प्रेम और स्नेहसे व्याकुल गोपियाँ भी रो रही थीं। उन सबके मुखपर आँसुओंकी धारा बह रही थी। वे इधर-उधर देखती हुई नन्द- नन्दनकी खोजमें लग गयीं ॥ ३१ ॥ उधर तृणावर्त आकाशमें दस योजन ऊपर जा पहुँचा। बालक श्रीकृष्ण उसके कंधेपर थे। उनका शरीर उसे सुमेरु पर्वतकी भाँति भारी प्रतीत होने लगा। उसे अत्यन्त पीड़ा होने

अथ कृष्णं पातयितुं दैत्यस्तत्र समुद्यतः। गलं जग्राह तस्यापि परिपूर्णतमः स्वयम् ॥३३॥
मुंच मुंचेति गदिते दैत्ये कृष्णोऽद्भुतोऽर्भकः। गलग्राहेण महता व्यसुं दैत्यं चकार ह ॥३४॥
तज्ज्योतिः श्रीघनश्यामे लीनं सौदामिनी यथा। दैत्योऽम्बरान्निपतितः शिलायां शिशुना सह ॥३५॥
विशीर्णावयवस्यापि पतितस्य स्वनेन वै। विनेदुश्च दिशः सर्वाः कंपितं भूमिमंडलम् ॥३६॥
तत्पृष्ठस्थं शिशुं तूष्णीं रुदंत्यो गोपिकास्ततः। ददृशुर्युगपत्सर्वा नीत्वा मात्रे ददुर्जगुः ॥३७॥

गोप्य ऊचुः

न योग्याऽसि यशोदे त्वं बालं लालयितुं मनाक्। न घृणा ते क्वचिद्दृष्टा क्रुद्धाऽसि कथितेन वै ॥३८॥
प्राप्तेऽन्धकारे स्वारोहात्कोऽपि बालं जहाति हि। त्वया निर्घृणया भूमौ धृतो बालो महाभये ॥३९॥

श्रीयशोदोवाच

न जानामि कथं बालो भारभृतो गिरींद्रवत्। तस्मान्मया कृतो भूमौ चक्रवाते महाभये ॥४०॥

गोप्य ऊचुः

मा मृषा वद कल्याणि हे यशोदे गतव्यथे। अयं दुग्धमुखो बालो लघुः कुसुमतूलवत् ॥४१॥

श्रीनारद उवाच

दा गोप्योऽथ गोपाश्च नंदाद्या आगते शिशौ। अतीव मोदं संप्रापुर्वदंतः कुशलं जनैः ॥४२॥
शोदा बालकं नीत्वा पाययित्वा स्तनं मुहुः। आघ्रायोरसि वस्त्रेण रोहिणीं प्राह मोहिता ॥४३॥

श्रीयशोदोवाच

को दैवेन दत्तोऽयं न पुत्रा बहवश्च मे। तस्यापि बहवोऽरिष्टा आगच्छंति क्षणेन वै ॥४४॥
द्य मृत्युमुखान्मुक्तो भविष्यत्किमतः परम्। किं करोमि क्व गच्छामि कुत्र वासो भवेदतः ॥४५॥

गी ॥ ३२ ॥ तब वह दानव श्रीकृष्णको वहाँसे नीचे पटकनेकी चेष्टामें लग गया। यह जानकर परिपूर्णतम गवान्‌ने उसका गला पकड़ लिया ॥ ३३ ॥ निशाचरके 'छोड़ दे, छोड़ दे।' कहनेपर अद्भुत बालक ीकृष्णने बड़े जोरसे उसका गला दबाया, इससे उसके प्राण-पखेरू उड़ गये ॥ ३४ ॥ उसकी देहसे एक ज्योति ाकली और घनश्याममें उसी प्रकार विलीन हो गयी, जैसे बादलमें बिजली। तब अकाशसे उस दैत्यका शरीर ालकके साथ ही एक शिलापर गिर पड़ा ॥ ३५ ॥ गिरते ही उसकी बोटी-बोटी छितरा गयी। गिरनेके माकेसे सम्पूर्ण दिशाएँ प्रतिध्वनित हो उठीं, भूमण्डल काँपने लगा ॥ ३६ ॥ उस समय रोती हुई सब ोपियोंने उस राक्षसकी पीठपर चुपचाप बैठे बालक श्रीकृष्णको एक साथ ही देखा और दौड़कर उन्हें उठा लेया। फिर माता यशोदाको देकर कहने लगीं ॥ ३७ ॥ गोपियाँ बोलीं—हे यशोदे! तुममें बालकके लालन-ालनकी रत्तीभर भी योग्यता नहीं है। कहनेसे तो तुम बुरा मान जाती हो; किंतु सच बात तो यह है कि हीं, कभी तुममें दया देखी ही नहीं गयी ॥३८॥ भला कहो तो, इस प्रकार अन्धकार आ जानेपर कोई अपने च्चेको गोदसे अलग करता है? तू ऐसी निर्दय है कि ऐसे महान् भयके अवसरपर भी बालकको जमीनपर ुला दिया? ॥ ३९ ॥ यशोदाजीने कहा—हे बहिनो! समझमें नहीं आता कि उस समय मेरा लाल क्यों गिरिराजके समान भारी लगने लगा था। इसीलिये उस महाभयंकर बवंडरमें भी मैंने इसे गोदसे उतारकर भूमिपर सुला दिया ॥४०॥ गोपियाँ कहने लगीं—हे यशोदाजी! रहने दो, झूठ न बोलो। हे कल्याणी! तुम्हारे दिलमें जरा भी दया-मया नहीं है। यह दुधमुँहा बच्चा तो फूल और रूईके समान हल्का है ॥ ४१ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—बालक श्रीकृष्णके घर आ जानेपर नन्द आदि गोप और गोपियाँ—सभीको बड़ा हर्ष हुआ। वे सब लोगोंके साथ उसकी कुशल-वार्ता कहने लगे ॥ ४२ ॥ यशोदाजी बालक श्रीकृष्णको उठा ले गयीं और बार-बार स्तन्य पिलाकर, मस्तक सूँघकर और आँचलसे छातीमें छिपाकर स्नेह-मोहके वशीभूत हो, रोहिणीसे कहने लगीं ॥ ४३ ॥ श्रीयशोदाजी बोलीं—हे बहिन! मुझे दैवने यह एक ही पुत्र दिया है, मेरे बहुत-से पुत्र नहीं हैं। उस एक पुत्रपर भी क्षण क्षण अनेक प्रकारके अरिष्ट आते रहते हैं ॥४४॥ आज यह मौतके मुँहसे

उत्कच उवाच

हे मुने हे कृपासिंधो कृपां कुरु ममोपरि । ते प्रभावं न जानामि देहं मे देहि हे प्रभो ॥२१॥

श्रीनारद उवाच

तदा प्रसन्नः स मुनिर्दृष्टं नयशतं विधेः । सतां रोषोऽपि वरदो वरो मोक्षार्थदः किमु ॥२२॥

श्रीलोमश उवाच

वातदेहस्तु ते भूयाद्व्यतीते चाक्षुषांतरे । वैवस्वतांतरे मुक्तिर्भविता च पदा हरेः ॥२३॥

श्रीनारद उवाच

तस्मादुत्कचदैत्यस्तु मुक्तो लोमशतेजसा । सद्भ्यो नमोऽस्तु ये नूनं समर्था वरशापयोः ॥२४॥

उत्संगे क्रीडितं बालं लालयंत्येकदा नृप । गिरिभारं न सेहे सा वोढुं श्रीनंदगेहिनी ॥२५॥

अहो गिरिभरो बालः कथं स्यादिति विस्मिता । भूमौ निधाय तं सद्यो नेदं कस्मै जगाद ह ॥२६॥

कंसप्रणोदितो दैत्यस्तृणावर्तो महाबलः । जहार बालं क्रीडंतं वातावर्तेन सुंदरम् ॥२७॥

रजोऽन्धकारोऽभूत्तत्र घोरशब्दश्च गोकुले । रजस्वलानि चक्षूंषि बभूवुर्घटिकाद्वयम् ॥२८॥

ततो यशोदा नापश्यत्पुत्रं तं मंदिराजिरे । मोहिता रुदती घोरान् पश्यंती गृहशेखरान् ॥२९॥

अदृष्टे च यदा पुत्रे पतिता भुवि मूर्छिता । उच्चै रुरोद करुणं मृतवत्सा यथा हि गौः ॥३०॥

रुरुदुश्च तदा गोप्यः प्रेमस्नेहसमाकुलाः । अश्रुमुख्यो नंदसूनुं पश्यंत्यस्ता इतस्ततः ॥३१॥

तृणावर्तो नभः प्राप्त ऊर्ध्वं वै लक्षयोजनम् । स्कंधे सुमेरुवद्बालं मन्यमानः प्रपीडितः ॥३२॥

उत्कचने कहा—हे मुने ! आप कृपाके सागर हैं। मेरे ऊपर अनुग्रह कीजिये । भगवन् ! मैंने आपके प्रभावको नहीं जाना । आप मेरी देह मुझे दे दीजिये ॥२१॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! तदनन्तर वे मुनि लोमश प्रसन्न हो गये । जिन्होंने विधाताकी सौ नीतियाँ देखी हैं, अर्थात् जिनके सामने सौ ब्रह्मा बीत चुके हैं, ऐसे संतोंका रोष भी वरदायक होता है । फिर उनका वरदान मोक्षप्रद हो, इसके लिये तो कहना ही क्या है ॥२२॥ लोमशजी बोले—चाक्षुष-मन्वन्तरतक तो तेरा शरीर वायुमय रहेगा । इसके बीत जानेपर वैवस्वत-मन्वन्तर आयेगा । उसी समय (अट्ठाईसवें द्वापरके अन्तमें) भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंका स्पर्श होनेसे तेरी मुक्ति हो जायगी ॥ २३ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! उक्त वरद शापके कारण लोमशजीके प्रतापसे दानव उत्कच भी भगवान्के परम धामका अधिकारी हो गया । जो वर और शाप देनेमें पूर्ण स्वतन्त्र हैं, उन श्रेष्ठ संतोंके लिये मेरा नमस्कार है ॥२४॥ हे राजन् ! एक दिन नन्दरानी यशोदाजीकी गोदमें बालक श्रीकृष्ण खेल रहे थे और नन्दरानी उन्हे लाड़ लड़ा रही थीं । थोड़ी ही देरमें बालक पर्वतके समान भारी प्रतीत होने लगा । वे उसे गोदमें उठाये रखनेमें असमर्थ हो गयीं और मन-ही-मन सोचने लगीं—॥ २५ ॥ 'अहो ! इस बालकमें पहाड़-सा भारीपन कहाँसे आ गया ?' फिर उन्होंने बालगोपालको भूमिपर बैठा दिया, किंतु यह रहस्य किसीको बतलाया नहीं ॥ २६ ॥ उसी समय कंसका भेजा हुआ महाबली दैत्य 'तृणावर्त' वहाँ आकर आँगनमें खेलते हुए सुन्दर बालक श्रीकृष्णको बवंडर बनकर उठा ले गया ॥ २७ ॥ तब गोकुलमें ऐसी धूल उठी, जिसके कारण अँधेरा छा गया और भयंकर शब्द होने लगा । दो घड़ीतक सबकी आँखोंमें धूल भरी रही ॥२८॥ उस समय यशोदाजी नन्द-मन्दिरके आँगनमें अपने लालको न देखकर घबरा गयीं और रोती हुई महलके शिखरोंकी ओर देखने लगीं । वे बड़े भयंकर दीख रहे थे ॥ २९ ॥ जब कहीं भी अपना लाल नहीं दिखायी दिया, तब वे मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ीं और होशमें आनेपर उच्चस्वरसे इस प्रकार करुण-विलाप करने लगीं, मानो बछड़ेके मर जानेपर गौ क्रन्दन कर रही हो ॥ ३० ॥ प्रेम और स्नेहसे व्याकुल गोपियाँ भी रो रही थीं । उन सबके मुखपर आँसुओंकी धारा बह रही थी । वे इधर-उधर देखती हुई नन्द-नन्दनकी खोजमें लग गयीं ॥ ३१ ॥ उधर तृणावर्त आकाशमें दस योजन ऊपर जा पहुँचा । बालक श्रीकृष्ण उसके कंधेपर थे । उनका शरीर उसे सुमेरु पर्वतकी भाँति भारी प्रतीत होने लगा । उसे अत्यन्त पीड़ा होने

थ कृष्णं पातयितुं दैत्यस्तत्र समुद्यतः । गलं जग्राह तस्यापि परिपूर्णतमः स्वयम् ॥३३॥
च मुंचेति गदिते दैत्ये कृष्णोऽद्भुतोऽर्भकः । गलग्राहेण महता व्यसुं दैत्यं चकार ह ॥३४॥
ज्ज्योतिः श्रीघनश्यामे लीनं सौदामिनी यथा । दैत्योऽम्बरान्निपतितः शिलायां शिशुना सह ॥३५॥
शीर्णावयवस्यापि पतितस्य स्वनेन वै । विनेदुश्च दिशः सर्वाः कंपितं भूमिमंडलम् ॥३६॥
त्पृष्ठस्थं शिशुं तूर्णीं रुदंत्यो गोपिकास्ततः । ददृशुर्युगपत्सर्वा नीत्वा मात्रे ददुर्जगुः ॥३७॥

गोप्य ऊचुः

योग्याऽसि यशोदे त्वं बालं लालयितुं मनाक् । न घृणा ते कचिद्दृष्टा क्रुद्धाऽसि कथितेन वै ॥३८॥
स्मिन्नन्धकारे स्वारोहात्कोऽपि बालं जहाति हि । त्वया निर्घृणया भूमौ धृतो बालो महाभये ॥३९॥

श्रीयशोदोवाच

। जानामि कथं बालो भारभृतो गिरींद्रवत् । तस्मान्मया कृतो भूमौ चक्रवाते महाभये ॥४०॥

गोप्य ऊचुः

ा मृषा वद कल्याणि हे यशोदे गतव्यथे । अयं दुग्धमुखो बालो लघुः कुसुमतूलवत् ॥४१॥

श्रीनारद उवाच

दा गोप्योऽथ गोपाश्च नंदाद्या आगते शिशौ । अतीव मोदं संप्रापुर्वदंतः कुशलं जनैः ॥४२॥
यशोदा बालकं नीत्वा पाययित्वा स्तनं मुहुः । आघ्रायोरसि वस्त्रेण रोहिणीं प्राह मोहिता ॥४३॥

श्रीयशोदोवाच

एको दैवेन दत्तोऽयं न पुत्रा बहवश्च मे । तस्यापि बहवोऽरिष्टा आगच्छंति क्षणेन वै ॥४४॥
अद्य मृत्युमुखान्मुक्तो भविष्यत्किमतः परम् । किं करोमि क्व गच्छामि कुत्र वासो भवेदतः ॥४५॥

लगी ॥ ३२ ॥ तब वह दानव श्रीकृष्णको वहाँसे नीचे पटकनेकी चेष्टामें लग गया। यह जानकर परिपूर्णतम भगवान्‌ने उसका गला पकड़ लिया ॥ ३३ ॥ निशाचरके 'छोड़ दे, छोड़ दे।' कहनेपर अद्भुत बालक श्रीकृष्णने बड़े जोरसे उसका गला दबाया, इससे उसके प्राण-पखेरू उड़ गये ॥ ३४ ॥ उसकी देहसे एक ज्योति निकली और घनश्याममें उसी प्रकार विलीन हो गयी, जैसे बादलमें बिजली। तब अकाशसे उस दैत्यका शरीर बालकके साथ ही एक शिलापर गिर पड़ा ॥ ३५ ॥ गिरते ही उसकी बोटी-बोटी छितरा गयी। गिरनेके धमाकेसे सम्पूर्ण दिशाएँ प्रतिध्वनित हो उठीं, भूमण्डल काँपने लगा ॥ ३६ ॥ उस समय रोती हुई सब गोपियोंने उस राक्षसकी पीठपर चुपचाप बैठे बालक श्रीकृष्णको एक साथ ही देखा और दौड़कर उन्हें उठा लिया। फिर माता यशोदाको देकर कहने लगीं ॥ ३७ ॥ गोपियाँ बोलीं—हे यशोदे ! तुममें बालकके लालन-पालनकी रत्तीभर भी योग्यता नहीं है। कहनेसे तो तुम बुरा मान जाती हो; किंतु सच बात तो यह है कि कहीं, कभी तुममें दया देखी ही नहीं गयी ॥३८॥ भला कहो तो, इस प्रकार अन्धकार आ जानेपर कोई अपने बच्चेको गोदसे अलग करता है ? तू ऐसी निर्दय है कि ऐसे महान् भयके अवसरपर भी बालकको जमीनपर सुला दिया ? ॥ ३९ ॥ यशोदाजीने कहा—हे बहिनो ! समझमें नहीं आता कि उस समय मेरा लाल क्यों गिरिराजके समान भारी लगने लगा था। इसीलिये उस महाभयंकर बवंडरमें भी मैंने इसे गोदसे उतारकर भूमिपर सुला दिया ॥४०॥ गोपियाँ कहने लगीं—हे यशोदाजी ! रहने दो, झूठ न बोलो। हे कल्याणी ! तुम्हारे दिलमें जरा भी दया-मया नहीं है। यह दुधमुँहा बच्चा तो फूल और रूईके समान हल्का है ॥ ४१ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—बालक श्रीकृष्णके घर आ जानेपर नन्द आदि गोप और गोपियाँ—सभीको बड़ा हर्ष हुआ। वे सब लोगोंके साथ उसकी कुशल-वार्ता कहने लगे ॥ ४२ ॥ यशोदाजी बालक श्रीकृष्णको उठा ले गयीं और बार-बार स्तन्य पिलाकर, मस्तक सूँघकर और आंचलसे छातीमें छिपाकर स्नेह-मोहके वशीभूत हो, रोहिणीसे कहने लगीं ॥ ४३ ॥ श्रीयशोदाजी बोलीं—हे बहिन ! मुझे दैवने यह एक ही पुत्र दिया है, मेरे बहुत-से पुत्र नहीं हैं। इस एक पुत्रपर भी क्षण क्षण अनेक प्रकारके अरिष्ट आते रहते हैं ॥४४॥ आज यह मौतके मुँहसे

वज्रसाराश्च ये दैत्या निर्दया घोरदर्शनाः । वैरं कुर्वन्ति मे बाले दैव दैव कुतः सुखम् ॥४६॥
धनं देहो गृहं सौधो रत्नानि विविधानि च । सर्वेषां तु ह्यवश्यं वै भूयान्मे कुशली शिशुः ॥४७॥
हरेरर्चा दानमिष्टं पूर्तं देवालयं शतम् । करिष्यामि तदा बालोऽरिष्टेभ्यो विजयी यदा ॥४८॥
एकबालेन मे सौख्यमंधयष्टिरिव प्रिये । बालं नीत्वा गमिष्यामि देशे रोहिणि निर्भये ॥४९॥

श्रीनारद उवाच

तदैव विप्रा विद्वांस आगता नंदमंदिरम् । यशोदया च नंदेन पूजिता आसनस्थिताः ॥५०॥

ब्राह्मणा ऊचुः

मा शोचं कुरु हे नंद हे यशोदे व्रजेश्वरि । करिष्यामः शिशो रक्षां चिरंजीवी भवेदयम् ॥५१॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा द्विजमुख्यास्ते कुशाग्रैर्नवपल्लवैः । पवित्रकलशैस्तोयैर्ऋग्यजुःसामजैः स्तवैः ॥५२॥
परैः स्वस्त्ययनैर्यज्ञं कारयित्वा विधानतः । अग्निं संपूज्य विधिवद्रक्षां विदधिरे शिशोः ॥५३॥

ब्राह्मणा ऊचुः

दामोदरः पातु पादौ जानुनी विष्टरश्रवाः । ऊरू पातु हरिर्नाभिं परिपूर्णतमः स्वयम् ॥५४॥
कटिं राधापतिः पातु पीतवासास्तवोदरम् । हृदयं पद्मनाभश्च भुजौ गोवर्द्धनोद्धरः ॥५५॥
मुखं च मथुरानाथो द्वारकेशः शिरोऽवतु । पृष्ठं पात्वसुरध्वंसी सर्वतो भगवान्स्वयम् ॥५६॥
श्लोकत्रयमिदं स्तोत्रं यः पठेन्मानवः सदा । महासौख्यं भवेत्तस्य न भयं विद्यते क्वचित् ॥५७॥

श्रीनारद उवाच

गतेषु द्विजमुख्येषु नंदो गोपान्नियस्य च । भोजयामास संपूज्य वस्त्रैर्भूषैर्मनोहरैः ॥५९॥

श्रीबहुलाश्व उवाच

तृणावर्तः पूर्वकाले कोऽयं सुकृतकृन्नरः । परिपूर्णतमे साक्षाच्छ्रीकृष्णे लीनतां गतः ॥६०॥

श्रीनारद उवाच

पाण्डुदेशोद्भवो राजा सहस्राक्षः प्रतापवान् । हरिभक्तो धर्मनिष्ठो यज्ञकृद्दानतत्परः ॥६१॥
रेवातटे महादिव्ये लतावेत्रसमाकुले । नारीणां च सहस्रेण रममाणो चचार ह ॥६२॥
दुर्वाससं मुनिं साक्षादागतं न ननाम ह । तदा मुनिर्ददौ शापं राक्षसो भव दुर्मते ॥६३॥
पुनस्तदंघ्र्योः पतितं नृपं प्रादाद्वरं मुनिः । श्रीकृष्णविग्रहस्पर्शान्मुक्तिस्ते भविता नृप ॥६४॥

श्रीनारद उवाच

सोऽपि दुर्वाससः शापात्तृणावर्त्तोऽभवद्भुवि । श्रीकृष्णविग्रहस्पर्शात्परं मोक्षमवाप ह ॥६५॥

इति श्रीगर्गसंहितायां गोलोकखंडे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे शकटासुरतृणावर्तमोक्षो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

(यशोदाका विश्वरूपदर्शन तथा बालकका श्रीकृष्णनामकरण)

श्रीनारद उवाच

प्रेंखे हरिं कनकरत्नमये शयानं श्यामं शिशुं जनमनोहरमन्दहासम् ।
दृष्ट्यार्तिहारि मषिबिंदुधरं यशोदा स्वांके चकार धृतकज्जलपद्मनेत्रम् ॥ १ ॥
पादं पिबंतमतिचंचलमद्भुतांगं वक्रैर्विनीलनवकोमलकेशबंधैः ।
श्रीमन्नृकेशरिनखस्फुरदर्द्धचंद्रं तं लालयन्त्यतिघृणा मुदमाप गोपी ॥ २ ॥

और एक लाख बढ़िया वस्त्र दिये ॥ ५८ ॥ उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके चले जानेपर नन्दजीने गोपोंको बुला-बुलाकर भोजन कराया और मनोहर वस्त्राभूपणोंसे उन सबका सत्कार किया ॥ ५९ ॥ श्रीबहुलाश्वने पूछा—हे मुने ! वह तृणावर्त पहले जन्ममें कौन-सा पुण्यकर्मा मनुष्य था, जो साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णमें लीन हो गया ? ॥ ६० ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! पाण्डुदेशमें 'सहस्राक्ष' नामसे विख्यात एक राजा थे। उनकी कीर्ति सर्वत्र व्याप्त थी । भगवान् विष्णुमें उनकी अपार श्रद्धा थी । वे धर्ममें रुचि रखते थे । यज्ञ और दानमें उनकी बड़ी लगन थी ॥ ६१ ॥ एक दिन वे रेवा (नर्मदा) नदीके दिव्य तटपर गये । लताएँ और बेंत उस तटकी शोभा बढ़ा रहे थे । वहाँ सहस्रों स्त्रियोंके साथ आनन्दका अनुभव करते हुए वे विचरने लगे ॥ ६२ ॥ उसी समय स्वयं दुर्वासा मुनिने वहाँ पदार्पण किया । राजाने उनकी वन्दना नहीं की, तब मुनिने शाप दे दिया—'अरे दुर्बुद्धे ! तू राक्षस हो जा ।' ॥ ६३ ॥ फिर तो राजा सहस्राक्ष दुर्वासाजीके चरणोंमें लोट गये । तब मुनिने उन्हें वर दिया—'राजन् ! भगवान् श्रीकृष्णके विग्रहका स्पर्श होनेसे तुम्हारी मुक्ति हो जायगी' ॥ ६४ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! वे ही राजा सहस्राक्ष दुर्वासाजीके शापसे भूमण्डलपर 'तृणावर्त' नामक दैत्य हुए थे । भगवान् श्रीकृष्णके दिव्य श्रीविग्रहका स्पर्श होनेसे उनको सर्वोत्तम मोक्ष (गोलोकधाम) प्राप्त हो गया ॥ ६५ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां गोलोकखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! एक दिन सांवले-सलोने बालक श्रीकृष्ण सोनेके रत्नजटित पालने-पर सोये हुए थे । उनके मुखपर लोगोंके मनको मोहनेवाले मन्दहास्यकी छटा छा रही थी । दृष्टिजनित पीड़ाके निवारणके लिये नन्दनन्दनके ललाटपर काजलका डिठौना शोभा पा रहा था । कमलके समान सुन्दर नेत्रोंमें काजल लगा था ॥ १ ॥ अपने उस सुन्दर लालाको मैया यशोदाने गोदमें ले लिया । वे बालकका

श्रीगर्ग उवाच

रोहिणीनंदनस्यास्य नामोच्चारं शृणुष्व च । रमन्ते योगिनो ह्यस्मिन्सर्वत्र रमतीति वा ॥२५॥
गुणैश्च रमयन् भक्तांस्तेन रामं विदुः परे । गर्भसंकर्षणादस्य संकर्षण इति स्मृतः ॥२६॥
सर्वावशेषात्रं शेषं बलाधिक्याद्बलं विदुः । स्वपुत्रस्यापि नामानि शृणु नंद ह्यतंद्रितः ॥२७॥
सद्यः प्राणिपवित्राणि जगतां मंगलानि च । ककारः कमलाकांत ऋकारो राम इत्यपि ॥२८॥
षकारः षड्गुणपतिः श्वेतद्वीपनिवासकृत् । णकारो नारसिंहोऽयमकारो ह्यक्षरोऽग्निभुक् ॥२९॥
विसर्गौ च तथा ह्येतौ नरनारायणावृषी । संप्रलीनाश्च षट् पूर्णा यस्मिञ्छुद्धे महात्मनि॥३०॥
परिपूर्णतमे साक्षात्तेन कृष्णः प्रकीर्तितः । शुक्लो रक्तस्तथा पीतो वर्णोऽस्यानुयुगं धृतः ॥३१॥
द्वापरांते कलेरादौ बालोऽयं कृष्णतां गतः । तस्मात्कृष्ण इति ख्यातो नाम्नायं नंदनंदनः ३२॥
वसवश्चेंद्रियाणीति तद्देवश्चित्तमेव हि । तस्मिन्यश्चेष्टते सोऽपि वासुदेव इति स्मृतः ॥३३॥
वृषभानुसुता राधा या जाता कीर्तिमंदिरे । तस्याः पतिरयं साक्षात्तेन राधापतिः स्मृतः ॥३४॥
परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान्स्वयम् । असंख्यब्रह्मांडपतिर्गोलोके धाम्नि राजते ॥३५॥
सोऽयं तव शिशुर्जातो भारावतरणाय च । कंसादीनां वधार्थाय भक्तानां रक्षणाय च ॥३६॥
अनंतान्यस्य नामानि वेदगुह्यानि भारत । लीलाभिश्च भविष्यंति तत्कर्मसु न विस्मयः ॥३७॥
अहोभाग्यं तु ते नंद साक्षाच्छ्रीपुरुषोत्तमः । त्वद्गृहे वर्तमानोऽयं शिशुरूपः परात्परः ॥३८॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वाऽथ गते गर्गे स्वात्मानं पूर्णमाशिषाम् । मेने प्रमुदितः पत्न्या नंदराजो महामतिः ॥३९॥
अथ गर्गो ज्ञानिवरो ज्ञानदो मुनिसत्तमः । कालिंदीतीरशोभाढ्यां वृषभानुपुरं गतः ॥४०॥
छत्रेण शोभितं विप्रं द्वितीयमिव वासवम् । दंडेन राजितं साक्षाद्धर्मराजमिव स्थितम् ॥४१॥
तेजसा द्योतितदिशं साक्षात्सूर्यमिवापरम् । पुस्तकीमेखलायुक्तं द्वितीयमिव पद्मजम् ॥४२॥
शोभितं शुक्लवासोभिर्देवं विष्णुमिव स्थितम् । तं दृष्ट्वा मुनिशार्दूलं सहसोत्थाय सादरम् ॥४३॥
प्रणम्य शिरसा सद्यः संमुखोऽभूत्कृतांजलिः । मुनिं च पीठके स्थाप्य पाद्याद्यैरुपचारवित् ॥४४॥
पूजयामास विधिवच्छ्रीगर्गं ज्ञानिनां वरम् । ततः प्रदक्षिणीकृत्य वृषभानुवरो महान् ॥४५॥

श्रीवृषभानुरुवाच

सतां पर्यटनं शांतं गृहिणां शांतये स्मृतम् । नृणामंतस्तमोहारी साधुरेव न भास्करः ॥४६॥
तीर्थीभूता वयं गोपा जातास्त्वद्दर्शनात्प्रभो । तीर्थानि तीर्थीकुर्वंति त्वादृशाः साधवः क्षितौ ॥४७॥
हे मुने राधिकानाम कन्या मे मंगलायना । कस्मै वराय दातव्या वद त्वं मे सुनिश्चितम्॥४८॥
त्वं पर्यटन्नर्क इव त्रिलोकीं दिव्यदर्शनः । वरोऽनया समो यो वै तस्मै दास्यामि कन्यकाम्४९॥

श्रीनारद उवाच

हस्तं गृहीत्वा श्रीगर्गो वृषभानोर्महामुनिः । जगाम यमुनातीरं निर्जनं सुंदरस्थलम् ॥५०॥
कालिंदीजलकल्लोलकोलाहलसमाकुलम् । तत्रोपवेश्य गोपेशं मुनींद्रः प्राह धर्मवित् ॥५१॥

श्रीगर्ग उवाच

हे गोप गुप्तमाख्यानं कथनीयं न च त्वया । परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान्स्वयम् ॥५२॥

परिपूर्णतम परात्पर श्रीपुरुषोत्तम प्रभु हैं, वे तुम्हारे घर पुत्रके रूपमें शोभा पा रहे हैं ॥ ३८ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! यों कहकर श्रीगर्गजी जब चले गये, तब प्रमुदित महामति नन्दरायने यशोदासहित अपनेको पूर्णकाम एवं कृतकृत्य माना ॥ ३९ ॥ तदनन्तर ज्ञानिशिरोमणि ज्ञानदाता मुनिश्रेष्ठ श्रीगर्गजी यमुनातटपर सुशोभित वृषभानुजीकी पुरीमें पधारे ॥ ४० ॥ छत्र धारण करनेसे वे दूसरे इन्द्रकी तथा दण्ड धारण करनेसे साक्षात् धर्मराजकी भाँति सुशोभित हो रहे थे ॥ ४१ ॥ साक्षात् दूसरे सूर्यकी भाँति वे अपने तेजसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित कर रहे थे। पुस्तक तथा मेखलासे युक्त विप्रवर गर्ग दूसरे ब्रह्माकी भाँति प्रतीत होते थे ॥ ४२ ॥ शुक्ल वस्त्रोंसे सुशोभित होनेके कारण वे भगवान् विष्णुकी-सी शोभा पाते थे। उन मुनिश्रेष्ठको देखकर वृषभानुजीने तुरंत उठकर अत्यन्त आदरके साथ सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर वे उनके सामने खड़े हो गये। पूजनोपचारके ज्ञाता वृषभानुने मुनिको एक मङ्गलमय आसनपर बिठाकर पाद्य आदिके द्वारा उन ज्ञानिशिरोमणि गर्गका विधिवत् पूजन किया। फिर उनकी परिक्रमा करके महान् 'वृषभानुवर' इस प्रकार बोले ॥ ४३–४५ ॥ श्रीवृषभानुने कहा—संत पुरुषोंका विचरण शान्तिमय है; क्योंकि वह गृहस्थजनोंको परम शान्ति प्रदान करनेवाला है। मनुष्योंके भीतरी अन्धकारका नाश महात्माजन ही करते हैं, सूर्यदेव नहीं ॥ ४६ ॥ हे भगवन् ! आपका दर्शन पाकर हम सभी गोप पवित्र हो गये। भूमण्डलपर आप-जैसे साधु-महात्मा पुरुष तीर्थोंको भी पावन बनानेवाले होते हैं ॥ ४७ ॥ हे मुने ! मेरे यहाँ एक कन्या हुई है, जो मङ्गलकी धाम है और जिसका 'राधिका' नाम है। आप भलीभाँति विचारकर यह बतानेकी कृपा कीजिये कि इसका शुभ विवाह किसके साथ किया जाय ॥ ४८ ॥ सूर्यकी भाँति आप तीनों लोकोंमें विचरण करते हैं। आप दिव्यदर्शन हैं, जो इसके अनुरूप सुयोग्य वर होगा, मैं उसीके हाथमें इस कल्याणमयी कन्याको दूँगा ॥ ४९ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! तदनन्तर मुनिवर गर्गजी वृषभानुजीका हाथ पकड़े यमुनाके तटपर गये। वहाँ एक निर्जन और अत्यन्त सुन्दर स्थान था, जहाँ कालिन्दी जलकी कल्लोलमालाओंकी कल-कल ध्वनि सदा गूँजती रहती थी। वहीं गोपेश्वर वृषभानुको बैठाकर धर्मज्ञ मुनीन्द्र गर्ग इस प्रकार कहने लगे ॥ ५० ॥ ५१ ॥ श्रीगर्गजी बोले—हे वृषभानुजी ! एक गुप्त बात है, वह तुम्हें

असंख्यब्रह्मांडपतिर्गोलोकेशः परात्परः । तस्मात्परो वरो नास्ति जातो नंदगृहे पतिः ॥५३॥

श्रीवृषभानुरुवाच

अहोभाग्यमहोभाग्यं नंदस्यापि महामुने । श्रीकृष्णस्यावतारस्य सर्वं त्वं वद कारणम् ॥५४॥

श्रीगर्ग उवाच

भुवो भारावताराय कंसादीनां वधाय च । ब्रह्मणा प्रार्थितः कृष्णो बभूव जगतीतले ॥५५॥
श्रीकृष्णपट्टराज्ञी या गोलोके राधिकाऽभिधा । त्वद्गृहे सापि संजाता त्वं न जानासि तां पराम्५६॥

श्रीनारद उवाच

तदा प्रहर्षितो गोपो वृषभानुः सुविस्मितः । कलावतीं समाहूय तया सार्द्धं विचार्य च ॥५७॥
राधाकृष्णानुभावं च ज्ञात्वा गोपवरः परः । आनंदाश्रुकलां मुंचन्पुनराह महामुनिम् ॥५८॥

श्रीवृषभानुरुवाच

तस्मै दास्यामि हेब्रह्मन् कन्यां कमललोचनाम् । त्वया पंथा दर्शितो मे त्वया कार्योऽस्यमुद्वहः॥५९॥

श्रीगर्ग उवाच

अहं न कारयिष्यामि विवाहमनयोर्नृप । तयोर्विवाहो भविता भांडीरे यमुनातटे ॥६०॥
वृंदावनसमीपे च निर्जने सुंदरस्थले । परमेष्ठी समागत्य विवाहं कारयिष्यति ॥६१॥
तस्माद्राधां गोपवर विद्ध्यर्धांगीं वरस्य च । लोके चूडामणिः साक्षाद्राज्ञीं गोलोकमंदिरे ॥६२॥
यूयं सर्वेऽपि गोपाला गोलोकादागता भुवि । तथा गोपीगणा गोपा गोलोके राधिकेच्छया ॥६३॥

यद्दर्शनं दुर्लभमेव दुर्घटं देवैश्च यज्ञैर्न च जन्मभिः किमु ।
सविग्रहां तां तव मंदिराजिरे लक्ष्यंति गुप्तां बहुगोपगोपिकाः ॥६४॥

श्रीनारद उवाच

तदा च विस्मितौ राजन् दंपती हर्षितौ परम् । राधाकृष्णप्रभावं च श्रुत्वा श्रीगर्गमूचतुः ॥६५॥

दंपती ऊचतुः

राधाशब्दस्य हे ब्रह्मन् व्याख्यानं वद तत्त्वतः । त्वत्तो न संशयच्छेत्ता कोऽपि भूमौ महामुने॥६६॥

श्रीगर्ग उवाच

सामवेदस्य भावार्थं गंधमादनपर्वते । शिष्येणापि मया तत्र नारायणमुखाच्छ्रुतम् ॥६७॥

रमया तु रकारः स्यादाकारस्त्वादिगोपिका । धकारो धरया हि स्यादाकारो विरजा नदी ॥६८॥

श्रीकृष्णस्य परस्यापि चतुर्द्धा तेजसोऽभवत् । लीलाभूः श्रीश्च विरजा चतस्रः पत्न्य एव हि ॥६९॥

संप्रलीनाश्च ताः सर्वा राधायां कुंजमंदिरे । परिपूर्णतमां राधां तस्मादाहुर्मनीषिणः ॥७०॥

श्रीनारद उवाच

राधाकृष्णेति हे गोप ये जपंति पुनः पुनः । चतुष्पदार्थं किं तेषां साक्षात्कृष्णोऽपि लभ्यते ॥७१॥

तदातिविस्मितौ राजन् वृषभानुः प्रियायुतः । राधाकृष्णप्रभावं तं ज्ञात्वाऽऽनंदमयो ह्यभूत् ॥७२॥

इत्थं गर्गो ज्ञानिवरः पूजितो वृषभानुना । जगाम स्वगृहं साक्षान्मुनींद्रः सर्ववित्कविः ॥७३॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायां गोलोकखंडे नारदबहुलाश्वसंवादे नंदपत्न्या विश्वरूपदर्शनं श्रीकृष्णनामकरणं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

अथ षोडशोऽध्यायः

(भाण्डीर-वनमें नन्दजीके द्वारा श्रीराधाजीकी स्तुति; श्रीराधा और श्रीकृष्णका ब्रह्माजीके द्वारा विवाह)

श्रीनारद उवाच

गाश्चारयन्नंदनमंकदेशे संलालयन् दूरतमं सकाशात् ।
कलिंदजातीरसमीरकंपितं नंदोऽपि भांडीरवनं जगाम ॥ १ ॥

गोपियाँ उनका साक्षात् दर्शन करती हैं ॥ ६४ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! श्रीराधिकाजी और भगवान् श्रीकृष्णका यह प्रशंसनीय प्रभाव सुनकर श्रीवृषभानु और कीर्ति—दोनों अत्यन्त विस्मित तथा आनन्दसे आह्लादित हो उठे और गर्गजीसे कहने लगे ॥ ६५ ॥ दम्पति बोले—ब्रह्मन् ! 'राधा' शब्दकी तात्त्विक व्याख्या बताइये । हे महामुने ! इस भूतलपर मनके संदेहको दूर करनेवाला आपके समान दूसरा कोई नहीं है ॥ ६६ ॥ श्रीगर्गजीने कहा—एक समयकी बात है, मैं गन्धमादन पर्वतपर गया । साथमें शिष्यवर्ग भी थे । वहीं भगवान् नारायणके श्रीमुखसे मैंने सामवेदका यह सारांश सुना है ॥ ६७ ॥ 'रकार' से रमाका, 'धकारसे' धराका तथा 'आकार'से विरजा नदीका ग्रहण होता है ॥ ६८ ॥ परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णका सर्वोत्कृष्ट तेज चार रूपोंमें विभक्त हुआ । लीला, भू, श्री और विरजा ये चार पत्नियाँ ही उनका चतुर्विध तेज हैं ॥ ६९ ॥ ये सब-की-सब कुञ्जभवनमें जाकर श्रीराधिकाजीके श्रीविग्रहमें लीन हो गयीं । इसीलिये विज्ञजन श्रीराधाको 'परिपूर्णतमा' कहते हैं ॥ ७० ॥ हे गोप ! जो मनुष्य बारंबार 'राधाकृष्ण' इस नामका उच्चारण करते हैं, उन्हें चारों पदार्थ तो क्या, साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण भी सुलभ हो जाते हैं ॥ ७१ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! उस समय भार्यासहित श्रीवृषभानुके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही । श्रीराधा-कृष्णके दिव्य प्रभावको जानकर वे आनन्दके मूर्तिमान् विग्रह बन गये ॥ ७२ ॥ इस प्रकार श्रीवृषभानुने ज्ञानिशिरोमणि श्रीगर्गजीकी पूजा की । तब वे सर्वज्ञ एवं त्रिकालदर्शी मुनीन्द्र गर्ग स्वयं अपने स्थानको सिधारे ॥ ७३ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां गोलोकखण्डे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! एक दिन नन्दजी अपने नन्दनको अङ्कमें लेकर लाड़ लड़ाते और गौएँ चराते हुए गाँवके पाससे बहुत दूर निकल गये । वे धीरे-धीरे भाण्डीर-वनमें जा पहुँचे, जो कालिन्दी-

कृष्णेच्छया वेगतरोऽथ वातो घनैरभून्मेदुरमंबरं च ।
तमालनीपद्रुमपल्लवैश्च पतद्भिरेजद्भिरतीव भाः कौ ॥ २ ॥
तदांधकारे महति प्रजाते बाले रुदत्यंकगतेऽतिभीते ।
नंदो भयं प्राप शिशुं स बिभ्रद्धरिं परेशं शरणं जगाम ॥ ३ ॥
तदैव कोट्यर्कसमूहदीप्तिरागच्छतीवाचलती दिशासु ।
बभूव तस्यां वृषभानुपुत्रीं ददर्श राधां नवनंदराजः ॥ ४ ॥
कोटींदुबिंबद्युतिमादधानां नीलांबरां सुंदरमादिवर्णाम् ।
मंजीरधीरध्वनिनूपुराणामाबिभ्रतीं शब्दमतीव मंजुम् ॥ ५ ॥
कांचीकलाकंकणशब्दमिश्रां हारांगुलीयांगदविस्फुरंतीम् ।
श्रीनासिकामौक्तिकहंसिकीभिः श्रीकंठचूडामणिकुंडलाढ्याम् ॥ ६ ॥
तत्तेजसा धर्षित आशु नंदो नत्वाऽथ तामाह कृतांजलिः सन् ।
अयं तु साक्षात्पुरुषोत्तमस्त्वं प्रियाऽस्य मुख्याऽसि सदैव राधे ॥ ७ ॥
गुप्तं त्विदं गर्गमुखेन वेद्मि गृहाण राधे निजनाथमंकात् ।
एनं गृहं प्रापय मेघभीतं वदामि चेत्थं प्रकृतेर्गुणाढ्यम् ॥ ८ ॥
नमामि तुभ्यं भुवि रक्ष मां त्वं यथेप्सितं सर्वजनैर्दुरापम् ।

श्रीराधोवाच

अहं प्रसन्ना तव भक्तिभावान्मद्दर्शनं दुर्लभमेव नंद ॥ ९ ॥

श्रीनंद उवाच

यदि प्रसन्नाऽसि तदा भवेन्मे भक्तिर्दृढा कौ युवयोः पदाब्जे ।
सतां च भक्तिस्तव भक्तिभाजां संगः सदा मेऽथ युगे युगे च ॥१०॥

श्रीनारद उवाच

तथास्तु चोक्त्वाऽथ हरिं कराभ्यां जग्राह राधा निजनाथमंकात् ।
गतेऽथ नंदे प्रणते व्रजेशे तदा हि भांडीरवनं जगाम ॥११॥
गोलोकलोकाच्च पुरा समागता भूमिर्निजं स्वं वपुरादधाना ।
या पद्मरागादिखचित्सुवर्णा बभूव सा तत्क्षणमेव सर्वा ॥१२॥
वृंदावनं दिव्यवपुर्दधानं वृक्षैर्वरैः कामदुघैः सहैव ।
कलिंदपुत्री च सुवर्णसौधैः श्रीरत्नसोपानमयी बभूव ॥१३॥
गोवर्धनो रत्नशिलामयोऽभूत्सुवर्णशृंगैः परितः स्फुरद्भिः ।
मत्तालिभिर्निर्झरसुंदरीभिर्दरीभिरुच्चांगकरीव राजन् ॥१४॥
तदा निकुंजोऽपि निजं वपुर्दधत्सभायुतं प्रांगणदिव्यमंडपम् ।
वसंतमाधुर्यधरं मधुव्रतैर्मयूरपारावतकोकिलध्वनिम् ॥१५॥
सुवर्णरत्नादिखचित्पटैर्वृतं पतत्पताकावलिभिर्विराजितम् ।
सरः स्फुटद्भिर्भ्रमरावलीढितैर्विचर्चितं कांचनचारुपंकजैः ॥१६॥
तदैव साक्षात्पुरुपोत्तमोत्तमो बभूव कैशोरवपुर्घनप्रभः ।
पीतांबरः कौस्तुभरत्नभूपणो वंशीधरो मन्मथराशिमोहनः ॥१७॥

॥ ९ ॥ श्रीनन्दजी बोले—देवि ! यदि वास्तवमें तुम मुझपर प्रसन्न हो तो तुम दोनों प्रिया-प्रियतमके चरणारविन्दोंमें मेरी सुदृढ़ भक्ति बनी रहे। साथ ही तुम्हारी भक्तिसे भरपूर साधु-सन्तोंका सङ्ग मुझे सदा मिलता रहे। प्रत्येक युगमें उन संत-महात्माओंके चरणोंमें मेरा प्रेम बना रहे ॥ १० ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! तब 'तथास्तु' कहकर श्रीराधाने नन्दजीकी गोदसे अपने प्राणनाथको दोनों हाथोंमें ले लिया। फिर जब नन्दरायजी उन्हें प्रणाम करके वहाँसे चले गये, तब श्रीराधिकाजी भाण्डीर-वनमें गयीं ॥ ११ ॥ पहले गोलोकधामसे जो 'पृथ्वी देवी' इस भूतलपर उतरी थीं, वे उस समय अपना दिव्य रूप धारण करके प्रकट हुईं। उक्त धाममें जिस तरह पद्मराग मणिसे जटित सुवर्णमयी भूमि शोभा पाती है, उसी तरह इस भूतलपर भी व्रजमण्डलमें उस दिव्य भूमिका तत्क्षण अपने सम्पूर्ण रूपसे आविर्भाव हो गया ॥ १२ ॥ वृन्दावन कामपूरक दिव्य वृक्षोंके साथ अपना दिव्य रूप धारण करके शोभा पाने लगा। कलिन्दनन्दिनी यमुना भी तटपर सुवर्णनिर्मित प्रासादोंसे तथा सुन्दर रत्नमय सोपानोंसे सम्पन्न हो गयीं ॥ १३ ॥ गोवर्धन पर्वत रत्नमयी शिलाओंसे परिपूर्ण हो गया। उसके स्वर्णमय शिखर सब ओरसे उद्भासित होने लगे। हे राजन् ! मतवाले भ्रमरों तथा झरनोंसे सुशोभित कन्दराओंद्वारा वह पर्वतराज अत्यन्त ऊँचे अङ्गवाले गजराजकी भाँति सुशोभित हो रहा था ॥ १४ ॥ उस समय वृन्दावनके निकुञ्जने भी अपना दिव्य रूप प्रकट किया। उसमें सभाभवन, प्राङ्गण तथा दिव्य मण्डप शोभा पाने लगे। वसन्त ऋतुकी सारी मधुरिमा वहाँ अभिव्यक्त हो गयी। मधुपों, मयूरों, कपोतों तथा कोकिलोंके कलरव सुनायी देने लगे ॥ १५ ॥ निकुञ्जवर्ती दिव्य मण्डपोंके शिखर सुवर्ण-रत्नादिसे खचित कलशोंसे अलंकृत थे। सब ओर फहराती हुई पताकाएँ उनकी शोभा बढ़ाती थीं। वहाँ एक सुन्दर सरोवर प्रकट हुआ, जहाँ सुवर्णमय सुन्दर सरोज खिले हुए थे और उन सरोजोंपर बैठी हुई मधुपावलियाँ उनके मधुर मकरन्दका पान कर रही थीं ॥ १६ ॥ दिव्यधामकी शोभाका अवतरण होते ही साक्षात् पुरुषोत्तमोत्तम घनश्याम भगवान् श्रीकृष्ण किशोरावस्थाके अनुरूप दिव्य देह धारण करके श्रीराधाके सम्मुख खड़े हो गये। उनके श्रीअङ्गोंपर पीताम्बर शोभा पा रहा था। कौस्तुभमणिसे विभूषित हो, हाथमें वंशी धारण

भुजेन संगृह्य हसन्प्रियां हरिर्जगाम मध्ये सुविवाहमंडपम् ।
विवाहसंभारयुतः समेखलं सुदर्भमद्वारिघटादिमंडितम् ॥१८॥
तत्रैव सिंहासन उद्गते वरे परस्परं संमिलितौ विरेजतुः ।
परं ब्रुवंतौ मधुरं च दंपती स्फुरत्प्रभौ खे च तडिद्घनाविव ॥१९॥
तदांबराद्देववरो विधिः प्रभुः समागतस्तस्य परस्य संमुखे ।
नत्वा तदंघ्री स्तुवतां गिराभिः कृतांजलिश्चारु चतुर्मुखो जगौ ॥२०॥

श्रीब्रह्मोवाच

अनादिमाद्यं पुरुषोत्तमोत्तमं श्रीकृष्णचंद्रं निजभक्तवत्सलम् ।
स्वयं त्वसंख्यांडपतिं परात्परं राधापतिं त्वां शरणं व्रजाम्यहम् ॥२१॥
गोलोकनाथस्त्वमतीवलीलो लीलावतीयं निजलोकलीला ।
वैकुंठनाथोऽसि यदा त्वमेव लक्ष्मीस्तदेयं वृषभानुजा हि ॥२२॥
त्वं रामचंद्रो जनकात्मजेयं भूमौ हरिस्त्वं कमलालयेयम् ।
यज्ञावतारोऽसि यदा तदेयं श्रीदक्षिणा स्त्री प्रतिपत्निमुख्या ॥२३॥
त्वं नारसिंहोऽसि रमा तदेयं नारायणस्त्वं च नरेण युक्तः ।
तदा त्वियं शांतिरतीव साक्षाच्छायेव याता च तवानुरूपा ॥२४॥
त्वं ब्रह्म चेयं प्रकृतिस्तटस्था कालो यदेमां च विदुः प्रधानाम् ।
महान्यदा त्वं जगदंकुरोऽसि राधा तदेयं सगुणा च माया ॥२५॥

यदांतरात्मा विदितश्चतुर्भिस्तदा त्वियं लक्षणरूपवृत्तिः ।
यदा विराड्देहधरस्त्वमेव तदाऽखिलं वा भुवि धारणेयम् ॥२६॥
श्यामं च गौरं विदितं द्विधा महस्तवैव साक्षात्पुरुषोत्तमोत्तम ।
गोलोकधामाधिपतिं परेशं परात्परं त्वां शरणं व्रजाम्यहम् ॥२७॥
सदा पठेद्यो युगलस्तवं परं गोलोकधामप्रवरं प्रयाति सः ।
इहैव सौंदर्यसमृद्धिसिद्धयो भवंति तस्यापि निसर्गतः पुनः ॥२८॥
यदा युवां प्रीतियुतौ च दंपती परात्परौ तावनुरूपरूपितौ ।
तथापि लोकव्यवहारसंग्रहाद्विधिं विवाहस्य तु कारयाम्यहम् ॥२९॥

श्रीनारद उवाच

तदा स उत्थाय विधिर्हुताशनं प्रज्वाल्य कुंडे स्थितयोस्तयोः पुरः ।
श्रुतेः करग्राहविधिं विधानतो विधाय धाता समवस्थितोऽभवत् ॥३०॥
स वाहयामास हरिं च राधिकां प्रदक्षिणं सप्तहिरण्यरेतसः ।
ततश्च तौ तं प्रणमय्य वेदवित्तौ पाठयामास च सप्तमंत्रकम् ॥३१॥
ततो हरेर्वक्षसि राधिकायाः करं च संस्थाप्य हरेः करं पुनः ।
श्रीराधिकायाः किल पृष्ठदेशके संस्थाप्य मंत्रांश्च विधिः प्रपाठयन् ॥३२॥
राधा कराभ्यां प्रददौ च मालिकां किंजल्किनीं कृष्णगलेऽलिनादिनीम् ।
हरेः कराभ्यां वृषभानुजा गले ततश्च वह्निं प्रणमय्य वेदवित् ॥३३॥
संवासयामास सुपीठयोश्च तौ कृतांजली मौनयुतौ पितामहः ।
तौ पाठयामास तु पंचमंत्रकं समर्प्य राधां च पितेव कन्यकाम् ॥३४॥

'प्रधान' (प्रकृति) के रूपमें जाना जाता है। जब आप जगत्‌के अङ्कुर 'महान्' (महत्तत्त्व) रूपमें स्थित होते हैं, तब ये श्रीराधा 'सगुणा माया' रूपसे स्थित होती हैं ॥ २५ ॥ जब आप मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार—इन चारों अन्तःकरणोंके साथ 'अन्तरात्मा' रूपसे स्थित होते हैं, तब ये श्रीराधा 'लक्षणावृत्ति' के रूपमें विराजमान होती हैं। जब आप 'विराट्' रूप धारण करते हैं, तब ये अखिल भूमण्डलमें 'धारणा' कहलाती हैं ॥ २६ ॥ हे पुरुषोत्तमोत्तम ! आपका ही श्याम और गौर—द्विविध तेज सर्वत्र विदित है। आप गोलोकधामके अधिपति परात्पर परमेश्वर हैं। मैं आपकी शरण लेता हूँ ॥ २७ ॥ जो इस युगलरूपकी उत्तम स्तुतिका सदा पाठ करता है, वह समस्त धामोंमें श्रेष्ठ गोलोकधाममें जाता है और इस लोकमें भी उसे स्वभावतः सौन्दर्य, समृद्धि और सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है ॥ २८ ॥ यद्यपि आप दोनों नित्य-दम्पति हैं और परस्पर प्रीतिसे परिपूर्ण रहते हैं, परात्पर होते हुए भी एक दूसरेके अनुरूप रूप धारण करके लीला-विलास करते हैं; तथापि मैं लोकव्यवहारकी सिद्धि या लोकसंग्रहके लिये आप दोनोंकी वैवाहिक विधि सम्पन्न कराऊँगा ॥ २९ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! इस प्रकार स्तुति करके ब्रह्माजीने उठकर कुण्डमें अग्नि प्रज्वलित की और अग्निदेवके सम्मुख बैठे हुए उन दोनों प्रिया-प्रियतमके वैदिक विधानसे पाणिग्रहण-संस्कारकी विधि पूरी की ॥ ३० ॥ यह सब करके ब्रह्माजीने खड़े होकर श्रीहरि और राधिकाजीसे अग्निदेवकी सात परिक्रमाएँ करवायीं। तदनन्तर उन दोनोंको प्रणाम करके वेदवेत्ता विधाताने उन दोनोंसे सात मन्त्र पढ़वाये ॥ ३१ ॥ उसके बाद श्रीकृष्णके वक्षःस्थलपर श्रीराधिकाका हाथ रखवाकर और श्रीकृष्णका हाथ श्रीराधिकाके पृष्ठदेशमें स्थापित करके विधाताने उनसे मन्त्रोंका उच्चस्वरसे पाठ करवाया ॥ ३२ ॥ उन्होंने राधाके हाथोंसे श्रीकृष्णके कण्ठमें एक केसरयुक्त माला पहनवायी, जिसपर भ्रमर गुंजार कर रहे थे। इसी तरह श्रीकृष्णके हाथोंसे भी वृषभानुनन्दिनीके गलेमें माला पहनवाकर वेदज्ञ ब्रह्माजीने उन दोनोंसे अग्निदेवको प्रणाम करवाया ॥ ३३ ॥

पुष्पाणि देवा ववृषुस्तदा नृप विद्याधरीभिर्ननृतुः सुरांगनाः ।
गंधर्वविद्याधरचारणाः कलं सकिन्नराः कृष्णसुमंगलं जगुः ॥३५॥
मृदंगवीणामुरुयष्टिवेणवः शंखानका दुंदुभयः सतालकाः ।
नेदुर्मुहुर्देववरैर्दिवि स्थितैर्जयेत्यभून्मंगलशब्दमुच्चकैः ॥३६॥
उवाच तत्रैव विधिं हरिः स्वयं यथेप्सितं त्वं वद विप्र दक्षिणाम् ।
तदा हरिं प्राह विधिः प्रभो मे देहि त्वदंघ्र्योर्निजभक्तिदक्षिणाम् ॥३७॥
तथास्तु वाक्यं वदतो विधिर्हरेः श्रीराधिकायाश्च पदद्वयं शुभम् ।
नत्वा कराभ्यां शिरसा पुनः पुनर्जगाम गेहं प्रणतः प्रहर्षितः ॥३८॥
ततो निकुंजेषु चतुर्विधान्नं दिव्यं मनोज्ञं प्रियया प्रदत्तम् ।
जघास कृष्णः प्रहसन्परात्मा कृष्णेन दत्तं क्रमुकं च राधा ॥३९॥
ततः करेणापि करं प्रियाया हरिर्गृहीत्वा प्रचचाल कुंजे ।
जगाम जल्पन्मधुरं प्रपश्यन्वृंदावनं श्रीयमुनां लताश्च ॥४०॥
श्रीमल्लताकुंजनिकुंजमध्ये निलीयमानं प्रहसंतमेव ।
विलोक्य शाखांतरितं च राधा जग्राह पीतांबरमाव्रजंती ॥४१॥
दुद्राव राधा हरिहस्तपद्मा झंकारमंघ्र्योः प्रतिकुर्वती कौ ।
निलीयमाना यमुनानिकुंजे पुनर्व्रजंती हरिहस्तमात्रात् ॥४२॥
यथा तमालः कलधौतवल्लया घनो यथा चंचलया चकास्ति ।
नीलोऽद्रिराजो निकषाश्मखन्या श्रीराधयाऽऽस्तु तया रमण्या ॥४३॥

श्रीरासरंगे जनवर्जिते परे रेमे हरी रासरसेन राधया ।
वृंदावने भृंगमयूरकूजल्लते चरत्येव रतीश्वरः परः ॥४४॥
श्रीराधया कृष्णहरिः परात्मा ननर्त गोवर्द्धनकंदरासु ।
मत्तालिषु प्रस्रवणैः सरोभिर्विराजितासु द्युतिमल्लतासु ॥४५॥
चकार कृष्णो यमुनां समेत्य वरं विहारं वृषभानुपुत्र्या ।
राधाकराल्लक्षदलं सपद्मं धावन्गृहीत्वा यमुनाजलेषु ॥४६॥
राधा हरेः पीतपटं च वंशीं वेत्रं गृहीत्वा सहसा हसंती ।
देहीति वंशीं वदतो हरेश्च जगाद राधा कमलं नु देहि ॥४७॥
तस्यै ददौ देववरोऽथ पद्मं राधा ददौ पीतपटं च वंशीम् ।
वेत्रं च तस्मै हरये तयोः पुनर्बभूव लीला यमुनातटेषु ॥४८॥
ततश्च भांडीरवने प्रियायाश्चकार शृंगारमलं मनोज्ञम् ।
पत्रावलीयावककज्जलाद्यैः पुष्पैः सुरत्नैर्व्रजगोपरत्नः ॥४९॥
हरेश्च शृंगारमलं प्रकर्तुं समुद्यता तत्र यदा हि राधा ।
तदैव कृष्णस्तु बभूव बालो विहाय कैशोरवपुः स्वयं हि ॥५०॥
नंदेन दत्तं शिशुमेव यादृशं भूमौ लुठंतं प्ररुदंतमाययौ ।
हरिं विलोक्याशु रुरोद राधिका तनोषि मायां नु कथं हरे मयि ॥५१॥
इत्थं रुदंतीं सहसा विषण्णामाकाशवागाह तदैव राधाम् ।
शोचं नु राधे इह मा कुरु त्वं मनोरथस्ते भविता हि पश्चात् ॥५२॥

लतासे और मेघ चपलासे सुशोभित होता है तथा जैसे नीलमका महान् पर्वत स्वर्णाङ्कित कसौटीसे शोभा पाता है, उसी प्रकार रमणी श्रीराधासे नन्दनन्दन श्रीकृष्ण सुशोभित हो रहे थे ॥ ४३ ॥ रास-रङ्गस्थलीके निर्जन प्रदेशमें पहुँचकर श्रीहरिने श्रीराधाके साथ रासका रस लेते हुए लीला रमण किया। भ्रमरों और मयूरोंके कल-कूजनसे मुखरित लताओंवाले वृन्दावनमें वे दूसरे कामदेवकी भाँति विचर रहे थे ॥ ४४ ॥ परमात्मा श्रीकृष्ण हरिने जहाँ मतवाले भ्रमर गुञ्जारव करते थे, बहुत-से झरने तथा सरोवर जिनकी शोभा बढ़ाते थे और जिनमें दीप्तिमती लता-वल्लरियाँ प्रकाश फैलाती थीं, गोवर्धनकी उन कन्दराओंमें श्रीराधाके साथ नृत्य किया ॥ ४५ ॥ तत्पश्चात् श्रीकृष्णने यमुनामें प्रवेश करके वृषभानुनन्दिनीके साथ विहार किया। वे यमुनाजलमें खिले हुए लक्षदल कमलको राधाके हाथसे छीनकर भाग चले ॥ ४६ ॥ तब श्रीराधाने भी हँसते-हँसते उनका पीछा किया और उनका पीताम्बर, वंशी तथा बेंतकी छड़ी अपने अधिकारमें कर लीं। श्रीहरि कहने लगे—'मेरी बाँसुरी दे दो।' तब राधाने उत्तर दिया—'मेरा कमल लौटा दो' ॥ ४७ ॥ तब देवेश्वर श्रीकृष्णने उन्हें कमल दे दिया। फिर राधाने भी पीताम्बर, वंशी और बेंत श्रीहरिके हाथमें लौटा दिये। इसके बाद फिर यमुनाके किनारे उनकी मनोहर लीलाएँ होने लगीं ॥ ४८ ॥ तदनन्तर भाण्डीर-वनमें जाकर व्रज-गोप-रत्न श्रीनन्दनन्दनने अपने हाथोंसे प्रियाका मनोहर शृङ्गार किया—उनके मुखपर पत्र-रचना की, दोनों पैरोंमें महावर लगाया, नेत्रोंमें काजलकी पतली रेखा खींच दी तथा उत्तमोत्तम रत्नों और फूलोंसे भी उनका शृङ्गार किया ॥ ४९ ॥ इसके बाद जब श्रीराधा भी श्रीहरिको शृङ्गार धारण करानेके लिये उद्यत हुईं, उसी समय श्रीकृष्ण अपने किशोररूपको त्यागकर छोटे-से बालक बन गये ॥ ५० ॥ नन्दने जिस शिशुको जिस रूपमें राधाके हाथोंमें दिया था, उसी रूपमें वे धरतीपर लोटने और भयसे रोने लगे। श्रीहरिको उस रूपमें देखकर श्रीराधिका भी तत्काल विलाप करने लगीं और बोलीं—हे 'हरे! मुझपर माया क्यों फैलाते हो ?' ॥ ५१ ॥ इस प्रकार विषादमग्न होकर रोती हुई श्रीराधासे सहसा आकाशवाणीने कहा—'राधे ! इस समय

श्रुत्वाऽथ राधा हि हरिं गृहीत्वा गताशु गेहे व्रजराजपत्न्याः ।
दत्त्वा च बालं किल नंदपत्न्या उवाच दत्तः पथि ते च भर्त्रा ॥५३॥
उवाच राधां नृप नंदगेहिनी धन्याऽसि राधे वृषभानुकन्यके ।
त्वया शिशुर्मे परिरक्षितो भयान्मेघावृते व्योम्नि भयातुरो वने ॥५४॥
संपूजिता श्लाघितसद्गुणा सा सुनंदिता श्रीवृषभानुपुत्री ।
तदा ह्यनुज्ञाप्य यशोमतीं सा शनैः स्वगेहं हि जगाम राधा ॥५५॥
इत्थं हरेर्गुप्तकथा च वर्णिता राधाविवाहस्य सुमंगलावृता ।
श्रुता च यैर्वा पठिता च पाठिता तान्पापवृंदा न कदा स्पृशंति ॥५६॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायां गोलोकखंडे नारदबहुलाश्वसंवादे श्रीराधिकाविवाहवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

(श्रीकृष्णकी बाल-लीलामें दधि-चोरीका वर्णन)

श्रीनारद उवाच

अथ बालौ कृष्णरामौ गौरश्यामौ मनोहरौ । लीलया चक्रतुरलं सुंदरं नंदमंदिरम् ॥ १ ॥
रिंगमाणौ च जानुभ्यां पाणिभ्यां सह मैथिल । व्रजताऽल्पेन कालेन ब्रुवंतौ मधुरं व्रजे ॥ २ ॥
यशोदया च रोहिण्या लालितौ पोषितौ शिशू । कदा विनिर्गतावंकात्कचिदंकं समास्थितौ ॥ ३ ॥
मंजीरकिंकिणीरावं कुर्वंतौ ताविततस्ततः । त्रिलोकीं मोहयंतौ द्वौ मायाबालकविग्रहौ ॥ ४ ॥

क्रीडंतमादाय शिशुं यशोदाऽजिरे लुठंतं व्रजबालकैश्च ।
तद्धूलिलेपावृतधूसरांगं चक्रे ह्यलं प्रोक्षणमादरेण ॥ ५ ॥

जानुद्वयाभ्यां च समं कराभ्यां पुनर्व्रजन्प्रांगणमेत्य कृष्णः ।
मात्रंकदेशे पुनराव्रजन्सन् बभौ व्रजे केसरिबाललीलः ॥ ६ ॥
तं सर्वतो हैमनचित्रयुक्तं पीतांबरं कंचुकमादधानम् ।
स्फुरत्प्रभं रत्नमयं च मौलिं दृष्ट्वा सुतं प्राप मुदं यशोदा ॥ ७ ॥
बालं मुकुंदमतिसुंदरबालकेलिं दृष्ट्वा परं मुदमवापुरतीव गोप्यः ।
श्रीनंदराजव्रजमेत्य गृहं विहाय सर्वास्तु विस्मृतगृहाः सुखविग्रहास्ताः ॥ ८ ॥
श्रीनंदराजगृहकृत्रिमसिंहरूपं दृष्ट्वा व्रजन्प्रतिरवन्नृप भीरुवद्यः ।
नीत्वा च तं निजसुतं गृहमाव्रजंतीं गोप्यो व्रजे सघृणया ह्यवदन् यशोदाम् ॥ ९ ॥

गोप्य ऊचुः

क्रीडार्थं चपलं ह्येनं मा बहिः कारयांगणात् । बालकेलिं दुग्धमुखं काकपक्षधरं शुभे ॥१०॥
ऊर्ध्वदंतद्वयं जातं पूर्वं मातुलदोषदम् । अस्यापि मातुलो नास्ति ते सुतस्य यशोमति ॥११॥
तस्माद्दानं तु कर्तव्यं विघ्नानां नाशहेतवे । गोविप्रसुरसाधूनां छंदसां पूजनं तथा ॥१२॥

श्रीनारद उवाच

तदा यशोदारोहिण्यौ सुतकल्याणहेतवे । वस्त्ररत्ननवान्नानां दानं नित्यं च चक्रतुः ॥१३॥
अथ व्रजे रामकृष्णौ बालसिंहावलोकनौ । पद्भ्यां चलंतौ घोषेषु वर्धमानौ बभूवतुः ॥१४॥
श्रीदामसुबलाद्यैश्च वयस्यैर्व्रजबालकैः । यमुनासिकते शुभ्रे लुठंतौ सकुतूहलौ ॥१५॥
कालिंद्युपवने श्यामैस्तमालैः सघनैर्वृते । कदंबकुंजशोभाढ्ये चेरतू रामकेशवौ ॥१६॥

अपने लालाको गोदमें लेकर बड़े आदरसे झाड़ती-पोंछती थीं ॥ ५ ॥ श्रीकृष्ण दोनों हाथों और घुटनोंके बल चलते हुए पुनः आँगनमें चले जाते और वहाँसे फिर माताकी गोदमें आ जाते थे। इस तरह वे व्रजमें सिंह-शावककी भाँति लीला कर रहे थे ॥ ६ ॥ माता यशोदा उन्हें सोनेके तार जड़े पीताम्बर और पीली झँगुली पहनातीं तथा मस्तकपर दीप्तिमान् रत्नमय मुकुट धारण करातीं और इस प्रकार अत्यन्त शोभाशाली भव्य-रूपमें उन्हें देखकर अत्यन्त आनन्दका अनुभव करती थीं ॥ ७ ॥ अत्यन्त सुन्दर बालोचित क्रीड़ामें तत्पर बालमुकुन्दका दर्शन करके गोपियाँ बड़ा सुख पाती थीं। वे सुखस्वरूपा गोपाङ्गनाएँ अपना घर छोड़कर नन्दराजके गोष्ठमें आ जातीं और वहाँ आकर वे सब-की-सब अपने घरोंकी सुध-बुध भूल जाती थीं ॥ ८ ॥ हे राजन्! नन्दरायजीके गृह-द्वारपर कृत्रिम सिंहकी मूर्ति देखकर भयभीतकी तरह जब श्रीकृष्ण पीछे लौट पड़ते, तब यशोदाजी अपने लालाको गोदमें उठाकर घरके भीतर चली जाती थीं। उस समय गोपियाँ व्रजमें दयासे द्रवित-हृदय हो यशोदाजीसे इस प्रकार बोलीं ॥ ९ ॥ गोपाङ्गनाएँ कहने लगीं—हे शुभे! तुम्हारा लाला खेलनेके लिये बड़ी चपलता दिखाता है। इसकी बालकेलि अत्यन्त मनोहर है। ऐसा न हो कि इसे किसीकी नजर लग जाय। अतः तुम इस काकपक्षधारी दुधमुँहे बालकको आँगनसे बाहर मत निकलने दिया करो ॥ १० ॥ देखो न, इसके ऊपरके दो दाँत ही पहले निकले हैं, जो मामाके लिये दोषकारक हैं। हे यशोदाजी! तुम्हारे इस बालकके कोई भी मामा नहीं है। इसलिये विघ्ननिवारणके हेतु तुम्हें दान करना चाहिये। गौ, ब्राह्मण, देवता, साधु, महात्मा तथा वेदोंकी पूजा करनी चाहिये ॥ ११ ॥ १२ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन्! तबसे यशोदा और रोहिणीजी पुत्रोंकी कल्याण-कामनासे प्रतिदिन वस्त्र, रत्न तथा नूतन अन्नका दान करने लगीं ॥ १३ ॥ कुछ दिनों बाद सिंह-शावककी भाँति देखनेवाले राम और कृष्ण—दोनों बालक कुछ बड़े होकर गोष्ठोंमें अपने पैरोंसे चलने-फिरने लगे ॥ १४ ॥ श्रीदामा और सुबल आदि व्रज-बालक सखाओंके साथ यमुनाजीके शुभ्र बालुकामय तटपर कौतूहलपूर्वक लोटते हुए राम और श्याम नील-सघन तमालोंसे घिरे और कदम्ब-कुञ्जकी शोभासे विलसित कालिन्दी-तटवर्ती उपवनमें

तदपि प्रांशुना लभ्यं गोरसं शिक्यसंस्थितम् । श्रीदाम्ना सुबलेनापि दंडेनापि तताड च ॥३०॥
भग्नभांडात्सर्वगव्यं बहद्भूमौ मनोहरम् । जघास सबलो मर्कैर्बालकैः सह माधवः ॥३१॥
भग्नभांडस्वनं श्रुत्वा प्राप्ता गोपी प्रभावती । पलायितेषु बालेषु जग्राह श्रीकरं हरेः ॥३२॥
नीत्वा मृषाश्रुं भीरुं च गच्छन्ती नन्दमंदिरम् । अग्रे नन्दं स्थितं दृष्ट्वा मुखे वस्त्रं चकार ह ॥३३॥
हरिर्विचिंतयन्नित्थं माता दंडं प्रदास्यति । दधार तद्बालरूपं स्वच्छन्दगतिरीश्वरः ॥३४॥
सा यशोदां समेत्याशु प्राह गोपी रुषान्विता । भांडं भग्नीकृतं सर्वं मुषितं दध्यनेन वै ॥३५॥
यशोदा तत्सुतं वीक्ष्य हसंती प्राह गोपिकाम् । वस्त्रांतं च मुखाद्गोपी दूरीकृत्य वदांहसः ॥३६॥
अपवादो यदा देयो निर्वासं कुरु मे पुरात् । युष्मत्पुत्रकृतं चौर्यमस्मत्पुत्रकृतं भवेत् ॥३७॥
जनलज्जासमायुक्ता दूरीकृत्य मुखांबरम् । सापि प्राह निजं बालं वीक्ष्य विस्मितमानसा ॥३८॥
निष्पदस्त्वं कुतः प्राप्तो व्रजसारोऽस्ति मे करे । वदन्तीत्थं च तं नीत्वा निर्गता नन्दमन्दिरात्॥३९॥
यशोदा रोहिणी नंदो रामो गोपाश्च गोपिकाः । जहसुः कथयंतस्ते दृष्टोऽन्यायो व्रजे महान् ॥४०॥
भगवांस्तु बहिर्वीथ्यां भूत्वा श्रीनन्दनन्दनः । प्रहसन् गोपिकां प्राह धृष्टांगश्चंचलेक्षणः ॥४१॥

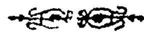
श्रीभगवानुवाच

पुनर्मां यदि गृह्णासि कदाचित्त्वं हि गोपिके । ते भर्तृरूपस्तु तदा भविष्यामि न संशयः ॥४२॥

श्रीनारद उवाच

श्रुत्वा सा विस्मिता गोपी गता गेहेऽथ मैथिल । तदा सर्वगृहे गोप्यो न गृह्णन्ति हरिं ह्रिया ॥४३॥

इति श्रीगर्गसंहितायां गोलोकखण्डे नारदबहुलाश्वसंवादे श्रीकृष्णबालचरित्रे दधिस्तेयवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥



किया और उनके सहारे आप ऊपर चढ़ गये ॥ २९ ॥ तो भी छींकेपर रक्खा हुआ गोरस अभी और ऊँचे कदके मनुष्यसे ही प्राप्त किया जा सकता था, इसलिये वे उसे नहीं पा सके। तब श्रीदामा और सुबलके साथ उन्होंने मटकेपर डंडेसे प्रहार किया ॥३०॥ इससे दहीका बर्तन फूट गया और सारा गव्य पृथ्वीपर बह चला। य बलरामसहित माधवने ग्वाल-बालों और बंदरोंके साथ वह मनोहर दही जी भरकर खाया ॥ ३१ ॥ भाण्डके फूटनेकी आवाज सुनकर गोपी प्रभावती वहाँ आ पहुँची। अन्य सब बालक तो वहाँसे भाग निकले; किंतु श्रीकृष्ण का हाथ उसने पकड़ लिया ॥ ३२ ॥ श्रीकृष्ण भयभीत-से होकर मिथ्या आँसू बहाने लगे। प्रभावती उन्हें लेकर नन्द-भवनकी ओर चली। सामने नन्दरायजी खड़े थे। उन्हें देखकर प्रभावतीने मुखपर घूँघट डाल लिया ॥ ३३ ॥ श्रीहरि सोचने लगे—'इस तरह जानेपर माता मुझे अवश्य दण्ड देगी। अतः उन स्वच्छन्दगति परमेश्वरने प्रभावतीके ही पुत्रका रूप धारण कर लिया ॥ ३४ ॥ रोषसे भरी हुई प्रभावती यशोदाजीके पास शीघ्र जाकर बोली—'इसने मेरा दहीका बर्तन फोड़ दिया और सारा दही लूट लिया' ॥३५॥ यशोदाजीने देखा, यह तो इसीका पुत्र है। तब वे हँसती हुई उस गोपीसे बोलीं—'पहले अपने मुखसे घूँघट तो हटाओ, फिर बालकके दोष बताना ॥ ३६ ॥ यदि इस तरह झूठे ही दोष लगाना है तो मेरे नगरसे बाहर चली जाओ। क्या तुम्हारे पुत्रकी की हुई चोरी मेरे बेटेके माथे मढ़ दी जायगी ?' ३७ ॥ तब लोगोंके बीच लजाती हुई प्रभावतीने अपने मुँहसे घूँघट हटाकर देखा तो उसे अपना ही बालक दिखायी दिया। उसे देखकर वह मन-ही-मन चकित होकर बोली—॥ ३८ ॥ 'अरे निगोड़े! तू कहाँसे आ गया ? मेरे हाथमें तो व्रजका सार-सर्वस्व था।' इस तरह बड़बड़ाती हुई वह अपने बेटेको लेकर नन्दभवनसे बाहर चली गयी ॥ ३९ ॥ यशोदा, रोहिणी, नन्द, बलराम तथा अन्यान्य गोप और गोपाङ्गनाएँ हँसने लगीं और बोलीं—'अहो! व्रजमें तो बड़ा भारी अन्याय दिखायी देने लगा है।' ४० ॥ उधर भगवान् बाहरकी गलीमें पहुँचकर फिर नन्द-नन्दन बन गये और सम्पूर्ण शरीरसे धृष्टताका परिचय देते हुए, चञ्चल नेत्र मटकाकर ओर-ओरसे

अथ एकोनविंशोऽध्यायः

(दामोदर कृष्णका उलूखल-बन्धन तथा उनके द्वारा यमलार्जुन-वृक्षोंका उद्धार)

श्रीनारद उवाच

एकदा गोकुले गोप्यो ममंथुर्दधि सर्वतः । गृहे गृहे प्रगायन्त्यो गोपालचरितं परम् ॥ १ ॥
यशोदाऽपि समुत्थाय प्रातः श्रीनंदमंदिरे । भांडे रायं विनिक्षिप्य ममंथ दधि सुंदरी ॥ २ ॥
मंजीररावं संकुर्वन्बालः श्रीनंदनंदनः । ननर्त नवनीतार्थं रायःशब्दकुतूहलात् ॥ ३ ॥
बालकेलिर्विभौ नृत्यन्मातुः पार्श्वमनुभ्रमन् । सुनादिकिंकिणीसंघझंकारं कारयन्मुहुः ॥ ४ ॥

हैयंगवीनं सततं नवीनं याचन्स मातुर्मधुरं ब्रुवन्सः ।
आदाय हस्तेऽश्मसुतं रुषा सुधीर्बिभेद कृष्णो दधिमंथपात्रम् ॥ ५ ॥
पलायमानं स्वसुतं यशोदा प्रभावती प्राप न हस्तमात्रात् ।
योगीश्वराणामपि यो दुरापः कथं स मातुर्ग्रहणे प्रयाति ॥ ६ ॥
तथापि भक्तेषु च भक्तवश्यता प्रदर्शिता श्रीहरिणा नृपेश्वर ।
बालं गृहीत्वा स्वसुतं यशोमती बबंध रज्ज्वाऽथ रुषा ह्युलूखले ॥ ७ ॥
आदाय यद्यद्ध्हु दाम तत्तत्स्वल्पं प्रभूतं स्वसुते यशोदा ।
गुणैर्न बद्धः प्रकृतेः परो यः कथं स बद्धो भवतीह दाम्ना ॥ ८ ॥
यदा यशोदा गतबन्धनेच्छा खिन्ना निषण्णा नृप खिन्नमानसा ।
आसीत्तदाऽयं कृपया स्वबंधे स्वच्छंदयानः स्ववशोऽपि कृष्णः ॥ ९ ॥
एष प्रसादो न हि वीतकर्मणां न ज्ञानिनां कर्मधियां कुतः पुनः ।
मातुर्यथाऽभून्नृप एषु तस्मान्मुक्तिं व्यधाद्भक्तिमलं न माधवः ॥१०॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! एक समय गोपाङ्गनाएँ घर-घरमें गोपाल कृष्णकी लीलाएँ गाती हुई गोकुलमें सब ओर दधि-मन्थन कर रही थीं ॥१॥ श्रीनन्द-मन्दिरमें सुन्दरी यशोदाजी भी प्रातःकाल उठकर दहीके माण्डमें रई डालकर उसे मथने लगीं ॥ २ ॥ मथानीकी आवाज सुनकर बालक श्रीनन्दनन्दन भी नवनीतके लिये कौतूहलवश मञ्जीरकी मधुर ध्वनि प्रकट करते हुए नाचने लगे ॥ ३ ॥ माताके पास बालक्रीडा-परायण श्रीकृष्ण बार-बार चक्कर लगाते और नाचते हुए बड़ी शोभा पा रहे थे और बजती हुई करधनीके घुँघुरुओंकी मधुर झंकार बारंबार फैला रहे थे ॥ ४ ॥ वे मातासे मीठे वचन बोलकर ताजा निकाला हुआ माखन माँग रहे थे। जब वह उन्हें नहीं मिला, तब वे कुपित हो उठे और एक पत्थरका टुकड़ा लेकर उसके द्वारा दही मथनेका पात्र फोड़ दिया ॥ ५ ॥ ऐसा करके वे भाग चले। यशोदाजी भी अपने पुत्रको पकड़नेके लिये पीछे-पीछे दौड़ीं। वे उनसे एक ही हाथ आगे थे, किंतु यशोदा उन्हें पकड़ नहीं पाती थीं। जो योगीश्वरोंके लिये भी दुर्लभ हैं, वे माताकी पकड़में कैसे आ सकते थे ? ॥ ६ ॥ हे नृपेश्वर ! तथापि श्रीहरिने भक्तोंके प्रति अपनी भक्तवश्यता दिखायी, इसलिये वे जान-बूझकर माताके हाथ आ गये। अपने बालक-पुत्रको पकड़कर यशोदाने रोषपूर्वक ऊखलमें बाँधना आरम्भ किया ॥ ७ ॥ वे जो-जो बड़ी-से-बड़ी रस्सी उठातीं, वही-वही उनके पुत्रके लिये कुछ छोटी पड़ जाती थी। जो प्रकृतिके तीनों गुणोंसे नहीं बँध सके, वे प्रकृतिसे परे विद्यमान परमात्मा यहाँके गुण (रस्सी) से कैसे बँध सकते थे ? ॥ ८ ॥ जब यशोदा बाँधते-बाँधते थक गयीं और हतोत्साह होकर बैठ रहीं तथा बाँधनेकी इच्छा भी छोड़ बैठीं, तब स्वच्छन्दगति भगवान् श्रीकृष्ण स्ववश होते हुए भी कृपा करके माताके बन्धनमें आ गये ॥ ९ ॥ भगवान्‌की ऐसी कृपा कर्मत्यागी ज्ञानियोंको भी

तदैव गोप्यस्तु समागतास्त्वरं दृष्ट्वाऽथ भग्नं दधिमंथभाजनम् ।
उलूखले बद्धमतीव दामभिर्भीतं शिशुं वीक्ष्य जगुर्घृणातुराः ॥११॥

गोप्य ऊचुः

अस्मद्गृहेषु पात्राणि भिनत्ति सततं शिशुः । तदप्येनं नो वदामः कारुण्यान्नंदगेहिनि ॥१२॥
गतव्यथे ह्यकरुणे यशोदे हे व्रजेश्वरि । यष्ट्या निर्भर्त्सितो बालस्त्वया बद्धो घटक्षयात् ॥१३॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्तायां यशोदायां व्यग्रायां गृहकर्मसु । कर्षन्नुलूखलं कृष्णो बालैः श्रीयमुनां ययौ ॥१४॥
तत्तटे च महावृक्षौ पुराणौ यमलार्जुनौ । तयोर्मध्ये गतः कृष्णो हसन् दामोदरः प्रभुः ॥१५॥
चकर्ष सहसा कृष्णस्तिर्यग्गतमुलूखलम् । कर्षणेन समूलौ द्वौ पेततुर्भूमिमंडले ॥१६॥
पातनेनापि शब्दोऽभूत्प्रचंडो वज्रपातवत् । विनिर्गतौ च वृक्षाभ्यां देवौ द्वावेधसोऽग्निवत् ॥१७॥
दामोदरं परिक्रम्य पादौ स्पृष्टौ स्वमौलिना । कृतांजली हरिं नत्वा तौ तु तत्संमुखे स्थितौ ॥१८॥

देवावूचतुः

आवां मुक्तौ ब्रह्मदंडात्सद्यस्तेऽच्युत दर्शनात् । माभूत्ते निजभक्तानां हेलनं ह्यावयोर्हरे ॥१९॥
करुणानिधये तुभ्यं जगन्मंगलशीलिने । दामोदराय कृष्णाय गोविंदाय नमो नमः ॥२०॥

श्रीनारद उवाच

इति नत्वा हरिं तौ द्वौ उदीचीं च दिशं गतौ । तदैव ह्यागताः सर्वे नंदाद्या भयकातराः ॥२१॥

नहीं मिल सकी; फिर जो कर्ममें आसक्त हैं, उनको तो मिल ही कैसे सकती है ? यह भक्तिका ही प्रताप है कि वे माताके बन्धनमें आ गये । हे नरेश्वर ! इसीलिये भगवान् ज्ञानके साधक आराधकोंको मुक्ति तो दे देते हैं, किंतु भक्ति नहीं देते ॥ १० ॥ उसी समय बहुत-सी गोपियां भी शीघ्रतापूर्वक वहाँ आ पहुँचीं । उन्होंने देखा कि दही मथनेका भाण्ड फूटा हुआ है और भयभीत नन्द-शिशु श्रीकृष्ण बहुत-सी रस्सियोंद्वारा ओखलीमें बँधे खड़े हैं । यह देखकर उन्हें बड़ी दया आयी और वे यशोदाजीसे बोलीं ॥ ११ ॥ गोपियोंने कहा—हे नन्दरानी ! तुम्हारा यह नन्हा-सा बालक सदा ही हमारे घरोंमें जाकर बर्तन-भांड़े फोड़ा करता है, तथापि हम करुणावश इसे कभी कुछ नहीं कहतीं ॥ १२ ॥ हे व्रजेश्वरि यशोदे ! तुम्हारे दिलमें तनिक भी दर्द नहीं है, तुम निर्दय हो गयी हो । एक बर्तनके फूट जानेके कारण तुमने इस बच्चेको छड़ीसे डराया-धमकाया है और बाँध भी दिया है ॥ १३ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे नरेश्वर ! उन गोपियोंके यों कहनेपर यशोदाजी कुछ नहीं बोलीं । वे घरके काम-धंधोंमें लग गयीं । इसी बीच मौका पाकर श्रीकृष्ण ग्वाल बालोंके साथ वह ओखली खींचते हुए श्रीयमुनाजीके किनारे चले गये ॥ १४ ॥ यमुनाजीके तटपर दो पुराने विशाल वृक्ष थे, जो एक दूसरेसे जुड़े हुए खड़े थे । वे दोनों ही अर्जुन-वृक्ष थे । दामोदर भगवान् कृष्ण हँसते हुए उन दोनों वृक्षोंके बीचमेंसे निकल गये ॥ १५ ॥ ओखली वहाँ टेढ़ी हो गयी थी, तथापि श्रीकृष्णने सहसा उसे खींचा । खींचनेसे दबाव पाकर वे दोनों वृक्ष जड़सहित उखड़कर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १६ ॥ वृक्षोंके गिरनेसे जो धमाकेकी आवाज हुई, वह वज्रपातके समान भयंकर थी । उन वृक्षोंसे दो देवता निकले—ठीक उसी तरह जैसे काष्ठसे अग्नि प्रकट हुई हो ॥ १७ ॥ उन दोनों देवताओंने दामोदरकी परिक्रमा करके अपने मुकुटसे उनके पैर छुये और दोनों हाथ जोड़े । वे उन श्रीहरिके समक्ष नतमस्तक खड़े हो इस प्रकार बोले ॥ १८ ॥ दोनों देवता कहने लगे—हे अच्युत ! आपके दर्शनसे हम दोनोंको इसी क्षण ब्रह्मदण्डसे मुक्ति मिली है । हे हरे ! अब हम दोनोंसे आपके निजी भक्तोंकी अवहेलना न हो ॥ १९ ॥ आप करुणाकी निधि हैं । जगत्‌का मङ्गल करना आपका स्वभाव है । आप 'दामोदर', 'कृष्ण' और 'गोविन्द' को हमारा बारंबार नमस्कार है ॥ २० ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! इस प्रकार श्रीहरिको नमस्कार करके वे दोनों देवकुमार उत्तर दिशाकी ओर चल

कथं वृक्षौ प्रपतितौ विना वातं व्रजार्भकाः । वदताशु तदा बाला ऊचुः सर्वे व्रजौकसः ॥२२॥

बाला ऊचुः

अनेन पातितौ वृक्षौ ताभ्यां द्वौ पुरुषौ स्थितौ । एनं नत्वा गतावद्य तावुदीच्यां स्फुरत्प्रभौ ॥२३॥

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तेषां न ते श्रद्दधिरे ततः । मुमोच नंदः स्वं बालं दाम्ना बद्धमुलूखले ॥२४॥
संलालयन्स्वांकदेशे समाघ्राय शिशुं नृप । निर्भर्त्स्य भामिनीं नंदो विप्रेभ्यो गोशतं ददौ २५॥

श्रीबहुलाश्व उवाच

काविमौ पुरुषौ दिव्यौ वद देवर्षिसत्तम । केन दोषेण वृक्षत्वं प्रापितौ यमलार्जुनौ ॥२६॥

श्रीनारद उवाच

नलकूबरमणिग्रीवौ राजराजसुतौ परौ । जग्मतुर्नंदनवनं मंदाकिन्यास्तटे स्थितौ ॥२७॥
अप्सरोभिर्गीयमानौ चेरतुर्गतवाससौ । वारुणीमदिरामत्तौ युवानौ द्रव्यदर्पितौ ॥२८॥
कदाचिद्देवलो नाम मुनींद्रो वेदपारगः । नग्नौ दृष्ट्वा च तावाह दुष्टशीलौ गतस्मृती ॥२९॥

देवल उवाच

युवां वृक्षसमौ दृष्टौ निर्लज्जौ द्रव्यदर्पितौ । तस्माद्वृक्षौ तु भूयास्तां वर्षाणां शतकं भुवि ॥३०॥
द्वापरांते भारते च माथुरे व्रजमंडले । कलिंदनंदिनीतीरे महावनसमीपतः ॥३१॥
परिपूर्णतमं साक्षात्कृष्णं दामोदरं हरिम् । गोलोकनाथं तं दृष्ट्वा पूर्वरूपौ भविष्यथः ॥३२॥

श्रीनारद उवाच

इत्थं देवलशापेन वृक्षत्वं प्रापितौ नृप । नलकूवरमणिग्रीवौ श्रीकृष्णेन विमोचितौ ॥३३॥

इति श्रीगर्गसंहितायां गोलोकखंडे नारदबहुलाश्वसंवादे यमलार्जुनभंगो नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

अथ विंशोऽध्यायः

(दुर्वासाद्वारा भगवान्‌की मायाका एवं गोलोकमें श्रीकृष्णका दर्शन तथा श्रीनन्दनन्दनस्तोत्र)

श्रीनारद उवाच

एकदा कृष्णचंद्रस्य दर्शनार्थं परस्य च । दुर्वासा मुनिशार्दूलो व्रजमंडलमाययौ ॥ १ ॥
कालिंदीनिकटे पुण्ये सैकते रमणस्थले । महावनसमीपे च कृष्णमाराद्ददर्श ह ॥ २ ॥
श्रीमन्मदनगोपालं लुठंतं बालकैः सह । परस्परं प्रयुद्ध्यंतं बालकेलिं मनोहरम् ॥ ३ ॥
धूलिधूसरसर्वांगं वक्रकेशं दिगंबरम् । धावंतं बालकैः सार्द्धं हरिं वीक्ष्य स विस्मितः ॥ ४ ॥

श्रीमुनिरुवाच

स ईश्वरोऽयं भगवान्कथं बालैर्लुठन् भुवि । अयं तु नंदपुत्रोऽस्ति न श्रीकृष्णः परात्परः ॥ ५ ॥

श्रीनारद उवाच

इत्थं मोहं गते तत्र दुर्वाससि महामुनौ । क्रीडन्कृष्णस्तत्समीपे तदंके ह्यागतः स्वयम् ॥ ६ ॥
पुनर्विनिर्गतो ह्यंकाद्बालसिंहावलोकनः । हसन्कलं ब्रुवन्कृष्णः संमुखः पुनरागतः ॥ ७ ॥
हसतस्तस्य च मुखे प्रविष्टः श्वसनैर्मुनिः । ददर्शान्यं महालोकं सारण्यं जनवर्जितम् ॥ ८ ॥
अरण्येषु भ्रमंस्तत्र कुतः प्राप्त इति ब्रुवन् । तदैवाजगरेणापि निगीर्णोऽभून्महामुनिः ॥ ९ ॥
ब्रह्मांडं तत्र ददृशे सलोकं सबिलं परम् । भ्रमन्द्वीपेषु स मुनिः स्थितोऽभूत्पर्वते सिते ॥१०॥

देवलके शापसे वृक्षभावको प्राप्त नलकूबर और मणिग्रीवका श्रीकृष्णने उद्धार किया ॥ ३३ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां गोलोकखण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! एक दिन मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन करनेके लिये व्रजमण्डलमें आये ॥ १ ॥ उन्होंने कालिन्दीके निकट पवित्र वालुकामय पुलिनके रमणीय स्थलमें महावनके समीप श्रीकृष्णको निकटसे देखा ॥ २ ॥ वे शोभाशाली मदनगोपाल बालकोंके साथ वहाँ लोटते, परस्पर मल्ल-युद्ध करते तथा भाँति-भाँतिकी बालोचित लीलाएँ कर रहे थे ॥ ३ ॥ इन सब कारणोंसे वे बड़े मनोहर जान पड़ते थे । उनके सारे अङ्ग धूलसे धूसरित थे । मस्तकपर काले घुँघराले केश शोभा पा रहे थे । दिगम्बर-वेशमें बालकोंके साथ दौड़ते हुए श्रीहरिको देखकर दुर्वासाके मनमें बड़ा विस्मय हुआ ॥ ४ ॥ श्रीमुनि (मन-ही-मन) कहने लगे—क्या यह वही षड्विध ऐश्वर्यसे सम्पन्न ईश्वर है ? फिर यह बालकोंके साथ धरतीपर क्यों लोट रहा है ? मेरी समझमें यह केवल नन्दका पुत्र है, परात्पर श्रीकृष्ण नहीं है ॥ ५ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! जब महामुनि दुर्वासा इस प्रकार मोहमें पड़ गये, तब खेलते हुए श्रीकृष्ण स्वयं उनके पास उनकी गोदमें आ गये ॥ ६ ॥ फिर उनकी गोदसे हट गये । श्रीकृष्णकी दृष्टि बाल सिंहके समान थी । वे हँसते और मधुर वचन बोलते हुए पुनः मुनिके सम्मुख आ गये और सहसा हँसते हुए श्रीकृष्णके श्वाससे खिंचकर मुनि उनके मुँहमें समा गये । वहाँ जाकर उन्होंने एक विशाल लोक देखा, जिसमें अरण्य और निर्जन प्रदेश भी दृष्टिगोचर हो रहे थे ॥ ७ ॥ ८ ॥ उन अरण्यों (जंगलों) में भ्रमण करते हुए मुनि बोल उठे—'मैं कहाँसे यहाँ आ गया ?' इतनेमें ही उन महामुनिको एक अजगर निगल गया ॥ ९ ॥ उसके पेटमें

तपस्तताप वर्षाणां शतकोटीः प्रभुं भजन् । नैमित्तिकाख्ये प्रलये प्राप्ते विश्वभयंकरे ॥११॥
आगच्छंतः समुद्रास्ते प्लावयंतो धरातलम् । वहंस्तेषु च दुर्वासा न प्रापांतं जलस्य च ॥१२॥
व्यतीते युगसाहस्रे मग्नोऽभूद्विगतस्मृतिः । पुनर्जलेषु विचरन्नंडमन्यं ददर्श ह ॥१३॥
तच्छिद्रे च प्रविष्टोऽसौ दिव्यां सृष्टिं गतस्ततः । तदंडमूर्ध्नि लोकेषु विधेरायुःसमं चरन् ॥१४॥
एवं छिद्रं तत्र वीक्ष्य प्राविशत्स हरिं स्मरन् । बहिर्विनिर्गतो ह्यंडाद्ददर्शाशु महाजलम् ॥१५॥
तस्मिन् जले तु लक्ष्यंते कोटिशो ह्यंडराशयः । ततो मुनिर्जलं पश्यन् ददर्श विरजां नदीम् ॥१६॥
तत्पारं प्रगतः साक्षाद्गोलोकं प्राविशन्मुनिः । वृंदावनं गोवर्द्धनं यमुनापुलिनं शुभम् ॥१७॥
दृष्ट्वा प्रसन्नः स मुनिर्निकुंजं प्राविशत्तदा । गोपगोपीगणवृतं गवां कोटिभिरन्वितम् ॥१८॥
असंख्यकोटिमार्तंडज्योतिषां मंडले ततः । दिव्ये लक्षदले पद्मे स्थितं राधापतिं हरिम् ॥१९॥
परिपूर्णतमं साक्षाच्छ्रीकृष्णं पुरुषोत्तमम् । असंख्यब्रह्मांडपतिं गोलोकं स्वं ददर्श ह ॥२०॥
श्रीकृष्णस्यापि हसतः प्रविष्टस्तन्मुखे मुनिः । पुनर्विनिर्गतोऽपश्यद्बालं श्रीनंदनंदनम् ॥२१॥
कालिंदीनिकटे पुण्ये सैकते रमणस्थले । बालकैः सहितं कृष्णं विचरंतं महावने ॥२२॥
तदा मुनिश्च दुर्वासा ज्ञात्वा कृष्णं परात्परम् । श्रीनंदनंदनं नत्वा नत्वा प्राह कृतांजलिः ॥२३॥

मुनिरुवाच

बालं नवीनशतपत्रविशालनेत्रं बिंबाधरं सजलमेघरुचिं मनोज्ञम् ।

मंजीरनूपुररणन्नवरत्नकांचीश्रीहारकेसरिनखप्रतियंत्रसंघम् ।
दृष्ट्याऽर्तिहारिमषिबिंदुविराजमानं वंदे कलिंदतनुजातटबालकेलिम् ॥२५॥

पूर्णेन्दुसुंदरमुखोपरि कुंचिताग्राः केशा नवीनघननीलनिभाः स्फुरंति ।
राजंत आनतशिरःकुमुदस्य यस्य नंदात्मजाय सबलाय नमो नमस्ते ॥२६॥

श्रीनंदनंदनस्तोत्रं प्रातरुत्थाय यः पठेत् । तन्नेत्रगोचरो याति सानंदं नंदनंदनः ॥२७॥

श्रीनारद उवाच

इति प्रणम्य श्रीकृष्णं दुर्वासा मुनिसत्तमः । तं ध्यायन्प्रजपन्प्रागाद्बदर्याश्रममुत्तमम् ॥२८॥

श्रीगर्ग उवाच

इत्थं देवर्षिवर्येण नारदेन महात्मना । कथितं कृष्णचरितं बहुलाश्वाय धीमते ॥२९॥
मया ते कथितं ब्रह्मन् यशः कलिमलापहम् । चतुष्पदार्थदं दिव्यं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥३०॥

श्रीशौनक उवाच

बहुलाश्वो मैथिलेंद्रः किं पप्रच्छ महामुनिम् । नारदं ज्ञानदं शांतं तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥३१॥

श्रीगर्ग उवाच

नारदं ज्ञानदं नत्वा मानदो मैथिलो नृपः । पुनः पप्रच्छ कृष्णस्य चरितं मंगलायनम् ॥३२॥

श्रीबहुलाश्व उवाच

श्रीकृष्णो भगवान्साक्षात्परमानंदविग्रहः । परं चकार किं चित्रं चरित्रं वद मे प्रभो ॥३३॥

पूर्वावतारैश्चरितं कृतं वै संगलायनम् । अपरं किं तु कृष्णस्य पवित्रं चरितं परम् ॥३४॥

श्रीनारद उवाच

साधु साधु त्वया पृष्टं चरित्रं मंगलं हरेः । तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि वृंदारण्ये च यद्यशः ॥३५॥
इदं गोलोकखंडं च गुह्यं परममद्भुतम् । श्रीकृष्णेन प्रकथितं गोलोके रासमंडले ॥३६॥
निकुंजे राधिकायै च राधा मह्यं ददाविदम् । मया तुभ्यं श्रावितं च दत्तं सर्वार्थदं परम् ॥३७॥
इदं पठित्वा विप्रस्तु सर्वशास्त्रार्थगो भवेत् । श्रुत्वेदं चक्रवर्ती स्यात्क्षत्रियश्चंडविक्रमः ॥३८॥
वैश्यो निधिपतिर्भूयाच्छूद्रो मुच्येत बंधनात् । निष्कामो योपि जगति जीवन्मुक्तः स जायते ॥३९॥
यो नित्यं पठते सम्यग्भक्तिभावसमन्वितः । स गच्छेत्कृष्णचंद्रस्य गोलोकं प्रकृतेः परम् ॥४०॥

इति श्रीगर्गसंहितायां गोलोकखण्डे नारदबहुलाश्वसंवादे भगवज्जन्मवर्णनं दुर्वाससो मायादर्शनं श्रीनंदनंदनस्तोत्रवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

सम्पूर्णोऽयं प्रथमो गोलोकखंडः

श्लोकसंख्या ९४३

यह मुझे बताइये ॥ ३३ ॥ पूर्वके अवतारों द्वारा भी मङ्गलमय चरित्र सम्पादित हुए हैं । इस श्रीकृष्णावतारके द्वारा इसके बाद और कौन-कौन-से पवित्र चरित्र किये गये, यह सब बताइये ॥ ३४ ॥ श्रीनारदजीने कहा—हे राजन् ! तुम्हें अनेकशः साधुवाद है। क्योंकि तुमने श्रीहरिके मङ्गलमय चरित्रके विषयमें प्रश्न किया है । वृन्दावनमें जो उनकी यशोवर्धक लीलाएँ हुई हैं, उनका मैं वर्णन करूँगा ॥ ३५ ॥ यह गोलोकखण्ड अत्यन्त गोपनीय और परम अद्भुत है। गोलोकके रासमण्डलमें साक्षात् श्रीकृष्णने इसका वर्णन किया था ॥ ३६ ॥ इसे श्रीकृष्णने निकुञ्जमें राधिकाको सुनाया और श्रीराधाने मुझे इसका ज्ञान प्रदान किया है। फिर मैंने तुमको वह सब सुना दिया । यह गोलोकखण्डका वृत्तान्त सम्पूर्ण पदार्थोंको देनेवाला उत्कृष्ट साधन है ॥ ३७ ॥ यदि ब्राह्मण इसका पाठ करता है तो वह सम्पूर्ण शास्त्रोंके अर्थका ज्ञाता होता है, क्षत्रिय इसे सुने तो वह प्रचण्ड पराक्रमी चक्रवर्ती सम्राट् होता है ॥ ३८ ॥ वैश्य सुने तो वह निधिपति हो जाय और शूद्र सुने तो वह संसारके बन्धनसे छुटकारा पा जाय । जो इस जगत्में फलकी कामनासे रहित होकर इसका पाठ करता है, वह जीवन्मुक्त हो जाता है ॥ ३९ ॥ जो सम्यक् भक्तिभावसे युक्त हो नित्य इसका पाठ करता है, वह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके गोलोकधाममें, जो प्रकृतिसे परे है, पहुँच जाता है ॥ ४० ॥ इति श्रीगर्गसंहितायाँ गोलोकखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

॥ श्रीकृष्णः शरणं मम ॥

आचार्य-श्रीगर्गमहामुनिविरचिता—

श्रीगर्गसंहिता

'प्रियंवदा'ऽभिधया भाषाटीकयाऽऽटीकिता

(वृन्दावनखण्डः १)

प्रथमोऽध्यायः

(सन्नन्दका गोपोंको महावनसे वृन्दावनमें चलनेकी सम्मति देना)

कृष्णातीरे कोकिलाकेलिकीरे गुंजापुंजे देवपुष्पादिकुंजे ।
कंबुग्रीवौ क्षिप्तबाहू चलन्तौ राधाकृष्णौ मंगलं मे भवेताम् ॥ १ ॥

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानांजनशलाकया । चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ २ ॥

श्रीनारद उवाच

एकदोपद्रवं वीक्ष्य नंदो नन्दान्सहायकान् । वृषभानूपनंदांश्च वृषभानुवरांस्तथा ॥ ३ ॥
समाहूय परान्वृद्धान्सभायां तानुवाच ह ।

नंद उवाच

किं कर्त्तव्यं तु वदतोत्पाताः सन्ति महावने ॥ ४ ॥

श्रीनारद उवाच

तेषां श्रुत्वाऽथ सन्नन्दो गोपो वृद्धोतिमंत्रवित् । अंके नीत्वा रामकृष्णौ नंदराजमुवाच ह ॥ ५ ॥

सन्नंद उवाच

उत्थातव्यमितोऽस्माभिः सर्वैः परिकरैः सह । गंतव्यं चान्यदेशेषु यत्रोत्पाता न संति हि ॥ ६ ॥
बालस्ते प्राणवत्कृष्णो जीवनं व्रजवासिनाम् । व्रजे धनं कुले दीपो मोहनो बाललीलया ॥ ७ ॥

श्रीयमुनाजीके तटपर, जहाँ कोकिलाएँ तथा क्रीडाशुक विचरते हैं, गुञ्जापुञ्जसे विलसित देवपुष्प (पारिजात) आदिके कुञ्जमें, शङ्ख-सदृश सुन्दर ग्रीवासे सुशोभित तथा एक दूसरेके गलेमें बाँह डालकर चलनेवाले प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-कृष्ण मेरे लिये मङ्गलमय हों ॥ १ ॥ मैं अज्ञानरूपी रतौंधीसे अंधा हो रहा था; जिन्होंने ज्ञानरूपी अञ्जनकी शलाकासे मेरी आँखें खोल दी हैं, उन श्रीगुरुदेवको नमस्कार है ॥ २ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! एक समयकी बात है—व्रजमें विविध उपद्रव होते देख नन्दराजने अपने सहायक नन्दों, उपनन्दों, वृषभानुओं, वृषभानुवरों तथा अन्य बड़े-बूढ़े गोपोंको बुलाकर सभामें उनसे कहा ॥ ३ ॥ नन्दजी बोले—हे गोपगण ! महावनमें तो बहुत-से उत्पात हो रहे हैं । बताइए, हमलोगोंको इस समय क्या करना चाहिये ॥ ४ ॥ नारदजी कहते हैं—यह सुनकर उन सबमें विशेष मन्त्रकुशल वृद्ध गोप सन्नन्दने बलराम और श्रीकृष्णको गोदमें लेकर नन्दराजसे कहा ॥ ५ ॥ सन्नन्द बोले—मेरे विचारसे तो हमें अपने समस्त परिवारके साथ यहाँसे उठ चलना चाहिये और किसी दूसरे ऐसे स्थानपर जाकर डेरा डालना चाहिये, जहाँ उत्पातकी

हा वक्या शकटेनापि तृणावर्तेन बालकः । मुक्तोऽयं द्रुमपातेन ह्युत्पातं किमतः परम् ॥ ८ ॥
तस्माद्वृंदावनं सर्वैर्गंतव्यं बालकैः सह । उत्पातेषु व्यतीतेषु पुनरागमनं कुरु ॥ ९ ॥

नन्द उवाच

कतिक्रोशैर्विस्तृतं तद्वनं वृंदावनं व्रजात् । तल्लक्षणं तत्सुखं च वद बुद्धिमतां वर ॥१०॥

सन्नंद उवाच

प्रागुदीच्यां बर्हिपदो दक्षिणस्यां यदोः पुरात् । पश्चिमायां शोणपुरान्माथुरं मंडलं विदुः ॥११॥
विंशद्योजनविस्तीर्णं सार्द्धं यद्योजनेन वै । माथुरं मंडलं दिव्यं व्रजमाहुर्मनीषिणः ॥१२॥
मथुरायां शौरिगृहे गर्गाचार्यमुखाच्छ्रुतम् । माथुरं मंडलं दिव्यं तीर्थराजेन पूजितम् ॥१३॥
वनेभ्यस्तत्र सर्वेभ्यो वनं वृंदावनं वरम् । परिपूर्णतमस्यापि लीलाक्रीडं मनोहरम् ॥१४॥
वैकुंठान्नापरो लोको न भूतो न भविष्यति । एकं वृन्दावनं नाम वैकुंठाच्च परात्परम् ॥१५॥
यत्र गोवर्द्धनो नाम गिरिराजो विराजते । कालिन्दीनिकटे यत्र पुलिनं मंगलायनम् ॥१६॥
बृहत्सानुर्गिरिर्यत्र यत्र नन्दीश्वरो गिरिः । क्रोशानां च चतुर्विंशद्विस्तृतैः काननैर्वृतम् ॥१७॥
पशव्यं गोपगोपीनां गवां सेव्यं मनोहरम् । लताकुंजावृतं तद्वै वनं वृन्दावनं स्मृतम् ॥१८॥

नंद उवाच

कदा व्रजोऽयं सन्नंद तीर्थराजेन पूजितः । एतद्वेदितुमिच्छामि परं कौतूहलं हि मे ॥१९॥

सन्नंद उवाच

शंखासुरो महादैत्यः पुरा नैमित्तिके लये । स्वपतो ब्रह्मणः सोऽपि वेदधृग्दैत्यपुंगवः ॥२०॥

जित्वा देवान्ब्रह्मलोकाद्धृत्वा वेदान् गतोऽर्णवे । गतेषु तेषु वेदेषु देवानां च गतं बलम् ॥२१॥
तदा साक्षाद्धरिः पूर्णो धृत्वा मात्स्यं वपुः परम् । नैमित्तिकलयाम्भोधौ युयुधे तेन यज्ञराट् ॥२२॥
शूलं चिक्षेप हरये शंखो दैत्यो महाबलः । स्वचक्रेण हरिः साक्षाच्छूलं शतधाऽकरोत् ॥२३॥
हरिं तताड शिरसा शंखो विष्णुरुरःस्थले । तस्य मूर्द्धप्रहारेण न चचाल परात्परः ॥२४॥
तदा गदां समादाय मत्स्यरूपधरो हरिः । पृष्ठे जघान तं दैत्यं शंखरूपं महाबलम् ॥२५॥
गदाप्रहारव्यथितः किञ्चिद्व्याकुलमानसः । पुनरुत्थाय सर्वेशं मुष्टिना स तताड ह ॥२६॥
तदा विष्णुः स्वचक्रेण सशृंगं तच्छिरो दृढम् । जहार कुपितः साक्षाद्भगवान्कमलेक्षणः ॥२७॥
जित्वा शंखं देववरैः सार्द्धं विष्णुर्व्रजेश्वर । प्रयागमेत्य स हरिर्वेदांस्तान्ब्रह्मणे ददौ ॥२८॥
यज्ञं चकार विधिवत्सर्वदेवगणैः सह । प्रयागं च समाहूय तीर्थराजं चकार ह ॥२९॥
तस्याक्षयवटः छत्रो लीलातपत्रवत् । मुनिमालुसुते श्वेतासितचामरैस्तं विरेजतुः ॥३०॥
तदैव सर्वतीर्थानि जम्बूद्वीपस्थितानि च । नीत्वा बलिं समाजग्मुस्तीर्थराजाय धीमते ॥३१॥
तीर्थराजं च संपूज्य नत्वा तीर्थानि सर्वतः । स्वधामानि ययुर्नन्द हरौ देवैर्गते सति ॥३२॥
तदैव नारदः प्राप्तो मुनीन्द्रः कलहप्रियः । सिंहासने भ्राजमानं तीर्थराजमुवाच ह ॥३३॥

श्रीनारद उवाच

तीर्थैः प्रपूजितस्त्वं वै तीर्थराज महातपः । तुभ्यं च सर्वतीर्थानि मुख्यानीह बलिं ददुः ॥३४॥
व्रजाद्वृन्दावनादीनि नागतानीह ते पुरः । तीर्थानां राजराजस्त्वं प्रमत्तैस्तैस्तिरस्कृतः ॥३५॥

सन्नन्द उवाच

इति प्रभाष्य तं साक्षाद्गते देवर्षिसत्तमे । तीर्थराजस्तदा क्रुद्धो हरिलोकं जगाम ह ॥३६॥
नत्वा हरिं परिक्रम्य पुरः स्थित्वा कृतांजलिः । सर्वतीर्थैः परिवृतः श्रीनाथं प्राह तीर्थराट् ॥३७॥

तीर्थराज उवाच

हे देवदेव प्राप्तोऽहं तीर्थराजस्त्वया कृतः । बलिं ददुर्मे तीर्थानि मथुरामंडलं विना ॥३८॥
प्रमत्तैर्व्रजतीर्थैश्च तैरहं तु तिरस्कृतः । तस्मात्तुभ्यं च कथितं प्राप्तोऽहं तव मंदिरे ॥३९॥

श्रीभगवानुवाच

धरायां सर्वतीर्थानां त्वं कृतस्तीर्थराण्मया । किंतु स्वस्य गृहस्यापि न कृतो राट् त्वमेव हि ॥४०॥
किं त्वं मे मंदिरं लिप्सुर्मत्तवद्भापसे वचः । तीर्थराज गृहं गच्छ श्रृणु वाक्यं शुभं च मे ॥४१॥
मथुरामंडलं साक्षान्मंदिरं मे परात्परम् । लोकत्रयात्परं दिव्यं प्रलयेऽपि न संहृतम् ॥४२॥

सन्नन्द उवाच

इति श्रुत्वा तीर्थराजो विस्मितोऽभूद्गतस्मयः । आगत्य नत्वा संपूज्य माथुरं व्रजमंडलम् ॥४३॥
ततः प्रदक्षिणीकृत्य स्वधाम गतवान्पुनः । धराया मानभंगार्थं पूर्वं मे तत्प्रदर्शितम् ॥
मया तवाग्रे कथितं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥४४॥

नंद उवाच

धराया मानभंगार्थं केन पूर्वं प्रदर्शितम् । एतन्मे वद गोपेश माथुरं व्रजमंडलम् ॥४५॥

सन्नन्द उवाच

आदौ वाराहकल्पेऽस्मिन् हरिर्वाराहरूपधृक् । रसातलात्समुद्धृत्य गां बभौ दंष्ट्रया प्रभुः ॥४६॥
गच्छन्तं वारिवृन्देषु भगवन्तं रमेश्वरम् । दंष्ट्राग्रे शोभिता पृथ्वी प्राह देवं जनार्दनम् ॥४७॥

वाराह उवाच

यदा वृक्षाः प्रदृष्टा हि भवन्त्युद्वेगता जले । तदा ते स्थापना भूयात्पश्यंती गच्छ भूरुहान् ॥४९॥

धरोवाच

स्थावराणां तु रचना ममोपरि समास्थिता । अन्याऽस्ति किं वा धरणी त्वहं हि धारणामयी ॥५०॥

सन्नन्द उवाच

वदंतीत्थं ददर्शाग्रे जले वृक्षान्मनोहरान् । वीक्ष्य पृथ्वी हरिं प्राह सर्वतो विगतस्मया ॥५१॥

धरोवाच

देव कस्मिस्थले वृक्षाः सन्ति ह्येते सपल्लवाः । इदं मनसि मे चित्रं वद यज्ञपते प्रभो ॥५२॥

वाराह उवाच

माथुरं मंडलं दिव्यं दृश्यतेऽग्रे नितंबिनि । गोलोकभूमिसंयुक्तं प्रलयेऽपि न संहृतम् ॥५३॥

सन्नन्द उवाच

तच्छ्रुत्वा विस्मिता पृथ्वी गतमाना बभूव ह । तस्मान्नन्द महाबाहो व्रजोऽयं सर्वतोऽधिकः ॥५४॥
श्रुत्वेदं व्रजमाहात्म्यं जीवन्मुक्तो भवेन्नरः । तीर्थराजात्परं विद्धि माथुरं व्रजमंडलम् ॥५५॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायां वृन्दावनखंडे नारदबहुलाश्वसंवादे नन्दसन्नन्दसंवादे वृन्दावनागमनोद्योगवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

(गिरिराज गोवर्द्धनकी उत्पत्ति तथा उसका व्रजमण्डलमें आगमन)

नन्द उवाच

हे सन्नन्द महाप्राज्ञ सर्वज्ञोऽसि बहुश्रुतः । व्रजमंडलमाहात्म्यं वदतस्ते मुखाच्छ्रुतम् ॥ १ ॥
गिरिर्गोवर्द्धनो नाम तस्योत्पत्तिं च मे वद । कस्मादेनं गिरिवरं गिरिराजं वदंति हि ॥ २ ॥

पृथ्वीने पूछा—हे प्रभो ! सारा विश्व पानीसे भरा दिखायी देता है । अतः बताइये, आप किस स्थलपर मेरी स्थापना करेंगे ? ॥ ४८ ॥ भगवान् वाराह बोले—जब वृक्ष दिखायी देने लगें और जलमें उद्वेगका भाव प्रकट हो, तब उसी स्थानपर तुम्हारी स्थापना होगी । तुम वृक्षोंको देखती चलो ॥ ४९ ॥ पृथ्वीने कहा—भगवन् ! स्थावर वस्तुओंकी रचना तो मेरे ही ऊपर हुई है । क्या कोई दूसरी भी धरणी है ? धारणामयी धरणी तो केवल मैं ही हूँ ॥ ५० ॥ सन्नन्दजी कहते हैं—यों कहती हुई पृथ्वीने अपने सामने जलमें मनोहर वृक्ष देखे । उन्हें देखकर पृथ्वीका अभिमान दूर हो गया और वह भगवान्से बोली—'देव ! किस स्थलपर ये पल्लवसहित वृक्ष विद्यमान हैं ? यह दृश्य मेरे मनमें बड़ा आश्चर्य पैदा कर रहा है । हे यज्ञपते ! हे प्रभो ! इसका रहस्य बताइये' ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ भगवान् वाराह बोले—हे नितम्बिनि ! यह सामने दिव्य 'माथुर-मण्डल' दिखायी देता है, जो गोलोककी धरतीसे जुड़ा हुआ है । प्रलयकालमें भी इसका संहार नहीं होता ॥ ५३ ॥ सन्नन्द बोले—यह सुनकर पृथ्वीको बड़ा विस्मय हुआ । वह अभिमानशून्य हो गयी । अतः हे महाबाहु नन्द ! यह व्रजमण्डल समस्त लोकोंसे अधिक महत्त्वशाली है । व्रजका यह माहात्म्य सुनकर मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है । तुम 'माथुर-व्रजमण्डल' को तीर्थराज प्रयागसे भी उत्कृष्ट समझो ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ इति श्रीगर्ग-संहितायां वृन्दावनखण्डे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

नन्दजीने पूछा—हे महाप्राज्ञ सन्नन्दजी ! आप सर्वज्ञ और बहुश्रुत हैं, मैंने आपके मुखसे व्रजमण्डलके माहात्म्यका वर्णन सुना ॥ १ ॥ अब 'गोवर्धन' नामसे प्रसिद्ध जो पर्वत है, उसकी उत्पत्ति कैसे हुई—यह मुझे बताइये । इस गिरिश्रेष्ठ गोवर्धनको लोग 'गिरिराज' क्यों कहते हैं ? ॥ २ ॥ यह साक्षात् यमुना नदी

हे पुत्र गच्छ मुनिना भारते कर्मके शुभे । त्रैवर्ग्यं लभ्यते यत्र नृभिर्मोक्षमपि क्षणात् ॥२९॥

गोवर्द्धन उवाच

मुने कथं मां नयसि लंबितं योजनाष्टकम् । योजनद्वयमुच्चांगं पंचयोजनविस्तृतम् ॥३०॥

पुलस्त्य उवाच

उपविश्य करे मे त्वं गच्छ पुत्र यथासुखम् । वाहयामि करे त्वां वै यावत्काशीं समागतः ॥३१॥

गोवर्द्धन उवाच

मुने यत्र स्थले भूम्यां स्थापनां मे करिष्यसि ।
करिष्यामि न चोत्थानं तद्भूम्याः शपथो मम ॥३२॥

पुलस्त्य उवाच

अहमाशाल्मलिद्वीपान्मर्यादीकृत्य कौसलम् । न स्थापनां करिष्यामि शपथस्तेऽपि मे पथि ॥३३॥

सन्नन्द उवाच

मुनेः करतले तस्मिन्नारुरोह महाचलः । प्रणम्य पितरं द्रोणमश्रुपूर्णाकुलेक्षणः ॥३४॥
मुनिस्तं दक्षिणकरे धृत्वा गच्छञ्छनैः शनैः । स्वतेजो दर्शयन्नृणां प्राप्तोऽभूद्व्रजमंडले ॥३५॥
जातिस्मरो गिरिस्तत्र प्राहेदं पथि चिंतयन् । परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान्स्वयम् ॥३६॥
असंख्यब्रह्मांडपतिर्व्रजेऽत्रावतरिष्यति । बाललीलां च कैशोरीं चेष्टां गोपालबालकैः ॥३७॥
दानलीलां मानलीलां हरिरत्र करिष्यति । तस्मान्मया न गन्तव्यं भूमिश्चेयं कलिन्दजा ॥३८॥
गोलोकाद्राधया सार्द्धं श्रीकृष्णोऽत्रागमिष्यति । कृतकृत्यो भविष्यामि कृत्वा तद्दर्शनं परम् ॥३९॥
एवं विचार्य मनसा भूरि भारं ददौ करे । तदा मुनिश्च श्रांतोऽभूद्भूतपूर्वं गतस्मृतिः ॥४०॥
करादुत्तार्य तं शैलं निधाय व्रजमंडले । लघुशंकाजयार्थं हि गतोऽभ्रद्भारपीडितः ॥४१॥

कृत्वा शौचं जले स्नात्वा पुलस्त्यो मुनिसत्तमः । उत्तिष्ठेति मुनिः प्राह गिरिं गोवर्द्धनं परम् ॥४२॥
नोत्थितं भूरिभाराढ्यं कराभ्यां तं महामुनिः । स्वतेजसा बलेनापि गृहीतुमुपचक्रमे ॥४३॥
मुनिना संगृहीतोपि गिरिराजो गिराऽऽर्द्रया । न चचालांगुलिं किंचित्तदपि द्रोणनन्दनः ॥४४॥

सन्नन्द उवाच

गच्छ गच्छ गिरिश्रेष्ठ भारं मा कुरु मा कुरु । मया ज्ञातोऽसि रुष्टस्त्वमभिप्रायं वदाशु मे ॥४५॥

गोवर्द्धन उवाच

मुनेऽत्र मे न दोषोऽस्ति त्वया मे स्थापना कृता ।
करिष्यामि न चोत्थानं पूर्वं मे शपथः कृतः ॥४६॥

सन्नन्द उवाच

पुलस्त्यो मुनिशार्दूलः क्रोधात्प्रचलितेन्द्रियः । स्फुरदोष्ठो द्रोणपुत्रं शशाप विगतोद्यमः ॥४७॥

पुलस्त्य उवाच

गिरे त्वयाऽतिधृष्टेन न कृतो मे मनोरथः । तस्मात्तु तिलमात्रं हि नित्यं त्वं क्षीणतां व्रज ॥४८॥

सन्नन्द उवाच

काशीं गते पुलस्त्यर्षावयं गोवर्द्धनो गिरिः । नित्यं संक्षीयते नन्द तिलमात्रं दिने दिने ॥४९॥
यावद्भागीरथी गंगा यावद्गोवर्द्धनो गिरिः ।
तावत्कलेः प्रभावस्तु भविष्यति न कर्हिचित् ॥५०॥
गोवर्द्धनस्य प्रकटं चरित्रं नृणां महापापहरं पवित्रम् ।
मया तवाग्रे कथितं विचित्रं सुमुक्तिदं कौ रुचिरं न चित्रम् ॥५१॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीवृन्दावनखण्डे गिरिराजोत्पत्तिकथनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

ही, लघुशङ्कासे निवृत्त होनेके लिये चले गये ॥ ४१ ॥ शौच-क्रिया करके जलमें स्नान करनेके पश्चात् मुनिवर पुलस्त्यने उत्तम पर्वत गोवर्धनसे कहा—'अब उठो ॥ ४२ ॥ अधिक भारसे सम्पन्न होनेके कारण जब वह दोनों हाथोंसे नहीं उठा, तब महामुनि पुलस्त्यने उसे अपने तेज और बलसे उठा लेनेका उपक्रम किया ॥ ४३ ॥ मुनिने स्नेहसे भीगी वाणीद्वारा द्रोणनन्दन गिरिराजको ग्रहण करनेका सम्पूर्ण शक्तिसे प्रयास किया, किंतु वह एक अंगुल भी टस-से-मस न हुआ ॥ ४४ ॥ तब पुलस्त्यजी बोले–हे गिरिश्रेष्ठ ! चलो, चलो । भार अधिक न बढ़ाओ, न बढ़ाओ । मैं जान गया, तुम रूठे हुए हो । शीघ्र बताओ, तुम्हारा क्या अभिप्राय है ? ॥ ४५ ॥ गोवर्धन बोला—हे मुने ! इसमें मेरा दोष नहीं है । आपने ही मुझे यहाँ स्थापित किया है । अब मैं यहाँसे नहीं उठूँगा । अपनी यह प्रतिज्ञा मैंने पहले ही प्रकट कर दी थी ॥ ४६ ॥ सन्नन्दजी कहते हैं—यह उत्तर सुनकर मुनिश्रेष्ठ पुलस्त्यकी सारी इन्द्रियाँ क्रोधसे चञ्चल हो उठीं । उनके ओष्ठ फड़कने लगे । अपना सारा उद्यम व्यर्थ हो जानेके कारण उन्होंने द्रोणपुत्रको शाप दे दिया ॥ ४७ ॥ पुलस्त्यजी बोले—हे पर्वत ! तू बड़ा ढीठ है । तूने मेरा मनोरथ पूर्ण नहीं किया । इसलिये तू प्रतिदिन तिल-तिलभर क्षीण होता चला जा ॥ ४८ ॥ सन्नन्दजी कहते हैं—हे नन्द ! यों कहकर पुलस्त्य मुनि काशी चले गये । उसी दिनसे यह गोवर्धन पर्वत प्रतिदिन तिल-तिल करके क्षीण होता चला जा रहा है ॥ ४९ ॥ जबतक भागीरथी गङ्गा और गोवर्धन पर्वत इस भूतलपर विद्यमान हैं, तबतक कलिका प्रभाव कदापि नहीं बढ़ेगा ॥ ५० ॥ गोवर्धनका यह विख्यात चरित्र परम पवित्र और मनुष्योंके बड़े-बड़े पापोंका नाश करनेवाला है । यह प्रसङ्ग मैंने तुम्हारे सामने कहा है, जो भूमण्डलमें रुचिर और अद्भुत है । यह उत्तम मोक्ष प्रदान करनेवाला है, इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है ॥ ५१ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीवृन्दावनखण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

(श्रीयमुनाजीका गोलोकसे अवतरण और पुनः गोलोकधाममें प्रवेश)

सन्नन्द उवाच

गोलोके हरिणाऽऽज्ञप्ता कालिन्दी सरितां वरा । कृष्णं प्रदक्षिणीकृत्य गन्तुमभ्युद्यताऽभवत् ॥ १ ॥
तदैव विरजा साक्षाद्गङ्गा ब्रह्मद्रवोद्भवा । द्वे नद्यौ यमुनायां तु संप्रलीने बभूवतुः ॥ २ ॥
परिपूर्णतमां कृष्णां तस्मात्कृष्णस्य नन्दराट् । परिपूर्णतमस्यापि पट्टराज्ञीं विदुर्जनाः ॥ ३ ॥
ततो वेगेन महता कालिन्दी सरितां वरा । बिभेद विरजावेगं निकुंजद्वारनिर्गता ॥ ४ ॥
असंख्यब्रह्मांडचयं स्पृष्ट्वा ब्रह्मद्रवं गता । भिन्दन्ती तज्जलं दीर्घं स्ववेगेन महानदी ॥ ५ ॥
वामपादांगुष्ठनखभिन्नब्रह्मांडमस्तके । श्रीवामनस्य विवरे ब्रह्मद्रवससाकुले ॥ ६ ॥
तस्मिन् श्रीगंगया सार्द्धं प्रविष्टाऽभूत्सरिद्वरा । वैकुंठं चाजितपदं संप्राप्य ध्रुवमंडले ॥ ७ ॥
ब्रह्मलोकमभिव्याप्य पतन्ती ब्रह्ममंडलात् । ततः सुराणां शतशो लोकाल्लोकं जगाम ह ॥ ८ ॥
ततः पपात वेगेन सुमेरुगिरिमूर्द्धनि । गिरिकूटानतिक्रम्य भित्त्वा गंडशिलातटान् ॥ ९ ॥
सुमेरोर्दक्षिणदिशं गन्तुमभ्युदिताऽभवत् । ततः श्रीयमुना साक्षाच्छ्रीगंगायां विनिर्गता ॥१०॥
गंगा तु प्रययौ शैलं हिमवन्तं महानदी । कृष्णा तु प्रययौ शैलं कालिंदं प्राप्य सा तदा ॥११॥
कालिंदीति समाख्याता कालिंदप्रभवा यदा । कलिंदगिरिसानूनां गंडशैलतटान् दृढान् ॥१२॥
भित्त्वा लुठन्ती भूखंडे कृष्णा वेगवती सती । देशान्पुनन्ती कालिन्दी प्राप्तवान् खांडवे वने ॥१३॥
परिपूर्णतमं साक्षाच्छ्रीकृष्णं वरमिच्छती । धृत्वा वपुः परं दिव्यं तपस्तेपे कलिन्दजा ॥१४॥
पित्रा विनिर्मिते गेहे जलेऽद्यापि समाश्रिता । ततो वेगेन कालिन्दी प्राप्ताऽभूद्व्रजमंडले ॥१५॥
वृन्दावनसमीपे च मथुरानिकटे शुभे । श्रीमहावनपार्श्वे च सैकते रमणस्थले ॥१६॥

श्रीगोकुले च यमुना यूथीभूत्वातिसुन्दरी । श्रीकृष्णचन्द्ररासार्थं निजवासं चकार ह ॥१७॥
अथो व्रजाद्व्रजन्ती सा व्रजविक्षेपविह्वला । प्रेमानन्दाश्रुसंयुक्ता भूत्वा पश्चिमवाहिनी ॥१८॥
ततस्त्रिवारं वेगेन नत्वाऽथो व्रजमंडले । देशान्पुनंती प्रययौ प्रयागं तीर्थसत्तमम् ॥१९॥
पुनः श्रीगंगया सार्धं क्षीराब्धिं सा जगाम ह । देवाः सुवर्षं पुष्पाणां चक्रुर्दिवि जयध्वनिम् ॥२०॥
कृष्णा श्रीयमुना साक्षात्कालिन्दी सरितां वरा । समुद्रमेत्य श्रीगंगां प्राह गद्गदयां गिरा ॥२१॥

यमुनोवाच

हे गंगे त्वं तु धन्याऽसि सर्वब्रह्मांडपावनी । कृष्णपादाब्जसंभूता सर्वलोकैकवन्दिता ॥२२॥
ऊर्ध्वं यामि हरेर्लोकं गच्छ त्वमपि हे शुभे । त्वत्समानं हि दिव्यं च न भूतं न भविष्यति॥२३॥

गंगोवाच

सर्वतीर्थमयी गंगा तस्मात्त्वां प्रणमाम्यहम् । यत्किंचिद्वा प्रकथितं तत्क्षमस्व सुमंगले ॥२४॥
हे कृष्णे त्वं तु धन्याऽसि सर्वब्रह्माण्डपावनी । कृष्णवामांससंभूता परमानन्दरूपिणी ॥२५॥
परिपूर्णतमा साक्षात्सर्वलोकैकवन्दिता । परिपूर्णतमस्यापि श्रीकृष्णस्य महात्मनः ॥२६॥
पट्टराज्ञीं परां कृष्णे कृष्णां त्वां प्रणमाम्यहम् । तीर्थैर्देवैर्दुर्लभा त्वं गोलोकेऽपि च दुर्घटा ॥२७॥
अहं यास्यामि पातालं श्रीकृष्णस्याज्ञया शुभे । त्वद्वियोगातुराऽहं वै पानं कर्तुं न च क्षमा ॥२८॥
यूथीभूत्वा भविष्यामि श्रीव्रजे रासमंडले । यत्किंचिन्मे प्रकथितं तत्क्षमस्व हरिप्रिये ॥२९॥

भीतर ही एक दिव्य गेहका निर्माण कर दिया था, जिसमें आज भी वे रहा करती हैं। खाण्डववनसे वेगपूर्वक चलकर कालिन्दी व्रजमण्डलमें श्रीवृन्दावन और मथुराके निकट आ पहुँचीं। महावनके पास सिकतामय रमणस्थलमें भी प्रवाहित हुई ॥ १५ ॥ १६ ॥ श्रीगोकुलमें आनेपर परम सुन्दरी यमुनाने (विशाखा सखीके नामसे) अपने नेतृत्वमें गोपकिशोरियोंका एक यूथ बनाया और श्रीकृष्णचन्द्रके रासमें सम्मिलित होनेके लिये उन्होंने वहीं अपना निवासस्थान निश्चित कर लिया ॥ १७ ॥ तदनन्तर वे जब व्रजसे आगे जाने लगीं, तब व्रजभूमिके वियोगसे विह्वल हो, प्रेमानन्दके आँसू बहाती हुई पश्चिम दिशाकी ओर प्रवाहित हुईं ॥ १८ ॥ तदनन्तर व्रजमण्डलकी भूमिको अपने वारिवेगसे तीन बार प्रणाम करके यमुना अनेक देशोंको पवित्र करती हुई उत्तम तीर्थ प्रयागमें जा पहुँचीं ॥ १९ ॥ वहाँ गङ्गाजीके साथ उनका संगम हुआ और वे उन्हें साथ लेकर क्षीरसागरकी ओर गयीं। उस समय देवताओंने उनके ऊपर फूलोंकी वर्षा की और दिग्विजयसूचक जयघोष किया ॥ २० ॥ नदीशिरोमणि कलिन्दनन्दिनी श्रीकृष्णवर्णा यमुनाने समुद्रतक पहुँचकर गद्गदवाणी-में श्रीगङ्गासे कहा ॥२१॥ यमुनाने कहा—समस्त ब्रह्माण्डको पवित्र करनेवाली हे गङ्गे ! तुम धन्य हो। साक्षात् श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंसे तुम्हारा प्रादुर्भाव हुआ है, अतः तुम समस्त लोकोंके लिये एकमात्र वन्दनीया हो ॥ २२ ॥ हे शुभे ! अब मैं यहाँसे ऊपर उठकर श्रीहरिके लोकमें जा रही हूँ। तुम्हारी इच्छा हो तो तुम भी मेरे साथ चलो। तुम्हारे समान दिव्य तीर्थ न तो हुआ है और न आगे होगा ही ॥ २३ ॥ गङ्गा (आप) सर्वतीर्थमयी हैं, अतः हे सुमङ्गले गङ्गे ! मैं तुम्हें प्रणाम करती हूँ। यदि मैंने कभी कोई अनुचित बात कही हो तो उसके लिये मुझे क्षमा कर देना ॥ २४ ॥ गङ्गा बोलीं—हे कृष्णे ! सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको पावन बनानेवाली तो तुम हो, अतः तुम्हीं धन्य हो। श्रीकृष्णके वामाङ्गसे तुम्हारा प्रादुर्भाव हुआ है। तुम परमानन्दस्वरूपिणी हो ॥ २५ ॥ साक्षात् परिपूर्णतमा हो। समस्त लोकोंके द्वारा एकमात्र वन्दनीया हो। परिपूर्णतम परमात्मा श्रीकृष्णकी भी पटरानी हो। अतः हे कृष्णे ! तुम सब प्रकारसे उत्कृष्ट हो। तुम कृष्णाको मैं प्रणाम करती हूँ। तुम समस्त तीर्थों और देवताओंके लिये भी दुर्लभ हो। गोलोकमें भी तुम्हारा दर्शन दुष्कर है ॥ २६ ॥ २७ ॥ मैं तो भगवान् श्रीकृष्णकी ही आज्ञासे मङ्गलमय पाताललोकमें जाऊँगी। यद्यपि तुम्हारे वियोगके भयसे मैं बहुत व्याकुल हूँ, तो भी इस समय तुम्हारे साथ चलनेमें असमर्थ हूँ ॥ २८ ॥ व्रजके रासमण्डलमें मैं भी तुम्हारे यूथमें सम्मिलित होकर रहूँगी। हे हरिप्रिये ! मैंने भी यदि कोई अप्रिय बात कह दी हो तो उसके लिये

सन्नन्द उवाच

इत्थं परस्परं नत्वा द्वे नद्यौ ययतुर्द्रुतम् । लोकान्पवित्रीकुर्वन्ती पाताले स्वःसरिद्गता ॥३०॥
साऽपि भोगवतीनाम्ना वभौ भोगवतीवने । यज्जलं सत्रिनयनः शेषो मूर्ध्ना विभर्त्ति हि ॥३१॥
अथ कृष्णा स्ववेगेन भित्त्वा सप्ताब्धिमंडलम् । सप्तद्वीपमहीपृष्ठे लुठन्ती वेगवत्तरा ॥३२॥
गत्वा स्वर्णमयीं भूमिं लोकालोकाचलं गता । तत्सानुगंडशैलानां तटं भित्त्वा कलिन्दजा ॥३३॥
तन्मूर्ध्नि चोत्पपाताशु स्फारवज्जलधारया । उद्गच्छन्तीतदूर्ध्वं सा ययौ स्वर्गं तु नाकिनाम् ॥३४॥
आब्रह्मलोकं लोकांस्तानभिव्याप्य हरेः पदम् । ब्रह्मांडरंध्रं श्रीब्रह्मद्रवयुक्तं समेत्य सा ॥३५॥
पुष्पवर्षं प्रवर्षत्सु देवेषु प्रणतेषु च । पुनः श्रीकृष्णगोलोकमारुरोह सरिद्वरा ॥३६॥

कलिन्दगिरिनन्दिनीनवचरित्रमेतच्छुभं श्रुतं च यदि पाठितं भुवि तनोति सन्मंगलम् ।
जनोऽपि यदि धारयेत्किल पठेच्च यो नित्यशः स याति परमं पदं निजनिकुंजलीलावृतम् ॥३७॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीवृंदावनखंडे नंदसन्नंदसंवादे कालिंद्यागमनवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

(श्रीबलराम और श्रीकृष्णके द्वारा बछड़ोंका चराया जाना तथा वत्सासुरका उद्धार)

श्रीनारद उवाच

सन्नन्दस्य वचः श्रुत्वा गन्तुं नन्दः समुद्यतः । सर्वैर्गोपगणैः सार्द्धं मुदितोऽभून्महामनाः ॥ १ ॥
यशोदया च रोहिण्या सर्वगोपीगणैः सह । अश्वै रथैर्वीरजनैर्मंडितो विप्रमंडलैः ॥ २ ॥

पुत्राभ्यां रामकृष्णाभ्यां नन्दराजो महामतिः । रथमारुह्य हे राजन् वनं वृन्दावनं ययौ ॥ ४ ॥
वृषभानुवरो गोपो गजमारुह्य भार्यया । अंके नीत्वा सुतां राधां गीयमानश्च गायकैः ॥ ५ ॥
मृदंगतालवीणानां वेणूनां कलनिःस्वनैः । गोपालगोगणैः सार्द्धं वृन्दारण्यं जगाम ह ॥ ६ ॥
उपनन्दास्तथा नन्दास्तथा षड् वृषभानवः । सर्वैः परिकरैः सार्द्धं जग्मुर्वृंदावनं वनम् ॥ ७ ॥
वृन्दावने संप्रविश्य गोपाः सर्वे सहानुगाः । वोपान्विधाय वसतीर्वासं चक्रुरितस्ततः ॥ ८ ॥
सभामण्डपसंयुक्तं सदुर्गं परिखायुतम् । चतुर्योजनविस्तीर्णं सप्तद्वारसमन्वितम् ॥ ९ ॥
सरोवरैः परिवृतं राजमार्गं मनोहरम् । सहस्रकुञ्जं च पुरं वृषभानुरचीक्लृपत् ॥१०॥
श्रीकृष्णो नन्दनगरे वृषभानुपुरेऽर्भकैः । चचार क्रीडनपरो गोपीनां प्रीतिमावहन् ॥११॥
अथ वृन्दावने राजन् सर्वगोपालसम्मतौ । बभूवतुर्वत्सपालौ रामकृष्णौ मनोहरौ ॥१२॥
चारयामासतुर्वत्सान् ग्रामसीम्न्यर्भकैः सह । कालिन्दीनिकटे पुण्ये पुलिने रामकेशवौ ॥१३॥
निकुञ्जेषु च कुञ्जेषु सम्प्रलीनावितस्ततः । रिङ्गमाणौ च कुत्रापि नन्दंतौ चेरतुर्वने ॥१४॥
किङ्किणीजालसंयुक्तौ सिञ्जन्मञ्जीरनूपुरौ । नीलपीताम्बरधरौ हारकेयूरभूषितौ ॥१५॥
क्षेपणैः क्षिपतौ बालैर्वंशीवादनतत्परौ । मुखेन किङ्किणीशब्दं कुर्वद्भिर्बालकैश्च तौ ॥१६॥
धावन्तौ पक्षिभिश्छायां रेजतू रामकेशवौ । मयूरपक्षसंयुक्तौ पुष्पपल्लवभूषितौ ॥१७॥
एकदा वत्सवृन्देषु प्राप्तं वत्सासुरं नृप । कंसप्रणोदितं ज्ञात्वा शनैस्तत्र जगाम ह ॥१८॥

और श्रीकृष्णसहित रथपर आरूढ़ हो वृन्दावनकी ओर चल दिये ॥ २ ॥ ३ ॥ उनके साथ गौओंका समुदाय भी था। बूढ़े, बालक और सेवकोंसहित अनेक छकड़े चल रहे थे। यात्राके समय शङ्ख बजे और नगाड़ोंकी ध्वनियाँ हुईं। बहुत-से गायक नन्दराजका यशोगान कर रहे थे ॥ ४ ॥ गोप वृषभानुवर अपनी पत्नीके साथ हाथीपर बैठकर, पुत्री राधाको अङ्कमें लिये, गायकोंसे यशोगान सुनते हुए मृदङ्ग, ताल, वीणा और वेणुओंकी मधुर ध्वनिके साथ वृन्दावनको गये ॥ ५ ॥ उनके साथ भी बहुत-से गोपों और गौओंका समुदाय था। नन्द, उपनन्द और छहों वृषभानु भी अपने समस्त परिकरोंके साथ वृन्दावन गये ॥ ६ ॥ ७ ॥ समस्त गोपोंने अपने सेवकोंसहित वृन्दवनमें प्रवेश करके अलग-अलग गोष्ठ बनाये और इधर-उधर निवास आरम्भ किया ॥ ८ ॥ वृषभानुने अपने लिये वृषभानुपुर (बरसाना) नामक नगरका निर्माण कराया, जो चार योजन विस्तृत दुर्गके आकारमें था। उसके चारों ओर खाइयाँ बनी थीं। उस दुर्गके सात दरवाजे थे। दुर्गके भीतर विशाल सभामण्डप था ॥ ९ ॥ अनेक सरोवर उस दुर्गकी शोभा बढ़ा रहे थे। बीच-बीचमें मनोहर राजमार्गका निर्माण कराया गया था। एक सहस्र कुञ्ज उस पुरकी शोभा बढ़ाते थे ॥ १० ॥ श्रीकृष्ण नन्दनगर (नन्दगाँव) तथा वृषभानुपुर (बरसाने) में बालकोंके साथ क्रीड़ा करते हुए घूमते और गोपाङ्गनाओंकी प्रीति बढ़ाते थे ॥ ११ ॥ हे राजन्! कुछ दिनों बाद सम्पूर्ण गोपोंके समादर-भाजन मनोहर रूपवाले बलराम और श्रीकृष्ण वृन्दावनमें बछड़े चराने लगे ॥ १२ ॥ वे दोनों भाई ग्वालबालोंके साथ गाँवकी सीमातक जाकर बछड़े चराते थे। कालिन्दीके निकट उसके पावन पुलिनपर सुशोभित निकुञ्जों और कुञ्जोंमें बलराम और श्रीकृष्ण इधर-उधर लुका-छिपीके खेल खेलते और कहीं-कहीं रेंगते हुए चलकर वनमें सानन्द विचरते थे ॥ १३ ॥ १४ ॥ उन दोनोंके कटिप्रदेशमें करधनीकी लड़ियाँ शोभा देती थीं। खेलते समय उनके पैरोंके मञ्जीर और नूपुर मधुर झंकार फैलाते थे। बलरामके अङ्गोंपर नीलाम्बर शोभा पाता था और श्रीकृष्णके अङ्गोंपर पीतपट। वे दोनों भाई हार और भुजबंदोंसे भूषित थे ॥ १५ ॥ कभी बालकोंके साथ क्षेपणों (ढेलवासों) द्वारा ढेले फेंकते और कभी बाँसुरी बजाते थे। कुछ ग्वाल-बाल अपने मुखसे करधनीके घुँघुरुओंकी-सी ध्वनि करते हुए दौड़ते और उनके साथ वे दोनों बन्धु—राम और श्याम भी पक्षियोंकी छायाका अनुसरण करते भागते हुए सुशोभित होते थे सिरपर मयूरपिच्छ लगाकर फूलों और पल्लवोंके शृंगार धारण करते थे ॥ १६ ॥ १७ ॥ हे नरेश्वर! एक दिन उनके बछड़ोंके झुण्डमें कंसका

धावन् गोपेषु सर्वत्र लांगूलं चालयन्मुहुः । दैत्यः पश्चिमपादाभ्यां हरिमंसे तताड ह ॥१९॥
पलायितेषु बालेषु कृष्णस्तं पादयोर्द्वयोः । गृहीत्वा भ्रामयित्वाऽथ पातयामास भूतले ॥२०॥
पुनर्नीत्वा कराभ्यां तं कपित्थे प्राहिणोद्धरिः । तदा मृत्युं गते दैत्ये कपित्थोऽपि महाद्रुमः ॥२१॥
कपित्थान्पातयामास तदद्भुतमिवाभवत् । विस्मितेषु च बालेषु साधुसाध्विति वादिषु ॥२२॥
दिवि देवा जयारावैः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे । तद्दैत्यस्य महज्ज्योतिः कृष्णे लीनं बभूव ह ॥२३॥

श्रीबहुलाश्व उवाच

अहो पूर्वं सुकृतकृत्कोऽयं वत्सासुरो मुने । श्रीकृष्णे लीनतां प्राप्तः श्रीप्रपूर्णे परात्परे ॥२४॥

श्रीनारद उवाच

मुरुपुत्रो महादैत्यः प्रमीलो नाम देवजित् । वसिष्ठस्याश्रमे प्राप्तो नन्दिनीं गां ददर्श ह ॥२५॥
तल्लिप्सुर्ब्राह्मणो भूत्वा ययाचे गां मनोहराम् । तूष्णीं स्थिते गौरुवाच वसिष्ठे दिव्यदर्शने ॥२६॥

नन्दिन्युवाच

मुनीनां गां समाहर्तुं भूत्वा विप्रः समागतः । दैत्योऽसि मुरुजस्तस्माद्गोवत्सो भव दुर्मते ॥२७॥

श्रीनारद उवाच

तदैव वत्सरूपोऽभून्मुरुपुत्रो महासुरः । वसिष्ठं गां परिक्रम्य नत्वा त्राहीत्युवाच ह ॥२८॥

गौरुवाच

द्वापरान्ते महादैत्य वृन्दारण्ये यदा तव । गोवत्सेषु गतस्यापि तदा मुक्तिर्भविष्यति ॥२९॥

श्रीनारद उवाच

परिपूर्णतमे साक्षात्कृष्णे पतितपावने । तस्माद्वत्सासुरो दैत्यो लीनोऽभून्न हि विस्मयः॥३०॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीवृन्दावनखण्डे वत्सासुरमोक्षो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

(बकासुरका उद्धार)

श्रीनारद उवाच

एकदा चारयन् वत्सान्सरामो बालकैर्हरिः । यमुनानिकटे प्राप्तं बकं दैत्यं ददर्श ह ॥ १ ॥
श्वेतपर्वतसंकाशो बृहत्पादो घनध्वनिः । पलायितेषु बालेषु वज्रतुंडोऽग्रसद्धरिम् ॥ २ ॥
रुदन्तो बालकाः सर्वे गतप्राणा इवाभवन् । हाहाकारं तदा कृत्वा देवाः सर्वे समागताः ॥ ३ ॥
इन्द्रो वज्रं तदा नीत्वा तं तताड महाबकम् । तेन घातेन पतितो न ममार समुत्थितः ॥ ४ ॥
ब्रह्माऽपि ब्रह्मदण्डेन तं तताड रुषान्वितः । तेन घातेन पतितो मूर्च्छितो घटिकाद्वयम् ॥ ५ ॥
विधुन्वन्स्वतनुं वेगाज्जृम्भितः पुनरुत्थितः । न ममार तदा दैत्यो जगर्ज घनवद्बली ॥ ६ ॥
त्रिलोचनस्त्रिशूलेन तं जघान महासुरम् । छिन्नैकपक्षो दैत्योऽपि न मृतोऽतिभयंकरः ॥ ७ ॥
वायव्यास्त्रेण वायुस्तं संजघान बकं ततः । उच्चचाल बकस्तेन पुनस्तत्र स्थितोऽभवत् ॥ ८ ॥
यमस्तं यमदण्डेन ताडयामास चाग्रतः । तेन दण्डेन न मृतो बको वै चण्डविक्रमः ॥ ९ ॥
दण्डोऽपि भग्नतां प्रागात्स क्षतो नाभवद्बकः । तदैव चाग्रतः प्राप्तश्चण्डांशुश्चण्डविक्रमः ॥१०॥
शतबाणैर्बकं दैत्यं संजघान धनुर्धरः । तीक्ष्णैः पक्षगतैर्बाणैर्न ममार बकस्ततः ॥११॥
धनदस्तं च खड्गेन सुतीक्ष्णेन जघान ह । छिन्नद्वितीयपक्षोऽभून्न मृतो दैत्यपुङ्गवः ॥१२॥
नीहारास्त्रेण तं सोमः संजघान महाबकम् । शीतार्त्तो मूर्च्छितो दैत्यो न मृतः पुनरुत्थितः ॥१३॥

साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णमें दैत्य वत्सासुर विलीन हुआ। इसमें विस्मयकी कोई बात नहीं है ॥ ३० ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां वृन्दावनखण्डे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—एक दिन बलराम तथा ग्वाल-बालोंके साथ बछड़े चराते हुए श्रीहरिने यमुनाके निकट आये हुए बकासुरको देखा ॥ १ ॥ वह श्वेत पर्वतके समान ऊँचा दिखायी देता था। बड़ी-बड़ी टाँगें और मेघ-गर्जनके समान ध्वनि थी। उसे देखते ही ग्वाल-बाल डरके मारे भागने लगे। उसकी चोंच वज्रके समान तीखी थी। उसने आते ही श्रीहरिको अपना ग्रास बना लिया ॥ २ ॥ यह देख सब ग्वाल-बाल रोने लगे। रोते-रोते वे निष्प्राण-से हो गये। उस समय हाहाकार करते हुए सब देवता वहाँ आ पहुँचे ॥ ३ ॥ इन्द्रने तत्काल वज्र चलाकर उस महान् बकपर प्रहार किया। वज्रकी चोटसे बकासुर धरतीपर गिर पड़ा, किंतु मरा नहीं। वह फिर उठकर खड़ा हो गया ॥ ४ ॥ तब ब्रह्माजीने भी कुपित होकर उसे ब्रह्मदण्डसे मारा। उस आघातसे गिरकर वह असुर दो घड़ीतक मूर्च्छित पड़ा रहा ॥ ५ ॥ फिर अपने शरीरको कँपाता हुआ जँभाई लेकर वह बड़े वेगसे उठ खड़ा हुआ। उसकी मृत्यु नहीं हुई। वह बलवान् दैत्य मेघके समान गर्जन करने लगा ॥ ६ ॥ उसी समय त्रिनेत्रधारी भगवान् शंकरने उस महान् असुरपर त्रिशूलसे प्रहार किया। उस प्रहारसे दैत्यकी एक पाँख कट गयी, तो भी वह महाभयंकर असुर मर न सका ॥ ७ ॥ तदनन्तर वायुदेवने बकासुरपर वायव्यास्त्र चलाया। उससे वह कुछ ऊपरकी ओर उठ गया, परंतु पुनः अपने स्थानपर आकर खड़ा हो गया ॥ ८ ॥ इसके बाद यमने सामने आकर उसपर यमदण्डसे प्रहार किया, परंतु प्रचण्ड पराक्रमी बकासुरकी उस दण्डसे भी मृत्यु नहीं हुई ॥ ९ ॥ यमराजका वह दण्ड भी टूट गया, किंतु बकासुरको कोई क्षति नहीं पहुँची। इतनेमें ही प्रचण्ड किरणोंवाले चण्डपराक्रमी सूर्यदेव उसके सामने आये ॥ १० ॥ उन्होंने धनुष हाथमें लेकर बकासुरको सौ बाण मारे। वे तीखे बाण उसकी पाँखमें धँस गये, फिर भी वह मर न सका ॥ ११ ॥ तब कुबेरने तीखी तलवारसे उसके ऊपर चोट की। इससे उसकी दूसरी पाँख भी कट गयी, किंतु वह दैत्यपुंगव मृत्युको नहीं प्राप्त हुआ ॥ १२ ॥ तदनन्तर सोमदेवताने उस महाबकपर नीहारास्त्रका प्रयोग किया। उसके प्रहारसे शीतपीड़ित हो बकासुर मूर्च्छित तो हो गया, किन्तु मरा नहीं, फिर उठकर

आग्नेय्यास्त्रेण तं ह्यग्निः सन्तताड महाबकम् । भस्मरोमाऽभवद्दैत्यो न ममार महाखलः ॥१४॥
अपां पतिस्तं पाशेन बद्ध्वा कौ विचकर्ष ह । कर्षणात्स महापापश्छिन्नोऽभून्न मृतश्च वै ॥१५॥
तताड गदया तं वै भद्रकाली तरस्विनी । मूर्च्छितस्तत्प्रहारेण परं कश्मलतां ययौ ॥१६॥
क्षतमूर्द्धा समुत्थाय विधुन्वन्स्वतनुं पुनः । जगर्ज घनवद्घोरो बको दैत्यो महाखलः ॥१७॥
तदा शक्तिधरः शक्तिं तस्मै चिक्षेप सत्वरः । तयैकपादो भग्नोऽभून्न मृतः पक्षिणां वरः ॥१८॥
तदा क्रोधेन महसा धावन् दैत्यस्तडित्स्वनः । देवान्विद्रावयामास स्वचंच्वा तीक्ष्णतुंडया ॥१९॥
अग्रे पलायितान्देवानन्वधावद्बकोऽम्बरे । पुनस्तत्र गतो दैत्यो नादयन्मंडलं दिशाम् ॥२०॥
तदा देवर्षयः सर्वे सर्वे ब्रह्मर्षयो द्विजाः । श्रीनन्दनन्दनायाशु सफलां चाशिषं ददुः ॥२१॥
तदैव कृष्णस्तन्मध्ये ततान वपुरुज्ज्वलम् । चच्छर्द कृष्णं सहसा क्षतकंठो महाबकः ॥२२॥
पुनः कृष्णं समाहर्तुं तीक्ष्णया तुंडयाऽऽगतम् । पुच्छे गृहीत्वा तं कृष्णः पोथयामास भूतले ॥२३॥
पुनरुत्थाय तुण्डं स्वं प्रसार्य्यावस्थितं बकम् । ददार तुंडे हस्ताभ्यां कृष्णः शाखां गजो यथा ॥२४॥
तदा मृतस्य दैत्यस्य ज्योतिः कृष्णे समाविशत् । देवता ववृपुः पुष्पैर्जयारावैः समन्विताः ॥२५॥
गोपाला विस्मिताः सर्वे कृष्णं संश्लिष्य सर्वतः । ऊचुस्त्वं कुशलीभूतो मुक्तो मृत्युमुखात्सखे ॥२६॥
एवं कृष्णो बकं हत्वा सबलो बालकैः सह । गोवत्सैर्हर्षितो गायन्नाययौ राजमन्दिरे ॥२७॥
परिपूर्णतमस्याख्य श्रीकृष्णस्य महात्मनः । जगुर्गृहे गता बालाः श्रुत्वेदं तेऽतिविस्मिताः ॥२८॥

श्रीबहुलाश्व उवाच

कोऽयं दैत्यः पूर्वकाले कस्मात्केन बकोऽभवत् ।
पूर्णब्रह्मणि सर्वेशे श्रीकृष्णे लीनतां गतः ॥२९॥

श्रीनारद उवाच

हयग्रीवसुतो दैत्य उत्कलो नाम हे नृप । रणेऽमरान् विनिर्जित्य शक्रछत्रं जहार ह ॥३०॥
तथा नृणां नृपाणां च राज्यं हृत्वा महाबलः । चकार वर्षाणि शतं राज्यं सर्वविभूतिमत् ॥३१॥
एकदा विचरन् दैत्यः सिंधुसागरसंगमे । जाजलेर्मुनिसिद्धस्य पर्णशालासमीपतः ॥३२॥
जले निक्षिप्य बडिशं मीनानाकर्षयन्मुहुः । निषेधितोऽपि मुनिना नामन्यत स दुर्मतिः ॥३३॥
तस्मै शापं ददौ सिद्धो जाजलिर्मुनिसत्तमः । बकवत्त्वं झषानत्सि त्वं बको भव दुर्मते ॥३४॥
तत्क्षणाद्बकरूपोऽभूद्भ्रष्टतेजा गतस्मयः । पतितः पादयोस्तस्य नत्वा प्राह कृतांजलिः ॥३५॥

उत्कल उवाच

न जाने ते तपश्चण्डं मुने मां पाहि जाजले । साधूनां भवतां संगं मोक्षद्वारं परं विदुः ॥३६॥
मित्रे शत्रौ समा मानेऽपमाने हेमलोष्ठयोः । सुखे दुःखसमा ये वै त्वादृशाः साधवश्च ते ॥३७॥
किं किं न जातं महतां दर्शनात्कौ मुने नृणाम् । पारमेष्ठ्यं च साम्राज्यमैन्द्रयोगपदं लभेत् ॥३८॥
जाजले मुनिशार्दूल त्रैवर्ग्यं किमभूज्जनैः । साधूनां कृपया साक्षात्पूर्णं ब्रह्मापि लभ्यते ॥३९॥

श्रीनारद उवाच

तदा प्रसन्नः स मुनिर्जाजलिस्तमुवाच ह । वर्षषष्टिसहस्राणि तपस्तप्तं च येन वै ॥४०॥

पराक्रमपूर्ण चरित्रका घर लौटे हुए ग्वालबालोंने विस्तारपूर्वक वर्णन किया। उसे सुनकर समस्त गोप अत्यन्त विस्मित हुए ॥ २८ ॥ बहुलाश्वने पूछा—देवर्षे ! यह बकासुर पूर्वकालमें कौन था और किस कारणसे उसको बगुलेका शरीर प्राप्त हुआ था ? वह पूर्णब्रह्म सर्वेश्वर श्रीकृष्णमें लीन हुआ, यह कितने सौभाग्यकी बात है ॥ २९ ॥ श्रीनारदजीने कहा—हे नरेश्वर ! 'हयग्रीव' नामक दैत्यके एक पुत्र था, जो 'उत्कल' नामसे प्रसिद्ध हुआ। उसने समराङ्गणमें देवताओंको परास्त करके देवराज इन्द्रके छत्रको छीन लिया था ॥ ३० ॥ उस महाबली दैत्यने और भी बहुत-से मनुष्यों तथा नरेशोंकी राज्य सम्पत्तिका अपहरण करके सौ वर्षोंतक सर्ववैभवसम्पन्न राज्यका उपभोग किया ॥ ३१ ॥ एक दिन इधर-उधर विचरता हुआ दैत्य उत्कल गङ्गासागर-संगमपर सिद्ध मुनि जाजलिकी पर्णशालाके समीप गया ॥ ३२ ॥ और पानीमें बंसी डालकर बारंबार मछलियोंको पकड़ने लगा। यद्यपि मुनिने मना किया, तथापि उस दुर्बुद्धिने उनकी बात नहीं मानी ॥ ३३ ॥ मुनिश्रेष्ठ जाजलि सिद्ध महात्मा थे, उन्होंने उत्कलको शाप देते हुए कहा–'अरे दुर्मते! तू बगुलेकी भाँति मछली पकड़ता और खाता है, इसलिये बगुला ही हो जा।' ॥ ३४ ॥ फिर क्या था ? उत्कल उसी क्षण बगुलेके रूपमें परिणत हो गया। तेजोभ्रष्ट हो जानेके कारण उसका सारा गर्व गल गया। उसने हाथ जोड़कर मुनिको प्रणाम किया और उनके दोनों चरणोंमें पड़कर कहा ॥ ३५ ॥ उत्कल बोला—हे मुने ! मैं आपके प्रचण्ड तपोबलको नहीं जानता था। हे जाजलिजी ! मेरी रक्षा कीजिये। आप-जैसे साधु-महात्माओंका सङ्ग तो उत्तम मोक्षका द्वार माना गया है ॥ ३६ ॥ जो शत्रु और मित्रमें, मान और अपमानमें, सुवर्ण और मिट्टीके ढेलेमें तथा सुख और दुःखमें भी समभाव रखते हैं, वे आप-जैसे महात्मा ही सच्चे साधु हैं ॥ ३७ ॥ हे मुने ! इस भूतलपर महात्माओंके दर्शनसे मनुष्योंका कौन-कौन मनोरथ नहीं पूरा हुआ ? ब्रह्मपद, इन्द्रपद, सम्राट्का पद तथा योगसिद्धि—सब कुछ संतोंकी कृपासे सुलभ हो सकते हैं, ॥ ३८ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ जाजले ! आप-जैसे महात्माओंसे लोगोंको धर्म, अर्थ और कामकी प्राप्ति हुई तो क्या हुआ ? साधुपुरुषोंकी कृपासे तो साक्षात् पूर्ण-ब्रह्म परमात्मा भी मिल जाता है ॥ ३९ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे नरेश्वर ! उस समय उत्कलकी विनययुक्त बात सुनकर वे जाजलि मुनि प्रसन्न हो गये, जिन्होंने साठ हजार वर्षोंतक तपस्या की थी। उन्होंने उत्कलसे

जाजलिरुवाच

वैवस्वतान्तरे प्राप्ते ह्यष्टाविंशतिमे युगे । द्वापरान्ते भारतेऽपि माथुरे व्रजमंडले ॥४१॥
परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान् स्वयम् । वृंदावने गवां वत्सांश्चारयन्विचरिष्यति ॥४२॥
तदा तन्मयतां कृष्णे यास्यसि त्वं न संशयः । हिरण्याक्षादयो दैत्या वैरेणापि परं गताः ॥४३॥

श्रीनारद उवाच

इत्थं बकासुरो दैत्य उत्कलो जाजलेर्वरात् । श्रीकृष्णे लीनतां प्राप्तः सत्संगात् किं न जायते॥४४॥

इति श्रीगर्गसंहितायां वृन्दावनखण्डे नारदबहुलाश्वसंवादे बकासुरमोक्षो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

(अघासुरका उद्धार और उसके पूर्वजन्मका परिचय)

राजोवाच

कोऽयं दैत्यः पूर्वकाले श्रीकृष्णे लीनतां गतः । अहो वैरानुबन्धेन शीघ्रं दैत्यो हरिं गतः ॥ ९ ॥

श्रीनारद उवाच

शंखासुरसुतो राजन्नघो नाम महाबलः । युवाऽतिसुन्दरः साक्षात्कामदेव इवापरः ॥१०॥
अष्टावक्रं मुनिं यांतं विरूपं मलयाचले । दृष्ट्वा जहास तमघः कुरूपोऽयमिति ब्रुवन् ॥११॥
तं शशाप महादुष्टं त्वं सर्पो भव दुर्मते । कुरूपा वक्रगा जातिः सर्पाणां भूमिमंडले ॥१२॥
तत्पादयोर्निपतितं दैत्यं दीनं गतस्मयम् । दृष्ट्वा प्रसन्नः स मुनिर्वरं तस्मै ददौ पुनः ॥१३॥

अष्टावक्र उवाच

कोटिकन्दर्पलावण्यः श्रीकृष्णस्तु तवोदरे । यदाऽऽगच्छेत्सर्परूपात्तदा मुक्तिर्भविष्यति ॥१४॥

श्रीनारद उवाच

अष्टावक्रस्य शापेन सर्पो भूत्वा ह्यघासुरः । तद्वरात्परमं मोक्षं गतो देवैश्च दुर्लभम् ॥१५॥
वत्साद्बकमुखान्मुक्तं ततो मुक्तं ह्यघासुरात् । श्रुत्वा कतिदिनैः कृष्णं यशोदाऽभूद्भयातुरा ॥१६॥
कलावतीं रोहिणीं च गोपीगोपान्वयोधिकान् । वृषभानुवरं गोपं नन्दराजं व्रजेश्वरम् ॥१७॥
नवोपनन्दान्नन्दांश्च वृषभानून्व्रजेश्वरान् । समाहूय तदग्रे च वचः प्राह यशोमती ॥१८॥

यशोदोवाच

किं करोमि क्व गच्छामि कल्याणं मे कथं भवेत् । मत्सुते बहवोऽरिष्टा आगच्छन्ति क्षणे क्षणे ॥१९॥
पूर्वं महावनं त्यक्त्वा वृन्दारण्ये गता वयम् । एतत्त्यक्त्वा क्व यास्यामो देशे वदत निर्भये ॥२०॥
चंचलोऽयं बालको मे क्रीडन्दूरे प्रयाति हि । बालकाश्चंचलाः सर्वे न मन्यन्ते वचो मम ॥२१॥

पुष्पवर्षा की। देवर्षि नारदके मुखसे यह वृत्तान्त सुनकर मिथिलेश्वर बहुलाश्वने कहा ॥ ८ ॥ राजा बोले—हे देवर्षे ! यह दैत्य पूर्वकालमें कौन था, जो इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णमें विलीन हुआ ? अहो ! कितने आश्चर्यकी बात है कि वह दैत्य वैर बाँधनेके कारण शीघ्र ही श्रीहरिको प्राप्त हुआ ॥ ९ ॥ नारदजीने कहा—राजन् ! शङ्खासुरके एक पुत्र था, जो 'अघ' नामसे विख्यात था। महाबली अघ युवावस्थामें अत्यन्त सुन्दर होनेके कारण साक्षात् दूसरे कामदेव-सा जान पड़ता था ॥ १० ॥ एक दिन मलयाचलपर जाते हुए अष्टावक्र मुनिको देखकर अघासुर जोर-जोरसे हँसने लगा और बोला—'यह कैसा कुरूप है !' ॥ ११ ॥ उस महादुष्टको शाप देते हुए मुनिने कहा—'ओ दुर्मते ! तू सर्प ही जा। क्योंकि भूमण्डलपर सर्पोंकी ही जाति कुरूप एवं कुटिल गतिसे चलनेवाली होती है।' ॥ १२ ॥ ज्यों ही उसने यह सुना, उस दैत्यका सारा अभिमान गल गया और वह दीनभावसे मुनिके चरणोंपर गिर पड़ा। उसे इस अवस्थामें देखकर मुनि प्रसन्न हो गये और पुनः उसे वर देते हुए बोले ॥ १३ ॥ अष्टावक्रने कहा—करोड़ों कन्दर्पोंसे भी अधिक लावण्यशाली भगवान् श्रीकृष्ण जब तुम्हारे उदरमें प्रवेश करेंगे, तब इस सर्परूपसे तुम्हें छुटकारा मिल जायगा ॥ १४ ॥ नारदजी कहते हैं—अष्टावक्रके शापसे सर्प होकर अघासुर उन्हींके वरदान-बलसे उस परम मोक्षको प्राप्त हुआ, जो देवताओंके लिये भी दुर्लभ है ॥ १५ ॥ वत्सासुर, बकासुर और फिर अघासुरके मुखसे श्रीकृष्ण किसी तरह बच गये और कुछ ही दिनोंमें उनके ऊपर ये सारे संकट आये हैं—यह सुनकर यशोदाजी भयसे व्याकुल हो उठीं ॥ १६ ॥ उन्होंने कलावती, रोहिणी, बड़े-बूढ़े गोप, वृषभानुवर, व्रजेश्वर नन्दराज, नौ नन्द, नौ उपनन्द तथा प्रजाजनोंके स्वामी छः वृषभानुओंको बुलाकर उन सबके सामने यह बात कही ॥ १७ ॥ १८ ॥ यशोदा बोलीं—आप सब लोग बतायें—मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ और कैसे मेरा कल्याण हो ? मेरे पुत्रपर तो यहाँ क्षण-क्षणमें बहुत-से अरिष्ट आ रहे हैं ॥ १९ ॥ पहले महावन छोड़कर हमलोग वृन्दावनमें आये और अब इसे भी छोड़कर दूसरे किस निर्भय देशमें मैं चली जाऊँ, यह बतानेकी कृपा करें ॥ २० ॥ मेरा यह बालक स्वभावसे ही चपल है। खेलते-खेलते दूरतक चला जाता है। व्रजके दूसरे बालक भी बड़े चञ्चल हैं। वे सब मेरी बात मानते ही नहीं

बकासुरश्च मे बालं तीक्ष्णतुंडोग्रसद्गली । तस्मान्मुक्तन्तु जग्राहार्भकैर्दीनमघासुरः ॥२२॥
वत्सासुरस्तज्जिघांसुः सोऽपि दैवेन मारितः । वत्सार्थं स्वगृहाद्बालं न बहिः कारयाम्यहम् ॥२३॥

श्रीनारद उवाच

इत्थं वदन्तीं सततं रुदन्तीं यशोमतीं वीक्ष्य जगाद नन्दः ।
आश्वासयामास सुगर्गवाक्यैर्धर्मार्थविद्धर्मभृतां वरिष्ठः ॥२४॥

नन्दराज उवाच

गर्गवाक्यं त्वया सर्वं विस्मृतं हे यशोमति । ब्राह्मणानां वचः सत्यं नासत्यं भवति क्वचित् ॥२५॥
तस्माद्दानं प्रकर्तव्यं सर्वारिष्टनिवारणम् । दानात्परं तु कल्याणं न भूतं न भविष्यति ॥२६॥

श्रीनारद उवाच

तदा यशोदा विप्रेभ्यो नवरत्नं महाधनम् । स्वालंकारांश्च बालस्य सबलस्य ददौ नृप ॥२७॥
अयुतं वृषभानां च गवां लक्षं मनोहरम् । द्विलक्षमन्नभाराणां नन्दो दानं ददौ ततः ॥२८॥

इति श्रीगर्गसंहितायां वृन्दावनखंडे नारदबहुलाश्वसंवादे अघासुरमोक्षो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

(ब्रह्माजीके द्वारा गौओं, गोवत्सों एवं गोप-बालकोंका हरण)

अत्रोपविश्य गोपाला दिनैकप्रहरे गते । भोजनस्यापि समयं तस्मात्कुरुत भोजनम् ॥ ५ ॥
अत्र भोजनयोग्या भूर्दृश्यते मृदुवालुका । वत्सकाः सलिलं पीत्वा ते चरिष्यंति शाद्वलम् ॥ ६ ॥
इति कृष्णवचः श्रुत्वा तथेत्याहुश्च बालकाः । प्रकर्तुं भोजनं सर्वे ह्युपविष्टाः सरित्तटे ॥ ७ ॥
अथ केचिद्बालकाश्च येषां पार्श्वे न भोजनम् । ते तु कृष्णस्य कर्णान्ते जगदुर्दीनया गिरा ॥ ८ ॥
वयंतु किं करिष्यामोऽस्मत्पार्श्वे न तु भोजनम् । नन्दग्रामस्तु दूरं हि गच्छामो वत्सकैर्वयम् ॥ ९ ॥
इति श्रुत्वा हरिः प्राह मा शोकं कुरुत प्रियाः । अहं दास्यामि सर्वेषां प्रयत्नेनापि भोजनम् ॥१०॥

तस्मान्मद्वाक्यनिरताः सर्वे भवत बालकाः ।
इति कृष्णस्य वचनात् कृष्णपार्श्वे च ते स्थिताः । मुक्त्वा शिक्यानि सर्वेऽन्ये बुभुजुः कृष्णसंयुताः ११॥

चकार कृष्णः किल राजमण्डलीं गोपालबालैः पुरतः प्रपूरितैः ।
अनेकवर्णैर्व्यसनैः प्रकल्पितैर्मध्ये स्थितो पीतपटेन भूषितः ॥१२॥
रेजे ततः सो वरगोपदारकैर्यथाऽमरेशो ह्यमरैश्च सर्वतः ।
पुनर्यथाऽम्भोरुहकोमलैर्दलैर्मध्ये तु वैदेह सुवर्णकर्णिका ॥१३॥

कुसुमैरङ्कुरैः केचित् पल्लवैश्च दलैः फलैः । हस्तैर्दृषद्भिः शिग्भिश्च जक्षुस्ते कृतभाजनाः ॥१४॥
तत्रैको बालकः शीघ्रं कृष्णाय कवलं ददौ । कृष्णस्तु कवलं भुक्त्वा सर्वान् पश्यन्निदं जगौ॥१५॥

अन्यान्निदर्शयन् स्वादु नाहं जानामि वै सखे ।
तथेत्युक्त्वा स बालश्च नीत्वाऽन्यान् कवलान् ददौ ॥१६॥

भुक्त्वा ते कथयामासुः प्रहसन्तः परस्परम् । पुनस्तत्रापि सुबलो हरये कवलं ददौ ॥१७॥

वायुसे सौरभित है। यह तटभूमि भौंरोंकी गुञ्जारसे युक्त एवं कुञ्जों और वृक्ष-लताओंसे सुशोभित है ॥ ४ ॥ हे गोप-बालको ! दिनका एक पहर बीत गया है। भोजनका समय भी हो गया है। अतएव इस स्थानपर बैठकर भोजन कर लो ॥ ५ ॥ कोमल वालुकावाली यह भूमि भोजन करनेके उपयुक्त दीख रही है। बछड़े भी यहाँ जल पीकर हरी-हरी घास चरते रहेंगे' ॥ ६ ॥ गोप-बालकोंने श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर कहा—'ऐसा ही हो' और वे सब-के-सब भोजन करनेके लिये यमुनातटपर बैठ गये ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त जिनके पास भोजन-सामग्री नहीं थी, उन बालकोंने श्रीकृष्णके कानमें दीन-वाणीसे कहा— ॥ ८ ॥ 'हम लोगोंके पास भोजनके लिये कुछ नहीं है, हम लोग क्या करें ? नन्दगाँव यहाँसे बहुत दूर है, अतः हम लोग बछड़ोंको लेकर चले जाते हैं।' ॥ ९ ॥ यह सुनकर श्रीकृष्ण बोले—'हे प्रिय सखाओ ! शोक मत करो। मैं सबको यत्नपूर्वक (आग्रहके साथ) भोजन कराऊँगा ॥ १० ॥ इसलिये तुम सब मेरी बातपर भरोसा करके निश्चिन्त हो जाओ।' श्रीकृष्णकी यह उक्ति सुनकर वे लोग उनके निकट ही बैठ गये। अन्य बालक अपने-अपने छीकोंको खोलकर श्रीकृष्णके साथ भोजन करने लगे ॥ ११ ॥ श्रीकृष्णने गोप-बालकोंके साथ, जिनकी उनके सामने भीड़ लगी हुई थी, एक राजसभाका आयोजन किया। समस्त गोप-बालक उनको घेरकर बैठ गये। वे लोग अनेक रंगोंके वस्त्र पहने हुए थे और श्रीकृष्ण पीला वस्त्र धारण करके उनके बीचमें बैठ गये ॥ १२ ॥ हे विदेह ! उस समय गोप-बालकोंसे घिरे हुए श्रीकृष्णकी शोभा देवताओंसे घिरे हुए देवराज इन्द्रके समान अथवा पँखुड़ियोंसे घिरी हुई स्वर्णिम कमलकी कर्णिका (केसरयुक्त भीतरी भाग) के समान हो रही थी ॥ १३ ॥ कोई बालक कुसुमों, कोई अङ्कुरों, कोई पल्लवों, कोई पत्तों, कोई फलों, कोई अपने हाथों, कोई पत्थरों और कोई छीकोंको ही पात्र बनाकर भोजन करने लगे ॥ १४ ॥ उनमेंसे एक बालकने शीघ्रतासे कौर उठाकर श्रीकृष्णके मुखमें दे दिया। श्रीकृष्णने भी उस ग्रासका भोग लगाकर सबकी ओर देखते हुए कहा— ॥ १५ ॥ 'भैया ! अन्य बालकोंको अपनी-अपनी स्वादिष्ट सामग्री चखाओ। मैं स्वादके बारेमें नहीं जानता।' बालकोंने 'ऐसा ही हो' कहकर अन्यान्य बालकोंको भोजनके ग्रास दे

कृष्णस्तु कवलं किञ्चिद् भुक्त्वा तत्र जहास ह । ये भुक्तकवला बालास्ते सर्वे जहसुः स्फुटम् ॥१८॥

बाला ऊचुः

यस्य मातामहा मूढाञ्शृणु नन्दकुमारक । न ज्ञानं भोजने तस्य तस्मात्स्वादु न विद्यते ॥१९॥
ततो ददौ च कवलं श्रीदामा माधवाय च । अन्यान् सर्वान् बहुश्रेष्ठं जगुः सर्वे व्रजार्भकाः ॥२०॥
पुनः कृष्णाय प्रददौ कवलं च वरूथपः । अन्यान् बालाँस्तथा सर्वान् किञ्चित्किञ्चित् प्रयत्नतः॥
भुक्त्वा तु जहसुः सर्वे श्रीकृष्णाद्या व्रजार्भकाः ।

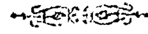
बाला ऊचुः

तादृशं भोजनञ्चास्य यादृशं सुबलस्य वै ॥२२॥
भुक्त्वाऽत्युद्विग्नमनसः सर्वे वयसतः किल । एवं पृथक्पृथक् सर्वे दर्शयन्तः स्वभोजनम् ॥२३॥
हासयन्तो हसन्तश्च चक्रुः क्रीडां परस्परम् । जठरस्य पटे वेणुं वेत्रं शृङ्गञ्च कक्षके ॥२४॥
वामे पाणौ च कवलं ह्यङ्गुलीषु फलानि च । शिरसा मुकुटं बिभ्रत् स्कन्धे पीतपटं तथा ॥२५॥
हृदये वनमालाञ्च कटौ काञ्चीं तथैव च । पादयोर्नूपुरौ बिभ्रच्छ्रीवत्सं कौस्तुभं हृदि ॥२६॥
तिष्ठन् मध्ये गोपगोष्ठ्यां हासयन्नर्मभिः स्वकैः । स्वर्गे लोके च मिषति बुभुजे यज्ञभुग्घरिः ॥२७॥
एवं कृष्णात्मनाथेषु भुञ्जानेष्वर्भकेषु च । विविशुर्गह्वरे दूरं तृणलोभेन वत्सकाः ॥२८॥
विलोक्यतान् भयत्रस्तान् गोपान् कृष्ण उवाच ह। यूयं गच्छन्तु माऽहंतु ह्यानेष्ये वत्सकानिह ॥२९॥
इत्युक्त्वा कृष्ण उत्थाय गृहीत्वा कवलं करे । विचिकाय दरीकुञ्जगह्वरे वत्सकान् स्वकान् ॥३०॥

तदैव चाम्भोजभवः समागतो विलोक्य मुक्तिं ह्यघराक्षसस्य च ।
ददर्श कृष्णं पुलिने यथारुचि भुञ्जानमन्नं व्रजबालकैः सह ॥३१॥
दृष्ट्वा च कृष्णं मनसा स ऊचे त्वयं हि गोपो न हि देवदेवः ।
हरिर्यदि स्याद्वृत्कुत्सितान्ने कथं रतो वा व्रजगोपबालैः ॥३२॥

इत्युक्त्वा मोहितो ब्रह्मा मायया परमात्मनः । द्रष्टुं मञ्जु महत्त्वं तु मनश्चक्रे ह्यहो नृप ॥३३॥
सर्वान् वत्सानितो गोपान्नीत्वा खेऽवस्थितः पुरा । अन्तर्दधे विस्मितोऽजो दृष्ट्वाऽघासुरमोक्षणम् ॥३४॥

इति श्रीगर्गसंहितायां वृन्दावनखण्डे नारदबहुलाश्वसंवादे वत्सवत्सपालहरणं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥



अथ अष्टमोऽध्यायः

(श्रीकृष्ण द्वारा कालियदमन तथा दावानल-पान)

श्रीनारद उवाच

अदृष्ट्वा वत्सकानेत्य वत्सपान् पुलिने हरिः । उभौ विचिन्वन् विपिने मेने कर्म विधेः कृतम् ॥ १ ॥
ततो गवां गोपिकानां मुदं कर्तुं स लीलया । सर्वं तु विश्वकृच्चक्रे ह्यात्मानमुभयायितम् ॥ २ ॥
यावद्वत्सपवत्सानां वपुः पाणिपदादिकान् । यावद्यष्टिविषाणादीन् यावच्छीलगुणादिकान्॥ ३ ॥
यावद् भूषणवस्त्रादीन् तावच्छ्रीहरिणा स्वतः । सर्वं विष्णुमयं विश्वमिति वाक्यं प्रदर्शितम् ॥ ४ ॥
आत्मवत्सानात्मगोपैश्चारयन् क्रीडया हरिः । प्राविशन् नन्दनगरमस्तंगिरिगते रवौ ॥ ५ ॥
तत्तद्गोष्ठे पृथङ् नीत्वा तत्तद्वत्सान् प्रवेश्य च । कृष्णोऽभवत्तत्तदात्मा तत्तद्गेहं प्रविष्टवान् ॥ ६ ॥
श्रुत्वा वंशीरवं गोप्यः सम्भ्रमाच्छीघ्रमुत्थिताः । पयांसि पाययामासुर्लालयित्वा सुतान् पृथक् ॥ ७ ॥

स्वान् स्वान् वत्साँस्तथा गावो रम्भमाणान्निरीक्ष्य च ।
लिहन्त्यो जिह्वयाङ्गानि पयांसि च ह्यपाययन् ॥ ८ ॥

अभवन् मातरः सर्वा गोप्यो गावो हरेरहो । अतिस्नेहश्च ववृधे पूर्वतो हि चतुर्गुणम् ॥ ९ ॥

समय व्रजवासी बालकोंके साथ श्रीकृष्ण यमुना-तटपर रुचिपूर्वक भोजन कर रहे थे, उसी समय पद्मयोनि ब्रह्माजी अघासुरकी मुक्ति देखकर उसी स्थानपर पहुँच गये ॥ ३१ ॥ इस दृश्यको देखकर ब्रह्माजी मन-ही-मन कहने लगे—'ये तो देवाधिदेव श्रीहरि नहीं हैं, अपितु कोई गोप-कुमार हैं। यदि ये श्रीहरि होते तो गोप-बालकोंके साथ इतने अपवित्र अन्नका भोजन कैसे करते ?' ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! ब्रह्माजी परमात्माकी मायासे मोहित होकर इस प्रकार बोल गये । उन्होंने उनकी (भगवान्‌की) मनोज्ञ महिमाको जाननेका निश्चय किया ॥ ३३ ॥ ब्रह्माजी स्वयं आकाशमें अवस्थित थे । इसके उपरान्त अघासुर-उद्धारकी लीलाके दर्शनसे चकित होकर समस्त गायों-बछड़ों तथा गोप-बालकोंका हरण करके अन्तर्धान हो गये ॥ ३४ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां वृन्दावनखण्डे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

नारदजी कहते हैं—श्रीकृष्ण गोवत्सोंको न पाकर यमुना-किनारे आये, परन्तु वहाँ गोप-बालक भी नहीं दिखायी दिये । बछड़ों और वत्सपालों—दोनोंको ढूँढ़ते समय उनके मनमें आया कि 'यह तो ब्रह्माजीका कार्य है ।' ॥ १ ॥ तदनन्तर अखिलविश्वविधायक श्रीकृष्णने गायों और गोपियोंको आनन्द देनेके लिये लीलासे ही अपने-आपको दो भागोंमें विभक्त कर लिया ॥ २ ॥ वे स्वयं एक भागमें रहे तथा दूसरे भागसे समस्त बछड़े और गोप-बालकोंकी सृष्टि की । उन लोगोंके जैसे शरीर, हाथ, पैर आदि थे; जैसी लाठी-सींगा आदि थे; जैसे स्वभाव और गुण थे, जैसे आभूषण और वस्त्रादि थे; भगवान् श्रीहरिने अपने श्रीविग्रहसे ठीक वैसी ही सृष्टि उत्पन्न करके यह प्रत्यक्ष दिखला दिया कि यह अखिल विश्व विष्णुमय है ॥ ३ ॥ ४ ॥ श्रीकृष्णने खेलमें ही आत्मस्वरूप गोप-बालकोंके द्वारा आत्मस्वरूप गो-वत्सोंको चराया और सूर्यास्त होनेपर उनके साथ नन्दालयमें पधारे ॥ ५ ॥ वे बछड़ोंको उनके अपने-अपने गोष्ठोंमें अलग-अलग ले गये और स्वयं उन-उन गोप-बालकोंके वेषमें अन्यान्य दिनोंकी भाँति उनके घरोंमें प्रवेश किया ॥ ६ ॥ गोपियाँ वंशीध्वनि सुनकर आदरके साथ शीघ्रतासे उठीं और अपने बालकोंको प्यारसे दूध पिलाने लगीं ॥ ७ ॥ गायें भी अपने-अपने बछड़ोंको निकट आया देखकर रँभाती हुई उनको चाटने और दूध पिलाने लगीं ॥ ८ ॥ अहा ! गोपियाँ

स्वपुत्राँल्लालयित्वा तु मज्जनोन्मर्दनादिभिः । पश्चाद् गोप्यश्च कृष्णस्य दर्शनं कर्तुमाययुः ॥१०॥
अनेकानां तु बालानामुद्वाहाः कृष्णरूपिणाम् । बभूवुस्ता व्रजे वध्वो रताः कृष्णे तु कोटिशः॥११॥
वत्सपालमिषेणापि स्वात्मानं ह्यात्मना हरेः । पालितो वत्सरश्चैको बभूव व्रजमण्डले ॥१२॥
सरामश्चैकदा वत्सांश्चारण्यं चारयन् ययौ । हायनापूरणीष्वत्र पञ्चषासु च रात्रिषु ॥१३॥

तत्रापि दूराच्चरतश्च गावो वत्सानुपव्रज्य गिरेश्च शृङ्गात् ।
लिहन्ति चाङ्गानि विलोकयन्त्यो ह्यपाययंस्ता अमृतानि सद्यः ॥१४॥

गोवर्द्धनादधो वत्सान् पीतदुग्धान् विलोक्य च । स्नेहावृताः स्थिता गाश्च गोपाला ददृशुर्नृप ॥१५॥
ततः क्रोधेन महता पर्वतादवतीर्य च । ताडनार्थे स्वपुत्राणामाजग्मुः कच्छतो द्रुतम् ॥१६॥

यदागता समीपे तु पुत्राणां गोपनायकाः ।
स्वान् स्वान् सुतांस्तदोन्नीय ह्यङ्के कृत्वा मिलन्ति वै ॥१७॥
यथा युवानो वृद्धाश्च स्नेहादश्रुपरिप्लुताः ।
स्वान् स्वान् पौत्रान् गृहीत्वा तु ह्युपविष्टा मिलन्ति हि ॥१८॥

एवं प्रेमपरान् सर्वान् दृष्ट्वा सङ्कर्षणो बलः । बहुप्रकारं सन्देहं कृत्वा मनसि सोऽब्रवीत् ॥१९॥
अहो किं वत्सरात् प्राप्तो न ज्ञातोऽपि व्रजे मया । अतिस्नेहस्तु सर्वेषां वर्द्धते च दिने दिने ॥२०॥

केयं माया समायाता देवगन्धर्वरक्षसाम् ।
नान्या मे मोहिनी माया विना कृष्णस्य साम्प्रतम् ॥२१॥

एवं विचार्य्य रामस्तु लोचने स्वे न्यमीलयत् । भूतं भव्यं भविष्यञ्च दिव्याक्षाभ्यां ददर्श ह ॥२२॥
सर्वान् वत्साँस्तथा गोपान् वंशीवेत्रविभूषितान् । बर्हिपक्षधरान् श्यामान् भृग्वङ्घ्रिकृतकौतुकान् २३॥

जालकानां मणीनाञ्च गुञ्जानां स्रग्भिरेव च । पद्मानां कुमुदानाञ्च ह्येषां स्रग्भिर्विभूषितान् ॥२४॥
उष्णीषैर्मुकुटैर्दिव्यैः कुण्डलैरलकैर्वृतान् । आनन्दवर्षान् कुर्वाणान् शरत्पद्मदृशैरपि ॥२५॥
कोटिकन्दर्पलावण्यान् नासामौक्तिकशोभितान् । शिखाभूषणसंयुक्तान् पाणिभूषणभूषितान् ॥२६॥
द्विभुजान् पीतवस्त्रैश्च काञ्चीकटकनूपुरैः । प्रभातरविकोटीनां शोभाभिः शोभितान् शुभान् ॥२७॥
उत्तरे गिरिराजस्य यमुनायाश्च दक्षिणे । आचष्ट वृन्दकारण्ये सर्वान् कृष्णं हलायुधः ॥२८॥
ज्ञात्वा कृष्णकृतं कर्म तथा विधिकृतं बलः । पुनर्वत्सान् वत्सपाँश्च पश्यन् कृष्णमुवाच ह ॥२९॥

ब्रह्मानन्तो धर्म इन्द्रः शिवश्च सेवन्ते तं भक्तियुक्ताः सदैते ।
स्वात्मारामः पूर्णकामः परेशः स्रष्टुं शक्तः कोटिशोऽण्डानि यः खे ॥३०॥

श्रीनारद उवाच

एवं ब्रुवति श्रीरामे तावत्तत्रागतो विधिः । ददर्श कृष्णं रामञ्च वत्सकैर्वत्सपैः समम् ॥३१॥
अहो कृष्णेन चानीता यत्र सर्वे धृता मया । इति ब्रुवन् ययौ स्थाने तत्र सर्वान् ददर्श सः ॥३२॥
दृष्ट्वा प्रसुप्तान् सर्वांस्तु स आगत्य व्रजे पुनः । वत्सपालैर्हरिं वीक्ष्य मनसि प्राह विस्मितः ॥३३॥
अहो विचित्रं ते सर्वे कुत्र स्थानात् समागताः । क्रीडन्तो पूर्ववच्चात्र साकं कृष्णेन क्रीडनैः ॥३४॥
मत्त्रुटिर्वत्सरश्चैको व्यतीतोऽभून्महीतले । सर्वे प्रसन्नतां प्राप्ता न ज्ञातः केनचित् क्वचित् ॥३५॥
एवं संमोहयन् ब्रह्मा मोहनं विश्वमोहनम् । स्वमायया‌ऽन्धकारेण स्वगात्रं नैव दृष्टवान् ॥३६॥
वत्सपालापहरणात् किमभूज्जगतः पतेः । अहो खद्योतवद्वेधा श्रीकृष्णरविसम्मुखे ॥३७॥
एवं विमुह्यति सति जडीभूते च ब्रह्मणि । स्वमायां कृपयाकृष्य कृष्णः स्वं दर्शनं ददौ ॥३८॥

मयूरपिच्छधारी, श्यामवर्ण, मणिसमूहों एवं गुञ्जाफलोंकी मालासे शोभित, कमल एवं कुमुदिनीकी मालाएँ, दिव्य पगड़ी एवं मुकुट धारण किये हुए, कुण्डलों एवं अलकावलीसे सुशोभित, शरत्कालीन कमलसदृश नेत्रोंसे निहारकर आनन्द देनेवाले, करोड़ों कामदेवोंकी शोभासे सम्पन्न, नासिकास्थित मुक्ताभरणसे अलंकृत, शिखाभूषणसे युक्त, दोनों हाथोंमें आभूषण धारण किये हुए, पीला वस्त्र धारण किये हुए, मेखला, कड़े और नूपुरसे शोभित, करोड़ों बाल-रवियोंकी प्रभासे युक्त और मनोहर देखा ॥ २३–२७ ॥ बलरामजीने गोवर्धनसे उत्तरकी ओर एवं यमुनाजीसे दक्षिणकी ओर स्थित वृन्दावनमें सब कुछ कृष्णमय देखा ॥ २८ ॥ वे इस कार्यको ब्रह्माजी और श्रीकृष्णका किया हुआ जानकर पुन: गोवत्सों एवं वत्सपालोंका दर्शन करते हुए श्रीकृष्णसे बोले—॥ २९ ॥ 'ब्रह्मा, अनन्त, धर्म, इन्द्र और शंकर भक्तियुक्त होकर सदा तुम्हारी सेवा किया करते हैं। तुम आत्माराम, पूर्णकाम, परमेश्वर हो। तुम शून्यमें करोड़ों ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि करनेमें समर्थ हो' ॥ ३० ॥ नारदजीने कहा—जिस समय बलरामजी यों कह रहे थे, उसी समय ब्रह्माजी वहाँ आये और उन्होंने गोवत्सों एवं गोप-बालकोंके साथ बलरामजी एवं श्रीकृष्णके दर्शन किये ॥ ३१ ॥ 'ओहो! मैं जिस स्थानपर गोवत्सों तथा गोप-बालकोंको रख आया था, वहाँसे श्रीकृष्ण उनको ले आये हैं।'—यों कहते हुए ब्रह्माजी उस स्थानपर गये और वहाँपर उन सबको पहलेकी तरह ही पाया ॥ ३२ ॥ ब्रह्माजी उनको निद्रित देखकर पुन: व्रजमें आये और गोप-बालकोंके साथ श्रीहरिके दर्शन करके विस्मित हो गये। वे मन-ही-मन कहने लगे—॥ ३३ ॥ 'ओहो, कैसी विचित्रता है! ये लोग कहाँसे यहाँ आये और पहलेकी ही भाँति श्रीकृष्णके साथ खेल रहे हैं? ॥ ३४ ॥' यह सब खेल करनेमें मुझे एक त्रुटि (क्षण) जितना समय लगा, परंतु इतनेमें इस भूलोकमें एक वर्ष पूरा हो गया। तथापि सभी प्रसन्न हैं, कहीं किसीको इस घटनाका पता भी नहीं चला' ॥ ३५ ॥ इस प्रकार ब्रह्माजी मोहातीत विश्वमोहनको मोहित करने गये, परंतु अपनी मायाके अन्धकारमें वे स्वयं अपने शरीरको भी नहीं देख सके ॥ ३६ ॥ गोप-बालकोंके हरणसे जगत्पतिकी तो कुछ हानि हुई नहीं, अपितु श्रीकृष्णरूप सूर्यके सम्मुख ब्रह्माजी ही जुगनू-से दीखने लगे ॥ ३७ ॥ ब्रह्माजीके इस प्रकार मोहित एवं जडीभूत हो जानेपर

एवं तत्र सकृद् ब्रह्मा गोवत्सान् गोपदारकान् । सर्वानाचष्ट श्रीकृष्णं भक्त्या विज्ञानलोचनैः ॥३९॥
ददर्शाथ विधिस्तत्र बहिरन्तः शरीरतः । स्वात्मना सहितं राजन् सर्वं विष्णुमयं जगत् ॥४०॥
एवं विलोक्य ब्रह्मा तु जडो भूत्वा स्थिरोऽभवत् । वृन्दावद् वृन्दकारण्ये प्रदृश्येत यथा तथा ॥४१॥
स्वात्मनो महिमां द्रष्टुं ह्यनीशेऽपि च ब्रह्मणि । चच्छाद सपदि ज्ञात्वा मायाजवनिकां हरिः॥४२॥
ततः प्रलब्धनयनः सद्यः सुप्त इवोत्थितः । उन्मील्य नयने कृच्छ्राद्ददर्शेदं सहात्मना ॥४३॥
समाहितस्तत्र भूत्वा सद्योऽपश्यद्दिशो दश । श्रीमद्वृन्दावनं रम्यं वासन्तीलतिकान्वितम्॥४४॥
शार्दूलबालकैर्यत्र क्रीडन्ति मृगबालकाः । श्येनैः कपोता नकुलैः सर्पा वैरविवर्जिताः ॥४५॥
ततश्च वृन्दकारण्ये सपाणिकवलं विधिः । वत्सान् सखीन् विचिन्वन्तमेकं कृष्णं ददर्श सः ४६॥
दृष्ट्वा गोपालवेषेण गुप्तं गोलोकवल्लभम् । ज्ञात्वा साक्षाद्धरिं ब्रह्मा भीतोऽभूत् स्वकृतेन च ४७॥
तं प्रसादयितुं राजन् ज्वलन्तं सर्वतो दिशम् । लज्जयावाङ्मुखो भूत्वा ह्यवतीर्य स्ववाहनात्॥४८॥
शनैरुपससारेशं प्रसीदेति वदन् नमन् । स्रवद्बाष्पाश्रुदत्तार्घः स पपाताथ दण्डवत् ॥४९॥
उत्थाप्याश्वास्य तं कृष्णः प्रियं प्रिय इव स्पृशन् । सुरान् सुभुवि दूरस्थानालुलोक सुधार्द्रदृक् ॥५०॥
ततो जयजयेत्युच्चैः स्तुवतां नमतां समम् । तद्यादृष्टदृष्टानां सानन्दः सम्भ्रमोऽभवत् ॥५१॥

दृष्ट्वा हरिं तत्र समास्थितं विधिर्ननाम तं भक्तिमनाः कृताञ्जलिः ।
स्तुतिं चकाराशु स दण्डवल्लुठन् प्रहृष्टरोमा भुवि गद्गदाक्षरः ॥५२॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीवृंदावनखंडे नारदबहुलाश्वसंवादे श्रीकृष्णदर्शनवर्णनं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः

(मुनिवर वेदशिरा और अश्वशिराका परस्पर शाप)

ब्रह्मोवाच

कृष्णाय मेघवपुषे चपलाम्बराय पीयूषमिष्टवचनाय परात्पराय ।
वंशीधराय शिखिचंद्रिकयाऽन्विताय देवाय भ्रातृसहिताय नमोऽस्तु तस्मै ॥ १ ॥
कृष्णस्तु साक्षात् पुरुषोत्तमः स्वयं पूर्णः परेशः प्रकृतेः परो हरिः ।
यस्यावतारांशकला वयं सुराः सृजाम विश्वं क्रमतोऽस्य शक्तिभिः ॥ २ ॥
स त्वं साक्षात् कृष्णचन्द्रावतारो नन्दस्यापि पुत्रतामागतः कौ ।
वृन्दारण्ये गोपवेशेन वत्सान् गोपैर्मुख्यैश्चारयन् भ्राजसे वै ॥ ३ ॥
हरिं कोटिकन्दर्पलीलाभिरामं स्फुरत्कौस्तुभं श्यामलं पीतवस्त्रम् ।
व्रजेशं तु वंशीधरं राधिकेशं परं सुन्दरं तं निकुंजे नमामि ॥ ४ ॥
तं कृष्णं भज हरिमादिदेवमस्मिन् क्षेत्रज्ञं खमिव विलिप्तमेघमेव ।
स्वच्छाङ्गं परमधियाज्ञचैत्यरूपं भक्त्याद्यैर्विशदविरागभावसंघैः ॥ ५ ॥
यावन्मनश्च रजसा प्रबलेन विद्वन् सङ्कल्प एव तु विकल्पक एव तावत् ।
ताभ्यां भवेन्मनसिजस्त्वभिमानयोगस्तेनापि बुद्धिविकृतिं क्रमतःप्रयान्ति ॥ ६ ॥
विद्युद्द्युतिस्त्वृतुगुणो जलमध्यरेखा भूतोल्मुकः कपटपान्थरतिर्यथा च ।
इत्थं तथाऽस्य जगतस्तु सुखं मृषेति दुःखावृतं विषयघूर्णमलातचक्रम् ॥ ७ ॥
वृक्षा जलेन चलतापि चला इवात्र नेत्रेण भूरिचलितेन चलेव भूश्च ।
एवं गुणः प्रकृतिजैर्भ्रमतो जनस्थं सत्यं वदेद् गुणसुखादिदमेव कृष्ण ॥ ८ ॥

भगवान्‌का स्तवन करने लगे ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां वृन्दावनखण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

ब्रह्माजी बोले—'मेघकी सी कान्तिसे युक्त, विद्युत्-वर्णका वस्त्र धारण करनेवाले, अमृत-तुल्य मीठी वाणी बोलनेवाले, परात्पर, वंशीधारी, मयूरपिच्छको धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण और उनके भ्राता बलरामको नमस्कार है ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण (आप) साक्षात् स्वयं पुरुषोत्तम, पूर्ण परमेश्वर, प्रकृतिसे अतीत श्रीहरि हैं। हम देवता जिनके अंश और कलावतार हैं, जिनकी शक्तिसे हमलोग क्रमशः विश्वकी सृष्टि, पालन एवं संहार करते हैं, उन्हीं आपने साक्षात् कृष्णचन्द्रके रूपमें अवतीर्ण होकर धराधामपर नन्दका पुत्र होना स्वीकार किया है। आप प्रधान-प्रधान गोप-बालकोंके साथ गोपवेषसे वृन्दावनमें गोचारण करते हुए विराज रहे हैं ॥ २ ॥ ३ ॥ करोड़ों कामदेवके समान रमणीय, तेजोमय, कौस्तुभधारी, श्यामवर्ण, पीतवस्त्रधारी, वंशीधर, व्रजेश, राधिकापति, निकुञ्जविहारी परमसुन्दर श्रीहरिको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४ ॥ जो मेघसे निर्लिप्त आकाशके समान प्राणियोंकी देहमें क्षेत्रज्ञ रूपसे स्थित हैं, जो अविज्ञ एवं चैतन्यस्वरूप हैं, जो मायारहित हैं और जो निर्मल भक्ति तथा प्रबल वैराग्य आदि भावोंसे प्राप्त होते हैं, उन आदिदेव हरिकी मैं वन्दना करता हूँ ॥ ५ ॥ हे सर्वज्ञ ! जिस समय मनमें प्रबल रजोगुणका उदय होता है, उसी समय मन संकल्प-विकल्प करने लगता है। संकल्प-विकल्पके वशीभूत मनमें ही अभिमानकी उत्पत्ति होती है और वही अभिमान धीरे-धीरे बुद्धिको विकृत कर देती है ॥ ६ ॥ क्षणस्थायी बिजलीके समान, बदलते हुए ऋतुगणोंके समान, जलपर खींची गयी रेखाके समान, पिशाचके द्वारा उत्पन्न किये हुए अंगारोंके समान और कपटी यात्रीकी प्रीतिके समान जगत्‌के सुख मिथ्या हैं। विषय-सुख दुःखोंसे घिरे हुए हैं एवं अलातचक्रवत् (जलते हुए अंगारको वेगसे चक्राकार घुमानेपर जो क्षणस्थायी वृत्त बनता है, उसके समान) हैं ॥ ७ ॥ जैसे वृक्ष न चलते हुए भी, जलके

सुन्दरं तु तव रूपमेव हि मन्मथस्य मनसो हरं परम् ।
आविरस्तु मम नेत्रयोः सदा श्यामलं मकरकुण्डलावृतम् ॥१८॥
वैकुण्ठलीलाप्रवरं मनोहरं नमस्कृतं देवगणैः परं वरम् ।
गोपाललीलाभियुतं भजाम्यहं गोलोकनाथं शिरसा नमाम्यहम् ॥१९॥
युक्तं वसन्तकलकण्ठविहङ्गमैश्च सौगन्धिकं त्वरणपल्लवशाखिसङ्गम् ।
वृन्दावनं सुधितधीरसमीरलीलं गच्छन् हरिर्जयति पातु सदैव भक्तान् ॥२०॥
हरति कमलमानं लोलमुक्ताभिमानं धरणिरसिकदानं कामदेवस्य बाणम् ।
श्रवणविदितयानं नेत्रयुग्मप्रयाणं भज यदुत समक्षं दानदक्षं कटाक्षम् ॥२१॥

शरच्चन्द्राकारं नखमणिसमूहं सुखकरं सुरक्तं हृत्पूर्णं प्रकटिततमःखण्डनकरम् ।
भजेऽहं ब्रह्माण्डे सकलनरपापाभिदलनं हरेर्विष्णोर्देवैर्दिवि भरतखण्डे स्तुतमलम् ॥२२॥
महापद्मे किं वा परिधिरिव चाभाति सततं कदादित्यस्फूर्जद्रथचरण इत्थं ध्वनिधरः ।
यथा न्यस्तं चक्रं शतकिरणयुक्तं तु हरिणा स्फुरच्छ्रीमञ्जीरं हरिचरणपद्मे त्वधिगतम् ॥२३॥
कट्यां पीताम्बरं दिव्यं क्षुद्रघण्टिकयाऽन्वितम् । भजाम्यहं चित्तहरं कृष्णस्याक्लिष्टकर्मणः॥२४॥
भजे कृष्णक्रोडे भृगुमुनिपदं श्रीगृहमलं तथा श्रीवत्सांकं निकषरुचियुक्तं द्युतिपरम् ।
गले हीराहारान् कनकमणिमुक्तावलिधरान् स्फुरत्ताराकारान् भ्रमरवलिभारान् ध्वनिकरान् ।२५॥

वंशीविभूषितमलं द्विजदानशीलं सिंदूरवर्णमतिकीचकरावलीलम् ।
हेमाङ्गुलीयनिकरं नखचन्द्रयुक्तं हस्तद्वयं स्मर कदम्बसुगन्धपृक्तम् ॥२६॥

मण्डित श्रीकृष्णकी मैं वन्दना करता हूँ ॥ १७ ॥ आपका परम सुन्दर रूप मन्मथके मनको भी हरनेवाला है। मेरे नेत्रोंमें सर्वदा मकरकुण्डलधारी श्यामकलेवर श्रीकृष्णके उस रूपका प्रकाश होता रहे ॥ १८ ॥ जिनकी लीला वैकुण्ठलीलाकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ है और जिनके परम श्रेष्ठ मनोहर रूपको देवगण भी नमस्कार करते हैं, उन गोपलीलाकारी गोलोकनाथको मैं मस्तक नवाकर प्रणाम करता हूँ ॥ १९॥ वसन्तकालीन सुन्दर कण्ठवाले कोकिलादि पक्षियोंसे युक्त, सुगन्धित, नवीन पल्लवयुक्त वृक्षोंसे अलंकृत, सुधाके समान शीतल, धीर (मन्द) पवनकी क्रीड़ासे सुशोभित वृन्दावनमें विचरण करनेवाले श्रीकृष्णकी जय हो। वे सदा भक्तोंकी रक्षा करें ॥ २० ॥ "आपके विशाल नेत्र तथा उनकी तिरछी चितवन कमलपुष्पोंका मान और झूलते हुए मोतियोंका अभिमान दूर करनेवाली है, भूतलके समस्त रसिकोंको रसका दान करती है तथा कामदेवके बाणोंके समान पैनी एवं प्रीतिदानमें निपुण है ॥ २१ ॥ जिनकी नखमणियाँ शरत्कालीन चन्द्रमाके समान सुखकर, सुरक्त, हृदयग्राहिणी, गाढ़ अन्धकारका नाश करनेवाली और जगत्के समस्त प्राणियोंके पापोंका ध्वंस करनेवाली हैं तथा स्वर्गमें देवमण्डली जिनका श्रीविष्णु एवं हरिकी नखावलीके रूपमें स्तवन करती है, मैं उनकी आराधना करता हूँ ॥ २२ ॥ आपके पादपद्मोंकी सर्वदा बजनेवाली, श्रीहरिके सैकड़ों किरणोंसे युक्त (सुदर्शन) चक्रके समान आकारवाली पैंजनियाँ ऐसी हैं, जिनसे गोल घेरेकी भाँति किरणें इस प्रकार निकलती हैं, जैसे सूर्यके प्रकाश युक्त रथचक्रकी परिधि हो, अथवा जो आपके पादपद्मोंकी परिधिके समान सुशोभित हैं ॥ २३ ॥ आपकी कमरमें छोटी-छोटी घंटियोंसे युक्त दिव्य पीताम्बर जगमगा रहा है। मैं अक्लिष्टकर्मा भगवान् श्रीकृष्ण (आप) के उस मनोहर रूपकी आराधना करता हूँ ॥ २४ ॥ जिनके कान्तिमान् कसौटी-सदृश एवं भृगुपद-अङ्कित विशाल वक्षःस्थलपर लक्ष्मी विलास करती हैं, जिनके गलेमें स्वर्णमणि एवं मोतियोंकी लड़ियोंसे युक्त तथा तारोंके समान झिलमिल प्रकाश करनेवाले तथा भ्रमरोंकी ध्वनिसे युक्त हीरोंके हार हैं ॥ २५ ॥ जो सिन्दूरवर्णकी सुन्दर अँगुलियोंसे वंशी बजा रहे हैं, जिनकी अँगुलियोंमें सोनेकी अँगूठियाँ सुशोभित हैं, जिनके दोनों हाथ द्विजोंको दान देनेवाले, चन्द्रमाके समान नखोंसे युक्त एवं कामदेवके वनके कदम्बवृक्षोंके पुष्पोंकी

शनैश्चलन् मानसराजहंसग्रीवाकृतौ कन्धर उच्चदेशे ।
कादम्बिनीमानहरौ करौ च भजामि नित्यं हरिकाकपक्षौ ॥२७॥
कलदर्पणवद्विशदं सुखदं नवयौवनरूपधरं नृपतिम् ।
मणिकुण्डलकुन्तलशालिरतिं भज गण्डयुगं रविचन्द्ररुचिम् ॥२८॥
खचितकनकमुक्तारक्तवैदूर्यवासं मदनवदनलीलासर्वसौन्दर्यरासम् ।
अरुणविधुसकाशं कोटिसूर्यप्रकाशं घटितशिखिसुवीटं नौमि विष्णोः किरीटम् ॥२९॥
यद्द्वारि देशे न गतिर्गुहेन्द्रगणेशतारेशदिवाकराणाम् ।
आज्ञां विना यान्ति न कुञ्जमण्डलं तं कृष्णचन्द्रं जगदीश्वरं भजे ॥३०॥

इति कृत्वा स्तुतिं ब्रह्मा श्रीकृष्णस्य महात्मनः । पुनः कृताञ्जलिर्भूत्वा स्वविज्ञप्तिं चकार ह ॥३१॥
अपराधं तु पुत्रस्य मातृवत्त्वं क्षमस्व च । अहं त्वन्नाभिकमलात् सम्भवोऽहं जगत्पते ॥३२॥
क्वाहं लोकपतिः क्व त्वं कोटिब्रह्माण्डनायकः । तस्माद् व्रजपते देव रक्ष मां मधुसूदन ॥३३॥
मायया यस्य मुह्यन्ति देवदैत्यनरादयः । स्वमायया तन्मोहाय मूर्खोऽहं ह्युद्यतोऽभवम् ॥३४॥
नारायणस्त्वं गोविन्द नाहं नारायणो हरे । ब्रह्माण्डं त्वं विनिर्माय शेषे नारायणः पुरा ॥३५॥
यस्य श्रीब्रह्मणि धाम्नि प्राणं त्यक्त्वा तु योगिनः। यत्र यास्यन्ति तस्मिंस्तु सकुला पूतना गता ॥३६॥
वत्सानां वत्सपानाञ्च कृत्वा रूपाणि माधव । विचचार वने त्वं तु ह्यपराधान् मम प्रभो ॥३७॥
तस्मात् क्षमस्व गोविन्द प्रसीद त्वं ममोपरि । अगणय्यापराधं मे सुतोपरि पिता यथा ॥३८॥
त्वद्भक्ता रता ज्ञाने तेषां क्लेशो विशिष्यते । परिश्रमात् कर्षकाणां यथा क्षेत्रे तुपार्थिनाम् ॥३९॥

त्वद्भक्तिभावे निरता बहवस्त्वद्गतिं गताः । योगिनो मुनयश्चैव तथा ये व्रजवासिनः ॥४०॥
द्विधा रतिर्भवेद्दरा श्रुताच्च दर्शनाच्च वा । अहो हरे तु मायया बभूव नैव मे रतिः ॥४१॥
इत्युक्त्वाऽश्रुमुखो भूत्वा नत्वा तत्पादपङ्कजौ । पुनराह विधिः कृष्णं भक्त्या सर्वं क्षमापयन् ॥४२॥
घोषेषु वासिनामेषां भूत्वाऽहं त्वत्पदाम्बुजम् । यदा भजेयं सुगतिस्तदा भूयान्न चान्यथा ॥४३॥
वयं तु गोपदेहेषु संस्थिताश्च शिवादयः । सकृत् कृष्णं तु पश्यन्तस्तस्माद्धन्याश्च भारते ॥४४॥
अहोभाग्यं तु श्रीकृष्ण मातापित्रोस्तव प्रभो । तथा च गोपगोपीनां पूर्णस्त्वं दृश्यसे व्रजे ॥४५॥

मुक्ताहारः सर्वविश्वोपकारः सर्वाधारः पातु मां विश्वकारः ।
लीलागारः सूरिकन्याविहारः क्रीडापारः कृष्णचन्द्रावतारः ॥४६॥
श्रीकृष्ण वृष्णिकुलपुष्कर नन्दपुत्र राधापते मदनमोहन देवदेव ।
संमोहितं व्रजपते भुवि तेऽजया मां गोविन्द गोकुलपते परिपाहि पाहि ॥४७॥
करोति यः कृष्णहरेः प्रदक्षिणां भवेज्जगत्तीर्थफलञ्च तस्य तु ।
ते कृष्णलोकं सुखदं परात्परं गोलोकलोकं प्रवरं गमिष्यति ॥४८॥

श्रीनारद उवाच

इत्यभिष्टूय गोविन्दं श्रीमद्वृन्दावनेश्वरम् । नत्वा त्रिवारं लोकेशश्चकार तु प्रदक्षिणम् ॥४९॥
तत्र चालक्षितो भूत्वा वत्सान् बालान् पितामहः । वरं दत्त्वा प्रयाणार्थं याचनां स चकार ह ॥५०॥
ततश्च ब्रह्मणे तस्मै नेत्रेणाज्ञां ददौ हरिः । पुनः प्रणम्य स्वं लोकमात्मभूः प्रत्यपद्यत ॥५१॥
अथ कृष्णो वनाच्छीघ्रमानयामास वत्सकान् । यत्रापि पुलिने राजन् गोपानां राजमंडली ॥५२॥
गोपार्भकाश्च श्रीकृष्णं वत्सैः सार्धं समागतम् । क्षणार्धं मेनिरे वीक्ष्य कृष्णमायाविमोहिताः ॥५३॥

भूसामात्र प्राप्त होता है ॥ ३९ ॥ आपके भक्तिभावमें ही नित्य रत रहनेवाले अनेकों योगी, मुनि एवं व्रजवासी आपको प्राप्त हो चुके हैं ॥ ४० ॥ दर्शन और श्रवण—दो प्रकारसे उनकी आपमें रति होती है, किंतु अहो ! श्रीहरिकी मायाके कारण उनके प्रति मेरी रति नहीं हुई' ॥ ४१ ॥ ब्रह्माजीने यों कहकर आँसू बहाते हुए उनके (श्रीकृष्णके) पादपद्मोंमें प्रणाम किया एवं सारे अपराधोंको क्षमा करानेके लिये भक्तिभावसे श्रीकृष्णसे वे फिर निवेदन करने लगे—॥ ४२ ॥ "मैं गोपकुलमें जन्म लेकर आपके पादपद्मोंकी आराधना करता हुआ सुगति प्राप्त कर सकूँ, इसका व्यतिरेक न हो ॥ ४३ ॥ भगवान् शंकर आदि हम (इन्द्रियोंके अधिष्ठाता) देवगणने भारतवासी इन गोपोंकी देहमें स्थित होकर एक वार श्रीकृष्णका दर्शन कर लिया, अतः हम धन्य हो गये ॥ ४४ ॥ हे श्रीकृष्ण ! आपके माता-पिता एवं गोप-गोपियोंका तो कितना अनिर्वचनीय सौभाग्य है, जो व्रजमें आपके पूर्णरूपका दर्शन कर रहे हैं ॥ ४५ ॥ सम्पूर्ण विश्वका उपकार करनेवाले, मुक्ताहार धारण करनेवाले, विश्वके रचयिता, सर्वाधार, लीलाके धाम, रवितनया यमुनामें विहार करनेवाले, क्रीडापरायण, श्रीकृष्णचन्द्रका अवतार ग्रहण करनेवाले प्रभु मेरी रक्षा करें ॥ ४६ ॥ वृष्णिकुलरूप सरोवरके कमलस्वरूप हे नन्दनन्दन ! राधापति, देव-देव, मदनमोहन, व्रजपति, गोकुलपति, गोविन्द ! मुझ मायासे मोहितकी रक्षा करें ॥ ४७ ॥ जो व्यक्ति श्रीकृष्णकी प्रदक्षिणा करता है, उसको जगत्के सम्पूर्ण तीर्थोंकी यात्राका फल प्राप्त होता है । वह आपके सुखदायक परात्पर 'गोलोक' नामक लोकको जाता है" ॥ ४८ ॥ नारदजी कहने लगे—लोकपति लोक-पितामह ब्रह्माने इस प्रकार सुन्दर वृन्दावनके अधिपति गोविन्दका स्तवन करके प्रणाम करते हुए उनकी तीन वार प्रदक्षिणा की और कुछ देरके लिये अदृश्य होकर गोवत्सों तथा गोप-बालकोंको वरदान देकर लौट जानेके लिये अनुमतिकी प्रार्थना की ॥ ४९ ॥ ५० ॥ तदनन्तर श्रीहरिने नेत्रोंके संकेतसे उनको जानेका आदेश दिया । लोकपितामह ब्रह्मा भी पुनः प्रणाम करके अपने लोकको चले गये ॥ ५१ ॥ हे राजन् ! इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्ण वनसे शीघ्रतापूर्वक गोवत्सों एवं गोपबालकोंको ले आते और यमुनातटपर जिस

व ऊचुर्वत्सकैः कृष्ण त्वरं त्वं तु समागतः । कुरुष्व भोजनञ्चात्र केनापि न कृतं प्रभो ॥५४॥
ततश्च विहसन् कृष्णोऽभ्यवहृत्यार्भकैः सह । दर्शयामास सर्वेभ्यश्चर्माजगरमेव च ॥५५॥
सायंकाले सरामस्तु कृष्णो गोपैः परावृतः । अग्रे कृत्वा वत्सवृन्दं ह्याजगाम शनैर्व्रजम् ॥५६॥
गोवत्सकैः सितसितासितपीतवर्णैं रक्तादिधूम्रहरितैर्बहुशीलरूपैः ।
गोपालमंडलगतं व्रजपालपुत्रं वन्दे वनात् सुखदगोष्ठकमाव्रजन्तम् ॥५७॥
आनन्दो गोपिकानां तु ह्यासीत्कृष्णस्य दर्शने । यासां येन विना राजन् क्षणो युगसमोऽभवत् ॥५८॥
कृत्वा गोष्ठे पृथग् वत्सान् बालाःस्वंस्वंगृहंगताः। जगुश्चाघासुरवधमात्मनो रक्षणं हरेः ॥५९॥

इति श्रीगर्गसंहितायां वृन्दावनखंडे नारदबहुलाश्वसंवादे ब्रह्मस्तुतिर्नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः

(श्रीकृष्णका वृन्दावनमें गोचारण)

श्रीनारद उवाच

गोपेच्छया रामकृष्णौ गोपालौ तौ बभूवतुः । गाश्चारयन्तौ गोपालैर्वयस्यैश्चेरतुर्वने ॥ १ ॥
अग्रे पृष्ठे तदा गावश्चरन्त्यः पार्श्वयोर्द्वयोः । श्रीकृष्णस्य बलस्यापि पश्यन्त्यः सुंदरं मुखम् ॥ २ ॥
घंटामंजीरझंकारं कुर्वन्त्यस्ता इतस्ततः । किंकिणीजालसंयुक्ता हेममालालसद्गलाः ॥ ३ ॥
मुक्तागुच्छैर्बर्हिपिच्छैर्लसत्पुच्छाच्छकेसराः । स्फुरतां नवरत्नानां मालाजालैर्विराजिताः ॥ ४ ॥
शृंगयोरन्तरे राजन् शिरोमणिमनोहराः । हेमरश्मिप्रभास्फूर्जच्छृङ्गपार्श्वप्रवेष्टनाः ॥ ५ ॥

आरक्ततिलकाः काश्चित्पीतपुच्छारुणांघ्रयः । कैलासगिरिसंकाशाः शीलरूपमहागुणाः ॥ ६ ॥
सवत्सा मन्दगामिन्य ऊधोभारेण मैथिल । कुंडोध्न्यः पाटलाः काश्चिल्लक्षंत्यो भव्यमूर्तयः॥ ७ ॥
काश्चित्पीता विचित्राश्च श्यामाश्च हरितास्तथा । ताम्रा धूम्रा घनश्यामा घनश्यामे गतेक्षणाः॥ ८ ॥
लघुशृंग्यो दीर्घशृंग्य उच्चशृंग्यो वृषैः सह । मृगशृंग्यो वक्रशृंग्यः कपिला मंगलायनाः ॥ ९ ॥
शाद्वलं कोमलं कान्तं वीक्षन्त्योऽपि वने वने । कोटिशः कोटिशो गावश्चरन्त्यः कृष्णपार्श्वयोः॥१०॥
पुण्यं श्रीयमुनातीरं तमालैः श्यामलैर्वनम् । नीपैर्निम्बैः कदम्बैश्च प्रवालैः पनसैर्द्रुमैः ॥११॥
कदलीकोविदाराम्रैर्जम्बुविल्वैर्मनोहरैः । अश्वत्थैश्च कपित्थैश्च माधवीभिश्च मंडितम् ॥१२॥
बभौ वृन्दावनं दिव्यं वसन्तर्तुमनोहरम् । नन्दनं सर्वतोभद्रं क्षिपच्चैत्ररथं वनम् ॥१३॥
यत्र गोवर्द्धनो नाम सुनिर्झरदरीयुतः । रत्नधातुमयः श्रीमान्मन्दारवनसंकुलः ॥१४॥
श्रीखंडबदरीरंभादेवदारुवटैर्वृतः । पलाशप्लक्षाशोकैश्चारिष्टार्जुनकदम्बकैः ॥१५॥
पारिजातैः पाटलैश्च चंपकैः परिशोभितः । करंजजालकुंजाढ्यः श्यामैरिन्द्रयवैर्वृतः ॥१६॥
कलकंठैः कोकिलैश्च पुंस्कोकिलमयूरभृत् । गाश्चारयंस्तत्र कृष्णो विचचार वने वने ॥१७॥
वृन्दावने मधुवने पार्श्वे तालवनस्य च । कुमुद्वने बाहुले च दिव्यकामवने परे ॥१८॥
बृहत्सानुगिरेः पार्श्वे गिरेर्नन्दीश्वरस्य च । सुन्दरे कोकिलवने कोकिलध्वनिसंकुले ॥१९॥
रम्ये कुशवने सौम्ये लताजालसमन्विते । महापुण्ये भद्रवने भांडीरोपवने नृप ॥२०॥

अलंकार धारण कराये गये थे, जिनसे उनकी मनोहरता बढ़ गयी थी । सुवर्ण-रश्मियोंकी प्रभासे उनके सींग तथा पार्श्व-प्रवेष्टन (पीठपरकी झूल) चमकते रहते थे ॥ ५ ॥ कुछ गौओंके भालमें किंचित् रक्तवर्णके तिलक लगे थे । उनकी पूँछें पीले रंगसे रंगी गयी थीं और पैरोंके खुर अरुणरागसे रञ्जित थे । बहुत-सी गौएँ कैलास पर्वतके समान श्वेतवर्णवाली, सुशीला, सुरूपा तथा अत्यन्त उत्तम गुणोंसे सम्पन्न थीं ॥ ६ ॥ हे मिथिलेश्वर ! बछड़ेवाली गौएँ अपने स्तनोंके भारसे धीरे-धीरे चलती थीं । कितनोंके थन घड़ोंके बराबर थे । बहुत-सी गौएँ लाल रंगकी थीं । वे सब-की-सब भव्य मूर्ति दिखायी देती थीं ॥ ७ ॥ कोई पीली, कोई चितकबरी, कोई श्यामा, कोई हरी, कोई ताँबेके समान रंगवाली, कोई धूमिलवर्णकी और कोई मेघोंकी घटा-जैसी नीली थीं । उन सबके नेत्र घनश्याम श्रीकृष्णकी ओर लगे रहते थे ॥ ८ ॥ किन्हीं गौओं और बैलोंके सींग छोटे, किन्हींके बड़े तथा किन्हींके ऊँचे थे । कितनोंके सींग हिरनोंके-से थे और कितनोंके टेढ़े-मेढ़े । वे सब गौएँ कपिला तथा मङ्गलकी धाम थीं ॥ ९ ॥ वन-वनमें कोमल कमनीय घास खोज खोजकर चरती हुई कोटि-कोटि गौएँ श्रीकृष्णके उभय पार्श्वोंमें विचरती थीं ॥ १० ॥ यमुनाका पुण्य-पुलिन तथा उसके निकट श्याम तमालोंसे सुशोभित वृन्दावन नीप, कदम्ब, नीम, अशोक, प्रवाल, कटहल, कदली, कचनार, आम, मनोहर जामुन, वेल, पीपल और कैथ आदि वृक्षों तथा माधवी लताओंसे मण्डित था । वसन्त ऋतुके शुभागमनसे मनोहर वृन्दावनकी दिव्य शोभा हो रही थी । वह देवताओंके नन्दनवन-सा आनन्दप्रद और सर्वतोभद्र-वन-सा सब ओरसे मङ्गलकारी जान पड़ता था । उसने (कुवेरके) चैत्ररथ वनकी शोभाको तिरस्कृत कर दिया था ॥ ११–१३ ॥ वहाँ झरनों और कंदराओंसे संयुक्त रत्नधातुमय श्रीमान् गोवर्धन पर्वत शोभा पाता था । वहाँका वन पारिजात या मन्दारके वृक्षोंसे व्याप्त था ॥ १४ ॥ वह चन्दन, बेर, कदली, देवदार, बरगद, पलास, पाकड़, अशोक, अरिष्ट (रीठा), अर्जुन, कदम्ब, पारिजात, पाटल तथा चम्पाके वृक्षोंसे सुशोभित था । श्याम वर्णवाले इन्द्रयवनामक वृक्षोंसे घिरा हुआ वह वन करञ्ज-जालसे विलसित कुञ्जोंसे सम्पन्न था ॥ १५ ॥ १६ ॥ वहाँ मधुर कण्ठवाले नर-कोकिल और मयूर कलरव कर रहे थे । उस वनमें गौएँ चराते हुए श्रीकृष्ण एक वनसे दूसरे वनमें विचरा करते थे ॥ १७ ॥ हे नरेश्वर ! वृन्दावन और मधुवनमें, तालवनके आस-पास कुमुदवन, बहुलावन, कामवन, बृहत्सानु और नन्दीश्वर नामक पर्वतोंके पार्श्ववर्ती प्रदेशमें, कोकिलोंकी काकलीसे कूजित सुन्दर कोकिलावनमें, लताजाल-मण्डित, सौम्य तथा रमणीय कुशवनमें,

लोहार्गले च यमुनातीरे तीरे वने वने । पीतवासःपरिकरो नटवेषो मनोहरः ॥२१॥
वेत्रभृद्वादयन्वंशीं गोपीनां प्रीतिमावहन् । मयूरपिच्छभृन्मौली स्रग्वी कृष्णो बभौ नृप ॥२२॥
अग्रे कृत्वा गवां वृन्दं सायंकाले हरिः स्वयम् । रागैः समीरयन्वंशीं श्रीनन्दव्रजमाविशत् ॥२३॥
वेणुवंशीध्वनिं श्रुत्वा श्रीवंशीवटमार्गतः । गोरजोभिर्नभो व्याप्तं वीक्ष्य गेहाद्विनिर्गताः ॥२४॥
दूरीकर्तुं ह्याधिबाधामाहर्तुं सुखमुत्तमम् । विस्मर्तुं न समर्थास्तं द्रष्टुं गोप्यः समाययुः॥२५॥

संकोचवीथीषु न संगृहीतः शनैश्चलन् गोगणसंकुलासु ।
सिंहावलोको गजबाललीलैर्वधूजनैः पंकजपत्रनेत्रः ॥२६॥
सुमंडितं मैथिलगोरजोभिर्नीलं परं कुन्तलमादधानः ।
हेमांगदी मौलिविराजमान आकर्णवक्रीकृतदृष्टिबाणः ॥२७॥
गोधूलिभिर्मंडितकुन्दहारः कर्णोपरि स्फूर्जितकर्णिकारः ।
पीतांबरो वेणुनिनादकारः पातु प्रभुर्वो हृतभूरिभारः ॥२८॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायां वृंदावनखण्डे श्रीकृष्णगोचारणवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथ एकादशोऽध्यायः

(धेनुकासुरका उद्धार)

नीलांबरं कटौ बद्ध्वा बलदेवो महाबलः । परिपक्वफलार्थं हि तद्वने विचचार ह ॥ ३ ॥
बाहुभ्यां कंपयंस्तालान्फलसंघं निपातयन् । गर्जंश्च निर्भयः साक्षादनन्तोऽनन्तविक्रमः ॥ ४ ॥
फलानां पततां शब्दं श्रुत्वा क्रोधावृतः खरः । मध्याह्ने स्वापकृद् दुष्टो भीमः कंससखो बली ॥ ५ ॥
आययौ संमुखे योद्धुं बलदेवस्य धेनुकः । बलं पश्चिमपादाभ्यां निहत्योरसि सत्वरम् ॥ ६ ॥
चकार खरशब्दं स्वं परिधावन्मुहुर्मुहुः । गृहीत्वा धेनुकं शीघ्रं बलः पश्चिमपादयोः ॥ ७ ॥
चिक्षेप तालवृक्षे च हस्तेनैकेन लीलया । तेन भग्नश्च तालोऽपि तालान्पार्श्वस्थितान्बहून् ॥ ८ ॥
पातयामास राजेन्द्र तदद्भुतमिवाभवत् । पुनरुत्थाय दैत्येंद्रो बलं जग्राह रोषतः ॥ ९ ॥
योजनं नोदयामास गजं प्रति गजो यथा । गृहीत्वा तं बलः सद्यो भ्रामयित्वाऽथ धेनुकम् ॥ १० ॥
भूपृष्ठे पोथयामास मूर्च्छितो भग्नमस्तकः । क्षणेन पुनरुत्थाय क्रोधसंयुक्तविग्रहः ॥ ११ ॥
मूर्ध्नि कृत्वा चतुःशृंगं धृत्वा रूपं भयंकरम् । गोपान्विद्रावयामास शृंगैस्तीक्ष्णैर्भयंकरैः ॥ १२ ॥
अग्रे पलायितान् गोपान् दुद्रावाशु मदोत्कटः । श्रीदामा तं च दंडेन सुबलो मुष्टिना तथा ॥ १३ ॥
स्तोकः पाशेन तं दैत्यं स तताड महाबलम् । क्षेपणेनार्जुनोंऽशुश्च दैत्यं लत्तिकया खरम् ॥ १४ ॥
विशालर्षभ एत्याशु पादेन स्वबलेन च । तेजस्वी ह्यर्द्धचंद्रेण देवप्रस्थश्चपेटकैः ॥ १५ ॥
वरूथपः कंदुकेन संतताड महाखरम् । अथ कृष्णोऽपि तं नीत्वा हस्ताभ्यां धेनुकासुरम् ॥ १६ ॥
भ्रामयित्वाऽऽशु चिक्षेप गिरिगोवर्द्धनोपरि । श्रीकृष्णस्य प्रहारेण मूर्छितो घटिकाद्वयम् ॥ १७ ॥

उसमें प्रवेश किया ॥ २ ॥ अपने नीले वस्त्रको कमरमें बाँधकर महाबली बलदेव परिपक्व फल लेनेके लिये उस वनमें विचरने लगे ॥ ३ ॥ बलरामजी साक्षात् अनन्तदेवके अवतार हैं। उनका पराक्रम भी अनन्त है। अतः दोनों हाथोंसे ताड़के वृक्षोंको हिलाते और फल-समूहोंको गिराते हुए वहाँ निर्भय गर्जना करने लगे ॥ ४ ॥ गिरते हुए फलोंकी आवाज सुनकर वह गर्दभाकार असुर रोषसे आग-बबूला हो गया। वह दोपहरमें सोया करता था, किंतु आज विघ्न पड़ जानेसे वह दुष्ट क्रोधसे भयंकर हो उठा। धेनुकासुर कंसका सखा होनेके साथ ही बड़ा बलवान् था ॥ ५ ॥ वह बलदेवजीके सम्मुख युद्ध करनेके लिये आया और उसने अपने पिछले पैरोंसे उनकी छातीपर तुरंत आघात किया ॥ ६ ॥ आघात करके वह बारंबार दौड़ लगाता हुआ गधेकी भाँति रेंकने लगा। तब बलरामजीने धेनुकके दोनों पिछले पैर पकड़कर शीघ्र ही उसे ताड़के वृक्षपर दे मारा। यह कार्य उन्होंने एक ही हाथसे खेल-खेलमें कर डाला। इससे वह तालवृक्ष स्वयं तो टूट ही गया, गिरते-गिरते उसने अपने पार्श्ववर्ती दूसरे बहुत-से ताड़ोंको भी धराशायी कर दिया ॥ ७ ॥ ८ ॥ हे राजेन्द्र ! यह एक अद्भुत-सी बात हुई। दैत्यराज धेनुकने पुनः उठकर रोषपूर्वक बलरामजीको पकड़ लिया और जैसे एक हाथी अपना सामना करनेवाले दूसरे हाथीको दूरतक ठेल ले जाता है, उसी प्रकार उन्हें धक्का देकर एक योजन पीछे हटा दिया। तब बलरामजीने तत्काल धेनुकको पकड़कर घुमाना आरम्भ किया और घुमाकर उसे धरतीकी पीठपर दे मारा। तब उसे मूर्च्छा आ गयी और उसका मस्तक फट गया। तो भी वह क्षणभरमें उठकर खड़ा हो गया। उसके शरीरसे भयानक क्रोध टपक रहा था ॥ ९–११ ॥ इसके बाद उस दैत्यने अपने मस्तकमें चार सींग प्रकट करके, भयानक रूप धारणकर उन तीखे और भयंकर सींगोंसे गोपोंको खदेड़ना आरम्भ किया। गोपोंको आगे-आगे भागते देख वह मदमत्त असुर तुरंत ही उनके पीछे दौड़ा ॥ १२ ॥ उस समय श्रीदामाने उसपर डंडेसे प्रहार किया, सुबलने उसको मुक्केसे मारा ॥ १३ ॥ स्तोककृष्णने उस महाबली दैत्यपर पाशसे प्रहार किया, अर्जुनने क्षेपणसे और अंशुने उस गर्दभाकार दैत्यपर लातसे आघात किया ॥ १४ ॥ इसके बाद विशालर्षभने आकर शीघ्रतापूर्वक अपने पैरसे और बलसे भी उस दैत्यको दबाया। तेजस्वीने अर्द्धचन्द्र (गर्दनियाँ) देकर उसे पीछे हटाया और देवप्रस्थने उस असुरके कई तमाचे जड़ दिये ॥ १५ ॥ वरूथपने उस विशालकाय गधेको गेंदसे मारा। तदनन्तर श्रीकृष्णने भी धेनुकासुरको दोनों हाथोंसे उठाकर घुमाया और तुरंत ही गोवर्धन पर्वतके ऊपर फेंक दिया। श्रीकृष्णके उस प्रहारसे धेनुक दो घड़ीतक

पुनरुत्थाय स्वतनुं विधुन्वन् दारयन्मुखम् । शृङ्गाभ्यां श्रीहरिं नीत्वा धावन्दैत्यो नभोगतः ॥१८॥
चकार तेन खे युद्धमूर्ध्वं वै लक्षयोजनम् । गृहीत्वा धेनुकं दैत्यं श्रीकृष्णो भगवान्स्वयम् ॥१९॥
चिक्षेपाधो भूमिमध्ये चूर्णितास्थिः स मूर्च्छितः । पुनरुत्थाय शृङ्गाभ्यां नादं कृत्वातिभैरवम् ॥२०॥
गोवर्धनं समुत्पाट्य श्रीकृष्णे प्राहिणोत्खरः । गिरिं गृहीत्वा श्रीकृष्णः प्राक्षिपत्तस्य मस्तके ॥२१॥
दैत्यो गिरिं गृहीत्वाऽथ श्रीकृष्णे प्राहिणोद्बली । कृष्णो गोवर्धनं नीत्वा पूर्वस्थाने समाक्षिपत् ॥२२॥
पुनर्धावन्महादैत्यः शृङ्गाभ्यां दारयन्भुवम् । बलं पश्चिमपादाभ्यां ताडयित्वा जगर्ज ह ॥२३॥
ननाद तेन ब्रह्मांडं गुंजद्भूखंडमंडलम् । हस्ताभ्यां संगृहीत्वा तं बलदेवो महाबलः ॥२४॥
भूपृष्ठे पोथयामास मूर्च्छितं भग्नमस्तकम् । पुनस्तताड तं दैत्यं मुष्टिना ह्यच्युताग्रजः ॥२५॥
तेन मुष्टिप्रहारेण सद्यो वै निधनं गतः । तदैव ववृषुर्देवाः पुष्पैर्नन्दनसंभवैः ॥२६॥
देहाद्विनिर्गतः सोऽपि श्यामसुन्दरविग्रहः । स्रग्वी पीतांबरो देवो वनमालाविभूषितः ॥२७॥
लक्षपार्षदसंयुक्तः सहस्रध्वजशोभितः । सहस्रचक्रध्वनिभृद्धयायुतसमन्वितः ॥२८॥
लक्षचामरशोभाढ्योऽरुणवर्णोऽतिरत्नभृत् । दिव्ययोजनविस्तीर्णो मनोयायी मनोहरः ॥२९॥
किंकिणीजालसंयुक्तो घंटामंजीरसंयुतः । हरिं प्रदक्षिणीकृत्य सबलं दिव्यरूपधृक् ॥३०॥
दिव्यं रथं समारुह्य द्योतयन्मंडलं दिशाम् । जगाम दैत्यो हे राजन् गोलोकं प्रकृतेः परम् ॥३१॥
श्रीकृष्णो धेनुकं हत्वा सबलो बालकैः सह । तत्रशस्तु प्रगायद्भिर्वभौ गोकुलगोगणैः ॥३२॥

राजोवाच

मुने मुक्तिं कथं प्राप्तः पूर्वं को धेनुकासुरः । कथं खरत्वमापन्न एतन्मे ब्रूहि तत्त्वतः ॥३३॥

मूर्च्छित पड़ा रहा ॥ १६ ॥ १७ ॥ फिर उठकर अपने शरीरको कँपाता हुआ मुँह फाड़कर आगे बढ़ा और दोनों सींगोंसे श्रीहरिको उठाकर वह दैत्य उड़कर आकाशमें चला गया ॥ १८ ॥ आकाशमें एक लाख योजन ऊँचे जाकर उनके साथ युद्ध करने लगा। सहसा भगवान् श्रीकृष्णने धेनुकासुरको पकड़कर नीचे भूमिकी ओर फेंका ॥ १९ ॥ इससे उसकी हड्डियाँ चूर-चूर हो गयीं और वह मूर्च्छित हो गया। तथापि पुनः उठकर अत्यन्त भयंकर सिंहनाद करते हुए उसने दोनों सींगोंसे गोवर्धन पर्वतको उखाड़ लिया और श्रीकृष्णके ऊपर चलाया। श्रीकृष्णने पर्वतको हाथसे पकड़कर पुनः उसीके मस्तकपर दे मारा ॥ २० ॥ २१ ॥ तदनन्तर उस बलवान् दैत्यने फिर पर्वतको हाथमें ले लिया और श्रीकृष्णके ऊपर फेंका। किंतु श्रीकृष्णने गोवर्धनको ले जाकर उसके पूर्व स्थानपर रख दिया ॥ २२ ॥ तदनन्तर फिर धावा करके महादैत्य धेनुकने दोनों सींगोंसे पृथ्वीको विदीर्ण कर दिया और पिछले पैरोंसे पुनः बलरामपर प्रहार करके बड़े जोरसे गर्जना की ॥ २३ ॥ उसकी उस गर्जनासे समस्त ब्रह्माण्ड गूँज उठा और भूमण्डल काँपने लगा। तब महाबली बलदेवने दोनों हाथोंसे उसको पकड़ लिया और उसे पृथ्वीपर दे मारा। इससे उसका मस्तक फूट गया और होशहवास जाता रहा। इसके बाद श्रीकृष्णके बड़े भाईने पुनः उस दैत्यपर मुक्केसे प्रहार किया ॥ २४ ॥ २५ ॥ उस प्रहारसे धेनुकासुरकी तत्काल मृत्यु हो गयी। उस समय देवताओंने वहाँ नन्दनवनके फल बरसाये ॥ २६ ॥ देहसे पृथक् होकर धेनुक श्यामसुन्दर-विग्रह धारणकर पुष्पमाला, पीताम्बर तथा वनमालासे समलंकृत देवता हो गया ॥ २७ ॥ लाख-लाख पार्षद उसकी सेवामें जुट गये। सहस्रों ध्वज उसके रथकी शोभा बढ़ाने लगे। सहस्रों पहियोंकी घर्घरध्वनिसे युक्त उस रथमें दस हजार घोड़े जुते थे ॥ २८ ॥ लाखों चँवरोंकी वहाँ शोभा हो रही थी। वह रथ अरुणवर्णका था और अत्यधिक रत्नोंसे जटित था। उसका विस्तार एक दिव्य योजनका था। वह मनके समान तीव्रगतिसे चलनेवाला विमान या रथ बड़ा ही मनोहर था ॥२९॥ हे राजन् ! उसमें घुँघुरुओंकी जाली लगी थी। घंटे और मञ्जीर बजते थे। दिव्यरूपधारी दैत्य धेनुक बलराम-सहित श्रीकृष्णकी परिक्रमा करके, उक्त दिव्य रथपर आरूढ़ हो, दिशामण्डलको देदीप्यमान करता हुआ, प्रकृतिसे परे विद्यमान गोलोकधाममें चला गया ॥ ३० ॥ ३१ ॥ इस प्रकार धेनुकका वध करके बलरामसहित

श्रीनारद उवाच

वैरोचनेर्बलेः पुत्रो नाम्ना साहसिको बली । नारीणां दशसाहस्रै रेमे वै गन्धमादने ॥३४॥
वादित्राणां नूपुराणां शब्दोऽभूत्तद्वने महान् । गुहायामास्थितस्यापि श्रीकृष्णं स्मरतो मुनेः ॥३५॥
दुर्वाससोऽथ तेनापि ध्यानभंगो बभूव ह । निर्गतः पादुकारूढो दुर्वासाः कृशविग्रहः ॥३६॥
दीर्घश्मश्रुर्यष्टिधरः क्रोधपुंजानलद्युतिः । यस्य शापाद्विश्वमिदं कंपते स जगाद ह ॥३७॥

दुर्वासा उवाच

उत्तिष्ठ गर्दभाकार गर्दभो भव दुर्मते । वर्षाणां तु चतुर्लक्षं व्यतीते भारते पुनः ॥३८॥
माथुरे मंडले दिव्ये पुण्ये तालवने वने । बलदेवस्य हस्तेन मुक्तिस्ते भविताऽसुर ॥३९॥

नारद उवाच

तस्माद्बलस्य हस्तेन श्रीकृष्णस्तं जघान ह । प्रह्लादाय वरो दत्तो न वध्यो मे तवान्वयः ॥४०॥

इति श्रीगर्गसंहितायां वृन्दावनखण्डे नारदबहुलाश्वसंवादे धेनुकासुरमोक्षो नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

(श्रीकृष्ण द्वारा कालियनागका दमन तथा दावाग्निका पान)

श्रीनारद उवाच

बलं विनाऽथ गोपालैश्चारयन् गा हरिः स्वयम् । कालिन्दीकूलमागत्य ययौ वारिविषावृतम् ॥ १ ॥
कालियेन फणीन्द्रेण जलं यत्र विदूषितम् । पीत्वा निपेतुर्व्यसवो गावो गोपा जलान्तिके ॥ २ ॥
तदा ताञ्जीवयामास दृष्ट्या पीयूषपूर्णया । आर्द्रचित्तो हरिः साक्षाद्भगवान्वृजिनार्दनः ॥ ३ ॥

श्रीकृष्ण अपना यशोगान करते हुए ग्वाल-बालोंके साथ व्रजको लौटे। उनके साथ गौओंका समुदाय भी था ॥ ३२ ॥ राजाने पूछा—हे मुने! धेनुकासुर पूर्वजन्ममें कौन था? उसे मुक्ति कैसे प्राप्त हुई? तथा उसे गधेका शरीर क्यों मिला? यह सब मुझे ठीक-ठीक बताइये ॥ ३३ ॥ श्रीनारदजीने कहा—हे विरोचनकुमार बलिका एक बलवान् पुत्र था, जिसका नाम था—साहसिक। वह दस हजार स्त्रियोंके साथ गन्धमादन पर्वत-पर विहार कर रहा था ॥ ३४ ॥ वहाँ वनमें नाना प्रकारके वाद्यों तथा रमणियोंके नूपुरोंका महान् शब्द होने लगा, जिससे उस पर्वतकी कन्दरामें रहकर श्रीकृष्णका चिन्तन करनेवाले दुर्वासा मुनिका ध्यान भङ्ग हो गया। वे खड़ाऊँ पहनकर बाहर निकले। उस समय मुनिवर दुर्वासाका शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया था ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ दाढ़ी-मूँछ बहुत बढ़ गयी थी। वे लाठीके सहारे चलते थे। क्रोधकी तो वे मूर्तिमान् राशि ही थे और अग्निके समान तेजस्वी जान पड़ते थे। दुर्वासा उन ऋषियोंमेंसे हैं, जिनके शापके भयसे सारा विश्व काँपता रहता है। वे बोले ॥ ३७ ॥ दुर्वासाने कहा—अरे दुर्बुद्धि असुर! तू गदहेके समान भोगासक्त है, इसलिये जा गदहा हो जा। आजसे चार लाख वर्ष बीतनेपर भारतमें दिव्य माथुर-मण्डलके अन्तर्गत पवित्र तालवनमें बलदेवजीके हाथसे तेरी मुक्ति होगी ॥ ३८॥ ३९ ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन्! उस शापके कारण ही भगवान् श्रीकृष्णने बलरामजीके हाथसे उसका वध करवाया; क्योंकि उन्होंने प्रह्लादजीको यह वर दे रखा है कि तुम्हारे वंशका कोई दैत्य मेरे हाथसे नहीं मारा जायगा ॥ ४० ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां वृन्दावनखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे मिथिलेश्वर! एक दिन बलरामजीको अपने साथ लिये बिना ही श्रीहरि स्वयं ग्वाल-बालोंके साथ गाय चराने चले आये। यमुनाके तटपर आकर उन्होंने उस विषाक्त जलको पी लिया, जिसे नागराज कालियने अपने विषसे दूषित कर दिया था। उस जलको पीकर बहुत-सी गायें और गोपगण प्राणहीन होकर पानीके निकट ही गिर पड़े ॥ १ ॥ २ ॥ यह देख सर्वपापहारी साक्षात् भगवान् श्रीहरिका

कटौ पीतपटं बद्ध्वा नीपमारुह्य माधवः । पपातोत्तुंगविटपात्तत्तोये विपदूषिते ॥ ४ ॥
उच्चचाल जलं दुष्टं कृष्णसंघातघूर्णितम् । तत्सर्पमन्दिरे नद्यां भृंगीभूतं बभूव ह ॥ ५ ॥
तदैव कालियः क्रुद्धः फणी फणशतावृतः । दशन्दन्तैश्च भुजया चच्छाद नृप माधवम् ॥ ६ ॥
कृष्णो दीर्घं वपुः कृत्वा बन्धनान्निर्गतश्च तम् । पुच्छे गृहीत्वा सर्पेंद्रं भ्रामयित्वा त्वितस्ततः ॥ ७ ॥
जले निपात्य हस्ताभ्यां चिक्षेपाशु धनुःशतम् । पुनरुत्थाय सर्पेन्द्रो लेलिहानो भयंकरः ॥ ८ ॥
वामहस्ते हरिं सर्पो रुषा जग्राह माधवम् । हरिर्दक्षिणहस्तेन गृहीत्वा तं महाखलम् ॥ ९ ॥
तज्जले पोथयामास सुपर्ण इव पन्नगम् । सर्पो मुखशतं दीर्घं प्रसार्य पुनरागतः ॥१०॥
पुच्छे गृहीत्वा तं कृष्णश्चक्षेपाशु धनुःशतम् । कृष्णहस्ताद्विनिष्क्रम्य सर्पस्तं व्यदशत्पुनः ॥११॥
तताड मुष्टिना सर्पं त्रैलोक्यबलधारकः । कृष्णमुष्टिप्रहारेण मूर्च्छितो विगतस्मृतिः ॥१२॥
नतं कृत्वाऽऽननशतं स्थितोऽभूत्कृष्णसंमुखे । आरुह्य तत्फणिशतं मणिवृन्दमनोहरम् ॥१३॥
ननर्त नटवत्कृष्णो नटवेषो मनोहरः । गायन्सप्तस्वरै रागं संगीतं च सतालकम् ॥१४॥
पुष्पैर्देवेषु वर्षत्सु तांडवे नटराजवत् । वादयन्स मुदा वीणाऽऽनकदुन्दुभिवेणुकान् ॥१५॥
सतालं पदविन्यासैस्तत्फणां रत्नोज्ज्वलान्बहून् । बभंज श्वसतः कृष्णः कालियस्य महात्मनः ॥१६॥
तदैव नागपत्न्यस्ता आगता भयविह्वलाः । नत्वा कृष्णपदं देवमूचुर्गद्गदया गिरा ॥१७॥

नागपत्न्य ऊचुः

नमः श्रीकृष्णचंद्राय गोलोकपतये नमः । असंख्यांडाधिपतये परिपूर्णतमाय ते ॥१८॥

श्रीराधापतये तुभ्यं व्रजाधीशाय ते नमः। नमः श्रीनंदपुत्राय यशोदानंदनाय ते ॥१९॥
पाहि पाहि परदेव पन्नगं त्वत्परं न शरणं जगत्त्रये।
त्वं पदात्परतरो हरिः स्वयं लीलया किल तनोषि विग्रहम् ॥२०॥

श्रीभगवानुवाच

नागपत्नीस्तुतः कृष्णः कालियं विगतस्मयम्। विससर्ज हरिः साक्षात्परिपूर्णतमः स्वयम् ॥२१॥
पाहीति प्रवदंतं तं कालियं भगवान् हरिः। प्रणतं संमुखे प्राप्तं प्राह देवो जनार्दनः ॥२२॥

श्रीबहुलाश्व उवाच

द्वीपं रमणकं गच्छ सकलत्रसुहृद्वृतः। सुपर्णोऽद्यतनात्त्वां वै नाद्यान्मत्पादलांछितम् २३॥

श्रीनारद उवाच

सर्पः कृष्णं तु संपूज्य परिक्रम्य प्रणम्य तम्। कलत्रपुत्रसहितो द्वीपं रमणकं ययौ ॥२४॥
अथ श्रुत्वा कालियेन संग्रस्तं नंदनंदनम्। तत्राजग्मुर्गोपगणा नंदाद्याः सकला जनाः ॥२५॥
जलाद्विनिर्गतं कृष्णं दृष्ट्वा मुमुदिरे जनाः। आश्लिष्य स्वसुतं नंदः परां मुदमवाप ह ॥२६॥
सुतं लब्ध्वा यशोदा सा सुतकल्याणहेतवे। ददौ दानं द्विजातिभ्यः स्नेहस्नुतपयोधरा ॥२७॥
तत्रैव शयनं चक्रुर्गोपाः सर्वे परिश्रमात्। कालिंदीनिकटे राजन् गोपीगोपगणैः सह ॥२८॥
वेणुसंघर्षणोद्भूतो दावाग्निः प्रलयाग्निवत्। निशीथे सर्वतो गोपान्दग्धुमागतवान्स्फुरन् ॥२९॥
गोपा वयस्याः श्रीकृष्णं सबलं शरणं गताः। नत्वा कृतांजलिं कृत्वा तमूचुर्भयकातराः ॥३०॥

गोपा ऊचुः

कृष्ण कृष्ण महाबाहो शरणागतवत्सल। पाहि पाहि वने कष्टाद्दावाग्नेः स्वजनान्प्रभो ॥३१॥

नागपत्नियाँ बोलीं—हे भगवन्! आप परिपूर्णतम परमात्मा तथा असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति हैं। आप गोलोकनाथ श्रीकृष्णचन्द्रको हमारा वारंवार नमस्कार है॥ १८॥ व्रजके अधीश्वर आप श्रीराधावल्लभको नमस्कार है। नन्दके लाला एवं यशोदानन्दनको नमस्कार है॥ १९॥ हे परमदेव! आप इस नागकी रक्षा कीजिये। तीनों लोकोंमें आपके सिवा दूसरा कोई इसे शरण देनेवाला नहीं है। आप स्वयं साक्षात् परात्पर श्रीहरि हैं और लीलासे ही स्वच्छन्दतापूर्वक नाना प्रकारके श्रीविग्रहोंका विस्तार करते हैं॥ २०॥ श्रीनारदजी कहते हैं—अवतक कालियनागका गर्व चूर्ण हो चुका था। नागपत्नियोंद्वारा किये गये इस स्तवन-के पश्चात् वह श्रीकृष्णसे बोला—'हे भगवन्! हे पूर्णकाम परमेश्वर! मेरी रक्षा कीजिये॥ २१॥ 'पाहि-पाहि' कहता हुआ कालियनाग भगवान् श्रीहरिके सम्मुख आकर उनके चरणोंमें गिर पड़ा। तव उन जनार्दन-देवने उससे कहा॥ २२॥ श्रीभगवान् बोले—तुम अपनी पत्नियों और सुहृदोंके साथ रमणक द्वीपमें चले जाओ। तुम्हारे मस्तकपर मेरे चरणोंके चिह्न वन गये हैं, इसलिये अव गरुड़ तुम्हें अपना आहार नहीं वनायेगा॥ २३॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन्! तव उस सर्पने श्रीकृष्णकी पूजा और परिक्रमा करके, उन्हें प्रणाम करनेके अनन्तर, स्त्री-पुत्रोंके साथ रमणकद्वीपको प्रस्थान किया॥ २४॥ इधर 'नन्दनन्दनको कालियनागने अपना ग्रास वना लिया है'—यह समाचार सुनकर नन्द आदि समस्त गोपगण वहाँ आ गये॥ २५॥ तभी श्रीकृष्णको जलसे निकलते देख उन सव लोगोंको वड़ी प्रसन्नता हुई। अपने वेटेको छातीसे लगाकर नन्दजी परमानन्दमें निमग्न हो गये॥ २६॥ यशोदाने अपने खोये हुए पुत्रको पाकर उसके कल्याण-की कामनासे ब्राह्मणोंको धनका दान दिया। उस समय उनके स्तनोंसे स्नेहाधिक्यके कारण दूध झर रहा था॥ २७॥ हे राजन्! उस दिन रातमें अधिक श्रमके कारण गोपाङ्गनाओं और ग्वाल-वालोंके साथ समस्त गोप यमुनाके निकट उसी स्थानपर सो गये॥ २८॥ निशीथकालमें वांसोंकी रगड़से प्रलयाग्निके समान भीषण दावानल प्रकट हो गया, जो सव ओरसे मानो गोपोंको दग्ध करनेके लिये उन्हींकी ओर फैलता आ रहा था। उस समय मित्रकोटिके गोप वलरामसहित श्रीकृष्णकी शरणमें गये और भयसे कातर हो दोनों हाथ जोड़कर वोले॥२९॥३०॥ गोपोंने कहा—शरणागतवत्सल महावाहु हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे प्रभो! वनके भीतर दावाग्नि-

श्रीनारद उवाच

स्वलोचनानि माभैष्ट न्यमीलयत माधवः । इत्युक्त्वा वह्निमपिबद्देवो योगेश्वरेश्वरः ॥३२॥
प्रातर्गोपगणैः सार्द्धं विस्मितैर्नंदनंदनः । गोगणैः सहितः श्रीमद्व्रजमंडलमाययौ ॥३३॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीवृन्दावनखण्डे कालियदमनं दावाग्निपानं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

(मुनि वेदशिरा और अश्वशिराका परस्पर शाप और शेषोपाख्यान)

वैदेह उवाच

यद्रजो दुर्लभं लोके योगिनां बहुजन्मभिः । तत्पादाब्जं हरेः साक्षाद्बभौ कालियमूर्द्धसु ॥ १ ॥
कोऽयं पूर्वं कुशलकृत्कालियो फणिनां वरः । एतं वेदितुमिच्छामि ब्रूहि देवर्षिसत्तम ॥ २ ॥

श्रीनारद उवाच

स्वायंभुवान्तरे पूर्वं नाम्ना वेदशिरा मुनिः । विंध्याचले तपोऽकार्षीद्भृगुवंशसमुद्भवः ॥ ३ ॥
तदाश्रमे तपः कर्तुं प्राप्तो ह्यश्वशिरा मुनिः । तं वीक्ष्य रक्तनयनः प्राह वेदशिरा रुषा ॥ ४ ॥

वेदशिरा उवाच

ममाश्रमे तपो विप्र मा कुर्याः सुखदं न हि । अन्यत्र ते तपोयोग्या भूमिर्नास्ति तपोधन ॥ ५ ॥

श्रीनारद उवाच

श्रुत्वाऽथ वेदशिरसो वाक्यं ह्यश्वशिरा मुनिः । क्रोधयुक्तो रक्तनेत्रः प्राह तं मुनिपुंगवम् ॥ ६ ॥

अश्वशिरा उवाच

महाविष्णोरियं भूमिर्न ते मे मुनिसत्तम । कतिभिर्मुनिभिश्चात्र न कृतं तप उत्तमम् ॥ ७ ॥
श्वसन्सर्प इव त्वं भो वृथा क्रोधं करोषि हि । तदा सर्पो भव त्वं हि भूयात्ते गरुडाद्भयम् ॥ ८ ॥

वेदशिरा उवाच

त्वं महादृगभिप्रायो लघुद्रोहे महोद्यमः । कार्यार्थी काम इव कौ त्वं काको भव दुर्मते ॥ ९ ॥

श्रीनारद उवाच

आविरासीत्ततो विष्णुरित्थं च शपतोस्तयोः । स्वस्वशापाद्दुःखितयोः सांत्वयामास तौ गिरा१०॥

श्रीभगवानुवाच

युवां तु मे समौ भक्तौ भुजाविव तनौ मुनी । स्ववाक्यं तु मृषा कर्तुं समर्थोऽहं मुनीश्वरौ ॥११॥
भक्तवाक्यं मृषा कर्तुं नेच्छामि शपथो मम । ते मूर्ध्नि हे वेदशिरश्चरणौ मे भविष्यतः ॥१२॥
तदा ते गरुडाद्भीतिर्न भविष्यति कर्हिचित् । शृणु मेऽश्वशिरो वाक्यं शोचं मा कुरु मा कुरु ॥१३॥
काकरूपेऽपि सुज्ञानं ते भविष्यति निश्चितम् । परं त्रैकालिकं ज्ञानं संयुतं योगसिद्धिभिः ॥१४॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वाऽथ गते विष्णौ मुनिरश्वशिरा नृप । साक्षात्काकभुशुंडोऽभूद्योगींद्रो नीलपर्वते ॥१५॥
रामभक्तो महातेजाः सर्वशास्त्रार्थदीपकः । रामायणं जगौ यो वै गरुडाय महात्मने ॥१६॥
चाक्षुषे ह्यन्तरे प्राप्ते दक्षः प्राचेतसो नृप । कश्यपाय ददौ कन्या एकादश मनोहराः ॥१७॥
तासां कद्रूश्च या श्रेष्ठा साऽद्यैव रोहिणी स्मृता । वसुदेवप्रिया यस्यां बलदेवोऽभवत्सुतः ॥१८॥
सा कद्रूश्च महासर्पान् जनयामास कोटिशः । महोद्भटान्विषबलानुग्रान् पंचशताननान् ॥१९॥
महामणिधरान्कांश्चिद्दुःसहांश्च शताननान् । तेषां वेदशिरा नाम कालियोऽभून्महाफणी ॥२०॥
तेषामादौ फणीन्द्रोऽभूच्छेषोऽनन्तः परात्परः । सोऽद्यैव बलदेवोऽस्ति रामोऽनन्तोऽच्युताग्रजः २१॥
एकदा श्रीहरिः साक्षाद्भगवान्प्रकृतेः परः । शेषं प्राह प्रसन्नात्मा मेघगंभीरया गिरा ॥२२॥

हुए क्रोध प्रकट करते हो, इसलिये सदाके लिये सर्प हो जाओ और तुम्हें गरुडसे भय प्राप्त हो ॥ ८ ॥ वेदशिरा बोले—हे दुर्मते ! तुम्हारा भाव बड़ा ही दूषित है । तुम छोटे-से द्रोह या अपराधपर भी महान् दण्ड देनेके लिये उद्यत रहते हो और अपना काम बनानेके लिये कौएकी तरह इस पृथ्वीपर डोलते-फिरते हो; अतः तुम भी कौआ हो जाओ ॥ ९ ॥ नारदजी कहते हैं—उसी समय भगवान् विष्णु परस्पर शाप देते हुए दोनों ऋषियोंके बीच प्रकट हो गये । वे दोनों अपने-अपने शापसे बहुत दुखी थे । भगवान्ने अपनी वाणीद्वारा उन दोनोंको सान्त्वना दी ॥ १० ॥ श्रीभगवान् बोले—हे मुनियो ! जैसे शरीरमें दोनों भुजाएँ समान हैं, उसी प्रकार तुम दोनों समानरूपसे मेरे भक्त हो । हे मुनीश्वरो ! मैं अपनी बात तो झूठी कर सकता हूं, परंतु भक्तकी बातको मिथ्या करना नहीं चाहता—यह मेरी प्रतिज्ञा है । हे वेदशिरा ! सर्पकी अवस्थामें तुम्हारे मस्तकपर मेरे दोनों चरण अङ्कित होंगे ॥११॥१२॥ उस चिन्हके कारण तुम्हें गरुडसे कदापि भय नहीं होगा । हे अश्वशिरा ! अब तुम मेरी बात सुनो । सोच न करो, सोच न करो ॥ १३ ॥ काकरूपमें रहनेपर भी तुम्हें निश्चय ही उत्तम ज्ञान प्राप्त होगा । योगसिद्धियोंसे युक्त उच्चकोटिका त्रिकालदर्शी ज्ञान सुलभ होगा ॥ १४ ॥ नारदजी कहते हैं—हे नरेश्वर ! यों कहकर भगवान् विष्णु जब चले गये, तब अश्वशिरा मुनि साक्षात् योगीन्द्र काकभुशुण्डि हो गये और नीलपर्वतपर रहने लगे ॥ १५ ॥ वे सम्पूर्ण शास्त्रोंके अर्थको प्रदर्शित करनेवाले महातेजस्वी रामभक्त हो गये। उन्होंने ही महात्मा गरुडको रामायणकी कथा सुनायी थी ॥ १६ ॥ हे मिथिलानरेश ! चाक्षुष मन्वन्तर-के प्रारम्भमें प्रचेताओंके पुत्र प्रजापति दक्षने महर्षि कश्यपको अपनी परम मनोहर ग्यारह कन्याएँ पत्नीरूपमें प्रदान कीं ॥ १७ ॥ उन कन्याओंमें श्रेष्ठ जो कद्रू थी, वही इस समय वसुदेवप्रिया रोहिणी होकर प्रकट हुई हैं, जिनके पुत्र बलदेवजी हैं ॥ १८ ॥ उस कद्रूने करोड़ों महासर्पोंको जन्म दिया । वे सभी सर्प अत्यन्त उद्भट, विषरूपी बलसे सम्पन्न, उग्र तथा पाँच सौ फनोंसे युक्त थे ॥ १९ ॥ वे महान् मणिरत्न धारण किये रहते थे । उनमेंसे कोई-कोई तो सौ मुखोंवाले दुःसह विषधर थे । उन्हींमें वेदशिरा 'कालिय' नामसे प्रसिद्ध महानाग हुए ॥ २० ॥ उन सबमें प्रथम राजा फणिराज शेष हुए, जो अनन्त एवं परात्पर परमेश्वर हैं । वे ही आजकल 'बलदेव'के नामसे प्रसिद्ध हैं । वे ही राम, अनन्त और अच्युताग्रज आदि नाम धारण करते हैं ॥ २१ ॥ एक दिनकी बात है । प्रकृतिसे परे भगवान् श्रीहरिने प्रसन्नचित्त होकर मेघके समान गम्भीर वाणीमें

श्रीभगवानुवाच

भूमंडलं समाधातुं सामर्थ्यं कस्यचिन्न हि । तस्मादेनं महीगोलं मूर्ध्नि त्वं हि समुद्धर ॥२३॥
अनंतविक्रमस्त्वं वै यतोऽनन्त इति स्मृतः । इदं कार्यं प्रकर्तव्यं जनकल्याणहेतवे ॥२४॥

शेष उवाच

अवधिं कुरु यावत्त्वं धरोद्धारस्य मे प्रभो । भूभारं धारयिष्यामि तावत्ते वचनादिह ॥२५॥

श्रीभगवानुवाच

नित्यं सहस्रवदनैरुच्चारं च पृथक् पृथक् । मद्गुणस्फुरतां नाम्नां कुरु सर्पेन्द्र सर्वतः ॥२६॥
मन्नामानि च दिव्यानि यदा यांत्यवसानताम् । तदा भूभारमुत्तार्य फणिस्त्वं सुसुखी भव ॥२७॥

शेष उवाच

आधारोऽहं भविष्यामि मदाधारश्च को भवेत् । निराधारः कथं तोये तिष्ठामि कथय प्रभो ॥२८॥

श्रीभगवानुवाच

अहं च कमठो भूत्वा धारयिष्यामि ते तनुम् । महाभारमयीं दीर्घां मा शोचं कुरु मत्सखे ॥२९॥

श्रीनारद उवाच

तदा शेषः समुत्थाय नत्वा श्रीगरुडध्वजम् । जगाम नृप पातालादधो वै लक्षयोजनम् ॥३०॥
गृहीत्वा स्वकरेणेदं गरिष्ठं भूमिमंडलम् । दधार स्वफणे शेषोऽप्येकस्मिंश्चंडविक्रमः ॥३१॥
संकर्षणेऽथ पाताले गतेऽनन्तपरात्परे । अन्ये फणीन्द्रास्तमनु विविशुर्ब्रह्मणोदिताः ॥३२॥
अतले वितले केचित्सुतले च महातले । तलातले तथा केचित्संप्राप्तास्ते रसातले ॥३३॥
तेभ्यस्तु ब्रह्मणा दत्तं द्वीपं रमणकं भुवि । कालीयप्रमुखास्तस्मिन्नवसन्सुखसंवृताः ॥३४॥
इति ते कथितं राजन्कालियस्य कथानकम् । भुक्तिदं मुक्तिदं सारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥३५॥

इति श्रीगर्गसंहितायां वृन्दावनखण्डे नारदबहुलाश्वसंवादे शेषोपाख्यानवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

(कालियका गरुडके भयसे बचनेके लिये यमुना-जलमें निवासका रहस्य)

राजोवाच

द्वीपे रमणके ब्रह्मन् सर्पानन्यान्विना कथम् । एतन्मे ब्रूहि सकलं कालियस्याभवद्भयम् ॥ १ ॥

श्रीनारद उवाच

तत्र नागान्तको नित्यं नागसंघं जघान ह । गतक्षोभं चैकदा ते तार्क्ष्यं प्राहुर्भयातुराः ॥ २ ॥

नागा ऊचुः

हे गरुत्मन्नमस्तुभ्यं त्वं साक्षाद्विष्णुवाहनः । अस्मानत्सि यदा सर्पान्कथं नो जीवनं भवेत् ॥ ३ ॥

तस्माद्बलिं गृहाणाशु मासे मासे गृहात्पृथक् । वनस्पतिसुधान्नानामुपचारैर्विधानतः ॥ ४ ॥

गरुड उवाच

एकः सर्पस्तु मे देयो भवद्भिर्वा गृहात्पृथक् । कथं पचामि तमृते बलिं वीटकवत्परम् ॥ ५ ॥

श्रीनारद उवाच

तथाऽस्तु चोक्तास्ते सर्वे गरुडाय महात्मने । गोपीथायात्मनो राजन्नित्यं दिव्यं बलिं ददुः ॥ ६ ॥

कालियस्य गृहस्यापि समयोऽभूद्यदा नृप । तदा तार्क्ष्यबलिं सर्वं बुभुजे कालियो बलात् ॥ ७ ॥

तदाऽऽगतः प्रकुपितो वेगतः कालियोपरि । चकार पादविक्षेपं गरुडश्चंडविक्रमः ॥ ८ ॥

गरुडांघ्रिप्रहारेण कालियो मूर्च्छितोऽभवत् । पुनरुत्थाय जिह्वाभिः प्रावलीढन्मुखं श्वसन् ॥ ९ ॥

प्रसार्य्य स्वं फणशतं कालियः फणिनां वरः । व्यदशद्गरुडं वेगाद्द्विर्विषमयैर्बली ॥१०॥

गृहीत्वा तं च तुंडेन गरुडो दिव्यवाहनः । भूपृष्ठे पोथयामास पक्षाभ्यां ताडयन्मुहुः ॥११॥

कह सुनाया, जो सारभूत तथा भोग और मोक्ष देनेवाला है। अब और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ ३५ ॥

इति श्रीगर्गसँहितायां वृन्दावनखण्डे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायां त्रयदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

राजा बहुलाश्वने पूछा—हे ब्रह्मन् ! रमणकद्वीपमें रहनेवाले अन्य सर्पोंको छोड़कर केवल कालिय-नागको ही गरुडसे भय क्यों हुआ ? यह सारी बात आप मुझे बताइये ॥ १ ॥ श्रीनारदजीने कहा—हे राजन् ! रमणकद्वीपमें नागोंका विनाश करनेवाले गरुड प्रतिदिन जाकर बहुत-से नागोंका संहार करते थे। अतः एक दिन भयसे व्याकुल वहाँके सर्पोंने उस द्वीपमें पहुँचे हुए क्षुब्ध गरुडसे इस प्रकार कहा ॥ २ ॥ नाग बोले—हे गरुत्मन् ! तुम्हें नमस्कार है। तुम साक्षात् भगवान् विष्णुके वाहन हो। जब इस प्रकार हम सर्पोंको खाते रहोगे तो हमारा जीवन कैसे सुरक्षित रहेगा ॥ ३ ॥ इसलिये प्रत्येक मासमें एक बार पृथक्-पृथक् एक-एक घरसे एक सर्पकी बलि ले लिया करो। उसके साथ वनस्पति तथा अमृतके समान मधुर अन्नकी सेवा भी प्रस्तुत की जायगी। यह सब विधानके अनुसार तुम शीघ्र स्वीकार करो ॥ ४ ॥ गरुडजी बोले—आपलोग एक-एक घरसे एक-एक नागकी बलि प्रतिदिन दिया करें; अन्यथा सर्पके बिना दूसरी वस्तुओंकी बलिसे मैं कैसे पेट भर सकूँगा ? वह तो मेरे लिये पानके बीड़ेके तुल्य होगी ॥५॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! उनके यों कहनेपर सब सर्पोंने आत्मरक्षाके लिये एक-एक करके उन महात्मा गरुडके लिये नित्य दिव्य बलि देना आरम्भ किया ॥ ६ ॥ हे नरेश्वर ! जब कालियके घरसे बलि मिलनेका अवसर आया, तब उसने गरुडको दी जानेवाली बलिकी सारी वस्तुएँ बलपूर्वक स्वयं ही भक्षण कर लीं ॥ ७ ॥ उस समय प्रचण्ड पराक्रमी गरुड बड़े रोषमें भरकर आये। आते ही उन्होंने कालियनागके ऊपर अपने पंजेसे प्रहार किया ॥ ८ ॥ गरुडके उस पाद-प्रहारसे कालिय मूर्च्छित हो गया। फिर उठकर लंबी साँस लेते और जिह्वाओंसे मुँह चाटते हुए नागोंमें श्रेष्ठ बलवान् कालियने अपने सौ फण फैलाकर विषैले दाँतोंसे गरुडको वेगपूर्वक डँस लिया ॥ ९ ॥ १० ॥ तब दिव्य वाहन गरुडने उसे चोंचमें पकड़कर पृथ्वीपर दे मारा और पाँखोंसे बारंबार पीटना आरम्भ किया

तुंडाद्विनिर्गतः सर्पस्तत्पक्षान्विचकर्ष ह । तत्पादौ वेष्टयंस्तुद्यन्फूत्कारं व्यदधन्मुहुः ॥१२॥
तेषां तु दर्शनं पुण्यं सर्वकामफलप्रदम् । शुक्लपक्षे मैथिलेंद्र दशम्यामाश्विनस्य तत् ॥१३॥
कुपितो गरुडस्तं वै नीत्वा तुंडेन कालियम् । निपात्य भूम्यां सहसा तत्तनुं विचकर्ष ह ॥१४॥
तदा दुद्राव तत्तुंडात्कालियो भयविह्वलः । तमन्वधावत्सहसा पक्षिराट् चंडविक्रमः ॥१५॥
सप्त द्वीपान् सप्तखंडान्सप्तसिंधूंस्ततः फणी । यत्र यत्र गतस्तार्क्ष्यं तत्र तत्र ददर्श ह ॥१६॥
भूर्लोकं च भुवर्लोकं स्वर्लोकं प्रगतः फणी । महर्लोकं ततो धावञ्जनलोकं जगाम ह ॥१७॥
यत्रैव गरुडे प्राप्तेऽधोऽधो लोकं पुनर्गतः । श्रीकृष्णस्य भयात्केऽपि रक्षां तस्य न संदधुः ॥१८॥
कुत्रापि न सुखे जाते कालियोऽपि भयातुरः । जगाम देवदेवस्य शेषस्य चरणांतिके ॥१९॥
नत्वा प्रणम्य तं शेषं परिक्रम्य कृतांजलिः । दीनो भयातुरः प्राह दीर्घपृष्ठः प्रकंपितः ॥२०॥

कालिय उवाच

हेभूमिभर्तर्भुवनेश भूमन् भूभारहृत्त्वं ह्यसि भूरिलीलः ।
मां पाहि पाहि प्रभविष्णुपूर्णः परात्परस्त्वं पुरुषः पुराणः ॥२१॥

श्रीनारद उवाच

दीनं भयातुरं दृष्ट्वा कालियं श्रीफणीश्वरः । वाचा मधुरया प्रीणन्प्राह देवो जनार्दनः ॥२२॥

शेष उवाच

हे कालिय महाबुद्धे शृणु मे परमं वचः । कुत्रापि न हि ते रक्षा भविष्यति न संशयः ॥२३॥
आसीत्पुरा मुनिः सिद्धः सौभरिर्नाम नामतः । वृन्दारण्ये तपस्तप्तो वर्षाणामयुतं जले ॥२४॥
मीनराजविहारं यो वीक्ष्य गेहस्पृहोऽभवत् । स उवाह महाबुद्धिर्मांधातुस्तनुजाशतम् ॥२५॥

तस्मै ददौ हरिः साक्षात्परां भागवतीं श्रियम् । वीक्ष्य तां नृप मांधाता विस्मितोऽभूद्गतस्मयः २६॥
यमुनांतर्जले दीर्घं सौभरेस्तपतस्तपः । पश्यतस्तस्य गरुडो मीनराजं जघान ह ॥२७॥
मीनान्सुदुःखितान्दृष्ट्वा दुःखहा दीनवत्सलः । तस्मै शापं ददौ क्रुद्धः सौभरिर्मुनिसत्तमः ॥२८॥

सौभरिरुवाच

मीनानद्यतनादत्र यद्यत्सि त्वं बलाद्विराट् । तदैव प्राणनाशस्ते भूयान्मे शापतस्त्वरम् ॥२९॥

शेष उवाच

तद्दिनात्तत्र नायाति गरुडः शापविह्वलः । तस्मात्कालिय गच्छाशु वृंदारण्ये हरेर्वने ॥३०॥
कालिंद्यां च निजं वासं कुरु मद्वाक्यनोदितः । निर्भयस्ते भयं तार्क्ष्यान्न भविष्यति कर्हिचित् ३१॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्तः कालियो भीतः सकलत्रः सपुत्रकः । कालिंद्यां वासकृद्राजन् श्रीकृष्णेन विवासितः३२॥

इति श्रीगर्गसंहितायां वृन्दावनखंडे नारदबहुलाश्वसंवादे कालियोपाख्यानवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

(श्रीराधाका गवाक्षमार्गसे श्रीकृष्णके रूपका दर्शन करके प्रेम-विह्वल होना)

श्रीनारद उवाच

इदं मया ते कथितं कालियस्यापि मर्दनम् । श्रीकृष्णचरितं पुण्यं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ १ ॥

बहुलाश्व उवाच

श्रीकृष्णस्य कथां श्रुत्वा भक्तस्तृप्तिं न याति हि । यथाऽमरः सुधां पीत्वा यथालिः पद्मकर्णिकाम्॥ २ ॥
रासं कर्तुं हरौ जाते शिशुरूपे महात्मनि । भांडीरे देववागाह श्रीराधां खिन्नमानसाम् ॥ ३ ॥
शोचं मा कुरु कल्याणि वृंदारण्ये मनोहरे । मनोरथस्ते भविता श्रीकृष्णेन महात्मनि ॥ ४ ॥

सम्पत्ति प्रदान की, जिसे देखकर राजा मांधाता आश्चर्यचकित हो गये और उनका धनविषयक सारा अभिमान जाता रहा ॥ २६ ॥ यमुनाके जलमें जब सौभरि मुनिकी दीर्घकालिक तपस्या चल रही थी, उन्हीं दिनों उनके देखते-देखते गरुडने मीनराजको मार डाला ॥ २७ ॥ मीन-परिवारको अत्यन्त दुखी देखकर दूसरोंका दुःख दूर करनेवाले दीनवत्सल मुनिश्रेष्ठ सौभरिने कुपित हो गरुडको शाप दे दिया ॥२८॥ सौभरि बोले—हे पक्षिराज ! आजके दिनसे लेकर भविष्यमें यदि तुम इस कुण्डके भीतर बलपूर्वक मछलियोंको खाओगे तो मेरे शापसे उसी क्षण तुम्हारे प्राणोंका अन्त हो जायगा ॥ २९ ॥ शेषजी कहते हैं—उस दिनसे मुनिके शापसे भयभीत गरुड वहाँ कभी नहीं जाते । इसलिये हे कालिय ! तुम मेरे कहनेसे शीघ्र ही श्रीहरिके विपिन—वृन्दावनमें चले जाओ ॥ ३० ॥ वहाँ यमुनामें निर्भय होकर अपना निवास नियत कर लो । वहाँ कभी तुम्हें गरुडसे भय नहीं होगा ॥ ३१ ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! शेषनागके यों कहनेपर भयभीत कालिय अपने स्त्री-बालकोंके साथ कालिन्दीमें निवास करने लगा । फिर श्रीकृष्णने ही उसे यमुनाजलसे निकालकर बाहर किया ॥ ३२ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां वृन्दावनखण्डे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! यह मैंने तुमसे कालिय-मर्दनरूप पवित्र श्रीकृष्ण-चरित्र कहा । अब और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ १ ॥ बहुलाश्व बोले—हे देवर्षे ! जैसे देवता अमृत पीकर तथा भ्रमर कमल-कर्णिकाका रस चूसकर तृप्त नहीं होते, उसी प्रकार श्रीकृष्णकी कथा सुनकर कोई भी भक्त तृप्त नहीं होता (वह उसे अधिकाधिक सुनना चाहता है) ॥ २ ॥ जब शिशुरूपधारी परमात्मा श्रीकृष्ण रास करनेके लिये भाण्डीर-वनमें गये और उनका यह लघुरूप देखकर श्रीराधा मन-ही-मन खेद करने लगीं, तब देववाणीने कहा— ॥ ३ ॥ हे कल्याणि ! सोच न करो । मनोहर वृन्दावनमें महात्मा श्रीकृष्णके द्वारा तुम्हारा मनोरथ पूर्ण

इत्थं देवगिरा प्रोक्तो मनोरथमहार्णवः । कथं बभूव भगवान् वृंदारण्ये मनोहरे ॥ ५ ॥
कथं श्रीराधया सार्द्धं रासक्रीडां मनोहराम् । चकार वृंदकारण्ये परिपूर्णतमः स्वयम् ॥ ६ ॥

श्रीनारद उवाच

साधु पृष्टं त्वया राजन् भगवच्चरितं शुभम् । गुप्तं वदामि देवैश्च लीलाख्यानं मनोहरम् ॥ ७ ॥
एकदा मुख्यसख्यौ द्वे विशाखाललिते शुभे । वृषभानोर्गृहं प्राप्य तां राधां जग्मतू रहः ॥ ८ ॥

सख्यावूचतुः

यं चिन्तयसि राधे त्वं यद्गुणं वदसि स्वतः । सोऽपि नित्यं समायाति वृषभानुपुरेऽर्भकैः ॥ ९ ॥
प्रेक्षणीयस्त्वया राधे दर्शनीयोऽतिसुन्दरः । पश्चिमायां निशीथिन्यां गोचारणविनिर्गतः ॥१०॥

राधोवाच

लिखित्वा तस्य चित्रं हि दर्शयाशु मनोहरम् । तर्हि तत्प्रेक्षणं पश्चात्करिष्यामि न संशयः ॥११॥

श्रीनारद उवाच

अथ सख्यौ व्यलिखतां चित्रं नंदशिशोः शुभम् । नवयौवनमाधुर्यं राधायै ददतुस्त्वरम् ॥१२॥
तद्दृष्ट्वा हर्षिता राधा कृष्णदर्शनलालसा । चित्रं करे प्रपश्यन्ती सुष्वापानंदसङ्कुला ॥१३॥

ददर्श कृष्णं भवने शयाना घनप्रभं पीतपटं दधानम् ।
भाण्डीरदेशे यमुनां समेत्य नृत्यन्तमाराद्वृषभानुपुत्री ॥१४॥
तदैव राधा शयनात्समुत्थिता परस्य कृष्णस्य वियोगविह्वला ।
संचिन्तयन्ती कमनीयरूपिणं मेने त्रिलोकीं तृणवद्विदेहराट् ॥१५॥
तर्ह्यात्रजन्तं स्वभवनाद्व्रजेश्वरं सङ्कोचवीथ्यां वृषभानुपत्तने ।

कृष्णोऽपि दृष्ट्वा वृषभानुनन्दिनीं सुरूपकौशल्ययुतां गुणाश्रयाम् ।
कुर्वन्मनो रन्तुमतीव माधवो लीलातनुः स प्रययौ स्वमन्दिरम् ॥१७॥
एवं ततः कृष्णवियोगविह्वलां प्रभूतकामज्वरखिन्नमानसाम् ।
संवीक्ष्य राधां वृषभानुनन्दिनीमुवाच वाचं ललिता सखी वरा ॥१८॥

ललितोवाच

कथं त्वं विह्वला राधे मूर्छिताऽतिव्यथां गता । यदीच्छसि हरिं सुभ्रु तस्मिन् स्नेहं दृढं कुरु ॥१९॥
लोकस्यापि सुखं सर्वमधिकृत्यास्ति साम्प्रतम् । दुःखाग्निहृत्प्रदहति कुम्भकाराग्निवच्छुभे ॥२०॥

श्रीनारद उवाच

ललितायाश्च ललितं वचः श्रुत्वा व्रजेश्वरी । नेत्रे उन्मील्य ललितां प्राह गद्गदया गिरा ॥२१॥

राधोवाच

व्रजालङ्कारचरणौ न प्राप्तौ यदि मे किल । कदाचिद्विग्रहं तर्हि न हि स्वं धारयाम्यहम् ॥२२॥

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्या ललिता भयविह्वला । श्रीकृष्णपार्श्वं प्रययौ कृष्णातीरे मनोहरे ॥२३॥
माधवीजालसंयुक्ते मधुरध्वनिसङ्कुले । कदम्बमूले रहसि प्राह चैकाकिनं हरिम् ॥२४॥

ललितोवाच

यस्मिन् दिने च ते रूपं राधया दृष्टमद्भुतम् । तद्दिनात्स्तंभतां प्राप्ता पुत्रिकेव न वक्ति किम् ॥२५॥
अलंकारस्त्वर्चिरिव वस्त्रं भर्जरजो यथा । सुगंधिः कटुवद्यस्या मन्दिरं निर्जनं वनम् ॥२६॥
पुष्पं बाणं चन्द्रबिम्बं विषकन्दमवेहि भोः । तस्यै संदर्शनं देहि राधायै दुःखनाशनम् ॥२७॥

उनका दर्शन कराया। उन्हें देखते ही सुन्दरी श्रीराधा मूर्च्छित हो गयीं ॥ १६ ॥ लीलासे मानव-शरीर धारण करनेवाले माधव श्रीकृष्ण भी सुन्दर रूप और वैदग्ध्यसे युक्त गुणनिधि श्रीवृषभानुनन्दिनीका दर्शन करके मन-ही मन उनके साथ विहारकी अत्यधिक कामना करते हुए अपने भवनको लौटे ॥ १७ ॥ वृषभानु-नन्दिनी श्रीराधाको इस प्रकार श्रीकृष्ण-वियोगसे विह्वल तथा अतिशय कामज्वरसे संतप्तचित्त देखकर सखियोंमें श्रेष्ठ ललिताने उनसे इस प्रकार कहा ॥ १८ ॥ ललिताने पूछा—हे राधे ! तुम क्यों इतनी विह्वल, मूर्च्छित (वेसुध) और अत्यन्त व्यथित हो ? हे सुन्दरी ! यदि श्रीहरिको प्राप्त करना चाहती हो तो उनके प्रति अपना स्नेह दृढ़ करो ॥ १९ ॥ वे इस समय सारी त्रिलोकीके सम्पूर्ण सुखपर अधिकार किये बैठे हैं। हे शुभे ! वे ही तुम्हारी दुःखाग्निकी ज्वाला बुझा सकते हैं। उनकी उपेक्षा पैरोंसे ठुकरायी हुई कुम्हारके आँवेंकी अग्निके समान दाहक होगी ॥ २० ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! ललिताकी यह ललित बात सुनकर व्रजेश्वरी श्रीराधाने आँखें खोलीं और अपनी उस प्रिय सखीसे वे गद्गद वाणीमें यों बोलीं ॥२१॥ राधाने कहा—हे सखी ! यदि मुझे व्रजभूषण श्यामसुन्दरके चरणारविन्द नहीं प्राप्त हुए तो मैं कदापि अपने शरीरको नहीं धारण करूँगी—यह मेरा निश्चय है ॥ २२ ॥ नारदजी कहते हैं—हे मिथिलेश्वर ! श्रीराधाकी यह बात सुनकर ललिता भयसे विह्वल हो, यमुनाके मनोहर तटपर श्रीकृष्णके पास गयी ॥ २३ ॥ वे माधवीलताके जालसे आच्छन्न और भ्रमरोंकी गुञ्जारोंसे व्याप्त एकान्त प्रदेशमें कदम्बकी जड़के पास अकेले बैठे थे। वहाँ ललिताने श्रीहरिसे कहा ॥ २४ ॥ ललिता बोली—हे श्यामसुन्दर ! जिस दिनसे श्रीराधाने तुम्हारे अद्भुत मोहनरूपको देखा है, उसी दिनसे वह स्तम्भनस्वरूप सात्त्विकभावके अधीन हो गयी है। काठकी पुतलीकी भाँति किसीसे कुछ बोलती नहीं ॥ २५ ॥ अलंकार उसे अग्निकी ज्वालाकी भाँति दाहक प्रतीत होते हैं। सुन्दर वस्त्र भाड़की तपी हुई बालूके समान जान पड़ते हैं। उसके लिये हर प्रकारकी सुगन्ध कड़वी तथा परिचारिकाओंसे भरा हुआ भवन भी निर्जन वन हो गया है ॥ २६ ॥ हे प्यारे ! तुम यह जान लो कि तुम्हारे विरहमें मेरी सखीको फूल बाण-सा तथा चन्द्र-बिम्ब विषकंद-सा प्रतीत होता है। अतः श्रीराधाको तुम शीघ्र दर्शन दो। तुम्हारा दर्शन ही

ते साक्षिणः किं विदितं न भूतले सृजस्यलं पासि हरस्यथो जगत् ।
यदा समानोऽसि जनेषु सर्वतस्तथापि भक्तान्भजसे परेश्वर ॥२८॥

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वा हरिः साक्षाल्ललितं ललितावचः । उवाच भगवान् देवो मेघगम्भीरया गिरा ॥२९॥

श्रीभगवानुवाच

सर्वं हि भावं मनसः परस्परं नह्येकतो भामिनि जायते ततः ।
प्रेमैव कर्तव्यमतो मयि स्वतः प्रेम्णा समानं भुवि नास्ति किञ्चित् ॥३०॥
यथा हि भाण्डीरवने मनोरथो बभूव तस्या हि तथा भविष्यति ।
अहैतुकं प्रेम च सद्भिराश्रितं तच्चापि सन्तः किल निर्गुणं विदुः ॥३१॥
ये राधिकायां मयि केशवे मनाग्भेदं न पश्यन्ति हि दुग्धशौक्लवत् ।
त एव मे ब्रह्मपदं प्रयान्ति तदहैतुकस्फूर्जितभक्तिलक्षणाः ॥३२॥
ये राधिकायां मयि केशवे हरौ कुर्वन्ति भेदं कुधियो जना भुवि ।
ते कालसूत्रं प्रपतन्ति दुःखिता रम्भोरु यावत्किल चन्द्रभास्करौ ॥३३॥

श्रीनारद उवाच

इत्थं श्रुत्वा वचः कृत्स्नं नत्वा तं ललिता सखी । राधां समेत्य रहसि प्राह प्रहसिताननना ॥३४॥

ललितोवाच

त्वमिच्छसि यथा कृष्णं तथा त्वां मधुसूदनः । युवयोर्भेदरहितं तेजस्त्वैकं द्विधा जनैः ॥३५॥
तथापि देवि कृष्णाय कर्म निष्कारणं कुरु । येन ते वांछितं भूयाद्भक्त्या परमया सति ॥३६॥

श्रीनारद उवाच

राधोवाच

श्रीकृष्णस्य प्रसन्नार्थं परं सौभाग्यवर्धनम् । महापुण्यं वांछितदं पूजनं वद कस्यचित् ॥३८॥
त्वया भद्रे धर्मशास्त्रं गर्गाचार्यमुखाच्छ्रुतम् । तस्माद्व्रतं पूजनं वा ब्रूहि मह्यं महामते ॥३९॥

इति श्रीगर्गसंहितायां वृन्दावनखण्डे राधाकृष्णप्रेमोद्योगवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

अथ षोडशोऽध्यायः

(तुलसीका माहात्म्य और श्रीराधाद्वारा तुलसीसेवन-व्रतका अनुष्ठान)

श्रीनारद उवाच

राधावाक्यं ततः श्रुत्वा राजन्सर्वसखीवरा । चन्द्रानना प्रत्युवाच संविचार्य क्षणं हृदि ॥ १ ॥

चन्द्राननोवाच

परं सौभाग्यदं राधे महापुण्यं वरप्रदम् । श्रीकृष्णस्यापि लब्ध्यर्थं तुलसीसेवनं मतम् ॥ २ ॥
दृष्टा स्पृष्टाऽथवा ध्याता कीर्तिता नमिता स्तुता । रोपिता सिंचिता नित्यं पूजिता तुलसीष्टदा ॥ ३ ॥
नवधा तुलसीभक्तिं ये कुर्वंति दिने दिने । युगकोटिसहस्राणि ते यांति सुकृतं शुभे ॥ ४ ॥
यावच्छाखाप्रशाखाभिर्बीजपुष्पदलैः शुभैः । रोपिता तुलसी मर्त्यैर्वर्धते वसुधातले ॥ ५ ॥
तेषां वंशेषु ये जाता ये भविष्यंति ये गताः । आकल्पयुगसाहस्रं तेषां वासो हरेर्गृहे ॥ ६ ॥
यत्फलं सर्वपत्रेषु सर्वपुष्पेषु राधिके । तुलसीदलेन चैकेन सर्वदा प्राप्यते तु तत् ॥ ७ ॥
तुलसीप्रभवैः पत्रैर्यो नरः पूजयेद्धरिम् । लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवांभसा ॥ ८ ॥
सुवर्णभारशतकं रजतं यच्चतुर्गुणम् । तत्फलं समवाप्नोति तुलसीवनपालनात् ॥ ९ ॥

निष्काम कर्म करो, जिससे परा भक्तिके द्वारा तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो ॥ ३६ ॥ नारदजी कहते हैं—हे नरेश्वर ! ललिता सखीकी यह बात सुनकर राजेश्वरी श्रीराधाने सम्पूर्ण धर्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ चन्द्रानना सखीसे कहा ॥ ३७ ॥ श्रीराधा बोलीं—हे सखी ! तुम श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये किसी देवताकी ऐसी पूजा बताओ, जो परम सौभाग्यवर्द्धक, महान् पुण्यजनक तथा मनोवाञ्छित वस्तु देनेवाली हो ॥ ३८ ॥ हे भद्रे ! हे महामते ! तुमने गर्गाचार्यजीके मुखसे शास्त्र-चर्चा सुनी है । इसलिये तुम मुझे कोई व्रत या पूजन बताओ ॥ ३९ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां वृन्दावनखण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! श्रीराधाकी बात सुनकर समस्त सखियोंमें श्रेष्ठ चन्द्राननाने अपने हृदयमें एक क्षणतक कुछ करके फिर इस प्रकार उत्तर दिया ॥ १ ॥ चन्द्रानना बोलीं—हे राधे ! परमसौभाग्यदायक, महान् पुण्यजनक तथा श्रीकृष्णकी भी प्राप्तिके लिये वरदायक व्रत है—तुलसीकी सेवा ॥ २ ॥ मेरी रायमें तुलसी-सेवनका ही नियम तुम्हें लेना चाहिये । क्योंकि तुलसीका यदि स्पर्श, ध्यान, नाम-कीर्तन, स्तवन, आरोपण, सेचन और तुलसीदलसे ही नित्य पूजन किया जाय तो वह महान् पुण्यप्रद होता है । हे शुभे ! जो प्रतिदिन तुलसी की नौ प्रकारसे भक्ति करते हैं, वे कोटि सहस्र युगोंतक अपने उस सुकृतका उत्तम फल भोगते हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥ मनुष्योंकी लगायी हुई तुलसी जबतक शाखा, प्रशाखा, बीज, पुष्प और सुन्दर दलोंके साथ पृथ्वीपर बढ़ती रहती है, तबतक उनके वंशमें जो-जो जन्म लेते हैं, वे सब उन आरोपण करनेवाले मनुष्योंके साथ दो हजार कल्पोंतक श्रीहरिके धाममें निवास करते हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥ हे राधिके ! सम्पूर्ण पत्रों और पुष्पोंको भगवान्के चरणोंमें चढ़ानेसे जो फल मिलता है, वह एकमात्र तुलसीदलके अर्पणसे प्राप्त हो जाता है ॥ ७ ॥ जो मनुष्य तुलसीदलोंसे श्रीहरिकी पूजा करता है, वह जलमें पद्मपत्रकी भाँति पापसे कभी लिप्त नहीं होता ॥ ८ ॥ सौ भार सुवर्ण तथा चार सौ भार रजतके दानका जो

तुलसीकाननं राधे गृहे यस्यावतिष्ठति । तद्गृहं तीर्थरूपं हि न यांति यमकिंकराः ॥१०॥
सर्वपापहरं पुण्यं कामदं तुलसीवनम् । रोपयंति नराः श्रेष्ठास्ते न पश्यंति भास्करिम् ॥११॥
रोपणात्पालनात्सेकाद्दर्शनात्स्पर्शनान्नृणाम् । तुलसी दहते पापं वाङ्मनःकायसंचितम् ॥१२॥
पुष्कराद्यानि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा । वासुदेवादयो देवा वसन्ति तुलसीदले ॥१३॥
तुलसीमञ्जरीयुक्तो यस्तु प्राणान्विमुंचति । यमोऽपि नेक्षितुं शक्तो युक्तं पापशतैरपि ॥१४॥
तुलसीकाष्ठजं यस्तु चंदनं धारयेन्नरः । तद्देहं न स्पृशेत्पापं क्रियमाणमपीह यत् ॥१५॥
तुलसीविपिनच्छाया यत्र यत्र भवेच्छुभे । तत्र श्राद्धं प्रकर्तव्यं पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥१६॥
तुलस्याः सखि माहात्म्यमादिदेवश्चतुर्मुखः । न समर्थो भवेद्वक्तुं यथा देवस्य शार्ङ्गिणः ॥१७॥
श्रीकृष्णचन्द्रचरणे तुलसीं चन्दनैर्युताम् । यो ददाति पुमान् स्त्री वा यथोक्तं फलमाप्नुयात् १८॥
तुलसीसेवनं नित्यं कुरु त्वं गोपकन्यके । श्रीकृष्णो वश्यतां याति येन वा सर्वदैव हि ॥१९॥

श्रीनारद उवाच

इत्थं चन्द्राननावाक्यं श्रुत्वा रासेश्वरी नृप । तुलसीसेवनं साक्षादारेभे हरितोपणम् ॥२०॥
केतकीवनमध्ये च शतहस्तं सुवर्तुलम् । उच्चैर्हेमखचिद्भित्तिपद्मरागतटं शुभम् ॥२१॥
हरिद्धीरकमुक्तानां प्राकारेण महोल्लसत् । सर्वतस्तोलिकायुक्तं चिंतामणिसुमंडितम् ॥२२॥
हेमध्वजसमायुक्तमुत्तोरणविराजितम् । हैमैर्वितानैः परितो वैजयन्तमिव स्फुरत् ॥२३॥
एतादृशं श्रीतुलसीमन्दिरं सुमनोहरम् । तन्मध्ये तुलसीं स्थाप्य हरित्पल्लवशोभिताम् ॥२४॥
अभिजिन्नामनक्षत्रे तत्सेवां सा चकार ह । समाहृतेन गर्गेण दिष्टेन विधिना सती ॥२५॥

श्रीकृष्णतोषणार्थाय भक्त्या परमया सती। इषुपूर्णां समारभ्य चैत्रपूर्णावधि व्रतम् ॥२६॥
कृत्वा न्यषिंचद्दुग्धेन तथा चेक्षुरसेन वै। द्राक्षयाऽऽम्ररसेनापि सितया बहुमिष्टया ॥२७॥
पंचामृतेन तुलसीं मासे मासे पृथक् पृथक्। उद्यापनसमारम्भं वैशाखप्रतिपद्दिने ॥२८॥
गर्गादिष्टेन विधिना वृषभानुसुता नृप। षट्पंचाशत्तसैर्भोगैर्ब्राह्मणानां द्विलक्षकम् ॥२९॥
संतर्प्य वस्त्रभूषाद्यैर्दक्षिणां राधिका ददौ। दिव्यानां स्थूलमुक्तानां लक्षभारं विदेहराट् ॥३०॥
कोटिभारं सुवर्णानां गर्गाचार्याय सा ददौ। शतभारं सुवर्णानां मुक्तानाञ्च तथैव हि ॥३१॥
भक्त्या परमया राधा ब्राह्मणे ब्राह्मणे ददौ। देवदुन्दुभयो नेदुर्ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥
तन्मन्दिरोपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे ॥३२॥

तदाऽऽविरासीत्तुलसी हरिप्रिया सुवर्णपीठोपरि शोभितासना।
चतुर्भुजा पद्मपलाशवीक्षणा श्यामा स्फुरद्धेमकिरीटकुण्डला ॥३३॥
पीताम्बराच्छादितसर्पवेणीं स्रजं दधानां नववैजयन्तीम्।
खगात्समुत्तीर्य च रङ्गवल्ली चुचुम्ब राधां परिरभ्य बाहुभिः ॥३४॥

तुलस्युवाच

अहं प्रसन्नाऽस्मि कलावतीसुते त्वद्भक्तिभावेन जिता निरन्तरम्।
कृतं च लोकव्यवहारसंग्रहात्त्वया व्रतं भामिनि सर्वतोमुखम् ॥३५॥
मनोरथस्ते सफलोऽत्र भूयाद्बुद्धीन्द्रियैश्चित्तमनोभिरग्रतः।
सदानुकूलत्वमलं पतेः परं सौभाग्यमेवं परिकीर्तनीयम् ॥३६॥

उनकी सेवा प्रारम्भ की ॥ २४ ॥ श्रीगर्गजीको बुलाकर उनकी बतायी हुई विधिसे सती श्रीराधाने बड़े भक्ति-भावसे श्रीकृष्णको संतुष्ट करनेके लिये आश्विन शुक्ला पूर्णिमासे लेकर चैत्र पूर्णिमातक तुलसी-सेवन व्रतका अनुष्ठान किया ॥ २५ ॥ २६ ॥ व्रत आरम्भ करके उन्होंने प्रतिमास पृथक्-पृथक् रसोंसे तुलसीको सींचा। कार्तिकमें दूधसे, मार्गशीर्षमें ईखके रससे, पौषमें अंगूरके रससे, माघमें बारहमासी आमके रससे, फाल्गुन मासमें अनेक वस्तुओंसे मिश्रित मिश्रीके रससे और चैत्र मासमें पञ्चामृतसे उसका सेचन किया। हे नरेश्वर ! इस प्रकार व्रत पूरा करके वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाने गर्गजीकी बतायी हुई विधिसे वैशाख कृष्ण प्रतिपदाके दिन उद्यापनका उत्सव किया ॥ २७ ॥ २८ ॥ उन्होंने दो लाख ब्राह्मणोंको छप्पन भोगोंसे तृप्त करके वस्त्र और आभूषणोंके साथ दक्षिणा दी ॥ २९ ॥ हे विदेहराज ! मोटे-मोटे दिव्य मोतियोंका एक लाख भार और सुवर्णका एक कोटि भार श्रीगर्गाचार्यजीको दिया। सौ-सौ भार सोना और मोती परम भक्तिके साथ राधाने एक-एक ब्राह्मणको दिया ॥ ३० ॥ ३१ ॥ उस समय आकाशमें देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं, अप्सराओंका नृत्य होने लगा और देवता लोग उस तुलसी-मन्दिरके ऊपर दिव्य पुष्पोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३२ ॥ उस समय सुवर्णमय सिंहासनपर विराजमान हरिप्रिया तुलसीदेवी प्रकट हुईं। उनके चार भुजाएँ थीं। कमलदलके समान विशाल नेत्र थे। सोलह वर्षकी-सी अवस्था एवं श्याम कान्ति थी। मस्तकपर हेममय किरीट प्रकाशित था और कानोंमें काञ्चनमय कुण्डल झलमला रहे थे। पीताम्बरसे आच्छादित केशोंकी बँधी हुई नागिन-जैसी वेणीमें वैजयन्ती माला धारण किये, गरुडसे उतरकर तुलसीदेवीने रङ्गवल्ली-जैसी श्रीराधाको अपनी भुजाओंसे अङ्कमें भर लिया और उनके मुखचन्द्रका चुम्बन किया ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ तुलसी बोलीं—हे कमलावती-कुमारी राधे ! मैं तुम्हारे भक्ति-भावके वशीभूत होकर परम प्रसन्न हूँ। हे भामिनि ! तुमने केवल लोकसंग्रहकी भावनासे इस सर्वतोमुखी व्रतका अनुष्ठान किया है (वास्तवमें तो तुम पूर्णकाम हो)। यहाँ इन्द्रिय, मन, बुद्धि और चित्तद्वारा जो-जो मनोरथ तुमने किया है, वह सब तुम्हारे सम्मुख सफल हो। पति सदा तुम्हारे अनुकूल हों और इसी प्रकार कीर्तनीय परम सौभाग्य बना रहे

श्रीनारद उवाच

एवं वदन्तीं तुलसीं हरिप्रियां नत्वाऽथ राधा वृषभानुनन्दिनी ।
प्रत्याह गोविन्दपदारविन्दयोर्भक्तिर्भवेन्मे विदिता ह्यहैतुकी ॥३७॥
तथाऽस्तु चोक्ता तुलसी हरिप्रियाऽथान्तर्दधे मैथिल राजसत्तम ।
तदैव राधा वृषभानुनन्दिनी प्रसन्नचित्ता स्वपुरे बभूव ह ॥३८॥
श्रीराधिकाख्यानमिदं विचित्रं शृणोति यो भक्तिपरः पृथिव्याम् ।
त्रैवर्ग्यभावं मनसा समेत्य राजंस्ततो याति नरः कृतार्थताम् ॥३९॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीवृंदावनखंडे तुलसीपूजनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

(श्रीकृष्णका गोपदेवीके रूपमें वृषभानु-भवनमें जाकर श्रीराधासे मिलना)

श्रीबहुलाश्व उवाच

राधाकृष्णस्य चरितं शृण्वतो मे मनो मुने । न तृप्तिं याति शरदः पङ्कजे भ्रमरो यथा ॥ १ ॥
रासेश्वर्या कृष्णपत्न्या तुलसीसेवने कृते । यद्बभूव ततो ब्रह्मंस्तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥ २ ॥

श्रीनारद उवाच

राधिकायाश्च विज्ञाय तुलसीसेवने तपः । प्रीतिं परीक्षञ्छ्रीकृष्णो वृषभानुपुरं ययौ ॥ ३ ॥
अद्भुतं गोपिकारूपं चलज्झङ्कारनूपुरम् । किङ्किणीघण्टिकाशब्दमङ्गुलीयकभूषितम् ॥ ४ ॥
रत्नकङ्कणकेयूरमुक्ताहारविराजितम् । बालार्कताटंकलसत्कबरीपाशकौशलम् ॥ ५ ॥
नासामौक्तिकदिव्याभं श्यामकुन्तलसङ्कुलम् । धृत्वाऽसौ वृषभानोश्च मन्दिरं सन्ददर्श ह ॥ ६ ॥

प्राकारपरिखायुक्तं चतुर्द्वारसमन्वितम् । करीन्द्रैः कज्जलाकारैर्द्वारि द्वारि मनोहरम् ॥ ७ ॥
वायुवेगैर्मनोवेगैश्चित्रवर्णैस्तुरङ्गमैः । हारचामरसंयुक्तं प्रोल्लसन्मण्डपाजिरम् ॥ ८ ॥
गवां गणैः सवत्सैश्च वृषैर्धर्मधुरन्धरैः । गोपाला यत्र गायन्ते वंशीवेत्रधरा नृप ॥ ९ ॥
वृषभानुवरस्यैवं पश्यन् मन्दिरकौशलम् । मायायुवतिवेषोऽसौ ततो ह्यन्तःपुरं ययौ ॥१०॥
यत्र कोटिरविस्फूर्जत्कपाटस्तम्भपंक्तयः । रत्नाजिरेषु शोभन्ते ललनारत्नसंयुताः ॥११॥
वीणातालमृदङ्गादीन्वादयन्त्यो मनोहराः । पुष्पयष्टिसमायुक्ता गायन्त्यो राधिकागुणम् ॥१२॥
तस्मिन्नन्तःपुरे दिव्यं भ्राजच्चोपवनं महत् । दाडिमीकुन्दमन्दारनिंबूनतद्रुमावृतम् ॥१३॥
केतकीमालतीवृंदैर्माधवीभिर्विराजितम् । तत्र राधानिकुञ्जोऽस्ति कल्पवृक्षसुगन्धिभृत् ॥१४॥
पतन्ति यत्र भ्रमरा मधुमत्ता नृपेश्वर । गन्धाक्तः शीतलो वायुर्मन्दगामी वहत्यलम् ॥१५॥
सहस्रदलपद्मानां रजो विक्षेपयन्मुहुः । पुंस्कोकिला कोकिलाश्च मयूराः सारसाः शुकाः ॥१६॥
कूजन्ते मधुरं नादं निकुञ्जशिखरेषु च । पुष्पशय्यासहस्राणि जलकुल्याः सहस्रशः ॥१७॥
प्रोच्छलन्ति स्फुरत्स्फारा यत्र वै मेघमन्दिरे । बालार्ककुण्डलधराश्चित्रवस्त्राम्बराननाः ॥१८॥
वर्त्तन्ते कोटिशो यत्र सख्यस्तत्कर्मकौशलाः । तन्मध्ये राधिका राज्ञी भ्रमन्ती मन्दिराजिरे ॥१९॥
काश्मीरपंकसंयुक्ते सूक्ष्मवस्त्रविराजिते । शिरीषपुष्पक्षितिजदलैरागुल्फपूरके ॥२०॥
मालतीमकरन्दानां क्षरद्भिर्बिन्दुभिर्वृते । कोटिचन्द्रप्रतीकाशा तन्वी कोमलविग्रहा ॥
शनैः शनैः पादपद्मं चालयन्ती च कोमलम् ॥२१॥

मध्य भवनको देखा ॥ ६ ॥ खाईं और परकोटोंसे युक्त वह वृषभानुभवन चार दरवाजोंसे सुशोभित था तथा प्रत्येक द्वारपर काजलके समान वर्णवाले गजराज झूमते थे, जिससे उस राजभवनकी मनोहरता बढ़ गयी थी ॥ ७ ॥ उस मण्डपका प्राङ्गण वायु तथा मनके समान वेगशाली एवं हार और चँवरोंसे सुसज्जित विचित्र वर्णवाले अश्वोंसे शोभा पा रहा था ॥ ८ ॥ हे नरेश्वर ! सवत्सा गौओंके समुदाय तथा धर्मधुरंधर वृषभवृन्दसे भी उस भवनकी बड़ी शोभा हो रही थी। बहुत-से गोपाल वहाँ वंशी और बेंत धारण किये गीत गा रहे थे ॥ ९ ॥ वृषभानुवरके भवनका निर्माणकौशल निरखते हुए मायामयी युवतीका वेष धारण किये श्यामसुन्दर उसके प्राङ्गणमें प्रविष्ट हुए ॥ १० ॥ जहाँ कोटि सूर्योंके समान कान्तिमान् कपाटों और खंभोंकी पंक्तियाँ प्रकाश फैला रही थीं। वहाँके रत्न-मण्डित आँगनोंमें बहुत-सी रत्न-स्वरूपा ललनाएँ सुशोभित हो रही थीं ॥ ११ ॥ वीणा, ताल और मृदङ्ग आदि बाजे बजाती हुई वे मनोहारिणी गोपसुन्दरियाँ फूलोंकी छड़ी लिये श्रीराधिकाके गुण गा रही थीं ॥ १२ ॥ उस अन्तःपुरमें दिव्य एवं विशाल उपवनकी छटा छा रही थी। उसके भीतर अनार, कन्द, मन्दार, नीबू तथा अन्य ऊँचे ऊँचे वृक्ष लहलहा रहे थे ॥ १३ ॥ केतकी, मालती और माधवी लताएँ उस उपवनको सुशोभित करती थीं। वहीं श्रीराधाका निकुञ्ज था, जिसमें कल्पवृक्षके पुष्पोंकी सुगन्ध भरी थी ॥ १४ ॥ हे नृपेश्वर ! उस उपवनमें मधु पीकर मतवाले भौंरे टूटे पड़ते थे। वहाँ शीतल मन्द-सुगन्ध वायु चल रही थी ॥ १५ ॥ जो सहस्रदल कमलोंके परागको बारंबार बिखेरा करती थी। उस उद्यानमें निकुञ्ज-शिखरोंपर बैठे हुए नर-कोकिल, मादा-कोकिल, मोर, सारस और शुक पक्षी मीठी आवाजमें बोल रहे थे। वहाँ फूलोंकी सहस्रों शय्याएँ सज्जित थीं और पानीकी हजारों नहरें बह रही थीं ॥१६॥१७॥ वहाँके मेघ-मन्दिरमें सैकड़ों फुहारे छूट रहे थे। बालसूर्यके समान कान्तिमान् कुण्डल तथा विचित्र वर्णवाले वस्त्र धारण किये करोड़ों सुन्दरमुखी सखियाँ वहाँ श्रीराधाके सेवा-कार्यमें अपनी कुशलताका परिचय देती थीं। उनके बीचमें श्रीराधिका रानी उस राजमन्दिरमें टहल रही थीं ॥ १८ ॥ १९ ॥ वह राजमन्दिर केसरिया रंगके सूक्ष्म वस्त्रोंसे सजाया गया था। वहाँकी भूमिपर पर्वतीय पुष्प, जलज पुष्प तथा स्थलपर उत्पन्न होनेवाले बहुत-से पुष्प और कोमल पल्लव इतनी अधिक संख्यामें बिछाये गये थे कि वहाँ पाँव रखनेपर गुल्फ (घुटना) तकका भाग ढँक जाता था

समागतां तां मणिमन्दिराजिरे ददर्श राधा वृषभानुनन्दिनी ।
यत्तेजसा तल्ललनाहृतत्विषो जातास्त्वरं चन्द्रमसेव तारकाः ॥२२॥
विज्ञाय तद्गौरवमुत्तमं महदुत्थाय दोर्भ्यां परिरभ्य राधिका ।
दिव्यासने स्थाप्य सुलोकरीत्या जलादिकं चार्हणमारभत्शुभम् ॥२३॥

राधोवाच

स्वागतं ते सखि शुभे नामधेयं वदाशु मे । भूरिभाग्यं ममैवाद्य भवत्याऽऽगतया स्वतः ॥२४॥
त्वत्समानं दिव्यरूपं दृश्यते न हि भूतले । यत्र त्वं वर्तसे सुभ्रु पत्तनं धन्यमेव तत् ॥२५॥
वद देवि सविस्तारं हेतुमागमनस्य च । मम योग्यं च यत्कार्यं वक्तव्यं तत्त्वया खलु ॥२६॥
कटाक्षेण सुदीप्त्या च वचसा सुस्मितेन वै । गत्या कृत्या श्रीपतिवद्दृश्यते सांप्रतं मया ॥२७॥
नित्यं शुभे मे मिलनार्थमाव्रज न चेत्स्वसंकेतमलं विधेहि ।
येनैव संगो विधिना भवेद्धि विधिर्भवत्या स सदा विधेयः ॥२८॥
अयि त्वदात्माऽतिपरं प्रियो मे त्वदाकृतिः श्रीव्रजराजनन्दनः ।
येनैव मे देवि हृतं तु चेतस्त्वया ननान्देव वधूर्दधामि तम् ॥२९॥

श्रीनारद उवाच

एवं राधावचः श्रुत्वा मायायुवतिवेषधृक् । उवाच भगवान्कृष्णो राधां कमललोचनाम् ॥३०॥

श्रीभगवानुवाच

रम्भोरु नन्दनगरे नन्दगेहस्य चोत्तरे । गोकुले वसतिर्मेऽस्ति नाम्नाऽहं गोपदेवता ॥३१॥
त्वद्रूपगुणमाधुर्यं श्रुतं मे ललितामुखात् । तद्द्रष्टुं चंचलापाङ्गि त्वद्गृहेऽहं समागता ॥३२॥

श्रीमल्लवङ्गलतिकास्फुटमोदिनीनां गुञ्जानिकुञ्जमधुपध्वनिकुञ्जपुञ्जम् ।
दृष्टं श्रुतं नवनवं तव कञ्जनेत्रे दिव्यं पुरन्दरपुरेऽपि न यत्समानम् ॥३३॥

श्रीनारद उवाच

एवं तयोर्मेलनं तद्बभूव मिथिलेश्वर । प्रीतिं परस्परं कृत्वा वने तत्र विरेजतुः ॥३४॥
हसन्त्यौ ते च गायन्त्यौ पुष्पकन्दुकलीलया । पश्यन्त्यौ वनवृक्षांश्च चेरतुर्मैथिलेश्वर ॥३५॥
कलाकौशलसम्पन्नां राधां कमललोचनाम् । गिरा मधुरया राजन् प्राहेदं गोपदेवता ॥३६॥

गोपदेवतोवाच

दूरे वै नन्दनगरं सन्ध्या जाता व्रजेश्वरि । प्रभाते चागमिष्यामि त्वत्सकाशं न संशयः ॥३७॥

श्रीनारद उवाच

श्रुत्वा वचस्तस्य तु तद्व्रजेश्वरीं निक्षिप्य सद्यो नयनांबुसन्ततिम् ।
रोमांचहर्षोद्गमभावसंवृता रंभेव भूमौ पतिता मरुद्धता ॥३८॥
शंकागतास्तत्र सखीगणास्त्वरं सुवीजयन्त्यो व्यजनैर्व्यवस्थिताः ।
श्रीखण्डपुष्पद्रवचर्चितांऽशुकां जगाद राधां नृप गोपदेवता ॥३९॥

गोपदेवतोवाच

प्रभाते आगमिष्यामि मा शोकं कुरु राधिके । गोश्च भ्रातुर्गोरसस्य शपथो मे न चेदिदम् ॥४०॥

श्रीनारद उवाच

एवमुक्त्वा हरी राधां समाश्वास्य नृपेश्वर । मायायुवतिवेषोऽसौ ययौ श्रीनन्दगोकुलम् ॥४१॥

इति श्रीगर्गसंहितायां वृन्दावनखण्डे राधाकृष्णसंगमो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥



॥ ३१ ॥ मैंने ललिताके मुखसे तुम्हारी रूप-माधुरी और गुण-माधुरीका वर्णन सुना है। अत: हे चञ्चल लोचनोंवाली सुन्दरी ! मैं तुम्हें देखनेके लिये यहाँ तुम्हारे घरमें चली आयी हूँ ॥ ३२ ॥ हे कमललोचने ! जहाँ ललित लवङ्गलताकी सुस्पष्ट सुगन्ध छा रही है, जहाँके गुञ्जा-निकुञ्जमें मधुपोंकी मधुर ध्वनिसे युक्त कंजपुष्प खिल रहे हैं, वह श्रुतिपथमें आया हुआ तुम्हारा नित्य-नूतन दिव्य नगर आज अपनी आँखों देख लिया। इसके समान सुन्दर तो देवराज इन्द्रकी पुरी अमरावती भी नहीं होगी ॥ ३३ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे मिथिलेश्वर ! इस प्रकार दोनों प्रिया-प्रियतमका मिलन हुआ। वे परस्पर प्रीतिका परिचय देते हुए वहाँ उपवनमें शोभा पाने लगे ॥ ३४ ॥ पुष्पमय कन्दुक (गेंद) के खेल खेलते हुए वे दोनों हँसते और गीत गाते थे। वनके वृक्षोंको देखते हुए वे इधर-उधर विचरने लगे ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! कला-कौशलसे सम्पन्न कमललोचना राधाको सम्बोधित करके गोपदेवीने मधुर वाणीमें कहा ॥ ३६ ॥ गोपदेवी बोली—हे व्रजेश्वरी ! नन्दनगर यहाँसे दूर है और अब संध्या हो गयी है, अत: जाती हूँ। कल प्रात:काल तुम्हारे पास आऊँगी, इसमें संशय नहीं है ॥३७॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! गोपदेवीकी यह बात सुनकर व्रजेश्वरी श्रीराधाके नयनोंसे तत्काल आँसुओंकी धारा बह चली। वे रोमाञ्च तथा हर्षोद्गमके भावसे आवृत हो कटे हुए कदलीवृक्षकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ीं ॥ ३८ ॥ यह देख वहाँकी सखियाँ सशङ्क हो गयीं और तुरन्त व्यजन लेकर, पास खड़ी हो, हवा करने लगीं। उनके वस्त्रोंपर चन्दन-पुष्पोंके इत्र छिड़के गये। उस समय गोपदेवीने श्रीराधासे कहा ॥ ३९ ॥ गोपदेवी बोली—हे राधिके ! मैं प्रात:काल अवश्य आऊँगी, तुम चिन्ता न करो। यदि ऐसा न हो तो मुझे गाय, गोरस और अपने भाईकी सौगन्ध है ॥ ४० ॥ नारदजी कहते हैं—हे नृपेश्वर ! यों कहकर मायासे युवतीका वेप धारण करनेवाले श्रीहरि राधाको धीरज बँधाकर श्रीनन्दगोकुल (नन्दगाँव) को चले गये ॥ ४१ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां वृन्दावनखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्याय: ॥ १७ ॥

अथ अष्टादशोऽध्यायः

(श्रीकृष्णके द्वारा गोपदेवीरूपसे श्रीराधाके प्रेमकी परीक्षा तथा श्रीराधाको श्रीकृष्णका दर्शन)

श्रीनारद उवाच

अथ रात्र्यां व्यतीतायां मायायोपिद्वपुर्हरिः । राधादुःखप्रशान्त्यर्थं वृषभानोर्गृहं ययौ ॥ १ ॥
राधा तमागतं वीक्ष्य समुत्थायातिहर्षिता । दत्तासना विधानेन पूजयामास मैथिल ॥ २ ॥

श्रीराधोवाच

त्वया विनाऽहं निशि दुःखिताऽऽसं त्वय्यागतायां सखि लब्धवस्तुवत् ।
पूर्वं ह्यपथ्यस्य सुखं यथा ततो दुःखं तथा भामिनि मत्प्रसंगतः ॥ ३ ॥

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वाऽथ तद्वाक्यं विमना गोपदेवता । न किंचिदूचे श्रीराधां दुःखितेव व्यवस्थिता ॥ ४ ॥
विज्ञाय खेदसंपन्नां राधिकां गोपदेवताम् । सखीभिः संविचार्याथ जगाद स्नेहतत्परा ॥ ५ ॥

राधोवाच

विमनास्त्वं कथं भद्रे वद मां गोपदेवते । मात्रा भर्त्रा ननांद्रा वा श्वश्वा क्रोधेन भर्त्सिता ॥ ६ ॥
सपत्नीकृतदोषेण स्वभर्तुर्विरहेण वा । अन्यत्र लग्नचित्तेन विमनाः किं मनोहरे ॥ ७ ॥
मार्गखेदेन वा कच्चिद्विह्वलाऽभूद्रुजाऽथवा । शीघ्रं वद महाभागे स्वस्य दुःखस्य कारणम् ॥ ८ ॥
कृष्णभक्तमृते विप्रं येन केनापि कुत्सितम् । कथितं तेऽथ रंभोरु तच्चिकित्सां करोम्यहम् ॥ ९ ॥
गजाश्वादीनि रत्नानि वस्त्राणि च धनानि च । मन्दिराणि विचित्राणि गृहाण त्वं यदीच्छसि ॥१०॥
धनं दत्त्वा तनुं रक्षेत्तनुं दत्त्वा त्रपां व्यधात् । धनं तनुं त्रपां दद्यान्मित्रकार्यार्थमेव हि ।

यो मित्रतां निष्कपटं करोति निष्कारणं धन्यतमः स एव ।
विधाय मैत्रीं कपटं विदध्यात्तं लंपटं हेतुपटं नटं धिक् ॥१२॥
तस्याः प्रेमवचः श्रुत्वा भगवान् गोपदेवता । प्रहसन्नाह राजेन्द्र श्रीराधां कीर्तिनन्दिनीम् ॥१३॥

गोपदेवतोवाच

राधे व्रजन्सानुगिरेस्तटीपु संकोचवीथीपु मनोहरासु ।
यान्तीं स्वतो मां दधिविक्रयार्थं रुरोध मार्गे नवनन्दपुत्रः ॥१४॥
वंशीधरो वेत्रकरः करे मां त्वरं गृहीत्वा प्रहसन्विलज्जः ।
मह्यं करादानधनाय दानं देहीति जल्पन्विपिने रसज्ञः ॥१५॥
तुभ्यं न दास्यामि कदापि दानं स्वयंभुवे गोरसलंपटाय ।
एवं मयोक्ते वचनेऽथ भाण्डं नीत्वा विशीर्णीकृतवान्स दध्नः ॥१६॥
भाण्डं स भित्त्वा दधि किंच पीत्वा नीत्वोत्तरीयं मम चेदुरीयम् ।
नन्दीश्वराद्रेर्विदिशं जगाम तेनाहमाराद्विमनाः स्म जाता ॥१७॥
जात्या स गोपः किल कृष्णवर्णोऽधनी न वीरो न हि शीलरूपः ।
यस्मिंस्त्वया प्रेम कृतं सुशीले त्यजाशु निर्मोहनमद्य कृष्णम् ॥१८॥
इत्थं सवैरं परुपं वचस्तच्छ्रुत्वा च राधा वृषभानुनन्दिनी ।
सुविस्मिता वाक्यपदे सरस्वतीपदं स्मयन्ती निजगाद तां प्रति ॥१९॥

राधोवाच

यत्प्राप्तये विधिहरप्रमुखास्तपन्ति वह्नौ तपः परमया निजयोगरीत्या ।
दत्तः शुकः कपिल आसुरिरंगिरा यत्पादारविन्दमकरन्दरजः स्पृशन्ति ॥२०॥

प्राणोंकी रक्षा करे ॥ ११ ॥ जो विना किसी कारण या कामनाके निश्छलभावसे मित्रताका निर्वाह करता है, वही मनुष्य परम धन्य है। जो मैत्री स्थापित करके कपट करता है, उस स्वार्थ-साधनमें पटु लम्पट नटको धिक्कार है ॥ १२ ॥ हे राजेन्द्र ! उनका यह प्रेमपूर्ण वचन सुनकर गोपदेवीके रूपमें आये हुए भगवान् उन कीर्तिनन्दिनी श्रीराधासे हँसते हुए बोले ॥ १३ ॥ गोपदेवीने कहा—हे राधे ! वरसानागिरिकी घाटियोंमें जो मनोहर साँकरी गली है, उसीसे होकर मैं स्वयं दही वेचने जा रही थी। इतनेमें नन्दजीके नवतरुण कुमार श्यामसुन्दरने मुझे मार्गमें रोक लिया ॥ १४ ॥ उनके हाथमें वंशी और वेंतकी छड़ी थी। उन रसिकशेखरने लाजको तिलाञ्जलि दे, तुरंत मेरा हाथ पकड़ लिया और जोर-जोरसे हँसते हुए, उस एकान्त वनमें वे इस प्रकार कहने लगे—हे सुन्दरी ! मैं कर लेनेवाला हूँ। अतः तू मुझे करके रूपमें दहीका दान दे ॥ १५ ॥ मैंने कहा—'चलो, हटो। अपने-आप कर लेनेवाले बने हुए तुम-जैसे गोरस-लम्पटको मैं कदापि दान नहीं दूँगी।' मेरे इतना कहते ही उन्होंने सिरपरसे दहीका मटका उतार लिया और उसे फोड़ डाला ॥ १६ ॥ मटका फोड़कर थोड़ी-सी दही पीकर मेरी चादर उतार ली और नन्दीश्वर गिरिकी ईशानकोणवाली दिशाकी ओर चल दिये। इससे मैं बहुत अनमनी हो रही हूँ ॥ १७ ॥ जातिका ग्वाला, काला-कलूटा रंग, न धनवान् न वीर, न सुशील और न सुरूप ? हे सुशीले ! ऐसे पुरुषपर तुमने प्रेम किया, यह ठीक नहीं है। मैं कहती हूँ, तुम आजसे शीघ्र ही उस निर्मोही कृष्णको मनसे निकाल दो (उसे सर्वथा त्याग दो) ॥ १८ ॥ इस प्रकार वैरभावसे युक्त कठोर वचन सुनकर वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाको बड़ा विस्मय हुआ। वे वाक्य और पदोंके प्रयोगके सम्बन्धमें सरस्वतीके चरणोंका स्मरण करती हुई उनसे वोलीं ॥ १९ ॥ श्रीराधाने कहा—हे सखी ! जिनकी प्राप्तिके लिये ब्रह्मा और शिव आदि देवता अपनी उत्कृष्ट योगरीतिसे पञ्चाग्निसेवनपूर्वक तप करते हैं; दत्तात्रेय, शुक, कपिल, आसुरि और अङ्गिरा आदि भी जिनके चरणारविन्दोंके मकरन्द-परागका

तं कृष्णमादिपुरुषं परिपूर्णदेवं लीलावतारमजमार्तिहरं जनानाम् ।
भूभूरिभारहरणाय सतां शुभाय जातं विनिन्दसि कथं सखि दुर्विनीते ॥२१॥
गाःपालयन्ति सततं रजसो गवां च गंगां स्पृशंति च जपंति गवां सुनाम्नाम्।
प्रेक्षन्त्यहर्निशमलं सुमुखं गवां च जातिः परा न विदिता भुवि गोपजातेः ॥२२॥
तत्कृष्णवर्णविलसत्सुकलां समीक्ष्य तस्मिन्विलग्नमनसा सुसुखं विहाय ।
उन्मत्तवद्व्रजति धावति नीलकण्ठो बिभ्रत्कपर्दविषभस्मकपालसर्पान् ॥२३॥
स्वर्लोकसिद्धमुनियक्षमरुद्गणानां पालाः समस्तनरकिन्नरनागनाथाः ।
यत्पादपद्ममनिशं प्रणिपत्य भक्त्या लब्धश्रियः किल बलिं प्रददुः स्म तस्मै ॥२४॥
वत्साघकालियबकार्जुनधेनुकानामाचक्रवातशकटासुरपूतनानाम् ।
एषां वधः किमुत तस्य यशो मुरारेर्यः कोटिशोऽण्डनिचयोद्भवनाशहेतुः ॥२५॥
भक्तात्प्रियो न विदितः पुरुषोत्तमस्य शंभुर्विधिर्न च रमा न च रौहिणेयः ।
भक्ताननुव्रजति भक्तिनिबद्धचित्तश्चूडामणिः सकललोकजनस्य कृष्णः ॥२६॥
गच्छन्निजं जनमनुप्रपुनाति लोकानावेदयन् हरिजने स्वरुचिं महात्मा ।
तस्मादतीव भजतां भगवान्मुकुन्दो मुक्तिं ददाति न कदापि सुभक्तियोगम् ॥२७॥

गोपदेवतोवाच

राधे त्वदीयधिषणा धिषणं हसन्ती वाणीं श्रुतिं प्रकुशलेन विडंबयन्ती ।
अत्रागमिष्यति यदाथ हरिः परेशः सत्यं ददाति वचनं तव देवि मन्ये ॥२८॥

राधोवाच

यथाऽऽगमिष्यति यदाऽद्य हरिः परेशः किं कारयामि भवतीं वद तर्हि सुभ्रु ।
चेदागमो न हि भवेद्वनमालिनः स्वं सर्वं धनं च भवनं च ददामि तुभ्यम् ॥२९॥

श्रीनारद उवाच

अथ राधा समुत्थाय नत्वा श्रीनन्दनन्दनम् । उपविश्यासने दध्यौ ध्यानस्तिमितलोचना ॥३०॥
उत्कंठितां स्वेदयुक्तां बाष्पकंठीं प्रियां हरिः । अश्रुपूर्णमुखीं वीक्ष्य बिभ्रत्स्वां पौरुषीं तनुम् ॥३१॥
पश्यन्तीनां सखीनां च सहसा भक्तवत्सलः । राधां प्राह प्रसन्नात्मा मेघगंभीरया गिरा ॥३२॥

श्रीकृष्ण उवाच

रंभोरु चन्द्रवदने व्रजसुन्दरीशे राधे प्रिये नवलयौवनमानशीले ।
उन्मील्य नेत्रमपि पश्य समागतं मां तूर्णं त्वया मधुरया च गिरोपहूतम् ॥३३॥
आगच्छ कृष्ण इति वाक्यमतः श्रुतं मे सद्यो विसृज्य निजगोकुलगोपवृन्दम् ।
वंशीवटाच्च यमुनानिकटात्प्रधावंस्त्वत्प्रीतयेऽथ ललनेऽत्र समागतोऽस्मि ॥३४॥
मय्यागते सति गतिं गता सखिरूपिणी का यक्ष्यासुरी सुरवधू किल किन्नरी वा ।
मायावती छलयितुं भवतीं च तस्माद्विश्वास एव न विधेय उरंगपत्न्याम् ॥३५॥

श्रीनारद उवाच

अथ राधा हरिं दृष्ट्वा नत्वा तत्पादपंकजम् । मुदमाप परं राजन् सद्यः पूर्णमनोरथा ॥३६॥
एवं श्रीकृष्णचन्द्रस्य चरितान्यद्भुतानि च । यः शृणोति नरो भक्त्या स कृतार्थो भवेन्नरः ॥३७॥

इति श्रीगर्गसंहितायां वृन्दावनखण्डे नारदबहुलाश्वसंवादे श्रीकृष्णचन्द्रदर्शनं नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

और वाणी अपने प्रवचन-कौशलसे वेदवाणीका अनुकरण करती है। किन्तु हे देवि ! तुम्हारे बुलानेसे यदि परमेश्वर श्रीकृष्ण सचमुच यहाँ आ जायँ और तुम्हारी बातका उत्तर दें, तब मैं मान लूँगी कि तुम्हारा कथन सच है ॥२८॥ श्रीराधा बोलीं–हे सुभ्रु ! यदि परमेश्वर श्रीकृष्ण मेरे बुलानेसे यहाँ आ जायँ, तब मैं तुम्हारे प्रति क्या करूँ, यह तुम्हीं बताओ। परंतु अपनी ओरसे इतना ही कह सकती हूँ कि यदि मेरे स्मरण करनेसे वनमालीका शुभागमन नहीं हुआ तो मैं अपना सारा धन और यह भवन तुम्हें दे दूँगी ॥ २९ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! तदनन्तर श्रीराधा उठकर श्रीनन्दनन्दनको नमस्कार करके आसनपर बैठ गयीं और उनका ध्यान करने लगीं। उस समय उनके नेत्र ध्यानरत होनेके कारण निश्चल हो गये थे ॥ ३० ॥ श्रीहरिने देखा—'प्रियतमा श्रीराधा मेरे दर्शनके लिये उत्कण्ठित हैं। इनके अङ्ग-अङ्गमें स्वेद (पसीना) हो आया है और मुखपर आँसुओंकी धारा बह चली है।' यह देख अपना पुरुषरूप धारण करके भक्तवत्सल श्रीकृष्ण सखियोंके देखते-देखते सहसा वहाँ प्रकट हो गये और प्रसन्नचित्त हो घनगर्जनके समान गम्भीर वाणीमें श्रीराधासे बोले ॥ ३१॥ ३२॥ श्रीकृष्णने कहा—हे रम्भोरु ! हे चन्द्रवदने ! हे व्रजसुन्दरी-शिरोमणे ! हे नूतन-यौवनशालिनि ! हे मानशीले ! हे प्रिये राधे ! तुमने अपनी मधुर वाणीसे मुझे बुलाया है, इसलिये मैं तुरंत यहाँ आ गया हूँ ॥ ३३ ॥ अब आँख खोलकर मुझे देखो। हे ललने ! 'हे प्रियतम कृष्ण ! आओ'—यह वाक्य यहाँसे प्रकट हुआ और मैंने सुना। फिर उसी क्षण अपने गोकुल और गोपवृन्दको छोड़कर, वंशीवट और यमुनाके तटसे वेगपूर्वक दौड़ता हुआ तुम्हारी प्रसन्नताके लिये यहाँ आ पहुँचा हूँ ॥ ३४ ॥ मेरे आते ही कोई सखीरूपधारिणी यक्षी, आसुरी, देवाङ्गना अथवा किनरी, जो कोई भी मायाविनी तुम्हें छलनेके लिये आयी थी, यहाँसे चली गयी। अतः तुम्हें ऐसी नागिनपर विश्वास नहीं करना चाहिये ॥ ३५ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—तदनन्तर श्रीराधा श्रीहरिको देखकर उनके चरणकमलोंमें प्रणत हो परमानन्दमें निमग्न हो गयीं। उनका मनोरथ तत्काल पूर्ण हो गया ॥ ३६ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रके ऐसे अद्भुत चरित्रोंका जो भक्तिभावसे श्रवण

पुलिने शीतलो वायुर्मन्दगामी वहत्यलम् । सहस्रदलपद्मानां रजो विक्षेपयन्मुहुः ॥१३॥
काश्चिद्गोलोकवासिन्यः काश्चिच्छय्योपकारिकाः । शृङ्गारप्रकराः काश्चित्काश्चिद्वै द्वारपालिकाः ॥१४॥
पार्षदाख्याः सखिजनाश्छत्रचामरपाणयः । पुष्पाभरणकारिण्यः श्रीवृन्दावनपालिकाः ॥१५॥
गोवर्द्धननिवासिन्यः काश्चित्कुञ्जविधायिकाः । तन्निकुञ्जनिवासिन्यो नर्तक्यो वाद्यतत्पराः ॥१६॥
सर्वा वै चन्द्रवदनाः किशोरवयसो नृप । आसां द्वादशयूथाश्चाजग्मुः श्रीकृष्णसन्निधिम् ॥१७॥
तथैव यमुना साक्षाद्यूथीभूत्वा समाययौ । नीलाम्बरा रत्नभूषा श्यामा कमललोचना ॥१८॥
तथैव जाह्नवी गंगा यूथीभूत्वा समाययौ । श्वेताम्बरा श्वेतवर्णा मुक्ताभरणभूषिता ॥१९॥
तथाययौ रमा साक्षाद्यूथीभूत्वाऽरुणाम्बरा । चन्द्रवर्णा मन्दहासा पद्मरागविभूषिता ॥२०॥
तथाऽऽययौ कृष्णपत्नी नाम्ना या मधुमाधवी । पद्मवर्णा पुष्पभूषा यूथीभूत्वा शुभांवरा ॥२१॥
तथैव विरजा साक्षाद्यूथीभूत्वा समाययौ । हरिद्वस्त्रा गौरवर्णा रत्नालंकारभूषिता ॥२२॥
ललिताया विशाखाया मायायूथः समाययौ । एवं त्वष्टसखीनां च सखीनां किल षोडश ॥२३॥
द्वात्रिंशच्च सखीनां च यूथाः सर्वे समाययुः । रराज भगवान् राजन् स्त्रीगणै रासमण्डले ॥२४॥
वृन्दावने यथाकाशे चन्द्रस्तारागणैर्यथा । पीतवासःपरिकरो नटवेषो मनोहरः ॥२५॥
वेत्रभृद्वादयन् वंशीं गोपीनां प्रीतिमावहन् । मयूरपक्षभृन्मौली स्रग्वी कुण्डलमण्डितः ॥२६॥

सभी कुञ्ज विशेष शोभा पाते थे ॥ १२ ॥ यमुना-पुलिनपर सहस्रदल कमलोंके पुष्प-परागको वारंबार बिखेरता हुआ शीतल-मन्द-सुगन्ध समीर प्रवाहित हो रहा था ॥ १३ ॥ इसी समय बहुत-सी गोपाङ्गनाएँ श्रीकृष्णकी सेवामें उपस्थित हुईं। कोई गोलोकनिवासिनी थीं और कोई शय्या सजानेमें सहयोग करनेवाली थीं। कोई शृङ्गार धारण करानेकी कलामें कुशल थीं तो कोई द्वारपालिका थी ॥ १४ ॥ कुछ गोपियाँ 'पार्षद' नामधारिणी थीं, कुछ छत्र-चँवर धारण करनेवाली सखियाँ थीं और कुछ श्रीवृन्दावनकी रक्षापर नियुक्त थीं ॥१५॥ कुछ गोवर्धनवासिनी, कुछ कुञ्ज-विधायिनी और कुछ निकुञ्जनिवासिनी थीं। कोई नृत्यमें निपुण और कोई वाद्य-वादनमें प्रवीण थीं ॥ १६ ॥ हे नरेश्वर ! उन सबके मुख अपने सौन्दर्य-माधुर्यसे चन्द्रमाको भी लज्जित करते थे। वे सब-की-सब किशोरावस्थावाली तरुणियाँ थीं। उन सबके बारह यूथ श्रीकृष्णके समीप आये ॥ १७ ॥ इसी प्रकार साक्षात् यमुना भी अपना यूथ लिये आयीं। उनके अङ्गोंपर नीलवस्त्र शोभा पा रहे थे। वे रत्नमय आभूषणोंसे आभूषित तथा श्यामा (सोलह वर्षकी अवस्था अथवा श्याम कान्तिसे युक्त) थीं। उनके नेत्र प्रफुल्ल कमलदलको तिरस्कृत कर रहे थे ॥ १८ ॥ उन्हींकी तरह जह्नुनन्दिनी गङ्गा भी यूथ बाँधकर वहाँ आ पहुँचीं। उनकी अङ्ग-कान्ति श्वेतगौर थी। वे श्वेत वस्त्र तथा मोतीके आभूषणोंसे विभूषित थीं ॥ १९ ॥ वैसे ही साक्षात् रमा भी अपना यूथ लिये आयीं। उनके श्रीअङ्गोंपर अरुण वस्त्र सुशोभित थे। चन्द्रमाकी-सी अङ्ग-कान्ति, अधरोंपर मन्द-मन्द हासकी छटा तथा विभिन्न अङ्गोंमें पद्मरागमणिके बने हुए अलंकार शोभा दे रहे थे ॥ २० ॥ इसी तरह कृष्णपत्नीके नामसे अपना परिचय देनेवाली मधुमाधवी (वसन्त-लक्ष्मी) भी वहाँ आयीं। उनके साथ भी सखियोंका समूह था। वे सब-की-सब प्रफुल्ल कमलकी-सी अङ्ग-कान्तिवाली, पुष्पहारसे अलंकृत तथा सुन्दर वस्त्रोंसे सुशोभित थीं ॥ २१ ॥ इसी रीतिसे साक्षात् विरजा भी सखियोंका यूथ लिये वहाँ आयीं। उनके अङ्गोंपर हरे रंगके वस्त्र शोभा दे रहे थे। वे गौरवर्णा तथा रत्नमय अलंकारोंसे अलंकृत थीं ॥ २२ ॥ ललिता, विशाखा और लक्ष्मीके भी यूथ वहाँ आये। इसी प्रकार अष्टसखियोंके, षोडश सखियोंके तथा बत्तीस सखियोंके सम्पूर्ण यूथ भी वहाँ आ पहुँचे। हे राजन् ! भगवान् श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण उन युवतीजनोंके साथ रासमण्डलकी रंगभूमिमें बड़ी शोभा पाने लगे ॥ २३ ॥ २४ ॥ जैसे आकाशमें चन्द्रमा ताराओंके साथ सुशोभित होते हैं, उसी प्रकार वृन्दावनमें उन सुन्दरियोंके साथ श्रीकृष्णचन्द्रकी शोभा हो रही थी। उनकी कमरमें पीताम्बर कसा हुआ था। वे नटवेषमें सबका मन मोहे लेते थे ॥ २५ ॥ उनके हाथमें बेंतकी छड़ी थी। वे वंशी बजाकर उन गोप-सुन्दरियोंकी प्रीति बढ़ा रहे थे।

श्रीहस्तसंताडितवारिविंदुभिः स्फारासमस्फूर्जितशीकरद्युभिः ।
वृन्दावनेशो व्रजसुंदरीभी रेजे गजीभिर्गजराडिव स्वयम् ॥४०॥
विद्याधर्यो देवगंधर्वपत्न्यः पश्यन्त्यस्ता रासरंगं दिविस्थाः ।
देवैः सार्द्धं चक्रिरे पुष्पवर्षं मोहं प्राप्ताः प्रश्लथद्वस्त्रनीव्यः ॥४१॥

इति श्रीगर्गसंहितायां वृन्दावनखण्डे नारदबहुलाश्वसंवादे रासक्रीडा नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

अथ विंशोऽध्यायः

(श्रीराधा-कृष्णका शृङ्गारधारण, रास, जलविहार और वनविहार)

श्रीनारद उवाच

अथ कृष्णो हरिर्वारिलीलां कृत्वा मनोहरः । सर्वगोपीगणैः सार्द्धं गिरिं गोवर्द्धनं ययौ ॥ १ ॥
गोवर्धने कन्दरायां रत्नभूम्यां हरिः स्वयम् । रासं च राधया सार्द्धं रासेश्वर्या चकार ह ॥ २ ॥
तत्र सिंहासने रम्ये तस्थतुः पुष्पसंकुले । तडिद्घनाविव गिरौ राधाकृष्णौ विरेजतुः ॥ ३ ॥
स्वामिन्यास्तत्र शृङ्गारं चक्रुः सख्यो मुदान्विताः। श्रीखण्डकुंकुमाद्यैश्च यावकागुरुकज्जलैः ॥ ४ ॥
मकरन्दैः कीर्तिसुतां समभ्यर्च्य विधानतः । ददौ श्रीयमुना साक्षाद्राधायै नूपुराण्यलम् ॥ ५ ॥
मंजीरभूषणं दिव्यं श्रीगंगा जह्नुनन्दिनी । श्रीरमा किंकिणीजालं हारं श्रीमधुमाधवी ॥ ६ ॥
चन्द्रहारं च विरजा कोटिचन्द्रामलं शुभम् । ललिता कंचुकमणिं विशाखा कण्ठभूषणम् ॥ ७ ॥
अंगुलीयकरत्नानि ददौ चन्द्रानना तदा । एकादशी राधिकायै रत्नाढ्यं कंकणद्वयम् ॥ ८ ॥
भुजकंकणरत्नानि शतचन्द्रानना ददौ । तस्यै मधुमती साक्षात्स्फुरद्रत्नांगदद्वयम् ॥ ९ ॥

हाथोंसे ताडित हो उछलते हुए वारि-बिन्दु, जो फुहारोंसे छूटते हुए असंख्य अनुपम जलकणोंकी छवि धारण कर रहे थे, उन व्रजसुन्दरियोंके साथ वृन्दावनाधीश्वर श्रीकृष्ण ऐसी शोभा पा रहे थे, जैसे बहुत-सी हथिनियोंके साथ यूथपति गजराज सुशोभित हो रहा हो ॥ ४० ॥ आकाशमें खड़ी हुई विद्याधरियाँ, देवाङ्गनाएँ तथा गन्धर्वपत्नियाँ उस रास-रंगको देखती हुई वहाँ देवताओंके साथ पुष्पवर्षा कर रही थीं। वे सब-की-सब मोहको प्राप्त हो गयी थीं। उनके वस्त्रोंके नीवी-बन्ध ढीले पड़कर खिसक रहे थे ॥ ४१ ॥

इति श्रीगर्गसंहितायां वृन्दावनखण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! तदनन्तर मनोहर श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण जलक्रीड़ा समाप्त करके समस्त गोपाङ्गनाओंके साथ गोवर्धन पर्वतपर गये ॥ १ ॥ उस पर्वतकी कन्दरामें रत्नमयी भूमिपर रासेश्वरी श्रीराधाके साथ साक्षात् श्रीहरिने रासनृत्य किया ॥ २ ॥ वहाँ पुष्पोंसे सुसज्जित रम्य सिंहासनपर दोनों प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधव विराजमान हुए, मानों किसी पर्वतपर विद्युत्-सुन्दरी और श्याम घन एक साथ सुशोभित हो रहे हों ॥ ३ ॥ वहाँ सब सखियोंने बड़ी प्रसन्नताके साथ स्वामिनी श्रीराधाका शृङ्गार किया। चन्दन, केसर, कस्तूरी आदिसे तथा महावर, इत्र, अरगजा और काजल तथा सुगन्धित पुष्प-रसोंसे कीर्ति-कुमारी श्रीराधाकी विधिपूर्वक अर्चना करके साक्षात् श्रीयमुनाने उन्हें नूपुर धारण कराया ॥ ४ ॥ ५ ॥ जह्नुनन्दिनी गङ्गाने मञ्जीर नामक दिव्य भूषण अर्पित किया। श्रीरमाने कटिप्रदेशमें किङ्किणी-जाल पहिनाया। श्रीमधुमाधवीने कण्ठहार अर्पित किया ॥ ६ ॥ विरजाने कोटि चन्द्रमाओंके समान उज्ज्वल एवं सुन्दर चन्द्रहार धारण कराया। ललिताने मणिमण्डित कञ्चुकी पहनायी। विशाखाने कण्ठभूषण धारण कराया ॥ ७ ॥ चन्द्राननाने रत्नमयी मुद्रिकाएँ अर्पित कीं। एकादशीकी अधिष्ठात्री देवीने श्रीराधाको रत्न-जटित दो कङ्कन भेंट किये ॥ ८ ॥ शतचन्द्रानना सखीने रत्नमय भुजकङ्कण (बाजूबन्द, विजायठ, जोसन

ताटंकयुगलं वंदी कुंडले सुखदायिनी । आनन्दी या सखी मुख्या राधायै भालतोरणम् ॥१०॥
पद्मा सद्भालतिलकं विन्दुं चन्द्रकला ददौ । नासामौक्तिकमालोलं ददौ पद्मावती सती ॥११॥
बालार्कद्युतिसंयुक्तं भालपुष्पं मनोहरम् । श्रीराधायै ददौ राजंश्चंद्रकान्ता सखी शुभा ॥१२॥
शिरोमणिं सुन्दरी च रत्नवेणीं प्रहर्षिणी । भूषणे चन्द्रसूर्याख्ये विद्युत्कोटिसमप्रभे ॥१३॥
राधिकायै ददौ देवी वृन्दा वृन्दावनेश्वरी । एवं शृङ्गारसंस्फूर्जद्रूपया राधया हरिः ॥१४॥
गिरिराजे वभौ राजन् यज्ञो दक्षिणया यथा । यत्र वै राधया रासे शृङ्गारोऽकारि मैथिल ॥१५॥
तत्र गोवर्द्धने जातं स्थलं शृङ्गारमंडलम् । अथ कृष्णः स्वप्रियाभिर्ययौ चन्द्रसरोवरम् ॥१६॥
चकार तज्जले क्रीडां गजीभिर्गजराडिव । तत्र चन्द्रः समागत्य चन्द्रकान्तौ मणी शुभौ ॥१७॥
सहस्रदलपद्मे द्वे स्वामिन्यै हरये ददौ । अथ कृष्णो हरिः साक्षात्पश्यन्वृंदावनश्रियम् ॥१८॥
प्रययौ वाहुलवनं लताजालसमन्वितम् । तत्र स्वेदसमायुक्तं वीक्ष्य सर्वं सखीजनम् ॥१९॥
रागं तु मेघमल्लारं जगौ वंशीधरः स्वयम् । सद्यस्तत्रैव ववृषुर्मेघा अंबुकणांस्तथा ॥२०॥
तदैव शीतलो वायुर्ववौ गन्धमनोहरः । तेन गोपीगणाः सर्वे सुखं प्राप्ता विदेहराट् ॥२१॥
जगुर्यशः श्रीमुरारेरुच्चैस्तत्र समन्विताः । तस्मात्तालवनं प्रागाच्छ्रीकृष्णो राधिकापतिः ॥२२॥
रासमंडलमारेभे गायन्व्रजवधूवृतः । तत्र गोपीगणाः सर्वे स्वेदयुक्तास्तृपातुराः ॥२३॥

गोप्य ऊचुः

ऊचू रासेश्वरं रासे कृतांजलिपुटाः शनैः । दूरं वै यमुना देव तृपा जाता परं हि नः ॥२४॥

और छविया आदि) दिये । साक्षात् मधुमतीने दो अङ्गद भेंट किये, जिनमें जड़े हुए रत्न उद्दीप्त हो रहे थे ॥ ९ ॥ वन्दीने दो ताटङ्क (तरकियाँ) और सुखदायिनीने दो कुण्डल दिये । सखियोंमें प्रधान आनन्दीने श्रीराधाको भालतोरण भेंट किया ॥ १० ॥ पद्माने चन्द्रकलाके समान चमकनेवाली माथेकी वेंदी (टिकुली) दी । सती पद्मावतीने नासिकामें मोतीकी बुलाक पहना दी, जो थोड़ी-थोड़ी हिलती रहती थी ॥ ११ ॥ हे राजन् ! सुन्दरी चन्द्रकान्ता सखीने श्रीराधाको प्रातःकालिक सूर्यकी कान्तिसे युक्त मनोहर शीशफूल अर्पित किया ॥ १२ ॥ सुन्दरीने चूड़ामणि तथा प्रहर्षिणीने रत्नमयी वेणी प्रदान की । वृन्दावनाधीश्वरी वृन्दादेवीने श्रीराधाको करोड़ों विजलियोंके समान विद्योतमान चन्द्र-सूर्य नामक दो आभूषण भेंट किये । इस प्रकार शृङ्गार धारण करके श्रीराधाका रूप दिव्य ज्योतिसे उद्भासित हो उठा ॥ १३ ॥ १४ ॥ हे राजन् ! उनके साथ गिरिराजपर श्रीहरि दक्षिणाके साथ यज्ञनारायणकी भाँति सुशोभित हुए । हे मिथिलेश्वर! जहाँ रासमें श्रीराधाने शृङ्गार धारण किया, गोवर्धन पर्वतपर वह स्थान 'शृङ्गार-मण्डल'के नामसे विख्यात हो गया । तदनन्तर श्रीकृष्ण अपनी प्रिया गोपसुन्दरियोंके साथ चन्द्रसरोवरपर गये ॥ १५ ॥ १६ ॥ उसके जलमें उन्होंने हथिनियोंके साथ गजराजकी भाँति जल विहार किया । वहाँ साक्षात् चन्द्रमाने आकर स्वामिनी श्रीराधा और श्यामसुन्दर श्रीहरिको दो सुन्दर चन्द्रकान्तमणियाँ तथा दो सहस्रदल कमल भेंट किये । तत्पश्चात् साक्षात् श्रीहरि कृष्ण वृन्दावनकी शोभा निहारते हुए लता-वल्लरियोंसे व्याप्त बहुलावनमें गये । वहाँ सम्पूर्ण सखीजनोंको पसीनेसे भीगा देख वंशीधरने 'मेघमल्लार' नामक राग गाया । फिर तो वहाँ उसी समय बादल घिर आये और जलकी फुहारें बरसाने लगे ॥ १७–२० ॥ हे विदेहराज ! उसी समय अपनी सुगन्धसे सबका मन मोह लेनेवाली शीतल वायु चलने लगी । उससे समस्त गोपाङ्गनाओंको बड़ा सुख मिला ॥ २१ ॥ वे वहाँ एक साथ सम्मिलित हो उच्चस्वरसे श्रीमुरारिका यश गाने लगीं । वहाँसे राधावल्लभ श्रीकृष्ण तालवनको गये ॥ २२ ॥ उस वनमें व्रजवधूटियोंसे घिरे हुए श्रीहरिने मण्डलाकार रासनृत्य आरम्भ किया । उस नृत्यमें समस्त गोपसुन्दरियाँ पसीना-पसीना हो गयीं और प्याससे व्याकुल हो उठीं । उन सबने हाथ जोड़कर रासमण्डलमें रासेश्वरसे कहा ॥ २३ ॥ गोपियाँ बोलीं—हे देव ! यमुनाजी तो यहाँसे बहुत दूर हैं और हम लोगोंको बड़े जोरसे प्यास सताने लगी है । हे हरे ! हम यह भी चाहती हैं कि आप यहीं दिव्य मनोहर रास करें । हम

कर्तव्यं भवताऽत्रैव रासे दिव्यं मनोहरम् । वारां विहारं पानं च करिष्यामो हरे वयम् ॥२५॥

श्रीनारद उवाच

जगत्कर्ता पालकस्त्वं संहारस्यापि नायकः । तच्छ्रुत्वा वेत्रदण्डेन कृष्णो भूमिं तताड ह ॥२६॥

तदैव निर्गतः स्रोतो वेत्रगंगेति कथ्यते । यज्जलस्पर्शमात्रेण ब्रह्महत्या प्रमुच्यते ॥२७॥

तत्र स्नात्वा नरः कोऽपि गोलोकं याति मैथिल । गोपीभी राधया सार्द्धं श्रीकृष्णो भगवान्हरिः ॥२८॥

वारां विहारं कृतवान्देवो मदनमोहनः । ततः कुमुद्वनं प्राप्तो लतावृन्दं मनोहरम् ॥२९॥

भ्रमरध्वनिसंयुक्तं चक्रे रासं सखीजनैः । राधा तत्रैव शृङ्गारं श्रीकृष्णस्य चकार ह ॥३०॥

पुष्पैर्नानाविधैर्द्रव्यैः पश्यन्तीनां व्रजौकसाम् । चम्पकोघ्रतपरिकरः स्वर्णयूथीसुजांगदः ॥३१॥

सहस्रदलराजीवकर्णिकाविलसच्छ्रुतिः । मोहिनोमालिनीकुन्दकेतकीहारभृद्धरिः ॥३२॥

कदम्बपुष्पविलसत्किरीटकटकोज्ज्वलः । मन्दारपुष्पोत्तरीयपद्मयष्टिधरः प्रभुः ॥३३॥

तुलसीमंजरीयुक्तवनमालाविभूषितः । एवं शृङ्गारतां प्राप्तः श्रीकृष्णः प्रियया स्वया ॥३४॥

बभौ कुमुद्वने राजन् वसन्तो हर्षितो यथा । मृदंगवीणावंशीभिर्मुरुयष्टिसुकांस्यकैः ॥३५॥

तालशेपैस्तलैर्युक्ता जगुर्गोप्यो मनोहरम् । भैरवं मेघमल्लारं दीपकं मालकोशकम् ॥३६॥

श्रीरागं चापि हिन्दोलं रागमेवं पृथक् पृथक् । अष्टतालैस्त्रिभिर्ग्रामैः स्वरैः सप्तभिरग्रतः ॥३७॥

नृत्यैर्नानाविधै रम्यैर्हावभावसमन्वितैः । तोषयन्त्यो हरिं राधां कटाक्षैर्व्रजगोपिकाः ॥३८॥

गायन्मधुवनं प्रागात्सुंदरीगणसंवृतः । रासेश्वर्या रासलीलां चक्रे रासेश्वरः स्वयम् ॥३९॥

वैशाखचन्द्रकौमुद्या मालतीगन्धवायुना । स्फुरत्सौगन्धकह्लारपतद्रेणूत्करेण वै ॥४०॥

आपके साथ यहीं जलविहार और जलपान करेंगी। आप इस जगत्‌के सृष्टि, पालन तथा संहारके भी नायक हैं। श्रीनारदजी कहते हैं—यह सुनकर श्रीकृष्णने वेंतकी छड़ीसे भूमिपर ताड़न किया ॥ २४–२६ ॥ इससे वहाँ तत्काल पानीका स्रोत निकल आया, जिसे 'वेत्रगङ्गा' कहते हैं। उसके जलका स्पर्श करनेमात्रसे ब्रह्महत्या दूर हो जाती है ॥ २७ ॥ हे मिथिलेश्वर! उस वेत्रगङ्गामें स्नान करके कोई भी मनुष्य गोलोक-धाममें जानेका अधिकारी हो जाता है। मदनमोहनदेव भगवान् श्रीकृष्ण हरि वहाँ श्रीराधा तथा गोपाङ्ग-नाओंके साथ जलविहार करके कुमुदवनमें गये, जो लता-वेलोंके जालसे मनोहर जान पड़ता था ॥ २८ ॥ २९ ॥ वहाँ भ्रमरोंकी ध्वनि सब ओर गूँज रही थी। उस वनमें भी सखियोंके साथ श्रीहरिने रास किया। वहीं श्रीराधाने व्रजाङ्गनाओंके सामने नाना प्रकारके दिव्य पुष्पों द्वारा श्रीकृष्णका शृङ्गार किया। चम्पाके फूलोंसे कटिप्रदेशको अलंकृत किया। सुनहरी जूहीके पुष्पोंद्वारा निर्मित बाजूबन्द धारण कराया। सहस्रदल कमल-की कर्णिकाओंको कुण्डलका रूप देकर उससे कानोंकी शोभा बढ़ायी गयी। मोहिनी, मालिनी, कुन्द और केतकीके फूलोंसे निर्मित हार श्रीकृष्णने धारण किया ॥ ३०–३२ ॥ कदम्बके फूलोंसे शोभायमान किरीट और कड़े धारण करके श्रीहरिके श्रीअङ्ग और भी उद्भासित हो उठे थे। मन्दार-पुष्पोंका उत्तरीय (दुपट्टा) और कमलके फूलोंकी छड़ी धारण किये प्रभु श्यामसुन्दर बड़ी शोभा पाते थे ॥ ३३ ॥ तुलसी-मञ्जरीसे युक्त वनमाला उन्हें विभूषित कर रही थी। हे राजन्! अपनी प्रियतमाके द्वारा इस प्रकार शृङ्गार धारण कराये जानेपर श्रीकृष्ण उस कुमुदवनमें हर्षोत्फुल्ल मूर्तिमान् वसन्तकी भाँति शोभा पाने लगे ॥ ३४ ॥ मृदङ्ग, वीणा, वंशी, मुरचङ्ग, झाँझ और करताल आदि वाद्योंके साथ गोपियाँ ताली बजाती हुई मनोहर गीत गाने लगीं। भैरव, मेघमल्लार, दीपक, मालकोश, श्रीराग और हिन्दोल राग—इन सबको पृथक्-पृथक् गाकर आठ ताल, तीन ग्राम और सात स्वरोंसे तथा हाव-भावसमन्वित नाना प्रकारके रमणीय नृत्योंसे कटाक्ष-विक्षेपपूर्वक व्रज-गोपिकाएँ श्रीराधा और श्यामसुन्दरको रिझाने लगीं ॥ ३५–३८ ॥ वहाँसे मधुर गीत गाते हुए माधव उन सुन्दरियोंके साथ मधुवनमें गये। वहाँ पहुँचकर स्वयं रासेश्वर श्रीकृष्णने रासेश्वरी श्रीराधाके साथ रासक्रीड़ा की ॥ ३९ ॥ वैशाख मासके चन्द्रमाकी चाँदनीमें प्रकाशमान सौगन्धिक कह्लार-कुसुमोंसे झरते हुए परागोंसे

विकचन्माधवीवृन्दैः शोभिते निर्जने वने । रेमे गोपीगणैः कृष्णो नन्दने वृत्रहा यथा ॥४१॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीवृन्दावनखण्डे रासक्रीडा नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

अथ एकविंशोऽध्यायः

(गोपाङ्गनाओंके साथ श्रीकृष्णका वनविहार)

श्रीनारद उवाच

इत्थं कुन्दवने रम्ये मालतीनां वने शुभे । आम्राणां नागरंगाणां निंबूनां सघने वने ॥ १ ॥
दाडिमीनां च द्राक्षाणां बदामानां वने नृप । कदम्बानां श्रीफलानां कुटजानां तथैव च ॥ २ ॥
वटानां पनसानां च पिप्पलानां वने शुभे । तुलसीकोविदाराणां केतकीकदलीवने ॥ ३ ॥
करिल्लकुंजबकुलमंदाराणां वने हरिः । चरन्कामवनं प्रागाद्राजन् व्रजवधूवृतः ॥ ४ ॥
तत्रैव पर्वते कृष्णो ननाद मुरली कलम् । मूर्च्छिता विह्वला जातास्तन्नादेन व्रजांगनाः ॥ ५ ॥
मनोजबाणभिन्नांगाः श्लथन्नीव्यः सुरैः सह । कश्मलं प्रययू राजन्विमानेष्वमरांगनाः ॥ ६ ॥
चतुर्विधा जीवसंघाः स्थावरैर्मोहमास्थिताः । नद्यो नदाः स्थिरीभूताः पर्वता द्रवतां गताः ॥ ७ ॥
तत्पादचिह्नसंयुक्तो गिरिः कामवनेऽभवत् । तस्य दर्शनमात्रेण नरो याति कृतार्थताम् ॥ ८ ॥
अथ गोपीगणैः साकं श्रीकृष्णो राधिकापतिः । नंदीश्वरबृहत्सानुतटे रासं चकार ह ॥ ९ ॥
तत्र गोप्योऽतिमानिन्यो बभूवुर्मैथिलेश्वर । तास्त्यक्त्वा राधया सार्धं तत्रैवान्तर्दधे हरिः ॥१०॥
गोप्यश्च सर्वा विरहातुरा भृशं कृष्णं विना मैथिल निर्जने वने ।
ता बभ्रमुश्चाश्रुकलाकुलाक्ष्यो यथा हरिण्यश्चकिता इतस्ततः ॥११॥

कृष्णं ह्यपश्यन्त्य इति व्यथां गता यथा करिण्यः करिणं वने वने ।
यथा कुरर्य्यः कुररं व्रजांगनाः सर्वा रुदन्त्यो विरहातुरा भृशम् ॥१२॥
उन्मत्तवद्वृक्षलताकदम्बकं सर्वा मिलित्वा च पृथग्वने वने ।
पप्रच्छुरारान्नृप नंदनंदनं कुत्र स्थितं तं वदताशु भूरुहाः ॥१३॥
श्रीकृष्ण कृष्णेति गिरा वदन्त्यः श्रीकृष्णपादाम्बुजलग्नमानसाः ।
श्रीकृष्णरूपास्तु बभूवुरंगनाश्चित्रं न पेशस्कृतमेत्य कीटवत् ॥१४॥
श्रीपादुकाधःस्थलगोपिगोप्यः श्रीपादुकाब्जं शरणं प्रपन्नाः ॥१५॥
ततस्तु तत्प्रसादेन तत्पदार्चनदर्शनात् । ददृशुर्गां तदा गोप्यो भगवत्पादचिह्निताम् ॥१६॥

श्रीवहुलाश्व उवाच

राधेशो राधया सार्धं हित्वा गोपीर्ययौ क्व भोः । तद्दर्शनं कथं जातं गोपीनां वद मे प्रभो ॥१७॥

श्रीनारद उवाच

श्रीकृष्णो राधया सार्द्धं संकेतवटमाविशत् । प्रियायाः कवरीपुष्परचनां स चकार ह ॥१८॥
श्रीकृष्णकुन्तले नीले वक्रत्वं राधिकाऽकरोत् । चित्रपत्रावलीः कृष्णपूर्णेन्दुमुखमंडले ॥१९॥
एवं कृष्णो भद्रवनं खदिराणां वनं महत् । बिल्वानाञ्च वनं पश्यन्कोकिलाख्यं वनं गतः ॥२०॥
गोप्यः कृष्णं विचिन्वन्त्यो ददृशुस्तत्पदानि च । यवचक्रध्वजच्छत्रैः स्वस्तिकांकुशबिन्दुभिः ॥२१॥
अष्टकोणेन वज्रेण पद्मेनाभियुतानि च । नीलशंखघटैर्मत्स्यत्रिकोणेपूर्ध्वधारकैः ॥२२॥
धनुर्गोखुरचन्द्रार्द्धशोभितानि महात्मनः । तत्पदान्यनुसारेण व्रजन्त्यो गोपिकास्ततः ॥२३॥
तद्रजः सततं नीत्वा धृत्वा मूर्ध्नि व्रजांगनाः । पदान्यन्यानि ददृशुरन्यचिह्नान्वितानि च ॥२४॥

इधर-उधर भटकने लगीं ॥ ११ ॥ जैसे वनमें हाथीके विना हथिनियाँ और कुररके विना कुररियाँ व्यथित होकर करुण-क्रन्दन करती हैं, उसी प्रकार श्रीकृष्णको न देखकर व्यथित तथा विरहसे अत्यन्त व्याकुल हो व्रजांगनाएँ फूट-फूटकर रोने लगीं ॥१२॥ हे राजन् ! हे नरेश्वर ! वे सब की सब एक साथ मिलकर तथा पृथक्-पृथक् दल बनाकर वन-वनमें जातीं और उन्मत्तकी तरह वृक्षों तथा लतासमूहोंसे पूछतीं—'हे तरुओ तथा वल्लरियो ! शीघ्र बताओ, हमारे प्यारे नन्दनन्दन कहाँ जा छिपे हैं ?' ॥ १३ ॥ वे अपनी वाणीसे 'श्रीकृष्ण ! श्रीकृष्ण !' कहकर पुकारती थीं । उनका चित्त श्रीकृष्णचरणारविन्दोंमें ही लगा हुआ था । अतः वे सब अंगनाएँ श्रीकृष्णस्वरूपा हो गयीं—ठीक उसी तरह जैसे भृंगके द्वारा बंद किया हुआ कीड़ा उसीके चिन्तनसे भृंगरूप हो जाता है ॥ १४ ॥ इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है । श्रीकृष्णकी चरणपादुकासे चिह्नित स्थानपर पहुँचकर गोपियाँ पादुकाब्जकी शरणमें गयीं ॥ १५ ॥ तदनन्तर भगवान्की ही कृपासे उनके चरणचिह्नके अर्चन और दर्शनसे गोपियोंको भगवच्चरणचिह्नोंसे अलंकृत भूमिका विशेषरूपसे दर्शन होने लगा ॥ १६ ॥ बहुलाश्वने पूछा—हे प्रभो ! राधावल्लभ श्यामसुन्दर अन्य गोपियोंको छोड़कर श्रीराधिकाके साथ कहाँ चले गये ? फिर गोपियोंको उनका दर्शन कैसे हुआ ? ॥ १७ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्ण श्रीराधिकाके साथ संकेतवटके नीचे चले गये और वहाँ प्रियतमा श्रीराधाके केशपाशोंकी वेणीमें पुष्परचना करने लगे ॥ १८ ॥ श्रीकृष्णके नीले केशोंमें श्रीराधिकाने वक्रता स्थापित की अर्थात् अपने केशरचना-कौशलसे उनके केशोंको घुँघराला बना दिया और उनके पूर्णचन्द्रोपम मुखमण्डलमें उन्होंने विचित्र पत्रावलीकी रचना की ॥ १९ ॥ इस प्रकार परस्पर शृंगार करके श्रीकृष्ण प्रियाके साथ भद्रवन, महान् खदिरवन, बिल्ववन और कोकिलावनमें गये ॥ २० ॥ उधर श्रीकृष्णको खोजती हुई गोपियोंने उनके चरणचिह्न देखे । जौ, चक्र, ध्वजा, छत्र, स्वस्तिक, अङ्कुश, बिन्दु, अष्टकोण, वज्र, कमल, नीलशङ्ख, घट, मत्स्य, त्रिकोण, बाण, ऊर्ध्व-रेखा, धनुष, गोखुर और अर्धचन्द्रके चिह्नोंसे सुशोभित महात्मा श्रीकृष्णके पदचिह्नोंका अनुसरण करती हुई गोपांगनाएँ उन चिह्नोंकी धूलि ले-लेकर अपने मस्तकपर रखतीं और आगे बढ़ती जाती थीं । फिर उन्होंने

केतुपद्मातपत्रैश्च यवेनाथोर्ध्वरेखया । चक्रचन्द्रार्द्धांकुशकैर्बिन्दुभिः शोभितानि च ॥२५॥
लवंगलतिकाभिश्च विचित्राणि विदेहराट् । गदापाठीनशंखैश्च गिरिराजेन शक्तिभिः ॥२६॥
सिंहासनरथाभ्यां च बिन्दुद्वययुतानि च । वीक्ष्य प्राहू राधिकया गतोऽसौ नंदनंदनः ॥२७॥
पश्यन्त्यस्तत्पादपद्मं कोकिलाख्यं वनं गताः । गोपीकोलाहलं श्रुत्वा राधिकां प्राह माधवः ॥२८॥
कोटिचंद्रप्रतीकाशे राधे सर्प त्वरं प्रिये । आगता गोपिकाः सर्वास्त्वां नेष्यन्ति हि सर्वतः २९॥
तदा मानवती राधा भूत्वा प्राह रमापतिम् । रूपयौवनकौशल्यशीलगर्वसमन्विता ॥३०॥

राधोवाच

चलितुं न समर्थाऽहं मन्दिरान्न विनिर्गता । सुकुमारी स्वेदयुक्ता कथं मां नयसि प्रिय ॥३१॥

नारद उवाच

इति वाक्यं ततः श्रुत्वा श्रीकृष्णो राधिकेश्वरः । पीताम्बरेण दिव्येन वायुं तस्यै चकार ह ॥३२॥
हस्तं गृहीत्वा तामाह गच्छ राधे यथासुखम् । कृष्णेनापि तदा प्रोक्ता न ययौ तेन वै पुनः ॥३३॥
पृष्ठं दत्त्वाऽथ हरये तूष्णींभूता स्थिता पुनः । प्रियां मानवतीं राधां प्राह कृष्णः सतां प्रियः॥३४॥

श्रीभगवानुवाच

विहाय गोपीरिह कामयाना भजाम्यहं मानिनि चेतसा त्वाम् ।
यत्ते प्रियं तत्प्रकरोमि राधे मे स्कन्धमारुह्य सुखं व्रजाशु ॥३५॥

श्रीनारद उवाच

एवं प्रियां प्रियतमः स्कन्धयानेप्सितां नृप । विहायान्तर्दधे कृष्णो स्वच्छन्दगतिरीश्वरः ॥३६॥
गतमाना कीर्तिसुता भगवद्विरहातुरा । उच्चै रुरोद राजेन्द्र कोकिलाख्ये वने परे ॥३७॥

तदैव यूथाः संप्राप्ता गोपीनां मैथिलेश्वर । तद्रोदनं दुःखतरं श्रुत्वा जग्मुस्त्रपातुराः ॥३८॥
काश्चित्तां मकरन्दैश्च स्नापयांचक्रुरीश्वरीम् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुंकुमद्रवसीकरैः ॥३९॥
वायुं चक्रुस्तदंगेषु व्यजनान्दोलचामरैः । आश्वास्य वाग्भिः परमां नानाऽनुनयकोविदैः ॥४०॥
तन्मुखान्मानिनो मानं श्रुत्वा कृष्णस्य गोपिकाः। मानवत्यो मैथिलेन्द्र विस्मयं परमं ययुः ॥४१॥

इति श्रीगर्गसंहितायां वृन्दावनखंडे नारदबहुलाश्वसंवादे रासक्रीडा नाम एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

(गोपाङ्गनाओं द्वारा श्रीकृष्णका स्तवन और भगवान्‌का उनके बीचमें प्रकट होना)

श्रीनारद उवाच

अथ कृष्णगुणान् रम्यान्समेताः सर्वयोषितः । जगुस्तालस्वरैः रम्यैः कृष्णागमनहेतवे ॥ १ ॥

गोप्य ऊचुः

लोकाभिराम जनभूषण विश्वदीप कन्दर्पमोहन जगद्वृजिनार्तिहारिन् ।
आनन्दकन्द यदुनन्दन नंदसूनो स्वच्छन्दपद्ममकरन्द नमो नमस्ते ॥ २ ॥
गोविप्रसाधुविजयध्वजदेववन्द्यकंसादिदैत्यवधहेतुकृतावतार ।
श्रीनन्दराजकुलपद्मदिनेश देव देवादिमुक्तजनदर्पण ते जयोऽस्तु ॥ ३ ॥
गोपालसिन्धुपरमौक्तिकरूपधारिन् गोपालवंशगिरिनीलमणे परात्मन् ।
गोपालमण्डलसरोवरकंजमूर्ते गोपालचन्दनवने कलहंसमुख्य ॥ ४ ॥
श्रीराधिकावदनपंकजषट्पदस्त्वं श्रीराधिकावदनचन्द्रचकोररूपः ।
श्रीराधिकाहृदयसुन्दरचन्द्रहारश्रीराधिकामधुलताकुसुमाकरोऽसि ॥ ५ ॥

रोदन करने लगीं ॥ ३७ ॥ हे मिथिलेश्वर ! उसी समय गोपियोंके यूथ वहाँ आ पहुँचे । श्रीराधाका अत्यन्त दुःखजनक रोदन सुनकर उन्हें बड़ी दया और लज्जा आयी ॥ ३८ ॥ कोई अपनी स्वामिनीको पुष्प-मकरन्दों (इत्र आदि) से नहलाने लगीं; कुछ चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और केसरसे मिश्रित जलके छींटे देने लगीं ॥३९॥ कुछ व्यजन और चँवर डुलाकर अङ्गोंमें हवा देने लगीं तथा अनुनय-विनयके मनोरम वचनोंद्वारा परा-देवी श्रीराधाको धीरज बँधाने लगीं ॥४०॥ हे मैथिलेन्द्र ! हे श्रीराधाके मुखसे मानी श्रीकृष्णके द्वारा दिये गये सम्मानकी बात सुनकर मानवती गोपाङ्गनाओंको बड़ा विस्मय हुआ ॥ ४१ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां वृन्दावन-खण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायामेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! तदनन्तर श्रीकृष्णके शुभागमनके लिये समस्त व्रजाङ्गनाएँ मिल-कर सुरम्य तालस्वरके साथ उन श्रीहरिके रमणीय गुणोंका गान करने लगीं ॥ १ ॥ गोपियाँ बोलीं—हे लोकसुन्दर ! जनभूषण ! विश्वदीप ! मदनमोहन ! तथा जगत्‌की पापराशि एवं पीड़ा हर लेनेवाले! आनन्द-कंद यदुनन्दन ! नन्दनन्दन ! तुम्हारे चरणारविन्दोंका मकरन्द भी परम स्वच्छन्द है, तुम्हें बारंबार नमस्कार है ॥ २ ॥ गौओं, ब्राह्मणों और साधु-संतोंके विजयध्वजरूप ! देववन्द्य तथा कंसादि दैत्योंके वधके लिये अवतार धारण करनेवाले ! श्रीनन्दराज-कुल-कमलदिवाकर ! देवाधिदेवोंके भी आदिकारण ! मुक्तजनदर्पण ! तुम्हारी जय हो ॥ ३ ॥ गोपवंशरूपी सागरमें परम उज्ज्वल मोतीके समान रूप धारण करनेवाले ! गोपाल कुलरूपी गिरिराजके नीलरत्न ! परमात्मन् ! गोपालमण्डलरूपी सरोवरके प्रफुल्ल कमल ! तथा गोपवृन्दरूपी नन्दनवनके प्रधान कलहंस ! तुम्हारी जय हो ॥ ४ ॥ हे प्यारे श्यामसुन्दर ! तुम श्रीराधिकाके मुखारविन्दका मकरन्द पान करनेवाले मधुप हो; श्रीराधाके मुखचन्द्रकी सुधामयी चन्द्रिकाके आस्वादक चकोर हो; श्रीराधाके वक्षःस्थलपर विद्योतमान चन्द्रहार हो तथा श्रीराधिकारूपिणी माधवीलताके लिये कुसुमाकर

योरासरंगनिजवैभवभूरिलीलो यो गोपिकानयनजीवनमूलहारः ।
मानं चकार रहसा किल मानवत्यां सोऽयं हरिर्भवतु नो नयनाग्रगामी ॥ ६ ॥
यो गोपिकासकलयूथमलंचकार वृंदावनं च निजपादरजोभिरद्रिम् ।
यः सर्वलोकविभवाय बभूव भूमौ तं भूरिलीलमुरगेन्द्रभुजं भजामः ॥ ७ ॥
चंद्रं प्रतप्तकिरणज्वलनं प्रसन्नं सर्वं वनांतमसिपत्रवनप्रवेशम् ।
बाणं प्रभंजनमतीव सुमन्दयानं मन्यामहे किल भवन्तमृते व्यथार्त्ताः ॥ ८ ॥
सौदासराजमहिषीविरहादतीव जातं सहस्रगुणितं नलपट्टराज्ञाः ।
तस्मात्तु कोटिगुणितं जनकात्मजायास्तस्मादनन्तमतिदुःखमलं हरे नः ॥ ९ ॥
श्रीउद्धवः सकलभक्तशिरोमणीशस्त्वत्पादपद्मवरमुख्यधिकारकारी ।
तस्माद्वयं च चरणौ शरणं गताः स्मः श्रीमन् कृपां कुरु शरण्यपदे शरण्ये ॥१०॥

श्रीनारद उवाच

इत्थं राजन् रुदन्तीनां गोपीनां कमलेक्षणः । आविर्बभूव सहसा स्वयमर्थमिवात्मनः ॥११॥
स्फुरत्किरीटकेयूरकुंडलांगदभूषणम् । स्निग्धामलसुगन्धाढ्यनीलकुंचितकुन्तलम् ॥१२॥
आगतं वीक्ष्य युगपत्समुत्तस्थुर्व्रजांगनाः । तन्मात्राणिच यं दृष्ट्वा यथा ज्ञानेन्द्रियाणि च ॥१३॥
हरिर्ननर्त तन्मध्ये वंशीवादनतत्परः । राधया सहितो राजन् यथा रत्या रतीश्वरः ॥१४॥
यावतीर्गोपिकाः सर्वास्तावद्रूपधरो हरिः । गच्छंस्ताभिर्व्रजे रेमे स्वावस्थाभिर्मनो यथा ॥१५॥

(ऋतुराज वसन्त) हो ॥ ५ ॥ जो रास-रङ्गस्थलीमें अपने वैभव (लीलाशक्ति) से भूरि-भूरि लीलाएँ प्रकट करते हैं, जो गोपाङ्गनाओंके नेत्रों और जीवनके मूलाधार एवं हारस्वरूप हैं तथा श्रीराधाके मान करनेपर जिन्होंने स्वयं मान कर लिया है, वे श्याममुन्दर श्रीहरि हमारे नेत्रोंके समक्ष प्रकट हों ॥ ६ ॥ जिन्होंने गोपिकाओंके समस्त यूथोंको, श्रीवृन्दावनकी भूमिको तथा गिरिराज गोवर्धनको अपनी चरण-धूलिसे अलंकृत किया है; जो सम्पूर्ण जगत्के उद्भव तथा पालनके लिये भूतलपर प्रकट हुए हैं; जिनकी कान्ति अत्यन्त श्याम है और भुजाएँ नागराजके शरीरकी भाँति सुशोभित होती हैं, उन नन्दनन्दन माधवकी हम आराधना करती हैं ॥ ७ ॥ हे प्राणनाथ ! तुम्हारे बिना वियोग-व्यथासे पीड़ित हम सब गोपियोंको चन्द्रमा सूर्यकी किरणोंके समान दाहक प्रतीत होता है। यह सम्पूर्ण वनान्त-भाग जो पहले प्रसन्नताका केन्द्र था, अब इसमें आनेपर ऐसा जान पड़ता है, मानो हमलोग असिपत्रवनमें प्रविष्ट हो गयी हैं और अत्यन्त मन्द-मन्द गतिसे प्रवाहित होनेवाली वायु हमें बाण-सी लगती है। हे हरे ! राजा सौदासकी रानी मदयन्तीको अपने पतिके विरहसे जो दुःख हुआ था, उससे हजारगुना दुःख नलकी महारानी दमयन्तीको पति-वियोगके कारण प्राप्त हुआ था। उनसे भी कोटिगुना अधिक दुःख पतिविरहिणी जनकनन्दिनी सीताको हुआ था और उनसे भी अनन्तगुना अधिक दुःख आज हम सबको हो रहा है ॥ ८ ॥ ९ ॥ श्रीउद्धवजी सब भक्तोंके शिरोमणि और आपके चरणोंकी प्राप्तिके मुख्य अधिकारी हैं। इसी कारण हम आपके चरणोंकी शरणागत हैं। हे श्रीमन् ! हमपर कृपा कीजिए और अपने शरणदायक चरणोंकी शरण दीजिए ॥ १० ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! इस प्रकार रोती हुई गोपाङ्गनाओंके बीचमें कमलनयन श्रीकृष्ण सहसा प्रकट हो गये, मानो अपना अभीष्ट मनोरथ स्वयं आकर मिल गया हो ॥ ११ ॥ उनके मस्तकपर किरीट, भुजाओंमें केयूर और अङ्गद तथा कानोंमें कुण्डल नामक भूषण अपनी दीप्ति फैला रहे थे। स्निग्ध, निर्मल, सुगन्धपूर्ण, नीले, घुँघराले केश-कलाप मनको मोहे लेते थे ॥१२॥ उन्हें आया हुआ देख समस्त व्रजाङ्गनाएँ एक साथ उठकर खड़ी हो गयीं, जैसे शब्दादि सूक्ष्म भूतोंके समूहको देखकर ज्ञानेन्द्रियाँ सहसा सचेष्ट हो जाती हैं ॥ १३ ॥ हे राजन् ! उन गोपसुन्दरियोंके मध्यभागमें राधाके साथ श्याममुन्दर श्रीकृष्ण बाँसुरी बजाते हुए इस प्रकार नृत्य करने लगे, मानो रतिके साथ मूर्तिमान् काम नाच रहा हो ॥ १४ ॥ जितनी संख्यामें समस्त गोपियाँ थीं, उतने

वनोद्देशे स्थितं कृष्णं गतदुःखा व्रजांगनाः। कृतांजलिपुटा ऊचुर्गिरा गद्गदया हरिम् ॥१६॥

गोप्य ऊचुः

क्व गतस्त्वं वद हरे त्यक्त्वा गोपीगणो महान्। सर्वं जगत्तृणीकृत्य त्वत्पादे प्राप्तमानसम् ॥१७॥

श्रीभगवानुवाच

हे गोप्यः पुष्करद्वीपे हंसो नाम महामुनिः। समुद्रे दधिमंडोदे ततापान्तर्गतस्तपः ॥१८॥
चकाराहैतुकीं भक्तिं मम ध्यानपरायणः। व्यतीतं तस्य तपतो गोप्यो मन्वन्तरद्वयम् ॥१९॥
तमद्यैवाग्रसन्मत्स्यो योजनार्द्धवपुर्धरः। तन्निर्जगार पौंड्रस्तु मत्स्यरूपधरोऽसुरः ॥२०॥
एवं संप्राप्तकष्टस्य हंसस्यापि मुनेरहम्। गत्वाऽथ शीघ्रेण तयोः शिरश्छित्वाऽरिणा मुनिम्२१॥
मोचयित्वाऽथ गतवान् श्वेतद्वीपे व्रजांगनाः। क्षीराब्धौ शेषपर्यंके शयनं तु मया कृतम् ॥२२॥
दुःखिता भवतीर्ज्ञात्वा निद्रां त्यक्त्वा ततःप्रियाः। सहसा भक्तवश्योऽहं पुनरागतवानिह ॥२३॥

जानन्ति सन्तः समदर्शिनो ये दान्ता महान्तः किल नैरपेक्ष्याः।
ते नैरपेक्ष्यं परमं सुखं मे ज्ञानेन्द्रियादीनि यथा रसादीन् ॥२४॥

गोप्य ऊचुः

क्षीराब्धौ शेषपर्यंके यद्रूपं च त्वया धृतम्। तद्रूपदर्शनं देहि यदि प्रीतोऽसि माधव ॥२५॥

श्रीनारद उवाच

तथाऽस्तु चोक्त्वा भगवान्गोपीव्यूहस्य पश्यतः। दधाराष्टभुजं रूपं श्रीराधारूपमेव च ॥२६॥
तत्र क्षीरसमुद्रोऽभूल्लोलकल्लोलमंडितः। दिव्यानि रत्नसौधानि बभूवुर्मंगलानि च ॥२७॥
तत्र शेषो बिसश्वेतः कुण्डलीभूतसंस्थितः। बालार्कमौलिसाहस्रफणाछत्रविराजितः ॥२८॥

ही रूप धारण करके श्रीहरि उनके साथ व्रजमें रास-विहार करने लगे—ठीक उसी तरह, जैसे जाग्रत् आदि अवस्थाओंके साथ मन क्रीड़ा कर रहा हो ॥ १५ ॥ उस समय उस वनप्रदेशमें दुःख रहित हुई व्रजांगनाएँ वहाँ खड़े हुए श्यामसुन्दर श्रीकृष्णसे हाथ जोड़ गद्गद वाणीमें बोलीं ॥ १५ ॥ गोपियोंने पूछा—हे श्यामसुन्दर ! जो सारे जगत्को तिनकेकी भाँति त्यागकर तुम्हारे चरणारविन्दोंमें अपना तन, मन और प्राण अर्पित कर चुकी हैं, उन्हीं इन गोपियोंके इस महान् समुदायको छोड़कर तुम कहाँ चले गये थे ? ॥ १७ ॥ श्रीभगवान् बोले—हे गोपाङ्गनाओं ! पुष्करद्वीपके दधिमण्डोद समुद्रके भीतर रहकर 'हंस' नामक महामुनि तपस्या कर रहे थे ॥ १८ ॥ वे मेरे ध्यानमें रत रहकर बिना किसी हेतु या कामनाके भजन करते थे। उन तपस्वी महामुनिको तपस्या करते हुए दो मन्वन्तरका समय इसी तरह बीत गया ॥१९॥ उन्हें आज ही आधे योजन लंबा शरीर धारण करनेवाला एक मत्स्य निगल गया था। फिर उसे भी मत्स्यरूपधारी महान् असुर पौण्ड्र निगल गया ॥ २० ॥ इस प्रकार कष्टमें पड़े हुए मुनिवर हंसके उद्धारके लिये मैं शीघ्र वहाँ गया और चक्रसे उन दोनों मत्स्योंका वध करके मुनिको संकटसे छुड़ाकर श्वेतद्वीपमें चला गया। हे व्रजांगनाओं ! वहाँ क्षीरसागरके भीतर शेषशय्यापर मैं सो गया था ॥ २१ ॥ २२॥ फिर अपनी प्रियतमा तुम सब गोपियोंको दुखी जान नींद त्यागकर सहसा यहाँ आ पहुँचा; क्योंकि मैं सदा भक्तोंके वशमें रहता हूँ ॥ २३ ॥ जो जितेन्द्रिय, समदर्शी तथा किसी भी वस्तुकी इच्छा न रखनेवाले महान् संत हैं, वे निरपेक्षताको ही मेरा परम सुख जानते हैं; जैसे ज्ञानेन्द्रियाँ आदि सूक्ष्म भूतोंको ही सुख समझती हैं ॥ २४ ॥ गोपियोंने कहा—हे माधव ! यदि हमपर प्रसन्न हों तो क्षीरसागरमें शेषशय्यापर तुमने जो रूप धारण किया था, उसका हमें दर्शन कराओ ॥ २५ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—तब 'तथास्तु' कहकर भगवान् गोपी-समुदायके देखते-देखते आठ भुजाधारी नारायण हो गये और श्रीराधा लक्ष्मीरूपा हो गयीं ॥ २६ ॥ वहीं चञ्चल तरंगमालाओंसे मण्डित क्षीरसागर प्रकट हो गया। दिव्य रत्नमय मंगलरूप प्रासाद दृष्टिगोचर होने लगे ॥ २७ ॥ वहीं कमलनालके सदृश श्वेत शेषनाग कुण्डली बाँधे स्थित दिखायी दिये, जो बालसूर्यके

तस्मिन् वै शेषपर्यंके सुखं सुष्वाप माधवः । तस्य श्रीरूपिणी राधा पादसेवां चकार ह ॥२९॥
तद्रूपं सुंदरं दृष्ट्वा कोटिमार्तंडसन्निभम् । नत्वा गोपीगणाः सर्वे विस्मयं परमं गताः ॥३०॥
गोपीभ्यो दर्शनं दत्तं यत्र कृष्णेन मैथिल । तत्र क्षेत्रं महापुण्यं जातं पापप्रणाशनम् ॥३१॥
अथ गोपीगणैः सार्द्धं यमुनामेत्य माधवः । कालिन्दीजलवेगेषु जलकेलिं चकार ह ॥३२॥
राधाकराल्लक्षदलं पद्मं नीत्वांबरं तथा । धावन् जलेषु गतवान् प्रहसन् माधवः स्वयम् ॥३३॥
राधा हरेः पीतपटं वंशीवेत्रस्फुरत्प्रभम् । गृहीत्वा प्रहसन्ती सा गच्छन्ती यमुनाजले ॥३४॥
वंशीं देहीति वदतः श्रीकृष्णस्य महात्मनः । राधा जगाद कमलं वासो देहीति माधव ॥३५॥
कृष्णो ददौ राधिकायै पद्ममंबरमेव च । राधा ददौ पीतपटं वेत्रं वंशीं महात्मने ॥३६॥
अथ कृष्णः कलं गायन् मालामाजानुलंबिताम् । वैजयन्तीमादधानः श्रीभांडीरं जगाम ह ॥३७॥
प्रियायास्तत्र शृंगारं चकार कुशलेश्वरः । पत्रावलीयावकाग्रैः पुष्पैः कज्जलकुंकुमैः ॥३८॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकेसराद्यैर्हरेर्मुखे । पत्रं चकार शृंगारे मनोज्ञं कीर्तिनन्दिनी ॥३९॥

इति श्रीगर्गसंहितायां वृंदावनखण्डे रासक्रीडा नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

(कंस और शङ्खचूडमें युद्ध तथा उनकी मैत्रीका वृत्तान्त; श्रीकृष्ण द्वारा शङ्खचूडका वध)

श्रीनारद उवाच

अथ कृष्णो गोपिकाभिर्लोहजंघवनं ययौ । वसन्तमाधवीभिश्च लताभिः संकुलं नृप ॥ १ ॥
तत्पुष्पदामनिचयैः स्फुरत्सौगंधिशालिभिः । सर्वासां हरिणा तत्र कबर्यो गुंफितास्ततः ॥ २ ॥

समान तेजस्वी सहस्र फनोंके छत्रसे सुशोभित थे ॥ २८ ॥ उस शेषशय्यापर माधव सुखसे सो गये तथा लक्ष्मीरूपधारिणी श्रीराधा उनके चरण दबानेकी सेवा करने लगीं ॥ २९ ॥ करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी उस सुन्दर रूपको देखकर गोपियोंने प्रणाम किया और वे सभी परम आश्चर्यमें निमग्न हो गयीं ॥ ३० ॥ हे मैथिल ! जहाँ श्रीकृष्णने गोपियोंको इस रूपमें दर्शन दिया था, वह परम पुण्यमय पापनाशक क्षेत्र बन गया ॥ ३१ ॥ तदनन्तर माधव गोपाङ्गनाओंके साथ यमुना तटपर आकर कालिन्दीके वेगपूर्ण प्रवाहों संतरण-कला-केलि करने लगे ॥ ३२ ॥ श्रीराधाके हाथसे उनका लक्षदल कमल और चादर लेकर माधव पानीमें दौड़ते तथा हँसते हुए दूर निकल गये ॥ ३३ ॥ तब श्रीराधा भी उनके चमकीले पीताम्बर वंशी और बेंत लेकर हँसती हुई यमुनाजलमें चली गयीं ॥ ३४ ॥ अब महात्मा श्रीकृष्ण उन्हें माँगते हुए बोले—'हे राधे ! मेरी बाँसुरी दे दो ।' श्रीराधा कहने लगीं—'हे माधव ! मेरा कमल और वस्त्र लौटा दो ।' ॥ ३५ ॥ श्रीकृष्णने श्रीराधाको कमल और वस्त्र दे दिये । तब श्रीराधाने भी महात्मा श्रीकृष्णको वंशी, पीताम्बर और बेंत लौटा दिये ॥ ३६ ॥ तदनन्तर श्रीकृष्ण आजानुलम्बिनी (घुटनेतक लटकती) हुई वैजयन्तीमाला धारण किये, मधुर गीत गाते हुए भाण्डीरवनमें गये ॥ ३७ ॥ वहाँ चतुर-चूडामणि श्यामसुन्दरने प्रियाका शृङ्गार किया । भाल तथा कपोलोंपर पत्ररचना की, पैरोंमें महावर लगाया, फूलोंकी माला धारण करायी, वेणीको भी फूलोंसे सजाया, ललाटमें कुङ्कुमकी बेंदी तथा नेत्रोंमें काजल लगाया ॥३८॥ इसी प्रकार कीर्तिनन्दिनी श्रीराधा भी उस शृङ्गार-स्थलमें चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और केसर आदिसे श्रीहरिके मुखपर मनोहर पत्ररचना की ॥ ३९ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां वृन्दावनखंडे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! तत्पश्चात् श्रीकृष्ण व्रजाङ्गनाओंके साथ लोहजङ्घ-वनमें गये, जो वसन्ती माधवी तथा अन्यान्य लता-वल्लरियोंसे व्याप्त था ॥ १ ॥ उस वनके सुगन्ध बिखेरनेवाले सुन्दर

भ्रमरध्वनिसंयुक्ते सुगन्धानिलवासिते । कालिन्दीनिकटे कृष्णो विचचार प्रियान्वितः ॥ ३ ॥
करिल्लैः पीलुभिः श्यामैस्तमालैः संकुलद्रुमैः । महापुण्यवनं कृष्णो ययौ रासेश्वरो हरिः ॥ ४ ॥
तत्र रासं समारेभे रासेश्वर्या समन्वितः । गीयमानश्च गोपीभिस्त्रिगोभिः स्वराडिव ॥ ५ ॥
तत्र चित्रमभूद्राजन् शृणु त्वं तन्मुखान्मम । शंखचूडो नाम यक्षो धनदानुचरो बली ॥ ६ ॥
भूतले तत्समो नास्ति गदायुद्धविशारदः । मन्मुखादौग्रसेनेश्च बलं श्रुत्वा महोत्कटम् ॥ ७ ॥
लक्षभारमयीं गुर्वीं गदामादाय यक्षराट् । स्वसकाशान्मधुपुरीमाययौ चण्डविक्रमः ॥ ८ ॥
सभायामास्थितं प्राह कंसं नत्वा मदोद्धतः । गदायुद्धं देहि मह्यं त्रैलोक्यविजयी भवान् ॥ ९ ॥
अहं दासो भवेयं वै भवांश्च विजयी यदि । अहं जयी चेद्भवंतं दासं शीघ्रं करोम्यहम् ॥१०॥
तथास्तु चोक्त्वा कंसस्तु गृहीत्वा महतीं गदाम् । शंखचूडेन युयुधे रंगभूमौ विदेहराट् ॥११॥
तयोश्च गदया युद्धं घोररूपं बभूव ह । ताडनाच्चट्चटाशब्दं कालमेघतडिद्ध्वनि ॥१२॥
शुशुभाते रंगमध्ये मल्लौ नाट्ये नटाविव । इभेन्द्राविव दीर्घांगौ मृगेन्द्राविव चोद्भटौ ॥१३॥
द्वयोश्च युध्यतो राजन् परस्परजिगीषया । विस्फुलिंगान् क्षरन्त्यौ द्वे गदे चूर्णीबभूवतुः ॥१४॥
कंसः प्रकुपितं यक्षं मुष्टिनाऽभिजघान ह । शंखचूडोऽपि तं कंसं मुष्टिना तं तताड च ॥१५॥
मुष्टामुष्टि तयोरासीद्दिनानां सप्तविंशतिः । द्वयोरक्षीणबलयोर्विस्मयं गतयोस्ततः ॥१६॥
शंखचूडं संगृहीत्वा कंसो दैत्याधिपो बली । बलाच्चिक्षेप सहसा व्योम्नि तं शतयोजनम् ॥१७॥
शंखचूडः प्रपतितः किंचिद्व्याकुलमानसः । कंसं गृहीत्वा नभसि चिक्षेपायुतयोजनम् ॥१८॥

आकाशात्पतितः कंसः किंचिद्व्याकुलमानसः । यक्षं गृहीत्वा सहसा पातयामास भूतले ॥१९॥
शंखचूडस्तं गृहीत्वा पोथयामास भूतले । एवं युद्धे संप्रवृत्ते चकंपे भूमिमंडलम् ॥२०॥
मुनीन्द्रः सर्ववित्साक्षाद्गर्गाचार्यः समागतः । रंगेषु वन्दितस्ताभ्यां कंसं प्राहोर्जया गिरा ॥२१॥

श्रीगर्ग उवाच

युद्धं मा कुरु राजेंद्र विफलोऽयं रणोऽत्र वै । त्वत्समानो ह्ययं वीरः शंखचूडो महाबलः ॥२२॥
तव मुष्टिप्रहारेण भूशमैरावतो गजः । जानुभ्यां धरणीं स्पृष्ट्वा कश्मलं परमं ययौ ॥२३॥
अन्येऽपि बलिनो दैत्या मुष्टिना ते मृतिं गताः । शंखचूडो न पतितः संदेहो नास्ति तच्छृणु ॥२४॥
परिपूर्णतमो यो वै सोऽपि त्वां घातयिष्यति । तथैनं शंखचूडाख्यं शिवस्यापि वरोर्जितम् ॥२५॥
तस्मात्प्रेम प्रकर्तव्यं शंखचूडे यदूद्वह । यक्षराट् च त्वया कंसे कर्तव्यं प्रेम निश्चितम्॥२६॥

श्रीनारद उवाच

गर्गेणोक्तौ तदा तौ द्वौ मिलित्वाऽथ परस्परम् । परमां चक्रतुः प्रीतिं शंखचूडयदूद्वहौ ॥२७॥
अथ कंसमनुज्ञाप्य गृहं गन्तुं समुद्यतः । गच्छन्मार्गेऽशृणोद्रात्रौ रासगानं मनोहरम् ॥२८॥
तालशब्दानुसारेण संप्राप्तो रासमंडले । रासेश्वर्या समं रासेऽपश्यद्रासेश्वरं हरिम् ॥२९॥

श्रीराधयाऽलंकृतवामबाहुं स्वच्छन्दवक्रीकृतदक्षिणांघ्रिम् ।
वंशीधरं सुन्दरमंदहासं भ्रूमंडलैर्मोहितकामराशिम् ॥३०॥
व्रजांगनायूथपतिं व्रजेश्वरं सुसेवितं चामरछत्रकोटिभिः ।
विज्ञाय कृष्णं ह्यतिकोमलं शिशुं गोपीं समाहर्तुमलं मनोऽकरोत् ॥३१॥

पकड़कर बलपूर्वक आकाशमें फेंक दिया । वह सौ योजन ऊपर चला गया ॥ १७ ॥ शंखचूड आकाशसे जब वेगपूर्वक नीचे गिरा तो उसके मनमें किंचित् व्याकुलता आ गयी, तथापि उसने भी कंसको पकड़कर आकाशमें दस हजार योजन ऊँचे फेंक दिया ॥१८॥ कंस भी आकाशसे गिरनेपर मन-ही-मन कुछ व्याकुल हो उठा। फिर उसने यक्षको पकड़कर सहसा पृथ्वीपर दे मारा ॥१९॥ फिर शंखचूडने भी कंसको पकड़कर भूमिपर पटक दिया । इस प्रकार घोर युद्ध चलते रहनेके कारण भूमण्डल काँपने लगा ॥२०॥ इसी बीच सर्वज्ञ मुनिवर साक्षात् गर्गाचार्य वहाँ आ गये। दोनोंने रङ्गभूमिमें उन्हें देखकर प्रणाम किया। तब गर्गने ओजस्विनी वाणीमें कंससे कहा ॥२१॥ श्रीगर्गजी बोले—हे राजेन्द्र ! युद्ध न करो । इस युद्धसे कोई फल मिलनेवाला नहीं है । यह महाबली शङ्खचूड तुम्हारे समान ही वीर है ॥ २२ ॥ तुम्हारे मुक्केकी मार खाकर गजराज ऐरावतने धरतीपर घुटने टेक दिये थे और उसे अत्यन्त मूर्च्छा आ गयी थी ॥२३॥ और भी बहुत-से दैत्य तुम्हारे मुक्केकी मार खाकर मृत्युके ग्रास बन गये हैं, परंतु शङ्खचूड धराशायी नहीं हो सका । इसमें संदेह नहीं कि यह तुम्हारे लिये अजेय है । इसका कारण सुनो ॥ २४ ॥ वे परिपूर्णतम परमात्मा जैसे तुम्हारा वध करनेवाले हैं, उसी तरह भगवान् शिवके वरसे बलशाली इस शङ्खचूडको भी वे ही मारेंगे ॥२५॥ अतः हे यदुनन्दन ! तुम्हें शङ्खचूडपर प्रेम करना चाहिये । हे यक्षराज ! तुम्हें भी अवश्य ही कंसपर प्रेमभाव रखना चाहिये ॥ २६ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! गर्गाचार्यजीके यों कहनेपर शङ्खचूड तथा कंस—दोनों परस्पर गले मिले और एक-दूसरेसे अत्यन्त प्रेम करने लगे ॥ २७ ॥ तदनन्तर कंससे विदा ले शंखचूड अपने घरको जाने लगा । रात्रिके समय मार्गमें उसे रासमण्डल मिला । वहाँ ताल-स्वरसे युक्त मनोहर गान उसके कानमें पड़ा ॥ २८ ॥ फिर उसने रासमें श्रीरासेश्वरीके साथ रासेश्वर श्रीकृष्णका दर्शन किया ॥ २९ ॥ उनकी बायीं भुजा श्रीराधाके कंधेपर सुशोभित थी । वे स्वेच्छानुसार अपने दाहिने पैरको टेढ़ा किये खड़े थे । हाथमें वंशी लिये मुखसे सुन्दर मन्द हासकी छटा छिटका रहे थे । उनके भ्रूमण्डलपर राशि-राशि कामदेव मोहित थे ॥ ३० ॥ व्रजसुन्दरियोंके यूथपति व्रजेश्वर श्रीकृष्ण कोटि-कोटि छत्र-चँवरोंसे सुसेवित थे । उन्हें अत्यन्त कोमल शिशु जानकर शंखचूडने गोपियोंको हर ले जानेका विचार किया ॥ ३१ ॥ बहुलाश्वने पूछा—हे विप्रवर ! आप भूत और भविष्य—

बहुलाश्व उवाच

किं बभूव ततो रासे शंखचूडे समागते । एतन्मे ब्रूहि विप्रेंद्र त्वं परावरवित्तमः ॥३२॥

श्रीनारद उवाच

व्याघ्राननं कृष्णवर्णं तालवृक्षदशोच्छ्रितम् । भयंकरं ललज्जिह्वं दृष्ट्वा गोप्योऽति तत्रसुः ॥३३॥
दुद्रुवुः सर्वतो गोप्यो महान्कोलाहलोऽभवत् । हाहाकारस्तदैवासीच्छंखचूडे समागते ॥३४॥
शतचंद्राननां गोपीं गृहीत्वा यक्षराट् खलः । दुद्रावाशूत्तरामाशां निःशंकः कामपीडितः ॥३५॥
रुदन्तीं कृष्ण कृष्णेति क्रोशन्तीं भयविह्वलाम् । तमन्वधावच्छ्रीकृष्णः शालहस्तो रुषा भृशम् ॥३६॥
यक्षो वीक्ष्य तमायान्तं कृतान्तमिव दुर्जयम् । गोपीं त्यक्त्वा जीवितेच्छुः प्राद्रवद्भयविह्वलः ३७॥
यत्र यत्र गतो धावन् शंखचूडो महाखलः । तत्र तत्र गतः कृष्णः शालहस्तो भृशं रुषा ॥३८॥
हिमाचलतटं प्राप्तः शालमुद्यम्य यक्षराट् । तस्थौ तत्संमुखे राजन् युद्धकामो विशेषतः ॥३९॥
तस्मै चिक्षेप भगवान् शालवृक्षं भुजौजसा । तेन घातेन पतितो वृक्षो वातहतो यथा ॥४०॥
पुनरुत्थाय वैकुंठं मुष्टिना तं जघान ह । जगर्ज सहसा दुष्टो नादयन्मण्डलं दिशाम् ॥४१॥
गृहीत्वा तं हरिर्दोर्भ्यां भ्रामयित्वा भुजौजसा । पातयामास भूपृष्ठे वातः पद्ममिवोद्धृतम् ॥४२॥
शंखचूडस्तं गृहीत्वा पोथयामास भूतले । एवं युद्धे संप्रवृत्ते चकम्पे भूमिमण्डलम् ॥४३॥
मुष्टिना तच्छिरश्छित्वा तस्माच्चूडामणिं हरिः । जग्राह माधवः साक्षात्सुकृती शेवधिं यथा ॥४४॥
तज्ज्योतिर्निर्गतं दीर्घं द्योतयन्मंडलं दिशाम् । श्रीदाम्नि श्रीकृष्णसखे लीनं जातं व्रजे नृप ४५॥
एवं हत्वा शंखचूडं भगवान्मधुसूदनः । मणिपाणिः पुनः शीघ्रमाययौ रासमंडलम् ॥४६॥

सब जानते हैं; अतः बताइये, रासमण्डलमें शंखचूडके आनेपर क्या हुआ ? ॥ ३२ ॥ श्रीनारदजीने कहा—हे राजन् ! शंखचूडका मुँह था बाघके समान और शरीरका रंग था एकदम काला-कलूटा । वह दस ताड़के बराबर ऊँचा था और जीभ लपलपाकर जवड़े चाटता हुआ बड़ा भयंकर जान पड़ता था । उसे देखकर गोपाङ्गनाएँ भयसे थर्रा उठीं ॥ ३३ ॥ और चारों ओर भागने लगीं । इससे महान् कोलाहल होने लगा । इस प्रकार शंखचूडके आते ही रासमण्डलमें हाहाकार मच गया ॥ ३४ ॥ वह कामपीड़ित दुष्ट यक्षराज शतचन्द्रानना नामवाली गोपसुन्दरीको पकड़कर बिना किसी भय और आशङ्काके उत्तर दिशाकी ओर दौड़ चला ॥ ३५ ॥ शतचन्द्रानना भयसे व्याकुल हो 'कृष्ण ! कृष्ण !!' पुकारती हुई रोने लगी । यह देख श्रीकृष्ण अत्यन्त कुपित हो, शालका वृक्ष हाथमें लिये, उसके पीछे दौड़े ॥ ३६ ॥ कालके समान दुर्जय श्रीकृष्णको पीछा करते देख यक्ष उस गोपीको छोड़कर भयसे विह्वल हो प्राण बचानेकी इच्छासे भागा ॥ ३७ ॥ महादुष्ट शंखचूड भागकर जहाँ-जहाँ गया, वहाँ-वहाँ श्रीकृष्ण भी शालवृक्ष हाथमें लिये अत्यन्त रोषपूर्वक गये ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! हिमालयकी घाटीमें पहुँचकर उस यक्षराजने भी एक शाल उखाड़ लिया और उनके सामने विशेषतः युद्धकी इच्छासे वह खड़ा हो गया ॥ ३९ ॥ भगवान्‌ने अपने बाहुबलसे शंखचूडपर उस शालवृक्षको दे मारा । उसके आघातसे शंखचूड आँधीके उखाड़े हुए पेड़की भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ४० ॥ शंखचूडने फिर उठकर भगवान् श्रीकृष्णको मुक्केसे मारा । मारकर वह दुष्ट यक्ष सम्पूर्ण दिशाओंको निनादित करता हुआ सहसा गरजने लगा ॥ ४१ ॥ तब श्रीहरिने उसे दोनों हाथोंसे पकड़ लिया और भुजाओंके बलसे घुमाकर उसी तरह पृथ्वीपर पटक दिया, जैसे वायु उखाड़े हुए कमलको फेंक देती है ॥ ४२ ॥ शंखचूडने भी श्रीकृष्णको पकड़कर धरतीपर दे मारा । जब इस प्रकार युद्ध चलने लगा, तब सारा भूमण्डल काँप उठा ॥ ४३ ॥ तब माधव श्रीकृष्णने मुक्केकी मारसे उसके सिरको धड़से अलग कर दिया और उसकी चूडामणि ले ली—ठीक उसी तरह जैसे कोई पुण्यात्मा पुरुष कहींसे निधि प्राप्त कर लेता है ॥ ४४ ॥ हे नरेश्वर ! शंखचूडके शरीरसे एक विशाल ज्योति निकली और दिङ्मण्डलको विद्योतित करती हुई व्रजमें श्रीकृष्णसखा श्रीदामाके भीतर विलीन हो गयी ॥ ४५ ॥ इस प्रकार शंखचूडका वध करके भगवान् मधुसूदन, हाथमें मणि लिये, फिर शीघ्र

काश्चिद्भुजाभ्यां श्रीकृष्णं योगिनामपि दुर्लभम् । संगृहीत्वा प्रहस्याराच्चक्रुरालिंगनं महत् ॥१३॥
मनोज्ञो यदुराजा च गोपीनां भगवान् हरिः । काश्मीरमुद्रितो रेमे वने वृन्दावनेश्वरः ॥१४॥
काश्चिद्वीणां वादयन्त्यः समं वंशीधरेण वै । काश्चिन्मृदंगं वाद्यंत्यो गायन्त्यो भगवद्गुणम् १५॥
काश्चिद्वै मधुरं तालं ताडयन्त्यो हरेः पुरः । मुरयष्टिं संगृहीत्वा हरिणा माधवीतले ॥१६॥
गायन्त्यः सुस्थिरा भूमौ विस्मृत्य जगतः सुखम् । काश्चिल्लतासु श्रीकृष्णं भुजे बाहुं निधाय च ॥१७॥
वृंदावनस्य पश्यन्त्यो शोभां राजन्नितस्ततः । लताजालैः संवलितं गोपीनां हारसंचयम् ॥१८॥
पृथक्चकार गोविन्दः स्पृष्ट्वा तासामुरःस्थलम् । गोपीनां नासिकामुक्तावलिं तत्कुंतलं स्वयम् ॥१९॥
शनैः शनैः शोभनं तच्चक्रे श्रीनंदनन्दनः । ताम्बूलं चर्वितं ह्यर्द्धं नीत्वा सद्योऽथ गोपिकाः २०॥
चर्वयन्त्यः सुगन्धाढ्यमहो तासां तपो महत् । काश्चिच्छ्यामकपोलेषु द्व्यंगुलेन शनैः शनैः ॥२१॥
हसन्त्यस्ताडयन्त्यस्ताः कदम्बेषु बलात्पृथक् । पुंवेषनायकाः काश्चिन्मौलिकुंडलमंडिताः ॥२२॥
नृत्यन्त्यः कृष्णपुरतः श्रीकृष्ण इव मैथिल । राधावेषधरा गोप्यः शतचन्द्राननप्रभाः ॥२३॥
तोषयन्त्यश्च राधां तां तथा राधापतिं जगुः । काश्चित्ताः सात्त्विकैर्भावैः संयुक्ताः प्रेमविह्वलाः॥२४॥
योगीव चास्थिता भूमौ परमानन्दसंप्लुताः । काश्चिल्लतासु वृक्षेषु भूम्यां वै विदिशासु च ॥२५॥
पश्यन्त्यःश्रीपतिं देवं स्वस्मिन्वा मौनमास्थिताः। एवं रासे गोपवध्वः सर्वाः पूर्णमनोरथाः ॥२६॥
बभूवुरेत्य गोविंदं सर्वेशं भक्तवत्सलम् । यत्प्रसादस्तु गोपीनां प्राप्तो राजन्महामते ॥२७॥

श्रीकृष्णके अधरामृतका पान कर लेती थीं ॥ १२ ॥ कितनी ही गोपियाँ योगियोंके लिये भी दुर्लभ श्रीकृष्णको दोनों भुजाओंसे पकड़कर हँसती हुई अत्यन्त निकट आ जातीं और उनका गाढ़ आलिंगन कर लेती थीं ॥ १३॥ इस प्रकार परम मनोहर वृन्दावनाधीश्वर यदुराज भगवान् श्रीहरि केसरका तिलक धारण किये, गोपियोंके साथ वृन्दावनमें विहार करने लगे ॥ १४ ॥ कुछ गोपाङ्गनाएँ वंशीधरकी बाँसुरीके साथ वीणा बजाती थीं और कितनी ही मृदंग बजाती हुई भगवान्के गुण गाती थीं ॥ १५ ॥ कुछ श्रीहरिके सामने खड़ी हो मधुर स्वरसे खड़ताल बजातीं और बहुत-सी सुन्दरियाँ माधवी लताके नीचे मुरचंग बजाती हुई श्रीकृष्णके साथ सुस्थिरभावसे गीत गाती थीं ॥ १६ ॥ वे भूतलके सांसारिक सुखोंको सर्वथा भुलाकर वहाँ रम रही थीं। कुछ गोपियाँ लतामण्डपोंमें श्रीकृष्णके हाथको अपने हाथमें लेकर इधर-उधर घूमती हुई वृन्दावनकी शोभा निहारती थीं। किन्हीं गोपियोंके हार लता-जालसे उलझ जाते, तब गोविन्द उनके वक्षःस्थलका स्पर्श करते हुए उन हारोंको लता-जालोंसे पृथक् कर देते थे। गोप-सुन्दरियोंकी नासिकामें जो नकबेसरें थीं, उनमें मोतीकी लड़ियाँ पिरोयी गयी थीं। उनको तथा उनकी अलकावलियोंको श्यामसुन्दर स्वयं सँभालते और धीरे-धीरे सुलझाकर सुशोभन बनाते रहते थे। माधवके चबाये हुए सुगन्धयुक्त ताम्बूलमेंसे आधा लेकर तत्काल गोपसुन्दरियाँ भी चबाने लगती थीं। अहो! उनका कैसा महान् तप था! कितनी ही गोपियाँ हँसती हुई श्यामसुन्दरके कपोलोंको अपनी दो अँगुलियोंसे धीरे-धीरे छूतीं और कोई हँसती हुई बलपूर्वक हल्का-सा आघात कर बैठती थीं। कदम्बवृक्षोंके नीचे पृथक्-पृथक् सभी गोपांगनाओंके साथ उनका क्रीडा-विनोद चल रहा था ॥ १७–२१ ॥ हे मिथिलेश्वर! कुछ गोपांगनाएँ पुरुष-वेष धारणकर, मुकुट और कुण्डलोंसे मण्डित हो, स्वयं नायक बन जातीं और श्रीकृष्णके सामने उन्हींकी तरह नृत्य करने लगती थीं। जिनकी मुख-कान्ति शत-शत चन्द्रमाओंको तिरस्कृत करती थी, ऐसी गोपसुन्दरियाँ श्रीराधाका वेष धारण करके श्रीराधा तथा उनके प्राणवल्लभको आनन्दित करती हुई उनके यश गाती थीं। कुछ व्रजांगनाएँ स्तम्भ-स्वेद आदि सात्त्विक भावोंसे युक्त, प्रेम-विह्वल एवं परमानन्दमें निमग्न हो, योगिजनोंकी भाँति समाधिस्थ होकर भूमि-पर बैठ जाती थीं। कोई लताओंमें, वृक्षोंमें, भूतलमें, विभिन्न दिशाओंमें तथा अपने-आपमें भी भगवान् श्रीपतिका दर्शन करती हुई मौनभाव धारण कर लेती थीं। इस प्रकार रास-मण्डलमें सर्वेश्वर तथा भक्तवत्सल गोविन्दकी शरण ले, वे सब गोपसुन्दरियाँ पूर्णमनोरथ हो गयीं। हे महामते राजन्! वहाँ गोपियोंको भगवान्-

ज्ञानिनामपि नास्त्येवं कर्मिणां तु कुतश्च सः । एवं श्रीकृष्णचन्द्रस्य हरे राधापतेः प्रभोः ॥२८॥
रासे चित्रं यद्बभूव तच्छृणुष्व महामते । मुनीन्द्र आसुरिर्नाम श्रीकृष्णेष्टो महातपाः ॥२९॥
नारदाद्रौ तपस्तेपे हरौ ध्यानपरायणः । हृत्पुंडरीके श्रीकृष्णं ज्योतिर्मंडलमास्थितम् ॥३०॥
मनोज्ञं राधया सार्द्धं नित्यं ध्याने ददर्श ह । एकदा ध्यानमध्ये तु रात्रौ कृष्णो न चागतः॥३१॥
वारं वारं कृतं ध्यानं खिन्नो जातो महामुनिः । ध्यानादुत्थाय स मुनिः कृष्णदर्शनलालसः ॥३२॥
नारायणाश्रमं प्रागाद्बदरीखण्डमंडितम् । न ददर्श हरिं देवं नरनारायणं मुनिः ॥३३॥
तदातिविस्मितो विप्रो लोकालोकगिरिं ययौ । सहस्रशिरसं देवं न ददर्श स तत्र वै ॥३४॥
पप्रच्छ पार्षदांस्तत्र क्व गतो भगवानितः । न विद्मो भो वयं चोक्तो मुनिः खिन्नमनास्तदा॥३५॥
श्वेतद्वीपं ययौ दिव्यं क्षीरसागरशोभितम् । तत्रापि शेषपर्यंके न ददर्श हरिं पुनः ॥३६॥
तदा मुनिः खिन्नमनाः प्रेम्णा पुलकिताननः । पप्रच्छ पार्षदांस्तत्र क्व गतो भगवानितः ॥३७॥
न विद्मो भो वयं चोक्तो मुनिश्चिन्तापरायणः । किं करोमि क्व गच्छामि दर्शनं तत्कथं भवेत् ॥३८॥
एवं ब्रुवन्मनोयायी वैकुंठं प्राप्तवांस्ततः । नापश्यत्तत्र देवेशं रमां वैकुण्ठवासिनीम् ॥३९॥
न दृष्टस्तत्र भक्तेषु मुनिनाऽऽसुरिणा नृप । ततो मुनीन्द्रो योगीन्द्रो गोलोकं स जगाम ह॥४०॥
वृन्दावने निकुञ्जेऽपि न ददर्श परात्परम् । तदा मुनिः खिन्नमनाः श्रीकृष्णविरहातुरः ॥४१॥
पप्रच्छ पार्षदांस्तत्र क्व गतो भगवानितः । ऊचुस्तं पार्षदा गोपा वामनाण्डे मनोहरे ॥४२॥
पृश्निगर्भो यत्र जातस्तत्रैव भगवान्स्वयम् । इत्युक्त आसुरिस्तस्मादस्मिन्नण्डे समागतः ॥४३॥

का जो कृपाप्रसाद प्राप्त हुआ, वह ज्ञानियोंको भी नहीं मिलता, फिर कर्मियोंको तो मिल ही कैसे सकता है? ॥ २२–२७ ॥ हे महामते ! इस प्रकार राधावल्लभ प्रभु श्यामसुन्दर श्रीकृष्णचन्द्रके रासमें जो एक विचित्र घटना घटी, उसे सुनो । श्रीकृष्णके प्रिय भक्त एवं महातपस्वी एक मुनि थे, जिनका नाम 'आसुरि' था ॥ २८ ॥ २९ ॥ वे नारदगिरिपर श्रीहरिके ध्यानमें तत्पर हो तपस्या करते थे। हृदय-कमलमें ज्योतिर्मण्डल-के भीतर राधासहित मनोहर-मूर्ति श्यामसुन्दर श्रीकृष्णका वे चिन्तन किया करते थे। एक समय रातमें जब मुनि ध्यान करने लगे, तब श्रीकृष्ण उनके ध्यानमें नहीं आये। उन्होंने वारंवार ध्यान लगाया, किंतु सफलता नहीं मिली । इससे वे महामुनि खिन्न हो गये। फिर वे मुनि ध्यानसे उठकर श्रीकृष्णदर्शनकी लालसासे बदरीखण्डमण्डित नारायणाश्रमको गये; किंतु वहाँ उन मुनीश्वरको नरनारायणके दर्शन नहीं हुए ॥ ३०–३३ ॥ तब अत्यन्त विस्मित हो, वे ब्राह्मण देवता लोकालोक पर्वतपर गये; किंतु वहाँ सहस्र सिरवाले अनन्तदेवका भी उन्हें दर्शन नहीं मिला ॥ ३४ ॥ तब उन्होंने वहाँके पार्षदोंसे पूछा—'भगवान् यहाँसे कहाँ गये हैं ?' उन्होंने उत्तर दिया—'हम नहीं जानते ।' उनके इस प्रकार उत्तर देनेपर उस समय मुनिके मनमें बड़ा खेद हुआ ॥ ३५ ॥ फिर वे क्षीरसागरसे सुशोभित श्वेतद्वीपमें गये; किंतु वहाँ भी शेष-शय्यापर श्रीहरिका दर्शन उन्हें नहीं हुआ । तब मुनिका चित्त और भी खिन्न हो गया। उनका मुख प्रेमसे पुलकित दिखायी देता था । उन्होंने पार्षदोंसे पूछा—'भगवान् यहाँसे कहाँ चले गये ?' ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ पुनः वही उत्तर मिला—'हमलोग नहीं जानते ।' उनके यों कहनेपर मुनि भारी चिन्तामें पड़ गये और सोचने लगे—'क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? कैसे श्रीहरिका दर्शन हो ?' ॥ ३८ ॥ यों कहते हुए मनके समान गतिशाली आसुरि मुनि वैकुण्ठधाममें गये; किंतु वहाँ भी लक्ष्मीके साथ निवास करनेवाले भगवान् नारायणका दर्शन उन्हें नहीं हुआ ॥ ३९ ॥ हे नरेश्वर ! वहाँके भक्तोंमें भी आसुरि मुनिने भगवान्‌को नहीं देखा। तब वे योगीन्द्र मुनीश्वर गोलोकमें गये ॥ ४० ॥ परंतु वहाँके वृन्दावनीय निकुञ्जमें भी परात्पर श्रीकृष्णका दर्शन उन्हें नहीं हुआ । तब मुनिका चित्त खिन्न हो गया और वे श्रीकृष्णविरहसे अत्यन्त व्याकुल हो गये ॥ ४१ ॥ वहाँ उन्होंने पार्षदोंसे पूछा—'भगवान् यहाँसे कहाँ गये हैं ?' तब वहाँ रहनेवाले पार्षद गोपोंने उनसे कहा—'वामनावतारके ब्रह्माण्डमें, जहाँ कभी पृश्निगर्भ अवतार हुआ था, वहाँ साक्षात् भगवान् पधारे हैं ।' उनके

गोलोकवासिन्यो नार्यो वेत्रहस्ता महाबलाः । चक्रुर्बलात्तन्निषेधं मार्गस्था द्वारपालिकाः ॥ ३ ॥
तावूचतुश्चागतौ स्वः कृष्णदर्शनलालसौ । तावाहुर्नृपशार्दूल मार्गस्था द्वारपालिकाः ॥ ४ ॥

द्वारपालिका ऊचुः

सर्वतो वृन्दकारण्यं कोटिशः कोटिशो वयम् । रासरक्षां सदा कुर्मो न्यस्ता कृष्णेन भो द्विजौ ॥ ५ ॥
एकोऽस्ति पुरुषः कृष्णो निर्जने रासमण्डले । अन्यो न याति रहसि गोपीयूथं विना क्वचित् ॥ ६ ॥
चेद्दिदृक्षू युवां तस्य स्नानं मानसरोवरे । कुरुतं तत्र गोपित्वं प्राप्याशु व्रजतं मुनी ॥ ७ ॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्तौ तौ मुनिशिवौ स्नात्वा मानसरोवरे । गोपीत्वं प्राप्य सहसा जग्मतू रासमण्डले ॥ ८ ॥
सौवर्णप्रखचित्पद्मरागभूमिमनोहरे । माधवीलतिकावृन्दकदम्बाच्छादिते शुभे ॥ ९ ॥
वसन्तचन्द्रकौमुद्या प्रदीप्ते सर्वकौशले । यमुनारत्नसोपानतोलिकाभिर्विराजिते ॥ १० ॥
मयूरहंसदात्यूहकोकिलैः कूजिते परे । यमुनानिलनीलैजत्तरुपल्लवशोभिते ॥ ११ ॥
सभामण्डपवीथीभिः प्रांगणस्तम्भपंक्तिभिः । पतत्पताकैर्दिव्याभैः सौवर्णैः कलशैर्वृते ॥ १२ ॥
श्वेतारुणैः पुष्पसंघैः पुष्पमंदिरवर्त्मभिः । अलिकोलाहलैर्व्याप्ते वादित्रमधुरध्वनौ ॥ १३ ॥
सहस्रदलपद्मानां वायुना मन्दगामिना । शीतलेन सुपुण्येन सर्वतः सुरभीकृते ॥ १४ ॥
तस्मिन्निकुञ्जे श्रीकृष्णं कोटिचन्द्रप्रकाशया । पद्मिन्या हंसगामिन्या राधया समलंकृतम् ॥ १५ ॥
स्त्रीरत्नैरावृतं शश्वद्रासमण्डलमध्यगम् । कोटिमन्मथलावण्यं श्यामसुंदरविग्रहम् ॥ १६ ॥

और गुमटियोंसे सुशोभित थी । उस दिव्य भूमिका दर्शन करते हुए दोनों ही यमुनातटपर गये ॥ २ ॥ उस समय अत्यन्त बलशालिनी गोलोकवासिनी गोपसुन्दरियाँ हाथमें बेंतकी छड़ी लिये, वहाँ पहरा दे रही थीं। उन द्वारपालिकाओंने मार्गमें स्थित होकर उन्हें बलपूर्वक रासमण्डलमें जानेसे रोका ॥ ३ ॥ वे दोनों बोले— 'हम श्रीकृष्णदर्शनकी लालसासे यहाँ आये हैं।' हे नृपश्रेष्ठ ! तब राह रोककर खड़ी द्वारपालिकाओंने उन दोनोंसे कहा ॥ ४ ॥ द्वारपालिकाएँ बोलीं – हे विप्रवरो ! हम कोटि-कोटि गोपांगनाएँ वृन्दावनको चारों ओरसे घेरकर निरन्तर रासमण्डलकी रक्षा कर रही हैं। इस कार्यपर श्यामसुन्दर श्रीकृष्णने ही हमें नियुक्त किया है ॥ ५ ॥ इस एकान्त रासमण्डलमें एकमात्र श्रीकृष्ण ही पुरुष हैं। उस पुरुषरहित एकान्त स्थानमें गोपी-यूथके सिवा दूसरा कोई कभी नहीं जा सकता ॥ ६ ॥ हे मुनियों ! यदि तुम दोनों उनके दर्शनके अभिलाषी हो तो इस मानसरोवरमें स्नान करो । वहाँ तुम्हें शीघ्र ही गोपीस्वरूपकी प्राप्ति हो जायगी, तब तुम रासमण्डलके भीतर जा सकते हो ॥ ७ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—द्वारपालिकाओंके यों कहनेपर वे मुनि और शिव मानसरोवरमें स्नान करके, गोपीभावको प्राप्त हो, सहसा रासमण्डलमें पहुँच गये ॥ ८ ॥ सुवर्णजटित पद्मरागमयी भूमि उस रासमण्डलकी मनोहरता बढ़ा रही थी। वह सुन्दर प्रदेश माधवीलतासमूहोंसे व्याप्त और कदम्बवृक्षोंसे आच्छादित था ॥ ९ ॥ वसन्त ऋतु तथा चन्द्रमाकी चाँदनीने उसको प्रदीप्त कर रखा था । सब प्रकारकी कौशलपूर्ण सजावट वहाँ दृष्टिगोचर होती थी। यमुनाजीकी रत्नमयी सीढ़ियों तथा तोलिकाओंसे रासमण्डलकी अपूर्व शोभा हो रही थी ॥ १० ॥ मोर, हंस, चातक और कोकिल वहाँ अपनी मीठी बोली सुना रहे थे। वह उत्कृष्ट प्रदेश यमुनाजीके जलस्पर्शसे शीतल-मन्दवायुके बहनेसे हिलते हुए तरुपल्लवोंद्वारा बड़ी शोभा पा रहा था ॥ ११ ॥ सभामण्डपों और वीथियोंसे, प्रांगणों और खम्भोंकी पंक्तियोंसे, फहराती हुई दिव्य पताकाओंसे और सुवर्णमय कलशोंसे सुशोभित तथा श्वेतारुण पुष्पसमूहोंसे सज्जित तथा पुष्पमन्दिर और मार्गोंसे एवं भ्रमरोंकी गुंजारों और वाद्योंकी मधुर ध्वनियोंसे व्याप्त रासमण्डलकी शोभा देखते ही बनती थी ॥ १२ ॥ १३ ॥ सहस्रदल कमलोंकी सुगन्धसे पूरित शीतल, मन्द एवं परम पुण्यमय समीर सब ओरसे उस स्थानको सुवासित कर रहा था ॥ १४ ॥ रासमण्डलके निकुञ्जमें कोटि-कोटि चन्द्रमाओंके समान प्रकाशित होनेवाली पद्मिनी नायिका हंसगामिनी श्रीराधासे सुशोभित श्रीकृष्ण विराजमान थे ॥ १५ ॥ रासमण्डलके भीतर निरन्तर स्त्रीरत्नोंसे घिरे हुए श्यामसुन्दरविग्रह श्रीकृष्णका लावण्य करोड़ों

वंशीधरं पीतपटं वेत्रपाणिं मनोहरम् । श्रीवत्सांकं कौस्तुभिनं वनमालाविराजितम् ॥१७॥
क्वणन्नूपुरमंजीरकांचिकेयूरभूषितम् । हारकंकणबालार्ककुण्डलद्वयमंडितम् ॥१८॥
कोटिचन्द्रप्रतीकाशमौलिनं नन्दनन्दनम् । दानदक्षैः कटाक्षैश्च हरन्तं योषितां मनः ॥१९॥
दूरादपश्यतां राजन्नासुरीशौ कृतांजली । गोपीजनानां सर्वेषां पश्यतां नृपसत्तम ॥२०॥
नत्वा श्रीकृष्णपादाब्जमूचतुर्हर्षविह्वलौ ।

ऊचतुः

कृष्ण कृष्ण महायोगिन्देवदेव जगत्पते ॥२१॥
पुण्डरीकाक्ष गोविन्द गरुडध्वज ते नमः । जनार्दन जगन्नाथ पद्मनाभ त्रिविक्रम ।
दामोदर हृषीकेश वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥२२॥

अद्यैव देव परिपूर्णतमस्तु साक्षाद्भूभूरिभारहरणाय सतां शुभाय ।
प्राप्तोऽसि नन्दभवने परतः परस्त्वं कृत्वा हि सर्वनिजलोकमशेषशून्यम् ॥२३॥
अंशांशकांशकलयाभिरुताभिराममावेशपूर्णनिचयाभिरतीव युक्तः ।
विश्वं बिभर्षि रसरासमलंकरोषि वृन्दावनं च परिपूर्णतमः स्वयं त्वम् ॥२४॥
गोलोकनाथ गिरिराजपते परेश वृन्दावनेश कृतनित्यविहारलील ।
राधापते व्रजवधूजनगीतकीर्ते गोविन्द गोकुलपते किल ते जयोऽस्तु ॥२५॥
श्रीमन्निकुञ्जलतिकाकुसुमाकरस्त्वं श्रीराधिकाहृदयकण्ठविभूषणस्त्वम् ।
श्रीरासमण्डलपतिर्व्रजमण्डलेशो ब्रह्मांडमंडलमहीपरिपालकोऽसि ॥२६॥

श्रीनारद उवाच

तदा प्रसन्नो भगवान् राधया सहितो हरिः । मन्दस्मितो मुनिं प्राह मेघगंभीरया गिरा ॥२७॥

कामदेवोंको लज्जित करनेवाला था ॥ १६ ॥ हाथमें वंशी और बेंत लिये तथा श्रीअङ्गपर पीताम्बर धारण किये वे बड़े मनोहर जान पड़ते थे। उनके वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न, कौस्तुभमणि तथा वनमाला शोभा दे रही थी ॥ १७ ॥ झंकारते हुए नूपुर, पायजेब, करधनी और बाजूबंदसे वे विभूषित थे। हार, कङ्कण तथा बालरविके समान कान्तिमान् दो कुण्डलोंसे वे मण्डित थे ॥ १८ ॥ करोड़ों चन्द्रमाओंकी कान्ति उनके आगे फीकी जान पड़ती थी। मस्तकपर मोरमुकुट धारण किये वे नन्दनन्दन मनोरथदान-दक्ष कटाक्षों-द्वारा युवतियोंका मन हर रहे थे ॥ १९ ॥ हे राजन्! आसुरि और शिव—दोनोंने दूरसे ही जब श्रीकृष्णको देखा तो हाथ जोड़ लिये। हे नृपश्रेष्ठ! समस्त गोपसुन्दरियोंके देखते-देखते श्रीकृष्ण-चरणारविन्दमें मस्तक झुकाकर, आनन्दविह्वल हुए उन दोनोंने कहा ॥ २० ॥ दोनों बोले—हे कृष्ण! महायोगी कृष्ण! देवाधिदेव जगदीश्वर! पुण्डरीकाक्ष! गोविन्द! गरुडध्वज! आपको नमस्कार है। हे जनार्दन! जगन्नाथ! पद्मनाभ! त्रिविक्रम! दामोदर! हृषीकेश! वासुदेव! आपको नमस्कार है ॥ २१ ॥ हे देव! आप परिपूर्णतम साक्षात् भगवान् हैं। इन दिनों भूतलका भारी भार हरने और सत्पुरुषोंका कल्याण करनेके लिये अपने समस्त लोकोंको पूर्णतया शून्य करके यहाँ नन्दभवनमें प्रकट हुए हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥ वास्तवमें तो आप परात्पर परमात्मा ही हैं। अंशांश, अंश, कला, आवेश तथा पूर्ण—समस्त अवतारसमूहोंसे संयुक्त हो, आप परिपूर्णतम परमेश्वर सम्पूर्ण विश्वकी रक्षा करते हैं तथा वृन्दावनमें सरस रासमण्डलको भी अलंकृत करते हैं ॥ २४ ॥ हे गोलोकनाथ! गिरिराजपते! परमेश्वर! वृन्दावनाधीश्वर! नित्यविहार-लीलाका विस्तार करनेवाले राधावल्लभ! व्रजसुन्दरियोंके मुखसे अपना यशोगान सुननेवाले हे गोविन्द! गोकुलपते! सर्वथा आपकी जय हो ॥ २५ ॥ शोभाशालिनी निकुञ्जलताओंके विकासके लिए आप ऋतुराज वसन्त हैं। श्रीराधिकाके वक्ष और कण्ठको विभूषित करनेवाले रत्नहार हैं। आप श्रीरासमण्डलके पालक, व्रजमण्डलके अधीश्वर तथा ब्रह्माण्ड-मण्डलकी भूमिके संरक्षक हैं ॥ २६ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन्! तब श्रीराधा-

श्रीभगवानुवाच

षष्टिवर्षसहस्राणि युवयोस्तपतोस्तपः । मद्दर्शनं तेन जातं सर्वतो नैरपेक्षयोः ॥२८॥
निष्किंचनो यः शान्तश्चाजातशत्रुः स मत्सखा । तस्माद्युवाभ्यां मनसा व्रियतामीप्सितो वरः ॥२९॥

शिवासुरी ऊचतुः

नमोऽस्तु भूमन्युवयोः पदाब्जे सदैव वृन्दावनमध्यवास ।
न रोचतेनोऽन्यमतस्त्वदंघ्रेर्नमो युवाभ्यां हरिराधिकाभ्याम् ॥३०॥

श्रीनारद उवाच

तथाऽस्तु चोक्त्वा भगवान् वृन्दारण्ये मनोहरे । कालिन्दीनिकटे राजन् रासमण्डलमण्डिते ॥३१॥
निकुञ्जपार्श्वे पुलिने वंशीवटसमीपतः । शिवोऽपि चासुरिर्मुनिर्नित्यं वासं चकार ह ॥३२॥
अथ कृष्णो रासलीलां चक्रे पद्माकरे वने । पतत्सुगन्धिरजसि गोपीभिर्भ्रमराकुले ॥३३॥

एवं षाण्मासिकी रात्रिः कृता कृष्णेन मैथिल ।
गोपीनां रासलीलायां व्यतीता क्षणवत्सुखैः ॥३४॥

अरुणोदयवेलायां स्वगृहान्व्रजयोपितः । यूथीभूत्वा ययू राजन्सर्वाः पूर्णमनोरथाः ॥३५॥
श्रीनन्दमन्दिरं साक्षात्प्रययौ नन्दनन्दनः । वृषभानुपुरं प्रागाद्वृषभानुसुता त्वरम् ॥३६॥
एवं श्रीकृष्णचन्द्रस्य रासाख्यानं मनोहरम् । सर्वपापहरं पुण्यं कामदं मंगलायनम् ॥३७॥

त्रिवर्ग्यदं जनानां तु मुमुक्षूणां सुमुक्तिदम् ।
मया तवाग्रे कथितं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥३८॥

इति श्रीगर्गसंहितायां वृन्दावनखण्डे नारदबहुलाश्वसंवादे रासक्रीडा नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

सहित भगवान् श्रीकृष्ण प्रसन्न हो मन्द-मन्द मुसकराते हुए मेघगर्जनकी-सी गम्भीर वाणीमें मुनिसे बोले ॥ २७ ॥ श्रीभगवान्ने कहा—तुम दोनोंने साठ हजार वर्षोंतक निरपेक्षभावसे तप किया है, इसीसे तुम्हें मेरा दर्शन प्राप्त हुआ है। जो अकिंचन, शान्त तथा सर्वत्र शत्रुभावनासे रहित है, वही मेरा सखा है। अतः तुम दोनों अपने मनके अनुसार अभीष्ट वर माँगो ॥ २८ ॥ २९ ॥ शिव और आसुरि बोले—हे भूमन्! आपको नमस्कार है। आप दोनों प्रिया-प्रियतमके चरणकमलोंकी संनिधिमें सदा ही वृन्दावनके भीतर हमारा निवास हो। आपके चरणसे भिन्न और कोई वर हमें नहीं रुचता है; अतः आप दोनों—श्रीहरि एवं श्रीराधिकाको हमारा सादर नमस्कार है ॥ ३० ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन्! तब भगवान्ने 'तथास्तु' कहकर उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। तभीसे शिव और आसुरि मुनि मनोहर वृन्दावनमें वंशीवटके समीप रासमण्डलसे मण्डित कालिन्दीके निकटवर्ती पुलिनपर निकुञ्जके पास ही नित्य निवास करने लगे ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ तदनन्तर श्रीकृष्णने, जहाँ कमलपुष्पोंके सौरभयुक्त पराग उड़ रहे थे और भ्रमर मँडरा रहे उस पद्माकर वनमें गोपाङ्गनाओंके साथ रासक्रीड़ा प्रारम्भ की ॥ ३३ ॥ हे मिथिलेश्वर! उस समय श्रीकृष्णने छः महीनेकी रात बनायी। परंतु उस रासलीलामें सम्मिलित हुई गोपियोंके लिए वह सुख और आमोदसे पूर्ण रात्रि एक क्षणके समान बीत गयी ॥ ३४ ॥ हे राजन्! उन सबके मनोरथ पूर्ण हो गये। अरुणोदयकी वेलामें वे सभी व्रजसुन्दरियाँ झुंड-की-झुंड एक साथ होकर अपने घरको लौटीं ॥ ३५ ॥ श्रीनन्दनन्दन साक्षात् नन्दमन्दिरमें चले गये और श्रीवृषभानुनन्दिनी तुरंत ही वृषभानुपुरमें जा पहुँचीं ॥ ३६ ॥ इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रका यह मनोहर रासोपाख्यान सुनाया गया, जो समस्त पापोंको हर लेनेवाला, पुण्यप्रद, मनोरथपूरक तथा मंगलका धाम है ॥ ३७ ॥ साधारण लोगोंको यह धर्म, अर्थ और काम प्रदान करता है तथा मुमुक्षुओंको मोक्ष देनेवाला है। हे राजन्! यह प्रसंग मैंने तुम्हारे सामने कहा। अब और क्या सुनना चाहते हो? ॥ ३८ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां वृन्दावनखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

अथ षड्विंशोऽध्यायः

(श्रीकृष्णका विरजाके साथ विहार और श्रीराधाके शापसे श्रीदामाका अंशतः शङ्खचूड होना)

श्रीबहुलाश्व उवाच

अघासुरादिदैत्यानां ज्योतिः कृष्णे समाविशत् । श्रीदाम्नि शंखचूडस्य कस्माल्लीनं बभूव ह ॥ १ ॥
एतद्वद महाबुद्धे त्वं परावरवित्तम । अहो श्रीकृष्णचन्द्रस्य चरितं परमाद्भुतम् ॥ २ ॥

श्रीनारद उवाच

पुरा गोलोकवृत्तान्तं नारायणमुखाच्छ्रुतम् । सर्वपापहरं पुण्यं शृणु राजन्महामते ॥ ३ ॥
राधा श्रीर्विरजा भूश्च तिस्रः पत्न्योऽभवन्हरेः । तासां राधा प्रियाऽतीव श्रीकृष्णस्य महात्मनः ॥ ४ ॥
राधिकासमया राजन्कोटिचन्द्रप्रकाशया । कुञ्जे विरजया रेमे एकान्ते चैकदा प्रभुः ॥ ५ ॥
सपत्नीसहितं कृष्णं राधा श्रुत्वा सखीमुखात् । अतीव विमना जाता सपत्नीसौख्यदुःखिता ॥ ६ ॥
शतयोजनविस्तारं शतयोजनमूर्ध्वगम् । कोट्यश्विनीसमायुक्तं कोटिसूर्यसमप्रभम् ॥ ७ ॥
विचित्ररत्नसौवर्णमुक्तादामविलम्बितम् । पताकाहेमकलशैः कोटिभिर्मण्डितं रथम् ॥ ८ ॥
समारुह्य सखीनां सा वेत्रहस्तैर्दशार्बुदैः । हरिं द्रष्टुं जगामाशु श्रीराधा भगवत्प्रिया ॥ ९ ॥
तन्निकुञ्जे द्वारपालं श्रीदामानं महाबलम् । हरिन्यस्तं समालोक्य तं निर्भर्त्स्य सखीजनैः ॥ १० ॥
वेत्रैः सन्ताड्य सहसा द्वारि गन्तुं समुद्यता । सखीकोलाहलं श्रुत्वा हरिरंतरधीयत ॥ ११ ॥
राधाभयाच्च विरजा नदी भूत्वाऽवहत्तदा । कोटियोजनमायामं गोलोकं सहसा नदी ॥ १२ ॥
सहसा कुण्डलीकृत्वा शुशुभेऽब्धिरिवावनिम् । रत्नपुष्पैर्विचित्रांगा यथोष्णिङ्मुद्रिता तथा ॥ १३ ॥
हरिं गतं तं विज्ञाय नदीभूतां च तां तथा । आलोक्य तन्निकुञ्जं च स्वकुञ्जं राधिका ययौ १४ ॥

बहुलाश्वने पूछा—हे महामते देवर्षे ! आप परावर-वेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं। अतः यह बताइये कि अघासुर आदि दैत्योंकी ज्योति तो भगवान् श्रीकृष्णमें प्रविष्ट हुई थी, परंतु शंखचूडका तेज श्रीदामामें लीन हुआ; इसका क्या कारण है ? अहो ! श्रीकृष्णचन्द्रका चरित अत्यन्त अद्भुत है ॥ १ ॥ २ ॥ नारदजी बोले—हे महामते नरेश ! यह पूर्वकालमें घटित गोलोकका वृत्तान्त है, जिसे मैंने भगवान् नारायणके मुखसे सुना था। वह सर्वपापहारी पुण्य-प्रसंग तुम मुझसे सुनो ॥ ३ ॥ श्रीहरिके तीन पत्नियाँ हुईं—श्रीराधा, विजया (विरजा) और भूदेवी। इन तीनोंमें महात्मा श्रीकृष्णको श्रीराधा ही अधिक प्रिय हैं ॥ ४ ॥ हे राजन् ! एक दिन भगवान् श्रीकृष्ण एकान्त कुञ्जमें कोटि चन्द्रमाओंकी-सी कान्तिवाली तथा श्रीराधिका-सदृश सुन्दरी विरजाके साथ विहार कर रहे थे ॥ ५ ॥ सखीके मुखसे यह सुनकर कि श्रीकृष्ण मेरी सौतके साथ हैं, श्रीराधा मन-ही-मन अत्यन्त खिन्न हो उठीं। सपत्नीके सौख्यसे उनको दुःख हुआ ॥ ६ ॥ तब भगवत्प्रिया श्रीराधा सौ योजन विस्तृत, सौ योजन ऊँचे और करोड़ों अश्विनियोंसे जुते सूर्यतुल्य-कान्तिमान् रथपर—जो करोड़ों पताकाओं और सुवर्ण-कलशोंसे मण्डित था तथा जिसमें विचित्र रंगके रत्नों, सुवर्ण और मोतियोंकी लड़ियाँ लटक रही थीं—आरूढ़ हो, दस अरब वेत्रधारिणी सखियोंके साथ तत्काल श्रीहरिको देखनेके लिये गयीं ॥ ७–९ ॥ उस निकुञ्जके द्वारपर श्रीहरिके द्वारा नियुक्त महाबली श्रीदामा पहरा दे रहा था। उसे देखकर श्रीराधाने बहुत फटकारा और सखीजनोंद्वारा बेंतसे पिटवाकर सहसा कुञ्जद्वारके भीतर जानेको उद्यत हुईं। सखियोंका कोलाहल सुनकर श्रीहरि वहाँसे अन्तर्धान हो गये ॥ १० ॥ ॥ ११ ॥ श्रीराधाके भयसे विरजा सहसा नदीके रूपमें परिणत हो, कोटियोजन विस्तृत गोलोकके चारों ओर प्रवाहित होने लगीं। जैसे समुद्र इस भूतलको घेरे हुए है, उसी प्रकार विरजा नदी सहसा गोलोकको अपने घेरेमें लेकर बहने लगी। रत्नमय पुष्पोंसे विचित्र अंगोंवाली वह नदी विविध प्रकारके फूलोंकी छापसे अङ्कित उष्णीष वस्त्रकी भाँति शोभा पाने लगी—॥ १२ ॥ १३ ॥ 'श्रीहरि चले गये और विरजा नदीरूपमें

अथ कृष्णो नदीभूतां विरजां विरजांबराम् । सविग्रहां चकाराशु स्ववरेण नृपेश्वर ॥१५॥
पुनर्विरजया सार्द्धं विरजातीरजे वने । निकुञ्जवृन्दकारण्ये चक्रे रासं हरिः स्वयम् ॥१६॥
विरजायां सप्त सुता बभूवुः कृष्णतेजसा । निकुञ्जं ते ह्यलंचक्रुः शिशवो बाललीलया ॥१७॥
एकदा तैः कलिरभूल्लघुर्ज्येष्ठैश्च ताडितः । पलायमानो भयभृन्मातुः क्रोडे जगाम ह ॥१८॥
तल्लालनं समारेभे समाश्वास्य सुतं सती । तदा वै भगवान्साक्षात्तत्रैवान्तरधीयत ॥१९॥
रुषा सुतं शशापेयं श्रीकृष्णविरहातुरा । त्वं जलं भव दुर्बुद्धे कृष्णविच्छेदकारकः ॥२०॥
कदापि त्वज्जलं मर्त्या न पिबंतु कदाचन । ज्येष्ठाञ्छशाप व्रजत मेदिनीं कलिकारकाः ॥२१॥
जलरूपाः पृथग्याना न समेता भविष्यथ । नैमित्तिकं च भवतां मेलनं स्यात्सदा लये ॥२२॥

श्रीनारद उवाच

इत्थं ते मातृशापेन धरणीं वै समागताः । प्रियव्रतरथांगानां परिखासु समास्थिताः ॥२३॥
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलार्णवाः । बभूवुः सप्त ते राजन्नक्षोभ्याश्च दुरत्ययाः ॥२४॥
दुर्विगाह्याश्च गंभीरा आयामं लक्षयोजनात् । द्विगुणं द्विगुणं जातं द्वीपे द्वीपे पृथक् पृथक् ॥२५॥
अथ पुत्रेषु यातेषु पुत्रस्नेहातिविह्वला । स्वप्रियां तां विरहिणीमेत्य कृष्णो वरं ददौ ॥२६॥
कदा न ते मे विच्छेदो मयि भीरु भविष्यति । स्वतेजसा स्वपुत्राणां सदा रक्षां करिष्यसि ॥२७॥

अथ राधां विरहिणीं ज्ञात्वा कृष्णो हरिः स्वयम् ।
श्रीदाम्ना सह वैदेह तन्निकुञ्जं समाययौ ॥२८॥

निकुञ्जद्वारि संप्राप्तं ससखं प्राणवल्लभम् । वीक्ष्य मानवती भूत्वा राधा प्राह हरिं वचः ॥२९॥

परिणत हो गयी'—यह देख श्रीराधिका अपने कुञ्जको लौट गयीं ॥ १४ ॥ हे नृपेश्वर ! तदनन्तर नदीरूपमें परिणत विरजाको श्रीकृष्णने शीघ्र ही अपने वरके प्रभावसे मूर्तिमती एवं विमल वस्त्राभूषणोंसे विभूषित दिव्य नारी बना दिया ॥ १५ ॥ इससे बाद वे विरजा-तटवर्ती वनमें वृन्दावनके निकुञ्जमें विरजाके साथ स्वयं रास करने लगे ॥ १६ ॥ श्रीकृष्णके तेजसे विरजाके गर्भसे सात पुत्र हुए । वे सातों शिशु अपनी बाल-क्रीड़ासे निकुञ्जकी शोभा बढ़ाने लगे ॥ १७ ॥ एक दिन उन बालकोंमें झगड़ा हुआ । उनमें जो बड़े थे, उन सबने मिलकर छोटेको मारा । छोटा भयभीत होकर भागा और माताकी गोदमें चला गया ॥ १८ ॥ सती विरजा पुत्रको आश्वासन दे उसे दुलारने लगीं । उसी समय साक्षात् भगवान् वहाँसे अन्तर्धान हो गये ॥ १९ ॥ तब श्रीकृष्णके विरहसे व्याकुल हो, रोषसे अपने पुत्रको शाप देते हुए विरजाने कहा—'हे दुर्बुद्धे ! तू श्रीकृष्णसे वियोग करानेवाला है, अतः जल हो जा; तेरा जल मनुष्य कभी न पीयें ।' फिर उसने बड़ोंको शाप देते हुए कहा—'तुम सब-के-सब झगड़ालू हो; अतः पृथ्वीपर जाओ और वहाँ जल होकर रहो । तुम सबकी पृथक्-पृथक् गति होगी । एक-दूसरेसे कभी मिल न सकोगे । सदा ही प्रलयकालमें तुम्हारा नैमित्तिक मिलन होगा' ॥ २०–२२ ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! इस प्रकार माताके शापसे वे सब पृथ्वीपर आ गये और राजा प्रियव्रतके रथके पहियोंसे बनी हुई परिखाओंमें समाविष्ट हो गये ॥ २३ ॥ खारा जल, इक्षुरस, मदिरा घृत, दधि, क्षीर तथा शुद्ध जलके वे सात सागर हो गये । हे राजन् ! वे सातों समुद्र अक्षोभ्य तथा दुर्लङ्घ्य हैं ॥ २४ ॥ उनके भीतर प्रवेश करना अत्यन्त कठिन है । वे बहुत ही गहरे तथा लाख योजनसे लेकर क्रमशः द्विगुण विस्तारवाले होकर पृथक्-पृथक् द्वीपोंमें स्थित हैं ॥ २५ ॥ पुत्रोंके चले जानेपर विरजा उनके स्नेहसे अत्यन्त व्याकुल हो उठी । तब अपनी उस विरहिणी प्रियाके पास आकर श्रीकृष्णने वर दिया—॥ २६ ॥ 'हे भीरु ! तुम्हारा कभी मुझसे वियोग नहीं होगा । तुम अपने तेजसे सदैव पुत्रोंकी रक्षा करती रहोगी' ॥ २७ ॥ हे विदेहराज ! तदनन्तर श्रीराधाको विरह-दुःखसे व्यथित जान श्यामसुन्दर श्रीहरि स्वयं श्रीदामाके साथ उनके निकुञ्जमें आये ॥ २८ ॥ निकुञ्जके द्वारपर सखाके साथ आये हुए प्राणवल्लभकी ओर देखकर राधा मानवती

राधोवाच

तत्रैव गच्छ यत्राभूत्स्नेहस्ते नूतनो हरे। नदीभूता हि विरजा नदो भवितुमर्हसि ॥३०॥
कुरु वासं तन्निकुञ्जे मया ते किं प्रयोजनम्।

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वाऽथ भगवांस्तन्निकुञ्जं जगाम ह ॥३१॥
श्रीकृष्णमित्रः श्रीदामा राधां प्राह रुपा वचः।

श्रीदामोवाच

परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान्स्वयम् ॥३२॥
असंख्यब्रह्मांडपतिर्गोलोकेशो विराजते। त्वादृशीः कोटिशः शक्तीः कर्तुं शक्तः परात्परः ॥३३॥
तं विनिन्दसि राधे त्वं मानं मा कुरु मा कुरु।

राधोवाच

हे मूढ पितरं स्तुत्वा मातरं मां विनिन्दसि ॥३४॥
राक्षसो भव दुर्बुद्धे गोलोकाच्च बहिर्भव।

श्रीदामोवाच

अनुकूलेन कृष्णेन जातं मानं शुभे तव ॥३५॥
तस्माद्भुवि परात्कृष्णात्परिपूर्णतमात्प्रभोः। शतवर्षं ते वियोगो भविष्यति न संशयः ॥३६॥

श्रीनारद उवाच

एवं परस्परं शापात्स्वकृताद्भयभीतयोः। अतीव चिंतां गतयोराविरासीत्स्वयं प्रभुः ॥३७॥

श्रीभगवानुवाच

वचनं वै स्वनिगमं दूरीकर्तुं क्षमोऽस्म्यहम्। भक्तानां वचनं राधे दूरीकर्तुं न च क्षमः ॥३८॥
मा शोचं कुरु कल्याणि वरं मे शृणु राधिके। मासं मासं वियोगांते दर्शनं मे भविष्यति ॥३९॥
भुवो भारावताराय कल्पे वाराहसंज्ञके। भक्तानां दर्शनं दातुं गमिष्यामि त्वया सह ॥४०॥

हो उनसे इस प्रकार बोलीं ॥ २९ ॥ श्रीराधाने कहा—हे हरे ! वहीं चले जाओ, जहाँ तुम्हारा नया नेह जुड़ा है। विरजा तो नदी हो गयी, अब तुम्हें उसके साथ नद हो जाना चाहिये। जाओ, उसीके कुञ्जमें रहो। मुझसे तुम्हारा क्या मतलब है ? ॥ ३० ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! यह सुनकर भगवान् विरजाके निकुञ्जमें चले गये। तब श्रीकृष्णके मित्र श्रीदामाने राधासे रोषपूर्वक कहा ॥ ३१ ॥ श्रीदामा बोला—हे राधे ! श्रीकृष्ण साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् हैं ॥ ३२ ॥ स्वयं असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति और गोलोकके स्वामीके रूपमें विराजमान हैं। परात्पर श्रीकृष्ण तुम-जैसी करोड़ों शक्तियोंको बना सकते हैं। उनकी तुम निन्दा करती हो ? ऐसा मान न करो, न करो ॥ ३३ ॥ राधा बोली—ओ मूर्ख ! तू बापकी स्तुति करके मुझ माताकी निन्दा करता है। अतः ओ दुर्बुद्धे ! तू राक्षस हो जा और गोलोकसे बाहर चला जा ॥ ३४ ॥ श्रीदामा बोला—हे शुभे ! श्रीकृष्ण सदा तुम्हारे अनुकूल रहते हैं, इसीलिये तुम्हें इतना मान हो गया है ॥ ३५ ॥ अतः परिपूर्णतम परमात्मा श्रीकृष्णसे भूतलपर तुम्हारा सौ वर्षोंके लिये वियोग हो जायगा, इसमें संशय नहीं है ॥ ३६ ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! इस प्रकार परस्पर शाप देकर अपनी ही करनीसे भयभीत हो, जब राधा और श्रीदामा अत्यन्त चिन्तामें डूब गये, तब स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण वहाँ प्रकट हुए ॥ ३७ ॥ श्रीभगवान्ने कहा—हे राधे ! मैं अपने निगमस्वरूप वचनको तो छोड़ सकता हूँ, किन्तु भक्तोंकी बात अन्यथा करनेमें सर्वथा असमर्थ हूँ ॥ ३८ ॥ हे कल्याणि राधिके ! शोक मत करो, मेरी बात सुनो। वियोगकालमें भी प्रतिमास एक बार तुम्हें मेरा दर्शन हुआ करेगा ॥ ३९ ॥ वाराहकल्पमें भूतलका भार उतारने और

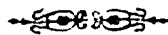
श्रीदमञ्छृणु मे वाक्यमंशेन त्वसुरो भव । वैवस्वतान्तरे रासे हेलनं मे करिष्यसि ॥४१॥
मद्धस्तेन च ते मृत्युर्भविष्यति न संशयः । पुनः स्वविग्रहं पूर्वं प्राप्स्यसि त्वं वरान्मम ॥४२॥

श्रीनारद उवाच

एवं शापेन श्रीदामा पुरा पुण्यजनालये । सुधनस्य गृहे जन्म लेभे राजन्महातपाः ॥४३॥
शंखचूड इति ख्यातो धनदानुचरोऽभवत् । तस्माच्छ्रीदाम्नि तज्ज्योतिर्लीनं जातं विदेहराट् ४४

स्वात्मारामो लीलया सर्वकार्यं स्वस्मिन् धाम्नि ह्यद्वितीयः करोति ।
यः सर्वेशः सर्वरूपो महात्मा चित्रं नेदं नौमि कृष्णाय तस्मै ॥४५॥
इदं मया ते कथितं मनोहरं वैदेह वृन्दावनखंडमग्रतः ।
श्रृणोति चैतच्चरितं नरो वरः परम्पदम्पुण्यतमम्प्रयाति सः ॥४६॥

इति श्रीगर्गसंहितायां वृन्दावनखण्डे शंखचूडोपाख्यानं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥



भक्तजनोंको दर्शन देनेके लिये मैं तुम्हारे साथ पृथ्वीपर चलूँगा ॥ ४० ॥ हे श्रीदामन् ! तुम भी मेरी बात सुनो । तुम अपने एक अंशसे असुर हो जाओ । वैवस्वत मन्वन्तरमें रासमण्डलमें आकर जब तुम मेरी अवहेलना करोगे ॥४१॥ तब मेरे हाथसे तुम्हारा वध होगा, इसमें संशय नहीं है। तत्पश्चात् फिर मेरे वरदानसे तुम अपना पूर्व शरीर प्राप्त कर लोगे ॥ ४२ ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! इस प्रकार शापवश महातपस्वी श्रीदामाने पूर्वकालमें यक्षलोकमें सुधनके घर जन्म लिया ॥ ४३ ॥ वह शंखचूड नामसे विख्यात हो यक्षराज कुबेरका सेवक हो गया । यही कारण है कि शंखचूडकी ' ज्योति श्रीदामामें लीन हुई ॥ ४४ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण स्वात्माराम हैं, एकमात्र अद्वितीय परमात्मा हैं । वे अपने ही धाममें लीलापूर्वक सारा कार्य करते हैं । जो सर्वेश्वर, सर्वरूप एवं महान् आत्मा हैं, उनके लिये यह सब कार्य अद्भुत नहीं है; मैं उन श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार करता हूँ ॥ ४५ ॥ हे विदेहराज ! यह मनोहर वृन्दावनखण्ड मैंने तुम्हारे सामने कहा है। जो नरश्रेष्ठ यह चरित्र श्रवण करता है, वह पुण्यतम परमपदको प्राप्त होता है ॥ ४६ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां वृन्दावनखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

॥ समाप्तोऽयं वृन्दावनखण्डः २ ॥

* श्रीकृष्णः शरणं मम *

आचार्य-श्रीगर्गमहामुनिविरचिता—

श्रीगर्गसंहिता

'प्रियंवदा'ऽभिधया भाषाटीकयाऽऽटीकिता

(गिरिराजखण्डः ३)

अथ प्रथमोऽध्यायः

(श्रीकृष्णके द्वारा गोवर्धनपूजनका प्रस्ताव और उसकी विधिका वर्णन)

बहुलाश्व उवाच

कथं दधार भगवान् गिरिं गोवर्द्धनं वरम् । उच्छिलींध्रं यथा बालो हस्तेनैकेन लीलया ॥ १ ॥
परिपूर्णतमस्यास्य श्रीकृष्णस्य महात्मनः । वदैतच्चरितं दिव्यमद्भुतं मुनिसत्तम ॥ २ ॥

श्रीनारद उवाच

वार्षिकं हि करं राज्ञे यथा शक्राय वै तथा । बलिं ददुः प्रावृडंते गोपाः सर्वे कृषीवलाः ॥ ३ ॥
महेन्द्रयागसंभारचयं दृष्ट्वैकदा हरिः । नन्दं पप्रच्छ सदसि वल्लभानां च शृण्वताम् ॥ ४ ॥

श्रीभगवानुवाच

शक्रस्य पूजनं ह्येतत्किं फलं चास्य विद्यते । लौकिकं वा वदन्त्येतदथवा पारलौकिकम् ॥ ५ ॥

श्रीनन्द उवाच

शक्रस्य पूजनं ह्येतद्भुक्तिमुक्तिकरं परम् । एतद्विना नरो भूमौ जायते न सुखी क्वचित् ॥ ६ ॥

श्रीभगवानुवाच

शक्रादयो देवगणाश्च सर्वतो भुंजन्ति ये स्वर्गसुखं स्वकर्मभिः ।
विशन्ति ते मर्त्यपदं शुभक्षये तत्सेवनं विद्धि न मुक्तिकारणम् ॥ ७ ॥

राजा बहुलाश्वने पूछा—हे देवर्षे ! जैसे बालक खेलही-खेलमें गोबर-छत्तेको उखाड़कर हाथमें ले लेता है, उसी प्रकार भगवान्ने एक ही हाथसे महान् पर्वत गोवर्धनको लीलापूर्वक उठाकर छत्रकी भाँति धारण कर लिया था—ऐसी बात सुनी जाती है । सो यह प्रसङ्ग कैसे आया ? हे मुनिसत्तम ! उन परिपूर्णतम परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रके उसी दिव्य अद्भुत चरित्रका आप वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ २ ॥ श्रीनारदजीने कहा—हे राजन् ! जैसे खेती करनेवाले किसान राजाको वार्षिक कर देते हैं, उसी प्रकार समस्त गोप प्रतिवर्ष शरदृतुमें देवराज इन्द्रके लिये बलि (पूजा और भोग) अर्पित करते थे ॥ ३ ॥ एक समय श्रीहरिने महेन्द्रयागके लिये सामग्रीका संचय होता देख गोपसभामें नन्दजीसे प्रश्न किया । उनके उस प्रश्नको अन्यान्य गोप भी सुन रहे थे ॥ ४ ॥ श्रीभगवान् बोले—यह जो इन्द्रकी पूजा की जाती है, इसका क्या फल है ? विद्वान् लोग इसका कोई लौकिक फल बताते हैं या पारलौकिक ? ॥ ५ ॥ श्रीनन्दने कहा—हे श्यामसुन्दर ! देवराज इन्द्रका यह पूजन भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला परम उत्तम साधन है । भूतलपर इसके बिना मनुष्य कहीं और कभी सुखी नहीं हो सकता ॥ ६ ॥ श्रीभगवान् बोले—पिताजी ! इन्द्र आदि देवता अपने

भयं भवेद्वै परमेष्ठिने यतो वार्ता तु का कौ किल तत्कृतात्मनाम् ।
तस्मात्परं कालमनंतमेव हि सर्वं वलिष्ठं सुबुधा विदुः परे ॥ ८ ॥
ततस्तमाश्रित्य सुकर्मभिः परं भजेद्धरिं यज्ञपतिं सुरेश्वरम् ।
विसृज्य सर्वं मनसा कृतेः फलं व्रजेत्परं मोक्षमसौ न चान्यथा ॥ ९ ॥
गोविप्रसाध्वग्निसुराः श्रुतिस्तथा धर्मश्च यज्ञाधिपतेर्विभूतयः ।
धिष्ण्येषु चैतेषु हरिं भजन्ति ये सदा त्विहामुत्र सुखं व्रजन्ति ते ॥१०॥
समुत्थितोऽसौ हरिवक्षसो गिरिर्गोवर्धनो नाम गिरीन्द्रराजराट् ।
समागतो ह्यत्र पुलस्त्यतेजसा यद्दर्शनाज्जन्म पुनर्न विद्यते ॥११॥
सम्पूज्य गोविप्रसुरान्महाद्रये दातव्यमद्यैव परं ह्युपायनम् ।
एष प्रियो मे मखराज एव हि न चेद्यथेच्छास्ति तथा कुरु व्रज ॥१२॥

श्रीनारद उवाच

तेषां मध्येऽथ सन्नंदो गोपो वृद्धोऽतिनीतिवित् । अतिप्रसन्नः श्रीकृष्णमाह नन्दस्य शृण्वतः ॥१३॥

श्रीनन्द उवाच

हे नन्दसूनो हे तात त्वं साक्षाज्ज्ञानशेवधिः । कर्तव्या केन विधिना पूजाऽद्रेर्वद तत्त्वतः ॥१४॥

श्रीभगवानुवाच

आलिप्य गोमयेनापि गिरिराजभुवं ह्यधः । धृत्वाऽथ सर्वसम्भारं भक्तियुक्तो जितेन्द्रियः ॥१५॥
सहस्रशीर्षमंत्रेणाद्रये स्नानं च कारयेत् । गंगाजलेन यमुनाजलेनापि द्विजैः सह ॥१६॥
शुक्लगोदुग्धधाराभिस्ततः पञ्चामृतैर्गिरिम् । स्नापयित्वा गन्धपुष्पैः पुनः कृष्णाजलेन वै ॥१७॥

पूर्वकृत पुण्यकर्मोके प्रभावसे ही सब ओर स्वर्गका सुख भोगते हैं। भोगद्वारा शुभ कर्मका क्षय हो जानेपर उन्हें भी मर्त्यलोकमें आना पड़ता है। अतः उनकी सेवाको आप मोक्षका साधन मत मानिये ॥ ७ ॥ जिससे परमेष्ठी ब्रह्माको भी भय प्राप्त होता है, फिर उनके द्वारा पृथ्वीपर उत्पन्न किये गये प्राणियोंकी तो बात ही क्या है, उस कालको ही श्रेष्ठ विद्वान् सबसे उत्कृष्ट, अनन्त तथा सब प्रकारसे बलिष्ठ मानते हैं ॥ ८ ॥ इसलिये उस कालका ही आश्रय लेकर मनुष्यको सत्कर्मोद्वारा सुरेश्वर यज्ञपति परमात्मा श्रीहरिका भजन करना चाहिये। अपने सम्पूर्ण सत्कर्मोके फलका मनसे परित्याग करके जो श्रीहरिका भजन करता है, वही परम-मोक्षको प्राप्त होता है; दूसरे किसी प्रकारसे उसको मोक्ष नहीं मिलता ॥ ९ ॥ गौ, ब्राह्मण, साधु, अग्नि, देवता, वेद तथा धर्म—ये भगवान् यज्ञेश्वरकी विभूतियाँ हैं। इनको आधार बनाकर जो श्रीहरिका भजन करते हैं, वे सदा इस लोक और परलोकमें सुख पाते हैं ॥ १० ॥ भगवान्‌के वक्षःस्थलसे प्रकट हुआ वह गिरीन्द्रोंका सम्राट् गोवर्धन नामक पर्वत महर्षि पुलस्त्यके प्रभावसे इस व्रजमण्डलमें आया है। उसके दर्शनसे मनुष्यका इस जगत्‌में पुनर्जन्म नहीं होता ॥ ११ ॥ गौओं, ब्राह्मणों तथा देवताओंका पूजन करके आज ही यह उत्तम भेंटसामग्री महान् गिरिराजको अर्पित की जाय। यह यज्ञ नहीं, यज्ञोंका राजा है। यही मुझे प्रिय है। यदि आप यह काम नहीं करना चाहते तो जाइये; जैसी इच्छा हो, वैसा कीजिये ॥ १२ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! उन गोपोंमें सन्नन्दनामक एक बड़े-बूढ़े गोप थे, जो बड़े नीतिवेत्ता थे। उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न होकर नन्दजीके सुनते हुए श्रीकृष्णसे कहा ॥ १३ ॥ सन्नन्द बोले—हे नन्दनन्दन ! हे तात ! तुम तो साक्षात् ज्ञानकी निधि हो। गिरिराजकी पूजा किस विधिसे करनी होगी, यह ठीक-ठीक बताओ ॥ १४ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा—जहाँ गिरिराजकी पूजा करनी हो, वहाँ उनके नीचेकी धरतीको गोबरसे लीप-पोतकर वहीं सब सामग्री रखनी चाहिये। इन्द्रियोंको वशमें रखकर बड़े भक्ति-भावसे 'सहस्रशीर्षा०' मन्त्र पढ़ते हुए ब्राह्मणोंके साथ रहकर गंगाजल या यमुनाजलसे गिरिराजको स्नान कराना चाहिये ॥ १५ ॥ १६ ॥ फिर श्वेत गोदुग्धकी धारासे तथा पञ्चामृतसे स्नान कराकर पुनः यमुना-जलसे नहलाये। उसके बाद

वस्त्रं दिव्यं च नैवेद्यमासनं सर्वतोऽधिकम् । मालालंकारनिचयं दत्त्वा दीपावलिं पराम् ॥१८॥
ततः प्रदक्षिणां कुर्यान्नमस्कुर्यात्ततः परम् । कृतांजलिपुटो भूत्वा त्विदमेवमुदीरयेत् ॥१९॥
नमो वृन्दावनांकाय तुभ्यं गोलोकमौलिने । पूर्णब्रह्मातपत्राय नमो गोवर्द्धनाय च ॥२०॥
पुष्पांजलिं ततः कुर्यान्नीराजनमतः परम् । घंटाकांस्यमृदंगाद्यैर्वादित्रैर्मधुरस्वनैः ॥२१॥
वेदाहमेतं मंत्रेण वर्षलाजैः समाचरेत् । तत्समीपे चान्नकूटं कुर्याच्छ्रद्धासमन्वितः ॥२२॥
कचोलानां चतुःषष्टिपञ्चपंक्तिसमन्वितम् । तुलसीदलमिश्रैश्च श्रीगंगायमुनाजलैः ॥२३॥
षट्पञ्चाशत्तमैर्भोगैः कुर्यात्सेवां समाहितः ।
ततोऽग्नीन् ब्राह्मणान्पूज्य गाः सुरान् गन्धपुष्पकैः ॥२४॥
भोजयित्वा द्विजवरान् सोंगैर्मिष्टभोजनैः । अन्येभ्यश्चाश्वपाकेभ्यो दद्याद्भोजनमुत्तमम् ॥२५॥
गोपीगोपालवृन्दैश्च गवां नृत्यं च कारयेत् । मंगलैर्जयशब्दैश्च कुर्याद्गोवर्द्धनोत्सवम् ॥२६॥
यत्र गोवर्द्धनाभावस्तत्र पूजाविधिं शृणु । गोमयैर्वर्द्धनं कुर्यात्तदाकारं परोन्नतम् ॥२७॥
पुष्पव्यूहैर्लताजालैरीपिकाभिः समन्वितः । पूजनीयः सदा मर्त्यैर्गिरिर्गोवर्द्धनो भुवि ॥२८॥
शिलासमानं पुरटं क्षिप्त्वाग्नौ तच्छिलां नयेत् । गृह्णीयाद्यो विना स्वर्णं स महारौरवं व्रजेत् ॥२९॥
शालग्रामस्य देवस्य सेवनं कारयेत्सदा । पातकं न स्पृशेत्तं वै पद्मपत्रं यथा जलम् ॥३०॥
गिरिराजशिलासेवां यः करोति द्विजोत्तमः । सप्तद्वीपमहातीर्थावगाहफलमेति सः ॥३१॥
गिरिराजमहापूजां वर्षे वर्षे करोति यः । इह सर्वसुखं भुक्त्वाऽमुत्र मोक्षं प्रयाति सः ॥३२॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीगिरिराजखंडे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीगिरिराजपूजाविधिवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

(गोपोंद्वारा गिरिराज-पूजनका महोत्सव)

श्रीनारद उवाच

श्रुत्वा वचो नन्दसुतस्य साक्षाच्छ्रीनन्दसन्नन्दवरा व्रजेशाः ।
सुविस्मिताः पूर्वकृतं विहाय प्रचक्रिरे श्रीगिरिराजपूजाम् ॥ १ ॥
नीत्वा बलीन्मैथिल नन्दराजः सुतौ समानीय च रामकृष्णौ ।
यशोदया श्रीगिरिपूजनार्थं समुत्सुको गर्गयुतः प्रसन्नः ॥ २ ॥
त्वरं समारुह्य महोन्नतं गजं विचित्रवर्णं धृतहेमशृङ्खलम् ।
गोवर्द्धनान्तं प्रययौ गवां गणैः शरद्घनैः शक्र इव प्रियायुतः ॥ ३ ॥
नन्दोपनन्दा वृषभानवश्च पुत्रैश्च पौत्रैश्च सहांगनाभिः ।
समाययुः श्रीगिरिराजपार्श्वं सर्वं समानीय च यज्ञभारम् ॥ ४ ॥
सहस्रबालार्कपरिस्फुरद्द्युतिमारुह्य राधा शिबिकां सखीगणैः ।
शचीव दिव्याम्बररत्नभूषणा बभौ चकोरीभ्रमरीसमाकुला ॥ ५ ॥
समागते पार्श्वगते स्वलंकृते राजन्सखीकोटिसमावृते परे ।
सख्यौ विभाते ललिताविशाखे चन्द्रानने चालितचारुचामरे ॥ ६ ॥
एवं रमा वै विरजा च माधवी माया च कृष्णा नृप जह्नुनंदिनी ।
द्वात्रिंशदष्टौ च तथा हि षोडश सख्यश्च तासां किल यूथ आगताः ॥ ७ ॥
श्रीमैथिलानां किल कोसलानां तथा श्रुतीनामृषिरूपकाणाम् ।
तथा त्वयोध्यापुरवासिनीनां श्रीयज्ञसीतावनवासिनीनाम् ॥ ८ ॥

सम्पूर्ण सुख भोगकर परलोकमें मोक्ष प्राप्त कर लेता है ॥ ३२ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां गिरिराजखण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—साक्षात् श्रीनन्दनन्दनकी यह बात सुनकर श्रीनन्द और सन्नन्द आदि व्रजेश्वरगण बड़े विस्मित हुए। फिर उन्होंने पहलेका निश्चय त्यागकर श्रीगिरिराज-पूजनका आयोजन किया ॥ १ ॥ हे मिथिलेश्वर ! नन्दराज अपने दोनों पुत्र—बलराम और श्रीकृष्णको तथा भेंटपूजाकी सामग्रीको लेकर यशोदाजीके साथ गिरिराज-पूजनके लिये उत्कण्ठित हो प्रसन्नतापूर्वक गये। उनके साथ गर्गजी भी थे ॥ २ ॥ वे अपनी पत्नीके साथ बहुत ऊँचे चित्र-विचित्र वर्णोंसे रँगे हुए तथा सोनेकी साँकल धारण करनेवाले हाथीपर आरूढ़ हो, गौओंके साथ गोवर्धन पर्वतके समीप गये, मानो इन्द्राणीके साथ इन्द्र ऐरावतपर आरूढ़ हो शरद् ऋतुके श्वेत बादलोंके साथ उपस्थित हुए हों ॥ ३ ॥ नन्द, उपनन्द और वृषभानुगण अपने पुत्रों, पोतों और पत्नियोंके साथ यज्ञका सारा सम्भार लिये गिरिराजके पास आ पहुँचे ॥ ४ ॥ सहस्रों बालरविकी दीप्तिसे प्रकाशित शिबिकामें आरूढ़ हो दिव्य वस्त्रों तथा रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित श्रीराधा सखी-समुदायके साथ वहाँ आकर उसी प्रकार सुशोभित हुईं; जैसे शची चकोरी और भ्रमरियोंके साथ शोभा पाती हों ॥ ५ ॥ हे राजन् ! श्रीराधाके दोनों बगलमें आयी हुई विविध अलंकारोंसे अलंकृत तथा करोड़ों सखियोंसे आवृत दो सर्वश्रेष्ठ चन्द्रमुखी सखियाँ—ललिता और विशाखा—चारु चँवर डुलाती हुई शोभा पा रही थीं ॥ ६ ॥ हे नरेश्वर ! इसी प्रकार रमा, विरजा, माधवी, माया, यमुना और गंगा आदि बत्तीस सखियाँ, आठ सखियाँ, सोलह सखियाँ और इन सबके यूथमें सम्मिलित असंख्य सखियाँ वहाँ आयीं ॥ ७ ॥ मिथिलानिवासिनी, कोसलप्रदेशवासिनी, अयोध्यापुरनिवासिनी, श्रुतिरूपा, ऋषिरूपा, यज्ञसीतास्वरूपा

रमादिवैकुण्ठनिवासिनीनां तथोर्ध्ववैकुण्ठनिवासिनीनाम् ।
महोज्ज्वलद्वीपनिवासिनीनां ध्रुवादिलोकाचलवासिनीनाम् ॥ ९ ॥
समुद्रजादिव्यगुणत्रयाणामदिव्यवैमानिकजौपधीनाम् ।
जालंधरीणां च समुद्रकन्याबर्हिष्मतीजासुतलस्थितानाम् ॥१०॥
तथाप्सरःसर्वफणीन्द्रजानामासां च यूथाव्रजवासिनीनाम् ।
समाययुः श्रीगिरिराजपार्श्वे स्वलंकृताः पाणिबलिप्रदीपाः ॥११॥
गोपाश्च वृद्धाः शिशवो युवानः पीताम्बरोष्णीपकबर्हमंडिताः ।
श्रीहारगुंजावनमालिकाभी रेजुः समेता नवयष्टिवेणुभिः ॥१२॥
श्रुत्वोत्सवं शैलवरस्य मन्मुखाद्गङ्गाधरो बद्धकपर्दमंडलः ।
कपालभृच्चस्थिजभस्मरूपितः सर्पालिसालावलयैर्विभूपितः ॥१३॥
धत्तूरभंगाविपपानविह्वलो हिमाद्रिपुत्रीसहितो गणावृतः ।
आरुह्य नन्दीश्वरमादिवाहनं समाययौ श्रीगिरिराजमण्डलम् ॥१४॥
राजर्षिविप्रर्षिसुरर्पयश्च सिद्धेशयोगेश्वरहंसमुख्याः ।
आजग्मुराराद्गिरिदर्शनार्थं सहस्रशो विप्रगणाः समेताः ॥१५॥
गोवर्द्धनो रत्नशिलामयोऽभूत्सुवर्णश्रृंगैः परितः स्फुरद्भिः ।
मत्तालिभिर्निर्झरसुंदरीभिर्दरीभिरुच्चांगकरीव राजन् ॥१६॥
तदैव शैलाः किल मूर्तिमंतः सोपायना मेरुहिमाचलाद्याः ।
नेमुर्गिरिं मंगलपाणयस्तं गोवर्द्धनं रूपधरं गिरीन्द्राः ॥१७॥
द्विजैश्च गोवर्द्धनदेवपूजनं कृत्वाऽच्युतोक्तं द्विजवह्निगोधनम् ।
सम्पूज्य धृत्वा सुधनं महाधनं बलिं ददौ श्रीगिरये व्रजेश्वरः ॥१८॥

तथा वनवासिनी गोपियोंका समुदाय भी वहाँ आ उपस्थित हुआ ॥ ८ ॥ रमा आदि वैकुण्ठवासिनी देवियाँ, वैकुण्ठसे भी ऊपरके लोकोंमें रहनेवाली दिव्यांगनाएँ, परम उज्ज्वल श्वेतद्वीपकी निवासिनी बालाएँ और ध्रुवादि लोकों तथा लोकाचलमें रहनेवाली देवीरूपा गोपांगनाओंका दल भी वहाँ आ गया ॥ ९ ॥ जो समुद्रसे उत्पन्न लक्ष्मीकी सखियाँ थीं, दिव्य गुणत्रयमयी अंगनाएँ थीं, अदिव्य विमानचारियोंकी वनिताएँ थीं; जो ओपधिस्वरूपा थीं, जो जालंधरके अन्तःपुरकी स्त्रियाँ थीं, जो समुद्र-कन्याएँ थीं तथा जो बर्हिष्मती-नगरी तथा सुतल आदि लोकोंमें निवास करनेवाली थीं, उन समस्त दिव्यांगनाओंका समुदाय गिरिराज गोवर्धनके पास आकर विराजमान हुआ ॥ १० ॥ इसी प्रकार अप्सराओं, समस्त नागकन्याओं तथा व्रज-वासिनियोंके यूथ भी वस्त्राभूपणोंसे विभूपित हो, हाथमें पूजन-सामग्री और प्रदीप लिये गिरिराजके पास आ पहुँचे ॥ ११ ॥ बालक, युवक और वृद्ध गोप भी पीताम्बर, पगड़ी तथा मोरपंखसे मण्डित तथा सुन्दर हार, गुञ्जा और वनमालाओंसे विभूपित हो, नूतन यष्टि तथा वेणु लिये, वहाँ आकर शोभा पाने लगे ॥ १२ ॥ गिरिराज हिमालयके मुखसे उस उत्सवका समाचार सुनकर गंगाधर शिव मस्तकपर जटा-जूट बाँधे, हाथमें कपाल लिये, अंगोंमें चिताकी भस्म लगाये, सर्पोंकी माला तथा कंगनोंसे विभूपित हो, भाँग, धतूर और विप पीकर मत्त हुए, गिरिराजनन्दिनी उमाके साथ आदिवाहन नन्दीश्वरपर आरूढ़ हो, प्रमथगणोंसे घिरे हुए, गिरिराज-मण्डलमें आये ॥ १३ ॥ १४ ॥ मुख्य-मुख्य राजर्षि, ब्रह्मर्षि, देवर्षि, सिद्धेश्वर, हंस आदि योगेश्वर तथा सहस्रों ब्राह्मण-वृन्द गिरिराजका दर्शन करनेके लिये आस-पास एकत्र हो गये ॥ १५ ॥ गोवर्धन पर्वतकी एक-एक शिला रत्नमयी हो गयी। उसके सुवर्णमय शृंग चारों ओर अपनी दीप्ति फैलाने लगे। हे राजन् ! वह पर्वत मतवाले भ्रमरों तथा निर्झर-शोभित कन्दराओंसे उन्नतकाय गजराजकी शोभा धारण करने लगा ॥ १६ ॥ उसी समय मेरु और हिमालय आदि गिरीन्द्र दिव्य रूप धारण करके, भेंट और मांगलिक

नन्दोपनन्दैर्वृषभानुभिश्च गोपीगणैर्गोपगणैः प्रहर्षितः ।
गायद्भिरानर्तनवाद्यतत्परैश्चकार कृष्णोऽद्रिवरप्रदक्षिणाम् ॥१९॥
देवेषु वर्षत्सु च पुष्पवर्षं जनेषु वर्षत्सु च लाजसङ्घम् ।
रेजे महाराज इवाध्वरे जनैर्गोवर्धनो नाम गिरीन्द्रराजराट् ॥२०॥
कृष्णोऽपि साक्षाद्व्रजशैलमध्याद्भूत्वाऽतिदीर्घं किल चान्यरूपम् ।
शैलोऽस्मि लोकानिति भापयन्सन् जघास सर्वं कृतमन्नकूटम् ॥२१॥
गोपालगोपीगणवृन्दमुख्या ऊचुः स्वयं वीक्ष्य गिरेः प्रभावम् ।
दातुं वरं तत्र समुद्यतं तं सुविस्मिता हर्षितमानसास्ते ॥२२॥
ज्ञातोऽसि गोपैर्गिरिराजदेवः प्रदर्शितो नन्दसुतेन साक्षात् ।
नो गोधनं वा किल बन्धुवर्गो वृद्धिं समायातु दिने दिने कौ ॥२३॥
तथाऽस्तु चोक्त्वा गिरिराजराजो गोवर्द्धनो दिव्यवपुर्दधानः ।
किरीटकेयूरमनोहराङ्गः क्षणेन तत्रान्तरधीयतारात् ॥२४॥
नन्दोपनन्दा वृषभानवश्च बलः सुचन्द्रो वृषभानुराजः ।
श्रीनन्दराजश्च हरिश्च गोपा गोप्यश्च सर्वा निजगोधनैश्च ॥२५॥
द्विजाश्च योगेश्वरसिद्धसङ्घाः शिवादयश्चान्यजनाश्च सर्वे ।
नत्वाऽथ सम्पूज्य गिरिं प्रसन्नाः स्वं स्वं गृहं जग्मुरनिच्छया च ॥२६॥
श्रीकृष्णचन्द्रस्य परं चरित्रं गिरीन्द्रराजस्य महोत्सवं च ।
मया तवाग्रे कथितं विचित्रं नृणां महापापहरं पवित्रम् ॥२७॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीगिरिराजखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे गिरिराजमहोत्सववर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

वस्तुएँ हाथमें लिये मूर्तिमान् गोवर्धनको प्रणाम करने लगे ॥ १७ ॥ भगवान् श्रीकृष्णकी बतायी हुई विधिके अनुसार द्विजोंद्वारा गोवर्धन-पूजन सम्पन्न करके, ब्राह्मणों, अग्नियों तथा गोधनकी सम्यक् पूजा करनेके पश्चात्, व्रजेश्वर नन्दने गिरिराजकी सेवामें बहुत-सा धन तथा बहुमूल्य भेंट-सामग्री प्रस्तुत की ॥ १८ ॥ नन्द, उपनन्द, वृषभानु, गोपीवृन्द तथा गोपगण नाचने, गाने और बाजे बजाने लगे। उन सबके साथ हर्षसे भरे हुए श्रीकृष्णने गिरिराजकी परिक्रमा की ॥ १९ ॥ तब आकाशसे देवता फूल बरसाने लगे और भूतलवासी जनसमुदाय लाजा (लावा या खील) छींटने लगा। उस यज्ञमें गिरीन्द्रोंका सम्राट् गोवर्धन लोगोंसे घिरकर किसी महाराजके समान सुशोभित होने लगा ॥ २० ॥ साक्षात् श्रीकृष्ण भी व्रजस्थित शैल गोवर्धनके बीचसे एक दूसरा विशाल रूप धारण करके निकले और 'मैं गिरिराज गोवर्धन हूँ'—यों कहते हुए वहाँका सारा अन्नकूट भोग लगाने लगे ॥ २१ ॥ गोपालों और गोपियोंके समुदायमें जो मुख्य-मुख्य लोग थे, उन्होंने गिरिका यह प्रभाव अपनी आँखों देखा तथा गिरिराजको वहाँ वर देनेके लिये उद्यत देख सब-के-सब आश्चर्यचकित हो उठे। सबके मनमें अपूर्व उल्लास छा गया ॥ २२ ॥ उस समय गोपोंने कहा—हे प्रभो! आज हमने जान लिया कि आप साक्षात् गिरिराज देवता हैं। आज स्वयं नन्दनन्दनने हमें आपके दर्शनका अवसर दिया है। आपकी कृपासे हमारा गोधन और बन्धुवर्ग प्रतिदिन इस भूतलपर वृद्धिको प्राप्त हो ॥ २३ ॥ 'ऐसा ही होगा'—यों कहकर किरीट और केयूर आदि आभूषणोंसे मनोहर अंगवाले दिव्यरूपधारी गिरिराज गोवर्धन क्षणभरमें वहाँ उनके निकट ही अन्तर्धान हो गये ॥ २४ ॥ तब नन्द, उपनन्द, वृषभानु, बलराम, वृषभानुराज, सुचन्द्र, श्रीनन्दराज, श्रीहरि एवं समस्त गोप-गोपीगण अपने गोधनोंके साथ वहाँसे चले ॥ २५ ॥ ब्राह्मण, योगेश्वर-समुदाय, सिद्धसंघ, शिव आदि देवता तथा अन्य सब लोग गिरिराजको प्रणाम

अथ तृतीयोऽध्यायः

(श्रीकृष्णका गोवर्धन पर्वतको उठाकर इन्द्रके द्वारा क्रोधपूर्वक करायी गयी घोर जलवृष्टिसे गोपोंकी रक्षा करना)

श्रीनारद उवाच

अथ मन्मुखतः श्रुत्वा स्वात्मयागस्य नाशनम् । गोवर्द्धनोत्सवं जातं कोपं चक्रे पुरन्दरः ॥ १ ॥
सांवर्तकं नाम गणं प्रलये मुक्तबंधनम् । इन्द्रो व्रजविनाशाय प्रेषयामास सत्वरम् ॥ २ ॥
अथ मेघगणाः क्रुद्धा ध्वनंतश्चित्रवर्णिनः । कृष्णाभाः पीतभाः केचित्केचिच्च हरितप्रभाः ॥ ३ ॥
इन्द्रगोपनिभाः केचित्केचित्कर्पूरवत्प्रभाः । नानाविधाश्च ये मेघा नीलपंकजसुप्रभाः ॥ ४ ॥
हस्तितुल्यान्वारिबिन्दून् ववृषुस्ते मदोद्धताः । हस्तिशुंडासमाभिश्च धाराभिश्चंचलाश्च ये ॥ ५ ॥
निपेतुः कोटिशश्चाद्रिकूटतुल्योपला भृशम् । वाता ववुः प्रचण्डाश्च क्षेपयंतस्तरून् गृहान् ॥ ६ ॥
प्रचण्डा वज्रपातानां मेघानामंतकारिणाम् । महाशब्दोऽभवद्भूमौ मैथिलेन्द्र भयंकरः ॥ ७ ॥
ननाद तेन ब्रह्माण्डं सप्तलोकैर्बिलैः सह । विचेलुर्दिग्गजास्तारा ह्यपतन्भूमिमण्डलम् ॥ ८ ॥
भयभीता गोपमुख्याः सकुटुंबा जिगीषवः । शिशून्स्वान्स्वान्पुरस्कृत्य नंदमंदिरमाययुः ॥ ९ ॥
श्रीनन्दनन्दनं नत्वा सबलं परमेश्वरम् । ऊचुर्व्रजौकसः सर्वे भयार्ताः शरणं गताः ॥१०॥

गोपा ऊचुः

राम राम महाबाहो कृष्ण कृष्ण व्रजेश्वर । पाहि पाहि महाकष्टादिन्द्रदत्तान्निजान्जनान् ॥११॥
हित्वेन्द्रयागं त्वद्वाक्यात्कृतो गोवर्द्धनोत्सवः । अद्य शक्रे प्रकुपिते कर्तव्यं किं वदाशु नः ॥१२॥

और उनका पूजन करके प्रसन्नतापूर्वक अनिच्छासे अपने-अपने घरको गये ॥ २६ ॥ हे राजन् ! श्रीकृष्णचन्द्रके इस उत्तम चरित्रका तथा गिरिराजराजके उस विचित्र महोत्सवका मैंने तुम्हारे सामने वर्णन किया। यह पावन प्रसंग बड़े-बड़े पापोंको हर लेनेवाला है ॥ २७ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां गिरिराजखण्डे 'प्रियंवदा'-भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! तदनन्तर मेरे मुखसे अपने यज्ञका लोप तथा गोवर्धन-पूजनोत्सवके सम्पन्न होनेका समाचार सुनकर देवराज इन्द्रने बड़ा क्रोध किया ॥ १ ॥ उन्होंने उस सांवर्तक नामक मेघगणको, जिसका बन्धन केवल प्रलयकालमें खोला जाता है, बुलाकर तत्काल व्रजका विनाश कर डालनेके लिये भेजा ॥ २ ॥ आज्ञा पाते ही विचित्र वर्णवाले मेघगण रोषपूर्वक गर्जन करते हुए चले। उनमें कोई काले, कोई पीले और कोई हरे रंगके थे ॥ ३ ॥ किन्हींकी कान्ति इन्द्रगोप (वीरबहूटी) नामक कीड़ोंकी तरह लाल थी। कोई कपूरके समान सफेद थे और कोई नील कमलके समान नीली प्रभासे युक्त थे ॥ ४ ॥ इस तरह नाना रंगोंके मेघ मदोन्मत्त हो हाथीके समान मोटी वारिधाराओंकी वर्षा करने लगे। कुछ चञ्चल मेघ हाथीकी सूँड़के समान मोटी धाराएँ गिराने लगे ॥ ५ ॥ पर्वतशिखरके समान करोड़ों प्रस्तरखण्ड वहाँ बड़े वेगसे गिरने लगे। साथ ही प्रचण्ड आँधी चलने लगी, जो वृक्षों और घरोंको उखाड़ फेंकती थी ॥ ६ ॥ हे मैथिलेन्द्र ! प्रलयंकर मेघों तथा वज्रपातोंका महाभयंकर शब्द व्रजभूमिपर व्याप्त हो गया ॥७॥ उस भयंकर नादसे सातों लोकों और पातालोंसहित सारा ब्रह्माण्ड गूँज उठा, दिग्गज विचलित हो गये और आकाशसे भूतलपर तारे टूट-टूटकर गिरने लगे ॥ ८ ॥ अब तो प्रधान-प्रधान गोप भयभीत हो, प्राण बचानेकी इच्छासे अपने-अपने शिशुओं और कुटुम्बको आगे करके नन्दमन्दिर आये ॥ ९ ॥ बलरामसहित परमेश्वर श्रीनन्दनन्दनकी शरणमें जाकर समस्त भयभीत व्रजवासी उन्हें प्रणाम करके कहने लगे ॥ १० ॥ गोप बोले—हे महाबाहु राम ! हे राम !! और हे व्रजेश्वर कृष्ण ! हे कृष्ण !! इन्द्रके दिये हुए इस महान् कष्टसे आप अपने जनोंकी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ॥ ११ ॥ तुम्हारे कहनेसे हमलोगोंने इन्द्रयाग छोड़कर गोवर्धन पूजाका उत्सव मनाया, इससे आज इन्द्रका कोप बहुत बढ़ गया है। अब शीघ्र बताओ, हमें क्या

श्रीनारद उवाच

व्याकुलं गोकुलं वीक्ष्य गोपीगोपालसंकुलम् । सवत्सकं गोकुलं च गोपानाह निराकुलः ॥१३॥

श्रीभगवानुवाच

मा भैष्ट यातादि्रतटं सर्वैः परिकरैः सह । वः पूजा ग्रहृता येन स रक्षां संविधास्यति ॥१४॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा स्वजनैः सार्द्धमेत्य गोवर्धनं हरिः । समुत्पाट्य दधाराद्रिं हस्तेनैकेन लीलया ॥१५॥

यथोच्छिलींध्रं शिशुरश्रमो गजः स्वपुष्करेणैव च पुष्करं गिरिम् ।
धृत्वा बभौ श्रीव्रजराजनन्दनः कृपाकरोऽसौ करुणामयः प्रभुः ॥१६॥
अथाह गोपान्विशताद्रिगर्तं हे तात मातर्व्रजवल्लभेशाः ।
सोपस्करैः सर्वधनैश्च गोभिरत्रैव शक्रस्य भयं न किंचित् ॥१७॥

इत्थं हरेर्वचः श्रुत्वा गोपा गोधनसंयुताः । सकुटुंबोपस्करैश्च विविशुः श्रीगिरेस्तलम् ॥१८॥
वयस्या बालकाः सर्वे कृष्णोक्ताः सबला नृपः । स्वान्स्वांश्च लगुडानद्रेरवष्टंभान्प्रचक्रिरे ॥१९॥
जलौघमागतं वीक्ष्य भगवांस्तद्गिरेरधः । सुदर्शनं तथा शेषं मनसाऽऽज्ञां चकार ह ॥२०॥
कोटिसूर्यप्रभं चाद्रेरूर्ध्वं चक्रं सुदर्शनम् । धारासंपातमपिबदगस्त्य इव मैथिल ॥२१॥
अधोऽधस्तं गिरेः शेषः कुण्डलीभूत आस्थितः । रुरोध तज्जलं दीर्घं यथा वेला महोदधिम् ॥२२॥
सप्ताहं सुस्थिरस्तस्थौ गोवर्धनधरो हरिः । श्रीकृष्णचंद्रं पश्यंतः चकोरा इव ते स्थिताः ॥२३॥
मत्तमैरावतं नागं समारुह्य पुरन्दरः । ससैन्यः क्रोधसंयुक्तो व्रजमण्डलमाययौ ॥२४॥
दूराच्चिक्षेप वज्रं स्वं नंदगोष्ठजिघांसया । स्तंभयामास शक्रस्य सवज्रं माधवो भुजम् ॥२५॥

भयभीतस्तदा शक्रः सांवर्तकगणैः सह । दुद्राव सहसा देवैर्यथेभः सिंहताडितः ॥२६॥
तदैवार्कोदयो जातो गता मेघा इतस्ततः । वाता उपरताः सद्यो नद्यः स्वल्पजला नृप ॥२७॥
विपंकं भूतलं जातं निर्मलं खं बभूव ह । चतुष्पदाः पक्षिणश्च सुखमापुस्ततस्ततः ॥२८॥
हरिणोक्तास्तदा गोपा निर्ययुर्गिरिगर्ततः । स्वं स्वं धनं गोधनं च समादाय शनैः शनैः ॥२९॥
निर्यातेति वयस्यांश्च प्राह गोवर्द्धनोद्धरः । ते तमाहुश्च निर्गच्छ धारयामोऽद्रिमोजसा ॥३०॥
इति वादपरान् गोपान् गोवर्द्धनधरो हरिः । तदर्द्धं च गिरेर्भारं प्रादात्तेभ्यो महामनाः ॥३१॥
पतितास्तेन भारेण गोपबालाश्च निर्बलाः ॥३२॥
करेण तान् समुत्थाप्य स्वस्थाने पूर्ववद्गिरिम् । सर्वेषां पश्यतां कृष्णः स्थापयामास लीलया ॥३३॥

तदैव गोपीगणगोपमुख्याः सम्पूज्य कृष्णं नृप नन्दसूनुम् ।
गन्धाक्षताद्यैर्दधिदुग्धभोगैर्ज्ञात्वा परं नेमुरतीव सर्वे ॥३४॥
नन्दो यशोदा नृप रोहिणी च बलश्च सन्नन्दमुखाश्च वृद्धाः ।
आलिंग्य कृष्णं प्रददुर्धनानि शुभाशिषा संयुयुजुर्घृणार्ताः ॥३५॥
संश्लाघ्य तं गायनवाद्यतत्परा नृत्यन्त आरान्नृप नन्दनन्दनम् ।
आजग्मुरेव स्वगृहान्व्रजौकसो हरिं पुरस्कृत्य मनोरथं गताः ॥३६॥
तदैव देवा ववृपुः प्रहर्षिताः पुष्पैः शुभैः सुन्दरनन्दनोद्भवैः ।
जगुर्यशः श्रीगिरिराजधारिणो गन्धर्वमुख्या दिवि सिद्धसंघाः ॥३७॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीगिरिराजखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे गोवर्द्धनोद्धरणं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

(इन्द्र द्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति तथा सुरभि और ऐरावत द्वारा उनका अभिषेक)

श्रीनारद उवाच

अथ देवगणैः सार्द्धं शक्रस्तत्र समागतः ।
गतमानो गिरौ कृष्णं रहसि प्रणनाम ह ॥ १ ॥

इन्द्र उवाच

त्वं देवदेवः परमेश्वरः प्रभुः पूर्णः पुराणः पुरुषोत्तमोत्तमः ।
परात्परस्त्वं प्रकृतेः परो हरिर्मां पाहि पाहि द्युपते जगत्पते ॥ २ ॥
दशावतारो भगवांस्त्वमेव रिरक्षया धर्मगवां श्रुतेश्च ।
अत्रैव जातः परिपूर्णदेवः कंसादिदैत्येन्द्रविनाशनाय ॥ ३ ॥
त्वन्मायया मोहितचित्तवृत्तिं मदोद्धतं हेलनभाजनं माम् ।
पितेव पुत्रं द्युपते क्षमस्व प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥ ४ ॥

ॐनमो गोवर्द्धनोद्धरणाय गोविन्दाय गोकुलनिवासाय गोपालाय गोपालपतये गोपीजनभर्त्रे गिरिगजोद्धर्त्रे करुणानिधये जगद्विधये जगन्मङ्गलाय जगन्निवासाय जगन्मोहनाय कोटिमन्मथ-मन्मथाय वृषभानुसुतावराय श्रीनन्दराजकुलप्रदीपाय श्रीकृष्णाय परिपूर्णतमाय तेऽसंख्यब्रह्मांडपतये गोलोकधामधिषणाधिपतये स्वयम्भगवते सबलाय नमस्ते नमस्ते ॥ ५ ॥

श्रीनारद उवाच

इति शक्रकृतं स्तोत्रं प्रातरुत्थाय यः पठेत् । सर्वा सिद्धिर्भवेत्तस्य संकटान्न भयं भवेत् ॥ ६ ॥
इति स्तुत्वा हरिं देवं सर्वैर्देवगणैः सह । कृतांजलिपुटो भूत्वा प्रणनाम पुरन्दरः ॥ ७ ॥
अथ गोवर्द्धने रम्ये सुरभिर्गौः समुद्रजा । स्नापयामास गोपेशं दुग्धधाराभिरात्मनः ॥ ८ ॥

शुंडादण्डैश्चतुर्भिश्च द्युगंगाजलपूरितैः । श्रीकृष्णं स्नापयामास मत्त ऐरावतो गजः ॥ ९ ॥

ऋषिभिः श्रुतिभिः सर्वैर्देवगन्धर्वकिन्नराः ।
तुष्टुवुस्ते हरिं राजन् हर्षिताः पुष्पवर्षिणः ॥१०॥

कृष्णाभिषेके संजाते गिरिर्गोवर्द्धनो महान् । द्रवीभूतोऽवहद्राजन् हर्षानन्दादितस्ततः ॥११॥

प्रसन्नो भगवांस्तस्मिन्कृतवान्हस्तपंकजम् । तद्धस्तचिह्नमद्यापि दृश्यते तद्गिरौ नृप ॥१२॥

तत्तीर्थं च परं भूतं नराणां पापनाशनम् ।
तदेव पादचिह्नं स्यात्तत्तीर्थं विद्धि मैथिल ॥१३॥

एतावत्तस्य तत्रैव पादचिह्नं बभूव ह । सुरभेः पादचिह्नानि बभूवुस्तत्र मैथिल ॥१४॥

द्युगङ्गाजलपातेन कृष्णस्नानेन मैथिल । तत्र वै मानसी गङ्गा गिरौ जाताऽघनाशिनी ॥१५॥

सुरभेर्दुग्धधाराभिर्गोविन्दस्नानतो नृप । जातो गोविन्दकुण्डोऽद्रौ महापापहरः परः ॥१६॥

कदाचित्तस्मिन्दुग्धस्य स्वादुत्वं प्रतिपद्यते ।
तत्र स्नात्वा नरः साक्षाद्गोविन्दपदमाप्नुयात् ॥१७॥

प्रदक्षिणीकृत्य हरिं प्रणम्य वै दत्त्वा बलींस्तत्र पुरन्दरादयः ।
जयध्वनिं कृत्य सुपुष्पवर्षिणो ययुः सुराः सौख्ययुतास्त्रिविष्टपम् ॥१८॥

कृष्णाभिषेकस्य कथां शृणोति यो दशाश्वमेधावभृथाधिकं फलम् ।
प्राप्नोति राजेन्द्र स एव भूयसः परं पदं याति परस्य वेधसः ॥१९॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीगिरिराजखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीकृष्णाभिषेको नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

(गोपोंका श्रीकृष्णके विषयमें संदेहमूलक विवाद)

श्रीनारद उवाच

एकदा सर्वगोपाला गोप्यो नन्दसुतस्य तत् । अद्भुतं चरितं दृष्ट्वा नन्दमाहुर्यशोमतीम् ॥ १ ॥
हे गोपराज त्वद्वंशे कोऽपि जातो न चाद्रिधृक् । न क्षमस्त्वं शिलां धर्त्तुं सप्ताहं हे यशोमति ॥ २ ॥
क्व सप्तहायनो बालः क्वाद्रिराजस्य धारणम् । तेन नो जायते शंका तव पुत्रे महाबले ॥ ३ ॥
अयं बिभ्रद्गिरिवरं कमलं गजराडिव । उच्छिलींध्रं यथा बालो हस्तेनैकेन लीलया ॥ ४ ॥
गौरवर्णा यशोदे त्वं नन्द त्वं गौरवर्णधृक् । अयं जातः कृष्णवर्ण एतत्कुलविलक्षणम् ॥ ५ ॥
यद्वाऽस्तु क्षत्रियाणां तु बाल एतादृशो यथा । बलभद्रे न दोषः स्याच्चन्द्रवंशसमुद्भवे ॥ ६ ॥
ज्ञातेस्त्यागं करिष्यामो यदि सत्यं न भाषसे । गोपेषु चास्य वोत्पत्तिं वद चेन्न कलिर्भवेत् ॥ ७ ॥

श्रीनारद उवाच

श्रुत्वा गोपालवचनं यशोदा भयविह्वला । नन्दराजस्तदा प्राह गोपान् क्रोधप्रपूरितान् ॥ ८ ॥

श्रीनंद उवाच

गर्गस्य वाक्यं हे गोपा वदिष्यामि समाहितः । येन गोपगणा यूयं भवताशु गतव्यथाः ॥ ९ ॥
ककारः कमलाकांतो ऋकारो राम इत्यपि । षकारः षड्गुणपतिः श्वेतद्वीपनिवासकृत् ॥ १० ॥
णकारो नारसिंहोऽयमकारो ह्यक्षरोऽग्निभुक् । विसर्गौ च तथा ह्येतौ नरनारायणावृषी ॥ ११ ॥
संप्रलीनाश्च षट् पूर्णा यस्मिञ्छब्दे महात्मनि । परिपूर्णतमे साक्षात्तेन कृष्णः प्रकीर्तितः ॥ १२ ॥
शुक्लो रक्तस्तथा पीतो वर्णोऽस्यानुयुगं धृतः । द्वापरांते कलेरादौ बालोऽयं कृष्णतां गतः ॥ १३ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—एक समय गोपों और गोपियोंने नन्दनन्दनके उस अद्भुत चरित्रको देखकर यशोदासहित नन्दके पास जाकर कहा ॥ १ ॥ गोप बोले—हे यशोमय गोपराज ! तुम्हारे वंशमें पहले कभी कोई भी ऐसा बालक नहीं उत्पन्न हुआ था, जो पर्वत उठा ले ॥ २ ॥ तुम स्वयं तो एक शिलाखण्ड भी सात दिनतक नहीं उठाये रह सकते । कहाँ तो सात वर्षका बालक और कहाँ उसके द्वारा इतने बड़े गिरिराजको हाथपर उठाये रखना । इससे तुम्हारे इस महाबली पुत्रके विषयमें हमें शङ्का होती है ॥ ३ ॥ जैसे गजराज एक कमल उठा ले और जैसे बालक गोबरछत्ता हाथमें ले ले, उसी तरह इसने खेल-ही-खेलमें एक हाथसे गिरिराजको उठा लिया था ॥ ४ ॥ हे यशोदे ! तुम गोरी हो, और नन्दजी ! तुम भी सुवर्णसदृश गौरवर्णके हो; किन्तु यह बालक श्यामवर्णका उत्पन्न हुआ है । इसका रूप-रंग इस कुलके लोगोंसे सर्वथा विलक्षण है ॥ ५ ॥ यह बालक तो ऐसा है, जैसे क्षत्रियोंके कुलमें उत्पन्न हुआ हो । बलभद्रजी भी विलक्षण हैं, किन्तु इनकी विलक्षणता कोई दोषकी बात नहीं; क्योंकि इनका जन्म चन्द्रवंशमें हुआ है ॥ ६ ॥ यदि तुम सच-सच नहीं बताओगे तो हम तुम्हें जातिसे बहिष्कृत कर देंगे । अथवा यह बताओ कि गोकुलमें इसकी उत्पत्ति कैसे हुई ? यदि नहीं बताओगेतो हमसे तुम्हारा झगड़ा होगा ॥ ७ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—गोपोंकी बात सुनकर यशोदाजी तो भयसे काँप उठीं, किन्तु उस समय क्रोधसे भरे हुए गोपगणोंसे नन्दराज इस प्रकार बोले ॥ ८ ॥ श्रीनन्दजीने कहा—हे गोपगण ! मैं एकाग्रचित्त होकर गर्गजीकी कही हुई बात तुम्हें बता रहा हूँ, जिससे तुम्हारे मनकी चिन्ता और व्यथा शीघ्र दूर हो जायगी ॥ ९ ॥ पहले 'कृष्ण' शब्दके अक्षरोंका अभिप्राय सुनो—" 'ककार' कमलाकान्तका वाचक है; 'ऋकार' रामका बोधक है; 'षकार' श्वेतद्वीपनिवासी षड्विध ऐश्वर्य-गुणोंके स्वामी भगवान् विष्णुका वाचक है ॥ १० ॥ 'णकार' साक्षात् नरसिंहस्वरूप है; 'अकार' उस अक्षर पुरुषका बोधक है, जो अग्निको भी पी जाता है । अन्तमें जो 'विसर्ग' नामक दो बिन्दु हैं, ये 'नर' और 'नारायण' ऋषियोंके प्रतीक हैं ॥ ११ ॥ ये छहों पूर्ण तत्त्व जिस परिपूर्णतम परमात्मामें लीन हैं, वही साक्षात् 'कृष्ण' है । इसी अर्थमें इस बालकका नाम 'कृष्ण' रक्खा गया है ॥ १२ ॥ युगके अनुसार इसका

तस्मात्कृष्ण इति ख्यातो नाम्नायं नंदनंदनः । वसवश्चेंद्रियाणीति तद्देवश्चित्त एव हि ॥१४॥
तस्मिन्यश्चेष्टते सोऽपि वासुदेव इति स्मृतः ॥१५॥
वृषभानुसुता राधा या जाता कीर्तिमंदिरे । तस्याः पतिरयं साक्षात्तेन राधापतिः स्मृतः ॥१६॥
परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान्स्वयम् । असंख्यब्रह्मांडपतिर्गोलोके धाम्नि राजते ॥१७॥
सोऽयं तव शिशुर्जातो भारावतरणाय च । कंसादीनां वधार्थाय भक्तानां पालनाय च ॥१८॥
अनन्तान्यस्य नामानि वेदगुह्यानि भारत । लीलाभिश्च भविष्यंति तत्कर्मसु न विस्मयः ॥१९॥
इति श्रुत्वात्मजे गोपाः संदेहं न करोम्यहम् । वेदवाक्यं ब्रह्मवचः प्रमाणं हि महीतले ॥२०॥

गोपा ऊचुः

यद्यागतस्तव गृहे गर्गाचार्यो महामुनिः । तत्क्षणे नामकरणे नाहूता ज्ञातयस्त्वया ॥२१॥
स्वगृहे नामकरणं भवता च कृतं शिशोः । तव चैतादृशी रीतिर्गुप्तं सर्वं गृहेऽपि यत् ॥२२॥

श्रीनारद उवाच

एवं वदंतस्ते गोपा निर्गता नंदमंदिरात् । वृषभानुवरं जग्मुः क्रोधपूरितविग्रहाः ॥२३॥
वृषभानुवरं साक्षान्नंदराजसहायकम् । प्राहुर्गोपगणाः सर्वे ज्ञातेर्मदसमन्विताः ॥२४॥

गोपा ऊचुः

वृषभानुवर त्वं वै ज्ञातिमुख्यो महामनाः । नंदराजं त्यज ज्ञातेर्हे गोपेश्वर भूपते ॥२५॥

श्रीवृषभानुवर उवाच

को दोषो नंदराजस्य ज्ञातेस्तं संत्यजाम्यहम् । गोपेष्टो ज्ञातिमुकुटो नंदराजो मम प्रियः ॥२६॥

वर्ण सत्ययुगमें 'शुक्ल', त्रेतामें 'रक्त' तथा द्वापरमें 'पीत' वर्ण होता आया है। इस समय द्वापरके अन्त और कलियुगके आदिमें यह बालक 'कृष्ण' रूपको प्राप्त हुआ है, इस कारण यह नन्दनन्दन 'कृष्ण' नामसे विख्यात है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा मन, बुद्धि, चित्त—ये तीन प्रकारके अन्तःकरण 'आठ वसु' कहे गये हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥ इसके अधिष्ठाता भी इसी नामसे प्रसिद्ध हैं। इन वसुओंमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित होकर ये श्रीकृष्णदेव ही चेष्टा करते हैं, इसलिये इन्हें 'वासुदेव' कहा गया है ॥१५॥ 'वृषभानुनन्दिनी राधा, जो कीर्तिके भवनमें प्रकट हुई है, उसके साक्षात् पति ये ही हैं; इसलिये इन्हें 'राधापति' भी कहा गया है ॥ १६ ॥ ये साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति हैं और सर्वत्र व्यापक होते हुए भी स्वरूपसे गोलोकधाममें विराजते हैं ॥१७॥ हे नन्द ! वे ही ये भगवान् भूतलका भार उतारने, कंसादि दैत्योंको मारने तथा भक्तोंका पालन करनेके लिये तुम्हारे पुत्ररूपमें प्रकट हुए हैं ॥ १८ ॥ हे भरतवंशी नन्द ! इस बालकके अनन्त नाम हैं, जो वेदोंके लिये भी गोपनीय हैं तथा लीलाओंके अनुसार और भी बहुत से नाम विख्यात होंगे। अतः इसके कितने ही महान् विलक्षण कर्म क्यों न हों, उनके सम्बन्धमें कोई विस्मय नहीं करना चाहिये ॥ १९ ॥ हे गोपगण ! अपने पुत्रके विषयमें गर्गजीकी कही हुई इस बातको सुनकर मैं कभी संदेह नहीं करता; क्योंकि पृथ्वीपर वेद-वाक्य और ब्राह्मण-वचन ही प्रमाण हैं" ॥ २० ॥ गोप बोले—जब महामुनि गर्गाचार्य तुम्हारे घर आये थे, तब उसी समय नामकरण-संस्कारमें तुमने भाई-बन्धुओंको क्यों नहीं बुलाया ? ॥ २१ ॥ चुपचाप अपने घरमें ही बालकका नामकरण-संस्कार कर लिया ! यह तुम्हारी अच्छी रीति है कि सारा कार्य घरमेंही गुप-चुप कर लिया जाय ॥ २२ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! यों कहकर क्रोधसे भरे हुए गोप नन्दमन्दिरसे निकलकर वृषभानुवरके पास गये ॥ २३ ॥ वृषभानुवर नन्दराजके साक्षात् सहायक थे, तथापि उसकी परवाह न करके जातीय संघटनके बलसे उन्मत्त गोप उनके पास जाकर बोले ॥ २४ ॥ गोपोंने कहा—हे वृषभानुवर ! तुम हमारे ज्ञातिवर्गमें प्रधान और महामनस्वी हो। अतः हे गोपेश्वर भूपाल ! तुम नन्दराजको जातिसे अलग कर दो ॥ २५ ॥ वृषभानुवर बोले—नन्दराजका क्या दोष है, जिससे मैं उनको त्याग दूँ ? नन्दराज तो समस्त गोपोंके प्रिय, अपनी जातिके मुकुट तथा मेरे भी

तवांगजं दिव्यमनंगमोहनं गोवर्द्धनोद्धारणदोःसमुद्भटम् ।
संवीक्ष्य चास्मान्वृपभानुवंदितः संप्रेषयामास विशाम्पते प्रभो ॥१४॥
वरस्य चांके भरणाय पूर्वं मुक्ताफलानां निचयं गृहाण ।
इतश्च कन्यार्थमलं प्रदेहि सैषा हि चास्मत्कुलजा प्रसिद्धिः ॥१५॥

श्रीनारद उवाच

दृष्ट्वा द्रव्यं परो नंदो विस्मितोऽपि विचारयन् । प्रष्टुं यशोदां तत्तुल्यं नीत्वा चान्तःपुरं ययौ ॥१६
चिरं दध्यौ तदा नन्दो यशोदा च यशस्विनी । एतन्मुक्तासमानं तु द्रव्यं नास्ति गृहे मम ॥१७॥

लोके लज्जा गता सर्वा हासः स्याच्चेद्धनोद्धृतम् ।
किं कर्तव्यं तत्प्रति यच्छ्रीकृष्णोद्वाहकर्मणि ॥१८॥

ततोऽयोग्यं तद्ग्रहणं पश्चात्कार्यं धनागमे । एवं चिन्तयतस्तस्य नन्दस्यैव यशोदया ॥१९॥
अलक्ष्य आगतस्तत्र भगवान्वृजिनार्दनः । नीत्वा दामशतं तेषु बहिःक्षेत्रेषु सर्वतः ॥२०॥
मुक्ताफलानि चैकैकम्प्राक्षिपत्स्वकरेण वै । यथा बीजानि चान्नानां स्वक्षेत्रेषु कृषीवलः ॥२१॥
अथ नन्दोऽपि गणयन् कलिकानिचयं पुनः । शतं न्यूनं च तद्दृष्ट्वा संदेहं स जगाम ह ॥२२॥

श्रीनन्द उवाच

नास्ति पूर्वं यत्समानं तत्रापि न्यूनतां गतम् । अहो कलंको भविता ज्ञातिषु स्वेषु सर्वतः ॥२३॥
अथवा क्रीडनार्थं हि कृष्णो यदि गृहीतवान् । बलदेवोऽथवा बालस्तौ पृच्छे दीनमानसः ॥२४॥

श्रीनारद उवाच

इत्थं विचार्य नन्दोऽपि कृष्णं पप्रच्छ सादरम् । प्रहसन् भगवान् नन्दं प्राह गोवर्द्धनोद्धरः ॥२५॥

श्रीभगवानुवाच

कृषीवला वयं गोपाः सर्वबीजप्ररोहकाः । क्षेत्रे मुक्ताप्रबीजानि विकीर्णीकृतवाहनम् ॥२६॥

श्रीनारद उवाच

श्रुत्वाथ स्वात्मजेनोक्तं तं निर्भर्त्स्य व्रजेश्वरः । तानि नेतुं तत्सहितस्तत्क्षेत्राणि जगाम ह ॥२७॥
तत्र मुक्ताफलानां तु शाखिनः शतशः शुभाः । दृश्यंते दीर्घवपुषो हरित्पल्लवशोभिताः ॥२८॥
मुक्तानां स्तवकानां तु कोटिशः कोटिशो नृप । संघा विलंबिता रेजुर्ज्योतींषीव नभःस्थले ॥२९॥
तदाऽतिहर्षितो नन्दो ज्ञात्वा कृष्णं परेश्वरम् । मुक्ताफलानि दिव्यानि पूर्वस्थूलसमानि च ॥३०॥
षां तु कोटिभाराणि निधाय शकटेषु च । ददौ तेभ्यो वृणानेभ्यो नन्दराजो व्रजेश्वरः ॥३१॥
गृहीत्वाऽथ तत्सर्वं वृषभानुवरं गताः । सर्वेषां शृण्वतां नन्दवैभवं प्रजगुर्नृप ॥३२॥
दाऽतिविस्मिताः सर्वे ज्ञात्वा नन्दसुतं हरिम् । वृषभानुवरं नेमुर्निःसन्देहा व्रजौकसः ॥३३॥
ाधा हरेः प्रिया ज्ञाता राधायाश्च प्रियो हरिः । ज्ञातो व्रजजनैः सर्वैस्तद्दिनान्मैथिलेश्वर ॥३४॥
मुक्ताक्षेपः कृतो यत्र हरिणा नन्दसूनुना । मुक्तासरोवरस्तत्र जातो मैथिल तीर्थराट् ॥३५॥
एकं मुक्ताफलस्यापि दानं तत्र करोति यः । लक्षमुक्तादानफलं समाप्नोति न संशयः ॥३६॥
एवं ते कथितो राजन् गिरिराजमहोत्सवः । भुक्तिमुक्तिप्रदो नृणां किं भूयःश्रोतुमिच्छसि ॥३७॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीगिरिराजखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे हरिपरीक्षणं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

मैं उन्हीं दोनों बालकोंसे पूछूँगा ॥ २४ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन्! इस प्रकार विचारकर नन्दने श्रीकृष्णसे उन मोतियोंके विषयमें आदरपूर्वक पूछा । तब जोरसे हँसते हुए गोवर्धनधारी भगवान् श्रीकृष्ण नन्दसे बोले ॥ २५ ॥ श्रीभगवान्ने कहा—बाबा ! हम सारे गोप किसान हैं, जो खेतोंमें सब प्रकारके बीज बोया करते हैं; अतः हमने खेतमें मोतीके बीज बिखेर दिये हैं ॥ २६ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन्! बेटेके मुँहसे यह बात सुनकर व्रजेश्वर नन्दने डाँट बतायी और उन सबको चुन-बीनकर लानेके लिये उनके साथ खेतोंमें गये ॥ २७ ॥ वहाँ मुक्ताफलके सैकड़ों सुन्दर वृक्ष दिखायी देने लगे, जो हरे-हरे पल्लवोंसे सुशोभित और विशालकाय थे ॥ २८ ॥ हे नरेश्वर! जैसे आकाशमें झुंड-के-झुंड तारे शोभा पाते हैं, उसी प्रकार उन वृक्षोंमें कोटि कोटि मुक्ताफलोंके गुच्छे समूह-के-समूह लटके हुए सुशोभित हो रहे थे ॥ २९ ॥ तब हर्षसे भरे हुए व्रजेश्वर नन्दराजने श्रीकृष्णको परमेश्वर जानकर पहलेके समान ही मोटे-मोटे दिव्य मुक्ताफल उन वृक्षोंसे तोड़ लिये और उनके एक कोटि भार गाड़ियोंपर लदवाकर उन वर-वरणकर्ताओंको दे दिये । हे नरेश्वर ! वह सब लेकर वे वरदर्शी लोग वृषभानुवरके पास गये और सबके सुनते हुए नन्दराजके अनुपम वैभवका वर्णन करने लगे ॥ ३०–३२ ॥ उस समय सब गोप बड़े विस्मित हुए । नन्दनन्दनको साक्षात् श्रीहरि जानकर समस्त व्रजवासियोंका संशय दूर हो गया और उन्होंने वृषभानुवरको प्रणाम किया ॥ ३३ ॥ हे मिथिलेश्वर! उसी दिनसे व्रजके सब लोगोंने यह जान लिया कि श्रीराधा श्रीहरिकी प्रियतमा हैं और श्रीहरि श्रीराधाके प्राणवल्लभ हैं ॥ ३४ ॥ हे मिथिलापते ! जहाँ नन्दनन्दन श्रीहरिने मोती बिखेरे थे, वहाँ 'मुक्ता-सरोवर' प्रकट हो गया, जो तीर्थोंका राजा है ॥ ३५ ॥ जो वहाँ एक मोतीका भी दान करता है, वह लाख मोतियोंके दानका फल पाता है, इसमें संशय नहीं है ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार मैंने तुमसे गिरिराज-महोत्सवका वर्णन किया, जो मनुष्योंके लिये भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है। अब तुम और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ ३७ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां गिरिराजखण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

(गिरिराज गोवर्धनसम्बन्धी तीर्थोंका वर्णन)

बहुलाश्व उवाच

कति मुख्यानि तीर्थानि गिरिराजे महात्मनि । एतद्ब्रूहि महायोगिन् साक्षात्त्वं दिव्यदर्शनः ॥ १

श्रीनारद उवाच

राजन् गोवर्द्धनः सर्वः सर्वतीर्थवरः स्मृतः । वृन्दावनं च गोलोकमुकुटोऽद्रिः प्रपूजितः ॥ २
गोपगोपीगवां रक्षाप्रदः कृष्णप्रियो महान् । पूर्णब्रह्मातपत्रो यस्तस्मात्तीर्थवरस्तु कः ॥ ३ ॥
इन्द्रयागं विनिर्भर्त्स्य सर्वैर्निजजनैः सह । यत्पूजनं समारेभे भगवान् भुवनेश्वरः ॥ ४ ॥
परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान्स्वयम् । असंख्यब्रह्माण्डपतिर्गोलोकेशः परात्परः ॥ ५ ॥
यस्मिन्स्थितः सदा क्रीडामर्भकैः सह मैथिल । करोति तस्य माहात्म्यं वक्तुं नालं चतुर्मुखः ॥ ६ ॥
यत्र वै मानसी गंगा महापापौघनाशिनी । गोविन्दकुण्डं विशदं शुभं चन्द्रसरोवरम् ॥ ७ ॥
राधाकुण्डः कृष्णकुण्डो ललिताकुण्ड एव च । गोपालकुंडस्तत्रैव कुसुमाकर एव च ॥ ८ ॥
श्रीकृष्णमौलिसंस्पर्शान्मौलिचिह्ना शिलाऽभवत् । तस्या दर्शनमात्रेण देवमौलिर्भवेज्जनः ॥ ९ ॥

यस्यां शिलायां कृष्णेन चित्राणि लिखितानि च ।
अद्यापि चित्रिता पुण्या नाम्ना चित्रशिला गिरौ ॥१०॥

यां शिलामर्भकैः कृष्णो वादयन् क्रीडने रतः । वादनी सा शिला जाता महापापौघनाशिनी ॥११॥
यत्र श्रीकृष्णचन्द्रेण गोपालैः सह मैथिल । कृता वै कंदुकक्रीडा तत्क्षेत्रं कंदुकं स्मृतम् ॥१२॥
दृष्ट्वा शक्रपदं याति नत्वा ब्रह्मपदं च तत् । विलुठन् यस्य रजसा साक्षाद्विष्णुपदं व्रजेत् ॥१३॥

गोपानामुष्णिपाण्यत्र चोरयामास माधवः । औष्णिपं नाम तत्तीर्थं महापापहरं गिरौ ॥१४॥

तत्रैकदा वै दधिविक्रयार्थं विनिर्गतो गोपवधूसमूहः ।
श्रुत्वा क्वणन्नूपुरशब्दमाराद्रुरोध तन्मार्गमनंगमोही ॥१५॥
वंशीधरो वेत्रवरेण गोपैः पुरश्च तासां विनिधाय पादम् ।
मह्यं करादानधनाय दानं देहीति गोपीर्निजगाद मार्गे ॥१६॥

गोप्य ऊचुः

वक्रस्त्वमेवासि समास्थितः पथि गोपार्भकैर्गोरसलम्पटो भृशम् ।
मात्रा च पित्रा सह कारयामो बलाद्भवंतं किल कंसबन्धने ॥१७॥

श्रीभगवानुवाच

कंसं हनिष्यामि महोग्रदण्डं सबांधवं मे शपथो गवां च ।
एवं करिष्यामि यदोः पुरे बलान्नेष्ये सदाहं गिरिराजभूमेः ॥१८॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा दधिपात्राणि बालैर्नीत्वा पृथक् पृथक् । भूपृष्ठे पोथयामास सानन्दं नन्दनन्दनः ॥१९॥
अहो एष परं धृष्टो निर्भयो नन्दनन्दनः । निरंकुशो भापणीयो वने वीरः पुरेऽबलः ॥२०॥
ब्रुवामहे यशोदायै नन्दाय च किलाद्य वै । एवं वदंत्यस्ता गोप्यः सस्मिताः प्रययुर्गृहान् ॥२१॥
नीपपालाशपत्राणां कृत्वा द्रोणानि माधवः । जघास बालकैः सार्द्धं पिच्छलानि दधीनि च ॥२२॥
द्रोणाकाराणि पत्राणि बभूवुः शाखिनां तदा । तत्क्षेत्रं च महापुण्यं द्रोणं नाम नृपेश्वर ॥२३॥
दधिदानं तत्र कृत्वा पीत्वा पत्रभृतं दधि । नमस्कुर्यान्नरस्तस्य गोलोकान्न च्युतिर्भवेत् ॥२४॥
नेत्रे स्वाच्छाद्य यत्रैव लीनोऽभून्माधवोऽर्भकैः । तत्र तीर्थं लौकिकं च जातं पापप्रणाशनम् ॥२५॥

॥ १३ ॥ जहाँ माधवने गोपोंकी पगड़ियाँ चुरायी थीं, वह महापापहारी तीर्थ उस पर्वतपर 'औष्णीप' नामसे प्रसिद्ध है ॥ १४ ॥ एक समय वहाँ दधि बेचनेके लिये गोपवधुओंका समुदाय आ निकला । उनके नूपुरोंकी झनकार सुनकर मदनमोहन श्रीकृष्णने निकट आकर उनकी राह रोक ली ॥ १५ ॥ वंशी और वेत्र धारण किये श्रीकृष्णने ग्वाल-बालोंद्वारा उनको चारों ओरसे घेर लिया और स्वयं उनके आगे पैर रखकर मार्गमें उन गोपियोंसे बोले—'इस मार्गपर हमारी ओरसे कर वसूल किया जाता है, सो तुमलोग हमारा दान दे दो' ॥ १६ ॥ गोपियाँ बोलीं—तुम बड़े टेढ़े हो, जो ग्वाल-बालोंके साथ राह रोककर खड़े हो गये । तुम बड़े गोरस-लम्पट हो । हमारा रास्ता छोड़ दो, नहीं तो माँ-बापसहित तुमको हम बलपूर्वक राजा कंसके कारागारमें डलवा देंगी ॥ १७ ॥ श्रीभगवान्ने कहा—अरी ! तुम कंसका क्या डर दिखाती हो ? मैं गौओंकी शपथ खाकर कहता हूँ, महान् उग्रदण्ड धारण करनेवाले कंसको मैं उसके बन्धु-बान्धवों सहित मार डालूँगा; अथवा मैं उसे मथुरासे गोवर्धनकी घाटीमें खींच लाऊँगा ॥१८॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! यों कहकर बालकोंद्वारा पृथक्-पृथक् सबके दहीपात्र मँगवाकर नन्दनन्दनने बड़े आनन्दके साथ भूमिपर पटक दिये ॥ १९ ॥ गोपियाँ परस्पर कहने लगीं—'अहो ! यह नन्दका लाला तो बड़ा ही ढीठ, निडर और निरङ्कुश है । इसके साथ तो बात भी नहीं करनी चाहिये । यह गाँवमें तो निर्बल बना रहता है और वनमें आकर वीर बन जाता है ॥ २० ॥ हम आज ही चलकर यशोदाजी और नन्दरायजीसे कहती हैं ।'—यों कहकर गोपियाँ मुसकराती हुई अपने घर लौट गयीं ॥ २१ ॥ इधर माधवने कदम्ब और पलाशके पत्तोंके दोने बनाकर बालकोंके साथ चिकना चिकना दही ले-लेकर खाया ॥ २२ ॥ तबसे वहाँके वृक्षोंके पत्ते दोनेके आकारके होने लग गये । हे नृपेश्वर ! वह परम पुण्य क्षेत्र 'द्रोण' नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ २३ ॥ जो मनुष्य वहाँ दहीदान करके स्वयं भी पत्तेमें रखे हुए दहीको पीकर उस तीर्थको नमस्कार करता है, उसकी गोलोकसे कभी च्युति नहीं होती ॥ २४ ॥ जहाँ नेत्र मूँदकर माधव बालकोंके साथ लुका-छिपीके खेल खेलते थे, वहाँ

कदम्बखण्डतीर्थं च लीलायुक्तं हरेः सदा । तस्य दर्शनमात्रेण नरो नारायणो भवेत् ॥२६॥
यत्र वै राधया रासे शृंगारोऽकारि मैथिल । तत्र गोवर्द्धने जातं स्थले शृंगारमण्डलम् ॥२७॥
येन रूपेण कृष्णेन धृतो गोवर्द्धनो गिरिः । तद्रूपं विद्यते तत्र नृप शृङ्गारमण्डलम् ॥२८॥
अब्दाश्चतुःसहस्राणि तथा चाष्टौ शतानि च । गतास्तत्र कलेरादौ क्षेत्रे शृङ्गारमण्डले ॥२९॥
गिरिराजगुहामध्यात्सर्वेषां पश्यतां नृप । स्वतः सिद्धं च तद्रूपं हरेः प्रादुर्भविष्यति ॥३०॥
श्रीनाथं देवदमनं तं वदिष्यन्ति सज्जनाः । गोवर्द्धने गिरौ राजन् सदा लीलां करोति यः ॥३१॥
ये करिष्यंति नेत्राभ्यां तस्य रूपस्य दर्शनम् । ते कृतार्था भविष्यंति मैथिलेन्द्र कलौ जनाः ॥३२॥
जगन्नाथो रंगनाथो द्वारकानाथ एव च । बद्रीनाथश्चतुष्कोणे भारतस्यापि पर्वते ॥३३॥
मध्ये गोवर्द्धनस्यापि नाथोऽयं वर्तते नृप । पवित्रे भारते वर्षे पंच नाथाः सुरेश्वराः ॥३४॥
सद्धर्ममण्डपस्तम्भा आर्तत्राणपरायणाः । तेषां तु दर्शनं कृत्वा नरो नारायणो भवेत् ॥३५॥
चतुर्णां भुवि नाथानां कृत्वा यात्रां नरः सुधीः । न पश्येद्देवदमनं स न यात्राफलं लभेत् ॥३६॥
श्रीनाथं देवदमनं पश्येद्गोवर्द्धने गिरौ । चतुर्णां भुवि नाथानां यात्रायाः फलमाप्नुयात् ३७॥
ऐरावतस्य सुरभेः पादचिह्नानि यत्र वै । तत्र नत्वा नरः पापी वैकुण्ठं याति मैथिल ॥३८॥
हस्तचिह्नं पादचिह्नं श्रीकृष्णस्य महात्मनः । दृष्ट्वा नत्वा नरः कश्चित्साक्षात्कृष्णपदं व्रजेत् ॥३९॥
एतानि नृप तीर्थानि कुंडाद्यायतनानि च । अंगानि गिरिराजस्य किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥४०॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीगिरिराजखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीगिरिराजतीर्थवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथ अष्टमोऽध्यायः

(विभिन्न तीर्थोंमें गिरिराजके विभिन्न अङ्गोंकी स्थितिका वर्णन)

श्रीबहुलाश्व उवाच

केषु केषु तदङ्गेषु किं किं तीर्थं समाश्रितम् । वद देव महादेव त्वं परावरवित्तमः ॥ १ ॥

श्रीनारद उवाच

यत्र यस्य प्रसिद्धिः स्यात्तदंगं परमं विदुः । क्रमतो नास्त्यंगचयो गिरिराजस्य मैथिल ॥ २ ॥
यथा सर्वगतं ब्रह्म सर्वांगानि च तस्य वै । विभूतेर्भावतः शश्वत्तथा वक्ष्यामि मानद ॥ ३ ॥
शृङ्गारमण्डलस्याधो मुखं गोवर्द्धनस्य च । यत्रान्नकूटं कृतवान् भगवान् व्रजवासिभिः ॥ ४ ॥
नेत्रे वै मानसी गंगा नासा चन्द्रसरोवरः । गोविन्दकुण्डो ह्यधरश्चिबुकं कृष्णकुण्डकः ॥ ५ ॥
राधाकुण्डं तस्य जिह्वा कपोलौ ललितासरः । गोपालकुण्डः कर्णश्च कर्णान्तः कुसुमाकरः ॥ ६ ॥
मौलिचिह्ना शिला तस्य ललाटं विद्धि मैथिल । शिरश्चित्रशिला तस्य ग्रीवा वै वादनी शिला ॥ ७ ॥
कांदुकं पार्श्वदेशश्च औष्णिषं कटिरुच्यते । द्रोणतीर्थं पृष्ठदेशे लौकिकं चोदरे स्मृतम् ॥ ८ ॥
कदम्बखण्डमुरसि जीवः शृङ्गारमण्डलम् । श्रीकृष्णपादचिह्नं तु मनस्तस्य महात्मनः ॥ ९ ॥
हस्तचिह्नं तथा बुद्धिरैरावतपदं पदम् । सुरभेः पादचिह्नेषु पक्षौ तस्य महात्मनः ॥१०॥
पुच्छकुण्डे तथा पुच्छं वत्सकुंडे बलं स्मृतम् । रुद्रकुण्डे तथा क्रोधं कामं शक्रसरोवरे ॥११॥
कुबेरतीर्थे चोद्योगं ब्रह्मतीर्थे प्रसन्नताम् । यमतीर्थे ह्यहंकारं वदन्तीत्थं पुराविदः ॥१२॥
एवमंगानि सर्वत्र गिरिराजस्य मैथिल । कथितानि मया तुभ्यं सर्वपापहराणि च ॥१३॥
गिरिराजविभूतिं च यः शृणोति नरोत्तमः । स गच्छेद्धाम परमं गोलोकं योगिदुर्लभम् ॥१४॥

राजा बहुलाश्वने पूछा—हे महाभाग ! हे देव !! आप पर, अपर—भूत और भविष्यके ज्ञाताओंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। अतः बताइये, गिरिराजके किन-किन अङ्गोंमें कौन-कौन-से तीर्थ विद्यमान हैं ? ॥ १ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! जहाँ जिस अङ्गकी प्रसिद्धि है, वही गिरिराजका उत्तम अङ्ग माना गया है। क्रमशः गणना करनेपर कोई भी ऐसा स्थान नहीं है, जो गिरिराजका अङ्ग न हो ॥ २ ॥ हे मानद ! जैसे ब्रह्म सर्वत्र विद्यमान है और सारे अङ्ग उसीके हैं, उसी प्रकार विभूति और भावकी दृष्टिसे गोवर्धनके जो शाश्वत अङ्ग माने जाते हैं, उनका मैं वर्णन करूँगा ॥ ३ ॥ शृङ्गारमण्डलके अधोभागमें श्रीगोवर्धनका मुख है, जहाँ भगवान्‌ने व्रजवासियोंके साथ अन्नकूटका उत्सव किया था ॥ ४ ॥ 'मानसी गङ्गा' गोवर्धनके दोनों नेत्र हैं, 'चन्द्रसरोवर' नासिका, 'गोविन्दकुण्ड' अधर और 'श्रीकृष्णकुण्ड' चिबुक है ॥ ५ ॥ 'राधाकुण्ड' गोवर्धनकी जिह्वा और 'ललितासरोवर' कपोल है। 'गोपालकुण्ड' कान और 'कुसुमसरोवर' कर्णान्तभाग है ॥ ६ ॥ हे मिथिलेश्वर ! जिस शिलापर मुकुटका चिह्न है, उसे गिरिराजका ललाट समझो। 'चित्रशिला' उनका मस्तक और 'वादिनीशिला' उनकी ग्रीवा है ॥ ७ ॥ 'कन्दुकतीर्थ' उनका पार्श्वभाग है और 'उष्णीषतीर्थको उनका कटिप्रदेश बतलाया जाता है। 'द्रोणतीर्थ' पृष्ठदेशमें और 'लौकिकतीर्थ' पेटमें है ॥ ८ ॥ 'कदम्बखण्ड' हृदयस्थलमें है। 'शृङ्गारमण्डलतीर्थ' उनका जीवात्मा है। 'श्रीकृष्ण-चरण-चिह्न' महात्मा गोवर्धनका मन है ॥ ९ ॥ 'हस्तचिह्नतीर्थ' बुद्धि तथा 'ऐरावतचरणचिह्न' उनका चरण है। सुरभिके चरणचिह्नोंमें महात्मा गोवर्धनके पंख हैं ॥ १० ॥ 'पुच्छकुण्ड'में पूँछकी भावना की जाती है। 'वत्सकुण्ड'में उनका बल, 'रुद्रकुण्ड'में क्रोध तथा 'इन्द्रसरोवर'में कामकी स्थिति है ॥ ११ ॥ 'कुबेरतीर्थ' उनका उद्योग-स्थल और 'ब्रह्मतीर्थ' प्रसन्नताका प्रतीक है। पुराणवेत्ता पुरुष 'यमतीर्थ'में गोवर्धनके अहंकारकी स्थिति बताते हैं ॥ १२ ॥ हे मैथिल ! इस प्रकार मैंने तुम्हें सर्वत्र गिरिराजके अङ्ग बताये, जो समस्त पापोंको हर लेनेवाले हैं ॥ १३ ॥ जो नरश्रेष्ठ गिरिराजकी इस विभूतिको सुनता है, वह योगिजनदुर्लभ 'गोलोक' नामक

समुत्थितोऽसौ हरिवक्षसो गिरिर्गोवर्द्धनो नाम गिरीन्द्रराजराट् ।
समागतो ह्यत्र पुलस्त्यतेजसा यद्दर्शनाज्जन्म पुनर्न विद्यते ॥१५॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीगिरिराजखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे गिरिराजविभूतिवर्णनं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः

(गिरिराज गोवर्धनकी उत्पत्तिका वर्णन)

श्रीबहुलाश्व उवाच

अहो गोवर्द्धनः साक्षाद्गिरिराजो हरिप्रियः । तत्समानं न तीर्थं हि विद्यते भूतले दिवि ॥ १ ॥
कदा बभूव श्रीकृष्णवक्षसोऽयं गिरीश्वरः । एतद्वद महाबुद्धे त्वं साक्षाद्धरिमानसः ॥ २ ॥

श्रीनारद उवाच

गोलोकोत्पत्तिवृत्तान्तं शृणु राजन्महामते । चतुष्पदार्थदं नृणामाद्यलीलासमन्वितम् ॥ ३ ॥
अनादिरात्मा पुरुषो निर्गुणः प्रकृतेः परः । परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान्प्रभुः ॥ ४ ॥
प्रत्यग्धामा स्वयंज्योती रममाणो निरन्तरम् । यत्र कालः कलयतामीश्वरो धाममानिनाम् ॥ ५ ॥
राजन्न प्रभवेन्माया न महांश्च गुणः कुतः । न विशंति क्वचिद्राजन् मनश्चित्तो मतिर्ह्यहम् ॥ ६ ॥
स्वधाम्नि ब्रह्म साकारमिच्छया व्यरचीकरत् । प्रथमं चाभवच्छेषो विसश्वेतो बृहद्वपुः ॥ ७ ॥
तदुत्संगे महालोको गोलोको लोकवन्दितः । यं प्राप्य भक्तिसंयुक्तः पुनरावर्तते न हि ॥ ८ ॥
असंख्यब्रह्माण्डपतेर्गोलोकाधिपतेः प्रभोः । पुनः पादाब्जसंभूता गङ्गा त्रिपथगामिनी ॥ ९ ॥
पुनर्वामांसतस्तस्य कृष्णाऽभूत्सरितां वरा । रेजे शृङ्गारकुसुमैर्यथोष्णिङ्मुद्रिता नृप ॥१०॥

श्रीरासमण्डलं दिव्यं हेमरत्नसमन्वितम् । नानाशृङ्गारपटलं गुल्फाभ्यां श्रीहरेः प्रभोः ॥११॥
सभाप्रांगणवीथीभिर्मंडपैः परिवेष्टितः । वसन्तमाधुर्यधरः कूजत्कोकिलसंकुलः ॥१२॥
मयूरैः षट्पदैर्व्याप्तः सरोभिः परिसेवितः ।
जातो निकुंजो जंघाभ्यां श्रीकृष्णस्य महात्मनः ॥१३॥
वृन्दावनं च जानुभ्यां राजन्सर्ववनोत्तमम् । लीलासरोवरः साक्षादूरुभ्यां परमात्मनः ॥१४॥
कटिदेशात्स्वर्णभूमिर्दिव्यरत्नखचित्प्रभा । उदरे रोमराजिश्च माधव्यो विस्तृता लताः ॥१५॥
नानापक्षिगणैर्व्याप्ता ध्वनद्भ्रमरभूषिताः । सुपुष्पफलभारैश्च नताः सत्कुलजा इव ॥१६॥
श्रीनाभिपंकजात्तस्य पंकजानि सहस्रशः । सरःसु हरिलोकस्य तानि रेजुरितस्ततः ॥१७॥
त्रिवलिप्रांततो वायुर्मन्दगाम्यतिशीतलः । जत्रुदेशाच्छुभा जाता मथुरा द्वारकापुरी ॥१८॥
भुजाभ्यां श्रीहरेर्जाताः श्रीदामाद्यष्ट पार्षदाः । नन्दाश्च मणिबंधाभ्यामुपनन्दाः कराग्रतः ॥१९॥
श्रीकृष्णबाहुमूलाभ्यां सर्वे वै वृषभानवः । कृष्णरोमसमुद्भूताः सर्वे गोपगणा नृप ॥२०॥
श्रीकृष्णमनसो गावो वृषा धर्मधुरन्धराः । बुद्धेर्यवसगुल्मानि बभूवुर्मैथिलेश्वर ॥२१॥
तद्वामांसात्समुद्भूतं गौरं तेजः स्फुरत्प्रभम् । लीला श्रीर्भूश्च विरजा तस्माज्जाता हरेः प्रियाः॥२२॥
लीलावती प्रिया तस्य तां राधां तु विदुः परे ।
श्रीराधाया भुजाभ्यां तु विशाखा ललिता सखी ॥२३॥
सहचर्यस्तथा गोप्यो राधारोमोद्भवा नृप । एवं गोलोकरचनां चकार मधुसूदनः ॥२४॥

छपी हुई पगड़ीके वस्त्रकी शोभा होती है ॥ १० ॥ तदनन्तर भगवान् श्रीहरिके दोनों गुल्फों (टखनों या घुटनों) से हेमरत्नोंसे युक्त दिव्य रासमण्डल और नाना प्रकारके शृंगार-साधनोंके समूहका प्रादुर्भाव हुआ ॥ ११ ॥ इसके बाद महात्मा श्रीकृष्णकी दोनों पिंडलियोंसे निकुञ्ज प्रकट हुआ, जो सभाभवनों, आँगनों, गलियों और मण्डपोंसे घिरा हुआ था। वह निकुञ्ज वसन्तकी माधुरी धारण किये हुए था। उसमें कूजते हुए कोकिलोंकी मधुरध्वनि सर्वत्र व्याप्त थी ॥ १२ ॥ मोर, भ्रमर तथा विविध सरोवरोंसे भी वह परिशोभित एवं परिसेवित दिखायी देता था। हे राजन्! भगवान्के दोनों घुटनोंसे सम्पूर्ण वनोंमें उत्तम श्रीवृन्दावनका आविर्भाव हुआ। साथ ही उन साक्षात् परमात्माकी दोनों जाँघोंसे लीला-सरोवर प्रकट हुआ ॥ १३ ॥ १४ ॥ उनके कटिप्रदेशसे दिव्य रत्नोंद्वारा जटित प्रभामयी स्वर्णभूमिका प्राकट्य हुआ और उनके उदरमें जो रोमावलियाँ हैं, वे ही विस्तृत माधवी लताएँ बन गयीं ॥ १५ ॥ उन लताओंमें नाना प्रकारके पक्षियोंके झुंड सब ओर फैलकर कलरव कर रहे थे। गुंजार करते हुए भ्रमर उन लता-कुञ्जोंकी शोभा बढ़ा रहे थे। वे लताएँ सुन्दर फूलों और फलोंके भारसे इस प्रकार झुकी हुई थीं, जैसे उत्तम कुलकी कन्याएँ लज्जा और विनयके भारसे नतमस्तक रहा करती हैं ॥ १६ ॥ भगवान्के नाभिकमलसे सहस्रों कमल प्रकट हुए, जो हरिलोकके सरोवरोंमें इधर-उधर सुशोभित हो रहे थे ॥ १७ ॥ भगवान्के त्रिवली-प्रान्तसे मन्दगामी और अत्यन्त शीतल समीर प्रकट हुआ और उनके गलेकी हँसुलीसे 'मथुरा' तथा 'द्वारका'—इन दो पुरियोंका प्रादुर्भाव हुआ ॥ १८ ॥ श्रीहरिकी दोनों भुजाओंसे 'श्रीदामा' आदि आठ पार्षद उत्पन्न हुए। कलाइयोंसे 'नन्द' और कराग्रभागसे 'उपनन्द' प्रकट हुए ॥ १९ ॥ श्रीकृष्णकी भुजाओंके मूलभागोंसे समस्त वृषभानुओं-का प्रादुर्भाव हुआ। हे नरेश्वर! समस्त गोपगण श्रीकृष्णके रोमसे उत्पन्न हुए हैं ॥ २० ॥ श्रीकृष्णके मनसे गौओं तथा धर्मधुरंधर वृषभोंका प्राकट्य हुआ। हे मैथिलेश्वर! उनकी बुद्धिसे घास और झाड़ियाँ प्रकट हुईं ॥ २१ ॥ भगवान्के बायें कंधेसे एक परम कान्तिमान् गौर तेज प्रकट हुआ; जिससे लीला, श्री, भूदेवी, विरजा तथा अन्यान्य हरिप्रियाएँ आविर्भूत हुईं ॥ २२ ॥ भगवान्की प्रियतमा जो 'श्रीराधा' हैं, उन्हींको दूसरे लोग 'लीलावती' या 'लीला'के नामसे भी जानते हैं। श्रीराधाकी दोनों भुजाओंसे 'विशाखा' और 'ललिता'—इन दो सखियोंका आविर्भाव हुआ ॥ २३ ॥ हे नरेश्वर! दूसरी-दूसरी जो सहचरी गोपियाँ हैं,

विधाय सर्वं निजलोकमित्थं श्रीराधया तत्र रराज राजन् ।
असंख्यलोकाण्डपतिः परात्मा परः परेशः परिपूर्णदेवः ॥२५॥
तत्रैकदा सुन्दररासमण्डले स्फुरत्क्वणन्नूपुरशब्दसंकुले ।
सुच्छत्रमुक्ताफलदामजावृतस्रवद्बृहद्बिन्दुविराजितांगणे ॥२६॥
श्रीमालतीनां सुवितानजालतः स्वतः स्रवत्सन्मकरन्दगन्धिते ।
मृदङ्गतालध्वनिवेणुनादिते सुकण्ठगीतादिमनोहरे परे ॥२७॥
श्रीसुन्दरीरासरसे मनोरमे मध्यस्थितं कोटिमनोजमोहनम् ।
जगाद राधापतिमूर्जया गिरा कृत्वा कटाक्षं रसदानकौशलम् ॥२८॥

राधोवाच

यदि रासे प्रसन्नोऽसि मम प्रेम्णा जगत्पते । तदाहं प्रार्थनां त्वां तु करोमि मनसि स्थिताम्॥२९॥

श्रीभगवानुवाच

इच्छां वरय वामोरु या ते मनसि वर्त्तते । न देयं यदि यद्वस्तु प्रेम्णा दास्यामि तत्प्रिये ॥३०॥

राधोवाच

वृन्दावने दिव्यनिकुंजपार्श्वे कृष्णातटे रासरसाय योग्यम् ।
रहःस्थलं त्वं कुरुतान्मनोज्ञं मनोरथोऽयं मम देवदेव ॥३१॥

श्रीनारद उवाच

तथाऽस्तु चोक्त्वा भगवान् रहोयोग्यं विचिन्तयन् ।
स्वनेत्रपंकजाभ्यां तु हृदयं संददर्श ह ॥३२॥

तदैव कृष्णहृदयाद्गोपीव्यूहस्य पश्यतः । निर्गतं सजलं तेजोऽनुरागस्येव चांकुरम् ॥३३॥
पतितं रासभूमौ तद्ववृधे पर्वताकृति । रत्नधातुमयं दिव्यं सनिर्झरदरीवृतम् ॥३४॥

कदंबवकुलाशोकलताजालमनोहरम् । मन्दारकुन्दवृन्दाढ्यं सुपक्षिगणसंकुलम् ॥३५॥
क्षणमात्रेण वैदेह लक्षयोजनविस्तृतम् । शतकोटियोजनानां लंबितं शेषवत्पुनः ॥३६॥
ऊर्ध्वं समुन्नतं जातं पंचाशत्कोटियोजनम् । करीन्द्रवत्स्थितं शश्वत्पंचाशत्कोटिविस्तृतम् ॥३७॥
कोटियोजनदीर्घांगैः शृङ्गानां शतकैः स्फुरन् । उच्चकैः स्वर्णकलशैः प्रासादमिव मैथिल ॥३८॥
गोवर्धनाख्यं तच्चाहुः शतशृंगं तथापरे । एवंभूतं तु तदपि वर्द्धितं मनसोत्सुकम् ॥३९॥

कोलाहले तदा जाते गोलोके भयविह्वले ।
वीक्ष्योत्थाय हरिः साक्षाद्धस्तेनाशु तताड तम् ॥४०॥

किं वर्द्धसे भो प्रच्छिन्नं लोकमाच्छाद्य तिष्ठसि । किं वा न चैते वसितुं तच्छान्तिमकरोद्धरिः ॥४१॥
संवीक्ष्य तं गिरिवरं प्रसन्ना भगवत्प्रिया । तस्मिन् रहःस्थले राजन् रराज हरिणा सह ॥४२॥
सोऽयं गिरिवरः साक्षाच्छ्रीकृष्णेन प्रणोदितः । सर्वतीर्थमयः श्यामो घनश्यामः सुरप्रियः ॥४३॥
भारतात्पश्चिमदिशि शाल्मलीद्वीपमध्यतः । गोवर्द्धनो जन्म लेभे पत्न्यां द्रोणाचलस्य च ॥४४॥
पुलस्त्येन समानीतो भारते व्रजमण्डले । वैदेह तस्यागमनं मया तुभ्यं पुरोदितम् ॥४५॥

यथा पुरा वर्द्धितुमुत्सुकोऽयं तथा पिधानं भविता भुवो वा ।
विचिन्त्य शापं मुनिना परेशो द्रोणात्मजायेति ददौ क्षयार्थम् ॥४६॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीगिरिराजखंडे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीगिरिराजोत्पत्तिवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

और कन्दराओंसे उसकी बड़ी शोभा थी ॥ ३४ ॥ कदम्ब, बकुल, अशोक आदि वृक्ष तथा लता-जाल उसे और भी मनोहर बना रहे थे। मन्दार और कुन्दवृन्दसे सम्पन्न उस पर्वतपर भाँति-भाँतिके पक्षी कलरव कर रहे थे ॥ ३५ ॥ हे विदेहराज ! एक ही क्षणमें वह पर्वत एक लाख योजन विस्तृत और शेषकी तरह सौ कोटि योजन लंबा हो गया ॥ ३६ ॥ उसकी ऊँचाई पचास करोड़ योजनकी हो गयी। पचास कोटि योजनमें फैला हुआ वह पर्वत सदाके लिये गजराजके समान स्थित दिखायी देने लगा ॥ ३७ ॥ हे मैथिल ! उसके कोटि योजन विशाल सैकड़ों शिखर दीप्तिमान् होने लगे। उन शिखरोंसे गोवर्धन पर्वत उसी प्रकार सुशोभित हुआ, मानो सुवर्णमय उन्नत कलशोंसे कोई ऊँचा महल शोभा पा रहा हो ॥ ३८ ॥ कोई-कोई विद्वान् उस गिरिको गोवर्धन और दूसरे लोग 'शतशृङ्ग' कहते हैं। इतना विशाल होनेपर भी वह पर्वत मनसे उत्सुक-सा होकर बढ़ने लगा ॥ ३९ ॥ इससे गोलोक भयसे विह्वल हो गया और वहाँ सब ओर कोलाहल मच गया। यह देख श्रीहरि उठे और अपने साक्षात् हाथसे शीघ्र ही उसे ताड़ना दी और बोले—'अरे ! प्रच्छन्नरूपसे बढ़ता क्यों जा रहा है ? तू सम्पूर्ण लोकोंको आच्छादित करके स्थित हो गया ? क्या ये लोक यहाँ निवास करना नहीं चाहते ?' यों कहकर श्रीहरिने उसे शान्त किया और उसका बढ़ना रोक दिया ॥ ४० ॥ ४१ ॥ उस उत्तम पर्वतको प्रकट हुआ देख भगवत्प्रिया श्रीराधा बहुत प्रसन्न हुईं। हे राजन् ! वे उसके एकान्तस्थलमें श्रीहरिके साथ सुशोभित होने लगीं ॥ ४२ ॥ इस प्रकार यह गिरिराज साक्षात् श्रीकृष्णसे प्रेरित होकर इस व्रजमण्डलमें आया है। यह सर्वतीर्थमय है। लता-कुञ्जोंसे श्याम आभा धारण करनेवाला यह श्रेष्ठ गिरि मेघकी भाँति श्याम तथा देवताओंका प्रिय है ॥ ४३ ॥ भारतसे पश्चिम दिशामें शाल्मलिद्वीपके मध्यभागमें द्रोणाचलकी पत्नीके गर्भसे गोवर्धनने जन्म लिया ॥ ४४ ॥ महर्षि पुलस्त्य उसको भारतके व्रजमण्डलमें ले आये। हे विदेहराज ! गोवर्धनके आगमनकी बात मैं तुमसे पहले निवेदन कर चुका हूँ ॥ ४५ ॥ जैसे यह पहले गोलोकमें उत्सुकतापूर्वक बढ़ने लगा था, उसी तरह यहाँ भी बढ़े तो यह सारी पृथ्वीके लिये एक ढक्कन बन जायगा—यह सोचकर मुनिने द्रोणपुत्र गोवर्धनको प्रतिदिन क्षीण होनेका शाप दे दिया ॥ ४६ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां गिरिराजखंडे 'श्रीनंदा'भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः

(गोवर्द्धन-शिलाके स्पर्शसे एक राक्षसका उद्धार)

श्रीनारद उवाच

अत्रैवोदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् । यस्य श्रवणमात्रेण महापापं प्रणश्यति ॥ १ ॥
विजयो ब्राह्मणः कश्चिद्गौतमीतीरवासकृत् । आययौ स्वमृणं नेतुं मथुरां पापनाशिनीम् ॥ २ ॥
कृत्वा कार्यं गृहं गच्छन् गोवर्द्धनतटीं गतः । वर्तुलं तत्र पापाणं चैकं जग्राह मैथिल ॥ ३ ॥
शनैः शनैर्वनोद्देशे निर्गतो व्रजमंडलात् । अग्रे ददर्श चायांतं राक्षसं घोररूपिणम् ॥ ४ ॥
हृदये च मुखं यस्य त्रयः पादा भुजाश्च पट् । हस्तत्रयं च स्थूलोष्ठो नासा हस्तसमुन्नता ॥ ५ ॥
सप्तहस्ता ललज्जिह्वा कंटकाभास्तनूरुहाः । अरुणे अक्षिणी दीर्घे दंता वक्रा भयंकराः ॥ ६ ॥
राक्षसो घुर्घुरं शब्दं कृत्वा चापि बुभुक्षितः । आययौ संमुखे राजन् ब्राह्मणस्य स्थितस्य च ॥ ७ ॥
गिरिराजोद्भवेनासौ पापाणेन जघान तम् । गिरिराजशिलास्पर्शात्त्यक्त्वाऽसौ राक्षसीं तनुम् ॥८॥
पद्मपत्रविशालाक्षः श्यामसुन्दरविग्रहः । वनमाली पीतवासा मुकुटी कुंडलान्वितः ॥ ९ ॥
वंशीधरो वेत्रहस्तः कामदेव इवापरः । भूत्वा कृतांजलिर्विप्रं प्रणनाम मुहुर्मुहुः ॥१०॥

सिद्ध उवाच

धन्यस्त्वं ब्राह्मणश्रेष्ठ परत्राणपरायणः । त्वया विमोचितोऽहं वै राक्षसत्वान्महामते ॥११॥
पापाणस्पर्शमात्रेण कल्याणं मे बभूव ह । न कोऽपि मां मोचयितुं समर्थो हि त्वया विना॥१२॥

श्रीब्राह्मण उवाच

विस्मितस्तव वाक्येऽहं न त्वां मोचयितुं क्षमः । पापाणस्पर्शनफलं न जाने वद सुव्रत ॥१३॥

सिद्ध उवाच

गिरिराजो हरे रूपं श्रीमान् गोवर्द्धनो गिरिः। तस्य दर्शनमात्रेण नरो याति कृतार्थताम् ॥१४॥
गन्धमादनयात्रायां यत्फलं लभते नरः। तस्मात्कोटिगुणं पुण्यं गिरिराजस्य दर्शने ॥१५॥
पंचवर्षसहस्राणि केदारे यत्तपःफलम्। तच्च गोवर्द्धने विप्र क्षणेन लभते नरः ॥१६॥
मलयाद्रौ स्वर्णभारदानस्यापि च यत्फलम्। तस्मात्कोटिगुणं पुण्यं गिरिराजे हि मासिकम् ॥१७॥
पर्वते मंगलप्रस्थे यो दद्याद्धेमदक्षिणाम्। स याति विष्णुसारूप्यं युक्तः पापशतैरपि ॥१८॥
तत्पदं हि नरो याति गिरिराजस्य दर्शनात्। गिरिराजसमं पुण्यमन्यत्तीर्थं न विद्यते ॥१९॥
ऋषभाद्रौ कूटकाद्रौ कोलकाद्रौ तथा नरः। सुवर्णशृङ्गयुक्तानां गवां कोटीर्ददाति यः ॥२०॥
महापुण्यं लभेत्सोऽपि विप्रान्संपूज्य यत्नतः। तस्माल्लक्षगुणं पुण्यं गिरौ गोवर्द्धने द्विज ॥२१॥
ऋष्यमूकस्य सह्यस्य तथा देवगिरेः पुनः। यात्रायां लभते पुण्यं समस्ताया भुवः फलम् ॥२२॥
गिरिराजस्य यात्रायां तस्मात्कोटिगुणं फलम्। गिरिराजसमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥२३॥
श्रीशैले दश वर्षाणि कुण्डे विद्याधरे नरः। स्नानं करोति सुकृती शतयज्ञफलं लभेत् ॥२४॥
गोवर्द्धने पुच्छकुण्डे दिनैकं स्नानकृन्नरः। कोटियज्ञफलं साक्षात्पुण्यमेति न संशयः ॥२५॥
वेंकटाद्रौ वारिधारे महेन्द्रे विन्ध्यपर्वते। यज्ञं कृत्वा ह्यश्वमेधं नरो नाकपतिर्भवेत् ॥२६॥
गोवर्द्धनेऽस्मिन्यो यज्ञं कृत्वा दत्त्वा सुदक्षिणाम्। नाके पदं संविधाय स विष्णोः पदमाव्रजेत् ॥२७॥
चित्रकूटे पयस्विन्यां श्रीरामनवमीदिने। पारियात्रे तृतीयायां वैशाखस्य द्विजोत्तम ॥२८॥

सिद्धने कहा—हे ब्रह्मन्! श्रीमान् गिरिराज गोवर्द्धन पर्वत साक्षात् श्रीहरिका रूप है। उसके दर्शनमात्रसे मनुष्य कृतार्थ हो जाता है ॥ १४ ॥ गन्धमादनकी यात्रा करनेसे मनुष्यको जिस फलकी प्राप्ति होती है, उससे कोटिगुना पुण्य गिरिराजके दर्शनसे होता है ॥ १५ ॥ हे विप्रवर! केदारतीर्थमें पाँच हजार वर्षोतक तपस्या करनेसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, वही फल गोवर्द्धन पर्वतपर तप करनेसे मनुष्यको क्षणभरमें प्राप्त हो जाता है ॥ १६ ॥ मलयाचलपर एक भार स्वर्णका दान करनेसे जिस पुण्यफलकी प्राप्ति होती है, उससे कोटि-गुना पुण्य गिरिराजपर एक माशा सुवर्णका दान करनेसे ही मिल जाता है ॥ १७ ॥ जो मङ्गलप्रस्थ पर्वतपर सोनेकी दक्षिणा देता है, वह सैकड़ों पापोंसे युक्त होनेपर भी भगवान् विष्णुका सारूप्य प्राप्त कर लेता है ॥ १८ ॥ भगवान्के उसी पदको मनुष्य गिरिराजका दर्शन करनेमात्रसे पा लेता है। गिरिराजके समान पुण्य-तीर्थ दूसरा कोई नहीं है ॥ १९ ॥ ऋषभ पर्वत, कूटक पर्वत तथा कोलक पर्वतपर सोनेसे मढ़े सींगवाली एक करोड़ गौओंका जो दान करता है ॥ २० ॥ वह भी ब्राह्मणोंका यत्नपूर्वक पूजन करके महान् पुण्यका भागी होता है। हे ब्रह्मन्! उसकी अपेक्षा भी लाखगुना पुण्य गोवर्द्धन पर्वतकी यात्रा करनेमात्रसे सुलभ होता है ॥ २१ ॥ ऋष्यमूक, सह्यगिरि तथा देवगिरिकी एवं सम्पूर्ण पृथ्वीकी यात्रा करनेपर मनुष्य जिस पुण्यफलको पाता है, गिरिराज गोवर्धनकी यात्रा करनेपर उससे भी कोटिगुना अधिक फल उसे प्राप्त हो जाता है। अतः गिरिराजके समान कोई तीर्थ न तो पहले कभी हुआ है और न भविष्यत्कालमें होगा ही ॥ २२ ॥ २३ ॥ श्रीशैलपर दस वर्षोतक रहकर वहाँके विद्याधरकुण्डमें जो प्रतिदिन स्नान करता है, वह पुण्यात्मा मनुष्य सौ यज्ञोंके अनुष्ठानका फल पा लेता है ॥ २४ ॥ परंतु गोवर्द्धन पर्वतके पुच्छकुण्डमें एक दिन स्नान करनेवाला मनुष्य कोटियज्ञोंके साक्षात् अनुष्ठानका पुण्यफल पा लेता है, इसमें संशय नहीं है ॥ २५ ॥ वेंकटाचल, वारिधार, महेन्द्र और विन्ध्याचलपर एक अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान करके मनुष्य स्वर्गलोकका अधिपति हो जाता है ॥ २६ ॥ परंतु इस गोवर्धन पर्वतपर जो यज्ञ करके उत्तम दक्षिणा देता है, वह स्वर्गलोकके मस्तकपर पैर रखकर भगवान् विष्णुके धाममें चला जाता है ॥ २७ ॥ हे द्विजोत्तम! चित्रकूट पर्वतपर श्रीरामनवमीके दिन पयस्विनी (मन्दाकिनी) में, वैशाखकी तृतीयाको पारियात्र पर्वतपर, पूर्णिमाको कुकुराचलपर, द्वादशीके दिन नीलाचलपर और सप्तमीको इन्द्रकील पर्वतपर जो स्नान, दान और तप आदि पुण्यकर्म किये जाते हैं,

कुकुराद्रौ च पूर्णायां नीलाद्रौ द्वादशीदिने । इन्द्रकीले च सप्तम्यां स्नानं दानं तपःक्रियाः ॥२९॥
तत्सर्वं कोटिगुणितं भवतीत्थं हि भारते । गोवर्द्धने तु तत्सर्वमनन्तं जायते द्विज ॥३०॥
गोदावर्यां गुरौ सिंहे मायापुर्यां तु कुंभगे । पुष्करे पुष्यनक्षत्रे कुरुक्षेत्रे रविग्रहे ॥३१॥
चन्द्रग्रहे तु काश्यां वै फाल्गुने नैमिषे तथा । एकादश्यां शूकरे च कार्तिक्यां गणमुक्तिदे ॥३२॥
जन्माष्टम्यां मधोः पुर्यां खाण्डवे द्वादशीदिने । कार्तिक्यां पूर्णिमायां तु वटेश्वरमहावटे ॥३३॥
मकरार्के प्रयागे तु बर्हिष्मत्यां हि वैधृतौ । अयोध्यासरयूतीरे श्रीरामनवमीदिने ॥३४॥
एवं शिवचतुर्दश्यां वैजनाथशुभे वने । तथा दर्शे सोमवारे गङ्गासागरसंगमे ॥३५॥
दशम्यां सेतुबन्धे च श्रीरङ्गे सप्तमीदिने । एषु दानं तपः स्नानं जपो देवद्विजार्चनम् ॥३६॥
तत्सर्वं कोटिगुणितं भवतीह द्विजोत्तम । तत्तुल्यं पुण्यमाप्नोति गिरौ गोवर्द्धने वरे ॥३७॥
गोविन्दकुण्डे विशदे यः स्नाति कृष्णमानसः । प्राप्नोति कृष्णसारूप्यं मैथिलेन्द्र न संशयः ॥३८॥
अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च । मानसीगङ्गया तुल्यं न भवंत्यत्र नो गिरौ ॥३९॥
त्वया विप्र कृतं साक्षाद्गिरिराजस्य दर्शनम् । स्पर्शनं च ततः स्नानं न त्वत्तोऽप्यधिको भुवि॥४०॥
न मन्यसे चेन्मां पश्य महापातकिनं परम् । गोवर्द्धनशिलास्पर्शात्कृष्णसारूप्यतां गतम् ॥४१॥

इति श्रीगर्गसंहितायां गिरिराजखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीगिरिराजमाहात्म्यं नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

अथ एकादशोऽध्यायः

(सिद्धके द्वारा अपने पूर्वजन्मके वृत्तान्तका वर्णन)

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वा सिद्धवाक्यं ब्राह्मणो विस्मयं गतः । पुनः पप्रच्छ तं राजन् गिरिराजप्रभाववित् ॥ १ ॥

ब्राह्मण उवाच

सिद्ध उवाच

पुरा जन्मनि वैश्योऽहं धनी वैश्यसुतो महान् । आबाल्याद्द्यूतनिरतो विटगोष्ठीविशारदः ॥ ३ ॥
वेश्यारतः कुमार्गोऽहं मदिरामदविह्वलः । मात्रा पित्रा भार्ययापि भर्त्सितोऽहं सदा द्विज ॥ ४ ॥
एकदा तु मया विप्र पितरौ गरदानतः । मारितौ च तथा भार्या खड्गेन पथि मारिता ॥ ५ ॥
गृहीत्वा तद्धनं सर्वं वेश्यया सहितः खलः । दक्षिणाशां च गतवान् दस्युकर्माऽतिनिर्दयः ॥ ६ ॥
एकदा तु मया वेश्या निःक्षिप्ता ह्यंधकूपके । दस्युना हि मया पाशैर्मारिताः शतशो नराः ॥ ७ ॥
धनलोभेन भो विप्र ब्रह्महत्याशतं कृतम् । क्षत्रहत्या वैश्यहत्याः शूद्रहत्याः सहस्रशः ॥ ८ ॥
एकदा मांसमानेतुं मृगान् हंतुं वने गतम् । सर्पोऽदशत्पदा स्पृष्टो दुष्टं मां निधनं गतम् ॥ ९ ॥
संताड्य मुद्गरैर्घोरैर्यमदूता भयंकराः । बद्ध्वा मां नरकं निन्युर्महापातकिनं खलम् ॥१०॥
मन्वन्तरं तु पतितः कुम्भीपाके महाखले । कल्पैकं तप्तसूर्मौ च महादुःखं गतः खलः ॥११॥
चतुरशीतिलक्षाणां नरकाणां पृथक् पृथक् । वर्षं वर्षं निपतितो निर्गतोऽहं यमेच्छया ॥१२॥
ततस्तु भारते वर्षे प्राप्तोऽहं कर्मवासनाम् । दशवारं सूकरोऽहं व्याघ्रोऽहं शतजन्मसु ॥१३॥
उष्ट्रोऽहं जन्मशतकं महिषः शतजन्मसु । सर्पोऽहं जन्मसाहस्रं मारितो दुष्टमानवैः ॥१४॥
एवं वर्षायुतांते तु निर्जले विपिने द्विज । राक्षसश्चेदृशो जातो विकरालो महाखलः ॥१५॥
कस्य शूद्रस्य देहं वै समारुह्य व्रजं गतः । वृन्दावनस्य निकटे यमुना निकटाच्छुभात् ॥१६॥
समुत्थिता यष्टिहस्ताः श्यामलाः कृष्णपार्षदाः । तैस्ताडितो धर्षितोऽहं व्रजभूमौ पलायितः ॥१७॥

प्रभावको जानकर उसने सिद्धसे पुनः प्रश्न किया ॥ १ ॥ ब्राह्मणने पूछा—हे महाभाग ! इस समय तो तुम साक्षात् दिव्यरूपधारी दिखायी देते हो। परंतु पूर्वजन्ममें तुम कौन थे और तुमने कौन-सा पाप किया था ? ॥ २ ॥ सिद्धने कहा—पूर्वजन्ममें मैं एक धनी वैश्य था। अत्यन्त समृद्ध वैश्य-बालक होनेके कारण मुझे बचपनसे ही जुआ खेलनेकी आदत पड़ गयी थी। धूर्तों और जुआरियोंकी गोष्ठीमें मैं सबसे चतुर समझा जाता था ॥३॥ आगे चलकर मैं एक वेश्यामें आसक्त हो गया तथा कुपथपर चलने और मदिराके मदसे उन्मत्त रहने लगा। हे ब्रह्मन्! इसके कारण मुझे अपने माता-पिता और पत्नीकी ओरसे बड़ी फटकार मिलने लगी ॥४॥ एक दिन मैंने माँ-बापको तो जहर देकर मार डाला और अपनी पत्नीको साथ लेकर कहीं जानेके बहाने निकला और रास्तेमें मैंने तलवारसे काटकर उसकी हत्या कर दी ॥५॥ इस तरह उन सबके धनको हथियाकर मैं उस वेश्याके साथ दक्षिण दिशामें चला गया। यह है मेरी दुष्टताका परिचय। दक्षिण जाकर मैं अत्यन्त निर्दयतापूर्वक लूट-पाटका काम करने लगा ॥ ६ ॥ एक दिन उस वेश्याको भी मैंने अँधेरे कुएँमें धकेल दिया। डाकू तो मैं हो ही गया था, मैंने फाँसी लगाकर सैकड़ों मनुष्योंको मौतके घाट उतार दिया ॥ ७॥ हे विप्रवर! धनके लोभसे मैंने सैकड़ों ब्रह्महत्याएँ कीं। क्षत्रिय-हत्या, वैश्य-हत्या और शूद्र-हत्याकी संख्या तो हजारोंतक पहुँच गयी होगी ॥ ८ ॥ एक दिनकी बात है कि मैं मांस लानेके निमित्त मृगोंका वध करनेके लिये वनमें गया। वहाँ एक सर्पके ऊपर मेरा पैर पड़ गया और उसने मुझे डँस लिया। फिर तो तत्काल मेरी मृत्यु हो गयी और यमराजके भयंकर दूतोंने आकर मुझ दुष्ट और महापातकीको भयानक मुद्गरोंसे पीट-पीटकर बाँधा और नरकमें पहुँचा दिया ॥ ९ ॥ १० ॥ मुझे महादुष्ट मानकर 'कुम्भीपाक'में डाला गया और वहाँ एक मन्वन्तरतक रहना पड़ा। तत्पश्चात् 'तप्तसूर्मि' नामक नरकमें मुझ दुष्टको एक कल्पतक महान् दुःख भोगना पड़ा ॥ ११ ॥ इस तरह चौरासी लाख नरकोंमेंसे प्रत्येकमें अलग-अलग यमराजकी इच्छासे मैं एक-एक वर्षतक पड़ता और निकलता रहा ॥ १२ ॥ तदनन्तर भारतवर्षमें कर्मवासनाके अनुसार मेरा दस बार तो सूअरकी योनिमें जन्म हुआ और सौ बार व्याघ्रकी योनिमें ॥ १३ ॥ फिर सौ जन्मोंतक ऊँट और उतने ही जन्मोंतक भैंसा हुआ। इसके बाद एक सहस्र जन्मतक मुझे सर्पकी योनिमें रहना पड़ा। फिर कुछ दुष्ट मनुष्योंने मिलकर मुझे मार डाला ॥ १४ ॥ हे विप्रवर ! इस तरह दस हजार वर्ष बीतनेपर जलशून्य विपिनमें मैं ऐसा विकराल और महाखल राक्षस हुआ, जैसा कि तुमने अभी-अभी देखा है ॥ १५ ॥ एक दिन

* श्रीकृष्णः शरणं मम *

आचार्य-श्रीगर्गमहामुनिविरचिता—

श्रीगर्गसंहिता

'प्रियंवदा'ऽभिधया भाषाटीकयाऽऽटीकित

(माधुर्यखण्डः ४)

अथ प्रथमोऽध्यायः

अतसीकुसुमोपमेयकांतिर्यमुनाकूलकदम्बमध्यवर्ती ।
नवगोपवधूविलासशाली वनमाली वितनोतु मंगलानि ॥ १ ॥
परिकरीकृतपीतपटं हरिं शिखिकिरीटनतीकृतकंधरम् ।
लकुटवेणुकरं चलकुण्डलं पटुतरं नटवेषधरं भजे ॥ २ ॥

बहुलाश्व उवाच

श्रुतिरूपादयो गोप्यो भूतपूर्वा वरान्मुने । कथं श्रीकृष्णचन्द्रेण जाताः पूर्णमनोरथाः ॥ ३ ॥
गोपालकृष्णचरितं पवित्रं परमाद्भुतम् । एतद्वद महाबुद्धे त्वं परावरवित्तमः ॥ ४ ॥

श्रीनारद उवाच

श्रुतिरूपाश्च या गोप्यो गोपानां सुकुले व्रजे । लेभिरे जन्म वैदेह शेषशायिवराच्छ्रुतात् ॥ ५ ॥
कमनीयं नन्दसूनुं वीक्ष्य वृन्दावने च ताः । वृन्दावनेश्वरीं वृन्दां भेजिरे तद्वरेच्छया ॥ ६ ॥
वृन्दादत्ताद्वरादाशु प्रसन्नो भगवान्हरिः । नित्यं तासां गृहे याति रासार्थं भक्तवत्सलः ॥ ७ ॥

'जिनकी अङ्गकान्तिको अलसीके फूलकी उपमा दी जाती है, जो यमुनाकूलवर्ती कदम्बवृक्षके मूलभागमें विद्यमान हैं तथा नूतन गोपाङ्गनाओंके साथ लीला-विलास करते हुए अत्यन्त शोभा पा रहे हैं, वे वनमाली श्रीकृष्ण मङ्गलका विस्तार करें' ॥ १ ॥ जिन्होंने पीताम्बरकी फेंट बाँध रक्खी है, जिनके मस्तकपर मोरपंखका मुकुट सुशोभित है और गर्दन एक ओर झुकी हुई है, जो लकुटी और वंशी हाथमें लिये हुए हैं और जिनके कानोंमें चञ्चल कुण्डल झलमला रहे हैं, उन परम पटु, नटवेषधारी श्रीकृष्णका मैं भजन (ध्यान) करता हूँ ॥ २ ॥ राजा बहुलाश्वने पूछा—हे मुने ! श्रुतिरूपा आदि गोपियोंने, जो पूर्वप्रदत्त वरके अनुसार पहले ही व्रजमें प्रकट हो चुकी थीं, किस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रका साहचर्य पाकर अपना मनोरथ पूर्ण किया ? ॥ ३ ॥ हे महाबुद्धे ! गोपाल श्रीकृष्णचन्द्रका चरित्र परम अद्भुत है, इसे कहिये। क्योंकि आप परावरवेत्ताओंमें सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ४ ॥ श्रीनारदजीने कहा—हे विदेहराज ! श्रुतिरूपा जो गोपियाँ थीं, वे शेषशायी भगवान् विष्णुके पूर्वकथित वरसे व्रजवासी गोपोंके उत्तम कुलमें उत्पन्न हुईं ॥ ५ ॥ उन सबने वृन्दावनमें परम कमनीय नन्दनन्दनका दर्शन करके उन्हें वररूपमें पानेकी इच्छासे वृन्दावनेश्वरी वृन्दादेवीकी समाराधना की ॥ ६ ॥ वृन्दाके दिये हुए वरसे भक्तवत्सल भगवान् श्रीहरि उनके ऊपर शीघ्र प्रसन्न हो गये

एकदा तु निशीथिन्या व्यतीते प्रहरद्वये । रासार्थं भगवान्कृष्णः प्राप्तवांस्तद्गृहान्नृप ॥८॥
तदा उत्कंठिता गोप्यः कृत्वा तत्पूजनं परम् । प्रपच्छुः परया भक्त्या गिरा मधुरया प्रभुम् ॥९॥

गोप्य ऊचुः

कथं न चागतः शीघ्रं नो गृहान्व्रजिनार्दन । उत्कंठितानां गोपीनां त्वयि चन्द्रे चकोरवत् ॥१०॥

श्रीभगवानुवाच

यो यस्य चित्ते वसति न स दूरे कदाचन । खे सूर्यं कमलं भूमौ दृष्ट्वेदं स्फुटति प्रियाः ॥११॥
भाण्डीरे मे गुरुः साक्षाद्दुर्वासा भगवान्मुनिः । आगतोऽद्य प्रियास्तस्य सेवार्थं गतवानहम् ॥१२॥
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः । गुरुः साक्षात्परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥१३॥
अज्ञानतिमिरांधस्य ज्ञानांजनशलाकया । चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥१४॥
स्वगुरुं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित् । न मर्त्यबुद्ध्या सेवेत सर्वदेवमयो गुरुः ॥१५॥
तस्मात्तत्पूजनं कृत्वा नत्वा तत्पादपंकजम् । आगतोऽहं विलंबेन भवतीनां गृहान् प्रियाः ॥१६॥

श्रीनारद उवाच

श्रुत्वा तत्परमं वाक्यं गोप्यः सर्वास्तु विस्मिताः । कृतांजलिपुटा ऊचुः श्रीकृष्णं नम्रकंधराः ॥१७॥

गोप्य ऊचुः

परिपूर्णतमस्यापि दुर्वासास्ते गुरुः स्मृतः । अहो तद्दर्शनं कर्तुं मनो नश्चोद्यतं प्रभो ॥१८॥
अद्य देव निशीथिन्या व्यतीते प्रहरद्वये । कथं तद्दर्शनं भूयादस्माकं परमेश्वर ॥१९॥
तथा मध्ये दीर्घनदी यमुना प्रतिबन्धिका । कथं तत्तरणं नावमृते देव भविष्यति ॥२०॥

यदि कृष्णो बालयतिः सर्वदोषविवर्जितः । तर्हि नो देहि मार्गं वै कालिन्दि सरितां वरे ॥२२॥
इत्युक्ते वचने कृष्णा मार्गं वो दास्यति स्वतः । सुखेन तेन व्रजत यूयं सर्वा व्रजांगनाः ॥२३॥

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वाथ तद्वाक्यं पात्रैर्दीर्घैर्व्रजांगनाः । षट्पंचाशत्तमान्भोगान्नीत्वा सर्वाः पृथक् पृथक् ॥
यमुनामेत्य हर्युक्तं जगुरानतकंधराः । सद्यः कृष्णा ददौ मार्गं गोपीभ्यो मैथिलेश्वर ॥२५॥
तेन गोप्यो गताः सर्वा भाण्डीरं चातिविस्मिताः। ततः प्रदक्षिणीकृत्य मुनिं दुर्वाससं च ताः ॥२६॥
नत्वा तद्दर्शनं चक्रुः पुरो धृत्वाऽशनं बहु । मे पूर्वं चापि मे पूर्वमन्नं भोज्यं त्वया मुने ॥२७॥
एवं विवदमानानां गोपीनां भक्तिलक्षणम् । विज्ञाय मुनिशार्दूलः प्रोवाच विमलं वचः ॥२८॥

मुनिरुवाच

गोप्यः परमहंसोऽहं कृतकृत्यो हि निष्क्रियः । तस्मान्मुखे मे दातव्यं स्वं स्वं चाप्यशनं करैः ॥२९॥

श्रीनारद उवाच

एवं विवृण्वति तेन मुखे गोप्योऽतिहर्षिताः । षट्पंचाशत्तमान्भोगान्स्वान्स्वान्सर्वाः समाक्षिपन् ॥
क्षिपंतीनां च गोपीनां पश्यंतीनां मुनीश्वरः । जघास कोटिशो भारान् भोगान् सर्वान् क्षुधातुरः ३१
विस्मितानां च गोपीनां पश्यंतीनां परस्परम् । इत्थं शून्यानि पात्राणि बभूवुर्नृपसत्तम ॥३२॥
अथ गोप्यो मुनिं शांतं नत्वा तं भक्तवत्सलम् । विस्मिताः प्रणताः प्राहुः सर्वाः पूर्णमनोरथाः ॥३३॥

गोप्य ऊचुः

मुने आगमनात्पूर्वं कृष्णोक्तवचसा नदीम् । तीर्त्वाऽऽगतास्त्वत्समीपं दर्शनार्थं शुभेच्छया ॥३४॥
इतः कथं गमिष्यामः सन्देहोऽयं महानभूत् । तद्विधेहि नमस्तुभ्यं येन पंथा लघुर्भवेत् ॥३५॥

लोगोंको अवश्य ही वहाँ जाना है तो यमुनाजीके पास पहुँचकर मार्ग प्राप्त करनेके लिये इस प्रकार कहना— ॥ २१ ॥ 'यदि श्रीकृष्ण बालब्रह्मचारी और सब प्रकारके दोषोंसे रहित हों तो सरिताओंमें हे श्रेष्ठ यमुनाजी ! हमारे लिये मार्ग दे दो ।' ॥ २२ ॥ यह बात कहनेपर यमुना तुम्हें स्वतः मार्ग दे देंगी । उस मार्गसे तुम सभी व्रजाङ्गनाएँ सुखपूर्वक चली जाना ॥ २३ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! उनका यह वचन सुनकर सभी गोपियाँ अलग-अलग विशाल पात्रोंमें छप्पन प्रकारके भोग लेकर यमुनाजीके तटपर गयीं और सिर झुकाकर उन्होंने श्रीकृष्णकी कही हुई बात दुहरा दी । हे मैथिलेश्वर ! फिर तो तत्काल यमुनाजीने उन गोपियोंके लिये मार्ग दे दिया ॥ २४ ॥ २५ ॥ उस मार्गसे सभी गोपियाँ अत्यन्त विस्मित होकर भाण्डीर-वटके पास जा पहुँचीं । वहाँ उन्होंने दुर्वासा मुनिकी परिक्रमा की और उनके आगे बहुत-सी भोजन-सामग्री रखकर उनका दर्शन किया । फिर सब-की-सब कहने लगीं—'हे मुने ! पहले मेरा अन्न ग्रहण कीजिये, पहले मेरा अन्न भोजन कीजिये' ॥ २६ ॥ २७ ॥ इस तरह परस्पर विवाद करती हुई गोपियोंका भक्तिसूचक भाव जानकर मुनिश्रेष्ठ दुर्वासाने यह विमल वचन कहा ॥ २८ ॥ मुनि बोले—हे गोपियो ! मैं कृतकृत्य परमहंस और निष्क्रिय हूँ । इसलिये तुमलोग अपना-अपना भोजन अपने ही हाथोंसे मेरे मुँहमें डाल दो ॥ २९ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! यों कहकर जब उन्होंने अपना मुँह फैलाया, तब सभी गोपियोंने अत्यन्त हर्षके साथ अपने-अपने छप्पन भोगोंको उनके मुँहमें एक साथ ही डालना आरम्भ किया ॥ ३० ॥ अन्न डालती हुई उन गोपियोंके देखते-देखते मुनीश्वर दुर्वासा क्षुधासे पीड़ितकी भाँति उन समस्त भोगोंको, जो करोड़ों भारसे कम न थे, चट कर गये ॥ ३१ ॥ गोपियाँ आश्चर्यचकित हो एक-दूसरीकी ओर देखने लगीं । हे नृपश्रेष्ठ ! इस तरह उनके सारे बर्तन खाली हो गये ॥ ३२ ॥ तत्पश्चात् उन परम शान्त और भक्तवत्सल मुनिको सभी विस्मित गोपियोंने पूर्णमनोरथ होकर प्रणाम किया और इस प्रकार कहा ॥३३॥ गोपियोंने कहा—हे मुने ! यहाँ आनेसे पूर्व श्रीकृष्णकी कही हुई बात दुहराकर मार्ग मिल जानेसे यमुनाजीको पार करके हमलोग आपके समीप दर्शनकी शुभ इच्छा लेकर आ गयी थीं ॥ ३४ ॥ अब इधरसे हम कैसे जायँगी, यह महान् संदेह हमारे मनमें हो गया है ।

मुनिरुवाच

सुखेनातः प्रगन्तव्यं भवतीभिर्यदा स्वतः । यमुनामेत्य चैतद्वै वक्तव्यं मार्गहेतवे ॥३६॥
यदि दूर्वारसं पीत्वा दुर्वासाः केवलं क्षितौ । व्रती निरन्नो निर्वारि वर्तते पृथिवीतले ॥३७॥
तर्हि नो देहि मार्गं वै कालिंदि सरितां वरे । इत्युक्ते वचने कृष्णा मार्गं वो दास्यति स्वतः ॥३८॥

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वा वचो गोप्यो नत्वा तं मुनिपुङ्गवम् । यमुनामेत्य मुन्युक्तं चोक्त्वा तीर्त्वा नदीं नृप ॥३९॥
श्रीकृष्णपार्श्वमाजग्मुर्विस्मिता मंगलायनाः ॥४०॥
अथ रासे गोपवध्वः सन्देहं मनसोत्थितम् । पप्रच्छुः श्रीहरिं वीक्ष्य रहः पूर्णमनोरथाः ॥४१॥

गोप्य ऊचुः

दुर्वाससो दर्शनं भोः कृतमस्माभिरग्रतः । युवयोर्वाक्यतश्चात्र सन्देहोऽयं प्रजायते ॥४२॥
यथा गुरुस्तथा शिष्यो मृषावादी न संशयः । जारस्त्वमसि गोपीनां रसिको बाल्यतः प्रभो ॥४३॥
कथं बालयतिस्त्वं वै वद तद्वृजिनार्दन । कथं दूर्वारसं पीत्वा दुर्वासा बहुभुङ्मुनिः ॥
नो जात एष सन्देहः पश्यन्तीनां व्रजेश्वर ॥४४॥

श्रीभगवानुवाच

निर्ममो निरहंकारः समानः सर्वगः परः । सदा वैषम्यरहितो निर्गुणोऽहं न संशयः ॥४५॥
तथापि भक्तान् भजतो भजेऽहं वै यथा तथा । तथैव साधुर्ज्ञानी वै वैषम्यरहितः सदा ॥४६॥
न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनाम् । जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान् युक्तः समाचरन् ॥४७॥
यस्य सर्वे समारंभाः कामसंकल्पवर्जिताः । ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पंडितं बुधाः ॥४८॥

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः । शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥४९॥
न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते । तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ॥५०॥
ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः । लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवांभसा ॥५१॥
तस्मान्मुनिस्तु दुर्वासा बहुभुक् त्वद्धिते रतः । न तस्य भोजनेच्छा स्याद्दूर्वारसमिताशनः ॥५२॥

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वा वचो गोप्यः सर्वास्ताश्छिन्नसंशयाः । श्रुतिरूपा ज्ञानमय्यो बभूवुर्मैथिलेश्वर ॥५३॥

इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रुतिरूपोपाख्यानं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

(ऋषिरूपा गोपियोंका उपाख्यान)

श्रीनारद उवाच

गोपीनामृषिरूपाणामाख्यानं शृणु मैथिल । सर्वपापहरं पुण्यं कृष्णभक्तिविवर्धनम् ॥ १ ॥
वंगेषु मंगलो नाम गोप आसीन्महामनाः । लक्ष्मीवाञ्छ्रुतसम्पन्नो नवलक्षगवां पतिः ॥ २ ॥
भार्याः पंच सहस्राणि बभूवुस्तस्य मैथिल । कदाचिद्दैवयोगेन धनं सर्वं क्षयं गतम् ॥ ३ ॥
चौरैर्नीतास्तस्य गावः काश्चिद्राज्ञा हृता बलात् । एवं दैन्ये च संप्राप्ते दुःखितो मंगलोऽभवत् ॥ ४ ॥
तदा श्रीरामस्य वराद्दण्डकारण्यवासिनः । ऋषयः स्त्रीत्वमापन्ना बभूवुस्तस्य कन्यकाः ॥ ५ ॥
दृष्ट्वा कन्यासमूहं स दुःखी गोपोऽथ मंगलः । उवाच दैन्यदुःखाढ्य आधिव्याधिसमाकुलः ॥ ६ ॥

उनके सारे कर्म ज्ञानरूपी अग्निमें दग्ध हो जाते हैं (अर्थात् उनके लिये वे कर्म बन्धनकारक नहीं होते)। ऐसे पुरुषको ज्ञानीजन पण्डित (तत्त्वज्ञ) कहते हैं ॥ ४८ ॥ जिसके मनमें कोई कामना नहीं है, जिसने चित्त और बुद्धिको अपने वशमें कर रक्खा है तथा जो समस्त संग्रह-परिग्रह छोड़ चुका है, वह केवल शरीर-निर्वाह-सम्बन्धी कर्म करता हुआ किल्बिष (कर्मजनित शुभाशुभ फल) को नहीं प्राप्त होता ॥ ४९ ॥ इस संसारमें ज्ञानके समान पवित्र दूसरी कोई वस्तु नहीं है। योगसिद्ध पुरुष समयानुसार स्वयं ही अपने-आपमें उस ज्ञानको प्राप्त कर लेता है ॥ ५० ॥ जो समस्त कर्मोंको ब्रह्मार्पण करके आसक्ति छोड़कर कर्म करता है, वह पापसे उसी प्रकार लिप्त नहीं होता, जैसे कमलका पत्र जलसे लिप्त नहीं होता ॥ ५१ ॥ दुर्वासा मुनि तुम सबके हित-साधनमें तत्पर होकर बहुत खानेवाले हो गये। स्वतः उन्हें कभी भोजनकी इच्छा नहीं होती। वे केवल परिमित दूर्वारसका ही आहार करते हैं ॥ ५२ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे मैथिलेश्वर ! श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर समस्त गोपियोंका संशय नष्ट हो गया और वे श्रुतिरूपा गोपाङ्गनाएँ ज्ञानमयी हो गयीं ॥ ५३ ॥
इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे मैथिल ! अब तुम ऋषिरूपा गोपियोंकी कथा सुनो। वह सब पापोंको हर लेनेवाली, परम पावन और श्रीकृष्णके प्रति भक्ति-भावकी वृद्धि करनेवाली है ॥ १ ॥ वङ्गदेशमें मङ्गल नामसे प्रसिद्ध एक महामनस्वी गोप था, जो लक्ष्मीवान्, शास्त्रज्ञानसे सम्पन्न तथा नौ लाख गौओंका स्वामी था ॥ २ ॥ हे मैथिलेश्वर ! उसकी पाँच हजार पत्नियाँ थीं। किसी समय दैवयोगसे उसका सारा धन नष्ट हो गया ॥ ३ ॥ चोरोंने उसकी गौओंका अपहरण कर लिया। कुछ गौओंको उस देशके राजाने बलपूर्वक अपने अधिकारमें कर लिया। इस प्रकार दीनता प्राप्त होनेपर मङ्गल-गोप बहुत दुखी हो गया ॥ ४ ॥ उन्हीं दिनों श्रीरामचन्द्रजीके वरदानसे स्त्रीभावको प्राप्त दण्डकारण्यके निवासी ऋषि उसकी कन्याएँ हो गये ॥ ५ ॥ उस कन्या-समूहको देखकर दुखी गोप मङ्गल और भी दुःखमें डूब गया और आधि-व्याधिसे व्याकुल रहने

मंगल उवाच

किं करोमि क्व गच्छामि को मे दुःखं व्यपोहति ।
श्रीर्न भूतिर्नाभिजनो न बलं मेऽस्ति साम्प्रतम् ॥ ७ ॥
धनं विना कथं चासां विवाहो हा भविष्यति । भोजने यत्र संदेहो धनाशा तत्र कीदृशी ॥८॥
सति दैन्ये कन्यकाः स्युः काकतालीयवद्गृहे । तस्मात्कस्यापि राज्ञस्तु धनिनो बलिनस्त्वहम्॥ ९॥
दास्याम्येताः कन्यकाश्च कन्यानां सौख्यहेतवे । कदर्थीकृत्य ताः कन्या एवं बुद्ध्या स्थितोऽभवत्॥
तदैव माथुराद्देशाद्गोपश्चैकः समागतः ॥१०॥

श्रीनारद उवाच

तीर्थयायी जयो नाम वृद्धो बुद्धिमतां वरः । तन्मुखान्नन्दराजस्य श्रुतं वैभवमद्भुतम् ॥११॥
नन्दराजस्य बलये मंगलो दैन्यपीडितः । विचिन्त्य प्रेषयामास कन्यकाश्चारुलोचनाः ॥१२॥
ता नन्दराजस्य गृहे कन्यका रत्नभूषिताः । गवां गोमयहारिण्यो बभूवुर्गोव्रजेषु च ॥१३॥
श्रीकृष्णं सुन्दरं दृष्ट्वा कन्या जातिस्मराश्च ताः ।
कालिन्दीसेवनं चक्रुर्नित्यं श्रीकृष्णहेतवे ॥१४॥
अथैकदा श्यामलांगी कालिन्दी दीर्घलोचना । ताभ्यः स्वदर्शनं दत्त्वा वरं दातुं समुद्यता ॥१५॥
ता वव्रिरे व्रजेशस्य पुत्रो भूयात्पतिश्च नः । तथाऽस्तु चोक्त्वा कालिन्दी तत्रैवांतरधीयत ॥१६॥
ताः प्राप्ता वृन्दकारण्ये कार्तिक्यां रासमण्डले । ताभिः सार्द्धं हरी रेमे सुरीभिः सुरराडिव ॥१७॥

इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे ऋषिरूपोपाख्यानं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

(मैथिलीरूपा गोपियोंका आख्यान तथा चीरहरणलीला और वरदानप्राप्ति)

श्रीनारद उवाच

मैथिलीनां गोपिकानामाख्यानं शृणु मैथिल । दशाश्वमेधतीर्थस्य फलदं भक्तिवर्धनम् ॥ १ ॥
श्रीरामस्य वराज्जाता नवनन्दगृहेषु याः । कमनीयं नन्दसूनुं दृष्ट्वा ता मोहमास्थिताः ॥ २ ॥
मार्गशीर्षे शुभे मासि चक्रुः कात्यायनीव्रतम् । उपचारैः षोडशभिः कृत्वा देवीं महीमयीम् ॥ ३ ॥
अरुणोदयवेलायां स्नाताः श्रीयमुनाजले । नित्यं समेता आजग्मुर्गायन्त्यो भगवद्गुणान् ॥ ४ ॥
एकदा ताः स्ववस्त्राणि तीरे न्यस्य व्रजांगनाः । विजहुर्यमुनातोये कराभ्यां सिंचतीमिथः ॥ ५ ॥
तासां वासांसि संनीय भगवान्प्रातरागतः । त्वरं कदम्बमारुह्य चौरवन्मौनमास्थितः ॥ ६ ॥
ता न वीक्ष्य स्ववासांसि विस्मिता गोपकन्यकाः । नीपस्थितं विलोक्याथ सलज्जा जहसुर्नृप ॥ ७ ॥
प्रतीच्छंतु स्ववासांसि सर्वा आगत्य चात्र वै । अन्यथा न हि दास्यामि वृक्षात्कृष्ण उवाच ह ॥ ८ ॥
राजंत्यस्ताः शीतजले हसंत्यः प्राहुरानताः ॥ ९ ॥

गोप्य ऊचुः

हे नंदनंदन मनोहर गोपरत्न गोपालवंशनवहंस महार्तिहारिन् ।
श्रीश्यामसुन्दर तवोदितमद्य वाक्यं कुर्मःकथं विवसनाः किल तेऽपि दास्यः॥१०॥
गोपांगनावसनमुष्णवनीतहारी जातो व्रजेऽतिरसिकः किल निर्भयोऽसि ।
वासांसि देहि न हि चेन्मथुराधिपाय वक्ष्यामहेऽनयमतीव कृतं त्वयाऽत्र ॥११॥

श्रीभगवानुवाच

दास्यो ममैव यदि सुन्दरमन्दहासा इच्छंतु वैत्य किल चात्र कदम्बमूले ।
नोचेत्समस्तवसनानि नयामि गेहांस्तस्मात्करिष्यथ ममैव वचोऽविलंबात्॥१२॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! हे मिथिलेश्वर ! अब मिथिलादेशमें उत्पन्न गोपियोंकी कथा सुनो । यह दशाश्वमेधतीर्थपर स्नानका फल देनेवाला और भक्ति-भावको बढ़ानेवाला है ॥ १ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके वरसे जो नौ नन्दोंके घरोंमें उत्पन्न हुई थीं, वे मैथिलीरूपा गोपकन्याएँ परम कमनीय नन्दनन्दनका दर्शन करके उनपर मोहित हो गयीं ॥ २ ॥ उन्होंने मार्गशीर्षके शुभ मासमें कात्यायनीका व्रत किया और उनकी मिट्टीकी प्रतिमा बनाकर वे षोडशोपचारसे उसकी पूजा करने लगीं ॥ ३ ॥ अरुणोदयकी वेलामें वे प्रतिदिन एक साथ भगवान्‌के गुण गाती हुई आतीं और श्रीयमुनाजीके जलमें स्नान करती थीं ॥ ४ ॥ एक दिन वे व्रजाङ्गनाएँ अपने वस्त्र यमुनाजीके किनारे रखकर उनके जलमें प्रविष्ट हुईं और दोनों हाथोंसे जल उलीचकर एक दूसरीको भिगोती हुई जल-विहार करने लगीं ॥ ५ ॥ प्रातःकाल भगवान् श्यामसुन्दर वहाँ आये और तुरंत उन सबके वस्त्र लेकर, कदम्बपर आरूढ़ हो चोरकी तरह चुप-चाप बैठ गये ॥ ६ ॥ हे राजन् ! अपने वस्त्रोंको न देखकर वे गोपकन्याएँ बड़े विस्मयमें पड़ीं तथा कदम्बपर बैठे हुए श्यामसुन्दरको देखकर लजा गयीं और हँसने लगीं ॥ ७ ॥ तब वृक्षपर बैठे श्रीकृष्ण उन गोपियोंसे कहने लगे—'तुम सब लोग यहाँ आकर अपने-अपने कपड़े ले जाओ, अन्यथा मैं नहीं दूँगा ।' ॥ ८ ॥ हे राजन् ! तब वे गोपकन्याएँ शीतल जलके भीतर खड़ी-खड़ी हँसती हुई लज्जासे मुँह नीचे करके बोलीं ॥ ९ ॥ गोपियोंने कहा—हे मनोहर नन्दनन्दन ! हे गोपरत्न ! हे गोपाल-वंशके नूतन हंस ! हे महान् पीड़ाको हर लेनेवाले श्रीश्यामसुन्दर ! तुम जो आज्ञा दोगे, हम वही करेंगी । तुम्हारी दासी होकर भी हम यहाँ वस्त्रहीन होकर कैसे रहें ? ॥ १० ॥ आप गोपियोंके वस्त्र लूटनेवाले और माखनचोर हैं । व्रजमें जन्म लेकर भी बड़े रसिक हैं । भय तो आपको छू भी नहीं सका है । हमारा वस्त्र हमें लौटा दीजिये; नहीं तो हम मथुरानरेशके दरबारमें आपके द्वारा इस अवसरपर की

दधिविक्रयार्थं यान्त्यस्ताः कृष्ण कृष्णेति चाब्रुवन् ।
कृष्णे हि प्रेमसंसक्ता भ्रमंत्यः कुंजमंडले ॥ ६ ॥
खे वायौ चाग्निजलयोर्मह्यां ज्योतिर्दिशासु च । द्रुमेषु जनवृन्देषु तासां कृष्णो हि लक्ष्यते ॥ ७ ॥
प्रेमलक्षणसंयुक्ताः श्रीकृष्णहृतमानसाः ।
अष्टभिः सात्त्विकैर्भावैः सम्पन्नास्ताश्च योषितः ॥ ८ ॥
प्रेम्णा परमहंसानां पदवीं समुपागताः । कृष्णानन्दाः प्रधावन्त्यो व्रजवीथीषु ता नृप ॥ ९ ॥
जडा जडं न जानंत्यो जडोन्मत्तपिशाचवत् । अब्रुवन्त्यो ब्रुवन्त्यो वा गतलज्जा गतव्यथाः ॥१०॥
एवं कृतार्थतां प्राप्तास्तन्मया याश्च गोपिकाः । बलादाकृष्य कृष्णस्य चुचुंबुर्मुखपंकजम् ॥११॥
तासां तपः किं कथयामि राजन्पूर्णे परे ब्रह्मणि वासुदेवे ।
याश्चक्रिरे प्रेम हृदिंद्रियाद्यैर्विसृज्य लोकव्यवहारमार्गम् ॥१२॥
या रासरंगे विनिधाय बाहुं कृष्णांसयोः प्रेमविभिन्नचित्ताः ।
चक्रुर्वशे कृष्णमलं तपस्तद्वक्तुं न शक्तो वदनैः फणीन्द्रः ॥१३॥
योगेन सांख्येन शुभेन कर्मणा न्यायादिवैशेषिकतत्त्ववित्तमैः ।
यत्प्राप्यते तच्च पदं विदेहराट् संप्राप्यते केवलभक्तिभावतः ॥१४॥
भक्त्यैव वश्या हरिरादिदेवः सदा प्रमाणं किल चात्र गोप्यः ।
सांख्यं च योगं न कृतं कदापि प्रेम्णैव यस्य प्रकृतिं गताः स्युः ॥१५॥

इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखंडे नारदबहुलाश्वसंवादे कौशलोपाख्यानं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

छीनकर और आँचल खींचकर उनके साथ सदा हास-परिहास किया करते थे ॥ ५ ॥ वे गोपबालाएँ जब दही बेचनेके लिये निकलतीं तो 'दही लो' 'दही लो'—यह कहना भूलकर 'कृष्ण लो' 'कृष्ण लो' कहने लगती थीं। श्रीकृष्णके प्रति प्रेमासक्त होकर वे कुञ्जमण्डलमें घूमा करती थीं ॥ ६ ॥ आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, नक्षत्रमण्डल, सम्पूर्ण दिशा, वृक्ष तथा जनसमुदायमें भी उन्हें केवल कृष्ण ही दिखायी देते थे ॥ ७ ॥ प्रेमके समस्त लक्षण उनमें प्रकट थे। श्रीकृष्णने उनके मन हर लिये थे। वे सारी व्रजाङ्गनाएँ आठों सात्त्विक भावोंसे सम्पन्न थीं ॥ ८ ॥ प्रेमने उन सबको परमहंसों (ब्रह्मनिष्ठ महात्माओं) की अवस्थाको पहुँचा दिया था। हे नरेश्वर! वे कान्तिमती गोपाङ्गनाएँ श्रीकृष्णके आनन्दमें ही निमग्न होकर व्रजकी गलियोंमें विचरा करती थीं ॥ ९ ॥ उनमें जड़-चेतनका भान नहीं रह गया था। वे जड़, उन्मत्त और पिशाचोंकी भाँति कभी मौन रहतीं और कभी बहुत बोलने लगती थीं। वे लाज और चिन्ताको तिलाञ्जलि दे चुकी थीं ॥ १० ॥ इस प्रकार कृतार्थताको प्राप्त होकर जो श्रीकृष्णमें तन्मय हो रही थीं, वे गोपाङ्गनाएँ बलपूर्वक खींचकर श्रीकृष्णके मुखारविन्दको चूम लेती थीं ॥ ११ ॥ हे राजन्! उनके तपका मैं क्या वर्णन करूँ? जो सारे लोकव्यहार एवं मर्यादा-मार्गको तिलाञ्जलि देकर हृदय तथा इन्द्रिय आदिके द्वारा पूर्ण परब्रह्म वासुदेवसे अविचल प्रेम करती थीं; जो रास-क्रीड़ामें श्रीकृष्णके कंधोंपर अपनी बाँह रखकर, प्रेमसे विगलित चित्त हो श्रीकृष्णको पूर्णतया अपने वशमें कर चुकी थीं; उनकी तपस्याका अपने सहस्रमुखोंसे वर्णन करनेमें नागराज शेष भी समर्थ नहीं हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥ हे विदेहराज! न्याय-वैशेषिक आदि दर्शनोंके तत्त्वज्ञोंमें श्रेष्ठतम महात्मा योगसांख्य और शुभ कर्मद्वारा जिस पदको प्राप्त करते हैं, वही पद केवल भक्ति-भावसे उपलब्ध हो जाता है ॥ १४ ॥ आदिदेव श्रीहरि केवल भक्तिसे ही वशमें होते हैं, निश्चय ही इस विषयमें सदा गोपियाँ ही प्रमाण हैं। उन्होंने कभी सांख्य और योगका अनुष्ठान नहीं किया, तथापि केवल प्रेमसे ही वे भगवत्स्वरूपताको प्राप्त हो गयीं ॥ १५ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखंडे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

(अयोध्यापुरवासिनी स्त्रियोंका राजा विमलके यहाँ पुत्रीरूपसे उत्पन्न होना)

श्रीनारद उवाच

एवमुक्त्वा गते साक्षाद्याज्ञवल्क्ये महामुनौ । अतीव हर्षमापन्नो विमलश्चम्पकापतिः ॥ १ ॥
अयोध्यापुरवासिन्यः श्रीरामस्य वराच्च याः । बभूवुस्तस्य भार्यासु ताः सर्वाः कन्यकाः शुभाः॥ २ ॥
विवाहयोग्यास्ता दृष्ट्वा चिन्तयंश्चम्पकापतिः । याज्ञवल्क्यवचः स्मृत्वा दूतमाह नृपेश्वरः ॥ ३ ॥

विमल उवाच

मथुरां गच्छ दूत त्वं गत्वा शौरिगृहं शुभम् । दर्शनीयस्त्वया पुत्रो वसुदेवस्य सुन्दरः ॥ ४ ॥
श्रीवत्सांको घनश्यामो वनमाली चतुर्भुजः । यदि स्यात्तर्हि दास्यामि तस्मै सर्वाः सुकन्यकाः॥ ५ ॥

श्रीनारद उवाच

इति वाक्यं ततः श्रुत्वा दूतोऽसौ मथुरां गतः । पप्रच्छ सर्वाभिप्रायं माथुरांश्च महाजनान् ॥ ६ ॥
तद्वाक्यं माथुराः श्रुत्वा कंसभीताः सुबुद्धयः । तं दूतं रहसि प्राहुः कर्णान्ते मंदवाग्यथा ॥ ७ ॥

माथुरा ऊचुः

वसुदेवस्य ये पुत्राः कंसेन बहवो हताः । एकाऽवशिष्टावरजा कन्या साऽपि दिवं गता ॥ ८ ॥
वसुदेवोऽस्ति चात्रैव ह्यपुत्रो दीनमानसः । इदं न कथनीयं हि त्वया कंसभयं पुरे ॥ ९ ॥
शौरिसंतानवार्तां यो वक्ति चेन्मथुरापुरे । तं दंडयति कंसोऽसौ शौर्यदृष्टमशिशो रिपुः ॥१०॥

श्रीनारद उवाच

जनवाक्यं ततः श्रुत्वा दूतो वै चम्पकापुरीम् । गत्वाऽथ कथयामास राज्ञे कारणमद्भुतम् ॥ ११ ॥

दूत उवाच

मथुरायामस्ति शौरिरनपत्योऽतिदीनवत् । तत्पुत्रास्तु पुरा जाताः कंसेन निहताः श्रुतम् ॥१२॥

एकावशिष्टा कन्याऽपि खं गता कंसहस्ततः । एवं श्रुत्वा यदुपुरान्निर्गतोऽहं शनैः शनैः ॥१३॥
चरन् वृन्दावने रम्ये कालिन्दीनिकटे शुभे । अकस्माल्लतिकावृन्दे दृष्टः कश्चिच्छिशुर्मया ॥१४॥
तल्लक्षणसमो राजन् गोगोपगणमध्यतः । श्रीवत्सांको घनश्यामो वनमाल्यतिसुन्दरः ॥१५॥
द्विभुजो गोपसूनुश्च परं त्वेतद्धिलक्षणम् । त्वया चतुर्भुजश्चोक्तो वसुदेवात्मजो हरिः ॥१६॥
किं कर्त्तव्यं वद नृप मुनिवाक्यं मृषा नहि । यत्र यत्र यथेच्छा ते तत्र मां प्रेषय प्रभो ॥१७॥

श्रीनारद उवाच

इति चिन्तयतस्तस्य विस्मितस्य नृपस्य च । गजाह्वयात्सिन्धुदेशाञ्जेतुं भीष्मः समागतः ॥१८॥
तं पूज्य विमलो राजा दत्त्वा तस्मै बलिं बहु । पप्रच्छ सर्वाभिप्रायं भीष्मं धर्मभृतां वरम् ॥१९॥

विमल उवाच

याज्ञवल्क्येन पूर्वोक्तो मथुरायां हरिः स्वयम् । वसुदेवस्य देवक्यां भविष्यति न संशयः ॥२०॥
न जातो वसुदेवस्य सकाशेऽद्य हरिः परः । ऋषिवाक्यं मृषा न स्यात्कस्मै दास्यामि कन्यकाः ॥
महाभागवतः साक्षात्त्वं परावरवित्तमः । जितेन्द्रियो बाल्यभावाद्वीरो धन्वी वसूत्तमः ॥
एतद्वद महाबुद्धे किं कर्त्तव्यं मयाऽत्र वै ॥२२॥

श्रीनारद उवाच

विमलं प्राह गांगेयो महाभागवतः कविः । दिव्यदृग्धर्मतत्त्वज्ञः श्रीकृष्णस्य प्रभाववित् ॥२३॥

भीष्म उवाच

हे राजन् गुप्तमाख्यानं वेदव्यासमुखाच्छ्रुतम् । सर्वपापहरं पुण्यं शृणु हर्षविवर्द्धनम् ॥२४॥
देवानां रक्षणार्थाय दैत्यानां हि वधाय च । वसुदेवगृहे जातः परिपूर्णतमो हरिः ॥२५॥

कंसके हाथों मारे गये हैं ॥ १२ ॥ एक कन्या बची थी, किंतु वह भी कंसके हाथसे छूटकर आकाशमें उड़ गयी । यह वृत्तान्त सुनकर मैं यदुपुरीसे धीरे-धीरे बाहर निकला ॥ १३ ॥ वृन्दावनमें कालिन्दीके सुन्दर एवं रमणीय तटपर विचरते हुए मैंने लताओंके समूहमें अकस्मात् एक बालक देखा ॥ १४ ॥ हे राजन् ! गोपोंके मध्य दूसरा कोई ऐसा बालक नहीं था, जिसके लक्षण उसके समान हों । उस बालकके वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न था । उसकी अङ्गकान्ति मेघके समान श्याम थी और वह वनमाला धारण किये अत्यन्त सुन्दर दिखायी देता था ॥ १५ ॥ परंतु अन्तर इतना ही है कि उस गोप-बालकके दो ही बाँहें थीं और आपने वसुदेवकुमार श्रीहरिको चतुर्भुज बताया था ॥ १६ ॥ हे नरेश्वर ! बताइये, अब क्या करना चाहिये ? क्योंकि मुनिकी बात झूठी नहीं हो सकती । हे प्रभो ! जहाँ जहाँ, जिस तरह आपकी इच्छा हो, उसके अनुसार वहाँ-वहाँ मुझे भेजिये ॥ १७ ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! राजा विमल जब इस प्रकार विस्मित होकर विचार कर रहे थे, उसी समय हस्तिनापुरसे सिन्धुदेशको जीतनेके लिये भीष्म आये ॥ १८ ॥ राजा विमलने उनको बहुतेरे उपहार दिये और धर्मात्माओंमें अग्रणी भीष्मसे अपना अभिप्राय कहा ॥ १९ ॥ विमल बोले—हे महाबुद्धिमान् भीष्मजी ! पहले याज्ञवल्क्यजीने मुझसे कहा था कि मथुरामें साक्षात् श्रीहरि वसुदेवकी पत्नी देवकीके गर्भसे प्रकट होंगे, इसमें संशय नहीं है ॥ २० ॥ परंतु इस समय वसुदेवके यहाँ परमेश्वर श्रीहरिका प्राकट्य नहीं हुआ है । साथ ही ऋषिकी बात झूठी हो नहीं सकती; अतः इस समय मैं अपनी कन्याओंका दान किसके हाथमें करूँ ? ॥ २१ ॥ आप साक्षात् महाभागवत हैं और पूर्वापरकी बातें जाननेवालोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं । बचपनसे ही आपने इन्द्रियों-पर विजय पायी है । आप वीर, धनुर्धर एवं वसुओंमें श्रेष्ठ हैं । इसलिये यह बताइये कि अब मुझे क्या करना चाहिये ॥ २२ ॥ नारदजी कहते हैं—गङ्गानन्दन भीष्मजी महान् भगवद्भक्त, विद्वान्, दिव्यदृष्टिसे सम्पन्न, धर्मके तत्त्वज्ञ तथा श्रीकृष्णके प्रभावको जाननेवाले थे । उन्होंने राजा विमलसे कहा ॥ २३ ॥ भीष्मजी बोले—हे राजन् ! यह एक गुप्त बात है, जिसे मैंने वेदव्यासजीके मुँहसे सुनी थी । यह प्रसङ्ग समस्त पापोंको हर लेनेवाला, पुण्यप्रद तथा हर्षवर्धक है; इसे सुनो ॥ २४ ॥ परिपूर्णतम भगवान् श्रीहरि देवताओंकी रक्षा

अर्धरात्रे कंसभयान्नीत्वा शौरिश्च तं त्वरम् । गत्वा च गोकुले पुत्रं निधाय शयने नृप ॥२६॥
यशोदानन्दयोः पुत्रीं मायां नीत्वा पुरं ययौ । ववृधे गोकुले कृष्णो गुप्तो ज्ञातो न कैर्नृभिः॥२७॥
सोऽत्रैव वृन्दकारण्ये हरिर्गोपालवेषधृक् । एकादश समास्तत्र गूढो वासं करिष्यति ॥
दैत्यं कंसं घातयित्वा प्रकटः स भविष्यति ॥२८॥
अयोध्यापुरवासिन्यः श्रीरामस्य वराच्च याः । ताः सर्वास्तव भार्यासु बभूवुः कन्यकाः शुभाः ॥२९॥
गूढाय देवदेवाय देयाः कन्यास्त्वया खलु । न विलम्बः क्वचित्कार्यो देहः कालवशो ह्ययम् ॥३०॥
इत्युक्त्वाऽथ गते भीष्मे सर्वज्ञे हस्तिनापुरम् । दूतं स्वं प्रेषयामास विमलो नन्दसूनवे ॥३१॥
इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीमाधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादेऽयोध्यापुरवासिन्युपाख्यानं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

(राजा विमलका संदेश पाकर भगवान् श्रीकृष्णका उन्हें दर्शन देना)

श्रीनारद उवाच

अथ दूतः सिन्धुदेशान्माथुरान्पुनरागतः । चरन् वृन्दावने कृष्णातीरे कृष्णं ददर्श ह ॥ १ ॥
कृष्णं प्रणम्य रहसि कृताञ्जलिपुटः शनैः । प्रदक्षिणीकृत्य दूतो विमलोक्तमुवाच सः ॥ २ ॥

दूत उवाच

स्वयं परं ब्रह्म परः परेशः परैरदृश्यः परिपूर्णदेवः ।
यः पुण्यसंघैः सततं हि दूरस्तस्मै नमः सज्जनगोचराय ॥ ३ ॥
गोविप्रदेवश्रुतिसाधुधर्मरक्षार्थमत्रैव यदोः कुलेऽजः ।
जातोऽसि कंसादिवधाय योऽसौ तस्मै नमोऽनंतगुणार्णवाय ॥ ४ ॥

अहो परं भाग्यमलं व्रजौकसां धन्यं कुलं नन्दवरस्य ते पितुः ।
धन्यो व्रजो धन्यमरण्यमेतत्रत्रैव साक्षात्प्रकटः परो हरिः ॥ ५ ॥
यद्राधिकासुन्दरकण्ठरत्नं यद्गोपिकाजीवनमूलरूपम् ।
तदेव मन्नेत्रपथि प्रजातं किं वर्णये भाग्यमतः स्वकीयम् ॥ ६ ॥
गुप्तो व्रजे गोपमिषेण चासि कस्तूरिकामोद इव प्रसिद्धः ।
यशश्च ते निर्मलमाशु शुक्लीकरोति सर्वत्र गतं त्रिलोकीम् ॥ ७ ॥
जानासि सर्वं जनचैत्यभावं क्षेत्रज्ञ आत्मा कृतिवृन्दसाक्षी ।
तथापि वक्ष्ये नृपवाक्यमुक्तं परं रहस्यं रहसि स्वधर्मम् ॥ ८ ॥
या सिन्धुदेशेषु पुरी प्रसिद्धा श्रीचम्पका नाम शुभा यथैन्द्री ।
तत्पालकोऽसौ विमलो यथेन्द्रस्त्वत्पादपद्मे कृतचित्तवृत्तिः ॥ ९ ॥
सदा कृतं यज्ञशतं त्वदर्थं दानं तपो ब्राह्मणसेवनं च ।
तीर्थं जपं येन सुसाधनेन तस्मै परं दर्शनमेव देहि ॥१०॥
तत्कन्यकाः पद्मविशालनेत्राः पूर्णं पतिं त्वां मृगयंत्य आरात् ।
सदा त्वदर्थं नियमव्रतस्थास्त्वत्पादसेवाविमलीकृतांगाः ॥११॥
गृहाण तासां व्रजदेव पाणीन्दत्त्वा परं दर्शनमद्भुतं स्वम् ।
गच्छाशु सिन्धून् विशदीकुरु त्वं विमृश्य कर्तव्यमिदं त्वया हि ॥१२॥

श्रीनारद उवाच

दूतवाक्यं च तच्छ्रुत्वा प्रसन्नो भगवान्हरिः । क्षणमात्रेण गतवान्सदूतश्चम्पकां पुरीम् ॥१३॥
विमलस्य महायज्ञे वेदध्वनिसमाकुले । सदूतः कृष्ण आकाशात्सहसाऽवततार ह ॥१४॥

मेरा नमस्कार है ॥ ४ ॥ अहो ! व्रजवासियोंका बहुत बड़ा सौभाग्य है । आपके पिता नन्दराजका कुल धन्य है, यह व्रजमण्डल तथा यह वृन्दावन धन्य हैं, जहाँ आप परमेश्वर श्रीहरि साक्षात् प्रकट हुए हैं ॥५॥ हे प्रभो! आप श्रीराधारानीके कण्ठमें सुशोभित सुन्दर (नीलमणिमय) हार हैं, जो गोपियोंके मूलस्वरूप हैं, वे ही आप मेरे सम्मुख उपस्थित हैं । मैं अपने भाग्यकी कहाँतक सराहना करूँ ॥६॥ आप गोपवेशमें गुप्तरूपसे व्रजमें रह रहे हैं । कस्तूरीकी सुगन्धकी भाँति आप सर्वत्र प्रसिद्ध हैं और आपका सर्वत्र फैला हुआ निर्मल यश सम्पूर्ण त्रिलोकी-को तत्काल श्वेत किये देता है ॥७॥ आप सभी लोगोंके चित्तका सम्पूर्ण अभिप्राय जानते हैं; क्योंकि आप समस्त क्षेत्रोंके ज्ञाता आत्मा हैं और कर्मराशिके साक्षी हैं । तथापि राजा विमलने जो परम रहस्यकी और स्वधर्मसे सम्बद्ध बात कही है, उसे मैं आपको एकान्तमें बताऊँगा ॥ ८ ॥ सिन्धुदेशमें जो चम्पका नामसे प्रसिद्ध इन्द्रपुरीके समान सुन्दर नगरी है, उसके पालक राजा विमल देवराज इन्द्रके समान ऐश्वर्यशाली हैं । उनकी चित्तवृत्ति सदा आपके चरणारविन्दोंमें लगी रहती है ॥ ९ ॥ उन्होंने आपकी प्रसन्नताके लिये सदा सैकड़ों यज्ञोंका अनुष्ठान किया है तथा दान, तप, ब्राह्मणसेवा, तीर्थसेवन और जप आदि किये हैं । उनके इन उत्तम साधनोंको निमित्त बनाकर आप उन्हें अपना सर्वोत्कृष्ट दर्शन अवश्य दीजिये ॥ १० ॥ उनकी बहुत-सी कन्याएँ हैं, जो प्रफुल्ल कमल-दलके समान विशाल नेत्रोंसे सुशोभित हैं और आप पूर्ण परमेश्वरको पतिरूपमें अपने निकट पानेके शुभ अवसरकी प्रतीक्षा करती हैं । वे राजकुमारियाँ सदा आपकी प्राप्तिके लिये नियमों और व्रतोंके पालनमें तत्पर हैं तथा आपके चरणोंकी सेवासे उनके तन-मन निर्मल हो गये हैं ॥ ११ ॥ हे व्रजके देवता ! आप अपना उत्तम और अद्भुत दर्शन देकर उन सब राजकन्याओंका पाणिग्रहण कीजिये । इस समय आपके समक्ष जो यह कर्तव्य प्राप्त हुआ है, इसपर विचार करके आप सिन्धुदेशमें चलिये और वहाँके लोगोंको अपने पावन दर्शनसे विशुद्ध कीजिये ॥ १२ ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! उस दूतकी यह बात सुनकर भगवान् श्रीहरि बड़े प्रसन्न हुए और क्षणभरमें दूतके साथ ही चम्पकापुरीमें जा पहुँचे ॥ १३ ॥ उस

यावतीश्च प्रिया मुख्यास्तावद्रूपधरो हरिः । रराज रासे व्रजराड्रञ्जयंस्तन्मनाः प्रभुः ॥२८॥
रासे विमलपुत्रीणामानन्दजलबिन्दुभिः । च्युतैर्विमलकुण्डोऽभूत्तीर्थानां तीर्थमुत्तमम् ॥२९॥
दृष्ट्वा पीत्वा च तं स्नात्वा पूजयित्वा नृपेश्वर । छित्त्वा मेरुसमं पापं गोलोकं याति मानवः ॥३०॥
अयोध्यावासिनीनां तु कथां यः शृणुयान्नरः । स व्रजेद्धाम परमं गोलोकं योगिदुर्लभम् ॥३१॥

इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादेऽयोध्यापुरवासिन्युपाख्यानं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अथ अष्टमोऽध्यायः

(यज्ञसीतास्वरूपा गोपियोंके पूछनेपर श्रीराधाका एकादशीव्रतका अनुष्ठान बताना)

श्रीनारद उवाच

गोपीनां यज्ञसीतानामाख्यानं शृणु मैथिल । सर्वपापहरं पुण्यं कामदं मंगलायनम् ॥ १ ॥
उशीनरो नाम देशो दक्षिणस्यां दिशि स्थितः । एकदा तत्र पर्जन्यो न ववर्ष समा दश ॥ २ ॥
धनवंतस्तत्र गोपा अनावृष्टिभयातुराः । सकुटुम्बा गोधनैश्च व्रजमण्डलमाययुः ॥ ३ ॥
पुण्ये वृन्दावने रम्ये कालिन्दीनिकटे शुभे । नन्दराजसहायेन वासं ते चक्रिरे नृप ॥ ४ ॥
तेषां गृहेषु संजाता यज्ञसीताश्च गोपिकाः । श्रीरामस्य वरा दिव्या दिव्ययौवनभूषिताः ॥ ५ ॥
श्रीकृष्णं सुन्दरं दृष्ट्वा मोहितास्ता नृपेश्वर । व्रतं कृष्णप्रसादार्थं प्रष्टुं राधां समाययुः ॥ ६ ॥

गोप्य ऊचुः

वृषभानुसुते दिव्ये हे राधे कंजलोचने । श्रीकृष्णस्य प्रसादार्थं वद किंचिद्व्रतं शुभम् ॥ ७ ॥
तव वश्यो नन्दसूनुर्देवैरपि सुदुर्गमः । त्वं जगन्मोहिनी राधे सर्वशास्त्रार्थपारगा ॥ ८ ॥

आकर रहने और भगवान्‌के साथ कन्दुक-क्रीड़ासे मन बहलाने लगीं ॥ २७ ॥ जितनी संख्यामें वे श्रीकृष्णप्रिया सखियाँ थीं, उतने ही रूप धारण करके सुन्दर व्रजराज श्रीकृष्ण रासमण्डलमें उनका मनोरञ्जन करते हुए विराजमान हुए ॥ २८ ॥ उस रासमण्डलमें उन विमलकुमारियोंके नेत्रोंसे जो आनन्दजनित जलबिन्दु च्युत होकर गिरे, उन सबसे वहाँ 'विमलकुण्ड' नामक तीर्थ प्रकट हो गया, जो सब तीर्थोंमें उत्तम है ॥ २९ ॥ हे नृपेश्वर ! विमलकुण्डका दर्शन करके, उसका जल पीकर तथा उसमें स्नान-पूजन करके मनुष्य मेरुपर्वतके समान विशाल पापको भी नष्ट कर डालता और गोलोकधाममें जाता है ॥ ३० ॥ जो मनुष्य अयोध्यावासिनी गोपियोंके इस कथानकको सुनेगा, वह योगिदुर्लभ परमधाम गोलोकमें जायगा ॥ ३१ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखंडे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे मिथिलेश्वर ! अब यज्ञसीतास्वरूपा गोपियोंका वर्णन सुनो, जो सब पापोंको हर लेनेवाला, पुण्यदायक, कामनापूरक तथा मङ्गलका धाम है ॥ १ ॥ दक्षिण दिशामें उशीनर नामसे प्रसिद्ध एक देश है, जहाँ एक समय दस वर्षोंतक इन्द्रने वर्षा नहीं की ॥ २ ॥ उस देशमें जो गोधनसे सम्पन्न गोप थे, वे अनावृष्टिके भयसे व्याकुल हो अपने कुटुम्ब और गोधनोंके साथ व्रजमण्डलमें आ गये ॥ ३ ॥ हे नरेश्वर ! नन्दराजकी सहायतासे वे पवित्र वृन्दावनमें यमुनाके सुन्दर एवं सुरम्य तटपर निवास करने लगे ॥ ४ ॥ भगवान् श्रीरामके वरसे यज्ञसीतास्वरूपा गोपाङ्गनाएँ उन्हींके घरोंमें उत्पन्न हुईं। उन सबके शरीर दिव्य थे तथा वे दिव्य यौवनसे विभूषित थीं ॥ ५ ॥ हे नृपेश्वर ! एक दिन वे सुन्दर श्रीकृष्णका दर्शन करके उनपर मोहित हो गयीं और श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये कोई व्रत पूछनेके उद्देश्यसे श्रीराधाके पास गयीं ॥६॥ गोपियाँ बोलीं—दिव्यस्वरूपे, कमललोचने, वृषभानुनन्दिनी हे श्रीराधे ! आप हमें श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये कोई शुभ व्रत बतायें ॥ ७ ॥ जो देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ हैं, वे श्रीनन्दनन्दन तुम्हारे वशमें रहते

श्रीराधोवाच

श्रीकृष्णस्य प्रसादार्थं कुरुतैकादशीव्रतम् । तेन वश्यो हरिः साक्षाद्भविष्यति न संशयः ॥९॥

गोप्य ऊचुः

संवत्सरस्य द्वादश्या नामानि वद राधिके । मासे मासे व्रतं तस्याः कर्तव्यं केन भावतः ॥१०॥

श्रीराधोवाच

मार्गशीर्षे कृष्णपक्षे उत्पन्ना विष्णुदेहतः । मुरदैत्यवधार्थाय तिथिरेकादशी वरा ॥११॥
मासे मासे पृथग्भूता सैव सर्वव्रतोत्तमा । तस्याः षड्विंशतिं नाम्नां वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥
उत्पत्तिश्च तथा मोक्षा सफला च ततः परम् । पुत्रदा षट्तिला चैव जया च विजया तथा ॥१३॥
आमलकी ततः पश्चान्नाम्ना वै पापमोचनी । कामदा च ततः पश्चात्कथिता वै वरूथिनी ॥१४॥
मोहिनी चापरा प्रोक्ता निर्जला कथिता ततः । योगिनी देवशयनी कामिनी च ततः परम् ॥१५॥
पवित्रा चाप्यजा पद्मा इंदिरा च ततः परम् । पाशांकुशा रमा चैव ततः पश्चात्प्रबोधिनी ॥१६॥
सर्वसंपत्प्रदा चैव द्वे प्रोक्ते मलमासजे । एवं षट्विंशतिं नाम्नामेकादश्याः पठेच्च यः ॥१७॥
संवत्सरद्वादशीनां फलमाप्नोति सोऽपि हि । एकादश्याश्च नियमं शृणुताथ व्रजांगनाः ॥
भूमिशायी दशम्यां तु चैकभुक्तो जितेन्द्रियः ॥१८॥
एकवारं जलं पीत्वा धौतवस्त्रोऽतिनिर्मलः । ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय चैकादश्यां हरिं नतः ॥१९॥
अधमं कूपिकास्नानं वाप्यां स्नानं तु मध्यमम् । तडागे चोत्तमं स्नानं नद्याः स्नानं ततः परम् ॥२०॥
एवं स्नात्वा नरवरः क्रोधलोभविवर्जितः । नालपेत्तद्दिने नीचांस्तथा पाखंडिनो नरान् ॥२१॥
मिथ्यावादरतांश्चैव तथा ब्राह्मणनिन्दकान् । अन्यांश्चैव दुराचारानगम्यागमने रतान् ॥२२॥

परद्रव्यापहारांश्च परदाराभिगामिनः। दुर्वृत्तान् भिन्नमर्यादान्नालपेत्स व्रती नरः ॥२३॥
केशवं पूजयित्वा तु नैवेद्यं तत्र कारयेत्। दीपं दद्याद्गृहे तत्र भक्तियुक्तेन चेतसा ॥२४॥
कथाः श्रुत्वा ब्राह्मणेभ्यो दद्यात्सद्दक्षिणां पुनः। रात्रौ जागरणं कुर्याद्गायन्कृष्णपदानि च ॥२५॥
कांस्यं मांसं मसूरांश्च कोद्रवं चणकं तथा। शाकं मधु परान्नं च पुनर्भोजनमैथुनम् ॥२६॥
विष्णुव्रते च कर्तव्ये दशम्यां दश वर्जयेत्। द्यूतं क्रीडां च निद्रां च ताम्बूलं दन्तधावनम् ॥२७॥
परापवादं पैशून्यं स्तेयं हिंसां तथा रतिम्। क्रोधाढ्यं ह्यनृतं वाक्यमेकादश्यां विवर्जयेत् ॥२८॥
कांस्यं मांसं सुरां क्षौद्रं तैलं वितथभाषणम्। पुष्टिपष्टिमसूरांश्च द्वादश्यां परिवर्जयेत् ॥२९॥
अनेन विधिना कुर्याद्द्वादशीव्रतमुत्तमम् ॥३०॥

गोप्य ऊचुः

एकादशीव्रतस्यास्य कालं वद महामते। किं फलं वद तस्यास्तु माहात्म्यं वद तत्त्वतः ॥३१॥

श्रीराधोवाच

दशमी पंचपंचाशद्घटिका चेत्प्रदृश्यते। तर्हि चैकादशी त्याज्या द्वादशीं समुपोषयेत् ॥३२॥
दशमी पलमात्रेण त्याज्या चैकादशी तिथिः। मदिराबिन्दुपातेन त्याज्यो गंगाघटो यथा ॥३३॥
एकादशी यदा वृद्धिं द्वादशी च यदा गता। तदा परा ह्युपोष्या स्यात्पूर्वा वै द्वादशीव्रते ॥३४॥
एकादशीव्रतस्यास्य फलं वक्ष्ये व्रजांगनाः। यस्य श्रवणमात्रेण वाजपेयफलं लभेत् ॥३५॥
अष्टाशीतिसहस्राणि द्विजान्भोजयते तु यः। तत्कृतं फलमाप्नोति द्वादशीव्रतकृन्नरः ॥३६॥
ससागरवनोपेतां यो ददाति वसुंधराम्। तत्सहस्रगुणं पुण्यमेकादश्या महाव्रते ॥३७॥
ये संसारार्णवे मग्नाः पापपंकसमाकुले। तेषामुद्धरणार्थाय द्वादशीव्रतमुत्तमम् ॥३८॥

अगम्या स्त्रीके साथ समागममें रत रहनेवाले, परधनहारी, परस्त्रीगामी, दुर्वृत्त तथा मर्यादाका भङ्ग करनेवाले हैं, उनसे भी व्रती मनुष्य बात न करे ॥ २२ ॥ २३ ॥ मन्दिरमें भगवान् केशवका पूजन करके वहाँ नैवेद्य लगवाये और भक्तियुक्त चित्तसे दीपदान करे ॥ २४ ॥ ब्राह्मणोंसे कथा सुनकर उन्हें दक्षिणा दे, रातको जागरण करे और श्रीकृष्ण-सम्बन्धी पदोंका गान एवं कीर्तन करे ॥ २५ ॥ वैष्णवव्रत (एकादशी) का पालन करना हो तो दशमीको काँसेका पात्र, मांस, मसूर, कोदो, चना, साग, शहद, पराया अन्न, दुबारा भोजन तथा मैथुन—इन दस वस्तुओंको त्याग दे ॥ २६ ॥ जुएका खेल, निद्रा, मद्यपान, दन्तधावन, परनिन्दा, चुगली, चोरी, हिंसा, रति, क्रोध और असत्यभाषण—एकादशीको इन ग्यारह वस्तुओंका त्याग कर देना चाहिये ॥ २७ ॥ २८ ॥ काँसेका पात्र, मांस, शहद, तेल, मिथ्याभोजन, पिट्ठी, साठीका चावल और मसूर आदिका द्वादशीको सेवन न करे। इस विधिसे उत्तम एकादशीव्रतका अनुष्ठान करे ॥ २९ ॥ ३० ॥ गोपियाँ बोलीं—हे परमबुद्धिमती श्रीराधे! एकादशीव्रतका समय बताओ। उससे क्या फल होता है, यह भी कहो तथा एकादशीके माहात्म्यका भी यथार्थरूपसे वर्णन करो ॥ ३१ ॥ श्रीराधाने कहा—यदि दशमी पचपन घड़ी (दण्ड) तक देखी जाती हो तो वह एकादशी त्याज्य है। फिर तो द्वादशीको ही उपवास करना चाहिये ॥३२॥ यदि पलभर भी दशमीका वेध प्राप्त हो तो वह सम्पूर्ण एकादशी तिथि त्याग देने योग्य है—ठीक उसी तरह, जैसे मदिराकी एक बूँद भी पड़ जाय तो गङ्गाजलसे भरा हुआ कलश त्याज्य हो जाता है ॥ ३३ ॥ यदि एकादशी बढ़कर द्वादशीके दिन भी कुछ कालतक विद्यमान हो तो दूसरे दिनवाली एकादशी ही व्रतके योग्य है। पहली एकादशीको उस व्रतमें उपवास नहीं करना चाहिये ॥ ३४ ॥ हे व्रजाङ्गनाओ! अब मैं तुम्हें इस एकादशी-व्रतका फल बता रही हूँ, जिसके श्रवणमात्रसे वाजपेय यज्ञका फल मिलता है ॥ ३५ ॥ जो अट्ठासी हजार ब्राह्मणोंको भोजन कराता है, उसको जिस फलकी प्राप्ति होती है, उसीको एकादशीका व्रत करनेवाला मनुष्य उस व्रतके पालनमात्रसे पा लेता है ॥ ३६ ॥ जो समुद्र और वनोंसहित सारी वसुंधराका दान करता है, उसे प्राप्त होनेवाले पुण्यसे भी हजारगुना पुण्य एकादशीके महान् व्रतका अनुष्ठान करनेसे सुलभ

रात्रौ जागरणं कृत्वैकादशीव्रतकृन्नरः । न पश्यति यमं रौद्रं युक्तः पापशतैरपि ॥३९॥
पूजयेद्यो हरिं भक्त्या द्वादश्यां तुलसीदलैः । लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवांभसा ॥४०॥
अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च । एकादश्युपवासस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥४१॥
दश वै मातृके पक्षे तथा वै दश पैतृके । प्रियाया दश पक्षे तु पुरुषानुद्धरेन्नरः ॥४२॥
यथा शुक्ला तथा कृष्णा द्वयोश्च सदृशं फलम् । धेनुः श्वेता तथा कृष्णा उभयोः सदृशं पयः ॥४३॥
मेरुमन्दरमात्राणि पापानि शतजन्मसु । एका चैकादशी गोप्यो दहते तूलराशिवत् ॥४४॥
विधिवद्विधिहीनं वा द्वादश्यां दानमेव च । स्वल्पं वा सुकृतं गोप्यो मेरुतुल्यं भवेच्च तत् ४५॥
एकादशीदिने विष्णोः शृणुते यो हरेः कथाम् । सप्तद्वीपवतीदाने यत्फलं लभते च सः ॥४६॥
शंखोद्धारे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवं गदाधरम् । एकादश्युपवासस्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥४७॥
प्रभासे च कुरुक्षेत्रे केदारे बद्रिकाश्रमे । काश्यां च शूकरक्षेत्रे ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥४८॥
संक्रांतीनां चतुर्लक्षं दानं दत्तं च यन्नरैः । एकादश्युपवासस्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥४९॥
नागानां च यथा शेषः पक्षिणां गरुडो यथा । देवानां च यथा विष्णुर्वर्णानां ब्राह्मणो यथा ५०॥
वृक्षाणां च यथाऽश्वत्थः पत्राणां तुलसी यथा । व्रतानां च तथा गोप्यो वरा चैकादशी तिथिः ॥५१॥
दशवर्षसहस्राणि तपस्तप्यति यो नरः । तत्तुल्यं फलमाप्नोति द्वादशीव्रतकृन्नरः ॥५२॥
इत्थमेकादशीनां च फलमुक्तं व्रजांगनाः । कुरुताशु व्रतं यूयं किं भूयः श्रोतुमिच्छथ ॥५३॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीमाधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे यज्ञसीतोपाख्याने एकादशीमाहात्म्यं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः

(पूर्वकालमें एकादशीका व्रत करके मनोवाञ्छित फल पानेवाले पुण्यात्माओंका परिचय)

गोप्य ऊचुः

वृषभानुसुते सुभ्रु सर्वशास्त्रार्थपारगे । विडंबयंती त्वं वाचा वाचं वाचस्पतेर्मुने ॥ १ ॥
एकादशीव्रतं राधे केन केन पुरा कृतम् । तद्ब्रूहि नो विशेषेण त्वं साक्षाज्ज्ञानशेवधिः ॥ २ ॥

श्रीराधोवाच

आदौ देवैः कृतं गोप्यो वरमेकादशीव्रतम् । भ्रष्टराज्यस्य लाभार्थं दैत्यानां नाशनाय च ॥ ३ ॥
वैशंतेन पुरा राज्ञा कृतमेकादशीव्रतम् । स्वपितुस्तारणार्थाय यमलोकगतस्य च ॥ ४ ॥
अकस्माल्लुंपकेनापि ज्ञातित्यक्तेन पापिना । एकादशी कृता येन राज्यं लेभे स लुंपकः ॥ ५ ॥
भद्रावत्यां केतुमता कृतमेकादशीव्रतम् । पुत्रहीनेन सद्वाक्यात्पुत्रं लेभे स मानवः ॥ ६ ॥
ब्राह्मण्यै देवपत्नीभिर्दत्तमेकादशीव्रतम् । तेन लेभे स्वर्गसौख्यं धनधान्यं च मानुषी ॥ ७ ॥
पुष्पदंतीमाल्यवंतौ शक्रशापात्पिशाचताम् । प्राप्तौ कृतं व्रतं ताभ्यां पुनर्गन्धर्वतां गतौ ॥ ८ ॥
पुरा श्रीरामचन्द्रेण कृतमेकादशीव्रतम् । समुद्रे सेतुबंधार्थं रावणस्य वधाय च ॥ ९ ॥
लयांते च समुत्पन्ना धात्रीवृक्षतले सुराः । एकादशीव्रतं चक्रुः सर्वकल्याणहेतवे ॥ १० ॥
व्रतं चकार मेधावी द्वादश्याः पितृवाक्यतः । अप्सरःस्पर्शदोषेण मुक्तोऽभून्निर्मलद्युतिः ॥ ११ ॥
गंधर्वो ललितः पत्न्या गतः शापात्स रक्षताम् । एकादशीव्रतेनापि पुनर्गंधर्वतां गतः ॥ १२ ॥
एकादशीव्रतेनापि मांधाता स्वर्गतिं गतः । सगरश्च ककुत्स्थश्च मुचुकुन्दो महामतिः ॥ १३ ॥
धुंधुमारादयश्चान्ये राजानो बहवस्तथा । ब्रह्मकपालनिर्मुक्तो बभूव भगवान्भवः ॥ १४ ॥

हे व्रजाङ्गनाओ ! इस प्रकार मैंने तुमसे एकादशियोंके फलका वर्णन किया । अब तुम शीघ्र इस व्रतको आरम्भ करो । बताओ, अब और क्या सुनना चाहती हो ? ॥ ५३ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखंडे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

गोपियाँ बोलीं—सम्पूर्ण शास्त्रोंके अर्थज्ञानमें पारंगत हे सुन्दरी वृषभानु-नन्दिनी ! तुम अपनी वाणीसे बृहस्पति मुनिकी वाणीका अनुकरण करती हो ॥ १ ॥ हे राधे ! यह एकादशी-व्रत पहले किसने किया था ? यह हमें विशेषरूपसे बताओ; क्योंकि तुम साक्षात् ज्ञानकी निधि हो ॥ २ ॥ श्रीराधाने कहा—हे गोपियो ! सबसे पहले देवताओंने अपने छीने गये राज्यकी प्राप्ति तथा दैत्योंके विनाशके लिये एकादशी-व्रतका अनुष्ठान किया था ॥ ३ ॥ राजा वैशन्तने पूर्वकालमें यमलोकगत पिताके उद्धारके लिये एकादशी-व्रत किया था ॥ ४ ॥ लुम्पक नामके एक राजाको उसके पापके कारण कुटुम्बी-जनोंने अकस्मात् त्याग दिया था । लुम्पकने भी एकादशीका व्रत किया और उसके प्रभावसे अपना खोया हुआ राज्य प्राप्त कर लिया ॥ ५ ॥ भद्रावती नगरीमें पुत्रहीन राजा केतुमान्ने संतोंके कहनेसे एकादशी-व्रतका अनुष्ठान किया और उन्हें पुत्रकी प्राप्ति हो गयी ॥ ६ ॥ एक ब्राह्मणीको देवपत्नियोंने एकादशी-व्रतका पुण्य प्रदान किया, जिससे उस मानवीने धन-धान्य तथा स्वर्गका सुख प्राप्त किया ॥ ७ ॥ पुष्पदन्ती और माल्यवान्—दोनों इन्द्रके शापसे पिशाचभावको प्राप्त हो गये थे । उन दोनोंने एकादशीका व्रत किया और उसके पुण्य-प्रभावसे उन्हें पुनः गन्धर्वत्वकी प्राप्ति हो गयी ॥ ८ ॥ पूर्वकालमें श्रीरामचन्द्रजीने समुद्रपर सेतु बाँधने तथा रावणका वध करनेके लिये एकादशीका व्रत किया था ॥ ९ ॥ प्रलयके अन्तमें उत्पन्न आँवलेके वृक्षके नीचे बैठकर देवताओंने सबके कल्याणके लिये एकादशीका व्रत किया था ॥ १० ॥ पिताकी आज्ञासे मेधावीने एकादशीका व्रत किया, जिससे वे अप्सराके साथ सम्पर्कके दोषसे मुक्त हो निर्मल तेजसे सम्पन्न हो गये ॥ ११ ॥ ललित-नामक गन्धर्व अपनी पत्नीके साथ ही शापवश राक्षस हो गया था, किंतु एकादशी-व्रतके अनुष्ठानसे उसने पुनः गन्धर्वत्व प्राप्त कर लिया ॥ १२ ॥ एकादशीके व्रतसे ही राजा मांधाता, सगर, ककुत्स्थ और महामति मुचुकुन्द पुण्यलोकको

धृष्टबुद्धिर्वैश्यपुत्रो ज्ञातित्यक्तो महाखलः। एकादशीव्रतं कृत्वा वैकुण्ठं स जगाम ह ॥१५॥
राज्ञा रुक्मांगदेनापि कृतमेकादशीव्रतम्। तेन भूमण्डलं भुक्त्वा वैकुंठं सपुरो ययौ ॥१६॥
अंबरीषेण राज्ञाऽपि कृतमेकादशीव्रतम्। नास्पृशद्ब्रह्मशापोऽपि यो न प्रतिहतः क्वचित् १७॥
हेममाली नाम यक्षः कुष्ठी धनदशापतः। एकादशीव्रतं कृत्वा चन्द्रतुल्यो बभूव ह ॥१८॥
महीजिता नृपेणापि कृतमेकादशीव्रतम्। तेन पुत्रं शुभं लब्ध्वा वैकुंठं स जगाम ह ॥१९॥
हरिश्चन्द्रेण राज्ञाऽपि कृतमेकादशीव्रतम्। तेन लब्ध्वा महीराज्यं वैकुण्ठं सपुरो ययौ ॥२०॥

श्रीशोभनो नाम पुरा कृते युगे जामातृकोऽभून्मुचुकुन्दभूभृतः।
एकादशीं यः समुपोष्य भारते प्राप्तः स देवैः किल मंदराचले ॥२१॥
अद्यापि राज्यं कुरुते कुबेरवद्राज्ञा युतोऽसौ किल चन्द्रभागया।
एकादशीं सर्वतिथीश्वरीं परां जानीथ गोप्यो न हि तत्समाऽन्या ॥२२॥

श्रीनारद उवाच

इति राधामुखाच्छ्रुत्वा यज्ञसीताश्च गोपिकाः। एकादशीव्रतं चक्रुर्विधिवत्कृष्णलालसाः ॥२३॥
एकादशीव्रतेनापि प्रसन्नः श्रीहरिः स्वयम्। मार्गशीर्षे पूर्णिमायां रासं ताभिश्चकार ह ॥२४॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीमाधुर्यखंडे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे एकादशीमाहात्म्यं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः

(पुलिन्द-कन्यारूपिणी गोपियोंके सौभाग्यका वर्णन)

श्रीनारद उवाच

पुलिंदकानां गोपीनां करिष्ये वर्णनं ततः। सर्वपापहरं पुण्यमद्भुतं भक्तिवर्द्धनम् ॥ १ ॥

पुलिंदा उद्भटाः केचिद्विंध्याद्रिवनवासिनः । विलुंपंतो राजवसु दीनानां न कदाचन ॥ २ ॥
कुपितस्तेषु बलवान् विन्ध्यदेशाधिपो बली । अक्षौहिणीभ्यां तान्सर्वान्पुलिंदान्स रुरोध ह ॥ ३ ॥
युयुधुस्तेऽपि खड्गैश्च कुन्तैः शूलैः परश्वधैः । शक्त्यृष्टिभिर्भुशुंडीभिः शरैः कति दिनानि च ॥ ४ ॥
पत्रं ते प्रेषयामासुः कंसाय यदुभूभृते । कंसप्रणोदितो दैत्यः प्रलंबो बलवांस्तदा ॥ ५ ॥
योजनद्वयमुच्चांगं कालमेघसमद्युतिम् । किरीटकुंडलधरं सर्पहारविभूषितम् ॥ ६ ॥
पादयोः शृंखलायुक्तं गदापाणिं कृतांतवत् । ललज्जिह्वं घोररूपं पातयन्तं गिरीन्द्रुमान् ॥ ७ ॥
कंपयंतं भुवं वेगात्प्रलंबं युद्धदुर्मदम् । दृष्ट्वा प्रधर्षितो राजा ससैन्यो रणमंडलम् ॥ ८ ॥
त्यक्त्वा दुद्राव सहसा सिंहं वीक्ष्य गजो यथा । प्रलंबस्तान्समानीय मथुरामाययौ पुनः ॥ ९ ॥
पुलिन्दास्तेऽपि कंसस्य भृत्यत्वं समुपागताः । सकुटुंबाः कामगिरौ वासं चक्रुर्नृपेश्वर ॥१०॥
तेषां गृहेषु संजाताः श्रीरामस्य वरात्परात् । पुलिंद्यः कन्यका दिव्या रूपिण्यः श्रीरिवार्चिता ११॥
तद्दर्शनस्मररुजः पुलिंद्यः प्रेमविह्वलाः । श्रीमत्पादरजो धृत्वा ध्यायंत्यस्तमहर्निशम् ॥१२॥
ताश्चापि रासे संप्राप्ताः श्रीकृष्णं परमेश्वरम् । परिपूर्णतमं साक्षाद्गोलोकाधिपतिं प्रभुम् ॥१३॥
श्रीकृष्णचरणांभोजरजो देवैः सुदुर्लभम् । अहो भाग्यं पुलिंदीनां तासां प्राप्तं विशेषतः ॥१४॥

यः पारमेष्ठ्यमखिलं न महेन्द्रधिष्ण्यं नो सार्वभौममनिशं न रसाधिपत्यम् ।
नो योगसिद्धिमभितो न पुनर्भवं वा वाञ्छत्यलं परमपादरजः स भक्तः ॥१५॥

भक्तिभावको बढ़ानेवाला है ॥ १ ॥ विन्ध्याचलके वनमें कुछ पुलिन्द (कोल-भील) निवास करते थे। वे उद्भट योद्धा थे और केवल राजाका धन लूटते थे। गरीबोंकी कोई चीज कभी नहीं छूते थे ॥ २ ॥ विन्ध्य-देशके बलवान् राजाने कुपित हो दो अक्षौहिणी सेनाओंके द्वारा उन सभी पुलिन्दोंपर घेरा डाल दिया ॥ ३ ॥ वे पुलिन्द भी तलवारों, भालों, शूलों, फरसों, शक्तियों, ऋष्टियों, भुशुण्डियों और तीर-कमानोंसे कई दिनों-तक राजकीय सैनिकोंके साथ युद्ध करते रहे ॥ ४ ॥ (विजयकी आशा न देखकर) उन्होंने सहायताके लिये यादवोंके राजा कंसके पास पत्र भेजा। तब कंसकी आज्ञासे बलवान् दैत्य प्रलम्ब वहाँ आया ॥ ५ ॥ उसका शरीर दो योजन ऊँचा था। देहका रंग मेघोंकी काली घटाके समान काला था। माथेपर मुकुट तथा कानोंमें कुण्डल धारण किये वह दैत्य सर्पोंकी मालासे विभूषित था ॥ ६ ॥ उसके पैरोंमें सोनेकी साँकल थी और हाथमें गदा लेकर वह दैत्य कालके समान जान पड़ता था। उसकी जीभ लपलपा रही थी और रूप बड़ा भयंकर था। वह शत्रुओंपर पर्वतकी चट्टानें तथा बड़े-बड़े वृक्ष उखाड़-उखाड़कर फेंकता था ॥७॥ पैरोंकी धमकसे धरतीको कँपाते हुए रणदुर्मद दैत्य प्रलम्बको देखते ही भयभीत तथा पराजित हो विन्ध्यनरेश सेनासहित समराङ्गण छोड़कर सहसा भाग चले, मानो सिंहको देखकर हाथी भागा जाता हो। तब प्रलम्ब उन सब पुलिन्दोंको साथ ले पुनः मथुरापुरीको लौट आया ॥८॥९॥ वे सभी पुलिन्द कंसके सेवक हो गये। हे नृपेश्वर! उन सबने अपने कुटुम्बके साथ कामगिरिपर निवास किया ॥ १० ॥ उन्हींके घरोंमें भगवान् श्रीरामके उत्कृष्ट वरदानसे वे पुलिन्द-स्त्रियाँ दिव्य कन्याओंके रूपमें प्रकट हुईं, जो मूर्तिमती लक्ष्मीकी भाँति पूजित एवं प्रशंसित होती थीं ॥ ११ ॥ श्रीकृष्णके दर्शनसे उनके हृदयमें प्रेमकी पीड़ा जाग उठी। वे पुलिन्द-कन्याएँ प्रेमसे विह्वल हो भगवान्की श्रीसम्पन्न चरणरजको सिरपर धारण करके दिन-रात उन्हींके ध्यान एवं चिन्तनमें डूबी रहती थीं ॥ १२ ॥ वे भी भगवान्की कृपासे रासमें आ पहुँचीं और साक्षात् गोलोकके अधि-पति, सर्वसमर्थ, परिपूर्णतम परमेश्वर श्रीकृष्णको उन्होंने सदाके लिये प्राप्त कर लिया ॥ १३ ॥ अहो! इन पुलिन्द-कन्याओंका कैसा महान् सौभाग्य है कि देवताओंके लिये भी परम दुर्लभ श्रीकृष्ण-चरणारविन्दोंकी रज उन्हें विशेषरूपसे प्राप्त हो गयी ॥ १४ ॥ जिसकी भगवान्के परम उत्कृष्ट पाद-पद्म-परागमें सुदृढ़ भक्ति है, वह न तो ब्रह्माजीका पद, न महेन्द्रका स्थान, न निरन्तर-स्थायी सार्वभौम सम्राट्का पद, न पाताल-लोकका आधिपत्य, न योगसिद्धि और न अपुनर्भव (मोक्ष) को ही चाहता है ॥ १५ ॥ जो अकिंचन हैं,

अतीव रम्यः सुकुमारदेहो मनोजवद्विश्वमनोहरोऽयम् ।
अहो कथं जीवति चास्य माता पिता च भार्या भगिनी विनेनम् ॥११॥
वं ताः सर्वतो यूथीभूत्वा सर्वा व्रजांगनाः । पप्रच्छुस्तं योगिवरं विस्मिताः प्रेमविह्वलाः ॥१२॥

गोप्य ऊचुः

स्त्वं योगिन्नाम किं ते कुत्र वासस्तु ते मुने । का वृत्तिस्तव का सिद्धिर्वद नो वदतां वर ॥१३॥

सिद्ध उवाच

गेश्वरोऽहं मे वासः सदा मानसरोवरे । नाम्ना स्वयंप्रकाशोऽहं निरन्नः स्वबलात्सदा ॥१४॥
र्थे परमहंसानां याम्यहं हे व्रजांगनाः । भूतं भव्यं वर्तमानं वेद्म्यहं दिव्यदर्शनः ॥१५॥
चाटनं मारणं च मोहनं स्तंभनं तथा । जानामि मंत्रविद्याभिर्वशीकरणमेव च ॥१६॥

गोप्य ऊचुः

यदि जानासि योगिंस्त्वं वार्ता कालत्रयोद्भवाम् । किं वर्तते नो मनसि वद तर्हि महामते ॥१७॥

सिद्ध उवाच

भवतीनां च कर्णांते कथनीयमिदं वचः । युष्मदाज्ञया वा वक्ष्ये सर्वेषां शृण्वतामिह ॥१८॥

गोप्य ऊचुः

सत्यं योगेश्वरोऽसि त्वं त्रिकालज्ञो न संशयः । वशीकरणमंत्रेण सद्यः पठनमात्रतः ॥१९॥
यदि सोऽत्रैव चायाति चिंतितो योऽस्ति वै मुने । तदा मन्यामहे त्वां वै मंत्रिणां प्रवरं परम् ॥२०॥

सिद्ध उवाच

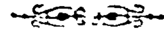
दुर्लभो दुर्घटो भावो युष्माभिर्गदितः स्त्रियः । तथाप्यहं करिष्यामि वाक्यं न चलते सताम् ॥२१॥
निमीलयत नेत्राणि मा शोचं कुरुत स्त्रियः । भविष्यति न संदेहो युष्माकं कार्यमेव च ॥२२॥

विरक्त हो गया और सारे कृत्यकर्म छोड़ वैठा है ॥ १० ॥ यह अत्यन्त रमणीय है । इसका शरीर कैसा सुकुमार है। यह कामदेवके समान सारे विश्वका मन मोह लेनेवाला है। अहो ! इसकी माता, इसके पिता, इसकी पत्नी और इसकी वहिन इसके विना कैसे जीवित होंगी ? ॥ ११ ॥ यह विचार करके सव ओरसे झुण्ड-की-झुण्ड व्रजाङ्गनाएँ उनके पास आ गयीं और प्रेमसे विह्वल तथा आश्चर्यचकित हो उन योगीश्वरसे पूछने लगीं ॥१२॥ गोपियोंने पूछा—हे योगीवावा ! तुम्हारा नाम क्या है ? हे मुनिजी ! तुम रहते कहाँ हो ? तुम्हारी वृत्ति क्या है, और तुमने कौन-सी सिद्धि पायी है ? हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ ! हमें ये सव वातें वताओ ॥ १३ ॥ सिद्धयोगीने कहा—मैं योगेश्वर हूँ और सदा मानसरोवरमें निवास करता हूँ । मेरा नाम स्वयंप्रकाश है । मैं अपनी शक्तिसे सदा विना खाये-पीये ही रहता हूँ ॥ १४ ॥ हे व्रजाङ्गनाओ ! परमहंसोंका जो अपना स्वार्थ—आत्मसाक्षात्कार है, उसीकी सिद्धिके लिये मैं जा रहा हूँ । मुझे दिव्यदृष्टि प्राप्त हो चुकी है ॥ १५ ॥ मैं भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालोंकी वातें जानता हूँ । मन्त्र-विद्याद्वारा उच्चाटन, मारण, मोहन, स्तम्भन तथा वशीकरण भी जानता हूँ ॥ १६ ॥ गोपियोंने पूछा—हे योगीवावा ! तुम तो वड़े वुद्धिमान् हो । यदि तुम्हें तीनों कालोंकी वातें ज्ञात हैं तो वताओ न, हमारे मनमें क्या है ? ॥ १७ ॥ सिद्धयोगीने कहा—यह वात तो आप लोगोंके कानमें कहने योग्य है । अथवा यदि आप लोगोंकी आज्ञा हो तो सव लोगोंके सामने ही कह डालूँ ॥ १८ ॥ गोपियाँ वोलीं—हे मुने ! तुम सचमुच योगेश्वर हो । तुम्हें तीनों कालोंका ज्ञान है, इसमें संशय नहीं है । यदि तुम्हारे वशीकरण-मन्त्रसे, उसके पाठ करनेमात्रसे तत्काल वे यहीं आ जायँ, जिनका कि हम मन-ही-मन चिन्तन करती हैं, तव हम मानेंगी कि तुम मन्त्रज्ञोंमें सबसे श्रेष्ठ हो ॥ १९ ॥ २० ॥ सिद्धयोगीने कहा—हे व्रजाङ्गनाओं ! तुमने तो ऐसा भाव व्यक्त किया है, जो परम दुर्लभ और दुष्कर है; तथापि मैं तुम्हारी मनोनीत वस्तुको प्रकट करूँगा; क्योंकि सत्पुरुषोंकी कही हुई वात कभी झूठ नहीं होती । हे व्रजकी वनिताओं ! चिन्ता न करो; अपनी आँखें मूँद लो । तुम्हारा कार्य अवश्य सिद्ध होगा, इसमें संशय नहीं है ॥२१॥ २२॥ श्रीनारदजी

श्रीनारद उवाच

तथेति मीलिताक्षीषु गोपीषु भगवान्हरिः । विहाय तद्योगिरूपं बभौ श्रीनन्दनन्दनः ॥२३॥
नेत्राण्युन्मील्य ददृशुः सानन्दं नन्दनन्दनम् । विस्मितास्तत्प्रभावज्ञा हर्षिता मोहमागताः ॥२४॥
माघमासे महारासे पुण्ये वृन्दावने वने । ताभिः सार्द्धं हरी रेमे सुराभिः सुरराडिव ॥२५॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीमाधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे रमावैकुण्ठश्वेतद्वीपोर्ध्ववैकुण्ठाजितपदश्रीलोकाचलवासिनीश्रीसखीनामुपाख्यानं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥



अथ द्वादशोऽध्यायः

(दिव्यादिव्य, त्रिगुणवृत्तिमयी तथा भूतलकी गोपियोंका वर्णन)

श्रीनारद उवाच

इदं मया ते कथितं गोपीनां चरितं शुभम् । अन्यासां चैव गोपीनां वर्णनं शृणु मैथिल ॥ १ ॥
वीतिहोत्रोऽग्निभुक्सांबः श्रीकरो गोपतिः श्रुतः । व्रजेशः पावनः शांत उपनन्दा व्रजेभवाः ॥ २ ॥
धनवंतो रूपवंतः पुत्रवंतो बहुश्रुताः । शीलादिगुणसंपन्नाः सर्वे दानपरायणाः ॥ ३ ॥
तेषां गृहेषु संजाताः कन्यका देववाक्यतः । काश्चिद्दिव्या अदिव्याश्च तथा त्रिगुणवृत्तयः ॥ ४ ॥
भूमिगोप्यश्च संजाताः पुण्यैर्नानाविधैः कृतैः । राधिकासहचर्यस्ताः सख्योऽभूवन् विदेहराट् ॥ ५ ॥
एकदा मानिनीं राधां ताः सर्वा व्रजगोपिकाः । ऊचुर्वीक्ष्य हरिं प्राप्तं होलिकाया महोत्सवे ॥ ६ ॥

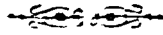
गोप्य ऊचुः

रंभोरु चन्द्रवदने मधुमानिनीशे राधे वचः सुललितं ललने शृणु त्वम् ।
श्रीहोलिकोत्सवविहारमलं विधातुमायाति ते पुरवने व्रजभूषणोऽयम् ॥ ७ ॥
श्रीयौवनोन्मदविघूर्णितलोचनोऽसौ नीलालकालिकलितांसकपोलगोलः ।
सत्पीतकंचुकघनांतमशेषमाराद् आचालयन्ध्वनिमता स्वपदारुणेन ॥ ८ ॥

श्रीनारद उवाच

तथेति मीलिताक्षीषु गोपीषु भगवान्हरिः । विहाय तद्योगिरूपं बभौ श्रीनन्दनन्दनः ॥२३॥
नेत्राण्युन्मील्य ददृशुः सानन्दं नन्दनन्दनम् । विस्मितास्तत्प्रभावज्ञा हर्षिता मोहमागताः ॥२४॥
माघमासे महारासे पुण्ये वृन्दावने वने । ताभिः सार्द्धं हरी रेमे सुराभिः सुरराडिव ॥२५॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीमाधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे रमावैकुण्ठश्वेतद्वीपोर्ध्ववैकुण्ठाजितपदश्रीलोकाचलवासिनीश्रीसखीनामुपाख्यानं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥



अथ द्वादशोऽध्यायः

(दिव्यादिव्य, त्रिगुणवृत्तिमयी तथा भूतलकी गोपियोंका वर्णन)

श्रीनारद उवाच

इदं मया ते कथितं गोपीनां चरितं शुभम् । अन्यासां चैव गोपीनां वर्णनं शृणु मैथिल ॥ १ ॥
वीतिहोत्रोऽग्निभुक्सांबः श्रीकरो गोपतिः श्रुतः । व्रजेशः पावनः शांत उपनन्दा व्रजेभवाः ॥ २ ॥
धनवंतो रूपवंतः पुत्रवंतो बहुश्रुताः । शीलादिगुणसंपन्नाः सर्वे दानपरायणाः ॥ ३ ॥
तेषां गृहेषु संजाताः कन्यका देववाक्यतः । काश्चिद्दिव्या अदिव्याश्च तथा त्रिगुणवृत्तयः ॥ ४ ॥
भूमिगोप्यश्च संजाताः पुण्यैर्नानाविधैः कृतैः । राधिकासहचर्यस्ताः सख्योऽभूवन् विदेहराट् ॥ ५ ॥
एकदा मानिनीं राधां ताः सर्वा व्रजगोपिकाः । ऊचुर्वीक्ष्य हरिं प्राप्तं होलिकाया महोत्सवे ॥ ६ ॥

गोप्य ऊचुः

रंभोरु चन्द्रवदने मधुमानिनीशे राधे वचः सुललितं ललने शृणु त्वम् ।
श्रीहोलिकोत्सवविहारमलं विधातुमायाति ते पुरवने व्रजभूषणोऽयम् ॥ ७ ॥
श्रीयौवनोन्मदविघूर्णितलोचनोऽसौ नीलालकालिकलितांसकपोलगोलः ।
सत्पीतकंचुकघनांतमशेषमाराद्चालयन्ध्वनिमता स्वपदारुणेन ॥ ८ ॥

कहते हैं – हे राजन् ! 'बहुत अच्छा' कहकर जब गोपियोंने अपनी आँखें मूँद लीं, तब भगवान् श्रीहरि योगीका रूप छोड़कर श्रीनन्दनन्दनके रूपमें प्रकट हो गये ॥ २३ ॥ गोपियोंने आँखें खोलकर देखा तो सामने नन्दनन्दन सानन्द मुस्करा रहे हैं। पहले तो वे अत्यन्त विस्मित हुईं; फिर योगीका प्रभाव जाननेपर उन्हें हर्ष हुआ और प्रियतमका वह मोहन रूप देखकर वे मोहित हो गयीं ॥ २४ ॥ तदनन्तर माघमासके महारासमें पावन वृन्दावनके भीतर श्रीहरिने उन गोपाङ्गनाओंके साथ उसी प्रकार विहार किया, जैसे देवाङ्गनाओंके साथ देवराज इन्द्र विहार करते हैं ॥२५॥ इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे मिथिलेश्वर ! यह मैंने तुमसे गोपियोंके शुभ चरित्रका वर्णन किया है, अब दूसरी गोपियोंका वर्णन सुनो ॥ १ ॥ वीतिहोत्र, अग्निभुक्, साम्ब, श्रीकर, गोपति, श्रुत, व्रजेश, पावन तथा शान्त—ये व्रजमें उत्पन्न हुए नौ उपनन्दोंके नाम हैं ॥ २ ॥ वे सब-के-सब धनवान्, रूपवान्, पुत्रवान्, बहुत-से शास्त्रोंका ज्ञान रखनेवाले, शील-सदाचारादि गुणोंसे सम्पन्न तथा दानपरायण हैं ॥ ३ ॥ इनके घरोंमें देवताओंकी आज्ञाके अनुसार जो कन्याएँ उत्पन्न हुईं, उनमेंसे कोई दिव्य, कोई अदिव्य तथा कोई त्रिगुणवृत्तिवाली थीं ॥ ४ ॥ वे सब नाना प्रकारके पूर्वकृत पुण्योंके फलस्वरूप भूतलपर गोपकन्याओंके रूपमें प्रकट हुई थीं। हे विदेहराज ! वे सब श्रीराधिकाके साथ रहनेवाली उनकी सखियाँ थीं ॥ ५ ॥ एक दिनकी बात है, होलिका-महोत्सवपर श्रीहरिको आया हुआ देख उन समस्त व्रजगोपिकाओंने मानिनी श्रीराधासे कहा ॥ ६ ॥
गोपियाँ बोलीं – हे रम्भोरु ! हे चन्द्रवदने ! हे मधुमानिनि ! हे स्वामिनि ! हे ललने ! हे श्रीराधे ! हमारी यह सुन्दर बात सुनो। ये व्रजभूषण नन्दनन्दन तुम्हारी बरसाना-नगरीके उपवनमें होलिकोत्सव-विहार करनेके

भगवानपि तत्रैव यावतीर्व्रजयोषितः । धृत्वा रूपाणि तावंति विजहार नृपेश्वर ॥२०॥
राधया शुशुभे तत्र होलिकाया महोत्सवे । वर्षासंध्याक्षणे कृष्णः सौदामिन्या घनो यथा ॥२१॥
कृष्णोऽपि तद्धस्तकृताक्तनेत्रो दत्त्वा स्वकीयं नवमुत्तरीयम् ।
ताभ्यो ययौ नन्दगृहं परेशो देवेषु वर्षत्सु च पुष्पवर्षम् ॥२२॥

इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे होलिकोत्सवे दिव्यत्रिगुणवृत्तिभूमिगोप्युपाख्यानं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

(देवाङ्गनास्वरूपा गोपियाँ)

श्रीनारद उवाच

अथ देवांगनानां च गोपीनां वर्णनं शृणु । चतुष्पदार्थदं नृणां भक्तिवर्धनमुत्तमम् ॥ १ ॥
बभूव मालवे देशे गोपो नन्दो दिवस्पतिः । भार्यासहस्रसंयुक्तो धनवान्नीतिमान्परः ॥ २ ॥
तीर्थयात्राप्रसंगेन मथुरायां समागतः । नन्दराजं व्रजाधीशं श्रुत्वा श्रीगोकुलं ययौ ॥ ३ ॥
मिलित्वा गोपराजं स दृष्ट्वा वृन्दावनश्रियम् । नन्दराजाज्ञया तत्र वासं चक्रे महामनाः ॥ ४ ॥
योजनद्वयमाश्रित्य घोषं चक्रे गवां पुनः । मुदं प्राप व्रजे राजञ्ज्ञातिभिः स दिवस्पतिः ॥ ५ ॥
तस्य देवलवाक्येन सर्वा देवजनस्त्रियः । जाताःकन्या महादिव्या ज्वलदग्निशिखोपमाः॥ ६ ॥
श्रीकृष्णं सुन्दरं दृष्ट्वा मोहिताः कन्यकाश्च ताः । दामोदरस्य प्राप्त्यर्थं चक्रुर्माघव्रतं परम् ॥ ७ ॥
अर्धोदयेऽर्के यमुनां नित्यं स्नात्वा व्रजाङ्गनाः । उच्चैर्जगुः कृष्णलीलां प्रेमानन्दसमाकुलाः ॥ ८ ॥

पोत दिया, फिर सारे अङ्गोंपर अबीर-गुलाल बरसाये तथा केसरयुक्त रंगसे भरी डोलचियों द्वारा उन्हें विधि-पूर्वक भिगोया ॥ १९ ॥ हे नृपेश्वर ! वहाँ जितनी गोपियाँ थीं, उतने ही रूप धारण करके भगवान्‌ भी उनके साथ विहार करते रहे ॥ २० ॥ उस होलिका-महोत्सवमें श्रीकृष्ण श्रीराधाके साथ वैसी ही शोभा पाते थे, जैसे वर्षाकालकी संध्या-वेलामें विद्युन्मालाके साथ मेघ सुशोभित होता है ॥ २१ ॥ श्रीराधाने श्रीकृष्णके नेत्रोंमें काजल लगा दिया । श्रीकृष्णने भी अपना नया उत्तरीय (दुपट्टा) गोपियोंको उपहारमें दे दिया । फिर वे परमेश्वर नन्दभवनको लौट गये । उस समय समस्त देवता उनके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ २२ ॥
इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखंडे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे मिथिलेश्वर ! अब देवाङ्गनास्वरूपा गोपियोंका वर्णन सुनो, जो मनुष्योंको चारों पदार्थ देनेवाला तथा उनके भक्तिभावको बढ़ानेवाला सर्वोत्तम साधन है ॥ १ ॥ मालवदेशमें एक गोप थे, जिनका नाम था—दिवस्पति नन्द । उनके एक सहस्र पत्नियाँ थीं । वे बड़े धनवान्‌ और नीतिज्ञ थे ॥ २ ॥ एक समय तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे उनका मथुरामें आगमन हुआ । वहाँ व्रजाधीश्वर नन्दराजका नाम सुनकर वे उनसे मिलनेके लिये गोकुल गये ॥ ३ ॥ वहाँ नन्दराजसे मिलकर और वृन्दावनकी शोभा देखकर महामना दिवस्पति नन्दराजकी आज्ञासे वहीं रहने लगे ॥ ४ ॥ उन्होंने दो योजन भूमिको घेरकर गौओंके लिये गोष्ठ बनाया । हे राजन्‌ ! उस व्रजमें अपने कुटुम्बी बन्धुजनोंके साथ रहते हुए दिवस्पतिको बड़ी प्रसन्नता प्राप्त हुई ॥ ५ ॥ देवल मुनिके आदेशसे समस्त देवाङ्गनाएँ उन्हीं दिवस्पतिकी महादिव्य कन्याएँ हुईं, जो प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्विनी थीं ॥ ६ ॥ किसी समय श्यामसुन्दर श्रीकृष्णका दर्शन पाकर वे सब कन्याएँ मोहित हो गयीं और उन दामोदरकी प्राप्तिके लिये उन्होंने परम उत्तम माघमासका व्रत किया ॥ ७ ॥ आधे सूर्यके उदित होते-होते प्रतिदिन वे व्रजाङ्गनाएँ यमुनामें जाकर स्नान करतीं और प्रेमानन्दसे विह्वल हो उच्चस्वरसे

तासां प्रसन्नः श्रीकृष्णो वरं ब्रूहीत्युवाच ह । ता ऊचुस्तं परं नत्वा कृताञ्जलिपुटाः शनैः ॥ ९ ॥

गोप्य ऊचुः

योगीश्वराणां किल दुर्लभस्त्वं सर्वेश्वरः कारणकारणोऽसि ।
त्वं नेत्रगामी भवतात्सदा नो वंशीधरो मन्मथमन्मथांगः ॥१०॥
तथाऽस्तु चोक्त्वा हरिरादिदेवस्तासां तु यो दर्शनमाततान ।
भूयात्सदा ते हृदि नेत्रमार्गे तथा स आहूत इवाशु चित्ते ॥११॥

परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो नान्य एव हि । एककार्यार्थमागत्य कोटिकार्यं चकार ह ॥१२॥

परिकरीकृतपीतपटं हरिं शिखिकिरीटनतीकृतकंधरम् ।
लकुटवेणुकरं चलकुंडलं पटुतरं नटवेपधरं भजे ॥१३॥
भक्त्यैव वश्यो हरिरादिदेवः सदा प्रमाणं किल चात्र गोप्यः ।
सांख्यं च योगं न कृतं कदापि प्रेम्णैव यस्य प्रकृतिं गताः स्युः ॥१४॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीमाधुर्यखंडे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे देवजनस्त्र्युपाख्यानं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

(कौरव-सेनासे पीडित रंगोजि गोपका कंसकी सहायतासे व्रजमंण्डलकी सीमापर निवास)

श्रीनारद उवाच

जालंधरीणां गोपीनां जन्मानि शृणु मैथिल । कर्माणि च महाराज पापघ्नानि नृणां सदा ॥ १ ॥
राजन्सप्तनदीतीरे रंगपत्तनमुत्तमम् । सर्वसंपद्युतं दीर्घं योजनद्वयवर्तुलम् ॥ २ ॥
रङ्गोजिस्तत्र गोपालः पुराधीशो महाबलः । पुत्रपौत्रसमायुक्तो धनधान्यसमृद्धिमान् ॥ ३ ॥

हस्तिनापुरनाथाय धृतराष्ट्राय भूभृते । हैमानामर्बुदशतं वार्षिकं स ददौ सदा ॥ ४ ॥
एकदा तत्र वर्षान्ते व्यतीते किल मैथिल । वार्षिकं तु करं राज्ञे न ददौ स मदोत्कटः ॥ ५ ॥
मिलनार्थं न चायाते रङ्गोजौ गोपनायके । वीरा दश सहस्राणि धृतराष्ट्रप्रणोदिताः ॥ ६ ॥
बद्ध्वा तं दामभिर्गोपमाजग्मुस्ते गजाह्वयम् । कति वर्षाणि रङ्गोजिः कारागारे स्थितोऽभवत्॥ ७ ॥
सन्निरुद्धस्ताडितोऽपि लोभी भीरुर्न चाभवत् । न ददौ स धनं किंचिद्धृतराष्ट्राय भूभृते ॥ ८ ॥
कारागारान्महाभीमात्कदाचित्स पलायितः । रात्रौ रङ्गपुरं प्रागाद्रङ्गोजिर्गोपनायकः ॥ ९ ॥
पुनस्तं हि समाहर्तुं धृतराष्ट्रप्रणोदितम् । अक्षौहिणीत्रयं राजन् समर्थबलवाहनम् ॥१०॥
तेन सार्द्धं स बाणौघैस्तीक्ष्णधारैः स्फुरत्प्रभैः । युयुधे दंशितो युद्धे धनुष्टंकारयन्मुहुः ॥११॥
शत्रुभिश्छिन्नकवचश्छिन्नधन्वा हतस्वकः । पुरमेत्य मृधं चक्रे रङ्गोजिः कतिभिर्दिनैः ॥१२॥
अनाथः शरणं चेच्छन्कंसाय यदुभूभृते । दूतं स्वं प्रेषयामास रङ्गोजिर्भयपीडितः ॥१३॥
दूतस्तु मथुरामेत्य सभां गत्वा नताननः । कृताञ्जलिश्चौग्रसेनिं नत्वा प्राह गिरार्द्रया ॥१४॥

रङ्गोजिनामा नृप रङ्गपत्तने गोपोऽस्ति नीतिज्ञवरः पुराधिपः ।
स्वशत्रुसंरुद्धपुरो महाधिभृद्लब्धनाथः शरणं गतस्तव ॥१५॥
त्वं दीनदुःखार्तिहरो महीतले भौमादिसङ्गीतगुणो महाबलः ।
सुरासुरानुद्भटभूमिपालकान्विजित्य युद्धे सुरराडिव स्थितः ॥१६॥
चन्द्रं चकोरश्च रविं कुशेशयं यथा शरच्छीकरमेव चातकः ।
क्षुधातुरोऽन्नं च जलं तृपातुरः स्मरत्यसौ शत्रुभये तथा त्वाम् ॥१७॥

मालिक या पुराधीश रंगोजि नामक एक गोप था, जो महान् बलवान् था । वह पुत्र-पौत्र आदिसे संयुक्त तथा धन-धान्यसे समृद्धिशाली था ॥ ३ ॥ हस्तिनापुरके स्वामी राजा धृतराष्ट्रको वह सदा सौ अरब स्वर्णमुद्राएँ वार्षिक करके रूपमें दिया करता था ॥ ४ ॥ हे मिथिलेश्वर ! एक समय वर्ष बीत जानेपर भी धनके मदसे उन्मत्त उस गोपने राजाको वार्षिक कर नहीं दिया ॥५॥ इतना ही नहीं, वह गोपनायक रंगोजि मिलनेतक नहीं गया । तब धृतराष्ट्रके भेजे हुए दस हजार वीर जाकर उस गोपको बाँधकर हस्तिनापुरमें ले आये । कई वर्षोंतक तो रंगोजि कारागारमें बँधा पड़ा रहा ॥ ६ ॥ ७ ॥ बाँधे और पीटे जानेपर भी वह लोभी गोप डरा नहीं । उसने राजा धृतराष्ट्रको थोड़ा-सा भी धन नहीं दिया ॥ ८ ॥ किसी समय गोपनायक रंगोजि उस महाभयंकर कारागारसे भाग निकला तथा रातों-रात रङ्गपुरमें आ गया ॥ ९ ॥ तब पुनः उसे पकड़ लानेके लिये धृतराष्ट्रकी भेजी हुई शक्तिशाली बल-वाहनसे सम्पन्न तीन अक्षौहिणी सेना गयी ॥१०॥ वह गोप भी कवच धारण करके युद्धभूमिमें बारंबार धनुषका टंकार करता हुआ तीखी धारवाले चमकीले बाणसमूहोंकी वर्षा करके धृतराष्ट्रकी उस सेनाका सामना करने लगा ॥ ११ ॥ शत्रुओंने उसके कवच और धनुष काट दिये तथा उसके स्वजनोंका भी वध कर डाला; तब वह अपने पुर (दुर्ग) में आकर कुछ दिनोंतक युद्ध चलाता रहा ॥ १२ ॥ अन्तमें अनाथ एवं भयसे पीड़ित रंगोजि किसी शरणदाता या रक्षककी इच्छा करने लगा । तदनुसार उसने यादवराज कंसके पास अपना दूत भेजा ॥ १३ ॥ दूत मथुरा पहुँचकर राज-दरबारमें गया और उसने मस्तक झुकाकर दोनों हाथोंकी अञ्जलि बाँधे उग्रसेनकुमार कंसको प्रणाम करके करुणासे आर्द्र वाणीमें कहा—॥ १४ ॥ 'हे महाराज ! रङ्गपत्तनमें रंगोजि नामसे प्रसिद्ध एक गोप हैं, जो उस नगरके स्वामी तथा नीतिवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं । शत्रुओंने उनके नगरको चारों ओरसे घेर लिया है । वे बड़ी चिन्तामें पड़ गये हैं और अनाथ होकर आपकी शरणमें आये हैं ॥ १५ ॥ इस भूतलपर केवल आप ही दीनों और दुखियोंकी पीड़ा हरनेवाले हैं । भौमासुरादि वीर आपके गुण गाया करते हैं । आप महाबली हैं और देवता, असुर तथा उद्भट भूमिपालोंको युद्धमें जीतकर देवराज इन्द्रके समान अपनी राजधानीमें विराजमान हैं ॥ १६ ॥

श्रीनारद उवाच

इत्थं श्रुत्वा वचस्तस्य कंसो वै दीनवत्सलः । दैत्यकोटिसमायुक्तो मनो गंतुं समादधे ॥१८॥
गोमूत्रचयसिन्दूरकस्तूरीपत्रमुन्मुखम् । विंध्याद्रिसदृशं श्यामं मदनिर्झरसंयुतम् ॥१९॥
पादे च शृङ्खलाजालं नदंतं घनवद्भृशम् । द्विपं कुवलयापीडं समारुह्य मदोत्कटः ॥२०॥
चाणूरमुष्टिकाद्यैश्च केशिव्योमवृषासुरैः । सहसा दंशितः कंसः प्रययौ रङ्गपत्तनम् ॥२१॥
यदूनां च कुरूणां च बलयोस्तु परस्परम् । बाणैः खड्गैस्त्रिशूलैश्च घोरं युद्धं बभूव ह ॥२२॥
बाणांधकारे संजाते कंसो नीत्वा महागदाम् । विवेश कुरुसेनासु वने वैश्वानरो यथा ॥२३॥
कांश्चिद्वीरान्सकवचान्गदया वज्रकल्पया । पातयामास भूपृष्ठे वज्रेणेंद्रो यथा गिरिम् ॥२४॥
रथान्ममर्द पादाभ्यां पार्ष्णिघातेन घोटकान् । गजे गजं ताडयित्वा गजान्प्रोन्नीय चांघ्रिषु ॥२५॥
स्कन्धयोः कक्षयोर्धृत्वा सनीडान् रत्नकंबलान् । कांश्चिद्बलाद्भ्रामयित्वा चिक्षेप गगने बली ॥२६॥
गजाञ्छुण्डासु चोन्नीय लोलघंटासमावृतान् । चिक्षेप संमुखे राजन् मृधे व्योमासुरो बली ॥२७॥
रथान् गृहीत्वा साश्वांश्च शृङ्गाग्रं भ्रामयन्मुहुः । चिक्षेप दिक्षु बलवान् दैत्यो दुष्टो वृषासुरः ॥२८॥
बलात्पश्चिमपादाभ्यां वीरानश्वानितस्ततः । पातयामास राजेंद्र केशी दैत्याधिपो बली ॥२९॥
एवं भयङ्करं युद्धं दृष्ट्वा वै कुरुसैनिकाः । शेषा भयातुरा वीरा जग्मुस्तेऽपि दिशो दश ॥३०॥
रङ्गोजिं सकुटुम्बं तं नीत्वा कंसोऽथ दैत्यराट् । मथुरां प्रययौ वीरो नादयन्दुंदुभीन्स्वनैः ॥३१॥
श्रुत्वा पराजयं स्वस्य कौरवाः क्रोधमूर्च्छिताः । दैत्यानां समयं दृष्ट्वा सर्वे वै मौनमास्थिताः ॥३२॥

पुरं बर्हिपदं नाम व्रजसीम्नि मनोहरम् । रङ्गोजये ददौ कंसो दैत्यानामधिपो बली ॥३३॥
वासं चकार तत्रैव रङ्गोजिर्गोपनायकः । बभूवुस्तस्य भार्यासु जालंधर्यो हरेर्वरात् ॥३४॥
परिणीता गोपजनै रूपयौवनभूषिताः । जारधर्मेण सुस्नेहं श्रीकृष्णे ताः प्रचक्रिरे ॥३५॥
चैत्रमासे महारासे ताभिः सार्कं हरिः स्वयम् । पुण्ये वृन्दावने रम्ये रेमे वृन्दावनेश्वरः ॥३६॥

इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे जालंधर्युपाख्यानं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

(बर्हिष्मतीपुरी आदिकी वनिताओंका भगवान् कृष्णके साथ रास-विलास)

श्रीनारद उवाच

व्रजे शोणपुराधीशो गोपो नन्दो धनी महान् । भार्याः पञ्चसहस्राणि बभूवुस्तस्य मैथिल ॥ १ ॥
जाता मत्स्यवरात्तास्तु समुद्रे गोपकन्यकाः । तथाऽन्याश्च विवाचापि पृथिव्या दोहनान्नृप ॥ २ ॥
बर्हिष्मतीपुरंध्र्यो या जाता जातिस्मराः पराः । तथाऽन्याप्सरसोऽभूवन्वरान्नारायणस्य च ॥ ३ ॥
तथा सुतलवासिन्यो वामनस्य वरात्स्त्रियः । तथा नागेन्द्रकन्याश्च जाताः शेषवरात्परात् ॥ ४ ॥
ताभ्यो दुर्वाससा दत्तं कृष्णापञ्चाङ्गमद्भुतम् । तेन संपूज्य यमुनां वव्रिरे श्रीपतिं वरम् ॥ ५ ॥
एकदा श्रीहरिस्ताभिर्वृन्दारण्ये मनोहरे । यमुनानिकटे दिव्ये पुंस्कोकिलतरुव्रजे ॥ ६ ॥
मधुपध्वनिसंयुक्ते कूजत्कोकिलसारसे । मधुमासे मन्दवायौ वसन्तलतिकावृते ॥ ७ ॥
दोलोत्सवं समारेभे हरिर्मदनमोहनः । कदम्बवृक्षे रहसि कल्पवृक्षे मनोहरे ॥ ८ ॥

गया ॥ ३१ ॥ अपनी सेनाकी पराजयका समाचार सुनकर कौरव क्रोधसे मूर्च्छित हो उठे। परंतु वर्तमान समयको दैत्योंके अनुकूल देखकर वे सबके सब चुप रह गये ॥ ३२ ॥ व्रजमण्डलकी सीमापर बर्हिषद् नामसे प्रसिद्ध एक मनोहर पुर था, जिसे बलवान् दैत्यराज कंसने रंगोजिको दे दिया ॥ ३३ ॥ गोपनायक रंगोजि वहीं निवास करने लगा। श्रीहरिके वरदानसे जालंधरके अन्तःपुरकी स्त्रियाँ उसी गोपकी पत्नियोंके गर्भसे उत्पन्न हुईं ॥ ३४ ॥ रूप और यौवनसे विभूषित वे गोपकन्याएँ दूसरे-दूसरे गोपजनोंको ब्याह दी गयीं, परंतु वे जारभावसे भगवान् श्रीकृष्णके प्रति प्रगाढ़ प्रेम करने लगीं ॥ ३५ ॥ वृन्दावनेश्वर श्यामसुन्दरने चैत्र मासके महारासमें उन सबके साथ पुण्यमय रमणीय वृन्दावनके भीतर विहार किया ॥ ३६ ॥ इति *श्रीगर्गसंहितायां* माधुर्यखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन्! व्रजमें शोणपुरके स्वामी नन्द बड़े धनी थे। हे मिथिलेश्वर! उनके पाँच हजार पत्नियाँ थीं ॥ १ ॥ उनके गर्भसे समुद्रसम्भवा लक्ष्मीजीकी वे सखियाँ उत्पन्न हुईं, जिन्हें मत्स्यावतारधारी भगवान्से वैसा वर प्राप्त हुआ था। हे नरेश्वर! इनके सिवा और भी, विचित्र ओषधियाँ, जो पृथ्वीके दोहनसे प्रकट हुई थीं, वहाँ गोपीरूपमें उत्पन्न हुईं ॥ २ ॥ बर्हिष्मतीपुरीकी वे नारियाँ भी, जिन्हें महाराज पृथुका वर प्राप्त था, जातिस्मरा गोपियोंके रूपमें व्रजमें उत्पन्न हुई थीं तथा नर-नारायणके वरदानसे अप्सराएँ भी गोपीरूपमें प्रकट हुई थीं ॥ ३ ॥ सुतलवासिनी दैत्यनारियाँ वामनके वरसे तथा नागराजोंकी कन्याएँ भगवान् शेषके उत्तम वरसे व्रजमें उत्पन्न हुईं ॥ ४ ॥ दुर्वासा मुनिने उन सबको अद्भुत 'कृष्ण-पञ्चाङ्ग' दिया था, जिससे यमुनाजीकी पूजा करके उन्होंने श्रीपतिका वररूपमें वरण किया ॥ ५ ॥ एक दिनकी बात है—मनोहर वृन्दावनमें दिव्य यमुनातटपर, जहाँ नर-कोकिलोंसे सुशोभित हरे-भरे वृक्ष-समुदाय शोभा दे रहे थे, भ्रमरोंके गुञ्जारवके साथ कोकिलों और सारसोंकी मीठी बोली गूँज रही थी, वासन्ती लताओंसे आवृत तथा शीतल-मन्द-सुगन्ध वायुसे परिसेवित मधुमासमें, उन गोपाङ्गनाओंके साथ, मदनमोहन श्यामसुन्दर श्रीहरिने कल्पवृक्षोंकी श्रेणीसे मनोरम प्रतीत होनेवाले कदम्बवृक्षके नीचे एकान्तस्थानमें झूला

कालिन्दीजलकल्लोलकोलाहलसमाकुले । तद्दोलाखेलनं चक्रुस्ता गोप्यः प्रेमविह्वलाः ॥ ९ ॥
राधया कीर्तिसुतया चन्द्रकोटिप्रकाशया । रेजे वृन्दावने कृष्णो यथा रत्या रतीश्वरः ॥१०॥
एवं प्राप्ताश्च याः सर्वाः श्रीकृष्णं नंदनंदनम् । परिपूर्णतमं साक्षात्तासां किं वर्ण्यते तपः ॥११॥
नागेन्द्रकन्या याः सर्वाश्चैत्रमासे मनोहरे । बलभद्रं हरिं प्राप्ताः कृष्णातीरे तु ताः शुभाः ॥१२॥
इदं मया ते कथितं गोपीनां चरितं शुभम् । सर्वपापहरं पुण्यं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१३॥

श्रीबहुलाश्व उवाच

यमुनायाश्च पञ्चाङ्गं दत्तं दुर्वाससा मुने ।
गोपीभ्यो येन गोविन्दः प्राप्तस्तद्ब्रूहि मां प्रभो ॥१४॥

श्रीनारद उवाच

अत्रैवोदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् । यस्य श्रवणमात्रेण पापहानिः परा भवेत् ॥१५॥
अयोध्याधिपतिः श्रीमान्मांधाता राजसत्तमः । मृगयां विचरन् प्राप्तः सौभरेराश्रमं शुभम् ॥१६॥
वृन्दावने स्थितं साक्षात्कृष्णातीरे मनोहरे । नत्वा जामातरं राजा सौभरिं प्राह सानदः ॥१७॥

मांधातोवाच

भगवन्सर्ववित्साक्षात्त्वं परावरवित्तमः । लोकानां तमसोऽन्धानां दिव्यसूर्य इवापरः ॥१८॥
इह लोके भवेद्राज्यं सर्वसिद्धिसमन्वितम् । अमुत्र कृष्णसारूप्यं येन स्यात्तद्वदाशु मे ॥१९॥

सौभरिरुवाच

यमुनायाश्च पञ्चाङ्गं वदिष्यामि तवाग्रतः । सर्वसिद्धिकरं शश्वत्कृष्णसारूप्यकारकम् ॥२०॥
यावत्सूर्य उदेति स्म यावच्च प्रतितिष्ठति । तावद्राज्यप्रदं चात्र श्रीकृष्णवशकारकम् ॥२१॥

कवचं च स्तवं नाम्नां सहस्रं पटलं तथा । पद्धतिं सूर्यवंशेन्द्र पञ्चाङ्गानि विदुर्बुधाः ॥२२॥

इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखंडे नारदबहुलाश्वसंवादे श्रीसौभरिमांधातृसंवादे बर्हिष्मतीपुरंध्र्यप्सरःसुतलवासिनी-नागेन्द्रकन्योपाख्यानं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

अथ षोडशोऽध्यायः

(श्रीयमुना-कवच)

मांधातोवाच

यमुनायाः कृष्णराज्ञ्याः कवचं सर्वतोऽमलम् । देहि मह्यं महाभाग धारयिष्याम्यहं सदा ॥ १ ॥

सौभरिरुवाच

यमुनायाश्च कवचं सर्वरक्षाकरं नृणाम् । चतुष्पदार्थदं साक्षाच्छृणु राजन्महामते ॥ २ ॥
कृष्णां चतुर्भुजां श्यामां पुण्डरीकदलेक्षणाम् । रथस्थां सुन्दरीं ध्यात्वा धारयेत्कवचं ततः ॥ ३ ॥
स्नातः पूर्वमुखो मौनी कृतसंध्यः कुशासने । कुशैर्बद्धशिखो विप्रः पठेद्वै स्वस्तिकासनः ॥ ४ ॥
यमुना मे शिरः पातु कृष्णा नेत्रद्वयं सदा । श्यामा भ्रूभङ्गदेशं च नासिकां नाकवासिनी ॥ ५ ॥
कपोलौ पातु मे साक्षात्परमानन्दरूपिणी । कृष्णवामांससंभूता पातु कर्णद्वयं मम ॥ ६ ॥
अधरौ पातु कालिन्दी चिबुकं सूर्यकन्यका । यमस्वसा कन्धरां च हृदयं मे महानदी ॥ ७ ॥
कृष्णप्रिया पातु पृष्ठं तटिनी मे भुजद्वयम् । श्रोणीतटं च सुश्रोणी कटिं मे चारुदर्शना ॥ ८ ॥
ऊरुद्वयं तु रंभोरुर्जानुनी त्वंघ्रिभेदिनी । गुल्फौ रासेश्वरी पातु पादौ पापप्रहारिणी ॥ ९ ॥
अंतर्बहिरधश्चोर्ध्वं दिशासु विदिशासु च । समंतात्पातु जगतः परिपूर्णतमप्रिया ॥ १० ॥

तकके राज्यकी प्राप्ति करानेवाला तथा यहाँ श्रीकृष्णको भी वशीभूत करनेवाला है ॥ २१ ॥ हे सूर्यवंशेन्द्र ! किसी भी देवताके कवच, स्तोत्र, सहस्रनाम, पटल तथा पद्धति—ये पाँच अङ्ग, विद्वानोंने बताये हैं ॥ २२ ॥

इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

मांधाता बोले—हे महाभाग! आप मुझे श्रीकृष्णकी पटरानी यमुनाके सर्वथा निर्मल कवचका उपदेश दीजिये, मैं उसे सदा धारण करूँगा ॥ १ ॥ सौभरि बोले—हे महामते नरेश ! यमुनाजीका कवच मनुष्योंकी सब प्रकारसे रक्षा करनेवाला तथा साक्षात् चारों पदार्थोंको देनेवाला है, तुम इसे सुनो—॥ २ ॥ यमुनाजीके चार भुजाएँ हैं। वे श्यामा (श्यामवर्णा एवं षोडश वर्षकी अवस्थासे युक्त) हैं। उनके नेत्र प्रफुल्ल कमल-दलके समान सुन्दर एवं विशाल हैं। वे परम सुन्दरी हैं और दिव्य रथपर बैठी हुई हैं। इस प्रकार उनका ध्यान करके कवच धारण करे ॥ ३ ॥ स्नान करके पूर्वाभिमुख हो मौनभावसे कुशासनपर बैठे और कुशोंद्वारा शिखा बाँधकर संध्या-वन्दन करनेके अनन्तर ब्राह्मण (अथवा द्विजमात्र) स्वस्तिकासनसे स्थित हो कवचका पाठ करे ॥ ४ ॥ 'यमुना' मेरे मस्तककी रक्षा करें और 'कृष्णा' सदा दोनों नेत्रोंकी । 'श्यामा' भ्रूभंग-देशकी और 'नाकवासिनी' नासिकाकी रक्षा करें ॥ ५ ॥ 'साक्षात् परमानन्दरूपिणी' मेरे दोनों कपोलोंकी रक्षा करें। 'श्रीकृष्णवामांससम्भूता' (श्रीकृष्णके बायें कंधेसे प्रकट हुई वे देवी) मेरे दोनों कानोंका संरक्षण करें ॥ ६ ॥ 'कालिन्दी' अधरोंकी और 'सूर्यकन्या' चिबुक (ठोढ़ी) की रक्षा करें। 'यमस्वसा' (यमराजकी बहिन) मेरी ग्रीवाकी और 'महानदी' मेरे हृदयकी रक्षा करें ॥ ७ ॥ 'कृष्णप्रिया' पृष्ठभागका और 'तटिनी' मेरी दोनों भुजाओंका रक्षण करें। 'सुश्रोणी' श्रोणीतट (नितम्ब) की और 'चारुदर्शना' मेरे कटिप्रदेशकी रक्षा करें ॥ ८ ॥ 'रम्भोरु' दोनों ऊरुओं (जाँघों) की और 'अङ्घ्रिभेदिनी' मेरे दोनों पाँवोंकी रक्षा करें। 'रासेश्वरी' गुल्फों (घुटनों) का और 'पापापहारिणी' पादयुगलका त्राण करें ॥ ९ ॥ 'परिपूर्णतमप्रिया' भीतर-बाहर, नीचे-ऊपर तथा दिशाओं और विदिशाओंमें सब ओरसे मेरी रक्षा करें ॥ १० ॥

वन्दे लीलावतीं त्वां सघनघननिभां कृष्णवामांसभूतां
वेगं वै वैरजाख्यं सकलजलचयं खण्डयंतीं बलात्स्वात् ।
छित्वा ब्रह्माण्डमारात्सुरनगरनगान्गण्डशैलादिदुर्गान्
भित्त्वा भूखण्डमध्ये तटनिधृतवतीमूर्मिमालां प्रयांतीम् ॥ ६ ॥
दिव्यं कौ नामधेयं श्रुतमथ यमुने दण्डयत्यद्रितुल्यं
पापव्यूहं त्वखण्डं वसतु मम गिरां मण्डले तु क्षणं तत् ।
दण्ड्यांश्चाकार्यदण्ड्यान्सकृदपि वचसा खण्डितं यद्गृहीतं
भ्रातुर्मार्तंडसूनोरटति पुरि दृढस्ते प्रचण्डोऽतिदण्डः ॥ ७ ॥
रज्जुर्वा विषयांधकूपतरणे पापाखुदर्वीकरी
वेण्युष्णिक् च विराजमूर्तिशिरसो मालाऽस्ति वा सुन्दरी ।
धन्यं भाग्यमतः परं भुवि नृणां यत्रादिकृद्वल्लभा
गोलोकेऽप्यतिदुर्लभाऽतिशुभगा भात्यद्वितीया नदी ॥ ८ ॥
गोपीगोकुलगोपकेलिकलिते कालिन्दि कृष्णप्रभे
त्वत्कूले जललोलगोलविचलत्कल्लोलकोलाहलः ।
त्वत्कांतारकुतूहलालिकुलकृज्झंकारकेकाकुलः
कूजत्कोकिलसंकुलो व्रजलतालङ्कारभृत्पातु माम् ॥ ९ ॥
भवंति जिह्वास्तनुरोमतुल्या गिरो यदा भूसिकता इवाशु ।
तदप्यलं यान्ति न ते गुणांतं संतो महांतः किल शेषतुल्याः ॥१०॥

होता है ॥ ५ ॥ हे तटिनि ! तुम लीलावती हो, मैं तुम्हारी वन्दना करता हूँ। तुम घनीभूत मेघके समान श्याम कान्ति धारण करती हो। श्रीकृष्णके बायें कंधेसे तुम्हारा प्राकट्य हुआ है। सम्पूर्ण जलोंकी राशिरूपा जो विरजा नदीका वेग है, उसको भी अपने बलसे खण्डित करती हुई, ब्रह्माण्डको छेदकर देवनगर, पर्वत, गण्डशैल आदि दुर्गम वस्तुओंका भेदन करके तुम इस भूमिखण्डके मध्यभागमें अपनी तरङ्गमालाओंको स्थापित करके प्रवाहित होती हो ॥ ६ ॥ हे यमुने ! पृथ्वीपर तुम्हारा नाम दिव्य है। वह श्रवणपथमें आकर पर्वताकार पापसमूहको भी दण्डित एवं खण्डित कर देता है। तुम्हारा वह अखण्ड नाम मेरे वाङ्मण्डल—वचनसमूहमें क्षणभर भी स्थित हो जाय। यदि वह एक बार भी वाणीद्वारा गृहीत हो जाय तो समस्त पापोंका खण्डन हो जाता है। उसके स्मरणसे दण्डनीय पापी भी अदण्डनीय हो जाते हैं। तुम्हारे भाई सूर्यपुत्र यमराजके नगरमें तुम्हारा 'प्रचण्डा' यह नाम सुदृढ़ अतिदण्ड बनकर विचरता है ॥ ७ ॥ तुम विषयरूपी अन्धकूपसे पार जानेके लिये रस्सी हो; अथवा पापरूपी चूहोंको निगल जानेवाली काली नागिन हो; अथवा विराट् पुरुषकी मूर्तिकी वेणीको अलंकृत करनेवाला नीले पुष्पोंका गजरा हो या उनके मस्तकपर सुशोभित होनेवाली सुन्दर नीलमणिकी माला हो। जहाँ आदिकर्ता भगवान् श्रीकृष्णकी वल्लभा, गोलोकमें भी अतिदुर्लभा, अति सौभाग्यवती तथा अद्वितीया नदी श्रीयमुना प्रवाहित होती हैं, उस भूतलके मनुष्योंका भाग्य इसी कारणसे धन्य है ॥ ८ ॥ गौओंके समुदाय तथा गोप-गोपियोंकी क्रीडासे कलित कलिन्दनन्दिनी हे यमुने ! हे कृष्णप्रभे ! तुम्हारे तटपर जो जलकी गोलाकार, चपल एवं उत्ताल तरङ्गोंका कोलाहल (कल-कल रव) होता है, वह सदा मेरी रक्षा करे। तुम्हारे दुर्गम कुञ्जोंके प्रति कौतूहल रखनेवाले भ्रमर-समुदायके गुञ्जारव, मयूरोंकी केका तथा कूजते हुए कोकिलोंकी काकलीका शब्द भी उस कोलाहलमें मिला रहता है तथा वह व्रज-लताओंके अलंकारको धारण करनेवाला है ॥ ९ ॥ शरीरमें जितने रोम हैं, उतनी ही जिह्वाएँ हो जायँ, धरतीपर जितने सिकताकण हैं, उतनी ही वाग्देवियाँ आ जायँ और उनके साथ संत-महात्मा भी

कलिन्दगिरिनन्दिनीस्तव उपस्ययं वापरः श्रुतश्च यदि पाठितो भुवि तनोति सन्मङ्गलम् ।
जनोऽपि यदि धारयेत्किल पठेच्च यो नित्यशः स याति परमं पदं निजनिकुञ्जलीलावृतम् ॥११॥

इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीसौभरिमांधातृसंवादे श्रीयमुनास्तवो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अथ अष्टादशोऽध्यायः

(यमुनाजीके जप और पूजनके लिये पटल और पद्धतिका वर्णन)

मांधातोवाच

कृष्णायाः पटलं पुण्यं कामदं पद्धतिं तथा । वद मां मुनिशार्दूल त्वं साक्षाज्ज्ञानशेवधिः ॥ १ ॥

सौभरिरुवाच

पटलं पद्धतिं वक्ष्ये यमुनाया महामते । कृत्वा श्रुत्वाऽथ जप्त्वा वा जीवन्मुक्तो भवेन्नरः॥ २ ॥
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य मायाबीजं ततः परम् । रमाबीजं ततः कृत्वा कामबीजं विधानतः ॥ ३ ॥
कालिन्दीति चतुर्थ्यंतं देवीपदमतः परम् । नमः पश्चात्संविधार्य जपेन्मंत्रमिमं नरः ॥ ४ ॥
जप्त्वैकादश लक्षाणि मंत्रसिद्धिर्भवेद्भुवि । जनैः प्रार्थ्याश्च ये कामाः सर्वे प्राप्याःस्वतश्च ते॥ ५ ॥
विधाय षोडशदलं पद्मं सिंहासने शुभे । कर्णिकायां च कालिंदीं न्यसेच्छ्रीकृष्णसंयुताम्॥ ६ ॥
जाह्नवीं विरजां कृष्णां चन्द्रभागां सरस्वतीम् । गोमतीं कौशिकीं वेणीं सिंधुं गोदावरीं तथा ॥ ७ ॥
वेदस्मृतिं वेत्रवतीं शतद्रुं सरयूं तथा । पूजयेन्मानवश्रेष्ठ ऋषिकुल्यां ककुद्मिनीम् ॥ ८ ॥
पृथक्पृथक् तद्दलेषु नामोच्चार्य विधानतः । वृन्दावनं गोवर्द्धनं वृन्दां च तुलसीं तथा ॥
चतुर्दिक्षु विधायाशु पूजयेन्नामभिः पृथक् ॥ ९ ॥

शेषनागके समान सहस्रों जिह्वाओंसे युक्त होकर गुणगान करने लग जायँ, तथापि तुम्हारे गुणोंका अन्त कभी नहीं पा सकते ॥ १० ॥ कलिन्दगिरिनन्दिनी यमुनाका यह उत्तम स्तोत्र यदि उषाकालमें ब्राह्मणके मुखसे सुना जाय अथवा स्वयं पढ़ा जाय तो भूतलपर परम मंगलका विस्तार करता है । जो कोई भी मनुष्य यदि नित्यशः इसका धारण (चिन्तन) करे तो वह भगवान्‌की निज निकुञ्ज-लीलाके द्वारा वरण किये गये परमपदको प्राप्त होता है ॥११॥ इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखंडे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

मांधाता बोले—हे मुनिश्रेष्ठ ! यमुनाजीके कामपूरक पवित्र पटल तथा पद्धतिका जैसा स्वरूप है, वह मुझे बताइये; क्योंकि आप साक्षात् ज्ञानकी निधि हैं ॥ १ ॥ सौभरिने कहा—हे महामते ! अब मैं यमुनाजीके पटल तथा पद्धतिका भी वर्णन करता हूँ, जिसका अनुष्ठान, श्रवण अथवा जप करके मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है ॥ २ ॥ पहले प्रणव (ॐ) का उच्चारण करके फिर मायाबीज (ह्रीं) का उच्चारण करे । तत्पश्चात् लक्ष्मीबीज (श्रीं) को रखकर उसके बाद कामबीज (क्लीं) का विधिवत् प्रयोग करे ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर 'कालिन्दी' शब्दका चतुर्थ्यन्त रूप (कालिन्द्यै) रक्खे । फिर 'देवी' शब्दके चतुर्थ्यन्तरूप (देव्यै) का प्रयोग करके अन्तमें 'नमः' पद जोड़ दे । (इस प्रकार 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं कालिन्द्यै देव्यै नमः ।' यह मन्त्र बनेगा ।) इस मन्त्रका मनुष्य विधिवत् जप करे ॥ ४ ॥ इस ग्यारह अक्षरवाले मन्त्रका ग्यारह लाख जप करनेसे इस पृथ्वीपर सिद्धि प्राप्त हो सकती है । मनुष्योंद्वारा जिन-जिन काम्य-पदार्थोंके लिये प्रार्थना की जाती है, वे सब स्वतः सुलभ हो जाते हैं ॥ ५ ॥ सुन्दर सिंहासनपर षोडश दल अङ्कित करके उसकी कर्णिकामें श्रीकृष्णसहित कालिन्दीका न्यास (स्थापना) करे ॥ ६ ॥ कमलके सोलह दलोंमें अलग-अलग विधिपूर्वक नाम ले-लेकर मानवश्रेष्ठ साधक क्रमशः गङ्गा, विरजा, कृष्णा, चन्द्रभागा, सरस्वती, गोमती, कौशिकी, वेणी, सिंधु, गोदावरी, वेदस्मृति, वेत्रवती, शतद्रू, सरयू, ऋषिकुल्या तथा ककुद्मिनीका पूजन करे ॥ ७ ॥ ८ ॥ पूर्वा

ॐ नमो भगवत्यै कलिन्दनंदिन्यै सूर्यकन्यकायै यमभगिन्यै श्रीकृष्णप्रियायै यूथीभूतायै स्वाहा ।
अनेन मंत्रेणावाहनादिषोडशोपचारान्समाहित उपाहरेत् ॥१०॥
इत्येवं पटलं विद्धि तुभ्यं वक्ष्यामि पद्धतिम् । यावत्संपूर्णतां याति पुरश्चरणमेव हि ॥११॥
तावद्भवेद्ब्रह्मचारी जपेन्मौनव्रती द्विजः । यवभोजी भूमिशायी पत्रभुग्जितमानसः ॥१२॥
कामं क्रोधं तथा लोभं मोहं द्वेषं विसृज्य सः । भक्त्या परमया राजन् वर्तमानस्तु देशकः ॥१३॥
ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय ध्यात्वा देवीं कलिंदजाम् । अरुणोदयवेलायां नद्यां स्नानं समाचरेत् ॥१४॥
मध्याह्ने चापि संध्यायां संध्यावन्दनतत्परः । समाप्ते नियमे राजन् कालिन्दीतीरमास्थितः ॥१५॥
दशलक्षं ब्राह्मणानां सपुत्राणां महात्मनाम् । पूजयित्वा गन्धपुष्पैर्दत्त्वा तेभ्यः सुभोजनम् ॥१६॥
वस्त्रभूषणसौवर्णपात्राणि प्रस्फुरंति च । दक्षिणाश्च शुभा दद्यात्ततः सिद्धिर्भवेत्खलु ॥१७॥
इति ते पद्धतिः प्रोक्ता मया राजन्महामते । कुरु त्वं नियमं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१८॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीमाधुर्यखंडे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे सौभरिमांधातृसंवादे पटलपद्धतिवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

अथ एकोनविंशोऽध्यायः

(यमुना-सहस्रनाम)

मान्धातोवाच

नाम्नां सहस्रं कृष्णायाः सर्वसिद्धिकरं परम् । वद मां मुनिशार्दूल त्वं सर्वज्ञो निरामयः ॥ १ ॥

सौभरिरुवाच

नाम्नां सहस्रं कालिंद्या मान्धातस्ते वदाम्यहम् । सर्वसिद्धिकरं दिव्यं श्रीकृष्णवशकारकम् ॥ २ ॥

चार दिशाओंमें क्रमशः वृन्दावन, गोवर्धन, वृन्दा तथा तुलसीका उनके नामोच्चारणपूर्वक क्रमशः पूजन करे ॥ ९ ॥ तत्पश्चात् 'ॐ नमो भगवत्यै कलिन्दनन्दिन्यै सूर्यकन्यकायै यमभगिन्यै श्रीकृष्णप्रियायै यूथीभूतायै स्वाहा ।' इस मन्त्रसे आवाहन आदि सोलह उपचारोंको एकाग्रचित्त होकर अर्पित करे ॥ १० ॥ इस प्रकार यमुनाका पटल जानो । अब पद्धति बताऊँगा । जबतक पुरश्चरण पूरा न हो जाय, तबतक ब्रह्मचर्यका पालन करते हुये मौनावलम्बनपूर्वक द्विजको जप करना चाहिये । पुरश्चरणकालमें जौका आटा खाय, पृथ्वीपर शयन करे, पत्तलपर भोजन करे और मनको वशमें रक्खे ॥ ११ ॥ १२ ॥ हे राजन् ! आचार्यको चाहिये कि काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा द्वेषको त्यागकर परम भक्तिभावसे जपमें प्रवृत्त रहे ॥ १३ ॥ ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर कालिन्दी देवीका ध्यान करे और अरुणोदयकी वेलामें नदीमें स्नान करे ॥ १४ ॥ मध्याह्नकालमें और दोनों संध्याओंके समय संध्या-वन्दन अवश्य किया करे । हे राजन् ! जब अनुष्ठान समाप्त हो, तब यमुनाके तटपर जाकर पुत्रोंसहित दस लाख महात्मा ब्राह्मणोंका गन्ध-पुष्पसे पूजन करके उन्हें उत्तम भोजन दे ॥ १५ ॥ १६ ॥ तदनन्तर वस्त्र, आभूषण और सुवर्णमय चमकीले पात्र तथा उत्तम दक्षिणाएँ दे । इससे निश्चय ही सिद्धि प्राप्त होती है ॥ १७ ॥ हे महामते नरेश ! इस प्रकार मैंने तुमसे यमुयनाजीके जप और पूजनकी पद्धति बतायी है । तुम सारा नियम पूर्ण करो । बताओ; अब और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ १८ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

मांधाता बोले—हे मुनिश्रेष्ठ ! यमुनाजीका सहस्रनाम समस्त सिद्धियोंकी प्राप्ति करानेवाला उत्तम साधन है, आप मुझे उसका उपदेश कीजिये; क्योंकि आप सर्वज्ञ और निरामय (रोग-शोकसे रहित) हैं ॥१॥ सौभरिने कहा—हे मांधाता नरेश ! मैं तुमसे 'कालिन्दी-सहस्रनाम' का वर्णन करता हूँ । वह समस्त सिद्धियों

ॐअस्य श्रीकालिन्दीसहस्रनामस्तोत्रमंत्रस्य सौभरिऋषिः श्रीयमुना देवताः अनुष्टुप् छंदः मायावीजमिति कीलकम् रमावीजमिति शक्तिः श्रीकलिंदनन्दिनीप्रसादसिद्धयर्थे जपे विनियोगः।

अथ ध्यानम्।

श्यामामंभोजनेत्रां सघनघनरुचिं रत्नमञ्जीरकूज-
त्काञ्चीकेयूरयुक्तां कनकमणिमयेविभ्रतीं कुण्डले द्वे।
भ्राजच्छ्रीनीलवस्त्रस्फुरदमलचलद्धारभारां मनोज्ञां
ध्यायेन्मार्तंडपुत्रीं तनुकिरणचयोद्दीप्तदीपाभिरामाम्॥ ३॥

इति ध्यानम्।

ॐकालिन्दी यमुना कृष्णा कृष्णरूपा सनातनी। कृष्णवामांससंभूता परमानन्दरूपिणी॥ ४॥
गोलोकवासिनी श्यामा वृन्दावनविनोदिनी। राधासखी रासलीला रासमंडलमंडनी॥ ५॥
निकुञ्जमाधवीवल्ली रङ्गवल्ली मनोहरा। श्रीरासमण्डलीभूता यूथीभूता हरिप्रिया॥ ६॥
गोलोकतटिनी दिव्या निकुञ्जतलवासिनी। दीर्घोर्मिवेगगंभीरा पुष्पपल्लववाहिनी॥ ७॥
घनश्यामा मेघमाला वलाका पद्ममालिनी। परिपूर्णतमा पूर्णा पूर्णब्रह्मप्रिया परा॥ ८॥
महावेगवती साक्षान्निकुञ्जद्वारनिर्गता। महानदी मंदगतिर्विरजा वेगभेदिनी॥ ९॥

की प्राप्ति करानेवाला, दिव्य तथा श्रीकृष्णको वशीभूत करनेवाला है॥ २॥ विनियोग—ॐ अस्य श्रीकालिन्दीसहस्रनामस्तोत्रमन्त्रस्य सौभरिर्ऋषिः, श्रीयमुना देवता, अनुष्टुप् छन्दः, मायावीजमिति कीलकम्, रमावीजमिति शक्तिः, श्रीकलिन्दनन्दिनीप्रसादसिद्धयर्थे जपे विनियोगः। यह वाक्य पढ़कर सहस्रनाम-पाठके लिये विनियोगका जल छोड़े। जो श्यामा (श्यामवर्णा एवं षोडश वर्षकी अवस्थावाली) हैं, जिनके नेत्र प्रफुल्ल कमल-दलकी शोभाको छीने लेते हैं, घनीभूत मेघके समान जिनकी नील कान्ति है, जो रत्नों द्वारा निर्मित बजते हुए नूपुर और झनकारती हुई करधनी एवं केयूर आदि आभूषणोंसे युक्त हैं तथा कानोंमें सुवर्ण एवं मणिनिर्मित दो कुण्डल धारण करती हैं, दीप्तिमती नीली साड़ीपर चमकते हुए गजमौक्तिकके चञ्चल हारका भार वहन करनेसे अत्यन्त मनोहर जान पड़ती हैं, शरीरसे छिटकती हुई किरणोंकी राशिसे उद्दीप्त होनेके कारण जिनकी प्रज्वलित दीपमालाके समान शोभा हो रही है, उन सूर्यनन्दिनी यमुनाजीका मैं ध्यान करता हूँ॥ ३॥ १. ॐ कालिन्दी=सच्चिदानन्दस्वरूपा कलिन्दगिरिनन्दिनी, २. यमुना=यमकी वहिन, ३. कृष्णा=कृष्णवर्णा, ४. कृष्णरूपा=कृष्णस्वरूपा अथवा कृष्ण रूपवाली, ५. सनातनी=नित्या, ६. कृष्णवामांससम्भूता=श्रीकृष्णके बायें कंधेसे प्रकट हुई, ७. परमानन्दरूपिणी=परमानन्दमयी॥ ४॥ ८. गोलोकवासिनी=गोलोकधाममें निवास करनेवाली, ९. श्यामा=श्यामवर्णा अथवा षोडश वर्षकी अवस्थावाली, १०. वृन्दावनविनोदिनी=वृन्दावनमें मनोरञ्जन करनेवाली, ११. राधासखी=श्रीराधाकी सहचरी, १२. रासलीला=रासमण्डलमें लीलापरायणा अथवा रासलीलास्वरूपा, १३. रासमण्डलमण्डनी=रासमण्डलको अलंकृत करनेवाली॥ ५॥ १४. निकुञ्जवासिनी=निकुञ्जमें निवास करनेवाली, १५. वल्ली=लतास्वरूपा, १६. रङ्गवल्ली=रासरङ्गस्थलीमें वल्लीके समान शोभा पानेवाली अथवा रङ्गवल्ली नामकी राधा-सखी गोपीसे अभिन्नस्वरूपा, १७. मनोहरा=मनको हर लेनेवाली, १८. श्रीः - लक्ष्मीस्वरूपा, १९. रासमण्डलीभूता=रासमण्डलस्वरूपा अथवा मण्डलाकार होकर रासमण्डलको अलंकृत करनेवाली, २०. यूथीभूता=अपनी सहचरियोंके यूथसे संयुक्त, २१. हरिप्रिया=श्रीकृष्णकी प्यारी॥ ६॥ २२. गोलोकतटिनी = गोलोकधामकी नदी, २३. दिव्या=दिव्यस्वरूपा, २४. निकुञ्जतलवासिनी=निकुञ्जके भीतर निवास करनेवाली, २५. दीर्घा=बहुत लंबे परिमाणकी, २६. ऊर्मिवेगगम्भीरा=तरंगके वेगसे युक्त एवं गहरी, २७. पुष्पपल्लववाहिनी=फूलों और पल्लवोंको बहानेवाली॥ ७॥ २८. घनश्यामा=मेघके समान श्याम कान्तिवाली, २९. मेघमाला=घनमालास्वरूपा, ३०. वलाका=बकपंक्तिस्वरूपा, ३१. पद्ममालिनी=कमलोंकी मालासे अलंकृत, ३२. परिपूर्णतमा=परिपूर्णतम भगवत्स्वरूपा, ३३. पूर्णा=पूर्णस्वरूपा, ३४. पूर्णब्रह्मप्रिया=पूर्णब्रह्म श्रीकृष्णकी प्रेयसी, ३५. परा=परा शक्तिस्वरूपा॥ ८॥ ३६.

दर्पणा दर्पणीभूता दुष्टदर्पविनाशिनी । कंबुग्रीवा कंबुधरा ग्रैवेयकविराजिता ॥२८॥
ताटंकिनी दंतधरा हेमकुण्डलमण्डिता । शिखाभूषा भालपुष्पा नासामौक्तिकशोभिता ॥२९॥
मणिभूमिगता देवी रैवताद्रिविहारिणी । वृन्दावनगता वृन्दा वृन्दारण्यनिवासिनी ॥३०॥
वृन्दावनलता माध्वी वृन्दारण्यविभूषणा । सौंदर्यलहरी लक्ष्मीर्मथुरातीर्थवासिनी ॥३१॥
विश्रांतवासिनी काम्या रम्या गोकुलवासिनी । रमणस्थलशोभाढ्या महावनमहानदी ॥३२॥
प्रणता प्रोन्नता पुष्टा भारती भरतार्चिता । तीर्थराजगतिर्गोत्रा गंगासागरसंगमा ॥३३॥
सप्ताब्धिभेदिनी लोला सप्तद्वीपगता बलात् । लुठन्ती शैलान् भिद्यंती स्फुरंती वेगवत्तरा ॥३४॥
काञ्चनी काञ्चनी भूमिः काञ्चनीभूमिभाविता । लोकदृष्टिर्लोकलीला लोकालोकाचलार्चिता ॥३५॥
शैलोद्गता स्वर्गगता स्वर्गार्चा स्वर्गपूजिता । वृन्दावनी वनाध्यक्षा रक्षा कक्षा तटीपटी ॥३६॥

करनेवाली ॥२६॥ १७८. श्रीहारिणी=श्रीहारधारिणी, १७९. पद्महारा=कमलोंकी मालासे अलंकृत, १८०. मुक्ता=नित्य-मुक्त, १८१. मुक्ताफलार्चिता=मुक्ताफलोंसे पूजित, १८२. रत्नकङ्कणकेयूरा=रत्ननिर्मित कंगन और केयूर (भुजबंद) धारण करनेवाली, १८३. स्फुरदङ्गुलिभूषणा=जिनकी अङ्गुलियोंके भूषण उद्भासित हो रहे हैं ॥ २७ ॥ १८४. दर्पणा=दर्पणस्वरूपा, १८५. दर्पणीभूता=अपने जलकी निर्मलताके कारण दर्पणका काम देनेवाली, १८६. दुष्टदर्पविनाशिनी=दुष्टोंके घमंडको चूर करनेवाली, १८७. कम्बुग्रीवा=शङ्खके समान सुन्दर कण्ठवाली, १८८. कम्बुधरा=शङ्खनिर्मित आभूषण धारण करनेवाली, १८९. ग्रैवेयकविराजिता=कण्ठभूषणसे सुशोभित ॥ २८ ॥ १९०. ताटङ्किनी='ताटङ्क (तरकी)' नामक आभूषणविशेषको धारण करनेवाली, १९१. दन्तधरा=दन्तधारिणी, १९२. हेमकुण्डलमण्डिता=काञ्चन-निर्मित कुण्डलोंसे अलंकृत, १९३. शिखाभूषा=अपनी चोटीको विभूषित करनेवाली, १९४. भालपुष्पा=ललाट-देशमें पुष्पमय शृङ्गार धारण करनेवाली, १९५. नासामौक्तिकशोभिता=नाकमें मोतीकी बुलाकसे शोभित, ॥ २९ ॥ १९६. मणिभूमिगता=मणिमयी भूमिपर विचरनेवाली, १९७. देवी=दिव्यस्वरूपा, १९८. रैवताद्रिविहारिणी = श्रीकृष्णकी पटरानीके रूपमें रैवतक पर्वतपर विहार करनेवाली, १९९. वृन्दावनगता=वृन्दावनमें विद्यमान, २००. वृन्दा=वृन्दावनकी अधिष्ठातृदेवी-स्वरूपा, २०१. वृन्दारण्यनिवासिनी=वृन्दावनमें निवास करनेवाली, ॥ ३० ॥ २०२. वृन्दावनलता=वृन्दावनकी लताओंके साथ तादात्म्यको प्राप्त हुई, २०३. माध्वी=मकरन्दस्वरूपा, २०४. वृन्दारण्यविभूषणा=वृन्दावनको विभूषित करनेवाली, २०५. सौन्दर्यलहरी लक्ष्मीः=सुन्दरताकी तरङ्गोंसे युक्त लक्ष्मीस्वरूपा, २०६. मथुरातीर्थवासिनी=मथुरापुरीरूप तीर्थमें निवास करनेवाली, ॥ ३१ ॥ २०७. विश्रान्तवासिनी='विश्रान्त' तीर्थ (विश्रामघाट) में वास करनेवाली, २०८. काम्या=कमनीया, २०९. रम्या=रमणीया, २१०. गोकुलवासिनी=गोकुलमें निवास करनेवाली, २११. रमणस्थलशोभाढ्या=रमणस्थलीकी शोभा बढ़ानेवाली, २१२. महावनमहानदी='महावन' नामक वनमें प्रवाहित होनेवाली महती नदी, ॥ ३२ ॥ २१३. प्रणता=भक्तजनोंद्वारा वन्दिता, २१४. प्रोन्नता=अत्यन्त उत्कृष्ट गोलोकधाममें स्थित, अथवा ऊँची लहरोंके कारण उन्नत, २१५. पुष्टा=प्रेमानुग्रहसे परिपुष्ट, २१६. भारती=भारतवर्षकी नदी, २१७. भरतार्चिता=भरतके द्वारा पूजित, २१८. तीर्थराजगतिः=तीर्थराज प्रयागकी आश्रयभूता, २१९. गोत्रा=गौओंका त्राण करनेवाली अथवा गिरिस्वरूपा, २२०. गङ्गासागरसंगमा=गङ्गा तथा सागरसे संगत, ॥ ३३ ॥ २२१. सप्ताब्धिभेदिनी=सात समुद्रोंका भेदन करनेवाली, २२२. लोला=लोल लहरोंवाली, २२३. बलात्सप्तद्वीपगता=बलपूर्वक सातों द्वीपोंमें जानेवाली, २२४. लुठन्ती=धरतीपर लोटनेवाली, २२५. शैलान्भिद्यन्ती=पर्वतोंका भेदन करनेवाली, २२६. स्फुरन्ती=स्फुरणशीला अथवा अपनी दिव्य प्रभा बिखेरनेवाली, २२७. वेगवत्तरा=अतिशय वेगशालिनी, ॥ ३४ ॥ २२८. काञ्चनी=स्वर्णमयी, २२९. काञ्चनीभूमिः=गोलोककी स्वर्णमयी भूमिपर प्रवाहित होनेवाली, २३०. काञ्चनीभूमिभाविता=स्वर्णमयी भूमिपर प्रकट, २३१. लोकदृष्टिः=जगत्को दिव्यदृष्टि प्रदान करनेवाली, २३२. लोकलीला=लोकमें लीला करनेवाली, २३३. लोकालोकाचलार्चिता=लोकालोकपर्वतपर पूजित होनेवाली, ॥ ३५ ॥ २३४. शैलोद्गता=कलिन्दपर्वतसे निकली हुई, २३५. स्वर्गगता=मन्दाकिनीरूपसे स्वर्गमें गयी हुई, २३६. स्वर्गार्चा=स्वर्गमें अर्चित होनेवाली, २३७. स्वर्गपूजिता=स्वर्गलोकमें पूजित, २३८. वृन्दावनी=वृन्दावनकी अधिष्ठातृस्वरूपा देवी, २३९. वनाध्यक्षा=

अपिकुण्डगता कच्छा स्वच्छन्दोच्छलितादिजा । कुहरस्था रथप्रस्था प्रस्था शांततराऽऽतुरा ॥३७॥
अंबुच्छटा शीकराभा दर्दुरा दार्दुरीधरा । पापाङ्कुशा पापसिंही पापद्रुमकुठारिणी ॥३८॥
पुण्यसंघा पुण्यकीर्तिः पुण्यदा पुण्यवर्द्धिनी । मधोर्वननदी मुख्याऽतुला तालवनस्थिता ॥३९॥
कुमुद्वननदी कुब्जा कुमुदांभोजवर्द्धिनी । प्लवरूपा वेगवती सिंहसर्पादिवाहिनी ॥४०॥
बहुली बहुदा बह्वी बहुला बनवन्दिता । राधाकुण्डकलाराध्या कृष्णकुण्डजलाश्रिता ॥४१॥
ललिताकुण्डगा घंटा विशाखाकुण्डमंडिता । गोविन्दकुण्डनिलया गोपकुण्डतरंगिणी ॥४२॥
श्रीगंगा मानसी गंगा कुसुमांबरभाविनी । गोवर्धिनी गोधनाढ्या मयूरी वरवर्णिनी ॥४३॥
सारसी नीलकंठाभा कूजत्कोकिलपोतकी । गिरिराजप्रसूर्भूरिरातपत्रातपत्रिणी ॥४४॥

वनकी स्वामिनी, २४०. रक्षा=रक्षिता या रक्षारूपा, २४१. कक्षा=वृन्दावनके लिये मेखलारूपा, २४२. तटी-पटी=तटभूमिको वस्त्रकी भाँति ढकनेवाली, ॥ ३६ ॥ २४३. असिकुण्डगता=असिकुण्डमें प्राप्त, २४४. कच्छा=कछारकी भूमिस्वरूपा, २४५. स्वच्छन्दा = स्वच्छन्दगामिनी, २४६. उच्छलिता = वेगसे उछलनेवाली, २४७. आदिजा=आदिभूत श्रीकृष्णके वामांससे उद्भूत (अथवा 'अद्रिजा' पाठ माना जाय तो पर्वतसे उत्पन्न हुई)' २४८. कुहरस्था=सरस्वतीरूपसे भूछिद्रमें अथवा भोगवतीरूपसे पाताल-विवरमें स्थित, २४९. रथप्रस्था=श्रीकृष्णकी पटरानीके रूपमें रथपर यात्रा करनेवाली, २५०. प्रस्था=प्रस्थानशीला, २५१. शान्ततरा=परम शान्तिमयी, २५२. आतुरा=श्रीकृष्णदर्शनके लिये आतुर रहनेवाली, ॥ ३७ ॥ २५३. अम्बुच्छटा=जलकी छटासे शोभित, २५४. शीकराभा=कुहरोंसे सुशोभित होनेवाली, २५५. दर्दुरा=मेढकोंका आश्रय, अथवा बादलके समान श्याम कान्तिवाली, २५६. दार्दुरीधरा=अपने जलके कल-कल निनादसे दादुरोंकी-सी ध्वनि धारण करनेवाली, २५७. पापांकुशा=पापोंको नष्ट करनेके लिये अङ्कुशस्वरूपा, २५८. पापसिंही=पापरूपी गजराजको नष्ट करनेके लिए सिंहीके तुल्य, २५९. पापद्रुमकुठारिणी=पापरूपी वृक्षका उच्छेद करनेके लिये कुठाररूपा ॥ ३८ ॥ २६०. पुण्यसंघा=पुण्यसमुदायरूपा, २६१. पुण्यकीर्तिः=पवित्र कीर्तिवाली अथवा जिसका पुण्य वांछा प्रदान करनेवाला है, २६२. पुण्यदा=पुण्यदायिनी, २६३. पुण्यवर्द्धिनी=अपने दर्शनसे पुण्यकी वृद्धि करनेवाली, २६४. मधुवननदी=मधुवनमें बहनेवाली नदी, २६५. मुख्या=एक प्रधान नदी, २६६. अतुला=तुलनारहित, २६७. तालवनस्थिता=तालवनमें स्थित रहनेवाली ॥३९॥ २६८. कुमुद्वननदी=कुमुदवनकी नदी, २६९. कुब्जा=टेढ़ी-मेढ़ी, २७०. कुमुदा=भगवती दुर्गास्वरूपा, २७१. अम्भोजवर्द्धिनी=अपने जलमें कमलोंको बढ़ानेवाली, २७२. प्लवरूपा=संसारसागरसे पार होनेके लिये नौकास्वरूपा, २७३. वेगवती=वेगशालिनी, २७४. सिंहसर्पादिवाहिनी=अपने जलकी धारामें सिंहों तथा सर्पादि जन्तुओंको बहा ले जानेवाली, ॥ ४० ॥ २७५. बहुली=बहुलरूपवाली, २७६. बहुदा=बहुत देनेवाली, २७७. बह्वी=भूमा (ब्रह्म) स्वरूपा, २७८. बहुला=गोरूपा, २७९. वनवन्दिता=वनोंद्वारा वन्दित, २८०. राधाकुण्डकला=अपनी कलासे राधाकुण्डमें स्थित, २८१. आराध्या=आराधनके योग्य, २८२. कृष्णकुण्डजलाश्रिता=कृष्णकुण्डके जलमें निवास करनेवाली ॥ ४१ ॥ २८३. ललिताकुण्डगा=ललिताकुण्डमें व्याप्त, २८४. घण्टा=घण्टा-ध्वनिके सदृश अनुरणनात्मक शब्द करनेवाली, २८५. विशाखा=विशाखा-सखी-स्वरूपा, २८६. कुण्डमण्डिता=कुण्डों (ह्रदों) से सुशोभित, २८७. गोविन्दकुण्डनिलया=गोविन्दकुण्डमें निवास करनेवाली, २८८ गोपकुण्डतरंगिणी=गोपकुण्डमें तरंगित होनेवाली ॥ ४२ ॥ २८९. श्रीगङ्गा=श्रीगङ्गा-स्वरूपा, २९०. मानसीगङ्गा=मानसी-गङ्गास्वरूपा, २९१. कुसुमाम्बरभाविनी=पुण्यमय वस्त्रसे सुशोभित अथवा कुसुम-सरोवरके आकाशमें प्रकट होनेवाली, २९२. गोवर्द्धिनी=गोवर्धननायकी शक्ति अथवा गौओंकी वृद्धि करनेवाली, २९३. गोधनाढ्या=गोधनसे सम्पन्न, २९४. मयूरवरवर्णिनी=मोरोंके समान सुन्दर वर्णवाली ॥४३॥ २९५. सारसी=सरोवरोंकी जल-सम्पत्ति अथवा सारस पक्षियोंकी आश्रयभूता, २९६. नीलकण्ठाभा=नील-कण्ठ या मयूरकी-सी आभावाली, २९७. कूजत्कोकिलपोतकी=जहाँ कोकिल-कुमारियोंके कल-कूजन होते रहते हैं, ऐसी, २९८. गिरिराजप्रसूः=गिरिराज हिमालयके कलिन्दपर्वतसे प्रकट, २९९. भूरिः=बहुवैभव-शालिनी, ३००. आतपत्रा=तटपर रहनेवाले लोगोंकी धूपके कष्टसे रक्षा करनेवाली, ३०१. आतपत्रिणी=

गोवर्द्धनांका गोदंती दिव्यौषधिनिधिः सृतिः । पारदी पारदमयी नारदी शारदी भृतिः ॥४५॥
श्रीकृष्णचरणांकस्था कामा कामवनाञ्चिता । कामाटवी नन्दिनी च नन्दग्राममहीधरा ॥४६॥
बृहत्सानुद्युतिः प्रोता नन्दीश्वरसमन्विता । काकली कोकिलमयी भांडीरकुशकौशला ॥४७॥
लोहार्गलप्रदा कारा काश्मीरवसनावृता । बर्हिषदी शोणपुरी शूरक्षेत्रपुराधिका ॥४८॥
नानाऽऽभरणशोभाढ्या नानावर्णसमन्विता । नानानारीकदंबाढ्या रंगा रंगमहीरुहा ॥४९॥
नानालोकगताभ्यर्चिर्नानाजलसमन्विता । स्त्रीरत्नं रत्ननिलया ललनारत्नरञ्जिनी ॥५०॥
रंगिणी रंगभूमाढ्या रंगा रंगमहीरुहा । राजविद्या राजगुह्या जगत्कीर्तिर्घनाऽघना ॥५१॥
विलोलघंटा कृष्णांगा कृष्णदेहसमुद्भवा । नीलपङ्कजवर्णाभा नीलपङ्कजहारिणी ॥५२॥
नीलाभा नीलपद्माढ्या नीलांभोरुहवासिनी । नागवल्ली नागपुरी नागवल्लीदलार्चिता ॥५३॥

पटरानीके रूपमें छत्र धारण करनेवाली ॥ ४४ ॥ ३०२. गोवर्द्धनाङ्का=गोवर्द्धनगिरिकी गोदमें मोदमाना, ३०३. गोदन्ती=हरतालके समान रंगवाले केसर आदिसे आमोदित, ३०४. दिव्यौषधिनिधिः=दिव्य ओषधियोंकी निधि, ३०५. सृतिः=सद्गतिकी राह, ३०६. पारदी=भवसागरसे पार कर देनेवाली दिव्य शक्ति, ३०७. पारदमयी=पारदस्वरूपा, ३०८. नारदी=नार अर्थात् जल प्रदान करनेवाली, ३०९. शारदी=शरत्कालीन शोभारूपा, ३१०. भृतिः=भरण-पोषणका साधन बनी हुई ॥ ४५ ॥ ३११. श्रीकृष्णचरणाङ्कस्था=भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंके अंकमें विराजित, ३१२. अकामा=लौकिक कामनाओंसे हित (अथवा 'कामा' कामस्वरूपा), ३१३. कामवनाञ्चिता=कामवनमें पूजित, ३१४. कामाटवी=कामवनरूपा, ३१५. नन्दिनी=सबको आनन्दित करनेवाली, ३१६. *नन्दग्राममही=नन्दग्राममस्थित भूमिरूपा, ३१७. धरा=पृथ्वीरूपा ॥ ४६ ॥* ३१८. बृहत्सानुद्युतिप्रोता='बृहत्सानु' पर्वतके शिखरकी शोभासे संयुक्त, ३१९. नन्दीश्वरसमन्विता=नन्दगाँवके नन्दीश्वरगिरिसे समन्विता, ३२०. काकली=कोयलोंकी कुहू-ध्वनिरूपमें स्थित, ३२१. कोकिलमयी=कोयलसे व्याप्त, ३२२. भाण्डीरकुशकौशला=भाण्डीरवनमें कुशोत्पाटनके कौशलसे युक्त ॥ ४७ ॥ ३२३. लोहार्गलप्रदा=श्रीकृष्णके लिये अपने प्रेमके द्वारा लोहकी अर्गला लगा देनेवाली, ३२४. कारा=(श्रीकृष्णको अपने प्रेमके द्वारा रोके रखनेके लिये) कारारूपा, ३२५. काश्मीरवसना=केसरके रंगमें रँगे हुए वस्त्र धारण करनेवाली, ३२६. वृता=श्रीकृष्णके द्वारा स्वीकृता, ३२७. बर्हिषदी=बर्हिषदीपुरीरूपा, ३२८. शोणपुरी=शोणपुरीरूपा, ३२९. शूरक्षेत्रपुराधिका=शूरक्षेत्रपुरसे भी अधिक माहात्म्यवाली ॥ ४८ ॥ ३३०. नानाभरणशोभाढ्या=विविध प्रकारके आभूषणोंकी शोभासे सम्पन्न, ३३१. नानावर्णसमन्विता=नाना प्रकारके रंगोंसे युक्त, ३३२. नानानारीकदम्बाढ्य=नाना प्रकारकी स्त्रियोंके समुदायसे युक्त, ३३३. नानारङ्गमहीरुहा=तटवर्ती विविध रंगके वृक्षोंसे सुशोभित ॥ ४९ ॥ ३३४. नानालोकगता=नाना लोकोंमें पहुँची हुई, ३३५. अभ्यर्चिः=जिनकी तेजोराशि सब ओर फैली हुई है, ऐसी, ३३६. नानाजलसमन्विता = नाना नदियोंके मिले हुए जलसे युक्त, ३३७. स्त्रीरत्नम्=स्त्रियोंमें रत्नस्वरूपा, ३३८. रत्ननिलया=रत्ननिर्मित गृहमें निवास करनेवाली, ३३९. ललना=श्रीकृष्णकामिनी, ३४०. रत्नरञ्जिनी = रत्नोंके द्वारा विविध रंगोंका प्रकाश फैलानेवाली ॥ ५० ॥ ३४१. रङ्गिणी = रहस्थलमें रासके रंगमें रँगी रहनेवाली, ३४२. रंगभूमाढ्या = रंगके बाहुल्यसे युक्त, ३४३. रंगा = हर्षयुक्ता अथवा रंगानाम्नी नदीस्वरूपा, ३४४. रंगमहीरुहा = रंगीन वृक्षोंसे युक्त, ३४५. राजविद्या = विद्याओंकी स्वामिनी, ३४६. राजगुह्या = गुह्य वस्तुओंमें सबसे श्रेष्ठ, ३४७. जगत्कीर्तिः = जगत्के लिये कीर्तिमयी अथवा कीर्तनीया, ३४८. घना = सघन प्रेमयुक्ता अथवा श्रीकृष्णके वंशीवादनके समय हिमवत् घनीभूत हो जानेवाली, ३४९. अघना = प्रवहणशीला ॥ ५१ ॥ ३५०. विलोलघण्टा = चञ्चल घंटाके समान नाद करनेवाली, ३५१. कृष्णांगा = कृष्णके समान अंगवाली अथवा श्यामांगी, ३५२. कृष्णदेहसमुद्भवा = श्रीकृष्णके शरीरसे उत्पन्न, ३५३. नीलपंकजवर्णाभा = नील कमलके समान वर्ण एवं आभासे युक्त, ३५४. नीलपंकजहारिणी = नील कमलकी माला धारण करनेवाली ॥ ५२ ॥ ३५५. नीलाभा = नील कान्तिमती, ३५६. नीलपद्माढ्या = नील कमलोंकी सम्पदासे भरी-पूरी, ३५७. नीलाम्भोरुहवासिनी = नील कमलमें निवास करनेवाली, ३५८. नागवल्ली = ताम्बूललतास्वरूपा, ३५९. नागपुरी = नागोंकी नगरी (अर्थात् कालिय

तांबूलचर्चिता चर्चा मकरन्दमनोहरा । सकेसरा केसरिणी केशपाशाभिशोभिता ॥५४॥
कज्जलाभा कज्जलाक्ता कज्जली कलिताञ्जना । अलक्तचरणा ताम्रा लाला ताम्रीकृतांबरा ॥५५॥
सिन्दूरितालिप्तवाणी सुश्रीः श्रीखंडमंडिता । पाटीरपङ्कवसना जटामांसीरुचाम्बरा ॥५६॥
आगर्य्यगुरुगन्धाक्ता तगराश्रितमारुता । सुगन्धितैलरुचिरा कुन्तलालिः सकुन्तला ॥५७॥
शकुन्तलाऽपांसुला च पातिव्रत्यपरायणा । सूर्यप्रभा सूर्यकन्या सूर्यदेहसमुद्भवा ॥५८॥
कोटिसूर्यप्रतीकाशा सूर्यजा सूर्यनन्दिनी । संज्ञा संज्ञासुता स्वेच्छा संज्ञा मोदप्रदायिनी ॥५९॥
संज्ञापुत्री स्फुरच्छाया तपती तापकारिणी । सावर्ण्यानुभवा वेदी वडवा सौख्यदायिनी ॥६०॥
शनैश्चरानुजा कीला चन्द्रवंशविवर्द्धिनी । चन्द्रवंशवधूश्चन्द्रा चन्द्रावलिसहायिनी ॥६१॥
चन्द्रावती चन्द्रलेखा चन्द्रकांतानुगांशुका । भैरवी पिंगलाशंकी लीलावत्यागरीमयी ॥६२॥

आदि नागोंकी निवासभूमि), ३६०. नागवल्लीदलार्चिता = ताम्बूलपत्रसे पूजित ॥ ५३ ॥ ३६१. ताम्बूलचर्चिता = ताम्बूलसे रञ्जित, ३६२. चर्चा = कस्तूरी-चन्दनादि आलेपमयी, ३६३, मकरन्दमनोहरा = कमलादिके मकरन्दसे मनको हर लेनेवाली, ३६४. सकेशरा = केसरवती, ३६५. केशरिणी = केसर धारण करनेवाली, ३६६. केशपाशाभिशोभिता = केशपाशद्वारा सब ओरसे सुशोभित ॥ ५४ ॥ ३६७. कज्जलाभा = काजलकी-सी काली आभावाली, ३६८ कज्जलाक्ता = नेत्रोंमें काजलकी शोभासे युक्त अथवा काजलसे रँगी हुई, ३६९. कज्जली = काजलके समान काली, ३७०. कलिताञ्जना = नेत्रोंमें अञ्जन धारण करनेवाली, ३७१. अलक्तचरणा = चरणोंमें महावरका रंग लगानेवाली, ३७२. ताम्रा = ताम्रवर्णा, ३७३. लाला = लालनीया, ३७४. ताम्रीकृताम्बरा = ताँबेके समान लाल रंगके वस्त्र धारण करनेवाली ॥ ५५ ॥ ३७५ सिन्दूरिता = सीमन्तमें सिन्दूर धारण करनेवाली, ३७६. अलिप्तवाणी = जिसकी वाणी किसी दोषसे लिप्त नहीं होती, ऐसी, ३७७. सुश्री = उत्तम शोभासे युक्त, ३७८. श्रीखण्डमण्डिता = चन्दनसे अलंकृत, ३७९. पाटीरपंकवसना = चन्दनपंकमय वस्त्र धारण करनेवाली, ३८०. जटामांसी = जटामांसीके रूपमें स्थित, ३८१. स्रगम्बरा = पुष्पमालाओंको वस्त्ररूपमें धारण करनेवाली ॥ ५६ ॥ ३८२. आगरी = आगर (अमावास्या) के समान (कृष्ण) वर्णवाली, ३८३. अगुरुगन्धाक्ता = अगुरुकी गन्धसे अभिषिक्त, ३८४. तगराश्रितमारुता = जिसकी हवामें तगरकी सुगन्ध समायी हुई है, ऐसी, ३८५. सुगन्धितैलरुचिरा = सुगन्धित तैल (इत्र आदि) से मनोहर, ३८६. कुन्तलालिः = जिनकी अलकोंपर (सुगन्धसे आकृष्ट) भ्रमर मँडराते रहते हैं, ऐसी, ३८७. सकुन्तला = कुन्तल-राशिसे युक्त ॥ ५७ ॥ ३८८. शकुन्तला = शकुन्तों—पक्षियोंका स्वागत करनेवाली, ३८९. अपांसुला = पतिव्रता, ३९०. पातिव्रत्यपरायणा = पतिव्रताधर्मके पालनमें तत्पर, ३९१. सूर्यप्रभा = सूर्यके समान उद्भासित होनेवाली, ३९२. सूर्यकन्या = सूर्यकी पुत्री, ३९३. सूर्यदेहसमुद्भवा = सूर्यके शरीरसे उत्पन्ना ॥ ५८ ॥ ३९४. कोटिसूर्यप्रतीकाशा = करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्विनी, ३९५. सूर्यजा = सूर्यपुत्री, ३९६. सूर्यनन्दिनी = सूर्यदेवको आनन्द प्रदान करनेवाली, ३९७. संज्ञा = सम्यक् ज्ञानस्वरूपा, ३९८. संज्ञासुता = संज्ञाकी पुत्री ३९९. स्वेच्छा = स्वाधीना, ४००. असंज्ञा = (प्रियतमके प्रेममें) बेसुध हो जानेवाली, ४०१. संज्ञा = चेतनारूपा, ४०२. मोदप्रदायिनी = आनन्द प्रदान करनेवाली ॥ ५९ ॥ ४०३. संज्ञापुत्री = संज्ञाकी बेटी, ४०४. स्फुरच्छाया = उद्भासित कान्तिवाली, ४०५. तपतीतापकारिणी = (सौतेली बहिन) तपतीको ताप देनेवाली, ४०६. सावर्ण्यानुभवा = श्रीकृष्णके साथ वर्ण-सादृश्यका अनुभव करनेवाली, ४०७ देवी = देवकन्या, ४०८. वडवा = वडवारूपा, ४०९. सौख्यदायिनी = सौख्य प्रदान करनेवाली ॥ ६० ॥ ४१०. शनैश्चरानुजा = शनैश्चरकी छोटी बहिन, ४११. कीला = ज्वालामयी, ४१२. चन्द्रवंशविवर्द्धिनी = चन्द्रवंशकी वृद्धि करनेवाली ४१३. चन्द्रवंशवधूः = चन्द्रवंशकी बहू, ४१४. चन्द्रा = आह्लाद प्रदान करनेवाली, ४१५. चन्द्रावलिसहायिनी = चन्द्रावली सखीकी सहायता करनेवाली ॥ ६१ ॥ ४१६. चन्द्रावती = चन्द्रावतीस्वरूपा, ४१७. चन्द्रलेखा = चन्द्रलेखास्वरूपा, ४१८. चन्द्रकान्ता = चन्द्रमाके समान कान्तिमती, ४१९. अनुगा = (सदा) प्रियतमका अनुगमन करनेवाली, ४२०. अंशुका = उज्ज्वल-वस्त्रधारिणी, ४२१. भैरवी = भैरवप्रिया, ४२२. पिङ्गलाशंकी =

धनश्रीर्देवगान्धारी स्वर्मणिर्गुणवर्द्धिनी । व्रजमल्ला वन्धकारी विचित्रा जयकारिणी ॥६३॥
गान्धारी मञ्जरी टोडी गुर्ज्जर्य्यासावरी जया । कर्णाटी रागिणी गौरी वैराटी गौरवाटिका ॥६४॥
चतुश्चचन्द्रा कला हेरी तैलंगी विजयावती । ताली तलस्वरा गाना क्रियामात्रप्रकाशिनी ॥६५॥
वैशाखी चाचला चारुर्माचारी घूघटी घटा । वैहागरी सोरठीशा कैदारी जलधारिका ॥६६॥
कामाकरश्रीः कल्याणी गौडकल्याणमिश्रिता । राजसंजीविनी हेला मन्दारी कामरूपिणी ॥६७॥
सारंगी मारुती होढा सागरी कामवादिनी । वैभासी मंगला चान्द्री रासमंडलमंडना ॥६८॥
कामधेनुः कामलता कामदा कमनीयका । कल्पवृक्षस्थली स्थूला सुधासौधनिवासिनी ॥६९॥
गोलोकवासिनी सुभ्रूर्यष्टिभृद्द्वारपालिका । श्रृंगारप्रकरा श्रृंगा स्वच्छा शय्योपकारिका ॥७०॥
पार्षदा सुसखीसेव्या श्रीवृन्दावनपालिका । निकुञ्जभृत्कुंजपुञ्जा गुञ्जाभरणभूषिता ॥७१॥
निकुञ्जवासिनी प्रोष्या गोवर्द्धनतटीभवा । विशाखा ललिता रामा नीरुजा मधुमाधवी ॥७२॥

सूर्यके पारिपार्श्वक पिंगलसे आशंकित होनेवाली ४२३. लीलावती=भाँति-भाँतिकी लीला करनेवाली, ४२४. आगरीमयी=अगरकी सुगन्धसे व्याप्त ॥६२॥ ४२५. धनश्री=धनलक्ष्मी या रागिनीविशेष, ४२६. देवगान्धारी =रागिनीविशेष, ४२७. स्वर्मणिः=स्वर्गलोककी मणि, ४२८. गुणवर्द्धिनी=गुणोंकी वृद्धि करनेवाली, ४२९. व्रजमल्ला=व्रजमण्डलमें मल्लस्वरूपा, ४३०. वन्धकारी=विरोधियोंको वन्धनमें डालनेवाली, ४३१. विचित्रा= विचित्र रूप और शक्तिसे सम्पन्न, ४३२. जयकारिणी=विजय प्राप्त करानेवाली ॥६३॥ ४३३. गान्धारी, ४३४. मञ्जरी, ४३५. टोडी, ४३६. गुर्जरी, ४३७. आसावरी, ४३८. जया, ४३९. कर्णाटी=गान्धारीसे लेकर कर्णाटीतक विशेष रागिनियोंके नाम हैं। ये समस्त रागिनियाँ यमुनाजीसे अभिन्न हैं, ४४०. रागिणी=रागिनीस्वरूपा, ४४१. गौरी=गौरी नामकी रागिनी, ४४२. वैराटी=रागिनीविशेष, ४४३. गौरवाटिका=रागिनी-विशेष अथवा गौरतेजः-स्वरूपा श्रीराधाके लिये उद्यानरूपिणी ॥ ६४ ॥ ४४४. चतुश्चन्द्रा, ४४५. कलाहेरी, ४४६. तैलङ्गी, ४४७. विजयावती, ४४८. ताली=चतुश्चन्द्रासे लेकर तालीतक राग-रागिनियों और तालके नाम हैं, ४४९. तलस्वरा=ताली बजाकर स्वरकी सूचना देनेवाली, ४५०. गाना=गानस्वरूपा, ४५१. क्रियामात्रप्रकाशिनी= तालके क्रियामात्रको प्रकाशित करनेवाली ॥ ६५ ॥ ४५२. वैशाखी, ४५३. चञ्चला, ४५४. चारुः, ४५५. माचारी, ४५६. घूघटी, ४५७. घटा, ४५८. वैरागरी, ४५९. सोरठी, ४६०. ईशा, ४६१. कैदारी, ४६२. जलधारिका—वैशाखीसे लेकर जलधारिकापर्यन्त सभी नामविशेष रागिनी आदिके सूचक हैं ॥ ६६ ॥ ४६३. कामाकरश्री, ४६४. कल्याणी, ४६५. गौड़कल्याणमिश्रिता, ४६६. राजसंजीविनी, ४६७. हेला, ४६८. मन्दारी, ४६९. कामरूपिणी—ये सब भी विशेष प्रकारकी रागिनियाँ हैं ॥ ६७ ॥ ४७०. सारङ्गी, ४७१. मारुती, ४७२ होढा, ४७३. सागरी, ४७४. कामवादिनी, ४७५. वैभासी, ४७६. मङ्गला—ये भी रागनियोंके ही नाम हैं। ४७७. चान्द्री=रासपूर्णिमाकी चाँदनीस्वरूपा, ४७८. रासमण्डलमण्डना=रास-मण्डलको मण्डित करनेवाली ॥ ६८ ॥ ३७९. कामधेनुः=कामधेनुकी भाँति व्यक्तिकी मनोवाञ्छित कामनाको पूर्ण करनेवाली, ४८०. कामलता=कामना पूर्ण करनेवाली कल्पलतास्वरूपा, ४८१. कामदा=अभीष्ट मनोरथ देनेवाली, ४८२. कामनीयका=कमनीया, ४८३. कल्पवृक्षस्थली=कल्पवृक्षोंकी स्थानभूता, ४८४. स्थूला= स्थूलरूपिणी, ४८५. क्षुधा=बुभुक्षास्वरूपिणी, ४८६. सौधनिवासिनी=महलमें रहनेवाली ॥ ६९ ॥ ४८७. गोलोकवासिनी=गोलोकधाममें निवास करनेवाली, ४८८. सुभ्रूः=सुन्दर भौंहोंवाली, ४८९. यष्टिभृत्=छड़ी धारण करनेवाली, ४९०. द्वारपालिका=द्वाररक्षिका, ४९१. श्रृङ्गारप्रकरा=श्रृङ्गार-साधन-सामग्री-समुदयरूपा, ४९२. श्रृङ्गा=मन्मथोद्भेदस्वरूपा, ४९३. स्वच्छा=विमलस्वरूपा, ४९४. शय्योपकारिका= प्रियाप्रियतमके लिये शय्या सुसज्जित करनेमें उपकारिणी ॥ ७० ॥ ४९५. पार्षदा=श्रीराधा-कृष्णकी पार्षद-स्वरूपा, ४९६. सुसखीसेव्या=सुन्दर सखियोंद्वारा सेवनीया, ४९७. श्रीवृन्दावनपालिका=श्रीवृन्दावनकी रक्षा करनेवाली, ४९८. निकुञ्जभृत्=निकुञ्जका पोषण करनेवाली, ४९९ कुञ्जपुञ्जा=कुञ्जसमुदायस्वरूपा, ५००. गुञ्जाभरणभूषिता=गुञ्जाके आभूषणोंसे विभूषित ॥ ७१ ॥ ५०१. निकुञ्जवासिनी=निकुञ्जमें निवास

एका नैकसखी शुक्ला सखीमध्या महामनाः । श्रुतिरूपा ऋषिरूपा मैथिलाः कौशलाः स्त्रियः ॥७३॥
अयोध्यापुरवासिन्यो यज्ञसीताः पुलिंदकाः । रमावैकुण्ठवासिन्यः श्वेतद्वीपसखीजनाः ॥७४॥
ऊर्ध्ववैकुण्ठवासिन्यो दिव्याऽजितपदाश्रिताः । श्रीलोकाचलवासिन्यः श्रीसख्यः सागरोद्भवाः ७५॥
दिव्या अदिव्या दिव्यांगा व्याप्तास्त्रिगुणवृत्तयः । भूमिगोप्यो देवनार्यो लता ओषधिवीरुधः ॥७६॥
जालंधर्य्यः सिन्धुसुताः पृथुबर्हिष्मतीभवाः । दिव्यांबरा अप्सरसः सौतला नागकन्यकाः ॥७७॥
परं धाम परं ब्रह्म पौरुषा प्रकृतिः परा । तटस्था गुणभूर्गीता गुणागुणमयी गुणा ॥७८॥
चिद्घना सदसन्माला दृष्टिर्दृश्या गुणाकरी । महत्तत्त्वमहंकारो मनो बुद्धिः प्रचेतना ॥७९॥
चेतो वृत्तिः स्वांतरात्मा चतुर्थी चतुरक्षरा । चतुर्व्यूहा चतुर्मूर्तिर्व्योमवायुरदो जलम् ॥८०॥

करनेवाली, ५०२. प्रोष्या=प्रवासिनी, ५०३. गोवर्धनतटीभवा=गोवर्धनकी उपत्यकामें मानसी गङ्गाके रूपमें प्रकट, ५०४. विशाखा=विशाखा-सखीस्वरूपा, ५०५. ललिता=ललिता-सखीस्वरूपा अथवा लालित्य-शालिनी, ५०६. रामा=श्रीकृष्णरमणी, ५०७. नीरुजा=रोगरहित, ५०८. मधुमाधवी=मधुमासकी माधवी लतारूपिणी ॥ ७२ ॥ ५०९. एका=अद्वितीया, ५१०. नैकसखी=अनेक सखियोंवाली, ५११. शुक्ला=शुद्ध-स्वरूपा, ५१२. सखीमध्या=सखियोंके मध्यमें विराजमान, ५१३. महामनाः=विशालहृदया, ५१४. श्रुति-रूपा=गोपीरूपमें श्रुतिस्वरूपा, ५१५. ऋषिरूपा=ऋषिस्वरूपा गोपी, ५१६. मैथिलाः=गोपीरूपमें उत्पन्न मिथिलावासिनी स्त्रियाँ, ५१७. कौशलाः स्त्रियः=गोपीरूपमें उत्पन्न कोशलवासिनी स्त्रियाँ ॥ ७३ ॥ ५१८. अयोध्यापुरवासिन्यः=गोपीरूपमें उत्पन्न अयोध्या नगरकी स्त्रियाँ, ५१९. यज्ञसीताः=यज्ञसीतास्वरूपा गोपियाँ, ५२० पुलिन्दकाः=गोपीभावको प्राप्त पुलिन्द-कन्याएँ, ५२१. रमावैकुण्ठवासिन्यः=लक्ष्मीजीके वैकुण्ठमें निवास करनेवाली स्त्रियाँ (जो गोपीरूपको प्राप्त हुई थीं), ५२२. श्वेतद्वीपसखीजनाः=श्वेतद्वीप-निवासिनी सखियाँ ॥ ७४ ॥ ५२३. ऊर्ध्ववैकुण्ठवासिन्यः=ऊर्ध्ववैकुण्ठमें वास करनेवाली सखियाँ, ५२४. दिव्याजितपदाश्रिताः=दिव्य अजित पदके आश्रित सखियाँ, ५२५. श्रीलोकाचलवासिन्यः=श्रीलोकाचलमें निवास करनेवाली सखियाँ, ५२६. सागरोद्भवाः श्रीसख्यः=समुद्रसे उत्पन्न श्रीलक्ष्मीजीकी सखियाँ ॥ ७५ ॥ ५२७. दिव्याः=दिव्यरूपा गोपियाँ, ५२८. अदिव्याः=मानवरूपिणी गोपियाँ, ५२९. दिव्याङ्गाः=दिव्य अङ्गोंवाली, ५३०. व्याप्ताः=सर्वव्यापिनी, ५३१. त्रिगुणवृत्तयः=त्रिगुणात्मक वृत्तिस्वरूपा, ५३२. भूमि-गोप्यः=भूतलपर उत्पन्न गोपियाँ, ५३३. देवनार्यः=देवाङ्गनास्वरूपा गोपियाँ, ५३४. लताः=लतारूपिणी गोपियाँ, ५३५. ओषधिवीरुधः=ओषधि एवं लता-झाड़ी आदिस्वरूपा गोपाङ्गनाएँ ॥ ७६ ॥ ५३६. जालं-धर्यः=गोपीभावको प्राप्त जालंधरी स्त्रियाँ, ५३७. सिन्धुसुताः=समुद्रकन्याएँ ५३८, पृथुबर्हिष्मतीभवाः= राजा पृथुकी बर्हिष्मतीपुरीमें उत्पन्न स्त्रियाँ, जो गोपीभावको प्राप्त हुई थीं, ५३९. दिव्याम्बराः=दिव्यवस्त्र-धारिणी गोपियाँ, ५४०. अप्सरसः=गोपीभावको प्राप्त अप्सराएँ, ५४१. सौतलाः=सुतललोकवासिनी असु-राङ्गनाएँ, जिन्हें गोपीभावकी प्राप्ति हुई थी, ५४२. नागकन्यकाः=नागकन्यास्वरूपा गोपियाँ ॥ ७७ ॥ ५४३. परंधाम=परमधामस्वरूपा, ५४४. परं ब्रह्म=परब्रह्मस्वरूपा, ५४५. पौरुषा=पुरुषार्थस्वरूपा, ५४६. प्रकृतिः परा=पराप्रकृतिस्वरूपा, ५४७. तटस्था=तटस्था शक्तिस्वरूपा, ५४८. गुणभूः=गुणोंकी जन्मभूमि, ५४९. गीता= सबके द्वारा जिसका यशोगान होता हो वह, अथवा भगवद्गीतास्वरूपा, ५५०. गुणागुणमयी=गुणागुणस्वरूपा, ५५१. गुणा=दिव्यगुणात्मिका ॥ ७८ ॥ ५५२. चिद्घना=चिदानन्दघनस्वरूपा, ५५३. सदसन्माला= सदसत्-समूहात्मिका, ५५४. दृष्टिः=ज्ञानस्वरूपा, दर्शनस्वरूपा, ५५५. दृश्या=दृश्यस्वरूपा, ५५६. गुणाकरी=गुणोंकी निधिरूपा, ५५७. महत्तत्त्वम्=समष्टि बुद्धिरूपा, ५५८. अहंकारः=अहंकारस्वरूपा, ५५९. मनः=मनःस्वरूपा, ५६०. बुद्धिः=बुद्धिरूपा, ५६१. प्रचेतना=प्रकृष्ट चेतनास्वरूपा ॥ ७९ ॥ ५६२. चेतः=चित्तरूपा, ५६३. वृत्तिः=व्यवहारस्वरूपा, ५६४. स्वान्तरात्मा = निजान्तरात्मस्वरूपा, ५६५. चतुर्थी=जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिसे अतीत तुरीयावस्थारूपा, ५६६. चतुरक्षरा=प्रणवके चार अक्षर— अकार, उकार, मकार और अर्धमात्रा—ये जिसके स्वरूप हैं, वह, ५६७. चतुर्व्यूहा=वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—ये चार व्यूह जिसके स्वरूप हैं, वह, ५६८. चतुर्मूर्तिः=एकपदी, द्विपदी, त्रिपदी

महीं शब्दो रसो गन्धः स्पर्शो रूपमनेकधा । कर्मेन्द्रियं कर्ममयी ज्ञानं ज्ञानेन्द्रियं द्विधा ॥८१॥
त्रिधाधिभूतमध्यात्ममधिदैवमधिस्थितम् । ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिः सर्वदेवाधिदेवता ॥८२॥
तत्त्वसंघा विराण्मूर्तिर्धारणा धारणामयी । श्रुतिः स्मृतिर्वेदमूर्तिः संहिता गर्गसंहिता ॥८३॥
पाराशरी सैव सृष्टिः पारहंसी विधातृका । याज्ञवल्की भागवती श्रीमद्भागवतार्चिता ॥८४॥
रामायणमयी रम्या पुराणपुरुषप्रिया । पुराणमूर्तिः पुण्यांगा शास्त्रमूर्तिर्महोन्नता ॥८५॥
मनीषा धिषणा बुद्धिर्वाणी धीः शेमुषी मतिः । गायत्री वेदसावित्री ब्राह्मणी ब्रह्मलक्षणा ॥८६॥
दुर्गाऽपर्णा सती सत्या पार्वती चंडिकांबिका । आर्या दाक्षायणी दाक्षी दक्षयज्ञविघातिनी ॥८७॥
पुलोमजा शचीन्द्राणी देवी देववरार्पिता । वायुना धारिणी धन्या वायवी वायुवेगगा ॥८८॥

और चतुष्पदी—इन चार मूर्तियोंवाली गायत्री अथवा चतुर्व्यूहस्वरूपा, ५६९. व्योम = आकाशरूपा, ५७०. वायुः = वायुरूपा, ५७१. अदः = दृश्य प्रपञ्चके रूपमें स्थित, ५७२. जलम् = जलस्वरूपा ॥ ८० ॥ ५७३. मही = पृथ्वीरूपा, ५७४. शब्दः = शब्दस्वरूपा, ५७५. रसः = रसस्वरूपा, ५७६. गन्धः = गन्धस्वरूपा, ५७७. स्पर्शः = स्पर्शस्वरूपा, ५७८. रूपम् = रूपस्वरूपा, ५७९. अनेकधा = नाना रूपवाली, ५८०. कर्मेन्द्रियम् = कर्मेन्द्रियस्वरूपा, ५८१. कर्ममयी = कर्मस्वरूपा, ५८२. ज्ञानम् = ज्ञानमयी, ५८३. ज्ञानेन्द्रियम् = ज्ञानेन्द्रियस्वरूपा ५८४. द्विधा = प्रकृति-पुरुषरूप दो शरीरवाली अथवा ज्ञानेन्द्रिय-भेदसे द्विविध इन्द्रियरूपा ॥ ८१ ॥ ५८५. त्रिधा = क्षर, अक्षर और पुरुषोत्तम–त्रिविध रूपवाली, ५८६. अधिभूतम् = भौतिक सृष्टिमें व्याप्त, ५८७. अध्यात्मम् = अध्यात्मस्वरूपा, ५८८. अधिदैवम् = आधिदैविकरूपवाली, ५८९. अधिष्ठितम् = सर्वरूपोंमें अधिष्ठित, ५९०. ज्ञानशक्तिः = ज्ञानशक्ति, ५९१. क्रियाशक्तिः = क्रियाशक्ति, ५९२. सर्वदेवाधिदेवता = समस्त देवताओंकी अधिदेवी ॥ ८२ ॥ ५९३. तत्त्वसंघा = तत्त्वसमूहरूपा, ५९४. विराण्मूर्तिः = विराट्स्वरूपा, ५९५. धारणा = धारणाशक्ति, ५९६. धारणामयी = धारणाशक्तिरूपा, ५९७. श्रुतिः = वेदरूपा, ५९८. स्मृतिः = धर्मशास्त्ररूपा, ५९९. वेदमूर्तिः = वेदात्मिका, ६००. संहिता = संहितास्वरूपा, ६०१. गर्गसंहिता = गर्गसंहितारूपा ॥ ८३ ॥ ६०२. पाराशरी = पाराशरसंहिता (विष्णुपुराण)-रूपा, ६०३. सृष्टिः = सृष्टिरूपा अथवा पाराशरी-रचनारूपा, ६०४. पारहंसी = परमहंस-विद्यारूपा अथवा परमहंससंहिता, ६०५. विधातृका = विधातृस्वरूपा अथवा ब्रह्मसंहिता, ६०६. याज्ञवल्की = याज्ञवल्क्यस्मृतिरूपा, ६०७. भागवती = भगवान्‌की शक्ति अथवा वैष्णवागमरूपा, ६०८. श्रीमद्भागवतार्चिता = श्रीमद्भागवतके द्वारा पूजित-प्रशंसित ॥ ८४ ॥ ६०९. रामायणमयी = वाल्मीकिरामायण अथवा प्राचेतससंहिता अथवा रामचरितस्वरूपा, ६१०. रम्या = रमणीया, ६११. पुराणपुरुषप्रिया = पुराणपुरुष श्रीकृष्णकी प्रिया, ६१२. पुराणमूर्तिः = पुराणस्वरूपा, ६१३. पुण्याङ्गा = पुण्यशरीरवाली, ६१४. शास्त्रमूर्तिः = शास्त्रस्वरूपा, ६१५. महोन्नता = परम उन्नत ॥ ८५ ॥ ६१६. मनीषा = बुद्धिरूपा, ६१७. धिषणा = प्रज्ञारूपा, ६१८. बुद्धिः = मेधारूपा, ६१९. वाणी = वाग्देवता, ६२०. धीः = बुद्धिरूपा, ६२१. शेमुषी = बुद्धिरूपा, ६२२. मतिः = निश्चयरूपा, ६२३. गायत्री = गायत्रीमन्त्रस्वरूपा, ६२४. वेदसावित्री = वेदोक्त गायत्री, ६२५. ब्राह्मणी = ब्रह्मशक्ति, ६२६. ब्रह्मलक्षणा = वेद-मन्त्रों द्वारा लक्षित होनेवाली ॥ ८६ ॥ ६२७. दुर्गा = दुर्गम्या अथवा दुर्गादेवी, ६२८. अपर्णा = तपस्विनी पार्वती, ६२९. सती = दक्षकन्या सती, ६३०. सत्या = सत्यस्वरूपा अथवा सत्यभामा, ६३१. पार्वती = गिरिराज हिमालयकी पुत्री, ६३२. चण्डिका = असुरसंहारिणी शक्ति, ६३३. अम्बिका = जगन्माता, ६३४. आर्या = श्रेष्ठस्वरूपा, ६३५. दाक्षायणी = दक्ष-प्रजापतिकी कन्या, ६३६. दाक्षी = दक्षपुत्री, ६३७. दक्षयज्ञविघातिनी = दक्ष-यज्ञविध्वंसमें कारणभूत ॥ ८७ ॥ ६३८. पुलोमजा = पुलोम दानवकी पुत्री शचीस्वरूपा, ६३९. शची = इन्द्रपत्नी, ६४०. इन्द्राणी = शची, ६४१. देवी = प्रकाशमाना, ६४२. देववरार्पिता = देवेश्वर इन्द्रको अर्पित, ६४३. वायुना धारिणी = वायुके द्वारा धारण करनेवाली अथवा यमुना = ज्ञानस्वरूपा और धारिणी = धारणशक्ति, ६४४. धन्या = धन्यवादके योग्य, ६४५. वायवी = वायुशक्ति, ६४६. वायुवेगगा = वायुवेगसे चलनेवाली ॥ ८८ ॥ ६४७. यमानुजा = यमकी छोटी बहिन, ६४८. संयमनी = संयमनशक्ति अथवा संयमनीपुरी, ६४९. संज्ञा = सूर्यप्रिय

यमानुजा संयमनी संज्ञा छाया स्फुरद्द्युतिः । रत्नदेवी रत्नवृन्दा तारा तरणिमण्डला ॥८९॥
रुचिः शान्तिः क्षमा शोभा दया दक्षा द्युतिस्त्रपा । तलतुष्टिर्विभा पुष्टिः सन्तुष्टिः पुष्टभावना ॥९०॥
चतुर्भुजा चारुनेत्रा द्विभुजाऽष्टभुजाऽबला । शङ्खहस्ता पद्महस्ता चक्रहस्ता गदाधरा ॥९१॥
निषंगधारिणी चर्मखङ्गपाणिर्धनुर्द्धरा । धनुष्टङ्कारिणी योद्ध्री दैत्योद्भटविनाशिनी ॥९२॥
रथस्था गरुडारूढा श्रीकृष्णहृदयस्थिता । वंशीधरा कृष्णवेषा स्रग्विणी वनमालिनी ॥९३॥
किरीटधारिणी याना मन्दमन्दगतिर्गतिः । चन्द्रकोटिप्रतीकाशा तन्वी कोमलविग्रहा ॥९४॥
भैष्मी भीष्मसुता भीमा रुक्मिणी रुक्मरूपिणी । सत्यभामा जांबवती सत्या भद्रा सुदक्षिणा ॥९५॥
मित्रविन्दा सखीवृन्दा वृन्दारण्यध्वजोर्ध्वगा । शृंगारकारिणी शृङ्गा शृङ्गभूः शृङ्गदा खगा ॥९६॥
तितिक्षेक्षा स्मृतिःस्पर्धा स्पृहा श्रद्धा स्वनिर्वृतिः। ईशा तृष्णा भिदा प्रीतिर्हिंसायाच्ञाक्लमा कृषिः ।९७॥

संज्ञास्वरूपा, ६५०. छाया = संज्ञाकी छायाभूता सवर्णा, ६५१. स्फुरद्द्युतिः = उद्दीप्त कान्तिवाली, ६५२. रत्नवेदी=रत्नवेदिकारूपा, ६५३. रत्नवृन्दा=रत्नसमूहरूपा, ६५४. तारा = तारामण्डलरूपा, ६५५. तरणि-मण्डला=सूर्यमण्डलस्वरूपा ॥ ८९ ॥ ६५६. रुचिः=प्रभा, ६५७. शान्तिः=शान्तिरूपा, ६५८. क्षमा=तितिक्षा-मयी अथवा पृथ्वी, ६५९. शोभा = छविमयी, ६६०. दया=करुणामयी, ६६१. दक्षा=कुशला या चतुरा, ६६२. द्युतिः=कान्तिमयी, ६६३ त्रपा=लज्जा, ६६४. तलतुष्टिः=ताली बजानेसे संतुष्ट होनेवाली, ६६५. विभा=प्रभा, ६६६. पुष्टिः=पुष्टिरूपा, ६६७. संतुष्टिः=संतोषमयी, ६६८. पुष्टभावना=सुदृढ़ भावनावाली ॥ ९० ॥ ६६९. चतुर्भुजा=चार भुजाएँ धारण करनेवाली (लक्ष्मी), ६७०. चारुनेत्रा=सुन्दर नेत्रोंवाली, ६७१. द्विभुजा=दो बाहुवाली (कालिन्दी या श्रीराधा), ६७२. अष्टभुजा=आठ भुजावाली (सरस्वती), ६७३. अबला=बलका प्रदर्शन न करनेवाली, ६७४ शङ्खहस्ता=हाथमें शङ्ख धारण करनेवाली (वैष्णवी मूर्ति), ६७५. पद्महस्ता=हाथमें कमल धारण करनेवाली (लक्ष्मी), ६७६. चक्रहस्ता = हाथमें चक्र धारण करनेवाली वैष्णवी मूर्ति, ६७७. गदाधरा=गदा धारण करनेवाली ॥ ९१ ॥ ६७८. निषङ्गधारिणी=तरकस धारण करने-वाली, ६७९. चर्मखड्गपाणिः=हाथमें ढाल-तलवार लेनेवाली, ६८०. धनुर्धरा=धनुष धारण करनेवाली, ६८१. धनुष्टंकारिणी=(दुर्गाके रूपमें) धनुषका टंकार करनेवाली, ६८२. योद्ध्री=युद्ध करनेवाली, ६८३. दैत्योद्भटविनाशिनी=दैत्यसेनाके उद्भट योद्धाओंका विनाश करनेवाली ॥ ९२ ॥ ६८४. रथस्था = रथपर बैठनेवाली, ६८५. गरुडारूढा=गरुडपर आरूढ होनेवाली, ६८६. श्रीकृष्णहृदयस्थिता = श्रीकृष्णके हृदयरूपी सिंहासनपर आसीन, ६८७. वंशीधरा = कृष्णरूपसे वंशी धारण करनेवाली, ६८८. कृष्णवेषा=श्रीकृष्णका वेष धारण करनेवाली, ६८९. स्रग्विणी=पुष्पोंके हारोंसे अलंकृत, ६९०, वनमालिनी=वनमाला धारण करनेवाली ॥ ९३ ॥ ६९१. किरीटधारिणी=मस्तकपर किरीट धारण करनेवाली, ६९२. याना=यानस्वरूपा, ६९३. मन्दमन्दगतिः=धीरे-धीरे चलनेवाली, ६९४. गतिः=सद्गतिस्वरूपा अथवा गमनशक्तिरूपा, ६९५. चन्द्रकोटिप्रतीकाशा=कोटिचन्द्रतुल्या, ६९६. तन्वी=कृशाङ्गी, ६९७. कोमलविग्रहा=मृदुल शरीरवाली ॥ ९४ ॥ ६९८. भैष्मी=भीष्मपुत्री रुक्मिणीरूपा, ६९९. भीष्मसुता=राजा भीष्मककी पुत्री रुक्मिणी, ७००. अभीमा=अभयंकर—सौम्यरूपवाली, ७०१. रुक्मिणी = श्रीकृष्णकी प्रमुख पटरानी, ७०२. रुक्मरूपिणी = सुनहले रूपवाली, ७०३. सत्यभामा=सत्राजित्की पुत्री, श्रीकृष्णप्रिया, ७०४. जाम्बवती = जाम्बवान् द्वारा पोषित एवं उन्हींसे प्राप्त दिव्यरूपा पटरानी, ७०५. सत्या='सत्या' नामवाली श्रीकृष्णकी पटरानी. ७०६. भद्रा='भद्रा' नामवाली पटरानी, ७०७. सुदक्षिणा=परम उदारस्वरूपा श्रीकृष्णकी पटरानी ॥ ९५ ॥ ७०८. मित्रविन्दा='मित्रविन्दा' नामवाली पटरानी, ७०९. सखी=राधारानीकी सखी, ७१०. वृन्दा = वृन्दावनकी अधिदेवी, ७११. 'वृन्दारण्यध्वजोर्ध्वगा=वृन्दावनकी ध्वजतुल्या—ऊर्ध्वगामिनी, ७१२. शृङ्गारकारिणी = शृङ्गार करनेवाली, ७१३. शृङ्गा = शृङ्गस्वरूपा, ७१४. शृङ्गभूः=शिखरभूमि, ७१५. शृङ्गदा=शिखरपर स्थान देनेवाली, ७१६. खगा = आकाशचारिणी ॥ ९६ ॥ ७१७. तितिक्षा = क्षमा, ७१८. ईक्षा = ईक्षणस्वरूपा, ७१९. स्मृतिः=स्मरण-शक्ति, ७२०. स्पर्धा = स्पर्धारूपा, ७२१. स्पृहा = अभिलाषा, ७२२. श्रद्धा=आस्तिक्य-बुद्धिस्वरूपा, ७२३. स्वनिर्वृतिः = निजानन्दस्वरूपा, ७२४. ईशा=ईशनकर्त्री, ७२५. तृष्णा = कामना, ७२६.

आशा निद्रा योगनिद्रा योगिनी योगदाऽयुगा । निष्ठा प्रतिष्ठा शमितिः सत्त्वप्रकृतिरुत्तमा ॥९८॥
तमःप्रकृतिदुर्मर्षी रजःप्रकृतिरानतिः । क्रियाऽक्रिया कृतिर्ग्लानिः सात्त्विक्याध्यात्मिकी वृषा ।
सेवाशिखामणिर्वृद्धिराहूतिः पिंगलोद्भवा । नागभाषा नागभूषा नागरी नगरी नगा ॥१००॥
नौर्नौका भवनौर्भाव्या भवसागरसेतुका । मनोमयी दारुमयी सैकती सिकतामयी ॥१०१॥
लेख्या लेप्या मणिमयी प्रतिहेमविनिर्मिता । शैली शैलभवा शीला शीकराभा चलाऽचला ॥१०२॥
अस्थिता स्वस्थिता तूली वैदिकी तांत्रिकी विधिः । संध्या संध्याभ्रवसना वेदसंधिः सुधामयी ॥१०३॥
सायंतनी शिखा वेध्या सूक्ष्मा जीवकलाकृतिः । आत्मभूता भाविताऽण्वी प्रह्वी कमलकर्णिका १०४॥
नीराजनी महाविद्या कंदली कार्यसाधनी । पूजा प्रतिष्ठा विपुला पुनंती पारलौकिकी ॥१०५॥

भिदा = भेदस्वरूपा, ७२७. प्रीतिः = प्रेम या प्रसन्नता, ७२८. हिंसा = हिंसावृत्तिरूपा, ७२९. याच्ञा = याचनारूपा, ७३०. क्लमा = क्लान्तिरूपा अथवा अक्लमा—क्लमरहिता, ७३१. कृषिः = कृषि (वार्ताका एक भेद) ॥ ९७ ॥ ७३२. आशा = आशारूपिणी, ७३३. निद्रा=निद्राकी अधिष्ठात्री या निद्रारूपा, ७३४. योगनिद्रा=योगनिद्रा, जिसका आश्रय लेकर भगवान् विष्णु चार मासतक शयन करते हैं, ७३५. योगिनी= योगिनीरूपा, ७३६. योगदा = योगदायिनी, ७३७. युगा=युगस्वरूपा, ७३८. निष्ठा = परम गति, आश्रय-शक्ति अथवा आधारस्वरूपा, ७३९. प्रतिष्ठा = प्रतिष्ठास्वरूपा, आश्रय अथवा अवलम्ब, ७४०. शमितिः= शमनस्वरूपा, ७४१. सत्त्वप्रकृतिः=सत्त्वगुणमयी प्रकृतिवाली, ७४२. उत्तमा = उत्कृष्टस्वरूपा ॥ ९८ ॥ ७४३. तमःप्रकृतिदुर्मर्षी = तमोगुणमय स्वभावको दुःखसे सहन करनेवाली, ७४४. रजःप्रकृतिः=रजोगुण-प्रधान प्रकृतिरूपा, ७४५. आनतिः=सब ओरसे नमनशीला, ७४६. क्रिया = क्रियाशक्ति, ७४७. अक्रिया= निष्क्रिय, ७४८. कृतिः=प्रयत्नरूपा, ७४९. ग्लानिः = ग्लानिरूपिणी, ७५०. सात्त्विकी=सत्त्वप्रधाना शक्ति, ७५१. आध्यात्मिकी = आध्यात्मिक शक्ति, ७५२. वृषा=धर्मस्वरूपा ॥ ९९ ॥ ७५३. सेवा = सेवारूपिणी, ७५४. शिखा=नदियोंकी शिखाभूता, ७५५. मणिः=मणि-रत्नस्वरूपा, ७५६. वृद्धिः = अभ्युदयकी हेतुभूता, ७५७. आहूतिः = आह्वानस्वरूपा, ७५८. पिङ्गलोद्भवा=पिङ्गला नाड़ीसे उत्पन्न, ७५९. नागभाषा=नागोंकी भाषाको जाननेवाली अथवा नागोंसे भाषण करनेवाली, ७६०. नागभूषा=नागोंसे भूषित, ७६१. नागरी=नागरी अर्थात् चतुरा, ७६२. नगरी=नगरस्वरूपा, ७६३. नगा=वृक्ष अथवा गिरिरूपा ॥ १०० ॥ ७६४. नौः= नाव, ७६५. नौका = नाव, ७६६. भवनौः = संसारसागरसे पार उतारनेवाली नौका, ७६७. भाव्या = मनमें भावना (ध्यान) करनेयोग्य, ७६८. भवसागरसेतुका = भवसागरसे पार जानेके लिये सेतुरूपा, ७६९. मनोमयी = मनःस्वरूपा, ७७०. दारुमयी = काष्ठकी बनी, ७७१. सैकती = सिकतासे निर्मित ७७२. सिकतामयी = बालुकासे परिपूर्ण या बालुकामयी ॥ १०१ ॥ ७७३. लेख्या = चित्रमयी, ७७४. लेप्या = मिट्टीकी प्रतिमा, ७७५. मणिमयी = मणिनिर्मित प्रतिमा, ७७६. प्रतिमा हेमनिर्मिता = सोनेकी बनी प्रतिमा, ७७७. शैली = शिलामयी प्रतिमा, ७७८. शैलभवा = पर्वतसे प्रकट प्रतिमा, ७७९. शीला = शीलयुक्ता अथवा शीलस्वरूपा, ७८०. शीकराभा = जलकणों अथवा जलकी फुहारोंसे शोभित, ७८१. चला = चलस्वरूपा, ७८२. अचला = अचलस्वरूपा ॥ १०२ ॥ ७८३. अस्थिता = अस्थिर, ७८४. सुस्थिता=सुस्थिर, ७८५. तूली = तूलिका, ७८६. वैदिकी = वेदोक्त पद्धति, ७८७. तान्त्रिकी = तन्त्रोक्त पद्धति, ७८८. विधिः = विधिवाक्यस्वरूपा, ७८९. संध्या = रात और दिनकी संधिवेला, ७९०. संध्यावसना = संध्या-कालिक बादल या आकाशकी भाँति लाल वस्त्रवाली. ७९१. वेदसंधिः = वेदमन्त्रोंमें संधि (संहिता) स्वरूपा, ७९२. सुधामयी = अमृतमयी ॥ १०३ ॥ ७९३. सायंतनी = सायंकालिकी शोभा, ७९४. शिखा = ज्वालामयी, ७९५. अवेध्या = अभेदनीया, ७९६. सूक्ष्मा = सूक्ष्मस्वरूपा, ७९७. जीवकला = जीवरूपा भगवत्कला, ७९८. कृतिः=कृतिरूपा, ७९९. आत्मभूता = सबकी आत्मस्वरूपा, ८००. भाविता = ध्यान या भावनाकी विषयभूता, ८०१. अण्वी = सूक्ष्मस्वरूपा ८०२. प्रह्वी = विनयशीला, ८०३. कमलकर्णिका = हृदय-कमलकी कर्णिकामें ध्येया ॥ १०४ ॥ ८०४. नीराजनी = आरती, ८०५. महाविद्या=तत्त्व-साक्षात्कार करानेवाली महावाक्यबोधात्मिका महाविद्या, अथवा ब्रह्मविद्यारूपा महा-

शुक्लशुक्तिर्मौक्तिकी च प्रतीतिः परमेश्वरी । विरजोष्णिग् विराड्वेणी वेणुका वेणुनादिनी १०६॥
आवर्तिनी वार्तिकदा वार्ता वृत्तिर्विमानगा । रासाढ्या रासिनी रासा रासमण्डलवर्तिनी ॥१०७॥
गोपगोपीश्वरी गोपी गोपीगोपालवन्दिता । गोचारिणी गोपनदी गोपानन्दप्रदायिनी ॥१०८॥
पशव्यदा गोपसेव्या कोटिशो गोगणावृता । गोपानुगा गोपवती गोविन्दपदपादुका ॥१०९॥
वृषभानुसुता राधा श्रीकृष्णवशकारिणी । कृष्णप्राणाधिका शश्वद्रसिका रसिकेश्वरी ॥११०॥
अवटोदा ताम्रपर्णी कृतमाला विहायसी । कृष्णा वेणी भीमरथी तापी रेवा महापगा ॥१११॥
वैयासकी च कावेरी तुङ्गभद्रा सरस्वती । चन्द्रभागा वेत्रवती ऋषिकुल्या ककुद्मिनी ॥११२॥
गौतमी कौशिकी सिन्धुर्बाणगङ्गाऽतिसिद्धिदा । गोदावरी रत्नमाला गंगा मन्दाकिनी वला ॥११३॥
स्वर्णदी जाह्नवी वेला वैष्णवी मंगलालया । बाला विष्णुपदी प्रोक्ता सिन्धुसागरसंगता ॥११४॥

विद्या, ८०६. कन्दली = सुखकी अंकुरस्वरूपा, ८०७. कार्यसाधनी = भक्तजनोंके अभीष्ट कार्यको सिद्ध करनेवाली, ८०८. पूजा = अर्चना, ८०९. प्रतिष्ठा = स्थापना, ८१०. विपुला = विपुलस्वरूपा, ८११. पुनन्ती=पवित्र करनेवाली, ८१२. पारलौकिकी = परलोकके लिये हितकारिणी ॥ १०५ ॥ ८१३. शुक्लशुक्तिः = श्वेत सीपी या सुतुहीकी उपलब्धिका स्थान, ८१४. मौक्तिकी = मुक्तास्वरूपा, ८१५. प्रतीतिः = प्रतीतिस्वरूपा, ८१६. परमेश्वरी = परमेश्वरप्रिया, ८१७. विरजा = निर्मला, ८१८. उष्णिक् = वैदिक छन्द-विशेष, ८१९, विराट्=विराट्स्वरूपा, ८२०. वेणी = त्रिवेणीरूपा, ८२१. वेणुका = वंशीरूपिणी, ८२२. वेणुनादिनी=वेणुनाद करनेवाली—बाँसुरीकी तान छेड़नेवाली ॥ १०६ ॥ ८२३. आवर्तिनी = भँवरोंसे युक्ता, ८२४. वार्तिकदा = वार्तिकदायिनी, ८२५. वार्ता = कृषि, गोरक्षा और वाणिज्यके भेदसे त्रिविध वार्ता, ८२६. वृत्तिः = जीविकारूपा, ८२७. विमानगा = विमानपर यात्रा करनेवाली, ८२८. रासाढ्या = रासजनित सुखसे सम्पन्न, ८२९. रासिनी = रासपरायणा, ८३०. रासा = रासस्वरूपा, ८३१. रासमण्डलवर्तिनी = रासमण्डलमें वर्तमान ॥ १०७ ॥ ८३२. गोपगोपीश्वरी = गोपों तथा गोपांगनाओंकी आराध्या ईश्वरी, ८३३. गोपी = गोपीरूपा, ८३४. गोपीगोपालवन्दिता = गोपियों और ग्वालोंसे वन्दित, ८३५. गोचारिणी = अपने तटपर गौओंको चरनेके लिये स्थान और सुविधा देनेवाली, ८३६. गोपनदी = गोपोंकी नदी, ८३७. गोपानन्दप्रदायिनी = गोपोंको आनन्द प्रदान करनेवाली ॥ १०८ ॥ ८३८. पशव्यदा = पशुओंके लिये हितकर घास प्रदान करनेवाली, ८३९. गोपसेव्या = गोपोंके द्वारा सेवनीया, ८४०. कोटिशो गोगणावृता = करोड़ों गौओंके समुदायसे घिरी हुई, ८४१. गोपानुगा = गोपगण जिनका अनुगमन करते हैं या गोप जिनके सेवक हैं, ऐसी, ८४२. गोपवती = गोपोंसे युक्त, ८४३. गोविन्दपदपादुका = गोविन्द-चरणोंकी पादुकास्वरूपा ॥ १०९ ॥ ८४४. वृषभानुसुता = वृषभानुनन्दिनी राधासे अभिन्न, ८४५. राधा = श्रीकृष्णकी आराध्या राधास्वरूपा, ८४६. श्रीकृष्णवशकारिणी = श्रीकृष्णको वशमें कर लेनेवाली, ८४७. कृष्णप्राणाधिका = श्रीकृष्णको प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय, ८४८. शश्वद्रसिका = नित्यरसिका, ८४९. रसिकेश्वरी = रसिकोंकी ईश्वरी ॥ ११० ॥ ८५०. अवटोदा = अवटोदा नामकी नदी, ८५१. ताम्रपर्णी = ताम्रपर्णी नामकी नदी, ८५२. कृतमाला = इसी नामवाली नदी, ८५३. विहायसी = विहायसी नदी, ८५४. कृष्णा = कृष्णा नदी, ८५५. वेणा = वेणा नामकी नदी, ८५६. भीमरथी = भीमा नामकी नदी, ८५७. तापी = तापती नामकी नदी, ८५८. रेवा = नर्मदा, ८५९. महापगा = विशाल नदी, अथवा महानदी नामकी नदी ॥ १११ ॥ ८६०. वैयासकी = वैयासकी (व्यास) नदी, ८६१. कावेरी = कावेरी नदी, ८६२. तुङ्गभद्रा = तुङ्गभद्रा नामकी नदी, ८६३. सरस्वती=सरस्वती नदी, ८६४. चन्द्रभागा=इसी नामकी नदी, ८६५. वेत्रवती = वेतवा नदी, ८६६. ऋषिकुल्या = इसी नामकी नदी, ८६७. ककुद्मिनी = ककुद्मिनी नदी ॥ ११२ ॥ ८६८. गौतमी = गोदावरी, ८६९. कौशिकी = कोसी नदी, ८७०. सिन्धुः = सिन्धु नद, ८७१. बाणगङ्गा = अर्जुनके बाणसे प्रकट हुई पातालगंगा, ८७२. अतिसिद्धिदा = अत्यन्त सिद्धि प्रदान करनेवाली, ८७३. गोदावरी = गौतमी, ८७४. रत्नमाला = रत्नमाला नदी, ८७५. गंगा = गंगा नदी, ८७६. मन्दाकिनी = आकाशगंगा, ८७७. वला = वला नामकी नदी ॥ ११३ ॥ ८७८. स्वर्णदी = स्वर्गलोककी नदी गङ्गा, ८७९. जाह्नवी = जह्नुनन्दिनी गङ्गा, ८८०. वेला = वेला नदी, ८८१. वैष्णवी = विष्णुकुल्या, ८८२. मङ्गलालया = मङ्गलका आवास,

गंगासागरशोभाढ्या सामुद्री रत्नदा धुनी । भागीरथी स्वर्धुनी भूः श्रीवामनपदच्युता ॥११५॥
लक्ष्मी रमा रमणीया भार्गवी विष्णुवल्लभा । सीताऽर्चिर्जानकी माता कलंकरहिता कला ॥११६॥
कृष्णपादाब्जसंभूता सर्वा त्रिपथगामिनी । धरा विश्वंभराऽनन्ता भूमिर्धात्री क्षमामयी ॥११७॥
स्थिरा धरित्री धरणी उर्वी शेषफणस्थिता । अयोध्या राघवपुरी कौशिकी रघुवंशजा ॥११८॥
मथुरा माथुरी पंथा यादवी ध्रुवपूजिता । मयायुर्बिल्वनीलोदा गङ्गाद्वारविनिर्गता ॥११९॥
कुशावर्तमयी ध्रौव्या ध्रुवमण्डलमध्यगा । काशी शिवपुरी शेपा विंध्या वाराणसी शिवा ॥१२०॥
अवंतिका देवपुरी प्रोज्ज्वलोज्जयिनी जिता । द्वारावती द्वारकामा कुशभूता कुशस्थली ॥१२१॥
महापुरी सप्तपुरी नन्दिग्रामस्थलस्थिता । शालग्रामशिलादित्या शंभलग्राममध्यगा ॥१२२॥
वंशगोपालिनी क्षिप्रा हरिमन्दिरवर्तिनी । बर्हिष्मती हस्तिपुरी शक्रप्रस्थनिवासिनी ॥१२३॥
दाडिमी सैंधवी जंबूः पौष्करी पुष्करप्रसूः । उत्पलावर्तगमना नैमिषी नैमिषावृता ॥१२४॥

---

८८३. वाला = वाला नदी, ८८४. विष्णुपदी = गंगा, ८८५. सिन्धुसागरसंगता = गंगासागर-संगम-स्वरूपा ॥ ११४ ॥ ८८६. गंगासागरशोभाढ्या = गंगा और सागरके संगमकी शोभासे सम्पन्न, ८८७. सामुद्री = समुद्रप्रिया, ८८८. रत्नदा = रत्न प्रदान करनेवाली, ८८९. धुनी = नदीरूपा, ८९०. भागीरथी = राजा भगीरथके द्वारा लायी गयी गंगा, ८९१. स्वर्धुनीभूः = गंगाके प्राकट्यकी भूमि, ८९२. श्रीवामनपदच्युता = श्रीवामनके चरणोंसे च्युत हुई ॥ ११५ ॥ ८९३. लक्ष्मीः = लक्ष्मीस्वरूपा, ८९४. रमा = पद्मा, ८९५. रमणीया = रमणीयतासे युक्त, ८९६. भार्गवी = भृगुपुत्री, ८९७. विष्णुवल्लभा = भगवान् विष्णुकी प्रिया, ८९८. सीता = सीतास्वरूपा, ८९९. अर्चिः = अग्निज्वालारूपिणी, ९००. जानकी = जनकनन्दिनी, ९०१. माता = जगज्जननी, ९०२. कलंकरहिता = निष्कलंका, ९०३. कला = भगवत्कलास्वरूपा ॥ ११६ ॥ ९०४. कृष्णपादाब्जसम्भूता = श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंसे प्रकट हुई, ९०५. सर्वा = सर्वस्वरूपा, ९०६. त्रिपथगामिनी = त्रिपथगा गंगा, ९०७. धरा = धरणीस्वरूपा, ९०८. विश्वम्भरा = विश्वका भरण-पोषण करनेवाली, ९०९. अनन्ता = अन्तरहिता, ९१०. भूमिः = आधारभूमिस्वरूपा, ९११. धात्री = धाय, ९१२. क्षमामयी = क्षमास्वरूपा ॥ ११७ ॥ ९१३. स्थिरा = स्थिरस्वरूपा, ९१४. धरित्री = धारण करनेवाली, ९१५. धरणी = लोकधारिणी पृथ्वी, ९१६. उर्वी = भूमि, ९१७. शेषफणस्थिता = शेषनागके फणोंपर रहनेवाली, ९१८. अयोध्या = जिसके साथ युद्ध न किया जा सके, ऐसी अजेय पुरी, ९१९. राघवपुरी = राघवेन्द्रकी नगरी, ९२०. कौशिकी = कुशिकवंशजा, ९२१. रघुवंशजा = रघुकुलमें उत्पन्न होनेवाली ॥११८॥ ९२२. मथुरा = मथुरा नगरी, ९२३. माथुरी = मथुरामंडलमें प्रकट, ९२४. पन्था = मार्गस्वरूपा, ९२५. यादवी = यदुवंशियोंकी नगरी, ९२६. ध्रुवपूजिता = ध्रुवसे प्रशंसित, ९२७. मयायुः = मयासुरको आयु प्रदान करनेवाली, ९२८. बिल्वनीलोदा = बिल्वके समान नील रंगके जलवाली, ९२९. गंगाद्वारविनिर्गता = हरद्वारसे निकली हुई ॥ ११९ ॥ ९३०. कुशावर्तमयी = कुशावर्तनामक तीर्थस्वरूपा, ९३१. ध्रौव्या = ध्रुवत्वसे युक्त, ९३२. ध्रुवमण्डलमध्यगा = ध्रुवमण्डलके बीचसे निकली हुई, ९३३. काशी = वाराणसी, ९३४. शिवपुरी = शिवकी नगरी, ९३५. शेपा = शेषस्वरूपा, ९३६. विन्ध्या = विन्ध्यस्वरूपा, ९३७. वाराणसी = काशी, ९३८. शिवा = शिवस्वरूपा ॥ १२० ॥ ९३९. अवन्तिका = मालव प्रदेशकी राजधानी और महाकालकी नगरी, ९४०. देवपुरी = देवनगरी, ९४१. प्रोज्ज्वला = प्रकृष्ट शोभासे सम्पन्न, ९४२. उज्जयिनी = उज्जैन, ९४३. जिता = जितस्वरूपा, ९४४. द्वारावती = द्वारकापुरी, ९४५. द्वारकामा = द्वारकी कामनावाली, ९४६. कुशभूता = कुशके प्रकट होनेका स्थान, ९४७. कुशस्थली = कुशोंकी उत्पत्ति स्थली द्वारका ॥ १२१ ॥ ९४८. महापुरी = महानगरी, ९४९. सप्तपुरी = सप्तपुरीस्वरूपा, ९५०. नन्दिग्रामस्थलस्थिता = नन्दिग्रामके स्थलमें स्थित सरयू अथवा यमुना, ९५१. शालग्रामशिलादित्या = शालग्रामशिलाकी उत्पत्तिका स्थान गण्डकी नदी, ९५२. शम्भलग्राममध्यगा = शम्भल ग्रामके मध्यमें गयी हुई ॥१२२॥ ९५३. वंशगोपालिनी = वंशगोपाल मन्त्रसे युक्त, ९५४. क्षिप्रा = क्षिप्रस्वरूपा, ९५५. हरिमन्दिरवर्तिनी = भगवान्के मन्दिरमें विद्यमान, ९५६. बर्हिष्मती = बर्हिष्मती नामकी नगरी, ९५७. हस्तिपुरी = हस्तिनापुर नगरी,

कुरुजांगलभूः काली हैमवत्यर्वुदी बुधा। शूकरक्षेत्रविदिता श्वेतवाराहधारिता ॥१२५॥
सर्वतीर्थमयी तीर्था तीर्थानां तीर्थकारिणी। हारिणी सर्वदोषाणां दायिनी सर्वसम्पदाम् ॥१२६॥
वर्द्धिनी तेजसां साक्षाद्गर्भवासनिकृंतनी। गोलोकधामधनिनी निकुञ्जनिजमंजरी ॥१२७॥
सर्वोत्तमा सर्वपुण्या सर्वसौंदर्य्यश्रृङ्खला। सर्वतीर्थोपरिगता सर्वतीर्थाधिदेवता ॥१२८॥
श्रीदा श्रीशा श्रीनिवासा श्रीनिधिः श्रीविभावना। स्वक्षा स्वङ्गा शतानन्दा नन्दा ज्योतिर्गणेश्वरी १२९॥
नाम्नां सहस्रं कालिंद्याः कीर्तिदं कामदं परम्। महापापहरं पुण्यमायुर्वर्द्धनमुत्तमम् ॥१३०॥
एकवारं पठेद्रात्रौ चौरेभ्यो न भयं भवेत्। द्विवारं प्रपठेन्मार्गे दस्युभ्यो न भयं क्वचित् ॥१३१॥
द्वितीयां तु समारभ्य पठेत्पूर्णावधिं द्विजः। दशवारमिदं भक्त्या ध्यात्वा देवीं कलिंदजाम् ॥१३२॥
रोगी रोगात्प्रमुच्येत बद्धो मुच्येत बन्धनात्। गुर्विणी जनयेत्पुत्रं विद्यार्थी पंडितो भवेत् ॥१३३॥
मोहनं स्तंभनं शश्वद्वशीकरणमेव च। उच्चाटनं घातनं च शोषणं दीपनं तथा ॥१३४॥
उन्मादनं तापनं च निधिदर्शनमेव च। यद्यद्वांच्छति चित्तेन तत्तत्प्राप्नोति मानवः ॥१३५॥
ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चस्वी राजन्यो जगतीपतिः। वैश्यो निधिपतिर्भूयाच्छूद्रः श्रुत्वा तु निर्मलः॥१३६॥

---

९५८. शक्रप्रस्थनिवासिनी = इन्द्रप्रस्थ (देहली) में निवास करनेवाली ॥ १२३ ॥ ९५९. दाडिमी = दाड़िम-फलस्वरूपा, ९६०. सैन्धवी = सिन्धुप्रिया, ९६१. जम्बूः = जम्बूनदीरूपा, ९६२. पौष्करी = पुष्करद्वीपसे सम्बन्ध रखनेवाली, ९६३. पुष्करप्रसूः = पुष्करकी उत्पत्तिका स्थान, ९६४. उत्पलावर्तगमना = उत्पलावर्त तीर्थमें जानेवाली, ९६५. नैमिषी = नैमिषारण्यवासिनी ॥ १२४ ॥ ९६६. अनिमिषाद्दता = देवपूजिता, ९६७. कुरु-जांगलभूः = कुरुजांगल देशमें प्रकट, ९६८. काली = कृष्णवर्णा अथवा कालीगंगा, ९६९. हैमवती = हिमालयसे उत्पन्न, ९७०. आर्वुदी = आबूमें प्रकट, ९७१. बुधा = विदुषी, ९७२. शूकरक्षेत्रविदिता = शूकरक्षेत्रमें प्रसिद्ध, ९७३. श्वेतवाराहधारिता = श्वेतवाराहके द्वारा धारित ॥ १२५ ॥ ९७४. सर्वतीर्थमयी = सर्वतीर्थस्वरूपा, ९७५. तीर्था = तीर्थभूता, ९७६. तीर्थानां तीर्थकारिणी = तीर्थोंको तीर्थ बनानेवाली, ९७७. हारिणी सर्वदोषा-णाम् = सब दोषोंको हर लेनेवाली, ९७८. दायिनी सर्वसम्पदाम् = सब सम्पत्तियोंको देनेवाली ॥ १२६ ॥ ९७९. वर्धिनी तेजसाम् = तेजको बढ़ानेवाली, ९८०. साक्षात् = प्रत्यक्ष प्रकट, ९८१. गर्भवासनिकृन्तनी = माताके गर्भमें वास करनेके कष्टका उच्छेद करनेवाली, ९८२. गोलोकधाम = गोलोककी प्रकाशरूपा, ९८३. धनिनी = धनसे सम्पन्न, ९८४. निकुञ्जनिजमञ्जरी = निकुञ्जमें अपनी मञ्जरियोंके साथ रहनेवाली ॥ १२७ ॥ ९८५. सर्वो-त्तमा = सबसे उत्तम, ९८६. सर्वपुण्या = सर्वाधिक पुण्यशालिनी, ९८७. सर्वसौन्दर्यश्रृङ्खला = सम्पूर्ण सुन्दरताको बाँध रखनेवाली, ९८८. सर्वतीर्थोपरिगता = सब तीर्थोंके ऊपर पहुँची हुई, ९८९ सर्वतीर्थाधिदेवता = सम्पूर्ण तीर्थोंकी अधिदेवी ॥ १२८ ॥ ९९०. श्रीदा = धनदात्री, ९९१. श्रीशा = लक्ष्मीकी अधिष्ठात्री, ९९२. श्रीनिवासा = लक्ष्मीकी आश्रयरूपा, ९९३. श्रीनिधिः = लक्ष्मीकी निधि, ९९४. श्रीविभावना = लक्ष्मीका चिन्तन करनेवाली, ९९५. स्वक्षा = सुन्दर नयनोंवाली, ९९६. स्वङ्गा = सुन्दर अंगोंवाली, ९९७. शतानन्दा = सैकड़ों प्रकारके आनन्दसे भरपूर, ९९८. नन्दा = आनन्ददात्री, ९९९. ज्योतिः = ज्योतिस्वरूपा, १०००. गणेश्वरी = निज गणोंकी अधीश्वरी ॥ १२९ ॥ कालिन्दीके सहस्रनामका वर्णन कीर्ति देनेवाला तथा उत्तम कामपूरक है। यह बड़े-बड़े पापोंको हर लेता, पुण्य देता और आयुको बढ़ानेवाला श्रेष्ठ साधन है ॥ १३० ॥ रातमें एक बार इसका पाठ कर ले तो चोरोंसे भय नहीं होता। रास्तेमें दो बार पढ़ ले तो डाकुओं और लुटेरोंसे कहीं भय नहीं होता ॥ १३१ ॥ द्विजको चाहिये कि वह द्वितीयासे पूर्णिमातक प्रतिदिन कालिन्दी देवीका ध्यान करके भक्ति-भावसे दस बार इस सहस्रनामका पाठ करे, ऐसा करनेसे यदि रोगी हो तो रोगसे छूट जाता है, कैदमें पड़ा हो तो वहांके बन्धनसे मुक्त हो जाता है, गर्भिणी नारी हो तो वह पुत्र पैदा करती है और विद्यार्थी हो तो वह पण्डित होता है ॥ १३२ ॥ १३३ ॥ मोहन, स्तम्भन, वशीकरण, उच्चाटन, मारण, शोषण, दीपन, उन्मादन, तापन, निधिदर्शन आदि जो-जो वस्तु मनुष्य मनमें चाहता है, उस-उसको वह इससे प्राप्त कर लेता है ॥१३४॥ ॥ १३५ ॥ इसके पाठसे ब्राह्मण ब्रह्मतेजसे सम्पन्न होता है, क्षत्रिय पृथ्वीका आधिपत्य प्राप्त करता है, वैश्य

पूजाकाले तु यो नित्यं पठते भक्तिभावतः । लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवांभसा ॥१३७॥
शतवारं पठेन्नित्यं वर्षावधिमतः परम् । पटलं पद्धतिं कृत्वा स्तवं च कवचं तथा ॥१३८॥
सप्तद्वीपमहीराज्यं प्राप्नुयान्नात्र संशयः ॥१३९॥
निष्कारणं पठेद्यस्तु यमुनाभक्तिसंयुतः । त्रैवर्ग्यमेत्य सुकृती जीवन्मुक्तो भवेदिह ॥१४०॥
निकुंजलीलाललितं मनोहरं कलिंदजाकूललताकदम्बकम् ।
वृन्दावनोन्मत्तमिलिंदशब्दितं व्रजेत्स गोलोकमिदं पठेच्च यः ॥१४१॥

इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीसौभरिमांधातृसंवादे श्रीयमुनासहस्रनामकथनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

अथ विंशोऽध्यायः

(श्रीबलदेवजीके हाथों प्रलम्बवध)

श्रीनारद उवाच

इति कृष्णास्तवं श्रुत्वा मान्धाता नृपसत्तमः । अयोध्यां प्रययौ वीरो नत्वा श्रीसौभरिं मुनिम् ॥ १ ॥
इदं मया ते कथितं गोपीनां चरितं शुभम् । महापापहरं पुण्यं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ २ ॥

बहुलाश्व उवाच

श्रुतं तव मुखाद्ब्रह्मन्गोपीनां वर्णनं परम् । यमुनायाश्च पञ्चाङ्गं महापातकनाशनम् ॥ ३ ॥
श्रीकृष्णः सबलः साक्षाद्गोलोकाधिपतिः प्रभुः । अग्रे चकार कां लीलां ललितां व्रजमंडले ॥ ४ ॥

श्रीनारद उवाच

एकदा चारयन्गाः स्वाः सबलो गोपबालकैः । भांडीरे यमुनातीरे बाललीलां चकार ह ॥ ५ ॥
विहारं कारयन्बालैर्वाह्यवाहकलक्षणम् । विजहार वने कृष्णो दर्शयन्गा मनोहराः ॥ ६ ॥

खजानेका मालिक होता है और शूद्र इसको सुनकर निर्मल—शुद्ध हो जाता है ॥ १३६ ॥ जो पूजाकालमें प्रतिदिन भक्तिभावसे इसका पाठ करता है, वह जलसे अलिप्त रहनेवाले कमलपत्रकी भाँति पापोंसे कभी लिप्त नहीं होता ॥ १३७ ॥ जो लोग एक वर्षतक पटल और पद्धतिकी विधिका पालन करके प्रतिदिन इस सहस्रनामका सौ बार पाठ करते हैं और उसके बाद स्तोत्र और कवच पढ़ते हैं, वे सातों द्वीपोंसे युक्त पृथिवीका राज्य प्राप्त कर लेते हैं, इसमें संशय नहीं है ॥१३८॥१३९॥ जो यमुनाजीमें भक्तिभाव रखकर निष्कामभावसे इसका पाठ करता है, वह पुण्यात्मा धर्म-अर्थ-काम—इस त्रिवर्गको पाकर इस जीवनमें ही जीवन्मुक्त हो जाता है ॥ १४० ॥ जो इस प्रसङ्गका पाठ करता है, वह निकुञ्जलीलासे ललित, मनोहर तथा कालिन्दीतटके लता-समुदायोंसे विलसित वृन्दावनके मतवाले भ्रमरोंसे अनुनादित गोलोकधाममें पहुँच जाता है ॥ १४१ ॥
इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! इस प्रकार यमुनाजीका सहस्रनामस्तोत्र सुनकर वीरभूप-शिरोमणि मांधाता सौभरि मुनिको नमस्कार करके अयोध्यापुरीको चले गये ॥ १ ॥ यह मैंने गोपियोंके शुभ चरित्रका वर्णन किया, जो महान् पापोंको हर लेनेवाला और पुण्यप्रद है । बताओ, और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ २ ॥ बहुलाश्व बोले—हे ब्रह्मन् ! मैंने आपके मुखसे गोपियोंके चरित्रका उत्तम वर्णन सुना । साथ ही यमुनाके पञ्चाङ्गका भी श्रवण किया, जो बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है ॥ ३ ॥ साक्षात् गोलोकके अधिपति भगवान् श्रीकृष्णने बलरामजीके साथ व्रजमण्डलमें आगे कौन-कौन-सी लीलाएँ कीं, यह बताइये ॥ ४ ॥ श्रीनारदजीने कहा—हे राजन् ! एक दिन श्रीबलराम और ग्वाल-बालोंके साथ अपनी गौएँ चराते हुए श्रीकृष्ण भाण्डीरवनमें यमुनाजीके तटपर बालोचित खेल खेलने लगे ॥ ५ ॥ बालकोंसे वाह्य-वाहकका खेल

तत्रागतो गोपरूपी प्रलंबः कंसनोदितः । न ज्ञातो बालकैः सोऽपि हरिणा विदितोऽभवत् ॥ ७ ॥
विहारे विजयं रामं नेतुं कोऽपि न मन्यते । उवाह तं प्रलंबोऽसौ भांडीरयमुनातटम् ॥ ८ ॥
अवरोहयतो दैत्यो मथुरां गंतुमुद्यतः । दधार घनवद्रूपं गिरीन्द्र इव दुर्गमः ॥ ९ ॥
तस्थौ बलो दैत्यपृष्ठे सुन्दरो लोलकुण्डलः । आकाशस्थः पूर्णचन्द्रः सतडिज्जलदो यथा ॥१०॥
दैत्यं भयंकरं वीक्ष्य बलदेवो महाबलः । रुषाऽहनन्मुष्टिना तं शिरस्यद्रिं यथाऽद्रिभित् ॥११॥
विशीर्णमस्तको दैत्यो यथा वज्रहतो गिरिः । पपात भूमौ सहसा चालयन्वसुधातलम् ॥१२॥
तज्ज्योतिर्निर्गतं दीर्घं बले लीनं बभूव ह । तदैव ववृषुर्देवाः पुष्पैर्नन्दनसंभवैः ॥१३॥
अभूज्जयजयारावो दिवि भूमौ नृपेश्वर । एवं श्रीबलदेवस्य चरितं परमाद्भुतम् ॥
मया ते कथितं राजन्किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१४॥

बहुलाश्व उवाच

कोऽयं दैत्यः पूर्वकाले प्रलंबो रणदुर्मदः । बलदेवस्य हस्तेन मुक्तिं प्राप कथं मुने ॥१५॥

श्रीनारद उवाच

शिवस्य पूजनार्थं हि यक्षराट् स्ववने शुभे । कारयामास पुष्पाणां रक्षां यक्षैरितस्ततः ॥१६॥
तदप्यस्यापि जगृहुः पुष्पाणि प्रस्फुरंति च । ततः क्रुद्धो ददौ शापं यक्षराड् धनदो बली ॥१७॥
ये गृह्णन्त्यस्य पुष्पाणि स्वे चान्ये सुरमानवाः । भवितारोऽसुराः सर्वे मच्छापात्सहसा भुवि ॥१८॥

हूहूसुतोऽथ विजयो विचरँस्तीर्थभूमिषु । वनं चैत्ररथं प्राप्तो गायन् विष्णुगुणान्पथि ॥१९॥
वीणापाणिरजानन्वै गन्धर्वः सुमनांसि च । गृहीत्वा सोऽसुरो जातो गन्धर्वत्वं विहाय तत् ॥२०॥
तदैव शरणं प्राप्तः कुबेरस्य महात्मनः । नत्वा तत्प्रार्थनां चक्रे कृतांजलिपुटः शनैः ॥२१॥
तस्मै प्रसन्नो राजेन्द्र कुबेरोऽपि वरं ददौ । त्वं विष्णुभक्तः शांतात्मा मा शोकं कुरु मानद ॥२२॥
द्वापरांते च ते मुक्तिर्बलदेवस्य हस्ततः । भविष्यति न सन्देहो भांडीरे यमुनातटे ॥२३॥

श्रीनारद उवाच

हूहूसुतः स गन्धर्वः प्रलंबोऽभून्महासुरः । कुबेरस्य वराद्राजन्परं मोक्षं जगाम ह ॥२४॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीमाधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसम्वादे प्रलम्बवधो नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

अथ एकविंशोऽध्यायः

(गोपों और गौओंकी दावाग्निसे मुक्ति और विप्रपत्नियोंको भगवद्दर्शन)

श्रीनारद उवाच

अथ क्रीडाप्रसक्तेषु गोपेषु सबलेषु च । तृणलोभेन विविशुर्गावः सर्वा महद्वनम् ॥ १ ॥
ता आनेतुं गोपबालाः प्राप्ता मुंजाटवीं पराम् । संभूतस्तत्र दावाग्निः प्रलयाग्निसमो महान् ॥ २ ॥
गोभिर्गोपाः समेतास्ते श्रीकृष्णं सबलं हरिम् । वदन्तः पाहि पाहीति भयार्ताः शरणं गताः ॥ ३ ॥
वीक्ष्य वह्निभयं स्वानां कृष्णो योगेश्वरेश्वरः । न्यमीलयत मा भैष्ट लोचनानीत्यभाषत ॥ ४ ॥
तथाभूतेषु गोपेषु तमग्निं भयकारकम् । अपिबद्भगवान्देवो देवानां पश्यतां नृप ॥ ५ ॥
एवं पीत्वा महावह्निं नीत्वा गोपालगोगणम् । प्राप्तोऽभूद्यमुनापारे शुभाशोकवने हरिः ॥ ६ ॥

मेरे शापसे भूतलपर असुर हो जायँगे ।' ॥ १८ ॥ एक दिन हूहू नामक गन्धर्वका बेटा 'विजय' तीर्थभूमियोंमें विचरता तथा मार्गमें भगवान् विष्णुके गुणोंको गाता हुआ चैत्ररथ वनमें आया ॥ १९ ॥ उसके हाथमें वीणा थी । बेचारा गन्धर्व शापकी बातको नहीं जानता था, अतः उसने वहाँसे कुछ फूल ले लिये । फूल लेते ही वह गन्धर्वरूपको त्यागकर असुर हो गया ॥ २० ॥ फिर तो वह तत्काल महात्मा कुबेरकी शरणमें गया और नमस्कार करके दोनों हाथ जोड़कर धीरे-धीरे शापसे छूटनेके लिये प्रार्थना करने लगा ॥ २१ ॥ हे राजेन्द्र ! तब उसपर प्रसन्न होकर कुबेरने भी वर दिया—'हे मानद ! तुम भगवान् विष्णुके भक्त तथा शान्तचित्त महात्मा हो, इसलिये शोक न करो ॥ २२ ॥ द्वापरके अन्तमें भाण्डीर वनमें यमुनाके तटपर बलदेवजीके हाथसे तुम्हारी मुक्ति होगी, इसमें सन्देह नहीं है' ॥ २३ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! हूहूका पुत्र वह विजय नामक गन्धर्व ही महान् असुर प्रलम्ब हुआ और कुबेरके वरसे उसको परम मोक्षकी प्राप्ति हुई ॥ २४ ॥

इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! तदनन्तर श्रीबलराम सहित समस्त ग्वाल-बाल खेलमें आसक्त हो गये । उधर सारी गौएँ घासके लोभसे विशाल वनमें प्रवेश कर गयीं ॥१॥ उनको लौटा लानेके लिये ग्वाल-बाल बहुत बड़े मूँजके वनमें जा पहुँचे । सहसा वहाँ प्रलयाग्निके समान महान् दावानल प्रकट हो गया ॥ २ ॥ उस समय गौओं सहित समस्त ग्वाल-बाल एकत्र हो बलराम सहित श्रीकृष्णको पुकारने लगे और भयसे आर्त हो, उनकी शरण ग्रहण करके 'बचाओ, बचाओ !' यों कहने लगे ॥ ३ ॥ अपने सखाओंके ऊपर अग्निका महान् भय देखकर योगेश्वरेश्वर श्रीकृष्णने कहा—'डरो मत; अपनी आँखें बन्द कर लो' ॥ ४ ॥ हे नरेश्वर ! जब गोपोंने ऐसा कर लिया, तब देवताओंके देखते-देखते भगवान् गोविन्ददेव उस भयकारक अग्निको पी गये ॥ ५ ॥ इस प्रकार उस महान् अग्निको पीकर ग्वालों और गौओंको साथ ले श्रीहरि यमुनाके उस पार

तत्र क्षुत्पीडिता गोपाः श्रीकृष्णं सबलं हरिम् । कृतांजलिपुटा ऊचुः क्षुधार्ताः स्मो वयं प्रभो ॥ ७ ॥
तदा तान्प्रेषयामास यत्र आंगिरसे हरिः । ते गत्वा तं यज्ञवरं नत्वोचुर्विमलं वचः ॥ ८ ॥

गोपा ऊचुः

गोपालबालैः सबलः समागतो गाश्चारयञ्श्रीव्रजराजनन्दनः ।
क्षुत्संयुतोऽस्मै सगणाय भूसुराः प्रयच्छतान्नं मदनमोहिने ॥ ९ ॥

श्रीनारद उवाच

न किंचिदूचुस्ते सर्वे वचः श्रुत्वा द्विजा नृप । गोपा निराशा आगत्य इत्यूचुः सबलं हरिम् ॥१०॥

गोपा ऊचुः

त्वमस्यधीशो व्रजमंडले बली श्रीगोकुले नन्दपुरोऽग्रदण्डभृक् ।
न वर्तते दण्डमलं मथोः पुरि प्रचंडचंडांशुमहस्तव स्फुरन् ॥११॥

श्रीनारद उवाच

पुनस्तान्प्रेषयामास तत्पत्नीभ्यो हरिः स्वयम् । यज्ञवाटं पुनर्गत्वा नत्वा विप्रप्रियास्तदा ॥
कृतांजलिपुटा ऊचुर्गोपाः कृष्णप्रणोदिताः ॥१२॥

गोपा ऊचुः

गोपालबालैः सबलः समागतो गाश्चारयन् श्रीव्रजराजनन्दनः ।
क्षुत्संयुतोऽस्मै सगणाय चांगनाः प्रयच्छतान्नं मदनमोहिने ॥१३॥

श्रीनारद उवाच

कृष्णं समागतं श्रुत्वा कृष्णदर्शनलालसाः ।
चक्रुस्तथान्नं पात्रेषु नीत्वा सर्वा द्विजांगनाः ॥१४॥
त्यक्त्वा सद्यो लोकलज्जां कृष्णपार्श्वं समाययुः ।
अशोकानां वने रम्ये कृष्णातीरे मनोहरे ॥१५॥

अशोकवनमें जा पहुँचे ॥ ६ ॥ वहाँ भूखसे पीड़ित ग्वाल-बाल बलराम सहित श्रीकृष्णसे हाथ जोड़कर बोले—'हे प्रभो ! हमें बहुत भूख सता रही है' ॥ ७ ॥ तब भगवान्‌ने उनको आंगिरस यज्ञमें भेजा। वे उस श्रेष्ठ यज्ञमें जाकर नमस्कार करके निर्मल वचन बोले ॥ ८ ॥ गोपोंने कहा—हे ब्राह्मणो ! ग्वाल-बालों और बलरामजीके साथ व्रजराजनन्दन श्रीकृष्ण गौएँ चराते हुए इधर आ निकले हैं, उन सबको भूख लगी है। अतः आप सखाओं सहित उन मदनमोहन श्रीकृष्णके लिये शीघ्र ही अन्न प्रदान करें ॥ ९ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे नरेश्वर ! ग्वाल-बालोंकी वह बात सुनकर वे ब्राह्मण कुछ नहीं बोले। तब ग्वाल-बाल निराश लौट पड़े और आकर बलराम सहित श्रीकृष्णसे इस प्रकार बोले ॥ १० ॥ गोपोंने कहा—हे नन्दनन्दन ! तुम व्रज-मण्डलमें ही अधीश बने हुए हो। गोकुलमें ही तुम्हारा बल चलता है और नन्दबाबाके आगे ही तुम कठोर दण्डधारी बने हुए हो। प्रचण्ड सूर्यके समान तेजस्वी तुम्हारा प्रकाशमान दण्ड निश्चय ही मथुरापुरीमें अपना प्रभाव नहीं प्रकट करता ॥ ११ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! तब श्रीहरिने उन ग्वाल-बालोंको पुनः यज्ञकर्ता ब्राह्मणोंकी पत्नियोंके पास भेजा। तब वे पुनः यज्ञशालामें गये और ब्राह्मण-पत्नियोंको नमस्कार करके वे श्रीकृष्णके भेजे हुए ग्वाल हाथ जोड़कर बोले ॥ १२ ॥ गोपोंने कहा—हे ब्राह्मणी देवियों ! ग्वाल-बालों और बलरामजीके साथ गाय चराते हुए श्रीव्रजराजनन्दन कृष्ण इधर आ गये हैं, उन्हें भूख लगी है। सखाओंसहित उन मदनमोहनके लिये आपलोग शीघ्र ही अन्न प्रदान करें ॥ १३ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! श्रीकृष्णका शुभागमन सुनकर उन समस्त विप्रपत्नियोंके मनमें उनके दर्शनकी लालसा जाग उठी। उन्होंने विभिन्न पात्रोंमें भोजनकी सामग्री रख ली और तत्काल लोक-लाज छोड़कर वे श्रीकृष्णके पास चली गयीं। रमणीय अशोकवनमें यमुनाके मनोरम तटपर विप्रपत्नियोंने श्रीहरिका अद्भुत रूप देखा

यथा श्रुतं तथा दृष्टं श्रीहरेः रूपमद्भुतम् ।
प्राप्यानंदं गताः सर्वास्तुरीयं योगिनो यथा ॥१६॥

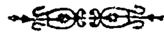
श्रीभगवानुवाच

धन्या यूयं दर्शनार्थमागता हे द्विजांगनाः ।
प्रतियात गृहाञ्छीघ्रं निःशङ्का भूमिदेवताः ॥१७॥
युष्माकं तु प्रभावेण पतयो वो द्विजातयः ।
सद्यो यज्ञफलं प्राप्य युष्माभिः सह निर्मलाः ॥१८॥
गमिष्यंति परं धाम गोलोकं प्रकृतेः परम् ।
अथ नत्वा हरिं सर्वा आजग्मुर्यज्ञमण्डले ॥१९॥

श्रीनारद उवाच

ता दृष्ट्वा ब्राह्मणाः सर्वे स्वात्मानं धिक् प्रचक्रिरे ।
दिदृक्षवस्ते श्रीकृष्णं कंसाद्भीता न चागताः ॥२०॥
भुक्त्वाऽन्नं सबलः कृष्णो गोपालैः सह मैथिल ।
गाः पालयन्नाजगाम वृन्दारण्यं मनोहरम् ॥२१॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीमाधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे दावाग्निमोक्षविप्रपत्नीदर्शनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥



अथ द्वाविंशोऽध्यायः

(नन्द आदि गोपोंका वैकुण्ठधामदर्शन)

श्रीनारद उवाच

एकदा नंदराजोऽसौ कृत्वा चैकादशीव्रतम् । द्वादश्यां यमुनां स्नातुं गोपालैर्जलमाविशत् ॥ १ ॥
तं गृहीत्वा पाशिभृत्यः पाशिलोकं जगाम ह । तदा कोलाहले जाते गोपानां मैथिलेश्वर ॥ २ ॥
आश्वास्य सर्वान्भगवान्गतवान् वारुणीं पुरीम् । भस्मीचकार सहसा पुरीदुर्गं हरिः स्वयम् ॥ ३ ॥

सुना था, वैसा ही देखा। दर्शन पाकर वे सब उसी प्रकार परमानन्दमें निमग्न हो गयीं, जैसे योगीजन तुरीय ब्रह्मका साक्षात्कार करके आनन्दित हो उठते हैं ॥ १४–१६ ॥ श्रीभगवान् बोले—हे विप्रपत्नियो! तुमलोग धन्य हो, जो मेरे दर्शनके लिये यहाँतक चली आयीं; अब शीघ्र ही घर लौट जाओ। ब्राह्मणलोग तुमपर कोई संदेह नहीं करेंगे ॥ १७ ॥ तुम्हारे ही प्रभावसे तुम्हारे पति-देवता ब्राह्मणलोग तत्काल यज्ञका फल पाकर निर्मल हो, तुम्हारे साथ प्रकृतिसे परे विद्यमान परमधाम गोलोकको चले जायँगे ॥ १८ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—तब श्रीहरिको नमस्कार करके वे सब स्त्रियाँ यज्ञशालामें चली आयीं, उन्हें देखकर सब ब्राह्मणोंने अपने-आपको धिक्कारा। वे कंसके डरसे स्वयं श्रीकृष्णको देखनेके लिये नहीं जा सके थे ॥ १९ ॥ २० ॥ हे मैथिल! ग्वाल-बालों और बलरामजीके साथ वह अन्न खाकर श्रीकृष्ण गौओंको चराते हुए मनोहर वृन्दावनमें चले गये ॥ २१ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायामेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—एक दिनकी बात है, नन्दराज एकादशीका व्रत करके द्वादशीको निशीथकालमें ही ग्वालोंके साथ यमुना-स्नानके लिये गये और जलमें उतरे ॥ १ ॥ वहाँ वरुणका एक सेवक उन्हें पकड़कर वरुणलोकमें ले गया। हे मैथिलेश्वर! उस समय ग्वालोंमें कुहराम मच गया ॥ २ ॥ तब उन

कोटिमार्तंडसंकाशं दृष्ट्वा प्रकुपितं हरिम्। नत्वा कृतांजलिः पाशी परिक्रम्याह धर्षितः ॥ ४ ॥

वरुण उवाच

नमः श्रीकृष्णचंद्राय परिपूर्णतमाय च।
असंख्यब्रह्मांडभृते गोलोकपतये नमः ॥ ५ ॥
चतुर्व्यूहाय महसे नमस्ते सर्वतेजसे।
नमस्ते सर्वभावाय परस्मै ब्रह्मणे नमः ॥ ६ ॥
केनापि मूढेन ममानुगेन कृतं परं हेलनमद्य एव।
तत्क्षम्यतां भोः शरणं गतं मां परेश भूमन् परिपाहि पाहि ॥ ७ ॥

श्रीनारद उवाच

इति प्रसन्नो भगवान् नंदं नीत्वा सुजीवितम्। सौख्यं प्रकाशयन्बंधून् व्रजमंडलमाययौ ॥ ८ ॥
नन्दराजमुखाच्छ्रुत्वा प्रभावं श्रीहरेस्तु तम्। गोपीगोपगणा ऊचुः श्रीकृष्णं नंदनंदनम् ॥ ९ ॥
यदि त्वं भगवान्साक्षाल्लोकपालैः सुपूजितः।
दर्शयाशु परं लोकं वैकुण्ठं तर्हि नः प्रभो ॥१०॥
नीत्वा सर्वांस्ततः कृष्ण एत्य वैकुण्ठमंदिरम्।
दर्शयामास रूपं स्वं ज्योतिर्मंडलमध्यगम् ॥११॥
सहस्रभुजसंयुक्तं किरीटकटकोज्ज्वलम्। शंखचक्रगदापद्मवनमालाविराजितम् ॥१२॥
असंख्यकोटिमार्तंडसंकाशं शेषसंस्थितम्। चामरांदोलदिव्याभं ब्रह्माद्यैः परिसेवितम् ॥१३॥
तदैव तान्गोपगणान्पार्षदास्ते गदाधराः।
ऋजुं कृत्वा नतिं धृत्वा दूरे स्थाप्य प्रयत्नतः ॥१४॥

सबको आश्वासन दे भगवान् श्रीहरि वरुणपुरीमें पधारे और उन्होंने सहसा उस पुरीके दुर्गको भस्म कर दिया ॥ ३ ॥ करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी श्रीहरिको अत्यन्त कुपित देख वरुणने तिरस्कृत होकर उन्हें नमस्कार किया और उनकी परिक्रमा करके हाथ जोड़कर कहा ॥ ४ ॥ वरुण बोले—श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार है। परिपूर्णतम परमात्मा तथा असंख्य ब्रह्माण्डोंका भरण-पोषण करनेवाले गोलोकपतिको नमस्कार है ॥ ५ ॥ चतुर्व्यूहके रूपमें प्रकट तेजोमय श्रीहरिको नमस्कार है। सर्वतेज:स्वरूप आप परमेश्वरको नमस्कार है। सर्वस्वरूप आप परब्रह्म परमात्माको नमस्कार है ॥ ६ ॥ मेरे किसी मूर्ख सेवकने यह पहली बार आपकी अवहेलना की है; उसके लिये आप मुझे क्षमा करें। हे परेश! हे भूमन्! मैं आपकी शरणमें आया हूँ; आप मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ॥ ७ ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन्! यह सुनकर प्रसन्न हुए भगवान् श्रीकृष्ण नन्दजीको जीवित लेकर अपने बन्धुजनोंको सुख प्रदान करते हुए व्रजमण्डलमें लौट आये ॥ ८ ॥ नन्दराजके मुखसे श्रीहरिके उस प्रभावको सुनकर गोपी और गोप-समुदाय नन्दनन्दन श्रीकृष्णसे बोले—॥ ९ ॥ 'हे प्रभो! यदि आप लोकपालोंसे पूजित साक्षात् भगवान् हैं तो हमें शीघ्र ही उत्तम वैकुण्ठलोकका दर्शन कराइये।' ॥ १० ॥ तब उन सबको लेकर श्रीकृष्ण वैकुण्ठधाममें गये और वहां उन्होंने ज्योतिर्मण्डलके मध्यमें विराजमान अपने स्वरूपका उन्हें दर्शन कराया ॥ ११ ॥ उनके सहस्र भुजाएं थीं, किरीट और कटक आदि आभूषणोंसे उनका स्वरूप और भी भव्य दिखायी देता था। वे शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म और वनमालासे सुशोभित थे ॥ १२ ॥ असंख्य कोटि सूर्योंके समान तेजस्वी स्वरूपसे वे शेषनागकी शय्यापर पौढ़े थे। चँवर डुलाये जानेसे उनकी आभा और भी दिव्य जान पड़ती थी। ब्रह्मा आदि देवता उनकी सेवामें लगे थे ॥ १३ ॥ उस समय भगवान्‌के गदाधारी पार्षदोंने उन गोपगणोंको सीधे करके उनसे प्रणाम करवाकर उन्हें प्रयत्नपूर्वक दूर खड़ा किया और उन्हें चकित-सा देख वे पार्षद बोले—'अरे

चकितानिव तान्वीक्ष्य प्रोचुस्ते पार्षदा गिरा ।
रे रे तूष्णीं प्रभवत मा वक्तव्यं वनेचराः ॥१५॥
भाषणं मा प्रकुरुत न दृष्टा किं सभा हरेः । वेदा वदंति चात्रैव साक्षाद्देवे स्थिते प्रभौ ॥१६॥
इति शिक्षां गता गोपा हर्षिता मौनमास्थिताः । मनस्यूचुरयं कृष्ण उच्चसिंहासने स्थितः ॥१७॥
अस्मान्दूरादधःकृत्वाऽस्माभिर्वक्ति न कर्हिचित् ।
तस्माद्व्रजाद्वरं नास्ति कोपि लोको न सौख्यदः ॥१८॥
यत्रानेन स्वभ्रात्रापि वार्त्ता स्याद्धि परस्परम् । इति प्रवदतस्तान्वै नीत्वा श्रीभगवान् हरिः ॥
व्रजमागतवान् राजन् परिपूर्णतमः प्रभुः ॥१९॥

इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे नन्दादिवैकुंठदर्शनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

(सुदर्शनोपाख्यान)

श्रीनारद उवाच

एकदा नृप गोपालाः शकटै रत्नपूरितैः । वृषभानूपनन्दाद्या आजग्मुश्चांबिकावनम् ॥ १ ॥
भद्रकालीं पशुपतिं पूजयित्वा विधानतः ।
ददुर्दानं द्विजातिभ्यः सुप्तास्तत्र सरित्तटे ॥ २ ॥
तत्रैको निर्गतो रात्रौ सर्पो नन्दं पदेऽग्रहीत् ।
कृष्ण कृष्णेति चुक्रोश नन्दोऽतिभयविह्वलः ॥ ३ ॥
तदोल्मुकैर्गोपिबालास्तोदुराजगरं नृप । पदं सोऽपि न तत्याज सर्पोऽथ स्वमणिं यथा ॥ ४ ॥
तताड स्वपदा सर्पं भगवाँल्लोकपावनः । त्यक्त्वा तदैव सर्पत्वं भूत्वा विद्याधरः कृती ॥
नत्वा कृष्णं परिक्रम्य कृतांजलिपुटोऽवदत् ॥ ५ ॥

वनचरो ! चुप हो जाओ । यहाँ वक्तृता न दो, भाषण न करो ॥ १४ ॥ १५ ॥ क्या तुमने श्रीहरिकी सभा कभी नहीं देखी है ? यहीं सबके प्रभु देवाधिदेव साक्षात् भगवान् स्थित होते हैं और वेद उनके गुण गाते हैं।' ॥ १६ ॥ इस प्रकार शिक्षा देनेपर वे गोप हर्षसे भरकर चुपचाप खड़े हो गये । अब वे मन-ही-मन कहने लगे—'अरे ! यह ऊँचे सिंहासनपर बैठा हुआ हमारा श्रीकृष्ण ही तो है । हम समीप खड़े हैं, तो भी हमें नीचे खड़ा करके ऊँचे बैठ गया है और हमसे क्षणभरके लिये बाततक नहीं करता । इसलिये व्रजसे बढ़कर न कोई श्रेष्ठ लोक है और न उससे बढ़कर दूसरा कोई सुखदायक स्थान है ॥ १७ ॥ १८ ॥ क्योंकि व्रजमें तो यह हमारा भाई रहा है और इसके साथ हमारी परस्पर बातचीत होती रही है ।' हे राजन् ! इस प्रकार कहते हुए उन गोपोंके साथ परिपूर्णतम प्रभु भगवान् श्रीहरि व्रजमें लौट आये ॥ १९ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

नारजी कहते हैं—हे नरेश्वर ! एक समय वृषभानु और उपनन्द आदि गोपगण रत्नोंसे भरे हुए छकड़ोंपर सवार होकर अम्बिकावनमें आये ॥ १ ॥ वहाँ भगवती भद्रकाली और भगवान् पशुपतिका विधिपूर्वक पूजन करके उन्होंने ब्राह्मणोंको दान दिया और रातको वहीं नदीके तटपर सो गये ॥ २ ॥ ाँ रातमें एक सर्प निकला और उसने नन्दका पैर पकड़ लिया । नन्द अत्यन्त भयसे विह्वल हो ष्ण-कृष्ण' पुकारने लगे ॥ ३ ॥ हे नरेश्वर ! उस समय ग्वाल-बालोंने जलती हुई लकड़ियाँ लेकर उसीसे गरको मारना शुरू किया, तो भी उसने नन्दका पाँव उसी तरह नहीं छोड़ा, जैसे मणिधर साँप

सुदर्शन उवाच

अहं सुदर्शनो नाम विद्याधरवरः प्रभो ।
अष्टावक्रं मुनिं दृष्ट्वा हसितोऽस्मि महाबलः ॥ ६ ॥
मह्यं शापं ददौ सोऽपि त्वं सर्पो भव दुर्मते ।
तच्छापादद्य मुक्तोऽहं कृपया तव माधव ॥ ७ ॥
त्वत्पादपद्ममकरंदरजःकणानां स्पर्शेन दिव्यपदवीं सहसागतोऽस्मि ।
तस्मै नमो भगवते भुवनेश्वराय यो भूरिभारहरणाय भुवोऽवतारः ॥ ८ ॥

श्रीनारद उवाच

इति नत्वा हरिं कृष्णं राजन् विद्याधरस्तु सः ।
जगाम वैष्णवं लोकं सर्वोपद्रववर्जितम् ॥ ९ ॥
नंदाद्या विस्मिताः सर्वे ज्ञात्वा कृष्णं परेश्वरम् ।
अंबिकावनतः शीघ्रमाययुर्व्रजमंडलम् ॥१०॥
इदं मया ते कथितं श्रीकृष्णचरितं शुभम् ।
सर्वपापहरं पुण्यं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥११॥

बहुलाश्व उवाच

अहो श्रीकृष्णचंद्रस्य चरितं परमाद्भुतम् ।
श्रुत्वा मनो मे तच्छ्रोतुमतृप्तं पुनरिच्छति ॥१२॥
अग्रे चकार कां लीलां लीलया व्रजमंडले ।
हरिर्व्रजेशः परमो वद देवर्षिसत्तम ॥१३॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीमाधुर्यखंडे नारदबहुलाश्वसंवादे सुदर्शनोपाख्यानं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

अपनी मणिको नहीं छोड़ता ॥ ४ ॥ तब लोकपावन भगवान्‌ने उस सर्पको तत्काल पैरसे मारा। पैरसे मारते ही वह सर्पका शरीर त्यागकर कृतकृत्य विद्याधर हो गया। उसने श्रीकृष्णको नमस्कार करके उनकी परिक्रमा की और हाथ जोड़कर कहा ॥ ५ ॥ सुदर्शन बोला—हे प्रभो ! मेरा नाम सुदर्शन है, मैं विद्याधरोंका मुखिया हूँ। मुझे अपने बलका बड़ा घमंड था और मैंने अष्टावक्र मुनिको देखकर उनकी हँसी उड़ायी थी ॥ ६ ॥ तब उन्होंने मुझे शाप दिया—'हे दुर्मते ! तू सर्प हो जा।' हे माधव ! उनके उस शापसे आज मैं आपकी कृपासे मुक्त हुआ हूँ ॥ ७ ॥ आपके चरण-कमलोंके मकरन्द एवं परागके कणोंका स्पर्श पाकर मैं सहसा दिव्य पदवीको प्राप्त हो गया। जो भूतलका भूरि-भार-हरण करनेके लिये यहाँ अवतीर्ण हुए हैं, उन भगवान् भुवनेश्वरको बारंबार नमस्कार है ॥ ८ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार करके वह विद्याधर सब प्रकारके उपद्रवोंसे रहित वैष्णव लोकको चला गया ॥ ९ ॥ उस समय श्रीकृष्णको परमेश्वर जानकर नन्द आदि गोप बड़े विस्मित हुए। फिर वे शीघ्र ही अम्बिका-वनसे व्रजमण्डलको चले गये ॥ १० ॥ इस प्रकार मैंने तुमसे श्रीकृष्णके शुभ चरित्रका वर्णन किया, जो पुण्यप्रद तथा सर्वपापहारी है। अब और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ ११ ॥ बहुलाश्व बोले—अहो ! श्रीकृष्ण-चन्द्रका चरित्र अत्यन्त अद्भुत है, उसे सुनकर मेरा मन पुनः उसे सुनना चाहता है ॥ १२ ॥ हे देवर्षि-सत्तम ! व्रजेश्वर परमात्मा श्रीहरिने व्रजमण्डलमें आगे चलकर कौन-सी लीला की ? ॥ १३ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

(अरिष्टासुर और व्योमासुरका वध तथा माधुर्यखंडका उपसंहार)

श्रीनारद उवाच

एकदा शैलदेशेषु सबलो भगवान्हरिः । कृत्वा विलापनक्रीडां चौरपालकलक्षणाम् ॥ १ ॥
तत्र व्योमासुरो दैत्यो बालान्मेषायितान्बहून् । नीत्वा नीत्वाऽद्रिदर्यां च विनिक्षिप्य पुनः पुनः ॥ २ ॥

शिलया पिदधे द्वारं मयपुत्रो महाबलः ।
सत्यचौरं च तं ज्ञात्वा भगवान्मधुसूदनः ॥ ३ ॥
गृहीत्वा पातयामास भुजाभ्यां भूमिमंडले ॥ ४ ॥
तदा मृत्युं गतो दैत्यस्तज्ज्योतिर्निर्गतं स्फुरत् ।
दशदिक्षु भ्रमद्राजन् श्रीकृष्णे लीनतां गतम् ॥ ५ ॥
तदा जयजयारावो दिवि भूमौ बभूव ह ।
पुष्पाणि ववृषुर्देवाः परमानंदसंवृताः ॥ ६ ॥

बहुलाश्व उवाच

कोऽयं पूर्वं कुशलकृद्व्योमो नामाथ तद्वद ।
येन कृष्णे घनश्यामे लीनोऽभूद्दामिनी यथा ॥ ७ ॥

श्रीनारद उवाच

आसीत्काश्यां भीमरथो राजा दानपरायणः । यज्ञकृन्मानदो धन्वी विष्णुभक्तिपरायणः ॥ ८ ॥
राज्ये पुत्रं सन्निवेश्य जगाम मलयाचलम् । तपस्तत्र समारेभे वर्षाणां लक्षमेव हि ॥ ९ ॥
तस्याश्रमे पुलस्त्योऽसौ शिष्यवृन्दैः समागतः । तं दृष्ट्वा नोत्थितो मानी राजर्षिर्न नतोऽभवत् ॥ १० ॥
शापं ददौ पुलस्त्योऽपि दैत्यो भव महाखल । ततस्तच्चरणोपांते पतितं शरणागतम् ॥ ११ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! एक दिन गोवर्धनके आस-पास बलरामसहित भगवान् श्रीकृष्ण आँखमिचौनीका खेल खेलने लगे—जिसमें कोई चोर बनता है और कोई रक्षक ॥ १ ॥ वहाँ व्योमासुर नामक दैत्य आया। उस खेलमें कुछ लड़के भेड़ बनते थे और कोई चोर बनकर उन भेड़ोंको ले जाकर कहीं छिपाता था। व्योमासुरने भेड़ बने हुए बहुत-से गोप-बालकोंको बारी-बारीसे ले जाकर पर्वतकी कन्दरामें रक्खा और एक शिलासे उनका द्वार बंद कर दिया। वह मयासुरका महान् बलवान् पुत्र था। यह तो सचमुच चोर निकला, यह जानकर भगवान् मधुसूदनने उसे दोनों भुजाओंद्वारा पकड़ लिया और पृथ्वीपर दे मारा ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ उसी समय दैत्य मृत्युको प्राप्त हो गया और उसके शरीरसे निकला हुआ प्रकाशमान तेज दसों दिशाओंमें घूमकर श्रीकृष्णमें लीन हो गया ॥ ५ ॥ उस समय स्वर्गमें और पृथ्वीपर जय-जयकारकी ध्वनि होने लगी। देवता लोग परम आनन्दमें मग्न होकर फूल बरसाने लगे ॥ ६ ॥ बहुलाश्वने पूछा—हे मुने ! यह व्योम नामक असुर पूर्वजन्ममें कौन-सा पुण्यात्मा मनुष्य था, जिसने श्याम घनमें बिजलीकी भाँति श्रीकृष्णमें विलय प्राप्त किया ॥ ७ ॥ नारदजी बोले—हे राजन् ! काशीमें भीमरथ नामसे प्रसिद्ध एक राजा थे, जो सदा दान-पुण्यमें लगे रहते थे। वे यज्ञकर्ता, दूसरोंको मान देनेवाले, धनुर्धर तथा विष्णुभक्तिपरायण थे ॥ ८ ॥ वे राज्यपर अपने पुत्रको बिठाकर स्वयं मलयाचलपर चले गये और वहाँ तपस्या आरम्भ करके एक लाख वर्षतक उसीमें लगे रहे ॥ ९ ॥ उनके आश्रममें एक समय महर्षि पुलस्त्य शिष्योंके साथ आये। उनको देखकर भी वे मानी राजर्षि न तो उठकर खड़े हुए और न उनके सामने नत ही हुए ॥ १० ॥ तब पुलस्त्यने उन्हें शाप दे दिया—'ओ महादुष्ट भूपाल ! तू दैत्य हो जा।' तदनन्तर

उवाच मुनिशार्दूलः पुलस्त्यो दीनवत्सलः । द्वापरान्ते माथुरे च पुण्ये श्रीव्रजमंडले ॥१२॥
यदुवंशपतेः साक्षाच्छ्रीकृष्णस्य भुजौजसा ।
ईप्सिता योगिभिर्मुक्तिर्भविष्यति न संशयः ॥१३॥

श्रीनारद उवाच

सोऽयं भीमरथो राजा मयदैत्यसुतोऽभवत् । श्रीकृष्णभुजवेगेन मुक्तिं प्राप विदेहराट् ॥१४॥
एकदा गोपबालेषु दैत्योऽरिष्टो महाबलः । आगतो नादयन् खं गां तटाञ्छृङ्गैर्विदारयन् ॥१५॥
गोप्यो गोपा गोगणाश्च वीक्ष्य तं दुद्रुवुर्भयात् ।
भगवान्दैत्यहा देवो मा भैष्टेत्यभयं ददौ ॥१६॥
गृहीत्वा तं तु शृङ्गेषु नोदयामास माधवः ।
सोऽपि तं नोदयामास श्रीकृष्णं योजनद्वयम् ॥१७॥
पुच्छे गृहीत्वा तं कृष्णो भ्रामयित्वा भुजौजसा । भूपृष्ठे पोथयामास कमण्डलुमिवार्भकः ॥१८॥
अरिष्टः पुनरुत्थाय क्रोधसंरक्तलोचनः । शृङ्गैश्च रोहितं शैलं समुत्पाट्य महाखलः ॥१९॥
गर्जयन्घनवद्वीरः कृष्णोपरि समाक्षिपत् ।
कृष्णः शैलं संगृहीत्वा तस्योपरि समाक्षिपत् ॥२०॥
शैलस्यापि प्रहारेण किंचिद्व्याकुलमानसः । भूमौ तताड शृङ्गाग्रान्निर्गतं तैर्जलं भुवः ॥२१॥
श्रीकृष्णस्तं च शृङ्गेषु गृहीत्वा भ्रामयन्मुहुः । भूपृष्ठे पोथयामास वातः पद्ममिवोद्धृतम् ॥२२॥
तदैव वृषरूपत्वं त्यक्त्वा विप्रवपुर्धरः । नत्वा श्रीकृष्णपादाब्जं प्राह गद्गदया गिरा ॥२३॥

द्विज उवाच

बृहस्पतेश्च शिष्योऽहं वरतंतुर्द्विजोत्तमः । बृहस्पतिसमीपे च पठितुं गतवानहम् ॥२४॥

राजा जब उनके चरणोंमें पड़कर शरणागत हो गये, तब दीनवत्सल मुनिश्रेष्ठ पुलस्त्यने उनसे कहा—'द्वापरके अन्तमें मथुरा जनपदके पवित्र व्रजमण्डलमें साक्षात् यदुवंशराज श्रीकृष्णके बाहुबलसे तुम्हें ऐसी मुक्ति प्राप्त होगी, जिसकी योगीलोग अभिलाषा रखते हैं—इसमें संशय नहीं है' ॥ १२ ॥ १३ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे विदेहराज ! वही यह राजा भीमरथ मय दैत्यका पुत्र होकर श्रीकृष्णके बाहुवेगसे मोक्षको प्राप्त हुआ ॥ १४ ॥ एक दिन गोप-बालकोंके बीचमें महाबली दैत्य अरिष्ट आया। वह अपने सिंहनादसे पृथ्वी और आकाशको गुँजा रहा था और सींगोंसे पर्वतीय तटोंको विदीर्ण कर रहा था ॥ १५ ॥ उसे देखते ही गोपियाँ, गोप तथा गौओंके समुदाय भयसे इधर-उधर भागने लगे। दैत्योंके नाशक भगवान् श्रीकृष्णने उन सबको अभय करते हुए कहा—'डरो मत।' ॥ १६ ॥ माधवने उसके सींग पकड़ लिये और उसे पीछे ढकेल दिया। उस राक्षसने भी श्रीकृष्णको ढकेलकर दो योजन पीछे कर दिया ॥ १७ ॥ तब श्रीकृष्णने उसकी पूँछ पकड़ ली और बाहुवेगसे घुमाते हुए उसे उसी प्रकार पृथ्वीपर पटक दिया, जैसे छोटा बालक कमण्डलुको फेंक दे ॥ १८ ॥ अरिष्ट फिर उठा। क्रोधसे उसके नेत्र लाल हो रहे थे। उस महादुष्ट वीरने सींगोंसे लाल पत्थर उखाड़कर मेघकी भाँति गर्जना करते हुए श्रीकृष्णके ऊपर फेंका। श्रीकृष्णने उस प्रस्तरको पकड़कर उलटे उसीपर दे मारा ॥ १९ ॥ २० ॥ उस शिलाखण्डके प्रहारसे वह मन-ही-मन कुछ व्याकुल हो उठा। उसने अपने सींगोंके अग्रभागको पृथ्वीपर रगड़ना प्रारम्भ किया, इससे पृथ्वीके भीतरसे पानी निकल आया ॥ २१ ॥ तब श्रीकृष्णने उसके सींग पकड़कर बार-बार घुमाते हुए उसे पृथ्वीपर उसी प्रकार दे मारा, जैसे हवा कमलको उठाकर फेंक देती है ॥ २२ ॥ उसी समय वह वृषभका रूप त्यागकर ब्राह्मणशरीरधारी हो गया और श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंमें प्रणाम करके गद्गद वाणीमें बोला ॥ २३ ॥ ब्राह्मणने कहा—हे भगवन् ! मैं बृहस्पतिका शिष्य द्विजश्रेष्ठ वरतन्तु हूँ। मैं बृहस्पतिजीके समीप पढ़ने गया था ॥ २४ ॥

पादौ कृत्वा स्थितोऽभूवं पश्यतस्तस्य संमुखे । तदा रुषाऽऽह स मुनिर्वृषवत्त्वं स्थितः पुरः ॥२५॥
गुरुहेलनकृत्तस्मात्त्वं वृषो भव दुर्मते । तस्य शापाद्वृषोऽभूवं बङ्गदेशेषु माधव ॥२६॥
असुराणां प्रसङ्गेनासुरत्वं गतवानहम् । त्वत्प्रसादाद्विमुक्तोऽहं शापतोऽसुरभावतः ॥२७॥
श्रीकृष्णाय नमस्तुभ्यं वासुदेवाय ते नमः । प्रणतक्लेशनाशाय गोविंदाय नमो नमः ॥२८॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा श्रीहरिं नत्वा साक्षाच्छिष्यो बृहस्पतेः । द्योतयन्भुवनं राजन्विमानेन दिवं ययौ ॥२९॥
इदं मया ते कथितं खण्डं माधुर्य्यमद्भुतम् । सर्वपापहरं पुण्यं कृष्णप्राप्तिकरं परम् ॥३०॥
कामदं पठतां शश्वत्किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥३१॥

इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे व्योमासुरारिष्टासुरवधो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

उस समय उनकी ओर पाँव फैलाकर उनके सामने बैठ गया था । इससे वे मुनि रोषपूर्वक बोले—'तू मेरे आगे बैलकी भाँति बैठा है, इससे गुरुकी अवहेलना हुई है । अतः अरे दुर्बुद्धे ! तू बैल हो जा।' हे माधव ! उस शापसे मैं वङ्गदेशमें बैल हो गया ॥ २५ ॥ २६ ॥ असुरोंके सङ्गमें रहनेसे मुझमें आसुरभाव आ गया था । अब आपके प्रसादसे मैं शाप और आसुरभावसे मुक्त हो गया ॥ २७ ॥ आप श्रीकृष्णको नमस्कार है । आप भगवान् वासुदेवको प्रणाम है । प्रणतजनोंके क्लेशका नाश करनेवाले आप गोविन्दको बारंबार नमस्कार है ॥ २८ ॥ श्री नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! यों कह और श्रीहरिको नमस्कार करके बृहस्पतिके साक्षात् शिष्य वरतन्तु भुवनको प्रकाशित करते हुए विमानसे दिव्यलोकको चले गये ॥ २९ ॥ इस प्रकार मैंने अद्भुत माधुर्यखण्डका तुमसे वर्णन किया, जो सब पापोंको हर लेनेवाला, पुण्यदायक तथा श्रीकृष्णकी प्राप्ति करनेवाला उत्तम साधन है ॥ ३० ॥ जो सदा इसका पाठ करते हैं, उनकी समस्त कामनाओंको यह देनेवाला है । अब और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ ३१ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

※ इति चतुर्थो माधुर्यखण्डः समाप्तः ※

आचार्य-श्रीगर्गमहामुनिविरचिता—

श्रीगर्गसंहिता

'प्रियंवदा'ऽभिधया भाषाटीकयाऽऽटीकिता

(मथुराखण्डः ५)

अथ प्रथमोऽध्यायः

(कंसकी मन्त्रणा)

श्रीनारद उवाच

वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् । देवकीपरमानंदं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥ १ ॥

बहुलाश्व उवाच

मथुरायां किं चरित्रं कृतवान्भगवान्मुने । कथं जघान कंसाख्यमेतन्मे ब्रूहि तत्त्वतः ॥ २ ॥

श्रीनारद उवाच

अथैकदाऽहं मथुरां पुरीं परां विलोकितुं चागतवान्नृपेश्वर ।
कर्तुं परं दैत्यवधोद्यमं हरेः परस्य साक्षान्मनसा प्रणोदितः ॥ ३ ॥
सिंहासने च प्रहृते पुरंदरात्सितातपत्रे चलचारुचामरे ।
स्थितं नृपं कंसमुरंगदुःसहं प्रावोचमेवं शृणु तत्प्रपूजितः ॥ ४ ॥

यशोदायाः सुता जाता या त्वद्धस्ताद्दिवं गता । देवक्यां कृष्ण उत्पन्नो रोहिणीनंदनो बलः ॥ ५ ॥
स्वमित्रे नंदराजे च न्यस्तौ पुत्रौ भवद्भयात् । तवारी रामकृष्णौ द्वौ वसुदेवेन दैत्यराट् ॥ ६ ॥

जो वसुदेवजीके यहाँ पुत्र-रूपसे प्रकट हुए हैं, जिन्होंने कंस एवं चाणूरका मर्दन किया है तथा जो देवकीको परमानन्द प्रदान करनेवाले हैं, उन जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णकी मैं वन्दना करता हूँ ॥ १ ॥ राजा बहुलाश्वने कहा—हे मुने ! भगवान् श्रीकृष्णने मथुरामें कौन-कौन-सी लीलाएँ कीं ? उन्होंने कंसको क्यों और कैसे मारा ? यह सब मुझको ठीक-ठीक बताइये ॥ २ ॥ नारदजीने कहा—हे नृपेश्वर ! एक दिन साक्षात् परमात्मा श्रीहरिके मनसे प्रेरित होकर मैं दैत्यवध-सम्बन्धी उद्यमको आगे बढ़ानेके लिये उत्कृष्ट पुरी मथुराके दर्शनार्थ वहाँ आया ॥ ३ ॥ आकर राजा कंसके दरबारमें गया। वहाँ कंस इन्द्रसे छीनकर लाये हुए सिंहासनके ऊपर, जहाँ श्वेत छत्र तना हुआ था और सुन्दर चँवर डुलाये जा रहे थे, विराजमान था। वह बल, पराक्रम और क्रूरताके कारण नागराजके समान दुःसह प्रतीत होता था। वहाँ पहुँचनेपर उसने मेरा पूजन तथा स्वागत-सत्कार किया। उस समय मैंने उससे जो कुछ कहा, वह सुनो—॥ ४ ॥ 'हे मथुरानरेश ! जो कन्या तुम्हारे हाथसे छूटकर आकाशमें उड़ गयी थी, वह देवकीकी नहीं, यशोदाकी पुत्री थी। देवकीसे तो श्रीकृष्ण ही उत्पन्न हुए हैं और रोहिणीके पुत्र बलराम हैं ॥ ५ ॥ हे दैत्यराज ! वसुदेवने तुम्हारे शत्रुभूत अपने दोनों पुत्र बलराम और श्रीकृष्णको अपने मित्र नन्दराजके यहाँ धरोहरके रूपमें रख दिया है—इसलिये कि तुम्हारे भय-

पूतनाद्या ह्यरिष्टांता दैत्या ये त्वद्बलोत्कटाः । याभ्यां हता वनोद्देशे ते मृत्यू तौ स्मृतौ किल ॥ ७ ॥
एवमुक्तो भोजपतिः क्रोधाचलितविग्रहः । जग्राह निशितं खड्गं शौरिं हंतुं सभातले ॥ ८ ॥
मया निवारितः सोऽपि विस्तृतैर्निगडैर्दृढैः । बद्ध्वा तं भार्यया सार्द्धं कारागारे रुरोध ह ॥ ९ ॥
इत्युक्त्वा तं मयि गते केशिनं दैत्यपुंगवम् । रामकृष्णवधार्थाय प्रेषयामास दैत्यराट् ॥१०॥
चाणूरादीन् समाहूय महामात्रं द्विपस्य च । कार्यभारकराँल्लोकान् प्राहेदं भोजराड् बली ॥११॥

कंस उवाच

हे कूट हे तोशलक हे चाणूर महाबल । रामकृष्णौ च मे मृत्यू दर्शितौ नारदेन तु ॥१२॥
भवद्भिरिह संप्राप्तौ हन्येतां मल्ललीलया । मल्लभूमिं च संयुक्तां कुरुताशु शुभावहाम् ॥१३॥
द्विपं कुवलयापीडं रंगद्वारि मदोत्कटम् । प्रस्थाप्य तेन हंतव्यौ महामात्र समाहितौ ॥१४॥
चतुर्दश्यां तु कर्तव्यो धनुर्यागः प्रशान्तये । अमावास्यादिने लोका मल्लयुद्धं भवेदिह ॥१५॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा स्वजनान्कंसोऽक्रूरमाहूय सत्वरम् । रहसि प्राह राजेंद्र मंत्रं मंत्रिजनप्रियम् ॥१६॥

कंस उवाच

भो भो दानपते मंत्रिञ्छृणु मे परमं वचः । गच्छ नंदव्रजं प्रातः कुरु कार्यं महामते ॥१७॥
आसाते तत्र मे शत्रू वसुदेवसुतौ किल । दर्शितौ नारदेनापि देवदेवर्षिणा भृशम् ॥१८॥
सोपायनैर्गोपगणैर्नन्दराजादिभिः सह । मथुरादर्शनमिषाद्रथेनानय मा चिरम् ॥१९॥
द्विपेन वा महामल्लैर्घातयिष्यामि तौ शिशू । तत्पश्चान्नंदराजं च वसुदेवसहायकम् ॥२०॥

से उनकी रक्षा हो सके ॥ ६ ॥ पूतनासे लेकर अरिष्टासुरतक जो-जो उत्कट बलशाली दैत्य नष्ट हुए हैं, वे सब वनमें उन्हीं दोनोंके द्वारा मारे गये हैं। कहा जाता है कि वे ही दोनों तुम्हारी मृत्यु हैं' ॥ ७ ॥ मेरे यों कहनेपर भोजराज कंस क्रोधसे काँपने लगा। उसने शूरनन्दन वसुदेवको सभामें ही मार डालनेके लिये तीखी तलवार हाथमें ले ली ॥८॥ परन्तु मैंने उसे रोक दिया; तथापि उसने सुदृढ़ और विशाल बेड़ियोंमें पत्नीसहित उन्हें बाँधकर कारागारमें बंद कर दिया ॥ ९ ॥ कंससे उक्त बात कहकर जब मैं चला आया, तब उस दैत्यराजने श्रीकृष्ण और बलरामका वध करनेके लिये दैत्यप्रवर केशीको भेजा ॥ १० ॥ तदनन्तर बलवान् भोजराज कंसने चाणूर आदि मल्लों तथा कुवलयापीड नामक हाथीके महावतको बुलवाया और अपना कार्यभार सँभालनेवाले अन्य लोगोंको भी बुलवाकर उनसे इस प्रकार कहा ॥ ११ ॥ कंस बोला—हे कूट ! हे तोशल ! हे महाबली चाणूर ! बलराम और कृष्ण—दोनों मेरी मृत्यु हैं, यह बात नारदजीने मुझे भली-भाँति समझा दी है ॥ १२ ॥ अतः वे दोनों जब यहाँ आ जायँ, तब तुम सब लोग मल्लोंके खेल (कुश्तीके दावँ-पेंच) दिखाते हुए उन्हें मार डालना। अब शीघ्र ही मल्लभूमि (अखाड़े) को सुन्दर ढंगसे सुसज्जित कर दो ॥ १३ ॥ हे महावत ! रङ्गशालाके द्वारपर मदमत्त हाथी कुवलयापीडको खड़ा रक्खो और मेरे शत्रु जब आ जायँ, तो उन्हें मरवा डालो ॥ १४ ॥ हे कार्यकर्ता जनो ! आगामी चतुर्दशीको शान्तिके लिये धनुर्यज्ञ करना है और अमावास्याके दिन यहाँ मल्लयुद्ध होगा ॥ १५ ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजेन्द्र ! आत्मीय जनोंसे इस प्रकार कहकर कंसने अक्रूरको तुरंत अपने पास बुलवाया और एकान्त स्थानमें मन्त्रिजनोंको प्रिय लगनेवाली मन्त्रणाकी बात कही ॥ १६ ॥ कंस बोला—हे दानपते ! तुम मेरे माननीय मन्त्री हो, अतः मेरी यह उत्तम बात सुनो। हे महामते ! कल प्रातःकाल होते ही तुम नन्दके व्रजमें जाओ और मेरा यह कार्य करो ॥ १७ ॥ लोग कहते हैं कि वसुदेवके दोनों बेटे वहीं रहते हैं। वे दोनों मेरे शत्रु हैं, यह बात देवर्षि नारदजीने मुझे अच्छी तरह समझा दी है ॥ १८ ॥ गोपगण नन्दराज आदिके साथ भेंट लेकर यहाँ आयें और उन्हींके साथ मथुरा नगरी दिखानेके बहाने उन दोनोंको भी रथपर बिठाकर शीघ्र यहाँ ले आओ ॥ १९ ॥ यहाँ आनेपर हाथीसे अथवा बड़े-बड़े पहलवानोंके द्वारा मैं उन दोनों बालकोंको मरवा डालूँगा। उसके बाद वसुदेवकी सहायता करनेवाले नन्दराज, वृषभानुवर, नौ नन्दों और उपनन्दोंको मौतके घाट उतार दूँगा। तदनन्तर वसुदेव, उनके सहायक देवक तथा

वृषभानुवरं पश्चान्नवनन्दोपनन्दकान् । पश्चाच्छौरिं हनिष्यामि देवकं तत्सहायकम् ॥२१॥
उग्रसेनं च पितरं वृद्धं राज्यसमुत्सुकम् । तत्पश्चाद्यादवान्सर्वान् हनिष्यामि न संशयः ॥२२॥
एते देवगणाः सर्वे जाता मंत्रिन् महीतले । शकुनिर्मे महामित्रो बली चन्द्रावतीपतिः ॥२३॥
भूतसंतापनो दुष्टो वृकः शंवर एव च । कालनाभो महानाभो हरिश्मश्रुस्तथैव च ॥२४॥
एते मित्राणि मे संति मदर्थं प्राणदा बलात् । श्वशुरोऽपि जरासंधो द्विविदो मे सखा स्मृतः ॥२५॥
बाणासुरश्च नरको मय्येव कृतसौहृदः । एते सर्वां महीं जित्वा बद्ध्वा देवान्सवासवान् ॥२६॥
क्षिप्त्वा मेरुगुहादुर्गे कुबेरं द्रव्यनायकम् । त्रैलोक्यराज्यं तु सदा करिष्यंति न संशयः ॥२७॥
कवीनां त्वं कविरिव गिरां गीष्पतिवद्भुवि । एतत्कार्यं च कर्त्तव्यं त्वया दानपते त्वरम् ॥२८॥

अक्रूर उवाच

त्वया कृतो यदुपते मनोरथमहार्णवः । दैवेच्छयाऽयं भवति गोष्पदं तद्विनार्णवः ॥२९॥

कंस उवाच

विसृज्य दैवं कुरुते बलिष्ठो दैवं समाश्रित्य हि निर्बलश्च ।
कालात्मनोर्नित्यगयोः प्रभावान्निराकुलस्तिष्ठतु कर्मयोगी ॥३०॥

श्रीनारद उवाच

एवमुक्त्वा मंत्रिवरं समुत्थाय सभास्थलात् । किंचित्प्रकुपितः कंसः शनैरंतःपुरं ययौ ॥३१॥

इति श्रीगर्गसंहितायां मथुराखंडे नारदबहुलाश्वसंवादे कंसमंत्रो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

(श्रीकृष्णके हाथों केशी दैत्यका वध)

श्रीनारद उवाच

अथ केशी महादैत्यो हयरूपी मदोत्कटः । एत्य वृन्दावनं रम्यं जगर्ज्ज घनवद्बली ॥ १ ॥

अपने बूढ़े पिता उग्रसेनको भी, जो राज्य पानेके लिये उत्सुक रहता है, मार डालूँगा। यह सब हो जानेके बाद समस्त यादवोंका संहार कर डालूँगा, इसमें संशय नहीं है ॥ २०–२२ ॥ हे मन्त्रिन्! ये सब-के-सब देवता हैं, जो मनुष्यके रूपमें प्रकट हुए हैं। चन्द्रावतीपति बलवान् शकुनि मेरा बहुत बड़ा मित्र है ॥ २३ ॥ भूतसंतापन, दुष्ट, वृक, संवर, कालनाभ, महानाभ तथा हरिश्मश्रु—ये सब मेरे मित्र हैं और बलपूर्वक मेरे लिये अपने प्राणतक दे सकते हैं। जरासंध तो मेरा श्वसुर ही है और द्विविद मेरा सखा है ॥ २४ ॥ २५ ॥ बाणासुर और नरकासुर भी मेरे प्रति सौहार्द रखते हैं। ये सब लोग इस पृथ्वीको जीतकर, इन्द्रसहित देवताओंको बाँधकर और द्रव्य-राशिके स्वामी बने हुए कुबेरको मेरुपर्वतकी दुर्गम कन्दरामें फेंककर सदा तीनों लोकोंका राज्य करेंगे, इसमें संशय नहीं है ॥ २६ ॥ २७ ॥ हे दानपते! तुम कवियों (नीतिज्ञ विद्वानों) में शुक्राचार्यके समान हो और बातचीत करनेमें इस भूतलपर बृहस्पतिके तुल्य हो; अतः इस कार्यको तुरंत सम्पन्न करो ॥ २८ ॥ अक्रूर बोले—हे यदुपते! तुमने मनोरथका महासागर ही रच डाला है। यदि दैवकी इच्छा होगी तो यह सागर गोष्पद (गायकी खुरी) के समान हो जायगा और यदि दैव अनुकूल न हुआ, तब तो यह अपार महासागर है ही ॥ २९ ॥ कंस बोला—बलवान् पुरुष दैवका भरोसा छोड़कर कार्य करते हैं और निर्बल दैवका सहारा पकड़े बैठे रहते हैं। कर्मयोगी पुरुष कालस्वरूप श्रीहरिके प्रभावसे सदा निराकुल (शान्त) रहता है ॥ ३० ॥ नारदजी कहते हैं—मन्त्रिप्रवर अक्रूरसे यों कहकर कंस सभास्थलसे उठ गया और कुछ कुपित हो वीरेसे अन्तःपुरमें चला गया ॥ ३१ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां मथुराखण्डे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

यस्य पादप्रताडेन निपेतुः शाखिनो दृढाः । पुच्छाघातेन गगने खंडं खंडं ययुर्घनाः ॥ २ ॥
तं वीक्ष्य दुःसहजवं गोपगोपीगणा भृशम् । भयातुरा मैथिलेन्द्र श्रीकृष्णं शरणं ययुः ॥ ३ ॥
मा भैष्टेत्यभयं दत्त्वा भगवान्वृजिनार्दनः । कटौ पीतांवरं वद्ध्वा हंतुं दैत्यं प्रचक्रमे ॥ ४ ॥
हरिं पश्चिमपादाभ्यां संतताड महासुरः । चालयन्पृथिवीं राजन्नादयन्व्योममंडलम् ॥ ५ ॥
गृहीत्वा पादयोर्दैत्यं भ्रामयित्वा भुजेन खे । चिक्षेप योजनं कृष्णो वातः पद्ममिवोद्धृतम् ॥ ६ ॥
पुनरागतवान् सोऽपि क्रोधपूरितविग्रहः । पुच्छेन श्रीहरिं देवं संतताड व्रजाङ्गणे ॥ ७ ॥
पुच्छे गृहीत्वा तं कृष्णो भ्रामयित्वा भुजौजसा । योजनानां शतं राजन् चिक्षेप गगने बलात् ॥ ८ ॥
आकाशात्पतितः सोऽपि किंचिद्व्याकुलमानसः । समुत्थाय पुनर्दैत्यो जगर्ज घनवद्बली ॥ ९ ॥
सटा विधुन्वन् रोमाणि वालं खे चालयन्मुहुः । महीं विदारयन्पादैरुत्पपात हरेः पुरः ॥१०॥
तताड मुष्टिना तं वै भगवान्मधुसूदनः । तस्य मुष्टिप्रहारेण मूर्छितो घटिकाद्वयम् ॥११॥
मस्तकेन गलोद्देशे समुद्धृत्य हरिं हयः । भूमंडलादुत्पपात गगने लक्षयोजनम् ॥१२॥
तयोर्युद्धमभूद्घोरं गगने प्रहरद्वयम् । पादैर्दद्भिः सटाभिश्च पुच्छतीक्ष्णखुरैर्नृप ॥१३॥
गृहीत्वा तं हरिर्दोर्भ्यां भ्रामयित्वा त्वितस्ततः । आकाशात्पातयामास कमंडलुमिवार्भकः ॥१४॥
भुजं प्रवेशयामास तन्मुखे भगवान् हरिः । तस्योदरे गतो वाहुर्ववृधे रोगवद्भृशम् ॥१५॥
तदा तु लेंडं कृतवान् रुद्धवायुर्महासुरः । खंडीभूतोदरः सद्यो ममार हयरूपधृक् ॥१६॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे मिथिलेश्वर ! उधर वलवान् एवं मदोन्मत्त महादैत्य केशी घोड़ेका रूप धारण करके रमणीय वृन्दावनमें गया और मेघकी भाँति गर्जन करने लगा ॥ १ ॥ उसके पैरोंके आघातसे सुदृढ़ वृक्ष भी टूटकर धराशायी हो जाते थे। पूँछकी चोट खाकर आकाशमें घिरे घने वादल भी छिन्न-भिन्न हो जाते थे ॥ २ ॥ हे मैथिलेन्द्र ! उसका वेग दुःसह था । उसे देखकर गोप-गोपियोंके समुदाय अत्यन्त भयसे व्याकुल हो भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें गये ॥ ३ ॥ पाप और पापियोंको पीड़ा देनेवाले भगवान्‌ने 'डरो मत'—यह कहकर उन सवको अभयदान दिया और कमरमें पीताम्बर कसकर वे उस दैत्यको मार डालनेकी चेष्टामें लग गये ॥४॥ हे राजन् ! तभी उस महान् असुरने अपने पिछले पैरोंसे श्रीहरिके ऊपर आघात किया और पृथ्वीको कँपाता हुआ वह आकाशमण्डलको अपनी गर्जनासे गुँजाने लगा ॥ ५ ॥ तव, जैसे हवा कमलको उखाड़कर फेंक देती है, उसी प्रकार श्रीकृष्णने उस दैत्यके दोनों पैर पकड़कर वाहुवलसे घुमाते हुए उसे एक योजन दूर फेंक दिया ॥ ६ ॥ क्रोधसे भरे हुए केशीने भी वहाँ आकर व्रजके प्राङ्गणमें भगवान् श्रीहरिके ऊपर अपनी पूँछसे प्रहार किया ॥ ७ ॥ हे राजन् ! तव श्रीकृष्णने उसकी पूँछ पकड़ ली और वाहुवेगसे वलपूर्वक घुमाते हुए उसे आकाशमें सौ योजन दूर फेंक दिया ॥ ८ ॥ आकाशसे नीचे गिरनेपर उसे मन-ही-मन कुछ व्याकुलताका अनुभव हुआ, किन्तु पुनः उठकर वह वलवान् दैत्य मेघके समान गर्जन करने लगा ॥ ९ ॥ अपनी गर्दनके अयालोंको कँपाता और पूँछके वालोंको आकाशमें वार-वार हिलाता हुआ वह दैत्य अपने पैरोंसे पृथ्वीको विदीर्ण करता हुआ श्रीहरिके सामने उछलकर आया ॥ १० ॥ तव भगवान् मधुसूदनने केशीको एक मुक्का मारा। उनके मुक्केकी मारसे वह दो घड़ीतक वेहोश पड़ा रहा ॥ ११ ॥ तव उस अश्वरूपधारी असुरने श्रीहरिके गलेको अपने मुँहसे पकड़ लिया और उन्हें उठाकर वह भूमण्डलसे लाख योजन दूर आकाशमें उड़ गया ॥ १२ ॥ वहाँ आकाशमें उन दोनोंके वीच दो पहरतक घोर युद्ध हुआ। हे राजन् ! वह अपने पैरोंसे, दाँतोंसे, गर्दनके अयालोंसे, पूँछ और तीखे खुरोंसे वार-वार श्रीहरिपर आघात करने लगा ॥ १३ ॥ तव श्रीहरिने उसे दोनों हाथोंसे पकड़कर इधर-उधर घुमाना आरम्भ किया और जैसे वालक कमण्डलु फेंक दे, उसी प्रकार उन्होंने आकाशसे उस दैत्यको नीचे पटक दिया ॥ १४ ॥ फिर भगवान् श्रीहरिने उसके मुँहमें अपनी वाँह डाल दी। व वाँह उसके उदरतक जा पहुँची और असाध्य रोगकी भाँति वड़े जोरोंसे वढ़ने लगी ॥ १५ ॥ इससे उ

देहाद्विनिर्गतः सद्यो मुकुटी कुंडलान्वितः । दिव्यरूपधरं कृष्णं प्रांजलिः प्रणनाम ह ॥१७॥

कुमुद उवाच

शक्रस्यानुचरोऽहं वै कुमुदो नाम माधव । तेजस्वी रूपवान् वीरो जिष्णुश्छत्रभ्रमिं दधन् ॥१८॥
वृत्रासुरवधे पूर्वं ब्रह्महत्याप्रशांतये । यज्ञं चकार नाकेशो वाजिमेधं क्रतूत्तमम् ॥१९॥
अश्वमेधहयं शुभ्रं श्यामकर्णं मनोजवम् । तमारुरुक्षुर्दुष्टोऽहं चोरयित्वा तलं गतः ॥२०॥
ततो मरुद्गणैर्नीतं पाशबद्धं महाखलम् । शशाप मां बलारातिस्त्वं रक्षो भव दुर्मते ॥२१॥
हयाकृतिस्ते संभूयाद्भूमौ मन्वंतरद्वयम् । तच्छापादद्य मुक्तोऽहं सद्यस्त्वत्स्पर्शनात्प्रभो ॥२२॥
किंकरं कुरु मां देव त्वदंघ्रौ लग्नमानसम् । नमस्तुभ्यं भगवते सर्वलोकैकसाक्षिणे ॥२३॥

श्रीनारद उवाच

प्रदक्षिणीकृत्य हरिं परेश्वरं विमानमारुह्य महोज्ज्वलं परम् ।
वैकुण्ठलोकं कुमुदो ययौ त्वरं विराजयन्मैथिल मंडलं दिशाम् ॥२४॥

इति श्रीगर्गसंहितायां मथुराखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे केशिवधो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

(व्रजमण्डलमें अक्रूरका आगमन)

श्रीनारद उवाच

अक्रूरो रथमारुह्य कर्तुं कार्यं नृपस्य वै । प्रहर्षितो मैथिलेन्द्र प्रययौ नंदगोकुलम् ॥ १ ॥
परां भक्तिं ह्युपगतः श्रीकृष्णे पुरुषोत्तमे । एवं विचारयन्बुद्ध्या पथि गच्छन्महामतिः ॥ २ ॥

महान् असुरकी प्राणवायु अवरुद्ध हो गयी और वह चूतड़से लेंड़ फेंकने लगा। उसका पेट फट गया और वह अश्वरूपधारी असुर तत्काल प्राणोंसे हाथ धो बैठा ॥ १६ ॥ शरीरसे पृथक् होनेपर उसने तत्काल दिव्य रूप धारण कर लिया और मुकुट तथा कुण्डलोंसे मण्डित हो भगवान् श्रीकृष्णको दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया ॥ १७ ॥ कुमुद बोला—हे माधव ! मैं इन्द्रका अनुचर हूँ । मेरा नाम कुमुद है । में बड़ा तेजस्वी, रूपवान् और वीर था तथा देवराज इन्द्रपर छत्र लगाया करता था ॥ १८ ॥ पूर्वकालमें वृत्रासुरका वध हो जानेपर प्राप्त ब्रह्महत्याकी शान्तिके लिये स्वर्गलोकके स्वामी इन्द्रने अश्वमेध नामक उत्तम यज्ञका अनुष्ठान किया ॥ १९ ॥ अश्वमेधका घोड़ा श्वेत वर्णका था। उसके कान श्याम रंगके थे और वह मनके समान तीव्र वेगसे चलनेवाला था। मेरे मनमें उसपर चढ़नेकी इच्छा हुई। इस कामनासे मैं प्रसन्न हो उठा और उस घोड़ेको चुराकर अतललोकमें चला गया ॥ २० ॥ तब मरुद्गणोंने मुझ महादुष्टको पाशमें बाँधकर देवराज इन्द्रके पास पहुँचा दिया। तब देवेन्द्रने मुझे शाप देते हुए कहा—'अरे दुर्बुद्धे ! तू राक्षस हो जा ॥२१॥ भूतलपर दो मन्वतरोंतक तेरी घोड़ेकी-सी आकृति रहेगी।' हे प्रभो! आज आपका स्पर्श पाकर मैं उस शापसे मुक्त हो गया हूँ ॥ २२ ॥ हे देव ! अब मुझे अपना किंकर बना लीजिये। मेरा मन आपके चरणकमलमें लग गया है। आप समस्त लोकोंके एकमात्र साक्षी हैं, सो आप भगवान् श्रीहरिको नमस्कार है ॥ २३॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! हे मिथिलेश्वर ! यों कहकर, परमेश्वर श्रीकृष्णकी परिक्रमा करके, कुमुद अत्यन्त प्रकाशमान उत्तम विमानपर आरूढ़ हो, दिशामण्डलको उद्दीप्त करता हुआ वैकुण्ठधामको चला गया ॥ २४ ॥ इति श्रीगर्ग-संहितायां मथुराखण्डे 'प्रियंवदा'भापाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे मैथिलेन्द्र ! अक्रूरजी रथपर आरूढ़ हो राजा कंसका कार्य करनेके लिये बड़ी प्रसन्नताके साथ नन्दगाँवको गये ॥ १ ॥ पुरुषोत्तम श्रीकृष्णके प्रति उनकी परा भक्ति थी। परम बुद्धि-

अक्रूर उवाच

किं भारते वा सुकृतं कृतं मया निष्कारणं दानमलं क्रतूत्तमम् ।
तीर्थाटनं वा द्विजसेवनं शुभं येनाद्य द्रक्ष्यामि हरिं परेश्वरम् ॥ ३ ॥
तपः सुतप्तं किमलं पुरा कृतं सत्सेवनं भक्तियुतं मया कृतम् ।
येनैव मे दर्शनमद्य दुर्लभं श्रीकृष्णदेवस्य पुरो भविष्यति ॥ ४ ॥
तेषां भवो वै सफलो महीतले यन्नेत्रगामी भगवान्सुरेश्वरः ।
कृत्वाऽथ तद्दर्शनमद्य दुर्लभं सद्यः कृतार्थो भविताऽस्मि सर्वतः ॥ ५ ॥

श्रीनारद उवाच

इत्थं संचिंतयन्कृष्णं पश्यञ्छकुनमुत्तमम् । संध्यायां गोकुलं प्राप्तो रथस्थो गांदिनीसुतः ॥ ६ ॥
कृष्णपादाब्जचिह्नानि यवांकुशयुतानि च । तद्रागयुक्परागाणि रजांसि स ददर्श कौ ॥ ७ ॥
तद्दर्शनौत्सुक्यभक्तिभावानन्दसमाकुलः । रथात्समुत्पत्य तेषु लुठंश्चाश्रु मुमोच सः ॥ ८ ॥
येषां श्रीकृष्णदेवस्य भक्तिः स्याद्धृदि मैथिल । तेषामाब्रह्मणः सर्वं तृणवज्जगतः सुखम् ॥ ९ ॥
रथारूढस्ततोऽक्रूरः क्षणान्नन्दपुरं गतः । घोषेषु सबलं कृष्णमागच्छंतं ददर्श ह ॥१०॥

देवौ पुराणौ पुरुषौ परेशौ पद्मेक्षणौ श्यामलगौरवर्णौ ।
यथेन्द्रनीलध्वजवज्रशैलौ समाश्रितौ तौ पथि रामकृष्णौ ॥११॥
बालार्कमौली वसनं तडिद्द्युती वर्षाशरन्मेघरुचं दधानौ ।
दृष्ट्वा स तूर्णं स्वरथाद्गतोऽधो तयोर्नतो भक्तियुतः पपात ॥१२॥
तदाननं बाष्पकलाकुलेक्षणं रोमांचितं वीक्ष्य हरिः परेश्वरः ।
दोर्भ्यां समुत्थाप्य घृणातुरोऽश्रु मुमोच भक्तं परिरभ्य माधवः ॥१३॥

मान् अक्रूर यात्रा करते हुए मार्गमें अपनी बुद्धिसे इस प्रकार विचार करने लगे ॥ २ ॥ अक्रूर सोचा—मैंने भारतवर्षमें कौन-सा पुण्य किया, निःस्वार्थभावसे कौन-सा दान दिया, कौन-सा उत्तम यज्ञ, तीर्थयात्रा अथवा ब्राह्मणोंकी शुभ सेवा की है, जिससे आज मैं भगवान् परमेश्वर श्रीहरिका दर्शन करूँगा ? ॥ ३ ॥ मैंने पूर्वजन्ममें कौन-सा उत्तम तप किया और भक्तिभावसे कब किस संत पुरुषका सेवन किया था, जिससे आज मुझे अपने सामने भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन प्राप्त होगा ॥ ४ ॥ भगवान् सुरेश्वर श्रीकृष्ण जिनके नेत्रोंके समक्ष आ जाते हैं, भूतलपर उन्हींका जन्म सफल है। आज उन भगवान्का दुर्लभ दर्शन प्राप्त करके मैं सर्वतोभावेन कृतार्थ हो जाऊँगा ॥ ५ ॥ नारदजी कहते हैं—इस प्रकार श्रीकृष्णका चिन्तन और उत्तम शकुनका दर्शन करते हुए गान्दिनीनन्दन अक्रूर रथपर बैठे-बैठे संध्याकालमें नन्दके गोकुलमें जा पहुँचे ॥ ६ ॥ यव और अङ्कुश आदिसे युक्त श्रीकृष्णचरणारविन्दोंके चिह्न तथा उनकी ललाईसे युक्त धूलिकण उन्हें पृथ्वीपर दिखायी दिये ॥ ७ ॥ उनके दर्शनकी उत्कण्ठा एवं भक्तिभावके आनन्दसे विह्वल हो अक्रूरजी रथसे कूद पड़े और उन धूलकणोंमें लोटते हुए नेत्रोंसे आँसू बहाने लगे ॥ ८ ॥ हे मिथिलेश्वर ! जिनके हृदयमें भगवान् श्रीकृष्णकी भक्ति प्रकट हो जाती है, उनके लिये ब्रह्मलोकपर्यन्त जगत्के सारे सुख तिनकेके समान तुच्छ हो जाते हैं ॥ ९ ॥ तदनन्तर रथपर आरूढ़ हो अक्रूर क्षणभरमें नन्दगाँव जा पहुँचे। उन्होंने गोष्ठमें पहुँचकर देखा—बलरामजीके साथ श्रीकृष्ण उधर ही आ रहे हैं ॥ १० ॥ वे दोनों पुराणपुरुष श्यामल-गौरवर्ण परमेश्वर प्रफुल्ल कमलके समान नेत्रवाले थे। रास्तेमें बलराम और श्रीकृष्ण ऐसे जान पड़ते थे, मानो इन्द्रनील और हीरकमणिके दो पर्वत एक-दूसरेके सम्पर्कमें आ गये हों ॥ ११ ॥ उन दोनोंके मुकुट बालसूर्यके समान और वस्त्र विद्युत्के सदृश थे। उनकी अङ्गकान्ति वर्षाकालके मेघकी भाँति श्याम तथा शरदृतुके बादलकी भाँति गौर थी। उन दोनोंको देखकर अक्रूर तुरन्त ही रथसे नीचे उतर गये और भक्तिभावसे सम्पन्न हो उन दोनोंके चरणोंमें गिर पड़े ॥ १२ ॥ उनका मुख, नेत्रोंसे

एवं मिलित्वा सबलश्च तं हरिः सद्यः समानीय वरासनं ददौ ।
निवेद्य गां चातिथये सुभोजनं रसावृतं प्रेमयुतो ह्युपाहरत् ॥१४॥
तमाह नंदः परिरभ्य दोर्भ्यामहो कथं जीवसि कंसराज्ये ।
गतत्रपो यो निजघान बालान्स्वसुः कथं सोऽन्यजनेषु मोही ॥१५॥
गृहं गते नंदवरे हरिस्तं प्रपच्छ सर्वं कुशलं स्वपित्रोः ।
तथा यदूनां किल बांधवानां कंसस्य सर्वां विपरीतबुद्धिम् ॥१६॥

अक्रूर उवाच

परश्वोऽहनि हे देव हंतुं शौरिं समुद्यतः । खड्गपाणिर्भोजराजो नारदेन निवारितः ॥१७॥
दुखिता बांधवाः सर्वे यादवा भयविह्वलाः । सकुटुंबाः कंसभयाद्भूमन्देशांतरं गताः ॥१८॥
अद्यैव यादवान्हंतुं देवाञ्जेतुं समुद्यतः । अन्यत्किमपि कौ कर्तुमिच्छते दैत्यराड्बली ॥१९॥
तस्माद्भवद्भ्यां गंतव्यं कुशलं कर्तुमव्ययम् । भवंतौ हि विना कार्यं किंचिन्न स्यात्सतां प्रभू ॥२०॥

श्रीनारद उवाच

अथ तस्य वचः श्रुत्वा सबलो भगवान् हरिः । नन्दराजमतेनाह गोपान् कार्यकरानिदम् ॥२१॥

श्रीभगवानुवाच

नंदराजोऽपि सबलो वृद्धैर्गोपगणैरहम् । नन्दा नवोपनन्दाश्च तथा षड् वृषभानवः ॥२२॥
मथुरां तु गमिष्यंति सर्वे प्रातः समुत्थिताः । सर्वं तु गोरसं तस्माद्दधिदुग्धघृतादिकम् ॥२३॥
गृहीत्वैकत्र कर्तव्यं सोपायनमतः परम् । रथांश्च शकटैः सार्द्धं समर्थान्कुरुताशु वै ॥२४॥

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वा कार्यकरा गोपाः सर्वे गृहे गृहे । शृण्वंतीनां गोपिकानामूचुः सर्वं यथोदितम् ॥२५॥

झरते हुए आँसुओंकी धारासे व्याप्त तथा शरीर रोमाञ्चित था। उन्हें देख परमेश्वर श्रीहरिने दोनों हाथोंसे उठा लिया और वे माधव दयासे द्रवित हो भक्तको हृदयसे लगाकर अश्रुओंकी वर्षा करने लगे ॥ १३ ॥ इस प्रकार बलरामसहित श्रीहरि उनसे मिलकर शीघ्र ही उन्हें अपने घर ले गये और वहाँ उन्होंने उनके लिये श्रेष्ठ आसन दिया । अतिथिसत्कारमें एक गाय देकर प्रेमपूर्वक सरस भोजन प्रस्तुत किया ॥ १४ ॥ नन्दने अक्रूरको दोनों हाथोंसे उठा तथा हृदयसे लगाकर पूछा—'अहो ! तुम कंसके राज्यमें कैसे जी रहे हो ? जिस निर्लज्जने अपनी बहिनके नन्हें-नन्हें शिशुओंको मार डाला, वह दूसरे लोगोंके प्रति दयालु कैसे होगा ?' ॥ १५ ॥ नन्दजी जब घरमें चले गये, तब श्रीहरिने उनसे माता-पिताकी सारी कुशलता पूछी । इसी प्रकार अपने बन्धु-बान्धव यादवोंका समाचार पूछकर कंसकी सारी विपरीत बुद्धिके विषयमें भी जिज्ञासा की ॥ १६ ॥ अक्रूर बोले—हे देव ! परसोंकी बात है, भोजराज कंस हाथमें तलवार लेकर वसुदेवको मार डालनेके लिये उद्यत हो गया था; किंतु नारदजीने उसे रोक दिया ॥ १७ ॥ समस्त यादव-बन्धु-बान्धव भयसे विह्वल और दुखी हैं । हे भूमन् ! कितने ही यादव कंसके भयसे कुटुम्बसहित दूसरे देशमें चले गये हैं ॥ १८ ॥ वह आज ही यादवोंको मार डालने और देवताओंको जीत लेनेके लिये उद्योगशील है । इस पृथ्वीपर बलवान् दैत्यराज कंस कुछ और भी करना चाहता है ॥ १९ ॥ अतः आप दोनोंको जगत्का अक्षय कल्याण करनेके लिये वहाँ अवश्य चलना चाहिये । आप दोनों प्रभुओंके बिना सत्पुरुषोंका कोई भी कार्य सिद्ध नहीं हो सकता ॥ २० ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! अक्रूरजीकी बात सुनकर बलरामसहित भगवान् श्रीकृष्णने नन्दराजकी सलाह लेकर कार्यकर्ता गोपोंसे इस प्रकार कहा ॥ २१ ॥ श्रीभगवान् बोले—हे बन्धुओं ! बड़े-बूढ़े गोपोंके साथ बलरामसहित मैं तथा नन्दराज भी मथुरा जायँगे । नवों नन्द और उपनन्द तथा छहों वृषभानु सब लोग प्रातःकाल उठकर मथुराकी यात्रा करेंगे; अतः सब लोग दही, दूध और घी आदि गोरस एकत्र करो । उसके साथ राजाको देनेके लिये अन्यान्य उपायन भी

तच्छ्रुत्वोद्विग्नहृदया गोप्यो विरहविह्वलाः । परस्परं वाक्यमूचुः सर्वास्ता हि गृहे गृहे ॥२६॥
प्रस्थानस्य च वार्तेयं श्रीकृष्णस्य महात्मनः । वृषभानुवरस्यापि गृहे प्राप्ता नृपेश्वर ॥२७॥

गमिष्यतो भर्त्तुरतीव दुःखिताः श्रुत्वाऽथ वार्तां सदसि ह्यकस्मात् ।
संप्राप मूर्च्छां वृषभानुनन्दिनी रंभेव भूमौ पतिता मरुद्धता ॥२८॥
काश्चित्परिम्लानमुखश्रियोऽभवन् प्रकङ्कणीभूतकराङ्गुलीयकाः ।
सद्यः श्लथद्भूषणकेशबंधनाश्चित्रार्पितारंभ इवावतस्थिरे ॥२९॥
श्रीकृष्ण गोविंद हरे मुरारे काश्चिद्वदन्त्यः स्वगृहेऽतिविह्वलाः ।
विसृज्य कर्माणि गृहस्य सर्वतो योगीव चानन्दगता नृपेश्वर ॥३०॥
काश्चित्समर्थास्तु परस्परं वचः समेत्य राजन् युगपत्सखीजनम् ।
ऊचुः स्खलद्गद्गदकंठवाचः स्वतः स्रवद्बाष्पकलावहद्दृशः ॥३१॥

गोप्य ऊचुः

अहोऽतिनिर्मोहिजनस्य चित्रं परं चरित्रं गदितुं न योग्यम् ।
मुखेन चान्यं हृदि भाव्यमन्यद्देवो न जानाति कुतो मनुष्यः ॥३२॥
रासेऽपि यद्यद्गदितं तु तत्तद्विहाय गंतुं समवस्थितोऽयम् ।
गते पुरीं प्राणपतावहोऽस्मिन् किं किं न कष्टं बत नोऽभविष्यत् ॥३३॥

इति श्रीगर्गसंहितायां मथुराखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसम्वादेऽक्रूरागमनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

होंगे। छकड़ोंके साथ रथोंको भी ठीक-ठाक करके तैयार कर लो ॥ २२–२४ ॥ नारदजी कहते हैं—यह सुनकर कार्य करनेवाले सब गोपोंने घर-घरमें जाकर गोपियोंको सुनाते हुए वह सारा कथन ज्यों-का-त्यों दोहरा दिया ॥ २५ ॥ यह सुनकर गोपियोंका हृदय उद्विग्न हो उठा। वे भावी विरहकी अशङ्कासे विह्वल हो गयीं और घर-घरमें एकत्र हो, वे सब-की-सब परस्पर इसी विषयकी बातें करने लगीं ॥ २६ ॥ हे नृपेश्वर ! महात्मा श्रीकृष्णके प्रस्थानकी बात वृषभानुवरके भी घरमें पहुँच गयी ॥ २७ ॥ 'प्रियतम चले जायँगे'—यह समाचार भरी सभामें अकस्मात् सुनकर वृषभानुनन्दिनी राधा अत्यन्त दुःखित हो गयीं। वे हवाकी मारी हुई कदलीकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ीं और मूर्छित हो गयीं ॥ २८ ॥ कुछ गोपियोंकी मुखश्री अत्यन्त मलिन हो गयी। हाथकी अँगूठियाँ कलाइयोंके कंगन बन गयीं। उनके केशोंके बन्धन ढीले पड़ गये और उनमें गुँथे हुए फूल शीघ्र ही शिथिल होकर गिर पड़े। वे गोपियाँ अपने घरमें 'श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे'—यों कहती हुई अत्यन्त विह्वल हो गयीं और घरके सारे काम-काज छोड़कर योगीकी भाँति ध्यानानन्दमें मग्न हो गयीं ॥ ३० ॥ हे राजन् ! कुछ गोपियाँ समर्थ रहीं, वे एकत्र हो, एक साथ आपसमें इस प्रकार बातें करने लगीं। बात करते समय उनके कण्ठ गद्गद हो गये थे और वाणी लड़खड़ा रही थी। उनके नेत्रोंसे स्वतः अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी ॥ ३१ ॥ गोपियाँ बोलीं—अहो ! अत्यन्त निर्मोही जनका चरित्र विचित्र होता है। वह कहने योग्य नहीं है। निर्मोही मनुष्य मुँहसे तो कुछ और कहता है, परन्तु हृदयमें कुछ और ही भाव रखता है। उसके मनकी बात तो देवता भी नहीं जानते, फिर कोई मनुष्य कैसे जान सकता है ? ॥ ३२ ॥ रासमें उन्होंने जो-जो बात कही थी, उन सबको अधूरी ही छोड़कर वे जानेको उद्यत हो गये हैं। अहो ! हमारे इन प्राणवल्लभके मथुरापुरी चले जानेपर हम सबको कौन-कौन-सा कष्ट नहीं होगा ॥ ३३ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां मथुराखण्डे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

(श्रीकृष्णका गोपियोंके घरोंमें जाकर उन्हें सान्त्वना देना)

श्रीनारद उवाच

राजन्नेवं वदंतीनां गोपीनां विरहं परम् । विज्ञाय भगवान्देवः शीघ्रं तासां गृहान्ययौ ॥ १ ॥
यावंत्यो योपितो राजंस्तावद्रूपधरो हरिः । स्वयं संबोधयामास वाग्भिः सर्वाः पृथक् पृथक्॥ २ ॥
श्रीराधामंदिरं गत्वा दृष्ट्वा राधां च मूर्च्छिताम् । रहःस्थितां सखीसंघे ननाद मुरलीं कलम् ॥ ३ ॥
श्रुत्वा वंशीध्वनिं राधा सहसोत्थाय चातुरा । नेत्र उन्मील्य ददृशे श्रीगोविंदं समागतम् ॥ ४ ॥
पद्मिनीव गतानन्दं पद्मिनी पद्मिनीपतिम् । वीक्ष्योत्थायागता तस्मै सादरेणासनं ददौ ॥ ५ ॥
अश्रुपूर्णमुखीं दीनां राधां कमललोचनाम् । शोचंतीं भगवानाह मेघगंभीरया गिरा ॥ ६ ॥

श्रीभगवानुवाच

विमनास्त्वं कथं भद्रे मा शोचं कुरु राधिके । अथवा गंतुकामं मां श्रुत्वाऽसि विरहातुरा ॥ ७ ॥
भुवो भारावताराय कंसादीनां वधाय च । ब्रह्मणा प्रार्थितः साक्षाज्जातोऽहं वै त्वया सह ॥ ८ ॥
मथुरां हि गमिष्यामि हरिष्यामि भुवो भरम् । शीघ्रमत्रागमिष्यामि करिष्यामि शुभं तव ॥ ९ ॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्तवंतं जगदीश्वरं हरिं राधा पतिं प्राह वियोगविह्वला ।
दावाग्निना दावलतेव मूर्च्छिता सुकंपरोमांचितभावसंवृता ॥१०॥

श्रीराधोवाच

भुवो भरं हर्तुमलं पुरीं व्रज कृतं परं मे शपथं शृणु त्वतः ।
गते त्वयि प्राणपते च विग्रहं कदाचिदत्रैव न धारयाम्यहम् ॥११॥

श्री नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! इस प्रकार कहती हुई गोपाङ्गनाओंके अत्यन्त विरह-क्लेशको जानकर भगवान् श्रीकृष्ण शीघ्र उन सबके घरोंमें गये ॥ १ ॥ हे मिथिलेश्वर ! जितनी व्रजाङ्गनाएँ थीं, उतने ही रूप धारण करके भगवान् श्रीहरिने स्वयं सबको पृथक्-पृथक् समझाया ॥ २ ॥ श्रीराधाके भवनमें जाकर देखा कि वे सखियोंसे घिरी हुई एकान्त स्थानमें मूर्छित पड़ी हैं; तब उन्होंने मधुर स्वरमें मुरली बजायी ॥ ३ ॥ वंशीकी ध्वनि सुनकर श्रीराधा सहसा आतुर होकर उठीं। उन्होंने आँख खोलकर देखा तो श्रीगोविन्द सामने उपस्थित दिखायी दिये ॥ ४ ॥ जैसे पद्मिनी कमलिनी-कुल-वल्लभ सूर्यका दर्शन करके प्रसन्न हो जाती है, उसी प्रकार पद्मिनी नायिका श्रीराधा अपने प्राणवल्लभको सामने देखकर आनन्दमें मग्न हो गयीं और उन्होंने उठकर वहाँ पधारे हुए श्यामसुन्दरके लिये सादर आसन दिया ॥ ५ ॥ कमलनयनी श्रीराधाके मुखपर आँसुओंकी धारा बह रही थी। वे अत्यन्त दीन होकर शोक कर रही थीं। अतएव भगवान्ने मेघसदृश गम्भीर वाणीमें उनसे कहा ॥ ६ ॥ श्रीभगवान् बोले—हे भद्रे ! हे राधिके ! तुम्हारा मन उदास क्यों है ? तुम इस तरह शोक न करो। अथवा मेरी मथुरा जानेकी इच्छा सुनकर तुम विरहसे व्याकुल हो उठी हो ? ॥ ७ ॥ देखो, ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे मैं इस पृथ्वीका भार उतारने और कंसादि असुरोंका संहार करनेके लिये तुम्हारे साथ इस भूतलपर अवतीर्ण हुआ हूँ ॥ ८ ॥ अतः अपने अवतारके उद्देश्यकी सिद्धिके लिये मैं मथुरा अवश्य जाऊँगा और भूमिका भार उतारूँगा। तत्पश्चात् शीघ्र यहाँ आऊँगा और तुम्हारा मङ्गल करूँगा ॥ ९ ॥ नारदजी कहते हैं—जगदीश्वर श्रीहरिके यों कहनेपर वियोगविह्वला श्रीराधा दावानलसे दग्ध लताकी भाँति मूर्छित हो गयीं और उनमें कम्प-रोमाञ्च आदि सात्त्विक भाव प्रकट हो गये। उस अवस्थामें वे अपने प्राणवल्लभसे बोलीं ॥ १० ॥ श्रीराधाने कहा—हे प्राणनाथ ! तुम पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अवश्य मथुरापुरीको जाओ, परंतु मेरी इस निश्चित प्रतिज्ञा-

यदात्थ मे त्वं शपथं न मन्यसे द्वितीयवारं प्रददासि वाक्पथम् ।
प्राणोऽधरे गन्तुमतीव विह्वलः कर्पूरधूलेः कणवद्गमिष्यति ॥१२॥

श्रीभगवानुवाच

वचनं वै स्वनिगमं दूरीकर्तुं क्षमोऽस्म्यहम् । भक्तानां वचनं राधे दूरीकर्तुं न च क्षमः ॥१३॥
श्रीदामशापात्पूर्वस्माद्गोलोके कलहान्मम । शतवर्षं ते वियोगो भविष्यति न संशयः ॥१४॥
मा शोकं कुरु कल्याणि वरं मे स्मर राधिके । मासं मासं वियोगे ते दर्शनं मे भविष्यति ॥१५॥

श्रीराधोवाच

मासं प्रति वियोगे मे दातुं त्वं दर्शनं हरे । चेन्नागमिष्यसि तदाऽसह्यदुःखात्संत्यजाम्यहम्॥१६॥
लोकाभिराम जनभूषण विश्वदीप कंदर्पमोहन जगद्वृजिनार्तिहारिन्
आनन्दकन्द यदुनन्दन नन्दसूनो अद्यागमस्य शपथं कुरु मे पुरस्त्वम् ॥१७॥

श्रीभगवानुवाच

रंभोरु मासं प्रति ते वियोगे चेन्नागमिष्ये शपथं गवां मे ।
निःसंशयं निष्कपटं वचस्त्वमवेहि राधे कथितं मया यत् ॥१८॥
यो मित्रतां निष्कपटं करोति निष्कारणो धन्यतमः स एव ।
विधाय मैत्रीं कपटं विदध्यात्तं लंपटं हेतुपटं नटं धिक् ॥१९॥
कर्मेन्द्रियाणीह यथा रसादींस्तथा सकामा मुनयः सुखं यत् ।
मनाङ् न जानंति हि नैरपेक्षं गूढं परं निर्गुणलक्षणं तत् ॥२०॥
जानंति संतः समदर्शिनो ये दांता महांतः किल नैरपेक्षाः ।
ते नैरपेक्ष्यं परमं सुखं मे ज्ञानेंद्रियादीनि यथा रसादीन् ॥२१॥

को भी सुन लो । यहाँसे तुम्हारे चले जानेपर मैं शरीरको कदापि धारण नहीं करूँगी ॥ ११ ॥ यदि तुम मेरी इस प्रतिज्ञा या शपथपर ध्यान नहीं देते हो तो दूसरी बार पुनः अपने जानेकी बात कहकर देख लो। मैं तुरंत कथाशेष हो जाऊँगी । मेरे प्राण अधरोंकी राहसे निकल जानेको अत्यन्त आकुल हैं, ये कर्पूरकी धूलि-कणोंके समान शीघ्र ही उड़ जायँगे ॥ १२ ॥ श्रीभगवान् बोले—हे राधिके ! मैं वेदस्वरूपा अपनी वाणीको तो टाल देनेमें समर्थ हूँ, किंतु अपने भक्तोंके वचनकी अवहेलना करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है ॥ १३ ॥ पूर्वकालमें गोलोकमें जो कलह हुआ था, उस समय दिये गये श्रीदामाके शापसे मेरे साथ तुम्हारा सौ वर्षोंतक वियोग अवश्य होगा—इसमें संशय नहीं है ॥ १४ ॥ हे कल्याणि ! हे राधिके ! शोक न करो। मैंने तुम्हें जो वरदान दिया है, उसको स्मरण करो। प्रत्येक मासमें वियोग-दुःखकी शान्तिके लिये एक दिन मेरा दर्शन तुम्हें प्राप्त होगा ॥ १५ ॥ श्रीराधाने कहा—हे हरे ! प्रत्येक मासमें एक दिन मेरी वियोग-व्यथाको शान्ति करनेके लिये यदि तुम दर्शन देने नहीं आओगे तो मैं असह्य दुःखके कारण अपने प्राणोंको अवश्य त्याग दूँगी ॥ १६ ॥ हे लोकाभिराम ! हे जनभूषण ! हे विश्वदीप ! हे मदनमोहन ! जगत्के पाप-तापको हर लेनेवाले हे आनन्दकंद ! हे यदुकुलनन्दन ! हे नन्दकिशोर ! आज मेरे सामने अपने आगमनके विषयमें शपथ खाओ ॥ १७ ॥ श्रीभगवान् बोले—हे रम्भोरु राधे ! यदि तुम्हारे वियोग-कालमें प्रतिमास एक दिन मैं तुम्हें दर्शन देनेके लिये न आऊँ तो मेरे लिये गौओंकी शपथ है। मैंने यहाँ जो कुछ कहा है, मेरे उस वचनको तुम संशयरहित और निष्कपट समझो ॥ १८ ॥ जो बिना किसी हेतुके निश्छल भावसे मैत्रीको निभाता है, वही पुरुष धन्यतम है। जो मैत्री स्थापित करके कपट करता है, वह स्वार्थरूपी पटसे आच्छादित लम्पट नटमात्र है, उसे धिक्कार है ॥ १९ ॥ जैसे यहाँ कर्मेन्द्रियाँ रस, रूप, गन्ध, स्पर्श एवं शब्दको नहीं जान पातीं, उसी प्रकार जो सकाम भाव रखनेवाले मुनि हैं, वे उस निरपेक्षस्वरूप एवं निर्गुण और गूढ़ परम सुखको किंचिन्मात्र भी नहीं जानते ॥ २० ॥ जो लोग समदर्शी, जितेन्द्रिय, अपेक्षारहित

सर्वं हि भावं मनसः परस्परं न ह्येकतो भामिनि जायते ततः ।
प्रेमैव कर्तव्यमतो मयि स्वतः प्रेम्णा समानं भुवि नास्ति किंचित् ॥२२॥
यथा हि भांडीरवटे मनोरथो बभूव राधे हि तथा भविष्यति ।
अहैतुकं प्रेम च सद्भिराश्रितं तच्चापि संतः किल निर्गुणं विदुः ॥२३॥
ये राधिकायां त्वयि केशवे मयि भेदं न कुर्वंति हि दुग्धशौक्ल्यवत् ।
त एव मे ब्रह्मपदं प्रयांति तदहैतुकस्फूर्जितभक्तिलक्षणाः ॥२४॥
ये राधिकायां त्वयि केशवे मयि पश्यन्ति भेदं कुधियो नरा भुवि ।
ते कालसूत्रं प्रपतन्ति दुःखिता रंभोरु यावत्किल चंद्रभास्करौ ॥२५॥

श्रीनारद उवाच

एवमाश्वास्य तां राधां सर्वं गोपीगणं तथा । आययौ नंदभवनं भगवान्नयकोविदः ॥२६॥
अथ सूर्योदये जाते नंदाद्याः शकटैर्बलिम् । नीत्वा रथान्समारुह्य सर्वे श्रीमथुरां ययुः ॥२७॥
आरुह्य रामकृष्णाभ्यां स्वं रथं गांदिनीसुतः । प्रयाणमकरोद्राजन्मथुरां द्रष्टुमुद्यतः ॥२८॥
कोटिशःकोटिशो गोप्यो मार्गे मार्गे समास्थिताः। पश्यंत्यस्तन्निर्गमनं क्रोधाढ्या मोहविह्वलाः ॥२९॥
क्रूर क्रूरेति चाक्रूरं वदन्त्यः परुषं वच । रुरुधुः सर्वतो यानं यथार्कं सरथं घनाः ॥३०॥
अक्रूरस्य रथं राजन् निजघ्नुर्यष्टिभिर्भृशम् । अश्वांस्तथा सारथिं च भगवद्विरहातुराः ॥३१॥
अश्वास्तत्र समुत्पेतुस्ताडितास्त इतस्ततः । गोपीद्व्यंगुलिघातेन सारथिः पतितो रथात् ॥३२॥
विहाय लज्जां लोकस्य समाकृष्य रथाद्बलात् । कंकणैस्तेऽङ्घ्रक्रूरं पश्यतोः कृष्णरामयोः ॥३३॥

एवं महान् संत हैं, वे ही उस कामनारहित मेरे परम सुखका अनुभव करते हैं—ठीक उसी तरह जैसे ज्ञानेन्द्रियाँ ही रस आदि विषयोंको जान पाती हैं ॥ २१ ॥ हे भामिनी ! मनके सारे भाव पारस्परिक हैं—एक-दूसरेकी अपेक्षा रखते हैं। इसलिये किसी एक ही तरफसे प्रीति नहीं होती; दोनों ही ओरसे हुआ करती है। अतः सबको अपनी ओरसे मेरे प्रति प्रेम ही करना चाहिये। इस भूतलपर प्रेमके समान दूसरी कोई वस्तु नहीं है ॥ २२ ॥ हे राधे ! जैसे भाण्डीर-वनमें तुम्हारा मनोरथ सफल हुआ था, उसे प्रकार फिर होगा। सत्पुरुषों द्वारा जिस हेतुरहित प्रेमका आश्रय लिया जाता है, उसे भी संत-महात्मा निर्गुण ही मानते हैं ॥ २३ ॥ जो लोग तुम राधिका और मुझ केशवमें उसी प्रकार भेदकी कल्पना नहीं करते, जिस प्रकार दुग्ध और उसकी धवलतामें भेद सम्भव नहीं है। वे निष्काम भावके कारण उद्दीप्त हुई भक्तिसे युक्त महात्मा पुरुष ही मेरे उस ब्रह्मपदको प्राप्त होते हैं ॥ २४ ॥ हे रम्भोरु ! जो कुबुद्धि मनुष्य इस भूतलपर तुम राधिका और मुझ केशवमें भेद-दृष्टि रखते हैं, वे जबतक चन्द्रमा और सूर्यकी सत्ता है, तबतक कालसूत्र नरकमें पड़कर दुःख भोगते हैं ॥ २५ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! इस प्रकार श्रीराधा तथा समस्त गोपीगणोंको आश्वासन देकर नीतिकुशल भगवान् गोविन्द नन्दभवनमें लौट आये ॥ २६ ॥ तदनन्तर सूर्योदय होनेपर नन्द आदि गोप छकड़ों द्वारा भेंट-सामग्री लेकर स्वयं रथारूढ़ हो, वे सब-के-सब मथुरापुरीको चले ॥ २७ ॥ हे राजन् ! बलराम और श्रीकृष्णके साथ अपने रथपर आरूढ़ हो, गान्दिनीपुत्र अक्रूरने मथुरापुरीके दर्शनके लिये उद्यत होकर वहाँसे प्रस्थान किया ॥ २८ ॥ मार्गमें कोटि-कोटि गोपाङ्गनाएँ खड़ी हो, क्रोध और मोहसे विह्वल होकर श्रीकृष्णका व्रजसे प्रस्थान देख रही थीं ॥ २९ ॥ वे अक्रूरको 'क्रूर-क्रूर' कहकर पुकारती हुई कटु वचन सुनाने लगीं और जैसे बादल सूर्यको आच्छादित कर देते हैं, उसी प्रकार गोपियोंके समुदायने अक्रूरके रथको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ३० ॥ हे राजन् ! भगवान्‌के विरहसे व्याकुल हुई गोपियोंने अक्रूरके रथको, उनके घोड़ोंको और सारथिको भी लाठियों द्वारा जोर-जोरसे पीटना आरम्भ किया ॥ ३१ ॥ लाठियोंके प्रहारसे घोड़े इधर-उधर उछलने लगे। गोपियोंकी दो अँगुलियोंकी चोटसे ही सारथि उस रथसे नीचे जा गिरा ॥ ३२ ॥

गोपीयूथबलं दृष्ट्वा सबलो भगवान् हरिः। गोपीः संबोधयामास रक्षित्वा गांदिनीसुतम् ॥३४॥
संध्यायामागमिष्यामि मा शोकं कुरुतांगनाः। पश्यतश्चास्य मद्धास्यं मा कुर्वन्तु व्रजौकसः ॥३५॥

इत्येवमुक्त्वा सरथः समागतोऽक्रूरेण कृष्णो बलदेवसंयुतः।
तुरङ्गमैर्वेगमयैर्मनोहरैर्ययौ पुरीं यादववृन्दमण्डिताम् ॥३६॥
यावद्रथः केतुरुताश्वरेणुरालक्ष्यते तावदतीव मोहात्।
स्थिता ह्यभूवन्पथि चित्रवत्ताः स्मृत्वा हरेर्वाक्यमुतागताशाः ॥३७॥

इति श्रीगर्गसंहितायां मथुराखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीमथुराप्रयाणं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

(अक्रूरको भगवान् श्रीकृष्णके परब्रह्मस्वरूपका साक्षात्कार)

श्रीनारद उवाच

हरिरक्रूररामाभ्यां मथुरोपवनं गतः। यमुनानिकटं स्थित्वा वारि पीत्वा रथं ययौ ॥ १ ॥
अक्रूरस्तावनुज्ञाप्य स्नातुं श्रीयमुनां गतः। नित्यनैमित्तिकं कर्तुं विवेश विमले जले ॥ २ ॥
जले चागाधगंभीरे महावर्तसमाकुले। ददर्श रामकृष्णौ तौ वदंतौ गांदिनीसुतः ॥ ३ ॥
विस्मितस्तौ रथेऽपश्यत्पुनर्वारि स्थितौ नृप। ददर्श तत्र सर्पेन्द्रं कुंडलीभूतमास्थितम् ॥ ४ ॥
तस्योत्सङ्गे महालोकं गोलोकं लोकवन्दितम्। गोवर्द्धनाद्रिं यमुनां वृन्दारण्यं मनोहरम् ॥ ५ ॥
असंख्यकोटिमार्तंडज्योतिषां मंडलं प्रभुम्। परिपूर्णतमं साक्षाच्छ्रीकृष्णं पुरुषोत्तमम् ॥ ६ ॥
कोटिमन्मथलावण्यं रासमंडलमध्यगम्। राधया सहितं देवं तत्राक्रूरो ददर्श ह ॥ ७ ॥

लोक-लज्जाको तिलाञ्जलि देकर गोपियोंने बलराम और श्रीकृष्णके देखते-देखते अक्रूरको बलपूर्वक रथसे नीचे खींच लिया और अपने कंगनोंसे उनके ऊपर चोट करना आरम्भ किया ॥ ३३ ॥ गोपीसमुदायका वह सैन्यबल देखकर बलरामसहित भगवान् श्रीकृष्णने गान्दिनीनन्दन अक्रूरकी रक्षा करके गोपाङ्गनाओंको समझाया—॥ ३४ ॥ 'हे व्रजाङ्गनाओ ! चिन्ता न करो। मैं आज संध्याको ही लौट आऊँगा। इन अक्रूरजीके सामने व्रजवासी हमारी हँसी न उड़ायें, ऐसा प्रयत्न तुम्हें करना चाहिये' ॥ ३५ ॥ यों कहकर बलदेवजी तथा अक्रूरके साथ श्रीकृष्ण सुन्दर वेगशाली अश्वोंकी सहायतासे रथसहित उस मथुरापुरीकी ओर चल दिये, जो यादवोंके समुदायसे सुशोभित थी ॥ ३६ ॥ जबतक उन्हें रथ, उनकी ध्वजा अथवा घोड़ोंकी टापसे उड़ायी गयी धूल दिखायी देती रही, तबतक अत्यन्त मोहवश गोपियाँ पथपर ही चित्र-लिखित-सी खड़ी रहीं। श्रीहरिकी कही हुई बातको याद करके उनके मनमें पुनर्मिलनकी आशा बँध गयी थी ॥ ३७ ॥
इति श्रीगर्गसंहितायां मथुराखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! अक्रूर और बलरामजीके साथ मथुराके उपवनके पास पहुँचकर, यमुनाके निकट रथ रोककर भगवान् श्रीकृष्ण उतर गये और यमुनाका जल पीकर पुनः रथपर आ गये ॥ १ ॥ तब उन दोनों भाइयोंकी आज्ञा लेकर अक्रूरजी यमुनामें नहानेके लिये गये और नित्य-नैमित्तिक कर्म करनेके लिये यमुनाके निर्मल जलमें उतरे ॥ २ ॥ यमुनाजीका जल अगाध था, उसमें बड़ी-बड़ी भँवरें उठ रही थीं। अक्रूरजीने देखा कि उसी जलमें बलराम और श्रीकृष्ण—दोनों भाई खड़े-खड़े परस्पर बातें कर रहे हैं ॥ ३ ॥ हे नरेश्वर ! यह देख अक्रूरजी चकित हो उठे और रथपर जाकर देखा तो वहाँ भी वे दोनों बैठे दिखाई दिये। फिर जलमें आकर देखा तो वहाँ भी उनके दर्शन हुए। बलरामजी नागराज शेषके रूपमें कुंडली मारकर बैठे थे और उनकी गोदमें लोकवन्दित परम प्रकाशमय गोलोक, गोवर्धन पर्वत, यमुना नदी, मनोहर वृन्दावन तथा असंख्य कोटि सूर्योकी ज्योतियोंका प्रभावशाली मण्डल—ये क्रमशः

ज्ञात्वा कृष्णं परं ब्रह्म नत्वा नत्वा पुनः पुनः । कृताञ्जलिपुटोऽक्रूरः स्तुतिं चक्रेऽतिहर्षितः ॥ ८ ॥

अक्रूर उवाच

नमः श्रीकृष्णचंद्राय परिपूर्णतमाय च । असंख्यांडाधिपतये गोलोकपतये नमः ॥ ९ ॥
श्रीराधापतये तुभ्यं व्रजाधीशाय ते नमः । नमः श्रीनंदपुत्राय यशोदानंदनाय च ॥१०॥
देवकीसुत गोविंद वासुदेव जगत्पते । यदूत्तम जगन्नाथ पाहि मां पुरुषोत्तम ॥११॥
वाणी सदा ते गुणवर्णने स्यात्कर्णौ कथायां मम दोश्च कर्मणि ।
मनः सदा त्वच्चरणारविंदयोर्दृशौ स्फुरद्धामविशेषदर्शने ॥१२॥

श्रीनारद उवाच

एवं संस्तुवतस्तस्य पश्यतो विस्मितस्य च । तत्रैवांतर्दधे कृष्णः सलोको भगवान्प्रभुः ॥१३॥
नत्वा तं च तदाक्रूरः कृत्वा नैमित्तिकं विधिम् । ज्ञात्वा कृष्णं परं ब्रह्म विस्मितो रथमाययौ ॥१४॥
दिनात्यये रामकृष्णावनयद्गांदिनीसुतः । रथेन वायुवेगेन स्निग्धगंभीरनादिना ॥१५॥
पुरस्योपवने तत्र वीक्ष्य नंदं यदूत्तमः । अक्रूरं प्राह विहसन्मेघगंभीरया गिरा ॥१६॥

श्रीभगवानुवाच

मथुरायां हि गंतव्यं भवता स्वरथेन वै । गोपालैः सहितः पश्चादागमिष्यामि मानद ॥१७॥

अक्रूर उवाच

देवदेव जगन्नाथ गोविंद पुरुषोत्तम । सहाग्रजः सगोपालो गच्छ मे मंदिरं प्रभो ॥१८॥
पादारविंदरजसा पवित्रीकुरु मद्गृहम् । त्वां विना न गमिष्यामि मंदिरं स्वं जगत्पते १९॥

श्रीभगवानुवाच

गृहं तवागमिष्यामि हत्वा वै यादवाहितम् । सबलो बांधवैः सार्द्धं करिष्यामि तव प्रियम् ॥२०॥

परिलक्षित हुए। उसी ज्योतिर्मण्डलमें रासमण्डलके भीतर कोटि-कोटि कामदेवोंके सौन्दर्य-माधुर्यको तिरस्कृत करनेवाले साक्षात् परिपूर्णतम पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण श्रीराधारानीके साथ वहाँ अक्रूरके दृष्टिपथमें आये ॥४–७॥ तब श्रीकृष्णको परब्रह्म परमात्मा समझकर अक्रूरने वारंवार उन्हें नमस्कार किया और दोनों हाथ जोड़कर अत्यन्त हर्षके साथ उनकी स्तुति आरम्भ की ॥ ८ ॥ अक्रूर बोले—असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधीश्वर तथा गोलोकधामके स्वामी परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार है ॥ ९ ॥ हे प्रभो ! आप श्रीराधाके प्राणवल्लभ तथा व्रजके अधीश्वर हैं, आपको वार वार नमस्कार है। श्रीनन्दनन्दन तथा माता यशोदाको आमोद प्रदान करनेवाले श्रीहरिको नमस्कार है ॥ १० ॥ देवकीपुत्र, गोविन्द, वासुदेव, जगदीश्वर, यदुकुल-तिलक, जगन्नाथ, पुरुषोत्तम, आपको नमस्कार है ॥ ११ ॥ मेरी वाणी सदा आपके गुणोंके वर्णनमें लगी रहे। मेरे कान आपकी कथा सुनते रहें। मेरी भुजाएँ आपकी प्रसन्नताके लिये कर्म करनेमें तल्लीन रहें। मेरा मन सदा आपके चरणारविन्दोंका चिन्तन करे तथा दोनों नेत्र आपके प्रकाशमान एवं भव्य धामविशेषके दर्शनमें संलग्न हों ॥ १२ ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! जब इस प्रकार चकित होकर भगवान्‌का वैभव देखते हुए अक्रूरजी इस प्रकार स्तुति कर रहे थे, उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण अपने लोकसहित वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ १३ ॥ तब उन्हें नमस्कार करके नैमित्तिक कर्म पूर्ण करनेके पश्चात् अक्रूर श्रीकृष्णको परब्रह्मस्वरूप जानकर विस्मयपूर्वक रथपर आये ॥ १४ ॥ घनवत् गम्भीर नाद करनेवाले उस वायुवेगशाली रथके द्वारा अक्रूरने बलराम और श्रीकृष्णको दिन डूबते-डूबते मथुरा पहुँचा दिया ॥१५॥ वहाँके उपवनमें नन्दराजको देखकर यदूत्तम भगवान् श्रीकृष्ण हँसते हुए मेघके समान गम्भीर वाणीमें अक्रूरजीसे बोले ॥ १६ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा—हे मानद ! अब आप अपने रथके द्वारा मथुरापुरीमें पधारें। मैं पीछे ग्वाल-बालोंके साथ आऊँगा ॥ १७ ॥ अक्रूरने कहा—हे देवदेव ! जगन्नाथ ! गोविन्द ! पुरुषोत्तम ! प्रभो ! आप अपने बड़े भाई तथा ग्वालोंसहित मेरे घरपर चलें ॥१८॥ हे जगत्पते ! अपने चरणारविन्दकी धूलसे आज मेरा घर पवित्र कीजिये। मैं आपको साथ लिये विना अपने घर नहीं जाऊँगा ॥ १९ ॥

श्रीनारद उवाच

अथ तत्र स्थिते कृष्णे सोऽक्रूरो मथुरां गतः । निवेद्य चेदं कंसाय ततः स्वभवनं ययौ ॥२१॥
अथापराह्णे सबलं गोविन्दं बालकैः पुरीम् । द्रष्टुमभ्युदितं वीक्ष्य नंदो वाक्यमथाब्रवीत् ॥२२॥
आर्जवेन पुरीं वीक्ष्यागंतव्यं भवता किल । न गोकुलं विद्धि चैनां कंसराज्ये महाभये ॥२३॥
तथाऽस्तु चोक्त्वा भगवान् वृद्धैर्नन्दप्रणोदितैः । गोपालैर्बालकैः सार्द्धं सबलो गतवान्पुरीम् ॥२४॥
प्रासादैर्गगनस्पर्शैर्हेमरत्नखचिद्गृहैः । शोभितां दुर्गसंयुक्तां देवधानीमिव स्थिताम् ॥२५॥
कालिंद्यां रत्नसोपानैश्चलदूर्मिकुतूहलैः । अलकामिव शोभाढ्यां दिव्यनारीनरैर्युताम् ॥२६॥
प्रेक्षन्श्रीमथुरां कृष्णो धनिनां मंदिराणि च । पश्यन् गोपालकैः सार्द्धं राजमार्गं विवेश ह ॥२७॥

श्रुत्वाऽऽगतं तं वसुदेवनंदनं बहुश्रुता वै मथुरापुराङ्गनाः ।
त्यक्त्वाऽथ कर्माणि विसृज्य ताः शिशून्द्रष्टुं व्यधावन्नुदधिं यथाऽऽपगाः ॥२८॥
काश्चित्तु हर्म्यात्किल जालदेशात्कुड्यात्तु काश्चित्पटतो गवाक्षात् ।
विनिर्गता द्वारकपाटदेशात्तच्चत्वरात्तं ददृशुः पुरंध्र्यः ॥२९॥
एकं चलत्कुन्तलमानने स्वे किमग्रगानां तु मनांसि हर्तुम् ।
पश्चात्कृतं मौलितले दधानं किं पृष्ठगानां हरणं द्वितीयम् ॥३०॥
पीतांबरार्द्धं वलिनं स्फुरत्कटावर्द्धं तदंसे जलदे यथा तडित् ।
पद्मं करे स्वे हृदि वैजयंतीं स्रजं दधानं वसुदेवनन्दनम् ॥३१॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—हे अक्रूरजी ! मैं यदुवंशियोंके वैरी कंसको मारकर बलरामजी तथा गोप-बन्धुओंके साथ आपके भवनमें अवश्य आऊँगा और आपका प्रिय करूँगा ॥ २० ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! श्रीकृष्ण वहीं ठहर गये और अक्रूरने मथुरापुरीमें प्रवेश किया। वहाँ कंसको श्रीकृष्णके आगमनका समाचार देकर वे अपने घर चले गये ॥ २१ ॥ दूसरे दिन बलराम और गोप-बालकोंके साथ मथुरापुरीको देखनेके लिये उद्यत गोविन्दकी ओर देखकर नन्दने यह बात कही ॥ २२ ॥ 'हे वत्स ! सीधी तरहसे मथुरापुरीको देखकर तुम सब जल्द लौट आना। इसे गोकुल न समझो; यहाँ कंसका महाभयंकर राज्य है।' ॥ २३ ॥ 'बहुत अच्छा'—कहकर भगवान् श्रीकृष्ण नन्दद्वारा प्रेरित बड़े बूढ़े ग्वालों और ग्वालबालोंके साथ पुरीमें गये। बलरामजी भी उनके साथ थे ॥ २४ ॥ दुर्गसे युक्त वह पुरी स्वर्ण एवं रत्नजटित सुन्दर गृहों तथा गगनचुम्बी महलोंसे देवताओंकी राजधानी अमरावतीके समान शोभा पाती थी ॥ २५ ॥ यमुनाके तटपर रत्नोंकी सीढ़ियाँ बनी थीं। वहाँ चञ्चल लहरोंका कौतूहल देखते ही बनता था। उन सबके तथा दिव्य नर-नारियोंसे युक्त वह नगरी अलकापुरीके समान शोभा पा रही थी ॥ २६ ॥ मथुरापुरीकी शोभा निहारते और धनिकोंके भवनोंको देखते हुए श्रीकृष्ण ग्वाल-बालोंके साथ राजमार्ग (मुख्य सड़क) पर आ गये ॥ २७ ॥ वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णके आगमनका समाचार सुनकर मथुरापुरीकी स्त्रियाँ, जो उनके विषयमें बहुत कुछ सुन चुकी थीं, सारे काम-काज और शिशुओंको भी छोड़कर उन्हें देखनेके लिये इस प्रकार दौड़ीं, मानो नदियाँ समुद्रकी ओर भागी जा रही हों ॥ २८ ॥ कुछ स्त्रियाँ महलोंकी छतसे, कुछ जालीदार झरोखोंके छेदसे, कोई-कोई दीवारोंकी ओटसे, कोई खिड़कियोंपर लगे हुए पर्दे हटाकर और कुछ नारियाँ दरवाजेके किवाड़ोंसे बाहर निकलकर घरके चबूतरोंपरसे उन्हें देखने लगीं ॥ २९ ॥ भगवान् श्रीकृष्णका एक चञ्चल कुन्तलभाग उनके मुखपर लटक रहा था, मानो उन्होंने अपने सामनेवाले मनुष्योंके मनको हर लेनेके लिये उसे धारण किया था तथा दूसरा कुन्तल-भाग उन्होंने मुकुटके नीचे दबाकर पीठकी ओर लटका दिया था, मानो पीछेसे आनेवाले लोगोंके मनको मोहनेके लिये उसे उन्होंने पृष्ठभागकी ओर धारण किया था ॥ ३० ॥ उनका आधा पीताम्बर कमरमें बँधा हुआ चमक रहा था और आधा कंधेपर पड़ा नील मेघमें विद्युत्‌की-सी शोभा धारण कर

विलोक्य सर्वा मुमुहुः पुरस्त्रियो विलोलपाठीननवीनकुण्डलम् ।
बालार्कहेमांगदबाहुमंडलं राजन्नसंख्यांडपतिं परात्परम् ॥३२॥

पुरंध्र्य ऊचुः

अहो वृंदावनं रम्यं यत्र सन्निहितो ह्ययम् । धन्या गोपगणाः सर्वे पश्यंत्येनं मनोहरम् ॥३३॥
धन्या गोपरमण्यस्तास्ताभिः किं सुकृतं कृतम् । पिबंति या रासरङ्गे मुहुश्चास्याधरामृतम् ॥३४॥

श्रीनारद उवाच

राजमार्गे रङ्गकारं रजकं यांतमुन्मदम् । गोपालानुमतेनैव प्राह तं मधुसूदनः ॥३५॥
देहि नो मित्र वासांसि रुचिराणि महामते । दातुस्ते हि परं श्रेयो भविष्यति न संशयः ॥३६॥
प्रज्वलन्कृष्णवाक्येन घृतेनाग्निर्यथा भृशम् । कंसभृत्यो महादुष्टः प्राहेदं पथि माधवम् ॥३७॥

रजक उवाच

ईदृशान्येव वस्त्राणि पितृभिर्वः पितामहैः । धारितानि किमुद्वृत्तास्ते तु कौपीनधारकाः ॥३८॥
याताशु वन्या नगरात्सर्वे वै जीवितेच्छया । कारागारे कारयामि युष्मान् वस्त्रहरानहम् ॥३९॥

श्रीनारद उवाच

एवं प्रवदतस्तस्य रजकस्य यदूत्तमः । जहार मस्तकं सद्यः कराग्रेणैव लीलया ॥४०॥
तज्ज्योतिः श्रीघनश्यामे लीनं जातं विदेहराट् । सद्यस्तदनुगाः सर्वे वासःकोशान् विसृज्य वै ४१॥
दुद्रुवुः सर्वतो राजन् शरत्काले यथा घनाः । गृहीत्वात्मप्रिये वस्त्रे स्थितयो रामकृष्णयोः ॥४२॥
जगृहुर्गोपबालास्ते राजमार्गजना अपि । तद्धारणाविदो बाला वासांसि रुचिराणि च ॥
अस्तव्यस्तं परिदधुः श्रीकृष्णस्य प्रपश्यतः ॥४३॥

रहा था। हे राजन्! उन्होंने अपने एक हाथमें कमल और वक्षःस्थलपर वैजन्ती माला धारण कर रक्खी थी ॥ ३१ ॥ कानोंमें नवीन मकराकार कुण्डल पहने तथा बालसूर्यके समान कान्तिमान् सोनेके बाजूबंद-से विभूषित बाहुमण्डलवाले, असंख्य ब्रह्माण्डाधिपति परात्पर भगवान् वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णको देखकर समस्त पुरवासिनी स्त्रियाँ मोहित हो गयीं ॥ ३२ ॥ नागरी नारियाँ बोलीं—अहो! वह वृन्दावन कैसा रमणीय है, जहाँ ये नन्दनन्दन स्वयं निवास करते हैं। वे समस्त गोपगण भी धन्य हैं, जो प्रतिदिन इनके मनोहर रूपका दर्शन करते रहते हैं ॥ ३३ ॥ वे गोपाङ्गनाएँ भी धन्य हैं—न जाने उन्होंने कौन-सा पुण्य किया है, जो रास-रङ्गमें वे बारंबार उनके अधरामृतका पान किया करती हैं ॥ ३४ ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन्! उस राजमार्गपर एक कपड़ा रंगनेवाला रजक जा रहा था। वह बड़ा घमंडी और उन्मत्त जान पड़ता था। ग्वालबालोंकी अनुमतिसे मधुसूदनने उससे कहा—॥ ३५ ॥ 'मेरे महाबुद्धिमान् मित्र! हमारे लिये कुछ सुन्दर वस्त्र दे दो; यदि दोगे तो तुम्हारा परम कल्याण होगा, इसमें संशय नहीं है।' ॥ ३६ ॥ वह रजक कंसका सेवक और बड़ा भारी दुष्ट था। श्रीकृष्णकी बात सुनकर घृतसे अभिषिक्त अग्निकी भाँति वह अत्यन्त रोषसे प्रज्वलित हो उठा और उस राजमार्गपर माधवसे इस प्रकार बोला ॥३७॥ रजकने कहा—अरे! तुम्हारे बाप-दादोंने ऐसे ही वस्त्र धारण किये हैं क्या? ओ उद्दण्ड ग्वाल-बालो! क्या तुम्हारे पूर्वज कौपीनधारी नहीं थे? ॥ ३८ ॥ जंगलमें रहनेवाले हे गोपो! यदि जीवन चाहते हो तो तुम सब-के-सब नगरसे शीघ्र निकल जाओ; अन्यथा वस्त्रकी चोरी करनेवाले तुम सब लोगोंको मैं जेलमें बंद करा दूँगा ॥ ३९ ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन्! इस तरहकी बातें करनेवाले उस रजकके मस्तकको यदुकुल-तिलक श्रीकृष्णने खेल-खेलमें हाथके अग्रभागसे ही मसल दिया ॥ ४० ॥ हे विदेहराज! उसके शरीरकी ज्योति घनश्याम श्रीकृष्णमें लीन हो गयी। हे राजन्! फिर तो उसके समस्त अनुगामी सेवक वस्त्रोंके गट्ठर वहीं छोड़कर उसी तरह सब ओर भाग गये, जैसे शरत्कालमें हवाके वेगसे बादल छिन्न-भिन्न हो जाते हैं ॥ ४१ ॥ उन वस्त्रोंमेंसे बलराम और श्रीकृष्ण अपनी पसंदके कपड़े लेकर जब खड़े हो गये, तब

वीक्ष्य तौ वायकः कश्चिच्छ्रीकृष्णबलदेवयोः । विचित्रवर्णैर्वासोभिर्दिव्यं वेषं चकार ह ॥४४॥
तथाऽन्येषां शिशूनां च यथायोग्यं विधाय सः । राजन्परमया भक्त्या पुनः कृष्णं ददर्श ह ॥४५॥
प्रसन्नो भगवांस्तस्मै प्रादात्सारूप्यमात्मनः । बलं श्रियं तथैश्वर्यं बलदेवो ददौ पुनः ॥४६॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीमथुराखंडे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे मथुरायां श्रीकृष्णप्रवेशो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

(सुदामा माली और कुब्जापर कृष्णभगवान्‌की कृपा)

श्रीनारद उवाच

अथ गोपालकैः सार्द्धं श्रीकृष्णो नंदनंदनः । गृहं जगाम सबलः सुदाम्नो दाममालिनः ॥ १ ॥
दृष्ट्वा तौ स समुत्थाय नमस्कृत्य कृताञ्जलिः । पुष्पसिंहासने स्थाप्य प्राह गद्गदया गिरा ॥ २ ॥

सुदामोवाच

धन्यं कुलं मे भवनं च जन्म त्वय्यभ्यागते देवकुलानि सप्त ।
मातुः पितुः सप्त तथा प्रियाया वैकुण्ठलोकं गतवंति मन्ये ॥ ३ ॥
भूभारमाहर्तुमलं यदोः कुले जातौ युवां पूर्णतमौ परेश्वरौ ।
नमो युवाभ्यां मम दीनदीनं गृहं गताभ्यां जगदीश्वरौ परौ ॥ ४ ॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा पुष्परचनालंकारान् मधुपध्वनीन् । निवेद्य मकरंदांश्च मालाकारो ननाम ह ॥ ५ ॥
धृत्वा तत्पुष्पनिचयं सबलो भगवान् हरिः । दत्त्वा गोपेभ्य आरात्तं प्राह प्रहसिताननः ॥ ६ ॥
गरीयसी मत्पदाब्जे भक्तिर्भूयात्सदा तव । मद्भक्तानां तु सङ्गः स्यान्मत्स्वरूपमिहैव हि ॥ ७ ॥

शेष वस्त्रोंको ग्वालवालों तथा अन्य राहगीरोंने ले लिया। उन वस्त्रोंको कैसे पहनना चाहिये, यह बात ग्वालबाल नहीं जानते थे; अतः बलराम और श्रीकृष्णके देखते-देखते वे उन सुन्दर वस्त्रोंको अस्त-व्यस्त ढंगसे पहनने लगे ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ उसी समय एक जुलाहेने उन सुन्दर दोनों भाइयोंको देख विचित्र वर्णवाले वस्त्रोंको धारण कराकर श्रीकृष्ण और बलदेवके दिव्य वेष बना दिये ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! इसी तरह अन्य गोप-बालकोंको भी यथोचित वस्त्र पहनाकर उसने बड़ी भक्तिसे श्रीकृष्णका पुनः दर्शन किया ॥ ४५ ॥ उस वायकपर प्रसन्न हो भगवान्‌ने उसे अपना सारूप्य प्रदान किया तथा बलदेवजीने भी उसे बल, लक्ष्मी और ऐश्वर्य दिये ॥ ४६ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां मथुराखण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! तदनन्तर ग्वालबालोंसहित नन्दनन्दन श्रीकृष्ण और बलराम सुदामा नामवाले एक मालीके घर गये, जो फूलोंके गजरे बनाया करता था ॥ १ ॥ उन दोनों भाइयोंको देखते ही माली उठकर खड़ा हो गया। उसने हाथ जोड़कर नमस्कार किया और फूलके सिंहासनपर बिठाकर गद्गद वाणीमें कहा ॥ २ ॥ सुदामा बोला—हे देव ! यहाँ आपके शुभागमनसे मेरा कुल तथा घर दोनों धन्य हो गये। मैं ऐसा समझता हूँ कि मेरी माताके कुलकी सात पीढ़ियाँ और पिताके कुलकी सात पीढ़ियाँ वैकुण्ठलोकमें चली गयीं ॥ ३ ॥ आप दोनों परिपूर्णतम परमेश्वर हैं और भूतलका भार उतारनेके लिये यदुकुलमें अवतीर्ण हुए हैं। मुझ दीनातिदीनके घर आये हुए आप दोनों भाइयोंको नमस्कार है। आप परात्पर जगदीश्वर हैं ॥ ४ ॥ नारजी कहते हैं—हे राजन् ! यों कहकर मालीने पुष्पनिर्मित सुन्दर हार और भ्रमरोंकी गुञ्जारसे निनादित मकरन्द (इत्र-फुलेल आदि) निवेदन करके प्रणाम किया ॥ ५ ॥ बलरामसहित भगवान् श्रीहरिने उस पुष्पराशिको धारण करके निकटवर्ती गोपोंको भी दिया और हँसते हुए मुखसे उस मालीसे बोले—॥ ६ ॥ 'हे सुदामन् ! मेरे चरणारविन्दोंमें सदा तुम्हारी गुरुतर भक्ति बनी रहे;

बलदेवो ददौ तस्मै श्रियं चान्वयवर्धिनीम् । उत्थाय तौ ततो राजन्नन्यां वीथीं प्रजग्मतुः ॥ ८ ॥
यांतीं स्त्रियं पद्मनेत्रां पाटीरालेपभाजनम् । बिभ्रतीं युवतीं कुब्जां पथि पप्रच्छ माधवः ॥ ९ ॥

श्रीभगवानुवाच

का त्वं कस्य प्रिया सुभ्रु कस्यार्थं चंदनं त्विदम् । देह्यावयोर्येन तव चिरं श्रेयो भविष्यति ॥१०॥

सैरंध्र्युवाच

दास्यस्मि सुन्दरवर कुब्जानाम महामते । मद्धस्तोत्थं च पाटीरं जातं भोजपतेः प्रियम् ॥११॥
अद्यापि कंसदास्यस्मि सांप्रतं तव चाग्रतः । हस्तिशुण्डादण्डसमे भुजदण्डेऽस्ति मे मनः ॥१२॥
युवां विना कोऽन्यतमोऽनुलेपं कर्तुमर्हति । युवयोस्तु समं रूपं त्रैलोक्ये न हि विद्यते ॥१३॥

श्रीनारद उवाच

उभाभ्यां सा ददौ सांद्रं हर्षिता ह्यनुलेपनम् । अथ तावंगरागेण रामकृष्णौ विरेजतुः ॥१४॥
जगृहुश्चन्दनं दिव्यं किंचित्किंचिद्व्रजार्भकाः । त्रिवक्रामथ तां कृष्णो ऋज्वीं कर्तुं मनो दधे ॥१५॥

आक्रम्य पद्भ्यां प्रपदेऽङ्गुलिद्वयं प्रोत्तानहस्तेन विभुः परेश्वरः ।
प्रगृह्य नृणां चुबुके प्रपश्यतां वक्रां तनुं तामुदनीनमद्धरिः ॥१६॥
तदैव सा यष्टिसमानविग्रहा दीप्त्या च रंभां क्षिपतीव रूपिणी ।
भूत्वा गृहीत्वाऽऽह हरिं तु वाससि शुचिस्मिता जातमनोजविह्वला ॥१७॥

सैरंध्र्युवाच

गच्छाशु हे सुन्दरवर्य मद्गृहं त्यक्तुं भवंतं किल नोत्सहेऽहम् ।
प्रसीद सर्वज्ञ रसज्ञ मानद त्वया भृशं प्रोन्मथितं मनो मम ॥१८॥

मेरे भक्तोंका सङ्ग प्राप्त हो और इसी जन्ममें तुम्हें मेरे स्वरूपकी प्राप्ति हो जाय ॥ ७ ॥ तदनन्तर बलदेवजीने भी उसके कुलमें निरन्तर बढ़नेवाली लक्ष्मी प्रदान की। हे राजन् ! फिर वे दोनों भाई वहाँसे उठकर दूसरी गलीमें गये ॥८॥ वहाँ मार्गमें एक कमलनयनी कामिनी जा रही थी। उसके हाथोंमें चन्दनका अनुलेप-पात्र था। अवस्थामें वह युवती थी, किंतु शरीरसे कुबड़ी दिखायी देती थी। माधवने उससे पूछा ॥ ९ ॥ श्रीभगवान् बोले—हे सुन्दरी ! तुम कौन हो और किसकी प्रिया हो ? किसके लिये यह चन्दन ले जा रही हो ? हम दोनोंको भी यह चन्दन दो, इससे शीघ्र ही तुम्हारा कल्याण होगा ॥ १० ॥ सैरन्ध्री बोली—हे सुन्दर-शिरोमणे ! मैं कंसकी दासी हूँ। हे महामते ! मेरा नाम कुब्जा है। मेरे हाथका घिसा हुआ चन्दन भोजराज कंसको बहुत प्रिय है ॥ ११ ॥ अबतक तो मैं कंसकी ही दासी रही हूँ, किंतु इस समय आपके सामने उपस्थित हूँ। हाथीके शुण्डादण्डकी भाँति जो आपके ये वलिष्ठ भुजदण्ड हैं, इनमें मेरा मन लग गया है ॥१२॥ आप दोनों भाइयोंको छोड़कर दूसरा कौन ऐसा पुरुष है, जो इस चन्दनानुलेपनके योग्य हो। आप दोनों भाइयोंके समान सुन्दर रूप तो त्रिभुवनमें कहीं नहीं है ॥ १३ ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! हर्षसे भरी हुई कुब्जाने उन दोनों भाइयोंके लिये स्निग्ध अनुलेपन प्रदान किया। उस अङ्गरागसे वे दोनों बन्धु—बलराम और श्रीकृष्ण बड़ी शोभा पाने लगे ॥ १४ ॥ व्रजके अन्य बालकोंने भी थोड़ा-थोड़ा वह दिव्य चन्दन ग्रहण किया। कुब्जा तीन जगहसे टेढ़ी थी। उसे श्रीकृष्णने तत्काल सीधी करनेका विचार किया ॥१५॥ उन सर्वव्यापी परमेश्वरने अपने चरणोंद्वारा उसके पैरोंके अग्रभागको दबाकर उत्तान हाथकी दो अङ्गुलियोंसे उसकी ठोढ़ी पकड़ ली और लोगोंके देखते-देखते उसके तीन जगहसे टेढ़े शरीरको उचका दिया ॥ १६ ॥ फिर तो वह उसी समय छड़ीके समान देहवाली, अत्यन्त रूप-सौन्दर्यसे सम्पन्न तन्वङ्गी तरुणी हो गयी और अपनी दीप्तिसे रम्भाको भी तिरस्कृत-सी करने लगी। उसके हृदयमें कामभावका उदय हुआ और उससे विह्वल हो उस पवित्र मुस्कानवाली सैरन्ध्रीने श्रीहरिका वस्त्र पकड़कर इस प्रकार कहा ॥१७॥ सैरन्ध्री बोली—हे सुन्दरप्रवर ! अब तुम शीघ्र ही मेरे घर चलो; निश्चय ही मैं तुम्हें छोड़ नहीं सकूँगी।

श्रीनारद उवाच

तदैव गोपा जहसुः परस्परमहो किमेतत्करतालनिःस्वनैः ।
प्रहस्य रामस्य हरिः प्रपश्यतस्तद्याच्यमानो ह्यवदत्परं वचः ॥१९॥

श्रीभगवानुवाच

अहोऽतिधन्या मथुरा पुरीयं वसंति यत्रैव जनास्तु सौम्याः ।
येऽज्ञातपान्थान्स्वगृहं नयंति दृष्ट्वा पुरीं धाम तवागमिष्ये ॥२०॥

श्रीनारद उवाच

एवमुक्त्वोत्तरीयांतं समाकृष्य गिरार्द्रया । राजमार्गं व्रजन्कृष्णो वैश्यानाढ्यान्ददर्श ह ॥२१॥
पुष्पताम्बूलगंधाढ्यैः फलैर्दुग्धफलैर्हरिम् । सम्पूज्य स्वासने स्थाप्य नेमुरग्र्यधियो विशः ॥२२॥

वैश्या ऊचुः

भवेच्चेदत्र ते राज्यं तावकान्स्मरतात्तदा । वयं तव प्रजा देवराज्ये प्राप्ते न कः स्मरेत् ॥२३॥

श्रीनारद उवाच

पप्रच्छ सुस्मितो वैश्यान्कोदण्डस्थानमच्युतः । न ते तमूचुः सुधियः कोदण्डे भङ्गशङ्कया ॥२४॥
तद्रूपगुणमाधुर्यमोहिता ये च माथुराः । कुमार पश्यैहि धनुरित्यूचुस्तद्दिदृक्षवः ॥२५॥
तैर्दृष्टेन पथा कृष्णः प्रविष्टो धनुपः स्थलम् । मैत्रीं कुर्वन् वयस्यैश्च माथुरैः पुरबालकैः ॥२६॥
यथैंद्रं हेमचित्राढ्यं कोदण्डं सप्ततालकम् । पुरुषैः पञ्चसाहस्रैर्नेतुं योग्यं बृहद्धरम् ॥२७॥
अष्टधातुमयं क्लिष्टं लक्षभारसमं परम् । चतुर्दश्यां पौरजनैरर्चितं यज्ञमण्डपे ॥२८॥

तुम तो सबके मनकी बात जाननेवाले हो, मुझपर कृपा करो। हे रसिकशेखर! हे मानद! तुमने मेरे मनको बड़े वेगसे मथ डाला है ॥ १८ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन्! तब सब गोप 'अहो! यह क्या?' परस्पर यों कहते हुए ताली पीटकर हँसने लगे। बलरामजी भी बड़े गौरसे यह सब देख रहे थे। उस सुन्दरीके अपने घर चलनेके लिये प्रार्थना करनेपर भगवान् श्रीहरिने यह उत्तम बात कही ॥ १९ ॥ श्रीभगवान् बोले—अहो! यह मथुरापुरी अत्यंत धन्य है, जहाँ बड़े सौम्य स्वभावके लोग निवास करते हैं, जो अपरिचित राहगीरोंको अपने घर बुला ले जाते हैं। हे सुन्दरी! मैं घूम-फिरकर मथुरापुरीका दर्शन करके तुम्हारे घर आऊँगा ॥२०॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन्! स्नेहमयी वाणीद्वारा यों कहकर श्रीकृष्णने उसके हाथसे दुपट्टेका छोर खींच लिया और राजमार्गपर आगे बढ़े तो उन्हें कुछ धनी वैश्य दिखायी दिये। उन उत्तम बुद्धिवाले वैश्योंने पान, फूल, इत्र, दूध और फल आदिद्वारा श्रीहरिका पूजन करके उन्हें उत्तम आसनपर बिठाया और उनके चरणोंमें प्रणाम किया ॥ २१ ॥ २२ ॥ वैश्य बोले—हे देव! यदि यहाँ आपका राज्य स्थापित हो जाय तो आप हम आत्मीयजनोंका सदा ध्यान रक्खें; हम आपकी प्रजा हैं। प्रायः राज्य मिल जानेपर कोई किसीका स्मरण नहीं करता ॥ २३ ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन्! तब अच्युतने सुन्दर मन्द मुस्कराहटके साथ उन वैश्योंसे पूछा—'धनुषका स्थान कौन-सा है?' किन्तु वे वैश्य बड़े चालाक थे। उन्हें धनुषके तोड़ दिये जानेकी आशङ्का हुई, इसलिये वे भगवान्को उसका स्थान नहीं बता रहे थे। किंतु उनके रूप, गुण और माधुर्यसे मोहित जो अन्य मथुरावासी थे, वे उन्हें धनुष दिखानेकी इच्छासे बोले—'कुमार! आइये, देखिये वह धनुष है' ॥ २४ ॥ २५ ॥ तब उनके दिखाये हुए मार्गसे श्रीकृष्णने धनुषशालामें प्रवेश किया। वे मथुरावासी समवयस्क पुर-बालकोंके साथ मैत्रीभावकी स्थापना भी करते जाते थे ॥ २६ ॥ वह धनुष सुनहरे बेलबूटोंसे चित्रित था। उसकी लंबाई सात ताड़के बराबर थी। वह देखनेमें इन्द्रधनुष-सा जान पड़ता था। वह इतना अधिक भारी था कि पाँच हजार मनुष्य एक साथ मिलकर ही उसे एक स्थानसे दूसरे स्थानपर ले जा सकते थे ॥ २७ ॥ उसका निर्माण आठ धातुओंसे हुआ था। वह कठोर धनुष एक लाख भारके समान भारी था और चतुर्दशी तिथिको पुरवासियोंद्वारा पूजित होकर यज्ञ-

भार्गवेण पुरा दत्तं यदुराजाय माधवः। ददर्श कुण्डलीभूतं साक्षाच्छेषमिव स्थितम् ॥२९॥
वार्यमाणो नृभिः कृष्णः प्रसह्य धनुराददे। पश्यतां तत्र पौराणां सज्जं कृत्वाऽथ लीलया ॥३०॥
आकृष्य कर्णपर्यंतं दोर्दंडाभ्यां हरिर्धनुः। बभंज मध्यतो राजन्निक्षुदंडं गजो यथा ॥३१॥
भज्यमानस्य धनुषष्टंकारोऽभूत्तडित्स्वनः। ननाद तेन ब्रह्मांडं सप्तलोकैर्बिलैः सह ॥३२॥
विचेलुर्दिग्गजास्तारा राजद्भूखण्डमंडलम्। तदैव बधिरीभूता पृथिव्यां जनमंडली ॥३३॥
कंसस्य हृदयं शब्दो विददार घटीद्वयम्। तद्रक्षिणः प्रकुपिता उत्थिता आततायिनः ॥३४॥
गृहीतुकामाः श्रीकृष्णं प्रत्यूचुर्बध्यतामिति। अथ तानागतान् वीक्ष्य सशस्त्रान्बलकेशवौ ॥३५॥
कोदण्डशकले नीत्वा जघ्नतुर्दुर्मदान्भृशम्। शकलातिप्रहारेण केचिद्वीरास्तु मूर्च्छिताः ॥३६॥
भिन्नपादा भिन्ननखाः केचिच्छिन्नांसबाहवः। वीराः पञ्च सहस्राणि निपेतुर्भूमिमण्डले ॥३७॥
विचेलुर्माथुराः सर्वे दुद्रुवुस्तद्दिदृक्षवः। पुर्यां कोलाहले जाते नृणां जातं महद्भयम् ॥३८॥
भोजराजसभाछत्रमकस्मान्निपपात ह। गोपालैः सबलः कृष्णो धावञ्चापस्थलान्नृप ॥

आययौ नन्दनिकटे सन्ध्याकालेऽतिभीतवत् ॥३९॥
निरीक्ष्य गोविंदसुरूपमद्भुतं विमोहिता वै मथुरापुराङ्गनाः।
विस्रस्तवासःकबराः स्मराधयः परस्परं प्राहुरिदं सखीजनम् ॥४०॥

पुरंध्र्य ऊचुः

कंदर्पकोटिद्युतिमाहरंस्त्वरं स्वैरं चरन्वै मथुरापुरे हरिः।
निरीक्ष्यते याभिरतीव साक्षादङ्गेषु सर्वेष्वपि नः समाविशत् ॥४१॥

मण्डपमें स्थापित किया गया था ॥ २८ ॥ पूर्वकालमें भृगुकुलनन्दन परशुरामजीने राजा यदुको वह धनुष दिया था। माधव श्रीकृष्णने उसे देखा; वह कुंडली मारकर बैठे हुए शेषनागके समान प्रतीत होता था ॥ २९ ॥ लोग मना करते रह गये, किंतु श्रीकृष्णने हठपूर्वक उस धनुषको उठा लिया और पुरवासियोंके देखते-देखते खेल-खेलमें उसके ऊपर प्रत्यञ्चा चढ़ा दी ॥ ३० ॥ हे राजन्! फिर श्रीहरिने अपने भुजदण्डोंसे उस धनुषको कान तक खींचा और जैसे हाथी ईखके डंडेको तोड़ डालता है, उसी प्रकार उसको बीचसे खण्डित कर दिया ॥ ३१ ॥ उस टूटते हुए धनुषकी टंकोर बिजलीकी गड़गड़ाहटके समान प्रतीत हुई। इससे 'भूः' आदि सात लोकों तथा सातों पातालोंसहित सारा ब्रह्माण्ड गूँज उठा ॥ ३२ ॥ दिग्गज विचलित हो गये, तारे टूटने लगे, भूखण्ड-मण्डल काँप उठा, पृथ्वीपर रहनेवाले लोगोंके कान तत्काल बहरे-से हो गये ॥ ३३ ॥ वह शब्द दो घड़ीतक कंसके हृदयको विदीर्ण करता रहा। उस धनुषकी रक्षा करनेवाले आततायी असुर अत्यन्त कुपित होकर उठे और श्रीकृष्णको पकड़ लेनेकी इच्छासे परस्पर कहने लगे—'बाँध लो इसे।' उन्हें सशस्त्र आक्रमण करते देख बलराम और श्रीकृष्णने धनुषके दोनों टुकड़े लेकर उन दुर्मद दैत्योंको बड़े वेगसे पीटना आरम्भ किया। धनुष-खण्डोंके अत्यन्त प्रबल प्रहारसे कितने ही वीर तत्काल मूर्च्छित हो गये ॥३४–३६॥ किन्हींके पाँव टूटे, किन्हींके नख फूटे और कितनोंहीके कंधे एवं बाहुदण्ड खण्डित हो गये। इस प्रकार पाँच हजार दैत्यवीर भूमिपर प्राणशून्य होकर सो गये ॥३७॥ इससे समस्त मथुरावासियोंमें हलचल मच गयी। बहुत-से लोग उस घटनाको देखनेके लिये दौड़ आये। नगरीमें सब ओर कोलाहल होने लगा और वहाँके लोगोंके मनमें बड़ा भारी भय समा गया। भोजराज कंसके सभामण्डपका छत्र अकस्मात् टूटकर गिर पड़ा ॥ ३८ ॥ हे नरेश्वर! ग्वाल-बालों तथा बलरामजीके साथ श्रीकृष्ण संध्याके समय धनुषशालासे नन्दराजके निकट आ गये, मानो वे अत्यन्त डर गये हों। गोविन्दका वह अद्भुत सुन्दर रूप देखकर मथुरापुरीकी वनिताएँ विशेषरूपसे मोहित हो गयीं। उनके वस्त्र खिसक गये, गूँथी हुई चोटियाँ ढीली पड़ गयीं, हृदयमें प्रेम-जनित पीड़ा जाग उठी और वे अपनी सखियोंसे परस्पर इस प्रकार कहने लगीं ॥ ३९ ॥ ४० ॥ पुरस्त्रियाँ बोलीं—हे सखियो! करोड़ों कामदेवोंकी कान्ति धारण किये श्रीहरि बड़ी उतावलीके साथ मथुरापुरीमें स्वच्छन्द विचरने लगे हैं और जिन-किन्हीं युवतियोंने उन्हें देखा है, उन हम-जैसी सभी स्त्रियोंके समस्त अङ्गोंमें

कुशला ऊचुः

क्रूराः स्त्रियः किं न हि संति पत्तने निरीक्ष्यते याभिरनङ्गमोहनः ।
अङ्गेषु सर्वेष्वपि सर्वसुन्दरो नास्माभिरानन्दमयो निरीक्ष्यते ॥४२॥
कस्यैकदेशे मधुरत्वमीक्ष्यते तत्रास्ति नेत्रं प्रपतत्पतङ्गवत् ।
यस्त्वेव सर्वाङ्गमनोहरः सखि स एव नेत्रेण कथं समीक्ष्यते ॥४३॥
अङ्गे ह्यङ्गे सुन्दरे नंदसूनोः प्राप्तं प्राप्तं यत्र यत्रापि नेत्रम् ।
तस्मात्तस्मान्नामवल्लब्धसौख्यं लावण्याब्धौ मग्नवल्लग्नचित्तम् ॥४४॥

श्रीनारद उवाच

दृष्ट्वा दिने यं व्रजराजनन्दनं स्वप्नेऽपि तद्वद्दृशुः पुरस्त्रियः ।
गोप्यः कथं तं मधुरं न सस्मरुर्याभिः कृतं मैथिल रासमंडलम् ॥४५॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीमथुराखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीमथुरादर्शनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

(मल्ल-क्रीड़ा-महोत्सवकी तैयारी तथा रङ्गद्वारपर कुवलयापीड़का वध)

श्रीनारद उवाच

रजकस्य शिरश्छेदं कंसो वै रक्षिणां वधम् । धनुर्भङ्गं ततः श्रुत्वा परं त्रासमुपागमत् ॥ १ ॥
तत्क्षणाद्दुर्निमित्तानि वामाङ्गस्फुरणानि च । अपश्यन्नङ्गभङ्गानि न निद्रां प्राप दैत्यराट् ॥ २ ॥
स्वप्ने प्रेतैः समायुक्तस्तैलाभ्यक्तो दिगंबरः । जपास्रङ्महिषारूढो दक्षिणाशां जगाम सः ॥ ३ ॥
प्रातःकाले समुत्थाय कार्यभारकराञ्जनान् । आहूय कारयामास मल्लक्रीडामहोत्सवम् ॥ ४ ॥
विशालाजिरसंयुक्ते हेमस्तंभसमन्विते । सभामण्डपदेशाग्रे रङ्गभूमिर्बभूव ह ॥ ५ ॥

वे अनङ्ग बनकर समाविष्ट हो गये हैं ॥ ४१ ॥ कुछ चतुरा स्त्रियोंने कहा—क्या इस पुरीमें ऐसी क्रूर स्त्रियाँ नहीं हैं, जो अनङ्गमोहन श्रीकृष्णके सारे अङ्गोंको घूर-घूरकर देखती हैं ? हम सब उन परमानन्दमय सर्वाङ्गसुन्दर श्रीकृष्णको भर आँख नहीं निहारतीं ? ॥ ४२ ॥ हे सखी ! किसीके किसी एक ही अङ्गमें सौन्दर्य-माधुर्य दिखायी देता है और वहीं हमारे नेत्र पतंगके समान टूट पड़ते हैं; परंतु जो सर्वाङ्गसुन्दर एवं मनोहर हैं, उन्हें केवल नेत्रसे पूर्णतया कैसे देखा जा सकता है ? ॥ ४३ ॥ नन्दनन्दनका अंग-अंग सुन्दर है; उसमें जहाँ-जहाँ भी दृष्टि पड़ती है, वहीं-वहीं परम सुख पाकर वहाँ-वहाँसे लौटनेका नाम नहीं लेती। वे लावण्यके महासागर हैं। उनमें हमारा चित्त किस तरह लगा है, मानो उसीमें डूब गया हो ॥ ४४ ॥ हे मिथिलेश्वर ! नगरकी जिन स्त्रियोंने दिनमें व्रजराजनन्दनको देखा, उन्होंने स्वप्नमें भी उन्हींका दर्शन किया। फिर जिन्होंने रासमण्डलमें उनके साथ रासलीला की, वे गोपाङ्गनाएँ उनके मधुर मनोहर रूपका कैसे निरन्तर स्मरण न करें ॥ ४५ ॥

इति श्रीगर्गसंहितायां मथुराखंडे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! रजकके मस्तकके छेदन, धनुषके भञ्जन तथा रक्षकोंके वधका समाचार सुनकर कंसको बड़ा भय हुआ। तत्काल उसके सामने अनेक अपशकुन प्रकट हुए ॥ १ ॥ उसके बायें अङ्ग फड़कने लगे, उसे स्वप्नमें अपना अंग-भंग दिखायी देने लगा। इससे दैत्योंके राजा कंसको रातभर नींद नहीं आयी ॥ २ ॥ उसने स्वप्नमें यह भी देखा कि वह प्रेतोंसे घिरा हुआ है। उसके सारे शरीरमें तेल मला गया है तथा वह नंग-धड़ंग जपाकुसुमकी माला पहिने भैंसेपर चढ़कर दक्षिण दिशाकी ओर जा रहा है ॥ ३ ॥ प्रातःकाल उठकर उसने कार्यकर्ताओंको बुलवाया और उन्हें मल्लक्रीड़ा-महोत्सव प्रारम्भ करनेकी आज्ञा दी ॥ ४ ॥ सभामण्डपके सामने ही विशाल प्राङ्गणसे युक्त स्थानपर रङ्गभूमिकी रचना की गयी थी ॥ ५ ॥ वहाँ

वितानैर्हेमसंकाशैर्मुक्तादामविलंबिभिः । सोपानैर्हेममञ्चैश्च रङ्गभूमिर्बभौ नृप ॥ ६ ॥
राजमञ्चे रत्नमये मकरन्दार्चिते शुभे । शक्रसिंहासनं तत्र सोपबर्हणमण्डलम् ॥ ७ ॥
आतपत्रेण दिव्येन चंद्रमण्डलचारुणा । हंसाभैर्व्यजनैर्युक्तैश्चामरैर्वज्रमुष्टिभिः ॥ ८ ॥
दशहस्तोच्छ्रितं शश्वद्विश्वकर्मविनिर्मितम् । तदारुह्य बभौ कंसोऽद्रिशृंगे मृगराडिव ॥ ९ ॥
गायकाः प्रजगुस्तत्र ननृतुर्वारयोषितः । नेदुर्मृदङ्गपटहतालभेर्यानकादयः ॥१०॥
राजानो मंडलेशाश्च पौरा जानपदा नृप । ददृशुर्मल्लयुद्धं ते मञ्चे मञ्चे समास्थिताः ॥११॥
चाणूरो मुष्टिकः कूटः शलस्तोशल एव च । व्यायाममुद्गरैर्युक्ता युयुधुस्ते परस्परम् ॥१२॥
नन्दराजादयो गोपाः कंसाहूता नताननाः । दत्त्वा बलिं परं तस्मा एकस्मिन्मञ्च आश्रिताः ॥१३॥
बाणासुरजरासंधनरकाणां पुरान्नृप । अन्येषां शंबरादीनां सकाशाद्भूभुजां तथा ॥१४॥
बलयश्चाययू राजन् यदुराजाय तत्र वै । अथ तौ रामकृष्णौ द्वौ मायाबालकविग्रहौ ॥१५॥
मल्ललीलादर्शनार्थं ययतू रङ्गमंडपम् । गोमूत्रचयसिंदूरकस्तूरीपत्रभृन्मुखम् ॥
स्रवन्मदमहामत्तं रत्नकुण्डलमंडितम् ॥१६॥
गजं कुवलयापीडं रङ्गद्वारमवस्थितम् । वीक्ष्य कृष्णो महामात्रं प्राह गंभीरया गिरा ॥१७॥
आकर्षयांग नागेन्द्रं मार्गं कुरु ममेच्छया । नोचेत्त्वां पातयिष्यामि सनागं भूमिमंडले ॥१८॥
महामात्रस्तदा क्रुद्धो नोदयामास तं गजम् । चीत्कारमुल्कटं दिक्षु कुर्वंतं नन्दसूनवे ॥१९॥
गृहीत्वा तं हरिं सद्यः शुंडादण्डेन नागराट् । उज्जहार ततस्तस्मान्निर्गतो भारभृद्धरिः ॥२०॥

सोनेके खंभे लगाये गये, सुनहरे चँदोवे ताने गये और उनमें मोतियोंकी लड़ियाँ लटका दी गयीं । हे नरेश्वर ! सुन्दर सोपानों और सुवर्णमय मञ्चोंसे वह रङ्गभूमि बड़ी शोभा पाने लगी ॥ ६ ॥ राजाके लिये रत्नमय सुन्दर मञ्च स्थापित किया गया । उसपर इत्र लगाया गया । उस मञ्चपर इन्द्रका सिंहासन लगा दिया गया । उसके ऊपर सुन्दर बिछावन और तकिये सुसज्जित कर दिये गये ॥ ७ ॥ चन्द्रमण्डलके समान मनोहर दिव्य छत्र तथा हीरेकी बनी हुई मूठवाले हंसकी-सी आभासे युक्त व्यजन और चामरोंसे सुशोभित विश्वकर्माद्वारा रचित वह दस हाथ ऊँचा सिंहासन बड़ा ही चित्ताकर्षक था । उसपर आरूढ़ हो राजा कंस पर्वत-शिखरपर बैठे हुए सिंहके समान शोभा पा रहा था ॥ ८ ॥ ९ ॥ वहाँ गायकोंद्वारा गीत गाये जाने लगे, वाराङ्गनाएँ नृत्य करने लगीं और मृदङ्ग, पटह, ताल, भेरी तथा आनक आदि बाजे बजने लगे ॥ १० ॥ हे राजन् ! छोटे-छोटे मण्डलोंके शासक नरेश तथा नगर और जनपदके निवासी बड़े लोग पृथक्-पृथक् मञ्चपर बैठकर मल्लयुद्ध देख रहे थे ॥ ११ ॥ चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल और तोशल आदि पहलवान व्यायामोपयोगी मुग्दरोंसे युक्त हो परस्पर युद्धका अभ्यास कर रहे थे ॥ १२ ॥ कंसके द्वारा बुलाये गये नन्दराज आदि गोप मस्तक झुकाये राजाको उत्तम भेंट अर्पित करके एक-एक मञ्चका आश्रय लेकर बैठ गये ॥ १३ ॥ हे नरेश्वर ! वहाँ यदुराज कंसके लिये बाणासुर, जरासंध और नरकासुरके नगरसे भी उपहार आये । अन्य जो शम्बर आदि भूपाल थे, उनके पाससे भी बहुत-सी भेंट-सामग्रियाँ आयीं ॥ १४ ॥ तदनन्तर मायासे बालकरूप धारण किये बलराम और श्रीकृष्ण दोनों भाई मल्लोंके खेल देखनेके लिये उस रंगशालामें आये । रङ्गमण्डपके द्वारपर कुवलयापीड़ नामक हाथी खड़ा था, जिसके कुम्भस्थलपर गोमूत्रमें सने हुए सिन्दूर और कस्तूरीसे पत्र-रचना की गयी थी । रत्नमय कुण्डलोंसे मण्डित उस महामत्त गजराजके गण्डस्थलसे मद झर रहा था ॥ १५ ॥ १६ ॥ द्वारपर हाथीको खड़ा देख श्रीकृष्णने महावतसे गम्भीर वाणीमें कहा—'अरे ! इस गजराजको दूर हटा ले और मेरी इच्छाके अनुसार मार्ग दे दे । नहीं तो तुझको और तेरे हाथीको अभी मार गिराऊँगा' ॥ १७ ॥ १८ ॥ तब कुपित हुए महावतने सम्पूर्ण दिशाओंमें जोर-जोरसे चिग्घाड़ते हुए उस मतवाले हाथीको नन्दनन्दनपर आक्रमण करनेके लिये आगे बढ़ाया ॥ १९ ॥ गजराजने तत्काल श्रीहरिको सूँड़से पकड़कर उठा लिया । परंतु

तत्पादेषु विलीनोऽभूत्प्रभ्रमन्सन्वितस्ततः । वृन्दावननिकुञ्जेषु वृक्षेषु च यथा हरिः ॥२१॥
करे जग्राह तं नागः शुण्डादण्डेन चांघ्रिषु । निष्पीड्य शुण्डां हस्ताभ्यां हरिः पश्चाद्विनिर्गतः॥२२॥
तिर्यग्भूतश्च तं नागो गृहीतुमुपचक्रमे । मुष्टिना तं घातयित्वा पुरो दुद्राव माधवः ॥२३॥
तमन्वधावन्नागेन्द्रो मथुरायां विदेहराट् । कोलाहले तदा जाते हरिस्तस्मादितो ययौ ॥२४॥
पुच्छे गृहीत्वा तं नागं बलदेवो महाबलः । चकर्ष भुजदंडाभ्यां फणिनं गरुडो यथा ॥२५॥
प्रहसन्भगवान्कृष्णो गृहीत्वा तं करे बलात् । चकर्ष भुजदण्डाभ्यां कूपरज्जुं यथा नरः ॥२६॥
द्वयोराकर्षणान्नागो विह्वलोऽभून्नृपेश्वर । महामात्रास्तदा सप्त रुरुहुस्तं गजं बलात् ॥२७॥
नीता गजास्तथा चान्यैः कृष्णं हंतुं शतत्रयम् । अंकुशास्फालनात्क्रुद्धं मत्तेभं पुनरागतम् ॥२८॥
श्रीकृष्णो भगवान्साक्षाद्बलदेवस्य पश्यतः ॥२९॥
शुंडादंडे संगृहीत्वा भ्रामयित्वा त्वितस्ततः । पातयामास भूपृष्ठे कमंडलुमिवार्भकः ॥३०॥
दूरे प्रपतितास्तस्य महामात्रा इतस्ततः । सतां प्रपश्यतां नागः सद्यो वै निधनं गतः ॥३१॥
तज्ज्योतिः श्रीघनश्यामे लीनं जातं विदेहराट् । दंतावुत्पाटय तस्यापि रामकृष्णौ महाबलौ ॥
निजघ्नतुर्महामात्रान् मृगान्केसरिणो यथा ॥३२॥
द्विपे हतेऽपि ये चान्ये महामात्रा इतस्ततः । विदुद्रुवुर्यथा मेघा वर्षाकाले गते सति ॥३३॥
एवं हत्वा द्विपं गोपैः शेषैस्तैः प्रेक्षणोत्सुकैः । जयारावे रामकृष्णौ श्रमवारिमदांकितौ ॥३४॥

अपना भार अधिक बढ़ाकर श्रीहरि उसकी पकड़से बाहर निकल गये ॥ २० ॥ जैसे वृन्दावनके निकुञ्जोंमें श्रीहरि इधर-उधर लुकते-छिपते थे, उसी प्रकार इधर-उधर घूमकर वे कुवलयापीड़के पैरोंके बीचमें छिप गये ॥ २१ ॥ हाथीने अपनी सूँड़ बढ़ाकर उन्हें पकड़ लिया, किंतु उसकी सूँड़की दोनों हाथोंसे दबाकर श्रीहरि पीछेकी ओरसे निकल गये ॥ २२ ॥ तब हाथीने बगलकी दिशामें घूमकर उन्हें पकड़नेकी चेष्टा की, किंतु माधव उसके मस्तकपर मुक्केसे प्रहार करके आगेकी ओर भागे ॥ २३ ॥ हे विदेहराज ! उस गजराजने भागते हुए श्रीहरिका पीछा किया । उस समय सारी मथुरापुरीमें कोहराम मच गया । फिर श्रीहरि चक्कर देकर इधर पीछेकी ओर निकल आये ॥ २४ ॥ उधर महाबली बलदेवने, जैसे गरुड सर्पको पकड़ते हैं, उसी प्रकार प्रकार अपने बाहुदण्डोंसे उसकी पूँछ पकड़कर उसे पीछेकी ओर खींचा ॥ २५ ॥ तब हँसते हुए भगवान् श्रीकृष्णने अपने दोनों हाथोंसे बलपूर्वक उसकी सूँड़ पकड़कर उसी तरह आगेकी ओर खींचना आरम्भ किया, जैसे मनुष्य कुएँसे रस्सी खींचता है ॥ २६ ॥ हे नृपेश्वर ! उन दोनों भाइयोंके आकर्षणसे वह हाथी व्याकुल हो उठा । तब सात महावत बलपूर्वक उस हाथीपर चढ़ गये ॥ २७ ॥ साथ ही दूसरे महावत भी श्रीकृष्णका वध करनेके लिये तीन सौ हाथी वहाँ ले आये । महावतोंके अङ्कुशकी चोट करनेसे कुपित हुआ वह मतवाला हाथी पुनः श्रीकृष्णकी ओर झपटा ॥ २८ ॥ तब बलदेवजीके देखते-देखते साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णने उसकी सूँड़ पकड़ ली और इधर-उधर घुमाकर उसे उसी प्रकार पृथ्वीपर दे मारा, जैसे कोई बालक कमण्डलु पटक दे ॥ २९ ॥ ३० ॥ उसपर चढ़े हुए सातों महावत इधर-उधर दूर जा गिरे और वहाँ जुटे हुए साधुपुरुषोंके देखते-देखते वह हाथी प्राणशून्य हो गया । हे विदेहराज ! उसके शरीरसे एक ज्योति निकली और श्रीघनश्याममें विलीन हो गयी ॥३१ ॥ महाबली बलराम और श्रीकृष्णने उस हाथीके दोनों दाँत उखाड़ लिये और जैसे दो सिंहके बच्चे बहुत-से मृगोंका संहार कर डालें, उसी प्रकार समस्त महावतोंको मौतके घाट उतार दिया ॥ ३२ ॥ हाथीके मारे जानेपर जो अन्य महावत बचे थे, वे सब इधर-उधर भागकर उसी प्रकार छिप गये, जैसे वर्षाकाल व्यतीत हो जानेपर बादल जहाँ-के-तहाँ विलीन हो जाते हैं ॥ ३३ ॥ इस प्रकार कुवलयापीड़का वध करके पसीनेकी बूँदों और हाथीके मदसे अङ्कित बलराम और श्रीकृष्ण, दोनों बन्धु गोपों तथा शेष दर्शनार्थियोंके मुखसे अपनी जयजयकार सुनते-सुनते बड़ी उतावलीके साथ रङ्गशालामें प्रविष्ट हुए । उस समय उन दोनोंके मुख अधिक परिश्रमके कारण लाल हो गये थे;

रेश्रमारुणमुखौ रंगं विविशतुस्त्वरम् । दंतपाणी महावेगौ यथाशामनिलानलौ ॥३५॥
मल्लाश्च मल्लं च नरा नरेंद्रं स्त्रियः स्मरं गोपगणा व्रजेशम् ।
पिता सुतं दंडधरं ह्यसंतो मृत्युं च कंसो विबुधा विराजम् ॥३६॥
तत्त्वं परं योगिवराश्च भोजा देवं तदा रङ्गगतं बलेन ।
पृथक् पृथग्भावनया ह्यपश्यन्सर्वे जनास्तं परिपूर्णदेवम् ॥३७॥
हतं द्विपं वीक्ष्य च तौ महाबलौ कंसो मनस्वी भयमाप चेतसि ।
मंचस्थिता हर्षितमानसाश्च चंद्रं चकोरा इव ते सुखं ययुः ॥३८॥
कर्णे च कर्णं विनिधाय नागरा महोत्सुकास्ते ह्यवदन्परस्परम् ।
एतौ हि साक्षात्परमेश्वरौ परौ बभूवतुर्वै वसुदेवनंदनौ ॥३९॥
अहोगतिरम्यं व्रजमंडलं परं यत्रैप साक्षाद्विचचार माधवः ।
कृत्वा हि यद्दर्शनमद्य दुर्लभं वयं कृतार्थास्तु भवेम सर्वतः ॥४०॥

श्रीनारद उवाच

वदत्सु पौरलोकेषु नदत्तूर्येषु मैथिल । चाणूरस्तावुपव्रज्य रामकृष्णावुवाच ह ॥४१॥

चाणूर उवाच

हे राम हे कृष्ण युवां महाबलौ राज्ञः पुरो वै कुरुतं मृधं बलात् ।
प्रहर्षिते राजनि चेद्यदूत्तमे किं किं न भद्रं भवतीह वश्च नः ॥४२॥

श्रीभगवानुवाच

पुरैव भद्रं नृपतेः प्रसादतो बाला वयं तुल्यबलैश्च बालकैः ।
भूयान्मृधो नो बलवान् यथोचितमधर्मयुद्धं किल मा भवेदिह ॥४३॥

उनके हाथोंमें हाथीके दाँत थे। वे दोनों दिशाओंमें एक साथ चलनेवाले अनिल और अनलकी भाँति बड़े वेगसे रङ्गभूमिमें पहुँचे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ उस समय मल्लोंने उन्हें महामल्ल समझा। नरोंने नरेन्द्र, नारियोंने उन्हें कामदेव और गोपगणोंने व्रजका स्वामी माना। पिताकी दृष्टिमें वे पुत्र जान पड़े और दुष्टोंको दण्ड-धारी यमराजके समान प्रतीत हुए। कंसने उनको अपनी मृत्यु समझा और ज्ञानी पुरुषोंने उन्हें विराट् ब्रह्मके रूपमें देखा ॥ ३६ ॥ उस समय बलरामके साथ रङ्गशालामें गये हुए श्रीकृष्णको योगशिरोमणि महात्मा पुरुषोंने परम तत्त्वके रूपमें अनुभव किया। सभी तरहके लोगोंने अपनी पृथक् पृथक् भावनाके अनुसार उन परिपूर्ण देव श्रीहरिको विभिन्न रूपोंमें देखा और समझा ॥ ३७ ॥ हाथीको मारा गया सुनकर और उन महाबली बन्धुओंको देखकर मनस्वी कंस मन-ही-मन भयभीत हो उठा तथा मञ्चोंपर बैठे हुए दूसरे-दूसरे लोग मन-ही-मन हर्षसे उल्लसित हो उठे और जैसे चन्द्रमाको देखकर चकोर सुखी होते हैं, उसी प्रकार वे उन्हें देखकर परमानन्दमें निमग्न हो गये ॥ ३८ ॥ नगरके लोग अत्यन्त उत्सुक हो एक दूसरेके कान-से-कान सटाकर परस्पर कहने लगे—'ये दोनों वसुदेवनन्दन साक्षात् परमपुरुष परमेश्वर हैं ॥ ३९ ॥ अहो! व्रजमण्डल अत्यन्त रमणीय एवं श्रेष्ठ है, जहाँ ये साक्षात् माधव विचरते रहे हैं और जिनका आज दुर्लभ दर्शन पाकर हम सर्वतोभावसे कृतार्थ हो रहे हैं' ॥ ४० ॥ नारदजी कहते हैं—हे मैथिल! जब पुरवासी लोग इस प्रकार बात कर रहे थे और भाँति-भाँतिके बाजे बज रहे थे, उसी समय चाणूरने बलराम और श्रीकृष्ण—दोनोंके पास जाकर कहा ॥ ४१ ॥ चाणूर बोला—हे राम! हे कृष्ण! आप दोनों बलवान् हैं, अतः महाराजके सामने अपने बलका प्रदर्शन करते हुए मल्ल युद्ध कीजिये। यदुकुल-तिलक महाराज कंस यदि इस युद्धसे प्रसन्न हो गये तो आपलोगोंकी और हमारी कौन-कौन-सी भलाई नहीं होगी? (अर्थात् सब होगी) ॥ ४२ ॥ श्रीभगवान्ने कहा—राजाके कृपा-प्रसादसे तो हमारी पहलेसे ही बहुत भलाई हो रही है। किंतु इतना ध्यान रक्खो कि हमलोग बालक हैं; अतः समान बलवाले बालकोंके

चाणूर उवाच

भवान्न बालो न च वा किशोरो बलश्च साक्षाद्बलिनां बलीयान् ।
सहस्रमत्तेभबलं दधानो द्विपो भवद्भ्यां निहतः सलीलम् ॥४४॥

श्रीनारद उवाच

एवं तस्य वचः श्रुत्वा भगवान्वृजिनार्दनः । चाणूरेणापि युयुधे मुष्टिकेन बलो बली ॥४५॥
आकर्षणं नोदनं च भुजाभ्यां भुजदण्डयोः । चक्रतुः पश्यतां नृणां गजाविव जिगीषया ॥४६॥
हस्ताभ्यां वपुरुत्थाप्य चाणूरस्य हरिः स्वयम् । अतोलयद्देहभारं पुण्यभारं यथा विधिः ॥४७॥
चाणूरस्तं हरिं देवं करेणैकेन लीलया । उज्जहार महावीरो भूखंडं नागराडिव ॥४८॥
ग्रीवायां किल चाणूरं भुजवेगेन माधवः । कट्यां चोद्धृत्य सहसा पातयामास भूतले ॥४९॥
हस्तैश्च जानुभिः पादैर्भुजोरोंगुलिमुष्टिभिः । जघ्नतुः कृष्णचाणूरौ तथैव बलमुष्टिकौ ॥५०॥
श्रमवारियुते दृष्ट्वा श्रीमुखे रामकृष्णयोः । सानुकंपास्तदा प्राहुर्गवाक्षस्था नृपस्त्रियः ॥५१॥

स्त्रिय ऊचुः

अहो अधर्मः सुमहत्सभायां जातः पुरो राजनि वर्तमाने ।
क्व वज्रतुल्याङ्गवृतौ हि मल्लौ क्व पुष्पतुल्यौ बत रामकृष्णौ ॥५२॥
अहो ह्यभाग्यं हि पुरौकसां नो युद्धे तयोर्दर्शनमद्य जातम् ।
अहोऽतिधन्यं बत भूरि भाग्यं वनौकसां रासरसेन जातम् ॥५३॥
अहो स्थिते राजनि दुष्टचित्ते न कोऽपि वक्तुं क्षम एव सख्यः ।
तस्माद्धि नः पुण्यबलेन चेत्तौ त्वरं मृधे वै जयतामरीन्स्वान् ॥५४॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीमथुराखंडे नारदबहुलाश्वसंवादे कुवलयापीडवधो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

साथ ही हमारा युद्ध होगा, किसी बलवान्के साथ नहीं। इसकी यथोचित व्यवस्था होनी चाहिये, यहाँ अधर्म-युद्ध कदापि न होने पाये ॥४३॥ चाणूरने कहा—न तो आप बालक हैं और न बलरामजी ही किशोर हैं। आप सभी बलवानोंमें भी बलिष्ठ हैं; क्योंकि सहस्र मतवाले हाथियोंका बल धारण करनेवाले कुवलयापीड़को आप दोनोंने खिलवाड़में ही मार डाला है ॥ ४४ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! चाणूरकी ऐसी बात सुनकर अघमर्दन भगवान् श्रीकृष्ण चाणूरके साथ और बलवान् बलरामजी मुष्टिकके साथ मल्लयुद्ध करने लगे ॥ ४५ ॥ वे एक-दूसरेके भुजदण्डोंको दोनों भुजाओंसे पकड़कर अपनी ओर खींचते और पीछे ढकेलते थे। लोगोंके देखते-देखते वे दोनों भाई विजयकी इच्छासे लड़नेवाले दो हाथियोंकी भाँति अपने शत्रुओंसे भिड़ गये ॥ ४६ ॥ साक्षात् श्रीहरिने चाणूरके शरीरको दोनों हाथोंसे उठाकर उसके देहभारको उसी प्रकार तौला, जैसे ब्रह्माजी पुण्यात्माओंके पुण्यभारको तौला करते हैं ॥ ४७ ॥ फिर महावीर चाणूरने भगवान् श्रीहरिको एक ही हाथसे उसी प्रकार लीलापूर्वक उठा लिया, जैसे नागराज शेष भूमण्डलको अपने एक ही फनपर धारण करते हैं ॥ ४७ ॥ माधवने अपनी भुजाओंके वेगसे चाणूरकी गर्दन और कमरमें हाथ लगाकर उसे उठा लिया और सहसा पृथ्वीपर दे मारा ॥ ४९ ॥ एक ओर श्रीकृष्ण और चाणूर तथा दूसरी ओर बलराम और मुष्टिक एक दूसरेको हाथों, घुटनों, पैरों, भुजाओं, छातियों, अङ्गुलियों और मुक्कोंसे मारने लगे ॥५०॥ इससे बलराम और श्रीकृष्णके मुखोंपर परिश्रमजनित पसीनेकी बूँदें देखकर दयासे द्रवित हो उस समय महलकी खिड़कियोंके पास बैठी हुई राजरानियाँ आपसमें कहने लगीं ॥ ५१ ॥ स्त्रियाँ बोलीं—अहो ! राजाके विद्यमान रहते उनके सामने सभामें यह बहुत बड़ा अधर्म हो रहा है। कहाँ तो वज्रके समान सुदृढ़ शरीरवाले वे दोनों पहलवान और कहाँ फूलके सदृश सुकुमार बलराम और कृष्ण ॥ ५२ ॥ अहो ! हम मथुरावासियोंका कैसा अभाग्य है कि हमें आज इतने दिनों बाद इनका दर्शन भी हुआ तो युद्धके अवसरपर।

अथ अष्टमोऽध्यायः

(चाणूर-मुष्टिक आदि मल्लोंका तथा कंस और उसके भाइयोंका वध)

श्रीनारद उवाच

आर्द्रचित्तं नंदराजं वनितानां मनोरथम् । स्मृत्वा शत्रून् हन्तुकामश्चक्रे युद्धं बलाद्धरिः ॥ १ ॥
गृहीत्वा भुजदंडाभ्यां चाणूरं गगने बलात् । चिक्षेप सहसा कृष्णो वातः पद्ममिवोद्धृतम् ॥ २ ॥
आकाशात्पतितः सोऽपि तारकेव ह्यधोमुखः । उत्थाय मुष्टिना कृष्णं ताडयामास वेगतः ॥ ३ ॥
तस्य मुष्टिप्रहारेण न चचाल परात्परः । सद्यो गृहीत्वा चाणूरं पातयामास भूतले ॥ ४ ॥
भिन्नदंतस्तु चाणूरः क्रोधयुक्तो मदोत्कटः । मुष्टिद्वयेन श्रीकृष्णं तताड हृदि मैथिल ॥ ५ ॥
गृहीत्वा करयोस्तं वै कराभ्यां भगवान्स्वयम् । कंसस्याग्रे भ्रामयित्वा सर्वेषां पश्यतां नृप ॥ ६ ॥
पातयामास भूपृष्ठे कमंडलुमिवार्भकः । श्रीकृष्णस्य प्रहारेण चाणूरो भिन्नमस्तकः ॥ ७ ॥
उद्वमन् रुधिरं राजन्सद्यो वै निधनं गतः । तथैव मुष्टिकं मल्लं मुष्टिभिर्युधि दुर्गमम् ॥ ८ ॥
धृत्वांघ्रौ भ्रामयित्वा खे बलदेवो महाबलः । पातयामास भूपृष्ठे फणिनं गरुडो यथा ॥
मुष्टिको निधनं प्राप प्रोद्वमन् रुधिरं मुखात् ॥ ९ ॥
कूटं समागतं वीक्ष्य बलदेवो महाबलः । मुष्टिना पातयामास वज्रेणेन्द्रो यथा गिरिम् ॥१०॥
प्राप्तं शलं नंदसूनुर्लत्तया तं तताड ह । तीक्ष्णया तुंडया राजन्कद्रुजं गरुडो यथा ॥११॥
गृहीत्वा तोशलं कृष्णो मध्यतः संविदार्य्य च । प्राक्षिपत्कंससमंचाग्रे विटपं सिन्धुरो यथा ॥१२॥

वनवासी गोपोंका महान् सौभाग्य अत्यन्त धन्यवादके योग्य हैं, जिन्हें रास-रङ्गके साथ श्रीकृष्ण-बलरामका दर्शन होता आ रहा है ॥५३॥ हे सखियो ! आश्चर्यकी बात तो यह है कि इस दुष्ट-चित्त राजाके रहते हुए कोई भी कुछ कहनेको समर्थ नहीं हो सकता । इसलिये हमारे पुण्यके बलसे ये दोनों बन्धु शीघ्र ही अपने शत्रुओं-पर विजय प्राप्त करें ॥ ५४ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां मथुराखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! नन्दराजका चित्त करुणासे द्रवित हो रहा था । उनकी ओर ध्यान देकर तथा वनिताओंके मनोरथको याद करके श्रीहरिने शत्रुओंको मार डालनेका संकल्प मनमें लेकर बलपूर्वक युद्ध आरम्भ किया ॥ १ ॥ चाणूरको भुजदण्डोंसे उठाकर श्रीकृष्णने बलपूर्वक अकस्मात् आकाशमें उसी प्रकार फेंक दिया, जैसे हवाने उखड़े हुए कमलको सहसा उड़ा दिया हो ॥ २ ॥ आकाशसे नीचे मुँह किये वह पृथ्वीपर इतने वेगसे गिरा, मानों कोई तारा टूट पड़ा हो । फिर उठकर चाणूरने श्रीकृष्णको जोरसे एक मुक्का मारा ॥ ३ ॥ उसके मुक्केकी मारसे परात्पर भगवान् श्रीकृष्ण विचलित नहीं हुए । उन्होंने तत्काल चाणूरको उठाकर पृथ्वीपर पटक दिया ॥ ४ ॥ चाणूरके दाँत टूट गये । वह मदोन्मत्त मल्ल क्रोधसे तमतमा उठा । हे मैथिल ! उसने श्रीकृष्णकी छातीपर दोनों हाथोंसे मुक्के मारे ॥ ५ ॥ हे नरेश्वर ! तब दोनों हाथोंसे उसके दोनों हाथ पकड़कर साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णने कंसके आगे उसे घुमाना आरम्भ किया और सबके देखते-देखते पृथ्वीपर उसी प्रकार दे मारा, जैसे किसी बालकने कमण्डलु पटक दिया हो । श्रीकृष्णके इस प्रहारसे चाणूर मल्लका मस्तक फट गया । हे राजन् ! वह रक्त वमन करता हुआ तत्काल मर गया ॥६॥७॥ इसी प्रकार महाबली बलदेवने रणदुर्गम मल्ल मुष्टिकके पैरको मुट्ठोसे पकड़कर आकाशमें घुमाया और जैसे गरुड़ सर्पको पटक दें, उसी प्रकार उसे पृथ्वीपर दे मारा । फिर तो मुष्टिक मुँहसे खून उगलता हुआ कालके गालमें चला गया ॥ ८ ॥ ९ ॥ तत्पश्चात् कूटको सामने आया देख महाबली बलदेवने एक ही मुक्केसे उसी प्रकार मार गिराया, जैसे देवराज इन्द्रने वज्रसे किसी पर्वतको धराशायी कर दिया हो ॥१०॥ हे राजन् ! जैसे गरुड अपनी तीखी चोंचसे नागको घायल कर देता है, उसी प्रकार सामने आये हुए शलको नन्द-नन्दनने लातसे मार गिराया ॥ ११ ॥ फिर तोशलको पकड़कर श्रीकृष्णने उसे बीचसे चीर डाला और

एते निपातिता रङ्गे सद्यो वै निधनं गताः । तेषां ज्योतींषि वैकुण्ठे विविशुः पश्यतां सताम् ॥१३॥
एवं श्रीरामकृष्णाभ्यां मल्लेषु निहतेषु च । शेषाः प्रदुद्रुवुर्मल्ला भयार्ता जीवनेच्छया ॥१४॥
श्रीदामादीन् वयस्यांश्च गोपानाकृष्य माधवः । तैः सार्द्धं युद्धमारेभे सर्वेषां पश्यतां सताम् ॥१५॥
किरीटकुण्डलधरौ रामकृष्णौ सहार्भकैः । विहरंतौ वीक्ष्य रङ्गे विसिस्मुः पुरवासिनः ॥१६॥
कंसं विना सर्वमुखाज्जयशब्दो विनिर्गतः । साधु साध्विति वादोऽभून्नेदुर्दुंदुभयस्ततः ॥१७॥
स्वस्याजयं वीक्ष्य कंसो महाक्रोधसमाकुलः । वर्जयित्वा तूर्यघोषं प्राह प्रस्फुरिताधरः ॥१८॥

कंस उवाच

दुर्बुद्धियुक्तौ वसुदेवनंदनौ प्रसह्य निःसारयताशु सत्पुरात् ।
हरंतु सर्वं व्रजवासिनां धनं बध्नीत नंदं सहसाऽतिदुर्मतिम् ॥१९॥
अथोग्रसेनस्य पितुः कुबुद्धेः शौरेः शिरश्चाशु हि छिंधि छिंधि ।
कौ यत्र तत्रापि तथाऽत्र वृष्णिजातान्सुरांशान् किल सूदयध्वम् ॥२०॥

श्रीनारद उवाच

एवं विकत्थमानस्य कंसस्य यदुनंदनः । सहसोत्पत्य तं मञ्चमारुहत्क्रोधपूरितः ॥२१॥
मृत्युं समागतं वीक्ष्य मञ्चादुत्थाय सत्वरम् । मदोद्धतो भर्त्सयंस्तं जगृहे खड्गचर्म्मणी ॥२२॥
अग्रहीत्सहसा कंसं दोर्भ्यां चर्मासिसंयुतम् । यथा तुण्डविभागाभ्यां सविषं फणिनं विराट् ॥२३॥
पतत्खड्गश्चलच्चर्मा भुजबंधाद्बलाद्बली । विनिर्ययौ तार्क्ष्यतुण्डात्पुण्डरीको यथा फणी ॥२४॥
मंचे तौ बलिनौ वेगान्मर्दयंतौ परस्परम् । शैलशृंगे यथा सिंहौ शुशुभाते यथातथम् ॥२५॥

जैसे हाथी किसी पेड़की डालीको तोड़ फेंके, उसी प्रकार उसे कंसके मञ्चके सामने फेंक दिया ॥ १२ ॥ ये सब मल्ल अखाड़ेमें गिराये जाते ही मौतके मुखमें चले गये और उनके शरीरसे निकली हुई ज्योतियाँ सत्पुरुषोंके देखते-देखते भगवान् वैकुण्ठ (श्रीकृष्ण) में समा गयीं ॥ १३ ॥ इस प्रकार बलराम और श्रीकृष्णके द्वारा अनेक मल्लोंके मारे जानेपर शेष मल्ल भयसे व्याकुल हो प्राण बचानेकी इच्छासे भाग खड़े हुए ॥ १४ ॥ तदनन्तर श्रीदामा आदि अपने मित्र गोपोंको खींचकर माधवने उनके साथ समस्त सज्जनोंके सामने मल्लयुद्धका खेल आरम्भ किया ॥ १५ ॥ किरीट और कुण्डलधारी बलराम तथा श्रीकृष्णको ग्वाल-बालोंके साथ रङ्गभूमिमें विहार करते देख समस्त पुरवासी विस्मयसे चकित हो उठे ॥ १६ ॥ कंसके सिवा अन्य सब लोगोंके मुँहसे 'जय हो ! जय हो' की बोली निकलने लगी। सब ओरसे साधुवाद सुनायी देने लगा और नगाड़े बज उठे ॥ १७ ॥ अपनी पराजय देख कंस अत्यन्त क्रोधसे भर गया और बाजे बंद करनेकी आज्ञा देकर फड़कते हुए अधरोंसे बोला ॥ १८ ॥ कंसने कहा—वसुदेवके दोनों पुत्र खोटी बुद्धि और खोटे विचारवाले हैं। इन दोनोंको हठात् और शीघ्र मेरे नगरसे निकाल दो। व्रजवासियोंका सारा धन हर लो और दुर्बुद्धि नन्दको सहसा कैद कर लो ॥ १९ ॥ आज मेरे दुर्बुद्धि पिता शूरपुत्र उग्रसेनका भी मस्तक तुरंत काट लो, काट लो। पृथ्वीपर जहाँ-कहीं और यहाँ भी जो-जो वृष्णिवंशी यादव मिल जायँ, उन सबको देवताओंके अंशसे उत्पन्न समझकर मार डालो ॥ २० ॥ नारदजी कहते हैं—जब कंस इस प्रकार बढ़-बढ़कर बातें बना रहा था, उस समय यदुनन्दन श्रीकृष्ण सहसा क्रोधसे भर गये और उछलकर उसके मञ्चके ऊपर चढ़ गये ॥ २१ ॥ अपनी मूर्तिमान् मृत्युको आता देख कंस तुरंत उठकर खड़ा हो गया और उस मदमस्त नरेशने श्रीकृष्णको डाँट बताते हुए ढाल-तलवार हाथमें ले ली ॥ २२ ॥ श्रीकृष्णने ढाल-तलवार लिये हुए कंसको सहसा दोनों हाथोंसे उसी प्रकार पकड़ लिया, जैसे पक्षिराज गरुड़ने अपनी चोंचके दो भागोंद्वारा किसी विषधर सर्पको दबा लिया हो ॥ २३ ॥ कंसके हाथसे तलवार छूटकर गिर गयी। ढाल भी दूर जा पड़ी। वह बलवान् वीर बल लगाकर श्रीकृष्णकी भुजाओंके बन्धनसे उसी प्रकार निकल गया, जैसे पुण्डरीक नाग गरुड़की चोंचसे छूट निकला हो ॥ २४ ॥ वे दोनों बलवान्

उत्पतंतं बलात्कंसं शतहस्तं महांबरे । अग्रहीचोत्पतन्कृष्णः श्येनं श्येनो यथांबरे ॥२६॥
गृहीत्वा भुजदण्डाभ्यां प्रचंडं दैत्यपुङ्गवम् । त्रैलोक्यबलधृग्देवो भ्रामयित्वा त्वितस्ततः ॥२७॥
आकाशात्पातयामास मंचोपरि रुषान्वितः । भग्नदण्डोऽभवन्मंचस्तडित्पाते यथा द्रुमः ॥२८॥
पतितोऽपि स वज्राङ्गः किंचिद्व्याकुलमानसः । सहसोत्थाय युयुधे श्रीकृष्णेन महात्मना ॥२९॥
नीत्वा तं भुजदण्डाभ्यां मंचे क्षिप्त्वा पुनः प्रभुः। आरुह्य हृदयं तस्य मौलिं जग्राह माधवः ॥३०॥
सद्यः प्रगृह्य केशेषु रङ्गोपरि हरिः स्वयम् । मंचात्तं पातयामास शैलादुगंडशिलामिव ॥३१॥
तस्योपरिष्टाच्छ्रीकृष्णः सर्वाधारः सनातनः । निपपात स्वयं वेगादनंतोऽनंतविक्रमः ॥३२॥
इत्थं द्वयोर्निपातेन निम्नं भूखंडमंडलम् । स्थालीव सहसा राजञ्चकंपे घटिकाद्वयम् ॥३३॥
संपरेतं भोजराजं भूमौ तं विचकर्ष ह । यथा मृगेन्द्रो नागेन्द्रं सर्वेषां पश्यतां नृप ॥३४॥
हाहाकारस्तदैवासीद्धावतां भूभुजां नृप । वैरभावेन देवेशं भजन्कंसो महाबलः ॥३५॥
जगाम तस्य सारूप्यं भृङ्गिणः कीटको यथा । कंसं प्रपतितं दृष्ट्वा भ्रातरोऽष्टौ महाबलाः ।
सुनामसृष्टिन्यग्रोधतुष्टिमद्राष्ट्रपालकाः ॥३६॥
सुहुना कंकशंकुभ्यां क्रोधप्रस्फुरिताधराः । खड्गचर्मधरा योद्धुं कृष्णोपरि समाययुः ॥३७॥
वीक्ष्य तान्मुद्गरं नीत्वा रोहिणीनंदनो बलः । आराच्चकार हुङ्कारं यथा सिंहो मृगान्प्रति ॥३८॥
हुङ्कारेणैव शस्त्राणि तेषां हस्तेभ्य आभयात् । पेतुराम्रफलानीव दण्डघातैश्च मैथिल ॥३९॥
निःशस्त्रास्ते महावीरा मुष्टिभिः सर्वतो बलम् । तेडुः शैलं यथा नागा शुंडादण्डैरितस्ततः ॥४०॥

वीर उस मंचपर वेगसे एक-दूसरेको रौंदते हुए उसी प्रकार सुशोभित हुए, जैसे पर्वतके शिखरपर दो सिंह परस्पर जूझते हुए शोभा पा रहे हों ॥ २५ ॥ कंस बलपूर्वक उछलकर सौ हाथ ऊपर आकाशमें चला गया। फिर श्रीकृष्णने भी उछलकर उसे इस प्रकार पकड़ लिया, मानो एक बाज पक्षीने दूसरे बाज पक्षीको आकाशमें धर दबोचा हो ॥२६॥ उस प्रचण्ड दैत्यपुंगव कंसको अपने भुजदण्डोंसे पकड़कर तीनों लोकोंका बल धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने चारों ओर घुमाना आरम्भ किया ॥ २७ ॥ फिर रोषसे भरकर उन्होंने कंसको आकाशसे उस मंचपर ही दे मारा। जिससे मंचके स्तम्भ-दण्ड उसी प्रकार टूट गये, जैसे बिजली गिरनेसे वृक्ष टूट जाता है ॥ २८ ॥ आकाशसे नीचे गिरनेपर भी वज्रतुल्य अङ्गोंवाला कंस मन-ही-मन किंचित् व्याकुल होकर सहसा उठ गया और महात्मा श्रीकृष्णके साथ युद्ध करने लगा ॥ २९ ॥ भगवान् गोविन्दने पुनः उसे बाहुदण्डोंद्वारा उठाकर मंचपर फेंक दिया और उसकी छातीपर चढ़कर माधवने उसका मुकुट उतार लिया ॥ ३० ॥ फिर तुरंत उसके केश पकड़कर स्वयं श्रीहरिने उसे मंचसे रङ्गभूमिमें उसी प्रकार पटक दिया, जैसे किसीने शैल-शिखरसे किसी भारी शिलाखण्डको नीचे गिरा दिया हो ॥ ३१ ॥ फिर सबके आधारभूत, अनन्त-पराक्रमी, आदि-अन्तरहित, सनातन भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं भी उसके ऊपर वेगसे कूद पड़े ॥ ३२ ॥ हे राजन्! इस प्रकार उन दोनोंके गिरनेसे वहाँका भूमण्डल सहसा थालीकी भाँति गहरा हो गया और दो घड़ीतक धरती काँपती रही ॥३३॥ हे नरेश्वर! श्रीकृष्णने उस मरे हुए भोजराजके शवको सबके देखते-देखते वहाँकी भूमिपर उसी प्रकार घसीटा, जैसे कोई सिंह मरे हुए गजराजको खींचता हो ॥ ३४ ॥ हे नरेश्वर! उस समय इधर-उधर दौड़ते हुए भूपालोंका हाहाकार सुनायी देने लगा। महाबली कंसने वैर-भावसे देवेश्वर श्रीकृष्णका भजन करके उसी प्रकार उनका सारूप्य प्राप्त कर लिया, जैसे कीड़ा भृङ्गीकी चिन्तासे उसीका रूप ग्रहण कर लेता है ॥ ३५ ॥ कंसको धराशायी हुआ देख उसके आठ महाबली भाई सुहुत, सृष्टि, न्यग्रोध, तुष्टिमान्, राष्ट्रपालक, सुनामा, कङ्क और शङ्कु—क्रोधसे ओठ फड़फड़ाते हुए ढाल और तलवार ले युद्ध करनेके लिये श्रीकृष्णपर टूट पड़े ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ उन्हें आते देख रोहिणी-नन्दन बलरामने मुद्गर हाथमें लेकर उसी प्रकार उनके निकट हुंकार किया, जैसे सिंह मृगोंको देखकर दहाड़ता है ॥ ३८ ॥ हे मिथिलेश्वर! उस हुंकारसे ही उनपर इतना भय छा गया कि उनके हाथोंसे शस्त्र उसी

सृष्टिं तथा सुनामानं मुद्गरेण बलोऽहनत् । न्यग्रोधं भुजवेगेन कङ्कं वामकरेण वै ॥४१॥
शंकुं सुहुं तुष्टिमंतं वामपादेन माधवः । राष्ट्रपालं दक्षिणेन पादेनाभिजघान ह ॥४२॥
अष्टौ निपेतुः सहसा वृक्षा वातहता इव । तेषां ज्योतिर्भगवति लीनं जातं विदेहराट् ॥४३॥
देवदुन्दुभयो नेदुर्जयध्वनिरभूत्तदा । सर्वो वै ववृषुर्देवाः पुष्पैर्नन्दनसंभवैः ॥४४॥
विद्याधर्यश्च गंधर्व्यो ननृतुर्हर्षविह्वलाः । विद्याधराश्च गंधर्वाः किन्नरास्तद्यशो जगुः ॥४५॥
ब्रह्माद्या मुनयः सिद्धा विमानैर्द्रष्टुमागताः । तुष्टुवू रामकृष्णौ तौ वाग्भिः श्रुतिपरायणाः॥४६॥
ताडयंत्य उरो हस्तैरस्तिप्राप्त्यादयः स्त्रियः । विनिर्गतास्ता रुरुदुर्जातवैधव्यदुःखिताः ॥४७॥

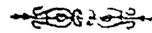
स्त्रिय ऊचुः

हा नाथ हे युद्धपते क्व गतोऽसि महाबल ।
त्रैलोक्यविजयी साक्षाद्देवानामपि दुर्जयः ॥४८॥
जातमात्राः स्वसुः पुत्रा निर्घृणेन त्वया हताः ।
अनिर्दशा निर्दशाश्चापरेऽपि निहता बलात् ॥४९॥
तेन पापेन घोरेण दशामेतादृशीं गतः ॥५०॥

श्रीनारद उवाच

एवमश्रुमुखीर्दीना आश्वास्य नृपयोषितः । विधाय यमुनातीरे चिताः श्रीखंडसंयुताः ॥५१
हतानां कारयित्वाऽसौ क्रियां वै पारलौकिकीम् । सर्वान्संबोधयामास भगवाँल्लोकभावनः ॥५२

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीमथुराखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे कंसवधो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥



प्रकार गिर पड़े, जैसे डंडा मारनेसे आमके फल गिर जाते हैं ॥ ३९ ॥ निःशस्त्र होनेपर भी उन महावीर बलरामको चारों ओरसे मुक्कोंद्वारा मारना आरम्भ किया—ठीक उसी तरह जैसे हाथी किसी पर्वत अपनी सूँड़से इधर-उधरसे पीटते हों ॥ ४० ॥ बलरामजीने सृष्टि और सुनामाको मुद्गरसे मार डाल न्यग्रोधको भुजाओंके वेगसे धराशायी कर दिया और कङ्कको बायें हाथसे मार गिराया ॥ ४१ ॥ माधव शङ्कु, सुहुत और तुष्टिमान्‌को बायें पैरसे कुचल दिया तथा राष्ट्रपालको दाहिने पैरके आघातसे काल गालमें भेज दिया ॥ ४२ ॥ इस प्रकार आँधीके द्वारा उखाड़े हुए वृक्षोंकी भाँति वे आठों वीर सहसा धराशा हो गये । हे विदेहराज ! उन सबकी ज्योति भगवान्‌में लीन हो गयी ॥ ४३ ॥ तब देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज लगीं । उस समय चारों ओर जय-जयकार होने लगी । देवतालोग उसी क्षण नन्दनवनके फूलोंकी व करने लगे ॥ ४४ ॥ विद्याधरियाँ और गन्धर्वाङ्गनाएँ हर्षसे विह्वल होकर नृत्य करने लगीं । विद्याधर, गन्ध और किन्नर भगवान्‌का यश गाने लगे ॥ ४५ ॥ ब्रह्मा आदि देवता, मुनि और सिद्ध विमानोंद्वारा भगवा का दर्शन करनेके लिये आये । वे वैदिक मन्त्रोंका पाठ करते हुए दिव्य वाणीद्वारा बलराम और श्रीकृष्ण- दोनों भाइयोंकी स्तुति करने लगे ॥ ४६ ॥ तदनन्तर कंसकी अस्ति-प्राप्ति आदि रानियाँ हाथोंसे छाती पीट हुई महलसे बाहर निकलीं और सहसा प्राप्त वैधव्यके दुःखसे दुखी हो विलाप करने लगीं ॥ ४७ ॥ स्त्रि बोलीं—हा नाथ ! हे युद्धपते ! हे महाबली वीर ! तुम कहाँ चले गये ? तुम तो त्रिभुवनविजयी तथा साक्षा देवताओंके लिये भी दुर्जय वीर थे ॥ ४८ ॥ तुमने निर्दय होकर अपनी बहिनके नवजात बच्चोंकी हत्या की और दस दिनसे कम और अधिक उम्रवाले दूसरे-दूसरे बालकोंका भी बलपूर्वक वध कर डाला; उसी घो पापके कारण तुम ऐसी दशाको प्राप्त हुए हो ॥ ४९ ॥ ५० ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! इस प्रकार अश्रु भीगे मुखवाली दीन-दुखी राजपत्नियोंको धीरज बँधाकर लोकभावन भगवान् यमुनाके तटपर श्रीखण्ड चन्दनसे युक्त चिताएँ बनवायीं और मारे गये मामाओंकी पारलौकिक क्रियाएँ करवाकर सबक समझाया ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां मथुराखण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

गुरवे दक्षिणां दातुमुद्यतौ तौ कृताञ्जली । मृतं पुत्रं दक्षिणायां ताभ्यां वव्रे गुरुर्द्विजः ॥१४॥
रथमारुह्य तौ दांतौ शातकुम्भपरिच्छदम् । प्रभासे चाब्धिनिकटं जग्मतुर्भीमविक्रमौ ॥१५॥
सद्यः प्रकंपितः सिन्धू रत्नोपायनमुत्तमम् । नीत्वा तच्चरणोपांते निपपात कृताञ्जलिः ॥१६॥
तमाह भगवाञ्छीघ्रं पुत्रं देहि गुरोर्मम । प्रचंडोर्मिघटाटोपैस्त्वया तद्ग्रहणं कृतम् ॥१७॥

समुद्र उवाच

भगवन् देवदेवेश न मया बालको हृतः । हृतः पंचजनेनासौ शङ्खरूपासुरेण वै ॥१८॥
वसन् सदा मदुदरे बलिष्ठो दैत्यपुङ्गवः । जेतुं योग्यस्त्वया देव देवानां भयकारकः ॥१९॥

श्रीनारद उवाच

तेनोक्तो भगवान्कृष्णो वासो बद्ध्वा कटौ दृढम् । निपपात महावेगात्समुद्रे भीमनादिनि ॥२०॥
श्रीकृष्णस्य निपातेन त्रिलोकीभारधारिणः । चकंपेऽब्धिर्भृशं वज्रकूटेनेव विदेहराट् ॥२१॥
ततः पंचजनो दैत्यो योद्धुं श्रीकृष्णसंमुखे । आगतः सहसा वीरः शूलं चिक्षेप माधवे ॥२२॥
हस्ते गृहीत्वा तच्छूलं तेनैवाभिजघान तम् । तद्घातेन प्रपतितो मूर्च्छितो वारिमंडले ॥२३॥
सहसोत्थाय देवेशं किंचिद्व्याकुलमानसः । मूर्ध्ना तताड पक्षींद्रं स्वफणेन फणी यथा ॥२४॥
परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान् हरिः । क्रुद्धो मूर्द्धनि वेगेन मुष्टिना तं तताड ह ॥२५॥
कृष्णमुष्टिप्रहारेण सद्यो वै निधनं गतः । तज्ज्योतिः श्रीघनश्यामे लीनं जातं विदेहराट् ॥२६॥
एवं हत्वा पंचजनं शंखं नीत्वा तदंगजम् । महार्णवान्निर्गतोऽसौ सहसा रथमागमत् ॥२७॥
वायुवेगेन यानेन रामकृष्णौ मनोहरौ । जग्मतुः शमनस्यापि दीर्घां संयमनीं पुरीम् ॥२८॥

शिरोमणि हो गये ॥ १३ ॥ तत्पश्चात् वे दोनों भाई हाथ जोड़कर गुरुजीको दक्षिणा देनेके लिये उद्यत हुए। उस समय उन ब्राह्मण गुरुने उन दोनोंसे दक्षिणामें अपने मरे हुए पुत्रको माँगा ॥ १४ ॥ तब वे दोनों भाई सुनहरे साज-सामानोंसे युक्त रथपर आरूढ़ होकर मन-इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए प्रभासतीर्थमें समुद्रके निकट गये ॥ १५ ॥ दोनों ही भयानक पराक्रमी थे। उन्हें आया जानकर समुद्र तत्काल काँप उठा और रत्नोंकी उत्तम भेंट ला और दोनों हाथ जोड़कर उनके चरणप्रान्तमें पड़ गया ॥ १६ ॥ उससे भगवान्‌ने कहा—'तुम मेरे गुरुदेवके पुत्रको शीघ्र ही लौटा दो। तुमने अपनी प्रचण्ड लहरोंके घटाटोपसे उस ब्राह्मण-बालकका अपहरण कर लिया था' ॥१७॥ समुद्र बोला—हे भगवन्! हे देवदेवेश्वर! मैंने उस ब्राह्मण-बालकका अपहरण नहीं किया है। उसका हरण तो शङ्खरूपधारी असुर पञ्चजनने किया है ॥ १८ ॥ वह बलिष्ठ दैत्यराज सदा मेरे उदरमें निवास करता है। हे देव! वह देवताओंके लिये भी भयकारक है, अतः आपको उसे जीत लेना चाहिये ॥ १९ ॥ नारदजी कहते हैं—समुद्रके यों कहनेपर भगवान् श्रीकृष्णने अपनी कमरमें दृढ़तापूर्वक वस्त्र बाँध लिया और वे भयंकर शब्द करनेवाले उस समुद्रमें बड़े वेगसे कूद पड़े ॥ २० ॥ हे विदेहराज! त्रिलोकीका भार धारण करनेवाले श्रीकृष्णके कूदनेसे वह समुद्र इस प्रकार अत्यन्त काँपने लगा, मानो वज्र-कूट गिरिके द्वारा उसे मथ डाला गया हो ॥ २१ ॥ तब वीर पञ्चजन दैत्य युद्ध करनेके लिये सहसा श्रीकृष्ण-के सामने आया। उसने माधवपर अपना शूल चला दिया ॥ २२ ॥ किंतु उस शूलको हाथमें लेकर श्रीकृष्णने उसीके द्वारा उसपर आघात किया। उस आघातसे मूर्च्छित होकर वह समुद्रमें गिर पड़ा ॥२३॥ फिर सहसा उठ और कुछ व्याकुलचित्त होकर पञ्चजनने देवेश्वर श्रीहरिको इस प्रकार अपने मस्तकसे मारा, मानो किसी सर्पने पक्षिराज गरुडपर अपने फनसे प्रहार किया हो ॥ २४ ॥ तब साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीहरिने कुपित होकर बड़े वेगसे उसके मस्तकपर मुक्का मारा ॥ २५ ॥ श्रीकृष्णके मुक्केकी मारसे तत्काल उसके प्राणपखेरू उड़ गये। हे विदेहराज! उसके शरीरसे निकली हुई ज्योति घनश्याम श्रीकृष्णमें लीन हो गयी ॥२६॥ इस प्रकार पञ्चजनको मारकर और उसके शरीरसे उत्पन्न शङ्खको साथ ले, वे श्रीकृष्ण सहसा महासागरसे निकले और रथपर आ बैठे ॥ २७ ॥ तदनन्तर मनोहर बलराम और श्रीकृष्ण वायुके समान वेगशाली

पांचजन्यध्वनिर्लोकं प्रचंडो मेघघोषवत् । पूरयामास तं श्रुत्वा चकंपे ससभो यमः ॥२९॥
चतुरशीतिलक्षेषु नरकेषु निपातिताः । यैर्यैः श्रुता ध्वनिस्ते ते जग्मुर्मोक्षं तु पापिनः३०॥
यमः सद्यो बलिं नीत्वा श्रीकृष्णबलदेवयोः । पपात चरणोपांते धर्षितः सन्कृताञ्जलिः ॥३१॥

यम उवाच

हे हरे हे कृपासिंधो राम राम महाबल । असंख्यब्रह्मांडपती परिपूर्णतमौ युवाम् ॥३२॥
देवौ पुराणौ पुरुषौ महांतौ सर्वेश्वरौ सर्वजगज्जनेशौ ।
अत्रैव सर्वोपरि वर्तमानौ गिरा निजाज्ञां वदतं परेशौ ॥३३॥

श्रीभगवानुवाच

गुरुपुत्रं लोकपाल आनयस्व महामते । राज्यं कुरु यथान्यायं मदुक्तं मानयन् क्वचित्३४॥

श्रीनारद उवाच

तदैव तेनोपानीतं गुरुपुत्रं हरिः स्वयम् । गृहीत्वाऽवंतिकामेत्य ददौ श्रीगुरवे शिशुम् ॥३५॥
गुर्वाशिषा संयुतौ तौ नत्वा तं हि कृताञ्जली । रथमारुह्य मथुरामागतौ यदुपूजितौ ॥३६॥
एकदा सबलः कृष्णः सर्वकारणकारकः । पांडवान्संस्मरन्भक्तानक्रूरभवनं ययौ ॥३७॥
अक्रूरः सहसोत्थाय परिरभ्य मुदान्वितः । उपचारैः षोडशभिः पूजयित्वाऽथ तौ नृप ॥३८॥
कृतांजलिः पुरः स्थित्वा जातपूर्णमनोरथः । उवाचानंदजनितां मुंचन्बाष्पकलां नृप ॥३९॥

अक्रूर उवाच

युवाभ्यां रामकृष्णाभ्यां ताभ्यां नित्यं नमो नमः । याभ्यां मार्गे यदुक्तं मे पूर्णं तच्च कृतं प्रभू ॥४०॥
लोकाभिरामौ जनभूषणोत्तमौ चांतर्बहिःसर्वजगत्प्रदीपकौ ।
गोविप्रसाधुश्रुतिधर्मदेवतारक्षार्थमद्यैव यदोः कुले गतौ ॥४१॥

कंसादिदैत्येन्द्रविनाशहेतवे गोलोकलोकात्परिपूर्णतेजसौ ।
समागतौ भारतभूमिमंडले युवां परेशौ सततं नतोऽस्म्यहम् ॥४२॥

श्रीभगवानुवाच

त्वमार्यवृद्धो धृतिमानहं तव पुरः शिशुः । संतो नः स्वात्मनः श्लाघ्यं कुर्वंति हि महामते ॥४३॥
पांडवानां हि कुशलं द्रष्टुं गच्छ गजाह्वयम् । शीघ्रमागच्छ तान्दृष्ट्वा सर्वान् दानपते भवान् ॥४४॥

श्रीनारद उवाच

एवमुक्त्वा तदाऽक्रूरं भगवान् भक्तवत्सलः । सबलः शौरिभवनमाययौ सर्वकार्यकृत् ॥४५॥
कौरवेन्द्रपुरं गत्वाऽक्रूरो दृष्ट्वाऽथ पांडवान् । पुनरागत्य कृष्णाय वार्तां सर्वामवर्णयत् ॥४६॥

अक्रूर उवाच

विना युवां कोऽपि न पांडवानां सहायकृत्कौरवदुःखभोगिनाम् ।
मृते च पांडौ भवतोः पदांबुजे विलग्नचित्ता हि पृथात्मजा ये ॥४७॥

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वाऽक्रूरमुखात् श्रीकृष्णो भगवान्हरिः । अर्द्धं राज्यं पांडवेभ्यः कौरवाणां बलाद्ददौ ॥४८॥
अथोक्तं वचनं स्मृत्वा तदोद्धवसमन्वितः । महामङ्गलसंयुक्तं कुब्जाया भवनं ययौ ॥४९॥
दृष्ट्वाराच्छ्रीहरिं प्राप्तं कुब्जा रूपवती त्वरम् । भक्त्या समर्हयामास पाद्याद्यैः प्राणवल्लभम् ॥५०॥
हेमरत्नखचित्कुडये कुब्जाया भवनोत्तमे । बभौ हरी रूपवत्या वैकुण्ठे रमया यथा ॥५१॥
परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान्स्वयम् । यस्याः पतिरभूद्राजन्नहो तस्यास्तपो महत् ॥५२॥
तत्र स्थित्वा हरिर्देवो दिनान्यष्टौ विदेहराट् । आययौ शौरिभवनं लीलामानुषविग्रहः ॥५३॥

को मेरा नित्य वारंवार नमस्कार है ॥ ४० ॥ आप दोनों समस्त लोकोंमें सर्वाधिक सुन्दर हैं। जनभूषणोंमें भी उत्तम हैं। आप सम्पूर्ण जगत्को बाहर और भीतरसे भी प्रकाशित करनेवाले हैं। इस समय गौ, ब्राह्मण, साधु, वेद, धर्म तथा देवताओंकी रक्षाके लिये आप दोनों यदुकुलमें अवतीर्ण हुए हैं ॥ ४१ ॥ परिपूर्ण तेजस्वी आप दोनों परमेश्वर कंसादि दैत्योंका विनाश करनेके लिये गोलोकधामसे भारतवर्षके भूमण्डलमें पधारे हैं। मैं नित्य-निरन्तर आप दोनोंको प्रणाम करता हूँ ॥ ४२ ॥ श्रीभगवान् बोले—आप हमारे बड़े-बूढ़े गुरुजन और धैर्यवान् हैं। मैं आपके आगे बालक हूँ। हे महामते ! संत पुरुष कभी अपनी बड़ाई नहीं करते। हे दानपते ! पाण्डवोंका कुशल-समाचार जाननेके लिये आप शीघ्र हस्तिनापुर जाइये और वहाँ उन सबसे मिल-जुलकर लौट आइये ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! उस समय अक्रूरसे यों कहकर समस्त कार्योंका सम्पादन करनेवाले भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजीके साथ वसुदेवजीके भवनमें लौट आये। उधर अक्रूर कौरवेन्द्रपुरी हस्तिनापुरमें जाकर पाण्डवोंसे मिले और पुनः वहाँसे लौटकर उन्होंने श्रीकृष्णको सारा समाचार कह सुनाया ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ अक्रूरने कहा—भगवन् ! पाण्डव लोग कौरवोंके दिये हुए दुःख भोग रहे हैं। आप दोनोंके सिवा दूसरा कोई भी उनकी सहायता करनेवाला नहीं है। पाण्डुके मर जानेपर पृथाके सभी पुत्र आप दोनोंके चरणारविन्दोंमें ही चित्त लगाये बैठे हैं ॥ ४७ ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! अक्रूरजीके मुखसे यह समाचार सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने कौरवोंका आधा राज्य बलपूर्वक पाण्डवोंको दे दिया ॥ ४८ ॥ तदनन्तर अपनी कही हुई बातको याद करके भगवान् श्रीकृष्ण उद्धवको साथ ले कुब्जाके महामंगलसंयुक्त भवनमें गये ॥ ४९ ॥ श्रीहरिको आया देख परम रूपवती कुब्जाने तुरंत ही भक्तिभावसे पाद्य आदि उपचार समर्पित करके अपने प्राणवल्लभका पूजन किया ॥ ५० ॥ कुब्जाके उत्तम भवनकी दीवारोंमें सोने और रत्न जड़े गये थे। उस रूपवती रमणीके साथ श्रीहरि उसी प्रकार शोभित हुए, जैसे वैकुण्ठधाममें रमाके साथ रमापति विष्णु शोभा पाते हैं ॥ ५१ ॥ हे राजन् ! साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं जिस सैरन्ध्रीके पति हो गये, उसका महान् तप कैसा आश्चर्यजनक है ॥ ५२ ॥ हे विदेहराज ! वहाँ लीलासे मानव-शरीर धारण करनेवाले भगवान् श्रीहरि आठ दिनोंतक टिके रहकर नवें दिन वसुदेवजी-

इति श्रीकृष्णचरितं मथुरायां विदेहराट् । सर्वपापहरं पुण्यमायुर्वर्द्धनमुत्तमम् ॥५४॥
चतुष्पदार्थदं नृणां श्रीकृष्णवशकारकम् । मया ते कथितं पृष्टं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥५५॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीमथुराखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे यदुसौख्यं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः

(धोबी, दर्जी और सुदामा मालीके पूर्वजन्मका परिचय)

बहुलाश्व उवाच

श्रीकृष्णचरितं पुण्यं मया तव मुखाच्छ्रुतम् । पुनः श्रोतुं मनश्चाद्य तृषितो वा जलं गतः ॥ १ ॥
कंसस्य जन्मकर्माणि त्वयोक्तानि श्रुतानि मे । केश्यादिदैत्यवर्याणां पूर्वजन्मकृतं श्रुतम् ॥ २ ॥
कोऽयं तु रजकः पूर्वमवधीद्यं हरिः कथम् । अहो यस्य महज्ज्योतिः कृष्णे लीनं बभूव ह ॥ ३ ॥

श्रीनारद उवाच

त्रेतायुगे त्वयोध्यायां रामराज्ये विदेहराट् । चाराणां शृण्वतां कश्चिद्रजको ह्यवदत्प्रियाम् ॥ ४ ॥
नाहं बिभर्मि त्वां दुष्टामुषितां परवेश्मगाम् । स्त्रैलोभी बिभृयात्सीतां रामो नाहं भजे पुनः ॥ ५ ॥
इति लोकाद्बहुमुखाद्वाक्यं श्रुत्वाऽथ राघवः । सीतां तत्याज सहसा वने लोकापवादतः ॥ ६ ॥
तस्मै दंडं दातुमिच्छां न चक्रे राघवोत्तमः । मथुरायां द्वापरांते रजकः स बभूव ह ॥ ७ ॥
कुवाक्यदोषशांत्यर्थं तं जघान हरिः स्वयम् । तदपि प्रददौ मोक्षं तस्मै श्रीकरुणानिधिः ॥ ८ ॥
दयालोः कृष्णचन्द्रस्य चरित्रं परमाद्भुतम् । एतत्ते कथितं राजन् किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ९ ॥

बहुलाश्व उवाच

पुरा वै वायकः कोऽयं नितरां मुनिसत्तम । यस्मै ददौ च सारूप्यं श्रीकृष्णो भगवान्हरिः ॥१०॥

श्रीनारद उवाच

मिथिलानगरे पूर्वं वायको हरिभक्तिकृत् । श्रीरामोद्वाहसमये सीरध्वजनृपाज्ञया ॥११॥
रामलक्ष्मणवेषार्थं वासांसि रचयन् किल । लघुसूत्रैः परिवयन् कुशलो वस्त्रकर्मसु ॥१२॥
कोटिकन्दर्पलावण्यौ सुन्दरौ रामलक्ष्मणौ । तौ वीक्ष्य वायको राजन्मोहितोऽभून्महामनाः ॥१३॥
अहं स्वहस्तैर्वस्त्राणि तयोरंगेषु सर्वतः । परिधानं कारयामि चक्रे चेत्थं मनोरथम् ॥१४॥
मनसाऽपि वरं रामो ददौ तस्मा अशेषवित् । द्वापरांते भारते च भविष्यति मनोरथः ॥१५॥
श्रीरामस्य वरात्सोऽयं मथुरायां बभूव ह । तयोर्वेषं कारयित्वा तत्सारूप्यं जगाम ह ॥१६॥

बहुलाश्व उवाच

सुदाम्ना मालिना ब्रह्मन्किं कृतं सुकृतं वद । यद्गृहं जग्मतुः साक्षाद्रामकृष्णौ मनोहरौ ॥१७॥

श्रीनारद उवाच

राजराजवनं रम्यं नाम्ना चैत्ररथं शुभम् । तस्य वै पुष्पबटुको हेममालीति नामभाक् ॥१८॥
विष्णुभक्तिरतः शान्तो दानी सत्संगकृन्महान् । श्रीविष्णुदेवप्राप्त्यर्थं देवपूजां चकार ह ॥१९॥
समाः पंचसहस्राणि पद्मानां च शतत्रयम् । नित्यं नीत्वा धूर्जटये पुरो धृत्वा ननाम ह ॥२०॥
एकदाऽतिप्रसन्नोऽभूत्त्र्यम्बकः करुणानिधिः । मालाकार महाबुद्धे वरं ब्रूहीत्युवाच ह ॥२१॥
हेममाली तदा देवं नमस्कृत्य कृताञ्जलिः । प्रदक्षिणीकृत्य पुरः स्थित्वा प्राह नताननः ॥२२॥

हेममाल्युवाच

परिपूर्णतमं कृष्णं कच्चिन्नो गृहमागतम् । पश्यामि दृग्भ्यां तं साक्षात्त्वद्वरेण भवेदिदम् ॥२३॥

चन्द्रका यह परम अद्भुत चरित्र मैंने तुमसे कहा। अब पुनः क्या सुनना चाहते हो ? ॥ ९ ॥ बहुलाश्वने पूछा—हे मुनिश्रेष्ठ ! पूर्वजन्ममें वह दर्जी कौन था, जिसे भगवान् श्रीकृष्णने अपना सारूप्य प्रदान किया ? ॥१०॥ श्रीनारदजीने कहा—हे राजन् ! पहले मिथिलापुरीमें एक दर्जी था, जो भगवान् श्रीहरिके प्रति भक्तिभाव रखता था। उसने श्रीरामके विवाहके समय राजा सीरध्वज जनककी आज्ञासे श्रीराम और लक्ष्मणके दूल्हे-वेषके लिये महीन डोरोंसे कपड़े सीये थे। वह वस्त्र सीनेकी कलामें अत्यन्त कुशल था ॥ ११ ॥ १२ ॥ हे राजन् ! करोड़ों कामदेवोंके समान लावण्यवाले सुन्दर श्रीराम और लक्ष्मणको देखकर वह महामनस्वी दर्जी मोहित हो गया था ॥ १३ ॥ उसने मन-ही-मन यह इच्छा की कि मैं कभी अपने हाथोंसे इनके अङ्गोंमें वस्त्र पहिनाऊँ ॥ १४ ॥ श्रीरघुनाथजी सर्वज्ञ हैं। उन्होंने मन-ही-मन उसे वर दे दिया कि 'द्वापरके अन्तमें भारतीय व्रजमण्डलमें तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा।' ॥ १५ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके वरदानसे वही यह दर्जी मथुरामें प्रकट हुआ था, जिसने उन दोनों बन्धुओंकी वेषरचना करके उनका सारूप्य प्राप्त कर लिया ॥ १६ ॥ बहुलाश्वने पूछा—हे ब्रह्मन् ! सुदामा मालीने, जिसके घरमें परम मनोहर बलराम और श्रीकृष्ण स्वयं पधारे थे, कौन-सा पुण्य किया था ? बताइये ॥ १७ ॥ नारदजीने कहा—हे राजन् ! राजराज कुबेरका एक परम रमणीय सुन्दर वन है, जो चैत्ररथ-वनके नामसे प्रसिद्ध है। उसमें फूल लगानेवाला एक माली था, जो हेममालीके नामसे पुकारा जाता था ॥ १८ ॥ वह भगवान् विष्णुके भजनमें तत्पर, शान्त, दानशील तथा महान् सत्सङ्गी था। उसने भगवान् श्रीकृष्णकी प्राप्तिके लिये देवताओंकी पूजा की थी ॥ १९ ॥ पाँच हजार वर्षोंतक प्रतिदिन तीन सौ कमल-पुष्प लाकर वह भगवान् शंकरके आगे रखता और उन्हें प्रणाम करता था ॥ २० ॥ एक समय करुणानिधि त्रिनेत्रधारी भगवान् शंकर उसके ऊपर अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले—'हे परम बुद्धिमान् मालाकार ! तुम इच्छानुसार वर माँगो।' ॥२१॥ तब हेममालीने हाथ जोड़कर महादेवजीको नमस्कार किया और परिक्रमा करके उनके सामने खड़ा हो मस्तक झुकाकर कहा ॥ २२ ॥ हेममाली बोला—भगवन् ! परिपूर्णतम प्रभु श्रीकृष्ण कभी मेरे घर पधारें और मैं इन नेत्रोंसे उनका प्रत्यक्ष दर्शन

श्रीमहादेव उवाच

द्वापरांते भारते च मथुरायां महामते । मनोरथस्ते सफलो भविष्यति न संशयः ॥२४॥

श्रीनारद उवाच

महेश्वरवरेणासौ हेममाली महामनाः । मालाकारो द्वापरांते सुदामा संबभूव ह ॥२५॥
तस्मादस्य गृहं साक्षाज्जग्मतू रामकेशवौ । शिववाक्यमृतं कर्तुं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥२६॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीमथुराखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे रजकवायकसुदामोपाख्यानं नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

अथ एकादशोऽध्यायः

(कुब्जा और कुवलयापीडके पूर्वजन्मगत वृत्तान्तका वर्णन)

बहुलाश्व उवाच

सैरन्ध्र्या किं कृतं पूर्वं तपः परमदुर्घटम् । येन प्रसन्नः श्रीकृष्णो देवैरपि सुदुर्लभः ॥ १ ॥
पंचवट्यां स्थितं रामं कोटिकन्दर्पसन्निभम् । वीक्ष्य शूर्पणखा नाम्नी राक्षसी मोहिता भृशम् ॥ २ ॥
निर्मोहं राघवं दृष्ट्वाऽथैकपत्नीव्रतस्थितम् । क्रोधात्सीतां भक्षयितुं धावती रावणस्वसा ॥ ३ ॥
खड्गेन शितधारेण लक्ष्मणो राघवानुजः । जहार तस्याः कर्णौ च नासां सद्यो रुषान्वितः ॥ ४ ॥
छिन्ननासा गता लंकां रावणाय न्यवेदयत् । भूयः पुष्करतीर्थे सा जगाम विमना भृशम् ॥ ५ ॥
तपश्चक्रे शूर्पणखा वर्षाणामयुतं जले । ध्यायंती त्र्यंबकं देवं श्रीरामं वरमिच्छती ॥ ६ ॥
ततः प्रसन्नो भगवान्देवदेव उमापतिः । एत्य तत्पुष्करं तीर्थं वरं ब्रूहीत्युवाच ह ॥ ७ ॥

शूर्पणखोवाच

श्रीरामो मे वरो भूयाद्वरं देहि सतां प्रियः । त्वं देवदेव परमः सर्वासामाशिषां प्रभुः ॥ ८ ॥

श्रीशिव उवाच

अद्यैव सफलो न स्याद्वरस्ते शृणु राक्षसि । द्वापरांते माथुरे च भविष्यति न संशयः ॥ ९॥

श्रीनारद उवाच

सैव शूर्पणखा नाम राक्षसी कामरूपिणी । अभूच्छ्रीमथुरायां तु कुब्जानाम महामते ॥१०॥
महादेववरेणापि श्रीकृष्णस्य प्रियाऽभवत् । इदं मया ते कथितं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥११॥

बहुलाश्व उवाच

कोऽयं कुवलयापीडः पूर्वजन्मनि नारद । कथं गजत्वमापन्नः श्रीकृष्णे लीनतां गतः ॥१२॥

श्रीनारद उवाच

बलिपुत्रो महाकायो नाम्ना मन्दगतिर्बली । सर्वशस्त्रभृतां श्रेष्ठो लक्षनागसमो बली ॥१३॥
एकदा निर्गतः सोऽपि रंगयात्रां जनेषु च । मत्तेभवज्जनान्वेगाद्भुजाभ्यां परिमर्दयन् ॥१४॥
तद्बाहुवेगात्पतितः पथि वृद्धस्त्रितो मुनिः । क्रुद्धः शशाप तं मत्तं बलिष्ठं बलिनन्दनम् ॥१५॥

त्रित उवाच

गजवत्त्वं मदोन्मत्तोऽभूर्जनान्परिमर्दयन् । विचरन् रंगयात्रायां त्वं गजो भव दुर्मते ॥१६॥
एवं शप्तस्तदा दैत्यो नाम्ना मन्दगतिर्बली । पतत्कंचुकवद्देहो भ्रष्टतेजा बभूव ह ॥१७॥
मुनेः प्रभाववित्सद्यो दैत्यो भूत्वा कृतांजलिः । नत्वा प्रदक्षिणीकृत्य त्रितं मुनिमुवाच ह ॥१८॥

मंदगतिरुवाच

हे मुने हे कृपासिन्धो त्वं योगीन्द्रो द्विजोत्तमः । गजत्वान्मे कदा मुक्तिर्भविष्यति वदाशु माम् ॥१९॥
त्वादृशानां सतां माभूद्धेलनं मे क्वचिन्मुने । त्वादृशा मुनयो ब्रह्मन्समर्था वरशापयोः ॥२०॥

श्रीनारद उवाच

एवं प्रसादितस्तेन त्रितो नाम महामुनिः । गतक्रोधोऽब्रवीद्दैत्यं कृपालुर्ब्राह्मणोत्तमः ॥२१॥

हे राक्षसी ! सुनो । यह वर तुम्हारे लिये अभी सफल नहीं होगा । द्वापरके अन्तमें मथुरापुरीमें तुम्हारी यह कामना पूरी होगी, इसमें संशय नहीं है ॥ ९ ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! हे महामते ! वही इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली शूर्पणखा नामकी राक्षसी श्रीमथुरापुरीमें 'कुब्जा' नामसे प्रसिद्ध हुई थी ॥ १० ॥ महादेवजीके वरसे ही वह श्रीकृष्णकी प्रिया हुई । यह प्रसङ्ग मैंने तुम्हें बताया । अब और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ ११ ॥ राजा बहुलाश्व बोले—हे नारदजी ! यह कुवलयापीड़ पूर्वजन्ममें कौन था ? कैसे हाथीकी योनिको प्राप्त हुआ ? और किस पुण्यसे भगवान् श्रीकृष्णमें लीन हुआ ? ॥ १२ ॥ नारदजीने कहा—राजा बलिके एक विशालकाय एवं बलवान् पुत्र था, जिसका नाम था—मन्दगति । वह समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ तथा एक लाख हाथियोंके समान बलशाली था ॥ १३ ॥ एक समय श्रीरङ्गनाथकी यात्राके लिये वह घरसे निकला और जन-समुदायमें सम्मिलित हो गया । मन्दगति मतवाले हाथीके समान वेगसे भुजाएँ हिला-हिलाकर वह लोगोंको कुचलता जा रहा था ॥ १४ ॥ रास्तेमें उसकी भुजाओंके वेगसे बूढ़े त्रित मुनि गिर पड़े । उन्होंने कुपित होकर उस मतवाले बलिष्ठ बलिकुमारको शाप दे दिया ॥ १५ ॥ त्रितने कहा—'हे दुर्मते ! तू हाथीके समान मदोन्मत्त होकर रङ्ग-यात्रामें लोगोंको कुचलता जा रहा है, अतः हाथी हो जा ॥ १६ ॥ इस प्रकार शाप मिलनेपर वह बलवान् दैत्य मन्दगति तत्काल तेजोभ्रष्ट हो गया और उसका शरीर केंचुलकी भाँति छूटकर नीचे जा गिरा ॥ १७ ॥ मुनिके प्रभावको जाननेवाले उस दैत्यने तुरंत हाथ जोड़ प्रणाम और परिक्रमा करके त्रित मुनिसे कहा ॥ १८ ॥ मन्दगति बोला—हे मुने ! हे कृपासिन्धो ! आप द्विजोंमें श्रेष्ठ योगीन्द्र हैं । इस गज-योनिसे मुझे कब छुटकारा मिलेगा, यह मुझे शीघ्र बताइये ॥ १९ ॥ हे मुने ! आजसे आप-जैसे महात्माओंकी अवहेलना मेरेद्वारा कभी नहीं होगी । हे ब्रह्मन् ! आप-जैसे मुनि वर और शाप—दोनोंको देनेमें समर्थ हैं ॥ २० ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! उस दैत्यद्वारा इस प्रकार प्रसन्न किये जानेपर महामुनि त्रितका क्रोध दूर हो गया । फिर

त्रित उवाच

वचनं मे मृषा न स्यात्त्वद्भक्त्या हर्षितोऽस्म्यहम्। ते दास्यामि वरं दिव्यं देवानामपि दुर्लभम् ॥२२॥
मा शोकं कुरु दैत्येन्द्र मथुरायां हरेः पुरि। श्रीकृष्णहस्तात्ते मुक्तिर्भविष्यति न संशयः ॥२३॥

श्रीनारद उवाच

सोऽयं मन्दगतिर्दैत्यो गजोऽभूद्विंध्यपर्वते। नाम्ना कुवलयापीडो नागायुतसमो बले ॥२४॥
गृहीतो मागधेन्द्रेण बलाल्लक्षगजैर्वने। सोऽयं दत्तस्तु कंसाय पारिबर्हे विदेहराट् ॥२५॥
त्रितवाक्यात्तस्य धाम श्रीकृष्णे लीनतां गतम्। इदं मया ते कथितं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥२६॥

इति श्रीगर्गसंहितायां मथुराखंडे नारदबहुलाश्वसंवादे कुब्जाकुवलयापीडवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

(श्रीकृष्णके हाथों केशी दैत्यका वध)

बहुलाश्व उवाच

चाणूराद्याश्च ये मल्लास्ते के पूर्वमिहागताः। अहो श्रीकृष्णचन्द्रेण येषां युद्धं बभूव ह ॥ १ ॥

श्रीनारद उवाच

राजन्पुराऽमरावत्यामुतथ्योऽस्ति महामुनिः। तस्याभवन्पंच पुत्राः कामदेवसमप्रभाः ॥ २ ॥
हित्वा विद्यां चाध्ययनं जपं तेन सहैव ते। गत्वा बलेर्मल्लयुद्धं सदाऽशिक्षन् मदोद्धताः ॥ ३ ॥
ब्रह्मकर्मपरिभ्रष्टान्वेदाध्ययनवर्जितान्। रुषा प्राह स तान्मत्तानुतथ्यो मुनिसत्तमः ॥ ४ ॥

उतथ्य उवाच

शमो दमस्तपः शौचं क्षांतिरार्जवमेव च। ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥ ५ ॥
शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्। दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥ ६ ॥

उन कृपालु ब्राह्मण-शिरोमणिने उस दैत्यसे कहा ॥ २१ ॥ त्रित बोले—हे दैत्यराज ! मेरी बात झूठी नहीं हो सकती, तथापि तुम्हारी भक्तिसे मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। इसलिये तुम्हें ऐसा दिव्य वर प्रदान करूँगा, जो देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। हे दैत्येन्द्र ! शोक न करो। श्रीहरिकी नगरी मथुरामें श्रीकृष्णके हाथसे तुम्हारी मुक्ति होगी, इसमें संशय नहीं है ॥ २२ ॥ २३ ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! वही यह मन्दगति दैत्य विन्ध्यपर्वतपर कुवलयापीड़ नामसे विख्यात हाथी हुआ, जो बलमें अकेला ही दस हजार हाथियोंके समान था ॥ २४ ॥ उसको मगधराज जरासंधने लाख हाथियोंके द्वारा वनमें पकड़ा। हे विदेहराज ! फिर उसने कंसको दहेजमें वह हाथी दे दिया ॥ २५ ॥ त्रित मुनिके कथनानुसार उसका तेज श्रीकृष्णमें लीन हुआ। यह प्रसङ्ग मैंने तुमसे कहा, अब और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ २६ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां मथुराखण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

राजा बहुलाश्व बोले—चाणूर आदि जो मल्ल थे, वे पूर्व जन्ममें कौन थे, जो यहाँ मथुरापुरीमें आये थे ? अहो ! उनका कैसा सौभाग्य है कि साक्षात् श्रीकृष्णचन्द्रके साथ उन्हें युद्धका अवसर मिला ॥ १ ॥ नारदजीने कहा—हे राजन् ! पूर्वकालमें अमरावतीपुरीमें उतथ्य नामसे प्रसिद्ध महामुनि निवास करते थे। उनके पाँच पुत्र हुए, जो कामदेवके समान कान्तिमान् थे ॥ २ ॥ उन लोगोंने विद्या, स्वाध्याय और जप छोड़कर मदसे उन्मत्त हो राजा बलिके यहाँ जाकर प्रतिदिन मल्लयुद्धकी शिक्षा लेनी आरम्भ की ॥ ३ ॥ अपने पुत्रोंको ब्राह्मणोचित कर्मसे सर्वथा भ्रष्ट, वेदाध्ययनसे रहित तथा मदमत्त हुआ देख मुनिश्रेष्ठ उतथ्यने रोषपूर्वक उनसे कहा ॥ ४ ॥ उतथ्य बोले—शम, दम, तप, शौच, क्षमा, सरलता, ज्ञान, विज्ञान, तथा आस्तिकता—ये ब्राह्मणके स्वाभाविक कर्म हैं ॥ ५ ॥ शौर्य, तेज, धैर्य, दक्षता, युद्धभूमिमें पीठ

तेषां शंखः पांचजन्यः प्राप्तो राजन्महत्पदम् । पपौ तन्मुखलग्नोऽसौ श्रीकृष्णस्याधरामृतम् ॥२२॥
अकरोन्त्वैकदा मानं मनसि प्राह शंखराट् । गृहीतोऽहं हि हरिणा राजहंससमद्युतिः ॥२३॥
श्रीकृष्णो दक्षिणावर्तं दध्मौ मां विजये सति । यद्दुर्लभं चाब्धिपुत्र्याः श्रीकृष्णस्याधरामृतम् २४॥
तत्तस्मात्सर्वमुख्योऽस्मि पिवाम्यहमहर्निशम् । इति मानयुतं शंखं पांचजन्यं विदेहराट् ॥२५॥
शशाप लक्ष्मीस्तं क्रोधात्त्वं दैत्यो भव दुर्मते । सोऽयं पंचजनो नाम दैत्योऽभूत्सरितां पतौ ॥२६॥
वैरभावेन देवेशं पुनः प्राप्तो दरेश्वरः । ज्योतिर्लीनं तु देवेशे वपुर्यस्य करे बभौ ॥
अहोभाग्यं विद्धि तस्य किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥२७॥

इति श्रीगर्गसंहितायां मथुराखण्डे श्रीनारदचाणूरादिकंसभ्रातृपंचजनपूर्वाख्याने नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

(श्रीकृष्णकी आज्ञासे उद्धवका व्रजगमन)

श्रीबहुलाश्व उवाच

अग्रे चकार किं कार्यं मथुरायां यदूत्तमः । निवासयित्वा स्वज्ञातीन् वदैतन्मुनिसत्तम ॥ १ ॥

श्रीनारद उवाच

परिपूर्णतमः साक्षाद्भगवान् भक्तवत्सलः । सस्मार गोकुलं दीनं गोपगोपालसंकुलम् ॥ २ ॥
एकदाऽऽहूय रहसि सखायं भक्तमुद्धवम् । उवाच भगवान्देवः प्रेमगद्गदया गिरा ॥ ३ ॥

श्रीभगवानुवाच

गच्छ शीघ्रं व्रजं हे सखे सुन्दरं श्रीलताकुंजपुंजादिभिर्मंडितम् ।
शैलकृष्णप्रभाचारुवृंदावनं गोपगोपीगणैर्गोकुलं संकुलम् ॥ ४ ॥

बहुलाश्वने पूछा—हे ब्रह्मन् ! यह शङ्खरूपधारी दैत्य पञ्चजन पूर्वजन्ममें कौन था, जिसकी अस्थियोंका शंख भगवान् श्रीकृष्णके करकमलमें सुशोभित हुआ ? ॥ २० ॥ नारदजी कहते हैं—हे विदेहराज ! पूर्वकालसे ही ये चक्र आदि त्रिलोकीनाथ श्रीहरिके उपाङ्ग रहे हैं। वे सबके-सब उनके तेजसे संगृहीत हुए थे। हे राजन् ! उनमेंसे पाञ्चजन्य शंखको बड़ी ऊँची पदवी प्राप्त हुई। वह श्रीकृष्णके मुंहसे लगकर उनके अधरामृतका पान किया करता था ॥ २१॥ २२ ॥ एक दिन शंखराजने मन-ही-मन मानका अनुभव किया और इस प्रकार कहा—'मेरी कान्ति राजहंसके समान श्वेत है ॥ २३ ॥ मुझे साक्षात् श्रीहरिने अपने हाथोंसे गृहीत किया है। मैं दक्षिणावर्त शंख हूँ और युद्धमें विजय प्राप्त होनेपर श्रीकृष्ण मुझे बजाया करते हैं। भगवान् श्रीकृष्णका जो अधरामृत क्षीरसागर-कन्या लक्ष्मीके लिये भी दुर्लभ है, उसे मैं दिन-रात पीता रहता हूँ; अतः मैं सबसे श्रेष्ठ हूँ।' हे विदेहराज ! इस प्रकार मान प्रकट करते हुए पाञ्चजन्य शंखको लक्ष्मीजीने क्रोधपूर्वक शाप दिया—'हे दुर्मते ! तू दैत्य हो जा।' वही शंखराज समुद्रमें पंचजन नामक दैत्य हुआ था, जो वैरभावसे भजनके कारण पुनः देवेश्वर श्रीहरिको प्राप्त हुआ। उसकी ज्योति देवेश्वर श्रीकृष्णमें लीन हो गयी और अब वह उन्हींके हाथमें शोभा पाता है। उस शंखका सौभाग्य अद्भुत है, अब तुम और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ २४-२७ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां मथुराखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

बहुलाश्वने पूछा—हे मुनिश्रेष्ठ ! अपने कुटुम्बीजनों तथा जाति-भाइयोंको मथुरापुरीमें निवास देकर यदु-कुल-तिलक श्रीकृष्णने आगे चलकर कौन-सा कार्य किया ? ॥ १ ॥ नारदजीने कहा—हे राजन् ! साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् भक्तवत्सल श्रीकृष्णने गोपियों और गोपगणोंसे भरे हुए दीन-दुखी गोकुलका स्मरण किया ॥ २ ॥ अतः एक दिन एकान्तमें अपने सखा उद्धवको बुलाकर भगवान्ने प्रेमगद्गद वाणीमें कहा

एकपत्रं तु नंदाय वै दीयतां वा द्वितीयं यशोदाकरे चैव भोः ।
वा तृतीयं त्विदं राधिकायै सखे तत्र गत्वा हि तन्मंदिरं सुंदरम् ॥ ५ ॥
वा चतुर्थं सखिभ्यः शिशुभ्यः शुभं कौशलं दीयतां पत्रमेवं पृथक् भोः सखे ।
गोपिकानां शतेभ्यश्च यूथेभ्य उन्मोहितानां च देयानि पत्राणि च ॥ ६ ॥
मे पिता नंदराजो घृणी मन्मना मे च माता यशोदा स्मरत्याशु माम् ।
वाक्यवृन्दैः शुभैर्नीतिविच्त्वं तयोर्मे परां प्रीतिमाराद्द्वयोरावह ॥ ७ ॥
मत्प्रिया राधिका मद्वियोगातुरा मन्यते मां विना खं जगन्मोहतः ।
मद्वियोगाधिमस्या मदुक्तैः पदैर्मोचय त्वं भवान् दक्षिणो वाक्पथे ॥ ८ ॥
गोपबालाः सुदामादयो मत्प्रिया मां सखायं विना तेऽपि मोहातुराः ।
देहि तेषां सुखं मित्रवच्छ्रीव्रजे स्वल्पकालेन तत्रागमिष्याम्यहम् ॥ ९ ॥
गोपिका मद्वियोगाधिवेगातुरा मन्मनस्काश्च मत्प्राप्तदेहासवः ।
या मदर्थे च संत्यक्तलोकाबलास्ताः कथं नात्र मंत्रिन् बिभर्मि स्वतः ॥१०॥
ता असून् त्यक्तुमत्रोद्यता उद्धव याभिरद्यापि कृच्छ्रैर्धृताश्चासवः ।
मद्वियोगाधिमासां मदुक्तैः पदैर्मोचय त्वं भवान्दक्षिणो वाक्पथे ॥११॥
येन पूर्वं व्रजादागतोऽहं सखे तं रथं साश्वसूतं रणद्घंटिकं वै ।
मे च सारूप्यमद्यैव पीतांबरं वैजयंतीसहस्रच्छदं पंकजम् ॥१२॥
कुंडले दिव्यरत्नप्रभामंडिते कोटिबालार्कदीप्तं मणिं कौस्तुभम् ।
मे महानादिनीं चारुवंशीं शुभां पुष्पयुक्तां च यष्टिं जगन्मोहिनीम् ॥१३॥

॥ ३ ॥ श्रीभगवान् बोले—हे सखे ! लता-कुञ्जोंके समुदाय आदिसे अलंकृत सुन्दर व्रजमण्डलमें तुम शीघ्र जाओ। गोवर्धन और यमुनाकी शोभासे मनोहर वृन्दावनमें तथा गोप-गोपियोंसे भरे हुए गोकुलमें भी पधारो ॥ ४ ॥ हे मित्र ! मेरा एक पत्र नन्दबाबाको देना और दूसरा यशोदा मैयाके हाथमें देना। हे सखे! तीसरा पत्र श्रीराधाको उनके सुन्दर मन्दिरमें जाकर देना ॥ ५ ॥ चौथा मेरे सखा ग्वालबालोंको मेरा शुभ कुशल-समाचार निवेदन करते हुए देना। इसी प्रकार अत्यन्त मोहित हुई गोपाङ्गनाओंके सैकड़ों यूथोंको पृथक्-पृथक् पत्र देने हैं ॥ ६ ॥ मेरे पिता नन्दराज बड़े दयालु हैं। उनका मन मुझमें ही लगा रहता है और मेरी मैया यशोदा शीघ्र ही अपने पास बुलानेके लिये मेरा स्मरण करती हैं। तुम तो नीतिशास्त्रके विद्वान् हो; सुन्दर-सुन्दर बातें सुनाकर उन दोनोंके हृदयमें मेरी प्रीति धारण कराना ॥ ७ ॥ मेरी प्राणवल्लभा राधिका मेरे वियोगसे आतुर है और मेरे बिना मोहवश सारे जगत्को सूना समझती है। उन सबको मेरे वियोगके कारण जो मानसिक व्यथा हो रही है, उसे मेरे संदेश-वचनों द्वारा शान्त करो; क्योंकि तुम बात-चीत करनेमें बड़े कुशल हो ॥ ८ ॥ सुदामा आदि ग्वालबाल मेरे प्रिय सखा हैं। मुझ अपने मित्रके बिना वे भी मोहसे आतुर हैं, तुम उन्हें भी मित्रकी तरह सुख देना। मैं थोड़े ही समयमें श्रीव्रजधाममें आऊँगा ॥ ९ ॥ गोपाङ्गनाएँ मेरे वियोगकी व्यथाके वेगमें व्याकुल हैं। उनका मन मुझमें ही लगा हुआ है। उनके शरीर और प्राण भी मुझमें ही स्थित हैं। हे मन्त्रिप्रवर ! जिन्होंने मेरे लिये अपने लोक-परलोक सब त्याग दिये हैं, उन अबलाओंका भरण-पोषण मैं स्वतः कैसे नहीं करूँगा ॥ १० ॥ हे उद्धव ! वे मेरे आते समय प्राण त्याग देनेको उद्यत थीं। वे आज भी बड़ी कठिनाईसे प्राण धारण करती हैं। मेरे वियोगसे उत्पन्न उनकी मानसिक व्यथाको तुम मेरे संदेश-वचनोंके द्वारा शान्त करो; क्योंकि वार्तालापकी कलामें तुम परम कुशल हो ॥ ११ ॥ हे सखे ! मैं पहले जिस रथपर आरूढ़ होकर व्रजसे आया था; उसी रथको, उन्हीं घोड़ों, सारथि और बजती हुई घण्टिकाओंसे सुसज्जित करके अपने साथ ले जाओ। मेरे समान ही रूप बना लो। अभी पीताम्बर, वैजन्ती माला, सहस्रदल कमल, दिव्य रत्नोंकी प्रभासे मण्डित कुण्डल तथा कोटि बालरवियोंके

चंदनं सुंदरं दिव्यगंधावृतं बर्हमल्लादिवेषं क्वणन्नूपुरम् ।
मौलिमेवं गृहाणांगदे उद्धव गच्छ गच्छाशु चाद्यैव मद्वाक्यतः ॥१४॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त उद्धवः शीघ्रं नमस्कृत्य कृतांजलिः । कृष्णं प्रदक्षिणीकृत्य रथारूढो व्रजं ययौ ॥१५॥
कोटिशः कोटिशो गावो यत्र यत्र मनोहराः । श्वेतपर्वतसंकाशा दिव्यभूषणभूषिताः ॥१६॥
पयस्विन्यस्तरुण्यश्च शीलरूपगुणैर्युताः । सवत्साः पीतपुच्छाश्च व्रजंत्यो भव्यमूर्तिकाः ॥१७॥
घंटामंजीरझंकाराः किंकिणीजालमंडिताः । हेमतुल्या हेमशृंग्यो हारमालाः स्फुरत्प्रभाः ॥१८॥
पाटला हरितास्ताम्राः पीताः श्यामा विचित्रिताः । धूम्राः कोकिलवर्णाश्च यत्र गावस्त्वनेकधा ॥१९॥
समुद्रवद्दुग्धदाश्च तरुणीकरचित्रिताः । कुरंगवद्विलंघद्भिर्गोवत्सैर्मंडिताः शुभाः ॥२०॥
इतस्ततश्चलंतश्च गोगणेषु महावृषाः । दीर्घकन्धरशृंगाढ्या यत्र धर्मधुरंधराः ॥२१॥
गोपाला वेत्रहस्ताश्च श्यामवंशीधराः पराः । कृष्णलीलाः प्रगायंतो रागैर्मदनमोहनैः ॥२२॥
दूरात्तमागतं वीक्ष्य ज्ञात्वा कृष्णं व्रजार्भकाः । ऊचुः परस्परं ते वै कृष्णदर्शनलालसाः ॥२३॥

गोपा ऊचुः

नंदसूनुः किलायाति सखा योऽयं न संशयः । मेघश्यामः पीतवासाः स्रग्वी कुण्डलमंडितः ॥२४॥
कौस्तुभी कुंडली बिभ्रत्सहस्रदलपंकजम् । तदेव मुकुटं बिभ्रत्कोटिमार्तंडसन्निभम् ॥२५॥

समान उद्दीप्त कौस्तुभमणि भी धारण कर लो। मेरी उच्च स्वरसे बजनेवाली मनोहर बाँसुरी तथा फूलोंसे सजी हुई जगन्मोहिनी यष्टि (छड़ी) भी ले लो ॥ १२ ॥ १३ ॥ हे उद्धव ! मेरे ही समान दिव्य सुगन्धसे आवृत सुन्दर चन्दन, मोरपंख और बजते हुए नूपुरोंसे युक्त नटवर-वेष धारण कर लो। इसी तरह मेरा ही मोरपंखवाला मुकुट तथा दोनों बाजूबंद धारण करके मेरे आदेशसे अभी यथासम्भव शीघ्र जाओ, जाओ ॥१४॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! श्रीकृष्णके यों कहनेपर उद्धवने शीघ्र ही हाथ जोड़कर उनको नमस्कार किया और उनकी परिक्रमा करके रथपर आरूढ़ हो वे व्रजकी ओर चल दिये ॥ १५ ॥ जहाँ कोटि-कोटि मनोहर गौएँ दिव्य भूषणोंसे विभूषित हो श्वेत पर्वतके समान दिखायी देती थीं ॥ १६ ॥ वे सब-की-सब दूध देनेवाली तरुणी (कलोर), सुशीला, सुरूपा और सद्गुणवती थीं। उनके साथ बछड़े भी थे। उनकी पूँछके बाल पीले थे। चलते समय उनकी मूर्तियाँ बड़ी भव्य दिखायी देती थीं ॥ १७ ॥ गलेके घंटों और पैरोंके मञ्जीरोंका झंकार होता रहता था। वे किङ्किणियों (क्षुद्र-घण्टिकाओं) के जालसे मण्डित थीं। कितनी ही गौएँ सुवर्णके समान रंगवाली थीं। उनके सींगोंमें सोना मढ़ा गया था तथा नाना प्रकारके हारों और मालाओंसे अलंकृत उन गौओंकी प्रभा सब ओर छिटक रही थी ॥ १८ ॥ कोई लाल, कोई हरी, कोई ताँबेके रंगवाली, कोई पीली, कोई श्यामा और कोई चितकबरी थीं। उस व्रजमें धूम्रवर्ण और कोयलके-से काले रंगकी भी गौएँ दृष्टिगोचर होती थीं ॥ १९ ॥ तात्पर्य यह कि उस व्रजभूमिमें अनेकानेक रंगवाली गौएँ परिलक्षित होती थीं। वे समुद्रकी तरह प्रचुर दूध देनेवाली थीं। उनके अङ्गोंपर तरुणी स्त्रियोंके हाथोंके छापे लगे हुए थे। हिरनकी भाँति चौकड़ी भरनेवाले बछड़े उन सुन्दर गौओंकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥ २० ॥ उन गौओंके झुंडमें बड़े-बड़े साँड़ इधर-उधर चलते दिखायी देते थे, उनके कंधे और सींग बड़े-बड़े थे। वे सब-के-सब धर्मधुरंधर थे ॥ २१ ॥ गोपगण हाथोंमें बेंतकी छड़ी और बाँसुरी लिये हुए थे। उनकी अङ्गकान्ति श्याम दिखायी देती थी। वे कामदेवोंको भी मोहित करनेवाले रागोंमें श्रीकृष्ण-लीलाओंका उच्चस्वरसे गान कर रहे थे ॥ २२ ॥ उद्धवको दूरसे आते देख, उन्हें कृष्ण समझकर व्रजके बालक श्रीकृष्णदर्शनकी लालसासे परस्पर इस प्रकार कहने लगे ॥ २३ ॥ गोप बोले—मित्र ! ये नन्दनन्दन आ रहे हैं, जो हमारे प्रिय सखा हैं; निःसंदेह वे ही हैं। मेघके समान श्यामकान्ति, शरीरपर पीताम्बर, गलेमें वैजयन्ती माला तथा कानोंमें रत्नमय कुण्डल इनकी शोभा बढ़ा रहे हैं ॥ २४ ॥ वक्ष-स्थलपर कौस्तुभमणि और हाथोंमें गोल-गोल कड़े शोभा दे रहे हैं। हाथमें सहस्रदल कमल धारण करके माथेपर वही मुकुट पहने

त एवाश्वा रथः सोऽयं किंकिणीजालमंडितः । बलो नास्ति रथे चास्मिन्नेकाकी नंदनंदनः ॥२६॥

श्रीनारद उवाच

एवं वदंतो गोपालाः श्रीदामाद्या विदेहराट् । कृष्णाकृतिं कृष्णसखमाययुः सर्वतो रथम् ॥२७॥
कृष्णो नास्तीति वदतः कोऽयं साक्षात्तदाकृतिः । तान्नमस्कृत्यौपगविः परिरभ्यावदत्पथि ॥२८॥

उद्धव उवाच

गृहाण पत्रं श्रीदामन्कृष्णदत्तं न संशयः ।
शोकं मा कुरु गोपालैः कुशल्यास्ते हरिः स्वयम् ॥२९॥
यादवानां महत्कार्यं कृत्वाऽथ सबलः प्रभुः । ह्रस्वकालेन चात्रापि भगवानागमिष्यति ॥३०॥

श्रीनारद उवाच

पठित्वा तद्धस्तपत्रं श्रीदामाद्या व्रजार्भकाः । भृशमश्रूणि मुंचंतः प्राहुर्गद्गदया गिरा ॥ ३१ ॥

गोपा ऊचुः

पांथेति निर्मोहिनि नंदसूनौ तनुर्विभूतिश्च धनं बलं च ।
सर्वा धियः कृष्णमृते व्रजे नः शून्यं प्रजातं हि जगत्समस्तम् ॥३२॥
क्षणो युगत्वं च घटी महामते प्रयाति मन्वन्तरतां व्रजौकसाम् ।
यामश्च कल्पं च दिनं विना हरिं वियोगदुःखैर्द्विपरार्धतां गतम् ॥३३॥
अहर्निशं तं न हि विस्मरामहे दुष्टा घटी सा प्रययौ यया हि सः ।
मनो हरन्नुद्धव नो वनौकसां वयस्यभावेन सदा कृतागसाम् ॥३४॥

इति श्रीगर्गसंहितायां मथुराखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे उद्धवागमनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

हुए हैं, जो करोड़ों मार्तण्डोंके तेजको तिरस्कृत कर देता है ॥ २५ ॥ वे ही घोड़े और वही किङ्किणीजालसे मण्डित रथ है। इस रथपर बलदेवजी नहीं हैं, अकेले नन्दनन्दन ही दिखायी देते हैं ॥ २६ ॥ नारदजी कहते हैं—हे विदेहराज ! इस प्रकार बातें करते हुए श्रीदामा आदि गोपाल श्रीकृष्णकी ही आकृति धारण करनेवाले कृष्ण-सखा उद्धवके पास रथके चारों ओरसे आ गये ॥ २७ ॥ निकट आनेपर वे बोले—'श्रीकृष्ण तो नहीं हैं; किंतु साक्षात् उनके ही समान आकृतिवाला यह पुरुष कौन है ?' इस तरह बोलते हुए उन गोपालोंको नमस्कार करके उद्धवने उन सबको हृदयसे लगाया और अपने स्वामी श्यामसुन्दरकी चर्चा आरम्भ की ॥ २८ ॥ उद्धव बोले—श्रीदामन् ! यह तुम्हारे सखा श्रीकृष्णका दिया हुआ पत्र है, इसमें संशय नहीं है; तुम इसे ग्रहण करो। ग्वाल-बालोंसहित तुम शोक न करो। साक्षात् श्रीहरि सकुशल हैं ॥ २९ ॥ वे भगवान् यादवोंका महान् कार्य सिद्ध करके बलरामजीके साथ थोड़े ही दिनोंमें यहाँ आयेंगे ॥ ३० ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! उनके हाथके दिये हुए पत्रको पढ़कर श्रीदामा आदि व्रजके बालक नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए गद्गद वाणीमें बोले ॥ ३१ ॥ गोपोंने कहा—हे पथिक ! निर्मोही नन्दनन्दनमें ही हमारा तन, वैभव, धन, बल और समस्त अन्तःकरण लगा हुआ है। श्रीकृष्णके बिना हमारा व्रज ही नहीं शून्य हुआ है, हमारे लिये सारा संसार सूना हो गया है ॥ ३२ ॥ हे महामते ! श्रीहरिके बिना उनके वियोगके दुःखसे हम व्रजवासियोंके लिये एक-एक क्षण युगके समान, एक-एक घड़ी मन्वन्तरके तुल्य, एक-एक प्रहर कल्पके समान तथा एक-एक दिन द्विपरार्धके सदृश हो गया है ॥ ३३ ॥ हे उद्धव ! हम दिन-रात उन्हें भुला नहीं पाते। हमारे जीवनमें वह कैसी दुष्ट घड़ी आयी थी, जिसमें श्यामसुन्दर यहाँसे चले गये। यद्यपि हम मित्रताके नाते सदा उनका अपराध करते रहे हैं, तथापि हम वनवासियोंके मनको उन्होंने सदाके लिये हर लिया है ॥ ३४ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां मथुराखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

(उद्धवका श्रीकृष्ण-सखाओंको आश्वासन दान तथा नन्द और यशोदासे बातचीत)

श्रीनारद उवाच

एवं प्रेमभरान् गोपाञ्छ्रीकृष्णविरहातुरान् । उवाच प्रेमसंयुक्त उद्धवो गतविस्मयः ॥ १ ॥

उद्धव उवाच

अहं श्रीकृष्णदासोऽस्मि तत्प्रियस्तद्रहस्करः । भवतां कुशलं द्रष्टुं प्रेषितो हरिणा त्वरम् ॥ २ ॥
पुरीं गत्वाऽथ हरये निवेद्य विरहं तु वः । तं प्रसन्नं करिष्यामि तदंघ्रौ नेत्रवारिभिः ॥ ३ ॥
नीत्वा हरिं हि भवतां समीपं हे व्रजौकसः । आगमिष्याम्यहं शीघ्रं शपथो न मृषा मम ॥ ४ ॥
यूयं प्रसन्ना भवत मा शोकं कुरुताथ वै । अस्मिन्व्रजेऽपि गोपाला द्रक्ष्यथ श्रीपतिं हरिम् ॥ ५ ॥

श्रीनारद उवाच

एवमाश्वास्य गोपालान् रथस्थो यदुनंदनः । श्रीदामाद्यैश्च गोपालैः सहितो हर्षपूरितः ॥ ६ ॥
विवेश नन्दनगरं सूर्ये सिन्धुगते सति । आगतं ह्युद्धवं श्रुत्वा नन्दराजो महामतिः ॥
परिरभ्य मुदा शीघ्रं पूजयामास हर्षितः ॥ ७ ॥
कशिपुस्थं स्थितं शांतमुद्धवं कृतभोजनम् । कशिपुस्थो नंदराजः प्राह गद्गदया गिरा ॥ ८ ॥

नन्द उवाच

कच्चित्सखा मे पुरि शूरसेन आस्ते स्वपुत्रैः कुशली महामते ।
कंसे मृते यादवपुंगवानां जातं सखे सौख्यमतः परं भुवि ॥ ९ ॥
कच्चित्कदाचित्सबलो हि माधवः स्मरत्यसौ वा जननीं यशोमतीम् ।
गोपालगोवर्धनगोगणान्व्रजं वृन्दावनं वा पुलिनं तरंगिणीम् ॥१०॥
हा दैव कस्मिन्समये स्वनन्दनं बिंबाधरं सुन्दरमंबुजेक्षणम् ।
द्रक्ष्याम्यहं मन्दिरचत्वराजिरेऽर्भकैर्लुठंतं सबलं मुहुर्मुहुः ॥११॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! इस प्रकार प्रेमभरे गोपोंसे, जो श्रीकृष्णके विरहसे व्याकुल थे, प्रेमी भक्त उद्धवने विस्मयरहित होकर कहा ॥ १ ॥ उद्धव बोले—हे व्रजवासियो ! मैं श्रीकृष्णका दास हूँ—उनका प्रेमपात्र तथा एकान्त सेवक हूँ। श्रीहरिने बड़ी उतावलीके साथ आपलोगोंका कुशल-मङ्गल जाननेके लिये मुझे यहाँ भेजा है ॥ २ ॥ यहाँसे मथुरापुरी लौटकर श्रीहरिसे आपलोगोंकी विरह-वेदना निवेदित करके अपने नेत्रोंके जलसे उनके चरण पखारकर उन्हें प्रसन्न करूँगा और उन्हें साथ लेकर शीघ्र ही आपलोगोंके समीप आऊँगा—यह मेरी प्रतिज्ञा है, यह कभी झूठी नहीं होगी। हे गोपालगण ! आपलोग प्रसन्न हों, शोक न करें। आप इस व्रजमें शीघ्र ही श्रीवल्लभ श्रीहरिका दर्शन करेंगे ॥ ३–५ ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! इस प्रकार ग्वालोंको आश्वासन दे, रथपर बैठे हुए यदुनन्दन उद्धव श्रीदामा आदि गोपोंके साथ हर्षसे भरकर नन्दगाँवमें प्रविष्ट हुए ॥ ६ ॥ उस समय सूर्य समुद्रमें डूब चुके थे। उद्धवका आगमन सुनकर परम बुद्धिमान् नन्दराजने शीघ्र आकर उन्हें प्रसन्नतापूर्वक हृदयसे लगाया और बड़े हर्षसे उनका पूजन तथा स्वागत-सत्कार किया ॥ ७ ॥ जब उद्धवजी भोजन करके शान्तभावसे शय्यापर आसीन हुए, तब नन्दराजने भी शय्यापर स्थित हो गद्गद वाणीमें कहा ॥ ८ ॥ नन्द बोले—हे महामते उद्धव ! क्या मेरे मित्र वसुदेव मथुरापुरीमें अपने पुत्रोंके साथ सकुशल हैं ? हे सखे ! कंसके मर जानेपर यादव-शिरोमणियोंको इस भूतलपर परम सुख-सुविधाकी प्राप्ति हुई है ॥ ९ ॥ क्या कभी बलरामसहित माधव अपनी माता यशोदाको भी याद करते हैं ? यहाँके ग्वाल, गोवर्धन पर्वत, गौओंके समुदाय और व्रज, वृन्दावन, यमुना-पुलिन अथवा यमुना नदीका भी कभी स्मरण करते हैं ? ॥ १० ॥ हा दैव ! अब मैं किस समय बिम्ब-

कुंजो निकुंजो यमुना महानदी गोवर्धनोऽरण्यमिदं वनानि ।
गृहैर्लतावृक्षगवां गणैः सह विना मुकुंदं विषवन्त्विदं जगत् ॥१२॥
धिग्जीवनं मे शयनं च भोजनं कृष्णं विना पद्मदलायतेक्षणम् ।
चन्द्रं विना भूमितले चकोरवज्जीवामि तस्यागमनाशया भृशम् ॥१३॥
हर्तुं भुवो भारमतीव दैवतैः संप्रार्थितं पूर्णतमं महामते ।
जातं सतां रक्षणतत्परं स्वयं मन्ये हि कृष्णं सबलं परात्परम् ॥१४॥

श्रीनारद उवाच

संस्मृत्य संस्मृत्य हरिं परेशं बभूव तूर्ष्णीं नवनन्दराजः ।
शिरो निधायाप्युपबर्हणे स्वे ह्युत्कंठरोमांचितविह्वलांगः ॥१५॥
श्रीनन्दनेत्रांबुजवारिसंतती राजंस्तदा कृष्णसखस्य पश्यतः ।
शय्यां सवस्त्रामुपबर्हणांतां कृत्वाऽऽर्द्रतां प्रांगण आचचाल ॥१६॥
श्रुत्वोद्धवं श्रीमथुरापुरागतं कपाटमेत्याशु यशोमती सती ।
शृण्वंत्यलं स्वस्य सुतस्य वर्णनं स्नेहस्रवत्सुस्तननेत्रपंकजा ॥१७॥
विहाय लज्जां घृणया सुतस्य सा पप्रच्छ सर्वं कुशलं तदोद्धवम् ।
आप्रोक्ष्य वस्त्रेण दृगश्रुतसंततिं स्थिते च नन्दे हरिभावविह्वले ॥१८॥

श्रीयशोदोवाच

क्वचित्स्मरति मां कृष्णो नन्दराजमथापि वा । भ्रातरं नंदराजस्य सन्नन्दं दर्शनोत्सुकम् ॥१९॥
नंदान्नवोपनन्दांश्च वृषभानून्व्रजेषु षट् । येषामारोहमास्थाय बालकेलिर्वने वने ॥२०॥

फलके समान लाल ओंठवाले अपने पुत्र कमल-नयन श्यामसुन्दरको बलराम और ग्वाल-बालोंके साथ बार-बार घरके आँगन और चबूतरोंपर लोटते देखूँगा ? ॥ ११ ॥ कुञ्ज, निकुञ्ज, महानदी यमुना, गिरिराज गोवर्धन, यह वृन्दावन तथा दूसरे-दूसरे वन, गृह, लता, वृक्ष और गौओंके समुदाय तथा इनके साथ ही यह सारा संसार मुकुन्दके बिना विषतुल्य प्रतीत हो रहा है ॥ १२ ॥ कमलदलके समान विशाल नेत्रोंवाले श्रीकृष्णके बिना मेरे जीवन, शयन और भोजनको भी धिक्कार है। इस भूतलपर चन्द्रमासे बिछुड़े हुए चकोरकी भाँति मैं उनके आगमनकी बहुत अधिक आशासे ही जीवन धारण कर रहा हूँ ॥ १३ ॥ हे महामते ! मैं श्रीकृष्ण और बलरामको परात्पर परमेश्वर ही मानता हूँ। देवताओंके अत्यन्त प्रार्थना करनेपर वे पूर्णतम भगवान् भूमिका भार उतारनेके लिये स्वेच्छासे अवतीर्ण हुए हैं और अब संतोंकी रक्षामें तत्पर हैं ॥१४॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! परमेश्वर श्रीहरिका बार-बार स्मरण करके नवनन्दराज तकियेपर सिर रखकर चुप हो गये। उनका अङ्ग-अङ्ग उत्कण्ठाके कारण रोमाञ्चयुक्त और विह्वल हो रहा था ॥ १५ ॥ हे राजन् ! उस समय श्रीकृष्णसखा उद्धवके देखते-देखते श्रीनन्दराजके नेत्र-कमलोंसे निकलती हुई अश्रुधारा बिस्तर और तकियेसहित शय्याको भिगोकर आँगनमें बह चली ॥ १६ ॥ मथुरापुरीसे उद्धवजीका आना सुनकर सती यशोदा तुरन्त दरवाजेके किवाड़ोंके पास चली आयीं और अपने पुत्रकी चर्चा सुनने लगीं। उस समय स्नेहवश उनके स्तनोंसे दूध झरने लगा और नेत्र-कमलोंसे आँसुओंकी धारा बह चली ॥ १७ ॥ फिर वे लाज छोड़कर पुत्रस्नेहसे उद्धवके पास चली आयीं और सारा कुशल-मङ्गल स्वयं पूछने लगीं। नेत्रोंसे बहती हुई अश्रुधाराको आँचलसे पोंछकर, हरिकी भावनासे विह्वल नन्दजीकी उपस्थितिमें वे बोलीं ॥ १८ ॥ यशोदाने कहा—हे उद्धव ! क्या कन्हैया कभी मुझको अथवा अपने बाबा नन्दरायको याद करता है ? इनके भाई सन्नन्द उसे देखनेके लिये बहुत उत्सुक रहते हैं, क्या वह इनका भी स्मरण करता है ? ॥ १९ ॥ इस व्रजमें नौ नन्द, नौ उपनन्द और छः वृषभानु रहते हैं। क्या कन्हैया इन सबको याद करता है ? जिनकी

कंदुकक्रीडया रेमे सानन्दं नन्दनन्दनः । तान्गोपान्स्नेहसंयुक्तान्कदाचित्स्मरति स्वतः ॥२१॥
एकोऽयं मे सुतः प्राप्तो न सुता बहवश्च मे । सोऽपि मां जननीं दीनां ययौ त्यक्त्वा दिगंतरम् २२
अहो कष्टं स्नेहवतां दुर्निवारं महामते । किं करोमि विना पुत्रं कथं जीवामि मानद ॥२३॥
मातर्मह्यं देहि दधि मातर्हैयंगवं नवम् । एवं वदन्स मधुरं हठं चक्रे सदा गृहे ॥२४॥
मध्याह्ने स कथं कृष्णो भोजनं कर्तुमर्हति । ममात्मजोऽयं श्रीकृष्णो जीवनं व्रजवासिनाम् ॥
व्रजे धनं कुले दीपो मोहनो बाललीलया ॥२५॥
लालनैः पालनैस्तस्य दिनं मे क्षणवद्गतम् । तद्दिनं कल्पवज्जातं विनाऽहो नन्दनन्दनम् ॥२६॥
वत्सान्वारयितुं कृष्णो ग्रामसीम्नि नदीतटे । न कारितोऽर्भकैः सार्द्धं स चाहो मथुरां गतः ॥२७॥
हे मोहनेति दूरात्तमंकं नीत्वाऽथ लालनम् । चकार नंदराजोऽयं तं विना खिन्नतां गतः ॥२८॥
अहो दाम्ना मया बद्धो निर्मोहिन्यैकदा शिशुः । भांडे भग्नीकृते दध्नः शोचामि चरितं च तत् ॥२९॥
तत्प्रांगणं सर्वसभा च मन्दिरं द्वारश्च वीथीर्व्रजहर्म्यपृष्ठयः ।
शून्यं समस्तं मम जीवनं धिग्विना मुकुंदं विषवत्त्विदं जगत् ॥३०॥

श्रीनारद उवाच

यशोदानन्दयोर्वीक्ष्य परमं प्रेमलक्षणम् । उद्धवो नितरां राजन् विस्मितोऽभूद्गतस्मयः ॥३१॥

उद्धव उवाच

रोममात्रं मम तनौ जिह्वा चेज्जायते त्वहो । युवयोस्तदपि श्लाघां कर्तुं नालं महाप्रभू ॥३२॥
परिपूर्णतमे साक्षाच्छ्रीकृष्णे पुरुषोत्तमे । ईदृशी च कृता भक्तिर्युवाभ्यां प्रेमलक्षणा ॥३३॥
तीर्थाटनतपोदानसांख्ययोगैश्च दुर्लभा । शाश्वती युवयोः प्राप्ता या भक्तिः प्रेमलक्षणा ॥३४॥

गोदीमें बैठकर उसने वन-वनमें बालकेलि की थी ॥ २० ॥ जिनके साथ नन्दनन्दन सानन्द गेंद खेला करता था, उन अपने स्नेही गोपोंका वह कभी स्वतः स्मरण करता है ? ॥ २१ ॥ मुझे मेरे जीवनमें एक ही यह बेटा मिला था, मेरे बहुत-से पुत्र नहीं हैं; फिर भी वह एक ही पुत्र मुझ दीन-दुखिया माँको छोड़कर दूसरी दिशाको चला गया ॥ २२ ॥ हे महामते ! स्नेह करनेवालोंके लिये कष्ट होना अनिवार्य है यह कैसी आश्चर्यकी बात है। हे मानद ! बताओ—मैं पुत्रके बिना क्या करूँ, कैसे जीवित रहूँ ? ॥ २३ ॥ 'मैया ! मुझे दही दे, या मुझे ताजा माखन दे'—इस प्रकार मधुर वाणी बोलकर वह घरमें सदा हठ किया करता था ॥ २४ ॥ वही कन्हैया अब दोपहरमें कैसे भोजन करता होगा ? यह मेरा लाला कन्हैया व्रजवासियोंका जीवन है, व्रजका धन है, इस कुलका दीपक है तथा अपनी बाल-लीलासे सबके मनको मोह लेनेवाला मोहन है ॥२५॥ उसके लालन-पालनमें मेरे इतने वर्षोंके दिन एक क्षणकी भाँति बीत गये। अहो ! आज नन्दनन्दनके बिना वही दिन एक कल्पके समान भारी हो गया है ॥ २६ ॥ जिस कन्हैयाको ग्वाल-बालोंके साथ बछड़े चरानेके लिये मैं गाँवकी सीमापर और नदीके किनारे भी नहीं जाने देती थी, हाय ! वही अब मथुरा चला गया ॥ २७ ॥ 'ओ मोहन !'—यों दूरसे पुकारकर जो उसे गोदमें लेते और लाड़-प्यार करते थे, वे ही नन्दराज उसके बिना खेद और विषादमें डूबे रहते हैं ॥ २८ ॥ अहो ! एक दिन दहीका भांड फोड़ देनेपर मुझ निर्मोहिनीने उस बच्चेको रस्सीसे बाँध दिया था। आज वह करतूत याद करके मैं शोकमें डूब रही हूँ ॥ २९ ॥ यह आँगन, सारा सभामण्डप, मकान, सरोवर, गली, व्रज तथा महलोंकी छतें सब सूनी हो गयी हैं। मुकुन्दके बिना यह सारा जगत् विषके तुल्य प्रतीत होता है। कन्हैयाके बिना मेरे इस जीवनको धिक्कार है ॥ ३० ॥ श्रीनारदजी कहते हैं— हे राजन् ! यशोदा और नन्दमें उच्चकोटिके प्रेमका लक्षण प्रकट हुआ देख उद्धव अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गये। उनका अपना सारा ज्ञानाभिमान गल गया ॥ ३१ ॥ उद्धव बोले—हे महाप्रभु नन्द और यशोदाजी ! मेरे शरीरमें जितने रोम हैं, वे सब यदि जिह्वाएँ बन जायँ तो उन जिह्वाओं द्वारा भी मैं आप दोनोंकी महत्ताका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हूँ ॥ ३२ ॥ आप दोनोंने साक्षात् परिपूर्णतम पुरुषोत्तम श्रीकृष्णके प्रति

मा शोकं कुरु हे नन्द हे यशोदे व्रजेश्वरि । पत्रद्वयं गृहाणाशु कृष्णदत्तं न संशयः ॥३५॥
सहाग्रजो नन्दसूनुः कुशल्यास्ते यदोः पुरि । यादवानां महत्कार्यं कृत्वाऽथ सबलः प्रभुः ॥३६॥
ह्रस्वकालेन चात्रापि भगवानागमिष्यति । परिपूर्णतमं विद्धि श्रीकृष्णं नन्दनन्दनम् ॥
कंसादीनां वधार्थाय भक्तानां रक्षणाय च ॥३७॥
ब्रह्मणा प्रार्थितः कृष्णोऽवततार गृहे तव । जातमात्रोऽद्भुतां लीलां चकार सबलो हरिः ॥३८॥
पूतनाप्राणहरणं शकटस्य निपातनम् । तृणावर्तनिपातश्च यमलार्जुनभंजनम् ॥३९॥
स्वमुखे च यशोदायै विश्वरूपस्य दर्शनम् । वृन्दावने च भगवान् गोवत्सांश्चारयन् प्रभुः ॥४०॥
वधं चकार गोपानां पश्यतां बकवत्सयोः । अघासुरस्य च वधो धेनुकस्य विमर्दनम् ॥४१॥
मर्दनं कालियस्यापि वह्निपानं चकार ह । प्रलंबस्य वधं पश्चाद्बलदेवश्चकार ह ॥४२॥
गोवर्द्धनं समुत्पाट्य हस्तेनैकेन लीलया । युष्माकं पश्यतां बिभ्रत्पुष्करं गजराडिव ॥४३॥
चूडामणिं शंखचूडाज्जहार जगतां पतिः । अरिष्टस्य वधं कृत्वा केशिनं निजघान ह ॥४४॥
व्योमासुरं महादैत्यं मुष्टिना तं ममर्द ह । तथा वै मथुरायां तु चक्रे चित्रं महामते ॥४५॥
विकथ्यमानं रजकं करेणाभिजघान तम् । प्रचंडं कंसकोदंडं मध्यतस्तद्बभंज ह ॥
इक्षुदंडं यथा नागः सर्वेषां पश्यतां नृणाम् ॥४६॥
द्विपं कुवलयापीडं नागायुतसमं बले । शुंडादंडे संगृहीत्वा पातयामास भूतले ॥४७॥
चाणूरं मुष्टिकं कूटं शलं तोशलमेव च । पातयामास भूपृष्ठे मल्लयुद्धेन माधवः ॥४८॥
कंसं मदोत्कटं दैत्यं नागलक्षसमं बले । मंचाद्गृहीत्वा तं कृष्णो भ्रामयित्वा भुजौजसा॥४९॥

पातयामास भूपृष्ठे कमंडलुमिवार्भकः । इभोपरि यथा सिंहस्तस्योपरि पपात सः ॥५०॥
कंसानुजांश्च कंकादीन् बलदेवो महाबलः । ममर्द मुद्गरेणाशु मृगान्वै मृगराडिव ॥५१॥
गुरवे दक्षिणां दातुं समुत्पत्य महार्णवे । शंखरूपं पंचजनं निजघान हरिः स्वयम् ।५२॥
अद्भुतानि चरित्राणि चैतानि श्रीहरिं विना । कः करोति महानंद तस्मै श्रीहरये नमः ॥५३॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीमथुराखंडे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे नंदराजोद्धवमेलनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

अथ पंचदशोऽध्यायः

(गोपाङ्गनाओंके साथ उद्धवका कदली-वनमें जाना)

श्रीनारद उवाच

एवं हि नंदोद्धवयोर्हरेः कथयतोः कथाम् । व्यतीता क्षणवद्राजन् क्षणदा हर्षवर्द्धिनी ॥ १ ॥
ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय गोप्यः सर्वा गृहे गृहे । देहल्यङ्गणमालिप्य दीपांस्तत्र निरूप्य च ॥ २ ॥
प्रक्षाल्य हस्तपादौ च मेथ्यां नेत्रं निधाय च । ममंथुः सर्वतो युक्ताः पिच्छिलानि दधीनि ताः ॥३॥
नेत्राकर्षचलद्धारभुजकंकणकिंकिणीः । वेणीभ्यो विगलत्पुष्पाः स्फुरत्कुंडलमंडिताः ॥ ४ ॥
चंद्रमुख्यः कंजनेत्राश्चित्रवर्णैर्मनोहराः । मंगलानि चरित्राणि श्रीकृष्णबलदेवयोः ॥ ५ ॥
गायंत्यः प्रेमसंयुक्ता यत्र तत्र गृहे गृहे । घोषे घोषे शुभा गावो रंभमाणा इतस्ततः ॥ ६ ॥
सर्वत्र गोपिकागीतं दधिशब्देन मिश्रितम् ।
वीथ्यांवीथ्यांततः शृण्वन् विस्मितश्चोद्धवोऽब्रवीत् ॥ ७ ॥
अहो वै नंदनगरे भक्तिर्नृत्यति यत्र च । एवं वदन्बहिर्ग्रामाद्ययौ स्नातुं नदीजले ॥ ८ ॥

भूपृष्ठपर मार गिराया ॥ ४८ ॥ मदमत्त दैत्य कंस एक लाख हाथियोंके समान बलशाली था; परन्तु उसे श्रीकृष्णने मञ्चसे उठाकर भुजाओंके वेगसे घुमाते हुए पृथ्वीपर उसी तरह पटक दिया, जैसे कोई बालक कमण्डलुको गिरा दे। फिर जैसे हाथीपर सिंह कूदे, उसी प्रकार वे कंसपर कूद पड़े ॥४९॥५०॥ कंसके कङ्क आदि छोटे भाइयोंका महाबली बलदेवने मुद्गरसे ही तुरन्त उसी प्रकार कचूमर निकाल दिया, जैसे किसी सिंहने बहुतसे मृगोंको मौतके घाट उतार दिया हो ॥ ५१ ॥ अपने गुरुको दक्षिणा देनेके लिये महासागरमें कूदकर स्वयं श्रीहरिने शंखरूपधारी पञ्चजन नामक असुरका संहार कर डाला ॥ ५२ ॥ हे महानन्द ! ये अद्भुत चरित्रवान्भगवान् श्रीकृष्णके विना कौन कर सकता है ? उन श्रीहरिको नमस्कार है ॥ ५३ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां मथुराखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! इस प्रकार श्रीहरिकी चर्चा करते हुए नन्द और उद्धवकी वह रात एक क्षणके समान व्यतीत हो गयी। उनके हर्षको बढ़ानेवाली होनेके कारण उसका 'क्षणदा' (आनन्द-दायिनी) नाम चरितार्थ हो गया ॥ १ ॥ जब ब्राह्ममुहूर्त आया, तब सारी गोपाङ्गनाओंने उठकर अपने-अपने द्वारकी देहली एवं आँगन लीपकर वहाँ प्रज्वलित दीप रख दिये ॥ २ ॥ फिर हाथ-पैर धोकर मथानीमें रस्सी लगाकर वे स्नेहयुक्त दहीको सब ओरसे मथने लगीं ॥ ३ ॥ मथानीकी रस्सी खींचनेसे चञ्चल हार और हाथोंके कंगन बज रहे थे। उनकी वेणियोंसे फूल झर-झरकर गिर रहे थे और चमकते हुए कुण्डल उनके कानोंकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥ ४ ॥ वे सब-की-सब चन्द्रमुखी, कमलनयनी तथा विचित्र वर्णोंके वस्त्र धारण करनेके कारण अत्यन्त मनोहर थीं। श्रीकृष्ण और बलदेवके मङ्गलमय चरित्रोंका घर-घरमें जहाँ-तहाँ प्रेमपूर्वक गान कर रही थीं। प्रत्येक गोष्ठमें सुन्दर गौएँ इधर-उधर रँभा रही थीं ॥ ५ ॥ ६ ॥ गली-गलीमें सर्वत्र दही मथनेके शब्दसे मिश्रित गोपाङ्गनाओंका गीत सुनकर विस्मित

गोप्य ऊचुः

कस्यायमद्यात्र रथः समागतोऽक्रूरोऽथवा क्रूर उतागतः पुनः ।
येनैव नीतो मथुरां महापुरीं श्रीनंदसूनुर्नवकंजलोचनः ॥ ९ ॥
कस्मिन्कुकाले जननी ससर्ज यं दातुं सतां स्नेहवतां प्रतापनम् ।
कद्रूर्यथा नागचयं विषावृतं हंतुं वृथा लोकजनानितस्ततः ॥१०॥
कंसार्थकृत्कंससखोऽतिनिर्घृणो सोऽयं पुनः किं व्रजमंडलं गतः ।
भर्तुर्मृतस्यापि हि पारलौकिकीमस्माभिरद्यैव करिष्यति क्रियाम् ॥११॥

श्रीनारद उवाच

एवं वदंत्यो व्रजगोपवध्वः संताड्य सूतं च मुखेंगुलिस्याम् ।
पप्रच्छुराराद्गतबुद्धिमार्तं त्वरं वदैतत्किल कस्य यानम् ॥१२॥
घनप्रभं पद्मदलायतेक्षणं कृष्णाकृतिं कोटिमनोजमोहनम् ।
पीतांबरं षट्पदसंघसंकुलां मालां दधानं नववैजयंतीम् ॥१३॥
स्फुरत्सहस्रच्छदपद्मपाणिं वंशीधरं वेत्रकरं मनोहरम् ।
बालार्ककोटिद्युतिमौलिमंडनं महामणिं कुंडलमंडितानम् ॥१४॥
गत्याकृतिश्रीतनुहाससुस्वरैः श्रीकृष्णसारूप्यधरं तमुद्धवम् ।
विलोक्य सर्वा नृप विस्मितास्ततो विज्ञाय गोविंदसखं ययुः पुरः ॥१५॥
ज्ञात्वाऽथ सन्देशहरं हरेः प्रभोः सुवाक्यनीत्या परमादरेण तम् ।
गुप्तं हि प्रष्टुं कुशलं सतांपते नीत्वोद्धवं ताः कदलीवनं गताः ॥१६॥

यत्रैव राधा वृषभानुनंदिनी कृष्णातटे चारुनिकुंजमन्दिरे ।
समास्थिता तद्विरहातुरा भृशं खं मन्यते सा तु जगद्धरिं विना ॥१७॥
रंभादलैश्चंदनपंकसंचयं स्फारास्फुरच्छीतलमेघमंदिरम् ।
कृष्णाचलच्चारुतरंगसीकरं स्वतः सुधारश्मिगलत्सुधाचयम् ॥१८॥
एतादृशं यत्कदलीवनं च तद्राधावियोगानलवर्चसा भृशम् ।
बभूव सर्वं सततं हि भस्मसात्कृष्णागमाशात्मतनुं हि रक्षति ॥१९॥
श्रुत्वोद्धवं कृष्णसखं समागतं चकार राधा स्वसखीभिरादरम् ।
जलाशनाद्यैर्मधुपर्कमंगलैः श्रीकृष्ण कृष्णेति मुहुर्वदन्त्यलम् ॥२०॥
राधां हि गोविंदवियोगखिन्नां कुह्वां यथा चन्द्रकलां तदोद्धवः ।
नतां कृशांगीं कृतहस्तसम्पुटः प्रदक्षिणीकृत्य जगाद हर्षितः ॥२१॥

उद्धव उवाच

सदाऽस्ति कृष्णः परिपूर्णदेवो राधे सदा त्वं परिपूर्णदेवी ।
श्रीकृष्णश्चन्द्रः कृतनित्यलीलो लीलावती त्वं कृतनित्यलीला ॥२२॥
कृष्णोऽस्ति भूमा त्वमसींदिरा सदा ब्रह्मास्ति कृष्णस्त्वमसि स्वरा सदा ।
कृष्णः शिवस्त्वं च शिवा शिवार्था विष्णुः प्रभुस्त्वं किल वैष्णवी परा ॥२३॥
कौमारसर्गी हरिरादिदेवता त्वमेव हि ज्ञानमयी स्मृतिः शुभा ।
लयांभसा क्रीडनतत्परो हरिर्यज्ञो वराहो वसुधा त्वमेव हि ॥२४॥
देवर्षिवर्यो मनसा हरिः स्वयं त्वं तत्र साक्षान्निजहस्तवल्लकी ।
नारायणो धर्मसुतो नरेण हि शांतिस्तदा त्वं जनशांतिकारिणी ॥२५॥

और उन्हें गोविन्दका सखा जानकर उनके सामने आयीं ॥ १५ ॥ यह जानकर कि ये भगवान् श्रीहरिका संदेश लेकर आये हैं, वे नीतियुक्त सुन्दर वचन बोलकर उनके प्रति आदर दिखाने लगीं तथा संतोंके स्वामी गोविन्दकी गूढ़ कुशल पूछनेके लिये उन उद्धवजीको साथ लेकर वे कदलीवनमें गयीं ॥ १६ ॥ जहाँ वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा यमुनाके तटपर मनोहर निकुञ्जमन्दिरमें भगवान्‌के विरहसे आतुर होकर बैठी थीं और उन श्रीहरिके बिना सारे जगत्‌को सर्वथा सूना मानती थीं ॥ १७ ॥ जो पहले केलोंके पत्तोंसे और घिसे हुए चन्दनके पंकसे शीतल मेघमन्दिर-सा प्रतीत होता था तथा यमुनाकी चञ्चल चारु तरंगोंकी फुहार पड़नेसे जहाँ ऐसा प्रतीत होता था कि साक्षात् सुधाकिरण चन्द्रमाकी सुधाराशि स्वतः गल रही है, ऐसा कदलीवन सारा-का-सारा श्रीराधाकी वियोगाग्निके तेजसे अत्यन्त झुलस गया था। केवल श्रीकृष्णके शुभागमनकी आशासे श्रीराधा अपने शरीरकी रक्षा कर रही थीं ॥ १८ ॥ १९ ॥ श्रीकृष्णके सखा उद्धवका आगमन सुनकर श्रीराधाने अपनी सखियोंके द्वारा अन्न, पान और मधुपर्क आदि माङ्गलिक वस्तुएँ अर्पित कर उनका बड़ा आदर-सत्कार किया। उस समय वे बारंबार 'श्रीकृष्ण-कृष्ण'का उच्चारण करती थीं ॥ २० ॥ गोविन्दके वियोगसे खिन्न राधा अमावास्यामें प्रविष्ट चन्द्रकलाकी भाँति क्षीण हो रही थीं। उस समय उद्धवने नताङ्गी एवं कृशाङ्गी राधाको हाथ जोड़कर प्रणाम किया और उनकी परिक्रमा करके वे हर्षपूर्वक बोले ॥ २१ ॥ उद्धवने कहा—श्रीराधे ! श्रीकृष्ण सदा परिपूर्णतम भगवान् हैं और आप सदा परिपूर्णतमा भगवती हैं। श्रीकृष्णचन्द्र नित्यलीलापरायण हैं और आप नित्यलीलाका सम्पादन करनेवाली नित्यलीलावती हैं ॥ २२ ॥ श्रीकृष्ण भूमा हैं और आप इन्दिरा हैं। श्रीकृष्ण नित्य सनातन ब्रह्म हैं और आप सदा उनकी शक्ति सरस्वती हैं। श्रीकृष्ण शिव हैं और आप कल्याणस्वरूपा शिवा हैं। भगवान् श्रीकृष्ण विष्णु हैं और आप निश्चय ही उनकी परा शक्ति वैष्णवी हैं ॥ २३ ॥ आदिदेवता श्रीहरि कौमारसर्गी—सनक, सनन्दन,

कृष्णस्तु साक्षात्कपिलो महाप्रभुः सिद्धिस्त्वमेवासि च सिद्धसेविता ।
दत्तस्तु कृष्णोऽस्ति महामुनीश्वरो राधे सदा ज्ञानमयी त्वमेव हि ॥२६॥
यज्ञो हरिस्त्वं किल दक्षिणा हरिरुरुक्रमस्त्वं हि सदा जयंत्यतः ।
पृथुर्यदा सर्वनृपेश्वरो हरिरर्चिस्तदा त्वं नृपपट्टकामिनी ॥२७॥
शंखासुरं हंतुमभूद्धरिर्यदा मत्स्यावतारस्त्वमसि श्रुतिस्तदा ।
कूर्मो हरिर्मंदरसिन्धुमंथने नेत्रीकृता त्वं शुभदा हि वासुकी ॥२८॥
धन्वंतरिश्चार्तिहरो हरिः परस्त्वमौषधी दिव्यसुधामयी शुभे ।
श्रीकृष्णचन्द्रस्तु बभूव मोहिनी त्वं मोहिनी तत्र जगद्विमोहिनी ॥२९॥
हरिर्नृसिंहस्तु नृसिंहलीलया लीला तदा त्वं निजभक्तवत्सला ।
बभूव कृष्णस्तु यदा हि वामनः कीर्तिस्तदा त्वं निजलोककीर्तिता ॥३०॥
हरिर्यदा भार्गवरूपधृक् पुमान् धारा कुठारस्य तदा त्वमेव हि ।
श्रीकृष्णचंद्रो रघुवंशचंद्रमा यदा तदा त्वं जनकस्य नंदिनी ॥३१॥
श्रीशार्ङ्गधन्वा मुनिबादरायणो वेदांतकृत्त्वं किल वेदलक्षणा ।
संकर्षणो माधव एव वृष्णिषु त्वं रेवती ब्रह्मभवा समास्थिता ॥३२॥
बुद्धो यदा कौणपमोहकारको बुद्धिस्तदा त्वं जनमोहकारिणी ।
कल्की यदा धर्मपतिर्भविष्यति हरिस्तदा त्वं सुकृतिर्भविष्यसि ॥३३॥
श्रीकृष्णचंद्रोऽस्ति हि चंद्रमंडले राधे सदा चन्द्रमुखीति चन्द्रिका ।
श्रीकृष्णसूर्यो दिवि सूर्यमंडले सूर्यप्रभा त्वं परिधिप्रतिष्ठिता ॥३४॥

सनातन और सनत्कुमार हैं तथा आप ज्ञानमयी शुभा स्मृति हैं । श्रीहरि प्रलयकालके जलमें क्रीड़ा करनेवाले यज्ञवराह हैं और आप वसुधा हैं ॥ २४ ॥ श्रीहरि मनसे जब देवर्षिवर्य नारद बनते हैं, तब साक्षात् आप ही उनके हाथकी वीणा बनती हैं । श्रीहरि जब धर्मनन्दन नर और नारायण होते हैं, तब आप ही जगत्में शान्ति स्थापित करनेवाली साक्षात् शान्तिस्वरूपिणी देवी होती हैं ॥ २५ ॥ श्रीकृष्ण ही साक्षात् महाप्रभु कपिल हैं और आप ही सिद्धसेविता सिद्धि हैं । हे राधे ! श्रीकृष्ण महामुनीश्वर दत्तात्रेय हैं और आप नित्य ज्ञानमयी सिद्धि हैं ॥२६॥ श्रीहरि यज्ञ हैं और आप दक्षिणा । वे उरुक्रम वामन हैं तो आप सदा उनकी शक्ति जयन्ती हैं । श्रीहरि जब समस्त राजाओंके अधिराज पृथु होते हैं, तब आप उन महाराजकी पटरानी अर्चि-देवीके रूपमें प्रकट होती हैं ॥ २७ ॥ शंखासुरका वध करनेके लिये जब श्रीहरिने मत्स्यावतार ग्रहण किया, तब आप श्रुतिरूपा हुईं । मन्दराचल द्वारा समुद्रमन्थनके समय श्रीहरि कच्छपरूपमें प्रकट हुए, तब आप वासुकिनागमें शुभदायिनी नेती शक्तिके रूपसे प्रकट हुईं ॥ २८ ॥ हे शुभे ! परमेश्वर श्रीहरि जब पीड़ाहारी धन्वन्तरिके रूपमें आविर्भूत हुए, तब आप दिव्य सुधामयी ओषधिके रूपमें दृष्टिगोचर हुईं । श्रीकृष्णचन्द्र जब मोहिनीरूपमें सामने आये, तब आप उनके भीतर विश्वविमोहिनी मोहिनीके रूपमें अभिव्यक्त हुईं ॥ २९ ॥ श्रीहरि जब नृसिंहरूप धारण करके नृसिंहलीला करने लगे, तब आप निजभक्तवत्सला लीलाके रूपमें सामने आयीं । जब श्रीकृष्णने वामनरूप धारण किया, तब आप अपने भक्तजनों द्वारा कीर्तित कीर्तिरूपिणी हुईं ॥ ३० ॥ जब श्रीहरि भृगुनन्दन परशुरामका रूप धारण करके सामने आये, तब आप ही उनके कुठारकी धार बनीं । श्रीकृष्णचन्द्र जब रघुकुलचन्द्र श्रीराम हुए, तब आप ही उनकी धर्मपत्नी जनकनन्दिनी सीता बनीं ॥ ३१ ॥ जब शार्ङ्गधन्वा श्रीहरि बादरायण मुनि व्यासके रूपमें प्रकट होते हैं, तब आप वेदान्ततत्त्वको प्रकट करनेवाली देववाणीके रूपमें आविर्भूत होती हैं । वृष्णि-कुल-तिलक माधव ही जब संकर्षणरूप होते हैं, तब आप ही ब्रह्मभवा रेवतीके रूपमें उनकी सेवामें विराजमान होती हैं ॥ ३२ ॥ श्रीहरि जब असुरोंको

इंद्रः सदाऽऽस्ते किल यादवेन्द्रस्तत्रैव राधे तु शची शचीश्वरी ।
हिरण्यरेता हि हरिः परेश्वरो हेतिः सदा त्वं हि हिरण्मयी परा ॥३५॥
श्रीराजराजो हि विराजते हरिर्विराजसे त्वं तु निधौ निधीश्वरी ।
क्षीराब्धिरूपी तु हरिस्त्वमेव हि तरंगितक्षौमसिता तरंगिणी ॥३६॥
बिभ्रद्वपुः सर्वपतिर्यदा यदा तदा तदा त्वं विदितानुरूपिणी ।
जगन्मयो ब्रह्ममयो हरिः स्वयं जगन्मयी ब्रह्ममयी त्वमेव हि ॥३७॥
अद्यैव सोऽयं व्रजराजनंदनो जाताऽसि राधे वृषभानुनंदिनी ।
याभ्यां कृता सत्त्वमयी प्रशांतये लीलाचरित्रैर्ललिताऽऽदिलीलया ॥३८॥
कृष्णः स्वयं ब्रह्म परं पुराणो लीला तदिच्छाप्रकृतिस्त्वमेव ।
परस्परं संश्रितविग्रहाभ्यां नमो युवाभ्यां हरिराधिकाभ्याम् ॥३९॥
गृहाण पत्रं निजनाथदत्तं शोकं परं मा कुरु राधिके त्वम् ।
ह्रस्वेन कालेन विधाय कार्यं तत्रागमिष्यामि तदुक्तवाक्यम् ॥४०॥
गृह्णीध्वमद्यैव शतानि कृष्णदत्तानि पत्राणि सुमंगलानि ।
प्रत्यर्पितं पृथशतं च गोप्यः कृष्णप्रियाणां व्रजसुंदरीणाम् ॥४१॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीमथुराखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीराधादर्शनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

अथ षोडशोऽध्यायः

(उद्धवद्वारा श्रीराधा तथा गोपीजनोंको आश्वासन)

श्रीनारद उवाच

राधा पत्रं संगृहीत्वा शिरो नेत्रे तथा च हृद् । निधाय वाचयित्वा तत्स्मृत्वा तत्पादपंकजम् ॥ १ ॥

मोहित करनेवाले बुद्धके रूपमें प्रकट होते हैं, तब आप विश्वजनमोहिनी बुद्धि होती हैं। जब श्रीहरि धर्म-पालक कल्किके रूपमें प्रकट होंगे, तब आप कृतिरूपिणी होंगी ॥ ३३ ॥ हे चन्द्रमुखी राधे ! चन्द्रमण्डलमें श्रीकृष्ण चन्द्ररूप हैं और आप सदा चन्द्रिकारूपिणी हैं। आकाशगत सूर्यमण्डलमें श्रीकृष्ण ही सूर्य हैं और आप ही उनकी प्रभामयी परिधिके रूपमें प्रतिष्ठित हैं ॥ ३४ ॥ हे राधे ! निश्चय ही यादवेन्द्र श्रीहरि सदा देवराज इन्द्रके रूपमें विराजते हैं और आप वहीं शचीश्वरी शचीके रूपमें निवास करती हैं। परमेश्वर श्रीहरि ही हिरण्यरेता अग्नि हैं और आप ही सदा हिरण्मयी परा ज्योति हैं ॥ ३५ ॥ श्रीकृष्ण ही राजराज कुबेरके रूपमें विराजते हैं और आप ही उनकी निधिमें निधीश्वरी होकर शोभा पाती हैं। साक्षात् श्रीहरि ही क्षीरसागर हैं और आप ही तरंगित होनेवाली श्वेत रेशमके समान शुक्लवर्णा तरंगमाला हैं ॥ ३६ ॥ सर्वेश्वर श्रीहरि जब-जब कोई शरीर धारण करते हैं, तब-तब आप उनके अनुरूप शक्तिके रूपमें प्रकट होती हैं। स्वयं श्रीहरि जगत्स्वरूप तथा ब्रह्मरूप हैं और आप ही जगन्मयी एवं ब्रह्ममयी चैतन्यशक्ति हैं ॥ ३७ ॥ हे राधे! आज भी वे ही श्रीहरि व्रजराजनन्दन हैं और आप उनकी प्रिया वृषभानुनन्दिनी हैं। आप दोनोंने जगत्में सुख-शान्तिकी स्थापनाके लिये नाना प्रकारके क्रीडामय चरित्रों द्वारा ललित लीलाओंके रूपमें सत्त्वमयी लीला प्रकट की है ॥ ३८ ॥ पुराणपुरुष श्रीकृष्ण स्वयं परब्रह्म हैं और आप ही उनकी इच्छारूपिणी लीलाशक्ति हैं। आप दोनोंके श्रीविग्रह सदा परस्पर संयुक्त हैं। ऐसे आप दोनों श्रीराधा-कृष्णको मेरा नमस्कार है ॥ ३९ ॥ हे राधिके ! आप शोक न करें और अपने प्राणनाथका दिया हुआ यह पत्र लें। उन्होंने यह सन्देश दिया है कि मैं कुछ ही दिनोंमें यहाँके कार्योंका सम्पादन करके व्रजमें आऊँगा ॥ ४० ॥ हे गोपाङ्गनाओ ! आज ही भगवान् श्रीकृष्णके दिये हुए ये परम मंगलमय सैकड़ों पत्र आप लोग

अतिप्रेमातुरा राजन् मोचयित्वाऽश्रुसंततिम् । मूर्च्छामाप परां राधा यादवस्य प्रपश्यतः ॥ २ ॥
कुंकुमागुरुपाटीरद्रवैः पुष्परसैश्च सा । अर्चिता चामरांदोलैः पुनश्चैतन्यतां गता ॥ ३ ॥
वियोगसिन्धुसंमग्नां राधां कमललोचनाम् । वीक्ष्योद्धवस्तथा गोप्यो मुमुचुश्चाश्रुसंततिम् ॥ ४ ॥
तासामश्रुप्रवाहेण राजन् वृन्दावने वने । सद्यः कह्लारसंयुक्तो जातो लीलासरोवरः ॥ ५ ॥
दृष्ट्वा पीत्वा च सुस्नात्वा श्रुत्वा चेमां कथां नरः । कर्मबंधविनिर्मुक्तः श्रीकृष्णं प्राप्नुयान्नृप ॥ ६ ॥
अथोद्धवमुखाच्छ्रुत्वा श्रीकृष्णागमनं पुनः । पप्रच्छुः कुशलं सर्वं श्रीकृष्णस्य महात्मनः ॥ ७ ॥

श्रीराधोवाच

आनंददं श्रीव्रजराजनंदनं द्रक्ष्यामि कस्मिन्समये घनप्रभम् ।
घनं मयूरीव समुत्सुका भृशं चंद्रं चकोरीव तदीक्षणोत्सुका ॥ ८ ॥
कस्मिन्कुकाले विरहो बभूव मे येनैव कौ कल्पसमः क्षणः क्षणः ।
निशीथिनीयं द्विपरार्द्धहेलनं करोति गोविंदपदद्वयं विना ॥ ९ ॥
कच्चित्कदाचिद्व्रजमागमिष्यति करोति किं तत्र हरिर्वदाशु मे ।
अद्यैव यत्नेन धृताः किलासवः प्रसह्य निर्याति मृषागिरातुराः ॥१०॥
दृष्ट्वा क्षणं त्वां मम हृच्च शीतलं जातं प्रसन्नास्मि समागते त्वयि ।
यथा प्रसन्ना जनकात्मजा पुरा लंकापुरं वायुसुते समागते ॥११॥
आशां विधाय निजमोहधनं विसृज्य विस्मृत्य वाक्यगदितं मथुरां गतो यः ।
तस्यापि पत्रलिखितं ह्यमृतं न मन्ये तं चानयस्व किल मंत्रविदां वरिष्ठ ॥१२॥

उद्धव उवाच

गत्वा पुरीं तव परं विरहं निवेद्याथार्यं विधाय निजनेत्रजलेन राधे ।
नीत्वा हरिं तव पुरः पुनरागतोऽस्मि मा शोकमत्र कुरु मे शपथस्त्वदंघ्रेः ॥१३॥

श्रीनारद उवाच

अथ प्रसन्ना श्रीराधा चन्द्रकान्तौ मणी शुभौ । रासरंगे चन्द्रदत्तौ उद्धवाय ददौ नृप ॥१४॥
सहस्रदलपद्मे द्वे दत्ते चंद्रमसा पुरा । उद्धवाय ददौ राधा प्रसन्ना भक्तवत्सला ॥१५॥
छत्रं सिंहासनं दिव्यं चामरे द्वे मनोहरे । श्रीकृष्णमनसोद्भूते ददौ तस्मै हरिप्रिया ॥१६॥
ऐश्वर्यं ज्ञानसंपन्नं सर्वदेशिकदेशिकम् । कृष्णसंयोगकर्तृत्वं सदा तव भविष्यति ॥१७॥
भक्तिं निर्गुणभावाढ्यां प्रेमलक्षणसंयुताम् । ज्ञानं विज्ञानसहितं वैराग्यं सा ददौ पुनः ॥१८॥
शंखचूडा च हरिणाऽऽनीतं चूडामणिं शुभम् । चन्द्रानना ददौ तस्मै उद्धवाय विदेहराट् ॥१९॥
तथा गोपीगणाः सर्वे भूषणानां चयं शुभम् । ददुः प्रसन्ना हे राजन्नुद्धवाय महात्मने ॥२०॥

श्रीनारद उवाच

श्रुत्वा वचश्चोपगवेः शुभार्थं सुखं गतायां किल राधिकायाम् ।
ऊचुस्तमाराद्व्रजगोपवध्वः सदःस्थितं कृष्णसखं पृथक् ताः ॥२१॥

गोप्य ऊचुः

यत्र पत्रलिखितं वदाशु नः किंतु तत्र हरिणोक्तमद्भुतम् ।
त्वं परावरविदां हरेः सखा मंत्रवित्तम तदाकृतिर्महान् ॥२२॥

जनकनन्दिनी सीता प्रसन्न हुई थीं ॥ ११ ॥ मन्त्रियोंमें श्रेष्ठ हे उद्धव ! जो आशा देकर अपने छोह-मोहरूपी वनको त्यागकर और अपनी ही कही हुई बातको भुलाकर मथुरा चले गये, उनके लिखे हुए इस पत्रके वाक्यांशको भी मैं सत्य नहीं मानती । तुम स्वयं उनको यहाँ ले आओ ॥ १२ ॥ उद्धव बोले—हे श्रीराधे ! मैं मथुरापुरी लौटकर आपके इस महान् विरहजनित दुःखको उन्हें सुनाऊँगा और अपने आँसुओंके जल[से] उनके चरण पखारूँगा । जैसे भी होगा, श्रीहरिको मथुरापुरीसे लेकर पुनः यहाँ आऊँगा—यह बात आपके चरणोंकी शपथ खाकर कहता हूँ । अतः अब आप शोक न करें ॥ १३ ॥ नारदजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर प्रसन्न हुई श्रीराधाने रास-रङ्गस्थलमें चन्द्रमाद्वारा दी गयी दो सुन्दर चन्द्रकान्त मणि श्यामसुन्दरको देनेके लिये उद्धवके हाथमें दीं ॥ १४ ॥ पूर्वकालमें चन्द्रमाने जो दो सहस्रदल कमल भेंट कि[ये] थे, उन्हें भी प्रसन्न और भक्तवत्सला श्रीराधाने उद्धवको अर्पित किया ॥ १५ ॥ हरिप्रिया श्रीराधाने प्रा[ण]वल्लभके लिये छत्र, दिव्य सिंहासन तथा दो मनोहर चँवर, जो श्रीकृष्णके संकल्पसे प्रकट हुए थे, उद्धव[के] हाथमें दिये ॥ १६ ॥ साथ ही यह वरदान भी दिया कि 'हे उद्धव ! तुम ऐश्वर्यज्ञानसे सम्पन्न, समस्त उपदेश[क] गुरुओंके भी उपदेशक तथा श्रीकृष्णके साथ रहनेवाले सखा होओगे ।' ॥१७॥ श्रीराधाने उन्हें निर्गुण भावसे सम्प[न्न] प्रेम-लक्षणा भक्ति तथा ज्ञान-विज्ञान-सहित वैराग्य भी प्रदान किया ॥ १८ ॥ हे विदेहराज ! श्रीहरि शङ्खचू[ड]-यक्षसे जो उसकी चूडामणि छीन लाये थे, वह सुन्दर चूडामणि चन्द्रानना गोपीने उद्धवके हाथमें दी ॥ १९ [॥] हे राजन् ! इसी प्रकार अन्य गोपाङ्गनाओंने भी महात्मा उद्धवके हाथमें सुन्दर आभूषणोंकी राशि समर्पित [की] ॥ २० ॥ नारदजी कहते हैं—उद्धवकी शुभार्थक वाणी सुनकर जब श्रीराधिकाजी अत्यन्त प्रसन्न हो गयीं, तब सभामण्डलमें स्थित श्रीकृष्ण-सखा उद्धवके पास बैठकर व्रजगोप-वधूटियोंने पृथक्-पृथक् उनसे पू[छा] ॥ २१ ॥ गोपाङ्गनाएँ बोलीं—हे उद्धवजी ! हमें शीघ्र बताइये, जिन-जिनके लिये श्रीहरिने पत्र लिखा है, उन[के] लिये कोई अद्भुत संदेश भी कहा है क्या ? आप परावरवेत्ताओंमें उत्तम, साक्षात् श्रीकृष्णके सखा, उनके समान आकृतिवाले और महान् हैं (अतः उनकी कही हुई बात हमसे अवश्य कहिये) ॥ २२ ॥ उद्धव[ने] कहा—हे गोपाङ्गनाओ ! जैसे तुमलोग देवेश्वर श्रीकृष्णका निरन्तर स्मरण करती रहती हो, उसी प्रकार

उद्धव उवाच

यथा स्मरथ देवेशं तथा युष्मान्स्मरत्यसौ । अनुवेलं गोपवध्वः पश्यतो मे न संशयः ॥२३॥
एकदा मां समाहूय स्मृत्वा युष्मान् रहस्करः । कथयामास संदेशं चित्तस्थं नंदनंदनः ॥२४॥

श्रीभगवानुवाच

गणेषु सक्तं किल वन्धनाय रक्तं मनः पुंसि च मुक्तये स्यात् ।
मनो द्वयोः कारणमाहुराराज्जित्वाऽथ तत्कौ विचरेदसंगः ॥२५॥
यदा स्वयं ब्रह्म परात्परं सामध्यात्मयोगेन विशारदेन ।
जानाति सर्वत्र गतं विवेकी तदा विजह्यान्मनसः कषायम् ॥
यावद्धनो मध्यगतस्तदुत्थितः स्वकर्मरूपं न हि दृक् प्रपश्यति ॥२६॥
स्थूलाच्च दूरेऽस्मि न तत्त्वतोऽङ्गनास्तस्माद्धि योगं कुरुतात्र साधनम् ।
यत्सांख्यभावैः किल गम्यते पदं तद्योगभावैरपि गम्यते स्वतः ॥२७॥

इति श्रीगर्गसंहितायां मथुराखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसम्वादे राधागोप्याश्वासनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

(श्रीकृष्णका स्मरण करके श्रीराधा तथा अन्यान्य गोपियोंके करुण उद्गार)

श्रीनारद उवाच

श्रुत्वा श्रीकृष्णसंदेशं प्रसन्ना गोपवल्लभाः । अश्रुमुख्यो बाष्पकंठ्य ऊचुरौपगविं नृप ॥ १ ॥

गोलोकवासिन्य ऊचुः

विदेशं गतवान्कृष्णस्त्यक्त्वा पूर्वप्रियाञ्जनान् । तदुपर्यलिखद्योगमहो निर्मोहतावलम् ॥ २ ॥

द्वारपालिका ऊचुः

चकोरे ग्लौः पङ्कजेऽर्को भ्रमरे पङ्कजं यथा । चातके च घनः प्रीतिं न करोति कदाचन ॥ ३ ॥

शृङ्गारप्रकरा ऊचुः

चंद्रमित्रं चकोरोऽस्ति सख्यो वह्निकणः सदा । विधात्रा यद्विलिखितं तन्न्यूनं न भवेदिह ॥ ४ ॥

शय्योपाकरिका ऊचुः

व्याधोऽपि हत्वा हि मृगान् स्मरति त्वरमातुरः । कटाक्षैः स्वप्रियान्हत्वा निर्मोही न स्मरेदहो ॥ ५ ॥

पार्षदाख्या ऊचुः

जातं विरहजं दुःखं नान्यो वेत्ति कदाचन । यथा कंटकविद्धाङ्गो विद्धान्वा विद्धकंटकः ॥ ६ ॥

वृन्दावनपालिका ऊचुः

अनिमित्तं प्रेमसौख्यमनिमित्तो हि वेत्ति तत् । सनिमित्तो न जानाति रसं कर्मेन्द्रियं यथा ॥ ७ ॥

गोवर्द्धनवासिन्य ऊचुः

पुरंध्रीप्रेमकृद्यो वै सैरंध्रीनायकोऽभवत् । शैलौकोभिस्तु किं तस्य बहुना कथितेन किम् ॥ ८ ॥

कुञ्जविधायिका ऊचुः

हा माधवीकुञ्जपुञ्जे गुञ्जन्मत्तमधुव्रते । स्वदृग्लक्षीकृतो यो वै तस्येयं श्रूयते कथा ॥ ९ ॥

निकुञ्जवासिन्य ऊचुः

वृन्दावने मत्तमिलिन्दपुञ्जे कलिन्दजातीरकदम्बकुञ्जे ।
शनैश्चलंतं सबलं सगोपं सगोधनं नंदसुतं भजामः ॥१०॥

जाह्नवीयूथ उवाच

कदा तथाऽस्मत्समयो भविष्यति यथा पुरंध्रीसमयः प्रदृश्यते ।
शोकं परं मा कुरुत व्रजाङ्गनाः सदा न कस्यापि जयः पराजयः ॥११॥

पनका बल तो देखो ॥ २ ॥ द्वारपालिका गोपिकाएँ बोलीं—सखियो ! देखो, चन्द्रमाकी चकोरपर, सूर्यकी कमलपर, कमलकी भ्रमरपर तथा मेघकी चातकपर जैसे कभी प्रीति नहीं होती, उसी प्रकार श्यामसुन्दरका हमलोगोंपर प्रेम नहीं है ॥ ३ ॥ शृङ्गार धारण करानेवाली गोपियोंने कहा—हे सखियो ! चकोर चन्द्रमाका मित्र है, परंतु उसके भाग्यमें सदा आगकी चिनगारियाँ चबाना ही बदा है। विधाताने जिसके भाग्यमें जो कुछ लिख दिया है, वह कभी कम नहीं होता ॥ ४ ॥ शय्योपकारिका गोपियाँ बोलीं—वधिक भी मृगोंको बाण मारकर तुरंत आतुर हो उनकी सुधि लेता है; किंतु निज कटाक्षोंसे अपने प्रियजनोंको घायल करके कोई निर्मोही उनका स्मरणतक न करे—यह कैसा आश्चर्य है ॥ ५ ॥ पार्षदा गोपियोंने कहा—विरहजनित दुःखको कोई विरही ही जानता है, दूसरा कोई कभी उस दुःखको नहीं समझ सकता—जैसे जिसके अङ्गोंमें काँटा गड़ा है, उसकी पीड़ाको वही जानता है, जिसके पहले कभी काँटा गड़ चुका है; जिसके शरीरमें कभी काँटा गड़ा ही नहीं, वह उसके दर्दको क्या जानेगा ? ॥ ६ ॥ वृन्दावन-पालिका गोपियाँ बोलीं—निष्काम प्रेमके सुखको निष्काम प्रेमी ही जानता है। जो किसी कारण या कामनाको लेकर प्रेम करता है, वह निष्काम प्रेमके सुखको क्या जानेगा ? क्या कभी कर्मेन्द्रियाँ रसका अनुभव कर सकती हैं ? ॥ ७ ॥ गोवर्धन-वासिनी गोपियोंने कहा—पुरवनिताओंसे प्रेम करनेवाला अब सैरन्ध्री (कुब्जा) का नायक बन बैठा है। उसे पर्वत एवं वनमें रहनेवाली स्त्रियोंसे क्या लेना है। इस विषयमें अधिक कहना व्यर्थ है ॥ ८ ॥ कुञ्जविधायिका गोपियाँ बोलीं—हाय ! मतवाले भ्रमरोंके गुञ्जारवसे व्याप्त माधवी कुञ्ज-पुञ्जमें जिनको हम सदा अपनी आँखोंमें बसाये रखती थीं, उनकी आज यह कथा सुनी जाती है ! ॥ ९ ॥ निकुंजवासिनी गोपियोंने कहा—वृन्दावनमें मतवाले भ्रमरोंके समुदायसे युक्त यमुना-तटवर्ती कदम्ब-कुंजमें धीरे-धीरे बलराम, ग्वाल-बाल और गोधनके साथ विचरते हुए नन्दनन्दनका हम भजन करती हैं ॥ १० ॥ यमुनाजीके यूथमें सम्मिलित गोपियाँ बोलीं—कब हमारा भी वैसा ही समय होगा, जैसा आज मथुरापुरवासिनी स्त्रियोंका देखा जाता

यमुनायूथ उवाच

विधातुर्न दया किंचिद्युनक्ति वियुनक्ति यः । भूतानि सकलान्येव क्रीडनानि यथाऽर्भकः ॥१२॥

रमायूथ उवाच

कुब्जापुराद्यर्जुसमानविग्रहा दासी त्विदानीं तु कुलीनतां गता ।
कुरूपिणी रूपवती बभावहो चतुर्दिनैर्दुंदुभिनादकारिणी ॥१३॥

विरजायूथा ऊचुः

सदा न कस्यापि भुजा प्रियांसे सदा वसंतो न सदा युवा स्यात् ।
इन्द्रो न राज्यं कुरुते सदाऽयं चतुर्दिनैर्मानमलंकरोतु ॥१४॥

ललितायूथ उवाच

रामाभिषेकं विनिवार्य मंथरा चकार विघ्नं किल कोसले पुरे ।
कुब्जैव सेयं मथुरापुरे गता कुब्जैव किं किं न करोति गोपिकाः ॥१५॥

विशाखायूथ उवाच

गोचारणायानुचरैर्व्रजंतं प्रबोधयंतं स्वपुरं विरावैः ।
मत्तेभयानं हि विडंबयंतं श्रीनन्दसूनुं न हि विस्मरामः ॥१६॥

मायायूथ उवाच

संकोचवीथीषु पटे प्रगृह्य प्रसह्य दोर्भ्यां हृदये निधाय ।
अन्योन्यमाकर्षणहर्षभीतिर्गृहान् हरिं तं हि कदा नयामः ॥१७॥

अष्टसख्य ऊचुः

वीक्ष्य नन्दसुतमङ्ग सुन्दरं नेत्रमद्य न जगद्विपश्यति ।
नन्दराजतनये पुरीं स्थिते किं भविष्यति वदाशु नस्त्वरम् ॥१८॥

षोडशसख्य ऊचुः

वेणुनादमधुरध्वनिं वने संनिशम्य कुसुमेषुवर्धनम् ।
श्रोत्रयुग्ममिह नः शृणोति नो विश्वगीतमुत वा यशः परम् ॥१९॥

द्वात्रिंशत्सख्य ऊचुः

प्रीत्या स्वमित्रं हि रिपुं नयेन लुब्धं धनैश्च द्विजमादरेण ।
गुरुं प्रणामै रसिकं रसेन निर्मोहिनं केन वशीकरोति ॥२०॥

श्रुतिरूपा ऊचुः

यज्जागरादिषु भवेषु परं ह्यतेर्हेतुस्विदस्य विचरंति गुणाश्च येन ।
नैतद्विशंति महदिंद्रियदेवसंघास्तस्मै नमोऽग्निमिव विस्तृतविस्फुलिंगाः ॥२१॥

ऋषिरूपा ऊचुः

नैवेशितुं प्रभुरयं बलिनां बलीयान्माया न शब्द उत नो विषयीकरोति ।
तद्ब्रह्म पूर्णममृतं परमं प्रशांतं शुद्धं परात्परतरं शरणं गताः स्मः ॥२२॥

देवाङ्गना ऊचुः

अंशांशकांशककलाद्यवतारवृन्दैरावेशपूर्णसहिताश्च परस्य यस्य ।
सर्गादयः किल भवंति तमेव कृष्णं पूर्णात्परं तु परिपूर्णतमं नताः स्मः ॥२३॥

यज्ञसीता ऊचुः

श्रीमन्निकुञ्जलतिकाकुसुमाकरोऽयं श्रीराधिकाहृदयकंठविभूषणोऽयम् ।
श्रीरासमंडलपतिर्व्रजमंडलेशो ब्रह्मांडमंडलमहीपरिपालकोऽयम् ॥२४॥

रमावैकुण्ठनिवासिन्य ऊचुः

यो गोपिकासकलयूथमलंचकार वृन्दावनं च निजपादरजोभिरद्रिम् ।
यः सर्वलोकविभाय बभूव भूमौ तं भूरिलीलमुरगेन्द्रभुजं भजामः ॥२५॥

रहे हैं। शीघ्र बताओ, अब हमारा क्या होगा ?' १८ ॥ षोडश सखियाँ बोलीं—वनमें प्रेमपीडाको बढ़ानेवाली बाँसुरीकी मधुर तान सुनकर हमारे दोनों कान अब संसारी गीत नहीं सुनना चाहते, वे तो कौओंकी 'काँव-काँव' के समान कड़वे लगते हैं ॥ १९ ॥ बत्तीस सखियोंने कहा—अपने मित्रको प्रीतिसे, शत्रुको नीतिसे, लोभीको धनसे, ब्राह्मणको आदरसे, गुरुको बारंबार प्रणामसे तथा रसिकको रससे वशमें किया जाता है; परंतु निर्मोहीको कोई कैसे वशमें कर सकता है ? ॥ २० ॥ श्रुतिरूपा गोपियाँ बोलीं—जो जाग्रत् आदि अवस्थाओंमें व्याप्त होकर भी उनसे परे हैं तथा इस जगत्के हेतु होते हुए भी वास्तवमें अहेतु हैं, ये समस्त गुण जिनसे ही प्रेरित होकर अपने-अपने विषयोंकी ओर प्रवाहित होते हैं; तथा जैसे आगसे निकली हुई चिनगारियाँ पुन: उसमें प्रविष्ट नहीं होतीं, उसी प्रकार महत्तत्त्व, इन्द्रियसमुदाव तथा इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देव-समुदाय जिनमें प्रवेश नहीं पाते, उन परमात्माको नमस्कार है ॥ २१ ॥ ऋषिरूपा गोपियोंने कहा—बलवानोंमें भी अत्यन्त बलिष्ट यह काल जिनपर अपना शासन चलानेमें समर्थ नहीं है, माया भी जिनको वशीभूत नहीं कर पाती तथा वेद भी जिन्हें अपने विधिवाक्योंका विषय नहीं बना पाते, उस अमृतस्वरूप, परम प्रशान्त, शुद्ध, परात्पर पूर्ण ब्रह्मकी हम शरण लेती हैं ॥ २२ ॥ देवांगनास्वरूपा गोपियाँ बोलीं—जिन परमेश्वरके अंशांश, अंश, कला, आवेश तथा पूर्ण आदि अवतार होते हैं, और जिनसे ही इस जगत्की सृष्टि, पालन एवं संहार होते हैं, उन पूर्णसे भी परे परिपूर्णतम श्रीकृष्णको हम प्रणाम करती हैं ॥ २३ ॥ यज्ञसीतास्वरूपा गोपियोंने कहा—ये श्यामसुन्दर निकुंज-लतिकाओंके लिये कुसुमाकर (वसन्त) हैं, श्रीराधाके हृदय तथा कण्ठको विभूषित करनेवाले हार हैं, श्रीरासमण्डलके अधिपति हैं, व्रजमण्डलके ईश्वर हैं तथा समस्त ब्रह्माण्डोंके महीमण्डलका परिपालन करनेवाले हैं ॥ २४ ॥ रमावैकुण्ठवासिनी गोपियाँ

श्वेतद्वीपसखीजना ऊचुः

यथा शिलींध्रं शिशुरश्रमो गजः स्वपुष्करेणैव च पुष्करं गिरिम् ।
धृत्वा बभौ श्रीव्रजराजनन्दनः कृपाकरोऽसौ न हि विस्मृतः क्वचित् ॥२६॥

ऊर्ध्ववैकुण्ठवासिन्य ऊचुः

श्यामवर्णमये नेत्रे जगच्छयामं विपश्यतः । न द्वैतं दृश्यते यासां ताभिः किं योगसेवनम् ॥२७॥

अजितपदाश्रिता ऊचुः

स्नेहपाशो दृढो च्छिन्नो न च्छिन्नो हरिणा विना। छित्वा तं मथुरां प्रागान्नागपाशं यथा खगः ॥२८॥

लोकाचलवासिन्य ऊचुः

कृष्णेलग्नं नेत्रयुग्मं धावद्दशदिशांतरम् । अहो न लग्नं कुत्रापि पद्मलग्नो यथा ह्यलिः ॥२९॥

श्रीसख्य ऊचुः

कार्पण्येन यशो हंति क्रुधा गुणगणोदयम् । धनानि व्यसनैर्लोकः कपटेनैव मित्रताम् ॥३०॥

मैथिला ऊचुः

धनं दत्वा तनुं रक्षेत्तनुं दत्वा त्रपांव्यधात् । धनं तनुं त्रपां दद्यान्मित्रकार्यार्थमेव हि ॥३१॥

कौशला ऊचुः

न कोपि जानाति वियोगजां दशां जीवं विना वक्तुमलं न सापि हि ।
भूयादुरोवाणविभिन्नमारान्माभूत्कदापि प्रियविप्रयोजनम् ॥३२॥

अयोध्यापुरवासिन्य ऊचुः

कृत्वा निराशां विनिधाय चाशां जगाम चाशां मथुरापुरस्य ।
योगं च तस्योपरि चालिखन्नो निर्मोहिनां चित्तमहो विचित्रम् ॥३३॥

पुलिंदिका ऊचुः

एनं वरं कर्तुमतीव विह्वलां समागतां शूर्पणखां पुरा वने।
यः कारयामास विरूपिणीं बलात्सौमित्रिणा तेन तु वः कृपा कथम् ॥३४॥

सुतलवासिन्य ऊचुः

भक्तं बलिं सत्यपरं च भूरिदं नीत्वा बलिं यः कुपितो बबन्ध ह।
अहो कथं तस्य करोति सेवनं मायावटोर्वामनरूपधारिणः ॥३५॥

जालंधर्य ऊचुः

पुरातिकष्टं प्रगतेऽसुरोत्तमे कायाधवे भक्तवरे ततो ह्ययम्।
भूत्वा नृसिंहः कृतवान्सहायमहो परा निष्ठुरता प्रदृश्यते ॥३६॥

भूमिगोप्य ऊचुः

अहोऽतिनिर्मोहिजनस्य चित्रं परं चरित्रं गदितुं न योग्यम्।
मुखेन चान्यद्धृदि भाव्यमन्यद्देवो न जानाति कुतो मनुष्यः ॥३७॥

इति श्रीगर्गसंहितायां मथुराखंडे नारदबहुलाश्वसंवादे श्रीकृष्णस्मरणे गोपीवाक्यं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अथ अष्टादशोऽध्यायः

(गोपियोंके उद्गार तथा उनसे विदा लेकर उद्धवका मथुराको लौटना)

बर्हिष्मतीभवा ऊचुः

अहो लयाब्धौ कृपया हरिर्यामुद्धृत्य वाराहतनुर्महात्मा।
तामन्वधावद्धृतशिंजिनीशरो भूत्वा दयालुः पृथुरादिराजः ॥ १ ॥

लतागोप्य ऊचुः

स्वयं सुधां वा न विभज्य पूर्वं धन्वन्तरिर्विश्वभिषङ्महात्मा।
तद्बद्धवैरेषु सुरासुरेषु भूत्वाऽथ योषित्प्रददौ कलिप्रियः ॥ २ ॥

में चले गये ? उसके ऊपर हमारे लिये योग लिखा है। अहो ! निर्मोही जनोंका चित्त (या चरित्र) विचित्र होता है ॥ ३३ ॥ पुलिन्दी गोपियोंने कहा—पूर्वकालकी बात है, दण्डकवनमें शूर्पणखा अत्यन्त विह्वल होकर इन्हें अपना पति बनानेके लिये इनके पास आयी; किंतु इन्होंने सुमित्राकुमारको प्रेरणा देकर बलपूर्वक उसे कुरूप बना दिया। ऐसे पुरुषसे आप सबको कृपाकी आशा कैसे हो रही है ? ॥ ३४ ॥ सुतलवासिनी गोपियाँ बोलीं— राजा बलि भगवद्भक्त, सत्यपरायण और बहुत अधिक दान करनेवाले थे, परंतु उनसे भेंट-पूजा लेकर जिन्होंने कुपित हो उन्हें बन्धनमें डाल दिया था, उस वामनरूपधारी कपट-ब्रह्मचारी बने हुए श्रीहरिकी न जाने लक्ष्मीजी या अन्य भक्तजन कैसे सेवा करते हैं ? ॥ ३५ ॥ जालंधरी गोपियोंने कहा—पूर्वकालमें असुरश्रेष्ठ भक्तप्रवर कयाधूकुमार प्रह्लादको बहुत अधिक कष्ट सहन करना पड़ा, तब कहीं नृसिंहरूप धारण करके इन्होंने उनकी सहायता की। अहो ! इनमें निष्ठुरताकी पराकाष्ठा प्रत्यक्ष देखी जाती है ॥ ३६ ॥ भूमिगोपियाँ बोलीं—अहो ! अत्यन्त निर्मोही जनका चरित्र अत्यन्त विचित्र होता है, वह कहने योग्य नहीं है। मुखसे और ही बात निकलेगी, किन्तु हृदयमें कोई और ही विचार रहेगा। ऐसे लोगोंको देवता भी नहीं समझ पाते, फिर मनुष्य कैसे जान सकता है ? ॥३७॥

इति श्रीगर्गसंहितायां मथुराखण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

बर्हिष्मतीपुरीकी गोपियोंने कहा—अहो ! प्रलयके समुद्रमें वाराहरूपधारी महात्मा श्रीहरिने कृपापूर्वक जिसका उद्धार किया था, उसी पृथ्वीको मारनेके लिये आदिराज पृथुके रूपमें वे उसके पीछे दौड़े।

नागेंद्रकन्या ऊचुः

अथेच्छतीमेनमहो वरं हरिः समागतां शूर्पणखां महावने ।
चकार सौमित्रिसखः कुरूपिणीमहो कृतं तस्य तया किमप्रियम् ॥ ३ ॥

समुद्रकन्या ऊचुः

नित्यं गृहगतं यांती दात्री दुःखं सुखं जनान् । स्वीया कथं सुशीला च चंचलाऽस्मिन्कथं स्थिता ४॥

अप्सरस ऊचुः

अस्य प्रीत्या कर्णनासे गते वै रावणस्वसुः । त्यजंतु वार्तां तेनापि भवतीनां कृपा कृता ॥ ५ ॥

दिव्या ऊचुः

सर्वेश्वरो बलिं नीत्वा बलिं बद्ध्वा दयापरः । अधः क्षिपन्मुक्तिनाथश्चित्रं तत्कथयाऽभवत् ॥ ६ ॥

आदिव्या ऊचुः

शतरूपायुतं शांतं तपस्यन्तं मनुं पुरा । दैत्यैर्बाधां गतं पश्चाद्ररक्षासौ दयानिधिः ॥ ७ ॥

सत्त्ववृत्तय ऊचुः

पूर्वं कष्टगतं भक्तं ध्रुवं कायाधवं च वै । पश्चाद्ररक्ष कृपया न पूर्वं दीनवत्सलः ॥ ८ ॥

रजोवृत्तय ऊचुः

रुक्मांगदहरिश्चन्द्रांबरीषाणां सतां हरिः । सत्यं परीक्षन्प्रददौ पुनर्भागवतीं श्रियम् ॥ ९ ॥

तमोवृत्तय ऊचुः

वृंदा येन छलं प्राप्ता छलिना बलिना पुरा । छलमय्या बलिन्याऽद्य कुब्जया छलितो ह्ययम् ॥१०॥

कृपाणी ह्येकतो वक्रा घातयंती जनान्बहून् । किमु कुब्जा त्रिवक्रा च श्रीकृष्णेन त्रिभंगिना ॥११॥
पश्यंतीनां कृष्णमार्गं नेत्रे दुःखं गते भृशम् । अवधिः पादविक्षेपं वामनस्य करोति हि ॥१२॥
पीतत्वं त्वग्गता पादौ शैथिल्यं प्रगतौ च नः । मनो विभ्रमतामुग्रां माधवे माधवं विना ॥१३॥
सपत्नीहारचिह्नाढ्यमागतं तमुषःक्षणे । हा दैव कस्मिन्समये द्रक्ष्यामो नंदनंदनम् ॥१४॥

श्रीनारद उवाच

इति कृष्णं चिंतयन्त्यो गोपिकाः प्रेमविह्वलाः । उत्कण्ठितास्ता रुरुदुर्मूर्छिता धरणीं गताः ॥१५॥
पृथक् पृथक् समाश्वास्य वचोभिर्नयनैपुणैः । संबोध्य गोपिकाः सर्वाः प्राह राधां तदोद्धवः ॥१६॥

उद्धव उवाच

परिपूर्णतमे कृष्णे वृषभानुवरात्मजे । गंतुमाज्ञां देहि मह्यं नमस्तुभ्यं व्रजेश्वरि ॥१७॥
प्रतिपत्रं देहि शुभे श्रीकृष्णाय महात्मने । तेन तं च प्रणम्याशु समानेष्ये तवांतिकम् ॥१८॥

श्रीनारद उवाच

अथ राधा लेखनीं च नीत्वा पात्रं मपेस्त्वरम् । समाचारं चिंतयन्ती तावदश्रूणि सुस्रुवुः ॥१९॥
यद्यत्पत्रं समानीतं राधया लेखनीयुतम् । तत्तदार्द्रीकृतं जातं नयनाम्बुजवारिभिः ॥२०॥
अश्रुप्रवाहं मुंचन्तीं कृष्णदर्शनलालसाम् । उद्धवो विस्मयन्प्राह राधां कमललोचनाम् ॥२१॥

उद्धव उवाच

कथं लिखसि राधे त्वं कथं दुःखं करोपि हि । सर्वां तस्मै वदिष्यामि व्यथां त्वल्लेखनं विना २२॥

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य राधया गतबाधया । सर्वाभिर्गोपिकाभिश्च पूजितोऽभूत्तदोद्धवः ॥२३॥
नत्वा प्रदक्षिणीकृत्य राधां रासेश्वरीं पराम् । गोपीगणमनुज्ञाप्य नत्वा नत्वा पुनः पुनः ॥२४॥

कुब्जाने छल लिया। [जैसेको तैसा मिला ।] ॥ १० ॥ कटार या कृपाणिका एक ही ओरसे टेढ़ी होती है, तथापि बहुतसे लोगोंका घात करती है। इधर कुब्जा तो तीन जगहसे टेढ़ी है; उसे तीन जगहसे टेढ़े श्रीकृष्ण मिल गये, फिर वह कितनोंका घात करेगी, कुछ कहा नहीं जा सकता ॥ ११ ॥ श्रीकृष्णकी राह देखते देखते हमारी आँखें बहुत दुखने लगी हैं और उनके आनेकी अवधि वामनके पाद-विक्षेपकी तरह बढ़ती ही जाती है ॥ १२ ॥ इस माधवमासमें माधवके विना हमारे शरीरका चमड़ा पीला पड़ गया; हमारी गतिमें शिथिलता आ गयी—पाँव थक गये और मन अत्यन्त उद्भ्रान्त हो गया है ॥ १३ ॥ हा दैव ! किस समय हम सब उषाकालमें सौतके हारके चिह्नसे चिह्नित होकर आये हुए नन्दनन्दनको देखेंगी ॥ १४ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! इस प्रकार श्रीकृष्णका चिन्तन करती हुई प्रेमविह्वला गोपियाँ उत्कण्ठित हो रोने लगीं और मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ीं। तब पृथक्-पृथक् सबको आश्वासन दे, नीतिनिपुण वचनों द्वारा सब गोपियोंको समझा-बुझाकर उद्धवने श्रीराधासे कहा ॥ १५ ॥ १६ ॥ उद्धव बोले—हे परिपूर्णतमे ! हे कृष्णस्वरूपे ! हे वृषभानुवरनन्दिनी ! मुझे जानेकी आज्ञा दीजिये। हे व्रजेश्वरि ! आपको नमस्कार है। हे शुभे ! महात्मा श्रीकृष्णको उनके पत्रका उत्तर दीजिये। उसके द्वारा शीघ्र ही उनके चरणोंमें प्रणाम करके मैं उन्हें आपके पास ले आऊँगा ॥ १७ ॥ १८ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! तदनन्तर राधा तुरन्त ही लेखनी और मसीपात्र लेकर समाचारका चिन्तन करने लगीं, तबतक उनके नेत्रोंसे अश्रुवर्षा होने लगी। श्रीराधाने जो-जो पत्र हाथमें लेकर उसे लेखनीसे संयुक्त किया, वह-वह उनके नेत्रकमलोंके नीरसे भीग गया। श्रीकृष्ण-दर्शनकी लालसासे अश्रुधारा बहाती हुई कमलनयनी राधासे विस्मित हुए उद्धवने कहा ॥ १९-२१ ॥ उद्धव बोले—हे श्रीराधे ! आप कैसे लिखती हैं और कैसे दुःख प्रकट करती हैं; यह सब कथा आपके लिखे विना ही मैं उनसे निवेदित करूँगा ॥ २२ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! उद्धवकी वाणी सुनकर राधाने बाधारहित हो समस्त गोपियोंके साथ उस समय उद्धवका पूजन किया ॥ २३ ॥

रथमारुह्य दिव्याभं रत्नभूषणभूषितम् । गतभृत्याभिमानोऽसौ संध्यायां नंदमाययौ ॥२५॥
मार्तंड उदयं प्राप्ते नत्वा गोपीं यशोमतीम् । नंदराजमनुज्ञाप्य नवनंदांस्तदोद्धवः ॥२६॥
वृषभानूपनंदाश्च समनुज्ञाप्य लोकतः । तथा कृष्णसखीन्सर्वान् रथमारुह्य निर्गतः ॥२७॥
दूरं तमनुगाः सर्वे गोपा गोपीगणास्तथा । स निवृत्त्याथ तान्स्नेहादुद्धवो मथुरां ययौ ॥२८॥
एकांते चाक्षयवटे कृष्णातीरे मनोहरे । नत्वा कृष्णं परिक्रम्य प्रेमगद्गदया गिरा ॥
प्राह स्रवन्नेत्रपद्म उद्धवो बुद्धिसत्तमः ॥२९॥

उद्धव उवाच

किं देव कथनीयं मे भवतोऽशेषसाक्षिणः । विधत्स्व शं राधिकाया गोपीनां देहि दर्शनम् ॥३०॥
श्रीकृष्णं देवदेवेशं समानेष्ये तवान्तिकम् । इत्थं वाक्यं च मे भूतं रक्ष रक्ष कृपानिधे ॥३१॥
प्रह्लादरुक्मांगदयोः प्रतिज्ञां बलेश्च खट्वाङ्गनृपस्य साक्षात् ।
यथांबरीषध्रुवयोस्तथा मे कृता च भक्तेश्वर रक्ष रक्ष ॥३२॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीमथुराखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे गोपीवाक्ये उद्धवागमनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

अथ एकोनविंशोऽध्यायः

(श्रीकृष्णका उद्धवके साथ व्रजमें प्रत्यागमन)

श्रीनारद उवाच

इत्थं निशम्य भक्तस्य वचनं भक्तवत्सलः । स्मृत्वा वाक्यं स्वकथितं गंतुं चक्रेऽच्युतो मतिम् ॥१॥
बलदेवं स्थापयित्वा कार्यभारेषु सर्वतः । हेमाढ्यं किंकणीजालं चंचलाश्वनियोजितम् ॥२॥

तत्पश्चात् परादेवी रासेश्वरी श्रीराधाको प्रणाम और उनकी परिक्रमा करके, गोपगणोंसे विदा ले, सबको बार-बार मस्तक झुकाकर उद्धव रत्नभूषणभूषित उस दिव्याकार रथपर आरूढ़ हुए। उनको अपनी बुद्धि और ज्ञानपर जो बड़ा अभिमान था, वह दूर हो गया। वे सन्ध्याके समय नन्दजीके पास लौट आये ॥ २४ ॥ २५ ॥ सवेरे सूर्योदय होनेपर गोपी यशोदाको नमस्कार करके उद्धव नन्दराजकी आज्ञा ले क्रमशः नौ नन्दों, वृषभानुओं, उपनन्दों, अन्य लोगों तथा कृष्णके सम्पूर्ण सखाओंसे अलग-अलग मिले और उनसे विदा ले, रथारूढ़ हो वहाँसे चल दिये ॥ २६ ॥ २७ ॥ समस्त गोप और गोपियोंके समुदाय उनके पीछे-पीछे दूरतक पहुँचानेके लिये गये। उद्धव सबको स्नेहपूर्वक लौटाकर मथुराको चले गये ॥ २८ ॥ श्रीकृष्ण यमुनाके मनोहर तटपर अक्षयवटके नीचे एकान्त स्थानमें बैठे हुए थे। वहाँ उनको प्रणाम और उनकी परिक्रमा करके बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ उद्धव नेत्रकमलोंसे आँसू बहाते हुए प्रेमगद्गद वाणीमें बोले ॥ २९ ॥ उद्धवने कहा—हे देव ! आप तो सबके साक्षी हैं, आपको मुझे क्या बताना है। आप राधिका और गोपियोंका कल्याण कीजिये, कल्याण कीजिये; उन्हें दर्शन दीजिये ॥ ३० ॥ 'मैं देवदेवेश्वर श्रीकृष्णको तुम्हारे पास ले आऊँगा।' ऐसी बात मैंने उनसे कही है। हे कृपानिधे ! मेरे इस वचनकी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ॥ ३१ ॥ हे भक्तोंके परमेश्वर ! जैसे आपने प्रह्लाद और रुक्माङ्गदकी, बलि और खट्वाङ्गकी तथा अम्बरीष और ध्रुवकी प्रतिज्ञा रक्खी है, इसी प्रकार मेरी की हुई प्रतिज्ञाकी भी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ॥ ३२ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां मथुराखण्डे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! इस प्रकार भक्तका वचन सुनकर भक्तवत्सल भगवान् अच्युतने अपने कहे हुए वचनको याद करके व्रजमें जानेका विचार किया ॥ १ ॥ समस्त कार्यभारों पर दृष्टि रखनेके लिये बलदेवजीको मथुरामें ही छोड़कर, चञ्चल घोड़ोंसे जुते हुए किङ्किणीजालमण्डित सुवर्णजटित सूर्यतुल्य तेजस्वी रथपर उद्धवके साथ आरूढ़ हो भगवान् श्रीकृष्ण भक्तोंको दर्शन देनेके लिये नन्दगांवको गये ॥ ३ ॥

रथमारुह्य सूर्याभमुद्धवेन समन्वितः। भक्तानां दर्शनं दातुं प्रययौ नंदगोकुलम् ॥ ३ ॥
गोवर्द्धनं गोकुलं च पश्यन्वृन्दावनं वनम्। आसीऽभूत्पुलिने कृष्णः कृष्णातीरे मनोहरे ॥ ४ ॥
कोटिशः कोटिशो गावो दृष्ट्वा कृष्णं व्रजाधिपम्। अधावन्त्यः सर्वतस्तं स्नेहस्नुतपयोधराः ॥ ५ ॥
उदास्यकर्णवालाँश्च रंभमाणाः सवत्सकाः। मुखे कवलसंयुक्ता अश्रुमुख्यो गतव्यथाः ॥ ६ ॥
सरथं सारुणं साश्वं शरदर्कं यथा घनाः। रुरुधुस्तं रथं राजन्नुद्धवस्य प्रपश्यतः ॥ ७ ॥
श्रीगोपालो हरिस्तासां वदन्नाम पृथक् पृथक्। श्रीहस्तेन तदंगानि स्पृशन्हर्षं जगाम ह ॥ ८ ॥
तत्समीपे गवां वृन्दं गतं वीक्ष्य व्रजार्भकाः। श्रीदामाद्या विस्मिताश्च दूरादूचुः परस्परम् ॥ ९ ॥

गोपा ऊचुः

रथं सकुम्भध्वजवायुवेगं सुकांस्यपत्रध्वनिनिःस्वनं तम्।
शताश्वयुक्तं शतसूर्यशोभं गावः कथं वा रुरुधुः सखायः ॥१०॥
अन्यो न चास्मिन् हि गवां प्रहर्षणैरायाति किंतु व्रजराजनंदनः।
स्फुरंति चांगानि हि दक्षिणानि नः श्रीनीलकंठः प्रतनोति तोरणम् ॥११॥

श्रीनारद उवाच

इत्थं विचार्य मनसा गोपाः सर्वे समागताः। ददृशुर्माधवं मित्रं गतं वस्तु यथा जनाः ॥१२॥
अवप्लुत्य रथात्कृष्णः परिपूर्णतमः स्वयम्। पुरो निधाय तान्सर्वान्दोर्भ्यां तत्प्रेमविह्वलः ॥१३॥
मुंचन्नेत्राब्जवारीणि परिरेभे पृथक्पृथक्। अहो भक्तेश्च माहात्म्यं वक्तुं कोऽस्ति महीतले॥१४॥
ते सर्वे रुरुदुर्गोपा मुंचन्तोऽश्रूणि मैथिल। प्रवक्तुं न समर्थाः श्रीकृष्णविक्षेपविह्वलाः ॥१५॥
परिपूर्णतमः साक्षाद्देवो मधुरया गिरा। आश्वासयामास नतान् प्रेमानन्दसमाकुलान् ॥१६॥

॥ ३ ॥ गोवर्द्धन, गोकुल और वृन्दावनको देखते हुए श्रीकृष्ण यमुनाके मनोहर तटपर पहुँचे ॥ ४ ॥ व्रजेश्वर श्रीकृष्णको देखते ही कोटि-कोटि गौएँ चारों ओरसे दौड़ती हुई उनके पास आ गयीं। उन सबके स्तनोंसे स्नेहके कारण दूध झर रहा था ॥ ५ ॥ वे कान और पूँछ उठाकर रँभा रही थीं। उनके साथ बछड़े भी थे। मुखमें घासके ग्रास लिये खड़ी हुई गौएँ नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहा रही थीं। उनकी व्यथा-वेदना दूर हो गयी थी ॥ ६ ॥ हे राजन्! जैसे बादल रथ, अरुण और अश्वोंसहित शरत्कालके सूर्यको ढक लेते हैं, उसी प्रकार उद्धवके देखते-देखते गौओंने उस रथको सब ओरसे घेर लिया ॥ ७ ॥ गोपाल श्रीहरि उन सब गौओंके अलग-अलग नाम बोलकर अपने श्रीहस्तसे उनके अङ्गोंको सहलाते हुए बड़े हर्षको प्राप्त हुए ॥ ८ ॥ गौओंके समुदायको उनके समीप गया देख श्रीदामा आदि व्रज-बालक विस्मित हो परस्पर कहने लगे ॥ ९ ॥ गोप बोले—हे सखाओ! उस वायुके समान वेगवाली तथा कांस्यपात्र (झाँझ) की ध्वनिके समान शब्द करनेवाले, कलश और ध्वजसहित रथको, जिसमें सैकड़ों अश्व जुते हैं तथा जो शत सूर्योंके समान शोभाशाली है, गौओंने कैसे घेर लिया? गौओंके इस हर्षसे यह सूचित होता है कि उस रथपर दूसरा कोई नहीं, साक्षात् व्रजराजनन्दन ही आ रहे हैं; क्योंकि हमारे दाहिने अङ्ग भी फड़क रहे हैं और नीलकण्ठ पक्षी हमारे ऊपर उड़कर वंदनवारका-सा विस्तार करते हैं ॥ १० ॥ ११ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन्! मन-ही-मन ऐसा विचार करके वे सब गोप वहाँ आ गये। आनेपर उन लोगोंने अपने मित्र माधवको उसी प्रकार देखा, जैसे साधारण जन अपनी खोयी हुई वस्तुके मिल जानेपर उसे देखते हैं ॥ १२ ॥ उनपर दृष्टि पड़ते ही साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण रथसे कूद पड़े और उन सबको आगे करके, प्रेमविह्वल हो अपनी दोनों भुजाओंसे भेंटने लगे ॥ १३ ॥ नेत्र-कमलोंसे अश्रुधारा बहाते हुए उन्होंने पृथक् पृथक् सबको हृदयसे लगाया। अहो! इस भूतलपर भक्तिके माहात्म्यका वर्णन कौन कर सकता है। ॥ १४ ॥ हे मिथिलेश्वर! वे सब गोप नेत्रोंसे आंसू बहाते हुए फूट-फूटकर रोने लगे। श्रीकृष्णके वियोगसे वे इतने विह्वल हो गये थे कि मिल जानेपर भी सहसा उनसे कुछ कहनेमें समर्थ नहीं हो सके ॥ १५ ॥ तब साक्षात् श्रीहरिने उन

उद्धवः प्रेपितो वक्तुं श्रीकृष्णेनार्भकैः सह। आगतं कथयामास श्रीकृष्णं नंदपत्तने ॥१७॥

श्रुत्वाऽऽगतं नंदसूनुं श्रीकृष्णं गोपवल्लभम्।
आनेतुं निर्गताः सर्वे परिपूर्णमनोरथाः ॥१८॥

भेरीमृदंगैः पटहैः कलस्वनैरत्पूर्णकुम्भैर्द्विजवेदघोषणैः।
गन्धाक्षतैर्मंगललाजमिश्रितैः श्रीनंदराजोऽभिययौ यशोदया ॥१९॥

ततः पुरस्कृत्य मदोन्नतं गजं सिन्दूरशुण्डाधृतहेमशृङ्खलम्।
ससाययौ श्रीवृषभानुमुख्यो भावान्कृतिस्तत्र कलावतीयुतः ॥२०॥

नंदोपनन्दा वृषभानवश्च गोपाश्च वृद्धास्तरुणार्भकाश्च।
स्रग्वेणुगुञ्जापरिपिच्छयुक्ता विनिर्गताः पूर्णमनोरथास्ते ॥२१॥

गायंत आरान्नृपनन्दनंदनं नृत्यंत आचालितपीतवाससः।
वंशीधरा वेत्रविषाणपाणयः प्रहर्षिता दर्शनलालसा भृशम् ॥२२॥

सखीमुखेभ्यो हरिमागतं परां निशम्य राधाशयनात्समुत्थिता।
ताभ्यः स्वभूषाः प्रददौ प्रहर्षिता प्रीता स्वगन्धिं नवपद्मिनी यथा ॥२३॥

द्वात्रिंशदष्टौ किल षोडश द्वे यूथैर्युता मैथिल गोपिकानाम्।
आरुह्य राधा शिबिकां मनोज्ञां समाययौ श्रीधरदर्शनार्थम् ॥२४॥

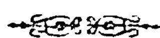
तथा हि गोप्यः किल कोटिशश्च त्यक्त्वाऽथ सर्वं स्वगृहस्य कृत्यम्।
व्यत्यस्तवस्त्राभरणा नृपेश समाययुः प्रेमचलन्मनोज्ञाः ॥२५॥

सर्वं व्रजं पादपगोमृगद्विजं प्रेमातुरं वीक्ष्य समागतं किमु।
श्रीनंदराजं पितरं च मातरं ननाम कृष्णः कृतमस्तकांजलिः ॥२६॥

प्रेमानन्दसे विह्वल सखाओंको मधुर वाणीसे आश्वासन दिया ॥ १६ ॥ श्रीकृष्णने ग्वाल-बालोंके साथ उद्धवको अपने आनेका समाचार देनेके लिये भेजा। उद्धवने नन्द-नगरमें जाकर बताया कि 'श्रीकृष्ण पधारे हैं' ॥ १७ ॥ गोपवल्लभ नन्दनन्दन श्रीकृष्णका आगमन सुनकर समस्त गोप परिपूर्णमनोरथ होकर उन्हें लिवा लेनेके लिये निकले ॥ १८ ॥ भेरी, मृदङ्ग, पटह आदि बाजे मधुरस्वरमें बजने लगे। भरे हुए कलश लिये ब्राह्मणलोग वेदमन्त्रोंका उच्चारण करने लगे। लाजा (खील) आदि माङ्गलिक वस्तुओंसे मिश्रित गन्ध और अक्षत साथ ले यशोदाके साथ श्रीनन्दराज अगवानीके लिये गये ॥ १९ ॥ तत्पश्चात् सिन्दूर-रञ्जित सूँड़में सोनेकी साँकल धारण किये मदोन्मत्त हाथीको आगे रखकर भानुतुल्य तेजस्वी श्रीवृषभानुवर अपनी रानी कलावतीके साथ वहाँ आये ॥ २० ॥ नन्द, उपनन्द, वृषभानु, बूढ़े, जवान और बालक गोप पूर्णमनोरथ हो, फूलोंके हार, बाँसुरी, गुञ्जा और मोरपंख लिये नगरसे बाहर निकले ॥ २१ ॥ हे नरेश्वर! गोप-बालक श्रीकृष्णके दर्शनकी बड़ी भारी लालसा लिये हाथोंमें वंशी, बेंत और विषाण (सींग) धारण किये, बड़े हर्षके साथ नन्दनन्दनके गुण गाते और पीले वस्त्र हिलाहिलाकर नाचते थे ॥ २२ ॥ सखियोंके मुखसे श्रीहरिके शुभागमनका शुभ संवाद सुनकर श्रीराधा शयनसे उठ खड़ी हुईं और महान् हर्षसे युक्त हो उन्होंने उन सबको अपने भूषण उसी प्रकार लुटा दिये, जैसे प्रसन्न हुई नूतन पद्मिनी अपनी सुगन्ध लुटाया करती है ॥ २३ ॥ हे मिथिलेश्वर! गोपाङ्गनाओंके आठ, सोलह, बत्तीस और दो यूथोंके साथ श्रीराधा मनोहर शिबिकापर आरूढ़ हो श्रीधरके दर्शनके लिये आयीं ॥ २४ ॥ हे नृपेश्वर! इसी प्रकार करोड़ों गोपियाँ अपने घरका सारा काम-काज छोड़कर उलटे-सीधे वस्त्र और आभूषण धारण किये वहाँ आयीं। प्रेमके कारण वे मनके समान तीव्र गतिसे चल रही थीं। ऐसा लगता था कि वृक्ष, गौ, मृग और पक्षियोंसहित सारा व्रज-मण्डल श्रीकृष्णको आया हुआ देख प्रेमसे आतुर हो उठा है ॥ २५ ॥ श्रीकृष्णने मस्तकपर अञ्जलि बाँधे पिता

श्रीनन्दराजस्तनयं चिरागतं प्रगृह्य दोर्भ्यां हृदये निधाय तम् ।
संस्नापयामास सुनेत्रजैर्जलैर्यशोदया प्राप्तमनोरथश्चिरात् ॥२७॥
नन्दोपनन्दान्वृषभानुवृद्धान् सर्वान्नमस्कृत्य च तत्कृताशीः ।
तथा वयस्यैश्च परस्परं वा लघूंश्च हस्तग्रहणैः स्थितोऽभूत् ॥२८॥
ततः समारुह्य रथं हरिः स्वयं निधाय नंदं च गजे यशोदया ।
नंदोपनंदैः सहितो गवां गणैः श्रीनंदराजस्य पुरं विवेश सः ॥२९॥
तदैव देवाः किल पुष्पवर्षामाचारलाजान्पुरगोपिकाश्च ।
प्रचक्रिरे तत्र जयेति मङ्गलं शब्दं च गोपा गृहमागते हरौ ॥३०॥
धन्यः सखा ते परमुद्धवोऽयमनेन साक्षात्किल दर्शितोऽत्र ।
त्वं जीवनं गोपजनस्य गोपा ऊचुर्गिरा गद्गदयेदमार्ताः ॥३१॥
इदं मया ते कथितं नृपेश पुनर्व्रजे ह्यागमनं हरेश्च ।
किमिच्छसि श्रोतुमथो सुरासुरैः परं चरित्रं शुभदं विचित्रम् ॥३२॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीमथुराखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीकृष्णागमनोत्सवो नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥



अथ विंशोऽध्यायः

(श्रीकृष्णका कदली-वनमें श्रीराधा और गोपियोंके साथ मिलना)

बहुलाश्व उवाच

अग्रे चकार किं साक्षाद्भगवान्व्रजमण्डले । राधायै गोपिकाभ्यश्च कथंस्विद्दर्शनं ददौ ॥ १ ॥
गोपीमनोरथं कृत्वा मथुरामाजगाम ह । एतन्मे ब्रूहि विप्रेंद्र त्वं परावरवित्तमः ॥ २ ॥

श्रीनारद उवाच

संध्यायां राधयाऽऽहूतः श्रीकृष्णो भगवान्स्वयम् । एकांते शीतलं शश्वज्जगाम कदलीवनम् ॥ ३ ॥

श्रीनन्दराजको और मैया यशोदाको प्रणाम किया ॥ २६ ॥ बहुत दिनोंके बाद आये हुए अपने पुत्रको दोनों भुजाओंमें भरकर और हृदयसे लगाकर श्रीनन्दराजने अपने-अपने नेत्र-जलसे उनको नहला दिया। यशोदासहित श्रीनन्दका मनोरथ आज चिरकालके बाद पूर्ण हुआ था ॥ २७ ॥ नन्द, उपनन्द और वृषभानु आदि सम्पूर्ण बड़े-बड़े बूढ़े गोपोंको प्रणाम करके, उनके आशीर्वाद ले श्रीकृष्ण समवयस्क मित्रोंसे परस्पर गले मिले और अपने छोटे सखाओंका हाथ पकड़कर उनके साथ बैठे ॥ २८ ॥ तदनन्तर श्रीहरि यशोदासहित नन्दको हाथीपर चढ़ाकर स्वयं रथपर बैठे और नन्द-उपनन्द तथा गो-समुदायके साथ श्रीनन्दराजके नगरमें प्रविष्ट हुए ॥ २९ ॥ उस समय देवताओंने उनपर फूलोंकी वर्षा की और पुरवासिनी गोपाङ्गनाओंने आचार-प्राप्त लावा (खील) बिखेरे। श्रीहरिके घर पधारनेपर गोपोंने वहाँ 'जय हो, जय हो'—ऐसे माङ्गलिक शब्दका बारंबार उच्चारण किया ॥ ३० ॥ उस समय आर्त गोपगण गद्गद वाणीमें कहने लगे—'लाला ! तुम्हारा यह सखा उद्धव परम धन्य है; क्योंकि इसने गोपजनोंके जीवनभूत साक्षात् तुम्हारा दर्शन करा दिया' ॥३१॥ हे नृपेश्वर ! इस प्रकार मैंने श्रीहरिके व्रजमें पुनरागमनका वृत्तान्त तुमको कह सुनाया, अब और क्या सुनना चाहते हो ? श्रीहरिका यह विचित्र चरित्र देवताओं और असुरोंके लिये भी परम कल्याणप्रद है ॥ ३२ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां मथुराखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

बहुलाश्वने पूछा—हे मुने ! साक्षात् भगवान्ने व्रजमण्डलमें पधारकर आगे कौन-सा कार्य किया ? श्रीराधा तथा गोपाङ्गनाओंको किस प्रकार दर्शन दिया ? गोपियोंके मनोरथ पूर्ण करके वे पुनः मथुरामें

स्फारस्फुरन्मेघगृहं रंभाचन्दनचर्चितम् । कृष्णामरुत्सीकरं च सुधारश्मिगलत्सुधम् ॥ ४ ॥
एतादृशं वनं राधा वियोगानलवर्चसा । भस्मीभूतं हि सततं कृष्णाशा तां हि रक्षति ॥ ५ ॥
तत्रैव सर्वे गोपीनां शतयूथाः समागताः । तस्यै निवेदनं चक्रुर्माधवागमनस्य हि ॥ ६ ॥
उत्थाय सहसा साक्षाद्वृषभानुवरात्मजा । आनेतुमाययौ कृष्णं सखीभिः परिवारिता ॥ ७ ॥
ददावासनपाद्यार्घानुपचारान्मनोहरान् । वदंती सादरं वाक्यं कुशलं कुशलाधिका ॥ ८ ॥
युवकंदर्पकोटीनां माधुर्य्यहारिणं हरिम् । दृष्ट्वा राधा जहौ दुःखं ब्रह्म ज्ञात्वा गुणं यथा ॥ ९ ॥
प्रसन्ना तत्र शृङ्गारमकरोत्कीर्तिनंदिनी । तया नोऽकारि शृङ्गारः पांथे कृष्णे गते सति ॥१०॥
न चन्दनं च तांबूलं भोजनं च सुधासमम् । न कृतं दिव्यशयनं हास्यं वा न कृतं क्वचित् ॥११॥
परिपूर्णतमं कृष्णं परिपूर्णतमप्रिया । आनंदाश्रूणि मुंचंती प्राह गद्गदया गिरा ॥१२॥

राधोवाच

कियद्दूरे यदुपुरी नागतं किं करोपि हि । किं वदेऽहं रहो दुःखं भवतोऽशेषसाक्षिणः ॥१३॥
सौदासराजमहिषी दमयंती च मैथिली । नास्त्यत्र कां पुरस्कृत्य वदेऽहं विरहं रिपुम् ॥१४॥
मत्समानाश्रया गोप्यो गदितुं न क्षमाः क्वचित् । शरच्चन्द्रचकोरीव मयूरीव घनं नवम् ॥१५॥
श्रीवृन्दावनचंद्रं त्वां घनश्यामं समुत्सहे । तत्र सख्योद्धवेनाशु धन्येन त्वं प्रदर्शितः ॥
अन्यः कोऽपि व्रजे नास्ति यस्य प्रेम्णा त्वमागतः ॥१६॥

श्रीनारद उवाच

एवं वदंतीं सततं रुदंतीं परां प्रियां वीक्ष्य घृणातुराङ्गः ।
आश्वासयामास नयेन सद्यः प्रगृह्य दोर्भ्यां स्रवदंबुनेत्रः ॥१७॥

श्रीभगवानुवाच

मा शोकं कुरु राधे त्वं त्वत्प्रीत्याऽहं समागतः । आवयोर्भेदरहितं तेजश्चैकं द्विधा जनैः ॥१८॥
यथा हि दुग्धधावल्ये तथावां सर्वदा शुभे । यत्राहं त्वं सदा तत्र विश्लेषो न हि चावयोः ॥१९॥
पूर्णं ब्रह्म परं चाहं तटस्था त्वं जगत्प्रसूः । विश्लेष आवयोर्मध्ये मृषा ज्ञानेन पश्य सत् ॥२०॥
यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् । तथा जलं सूक्ष्मरूपं तेजो व्याप्तं यथैधसि ॥२१॥
अन्तर्बहिर्यथा पृथ्वी पृथग्भूता वरानने । तथा विकाररहितो मलवत्त्रिगुणैरहम् ॥२२॥
तथा त्वं पश्य मद्भावं सदानंदो भवेत्ततः । अहं ममेति भावेन द्वितीयोऽस्ति वरानने ॥२३॥

यावद्घनो मध्यगतस्तदुत्थितः स्वं रूपमर्कं न हि दृक् प्रपश्यति ।
तावत्परात्मानमसौ प्रधानजैर्गुणैस्तथा तेषु गतेषु पश्यति ॥२४॥
गुणेषु सक्तं किल बन्धनाय रक्तं मनः पुंसि च मुक्तये स्यात् ।
मनो द्वयोः कारणमाहुराराज्जित्वाऽथ तत्कौ विचरेदसङ्गः ॥२५॥
सर्वं हि भावं मनसः परस्परं न ह्येकतो भामिनि जायते ततः ।
प्रेमैव कर्तव्यमतो मयि स्वतः प्रेम्णा समानं भुवि नास्ति किंचित् ॥२६॥

श्रीनारद उवाच

इति वाक्यं हरेः श्रुत्वा प्रसन्ना कीर्तिनंदिनी । गोपिकाभिः समं कृष्णं पूजयामास माधवम् ॥२७॥

ऐसा नहीं हैं, जिसके प्रेमसे तुम यहाँ आते ॥१५॥१६॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! इस प्रकार कहती और निरन्तर रोती हुई श्रेष्ठ लक्ष्मीरूपा श्रीराधाको देखकर श्यामसुन्दरका अङ्ग-अंग करुणासे विह्वल हो गया। उनके नेत्रोंसे भी अश्रु झरने लगे। उन्होंने तत्काल दोनों हाथोंसे खींचकर प्रियतमाको हृदयसे लगा लिया और नीतियुक्त वचनोंसे उन्हें धीरज बँधाया ॥ १७ ॥ श्रीभगवान् बोले—हे राधे ! शोक न करो, मैं तुम्हारे प्रेमसे ही यहाँ आया हूँ। हम दोनोंका तेज भेदरहित एवं एक है। लोगोंने इसे दो मान रक्खा है ॥ १८ ॥ हे शुभे ! जैसे दूध और उसकी धवलता एक हैं, उसी प्रकार सदा हम दोनों एक हैं। जहाँ मैं हूँ, वहाँ तुम विराजमान हो। हम दोनोंका वियोग कभी होता ही नहीं ॥१९॥ मैं पूर्णब्रह्म हूँ और तुम जगन्माता तटस्था शक्ति हो। हम दोनोंके बीचमें वियोगकी कल्पना मिथ्या ज्ञानके कारण है, तुम इसे समझो ॥२०॥ हे वरानने ! जैसे आकाशमें नित्य विराजमान महान् वायु सर्वत्र व्यापक है, जैसे जल सूक्ष्मरूपसे सर्वत्र व्याप्त है, जैसे काष्टमें अग्नि व्याप्त रहती है और जैसे भीतर और बाहर स्थित यह पृथग्भूता पृथ्वी परमाणुरूपसे सर्वत्र व्याप्त है, उसी प्रकार मैं निर्विकारभावसे सर्वत्र विद्यमान हूँ। जैसे जल विविध रंगोंसे युक्त होनेपर भी उनसे पृथक् है, उसी प्रकार मैं त्रिगुणात्मक भावोंके सम्पर्कमें रहकर भी उनसे सर्वथा असम्पृक्त हूँ ॥२१॥२२॥ इसी प्रकार तुम मेरे स्वरूपको देखो और समझो; इससे सदा आनन्द बना रहेगा। हे सुमुखि ! 'मैं' और 'मेरा'—इन दो भावोंके करण द्वैतकी कल्पना होती है ॥ २३ ॥ जबतक सूर्यसे ही उत्पन्न हुआ मेघ सूर्य और दृष्टिके बीचमें विद्यमान है, तबतक दृष्टि अपने ही स्वरूपभूत सूर्यका दर्शन नहीं कर पाती। इसी-प्रकार जबतक प्राकृत गुण व्यवधान बनकर खड़े हैं, तबतक जीवात्मा अपने ही स्वरूपभूत परमात्माको नहीं देख पाता। सत्त्वादि तीनों गुणों का आवरण दूर होनेपर ही वह परमात्माका साक्षात्कार कर पाता है ॥ २४॥ यदि मन गुणों (विषयों) में आसक्त है तो वह बन्धनकारक होता है, और यदि परम पुरुष परमात्मामें संलग्न है तो मोक्षकी प्राप्ति करानेवाला हो जाता है। इस प्रकार मनको बन्धन और मोक्ष—दोनोंका कारण बताया गया है। उस मनको जीतकर पृथ्वीपर असङ्ग होकर विचरे ॥ २५ ॥ हे भामिनि ! लोकमें मनका सम्पूर्णभाव (सम्बन्ध)

अथ रात्र्यां हरिः साक्षात्कार्तिक्यां रासमंडले । गत्वा ननाद मुरलीं गोपीभी राधया सह ॥२८॥
यमुनानिकटे राजन् राधया राधिकापतिः । रामाभिः सुन्दरीभिश्च रासरङ्गे रराज ह ॥२९॥
यावतीर्गोपिका रासे तावद्रूपधरो हरिः । रेमे वृंदावने दिव्ये हरिर्वृन्दावनेश्वरः ॥३०॥
क्वणन्नूपुरमञ्जीरो वनमालाविराजितः । पीतांबरः पद्मधारी प्रभातार्ककिरीटधृक् ॥३१॥
विद्युल्लतास्फुरत्प्रोद्यद्धेमकुण्डलमण्डितः । वेत्रभृद्वादयन्वंशीं नटवेषो घनद्युतिः ॥३२॥
स्फुरत्कौस्तुभरत्नाढ्यः प्रचलत्स्निग्धकुण्डलः । रराज राधया रासे यथा रत्या रतीश्वरः ॥३३॥
शच्या शक्रो यथा स्वर्गे घनश्चंचलया यथा । वृन्दया वृन्दकारण्ये तथा वृन्दावनेश्वरः ॥३४॥
वृन्दावनं च पुलिनं वनान्युपवनानि च । पश्यन् गोपीगणैः सार्द्धं गिरिं गोवर्धनं ययौ ॥३५॥
गोपीनां शतयूथानां मानं वीक्ष्य व्रजेश्वरः । भगवान् राधया सार्द्धं तत्रैवांतरधीयत ॥३६॥
अथ गोवर्द्धनाद्दूरे सुन्दरं योजनत्रयम् । श्रीखण्डगंधसंयुक्तं स ययौ रोहिताचलम् ॥३७॥
लताकुञ्जनिकुञ्जाश्च पश्यञ्जल्पंस्तया सह । विचचार गिरौ रम्ये काञ्चनीलतिकालये ॥३८॥
तत्र देवसरो रम्यं बद्रिनाथेन निर्मितम् । पाठीनकूर्मनक्रादिहंससारससंकुलम् ॥३९॥
सहस्रदलपद्मैश्च मण्डितं तदितस्ततः । भ्रमरध्वनिसंयुक्तं पुंस्कोकिलरुतव्रतम् ॥४०॥
विकसत्पद्मगंधाढ्यं तत्तीरं मन्दमारुतम् । रमया राधया सार्द्धं माधवो निषसाद ह ॥४१॥
तत्तीरं प्रतपस्यंतं ऋभुं नाम महामुनिम् । पदैकेन स्थितं शश्वच्छ्रीकृष्णध्यानतत्परम् ॥४२॥

षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च । निरन्नं निर्जलं शांतं श्रीकृष्णस्तं ददर्श ह ॥४३॥
पप्रच्छ वीक्ष्य तं राधा हसन्ती प्राह माधवम् । माहात्म्यं कुरु भक्तोऽयं पश्य भक्ति महामुनेः ॥४४॥
हे ऋभो इति कृष्णेन प्रोक्तमुच्चैर्वचः शुभम् । न श्रुतं तेन किञ्चिद्वा चरमं प्रापितेन वै ॥४५॥
हरिस्तदा तद्धृदयाद्भृवाशु तिरोहितः । ध्यानाद्धृतं हरिं वीक्ष्य मुनीन्द्रश्चातिविस्मितः ॥४६॥
नेत्रे उन्मील्य ददृशे श्रीकृष्णं राधयाऽऽगतम् । घनं चञ्चलयेवाढ्यं रञ्जयन्तं दिशो दश ॥४७॥

उत्थाय सद्यो हरिभक्तितत्परः प्रदक्षिणीकृत्य हरिं सराधिकम् ।
प्रणम्य मूर्ध्ना निपपात पादयोरुवाच कृष्णं बहुगद्गदाक्षरः ॥४८॥

श्रीऋभुरुवाच

नमः कृष्णाय कृष्णायै राधायै माधवाय च । परिपूर्णतमायै च परिपूर्णतमाय च ॥४९॥
घनश्यामाय देवाय श्यामायै सततं नमः । रासेश्वराय सततं रासेश्वर्यै नमो नमः ॥५०॥
गोलोकातीतलीलाय लीलावत्यै नमो नमः । असंख्यांडाधिदेव्यै चासंख्यांडनिधये नमः ॥५१॥

भूभारहाराय भुवं गताभ्यां मच्छांतये चात्र समागताभ्याम् ।
परस्परं संश्रितविग्रहाभ्यां नमो युवाभ्यां हरिराधिकाभ्याम् ॥५२॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा कृष्णपादाब्जे प्रस्रवत्पद्मलोचनः । प्रेमानन्दसमायुक्तो जहौ प्राणान्महामुनिः ॥५३॥
तदैव निर्गतं ज्योतिर्दशसूर्यसमप्रभम् । परिभ्रमद्दशदिशः श्रीकृष्णे लीनतां गतम् ॥५४॥
भक्तस्य भक्तिं श्रीकृष्णो वीक्ष्य वै प्रेमलक्षणाम् । आनंदाश्रुकलां मुंचन् प्रेम्णा तं चाजुहाव ह ॥५५॥

साथ माधव उस सरोवरके किनारे बैठ गये ॥ ४१ ॥ उसी सरोवरके कूलपर महामुनि ऋभु एक पैरसे खड़े होकर तपस्या कर रहे थे और निरन्तर श्रीकृष्णके चिन्तनमें तत्पर थे ॥ ४२ ॥ साठ हजार साठ सौ वर्षोंसे वे निराहार और निर्जल रहकर शान्तभावसे तपस्यामें लगे थे। श्रीकृष्णने उन्हें देखा ॥ ४३ ॥ राधाने उन्हें देखकर मुस्कराते हुए पूछा—'ये कौन हैं ?' माधव बोले—'हे प्रिये ! इनका माहात्म्य बढ़ाओ। ये भक्त हैं। इन महामुनिकी भक्ति देखो।' ॥ ४४ ॥ यह कहकर श्रीकृष्णने 'हे ऋभो !' यह नाम लेकर उच्चस्वरसे पुकारा। किंतु उन्होंने उनका वह शुभ वचन नहीं सुना; क्योंकि वे ध्यानकी चरमावस्था (समाधि) में पहुँच गये थे। ॥ ४५ ॥ तब श्रीहरि उस समय मुनिके हृदयसे तत्काल तिरोहित हो गये। श्रीहरिको ध्यानसे निर्गत होनेके कारण न देखकर मुनीन्द्र ऋभु अत्यन्त विस्मित हो गये ॥ ४६ ॥ फिर तो उन्होंने आँखें खोल दीं और अपने सामने चपलाके साथ मेघकी भाँति राधाके साथ श्रीकृष्णको देखा, जो अपनी प्रभासे दसों दिशाओंको अनुरञ्जित—प्रकाशित कर रहे थे ॥ ४७ ॥ यह देख वे हरिभक्तिपरायण महात्मा शीघ्र उठे और राधासहित श्रीहरिकी परिक्रमा करके, मस्तक झुकाकर प्रणाम करते हुए उनके चरणोंमें गिर पड़े। फिर अत्यन्त गद्गद वाणीमें श्रीकृष्णसे बोले ॥४८॥ श्रीऋभुने कहा—श्रीकृष्ण और कृष्णाको नमस्कार है। श्रीराधा और माधवको नमस्कार है। परिपूर्णतमा और परिपूर्णतमको नमस्कार है ॥४९॥ देव घनश्याम और श्यामाको सदा नमस्कार है। रासेश्वर तथा रासेश्वरीको नित्य-निरन्तर बारंबार नमस्कार है ॥ ५० ॥ गोलोकातीत लीलावाले श्रीकृष्णको तथा लीलावती श्रीराधाको बारंबार नमस्कार है। असंख्य ब्रह्माण्डोंकी अधिदेवी तथा असंख्य ब्रह्माण्डोंके निधिको नमस्कार है ॥ ५१ ॥ आप दोनों भूभार-हरण करनेके लिये इस भूतलपर अवतीर्ण हुए हैं और मुझे शान्ति प्रदान करनेके लिये यहाँ पधारे हैं। परस्पर संयुक्त विग्रहवाले आप दोनों श्रीराधा और श्रीहरिको मेरा नमस्कार है ॥ ५२ ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! यों कहकर श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंमें नेत्रोंसे प्रेमाश्रुकी वर्षा करते हुए प्रेमानन्दनिमग्न महामुनि ऋभुने अपने प्राण त्याग दिये ॥ ५३ ॥ उसी समय उनके शरीरसे दस सूर्योंके समान दीप्तिमती ज्योति निकली और दसों दिशाओंमें घूमती हुई श्रीकृष्णमें लीन हो गयी ॥ ५४ ॥ अपने भक्तकी यह प्रेमलक्षणा भक्ति देखकर श्रीकृष्णने अपने नेत्रोंसे आनन्दके अश्रु बहाते हुए बड़े

पुनः श्रीकृष्णपादाब्जात्कृष्णसारूप्यवान्मुनिः । निर्गतः कोटिकंदर्पसन्निभोऽतिनताननः ॥५६॥
दोर्भ्यां प्रगृह्य हृदये तं निधाय कृपाकरः । आश्वास्य कल्याणकरं करं दिव्यं दधार ह ॥५७॥
प्रदक्षिणीकृत्य हरिं च राधिकां प्रणम्य चारुह्य रथं मनोहरम् ।
गोलोकलोकं प्रययावृभुर्मुनिर्विरञ्जयन्मैथिल मण्डलं दिशाम् ॥५८॥
श्रीराधिका विस्मयमागता भृशं दृष्ट्वा परां भुक्तिमृभोर्महामुनेः ।
आनन्दवारीणि विमुञ्चती चिरं जगाद कृष्णं वृषभानुनंदिनी ॥५९॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीमथुराखंडे नारदबहुलाश्वसंवादे रासोत्सवे ऋभुमोक्षो नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

अथ एकविंशोऽध्यायः

(श्रीकृष्णकी द्रवरूपताके प्रसङ्गमें नारदजीका उपाख्यान)

श्रीराधोवाच

धन्योऽयं मुनिशार्दूलस्त्वद्भक्तः प्रेमवान्महान् । त्वत्सारूप्यं जगामासौ त्वमप्यश्रुमुखो यतः ॥ १ ॥
अस्य देहक्रियां कर्तुं योग्योऽसि वृजिनार्दन । तपसा चास्य देहोऽयं प्रस्फुरत्यमलाकृतिः ॥ २ ॥

श्रीनारद उवाच

वदंत्यां तत्र राधायां तद्देहोऽप्यभवत्सरित् । वहंती पापहंत्री च दृश्यते रोहिते गिरौ ॥ ३ ॥
तद्देहस्यापि सरितं वीक्ष्य राधाऽतिविस्मिता । नन्दराजात्मजं प्राह वृषभानुवरात्मजा ॥ ४ ॥

श्रीराधोवाच

कथं जलत्वमापन्नो देहोऽयं वै महामुनेः । एतन्मे संशयं देव छेत्तुमर्हस्यशेषतः ॥ ५ ॥

श्रीभगवानुवाच

प्रेमलक्षणया भक्त्या संयुतोऽयं मुनीश्वरः । तस्मादस्य तु देहोऽयं रम्भोरु द्रवतां गतः ॥ ६ ॥

प्रेमसे उनका नाम लेकर पुकारा ॥ ५५ ॥ तब श्रीकृष्णका-सा रूप धारण किये वे मुनि श्रीकृष्णके चरण-कमलसे पुनः प्रकट हुए । उस समय उनका सौन्दर्य कोटि-कोटि कंदर्पोंको तिरस्कृत कर रहा था और वे विनय-से सिर झुकाये हुए खड़े थे ॥ ५६ ॥ करुणानिधि श्रीकृष्णने उन्हें भुजाओंमें भरकर हृदयसे लगा लिया और आश्वासन देकर अपना दिव्य कल्याणकारी हाथ उनके मस्तकपर रक्खा ॥ ५७ ॥ हे मिथिलेश्वर ! तत्पश्चात् श्रीकृष्ण और श्रीराधाकी परिक्रमा करके, उन्हें प्रणाम कर, मुनिवर ऋभु एक मनोहर विमानपर आरूढ़ हो, अपने तेजसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करते हुए, गोलोकधामको चले गये ॥ ५८ ॥ महामुनि ऋभुकी यह परा भक्ति देखकर वृषभानुनन्दिनी श्रीराधिकाको बड़ा विस्मय हुआ । वे बहुत देरतक आनन्दके आँसू बहाती रहीं । फिर श्रीकृष्णसे बोलीं ॥ ५९ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां मथुराखंडे 'प्रियंवदा'भाषा-टीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

राधाने कहा—हे माधव ! ये मुनिश्रेष्ठ धन्य हैं, जो तुम्हारे इतने बड़े भक्त और महान् प्रेमी थे । इन्होंने तुम्हारा सारूप्य प्राप्त कर लिया और तुम भी इनके लिये आँसू बहाते रहे । हे पापनाशन ! अब तुम्हें इनके शरीरका दाहसंस्कार भी करना चाहिये । इनका यह शरीर तपस्याके प्रभावसे अभीतक निर्मल आकारमें प्रकाशित हो रहा है ॥१॥२॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! वहाँ श्रीराधा इस प्रकार कह ही रहीं थीं कि मुनिका शरीर एक नदीके रूपमें परिणत हो गया । रोहिताचलपर बहती हुई वह पापनाशिनी नदी आज भी देखी जाती है । उनके शरीरको नदीके रूपमें परिणत देख राधाको और भी अधिक विस्मय हुआ । तब वे वृषभानुनन्दिनी नन्दराजकुमारसे इस प्रकार बोलीं ॥ ३ ॥ ४ ॥ राधाने कहा—हे श्यामसुन्दर ! इन महामुनिका यह शरीर जलरूपमें कैसे परिणत हो गया ? हे देव ! मेरे इस संशयको तुम पूर्णरूपसे मिटा

दृष्ट्वा त्वया मां वरदं हर्षितोऽभून्महामुनिः । जलत्वं प्राप तद्देहो यथाऽहं द्रवतां पुरा ॥ ७ ॥

श्रीराधोवाच

द्रवतां त्वं कथं प्राप्तो देवदेव दयानिधे । एतच्चित्रं हि मे जातं सर्वं त्वं वद विस्तरात् ॥ ८ ॥

श्रीभगवानुवाच

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । यस्य श्रवणमात्रेण पापहानिः परं भवेत् ॥ ९ ॥
यन्नाभिपङ्कजाज्जातः पुरा ब्रह्मा प्रजापतिः । असृजत्प्रकृतिं शश्वत्तपसा मद्वरोर्जितः ॥१०॥
उत्सङ्गान्नारदो जज्ञे ब्रह्मणः सृजतः शुभः । भक्त्युन्मत्तो मत्पदानि निजगौ पर्यटन्महीम् ॥११॥
एकदा नारदं प्राह देवो ब्रह्मा प्रजापतिः । प्रजाः सृज महाबुद्धे वृथा चंक्रमणं त्यज ॥१२॥
नारदस्तद्वचः श्रुत्वा प्राहेदं ज्ञानतत्परः । न सृजामि पितः सृष्टिं शोकमोहादिकारिणीम् १३॥
करिष्यामि हरेर्भक्तिं तत्कीर्त्तनसमन्विताम् । त्वमपि सृष्टिरचनां त्यज दुःखातुरो भृशम् ॥१४॥
क्रुद्धः शशाप तं ब्रह्मा प्राह प्रस्फुरिताधरः । सदा गानपरः कल्पं गन्धर्वो भव दुर्मते ॥१५॥
एवं तच्छापतो राधे गन्धर्व उपबर्हणः । बभूव गन्धर्वपतिः कल्पमात्रं सुरालये ॥१६॥
एकदा ब्रह्मणो लोके स्त्रीभिः परिवृतो गतः । सुन्दरीषु मनः कृत्वा जगौ तालविवर्जितम् ॥१७॥
पुनर्ब्रह्मा तं शशाप त्वं शूद्रो भव दुर्मते । अथासौ ब्रह्मशापेन दासीपुत्रो बभूव ह ॥१८॥
सत्संगेन पुरा राधे प्राप्तोऽभूद्ब्रह्मपुत्रताम् । भक्त्युन्मत्तो मत्पदानि निजगौ पर्यटन्महीम् ॥१९॥
मुनीन्द्रो वैष्णवश्रेष्ठो मत्प्रियो ज्ञानभास्करः । परं भागवतः साक्षान्नारदो मन्मनाः सदा ॥२०॥
एकदा नारदो लोकान् पश्यन् वै गानतत्परः । इलावृतं नाम खंडं गतवान्सर्वतो गतिः ॥२१॥

दो ॥ ५ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा—हे रम्भोरु ! ये मुनीश्वर प्रेमलक्षणा-भक्तिसे संयुक्त थे, इसीलिये इनका यह शरीर द्रवभावको प्राप्त हुआ है। तुम्हारे साथ मुझे वर देनेके लिये आया देख मुनि अत्यन्त हर्षित हुए थे, इसीलिये इनका कलेवर उसी प्रकार जलरूपमें परिणत हो गया, जैसे मैं पहले द्रवभावको प्राप्त हुआ था ॥६॥७॥ श्रीराधाने पूछा—हे देवदेव ! हे दयानिधे ! तुम कैसे द्रवभावको प्राप्त हुए थे ? यह बात मुझे बड़ी विचित्र लग रही है, तुम विस्तारसे सब बताओ ॥ ८ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा—इस विषयमें जानकार लोग इस प्राचीन इतिहासको सुनाया करते हैं, जिसके श्रवणमात्रसे पापोंका पूर्णतया नाश हो जाता है ॥ ९ ॥ पूर्वकालमें प्रजापति ब्रह्मा मेरे नाभि कमलसे प्रकट हो प्राकृत जगत्‌की सृष्टि करने लगे। वे अपनी तपस्या और मेरे वरदानसे बड़े शक्तिशाली रहे ॥ १० ॥ एक समय सृष्टिकर्ता ब्रह्माकी गोदसे सुन्दर पुत्र नारदजीका जन्म हुआ। वे मेरी भक्तिसे उन्मत्त होकर भूमण्डलपर भ्रमण करते हुए मेरे नाम-पदोंका कीर्तन करने लगे ॥ ११ ॥ एक दिन प्रजापति ब्रह्मदेवने नारदजीसे कहा—'हे महामते ! यह व्यर्थ घूमना छोड़ो और प्रजाकी सृष्टि करो।' ॥ १२ ॥ उनकी बात सुनकर ज्ञानमार्ग-परायण नारदने इस प्रकार कहा—'पिताजी ! सृष्टि मैं नहीं करूँगा; क्योंकि वह शोक-मोह पैदा करनेवाली है ॥ १३ ॥ मैं तो श्रीहरिके नामोंका कीर्तन और उनकी भक्ति करूँगा। आप भी इस सृष्टिव्यापारमें लगकर दुःखसे अत्यन्त आतुर रहते हैं, अतः आप भी सृष्टि-रचना छोड़ दीजिये' ॥ १४ ॥ यह सुनकर ब्रह्माजीके अधर क्रोधसे फड़कने लगे। उन्होंने कुपित हो शाप देते हुए कहा—'हे दुर्मते ! तुम एक कल्पतक सदा गाने-बजानेमें ही लगे रहनेवाले गन्धर्व हो जाओ ॥१५॥ हे राधे ! इस प्रकार ब्रह्माके शापसे नारदजी उपबर्हण नामक गन्धर्व हो गये। वे एक कल्पतक देवलोकमें गन्धर्वराजके पदपर प्रतिष्ठित रहे ॥ १६ ॥ एक दिन स्त्रियोंसे घिरे हुए वे ब्रह्माजीके लोकमें गये। वहाँ सुन्दरियोंमें मन लगा रहनेके कारण उन्होंने बेताला गीत गाया ॥ १७ ॥ तब ब्रह्माने पुनः शाप दे दिया—'अरे दुर्मते ! तू शूद्र हो जा।' इस प्रकार ब्रह्माजीके शापसे वे दासीपुत्र हो गये ॥१८॥ हे राधे ! फिर सत्सङ्गके प्रभावसे नारदजी ब्रह्मपुत्रता को प्राप्त हुए। तदनन्तर पुनः भक्तिभावसे उन्मत्त हो भूतलपर विचरते हुए वे मेरे पदोंका गान एवं कीर्तन करने लगे ॥ १९ ॥ मुनीन्द्र नारद वैष्णवोंमें श्रेष्ठ, मेरे प्रिय तथा ज्ञानके सूर्य हैं। वे परम भागवत हैं और सदा मुझमें ही मन लगाये रहते हैं ॥ २० ॥ एक दिन विभिन्न

यत्र जंबूनदी श्यामा जंबूफलरसोद्भवा । तथा जांबूनदं नाम सुवर्णं भवति प्रिये ॥२२॥
तद्देशे वेदनगरं रत्नप्रासादनिर्मितम् । ददर्श नारदो योगी दिव्यनारीनरैर्वृतम् ॥२३॥
कांश्चिद्वै पादरहितान्विगुल्फाञ्जानुवर्जितान् । विजंघाञ्जघनव्यंगान् कृशोरून्कुब्जमध्यकान् २४॥
श्लथदंतोन्नतस्कंधान्नताननविकंधरान् । स्त्रीजनान्पुरुषांश्चासावंगभंगान्ददर्श ह ॥२५॥
अहो किमेतच्चित्रं हि सर्वान्दृष्ट्वाऽवदन्मुनिः । सर्वे यूयं पद्ममुखा दिव्यदेहाः शुभाम्बराः ॥२६॥
किं देवा उपदेवा वा यूयं किं ऋषिसत्तमाः । वादित्रसहिताः सर्वे रम्यगानपरायणाः ॥२७॥
अंगभंगाः कथं यूयं वदताशु ममैव हि । इत्युक्तास्तेन ते सर्वे प्रत्यूचुर्दीनमानसाः ॥२८॥

रागा ऊचुः

महादुःखं मुने जातमस्माकं तनुषु स्वतः । तस्याग्रे कथनीयं वै दूरीकर्तुं च यः क्षमः ॥२९॥
रागा वयं वेदपुरे वसामः सर्वदा मुने । अंगभंगा वयं जाताः कारणं शृणु मानद ॥३०॥
जातो हिरण्यगर्भस्य पुत्रो नारदनामभाक् । प्रेमोन्मत्तो विकालेन गायन् ध्रुवपदानि च ॥३१॥
विचचार महीमेतां स्वेच्छया स महामुनिः । विकाले तस्य गानैश्च विस्वरैस्तालवर्जितैः ॥
विगानैश्च वयं सर्वे अंगभंगा बभूविम ॥३२॥
इति श्रुत्वाऽथ तद्वाक्यं नारदो विस्मितोऽभवत् । उवाच गतमानोऽसौ रागान्परिहसन्निव ॥३३॥

मुनिरुवाच

तस्य केन प्रकारेण ज्ञानं वै कालतालयोः । भवेदिह स्वरैर्युक्तं वदताशु ममैव हि ॥३४॥

रागा ऊचुः

वैकुंठस्य पतेः साक्षात् प्रिया मुख्या सरस्वती । कुर्याच्छिक्षां यदा तस्मै तदा स्यात्कालविन्मुनिः ३५॥

लोकोंका दर्शन करते हुए गान-तत्पर नारद, जिनकी सर्वत्र गति है, इलावृतखण्डमें गये। जहाँ हे प्रिये! जम्बूफलके रससे प्रकट हुई श्यामवर्णा जम्बूनदी प्रवाहित होती है तथा जम्बूनद नामक सुवर्ण उत्पन्न होता है ॥२१॥२२॥ उस देशमें रत्नमय प्रासादोंसे युक्त तथा दिव्य नरनारियोंसे भरा हुआ एक 'वेदनगर'—नामक नगर है, जिसे योगी नारदने देखा ॥ २३ ॥ वहाँ कितने ही लोगोंके पैर नहीं थे, गुल्फ नहीं थे और घुटने भी नहीं थे। जङ्घा अथवा जघनभागका भी कितने ही लोगोंके पास अभाव था। वे विकलाङ्ग और कृशोदर थे और कितनोंकी पीठके मध्यभागमें कूवर निकल आयी थी॥ २४ ॥ उनके दाँत गिर गये थे या ढीले हो गये थे, कंधे ऊँचे थे, मुख झुका हुआ था और कितनोंके गर्दन ही नहीं थी। इस प्रकार नारदजीने वहाँकी स्त्रियों और पुरुषोंको अङ्ग-भङ्ग देखा ॥ २५ ॥ उन सबको देखकर मुनिने कहा—'अहो! यह क्या बात है ? यह सब तो विचित्र ही दिखाई देता है। आप सब लोगोंके मुँह कमलके समान हैं, शरीर दिव्य हैं और वस्त्र भी अच्छे हैं ॥ २६ ॥ आपलोग देवता हैं या उपदेवता अथवा कोई ऋषिश्रेष्ठ हैं! आप सब लोग बाजोंके साथ हैं तथा रमणीय गीत गानेमें संलग्न हैं ॥ २७ ॥ आप अङ्ग-भङ्ग कैसे हो गये, यह बात शीघ्र मुझे बताइये।' उनके इस प्रकार पूछनेपर वे सब दीनचित्त होकर बोले ॥ २८ ॥ रागोंने कहा—हे मुने! हमारे शरीरमें स्वतः बड़ा भारी दुःख पैदा हो गया है। परंतु यह सब उनके आगे कहना चाहिये, जो उसे दूर कर सके ॥ २९ ॥ हे महर्षे! हमलोग राग हैं और वेदपुरमें निवास करते हैं। हे मानद! हम अङ्ग-भङ्ग कैसे हो गये, इसका कारण बताते हैं, सुनिये ॥ ३० ॥ हिरण्यगर्भ ब्रह्माजीके एक पुत्र पैदा हुआ है, जिसका नाम है—नारद। वह महामुनि प्रेमसे उन्मत्त होकर वेसमय ध्रुवपद गाता हुआ इस पृथ्वीपर विचरा करता है ॥ ३१ ॥ उसके ताल-स्वरसे रहित असामयिक गानों-विगानोंसे हम सब अंग-भंग हो गये हैं ॥ ३२ ॥ उनकी यह बात सुनकर नारदजीको बड़ा विस्मय हुआ। उनका गर्व गल गया और वे रागोंसे हँसते हुएसे बोले ॥ ३३ ॥ मुनिने कहा—हे रागगण! मुझे शीघ्र बताओ। नारदमुनिको किस प्रकारसे काल और तालका ज्ञान हो सकता है, जिससे वे स्वरयुक्त गीत गा सकें ॥ ३४ ॥ रागोंने कहा—साक्षात् वैकुण्ठ-

तेषां वाक्यं ततः श्रुत्वा नारदो दीनवत्सलः । सरस्वत्याः प्रसादार्थं त्वरं शुभ्रं गिरिं ययौ ॥३६॥
दिव्यवर्षशतं शश्वत्तपस्तेपे सुदुष्करम् । निरन्नं निर्जलं वाणीध्यानयुक्तं व्रजेश्वरि ॥३७॥
शुभ्रं नाम विसृज्याथ पवित्रीकृतभूधरम् । नारदो नाम शैलोऽभूत्तपसा नारदस्य च ॥३८॥
तपोऽन्ते आगतां साक्षाद्वाग्देवीं श्रीसरस्वतीम् । विष्णोः प्रियां दिव्यवर्णामपश्यन्नारदो मुनिः ॥३९॥
सहसोत्थाय तां नत्वा परिक्रम्य नताननः । तद्रूपगुणमाधुर्यस्तुतिं चक्रे मुनीश्वरः ॥४०॥

श्रीनारद उवाच

नवार्कबिंबद्युतिमुद्गलज्ज्वलत्ताटंककेयूरकिरीटकंकणाम् ।
स्फुरत्क्वणन्नुपूरावरंजितां नमामि कोटींदुमुखीं सरस्वतीम् ॥४१॥
वंदे सदाऽहं कलहंस उद्गते चलत्पदे चंचलचंचुसंपुटे ।
निर्धौतमुक्ताफलहारसंचयं संधारयंतीं सुभगां सरस्वतीम् ॥४२॥
वराभयं पुस्तकवल्लकीयुतं परं दधानां विमले करद्वये ।
नमाम्यहं त्वां शुभदां सरस्वतीं जगन्मयीं ब्रह्ममयीं मनोहराम् ॥४३॥
तरंगितक्षौमसितांबरे परे देहि स्वरज्ञानमतीव मंगले ।
येनाद्वितीयो हि भवेयमक्षरे सर्वोपरि स्यां परराागमंडले ॥४४॥

श्रीभगवानुवाच

स्तोत्रं जाड्यापहं दिव्यं प्रातरुत्थाय यः पठेत् । नारदोक्तं सरस्वत्याः स विद्यावान् भवेदिह ॥४५॥
ततः प्रसन्ना वाग्देवी नारदाय महात्मने । देवदत्तां ददौ वीणां स्वरब्रह्मविभूषिताम् ॥४६॥
रागैश्च रागिणीभिश्च तत्पुत्रैश्च तथैव च । देशकालादिभेदैश्च तालमानस्वरैः सह ॥४७॥

नायकी प्रिय भार्याओंमें मुख्य सरस्वती देवी यदि नारदको संगीतकी शिक्षा दे सकें तो वे मुनि कौन-सा राग किस समय, किस तालस्वरसे गाना चाहिये, इसे जान सकते हैं ॥ ३५ ॥ उनकी यह बात सुनकर दीनवत्सल नारद सरस्वतीका कृपा-प्रसाद प्राप्त करनेके लिये तुरंत ही शुभ्रगिरिपर चले गये ॥ ३६ ॥ वहाँ उन्होंने सौ दिव्य वर्षोंतक निरन्तर अत्यन्त दुष्कर तपस्या की । हे व्रजेश्वरि ! उन्होंने अन्न-जल छोड़कर केवल सरस्वतीके ध्यानमें मन लगा लिया था ॥ ३७ ॥ नारदजीकी तपस्यासे वह पर्वत अपना 'शुभ्र' नाम छोड़कर 'नारदगिरि' के नामसे प्रख्यात हो गया । वह सारा पर्वत उनकी तपस्यासे पवित्र हो गया ॥ ३८ ॥ तपस्याका पर्यवसान होनेपर साक्षात् वाग्देवता विष्णुप्रिया श्रीसरस्वती वहाँ आयीं । नारदजीने उन दिव्यवर्णा देवीको देखा ॥ ३९ ॥ देखकर वे सहसा उठ खड़े हुए और उन्हें नमस्कार करके परिक्रमापूर्वक नतमस्तक हो, वे मुनीश्वर सरस्वती देवीके रूप, गुण और माधुर्यकी स्तुति करने लगे ॥ ४० ॥ नारदजी बोले—नवीन सूर्यके बिम्बकी द्युतिको उगलने और हिलनेवाले रत्नमय कर्णफूल, केयूर, किरीट और कङ्कण जिनकी शोभा बढ़ाते हैं तथा जो चमकते और झनकारते हुए नूपुरोंके शिञ्जन-रवसे रञ्जित होती हैं, उन कोटि चन्द्रमाओंसे अधिक उज्ज्वल मुखवाली सरस्वती देवीको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ४१ ॥ जो चञ्चल चरण और चञ्चुपुटवाले उड़ते हुए कलहंसपर विराजमान होतीं तथा निर्मल मुक्ताफलोंके अनेक हार धारण करती हैं, उन सौभाग्यशालिनी सरस्वती देवीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४२ ॥ जो अपने दोनों पार्श्वके दो-दो निर्मल हाथोंमें क्रमशः वर, अभय, पुस्तक और उत्तम वीणा धारण करती हैं, उन जगन्मयी, ब्रह्ममयी, शुभदा एवं मनोहरा सरस्वती देवीको नमस्कार करता हूँ ॥ ४३ ॥ श्वेतवर्णकी लहरदार साड़ी पहननेवाली अतीव मंगलस्वरूपे हे सरस्वती ! मुझे स्वर-तालका ज्ञान प्रदान कीजिये, जिससे मैं अविनाशी एवं सर्वोत्कृष्ट राममंडलमें सर्वोपरि और अद्वितीय संगीतज्ञ हो जाऊँ ॥४४॥ श्रीभगवान कहते हैं—हे श्री राधे ! सरस्वतीका यह नारदोक्त दिव्य स्तोत्र जड़ताका नाश करनेवाला है । जो प्रातःकाल उठकर इसका पाठ करेगा, वह इस लोकमें विद्वान् होगा ॥ ४५ ॥ तब प्रसन्न हुई वाग्देवताने महात्मा नारदको भगवत्प्रदत्त स्वरब्रह्मसे विभूषित एक वीणा प्रदान की ॥ ४६ ॥

षट्पंचाशत्कोटिभेदैरंतर्भेदैरसंख्यकैः । ग्रामैर्नृत्यैः सवादित्रैर्मूर्च्छनासहितैः शुभैः ॥४८॥
वैकुंठस्य पतेः साक्षात्प्रिया मुख्या सरस्वती । स्वरगम्यैः पदैः सिद्धैः पाठयामास नारदम् ॥४९॥
अद्वितीयं रागकरं कृत्वा तं रासमंडले । वैकुंठं प्रययौ राधे वाग्देवी विष्णुवल्लभा ॥५०॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीमथुराखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे नारदोपाख्यानं नामैकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

(नारदका अनेक लोकोंमें होते हुए श्रीकृष्णके समक्ष अपनी कलाका प्रदर्शन)

श्रीभगवानुवाच

कस्मै देयमिदं गुह्यं रागरूपं मनोहरम् । बुद्ध्या विचारयन्नित्थं गंधर्वनगरं ययौ ॥ १ ॥
तुंबुरुं नाम गंधर्वं कृत्वा शिष्यं स नारदः । कलं जगौ मद्गुणांश्च वीणावाद्यपरायणः ॥ २ ॥
केषामग्रे गेयमिदं रागरूपं मनोहरम् । श्रोतुं पात्रं विचिन्वन्स नारदः शक्रमाययौ ॥ ३ ॥
अनिर्वृतं च तं दृष्ट्वा नारदो मुनिसत्तमः । सख्या तुंबुरुणा सार्द्धं सूर्यलोकं जगाम ह ॥ ४ ॥
रथेन तं प्रधावंतं सूर्यं वीक्ष्य महामुनिः । शिवपार्श्वं जगामाशु ततो देवर्षिसत्तमः ॥ ५ ॥
भूतेशं ज्ञानतत्त्वज्ञं ध्यानस्तिमितलोचनम् । वीक्ष्य तं नारदो राधे ब्रह्मलोकं जगाम ह ॥ ६ ॥
सृजंतं सृष्टिरचनां व्यग्रं वीक्ष्य विधिं मुनिः । वैकुंठं प्रययौ विष्णोः सर्वलोकनमस्कृतम् ॥ ७ ॥
भक्तार्थं क्वत्र गच्छंतं भक्तेशं भक्तवत्सलम् । वीक्ष्य तुंबुरुणा सार्द्धं योगींद्रः प्रययौ ततः ॥ ८ ॥
योगीश्वराणां हि सतां त्रिलोक्यामंतरं बहिः । गतिमाहुर्नाप्नुवंति कर्मभिर्वृषभानुजे ॥ ९ ॥
कोटिशो ह्यंडनिचयान्समुल्लंघ्य मुनीश्वरः । गोलोकं परमं धाम प्रययौ प्रकृतेः परम् ॥१०॥

साथ ही राग-रागिनी, उनके पुत्र, देश-कालादिकृत भेद तथा ताल, लय और स्वरोंका ज्ञान भी दिया ॥ ४७ ॥ ग्रामोंके छप्पन कोटि भेद और असंख्य अवान्तरभेद, नृत्य, वादित्र तथा सुन्दर मूर्च्छना—इन सबका ज्ञान नारदजीको प्राप्त हुआ ॥ ४८ ॥ वैकुण्ठपतिकी प्रियाओंमें मुख्य सरस्वती देवीने स्वरगम्य सिद्धपदोंद्वारा नारदजीको संगीतकी शिक्षा दी ॥४९॥ हे राधे ! नारदको रासमण्डलके उपयुक्त अद्वितीय रागोद्भावक बनाकर विष्णुवल्लभा वाग्देवी वैकुण्ठधामको चली गयीं ॥ ५० ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां मथुराखंडे 'प्रियंवदा' नाम टीकायामेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

श्रीभगवान् कहते हैं—हे श्रीराधे ! इस रागरूप मनोहर एवं गुह्य ज्ञानका उपदेश किसको देना चाहिये, इसका बुद्धिपूर्वक विचार करके नारदजी गन्धर्वनगरमें गये ॥ १ ॥ वहाँ तुम्बुरु नामक गन्धर्वको अपना शिष्य बनाकर नारदजी मधुरस्वरसे वीणा बजाते हुए मेरे गुणोंका गान करने लगे ॥ २ ॥ तदनन्तर उनके हृदयमें यह जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि 'किन लोगोंके सामने इस मनोहर रागरूप गीतका गान करना चाहिये ? इसको सुननेका पात्र कौन है ?' इसकी खोज करते हुए नारद इन्द्रके पास गये ॥ ३ ॥ उनको इस विषयका आनन्द लेते न देख मुनिश्रेष्ठ नारद अपने सखा तुम्बुरुके साथ राग-रागनियोंका निरूपण करनेके लिये सूर्यलोकमें गये ॥ ४ ॥ वहाँ सूर्यदेवको रथके द्वारा भागे जाते देख देवर्षिशिरोमणि महामुनि नारद वहाँसे तत्काल शिवजीके पास चले गये ॥ ५ ॥ हे राधे ! ज्ञानतत्त्वज्ञ भूतनाथ शिवके नेत्र ध्यानमें निश्चल हैं, यह देख नारदजी ब्रह्मलोकमें गये ॥ ६ ॥ सृष्टिकर्ता ब्रह्माको सृष्टि-रचनामें व्यग्र देख, वे वहाँ भी न ठहर सके; उस स्थानसे विष्णुके सर्वलोकवन्दित वैकुण्ठधाममें चले गये ॥ ७ ॥ भक्तोंके स्वामी भक्तवत्सल भगवान् विष्णुको किसी भक्तपर कृपा करनेके लिये कहीं जाते देख योगीन्द्र नारद तुम्बुरुके साथ अन्यत्र चल दिये ॥ ८ ॥ हे वृषभानुनन्दिनि ! योगीश्वर संतोंकी गति त्रिलोकीके भीतर और बाहर भी बतायी गयी है। जो केवल कर्मी हैं, उन्हें वैसी गति नहीं प्राप्त होती ॥ ९ ॥ मुनीश्वर नारद करोड़ों ब्रह्माण्ड-समूहोंको लाँघकर प्रकृतिसे परे

समुत्तीर्याशु विरजां नदीं कल्लोलमालिनीम् । ययौ वृन्दावनं रम्यं भ्रमरध्वनिसंकुलम् ॥११॥
सदा वसंतर्तुयुतं मरुत्कंजलतागृहम् । दृष्ट्वा गोवर्द्धनं शैलं मन्निकुंजं समाययौ ॥१२॥
कौ युवां कुत आयातौ किं कार्यं वदतं च नः । इत्थं सखीभिः संपृष्टावूचतुर्मुनितुंबुरू ॥१३॥
गायकौ कुशलौ रामा आवां वीणाकलध्वनिम् । परिपूर्णतमं साक्षाच्छ्रीकृष्णं राधिकापतिम् ॥१४॥
कलं परं श्रावयितुमागतौ वंदिनां वरौ । कथनीयमिदं वाक्यं श्रीकृष्णाय महात्मने ॥१५॥
श्रुत्वा सख्यस्तथा मह्यं निवेद्याथ मदाज्ञया । आगत्याज्ञां ददुर्यातुं वंदिभ्यां श्लक्ष्णया गिरा ॥१६॥
मन्निकुंजांगणे भ्राजत्कोट्यर्कज्योतिराकुले । खचित्कौस्तुभरत्नाढ्ये प्रचलच्चारुचामरे ॥१७॥
लोलमुक्ताफलच्छत्रे सखीकोटिसमन्विते । महापद्मस्थितं साक्षात्त्वया मां तावपश्यताम् ॥१८॥
नत्वा प्रदक्षिणीकृत्य तत्र स्थित्वा मदाज्ञया । स्तुत्वा मां मद्गुणान्वक्तुं तेनासावुपचक्रमे ॥१९॥
आतोद्यं विधुदन्वीणां देवदत्तां स्वरामृतम् । कलं जगावद्वितीयं नारदः सहतुंबुरुः ॥२०॥
संतुष्टोऽहं शिरो धुन्वंस्तेन संश्लाघ्य च तत्स्वरम् । दत्त्वाऽऽत्मानं प्रेमपरो जलत्वं गतवानहम् ॥२१॥
यज्जलं मद्वपुर्जातं तद्वै ब्रह्मद्रवं विदुः । कोटिशः कोटिशोऽण्डानां राशयः संलुठंति हि ॥२२॥
इंद्रायणफलानीवानन्ते तस्मिञ्जले शुभे । पृश्निगर्भमिदं राधे ब्रह्मांडं मत्पदं स्फुटम् ॥२३॥
भित्त्वा तच्चागतं साक्षादस्मिन्मन्वंतरे शुभे । तत्स्वर्धुनीं विदुः पूर्वे श्रीगंगां पापहारिणीम् ॥२४॥
दिवि मंदाकिनी प्रोक्ता गंगा भागीरथी क्षितौ । अधो भोगवती प्रोक्ता त्रिधा त्रिपथगामिनी ॥२५॥
यत्स्नातुं गच्छतः पुंसः प्रणतस्य पदे पदे । राजसूयाश्वमेधानां फलमस्ति न दुर्लभम् ॥२६॥

गोलोकधाममें जा पहुँचे ॥ १० ॥ उत्ताल तरंगोंसे सुशोभित विरजा नदीको पार करके वे शीघ्र ही भ्रमरोंकी ध्वनिसे निनादित रमणीय वृन्दावनमें गये ॥ ११ ॥ जो सदा वसन्त ऋतुसे युक्त है और जहाँके लताभवन मन्द मारुतके झोंकेसे कम्पायमान रहते हैं। वृन्दावनसे गोवर्धन पर्वतका दर्शन करते हुए नारदजी मेरे निकुञ्जमें आये ॥ १२ ॥ निकुञ्जद्वारपर सखियोंने पूछा—'आप दोनों कौन हैं ? कहाँसे आये हैं और यहाँ क्या कार्य है ?' ऐसा प्रश्न होनेपर मुनि नारद और तुम्बुरु दोनों बोले— १३॥ 'हे सुन्दरियो! हम दोनों गान-विद्यामें कुशल गायक हैं और अपनी वीणाकी मधुर ध्वनि साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् राधावल्लभ श्रीकृष्णको सुनानेके लिये आये हैं। हम वन्दीजनोंमें उत्तम हैं। हमारी यह बात महात्मा श्रीकृष्णसे निवेदित कर देनी चाहिये ॥ १४ ॥ १५ ॥ यह सुनकर सखियोंने उनका संदेश मेरे पास पहुँचाया और मेरी आज्ञासे लौटकर मधुरवाणीमें उन वन्दियोंको भीतर चलनेका आदेश दिया ॥ १६ ॥ करोड़ों सूर्योंकी ज्योतिसे व्याप्त मेरे निकुञ्जके आँगनमें, जहाँ सब ओर कौस्तुभमणि जड़ी थी, मनोहर चँवर डुलाये जा रहे थे, हिलते हुए मोतियोंकी झालरोंसे युक्त छत्र तने थे और करोड़ों सखियाँ विराजमान थीं, आकर महापद्ममय आसनपर तुम्हारे साथ बैठे हुए मुझ श्रीकृष्णका उन दोनोंने दर्शन किया ॥ १७ ॥ १८ ॥ फिर प्रणाम और परिक्रमा करके वे मेरी आज्ञासे वहाँ बैठे और मेरी स्तुति करके मेरे गुणोंका गान करनेके लिये उद्यत हुए ॥ १९ ॥ आतोद्य (वाद्यविशेष) को बजाते और देवदत्त स्वरामृतमयी वीणाको झंकृत करते हुए तुम्बुरुसहित नारदने वीणावादनकी अद्वितीय कलाको प्रस्तुत किया ॥ २० ॥ मैं उससे बहुत संतुष्ट हुआ और सिर हिलाता हुआ उस वीणाकी प्रशंसनीय स्वर-लहरीकी सराहना करने लगा। अन्ततोगत्वा प्रेमके वशीभूत हो अपने-आपको देकर मैं जलरूप हो गया ॥ २१ ॥ मेरे दिव्य शरीरसे जो जल प्रकट हुआ, उसे 'ब्रह्मद्रव'के नामसे लोग जानते हैं। उसके भीतर कोटि-कोटि ब्रह्माण्डराशियाँ लुढ़कती रहती हैं। उस उन्नत एवं शुभ जलराशिमें लुढ़कते हुए वे ब्रह्माण्ड इन्द्रायणके फलके समान प्रतीत होते हैं ॥ २२ ॥ हे राधे ! यह ब्रह्माण्ड 'पृश्निगर्भ' नामसे प्रसिद्ध है, जो मेरे त्रिविक्रम रूपके पदाघातसे फूट गया था ॥ २३ ॥ उसका भेदन करके जो साक्षात् ब्रह्मद्रवका जल यहाँ आया, उसे इस शुभ मन्वन्तरमें पूर्ववर्ती लोगोंने पापहारिणी स्वर्धुनी 'गङ्गा'के नामसे जाना था ॥ २४ ॥ उस गङ्गाको द्युलोकमें 'मन्दाकिनी', पृथ्वीपर 'भागीरथी' और अधोलोक—पातालमें 'भोगवती' कहा गया है। इस प्रकार

गंगा गंगेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि । मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥२७॥
दृष्ट्वा जन्मशतं पापं पीत्वा जन्मशतद्वयम् । स्नात्वा जन्मसहस्राणां हंति गंगा कलौ युगे ॥२८॥
सफलं जन्म वै तेषां ये पश्यंति हि जाह्नवीम् । वृथा जन्म गतं तेषां ये न पश्यंति जाह्नवीम् ॥२९॥
यथा हि द्रवतां प्राप्ता विरजा त्वद्भयाद्यथा । प्रापुर्द्रवत्वं रंभोरु विरजायाः सुता यथा ॥३०॥
यथा कृष्णा नदी विष्णुर्वेणी देवः शिवो यथा । ब्रह्मा ककुद्मिनी गंगा गंडकी च यथाऽप्सराः ॥३१॥
तथा द्रवत्वं संप्राप्त ऋभुर्नामाप्ययं मुनिः । प्रेमलक्षणया भक्त्या ऋभोर्वा नात्र संशयः ॥३२॥
यः शृणोति कथामेतां पवित्रां पापहारिणीम् । उल्लंघ्य सर्वलोकांश्च मल्लोकं याति मानवः ॥३३॥

श्रीनारद उवाच

एवमुक्त्वा प्रियां राधामृभोराश्रमतो हरिः । राधया सहितो राजन्नाययौ मालतीवनम् ॥३४॥
गोपीनां विरहं ज्ञात्वा भगवान्भक्तवत्सलः । राधया प्रययौ कृष्णः पुलिनं मंगलायनम् ॥३५॥
तदा गोपीगणाः सर्वे गतमाना गतव्यथाः । जगृहुस्तं घनश्यामं सौदामिन्यो घनं यथा ॥३६॥
वृंदावने हरिः साक्षात्कृष्णातीरे मनोहरे । जगौ कलं गोपिकाभिर्वंशीवादनतत्परः ॥३७॥
भगवत्कलरागेण मूर्छिता गोपकन्यकाः । नद्यो वेगत्वरहिता अचरत्वं हि पक्षिणः ॥३८॥
मौनत्वं देवता सर्वाः स्तंभत्वं देवनायकाः । सजलत्वं च तरवो निद्रात्वं प्रगतं जगत् ॥३९॥
कृत्वा रासं राधिकाया गोपीनां च मनोरथम् । ब्राह्मे मुहूर्ते भगवानाययौ नंदमंदिरम् ॥४०॥
राधिका गोपिकाभिश्च प्राप्ताऽऽनंदमनोरथा । वृषभानुवरस्यापि सुंदरं मंदिरं ययौ ॥४१॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीमथुराखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे नारदोपाख्यानं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

(श्रीकृष्णका व्रजसे लौटकर मथुरामें आगमन)

श्रीनारद उवाच

श्रीकृष्णो भगवान्साक्षाद्व्रजे कति दिनानि च । स्थित्वा स्वदर्शनं दत्त्वा मथुरां गंतुमुद्यतः ॥ १ ॥
नंदान्नवोपनंदांश्च वृषभानून्व्रजेषु षट् । वृषभानुवरं चैव नंदराजं व्रजेश्वरम् ॥ २ ॥
कलावतीं यशोदां च गोपीर्गोपान्गवां गणान् । मिलित्वाश्वास्य ज्ञानं च दत्त्वाऽनुज्ञाप्य माधवः॥ ३ ॥
रथमारुह्य दिव्याभं चञ्चलाश्वनियोजितम् । मथुरां गंतुकामोऽसौ निर्गतो नंदगोकुलात् ॥ ४ ॥
दूरं तमनुगाः सर्वे मोहिता व्रजवासिनः । न सेहिरे कष्टतरं विरहं माधवस्य हि ॥ ५ ॥
युगपद्दर्शनं विष्णोर्दुःसहं भूमिमण्डले । येषां नित्यं हि भवति तेषां तु किमु वर्णनम् ॥ ६ ॥
वीक्षंतः श्रीधरमुखं नेत्रैरनिमिषैर्नृप । सर्वे वै स्नेहसंबंधात्तमूचुः प्रेमविह्वलाः ॥ ७ ॥

गोपा ऊचुः

शीघ्रमागच्छ हे कृष्ण सर्वान्नो व्रजवासिनः । पाहि संदर्शनं देहि देवेभ्यो ह्यमृतं यथा ॥ ८ ॥
त्वमेव सर्वदा देव यशोदानंददायकः । श्रीनंदनंदनस्त्वं वै जीवनं व्रजवासिनाम् ॥ ९ ॥
व्रजे धनं कुले दीपो मोहनो महतामपि । यथा निदाघदग्धस्य प्राप्तं वै शीतलं जलम् ॥१०॥
शीतार्तस्य यथा वह्निर्ज्वरार्त्तस्य यथौषधम् । मृतस्य मानवस्यापि पीयूषं मङ्गलं यथा ॥११॥
तथा व्रजस्य सर्वस्य जीवनं तव दर्शनम् । तस्मादत्र स्थितिं कुर्या बहुना कथितेन किम् ॥१२॥
यन्नोऽस्ति किंचित्सुकृतमस्मिन्वा पूर्वजन्मनि । तत्फलेन सदा चेतो भूयात्त्वत्पादपङ्कजे ॥१३॥

काओंके साथ श्रीराधिका भी अपना आनन्दमय मनोरथ प्राप्त करके वृषभानुवरके सुन्दर मन्दिरमें चली गयीं ॥ ४१ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां मथुराखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् !' साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण व्रजमें कई दिनोंतक रहकर सबको अपना दर्शन दे मथुरा जानेको उद्यत हुए ॥ १ ॥ नौ नन्दों, नौ उपनन्दों, छः वृषभानुओं तथा वृषभानुवर और व्रजेश्वर नन्दराजसे मिलकर, कलावती, यशोदा, अन्यान्य गोपियों तथा गौओंके गणोंसे भी भेंट करके, आश्वासन और ज्ञान दे, सबसे विदा लेकर माधव चञ्चल अश्वोंसे जुते हुए अपने दिव्य रथपर आरूढ़ हो मथुरा जानेकी इच्छासे नन्दगांवसे बाहर निकले ॥ २–४ ॥ उनके पीछे-पीछे समस्त मोहित व्रजवासी बहुत दूरतक गये । वे माधवके अत्यन्त कष्टमय विरहको नहीं सह सके ॥ ५ ॥ जिन्हें भूमण्डलपर कभी एक बार भी श्रीविष्णुका दर्शन हुआ हो, उन्हें भी उनका विरह दुस्सह हो जाता है; फिर जिन्हें प्रतिदिन उनका दर्शन होता रहा हो, उनको उनके विरहसे कितना दुःख होता होगा, इसका वर्णन कैसे किया जा सकता है ॥ ६ ॥ हे नरेश्वर ! अपलक नेत्रोंसे श्रीधरके मुँहकी ओर देखते हुए समस्त व्रजवासी गोप स्नेह-सम्बन्धके कारण प्रेमविह्वल होकर उनसे बोले ॥७॥ गोपोंने कहा—हे श्रीकृष्ण ! तुम फिर जल्दी आना और हम समस्त व्रजवासियोंकी रक्षा करना । जैसे पूर्वकालमें तुमने देवताओंको अमृत प्रदान किया था, उसी प्रकार अब हमें अपने दर्शनकी सुधाका पान कराते रहना ॥ ८ ॥ हे देव ! केवल तुम्हीं सदा यशोदाके आनन्ददायक हो, तुम्हीं श्रीनन्दराजको आनन्द प्रदान करनेवाले हो और तुम्हीं व्रजवासियोंके जीवन हो ॥ ९ ॥ हे प्रभो ! तुम्हीं इस व्रजके धन हो, गोप-कुलके दीपक हो और महापुरुषोंके भी मनको मोहनेवाले हो । जैसे निदाघसे जले हुए प्राणीको शीतल जल प्राप्त हो जाय, सर्दीसे पीड़ित मनुष्यको जैसे आग मिल जाय, ज्वरसे आर्त पुरुषको उपयुक्त औषध प्राप्त हो जाय, तो वे जी उठते हैं, उसी प्रकार समस्त व्रजके लिये तुम्हारा दर्शन ही जीवन है; इसलिये तुम यहीं निवास करो । इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या लाभ ? ॥ १०–१२ ॥ हमारे इस जन्म अथवा पूर्वजन्ममें जो कुछ भी पुण्य हुआ हो, उसके फलस्वरूप हमारा चित्त सदा तुम्हारे चरणा-

येषां चेतस्त्वत्पदाब्जे ते भक्तास्त्वत्प्रियाः सदा । भक्तार्थं सगुणोऽसि त्वं निर्गुणः प्रकृतेः परः॥१४॥
तव भक्तात्प्रियो नास्ति शिवो ब्रह्मा न चेंदिरा । विसृज्य पारमेष्ठ्यादि निष्कामास्त्वां भजंति ये॥
नैरपेक्ष्यं सुखं शांतं ते विदुर्युक्तचेतसः ॥१५॥

श्रीनारद उवाच

एवमुक्त्वाऽथ ते सर्वे रुरुदुः प्रेमविह्वलाः । आनंदाश्रूणि मुंचंतः श्रीकृष्णस्य प्रपश्यतः ॥१६॥
अश्रुपूर्णमुखः कृष्णो भगवान् भक्तवत्सलः । गोपानाह प्रसन्नात्मा नतान् विरहविह्वलान् ॥१७॥

श्रीभगवानुवाच

मत्प्राणा मत्प्रिया यूयं सर्वे वै व्रजवासिनः । हृदयं मेऽस्ति युष्मासु देहोऽन्यत्र विलक्ष्यते ॥१८॥
मासं प्रत्यागमिष्यामि युष्मान्द्रष्टुं वचो मम । मनसा न हि दूरेऽस्मि मनः सर्वस्य कारणम् ॥१९॥
हे गोपा यदुभिर्योद्धुमागतो हि जरासुतः । यदूनां तु सहायार्थं यामि माभूच्छुचश्च वः ॥२०॥

श्रीनारद उवाच

एवमाश्वास्य तान् देवः सन्निवृत्य पुनः पुनः । रथे द्वितीये संस्थाप्य नन्दराजं यशोदया ॥२१॥
श्रीदामादीन्सखीन्नीत्वा भगवान् रथमास्थितः । सोद्धवो मथुरां प्रागात्सर्वकारणकारणः ॥२२॥
यावद्रथश्चाश्वशतं सुवेगं केतुस्त्रिवर्णः प्रचलत्पताकः ।
आलक्ष्यते वीर रजश्च तावत् स्थित्वाऽन्य आजग्मुरतः सकाशम् ॥२३॥
श्रीकृष्णचन्द्रस्य परं चरित्रं नृणां महापापहरं विचित्रम् ।
शृणोति यो भक्तवरः पृथिव्यां गोलोकलोकं स च याति सम्यक् ॥२४॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीमथुराखंडे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे व्रजयात्रायां श्रीकृष्णागमनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

रविन्दोंमें लगा रहे ॥ १३ ॥ जिनका चित्त तुम्हारे चरण-कमलमें लगा हुआ है, वे भक्तजन तुम्हें सदा ही प्रिय हैं। तुम प्रकृतिसे परे निर्गुण हो, तथापि अपने भक्तोंके लिये सगुण हो जाते हो ॥ १४ ॥ तुम्हें अपने भक्तसे अधिक प्रिय शिव, ब्रह्मा और लक्ष्मी भी नहीं हैं। जो ब्रह्मपद आदिकी अभिलाषाको छोड़कर भगवान्‌का निष्कामभावसे भजन करते हैं, वे युक्तचित्त पुरुष ही शान्त एवं निरपेक्ष सुखका अनुभव करते हैं ॥ १५ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन्! यों कहकर वे सब गोप प्रेमसे विह्वल हो श्रीकृष्णके देखते-देखते आनन्दके आँसू बहाते हुए रोने लगे। भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्णके मुखपर भी अश्रुकी धारा बह चली। वे प्रसन्नचेता परमेश्वर उन विरह-विह्वल गोपोंसे बोले ॥ १६ ॥ १७ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा—हे व्रजवासियो! तुम सब मेरे प्राण और मेरे परम प्रिय हो। मेरा हृदय तुमलोगोंमें ही स्थित है, केवल शरीर अन्यत्र दिखायी देता है ॥ १८ ॥ मैं प्रतिमास तुम सबको देखने और दर्शन देनेके लिये आऊँगा, यह वचन देता हूँ। मनसे मैं दूर नहीं हूँ। मन ही सबका कारण है ॥ १९ ॥ हे गोपगण! यादवोंसे युद्ध करनेके लिये जरासंध आया है, अतः यदुवंशियोंकी सहायताके लिये मैं जाता हूँ, तुम्हें शोक नहीं होना चाहिये ॥ २० ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन्! इस प्रकार उन गोपोंको बार-बार आश्वासन दे, फिर लौटकर यशोदा-सहित नन्दराजको दूसरे रथपर बिठाया और श्रीदामा आदि सखाओंको साथ ले, उद्धवसहित रथपर आरूढ़ हो, वे सर्वकारण-कारण भगवान् मथुराको गये ॥ २१ ॥ २२ ॥ हे वीर! जबतक रथ, उसमें जुते हुए सौ वेगशाली घोड़े और फहराती पताकासे युक्त तिरंगा ध्वज तथा उड़ती हुई धूल दिखायी देती रही, तबतक सब व्रजवासी वहीं खड़े रहे। फिर वे अपने घरको लौट आये ॥ २३ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रका यह परम उत्तम विचित्र चरित्र मनुष्योंके महान् पापोंको हर लेनेवाला है। जो भक्तप्रवर पृथ्वीपर इस चरित्रको सुनता है, वह उत्तमोत्तम गोलोकधाममें जाता है ॥ २४ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां मथुराखण्डे 'प्रियंवदा'भाषा-टीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

(बलदेवजीके द्वारा कोल दैत्यका वध और उनकी गङ्गातटवर्ती तीर्थोंमें यात्रा)

बहुलाश्व उवाच

गोपीनां चैव गोपानां दत्त्वा संदर्शनं परम् । मथुरायां किं चकार श्रीकृष्णो राम एव च ॥ १ ॥
चरित्रं परमं मिष्टं श्रीकृष्णबलदेवयोः । सर्वपापहरं पुण्यं चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥ २ ॥

श्रीनारद उवाच

अन्यच्चरित्रं शृणु ताच्छ्रीकृष्णबलदेवयोः । सर्वपापहरं पुण्यं चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥ ३ ॥
कोलेन पीडिता लोकाः कौशारविपुरान्नृप । मथुरामाययुः सर्वे सद्विजा दीनमानसाः ॥ ४ ॥
अश्वमाशु समारुह्य रोहिणीनन्दनो बलः । स्वल्पैः पुरःसरैः सार्द्धं मृगयार्थी विनिर्गतः ॥ ५ ॥
तं नत्वाऽभ्यर्च्य विधिवत्तदंघ्र्योः पतिताः पथि । कृतांजलिपुटा ऊचुर्हर्षगद्गदया गिरा ॥ ६ ॥

प्रजा ऊचुः

राम राम महाबाहो देवदेव महाबल । कोलेन पीडिताः सर्व आगताः शरणं वयम् ॥ ७ ॥
दैत्यः कंससखः कोलो जित्वा कौशारविं नृपम् । कौशारवेः पुरे राज्यं करोति स महाबलः ॥ ८ ॥
कौशारविस्तद्भयाद्धि गङ्गातीरं गतो नृपः । राज्यार्थं त्वत्पदांभोजं भजते सुजितेन्द्रियः ॥ ९ ॥
तत्सहायं कुरु विभो वयं यस्य प्रजाः शुभाः । पुत्रवत्पालितास्तेन महासौख्यसमन्विताः ॥१०॥
कोलेनाद्यैव दुष्टेन पीडिताः सततं प्रभो । त्रैलोक्यविजयी वीरः कंसोऽपि निहतस्त्वया ॥११॥
कोले जीवति देवेन्द्र कंसोऽपि न मृतः स्मृतः । रक्षार्थं सगुणोऽसि त्वं भक्तानां प्रकृतेः परः ॥१२॥

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तेषां श्रीरामो भक्तवत्सलः । गङ्गायमुनायोर्मध्ये कौशांबीं नगरीं ययौ ॥१३॥

बहुलाश्वने पूछा—हे मुने ! गोपाङ्गनाओं और गोपोंको उत्तम दर्शन देकर मथुरामें लौटनेके पश्चात् श्रीकृष्ण तथा बलरामने क्या किया ? श्रीकृष्ण और बलदेवका चरित्र बड़ा मधुर है। यह समस्त पापोंको हर लेनेवाला, पुण्यप्रद तथा चतुर्वर्गरूप फल प्रदान करनेवाला है ॥ १ ॥ २ ॥ श्रीनारदजीने कहा—हे राजन् ! अब श्रीकृष्ण और बलदेवजीका दूसरा चरित्र सुनो, जो सर्वपापहारी, पुण्यदायक तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको देनेवाला है ॥ ३ ॥ हे नरेश्वर ! कोलनामक दैत्यसे पीड़ित होकर बहुत-से लोग दीनचित्त हो ब्राह्मणोंके साथ कौशारविपुरसे मथुरामें आये ॥ ४ ॥ उस समय रोहिणीनन्दन बलराम शीघ्रगामी अश्वपर आरूढ़ हो थोड़े-से अग्रगामी लोगोंके साथ शिकार खेलनेके लिये मथुरासे निकले थे ॥ ५ ॥ मार्गमें ही उन्हें प्रणाम करके उनकी विधिवत् पूजा करनेके पश्चात् सब लोग उनके चरणोंमें प्रणत हो गये और हाथ जोड़ हर्ष-गद्गद वाणीमें बोले ॥ ६ ॥ प्रजाजनोंने कहा—हे राम ! हे महाबाहु राम ! हे महाबली देवदेव ! हम सब लोग कोलनामक दैत्यसे पीड़ित हो आपकी शरणमें आये हैं ॥ ७ ॥ कोल दैत्य कंसका सखा है। वह महाबली दैत्य राजा कौशारविको जीतकर उन्हींके नगरमें राज्य करता है ॥ ८ ॥ राजा कौशारवि उसके भयसे गङ्गा-तटपर चले गये हैं और वहाँ पुनः अपने राज्यकी प्राप्तिके लिये अत्यन्त जितेन्द्रिय हो आपके चरण-कमलोंका भजन कर रहे हैं ॥ ९ ॥ हे विभो ! आप उनकी सहायता कीजिये। हम उन्हींकी शुभ प्रजा हैं, जिनका उन्होंने पुत्रकी भाँति पालन किया है। उनके संरक्षणमें हमलोग बड़े सुखी थे ॥ १० ॥ हे प्रभो ! अब दुष्ट कोल हमें निरन्तर पीड़ा दे रहा है। यद्यपि आपने त्रिभुवनविजयी वीर कंसको मार डाला है, तथापि हे देवेन्द्र ! जबतक कोल जीवित है, तबतक कंसको भी मरा हुआ नहीं मानना चाहिये। आप प्रकृतिसे परे होकर भी भक्तोंकी रक्षाके लिये ही सगुणरूपसे अवतीर्ण हुए हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! उनका वचन सुनकर भक्तवत्सल श्रीबलराम गङ्गा-यमुनाके बीचमें बसी हुई कौशाम्बीनगरीको गये ॥ १३ ॥ बलरामजीको

योद्धुं समागतं रामं श्रुत्वा कोलोऽपि निर्गतः । अक्षौहिणीभिर्दशभिर्मण्डितश्चण्डविक्रमः ॥१४॥
चञ्चलाश्वतरङ्गाढ्यां रथेभाश्वतिमिङ्गिलाम् । नदीमिवागतां सेनां प्रलयार्णवनादिनीम् ॥१५॥
वीरावर्तां च तां वीक्ष्य बद्ध्वा सेतुं हलं बलः । आकृष्य तां तदग्रेण मुसलेनाहनद्दृढम् ॥१६॥
युगपत्तत्प्रहारेण वीरा अश्वा रथा गजाः । सर्वतः कोटिशः पेतुः पेशिताः फलवद्रणे ॥१७॥
शेषाः प्रदुद्रुवुर्वीरा भयार्ता रणमंडलात् । एकाकी युयुधे दैत्यः कोलो रामेण शस्त्रभृत् ॥१८॥
गोमूत्रचयसिंदूरकस्तूरीपत्रभृन्मुखम् । सुवर्णशृङ्खलायुक्तं प्रखचित्कटिबंधनम् ॥१९॥
स्रवन्मदं चतुर्दंतं घंटाटंकारभीषणम् । प्रोन्नतं दिग्गजमिव नदत्कालघनप्रभम् ॥२०॥
शितमंकुशमादाय कोल आरुह्य कर्णतः । स्वगजं नोदयामास बलदेवाय दैत्यराट् ॥२१॥
आगतं वीक्ष्य तं नागं मत्तं कोलेन नोदितम् । तताड मुसलेनासौ वज्रेणेंद्रो यथा गिरिम् ॥२२॥
मुसलस्य प्रहारेण विशीर्णोऽभून्महागजः । मृद्घटो नैकधैवाशु दंडघातेन मैथिल ॥२३॥
कोलः क्रोडमुखो दैत्यो रक्ताक्षः पतितो गजात् । शूलं चिक्षेप निशितं माधवाय महात्मने ॥२४॥
मुसलेन तदा रामस्तच्छूलं शतधाऽच्छिनत् । काचपात्रं यथा बालो दंडेन च विदेहराट् ॥२५॥
सहस्रभारसंयुक्तां गदां गुर्वीं प्रगृह्य च । बलं तताड हृदये जगर्ज घनवत्खलः ॥२६॥
तद्गदायाः प्रहारेण न चचाल यदूद्वहः । पश्यतां सर्वलोकानां स्रजा हत इव द्विपः ॥२७॥
तमाकृष्य हलाग्रेण कोलं कज्जलवत्तनुम् । मुसलेनाहनन्मूर्ध्नि बलदेवो महाबलः ॥२८॥

युद्धके लिये आया हुआ सुनकर प्रचण्ड-पराक्रमी कोल भी दस अक्षौहिणी सेनासे सुसज्जित हो कौशाम्बीसे बाहर निकला ॥ १४ ॥ प्रलय-कालके समुद्रकी भाँति गर्जना करनेवाली वह सेना एक नदीके समान आयी। चञ्चल घोड़े उसकी उठती हुई तरङ्गमाला थे। रथ और हाथी आदि उसमें तिमिङ्गिल (मगर-मत्स्य) के समान प्रतीत होते थे ॥ १५ ॥ वीर योद्धारूपी भँवर उठ रहे थे। उसे देखकर बलरामजीने हलका सेतु बाँध दिया और हलाग्रभागसे उस सेनाको खींच-खींचकर मुसलके सुदृढ़ प्रहारसे मारना आरम्भ किया ॥ १६ ॥ उनके प्रहारसे एक साथ ही पैदल वीर, घोड़े, रथ और हाथी रणभूमिमें फलोंकी भाँति पिस उठे और करोड़ोंकी संख्यामें सब ओर धराशायी हो गये ॥ १७ ॥ शेष योद्धा भयसे पीड़ित हो युद्ध-मण्डलसे भाग निकले। शस्त्रधारी दैत्य कोल बलरामजीके साथ अकेला ही युद्ध करने लगा ॥ १८ ॥ उस दैत्यराजने बलदेवजीकी ओर अपना हाथी बढ़ाया। उस हाथीके कुम्भस्थलपर गोमूत्रमें घोले हुए सिन्दूर और कस्तूरीके द्वारा पत्र-रचना की गयी थी। सोनेकी साँकलसे युक्त कटिबन्ध रत्नखचित था ॥ १९ ॥ उसके गण्डस्थलसे मद झर रहा था। उसके चार दाँत थे। घंटेकी ध्वनिसे वह और भीषण प्रतीत होता था। उसका कद ऊँचा था और वह दिग्गजके समान चिग्घाड़ता था ॥ २० ॥ उसके शरीरका रंग प्रलयकालके मेघके समान काला था। कोल तीखा अङ्कुश लेकर उसके कानकी ओरसे उस हाथीपर चढ़ गया। कोलके द्वारा प्रेरित उस मतवाले हाथीको अपनी ओर आता देख बलदेवजीने उसके ऊपर मुसलसे उसी प्रकार प्रहार किया, जैसे इन्द्रने वज्रसे किसी पर्वतपर आघात किया हो ॥ २१ ॥ २२ ॥ हे मिथिलेश्वर ! मुसलकी मारसे उस महान् गजराजका मस्तक उसी प्रकार छिन्न-भिन्न हो गया, जैसे डंडेकी मारसे कोई मिट्टीका घड़ा टूक-टूक हो गया हो ॥ २३ ॥ कोलका मुँह सूअरके समान था। लाल नेत्रोंवाला वह दैत्य हाथीसे गिर पड़ा। उसने महात्मा माधव—बलदेवके ऊपर तीखा शूल चलाया ॥ २४ ॥ हे विदेहराज ! तब बलरामने मुसलसे मारकर उसके शूलके उसी प्रकार सैकड़ों टुकड़े कर दिये, जैसे किसी बालकने लाठीके प्रहारसे काँचके बर्तन तोड़ डाले हों ॥२५॥ तब उस दुष्टने सहस्र भार (लगभग ३००० मन) लोहेकी बनी हुई एक भारी गदा हाथमें लेकर बलरामजीकी छातीपर चोट की और वह मेघके समान गर्ज उठा ॥२६॥ उस गदाके प्रहारसे यादववीर बलरामजी तनिक भी विचलित नहीं हुए, जैसे मालाकी मारसे हाथी नहीं विचलित होता। वहाँके सब लोग यह कौतुक देख रहे थे ॥२७॥ तभी महाबली बलदेवने काजलके समान काले शरीरवाले कोलके मस्तकपर मुसलसे प्रहार किया ॥२८॥

मुसलाहतमूर्द्धाऽपि पतितो रणमंडले । मुष्टिघातं घातयित्वा तत्रैवांतरधीयत ॥२९॥
चकार मायां मायावी दैतेयीमतिभीषणाम् । प्रलयप्रभवैर्मेघैर्महावातप्रणोदितैः ॥
अंधकारं प्रकुर्वद्भिरभूदाच्छादितं नभः ॥३०॥
जपापुष्पसमान् बिंदूनजस्रं रुधिरस्य च । मोचयित्वाऽथ बीभत्सवर्षांश्चक्रुर्घनाघनाः ॥३१॥
पूयमेदोऽतिविष्मूत्रसुरामांससमन्विताः । दृष्ट्वा ताभिश्च वर्षाभिर्हाहाकारो बभूव ह ॥३२॥
ज्ञात्वाऽथ तत्कृतां मायां बलदेवो महाप्रभुः । चिक्षेप मुसलं दीर्घं परसैन्यविदारणम् ॥३३॥
सर्वास्त्रघातकं स्वच्छमष्टधातुमयं दृढम् । शतयोजनविस्तीर्णं प्रलयाग्निसमप्रभम् ॥३४॥
बलास्त्रं मुसलं रेजे भ्रमद्दशदिगंतरे । विदारयद्धनान्व्योम्नि नीहारं च यथा रविः ॥३५॥
तद्व्योम्नि प्रगतं दृष्ट्वा हलास्त्रं च स्वतः प्रभुः । समुत्पत्याकृष्य बलान्मध्ये तान्विददार ह ॥३६॥
नाशं गतायां मायायां बलदेवो महाबलः । गृहीत्वा भुजदण्डाभ्यां भुजदण्डे मदोत्कटे ॥३७॥
भ्रामयन्बाल इव तं प्रतूलं स इतस्ततः । पातयामास भूपृष्ठे कमण्डलुमिवार्भकः ॥३८॥
तस्य दैत्यस्य पातेन साब्धिशैलवनैः सह । चकम्पे नाडिकामात्रं सर्वं भूखण्डमण्डलम् ॥३९॥
भग्नदंतश्चलन्नेत्रो मूर्च्छितो निधनं ययौ । कोलो नाम महादैत्यो वृत्रो वज्रहतो यथा ॥४०॥
तदा जयजयारावो दिवि भूमौ बभूव ह । देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवर्षाः सुरैः कृताः ॥४१॥
इत्थं कोलं घातयित्वा बलदेवोऽच्युताग्रजः । दत्त्वाऽथ कौषारवये कौशांबीं च पुरीं ततः ॥४२॥
स्नातुं भागीरथीं प्रागाद्गर्गाचार्यादिभिर्वृतः । लोकानां संग्रहं कर्तुं सर्वदोषक्षयाय च ॥४३॥

मुसलके प्रहारसे उसका सिर फट गया और वह रणभूमिमें गिर पड़ा; तो भी उठकर बलदेवजीको मुक्केसे भारी चोट पहुँचाकर वह वहीं अन्तर्धान हो गया ॥ २९ ॥ फिर उस मायावी दैत्यने अत्यन्त भयंकर दैत्य-सम्बन्धिनी माया प्रकट की । तुरंत ही बड़ी भारी आँधीसे प्रेरित प्रलय-कालके मेघोंसे, जो अन्धकार फैला रहे थे, आकाश आच्छादित हो गया ॥ २९ ॥ ३० ॥ जपाके पुष्पोंके समान रक्तके विन्दुओंकी निरन्तर वर्षा होने लगी । उसके बाद घनीभूत काले मेघोंने घृणित वस्तुओंकी वर्षा प्रारम्भ की ॥ ३१ ॥ पीव, मेद, विष्ठा, मूत्र, मदिरा और मांससे युक्त अमेध्य जलकी वर्षा होने लगी। उस वृष्टिसे सब ओर हाहाकार होने लगा ॥ ३२ ॥ दैत्यद्वारा रची गयी मायाको जानकर महाप्रभु बलदेवने शत्रुसेनाको विदीर्ण करनेवाले विशाल मुसलको चलाया ॥ ३३ ॥ वह समस्त अस्त्रोंका घातक, स्वच्छ और सुदृढ़ अस्त्र अष्टधातुका बना हुआ था । उसकी लंबाई सौ योजनकी थी तथा वह प्रलयाग्निके समान प्रज्वलित हो रहा था ॥ ३४ ॥ बलदेवजीका अस्त्र मुसल दसों दिशाओंमें घूमता हुआ बड़ी शोभा पा रहा था । उसने आकाशके बादलोंको उसी प्रकार विदीर्ण कर दिया, जैसे सूर्य कुहरेको मिटा देता है ॥ ३५ ॥ उस मुसलको आकाशमें गया हुआ देख भगवान् बलभद्रने स्वतः 'हल' नामक अस्त्र उठाया और अपने वैभवसे सबको खींच-खींचकर बलपूर्वक बीचमें ही विदीर्ण कर दिया ॥ ३६ ॥ उस दैत्यकी मायाका नाश हो जानेपर महाबली बलदेवने अपने बाहुदण्डोंसे उसके मदोत्कट भुजदण्ड पकड़ लिये और जैसे बालक रुईकी राशिको घुमाये, उसी प्रकार इधर-उधर घुमाते हुए उसे पृथ्वीपर इस प्रकार दे मारा, मानो किसी बालकने कमण्डलु पटक दिया हो ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ उस दैत्यके पतनसे पर्वत, समुद्र और वनके साथ सारा भूमण्डल एक नाड़ी (घड़ी) तक काँपता रहा ॥ ३९ ॥ इससे दैत्यके दाँत टूट गये, नेत्र बाहर निकल आये और वह मूर्च्छित होकर मृत्युका ग्रास बन गया । इस प्रकार महादैत्य कोल वज्रके मारे हुए वृत्रासुरकी भाँति प्राणशून्य हो गया ॥ ४० ॥ उस समय स्वर्गमें और धरतीपर जय-जयकार होने लगा । देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं और वे फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४१ ॥ इस प्रकार कोलका वध करके श्रीकृष्णके बड़े भाई बलदेवने कौशाम्बीपुरी राजा कौषारविको दे दी और स्वयं गर्गाचार्य आदिके साथ भागीरथीमें स्नान करनेके लिये चले गये । उनका यह

स्तप्तं महत्तेन चांते देवकृपाप्तये । तदर्थं स्वसमाजे न बलदेवो जगाम ह ॥६०॥
र्ध्वास्यमेकपादस्थं ध्यानस्तिमितलोचनम् । स्वभक्तं हृदयस्थं स्वं मूर्तिदर्शनलोलुपम् ॥६१॥
जहार तदानंतस्ततो बाह्ये ददर्श ह । स दृष्ट्वाऽनन्तदेवस्य रूपं परमसुन्दरम् ॥६२॥
ग्व्येककुण्डलं गौरं तालाङ्करथसंयुतम् । स्तुत्वा परमया भक्त्या पपात चरणौ पुनः ॥६३॥
स्य शीर्ष्णि करं दत्त्वा वरं ब्रूहीत्युवाच ह । यदि प्रसन्नो भगवाननुग्राह्योऽस्मि वा यदि ॥६४॥
र्वोत्तमां भागवतीं संहितां शुकवक्त्रतः । निर्गतां देहि मे स्वामिन्कलिदोषहरां पराम् ॥६५॥

बलदेव उवाच

द्धवद्वारतः प्राप्तिर्भविष्यति तवानघ । श्रीमद्भागवती कीर्तिरधिका या कलौ युगे ॥६६॥

मांडूक उवाच

थं भगवता दत्ता मुख्या तस्याधिकारिता । कदा योगं मम स्वामिन् कुरु सन्देहभञ्जनम् ॥६७॥

बलदेव उवाच

थयामि परं गोप्यं रहस्यं परमाद्भुतम् । अद्यापि मम सामीप्ये उद्धवोऽयं विराजते ॥६८॥
र्शनं कुरु परमाचार्यसंप्रदायकम् । अद्य तीर्थस्य यात्रायामुपदेशो न ते भवेत् ॥६९॥
थोपदेष्टा भवति तेन ते कथयाम्यहम् । उद्धवः स्थापितः श्रीमदाचार्यः संहितामयः ॥७०॥
न्दादिव्रजवासीनां गोपीनां प्रीतये कृतः । स्वस्वरूपं परिकरं यत्किञ्चिद्भगवत्तमम् ॥७१॥
र्वस्वभावगुणकं कृष्णेन परमात्मना । उद्धवं चैव स्वात्मानमेक एवाचरद्विभुः ॥७२॥

॥ ५९ ॥ माण्डूकदेवने अनन्तदेवकी कृपा प्राप्त करनेके लिये बड़ी भारी तपस्या की थी। उसीके लिये पने समाजके साथ बलदेवजी वहाँ गये ॥ ६० ॥ वह मुँह ऊपर किये एक पैरके बलपर खड़ा था। उसके त्र ध्यानमें निश्चल थे। वह हृदयमें बलदेवजीके स्वरूपका दर्शन करते हुए उन्हींके साक्षात् दर्शनके लिये लोलुप था ॥ ६१ ॥ बलदेवजीने उसके हृदयसे अपने उस स्वरूपको हटा लिया, तब उसने नेत्र खोलकर पने आराध्यदेवको बाहर देखा। अनन्तदेवके उस परम सुन्दर रूपको उसने देखा ॥ ६२ ॥ वे वनमालासे शोभित थे और एक कानमें कुण्डल धारण किये हुए थे। उनकी अंगकान्ति गौर थी तथा वे तालचिह्नसे ङ्कित ध्वजावाले रथपर बैठे थे। अनन्तदेवके उस परम सुन्दर रूपको देखकर उसने बड़ी भक्तिसे उनकी तुति की। फिर वह अपने आराध्यके चरणोंमें गिर पड़ा ॥ ६३ ॥ बलदेवजीने उसके मस्तकपर हाथ रक्खा ौर कहा—'वर माँगो।' तब वह बोला—'स्वामिन्! यदि आप साक्षात् भगवान् मुझपर प्रसन्न हैं, अथवा दि मैं आपके अनुग्रहका पात्र हूँ, तो शुकदेवजीके मुखसे निकली हुई उस सर्वोत्तम भागवतसंहिताको मुझे ीजिये, जो समस्त कलिदोषोंका विनाश करनेवाली एवं श्रेष्ठ है ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ बलदेवजीने कहा—हे अनघ! तुम्हें उद्धवजीके द्वारा श्रीमद्भागवतसंहिताकी प्राप्ति होगी, जिसका कीर्तन कलियुगमें सर्वाधिक महत्त्व रखनेवाला है ॥ ६६ ॥ माण्डूकने पूछा—हे स्वामिन्! भगवान्ने उद्धवजीको भागवतसंहिता सुनानेका मुख्य अधिकार क्यों दिया है? और उनके साथ मेरा संयोग कब होगा? आप मेरे इस संदेहका निवारण कीजिये ॥ ६७ ॥ बलदेवजी बोले—मैं परम गोपनीय एवं परम अद्भुत रहस्यकी बात बताता हूँ। आज भी मेरे निकट वे उद्धवजी विराजते हैं ॥ ६८ ॥ तुम इनका दर्शन कर लो। यह उत्तम दर्शन तुम्हें परमार्थ प्रदान करनेवाला है, परंतु आज तीर्थयात्राके अवसरपर तुम्हें इनका उपदेश नहीं प्राप्त हो सकता ॥ ६९ ॥ जिस प्रकार ये भागवतके उपदेशक होंगे, वह मैं तुम्हें बता रहा हूँ। मैंने उद्धवको श्रीमान् आचार्यके पदपर इसलिये स्थापित किया है कि ये संहिताज्ञानस्वरूप हैं ॥ ७० ॥ नन्द आदि व्रजवासियों तथा गोपाङ्गनाओंकी प्रीतिके लिये भगवान् श्रीकृष्णने उद्धवको अपना प्रतिनिधि बनाकर भेजा था। अपना स्वरूप, परिकररूप और जो कुछ भी पूर्ण भगवत्ता है, वह सब, अपने स्वभाव और गुणके साथ परमात्मा श्रीकृष्णने उद्धव-

साक्षात्कारं चकारादौ न स्वीयमन्तरं क्वचित् । श्रीकृष्णमेव ते ज्ञात्वा पूजयामासुरादरात् ॥७३॥
वसन्तर्तुश्च ग्रीष्मोऽपि स चचार व्रजात्मकौ । शमयामास राधायाः शोकं तत्कुण्डपार्श्वजः ॥७४॥
सर्वं भूमण्डलं तत्र विचचार व्रजानुगैः । वियोगार्तिहरः प्रोक्तो गवां नन्दादिगोपिनाम् ॥७५॥
मन्त्राधिकारकुशलः सर्वः परिकराग्रणीः । अथांतर्धानवेलायां भगवान्धर्मगुप्तये ॥७६॥
तस्मै स्वतेजसमपि दास्यते परमाद्भुतम् । मुद्राधिकारं सर्वत्र सर्वदैव विराजते ॥७७॥
अन्तर्धाने तु स्वस्थाने दत्ता तस्याधिकारिता । बदरीस्थं सपरिकरं धर्मजं बोधयिष्यति ॥७८॥

अर्जुनादिवियोगार्तिहारी सैव भविष्यति ।
वज्रनाभो यादवानां माथुरे संभविष्यति ॥७९॥

श्रीकृष्णस्यैव पौत्रेषु महाराज्ञीगणेषु च । वियोगार्तिहरश्चैव स्थाप्यते श्रीहरिः स्वयम् ॥८०॥
कौरवाणां कुले राजा परीक्षिदिति विश्रुतः । तस्य पुत्रोऽतितेजस्वी विख्यातो जनमेजयः ॥८१॥
पितुः शत्रुहणं यज्ञं करिष्यति न संशयः । तस्यापि सर्वसामग्री हुद्भवद्वारतो भवेत् ॥८२॥
श्रीमद्भागवतं दिव्यं पुराणवाचनं तदा । गौरान्वयस्य संप्राप्तिर्भविष्यति न संशयः ॥८३॥
श्रीमत्प्रसादाद्विप्रर्षेर्महाभागवतोत्तमात् । तद्द्वारा सर्पयज्ञस्य निवृत्तिः संभविष्यति ॥८४॥
यज्ञसंस्कारकर्तॄणां ब्राह्मणानां च पूजनम् । स दास्यति महाराज ग्रामाणां शतकं तदा ॥८५॥

ततस्त्वाचार्य्यवर्यस्य श्रीप्रसादस्य चाज्ञया ।
स गन्ता सूकरक्षेत्रं मासमेकं स्थितोऽभवत् ॥८६॥

साक्षात्कारं चकारादौ न स्वीयमन्तरं क्वचित् । श्रीकृष्णमेव ते ज्ञात्वा पूजयामासुरादरात् ॥७३॥
वसन्तर्तुश्च ग्रीष्मोऽपि स चचार व्रजात्मकौ । शमयामास राधायाः शोकं तत्कुण्डपार्श्वजः ॥७४॥
सर्वं भूमण्डलं तत्र विचचार व्रजानुगैः । वियोगार्तिहरः प्रोक्तो गवां नन्दादिगोपिनाम् ॥७५॥
मन्त्राधिकारकुशलः सर्वः परिकराग्रणीः । अथांतर्धानवेलायां भगवान्धर्मगुप्तनुः ॥७६॥
तस्मै स्वतेजसमपि दास्यते परमाद्भुतम् । मुद्राधिकारं सर्वत्र सर्वदैव विराजते ॥७७॥
अन्तर्धाने तु स्वस्थाने दत्ता तस्याधिकारिता । वदरीस्थं सपरिकरं धर्मजं बोधयिष्यति ॥७८॥

अर्जुनादिवियोगार्तिहारी सैव भविष्यति ।
वज्रनाभो यादवानां माथुरे संभविष्यति ॥७९॥

श्रीकृष्णस्यैव पौत्रेषु महाराज्ञीगणेषु च । वियोगार्तिहरश्चैव स्थाप्यते श्रीहरिः स्वयम् ॥८०॥
कौरवाणां कुले राजा परीक्षिदिति विश्रुतः । तस्य पुत्रोऽतितेजस्वी विख्यातो जनमेजयः ॥८१॥
पितुः शत्रुहणं यज्ञं करिष्यति न संशयः । तस्यापि सर्वसामग्री ह्युद्धवद्वारतो भवेत् ॥८२॥
श्रीमद्भागवतं दिव्यं पुराणवाचनं तदा । गौरान्वयस्य संप्राप्तिर्भविष्यति न संशयः ॥८३॥
श्रीमत्प्रसादाद्विप्रर्षेर्महाभागवतोत्तमात् । तद्द्वारा सर्पयज्ञस्य निवृत्तिः संभविष्यति ॥८४॥
यज्ञसंस्कारकर्तॄणां ब्राह्मणानां च पूजनम् । स दास्यति महाराज ग्रामाणां शतकं तदा ॥८५॥

ततस्त्वाचार्य्यवर्यस्य श्रीप्रसादस्य चाज्ञया ।
स गन्ता सूकरक्षेत्रं मासमेकं स्थितोऽभवत् ॥८६॥

को अर्पित की है। उन्होंने उद्धवको और अपनेको एक ही मानकर आचरण किया है ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ श्रीकृष्णने अपना आन्तरिक रहस्य पहिले उद्धवके सिवा और किसीपर नहीं प्रकट किया था। उन्होंने इनमें अपनी अभिन्नताका साक्षात्कार किया है। व्रजवासियोंने इन्हें साक्षात् श्रीकृष्ण ही जानकर बड़े आदरसे इनका पूजन किया था ॥ ७३ ॥ वसन्त और ग्रीष्म, दोनों ऋतुओंमें इन्होंने व्रजभूमिमें विचरण किया और श्रीराधा तथा राधाकुण्डके आस-पासके लोगोंका शोक शान्त किया ॥ ७४ ॥ उद्धव व्रजवासी अनुगामियोंके साथ वहाँकी भूमिमें यत्र-तत्र सर्वत्र विचरे हैं। इन्हें गौओं तथा नन्द आदि गोपों और गोपाङ्गनाओंका 'वियोगार्तिहारी' कहा गया है ॥ ७५ ॥ ये मन्त्रीके अधिकारमें कुशल तथा समस्त पार्षदोंके अग्रगामी हैं। जब भगवान्के अन्तर्धानकी वेला आयेगी, उस समय धर्मपालक देहधारी भगवान् उद्धवको अपना परम अद्भुत तेज भी दे देंगे ॥ ७६ ॥ इनका मुद्राधिकार (भगवान्की ओरसे कुछ भी कहने और उनकी मुद्रिका या मोहरकी छाप लगाकर कोई आदेश जारी करनेका अधिकार) तो सर्वत्र और सदा ही विराजता है ॥ ७७ ॥ अन्तर्धानकालमें इन्हें भगवान्की ओरसे विशेष अधिकार दिया जायगा। ये वदरिकाश्रमतीर्थमें विराजमान परिकरोंसहित धर्मनन्दन नर-नारायणको भगवद्रहस्यका बोध करायेंगे ॥७८॥ अर्जुन आदिको भगवान्के वियोगसे जो बड़ी भारी पीड़ा होगी, उसका निवारण उद्धव ही करेंगे। मथुरामें यादवोंका उत्तराधिकारी वज्रनाभ होगा ॥ ७९ ॥ श्रीकृष्णके पौत्रों तथा महारानियोंके समुदायमें जो भगवद्वियोगकी वेदना होगी, उसे दूर करनेके लिये साक्षात् श्रीहरिके द्वारा उद्धव ही नियुक्त किये जायँगे ॥ ८० ॥ कौरवोंके कुलमें परीक्षित् नामसे विख्यात राजा होगा। उसका अत्यन्त तेजस्वी पुत्र जनमेजय नामसे प्रसिद्ध होगा ॥ ८१ ॥ वह अपने पिताके शत्रु तक्षक नागके कुलका नाशक सर्पयज्ञ करेगा, इसमें संशय नहीं है। उसको भी सारी यज्ञसामग्री उद्धवके द्वारा ही प्राप्त होगी ॥ ८२ ॥ उस समय दिव्य श्रीमद्भागवतपुराणकी कथा होगी, जिसमें उज्ज्वल (सात्त्विक) प्रकृतिके लोग समवेत होंगे, इसमें संशय नहीं है ॥ ८३ ॥ महान् भगवद्भक्तोंमें उत्तम ब्रह्मर्षि (आस्तीक) के प्रसादसे जनमेजयद्वारा होनेवाले सर्पयज्ञकी समाप्ति हो जायगी ॥ ८४ ॥ महाराज जनमेजय यज्ञ-संस्कार करनेवाले ब्राह्मणोंका पूजन करके उन्हें सौ ग्राम अग्रहारके रूपमें देंगे ॥ ८५ ॥ तदनन्तर आचार्यप्रवर श्रीप्रसादजीकी आज्ञासे राजा जनमेजय शूकरक्षेत्र (सोरों) में जायँगे और वहाँ एक मास

दत्त्वा दानान्यनेकानि गोमहीगजवाजिनः । रत्नं वासो ब्राह्मणेभ्यो भोजनं च यदृच्छया ॥८७॥
ततस्तस्मात्स्थलात्सोऽपि निवर्त्य गुरुणा सह । गङ्गातीरस्थलान्पश्यन्नागमिष्यति सद्वृतः ॥८८॥
शयाननगरे संस्थां करिष्यति सहानुगः । श्रीगुरोराज्ञया तत्र सामग्रीं साधनैः सह ॥८९॥
अश्वमेधं करोति स्म सर्वजेता भविष्यति । एकच्छत्रधरो भूत्वा श्रीगुरोः शरणं गतः ॥९०॥
ततो गङ्गातटे रम्ये पूर्वस्यां क्रोशपञ्चके । परमैकांतरूपेण सेवनं तत्करिष्यति ॥९१॥
तत्र भागवती वार्ता भवरोगविनाशिनी । भविष्यति मुदा युक्ता समाजेषु सुधर्मिणाम् ॥९२॥
तत्र पूर्णसमाजेषु तेषां मध्ये भवानपि । शृणोपि भगवद्धर्मं गन्ता श्रीनिर्मलं पदम् ॥९३॥
तपस्तप्तं मदर्थं ते तस्मादेतत्प्रकाशितम् । एवं देवं वरं दत्त्वा गतो रामः सहानुगः ॥९४॥
शयाननगराच्छुद्धादीशान्यां दिशि संस्थितम् । स्थानं गङ्गातटे रम्यं कण्टकादुत्तरेऽभवत् ॥९५॥
पुष्पवत्या दक्षिणे तु क्रोशैकं विस्तरेण च । तत्र सङ्कर्षणो देवः स्थित्वा दानपरोऽभवत् ॥९६॥
घोटकं दशसाहस्रं रथानां शतकं तथा । द्विपं सहस्रं गाश्चैव दिक्सहस्रं ददौ मुदा ॥९७॥
तत्र सङ्कर्षणं देवं पूजयामासुरादरात् । देवाः समाययुः सर्वे ऋषयश्च तपोधनाः ॥९८॥
नमः कोलेशघाताय खरासुरविघातिने । हलायुध नमस्तेऽस्तु मुशलास्त्राय ते नमः ॥
नमः सौंदर्यरूपाय तालाङ्काय नमो नमः ॥९९॥
इति श्रुत्वा स्तुतिं तेषां सङ्कर्षण उवाच ह । वरं ब्रुवंतुवः सर्वे भवतां यदभीप्सितम् ॥१००॥

द्विजदेवा ऊचुः

यदा यदा वयं युक्ताः स्मरामो भवतः पदम् । सर्वबाधाविनिर्मुक्ता भवामश्च तवाज्ञया ॥१०१॥

ठहरेंगे ॥ ८६ ॥ उस तीर्थमें अनेक प्रकारके दान—गौ, बड़े-बड़े हाथी, घोड़े, रत्न, वस्त्र तथा इच्छानुसार भोजन—ब्राह्मणोंको देकर वे अपने आचार्यके साथ उस स्थानसे लौटकर गङ्गातटके तीर्थस्थानोंका दर्शन करते हुए सत्पुरुषोंसे घिरे शयननगरमें आकर सेवकोंसहित डेरा डालेंगे। वहाँ श्रीगुरुकी आज्ञासे सामग्री और साधन जुटाकर अश्वमेध यज्ञ करेंगे और सर्वजेता (दिग्विजयी) होंगे। इस प्रकार एकच्छत्र राज्यके स्वामी होकर श्रीगुरुदेवकी शरण ले शयननगरसे पूर्व दिशामें रमणीय गङ्गाके तटपर अत्यन्त एकान्तवासीके रूपमें तीर्थ-सेवन करेंगे ॥ ८७–९१ ॥ वहाँ धार्मिकोंके समाजमें बड़े आनन्दके साथ भवरोगविनाशिनी भागवत-कथा होगी ॥ ९२ ॥ उस पूर्ण समाजमें एक तुम भी रहोगे और भागवतकी कथा सुनोगे। उसे सुनकर तुम्हें निर्मल पदकी प्राप्ति होगी ॥ ९३ ॥ तुमने मेरे लिये तपस्या की है, इसलिये तुम्हारे सामने मैंने इस रहस्यको प्रकाशित किया है। इस प्रकार माण्डूकदेवको वर देकर सेवकोंसहित बलरामजी वहाँसे चले गये ॥९४॥ शुद्ध शयननगरसे ईशानकोणमें गङ्गातटपर स्थित एक रमणीय स्थान है, जो कण्टकतीर्थसे उत्तरकी ओर है और पुष्पवती नदीसे दक्षिण दिशामें विद्यमान है ॥ ९५ ॥ उसका विस्तार एक कोसमें है। वहीं ठहरकर संकर्षणदेव दान-पुण्यमें लग गये। बलरामजीने बड़ी प्रसन्नताके साथ वहाँ दस हजार घोड़ों, सौ रथों, एक हजार हाथियों और दस हजार गौओंका दान किया ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ वहाँ समस्त देवता तथा तपस्याके धनी ऋषि-मुनि आये। उन सबने बड़े आदरसे संकर्षणदेवका पूजन किया ॥ ९८ ॥ फिर इस प्रकार स्तुति की—'हे प्रभो ! आप कोलेश दैत्यके हन्ता तथा गर्दभासुर (धेनुक) का विनाश करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। हे हलायुध ! आपको प्रणाम है। मुसलास्त्र धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। सौन्दर्यस्वरूप आपको प्रणाम है। तालचिह्नित ध्वजा धारण करनेवाले आपको बारंबार नमस्कार है ॥ ९९ ॥ उन सबके द्वारा की गयी इस स्तुतिको सुनकर संकर्षण बोले—'आप सब लोगोंको जो अभीष्ट हो, वह वर मुझसे मांगिये' ॥ १०० ॥ ब्रह्मर्षि और देवता बोले—हे भगवन्! जब-जब आपत्तिमें पड़कर हम आपके चरणोंका चिन्तन करें,

राम उवाच

यदा यदा मां स्मरथ तदाऽहं शरणागतान् । रक्षिता स्यां कलौ नूनमिति सत्यं वचो मम ॥१०२॥
अत्र स्थले वरं प्राप्तं पूजितं मुनिपुङ्गवैः । अतः संकर्षणस्थानं भविष्यति कलौ युगे ॥१०३॥
यस्मिन् स्नास्यंति गङ्गायां देवान्संपूजयंति ये । दास्यंति दानं विप्रेभ्यो भोजनं कारयंति ये ॥१०४॥
विष्णुं संपूजयंति स्म सफलं जीवितं क्षितौ । ते यांति दैवतस्थानं कामी प्राप्नोति कामनाम् १०५
ततः परिवृतो रामः स्वां पुरीं संजगाम ह । कोलरक्षोवधं कृत्वा स्नात्वा विष्णुपदीजले ॥१०६॥
रामस्य बलदेवस्य कथां यः शृणुयान्नरः । सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम् ॥१०७॥

इति श्रीगर्गसंहितायां मथुराखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसम्वादे कोलदैत्यवधो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

(मथुरापुरीका माहात्म्य एवं मथुराखण्डका उपसंहार)

बहुलाश्व उवाच

अकस्मादागते रामे तत्र तीर्थमिदं श्रुतम् । अहो मधुपुरी धन्या यत्र सन्निहितश्च सः ॥ १ ॥
मथुरायास्तु को देवः कः क्षत्ता कश्च रक्षति । कश्चारः को मंत्रिवरः कैर्भूमिस्तत्र सेविता ॥ २ ॥

श्रीनारद उवाच

परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान् हरिः । स्वयं हि मथुरानाथः केशवः क्लेशनाशनः ॥ ३ ॥
साक्षाद्भगवता प्राप्तः कपिलाय द्विजाय च । कपिलः प्रददौ यं वै प्रसन्नः शतमन्यवे ॥ ४ ॥
जित्वा देवान् राक्षसेन्द्रो रावणो लोकरावणः । यं स्तुत्वा पुष्पके स्थाप्य लंकायां तमपूजयत् ॥ ५ ॥

तब-तब आपकी आज्ञासे हम समस्त बाधाओंसे मुक्त हो जायँ ॥१०१॥ बलरामने कहा—जब-जब आपलोग मेरी शरणमें आकर मेरा स्मरण करेंगे, तब-तब कलियुगमें निश्चय ही मैं आपलोगोंकी रक्षा करूँगा, यह मेरा सत्य वचन है ॥ १०२ ॥ इस स्थानपर मुनिपुंगवोंने मेरा पूजन करके वर प्राप्त किया, इसलिये कलियुगमें यह तीर्थ 'संकर्षणस्थान'के नामसे विख्यात होगा ॥ १०३ ॥ जो लोग इस तीर्थमें गङ्गा-स्नान और देवताओंका पूजन करेंगे, ब्राह्मणोंको दान देंगे, उन्हें भोजन करायेंगे और विष्णुभगवान्‌की पूजा करेंगे, इस भूतलपर उनका जीवन सफल होगा । वे देवताओंके लोकमें जायँगे । अथवा यदि उनके मनमें कोई अभीष्ट होगा तो उस अभीष्टको ही प्राप्त कर लेंगे ॥ १०४ ॥ १०५ ॥ तदनन्तर बलराम सबके साथ अपनी पुरी मथुराको चले गये । कोल राक्षसका वध और गङ्गाके जलमें स्नान करके उन्होंने लोक-संग्रहके लिये प्रायश्चित्त किया था । जो मनुष्य बलके देवता बलरामकी इस कथाको सुनेंगे, वे सब पापोंसे मुक्त होकर परमगतिको प्राप्त होंगे ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां मथुराखण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

बहुलाश्वने पूछा—हे मुने ! जहाँ बलरामजी अकस्मात् पहुँच गये, वहाँ ऐसा उत्तम तीर्थ सुना गया । अहो ! मथुरापुरी धन्य है, जहाँ वे नित्य निवास करते हैं । मथुराका देवता कौन है ? क्षत्ता (द्वारपाल) कौन है ? उसकी रक्षा कौन करता है ? चार कौन है ? मन्त्रिप्रवर कौन है ? और किन-किन लोगोंके द्वारा वहाँकी भूमिका सेवन किया गया है ? ॥ १ ॥ २ ॥ नारदजीने कहा—राजन् ! साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण हरि स्वयं ही मथुराके स्वामी या देवता हैं । भगवान् केशवदेव वहाँके क्लेशनाशक हैं ॥ ३ ॥ साक्षात् भगवान्‌ने कपिल नामक ब्राह्मणको अपनी वाराहमूर्ति प्रदान की थी । कपिलने प्रसन्न होकर वह मूर्ति देवराज इन्द्रको दे दी ॥ ४ ॥ फिर समस्त लोकोंको रुलानेवाला राक्षसराज रावण देवताओंको जीतकर उस मूर्तिका स्तवन करके उसे पुष्पकविमानपर रखकर लङ्कामें ले आया और उसकी पूजा करने लगा ॥ ५ ॥

जित्वा लंकां राघवेन्द्रस्तमानीय प्रयत्नतः । अयोध्यायां च वाराहमर्चयामास मैथिल ॥ ६ ॥
स्तुत्वा रामं च शत्रुघ्नो यमानीय प्रयत्नतः । मथुरायां महापुर्यां स्थापयित्वा ननाम ह ॥ ७ ॥
सेवितो माथुरैः सर्वैः सर्वेषां च वरप्रदः । साक्षात्कपिलवाराहः सोऽयं मंत्रिवरः स्मृतः ॥ ८ ॥
क्षत्ता श्रीमथुरायाश्च नाम्ना भूतेश्वरः शिवः । दत्त्वा दण्डं पातकिने भक्त्यर्थान्मंत्रतां व्रजत् ॥ ९ ॥
चण्डिका तु महाविद्या देवी दुर्गार्तिनाशिनी । सिंहारूढा सदा रक्षां मथुरायाः करोति हि ॥१०॥
चारोऽहं मथुरायाश्च पश्यँल्लोकानितस्ततः । वदामि वार्तां सर्वेषां श्रीकृष्णाय महात्मने ॥११॥
मध्ये वै मथुरा देवी शुभदा करुणामयी । बुभुक्षितेभ्यः सर्वेभ्यो ददात्यन्नं विदेहराट् ॥१२॥
चतुर्भुजा श्यामलाङ्गा व्रजंति प्रव्रजंति च । मथुरायां मृतं नेतुं विमानैः कृष्णपार्षदाः ॥१३॥
श्रीकृष्णस्याङ्गसंभूता मथुरा वै महापुरी । यस्या दर्शनमात्रेण नरो याति कृतार्थताम् ॥१४॥

पुरा विधिः श्रीमथुरामुपेत्य तप्त्वा तपो वर्षशतं निरन्नः ।
जपन्हरिं ब्रह्म परं स्वयम्भूः स्वायम्भुवं प्राप सुतं प्रवीणम् ॥१५॥

भूतेश्वरो देववरः सतीपतिस्तप्त्वा तपो दिव्यशरन्मधोर्वने ।
कृष्णप्रसादान्नृपराज सत्वरं तस्याः पुरे माथुरमण्डलस्य ॥१६॥

कृष्णप्रसादादहमेव चारो भ्रमन्सदा माथुरमण्डलस्य ।
तथा हि दुर्गा मथुरां प्रयाति श्रीकृष्णदास्यं प्रकरोति नूनम् ॥१७॥

तप्त्वा तपः शक्रपदं च शक्रः सूर्यो मनुं नित्यनिधिं कुबेरः ।
पाशी च पाशं समवाप्य सम्यङ्मधोर्वने विष्णुपदं ध्रुवश्च ॥१८॥

हे मिथिलेश्वर! तदनन्तर राघवेन्द्र श्रीराम लङ्कापर विजय प्राप्त करके भगवान् वाराहको प्रयत्नपूर्वक अयोध्यापुरीमें ले आये और वहाँ उनकी अर्चना करते रहे ॥ ६ ॥ तत्पश्चात् शत्रुघ्न श्रीरामकी स्तुति करके उनकी आज्ञासे उस वाराह-विग्रहको प्रयत्नपूर्वक महापुरी मथुरामें ले आये और वहाँ वाराह भगवान्की स्थापना करके उनको प्रणाम किया ॥ ७ ॥ फिर समस्त मथुरावासियोंने उन वरदायक भगवान्की सेवा-पूजा प्रारम्भ की। वे ही साक्षात् कपिल-वाराह मथुरापुरीमें श्रेष्ठ मन्त्री माने गये हैं ॥ ८ ॥ 'भूतेश्वर' नामसे प्रसिद्ध भगवान् शिव मथुराके द्वारपाल या क्षेत्रपाल हैं। वे पापियोंको दण्ड देकर भक्तिके लिये उन्हें मन्त्रोपदेश करते हैं ॥ ९ ॥ महाविद्यास्वरूपा और दुर्गम कष्ट दूर करनेवाली चण्डिकादेवी दुर्गा सिंहपर आरूढ़ हो सदा मथुरापुरीकी रक्षा करती हैं ॥ १० ॥ मैं (नारद) ही मथुराका चार (गुप्तचर) हूँ और इधर-उधर लोगोंपर दृष्टि रखकर सबकी बात महात्मा श्रीकृष्णको बताता हूँ ॥ ११ ॥ हे विदेहराज! नगरके मध्यभागमें स्थित शुभदायिनी करुणामयी मथुरादेवी समस्त भूखे लोगोंको अन्न प्रदान करती हैं ॥ १२ ॥ मथुरामें मरे हुए लोगोंको विमानोंद्वारा ले जानेके लिये श्याम अङ्गवाले, चार भुजाधारी श्रीकृष्णपार्षद आते-जाते रहते हैं ॥ १३ ॥ महापुरी मथुरा, जिसके दर्शनमात्रसे मनुष्य कृतार्थ हो जाता है, श्रीकृष्णके अङ्गसे प्रकट हुई है ॥ १४ ॥ पूर्वकालमें ब्रह्माजीने मथुरामें आकर निराहार रहते हुए सौ दिव्य वर्षोंतक तपस्या की। उस समय वे परब्रह्म श्रीहरिके नामका जप करते थे, इससे उन्हें स्वायम्भुव मनु जैसे प्रवीण पुत्रकी प्राप्ति हुई ॥ १५ ॥ हे नृपराज! सतीपति देववर भूतेश मधुवनमें एक सौ दिव्य वर्षतक तप करके श्रीकृष्णकी कृपासे तत्काल मथुरापुरी और माथुर-मण्डलके क्षेत्रपाल हो गये ॥ १६ ॥ श्रीकृष्णके कृपा-प्रसादसे ही मैं मथुरा-मण्डलका चार बना हूँ और सदा भ्रमण करता रहता हूँ। इसी प्रकार 'दुर्गा' मथुरामें जाती हैं और निश्चय ही श्रीकृष्णकी सेवा करती हैं ॥ १७ ॥ इन्द्रने मथुरामें तप करके इन्द्रपद, सूर्यने तप करके वैवस्वत मनु-जैसा पुत्र, कुबेरने अक्षयनिधि, वरुणने पाश और ध्रुवने मधुवनमें तप करके सम्यक् ध्रुवपद प्राप्त किया था ॥ १८ ॥

तथांबरीषः समवाप मुक्तिं सोमोऽक्षयं वा लवणाज्जयं च ।
रघुश्च सिद्धिं किल चित्रकेतुस्तप्त्वा तपोऽत्रैव मधोर्वने च ॥१९॥
तप्त्वा तपोऽत्रैव मधोर्वने शुभे भूत्वा बलिष्ठश्च मधुर्महासुरः ।
श्रीमाधवे मासि च माधवेन युयोध युद्धे मधुसूदनेन सः ॥२०॥
सप्तर्षयः श्रीमथुरां समेत्य तप्त्वा तपोऽत्रैव च योगसिद्धिम् ।
प्रापुः परे वै मुनयः समंताद्गोकर्णवैश्योऽपि महानिधिं च ॥२१॥
तप्त्वा तपोऽत्रैव मधोर्वने शुभे विजित्य देवान् दिवि लोकरावणः ।
निधाय रक्षांसि विधाय मंदिरमास्थाय लंकां विरराज रावणः ॥२२॥
तप्त्वा तपोऽत्रैव मधोर्वने शुभे गजाह्वयेशो मिथिलेश शंतनुः ।
लेभे सुतं भीष्ममतीव सत्तमं तत्त्वार्थवारांनिधिकर्णधारकम् ॥२३॥

बहुलाश्व उवाच

मथुरायाश्च माहात्म्यं वद देवर्षिसत्तम ।
निवासे किं फलं प्रोक्तं मथुरायाः सतां नृणाम् ॥२४॥

श्रीनारद उवाच

आदौ वराहो धरणीं निमग्नां महाजले प्रोज्झितवीचिशंके ।
स्वदंष्ट्रयोद्धृत्य करीव पद्मं करेण माहात्म्यमिदं जगाद ॥२५॥
त्रुवञ्जनो नाम फलं हरेर्लभेच्छृण्वँल्लभेत्कृष्णकथाफलं नरः ।
स्पृशन्सतां स्पर्शनजं मधोः पुरि जिघ्रंस्तुलस्या दलगंधजं फलम् ॥२६॥
पश्यन्हरेर्दर्शनजं फलं स्वतो भक्षंश्च नैवेद्यभवं रमापतेः ।
कुर्वन् भुजाभ्यां हरिसेवया फलं गच्छँल्लभेत्तीर्थफलं पदे पदे ॥२७॥

यहीं तपस्या करके अम्बरीषने मोक्ष पाया, रामने अक्षय शक्ति एवं लवणासुरपर विजय प्राप्त की। राजा रघुने सिद्धि पायी तथा इसी मधुवनमें तप करके चित्र-केतुने भी अभीष्ट फल प्राप्त किया ॥ १९ ॥ यहींके सुन्दर मधुवनमें तप करके अत्यन्त बलिष्ठ होकर महासुर मधुने माधवमासमें मधुसूदन माधवके साथ युद्धभूमिमें जाकर युद्ध किया ॥ २० ॥ सप्तर्षियोंने मथुरामें आकर यहीं तपस्या करके योगसिद्धि प्राप्त की। पूर्वकालमें अन्य ऋषियोंने भी यहाँ तप करके सर्वतोमुखी सफलता पायी थी और गोकर्ण नामक वैश्यने भी यहाँ तप करके महानिधि उपलब्ध की थी ॥ २१ ॥ इसी शुभ मधुवनमें लोकरावण रावणने तपस्या करके स्वर्गके देवताओंपर विजय पायी तथा राक्षसोंको अधिकारी बनाकर मन्दिर-निर्माण कराके लङ्कामें प्रतिष्ठित हो बड़ी शोभा प्राप्त की ॥ २२ ॥ हे मिथिलेश्वर! इसी सुन्दर मधुवनमें तपस्या करके हस्तिनापुरके राजा शंतनुने अत्यन्त साधुशिरोमणि तथा तत्त्वार्थसागरके कर्णधार भीष्मको पुत्ररूपमें प्राप्त किया ॥ २३ ॥ बहुलाश्वने पूछा—हे देवर्षि-शिरोमणे! मथुराका माहात्म्य बताइये। वहाँ निवास करनेवाले सज्जनोंको किस फलकी प्राप्ति बतायी गयी है? ॥ २४ ॥ नारदजीने कहा—हे राजन्! आदियुगमें भगवान् वराहने महासागरके जलमें, जहाँ बड़ी ऊँची लहरें उठ रही थीं, डूबी हुई पृथ्वीको, जैसे हाथी सूँड़से कमलको उठा ले, उसी प्रकार स्वयं अपनी दाढ़से उठाकर जब जलके ऊपर स्थापित किया, तब मथुराके माहात्म्यका इस प्रकार वर्णन किया था ॥ २५ ॥ यदि मनुष्य 'मथुरा'का नाम ले ले तो उसे भगवन्नामोच्चारणका फल मिलता है। यदि वह मथुराका नाम सुन ले तो श्रीकृष्णके कथा-श्रवणका फल पाता है। मथुराका स्पर्श प्राप्त करके मनुष्य साधु-संतोंके स्पर्शका फल पाता है। मथुरामें रहकर किसी भी गन्धको ग्रहण करनेवाला मानव भगवच्चरणोंपर चढ़ी हुई तुलसीके पत्रकी सुगन्ध लेनेका फल प्राप्त करता है ॥ २६ ॥ मथुराका दर्शन करने-

त्रिःसप्तकृत्वो बहुवैभवार्थिनः शृण्वन्ति चैनं नियताश्च ये भृशम् ।
तेषां गृहद्वारमलंकरोति हि भृङ्गावली कुञ्जरकर्णताडिता ॥३७॥
विप्रोऽथ विद्वान् विजयी नृपात्मजो वैश्यो निधीशो वृषलोऽपि निर्मलः ।
श्रुत्वेदमाराच्च मनोरथो भवेत् स्त्रीणां जनानामतिदुर्लभोऽपि हि ॥३८॥
निष्कारणो भक्तियुतो महीतले शृणोति चेदं हरिलग्नमानसः ।
विजित्य विघ्नान् प्रविजित्य नाकपान् गोलोकधामप्रवरं प्रयाति सः ॥३९॥

इति श्रीगर्गसंहितायां मथुराखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे मथुरामाहात्म्यं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

संशय नहीं है ॥३५॥ हे विदेहराज ! जो लोग इस मथुराखण्डको सब कथामें सुनते, गाते और पढ़ते हैं, उनको यहीं सब प्रकारकी समृद्धि और सिद्धियाँ सदा स्वभावसे ही प्राप्त होती रहती हैं ॥ ३६ ॥ जो बहुत वैभवकी इच्छा करनेवाले लोग नियमपूर्वक रहकर इस मथुराखण्डका इक्कीस बार श्रवण करते हैं, उनके घर और द्वारको हाथीके कर्णतालोंसे प्रताड़ित भ्रमरावली अलंकृत करती है ॥ ३७ ॥ इसको पढ़ने और सुननेवाला ब्राह्मण विद्वान् होता है, राजकुमार युद्धमें विजयी होता है, वैश्य निधियोंका स्वामी होता है तथा शूद्र भी शुद्ध—निर्मल हो जाता है । स्त्रियाँ हों या पुरुष—इसे निकटसे सुननेवालोंके अत्यन्त दुर्लभ मनोरथ भी पूर्ण हो जाते हैं ॥ ३८ ॥ जो विना किसी कामनाके भगवान्में मन लगाकर इस भूतलपर भक्ति-भावसे इस मथुरा-माहात्म्य अथवा मथुराखण्डको सुनता है, वह विघ्नोंपर विजय पाकर, स्वर्गलोकके अधिपतियोंको लाँघकर सीधे गोलोकधाममें चला जाता है ॥ ३९ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां मथुराखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

※ इति पञ्चमो मथुराखण्डः सम्पूर्णः ※

* श्रीकृष्णः शरणं मम *

आचार्य-श्रीगर्गमहामुनिविरचिता—

श्रीगर्गसंहिता

'प्रियंवदा'ऽभिधया भाषाटीकयाऽऽटीकिता

(द्वारकाखण्डः ६)

अथ प्रथमोऽध्यायः

(श्रीकृष्णके हाथों जरासन्धकी पराजय)

श्रीनारद उवाच

कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनंदनाय च । नंदगोपकुमाराय गोविंदाय नमो नमः ॥ १ ॥

बहुलाश्व उवाच

श्रुतं तव मुखाद्ब्रह्मन्मथुराखंडमद्भुतम् । वद मां द्वारकाखंडं श्रीकृष्णचरितामृतम् ॥ २ ॥
विवाहाः कति पुत्राश्च कति पौत्रा रमापतेः । सर्वं वद महाबुद्धे द्वारकावासकारणम् ॥ ३ ॥

श्रीनारद उवाच

अस्तिप्राप्ती महिष्यौ द्वे मृते कंसे महाबले । जरासंधगृहं दुःखाज्जग्मतुर्मैथिलेश्वर ॥ ४ ॥
तन्मुखात्कंसमरणं श्रुत्वा क्रुद्धो जरासुतः । अयादवीं महीं कर्तुमुद्यतोऽभून्महाबलः ॥ ५ ॥
अक्षौहिणीभिर्विंशत्या तिसृभिश्चापि संवृतः । रम्यां मधुपुरीं राजन्नाययौ बलवान्नृपः ॥ ६ ॥
भयातुरां पुरीं वीक्ष्य तत्सेनां सिंधुनादिनीम् । सभायां भगवान्साक्षाद्बलदेवमुवाच ह ॥ ७ ॥
सर्वं चास्य बलं राम हंतव्यं वै न संशयः । मागधस्तु न हंतव्यो भूयः कर्ता बलोद्यमम् ॥ ८ ॥
जरासंधनिमित्तेन भारं वै भूभुजां भुवः । सर्वं चात्र हरिष्यामि करिष्यामि प्रियं सताम् ॥ ९ ॥

श्रीकृष्ण, वासुदेव, देवकीनन्दन, नन्दगोपकुमार और गोविन्दको नमस्कार है—नमस्कार है ॥ १ ॥ राजा बहुलाश्व बोले—हे महामुने ! मैंने आपके मुखसे अद्भुत मथुराखण्डकी कथा सुनी । अब श्रीकृष्ण-चरितामृतसे ओत-प्रोत द्वारकाखण्ड सुनाइए ॥ २ ॥ भगवान् श्रीकृष्णके कितने विवाह हुए ? उनके कितने पुत्र और पौत्र थे ? हे महाबुद्धे ! यह बताते हुए आप यह भी कहिए कि उन्होंने मथुरा त्यागकर द्वारकामें क्यों निवास किया ? ॥ ३ ॥ नारदजी बोले—हे मैथिलेश्वर ! कंसके मर जानेपर अस्ति तथा प्राप्ति नामवाली उसकी दो पत्नियाँ बहुत दुःखी होकर जरासन्धके घर गयीं ॥ ४ ॥ उनके मुखसे कंसके मरणका हाल सुनकर महाबली जरासन्ध क्रोधसे तमतमा उठा और सारी पृथिवी यादवोंसे हीन करनेको उद्यत हो गया ॥ ५ ॥ फिर तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर वह रमणीक मथुरापुरीपर चढ़ आया ॥ ६ ॥ उसके आगमनसे भय-भीत मथुरापुरी तथा समुद्रसदृश गर्जन करती हुई उसकी सेनाको देखकर सभामें बैठे हुए बलदेवजीसे श्रीकृष्ण बोले—हे राम ! इसकी समस्त सेना नष्ट कर देनी चाहिए । किन्तु जरासन्धको न मारा जाय । क्योंकि वह जीवित रहेगा तो और सेना जुटानेका उद्योग करेगा ॥ ७ ॥ ८ ॥ जरासन्धके बहाने धरतीके

एवं वदति कृष्णे वै वैकुंठाच्च रथौ शुभौ । अभूतामागतौ राजन् सर्वेषां पश्यतां च तौ ॥१०॥
समारुह्य रथौ सद्यो रामकृष्णौ महाबलौ । यादवानां बलैः सूक्ष्मैस्त्वरं निर्जग्मतुः पुरात् ॥११॥
यादवानां मागधानां पश्यद्भिर्दिविजैर्दिवि । बभूव तुमुलं युद्धमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥१२॥
अक्षौहिणीभिर्दशभी रथारूढो महाबलः । श्रीकृष्णस्य पुरः पूर्वं युयुधे मागधेश्वरः ॥१३॥
पंचभिश्चाक्षौहिणीभिर्धार्तराष्ट्रः सुयोधनः । युयोध यादवैः सार्द्धं जरासंधसहायकृत् ॥१४॥
पंचभिश्च तथा राजन् विंध्यदेशाधिपो बली । तिसृभिश्च महायुद्धे वंगनाथो महाबलः ॥१५॥
एवमन्येऽपि राजानो जरासंधवशानुगाः । प्राणैः सहायं कुर्वन्तो जरासंधस्य मैथिल ॥१६॥
बाणांधकारे संजाते शत्रुसेनासमाकुले । टंकारं शार्ङ्गधनुषः शार्ङ्गधन्वा चकार ह ॥१७॥
ननाद तेन ब्रह्मांडं सप्तलोकैर्बिलैः सह । विचेलुर्दिग्गजास्तारा एजद्भूखंडमंडलम् ॥१८॥
तदैव बधिरीभूतं शत्रूणां सैन्यमंडलम् । उत्पतंतो हया युद्धाद्गजास्तु विमुखास्ततः ॥१९॥
दुद्राव तद्बलं सर्वं टंकाराद्भयविह्वलम् । प्रतीपमेत्य गव्यूतिः पुनस्तत्राजगाम ह ॥२०॥
एवं शार्ङ्गं समुच्चार्य तडित्पिंगस्फुरत्प्रभम् । बाणौघैश्छादयामास जरासंधबलं हरिः ॥२१॥
चूर्णीभूता रथा राजन् बाणौघैः शार्ङ्गधन्वनः । चूर्णचक्रा निपेतुः कौ हतसूताश्च नायकाः ॥२२॥
द्विधाभूता गजा बाणैश्चलिता गजिभिः सह । साश्ववाहास्तथाऽश्वाश्च बाणैः संछिन्नकंधराः ॥२३॥
तथा वीरा महायुद्धे भिन्नोरश्छिन्नमस्तकाः । विशीर्णकवचाः पेतुर्बाणौघैश्छिन्नसंशयाः ॥२४॥
अधोमुखा ऊर्ध्वमुखाश्छिन्नदेहा नृपात्मजाः । रेजू रणांगणे राजन् भांडव्यूहा इवाहताः ॥२५॥
क्षणमात्रेण तद्युद्धे शतक्रोशविलंबिता । आपगाऽभून्महादुर्गा रुधिरस्रावसंभवा ॥२६॥

बोझ बने हुए राजाओंका वध करके मैं सज्जनोंका कल्याण करूँगा ॥ ९ ॥ भगवान् कृष्ण ऐसा कह ही रहे थे, तभी वैकुण्ठधामसे दो दिव्य रथ सब सभासदोंके सम्मुख आ उपस्थित हुए ॥ १० ॥ उन्हें देखते ही महाबली बलदेव और कृष्ण दोनों भाई उनपर सवार हो गये और थोड़ीसी यादवी सेना लेकर शीघ्र मथुरापुरीसे निकल पड़े ॥ ११ ॥ रणभूमिमें सामना होते ही मागधों और यादववीरोंमें अद्भुत और लोमहर्षक युद्ध छिड़ गया । स्वर्गके देवता भी वह महायुद्ध देख रहे थे ॥ १२ ॥ उसी समय महाबली मगधेश जरासन्ध दस अक्षौहिणी सेना लेकर श्रीकृष्णसे युद्ध करने लगा ॥ १३ ॥ जरासन्धका सहायक धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन भी पाँच अक्षौहिणी सेना लेकर यादवोंसे युद्ध करने लगा ॥ १४ ॥ विन्ध्यदेशका बलवान् राजा पाँच तथा वंगदेशका राजा तीन अक्षौहिणी सेना लेकर उस युद्धमें आया ॥ १५ ॥ हे मिथिलेश ! इसी प्रकार और भी बहुतसे जरासन्धके वशवर्ती राजे अपने प्राणोंसे उसको सहायता करनेके लिए आये ॥ १६ ॥ जब शत्रुसेनाकी बाणवर्षासे अन्धकार छा गया, तब भगवान कृष्णने अपने शार्ङ्गधनुषका टंकोर किया ॥ १७ ॥ जिससे नीचे तथा ऊपरके सातों लोक और अखिल ब्रह्माण्ड मुखरित हो उठा । सभी दिग्गज विचलित हो गये, तारे छितरा गये और धरती काँपने लगी ॥ १८ ॥ उस टंकोरके भीषण निनादसे शत्रुसेना बहरी हो गयी । घोड़े रणभूमिसे भाग गये और हाथी भी मुँह फेरकर निकल भागे ॥ १९ ॥ उस टंकोरसे भयभीत सारी शत्रुसेना रणभूमिसे दो कोस पीछे हट गयी, किन्तु तनिक देर बाद फिर लौट आयी ॥ २० ॥ इधर भगवान् कृष्णने बिजलीके समान चमकीले शार्ङ्गधनुषको चढ़ाकर उसकी बाणवर्षासे जरासन्धकी समस्त सेना ढाँक दी ॥ २१ ॥ श्रीकृष्णकी बाणवर्षासे शत्रुसेनाके रथ चूर्ण होगये और उनके सारथी तथा रथी धरतीपर लुढ़क गये ॥ २२ ॥ उन बाणोंकी मारसे हथिनियों समेत सभी हाथी कटकर दो टुकड़े हो गये । घुड़सवारोंके घोड़ोंके सिर कट गये और सवार मर गये ॥ २३ ॥ उस महायुद्धमें सैनिकोंकी छाती फट गयी, मस्तक कट गये, कवच छिन्न-भिन्न हो गये और वे मरकर भूमिपर गिर गये ॥ २४ ॥ उन छिन्नदेह सैनिकोंमें कितने ऊपर और कितने नीचे मुख करके पड़े क्षत्रियवीर ऐसे लग रहे थे, जैसे किसी लुटे हुए घरके बर्तन छितराये पड़े हों ॥ २५ ॥ क्षणमात्रके उस तुमुल युद्धसे रुधिरकी सौ कोस लम्बी और बड़ी भयानक

द्वीपग्राहा चोष्ट्रखरकबंधाश्वादिकच्छपा । शिशुमाररथा केशशैवाला भुजसर्पिणी ॥२७॥
करमीना मौलिरत्नहारकुंडलशर्करा । शस्त्रशुक्तिश्छत्रशंखा चामरध्वजसैकता ॥२८॥
रथांगावर्तसंयुक्ता सेनाद्वयतटावृता । शतयोजनविस्तीर्णा बभौ वैतरणी यथा ॥२९॥
प्रमथा भैरवा भूता वेताला योगिनीगणाः । अट्टहासं प्रकुर्वंतो नृत्यंतो रणमंडले ॥३०॥
पिबंतो रुधिरं शश्वत्कपालेन नृपेश्वर । हरस्य मुण्डमालार्थं जगृहुस्ते शिरांसि च ॥३१॥
सिंहारूढा भद्रकाली डाकिनीशतसंवृता । पिबंती रुधिरं चोष्णं साऽट्टहासं चकार ह ॥३२॥
विद्याधर्यश्च स्वर्गस्था गंधर्व्योऽप्सरसस्तथा । क्षात्रधर्मस्थितान्वीरान्वव्रिरे देवरूपिणः ॥३३॥
गृहीत्वा तान्कलिरभूत्तासां पत्यर्थमंबरे । ममानुरूपा तेनैव इति तद्गतचेतसाम् ॥३४॥
केचिद्वीरा धर्मपरा रणरंगान्न चालिताः । ययुर्विष्णुपदं दिव्यं भित्वा मार्तंडमंडलम् ॥३५॥
शेषं बलं समाकृष्य बलदेवो हलेन वै । मुशलेनाहनत् क्रुद्धस्त्रैलोक्यबलधारकः ॥३६॥
एवं सैन्ये क्षयं याते जरासंधस्य सर्वतः । सुयोधनो विंध्यनाथो वंगनाथस्तथैव च ॥३७॥
सर्वे विदुद्रुवुर्युद्धाद्भयभीता इतस्ततः । जरासंधो महावीर्यो नागायुतसमो बले ॥३८॥
रथेनागतवान् राजन् बलदेवस्य संमुखे । समाकृष्य हलाग्रेण जरासंधरथं शुभम् ॥३९॥
चूर्णयामास सहसा मुसलेन यदूत्तमः । जरासंधोऽपि विरथो हताश्वो हतसारथिः ॥४०॥
जग्राह बलिनं दोर्भ्यां संत्यक्त्वा शस्त्रसंहतिम् । तयोर्युद्धमभूद्घोरं बाहुभ्यां रणमंडले ॥४१॥
पश्यतां दिवि देवानां नराणां भुवि मैथिल । उरसा शिरसा चैव बाहुभ्यां पादयोः पृथक् ॥४२॥
युयुधाते मल्लयुद्धे सिंहाविव महाबलौ । तयोश्च युद्ध्यतोः सर्वं क्षुण्णं भूखंडमंडलम् ॥४३॥

नदी बह निकली ॥ २६ ॥ जिसमें बहते हुए हाथी ग्राह, ऊँटों और गधोंके शव कच्छप, रथ शिशुमार, वीरोंके केश सेवार और भुजायें सर्पसरीखी दीख रही थीं ॥ २७ ॥ उस रक्तनदीमें वीरोंके हाथ मछली और मूल्यवान् रत्न तथा कुण्डल कंकड़-पत्थर थे। उसमें वीरोंके शस्त्र सीप, शस्त्र शंख और चमर-ध्वज बालू जैसे प्रतीत होते थे ॥ २८ ॥ उसमें रथके पहिये भ्रमर तथा उभय पक्षकी सेनायें नदीतट जैसी दीखती थीं। इस प्रकार सौ कोसकी वह रुधिरनदी वैतरणी जैसी बह रही थी ॥ २९ ॥ प्रमथ, भैरव, भूत, वेताल तथा योगिनियोंके समूह उस रणभूमिमें अट्टहास करते हुए नाच रहे थे ॥ ३० ॥ हे राजन् ! वे बार-बार नरक-पालमें रुधिर भर-भरके पी रहे थे और शंकरजीकी मुण्डमालाके लिए वीरोंके मुण्ड एकत्र करते थे ॥ ३१ ॥ सैकड़ों डाकिनियोंसे घिरी सिंहारूढ़ा भद्रकाली वीरोंके गरम-गरम रुधिर पीती हुई अट्टहास कर रही थीं ॥ ३२ ॥ स्वर्गकी विद्याधरियाँ, गन्धर्वियां तथा अप्सरायें क्षात्रधर्मके अनुसार रणमें मृत देवतासदृश वीरोंका वरण कर रही थीं ॥ ३३ ॥ उनमें यह कहकर परस्पर कलह होने लगा कि 'यह तो मेरे योग्य पति है, इसे मैं वरूँगी'। किन्तु दूसरी कहती—'इसको तो मैं ही वरूँगी' ॥ ३४ ॥ कुछ धर्मात्मा वीर देवांगनाओं-को देखकर विचलित नहीं हुए और अपने तेजसे सूर्यमंडलको भेदकर सीधे वैकुंठधामको चले गये ॥ ३५ ॥ शेष शत्रुसेनाको त्रिलोकबलधारी भगवान् बलराम अपने हलसे खींचकर मुसलसे चूर्ण करने लगे ॥ ३६ ॥ इस प्रकार जरासन्धकी सारी सेनाके नष्ट हो जानेपर दुर्योधन, विंध्यनाथ और वंगनाथ आदि राजे भयभीत होकर रणभूमिसे इधर-उधर भाग गये। जरासन्ध बड़ा बलवान् था। उसमें दस हजार हाथियों जितना पराक्रम था ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ वह रथारूढ़ होकर बलरामके समक्ष जा पहुँचा। तत्काल बलदेवने अपने हलसे उसके रथको खींच लिया और मुसलसे चूर-चूर कर डाला। अब जरासन्ध रथविहीन हो गया। उसके घोड़े मर गये। सारथी भी मर गया ॥ ३९ ॥ ४० ॥ उसी समय महाबली जरासन्धने बलरामको हाथोंसे पकड़ लिया। तब सभी शस्त्रास्त्र त्यागकर वे दोनों वीर बाहुयुद्ध करने लगे ॥ ४१ ॥ हे मिथिलेश ! जब कि आकाशसे देवता और पृथिवीसे मनुष्य साश्चर्य निहार रहे थे, तब छाती, मस्तक तथा भुजाओंसे मार करते हुए सिंहसदृश दोनों वीर परस्पर मल्लयुद्ध करने लगे। उन दोनोंके युद्धसे रणभूमि क्षत-विक्षत हो गयी ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ हे

स्थालीव सहसा राजंश्चकंपे घटिकाद्वयम् । गृहीत्वा भुजदंडाभ्यां जरासंधं यदूत्तमः ॥४४॥
भूपृष्ठे पोथयामास कमंडलुमिवार्भकः । रामस्तदुपरि स्थित्वा हंतुं शत्रुं जरासुतम् ॥४५॥
जग्राह मुशलं घोरं क्रोधपूरितविग्रहः । परिपूर्णतमेनाथ श्रीकृष्णेन महात्मना ॥४६॥
निवारितस्तदैवाशु तं मुमोच यदूत्तमः । तपसे कृतसंकल्पो व्रीडितोऽपि जरासुतः ॥४७॥
निवारितो मंत्रिमुख्यैर्मागधान्मागधो ययौ । इत्थं जित्वा जरासंधं माधवो मधुसूदनः ॥४८॥
आयोधनगतं वित्तं सर्वं नीत्वा सुखावहम् । यादवानग्रतः कृत्वा बलदेवसमन्वितः ॥४९॥
उपगीयमानविजयः सूतमागधवंदिभिः । शंखदुन्दुभिनादेन ब्रह्मघोषेण भूयसा ॥५०॥
विवेश मथुरां साक्षात्परिपूर्णतमः स्वयम् ॥५१॥

समर्चितो मंगललाजपुष्पैः पश्यन्पुरीं मंगलकुंभयुक्ताम् ।
पीतांबरः श्यामतनुः शुभांगः स्फुरत्किरीटांगदकुंडलप्रभः ॥५२॥
शार्ङ्गादिशस्त्रास्त्रधरो हसन्मुखस्तालांकयुक्तो गरुडध्वजः स्वयम् ।
उद्यद्विलोलाश्वरथः सुरार्चितः समेत्य राजानमसौ बलिं ददौ ॥५३॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीद्वारकाखंडे नारदबहुलाश्वसंवादे जरासंधपराजयो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

(श्रीकृष्णका द्वारका निवास)

श्रीनारद उवाच

पुनस्तत्र जरासंधस्त्वावेत्याक्षौहिणीबलः । युयुधे यदुभिः शीघ्रं पुनः कृष्णपराजितः ॥ १ ॥
श्रीकृष्णतेजसा सर्वे यादवा वृद्धिमागताः । धनुर्गजादिभिः शश्वत्प्राप्तलुंठनसाहसाः ॥ २ ॥

राजन् ! पृथिवी दो घड़ी तक थालीकी तरह काँपती रही । तभी बलदेवजीने जरासंधको अपने हाथोंसे पकड़ लिया ॥ ४४ ॥ और ऊपर उठाकर धरतीपर वैसे ही पटक दिया, जैसे कोई बालक कमंडलुको पटक दे । तदनन्तर उनको मार डालनेके लिए वे उसकी छातीपर चढ़ बैठे और क्रोधपूर्वक मुशल सम्हाला, तैसे ही परिपूर्ण परमेश्वर कृष्णने उन्हें रोक दिया । श्रीकृष्णकी बात मानकर बलदेवजीने उसे छोड़ दिया । तब लज्जासे आकुल जरासन्ध तप करने चला ॥ ४५-४७ ॥ किन्तु उसके मंत्रियोंने उसे रोक लिया । जिससे वह फिर अपने मगधदेशको लौट गया । इस प्रकार मधुसूदन कृष्णने जरासन्धको परास्त किया ॥ ४८ ॥ तत्पश्चात् रणभूमिमें प्राप्त सारा धन ले तथा यादवोंको आगे करके बलदेवके साथ श्रीकृष्ण मथुरा लौट आये ॥ ४९ ॥ वहाँ सूत मागध और वन्दीजन उनका यश गा रहे थे । शंख और नगाड़े बज रहे थे । ब्राह्मण वेदघोष कर रहे थे ॥ ५० ॥ इन समारोहोंके साथ श्रीकृष्ण मथुरापुरीमें प्रविष्ट हुए ॥ ५१ ॥ उस समय उनके ऊपर धानके लावे तथा पुष्पोंकी वर्षा हो रही थी । जगह-जगह मंगलकलश धरे थे । भगवान् पीताम्बर पहने थे । उनका श्यामल शरीर देदीप्यमान किरीट और कुण्डलकी प्रभासे जगमगा रहा था ॥ ५२ ॥ शार्ङ्ग आदि शस्त्रास्त्र धारण किये, मन्द-मन्द मुसकाते, तालकी ध्वजासे सुशोभित एवं चंचल घोड़ोंवाले रथपर सवार भगवान् गरुडध्वज श्रीकृष्णने संग्राममें प्राप्त सारा धन राजा उग्रसेनको अर्पण कर दिया ॥ ५३ ॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां द्वारकाखंडे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

श्रीनारदजी बोले—कुछ ही दिनों बाद जरासन्ध फिर तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर यादवोंके साथ लड़नेके लिए मथुरामें आ धमका । उस समय भी बड़ा भयंकर युद्ध हुआ । किन्तु शीघ्र ही वह फिर श्रीकृष्णसे पराजित हो गया ॥१॥ श्रीकृष्णके प्रतापसे यादवोंका साहस बहुत बढ़ गया था । अब वे अपने धनुष और हाथी-

प्राप्ते च साहसे राजन् विना युद्धं पुरैव हि । अर्भका जलहारिण्यश्चक्रुः शत्रुप्रहारणम् ॥ ३ ॥
शत्रुद्रव्यं च संहर्तुं वीक्षंतः क्रीतवाससः । नागरा माथुराः सर्वे परं हर्षमुपागताः ॥ ४ ॥
एवं सप्तदश कृत्वा क्षीणसैन्यो जरासुतः । अष्टादशमसंग्रामे आगंतुं च मनोऽकरोत् ॥ ५ ॥
मया प्रणोदितः कालयवनो वै महाबलः । रुरोध मथुरां क्रुद्धो म्लेच्छकोटिसमावृतः ॥ ६ ॥
म्लेच्छानां च बलं वीक्ष्य स्वपुरं भयविह्वलम् । भयं चोभयतः प्राप्तं रामेणाचिंतयद्धरिः ॥ ७ ॥
स्वज्ञातिबन्धुरक्षार्थं समुद्रे भीमनादिनि । चकार द्वारकादुर्गमेकरात्रेण माधवः ॥ ८ ॥
यत्राष्टदिक्पालसिद्धिर्विश्वकर्मविनिर्मिता । सर्वा वैकुण्ठसम्पत्तिर्दृश्यते मोक्षकांक्षिभिः ॥ ९ ॥
हरिः सर्वजनं तत्र नीत्वा योगेन मैथिल । पुराद्राममनुज्ञाप्य निर्गतोऽभून्निरायुधः ॥१०॥
निरायुधं हरिं ज्ञात्वा मयोक्तैर्लक्षणैः खलः । निरायुधः स तं योद्धुं पदातिः स्वयमागतः ॥११॥
पराङ्मुखं प्राद्रवंतं दुरापं योगिनामपि । जिघृक्षुस्तं चान्वधावत्सैनिकानां प्रपश्यताम् ॥१२॥
हस्तप्राप्तं वपुस्तस्मै दर्शयन्निव माधवः । दूरं गतः श्यामलाद्रेः प्राविशत्कंदरं त्वरम् ॥१३॥
मुचुकुन्दो यत्र चास्ते मांधातृतनयो महान् । असुरेभ्यः पुरा रक्षां देवानां यश्चकार ह ॥१४॥
अहर्निशं न सुष्वाप देवसेनापरो नृप । तमूचुर्देवताः सर्वे प्रसन्ना राजसत्तमम् ॥१५॥
वरं वरय भो राजन् यत्ते मनसि वर्त्तते । नत्वा तान्प्राह राजेन्द्रः करोमि शयनं परम् ॥१६॥
शयनांते हरेः साक्षाद्दर्शनं मे भवत्वलम् । यो मध्ये बोधयेन्मां वै शयानं त्वप्यचेतनम् ॥१७॥
स मया दृष्टमात्रस्तु भस्मीभवतु तत्क्षणात् । तथा स चोक्तः सुष्वाप राजा कृतयुगे पुरा ॥१८॥
तत्र प्रविष्टो यवनो मत्त्वा पीतांबरं च तम् । तताड यवनः क्रुद्धः पादेनाशु महाखलः ॥१९॥

घोड़ोंके सहारे बार-बार शत्रुओंको लूटने लगे ॥ २ ॥ इस प्रकार हौसला बढ़ जानेपर बिना युद्धके ही मथुराके बालक और पनिहारिनें भी शत्रुको लूटने लगीं ॥ ३ ॥ आगे चलकर तो वस्त्र बुननेवाले कोरी भी शत्रु-द्रव्यको लूटने लगे । मथुराके नागरिक ऐसा करके बहुत प्रसन्न होते थे ॥ ४ ॥ इस प्रकार जरासंध सत्रह बार चढ़कर आया और यादवोंसे हारकर चला गया । अट्ठारहवीं बार भी उसने मथुरा आकर लड़नेकी इच्छा की ॥ ५ ॥ तब मेरे (नारदजीके) द्वारा प्रेरित महाबली कालयवन क्रुद्ध होकर करोड़ों म्लेच्छोंके साथ आया और मथुराको घेर लिया ॥ ६ ॥ म्लेच्छोंकी विशाल वाहिनी और अपने नगरको भयभीत देखकर श्रीकृष्णने बलरामके साथ मंत्रणा की ॥ ७ ॥ तदनुसार अपने सजातीय बंधुओंके रक्षार्थ भीषण गर्जन करनेवाले समुद्रमें श्रीकृष्णने एक रातमें द्वारका दुर्गका निर्माण करा दिया ॥ ८ ॥ विश्वकर्माने वहाँ आठों लोकपालोंकी सिद्धियाँ निर्मित कर दीं । उस द्वारकामें वैकुंठाभिलाषियोंको वैकुंठकी सब सम्पदा सम्मुख दिखायी देती थी ॥ ९ ॥ हे मिथिलेश ! अपने योगबलसे श्रीकृष्णने समस्त मथुरानिवासियोंको द्वारका पहुँचा दिया । फिर बलदेवजीसे अनुमति लेकर बिना कोई शस्त्रास्त्र लिये पुनः मथुरा लौट आये ॥ १० ॥ मेरे (नारदजीके) बताये लक्षणोंके अनुसार श्रीकृष्णको शस्त्रहीन देखकर दुष्ट कालयवन बिना शस्त्र लिये पैदल ही उनसे लड़नेके लिए जा पहुँचा ॥११॥ योगियोंके लिए भी दुष्प्राप्य श्रीकृष्णको पीठ फेरकर भागते देख उन्हें पकड़नेके लिए वह उनके पीछे-पीछे दौड़ा । उसके सैनिक भी यह कौतुक देख रहे थे ॥ १२ ॥ श्रीकृष्ण अपनेको उसके हस्तगत जैसा दिखाते हुए भागते-भागते गये और श्यामलपर्वतकी एक कन्दरामें शीघ्र घुस गये ॥१३॥ वहाँपर राजा मांधाताके पुत्र मुचुकुन्द रहते थे । प्राचीन कालमें उन्होंने ही असुरोंसे देवताओंकी रक्षा की थी ॥ १४ ॥ देवसेनाकी रक्षामें तत्पर रहनेके कारण वे बहुत समय तक दिन-रात कभी भी नहीं सोये थे । इससे प्रसन्न होकर देवताओंने उनसे कहा—॥ १५ ॥ हे राजन् ! आपकी जो इच्छा हो, वह वर माँगिए । देवताओंको प्रणाम करके राजा मुचुकुन्द बोले—अभी तो मैं सोना चाहता हूँ ॥ १६ ॥ नींद पूरी होनेपर मुझे साक्षात् श्रीकृष्ण भगवान्का दर्शन मिलना चाहिए । सोते समय यदि कोई अज्ञानी मनुष्य मुझे जगाये तो मेरे देखते ही वह भस्म हो जाय ।

मुचुकुन्दः समुत्थाय शनैरुन्मील्य सोऽक्षिणी । आशाः प्रपश्यंस्तं पार्श्वे स्थितं कालं ददर्श ह ॥२०॥
स तावत्तस्य रुष्टस्य दृष्टिपातेन मैथिल । देहजेनाग्निना दग्धो भस्मसादभवत्क्षणात् ॥२१॥
भस्मीभूते च यवने परिपूर्णतमः स्वयम् । स्वरूपं दर्शयामास मुचुकुन्दाय धीमते ॥२२॥
कोटिसूर्यप्रतीकाशे ज्योतिषां मण्डले प्रभुम् । स्थितं स्फुरत्किरीटार्कं कुण्डलांगदनूपुरम् ॥२३॥
श्रीवत्सांकं चतुर्बाहुं पद्माक्षं वनमालिनम् । कोटिकन्दर्पलावण्यं कालमेघसमप्रभम् ॥२४॥
दृष्ट्वा राजा धर्षितोऽपि समुत्थाय कृतांजलिः । परिपूर्णतमं ज्ञात्वा भक्त्या तं प्रणनाम ह ॥२५॥

मुचुकुन्द उवाच

कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनंदनाय च । नंदगोपकुमाराय गोविंदाय नमोनमः ॥२६॥
नमः पंकजनाभाय नमः पंकजमालिने । नमः पंकजनेत्राय नमस्ते पंकजांघ्रये ॥२७॥
नमः कृष्णाय शुद्धाय ब्रह्मणे परमात्मने । प्रणतक्लेशनाशाय गोविंदाय नमो नमः ॥२८॥

नमोऽस्त्वनंताय सहस्रमूर्तये सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे ।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः ॥२९॥
हरे मत्समः पातकी नास्ति भूमौ तथा त्वत्समो नास्ति पापापहारी ।
इति त्वं च मत्वा जगन्नाथ देव यथेच्छा भवेत्ते तथा मां कुरु त्वम् ॥३०॥

श्रीनारद उवाच

एवं स्तुतो हरिः साक्षात्परमानन्दविग्रहः । ज्ञात्वा तं निर्गुणं भक्तं प्राह गंभीरया गिरा ॥३१॥

श्रीभगवानुवाच

धन्यस्त्वं राजशार्दूल धन्या ते विमला मतिः । नैरपेक्ष्येण दिव्येन भक्तिभावेन पूरिता ॥३२॥

देवताओंके तथास्तु कहनेपर राजा मुचुकुन्द सत्ययुगमें यहाँ आकर सो गये ॥ १७ ॥ १८ ॥ श्रीकृष्णको जाते देख उसी कन्दरामें कालयवन भी घुसा और सुप्त पुरुषको कृष्ण समझकर उसने लात मारी ॥ १९ ॥ इस आघातसे राजा मुचुकुन्द उठ बैठे। धीरेसे आँखें खोलकर उन्होंने निहारा तो पास ही खड़े कालयवनको देखा ॥ २० ॥ हे मिथिलेश्वर ! उन क्रुद्ध राजा मुचुकुन्दके निहारते ही उनकी देहसे निकली आगसे कालयवन जलकर क्षणभरमें भस्म हो गया ॥ २१ ॥ कालयवनके भस्म हो जानेपर परिपूर्णतम परमेश्वर श्रीकृष्णने बुद्धिमान् मुचुकुन्दको अपने स्वरूपका दर्शन कराया ॥ २२ ॥ करोड़ों सूर्यों जैसे देदीप्यमान प्रभामण्डलके मध्यमें श्रीकृष्ण खड़े थे। उनके किरीट, कुंडल, कंकण, नूपुर, बाजूबन्द और घुंघुरू चमक रहे थे ॥ २३ ॥ उनके वक्षस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न दीख रहा था। वे वनमाला पहने थे। कमल जैसे उनके नेत्र थे। वे करोड़ों कामदेवोंसे भी सुन्दर थे। प्रलयकालीन घनघटाके समान उनका श्यामस्वरूप था ॥ २४ ॥ उन्हें देखकर हर्षित राजा मुचुकुन्द उठ खड़े हुए और हाथ जोड़कर उन परिपूर्णतम श्रीकृष्णको भक्तिपूर्वक प्रणाम किया ॥ २५ ॥ राजा मुचुकुन्द बोले—हे प्रभो ! आप ही कृष्ण, वासुदेव, देवकीनन्दन और नन्दगोपसुत गोविन्द हैं। आपको मैं बारबार वन्दना करता हूँ ॥ २६ ॥ कमलनाभि भगवान्को नमस्कार है। कमलमालाधारी कृष्णको प्रणाम है। कमलनयन एवं कमलसदृश चरणोंवाले भगवान्को नमस्कार है ॥ २७ ॥ श्रीकृष्ण, शुद्ध, ब्रह्म, परमात्मा तथा प्रणत जनोंके क्लेशहारी गोविन्दको पुनः पुन प्रणाम है ॥ २८ ॥ आप अनन्त, सहस्रमूर्ति, सहस्रनेत्र, सहस्रशीर्ष, सहस्रपाद, सहस्रबाहु, सहस्रनामा, पुरुष, शाश्वत तथा सहस्रों और करोड़ों युग धारणकरनेवाले परम पुरुष हैं। आपको प्रणाम है ॥ २९ ॥ हे हरे ! इस धरतीपर मेरे जैसा कोई पापी नहीं है और आप सरीखा पापनाशक कोई नहीं है। ऐसा समझकर आप मेरे ऊपर दया करें। अथवा आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा कीजिये ॥ ३० ॥ श्रीनारदजी बोले— मुचुकुन्दने परमानन्दस्वरूप भगवान् कृष्णकी ऐसी स्तुति की तो उनको निर्गुण भक्त समझकर श्रीकृष्ण गंभीर वाणीमें बोले ॥ ३१ ॥ श्रीकृष्णभगवान्ने कहा—हे राजशार्दूल ! आप धन्य हैं और आपकी निर्मल मति धन्य है। क्योंकि वह निरपेक्ष है और दिव्य

अद्यैव गच्छ मद्धाम बदर्याख्यं मदाश्रयः । तत्रैव तु तपस्तप्त्वा भूत्वा ब्राह्मणपुङ्गवः ॥३३॥
प्रेमलक्षणया भक्त्या मद्धाम प्रकृतेः परम् । प्राप्स्यसि त्वं महाराज यतो नावर्तते गतः ॥३४॥

श्रीनारद उवाच

इत्थं स्तुत्वा हरिं नत्वा परिक्रम्य नताननः । निश्चक्राम गुहादुर्गाच्छ्रीकृष्णप्रेमविह्वलः ॥३५॥
द्वापरे क्षुल्लका मर्त्या तालवृक्षशतोच्छ्रितम् । दृष्ट्वा तं दुद्रुवुर्मार्गे भयभीता इतस्ततः ॥३६॥
मा भैष्टेत्यभयं यच्छञ्जगाम दिशमुत्तराम् । एवं दत्त्वा वरं तस्मै मुचुकुन्दाय धीमते ॥३७॥
भगवान् पुनरावृज्य मथुरां म्लेच्छवेष्टिताम् । हत्वा म्लेच्छबलं सर्वं तद्धनान्यच्छिनद्बलात् ॥३८॥
अथ राजा जरासंधो योद्धुमभ्युद्यतः पुनः । आहूय मागधान्विप्रान्मुहूर्तादेशकारिणः ॥३९॥
प्राहेदं वासुदेवाख्यं जित्वा यद्यागतो ह्यहम् । सर्वान्संपूजयिष्यामि सदा युष्मत्पदाश्रये ॥४०॥
कारागारेषु यावद्वै स्थिता भवत भो द्विजाः । पराजितोऽहं वा युष्मान्हनिष्यामि न संशयः ॥४१॥
एवमुक्त्वा द्विजान् राजा जरासंधो महाबलः । आजगामाशु मथुरां त्रयोविंशत्यनीकपः ॥४२॥
ब्रह्मवाक्यमृतं कर्तुं स्वप्रतिज्ञां विहाय च । मनुष्यचेष्टामापन्नौ स्वपुराद्भीतभीतवत् ॥४३॥
रामकृष्णौ परौ देवौ पद्भ्यां दुद्रुवतुर्द्रुतम् । पलायमानौ तौ वीक्ष्य मागधः प्रहसन् भृशम् ॥४४॥
अन्वधावद्रथानीकैर्ब्रह्मवाक्यमनुस्मरन् । दक्षिणाशां गतावित्थं प्रवर्षणगिरौ हरी ॥४५॥
यस्मिन्निलीनौ ज्ञात्वा तावेधोभिस्तं ददाह ह । भस्मीभूते वने जाते दह्यमानतटाद्गिरेः ॥४६॥
दशैकयोजनोत्तुङ्गात्समुत्पत्य सुरेश्वरौ । अलक्ष्यमाणावरिभिर्द्वारकायां निपेततुः ॥४७॥
सोऽपि दग्धौ च तौ मत्वा मागधेन्द्रो महाबलः । मागधान्प्रययौ वीरो वादयञ्जयदुंदुभीन् ॥४८॥

भक्तिभावसे भरी है ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! आप आज ही मेरे बदरिकाश्रम धामको चले जाइए । वहाँ तप करके आप ब्राह्मणश्रेष्ठ बन जायँगे ॥ ३३ ॥ हे महाराज ! फिर प्रेमलक्षणा भक्तिके द्वारा आप प्रकृतिसे परे मेरे उस धामको प्राप्त होंगे, जहाँ जाकर कोई फिर इस संसारमें नहीं लौटता ॥ ३४ ॥ नारदजी बोले—इस प्रकार स्तुति करके भगवान्‌को प्रणाम तथा परिक्रमा करनेके बाद वे उस कन्दरासे बाहर निकले। वे उस समय श्रीकृष्णके प्रेममें विह्वल थे ॥ ३५ ॥ उस द्वापर युगके छोटे-छोटे मनुष्य सौ तालवृक्ष जितने ऊँचे राजा मुचुकुन्दको देखकर भयभीत भावसे इधर-उधर भागने लगे ॥ ३६ ॥ "आपलोग डरें नहीं" ऐसा कहकर उन्हें अभयदान देते हुए वे उत्तर दिशाको चल पड़े । श्रीकृष्ण बुद्धिमान् राजा मुचुकुन्दको इस प्रकार वरदान देकर चहुँवा म्लेच्छोंसे घिरी मथुरापुरीमें आये । यहाँ समस्त म्लेच्छसेनाका संहार करके उन्होंने उनका सारा धन बरबस छीन लिया ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ इसके बाद राजा जरासंध फिर युद्धके लिए उद्यत हुआ । तदनुसार मुहूर्त बतानेवाले ब्राह्मणोंको बुलवाकर कहा—॥ ३९ ॥ हे विप्रो ! यदि इस बारके युद्धमें वासुदेव कृष्णको पराजित करके लौटूँगा तो मैं सदा आप लोगोंकी विधिवत् पूजा करूँगा और आपके चरणाश्रित रहूँगा ॥ ४० ॥ तबतक आप लोग मेरे कारागारमें रहिए । यदि हारकर लौटा तो आप सबको मार डालूँगा । इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४१ ॥ महाबली राजा जरासन्ध ब्राह्मणोंसे ऐसा कहकर तेईस अक्षौहिणी सेनाके साथ मथुरापर चढ़ आया ॥ ४२ ॥ उधर भगवान् कृष्ण और बलराम अपनी प्रतिज्ञा भुलाकर साधारण मनुष्य जैसा आचरण करते हुए अपनी नगरीसे भयभीत होकर भागे ॥ ४३ ॥ इस प्रकार दोनों भाइयोंको पैदल भागते देखकर जरासंध बहुत हँसा ॥ ४४ ॥ ब्रह्मवाक्यका स्मरण करता हुआ वह रथोंकी विशाल सेना लेकर बलराम तथा कृष्णका पीछा करता हुआ दक्षिण दिशाको भागा । उसे आते देखकर दोनों भाई प्रवर्षण पर्वतपर चढ़ गये ॥ ४५ ॥ पर्वतके जंगलमें दोनों भाइयोंको गायब देखकर जरासन्धने ईंधन एकत्र कराके जंगलमें आग लगवा दी । जब वह जलकर भस्म हो गया तो उस धधकते पर्वतके ग्यारह योजन ऊँचे शिखरसे दोनों भाई कूद पड़े और शत्रुओंकी दृष्टिसे बचते हुए द्वारका जा पहुँचे ॥४६॥४७॥ जरासंध भी दोनों भाइयोंको भस्मीभूत समझकर विजयसूचक नगाड़े बजवाता हुआ अपनी सेनाके साथ

ब्राह्मणान्पूजयामास भक्त्या परमया नृप । यस्य विप्रः सहायोऽस्ति कुतस्तस्य पराजयः ॥४९॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीद्वारकाखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे द्वारकावासकथनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

(श्रीबलरामजीका विवाह)

श्रीनारद उवाच

इत्थं मया ते कथितं द्वारकावासकारणम् । विवाहादिकथाः सर्वा वदिष्यामि परेशयोः ॥ १ ॥
पूर्वं श्रीबलदेवस्य विवाहं शृणु मैथिल । सर्वपापहरं पुण्यमायुर्वर्धनमुत्तमम् ॥ २ ॥
आनर्तो नाम राजाऽभूत्सूर्यवंशे महामनाः । यन्नाम्नाऽऽनर्तदेशः स्यात्समुद्रे भीमनादिनि ॥ ३ ॥
रैवतो नाम तत्पुत्रश्चक्रवर्ती गुणाकरः । राज्यं चकार स पुरीं विनिर्माय कुशस्थलीम् ॥ ४ ॥
तस्य पुत्रशतं चासीद्रेवती नाम कन्यका । सर्वोत्तमं चिरञ्जीवं सुन्दरं वरमिच्छती ॥ ५ ॥
एकदा रथमास्थाय हेमरत्नविभूषितम् । आरोप्य स्वां दुहितरं रैवतः पर्यटन्भुवम् ॥ ६ ॥
प्राप्तो योगबलेनापि ब्रह्मलोकं शुभावहम् । कन्यावरं परिप्रष्टुं ब्रह्माणं प्रणनाम ह ॥ ७ ॥
गायन्त्यां पूर्वचित्त्यां च स्थितो लब्धक्षणःक्षणम् । एकचित्तं विधिं ज्ञात्वा स्वाभिप्रायं न्यवेदयत् ॥ ८ ॥

रैवत उवाच

परः पुराणो जगदंकुरोऽभूः पूर्णः परात्मा परमेश्वरोऽसि ।
स्थितः सदा धामनि पारमेष्ठ्य सृजस्यलं पासि च हिंससीदम् ॥ ९ ॥
वेदा मुखं धर्म उरस्तथैव पृष्ठं ह्यधर्मश्च मनुर्मनीषा ।
अङ्गानि देवा असुराश्च पादाः सर्वा सृतिर्देव तनुस्तव स्यात् ॥१०॥

मगधको चला गया ॥ ४८ ॥ हे राजन् ! राजा जरासंधने नगरमें पहुँचकर बड़ी भक्तिके साथ ब्राह्मणोंकी पूजा की और कहा—"जिसके सहायक ब्राह्मण हों, उसकी पराजय भला कैसे हो सकती है।" ॥ ४९ ॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायां द्वारकाखण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीका द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

नारदजी बोले—हे राजन् ! इस प्रकार मैंने आपको श्रीकृष्णके द्वारकानिवासका कारण बताया। अब परमेश्वरस्वरूप श्रीकृष्ण तथा बलराम दोनों भाइयोंके विवाह आदिका वृत्तान्त बताऊँगा ॥ १ ॥ हे मिथिलेश ! पहले आप बलदेवजीके विवाहका प्रसंग सुनिए। यह अत्युत्तम कथा सब पापोंको हर लेती है और आयु बढ़ाती हैं ॥२॥ सूर्यवंशमें आनर्त नामका एक महामनस्वी राजा था। भीषण निनादवाले समुद्रमें उस राजाके नामका आनर्त देश बसा हुआ था ॥ ३ ॥ गुणोंकी खानिस्वरूप आनर्तका पुत्र चक्रवर्ती राजा रैवत हुआ। कुशस्थली नगरी बसाकर वह अपना शासनकार्य चलाने लगा ॥ ४ ॥ उसके सौ पुत्र हुए। सर्वोत्तम तथा सुन्दर वर चाहनेवाली रेवती नामकी एक कन्या भी हुई ॥ ५ ॥ एक बार रत्नोंसे खचित स्वर्णिम रथमें कन्या रेवतीके साथ बैठकर राजा रेवत भूमंडलपर विचरता हुआ अपने योगबलसे शुभदायक ब्रह्मलोकमें जा पहुँचा। वहाँ ब्रह्माजीको प्रणाम करके उसने अपने आगमनका अभिप्राय बतानेकी इच्छा करते हुए कन्या रेवतीके लिए किसी अच्छे वरकी कामना की ॥ ६ ॥ ७ ॥ जब राजा ब्रह्मसभामें पहुँचे तो वहाँ पूर्वचित्ति अप्सरा गा रही थी। क्षण भर बाद ब्रह्माजीको एकाग्र मनस्क देखकर राजा रेवतने अपना अभिप्राय बताया ॥ ८ ॥ राजाने कहा—हे ब्रह्मन् ! आप ही जगत्के अंकुर, परम पुराण पुरुष, पारमेष्ठ्य धाममें स्थित परमात्मा और परमेश्वर हैं। आप ही जगत्की उत्पत्ति, पालन और संहार करते हैं ॥ ९ ॥ वेद आपके मुख हैं। धर्म हृदय है। अधर्म पीठ है। राजा मनु आपकी बुद्धि हैं। देवता अंग हैं, असुर पैर

करोषि हस्तामलकं च विश्वं नेतुं प्रभुः सारथिवद्गुणेषु ।
एकस्त्वमेकं च विधाय जालं ग्रसिष्यसे सर्वमिवोर्णनाभिः ॥११॥
महेंद्रधिष्ण्यं तव वश्यमस्ति किं सार्वभौमं किमु योगसिद्धिः ।
यः पारमेष्ठ्यं च सदा स्थितोऽसि तस्मै नमोऽनंतगुणाय भूम्ने ॥१२॥
भवान् स्वयंभूर्जगतां पितामहो विधे सुरज्येष्ठ इति प्रभावतः ।
अस्या वरं सर्वगुणं चिरायुषं वदाशु मां दिव्यमशेषदर्शनः ॥१३॥

श्रीनारद उवाच

एतच्छ्रुत्वा ततो ब्रह्मा स्वयंभूः सर्वदर्शनः । रैवतं प्राह राजानं प्रहसन्निव मैथिल ॥१४॥

श्रीब्रह्मोवाच

अत्र क्षणेन हे राजन्भुवि कालो महाबली । त्वरं व्यतीतस्त्रिनवचतुर्युगविकल्पितः ॥१५॥
न सन्ति मर्त्यलोके त्वत्पुत्राः पौत्राः सबांधवाः । तत्पुत्रपौत्रनप्तॄणां गोत्राणि च न शृण्महे ॥१६॥
तद्गच्छ सर्वमुख्याय नररत्नाय शाश्वते । कन्यारत्नमिदं राजन्बलदेवाय देहि भोः ॥१७॥
परिपूर्णतमौ साक्षाद्गोलोकाधिपती प्रभू । भुवो भारावतारायावतीर्णौ बलकेशवौ ॥१८॥
असंख्यब्रह्मांडपती वसुदेवात्मजौ हरी । द्वारकायां विराजेते यदुभिर्भक्तवत्सलौ ॥१९॥

श्रीनारद उवाच

अथ श्रुत्वा विधिं नत्वा रेवतो नृपसत्तमः । आययौ द्वारकां भूयः समृद्धां तां समृद्धिभिः ॥२०॥
पारिबर्हं रथं दत्त्वा विश्वकर्मविनिर्मितम् । सहस्रहयसंयुक्तं दिव्ययोजनविस्तृतम् ॥२१॥
दिव्यांबराणि रत्नानि ब्रह्मदत्तानि मैथिल । दत्त्वाऽऽययौ तपस्तप्तुं बदर्याख्यं शुभावहम् ॥२२॥
तदा महोत्सवश्चासीद्यदुपुर्यां गृहे गृहे । संकर्षणोऽथ भगवान् रेवत्या विरराज ह ॥२३॥

है और समस्त सृष्टि आपका शरीर है ॥१०॥ आप चाहें तो विश्वको हस्तामलक बना दें। सारथीकी भांति आप ही सब लोगोंको विषयोंमें प्रवृत्त करते हैं और आप ही मकड़ीकी तरह जाल बिछाकर विश्वको ग्रस लेते हैं ॥ ११ ॥ महेन्द्रपद आपके वशमें हैं। सार्वभौम राज्य तथा योगसिद्धि आपके अधीन है, तो क्या आश्चर्य है। आप नित्य पारमेष्ठ्य पदपर विराजमान रहते हैं। अतएव अनन्त-गुणसम्पन्न भूमा पुरुष आप ही हैं। आपको मेरा नमस्कार है ॥ १२ ॥ आप स्वयंभू, जगत्पितामह और देवताओंके आराध्य हैं। यह आपका प्रभाव है। हे विधे! आप ही अखिल विश्वके द्रष्टा हैं। अतएव मेरी कन्या रेवतीके लिए एक सर्वगुणसम्पन्न, चिरंजीवी, सुन्दर और दिव्य वर बताइए ॥ १३ ॥ नारदजी बोले—हे मिथिलेश्वर! राजा रेवतके वचन सुनकर सर्वदर्शी स्वयंभू ब्रह्मा हँसते हुए बोले—॥ १४ ॥ हे राजन्! यहां अभी एक ही क्षण बीता है, किन्तु इतनी देरमें धरतीपर तो महाबली कालकी सत्ताईस चतुर्युगी बीत गयी ॥ १५ ॥ इस समय मृत्युलोकमें तुम्हारे पुत्र-पौत्र तथा बन्धु-बान्धव कोई नहीं बचा रह गया है। उनके पुत्र, पौत्र, नाती तथा सगोत्र भी नहीं रह गये हैं ॥ १६ ॥ अत एव तुम शीघ्र यहांसे जाकर सर्वमुख्य, नररत्न और चिरंजीवी बलदेवको अपनी रत्नस्वरूपा कन्या दे दो ॥ १७ ॥ परिपूर्णतम, साक्षात् गोलोकके अधिपति भगवान्‌ने पृथिवीका भार उतारनेके लिए श्रीकृष्ण और बलदेवके रूपमें अवतार लिया है ॥ १८ ॥ असंख्य ब्रह्माण्डोंके प्रभु वे दोनों भाई इस समय वसुदेवतनयके रूपमें अवतरे हैं और वे दोनों भक्तवत्सल द्वारकापुरीमें रहते हैं ॥ १९ ॥ नारदजी बोले—राजा रैवत यह वचन सुन और ब्रह्माजीको प्रणाम करके समृद्धिमती द्वारकापुरीको लौट आया ॥ २० ॥ वहां अपनी पुत्री रेवतीका विवाह बलदेवजीके साथ कर दिया। दहेजमें विश्वकर्माका बनाया हुआ सहस्र अश्वोंयुक्त तथा एक योजन (चार कोस) बड़ा दिव्य रथ भी दहेजमें दिया ॥ २१ ॥ उसके अतिरिक्त दिव्य वस्त्र तथा ब्रह्मा द्वारा प्रदत्त रत्न देकर राजा रैवत सुखदायक तप करनेके लिए बदरिकाश्रम चला गया ॥ २२ ॥ जब बलदेव रेवतीके साथ अपने महल लौटे तो द्वारकाके प्रत्येक घरमें

बलदेवविवाहस्य कथां यः शृणुयान्नरः। सर्वपापविनिर्मुक्तः परां सिद्धिमवाप्नुयात् ॥२४॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीद्वारकाखंडे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे बलदेवविवाहोत्सवो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

(श्रीकृष्णका कुण्डिनपुर गमन)

श्रीनारद उवाच

अथ श्रीकृष्णदेवस्य विवाहं शृणु मैथिल। सर्वपापहरं पुण्यं चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥ १ ॥
भीष्मको नाम राजाऽभूद्विदर्भेषु प्रतापवान्। कुण्डिनाधिपतिः श्रीमान् सर्वधर्मविदां वरः ॥ २ ॥
रुक्मिणी तत्सुता जाता श्रियो मात्राऽतिसुन्दरी। कोटिचंद्रप्रतीकाशा गुणभूषणभूषिता ॥ ३ ॥
श्रुत्वैकदा पुरा सा वै मन्मुखाच्छ्रीहरेर्गुणान्। परिपूर्णतमं तं वै सा मेने सदृशं पतिम् ॥ ४ ॥
तद्रूपं सगुणं श्रुत्वा मन्मुखात्प्रीतिवर्द्धनात्। सदृशीं श्रीहरिस्तां वै समुद्वोढुं मनो दधे ॥ ५ ॥
कृष्णभावविदा राज्ञा सर्वधर्मविदा भृशम्। भीष्मकेणैव कृष्णाय दातुं तां निश्चयः कृतः ॥ ६ ॥
युवराजस्ततो रुक्मी तं निवार्य प्रयत्नतः। कृष्णशत्रुं महावीरं शिशुपालममन्यत ॥ ७ ॥
ततः खिन्नमना भैष्मी श्रीकृष्णाय महात्मने। दूतं स्वं प्रेषयामास ब्राह्मणं मिथिलेश्वर ॥ ८ ॥
स द्वारकां गतो दिव्यां श्रीकृष्णेन प्रपूजितः। भुक्तवांस्तत्र चासीनो विश्रान्तो मंदिरे हरेः ॥ ९ ॥
पृच्छते कुशलं सर्वं श्रीकृष्णाय महात्मने। ब्राह्मणस्तदनुज्ञातस्तस्मै सर्वमवर्णयत् ॥१०॥
स्वस्तिश्रीकारपञ्चाढ्ये नित्यानंदमहोदधौ। श्रीमद्दिव्यगुणैः पूर्णे कोटिशो नतयो मम ॥११॥
शमत्रास्तु च तत्रास्तु ततस्त्वत्पत्रमागतम्। नारदोक्तेन वचसा ज्ञातोऽसि प्रकृतेः परः ॥१२॥

बहुत बड़ा उत्सव मनाया गया ॥ २३ ॥ जो मनुष्य बलदेवजीके विवाहकी कथा सुनता है, वह सब पापोंसे छूटकर परा सिद्धि प्राप्त कर लेता है ॥ २४ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां द्वारकाखंडे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे मिथिलेश ! अब आप सर्वपापनाशक, पुनीत तथा धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षस्वरूप चारों पदार्थ प्रदान करनेवाला श्रीकृष्णका विवाह सुनिए ॥ १ ॥ विदर्भ प्रदेशमें परम प्रतापी, कुण्डिनपुरपति और सब धर्मोका श्रेष्ठ ज्ञाता भीष्मक नामका एक राजा था ॥ २ ॥ साक्षात् लक्ष्मीके अंशसे उत्पन्न रुक्मिणी नामकी एक कन्या उस राजाकी पुत्री थी। करोड़ चन्द्रमाके समान दीप्तिमती वह कन्या बड़ी सुन्दरी थी और उसमें सभी गुण विद्यमान थे ॥ ३ ॥ एक बार मेरे (नारदके) मुखसे श्रीकृष्णके गुणोंको सुनकर वह परिपूर्णतम श्रीकृष्णको ही अपने अनुरूप पति मान बैठी ॥ ४ ॥ उसी प्रकार मेरे ही मुखसे रुक्मिणीके प्रभाववर्द्धक गुण-रूप सुनकर भगवान् कृष्णने भी उसे अपने योग्य पत्नी मानकर उसके साथ विवाह करनेका विचार किया ॥ ५ ॥ श्रीकृष्णका मनोभाव जाननेवाले और सर्वधर्मज्ञ राजा भीष्मकने श्रीकृष्णको ही अपनी पुत्री प्रदान करनेका निश्चय किया ॥ ६ ॥ किन्तु श्रीकृष्णके शत्रु और भीष्मकपुत्र युवराज रुक्मीने बड़े यत्नसे श्रीकृष्णके साथ विवाहकी बात टालकर वीर शिशुपालको उत्तम वर माना ॥७॥ हे मिथिलेश ! सो सुनकर रुक्मिणीका मन खिन्न हो उठा और उसने अपना एक ब्राह्मण दूत श्रीकृष्णके पास भेजा ॥ ८ ॥ जब वह विप्रदूत दिव्य द्वारकापुरीमें पहुँचा तो श्रीकृष्णने उसका पूजन किया। उसने श्रीहरिके भवनमें जाकर भोजन तथा विश्राम किया ॥ ९ ॥ भगवान्ने जब विप्रसे कुशलप्रश्न किया तो उसने सारा वृत्तान्त कह सुनाया ॥ १० ॥ वह रुक्मिणीका पत्र बाँचता हुआ बोला—पांच श्रीसे सम्पन्न, नित्यानन्दमहोदधि और सभी श्रीयुक्त विभूतियोंसे विभूषित श्रीकृष्णको मेरा कोटिशः प्रणाम है ॥११॥ यहां सब कुशल है और आपके यहां भी कुशल होना चाहिए। आपका पत्र मिला। महामुनि नारदके

सर्वं जानासि सर्वज्ञस्तथा वक्ष्ये वचो रहः। वीरभागं तु मां विद्धि त्वं गृहाण महामते ॥१३॥
मा चैद्यः प्रतिगृह्णीयाद्यथा सिंहवलिं मृगः। कथं त्वामुद्वहे दुर्गे स्थितासिति च तच्छृणु ॥१४॥
पूर्वेद्युः कुलदेव्यास्तु यात्राऽस्ति महती हरे। आगमिष्याम्यहं तत्र तत्र मां त्वं गृहाण भोः ॥१५॥

श्रीनारद उवाच

रुक्मिण्यास्तमभिप्रायं श्रुत्वा ब्राह्मणभाषितम्। रथः संयुज्यतामाशु दारुकं प्राह मानदः ॥१६॥
पश्चिमायां तदा रात्रौ वैकुंठप्रभवं परम्। किंकिणीजालसंयुक्तं हेमरत्नखचित्प्रभम् ॥१७॥
सदश्वैः शैव्यसुग्रीवमेघपुष्पवलाहकैः। नियोजितैर्दारुकेण चञ्चलैश्चारुचामरैः ॥१८॥
युक्तं महारथं दिव्यं सहस्रादित्यवर्चसम्। आरुह्य सारथेः पृष्ठे धृत्वा श्रीपादपङ्कजम् ॥१९॥
स्वहस्तेन द्विजं तस्मिन्समारोप्य रमापतिः। विदर्भान्प्रययौ राजञ्छ्रीकृष्णो भगवान् हरिः ॥२०॥
कृष्णं चैकं गतं हर्तुं कन्यां तु नृपमण्डलात्। कलिप्रशंकितो रामः श्रुत्वा भ्रातृसहायकृत् ॥२१॥
नीत्वा यदुवलं सर्वं समर्थवलवाहनम्। विपक्षीयान्नृपाञ्जेतुं वलः पश्चाद्ययौ त्वरम् ॥२२॥
कुण्डिनोपवनं प्राप्तः सद्विजः सरथो हरिः। संतस्थौ तिंतिणीवृक्षे आस्तीर्याश्वपरिच्छदम् ॥२३॥
दूरात्संदृश्यते तस्मात्कुण्डिनं तु पुरं परम्। दीर्घदुर्गसमायुक्तं सप्तयोजनवर्तुलम् ॥२४॥
दुर्लंघ्या दुर्गमा यत्र परिखा जलपूरिता। धनुःशतं विस्तृतास्ति चातुर्मास्यनदीव सा ॥२५॥
पञ्चाशद्धस्तमानेन दुर्गभित्तिस्तथोर्ध्वगा। यत्र रम्याणि हर्म्याणि स्फुरद्धेमशिखानि च ॥२६॥
हेमकुम्भध्वजस्फूर्जत्तोलकानि विरेजिरे। पारावता मयूराश्च यत्र तत्र पतंति च ॥२७॥
शिशुपालाय स्वां कन्यां दास्यन् राजा तु भीष्मकः।
चक्रे विवाहसंभारसंचयं रत्नमण्डपे ॥२८॥

कथनानुसार प्रकृतिसे परे आप परम पुरुषको मैं जान सकी ॥ १२ ॥ यद्यपि सर्वज्ञ होनेके नाते आप सब कुछ जानते हैं। तथापि मैं कुछ रहस्यकी बात बता रही हूँ। हे महामते ! मुझे वीरभोग्या समझकर आप मेरा पाणिग्रहण करिए ॥ १३ ॥ आप सिंह हैं, सो आपके भागको कहीं गीदड़ शिशुपाल न हड़प ले। यदि आप कहें कि दुर्गमें रहनेवाली आप राजकुमारीका पाणिग्रहण मैं कैसे कर सकता हूँ तो मैं उपाय बताती हूँ ॥१४॥ विवाहसे एक दिन पूर्व मेरे यहाँ कुलदेवीकी बड़ी पूजा होती है। उसीके निमित्त मैं वहाँ आऊँगी। वहाँ ही आप मेरा पाणिग्रहण कर लें ॥ १५ ॥ श्रीनारदजी बोले—विप्रद्वारा रुक्मिणीका मनोभाव जानकर मानद श्रीकृष्णने दारुक सारथीसे कहा कि शीघ्र रथ तैयार करो ॥ १६ ॥ रातको पिछले पहर वैकुण्ठधाममें बने, सुवर्ण तथा रत्नोंसे खचित होनेके कारण अतितेजस्वी और अगणित किंकिणियोंसे सजे दिव्य रथमें शैव्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और वलाहक नामके चंचल चँवरयुक्त घोड़े जुते ॥ १७ ॥ १८ ॥ उस दिव्य रथका तेज हजार सूर्यो जैसा चमकीला था। सो सारथीकी पीठपर पाँव रखकर भगवान् रथपर चढ़े ॥ १९ ॥ तदनन्तर रमापति कृष्णने ब्रह्मणका हाथ थामकर रथपर चढ़ाया और वहाँसे विदर्भदेशको प्रस्थान किया ॥ २० ॥ राजाओंकी भीड़से कन्याका हरण करनेके लिये श्रीकृष्ण अकेले गये हैं, यह समाचार सुनकर भ्राताके सहायक वलदेव युद्धकी आशंकावश प्रवल यादवी सेना साथ लेकर उनके पीछे-पीछे चल पड़े ॥ २१ ॥ २२ ॥ उधर श्रीकृष्ण कुण्डिनपुरके एक उपवनमें घोड़ेकी झूल बिछाकर विप्रके साथ इमलीके वृक्षके नीचे बैठ गये ॥ २३ ॥ वहाँ दूरसे ही वह कुंडिनपुर दिखायी देता था, जिसमें सात योजन विस्तृत गोल किला विद्यमान था ॥ २४ ॥ उसमें दुर्लंघ्य, दुर्गम, सौ धनुष चौड़ी और चातुर्मास (वर्षाकाल) में बहनेवाली नदीके समान जलसे भरी विशाल खाईं थी ॥ २५ ॥ पचास हाथ ऊंची उस किलेकी चहारदीवारी था। उसमें दिव्य अट्टालिकायें बनी हुई थीं, जिनके ऊपर सुनहले कलश विद्यमान थे ॥ २६ ॥ उनमें सुनहरी ध्वजायें, पताकायें, दरवाजे तथा छज्जे थे, जिनपर कबूतर तथा मयूर बैठा करते थे ॥२७॥ राजा भीष्मकने

गीतमङ्गलसंयुक्ते नारीभिर्भवनोत्तमे । रराज रुक्मिणी राजन् सिद्धिभिर्भूर्यथा भुवि ॥२९॥
अथर्वविद्द्विजा भैर्मीं सुस्नातां रत्नवाससम् । चक्रुर्मंत्रैस्तथा रक्षां बद्ध्वा शांतिं विधाय च ॥३०॥
हेमानां भारलक्षं च मुक्तानां द्विगुणं तथा । सहस्रभारं वस्त्राणां धेनूनामर्बुदानि षट् ॥३१॥
गजायुतं रथानां च दशलक्षं मनोहरम् । दशकोटिहयानां च गुडादितिलपर्वतान् ॥३२॥
सहस्रं स्वर्णपात्राणां भूषणानां तथाऽयुतम् । विप्रेभ्यः प्रददौ राजा भीष्मकोऽतिमहामनाः॥३३॥
तथा वै दमघोषस्य शिशुपालाय वै द्विजाः । चक्रुः शांतिं परां पूर्वं रक्षाबन्धनरूपिणीम् ॥३४॥
ब्राह्मणैर्मंगलस्नातं पतीकंचुकशोभितम् । मुकुटोपरि विभ्राजत्पुष्पमौलिधरं शुभम् ॥३५॥
हारकंकणकेयूरशिखामणिविभूषितम् । मङ्गलैर्गीतवादित्रैर्गन्धाक्षतविचर्चितम् ॥३६॥
आचारलाजैः सुवरं शिशुपालं विधाय च । आरोप्य करिणं प्रोच्चं दमघोषो विनिर्ययौ ॥३७॥
जरासंधेन शाल्वेन दन्तवक्रेण धीमता । विदूरथेन पौंड्रेण पार्ष्णिग्राहेण मैथिल ॥३८॥
विकर्षन्महतीं सेनां दमघोषो महाबलः । दुंदुभीन्नादयन्दीर्घानाययौ कुण्डिनं पुरम् ॥३९॥
संमुखाद्यदुदेवस्य श्रुत्वोद्योगं नृपाः परे । सहस्रशः समाजग्मुः शिशुपालसहायिनः ॥४०॥
भीष्मको ह्यग्रतो गत्वा संपूज्य विधिवन्नृपम् । काश्मीरकंबलैर्दिव्यारुणैः सामुद्रसंभवैः ॥४१॥
मंडितेषु च सर्वेषु मुक्तादामविलंबिषु । सौगन्धिकैः पुष्परसैः राष्ट्रेषु शिविरेषु च ॥४२॥
वारांगनानृत्यलसन्मृदङ्गेषु ध्वनत्सु च । निवेशयामास नृपैर्विदर्भाधिपतिर्महान् ॥४३॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीद्वारकाखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे कुंडिनपुरयानं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

शिशुपालको अपनी कन्या देनेके लिए रत्नमंडपमें वैवाहिक सामग्रियें एकत्र कीं ॥ २८ ॥ महिलाओंके मांगलिक गीतोंकी धुनसे वह उत्तम भवन मुखरित हो रहा था। उस भवनमें रुक्मिणी वैसे ही शोभित हो रही थी, जैसे सिद्धियोंसे पृथिवीकी शोभा होती है ॥२९॥ अथर्ववेदके विज्ञ ब्राह्मणोंने शान्तिपाठ करके रुक्मिणीको सुन्दर वस्त्राभूषण पहनाकर मंत्रोंसे रक्षासूत्र बाँधा ॥ ३० ॥ लाख भार सुवर्ण, दो लाख भार मोती, सहस्र भार वस्त्र, साठ करोड़ गौ, दस हजार हाथी, दस लाख सुन्दर रथ, दस करोड़ घोड़े, गुड़ और तिलके पर्वत, एक हजार स्वर्णपात्र और दस हजार आभूषण उदार राजा भीष्मकने दान करके ब्राह्मणोंको दिया ॥ ३१-३३ ॥ उसी प्रकार राजा दमघोषके पुत्र शिशुपालके लिये भी रक्षाबंधनस्वरूपिणी शान्ति करायी गयी ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणोंने उसको मंगलस्नान कराया और पीले जामेसे शोभित मुकुटके ऊपर शुभ पुष्पोंका बना सेहरा बाँधा ॥ ३५ ॥ हार, कंकण, केयूर और चूड़ामणिसे विभूषित करके मंगलगीत, वाद्य, गन्ध और अक्षतोंसे चर्चित किया ॥ ३६ ॥ आचार लाजा (धानके लावे)से अभिषिक्त करके शिशुपालको सुन्दर वर बनाया गया और राजा दमघोष उसे एक ऊंची हथिनीपर बिठाकर महलसे बाहर निकला ॥ ३७ ॥ जरासंध, राजा शाल्व, दन्तवक्र, विदूरथ और पौण्ड्र आदि साथियोंके साथ बहुत बड़ी सेना लेकर दुन्दुभी बजवाता हुआ वह कुण्डिनपुर जा पहुँचा ॥३८॥३९॥ पहलेसे ही भगवान् कृष्णके उद्योगका समाचार सुनकर अन्यान्य हजारों राजे शिशुपालकी सहायताके लिये आये ॥ ४० ॥ यह खबर सुनकर राजा भीष्मकने आगे बढ़कर उनकी विधिवत् पूजा की और कश्मीरी कम्बल, समुद्रसे जायमान लाल तथा मोतियोंकी मालाऐं सजाकर उस राज्यके सभी रास्तों और शिविरोंको सुगन्धित किया गया ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ उस समय नर्तकियोंका नृत्य हो रहा था और मृदंग बज रहा था। तभी विदर्भनरेश भीष्मकने उनको अपने नगरमें प्रविष्ट कराया ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां द्वारकाखण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

(श्रीकृष्णके द्वारा रुक्मिणीका-हरण)

श्रीनारद उवाच

ध्यायंती कृष्णपादाब्जं भैष्मी कमललोचना । मोघं वा मनुते वार्ता मेघश्याममचिंतयत् ॥ १ ॥

रुक्मिण्युवाच

अहो त्रियामांतरितो विवाहो ममैव नागच्छति कृष्णचन्द्रः ।
न वेद्मि किं कारणमत्र भ्रातर्नावर्ततेऽद्यापि च भूमिदेवः ॥ २ ॥
यदूत्तमो देववरो ममैव दृष्ट्वा हि किंचित्कलुषं विधातः ।
कृतोद्यमो नूनमतीव हस्तग्राहे न चागच्छति किं करोमि ॥ ३ ॥
हा दुर्भगायाश्च न मे विधाता न सानुकूलः किल चन्द्रमौलिः ।
न चैकदन्तो विमुखा च गौरी गावो हि विप्राश्च न सानुकूलाः ॥ ४ ॥

श्रीनारद उवाच

एवं विचिन्तयन्ती सा भैष्मी गेहाट्टभूमिषु । परिभ्रमन्ती श्रीकृष्णं पश्यन्ती गृहशेखरात् ॥ ५ ॥
तदैव तस्या वामांगमस्फुरत्प्रतिभापणम् । तेन प्रसन्ना श्रीभैष्मी कालज्ञा सर्वमङ्गला ॥ ६ ॥
कृष्णप्रणोदितो विप्रः सत्रश्चागतवांस्तदा । श्रीकृष्णागमनं तस्यै शनैः सर्वं शशंस ह ॥ ७ ॥
ततः प्रसन्ना श्रीभैष्मी तदंघ्र्योः प्रणिपत्य सा । प्राह त्वद्वंशतो विप्र न यास्यामि वचो मम ॥ ८ ॥
श्रुत्वागतौ रामकृष्णौ विवाहप्रेक्षणोत्सुकौ । भीष्मको निर्गतो नेतुं ब्राह्मणैस्तत्प्रभाववित् ॥ ९ ॥
भृत्वा मंगलपात्रेषु गन्धाक्षतयुतेषु च । वासोरत्नचयं भृत्वा गीतवादित्रमंगलैः ॥१०॥
कोटिशो मधुपर्काणां कुम्भव्यूहान् विधाय च । पूजयित्वाऽथ विधिवद्रामकृष्णौ परेश्वरौ ॥११॥
अहो चास्मै न दत्तेयमिति खिन्नमनाः परम् । आनंदने वने स्थाप्य नत्वा स्वगृहमाययौ ॥१२॥

श्रीनारदजी बोले—हे मिथिलेश ! कमलनयनी रुक्मिणी श्रीकृष्णके चरणकमलोंका ध्यान करती, सब कुछ मिथ्या मानती तथा घनश्यामका चिन्तन करती हुई कहने लगी ॥ १ ॥ रुक्मिणी बोली—अहो ! मेरे विवाहको केवल एक रात शेष रह गयी है, किन्तु श्रीकृष्ण नहीं आये । हे विधाता ! न जाने क्यों वह ब्राह्मण भी अबतक नहीं लौटा ॥ २ ॥ देवोत्तम कृष्णने जैसे मुझमें कोई खोट देखकर अपना प्रयास शिथिल कर दिया है । इसीसे वे नहीं आये । अब मैं क्या करूँ ? ॥ ३ ॥ हाय ! मुझ अभागिनीके लिए विधाता अनुकूल नहीं है । भगवान् शंकर, गणपति, गौरी, गौ और ब्राह्मण भी मेरे प्रतिकूल हैं ॥ ४ ॥ ऐसा सोचती हुई रुक्मिणी अटारीपर बहुत ऊँचे चढ़कर श्रीकृष्णकी राह देख रही थी ॥ ५ ॥ उसी समय उसका बायाँ अंग फड़ककर जैसे यह कहने लगा कि श्रीकृष्ण आ गये । समयकी गति-विधि जाननेवाली रुक्मिणी इससे बहुत प्रसन्न हुई ॥ ६ ॥ उसी समय भगवान् कृष्णका भेजा हुआ ब्राह्मण भी आ पहुँचा । उसने धीरे-धीरे श्रीकृष्णके आगमनका सब समाचार बता दिया ॥ ७ ॥ इससे प्रसन्न होकर लक्ष्मीस्वरूपा रुक्मिणी ब्राह्मणको प्रणाम करके कहने लगी—हे विप्र ! आपके वंशसे मैं कभी नहीं जाऊँगी । यह मेरी वाणी सत्य है ॥ ८ ॥ "बलराम और श्रीकृष्ण मेरी पुत्रीका विवाह देखने आये हैं ।" यह सुनकर राजा भीष्मक ब्राह्मणोंको साथ लेकर उनकी अगवानी करने गये ॥ ९ ॥ अनेक मांगलिक पात्रोंमें गन्ध, अक्षत, दही, खीर, वस्त्र और रत्न रखकर गाजे-बाजेके साथ वे आगे बढ़े ॥ १० ॥ करोड़ों मधुपर्क घट अर्पण करनेके बाद परमेश्वर श्रीकृष्ण-बलरामकी विधिवत् पूजा की ॥ ११ ॥ तदनन्तर वे सोचने लगे कि मैंने अपनी कन्या कृष्णभगवान्को नहीं दी । ऐसा विचार करके खिन्नमन भीष्मक उन दोनों भाइ

अजानतीयं तव चात्र बाला तथा वदन्तीषु सखीषु भैष्मी ।
गन्धाक्षतैर्धूपविभूषणाद्यैः स्रङ्माल्यदीपावलिभोगवस्त्रैः ॥२३॥
अपूपतांबूलफलेक्षुभिश्च भेजे भवानीं परया च भक्त्या ।
नत्वाऽथ तां वा बहुभूषणाद्यैः संपूज्य सौभाग्यवतीर्ननाम ॥२४॥
सर्वाः स्त्रियस्ताः प्रददुर्वराणि सुमङ्गलाशीर्वचनानि तस्यै ।
रूपं सदा ते शतरूपया समं शीलं सदा शैलसुतासमं प्रभौ ॥२५॥
शुश्रूषणं भर्त्तुररुन्धतीसमं क्षमा हि भूयाज्जनकात्मजासमा ।
सौभाग्यमेवं तव दक्षिणासमं सुवैभवं भीष्मसुते शचीसमम् ।
सरस्वती ते च सरस्वतीसमा भक्तिः पतौ स्याच्च सतां हरौ यथा ॥२६॥

इति श्रीगर्गसंहितायां द्वारकाखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसम्वादे रुक्मिणीनिर्गमनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

(यादवोंकी विजय)

श्रीनारद उवाच

इत्थं विप्रवधूनां सदाशीभिरभिनंदिता । देवीं पुनर्विप्रवधूः प्रणनाम मुहुर्मुहुः ॥ १ ॥
त्यक्त्वा मुनिव्रतं भैष्मी गिरजागृहतस्ततः । सहालिभिः सखीभिश्च निश्चक्राम शनैः शनैः ॥ २ ॥
कोटिचन्द्रप्रतीकाशां भैष्मीं कमललोचनाम् । अकस्माद्ददृशुर्वीराः सुनिधिं निर्धना यथा ॥ ३ ॥
अश्वारूढाश्च रथिनो गजिनश्च पदातयः । समागता रक्षिणस्ते मुमुहुर्वीक्ष्य रुक्मिणीम् ॥ ४ ॥
तदपांगस्मितैस्तीक्ष्णैर्बाणैः कामधनुश्च्युतैः । उज्झितास्त्रा निपेतुः कावर्दिताः सैनिकास्तदा ॥ ५ ॥

और हे भवानी ! मैं आपके पुत्र गणपति तथा आपकी वन्दना करती हूँ । हे माता ! आप ऐसा कुछ करिए कि जिससे परमेश्वर और प्रकृतिसे परे भगवान् कृष्ण मेरे पति बनें ॥ २१ ॥ उसी समय सखियोंने उसे टोककर कहा—हे शुभे ! ऐसा मत कहो, बल्कि यह कहो कि शिशुपाल मेरे पति बनें । सखियोंके ऐसा कहनेपर रुक्मिणी उसी मन्दिरमें पुनः बोलीं—॥ २२ ॥ हे अम्बिके ! यह बालिका (मैं) कुछ नहीं जानती और सखियाँ ऐसा कह रही हैं । तदनन्तर उन्होंने गन्ध, अक्षत, पुष्प, माला, धूप, दीप, नैवेद्य, वस्त्राभूषण, बलि, पुए, पान, फल तथा ईखसे देवीकी पूजा की । फिर सोहागिन स्त्रियोंका पूजन तथा प्रणाम किया ॥ २३ ॥ २४ ॥ इससे वे सब सौभाग्यवती स्त्रियाँ मंगलमय आशीर्वाद देती हुई बोलीं—हे देवी रुक्मिणी ! रानी शतरूपाके सदृश तुम्हारा रूप और पार्वतीके समान तुम्हारा शील हो । हे भीष्मकसुते ! तुम अरुन्धतीके समान पतिव्रता बनो । भगवती सीताकी तरह तुममें क्षमाशक्ति हो । देवी दक्षिणाके समान तुम्हारा सौभाग्य चमके । इन्द्राणीके समान तुम्हें वैभव प्राप्त हो । सरस्वतीके समान तुम्हारी सरस्वती हो और सन्तोंमें जैसी ईश्वर-भक्ति होती है, वैसे ही तुम्हारी भक्ति पतिमें हो ॥ २५ ॥ २६ ॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां द्वारकाखण्डे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे मिथिलेश ! उन विप्रनारियोंके आशीर्वाद सुनकर रुक्मिणीने पुनः उन विप्रवधुओंको प्रणाम किया ॥ १ ॥ इसके बाद मौनव्रत त्यागकर रुक्मिणी गिरिजाके मन्दिरसे धीरे-धीरे बाहर निकलीं । उस समय उनकी सखियाँ उनके साथ थीं ॥ २ ॥ कोटि चन्द्रमा सदृश दीप्तिमती एवं कमलनयनी रुक्मिणीको अकस्मात् वहाँके वीर राजाओंने इस प्रकार देखा, जैसे निर्धन धनको देखते हैं ॥ ३ ॥ घुड़सवार, रथी, हाथीसवार तथा जितने पैदल सैनिक खड़े थे, वे सब रुक्मिणीको देखकर मोहित हो गये ॥ ४ ॥ उनके

रथेन वायुवेगेन घण्टामञ्जीरनादिना । नैःश्रेयसंभवैरश्वैर्युतेनातिपताकिना ॥ ६ ॥
शीघ्रं स्वसैन्यसंघट्टात्तत्सैन्यं संविदारयत् । वायुर्यथा पद्मवनं हरिर्दारुकसारथिः ॥ ७ ॥
स्त्रीकदम्बकमेत्याशु पश्यतां द्विषतां प्रभुः । समारोप्य रथं भैष्मीं तार्क्ष्यपुत्रः सुधामिव ॥ ८ ॥
देवानां पश्यतां राजन् राजकन्यां जहार ह । दिव्यं शस्त्रोत्तमं शार्ङ्गं धनुष्टंकारयन्मुहुः ॥ ९ ॥
ततो वेगेन महता स्वसैन्यं चागते हरौ । देवदुन्दुभयो नेदुर्यदुदुन्दुभयस्तदा ॥१०॥
सिद्धाश्च सिद्धकन्याश्च श्रीकृष्णस्य रथोपरि । हर्षिता ववृषुर्देवाः पुष्पैर्नंदनसंभवैः ॥११॥
ततो ययौ जयारावैः शनै रामयुतो हरिः । शृगालसंघमध्याच्च केसरी भागहृद्यथा ॥१२॥
तदा कोलाहले जाते रुक्मिणीहरणे सति । बभूव रक्षकाणां च शस्त्राशस्त्रि परस्परम् ॥१३॥
जरासंधवशाः सर्वे मानिनो नृपसत्तमाः । न सेहिरे स्वाभिभवं परं जातं यशःक्षयम् ॥१४॥
अहो धिगस्मान्स्वयशो हृतं गोपैश्च धन्विनाम् । शृगालैरिव सिंहानामतः किं स्यात्पराजयः ॥१५॥
एवमुक्त्वाः क्रोधपरा जगृहुः शस्त्रसंहतिम् । विसृज्य क्रीडनाक्षादीन् दंशिताः सैन्यसंयुताः॥१६॥
अक्षौहिणीद्वयेनापि पौंड्रकः क्रोधपूरितः । अक्षौहिणीत्रयेणापि महावीरो विदूरथः ॥१७॥
अक्षौहिणीपञ्चयुतो दन्तवक्रोऽतिदारुणः । अक्षौहिणीत्रयेणाशु शाल्वो राजपुरेश्वरः ॥१८॥
अक्षौहिणीभिर्दशभिर्जरासंधो महाबलः । आययौ संमुखे योद्धुं यादवानां महात्मनाम्॥१९॥
अन्येऽपि चैद्यपक्षीया योद्धुं श्रीकृष्णसंमुखे । धनुष्टंकारयंतस्ते समाजग्मुः सहस्रशः ॥२०॥
प्रलयाब्धिसमं सैन्यं समालोक्य यदूत्तमाः । तत्तुमाजग्मुराराते कृष्णकैवर्त्तपोतकाः ॥२१॥

तीक्ष्ण कटाक्षपात तथा मन्द मुस्कानरूपी कामबाणके मारे सैनिकोंके शस्त्र हाथोंसे गिर गये और वे स्वयं भी मूर्छित होकर धरतीपर गिर पड़े ॥ ५ ॥ उसी समय वायुवेगसे दौड़नेवाला श्रीकृष्णका रथ वहाँ आ पहुँचा । उस रथमें घंटे तथा घंटियां बज रहीं थीं । वैकुण्ठमें उत्पन्न घोड़े उसमें जुते हुए थे । उसपर गरुध्वज फहरा रहा था ॥ ६ ॥ अपने सैन्यबलसे अन्य सैनिकसंघोंको छितराता हुआ वह रथ वहाँ वैसे ही पहुँचा, जैसे प्रबल वायुका झोंका कमलके वनको छिन्न-भिन्न कर देता है ॥ ७ ॥ शत्रुओंके देखते-देखते वह रथ स्त्रियोंके झुण्डमें पहुँच गया । उसपर बैठे हुए श्रीकृष्णने रुक्मिणीको खींचकर वैसे ही अपने रथमें बैठा लिया, जैसे किसी समय गरुड़ने अमृतकलशका अपहरण किया था ॥ ८ ॥ उस समय देवता भी यह कौतुक देख रहे थे और श्रीकृष्ण अपने उत्तम शस्त्र शार्ङ्गधनुषका टंकोर करते हुए राजकन्याको हर ले गये ॥ ९ ॥ तदनन्तर वेगपूर्वक चलकर भगवान् जब अपने सैन्यशिविरमें आये तो देवताओं तथा यादवोंकी दुन्दुभियाँ एक साथ बज उठीं ॥ १० ॥ इससे हर्षित होकर सिद्धों, सिद्धकन्याओं तथा देवताओंने श्रीकृष्णके रथपर नन्दनवनके पुष्पोंकी वर्षा की ॥ ११ ॥ तब जयजयकारकी ध्वनिके साथ श्रीकृष्ण तथा बलराम उसी प्रकार चल पड़े, जैसे सिंह सियारोंके बीचसे अपना भाग लेकर चला जाता है ॥ १२ ॥ रुक्मिणीहरण हो जानेपर बड़ा कोलाहल मचा और रक्षकों में ही परस्पर शस्त्रास्त्रोंसे युद्ध होने लगा ॥ १३ ॥ उधर राजा जरासंधके वशवर्ती सभी स्वाभिमानी राजे इस प्रकारके भीषण अपमान तथा यशकी हानिको नहीं सह सके ॥ १४ ॥ वे कहने लगे—अहो ! हम लोगोंको धिक्कार है, जो हम धनुर्धरोंके यशको उन ग्वालोंने इस प्रकार हर लिया, जैसे सिंहकी कीर्तिको गीदड़ हर ले । इससे बढ़कर पराजय और क्या होगी ॥ १५ ॥ इस प्रकार लताड़े हुए राजे क्रुद्ध हो उठे और उन्होंने शस्त्रास्त्र सम्हाल लिये । चौपड़ आदि खेल बन्द कर दिया और वे अपनी-अपनी सेनाके साथ शत्रुसे लड़ मरनेको तैयार हो गये ॥१६॥ अत्यन्त क्रुद्ध पौंड्रकने दो और महावीर विदूरथने तीन अक्षौहिणी सेना साथ ली ॥ १७ ॥ अति दारुण दन्तवक्रने पाँच तथा राजपुरके अधिपति शाल्वने तीन अक्षौहिणी सेना ली ॥ १८ ॥ महाबली जरासंधने दस अक्षौहिणी सेना साथ ली और वे सब महात्मा यादवोंके साथ युद्ध करनेके लिए उनके सम्मुख आ उपस्थित हुए ॥ १९ ॥ इनके अतिरिक्त और भी बहुतेरे शिशुपालके पक्षपाती हजारों वीर धनुष टंकारते हुए युद्ध करनेके लिए श्रीकृष्णके समक्ष जा पहुँचे ॥ २० ॥ उधर जब

बभूव तुमुलं युद्धमद्भुतं रोमहर्षणम् । सैन्ययोश्च स्वपरयोर्देवदानवयोर्यथा ॥२२॥
रथिनो रथिभिस्तत्र पत्तिभिः सह पत्तयः । गजा गजैर्युयुधिरे तुरगाश्च तुरङ्गमैः ॥२३॥
शस्त्रांधकारे संजाते रुक्मिणीं भयविह्वलाम् । विलोक्य भगवान्देवो मा भैष्टेत्यभयं ददौ ॥२४॥
बलदेवानुजो वीरो गदो धुन्वन्महद्धनुः । विवेश शत्रुसंघट्टं वनं वह्निरिव प्रभुः ॥२५॥
गदबाणविभिन्नांगा रथिनश्छिन्नकंचुकाः । हताश्वा हतसूताश्च निपेतुर्भूमिमण्डले ॥२६॥
पदातयश्छिन्नपदा गदबाणागतव्यथाः । निपेतुर्भूतले राजन् वृक्षा वातहता इव ॥२७॥
अश्वारूढाः केऽपि वीरा गदबाणैर्विदारिताः । पेतू रणांगणे साश्वा बृहतीफलवन्नृप ॥२८॥
गदबाणैर्भिन्नकुम्भा मध्ये मध्ये विदारिताः । विरेजुः पतिता भूमौ कूष्मांडशकला इव ॥२९॥
ततः पलायितं सैन्यं दृष्ट्वा शाल्वो महाबलः । गदं तताड गदया गदायुद्धविशारदः ॥३०॥
गदाविद्धो गदो धन्वी गदायुद्धप्रभाववित् । धनुर्युद्धं तु संत्यज्य तत्कालान्मनसा त्वरम् ॥३१॥
परां व्यथां गतो युद्धे पतितोऽपि समुत्थितः । तदाऽग्रजेन या दत्ता तां गदां तु गदोऽग्रहीत् ॥३२॥
लक्षभारमयी गुर्वी दृढा कौमोदकी यथा । तया गदोऽहनच्छाल्वं वज्रेणैन्द्रो यथा गिरिम् ॥३३॥
गदाप्रहारमथिते शाल्वे निपतिते भुवि । पौंड्रकोऽथ जरासंधो दन्तवक्रो विदूरथः ॥३४॥
चत्वार आययुस्तत्र गदोपरि रुषान्विताः । पौंड्रकोऽपि महावीरो गदस्य रथगं ध्वजम् ॥३५॥
चिच्छेद दशभिर्बाणैः कुवाक्यैर्मित्रतामिव । दन्तवक्रस्तु गदया गदस्यापि रथं शुभम् ॥
चूर्णयामास राजेंद्र दण्डेनेव सुमृद्धटम् ॥३६॥
तथाऽश्वांश्च जरासंधः सारथिं च विदूरथः । पातयामास भूपृष्ठे शितैर्बाणैर्विदेहराट् ॥३७॥

यादवोंने प्रलयकालीन समुद्रके समान उमड़ते सैन्यसमूहको देखा तो भगवान् कृष्ण ही जिनके जहाजक कर्णधार थे, वे यादववीर उस समुद्रको पार करनेके लिए शत्रुओंके समक्ष जा डटे ॥ २१ ॥ उन दोनों सेनाओंका रोंगटे खड़े कर देनेवाला बड़ा भयंकर युद्ध हुआ, जैसे पहले किसी समय देवों और दानवोंका युद्ध हुआ था ॥ २२ ॥ उस समय रथियोंसे रथी, पैदलोंसे पैदल, हाथी हाथीसे और घोड़े घोड़ोंसे भिड़कर लड़ने लगे ॥ २३ ॥ शस्त्रवर्षाके अन्धकारमें रुक्मिणीको भयभीत देखकर भगवान् कृष्णने 'प्रिये ! डरो मत' यह कहते हुए उसे अभय किया ॥२४॥ तभी बलदेवका लघुभ्राता गद अपना महान् धनुष टंकारता हुआ उसी तरह शत्रुसेनाके भीतर घुस गया, जैसे दावानल वनमें घुस जाता है ॥ २५ ॥ वीर गदके बाणोंकी मारसे शत्रु-रथियोंके अंग छिन्न-भिन्न हो गये और उनके कवच कट गये । उनके घोड़े तथा सारथी मर गये और वे स्वयं भी आहत होकर भूमिपर गिर पड़े ॥ २६ ॥ जैसे पवनके वेगसे वृक्ष गिर जाते हैं, वैसे ही गदके बाणोंसे पैदल सैनिकोंके पैर कट गये, जिससे वे धरतीपर गिर गये ॥ २७ ॥ इसी प्रकार कुछ अश्वारूढ़ सैनिक गदके बाणोंसे घायल होकर वैसे ही रणांगणमें गिर पड़े, जैसे कटेरीके फल गिर जाते हैं ॥ २८ ॥ कितने ही हाथी गदके बाणोंसे कटकर ऐसे गिर पड़े, जैसे कुम्हड़े टुकड़े टुकड़े होकर छितराये पड़े हों ॥ २९ ॥ उसी समय अपनी सेनाको पलायित देखकर महाबली तथा गदायुद्धकुशल शाल्वने अपनी गदासे गदको मारा ॥ ३० ॥ गदा-युद्धके प्रभावको जाननेवाले तथा गदाकी मारसे आहत गदने मन-ही-मन धनुषयुद्ध त्याग दिया ॥ ३१ ॥ क्योंकि वह बहुत व्यथित था । मूर्छित होते हुए भी वह उठ खड़ा हुआ और भगवान् बलरामकी दी हुई गदा लेकर युद्धभूमिमें जा डटा ॥ ३२ ॥ भगवान् विष्णुकी गदाके समान एक लाख मनकी भारी तथा अत्यन्त मजबूत गदासे गदने शाल्वपर उसी प्रकार प्रहार किया, जैसे इन्द्रने अपने वज्रसे पर्वतोंपर प्रहार किया था ॥ ३३ ॥ गदाके प्रहारसे व्यथित शाल्वको धराशायी देखकर पौंड्रक, जरासंध, दंतवक्र और विदूरथ ये चारों गदपर कुपित होकर एक साथ आये । महावीर पौंड्रकने अपने भीषण दस बाणोंसे गदके रथकी ध्वजा काट डाली । दंतवक्रने अपनी गदासे गदका रथ इस तरह चूर-चूर कर दिया, जैसे कोई डंडेसे मारकर मिट्टीका घड़ा तोड़ डाले ॥ ३४-३६ ॥ इसी प्रकार जरासंधने गदके घोड़े मार डाले और विदूरथने अपने

ततो मुसलमादाय बलदेवस्त्वरन्बली । विकराले मुखे भीमे दन्तवक्रमताडयत् ॥३८॥
ततो मुसलघातेन दन्तवक्रस्य युध्यतः । मुखे वक्रोऽपि यो दन्तः स तु भूमौ पपात ह ॥३९॥
तदा हसति दैत्यारौ रुक्मिणीसहिते हरौ । पौंड्रकं च जरासंधं तथा दुष्टं विदूरथम् ॥४०॥
जघान मुसलेनाशु बलदेवो रुषान्वितः । त्रयोऽपि पतिता युद्धे मूर्छिताः क्षतजाप्लुताः ॥४१॥
सेनां समागतां सर्वां समाकृष्य हलेन वै । मुसलेनाहनत्क्रुद्धो बलदेवो महाबलः ॥४२॥
दशयोजनपर्यंतं रथेभाश्वपदातयः । पेशिताश्चूर्णिता भूमौ शयाना धरणीं गताः ॥४३॥
जरासंधादयः सर्वे मृत्युशेषा नृपाः परे । पलायिताश्चैद्यमेत्य प्रोचुर्नष्टोत्सवं भृशम् ॥४४॥
भो भोः पुरुषशार्दूल दौर्मनस्यमिदं त्यज । किमेकेन विवाहेन भविता ते शतं भुवि ॥४५॥
अद्यैव द्वारकां गत्वा बद्ध्वा रामं समाधवम् । अयादवीं करिष्यामः पृथ्वीं सागरमेखलाम् ॥४६॥
एवं सम्बोधितो मित्रैश्चैद्योऽगाच्चंद्रिकापुरम् । ययुः स्वं स्वं पुरं सर्वे हतशेषा नृपास्ततः ॥४७॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीद्वारकाखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे रुक्मिणीहरणे यदुविजयो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

(रुक्मिणी-परिणय)

श्रीनारद उवाच

रुक्मिण्या हरणं श्रुत्वा मित्राणां च पराभवम् । प्रतिज्ञामकरोद्रुक्मी शृण्वतां सर्वभूभुजाम् ॥ १ ॥
अहत्वा समरे कृष्णमप्रत्यूह्य च रुक्मिणीम् । कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामि सत्यमेतद्ब्रवीमि वः ॥ २ ॥
इत्युक्त्वा कवचं दिव्यं घनमर्बुदनिर्मितम् । शिरस्त्राणं सिंधुजं च स दधार महोद्भटः ॥ ३ ॥
सौवीरस्य धनुः शालिलाटजं चेषुधिद्वयम् । आदाय म्लेच्छदेशस्य खड्गं चर्म च कौटजम् ॥ ४ ॥

ताक्ष्ण बाणोंसे उसके सारथीको मार डाला ॥ ३७ ॥ तभी भगवान् बलदेव भयंकर मुखवाला अपना मुसल लेकर उससे दन्तवक्रको मारा ॥ ३८ ॥ मुसलके आघातसे दन्तवक्रका टेढ़ा दाँत टूटकर धरतीपर आ गिरा ॥ ३९ ॥ उसकी दुर्दशा देखकर भगवान् कृष्ण तथा रुक्मिणी भी हँसने लगीं। तभी बलदेवने पौंड्रक, जरासंध तथा दुष्ट विदूरथको भी अपने मुसलसे मारा। उस मुसलकी मार खाकर रुधिरसे लतपथ होकर वे तीनों भूमिपर गिर गये ॥४०॥४१॥ उनकी सहायताके लिए जो सेना आयी, उसे अपने हलसे खींच-खींचकर बलदेवने मुसलसे चूर्ण कर दिया ॥४२॥ इस प्रकार चालीस कोसतक सेनाके पैदल सैनिक, हाथी, घोड़े तथा रथ चूर-चूर होकर धरतीपर छितरा गये ॥ ४३ ॥ मृत्युसे बचे हुए जरासन्ध आदि राजे भागकर जिसका उत्साह भंग हो चुका था, उस शिशुपालके पास गये और कहने लगे—॥ ४४ ॥ हे पुरुषशार्दूल ! तुम अपनी उदासी त्याग दो। इस एक विवाहके बिगड़नेसे क्या होता है, तुम्हारे सौ विवाह होंगे ॥ ४५ ॥ जरासन्ध बोला—मैं आज ही द्वारका जाऊँगा और कृष्ण-बलरामको बन्दी बनाकर सागर-मेखला-सम्पन्न समस्त पृथिवीको यादवहीन कर दूँगा ॥ ४६ ॥ मित्रोंके इस प्रकार समझानेपर शिशुपाल चन्द्रिकापुर चला गया और मृत्युसे बचे हुए बाकी राजे अपनी-अपनी राजधानीको चले गये ॥ ४७ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां द्वारकाखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! रुक्मिणीका अपहरण, मित्रोंका मरण तथा तिरस्कार सुनकर सब राजाओंके समक्ष भीष्मकतनय रुक्मीने प्रतिज्ञा की कि यदि मैं संग्राममें श्रीकृष्णको मार तथा रुक्मिणीको लौटाकर न लाऊँ तो कुंडिनपुरमें प्रवेश नहीं करूँगा। यह मैं सत्य कहता हूँ ॥ १ ॥ २ ॥ यह कहकर रुक्मीने कवच धारण किया और सागरनिर्मित शिरस्त्राण पहना ॥ ३ ॥ उसने सौवीर देशका निर्मित धनुष,

पेठरस्य महाशक्तिं गुर्ज्जराटभवां गदाम् । परिघं वंगजं धृत्वा हस्तत्राणं च कौंकणम् ॥ ५ ॥
बद्धगोधांगुलित्राणः किरीटी रत्नकुण्डलः । रुक्मांगदस्तदा रुक्मी युद्धं कर्तुं मनो दधे ॥ ६ ॥
जैत्रं रथं समारुह्य चञ्चलाश्वनियोजितम् । पृष्ठतोऽन्वगमत्कृष्णं कर्षन्नक्षौहिणीद्वयम् ॥ ७ ॥
पुनः समागतां दृष्ट्वा सेनां रामो महाबलः । तया युयोध समरे यदुसेनासमन्वितः ॥ ८ ॥
तिष्ठ तिष्ठेति देवेशं विसृजन्परुषं वचः । संप्राप्नोति रथं रुक्मी धनुष्टंकारयन्मुहुः ॥ ९ ॥
त्वरं मुञ्च स्वसारं मे यदि जीवितुमिच्छसि । न चेत्त्वां सबलं सद्यो नयामि यमसादनम् ॥१०॥
ययातिशापसंभ्रष्टो गोपालोच्छिष्टभुग्भवान् । जरासंधभयाद्भीतो यवनाग्रात्पलायितः ॥११॥
इत्युक्त्वेषुधितः कृष्य बाणं चापे निधाय सः । नियम्य कर्णपर्यंतं निजघान हरेर्हृदि ॥१२॥
सन्ताडितोऽपि भगवान् धनुर्ज्यां तस्य नादिनीम् ।
चिच्छेद सायकेनाशु गरुडः पन्नगीं यथा ॥१३॥
निधाय शीघ्रं कोदण्डं शिंजिनीं स्वर्णभूषिताम् । रुक्मी तु दशभिर्बाणैः संजघान हरिं रणे ॥१४॥
हरिरेकेन बाणेन शिंजिनीसहितं धनुः । चिच्छेद रुक्मिणः सद्यो ज्ञानेनेवागुणामयम् ॥१५॥
कृष्णो मोघेन बाणेन मध्यतस्तां द्विधाऽकरोत् । रुक्मीं पुनः शतैर्बाणैः संतताड मृधे हरिः ॥१६॥
छिन्नधन्वाऽथ वैदर्भो महाशक्तिं स्फुरत्प्रभाम् । प्राहरद्धरये शक्तिं विज्ञानाय यथा मुनिः ॥१७॥
तताड गदया तां वै गदाधारी गदाग्रजः । द्विधाभूता महाशक्ती रुक्मेः सूतं जघान ह ॥१८॥
कौमोदकी गदा गुर्वी पतन्ती वेगधारिणी । तद्रथं चूर्णयामास साश्वं शैलं यथा पविः ॥१९॥
प्राहरद्धरये सोऽपि गदां स्वां भीष्मकात्मजः । चक्रेण चूर्णयामास भगवानपि तां पुनः ॥२०॥

शालिलाट देशके दो तरकस, म्लेच्छ देशके खड्ग तथा कुटज देशकी बनी ढाल ली ॥ ४ ॥ पेठर देशकी बनी महाशक्ति, गुर्जरदेशकी गदा, वंग देशका परिघ और कोंकण देशका हस्तत्राण बाँधा ॥ ५ ॥ गोहकी खालका बना अंगुलित्राण धारण करके किरीट, रत्नजटित कुंडल और सुवर्णका बाजूबंद पहिनकर रुक्मीने युद्ध करनेकी इच्छा की ॥ ६ ॥ चंचल घोड़े जुते हुए जैत्र रथपर बैठ तथा दो अक्षौहिणी सेना साथ लेकर वह श्रीकृष्णके पीछे-पीछे दौड़ा ॥ ७ ॥ महाबली बलदेवजीने जब फिर सेना आती देखी तो अपनी यादवी सेना लेकर वे उनसे लड़ने लगे ॥ ८ ॥ 'खड़ा रह—खड़ा रह' यों कहता और बार-बार धनुषका टंकोर करता हुआ रुक्मी बलदेवके समक्ष पहुँचा ॥ ९ ॥ उसने कहा—यदि जीवित रहनेकी इच्छा हो तो तुरन्त मेरी बहिनको छोड़ दो। यदि न छोड़ोगे तो सेना समेत तुमको मैं अभी यमपुरी पहुँचा दूँगा ॥ १० ॥ राजा ययातिके शापसे तुम धर्मभ्रष्ट हो गये हो और ग्वालोंके जूठन चाटते फिरते हो। जरासन्धके भयसे तुम समुद्रमें जा छिपे थे और कालयवनके भयसे यत्र-तत्र भागते फिरते थे ॥ ११ ॥ ऐसा कहकर उसने तरकससे बाण निकाला और धनुषपर चढ़ा तथा कानतक खींचकर श्रीकृष्णके हृदयमें मारा ॥ १२ ॥ बाणसे ताडित होकर भी भगवान्ने उसके धनुषकी मजबूत प्रत्यंचा वैसे ही काट डाली, जैसे गरुड़ सर्पिणीको काट डालते हैं ॥ १३ ॥ तुरन्त धनुषपर स्वर्णभूषित प्रत्यंचा चढ़ाकर भगवान्ने रुक्मीकी प्रत्यंचा काटी थी। उस समय रुक्मीने दस बाणोंसे श्रीकृष्णपर रणमें प्रहार किया ॥ १४ ॥ तभी श्रीकृष्णने अपने एक ही बाणसे प्रत्यंचा सहित उसका धनुष भी काट डाला। जैसे ज्ञानसे सगुण संसार कट जाता है ॥१५॥ श्रीकृष्णने अपने अमोघ बाणसे धनुषको बीचोबीच दो टुकड़े करके रुक्मीको सौ बाण मारे ॥ १६ ॥ इस प्रकार धनुष कट जानेपर रुक्मीने श्रीकृष्णपर अपनी चमचमाती हुई महाशक्ति चलायी। जैसे कि विज्ञानप्राप्तिके लिए मुनि लोग अपनी योगशक्ति चलाते हैं ॥ १७ ॥ उसी समय गदके अग्रज श्रीकृष्णने अपनी गदाके प्रहारसे शक्तिके दो टुकड़े कर दिये और उसके सारथीको मार डाला ॥ १८ ॥ वेगके साथ गिरकर उस महती गदाने अश्वसमेत रथको वैसे ही चूर कर दिया, जैसे वज्रके आघातसे पहाड़ चूर्ण हो जाते हैं ॥ १९ ॥ तब रुक्मीने भी श्रीकृष्णपर गदाका प्रहार किया, श्रीहरिने अपने चक्रसे उसकी गदा-

परिघं वङ्गजं नीत्वा रुक्मी रुक्मांगदो बली । जघान श्रीहरिं स्कंधे जगर्ज घनवन्मृधे ॥२१॥
सन्ताडितोऽपि भगवान् मालाहत इव द्विपः । तेनैव परिघेणापि तं जघान रणांगणे ॥२२॥
परिघाभिहतो रुक्मी किंचिद्व्याकुलमानसः । भर्त्सयन् माधवं ह्याजौ जग्राह खड्गचर्मणी ॥२३॥
तत् खड्गं चर्मणा छित्वा स्वखड्गं प्राहरद्धरिः । खड्गाग्रेण शिरस्त्राणं कंचुकं चिच्छिदे महत् ॥२४॥
हस्तत्राणोऽपि युगपदेते छिन्नीकृते मृधे । खड्गमुष्टिकरं दृष्ट्वा रुक्मिणं समुपस्थितम् ॥२५॥
गृहीत्वा भुजदण्डाभ्यां पातयित्वा महीतले । तस्योपरि हरिः स्थित्वा यथा सिंहो मृगोपरि ॥
शितधारं नन्दकाख्यं खड्गं जग्राह रोषतः ॥२६॥
दृष्ट्वा भ्रातृवधोद्युक्तं रुक्मिणी भयविह्वला । पतित्वा पादयोर्भर्त्तुरुवाच करुणं सती ॥२७॥

श्रीरुक्मिण्युवाच

अनन्त देवेश जगन्निवास योगेश्वराचिंत्य जगत्पते त्वम् ।
हंतुं न योग्यः करुणासमुद्र मद्भ्रातरं शालभुजं महाभुज ॥२८॥

श्रीनारद उवाच

परित्रासैर्विलपतीं दुःखशुष्यन्मुखीं प्रियाम् । रुद्धकंठीं सतीं वीक्ष्य न्यवर्त्तत हरिः स्वयम् ॥२९॥
बद्ध्वा तं कटिबन्धेन खड्गेन शितधारिणा । वपनं श्मश्रुकेशानां चकारार्द्धमुखे हरिः ॥३०॥
अक्षौहिणीद्वयं जित्वा रामः प्राप्तः ससैनिकः । बद्धं विरूपिणं दीनं रुक्मिणं तु ददर्श ह ॥३१॥
विमुच्य बद्धं सदयः प्राह निर्भर्त्सयन् हरिम् । असाध्विदं त्वया कृष्ण कृतं लोकजुगुप्सितम् ॥३२॥
हास्यं वैशालिभद्राणां न हि चैतादृशं भवेत् । यस्याः सहोदरे मुख्ये विरूपे च त्वया कृते ॥३३॥
किं वदिष्यति साऽपि त्वां भ्रातुर्वैरूप्यचिंतया । मा शोकं कुरु कल्याणि स्वस्था भव शुचिस्मिते ३४॥
आर्यपुत्रि महाबुद्धे मा शोकं कुरु दुर्मनाः । सर्वं कालकृतं मन्ये प्रियमप्रियमेव वा ॥३५॥

को चूर्ण कर दिया ॥२०॥ सोनेके बाजूबन्द पहने हुए रुक्मीने बंगदेशका परिघ ले और उससे श्रीकृष्णके कंधेपर मारकर घोर गर्जन किया ॥ २१ ॥ उस परिघके आघातसे भगवान् तनिक भी नहीं हिले। जैसे मालाकी मारसे हाथी नहीं हिलता। तदनन्तर भगवान्ने उस परिघसे ही रुक्मीको मारा ॥ २२ ॥ परिघके आघातसे रुक्मी कुछ व्याकुल हुआ, किन्तु तनिक ही देर बाद उसने फिर श्रीकृष्णकी भर्त्सना करके ढाल-तलवार सम्हाल ली ॥२३॥ श्रीकृष्णने अपनी तलवारकी मारसे रुक्मीकी ढाल-तलवार काट डाली, उसी तलवारके अग्रभागसे उसका कवच और शिरस्त्राण भी काट डाला ॥ २४ ॥ बादमें श्रीकृष्ण द्वारा हस्तत्राण भी काट दिये जानेपर नंगी मुट्ठीमें ढाल-तलवार लेकर रुक्मी भगवान्के समक्ष जा डटा ॥ २५ ॥ ऐसी स्थितिमें श्रीकृष्णने उसे अपने हाथोंसे पकड़कर जमीनपर पटक दिया। फिर जैसे सिंह मृगपर सवार हो, उसी तरह उसकी छातीपर चढ़ बैठे और क्रुद्ध होकर अपना नन्दक नामक खड्ग हाथमें ले लिया ॥ २६ ॥ श्रीकृष्णको अपने भ्राता रुक्मीका वध करनेके लिए उद्यत देखकर रुक्मिणी भयभीत हो उठी और श्रीकृष्णके पैरों पड़कर बड़ी ही करुणापूर्ण वाणीमें बोली ॥ २७ ॥ श्रीरुक्मिणी देवीने कहा—हे अनन्त ! हे देवेश ! हे जगन्निवास ! हे योगेश्वर ! हे अचिन्त्य ! हे जगत्पते ! हे करुणासागर ! शालवृक्ष सरीखी विशाल भुजाओंवाले मेरे भाईको मारना आपके लिए अनुचित है। क्योंकि यह आपका साला है ॥ २८ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! इस प्रकार भयसे बिलखती दुःखसे शुष्कमुख तथा रुँधे गलेवाली अपनी प्रियतमाको देखकर श्रीकृष्णने रुक्मीके वधका विचार त्याग दिया ॥२९॥ फिर उसीकी कमरबन्धसे उसको बाँधकर अपनी तीक्ष्ण धारवाली तलवारसे उसकी एक ओरकी दाढ़ी-मूछ और आधे सिरके बाल काट लिये ॥ ३० ॥ इसी बीच रुक्मीकी दो अक्षौहिणी सेना जीतकर बलराम भी अपने सैनिकोंके साथ वहाँ पहुँच गये और उन्होंने बँधे हुए विरूप रुक्मीको देखा ॥ ३१ ॥ उसे इस दशामें देखकर बलदेवजीको दया आ गयी। अतएव उसको बन्धनमुक्त करके श्रीकृष्णको डाँटते हुए बोले—हे कृष्ण ! तुमने

वायोर्घनावलिरिव वशे यस्याखिलं जगत् । तं कालमीश्वरं विद्धि विष्णुं कलयतां प्रभुम् ॥३६॥
अहं ममेति भावोऽयं जगतो बन्धकारणम् । ताभ्यां विरहितो भावो मोक्ष एव न संशयः ॥३७॥
सुखदुःखप्रदो नान्यः पुरुषस्यात्मविभ्रमः । मित्रोदासीनरिपवः संसारतमसा कृताः ॥३८॥
एवं रामेण देवेन बोधितो भीष्मकात्मजः । वैमनस्यं परित्यज्य रुक्मिणी च ययौ मुदम् ॥३९॥
रुक्मी तु ताभ्यामुत्सृष्टो वितथात्ममनोरथः । स्मरन् विरूपकरणं तपसे स मनोऽदधत् ॥४०॥
वारितो मन्त्रिमुख्यैश्च कुण्डिनं न गतः पुनः । चक्रे भोजकटं नाम निवासाय पुरं परम् ॥४१॥
रुक्मिण्या सह गोविंदः सरामो यदुभिर्वृतः । द्वारकां प्रययौ राजन्नादयञ्जयदुन्दुभीन् ॥४२॥
जाते महोत्सवे पुर्यां रुक्मिणीं रुचिराननाम् । उपयेमे विधानेन मार्गशीर्षे हरिः स्वयम् ॥४३॥

हरेर्विवाहे सति रुक्मिणीपतेः श्रीरुक्मिणी भूपितरुक्ममन्दिरा ।
पुरन्दरस्यापि यथाऽमरावती द्वारावती पुण्यवती तथा बभौ ॥४४॥
भैष्मीविवाहस्य कथां विचित्रां शृणोति यः श्रावयते च भक्त्या ।
इहैव भक्तो विभवेन युक्तः स एव मुक्तिं प्रतियाति मुक्तः ॥४५॥

इति श्रीगर्गसंहितायां द्वारकाखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे रुक्मिणीविवाहो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथ अष्टमोऽध्यायः

(अनेकानेक महिलाओंके साथ श्रीकृष्णजीका विवाह)

श्रीनारद उवाच

अन्यासां कृष्णपत्नीनां मङ्गलं शृणु मैथिल । सर्वपापहरं पुण्यमायुर्वर्द्धनमुत्तमम् ॥ १ ॥

यह बड़ा लोकनिन्दित कार्य किया है ॥ ३२ ॥ सालेके साथ ऐसा परिहास नहीं किया जाता । जिसके सगे भाईको तुमने विरूप किया है, वह रुक्मिणी क्या कहेगी । इसके बाद वे रुक्मिणीसे बोले—हे शुचिस्मिते ! हे कल्याणी ! तुम शोक न करो—स्वस्थ हो जाओ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ हे आर्यपुत्रि ! हे महाबुद्धे ! तुम न शोक करो और न मनको दुखी करो । मैं प्रिय तथा अप्रिय सभी घटनाओंको कालप्रेरित मानता हूँ ॥ ३५ ॥ जैसे वायुके वशमें बादल रहते हैं, वैसे ही सारा संसार जिसके वशमें रहता है, उस कालको ही तुम ईश्वर समझो । जगत्‌की सभी जंगम वस्तुओंका एकमात्र वही प्रभु है ॥ ३६ ॥ मुख्यरूपसे तो अहंता और ममता ही बन्धनका कारण है और इन दोनोंसे रहित भाव ही मोक्षका कारण होता है । इसमें संशय नहीं है ॥ ३७ ॥ कोई किसीको सुख या दुःख नहीं देता । प्राणीका यह भ्रम है कि वह औरोंको सुख-दुःखका दाता मानता है । यह मेरा मित्र है, यह उदासीन है और यह शत्रु है, ऐसी भावना अज्ञानसे उत्पन्न होती है ॥ ३८ ॥ देवदेव बलराम द्वारा इस प्रकार ज्ञानोपदेश पाकर रुक्मी और रुक्मिणीका सारा वैमनस्य दूर हो गया और वे दोनों प्रसन्न हो गये ॥ ३९ ॥ श्रीकृष्ण-बलरामने जब रुक्मीको छोड़ दिया तो व्यर्थमनोरथ हो अपने विरूपकरणका स्मरण करता हुआ वह तपस्याकी ओर उन्मुख हुआ ॥ ४० ॥ प्रमुख मंत्रियोंके मना करनेपर वह लौटकर कुण्डिनपुर नहीं गया और अपने निवासके लिए उसने भोजकट नगर बसाया ॥ ४१ ॥ तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलराम रुक्मिणीके साथ विजयसूचक दुन्दुभी बजवाते हुए द्वारकापुरी गये ॥ ४२ ॥ उनके वहां पहुँचनेपर बड़ा उत्सव मनाया गया और मार्गशीर्षमासमें भगवान् श्रीकृष्णने विधिवत् रुक्मिणीको ब्याह लिया ॥ ४३ ॥ जब रुक्मिणीके साथ श्रीकृष्णका विवाह हो गया तो वहांके स्वर्णमहल जगमगा उठे । उस समय इन्द्रकी अमरावती पुरीके समान द्वारकापुरी शोभित हुई ॥ ४४ ॥ भगवती रुक्मिणीके विवाहकी इन विचित्र कथाको जो प्राणी भक्तिपूर्वक सुनता या सुनाता है, वह भक्त इस लोकके सभी वैभवोंका उपभोग करके अन्तमें मुक्ति प्राप्त कर लेता है ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां द्वारकाखण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

सत्राजिताय सूर्येण दत्तः साक्षात्स्यमंतकः । उग्रसेनाय स मणिः श्रीकृष्णेनाभियाचितः ॥ २ ॥
सत्राजितस्तं न ददौ द्रव्यलोभेन मैथिल । दिने दिने स्वर्णभारानष्टौ यः सृजति स्वतः ॥ ३ ॥
अथ प्रसेनस्तद्भ्राता मणिं कण्ठे निधाय सः । सैंधवं हयमारुह्य मृगयां व्यचरद्वने ॥ ४ ॥
सिंहेन मारितः सोऽपि सिंहो जांबवता हतः । गृहीत्वा तं मणिं सद्यो जांबवान्स्वगुहां गतः ॥ ५ ॥
कृष्णेन निहतो भ्राता मणिग्रीवो वनं गतः । नायातः स्वसभामध्ये इति सत्राजितोऽब्रवीत् ॥ ६ ॥
भगवान् दुर्यशोलिप्तो नागरैस्तु वनं गतः । प्रसेनमश्वं सिंहं च हतं प्रेक्ष्य महामते ॥ ७ ॥
ऋक्षराजबिलं गत्वा मणिं हर्तुं स्वयं हरिः । युद्धं कृत्वाऽष्टविंशाहमजयदृक्षनायकम् ॥ ८ ॥
तेन दत्ता जांबवती हरये कन्यका शुभा । मणिना सह राजेंद्र द्वारकामाययौ हरिः ॥ ९ ॥
सत्राजिताय प्रददौ मणिं निर्लांछनः प्रभुः । व्रीडितोऽवाङ्मुखो भीतो राजा सत्राजितो मणिम् ॥
गृहीत्वापि पुनस्तस्मै श्रीकृष्णाय महात्मने । सत्यभामां सुतां प्रादाच्छांत्यर्थं मैथिलेश्वर ॥११॥
पांडवानां सहायार्थमिंद्रप्रस्थं गतो हरिः । तत्रैव वार्षिकान्मासानन्यवात्सीद्बन्धुवत्सलः ॥१२॥
एकदा रथमारुह्य हरिर्गांडीविना सह । सुनीरे यमुनातीरे मृगयार्थी विनिर्ययौ ॥१३॥
तपश्चरन्ती कालिंदी श्रीकृष्णं वरमिच्छती । दर्शिता पांडवेनापि तां गृहीत्वा जगाम ह ॥१४॥
द्वारकामेत्य कालिंदीं सूर्यकन्यां मनोहराम् । उपयेमे विधानेन वितन्वन्मङ्गलं परम् ॥१५॥
आवन्त्यराजतनुजां मित्रविंदां मनोहराम् । स्वयंवरे तां जहार भगवान् रुक्मिणीं यथा ॥१६॥
नग्नजित्कन्यकां सत्यां दमित्वा सप्त गोवृषान् । पश्यतां सर्वलोकानामुपयेमे हरिः स्वयम् ॥१७॥
कैकेयराजतनुजां भद्रां तु भगवान् हरिः । कालिंदीमिव तां शश्वदुपयेमे विधानतः ॥१८॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! अब आप श्रीकृष्णकी अन्यान्य पत्नियोंके विवाहका वृत्तान्त सुनिए, जो सर्वपापहारी, अत्युत्तम तथा आयुर्वर्द्धक है ॥ १ ॥ सत्राजित्को साक्षात् सूर्यभगवानने स्यमन्तक मणि दी थी। श्रीकृष्णने सत्राजित्से वह मणि उग्रसेनके लिए माँगी ॥ २ ॥ किन्तु हे मिथिलेश ! द्रव्यके लोभ-वश सत्राजित्ने मणि नहीं दी। क्योंकि वह प्रतिदिन आठ भार सोना देती थी ॥३॥ कुछ दिनों बाद उसका भाई प्रसेन वह मणि गलेमें पहन तथा सिन्धुदेशीय घोड़ेपर सवार होकर शिकार खेलनेके लिए वनमें गया ॥ ४ ॥ वहाँपर एक सिंहने प्रसेनको मार डाला और सिंहको जाम्बवान्ने मार दिया और मणि लेकर अपनी गुफामें चले गये ॥ ५ ॥ इधर सत्राजित्ने यादवोंकी भरी सभामें कहा कि श्रीकृष्णने मेरे भाई प्रसेनको मार डाला है। वह स्यमन्तक मणि पहिनकर वनमें गया था, किन्तु अवतक लौटा नहीं है ॥ ६ ॥ इस प्रत्यक्ष लांछनके लगनेपर श्रीकृष्ण द्वारकाके नागरिकोंको साथ लेकर वनमें गये। वहाँ प्रसेन, उसके घोड़े तथा सिंहको मरा देखकर श्रीकृष्ण जाम्बवान्की कन्दरामें घुस गये और पूरे अट्ठाईस दिनतक युद्ध करके ऋक्षराजको परास्त किया ॥ ७ ॥ ८ ॥ तदनन्तर जाम्बवान्ने श्रीकृष्णको स्यमन्तकमणिके साथ अपनी सुन्दरी कन्या जाम्बवती दे दी। तब मणिके साथ श्रीकृष्ण द्वारका लौटे ॥ ९ ॥ यहाँ आकर कलंकयुक्त श्रीकृष्णने वह मणि सत्राजित्को दे दी। लज्जित और भयभीत सत्राजित्ने मस्तक नीचा करके वह मणि ली ॥१०॥ बादमें उसने शान्तिस्थापनार्थ उस मणिके साथ सत्यभामा नामकी अपनी पुत्री श्रीकृष्णको दे दी ॥ ११ ॥ कुछ समय बाद बन्धुप्रेमी श्रीकृष्ण पांडवोंकी सहायताके लिए इन्द्रप्रस्थ गये और वहाँ साल भर रह गये ॥ १२ ॥ एक दिन श्रीकृष्ण अर्जुनके साथ रथपर बैठकर शिकार खेलनेके लिए सुन्दर जलवाली यमुनाके तटपर गये ॥ १३ ॥ वहाँ श्रीकृष्णको पति-रूपमें पानेके लिए तप करती हुई कालिन्दी (यमुना) को अर्जुनने दिखाया। उसको साथ लेकर भगवान लौट आये ॥ १४ ॥ द्वारकामें पहुँचकर उन्होंने मनोहारिणी सूर्यतनया यमुनाका वैदिक विधिसे बड़े समारोह-पूर्वक पाणिग्रहण किया ॥ १५ ॥ अवन्ती (उज्जयिनी) पुरीके राजाकी मनोहरा पुत्री मित्रविन्दाको वे स्वयंवरसे हर लाये, जैसे पहले रुक्मिणीको हर लाये थे ॥ १६ ॥ राजा नग्नजित्की कन्या सत्याको भगवान् कृष्ण सब लोगोंके समक्ष सात बैलोंका दमन करके व्याह लाये ॥ १७ ॥ कैकेयराजकी कन्या भद्राके साथ

बृहत्सेनसुतां राजँल्लक्ष्मणां लक्षणैर्युताम् । छित्वा मत्स्यमरीञ्जित्वा जग्राह भगवान् हरिः १९॥
तथा षोडशसाहस्रं शतं च नृपकन्यकाः । भौमं हत्वा तन्निरोधादाहृताश्चारुदर्शनाः ॥२०॥
तासां मुहूर्त एकस्मिन्नानागारेषु योषिताम् । सविधिं जगृहे पाणीन्नानारूपः स्वमायया ॥२१॥
एकैकशस्ताः कृष्णस्य पुत्रान्दश दशाबलाः । अजीजनन्नवमान्पितुः सर्वात्मसम्पदा ॥२२॥
रुक्मिण्यां भीष्मकन्यायां प्रद्युम्नः प्रथमोऽभवत् । कामदेवावतारोऽयं पितृवत्सर्वलक्षणः ॥२३॥
शम्बरो निर्दयस्तोकं हत्वाऽब्धौ तं समाक्षिपत् । मत्स्योदरे गतः सोऽपि न ममार हरेः सुतः ॥२४॥
मत्स्योदरान्निर्गतोऽसौ भार्यया परिपालितः । ज्ञात्वा शत्रुकृतां वार्तां स कार्ष्णी रूढयौवनः ॥२५॥
हत्वा तं शंबरं शत्रुं भार्यया वरया युतः । द्वारकामायौ राजंश्चित्रं कर्म च तस्य तत् ॥२६॥
स रुक्मिणो दुहितरं हृत्वा भोजकटात्पुरात् । स्वयंवरस्थलाद्राजन्नुपयेमे महारथः ॥२७॥
तस्मात्सुतोऽनिरुद्धोऽभून्नागायुतबलान्वितः । सुरज्येष्ठावतारोऽयं शारदेन्दीवरप्रभः ॥२८॥
चतुर्व्यूहावतारस्य परिपूर्णतमस्य हि । एवं विचित्रं चरितं विवाहानां सुमङ्गलम् ॥२९॥
सर्वपापहरं पुण्यमायुर्वर्द्धनमुत्तमम् । मया ते कथितं राजन् किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ३०॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीद्वारकाखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे सर्वमहिष्युद्वाहो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः

(श्रीकृष्णके हाथों जरासन्धकी पराजय)

बहुलाश्व उवाच

त्रिषु लोकेषु विख्याता धन्या वै द्वारकापुरी । परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो यत्र वासकृत् ॥ १ ॥

भगवानने कालिन्दीके समान ही विवाह किया ॥१८॥ राजा बृहत्सेनकी सभी सुलक्षणोंसे सम्पन्न पुत्री लक्ष्मणाको स्वयंवरमें मत्स्य वेध तथा शत्रुओंको जीतकर प्राप्त किया ॥१९॥ इसी तरह श्रीकृष्ण भौमासुरका वध करके उसके कैदमें पड़ी सोलह हजार एक सौ परम सुन्दरी राजकन्याओंको ले आये ॥ २० ॥ भगवान् कृष्णने अपनी मायाका विस्तार करके विभिन्न महलोंमें रहनेवाली उन हजारों कन्याओंका पृथक्-पृथक् रूप धारण करके एक ही समय पाणिग्रहण किया ॥ २१ ॥ एक एक करके उन सभी महिलाओंने पिता श्रीकृष्णके सब गुणोंसे परिपूर्ण दस-दस पुत्र उत्पन्न किये ॥ २२ ॥ राजा भीष्मककी पुत्री रुक्मिणीका पहला पुत्र प्रद्युम्न हुआ, जो साक्षात् कामदेवका अवतार था और उसमें पिता श्रीकृष्णके सभी गुण विद्यमान थे ॥ २३ ॥ किन्तु निर्दयी शंबरासुरने उस नवजात शिशुको चुराकर समुद्रमें फेंक दिया। वहाँ उसको एक मछली निगल गयी, किन्तु मछलीके पेटमें जाकर भी वह नहीं मरा ॥ २४ ॥ बादमें जब वह मछलीके पेटसे जीवित निकला तो अपनी भार्या मायावतीके द्वारा पालित हुआ। युवा होनेपर कृष्णतनय प्रद्युम्नको जब शम्बरकी करनीका पता चला तो उसका वध करके अपनी सुन्दरी भार्या मायावतीके साथ द्वारका लौट आया। प्रद्युम्नका यह बड़ा ही अनोखा कार्य था ॥ २५ ॥ २६ ॥ उस महारथीने रुक्मीकी कन्याको भोजकटपुरके स्वयंवर-स्थलसे हर लाया और उसके साथ विवाह किया ॥ २७ ॥ प्रद्युम्नके शरत्कालीन नील कमल सरीखी शोभासे सम्पन्न तथा दस हजार हाथियोंका बलधारी अनिरुद्ध नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। उसको साक्षात् ब्रह्माका अवतार माना जाता था ॥ २८ ॥ इस प्रकार परिपूर्णतम परमेश्वर भगवानका यह चतुर्व्यूहावतार माना गया। श्रीकृष्णका विवाहसम्बन्धी यह चरित्र बड़ा विचित्र तथा मंगलमय है ॥ २९ ॥ इस तरह सर्वपापनाशक, पवित्रमें पवित्र, आयुर्वर्धक तथा अत्युत्तम श्रीकृष्णचरित्रका मैंने वर्णन किया। अब तुम और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ ३० ॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां द्वारकाखण्डे 'प्रियंवदा'-नामाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

श्रीकृष्णस्यांगसम्भूता पुरी द्वारावती श्रुता । कस्मादिहागता ब्रह्मन् कस्मिन्काले वद प्रभो ॥ २ ॥

श्रीनारद उवाच

साधु साधु त्वया पृष्टं द्वारकागमकारणम् । यच्छ्रुत्वा शुद्धतां याति लोकघात्यपि पातकी ॥ ३ ॥
शर्यातिर्नाम राजाऽभूच्चक्रवर्ती मनोः सुतः । चकार राज्यं धर्मेण वर्षाणामयुतं भुवि ॥ ४ ॥
उत्तानबर्हिरानर्तो भूरिषेण इति त्रयः । शर्यातेरभवन्पुत्राः सर्वधर्मभृतां वराः ॥ ५ ॥
उत्तानबर्हिषे पूर्वां भूरिषेणाय दक्षिणाम् । पश्चिमां च दिशं सर्वामानर्ताय ददौ नृपः ॥ ६ ॥
ममेयं हि मही कृत्स्ना मया धर्मेण पालिता । बलाजिता बलिष्ठेन यूयं तां पालयिष्यथ ॥ ७ ॥
पितुर्वचः समाकर्ण्य आनर्तो मध्यमः सुतः । ज्ञानी ज्ञानमयं वाक्यमुवाच प्रहसन्निव ॥ ८ ॥

आनर्त उवाच

तवेयं न मही कृत्स्ना न त्वया पालिता क्वचित् । न त्वद्बलाजिता राजन् बलिष्ठो भगवान् विभुः ॥९॥
मही श्रीकृष्णदेवस्य तेनैव परिपालिता । तत्तेजसा जिता कृत्स्ना बलिष्ठो न हरेः समः ॥१०॥
स एव विश्वं स्वकृतं सृजत्यत्ति च पाति च । स एव ब्रह्म परमं कालः कलयतां प्रभुः ॥११॥
योऽन्तः प्रविश्य भूतानि भूतैरप्यखिलाश्रयः । स विश्वाख्योऽधियज्ञोऽसौ परिपूर्णतमः स्वयम् ॥१२॥
यद्भयाद्वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति यद्भयात् । यद्भयाद्वर्षते देवो मृत्युश्चरति यद्भयात् ॥१३॥
परिपूर्णतमं साक्षाच्छ्रीकृष्णं परमेश्वरम् । भज सर्वात्मना राजन्नहङ्कारविवर्जितः ॥१४॥

श्रीनारद उवाच

ज्ञानं प्राप्तोऽपि शर्यातिराक्षिप्तः पुत्रवाक्शरैः । आनर्तं स्वसुतं प्राह रुषा प्रस्फुरिताधरः ॥१५॥

इतनी कथा सुनकर राजा बहुलाश्वने कहा—हे महामुने ! तीनों लोकोंमें विख्यात द्वारकापुरी धन्य है । क्योंकि वहाँ परिपूर्णतम साक्षात् श्रीकृष्ण निवास करते हैं ॥ १ ॥ ऐसा सुना जाता है कि भगवान् श्रीकृष्णके अंगसे द्वारकापुरी उत्पन्न हुई है । तब हे ब्रह्मन् ! वह पुरी क्यों और कब यहाँ आयी । हे प्रभो ! यह वृत्तान्त आप मुझे बताइए ॥ २ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! आपने यह उत्तम प्रश्न पूछा है । द्वारकाके आगमनका कारण सुनकर लोकघाती तथा पापी प्राणी भी पवित्र हो जाता है ॥ ३ ॥ पूर्वकालमें मनुपुत्र शर्याति नामका एक चक्रवर्ती राजा हो चुका है । जिसने पृथिवीपर धर्मपूर्वक दस हजार वर्ष राज्य किया था ॥ ४ ॥ राजा शर्यातिके उत्तानबर्हि, आनर्त और भूरिषेण ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए । ये तीनों ही धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ थे ॥ ५ ॥ कालान्तरमें राजा शर्यातिने उत्तानबर्हिको पूर्वदिशा, भूरिषेणको दक्षिण दिशा और आनर्तको पश्चिम दिशा दी ॥ ६ ॥ राजा शर्यातिने आनर्तसे कहा—हे पुत्र ! यह सारी पृथिवी मेरी है । मैंने ही धर्मपूर्वक इसको पाला है । मैंने अपने पराक्रमसे जीतकर इसे प्राप्त किया है । अब तुम इसका पालन करो ॥ ७ ॥ पिताकी बात सुनकर ज्ञानी मध्यम पुत्र आनर्त हँसकर यह ज्ञानभरी वाणी बोला ॥ ८ ॥ आनर्तने कहा—पिताजी ! यह समस्त पृथिवी आपकी नहीं है । आपने इसका पालन भी नहीं किया है । न आप बली हैं और न आपने सब भूमि जीती है । क्योंकि बली तो एकमात्र श्रीकृष्ण ही हैं ॥ ९ ॥ यह सारी पृथिवी भगवान् श्रीकृष्णकी है । उन्होंने इसका पालन किया है । उन्हींके प्रतापसे आपने समस्त पृथिवी जीती है । उन भगवान्‌के समान बली और कोई नहीं है ॥ १० ॥ स्वरचित विश्वका वही पालन तथा संहार करता है । वही परब्रह्म परमात्मा है और सब काम चलानेवालोंका कालस्वरूप प्रभु वही है ॥ ११ ॥ जो सब प्राणियोंकी अन्तरात्मामें प्रविष्ट होकर सबको आश्रय देता है, वह विश्वरूप एवं अधियज्ञस्वरूप ईश्वर ही परिपूर्णतम है ॥ १२ ॥ जिसके भयसे वायु चलता है, जिसके भयसे सूर्य तपता है, जिसके भयसे इन्द्र जल बरसाता है और जिसके भयसे मृत्यु सबको मारती है ॥ १३ ॥ उन परिपूर्ण परमेश्वर साक्षात् श्रीकृष्णको आप सारी शक्तिसे भजिए और अहंकार त्याग दीजिए ॥ १४ ॥ नारदजी बोले—यद्यपि राजा शर्याति बहुत बड़ा ज्ञानी था, फिर भी पुत्रके वाग्बाणसे व्यथित होकर वह अपने पुत्र आनर्तसे बोला । उस

शर्यातिरुवाच

दूरं गच्छ असद्बुद्धे गुरुवद्भाषसे कथम् । यावद्भूतं तु मे राज्यं तावत्त्वं मा महीं वस ॥१६॥
यस्त्वयाऽऽराधितः कृष्णः सोऽपि सर्वसहायकृत् । न नवीनां किं महीं ते वै भगवानेव दास्यति ।१७॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्तस्तु तदाऽऽनर्तो राजानं प्राह मानदः । यत्र ते च मही राज्यं तत्र वासो न मे भवेत् ॥१८॥
पित्रा निःसारितो राज्ञाऽप्यानर्तोऽब्धितटं गतः । वेलामेत्य तपस्तेपे वर्षाणामयुतं जले ॥१९॥
प्रेमलक्षणया भक्त्या संतुष्टो भगवान् हरिः । तस्मै स्वं दर्शनं दत्त्वा वरं ब्रूहीत्युवाच ह ॥२०॥
कृतांजलिपुटो भूत्वाऽऽनर्त उत्थाय शीघ्रतः । ननाम कृष्णपादाब्जं रोमांची प्रेमविह्वलः ॥२१॥

आनर्त उवाच

नमस्ते वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च । प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥२२॥
पित्रा निष्कासितो देव त्वामहं शरणं गतः । देहि मह्यं भूमिमन्यां यत्र वासो हि मे भवेत् ॥२३॥
ध्रुवोऽपि यत्प्रसादेन ययौ सर्वोत्तमं पदम् । तस्मै नमो भगवते प्रणतक्लेशहारिणे ॥२४॥

श्रीनारद उवाच

आनर्तमानतं दीनं भगवान् दीनवत्सलः । प्रसन्नः श्रीमुखेनाह मेघगंभीरया गिरा ॥२५॥

श्रीभगवानुवाच

अन्या न मेदिनी लोके किं कर्तव्यं मया नृप । स्ववचस्तदृतं कर्तुं त्वद्भक्त्या परितोपितः ॥२६॥
तस्माद्वै स्वस्य लोकस्य वैकुण्ठस्य परन्तप । भूखंडं योजनशतं ददामि विमलं शुभम् ॥२७॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वाऽऽनर्तनृपतिं भगवान् भक्तवत्सलः । वैकुण्ठाच्च समुत्पाट्य भूखंडं शतयोजनम् ॥२८॥
चक्रं सुदर्शनं धृत्वा समुद्रे भीमनादिनि । दधार भगवान्देवस्तस्योपरि विदेहराट् ॥२९॥

समय क्रोधसे उसके होंठ फड़क रहे थे ॥ १५ ॥ राजा शर्यातिने कहा—अरे असद्बुद्धे ! दूर भाग जा । तू गुरुके समान मुझे उपदेश दे रहा है । अतएव जहाँ तक मेरा राज्य है, उसमें मत रह ॥१६॥ तूने जिस कृष्णकी आराधना की है, वही सबका सहायक है तो वही तुझे नयी भूमि देगा ॥ १७ ॥ श्रीनारदजी बोले—राजा शर्यातिके यह कहनेपर मानदाता आनर्तने कहा—जहाँतक आपकी पृथिवी और आपका राज्य है, वहाँ मैं न रहूँगा ॥ १८ ॥ इस प्रकार पिताके द्वारा राज्यसे निकाल दिये जानेपर वह समुद्रतटपर चला गया और उसीके जलमें दस हजार वर्षतक कठोर तप किया ॥ १९ ॥ राजा आनर्तकी प्रेमलक्षणा भक्तिसे प्रसन्न होकर श्रीहरिने उसे अपना दर्शन देकर कहा—वर माँगो ॥ २० ॥ यह वाणी सुनते ही आनर्त हाथ जोड़कर तत्काल उठ खड़ा हुआ और रोमांचित तथा प्रेमविह्वल होकर भगवानके चरणकमलोंको प्रणाम किया और स्तुति करने लगा ॥ २१ ॥ आनर्त बोला—हे वासुदेव ! आपको नमस्कार है । संकर्षण, अनिरुद्ध और सात्वतपति आप भगवानको नमस्कार है ॥ २२ ॥ पिताजीने मुझे अपने राज्यसे निकाल दिया है । अतएव हे देव ! मैं आपकी शरणमें आया हूँ । आप मुझे अन्य पृथिवी प्रदान करिए, जहाँ मैं रहूँ ॥ २३ ॥ ध्रुवने भी जिनकी कृपासे सर्वोत्तम पद प्राप्त किया था, प्रणतजनोंका क्लेश हरनेवाले उन भगवानको नमस्कार है ॥ २४ ॥ नारदजी बोले—दीनवत्सल भगवान दीन आनर्तपर प्रसन्न होकर अपने श्रीमुखसे मेघ जैसी गम्भीरवाणी बोले ॥ २५ ॥ भगवानने कहा—हे राजन् ! संसारमें दूसरी धरती तो है नहीं, तब मैं क्या करूँ । तथापि मैं तेरी बात सत्य करूँगा । क्योंकि मैं तेरी भक्तिसे बहुत प्रसन्न हूँ ॥ २६ ॥ अतएव देवलोक वैकुण्ठसे मैं तुझे सौ योजन विस्तृत विमल भूमि प्रदान करूँगा ॥ २७ ॥ नारदजी बोले—राजा आनर्तसे ऐसा कहकर भगवान्ने वैकुण्ठ-धामको सौ योजन पृथिवी उठाकर दे दी और उसके साथ अपना सुदर्शन चक्र भी दिया ॥ २८ ॥ भीषणस्वरसे गर्जन करनेवाले समुद्रमें सुदर्शनको आधार बनाकर भगवान्ने वह पृथिवी रख दी ॥ २९ ॥

आनर्तो लक्षवर्षांतं तत्र राज्यं चकार ह । पुत्रपौत्रसमायुक्तो राजन् वैकुण्ठसंपदम् ॥३०॥
इदं श्रुत्वाऽथ शर्यातिः पिता वै विस्मितोऽभवत् । आनर्तो नाम देशोऽभूदानर्तस्य प्रसादतः ॥३१॥
रेवतस्तस्य पुत्रोऽभूच्छ्रीशैलस्य गिरेः सुतम् । समुत्पाट्य स्वहस्ताभ्यामानर्तेषु न्यपातयत् ॥३२॥
सोऽभूद्रेवतनाम्नाऽपि रैवतो नाम पर्वतः । कुशस्थलीं विनिर्माय राज्यं कृत्वाऽथ रेवतः ॥३३॥
समादाय स्वकां कन्यां ब्रह्मलोकं जगाम ह । बलदेवविवाहेऽपि तत्कथा कथिता मया ॥३४॥
तस्माद्द्वारावतीं पुण्यां मोक्षद्वारं विदुः सुराः ॥३५॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीमथुराखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे द्वारकागमनकारणं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः

(चक्रतीर्थका माहात्म्य)

श्रीनारद उवाच

इत्थं मया ते कथितं द्वारकागमकारणम् । सर्वपापहरं पुण्यं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ १ ॥

बहुलाश्व उवाच

सर्वतीर्थमयी भूमिर्द्वारिका नगरी शुभा । तत्र मुख्यानि तीर्थानि वद मां मुनिसत्तम ॥ २ ॥

श्रीनारद उवाच

आप्रभासात्तीर्थमयी मर्यादीकृत्य यज्ञिया । भूमिर्मोक्षप्रदा राजन् द्वारका योजनैः शतम् ॥ ३ ॥
द्वारकां नगरीं दृष्ट्वा नरो नारायणो भवेत् । द्वारकायां मृतः कोऽपि गर्दभोऽपि चतुर्भुजः ॥ ४ ॥
पश्यन् शृण्वन्कथां तस्या द्वारकेति वदन् क्वचित् । दृष्ट्वा दद्यात्तृणं मृत्युं गतो याति परां गतिम् ॥ ५ ॥
एकदा रेवतं भक्तं प्रेमानन्दसमाकुलम् । प्रेक्ष्य स्वं दर्शनं दत्त्वा हरिरश्रुमुखोऽभवत् ॥ ६ ॥
तन्नेत्रबिंदुसंभूता गोमती सा महानदी । यस्या दर्शनमात्रेण ब्रह्महत्या प्रमुच्यते ॥ ७ ॥

पुत्र-पौत्रसे सम्पन्न राजा आनर्तने वैकुंठकी सम्पदास्वरूपा उस भूमिपर एक लाख वर्षतक राज्य किया ॥ ३० ॥ आनर्तके पिता राजा शर्याति यह समाचार सुनकर बहुत विस्मित हुए। राजा आनर्तके कृपा-प्रसादसे उस देशका भी आनर्तदेश नाम पड़ गया ॥ ३१ ॥ आनर्तके रेवत नामका पुत्र हुआ, जिसने श्रीशैल पर्वतके पुत्रको उखाड़कर आनर्तदेशमें स्थापित किया ॥ ३२ ॥ सो राजा रेवतके द्वारा लाये जानेके कारण उस पर्वतका भी रेवत नाम पड़ गया। रैवतने कुशस्थली नगरी बसाकर राज्य किया ॥ ३३ ॥ इसके बाद अपनी कन्या रेवतीको साथ लेकर वह ब्रह्मलोक गया। यह कथा मैंने बलदेवजीके विवाहप्रसंगमें सुनायी है ॥ ३४ ॥ इसीसे देवता लोग द्वारकाको मोक्षका द्वार समझते हैं ॥ ३५ ॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां द्वारकाखण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

नारदजी बोले—हे राजन् ! इस प्रकार मैंने आपको द्वारकाके आगमनका कारण बताया, जो सर्वपापहारी और परम पवित्र है। अब और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ १ ॥ राजा बहुलाश्व बोले—हे मुनिसत्तम ! द्वारका यदि सर्वतीर्थमयी भूमि है तो वहाँके मुख्य-मुख्य तीर्थोंको बताइए ॥ २ ॥ नारदजी बोले—हे राजन् ! प्रभासतीर्थसे लेकर द्वारका तककी सौ योजन विस्तृत मोक्षदात्री तथा यज्ञमयी भूमि है ॥३॥ द्वारकापुरीका दर्शन करके नर नारायण बन जाता है। द्वारकापुरीमें यदि कोई गधा भी मर जाय तो वह चतुर्भुजी भगवान हो जाता है ॥ ४ ॥ द्वारकाको देखने, उसकी कथा सुनने तथा द्वारका-द्वारका कहने और वहां एक तृण भी देकर जो प्राणी मृत्युको प्राप्त होता है, उसे परम गति मिलती है ॥ ५ ॥ एक बार प्रेमानन्दमें सराबोर रेवत भक्तको भगवानने अपना दर्शन दिया और उनकी आँखोंमें आँसू आ गये ॥ ६ ॥

गोमतीतीरजं पुण्यं रजो यो धारयेन्नरः । शतजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ८॥
स्नानकाले गोमतीति वदत्यपि नरः क्वचित् । गोमत्यां स्नानजं पुण्यं लभते वै न संशयः ॥ ९॥
मकरस्थे रवौ माघे प्रयागे स्नानमाचरेत् । शताश्वमेधजं पुण्यं संप्राप्नोति विदेहराट् ॥१०॥
तत्सहस्रगुणं पुण्यं गोमत्यां मकरे रवौ । गोमत्याश्चैव माहात्म्यं वक्तुं नालं चतुर्मुखः ॥११॥
गोमत्यां चक्रतीर्थेषु पाषाणनिचयाश्च ये । ते सर्वे चक्रतां यांति पूजनीयाः प्रयत्नतः ॥१२॥
चक्रचिह्ने चक्रतीर्थे द्वादश्यां स्नानमाचरेत् । चक्रपाणिपदं याति पापानां भाजनोऽपि हि ॥१३॥
कोटिजन्मकृतैः पापैः पतितो योऽपि पातकी । चक्रतीर्थस्य सोपानमेत्य मुक्तिं समारुहेत् ॥१४॥

बहुलाश्व उवाच

गोमत्यां हि महानद्यां चक्रतीर्थं शुभार्थदम् । कथं जातं बहुमतं तन्मे ब्रूहि महामते ॥१५॥

श्रीनारद उवाच

अत्रैवोदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् । यस्य दर्शनमात्रेण पापहानिः परा भवेत् ॥१६॥
अलकेशो राजराजो निधीशो धर्मभृत्प्रभुः । वैष्णवं यज्ञमारेभे कैलासोत्तरभूमिषु ॥१७॥
तस्य यज्ञे स्वयं विष्णुरागतो वै स्वधामतः । ब्रह्मा शिवो जंभभेदी वरुणो यादसां पतिः ॥१८॥
वायुर्यमो रविः सोमः क्षितिः सर्वजनेश्वरी । गंधर्वाप्सरसः सिद्धाः सर्वे तत्र समाययुः ॥१९॥
देवर्षयः समाजग्मुस्तथा ब्रह्मर्षयो नृप । धनाध्यक्षोऽभवत्तस्य पुत्रस्तु नलकूबरः ॥२०॥
रक्षायां वीरभद्रोऽभूत्सेवायां च गजाननः । तथा मरुद्गणाः सर्वे परिवेषणकारिणः ॥२१॥
बाहुलेयः सभापूजामकरोद्धर्मतत्परः । घंटानादः पार्श्वमौलिः कुबेरस्य तु मंत्रिणौ ॥२२॥
सर्वशास्त्रविदां श्रेष्ठौ दानाध्यक्षौ बभूवतुः । एवं हि विधिवद्यज्ञो बभूव परमोत्सवः ॥२३॥

अध्वरावभृथस्नातो राजराजो महामनाः । परं भागं च देवेभ्यो विप्रेभ्यो दक्षिणामदात् ॥२४॥
एवं पूर्णेऽध्वरे मुख्ये तुष्टे देवर्षिसत्तमे । आजगामाथ दुर्वासा दंडी छत्री जटाधरः ॥२५॥
क्रोधी कृशः पादुकांघ्रिर्दीर्घश्मश्रुः कृशोदरः । दर्भासनसमित्पात्रमृगचर्मधरः परः ॥२६॥
तमागतं समागम्य पूजयित्वा विधानतः । भयभीतः परिक्रम्य कुवेरः प्रणनाम ह ॥२७॥
अद्य मे सफलं जन्म सफलं मंदिरं च मे । अद्य मे सफलो यज्ञो ब्रह्मंस्त्वय्यागते सति ॥२८॥
इत्थं संतोषितस्तेन दुर्वासा भगवान्मुनिः । देवं मनुष्यधर्माणं प्राह प्रहसिताननः ॥२९॥
त्वं राजराजो धर्मात्मा दानी विप्रपरायणः । कृतस्ते वैष्णवो यज्ञो विष्णुसंतोषकारणः ॥३०॥
न याचितो मया त्वं वै क्वापि वैश्रवण प्रभो । अद्यैव याचनां कुर्वे ज्ञात्वा त्वां दानिसत्तमम् ॥३१॥
मद्याच्ञां सफलीकुर्यास्तुभ्यं दास्यामि सद्वरम् । न चेत्त्वां भस्मसात्कुर्वे शापेनातिभयेन वै ॥३२॥
वर्तंते त्वद्गृहे सर्वे त्रैलोक्यनिधयो नव । तान्मे प्रयच्छ भद्रं ते तदर्थं गतवानहम् ॥३३॥

श्रीनारद उवाच

एतच्छ्रुत्वा राजराजो दानशील उदारधीः । ओमिति प्रतिगृह्णीष्व प्राह तं गुह्यकेश्वरः ॥३४॥
एवं निधीन्प्रदास्यंतं दानाध्यक्षौ निधीश्वरम् । घंटानादः पार्श्वमौलिरूचतुर्लोभमोहितौ ॥३५॥

द्वावूचतुः

एकोऽयं ब्राह्मणो लोभी निधिभिः किं करिष्यति। लक्षं दिव्यं देहि चास्मै वृत्तिं रक्ष तथोत्तराम् ॥३६॥

श्रीनारद उवाच

परुषं तद्वचः श्रुत्वा दुर्वासाः क्रोधविग्रहः । भ्रूभंगकुटिलीभूते रक्तनेत्रे चकार ह ॥३७॥
स्थालीव सर्वब्रह्मांडं चचाल निमिषद्वयम् । प्रणतं धनदं वीक्ष्य ताभ्यां शापं ददौ मुनिः ॥३८॥

विधिवत् सम्पन्न हुआ ॥ २२ ॥ २३ ॥ तब महामना कुवेरने यज्ञान्त स्नान करके देवताओंको परम भाग तथा ब्राह्मणोंको दक्षिणा दी ॥ २४ ॥ इस प्रकार जब यज्ञकार्य पूर्ण हो गया और सब देवता तथा ऋषि प्रसन्न हो गये तो दण्ड, छत्र तथा जटाधारी दुर्वासा मुनि आ पहुँचे ॥ २५ ॥ वे बड़े कृश और क्रोधी थे। उनके पाँवोंमें खड़ाऊँ थी और लम्बी दाढ़ी लटक रही थी। उनका उदर कृश था! वे कुशासन, समित्पात्र और मृगचर्म लिये हुए थे ॥ २६ ॥ उन्हें देखकर भयभीत कुवेरने परिक्रमा करके उनकी विधिवत् पूजा की और प्रणाम करके कहा—॥ २७ ॥ हे ब्रह्मन्! आपके आगमनसे मेरा जीवन, भवन और यज्ञ सब सफल हो गया ॥२८॥ इस प्रकार कुवेर द्वारा सन्तोषित मुनि दुर्वासा हँसकर मनुष्यधर्मा कुवेरसे बोले—॥२९॥ हे राजराज! तुम बड़े धर्मात्मा, दानी और ब्राह्मणभक्त हो। तभी तुमने भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेवाला यह विष्णुयज्ञ किया है ॥ ३० ॥ हे विश्रवामुनिके पुत्र कुवेर! मैंने तुमसे कभी कोई याचना नहीं की। किन्तु तुम्हें दानियों-में अग्रणी समझकर आज मैं तुमसे एक याचना करता हूँ ॥३१॥ यदि मेरी माँग पूरी करोगे तो मैं तुम्हें उत्तम वरदान दूँगा। अन्यथा अति भयंकर शाप देकर भस्म कर डालूँगा ॥ ३२ ॥ तुम्हारे घरमें तीनों लोकोंकी नवों निधियाँ विद्यमान हैं। उन्हें तुम मुझे दे दो। तुम्हारा कल्याण हो। उन्हींके लिए मैं *आया हूँ* ॥ ३३ ॥ यह सुनकर दानी और उदार कुवेरने कहा—तथास्तु। मैं देनेके लिए प्रस्तुत हूँ, लीजिए ॥ ३४ ॥ इस प्रकार नवों निधि देनेके लिए उद्यत कुवेरको देखकर दानाध्यक्ष घंटानाद तथा पार्श्वमौलि लोभसे मोहित होकर बोले ॥ ३५ ॥ उन दोनोंने कहा—यह लोभी ब्राह्मण तो अकेला है। नौ निधियोंको लेकर यह क्या करेगा। अतएव एक दिव्य लक्ष देकर शेष धनसे अपनी जीविकाकी रक्षा करिए ॥ ३६ ॥ नारदजी बोले—दानाध्यक्षोंके कठोर वचन सुनकर दुर्वासा क्रुद्ध हो गये। उनकी भृकुटी चढ़ गयी और नेत्र लाल हो गये ॥ ३७ ॥ जिससे स्थाली (बटलोई) की तरह समस्त ब्रह्माण्ड दो क्षणोंतक हिलता रहा, किन्तु कुवेर अब भी विनम्रभावमें खड़े थे। कुवेरको [illegible] देखकर दोनों दानाध्यक्षोंको शाप देते हुए

मुनिरुवाच

घंटानाद महादुष्ट पापबुद्धेऽतिलुब्धक । ग्राहवत्त्वं धनग्राही ग्राहो भव महाखल ॥३९॥
पार्श्वमौले पापबुद्धे धनलोभमदान्वितः । गजवत् प्रेरणां कुर्वंस्त्वं गजो भव दुर्मते ॥४०॥

श्रीनारद उवाच

ताभ्यां शापं मुनिर्दत्त्वा निधिं नीत्वा कुबेरतः । वरं ददौ पुनस्तस्मै दुर्वासा दुर्लभं परम् ॥४१॥
अस्माद्दानाच्च द्विगुणा भवंतु निधयो नव । इत्युक्त्वा सनिधिः प्रागादहो तेजीयसां बलम् ॥४२॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीद्वारकाखंडे नारदबहुलाश्वसंवादे गोमत्युपाख्याने चक्रतीर्थमाहात्म्यं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथ एकादशोऽध्यायः

(चक्रतीर्थकी उत्पत्ति तथा गज-ग्राहका मोक्ष)

श्रीनारद उवाच

कुबेरमंत्रिणौ दीनौ विप्रशापविमोहितौ । तत्र साक्षात्स्वयं विष्णुः प्राह तौ शरणं गतौ ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच

मदर्चासंयुते यज्ञे भवंतौ दुःखसंयुतौ । ब्राह्मणानां वचोऽहं वै दूरीकर्तुं न च क्षमः ॥ २ ॥
भवेनां ग्राहमातंगौ युद्धं हि युवयोर्यदा । तदा वै मत्प्रसादेन प्रकृतिं स्वां गमिष्यथः ॥ ३ ॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्तौ हरिणा तौ द्वौ राजराजस्य मंत्रिणौ । बभूवतुर्ग्राहगजौ जातिस्मरणसंयुतौ ॥ ४ ॥
घंटानादोऽभवद्ग्राहो गोमत्यां च शतं समाः । विकरालो महाभीमः शश्वद्रौद्रवपुर्द्धरः ॥ ५ ॥
पार्श्वमौलिर्गजेंद्रोऽभूद्रैवतस्य गिरेर्वने । चतुर्दंतः कज्जलाभः पृष्ठप्रोच्चो धनुःशतम् ॥ ६ ॥
वंजुलैः कुरवैः कुंदैर्वंदरैर्वेत्रवेणुभिः । रंभाभूर्जवटैर्युक्ते कोविदारासनार्जुनैः ॥ ७ ॥

दुर्वासाने कहा—अरे महादुष्ट, पापबुद्धि तथा अति लोभी घण्टानाद ! ग्राह (मगर) की तरह तू धनग्राही है । इसलिए ओ महाखल ! तू ग्राह हो जा ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ और हे पार्श्वमौले ! तू भी पापबुद्धि और धनलोभी है । हाथीकी तरह मदमत्त होकर तू अपने स्वामीको कुत्सित प्रेरणा देता है । अतएव अरे दुर्मति ! तू हाथी हो जा ॥ ४० ॥ श्रीनारदजी बोले—हे मिथिलेश ! दुर्वासा मुनिने उन दोनोंको शाप दे तथा कुबेरसे निधि लेकर उन्हें परम दुर्लभ वरदान दिया ॥ ४१ ॥ और कहा—हे राजराज ! इस दानसे तुम्हारी नवों निधियां दुगुनी हो जायं । ऐसा कह और निधि लेकर मुनि चले गये । अहो ! तेजस्वियोंका बल कैसा विलक्षण होता है ॥ ४२ ॥
इति श्रीमद्गर्गसंहितायां द्वारकाखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! कुबेरके दोनों मंत्री ब्रह्मशापसे अति दीन हो गये और परम मोहको प्राप्त होकर विष्णु भगवान्की शरण गये ॥१॥ श्रीविष्णु उन दोनों शरणागतोंसे बोले—मेरी पूजासे युक्त यज्ञमें तुम दोनों व्यर्थ दुखी हो गये । ब्राह्मणोंका शाप दूर करनेकी शक्ति मुझमें भी नहीं है ॥ २ ॥ तथापि जब तुम गज और ग्राह बनोगे तो तुम दोनोंमें परस्पर भीषण युद्ध होगा । उस समय मेरी कृपासे तुम फिर ज्योंके त्यों हो जाओगे ॥३॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! भगवान्के ऐसा कहनेपर कुबेरके वे दोनों मंत्री गज और ग्राह हो गये । किन्तु उस जीवनमें भी उन्हें पूर्वजन्मका स्मरण बना रहा ॥ ४ ॥ घण्टानाद गोमती नदीमें ग्राह बनकर सौ वर्ष रहा, किन्तु पार्श्वमौलि रैवत पर्वतके वनमें भयानक मोटा विकराल गजराज हुआ । काजल जैसा काला उसका शरीर था । उसके चार दांत थे और उसकी पीठकी ऊंचाई सौ धनुष थी ॥ ५ ॥ ६ ॥ बेंत,

मंदारपाटलाशोकचूतचंपकचन्दनैः । पनसोदुम्बराश्वत्थखर्जूरैर्बीजपूरकैः ॥ ८ ॥
प्रियालाम्रातकाद्यैश्च क्रमुकैः परिमंडिते । रैवतस्य वने दीर्घे विचचार महागजः ॥ ९ ॥
एकदा माधवे मासि गजेंद्रो गिरिगह्वरात् । स्नातुं तां गोमतीं गंगामाययौ सगणो नदन् ॥१०॥
चिरं समवगाह्याप्सु शुंडादंडैरितस्ततः । करेण कलभान् सर्वान् स्नापयामास नागराट् ॥११॥
महान् ग्राहोऽपि तत्रस्थो बलीयान् दैवनोदितः । अग्रहीच्चरणे नागं क्रोधपूरितविग्रहः ॥१२॥
तेनैव तद्गृहे नीतो गजेन्द्रो बलदर्पितः । समाकृष्य बहिः प्राप्तं पुनस्तेन विकर्षितः ॥१३॥
करेणवश्च कलभास्तं तारयितुमक्षमाः । एवं तयोर्युध्यतोश्च कर्षतोर्हि बहिर्मिथः ॥१४॥
पंचाशत्पंचवर्षाणि व्यतीयुः पश्यतां सताम् । एवं कश्मलमापन्नो गजो जातिस्मरो महान् ॥१५॥
प्रेमलक्षणया भक्त्या हरिपादकृताश्रयः । सस्मार श्रीहरिं देवं मृत्युपाशवशं गतः ॥१६॥

गजेन्द्र उवाच

श्रीकृष्ण कृष्णसख कृष्णवपुर्दधान कृष्णाय ते प्रणतिरस्तु सुरेश विष्णो ।
पूर्ण प्रभो परमपावन पुण्यकीर्ते मां पाहि पाहि परमेश्वर पापपाशात् ॥१७॥

श्रीनारद उवाच

एवं ग्राहगृहीतांगं स्मरंतं च हरिं हरिः । ज्ञात्वाऽऽरुह्य खगं वेगादधावद्दीनवत्सलः ॥१८॥
स्वयं खगात्समुत्तीर्य धावंश्चक्रं समाक्षिपत् । चक्रे प्राप्ते पूर्वमेव ग्राहस्यापि शिरोऽद्भुतम् ॥१९॥
दैन्यं प्राप्ते धनमिव देहाच्छिन्नं बभूव ह । पश्चात्प्रपतितं चक्रं गोमत्यां च ह्रदे नदत् ॥
पाषाणनिचयान्सर्वांश्चक्राकारांश्चकार ह ॥२०॥
तन्नेमिसंघर्षभवं चक्रतीर्थं शुभावहम् । तच्चक्रदर्शनाद्राजन् ब्रह्महत्या प्रमुच्यते ॥२१॥

कुरवक, कुन्द, बेर, बाँस, केला, भोजपत्र, बरगद, बिजैसाल, अर्जुन, मन्दार, बकायन, अशोक, आम, चम्पा, चन्दन, कटहल, गूलर, पीपल, खजूर, बिजौरे, चिरौंजी, सहतूत और सुपारीसे भरे रैवत पर्वतके विशाल वनमें वह गजराज विचरता रहता था ॥ ७–९ ॥ वैशाख महीनेमें एक दिन वह गजराज अपनी गिरिकन्दरासे बाहर निकला और गोमती-गंगामें स्नान करनेके लिए अपने गणोंके साथ भीषण गर्जन करता हुआ आया ॥ १० ॥ पहले बहुत देर तक उसने स्वयं स्नान किया। उसके बाद सूँड़से पानी उछालता हुआ हथिनियों तथा बच्चोंको नहलाता रहा ॥ ११ ॥ इतनेमें वहाँ हीके निवासी एक दैवप्रेरित तथा क्रुद्ध बलवान् ग्राहने गजराजका पैर पकड़ लिया ॥ १२ ॥ वह बलदर्पित गजेन्द्रको पकड़कर अपने घर ले गया। किन्तु तनिक देर बाद गजेन्द्र ग्राहको बाहर खींच लाया। कुछ क्षणके बाद ग्राह फिर गजराजको भीतर खींच ले गया ॥ १३ ॥ इस तरह उन दोनोंकी आपसी खींचा-तानीके युद्धमें हथिनियाँ तथा उनके बच्चे गजराजको नहीं बचा सके ॥ १४ ॥ इस प्रकार पूरे पचान हजार वर्षतक गज और ग्राहमें युद्ध चलता रहा और देखनेवाले लोग उसे देखते रहे। किन्तु जब गजराज त्रस्त हो गया और उसे पूर्व जन्मका स्मरण आ गया ॥ १५ ॥ तब मृत्युपाशमें पड़ा हुआ गजेन्द्र प्रेमलक्षणा भक्तिके द्वारा भगवच्चरणाश्रित होकर श्रीहरिका ध्यान करने लगा ॥ १६ ॥ गजराज बोला—हे श्रीकृष्ण ! हे कृष्ण ! हे सखे ! हे कृष्णवपुधारिन् ! हे सुरेश्वर ! हे विष्णो ! हे पूर्णप्रभो ! हे परमपावन ! हे पुण्यकीर्ते ! हे परमेश्वर ! आपको नमस्कार है। इस पापपाशसे आप मेरी रक्षा करिए—रक्षा करिए ॥ १७ ॥ श्रीनारदजीने कहा—इस प्रकार ग्राह-ग्रस्त गजेन्द्रको अपना स्मरण करते देख दीनवत्सल भगवान् गरुड़पर चढ़कर बड़े वेगसे दौड़े ॥१८॥ बादमें वे गरुड़को भी छोड़कर भागे और अपना चक्र चला दिया। चक्रका स्पर्श होनेके पहले ही ग्राहका अद्भुत सिर देहसे अलग हो गया, जैसे दीनता आनेके पहले ही धन चला जाता है। तदनन्तर चीत्कार करता हुआ वह चक्र गोमतीके दहमें जा गिरा। वहाँ गिरकर उसने सभी पाषाणोंको चक्राकार बना दिया ॥ १९ ॥ २० ॥ उस चक्रकी धारसे घिसनेके कारण वह शुभदायक चक्रतीर्थ बन गया। उस

ग्राहश्छिन्नशिरा भूत्वा पूर्वरूपं दधार ह । श्रीकृष्णानुग्रहाद्धस्ती दिव्यरूपो बभूव सः ॥२२॥
परिक्रम्य हरिं नत्वा स्तुत्वा देवं कृतांजलिः । कुबेरमंत्रिणौ तौ द्वौ जग्मतुः स्वपदं पुनः ॥२३॥
देवेषु पुष्पं वर्षत्सु जयध्वनिनदत्सु च । जगाम भगवान्साक्षात्स्वं धाम प्रकृतेः परम् ॥२४॥
चक्रतीर्थकथामेनां यः शृणोति नरोत्तमः । चक्रतीर्थस्नानफलं संप्राप्नोति न संशयः ॥२५॥
गजग्राहकथां पुण्यां यः शृणोति समाहितः । दुःस्वप्नं नश्यते तस्य सुस्वप्नं भवति ध्रुवम् ॥२६॥
श्रीकृष्णस्य प्रसादेन याति विष्णोः परं पदम् ॥ २७ ॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीद्वारकाखंडे नारदबहुलाश्वसंवादे चक्रतीर्थोत्पत्तौ गजग्राहमोक्षो नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

(शङ्खोद्धार तीर्थका माहात्म्य)

श्रीनारद उवाच

शङ्खोद्धारे तीर्थमुख्ये स्वर्णदानं ददाति यः । स गच्छेद्वैष्णवं लोकं सर्वोपद्रववर्जितम् ॥ १ ॥
श्रीकृष्णभक्तः शांतात्मा त्रितो नाम महामुनिः । तीर्थयात्राप्रसंगेन प्राप्त आनर्तभूमिषु ॥ २ ॥
दृष्ट्वा शुभं सरः स्नात्वा हरेः पूजां चकार ह । तत्पूजायां महाशंखं सुंदरैर्लक्षणैर्वृतम् ॥ ३ ॥
चोरयामास कक्षीवांस्तस्य शिष्योऽतिलोभतः । पूजाशंखं गतं वीक्ष्य क्रुद्धः प्राह त्रितो मुनिः ॥ ४ ॥
येन नीतस्तु मे शंखः स शंखो भवतु ध्रुवम् । तदैव शंखरूपोऽभूत्कक्षीवाञ्छापपीडितः ॥ ५ ॥
तत्पादयोर्निपतितः पाहि मामित्युवाच ह । शीघ्रं शांतस्त्रितः प्राह दुर्मते किं कृतं त्वया ॥
स्तेयदोषाद्भुंक्ष्व पापं मद्वचो नो मृषा भवेत् ॥ ६ ॥
भज श्रीकृष्णपादाब्जं स ते मोक्षं करिष्यति । इत्युक्त्वाऽथ गते राजंस्त्रिते देवे महामुनौ ॥ ७ ॥

तीर्थको देखते ही ब्रह्महत्या नष्ट हो जाती है ॥ २१ ॥ जब ग्राहका सिर कट गया तो उसने अपना पहला स्वरूप पा लिया और भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे गजराजको भी दिव्य स्वरूप प्राप्त हो गया ॥२२॥ तदनन्तर उन दोनों कुबेरके मंत्रियोंने भगवान्‌को प्रणाम किया और हाथ जोड़कर स्तुति करते हुए अपने धामको चले गये ॥ २३ ॥ उस समय देवता भगवान्‌पर पुष्पवर्षा करते हुए जय-जयकार करने लगे। भगवान् भी प्रकृतिसे परे अपने वैकुण्ठधामको चले गये ॥ २४ ॥ जो श्रेष्ठ पुरुष इस चक्रतीर्थकी कथाको सुनता है, वह चक्रतीर्थमें स्नान करनेका फल प्राप्त कर लेता है। इसमें सन्देह नहीं है ॥ २५ ॥ गज-ग्राहकी इस पुनीत कथाको जो प्राणी सावधान मनसे सुनता है, उसके दुःस्वप्न नष्ट होकर सुस्वप्नके रूपमें परिणत होकर विष्णुलोक जाते हैं ॥ २६ ॥ २७ ॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां द्वारकाखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे मैथिल ! तीर्थोंमें मुख्य शंखोद्धार तीर्थमें जो मनुष्य सुवर्ण दान करता है, वह सब उपद्रवोंसे रहित विष्णुलोक प्राप्त कर लेता है ॥ १ ॥ श्रीकृष्णके अनन्य भक्त और शान्तात्मा त्रित नामके एक महामुनि तीर्थयात्राके प्रसंगमें आनर्तदेशमें जा पहुँचे ॥ २ ॥ वहांके एक दिव्य सरोवरमें स्नान करके उन्होंने भगवान्‌का पूजन किया। उनकी पूजासामग्रीमें सुन्दर लक्षणों युक्त एक शंख था ॥ ३ ॥ कालान्तरमें कक्षीवान् नामक उनके शिष्यने लोभवश वह शंख चुरा लिया। इस प्रकार पूजाका शंख चले जानेपर क्रुद्ध होकर त्रितमुनि बोले—॥ ४ ॥ जिसने मेरा शंख लिया हो, वह शंख हो जाय। उस शापसे शिष्य कक्षीवान् तुरन्त शंख बन गया ॥ ५ ॥ वह तत्काल गुरुके चरणोंमें लोटकर बोला—हे प्रभो ! मेरी रक्षा कीजिए। इस वचनसे शान्त होकर त्रित महामुनि बोले—अरे दुर्बुद्धि ! तूने यह क्या किया ? जा, चोरीके पापका फल भोग। मेरा वचन मिथ्या नहीं हो सकता ॥ ६ ॥ तू श्रीकृष्णके चरणारविन्दका भजन कर।

सरोवरे निपतितः कक्षीवाञ्छंखरूपधृक् । प्रवदन् कृष्ण कृष्णेति शतवर्षं स्थितोऽभवत् ॥ ८ ॥
परिपूर्णतमः साक्षाद्भगवान् भक्तवत्सलः । आगत्य सरसस्तीरं माभैष्टेत्यभयं ददौ ॥ ९ ॥
तां मेघनादगंभीरां गिरं श्रुत्वा जलेचरः । चुक्रोश पाहि पाहीति देवदेव जगत्पते ॥१०॥
भुजगेंद्रभोगरुचा भुजेन भगवान् प्रभुः । शंखं भक्तं गजमिव प्रोज्जहार दयापरः ॥११॥
तदैव दिव्यरूपोऽभूच्छंखरूपं विहाय सः । कृतांजलिर्हरिं नत्वा स्तुतिं चक्रे तदा च सः ॥१२॥

कक्षीवानुवाच

वासुदेव नमस्तेऽस्तु गोविंद पुरुषोत्तम । दीनवत्सल दीनेश द्वारकेश परेश्वर ॥१३॥
ध्रुवे ध्रुवपदं दात्रे प्रह्लादस्यार्तिहारिणे । गजस्योद्धारिणे तुभ्यं बलेर्बलिविदे नमः ॥१४॥
द्रौपदीचीरसन्तानकारिणे हरये नमः । गराग्निवनवासेभ्यः पांडवानां सहायिने ॥१५॥
यादवत्राणकर्त्रे च शक्रादाभीररक्षिणे । गुरुमातृद्विजानां च पुत्रदात्रे नमो नमः ॥१६॥
जरासंधनिरोधार्तनृपाणां मोक्षकारिणे । नृगस्योद्धारिणे साक्षात्सुदाम्नो दैन्यहारिणे ॥१७॥
वासुदेवाय कृष्णाय नमः सङ्कर्षणाय च । प्रद्युम्नायानिरुद्धाय चतुर्व्यूहाय ते नमः ॥१८॥
त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥१९॥

श्रीनारद उवाच

एवं स्तुत्वा हरिं राजन् कक्षीवान् प्रेमपूरितः । विमानवरमास्थाय यादवानां च पश्यताम् ॥२०॥
विभ्राजयन् दश दिशः शतसूर्यसमप्रभः । जगाम वैष्णवं लोकं सर्वोपद्रववर्जितम् ॥२१॥
शंखोद्धारः कृतो यस्मिन् हरिणा मैथिलेश्वर । तस्मात्तीर्थं महापुण्यं शङ्खोद्धारप्रथां गतम् ॥२२॥

वे ही तेरा उद्धार करेंगे। ऐसा कहकर जब त्रितमुनि चले गये तो शंखरूपधारी कक्षीवान् एक सरोवरमें जा पड़ा। वहाँ कृष्ण-कृष्ण कहते उसके सौ वर्ष बीत गये ॥ ७ ॥ ८ ॥ तब भक्तवत्सल भगवान्ने उस सरोवरके तटपर कक्षीवान्को अभयदान देते हुए कहा कि तुम किसी बातका भय मत करो ॥९॥ मेघगर्जन जैसी गंभीर वाणी सुनकर शंख बड़ी जोरसे चिल्लाया—हे देवदेव ! हे जगत्पते ! मेरी रक्षा करिए—मुझे बचाइए ॥ १० ॥ तब भुजगराजके फन सदृश सुडौल अपनी भुजासे दयालु भगवान्ने गजराजकी ही तरह भक्त शंखका उद्धार किया ॥ ११ ॥ उसी समय शंखरूप त्याग दिया और मानवतन प्राप्त करके वह भगवान्को प्रणाम करता हुआ स्तुति करने लगा ॥ १२ ॥ कक्षीवान् बोला—हे वासुदेव ! हे गोविन्द ! हे पुरुषोत्तम ! हे दीनवत्सल ! हे दीनेश ! हे द्वारकेश ! हे परेश्वर ! आपको प्रणाम है ॥ १३ ॥ ध्रुवको ध्रुवपद प्रदान करनेवाले, प्रह्लादकी पीड़ा हरनेवाले, गजका उद्धार करनेवाले और राजा बलिकी बलि (पूजा) का महत्त्व जाननेवाले आप परम प्रभुको नमस्कार है ॥ १४ ॥ द्रौपदीकी चीर बढ़ानेवाले, विष, अग्नि तथा वनवासके समय पांडवोंकी रक्षा करनेवाले भगवान् कृष्णको नमस्कार है ॥ १५ ॥ यादवोंकी रक्षा करनेवाले, इन्द्रसे गोपोंको बचानेवाले, गुरुमाता तथा ब्राह्मणको पुत्र देनेवाले आपको नमस्कार है ॥१६॥ जरासंधके वन्दी बने हुए आर्त राजाओंको छुड़ानेवाले, राजा नृगका उद्धार करनेवाले और सुदामाका दारिद्रत्व दूर करनेवाले आप प्रभुको नमस्कार है ॥ १७ ॥ वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्धस्वरूप चतुर्व्यूहरूपधारी आपको नमस्कार है ॥ १८ ॥ हे देवदेव ! तुम्हीं मेरी माता हो, तुम्हीं पिता हो, तुम्हीं बन्धु हो, तुम्हीं सखा हो, तुम्हीं विद्या हो, तुम्हीं धन हो और तुम्हीं मेरे सर्वस्व हो ॥ १९ ॥ नारदजी बोले—हे राजन् ! इस प्रकार भगवान्की स्तुति करके प्रेमसे परिपूर्ण होकर कक्षीवान् उत्तम विमानमें बैठकर यादवोंके समक्ष वैकुण्ठधामको चला गया ॥ २० ॥ उस समय सौ सूर्योंके समान तेजस्वी कक्षीवान् सर्वोपद्रवविहीन विष्णुलोक गया ॥ २१ ॥ हे मिथिलेश्वर ! भगवान्ने इस तीर्थमें शंखका उद्धार किया था। अतएव इस पवित्र तीर्थका शंखोद्धार तीर्थ नाम

शङ्खोद्धारकथामेतां यः शृणोति नरोत्तमः । शङ्खोद्धारस्नानफलं लभते वै न संशयः ॥२३॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीद्वारकाखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे शंखोद्धारमाहात्म्यं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

(प्रभाससरस्वती, बोधपिप्पल तथा गोमती-सिन्धुसङ्गमका माहात्म्य)

श्रीनारद उवाच

प्रभासस्यापि माहात्म्यं शृणु राजन्महामते । सर्वपापहरं पुण्यं तेजसां वर्द्धनं परम् ॥ १ ॥
गोदावर्यां गुरौ सिंहे हरक्षेत्रे च कुम्भगे । रविग्रहे कुरुक्षेत्रे काश्यां चन्द्रग्रहे तथा ॥ २ ॥
यत्पुण्यं लभते राजन् स्नानतो दानतो नरः । तस्माच्छतगुणं पुण्यं प्रभासे च दिने दिने ॥ ३ ॥
यत्र स्नात्वा दक्षशापाद्गृहीतो यक्ष्मणोडुराट् । विमुक्तः किल्बिपात्सद्यो भेजे भूयः कलोदयम्॥ ४ ॥
महापुण्यतमा राजन् यत्र प्रत्यक्सरस्वती । तस्यां स्नात्वा नरः पापी साक्षाद्ब्रह्ममयो भवेत्॥५॥
तत्तीरे वर्तते राजन्नाम्ना वै बोधपिप्पलम् । कृष्णेन यत्रोद्धवाय दत्तं भागवतं शुभम् ॥ ६ ॥
तं नत्वाऽभ्यर्च्य विधिवत्स्पृष्ट्वा श्रीबोधपिप्पलम् । शृणोति यो भागवतं पुराणं ब्रह्मसंमितम् ॥ ७ ॥
श्लोकार्धं श्लोकपादं वा मौनी नियतमानसः । तस्य पाणौ भवेद्राजन् वैष्णवं परमं पदम् ॥ ८ ॥
प्रौष्ठपद्यां पूर्णिमायां हेमसिंहसमन्वितम् । ददाति यो भागवतं स याति परमां गतिम् ॥ ९ ॥
पुराणं न श्रुतं यैस्तु श्रीमद्भागवतं क्वचित् । तेषां वृथा जन्म गतं नराणां भूमिवासिनाम् ॥१०॥

यैर्न श्रुतं भागवतं पुराणं नाराधितो यैः पुरुषः पुराणः ।
हुतं मुखे नैव धरामराणां तेषां वृथा जन्म गतं नराणाम् ॥११॥

द्वारावत्यां तीर्थराजं गोमतीसिंधुसङ्गमम् । यत्र स्नात्वा नरो याति वैकुण्ठं विमलं पदम्॥१२॥

पड़ गया ॥२२॥ जो श्रेष्ठ पुरुष यह शंखोद्धारकी कथा सुनता है, वह निःसन्देह शंखोद्धार तीर्थमें स्नानका फल प्राप्त कर लेता है ॥ २३ ॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां द्वारकाखण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

नारदजी बोले—हे राजन् ! हे महामते ! अब आप उस प्रभासतीर्थका माहात्म्य सुनिए, जो सब पाप हरनेवाला, पवित्र तथा तेजोवर्द्धक है ॥ १ ॥ गोदावरीमें बृहस्पतिके सिंहराशिस्थ होनेपर, हरिद्वारमें बृहस्पतिके कुम्भराशिस्थ होनेपर, सूर्यग्रहणके समय कुरुक्षेत्रमें और चन्द्रग्रहणके समय काशीमें स्नान-दान करनेसे जो पुण्य प्राप्त होता है, उससे सौगुना अधिक पुण्य प्रभासक्षेत्रमें प्रतिदिन प्राप्त होता है ॥ २ ॥ ३ ॥ इसी प्रभासक्षेत्रमें स्नान करके चन्द्रमा क्षयरोगसे छुटकारा पा गये थे और उनकी क्षीण कला पुनः प्राप्त हो गयी थी ॥ ४ ॥ इसी प्रभासक्षेत्रमें अतिशय पुनीत पश्चिमवाहिनी सरस्वती नदी बहती है, उसमें स्नान करनेसे पापी भी ब्रह्ममय बन जाता है ॥ ५ ॥ उस सरस्वती नदीके तटपर बोधपिप्पल नामका वृक्ष है। उसी स्थानपर श्रीकृष्णने उद्धवको पुनीत भागवत महापुराण प्रदान किया था ॥ ६ ॥ वहां स्नान करके विधिवत् पूजन करे और बोधिपिप्पलका स्पर्श करके वेदतुल्य पवित्र श्रीमद्भागवत महापुराण सुने ॥ ७ ॥ जो प्राणी स्थिर मनसे आधा या चौथाई श्लोक भी सुनता है तो हे राजन् ! उसके हाथमें विष्णुका परम पद आ जाता है ॥८॥ जो प्राणी इस प्रभासतीर्थमें भाद्रपद मासकी पूर्णमासीको सुवर्णके सिंहासनपर भागवतकी पोथी रखकर दान देता है, वह परम गति प्राप्त कर लेता है ॥ ९ ॥ जो लोग कभी भी श्रीमद्भागवतकी कथा नहीं सुनते, उन पृथ्वीनिवासियोंका जन्म व्यर्थ हो जाता है ॥ १० ॥ जिन्होंने भागवत पुराण नहीं सुना और न पुराणपुरुष विष्णुकी आराधना की तथा ब्राह्मणभोजन भी नहीं कराया, उन मनुष्योंका जन्म व्यर्थ हो गया ॥ ११ ॥ द्वारकाका तीर्थराज गोमती-सिन्धु संगम है। वहां स्नान करके मनुष्य निर्मल विष्णुपद प्राप्त

शताश्वमेधजं पुण्यं गङ्गासागरसङ्गमे। तत्सहस्रगुणं प्रोक्तं गोमतीसिंधुसङ्गमे ॥१३॥
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्। यस्य श्रवणमात्रेण पापतापात्प्रमुच्यते ॥१४॥
आसीद्गजाह्वये वैश्यो राजमार्गपतिः परः। महागौरवसंयुक्तो निधीशो धनदो यथा ॥१५॥
वेश्याप्रसङ्गनिरतो विटगोष्ठीविशारदः। द्यूतक्रीडनकासक्तो लोभमोहमदान्वितः ॥१६॥
मृषावादी महादुष्टः कुकर्मनिरतः सदा। ब्राह्मणेभ्यो न पितृभ्यो न देवेभ्यो धनं ददौ ॥१७॥
हरेः कथां प्रेक्ष्य दूराद्दूरं वै निर्ययौ त्वरम्। पित्रोः सेवापि न कृता न पुत्रेभ्यो धनं ददौ ॥१८॥
त्यक्त्वा भार्यां स भिन्नोऽभूद्धनाढ्यो दुर्मतिः खलः।
वेश्याप्रसङ्गात्तस्यापि धनार्द्धं प्रक्षयं गतम् ॥१९॥
अर्धं तु तस्करैर्नीतं किंचित्पृथ्व्यां गतं स्वतः। पुण्येन वर्द्धते लक्ष्मीः पापेन क्षीयते ध्रुवम् ॥२०॥
एवं स निर्धनो जातो वेश्यासक्तो महाखलः। तस्मिन् गजाह्वये रम्ये चौर्यकर्म चकार ह ॥२१॥
चौर्यकर्म प्रकुर्वंतं बद्ध्वा तं दामभिर्नृपः। देशान्निःसारयामास शंतनुर्नृपतीश्वरः ॥२२॥
वनेऽपि निवसन्सोऽपि जीवहिंसां चकार ह। समा द्वादशसाहस्रं नववर्षं यदा घनः ॥२३॥
पश्चिमां तु दिशं प्रागाद्वैश्यो दुर्भिक्षपीडितः। वने वै मारितः सोऽपि सिंहेन तलघाततः ॥२४॥
तदैव यमदूतास्तं बद्ध्वा पाशैरधोमुखम्। कशाघातैस्ताडयंतो निन्युर्मार्गं यमस्य च ॥२५॥
अथ कश्चिन्महान् गृध्रो मांसं तस्य भुजस्य च। गृहीत्वा खं गतः सद्यः खादंश्चंचुपुटेन तम् ॥२६॥
निरामिषाः खगाश्चान्ये सामिषं जग्मुरातुराः। एवं कोलाहले जाते शङ्खचिह्नादिभिः कृते ॥२७॥
न जहौ मुखतो मांसं पश्चिमाशां जगाम ह। तत्समेनापि गृध्रेण तीक्ष्णतुंडेन ताडितात् ॥२८॥

कर लेता है ॥ १२ ॥ गंगासागर-संगमपर स्नान करनेवाले प्राणीकों सौ अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है, किन्तु गोमती-सिन्धुसंगममें स्नान करनेपर उससे हजारगुना अधिक पुण्य प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ इस विषयमें एक पुरातन इतिहास कहा गया है, जिसके श्रवणमात्रसे प्राणी पापतापसे मुक्त हो जाता है ॥ १४ ॥ हस्तिनापुरमें एक वैश्य चौधरी रहता था। वह बड़ा गौरवशाली तथा कुबेर जैसा धनाढ्य था ॥ १५ ॥ वह वेश्याप्रेमी तथा भाँड़ोंकी गोष्ठी जुटानेमें निपुण था। वह नित्य जुआ खेलता था और लोभ-मोह-मदसे युक्त रहता था ॥ १६ ॥ वह असत्यवादी, महादुष्ट तथा सदैव कुकर्मनिरत रहता था। उसने ब्राह्मणों, पितरों तथा देवताओंको कभी धन नहीं दिया ॥ १७ ॥ यदि वह कहीं भगवानकी कथा होती देखता तो दूर ही से जल्दी-जल्दी भाग जाता था। उसने न कभी माता-पिताकी सेवा की और न पुत्रोंको धन दिया ॥ १८ ॥ वह अपनी स्त्रीको त्यागकर अलग हो गया और वेश्यागमन करके उसने अपना आधा धन नष्ट कर दिया ॥ १९ ॥ बाकी आधा धन चोर चुरा ले गये। कुछ गड़ा धन पृथ्वीमें ही नष्ट हो गया। क्योंकि पुण्य करनेसे धन बढ़ता है और पाप करनेसे घटता है ॥ २० ॥ इस प्रकार वह वेश्यागामी तथा महाखल वैश्य कंगाल हो गया और रमणीक हस्तिनापुरमें चोरी करने लगा ॥ २१ ॥ एक बार वह चोरी करता हुआ पकड़ा गया, तब राजा शन्तनुने रस्सियोंसे बँधवाकर उसे अपने देशसे निकाल दिया ॥ २२ ॥ अब वह जीववध करता हुआ वनमें रहने लगा। एक बार वहाँ बारह हजार वर्षोतक जल नहीं बरसा ॥ २३ ॥ तब दुर्भिक्षसे पीडित होकर वह वैश्य पश्चिम दिशाको चला। किन्तु वनमें ही उसे एक सिंहने थप्पड़ोंसे मार डाला ॥ २४ ॥ तभी वहाँ यमराजके दूत जा पहुँचे। उन्होंने उसे पाशमें जकड़ लिया और उसका मुख नीचे कराके कोड़े मारते हुए यमपुरी ले चले ॥ २५ ॥ उसी समय एक बड़ा-सा गीध उसकी भुजाका मांस लेकर आकाशमें उड़ गया और चोंचसे खाने लगा ॥ २६ ॥ तब जिन पक्षियोंको मांस नहीं मिला था, वे बड़े आतुर होकर सामिष गीधके पास जा पहुँचे और उसे लताड़ते हुए चिढ़ाने लगे। इससे बड़ा कोलाहल मच गया ॥ २७ ॥ तथापि गीधने मांस नहीं छोड़ा और वहाँसे पश्चिम दिशामें उड़ गया। किन्तु उसीके समान प्रबल एक गीधने पीछा

तन्मुखात्प्रपतन्मांसं गोमतीसिंधुसङ्गमे । तीर्थप्लुते तस्य मांसे वैश्योऽयं पातकी महान् २९॥
तेषां पाशान्स्वयं छित्त्वा भूत्वा देवश्चतुर्भुजः । पश्यतां यमदूतानां विमानमधिरुह्य सः ॥३०॥
विराजयन् दिशः सर्वाः परं धाम हरेर्ययौ ॥३१॥
गोमतीसिंधुसङ्गस्य माहात्म्यं शृणुते नरः । सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं प्रयाति सः ॥३२॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीद्वारकाखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे प्रभाससरस्वतीबोधपिप्पलगोमतीसिंधुसङ्गममाहात्म्यं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥



अथ चतुर्दशोऽध्यायः

(कपिटंक-नृगकूप तथा गोपीभूमिमाहात्म्य)

श्रीनारद उवाच

द्वारावत्याः समुद्रस्य माहात्म्यं शृणु मानद । सर्वपापहरं पुण्यं तत्स्नानफलदं स्मृतम् ॥ १ ॥
माधव्यां पूर्णमास्यां यो व्रती स्नात्वा नदीपतिम्। नत्वा संपूज्य विधिवद्रत्नदानं करोति यः ॥ २ ॥
तस्य देहे त्रयो देवा निवसंति महीपते । यस्य दर्शनमात्रेण नरो याति कृतार्थताम् ॥ ३ ॥
तद्देहस्पर्शनात्सद्यो ब्रह्महत्या प्रमुच्यते । यत्र यत्र गतः सोऽपि तत्र तत्र च भूः शुभा ॥ ४ ॥
दृष्ट्वा तं च मृतः पापी जगद्वधकरोऽपि हि । छिनत्ति पापपटलं परं मोक्षं प्रयाति हि ॥ ५ ॥
रैवतस्याथ शैलस्य माहात्म्यं शृणु मानद । सर्वपापहरं पुण्यं मुक्तिभुक्तिप्रदायकम् ॥ ६ ॥
गौतमस्य सुतो धीमान् मेधावी नाम वैष्णवः । विंध्याचले तपस्तेपे वर्षाणामयुतं शतम् ॥ ७ ॥
तं द्रष्टुमागतः साक्षादपांतरतमो मुनिः । नोच्चचालासनात्सोऽपि मेधावी तपसोत्कटः ॥ ८ ॥
अपांतरतमस्तं वै शशाप क्रोधपूरितः । सतामभक्त पापात्मन् स्वतपोबलगर्वितः ॥ ९ ॥

शैलवत्ते स्थितिश्चात्र त्वं शैलो भव दुर्मते । इत्युक्त्वाऽथ गते साक्षादपांतरतमे मुनौ ॥१०॥
मेधावी शैलतां प्राप्तः श्रीशैलस्य सुतोऽभवत् । जातिस्मरो महाबुद्धिर्विष्णुभक्तेः प्रभावतः ॥११॥
एकदा मन्मुखाच्छ्रुत्वा माहात्म्यं द्वारकापुरः । प्रोवाच सोऽपि राजानं रैवतं गच्छ सत्वरम् ॥१२॥
वद मत्प्रार्थनामुक्तां त्वं महादीनवत्सलः । सोऽयं महाबलो राजा प्रसन्नो यदि वा भवेत् १३॥
तेन नीतस्य मे वासो भविष्यति हरेः पुरि । इति श्रुत्वा मया विष्णुभक्तानां शांतिकारिणा १४॥
रैवतायाशु कथितं तथोक्तं परमं वचः । स प्रसन्नः प्राह राजन्नत्र कोऽपि न पर्वतः ॥१५॥
तत्स्थापनां करिष्यामि समुत्पाटय भुजाबलात् । समुन्नीय द्वारकायां प्रतिज्ञामकरोदिमाम् ॥१६॥
एतस्मिंस्तच्चोरयितुं प्रयाते नृपसत्तमे । तत्पूर्वस्मादहं प्राप्तः श्रीशैलस्य पुरे नृप ॥१७॥
कलिप्रियेणापि मया श्रीशैलाय महात्मने । कथितः सर्ववृत्तांतो नृपचौर्यसमन्वितः ॥१८॥
श्रीशैलः पुत्रमोहेन निर्भर्त्स्येति क्व यासि हिं । सुमेरुं गिरिराजं च हिमवन्तं नगेश्वरम् ॥१९॥
श्रीशैलः प्राह धर्मात्मा पुत्रस्नेहसमाकुलः । एको दैवेन दत्तोऽयं न पुत्रा बहवश्च मे ॥२०॥
तं हर्तुमागते राज्ञि रैवते वै महाबले । विदेशं याति पुत्रो मे तेन राज्ञा महात्मना ॥२१॥
पुत्रस्नेहाभिभूतोऽहं युवयोः शरणं गतः । जित्वा तं रैवतं शीघ्रं पुत्रं मां दातुमर्हथ ॥२२॥
जातेश्च कारणात्तौ द्वौ सुमेरुश्च हिमाचलः । शैललक्षैः परिवृतौ योद्धुमाजग्मतुर्द्रुतम् ॥२३॥
ततो भुजाभ्यामुत्पाटय हनुमानिव तं गिरिम् । ऊर्ध्वं कृत्वा बलाद्राजा यदा गंतुं मनो दधे ॥२४॥
तदैव चागतान्वीक्ष्य गिरीञ्छस्त्रास्त्रधारिणः । अट्टहासं चकारोच्चैस्तडित्पातमिवात्मनः ॥२५॥
ननाद तेन ब्रह्मांडं सप्तलोकैर्बिलैः सह । तदैव तेषां शस्त्राणि हस्तेभ्यो न्यपतन्स्वतः ॥२६॥

अपान्तरतम मुनिने उसको शाप देते हुए कहा—हे सन्तोंके अभक्त पापी ! तुझे अपने तपका बड़ा गर्व हो गया है ॥ ९ ॥ मेरे आनेपर भी तू पर्वतकी तरह बैठा रहा । अतएव तू पर्वत हो जा । ऐसा कहकर अपान्तरतम मुनि चले गये ॥ १० ॥ शापके अनुसार मेधावी श्रीशैलका पुत्र पर्वत हो गया, किन्तु विष्णुभक्तिके प्रभावसे उसको पूर्वजन्मकी स्मृति बनी रही ॥ ११ ॥ नारदजी बोले—हे राजन् ! एक बार मेरे मुखसे द्वारकाका माहात्म्य सुनकर श्रीशैलका पुत्र बोला—हे महामुने ! आप शीघ्र राजा रैवतके पास जाइए ॥१२॥ आप बड़े दीनवत्सल हैं । मेरी प्रार्थनाको आप उन्हें सुना दीजिए । वह महाबली राजा यदि प्रसन्न होकर मुझे यहाँसे ले जाय तो मुझे भगवान्की द्वारकापुरीमें रहनेका सुयोग मिल जाय । उसकी बात सुनकर मैं तत्काल राजा रैवतके पास जा पहुँचा और श्रीशैलके पुत्रका सन्देश कह सुनाया । राजा मेरी बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और बोला—ठीक है मुनीश्वर ! यहाँ कोई पर्वत नहीं है । इसलिए मैं उसे यहाँ लाकर स्थापित करूँगा । राजा रैवतने ऐसी प्रतिज्ञा की ॥ १३–१६ ॥ तदनन्तर राजा उस पर्वतको चुराने गया । उसके पहले ही मैं श्रीशैलके पास जा पहुँचा ॥ १७ ॥ कलहप्रिय होनेके कारण मैंने श्रीशैलको सब वृत्तान्त बताते हुए राजा रैवत द्वारा की जानेवाली चोरीकी भी बात कह दी ॥ १८ ॥ तब पुत्रस्नेहसे विकल होकर श्रीशैलने पुत्रको धमकाते हुए कहा—हे पुत्र ! तू मुझे छोड़कर कहाँ जाना चाहता है ? इसके बाद श्रीशैल हिमाचल तथा सुमेरुपर्वतकी शरणमें गया ॥ १९ ॥ वहाँ पहुँचकर पुत्रस्नेहसे व्याकुल धर्मात्मा श्रीशैलने कहा—हे पर्वतराजाओ ! विधाताने मुझे केवल एक पुत्र दिया है । मेरे बहुतेरे पुत्र नहीं हैं ॥ २० ॥ मेरे पुत्रको चुरानेके लिए महाबली राजा रैवत आया हुआ है और मेरा पुत्र भी उसके साथ विदेश जानेको तैयार है ॥ २१ ॥ पुत्रस्नेहसे अभिभूत होकर मैं आप दोनोंकी शरणमें आया हूँ । आप राजा रैवतको जीतकर मेरा पुत्र मुझको दे दीजिए ॥ २२ ॥ स्वजातिका संकट समझकर हिमाचल तथा सुमेरु हजारों-लाखों पर्वत साथ लेकर राजा रैवतसे लड़नेके लिए आये ॥ २३ ॥ उसी समय हनुमान्की तरह राजा रैवतने वह पर्वत उखाड़कर ले जानेकी इच्छा की ॥ २४ ॥ तभी लड़नेके लिए आये हुए सशस्त्र पर्वतोंको देखा तो राजा रैवतने इस प्रकार जोरसे अट्टहास किया, जैसे बिजली गिरी हो ॥ २५ ॥ उस अट्टहासकी प्रतिध्वनिसे सप्तलोकों समेत सारा

निःसृतास्ते यदा शैलाः कुर्वन्तः शब्दानि मुहुः । गच्छन्तं सुगिरिं जघ्नुर्मुष्टिभिर्जानुभिः पथि ॥२७॥
यथा पुरा हनूमन्तमनुयाता महाबलम् । तैस्ताडितोऽपि न जहौ गिरिं राजा कराग्रतः ॥२८॥
सम्मुखाच्छ्रीहरिः श्रुत्वा शैलोद्योगं नृपोपरि । सद्यो भक्तसहायार्थं भगवान्भक्तवत्सलः ॥२९॥
आगत्याकाशमार्गेऽपि दत्त्वा तेजः स्वकं परम् । मा भैष्टेत्यभयं दत्त्वा स्वयमन्तरधीयत ॥३०॥
गते हरौ भगवति भगवत्तेजसान्वितः । एकहस्ते गिरिं धृत्वा मुष्टिना वज्रपातिना ॥३१॥
सुमेरुं संतताडाशु वज्रीव बलवत्तरः । तस्य मुष्टिप्रहारेण मेरुर्विह्वलतां गतः ॥३२॥
हिमवन्तं बाहुवेगात्पातयित्वा महीतले । ममर्द पद्भ्यां चान्यांश्च विन्ध्यादीन्रणदुर्मदः ॥३३॥
विन्ध्यादयश्च ते सर्वे पादघातेन मर्दिताः । भयभीता रणं त्यक्त्वा दुद्रुवुस्ते दिशो दश ॥३४॥
एवं जित्वा शैलसंघं तं शैलं शैलसन्निभः । रैवतोऽपि जयारावैरानर्तेषु न्यपातयत् ॥३५॥
सोऽभूद्रैवतनाम्नापि राजन् रैवतकोऽचलः । हरिभक्तः शैलमुख्यो द्वारवत्यां विराजते ॥३६॥
तस्य दर्शनमात्रेण ब्रह्महत्या प्रमुच्यते । स्पर्शनाच्छतयज्ञानां फलमाप्नोति मानवः ॥३७॥
यात्रां कृत्वा च यस्यापि परिक्रम्य नतानन: । भोजनं ब्राह्मणे दत्त्वा याति विष्णोः परं पदम् ॥३८॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीद्वारकाखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे रैवतकाचलमाहात्म्यं
नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

(अपिंडकतीर्थ, नृगकूप और गोपीभूमिमाहात्म्य)

श्रीनारद उवाच

तस्मिन् गिरौ यज्ञतीर्थं रैवतेन कृतं पुरा । यत्र कृत्वा यज्ञमेकं कोटियज्ञफलं लभेत् ॥ १ ॥

कपिटंकं नाम तीर्थं कपिपातसमुद्भवम् । गिरौ रैवतके राजन् सर्वपापप्रणाशनम् ॥ २ ॥
भौमासुरसखो दुष्टो द्विविदो नाम वानरः । मारितो यत्र रामेण मुष्टिना वज्रपातिना ॥ ३ ॥
सद्यो मुक्तिं गतः सोऽपि सतां हेलनवानपि । तत्र स्नातुं सदा देवा आगच्छन्ति नरेश्वर ॥ ४ ॥
कलविंकस्य यात्रायां कोटिगोदानजं फलम् । एतस्य द्विगुणं पुण्यं दण्डकाख्ये वने शुभे ॥ ५ ॥
तस्माच्चतुर्गुणं पुण्यं सैंधवाख्ये महावने । जंबुमार्गे पञ्चगुणं पुण्यं प्राप्नोति मानवः ॥ ६ ॥
तस्माद्दशगुणं पुण्यं पुष्कराख्ये वने स्मृतम् । तस्माद्दशगुणं पुण्यमुत्पलावर्तयात्रया ॥ ७ ॥
तस्माच्च नैमिषारण्ये पुण्यं दशगुणं स्मृतम् । तस्माच्छतगुणं पुण्यं कपिटंके विदेहराट् ॥ ८ ॥
नृगकूपं द्वारकायां तीर्थानां तीर्थमुत्तमम् । यस्य दर्शनमात्रेण विप्रावध्यात्प्रमुच्यते ॥ ९ ॥
अज्ञानाद्ब्राह्मणस्यापि गां ददौ ब्राह्मणाय सः । तेन पापेन कूपे वै कृकलासवपुर्द्धरः ॥१०॥
नृगोऽपि दानिनां श्रेष्ठः पतितोऽथ चतुर्युगम् । श्रीकृष्णेन तदुद्धारः कृतो वै पश्यतां सताम् ॥११॥
तद्दिनान्नृगकूपं तु तीर्थीभूतं महीपते । कार्तिके पूर्णिमायां तु तस्मिन् स्नानं समाचरेत्१२॥
कोटिजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः । एकं यत्रापि गोदानं करोति विधिवन्नरः ॥१३॥
कोटिगोदानजं पुण्यं लभते वै न संशयः । गोपीभूमेश्च माहात्म्यं शृणु पापहरं परम् ॥१४॥
यस्य श्रवणमात्रेण कर्मबन्धात्प्रमुच्यते । गोपीनां यत्र वासोऽभूत्तेन गोपीभुवः स्मृताः ॥१५॥
गोप्यंगरागसंभूतं गोपीचन्दनमुत्तमम् । गोपीचन्दनलिप्तांगो गङ्गास्नानफलं लभेत् ॥१६॥
महानदीनां स्नानस्य पुण्यं तस्य दिने दिने । गोपीचन्दनमुद्राभिर्मुद्रितो यः सदा भवेत् ॥१७॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन्! उस पर्वतपर राजा रैवतने यज्ञतीर्थका निर्माण कराया था। उस तीर्थमें एक यज्ञ करनेवाला मनुष्य करोड़ यज्ञोंका फल प्राप्त करता है ॥ १ ॥ वहाँ ही कपिटंक तीर्थ है। वानरके गिरनेसे इस तीर्थका निर्माण हुआ था। सब पापोंको नष्ट करनेवाला यह तीर्थ रैवतक पर्वतपर ही है ॥ २॥ भौमासुरका मित्र द्विविद नामका एक वानर था। उसको भगवान् बलरामने अपने व्रजप्रहारसदृश भीषण मुक्केसे मारा था ॥ ३ ॥ यद्यपि द्विविद वानर सज्जनोंकी अवज्ञा करता था, फिर भी उसने तुरन्त मुक्ति प्राप्त कर ली। उस तीर्थमें स्नान करनेके लिए देवता भी नित्य आते रहते हैं ॥ ४ ॥ कलविंक तीर्थकी यात्रा करनेसे एक करोड़ गोदानका फल प्राप्त होता है। इससे भी दुगुना फल दण्डकवनकी यात्रा करनेसे मिलता है ॥ ५ ॥ उससे भी चौगुना फल सैंधववनकी यात्रासे प्राप्त होता है। उससे पाँचगुना फल जम्बुमार्गकी यात्रा करनेसे मिलता है ॥६॥ उससे दसगुना पुण्य पुष्कर वनकी यात्रा और उससे दसगुना फल उत्पलावर्तकी यात्रामें प्राप्त होता है ॥ ७ ॥ नैमिषारण्यकी यात्रामें उससे दसगुना और कपिटंक तीर्थकी यात्रामें सौगुना फल प्राप्त होता है ॥ ८ ॥ द्वारकामें सर्वोत्तम तीर्थ नृगकूप है। उसके दर्शनसे ही ब्रह्महत्या छूट जाती है ॥ ९ ॥ अज्ञानतावश राजा नृगने एक ब्राह्मणकी गौ दूसरे ब्राह्मणको दे दी थी। जिससे राजा नृग एक कुएँका गिरगिट हो गया ॥ १० ॥ दानियोंमें अग्रणी राजा नृग भी चार युगतक कुएँमें पड़ा रहा। बादमें श्रीकृष्णने बहुतेरे लोगोंके समक्ष उसका उद्धार किया ॥ ११ ॥ उसी दिनसे नृगकूप तीर्थरूपमें माना जाने लगा। कार्तिकी पूर्णिमाको उसमें अवश्य स्नान करना चाहिये ॥१२॥ उसमें स्नान करनेवाला करोड़ों जन्मके पापोंसे छूट जाता है। उस तीर्थमें मनुष्य एक गौ दान करे तो उसे करोड़ गोदानका फल मिलता है। इसमें सन्देह नहीं है। अब गोपीभूमिकी महिमा सुनिए। इसमें भी सब पापोंको हरनेकी शक्ति है ॥ १३ ॥ १४ ॥ इसके श्रवणमात्रसे मनुष्य कर्मबन्धनसे मुक्त हो जाता है। उस स्थानपर गोपियोंने निवास किया था। इसीसे उसका गोपीभू नाम पड़ गया ॥ १५ ॥ गोपियोंके अंगरागसे वहाँ गोपीचन्दनकी उत्पत्ति हुई। गोपीचन्दन लगानेवाला मनुष्य गंगास्नानका फल प्राप्त कर लेता है ॥ १६ ॥ महानदियोंमें स्नान करनेका फल दिनके दिन ही मिलता है। किन्तु यदि गोपीचन्दन लगाये तो नित्य गंगास्नानका फल प्राप्त होता है। जो व्यक्ति गोपीचन्दनकी मुद्राओंसे मुद्रित रहता है। उसको हजार अश्वमेध और राजसूय यज्ञ, सब तीर्थ, दान और व्रत करनेसे जो फल होता है, वह केवल

अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च । सर्वाणि तीर्थदानानि व्रतानि च तथैव च ॥
कृतानि तेन नित्यं वै स कृतार्थो न संशयः ॥१८॥
गङ्गामृद्‌द्विगुणं पुण्यं चित्रकूटरजः स्मृतम् । तस्माद्दशगुणं पुण्यं रजः पञ्चवटीभवम् ॥१९॥
तस्माच्छतगुणं पुण्यं गोपीचन्दनकं रजः । गोपीचन्दनकं विद्धि वृन्दावनरजःसमम् ॥२०॥
गोपीचन्दनलिप्तांगं यदि पापशतैर्युतम् । तं नेतुं न यमः शक्तो यमदूतः कुतः पुनः ॥२१॥
नित्यं करोति यः पापी गोपीचन्दनधारणम् । स प्रयाति हरेर्धाम गोलोकं प्रकृतेः परम् ॥२२॥
सिंधुदेशस्य राजाऽभूद्दीर्घबाहुरिति श्रुतः । अन्यायवर्त्ती दुष्टात्मा वेश्यासङ्गरतः सदा ॥२३॥
तेन वै भारते वर्षे ब्रह्महत्याशतं कृतम् । दश गर्भवतीहत्याः कृतास्तेन दुरात्मना ॥२४॥
मृगयायां तु बाणौघैः कपिलागोवधः कृतः । सैंधवं हयमारुह्य मृगयार्थी गतोऽभवत् ॥२५॥
एकदा राज्यलोभेन मन्त्री क्रुद्धो महाखलम् । जघानारण्यदेशे तं तीक्ष्णधारेण चासिना ॥२६॥
भूतले पतितं मृत्युगतं वीक्ष्य यमानुगाः । बद्ध्वा यमपुरीं निन्युर्हर्षयन्तः परस्परम् ॥२७॥
संमुखेऽवस्थितं वीक्ष्य पापिनं यमराड् बली । चित्रगुप्तं प्राह तूर्णं का योग्या यातनाऽस्य वै ॥२८॥

चित्रगुप्त उवाच

चतुरशीतिलक्षेषु नरकेषु निपात्यताम् । निःसन्देहं महाराज यावच्चंद्रदिवाकरौ ॥२९॥
अनेन भारते वर्षे क्षणं न सुकृतं कृतम् । दशगर्भवतीघातः कपिलागोवधः कृतः ॥३०॥
तथा वनमृगाणां च कृत्वा हत्याः सहस्रशः । तस्मादयं महापापी देवताद्विजनिंदकः ॥३१॥

श्रीनारद उवाच

तदा यमाज्ञया दूता नीत्वा तं पापरूपिणम् । सहस्रयोजनायामे तप्ततैले महाखले ॥३२॥
स्फुरदत्युच्छलत्फेने कुम्भीपाके न्यपातयन् । प्रलयाग्निसमो वह्निः सद्यः शीतलतां गतः ॥३३॥

गोपीचन्दन लगानेसे निःसन्देह प्राप्त हो जाता है। वह नित्य कृतकृत्य माना जाता है ॥ १७ ॥ १८ ॥ गंगाकी मृत्तिकासे चित्रकूटकी मृत्तिका दूनी फलदायक होती है। उससे दसगुनी फलदायिनी पंचवटीकी मृत्तिका होती है ॥ १९ ॥ उससे भी सौगुना गोपीचन्दन लगानेका फल है। गोपीचन्दन तथा वृन्दावनकी मिट्टीका फल समान होता है ॥ २० ॥ यदि सैकड़ों पापोंका पापी भी गोपीचन्दन लगाये हुए हो तो उसे स्वयं यमराज भी नहीं ले जा सकते, तब यमदूतोंकी बात ही क्या है ॥२१॥ जो पापी नित्य गोपीचन्दन लगाता है, वह श्रीहरिके प्रकृतिसे परे गोलोक धामको जाता है ॥ २२ ॥ सिन्धु देशका राजा दीर्घबाहु नामसे विख्यात पुरुष था। वह बड़ा दुष्ट, अन्यायी और सदाका वेश्यागामी था ॥२३॥ उसने भारतवर्षमें सौ ब्रह्महत्यायें कीं और उस दुरात्माने दस गर्भवती स्त्रियोंकी भी हत्या की ॥ २४ ॥ मृगया (शिकार) के प्रसंगमें उसने बाणसमूहकी वर्षा करके कपिला गौका वध किया। उस समय सिंधुदेशीय अश्वपर सवार होकर वह शिकार खेलने गया था ॥ २५ ॥ एक दिन राज्यलोभवश क्रुद्ध एक मंत्रीने जंगलमें उसको तीखी धारवाली तलवारसे मार डाला ॥२६॥ जब मरकर वह धरतीपर गिर गया, तब यमदूत उसे पाशमें बांधकर बड़े हर्षके साथ यमपुरी ले गये ॥ २७ ॥ बलवान् यमराज पापीको अपने समक्ष खड़ा देखकर चित्रगुप्तसे बोले—इसको कौन-सी यातना दी जाय ॥ २८ ॥ चित्रगुप्त बोले—हे महाराज ! निःसन्देह इस पापीको तबतकके लिए चौरासी लाख नरकोंमें डाल दिया जाय, जबतक सूर्य-चन्द्र रहें ॥ २९ ॥ भारतवर्षमें इसने क्षणभर भी कोई अच्छा काम नहीं किया। इसने दस गर्भवतियों की हत्या और कपिला गौका वध किया है ॥ ३० ॥ इसने हजारों वन्य पशुओंको भी मारा है। अतएव देवद्विजनिन्दक यह महापापी है ॥ ३१ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! तब यमराजकी आज्ञासे दूतलोगोंने उस मूर्तिमान् पापको हजार योजन विस्तृत कुम्भीपाक नरकमें ले जाकर डाल दिया, जिसमें तेल खौल रहा था ॥ ३२ ॥ और उस तेलमें फेन उठता रहा था, किन्तु उसके गिरते ही प्रलयाग्निके समान भीषण आग तुरन्त

वैदेह तन्निपतनात्प्रह्लादक्षेपणाद्यथा । तदैव चित्रमाचख्युर्यमदूता महात्मने ॥३४॥
अनेन सुकृतं भूमौ क्षणवन्न कृतं क्वचित् । चित्रगुप्तेन सततं धर्मराजो व्यचिंतयत् ॥३५॥
सभायामागतं व्यासं संपूज्य विधिवन्नृप । नत्वा पप्रच्छ धर्मात्मा धर्मराजो महामतिः ॥३६॥

यम उवाच

अनेन पापिना पूर्वं न कृतं सुकृतं क्वचित् । स्फुरदग्न्युच्छलत्फेने कुंभीपाके महाखले ॥३७॥
अस्य क्षेपणतो वह्निः सद्यः शीतलतां गतः । इति सन्देहतश्चेतः खिद्यते मे न संशयः ॥३८॥

श्रीव्यास उवाच

सूक्ष्मा गतिर्महाराज विदिता पापपुण्ययोः । तथा ब्रह्मगतिः प्राज्ञैः सर्वशास्त्रविदां वरैः ॥३९॥
दैवयोगादस्य पुण्यं प्राप्तं वै स्वयमर्थवत् । येन पुण्येन शुद्धोऽसौ तच्छृणु त्वं महामते ॥४०॥
कस्यापि हस्ततो यत्र पतिता द्वारकामृदः । तत्रैवायं मृतः पापी शुद्धोऽभूत्तत्प्रभावतः ॥४१॥
गोपीचन्दनलिप्तांगो नरो नारायणो भवेत् । एतस्य दर्शनात्सद्यो ब्रह्महत्या प्रमुच्यते ॥४२॥

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वा धर्मराजस्तमानीय विशेषतः । विमाने कामगे स्थाप्य वैकुण्ठं प्रकृतेः परम् ॥४३॥
प्रेषयामास सहसा गोपीचन्दनकीर्तिवित् । एवं ते कथितं राजन्गोपीचन्दनकं यशः ॥४४॥
गोपीचन्दनमाहात्म्यं यः शृणोति नरोत्तमः । स याति परमं धाम श्रीकृष्णस्य महात्मनः ॥४५॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीद्वारकाखंडे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे कपिटङ्कनृगकूपगोपीभूमिमाहात्म्यं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

अथ षोडशोऽध्यायः

(राधाके रूपका दर्शन)

श्रीनारद उवाच

सिद्धाश्रमस्य माहात्म्यं शृणु राजन्महामते । यस्य स्मरणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १ ॥

ठंढी हो गयी ॥ ३३ ॥ हे वैदेह राजा बहुलाश्व ! उसके गिरनेपर आगमें वैसी ही शीतलता आ गयी, जैसे प्रह्लादके गिरनेपर आयी थी । यह देख दूत यमराजके पास गये और सब हाल कहा । सो सुनकर यमराज चित्रगुप्तके साथ यह विचार करने लगे कि इसने भूमिपर कोई पुण्य तो नहीं किया है॥ ३४ ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! तभी वहाँ व्यासजी आ गये । महामति यमराजने उनका विधिवत् पूजन और नमस्कार करके पूछा ॥ ३६ ॥ यमराज बोले—हे महामुनि ! इस पापीने पूर्वकालमें कुछ भी पुण्य नहीं किया है । तब जिस खौलते तेलमें फेन उछल रहा था, उस भीषण कुंभीपाकमें इसके गिरनेसे वहाँकी आग ठंढी क्यों हो गयीं ? इस सन्देहसे मेरे मनको बड़ा खेद हो रहा है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ श्रीव्यासजी बोले—हे महाराज ! पाप और पुण्यकी गति बड़ी सूक्ष्म होती है, जैसे बुद्धिमानोंने ब्रह्मकी गतिको सूक्ष्म बताया है ॥ ३९ ॥ दैवयोगसे इसको स्वतः पुण्य प्राप्त हो गया है, जिसके प्रभावसे यह शुद्ध हो गया है । उस रहस्यको सुनिए ॥ ४० ॥ किसीके हाथसे जहाँ गोपीचन्दनकी मृत्तिका गिरी थी, यह पापी उसी स्थानपर मरा था । उसीके प्रभावसे यह शुद्ध हो गया है ॥ ४१ ॥ गोपीचन्दनसे जिसका कोई अंग लिप्त रहता है, वह प्राणी नरसे नारायण बन जाता है । जिसके माथेपर गोपीचन्दन लगा हो, उसको देखते ही ब्रह्महत्या भी नष्ट हो जाती है ॥ ४२ ॥ नारदजी बोले—यह सुनकर यमराजने उसे इच्छाचारी विमानपर बिठाकर प्रकृतिसे परे विद्यमान वैकुण्ठधामको भेज दिया ॥४३॥ क्योंकि वे गोपीचन्दनकी महिमा जानते थे । हे राजन् ! इस प्रकार मैंने आपको गोपीचन्दनका माहात्म्य बताया ॥ ४४ ॥ जो उत्तम मनुष्य गोपीचन्दनका माहात्म्य सुनता है, वह महात्मा श्रीकृष्णके परम धामको प्राप्त करता है ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां द्वारकाखण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

यत्स्पर्शनाद्धरेः साक्षान्न वियोगो भवेत्क्वचित् । तं च सिद्धाश्रमं नाम वदन्तीह पुराविदः ॥ २ ॥
दर्शनाद्यस्य सालोक्यं सामीप्यं स्पर्शनात्तथा । सारूप्यं स्नानतो याति सायुज्यं तन्निवासतः ॥ ३ ॥
तत्तीर्थस्यापि माहात्म्यं श्रुत्वा चंद्राननामुखात् । राधा स्नातुं मनश्चक्रे कृष्णविक्षेपविह्वला ॥ ४ ॥
श्रीसिद्धाश्रमयात्रायां सूर्यपर्वणि माधवे । राधा गंतुं मनश्चक्रे उत्थाय कदलीवनात् ॥ ५ ॥
गोपीनां शतयूथेन सर्वगोपगणैः सह । शतवर्षे व्यतीते तु श्रीदाम्नः शापकारणात् ॥ ६ ॥
श्रीराधा शिबिकारूढा छत्रचामरवीजिता । आनर्तेषु महातीर्थं ययौ सिद्धाश्रमं सती ॥ ७ ॥
तत्रैव भगवान् साक्षाद्यादवैः परिमंडितः । स्त्रीणां षोडशसाहस्रैर्यात्रार्थं चाययौ नृप ॥ ८ ॥
बलिष्ठा ये च गोपालाः कोटिशः शस्त्रपाणयः । सिद्धाश्रमं ते जुगुपुः सर्वतो राधिकाज्ञया ॥ ९ ॥
शतयूथास्तथा गोप्यो वेत्रहस्ता महाबलाः । सिद्धाश्रमे च विधिवत्स्नान्तीं राधां सिषेविरे ॥१०॥
द्वारकावासिनां तेषां स्थितानां स्नानमिच्छताम् । शस्त्रवेत्रैस्ताडितानां विविशुर्भगवत्स्त्रियः ॥११॥
केयं स्नातीति पप्रच्छुर्यस्या वैभवमद्भुतम् । यद्दौरवात्त्रसन्तीह सर्वे यादवपुङ्गवाः ॥१२॥
अहो कस्य प्रिया चेयं का नाम कुत्र वासिनी । त्वं सर्वज्ञो हि भगवान् वद नो देवकीसुत ॥१३॥

श्रीभगवानुवाच

वृषभानुसुता साक्षाद्राधेयं कीर्तिनन्दिनी । व्रजेश्वरी मद्दयिता गोपिकाधीश्वरी वरा ॥१४॥
स्नातुं सिद्धाश्रमं प्राप्ता व्रजाद्गोपीगणैः सह । यद्दौरवात्त्रसन्त्येते तस्या वैभवमद्भुतम् ॥१५॥
श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा सत्यभामाऽथ भामिनी । शनैः प्राह सपत्नीनां रूपयौवनगर्विता ॥१६॥
किं नु राधा रूपवती नाहं रूपवती किमु । बहुभिर्याचिता पूर्वं रूपौदार्यगुणान्विता ॥१७॥

मद्रूपकारणात्सख्यः शतधन्वा मृतोऽभवत् । अक्रूरः कृतवर्मा च पुरा तौ द्वौ पलायितौ ॥१८॥
दिने दिने स्वर्णभारानष्टौ स सृजति स्वतः । दुर्भिक्षमार्यरिष्टानि सर्वाधिव्याधयोऽशुभाः ॥१९॥
न संति मायिनस्तत्र यत्रास्तेऽभ्यर्चितो मणिः । मत्पित्रा पारिबर्हेऽपि दत्तः साक्षात्स्यमंतकः ॥२०॥
तेन जातं मद्गृहेऽपि सर्वं वैभवमद्भुतम् । प्रेम्णा परेण श्रीकृष्णगरुडोपरिगामिनी ॥२१॥
भौमासुरमहायुद्धं दृष्टं प्राग्ज्योतिषं पुरम् । ममापि कृपया यूयं तत्पुराच्च समागताः ॥२२॥
प्राप्ताः श्रीकृष्णपत्नीत्वं सर्वा एव न संशयः । मद्गौरवाच्च शक्राय छत्रं दत्तमनेन वै ॥२३॥
कुंडले देवमात्रे च दत्ते वै मत्प्रियेच्छया । ऐरावतभवा नागा भौमासुरसमृद्धयः ॥२४॥
मदिच्छया समानीताः श्रीकृष्णेन महात्मना । मत्कारणान्महावैरं शक्रेऽपि कृतवान् हरिः ॥२५॥
मद्द्वारे वर्तते नित्यं वृक्षेंद्रः पारिजातकः । पातिव्रत्येनैव मया श्रीकृष्णोऽयं वशीकृतः ॥२६॥
सर्वोपस्करसंयुक्तो नारदाय समर्पितः । मत्समानं न कस्यास्तु गौरवं वैभवं तथा ॥२७॥
रूपौदार्यं न कस्यास्तु राधायाः किमु वर्णनम् । यद्रूपोपरि चैद्याद्या अनेन युयुधुर्युधि ॥२८॥
हे सुभ्रु रुक्मिणी सा त्वं कथं रूपवती न हि । सा गोपकन्यका सख्यो यूयं वै राजकन्यकाः ॥
धन्या मान्याश्च सर्वा वै यूयं मानवतीवराः ॥२९॥
एवं तु सत्यभामायां वदंत्यां मैथिलेश्वर । भूत्वा मानवती सर्वा रुक्मिण्याद्याः स्त्रियो वराः ॥३०॥
कुलकौशलशीलार्थरूपयौवनगर्विताः । श्रीकृष्णं मानदं प्राहुरष्ट पट्टमहास्त्रियः ॥३१॥

राज्ञ्य ऊचुः

श्रुतं तव मुखात्पूर्वं राधारूपं परं स्मृतम् । यस्यां रक्तः सदा त्वं वै त्वयि रक्ता च या सदा ॥३२॥
तां राधां द्रष्टुमिच्छामस्त्वत्प्रियां व्रजवासिनीम् । त्वद्वियोगेन संखिन्नां स्नातुं चात्र समागताम् ॥३३॥

याचना करने आये थे ॥ १७ ॥ हे सखियो ! मेरे रूपके कारण ही शतधन्वा मारा गया था और अक्रूर तथा कृतवर्माको पलायन करना पड़ा था ॥ १८ ॥ जो प्रतिदिन आठ भार सुवर्ण प्रदान करता था। जिसके कारण दुर्भिक्ष, महामारी, सर्प, रोग आदि कोई भी बाधा नहीं रहती। जहाँ उस स्यमन्तक मणिकी पूजा होती है, वहाँ कोई अशुभ नहीं होता और मायावियोंकी माया नहीं चलती। वह मणि मेरे पिताने दहेजमें दी है ॥ १९ ॥ २० ॥ उसीसे मेरे घरमें सब वैभव विद्यमान है। उसीके कारण मैं बड़े प्रेमसे श्रीकृष्णके साथ गरुड़पर चढ़कर चलती हूँ ॥ २१ ॥ प्राग्ज्योतिषपुरमें भौमासुरका विकट युद्ध मैंने देखा है। मेरी ही कृपासे तुम सब यहाँ आयी हो ॥ २२ ॥ यहाँ आकर मेरी बराबरी करती हुई तुम भगवान् कृष्णकी पत्नी बनी हो। मेरे ही गौरवसे भगवान्‌ने इन्द्रको छत्र प्रदान किया है ॥ २३ ॥ मेरे कल्याणके लिए इन्होंने इन्द्रकी माता अदितिको कुण्डल दिये हैं। ऐरावतकुलके हाथी और भौमासुरको सब समृद्धि महात्मा कृष्ण मेरी इच्छासे ही लाये हैं। मेरे ही कारण श्रीहरिने इन्द्रके साथ महान् वैर किया था ॥ २४ ॥ २५ ॥ मेरे द्वारपर वृक्षराज कल्पवृक्ष सदा विद्यमान रहता है और मैंने अपने पातिव्रतसे श्रीकृष्णको वशमें किया है ॥ २६ ॥ मैंने सब सरंजामके साथ श्रीकृष्णका दान करके नारदको दे दिया। सो मेरे समान न किसीका वैभव है और न गौरव ॥ २७ ॥ मेरे जैसा न किसीका रूप है और न उदारता है। तब मेरे समक्ष राधाकी चर्चा बेकार है। जिसके रूपपर रीझकर शिशुपाल आदि राजे लड़ पड़े ॥ २८ ॥ सो हे सुभ्रु रुक्मिणी ! क्या तुम रूपवती नहीं हो ? हे सखियो ! राधा एक ग्वालेकी पुत्री है और तुम सब राजकुमारी हो। तुम धन्य हो, मान्य हो और मानवती नारियोंमें श्रेष्ठ हो ॥ २९ ॥ सत्यभामाके यह कहनेपर रुक्मिणी आदि सभी कृष्णपत्नियाँ मान करके बैठ गयीं ॥ ३० ॥ कुल, कौशल, शील, अर्थ, रूप तथा यौवनसे गर्वित होकर श्रीकृष्णकी आठ पटरानियाँ भगवानसे बोलीं ॥ ३१ ॥ उन्होंने कहा—भगवन् ! पूर्वकालमें हमने आपके मुखसे राधाके रूपकी बड़ी बड़ाई सुनी थी। आप नित्य उनके रंगमें रँगे रहते थे और वे आपके रंगमें रँगी रहती थीं ॥ ३२ ॥ आपकी उस प्रेयसी व्रजबालाको हम देखना चाहती हैं। आपके वियोगसे वह सदा खिन्न रहती है और स्नान

श्रीनारद उवाच

तथाऽस्तु चोक्त्वा श्रीकृष्णः पट्टस्त्रीपरिवेष्टितः । षोडशस्त्रीसहस्राढ्यो द्रष्टुं राधां जगाम ह ॥३४॥
श्रीहेमशिविरे रम्ये पताकाध्वजमंडिते । चंद्रमंडलशोभाढ्ये वितानततिते शुभे ॥३५॥
मुक्ताजवनिका यत्र वस्त्रैरास्तरणं शुभम् । मालतीमकरंदाढ्यं सर्वतो गंधसंकुलम् ॥३६॥
तेन भृंगावली चक्रे कलं कोलाहलं परम् । तत्र राधा पट्टराज्ञी श्रीकृष्णहृतमानसा ॥३७॥
हंसाभैर्व्यजनैर्दिव्यैर्वीज्यमाना सखीजनैः । छत्रदोलाधरैस्तत्र व्रजद्भिस्तामितस्ततः ॥३८॥
बालार्ककुण्डलधरा विद्युद्दाममनोहरा । कोटिचन्द्रप्रतीकाशा तन्वी कोमलविग्रहा ॥३९॥
अंगुल्यग्रैः शोभनैः स्वैः पुष्पभूमिं मनोहराम् । शनैः शनैः पादपद्मं धारयन्त्यतिकोमलम् ॥४०॥
दूरात्तां राधिकां प्रेक्ष्य कृष्णपत्न्यः सहस्रशः । जग्मुर्मूर्छां महाराज तद्रूपेणातिमोहिताः ॥४१॥
तत्तेजसा हतरुचः सूर्यात्तारागणा यथा । गतरूपाभिमानास्ता ऊचुः सर्वाः परस्परम् ॥४२॥
अहो एतादृशं रूपं त्रिलोक्यां न हि चाद्भुतम् । श्रुतं यथा तथा दृष्टमद्वितीयं मनोहरम् ॥४३॥
एवं वदंत्यस्तां प्राप्ताः श्रीकृष्णस्य पुरःसराः । गोपीनां राजपुत्रीणां नेत्राणि परिरेभिरे ॥४४॥

इति श्रीगर्गसंहितायां द्वारकाखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे राधारूपदर्शनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

(सिद्धाश्रमका रासोत्सव तथा राधा-कृष्णका समागम)

श्रीनारद उवाच

श्रीकृष्णमागतं वीक्ष्य पट्टराज्ञीसमन्वितम् । तदा जयजयारावं चक्रुर्गोप्योऽतिहर्षिताः ॥ १ ॥
सहसा श्रीहरिं राधा परिक्रम्य कृतांजलिः । पद्माभाभ्यां तु नेत्राभ्यामानंदाश्रूणि मुंचती ॥ २ ॥

करनेके लिए यहाँ आयी हुई है ॥ ३३ ॥ नारदजी बोले—हे राजन् ! पटरानियोंसे परिवेष्टित श्रीकृष्णने उनकी बात सुनकर तथास्तु कहा और सोलह हजार स्त्रियोंके साथ राधाको देखने गये ॥ ३४ ॥ रमणीक श्रीहेमशिविरमें ध्वजा-पताकाओंसे शोभित चन्द्रमण्डलसदृश चँदोवे तने हुए थे ॥ ३५ ॥ मोतियोंके पर्दे लगे थे । सफेद बिछौने बिछे थे और वहाँ चारों ओर चमेलीके इत्रकी सुगन्धि उड़ रही थी ॥ ३६ ॥ उस सुगन्धिसे आकृष्ट भौंरे गुंजार कर रहे थे । वहाँ जिसका मन श्रीकृष्णने हर लिया था, वह राधा विराजमान थीं ॥३७॥ सखियाँ हंस जैसे शुभ्र चँवर चला रही थीं । उनके ऊपर छत्र लगा था और दासियाँ इधर-उधर दौड़ रही थीं ॥ ३८ ॥ उस समय राधा बालसूर्य तथा बिजली जैसे चमकीले कुंडल पहने थीं । करोड़ों चन्द्रमाओं सदृश उसकी कान्ति थी और बहुत कोमल उनका शरीर था ॥ ३९ ॥ पैरोंकी अंगुलियोंके अग्रभागसे वे फूलबिखरी भूमिपर धीरे-धीरे टहल रही थीं ॥ ४० ॥ दूर ही से राधिकाको देखकर श्रीकृष्णकी हजारों रानियाँ उनके रूपपर मोहित होकर बेहोश हो गयीं ॥ ४१ ॥ राधाके तेजसे श्रीकृष्णकी रानियोंकी कान्ति वैसे ही मन्द पड़ गयी, जैसे सूर्योदय होनेपर तारागण फीके पड़ जाते हैं । उस समय सबका रूपाभिमान लुप्त हो गया और वे परस्पर कहने लगीं ॥ ४२ ॥ अहो ! ऐसा अद्भुत रूप सारी त्रिलोकीमें नहीं देखा गया । हमने जैसा सुना था, वैसा ही अद्वितीय रूप देखा ॥ ४३ ॥ ऐसा कहती हुई वे श्रीकृष्णके समक्ष आयीं, तब गोपियों तथा रानियोंकी आँखोंसे आँखें मिलीं ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां द्वारकाखण्डे 'प्रियंवदा'भाषा-टीकायां राधारूपदर्शनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे मिथिलेश ! सभी पटरानियोंके साथ श्रीकृष्णको आये देखकर सब गोपिकायें हर्षित होकर जय-जयकार करने लगीं ॥ १ ॥ तब राधा सहसा उठ खड़ी हुईं । उन्होंने हाथ जोड़कर

श्रीनारद उवाच

राधावाक्यं तदा श्रुत्वा रुक्मिणी भीष्मनन्दिनी । सपत्नीसहिता प्राह राधां कमललोचनाम् ॥१७॥

रुक्मिण्युवाच

धन्याऽसि राधे वृषभानुपुत्रि त्वद्भक्तिभावेन वशीकृतोऽयम् ।
वदत्यलं यस्य कथां त्रिलोकी स एव वार्तां वदति त्वदीयाम् ॥१८॥
श्रुतं यथा ते हरिभावलक्षणं तथा हि दृष्टं न हि चित्रमेव हि ।
गच्छाशु चास्मच्छिबिराणि यत्र हि त्वां नेतुमत्रागतवत्य आदृताः ॥१९॥

श्रीनारद उवाच

एवमुक्त्वा भीष्मसुता राधां कीर्तिसुतां तदा । समानीय स्वशिबिरे सादरेण महात्मना ॥२०॥
शिबिरे सर्वतोभद्रे पद्मकिंजल्कवासिते । हैमे शिरीषमृदुले पर्यंके सोपबर्हणे ॥२१॥
सुखं निवासयामास वासः स्रङ्मंडनादिभिः । संपूज्य विधिवद्रात्रौ सपत्नीसहिता सती ॥२२॥
गोपीनां शतयूथं च संपूज्य च पृथक्पृथक् । वार्तालापान्बहुविधान्कृत्वा कृष्णप्रियास्ततः ॥
स्वापयित्वाऽथ तां जग्मुः स्वं स्वं वै शिबिरं मुदा ॥२३॥
कृष्णपार्श्वं गता भैष्मी दृष्ट्वा जाग्रदुपस्थितम् । कथं न शेषे भो स्वामिन्निति कृष्णमुवाच ह ॥२४॥

श्रीभगवानुवाच

प्रत्युद्गमप्रस्रवणैराश्वासेन व्रजेश्वरि । अर्चिता हि त्वया सुभ्रूः प्रसन्ना साऽभवत्परम् ॥२५॥
सा च नित्यं हि पिबति शयनादौ पयः शुभम् । पयःपानं तु न कृतमद्य सुभ्रु तया किल ॥२६॥
तेन निद्रा नयनयोर्न जाताऽस्या महामते । तस्मान्ममापि प्रस्वापो न जातो भीष्मकन्यके ॥२७॥

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वा परं भैष्मी सपत्नीभिः समन्विता । नीत्वा दुग्धं तत्समीपं प्रययौ परमादरात् ॥२८॥

नारदजी बोले—हे राजन् ! राधाकी बात सुनकर सब सौतोंके साथ भीष्मकसुता रुक्मिणी कमलनयनी राधिकासे बोलीं । १७ ॥ रुक्मिणीने कहा—हे वृषभानुकन्यके ! हे राधे ! तुम धन्य हो। क्योंकि तुम्हारी भक्तिपर मुग्ध होकर भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारे वशीभूत हो गये हैं। सारी त्रिलोकी जिनकी कथा कहा करती है, वे श्रीकृष्ण भगवान् रात-दिन तुम्हारी ही कथा कहते रहते हैं ॥ १८ ॥ श्रीहरिके प्रति जैसे तुम्हारे भक्तिभावका लक्षण सुना था, वैसा ही मैंने देखा। इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। अब आप हमारे शिबिरको चलिए, जहाँसे हम बड़े आदरपूर्वक आपको लेने आयी हैं ॥ १९ ॥ ऐसा कहकर भीष्मकसुता रुक्मिणी कीर्तितनया राधाको बड़े आदरके साथ अपने शिबिरमें ले आयीं ॥ २० ॥ उस शिबिरका नाम सर्वतोभद्र था। उसमें कमलकेसरकी सुगन्धि गमक रही थी। उसमें सुनहले पलंगपर शिरीषके फूल जैसी कोमल गद्दी और तकिया विद्यमान थी ॥ २१ ॥ वहाँ बैठाकर रुक्मिणीने फूल, माला, चन्दन, वस्त्र और आभूषणसे भलीभाँति सत्कार करके राधाको वहीं रात्रिवास कराया ॥ २२ ॥ राधाके साथ जो गोपियोंके सौ यूथ थे, रुक्मिणीने एक-एक करके सबका सत्कार किया और उनसे बहुत तरहकी बात की ॥ २३ ॥ इसके बाद राधाको वहाँ सुलाकर रुक्मिणी आदि पटरानियाँ अपने-अपने शिबिरको चली गयीं। जब रुक्मिणी श्रीकृष्णके पास गयीं तो देखा कि भगवान् अभी जाग रहे हैं। तब रुक्मिणीने कहा—हे स्वामिन् । अब तक आप सोये क्यों नहीं ? ॥ २४ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण बोले—हे सुभ्रु ! तुमने व्रजेश्वरी राधाका स्वागत, वार्तालाप तथा आश्वासनसे भरपूर सत्कार किया, जिससे वे बहुत प्रसन्न हुईं ॥ २५ ॥ वे सोनेसे पहले नित्य दुग्धपान करती हैं। किन्तु आज उन्होंने दूध नहीं पिया। इसीसे उनको नींद नहीं आयी ॥ २६ ॥ इसी कारण मेरे नयनोंमें भी नींद नहीं आयी। हे महामति भीष्मककन्यके ! इसीसे मैं नहीं सो सका ॥ २७ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! श्रीकृष्णके वचन सुनकर सपत्नियोंके साथ रुक्मिणी सादर दूध लेकर राधाके पास गयीं ॥२८॥

उष्णं दुग्धं सितायुक्तं कचोले हैमने कृतम् । अपाययत्परं प्रीत्या राधां भीष्मकनंदिनी ॥२९॥
एवमभ्यर्च्य विधिवद्दत्त्वा ताम्बूलवीटिकाम् । सत्यभामादिभिः शश्वत्सपत्नीभिः समन्विता ॥३०॥
आगत्य कृष्णसामीप्यं वदंती स्वकृतं शुभा । भेजे श्रीरुक्मिणी साक्षाच्छ्रीकृष्णपदपंकजम् ॥३१॥
संलालयंती सततं कोमलैः करपल्लवैः । कृष्णपादतले छालान्वीक्ष्य सा विस्मिताऽभवत् ३२
उच्छालकाः कथं जातास्तव पादतले प्रभो । अद्यैव भूता भगवन्न वेद्मयत्र हि कारणम् ॥३३॥
षोडशस्त्रीसहस्राणां शृण्वंतीनां हरिः स्वयम् । राधाभक्तिप्रकाशार्थं प्रसन्नः प्राह रुक्मिणीम् ॥३४॥

श्रीभगवानुवाच

श्रीराधिकाया हृदयारविंदे पादारविन्दं हि विराजते मे ।
अहर्निशं प्रश्रयपाशबद्धं लवं लवार्द्धं न चलत्यतीव ॥३५॥
अद्योष्णदुग्धप्रतिपानतोऽङ्घ्रावुच्छालकास्ते मम प्रोच्छलंति ।
मंदोष्णमेवं हि न दत्तमस्यै युष्माभिरुष्णं तु पयः प्रदत्तम् ॥३६॥

श्रीनारद उवाच

श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा रुक्मिण्याद्या स्त्रियो वराः ।
प्रेम्णा पादं विमृज्याथ विसिस्मुः सर्वतो नृप ॥३७॥
श्रीराधायाः परा प्रीतिर्माधवे मधुसूदने । तत्समाना न चैकैषा अद्वितीया महीतले ॥३८॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीद्वारकाखंडे नारदबहुलाश्वसंवादे सिद्धाश्रमे श्रीराधाकृष्णसमागमे राधाप्रेमप्रकाशो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अथ अष्टादशोऽध्यायः

(सिद्धाश्रममें रासोत्सव)

श्रीनारद उवाच

श्रीराधायाः परां प्रीतिं ज्ञात्वा गोपीगणस्य च । ऊचुर्हरिं राजपुत्र्यस्तद्रासप्रेक्षणोत्सुकाः ॥ १ ॥

पट्टराज्य ऊचुः

धन्या गोप्यस्तु ते भक्ताः प्रेमलक्षणसंयुताः । याः प्राप्ता रासरंगे वै तासां किं वर्ण्यते तपः॥ २ ॥
वृन्दावने कृतो रासो विधिना येन माधव । तं विधिं द्रष्टुमिच्छामो यदि त्वं मन्यसे प्रभो ॥ ३ ॥
त्वं चात्रैव तथा राधा गोप्यः सर्वा व्रजाङ्गनाः । वयं चात्रैव देवेश रासो योग्यो भवेदिह ॥ ४ ॥
पूर्णं कुरु जगन्नाथ अस्माकं तु मनोरथम् । कृतो मनोरथोऽन्यो न रासक्रीडां विना हरे ॥ ५ ॥
इति तासां वचः श्रुत्वा भगवान्प्रहसन्निव । प्राह ताः प्रेमसंयुक्तो गीर्भिः संमोहयन्निव ॥ ६ ॥

श्रीभगवानुवाच

रासेश्वर्यास्तु राधाया मनश्चेद्रन्तुमङ्गनाः । तदा रासो भवेदत्र भवतीभिस्तु पृच्छ्यताम् ॥ ७ ॥
इति श्रुत्वा वचस्तस्य रुक्मिण्याद्या नृपात्मजाः । राधामेत्य परं प्रेम्णा प्राहुः प्रहसिताननाः ॥ ८ ॥

राज्य ऊचुः

रम्भोरु चन्द्रवदने व्रजसुन्दरीशे रासेश्वरि प्रियतमे सखि शीलरूपे ।
राधे सुकीर्तिकुलकीर्तिकरे शुभांगे त्वां प्रष्टुमागतवतीः सकला वयं स्म ॥ ९ ॥
रासेश्वरोऽपि किल चात्र रसप्रदायी रासेश्वरी त्वमपि गोपवरांगनाश्च ।
एवं वयं स्म इति सर्वविधौ रसार्थे रासं कुरु प्रियतमे च तथा प्रियं नः ॥१०॥

श्रीराधोवाच

रासेश्वरस्य परमस्य सतां कृपालो रन्तुं मनो यदि भवेत्तु तदाऽत्र रासः ।
शुश्रूषया परमया परया च भक्त्या संपूज्य तं किल वशीकुरुत प्रियेष्टाः ॥११॥

श्रीनारद उवाच

राधाया वचनं श्रुत्वा श्रीकृष्णोक्तं तथाऽवदन् । तथास्तु चोक्त्वा सा राधा प्रसन्नाऽभून्महामनाः ॥
माधवे पूर्णिमायां तु पुण्ये सिद्धाश्रमे शुभे । प्रदोषकाले चन्द्राभे रासारम्भो बभूव ह ॥१३॥

देखकर उन सब रानियोंने राधिकाका रासोत्सव देखनेकी इच्छा करके कहा ॥ १ ॥ पटरानियाँ बोलीं—वे आपकी भक्त गोपियाँ धन्य हैं। क्योंकि उनके हृदयमें प्रेमलक्षणसंयुक्त भक्ति नित्य विद्यमान रहती है। इसीसे वे सदा रासरंगमें सराबोर रहती हैं। उनके तपका वर्णन कैसे किया जाय ॥२॥ हे माधव ! वृन्दावनमें आपने जिस प्रकार रास किया था, उसे हम देखना चाहती हैं। हे प्रभो ! यदि उचित समझें तो हमारी साध पूर्ण कर दीजिए ॥ ३ ॥ क्योंकि इस समय आप भी यहीं हैं, श्रीराधिका भी यहीं हैं और गोपियाँ भी यहीं हैं। हे देवेश ! इसलिए यहाँ रास होना उचित है॥ ४॥ हे जगन्नाथ ! आप हमारा मनोरथ पूर्ण कर दीजिए। हे मनोहर ! रासक्रीडाके सिवाय मेरा और कोई मनोरथ नहीं है ॥ ५ ॥ उन रानियोंके वचन सुनकर हँसते हुए भगवान् अपनी प्रेमभरी वाणीसे उनको मोहित करते हुए बोले—॥ ६ ॥ हे सुन्दरियो ! रासकी अधीश्वरी राधा हैं। अतएव रास तभी हो सकता है, जब उनकी इच्छा हो। अच्छा हो कि आप उन्हींसे पूछें ॥ ७ ॥ भगवान्‌के वचन सुनकर रुक्मिणी आदि रानियाँ राधाके पास गयीं और बड़े प्रेमके साथ हँसती हुई बोलीं ॥ ८ ॥ उन्होंने कहा—हे रंभोरु ! हे चन्द्रवदने ! हे व्रजसुन्दरी ! हे रासेश्वरी ! हे सखी ! हे शीलरूपे ! हे राधे ! हे सुकीर्तिकुलकीर्तिकरे ! हे शुभाङ्गे ! हम सब आपसे कुछ पूछने आयी हैं ॥ ९ ॥ यहाँ रसदायक रासेश्वर श्रीकृष्ण विद्यमान हैं। आप रासेश्वरी तथा अन्यान्य गोपियाँ भी उपस्थित हैं। रसपानके लिए उत्सुक हम लोग भी हैं। अतएव हमारी यही इच्छा है कि यहाँ रास हो। क्योंकि रास हमको बहुत प्रिय है ॥ १० ॥ श्रीराधिका बोलीं—रासेश्वर, सबसे परे और सन्तोंपर कृपालु श्रीकृष्ण यदि रमण करना चाहें तो रासोत्सव हो सकता है। सो उनकी उत्कृष्ट सेवा करके और बड़ी भक्तिसे पूजन करके उन्हें आप अपने वशमें करिए ॥ ११ ॥ श्रीनारदजी बोले—राधाकी बात सुनकर रानियोंने उन्हें श्रीकृष्णकी स्वीकृतिकी बात बतायी तो तथास्तु कहकर राधा प्रसन्न हुईं ॥ १२ ॥ तदनुसार वैशाखी पूर्णिमाको उस पवित्र सिद्धाश्रममें सन्ध्यासमय-

रासेश्वरस्य रासार्थे रासेश्वर्या समन्वितः । रराज रासे रसिको यथा रत्या रतीश्वरः ॥१४॥
यावतीर्गोपिकाः सर्वा यावती राजकन्यकाः । तावद्रूपधरो रेजे एकः कृष्णो द्वयोर्द्वयोः ॥१५॥
तालवेणुमृदङ्गानां कलकण्ठैः सखीजनैः । वल्गुनूपुरकाञ्चीनां मिश्रशब्दो महानभूत् ॥१६॥
कोटिकन्दर्पलावण्यः स्रग्वी कुण्डलमण्डितः । पीतांबरधरो राजन् किरीटकटकाङ्गदः ॥१७॥
रासेश्वर्या समं गायन् रासे रासेश्वरः स्वयम् । स्त्रीगणैः सहितो राजंश्चन्द्रस्तारागणैर्यथा ॥१८॥
एवं सर्वा निशा राजन् क्षणवद्रासमण्डले । व्यतीताऽभून्महाराज महानन्दमयी शुभा ॥१९॥
श्रीरासमंडलं दृष्ट्वा रुक्मिण्याद्याः स्त्रियो वराः । जग्मुस्ताः परमानंदं सर्वाः पूर्णमनोरथाः ॥२०॥
परिपूर्णतमं साक्षाच्छ्रीकृष्णं पुरुषोत्तमम् । रासांते रुक्मिणीमुख्याः प्राहुः प्रेमपरायणाः ॥२१॥

राज्य ऊचुः

दृष्ट्वा त्वद्रूपमाधुर्यं रासरंगे मनोहरे । गतं मनो नः स्वानंदं ब्रह्मानंदं यथा मुनिः ॥२२॥
एतादृशोऽपि रासोऽन्यो न भूतो न भविष्यति । शतयूथस्तु गोपीनामत्र माधव वर्तते ॥२३॥
पत्न्यः षोडशसाहस्रं सखीभिः सहिता वयम् । सखीकोटियुताश्चात्र ह्यष्टपट्टमहास्त्रियः ॥
वृन्दावनेऽपि नैतादृग्भूतो वा माधवेश्वर ॥२४॥

श्रीनारद उवाच

एवं कृताभिमानानां राज्ञीनां प्रहसन्हरिः । प्राहेदं पृच्छतां राधां भवतीभिः परस्परम् ॥२५॥
सत्यभामादिकाः सर्वाः पृच्छंति तां मनोहराम् । किंचिद्धसंती मनसि प्राह राधा परं वचः ॥२६॥

श्रीराधोवाच

ननु रासः परं चात्र बहुस्त्रीगणसंकुलः । पूर्वरासससमो न स्याद्यस्तु वृंदावनेऽभवत् ॥२७॥

रासका आरम्भ हुआ ॥ १३ ॥ रासेश्वरी राधाके साथ रासेश्वर रसिक श्रीकृष्ण रासक्रीड़ा करने लगे तो उनकी वैसे ही शोभा हुई, जैसे रतिके साथ विराजमान कामदेवकी शोभा होती है ॥ १४ ॥ उस समय जितनी गोपियाँ और जितनी रुक्मिणी आदि राजकन्यायें थीं, अकेले भगवान् श्रीकृष्ण उतने ही रूपमें परिणत हो गये। जिससे दो-दो नारियोंके मध्य एक-एक कृष्ण दिखायी देने लगे ॥ १५ ॥ मृदंग, मजीरा और वीणाके शब्द तथा कलकंठी सुन्दरियोंके सामूहिक स्वर मनोहर नूपुरों एवं करधनियोंके निनाद मुखरित हो उठे ॥ १६ ॥ कोटि कन्दर्प जैसे सुन्दर, वनमाला पहिने, मकराकृति कुंडल धारण किये, पीताम्बर, किरीट, कंकण, और बाजूबन्द पहनकर भगवान्ने अपना श्रृंगार किया था ॥ १७ ॥ रासेश्वरी राधाके साथ गाते हुए भगवान् रासेश्वर वैसे ही शोभित हुए, जैसे तारागणके साथ चन्द्रमाकी शोभा होती है ॥ १८ ॥ इस प्रकार रासोत्सवकी वह आनन्दमयी एवं शुभ रात्रि क्षणभरके समान व्यतीत हो गयी ॥ १९ ॥ उस रासमंडलको देखकर रुक्मिणी आदि उत्तम स्त्रियाँ परमानन्दको प्राप्त हो गयीं और उनकी आकांक्षा पूर्ण हो गयी ॥२०॥ रासके अन्तमें रुक्मिणी आदि सभी रानियाँ और पटरानियाँ प्रेमपरायण होकर परिपूर्णतम परमेश्वर श्रीकृष्णसे बोलीं ॥ २१ ॥ रानियोंने कहा—हे नाथ ! इस मनोहर रासरंगमें आपके रूपका माधुर्य देखकर हमारा मन इस प्रकार आनन्दविभोर हो गया, जैसे मुनियोंको ब्रह्मानन्द प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ ऐसा रास न कभी हुआ है और न कभी होगा। हे माधव ! इस रासमें गोपियोंके सौ यूथ हैं ॥ २३ ॥ हम सखियों सहित सोलह हजार रानियाँ और करोड़ों सखियोंके साथ आठ पटरानियाँ हैं ॥ २४ ॥ हे माधवेश्वर ! ऐसा रास तो वृन्दावनमें भी न हुआ होगा। श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! इस प्रकार रानियोंकी अभिमानभरी वाणी सुनकर हँसते हुए श्रीकृष्ण बोले कि यह बात तो तुम्हें राधासे पूछनी चाहिए ॥ २५ ॥ श्रीकृष्णकी बात सुनकर सत्यभामादिक रानियाँ परम मनोहारिणी राधासे पूछने लगीं। तब मन-ही-मन हँसती हुई राधा बोलीं। राधाने कहा—बहुतेरी स्त्रियोंसे भरपूर होनेके कारण यह रास भी अच्छा ही रहा। किन्तु

क चात्र वृन्दारण्यं हि दिव्यद्रुमलताकुलम् । प्रेमभारानतलतं मधुमत्तमधुव्रतम् ॥२८॥
पुष्पव्यूहान्वहंती या यथोष्णिङ्मुद्रिता शुभा । हंसपद्मसमाकीर्णा क चात्र यमुना नदी ॥२९॥
माधव्यस्तु लताः कात्र पुष्पभारनताः पराः । क पक्षिणः प्रेमपरा गायन्ति मधुरस्वनम् ॥३०॥
लोलालिपुञ्जाः कुञ्जाः क निकुञ्जा दिव्यमंदिराः । क वायुः शीतलो मंदो वाति पद्मरजो हरन् ॥३१॥
शृंगैर्मनोहरैरुच्चैर्गिरिर्गोवर्द्धनोऽचलः । सर्वत्र फलपुष्पाढ्यो दरीभिः क्व करीव सः ॥३२॥
कालिन्दीपुलिने रम्ये वायुनाऽन्वितसैकते । वंशीवेत्रधरो मल्लपरिवर्हविराजितः ॥३३॥
क्व चात्र कृष्णशृङ्गारो वनमालाविभूषितः । श्यामानामलकानां च वक्राणां गंधधारिणाम् ॥३४॥
चलितं हलितं क्वात्र कुण्डलाभ्यां परस्परम् । श्रीमुखे कृष्णचंद्रस्य गंडस्थलमनोहरे ॥३५॥
पत्रावलीगंधलोभाद्भ्रमद्भृङ्गावलीयुते । क प्रेम्णा दर्शनं चैव स्पर्शनं हर्षणं तथा ॥३६॥
कामेषुतिग्मकोणैश्च नेत्रैः कापांगजो रसः । आकर्षणं क हस्ताभ्यां हस्ताद्धस्तविसर्जनम् ॥३७॥
विलीनत्वं निकुंजेषु संमुखेन तु दर्शनम् । ग्रहणं कात्र चीराणां हरणं वेणुवेत्रयोः ॥३८॥
क प्रेम्णा चात्र बाहुभ्यां कर्षणं च परस्परम् । पुनः पुनस्तद्ग्रहणं भुजे चंदनचर्चितम् ॥३९॥
यत्र यत्र च या लीला तत्र तत्रैव शोभते । यत्र वृंदावनं नास्ति तत्र मे न मनःसुखम् ॥४०॥

श्रीनारद उवाच

राधावाक्यं ततः श्रुत्वा सर्वाः पट्टमहास्त्रियः । जहुर्मानं स्वरासस्य विस्मिता हर्षिताश्च ताः ॥४१॥
एवं सिद्धाश्रमे रासं कृत्वा श्रीराधिकेश्वरः । नीत्वा गोपीगणान्सर्वान् राधया सहितो हरिः ॥४२॥
सभार्यो भगवान्साक्षाद्द्वारकां प्रविवेश ह । कारयामास राधायै मंदिराणि पराणि च ॥४३॥
निवासयित्वा सुसुखं सर्वांस्ताश्च व्रजौकसः । इत्थं सिद्धाश्रमकथा मया ते कथिता नृप ॥४४॥

वृन्दावनवाले रासके समान यह नहीं हुआ ॥ २६ ॥ २७ ॥ वह वृन्दावन यहाँ कहाँ है कि जहाँ दिव्य वृक्षों तथा लताओंसे आकुल और प्रेमके भारसे झुकी लतायें झूमती रहती हैं और मतवाले भौंरे गुंजारते रहते हैं ॥ २८ ॥ पुष्पोंका भार वहन करती, हंसों और कमलों युक्त तथा रत्नोंसे भरी यमुना यहाँ कहाँ है ॥२९ ॥ फूलोंके बोझसे लदी माधवी लतायें यहाँ कहाँ हैं और प्रेमपूर्ण गायन करनेवाले वे पक्षी यहाँ कहाँ हैं ॥ ३० ॥ जिसमें चंचल भ्रमर गुंजार करते हों, ऐसे कुंजों और निकुंजोंसे भरे मन्दिर यहाँ कहाँ हैं। कमलरजको वहन करनेवाली वह शीतल-मन्द वायु यहाँ कहाँ है ॥ ३१ ॥ मनोहर और ऊँचे शिखरों तथा फल-फूलसे लदे वृक्षों और कन्दराओंवाला गोवर्द्धन पर्वत यहाँ कहाँ है ॥ ३२ ॥ कालिन्दीके रमणीक पुलिन (तट) की चमकती रेतीमें बेंत लिये, वंशी बजाते, मोरपंख बाँधे और बनमाला पहने हुए श्रीकृष्णका वह शृंगार यहाँ कहाँ है। श्याम तथा घुँघराले अलकोंवाले श्रीकृष्णका वह रूप यहाँ कहाँ हैं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ भगवान् कृष्णके मनोहर गण्डस्थलपर हिलते-डुलते और बिजली जैसे चमकते हुए कुंडलोंकी शोभा यहाँ कहाँ है ॥ ३५ ॥ पत्रावलीकी सुगन्धिके लोभी भौंरोंसे आवृत श्रीकृष्णका प्रेमभरा दर्शन, स्पर्श तथा हर्षण यहाँ कहाँ है ॥ ३६ ॥ कामदेवके तीक्ष्ण बाणों सरीखे श्रीकृष्णके कटाक्षका वह रस यहाँ कहाँ है। हाथोंसे पकड़कर खींचना और हाथसे हाथ छुड़ानेका दृश्य यहाँ कहाँ है ॥ ३७ ॥ निकुंजोंमें छुपना, छुपे हुएको ढूँढ़ना, चीर-हरण, बेंत तथा वंशी चुरानेवाली लीला यहाँ कहाँ है ॥ ३८ ॥ परस्पर प्रेमपूर्वक भुजाओंसे खींचना और बार बार चन्दनचर्चित भुजाओंके स्पर्शका आनन्द यहाँ कहाँ है ॥ ३९ ॥ जहाँ-जहाँकी जो लीला है, वह वहाँ ही शोभित होती है। जहाँ वृन्दावन नहीं है, वहाँ मेरे मनको सुख नहीं मिलता ॥ ४० ॥ नारदजी बोले—हे राजन्! राधाके वचन सुनकर पटरानियोंने अपने रासका मान त्याग दिया और वे विस्मित तथा हर्षित हुईं ॥ ४१ ॥ राधिकेश्वर भगवान् कृष्ण इस प्रकार सिद्धाश्रममें रास करके राधाके साथ समस्त गोपियों तथा राजरानियोंको साथ लेकर द्वारकामें प्रविष्ट हुए। वहाँ उन्होंने राधाके लिए बड़े सुन्दर महलोंका निर्माण

सर्वपापहरा पुण्या सर्वेषां चैव मोक्षदा ॥४५॥

इति श्रीगर्गसंहितायां द्वारकाखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसम्वादे सिद्धाश्रममाहात्म्ये रासोत्सवो नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

अथ एकोनविंशोऽध्यायः

(भगवानके प्रथम दुर्गमें स्थित लीलासरोवर, हरिमन्दिर, ज्ञानतीर्थ, कृष्णकुण्ड, बलभद्रसरोवर, गणेशतीर्थ, दानस्थल और मायातीर्थमाहात्म्य)

श्रीनारद उवाच

द्वारावतीमंडलं तु शतयोजनविस्तृतम् । तस्य प्रदक्षिणा सर्वा योजनानां चतुःशतम् ॥ १ ॥
तन्मध्ये कृष्णरचितं दुर्गं द्वादशयोजनम् । द्वितीयं च बहिर्दुर्गं नवतिं च तदुत्तरैः ॥
क्रोशैः संघट्टितं राजञ्छ्रीकृष्णेन महात्मना ॥ २ ॥
तृतीयं च तथा दुर्गं द्व्यूनैश्च द्विशतैर्नृप । क्रोशैः संघट्टितं राजन् रत्नप्रासादसंयुतम् ॥ ३ ॥
तेषामन्तरदुर्गोऽपि श्रीकृष्णस्य महात्मनः । मंदिराणि विचित्राणि नव लक्षाणि संति हि ॥ ४ ॥
तत्र राधामंदिरस्य द्वारे लीलासरोवरम् । सर्वतीर्थोत्तमं राजन् गोलोकाच्च समागतम् ॥ ५ ॥
यस्मिन्स्नात्वा नरः पापी व्रती भूत्वा समाहितः । अष्टम्यां हेमदानं च दत्त्वा नत्वा विधानतः ॥ ६ ॥
कोटिजन्मकृतैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः । प्राणांते तं नरं नेतुं गोलोकाच्च महारथः ॥ ७ ॥
सहस्रादित्यसंकाश आगच्छति न संशयः । दशकंदर्पलावण्यो रत्नकुण्डलमंडितः ॥ ८ ॥
स्रग्वी पीतांबरः श्यामः सहस्रार्कस्फुरद्द्युतिः । सहस्रपार्षदैर्युक्तश्चामरांदोलराजितः ॥ ९ ॥
जयध्वनिसमायुक्तो वेणुदुंदुभिनादितः । भूत्वैवं रथमास्थाय गोलोकं यात्यसंशयम् ॥१०॥
अथ तीर्थानि चान्यानि शृणु राजन्महामते । शतोत्तराणि तत्रैव सहस्राणि च षोडश ॥११॥

कराया ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ उन्हीं महलोंमें सुखपूर्वक व्रजकी गोपियोंको टिकाया । नारदजी कहते हैं—हे राजन्! इस प्रकार मैंने आपको सिद्धाश्रमकी कथा सुनायी ॥ ४४ ॥ यह कथा सब पापोंको हरने तथा मोक्ष देनेवाली है ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां द्वारकाखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन्! द्वारावती (द्वारका) मण्डल चार सौ कोस विस्तृत है। उसकी परिक्रमा भी चार सौ कोसकी है ॥ १ ॥ उसके मध्यमें भगवान् कृष्ण द्वारा विरचित दुर्ग बारह योजन विशाल है। दूसरा बाहरी दुर्ग नब्बे कोस लम्बा-चौड़ा है। उसे भी भगवानने ही बनवाया था ॥ २ ॥ तीसरा किला एक सौ अट्ठासी कोसका है। उसमें रत्नोंके बने महल और मन्दिर हैं ॥ ३ ॥ इस तीनों दुर्गोंके मध्य श्रीकृष्णका निजी दुर्ग है। जिसमें नौ लाख विचित्र महल हैं ॥ ४ ॥ उसीमें राधामन्दिर है। उसके द्वारपर लीलासरोवर है। वह सब तीर्थोंसे श्रेष्ठ है। क्योंकि वह गोलोकसे धरतीपर आया है ॥ ५ ॥ पापी मनुष्य उस तीर्थमें स्नान करके अष्टमीको यदि विधिवत् सुवर्णका दान देकर ब्राह्मणको प्रणाम करे तो करोड़ जन्मके किये हुए पापोंसे छूट जाता है। इसमें सन्देह नहीं है। प्राणान्तके समय उस मनुष्यको लेनेके लिए गोलोकसे महान् रथ आता है ॥ ६ ॥ ७ ॥ उस रथका प्रकाश सहस्रों सूर्य जैसा होता है। वह दस कामदेवोंके सदृश सुन्दर तथा रत्नजटित कुंडलोंसे विभूषित होता है ॥ ८ ॥ वह मनुष्य श्याम शरीर होकर माला तथा पीताम्बर धारण करता है। उस समय हजारों सूर्यों जैसा प्रकाश उसके शरीरसे निकलता है। उसके साथ हजारों पार्षद रहते हैं और उसपर चमर चला करते हैं ॥ ९ ॥ पार्षद उसकी जयजयकार करते हैं। वंशी और दुन्दुभी बजती रहती है। इस प्रकार वह उस उत्तम रथमें बैठकर गोलोक जाता है ॥ १० ॥ हे महामति

अष्टभिः सहितान्येव पत्नीनां भवनानि च । तानि प्रदक्षिणीकृत्य नत्वा नत्वा पृथक् पृथक् ॥१२॥
ज्ञानतीर्थे समाप्लुत्य स्पृशेद्यः पारिजातकम् । तस्य ज्ञानं च वैराग्यं भक्तिर्भवति तत्क्षणम् ॥१३॥
श्रीकृष्णो हृदये तस्य वसेद्धृष्टमनाः सदा । समृद्धिसिद्धयः सर्वास्तं भजंति निसर्गतः ॥१४॥
स मुक्तः स कृतार्थः स्याद्यः पश्येद्धरिमंदिरम् । तत्समो वैष्णवो नास्ति तीर्थं च तत्समं न हि १५॥
पञ्चयोजनविस्तीर्णाद्भगवन्मंदिराच्छतः । धनुःशते कृष्णकुण्डः कृष्णतेजःसमुद्भवः ॥१६॥
यं स्नात्वा कुष्ठतो मुक्तः सांबो जांबवतीसुतः । तस्य दर्शनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१७॥
तस्मादष्टादशपदे पूर्वस्यां दिशि मैथिल । सर्वतीर्थोत्तमं पुण्यं बलभद्रसरो महत् ॥१८॥
पृथ्वीप्रदक्षिणां कृत्वा बलदेवो महाबलः । यज्ञं यत्र विनिर्माय रेवत्या विरराज ह ॥१९॥
तत्र स्नात्वा नरः सद्यो मुच्यते सर्वपातकात् । पृथ्वीप्रदक्षिणायाश्च फलं तस्य न दुर्लभम् ॥२०॥
भगवन्मन्दिराद्राजन् सहस्रधनुरग्रतः । दक्षिणस्यां महातीर्थं गणनाथस्य वर्तते ॥२१॥
अनिर्दशे गते राजन् प्रद्युम्ने स्वसुते तदा । गणेशं सुमना यत्र पूजयामास रुक्मिणी ॥२२॥
तत्र स्नात्वा हेमदानं यो ददाति नृपेश्वर । पुत्रप्राप्तिर्भवेत्तस्य वंशस्तस्य विवर्द्धते ॥२३॥
भगवन्मन्दिराद्राजन् दिग्विभागे च पश्चिमे । धनुषि द्विशते चास्ते दानतीर्थं परं शुभम् ॥२४॥
तत्र श्रीकृष्णचंद्रस्य नित्यं दानं करोति यः । तत्र स्नात्वा नरो राजन् द्विपलं कांचनं तथा ॥२५॥
चतुर्गुणं तु रजतं पट्टांबरशतं तथा । तथा सहस्रमौल्यानि नवरत्नानि यानि च ॥२६॥
यो ददाति नरश्रेष्ठस्तस्य पुण्यफलं शृणु । अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च ॥२७॥
दानतीर्थस्य पुण्यस्य कलां नार्हंति षोडशीम् । बद्रिकाश्रमयात्रायां यत्फलं लभते नरः ॥२८॥
सैंधवारण्ययात्रायां मेषस्थे च दिवाकरे ॥२९॥

राजन् ! अब द्वारकाके अन्य तीर्थोंका वर्णन सुनिए। उसमें कुल सोलह हजार एक सौ आठ तीर्थ हैं॥ ११ ॥ वहीं ही भगवानकी रानियों और पटरानियोंके महल हैं। पृथक्-पृथक् प्रणाम करके उनकी परिक्रमा की जाती है॥ १२ ॥ द्वारकाके ज्ञानतीर्थमें स्नान करके यदि पारिजातका स्पर्श करे तो उसको ज्ञान, वैराग्य तथा भक्ति तत्काल प्राप्त हो जाती हैं॥ १३ ॥ उस स्नानसे प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण सदाके लिए उसके हृदयमें आ विराजते हैं और उसे सभी सिद्धि और समृद्धि सुलभ हो जाती है॥ १४ ॥ द्वारकाके कृष्णमंदिरका जो दर्शन करता है, वह जीवन्मुक्त तथा कृतार्थ हो जाता है। उस प्राणीके समान कोई वैष्णव नहीं होता और उसके सदृश कोई तीर्थ नहीं होता॥ १५ ॥ पाँच योजन (बीस कोस) विस्तृत हरिमंदिरसे सौ धनुष दूर कृष्णकुंड है। श्रीकृष्णके तेजसे उसकी उत्पत्ति हुई है॥ १६ ॥ उस कुण्डमें स्नान करनेसे जाम्बवतीतनय साम्ब कुष्ठरोगसे मुक्त हो गये थे। उसका दर्शन करते ही प्राणी सब पापोंसे छूट जाता है॥ १७ ॥ हे मैथिल ! उससे केवल अठारह कदम दूर पूर्वदिशामें सबसे उत्तम और पवित्र तीर्थ बलभद्रसरोवर है॥ १८ ॥ समस्त पृथ्वीकी परिक्रमा करके महाबली बलरामने वहाँ यज्ञ किया था और रेवतीके साथ वहीं रहते थे॥ १९ ॥ वहाँ स्नान करनेपर प्राणी सब पापोंसे छूट जाता है और उसे पृथ्वीप्रदक्षिणाका पुण्य मिल जाता है॥ २० ॥ हे राजन् ! भगवानके मन्दिरसे हजार धनुष दूर दक्षिण दिशामें गणनाथ तीर्थ है॥ २१ ॥ जब जन्मसे दस दिन पूर्ण होनेके पहले ही प्रद्युम्न गायब हो गया, तब प्रसन्न रुक्मिणीने वहाँ गणेशजीकी पूजा की थी॥२२॥ वहाँ स्नान करके सुवर्णदान देनेसे पुत्रकी प्राप्ति होती है और वंशका विस्तार होता है॥ २३ ॥ भगवानके मन्दिरसे दो सौ धनुष दूर पश्चिम दिशामें दानतीर्थ है॥ २४ ॥ वहाँ श्रीकृष्ण नित्य दान करते हैं। उस तीर्थमें जो मनुष्य दो पल सोना, उसकी चौगुनी चाँदी, सौ रेशमी वस्त्र, हजार मोहर और नवरत्नका दान देता है, उसका पुण्यफल सुनो। हजार अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञ भी दानतीर्थके पुण्यकी सोलहवीं कलाकी भी बराबरी नहीं कर सकते। मनुष्यको जो फल बदरिकाश्रमकी यात्रासे प्राप्त होता है॥ २५–२८॥ मेषके सूर्यमें सैंधवारण्यकी

उत्पलावर्तयात्रायां वृषस्थे भास्करे सति । स्नानं दानं लक्षगुणं भवतीह न संशयः ॥३०॥
तस्मात्कोटिगुणं पुण्यं दानतीर्थे विदेहराट् । मासमेकं च यत्स्नानं दानं तीर्थे करोति हि ॥३१॥
तस्य जातं च यत्पुण्यं चित्रगुप्तो न वेत्ति तम् । तस्य तीर्थस्य माहात्म्यं वक्तुं नालं चतुर्मुखः ३२॥
सर्वेषां चैव दानानामश्वदानं परं स्मृतम् । अश्वदानाद्गजस्यापि गजदानाद्रथस्य च ॥३३॥
रथदानात्परं राजन्भूमिदानं विशिष्यते । भूमिदानादन्नदानं महादानं प्रकथ्यते ॥३४॥
अन्नदानसमं दानं न भूतं न भविष्यति । देवर्षिपितृभूतानां तृप्तिरन्नेन जायते ॥३५॥
दानतीर्थे ह्यन्नदानं यः करोति महामनाः । ऋणत्रयं विमुच्याथ याति विष्णोः परं पदम् ३६॥
दशैव मातृके पक्षे राजेंद्र दश पैतृके । प्रियाया दश पक्षे तु पुरुषानुद्धरेन्नरः ॥३७॥
चतुर्भुजा दिव्यरूपा नागारिकृतकेतनाः । स्रग्विणः पीतवस्त्रास्ते प्रयांति हरिमंदिरम् ॥३८॥
भगवन्मंदिराद्राजन्नुत्तरस्यां दिशि श्रुतम् । क्रोशार्द्धे नृपशार्दूल मायातीर्थं मनोहरम् ॥३९॥
विराजते यत्र नित्यं दुर्गा दुर्गतिनाशिनी । सिंहारूढा भद्रकाली चंडमुंडविनाशिनी ॥४०॥
स्यमंतकं समाहर्तुमृक्षराजबिलं गते । पुत्रे च देवकी देवीं पूजयामास सत्फलैः ॥४१॥
तदाऽऽजगाम प्रियया समणिर्भगवान्हरिः । तद्दिलात्तत्र सिद्धं स्यान्मायातीर्थं फलप्रदम् ॥४२॥
मायातीर्थे च यः स्नात्वा मायां संपूज्य मानवः । सर्वां मनोरथप्राप्तिं प्राप्नुयान्नात्र संशयः ॥४३॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीद्वारकाखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे द्वारकायाः प्रथमदुर्गे लीलासरोवरहरिमन्दिरज्ञानतीर्थ-कृष्णकुंडबलभद्रसरोगणेशतीर्थदानस्थलमायातीर्थमाहात्म्यं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

यात्रासे जो फल प्राप्त होता है और वृषके सूर्यमें उत्पलावर्तकी यात्रासे जो फल मिलता है, वह लाखगुना होकर दानतीर्थके यात्रीको प्राप्त होता है। इसमें संशय नहीं है॥२९॥३०॥ उससे भी करोड़गुना पुण्य दानतीर्थमें दान करने प्राप्त होता है। जो मनुष्य महीना भर दानतीर्थमें स्नान करता है, उसे प्राप्त होनेवाले पुण्यकी गणना चित्रगुप्त भी नहीं कर सकते। दानतीर्थका माहात्म्य कहनेमें चतुर्मुख ब्रह्मा भी समर्थ नहीं होते ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ सब दानोंसे श्रेष्ठ अश्वदान होता है। अश्वदानसे श्रेष्ठ गजदान, उससे श्रेष्ठ रथदान, उससे श्रेष्ठ भूदान और भूदानसे श्रेष्ठ अन्नदान कहा जाता है। इसको महादान कहते हैं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ अन्नदानके समान कोई दान न कभी हुआ है और न होगा। क्योंकि देवताओं, ऋषियों, पितरों तथा सब प्राणियोंकी तृप्ति अन्नसे ही होती है ॥ ३५ ॥ जो महामनस्वी प्राणी दानतीर्थमें अन्नदान करता है, वह देवता-पितर-ऋषि इन तीनों ऋणोंसे मुक्त होकर विष्णु भगवान्के चरणोंमें जा पहुँचता है ॥ ३६ ॥ ऐसा दानी पुरुष दस पीढ़ी मातृपक्ष, दस पीढ़ी पिताके पक्ष और स्त्रीपक्षकी भी दस पीढ़ीका उद्धार कर देता है ॥ ३७ ॥ दानतीर्थके दानी लोग चतुर्भुज, दिव्यरूप, माल्यधारी और पीताम्बरधारी बन तथा गरुड़पर सवार होकर विष्णुके लोकको जाते हैं ॥ ३८ ॥ भगवान्के मन्दिरसे आधे कोस दूर उत्तर दिशामें मनोहर मायातीर्थ है ॥ ३९ ॥ वहाँपर दुर्गतिनाशिनी दुर्गा सदा विराजमान रहती हैं। चण्ड-मुण्डका वध करनेवाली सिंहारूढा भद्रकाली भी वहीं रहती हैं ॥ ४० ॥ जब श्रीकृष्ण स्यमन्तक मणि लेनेके लिये ऋक्षराज जाम्बवान्की गुफामें गये थे, तब देवकीने उत्तम फलोंसे वहाँ देवीकी पूजा की थी ॥ ४१ ॥ तभी भगवान् कृष्ण स्यमन्तक मणि तथा जाम्बवती स्त्री लेकर उस गुफासे बाहर निकल आये। उसी समयसे मायातीर्थ फलदायक माना जाने लगा ॥ ४२ ॥ जो मनुष्य मायातीर्थमें स्नान करके मायाका पूजन करता है, उसकी सब इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां द्वारकाखण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

अथ विंशोऽध्यायः

(द्वारकाके द्वितीयदुर्गमें इन्द्रतीर्थ, सूर्यकुण्ड, ब्रह्मतीर्थ, नीललोहित और सप्तसमुद्रका माहात्म्य)

श्रीनारद उवाच

द्वितीयस्यापि दुर्गस्य पूर्वद्वारे विदेहराट् । इन्द्रतीर्थं महापुण्यं कामदं सिद्धिदायकम् ॥ १ ॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन्निन्द्रलोकं प्रयाति हि । इहैव चंद्रसादृश्यं वैभवं प्राप्यते नरः ॥ २ ॥
तथा वै दक्षिणे द्वारे सूर्यकुण्डोऽभिधीयते । यदा सत्राजितेनापि पूजितोऽभूत्स्यमंतकः ॥ ३ ॥
तत्र स्नात्वा पद्मरागं यो ददाति नृपेश्वर । सूर्यप्रभविमानेन सूर्यलोकं प्रयाति हि ॥ ४ ॥
तथा वै पश्चिमे द्वारे ब्रह्मतीर्थं विविश्यते । तत्र स्नात्वा नरो राजन्स्वर्णपात्रे च पायसम् ॥ ५ ॥
यो ददाति महाबुद्धिस्तस्य पुण्यफलं शृणु । ब्रह्महा पितृहा गोघ्नो मातृहाऽऽचार्यहाऽघवान् ॥
इन्द्रलोके पदं धृत्वा बिभ्रद्ब्रह्ममयं वपुः । चन्द्राभेन विमानेन याति ब्रह्मपदं स च ॥ ७ ॥
तथा वै उत्तरे द्वारे क्षेत्रं स्यान्नीललोहितम् । यत्र साक्षान्महादेवो राजते नीललोहितः ॥ ८ ॥
देवता मुनयः सर्वे तथा सप्तर्षयः परे । वसंति यत्र वैदेह तथा सर्वे मरुद्गणाः ॥ ९ ॥
नीललोहितलिंगं तु यत्र संपूज्य यत्नतः । ऐश्वर्यमतुलं लेभे रावणो लोकरावणः ॥१०॥
कैलासस्यापि यात्रायां यत्फलं लभते नृप । तस्माच्छतगुणं पुण्यं नीललोहितदर्शनात् ॥११॥
नीललोहितकुंडे वै स्नातो यस्त्रिदिनं नरः । स याति शिवलोकाख्यं पापायुतयुतोऽपि हि ॥१२॥
सप्तसामुद्रकं नाम तीर्थं यत्र विराजते । तत्र स्नात्वा नरः पापी पापसंघैः प्रमुच्यते ॥१३॥
सप्तानां च समुद्राणां स्नानपुण्यं लभेत्त्वरम् । विष्णुर्विरिंचो गिरिश इंद्रो वायुर्यमो रविः ॥१४॥
पर्जन्यो धनदः सोमः क्षितिरग्निरपां पतिः । तत्पार्श्वेषु सदा ह्येते तिष्ठन्ति मनुजेश्वर ॥१५॥
सप्तकोटीनि तीर्थानि ब्रह्मांडे यानि कानि च । सर्वाणि तत्र तिष्ठन्ति सप्तसामुद्रके नृप ॥१६॥
तत्र स्नात्वा नरः पश्चात्कृत्वा सर्वपरिक्रमाम् । प्राप्नोति द्वारकायाश्च यात्रायाः सकलं फलम् ॥१७॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! भगवान्‌के द्वितीय दुर्गके पूर्वद्वारपर परम पवित्र, कामना पूर्ण करनेवाला और सर्वसिद्धिदायक इन्द्रतीर्थ है ॥ १ ॥ उसमें स्नान करके मनुष्य इन्द्रलोक जाता है। यहाँ ही उसे चन्द्रमाके सदृश वैभव प्राप्त हो जाता है ॥ २ ॥ वहाँके दक्षिणी द्वारपर सूर्यकुण्ड है। उसी कुण्डपर सत्राजित्‌ने स्यमन्तक मणिकी पूजा की थी ॥ ३ ॥ उस कुण्डमें स्नान करके जो पद्मरागमणि दान देता है, वह मनुष्य सूर्यसदृश तेजस्वी विमानपर बैठकर सूर्यलोकको जाता है ॥ ४ ॥ उसके पश्चिमी द्वारपर ब्रह्मतीर्थ है। उसमें स्नान करके जो मनुष्य स्वर्णपात्रमें खीरका दान देता है, उसका पुण्यफल सुनिए। ऐसा दान करनेवाला मनुष्य यदि ब्रह्मघाती, गोघाती, मातृघाती या गुरुघाती हो तो भी वह इन्द्रलोकमें पहुँचकर ब्रह्ममय देह धारण करके चन्द्रमा सदृश शुभ्र विमान द्वारा ब्रह्मलोकमें जा पहुँचता है ॥ ५–७ ॥ उसके उत्तरी द्वारपर नीललोहित तीर्थ है। जहाँ साक्षात् महादेव नीललोहित विराजमान रहते हैं ॥ ८ ॥ हे मिथिलेश्वर ! सब देवता, मुनि, सप्तर्षि तथा मरुद्गण वहाँ निवास करते हैं ॥ ९ ॥ सब लोकोंको रुलानेवाले रावणने नीललोहित लिंगका पूजन करके अतुल ऐश्वर्य प्राप्त किया था ॥ १० ॥ कैलासकी यात्रासे जो फल मिलता है, उससे सौगुना अधिक फल नीललोहित लिंगके दर्शनसे प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ वहाँके नीललोहित कुण्डमें तीन दिन स्नान करनेवाला मनुष्य यदि दस हजार पापोंका पापी हो तो भी शिवलोकमें जा पहुँचता है ॥ १२ ॥ वहाँ ही सप्तसमुद्र तीर्थ है। उसमें स्नान करनेवाला मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ १३ ॥ उसे तत्काल सात समुद्रोंमें स्नान करनेका फल मिल जाता है। विष्णु, ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, पर्जन्य, कुबेर, चन्द्रमा, अग्नि और वरुण ये सब देवता सप्तसमुद्र तीर्थमें स्नान करनेवाले मनुष्यकी देहमें जा विराजते हैं ॥ १४ ॥ १५ ॥ इस ब्रह्माण्डमें जो सात करोड़ तीर्थ हैं, वे सब उस सप्तसमुद्र तीर्थमें निवास करते हैं ॥ १६ ॥ उसमें स्नान

सप्तसामुद्रकमृते न यात्रा फलदा स्मृता । सप्तसामुद्रकं तीर्थं विष्णुरूपं विदुः सुराः ॥१८॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीद्वारकाखंडे द्वितीयदुर्गे इंद्रतीर्थब्रह्मतीर्थसूर्यकुंडनैललोहित-सप्तसमुद्रमाहात्म्यं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

अथ एकविंशोऽध्यायः

(द्वारकाके तृतीय दुर्गमें स्थित पिंडारकतीर्थका माहात्म्य)

श्रीनारद उवाच

तृतीयस्यापि दुर्गस्य पूर्वद्वारे महाबलः । रक्षत्यहर्निशं राजन् हनूमानंजनीसुतः ॥ १ ॥
तं प्रेक्ष्य भगवद्भक्तं हनूमन्तं महाबलम् । जायते भगवद्भक्तो हनूमानिव मानवः ॥ २ ॥
तथा वै दक्षिणद्वारे चक्रं नाम सुदर्शनम् । रक्षत्यहर्निशं राजञ्छ्रीकृष्णगतमानसम् ॥ ३ ॥
तस्य दर्शनमात्रेण भवेद्भक्तो हरेः परः । भक्तस्यापि सदा रक्षां करोति हि सुदर्शनम् ॥ ४ ॥
तथा वै पश्चिमं द्वारं जाम्बवानृक्षराड्बली । रक्षत्यहर्निशं राजन् भगवद्भक्तिसंयुतः ॥ ५ ॥
तं प्रेक्ष्य भगवद्भक्तं जाम्बवन्तं महाबलम् । चिरंजीवी हरेर्भक्तो भवतीह च मानवः ॥ ६ ॥
तथा वै चोत्तरे द्वारे विष्वक्सेनो महाबलः । रक्षत्यहर्निशं राजञ्छ्रीकृष्णहृदयो महान् ॥ ७ ॥
तस्य दर्शनमात्रेण नरो याति कृतार्थताम् । शृणु राजन् बहिर्दुर्गात्तीर्थं पिंडारकं स्मृतम् ॥ ८ ॥
पिंडारकस्य माहात्म्यं शृणुताद्राजसत्तम । यस्य स्मरणमात्रेण महापापात्प्रमुच्यते ॥ ९ ॥
अर्थसिद्ध्योरिव द्वारे रैवताद्रिसमुद्रयोः । मध्ये पिंडारकक्षेत्रं तीर्थानां तीर्थमुत्तमम् ॥१०॥
क्रतुराजं राजसूयं यदुराजो महाबलः । चकार यत्र वैदेह परिपूर्णतमाज्ञया ॥११॥
सर्वाणि यत्र तीर्थानि समाहूतानि सर्वतः । निवासं चक्रिरे राजन्नुग्रसेनक्रतूत्तमे ॥१२॥
तेन पिंडारकं नाम सर्वतीर्थस्य पिंडतः । तत्र स्नात्वा नरः सद्यो राजसूयफलं लभेत् ॥१३॥

करनेके बाद जो मनुष्य उसकी परिक्रमा करता है, उसको द्वारकाकी यात्राका फल प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ द्वारकाकी यात्रा सप्तसमुद्र तीर्थमें स्नान किये बिना सफल नहीं होती । क्योंकि देवताओंने सप्तसमुद्र तीर्थको विष्णुरूप माना है ॥ १८ ॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां द्वारकाखण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! द्वारकाके तृतीय दुर्गके पूर्व द्वारपर रहकर महाबली अञ्जनीसुत हनुमान्जी रात-दिन दुर्गकी रक्षा करते हैं ॥ १ ॥ वहाँ उन परम बलवान् हनुमान्जीका दर्शन करनेवाला मनुष्य हनुमान्की तरह भगवद्भक्त हो जाता है ॥ २ ॥ उस दुर्गके दक्षिणी द्वारपर रहता तथा श्रीकृष्णका ध्यान करता हुआ सुदर्शन चक्र रात-दिन उसकी रखवाली करता है ॥ ३ ॥ उसका दर्शन करनेमात्रसे प्राणी भगवान्का परम भक्त बन जाता है और सुदर्शन चक्र भगवद्भक्तकी नित्य रक्षा करता है ॥ ४ ॥ उसके पश्चिमी द्वारकी बलवान् जाम्बवान् रक्षा करते हैं । वे रात-दिन भगवद्भक्तिमें मग्न रहते हैं ॥ ५ ॥ उन भक्त तथा महाबली जाम्बवान्का दर्शन करनेवाला मनुष्य चिरञ्जीवी तथा भगवद्भक्त बन जाता है ॥ ६ ॥ उसी प्रकार उसके उत्तरी द्वारकी महाबली विष्वक्सेन रात-दिन रखवाली करता है, उसका हृदय सदा श्रीकृष्णमें लीन रहता है ॥ ७ ॥ विष्वक्सेनका दर्शन करते ही मनुष्य कृतार्थ हो जाता है । हे राजन् ! उस दुर्गके बाहर पिंडारक तीर्थ है ॥ ८ ॥ अब आप उस पिंडारक तीर्थका माहात्म्य सुनिए, जिसका स्मरण करते ही मनुष्य महापापसे छूट जाता है ॥ ९ ॥ अर्थसिद्धिके द्वार सदृश रैवत पर्वत तथा समुद्रके मध्य सब तीर्थोंमें उत्तम पिण्डारक तीर्थ है ॥ १० ॥ महाबली यदुराज उग्रसेनने भगवान् कृष्णकी आज्ञासे वहाँ राजसूय यज्ञ किया था ॥ ११ ॥ उग्रसेनके उन उत्तम यज्ञमें सब ओरके सभी तीर्थ बुलाये गये थे और बादमें वे वहीं रह

तत्रैव त्रिदिनं स्नात्वा व्रती भूत्वा समाहितः । ब्राह्मणेभ्यः स्वर्णदानं दत्त्वा यः प्रणतो भवेत् ॥१४॥
इहैव नरदेवः स्यात्स महात्मा न संशयः । नित्यं शृणोति सततं बंदिवाग्भिर्यशः स्वयम् ॥१५॥
सुवर्णरत्नवस्त्राद्यैः सुचन्द्रवदनैः परैः । स्त्रीसंघैः सेवितो नित्यं हृष्टपुष्टो महाबलः ॥१६॥
अहोरात्रं प्रताड्यन्ते द्वारि दुन्दुभयो घनाः । करीन्द्राणां च चीत्कारैरश्वहेषैः समन्वितम् ॥१७॥
विराजते राजसंघैः प्रेक्षयन् प्राङ्गणाजिरम् । रत्नप्रासादनिचयं ध्वजमंडलमंडितम् ॥१८॥
मत्तकुञ्जरकर्णाभ्यां ताडिता भृङ्गमंडली । अलंकरोति तद्द्वारं मंडितं मंडलेश्वरैः ॥१९॥
पिंडारकस्नानमृते कथं राज्यं भवेदिह । अंते मोक्षं कथं याति नरः पापयुतोऽपि हि ॥२०॥

पिंडारकस्नानमृते न शर्म पिंडारकस्नानमृते न कर्म ।
पिंडारकस्नानमृते न धर्मः पिंडारकस्नानमृते न वर्म ॥२१॥
पिंडारकस्नानमृते वियोगी पिंडारकस्नानकरस्तु योगी ।
पिंडारकस्नानकरः सुभोगी पिंडारकस्नानकरो न रोगी ॥२२॥
द्वारावतीं माधवमासमध्ये प्रदक्षिणीकृत्य नमस्करोति ।
सर्वा इहामुत्र च सिद्धयोऽपि वैदेह तत्पाणितले भवन्ति ॥२३॥
तीर्थाप्लुतोऽधःशयनः शुचिश्च मौनी व्रती वा यवभोजनेन ।
आरभ्य चैत्रीं किल पौर्णमासीं यो माधवीमेत्य करोति यात्राम् ॥२४॥
तत्पुण्यसंख्यां गदितुं न शक्यश्चतुर्मुखो वेदमयो विधाता ।
यो मेघधारां गणयेत्कदाचित् कालेन पुण्यानि न कृष्णपुर्याः ॥२५॥

गये ॥ १२ ॥ सब तीर्थोंके पिण्डीकृत (एकत्रित) होनेसे उसका पिंडारक नाम पड़ गया। उसमें स्नान करनेसे तत्काल राजसूय यज्ञका फल प्राप्त हो जाता है ॥ १३ ॥ वहाँ तीन दिन स्नान करके जितेन्द्रिय व्रतका पालन करता हुआ रहे। सावधानीसे ब्राह्मणोंको स्वर्णदान देकर उनको प्रणाम करे ॥ १४ ॥ ऐसा करनेवाला मनुष्य इस लोकमें ही राजा होकर बन्दीजनोंके मुखसे अपना यशोगान सुनने लगता है ॥ १५ ॥ सुवर्ण, रत्न और वस्त्रसे अलंकृत चन्द्रवदनी स्त्रियोंका झुण्ड उसकी सेवा करता है। उसका शरीर भी नित्य हृष्ट-पुष्ट तथा बलवान् बना रहता है ॥ १६ ॥ रात-दिन उसके द्वारपर नगाड़े बजा करते हैं और बड़े-बड़े हाथियोंके चिग्घाड़ और घोड़ोंकी हिनहिनाहट सुनाई देती रहती है ॥ १७ ॥ बड़े-बड़े राजाओंके साथ अपने महलके प्राङ्गणमें बैठकर वह अपना राज-काज देखता है। उसके पास रत्नजटित तथा ध्वजविमण्डित प्रासादोंका समूह विद्यमान रहता है ॥ १८ ॥ मतवाले हाथियोंके कानोंसे प्रताडित भ्रमरोंकी मण्डली तथा मण्डलेश्वर राजाओंसे उसका द्वार नित्य अलंकृत रहता है ॥१९॥ पिंडारक तीर्थमें स्नान किये बिना किसीको कैसे राज्य मिलेगा और कैसे पापी मनुष्यको मोक्ष मिलेगा ॥२०॥ पिंडारक तीर्थमें स्नान किये बिना न कल्याण लाभ होता है और न कोई सत्कर्म ही हो पाता है। पिंडारकमें स्नान किये बिना न धर्म होता है और न उसकी रक्षा ही होती है ॥ २१ ॥ जबतक मनुष्य पिंडारकमें स्नान नहीं करता, तबतक योगी ही वियोगी बना रहता है, पिंडारकमें स्नान कर लेनेपर वह सच्चा योगी बन जाता। पिंडारकमें स्नान करके मनुष्य सुयोगी बन जाता है और उसे कोई रोग नहीं होता ॥२२॥ हे वैदेह! वैशाख मासके मध्य जो मनुष्य द्वारकापुरीकी परिक्रमा तथा नमस्कार करता है। उस मनुष्यको इहलोक तथा परलोककी सारी सिद्धियाँ हस्तगत हो जाती हैं ॥ २३ ॥ चैत्रमासकी पूर्णिमाको यात्रा आरम्भ करके वैशाखी पूर्णिमाको पूर्ण करे। इस बीच महीना भर तीर्थस्नान करे, जमीनपर सोये, सदा पवित्र रहे, मौनव्रतका पालन करे और केवल जौ खाय ॥ २४ ॥ ऐसा करनेवाले व्रतीकी पुण्यसंख्या बतानेमें चतुर्मुख एवं वेदमय विधाता भी समर्थ नहीं हो सकते। हो सकता है कि कोई गणितज्ञ कुछ समय गणित करके मेघकी बूँदोंको गिन ले, किन्तु कृष्णपुरी (द्वारका) के यात्रीकी पुण्यसंख्याको कोई

यथा तिथीनां हरिवासरं च यथा हि शेषः फणिनां फणींद्रः ।
यथा गरुत्मान् दिवि पक्षिणां च यथा पुराणेषु च भारतं च ॥२६॥
यथा हि देवेषु च देवदेवः श्रीवासुदेवो यदुदेवदेवः ।
तथा पुरी क्षेत्रसमस्तमध्ये द्वारावती पुण्यवती प्रशस्ता ॥२७॥
अहोऽतिधन्या यदुमंडलीभिर्विराजते भूमितले मनोहरा ।
वैकुंठलीलाधिकृता कुशस्थली यथा तडिद्भिर्जलदावलिर्दिवि ॥२८॥
यत्रैव साक्षात्पुरुषः परेश्वरो धृत्वा चतुर्व्यूहमलं विराजते ।
यस्तूग्रसेनाय ददौ नृपेशतां कृष्णाय तस्मै हरये नमो नमः ॥२९॥
यदा स्वलोकं भगवान् गमिष्यति संप्लावयिष्यत्यथ तां तदार्णवः ।
वैदेह दिव्यं हरिमंदिरं विना तस्मिन्निवासं भगवान्करिष्यति ॥३०॥
शृण्वंति तत्रैव कलौ जलध्वनिं कृष्णोक्तमित्थं सततं दिने दिने ।
भवेदविद्यो यदि वा सविद्यो यो ब्राह्मणो वै स तु मामकी तनुः ॥३१॥
भूत्वाऽथ विप्रोऽब्धितटादगाधं गत्वा गृहीत्वा प्रतिमां परस्य ।
कृत्वा प्रतिष्ठां च विधाय सौधं करिष्यते स्थापनमर्क एषः ॥३२॥
श्रीद्वारकानाथमिति स्वरूपं पश्यंति ये भक्तजनाः कलौ युगे ।
गच्छंति ते विष्णुपदं नृदेव योगीश्वराणामपि दुर्लभं यत् ॥३३॥
इदं मया ते कथितं नृदेव माहात्म्यमेतत् किल कृष्णपुर्याः ।
शृणोति यः श्रावयते च भक्त्या श्रीद्वारकावासफलं लभेत्सः ॥३४॥
श्रीद्वारकाया नृप खंडमेतन्मया तवाग्रे कथितं सुपुण्यम् ।
कीर्तिं कुलं भक्तिमतीव मुक्तिं ददाति राज्यं च सदैव शृण्वताम् ॥३५॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीद्वारकाखण्डे नारदबहुलाश्वसंवादे तृतीये दुर्गे पिंडारकमाहात्म्यं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

नहीं गिन सकता ॥ २५ ॥ जैसे तिथियोंमें एकादशी उत्तम है, सर्पोमें शेष उत्तम हैं, पक्षियोंमें गरुड़, पुराणोंमें महाभारत और जैसे देवताओंके भी देवता और यदुदेवोंके देव श्रीकृष्ण सर्वश्रेष्ठ हैं, वैसे ही सब क्षेत्रों तथा पुरियोंमें द्वारकापुरी श्रेष्ठ है ॥ २६ ॥ २७ ॥ अहो ! इस भूमिपर मनोहारिणी द्वारकापुरी अतीव धन्य है । क्योंकि इसमें यादवोंकी मण्डली विराजती है, जो वैकुण्ठ-लीलाकी अधिकारिणी है । जैसे विजलीयुक्त घनावली सोहती है, वैसे ही द्वारकापुरी सोह रही है ॥ २८ ॥ जहाँ साक्षात् परेश्वर कृष्ण चतुर्व्यूहस्वरूप धारण करके विराजते हैं और जिन्होंने उग्रसेनको राज्य दिया । उन भगवान् कृष्णको नमस्कार है—नमस्कार है ॥ २९ ॥ जब भगवान् अपने परमधामको चले जायँगे, तब समुद्र द्वारकापुरीको डुबा देगा । उस समय भी कृष्ण-मन्दिर बचा रहेगा और उसमें भगवान् विराजेंगे ॥ ३० ॥ इस कलिकालमें भी भगवान् श्रीकृष्णकी यह वाणी जलध्वनिके रूपमें सुनायी देती है कि ब्राह्मण मूर्ख हो या साक्षर, वह मेरा शरीर है ॥ ३१ ॥ ब्राह्मण होकर जो समुद्रके अगाध जलमें परमेश्वरकी प्रतिमा लाकर स्थापित करे और उसका मन्दिर बनाये, उसको सूर्य मानो ॥३२॥ जो मनुष्य कलियुगमें द्वारकानाथका दर्शन करेंगे, वे योगीश्वरोंके लिए भी अगम्य विष्णुपद प्राप्त करेंगे ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार मैंने द्वारकापुरीका माहात्म्य बताया । जो भक्तिपूर्वक इसको सुने या सुनाये, उसे द्वारकावासका फल मिलता है ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! यह पुनीत द्वारकाखण्ड मैंने तुम्हारे समक्ष

स्वर्णपात्रेण तस्यापि पादौ प्रक्षाल्य तज्जलम् । गृहीत्वा शिरसा तं तु पर्यङ्क उपवेश्य च ॥२६॥
अर्चनं कृतवान् गन्धचन्दनागुरुकुंकुमैः । पक्वान्नैर्धूपदीपैश्च मधुपर्कविधानतः ॥२७॥
पश्चाद्दत्त्वा ताम्बूलं गाञ्च स्वागतमब्रवीत् । वृद्धं कुचैलं मलिनं दुर्बलं श्वेतमूर्द्धजम् ॥२८॥
मित्रविन्दा पर्यचन्द्रव्यजनेन सितान्विता । श्रीकृष्णस्य प्रियाः सर्वा विस्मिता जहसुस्तदा ॥२९॥
ऊचुः परस्परं नार्यः प्रेक्ष्य विप्रं समर्चितम् । भिक्षुणा ह्यवधूतेन किमनेन कृतं तपः ॥३०॥
येन त्रैलोक्यनाथेन सत्कृतश्चाग्रजो यथा । एतस्मिन्नन्तरे तौ द्वौ कथयाञ्चक्रतुः कथाः ॥
पूर्वा गुरुकुले जाता हस्तौ गृह्य परस्परम् ॥३१॥

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु ब्रह्मन् प्रपठिता सर्वविद्या त्वया मया । गुरवे दक्षिणां दत्त्वा पुनस्त्वं नैव दृश्यसे ॥३२॥
अहं तु द्वारकां यातो जरासन्धभयात् सखे । कुत्र स्थले तव विभो निवासो वद मे खलु ॥३३॥
कदाचिदिन्धनार्थे वै गुरुदारैः प्रणोदिताः । विद्यार्थिनो वयं सर्वे वनं जग्मुर्भयङ्करम् ॥३४॥
विपत्तिरभवत्तत्र वातवर्षभयङ्करी । रविरस्तं गतो रात्र्यामन्धकारोऽभवन्महान् ॥३५॥
सर्वं जलमयं जातं स्थलं नैव तु दृश्यते । वयं परस्परं सर्वे गृहीतकरपङ्कजाः ॥३६॥
विद्युत्प्रकाशे पश्यन्तो दिक्षु सर्वासु वभ्रमुः । ततः सूर्योदये जाते गुरुः सान्दीपनिर्महान् ॥३७॥
जले शिष्यांश्च शीतार्तान् वनं गत्वा ददर्श ह । जलात् सर्वान् स्थले कृत्वा गुरुरश्रुपरिप्लुतः ॥३८॥
उवाच बालका यूयमस्मदाज्ञापरायणाः । श्रेष्ठस्तु प्राणिनामात्मा तमनादृत्य मत्पराः ॥३९॥
तस्माद्भवद्भ्यः सन्तुष्टो वरं दास्यामि दुर्लभम् । भवतां चापि सर्वत्र पूर्णाः सन्तु मनोरथाः ॥४०॥
वेदशास्त्रपुराणानि कण्ठस्थानि भवन्तु हि । तस्माद्गुरोश्च कृपया पूर्णोऽहं सर्वसौख्यतः ॥४१॥

प्रियोवाच

विनाज्ञां नैव यास्यन्ति देवगन्धर्वकिन्नराः । अन्तर्यामी हरिः शीघ्रं दूतैस्त्वामाह्वयिष्यति ॥१३॥

विप्र उवाच

दयालुरीदृशः कृष्णो परन्तु शृणु भामिनि । विपत्तिकाले मित्रस्य न गच्छेद् गृहमुत्तमम् ॥१४॥
कथं तु याचनां कुर्वे चिराद्दृष्ट्वा स्वकं प्रियम् । निर्लोभात्तु भवेत् प्रीतिर्याचनात्तु गमिष्यति ॥१५॥

प्रियोवाच

दुःखदारिद्र्यहरणं श्रीहरेर्दर्शनं कुरु । याचना नैव कर्तव्या स तेऽर्थं बहु दास्यति ॥
एवं तु प्रियया विप्रो बहुधैवं प्रभाषितः ॥१६॥
अयं हि परमो लाभः कृत्वा मित्रस्य दर्शनम् । उपायनं तु किं दास्ये लज्जितोऽहं दरिद्रतः ॥१७॥
इत्युक्त्वा सा गता शीघ्रं परगेहं तदा सती । तण्डुलांश्चतुरो मुष्टीन् याचित्वा स्वगृहं ययौ ॥१८॥
जीर्णकर्पटखण्डे च बद्ध्वा तान् पतये ददौ ॥१९॥
ततो गृहीत्वा पृथुकांश्च तण्डुलान् कुचैलधारी मलिनश्च दुर्बलः ।
जगाम कृष्णस्य पुरीं शनैः शनैर्ब्रह्मण्यदेवं मनसा च संस्मरन् ॥२०॥
सोत्तीर्य सिन्धुमुडुपेन ददर्श तत्र श्रीद्वारकां हरिपुरीं कनकैर्विचित्राम् ।
श्रेणीसभाविविधदुर्गगृहैः पताकैः शृङ्गाटकैरतिबलैर्यदुभिश्च गुप्ताम् ॥२१॥
दृष्ट्वा कृष्णपुरीं विप्रो जनानापृच्छ्य श्रीहरेः । श्रीमन्दिरं तु कुत्रास्ते सर्वे वदत साम्प्रतम् ॥२२॥
इति श्रुत्वा माधवस्य भवनानाञ्च रक्षकाः । ऊचुस्ते वर्तते कृष्णः सर्वेषु मन्दिरेषु च ॥२३॥
इत्युपश्रुत्य सदनं प्रविश्यैकतमं द्विजः । महानन्दं गतः कृष्णं पर्यङ्कस्थं विलोक्य च ॥२४॥
सखायमागतं ज्ञात्वा सहसोत्थाय माधवः । दोर्भ्यां मिलित्वा चान्योन्यं प्रेम्णा ह्यश्रुकलाकुलः२५

गन्धर्व और किन्नर भी बिना आज्ञाके प्रवेश नहीं कर सकते, वहाँ मुझ-सरीखे दीनको कौन पूछेगा ॥ ११ ॥ १२ ॥ सत्या बोली—यह सत्य है कि उनकी आज्ञाके बिना देवता, गन्धर्व और किन्नर अन्दर नहीं जा सकते; परन्तु साक्षात् हरि तो अन्तर्यामी हैं, वे अपना दूत भेजकर आपको अन्दर बुला लेंगे ॥ १३ ॥ ब्राह्मणने कहा—हे भामिनि ! मेरी बात सुनो । श्रीकृष्ण अवश्य ही ऐसे दयालु हैं, परन्तु विपत्तिके समय धनवान् मित्रके घर जाना उचित नहीं है । विशेषतः बहुत दिनोंके बाद उन अन्तरङ्ग प्रेमास्पदको देखकर क्या उनसे याचना करूँगा ? लोभसे रहित होनेपर ही प्रेम हुआ करता है, माँगनेपर प्रेम नहीं रहा करता ॥ १४ ॥ १५ ॥ सत्या बोली—आप दुःख-दारिद्र्यका नाश करनेवाले श्रीकृष्णके दर्शन करें, माँगना नहीं होगा । वे अपने-आप ही प्रचुर सम्पत्ति दे देंगे ॥ १५ ॥ सुदामाने पत्नीके द्वारा बहुत तरहसे समझाये-बुझाये जानेपर यह विचार किया—'इस निमित्तसे मित्रके दर्शनका परम लाभ तो हो ही जायगा, परन्तु मैं उनको उपहार क्या दूँगा ? दरिद्रताके कारण कुछ देनेको है नहीं, इसीसे लज्जित हो रहा हूँ' ॥ १६ ॥ १७ ॥ पतिके मुखसे यह बात सुनकर सती ब्राह्मणी दूसरे घरसे चार मुट्ठी तन्दुल (चिउड़ा) माँग लायी और एक पुराने चिथड़ेमें बाँधकर उन्हें पतिको दे दिया । तदनन्तर सुदामाजी मैले कपड़ेसे अपने मैले-कुचैले दुर्बल शरीरको ढँक और उन चिउड़ोंको लेकर मन-ही-मन ब्रह्मण्यदेवका स्मरण करते हुए धीरे-धीरे श्रीकृष्णके नगरकी ओर चल दिये ॥ १८–२० ॥ ब्राह्मणने नौकासे समुद्र पार करके स्वर्णमयी विचित्र द्वारकापुरीके दर्शन किये । उस पुरीमें पताकाएँ फहरा रही थीं । कतार-की-कतार सभा-भवन और भाँति-भाँतिके दुर्ग सुशोभित थे । बलवान् यादव-वीर उसकी रक्षा कर रहे थे । उसमें चार सड़कें थीं ॥ २१ ॥ ब्राह्मणने श्रीकृष्णकी पुरी देखकर लोगोंसे पूछा—'श्रीकृष्णका भवन कौन-सा है ? यह बताइये ।' ॥ २२ ॥ इस बातको सुनकर माधवकी द्वारकापुरीके रक्षकोंने कहा—'सभी भवनोंमें श्रीकृष्ण हैं ।' ॥ २३ ॥ यह सुनकर सुदामा किसी एक भवनमें घुस गये और अन्दर जाकर देखा कि पलंगपर श्रीकृष्ण विराजमान हैं । उन्हें देखकर सुदामा

स्वर्णपात्रेण तस्यापि पादौ प्रक्षाल्य तज्जलम् । गृहीत्वा शिरसा तं तु पर्यङ्क उपवेश्य च ॥२६॥
अर्चनं कृतवान् गन्धचन्दनागुरुकुंकुमैः । पक्वान्नैर्धूपदीपैश्च मधुपर्कैर्विधानतः ॥२७॥
पश्चादावेद्य ताम्बूलं गाश्च स्वागतमब्रवीत् । वृद्धं कुचैलं मलिनं दुर्बलं श्वेतमूर्द्धजम् ॥२८॥
मित्रविन्दा पर्यचरद्व्यजनेन स्मितान्विता । श्रीकृष्णस्य प्रियाः सर्वा विस्मिता जहसुस्तदा॥२९॥
ऊचुः परस्परं नार्यः प्रेक्ष्य विप्रं समर्चितम् । भिक्षुणा ह्यवधूतेन किमनेन कृतं तपः ॥३०॥
येन त्रैलोक्यनाथेन सत्कृतश्चाग्रजो यथा । एतस्मिन्नन्तरे तौ द्वौ कथयाञ्चक्रतुः कथाः ॥
पूर्वा गुरुकुले जाता हस्तौ गृह्य परस्परम् ॥३१॥

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु ब्रह्मन् प्रपठिता सर्वविद्या त्वया मया । गुरवे दक्षिणां दत्त्वा पुनस्त्वं नैव दृश्यसे ॥३२॥
अहं तु द्वारकां यातो जरासन्धभयात् सखे । कुत्र स्थले तव विभो निवासो वद मे खलु ॥३३॥
कदाचिदिन्धनार्थे वै गुरुदारैः प्रणोदिताः । विद्यार्थिनो वयं सर्वे वनं जग्मुर्भयङ्करम् ॥३४॥
विपत्तिरभवत्तत्र वातवर्षभयङ्करी । रविरस्तं गतो रात्र्यामन्धकारोऽभवन्महान् ॥३५॥
सर्वं जलमयं जातं स्थलं नैव तु दृश्यते । वयं परस्परं सर्वे गृहीतकरपङ्कजाः ॥३६॥
विद्युत्प्रकाशे पश्यन्तो दिक्षु सर्वासु बभ्रमुः । ततः सूर्योदये जाते गुरुः सान्दीपनिर्महान् ॥३७॥
जले शिष्यांश्च शीतार्तान् वनं गत्वा ददर्श ह । जलात् सर्वान् स्थले कृत्वा गुरुरश्रुपरिप्लुतः ॥३८॥
उवाच बालका यूयमस्मदाज्ञापरायणाः । प्रेष्ठस्तु प्राणिनामात्मा तमनादृत्य मत्पराः ॥३९॥
तस्माद्भवद्भ्यः सन्तुष्टो वरं दास्यामि दुर्लभम् । भवतां चापि सर्वत्र पूर्णाः सन्तु मनोरथाः ॥४०॥
वेदशास्त्रपुराणानि कण्ठस्थानि भवन्तु हि । तस्माद्गुरोश्च कृपया पूर्णोऽहं सर्वसौख्यतः ॥४१॥

ब्रह्मानन्दकी प्राप्ति हुई ॥ २४ ॥ माधवने सखा सुदामाको आया देख सहसा उठकर उन्हें अपने बाहुपाशमें बाँधकर हृदयसे लगा लिया और वे आनन्दके आँसू बहाने लगे ॥ २५ ॥ तदनन्तर स्वर्ण-पात्रमें भरे जलके द्वारा उनके दोनों चरणोंका प्रक्षालन किया और उस जलको अपने मस्तकपर धारण करके ब्राह्मणको अपने पलंगपर बैठा लिया ॥ २६ ॥ फिर गन्ध, चन्दन, अगुरु, कुङ्कुम, धूप, दीप, मधुपर्क और पक्वान्नके द्वारा उनकी पूजा की ॥ २७ ॥ पश्चात् पानका बीड़ा देकर गोदान किया और मलिन-वस्त्रधारी दुबले-पतले, पके बालोंवाले ब्राह्मणसे पधारनेका कारण पूछा ॥ २८ ॥ मित्रविन्दाजी मुस्कुराती हुई पंखेके द्वारा सुदामाजीकी सेवा करने लगीं। श्रीकृष्णकी सब पटरानियाँ विस्मित होकर हँसने लगीं और ब्राह्मणको इस प्रकार पूजित देखकर परस्पर कहने लगीं—'इस भिखारीने कौन-सी तपस्या की है, जिससे स्वयं त्रैलोक्यनाथ बड़े भाईकी तरह इसका सत्कार कर रहे हैं।' इसी बीच दोनों मित्र आपसमें हाथ पकड़े हुए गुरुके घरकी पुरानी बातें करने लगे ॥ २९–३१ ॥ श्रीकृष्ण बोले—हे ब्रह्मन्! सुनो। हम दोनोंने वहां सारी विद्याओंका अध्ययन साथ-साथ किया है, परन्तु गुरु-दक्षिणा देनेके बाद तुमसे मिलना नहीं हुआ। ३२ ॥ मैं जरासन्धके भयसे द्वारका चला आया। हे सखे! तुम कहां रहते हो, बताओ ॥ ३३ ॥ तुम्हें याद होगा, एक दिन गुरु-पत्नीकी आज्ञासे हम विद्यार्थीगण लकड़ी लानेके लिये भयंकर वनमें गये थे ॥ ३४ ॥ वहां जानेपर वर्षा और तूफानके मारे भयानक विपत्तिमें पड़ गये। सूर्य अस्त हो गया और रात्रिका घोर अन्धकार छा गया ॥३५॥ सब जगह जल-ही-जल हो रहा था, जमीन कहीं दिखाई नहीं देती थी। हम परस्पर हाथ पकड़े बिजलीके प्रकाशमें सब जगह इधर-उधर घूमते रहे। फिर सूर्योदय होनेपर महामना गुरु सांदीपनिजीने वनमें आकर जलमें सर्दीसे ठिठुरते हुए हम छात्रोंको दर्शन दिया। गुरुकी आँखें आंसू बहा रही थीं। उन्होंने हम सबको जलसे निकाल-कर जमीनपर लाकर कहा—'मेरे बच्चो! तुम मेरी आज्ञाका पूरा पालन करनेवाले शिष्य हो। प्राणियोंके लिये सबसे प्रिय आत्मा है। तुमने उसका भी अनादर करके मुझको प्रधानता दी, इसलिये मैं सन्तुष्ट होकर तुम लोगोंको दुर्लभ वर दे रहा हूँ कि 'तुमलोगोंकी सब अभिलाषाएँ पूर्ण हों ॥३६–४०॥ वेद और पुराणादि शास्त्र

निजगेहं तया युक्तः श्रीकृष्णभवनोपमम् । भोजनैर्द्रव्यरत्नैश्च पर्यङ्कव्यजनासनैः ॥७४॥
वितानैः स्वर्णपात्रैश्च तोरणैः समलंकृतम् । दृष्ट्वा कृष्णस्य कृपया सुदामा तरुणोऽभवत् ॥७५॥
बुभुजेऽलम्पटो विप्रः समृद्धिं स्वामहैतुकीम् । मनसा जायया त्यक्ष्यञ्ज्ञानवैराग्यभक्तितः ॥७६॥
चकार तर्कनां विप्रः कुतो मम समृद्धयः । दत्ता ब्रह्मण्यदेवेन देवानामपि दुर्लभाः ॥७७॥
ईदृशीं सम्पदं दत्त्वा नावोचत् किमपि स्वयम् । मम तण्डुलमुष्टिश्च प्रीत्या प्रत्यग्रहीद्धरिः ॥७८॥
तस्य सख्यञ्च दास्यञ्च भूयान्मे जन्मजन्मनि । तत्पदाम्बुरुहध्यानात् तरिष्येऽहं भवार्णवम् ॥७९॥

विचिन्त्य चेत्थं मनसा सुदामा पत्न्यावृतः कृष्णपदारविन्दे ।
मनश्च कृत्वा धनमेव विप्रान् दत्त्वा हरेर्धाम परं जगाम ॥८०॥

एतच्छ्रीकृष्णदेवस्य चरितं शृणुयान्नरः । दारिद्र्यान्मुच्यते शीघ्रं भक्तो भगवतो भवेत् ॥८१॥

श्रीद्वारकाया नृप खण्डमेतन्मया तवाग्रे कथितं सुपुण्यम् ।
कीर्तिं कुलं भक्तिमतीव मुक्तिं ददाति राज्यञ्च सदैव शृण्वताम् ॥८२॥

इति श्रीगर्गसंहितायां द्वारकाखण्डे नारदबहुलाश्वसंवादे सुदामविप्रोपाख्यानवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

श्वोभूते स्वगृहान् गन्तुं कृष्णं नत्वा मनो दधे । स चाज्ञप्तो भगवता वन्दितः परिरम्भितः ॥५७॥
याचना न कृता तेन व्रीडितः स्वगृहान् ययौ । ब्रह्मण्यता मया दृष्टा विप्रदेवस्य श्रीपतेः ॥५८॥
अहं दरिद्रः कृष्णस्य बाहुभ्यां परिरम्भितः । प्रियाजुष्टे च पर्यङ्के भ्रातेव स्थापितो द्विजः ॥५९॥
वीजितो व्यजनेनापि रुक्मिण्या सत्यभामया । निर्द्धनस्तु धनं लब्ध्वा श्रीपतिं नैव संस्मरेत् ॥६०॥
इत्थं करुणया मह्यं धनं कृष्णो न दत्तवान् । इत्थं विचारयन् गच्छन् संस्मरन्ब्राह्मणीं रुषा ॥६१॥
गृहाण धनकोटिश्च गृहं गत्वा ब्रवीम्यहम् । ब्रह्मण्यदेवो दाता च श्रीकृष्णोऽयं मया श्रुतः ॥६२॥
प्रत्यक्षदृष्टः कृपणो गर्वितो धनपूरितः । शापं दास्ये कथं मित्रे धनलोभादहं वृथा ॥६३॥
यादृशी मे कृता प्रीतिस्तादृशीं प्रापयिष्यति । पितरावस्य कंसेन कारागरे कृतौ पुरा ॥६४॥
कृष्णस्तु नन्दसदने परगेहे च वर्द्धितः । स दास्यति कथं द्रव्यं धनयुक्तोऽपि निर्धनः ॥६५॥
रत्नैः प्रपूरितान् गेहान् दृष्ट्वा वाञ्छां न कारयेत् । ललाटे लिखितं यद्यत्र तन्न्यूनं भविष्यति ॥६६॥
इति सङ्कथयन् विप्रो निजपूर्यन्तिके गतः । सुवर्णदुर्गसंयुक्तां कपाटध्वजमण्डिताम् ॥६७॥
तोरणैः कलशैश्चित्रैः प्रासादैः सुजनैर्वृताम् । द्वारकामिव शोभाढ्यां सर्वरत्नैः प्रपूरिताम् ॥६८॥
दृष्ट्वा विप्रस्तु किमिदं कस्य स्थानमिति ब्रुवन् । रथ्यां रथ्यां भ्रमन्तं तं प्रत्यगृह्णन् स्त्रियो नराः ६९॥
नागच्छन्तं द्विजं दृष्ट्वा किङ्कर्यः किङ्करास्तथा । स्वामिन्यै कथयामासुः श्रुत्वा सा विस्मयं गता ७०
भर्तारमागतं श्रुत्वा पत्नी सम्भ्रमसंयुता । निश्चक्रामालयात्तूर्णं साक्षाच्छ्रीरिव रूपिणी ॥७१॥
ब्राह्मणी शिविकारूढा दासीदासगणैर्वृता । भ्रमन्तमग्रहीद्विप्रं दर्शयित्वा स्वकं मुखम् ॥७२॥

दृष्ट्वा स्फुरन्तीं तरुणीश्च भार्यां स्वर्णाम्बरैं रत्नविभूषणाढ्याम् ।
यथेन्दिरां रूपवतीं विमाने मुदान्वितः कृष्णकृपाश्च मेने ॥७३॥

माँगी। भगवान्ने अनुमति देकर वन्दन और आलिङ्गन किया ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ब्राह्मण लज्जावश कुछ भी न माँगकर घर लौट चले और एक ब्राह्मणके प्रति श्रीकृष्णकी श्रद्धा देखकर मन-ही-मन सोचने लगे ॥ ५८ ॥ दरिद्र होनेपर भी श्रीकृष्णने मुझे अपनी दोनों भुजाओंमें भरकर मेरा आलिङ्गन किया। मेरे-सरीखे दरिद्र ब्राह्मणको पर्यङ्कपर बैठाकर भाईके समान आदर दिया ॥ ५९ ॥ रुक्मिणी-सत्यभामाने व्यजनके द्वारा मेरी सेवा की। मैं निर्धन धन पाकर रमापति भगवान्को भूल न जाऊँ—इसीसे करुणावश उन्होंने मुझे धन नहीं दिया' वे इस प्रकार विचारते हुए पत्नीका स्मरण करके सोचने लगे—"मैं घर जाकर कह दूँगा–'यह लो, कोटि-कोटि धनराशि ग्रहण करो। श्रीकृष्ण ब्रह्मण्यदेव हैं, दाता हैं, पर तुम्हारे लिये तो कृपण ही रहे। धनके लोभसे मैं अपने मित्रको व्यर्थ शाप कैसे दूँ ॥ ६०–६३ ॥ जैसी प्रीति उन्होंने मुझसे की है, वह उनके आगे आयेगी। इनके माता-पिता कारागारमें बन्द थे। तब ये श्रीकृष्ण नन्दके घरमें पले। तब धन रहते हुए भी हृदयके निर्धन ये मुझे धन कैसे देंगे ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ दूसरेके घरको रत्नोंसे भरा देखकर कोई कामना नहीं करनी चाहिये। ललाटमें जो कुछ विधिने लिखा है, उससे अन्यथा नहीं होता।" ॥६६॥ मन-ही-मन यों कहते हुए सुदामाजी अपनी पुरीमें आ पहुँचे। पुरीको देखकर वे चकित हो गये। बड़े-बड़े दरवाजों तथा ध्वजाओंसे सुशोभित सोनेके किले और महल खड़े हैं ॥६७॥ विचित्र तोरण और कलशोंसे वह सुशोभित है। सारी नगरी सज्जनोंसे भरी है और उसमें इतने रत्न हैं कि दूसरी द्वारकापुरीकी-सी ही शोभा हो रही है ॥ ६८ ॥ ब्राह्मणने कहा—'यह क्या है? यह किसका स्थान है?' वे रास्ते चलते रहे। नगरके नर-नारियोंने उन्हें साथ ले चलना चाहा; पर वे गये नहीं। यह देखकर दास-दासियोंने अपनी स्वामिनी (सुदामाकी पत्नी) के पास जाकर सुदामाजीके आनेकी बात कही। उनको बड़ा आनन्द हुआ और वे साक्षात् लक्ष्मीरूपा ब्राह्मणी बड़े सम्मानके साथ पतिके स्वागतके लिये शिविकापर सवार होकर दास-दासियोंके साथ घरसे निकलीं। सुदामा इधर-उधर घूम रहे थे। पत्नीने अपना मुख दिखाकर उन्हें विश्वास कराया ॥ ६९–७२ ॥ सुदामाजी स्वर्ण-रत्नादिसे विभूषित, प्रभा और रूपसे सम्पन्न, विमानवासिनी दूसरी लक्ष्मीकी तरह अपनी तरुणी भार्याको देखकर बड़े

निजगेहं तया युक्तः श्रीकृष्णभवनोपमम् । भोजनैर्द्रव्यरत्नैश्च पर्यङ्कव्यजनासनैः ॥७४॥
वितानैः स्वर्णपात्रैश्च तोरणैः समलंकृतम् । दृष्ट्वा कृष्णस्य कृपया सुदामा तरुणोऽभवत् ॥७५॥
बुभुजेऽलम्पटो विप्रः समृद्धिं स्वामहैतुकीम् । मनसा जायया त्यक्ष्यञ्ज्ञानवैराग्यभक्तितः ॥७६॥
चकार तर्कनां विप्रः कुतो मम समृद्धयः । दत्ता ब्रह्मण्यदेवेन देवानामपि दुर्लभाः ॥७७॥
ईदृशीं सम्पदं दत्त्वा नावोचत् किमपि स्वयम् । मम तण्डुलमुष्टिश्च प्रीत्या प्रत्यग्रहीद्धरिः ॥७८॥
तस्य सख्यञ्च दास्यञ्च भूयान्मे जन्मजन्मनि । तत्पदाम्बुरुहध्यानात् तरिष्येऽहं भवार्णवम् ॥७९॥

विचिन्त्य चेत्थं मनसा सुदामा पत्न्यावृतः कृष्णपदारविन्दे ।
मनश्च कृत्वा धनमेव विप्रान् दत्त्वा हरेर्धाम परं जगाम ॥८०॥

एतच्छ्रीकृष्णदेवस्य चरितं शृणुयान्नरः । दारिद्र्यान्मुच्यते शीघ्रं भक्तो भगवतो भवेत् ॥८१॥

श्रीद्वारकाया नृप खण्डमेतन्मया तवाग्रे कथितं सुपुण्यम् ।
कीर्तिं कुलं भक्तिमतीव मुक्तिं ददाति राज्यञ्च सदैव शृण्वताम् ॥८२॥

इति श्रीगर्गसंहितायां द्वारकाखण्डे नारदबहुलाश्वसंवादे सुदामविप्रोपाख्यानवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

प्रसन्न हुए और उन्होंने समझा—'यह सब श्रीकृष्णकी ही कृपा है' ॥ ७३ ॥ भोजनकी सामग्री, रत्न, ऐश्वर्य, पर्यङ्क, व्यजन, आसन, चँदोवे, स्वर्णपात्र और तोरण आदिसे सुसज्जित अपनी पुरीमें सुदामाजीने पत्नीके साथ प्रवेश किया ॥ ७४ ॥ उनका घर तो श्रीकृष्णके भवनके समान हो गया था। श्रीकृष्णकी कृपासे सुदामा भी तरुण हो गये, पर विषयोंसे सर्वथा अनासक्त रहकर वे बिना किसी हेतुके—अनायास प्राप्त हुई समृद्धिका उपभोग करने लगे। वे अपनी पत्नीके साथ ज्ञान, वैराग्य और भक्तिके द्वारा उस सम्पत्तिको त्यागनेका विचार करके मन-ही-मन सोचने लगे—'मेरे पास इतनी समृद्धि कहाँसे आयी ? यह देव-दुर्लभ सम्पत्ति ब्रह्मण्यदेव श्रीकृष्णकी ही दी हुई है ॥ ७५–७७ ॥ इतनी सम्पत्ति देकर भी उन्होंने स्वयं मुझसे कुछ कहा नहीं। मेरे चिउड़ोंके दानोंको मुट्ठीमें लेकर बड़ी प्रीतिसे उन्होंने भोग लगाया ॥ ७८ ॥ जन्म-जन्ममें मुझे उन्हींका सख्य और दास्य प्राप्त हो। मैं उनके चरणकमलोंका ध्यान करके संसार-सागरसे पार हो जाऊँगा' ॥ ७९ ॥ सुदामाने मन-ही-मन इस प्रकारका निश्चय करके पत्नीके साथ श्रीकृष्णके चरणारविन्दमें अपना मन लगा दिया और सारा धन ब्राह्मणोंको बाँटकर भगवान्‌के धाममें चले गये ॥ ८० ॥ जो मनुष्य इस श्रीकृष्ण-चरितका श्रवण करता है, वह दरिद्रतासे मुक्त होकर उत्तम भगवद्भक्त हो जाता है ॥ ८१ ॥ हे नरेश्वर! तुम्हारे सामने इस पुण्यमय द्वारकाखण्डका वर्णन किया गया। जो इस खण्डका सदा श्रवण करते हैं, उन्हें उत्तम कीर्ति, कुल, अतिशय श्रेष्ठ भुक्ति-मुक्ति और राज्य प्राप्त होता है ॥८२॥ इति श्रीगर्गसंहितायां द्वारकाखण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

* इति षष्ठो द्वारकाखण्डः सम्पूर्णः *

* श्रीकृष्णः शरणं मम *

आचार्य-श्रीगर्गमहामुनिविरचिता—

श्रीगर्गसंहिता

'प्रियंवदा'ऽभिधया भाषाटीकयाऽऽटीकि

(विश्वजित्खण्डः ७)

अथ प्रथमोऽध्यायः

(मरुत्तोपाख्यानम्)

श्रीभगवानुवाच

नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय साक्षिणे । प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः संकर्षणाय च ॥ १ ॥
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानांजनशलाकया । चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ २ ॥

श्रीगर्ग उवाच

इत्थं श्रीकृष्णचरितं मया ते कथितं मुने । चतुष्पदार्थदं नृणां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ३ ॥

शौनक उवाच

बहुलाश्वो मैथिलेंद्रः श्रीकृष्णेष्टो हरिप्रियः । किं पप्रच्छाथ देवर्षिं तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥ ४ ॥

श्रीगर्ग उवाच

उग्रसेनं यादवेंद्रं श्रीकृष्णेन कृतं मुने । श्रुत्वाऽतिविस्मितो राजा नारदं प्राह मैथिलः ॥ ५ ॥

बहुलाश्व उवाच

को वाऽयं मरुतो राजा केन पुण्येन भूतले । यादवेंद्रो महाबुद्धिरुग्रसेनो बभूव ह ॥ ६ ॥
यस्य श्रीकृष्णचन्द्रोऽपि सहायोऽभूद्धरिः स्वयम् । तस्याहो महिमानं मे ब्रूहि देवर्षिसत्तम ॥ ७ ॥

श्रीनारद उवाच

सूर्यवंशोद्भवो राजा चक्रवर्ती कृते युगे । यज्ञं चकार विधिवन्मरुतो यो जगज्जितः ॥ ८ ॥
महासम्भृतसम्भारैर्हिमाद्रेः पार्श्व उत्तरे । संवर्तं मुनिशार्दूलं गुरुं कृत्वा हि दीक्षितः ॥ ९ ॥

हे भगवान् ! हे वासुदेव ! हे सर्व साक्षिन् ! आपको नमस्कार है । आप ही प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और संकर्षण हैं ॥ १ ॥ जिसने अपनी ज्ञानाञ्जनरूपिणी शलाका (सलाई) द्वारा मुझ अज्ञानान्धकी आँख खोल दी, उन गुरुदेवको हमारा नमस्कार है ॥ २ ॥ श्रीगर्गजी बोले—हे शौनकादि मुनियो ! इस प्रकार मनुष्योंको धर्म, अर्थ, काम और मोक्षदायक श्रीकृष्णचरित्र मैंने तुम्हें सुनाया । अब और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ ३ ॥ शौनक मुनिने कहा—हे तपोधन ! श्रीकृष्णके अनन्य भक्त और भगवत्प्रिय राजा बहुलाश्वने श्रीनारदजीसे क्या पूछा ? सो बताइए ॥ ४ ॥ श्रीगर्गजी बोले—हे मुने ! जब श्रीकृष्णने उग्रसेनको यादवोंका राजा बना दिया । सो सुनकर बहुत विस्मित राजा बहुलाश्वने श्रीनारदजीसे पूछा ॥ ५ ॥ राजा बहुलाश्व बोले—यह राजा मरुत कौन था और किस पुण्यसे वह यादवोंका राजा उग्रसेन हुआ ? ॥ ६ ॥ जिसके सहायक स्वयं श्रीकृष्ण बने ? हे देवर्षि ! आप मुझे उसकी महिमा बताइए ॥ ७ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! सत्ययुगमें एक सूर्यवंशी चक्र-

पञ्चयोजनविस्तीर्णः कुण्डोऽभूद्यस्य चाध्वरे । योजनं ब्रह्मकुण्डस्तु गव्यूतिः पञ्च कुंडकाः ॥१०॥
मेखलागर्तविस्तारवेदीभिर्निर्मिता दश । सहस्रहस्तमुच्चाङ्गो यज्ञस्तंभो बभौ महान् ॥११॥
विंशद्योजनविस्तीर्णः सौवर्णो यज्ञमण्डपः । वितानतोरणै रेजे कदलीषंडमण्डितः ॥१२॥
ब्रह्मरुद्रादयो देवाः सगणास्तत्र चागताः । ऋषयो मुनयः सर्वे तस्य यज्ञं समाययुः ॥१३॥
होतारो दश लक्षाणि दश लक्षाणि दीक्षिताः । अध्वर्यवः पञ्चलक्षमुद्गातारस्तथा परे ॥१४॥
आहूतास्तत्र विद्वांसश्चतुर्वेदविदो द्विजाः । सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञाः कोटिशोऽन्ये प्रपूजिताः ॥१५॥
हस्तिशुण्डासमां धारां भुक्त्वाऽऽज्यस्य हुताशनः । अजीर्णं प्राप तद्यज्ञे न चित्रं विद्धि मैथिल ॥१६॥
येभ्यो भागं वदन्तीह विश्वेदेवाः सभासदः । तेभ्यस्तेभ्यो ददुर्वा ताः परिवेष्टार एव ते ॥१७॥
केऽपि जीवास्त्रिलोक्यां तु न बभूवुर्बुभुक्षिताः । सर्वे देवास्तु सोमेन ह्यजीर्णत्वमुपागताः ॥१८॥
संवर्ताय ददौ राज्यं जंबूद्वीपस्य चाध्वरे । गजानां हेमभाराणां नियुतानि चतुर्दश ॥१९॥
शतार्बुदं हयानां तु यज्ञांते दक्षिणां नृप । कोटिशो नवरत्नानां महार्हाणां महात्मने ॥२०॥
हयानां पञ्चसाहस्रं गजानां शतमेव च । शतभारं सुवर्णानां ब्राह्मणे ब्राह्मणे ददौ ॥२१॥
जलभोजनपात्राणि हैमानि प्रस्फुरंति च । भुक्त्वा तानि विसृज्याशु गतास्तुष्टा द्विजातयः ॥
विप्रत्यक्तैः स्वर्णपात्रैरुच्छिष्टैर्नृप वर्जितैः । हिमाद्रिपार्श्वे शैलोऽभूदद्यापि शतयोजनम् ॥२३॥
मरुतस्य यथा यज्ञो न तथाऽन्यस्य कर्हिचित् । त्रिलोक्यां शृणु राजेंद्र न भूतो न भविष्यति ॥२४॥
यज्ञकुण्डाद्विनिर्गत्य परिपूर्णतमः स्वयम् । आत्मानं दर्शयामास मरुताय महात्मने ॥२५॥
तमालोक्य हरिं नत्वा कृतांजलिपुटो नृपः । गदितुं न समर्थोऽभूद्रोमांची प्रेमविह्वलः ॥२६॥

तं प्रेमपूरितं दृष्ट्वा पतितं पादयोर्नतम् । उवाच भगवान्साक्षान्मेघगंभीरया गिरा ॥२७॥

श्रीभगवानुवाच

राजंस्त्वयाऽहं विनयेन तोषितो निष्कारणैर्यज्ञपरैः समर्चितः ।
वरं परं ब्रूहि महामते त्वरं दास्यामि देवैरपि दुर्लभं दिवि ॥२८॥

श्रीनारद उवाच

श्रुत्वा तु राजा मरुतः कृतांजलिः प्रदक्षिणीकृत्य हरिं परेश्वरम् ।
संपूज्य भक्त्या विशदोपचारकैर्नत्वा भृशं गद्गदया गिराऽब्रवीत् ॥२९॥

मरुत उवाच

न वेद्म्यहं त्वच्चरणारविंदतो वरं परं श्रीपुरुषोत्तमोत्तम ।
समेत्य गङ्गां तृषितातिदुर्धियः खनंति कूपं हि यथा नरेतराः ॥३०॥
तथापि याचे तव वाक्यगौरवात्पादारविंदं हृदयारविंदात् ।
कदापि मे मा व्रजतु व्रजेश्वर मूलं चतुर्णां विदुरर्थसंपदाम् ॥३१॥

श्रीभगवानुवाच

धन्यऽस्ति राजंस्तव निर्मला मतिः प्रलोभितस्यापि वरैर्न कामभृत् ।
तथापि मत्तो वरयेप्सितं वरं विना फलं भक्तसुखान्न मे सुखम् ॥३२॥

मरुत उवाच

देयं यदा मे वरमीप्सितं प्रभो वैकुण्ठलोकं कुरुताद्धरातले ।
रक्ष स्थितं मां निजभक्तवत्सल तस्मिन्पुरे भक्तजनैः परैः सह ॥३३॥

श्रीभगवानुवाच

अस्मिन्मनौ देवमनोरथाब्धि गतेषु विंशेषु युगेषु चाष्टौ ।
गत्वाऽथ नाकं धरणीं समेत्य मया हि गोवत्सपदं करिष्यसि ॥३४॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा भगवान्साक्षात्तत्रैवांतरधीयत । सोऽयं तु मरुतो राजा ह्युग्रसेनो बभूव ह ॥३५॥

हो जानेके कारण वे कुछ नहीं बोल सके ॥२६॥ राजाको इस प्रकार प्रेमपूरित हो अपने पैरोंपर पड़ा देखकर स्वयं भगवान् मेघ जैसी गम्भीर वाणीमें बोले ॥ २७ ॥ भगवान्ने कहा—हे राजन् ! तुमने अपनी विनम्रतासे मुझको अपने वशमें कर लिया है । तुमने निष्काम यज्ञ किया है और विधिवत् मेरी पूजा की है । हे महामते ! तुम अपना परम प्रिय वर माँगो । देवताओंके लिए भी दुर्लभ वरदान मैं तुम्हें दूँगा ॥२८॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! श्रीहरिकी वाणी सुनकर राजाने हाथ जोड़ बड़ी भक्तिके साथ विशद उपचारोंसे पूजन एवं साष्टांग प्रणाम करके प्रदक्षिणा की और गद्गद वचनोंमें परमेश्वर श्रीहरिसे बोले ॥२९॥ राजा मरुतने कहा—हे पुरुषोत्तमोत्तम ! आपके चरणकमलोंके सिवाय मैं और कोई वर माँगना नहीं जानता । जैसे गंगाजीके समीप पहुँचकर कोई प्यासा और निर्बुद्धि मनुष्य कुआँ खोदता हो, वैसे ही उसका वर माँगना है ॥३०॥ तथापि आपके वाक्यगौरवका आदर करके मैं आपसे वर माँगता हूँ । हे व्रजेश्वर ! मेरे हृदयकमलसे आपके चरण-कमल कभी भी दूर न हों । कैसे हैं आपके चरणकमल ? वे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और सम्पदाओंके मूल हैं ॥ ३१ ॥ यह सुनकर भगवान् बोले—हे राजन् ! तुम धन्य हो और तुम्हारी बुद्धि शुद्ध है । तभी वरोंके प्रलोभनसे लुभानेपर भी वह विचलित नहीं हुई । फिर भी मेरे आग्रहसे कोई अन्य उत्तम वर माँगो । क्योंकि भक्तको कुछ वर दिये बिना मुझे चैन नहीं पड़ती ॥ ३२ ॥ राजा मरुत बोले—हे प्रभो ! यदि आप मुझे वर देना ही चाहते हों तो यह वरदान दीजिए कि वैकुण्ठलोक धरती पर आ जाय । हे भक्तवत्सल ! वहाँ ही मैं आपके भक्तोंके साथ निवास करूँ और आप उसकी रक्षा करें ॥ ३३ ॥ भगवान् बोले—हे राजन् ! जब इस मन्वन्तरके अट्ठाईस

तं यज्ञं कारयामास राजसूयं हरिः स्वयम् । किं दुर्लभं त्रिलोक्यां तु भक्तानां मैथिलेश्वर ३६॥
मरुतस्यापि चरितं यः शृणोति नृपोत्तम । तस्य ज्ञानं सवैराग्यं भक्तियुक्तं प्रजायते ॥३७॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीविश्वजित्खंडे नारदबहुलाश्वसंवादे श्रीमरुतोपाख्यानं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

(प्रद्युम्नका विजयाभिषेक)

बहुलाश्व उवाच

कथं चकार विधिवद्राजसूयाध्वरं नृप । श्रीकृष्णेन सहायेन वदैतन्नितरां मुने ॥ १ ।

श्रीनारद उवाच

उग्रसेनः सुधर्मायां कृष्णं संपूज्य चैकदा । नत्वा प्राह प्रसन्नात्मा कृतांजलिपुटः शनैः ॥ २ ।

उग्रसेन उवाच

भगवन्नारदमुखाच्छ्रुतं यस्य महत्फलम् । तं यज्ञं राजसूयाख्यं करिष्यामि तवाज्ञया ॥ ३ ॥
त्वत्पादसेवया पूर्वे मनोरथमहार्णवे । तेरुर्जगत्तृणीकृत्य निर्भयाः पुरुषोत्तम ॥ ४ ॥

श्रीभगवानुवाच

सम्यग्व्यवसितं राजन्भवता यादवेश्वर । यज्ञेन ते जगत्कीर्तिस्त्रिलोक्यां संभविष्यति ॥ ५ ॥
आहूय यादवान्साक्षात्सभां कृत्वाऽथ सर्वतः । तांबूलवीटिकां धृत्वा प्रतिज्ञां कारय प्रभो ॥ ६ ॥
ममांशा यादवाः सर्वे लोकद्वयजिगीषवः । जित्वारीनागमिष्यंति हरिष्यंति बलिं दिशाम् ॥७॥

श्रीनारद उवाच

अथांधकादीनाहूय शक्रसिंहासने स्थितः । सुधर्मायां प्राह नृपो धृत्वा तांबूलवीटिकाम् ॥ ८ ॥

युग बीत जायँगे, तब तुम स्वर्गके सुख भोगकर पुनः पृथ्वीतलपर आओगे । उस समय मेरा संग पाकर तुम इस मनोरथरूपी महान् समुद्रको गौके खुरके समान उथला करके सहजमें ही तर जाओगे ॥ ३४ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे मिथिलेश ! ऐसा कहकर भगवान् वहाँ अन्तर्धान हो गये और कालान्तरमें वही राजा मरुत उग्रसेन हुए ॥ ३५ ॥ भगवान्ने उग्रसेनसे राजसूय यज्ञ कराया । हे राजन् ! भगवान्के भक्तोंको सारी त्रिलोकीमें कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता ॥ ३६ ॥ हे नृपोत्तम ! जो मनुष्य राजा मरुतका चरित्र सुनता है, उसको वैराग्य तथा भक्तियुक्त ज्ञान अनायास प्राप्त हो जाता है ॥ ३७ ॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

राजा बहुलाश्व बोले—हे नारदजी ! राजा उग्रसेनने विधिवत् राजसूय यज्ञ कैसे किया और भगवान्ने उनकी क्या सहायता की ? इन बातोंको आप भलीभाँति बताइये ॥ १ ॥ श्रीनारदजी बोले—एक दिन उग्रसेनने सुधर्मा सभामें श्रीकृष्णकी सम्यक् पूजा करके प्रणाम किया और हाथ जोड़कर बड़ी प्रसन्नमुद्रामें कहा— ॥ २ ॥ हे भगवन् ! नारदजीके मुखसे मैंने जिसका बहुत बड़ा माहात्म्य सुना है, सो आप यदि आज्ञा दें तो मैं राजसूय यज्ञ करूँ ॥ ३ ॥ हे पुरुषोत्तम ! पूर्वकालमें बहुतेरे भक्त आपके श्रीचरणोंकी सेवा करके निर्भय भावसे जगत्को तृणवत् समझते हुए कामनाओंके महासमुद्रको पार कर गये हैं ॥ ४ ॥ श्रीभगवान् बोले—हे यादवेश्वर ! आपने बहुत अच्छी बात सोची है । उस यज्ञसे आपकी कीर्ति समस्त त्रिलोकीमें फैल जायगी ॥ ५ ॥ अब आप सभी यादवोंको बुलाकर उनकी एक सभा करिए और उसमें पानका बीड़ा रखकर उनसे प्रतिज्ञा करा लीजिये ॥ ६ ॥ क्योंकि सभी यादव मेरे अंश हैं । वे दोनों लोक जीतना चाहते हैं । वे शत्रुओंको जीतकर सभी दिशाओंसे उत्तम उपहार लायेंगे ॥ ७ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! भगवान्के परामर्शानुसार इन्द्र जैसे सिंहासनपर बैठकर राजा उग्रसेनने अन्धक आदि सभी यादवोंको आमंत्रित

उग्रसेन उवाच

यो जयेत्समरे सर्वाञ्जंबूद्वीपस्थितान्नृपान् । मनस्वी शक्रकोदण्डी सोऽत्ति तांबूलवीटिकाम् ॥ ९ ॥

श्रीनारद उवाच

नृपेषु तूष्णीं प्रगतेषु सत्सु श्रीरुक्मिणीनंदन एव चागात् ।
जग्राह तांबूलचयं महात्मा नत्वा नृपं मैथिल शंबरारिः ॥१०॥

प्रद्युम्न उवाच

विजित्य समरे सर्वाञ्जंबूद्वीपस्थितान्नृपान् । गृहीत्वा च बलिं तेभ्य आगमिष्याम्यहं बलात् ११॥
अगम्यागमनं बभ्रोर्ब्राह्मणस्य गुरोस्तथा । हत्या भ्रूणस्य मे भूयान्न कुर्यां कर्म चेदिदम् ॥१२॥

श्रीनारद उवाच

श्रुत्वा वचः शंबरारेः साधु साध्विति यूथपाः । ऊचुस्तेषां पश्यतां च तं जग्राह यदूत्तमः ॥१३॥
गर्गाद्यदुकुलाचार्यान्मुहूर्तं बोध्य यत्नतः । तत्स्नानं कारयामास मुनिभिर्वेदसूक्तिभिः ॥१४॥
उग्रसेनोऽथ तिलकं प्रद्युम्नस्य चकार ह । बलिं दत्त्वा नमश्चक्रुः सर्वे यादवयूथपाः ॥१५॥
उग्रसेनो ददौ खड्गं प्रद्युम्नाय महात्मने । कवचं प्रददौ साक्षाद्बलदेवो महाबलः ॥१६॥
स्वतूणाभ्यां विनिष्कृष्य तूणावक्षयसायकौ । धनुश्च शार्ङ्गधनुषः समुत्पाद्य ददौ हरिः ॥१७॥
किरीटकुंडले दिव्ये पीतं वासो मनोहरम् । छत्रं च चामरे साक्षाच्छूरो वृद्धो ददौ पुनः ॥१८॥
शतचन्द्रं ददौ तस्मै वसुदेवो महामनाः । उद्धवः प्रददौ साक्षान्मालां किंजल्किनीं शुभाम् १९॥
अक्रूरो दक्षिणावर्त्तं शंखं विजयदं ददौ । श्रीकृष्णकवचं यंत्रं गर्गाचार्यो ददौ मुनिः ॥२०॥
तदैव ह्यागतः शक्रो लोकपालैः सकौतुकः । आजग्मतुर्ब्रह्मशिवौ देवर्षिगणसंवृतौ ॥२१॥
प्रद्युम्नाय ददौ शूली त्रिशूलं ज्वलनप्रभम् । ब्रह्मा ददौ महाराज पद्मरागं शिरोमणिम् ॥२२॥

किया। तदनन्तर सुधर्मा सभाके बीच पानका बीड़ा रखकर कहा ॥ ८ ॥ राजा उग्रसेन बोले—हे वीरो! आप लोगोंमेंसे जो वीर रणभूमिमें जम्बूद्वीपके सब राजाओंको जीत सके, जो मनस्वी हो और इन्द्रके समान धनुष धारण करे, वह यह ताम्बूलका बीड़ा उठा ले ॥ ९ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन्! राजा उग्रसेनकी वाणी सुनकर सब यादव चुप रह गये। तब शम्बरासुरका वध करनेवाले और रुक्मिणीके पुत्र वीर प्रद्युम्न उठे। उन्होंने राजा उग्रसेनको प्रणाम किया और सब यादवोंके समक्ष पानका बीड़ा उठा लिया ॥ १० ॥ उन्होने कहा—मैं समरमें जम्बूद्वीपके सब राजाओंको जीत तथा उनसे बलात् बलि (भेंट) लेकर लौटूँगा ॥ ११ ॥ यदि मैं दिग्विजय करके न लौटूँ तो मुझे अगम्या स्त्रीके साथ सहवास, गौ-ब्राह्मण-गुरुकी हत्या तथा गर्भपातका पाप लगे ॥ १२ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन्! शम्बरशत्रु प्रद्युम्नका वचन सुनकर सभी यादव वीरोंने साधु-साधु कहकर उनकी सराहना की। जब सबके समक्ष प्रद्युम्नने पानका बीड़ा उठा लिया ॥ १३ ॥ तब अपने कुलगुरु गर्गमुनिको बुलाकर राजा उग्रसेनने उनसे यत्नपूर्वक मुहूर्त पूछा और वैदिक मंत्रोंसे प्रद्युम्नको स्नान कराया ॥ १४ ॥ इसके बाद राजा उग्रसेनने प्रद्युम्नको तिलक लगाया। यह देखकर सभी यादव-वीरोंने प्रद्युम्नको विविध उपहार अर्पण करके प्रणाम किया ॥ १५ ॥ राजा उग्रसेनने महात्मा प्रद्युम्नको तलवार दी और महाबली बलदेवने कवच प्रदान किया ॥ १६ ॥ अपने निजी तरकसोंमेंसे दो अक्षय तरकस तथा शार्ङ्गधनुषमेंसे एक धनुष निकालकर भगवान कृष्णने दिया ॥ १७ ॥ दिव्य किरीट, कुण्डल, मनोहर पीतवसन, छत्र और चमर वृद्ध शूरसेनने दिया ॥ १८ ॥ महामना वसुदेवने उन्हें शतचन्द्र ढाल दी। उद्धवने किंजल्कपरिपूरित माला दी ॥ १९ ॥ अक्रूरने विजयदायक दक्षिणावर्त शंख दिया। गर्गाचार्यने उन्हें श्रीकृष्णकवच तथा यंत्र प्रदान किया ॥ २० ॥ उसी समय सभी लोकपालोंके साथ इन्द्र वहाँ आ पहुँचे। बहुतेरे मुनिजनोंके साथ ब्रह्मा तथा शिवजी भी आ गये ॥ २१ ॥ शंकरजीने प्रद्युम्नको अग्निके समान जलजलाता त्रिशूल दिया और ब्रह्माजीने उन्हें पद्मराग मणिका सिरपेंच दिया

पाशी पाशं शक्तिधरः शक्तिं शत्रुविमर्दिनीम् । वायुश्च व्यजने दिव्ये यमो दंडं ददौ पुनः ॥२३॥
रविर्गदां महागुर्वीं कुबेरो रत्नमालिकाम् । चंद्रकांतमणिं चंद्रः परिघं च तनूनपात् ॥२४॥
क्षितिश्च पादुके प्रादाद्दिव्ये योगमये परे । प्रद्युम्नाय ददौ कुंतं भद्रकाली तरस्विनी ॥२५॥
हेमाढ्यमुच्चशिखरं सहस्रहयसंयुतम् । विश्वकर्मकृतं साक्षाद्ब्रह्मांडांतर्वहिर्गतम् ॥२६॥
सहस्रचक्रसंयुक्तं मनोवेगं घनस्वनम् । मंजीरकिंकिणीजालं घंटाटंकारभूषणम् ॥२७॥
रथं ददौ महादिव्यं सहस्रध्वजशोभितम् । जैत्रं रत्नमयं शक्रः प्रद्युम्नाय महात्मने ॥२८॥
शंखदुंदुभयो नेदुस्तालवीणादयस्तदा । मृदंगवेणुसन्नादैर्जयध्वनिसमाकुलैः ॥२९॥
वेदघोषैर्लाजपुष्पैर्मुक्तावर्षसमन्वितैः । । प्रद्युम्नस्योपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे ॥३०॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे प्रद्युम्नविजयाभिषेको नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

(यादवी सेनाकी विजययात्रा)

श्रीनारद उवाच

अथ नत्वा हरिं कार्ष्णिरुग्रसेनं बलं गुरुम् । नीत्वाज्ञां रथमारुह्य कुशस्थल्या विनिर्ययौ ॥ १ ॥
तथा तमनुगाः सर्वे यादवा उद्धवादयः । भोजवृष्ण्यंधकमधुशूरसेनदशार्हकाः ॥ २ ॥
तथा स्वभ्रातरः सर्वे गदाद्याः कृष्णनोदिताः । सपुत्राः सबलाः सर्वे सांबाद्याश्च महारथाः ॥ ३ ॥
किरीटिनः कुंडलिनो लोहकंचुकमंडिताः । चतुरंगबलोपेताः कोटिशस्ते विनिर्ययुः ॥ ४ ॥
कलापिहंसगरुडमीनतालध्वजै रथैः । सूर्यमंडलसंकाशैश्चंचलाश्वनियोजितैः ॥ ५ ॥
हेमकुंभैः सशिखरैर्मुक्तातोरणराजितैः । विडंबयद्भिर्नितरां वायुवेगमतः परम् ॥ ६ ॥

चामरांदोलितैर्दिव्यैर्वीरमंडलमंडितैः । सौवर्णैर्देवधिष्ण्याभै रेजुर्वीरा मनोहराः ॥ ७ ॥
मदच्युतांश्चित्रमुखा हेमजालसमन्विताः । महोद्भटा गजा उच्चरणद्घण्टाऽरुणांबराः ॥ ८ ॥
गिरीन्द्रशिखरा भद्रा द्विपेंद्रान् दिग्विभावितान् । विडंबयंतो दृश्यंते राजसैन्ये द्विपा नृप ॥ ९ ॥
केचिद्भद्रास्तु कथिताः केचिद्भद्रमृगाः परे । विंध्याचलभवाः केचित्केचित्काश्मीरसंभवाः ॥१०॥
मलयप्रभवाः केचिद्धिमाद्रिप्रभवाः परे । मोरंगप्रभवाः केचित्कैलासवनसंभवाः ॥११॥
ऐरावतकुलेभाश्च चतुर्दंताः कलापिनः । त्रिशुंडा गरुडाभाश्च गच्छंति भुवि चांबरे ॥१२॥
ध्वजायुक्ताः कोटिगजाः कोटिदुंदुभिसंयुताः । कोटिसैन्या महामात्यै रत्नमंडलमंडिताः ॥१३॥
गर्जयंतो घनश्यामा नीडोदुंबरराजिताः । इतस्ततो विरेजुस्ते बलेऽब्धौ मकरा इव ॥१४॥
करैर्गुल्मान्समुत्पाट्य क्षेपयंतोऽर्कमंडलम् । कंपयंतो भुवं पादैर्मदैरार्द्रीकृताचलाः ॥१५॥
दुर्गाद्रिगंडशैलादीन्पातयंतः शिरःस्थलैः । खंडयंतश्च शत्रूणां बलमेतादृशा गजाः ॥१६॥
तुरंगा निर्गता राजन् केचिन्मात्स्याः कलिंगजाः । औशीनराः कौशलाश्च वैदर्भाः कुरुजांगलाः ॥१७॥
कांबोजजाः सृंजयजाः कैकेयाः कुंतिसंभवाः । दारदाः केरला आंगा वांगा विकटसंभवाः ॥१८॥
कौंकणाः कोटकाः केचित्कर्णाटा गौर्जरा हयाः । सौवीराः सैंधवाः केचित्पांचाला अर्बुदाः परे ॥१९॥
काच्छाश्च केचिदानर्ता गांधारा मालवादयः । महाराष्ट्रभवाः केचित्तैलंगा जलसंभवाः ॥२०॥
परिपूर्णतमस्यापि श्रीकृष्णस्य महात्मनः । वाजिशालासु वर्त्तंते तेऽपि सर्वे विनिर्गताः ॥२१॥
श्वेतद्वीपाच्च वैकुंठात्तथाऽजितपदा नृप । रमावैकुंठलोकाच्च प्राप्ता ये तेऽपि निर्गताः ॥२२॥
हेमहारसमायुक्ता मुक्तामालामनोहराः । शिखामणिमहारश्मिसेविताः सुपरिच्छदाः ॥२३॥

थी। वे अपनी चालसे वायुके वेगको भी तिरस्कृत कर रहे थे ॥ ६ ॥ जिनके ऊपर चमर डुल रहे थे, ऐसे वीरोंसे भरे वे रथ देवताओंके सुवर्णनिर्मित विमान सरीखे दीख रहे थे ॥७॥ उस सेनामें ऐसे हाथी चल रहे थे, जिनके गण्डस्थलसे मद चू रहा था। जिनके मुखपर चित्र-विचित्र रचना की हुई थी, जिनके पैरोंमें सोनेकी साँकलें पड़ी थीं, जो कदमें बहुत ऊँचे थे, जिनके ऊपर बनातके बने झूल पड़े हुए थे और जिनकी पीठपर बँधे घंटे बज रहे थे ॥ ८ ॥ पर्वतराजकी चोटी सरीखे ऊँचे वे हाथी दिग्गजोंको भी चुनौती दे रहे थे ॥ ९ ॥ उनमें कुछ भद्रजातिके, कुछ भद्रमृगजातिके, कुछ विन्ध्यपर्वतके और कुछ कश्मीरके थे ॥ १० ॥ उनमें कुछ हाथी मलय पर्वतके, कुछ हिमालयके, कुछ मोरंगके और कुछ कैलासके थे ॥ ११ ॥ कुछ ऐरावतकुलके, कुछ चार-चार दाँतोंवाले, कुछ तीन-तीन सूँड़ोंवाले और कुछ ऐसे भी उर्ध्वगामी गजराज थे, जो पृथ्वीपर चलते और आकाशमें उड़ते थे ॥ १२ ॥ उनमें एक करोड़ हाथी ध्वजाधारी, एक करोड़ हाथी दुन्दुभिधारी और एक ही करोड़ हाथी रत्नोंके मंडलसे शोभित थे ॥ १३ ॥ बादलोंके समान गर्जन करते और आकाशमें उड़ते हुए वे हाथी उस यादवसेनारूपी समुद्रमें मगरके सदृश दिखायी देते थे ॥ १४ ॥ वे मार्गके वृक्षोंको सूँड़ोंसे उखाड़-उखाड़कर सूर्यमण्डलकी ओर फेंक रहे थे, अपनी चालसे धरतीको कँपा रहे थे और अपनी मदवर्षासे पृथिवीको भिगो रहे थे ॥ १५ ॥ वे अपने मस्तककी टक्करसे दुर्गम पर्वत-शिखरों तथा शिलाखंडोंको ढहाते जाते थे। शत्रुओंकी सेनाको ध्वस्त करनेमें वे बड़े माहिर थे ॥१६॥ हे राजन्! उस सेनाके कुछ घोड़े मत्स्य देशके, कुछ कलिङ्गके, कुछ उशीनरके, कुछ कोशल देशके, कुछ विदर्भ और कुछ कुरुजांगल प्रदेशके थे ॥ १७ ॥ कुछ घोड़े काम्बोज देशके, कुछ सृंजय देशके, कुछ केकयदेशके, कुछ कुन्त देशके, कुछ घोड़े दरद देशके, कुछ केरलके, कुछ अंग देशके, कुछ बंग देशके कुछ घोड़े विकट देशके थे ॥ १८ ॥ उस यादवी सेनामें कोंकण, कोटक, कर्नाटक, गुजरात, सौवीर, सिन्धु, पंजाब और अर्बुद देशके भी घोड़े सम्मिलित थे ॥ १९ ॥ इनके साथ ही कच्छ, आनर्त, गांधार, मालवा, महाराष्ट्र, तैलंग देश तथा जलीय प्रदेशमें उत्पन्न घोड़े भी थे ॥ २० ॥ परिपूर्ण महात्मा कृष्णकी अश्वशालाके भी अश्व उस विजययात्रामें सम्मिलित हो गये ॥ २१ ॥ जो घोड़े श्वेतद्वीप, अजितपद तथा रमावैकुंठसे आये थे, वे भी निकल पड़े ॥ २२ ॥ वे घोड़े

चामरैर्मंडिताः पुच्छमुखपादस्फुरत्प्रभाः । यादवानां महासैन्ये दृश्यन्ते चेदृशा हयाः ॥२४॥
वायुवेगा मनोवेगा न स्पृशंतः पदैर्भुवम् । अपक्वसूत्रेष्वतिगा बुद्बुदेष्वपि मैथिल ॥२५॥
व्रजंतः पारदमनु जालेपूर्णाभिवेपु च । दृश्यंतेऽपि निराधारा स्फारा वारिषु मैथिल ॥२६॥
गंडशैलनदीदुर्गगर्तप्रासादसंचयान् । विलंघयंतः सततं चंचलास्ते तुरंगमाः ॥२७॥
मायूरीं तैत्तिरीं क्रौंचीं हंसीं ये खांजनीं गतिम् । कुर्वंतो भुवि नृत्यंतो मैथिलेन्द्र इतस्ततः ॥२८॥
केचित्सपक्षा दिव्यांगाः श्यामकर्णा मनोहराः । पीतपुच्छाश्चंद्रवर्णा वाजिशालाविनिर्गताः ॥२९॥
उच्चैःश्रवःकुले जाताः सूर्यवाजिभवाः परे । अश्विनीसुतविद्याढ्या वरुणेन प्रयोजिताः ॥३०॥
केचिन्मंदारभाः केचिच्चित्रवर्णा मनोहराः । अश्विनीपुष्पसंकाशाः स्वर्णाभा हरितप्रभाः ॥३१॥
पद्मरागप्रभाः केचित्सर्वलक्षणलक्षिताः । कोटिशः कोटिशो राजन्नन्येऽपि निर्गता हयाः ॥३२॥
धनुर्भृतो भटाः सैन्ये संग्रामे लब्धकीर्तयः । शक्तित्रिशूलासिगदावर्मपाशधराः परे ॥३३॥
वर्षंतः शस्त्रधाराभिः प्रलयाब्धिसमा नृप । दिग्गजा इव दृश्यंते मर्दयन्तो ह्यरीन्मृधे ॥३४॥
एवं विनिर्गतं राजन् यदूनां विपुलं बलम् । दृष्ट्वा सुरासुराः सर्वे विसिस्मुः परमाद्भुतम् ॥३५॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीविश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे यादवसैन्यगमनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

(प्रद्युम्नका दिग्विजयार्थ गमन)

श्रीनारद उवाच

उग्रसेन उवाच

हे प्रद्युम्न महाप्राज्ञ श्रीकृष्णकृपया त्वरम् । विजित्य नृपतीन्सर्वान्द्वारकामागमिष्यसि ॥ २ ॥
मत्तं प्रमत्तमुन्मत्तं सुप्तं बालं जडं स्त्रियम् । प्रपन्नं विरथं भीतं न रिपुं हंति धर्मवित् ॥ ३ ॥
राज्ञो हि परमो धर्म आर्तानामार्तिनिग्रहः । उत्पथानां वधश्चेत्थमाततायी वधार्हणः ॥ ४ ॥
पुमान् योषिदुत क्लीब आत्मसंभावितोऽधमः । भूतेषु निरनुक्रोशो नृपाणां तद्वधोऽव्यधः ॥ ५ ॥
नैनो राज्ञः प्रजाभर्तुर्धर्मयुद्धे वधो द्विषाम् । आदिराजो नृपान्पूर्वं प्राह स्वायंभुवो मनुः ॥ ६ ॥
यो रणे निर्भयो भूत्वा कृत्वाङ्घ्रिं प्रागतो व्यसुः । स गच्छेद्धाम परमं भित्त्वा मार्तंडमंडलम् ॥ ७ ॥
भयाद्रणादुपरतस्त्यक्त्वा युद्धे पतिं च यः । व्रजेन्न क्षत्रियो भूत्वा स महारौरवं व्रजेत् ॥ ८ ॥
सेनां रक्षेत्तु राजा हि सेना राजानमेव हि । सूतः कृच्छ्रगतं रक्षेद्रथिनं सारथिं रथी ॥ ९ ॥
यूयं च यादवाः सर्वे समर्थबलवाहनाः । कार्ष्णिमेवाभिरक्षंतु कार्ष्णिर्वः परिरक्षतु ॥१०॥
गावो विप्राः सुरा धर्मच्छंदांसि भुवि साधवः । पूजनीयाः सदा सर्वैर्मनुष्यैर्मोक्षकांक्षिभिः ॥११॥
वेदा विष्णुवचो विप्रा मुखं गावस्तनुर्हरेः । अंगानि देवताः साक्षात्साधवो ह्यसवः स्मृताः १२॥
श्रीकृष्णोऽयं हरिः साक्षात्परिपूर्णतमः प्रभुः । येषां चित्ते स्थितो भक्त्या तेषां तु विजयः सदा १३॥

श्रीनारद उवाच

शिरसा जगृहुः साक्षादुग्रसेनस्य शासनम् । प्रणेमुर्यादवाः सर्वे कृतांजलिपुटा नृप ॥१४॥
उग्रसेनं नृपं शूरं वसुदेवं बलं हरिम् । ननाम कार्ष्णिः शिरसा गर्गाचार्यं महामुनिम्॥१५॥
श्रीकृष्णबलदेवाभ्यां पुरीं याते नृपेश्वर । दिग्जयार्थी हरेः पुत्रः प्रययौ यादवैः सह ॥१६॥
चतुर्योजनलंबीत्थं राजमार्गोऽपि यस्य वै । बभौ हेममयैः सर्वैः शिबिरैर्मैथिलेश्वर ॥१७॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! इस प्रकारकी सेनासे घिरे धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्नसे श्रीकृष्ण तथा बलदेवके साथ बैठे उग्रसेनने कहा ॥ १ ॥ उग्रसेन बोले—हे महाप्रज्ञ प्रद्युम्न ! भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे सभी राजाओंको जीतकर तुम द्वारका लौट आओगे ॥ २ ॥ मत्त, उन्मत्त, सुप्त, बालक, जड़, स्त्री, शरणागत विरथ और भयभीत शत्रुको धर्मज्ञ पुरुष नहीं मारते ॥ ३ ॥ राजाका सर्वश्रेष्ठ धर्म है आर्तजनोंकी पीड़ा दूर करना और विपरीत पंथपर चलनेवाले आततायियोंको मारना ॥ ४ ॥ पुरुष, स्त्री अथवा नपुंसक इनमेंसे जो भी अधम प्राणी अन्य प्राणियोंपर दया न करता हो, ऐसे लोगोंका यदि राजा वध करे तो उसे वध नहीं कहा जायगा ॥ ५ ॥ धर्मयुद्धमें प्रजापालक राजाका शत्रुको मारना धर्म है। ऐसा करनेसे उसे पाप नहीं लगता । सबसे आदिके राजा स्वायम्भुव मनुने अन्य राजाओंसे ऐसा कहा था—॥ ६ ॥ जो वीर निर्भयभावसे रणभूमिमें पैर रखे और लड़ता हुआ मर जाय तो वह सूर्यमण्डलका भेदन करके परम धामको चला जाता है ॥ ७ ॥ जो पुरुष डरकर रणभूमिसे भाग जाता है और अपने स्वामीको त्याग देता है, वह महारौरव नरकमें जाता है ॥ ८ ॥ राजा सेनाकी रक्षा करता है और सेना राजाकी रक्षा करती है। यदि रथी संकटमें पड़े तो सारथी उसकी रक्षा करे और सारथीपर विपत्ति आये तो रथी उसको बचाये ॥ ९ ॥ आप सभी यादव विशाल सेनासे सम्पन्न हैं। अतएव आप श्रीकृष्णतनय प्रद्युम्नकी रक्षा करें ॥१०॥ मोक्षकी आकांक्षा रखनेवाला मनुष्य गौ, ब्राह्मण, देवता, धर्म और साधुजनकी रक्षा करे। क्योंकि ये सभी लोगोंके सदा पूजनीय होते हैं ॥ ११ ॥ वेद भगवान्के वचन हैं, ब्राह्मण विष्णुके मुख हैं, गौयें उनका शरीर हैं, देवता विष्णुके अंग हैं और साधु प्राण हैं ॥ १२ ॥ ये भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात् परिपूर्णतम परमेश्वर हैं। ये जिन लोगोंके हृदयमें निवास करते हैं, उनकी सदा विजय होती है ॥ १३ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! यादवोंके राजा उग्रसेनके आदेशको सबने माथा झुकाकर अंगीकार किया और हाथ जोड़कर प्रणाम किया ॥ १४ ॥ राजा उग्रसेन, शूरसेन, वसुदेव, बलदेव, श्रीकृष्ण तथा महामुनि गर्गको प्रद्युम्नने मस्तक झुकाकर प्रणाम किया ॥ १५ ॥ जब भगवान् कृष्ण और बलदेव द्वारकापुरी लौट गये, तब श्रीकृष्णके

उग्रसेन उवाच

हे प्रद्युम्न महाप्राज्ञ श्रीकृष्णकृपया त्वरम् । विजित्य नृपतीन्सर्वान्द्वारकामागमिष्यसि ॥ २ ॥
मत्तं प्रमत्तमुन्मत्तं सुप्तं बालं जडं स्त्रियम् । प्रपन्नं विरथं भीतं न रिपुं हंति धर्मवित् ॥ ३ ॥
राज्ञो हि परमो धर्म आर्तानामार्तिनिग्रहः । उत्पथानां वधश्चेत्थमाततायी वधार्हणः ॥ ४ ॥
पुमान् योषिदुत क्लीब आत्मसंभावितोऽधमः । भूतेषु निरनुक्रोशो नृपाणां तद्वधोऽवधः ॥ ५ ॥
नैनो राज्ञः प्रजाभर्तुर्धर्मयुद्धे वधो द्विषाम् । आदिराजो नृपान्पूर्वं प्राह स्वायंभुवो मनुः ॥ ६ ॥
यो रणे निर्भयो भूत्वा कृत्वांघ्रिं प्रागतो व्यसुः । स गच्छेद्धाम परमं भित्त्वा मार्तंडमंडलम् ॥ ७ ॥
भयाद्रणादुपरतस्त्यक्त्वा युद्धे पतिं च यः । व्रजेद्यः क्षत्रियो भूत्वा स महारौरवं व्रजेत् ॥ ८ ॥
सेनां रक्षेत्तु राजा हि सेना राजानमेव हि । सूतः कृच्छ्रगतं रक्षेद्रथिनं सारथिं रथी ॥ ९ ॥
यूयं च यादवाः सर्वे समर्थबलवाहनाः । कार्ष्णिमेवाभिरक्षंतु कार्ष्णिर्वः परिरक्षतु ॥ १० ॥
गावो विप्राः सुरा धर्मश्छंदांसि भुवि साधवः । पूजनीयाः सदा सर्वैर्मनुष्यैर्मोक्षकांक्षिभिः ॥ ११ ॥
वेदा विष्णुवचो विप्रा मुखं गावस्तनुर्हरेः । अंगानि देवताः साक्षात्साधवो ह्यसवः स्मृताः ॥ १२ ॥
श्रीकृष्णोऽयं हरिः साक्षात्परिपूर्णतमः प्रभुः । येषां चित्ते स्थितो भक्त्या तेषां तु विजयः सदा ॥ १३ ॥

श्रीनारद उवाच

शिरसा जगृहुः साक्षादुग्रसेनस्य शासनम् । प्रणेमुर्यादवाः सर्वे कृतांजलिपुटा नृप ॥ १४ ॥
उग्रसेनं नृपं शूरं वसुदेवं बलं हरिम् । ननाम कार्ष्णिः शिरसा गर्गाचार्यं महामुनिम् ॥ १५ ॥
श्रीकृष्णबलदेवाभ्यां पुरीं याते नृपेश्वर । दिग्जयार्थी हरेः पुत्रः प्रययौ यादवैः सह ॥ १६ ॥
चतुर्योजनलंबीत्थं राजमार्गोऽपि यस्य वै । बभौ हेममयैः सर्वैः शिबिरैर्मैथिलेश्वर ॥ १७ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! इस प्रकारकी सेनासे घिरे धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्नसे श्रीकृष्ण तथा बलदेवके साथ बैठे उग्रसेनने कहा ॥ १ ॥ उग्रसेन बोले—हे महाप्रज्ञ प्रद्युम्न ! भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे सभी राजाओंको जीतकर तुम द्वारका लौट आओगे ॥ २ ॥ मत्त, उन्मत्त, सुप्त, बालक, जड़, स्त्री, शरणागत विरथ और भयभीत शत्रुको धर्मज्ञ पुरुष नहीं मारते ॥ ३ ॥ राजाका सर्वश्रेष्ठ धर्म है आर्तजनोंकी पीड़ा दूर करना और विपरीत पंथपर चलनेवाले आततायियोंको मारना ॥ ४ ॥ पुरुष, स्त्री अथवा नपुंसक इनमेंसे जो भी अधम प्राणी अन्य प्राणियोंपर दया न करता हो, ऐसे लोगोंका यदि राजा वध करे तो उसे वध नहीं कहा जायगा ॥ ५ ॥ धर्मयुद्धमें प्रजापालक राजाका शत्रुको मारना धर्म है । ऐसा करनेसे उसे पाप नहीं लगता । सबसे आदिके राजा स्वायम्भुव मनुने अन्य राजाओंसे ऐसा कहा था— ॥ ६ ॥ जो वीर निर्भयभावसे रणभूमिमें पैर रक्खे और लड़ता हुआ मर जाय तो वह सूर्यमण्डलका भेदन करके परम धामको चला जाता है ॥ ७ ॥ जो पुरुष डरकर रणभूमिसे भाग जाता है और अपने स्वामीको त्याग देता है, वह महारौरव नरकमें जाता है ॥ ८ ॥ राजा सेनाकी रक्षा करता है और सेना राजाकी रक्षा करती है । यदि रथी संकटमें पड़े तो सारथी उसकी रक्षा करे और सारथीपर विपत्ति आये तो रथी उसको बचाये ॥ ९ ॥ आप सभी यादव विशाल सेनासे सम्पन्न हैं । अतएव आप श्रीकृष्णतनय प्रद्युम्नकी रक्षा करें ॥ १० ॥ मोक्षकी आकांक्षा रखनेवाला मनुष्य गौ, ब्राह्मण, देवता, धर्म और साधुजनकी रक्षा करे, क्योंकि ये सभी लोगोंके सदा पूजनीय होते हैं ॥ ११ ॥ वेद भगवान्‌के वचन हैं, ब्राह्मण विष्णुके मुख हैं, गौयें उनका शरीर हैं, देवता विष्णुके अंग हैं और साधु प्राण हैं ॥ १२ ॥ ये भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात् परिपूर्णतम परमेश्वर हैं । ये जिन लोगोंके हृदयमें निवास करते हैं, उनकी सदा विजय होती है ॥ १३ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! यादवोंके राजा उग्रसेनके आदेशको सबने माथा झुकाकर अंगीकार किया और हाथ जोड़कर प्रणाम किया ॥ १४ ॥ राजा उग्रसेन, शूरसेन, वसुदेव, बलदेव, श्रीकृष्ण तथा महामुनि गर्गको प्रद्युम्नने मस्तक झुकाकर प्रणाम किया ॥ १५ ॥ जब भगवान् कृष्ण और बलदेव द्वारकापुरी लौट गये, तब श्रीकृष्णके

अग्रतो वाहिनीयुक्तः कृतवर्मा महाबलः । ध्वजिनीसहितः पश्चादक्रूरो धन्विनां वरः ॥१८॥
तत्पश्चादुद्धवो मंत्री प्रतिमापंचसंयुतः । तत्पश्चात्कृष्णचंद्रस्य सुतास्त्वष्टादश स्मृताः ॥१९॥
ययुर्महारथा राजन् ये शताक्षौहिणीयुताः । प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च दीप्तिमान्भानुरेव च ॥२०॥
सांबो मधुर्बृहद्भानुश्चित्रभानुर्वृकोऽरुणः । पुष्करो वेदबाहुश्च श्रुतदेवः सुनंदनः ॥२१॥
चित्रभानुर्विरूपश्च कविर्न्यग्रोध एव च । तत्पश्चात्प्रययुः सर्वे गदाद्याः कृष्णनोदिताः ॥२२॥
भोजवृष्ण्यंधकमधुशूरसेनदशार्हकाः । ऋतुबाणकोटिसंख्या यादवानां प्रकथ्यते ॥
तत्सैन्यसंख्यां नृपते कः करिष्यति भूमिषु ॥२३ ॥

इत्थं यदूनां चलतां नृपाणां विकर्षतां तां महतीं च सेनाम् ।
कोदंडटंकारयुतोऽभवत्कौ धुंकार आताडित दुंदुभीनाम् ॥२४॥
इभेंद्रचीत्काररहयेंद्रहेषणैर्नदच्छुंडीदृढवीरगर्जनैः ।
ढक्कानिनादैर्यदवस्तडित्स्वनैः प्रचंडमेघा इव ते विडिंडिरे ॥२५॥
राजन्ध्रुवो मंडलमेव दिग्गजा महत्स्वनैस्ते बधिरीकृता इव ।
सद्योऽथ दुर्गं रिपवो विदुद्रुवुर्निःसाहसाः कौ चलतां महात्मनाम् ॥२६॥
कूर्मास्तु किं काविति के वदंतः कुतः क्व गच्छाम इति द्रुवंतः ।
उपद्रवो ह्येष विधे क्व याति चचाल लोकैः सहिता चलेति ॥२७॥
छलेन यज्ञस्य हरिः परेश्वरो भारं विदेहेश भुवोऽवतारयन् ।
योऽभूच्चतुर्व्यूहधरो यदोः कुले तस्मै नमोऽनंतगुणाय भूभृते ॥२८॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे प्रद्युम्नदिग्विजयार्थं गमनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अथ पंचमोऽध्यायः

(प्रद्युम्नका कच्छ-कलिङ्ग-विजय)

श्रीबहुलाश्व उवाच

कान्कान्देशान् ययौ जेतुं क्रमतः श्रीहरेः सुतः । तस्य कर्माण्युदाराणि ब्रूहि देवर्षिसत्तम ॥ १ ॥
अहो श्रीकृष्णचंद्रस्य कृपा भक्तेषु चेदृशी । पुनाति प्रश्रुता ख्याता पापिनं सकुलं जनम् ॥ २ ॥

श्रीनारद उवाच

साधु साधु त्वया पृष्टं साधु ते विमला मतिः । चरितं कृष्णभक्तानां पुनाति भुवनत्रयम् ॥ ३ ॥
तत्काले मेघधाराश्च भूमेः सर्वरजांसि च । कविर्गणयेद्राजन्न हरेः श्रीमतो गुणान् ॥ ४ ॥
चतुर्योजनमात्रं हि छाया यस्य प्रदृश्यते । तेन श्वेतातपत्रेण शोभितो रुक्मिणीसुतः ॥ ५ ॥
रथेन शक्रदत्तेन स्वसैन्यपरिवारितः । कच्छदेशान् ययौ जेतुं त्रिपुरान्गिरिशो यथा ॥ ६ ॥
कच्छदेशाधिपः शुभ्रो मृगयार्थी विनिर्गतः । सेनां समागतां ज्ञात्वा पुरीं द्वालां समाययौ ॥ ७ ॥
प्रद्युम्नस्यागता सेना गजपादप्रताडनैः । चूर्णयंती तरून्देशान्पातयन्ती च मैथिल ॥ ८ ॥
उत्थितैस्तद्रजोवृन्दैरन्धीभूतं नभोऽभवत् । भयं प्रापुर्जनाः सर्वे कच्छदेशनिवासिनः ॥ ९ ॥
तदातिदर्पितः शुभ्रो गजानां हेममालिनाम् । नीत्वा पञ्चशतं सद्यो हयानामयुतं तथा ॥१०॥
त्रिंशद्भारं सुवर्णानामागतस्यास्य संमुखे । दत्त्वा बलिं ननामाशु स्रजा बद्ध्वा करद्वयम् ॥११॥
तस्मै तुष्टः शंबरारिः प्रददौ रत्नमालिकाम् । संस्थाप्य राज्ये तं राजंस्तथा हि प्रकृतिः सताम् ॥१२॥
कलिंगान्प्रययौ जेतुं रुक्मिणीनन्दनो बली । पतत्पताकैः सत्सैन्यैर्मेघैरिव व्रजन् ॥१३॥
कलिङ्गराजः स्वबलैः समर्थद्विपवाहनैः । निर्ययौ संमुखे योद्धुं प्रद्युम्नस्य महात्मनः ॥१४॥

कलिङ्गमागतं वीक्ष्यानिरुद्धो धन्विनां वरः । रथेनैकेन तत्सैन्यैर्युयुधे यादवाग्रतः ॥१५॥
शतबाणैश्च कालिङ्गं दशभिर्दशभी रथान् । अताडयद्गजान् वीरश्चापं टङ्कारयन्मुहुः ॥१६॥
स्वर्गत्रवश्च स्वे सर्वे साधु साध्विति वादिनः । अनिरुद्धः प्रयुयुधे प्रद्युम्नस्य प्रपश्यतः ॥१७॥
अनिरुद्धस्य बाणौघैः केचिद्वीरा द्विधा कृताः । गजाश्च भिन्नशिरसः पादभिन्ना हया नृप ॥१८॥
रथाश्च चूर्णचरणा हताश्वा हतनायकाः । रथिसारथयो वार्तैर्निपेतुः पादपा इव ॥१९॥
पलायमानां तां सेनां कलिङ्गो वीक्ष्य मैथिल । आजगाम गजारूढो विच्छिन्नकवचो रुषा ॥२०॥
द्विसप्ततिभारयुतां गदां चिक्षेप सत्वरम् । गजेन पातयन्वीराञ्जगर्ज घनवद्बली ॥२१॥
गदाप्रहारपतितं किंचिद्व्याकुलमानसम् । अनिरुद्धं मृधे वीक्ष्य यादवाः क्रोधपूरिताः ॥२२॥
तदैव तेडुः कालिङ्गं बाणैस्तीक्ष्णैः स्फुरत्प्रभैः । समांसमुद्भटं श्येनं कुरराश्चंचुभिर्यथा ॥२३॥
कालिंगोऽपि तदा क्रुद्धःसज्जं कृत्वा धनुः स्वयम् । टंकारयन्मुहुर्बाणैर्बाणांश्चूर्णीचकार ह ॥२४॥
गदो गदां समादाय बलदेवानुजो बली । तद्गजं ताडयामास वामहस्तेन मैथिल ॥२५॥
अर्धचंद्रप्रहारेण विशीर्णोऽभूद्गजस्तथा । इन्द्रवज्रप्रहारेण गण्डशैलो यथा नृप ॥२६॥
कालिंगः पतितो भूत्वा गृहीत्वा महतीं गदाम् । गदं च ताडयामास कालिंगं च गदस्तदा ॥२७॥
कलिङ्गगदयोस्तत्र घोरं युद्धं बभूव ह । विस्फुलिङ्गान् क्षरन्त्यौ द्वे गदे चूर्णीबभूवतुः ॥२८॥
गदो गृहीत्वा कालिंगं पातयित्वा रणांगणे । चकर्ष स्वकरेणाशु फणिनं गरुडो यथा ॥२९॥
गदाप्रहारव्यथितश्चूर्णितास्थिः कलिङ्गराट् । आययौ शरणं सोऽपि प्रद्युम्नस्य महात्मनः ॥३०॥

दत्त्वा बलिं प्राह कलिङ्गराजस्त्वं देवदेवः परमेश्वरोऽसि ।
कः क्रोधवन्तं प्रसहेत को त्वां जनो यथा दण्डधरं नमस्ते ॥३१॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे कच्छकलिङ्गविजयो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

(प्रद्युम्नका मरुधन्व-मालव-माहिष्मती-विजय)

श्रीनारद उवाच

इत्थं जित्वाऽथ कालिंगं प्रद्युम्नो यादवेश्वरः । जगाम मरुधन्वानं जलं वैश्वानरो यथा ॥ १ ॥
गिरिदुर्गसमायुक्तं धन्वदेशाधिपं गयम् । उद्धवं प्रेषयामास ज्ञात्वा तं यादवेश्वरः ॥ २ ॥
गिरिदुर्गं गतः साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तमः । सभामेत्य गयं प्राह शृणु राजन्महामते ॥ ३ ॥
उग्रसेनो यादवेन्द्रो राजराजेश्वरो महान् । जंबूद्वीपनृपाञ्जित्वा राजसूयं करिष्यति ॥ ४ ॥
परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान्स्वयम् । असंख्यब्रह्मांडपतिर्मंत्री तस्याभवद्धरिः ॥ ५ ॥
तेन वै प्रेषितः साक्षात्प्रद्युम्नो धन्विनां वरः । शीघ्रं तस्मै बलिं नीत्वा कुलकौशलहेतवे ॥ ६ ॥

श्रीनारद उवाच

श्रुत्वा किंचित्प्रकुपितो वीर्यशौर्यमदोद्धतः । उद्धवं प्राह नृपतिर्गयो नाम महाबलः ॥ ७ ॥

गय उवाच

बलिं तस्मै न दास्यामि विना युद्धं महामते । अल्पकालेन यदवो गता वृद्धिं भवादृशाः ॥ ८ ॥
इत्युक्त उद्धवो राजञ्छंबरारिं समेत्य सः । सर्वेषां यादवानां च शृण्वतां प्रशशंस ह ॥ ९ ॥
तदैव रुक्मिणीपुत्रो गिरिदुर्गं समाययौ । तत्सैन्यैर्यादवैः सार्द्धं घोरं युद्धं बभूव ह ॥१०॥
चूर्णयन् गजपादैश्च नागरान् भूजनान्द्रुमान् । अक्षौहिणीभ्यां संयुक्तो गयो योद्धुं विनिर्ययौ ११॥
रथिनो रथिभिस्तत्र गजवाहा गजैः सह । अश्ववाहैरश्ववाहा वीरा वीरैः परस्परम् ॥१२॥
युयुधुस्तीक्ष्णबाणौघैश्चर्मखड्गगदर्ष्टिभिः । पाशैः परश्वधैः राजञ्छतघ्नीभिर्भुशुंडिभिः ॥१३॥

मन्यमानाश्च यदुभिर्गयवीरा भयातुराः । सर्वे स्वं स्वं रथं त्यक्त्वा दुद्रुवुस्ते दिशो दश ॥१४॥
पलायमाने स्वबले गयो नाम महाबलः । एकाकी प्रययौ योद्धुं धनुष्टंकारयन्मुहुः ॥१५॥
दीप्तिमान् कृष्णपुत्रस्तु धनुर्बाणै रिपोर्हयान् । एकेन सारथिं जघ्ने द्वाभ्यां केतुं समुच्छ्रितम् ॥१६॥
रथं च बाणविंशत्या कवचं पंचभिः पुनः । धनुस्तस्यापि चिच्छेद शतबाणैर्महाबलः ॥१७॥
गयोऽन्यद्धनुरादाय दीप्तिमन्तं हरेः सुतम् । जघान बाणविंशत्या जगर्ज घनवद्बली ॥१८॥
तत्प्रहारेण समरे किंचिद्व्याकुलमानसः । दीप्तिमानथ जग्राह शक्तिं ज्योतिर्मयीं दृढाम् ॥१९॥
चिक्षेप भ्रामयित्वा तां गयाख्याय महात्मने । साऽपि तद्धृदयं भित्त्वा पपौ च रुधिरं महत् ॥२०॥
गयोऽपि पतितो राजन्मूर्च्छितोऽभूद्रणांगणे । दीप्तिमांश्च धनुष्कोट्या कर्षयंस्तद्गले रिपुम् ॥२१॥
प्रद्युम्नस्य पुरः प्रागात्कद्रुजं गरुडो यथा । नरदुंदुभयो नेदुर्देवदुन्दुभयस्तदा ॥
आकाशाद्ववृपुर्देवाः पुष्पवर्षाणि पार्थिवाः ॥२२॥

तदैव तेनापि समर्पितांघ्रिः श्रीकृष्णपुत्रो नृप शंबरारिः ।
अवन्तिकां संप्रययौ महात्मा श्रीकर्णिकां स्वर्णमयीमिवालिः ॥२३॥
श्रुत्वाऽऽगतं तं जयसेनराजः समर्चयामास स मालवाधिपः ।
आनीय वृद्धान्सुबलिं महात्मने प्रधर्षितो मैथिल तत्प्रभाववित् ॥२४॥
राजाधिदेवीं स्वपितुः पितुः स्वसां प्रणम्य तां कृष्णसुतो महामनाः ।
विंदानुविंदौ परिरभ्य तत्सुतौ बभौ वृतो मालवदेशसंभवैः ॥२५॥

प्रद्युम्नो धन्विनां श्रेष्ठः पुरीं माहिष्मतीं ययौ । यादवैः स्वबलैः सार्द्धं नर्मदां स ददर्श ह ॥२६॥
राजितामंबुकल्लोलैः शृङ्गारतिलकामिव । वहंतीं पुष्पनिचयमुष्णिहं मुद्रिकामिव ॥२७॥

वेतसीवेणुतरुभिः पुष्पितैर्माधवैर्वृतैः । स्फुरद्भिर्मूर्तिमद्भिश्चं देवैः स्वर्गनदीमिव ॥२८॥
तत्तीरे शिबिरैर्युक्तः प्रद्युम्नो यादवेश्वरः । स्थितोऽभूद्यादवैः साकं देवैरिंद्र इव प्रभुः ॥२९॥
इन्द्रनीलो महाराज ज्ञानी माहिष्मतीपतिः । स्वदूतं प्रेषयामास प्रद्युम्नाय महात्मने ॥३०॥
प्रद्युम्नराजशिबिरे दूतो गत्वा कृतांजलिः । उवाच वचनं तत्र सर्वेषां शृण्वतां नृप ॥३१॥

दूत उवाच

हस्तिनापुरनाथेन धार्तराष्ट्रेण धीमता । स्थापितोऽतिबलो वीरो बलिं कस्मै न दास्यति ३२॥
सुयोधनाय चेच्छाभिर्द्रव्यं यच्छति नो बलात् । योद्धव्यं च भवद्भिश्च विफलो हि रणोऽत्र वै ॥३३॥

श्रीप्रद्युम्न उवाच

यथा गयो दूत कलिंगराड् यथा तथाऽभिभूतोऽपि बलिं प्रदास्यति ।
नृपं न जानाति महोग्रसेनकं माहिष्मतीशोऽयमतीव राजराट् ॥३४॥

श्रीनारद उवाच

उक्तो दूतस्तदैवाशु गत्वा महिष्मतीपतिम् । सभायां कथयामास प्रद्युम्नकथितं वचः ॥३५॥
यदूनामुद्भटं सैन्यं वीक्ष्य माहिष्मतीपतिः । गजानां पञ्चसाहस्रं हयानां नियुतं शुभम् ॥३६॥
रथानामयुतं जैत्रं नीत्वा राजा विनिर्गतः । बलिं ददौ समेत्याशु प्रद्युम्नाय महात्मने ॥३७॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे मरुधन्वमालवमाहिष्मतीदेशविजयो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

(प्रद्युम्नकी गुर्जर तथा चेदिदेशकी यात्रा)

श्रीनारद उवाच

प्रद्युम्नोऽथ महावीर्यो जित्वा माहिष्मतीपतिम्। विकर्षन्महतीं सेनां गुर्जराजं समाययौ ॥ १ ॥

से शृंगारतिलकके समान प्रचुर पुष्पसमूहको पगड़ीकी तरह बहाती हुई वह रही थी ॥ २७ ॥ उसके तटपर वेंत और बाँसके वृक्ष माधवी लतासे अत्यन्त शोभित हो रहे थे। जैसे देवताओंसे स्वर्गनदी मन्दाकिनीकी शोभा होती है ॥ २८ ॥ उसीके किनारे यादवेश्वर प्रद्युम्नने पड़ाव डाल दिया और यादवोंके साथ टिक गये। जैसे देवताओंके साथ इन्द्र टिकते हैं ॥ २९ ॥ तब माहिष्मतीपुरीके नरेश महाराज इन्द्रनीलने उनके पास अपना दूत भेजा ॥ ३० ॥ वह दूत प्रद्युम्नके शिविरमें गया और प्रणाम करके सबके समक्ष यह वचन बोला ॥ ३१ ॥ दूतने कहा—हस्तिनापुरके बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्रने महाबली इन्द्रनीलको इस राज्यकी गद्दीपर बिठाया था। इस कारण वे किसीको भेंट नहीं देते ॥ ३२ ॥ दुर्योधनको अपनी इच्छासे धन देते हैं, बलपूर्वक नहीं। यदि आप युद्ध करेंगे तो वह विफल होगा ॥ ३३ ॥ श्री प्रद्युम्नने कहा—हे दूत! जैसे राजा गय और कलिंगनरेशने भेंट दी थी। वैसे ही अपना तिरस्कार कराके माहिष्मती पुरीका नरेश भी मुझे भेंट देगा। यह बात दूसरी है कि माहिष्मती पुरीका नरेश राजा उग्रसेनको नहीं जानता ॥ ३४ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन्! वह दूत तत्काल वहाँसे चलकर माहिष्मतीपतिके पास गया और सभामें प्रद्युम्नकी कही बात कह सुनायी ॥ ३५ ॥ यादवोंकी उद्भट सेना देखकर माहिष्मतीनरेश पाँच हजार हाथी, दस लाख घोड़े तथा दस हजार विजयी रथ लेकर पुरीसे बाहर निकला और प्रद्युम्नके पास जाकर उन्हें भेंट दी ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन्! महाबली प्रद्युम्न इस प्रकार माहिष्मतीनरेशको जीतकर अपनी

गुर्जरस्याधिपं वीरमृष्यं नाम महाबलम् । जग्राह सेनया कार्ष्णिस्तुंडयाऽहिं यथाऽविराट् ॥ २ ॥
सद्यस्तस्माद्बलिं नीत्वा यादवेंद्रो महाबलः । विकर्षन्महतीं सेनां चेदिदेशांस्ततो ययौ ॥ ३ ॥
दमघोषश्चेदिराजो वसुदेवस्वसुः पतिः । शिशुपालस्तस्य पुत्रः कृष्णशत्रुः प्रकीर्तितः ॥ ४ ॥
अभीयाय महाबुद्धिर्दमघोषं महाबलम् । नत्वा प्राह महाबुद्धिमुद्धवो बुद्धिसत्तमः ॥ ५ ॥

उद्धव उवाच

राजन्देहि बलिं तस्मा उग्रसेनाय भूभृते । विजित्य नृपतीन् योऽसौ राजसूयं करिष्यति ॥ ६ ॥

श्रीनारद उवाच

इत्थं निशम्य वचनं दमघोषसुतः खलः । स्फुरदोष्ठो मन्युपरः प्राहेदं सदसि स्वरम् ॥ ७ ॥

शिशुपाल उवाच

दुरत्यया कालगतिरहो चित्रमिदं जगत् । विधेः कालात्मकस्यापि प्राजापत्ये भवेत्कलिः ॥ ८ ॥
क्व राजहंसः काकः क्व क्व मूर्खः क्व च पंडितः। भृत्या विजेष्यन्ति नृपं चक्रवर्तिनमीश्वरम् ॥ ९ ॥
ययातिशापाद्यदवो भ्रष्टराज्यपदाः स्मृताः । राज्यं स्वल्पं जलं प्राप्य प्रोच्छलंत्यापगा इव १०॥
अवंशसंभवो राजा मूर्खपुत्रो हि पंडितः । निर्धनश्च धनं प्राप्य तृणवन्मन्यते जगत् ॥११॥
उग्रसेनः कतिदिनै राजत्वं समुपागतः । मंत्रिणा वासुदेवेन पूजितः स बलान्नृपः ॥१२॥
तस्य मंत्री वासुदेवो जरासंधभयाद् द्रुतम् । मथुरां स्वपुरीं त्यक्त्वा समुद्रं शरणं गतः ॥१३॥
आभीरस्यापि नन्दस्य पूर्वं पुत्रः प्रकीर्तितः । वसुदेवो मन्यते तं मत्पुत्रोऽयं गतत्रपः ॥१४॥
वसुदेवाद्गौरवर्णादयं श्यामः कुतोऽभवत् । पितामहोऽपि गौरश्च दुःखहास्यमिदं वचः ॥१५॥
प्रद्युम्नं तत्सुतं जित्वा सबलं यादवैः सह । कुशस्थलीं गमिष्यामि महीं कर्तुमयादवीम् ॥१६॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा धनुरादाय तूणौ चाक्षयसायकौ । गंतुमभ्युद्यतं वीक्ष्य चेदिराजस्तमब्रवीत् ॥१७॥

विशाल वाहिनीके साथ गुजरात गये ॥ १ ॥ गुर्जर देशके महाबली नरेश ऋष्यको अपनी सेनाकी सहायतासे पकड़ लिया। जैसे पक्षिराज गरुड़ अपनी चोंचसे साँप पकड़ लेते हैं ॥२॥ तुरन्त उससे भेंट लेकर अपनी सेना-के साथ चेदिदेशको चल पड़े ॥ ३ ॥ चेदिराज दमघोष वसुदेवकी बहिनका पति था। उसका पुत्र शिशुपाल भगवान् श्रीकृष्णका शत्रु था ॥ ४ ॥ अतिबुद्धिमान् उद्धव महाबुद्धिमान् राजा दमघोषके पास गये और नमस्कार करके बोले ॥ ५ ॥ उद्धवने कहा—हे राजन् ! आप महाराज उग्रसेनको भेंट प्रदान करिए। क्योंकि वे सब राजाओंको जीतकर राजसूय यज्ञ करना चाहते हैं ॥ ६ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! उद्धवके वचन सुनकर दमघोषके खल पुत्र शिशुपालने कहा। उस समय मारे क्रोधके उसका होंठ काँप रहा था ॥७॥ शिशुपाल बोला—कालकी गति दुरत्यय होती है। यह संसार बड़े आश्चर्यका विषय है। तभी तो कालात्मा ब्रह्मासे कुम्भकार कहता है कि प्रजापति मैं हूँ या तू है ? ॥ ८ ॥ कहाँ हंस और कहाँ कौआ, कहाँ मूर्ख और कहाँ पण्डित। तभी तो हम चक्रवर्ती राजाओंको ये नौकर जीतना चाहते हैं ॥ ९ ॥ राजा ययातिके शापसे यादवोंका राज्य नष्ट हो गया था। अब थोड़ा-सा राज्य पाकर ये उसी तरह उछलते हैं, जैसे थोड़ेसे भी जल-को पाकर छोटी नदियाँ उमड़ पड़ती हैं ॥ १० ॥ अवंशमें उत्पन्न राजा, मूर्खका पण्डित पुत्र और दरिद्र धनी समस्त संसारको तृणवत् समझता है ॥ ११ ॥ वह उग्रसेन कबका राजा है, जिसका मंत्री कृष्ण है। उसे तो श्रीकृष्णने ही बलपूर्वक राजा बना दिया है ॥ १२ ॥ उसका मंत्री कृष्ण जरासंधके भयसे मथुरापुरी त्याग-कर समुद्रमें जा छिपा है ॥ १३ ॥ कृष्ण वास्तवमें नन्द अहीरका पुत्र है। उसे वसुदेवने बरबस अपना पुत्र मान लिया। उन्हें इस बातपर तनिक भी लाज नहीं आती ॥ १४ ॥ वसुदेव तो गोरवर्ण हैं। उनके घरमें यह काला पुत्र कैसे उत्पन्न हो गया। उसका पितामह भी गौरवर्ण है। यह बड़े दुःख और बड़ी हँसीकी बात है ॥ १५ ॥ सो मैं कृष्णके पुत्र प्रद्युम्न तथा उसके साथी यादवोंको जीतकर द्वारका जाऊँगा और सारी धरती

दमघोष उवाच

शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि क्रोधं मा कुरु मा कुरु । अकस्मादाचरेत्कार्यं न सिद्धिं विंदते ह्यसौ ॥१८॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां साधनं न क्षमासमम् । तस्मात्साम प्रकर्तव्यं साम्नो न सदृशं सुखम् १९॥
दानेन राजते साम दानं सत्क्रियया पुनः । सत्क्रियाऽपि तथा योग्यं गुणं संप्रेक्ष्य राजते ॥२०॥
यादवाश्चेदिपाश्चैव ज्ञातिसंबंधिनः स्मृताः । चेदिपानां च वृष्णीनां कलिं नेच्छामि तत्त्वतः॥२१॥

श्रीनारद उवाच

शिशुपालो बोधितोऽपि दमघोषेण धीमता । नोवाच किंचिद्विमनास्तूर्णीभूतो महाखलः ॥२२॥
श्रुतिश्रवाश्चेदिपराजराज्ञी स्वसा शुभा शूरसुतस्य राजन् ।
समेत्य पुत्रं शिशुपालसंज्ञं प्रत्याह सम्यग्विनयान्विता सा ॥२३॥

श्रुतिश्रवा उवाच

मा पुत्र खेदं कुरुतात्कदाचिन्माभूत्कलिश्चेदिपयादवानाम् ।
ते मातुलोऽयं किल शूरसूनुर्भ्राता च ते तत्सुत एव कृष्णः ॥२४॥
तस्यात्मजा येऽत्र समागतास्ते प्रद्युम्नमुख्याः शतशो महांतः ।
संपूजनीयाश्च मया भवद्भिः संलालनीया न हि युद्धयोग्याः ॥२५॥
अहं गमिष्यामि सहार्द्रचित्ता नेतुं त्वया तात समागतांस्तान् ।
द्रष्टुं चिरोत्कण्ठमना महोत्सवैर्नैतादृशोऽयं समयः कदाचित् ॥२६॥

शिशुपाल उवाच

मम शत्रू रामकृष्णौ यदवः शत्रवश्च मे । घातयिष्यामि तान्सर्वान् यैरहं तु तिरस्कृतः ॥२७॥
पुरा वै कुंडिनपुरे याभ्यां मे हेलनं कृतम् । विवाहो वारितो मे वै रामकृष्णावरी मम ॥२८॥
यदि तेषां यादवानां युवां पक्षं करिष्यथः । तदा त्वां सह पित्रा च निगृह्य निगडैर्दृढैः ॥२९॥

यादवोंसे शून्य कर दूंगा ॥ १६ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! ऐसा कह और धनुष तथा अक्षय बाणवाले दो तरकस लेकर जानेको उद्यत शिशुपालसे राजा दमघोषने कहा ॥ १७ ॥ दमघोष बोले—हे पुत्र ! मैं कहता हूँ कि क्रोध मत करो–मत करो। अकस्मात् कोई काम कर गुजरनेसे सिद्धि नहीं प्राप्त होती ॥ १८ ॥ धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका साधन क्षमा है। अतएव इस समय सामनीति अपनानी चाहिए। क्योंकि सामनीतिके समान सुख और किसी नीतिमें नहीं है ॥ १९ ॥ दानसे सामकी और श्रेष्ठ कार्यसे दानकी शोभा होती है। श्रेष्ठ कार्यकी भी यथोचित गुणोंसे ही शोभा होती है ॥ २० ॥ यादव और चेदिराजे जातिबन्धु हैं। मैं नहीं चाहता कि चेदिवंशियों और यादवोंमें झगड़ा हो ॥ २१ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! बुद्धिमान् राजा दमघोषके समझानेपर विमनस्क होकर महाखल शिशुपाल कुछ नहीं बोला ॥ २२ ॥ उसी समय चेदिराजकी रानी तथा वसुदेवकी बहिन श्रुतिश्रवा अपने पुत्र शिशुपालके पास गयी और बड़े विनीत भावसे कहा ॥ २३ ॥ श्रुतिश्रवा बोली—हे पुत्र ! तुम खेद न करो। मैं भी यही चाहती हूँ कि कोई ऐसा काम न किया जाय कि जिससे यादवों और चेदिवंशियोंमें कलह हो। हे पुत्र ! वसुदेव तुम्हारे मामा हैं और उनके पुत्र श्रीकृष्ण तुम्हारे भाई हैं ॥ २४ ॥ उन श्रीकृष्णके जो प्रद्युम्न आदि पुत्र तथा अन्यान्य बड़े-बड़े यादव यहां आये हैं, वे सब तुमसे सत्कार पानेके अधिकारी हैं—लड़ाईके नहीं ॥ २५ ॥ हे पुत्र ! मैं तेरे साथ उनको लेने जाऊंगी। क्योंकि ऐसा समय बार-बार नहीं मिलता ॥ २६ ॥ शिशुपालने कहा—कृष्ण, बलदेव और सभी यादव मेरे शत्रु हैं। मैं अपना अपमान करनेवालोंको मार डालूंगा ॥ २७ ॥ पूर्वकालमें मेरे विवाहको रोककर कुंडिनपुरमें बलराम और कृष्णने मेरा बहुत बड़ा अपमान किया था। इसीसे वे मेरे शत्रु हैं ॥ २८ ॥ यदि तुम मेरे शत्रुओंका पक्ष लोगी तो मैं तुम्हें और पिताजी दोनोंको मजबूत रस्सोंसे बांधकर [illegible] जेलमें डाल दूंगा ॥ २९ ॥ जैसे

कारागारे कारयामि कंसः स्वपितरौ यथा । अन्यथा चेद्वधिष्यामि शपथो मे तु दुर्घटः ॥३०॥

श्रीनारद उवाच

तद्वचः परुषं श्रुत्वा तूष्णीं यातेऽथ चेदिपे । तद्वचः स्वबलं प्राप्य प्राह सर्वं यथोदितम् ॥३१॥
वाहिनी ध्वजिनी चैव प्रतिमाक्षौहिणीयुता । चतुर्धा शिशुपालस्य सेना युक्ता बभूव ह ॥३२॥

बहुलाश्व उवाच

वाहिन्याद्याश्च या सेनास्तत्संख्यां वद मे प्रभो । ऋषयो हि प्रजानंति भूतं भव्यं भवत्परम् ॥३३॥

श्रीनारद उवाच

शतं द्विपानां रथिनां सहस्रं शतसंयुतम् । अयुतं तुरगाणां च पत्तीनां लक्षमेव च ॥३४॥
सेनाया लक्षणं स्वल्पं द्विगुणं चतुरङ्गिणी । चतुःशतं द्विपानां च रथानामयुतं तथा ॥३५॥
चतुर्लक्षं हयानां च पत्तीनामेककोटयः । लोहकंचुकसंयुक्ताः समर्थबलवाहनाः ॥३६॥
शस्त्रास्त्रज्ञा यत्र शूरा वाहिनी सा बुधैः स्मृता । वाहिन्या द्विगुणीभूता ध्वजिनी सा प्रकीर्तिता ३७॥
ध्वजिन्या द्विगुणी ज्ञेया पृतना कथिता पुरा । ससाहस्रोऽपि शूरः स्यात्सामंतः शतशूरभृत् ॥३८॥
सामन्तानां शतं बिभ्रत्स गजी कथितो मृधे । समरे सारथिं चाश्वान् रथं रक्षेद्रथी च यः ॥३९॥
सेनां रक्षति यो बाणैः कथ्यते स महारथी । स्वसेनां रक्षयञ्छत्रून्सूदयन् रणमंडले ॥४०॥
योऽक्षौहिण्या समं युद्ध्येत्सदा सोऽतिरथी स्मृतः ॥४१॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे गुर्जरराट्चेदिदेशगमनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथ अष्टमोऽध्यायः

(द्युमान् तथा शक्रका वध)

श्रीनारद उवाच

निर्गतः शिशुपालोऽसौ सबलश्चंद्रिकापुरात् । पितरौ तौ तिरस्कृत्य स्वभावो ह्यसतामयम् ॥ १ ॥

वाहिनीध्वजिनीभ्यां च द्युमच्छक्तौ विनिर्गतौ । पृतनाऽक्षौहिणीभ्यां तौ रङ्गपिङ्गौ च मंत्रिणौ ॥ २ ॥
शिशुपालमहासैन्यं प्रलयाब्धिसमं नृप । संवीक्ष्य यदवस्ततुं चाजग्मुः कृष्णपोतकाः ॥ ३ ॥
वाहिनीसहितः पश्चाद्द्युमान्नामा महाबलः । युयुधे यादवैः सार्द्धं शिशुपालप्रणोदितः ॥ ४ ॥
द्वयोश्च सैन्ययोर्बाणैरंधकारोऽभवद्रणे । हयपादरजोवृन्दैः प्रोत्थितैश्छादयन्नभः ॥ ५ ॥
हयाश्च नृप धावन्तः प्रोत्पतंतो द्विपान्प्रति । द्विपाश्च सक्षता युद्धे पातयंतः पदैर्द्विपः ॥ ६ ॥
शुंडादण्डस्य फूत्कारैर्मर्दयन्त इतस्ततः । कस्तूरीपत्रसिंदूररक्तकंबलमंडिताः ॥ ७ ॥
बाणैर्गदाभिः परिघैः खड्गैः शूलैश्च शक्तिभिः । छिन्नांगाः पत्तयः पेतुश्छिन्नबाह्वंघ्रिजानवः ॥ ८ ॥
कश्चित्तीक्ष्णासिना राजन् हयान्युद्धे द्विधाऽकरोत्। केचिद्दंतान् संगृहीत्वा कुंभेषु करिणां गताः ॥ ९ ॥
अमात्यं हस्तिवाहं च मर्दयन्तो मृगेन्द्रवत् । उल्लंघयंतः सहया गजवृंदं महाबलाः ॥१०॥
खड्गप्रहारं कुर्वंतो विदार्य परसैनिकान् । हयस्पृष्टा न दृश्यंते दृश्यंते ते नटा इव ॥११॥
सैन्यवेगं च शत्रूणां दृष्ट्वाऽक्रूरः समाययौ । चकार दुर्दिनं बाणैर्बाणौघैश्चापि निर्गतैः ॥
छादयामास चाक्रूरं वर्षासूर्यमिवाम्बुदः ॥१२॥
छित्त्वा तद्बाणपटलमसिना गांदिनीसुतः । शक्त्या तताड तं वीरं द्युमंतं क्रोधमूर्छितम् ॥१३॥
तत्प्रहारेण भिन्नांगो मूर्छितो घटिकाद्वयम् । पुनरुत्थाय युयुधे शिशुपालसखा बली ॥१४॥
गृहीत्वाऽथ गदां गुर्वीं लक्षभारविनिर्मिताम् । तताड हृदि चाक्रूरं जगर्ज घनवद्द्युमान् ॥१५॥
अक्रूरे तत्प्रहारेण किंचिद्व्याकुलमानसे । युयुधानस्तदा प्रागाज्ज्याशब्दं कारयन्मुहुः ॥१६॥

करे, वह 'अतिरथी' माना जाता है ॥ ४१ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! माता-पिताका निरादर करके शिशुपाल अपनी सेनाके साथ चन्द्रकापुरसे बाहर निकला । दुर्जनोंका स्वभाव ही ऐसा होता है ॥ १ ॥ अपनी वाहिनी और ध्वजिनी सेना लेकर द्युमान् और शक्त ये दोनों निकले । बादमें पृतना तथा अक्षौहिणी लेकर रंग और पिंगनामके दोनों मंत्री चले ॥ २ ॥ प्रलयकालीन समुद्रके समान उमड़ती शत्रुसेनाको देखकर एकमात्र कृष्ण ही जिनके जहाज थे, वे यादव उस समुद्रको पार करनेके लिए आगे बढ़े ॥ ३ ॥ शिशुपाल द्वारा प्रेरित महाबली द्युमान् विशाल वाहिनी लेकर यादवोंसे लड़ने लगा ॥ ४ ॥ दोनों सेनाओंकी बाणवर्षासे रणभूमिमें अन्धकार छा गया । घोड़ोंके खुरोंसे उड़ी धूलसे सारा आकाश भर गया ॥५॥ हे राजन् ! दौड़ते हुए हाथियोंपर बाण गिरते थे तो घायल हाथी शत्रुओंको पटकते हुए भागते थे ॥ ६ ॥ अपनी सूँड़से फुकारते हुए हाथी इधर-उधर लोगोंको रौंदते फिरते थे । कस्तूरी तथा सिन्दूरकी रचनासे उनका मुख सजा रहता था और लाल बनातकी झूल उनकी पीठपर पड़ी रहती थी ॥ ७ ॥ बाण, गदा, परिघ, तलवार, त्रिशूल और बर्छीसे जिन पैदल सैनिकोंकी भुजा, पैर, घुटने तथा अन्यान्य अंग कट गये थे, वे यत्र-तत्र पड़े हुए थे ॥ ८ ॥ किसी वीरने तीखी तलवारसे काटकर घोड़ोंके दो टुकड़े कर दिये और कुछ लोग दाँत पकड़कर हाथियोंपर चढ़ गये ॥९॥ सिंहके समान कुछ वीर महावतों समेत हाथियों और उनके सवारोंको मारने लगे । कुछ घुड़सवार हाथियोंके झुण्डको लाँघकर प्रहार कर रहे थे ॥ १० ॥ कुछ वीर शत्रुसैनिकोंपर तलवारका प्रहार करते थे । कुछ योद्धा नटकी तरह सरपट घोड़े दौड़ाते थे, किन्तु ऐसा लगता था कि जैसे घोड़ोंके शरीरसे उनके किसी अंगका स्पर्श ही नहीं होता है ॥ ११ ॥ शिशुपालकी सेनाका प्रबल प्रहार देखकर अक्रूर आगे आये । उन्होंने बाणोंसे सारा आकाश ढाँक दिया । उनके शत्रुओंने अपनी बाणवर्षासे अक्रूरको ढाँक दिया । जैसे वर्षा सूर्यको ढाँक देती है ॥ १२ ॥ तब गांदिनीके पुत्र अक्रूरने अपनी तलवारसे उस बाणपटलको काटकर क्रोधसे मूर्छित द्युमानको बर्छीसे मारा ॥ १३ ॥ इस प्रहारसे घायल द्युमान् दो घड़ीतक मूर्छित पड़ा रहा । बादमें वह शिशु-पालका सखा उठकर फिर लड़ने लगा ॥ १४ ॥ तभी द्युमानने एक लाख भारकी भारी गदा लेकर अक्रूरको

शिरस्तस्याशु चिच्छेद बाणेनैकेन लीलया । पतिते द्युमति ह्याजौ वीरास्तस्य विदुद्रुवुः ॥१७॥
तदैव शक्तः संप्राप्तो दृष्ट्वा सेनां पलायिताम् । शूलं चिक्षेप सहसा युयुधानाय धीमते ॥१८॥
युयुधानश्च बाणौघैस्तच्छूलं शतधाऽकरोत् । शक्तो गृहीत्वा परिघं युयुधानं तताड ह ॥१९॥
युयुधानोऽर्जुनसखः क्षणं मूर्च्छामवाप ह । तदैव वीरः संप्राप्तः कृतवर्मा महाबलः ॥२०॥
शक्तस्यापि रथं साश्वं बाणैश्चूर्णीचकार ह । शक्तोऽपि चूर्णयामास गदया तद्रथं परम् ॥२१॥
कृतवर्मा रथं त्यक्त्वा शक्तं जग्राह रोषतः । पातयित्वा भुजाभ्यां तं चिक्षेप नृप योजनम् ॥२२॥
शक्ते च पतिते युद्धे शिशुपालप्रणोदितौ । रंगपिंगौ मंत्रिणौ तौ पृतनाऽक्षौहिणीयुतौ ॥२३॥
बाणवर्षं प्रकुर्वंतौ मर्दयंतावरीन्मृधे । आजग्मतुर्मैथिलेन्द्र यथा वातहुताशनौ ॥२४॥
उद्भटं तद्बलं वीक्ष्य यादवेन्द्रपितुः समः । आदाय चापं सदसि प्रद्युम्नो वाक्यमब्रवीत् ॥२५॥

प्रद्युम्न उवाच

अहं गमिष्यामि पुरो रङ्गपिङ्गमृधे जनाः । रंगपिंगौ च दृश्येते महाबलपराक्रमौ ॥२६॥

श्रीनारद उवाच

एतच्छ्रुत्वा महाबाहुर्भानुः कृष्णसुतो बली । सर्वेषामग्रतो भूत्वा भ्रातरं प्राह नीतिवित् ॥२७॥

भानुरुवाच

त्रैलोक्यं दृश्यते प्राप्तं यदा ते संमुखे प्रभो । तदा ते चापटंकारो भविष्यति न संशयः ॥२८॥
केवलेनापि खड्गेन शिरसी रङ्गपिङ्गयोः । छित्त्वा चात्र प्रवेक्ष्यामि कलिंगशकलाविव ॥२९॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे द्युमच्छक्तवधो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

छातीपर प्रहार किया और बादलकी तरह गर्जने करने लगा ॥ १५ ॥ इस प्रहारसे अक्रूरको व्याकुल देखकर युयुधान (सात्यकि) आगे बढ़ा ॥ १६ ॥ सम्मुख पहुँचकर युयुधानने एक ही बाणसे द्युमानका सिर काट लिया । इस प्रकार द्युमानके मर जानेपर उसके सब साथी भाग गये ॥ १७ ॥ सेनाको भागती देखकर शक्त आया और आते ही उसने युयुधानपर त्रिशूलका प्रहार किया ॥१८॥ किन्तु युयुधानने अपने पैने बाणोंसे उसके त्रिशूलको काटकर सौ टुकड़े कर दिये । तब शक्तने युयुधानको परिघसे मारा ॥ १९ ॥ इससे अर्जुनका मित्र युयुधान क्षणभरके लिए मूर्च्छित हो गया । तभी महाबली कृतवर्मा आ पहुँचा ॥ २० ॥ उसने आते ही बाणोंकी बौछार करके शक्तके रथ तथा घोड़ोंको चूर कर दिया । बदलेमें शक्तने गदाकी मारसे कृतवर्माके रथको चूर्ण कर दिया ॥ २१ ॥ तब कृतवर्मा रथसे कूद पड़ा और कुपित होकर शक्तको पकड़ लिया और हाथसे घुमाकर एक योजन (चार कोस) दूर फेंक दिया ॥ २२ ॥ जब शक्त रणभूमिमें गिर गया, तब शिशुपालकी प्रेरणासे उसके दो मंत्री रंग और पिंग पृतना तथा अक्षौहिणी सेनाके साथ समरभूमिमें आये ॥ २३ ॥ आते ही उन्होंने बाणोंकी वर्षा करके शत्रुओंका मर्दन आरम्भ कर दिया । हे मिथिलेश ! जैसे आग और आँधी साथ आती हैं, वैसे ही वे दोनों आये थे ॥ २४ ॥ उस उद्भट सेनाको देख श्रीकृष्णके सदृश पराक्रमी यादवेन्द्र प्रद्युम्नने सभामें धनुष लेकर कहा ॥ २५ ॥ प्रद्युम्न बोले—हे साथियो ! रंग-पिंगके युद्धमें मैं स्वयं जाता हूँ । ये दोनों बड़े बलवान् दीखते हैं ॥ २६ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! प्रद्युम्नकी बात सुनकर श्रीकृष्णका पुत्र महाबाहु भानु सबके आगे आ खड़ा हुआ और अपने भाई प्रद्युम्नसे कहा ॥ २७ ॥ भानु बोला—भैया ! यदि आपके समक्ष समस्त त्रिलोकी आ जाय, तभी आपके धनुषका टंकोर होगा । इसमें सन्देह नहीं है ॥२८॥ मैं केवल अपनी इस तलवारसे ही रंग और पिंग दोनोंका सिर वैसे ही काटकर ले आऊँगा, जैसे तरबूज काटा जाता है ॥ २९ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः

(चेदिदेशविजय)

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा शत्रुहा भानुर्गृहीत्वा खड्गचर्मणी । पदातिः प्रययौ सैन्ये वने वन्यकरीव सः ॥ १ ॥
भानुः खड्गेन शत्रूंस्ताञ्छिन्नबाहूंश्चकार ह । द्विपान् हयान्सम्मुखस्थान् पार्श्वस्थांश्च द्विधाऽकरोत् ॥
खड्गद्वितीयो ह्येकाकी रेजे छिंदन्नरीन्मृधे । नीहारमेघपटलैर्भानुर्भानुरिव स्फुरन् ॥ ३ ॥
हस्तिनां छिन्नकुम्भानां भानुः खड्गेन मैथिल । मुक्ता निपेतुश्च यथा तारकाः क्षीणकर्मणाम् ॥ ४ ॥
क्षणमात्रेण तत्सैन्यं पातयित्वा रणांगणे । रंगपिंगोपरि प्रागाद्भानुर्वीरो महाबलः ॥ ५ ॥
कृष्णदत्तेन खड्गेन रथौ तौ रङ्गपिङ्गयोः । छित्वा हयान्सनेतॄंश्च भानुर्युद्धे द्विधाऽकरोत्॥ ६ ॥
खड्गौ नीत्वा रङ्गपिंगौ तेडतुस्तं महोद्भटौ । भानुचर्मगतौ खड्गौ भंगीभूतौ बभूवतुः ॥ ७ ॥
भानुखड्गप्रहारेण शिरसी रंगपिंगयोः । युगपत्पेततुर्युद्धे तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ८ ॥
भानुस्तयोश्च शिरसी नीत्वा प्रद्युम्नसंमुखे । आययौ विजयी वीरः श्लाघितः सैन्यनायकैः ॥ ९ ॥
दिवि दुन्दुभयो नेदुर्नवदुन्दुभिभिः समम् । अभूज्जयजयारावः पुष्पवर्षाः सुरैः कृताः ॥१०॥
रंगपिंगौ मृतौ श्रुत्वा शिशुपालो रुषान्वितः । जैत्रं रथं समारुह्य यदूनां संमुखं ययौ ॥११॥
मदच्युद्भिर्गजैर्दीर्घैं रत्नकंबलमंडितैः । स्वर्णनीडसमायुक्तैर्लोलघण्टाकणत्स्वनैः ॥१२॥
रथैश्च देवधिष्ण्याभैर्वायुवेगैस्तुरंगमैः । विद्याधरसमैर्वीरैर्नादयन् वसुधातलम् ॥१३॥
शिशुपालबलं दृष्ट्वा शक्रदत्तरथे ततः । सर्वेषामग्रतः कार्ष्णिः प्रययौ धन्विनां वरः ॥१४॥
शंखं दध्मौ हरेः पुत्रो दिशः खं नादयन्नृप । तेन नादेन शत्रूणां कंपोऽभूद्धृदि मानद ॥१५॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! ऐसा कहकर शत्रुको नष्ट करनेमें कुशल भानु ढाल-तलवार लेकर वनैले हाथीके समान पैदल ही चल पड़ा ॥१॥ रणभूमिमें पहुँचकर भानुने अपनी तलवारसे शत्रुओंकी भुजायें काट डालीं और सामने पड़नेवाले हाथियों, घोड़ों और पार्श्ववर्ती शत्रुओंको काटकर दो-दो टुकड़े कर दिये ॥ २ ॥ जिसकी सहायक केवल तलवार थी, वह अकेला वीर भानु शत्रुओंको काटता हुआ इस प्रकार शोभित हुआ, जैसे कुहरेको हटाकर सूर्य शोभित होता है ॥ ३ ॥ हे मैथिल ! भानुकी तलवारसे कटे हाथियोंके मस्तकसे गिरकर जो मोती बिखर गये थे, वे क्षीणपुण्यवाले तारागणोंके सदृश दीख रहे थे ॥ ४ ॥ क्षण-मात्रमें रणांगणकी शत्रुसेनाको धराशायी करके महाबली भानु रंग-पिंगकी ओर बढ़ा ॥ ५ ॥ वहाँ पहुँचते ही भानुने श्रीकृष्णकी दी हुई तलवारसे रंग-पिंगके घोड़ों तथा सारथी समेत रथको काटकर दो-दो टुकड़े कर दिये ॥ ६ ॥ तब रंग-पिंगने भी तलवार लेकर भानुपर प्रहार किया, किन्तु भानुकी ढालमें लगते ही दोनोंकी तलवारें टूट गयीं ॥ ७ ॥ इसके बाद जब भानुने उन दोनोंपर अपनी तलवारका प्रहार किया तो दोनोंके सिर कटकर दूर जा गिरे । उस युद्धमें यह बड़ी आश्चर्यजनक घटना घट गयी ॥ ८ ॥ तदनन्तर भानु रंग-पिंगका कटा मस्तक लेकर प्रद्युम्नके समक्ष गये, वहाँ सभी सेनानायकोंने उनकी सराहना की ॥ ९ ॥ तब युद्धस्थलकी दुन्दुभीके साथ देवताओंकी भी दुन्दुभियाँ बजने लगीं । चारों ओर भानुकी जयजयकार होने लगी और देवता उनपर फूल बरसाने लगे ॥ १० ॥ रंग-पिंगके मरणका समाचार सुनकर शिशुपाल क्रोधके साथ अपने विजयी रथपर सवार होकर यादवोंके समक्ष जा पहुँचा ॥ ११ ॥ उसके साथ मद बहाने-वाले बड़े-बड़े हाथी रत्नजटित कंबलोंसे अलंकृत थे । उनपर सुनहले हौदे कसे थे और चंचल घंटे बज रहे थे ॥ १२ ॥ जिनमें वायुके समान द्रुतगामी घोड़े जुते थे, जिनका स्वरूप विमान जैसा था, जिनपर विद्याधरों-के समान वीर बैठे थे, जिनके निनादसे पृथ्वी गुंजरित हो उठी, ऐसे रथोंके साथ शिशुपाल रणांगनमें आया ॥ १३ ॥ उसकी अपार सेना देखकर प्रद्युम्न स्वयं इन्द्रके दिये रथपर बैठकर सबके आगे बढ़े ॥१४॥ रणभूमिमें आकर प्रद्युम्नने सभी दिशाओं तथा आकाशको गुंजरित करके शंख बजाया । हे मानद ! उस घनघोर निनादसे

शिशुपालमहासैन्ये प्रासाद इव दुर्गमे । चक्रे नाराचसोपानं सहसा रुक्मिणीसुतः ॥१६॥
दमघोषसुतो श्रीमान् धनुष्टंकारयन्मुहुः । ब्रह्मास्त्रं संदधे यद्वै दत्तात्रेयेण शिक्षितम् ॥१७॥
प्रचंडं सर्वतस्तेजो दृष्ट्वा श्रीरुक्मिणीसुतः । ब्रह्मास्त्रेणापि तद्युद्धे संजहार स लीलया ॥१८॥
शिशुपालो महाधीमानंगारास्त्रं समादधे । जामदग्न्येन यद्दत्तं महेंद्रे पर्वते नृप ॥१९॥
तस्मादंगारवर्षाभिः कार्ष्णिसेनाऽतिविह्वला । पर्जन्यास्त्रं महादिव्यं तदा कार्ष्णिः समादधे ॥२०॥
स्थूलाभिर्मेघधाराभिरंगाराः शांतिमाययुः । शिशुपालस्तदा क्रुद्धो गजास्त्रं तत्समादधे ॥२१॥
यदगस्त्येन मुनिना शिक्षितं मलयाचले । महोद्भटा गजा दीर्घाः कोटिशस्तद्विनिर्गताः ॥२२॥
ते सैन्यं पातयामासुः प्रद्युम्नस्य महात्मनः । हाहाकारो महानासीद्यदूनां वाहिनीषु च ॥२३॥
प्रद्युम्नोऽथ रणश्लाघी नृसिंहास्त्रं समादधे । नृसिंहो निर्गतस्तस्मान्नादयन् वसुधातलम् ॥२४॥
स्फुरत्सटो दीर्घवालो नखलांगूलभीषणः । ननाद हुंकृतैः शब्दैर्भक्षयंस्तान् गजान् रणे ॥२५॥
विदार्य गजकुम्भांतमुत्पतन् भगवान् हरिः । गजवृंदं मर्दयित्वा तत्रैवांतरधीयत ॥२६॥
चिक्षेप परिघं रोषाच्छिशुपालो महाबलः । चिच्छेद परिघं तद्वै यमदंडेन माधवः ॥२७॥
ततश्चैद्यो रुषाविष्टो गृहीत्वा खड्गचर्मणी । प्रद्युम्नं तमुपाधावत्पतंग इव पावकम् ॥२८॥
कार्ष्णिस्तताड तं खड्गं यमदंडेन वेगतः । चूर्णीबभूव तेनापि निस्त्रिंशश्चर्मणा सह ॥२९॥
पाशिदत्तेन पाशेन सहसा यादवेश्वरः । दमघोषसुतं बद्ध्वा विचकर्ष रणांगणे ॥३०॥
शिशुपालं घातयितुं खड्गं जग्राह रोषतः । तदैव तत्करौ साक्षाद्गदो जग्राह वेगतः ॥३१॥

गद उवाच

परिपूर्णतमेनापि श्रीकृष्णेन महात्मना । वध्योऽयं देववचनं वचनं मा वृथा कुरु ॥३२॥

श्रीनारद उवाच

तदा कोलाहले जाते शिशुपालस्य बंधने । दमघोषो बलिं नीत्वा प्रागात्प्रद्युम्नसंमुखे ॥३३॥
कार्ष्णिस्तमागतं दृष्ट्वा त्यक्त्वा शस्त्राणि शीघ्रतः । अग्रतश्चेदिपं शश्वन्ननाम शिरसा भुवि ॥३४॥
मिलित्वा चाशिषं दत्त्वा प्रद्युम्नाय महात्मने । दमघोषो महाराजः प्राह गद्गदया गिरा ॥३५॥

दमघोष उवाच

प्रद्युम्न त्वं तु धन्योऽसि श्रीयदूनां शिरोमणे । मत्पुत्रेण कृतं यद्वै तत्क्षमस्व दयानिधे ॥३६॥

श्रीप्रद्युम्न उवाच

मम दोषो न ते चायं न ते पुत्रस्य हे प्रभो । सर्वं कालकृतं मन्ये प्रियमप्रियमेव वा ॥३७॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्तो दमघोषोऽपि प्रद्युम्नेन प्रयंत्रितः । शिशुपालं मोचयित्वा नीत्वाऽगाचंद्रकां पुरीम् ॥३८॥
प्रद्युम्नस्य बलं श्रुत्वा साक्षाच्छ्रीकृष्णतेजसः । न केऽपि युयुधुस्तेन राजानश्च बलिं ददुः ॥३९॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसम्वादे रंगपिंगवधे शिशुपालयुद्धे चेदिदेशविजयो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः

(प्रद्युम्नकी कोंकण, कुटक, त्रिगर्त, केरल, तैलंग, महाराष्ट्र, कर्णाटकपर विजय और कारूपदेशको गमन)

श्रीनारद उवाच

मनुतीर्थे ततः स्नात्वा प्रद्युम्नो यदुभिः सह । प्रययौ कौंकणान्देशान्दुंदुभीन्नादयन्मुहुः ॥ १ ॥
कौंकणस्थोऽथ मेधावी गदायुद्धविशारदः । एकाकी मल्लयुद्धेन परीक्षन्नाययौ बलम् ॥ २ ॥
प्रद्युम्नं सबलं प्राह शृणु मे यादवेश्वर । गदायुद्धं देहि मह्यं मद्बलं नाशय प्रभो ॥ ३ ॥

प्रद्युम्न उवाच

एकतो ह्येकतो वीरा बलवंतो महीतले । मानं मा कुरु हे मल्ल विष्णुमायाऽतिदुर्गमा ॥ ४ ॥

॥३२॥ शिशुपालके बाँध लिये जानेपर चारों ओर कोलाहल मच गया । तब राजा दमघोष भेंट लेकर प्रद्युम्नके पास गये ॥ ३३ ॥ दमघोषको सम्मुख खड़ा देखकर प्रद्युम्नने सब शस्त्रास्त्र फेंक दिया और पृथ्वीपर लोटकर प्रणाम किया ॥ ३४ ॥ राजा दमघोषने प्रद्युम्नको गले लगाकर आशीर्वाद दिया और गद्गद वाणीमें बोले ॥ ३५ ॥ दमघोषने कहा—हे प्रद्युम्न ! तुम धन्य हो । हे यादवोंके शिरोमणि ! हे दयानिधे ! मेरे पुत्र शिशुपालने जो कुकर्म किये हैं, उन्हें क्षमा कर दो ॥ ३६ ॥ प्रद्युम्न बोले—देखिए महाराज ! न मेरा दोष है, न आपका । हे प्रभो ! शिशुपालका भी कोई दोष नहीं है । प्रिय और अप्रिय सभी कार्य कालप्रेरित होते हैं ॥ ३७ ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! प्रद्युम्नके वचन सुनकर सन्तुष्ट राजा दमघोष शिशुपालको छुड़ाकर चन्द्रकापुरी चले गये ॥ ३८ ॥ साक्षात् श्रीकृष्णके तेजस्वरूप प्रद्युम्नका यह पराक्रम सुनकर बाकी सभी राजाओंने भेंट दे दी—कोई उनसे लड़ा नहीं ॥ ३९ ॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे 'प्रियंवदा'-भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! इसके बाद प्रद्युम्न मनुतीर्थमें स्नान करके नगाड़े बजाते हुए यादवोंके साथ कोंकण प्रदेशकी ओर चले ॥ १ ॥ वहाँका राजा मेधावी गदायुद्धमें पूर्ण निपुण था । सो मल्लयुद्धसे परीक्षा लेनेके लिए वह अकेला ही आ उपस्थित हुआ ॥ २ ॥ सम्मुख पहुँचकर यादवोंके साथ विराजमान प्रद्युम्नसे उसने कहा—हे प्रभो ! हे यादवेश्वर ! आप मेरे साथ गदायुद्ध करके मेरा बल नष्ट कर दीजिए ॥ ३ ॥ प्रद्युम्नने कहा—हे मल्ल ! धरतीपर एकसे एक वीर हैं । अतएव तुम घमंड मत करो ।

वयं तु बहवो वीरास्त्वमेकाकी समागतः । अधमोऽयं महामल्ल दृश्यते याहि सांप्रतम् ॥ ५ ॥

मल्ल उवाच

यदायुद्धं न कुरुत भवंतो बलशालिनः । मत्पादोऽधोऽत्र निर्यांतु तदा यास्यामि सांप्रतम् ॥६॥

श्रीनारद उवाच

एवं वदति मल्ले वै सर्वे यादवपुंगवाः । बभूवुः क्रोधसंयुक्ताः पश्यतस्तस्य मैथिल ॥ ७ ॥
गदो गदां समादाय बलदेवानुजो बली । तस्थौ सोऽपि गदां नीत्वा सर्वेषां पश्यतां नृप ॥ ८ ॥
गदां वरिष्ठां चिक्षेप गदाय स महाबलः । गदोपरि गदां नीत्वा स्वगदां प्राक्षिपद्गदः ॥ ९ ॥
गदस्य गदया सोऽपि ताडितः पतितो भुवि । मृधेच्छां न चकाराशु ह्युद्वमन् रुधिरं मुखात् ॥१०॥
कोंकणस्थोऽथ मेधावी नत्वा प्राह हरेः सुतम् । परीक्षार्थं च भवतामेतत्कार्यं मया कृतम् ॥११॥
त्वमेव भगवान्साक्षात्कुतोऽहं प्राकृतो जनः । क्षमस्व मेऽपराधं भो त्वामहं शरणं गतः॥१२॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वाऽथ बलिं दत्त्वा नमस्कृत्य हरेः सुतम् । कोंकणस्थः पुरीं प्रागान्मेधावी क्षत्रियोत्तमः ॥१३॥
कुटकाधिपतिं मौलिं मृगयायां विनिर्गतम् । जग्राह स महाबाहुः सांबो जांबवतीसुतः ॥१४॥
कार्ष्णिस्तस्माद्बलिं नीत्वा दंडकाख्यं वनं ययौ । मुनीनामाश्रमान्पश्यन्स्वसैन्यपरिवारितः ॥१५॥
निर्विंध्यां च पयोष्णींच तापीं स्नात्वा हरेः सुतः । शूर्पारकं महाक्षेत्रमार्यां द्वैपायनीं ततः ॥१६॥
ऋष्यमूकं ततः पश्यन्प्रवर्षणगिरिं गतः । पर्जन्यो भगवान्साक्षान्नित्यदा यत्र वर्षति ॥१७॥
गोकर्णाख्यं शिवक्षेत्रं दृष्ट्वा कार्ष्णिः स्वसैन्यकैः । त्रिगर्तान्केरलान् देशान् ययौ जेतुं महाबलः ॥१८॥
अम्बष्ठः केरलाधीशः श्रुत्वा वार्तां तु मन्मुखात् । ददौ तस्मै बलिं शीघ्रं प्रद्युम्नाय महात्मने ॥१९॥
कृष्णां वेणीं तदोत्तीर्य तैलंगान् विषयान् ययौ । सैन्यपादरजोवृंदैरंधीकुर्वन्नभःस्थलम् ॥२०॥
तैलंगस्याधिपो राजा विशालाक्षः प्रकीर्तितः । पुरस्योपवने रेमे सुंदरीगणसंवृतः ॥२१॥

मृदंगाद्यैश्च वादित्रैर्मधुरध्वनिसंकुलैः । परैरप्सरसां रागैर्गीयमानो ग्रुराडिव ॥२२॥
तं प्राह सुंदरी रामा राज्ञी मंदारमालिनी । रजोव्याप्तं नभो वीक्ष्य शुष्यद्बिंबाधरा परा ॥२३॥

मंदारमालिन्युवाच

राजन्न जानासि सदा विहारादहर्निशं कामविशाललोलः ।
अहं न जानामि कदापि दुःखं मुखालकालिभ्रमरास्त्वयेषा ॥२४॥
द्वारावतीशाध्वरनागवल्लिचयं समुत्थाप्य दिशो जयार्थम् ।
विजित्य सर्वान्नृप चेदिपान्स समागतोऽसौ यदुराजराजः ॥२५॥
धुंकारशब्दं शृणु दुंदुभीनां चीत्कारफूत्कारयुतं द्विपानाम् ।
कोदंडटंकारमयं पराणां कल्पांतसारस्वतनादकारम् ॥२६॥
त्वरं वलिं प्रेषय शंबरारये प्रधावतीः पश्य नरेंद्र सुंदरीः ।
च्युतप्रसूनाः श्रमवारिवर्षिणीर्वनप्रवेशास्फुटकेशमंडनाः ॥२७॥

पत्नीवाक्यं ततः श्रुत्वा विशालाक्षोऽतिहर्षितः । प्रद्युम्नसंमुखे सोऽपि वलिं नीत्वा समाययौ ॥२८॥
तेन सम्पूजितः साक्षात्प्रद्युम्नो धन्विनां वरः । स्नात्वा पंपासरस्तीर्थे महाराष्ट्रं ततो ययौ ॥२९॥
महाराष्ट्राधिपो राजा विमलो नाम वैष्णवः । भक्त्या परमया कार्ष्णिं पूजयामास सर्वतः ॥३०॥

तथा हि कर्णाटपतिः सहस्रजित्स्वतः समानीय वलिं महात्मने ।
सम्पूजयामास शुभार्थहेतवे श्रीशंबरारिं जगतः प्रभुं परम् ॥३१॥

प्रद्युम्नो भगवान्साक्षाद्यादवैः सह मैथिल । करूषान् विषयान्प्रागाज्जेतुं योगीव देहजान् ॥३२॥
महारंगपुरे तत्र वृद्धशर्मा महामतिः । भर्ताऽथ श्रुतदेवाया वसुदेवस्वसुर्नृप ॥३३॥
तस्य पुत्रो दंतवक्रः कृष्णशत्रुः प्रकीर्तितः । शिशुपाल इव क्रुद्धो योद्धुं चक्रे मनः स्वयम् ॥३४॥

आकाश अन्धकाराच्छन्न हो गया ॥ २० ॥ तैलंगमें जब वे पहुँचे, उस समय वहाँका राजा विशालाक्ष अपने उपवनमें स्त्रियोंके साथ विहार कर रहा था ॥ २१ ॥ मृदंगादि वाद्योंकी मधुर ध्वनिके साथ उच्च कोटिकी अप्सराओंका इन्द्रसभा जैसा संगीत चल रहा था ॥ २२ ॥ मंदारमालिनी उसकी एक रानी थी। धूलसे भरे आकाशको देखकर उसके बिम्ब जैसे होंठ सूख गये। उसने राजासे कहा ॥ २३ ॥ मन्दारमालिनी बोली—हे राजन्! सदा विहारमें निमग्न रहनेके कारण आप और कुछ नहीं जानते। रात-दिन आप कामुकतामें लिप्त रहते हैं। आजतक मैं यह भी नहीं जान सकी कि दुःख क्या चीज है। मैं तो केवल आपके मुखपर छितराई अलकोंकी भ्रमरी बनी हुई हूँ ॥ २४ ॥ द्वारकापुरीके अधीश्वर राजा उग्रसेनके राजसूय यज्ञका बीड़ा उठाकर सभी राजाओं और सभी दिशाओंको जीतनेके लिये प्रद्युम्न आये हैं। उन्होंने शिशुपालको जीत लिया है ॥ २५ ॥ सुनिए नगाड़ोंकी गड़गड़ाहट, हाथियोंका चीत्कार और शत्रुओंके धनुषका टंकार साफ सुनायी दे रहा है ॥ २६ ॥ अतएव शम्बर दैत्यके शत्रु प्रद्युम्नको आप शीघ्र भेंट अर्पण कर दीजिए। देखिए, अन्यान्य राजाओंकी रानियाँ भयभीत होकर भाग रहीं हैं। उनके शरीरसे पसीना बह रहा है, उनकी माँगसे फूल गिर रहे हैं और भागकर वनमें प्रविष्ट हो जानेके कारण उनके केशोंके शृंगार बिखर गये हैं और विकल होकर वे इधर-उधर भाग रही हैं ॥ २७ ॥ अपनी पत्नीकी बात सुनकर राजा विशालाक्ष बड़े हर्षित मनसे भेंट लेकर प्रद्युम्नके समक्ष गया ॥ २८ ॥ उसने उनका भरपूर स्वागत-सत्कार किया। तदनन्तर पम्पासरोवरमें स्नान करके प्रद्युम्न महाराष्ट्रको गये ॥ २९ ॥ महाराष्ट्रका राजा विमल वैष्णव था। सो उसने बड़ी भक्तिके साथ प्रद्युम्नका पूजन किया ॥ ३० ॥ कर्णाटक देशके नरेश सहस्रजित्‌ने स्वयं प्रद्युम्नको आमंत्रित किया और अपनी भलाईके लिए जगत्प्रभु उनका बड़ा भावभरा पूजन किया ॥ ३१ ॥ उसके बाद जैसे योगी दैहिक विकारोंको जीतना चाहता है, उसी प्रकार प्रद्युम्न करूष देशको जीतनेके लिए आगे बढ़े ॥ ३२ ॥ महारंगपुरमें राजा वृद्धशर्मा महामति वसुदेवकी बहिन श्रुतदेवाका पति था ॥ ३३ ॥

मात्रा पित्रा दारितोऽपि दैत्यो दैत्याननुव्रतः । यादवान् घातयिष्यामि कोऽयमित्थं चकार ह ॥३५॥
आदाय स गदां गुर्वीं लक्षभारविनिर्मिताम् । एकाकी प्रययौ योद्धुं प्रद्युम्नबलसम्मुखे ॥३६॥
दंतवक्रं कृष्णवर्णं कज्जलाद्रिसमप्रभम् । ललज्जिह्वं घोररूपं तालवृक्षदशोच्छ्रितम् ॥३७॥
किरीटकुण्डलधरं हेमवर्णविभूषितम् । किंकिणीजालसंयुक्तं चलच्चरणनूपुरम् ॥३८॥
कंपयन्तं भुवं वेगात्पातयन्तं गिरीन्द्रुमान् । घातयंतं स्वगदया कृतांतमिव दुर्जनान् ॥३९॥
तं दृष्ट्वा यादवाः सर्वे भयं प्रापुर्मृधांगणे । आगते दंतवक्रे च महान्कोलाहलो ह्यभूत् ॥४०॥
प्रद्युम्नः प्रेषयामास तस्योपरि महद्बलम् । अष्टादशाक्षौहिणीनां धनुष्टंकारयन् मुहुः ॥४१॥
बाणैः परश्वधैः राजञ्छतघ्नीभिर्भुशुंडिभिः । तं तेडुर्यादवाः सर्वे सर्वतोऽद्रिं यथा गजाः ॥४२॥
दंतवक्रः स्वगदया करींद्रानुत्कटान्बहून् । पातयामास राजेंद्र भिन्नकुंभस्थलान् मृधे ॥४३॥
कांश्चित्पादेषु चोन्नीय किंकिणीजालनादितान् । सशृङ्खलान्सनीडांस्ताँल्लोलघंटारणत्स्वनान् ॥४४॥
वातस्तूलमिवाकाशे चिक्षेप शतयोजनम् । शुंडादंडेषु कांश्चिद्वै गृहीत्वा दैत्यपुंगवः ॥४५॥
भ्रामयित्वा गजान्दिक्षु नदतः प्राक्षिपद्रुषा । कांश्चिद्गजान्वंशयोश्च कक्षयोरुभयोरपि ॥४६॥
पद्भ्यामाक्रम्य शुशुभे दैत्यः कालाग्निरुद्रवत् । रथान्सच्छत्रान्साश्वांश्च सध्वजान्समहारथान् ॥
चिक्षेप गगने वीरः पद्मानीव प्रभञ्जनः ॥४७॥
तुरगांश्च पदातींश्च प्राक्षिपद्गगने बलात् । अधोमुखा ऊर्ध्वमुखा राजपुत्रा महाबलाः ॥४८॥
सशस्त्रा रत्नकेयूरसंयुक्तास्तारका इव । आकाशात्प्रपतंतस्ते वमंतो रुधिरं मुखात् ॥४९॥
बलं विलोडयामास गदया दैत्यपुंगवः । दंष्ट्रया प्रलयाब्धिं श्रीवराह इव मैथिल ॥५०॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे नारदबहुलाश्वसंवादे कोंकणकुटकत्रिगर्तकेरलतैलंगमहाराष्ट्रकर्णाटविजये कारूपदेशगमनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथ एकादशोऽध्यायः

(दन्तवक्रकी पराजय और करूषदेशपर प्रद्युम्नकी विजय)

तदा श्रीकृष्णपुत्राणामष्टादश महारथाः । सक्षतं कारयामासुर्दन्तवक्रं महाबलम् ॥ १ ॥
दंतवक्रोऽतिशुशुभे स क्षतो रक्तधारया । लाक्षयेव यथा सौधं प्रहारं नानुचिंतयन् ॥ २ ॥
कृतवर्मा च बाणौघैस्तं जघान रणांगणे । युयुधानश्च खड्गेन शक्त्याऽक्रूरो महाबलम् ॥ ३ ॥
सारणस्तं कुठारेणाहनत्तं रोहिणीसुतः । दंतवक्रोऽपि गदया युयुधानं तताड ह ॥ ४ ॥
करेण कृतवर्माणमक्रूरं स्वांघ्रिणाऽहनत् । सारणं भुजवेगेन कारूषो रणदुर्मदः ॥ ५ ॥
अक्रूरः कृतवर्मा च युयुधानोऽथ सारणः । निपेतुर्मूर्छिता भूमौ मरुता पादपा इव ॥ ६ ॥
ततो गदां समादाय सांबो जांबवतीसुतः । गदोपरि गदां नीत्वा गदया तं तताड ह ॥ ७ ॥
दंतवक्रो गदां त्यक्त्वा सांबं जांबवतीसुतम् । गृहीत्वा पातयामास भुजाभ्यां रणमंडले ॥ ८ ॥
सांबस्तदा समुत्थाय गृहीत्वा पादयोश्च तम् । अपोथयद्भूमिपृष्ठे तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ९ ॥
दंतवक्रः समुत्थाय साट्टहासं तदाऽकरोत् । ननाद तेन ब्रह्मांडं सप्तलोकैर्बिलैः सह ॥१०॥
पताकाढ्येन दिव्येन सहस्रादित्यवर्चसा । सहस्रहययुक्तेन प्रद्युम्नं धन्विनां वरम् ॥
दंतवक्रोऽपि तं वीक्ष्य प्राहेदं परुषं वचः ॥११॥

दन्तवक्र उवाच

यूयं च यादवाः सर्वे वृष्णयो ह्यंधकादयः । अल्पसत्त्वा जनास्तुच्छा विद्रुता युद्धभीरवः ॥१२॥
ययातिशापसंभ्रष्टा भ्रष्टराज्या गतत्रपाः । एकोऽहं बहवो यूयं युष्माभिश्च कृतं मृधम् ॥१३॥
अधमवर्तिभिस्तुच्छैर्धर्मशास्त्रविलोपिभिः । पूर्वं पिता ते श्रीकृष्णो नन्दस्य पशुरक्षकः ॥१४॥

कुछ उर्ध्वमुख, शस्त्रसहित, रत्नोंके केयूर पहने और रुधिरकी उलटी करते हुए राजकुमार आकाशसे वैसे ही गिरने लगे, जैसे तारे गिरते हैं ॥४७-४९ ॥ उस दैत्यपुंगवने अपनी गदासे सारी यादवी सेनाको वैसे ही मथ डाला, जैसे प्रलयकालमें वाराहभगवान्ने समुद्रको मथा था ॥५०॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन्! तभी श्रीकृष्णके अठारह महारथी पुत्रोंने उस महाबली दंतवक्रको घायल कर दिया ॥ १ ॥ घावोंसे निरन्तर रक्त बहनेपर भी शत्रुके प्रहारकी कुछ भी चिन्ता न करता हुआ दंतवक्र लाखकी धारा बहानेवाले महलकी तरह शोभित हुआ ॥२॥ तब रणांगणमें कृतवर्माने दंतवक्रपर बाणोंसे प्रहार किया । सात्यकिने तलवारसे और अक्रूरने बर्छीसे उसको मारा ॥ ३ ॥ इसी प्रकार सारणने कुठारसे और रोहिणीसुतबलरामने हलसे उसपर प्रहार किया । इसके बाद दंतवक्रने सात्यकिपर गदा चलायी ॥४॥ उसने हाथसे कृतवर्माको, लातसे अक्रूरको और भुजवेगसे सारणको मारा ॥५॥ अक्रूर, कृतवर्मा, युयुधान और सारण ये सब उसकी मारसे इस तरह गिर पड़े, जैसे पवनकी मारसे वृक्ष गिर जाते हैं ॥ ६ ॥ तदनन्तर जाम्बवती-सुत साम्बने गदा लेकर दन्तवक्रपर प्रहार किया ॥ ७ ॥ तब दंतवक्रने गदा त्याग दी और साम्बको हाथोंसे पकड़कर रणभूमिपर पटक दिया ॥ ८ ॥ तत्काल उठकर साम्बने उसके दोनों पैर पकड़ लिये और उठाकर बहुत जोरसे पृथिवीपर दे मारा ॥ ९ ॥ किन्तु दन्तवक्र तुरन्त उठ खड़ा हुआ और उसने ऐसा अट्टहास किया कि जिससे सप्तलोकोंके साथ समस्त ब्रह्माण्ड चीत्कार कर उठा ॥ १० ॥ उसी समय जिसपर पताका फहरा रही थी, जिसमें हजार घोड़े जुते थे और हजार सूर्य सदृश जिसका तेज था, उस रथपर बैठकर प्रद्युम्न रणांगणमें आये । उन्हें देखकर दन्तवक्रने बड़ी ही रूखी वाणीमें कहा ॥ ११ ॥ दन्तवक्र बोला—सभी वृष्णि तथा अन्धकवंशी यादव बड़े तुच्छ, बड़े निर्बल, बड़े डरपोक और भगोड़े हैं ॥ १२ ॥ राजा ययातिके शापसे वे भ्रष्ट हो गये हैं, उनका राज्य भी भ्रष्ट हो गया है और वे बड़े निर्लज्ज हैं । इस रणभूमिमें मैं अकेला हूँ और

गोपालोच्छिष्टभोजी च सोऽत्र वै यादवेश्वरः । हय्यंगवीनदध्याज्यदुग्धतक्रादिकं रसम् ॥१५॥
चोरयामास गोपीनां रसिको रासमंडले । जरासंधभयात्सोऽपि समुद्रं शरणं गतः ॥१६॥
सोऽत्रैव यदुनाथोऽभूत्त्रो भीरुः कालसंमुखे । तेन दत्तं स्वल्पराज्यमुग्रसेनः समेत्य सः ॥१७॥
करिष्यत्यल्पसारार्थे राजसूयं क्रतूत्तमम् । दुरत्यया कालगतिर्जातं चित्रमहो जगत् ॥
अध्यास्ते सिंहशार्दूलं शृगालो ह्यतिदुर्बलः ॥१८॥

श्रीप्रद्युम्न उवाच

पुरा वै कुंडिनपुरे यदूनां बलमूर्जितम् । त्वया दृष्टं न किं त्वत्र पश्यात्रैव विनिंदक ॥१९॥
युष्मान्संबंधिनो ज्ञात्वा नेच्छे युद्धं करूषप । बलात्त्वं युद्धमाकार्षीर्धर्मशास्त्रं त्वया कृतम् ॥२०॥
नंदो द्रोणो वसुः साक्षाज्जातो गोपकुलेऽपि सः । गोपाला ये च गोलोके कृष्णरोमसमुद्भवाः ॥२१॥
राधारोमोद्भवा गोप्यस्ताश्च सर्वा इहागताः । काश्चित्पुण्यैः कृतैः पूर्वैः प्राप्ताः कृष्णं वरैः परैः ॥२२॥
परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान्स्वयम् । असंख्यब्रह्मांडपतिर्गोलोकेशः परात्परः ॥२३॥
यस्मिन्सर्वाणि तेजांसि विलीयंते स्वतेजसि । तं वदंति परे साक्षात्परिपूर्णतमः स्वयम् ॥२४॥
उग्रसेनोऽथ राजेंद्रो मरुत्तो नाम यः पुरा । श्रीकृष्णस्य वरेणासौ यादवेंद्रो बभूव ह ॥२५॥
निरंकुशो महामूर्खो विनिन्दसि महद्गुणम् । स न प्रार्थयते किंचिद्यथा सिंहः शिवारुतम् ॥२६॥

श्रीनारद उवाच

एवं वचस्तदा श्रुत्वा दंतवक्रो मदोत्कटः । गदां गुर्वीं समादाय प्राद्रवत्तद्रथोपरि ॥२७॥
गदया पातयामास सहस्रं घोटकान्मदन । घोटका दुद्रुवुः सर्वे दृष्ट्वा रूपं भयंकरम् ॥२८॥

प्रद्युम्नोऽपि गदां नीत्वा तं तताड दृढं हृदि । तत्प्रहारेण दैत्येंद्रः किंचिद्व्याकुलमानसः ॥२९॥
तयोश्च गदया युद्धं घोररूपं बभूव ह । गदाभ्यां प्रहरंतौ द्वौ मर्दयंतौ परस्परम् ॥३०॥
दंतवक्रो भुजाभ्यां तं गृहीत्वा श्रीहरेः सुतम् । भूमौ निपातयामास सिंहः सिंहमिवौजसा ॥३१॥
प्रद्युम्नोऽपि समुत्थाय गृहीत्वा भुजयोर्बलात् । भ्रामयित्वा भुजाभ्यां तं पातयामास भूतले ॥३२॥
प्रद्युम्नस्य प्रहारेण सोऽपतद्रुधिरं वमन् । चूर्णितास्थिःखिन्नगात्रो मूर्च्छितोविह्वलाकृतिः॥३३॥
गिरीन्द्र इव भूपृष्ठे रेजे शक्रायुधाहतः । तत्प्रहारेण वसुधा चचाल सजलाऽभवत् ॥३४॥
विचेलुर्दिग्गजास्ताराः समुद्राश्च चकंपिरे । पातशब्देन राजेन्द्र त्रिलोकी बधिरीकृता ॥३५॥

तदैव कारूपपतिर्महात्मा श्रीवृद्धशर्मा श्रुतदेवया च ।
राज्या महारंगपुराद्यदूनां समाययौ सुंदरसंधिकारी ॥३६॥
दत्त्वा बलिं मैथिल शंबरारये सुतं गृहीत्वा कृतसंधिरग्रतः ।
तथा यदूनां प्रवरैः प्रपूजितः पुनर्महारंगपुरं समाययौ ॥३७॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे नारदबहुलाश्वसंवादे दंतवक्रयुद्धे करूपदेशविजयो नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

(प्रद्युम्न और अगस्त्यकी ज्ञानचर्चा)

श्रीनारद उवाच

अर्णवं दक्षिणं स्नात्वा प्रद्युम्नो यादवाधिपः । उशीनरांस्ततो जेतुमाजगाम बलैः सह ॥ १ ॥
कोटिशः कोटिशो गावो यत्र देशे चरंति हि । गोपालमंडलैर्युक्ता व्रजंत्यो भव्यमूर्तयः ॥ २ ॥
औशीनराः क्षीरपाना गौरवर्णा मनोहराः । हय्यंगवीनमादाय ते ययुः कार्ष्णिसंमुखे ॥ ३ ॥
तैः पूजितः शंबरारिर्ददौ तेभ्यो महाधनम् । गजान् रथान् हयान् रत्नवस्त्रभूषादि हर्षितः ॥ ४ ॥

देखकर भाग गये ॥ २८ ॥ तब प्रद्युम्नने भी गदा लेकर उसकी छातीपर प्रहार किया । उस आघातसे दंतवक्र कुछ व्याकुल हो गया ॥ २९ ॥ फिर दोनोंमें विकट गदायुद्ध होने लगा और गदासे दोनों एक दूसरेपर निर्मम प्रहार करने लगे । जैसे किसी पर्वतपर दो सिंह परस्पर जूझ रहे हों ॥ ३० ॥ तभी दन्तवक्रने प्रद्युम्नको दोनों भुजाओंसे उठाकर धरतीपर पटक दिया । जैसे सिंह सिंहको पटक दे ॥ ३१ ॥ तत्काल उठकर प्रद्युम्नने भी जोरसे पकड़कर दन्तवक्रको पृथिवीपर दे मारा ॥ ३२ ॥ प्रद्युम्नके प्रहारसे दंतवक्र रुधिर वमन करता हुआ मूर्छित हो गया । उसकी हड्डियाँ चूर हो गयीं और वह व्याकुल हो उठा ॥३३॥ जैसे इन्द्रके वज्र-प्रहारसे पर्वत गिर जाता है, उसी तरह कारूषदेशका राजा दन्तवक्र पृथिवीपर गिर गया । उसके गिरनेपर सब समुद्रों समेत पृथ्वी डगमगा उठी ॥ ३४ ॥ सभी दिग्गज, तारागण और समुद्र काँपने लगे । उसके गिरनेके भीषण निनादसे सारी त्रिलोकी बहरी हो गयी ॥ ३५ ॥ उसी समय सुन्दर संधि करनेवाला कारूषदेशका अधिपति राजा वृद्धशर्मा महारंगपुरसे रानी श्रुतदेवाके साथ यादवोंके पास आया ॥ ३६ ॥ हे मिथिलेश ! उसने आकर प्रद्युम्नको भेंट दी, भविष्यके लिए सन्धि की और प्रमुख यादवों द्वारा पूजित हो अपने पुत्र दंतवक्रको साथ लेकर महारंगपुर लौट गया ॥ ३७ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! दक्षिणी समुद्रमें स्नान करके यादवाधिपति प्रद्युम्न अपनी सेनाके साथ उशीनर देशको जीतनेके लिए आगे बढ़े ॥ १ ॥ उस उशीनर देशमें करोड़ों गौयें चरती थीं, वे ग्वालोंकी टोलीके साथ विचरती थीं और उन गौओंका बड़ा सुन्दर स्वरूप था ॥ २ ॥ यहाँके निवासी गौर वर्ण और सदा दूध ही पीते थे । वे मक्खनकी भेंट लेकर प्रद्युम्नके पास गये ॥ ३ ॥ उन्होंने प्रद्युम्नका विधि-

गोपालोच्छिष्टभोजी च सोऽद्य वै यादवेश्वरः । ह्य्यंगवीनदध्याज्यदुग्धतक्रादिकं रसम् ॥१५॥
चोरयामास गोपीनां रसिको रासमंडले । जरासंधभयात्सोऽपि समुद्रं शरणं गतः ॥१६॥
सोऽद्यैव यदुनाथोऽभूद्यो भीरुः कालसंमुखे । तेन दत्तं स्वल्पराज्यमुग्रसेनः समेत्य सः ॥१७॥
करिष्यत्यल्पसारार्थे राजसूयं क्रतूत्तमम् । दुरत्यया कालगतिर्जातं चित्रमहो जगत् ॥
अध्यास्ते सिंहशार्दूलं शृगालो ह्यतिदुर्बलः ॥१८॥

श्रीप्रद्युम्न उवाच

पुरा वै कुंडिनपुरे यदूनां बलमूर्जितम् । त्वया दृष्टं न किं त्वत्र पश्याद्यैव विनिंदक ॥१९॥
युष्मान्संबंधिनो ज्ञात्वा नेच्छे युद्धं करूषप । बलात्त्वं युद्धमाकार्षीर्धर्मशास्त्रं त्वया कृतम् ॥२०॥
नंदो द्रोणो वसुः साक्षाज्जातो गोपकुलेऽपि सः । गोपाला ये च गोलोके कृष्णरोमसमुद्भवाः ॥२१॥
राधारोमोद्भवा गोप्यस्ताश्च सर्वा इहागताः । काश्चित्पुण्यैः कृतैः पूर्वैः प्राप्ताः कृष्णं वरैः परैः ॥२२॥
परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान्स्वयम् । असंख्यब्रह्मांडपतिर्गोलोकेशः परात्परः ॥२३॥
यस्मिन्सर्वाणि तेजांसि विलीयंते स्वतेजसि । तं वदंति परे साक्षात्परिपूर्णतमः स्वयम् ॥२४॥
उग्रसेनोऽथ राजेंद्रो मरुतो नाम यः पुरा । श्रीकृष्णस्य वरेणासौ यादवेंद्रो बभूव ह ॥२५॥
निरंकुशो महामूर्खो विनिन्दसि महद्गुणम् । स न प्रार्थयते किंचिद्यथा सिंहः शिवारुतम् ॥२६॥

श्रीनारद उवाच

एवं वचस्तदा श्रुत्वा दंतवक्रो मदोत्कटः । गदां गुर्वीं समादाय प्राद्रवत्तद्रथोपरि ॥२७॥
गदया पातयामास सहस्रं घोटकान्नदन् । घोटका दुद्रुवुः सर्वे दृष्ट्वा रूपं भयंकरम् ॥२८॥

अगस्त्य उवाच

विवेकं यः समाश्रित्य भजेद्‌ब्रह्म सनातनम् । मनोमयं जगन्मत्वा स व्रजेत्परमं पदम् ॥२०॥
जन्ममृत्यू शोकमोहौ जराबाल्ययुवादयः । अहं मदो व्याधिभयं दुःखं शोकः क्षुधा रतिः ॥२१॥
आधिर्भयं तस्य राजन्न भवेत कदाचन । आत्मा निरीहो ह्यतनुः सर्वतश्चानहंकृतिः ॥
शुद्धो गुणाश्रयः साक्षात्परो निष्कल आत्मदृक् ॥२२॥
ज्ञानात्मकः सदा पूर्णो विदितो यो मुनीश्वरैः । तं ब्रह्म परमात्मानं ज्ञात्वाऽयं विचरेत्सुखी ॥२३॥
अस्मिञ्छयाने जागर्ति सर्वं पश्यति यः पुमान् । नायं तं वेत्ति पश्यंतं न पश्यति कदाचन ॥२४॥
नभोऽग्निपवनाः कोष्ठकाष्ठप्रोद्गतरेणुभिः । न सज्जंते गुणैर्ब्रह्म वर्णैश्च स्फटिको यथा ॥२५॥
लक्षणाभिर्ध्वनिव्यंग्यैर्ज्ञायते न कदाचन । कुतस्तु लौकिकैर्वाक्यैस्तस्मै श्रीब्रह्मणे नमः ॥२६॥
केचित्कर्म वदंत्येनं केचित्कालं तथाऽपरे । कर्तारं योगमपरे सांख्यं ब्रह्म वदंति कम् ॥२७॥
केचित्तं परमात्मानं वासुदेवं वदंति के । प्रत्यक्षेणानुमानेन निगमेनात्मसंविदा ॥२८॥
विचार्य तद्‌ब्रह्म परं निःसंगो विचरेदिह । यथांभसा प्रचलता तरवोऽपि चला इव ॥२९॥
चक्षुषा भ्राम्यमाणेन दृश्यते चलतीव भूः । तथा गुणानां भ्रमणो भ्रमता मनसा यतः ॥३०॥
भ्राम्यमाणः सदा राजन्करेणालातचक्रवत् । करिष्यामि करोमीति ममेदं तव चाब्रुवन् ॥
त्वमहं च सुखी दुःखी सदाऽज्ञानविमोहितः ॥३१॥
सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः । तैरिदं जगदाव्याप्तमोतप्रोतपटं यथा ॥३२॥
ऊर्ध्वं गच्छंति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठंति राजसाः । यद्यन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छंति तामसाः ॥३३॥

प्राप्त होता; सो बताइए । हे ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ ! क्या दृढ़ वैराग्य होनेपर जीव बन्धनमें नहीं बँधता ?॥ १९ ॥ अगस्त्यजी बोले—जो प्राणी विवेकके सहारे जगत्को मनोमय जानकर सनातन ब्रह्मको भजता है, वह परम-पद प्राप्त कर लेता है ॥ २० ॥ जन्म, मृत्यु, शोक, मोह, बाल्य, वार्धक्य, यौवन, अहंता, ममता, मद, रोग, भय, सुख, दुःख, भूख, प्यास, रति और आधि (मानसी व्यथा) ये सब आत्माको नहीं होते ॥ २१ ॥ आत्मा निरीह है, यह कोई चेष्टा नहीं करता, इसका शरीर नहीं है, यह सर्वव्यापी है, अहंकाररहित है, शुद्ध है, गुणोंका आश्रय है, साक्षात् परब्रह्म है, मायासे परे है, निष्कल है और आत्मद्रष्टा है । इसको कभी कोई आधि अथवा भय नहीं होता ॥ २२ ॥ परमात्मा ज्ञानस्वरूप है, सदासे परिपूर्ण है और मुनीश्वरों द्वारा जाना जाता है । उस परब्रह्मको जानकर सानन्द विचरे ॥ २३ ॥ जब जगत् सोता है, तब वह जागता और देखता है, पर जो पुरुष देखता है, उसको वह जगत् नहीं देखता और नहीं जानता ॥ २४ ॥ जैसे आकाश कोष्ठकमें, अग्नि काष्ठमें, वायु रेणुमें और स्फटिक रंगोंमें नहीं बँधता, उसी तरह आत्मा गुणोंमें नहीं बँधती ॥ २५ ॥ जो लक्षणा, ध्वनि और व्यंग्यसे भी कभी नहीं जाना जाता, वह लौकिक वाक्योंसे कैसे जाना जा सकेगा ? ऐसे अज्ञेय ब्रह्मको हमारा नमस्कार है ॥ २६ ॥ कुछ लोग उसे कर्म, कुछ कर्ता, कुछलोग योग, कुछ ज्ञान और कुछ लोग उसे ब्रह्म कहते हैं ॥ २७ ॥ कुछ लोग उसे परमात्मा कहते हैं । कुछलोग प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं । कुछलोग अनुमानसे, कुछ वेदसे और कुछ योगसे उसके अस्तित्वका प्रतिपादन करते हैं ॥ २८ ॥ इस प्रकार ब्रह्मका विचार करके निःसंग विचरे । जैसे बहते पानीमें वृक्ष भी चलते हुए प्रतीत होते हैं ॥ २९ ॥ जैसे नेत्रोंके फिरनेसे पृथिवी भी फिरती दीखती है, वैसे ही गुणोंसे भ्रमित मनके द्वारा आत्मामें जन्म-मरण आदि विकार दृष्टिगोचर होते हैं ॥ ३० ॥ जैसे हाथसे घुमायी गयी लुआठी घूमती है, उसी प्रकार 'मैं यह करूँगा' 'मैं यह करता हूँ' 'यह मेरा है' 'यह तेरा है' 'तू सुखी है' 'मैं सुखी हूँ' 'तू दुखी है' 'मैं दुखी हूँ' ऐसी-ऐसी बातें करता हुआ प्राणी अज्ञानसे मोहित होकर चक्कर काटा करता है ॥ ३१ ॥ सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण ये तीनों गुण मायाके हैं—आत्माके नहीं । इन्हीं तीनोंसे सारा संसार ओत-प्रोत है । जैसे सूतसे कपड़ा ओत-प्रोत रहता है ॥ ३२ ॥ सत्त्वगुणमें स्थित लोग ऊपर स्वर्गादि

चंपावती नाम पुरी मणिरत्नसमन्विता । विराजते यत्र नृपैः सर्पैर्भोगवती यथा ॥ ५ ॥
चंपावतीपतिर्वीरो नाम्ना हेमांगदो नृपः । नीत्वा बलिं समेत्याशु श्रीकार्ष्णिं प्रणनाम ह ॥ ६ ॥
तस्मै तुष्टः शंबरारिर्मालां किंजल्किनीं ददौ । सहस्रदलशोभाढ्यं पद्मं दिव्यं ददौ पुनः ॥ ७ ॥
अथ कार्ष्णिर्महाबाहुः स्वसैन्यपरिवारितः । विदर्भान्प्रययौ धन्वी दुंदुभीन्नादयन्मुहुः ॥ ८ ॥
भीष्मकः कुंडिनपतिरागतं रुक्मिणीसुतम् । आनीय पूजयामास ससैन्यं बहुभिर्धनैः ॥ ९ ॥
मातामहं ततो नत्वा रुक्मिणीनंदनो बली । कुंतदेशांश्च दरदान्प्रययौ यादवेश्वरः ॥१०॥
मलयाचलपाटीरवायुभिः परिसेवितः । श्रीखंडकेतकीपुष्पगंधाक्ते मलयाचले ॥११॥
अगस्त्यं मुनिशार्दूलं पीताब्धिं स ददर्श ह । कृतांजलिपुटः कार्ष्णिर्नमस्कृत्य महामुनिम् ॥
स्थितोऽभूदुटजे साक्षादाशीर्भिरभिनंदितः ॥१२॥

श्रीप्रद्युम्न उवाच

दृश्यं पदार्थं तु जगत्सत्यवद्वर्तते कथम् । मुक्तो ब्रह्मांशको भूत्वा बद्ध्यतेऽयं कथं गुणैः ॥१३॥
एतत्प्रश्नं मम ब्रूहि नितरां मुनिसत्तम । त्वं सर्वविद्दिव्यचक्षुः सर्वब्रह्मविदां वरः ॥१४॥

अगस्त्य उवाच

त्वं साक्षात्कृष्णचंद्रस्य परिपूर्णतमस्य च । पुत्रोऽसि पृच्छसे मां वै लीलामात्रमिदं वचः ॥१५॥
लोकसंग्रहमेवार्थं कुर्वन्देवो हरिर्यथा । तथा नृणां च कल्याणं कुर्वन्विचरसि प्रभो ॥१६॥
यथा सत्यस्य सूर्यस्य बिंबं वारिषु सत्यवत् । दृश्यते सत्यवद्दृश्यं प्रधानपरयोस्तथा ॥१७॥
काचे मुखं गुणे सर्पं सैकते जीवनं यथा । तथाऽयं सन्देहगुणैर्बद्ध्यते प्रेक्षता स्वयम् ॥१८॥

प्रद्युम्न उवाच

कथं न बद्ध्यते देही येनोपायेन तद्वद । वैराग्येण दृढेनापि ब्रूहि ब्रह्मविदां वर ॥१९॥

पूजन किया। प्रद्युम्नने भी उन्हें प्रचुर धन, हाथी, घोड़े, रथ, रत्न और आभूषण दिये ॥ ४ ॥ विविध मणियों और रत्नोंसे शोभित चम्पावती नगरी राजाओंसे ऐसी भरी रहती है, जैसे सर्पोंसे भोगवतीपुरी भरी रहती है ॥ ५ ॥ चम्पावतीनरेश हेमांगद भेंट लेकर प्रद्युम्नके पास आया और प्रणाम किया ॥ ६ ॥ उसके ऊपर प्रसन्न होकर प्रद्युम्नने उसको किंजल्किनी माला दी और बहुत सुन्दर सहस्रदलका कमल दिया ॥ ७ ॥ तदनन्तर महाबाहु प्रद्युम्न अपनी सेनाके साथ नगाड़े बजवाते हुए विदर्भदेशको गये ॥ ८ ॥ कुंडिनपुरके राजा भीष्मकने प्रद्युम्नका आगमन सुना तो सेनासमेत उनको अपने घर बुलवाया और पुष्कल धन देकर उनका पूजन किया ॥ ९ ॥ तदनन्तर महाबली प्रद्युम्न अपने नाना भीष्मकको प्रणाम करके कुन्त तथा दरद देशकी ओर चल पड़े ॥ १० ॥ मलयगिरिके चन्दनसे सुगन्धित पवन द्वारा सेवित और चन्दन तथा केतकीके पुष्पसे सुवासित मलयपर्वतपर उन्होंने अगस्त्यजीको देखा। जो मुनिशार्दूल समुद्र पी गये थे। उन्हें प्रणाम करके खड़े प्रद्युम्नको अगस्त्यने आशीर्वाद देकर प्रसन्न किया ॥११॥१२॥ प्रद्युम्न बोले—हे मुनिराज! यह जगत् दृश्य पदार्थ है, तब सत्यके समान क्यों दीखता है? जीव ब्रह्मका अंश है और सदा मुक्त है, तब वह गुणोंसे कैसे बँध जाता है ॥ १३ ॥ हे मुनिसत्तम! आप कृपया मेरे इन प्रश्नोंका समाधान बताइए। क्योंकि आप सर्वज्ञ, दिव्य दृष्टिसम्पन्न तथा ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हैं ॥ १४ ॥ अगस्त्यजी बोले—आप साक्षात् परिपूर्णतम भगवान कृष्णके पुत्र हैं। तथापि आप मुझसे ऐसे प्रश्न करते हैं? यह पूछताछ आपकी लीलामात्र है ॥ १५ ॥ हे प्रभो! भगवानकी तरह आपके सब कार्य केवल लोकसंग्रहके निमित्त होते हैं। लोककल्याणके लिए ही आप विचरते हैं ॥ १६ ॥ जैसे सत्य सूर्यका प्रतिबिम्ब जलमें पड़कर सत्य जैसा दीखता है, वैसे ही उस प्रधान पुरुषका यह संसार सत्यके समान दृष्टिगोचर होता है ॥ १७ ॥ जैसे दर्पणमें मुख, रस्सीमें सर्प और बालूमें सूर्यकी चमकमें जल सत्य दीखता है, वैसे ही मिथ्या जगत् सत्यसरीखा दीखता है। उसी प्रकार यह जीव देहमें अहंबुद्धि करके देहके गुणोंसे बँध जाता है ॥ १८ ॥ प्रद्युम्न बोले—यह देहधारी जीव किस उपायसे बन्धनको नहीं

अगस्त्य उवाच

विवेकं यः समाश्रित्य भजेद्ब्रह्म सनातनम् । मनोमयं जगन्मत्त्वा स व्रजेत्परमं पदम् ॥२०॥
जन्ममृत्यू शोकमोहौ जराबालयुवादयः । अहं मदो व्याधिभयं दुःखं शोकः क्षुधा रतिः ॥२१॥
आधिर्भयं तस्य राजन्न भवेत कदाचन । आत्मा निरीहो ह्यतनुः सर्वतश्चानहंकृतिः ॥
शुद्धो गुणाश्रयः साक्षात्परो निष्कल आत्मदृक् ॥२२॥
ज्ञानात्मकः सदा पूर्णो विदितो यो मुनीश्वरैः । तं ब्रह्म परमात्मानं ज्ञात्वाऽयं विचरेत्सुखी ॥२३॥
अस्मिञ्छयाने जागर्ति सर्वं पश्यति यः पुमान् । नायं तं वेत्ति पश्यंतं न पश्यति कदाचन ॥२४॥
नभोऽग्निपवनाः कोष्ठकाष्ठप्रोद्धतरेणुभिः । न सज्जंते गुणैर्ब्रह्म वर्णैश्च स्फटिको यथा ॥२५॥
लक्षणाभिर्ध्वनिव्यंग्यैर्ज्ञायते न कदाचन । कुतस्तु लौकिकैर्वाक्यैस्तस्मै श्रीब्रह्मणे नमः ॥२६॥
केचित्कर्म वदंत्येनं केचित्कालं तथाऽपरे । कर्तारं योगमपरे सांख्यं ब्रह्म वदंति कम् ॥२७॥
केचित्तं परमात्मानं वासुदेवं वदंति के । प्रत्यक्षेणानुमानेन निगमेनात्मसंविदा ॥२८॥
विचार्य तद्ब्रह्म परं निःसंगो विचरेदिह । यथांभसा प्रचलता तरवोऽपि चला इव ॥२९॥
चक्षुषा भ्राम्यमाणेन दृश्यते चलतीव भूः । तथा गुणानां भ्रमणो भ्रमता मनसा यतः ॥३०॥
भ्राम्यमाणः सदा राजन्करेणालातचक्रवत् । करिष्यामि करोमीति ममेदं तव चाब्रुवन् ॥
त्वमहं च सुखी दुःखी सदाऽज्ञानविमोहितः ॥३१॥
सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः । तैरिदं जगदाव्याप्तमोतप्रोतपटं यथा ॥३२॥
ऊर्ध्वं गच्छंति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठंति राजसाः । यघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छंति तामसाः ॥३३॥

अंधकारे गुणात्कार्ष्णे सर्पबुद्धिर्भवेद्यथा । आरान्मरीचिकां वारि तथेदं मन्यते जगत् ॥३४॥
गतागतं सुखं विद्धि यथा मंडलवर्तिनाम् । तथा नृणां च तद्दुःखं यथा नरकवासिनाम् ॥
घनावलिर्देहगुणा अहोरात्रमृतेर्यथा ॥३५॥
यथा सार्थं तथा दृश्यं न किंचित्सर्वदैव हि । पक्षे जाते यथा नीडात्पारे याते यथोडुपात् ॥३६॥
ज्ञाने प्राप्ते तथा लोकादर्पणात्किं प्रयोजनम् । तथा मार्गं निधायाशु विचरेत्समदृङ्मुनिः ॥३७॥
यथेंदुरुदपात्रेषु यथाऽग्निः काष्ठसंचये । तथैको भगवान्साक्षात्परमात्मा व्यवस्थितः ॥३८॥
घटे मठे यथाऽऽकाशो वर्ततेऽन्तर्बहिर्महान् । तथा परात्मा निर्लिप्तो देहिषु स्वकृतेषु च ॥३९॥
यः कृष्णभक्तः शांतात्मा ज्ञाननिष्ठो विरागवान् । तं न स्पृशंतीह गुणाः कानीव बिसिनीदलम् ॥४०॥
ज्ञानी सदानंदमयो बालवद्विचरेत्तनुम् । न पश्यति धृतं वासो मदिरामदमत्तवत् ॥४१॥
सूर्योदये यथा वस्तु गृहे राजन् प्रदृश्यते । दूरीकृत्य तथाऽज्ञानं साक्षात्तत्त्वं ततो बृहत् ॥४२॥
यथेन्द्रियं पृथग्द्वारैरर्थो बहुगुणाश्रयः । नानेयते तथा ब्रह्म वाचिभिः शास्त्रवर्त्मभिः ॥४३॥
परं पदं वदंत्येतत्केचिद्वै वैष्णवं नृप । केचिद्वै व्याप्य वैकुंठं शांतं केऽपि ततः परम् ॥४४॥
कैवल्यं तद्ब्रह्म केचित्परमं धाम चाव्ययम् । अक्षरं च परां काष्ठां गोलोकं प्रकृतेः परम् ॥४५॥
केचिन्निकुंजं विशदं वदंतीह पुराविदः । ज्ञानवैराग्यभक्तिभ्यः प्राप्नोतीह न चान्यतः ॥४६॥

लोकोंको जाते हैं। रजोगुणी लोग बीचके मानवलोकमें रहते हैं और तमोगुणी लोग नीचेके नरकादि लोकोंको जाते हैं ॥ ३३ ॥ हे कृष्णसुत प्रद्युम्न ! जैसे अन्धकारसे रस्सीमें सर्पका भ्रम होता है और दूरसे देखनेपर जैसे वालूमें जलकी भ्रान्ति होती है, उसी प्रकार इस मिथ्या जगत्में सत्यका भ्रम होता है ॥ ३४ ॥ जैसे छोटे-मोटे राजाओंका राज्य आता-जाता रहता है, वैसे ही जनसाधारणका सुख-दुःख आता-जाता रहता है। यही दशा नरकवासियोंकी भी होती है। जैसे बादलोंका समूह और देहके गुण स्थायी नहीं रहते ॥ ३५ ॥ वैसे ही देह आदि भी सदा नहीं रहते। जैसे मार्गके पथिकोंका संग सदा नहीं रहता, वैसे ही इस जगत्का भी साथ सदा नहीं रहता। जैसे पंख निकल आनेपर पंछियोंको नीडकी आवश्यकता नहीं रहती और पार उतर जानेवालोंको नौकाका प्रयोजन नहीं रहता ॥३६॥ उसी प्रकार ज्ञान प्राप्त हो जानेपर दर्पणस्वरूप इस संसारकी आवश्यकता नहीं रह जाती। समदर्शी मुनिको चाहिए कि अपने निस्तारका कोई मार्ग निश्चित करके उसीपर चले ॥ ३७ ॥ जैसे जलभरे पात्रमें चन्द्रबिम्ब और काष्ठमें अग्नि स्थित रहती है, वैसे ही भगवान् सब जगत्में स्थित रहते हैं ॥ ३८ ॥ जैसे घट और मठके बाहर-भीतर आकाश विद्यमान रहता है, किन्तु किसीमें लिप्त नहीं होता, वैसे ही परमात्मा अपनी बनायी देहमें रहता है, किन्तु उसमें लिप्त नहीं होता ॥ ३९ ॥ जो कृष्णभक्त है, शान्तात्मा है, ज्ञाननिष्ठ है, वैराग्यवान् है, उसको ये गुण स्पर्श नहीं करते। जैसे कमलके पत्तेको जल स्पर्श नहीं करता ॥ ४० ॥ ज्ञानीको चाहिए कि वह सदा आनन्दमय होकर बालककी तरह विचरे। उसे अपने तन-बदनकी भी सुधि न रहनी चाहिए। जैसे मदिरासे मत्त पुरुषको अपने वस्त्रकी भी सुधि नहीं रहती ॥ ४१ ॥ हे राजन् ! जैसे सूर्योदय हो जानेपर घरकी वस्तुयें दिखायी देने लगती है, वैसे ही ज्ञान होनेपर सब तत्त्व स्वतः दिखायी देने लगते हैं ॥ ४२ ॥ जैसे एक ही वस्तुको पृथक् पृथक् इन्द्रियाँ अनेक प्रकारकी बताती हैं, उसी तरह एक ही ब्रह्मको विभिन्न शास्त्र भिन्न-भिन्न प्रकारका बताते हैं। जैसे दूधको नेत्र सफेद बताते हैं। उँगलियाँ गर्म-ठंढा बताती हैं। जीभ मीठा-फीका बताती है। नाक सुगन्धि-दुर्गन्धि बताती है। बुद्धि पथ्य-कुपथ्य बताती है और कान उसकी ध्वनि बताते हैं ॥ ४३ ॥ कुछ उसको परम पद, कुछ वैष्णवधाम, कुछ व्याप्त, कुछ लोग वैकुण्ठ, कुछ शान्त, कुछ कैवल्य, कुछ ब्रह्म, कुछ परमधाम, कुछ लोग अव्यय, कुछ लोग अक्षर, कुछ पराकाष्ठा, कुछ गोलोक और कुछ लोग प्रकृतिसे परे कहते हैं ॥४५॥ कुछ पुराविद् विद्वान् उसे विशद और कुछ निकुंज कहते हैं। वह परम पद ज्ञान-वैराग्य और

श्रीकृष्णचंद्रस्य हरेः परस्य कैवल्यनाथस्य परात्परस्य ।
व्रजेत्पदं श्रीपुरुषोत्तमस्य यत्प्राप्य भक्तो न निवर्ततेऽथ ॥४७॥

श्रीनारद उवाच

इति भागवतं ज्ञानं श्रुत्वा कार्ष्णिर्महामुनिम् । अगस्त्यं पूजयामास भक्त्या नत्वा कृतांजलिः ॥४८॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे उशीनरविदर्भकुंतदरददेशविजये अगस्त्यकार्ष्णिज्ञानप्रस्तावो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

(प्रद्युम्नकी शाल्व-मत्सार तथा लंकापर विजय)

श्रीनारद उवाच

कृतमालां ताम्रपर्णीं स्नात्वा श्रीयादवेश्वरः । यदुभिः सैनिकैः सार्द्धं राजन् राजपुरं ययौ ॥ १ ॥
शाल्वो राजपुराधीशः श्रुत्वा सन्मुखतो यदून् । आगतान् स ययौ शीघ्रं द्विविदं वानराधिपम् ॥ २ ॥
द्विविदो ह्यतिसंक्रुद्धो वीरो मित्रसहायकृत् । शंबरारिबलं प्रागाच्चालयन् वसुधातलम् ॥ ३ ॥
विददार नखैर्दंतैः पताकाध्वजपट्टकान् । काश्मीरकंबलैर्युक्तान्सामुद्रान्स्वर्णभूषितान् ॥ ४ ॥
रथानुत्पातयामास गजानारुह्य वेगतः । अश्वान्विद्रावयामास भ्रूभंगैर्वानरस्वनैः ॥ ५ ॥
इत्थं कोलाहले जाते प्रद्युम्नो धन्विनां वरः । आजगाम रथेनासौ धनुष्टंकारयन् मुहुः ॥ ६ ॥
द्विविदस्तद्रथस्यारादुच्चक्राम मदोत्कटः । छत्रं ध्वजं स्वपुच्छेन कंपयन्सहयं रथम् ॥ ७ ॥
प्रद्युम्नः स्वधनुष्कोट्या धृत्वा कंठे चकर्ष ह । कपिस्तदाऽतिकुपितो मुष्टिना तं तताड ह ॥ ८ ॥
प्रद्युम्नो धनुरादाय सज्जं कृत्वा विधानतः । आकृष्य कर्णपर्यंतं विशिखेन तताड तम् ॥ ९ ॥
विशिखी भ्रामयित्वा तं गगने शतयोजनम् । प्रहरार्द्धेन राजेंद्र लंकायां संन्यपातयत् ॥१०॥

भक्तिसे प्राप्त होता है—और किसी तरह नहीं ॥ ४६ ॥ श्रीकृष्णका भक्त परात्पर कैवल्यनाथ पुरुषोत्तमके पदको प्राप्त करके फिर भवसागरमें नहीं लौटता ॥ ४७ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! इस प्रकार भगवद्-ज्ञानविषयक वार्ता सुनकर श्रीकृष्णसुत प्रद्युम्नने महामुनि अगस्त्यको बड़ी भक्तिके साथ हाथ जोड़कर प्रणाम किया और विधिवत् पूजा की ॥ ४८ ॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे 'प्रियंवदा'भाषा-टीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! कृतमाला तथा ताम्रपर्णी नदीमें स्नान करके यादवेश्वर प्रद्युम्न अपने यादव सैनिकोंके साथ राजपुर गये ॥ १ ॥ राजपुरके नरेश शाल्वने मेरे (श्रीनारदजीके) मुखसे यादवोंके आगमनकी बात सुनकर वानरराज द्विविदके पास गया ॥ २ ॥ यादवोंके आगमनकी बात सुनकर मित्रकी सहायताके लिए तत्पर द्विविद बहुत कुपित हुआ और सारी वसुधाको कँपाता हुआ प्रद्युम्नकी ओर चला ॥ ३ ॥ वहाँ जाकर वह अपने दाँतों और नखोंसे काश्मीरी शालोंसे युक्त, मुद्रांकित और स्वर्णभूषित ध्वजा-पताकाओंकी पट्टियोंको चीरने लगा ॥ ४ ॥ वह वेगके साथ हाथियोंपर चढ़कर भौंहें चढ़ाता और किल-कार करके रथोंको फेंकने और घोड़ोंको भगाने लगा ॥ ५ ॥ जब इस प्रहारसे सेनामें कोलाहल मच गया, तब धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्न रथपर बैठकर धनुषका टंकार करते हुआ आये ॥ ६ ॥ मदोत्कट द्विविदने देखा, तैसे-ही उछलकर उनके रथपर चढ़ गया और अपनी पूँछसे छत्र, ध्वज एवं घोड़ों समेत रथको झकझोरने लगा ॥ ७ ॥ तभी प्रद्युम्नने अपने धनुषकी नोकसे फँसाकर उसे अपनी ओर खींचा । इससे बहुत कुपित होकर द्विविदने प्रद्युम्नको एक मुक्का मारा ॥ ८ ॥ प्रद्युम्नने भी विधिवत् धनुष चढ़ाकर द्विविदको एक बाण मारा

रक्षोभिः सह तद्युद्धं बभूव घटिकाद्वयम् । न्यपातयत्स रक्षांसि प्रद्युम्नोऽथ यदूत्तमः ॥११॥
नादयन्दुंदुभिं राजन् विजित्य जगृहे बलिम् । दक्षिणां मथुरां दृष्ट्वा त्रिकूटं चारुरोह ह ॥१२॥
प्रोचक्राम त्रिकूटात्स मैनाकशिखरोपरि । मैनाकात्सिंहलं चैत्य भारतं चाययौ पुनः ॥१३॥
शनैः शनैर्वानरेंद्रो हिमाचलगिरिं गतः । हिमाचलस्य शिखरात्प्राग्ज्योतिषपुरं ययौ ॥१४॥
मत्सारदेशाधिपतिं प्रद्युम्नो यादवेश्वरः । महाक्षेत्रं रामकृष्णं प्रययौ सेतुबंधनम् ॥१५॥
शतयोजनविस्तीर्णं समुद्रं मकरालयम् । वीक्ष्य कार्ष्णिर्महावीरस्तस्थौ वेलां समेत्य सः॥१६॥
सांबादीन्स समाहूयाक्रूराद्यान् यादवान्स्वकान् । सभायामुद्धवं प्राह कार्ष्णिर्योगेश्वरेश्वरः ॥१७॥

प्रद्युम्न उवाच

विभीषणो द्वीपपतिर्महोज्ज्वलो लङ्कापतिः कौणपवृन्दमुख्यः ।
वदाथ किं भोजवराय मंत्रिन्न चेद्बलिं यच्छति मे वदाशु ॥१८॥

उद्धव उवाच

त्वं देवदेवः पुरुषोत्तमोत्तमः श्रीकृष्णचन्द्रः परमस्त्वमेव हि ।
त्वं पृच्छसे लोक इव प्रभो मां मायाऽपि ते योगिवरैर्दुरत्यया ॥१९॥
ब्रह्मादयो यस्य परानुशासनं वहन्ति मूर्ध्ना सततं प्रधर्षिताः ।
स एव साक्षात्पुरुषोऽसि भूमन् दासानुदासोऽस्मि वदामि किं ते ॥२०॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्तः पश्यतां तेषां प्रद्युम्नो भगवान्हरिः । पत्रं गृहीत्वा व्यलिखत्संदेशं मैथिलेश्वर ॥२१॥
श्रीभोजराजाय बलिं प्रयच्छ बलान्न चेन्मे वचनं शृणु त्वम् ।
कोदंडमुक्तैर्विशिखैश्च सेतुं बद्ध्वाऽऽगमिष्यामि ससैन्यसंघः ॥२२॥
लिखित्वेदं समादाय कोदण्डं चण्डविक्रमः । बाणे पत्रं समाधाय कर्णांतं तं ततान ह ॥२३॥

॥ ९ ॥ उस बाणने द्विविदको चार घड़ी तक आकाशमें घुमाया और आधे पहरमें सौ योजन दूर लङ्कामें ले जाकर पटक दिया ॥१०॥ दो घड़ी तक वहाँ उसका राक्षसोंके साथ युद्ध हुआ। उसमें उसने बहुतेरे राक्षसोंको मार डाला। इतनेमें यादवेश्वर प्रद्युम्नने राजपुरके अधीश्वर शाल्वको जीत लिया और नगाड़े बजवाते हुए दक्षिणी मथुरा (मदुरा) के त्रिकूट पर्वतपर चढ़ गये ॥ ११ ॥ १२ ॥ उधर द्विविद भी त्रिकूटाचलपर पहुँचा और वहाँसे मैनाक पर्वतपर चढ़ गया। वहाँसे सिंहल होता हुआ द्विविद फिर भारतमें आ गया ॥ १३ ॥ फिर धीरे-धीरे वह वानरेन्द्र हिमालय पर्वतपर गया और वहाँसे चलकर वह प्राग्ज्योतिषपुर जा पहुँचा ॥ १४ ॥ उधर प्रद्युम्न मत्सारदेशाधिपतिको जीतकर रामकृष्ण-महाक्षेत्र होते हुए सेतुबन्ध गये ॥ १५ ॥ सौ योजन विस्तृत उस मकरालय समुद्रको देखकर महावीर प्रद्युम्न उसके तटपर ही रुक गये ॥ १६ ॥ तदनन्तर साम्ब, अक्रूर तथा उद्धव आदि यादवोंको बुलाकर प्रद्युम्नने योगेश्वर उद्धवसे कहा ॥ १७ ॥ प्रद्युम्न बोले—हे उद्धव ! विभीषण इस देशका स्वामी है। वह लंकापति सभी राक्षसोंका मुखिया है। सो हे मन्त्रिन् ! क्या वह मुझको शीघ्र भेंट नहीं देगा ? ॥ १८ ॥ उद्धव बोले—आप देवदेव पुरुषोत्तम साक्षात् श्रीकृष्ण हैं। तब साधारण मनुष्यके समान आप मुझसे क्या पूछते हैं ? आपकी माया बड़े-बड़े योगियोंके लिए भी दुलँघ्य है। ॥ १९ ॥ ब्रह्मादिक देवता भयभीत होकर आपकी आज्ञाका पालन करते हैं। हे भूमन् ! आप साक्षात् परम पुरुष हैं। मैं तो आपका दासानुदास हूँ। तब मैं आपसे क्या कहूँ ? ॥ २० ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! जब उद्धवने यह कहा, तब सबके समक्ष प्रद्युम्नने एक पत्रमें यह सन्देश लिखा—॥ २१ ॥ हे विभीषण ! श्रीभोजराज उग्रसेनको शीघ्र भेंट दो। यदि तुम हठ करके भेंट न दोगे तो अपने धनुषके छूटे हुए बाणोंसे समुद्रपर सेतु बनाकर मैं अपनी सेनाके साथ शीघ्र आऊँगा ॥ २२ ॥ ऐसा पत्र लिखकर प्रचण्ड पराक्रमी प्रद्युम्नने

प्रस्फुटं स्फोटते नैव टङ्कारोऽभूत्तडित्स्वनः । ननाद तेन ब्रह्मांडं सप्तलोकैर्बिलैः सह ॥२४॥
कोदण्डमुक्तो विशिखो द्योतयन्मण्डलं दिशाम् । विभीषणसभामध्ये संपपात तडित्स्वनः ॥२५॥
तदैव राक्षसाः सर्वे प्रोत्थिताश्चकिता इव । सकंचुकानि शस्त्राणि जगृहुर्वेगतः खलाः ॥२६॥
पत्रं वाणात्समाकृष्य पठित्वाऽथ विभीषणः । विस्मितोऽभूत्सभामध्ये राक्षसेंद्रो महाबलः ॥२७॥
प्राप्तं तदैव सदसि शुक्राचार्यं विभीषणः । पूजयामास पाद्यार्घैर्नत्वा प्राह कृतांजलिः ॥२८॥

विभीषण उवाच

भगवन्कस्य वाणोऽयं भोजराजस्तु कः क्षितौ । किं बलं तस्य मे ब्रूहि त्वं साक्षाद्दिव्यदर्शनः ॥२९॥

श्रीशुक्र उवाच

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । यस्य श्रवणमात्रेण राजन्पापं प्रशाम्यति ॥३०॥
पुरा हि ब्रह्मणः पुत्राः सनकाद्या दिवं गताः । विष्णोर्लोकं ययुर्दिव्यं चरन्तो भुवनत्रयम् ॥३१॥
दिगंबराञ्छिशून्मत्वा जयो विजय एव तान् । द्वारपालौ रुरुधतुर्वेत्रेणांतःपुरस्थितौ ॥३२॥
अशपंस्तौ च ते क्रुद्धाः कृष्णदर्शनलालसाः । भूयास्तामसुरौ दुष्टौ शुद्धौ हि जन्मभिस्त्रिभिः ॥३३॥
एवं शप्तौ स्वभवनात्पततौ भूमिमण्डले । जज्ञाते तौ दितेः पुत्रौ दैत्यदानवपूजितौ ॥३४॥
हिरण्यकशिपुर्ज्येष्ठो हिरण्याक्षोऽनुजस्तथा । भगवान् यज्ञवाराहो भूत्वा क्ष्मामुद्धरञ्जलात् ॥३५॥
जघान मुष्टिना दैत्यं हिरण्याक्षं महाबलम् । हिरण्यकशिपुं साक्षान्नृसिंहश्चण्डविक्रमः ॥३६॥
ददार जठरे तं वै कायाधवसहायकृत् । भ्रातरौ तौ पुनर्जातौ केशिन्यां विश्रवःसुतौ ॥३७॥
रावणः कुम्भकर्णश्च सर्वलोकैकतापनौ । सायकै राघवस्यापि पेततुर्युद्धमंडले ॥३८॥
राक्षसेंद्रौ महावेगौ ससैन्यौ पश्यतस्तव । तृतीयेऽस्मिन्भवे जातौ क्षत्रियाणां कुले किल ॥३९॥

वाणमें पत्रको बाँधकर धनुषपर रक्खा और उसे कानतक खींचकर छोड़ दिया ॥ २३ ॥ उस धनुषके भीषण टंकारसे विद्युत्पात जैसा भयानक निनाद हुआ। उससे सातों लोकों तथा सातों पातालों समेत समस्त ब्रह्माण्ड झंकृत हो उठा ॥ २४ ॥ प्रद्युम्नके धनुषसे छूटा वाण दसों दिशाओंको आलोकित करता हुआ बिजली-के समान कड़ककर विभीषणकी सभामें जा गिरा ॥ २५ ॥ इससे सभी राक्षस चौंक उठे और कंचुकसमेत अपने-अपने शस्त्रास्त्र लेकर उठ खड़े हुए ॥ २६ ॥ तब वाणसे खोलकर पत्र पढ़ा तो महाबली राक्षसेन्द्र विभीषण बहुत विस्मित हुए ॥ २७ ॥ उसी समय सहसा आये हुए शुक्राचार्यका विभीषणने अर्घ्य-पाद्यादिसे विधिवत् पूजन किया और कहा ॥ २८ ॥ विभीषण बोले—हे भगवन् ! यह किसका वाण है और ये भोजराज कौन हैं ? उनमें कितना बल है ? यह सब रहस्य बताइए। क्योंकि आप दिव्यदर्शी हैं ॥ २९ ॥ श्रीशुक्राचार्य बोले—हे राजन् ! इस प्रसंगका एक पुरातन इतिहास है, जिसके श्रवणमात्रसे सब पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ ३० ॥ पूर्व समयमें ब्रह्माजीके सत्यलोकवासी सनकादि पुत्र तीनों लोकोंमें भ्रमण करते हुए वैकुण्ठ लोकको गये ॥ ३१ ॥ उन्हें नग्न शिशु समझकर भगवान्के द्वारपाल जय-विजयने बेंतसे रोक दिया ॥ ३२ ॥ सनकादि-कोंको श्रीकृष्णके दर्शनोंकी उत्कण्ठा थी। उसमें बाधा पड़नेपर क्रुद्ध होकर उन्होंने जय-विजयको शाप देते हुए कहा—तुम दोनों दुष्ट हो। अतएव तुम असुर हो जाओ। तीन जन्मोंमें तुम्हारी शुद्धि होगी ॥ ३३ ॥ उनके शाप देते ही वे दोनों अपने-अपने स्थानसे नीचे आ गिरे। आगे चलकर वे दैत्यों और दानवोंसे वन्दित दिति-पुत्र हुए ॥ ३४ ॥ उनमें बड़ा हिरण्याक्ष और छोटा हिरण्यकशिपु हुआ। कालान्तरमें यज्ञवाराह बनकर भगवान्ने जलसे पृथिवीका उद्धार किया ॥ ३५ ॥ उन्होंने ही मुक्कोंसे मारके हिरण्याक्षको मार डाला। फिर ये ही भगवान् प्रचण्ड नृसिंह हुए और प्रह्लादकी सहायता करते हुए उन्होंने हिरण्यकशिपुका पेट फाड़ डाला। जन्मान्तरमें ये ही दोनों भाई केशिनीसे उत्पन्न होकर विश्रवाके पुत्र हुए। सब लोगोंको सन्ताप देनेवाले रावण और कुम्भकर्ण भगवान् रामके बाणोंसे कटकर रणभूमिमें मर मिटे ॥ ३६–३८ ॥ वे ही वेगवान् वे दोनों

शिशुपालो दन्तवक्रो वर्तमानौ महाबलौ । परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान्स्वयम् ॥४०॥
असंख्यब्रह्मांडपतिर्गोलोकेशः परात्परः । जातस्तयोर्वधार्थाय यदुवंशे हरिः स्वयम् ॥४१॥
यादवेंद्रो भूरिलीलो द्वारकायां विराजते । युधिष्ठिरमहायज्ञे युद्धे शाल्वस्य माधवः ॥४२॥
शिशुपालं दन्तवक्रं हनिष्यति न संशयः । तस्य पुत्रः शंबरारिर्दिग्जयार्थं विनिर्गतः ॥४३॥
विजेष्यति नृपान्सर्वाञ्जंबूद्वीपस्थितान्नृपान् । जितेषु सत्सु देवेषु द्वारकायां यदूत्तमः ॥
उग्रसेनो भोजराजो राजसूयं करिष्यति ॥४४॥
तस्यैव कोदण्डविनिर्गतो बलात्प्रचण्डवेगो विशिखस्त्विहागतः ।
तन्नामचिह्नोऽतितडित्स्वनो बभौ प्रद्योतयन् राक्षस मंडलं दिशाम् ॥४५॥

श्रीनारद उवाच

श्रीरामभक्तोऽथ विभीषणोऽसौ विज्ञाय कृष्णं नृप रामचन्द्रम् ।
नीत्वा बलिं कौणपवृंदमुख्यः समाययौ सुंदरशत्रुसेनाम् ॥४६॥
तदाऽवतीर्याशु महांबरात्स्फुरद्घनद्युतिर्दीर्घवपुर्जयेक्षणः ।
प्रदक्षिणीकृत्य हरेः सुतं पुनः कृतांजलिः संमुख आस्थितोऽभूत् ॥४७॥

विभीषण उवाच

नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय वेधसे । प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः संकर्षणाय च ॥४८॥
नमो मत्स्याय कूर्माय वराहाय नमो नमः । नमः श्रीरामचंद्राय भार्गवाय नमो नमः ॥४९॥
वामनाय नमस्तुभ्यं नृसिंहाय नमो नमः । नमो बुद्धाय शुद्धाय कल्कये चार्तिहारिणे ॥५०॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा श्रीहरेः पुत्रं पूजयामास मानदः । उपचारैः षोडशभिर्भक्त्या परमयाऽऽर्द्रवाक् ॥५१॥
तस्मै तुष्टः शंबरारिर्ददौ ज्ञानं विरक्तिमत् । भक्तिं शांतिकरीं साक्षाद्यांति दुष्प्रेमलक्षणाम् ॥५२॥
ब्रह्मदत्तं महादिव्यं पद्मरागं शिरोमणिम् । पौलस्त्येन पुरा दत्तां रत्नमालां स्फुरत्प्रभाम् ॥५३॥

राक्षसेन्द्र तुम्हारे देखते-देखते तीसरे जन्ममें क्षत्रियकुलमें जनमे हैं ॥ ३९ ॥ शिशुपाल तथा दन्तवक्रके नामसे विख्यात वे दोनों महाबली इस समय विद्यमान हैं। साक्षात् परिपूर्णतम श्रीकृष्ण उन्हें मारनेके लिए यदुकुलमें अवतरे हैं ॥ ४० ॥ ४१ ॥ अनेकानेक लीलायें करनेवाले यादवेन्द्र श्रीकृष्ण द्वारकामें रहते हैं। आगे चलकर राजा युधिष्ठिरके राजसूय महायज्ञके समय शाल्वयुद्धमें वे ही उन दोनों दुष्टों शिशुपाल और दंतवक्रका वध करेंगे। उन्हीं भगवान् कृष्णके पुत्र शम्बरारि प्रद्युम्न दिग्विजयके लिए निकले हुए हैं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ वे जम्बूद्वीपके सब राजाओंको जीतेंगे और जब सब देवताओंको भी जीत लेंगे, तब द्वारकामें भोजराज उग्रसेन राजसूय यज्ञ क गे ॥ ४४ ॥ उन्हीं यादवेन्द्र प्रद्युम्नके धनुपसे छूटकर यह प्रचण्ड वेगवाला बाण आया है। उन्हींका नामांकित बाण सभी दिशाओंमें प्रकाश फैलाता हुआ यहाँ पहुँचा है ॥ ४५ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन्! रामभक्त विभीषण श्रीकृष्णको रामका ही अवतार समझ प्रचुर भेंटकी सामग्री लेकर उस सुन्दर शत्रुसेनामें जा पहुँचे ॥४६॥ वहाँ आकाशसे नीचे उतरकर विभीषणने प्रद्युम्नकी परिक्रमा की और हाथ जोड़कर उनके सम्मुख जा खड़े हुए ॥ ४७ ॥ और स्तुति करते हुए कहने लगे—आप भगवान् वासुदेव और ब्रह्मा हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आप ही संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध हैं। आपको प्रणाम है ॥ ४८ ॥ आप ही मत्स्य, कूर्म, वाराह, रामचन्द्र और परशुराम हैं। आपको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४९ ॥ आप ही वामन, नृसिंह, शुद्ध, बुद्ध और भगवान् कल्कि हैं। आपको मेरा प्रणाम है ॥ ५० ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन्! ऐसा कहकर मानदायक विभीषणने श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्नकी षोडश उपचारोंसे पूजा की ॥ ५१ ॥ इससे प्रसन्न होकर प्रद्युम्नने विभीषणको ज्ञान, वैराग्य, शान्ति और प्रेमलक्षणा भक्ति प्रदान की ॥ ५२ ॥ इनके अतिरिक्त उन्होंने ब्रह्माकी दी हुई शिरोमणि तथा पद्मराग मणि और पुलस्त्यकी दी हुई चम-

चन्द्रकान्तमणिं तस्मै चन्द्रदत्तं ददौ पुनः । पीतांबरं परं साक्षात्प्रद्युम्नः परमः प्रभुः ॥५४॥
विभीषणोऽथ प्रद्युम्नं नत्वा दत्त्वा बलिं ततः । जगाम लंकां सगणो राक्षसेंद्रो महाबलः ॥५५॥
इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे शाल्वमत्सारलंकाविजयो नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥१३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

(प्रद्युम्न द्वारा द्रविडदेशपर विजय)

श्रीनारद उवाच

ऋषभाद्रिं ततो दृष्ट्वा श्रीरङ्गाख्यं हरेः सुतः । कामः कार्ष्णिः पुरीं कांचीं नदीं प्राचीं सरिद्वराम् १
कावेरीं च तदोत्तीर्य सह्याद्रिविषयं ययौ । यादवैः सहितः साक्षात्प्रद्युम्नो भगवान्हरिः ॥ २ ॥
शिविरेषु समायांतं मुक्तकेशं दिगंबरम् । अवधूतं प्रधावंतं पुष्टांगं रजसावृतम् ॥ ३ ॥
बालास्तमनुधावन्तस्तलशब्दैरितस्ततः । कोलाहलं प्रकुर्वंतो हसंतो मैथिलेश्वर ॥ ४ ॥
तं दृष्ट्वा चोद्धवं प्राह कार्ष्णिर्बुद्धिमतां वरः । ॥ ५ ॥

प्रद्युम्न उवाच

कोऽयं पुष्टवपुर्धावन्बालोन्मत्तपिशाचवत् । तिरस्कृतोऽपि हसति जनैरानन्दवान्महान् ॥ ६ ॥

उद्धव उवाच

अयं परमहंसाख्योऽवधूतो वा हरेः कला । सदानंदमयः साक्षाद्दत्तात्रेयो महामुनिः ॥ ७ ॥
यस्य प्रसादात्परमां सिद्धिं प्रापुः परे नृपाः । सहस्रार्जुनमुख्या ये यदुकायाधवादयः ॥ ८ ॥

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वा शंबरारिर्नत्वा संपूज्य तं मुनिम् । संस्थाप्य चासने दिव्ये पप्रच्छेदं यदूत्तमः ॥ ९ ॥

प्रद्युम्न उवाच

भगवन्मे हृदिस्थं वै सन्देहं नाशय प्रभो । जगतो ब्रह्ममार्गाश्च हेत्वंतं ब्रूहि तत्त्वतः ॥१०॥

चमाती रत्नमाला दी ॥ ५३ ॥ उसके बाद प्रद्युम्नने उन्हें चन्द्रमाकी दी हुई चन्द्रकान्त मणि तथा पीताम्बर दिया ॥ ५४ ॥ इस प्रकार प्रद्युम्नको भेंट देकर महाबली राक्षसेन्द्र विभीषण अपने गणोंके साथ लङ्का लौट गये ॥ ५५ ॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! इसके बाद श्रीकृष्णसुत प्रद्युम्न ऋषभाद्रिका दर्शन करके श्रीरंग, कांची और प्राची सरस्वती गये ॥ १ ॥ फिर कावेरी नदी पार करके सह्य पर्वतपर गये। सभी यादववीर उनके साथ थे ॥ २ ॥ वहाँके शिविरमें आते हुए एक ऐसे अवधूतको उन्होंने देखा कि जिसके तनपर वस्त्र नहीं थे। वह दिगम्बर, मुक्तकेश, परिपुष्ट और धूलिधूसरित शरीरका था। वह तेजीसे दौड़ रहा था ॥ ३ ॥ बहुतेरे बालक तालियाँ बजाते, कोलाहल करते और हँसते हुए पीछे-पीछे चल रहे थे ॥४॥ उसको देखकर परम बुद्धिमान् प्रद्युम्नने उद्धवसे कहा। प्रद्युम्न बोले—हे महाभाग ! यह परिपुष्ट शरीरवाला कौन मनुष्य बालक, उन्मत्त तथा पिशाचकी तरह भागा जा रहा है ?। जनसाधारण द्वारा तिरस्कृत होकर भी हँसते रहने-वाला और आनन्दमें निमग्न यह पुरुष कौन है ? ॥५॥६॥ उद्धवजी बोले—ये परमहंस, अवधूत, भगवत्कला-स्वरूप, सदा आनन्दमय साक्षात् दत्तात्रेय महामुनि हैं ॥ ७ ॥ इनकी कृपासे सहस्रार्जुन, यदु और प्रह्लाद आदि बहुतेरे राजे सिद्धि प्राप्त कर चुके हैं ॥ ८ ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! यह सुनकर कृष्णपुत्र प्रद्युम्न-ने मुनि दत्तात्रेयको प्रणाम करके पूजन किया और दिव्य सिंहासनपर बैठाकर कहा ॥ ९ ॥ प्रद्युम्न बोले—हे भगवन्! मेरे हृदयमें एक बहुत बड़ा सन्देह है, आप उसका निवारण करिए। इस जगत्को और ब्रह्ममार्गको

दत्तात्रेय उवाच

दृश्यते न वसुर्यावत्तावदुल्काप्रयोजनम् । प्राप्ते वशे महानंदेऽथोल्कायाः किं प्रयोजनम् ॥११॥
तावदास्ते जगत्साधो यावत्तत्त्वं न वेद्यते । परस्मिन्ब्रह्मणि प्राप्ते जगतः किं प्रयोजनम् ॥१२॥
आस्यबिंबो यथाऽऽदर्शे पश्यते न परं वपुः । प्रधानार्थे तथा जीवो ज्ञानेनासौ परात्परम् ॥१३॥
यथा सूर्योदये सर्वं वस्तु नेत्रेण दृश्यते । तथा ज्ञानोदये ब्रह्मतत्त्वं जीवेन सर्वतः ॥१४॥

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वाऽथ तं नत्वा प्रद्युम्नो यादवेश्वरः । वैकुण्ठाद्रिं द्राविडेषु ययौ सेनासमन्वितः ॥१५॥
सत्यवाग्धर्मतत्त्वज्ञो राजर्षिर्द्राविडेश्वरः । प्रद्युम्नं पूजयामास भक्त्या परमया युतः ॥१६॥
श्रीशैलदर्शनं कृत्वा गिरिशालयमद्भुतम् । स्कंदं वीक्ष्य ततो राजन् ययौ पंपासरोवरे ॥१७॥
गोदावरीं भीमरथीं गतः श्रीद्वारकेश्वरः । प्रदर्शयन्हरेस्तीर्थं महेंद्राद्रिं ततो ययौ ॥१८॥
महेंद्राद्रिं स्थितं रामं भार्गवं क्षत्रियांतकम् । नत्वा प्रदक्षिणीकृत्य तत्र तस्थौ हरेः सुतः ॥१९॥
रामस्तस्याशिषं दत्त्वा यादवानां बलाय वै । चतुरंगाय राजेंद्र योगेनार्हणमाचरत् ॥२०॥
भक्तसूपः प्रलेहश्च रुदिका दधिशाकजाः । शिखरिण्यवलेहश्च बलका चक्षुखेरिणी ॥२१॥
त्रिकोणशर्करायुक्तो वटको मधुशीर्षकः । फेणिका चोपरिष्टश्च शतपत्रः सच्छिद्रकः ॥२२॥
चक्राभचिह्नकाश्चेत्थं सुधाकुण्डलिकाः स्मृताः । घृतपूरो वायुपूरस्तथा चन्द्रकला स्मृताः ॥२३॥
दधिस्थलीश्च कर्पूरनाडीस्थं खंडमंडलम् । गोधूमपरिखाश्चैव सुफलाढ्यास्तथैव च ॥२४॥
दधिरूपो मोदकश्चशाकसौधान एव च । मंडकापायसं युक्तं दधि गोघृतमेव च ॥२५॥
हैयंगवीनमंडूरी कूपिका पर्पटस्तथा । शक्तिका लसिका चैव सुवृत्तसंधाय एव हि ॥२६॥
सुफलैश्च सितायुक्तैः फलानि विविधानि च । यथा मोहनभोगैश्च लवणं च तथैव च ॥२७॥

तत्त्वतः बताइए ॥ १० ॥ दत्तात्रेय बोले—हे राजन् ! जबतक अपेक्षित वस्तु न दिखायी दे, तभीतक मशालकी आवश्यकता रहती है । महान् आनन्दरूपी वस्तु दिख जानेपर मशालका क्या काम ? ॥ ११ ॥ जबतक तत्त्वज्ञान नहीं प्राप्त होता, तभीतक जगत् रहता है । परब्रह्मको जान लेनेके बाद जगत्का क्या प्रयोजन ? ॥ १२ ॥ मुखका प्रतिबिम्ब रहते हुए भी दर्पणमें शरीर दिखायी नहीं देता । उसी प्रकार प्रधान अर्थमें जीवको भी समझिए । यह ज्ञानसे परेकी बात है ॥ १३ ॥ जैसे सूर्योदय हो जानेपर नेत्रोंसे सभी वस्तुयें दिखायी देने लगती हैं, वैसे ही ज्ञानरूपी सूर्यके उदय हो जानेपर जावको सब ओर ब्रह्मतत्त्व दिखायी देने लगता है ॥ १४ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! मुनि दत्तात्रेयके वचन सुनकर यादवेश्वर प्रद्युम्नने उनको प्रणाम किया और सेनाके साथ वहाँसे द्रविड़देशमें विद्यमान वैकुण्ठपर्वतपर गये ॥ १५ ॥ वहाँ धर्मके तत्त्वको जाननेवाले द्रविड़देशके नरेश सत्यवाक्ने परम भक्तिसे प्रद्युम्नका पूजन किया ॥ १६ ॥ फिर शंकरभगवानके धाम श्रीशैलपर्वत तथा स्वामिकार्तिकेयका दर्शन करके प्रद्युम्न पम्पासरोवर गये ॥ १७ ॥ वहाँसे चलकर वे गोदावरी तथा भीमरथी नदीपर गये । द्वारकानाथ उस तीर्थका दर्शन करके महेन्द्राचलपर गये ॥१८॥ उस पर्वतपर विराजमान क्षत्रियोंके काल भृगुवंशी परशुरामको प्रणाम तथा प्रदक्षिणा करके प्रद्युम्न उनके सम्मुख बैठे ॥ १९ ॥ तब परशुरामने उन्हें आशीर्वाद देकर यादवोंकी चतुरंगिणी सेनाके लिए अपने योगबलसे भोजनकी व्यवस्था की ॥ २० ॥ भात, दाल, चटनी, दहीकी सामग्री, अनेक शाक, सिखरन, शर्बत, मुरब्बा, तिकोना, गुझिया, घेवर, खाजा, फेनी, पुआ, मालपुआ, शतपत्र, सछिद्रक (बड़ा), रामचक्रचिह्निका, अमृतकुण्डली, घृतपूर, वायुपूर, चन्द्रकला, दधिस्थूली, कर्पूरनाडी, खुरमा, गोधूमपरिखा और सुफलाढ्या ॥ २१–२४ ॥ दधिरूप, मोदक, शाक, अचार, रबड़ी, मांड, मलाई, खीर, दही, मक्खन, ॥ २५ ॥ घृतमंडूरी, कूपिका, पापड़, लस्सी, सुवृत्तसंधाय, ॥ २६ ॥ अनेक अचार, मुरब्बा, अनेक फल, मोहनभोग, नमकीन ॥ २७ ॥

कषायो मधुरस्तिक्तः कटुरम्लस्त्वनेकधा । षट्पंचाशत्तथैव ह्येते भोगाः प्रकीर्तिताः ॥२८॥
एतेषां भार्गवः शैलानकार्षीद्योगमास्थितः । सैन्ये संभोजिते तत्र ह्यस्तन्यूना न तेऽभवन् ॥२९॥
वैभवं भार्गवस्यापि दृष्ट्वा सर्वेऽतिविस्मिताः । प्रद्युम्नस्तं नमस्कृत्य यादवैः सहितस्तदा ॥३०॥
सर्वेषां शृण्वतां राजन् पप्रच्छेदं हरेः सुतः ।

प्रद्युम्न उवाच

भगवन्भवता दत्तं सर्वेभ्यो भोजनं परम् ॥३१॥
समृद्धयः सिद्धयश्च त्वदंघ्रावास्थिताः प्रभो । सर्वेषां हरिभक्तानां प्रियो भक्तस्तु को हरेः ॥
एतन्मे ब्रूहि विप्रेंद्र त्वं परावरवित्तमः ॥३२॥

परशुराम उवाच

त्वं प्रभो किं न जानासि लोकवत्पृच्छसेऽथ माम् । लोकसंग्रहमेवारात्कुर्वन् विचरसि क्षितौ ॥३३॥
निष्किंचनो हरिपदाब्जपरागलुब्धः श्रीमत्कथाश्रवणकीर्तनतत्परो यः ।
तद्रूपसिंधुलहरीविनिमग्नचित्तः श्रीकृष्णचंद्रदयितः कथितः स भक्तः ॥३४॥
दांतो महानखिलजंगमवत्सलोऽयं शांतस्तितिक्षुरतिकारुणिकः सुहृत्सन् ।
लोकं पुनाति निजपादरजोभिराराच्छ्रीकृष्णचंद्रदयितः कथितः परेश ॥३५॥
यः पारमेष्ठ्यमखिलं न महेंद्रधिष्ण्यं नो सार्वभौममनिशं न रसाधिपत्यम् ।
नो योगसिद्धिमभितो न पुनर्भवं वा वांछत्यलं परमपादरजः स भक्तः ॥३६॥
निष्किंचनाः स्वकृतकर्मफलैर्विरागा यत्तत्पदं हरिजना मुनयो महांतः ।
भक्ता जुषंति हरिपादरजःप्रसक्ता अन्ये विदंति न सुखं किल नैरपेक्ष्यम् ॥३७॥
भक्तात्प्रियो न विदितः पुरुषोत्तमस्य शंभुर्विधिर्न च रमा न च रौहिणेयः ।
भक्तानुव्रजति भक्तनिबद्धचित्तचूडामणिः सकललोकजनस्य कृष्णः ॥३८॥

कसैले, मीठे, फीके, चटपटे, खट्टे और कडुए प्रकारके छप्पन भोग प्रकट किये ॥ २८ ॥ भगवान परशुरामने अपने योगबलसे इन सभी सामग्रियोंके पहाड़ लगा दिये । उन्हींसे प्रद्युम्नकी समस्त सेनाको उन्होंने भोजन कराया । किसी भी वस्तुकी कमी नहीं पड़ी ॥ २९ ॥ परशुरामजीका यह वैभव देखकर सब लोग चकित हो गये । तदनन्तर सभी यादवोंके साथ प्रद्युम्नने उन्हें प्रणाम करके कहा—हे भगवन् ! आपने हम सबको परम उत्तम भोजन दिया ॥ ३० ॥ ३१ ॥ हे प्रभो ! सभी सिद्धियाँ और समृद्धियाँ आपके चरणोंमें नित्य लोटती रहती हैं । हे विप्रेन्द्र ! आप परावरके विज्ञ हैं । सो कृपया मुझे यह बताइए कि सब भगवद्भक्तोंमें भगवानको कौन भक्त प्रिय होता है ॥ ३२ ॥ परशुरामजी बोले—हे प्रभो ! यह बात क्या आप नहीं जानते, जो साधारण मनुष्यकी तरह मुझसे पूछते हैं । मानवजातिको शिक्षा देनेके लिए ही आप धरतीपर घूम रहे हैं ॥ ३३ ॥ जो भक्त निष्किञ्चन, श्रीहरिके चरणकमलका भ्रमर जैसा लोभी, भगवत्कथाश्रवण तथा नाम-कीर्तनमें तत्पर हो और भगवान्के रूपसमुद्रकी लहरोंमें जिसका चित्त डूबा रहता हो, वही श्रीकृष्णका प्यारा भक्त होता है ॥३४॥ जो इन्द्रियोंका दमन करनेवाला, महापुरुष, सब जीवोंसे प्यार करनेवाला, शान्त, सहन-शील, अतिकरुणावान् और सबका सुहृद् हो, ऐसा पुरुष अपने चरणोंकी रजसे समस्त भुवनको पवित्र कर देता है और वही भगवान्का प्रिय भक्त होता है ॥ ३५ ॥ जो ब्रह्मपदकी, चक्रवर्ती राज्यकी, इन्द्र-पदकी, समस्त पृथ्वीके आधिपत्यकी, योगसिद्धिकी और मुक्ति तककी कामना नहीं करता, बल्कि भगवानके चरणरजका अभिलाषी रहता है, वही भगवान्का प्रिय भक्त होता है ॥ ३६ ॥ जो अकिंचन भक्त कर्मफल-की इच्छा नहीं करते, वे ही हरिजन और महामुनि भगवान्का चरण प्राप्त करते हैं । वे ही भगवच्चरणरजका उपभोग करते हैं और वे ही नैरपेक्ष्य सुखका स्वाद जानते हैं, दूसरे लोग उस सुखका महत्त्व नहीं जानते ॥३७॥

गच्छन्निजं जनमनु प्रपुनाति लोकानावेदयन्हरिजने स्वरुचिं महात्मा ।
तस्मादतीव भजतां भगवान्मुकुंदो मुक्तिं ददाति न कदापि सुभक्तियोगम् ॥३९॥

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वा यादवेंद्रो नत्वा श्रीभार्गवोत्तमम् । प्राच्यां दिशि ययौ राजन् गंगासागरसंगमम् ४०॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीविश्वजित्खंडे नारदवहुलाश्वसंवादे द्राविडदेशविजयो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

(प्रद्युम्नकी अङ्ग, उड्डीश-डामर, वंग तथा केकयदेशपर विजय)

श्रीनारद उवाच

दिग्जयस्य मिषेणासौ भूभारं हारयन्मुहुः । प्रद्युम्नो भगवान्साक्षादंगदेशं ततो ययौ ॥ १ ॥
अंगेशोऽन्तःपुराधीशो गृहीतो यादवैर्वने । सोऽपि तस्मै बलिं प्रादात्प्रद्युम्नाय महात्मने २ ॥
उड्डीशडामराधीशो बृहद्बाहुर्महाबलः । न ददौ स बलिं तस्मै प्रद्युम्नाय मदोत्कटः ॥ ३ ॥
प्रद्युम्नप्रेषितो वीरः साम्बो जांबवतीसुतः । एकाकी प्रययौ धन्वी रथेनादित्यवर्चसा ॥ ४ ॥
छादयामास बाणौघैर्डामरं नगरं नृप । गिरिं तुषारपटलैर्जीमूत इव सर्वतः ॥ ५ ॥
तदा तु डामराधीशो धर्षितः सन्कृतांजलिः । बलिं ददौ नमस्कृत्य प्रद्युम्नाय महात्मने ॥ ६ ॥
वंगदेशाधिपो वीरो वीरधन्वा मदोत्कटः । आययौ संमुखे योद्धुमक्षौहिण्यावृतो बली ॥ ७ ॥
चंद्रभानुर्हरेः पुत्रः प्रद्युम्नस्य प्रपश्यतः । बिभेद तद्बलं बाणैः कुवाक्यैर्मित्रतामिव ॥ ८ ॥
करिणां बाणभिन्नानां शिरसो मौक्तिकानि च । प्रस्फुरंति निपेतुः कौ रात्रौ तारागणा इव ॥ ९ ॥
निपेतू रथिनोऽनेका गजाश्वाश्च पदातयः । तद्बाणैश्छिन्नशिरसः कूष्मांडशकला इव ॥१०॥

भगवान् अपने भक्तसे बढ़कर प्रिय किसीको नहीं मानते । ब्रह्मा, शिव, लक्ष्मी और बलदेवको भी वे भक्तसे प्रिय नहीं समझते । भक्तोंसे चित्त बँधा होनेके कारण सभी लोकोंके चूडामणि श्रीकृष्ण भक्तोंके पीछे-पीछे चला करते हैं ॥ ३८ ॥ उनका अनुसरण करते हुए भगवान् सब लोकोंको पवित्र करते रहते हैं । श्रीकृष्ण अपने भक्तोंमें अपनी रुचिका प्रदर्शन करते फिरते हैं । इसीसे वे अत्यधिक अपना भजन करनेवालोंको मुक्ति तो दे देते हैं, किन्तु भक्तियोग नहीं देते ॥ ३९ ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! भगवान् परशुरामकी ऐसी वाणी सुनकर यादवेश प्रद्युम्नने उन्हें प्रणाम किया और वहाँसे पूर्वदिशामें गंगासागरको गये ॥ ४० ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! दिग्विजयके बहाने बराबर भूभार हरते हुए साक्षात् भगवान् प्रद्युम्न अंगदेशको गये ॥ १ ॥ वहाँ यादवोंने अंगदेशके नरेशको वनमें पकड़ लिया, तब उसने आकर महात्मा प्रद्युम्नको भेंट दी ॥ २ ॥ उड्डीशडामर (उड़ीसा) के महाबली और मदोत्कट नरेश बृहद्बाहुने प्रद्युम्नको भेंट नहीं दी ॥३॥ तब प्रद्युम्नके भेजनेपर जाम्बवतीसुत धनुर्धर साम्ब सूर्यसदृश तेजस्वी रथपर सवार होकर अकेले ही बृहद्बाहुके नगरमें गये ॥ ४ ॥ हे राजन् ! वहाँ पहुँचते ही उन्होंने बाणोंकी बौछारसे डामरनगरको ढाँक दिया । जैसे घना हिमपात पर्वतको ढाँक देता है ॥ ५ ॥ इस प्रकार दबाव पड़नेपर डामराधीशने हाथ जोड़ और प्रणाम करके महात्मा प्रद्युम्नको भेंट दी ॥ ६ ॥ वङ्गदेशका महाबली नरेश वीरधन्वा एक अक्षौहिणी सेना लेकर लड़नेके लिए यादवोंके सामने आया ॥ ७ ॥ तब श्रीकृष्णके पुत्र चन्द्रभानुने प्रद्युम्नके देखते-देखते अपने बाणोंसे उसकी सारी सेनाको छिन्न-भिन्न कर दिया । जैसे कुवाक्योंसे मित्रता छिन्न-भिन्न हो जाती है ॥ ८ ॥ उनके बाणोंसे कटे हाथियोंके मस्तकसे गिरकर बिखरे हुए झिलमिलाते मोती रात्रिके समय आकाशमें जगमगाते तारागणों जैसे दीखते थे ॥ ९ ॥ अनेक रथी, अनेक हाथी, अनेक घोड़े

क्षणमात्रेण तत्सैन्यक्षतजानां नदी ह्यभूत् । मनस्विनां हर्षकरी त्रस्तानां भयकारिणी ॥११॥
मुंडैः कबंधैर्धावद्भिर्हारकेयूरकुंडलैः । किरीटैः कंकणैः शस्त्रैर्महामारीव भूर्बभौ ॥१२॥
कूष्मांडोन्मादवेताला भैरवा ब्रह्मराक्षसाः । शिरांसि जगृहुर्वेगाद्धरमालार्थहेतवे ॥१३॥
इत्थं निपातिते सैन्ये वीरधन्वा समागतः । चंद्रभानुं तताडाशु गदया वज्रकल्पया ॥१४॥
तद्गदातिप्रहारेण न चचाल हरेः सुतः । चंद्रभानुर्गदां नीत्वा तं तताड भुजांतरे ॥१५॥
गदाप्रहारव्यथितो मूर्च्छितो धरणीतले । पपात पादप इव प्रोद्वमन् रुधिरं मुखात् ॥१६॥
लब्धसंज्ञो मुहूर्तेन वंगदेशाधिपो नृपः । प्रययौ शरणं सोऽपि प्रद्युम्नस्य महात्मनः ॥१७॥
याते दत्तबलौ राजन्नगरं वीरधन्वनि । ब्रह्मपुत्रं समुत्तीर्य प्रद्युम्नोऽमितविक्रमः ॥१८॥
आशीमाधिपतिं विंबं गृहीत्वा यादवेश्वरः । बलिमादाय यदुभिः कामरूपं समाययौ ॥१९॥
कामरूपेश्वरः पुंड्र ऐंद्रजालविशारदः । निर्गतः सेनया सार्द्धं योद्धुं प्रद्युम्नसंमुखे ॥२०॥
आशीमानां यदूनां च घोरं युद्धं बभूव ह । बाणैः कुठारैः परिघैः शूलैः खड्गर्ष्टिशक्तिभिः ॥२१॥
पुंड्रो विद्याश्चकाराशु पैशाचोरगराक्षसीः । ततो गुह्यकगंधर्वाः सर्वतो मैथिलेश्वर ॥२२॥
प्रधावंतो रणे राजन्पिशाचाः पिशिताशनाः । कोटिशः कोटिशोऽङ्गारान् क्षेपयंतो मुहुर्मुहुः ॥२३॥
क्षणमात्रेण तत्सैन्यं वमंतो गरलं मुखात् । फूत्कारमपि कुर्वंतो दंदशूकाः समागताः ॥२४॥
खरारूढा दंतवक्रा ललज्जिह्वाभयंकराः । चर्वयंतो नरान् युद्धे धावंतो राक्षसास्ततः ॥२५॥
यक्षाश्च सिंहवदना तुरंगवदना नृप । छिंधि भिंधीति गर्जंतः शूलहस्ता इतस्ततः ॥२६॥
क्षणमात्रेण मेघानां समूहैश्छादितं नभः । अंधकारो ह्यभूद्राजन् रजसा वातवेगतः ॥२७॥

और अनेक पैदल सैनिकोंके मस्तक वाणोंकी मारसे कट-कटकर कोंहड़ेके टुकड़ोंकी भाँति गिरने लगे ॥ १० ॥ क्षणमात्रमें सैनिकोंके घावोंसे निकले रुधिरकी नदी वह चली। जो वीरोंको हर्षदायिनी, किन्तु कायरोंके लिए भयदायिनी प्रतीत हुई ॥ ११ ॥ हुए दौड़ते नरमुण्डों और कवन्धों (धड़ों) हारों, केयूरों, कुण्डलों, किरीटों और शस्त्रोंसे वह रणभूमि महामारी जैसी दीखने लगी ॥ १२ ॥ कूष्माण्ड, उन्माद, वेताल, भैरव और ब्रह्मराक्षस शंकरजीके लिए मुण्डमाला वनानेके निमित्त वड़े-वड़े वीरोंके मुण्ड वटोरने लगे ॥ १३ ॥ इस प्रकार सेनाके नष्ट हो जानेपर वीरधन्वा आया और उसने आते ही वज्रके समान भीषण गदासे चन्द्रभानुको मारा ॥ १४ ॥ उस गदाके भयानक प्रहारसे श्रीकृष्णपुत्र चन्द्रभानु तनिक भी विचलित नहीं हुए। तभी चन्द्रभानुने गदा लेकर वीरधन्वाके भुजान्तरपर प्रहार किया ॥ १५ ॥ जिससे वीरधन्वा मूर्छित हो गया और मुखसे रुधिर वमन करता हुआ कटे वृक्षकी तरह धरतीपर गिर गया ॥१६॥ एक मुहूर्त वाद जव होश आया तो वह वंगदेशका नरेश महात्मा प्रद्युम्नकी शरणमें आया ॥ १७ ॥ भेंट देकर वीरधन्वा जव अपने नगरको लौट गया, तव ब्रह्मपुत्र नदको पार करके अमित पराक्रमी प्रद्युम्नने आशीम (आसाम) देशके राजा विम्वको पकड़कर उससे भेंट ली और यादवेश्वर प्रद्युम्न वहाँसे कामरूप देशको चल पड़े ॥१८॥१९॥ इन्द्रजाल-विद्यामें निपुण कामरूप देशका राजा पुण्ड्र सेना लेकर प्रद्युम्नसे लड़ने आया ॥ २० ॥ उसके आते ही वाण, फरसा, त्रिशूल, तलवार, पटा और वर्छीसे आशीमों और यादवोंमें भीषण युद्ध हुआ ॥ २१ ॥ वादमें पुण्ड्रने इन्द्रजाल-विद्या द्वारा पैशाची, सार्पी, राक्षसी आदि वड़ी-वड़ी माया फैलायी, जिससे हे मिथिलेश! सव ओरसे गुह्यक तथा गन्धर्व आदि निकल-निकलकर आने लगे। करोड़ों मांसलोलुप पिशाच वारम्वार अंगार उगलने लगे ॥ २२ ॥ २३ ॥ क्षण ही भरमें सारी सेना विषका वमन करने लगी और तभी फुफकारते हुए वहुतसे सर्प वहाँ आ गये ॥ २४ ॥ तदनन्तर गधोंपर सवार, टेढ़े दाँतोंवाले, और लपलपाती जीभवाले भयंकर राक्षस आये, जो आते ही लोगोंको चवाने लगे ॥ २५ ॥ सिंह तथा घोड़ों जैसे मुखवाले वहुतसे यक्ष आये, जो हाथोंमें त्रिशूल लिये हुए थे। वे गर्जते हुए कह रहे थे—छेद दो, भेद दो ॥ २६ ॥ क्षण ही भर वाद वादलोंसे सारा आकाश भर गया और वायुके वेगसे उड़ी धूलके कारण अन्धकार छा गया ॥२७॥ इससे भोज, वृष्णि,

भोजवृष्ण्यंधकमधुशूरसेनदशार्हकाः । भयं प्रापुर्महायुद्धे न्यस्तशस्त्रा यदूत्तमाः ॥२८॥
कृष्णदत्तं धनुः कार्ष्णिरादाय प्रतिकारवित् । सत्त्वात्मिकां महाविद्यां बाणैः प्रायुंक्त मैथिल ॥२९॥
बाणैः पिशाचानुरगान् सयक्षान् रक्षांसि गंधर्वघनांधकारान् ।
बिभेद दिव्यैः प्रभवैर्यथा हि नीहारमेघान्किरणैर्विवस्वान् ॥३०॥
बाणैश्च पुंड्रं सरथं सवाहनं तं भ्रामयित्वा घटिकाद्वयं खे ।
निपातयामास रणे सपत्नं पद्मं पृथिव्यामिव मारुतः किल ॥३१॥
बुद्धस्तदा तं शरणं समेत्य प्रधर्षितः सद्य उपायनानि ।
लक्षैर्हयानामयुतैर्गजानां युतानि दत्त्वा प्रणनाम कार्ष्णिम् ॥३२॥
विपाशां स तदोत्तीर्य सैन्यैः शोणनदं नृप । कैकयानाययौ धन्वी प्रद्युम्नो यदुनंदनः ॥३३॥
कैकयस्याधिपो राजा धृतकेतुर्महाबलः । वसुदेवस्वसुः साक्षाच्छ्रुतकीर्तेः पतिर्महान् ॥३४॥
प्रद्युम्नमर्हयामास धृतकेतुः स यादवम् । भक्त्या परमया राजञ्छ्रीकृष्णस्य प्रभाववित् ॥३५॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे कैकयविजयो नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

अथ षोडशोऽध्यायः

(दन्तवक्त्रकी पराजय और करूषदेशपर प्रद्युम्नकी विजय)

श्रीनारद उवाच

दुंदुभीन्नादयंस्तस्मात्प्रद्युम्नो यदुनंदनः । मैथिलानाययौ राजंस्तव देशान् सुखावृतान् ॥ १ ॥
सुवर्णसौधैरत्युच्चैः सघटैः राजतीं पुरीम् । मिथिलां वीक्ष्य तामारादुद्धवं प्राह माधवः ॥ २ ॥

प्रद्युम्न उवाच

कस्यैषा नगरी मंत्रिन् दृश्यते सांप्रतं मया । राजते बहुसौधैश्च पुरी भोगवती यथा ॥ ३ ॥

अन्धक, मधु, शूरसेन तथा दशार्हवंशी यादव उस रणांगणमें भयभीत हो उठे और उन्होंने हथियार डाल दिये ॥ २८ ॥ तब विपत्तिका प्रतीकार करनेमें निपुण प्रद्युम्नने श्रीकृष्णका दिया हुआ धनुष हाथमें लिया। हे राजन्! उन्होंने उस धनुषपर वैष्णवी सत्त्वात्मिका मायाका संधान करके छोड़ दिया ॥ २९ ॥ उससे निकले बाणों द्वारा उन्होंने पिशाचों, सर्पों, यक्षों, राक्षसों, गन्धर्वों तथा उस भीषण अन्धकारको नष्ट कर दिया, जैसे सूर्यदेव अपनी किरणोंसे कुहरेके बादलोंको नष्ट कर देते हैं ॥ ३० ॥ उन्हीं बाणोंसे प्रद्युम्नने रथ-घोड़ों समेत राजा पुण्ड्रको दो घड़ी घुमाकर संग्रामभूमिमें पटक दिया, जैसे वायु कमलके फूलको पटक दे ॥ ३१ ॥ जब वह सचेत हुआ तो तत्काल एक लाख घोड़े तथा दस हजार हाथियोंकी भेंट देकर पुण्ड्रने प्रद्युम्नको प्रणाम किया ॥ ३२ ॥ तदनन्तर सेनाके साथ विपाशा नदी तथा सोनभद्र नदको पार करके धनुर्धर यदुनन्दन प्रद्युम्न कैकयदेशमें जा पहुँचे ॥ ३३ ॥ कैकयदेशका नरेश महाबली धृतकेतु वसुदेवकी बहिन श्रुतकीर्तिका पति था ॥ ३४ ॥ सो धृतकेतुने यादवी सेना समेत प्रद्युम्नका उत्तम सत्कार किया। क्योंकि वह भगवान् कृष्णका प्रभाव जानता था ॥ ३५ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे 'त्रिलंवदा' भाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

उद्धव उवाच

जनकस्य पुरी ह्येषा मिथिला नाम मानद । मिथिलेंद्रो धृतिस्तस्यां महाभागवतः कविः ॥ ४ ॥
सर्वधर्मभृतां श्रेष्ठः श्रीकृष्णेष्टो हरिप्रियः । बहुलाश्वस्तस्य सुत आबाल्याद्भक्तिकृद्धरेः ॥ ५ ॥
तस्मै स्वं दर्शनं दातुं भगवानागमिष्यति । बहुलाश्वं राजपुत्रं श्रुतदेवं द्विजं तथा ॥ ६ ॥
स्मरत्यलं द्वारकायां श्रीकृष्णो भगवान् हरिः । जेतुं न शक्यो देवेंद्रैर्मनुजैश्च कुतः प्रभो ॥ ७ ॥
धृतिः परमया भक्त्या श्रीकृष्णवशकारकः ।

श्रीनारद उवाच

तच्छ्रुत्वा भगवान् कार्ष्णिरुद्धवेन समन्वितः । स्वशिष्यमुद्धवं कृत्वा धृतिं द्रष्टुं समाययौ ॥ ८ ॥
भक्तेरेव परीक्षां हि कर्तुं तस्य नृपस्य च । ददर्श मिथिलां कार्ष्णिरुद्धवेन समन्वितः ॥ ९ ॥
चर्मशस्त्रधृता वीरा मालातिलकशोभिताः । जपंतः कृष्णनामानि सर्वे वै यत्र मालया ॥१०॥
लिखितानि च नामानि द्वारि द्वारि हरेर्नृणाम् । तथा श्रीकृष्णचित्राणि लिखतानि शुभानि च ॥११॥
कुड्ये कुड्ये गृहाणां च गदापद्मानि मानद । दशावतारचित्राणि शंखचक्राणि यत्र वै ॥१२॥
तुलसीमंदिराणीत्थं प्रांगणे च गृहे गृहे । एवं पश्यन्स सौधानि मिथिलायां जनान् बहून् ॥१३॥
मालातिलकसंयुक्तान् सर्वान्भक्तान्ददर्श ह । तिलकैर्द्वादशाख्यैश्च युक्तैः कुंकुमजैर्वृतान् ॥१४।
गोपीचंदनमुद्राभिश्चर्चिताञ्छांतविग्रहान् । ऊर्ध्वपुंड्रधरान् विप्रान् हरिमंदिरचित्रितान् ॥१५॥
गदां मुद्रां ललाटे च ऊर्ध्वं वा हरिनामतः । चक्रं शंखं च कमलं कूर्मं मत्स्यं भुजद्वये ॥१६॥
दधतश्च धनुर्बाणं मूर्ध्नि श्रीनंदकं हृदि । मुसलं च हलं राजन्नथ कर्ष्णिर्ददर्श ह ॥१७॥
यस्या वीथ्यां भागवतं केचिच्छृण्वंति मानवाः। इतिहासं भारतं च हरिवंशं तथापरे ॥१८॥
सनत्कुमारवासिष्ठयाज्ञवल्क्यपराशराः । गर्गपौलस्त्यधर्मादिसंहिताः के पठंति वै ॥१९॥

किसकी नगरी है ? ॥ ३ ॥ उद्धवने कहा—हे मानद ! यह राजा जनककी मिथिली पुरी है । परम भगवद्भक्त और ज्ञानी राजा धृति इस पुरीका राजा है ॥ ४ ॥ वह सभी धर्मात्माओंका अग्रणी, श्रीकृष्णका भक्त और भगवान्‌को प्रिय है । बहुलाश्व उसका बेटा है, जो जन्मसे ही भगवान्‌का भक्त है ॥५॥ उसको और विप्र श्रुतदेवको दर्शन देनेके लिए भगवान् स्वयं यहाँ आयेंगे ॥६॥ द्वारकामें श्रीकृष्ण राजा बहुलाश्वको बहुत याद करते हैं । बड़े-बड़े देवता भी उसे नहीं परास्त कर सकते, तब मनुष्योंकी तो बात ही क्या है ॥ ७ ॥ राजा धृतिने अपनी उत्कट भक्तिसे श्रीकृष्णको अपने वशमें कर लिया है । श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! यह सुनकर प्रद्युम्न उद्धवको शिष्य बना और स्वयं ब्रह्मचारी बनकर राजा धृतिसे मिलने गये ॥ ८ ॥ उनका उद्देश्य उस राजाकी भक्तिकी परीक्षा लेनी थी । इसीके लिए उद्धवके साथ वे मिथिलापुरी गये थे ॥ ९ ॥ वहाँके सभी वीर धर्मशास्त्रके अनुसार माला और तिलकसे शोभित थे । वे सब मालापर श्रीकृष्णके नाम जप रहे थे ॥ १० ॥ वहाँके द्वार-द्वारपर श्रीकृष्णके नाम लिखे थे और उनके चित्र बने हुए थे ॥ ११ ॥ हर घरकी दीवारपर गदा, पद्म, शंख, चक्र और दशावतारके चित्र चित्रित थे ॥ १२ ॥ हर घरके आँगनमें तुलसीके मन्दिर बने हुए थे । इस प्रकार उस नगरीके महलों तथा मनुष्योंको देखते हुए प्रद्युम्न मिथिलापुरीमें गये ॥ १३ ॥ वहाँके सभी निवासी भगवद्भक्त और माला-तिलकधारी थे । उनके मस्तकपर केसरके बारह-बारह तिलक लगे थे ॥ १४ ॥ गोपीचन्दनकी मुद्राओंसे सुशोभित, शान्तिके मूर्तरूप तथा ऊर्ध्वपुंड्रधारी ब्राह्मण वहाँके मन्दिरोंमें विराजमान थे ॥ १५ ॥ ऊर्ध्वपुंड्र तथा गदाकी मुद्रा वे ललाटमें लगाये और भगवन्नाम, शंख, चक्र, पद्म, मत्स्य और कूर्मको दोनों भुजाओंमें अंकित किये हुए थे ॥ १६ ॥ कुछ ब्राह्मण धनुष तथा बाणको मस्तकपर रक्खे हुए थे । वे हृदयपर नन्दक, हल तथा मूसल धारण किये थे । उनको प्रद्युम्नने देखा ॥ १७ ॥ उस नगरीकी किसी गलीमें कोई भागवत सुन रहा था । कोई महाभारत इतिहास तथा हरिवंश सुनता था ॥ १८ ॥ बहुतेरे लोग सनत्कुमारसंहिता, याज्ञवल्क्यसंहिता, पाराशरसंहिता, गर्ग-

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं लैंगं सगारुडम् । नारदीयं भागवतमाग्नेयं स्कंदसंज्ञितम् ॥२०॥
भविष्यं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं सवामनम् । वाराहमात्स्यकौर्माणि ब्रह्मांडाख्यं तथैव च ॥२१॥
वीथ्यां वीथ्यां स्म शृण्वंति जनाः सर्वे गृहे गृहे । वाल्मीकिकाव्यं केचिद्वै श्रीरामचरितामृतम् ॥२२॥
स्मृतीः पठंति केचिद्वै केचिद्वेदत्रयीं द्विजाः । केचित्कुर्वंति यज्ञं वै वैष्णवं मंगलायनम् ॥२३॥
राधाकृष्णेति कृष्णेति के वदंति मुहुर्मुहुः । केचिन्नृत्यंति गायंति हरिकीर्तनतत्पराः ॥२४॥
मृदंगतालवादित्रैः कांस्यवीणामनोहरैः । मंदिरे मंदिरे विष्णोः कीर्तनं श्रूयते जनैः ॥२५॥
नवलक्षणसंयुक्तां भक्तिं यां प्रेमलक्षणाम् । कुर्वंति मैथिला राजन् मिथिलायां गृहे गृहे ॥२६॥
एवं तु नगरीं दृष्ट्वा प्रद्युम्नो भगवान्हरिः । राजद्वारं समेत्याशु मैथिलेशं ददर्श ह ॥२७॥
मैथिलेशसभायां तु वेदव्यासः शुको मुनिः । याज्ञवल्क्यो वसिष्ठश्च गौतमोऽहं बृहस्पतिः ॥२८॥
अन्ये च मुनयस्तत्र वेदमूर्तिधरा इव । दृश्यंते धर्मवक्तारो हरिनिष्ठा इतस्ततः ॥२९॥
मैथिलेंद्रो धृतिस्तत्र भक्तिभावनताननः । बलस्य पादुकापूजां कुरुते विधिवन्नृप ॥३०॥
जपन्मुक्तिकरं नाम श्रीकृष्णबलदेवयोः । दृष्ट्वोत्थाय नमश्चक्रे सशिष्यं ब्रह्मचारिणम् ॥३१॥
तं पूजयित्वा विधिवत् पाद्यार्घ्यैर्मैथिलेश्वरः । कृतांजलिपुटो राजा तदग्रे च स्थितोऽभवत् ॥३२॥

जनक उवाच

अद्य मे सफलं जन्म मंदिरं विशदीकृतम् । देवर्षिपितरः सर्वे संतुष्टा आगते त्वयि ॥३३॥
निर्विकल्पाः समदृशस्त्वादृशाः साधवः क्षितौ । निःश्रेयसाय भगवन्दीनानां विचरंति हि ॥३४॥

ब्रह्मचार्युवाच

धन्योऽसि राजशार्दूल धन्या ते मिथिलापुरी । धन्याः प्रजाश्च ते सर्वा विष्णुभक्तिसमन्विताः ॥३५॥

संहिता तथा धर्मसंहिता पढ़-सुन रहे थे ॥ १९ ॥ कहीं ब्रह्मपुराण १, पद्मपुराण २, विष्णुपुराण ३, शिवपुराण ४, लिंगपुराण ५, गरुड़पुराण ६, नारदपुराण ७, भागवतपुराण ८, अग्निपुराण ९, स्कन्दपुराण १०, भविष्यपुराण ११, ब्रह्मवैवर्तपुराण १२, मार्कण्डेयपुराण १३, वामनपुराण १४, वाराहपुराण १५, मत्स्यपुराण १६, कूर्मपुराण १७, और ब्रह्माण्डपुराण १८, इन अठारह पुराणोंको लोग बड़े प्रेमसे सुन रहे थे ॥ २० ॥ २१ ॥ वहाँकी गली-गलीमें लोग रामचरित्रसे ओतप्रोत वाल्मीकीय रामायण पढ़ या सुन रहे थे ॥ २२ ॥ कुछ ब्राह्मण स्मृति तथा कुछ वेदत्रयीका अध्ययन कर रहे थे। कुछ विप्र यज्ञ कर रहे थे ॥ २३ ॥ कुछ ब्राह्मण राधाकृष्ण-मंत्रका बारम्बार जप कर रहे थे। उनमेंसे कुछ गाते थे, कुछ नाचते थे और कुछ हरिकीर्तन कर रहे थे ॥ २४ ॥ कुछ लोग मृदंग, झाँझ, मजीरा, वीणा तथा सितार आदि मनोहर वाद्य बजाते हुए सभी मन्दिरोंमें हरिकीर्तन कर रहे थे ॥ २५ ॥ हे राजन्! मिथिलापुरीके घर-घरमें मैथिल लोग नौ लक्षणों युक्त प्रेमलक्षणा भक्ति करते थे ॥ २६ ॥ इस प्रकार भगवान् प्रद्युम्न मिथिला नगरी देखते हुए राजद्वारपर जाकर मिथिलाधिपतिको देखा ॥ २७ ॥ उन मिथिलेशकी सभामें वेदव्यास, शुकदेव, याज्ञवल्क्य, वसिष्ठ, गौतम, नारद और बृहस्पति विराजमान थे ॥ २८ ॥ मूर्तिमान् वेदकी भाँति धर्मवक्ता अन्यान्य हरिभक्त मुनि भी इधर-उधर दिखायी दे रहे थे ॥ २९ ॥ मिथिलेश धृति भक्तिभावसे मस्तक झुकाकर बलदेवजीकी चरणपादुकाका पूजन करते थे ॥ ३० ॥ वे श्रीकृष्ण तथा बलदेवके मुक्तिदायक नाम जपते थे। एकाएक शिष्यके साथ एक ब्रह्मचारीको आया देखकर वे उठ खड़े हुए और उन्हें प्रणाम किया ॥ ३१ ॥ हे मिथिलेश! पाद्य-अर्घ्य आदिसे उनकी पूजा करके राजा जनकने हाथ जोड़कर ब्रह्मचारीसे कहा। जनक बोले—आज मेरा जीवन सफल हुआ और मेरा घर पवित्र हो गया। आपके आगमनसे सभी देवता, ऋषि और पितर प्रसन्न हो गये ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ आप जैसे निर्विकल्प और समदर्शी साधु हम जैसे दीन गृहस्थोंपर कृपा करनेके लिए ही विचरते रहते हैं ॥३४॥ ब्रह्मचारीजी बोले—हे नृपशार्दूल! तुम्हारी प्रजाके हृदयमें ऐसी उत्कृष्ट विष्णुभक्ति है,

जनक उवाच

ममेयं नगरी नास्ति न प्रजा न गृहं धनम् । कलत्रपुत्रपौत्रादि सर्वं कृष्णस्य चैव हि ॥३६॥
परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान्स्वयम् । असंख्यब्रह्मांडपतिर्गोलोके धाम्नि राजते ॥३७॥
वासुदेवः संकर्षणः प्रद्युम्नः पुरुषः स्वयम् । अनिरुद्धस्तथा चैकश्चतुर्व्यूहोऽभवत् क्षितौ ॥३८॥
कायेन मनसा वाचा बुद्ध्या वार्चेद्रियैः कृतम् । तस्मै समर्पितं शौक्ल्यं मया ब्रह्मन्महामुने ॥३९॥

ब्रह्मचार्युवाच

हे वैदेह महाभाग विष्णुभक्तिसतां वर । त्वद्भक्त्या तोषितः कृष्णस्तवैकत्वं प्रदास्यति ॥४०॥

जनक उवाच

दासोऽहं कृष्णभक्तानां त्वादृशानां महात्मनाम् । मुक्तिं नेच्छामि हे ब्रह्मन्नेकतां हेतुवर्जितः ॥४१॥

ब्रह्मचार्युवाच

करोष्यहैतुकीं भक्तिं राजंस्त्वं हेतुवर्जितः । निर्गुणैर्भक्तिभावैश्च प्रेमलक्षणसंयुतः ॥४२॥
प्रद्युम्नो भगवान्साक्षाद्दिग्जयार्थं विनिर्गतः । नायातस्तव गेहेषु संदेहो मे महानभूत् ॥४३॥

जनक उवाच

प्रद्युम्नो भगवान्साक्षादंतर्यामी हरिः स्वयम् । सर्वगः सर्वविच्छश्वदत्र नास्ति च किं प्रभो ॥४४॥

ब्रह्मचार्युवाच

ज्ञानदृष्ट्याऽपि चेत्कार्ष्णिं मन्यसेऽत्र निरंतरम् । तर्हि दर्शय तं देवं प्रह्लाद इव दिव्यदृक् ॥४५॥

श्रीनारद उवाच

एतच्छ्रुत्वा तदा राजा महाभागवतो धृतिः । अश्रुपूर्णमुखो भूत्वा प्राह गद्गदया गिरा ॥४६॥

जनक उवाच

यदि मे श्रीहरेर्भक्तिरनिमित्ता कृता भुवि । तर्हि कार्ष्णिर्हरेः पुत्रः प्रादुर्भूयान्ममाग्रतः ॥४७॥
यदि श्रीकृष्णभक्तानां दासोऽहं यदि तत्कृपा । सर्वत्र यदि तद्भावस्तर्हि भूयान्मनोरथः ॥४८॥

श्रीनारद उवाच

प्रादुर्बभूवाशु तदैव कार्ष्णिर्विसृज्य सद्यः किल वर्णरूपम् ।
पश्यत्सु सर्वेषु जनेषु शिष्यः स गद्गदोऽभूद्धरिभक्तिनिष्ठः ॥४९॥

अतएव तुम धन्य हो, तुम्हारी मिथिला पुरी धन्य है और तुम्हारी सब प्रजा धन्य है ॥ ३५ ॥ जनकजी बोले—यह नगरी मेरी नहीं है । न मेरी प्रजा है और न मेरा घर है। स्त्री-पुत्र-पौत्र आदि सब कुछ भगवान् श्रीकृष्ण-के हैं ॥ ३६ ॥ परिपूर्णतम श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं। वे असंख्य ब्रह्माण्डोंके स्वामी गोलोकमें रहते हैं ॥ ३७ ॥ वासुदेव, संकर्षण (बलदेव), प्रद्युम्न और अनिरुद्ध यह चतुर्व्यूह धरतीपर अवतरा है ॥ ३८ ॥ हे ब्रह्मन् ! शरीर, मन, वचन, बुद्धि तथा इन्द्रियोंसे मैंने जो सुकर्म किया है, उसका सारा फल मैंने श्रीकृष्णको अर्पण कर दिया है ॥ ३९ ॥ ब्रह्मचारीजी बोले—हे महाभाग विदेह ! हे विष्णुभक्तोंमें श्रेष्ठ ! तुम्हारी भक्तिसे प्रसन्न श्रीकृष्ण तुम्हें अपनेमें मिला लेंगे ॥ ४० ॥ जनकजी बोले—हे भगवन् ! मैं तो आप जैसे श्रीकृष्णभक्तोंका दास हूँ । मैं मुक्ति और एकात्मता भी नहीं चाहता ॥ ४१ ॥ ब्रह्मचारीजी बोले—हे राजन् ! तुम बिना किसी कामनाकी अहैतुकी भक्ति करते हो । अतएव तुम अपनी निर्मल भक्तिके कारण प्रेमलक्षणसे पूर्ण हो ॥ ४२ ॥ किन्तु साक्षात् भगवान् प्रद्युम्न दिग्विजयके लिए निकले हैं, किन्तु वे तुम्हारे घर नहीं आये । यही मुझे आश्चर्य है ॥ ४३ ॥ जनकजी बोले—हे प्रभो ! प्रद्युम्न तो अन्तर्यामी, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ और साक्षात् भगवान् हैं। क्या वे यहाँ नहीं हैं ? ॥ ४४ ॥ ब्रह्मचारीने कहा—यदि ज्ञानदृष्टिसे प्रद्युम्नको सर्वव्यापी मानते हो तो प्रह्लादकी तरह हमें उनको प्रत्यक्ष दिखा दो ॥४५॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! यह बात सुनकर परम भगवद्भक्त राजा धृति आँखोंमें आँसू भरके गद्गद वाणीमें बोले—यदि मैंने निष्काम ईश्वरभक्ति की हो तो प्रद्युम्न

घनप्रभं पद्मदलायतेक्षणं प्रलंबबाहुं जगतां मनोहरम् ।
पीतांबरं नीलकुडालकालिभिः स्वलंकृतं श्रीमुखपद्ममंडलम् ॥५०॥
शीततुबालार्ककिरीटकुंडलं काच्यंगदस्फूर्जितदिव्यविग्रहम् ।
विलोक्य तं कृष्णसुतं कृतांजलिर्ननाम साष्टांगमलं धृतिर्नृपः ॥५१॥

जनक उवाच

अहोऽतिधन्यं मम भूरि भाग्यं दत्तं त्वया मे निजदर्शनं हि ।
जातोऽद्य कायाधवतुल्य आराद्गृहं कृतार्थोऽस्मि कुलेन भूमन् ॥५२॥

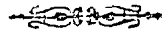
श्रीप्रद्युम्न उवाच

धन्यस्त्वं नृपशार्दूल भक्तस्त्वं मत्प्रभाववित् । भक्तिभावपरीक्षार्थं प्राप्तोऽहं तव सांप्रतम् ॥५३॥
अत्रैव मम सारूप्यं भूयात्ते मैथिलेश्वर । बलमायुर्यशःकीर्तिरिह लोके भवत्वलम् ॥५४॥

श्रीनारद उवाच

तव पित्रा च धृतिना पूजितः पश्यतां सताम् । प्रययौ शिविरान् राजन् प्रद्युम्नो भक्तवत्सलः ॥५५॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसम्वादे जनकोपाख्यानं नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥



अथ सप्तदशोऽध्यायः

(प्रद्युम्नकी मथुरा और शूरसेनदेशपर विजय)

श्रीनारद उवाच

अथातो मागधाञ्जेतुं प्रद्युम्नो मीनकेतनः । गिरिव्रजं जगामाशु स्वसैन्यैः परिवारितः ॥ १ ॥
श्रुत्वाऽऽगतं हरेः पुत्रं दिग्जयार्थं विशेषतः । जरासंधो मागधेंद्रो महाकोपं चकार ह ॥ २ ॥

जरासंध उवाच

तुच्छा ये यादवाः सर्वे युधि विक्लवचेतसः । तेऽद्य वै जगतीं जेतुं निर्गता गतबुद्धयः ॥ ३ ॥

मथुरां स्वपुरीं त्यक्त्वा मद्भयान्माधवोऽपिहि । समुद्रं शरणं प्रागात्पिता चास्य दुरात्मनः ॥ ४ ॥
प्रवर्षणे रामकृष्णौ मया भस्मीकृतौ बलात् । छलाद्दुद्रुवतुस्तौ द्वौ द्वारकायां समाश्रितौ ॥ ५ ॥
बद्ध्वा तौ चानयिष्यामि सोग्रसेनौ कुशस्थलीम् । अयादवीं करिष्यामि पृथ्वीं सागरमेखलाम् ॥ ६ ॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा निर्गतो राजा गिरिव्रजपुराद्बहिः । अक्षौहिणीभिर्विंशत्या तिसृभिः संयुतो बली ॥ ७ ॥
गोमूत्रचयसिंदूरकस्तूरीपत्रभृन्मुखे । स्रवन्मदैश्चतुर्दंतैरैरावतकुलोद्भवैः ॥ ८ ॥
शुण्डादण्डस्य फूत्कारैः क्षेपयद्भिस्तरून्बहून् । बभौ गजैर्मागधेंद्रो मेघैरिंद्र इव प्रभुः ॥ ९ ॥
रथैश्च देवधिष्ण्याभैः सध्वजैरश्वनेतृभिः । चामरैर्दोलितैः राजंल्लोलचक्रध्वनिद्युतिः ॥१०॥
तुरङ्गमैर्वायुवेगैश्चित्रवर्णैर्मदोत्कटैः । सौवर्णपट्टहाराढ्यैः शिखारश्म्यूर्ध्वचामरैः ॥११॥
सकंचुकैर्वीरजनैः खड्गचर्मधनुर्धरैः । विद्याधरसमैः प्रागान्मागधेंद्रो महाबलः ॥१२॥
धुंकारैर्दुंदुभीनां च दिशो नेदुर्धनुःस्वनैः । चचाल वसुधा सैन्यै रजोभिश्छादितं नभः ॥१३॥
जरासंधस्य तत्सैन्यं प्रलयाब्धिमिवोल्बणम् । विस्मिता यादवाः सर्वे बभूवुर्वीक्ष्य मैथिल ॥१४॥
प्रद्युम्नो भगवान्वीक्ष्य मागधेंद्रबलार्णवम् । शंखं दध्मौ दक्षिणाख्यं मा भैष्टेत्यभयं ददत् ॥१५॥
ततः सांबो महाबाहुः प्रद्युम्नस्य प्रपश्यतः । अक्षौहिणीनां दशभिर्युयुधे मागधेन सः ॥१६॥
गजा गजैर्युयुधिरे रथिभी रथिनो मृधे । हया हयैः पत्तयश्च पत्तिभिर्मैथिलेश्वर ॥१७॥
बभूव तुमुलं युद्धमद्भुतं रोमहर्षणम् । मागधानां यदूनां चासुराणां निर्जरैर्यथा ॥१८॥
अश्वारूढाः केऽपि वीरा भल्लहस्ता इतस्ततः । मर्दयंतो गजारूढाः करिकुम्भगतार्चयः ॥१९॥
केचिच्छक्तीस्तडिद्वर्णा गृहीत्वा चिक्षिपुर्बलात् । ताः शक्तयस्त्वरीन् भित्वा दंशितान् धरणीं गताः ॥

बहुत कुपित हुआ ॥ २ ॥ वह बोला—जो यादव बड़े तुच्छ थे और युद्धसे घबड़ाते थे, वे मूर्ख आज सारी पृथ्वी जीतने चले हैं ॥ ३ ॥ जिसका दुरात्मा पिता कृष्ण मेरे डरसे मथुरा त्यागकर समुद्रमें जा छिपा ॥ ४ ॥ प्रवर्षण पर्वतपर मैंने बलात् बलराम और कृष्णको जलवा दिया था। वे छलपूर्वक वहाँसे निकलकर द्वारका जा पहुँचे थे ॥ ५ ॥ सो अब मैं कृष्ण, बलदेव और उग्रसेनको बाँधकर द्वारका ले जाऊँगा और समुद्रपर्यन्त सारी पृथ्वी यादवविहीन कर दूँगा ॥ ६ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन्! ऐसा कहकर बली जरासन्ध तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर गिरिव्रजपुरसे बाहर निकला ॥ ७ ॥ गोमूत्र, सिन्दूर और कस्तूरीसे मस्तकपर चित्ररचना किये, मद बहाते, ऐरावतके कुलमें उत्पन्न, चार दाँतके, सूँड़से फुंकारते और वृक्षोंको उखाड़ते हुए हाथियोंसे जरासंध मेघमण्डलके साथ विद्यमान इन्द्रके समान शोभित हुआ ॥८॥९॥ देवताओंके विमान सरीखे सुन्दर रथोंपर ध्वजायें फहरा रही थीं। उनमें दिव्य घोड़े जुते थे और सारथी बैठे थे। उनके रथियोंपर चमर चल रहे थे और उनके चञ्चल पहियोंसे ध्वनि निकल रही थी ॥ १० ॥ वायु जैसे वेगवाले और विविध रंगके घोड़ोंका स्वर्णपट्ट तथा हार आदिसे शृंगार किया गया था और उनके मस्तकपर कलँगी शोभित थी ॥ ११ ॥ विद्याधरों जैसे सुन्दर और कंचुकधारी बड़े-बड़े वीर ढाल-तलवार लिये हुए थे। उन्हें लेकर जरासंध अपने किलेसे बाहर निकला ॥ १२ ॥ तब दुन्दुभियोंकी ध्वनि और धनुषोंके टंकारसे दसों दिशायें झंकृत हो उठीं, पृथिवी हिलने लगी और धूलसे सारा आकाश भर गया ॥ १३ ॥ प्रलयकालीन समुद्रके समान भयंकर जरासंधकी सेनाको देखकर यादव बड़े आश्चर्यमें पड़ गये ॥१४॥ भगवान् प्रद्युम्नने जरासंधकी समुद्र सदृश भीषण सेनाको देखकर "डरो मत-डरो मत" ऐसा कहकर यादवोंको अभयदान देते हुए अपना दक्षिणावर्त शंख बजाया ॥ १५ ॥ उसी समय महाबाहु साम्ब दस अक्षौहिणी सेना लेकर जरासंधसे लड़ने लगा ॥ १६ ॥ रथियोंसे रथी, हाथियोंसे हाथी, घुड़सवारोंसे घुड़सवार और पैदलोंसे पैदल सैनिक लड़ने लगे ॥ १७ ॥ उस समय मागधवीरोंके साथ यादवोंका बड़ा भीषण युद्ध हुआ, जैसे पूर्वकालमें दैत्यों और देवताओंमें हुआ था ॥ १८ ॥ कुछ अश्वारोही वीर भाला और कुछ बिजली जैसी चमकीली बर्छी

केचिद्वीरा नदंतः कौ रथांगानि च चिक्षिपुः । चिच्छिदुर्वीरपटलं नीहारं रवयो यथा ॥२१॥
भिंदिपालैर्मुद्गरैश्च कुठारैरसिपट्टिशैः । अच्छूरिकार्ष्टिभिस्तीक्ष्णैर्निस्त्रिंशैर्युयुधुश्च खे ॥२२॥
तोमरैश्च गदाभिश्च बाणैश्छिन्नानि भूतले । निपेतुर्वीरकरिणामश्वानां च शिरांसि च ॥२३॥
कबंधास्तत्र चोत्पेतुः पातयंतो हयान्नरान् । खड्गहस्ताः प्रधावंतः संग्रामेषु भयङ्करा ॥२४॥
वीरोपरि गता वीरा निपेतुश्छिन्नबाहवः । हयोपरि हयाः केचिद्बाणैः संछिन्नकंधराः ॥२५॥
विद्याधर्यश्च गंधर्व्यो वव्रिरे ह्यंबरे गतान् । वीरान्पतीन्समिच्छंत्यस्तासां चाभूत्कलिर्महान् २६॥
क्षात्रधर्मपराः केचिद्युद्धदत्तासवो नृप । न चलंतः पदं पृष्ठे सदा संग्रामशालिनः ॥२७॥
जग्मुः परं पदं ते वै भित्वा मार्तंडमंडलम् । ननृतुः शिशुमारे वै मंडले च नटा इव ॥२८॥
एवं सांबमहावीरैर्मर्दितं मागधं बलम् । दुद्राव पश्यतां तेषां कृष्णभक्त्या यथाऽशुभम् ॥२९॥
केचिद्वै वृक्णवर्माणश्छिन्नचापास्तथापरे । पलायमाना धावंतस्त्यक्तखड्गर्ष्टिपाणयः ॥३०॥
पलायमानं स्वबलं वीक्ष्य तन्मागधेश्वरः । धनुष्टंकारयन्प्राप्तो माभैष्टेत्यभयं ददौ ॥३१॥
स्वबलं नोदयामास जरासंधो धनुर्ज्यया । महामात्यः प्रेरयति ह्यंकुशेन गजं यथा ॥३२॥
सांबस्तदैव सम्प्राप्तो दशभिश्चापनिर्गतैः । बाणैर्विव्याध समरे मागधेंद्रं महाबलम् ॥३३॥
धनुर्ज्यामब्धिकल्लोलभीमसंघर्षनादिनीम् । चिच्छेद दशभिर्बाणैः सांबो जांबवतीसुतः ॥३४॥
धनुरन्यत्समादाय जरासंधो महाबलः । धनुः सांबस्य चिच्छेद बाणैर्दशभिरग्रतः ॥३५॥
चतुर्भिश्चतुरो वाहान्द्वाभ्यां केतुं रथं त्रिभिः । एकेन सारथिं जघ्ने मागधेंद्रो जरासुतः ॥३६॥
स छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः । पुनरन्यं समास्थाय रथं सांबो महाबलः ॥३७॥

हाथियोंपर बैठकर इधर-उधर फेंक रहे थे। वे बर्छियाँ शत्रुको बींधकर धरतीमें समा गयीं ॥ १९ ॥ २० ॥ गर्जन करते हुए कुछ वीरोंने पृथिवीपर रथके पहिये फेंके। वे वीरोंको इस तरह मारने लगे, जैसे सूर्य कुहरेको मार भगाता है ॥२१॥ कुछ वीर भिन्दिपाल, मुग्दर, फरसे, तलवार, पट्टे, ढाल तथा तीक्ष्ण भालोंको लेकर जूझने लगे ॥ २२ ॥ तोमर, गदा तथा बाणोंकी मारसे मरे हुए वीरों, हाथियों, घोड़ों और पैदल सैनिकोंके सिर गिरने लगे ॥ २३ ॥ कितने ही वीरोंके धड़ गिरते समय घोड़ों तथा मनुष्योंको भी लेकर गिरे। कितने वीर हाथमें तलवार लेकर भयंकर ढंगसे दौड़ रहे थे ॥२४॥ मरे हुए वीरोंपर वीर पड़े थे। उनकी भुजायें कट गयी थीं। इसी प्रकार बाणोंसे कटी गर्दनवाले बहुतेरे घोड़े भी एकके ऊपर एक पड़े थे ॥ २५ ॥ विद्याधरियाँ और गन्धर्वियाँ स्वर्गमें पहुँचे हुए वीरोंका वरण कर रही थीं। इस प्रकार वीर पति चाहनेवलियोंमें परस्पर बहुत बड़ा झगड़ा खड़ा हो गया ॥ २६ ॥ कितने ही क्षात्रधर्मा वीरोंने युद्धमें प्राण दे दिये। सदा संग्राममें तत्पर रहते हुए उन्होंने कभी पीछे पैर नहीं हटाया ॥ २७ ॥ वे सूर्यमण्डल भेदकर परम पदको पहुँच गये। शिशुमार चक्रमें जाकर वे इस प्रकार नाचने लगे, जैसे मण्डलमें नट नाचते हैं ॥ २८ ॥ इस युद्धमें साम्ब आदि वीरोंने जरासंधकी सेनाका खूब मर्दन किया। जिससे उनके सामनेसे वह भागने लगी ॥ २९ ॥ उनमेंसे बहुतोंके कवच कट गये थे, बहुतोंके धनुष बेकार हो गये थे और बहुतेरे तलवारें टूट जानेसे भाग रहे थे ॥ ३० ॥ अपनी सेनाको भागते देख जरासंध स्वयं धनुष टंकारता हुआ आगे बढ़ा और 'डरो मत' ऐसा कहकर सैनिकोंको धीरज बँधाने लगा ॥ ३१ ॥ साथ ही उसने धनुषकी प्रत्यंचासे अपने वीरोंको युद्धके लिए प्रेरित किया। जैसे महावत अंकुशसे हाथीको प्रेरित करता है ॥ ३२ ॥ सहसा साम्बने सम्मुख पहुँचकर महाबली जरासंधको दस बाणोंसे बींध दिया ॥ ३३ ॥ उसके बाद समुद्रके कल्लोल सदृश भीषण निनाद करनेवाली उसकी प्रत्यंचाको साम्बने दस बाणोंसे काट डाला ॥ ३४ ॥ तब दूसरा धनुष लेकर जरासंधने दस बाणोंसे साम्बके धनुषको काट दिया ॥ ३५ ॥ चार बाणोंसे जरासन्धने घोड़ोंको, दो बाणोंसे ध्वजाको और तीन बाणोंसे साम्बके रथको ध्वस्त कर दिया ॥ ३६ ॥ जब साम्बका रथ टूट गया, धनुष कट गया,

गृहीत्वा चापमत्युग्रं सज्जं कृत्वा विधानतः । तद्रथं चूर्णयामास सांबो बाणशतैरपि ॥३८॥
रथं त्यक्त्वा जरासंधो गजमारुह्य वेगतः । बभौ गजे मागधेंद्र इन्द्र ऐरावते यथा ॥३९॥
चित्रपत्रविचित्रांगं कालांतकयमोपमम् । सांबाय नोदयामास मत्तेभं क्रुद्धमानसः ॥४०॥
गृहीत्वा सरथं सांबं शुण्डादण्डेन नागराट् । कुर्वञ्शीत्कारविकलश्चिक्षेप नवयोजनम् ॥४१॥
तदा कोलाहले जाते सांबसेनासु मैथिल । प्रद्युम्नपार्श्वाच्च गदः प्राप्तोऽभूद्वेगतो बलम् ॥४२॥
विनाशयन्नंधकारं यथार्क उदयाचलात् । जरासंधस्यापि गजं मुष्टिना वसुदेवजः ॥४३॥
जघान शक्रो वज्रेण यथा प्रोच्चैर्गिरिभृतम् । गजो मुष्टिप्रहारेण विह्वलो धरणीं गतः ॥४४॥
जगाम पश्यतां राजंस्तदद्भुतमिवाभवत् । जरासंधः समुत्थाय गदामादाय वेगतः ॥४५॥
गदं तताड सहसा जगर्ज घनवद्बली । तत्प्रहारेण स गदो न चचाल रणांगणात् ॥४६॥
त्वरं गदां समादाय लक्षभारविनिर्मिताम् । अताडयज्जरासंधं सिंहनादमथाकरोत् ॥४७॥
तत्प्रहारेण व्यथितो बृहद्रथसुतो बली । जरासंधः समुत्थाय गृहीत्वा सगदं गदम् ॥४८॥
चिक्षेप रोषतो राजन्नाकाशे शतयोजनम् । गदोऽपि मागधं नीत्वा भ्रामयित्वा महाबलः ॥४९॥
चिक्षेप गगने तं वै योजनानां सहस्रकम् । आकाशात्पतितो राजा मागधो विंध्यपर्वते ॥५०॥
उत्थाय युयुधे तेन गदेनापि महाबलः । तदैव सांबः संप्राप्तो गृहीत्वा मागधेश्वरम् ॥५१॥
भूपृष्ठे पोथयामास सिंहः सिंहमिवौजसा । एकेन मुष्टिना सांबं द्वितीयेन गदं तथा ॥५२॥
तताड मागधो राजा जगर्जाशु रणांगणे । मुष्टिप्रहारव्यथितौ गदः सांबश्च मूर्च्छितौ ॥५३॥
हाहाकारो महानासीत्तदैवाशु रणांगणे । रथेनातिपताकेन प्रद्युम्नो यादवेश्वरः ॥५४॥
अक्षौहिणीयुतः प्राप्तो मा भैष्टेत्यभयं ददौ । जरासंधो गदां नीत्वा लक्षभारविनिर्मिताम् ॥५५॥
विवेश यदुसेनायामरण्येऽग्निरिव प्रभुः । रथान्गजान्सवीरांश्च तुरङ्गान्सैंधवान्बहून् ॥५६॥

घोड़े मर गये और सारथी भी मर गया, तब वह दूसरे रथपर जा बैठा ॥ ३७ ॥ तत्काल साम्बने अति उग्र धनुषपर विधिवत् सौ बाण चढ़ाकर उससे जरासंधके रथको चूर कर दिया ॥ ३८ ॥ तब रथ त्यागकर वह हाथीपर सवार हो गया । उस समय ऐसा लगा कि मानों इन्द्र ऐरावतपर बैठे हुए है ॥ ३९ ॥ विचित्र प्रकारकी रचनासे जिसका मस्तक चित्रित था, उस कालान्तक यमके समान भयंकर हाथीको जरासंधने साम्बके ऊपर प्रेरित किया ॥४०॥ तदनुसार चीत्कार करते हुए उस गजराजने साम्बको उठाकर नौ योजन दूर फेंक दिया ॥ ४१ ॥ हे राजन्! यह देखकर साम्बकी सेनामें हलचल मच गयी। उसी समय प्रद्युम्नके पाससे गद रणांगणमें जा पहुँचा ॥ ४२ ॥ जैसे सूर्य उदयाचलपर उदित होकर अन्धकार दूर कर देते हैं, वैसे ही गदने जरासन्धके हाथीको एक घूंसा मारा ॥ ४३ ॥ जैसे इन्द्रके वज्रप्रहारसे पर्वत गिरते हैं, वैसे ही गदके घूँसा मारनेपर वह हाथी विकल होकर धरतीपर गिर गया ॥ ४४ ॥ घूँसेकी मारसे हाथीको मरा देखकर लोगोंको बड़ा विस्मय हुआ। तभी जरासंधने गदा लेकर बड़े वेगसे गदको मारा और जोरसे गरजा। किन्तु इस प्रहारसे गद तनक भी विचलित नहीं हुआ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ शीघ्र गदने लाख भार लोहेकी बनी गदा लेकर जरासंधको मारा और सिंहनाद किया ॥ ४७ ॥ इस प्रहारसे विकल होकर बलवान् जरासंधने गदासमेत गदको उठाकर आकाशमें सौ योजन ऊपर ऊछाल दिया। उसी समय गदने भी जरासंधको पकड़कर आकाशमें हजार योजन ऊपर फेंक दिया। आकाशसे वह विंध्यपर्वतपर जा गिरा ॥ ४८–५० ॥ किन्तु वह फिर आकर गदसे लड़ने लगा। तभी साम्ब पहुँच गये और उन्होंने जरासन्धको पकड़कर धरतीपर पटक दिया, जैसे सिंह सिंहको पटक दे ॥ ५१ ॥ फिर जरासंधने उठकर एक घूँसा साम्बको और एक घूंसा गदको मारा ॥ ५२ ॥ इस प्रकार दोनोंको मारकर वह गर्जा। उस घूँसेके प्रहारसे साम्ब तथा गद दोनों मूर्छित हो गये ॥ ५३ ॥ इससे रणभूमिमें हाहाकार मच गया। तब एक बड़ी ध्वजावाले रथपर बैठकर प्रद्युम्न रणांगणमें आ पहुँचे।

पातयामास राजेंद्र पद्मानीव महागजः । जरासंधस्य या सेना सापि सर्वा समागता ॥५७॥
जघान निशितैर्बाणैर्यदूनां सर्वतो बलम् । प्रद्युम्नो युयुधे युद्धे निर्भयो यादवेश्वरः ॥५८॥
निपातयन्नरीन्बाणैर्धनुष्टङ्कारयन्मुहुः । तदैव यदुपुर्यास्तु बलदेवः समागतः ॥५९॥
प्रादुर्बभूव तत्रापि सर्वेषां पश्यतां सताम् । समाकृष्य हलाग्रेण मागधेंद्रं महाबलम् ॥६०॥
मुसलेनाहनत्क्रुद्धो बलदेवो महाबलः । शतयोजनपर्यंतं रथाश्वगजपत्तयः ॥६१॥
पतिता भिन्नशिरसः सर्वे वै निधनं गताः । देवदुंदुभयो नेदुर्नरदुन्दुभयस्तथा ॥६२॥
बलदेवोपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे । तदा जयजयारावो यदूनां स्वबले महान् ॥६३॥
प्रद्युम्नाद्यास्ततो नेमुः कामपालं गतव्यथाः । इत्थं जित्वा मागधेंद्रं बलदेवो महाबलः ॥६४॥
प्रययौ द्वारकां राजन्भगवान्भक्तवत्सलः । जरासंधसुतो धीमान् सहदेव उपायनम् ॥६५॥
नीत्वा पुरः शंबरारेर्गिरिदुर्गाद्विनिर्गतः । अश्वार्बुदं रथानां च द्विलक्षं हस्तिनां तथा ॥६६॥
ददौ षष्टिसहस्राणि नत्वा कार्ष्णिं प्रभाववित् ॥६७॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे नारदबहुलाश्वसंवादे मागधविजयो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अथ अष्टादशोऽध्यायः

(कौरवोंका दूत-प्रेषण)

श्रीनारद उवाच

अथ कार्ष्णिर्गयामेत्य फल्गुं स्नात्वा ससैनिकः । अन्यान्देशांस्ततो जेतुं प्रस्थानमकरोत्पुनः ॥ १ ॥
श्रुत्वा जितं जरासंधं तदातंकान्नृपाः परे । उपायनं ददुस्ते वै भयार्ताः शरणं गताः ॥ २ ॥

उनके साथ एक अक्षौहिणी सेना थी । पहुँचते ही उन्होंने 'मत डरो' कहकर सैनिकोंको आश्वस्त किया । तभी जरासंध एक लाख भारकी गदा लेकर यादवी सेनाके भीतर घुस गया, जैसे आग वनमें घुसती है । उसकी मारसे उसने यादवोंके बहुतेरे रथों, हाथियों और घोड़ोंको ध्वस्त कर दिया ॥ ५४–५६ ॥ उसी समय जरासंधकी सेना भी आ गयी । आते ही उसने अपने तीखे बाणोंसे यादवी सेनाको मारना आरंभ कर दिया । किन्तु यादवेश्वर प्रद्युम्न तब भी निर्भय होकर जरासंधसे लड़ते रहे ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ वे भीषण रूपसे शत्रुओंका संहार कर रहे थे । उसी समय देखते-देखते द्वारकासे बलदेवजी आ गये । आते ही उन्होंने अपने हलके अग्रभागसे बलवान् जरासंधको घसीट लिया ॥ ५९ ॥ ६० ॥ फिर अपने मूसरसे जरासंधको मारा । उसके कुछ ही देरके युद्धसे रणभूमिमें सौ योजन पर्यन्त रथ, घोड़े, हाथी और पैदल सैनिक मरकर बिछ गये और उन सबके मस्तक कट गये । तब नभर्मडलमें देवताओं तथा धरतीपर मानवोंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ देवता बलदेवजीके ऊपर पुष्प बरसाने लगे और यादवी सेनामें उनकी जयजयकार होने लगी ॥ ६३ ॥ प्रद्युम्न आदि वीरोंने उन्हें प्रणाम किया और उनकी सारी व्यथा दूर हो गयी । इस प्रकार जरासंधको जीतकर महाबली और भक्तवत्सल बलदेव द्वारका चले गये । तदनन्तर जरासंधका पुत्र सहदेव दस करोड़ घोड़े, दो लाख हाथी, साठ हजार रथोंकी भेंट लेकर शम्बरारि प्रद्युम्नके पास गया और उन्हें अर्पित किया ॥ ६४–६७ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् बहुलाश्व ! इसके बाद प्रद्युम्न गया आये और सैनिकोंके साथ उन्होंने फल्गु नदीमें स्नान किया । वहाँसे अन्यान्य देशोंपर विजय प्राप्त करने चले ॥ १ ॥ जब अन्य राजाओंने

गोमतीं सरयूं पुण्यामनुस्रोतं ततोऽगमत् । ततो भागीरथीतीरे काशीमभिजगाम ह ॥ ३ ॥
पार्ष्णिग्राहः काशिराजो गृहीतो मृगयां गतः । सोऽपि तस्मै वलिं प्रादाच्छ्रुत्वा तस्य वलं महत् ॥
प्रद्युम्नः सैनिकैः सार्द्धं कोशलान्प्रगतो वली । अयोध्यानिकटे राजन्नंदिग्रामे स्थितोऽभवत् ॥ ५ ॥
कोशलेन्द्रो नग्नजिच्च तुरङ्गैश्च गजै रथैः । महाधनैः शंवरारिमर्हयामास तत्त्ववित् ॥ ६ ॥
उत्तरेशो दीपतमो नयपालाधिपो गजः । विशालेशो वर्हिणश्च एते वै तं वलिं ददुः ॥ ७ ॥
नैमिषेशो हरेर्भक्तः श्रीकृष्णस्य प्रभाववित् । कृतांजलिपुटो भूत्वा ददौ तस्मै वलिं नृपः ॥ ८ ॥
प्रयागं गतवान्कार्ष्णिस्त्रिवेणीं पापनाशिनीम् । स्नात्वा ददौ महादानं तीर्थराजप्रभाववित् ॥ ९ ॥
गजा विंशतिसाहस्रमश्वानां दशलक्षकम् । रथानां च चतुर्लक्षं गवां तत्र दशार्वुदम् ॥१०॥
हेममालासमायुक्तं हेमांवरसमन्वितम् । दशभारं सुवर्णानां मुक्तानां लक्षमेव हि ॥११॥
द्विलक्षं नवरत्नानां वस्त्राणां दशलक्षकम् । काश्मीरकंवलानां च द्विलक्षं नवकंवलम् ॥१२॥
ब्राह्मणेभ्यो ददौ कार्ष्णिस्तीर्थराजे हरिप्रिये । कारूपाधिपतिस्तत्र पौंड्रको नाम मैथिल ॥१३॥
कृष्णशत्रुः सोऽपि कार्ष्णिं पूजयामास शंकितः । प्रद्युम्नं चागतं वीक्ष्य पाञ्चाले कान्यकुब्जके ॥१४॥
भयं प्रापुर्नृपाः सर्वे दुर्गे दुर्गे कृतार्गलाः । विचेलुर्यादवात्सर्वे भयार्ता दुर्गमाश्रिताः ॥१५॥
विंदुदेशाधिपो राजा दीर्घवाहुर्महावलः । शंवरारेः परं सन्धिं कर्तुं सैन्ये समाययौ ॥१६॥

दीर्घवाहुरुवाच

यूयं सर्वे यादवेन्द्रा आगता जयिनो दिशाम् । मनोरथं मे कुरुतां भवेयं तुष्टमानसः ॥१७॥
सजलस्यापि काचस्य पात्रस्य शरवेधतः । न क्षरेद्बिंदुरेकोऽपि वाणस्तदधितिष्ठति ॥१८॥
न पात्रं शकलीभूतं तन्मध्ये हस्तलाघवम् । ये कुर्वंति प्रतिज्ञां मे तेभ्यो दास्यामि कन्यकाः १९॥

सुना कि यादवोंने जरासन्धको जीत लिया है तो वे आतंकित होकर उनकी शरणमें गये और उन्हें भेंट दी ॥ २ ॥ तदनन्तर गोमती, पवित्र सरयू नदी होकर भागीरथीके तटपर बसी काशी नगरीमें आये ॥ ३ ॥ पार्ष्णिग्राही काशीनरेश प्रद्युम्न उस समय शिकारपर गया था । उसे प्रद्युम्नने पकड़ लिया । उसने भी बड़ा वली मानकर प्रद्युम्नको भरपूर भेंट दी ॥४॥ वहाँसे चलकर कोसल देश गये । वहाँ अयोध्याके निकट नन्दि-ग्राममें टिके ॥ ५ ॥ कोसल देशके नरेश नग्नजित्‌ने हाथी, घोड़े, रथ, पुष्कल धन और चतुरंगिणी सेना देकर प्रद्युम्नका पूजन किया ॥ ६ ॥ उत्तरी प्रदेशके राजा दीपतम, नेपालके राजा गज और विशालके राजा वर्हिणने भी प्रद्युम्नको भेंट दी ॥ ७ ॥ नैमिषके राजा भगवद्भक्त थे और श्रीकृष्णके प्रभावको जानते थे। अतएव उन्होंने हाथ जोड़कर प्रद्युम्नको भेंट दी ॥ ८ ॥ तदनन्तर प्रद्युम्न प्रयाग गये। वहाँ उन्होंने पाप-नाशिनी त्रिवेणीमें स्नान करके महादान दिया। क्योंकि वे तीर्थराजका प्रभाव जानते थे ॥ ९ ॥ वहाँपर उन्होंने बीस हजार हाथी, दस लाख घोड़े, चार लाख रथ और दस अरब गायें दान करके दीं ॥ १० ॥ सोनेकी माला और सुनहले वस्त्रोंके साथ दस भार सोना और एक लाख मोतीका दान दिया ॥११॥ साथ ही दो लाख नवरत्न, दस लाख वस्त्र, दो लाख काश्मीरी कम्बल भी दान दिये ॥१२॥ हे मिथिलेश्वर ! प्रद्युम्नने प्रिय तीर्थ प्रयागमें दान करके ब्राह्मणोंको ये सब वस्तुयें दीं। वहाँ ही करूषदेशका राजा पौंड्रक रहता था। वह श्रीकृष्णका प्रमुख शत्रु था। तथापि भयवश उसने प्रद्युम्नकी पूजा की। पांचाल तथा कन्नौजमें प्रद्युम्नको पहुँचा देखकर अन्यान्य राजे भयभीत हो उठे। यादवोंसे डरकर वे अपने-अपने किलेमें चले गये और भीतरसे उसके द्वार वन्द कर लिये। कितने तो भाग ही गये ॥१३–१५॥ विन्दुदेशका नरेश दीर्घवाहु बड़ा वलवान् था। वह प्रद्युम्नसे सन्धि करनेके लिए उनके शिविरमें आया ॥ १६ ॥ उसने कहा—आप लोग यादवेंद्र हैं और विभिन्न दिशाओंको जीतकर यहाँ आये हैं। यदि आप मेरी अभिलाषा पूर्ण कर दें तो मुझे बड़ा सन्तोष हो ॥ १७ ॥ जलभरे कांचके पात्रमें आप तीर गाड़ दें और पात्रसे एक बूंद जल न गिरे, फिर भी वाण वहाँ गड़ा रहे ॥ १८ ॥ पात्र भी न फूटे और वाण गड़ा रहे। यह हस्तलाघव आपमेंसे जिन लोगोंमें हो, वे

यूयं सर्वे यादवेन्द्रा धनुर्वेदविशारदाः । मयाऽपि नारदमुखाच्छ्रुताः पूर्वं महाबलाः ॥२०॥
सर्वेषां विस्मितानां च प्रद्युम्नो धन्विनां वरः । तथेत्युवाच सदसि विंदुदेशाधिपं नृप ॥२१॥
दीर्घवंशौ सुविस्थाप्य गुणं बद्ध्वा तदन्तरे । गुणे बद्ध्वा काचकुम्भं सजलं पश्यतां सताम् ॥२२॥
धनुर्गृहीत्वा तद्वीक्ष्य बाणं कार्ष्णिः समादधे । काचपात्रं शरो भित्वा तस्थौ मध्येऽर्द्धनिःसृतः २३॥
एकतो मुखपुङ्खाभ्यां रविरश्मिरिवांबुदे । काचपात्रे बभौ बाणस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥२४॥
न पात्रं शकलीभूतं त्रिकुशस्य फलं यथा । न चालनं कंपनं च विंदुस्रावोऽपि नाभवत् ॥२५॥
प्रद्युम्नो भगवान्बाणं द्वितीयं संदधे पुनः । सोऽपि पूर्वं समुत्सृज्य तत्र तस्थौ विदेहराट् ॥२६॥
सांबोऽपि धनुरादाय बाणान्पञ्च समाददे । काचपात्रं च ते भित्त्वा तस्थुस्तत्रार्धनिःसृताः २७॥
युयुधानो धनुर्नीत्वा बाणमेकं समाक्षिपत् । सर्वेषां पश्यतां तेषां पात्रं चूर्णीबभूव ह ॥२८॥
उच्चकैर्जहसुः सर्वे यादवाः परसैनिकाः । त्वं महान्बाणधारीह कार्तवीर्यार्जुनो यथा ॥२९॥
अर्जुनो भरतो रामस्त्रिपुरघ्नो हि वा भवान् । द्रोणो भीष्मोऽथवा कर्णो जामदग्न्य इवाभवत्३०॥
अन्यत्पात्रं समाधायानिरुद्धो धन्विनां वरः । अधो गत्वाऽथ तद्दृष्ट्वा बाणं चिक्षेप लाघवात् ॥३१॥
सोऽपि पात्रतलं भित्वा तस्थौ तत्रापि निःसृतः । तत्पात्राद्धस्तपञ्चोर्ध्वं बद्ध्वा पाषाणमंबरे ॥३२॥
दीप्तिमान् धनुरादाय बाणमेकं समादधे । सोऽपि पात्रतलं भित्वा बाणमुत्सृज्य चाग्रतः ॥३३॥
ताडयित्वा च पाषाणं पुनस्तत्र समाश्रितः । बाणवेगेन तदपि विंदुस्रावोऽपि नाभवत् ॥३४॥
गतागतेन यावद्वै विंदुस्रावोऽपि नाभवत् । तदा वीराश्च ते सर्वे साधु साध्विति वादिनः ॥३५॥
भानुर्धनुः संगृहीत्वा वीक्ष्य मीलितलोचनः । आराच्चिक्षेप नाराचं सर्वेषां पश्यतां सताम् ॥३६॥

मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण करें तो मैं उन्हें कन्यायें दूँगा ॥ १९ ॥ आप सभी यादव धनुर्विद्याके विज्ञ हैं। मैंने श्रीनारदजीके मुखसे आप लोगोंकी बड़ी बड़ाई सुनी है ॥२०॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन्! यद्यपि राजा दीर्घबाहुकी बात सुनकर सबलोग आश्चर्यमें पड़ गये, तथापि प्रद्युम्नने वैसा करनेकी स्वीकृति दे दी ॥२१॥ तदनुसार एक बड़ा बाँस धरतीपर गाड़कर उसमें एक रस्सी बाँधी गयी। रस्सीमें जलसे भरा काँचका पात्र बँधा। सभी लोग यह कार्यवाही देख रहे थे ॥ २२ ॥ तब प्रद्युम्नने एक बाण लेकर धनुषपर चढ़ाया। काँचके पात्रको बींधकर बाण बीचमें आधा निकला हुआ स्थित हो गया ॥ २३ ॥ बाणके अग्रभाग और पुच्छ भागसे किरणें निकल रही थीं। इससे वह बाण ऐसा शोभित हुआ, जैसे बादलमें सूर्य। यह देखकर लोगोंको बड़ा विस्मय हुआ ॥ २४ ॥ प्रद्युम्नके ऐसा करनेपर न तो पात्र फूटा और न हिला-डुला। उसमेंसे एक बूँद पानी भी नहीं गिरा ॥ २५ ॥ तदनन्तर भगवान् प्रद्युम्नने दूसरे बाणका संधान किया। हे विदेहराज! वह भी पहलेवाले बाणकी बगलमें जाकर गड़ गया ॥ २६ ॥ उसके बाद पाँच बाण साम्बने मारे। वे भी उस काँचके पात्रको भेदकर आधे-आधे उभरे हुए स्थित हो गये ॥ २७ ॥ तब युयुधानने धनुष लेकर सबके समक्ष एक बाण मारा। उस बाणके लगते ही पात्र फूट गया ॥ २८ ॥ यह देख सभी यादव ठठाकर हँसने और कहने लगे—वाह-वाह, तुम कार्तवीर्य अर्जुनके समान बहुत बड़े बाणधारी हो ॥ २९ ॥ या तो अर्जुन, भरत, परशुराम, त्रिपुरनाशक शिव, द्रोणाचार्य, भीष्म, कर्ण और रामचन्द्र धनुर्धर थे, या कि तुम हो ॥ ३० ॥ फिर दूसरा पात्र रक्खा गया। तब धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ अनिरुद्धने उसके नीचे जाकर भली-भाँति देखा और हल्के हाथसे बाण मारा ॥ ३१ ॥ वह बाण पात्रको नीचेसे छेदकर आधा निकला हुआ गड़ गया। बादमें उस पात्रसे पाँच हाथ ऊँचा एक पत्थर लटका दिया गया ॥ ३२ ॥ तब दीप्तिमान्‌ने धनुषपर चढ़ाकर एक बाण मारा, वह भी पात्रतलको भेदकर पहलेवाले बाणके आगेवाले पत्थरको आहत करके पात्रमें आ गया, फिर भी एक बूँद जल नहीं गिरा ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ इस प्रकार बाणोंके आने-जानेपर भी एक बूँद पानी न गिरते देख सभी वीरोंने 'साधु-साधु' कहकर सराहना की ॥३५ ॥ तब श्रीकृष्णसुत भानुने धनुष लेकर पात्रको देखा और नेत्र बन्द करके सबके समक्ष एक बाण मारा

सोऽपि पात्रं तदा भित्त्वा पात्रं कृत्वा ह्यधोमुखम् । पुनरूर्ध्वमुखं कृत्वा तस्थौ तत्रार्द्रनिःसृतः ॥३७॥
बाणवेगेन तदपि बिंदुस्रावोऽपि नाभवत् । न पात्रं शकलीभूतं तदद्भुतमिवाभवत् ॥३८॥
एवं श्रीकृष्णपुत्रा ये अष्टादश महारथाः । सर्वे ते बिभिदुः पात्रं जलस्रावोऽपि नाभवत् ॥३९॥
बिंदुदेशाधिपो राजा दीर्घबाहुः सुविस्मितः । तेभ्योऽदात्कन्यकाः शुभ्रा अष्टादश सुलोचनाः ॥४०॥
तेषां विवाहसमये शंखभेर्यानकादयः । नेदुर्जगुश्च गंधर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥४१॥
तेषामुपरि देवास्ते जयध्वनिसमाकुलाः । ववृषुः पुष्पवर्षाणि चक्रुः श्लाघां दिवि स्थिताः ॥४२॥
गजान्षष्टिसहस्राणि हयानामर्बुदं तथा । दशलक्षं रथानां च दासीनां लक्षमेव च ॥४३॥
शिबिकानां चतुर्लक्षं पारिबर्हं ददौ नृपः । ताः प्राहिणोद्द्वारवतीं ययौ कार्ष्णिर्यदूत्तमः ॥४४॥
दीर्घबाहुमनुप्राप्य निषधान्प्रययौ ततः । निषधाधिपतिर्वीरसेनजिन्नाम मैथिल ॥४५॥
उपायनं ददौ सोऽपि प्रद्युम्नाय महात्मने । तथा हि मद्राधिपतिः श्रीकृष्णेष्टो हरिप्रियः ॥४६॥
पूजयामास सबलं बृहत्सेनो हरेः सुतम् । माथुरान्शूरसेनांश्च मधून्प्राप्तः ससैनिकः ॥४७॥
स्वागतैः पूजितः कार्ष्णिर्मथुरायां ययौ पुनः । ततः प्रक्षिणीकृत्य मथुरां सवनां किल ॥४८॥
गोपान्गोपीं यशोदां च नंदराजं व्रजेश्वरम् । वृषभानूपनंदांश्च नत्वा कार्ष्णिर्ययौ नृप ॥४९॥
बलिं च नंदराजाय दत्त्वा दत्त्वा पुनः पुनः । तैः पूजितः कतिदिनैः स्थितोऽभून्नंदगोकुले ॥५०॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे नारदबहुलाश्वसंवादे माथुरशूरसेनदेशविजयो नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

अथ एकोनविंशोऽध्यायः

(कौरवों द्वारा युद्ध का उपक्रम)

श्रीनारद उवाच

अथ कार्ष्णिर्महाबाहुर्ध्वजिनीभिः समन्वितः । नादयन्दुंदुभीन्दीर्घान्दीर्घवेगः कुरून् ययौ ॥ १ ॥

विंशतिर्योजनानां च मर्यादीकृततद्दले । तस्थौ तच्छिबिराणां च विस्तारो दशयोजनम् ॥ २ ॥
पंचयोजनमाश्रित्य तद्दले राजपद्धतिः । धनाढ्यानां च वैश्यानामापणानि सहस्रशः ॥ ३ ॥
तथा रत्नपरीक्षाणां वस्त्रव्यापारकारिणाम् । काचकारा वायकाश्च रंगकाराः कुलालकाः ॥ ४ ॥
कुंदकारास्तूलकाराः पटकारास्तथैव च । टंककाराश्चित्रकाराः पत्रकाराश्च नापिताः ॥ ५ ॥
पट्टकारा रेतिकाराः पर्णकाराश्च शिल्पिनः । लाक्षाकारा मालिनश्च रजकास्तैलिनस्तथा ॥ ६ ॥
ताम्बूलशोधिनस्तत्र चित्रपाषाणकर्मकाः । अन्नभर्जकरास्तत्र काचभेदिन एव हि ॥ ७ ॥
मुक्तादीनां च रत्नानां सूक्ष्माणां रत्नवेधिनः । एते कारुजनाः सर्वे दृश्यंते राजपद्धतौ ॥ ८ ॥
क्वचिद्भानुमतीर्लीला ऐंद्रजालविधायकाः । क्वचिन्नटाश्च नृत्यंते युद्धं भल्लूकयोः क्वचित् ॥ ९ ॥
क्वचित्तु वानरी लीला डमरूवाद्यसंयुताः । गायंति कुत्रचिद्राजन्सूतमागधवंदिनः ॥ १० ॥
वारांगनाश्च नृत्यंति भूषैर्द्वादशभिर्युताः । दिव्यैः षोडशशृंगारैर्हरंत्यप्सरसां मनः ॥ ११ ॥
बन्धूनामपि सेनानां महातंका गजाह्वये । चालनं संभ्रमोपेतं विह्वलैश्च जनैरभूत् ॥ १२ ॥
विदुद्रुवुर्जनाः सर्वे गृहेष्वापातितार्गलाः । कोलाहलो महानासीद्गेहे गेहे जने जने ॥ १३ ॥
वीर्यशौर्यबलोपेताः कौरवाश्चक्रवर्तिनः । आसमुद्राः क्षितीशेंद्रा जातास्तेऽप्यतिशंकिताः ॥ १४ ॥
प्रद्युम्नप्रेषितः साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तमः । कौरवेंद्रपुरं प्राप्तो धृतराष्ट्रं ददर्श ह ॥ १५ ॥

मदच्युतामस्य नृपस्य दंतिनां कस्तूरिकाकुंकुमगंडशालिनाम् ।
सिंदूरशुंडास्पदकर्णताडितैः षडंघ्रिभिर्मंडितमंदिराजिरम् ॥ १६ ॥
यं भीष्मकर्णगुरुशल्यकृपैश्च भूरिबाह्लीकधौम्यशकुनैः सह संजयेन ।
दुःशासनेन विदुरेण च लक्ष्मणेन दुर्योधनेन च कृपीसुतसोमदत्तैः ॥ १७ ॥

किया। प्रद्युम्न नन्दके गोकुलमें कई दिन रहे ॥ ५० ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे 'प्रियंवदा'-भाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! इसके बाद महाबाहु प्रद्युम्न अपनी विशाल सेनाके साथ नगाड़े बजवाते हुए कुरुदेश गये ॥ १ ॥ वहाँ बीस योजनके विस्तारमें उनकी सेनाका पड़ाव पड़ा। उसके दस योजन विस्तृत क्षेत्रमें झण्डे गड़े थे ॥ २ ॥ पाँच योजनके क्षेत्रमें बाजार लगी थी, जिसमें बड़ी लम्बी-चौड़ी सड़क बनी थी। सड़कके दोनों ओर बड़े-बड़े साहूकारोंकी दूकानें लगी थीं ॥ ३ ॥ वहाँ जौहरियों और बजाजोंकी भी दूकानें थी। शीशे बनानेवाले, दर्जी, रंगरेज, कुम्हार, कुन्दकार, धुनिया, बुनकर, टंककार, चित्रकार, पत्रकार, नाई, पटहारे, बारी, संगतराश, लखेरे, माली, धोबी, तेली, तमोली, चितेरे, कसेरे, भड़भूँजे, शीशा काटनेवाले, मोतियों और रत्नोंको छेदनेवाले आदि सभी कारीगर वहाँ विद्यमान थे ॥ ४–८ ॥ वहाँपर कहीं भानुमती तथा इंद्रजालके खेल हो रहे थे, कहीं नर्तक नाच रहे थे और कहीं भालुओंका युद्ध हो रहा था ॥ ९ ॥ कहीं डमरूके तालपर बन्दरोंका नाच हो रहा था और कहीं सूत-मागध-बंदीजन गा रहे थे ॥ १० ॥ कहीं बारह प्रकारके आभूषण धारण करके वेश्यायें नाच रही थीं। वे अपने सोलह शृंगारोंसे अप्सराओंका भी मन मोह रही थीं ॥ ११ ॥ तभी हस्तिनापुरमें कौरव पाण्डवोंकी सेनाओंके टकरावके कारण आतंक छा गया। जिससे विकल होकर नागरिक घबरा उठे ॥ १२ ॥ कितने ही लोग भाग-भागकर घरमें घुस गये और भीतरसे साँकल चढ़ा ली। इस प्रकार घर-घर और जन-जनमें बड़ा कोलाहल मच गया ॥ १३ ॥ जिनमें बल, वीर्य और शूरता थी और जो समुद्रपर्यन्त भूभागके चक्रवर्ती राजा थे, वे कौरव भी दहल उठे ॥ १४ ॥ तब साक्षात् प्रद्युम्नके भेजनेपर बुद्धिमानोंके अग्रणी उद्धव हस्तिनापुरमें राजा धृतराष्ट्रसे मिलने चले ॥ १५ ॥ मदवाही, कस्तूरी केसर और सिन्दूरसे मंडित गंडस्थलवाले हाथियोंके सिन्दूरसे रंजित सूँड़पर बैठे और उनके कानोंसे ताडित भ्रमरोंसे भरे महलके,

श्रीयज्ञकेतुसहितैः सहितं नृपेंद्रं लीलातपत्रसितचामरहेमपीठैः ।
संसेवितं परिसमेत्य गजाह्वयेशं नत्वोद्धवः प्रणत आह कृतांजलिस्तम् ॥१८॥

उद्धव उवाच

प्रद्युम्नेन प्रकथितं शृणु राजेंद्रसत्तम । उग्रसेनः क्षितीशेंद्रो यादवेंद्रो महाबलः ॥१९॥
विजित्य नृपतीन्सर्वान् राजसूयं करिष्यति । प्रेषितस्तेन सेनाभिः प्रद्युम्नो रुक्मिणीसुतः ॥२०॥
जेतुं महोद्भटान् वीराञ्जंबूद्वीपस्थितान्नृपान् । चैद्यशाल्वजरासंधदंतवक्रादिभूपतीन् ॥२१॥
विजित्य चागतः कार्ष्णिस्तस्मै यच्छ बलिं बहु । उपायनं च दातव्यं बंधूनामैक्यकाम्यया ॥२२॥
माभूत्कुरूणां वृष्णीनां कलिर्नो चेद्भविष्यति । तेनोदितं मे कथितं तत्क्षमस्व नृपेश्वर ॥२३॥
दूतस्य हीनदोषस्य त्वयोक्तं यद्वदामि तत् ।

श्रीनारद उवाच

तच्छ्रुत्वा कौरवाः सर्वे राजन्संजातमन्यवः । वीर्य्यशौर्य्यमदोन्नद्धा ऊचुः प्रस्फुरिताधराः ॥२४॥

कौरवा ऊचुः

दुरत्यया कालगतिरहो चित्रमिदं जगत् । सिंहोपरि प्रधावंति शृगाला दुर्बला वने ॥२५॥
अस्मत्सकाशात्संबंधा अस्मद्दत्तनृपासनाः । दातॄणां प्रतिकूलास्तु दातॄणां फणिनो यथा ॥२६॥
वृष्णयो भीरवः सर्वे युधि विक्लवचेतसः । तथैव शासनं कर्तुं प्रवृत्ता हि गतह्रियः ॥२७॥
उग्रसेनोऽल्पवीर्यश्च जंबूद्वीपस्थितान्नृपान् । विजित्याहो बलिं नीत्वा राजसूयं करिष्यति ॥२८॥
यत्र भीष्मश्च कर्णश्च द्रोणो दुर्योधनादयः । तत्र त्वं प्रेषितो मंत्री प्रद्युम्नेन कुबुद्धिना ॥२९॥
तस्माद्यात पुरीमध्ये यूयं वै जीवनेच्छया । नचेद्यास्यथ वः सर्वान्नयामो यमसादनम् ॥३०॥

आँगनमें बैठे धृतराष्ट्रके पास गये ॥ १६ ॥ भीष्म, कर्ण, द्रोण, शल्य, कृपाचार्य, भूरिश्रवा, वाह्लीक, धौम्य ऋषि, शकुनी, संजय, दुःशासन, विदुर, लक्ष्मण, दुर्योधन, अश्वत्थामा और यज्ञकेतु उस समय उनके पास बैठे थे। धृतराष्ट्रके ऊपर छत्र लगा था और चमर चल रहे थे। सोनेके सिंहासनपर विराजमान हस्तिनापुरके स्वामी धृतराष्ट्रको प्रणाम करके हाथ जोड़कर उद्धव बोले ॥१७॥१८॥ उद्धवजीने कहा—हे राजेन्द्रसत्तम! प्रद्युम्नने जो कुछ कहा है, उसे सुनिए। महाराज उग्रसेन जो यादवेन्द्र हैं और राजेन्द्र भी हैं ॥ १९ ॥ वे सारी पृथिवीके राजाओंको जीतकर राजसूय यज्ञ करना चाहते हैं। एतदर्थ उन्होंने विशाल सेनाके साथ प्रद्युम्नको भेजा है ॥ २० ॥ जम्बूद्वीपके उद्भट वीर शिशुपाल, शाल्व, जरासन्ध और दन्तवक्र आदि बड़े-बड़े राजाओंको जीतकर प्रद्युम्न यहाँ आये हैं। सो आप उन्हें भेंट प्रदान करिए। आपके ऐसा करनेसे भाइयोंकी एकता बनी रहेगी ॥ २१ ॥ २२ ॥ यदि आप भेंट न देंगे तो कौरवों और यादवोंमें युद्ध होगा। हे नृपेश्वर! यह मैंने प्रद्युम्नकी कही हुई बात आपसे कही है। सो क्षमाकरिएगा ॥ २३ ॥ नारदजी बोले—हे राजन्! उद्धवकी बात सुनकर सभी कौरव क्रोधसे तमतमा उठे। शौर्य, वीर्य और मदसे उन्मत्त होकर होंठ कँपाते हुए वे बोले ॥ २४ ॥ कौरवोंने कहा—अहो! कालकी गति बड़ी दुरत्यय होती है। यह जगत् भी बड़े आश्चर्यकी वस्तु है। तभी तो दुर्बल सियार भी सिंहपर धावा बोल रहे हैं ॥ २५ ॥ हमलोगोंसे सम्बन्ध होनेके नाते हमारा ही दिया हुआ राज्यसिंहासन जिनको मिला है, वे ही अब हमारे प्रतिकूल हो गये। इनको देना तो साँपको दूध पिलानेके समान घातक सिद्ध हुआ ॥ २६ ॥ यादव बड़े डरपोक हैं और युद्धसे घबरा जाते हैं, फिर भी वे निर्लज्ज हमपर शासन करना चाहते हैं ॥ २७ ॥ अहो! अल्पवीर्य उग्रसेन जम्बूद्वीपके राजाओंको जीत तथा उनसे भेंट लेकर राजसूय यज्ञ करना चाहता है ॥ २८ ॥ जहाँ भीष्म, कर्ण, द्रोणाचार्य और दुर्योधन विद्यमान हैं, वहाँ कुबुद्धि प्रद्युम्नने तुम्हें मंत्री बनाकर भेजा है? ॥ २९ ॥ सो यदि जीनेकी इच्छा हो तो तुरन्त द्वारका चले जाओ। यदि न जाओगे तो हमलोग तुम्हें यमपुरी भेज देंगे ॥ ३० ॥ श्रीनारदजी

श्रीनारद उवाच

इत्थं श्रीकृष्णविमुखैः कौरवैः परिभाषितम् । श्रुत्वोद्धवः शंबरारिमेत्य सर्वमुवाच ह ॥३१॥
कौरवोक्तं वचः श्रुत्वा प्रद्युम्नो धन्विनां वरः । प्रतिशार्ङ्गं संगृहीत्वा रोषात्प्रस्फुरिताधरः ॥३२॥

प्रद्युम्न उवाच

कौरवान्घातयिष्यामि बंधूनपि मदोद्धतान् । बाणैस्तीक्ष्णैर्यथा योगी नियमैर्देहजा रुजः ॥३३॥
यदूनां सैन्यचक्रेषु बलिं यो न प्रदास्यति । कौरवेभ्योऽपि स पुमान् पितुर्मातुर्न चौरसः ॥३४॥

श्रीनारद उवाच

तदैव यादवाः सर्वे भोजवृष्ण्यंधकादयः । गजाह्वयं ययुः सैन्यैः राजन्संजातमन्यवः ॥३५॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे कौरवोपाख्यानं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

अथ विंशोऽध्यायः

(प्रद्युम्न और कौरवोंका युद्ध)

श्रीनारद उवाच

तदैव कौरवाः सर्वे निर्गता दीप्तमन्यवः । स्वैः स्वैर्बलैः समायुक्ता योद्धुं प्रद्युम्नसंमुखे ॥ १ ॥
विजयध्वजसंयुक्ता रत्नकंबलमंडिताः । गजाः षष्टिसहस्राणि निर्ययुः स्वर्णशृंखलाः ॥ २ ॥
प्रलयाब्धिमहावर्तसंघर्षध्वनिकारिणाम् । गजाः षष्टिसहस्राणि दुंदुभीनां विनिर्गताः ॥ ३ ॥
गजा गावो वृहद्धल्ला लोहकंचुकमंडिताः । शिरस्त्रङ्मौलिसंयुक्ता द्विलक्षाणि विनिर्ययुः ॥ ४ ॥
हेमकंकणकेयूरकिरीटवरकुंडलाः । गजस्थाश्च द्विलक्षाणि निर्ययुः स्वर्णकंचुकाः ॥ ५ ॥
पीतकंचुकसंयुक्तास्तिर्यगुष्णीषशालिनः । गजस्थाश्च द्विलक्षाणि संग्रामे लब्धकीर्तयः ॥ ६ ॥
रक्तांबरधराः केचिद्रक्तभूषणभूषिताः । रक्तकंबलसंयुक्तैर्गजैरुच्चैर्विनिर्गताः ॥ ७ ॥

बोले—हे राजन् ! श्रीकृष्णसे विमुख कौरवोंकी बात सुनकर उद्धव लौट आये और उन्होंने प्रद्युम्नको उनकी कही बात कह सुनायी ॥ ३१ ॥ कौरवोंके कहे वाक्य सुनकर क्रोधसे धनुर्धरोंमें प्रमुख प्रद्युम्नके होंठ फड़कने लगे और शार्ङ्ग धनुष लेकर बोले ॥ ३२ ॥ प्रद्युम्नने कहा—अपने बन्धु होनेपर भी ये कौरव कितने मतवाले हो गये हैं । सो मैं इन कौरवोंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे मारूँगा, जैसे योगी नियमोंसे देहके रोगोंको मारते हैं ॥ ३३ ॥ यादवोंकी सेनाका जो सैनिक कौरवोंसे भेंट लेनेकी चेष्टा नहीं करेगा, वह अपने माता-पिताका सगा पुत्र न माना जायगा ॥ ३४ ॥ नारदजी बोले—हे राजन् ! प्रद्युम्नकी बात सुनकर भोज, वृष्णि तथा अंधकवंशी सभी यादव बड़े क्रोधके साथ अपनी-अपनी सेना लेकर हस्तिनापुरीको चल पड़े ॥ ३५ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! उसी समय क्रोधसे बावले होकर कौरव अपनी सेना लेकर युद्धके लिए प्रद्युम्नका सामना करने चले ॥ १ ॥ सर्वप्रथम रत्नोंके गहनोंसे सुसज्जित, कश्मीरी कम्बलकी झूल ओढ़े, विजयध्वज फहराते और पाँवोंमें सोनेकी साँकल खनकाते हुए साठ हजार हाथी आये ॥२॥ प्रलयकालीन समुद्रकी लहरोंके संघर्षसे उत्पन्न होनेवाले गर्जनके समान जिनकी पीठपर बँधे नगाड़ोंका गर्जन हो रहा था, ऐसे हाथी भी आये ॥ ३ ॥ हाथी, बैल तथा बड़े-बड़े दो लाख मल्ल लौहकंचुक धारण करके आये ॥ ४ ॥ सुनहले कड़े, बाजूबन्द, किरीट-कुण्डल तथा सुनहले कामदार कुरते पहने और हाथियोंपर सवार दो लाख वीर निकले ॥ ५ ॥ पीले कुरते पहने, टेढ़े साफे बाँधे बड़े-बड़े नामी दो लाख वीर हाथियोंपर चढ़कर चले ॥ ६ ॥ कितने ही लाल कपड़े पहने और लाल मणियोंके गहने धारण किये हुए वीर लाल बनातकी झूलवाले

कृष्णांबरधरा नागैर्हरिद्वस्त्रसमावृताः । केचिच्छुक्लांबराः केचिन्निर्ययुः पाटलांबराः ॥ ८ ॥
रथैश्च देवधिष्ण्याभैर्मृगेंद्रध्वजशोभितैः । पतत्पताकैरत्युच्चैर्निर्ययुः कोटिशो नृपाः ॥ ९ ॥
आंगैर्वांगैः सैंधवैश्च चंचलैस्तुरगैर्नृपाः । मनोजवैः स्वर्णभूषैर्निर्ययुः शस्त्रसंवृताः ॥१०॥
समंतान्निर्ययुर्वीरा लोहकंचुकमंडिताः । विद्याधरसमा राजन्संकुला युद्धशालिनः ॥११॥
जगुर्यशः कौरवाणां सूतमागधवंदिनः । भेरीमृदंगैः पटहैरानकैर्युद्धनिःस्वनैः ॥१२॥
मृगेन्द्रध्वजसंयुक्तैः शुक्लवाहनियोजितैः । व्यजनैर्वज्रदण्डैश्च चामरांदोलराजितैः ॥१३॥
चतुर्योजनमात्रेण चंद्रमण्डलचारुणा । छत्रेण मण्डिते राजभिर्दत्तेन मनोहरे ॥१४॥
दुर्योधनो बभौ सैन्ये महति स्यंदने स्थितः । तथाऽन्ये धार्तराष्ट्राश्च स्यंदने स्यंदने स्थिताः ॥१५॥
चतुर्योजनमात्रैश्च छत्रैर्मुक्तावलिंबिभिः । सुरथेनातिभीष्मेण कृपेण गुरुणा सह ॥१६॥
वाह्लीककर्णशल्यैश्च सोमदत्तेन धीमता । अश्वत्थाम्ना च धौम्येन लक्ष्मणेन धनुष्मता ॥१७॥
शकुनिना च वीरेण तथा दुःशासनेन च । संजयेन तथा साक्षाद्भूरिणा यज्ञकेतुना ॥१८॥
सुयोधनो नृपो रेजे यथा शक्रो मरुद्गणैः । इन्द्रप्रस्थात्पांडुपुत्रैः प्रेषितं पृतनाद्वयम् ॥१९॥
तदैव चागतं राजन् कौरवाणां सहायकृत् । अक्षौहिणीभिः षोडशभिः कुरूणां चलतां तदा २०॥
चचाल भूर्दिशो नेदू रजोव्याप्तं नभोऽभवत् । तारकेव बभौ सूर्यो गजाश्वरथरेणुभिः ॥२१॥
अंधकारोऽभवद्भूमौ देवाः सर्वेऽपि शंकिताः । यत्र तत्र गजानां च नोदनाभिश्च भूरुहाः ॥२२॥
निपेतुस्तुरगैर्वीरैः क्षणं भूखण्डमण्डलम् । सेना कुरूणां वृष्णीनां युयुधुश्च परस्परम् ॥२३॥
तीक्ष्णैः शस्त्रैर्यथा सप्त समुद्रास्तरलैर्लये । हया हयैरिभाश्चेभै रथिनो रथिभिः सह ॥२४॥
श्यनैः श्येना इव क्रव्ये पत्तयः पत्तिभिर्मृधे । महामात्यैर्महामात्याः सूताः सूतैर्नृपैर्नृपाः ॥२५॥

बड़े ऊँचे-ऊँचे हाथियोंपर सवार होकर निकले ॥ ७ ॥ कुछ वीर काले कपड़े पहने, कुछ हरे वस्त्र पहने, कुछ सफेद या लाल कपड़े पहनकर चले ॥ ८ ॥ करोड़ों वीर विमान सरीखे तथा सिंहध्वज और बड़ी ऊँची पताकाओंसे अलंकृत रथोंपर बैठकर लड़ने चले ॥ ९ ॥ अंग, वंग तथा सिन्धुदेशीय, मनके सदृश वेगवाले एवं सुनहले साजसे सजे हुए घोड़ोंपर शस्त्र-सज्ज वीर चढ़कर चले ॥ १० ॥ बहुतेरे विद्याधरों जैसे वीर लौहकंचुक धारण करके युद्धके लिए चले ॥ ११ ॥ उस समय सूत, मागध तथा वन्दीजन कौरवोंका यश गाते हुए चले । भेरी, ढोल, मृदंग, नगाड़े आदि जुझाऊ बाजे बज रहे थे ॥ १२ ॥ जिनपर सिंहकी ध्वजा फहरा रही थी, सफेद घोड़े जुते थे और हीरे जड़े दंडोंवाले चमर चल रहे थे ॥ १३ ॥ चार योजन विस्तृत चन्द्रमा जैसे मण्डलवाले राजाओंके द्वारा दिये हुए छत्रसे शोभित विशाल रथमें बैठा हुआ दुर्योधन बहुत शोभित हुआ । इसी प्रकार धृतराष्ट्रके अन्य पुत्र भी अपने-अपने रथोंपर बैठकर चले ॥ १४ ॥ १५ ॥ चार योजन लम्बे-चौड़े तथा मुक्तायुक्त छत्रोंकी छायामें बैठे सुरथ, कृपाचार्य, द्रोण तथा भीष्मके साथ चले ॥ १६ ॥ इसी प्रकार वाह्लीक, कर्ण, शल्य, बुद्धिमान् सोमदत्त, अश्वत्थामा, कर्ण, धौम्य, धनुर्धर लक्ष्मण, शकुनी, दुःशासन, संजय, भूरि, यज्ञकेतु और भूरिश्रवाके साथ दुर्योधन ऐसा शोभित हुआ, जैसे मरुद्गणोंके साथ इन्द्र शोभित होते हैं । उसी समय इन्द्रप्रस्थसे पांडवोंकी भेजी हुई दो पृतना सेना कौरवोंकी सहायता करनेके लिए वहाँ आयी । सब मिलाकर सोलह अक्षौहिणी सेनाको साथ लेकर जब कौरव वीर चले तो पृथिवी हिलने लगा । दसों दिशायें गूँज उठीं । उस समय उड़ी हुई धूलसे सारा आकाश भर गया । हाथियों, घोड़ों और रथोंकी धूलसे सूर्यमण्डल छोटे तारे जैसा दीखने लगा ॥ १७-२१ ॥ धरतीपर अन्धकार छा गया और सब देवता सशंक हो उठे । जहाँ-तहाँ हाथियोंके टक्करसे बहुतेरे वृक्ष धराशायी हो गये । अश्वारोही वीरोंके घोड़ोंका टापसे पृथ्वी खुद गयी । रणभूमिमें पहुँचते ही कौरवों तथा यादवोंकी सेनायें परस्पर लड़ने लगीं ॥ २२ ॥ २३ ॥ जसे प्रलयकालमें सब समुद्र अपनी-अपनी तरंगों द्वारा लड़ते है, वैसे ही घोड़े घोड़ोंसे, रथी रथियोंसे, हाथी हाथियोंसे और पैदल सैनिक पैदलोंसे जूझने लगे ॥ २४ ॥ जैसे मांसके लिए बाज बाजोंसे लड़ते है, उसी प्रकार महावतोंसे

युयुधुः क्रोधसंयुक्ताः सिंहैः सिंहा इवौजसा । खड्गैः कुंतैः शक्तिभिश्च भल्लैः पट्टिशमुद्गरैः ॥२६॥
गदाभिर्मुसलैश्चक्रैस्तोमरैर्भिंदिपालकैः । शतघ्नीभिर्भुशुण्डीभिः कुठारैश्च स्फुरत्प्रभैः ॥२७॥
चिच्छिदुर्वाणपटलैः शिरांसि क्रोधमूर्च्छिताः । बाणांधकारे संजाते प्रद्युम्नो धन्विनां वरः ॥२८॥
दुर्योधनेन युयुधे धनुष्टङ्कारयन्मुहुः । अनिरुद्धश्च भीष्मेण दीप्तिमांश्च कृपेण वै ॥२९॥
भानुर्द्रोणेन सांबस्तु बाह्लीकेन नृपेश्वरः । मधुः कर्णेन चायुध्यद्बृहद्भानुः शलेन वै ॥३०॥
चित्रभानुर्हरेः पुत्रः सोमदत्तेन धीमता । अश्वत्थाम्ना वृकश्चैवारुणो सौम्येन मैथिल ॥३१॥
पुष्करो लक्ष्मणेनाशु दुर्योधनसुतेन वै । वेदबाहुः कृष्णसुतः शकुनेन महामृधे ॥३२॥
दुःशासनेन समरे श्रुतदेवो हरेः सुतः । तथा हि युयुधे युद्धे संजयेन सुनंदनः ॥३३॥
विदुरेण गदः साक्षात्कृतवर्मा च भूरिणा । अक्रूरो युयुधे राजन्नाहवे यज्ञकेतुना ॥३४॥
एवं परस्परं युद्धं बभूव तुमुलं महत् । कार्ष्णिर्विलोकयामास दुर्योधनबलं महत् ॥३५॥
बाणसंघेन वाराहो दंष्ट्रया च यथार्णवम् । बाणसंभिन्नकुम्भानां करिणां प्रपतंति खात् ॥३६॥
मुक्ताफलानि रेजुः कौ रात्रौ तारागणा इव । बाणैः संपातयामास रथिनः सारथीन् रथान् ॥३७॥
महामृधे मैथिलेंद्र वेगैर्वातो यथा तरून् । दुर्योधनस्तदा प्राप्तो धनुष्टङ्कारयन्मुहुः ॥३८॥
प्रद्युम्नं ताडयामास सायकैर्दशभिर्मृधे । तान्प्रचिच्छेद भगवान् प्रद्युम्नो यादवेश्वरः ॥३९॥
दुर्योधनः पुनस्तस्य कवचे सायकान् दश । निचखान स्वर्णपुंखान् भित्वा वर्म तनौ गताः ४०॥
सहस्रैर्बाणपटलैः सहस्राश्वाञ्जघान ह । चिच्छेद बाणशतकैः कोदण्डं सगुणं परम् ॥४१॥
शंबरारेर्महावीरो धृतराष्ट्रसुतो बली । प्रद्युम्नस्तं रथं त्यक्त्वाथान्यमारुह्य सत्वरम् ॥४२॥
कृष्णदत्तं धनुर्नीत्वा सज्जं कृत्वा विधानतः । एकं बाणं समाधाय कर्णांतं तच्चकर्ष ह ॥४३॥

महावत, सारथीसे सारथी और राजाओंसे राजे लड़ने लगे ॥२५॥ जैसे क्रोधमें भरे सिंह सिंहसे लड़ते हैं, उसी प्रकार वे वीर योद्धा तलवारों, वर्छियों, भालों, पट्टिशों और मुद्गरोंसे लड़ने लगे ॥ २६ ॥ कुछ वीर गदाओं, मूसलों, चक्रों, तोमरों (गँड़ासों), भिन्दिपालों (ढेलवासों), शतघ्नियों (वन्दूकों), तोपों, कुठारों तथा अन्यान्य चमकीले शस्त्रास्त्रोंसे लड़ने लगे ॥ २७ ॥ क्रोधसे मूर्छित वीर अपनी वाणवर्षासे शत्रुओंके सिर काट-काटकर गिराने लगे। जब वीरोंकी बाणवर्षासे अन्धकार छा गया, तब धनुर्धरोंमें प्रमुख प्रद्युम्न दुर्योधनसे लड़ने लगे। अनिरुद्ध भीष्मसे और दीप्तिमान् कृपाचार्यसे भिड़ गये ॥ २८ ॥ २९ ॥ भानु द्रोणाचार्यसे, साम्ब वाह्लीकसे, मधु कर्णसे और बृहद्भानु शलसे लड़ने लगे ॥ ३० ॥ श्रीहरिके पुत्र चित्रभानु बुद्धिमान् सोमदत्तसे, वृक अश्वत्थामासे और अरुण सौम्यसे लड़ने लगे ॥ ३१ ॥ पुष्कर दुर्योधनके पुत्र लक्ष्मणसे और श्रीकृष्णका पुत्र वेदवाहु शकुनीसे लड़ने लगा ॥ ३२ ॥ श्रीकृष्णका पुत्र श्रुतदेव दुःशासनसे और सुनन्दन संजयसे लड़ने लगा ॥ ३३ ॥ विदुरसे साक्षात् गद, भूरिसे कृतवर्मा और यज्ञकेतुसे अक्रूर लड़ने लगे ॥ ३४ ॥ इस प्रकार दोनों पक्षकी सेनाओंमें परस्पर घोर युद्ध हुआ। जब प्रद्युम्नने देखा कि दुर्योधनकी सेना बड़ी विशाल है ॥ ३५ ॥ तब जैसे वाराह भगवान्ने प्रलयसमुद्रको अपने दाँतोंसे मथा था, वैसे ही प्रद्युम्न अपने बाणों द्वारा कौरवोंकी सेनाको मथने लगे। उनके बाणोंसे कटे हुए हाथियोंके मस्तक आकाशसे धरतीपर गिरने लगे ॥३६॥ उन हाथियोंके मस्तकसे धरतीपर गिरे हुए मोती तारिकाओंके समान चमकने लगे। वीर प्रद्युम्न अपने बाणोंकी मारसे रथियों, रथों और सारथियोंको वैसे ही धराशायी करने लगे ॥ ३७ ॥ जैसे वायु अपने वेगसे वृक्षोंको धराशायी करता है। उसी समय दुर्योधन वार-वार धनुष टंकारता हुआ वहाँ आया ॥ ३८ ॥ उसने आते ही उस संग्राममें प्रद्युम्नको दस बाण मारे, किन्तु प्रद्युम्नने उन सभी बाणोंको काट दिया ॥ ३९ ॥ तब दुर्योधनने दस बाण प्रद्युम्नके कवचमें मारे और वे सभी बाण कवचको काटकर प्रद्युम्नके शरीरमें घुस गये ॥ ४० ॥ फिर हजार बाणोंसे उसने प्रद्युम्नके हजार घोड़े मार डाले। सौ बाणोंसे दुर्योधनने प्रद्युम्नका धनुष काट दिया। तब प्रद्युम्न वह रथ छोड़कर दूसरे रथपर जा बैठे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ तत्काल उन्होंने श्रीकृष्णका

भुजदण्डस्य वेगेन तद्रथे निचकर्ष ह । गृहीत्वा तद्रथं बाणो भ्रामयित्वा घटीद्वयम् ॥४४॥
आकाशात्पातयामास कमण्डलुमिवार्भकः । पतनेन रथः सद्यश्चूर्णीभूतो बभूव ह ॥४५॥
सप्लुताश्च हयाः सर्वे पञ्चतां प्रापुरग्रतः । अन्यं रथं समास्थाय धार्तराष्ट्रो महाबलः ॥४६॥
प्रद्युम्नं ताडयामास दशभिः सायकैर्मृधे । तैस्ताडितो हरेः पुत्रो मालाहत इव द्विपः ॥४७॥
कृष्णदत्ते च कोदण्डे तथैकं बाणमादधे । बाणस्तं सरथं नीत्वा यावत्प्रागान्महांबरे ॥४८॥
तावद्बाणो द्वितीयोऽपि तं गृहीत्वा ययौ त्वरम् । तावत्तृतीयः संप्राप्तो नीत्वा तं मंदिराजिरे ॥४९॥
धृतराष्ट्रसमीपे च सरथं साश्वसारथिम् । आकाशात्पातयामास पद्मकोशमिवानिलः ॥५०॥
बाणस्तं पातयित्वा तु रणे कार्ष्णि समाययौ ॥५१॥
पतनेन विशीर्णोऽभूदंगार इव तद्रथः । सुयोधनो मूर्च्छितोऽभूदुद्वमन् रुधिरं मुखात् ॥५२॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीविश्वजित्खंडे नारदबहुलाश्वसंवादे कौरवयुद्धवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

अथ एकविंशोऽध्यायः

(श्रीकृष्ण-बलरामका कौरवों और यादवोंमें मेल कराना)

श्रीनारद उवाच

दुर्योधने गते तत्र हाहाकारो महानभूत् । तदा देवव्रतो भीष्मो गांगेयः प्रययौ त्वरम् ॥ १ ॥
यदूनां पश्यतां तेषां धनुष्टङ्कारयन्मुहुः । भस्मीकर्तुं यदुबलं वनं वह्निरिव ज्वलन् ॥ २ ॥
सर्वधर्मभृतां श्रेष्ठो महाभागवतः कविः । वीरयूथाग्रणीर्येन रामोऽपि युधि तोषितः ॥ ३ ॥
शिरस्त्री मुकुटी गौरः सितश्मश्रुः पितामहः । यथा षोडशवर्षीयो युद्धांतं विचरन्बलात् ॥ ४ ॥

दिया धनुष ले तथा विधिसे चढ़ाकर दुर्योधनको एक वाण मारा ॥ ४३ ॥ भुजाओंके वेगसे वह वाण दुर्योधनके रथमें गड़ गया। बादमें उस वाणने रथको दो घड़ी तक आकाशमें घुमाकर धरतीपर डाल दिया। जैसे कोई बालक कमंडलुको गिरा दे। आकाशसे गिरते ही रथ चूर्ण हो गया ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ उसका सारथी तथा घोड़े मर गये। तब महाबली धृतराष्ट्रसुत दुर्योधन दूसरे रथपर जा बैठा ॥ ४६ ॥ रथपर बैठते ही उसने प्रद्युम्नको दस वाण मारे, किन्तु वे वाण उनको ऐसे लगे, जैसे हाथीको कोई मालासे मारे ॥ ४७ ॥ तब प्रद्युम्नने श्रीकृष्णके दिये धनुषपर चढ़ाकर वाण छोड़ा। वह वाण दुर्योधनके रथको लेकर आकाशमें उड़ चला ॥ ४८ ॥ तभी उन्होंने दूसरा वाण छोड़ा। वह उस रथको और भी ऊँचे ले गया। उसके बाद उन्होंने तीसरा वाण मारा, जो उस रथको लेकर दुर्योधनके महलके आँगनमें धृतराष्ट्रके आगे जा गिरा। उस वाणने रथ तथा सारथी समेत दुर्योधनको उसी तरह आकाशसे धरतीपर पटका, जैसे वायु कमलके फूलको गिरा दे ॥ ४९ ॥ ॥ ५० ॥ इस प्रकार दुर्योधनको महलमें गिराकर वह वाण फिर प्रद्युम्नके पास लौट आया ॥ ५१ ॥ आकाशसे गिरनेपर वह रथ वैसे ही चूर्ण हो गया, जैसे ऊँचाईसे गिरनेपर आगका अंगारा बिखर जाता है। इस तरह गिरकर दुर्योधन मुखसे रुधिर वमन करता हुआ मूर्छित हो गया ॥ ५२ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! इस प्रकार संग्रामभूमिसे दुर्योधनके चले जानेपर कौरवोंकी सेनामें हाहाकार मच गया। उसी समय गङ्गाजीके तनय भीष्म शीघ्र वहाँ जा पहुँचे ॥ १ ॥ जब कि यादव देख रहे थे, तभी भीष्म बार बार धनुष टंकारते हुए वहाँ पहुँचे। उन्हें देखकर ऐसा लग रहा था कि वे समस्त यादवी सेनाको वैसे ही भस्म कर देंगे, जैसे अग्नि वनको जला डालती है ॥२॥ सभी धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ, महा-भागवत, बड़े ज्ञानी और वीरोंके यूथाग्रणी परशुरामको जिन्होंने प्रसन्न किया था ॥ ३ ॥ वे भीष्म शिरस्त्राण बाँधे हुए थे। उनका गौरवर्ण था और सफेद दाढ़ी-मूछ थी। फिर भी वे सोलह वर्षके नवयुवककी भाँति

खड्गहस्ता भिन्नबाणैः पत्तयोऽपि द्विधाऽभवन् । रथाश्चूर्णीकृता येन हतसूताश्वनायकाः ॥ ६ ॥
अधोमुखा ऊर्ध्वमुखाश्छिन्नपादा नृपात्मजाः । खड्गहस्तधनुर्हस्ताः पतिताश्छिन्नबाहवः ॥ ७ ॥
केचिद्वै छिन्नकवचा निपेतुर्भूमिमण्डले । अश्वैर्वा रैरथैर्नागैः पतितैः स्वर्णभूषितैः ॥ ८ ॥
युद्धमण्डलमारेजे वनं वृक्षैर्हतैर्यथा । शस्त्रदंता बाणकेशा ध्वजवस्त्रा करिस्तना ॥ ९ ॥
बाणैर्निपातयामासानिरुद्धस्य बलं महत् । करिणश्छिन्नशिरसो हयास्ते भिन्नकंधराः ॥ ५ ॥
रथांगकुशला राजन्महामारीव भूर्बभौ । क्षतजस्रावसंभूता रथाश्वनरवाहिनी ॥१०॥
आपगाऽभून्महादुर्गा नरैर्वैतरणी यथा । कूष्माण्डोन्मादवेताला नदन्तो भैरवं स्वनम् ॥११॥
हरमालार्थमागत्य जगृहुर्नृशिरांसि च । रथेनातिपताकेनानिरुद्धो धन्विनां वरः ॥१२॥
स्वबलं पतितं दृष्ट्वा प्रागाद्भीष्मं मृधे महान् । प्रलयाब्धिमहावर्तभीमसंघर्षनादिनीम् ॥१३॥
धनुर्ज्यां तस्य चिच्छेद बाणेनैकेन कार्ष्णिजः । तुण्डया तीक्ष्णया राजन् गरुडः सर्पिणीं यथा १४॥
भीष्मोऽन्यद्धनुरादाय सज्जं कृत्वा तदात्मवान् । सर्वेषां पश्यतां तत्र ब्रह्मास्त्रं संदधे मृधे ॥१५॥
ततः प्रादुष्कृतं तेजः प्रचंडं वीक्ष्य माधवः । स्वबलस्यापि रक्षार्थं ब्रह्मास्त्रं संदधे स्वयम् ॥१६॥
द्वादशादित्यसंकाशे युयुधाते परस्परम् । त्रींल्लोकान्दहती द्वीपेऽनिरुद्धस्ते जहार ह ॥१७॥
गांगेयस्यापि कोदण्डं तडिद्वर्णं यदूत्तमः । चिच्छेद सायकैः सूर्यो नीहारमिव रश्मिभिः॥१८॥
भीष्मो गृहीत्वाऽथ गदां लक्षभारमयीं दृढाम् । प्राहिणोदनिरुद्धाय सिंहनादं तदाऽकरोत् ॥१९॥
गृहीत्वा वामहस्तेन गरुत्मानिव पन्नगीम् । प्रद्युम्नो भगवान्साक्षात्प्राहिणोत्स्वगदां हृदि ॥२०॥

रणांगणमें विचर रहे थे ॥ ४ ॥ तभी भीष्म अपने बाणोंकी मारसे अनिरुद्धकी विशाल सेनाको ध्वस्त करने लगे । मस्तक कटे हाथी और गर्दन कटे घोड़े जमीनपर गिर गये ॥ ५ ॥ हाथमें तलवार लिये हुए पैदल सैनिक दो-दो टुकड़े होकर गिर पड़े । जिनके रथी, सारथी और घोड़े मर चुके थे, ऐसे रथ चूर-चूर हो गये ॥ ६ ॥ ऐसे बहुतेरे राजपुत्र रणभूमिमें गिर पड़े, जिनके मुख ऊपर या नीचेकी ओर थे । उनके हाथ, सिर और पैर कट गये थे । उनके हाथोंमें धनुष तथा तलवार अब भी विद्यमान थी ॥ ७ ॥ कवच कट जानेसे कितने ही वीर भूमिपर गिर गये । उनके अतिरिक्त बहुतेरे स्वर्णभूषित घोड़े, हाथी, रथ और रथी धराशायी हो गये ॥ ८ ॥ उस समय उस युद्धभूमिकी ऐसी शोभा हुई, जैसे गिरे हुए फलवाले वृक्षोंसे वनकी शोभा होती है । शस्त्र जिसके दाँत थे, ध्वजायें जिसका वस्त्र थीं, हाथी जिसके स्तन थे और रथोंके पहिये जिसके कर्णफूल थे, वह युद्धभूमि मूर्तिमती महामारी सरीखी दीख रही थी। देखते-देखते वहाँ रुधिरकी नदी बह निकली और उस नदीमें रथ, घोड़े और मृत मनुष्य बहने लगे ॥ ९ ॥ १० ॥ वह महा भीषण नदी वैतरणी जैसी थी । उसके तटवर्ती कूष्माण्ड, उन्माद, वैताल और भैरव भयंकर ढंगसे गर्जन करने लगे ॥ ११ ॥ उसी समय रुद्रगण रणभूमिमें पहुँचे और शिवजीकी मुण्डमाला बनानेके निमित्त नरमुण्डोंका संग्रह करने लगे । तभी एक ऊँची पताकाओंवाले रथपर बैठकर धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ कृष्णतनय प्रद्युम्न जा पहुँचे ॥ १२ ॥ वहाँ अपनी सेनाको मरकर पड़ी देख वे लपककर भीष्मके समक्ष जा पहुँचे । प्रलयकालीन समुद्रके समान भीषण निनाद करनेवाली भीष्मके धनुषकी प्रत्यंचाको अनिरुद्धने एक ही बाणसे काट दिया । जैसे गरुड अपनी चोंचसे सर्पिणीको काट डालते हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥ तब भीष्मने दूसरा धनुष लिया और उसपर प्रत्यंचा चढ़ाकर सब लोगोंके समक्ष ब्रह्मास्त्र चढ़ाया ॥ १५ ॥ उसके प्रचण्ड तेजको देखकर अनिरुद्धने भी अपनी सेनाके रक्षार्थ ब्रह्मास्त्रका संधान किया ॥ १६ ॥ अब द्वादश सूर्यों जैसे तेजस्वी दोनों ब्रह्मास्त्र आपसमें लड़ने लगे । उस महासंघर्षसे तीनों लोकोंके भस्म हो जानेकी संभावना देखकर अनिरुद्धने दोनों ब्रह्मास्त्रोंको खींच लिया ॥ १७ ॥ तदनन्तर उन्होंने भीष्मके बिजली जैसे तेजस्वी धनुषको अपने बाणोंसे काट डाला, जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे कुहरेको काट देते हैं ॥ १८ ॥ ऐसी स्थितिमें भीष्मने एक लाख भारकी भारी गदा अनिरुद्धपर चलाकर सिंहगर्जन किया ॥ १९ ॥ किन्तु अपने ऊपर आनेके पहले ही अनिरुद्धने बायें हाथसे गदा ऐसे पकड़ ली,

गदाप्रहारव्यथितो मूर्च्छितः पतितो रथात् । बभौ सूर्यो यथाऽऽकाशाद्गांगेयो मृधमण्डले ॥२१॥
कृपाचार्योऽपि तत्रैवानिरुद्धाय महात्मने । शक्तिं चिक्षेप सहसा रुषा प्रस्फुरिताधरः ॥२२॥
दीप्तिमान्कृष्णपुत्रस्तु पथि चिच्छेद तां नृप । खड्गेन शितधारेण कुवाक्येनेव मित्रताम् ॥२३॥
द्रोणाचार्यो महाबाहुर्भानूपरि रुषान्वितः । चिक्षेप पार्वतं चास्त्रं धनुष्टङ्कारयन्मुहुः ॥२४॥
पतंतः पर्वता व्योम्नश्चूर्णयंतो द्विपद्बलम् । तेषां पातेन राजेन्द्र हाहाकारो महानभूत् ॥२५॥
तदा हरेः सुतो भानुर्वायव्यास्त्रं समादधे । तद्वातेनाद्रयः सर्वे उड्डीता ह्यभवन् रणात् ॥२६॥
बाह्लीकस्तु तदा क्रुद्धो वह्न्यस्त्रं संदधे ततः । भस्मीभूतं बलं जातं वह्निनेव महद्वनम् ॥२७॥
पार्जन्यमाददे तत्र सांबो जांबवतीसुतः । तेन शांतिं गतो वह्निर्ज्ञानिनेव त्वहंकृतिः ॥२८॥
कर्णस्ततो मधुं हित्वा सांबोपरि रुषान्वितः । जघान बाणविंशत्या जगर्ज घनवद्बली ॥२९॥
तद्बाणैः सरथः सांबो बभ्राम घटिकाद्वयम् । क्रोशं पुनः प्रपतितः किंचिद्व्याकुलमानसः ॥३०॥
पुनर्गदां समादाय रथं त्यक्त्वा समेत्य सः । तताड गदया कर्णं सांबो जांबवतीसुतः ॥३१॥
गदाप्रहारव्यथितः पतितो धरणीतले । मूर्च्छां प्राप रणे राजन्कर्णो वीरो महाबलः ॥३२॥
सांबोऽपि स्वधनुर्नीत्वा रथमारुह्य वेगतः । शलं जघान विंशत्या सोमदत्तं च पञ्चभिः ॥३३॥
द्रौणिं च दशभिर्बाणैर्धौम्यं षोडशभिस्तथा । लक्ष्मणं दशभिस्तत्र शकुनिं पञ्चभिस्तथा ॥३४॥
दुःशासनं च विंशत्या विंशत्या संजयं पृथक् । भूरिं बाणशतैः राजन्यज्ञकेतुं शतैः शितैः ॥३५॥
बाणैर्जघान समरे जगर्ज घनवद्बली । दशभिर्दशभिर्नॄनेकैकेन गजान् हयान् ॥३६॥
पञ्चभिः पञ्चभिर्वीरान् बाणैः सांबस्तताड ह । वीक्ष्य जांबवतीसूनोः सांबस्य करलाघवम् ॥३७॥

जैसे गरुड़ सर्पिणीको पकड़ लेते हैं। इस तरह भीष्मकी गदाके प्रहारको व्यर्थ करके अनिरुद्धने भीष्मकी छातीपर अपनी गदा चला दी ॥ २० ॥ इस प्रहारसे आहत होकर भीष्म रथसे नीचे गिर पड़े, जैसे सायंकालके समय सूर्य आकाशसे पश्चिम दिशामें गिरते हैं ॥ २१ ॥ तब रोषसे जिनके होंठ कांप रहे थे, उन कृपाचार्यने महात्मा अनिरुद्धपर शक्ति चला दी ॥ २२ ॥ तेजस्वी श्रीकृष्णसुत अनिरुद्धने तलवारसे रास्तेमें ही उस शक्तिको काट दिया। जैसे कुवाक्योंसे मित्रता कट जाती है ॥ २३ ॥ तब महाबाहु द्रोणाचार्यने कुपित होकर भानुपर पर्वतास्त्र चलाया और अपने धनुषको बार बार टंकारने लगे ॥ २४ ॥ उस अस्त्रका उपयोग होते ही आकाशसे पर्वतोंकी वर्षा होने लगी और वे पर्वत गिर-गिरकर यादवी सेनाको पीसने लगे। इससे बड़ा हाहाकर मचा ॥ २५ ॥ तब श्रीकृष्णके पुत्र भानुने वायव्यास्त्रका प्रयोग किया, जिससे सब पर्वत रणभूमिसे उड़ गये ॥ २६ ॥ तब बाह्लीकने आग्नेयास्त्र चलाया, जिससे इस तरह सेना भस्म होने लगी, जैसे दावाग्निसे बड़ा भारी जंगल भस्म हो जाता है ॥ २७ ॥ तब जाम्बवतीके पुत्र साम्बने पर्जन्यास्त्र चलाया, जिससे आग बुझ गयी। जैसे ज्ञान प्राप्त होते ही अहंकार नष्ट हो जाता है ॥ २८ ॥ उसी समय कर्ण मधुको त्यागकर साम्बकी ओर बढ़ा और उन्हें बीस बाण मारकर मेघके समान गर्जन करने लगा ॥ २९ ॥ उन बाणोंकी मारसे रथ समेत साम्ब कोस भर दूर जा गिरे। दो घड़ीके लिए उन्हें चक्कर आ गया और वे व्याकुल हो गये ॥ ३० ॥ तब रथ त्यागकर साम्बने गदा सम्हाली और कुछ पास जाकर कर्णपर प्रहार कर दिया ॥ ३१ ॥ उस गदाके प्रहारसे महाबली कर्ण भूमिपर गिर पड़ा और मूर्छित होगया ॥ ३२ ॥ उसी समय साम्ब धनुष लेकर शीघ्र रथपर बैठे। उन्होंने बीस बाण शलको और पाँच बाण सोमदत्तको मारे ॥ ३३ ॥ उसी प्रकार साम्बने दस बाण अश्वत्थामाको, सोलह बाण धौम्यको, दस बाण लक्ष्मणको और पाँच बाण शकुनीको मारे ॥३४॥ बीस बाण दुःशासनको, बीस संजयको, सौ बाण भूरिको और सौ तीक्ष्ण बाण यज्ञकेतुको भी मारा ॥ ३५ ॥ उसी प्रकार साम्बने दस-दस बाण सारथियोंको, एक-एक बाण हाथियों और घोड़ोंको तथा पाँच-पाँच बाण सभी वीरोंको मारा। जाम्ववतीसुत साम्बका यह हस्तलाघव देखकर अपनी तथा

स्वे परे सैनिकाः सर्वे विस्मयं परमं गताः । तदा भीष्मः समुत्थाय गृहीत्वा धनुरुत्तमम् ॥३८॥
चिच्छेद दशभिर्बाणैः साम्बकोदण्डमुत्तमम् । भीष्मो महाबलो वीरो द्रोणाचार्यश्च सायकैः॥३९॥
कर्णः सद्यो यदुबलं जघ्नुर्ज्ञानं यथा गुणाः । दुर्योधनः पुनर्योद्धुं रथमारुह्य मानद ॥४०॥
अक्षौहिणीभिर्दशभिर्नादयन्नाययौ मृधे ॥४१॥

देवौ पुराणौ पुरुषौ तदाविर्बभूवतुर्मैथिल रामकृष्णौ ।
सुपर्णतालध्वजशालियानौ प्रद्योतयन्तौ परितो हि शस्तौ ॥४२॥
तदा जयारावसमाकुलाः सुरा गंधर्वमुख्याश्च जगुर्मनोहरम् ।
सुरानका दुंदुभयो विनेदुः श्रीलाजपुष्पैर्ववृषुः सुरस्त्रियः ॥४३॥
तदैव नेमुर्यदवः परेश्वरौ दुर्योधनाद्याः कुरवस्तु सर्वतः ।
निधाय शस्त्राणि ददुर्बलिं परं सर्वे प्रसन्नाः कृतहस्तसंपुटाः ॥४४॥
प्रद्युम्नमुख्यान् स्वसुतान् मदोद्धतान् निर्भर्त्स्य वाग्भिः परमेश्वरो हरिः
प्रणम्य देवव्रतमुख्यकौरवान् समेत्य दुर्योधनमूचतुः परौ ॥४५॥

श्रीरामकृष्णावूचतुः

राजन् यदेभिः किल बालबुद्धिभिस्तत्क्षम्यतां मा भव दुर्मनाः स्वतः ।
यदा तु किंचित्परुषं प्रकीर्तितं प्रकीर्तितां नौ भवतां नृपेश्वर ॥४६॥
माभूत्कुरूणां भुवि यादवानां कदापि किंचित्कलिरेव राजन् ।
सम्बन्धिनो ज्ञातय एव सर्वे निचौलवस्त्रांतरवत्प्रियार्थाः ॥४७॥

श्रीनारद उवाच

पूजितौ कुरुभिः शश्वद्रामकृष्णौ सुरेश्वरौ । प्रद्युम्नाद्यैः सयदुभी रेजतुर्मैथिलेश्वर ॥४८॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीरामकृष्णागमनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

शत्रुसेनाके वीर आश्चर्य करने लगे। उसी समय भीष्म भी उठ खड़े हुए ॥ ३६–३८ ॥ उठते ही भीष्मने अपने दस बाणोंसे साम्बके उत्तम धनुषको काट डाला। फिर भीष्म, महाबली द्रोणाचार्य और कर्ण ये सब एक साथ यादवोंकी सेनापर प्रहार करने लगे। जैसे सतोगुण-रजोगुण-तमोगुण ज्ञानको मारते हैं। हे मानद! उसी समय दुर्योधन भी रथपर चढ़कर फिर रणभूमिमें आ पहुँचा ॥ ३९ ॥ ४० ॥ उसके साथ दस अक्षौहिणी सेना थी और वह बार बार गर्जन कर रहा था ॥ ४१ ॥ हे मैथिल! उस समय सहसा श्रीकृष्ण और बलदेव ये दोनों पुराणपुरुष वहाँ प्रकट हो गये। गरुड़ तथा तालकी ध्वजा जिसपर फहरा रही थी, उस रथपर वे बैठे थे और उनके आनेपर चारों ओर प्रकाश फैल गया ॥४२॥ उनके आते ही चारों ओर जयजयकार होने लगा। देवता फूल बरसाने लगे, मुख्य-मुख्य गन्धर्व मनोहर गायन गाने लगे, देवताओंकी स्त्रियाँ उनपर फूल तथा धानका लावा बरसाने लगीं और देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं ॥ ४३ ॥ परमेश्वर श्रीकृष्ण और बलदेवको समक्ष देखकर सभी यादव और दुर्योधन आदि कौरव उन्हें प्रणाम करने लगे। सभी लोगोंने अपने-अपने शस्त्रास्त्र जमीनपर रख दिया और प्रसन्नतापूर्वक हाथ जोड़कर खड़े हो गये ॥ ४४ ॥ तब प्रद्युम्न आदि अपने मदोद्धत पुत्रोंकी भर्त्सना करके भीष्म आदि वृद्ध कौरवोंको प्रणाम करके श्रीकृष्ण-बलराम दुर्योधनसे बोले ॥ ४५ ॥ श्रीकृष्ण-बलरामने कहा—हे राजन्! इन बालबुद्धि बालकोंने जो अनुचित काम किया हो, उसे क्षमा कर दीजिए। आप खिन्न न हों। हे नृपेश्वर! इन्होंने आपके प्रति जो कठोर वचन कहे हों, वैसे ही वचन आप हम दोनोंको कह लीजिए ॥ ४६ ॥ हे भूपते! ऐसा कुछ किया जाय कि जिससे कौरवों और यादवोंमें कभी कुछ भी कलह न हो। क्योंकि हम लोग सम्बन्धी हैं और हमारा-आपका

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

(प्रद्युम्नकी इन्द्रप्रस्थ तथा त्रिगर्त आदि देशोंके राजाओंपर विजय)

श्रीनारद उवाच

दुर्योधनं शांतयित्वा सानुजैः कुरुभिः सह । जग्मतुः पांडवान्द्रष्टुमिंद्रप्रस्थं यदूत्तमौ ॥ १ ॥
इंद्रप्रस्थात्ततो राजाऽजातशत्रुर्युधिष्ठिरः । भ्रातृभिः स्वजनैः सार्द्धं नेतुं कृष्णं समाययौ ॥ २ ॥
शंखदुंदुभिनादेन ब्रह्मघोषेण वेणुभिः । पुष्पवर्षं प्रकुर्वद्भिरिंद्रप्रस्थनिवासिभिः ॥
रामकृष्णौ परिष्वज्य दोर्भ्यां राजा युधिष्ठिरः ॥ ३ ॥
परमां निर्वृतिं लेभे योगीवानंदसंप्लुतः । प्रद्युम्नाद्या हरिसुताः प्रणेमुः श्रीयुधिष्ठिरम् ॥ ४ ॥
युधिष्ठिरोऽनुजग्राह कराभ्यां तान्कृताशिषः । अर्जुनं भीमसेनं च परिरभ्य हरिः स्वयम् ॥ ५ ॥
पप्रच्छ कुशलं तेषां यमाभ्यां चाभिवंदितः । परिपूर्णतमौ साक्षाच्छ्रीकृष्णौ च स्वयं हरिः ॥ ६ ॥
असंख्यब्रह्मांडपती हरिदासेन पूजितौ । प्रस्थाप्य यदुमुख्यांश्च प्रद्युम्नादीन् ससैनिकान्॥ ७ ॥
समग्रां जगतीं जेतुं चाज्ञां दत्त्वा विधानतः । मिलित्वा सानुजं धर्मं सर्वेशौ भक्तवत्सलौ ॥ ८ ॥
द्वारकां जग्मतू राजन् गौरश्यामौ मनोहरौ । इत्थं श्रीकृष्णचरितं मया ते कथितं नृप ॥ ९ ॥
चतुष्पदार्थदं नृणां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।

बहुलाश्व उवाच

कुशलस्थलीं गते कृष्णे सबले पुरुषोत्तमे ॥१०॥
ततश्चकार किं साक्षात्प्रद्युम्नो भगवान्हरिः । अद्भुतं तस्य चरितं श्रवणीयं मनोहरम् ॥११॥
मुक्तानामपि भक्तानां जिज्ञासूनां पुनः किमु । अर्थार्थिनामर्थदं सदार्तानामर्तिनाशनम् ॥१२॥

चोली-दामनका साथ है ॥ ४७ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे मैथिल ! उनके ऐसा कहनेपर कौरवोंने श्रीकृष्ण और बलरामकी बार-बार पूजा की । प्रद्युम्न आदि यादवोंसे श्रीकृष्ण-बलरामकी अनुपम शोभा हुई ॥ ४८ ॥
इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीयामेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! इस प्रकार दुर्योधनको शान्त करके श्रीकृष्ण और बलराम छोटे भाइयों तथा कौरवोंको साथ लेकर पाण्डवोंसे मिलनेके लिए इन्द्रप्रस्थ गये ॥ १ ॥ उधर जब युधिष्ठिरने श्रीकृष्णके आगमनकी खबर सुनी तो अपने भ्राताओं तथा स्वजनोंको साथ लेकर उनकी अगवानी करने आये ॥ २ ॥ उस समय शंख और नगाड़ेकी ध्वनि हो रही थी, ब्राह्मण वेदघोष कर रहे थे, वंशी बज रही थी और सारे इन्द्रप्रस्थनिवासी उनपर फूल बरसा रहे थे । तभी राजा युधिष्ठिर दोनों भुजाओंमें भरकर दोनोंसे मिले ॥ ३ ॥ उनसे मिलकर युधिष्ठिरको योगियोंकी तरह परम आनन्द प्राप्त हुआ । श्रीकृष्णके प्रद्युम्न आदि पुत्रोंने युधिष्ठिरको प्रणाम किया ॥४॥ उनको आशीर्वाद देकर युधिष्ठिरने उन्हें हृदयसे लगा लिया । तदनन्तर श्रीकृष्ण अर्जुन और भीमसेनसे गले लगकर मिले ॥ ५ ॥ बादमें उनसे कुशलप्रश्न किया । उसके बाद परिपूर्णतम परमेश्वर श्रीकृष्ण और बलदेवको नकुल-सहदेवने प्रणाम किया ॥ ६ ॥ इस प्रकार भगवद्भक्तोंसे पूजित असंख्यब्रह्मांडपति श्रीकृष्ण तथा बलदेव सैनिकों समेत प्रद्युम्न आदि यादवोंको समस्त पृथिवी जीतनेका विधिवत् आदेश देकर लघुभ्राताओं समेत युधिष्ठिरसे फिर मिले ॥ ७ ॥ ८ ॥ बादमें मनोहर गौर और श्याम वपुधारी दोनों भाई द्वारका चल पड़े । हे राजन् ! इस प्रकार मैंने आपको श्रीकृष्णका चरित्र सुनाया ॥ ९ ॥ यह अपने श्रोताको धर्म-अर्थ आदि चारों पदार्थ प्रदान करता है । अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ? राजा बहुलाश्व बोले—हे महामुने ! बलदेवके साथ पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण जब द्वारका चले गये ॥ १० ॥ तब साक्षात् भगवान् प्रद्युम्नने क्या किया ? उनका मनोहर चरित्र सुनने योग्य है ॥ ११ ॥ जब उनका चरित्र मुक्त जनोंको भी सभी पदार्थ प्रदान करता है, तब जिज्ञासु भक्तोंको उन पदार्थोंकी प्राप्ति हो तो

चतुर्विधानां जीवानां सर्वेषां पापनाशनम् । कथं दिग्विजयं कृत्वा दिग्जयार्थी हरेः सुतः ॥१३॥
आजगाम पुनः सैन्यैस्तन्मे वद तत्त्वतः । देवर्षे त्वं ब्रह्मसुतो भगवान्सर्वदर्शनः ॥
श्रीकृष्णस्य मनः पूर्वं तस्मै ते हरये नमः ॥१४॥

श्रीनारद उवाच

साधु पृष्टं त्वया राजन्धन्यस्त्वं तत्प्रभाववित् । श्रीकृष्णचरितं श्रोतुं पात्रं त्वमसि भूतले ॥१५॥
कृष्णे यातेऽज्ञातशत्रू रक्षार्थं स्नेहतो नृप । क्रतुस्थः शंकितः कार्ष्णिं प्रायुंक्त सकिरीटिनम्॥१६॥
अथ कार्ष्णिर्यदुश्रेष्ठः फाल्गुनेन समं नृप । विकर्षन्महतीं सेनां त्रिगर्तान्प्रययौ त्वरम् ॥१७॥
त्रिगर्ताधीश्वरो धन्वी सुधर्मा तेन शंकितः । उपायनं ददौ तस्मै प्रद्युम्नाय महात्मने ॥१८॥
विराटेन तथा राज्ञा पूजितो यादवेश्वरः । सरस्वतीं नदीं स्नात्वा कुरुक्षेत्रं ददर्श ह ॥१९॥
पृथूदकं बिंदुसरञ्चितं कूपं सुदर्शनम् । स्नात्वा सरस्वतीं प्राचीं दत्त्वा दानान्यनेकशः ॥२०॥
सारस्वताधिपो राजा कुशांबो न ददौ बलिम् । कौशांबीं नगरीमेत्य दुर्योधनवशानुगः ॥२१॥
चारुदेष्णः सुदेष्णश्च चारुदेहश्च वीर्यवान् । सुचारुश्चारुगुप्तश्च भद्रचारुस्तथाऽपरः ॥२२॥
चारुचंद्रो विचारुश्च चारुश्च दशमस्तथा । रुक्मिणीनंदना ह्येते प्रद्युम्नेन प्रणोदिताः ॥२३॥
सिंधुदेशहयारूढाः सर्वेषां पश्यतां गताः । कौशांबीं नगरीमेत्य रुरुधुः सर्वतस्तदा ॥२४॥
बाणैः प्रासादविसरा ध्वजकुंभादितोलिकाः । चूर्णीभूता निपेतुः कौ लंकाट्टाला यथा मृगैः ॥२५॥
बाणांधकारे च कृते रुक्मिणीनंदनैर्यदा । तदोपायनपाणिः सन्कुशांबो निर्गतः पुरात् ॥२६॥
कृतांजलिः शंबरारिं दृष्ट्वा नत्वा बलिं बहु । जुगोप नगरीं राजा भयार्तो भयविह्वलः ॥२७॥
तत्रैव सौवीरपतिः सुदेव आभीरनाथोऽपि विचित्रनामा ।
चित्रांगदः सिंधुपतिर्महौजाः काश्मीरपो जांगलपः सुमेरुः ॥२८॥

लाक्षेश्वरो धर्मपतिर्विडौजा गांधारमुख्योऽपि सुयोधनस्य ।
वशे स्थितास्तेऽपि भयात्क्लिते दत्त्वा बलिं नेमुरतीव कार्ष्णिम् ॥२९॥
ययौ कार्ष्णिर्महाबाहुः स्वसैन्यपरिवारितः । अर्बुदान्म्लेच्छदेशांश्च जेतुं कल्किरिवोद्भटः ॥३०॥
कालस्यापि सुतश्चंडो यवनेंद्रो महाबलः । कार्ष्णिं समागतं श्रुत्वा संमुखात्कोपपूरितः ॥३१॥
पितृहंतुः सुतं हत्वा यास्याम्यपचितिं पितुः । इत्थं विचार्य्य मनसा म्लेच्छानां दशकोटिभिः ॥३२॥
मदच्युतं प्रोन्नदन्तं गजमारुह्य रक्तदृक् । निर्ययौ संमुखे योद्धुं प्रद्युम्नस्य महात्मनः ॥३३॥
आगतां महतीं सेनां शितबाणप्रवर्षिणीम् । चंडप्रणोदितां दृष्ट्वा प्रद्युम्नो वाक्यमब्रवीत् ॥३४॥

प्रद्युम्न उवाच

सेनां हत्वापि यश्चाण्डं शिरस्त्रसहितं शिरः । आनेष्यते तं स्वबले करिष्यामि ध्वजापतिम् ॥३५॥

श्रीनारद उवाच

एवं कार्ष्णौ वदत्यारात्फाल्गुनो वानरध्वजः । एको विवेश गांडीवी धनुष्टंकारयन्मुहुः ॥३६॥
वीरान् रथान् गजानश्वान्संमुखस्थान्द्विधाऽकरोत् । गांडीवमुक्तैर्विशिखैर्गांडीवी रणदुर्मदः ॥३७॥
केचिच्छिन्नभुजाः पेतुः शक्तिखड्गर्ष्टिपाणयः । भिन्नपादा भिन्ननखाः केचिद्वीराः सकंचुकाः ॥३८॥
दुद्रुवुः करिणो युद्धे भिन्नकक्षाश्च सक्षताः । गतघंटाः श्लथन्नीडाः पातयंतः करैर्गजान् । ३९॥
जिष्णुबाणैर्द्विधाभूतैर्गजैरश्वैः रणांगणम् । बभौ क्षेत्रं शंकुलया कूष्मांडशकलैरिव ॥४०॥
तदैव दुद्रुवुर्म्लेच्छास्त्यक्त्वा स्वं स्वं रणांगणम् । नभोऽर्करश्मिसंभिन्ना नीहारपटला इव ॥४१॥
गजारूढो म्लेच्छपतिः शक्तिं चिक्षेप जिष्णवे । भ्रामयित्वा मैथिलेंद्र सिंहनादमथाकरोत् ॥४२॥

विह्वल होकर वह नगरीको लौट गया । ऐसा करके उसने अपनी नगरी बचा ली ॥ २७ ॥ तभी सौवीर देशका नरेश सुदेव, आभीरदेशका राजा विचित्र, सिन्धुदेशका नरेश चित्रांगद, कश्मीरका राजा महौजा, जांगलदेशका राजा सुमेरु, लक्षद्वीपका नरेश धर्मपति और गान्धारदेशका स्वामी विडौजा, दुर्योधनके वशवर्ती इन सभी राजाओंने भी भयके मारे प्रद्युम्नको भेंट देकर प्रणाम किया ॥ २८ ॥ २९ ॥ कल्किभगवान्के समान उद्भट और आजानुबाहु प्रद्युम्न अपनी सेनाके साथ अर्बुद (अरब) तथा म्लेच्छ देशोंको जीतनेके लिये आगे बढ़े ॥ ३० ॥ महाबली प्रद्युम्नका आगमन सुनकर कालयवनका पुत्र चण्ड मारे क्रोधके तमतमा उठा ॥ ३१ ॥ उसने सोचा कि अपने पिताका वध करनेवाले श्रीकृष्णके पुत्रको यदि मैं मार लूँगा तो पितृऋणसे मुक्त हो जाऊँगा । ऐसा विचार करके उसने दस करोड़ म्लेच्छोंको साथ लिया ॥ ३२ ॥ फिर मद बहाने तथा बड़े-बड़े दाँतोंवाले हाथीपर सवार होकर वह महात्मा प्रद्युम्नसे युद्ध करने गया ॥ ३३ ॥ बड़े ही तीक्ष्ण बाण बरसानेवाली चण्डकी सेनाको आती देखकर प्रद्युम्नने कहा ॥ ३४ ॥ प्रद्युम्न बोले--हे वीरो ! आप लोगोंमेंसे जो वीर सेना समेत चण्डको मार तथा शिरस्त्राणके साथ उसका सिर काटकर यहां लायेगा, उसे मैं सेनापति बना दूंगा ॥ ३५ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! प्रद्युम्न ऐसा कह रहे थे, तभी कपिध्वज अर्जुन अपने धनुषको वारम्बार टंकारते हुए शत्रुसेनामें घुस गये ॥ ३६ ॥ रणदुर्मद गाण्डीवधारी अर्जुनने अपने धनुषके द्वारा छोड़े हुए बाणोंसे सम्मुख आये वीरों, रथों, हाथियों और घोड़ोंको काट-काटकर दो-दो टुकड़े कर दिये ॥३७॥ उनमेंसे कुछ लोगोंके हाथ कट गये और कुछ वीर शक्ति तथा तलवार लिये, कुछ पाँव कटे, कुछ नख कटे, और कुछ वीर कवच पहने मर-मरकर गिर गये ॥ ३८ ॥ उस युद्धमें जो हाथी घायल हो गये, उनके हौदे खिसक गये, घंटे टूट गये और कक्षा टूट गयी । बादमें वे हाथी अपनी सूँड़ोंसे अन्य हाथियोंको पटकते हुए निकल भागे ॥ ३९ ॥ अर्जुनके बाणोंसे दो-दो टुकड़े जिनके हो गये थे, ऐसे हाथी-घोड़े और मनुष्योंसे रणभूमिका क्षेत्र ऐसा शोभित हुआ, जैसे सरौतेसे कटे कोंहड़ेके टुकड़े पड़े हुए हों ॥ ४० ॥ उसी समय सब म्लेच्छ अपना-अपना रणांगण छोड़कर भाग गये । जैसे सूर्यकी किरणोंसे आकाशका कुहरा भाग जाता है ॥ ४१ ॥ उसी समय हाथीपर सवार म्लेच्छराज

विद्युल्लतामिवायांतीं बाणैः कृष्णसखो बली । गांडीवमुक्तै राजेंद्र लीलया शतधाऽच्छिनत् ॥४३॥
यावच्चंडो महाम्लेच्छो धनुर्जग्राह रोषतः । तावच्चिच्छेद गांडीवी बाणेनैकेन लीलया ॥४४॥
द्वितीयं धनुरादाय स चंडश्चंडविक्रमः । प्रलयाब्धिमहावर्तभीमसंघर्षनादिनीम् ॥४५॥

चिच्छेद सिंजनीं जिष्णोर्गरुत्मानिव पन्नगीम् ।
बीभत्सुः स्वमसिं नीत्वा स्फुरंतं चर्मणा सह ॥४६॥

जघान तद्गजं कुंभे शैलमिंद्रो यथा पविः । अग्निदत्तेन खड्गेन भिन्नकुंभो गजो नदन् ॥४७॥
जानुभ्यां धरणीं स्पृष्ट्वा कश्मलं परमं ययौ । चंडः खड्गं गृहीत्वाऽथ प्राहत्य पांडुनंदनम् ॥४८॥
तत्खड्गं चर्मणोत्नीय प्राहिणोत्तं कुरूद्वहः । सशिरस्त्रं शिरस्तस्य देहाच्छिन्नं बभूव ह ॥४९॥
सज्जं कृत्वा धनुर्जिष्णुर्निधाय विशिखे च तत् । आकृष्य पातयामास प्रद्युम्नस्य बले महत् ॥५०॥
तदा दुंदुभिनादोऽभूज्जयारावसमाकुलः । अर्जुनस्योपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे ॥५१॥

तदैव कार्ष्णिः सबलस्य जिष्णुं चकार नाथं विजयध्वजस्य ।
संवीज्यमानं सितचामराद्यैः कपिध्वजं यादववृंदमुख्यैः ॥५२॥

वेगवानर्बुदाधीशः प्रद्युम्नं शरणं गतः । उपायनं ददौ भीरुर्नमस्कृत्य कृतांजलिः ॥५३॥
मौरंगेशो मंदहासो हयानां दशलक्षकम् । दत्त्वा भीरुर्नमश्चक्रे प्रद्युम्नाय महात्मने ॥५४॥

इत्थं खंडं भारताख्यं जित्वा कार्ष्णिर्यदूत्तमः ।
हिमाद्रिं दक्षिणीकृत्य प्रागुदीचीं दिशं ययौ ॥५५॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे बहुदिग्विजयो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

चण्डने शक्ति घुमाकर अर्जुनपर चलायी और सिंहके समान गर्जन करने लगा ॥ ४२ ॥ बिजली जैसी चमकती वह शक्ति आयी, तब श्रीकृष्णके सखा अर्जुनने गाण्डीवके छूटे बाणोंसे अनायास उसके सौ टुकड़े कर डाले ॥ ४३ ॥ जब म्लेच्छराज दूसरा धनुष लेने लगा, तभी अर्जुनने एक ही बाणसे उसका वह धनुष काट डाला ॥ ४४ ॥ प्रचण्ड बलवान् चण्डने जब दूसरा धनुष हाथमें लिया, तब अर्जुनने प्रलयकालीन समुद्र जैसी गर्जना करनेवाली उसके धनुषकी प्रत्यञ्चा काट डाली। जैसे गरुड़ सर्पिणीको काट डालते हैं। तब अर्जुनने अपनी ढाल-तलवार लेकर उसके हाथीके मस्तकपर इस तरह प्रहार किया, जैसे इन्द्र पर्वतपर वज्रप्रहार करते हैं। तभी अग्निकी दी हुई तलवारकी मारसे चण्डके हाथीका मस्तक फट गया, जिससे वह चिग्घाड़ उठा ॥४५-४७॥ इसके बाद वह हाथी घुटनोंके बल बैठकर मूर्छित हो गया। तब चण्डने अपनी तलवारसे अर्जुनपर प्रहार किया ॥ ४८ ॥ किन्तु अर्जुनने उसके प्रहारको ढालपर झेल लिया और अपनी तलवारका प्रहार चण्डपर किया, जिससे शिरस्त्राण समेत उसका सिर कटकर उसके शरीरसे अलग हो गया ॥ ४९ ॥ तदनन्तर अर्जुनने अपना धनुष चढ़ाया। उसपर बाण चढ़ाकर बाणपर चण्डका सिर रखा। फिर बाण समेत चण्डका सिर प्रद्युम्नकी सेनामें फेंक दिया ॥ ५० ॥ उस समय नगाड़े बजने लगे, जय-जयकारका निनाद होने लगा और सभी देवता अर्जुनके ऊपर फूल बरसाने लगे ॥ ५१ ॥ उसी समय श्रीकृष्णसुत प्रद्युम्नने अर्जुनको अपनी सेनाका सेनापति बना दिया। तब प्रमुख यादव अर्जुनपर श्वेत व्यजन और चमर चलाने लगे ॥ ५२ ॥ तदनन्तर अर्बुद देशका नरेश वेगवान् प्रद्युम्नकी शरणमें आया। उसने भयभीत हो हाथ जोड़कर प्रणाम किया और भेंट दी ॥ ५३ ॥ मौरंग देशके नरेश मंदहासने दस लाख घोड़े भेंट देकर भयभीत भावसे प्रद्युम्नको नमस्कार किया ॥ ५४ ॥ इस प्रकार भरतखंडको जीतकर यदुश्रेष्ठ प्रद्युम्न हिमालयकी परिक्रमा करते हुए ईशान दिशाको चल पड़े ॥ ५५ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

विद्युल्लतामिवायांतीं बाणैः कृष्णसखो बली । गांडीवमुक्तैः राजेंद्र लीलया शतधाऽच्छिनत् ॥४३॥
यावच्चंडो महाम्लेच्छो धनुर्जग्राह रोपतः । तावच्चिच्छेद गांडीवी बाणेनैकेन लीलया ॥४४॥
द्वितीयं धनुरादाय स चंडश्चंडविक्रमः । प्रलयाब्धिमहावर्तभीमसंघर्षनादिनीम् ॥४५॥
चिच्छेद सिंजनीं जिष्णोर्गरुत्मानिव पन्नगीम् ।
बीभत्सुः स्वमसिं नीत्वा स्फुरंतं चर्मणा सह ॥४६॥
जघान तद्गजं कुंभे शैलमिंद्रो यथा पविः । अग्निदत्तेन खड्गेन भिन्नकुंभो गजो नदन् ॥४७॥
जानुभ्यां धरणीं स्पृष्ट्वा कश्मलं परमं ययौ । चंडः खड्गं गृहीत्वाऽथ प्राहत्य पांडुनंदनम् ॥४८॥
तत्खड्गं चर्मणोन्नीय प्राहिणोत्तं कुरूद्वहः । सशिरस्त्रं शिरस्तस्य देहाच्छिन्नं बभूव ह ॥४९॥
सज्जं कृत्वा धनुर्जिष्णुर्निधाय विशिखे च तत् । आकृष्य पातयामास प्रद्युम्नस्य बले महत् ॥५०॥
तदा दुंदुभिनादोऽभूज्जयारावसमाकुलः । अर्जुनस्योपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे ॥५१॥
तदैव कार्ष्णिः सबलस्य जिष्णुं चकार नाथं विजयध्वजस्य ।
संवीज्यमानं सितचामराद्यैः कपिध्वजं यादववृंदमुख्यैः ॥५२॥
वेगवानर्बुदाधीशः प्रद्युम्नं शरणं गतः । उपायनं ददौ भीरुर्नमस्कृत्य कृतांजलिः ॥५३॥
मौरंगेशो मंदहासो हयानां दशलक्षकम् । दत्त्वा भीरुर्नमश्चक्रे प्रद्युम्नाय महात्मने ॥५४॥
इत्थं खंडं भारताख्यं जित्वा कार्ष्णिर्यदूत्तमः ।
हिमाद्रिं दक्षिणीकृत्य प्रागुदीचीं दिशं ययौ ॥५५॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे बहुदिग्विजयो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

चण्डने शक्ति घुमाकर अर्जुनपर चलायी और सिंहके समान गर्जन करने लगा ॥ ४२ ॥ बिजली जैसी चमकती वह शक्ति आयी, तब श्रीकृष्णके सखा अर्जुनने गाण्डीवके छूटे बाणोंसे अनायास उसके सौ टुकड़े कर डाले ॥ ४३ ॥ जब म्लेच्छराज दूसरा धनुष लेने लगा, तभी अर्जुनने एक ही बाणसे उसका वह धनुष काट डाला ॥ ४४ ॥ प्रचण्ड बलवान् चण्डने जब दूसरा धनुष हाथमें लिया, तब अर्जुनने प्रलयकालीन समुद्र जैसी गर्जना करनेवाली उसके धनुषकी प्रत्यञ्चा काट डाली। जैसे गरुड़ सर्पिणीको काट डालते हैं। तब अर्जुनने अपनी ढाल-तलवार लेकर उसके हाथीके मस्तकपर इस तरह प्रहार किया, जैसे इन्द्र पर्वतपर वज्रप्रहार करते हैं। तभी अग्निकी दी हुई तलवारकी मारसे चण्डके हाथीका मस्तक फट गया, जिससे वह चिग्घाड़ उठा ॥ ४५-४७ ॥ इसके बाद वह हाथी घुटनोंके बल बैठकर मूर्छित हो गया। तब चण्डने अपनी तलवारसे अर्जुनपर प्रहार किया ॥ ४८ ॥ किन्तु अर्जुनने उसके प्रहारको ढालपर झेल लिया और अपनी तलवारका प्रहार चण्डपर किया, जिससे शिरस्त्राण समेत उसका सिर कटकर उसके शरीरसे अलग हो गया ॥ ४९ ॥ तदनन्तर अर्जुनने अपना धनुष चढ़ाया। उसपर बाण चढ़ाकर बाणपर चण्डका सिर रखा। फिर बाण समेत चण्डका सिर प्रद्युम्नकी सेनामें फेंक दिया ॥ ५० ॥ उस समय नगाड़े बजने लगे, जय-जयकारका निनाद होने लगा और सभी देवता अर्जुनके ऊपर फूल बरसाने लगे ॥ ५१ ॥ उसी समय श्रीकृष्णसुत प्रद्युम्नने अर्जुनको अपनी सेनाका सेनापति बना दिया। तब प्रमुख यादव अर्जुनपर श्वेत व्यजन और चमर चलाने लगे ॥ ५२ ॥ तदनन्तर अर्बुद देशका नरेश वेगवान् प्रद्युम्नकी शरणमें आया। उसने भयभीत हो हाथ जोड़कर प्रणाम किया और भेंट दी ॥ ५३ ॥ मौरंग देशके नरेश मंदहासने दस लाख घोड़े भेंट देकर भयभीत भावसे प्रद्युम्नको नमस्कार किया ॥ ५४ ॥ इस प्रकार भरतखंडको जीतकर यदुश्रेष्ठ प्रद्युम्न हिमालयकी परिक्रमा करते हुए ईशान दिशाको चल पड़े ॥ ५५ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

(प्रद्युम्नका यक्षदेशको प्रयाण)

श्रीनारद उवाच

नदा नद्यः समुद्राश्च रथवीथिं ददुर्नृप । धर्षितास्तेजसा तस्मै ससैन्याय महात्मने ॥ १ ॥
कैलासगिरिपार्श्वे च वरवीरश्च मानुपः । बाणस्य शोणितपुरं प्रययौ यादवेश्वरः ॥ २ ॥
बाणासुरोऽतिसंक्रुद्धो यदून् वीक्ष्यागतान्पुनः । अक्षौहिणीभिर्द्वादशभिर्युद्धं कर्तुं मनो दधे ॥ ३ ॥
तदेव साक्षात्पुरुषः पुराणो महेश्वरो नंदिवृषस्थितोऽसौ ।
हिमाद्रिपुत्रीसहितस्त्रिशूली समेत्य बाणं नृपमाह देवः ॥ ४ ॥

शिव उवाच

परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान्स्वयम् । असंख्यब्रह्मांडपतिर्गोलोकेशः परात्परः ॥ ५ ॥
त्रयो वयं तत्कला हि ब्रह्मविष्णुशिवादयः । मूर्ध्न्याज्ञां यस्य बिभ्रति त्वादृशानां च का कथा॥६॥
तस्य पौत्रस्त्वया बद्धोऽनिरुद्धो येन तेजसा । छिन्ना भुजा न जानासि संग्रामे तं हरिः स्वयम् ॥७॥
तस्मात्तेषां दानवानां पूजनीया हरेः सुताः । अनिरुद्धः पूजनीयो जामाता ते न संशयः ॥ ८ ॥
न ददामि त्वनुज्ञां ते युद्धायासुरपुंगव । न चेद्युद्धं कुरु बलाद्वृथा दृष्टं मनस्तव ॥ ९ ॥

श्रीनारद उवाच

शिवप्रबोधितो बाणोऽनिरुद्धं धन्विनां वरम् । समाहूय च संपूज्य पारिबर्हं ददौ पुनः ॥१०॥
ससैन्यं सादरेणापि प्रद्युम्नं पूज्य बंधुवत् । गजायुतं चाश्वकोटिं रथानां पंचलक्षकम् ॥११॥
ददौ बाणो महाबाहुः प्रद्युम्नाय महात्मने । अथ कार्ष्णिर्महाराज स्वसैन्यैर्यदुभिः सह ॥१२॥
अलकां प्रययौ धन्वी पुरीं गुह्यकमंडिताम् । श्रीनंदालकनंदाभ्यां गंगाभ्यां परिखीकृता ॥१३॥
रत्नसोपानयुक्ताभ्यां यक्षिभिः परिशोभिताम् । विद्याधरीभिः परितः किन्नरीभिर्मनोहराम् ॥१४॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! नद, नदी तथा समुद्र सबने प्रद्युम्नके तेजसे अभिभूत होकर उनके रथ तथा सेनाको मार्ग दे दिया ॥१॥ तब यादवेश्वर प्रद्युम्न कैलासपर्वतके समीपवर्ती बाणासुरके शोणितपुरको गये ॥ २ ॥ यादवोंको आया देखकर बाणासुर बहुत कुपित हुआ और बारह अक्षौहिणी सेना लेकर यादवोंसे लड़नेका विचार करने लगा ॥ ३ ॥ उसी समय साक्षात् पुराणपुरुष त्रिशूलधारी शिव पार्वतीके साथ नन्दीश्वरपर सवार होकर बाणासुरके पास गये और बोले ॥ ४ ॥ श्रीशिवजीने कहा—परिपूर्णतम श्रीकृष्ण साक्षात् परमेश्वर हैं। वे असंख्य ब्रह्माण्डोंके स्वामी, गोलोकके अधिपति और परात्पर ईश्वर हैं ॥ ५ ॥ ब्रह्मा, विष्णु और शिव हम तीनों उनकी कला हैं और उनकी आज्ञाको मस्तकपर धारण करते हैं, तब तुम जैसोंकी तो बात ही क्या है ॥ ६ ॥ जिनके पुत्र अनिरुद्धको तुमने बाँध लिया था, उसीके कारण संग्राममें जिन्होंने तुम्हारी भुजायें काट दी थीं, उन श्रीहरिको क्या तुम नहीं जानते ? ॥ ७ ॥ अतएव भगवान कृष्णके सभी पुत्र दानवोंके पूज्य हैं। और फिर अनिरुद्ध तो तुम्हारा दामाद ही है। इस लिए वह तो तुम्हारा सदाका पूज्य है ॥ ८ ॥ इसीसे मैं तुम्हें यादवोंके साथ युद्ध करनेकी अनुमति नहीं दूँगा। यदि तुम बलपूर्वक युद्ध करोगे तो कोई लाभ नहीं होगा ॥९॥ नारदजी बोले—हे राजन् ! शिवजीके इस प्रकार समझानेपर बाणासुरने धनुर्धरोंमें अग्रणी अनिरुद्धको बुलाकर उनकी पूजा की और भरपूर दहेज दिया ॥१०॥ इसके बाद सेनासमेत प्रद्युम्नका भी महाबाहु बाणने बन्धुके समान पूजन किया और दस हजार हाथी, एक करोड़ घोड़े और पाँच लाख रथ महात्मा प्रद्युम्नको प्रदान किया। हे महाराज ! इसके बाद प्रद्युम्न यादव सैनिकोंके साथ यक्षोंसे मण्डित अलकापुरी गये। जिसको नन्दा और अलकनन्दा नामकी दो गंगायें खाईंकी तरह चारों ओरसे घेरकर बहती थीं ॥ ११–१३ ॥ उन दोनों नदियोंमें रत्नजटित सीढ़ियाँ थीं। यक्षिणी, विद्याध

दिव्याभिर्नागकन्याभिः पुरीं भोगवतीमिव । धनदो न ददौ तस्मै प्रद्युम्नाय वलिं नृपः ॥१५॥
हरेः प्रभावविदपि विष्णोर्मायावलं त्वहो । लोकपालोऽस्म्यहं नित्यमित्यज्ञानविमोहितः ॥१६॥
नोदितो वलिभिर्यक्षैर्युद्धं कर्तुं मनो दधे । निर्धनो हि धनं प्राप्य तृणवन्मन्यते जगत् ॥१७॥
नवानां तु निधीनां कौ पतीनां किमु वर्णनम् । तदैव हेममुकुटो दूतो धनदनोदितः ॥
कार्ष्णिमेत्य सभामध्ये नत्वेदं प्राह मानदः ॥१८॥

हेममुकुट उवाच

धनेश्वरो राजराजो लोकपालोऽलकेश्वरः । तेन यत्कथितं राजञ्छृणु त्वं तद्यदूत्तम ॥१९॥
देवराजो यथा शक्रः स्मृतो दिवि यथा प्रभुः । तथैको राजराजोऽहं कथितो भूतले महान् ॥२०॥
मनुष्यधर्मा राजेंद्रैः पूजितोऽहं सदा भुवि । उग्रसेनेन दातव्यं मह्यं सोपायनं परम् ॥२१॥
पराक् तस्मै न दास्यामि यदुराजाय भूभृते । न मन्यसे चेत्संग्रामं करिष्यामि न संशयः ॥२२॥

श्रीनारद उवाच

एवं दूतवचः श्रुत्वा प्रद्युम्नो भगवान्हरिः । चकार कोपं रक्ताक्षो रुषा प्रस्फुरिताधरः ॥२३॥

प्रद्युम्न उवाच

वृष्णींद्रं राजराजेंद्रं राजराजो न वेत्ति तम् । शक्रादीनां तु यः साक्षान्मुकुटैर्घृष्टपादुकः ॥२४॥
सुधर्मां पारिजातं च तस्मा इंद्रो ददौ भयात् । श्यामवर्णान्हयान्पाशी तस्मै दत्त्वा ननाम ह ॥२५॥
अनेन राजराजेन भीरुणा निधयो नव । प्राप्तास्तं हि न जानाति राजराजो महाबलम् ॥२६॥
वर्तते तत्सभामध्ये परिपूर्णतमो हरिः । असंख्यब्रह्मांडपतिः श्रीकृष्णो भगवान्स्वयम् ॥२७॥
यस्यैकमूर्ध्नि तिलकं दृश्यते मंडलं भुवः । उग्रसेनसभामध्ये सोऽपि नित्यं विराजते ॥२८॥
उग्रसेनप्रेषितोऽहं कुबेराय महात्मने । नाराचानां वलिं दातुं तत्करिष्यामि सांप्रतम् ॥२९॥

तथा किन्नरियोंसे अलकापुरी बड़ी सुन्दर लग रही थी ॥ १४ ॥ दिव्य नागकन्याओंसे अलंकृत अलकापुरी भोगवतीपुरी सरीखी दीख रही थी। किन्तु उस पुरीके अधिपति कुबेरने प्रद्युम्नको भेंट नहीं दी ॥१५॥ यद्यपि वे भगवान् कृष्णके प्रभावको जानते थे। किन्तु भगवान्की माया बड़ी प्रबल होती है। उसीके फेरमें पड़कर कुबेर 'मैं लोकपाल हूँ' ऐसा सोचकर अज्ञानमोहित हो गये ॥ १६ ॥ बलवान् यक्षोंकी प्रेरणासे उन्होंने युद्ध करनेकी इच्छा की। ठीक ही है, निर्धन धनी बनकर सारे संसारको तृणवत् तुच्छ समझने लगता है ॥ १७ ॥ तब जो नौ निधियोंका स्वामी बन जाय, उसके घमंडका तो कहना ही क्या है। यक्षराज कुबेरका भेजा हुआ हेममुकुट नामका दूत प्रद्युम्नके पास जाकर बोला। हेममुकुटने कहा—हे राजन्! धनेश्वर, राजाओंके राजा, लोकपाल और लोकेश्वर कुबेरने जो कुछ कहा है, उसको सुनिए ॥ १८ ॥ १९ ॥ जैसे स्वर्गमें इन्द्र देवताओंके राजा हैं, उसी प्रकार पृथिवीपर मैं राजाओंका भी राजा हूँ। इसीसे मेरा राजराज नाम पड़ा है ॥ २० ॥ मैं मनुष्यधर्मा हूँ। पृथ्वीके सब बड़े-बड़े राजे मेरी पूजा करते हैं। अतएव मैं उग्रसेनको भेंट नहीं दूँगा ॥ २१ ॥ यदुराज उग्रसेनको मैं कुछ भी भेंट न दूँगा। यदि आपलोग मेरी बात न मानेंगे तो युद्ध करूँगा ॥ २२ ॥ नारदजी बोले—हे राजन्! कुवेरके दूतकी बात सुनकर भगवान् प्रद्युम्न कुपित हो गये। मारे क्रोधके होंठ फड़कने लगे और नेत्र लाल हो गये ॥२३॥ प्रद्युम्न बोले—यादवेन्द्र, राजाओंके राजा और इन्द्रादिक देवताओंके मुकुटों द्वारा सेवितचरण उग्रसेनको कुवेर नहीं जानते ॥ २४ ॥ जिनसे डरकर देवराज इन्द्र सुधर्मा सभा और कल्पवृक्ष दे गये और श्यामवर्ण घोड़ोंको वरुण देवताने जिनको प्रदान किया ॥ २५ ॥ इन्हीं डरपोक राजराजने जिनके पास नौ निधियें भेजी हैं, वे ही कुवेर महाबली उग्रसेनको नहीं जानते ॥ २६ ॥ जिनकी सभामें परिपूर्णतम परमेश्वर और अगणित ब्रह्माण्डोंके नायक श्रीकृष्ण भगवान् स्वयं विराजते हैं ॥ २७ ॥ जिनके हजार मस्तकोंमेंसे एक मस्तकपर सारा भूमण्डल तिलकके समान विद्यमान रहता है, वे शेषभगवान् (वलदेव) जिनकी सभामें नित्य बने रहते हैं ॥२८॥ उन्हीं उग्रसेनका

श्रीनारद उवाच

एवमुक्त्वा गृहीत्वा स्वं कोदंडं चंडविक्रमः । चकार भुजदंडाभ्यां टंकारं वादयन् गुणम् ॥३०॥
प्रत्यंचास्फोटनेनैव मंडितोऽभूत्तडित्स्वनः । ननाद तेन ब्रह्मांडं सप्तलोकैर्बिलैः सह ॥३१॥
विचेलुर्दिग्गजास्तारा राजन्भूखंडमंडलम् । निषंगाच्छरमाकृष्य प्रद्युम्नो धन्विनां वरः ॥३२॥
प्रतिशार्ङ्गे स्वधनुषि बाणमेकं समादधे । द्वादशादित्यसंकाशं द्योतयन्मंडलं दिशाम् ॥३३॥
चिच्छेद गुह्यकेशस्य बाणं छत्रं च चामरे । तदा क्रुद्धो राजराजो दृष्ट्वा चित्रमिदं महत् ॥३४॥
आरुह्य पुष्पकं सैन्यैर्युद्धकामो विनिर्ययौ । घंटानादेन यक्षेण मंत्रिणा पार्श्वमौलिना ॥३५॥
नलकूबरमणिग्रीवौ शुशुभाते ध्वजाग्रतः । तुरंगवदनाः केचिन्मृगेंद्रवदनाः परे ॥३६॥
शिशुमारमुखाः केचित्केचिन्नक्रमुखा इव । अर्द्धपिंगा अर्द्धकृष्णा ऊर्ध्वकेशा मदोत्कटाः ॥३७॥
वक्रदंता ललज्जिह्वा बृहद्दंष्ट्रा महाबलाः । करालास्याः सकवचाः खड्गचर्मधराः पराः ॥३८॥
शक्तिहस्ता ऋष्टिहस्ता भुशुंडिपरिघायुधाः । धनुर्बाणधरा यक्षाः केचित्परशुपाणयः ॥३९॥
यक्षाणां हस्तिवाहानां रथिनामश्विनां तथा । विरेजुर्निर्गतानां च मंडलानि सहस्रशः ॥४०॥
शंखदुंदुभिनादैश्च सूतमागधबंदिभिः । रेजिरे श्रीदवीराः कौ मेघा इव तडित्स्वनैः ॥४१॥
एवं यक्षेषु मत्तेषु कोटिशो निर्गतेषु च । दिव्यान्महायोगमयात्सिद्धक्षेत्राद्विदेहराट् ॥४२॥
आययौ तत्सहायार्थं प्रमथानां बलं महत् । भूताश्च प्रमथाः केचित्करालास्या मदोत्कटाः ॥४३॥
डाकिन्यो यातुधानाश्च वेतालाः सविनायकाः । कूष्मांडोन्मादसंयुक्ताः प्रेता मातृगणाः परे ॥४४॥
निशाचरपिशाचाश्च ब्रह्मराक्षसभैरवाः । नदंतो भैरवं नादं छिंधि भिंधीति वादिनः ॥४५॥
इत्थं तु भूतावलयः कोटिशश्चाययुस्तदा । रोदस्याच्छादिते भूता मेघैः सांवर्तकैरिव ॥४६॥

भेजा हुआ मैं यहाँ आया हूँ। सो मैं महात्मा कुबेरको अपने बाणोंकी भेंट दूँगा ॥ २९ ॥ नारदजी बोले—हे मैथिल! ऐसा कहकर प्रचण्ड पराक्रमी प्रद्युम्नने अपना धनुष हाथमें लिया और बार-बार टंकार करने लगे ॥ ३० ॥ उस प्रत्यंचाके ही टंकारसे बिजली गिरने जैसा भीषण निनाद हुआ और चौदहों भुवनोंसमेत सारा ब्रह्माण्ड झंकृत हो उठा ॥ ३१ ॥ सारा भूमण्डल, आठों दिग्गज और तारागण विचलित हो उठे। तभी धनुर्धारियोंमें अग्रणी प्रद्युम्नने तरकससे एक बाण निकाला ॥ ३२ ॥ उसे धनुषपर रखकर छोड़ा, तैसे ही द्वादश सूर्योके समान प्रकाशसे सभी दिशायें भर गयीं ॥ ३३ ॥ उसी बाणने कुबेरके बाण, छत्र तथा कवच काट डाले। यह विचित्र काम देखकर कुबेर बहुत क्रुद्ध हो उठे ॥ ३४ ॥ तदनुसार अपने सैनिकोंके साथ पुष्पक विमानमें बैठकर घंटानाद यक्ष तथा पार्श्वमौलि मंत्रीको साथ लेकर कुबेर युद्ध करनेके लिए अपने महलसे बाहर निकले ॥ ३५ ॥ उनके दोनों पुत्र नलकूबर और मणिग्रीव ध्वजाके आगे बैठे। घोड़े सरीखे मुखवाले, सिंह जैसे मुखवाले, शिशुमार तथा मगर जैसे मुखवाले, आधे पीले, आधे काले, ऊँचे केशवाले, बड़े उत्कट, टेढ़े दाँत, लपलपाती जीभ, बड़े बड़े दाँत और भयंकर मुखवाले, कवच पहने, ढाल-तलवार लिये, शक्ति हाथमें लिये, पोलादी धारण किये, तोप, परिघ, धनुष-बाण तथा फरसा हाथमें लिये हुए बहुतेरे यक्ष निकले ॥ ३६–३९ ॥ हाथियों, रथों तथा घोड़ोंपर सवार यक्षोंके हजारों मंडल निकलकर शोभित हुए ॥४०॥ शंखों और दुन्दुभियोंके निनाद तथा सूतों-मागधों-बन्दीजनोंके स्तुतिगानसे कुबेरके वीरगण पृथ्वीपर बहुत शोभित हुए। जैसे बिजलीसे बादलकी शोभा होती है ॥ ४१ ॥ हे विदेहराज! इसी प्रकार करोड़ों यक्ष दिव्य योगमय सिद्धक्षेत्रसे बाहर निकले ॥ ४२ ॥ उनकी सहायताके लिए प्रमथोंकी बहुत बड़ी सेना आयी। उन भूतों और प्रमथोंका मुख बहुत ही विकराल था और वे बहुत मदोन्मत्त थे ॥ ४३ ॥ डाकिनी, राक्षस, वेताल, विनायक, कूष्माण्ड, उन्मत्त मातृगण, बहुतेरे निशाचर, पिशाच, ब्रह्मराक्षस और भैरव भयंकर नाद करते और 'इसे छेद डालो' 'इसे भेद डालो' ऐसा कहते हुए आगये ॥४४॥४५॥ इस प्रकार भूतोंके करोड़ों आ पहुँचे। उनसे सारी धरती और सारा आकाश आच्छादित हो गया, ऐसा लगा किजैसे प्रलयकालीन

मयूरस्थः कार्तिकेयो मूषकस्थो गणेश्वर । प्रमथैर्गीयमानौ तौ ढक्कावादित्रनिःस्वनैः ॥४७॥
सर्वेषामग्रतः प्राप्तौ वीरभद्रेण संयुतौ । इत्थं पुण्यजनानां तु गणानां यदुभिः सह ॥४८॥
बभूव तुमुलं युद्धमद्भुतं रोमहर्षणम् । रथिनो रथिभिस्तत्र पत्तिभिः सह पत्तयः ॥४९॥
हया हयैरिभाश्चेभैर्युयुधुस्ते परस्परम् । रथेभाश्वपदातीनां चरणैरुत्थितं रजः ॥५०॥
छादयामास राजेंद्र ससूर्यं व्योममंडलम् ॥५१॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे नारदबहुलाश्वसंवादे यक्षदेशप्रयाणं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

(यक्षयुद्धवर्णन)

श्रीनारद उवाच

शस्त्रांधकारे संजाते मणिग्रीवो महाबलः । बिभेदाखिलं बाणैः कुवाक्यैर्मित्रतामिव ॥ १ ॥
मणिग्रीवस्य बाणौघैर्गजाश्वरथपत्तयः । निपेतुः सक्षता भूमौ वृक्षा वातहता इव ॥ २ ॥
चंद्रभानुर्हरेः पुत्रः सत्यभामात्मजो बली । मणिग्रीवस्य कोदंडं पंचबाणैस्तदाऽच्छिनत् ॥ ३ ॥
दशभिस्तद्रथं भित्वा जगर्ज घनवद्बली । मणिग्रीवोऽपि चिक्षेप शक्तिं स्वां चंद्रभानवे ॥ ४ ॥
भासयंतीं दिशः शश्वन्महोल्कामिव मैथिल । अग्रहीच्चंद्रभानुस्तां वामहस्तेन लीलया ॥ ५ ॥
तया जघान समरे मणिग्रीवं महाबलम् । पुनर्जगर्ज समरे चंद्रभानुर्महाबलः ॥ ६ ॥
तत्प्रहारेण पतिते मणिग्रीवे प्रमूर्च्छिते । चन्द्रभानुं बाणजालैर्नलकूबरनोदिताः ॥ ७ ॥
छादयामासुरसुरा वर्षादित्यं यथांबुदाः । दीप्तिमान्कृष्णपुत्रस्तु खड्गमुद्यम्य वेगवान् ॥ ८ ॥
विवेश यक्षसेनासु नीहारेषु यथा रविः । तस्य खड्गप्रहारेण केचिद्यक्षा द्विधाऽभवन् ॥ ९ ॥

उमड़ आये हों ॥४६॥ मयूरपर कार्तिकेय और मूषकपर सवार गणेशजी भी आये । प्रमथगण उनका यश गाते हुए ढोल बजा रहे थे ॥ ४७ ॥ सबके आगे वीरभद्रके साथ और कार्तिकेय ही आये । इस प्रकार आये हुए पुण्यजनोंका यादवोंके साथ बड़ा अद्भुत, रोमांचक और तुमुल युद्ध हुआ । उस युद्धमें रथी रथियोंके साथ, पैदल सैनिक पैदलोंके साथ, घुड़सवार घुड़सवारोंके साथ और हाथीसवार हाथीसवारोंके साथ लड़ने लगे । हे राजेन्द्र ! युद्धके समय रथ, हाथी, घोड़े और पैदल सैनिकोंके पैरोंसे उठी हुई धूलसे सारा आकाश और सूर्यमण्डल ढँक गया ॥ ४८-५१ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां त्रयोविंशोऽध्याय: ॥ २३ ॥

नारदजी बोले—हे राजन् ! जब रणभूमिमें शस्त्रोंकी वर्षासे अन्धकार छा गया, तब महाबली मणिग्रीव अपने तीक्ष्ण बाणोंसे यादवोंकी सेनाको बेधने लगा । जैसे कुत्सित वचनोंसे मित्रता बिंध जाती है । मणिग्रीवकी विकराल बाणवर्षासे बहुतेरे हाथी, घोड़े तथा पैदल सैनिक घायल हो-होकर धरतीपर गिर पड़े । जैसे आँधीके झोंकेसे वृक्ष जमीनपर गिर जाते हैं ॥ १ ॥ २ ॥ तब श्रीकृष्णका पुत्र तथा सत्यभामाके आत्मज बली चन्द्रभानुने अपने पाँच बाणोंसे मणिग्रीवके धनुषको काट डाला ॥ ३ ॥ तदनन्तर दस बाणोंसे उसके रथको ध्वस्त करके चन्द्रभानुने मेघके समान गर्जन किया । तब मणिग्रीवने चन्द्रभानुपर अपनी शक्ति चलायी ॥ ४ ॥ हे मैथिल ! वह शक्ति दसों दिशाओंमें प्रकाश फैलाती हुई बहुत बड़ी मशालकी तरह आयी, तब चन्द्रभानुने अनायास उसे अपने हाथसे पकड़ लिया ॥ ५ ॥ फिर उसी शक्तिसे मणिग्रीवपर प्रहार करके चन्द्रभानु बहुत जोरसे गरजे ॥ ६ ॥ उस शक्तिके आघातसे मणिग्रीव मूर्छित होकर धरतीपर गिर गया । तब नलकूबरसे प्रेरित असुरोंने चन्द्रभानुको इस तरह ढाँक दिया, जैसे वर्षाकालमें बादल सूर्यको ढाँक लेते हैं ।

केचिद्द्वै छिन्नशिरसश्छिन्नपादांसबाहवः । भिन्नहस्ताश्छिन्नकर्णाश्छिन्नोष्ठाः पेतुराहवे ॥१०॥
तेषां शिरोभिर्बीभत्सैः सकिरीटैः सकुंडलैः । सशिरस्त्रैः स्रवद्रक्तैर्महामारीव भूर्बभौ ॥११॥
शेषा विदुद्रुवुर्यक्षाः सक्षता भयविह्वलाः । हाहाकारस्तदा जातो यक्षसेनासु मैथिल ॥१२॥
धनुष्टंकारयन्प्राप्तो दंशितो नलकूबरः । रथेनातिपताकेन माभैष्टेत्यभयं ददौ ॥१३॥
पंचभिः कृतवर्माणमर्जुनं दशभिः शरैः । दीप्तिमंतं च विंशत्या तताड नलकूबरः ॥१४॥
कृतवर्मा महाबाहुर्जघान नलकूबरम् । पंचभिर्विशिखैः राजन्नादयन्मंडलं दिशाम् ॥१५॥
ते बाणाः कवचं भित्वा तनुं भित्वा धरातलम् । विविशुः पश्यतां तेषां वल्मीके फणिनो यथा ॥१६॥
वीक्ष्य तद्बाणभिन्नांगं मूर्छितं नलकूबरम् । अपोवाह रणात्सूतो हेममालीति नामभाक् ॥१७॥
घंटानादः पार्श्वमौलिः कुबेरस्य च मंत्रिणौ । जघ्नतुर्बाणपटलैर्यदूनामुद्भटं बलम् ॥१८॥
स्वर्णपुंखैस्तीक्ष्णमुखैर्गृध्रपक्षैर्मनोजवैः । द्योतयद्भिर्दिशः सर्वा मार्तंडकिरणैरिव ॥१९॥
ततोऽर्जुनो महावीरः प्रतिबाणान्समादधे । बाणसंघर्षजा युद्धे विस्फुलिंगाः सहस्रशः ॥२०॥
विरेजुर्नृप खद्योतचंचलालातचक्रवत् । सर्वं तद्बाणपटलं क्षणमात्रेण चाच्छिनत् ॥२१॥
गांडीवमुक्तविशिखैर्गाण्डीवी रणदुर्मदः । योजनद्वयमात्रेण तद्रथौ सध्वजौ बलात् ॥२२॥
अर्जुनो बाणपटलैश्चकार शरपंजरे । हताविमाविति ज्ञात्वा सर्वे पुण्यजनास्त्वरम् ॥२३॥
दुद्रुवुः स्वं रणं त्यक्त्वा परं हाहेति वादिनः । तदा तु भूतावलयः कोटिशश्चाययुर्मृधे ॥२४॥
डाकिन्यः कोटिशो राजंश्चिक्षिपुर्वारणान्मृधे । भक्षयंत्यो नरानश्वाँश्चर्वयंत्यो रथान्पृथक् ॥२५॥
नरे नरे पृथग्भूता धावंतो दशभिर्दश । प्रमथाः पातयामासुः खट्वांगेन जनान्मुहुः ॥२६॥

तब श्रीकृष्णका पुत्र दीप्तिमान् तलवार लेकर कुहरेमें प्रविष्ट सूर्यकी तरह यक्षोंकी सेनामें घुस गया। उसके खड्ग-प्रहारसे कितने ही यक्ष दो-दो टुकड़े हो-होकर धरतीपर गिर गये ॥ ७–९ ॥ उनमेंसे कितनोंके सिर, कितनोंकी भुजायें, कितनोंके पैर, बहुतोंके होंठ और कितनोंके कान कट गये। वे सब जमीनपर पड़े हुए थे ॥ १० ॥ उनके किरीट, कुण्डल और शिरस्त्राणयुक्त तथा रुधिर बहानेवाले सिरोंसे रणभूमि मूर्तिमती महामारी जैसी दीख रही थी ॥ ११ ॥ हे मैथिल ! शेष घायल यक्ष विकल होकर रणांगणसे निकल भागे। इससे यक्षोंकी सेनामें हाहाकार मच गया ॥ १२ ॥ उसी समय कवचधारी नलकूबर ऊँची पताकावाले रथमें बैठकर धनुष टंकारता और यक्षोंको अभय करता हुआ आया ॥ १३ ॥ रणभूमिमें पहुँचते ही नलकूबरने पाँच बाण कृतवर्माको, दस अर्जुनको और बीस बाण दीप्तिमान्को मारा ॥ १४ ॥ तत्काल महाबाहु कृतवर्माने पाँच बाणोंसे नलकूबरपर प्रहार किया। उससे दसों दिशायें मुखरित हो उठीं ॥ १५ ॥ वे बाण उसके कवचको छेदकर सबके देखते-देखते पृथिवीमें घुस गये। जैसे वल्मीक (बाँबी)में साँप घुसता है ॥ १६ ॥ कृतवर्माके बाणोंसे घायल नलकूबर जब मूर्छित हो गया, तब उसका सारथी हेममाली नलकूबरको रणभूमिसे हटाकर एकान्तमें ले गया ॥१७॥ तदनन्तर कुबेरके मंत्री घंटानाद तथा पार्श्वमौलि युद्धभूमिमें उतरे। अपनी विकराल बाणवर्षासे वे यादवोंकी उद्भट सेनाका संहार करने लगे ॥ १८ ॥ स्वर्णपुंख तथा तीक्ष्ण मुखवाले और मनके समान द्रुतगामी बाणोंसे दसों दिशाओंसे प्रकाश करते हुए वे दोनों कुबेरके मंत्री यादवी सेनाको ध्वस्त करने लगे ॥ १९ ॥ उसी समय महावीर अर्जुनने मंत्रियोंके बाणके समान ही बाण चलाये। वे दोनों बाण परस्पर टकरा गये और उनसे चिनगारियाँ उड़ने लगीं ॥ २० ॥ हे राजन् ! वे चिनगारियाँ जुगुनूके समान चमकने लगीं। उन बिजली जैसे चमकीले बाणोंसे अर्जुनने कुबेरके मंत्रियोंके बाणसमूहको काट दिया ॥ २१ ॥ उसके बाद गाण्डीव-धनुर्धारी अर्जुनने अपने धनुषके द्वारा छोड़े हुए बाणोंसे दोनों मंत्रियोंके ध्वजायुक्त रथको बलपूर्वक आठ कोस दूर हटा दिया ॥ २२ ॥ अर्जुनने अपनी बाणवर्षासे उन दोनोंको बाणोंके पींजड़ेमें कैद कर दिया। ऐसी स्थितिमें उन्हें मृत समझकर हाहाकार करते हुए सभी यक्ष शीघ्र रणभूमिसे भाग खड़े हुए। उसी समय रणांगणमें भूतोंके करोड़ों झुंड वहाँ आ धमके ॥ २३ ॥ २४ ॥ करोड़ों डाकिनियां हाथियोंको इधर-उधर

यातुधानाश्चर्वयंतः शिरांसि रणमंडले । वेतालाश्च कपालेन पिबंतो रुधिरं बहु ॥२७॥
विनायकाश्च नृत्यंतः प्रेता गायंत एव हि । कूष्मांडाश्च तथोन्मादाः शिरांसि जगृहुर्मृधे ॥२८॥
शिवस्य मुंडमालार्थं वीराणां स्वर्गगामिनाम् । तथा मातृगणा ब्रह्मराक्षसा भैरवा मृधे ॥२९॥
शिरांसि कंदुकानीव क्षेपयंतो मुहुर्मुहुः । हसंतः प्रहसंतश्च साट्टहासं समाकुलाः ॥३०॥
पिशाचा विकलास्याश्च कूर्दंतः केऽपि कुत्सितम् । पिशाच्यः क्षतजं तूष्णं पाययंत्यः शिशून्मृधे ॥३१॥
मारोदीरिति वादिन्यो नेत्राण्यपि ददाम उत । इत्थं गणबलं दृष्ट्वा बलदेवानुजो बली ॥३२॥
गदो गदां समादाय जगर्ज घनवद्बली । लक्षभारसृता गौर्व्या गदया तद्बलं महत् ॥३३॥
पोथयामास हि गदो वज्रेणेंद्रो यथा गिरीन् । कूष्मांडोन्मादवेतालाः पिशाचा ब्रह्मराक्षसाः ॥३४॥
निपेतुर्मूर्छिता भूमौ तद्गदाभिन्नमस्तकाः । डाकिनीभिन्नदंताश्च प्रथगा भिन्नकंधराः ॥३५॥
यातुधानांश्छिन्नमुखांश्चकार समरे गदः । गदया मर्दिताः प्रेता दुद्रुवुस्ते दिशो दश ॥३६॥
वाराहदंष्ट्राया भग्ना लये दैत्या यथा नृप । पलायिते भूतगणे वीरभद्रः समागतः ॥३७॥
गदं तताड गदया बलदेवानुजं बली । गदोपरि गदां नीत्वा गदः स्वांप्राहिणोद्गदाम् ॥३८॥
तयोर्युद्धमभूद्घोरं गदाभ्यां मैथिलेश्वर । विस्फुलिंगान् क्षरंत्यो द्वे गदे चूर्णीबभूवतुः ॥३९॥
मल्लयुद्धं तयोरासीन्नोदयंत परस्परम् । भुजैश्च जानुभिः पादैः पातयंतो गिरीन् बहून् ॥४०॥
करवीरं समुत्पाट्य वीरभद्रो गिरिं बलात् । अट्टहासं तदा कुर्वन् गदोपरि समाक्षिपत् ॥४१॥
गदो गिरिं संगृहीत्वा तस्योपरि समाक्षिपत् । गृहीत्वाऽथ गदं वीरं वीरभद्रो बलाद्बली ॥४२॥
चिक्षेप चौजसा राजन्नाकाशे लक्षयोजनम् । गदोऽपि पतितो भूमौ किंचिद्व्याकुलमानसः ॥४३॥

फेंकती हुई मनुष्यों, घोड़ों, हाथियों और रथोंको चबाती हुई विचरने लगीं ॥ २५ ॥ एक-एक मनुष्यके पीछे एक-एक तथा दसके पीछे दस-दस डाकिनियाँ लगकर खट्वांगोंसे मनुष्योंका वध करने लगीं ॥ २६ ॥ बहुतेरी राक्षसियाँ रणभूमिमें मृतकोंका सिर चबाने लगीं। वैताल मनुष्योंकी खोपड़ियोंमें रक्त भर-भरकें पीने लगे ॥२७॥ उस समय रणभूमिमें विनायक नाचते थे, प्रेत गा रहे थे, उन्माद तथा कूष्माण्ड शिवजीकी मालाके लिए मृतकोंके मुण्डोंका संग्रह कर रहे थे। मातृगण, ब्रह्मराक्षस और भैरव बारम्बार मृतकोंके सिर गेंदकी तरह उछालते और अट्टहास करते, हुए खिलखिलाकर हँसने लगते थे॥ २८–३० ॥ भयंकर आकृतिके पिशाच बेतरह उछल-कूद कर रहे थे और पिशाचिनियाँ अपने-अपने बच्चोंको गरम-गरम रक्त पिला रही थीं ॥ ३१ ॥ 'रोओ मत बेटे ! मैं तुमको और नेत्र दूँगी ।' ऐसा कहती हुई पिशाचिनियाँ उन बच्चोंको रुधिर पिला रही थीं। इस प्रकार गणोंका बल देखकर बलदेवका छोटा भाई गद गदा लेकर भीषण गर्जन करने और अपनी लाख भारकी गदासे शत्रुसेनाको मारने लगा। उस समय गद शिवगणोंको इस तरह मार रहा था, जैसे इन्द्र पर्वतोंको मारते थे। कूष्माण्ड, उन्माद, बेताल, पिशाच और ब्रह्मराक्षस गदकी गदासे मस्तक फट जानेके कारण धराशायी हो गये। जिनके दाँत टूट गये थे, वे डाकिनियाँ तथा जिनके कन्धे भिन्न हो गये थे, वे प्रमथ मूर्छित हो-होकर धरतीपर गिर गये ॥ ३२–३५ ॥ उस समरमें गदने राक्षसोंके मुँह तोड़ दिये। गदकी गदासे मर्दित प्रेत दसों दिशाओंमें वैसे ही भाग गये ॥ ३६ ॥ जैसे प्रलयकालमें वराह भगवान्के दाँतसे लहू-लुहान होकर दैत्य भागे थे। इस तरह भूतोंके भाग जानेपर वीरभद्र रणभूमिमें आये ॥ ३७ ॥ उन्होंने बलदेवके लघु भ्राता गदको एक गदा मारी। तत्काल गदने उस गदाकी मारको अपनी गदापर झेल लिया और घुमाकर अपनी गदाका प्रहार वीरभद्रपर कर दिया ॥ ३८ ॥ हे मिथिलेश ! तब उन दोनोंमें घोर गदायुद्ध हुआ। दोनों गदायें परस्परकी टक्करसे चिनगारियाँ उगलती हुई चूर-चूर हो गयीं॥३९॥ अब गद और वीरभद्र-में परस्पर ललकारते हुए मल्लयुद्ध होने लगा। वे दोनों अपनी भुजाओं और पैरोंसे पर्वतोंको गिराते हुए लड़ने लगे ॥ ४० ॥ तभी वीरभद्रने करवीर पर्वतको उठाकर गदके ऊपर फेंका और बहुत जोरसे ठठाकर हँसा ॥ ४१ ॥ किन्तु गदने उसको बीचमें पकड़कर वीरभद्रके ही ऊपर फेंक दिया। तब वीरभद्रने गदको पकड़कर

गृहीत्वा वीरभद्राख्यं भ्रामयित्वा महाबलः । ओजसा प्राक्षिपच्छीघ्रमाकाशे लक्षयोजनम् ॥४४॥
वीरभद्रस्तु पतितः कैलासशिखरोपरि । गदाप्रहारव्यथितो मूर्छितो घटिकाद्वयम् ॥४५॥
कार्तिकेयस्तदा प्राप्तः शक्तिमुद्यम्य वेगवान् । अनिरुद्धाय सांबाय शक्तिं चिक्षेप सत्वरम् ॥४६॥
अनिरुद्धरथं भित्वा सांबं सांबरथं पुनः । गजान् रथान्सहस्रं च वीरलक्षं मृधांगणे ॥४७॥
भित्वा नदंती स्फूर्जंती चपलेव दिशो दश । विवेश भूमौ फूत्कारं कुर्वती पन्नगीव सा ॥४८॥
तदा क्रुद्धो महाबाहुः सांबो जाम्बवतीसुतः । कृत्वाऽथ सिंजिनीघोषं निषंगाद्बाणमाददे ॥४९॥
एकोऽपि सद्बहिस्तूणाद्दशरूपी बभूव ह । चापे शतं कर्षणे च सहस्रं रूपमादधे ॥५०॥
मोक्षणे लक्षरूपाणि कोटिरूपाणि कोटिषु । अनेकरूपी विशिखः शिखिनं शिखिवाहनम् ॥५१॥
भित्वा बिभेद वीराणां कोटिशः कोटिशो रणे । कार्तिकेये च भिन्नांगे किंचिद्व्याकुलमानसे ॥
गणेश्वरस्तदा प्राप्तो मूषकस्थो गजाननः ॥५२॥

गोमूत्रपत्रमृगनाभिविचित्रकुंभं श्रीकुंकुमाकलितसुंदरवक्रतुंडम् ।
सिंदूरपूरितकपोलमनोहराभं कर्पूरधूलिधवलीकृतकर्णवर्णम् ॥५३॥
व्यालोलकर्णहतमत्तमधुव्रतैस्तैः श्रीगंडजातमदिरामदविह्वलांगैः ।
संगीततालकुसुमाकरगीतरागैः संसेवितं गणपतिं कृतभालचंद्रम् ॥५४॥
बालार्कवर्णममलांगदहेमहारग्रैवेयमौलिकिरणैः परितः स्फुरंतम् ।
आखुस्थमेकदशनं गजभव्यमूर्तिं पाशांकुशांबुजकुठारचयं दधानम् ॥५५॥
प्रांशुं चतुर्भुजमतीव मृधे प्रवृत्तं कांश्चित्प्रगृह्य च करेण धृतांकुशेन ।
संमर्दयंतमुरुधारपरश्वधेन श्रीभार्गवेन्द्रमिव शस्त्रभृतः समस्तान् ॥५६॥

पूरी ताकतसे आकाशमें लाख योजन ऊँचे फेंक दिया। आकाशसे लौटकर धरतीपर गिरा तो गद कुछ व्याकुल हो गया था ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ अवसर पाकर गदने भी वीरभद्रको उठाकर लाख योजन ऊपर आकाशमें फेंक दिया ॥ ४४ ॥ आकाशसे लौटकर वीरभद्र कैलास पर्वतपर गिरा। गदाका प्रहार उसपर पहले ही बहुत हो चुका था। अतएव वह दो घड़ीके लिए मूर्छित हो गया ॥ ४५ ॥ उसी समय अपनी शक्ति लिये हुए कार्तिकेय रणभूमिमें आ गये। आते ही उन्होंने अनिरुद्ध तथा साम्बपर अपनी शक्तिसे प्रहार किया ॥ ४६ ॥ उससे उन्होंने अनिरुद्धके रथको चूर करके साम्ब तथा साम्बके रथको ध्वस्त कर दिया। साथ ही हजार हाथी, हजार रथ और एक लाख सैनिकोंको भेद और छेदकर बिजलीकी भाँति चमकती, दसों दिशाओंमें प्रकाश फैलाती और सर्पिणीके समान फुफकारती हुई वह शक्ति धरतीमें समा गयी ॥४७॥४८॥ तब अत्यन्त क्रुद्ध होकर जाम्बवतीतनय साम्बने अपने धनुषकी प्रत्यञ्चाको टंकारते हुए तरकससे बाण निकाला ॥ ४९ ॥ उनके तरकससे निकलते ही वह अकेला बाण एकसे दस हो गया। जब वह धनुषपर चढ़ा तो दसका सौ हो गया। जब चढ़ाकर खींचा गया तो सौसे हजार हो गया ॥ ५० ॥ जब वह धनुषसे छूटा तो हजारका लाख बाण हो गया। लक्ष्यपर पहुँचकर लाखसे करोड़ बाण हो गया। उस अनेकरूपधारी बाणने कार्तिकेयके वाहन मोर तथा स्वयं स्वामिकार्तिकेयको छेदकर करोड़ों वीरोंको छेद डाला ॥५१॥ जब कार्तिकेयका शरीर छिद जानेके कारण मन व्याकुल हो गया तो गजानन गणेशजी चूहेपर चढ़कर युद्ध करने आये ॥ ५२ ॥ गोमूत्र, पत्र तथा कस्तूरीसे उनका मस्तक चित्रित था। उनका मुख केसरसे रंगा था। उनका कपोल सिन्दूरसे रंगा था। कर्पूरचूर्णसे उनके कान रंगे थे ॥ ५३ ॥ चंचल कानोंकी मारसे मतवाले भ्रमरों तथा कपोलोंकी मदिराके मदसे विह्वल अंगोंवाले, संगीत, ताल और वासन्ती रागसे सेवित एवं मस्तकपर चन्द्रमाको धारण किये हुए गणेशजी रणांगणमें दिखायी दिये ॥५४॥ उदयकालीन सूर्यके समान उनका रक्त वर्ण था। वे निर्मल स्वर्णहार, बाजूबंद, कंकण, किरीट और मुकुट धारण किये थे। वे चारों ओरसे देदीप्यमान, मूषकपर सवार

वीरेभवाजिरथसंघबलं निपात्य सांबं प्रगृह्य सरथं प्रधनात्क्षिपंतम् ।
तं वीक्ष्य विस्मितमनाः सगणोऽथ कार्ष्णिः पुत्रं सुबुद्धिमनिरुद्धमुवाचसम्यक् ॥५७॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे यक्षयुद्धवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

(प्रद्युम्नकी यक्षदेश तथा कुबेरपर विजय)

प्रद्युम्न उवाच

श्रीकृष्णस्य कला साक्षाद्गणेशोऽयं महाबलः । जेतुं न शक्यो दिविजैर्मनुष्यैस्तु कुतो भुवि ॥ १ ॥
वर्तते यस्य निकटे तस्य नास्ति पराजयः । श्रीकृष्णेन वरो दत्तः पुराऽस्मै शंकरालये ॥ २ ॥
यद्ययं वर्तते चात्र तदा न स्याज्जयश्च नः । शत्रुपक्षगतोऽयं वै श्रीकृष्णस्य वरोर्जितः ॥ ३ ॥
तस्मात्त्वं चंडमार्जारो भूत्वा तं युद्धतो बलात् । विद्रावय महायुद्धे फूत्कारैश्च दिशो दश ॥ ४ ॥
यावद्बलं विजेष्यामि तावद्विद्रावय त्वरम् ।

श्रीनारद उवाच

अथानिरुद्धो भगवांश्चंडमार्जाररूपधृक् ॥ ५ ॥
अलक्षितो गणेशेन न ज्ञातो विष्णुमायया । फूत्कारमुत्कटं कुर्वन् संपपाताखुसंमुखे ॥ ६ ॥
विदारयन्मुखं राजन्सततं नखरैः खरैः । विशेषेण सहैवाखुर्दृष्ट्वाऽऽशु भयविह्वलः ॥ ७ ॥
दुद्राव त्वरितं राजन् कंपितो रणमंडलात् । तमन्वगच्छत्कुपितो मार्जारः स्थूलरूपधृक् ॥ ८ ॥
मूषकं स्वमपोवाह गणेशोऽपि मुहुर्मुहुः । नाययौ स्वं रणं चाखुश्चंडमार्जारपीडितः ॥ ९ ॥
सप्तद्वीपान्सप्तसिंधून् दिशासु विदिशासु च । धावन् वै सप्तलोकेषु न लेभे शर्म मैथिल ॥१०॥

एकदन्तधारी गजकी आकृति, पाश, अंकुश, कमल और कुठारोंका समूह धारण किये थे ॥ ५५ ॥ उनका ऊँचा डील-डौल था, चार भुजायें थीं और वे सब प्रकारसे युद्धमें प्रवृत्त थे। वे किसीको अपनी सूँड़में लपेटकर उसका मर्दन करते थे। किसीको परशुरामकी तरह फरसेसे काट रहे थे ॥ ५६ ॥ वीर सैनिकों, हाथियों, घोड़ों तथा रथों समेत सारी सेनाको धराशायी करके रथसहित साम्बको पकड़कर फेंकते हुए गणेशजीको देखकर यादव वीरों समेत प्रद्युम्न बड़े आश्चर्यमें पड़ गये। वैसी स्थितिमें भली भाँति विचार करके वे परम बुद्धिमान् अनिरुद्धसे बोले ॥ ५७ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीयां चतुर्विशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

प्रद्युम्न बोले—ये गणेशजी साक्षात् श्रीकृष्णकी कला हैं। ये महाबली हैं। इनको देवता भी नहीं जीत सकते, तब मनुष्योंकी तो बात ही क्या है ॥ १ ॥ ये जिसके पास रहते हैं, उसकी पराजय नहीं होती। क्योंकि कैलास पर्वतपर शंकरजीके धाममें श्रीकृष्णने इनको ऐसा वरदान दिया था ॥ २ ॥ यदि ये यहाँ खड़े भी रहेंगे तो हमारी विजय नहीं होगी। क्योंकि इन्हें श्रीकृष्णका वर प्राप्त है और इस समय ये शत्रुपक्षकी ओर खड़े हैं ॥ ३ ॥ अतएव तुम एक प्रचंड विलावका रूप धारण करके इस महायुद्धमें लड़ते हुए गणेशजीके चूहेको भगा दो। अपनी फुफकारसे उसको बराबर भगाते रहो ॥ ४ ॥ जबतक मैं शत्रुसेनाको जीत न लूँ, तबतक तुम इनके मूषकको बराबर भगाते रहो। श्रीनारदजी बोले—हे राजन्! प्रद्युम्नके कथनानुसार भगवान् अनिरुद्ध प्रचंड मार्जार (बिल्ली) का रूप धारण कर लिया ॥ ५ ॥ गणेशजीने उस विलावको देखा नहीं और विष्णुकी मायासे उसको जाना भी नहीं, किन्तु वह सहसा उनके मूषकके समक्ष जा पहुँचा ॥६॥ वह विलाव चूहेका मुख विदीर्ण करके अपने तीक्ष्ण नखोंसे उसे मारने लगा। उसको देखकर गणेशजीका मूषक विशिष्ट रीतिसे भयाकुल हो गया ॥ ७ ॥ तब हे राजन्! काँपता हुआ वह रणांगणसे तुरन्त निकल भागा और उसके पीछे वह क्रुद्ध विलाव भी दौड़ा ॥ ८ ॥ यद्यपि गणेशजी मूषकको बार-बार रणमें प्रेरित करते रहे,

यत्र यत्र गतश्चाखुर्गणेशेन समन्वितः । तत्र तत्र गतो राजन् मार्जारश्चंडविक्रमः ॥११॥
एवं समूषके याते गणेशे विदिशोत्तरम् । विस्मितेषु सपक्षेषु गणेषु प्रमथेषु च ॥१२॥
पुष्पकस्थः कुबेरोऽसौ मायां चक्रेऽथ गौह्यकीम् । गृहीत्वा स्वधनुर्दिव्यं नमस्कृत्य महेश्वरम् ॥१३॥
समंत्रं कवचं धृत्वा बाणसंघं समादधे । तदैव छादितं व्योम मेघैः सांवर्तकैरिव ॥१४॥
तडित्स्वनैर्महाभीमैस्तमोऽभूत्स्तनयित्नुभिः । बिंदवो हस्तिसदृशा निपेतुः सोपला मृधे ।।१५॥
धाराभिरतिघोराभिर्ववृषुर्वारिदास्ततः । क्षणेन सिंधवः सर्वे प्लावयंतो धरातलम् ॥१६॥
पर्वतैर्जीवसहितैर्दृश्यन्ते रणमंडले । प्राकृताः प्रलयं मत्वा यादवा भयविह्वलाः ॥१७॥
त्यक्त्वा शस्त्राणि तेऽथोचुः श्रीकृष्णेति मुहुर्मुहुः । ज्ञात्वा तां गौह्यकीं मायां प्रद्युम्नो भगवान्हरिः १८॥
सत्वात्मिकां च स्वां विद्यां सर्वमायोपमर्दिनीम् । जप्त्वा कृत्वा कामबीजं बाणमध्ये निधाय तत् ॥१९॥
मुखे च प्रणवं धृत्वा पुंखे श्रीबीजमेव च । आकृष्य कर्णपर्यन्तं कृष्णं स्मृत्वा चतुर्भुजम् ॥२०॥
चिक्षेप विशिखं चापाद्दोर्दंडाभ्यां तडित्स्वनात् । कोदंडमुक्तो विशिखो द्योतयन्मंडलं दिशाम् ॥२१॥
जघान गौह्यकीं मायामंधकारं यथा रविः । भयभीतो राजराजो पुष्पकस्थो रणांगणात् ॥२२॥
पलायमानो यक्षैश्च कंपितः स्वपुरीं ययौ । प्रद्युम्नस्योपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे ॥२३॥
जहसुर्यादवाः सर्वे जयारावसमाकुलाः । तदाऽतिहर्षितो राजन् राजराजः कृतांजलिः ॥२४॥
बलिं नीत्वा ययौ शीघ्रं प्रद्युम्नस्यापि संमुखे । गजेंद्राणां द्विलक्षं च द्विशुंडादंडशालिनाम् ॥२५॥

किन्तु उस प्रचंड विलावसे पीडित होनेके कारण वह रणभूमिमें लौटकर नहीं जाया ॥ ९ ॥ वह मूषक सातों द्वीप, सातों समुद्र, सभी दिशाओं, विदिशाओं और सातों लोकोंमें भागता फिरा, किन्तु उसको कहीं भी चैन नहीं मिला ॥ १० ॥ गणेशजीको अपनी पीठपर बैठाये हुए वह मूषक जहाँ-जहाँ गया, वहाँ-वहाँ वह प्रचंड विलाव उसके पीछे लगा रहा ॥ ११ ॥ इस प्रकार जब गणेशजीका मूषक भाग गया और गणेशजीको भी अनेक दिशाओंका चक्कर खिलाया तो उनके सभी गण और अपने पक्षवाले प्रमथ बड़े आश्चर्यमें पड़ गये ॥ १२ ॥ तब अपने पुष्पक विमानपर बैठकर स्वयं कुबेर रणागणमें आये और आते ही उन्होंने यक्षोंकी मायाका विस्तार किया। तदनुसार अपना धनुष लेकर उन्होंने शिवजीको नमस्कार करके मंत्रोच्चारणपूर्वक कवच पहन तथा मंत्र पढ़कर वाण छोड़ा। जिससे उसी समय प्रलयकालीन बादल छा गये और सारा आकाश उनसे भर गया ॥ १३॥ १४ ॥ बिजलीके भीषण गर्जनके साथ बड़े भयानक मेघोंके कारण घोर अन्धकार फैल गया। उसी समय हाथीकी सूँड़ जैसी मोटी जलधाराओंके साथ रणभूमिमें ओले बरसने लगे ॥ १५ ॥ उन बड़ी मोटी जलधाराओंसे घनघोर जल बरसने लगा। जिससे एक ही क्षणमें सातों समुद्र एकत्र होकर सारी पृथ्वीको डुबाने लगे ॥ १६ ॥ समस्त जीवोंके साथ पर्वतगण रणभूमिमें उपस्थित दिखायी देने लगे। साधारण लोगोंने तो प्रलयकालको सम्मुख देखा और सभी यादव भयसे विकल हो उठे ॥ १७ ॥ उन्होंने अपने सभी शस्त्रास्त्र त्याग दिये और बार-बार श्रीकृष्ण-श्रीकृष्ण कहने लगे। उसको यक्षोंकी माया समझकर भगवान् प्रद्युम्नने अपनी सत्त्वात्मिका तथा सब मायाओंको विनष्ट करनेवाली, कामबीज विद्याका जप करके उसे अपने बाणमें निहित किया ॥ १८ ॥ १९ ॥ बाणके मुखपर ॐ श्रीं लिखकर चतुर्भुज श्रीकृष्णका ध्यान करके उस बाणको कानतक खींचा ॥ २० ॥ तब जिसमें बिजली जैसी ध्वनि थी, उस धनुषसे दोनों भुजाओंके सहारे वह बाण छोड़ा। धनुषसे छूटे उस बाणने सभी दिशाओंको प्रकाशित करते हुए यक्षोंकी माया वैसे ही नष्ट कर दी, जैसे सूर्य अन्धकारको नष्ट कर देते हैं। यह देखकर पुष्पक विमानमें बैठे कुबेर भयभीत होकर युद्धभूमिसे निकल भागे ॥ २१ ॥ २२ ॥ भयसे काँपते हुए कुबेर यक्षोंके साथ भागकर अपनी पुरीको चले गये। इधर प्रद्युम्नके ऊपर देवता पुष्प बरसाने लगे ॥ २३ ॥ इससे सब यादव प्रसन्न हो गये। वे हँसने और जयजयकार करने लगे। उसी समय अत्यन्त प्रसन्न कुबेर हाथ जोड़कर वहाँ आ उपस्थित हुए ॥ २४ ॥ वे भेंट लेकर शीघ्र प्रद्युम्नके पास गये। दो सूँड़वाले दो लाख हाथी, चार-चार दाँतोंवाले और सदा मद चुआनेवाले

दद्भिश्चतुर्भिर्युक्तानामद्रीन्स्पर्धयतां मदैः । दशलक्षं रथानां च मुक्तातोरणशालिनाम् ॥२६॥
शताश्वयोजितानां च रौक्माणां सूर्यवर्चसाम् । दशार्बुदं तथा राजन्हयानां चंद्रवर्चसाम् ॥२७॥
शिबिकानां चतुर्लक्षं माणिक्यैरग्रवर्चसाम् । पंजरस्थायिनां राजञ्छार्दूलानां द्विलक्षकम् ॥२८॥
चित्रकाणां मृगाणां च गवयानां तथैव च । मृगयासारमेयानां कोटिकोटीर्विदेहराट् ॥२९॥
शुकानां सारिकाणां च कलकंठप्रवादिनाम् । हंसानां स्वर्णवर्णानामन्येषां चित्रपक्षिणाम् ॥३०॥
पंजरस्थायिनां राजँल्लक्षं लक्षं नृपेश्वर । विमानं विष्णुदत्ताख्यं मुक्तादामविलंबितम् ॥३१॥
अष्टयोजनमुच्चांगं नवयोजनविस्तृतम् । लक्षकुंभध्वजोपेतं निर्मितं विश्वकर्मणा ॥३२॥
कामगं स्वर्णशिखरं सहस्रादित्यसुप्रभम् । सहस्रं कुलवृक्षाणां कामधेनुशतं तथा ॥३३॥
चिंतामणीनां च शतं शतं दिव्याश्मनां तथा । यत्स्पर्शेनापि लोहस्तु हेमत्वं याति मैथिल ॥३४॥
छत्राणां चामराणां च हेमसिंहासनं शतम् । तथाहि दिव्यपद्मानां मालांकिंजल्किनीं शुभाम्॥३५॥
पीयूषस्य शतं द्रोणं फलानि विविधानि च । खचिद्रत्नसुवर्णानां भूषणानां तु वाससाम् ॥३६॥
दिव्यानां कंबलानां च कोटिशः पात्रसंचयम् । अमोघानां च शस्त्राणां कोटिसौवर्णशालिनाम् ॥३७॥
गजैर्नरैर्भारवाहैः प्रेरिता निधयो नव । दत्त्वा बलिं राजराजः प्रद्युम्नाय महात्मने ॥३८॥
दक्षिणीकृत्य तं नत्वा प्राहेदं हर्षपूरितः

कुवेर उवाच

नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने ॥३९॥
अनादये सर्वविदे निर्गुणाय महात्मने । प्रधानपुरुषेशाय प्रत्यग्धाम्ने नमो नमः ॥४०॥
स्वयंज्योतिःस्वरूपाय श्यामलांगाय ते नमः । नमस्ते वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च ॥४१॥
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः । मदनाय च माराय कंदर्पाय नमो नमः ॥४२॥

पर्वताकार दो लाख हाथी तथा मोतियोंके वन्दनवारयुक्त दस लाख रथ उन्होंने दिये ॥ २५ ॥ २६ ॥ जिनमें सौ-सौ घोड़े जुते थे, जो सुवर्णके बने थे और सूर्यके समान जिनका तेज था, ऐसे भी अनेक रथ दिये । चन्द्रमाके समान जिनका श्वेत वर्ण था, ऐसे दस अरब घोड़े दिये ॥२७॥ कुवेरने चार लाख मणिजटित पालकियाँ दीं और पिंजड़ेमें बन्द दो लाख सिंह दिये ॥ २८ ॥ हे विदेहराज ! कुवेरने एक करोड़ चीते, एक करोड़ मृग, एक करोड़ नीलगाय और एक करोड़ शिकारी कुत्ते दिये ॥२९॥ पिंजड़ेमें रहकर मनोहर बोल बोलनेवाले एक लाख तोते, एक लाख मैना, एक लाख सुवर्णवर्णके हंस तथा पिंजड़ेमें स्थित अनेक प्रकारके लाखों पक्षी दिये । तदनन्तर विष्णुभगवान्‌का दिया हुआ ऐसा विमान दिया, जिसमें मोतियोंकी झालर तथा चँदोवे लटके हुए थे ॥३०॥३१॥ वह विमान आठ योजन ऊँचा, नौ योजन विस्तृत और एक लाख सुनहरे कलशोंसे युक्त था। वह विश्वकर्माका बनाया हुआ था ॥ ३२ ॥ उसमें सोनेके शिखर थे, हजार सूर्य जैसा उसका तेज था, वह आरोहीकी इच्छाके अनुसार चलता था, उसमें हजार प्रकारके वृक्ष थे और सौ कामधेनु गायें उसमें थीं ॥३३॥ उस विमानमें सौ चिन्तामणि और सौ ही ऐसे पारस पत्थर थे, जिनका स्पर्श होते ही लोहा सोना बन जाता था ॥३४॥ छत्र तथा चमर युक्त सौ सुनहरे सिंहासन और कभी न कुम्हलानेवाली दिव्य कमलोंकी किंजल्किनी माला भी उसमें थी ॥ ३५ ॥ उसके साथ कुवेरने अमृतके सौ घट भी दिये । एक करोड़ जड़ाऊ सोनेके गहने तथा वस्त्र दिये ॥ ३६ ॥ करोड़ों सुन्दर कम्बल, करोड़ों पात्र, अमोघ शस्त्रास्त्र तथा एक करोड़ मोहरोंसे भरे थाल दिये ॥ ३७ ॥ बोझा ढोनेवाले मनुष्यों द्वारा हाथियोंपर लदवाकर कुवेरने महात्मा प्रद्युम्नको नवों निधियोंकी भेंट दी ॥ ३८ ॥ तदनन्तर कुवेरने प्रद्युम्नकी प्रदक्षिणा करके प्रणाम किया और अत्यानन्दित होकर कहा । कुवेर बोले—आप परम पुरुष भगवान् तथा महात्मा हैं । मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ३९ ॥ आप अनादि हैं, सर्वज्ञ हैं, निर्गुण हैं और महात्मा हैं, आप प्रधान पुरुषके भी ईश्वर और प्रत्यग्धामा हैं, ऐसे आपको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४० ॥ आप स्वयं ज्योतिस्वरूप, श्याम वपुवाले वासुदेव तथा संकर्षण

दर्पकाय च कामाय पंचबाणाय ते नमः। अनंगाय नमस्तुभ्यं नमस्ते शम्बरारये ॥४३॥
हे मन्मथ नमस्तुभ्यं नमस्ते मीनकेतन। मनोभवाय देवाय नमस्ते कुसुमेषवे ॥४४॥
अनन्यज नमस्तेऽस्तु रतिभर्त्रे नमो नमः। नमस्ते पुष्पधनुषे मकरध्वज ते नमः ॥४५॥
स्मराय प्रभवे नित्यं जगद्विजयकारिणे। नमो रुक्मवतीभर्त्रे सुंदरीपतये नमः ॥४६॥

इदं करिष्यामि करोमि भूमन्ममेदमस्तीति तवेदमाब्रुवन्।
अहं सुखी दुःखयुतः सुहृज्जनो लोको ह्यहंकारविमोहितोऽखिलः ॥४७॥
प्रधानकालाशयदेहजैर्गुणैः कुर्वन् विकर्माणि जनो निबद्धयते।
काचेऽर्भकं सैकत एव जीवनं गुणे च सर्पं प्रतनोति सोऽक्षिभिः ॥४८॥
कृतं मया हेलनमद्य मौढ्यतस्त्वन्मायया मोहितचेतसा प्रभो।
न मन्यसे बालकृतं पितेव हि माभूत्पुनर्मे मतिरीदृशी मनाक् ॥४९॥
सदा भवेत्त्वच्चरणारविंदयोर्भक्तिं परां यां च विदुर्गरीयसीम्।
ज्ञानं च वैराग्ययुतं शिवास्पदं देहि प्रशस्तं निजसाधुसंगमम् ॥५०॥

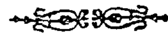
श्रीनारद उवाच

प्रद्युम्नस्य शुभं स्तोत्रं प्रातरुत्थाय यः पठेत्। संकटे तस्य सततं सहायः स्याद्धरिः स्वयम् ॥५१॥
इत्युक्तवंतं यक्षेशं प्रद्युम्नो भगवान्हरिः। तथाऽस्तूक्त्वा ददौ राजन्पद्मरागशिरोमणिम् ॥५२॥
माभैष्टेत्यभयं दत्त्वा लीलाछत्रं सचामरम्। सिंहासनं मणिमयं प्रादाच्छ्रीयादवेश्वरः ॥५३॥
कार्ष्णिं प्रदक्षिणीकृत्य राजराजो धनेश्वरः। जितं श्रुत्वा राजराजं प्रद्युम्नेन महात्मना ॥५४॥
न केऽपि युयुधुस्तेन राजानश्च बलिं ददुः। अथ कार्ष्णिर्महाबाहुर्नादयन्दुन्दुभीन्बहून् ॥५५॥

हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ ४१ ॥ आप ही प्रद्युम्न, अग्निरुद्ध और सात्वतोंके स्वामी हैं। आपको नमस्कार है। आप ही मदन, मार और कन्दर्प हैं, आपको नमस्कार है ॥ ४२ ॥ आप ही दर्पक, काम तथा पंचबाण हैं। आपको नमस्कार है। आप ही अनंग और शम्बर दैत्यके शत्रु हैं, आपको नमस्कार है ॥ ४३ ॥ हे मन्मथ! आपको नमस्कार है। आप ही मीनकेतन, मनोभव और कुसुमशर है। आपको नमस्कार है ॥४४ ॥ आप अनन्यज, रतिके पति और मकरध्वज हैं, आपको नमस्कार हैं ॥ ४५ ॥ आप स्मर हैं, नित्य जगत्को विजय करनेवाले हैं, रुक्मवतीके स्वामी हैं और सुन्दरीके भर्ता हैं। आपको नमस्कार है ॥ ४६ ॥ हे भूमन्! मैं यह करूँगा, यह करता हूँ, यह मेरा है, यह तुम्हारा है, मैं सुखी हूँ, मैं दुखी हूँ और ये मेरे सुहृद् हैं, ऐसा कहनेवाले सब लोग अहंकारसे मोहित हैं ॥४७॥ माया, काल, प्रकृति, अन्तःकरण और देह, इनके द्वारा उत्पन्न विषय, कर्म तथा इन्द्रियोंसे कुकर्म करता हुआ मनुष्य बँधता है। जैसे लोगोंको काँचपर बालक, वालुकामें जल और रस्सीमें सर्प दिखायी देता है ॥ ४८ ॥ हे प्रभो! मूर्खतावश मैंने आपकी बड़ी अवहेलना की है। क्योंकि मैं आपकी मायासे मोहित हो गया था। किन्तु जैसे पिता पुत्रके अपराधको क्षमा कर देता है, वैसे ही आप अपराध क्षमा कर देते हैं। भविष्यमें कभी मेरी ऐसी बुद्धि न हो ॥ ४९ ॥ आपके चरणकमलोंमें मेरी परा भक्ति बनी रहे, मुझे वैराग्ययुक्त तथा कल्याणकारी ज्ञान प्राप्त हो। इसके साथ ही आप मुझे उत्तम साधुसंग प्रदान करिए ॥५०॥ नारदजी बोले—हे राजन्! प्रद्युम्नके इस शुभ स्तोत्रको प्रातःकाल उठकर जो प्राणी पढ़ता है तो संकटकालमें स्वयं श्रीकृष्णभगवान् उसकी सहायता करते हैं ॥ ५१ ॥ ऐसा कहते हुए यक्षराज कुबेरको प्रद्युम्न भगवान्ने तथास्तु कहा। यह स्वीकारात्मक वचन कहकर प्रद्युम्नने कुबेरको पद्मरागमणिकी एक शिरोमणि प्रदान की ॥ ५२ ॥ 'आप किसी प्रकारका भय न करें' ऐसा अभय देकर यादवेश्वर प्रद्युम्नने कुबेरको लीलाछत्र, चमर और मणिजटित सिंहासन दिया ॥ ५३ ॥ तदनन्तर राजराज कुबेर श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्नकी परिक्रमा करके चले गये। महात्मा प्रद्युम्नसे कुबेरको पराजित सुनकर फिर किसी राजाने उनसे युद्ध नहीं किया। सबने उन्हें भेंट दे दी। इसके बाद वे नगाड़े बजवाते हुए अपनी विशाल वाहिनीके साथ

समस्तवाहिनीयुक्तः प्राग्ज्योतिषपुरं ययौ । भौमासुरसुतो नीलो धर्षितस्तस्य तेजसा ॥५६॥
सद्यस्तस्मै बलिं प्रादात्प्रद्युम्नाय महात्मने । प्राग्ज्योतिषपुरद्वारि द्विविदो नाम वानरः ॥५७॥
पुरा प्रद्युम्नबाणेन ताडितो यो महाबलः । समुत्थाय रुषाविष्टो दशनैर्नखरैः खरैः ॥५८॥
विदार्य वीरानश्वांश्च भ्रूभंगैः प्रजगर्ज ह । लांगूलेन रथान्बद्ध्वा प्राक्षिपल्लवणांभसि ॥५९॥
गृहीत्वा स गजान्दोर्भ्यां विचिक्षेपांबरे बलात् । शत्रुं ज्ञात्वा कपिं कार्ष्णिः प्रतिशार्ङ्गे शरं दधे ॥६०॥
नीत्वा शरस्तं सहसा भ्रामयित्वांबरे बलात् । पूर्ववत्पातयामास किष्किंधायां महाकपिम् ॥६१॥
पुनरागतवान्बाणः प्रद्युम्नस्येषुधौ स्फुरन् ॥६२॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसम्वादे यक्षदेशविजयो नाम पंचविंशोऽध्यायः ॥२५॥



अथ षड्विंशोऽध्यायः

(प्रद्युम्नकी किंपुरुषखण्डपर विजय)

श्रीनारद उवाच

अथ कार्ष्णिः परान्देशान्दिव्यद्रुमलताकुलान् । सहस्रपत्रवद्भिश्च सरोभिः शोभितान् ययौ ॥ १ ॥
अक्षौहिणीशतयुतः प्रद्युम्नश्चण्डविक्रमः । यक्षैर्दिष्टेन मार्गेण खंडं किंपुरुषं ययौ ॥ २ ॥
रङ्गवल्लीपुरं यत्र हेमकूटगिरेरधः । तस्य किंपुरुषा ऊचुः शंबरारेश्च शृण्वतः ॥ ३ ॥

किंपुरुषा ऊचुः

अहोऽतिधन्या मधुरापुरी वरा बभूव यस्यां परमेश्वरो हरिः ।
अहोऽतिधन्यं सततं यदोः कुलं जातो हि यस्मिन्नखिलांडपालकः ॥ ४ ॥
धन्यं च तच्छूरसुतस्य मन्दिरं गोलोकनाथेन मनोहरं कृतम् ।
धन्यं परं माथुरमंडलं सुरैः सुदुर्लभं यत्र चचार माधवः ॥ ५ ॥

प्राग्ज्योतिषपुर गये। वहाँ भौमासुरका पुत्र नील राज करता था। वह प्रद्युम्नके तेजसे प्रभावित हो गया ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ अतएव उसने शीघ्र उन्हें भेंट दे दी। प्राग्ज्योतिषपुरके द्वारपर महाबली द्विविदनामका वानर रहता था ॥ ५७ ॥ पूर्वकालमें प्रद्युम्नने अपने बाणसे उसे मारा था। इस समय वह क्रुद्ध होकर दाँतों और तीखे नखोंसे यादववीरों तथा घोड़ोंको चीरने तथा अपनी पूँछमें लपेट-लपेटकर लवणसमुद्रमें फेंकने लगा। उसके साथ ही उसने घोर गर्जन किया ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ उसने अपने हाथोंसे हाथियोंको पकड़कर आकाशमें फेंक दिया। तब प्रद्युम्नने उस बन्दरको शत्रु जानकर शार्ङ्गके सदृश धनुषपर बाण चढ़ाया ॥६०॥ उस बाणने द्विविद वानरको उठाकर आकाशमें कई बार घुमाया और वेगके साथ किष्किन्धापर फेंक दिया ॥ ६१ ॥ इतना काम करके वह बाण फिर प्रद्युम्नके तरकसमें लौट आया ॥ ६२ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे 'प्रियंवदा'-भाषाटीकायां पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन्! इसके बाद श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्न ऐसे दूसरे देशोंको गये, जहाँ दिव्य वृक्ष तथा लतायें थीं और सहस्रदल कमल फूले हुए थे ॥१॥ सौ अक्षौहिणी सेना साथ लेकर प्रचण्ड पराक्रमी प्रद्युम्न यक्षोंके बताये मार्गसे किंपुरुष खंडकी ओर चले ॥ २ ॥ हेमकूट पर्वतकी तलैटीमें बसा रंगवल्लीपुर नामका एक नगर था। वहाँके किंपुरुष प्रद्युम्नके आगमनका समाचार सुनकर बोले ॥ ३ ॥ किंपुरुषोंने कहा—अहो! मधुरापुरी अतिधन्य है, जहाँ परमेश्वर श्रीहरिका जन्म हुआ है। अहो! यदुकुल भी अति धन्य है, जिसमें अखिल ब्रह्माण्डके पालक भगवान् कृष्ण जायमान हुए हैं ॥ ४ ॥ शूरसुत वसुदेवका महल भी धन्य है, जिसको गोलोकनाथ श्रीकृष्णने सुन्दर बनाया है। सर्वाधिक धन्य माथुर मण्डल है, जो देवताओंको भी दुर्लभ

महावनं धन्यतमं मनोहरं पितुर्गृहाद्यत्र गतो हरिः शिशुः ।
चचार कृष्णः शिशुना बलेन हि यशोदया दुग्धमुखः सुलालितः ॥ ६ ॥
वृंदावनं पुण्यतमं परात्परश्रीकृष्णपादांबुजरेणुराजितम् ।
गाः पालयन् यत्र चचार बालो गोपालबालैः सबलः स्वयं हरिः ॥ ७ ॥
यो दानलीलां किल मानलीलां श्रीरासलीलां व्रजसुन्दरीभिः ।
वृन्दावने यत्र चचार कृष्णो यस्यापि गायन्ति यशस्त्रिलोकाः ॥ ८ ॥
अहोऽतिधन्या वृषभानुनंदिनी लीलावती सा निजलोकशालिनी ।
चचार कृष्णेन कलिंदनंदिनीतटे मिलिन्दध्वनिसंकुले वने ॥ ९ ॥
अहोऽतिधन्याऽस्ति कलिन्दनंदिनी श्रीकृष्णवामांससमुद्भवा या ।
तटे मिलिन्दध्वनिसंकुले वटे तत्स्पर्शनाद्याति नरः कृतार्थताम् ॥१०॥
समुद्भवो यो हरिवक्षसो गिरिर्गोवर्द्धनो नाम गिरींद्रराजराट् ।
विराजते स व्रजमंडले परो यद्दर्शनाज्जन्म पुनर्न विद्यते ॥११॥
अहोऽतिधन्या यदुमण्डलीभिर्विराजते भूमितले मनोहरा ।
वैकुण्ठलीलाधिकृता कुशस्थली यथा तडिद्भिर्जलदावलिर्दिवि ॥१२॥
यत्रैव साक्षात्पुरुषः परेश्वरो धृत्वा चतुर्व्यूहमलं विराजते ।
यस्तूग्रसेनाय ददौ नृपेशतां कृष्णाय तस्मै हरये नमो नमः ॥१३॥
प्रणोदितस्तेन नृपेण धीमता जगद्विजेतुं मकरध्वजो महान् ।
कृत्वाऽथ तद्दर्शनमद्य दुर्लभं वयं कृतार्था हि भवेम सर्वतः ॥१४॥

श्रीनारद उवाच

इत्थं हरिर्नृपयशो विशदैश्चरित्रैरुद्यत्त्रिलोकममलं विशदीचकार ।
पूर्णेंदुरश्मिमिलितैस्तरलैः स्फुरद्भिः प्रोद्यद्भिरुद्भज इवामलसिंधुदुग्धम् ॥१५॥

रहता है और जहाँ साक्षात् लक्ष्मीपति विचरते रहते हैं ॥५॥ महावन भी अतीव धन्य और मनोहर है। जहाँ पिताके घरसे बालक श्रीकृष्ण बलदेवजीके साथ गये। वहाँ गोपबालकोंके साथ खेले और यशोदाने दूध पिलाकर उन्हें पाला ॥६॥ परम पुनीत वृन्दावन धन्यतम है। क्योंकि वह परात्पर परमेश्वर श्रीकृष्णके चरणारविन्दकी धूलिसे शोभायमान है और वहाँ गोपबालकों तथा बलदेवके साथ श्रीकृष्ण गौवें चराते हुए विचरे ॥ ७ ॥ और व्रजगोपियोंके साथ दानलीला, मानलीला तथा रासलीला की। जिनका यश तीनों लोक गाते हैं ॥ ८ ॥ अहो! अतीव धन्य वृषभानुनन्दिनी एवं लीलावती राधा हैं, जो भगवान्‌के निजी लोक (गोलोक) की निवासिनी हैं। जिन्होंने श्रीकृष्णके साथ भ्रमरावलीकी ध्वनिसे संकुल वनमें कालिन्दीके तटपर विहार किया ॥ ९ ॥ अहो! कालिन्दी (यमुना) भी बड़ी धन्य है, जो श्रीकृष्णके वामांगसे उत्पन्न हुई है। वहाँ ही भ्रमरोंकी ध्वनिसे मुखरित वंशीवट है, जिसके स्पर्शमात्रसे मनुष्य कृतार्थ हो जाता है ॥ १० ॥ जो भगवान्‌के वक्षस्थलसे उत्पन्न हुआ है, वह गोवर्धन पर्वत पर्वतोंके राजाओंका राजा भी है और व्रजमण्डलमें विराजमान है। जिसका दर्शन कर लेनेसे मनुष्यको फिर जन्म नहीं लेना पड़ता ॥ ११ ॥ अहो! अतिशय धन्य द्वारकापुरी है। क्योंकि मनोहर वैकुण्ठलीलासे अधिकृत होकर वह भूतलमें यादवोंकी मण्डलीसे इस प्रकार शोभित होती है, जैसे आकाशमें बिजलीसे मेघवृन्द शोभित होता है ॥ १२ ॥ जहाँ साक्षात् परेश्वर पुरुष चतुर्व्यूह रूप धारण करके अतिशय शोभित होते हैं। जिन्होंने उग्रसेनको राजाओंका राजा बना दिया, उन श्रीकृष्ण भगवान्‌को हमारा नमस्कार है—नमस्कार है ॥ १३ ॥ उन्हीं बुद्धिमान् राजा उग्रसेनने समस्त जगत्‌को जीतनेके लिए मकरध्वजस्वरूप प्रद्युम्नको भेजा है, जिनका दुर्लभ दर्शन प्राप्त करके आज हम सब लोग सर्वथा कृतार्थ हो

इत्थं यशः स्वममलं नृप शंवरारिः श्रुत्वाऽतिहर्षिततनुः प्रददौ धनानि ।
केयूरहारनवरत्नमनोहराणि तेभ्यः किरीटमणिकुण्डलकंकणानि ॥१६॥
रङ्गवल्लीपुराधीशः सुवाहुश्चन्द्रवंशजः । नत्वा वलिं ददौ सोऽपि प्रद्युम्नाय महात्मने ॥१७॥
तस्मै प्रसन्नो भगवान् प्रद्युम्नो मीनकेतनः । दत्त्वा चूडामणिं दिव्यं पप्रच्छेदं महामनाः ॥१८॥

श्रीप्रद्युम्न उवाच

रङ्गवल्लीपुरस्यापि नाम केन प्रकाशितम् । एतद्ब्रूहि सुवाहो मे श्रुतं पूर्वं त्वया किल ॥१९॥

सुवाहुरुवाच

देवासुरैः पुरा राजन्मथितः क्षीरसागरः । विनिर्गतानि मथनाद्रत्नानि च चतुर्दश ॥२०॥
निःसृतं कलशं तस्मात्सुधापूर्णं मनोहरम् । तं ददर्श हरिः साक्षान्नेत्राभ्यां पुष्करेक्षणः ॥२१॥
तन्नेत्रहर्षविन्दुश्च कलशे निपपात ह । तस्माद्वृक्षः समुद्भूतस्तुलसीति प्रकथ्यते ॥२२॥
रङ्गवल्लीति तन्नाम चकार मधुसूदनः । अत्र किंपुरुषे खंडे हेमकूटगिरेरधः ॥२३॥
तस्याश्च रङ्गवल्याः कौ स्थापनां स चकार ह । रङ्गवल्लीमहावृक्षः सदाऽत्रैव विराजते ॥२४॥
तन्नाम्ना प्रसिद्धमभूद्रंगवल्लीपुरं त्विदम् । अत्र नित्यं हि हनुमानार्ष्टिषेणेन रागिणा ॥२५॥
दर्शनार्थं समायाति महात्मा रामपूजकः । इति श्रुत्वा शंवरारी रङ्गवल्लीं मनोहराम् ॥२६॥

श्रीनारद उवाच

दृष्ट्वा प्रदक्षिणीकृत्य देशानन्यान्जगाम ह । हेमकूटतटीभूतं वनं प्राप्तं भयङ्करम् ॥२७॥
झिल्लीझंकारसंयुक्तं सिंहचित्रकनादितम् । वन्यैः करींद्रैः संयुक्तं शिवोलूकरुतावृतम् ॥२८॥
कीचकाश्वत्थमन्दारवटभूर्जसमाकुलम् । कृष्णाहरीतकीवल्लीवदरैः सघनं वनम् ॥२९॥
तस्माद्विनिर्गतः सर्पो दशयोजनलंवितः । अग्रसद्गजवृंदानि फूत्कारं कारयन्मुहुः ॥३०॥

जायँगे ॥१४॥ श्रीनारदजी वोले—हे राजन् ! इस प्रकार प्रद्युम्न अपने यश तथा उज्ज्वल चरित्रोंसे उन्नत होते हुए स्वतः उज्ज्वल त्रिलोकीको और भी उज्ज्वल करने लगे, जैसे पूर्णिमाके पूर्ण चन्द्रकी किरणोंसे मिलकर उठती हुई प्रकाशमयी तरंगोंसे निर्मल समुद्रका दुग्ध जैसा जल और भी श्वेत हो जाता है ॥ १५ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार अपने निर्मल यशको सुनकर प्रसन्न शम्वरारि प्रद्युम्नने वहाँवालोंको पुष्कल धन तथा हार, वाजूवन्द, नवरत्न, मनोहर किरीट, मणिजटित कुण्डल और कंकण दिये ॥ १६ ॥ तदनन्तर रंगवल्लीपुरके नरेश चन्द्रवंशी सुवाहुने प्रद्युम्नको प्रणाम करके भेंट दी ॥ १७ ॥ उस राजापर प्रसन्न भगवान् प्रद्युम्नने दिव्य चूड़ामणि देकर यह वात पूछी । प्रद्युम्न वोले—हे राजा सुवाहु ! मुझे यह वताइए कि इस पुरका रंगवल्लीपुर नाम किसने प्रसिद्ध किया है ? इस विषयमें आपने किसीसे कुछ अवश्य सुना होगा ॥ १८ ॥ १९ ॥ सुवाहुने कहा—हे राजन् ! पूर्वकालमें देवताओं और दैत्योंने मिलकर समुद्रका मंथन किया था । तव समुद्रसे चौदह रत्न निकले ॥ २० ॥ फिर उसमेंसे अमृतभरा एक मनोहर कलश निकला । तव पुष्करेक्षण विष्णुभगवान्‌ने उसे देखा ॥ २१ ॥ सहसा उनके नेत्रसे एक वूँद हर्षका आँसू निकलकर उस कलशमें गिर पड़ा । उसी आँसूसे एक वृक्ष उत्पन्न हो गया, जिसे लोग तुलसी कहते हैं ॥ २२ ॥ भगवान् मधुसूदनने उसका नाम रंगवल्ली रख दिया । सो यहाँ किंपुरुष खण्डमें इस हेमकूट पर्वतके नीचे उस रंगवल्लीको उन्हीं महाप्रभुने भूमिपर स्थापित कर दिया । रंगवल्ली वहुत वड़ा वृक्ष है । वह सदा यहीं रहता है ॥ २३ ॥ २४ ॥ उसीके नामपर इस स्थानका रंगवल्लीपुर नाम पड़ा है । यहाँ सदा रामपूजक हनुमान्‌जी आर्ष्टिषेण गन्धर्वके साथ आते हैं । श्रीनारदजी वोले—हे राजन् ! इस प्रकार शम्वरारि प्रद्युम्न रंगवल्लीपुरविषयक कथानक सुनकर उस वृक्षको देखने गये । उसका दर्शन-पूजन करके वे अन्य देशोंकी यात्रापर चल पड़े । कुछ दूर जानेपर हेमकूटकी तलैटीमें उन्होंने एक भीषण वन देखा । उसमें झिल्लियों (झींगुरों)का झंकार हो रहा था । सिंह-चीते गर्जन कर रहे थे । हाथी घूम रहे थे । गीदड़ तथा उल्लू रो रहे थे ॥२५–२८॥ छेदवाले वाँस, पीपल, वकायन, वरगद, भोज-

हाहाकारे तदा जाते सेनायां मैथिलेश्वर । प्रचण्डगरलैर्वातैर्भस्मीभूते दिशांतरे ॥३१॥
भानुः सुभानुः स्वर्भानुः प्रभानुर्भानुमांस्तथा । चंद्रभानुर्बृहद्भानुरतिभानुस्तथाऽष्टमः ॥३२॥
श्रीभानुः प्रतिभानुश्च सत्यभामात्मजा दश । एते जघ्नुः शरैस्तीक्ष्णैः सर्पं रौद्रं मदोत्कटम् ३३॥
बाणैः संभिन्नसर्वांगः पतितो धरणीतले । सर्परूपं विहायाशु गंधर्वोऽभूत्स्फुरद्द्युतिः ॥३४॥
नत्वा श्रीकृष्णपुत्रांस्तान् द्योतयन् मंडलं दिशाम् । पुष्पैर्वर्षत्सु देवेषु विमानेन दिवं ययौ ॥३५॥

बहुलाश्व उवाच

गंधर्वोऽयं तु कः पूर्वं केन पापेन सर्पताम् । प्राप्तः कथं वद मुने त्वं परावरवित्तमः ॥३६॥

श्रीनारद उवाच

आर्ष्टिषेणस्य यो भ्राता सुमतिर्नाम सुन्दरः । रामायणं हनुमता पठितुं स समागतः ॥३७॥
हेमकूटे हनुमतः कुर्वतो रामसेवनम् । प्रातःकालात्समारस्य घटिकाश्च चतुर्दश ॥३८॥
सलक्ष्मणं रामचंद्रं ध्यायतो जानकीपतिम् । फूत्कारैः सर्पवत्तस्य ध्यानभंगं चकार ह ॥३९॥
तदा क्रुद्धो महावीरो हनुमान् वानरेश्वरः । शापं ददौ सुमतये त्वं सर्पो भव दुर्मते ॥४०॥
तदैव तस्य चरणौ नत्वा प्राह कृतांजलिः । हे देव पाहि पाहीति दीनं मां शरणं गतम् ॥४१॥
अथ प्रसन्नो भगवान्सुमतिं प्राह धर्मवित् । द्वापरांते शरैस्तीक्ष्णैर्हरिपुत्रधनुश्च्युतैः ॥
भिन्नदेहः स्वां प्रकृतिं यास्यसि त्वं न संशयः ॥४२॥
गंधर्वः सुमतिर्नाम विमुक्तोऽभूद्विदेहराट् । सतां शापोऽपि वरवद्वरो मोक्षार्थदः किमु ॥४३॥
अथ कार्ष्णिर्महाबाहुश्चैत्रदेशान्मनोहरान् । वसन्तमाधवीवृंदैः शोभितान्स जगाम ह ॥४४॥

पत्र, छोटी हड़, बेर और मोथोंके आधिक्यसे वह वन और भी सघन हो गया था ॥ २९ ॥ सहसा उस वनमें दस योजन लम्बा एक सर्प निकला। वह बारम्बार फुफकारता हुआ हाथियोंको निगलने लगा ॥३०॥ हे मिथिलेश ! यह देखकर यादवी सेनामें हाहाकार मच गया और उस सर्पके प्रचण्ड विषभरे पवनसे सभी दिशायें और दिशान्तर भस्म होने लगे ॥ ३१ ॥ तब भानु, सुभानु, स्वर्भानु, प्रभानु, भानुमान्, चन्द्रभानु, बृहद्भानु, अतिभानु, श्रीभानु और प्रतिभानु ये दसों सत्यभामाके पुत्र उस भयंकर सर्पको तीक्ष्ण बाणोंसे मारने लगे ॥ ३२ ॥ ॥ ३३ ॥ उन बाणोंकी मारसे उस सर्पके अंग छिन्न-भिन्न हो गये और वह तत्काल सर्पदेह त्यागकर देदीप्यमान कलेवरका गन्धर्व हो गया ॥ ३४ ॥ उसने श्रीकृष्णके भानु-सुभानु आदि पुत्रोंको प्रणाम किया और दसों दिशाओंमें प्रकाश फैलाता हुआ दिव्य विमानमें बैठकर स्वर्गको चला गया। उस समय देवता उसके ऊपर फूल बरसा रहे थे ॥ ३५ ॥ यह कथा सुनकर राजा बहुलाश्व बोले—हे देवर्षे ! वह गन्धर्व पिछले जन्ममें कौन था ? आप तो भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालका हाल जानते हैं, सो कहिए ॥ ३६ ॥ नारदजी बोले–हे राजन् ! आर्ष्टिषेण गन्धर्वका एक भाई सुमति था। वह बहुत सुन्दर था। एक बार वह रामायण पढ़नेके लिए हनुमान्जीके पास गया ॥ ३७ ॥ हेमकूट पर्वतपर हनुमान्जी प्रातःकालसे दोपहरतक चौदह घड़ी श्रीरामजीकी सेवा किया करते थे ॥ ३८ ॥ उतने समयतक हनुमान्जी लक्ष्मण समेत सीतापति रामका ध्यान करते थे। उसी समय सुमति गन्धर्वने साँपकी तरह फुफकार करके उनका ध्यान भंग कर दिया ॥ ३९ ॥ इससे महावीर हनुमान्जी रुष्ट हो गये और सुमतिको शाप देते हुए कहा—अरे दुर्बुद्धे ! तू सर्प हो जा ॥ ४० ॥ शाप सुनकर सुमति हनुमान्जीके चरणोंपर गिर पड़ा और हाथ जोड़कर कहने लगा—हे देव ! मेरी रक्षा करिए–रक्षा करिए। मैं एक दीन हूँ और आपकी शरणमें आया हूँ ॥ ४१ ॥ इससे प्रसन्न होकर हनुमान्जीने कहा—द्वापरके अन्तमें श्रीकृष्णके पुत्रोंके धनुषसे छूटे तीखे-तीखे बाणोंसे कटकर जब तुम्हारा शरीर गिर जायगा, तब तुमको पुनः गन्धर्वशरीर प्राप्त हो जायगा ॥४२॥ सो हे विदेहराज ! इस प्रकार सुमति गन्धर्व शापमुक्त हो गया। सन्तोंका शाप भी वरदानके समान ही होता है। तब फिर वह वर यदि मुक्तिदायक हो जाय तो क्या आश्चर्य है ॥४३॥ तदनन्तर कृष्णपुत्र प्रद्युम्न चैत्र देशको गये, जो

सहस्रदलपद्मानां षट्पदध्वनिशालिनाम् । पतन्ति रेणवो यत्र सरःस्वाबीरचूर्णवत् ॥४५॥
एलालवंगलतिकाः क्षुण्णाः सैन्यांघ्रिभिः पथि । तेन भृङ्गावली रेजे करिकर्णप्रताडिता ॥४६॥
यत्र वै पुरुषा राजन्नागायुतसमा बले । वलीपलितदौर्गन्ध्यस्वेदक्लमविवर्जिताः ॥४७॥
त्रेतायुगसमः कालो वर्तते यत्र नित्यशः । आयुश्चायुतवर्षाणां दिव्यौषधिनदीगुणैः ॥४८॥
पीयूषतुल्यं तोयं च हेमभूमिर्विराजते । मुक्ताविद्रुमवैडूर्यरत्नोत्पत्तिश्च यत्र वै ॥४९॥
सुंदर्यः प्रमदा रामा नित्ययौवनभूषिताः । स्फुरंत्युपवनेष्वारात्सौदामिन्यो घनेष्विव ॥५०॥
यत्र वै नगरी रम्या वसंततिलका शुभा । श्रृंगारतिलको नाम राजा यत्र महाबलः ॥५१॥
जैत्रान् वीरान् समाहूय गजमारुह्य दंशितः । योद्धुं विनिर्ययौ यश्च प्रद्युम्नस्यापि संमुखे ॥५२॥
सांबः सुमित्रः पुरुजिच्छतजिच्च सहस्रजित् । विजयश्चित्रकेतुश्च वसुमान्द्रविडः क्रतुः ॥५३॥
जांबवत्याः सुता ह्येते चक्रुर्नाराचदुर्दिनम् । पलायितेषु चैतेषु बाणैर्भिन्नेषु मैथिल ॥५४॥
बाणांधकारे संजाते महान्कोलाहलो ह्यभूत् । तदा श्रृंगारतिलको गजारूढो महाबलः ॥५५॥
त्रिशूलेन तदा साम्बं हृदि विव्याध रोषतः । अन्यान्संपातयामास शरैः कोदंडनिर्गतैः ॥५६॥
एकाकी विचरन् युद्धे वने वैश्वानरो यथा । तदा गदः समागत्य तद्गजं सुमदोत्कटम् ॥५७॥
शुंडादंडे संगृहीत्वा पातयामास भूतले । दूरे प्रपतितः शीघ्रं श्रृंगारतिलको नृपः ॥५८॥
सद्यो भयातुरो भूत्वा युद्धे बद्धांजलिः स्वतः । तुरंगाणामर्बुदं च रथानां लक्षमेव च ॥५९॥
गजानामयुतं राजा प्रद्युम्नाय बलिं ददौ । इत्थं किंपुरुषं खंडं जित्वा कार्ष्णिर्महाबलः ॥६०॥
निषाददर्शितैर्मार्गैर्हरिवर्षं ततो ययौ ॥६१॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे नारदबहुलाश्वसंवादे किंपुरुषखंडविजयो नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

वसन्त ऋतु तथा माधवी लताओंसे सुशोभित था ॥४४॥ जिनपर भ्रमरोंका गुंजार होता रहता था, ऐसे सहस्र-दल कमलोंकी रज सरोवरोंमें अबीरके समान बरसती रहती थी ॥ ४५ ॥ वहाँ इलायची तथा लवंगकी लतायें यादवी सेनाके पैरोंसे रौंद गयीं और हाथियोंके कानोंसे ताडित भ्रमरोंकी पंक्ति सुशोभित होने लगी ॥ ४६ ॥ हे राजन् ! वहाँके पुरुषोंमें दस हजार हाथियोंका बल रहता है, उनके बाल कभी सफेद नहीं होते, उनके शरीरमें न कभी झुर्रियाँ पड़ती हैं और न दुर्गन्ध आती है ॥ ४७ ॥ वहाँपर नित्य त्रेतायुग बना रहता है, दिव्य औषधियों तथा नदियोंके गुणसे वहाँके मनुष्योंकी आयु दस-दस हजार वर्षकी होती है ॥ ४८ ॥ वहाँका जल अमृत तुल्य होता है, वहाँकी भूमि स्वर्णमयी है और मोती, मूँगे और वैदूर्यमणिकी उत्पत्ति होती है ॥ ४९ ॥ वहाँकी स्त्रियाँ बहुत सुन्दरी होती हैं। उनका यौवन सदा बना रहता है। वे श्रृंगार करके उपवनोंमें वैसे ही घूमा करती हैं, जैसे बादलोंमें बिजली घूमती है ॥५०॥ वहाँ ही वसन्ततिलका नगरी है और उसमें महाबली राजा श्रृंगारतिलक निवास करता है ॥ ५१ ॥ वह विजयशील वीरोंको बुला कवच पहिन तथा हाथीपर चढ़कर प्रद्युम्नके समक्ष युद्ध करने आया ॥ ५२ ॥ वहाँपर साम्ब, सुमित्र, पुरुजित्, शतजित्, सहस्रजित्, विजय, चित्रकेतु, वसुमान्, द्रविण तथा क्रतु, इन सभी जाम्ववतीके पुत्रोंने अपनी बाणवर्षासे दुर्दिन उपस्थित कर दिया। हे मिथिलेश ! इनके बाणोंकी मारसे घायल होकर शत्रुसेनाके सब सैनिक भाग खड़े हुए ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ जब बाणोंकी बौछारसे अँधेरा छा गया, तब बड़ा कोलाहल मचा। तभी हाथीपर सवार महाबली राजा श्रृंगारतिलकने बड़े क्रोधपूर्वक त्रिशूल लेकर साम्बकी छातीपर मारा। शेष जाम्ववतीके पुत्रों-को धनुषसे छूटे बाणोंसे मार-मारकर उसने धरतीपर गिरा दिया ॥५५॥५६॥ रणभूमिमें वह अकेला वीर इस प्रकार विचर रहा था, जैसे वनमें दवाग्नि विचरे। तभी सहसा गदने आकर उसके मतवाले हाथीकी सूँड़ पकड़कर पटक दिया, जिससे राजा श्रृंगारतिलक दूर जा गिरा ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ तदनन्तर भयभीत भावसे हाथ जोड़कर वह प्रद्युम्नके समक्ष आकर खड़ा हो गया और दस करोड़ घोड़े, एक लाख रथ और दस

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

(प्रद्युम्नकी हरिवर्षखंड तथा दशार्णदेशपर विजय)

श्रीनारद उवाच

हरिवर्षं नाम खंडं सर्वसंपत्तिसंयुतम् । तस्य सीमागिरिः साक्षान्निषधो नाम मैथिल ॥ १ ॥
वीरकोदंडटंकारघोषैर्व्याप्तवनांतरात् । उड्डीतास्तु महागृध्राः क्रोशमात्रवपुर्धराः ॥ २ ॥
तीक्ष्णतुंडाः सगरुडाः सर्वे दीर्घायुषो नृप । अग्रसन्सैनिकान्नागान्हयांस्तेऽपि बुभुक्षिताः ॥ ३ ॥
आकाशे पक्षिभिर्व्याप्ते जाते पक्षप्रभंजने । सेनायामंधकारेण हाहाकारो महानभूत् ॥ ४ ॥
तदा कार्ष्णिर्महाबाहुस्तार्क्ष्यमस्त्रं समादधे । तद्बाणान्निर्गतः साक्षाद्वैनतेनयः खगेश्वरः ॥ ५ ॥
सेनायामंधकारेण व्याप्तायां पतगेश्वरः । कांश्चित्तुंडप्रहारेण कांश्चित्पक्षैः स्फुरत्प्रभैः ॥ ६ ॥
गृध्रान्कुलिंगान्गरुडो पातयामास भूतले । भग्नदर्पाश्छिन्नपक्षा भक्षिताः पक्षिणश्च ते ॥ ७ ॥
भयातुरा दुद्रुवुस्ते तार्क्ष्येणापि दिशो दश । ततः कार्ष्णिर्महाबाहुर्दशार्णान् विषयान् ययौ ॥ ८ ॥
दशार्णदेशाधिपतिः शुभांगः सूर्यवंशजः । नागायुतसमो युद्धे निष्कौशांबीपुरी पतिः ॥ ९ ॥
वेदव्यासमुखाच्छ्रुत्वा प्रद्युम्नं चंडपौरुषम् । दशार्णां तां नदीं दीर्घां समुत्तीर्य समाययौ ॥१०॥
कृतांजलिः शुभांगोऽसौ किरीटेन नताननः । ददौ बलिं सुरत्नानां प्रद्युम्नाय महात्मने ॥११॥
प्रद्युम्नो भगवान् साक्षात्सर्वगः सर्वदर्शनः । पप्रच्छेदं शुभांगं तं लोकसंग्रहकाम्यया ॥१२॥

प्रद्युम्न उवाच

दशार्णोऽयं कथं देशः केन नाम्ना बभूव ह । एतन्मे ब्रूहि हे राजन्निष्कौशांबीपुरीपते ॥१३॥

शुभांग उवाच

हिरण्यकशिपुं हत्वा नृसिंहो भगवान्पुरा । प्रह्लादेन त्विहागत्य हरिवर्षे स्थितोऽभवत् ॥१४॥

हजार हाथी प्रद्युम्नको भेंटमें दिये ॥ ५९ ॥ ६० ॥ बड़े ही बलवान् प्रद्युम्न इस प्रकार किंपुरुषखंड जीतकर निषादोंके बताये मार्गसे हरिवर्षखंड जीतने चले ॥ ६१ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायां षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! हरिवर्षखंड सभी सम्पदाओंसे सम्पन्न था और निषध पर्वत उसकी सीमापर था ॥ १ ॥ वहाँ वीरोंके धनुषटंकारसे उद्विग्न होकर वनोंसे कोस-कोस भरके लम्बे-चौड़े गृध्र निकलकर उड़ने लगे ॥ २ ॥ हे राजन् ! उनकी चोंचें बड़ी तीखी थीं । वे गरुड़के समान दीर्घायु और बहुत दिनोंके भूखे थे । अतएव वे तत्काल यादवी सेनाके हाथियोंको निगलने लगे ॥ ३ ॥ इस प्रकार तनिक ही देरमें सारा आकाश उन गृध्रोंसेसे भर गया । उनके पंखोंके पवनसे उड़ी धूलके कारण चारों ओर अन्धकार छा गया । जिससे बड़ा कोलाहल मचा ॥ ४ ॥ तब महाबाहु प्रद्युम्नने गारुडास्त्रको हाथमें लिया । उस बाणका प्रयोग करनेपर उसमेंसे गरुडजी प्रकट हो गये ॥ ५ ॥ जब कि उन गृध्रोंके कारण सेनापर अन्धकार छा गया तो गरुडने कितने गृध्रोंको अपने चंचुप्रहारसे और बहुतोंको अपने देदीप्यमान पंखोंकी मारसे धराशायी कर दिया ॥ ६ ॥ इस प्रकार जितने भी गृध्र-कुलिंगादि पंछी थे, उनको गरुडने धरतीपर गिरा दिया । तब दर्प चूर होने और पंख नष्ट हो जानेपर वे सभी पक्षी भयभीत होकर दसों दिशाओंमें भाग गये । तदनन्तर महाबाहु प्रद्युम्न दशार्ण देशकी ओर अग्रसर हुए ॥ ७ ॥ ८ ॥ सूर्यवंशमें उत्पन्न दशार्णदेशका नरेश शुभाङ्ग अपनेमें दस हजार हाथियोंका बल रखता था । वह निष्कौशाम्बी नगरीमें रहता था ॥ ९ ॥ वेदव्यासके मुखसे प्रद्युम्नके पराक्रमका हाल सुनकर शुभाङ्ग विशाल दशार्ण नदी पार करके आया ॥ १० ॥ उसने हाथ जोड़ और अपना किरीट झुकाकर अभिवादन करनेके बाद महात्मा प्रद्युम्नको रत्नोंकी भेंट दी ॥ ११ ॥ जिनकी सर्वत्र गति थी और जो सर्वद्रष्टा महात्मा थे, उन प्रद्युम्नने लोकसंग्रहकी भावनासे

प्रह्लादं भगवान्प्राह नृसिंहो भक्तवत्सलः ।

नृसिंह उवाच

शांतस्य तव भक्तस्य मया पुत्र पिता हतः । तस्मान्न घातयिष्यामि वंशं ते हि महामते ॥१५॥

शुभांग उवाच

इति प्रवदतोऽक्षिभ्यामानंदजलबिंदवः । पतिताः कौ च तै राजन् सरोऽभून्मंगलायनम् ॥१६॥
तदा प्राप्तवरो राजन् प्रह्लादो हर्षविह्वलः । नृसिंहं प्राह धर्मात्मा नत्वा भूत्वा कृतांजलिः ॥१७॥

प्रह्लाद उवाच

मातुः पितुर्मया सेवा न कृता सात्वतांपते । ऋणात्तयोः कथं मुच्ये वदैतत्परमेश्वर ॥१८॥

नृसिंह उवाच

मन्नेत्रजलसंभूते तीर्थे वै मंगलायने । स्नानं कुरु महाभाग मुच्यसे दशभिर्ऋणैः ॥१९॥
मातुः पितुश्च भार्यायाः सुतानां गुरुदेवयोः । विप्राणां च प्रपन्नानामृषीणां पितृणामृणम् ॥२०॥
यः स्नास्यति महातीर्थे सर्वहेलनतत्परः । ऋणैश्च दशभिः सोऽपि मुच्यते नात्र संशयः ॥२१॥

शुभांग उवाच

दशार्णमोचने तीर्थे स्नात्वा काया धवोऽनृणी । भूत्वाऽद्यापि समायाति स्नातुं तन्निषधाद्रिरेः ॥२२॥
दशार्णमोचने तीर्थे दशार्णो देश उच्यते । तत्स्रोतःसु समुद्भूता दशार्णेयं नदी स्मृता ॥२३॥

श्रीनारद उवाच

तच्छ्रुत्वा भगवान्कार्ष्णिः सर्वैः परिचरैः सह । दशार्णमोचने तीर्थे दानं स्नानं चकार ह ॥२४॥
दशार्णमोचनस्यापि कथां यः शृणुयान्नृप । ऋणैश्च दशभिः सोऽपि मुच्यते मुक्तिभाग्भवेत् ॥२५॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीविश्वजित्खंडे नारदबहुलाश्वसंवादे दशार्णदेशविजयो नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

राजा शुभाङ्गसे पूछा ॥ १२ ॥ प्रद्युम्न बोले—हे निष्कौशाम्बीके स्वामी ! इस देशका दशार्ण नाम कैसे पड़ा ? किसके नामपर इसकी प्रसिद्धि हुई ? यह सब आप मुझे बताइए ॥ १३ ॥ राजा शुभाङ्ग बोले—प्राचीन कालमें हिरण्यकशिपुको मारनेके बाद नृसिहभगवान् प्रह्लादको लेकर हरिवर्षखंडमें आ गये और यहीं रहने लगे। तब भक्तवत्सल नृसिहभगवान् प्रह्लादसे बोले ॥ १४ ॥ नृसिहने कहा—हे पुत्र ! तुम मेरे शान्त भक्त हो। तुम्हारे पिताको मैंने ही मारा है। अतएव हे महामते ! भविष्यमें मैं तुम्हारे किसी वंशजको नहीं मारूँगा ॥१५॥ राजा शुभांग बोले—हे प्रभो ! ऐसा कहते हुए भगवान् नृसिहकी आंखोंसे कुछ आनन्दके आँसुओंकी बूँदें चू पड़ीं। उन्हीं बूँदोंसे धरतीपर एक मंगलायन सरोवर उत्पन्न हो गया ॥ १६ ॥ बादमें जब प्रह्लादको वरदान मिल गया, तब वे प्रसन्न हो और हाथ जोड़ तथा प्रणाम करके बोले ॥१७॥ प्रह्लादने कहा—हे भक्तोंके भगवान् ! मैंने माता-पिताकी कुछ भी सेवा नहीं की। तब हे परमेश्वर ! मैं उनके ऋणसे कैसे छूटूँगा, सो बताइए ॥ १८ ॥ नृसिहभगवान् बोले—हे वत्स ! तुम मेरे नेत्रजलसे उत्पन्न इस मंगलायन तीर्थमें स्नान करो तो हे महाभाग ! तुम इन दस ऋणोंसे छूट जाओगे—॥ १९ ॥ मातृऋण, पितृऋण, स्त्रीऋण, पुत्र-ऋण, गुरुऋण, देवऋण, विप्रऋण, ऋषिऋण, प्रपन्न (शरणागत) ऋण और पितरऋण, इन दसों ऋणोंसे मुक्त हो जाओगे। जिसने उपर्युक्त लोगोंकी अवज्ञा की हो, वह भी मंगलायन तीर्थमें स्नान करनेसे अवश्य ऋणमुक्त हो जाता है ॥ २० ॥ २१ ॥ राजा शुभांग बोले—दशार्णमोचन तीर्थमें स्नान करके प्रह्लाद ऋण-मुक्त हो गये। तथापि वे अब भी निषधपर्वतसे इस तीर्थमें स्नान करने आते हैं ॥ २२ ॥ इस दशार्ण तीर्थके कारण ही इस देशका दशार्ण नाम पड़ गया। उस तीर्थके स्रोतोंसे यह नदी निकली है, अतएव इसका दशार्ण नाम है ॥ २३ ॥ नारदजी बोले—हे राजन् ! यह आख्यान सुनकर अपने परिजनोंके साथ प्रद्युम्नने दशार्ण मोचन तीर्थमें स्नान-दान किया ॥ २४ ॥ इस दशार्णमोचन तीर्थकी कथा सुननेवाला भी दस ऋणोंसे

अथ अष्टाविंशोऽध्यायः

(प्रद्युम्नकी उत्तरकुरुखंडपर विजय)

श्रीनारद उवाच

अथ कार्ष्णिर्महाबाहुः सुमेरोरुत्तरान्कुरून् । ययौ शृंगवतः पार्श्वे विचित्रान्नृद्धिसंवृतान् ॥ १ ॥
भद्रां गंगां ततः स्नात्वा वाराहीं नगरीं ययौ । कुरुखंडाधिपस्तस्यां चक्रवर्ती गुणाकरः ॥ २ ॥
महासंभृतसंभारो देवर्षिगणसंवृतः । अश्वमेधं समारेभे दशमं स गुणाकरः ॥ ३ ॥
तेनोत्सृष्टं हयं श्वेतं श्यामकर्णं मनोहरम् । तस्य पुत्रो वीरधन्वा रक्षितुं निर्गतोऽभवत् ॥ ४ ॥
अक्षौहिणीभिर्दशभिर्मंडितश्चंडविक्रमः । विचचार महावीरो वीक्ष्यमाणस्तुरंगमम् ॥ ५ ॥
वीरश्चंद्रश्च सेनश्च चित्रगुर्वेगवान्नृपः । आमः शंकुर्वसुः श्रीमान्कुंतो नाग्नजितेः सुताः ॥६॥
सर्वतस्तं हयं शुभ्रं गृहीत्वा हर्षपूरिताः । कस्योत्सृष्टं वदंतस्ते कार्ष्णिसैन्यं समाययुः ॥ ७ ॥
प्रद्युम्नस्तद्भालपत्रं पठित्वा विस्मितोऽभवत् । सर्वे विसिस्मुर्यदवो गृहीतपरमायुधाः ॥ ८ ॥
तदैव सेना संप्राप्ता विचिन्वंती हयं नृप । दृष्ट्वा रजो यदुबलाद्दूरे तस्थौ सुविस्मिता ॥ ९ ॥

गुणाकरे राजनि चंडविक्रमे न दस्यवः स्युः कुरुखंडमंडले ।
गवां न कालो न हि चक्रवातकः कुतो रजः प्राप्तमहोऽर्कमंडलम् ॥१०॥
एवं वदंती परवाहिनी स्वतः कोदंडघोषं दरदस्वनं परम् ।
करींद्रचीत्कारतुरंगहेषणं वादित्रमिश्रं समुपाशृणोत्ततः ॥११॥
तदोद्धवः कृष्णसुतप्रणोदितो बलं समेत्याशु स वीरधन्वनः ।
प्रणम्य तं प्राह रथस्थितं नृपं गुणाकरस्यौरसमर्कतेजसम् ॥१२॥

उग्रसेनः क्षितीशेंद्रो द्वारकेशो यदूत्तमः । जंबूद्वीपनृपाञ्जित्वा राजसूयं करिष्यति ॥१३॥

छूटकर मुक्तिका अधिकारी बन जाता है ॥ २५ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायां सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन्! वहाँसे चलकर प्रद्युम्न सुमेरु पर्वतके उत्तरी भागमें स्थित उत्तर-कुरु प्रदेशमें गये, जो शृंगवान् पर्वतके पास था और विचित्र सम्पदाओंसे भरपूर था ॥१॥ वहाँ भद्रा गंगा नदीमें स्नान करके वाराही नगरीको गये, जहाँ कुरुखंडका चक्रवर्ती राजा गुणाकर रहता था ॥ २ ॥ उसने प्रचुर सामग्री जुटाकर बहुतेरे देवर्षियोंके साथ दसवाँ अश्वमेध यज्ञ आरम्भ किया था ॥ ३ ॥ उसने श्यामकर्ण घोड़ा छोड़ा और उसकी रक्षाके लिए उसका पुत्र वीरधन्वा चला ॥४॥ प्रचंड पराक्रमी वह महावीर दस अक्षौहिणी सेना लेकर चला और घोड़ेको देखता हुआ पृथ्वीपर विचरने लगा ॥५॥ तभी वीर, चन्द्र, अश्वसेन, चित्रगुरु, वेगवान्, आम, शंकु, वसु, श्रीमान् और कुन्त, नाग्नजितीके इन दस पुत्रोंने उस शुभ्र घोड़ेको सब ओरसे घेरकर पकड़ लिया और 'यह घोड़ा किसने छोड़ा है' यह कहते हुए उसे लेकर अपनी सेनामें चले आये ॥६॥७॥ वहाँ घोड़ेके मस्तकपर बँधा पत्र पढ़कर प्रद्युम्न तथा अन्यान्य लोग आश्चर्यमें पड़ गये और अपने शस्त्रास्त्र सम्हालने लगे ॥ ८ ॥ हे राजन्! उसी समय घोड़ेको खोजती हुई वीरधन्वाकी सेना आ गयी, किन्तु यादव-सैनिकोंकी हलचलसे उठती हुई धूलको देखकर विस्मित वह सेना दूर ही रुक गयी ॥९॥ प्रचंड पराक्रमी राजा गुणाकरके राज्यमें चोर नहीं हैं। गौओंके चरागाहसे लौटनेका भी समय नहीं है। बवंडर भी नहीं चल रहा है। तब सूर्यमण्डलको ढाँक लेनेवाली यह धूल कहाँसे आयी? ॥१०॥ दूसरी सेनाके लोग ऐसा कह ही रहे थे कि इतनेमें धनुषका टंकार, शंखनाद, हाथियोंका चिंघाड़, घोड़ोंकी हिनहिनाहट और विभिन्न वाद्योंके शब्द सुनायी देने लगे ॥ ११ ॥ तब प्रद्युम्नके द्वारा भेजे हुए उद्धव वीरधन्वाकी सेनामें गये और वहाँ रथमें बैठे सूर्यके सदृश तेजस्वी राजा गुणाकरके पुत्र वीरधन्वाको प्रणाम करके बोले—॥१२॥ हे राजन् राजाओंके राजा

तेन प्रणोदितो वीरः प्रद्युम्नो धन्विनां वरः । जित्वा तं भारतं खंडं तथा किंपुरुषं नृपः ॥१४॥
हरिवर्षं ततो जित्वा कुरुखंडं समागतः । प्रदास्यति बलिं सोऽपि प्रद्युम्नाय महात्मने ॥१५॥
अक्षौहिणीदशयुतो धनदेनापि पूजितः । उपायनं त्वया देयं प्रद्युम्नाय महात्मने ॥१६॥
तेन नीतं यज्ञपशुमाहर्तुं कः क्षमः क्षितौ । श्रीकृष्णचन्द्रो भगवान्सहायस्तस्य विद्यते ॥१७॥
शुभं स्याद्दानमानाभ्यां न चेद्युद्धं भविष्यति ।

वीरधन्वोवाच

गुणाकरो नृपेशो यः शक्रेणापि प्रपूजितः ॥१८॥
न दास्यति बलिं सोऽपि प्रद्युम्नाय महात्मने । शृंगवत्पर्वते रम्ये वाराहो विद्यते हरिः ॥१९॥
यस्य सेवां सदा भूमिः करोति परमादरात् । तस्य क्षेत्रे तपस्तेपे ध्यात्वा देवं गुणाकरः ॥२०॥
वर्षाणामयुते पूर्णे हरिर्वाराहरूपधृक् । संतुष्टो नृपतिं भक्तं वरं ब्रूहीत्युवाच ह ॥२१॥
राजोवाच हरिं नत्वा रोमांची प्रेमविह्वलः । भगवंस्त्वामृते देवोऽसुरोऽन्योऽपि नरोऽथवा ॥२२॥
मां जेता न भवेद्भूमावीप्सितोऽयं वरो मम । तथाऽस्तु चोक्त्वा भगवांस्तत्रैवांतरधीयत ॥२३॥
तस्मात्तस्य यज्ञः शीघ्रं कर्तव्यं मोचनं स्वतः । न चेद्भवद्भिश्च कलिं करिष्यामि न संशयः ॥२४॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त उद्धवस्तस्मात्स्वां सेनामेत्य भूपते । शशंस सर्वं यद्भूतं यदूनां सदसि त्वरम् ॥२५॥
श्रुतकर्मा वृषो वीरः सुबाहुर्भद्र एकलः । शांतिर्दर्शः पूर्णमासः सोमको वर एव च ॥२६॥
कालिन्दीनंदना ह्येते प्रद्युम्नस्य प्रपश्यतः । अक्षौहिणीभिर्दशभिर्वृता योद्धुं समागताः ॥२७॥
उत्तरैः कुरुभिः सार्द्धं यदूनां चण्डविक्रमैः । बभूव तुमुलं युद्धमब्धीनामब्धिभिर्यथा ॥२८॥
स्फुरद्भिर्निशितैः शस्त्रै रेजिरे वीरपुङ्गवाः । क्षणमात्रेण रुधिरप्रभवा रौद्ररूपिणी ॥२९॥

उग्रसेन द्वारका नगरीके स्वामी और सभी यादवोंमें श्रेष्ठ हैं। वे जम्बूद्वीपके सब राजाओंको जीतकर राजसूय यज्ञ करेंगे ॥ १३ ॥ उनके भेजे हुए सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर प्रद्युम्न भरतखंड, किंपुरुषखंड तथा हरिवर्षखंडको जीतकर कुरुखंडमें आये हुए हैं। सो कुरुखंडके राजा भी उनको भेंट देंगे ॥ १४ ॥ १५ ॥ क्योंकि प्रद्युम्नके साथ दस अक्षौहिणी सेना है और स्वयं कुबेरने उनका सत्कार किया है। अतएव महात्मा प्रद्युम्नको आपको भी भेंट देनी चाहिए ॥ १६ ॥ प्रद्युम्न जिस घोड़ेको लाये हैं, उसको पकड़नेकी शक्ति किसमें है? क्योंकि उनके सहायक स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण हैं ॥१७॥ उनका दान-मान करनेसे आपका कल्याण होगा। यदि आप उनका सत्कार न करेंगे तो युद्ध होगा। तब वीरधन्वा बोला—राजा गुणाकरकी तो इन्द्र भी पूजा करते हैं ॥ १८ ॥ अतएव वे प्रद्युम्नको भेंट नहीं देंगे। पास ही शृंगवान् पर्वतपर वाराहभगवान् विराजते हैं ॥ १९ ॥ यह धरती सदा उनकी सेवा करती है। उसी क्षेत्रमें महाराज गुणाकरने भगवान्का ध्यान करके तप किया था ॥ २० ॥ जब तप करते-करते दस हजार वर्ष बीत गये, तब वाराहका रूप धारण करके भगवान् उनके समक्ष प्रकट हुए और बहुत प्रसन्न होकर उन्होंने राजा गुणाकरसे वर माँगनेके लिए कहा ॥ २१ ॥ तब रोमांचित तथा प्रेमसे विह्वल होकर राजा गुणाकरने कहा—हे भगवन्! आपके सिवाय दूसरा कोई मनुष्य हो या देवता, वह भूमंडलपर मुझे न जीत सके। यही मेरा इच्छित वर है। तब 'तथाऽस्तु' कहकर वाराहभगवान् अन्तर्धान हो गये ॥ २२ ॥ २३ ॥ अतएव मेरे राजा गुणाकरके घोड़ेको आप शीघ्र छोड़ दें। यदि न छोड़ेंगे तो मैं युद्ध करूँगा ॥ २४ ॥ नारदजी बोले—हे राजन्! यह सुनकर उद्धव अपनी सेनामें लौट आये और यादवोंकी सेनामें सबके समक्ष सारा वृत्तान्त कह सुनाया ॥ २५ ॥ सो सुनकर श्रुतकर्मा, वृष, वीर, सुबाहु, भद्र, एकल, शान्ति, दर्श, पूर्णमास और लघुसेवक, ये कालिन्दीके दस पुत्र दस अक्षौहिणी सेना लेकर युद्धके लिए अग्रसर हुए ॥ २६ ॥ २७ ॥ तब प्रचण्ड पराक्रमी उत्तरकुरुवासियों तथा यादवोंमें भयानक युद्ध हुआ। उस समय ऐसा लगा कि जैसे सातों समुद्र लड़ रहे हों ॥ २८ ॥ देदीप्यमान तथा तीखे शस्त्रोंके युद्धसे उन वीरोंकी असाधारण

गुणाकर उवाच

परिपूर्णतमस्यापि श्रीकृष्णस्य महात्मनः। लक्षणं वद मे ब्रह्मंस्त्वं परावरवित्तमः ॥४५॥

वामदेव उवाच

यस्मिन्सर्वाणि तेजांसि विलीयन्ते स्वतेजसि। तं वदंति परं साक्षात्परिपूर्णतमं हरिम् ॥४६॥

अंशांशोंशस्तथावेशः कलापूर्णः प्रकथ्यते।
व्यासाद्यैश्च स्मृतः षष्ठः परिपूर्णतमः स्वयम् ॥४७॥

परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो नान्य एव हि। एककार्यार्थमागत्य कोटिकार्यं चकार ह ॥४८॥

श्रीनारद उवाच

श्रुत्वा कृष्णस्य माहात्म्यं बलिं नीत्वा गुणाकरः।
वैरं विसृज्य प्रद्युम्नदर्शनार्थं समाययौ ॥४९॥

कार्ष्णिं प्रदक्षिणीकृत्य नत्वा दत्त्वा बलिं ततः। अश्रुपूर्णमुखो भूत्वा प्राह गद्गदया गिरा ॥५०॥

गुणाकर उवाच

अद्य मे सफलं जन्म कुलं मेऽद्य दिने शुभम्। अद्य क्रतुक्रियाः सर्वाः सफलास्तव दर्शनात् ॥५१॥

त्वदंघ्रिभक्तिः परमार्थलक्षणा सदा भवेत्सज्जनसंगमात्परा।
त्वमेव साक्षान्निजभक्तवत्सलः परेश भूमन् परिपाहि पाहि ॥५२॥

प्रद्युम्न उवाच

ज्ञानवैराग्यसंयुक्ता भक्तिस्ते प्रेमलक्षणा।
मद्भक्त संगमो भूयाच्छ्रीः स्याद्भागवतां त्विह ॥५३॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा भगवान् कार्ष्णिः प्रसन्नो भक्तवत्सलः। ददौ तस्मै नृपतये हयमेधतुरंगमम् ॥५४॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे उत्तरकुरुखंडविजयो नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

है ॥ ४४ ॥ तब राजा गुणाकरने कहा। गुणाकर बोले—हे भगवन्! परिपूर्णतम परमेश्वर महात्मा श्रीकृष्णका लक्षण मुझको बताइए। क्योंकि आप भूत-भविष्यके ज्ञाता हैं ॥ ४५ ॥ महर्षि वामदेव बोले—हे राजन्! जिसके तेजमें सभी तेज समा जायँ, उसे परिपूर्णतम ईश्वर कहते हैं ॥ ४६ ॥ कुछ अवतार अंश, कुछ अंशांश, कुछ आवेश, कुछ अवतार कला, कुछ पूर्णावतार और छठें प्रकारका अवतार साक्षात् परिपूर्णतम ईश्वरका होता है। यह व्यास आदि मुनियोंने कहा है ॥ ४७ ॥ अतएव परिपूर्णतम तो साक्षात् श्रीकृष्ण ही हैं—अन्य कोई अवतार नहीं है। उन्होंने एक कामके लिए यहाँ आकर करोड़ों कार्य किये ॥ ४८ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन्! इस प्रकार श्रीकृष्णकी महिमा सुनकर राजा गुणाकर वैरभाव त्याग और भेंट लेकर प्रद्युम्नका दर्शन करने आये ॥ ४९ ॥ समक्ष पहुँचे तो उन्होंने प्रद्युम्नकी परिक्रमा की और प्रणाम करके भेंट दी। फिर आँसुओंसे मुख भरकर गद्गद वाणीमें बोले। गुणाकरने कहा—हे प्रभो! आज मेरा जन्म सफल हुआ और मेरा कुल पवित्र हो गया। आपके दर्शनसे मेरा यज्ञ और मेरी समस्त क्रियायें सफल हो गयीं ॥ ५० ॥ ५१ ॥ आपके भक्तोंके सत्संगसे मुझे सदाके लिए आपकी परमार्थलक्षणा भक्ति प्राप्त हो जाय। हे परेश! आप नित्य भक्तवत्सल हैं। सो हे भगवन्! आप मेरी रक्षा करिए—रक्षा करिए ॥ ५२ ॥ प्रद्युम्न बोले—हे राजन्! ज्ञान-वैराग्य युक्त प्रेमलक्षणा भक्ति तुम्हें प्राप्त होगी। मेरे भक्तोंका संग भी तुम्हें सुलभ होगा और भगवद्भक्तोंमें तुम्हें प्रमुखता प्राप्त होगी ॥ ५३ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन्! ऐसा कहकर श्रीकृष्णतनय भक्तवत्सल प्रद्युम्नने प्रसन्न मनसे राजा गुणाकरको उनका अश्वमेधीय अश्व लौटा दिया ॥ ५४ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायामष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

अथ एकोनत्रिंशोऽध्यायः

(प्रद्युम्नकी हिरण्मयखंडपर विजय)

श्रीनारद उवाच

प्रद्युम्नोऽथ महाबाहुर्जित्वाऽऽरादुत्तरान्कुरून् । हिरण्मयं नाम खंडं जेतुं कार्ष्णिर्जगाम ह ॥ १ ॥
यत्र सीमागिरिर्दीर्घः स्रोतो नामस्फुरद्द्युतिः । तत्र कूर्मो हरिः साक्षादर्यमा यस्य देशिकः ॥ २ ॥
पुष्पमालानदीतीरे नाम्ना चित्रवनं महत् । सपुष्पफलभाराढ्यं कन्दमूलनिधिः स्वतः ॥ ३ ॥
वानराः संति तत्रापि वंशजा नलनीलयोः । न्यस्ताः श्रीरामचन्द्रेण त्रेतायां मैथिलेश्वर ॥ ४ ॥
सैन्यघोषं च तं श्रुत्वा युद्धकामा विनिर्गताः । प्रद्युम्नसैन्ये चोत्पेतुर्भ्रूभंगैः क्रोधमूर्च्छिताः ॥ ५ ॥
नखैर्दंतैश्च लांगूलैर्गजानश्वान्नरान्नृप । लांगूलैश्च रथान्बध्वा चिक्षिपुश्चांबरे बलात् ॥ ६ ॥
विजयध्वजनाथस्य विजयश्चार्जुनस्य च । रथं बद्ध्वाऽथ लांगूले केचिदुत्पेतुरंबरे ॥ ७ ॥
कपिध्वजध्वजे साक्षात्कपींद्रो भगवान्प्रभुः । क्रोधाढ्यः फाल्गुनसखः समग्रं सर्वतो दिशम् ॥ ८ ॥
लांगूलेन च तान्बद्ध्वा पातयामास भूतले । तदा प्रहर्षिताः सर्वे ज्ञात्वा श्रीरामकिंकराः ॥ ९ ॥
नेमुस्तं सर्वतो राजन् कृतांजलिपुटाः शनैः । केचिदालिंगनं चक्रुः केचिदुत्पेतुरोजसा ॥१०॥
केचिच्चुचुंबुर्लांगूलं केचित्पादं च वानराः । तानालिंग्य महावीराः स्पृष्ट्वा सत्पाणिना पुनः ११॥
दत्वाऽऽशिषं तत्कुशलं पप्रच्छाथांजनीसुतः । नत्वा तं वानराः सर्वे जग्मुश्चित्रवनं नृप ॥१२॥
हनुमानर्जुनस्यापि ध्वजे ह्यंतरधीयत । मकराख्यात्ततो देशात्प्रद्युम्नो मीनकेतनः ॥१३॥
ययौ वृष्णिवरैः सार्द्धं दुंदुभीन् वादयन्मुहुः । मकरस्य गिरेः पार्श्वे दुन्दुभिध्वनिभिस्ततः ॥१४॥
मधुभक्ष्या मधुकराः कोटिशः प्रोत्थिताः किल । तैर्दंशितं बलं सर्वं हस्तिचीत्कारसंयुतम् ॥१५॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! इस प्रकार महाबाहु प्रद्युम्न उत्तरकुरुखंडपर विजय प्राप्त करके हिरण्मयखंड जीतनेके लिए आगे बढ़े ॥ १ ॥ हिरण्मयखंडमें स्रोत नामका एक सीमापर्वत है। वह बड़ा ही दीप्तिमान् पर्वत है। वहाँ साक्षात् भगवान् कूर्मरूपसे विराजते हैं। अर्यमा नामके पितर उनके पुजारी हैं ॥ २ ॥ पुष्पमाला नदीके तटपर एक बड़ा-सा चित्रवन है। वहाँ फूलों और फलोंका आधिक्य है और कन्द-मूलोंका तो खजाना ही है ॥ ३ ॥ वहाँ नल-नीलके वंशज बहुतेरे वानर रहते हैं। हे मिथिलेश ! त्रेतायुगमें रामचन्द्रजीने उनको वहीं रख दिया था ॥ ४ ॥ वे वानर यादवी सेनाका घोष सुनकर युद्धके लिये बाहर निकल आये और अपनी भौंहें टेढ़ी करके क्रोध प्रदर्शित करते हुए प्रद्युम्नकी सेनापर टूट पड़े ॥ ५ ॥ हे राजन् ! वे नखों, दाँतों और पूँछोंसे घोड़े, हाथी तथा मनुष्योंपर प्रहार करने लगे और अपनी पूँछोंसे रथोंको बाँध-बाँधकर आकाशमें फेंकने लगे ॥ ६ ॥ विजयध्वजके नाथ अर्जुनका रथ ले और पूँछमें लपेटकर कुछ वानर आकाशमें उड़ गये ॥ ७ ॥ अर्जुनकी ध्वजामें तो साक्षात् हनुमान्जी विराजमान थे। वे सर्वसमर्थ थे। उन वानरोंकी दुष्टतासे हनुमान्जी खीझ गये। सो सब दिशाओंके वानरोंको अपनी पूँछमें लपेटकर उन्होंने पृथिवीपर पटक दिया। जब उन्होंने रामके किंकर हनुमान्जीको पहचान लिया, तब सब एकत्र हो और अपने-अपने हाथ जोड़कर हनुमान्जीको प्रणाम करने लगे। कुछ वानर उनसे गले मिले और मारे खुशीके उछलने लगे ॥ ८–१० ॥ उनमेंसे कोई वानर उनकी पूँछ चूमने लगा और कोई पैर चूमने लगा। उनमेंसे कुछ महावीर वानर उनको छातीसे लगा तथा हाथ पकड़कर कुशल पूछने लगे ॥ ११ ॥ तब हनुमान्जीने उन्हें आशीर्वाद देकर उनका कुशल-क्षेम पूछा। बादमें हनुमान्जीको प्रणाम करके वे सभी वानर चित्रवनको चले गये ॥ १२ ॥ उनके जाते ही हनुमान्जी अर्जुनकी ध्वजामें अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर उस मकर देशसे मकरध्वज प्रद्युम्न प्रमुख यादवोंको अपने साथ लेकर बारम्बार नगाड़े बजवाते हुए मकरपर्वतके पार्श्वभागमें जा पहुँचे। वहाँ नगाड़ोंकी ध्वनि सुनी तो मधु खानेवाले करोड़ों भ्रमर

तदा कार्ष्णिर्महाबाहुः पवनास्त्रं समादधे । तद्वाततोडिता राजन्गतास्तेऽपि दिशो दश ॥१६॥
तत्र देशे जना राजन् सर्वे वै मकराननाः । ततस्तु डिंडिमो देशस्तत्र हस्तिमुखा जनाः ॥१७॥
एवं देशांस्ततः पश्यंस्त्रिशृंगविषयान्गतः । कार्ष्णिर्ददर्श तत्रापि मनुष्या शृंगधारिणः ॥१८॥
त्रिशृंगस्य गिरेः पार्श्वे नगरीं स्वर्णचर्चिकाम् । हेमसौधमयीं दिव्यां रत्नप्राकारमंडिताम् ॥१९॥
हिरण्यवर्णैः पुरुषैः स्त्रीजनैश्च तडिद्द्युभिः । नागैश्च नागकन्याभिः पुरीं भोगवतीमिव ॥२०॥
चन्द्रकांतानदीतीरे शोभितां मंगलालयाम् । कार्ष्णिः समाययौ राजन् यथा शक्रोऽमरावतीम्२१॥
तत्र राजा महावीरो नाम्ना देवसखो बली । स मन्मुखाद्बलं श्रुत्वा बलिं नीत्वा हिरण्मयम् ॥२२॥
प्रद्युम्नं पूजयामास भक्त्या परमया पुनः । तं पप्रच्छ महाबाहुः प्रद्युम्नो भगवान्हरिः ॥२३॥
चन्द्रवत्ते कथं शोभा सर्वेषां च वदाशु मे ।

देवसख उवाच

अर्यम्णा पितृपतिना कूर्मरूपस्य मापतेः ॥२४॥
अंघ्रीप्रक्षालितौ तेन वारिणाऽभून्महानदी । श्वेतपर्वतशृंगाच्चावतरंती यदूत्तम ॥२५॥
प्रमेधाख्यो मनुसुतो गोपालो गुरुणा कृतः । जघान कपिलां रात्रावसितां सिंहशंकया ॥२६॥
वसिष्ठेन तदा शप्तः शूद्रत्वं समुपागतः । कुष्ठेन पीडिततनुः पर्यटंस्तीर्थमाचरन् ॥२७॥
अस्यां नद्यां यदा स्नातो गलत्कुष्ठान्मनोः सुतः । मुक्तोऽभूच्चन्द्रवत्तस्य देहशोभा बभूव ह ॥२८॥
चन्द्रकांता नदी चेयं प्रसिद्धाऽभूद्धिरण्मये । तस्यां मुक्तो यतः स्नात्वा गलत्कुष्ठान्मनोः सुतः २९
ततः स्नानं च कर्तारो वयं सर्वे नृपोत्तम । रूपेण चन्द्रतुल्याः कौ भवामोऽत्र न संशयः ॥३०॥

उत्तेजित हो उठे और उन्होंने सारी सेनाको खूब काटा। उनसे त्रस्त होकर हाथी चिंघाड़ने लगे ॥ १३–१५ ॥ हे राजन् ! उस समय सर्वसमर्थ प्रद्युम्नने पवनास्त्रका प्रयोग किया। तब वायुके झोंकोंसे ताडित भ्रमर दसों दिशाओंमें उड़ गये ॥ १६ ॥ हे राजन् ! उस देशके सब मनुष्य मगर जैसे मुखवाले थे। वहाँसे चलकर प्रद्युम्न डिंडिम देशको गये। वहाँके सब मनुष्योंका मुख हाथीके मुख जैसा था ॥ १७ ॥ इस प्रकार अनेक देशोंको देखते हुए वे त्रिशृङ्ग पर्वतके देशोंमें गये। वहाँ प्रद्युम्नने शृङ्गधारी मनुष्योंको देखा ॥१८॥ त्रिशृङ्ग पर्वतके पास उन्होंने सुवर्णके महलों और रत्नोंके परकोटेसे शोभित स्वर्णचर्चिका नगरी देखी ॥१९॥ वह नगरी चन्द्रकान्ता नदीके तटपर बसी थी और उसमें सब प्रकारके कल्याणोंका निवास था। प्रद्युम्न उस नगरीमें उसी प्रकार गये, जैसे इन्द्र अपनी अमरावती नगरीमें जाते हैं ॥ २० ॥ स्वर्णवर्णके पुरुषों और विद्युद्वर्णकी महिलाओंसे वह नगरी वैसी ही लगती थी, जैसे नागों तथा नागकन्याओंसे भरी भोगवती पुरी लगती है ॥२१॥ वहाँका महाबली राजा देवसखा था। मेरे (श्रीनारदके) मुखसे स्वर्णचर्चिका नगरीमें यादवी सेनाके आगमनकी बात सुनकर राजा देवसखा प्रचुर स्वर्णमय भेंट लेकर प्रद्युम्नके समक्ष आया ॥ २२ ॥ उसने बड़ी भक्तिसे उनका पूजन किया। तदनन्तर प्रद्युम्नने राजा देवसखासे पूछा ॥ २३ ॥ हे राजन् ! आप सब लोगोंकी चन्द्रमाके समान शोभा क्यों है ? यह रहस्य आप मुझे शीघ्र बताइए। देवसखाने कहा—हे यदूत्तम ! एक बार पितरोंके पति अर्यमाने कूर्मरूपधारी विष्णुभगवान्‌के दोनों पैर धोये। उसी जलसे एक महानदी उत्पन्न हो गयी। वह श्वेतपर्वतके शिखरसे उतरती है ॥ २४ ॥ २५ ॥ प्राचीन कालमें प्रमेधा नामका एक मनुपुत्र था। उसको उसके गुरुने गौओंकी रखवालीके कामपर लगा रखा था। एक रोज रातके समय गौओंके बाड़ेमें एक सिंह घुस आया। जिससे गौवें चिल्लाने लगीं। तब तलवार लेकर वह सिंहको मारने गया। सो रातके अँधेरेमें सिंह तो दीखा नहीं, बल्कि सिंहके धोखेमें उसने एक काली कपिला गौ मार डाली। तब गुरु वसिष्ठने शाप दे दिया। जिससे वह राजा शूद्र और कोढ़ी हो गया। तब वह विभिन्न तीर्थोंमें विचरने लगा ॥ २६ ॥ २७ ॥ इस नदीमें स्नान करनेसे वह मनुपुत्र शापसे मुक्त होकर चन्द्रमाके जैसा सुन्दर हो गया ॥ २८ ॥ तभीसे यह नदी चन्द्रकान्ता नामसे इस हिरण्मय खण्डमें विख्यात हो गयी। क्योंकि इसमें स्नान

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वा महाबाहुः प्रद्युम्नो यादवैः सह । चन्द्रकांतां नदीं स्नात्वा ददौ दानान्यनेकशः ॥३१॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे हिरण्मयखंडविजयो नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः

(प्रद्युम्नकी मानवदेशपर विजय)

श्रीनारद उवाच

एवं हिरण्मयं खंडं जित्वा कार्ष्णिर्महाबलः । जगाम रम्यकं खंडं देवलोकमिव स्फुरन् ॥ १ ॥
तस्य सीमागिरिः साक्षान्नीलो नाम नगाधिराट् । तत्रोत्तरे कालदेशे नगरी भीमनादिनी ॥ २ ॥
कालनेमिसुतस्तत्र कलंको नाम राक्षसः । त्रेतायुगे रामचन्द्राद्भीतो युद्धात्पलायितः ॥ ३ ॥
लंकापुर्य्या इहागत्य वासकृद्राक्षसैः सह । रक्षसामयुतेनासौ युद्धाय कृतनिश्चयः ॥ ४ ॥
खरारूढः कृष्णवर्णो यदूनां बलमाययौ । यदूनां राक्षसानां च घोरं युद्धं बभूव ह ॥ ५ ॥
प्रघोषो गात्रवान् सिंहो बलः प्रबल ऊर्ध्वगः । सह ओजो महाशक्तिरपराजित एव च ॥ ६ ॥
लक्ष्मणानंदना ह्येते श्रीकृष्णस्य सुताः शुभाः । सर्वेषामग्रतः प्राप्ता बाणैस्तीक्ष्णैः स्फुरत्प्रभैः॥ ७ ॥
राक्षसानां बलं जघ्नुर्वायुवेगैर्यथा घनम् । बाणौघैश्छिन्नभिन्नांगा राक्षसा रणदुर्मदाः ॥ ८ ॥
त्रिशूलानां मुद्गराणां वर्षां चक्रुर्मदोत्कटाः । कलंकस्तु तदा प्राप्तश्चर्वयन्वारणान् रथान् ॥ ९ ॥
हयान्नरान्सशस्त्रास्त्रान्मुखे चिक्षेप सत्वरम् । गजान्पादेषु चोन्नीय सनीडान् रत्नकंबलान् ॥१०॥
घंटानादसमायुक्तान्प्राक्षिपच्चांबरे बलात् । प्रघोषः श्रीहरेः पुत्रः कपींद्रास्त्रं समादधे ॥११॥
तद्बाणनिर्गतः साक्षाद्वायुपुत्रो महाबलः । वातस्तूलमिवाकाशे चिक्षेप शतयोजनम् ॥१२॥

करनेसे मनुपुत्र गलितकुष्ठ रोगसे मुक्त हो गया था ॥ २९ ॥ हम सब नित्य इस नदीमें स्नान करते हैं। इसीसे हम सबका रूप चन्द्रमाके सदृश है। इसमें संशय नहीं है ॥ ३० ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन्! देवसखाके वचन सुनकर महाबाहु प्रद्युम्नने सभी यादवोंके साथ उस चन्द्रकान्ता नदीमें स्नान करके नाना प्रकारके दान दिये ॥ ३१ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायामेकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन्! इस प्रकार हिरण्मय खंडको जीतकर श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्न देवलोक सदृश देदीप्यमान रम्यक खण्डको गये ॥ १ ॥ रम्यक खण्डका सीमापर्वत नीलगिरि है। जो सब पहाड़ोंका राजा माना जाता है। उसके उत्तर ओर भीमनादिनी नगरी बसी हुई है ॥ २ ॥ कालनेमि दैत्यका पुत्र कलंक राक्षस था। त्रेतायुगमें रामचन्द्रके भयसे वह यहाँ भाग आया था ॥ ३ ॥ वह बहुतेरे राक्षसोंके साथ लंकासे भागकर आया और यहीं बस गया। अब दस हजार राक्षसोंको लेकर उसने प्रद्युम्नसे लड़नेका निश्चय किया ॥४॥ गधेपर सवार होकर वह काला-कलूटा कलंक यादवोंके समक्ष जा डटा। तब यादवों तथा राक्षसोंमें घोर युद्ध होने लगा ॥ ५ ॥ प्रघोष, गात्रवान्, सिंह, बल, प्रबल, ऊर्ध्वग, सह, ओज, महाशक्ति और अपराजित श्रीकृष्णकी पत्नी लक्ष्मणासे उत्पन्न ये दस पुत्र बड़े तीक्ष्ण तथा तेजस्वी बाण लेकर सबके आगे आये ॥ ६ ॥ ७ ॥ रणांगणमें आते ही उन्होंने राक्षसोंका वैसे ही संहार आरम्भ कर दिया, जैसे पवन बादलका सफाया करता है। उन रणदुर्मद राक्षसोंके अंग-प्रत्यंग यादव वीरोंके बाणप्रहारसे छिन्न-भिन्न हो गये ॥ ८ ॥ वे मदोत्कट राक्षस भी त्रिशूलों और मुद्गरोंकी वर्षा करने लगे। उसी समय राक्षसराज कलंक हाथियोंको चबाता हुआ वहाँ आ पहुँचा ॥ ९ ॥ वह घोड़ों और शस्त्रास्त्र समेत मनुष्योंको उठा-उठाकर मुखमें डाल लेता था। वह हाथियोंके पैर पकड़कर घंटा, रत्न और झूलके कम्बल सहित आकाशमें फेकने लगा। उसकी यह करनी देखकर श्रीकृष्णके पुत्र प्रघोषने कपीन्द्रास्त्र चला दिया ॥ १० ॥ ११ ॥ सहसा उस बाणसे पवनपुत्र महाबली

हनुमंतं तदा ज्ञात्वा कलंको राक्षसेश्वरः । लक्षभारमयीं गुर्वीं गदां चिक्षेप नादयन् ॥१३॥
उत्पपात कपिर्वेगाद्गदा भूमौ पपात ह । उत्पतन् वानराधीशो भ्रूभंगं कारयन्मुहुः ॥१४॥
मुष्टिना घातयित्वा तं किरीटं तस्य चाददे । कलंकोऽपि तदा तस्मै त्रिशूलं स्वं समाददे ॥१५॥
उत्पतन्स कपिर्वेगात् पृष्ठिदेशं पपात ह । हनुमांस्तं तदा दोर्भ्यां पातयित्वा महीतले ॥१६॥
वैदूर्यपर्वतं नीत्वा तस्योपरि समाक्षिपत् । गिरिपातेन चूर्णांगो मर्दितः पंचतां ययौ ॥१७॥
तदा जयजयारावः शंखध्वनियुतोऽभवत् । हनुमान् भगवान् साक्षात्तत्रैवांतरधीयत ॥१८॥
प्रद्युम्नस्योपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे । अथ कार्ष्णिर्महाबाहुः स्वसैन्यपरिवारितः ॥१९॥
मनोहरां स्वर्णमयीं मानवीं नगरीं ययौ । नैःश्रेयसवनं तत्र कल्पवृक्षलतावृतम् ॥२०॥
हरिचंदनमंदारपारिजातोपशोभितम् । संतानामोदसंमिश्रवायुभिः सुरभीकृतम् ॥२१॥
केतकीचंपकलताकुटजैः परिसेवितम् । माधवीनां लताजालैः पुष्पितैः सफलैर्वृतम् ॥२२॥
नदद्विहंगालिकुलैर्वैकुंठमिव सुंदरम् । योजनानां पंचशतं लंबितं चारुधिं गिरिम् ॥२३॥
अधोऽधः शोभितं राजञ्छतयोजनविस्तृतम् । पुंस्कोकिलैः कोकिलैश्च मयूरैः सारसैः शुकैः ॥२४॥
चक्रवाकैश्चकोरैश्च हंसैर्दात्यूहकूजितम् । सर्वर्तुपुष्पशोभाढ्यमाक्षिपन्नंदनं वनम् ॥२५॥
मृगशावा रमंते वै शार्दूलैः सह मैथिल । नकुलाः फणिभिः सार्द्धं यत्र वैरविवर्जिताः ॥२६॥
अयुतं सरसां यत्र भ्रमरध्वनिसंयुतम् । सहस्रपत्रैः कमलैः शतपत्रैः स्फुरत्प्रभैः ॥२७॥
इतस्ततो वर्तमानमानंदमिव मूर्तिमत् । तद्वनं सुंदरं दृष्ट्वा निर्गतान्नगरीजनान् ॥
पप्रच्छ वांछितं साक्षात्प्रद्युम्नः सर्ववित्कविः ॥२८॥

हनुमानजी प्रकट हो गये। उन्होंने राक्षसराज कलंकको उठाकर सौ योजन दूर फेंक दिया, जैसे वायु रुईको फेंक देता है ॥ १२ ॥ राक्षसेश्वर कलंकने हनुमान्‌जीको पहचाना तो लाख भारकी भारी गदासे उनपर प्रहार किया और गर्जन करने लगा ॥ १३ ॥ किन्तु गदा अपने ऊपर पड़नेके पहले ही हनुमान्‌जी अपनी भृकुटी घुमाते हुए ऊपर उछल गये, जिससे वह गदा धरतीपर जा गिरी ॥ १४ ॥ तभी हनुमान्‌जीने उसे एक घूँसा मारकर उसका मुकुट किरीट-उतार लिया। तब कलंकने अपना त्रिशूल सम्हाला ॥१५॥ सहसा हनुमान्‌जी उछलकर उसकी पीठपर चढ़ गये और अपनी भुजाओंसे पकड़कर उसको पृथिवीपर पटक दिया ॥ १६ ॥ बादमें उन्होंने एक वैदूर्यमणिका पर्वत उठाकर उसके ऊपर दे मारा। जिससे उसका सारा शरीर चूर होगया और उसके प्राण निकल गये ॥ १७ ॥ उस समय शंखनादके साथ जयजयकार होने लगा और हनुमान्‌जी वहाँ ही अन्तर्धान हो गये ॥ १८ ॥ प्रद्युम्नके ऊपर देवता फूल बरसाने लगे। तब महाबाहु प्रद्युम्न अपनी सेनाके साथ बड़ी मनोहर तथा स्वर्णमयी मनुपुरीको गये। उस पुरीमें निःश्रेयस नामका एक उपवन था, जो कल्पवृक्षकी लताओंसे सदा ढँका रहता था ॥ १९ ॥ २० ॥ हरिचन्दन, मंदार, पारिजात तथा सन्तानादि कल्पवृक्षजातीय वृक्षोंकी सुगन्धिसे वह उपवन नित्य आमोदित रहता था ॥ २१ ॥ केतकी, चम्पा और कुटजसे सुशोभित एवं फली-फूली माधवीलताओंकी झुरमुटसे वह घिरा रहता था ॥ २२ ॥ उस उपवनमें कलरव करते हुए पक्षियोंकी मीठी बोलसे वैकुण्ठके समान सुन्दर और पाँच सौ योजन लम्बा-चौड़ा अरुधिनामका एक पर्वत था ॥ २३ ॥ उस पर्वतका निचला भाग सौ योजन विस्तृत था। पुंस्कोकिल, कोकिल, मयूर, सारस, शुक, मोर, चकोर, चकवा-चकई, हंस और पपीहा बोल रहे थे। सब ऋतुओंके फलों और फूलोंसे वह उपवन नन्दनवनकी शोभाको भी तुच्छ बना रहा था ॥ २४ ॥ २५ ॥ हे मिथिलेश! वहाँपर मृगोंके बच्चे सिंहों और नेवले सर्पोंके साथ खेलते थे। उनमें पारस्परिक वैरभाव तनिक भी नहीं रह गया था ॥ २६ ॥ वहाँ दस हजार सरोवर थे, जिनमें सौ-सौ और हजार-हजार दलके कमल खिले हुए थे और उनपर भ्रमर गुंजार कर रहे थे ॥ २७ ॥ मूर्तिमान् आनन्दस्वरूप उस उपवनको देखकर सर्वज्ञ और ज्ञानी प्रद्युम्न वहांके नागरिकोंसे इच्छित जानकारी प्राप्त करनेके लिए पूछ-ताछ करने लगे। उन्होंने कहा—हे

श्रीप्रद्युम्न उवाच

कस्येयं नगरी रम्या कस्येदं वनमद्भुतम् । वदताशु सविस्तारं हे लोकाः पुण्यशासनाः ॥२९॥

जना ऊचुः

वैवस्वतो मनुर्नाम यो ह्येवं वर्तते नृप । मानवे च गिरौ रम्ये मत्स्यं नारायणं हरिम् ॥३०॥

वर्तमानं सदा नत्वा करोति विपुलं तपः । तस्येयं नगरी रम्या तस्य नैःश्रेयसं वनम् ॥३१॥

वैकुण्ठाच्च समानीता भूमिश्चायं गिरिस्तथा । यूयं सर्वेऽपि राजानस्तस्य वंशभवाः क्षितौ ॥
सूर्यवंशांतरे राजंश्चन्द्रवंशांतरे हि भोः ॥३२॥

श्रीनारद उवाच

क्षत्रियाणां च सर्वेषां वृद्धं तं प्रपितामहम् । श्राद्धदेवं मनुं ज्ञात्वा विस्मितोऽभूद्धरेः सुतः॥३३॥

श्रुत्वा वचस्तदा सद्यो भ्रातृभिर्यदुभिर्वृतः । मानवाद्रिं समारुह्य श्राद्धदेवं ददर्श ह ॥३४॥

शतसूर्यप्रभं कांत्या द्योतयंतं दिशो दश । महायोगमयं साक्षाद्राजेंद्रं शांतरूपिणम् ॥३५॥

वेदव्यासशुकाद्यैश्च वसिष्ठधिषणादिभिः । परस्परं महाराज शृण्वन्तं श्रीहरेर्यशः ॥३६॥

ननाम कार्ष्णिर्यदुभिः सहैव तं कृतांजलिस्तत्र समास्थितोऽभवत् ।
मनुः समुत्थाय हरेः प्रभावविद्दत्त्वासनं गद्गदया गिराऽब्रवीत् ॥३७॥

मनुरुवाच

नमस्ते वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च । प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥३८॥

अनादिरात्मा पुरुषस्त्वमेव त्वं निर्गुणोऽसि प्रकृतेः परस्त्वम् ।
सदा वशीकृत्य बलात्प्रधानं गुणैः सृजस्यत्सि च पासि विश्वम् ॥३९॥

ततो विवेकं स विहाय सर्वतो मत्वाऽखिलं चात्र मनोमयं जगत् ।
मायापरं निर्गुणमादिपूरुषं सर्वज्ञमाद्यं पुरुषं सनातनम् ॥४०॥

जागर्ति योऽस्मिञ्छयनं गते सति नायं जनो वेद सतः परं तम् ।
पश्यंतमाद्यं पुरुषं हि यज्जनो न पश्यति स्वच्छमलं च तं भजे ॥४१॥

पवित्र मनुष्यो ! यह मनोहारिणी नगरी किसकी है और यह अद्भुत उपवन किसका है ? सो विस्तारके साथ बताइए ॥ २८ ॥ २९ ॥ नागरिक बोले—वैवस्वत मनु नामके एक राजा हैं । जो रमणीक मानव पर्वतपर रहकर मत्स्यरूपधारी भगवान्‌का नमस्कार-पूजन करके विपुल तप करते हैं । यह रम्य नगरी उन्हींकी है और यह नैःश्रेयसवन भी उनका ही है ॥ ३० ॥ ३१ ॥ यह भूमि और यह पर्वत वैकुण्ठसे यहाँ लाया गया है । इस पृथिवीपर जितने भी राजे हैं, सूर्य या चन्द्रवंशी होनेके नाते वे सब उन्हींके वंशज हैं ॥ ३२ ॥ नारदजी बोले—हे राजन् ! समस्त क्षत्रियोंके वृद्ध प्रपितामह श्राद्धदेव मनुको जानकर श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्न बहुत विस्मित हुए ॥ ३३ ॥ नागरिकोंकी बात सुनकर प्रद्युम्न अपने सभी भ्राताओं तथा यादवोंके साथ मानव पर्वतपर गये और वहाँ श्राद्धदेव मनुका दर्शन किया ॥ ३४ ॥ सैकड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी और अपनी कान्तिसे दसों दिशाओंको प्रकाशमान करनेवाले, महायोगमय, शान्तिस्वरूप राजेन्द्र श्राद्धदेव मनु वेदव्यास, शुकदेव, वसिष्ठ और बृहस्पति आदि मुनियोंसे श्रीहरिका यश सुन रहे थे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ उसी समय यादवोंके साथ प्रद्युम्नने उन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम किया और उनके समक्ष बैठ गये । तब श्रीकृष्णका प्रभाव जाननेवाले मनुने उनको आसन देकर कहा । मनु बोले—आप वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और भक्तोंके प्रभु हैं । आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ आप अनादि, आत्मा, पुरुष, निर्गुण और मायातीत हैं । आप अपने बलसे मायाको वशमें करके गुणोंसे जगत्‌की उत्पत्ति, पालन और संहार करते हैं ॥ ३९ ॥ इसीसे मैं अविवेकी जन समस्त मनोमय जगत्‌को त्यागकर मायासे परे निर्गुण, आदि पुरुष, सर्वज्ञ, आद्य, सनातन पुरुषको भजता हूँ ॥ ४० ॥ जब यह जगत् सोता है, तब आप जागते हैं । तथापि यह लोक

यथा नभोऽग्निः पवनो न सज्जते घटे न काष्ठे न रजोभिरावृतैः ।
तथा भवान्सर्वगुणैश्च निर्मलो वर्णैर्यथा स्यात्स्फटिको महोज्ज्वलः ॥४२॥
व्यंग्येन वा लक्षणया च वाक्यथैरर्थं पदं स्फोटपरायणैः परम् ।
न ज्ञायते यद्ध्वनिनोत्तमेन सद्वाच्येन तद्ब्रह्म कुतस्तु लौकिकैः ॥४३॥
वदन्ति केचिद्भुवि कर्मकर्तृ यत्कालं च केचित्परयोगमेव तत् ।
केचिद्विचारं प्रवदन्ति यच्च तद्ब्रह्मेति वेदांतविदो वदन्ति ॥४४॥
यं न स्पृशंतीह गुणा न कालजा ज्ञानेन्द्रियं चित्तमनो न बुद्धयः ।
महन्न वेदो वदतीति तत्परं विशंति सर्वेऽनलविस्फुलिंगवत् ॥४५॥
हिरण्यगर्भं परमात्मतत्त्वं यद्वासुदेवं प्रवदन्ति संतः ।
एवंविधं त्वां पुरुषोत्तमोत्तमं मत्वा सदाऽहं विचराम्यसंगः ॥४६॥

श्रीनारद उवाच

मनोर्वाक्यं तदा श्रुत्वा प्रद्युम्नो भगवान्हरिः । मन्दस्मितो मनुं प्राह गीर्भिः संमोहयन्निव ॥४७॥

प्रद्युम्न उवाच

त्वं नो गुरुः क्षत्रियाणामादिराजः पितामहः । मत्पूजनीयो वृद्धोऽसि श्लाघ्यो धर्मधुरंधरः ॥४८॥
वः प्रजाश्च वयं राजन् रक्ष्याः पाल्याश्च सर्वतः । भवता तप्यते दिव्यं तपस्तेन जगत्सुखम् ॥४९॥
मृग्यस्त्वत्सदृशः साधुः परमात्मा हरिः स्वयम् । नृणामंतस्तमोहारी साधुरेव न भास्करः ॥५०॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा भगवान् कार्ष्णिरनुज्ञाप्य प्रणम्य तम् । परिक्रम्य मनुं राजन् स्वयं भूमौ जगाम ह ॥५१॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे नारदबहुलाश्वसंवादे मानवदेशविजयो नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

आपको नहीं जानता । क्योंकि आप इससे परे हैं । आप सदा इस जगत्को देखते हैं, किन्तु जगत् आपको नहीं देखता । सर्वथा स्वच्छ आप परम पुरुषका मैं भजन करता हूँ ॥ ४१ ॥ जैसे आकाश घटसे, रजसे, वायुसे, काष्ठसे और अग्निसे लिप्त नहीं होता, वैसे ही निर्मल आप गुणों तथा विषयोंसे लिप्त नहीं होते । जैसे स्फटिकमणि किसी रंगसे लिप्त नहीं होता ॥ ४२ ॥ जो व्यंग्यसे, लक्षणासे, वचनकी चतुराईसे और स्फोटपरायण मनुष्योंके द्वारा परमार्थपद नहीं जाना जा सकता, जो सद्वाक्यसे और उत्तम ध्वनिसे जो ब्रह्म नहीं जाना जाता, वह लौकिक बातोंसे कैसे जाना जाय ॥ ४३ ॥ कुछ लोग जगत्में कर्मको, कोई कर्ताको, कुछ लोग कालको, कुछ योगको और कुछ लोग विचारको ब्रह्म कहते हैं वेदान्ती लोग उसीको ब्रह्म कहते हैं ॥ ४४ ॥ जिसको कालके गुण स्पर्श नहीं करते और ज्ञानेन्द्रिय, चित्त, मन, बुद्धि, अहंकार तथा महत्तत्त्व जिसको नहीं जानते, उसको वेद जानते हैं । अन्तमें सब कुछ आगमें चिनगारीके समान जहाँ समा जाते हैं, ॥ ४५ ॥ सन्तजन जिसको हिरण्यगर्भ, आत्मतत्त्व तथा वासुदेव कहते हैं, ऐसे आप पुरुषोत्तमको जानकर मैं असंग भावसे विचरता हूँ ॥ ४६ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! श्राद्धदेव मनुके वचन सुनकर प्रद्युम्न भगवान् अपनी वाणीसे उनको मोहते हुए कहने लगे ॥ ४७ ॥ प्रद्युम्नने कहा—हे भगवन् ! आप तो हम क्षत्रियोंके गुरु हैं । आप आदिराजा, सबके पितामह, मेरे पूजनीय, वृद्ध, सराहनीय और धर्मके धुरन्धर ॥ ४८ ॥ हे राजन् ! हमलोग तो आपकी सन्तान हैं और सब तरहसे पालनीय तथा रक्षणीय हैं । आप जो तप करते हैं, उससे संसारको सुख मिलता है ॥ ४९ ॥ आप सरीखे साधु तो खोजने योग्य होते हैं । आप स्वयं परमात्मा हैं । मनुष्यके अन्तरालमें रहनेवाले अन्धकार आप ही हरते हैं, सूर्य नहीं ॥ ५० ॥ नारदजी बोले—हे राजन् ! ऐसा कहकर भगवान् प्रद्युम्नने मनुकी परिक्रमा की, अनुमति माँगी और प्रणाम करके

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

(प्रद्युम्नकी मन्मथदेशपर विजय)

श्रीनारद उवाच

इत्थं तु रम्यकं खंडं जित्वा कार्ष्णिर्महाबलः । सुमेरोः पूर्वदिग्भागे केतुमालं जगाम ह ॥ १ ॥
तस्य सीमागिरिः साक्षान्माल्यवान्नाम मैथिल । चतुर्नाम्नी यत्र गङ्गा महापातकनाशिनी ॥ २ ॥
गिरेर्माल्यवतः पार्श्वे पुरी मन्मथशालिनी । रत्नप्राकारसौधैश्च देवधानीव शोभिता ॥ ३ ॥
यत्र वै पुरुषा राजन्कामदेवसमप्रभाः । शारदेन्दीवरश्यामाः पद्मपत्रनिभेक्षणाः ॥ ४ ॥
पीतांबरधरा नार्यः पुष्पहारमनोहराः । क्रीडंति कंदुकैर्यत्र कामिन्यो नवयौवनाः ॥ ५ ॥
यद्देहामोदपवनो मत्तालिकुलनादितः । गंधीकरोति भूभागं समन्ताच्छतयोजनम् ॥ ६ ॥
तत्पुरीवासिनो लोका निर्गतास्ते बहुश्रुताः । जगुर्यशः श्रीमुरारेः प्रद्युम्नस्यापि शृण्वतः ॥ ७ ॥

केतुमालवासिन ऊचुः

आसीत्तु शेषशयनो जगदार्त्तिहारी साक्षात्प्रधानपुरुषेश्वर आदिदेवः ।
यः प्रार्थितः सुरवरैर्भुवनावनाय तस्मै नमो भगवते पुरुषोत्तमाय ॥ ८ ॥
जातो गतः पितृगृहात्पितरौ विमोक्ष्य नंदालयं शिशुतनुः स तु नंदपत्न्या ।
संलालितः सघृणया बहुमङ्गलश्रीः प्राणप्रहारमकरोत्किल पूतनायाः ॥ ९ ॥
बालो बभञ्ज शकटं शयनं प्रकुर्वन्दैत्यं निपात्य महदद्भुतकं च पृष्ठे ।
मात्रे प्रदर्श्य निजरूपमलंकृतोऽभूद्गर्गेण संकथितसुंदरभाग्यलक्ष्मीः ॥१०॥
संलालितो व्रजजनैर्नवनीतचौरः श्यामो मनोहरवपुर्मृदुलः स बालः ।
भित्वा जघास दधिपात्रमतीव दध्नो वृक्षौ बभंज जननीलघुदामबद्धः ॥११॥

करके उस पर्वतसे भूमिपर उतर आये ॥ ५१ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! इस प्रकार रम्यक खण्डको जीतकर श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्न सुमेरुकी पूर्व दिशामें विद्यमान केतुमाल खण्डको गये ॥ १ ॥ हे मिथिलेश ! केतुमालका सीमापर्वत माल्यवान् गिरि है, जहाँ महापातकनाशिनी चतुर्नाम्नी गंगा बहती है ॥ २ ॥ माल्यवान्के बगलमें मन्मथशालिनी पुरी है । उसका परकोटा रत्नोंसे बना हुआ है और उसमें विविध मणियोंसे बने महल हैं । इससे देवधानी इन्द्रपुरी जैसी उसकी शोभा होती है ॥ ३ ॥ वहाँके सभी पुरुष कामदेवके समान सुन्दर होते हैं । शरत्कालीन कमल जैसे उनके श्याम शरीर और कमलदल सदृश उनके नेत्र होते हैं ॥ ४ ॥ वहाँकी सभी स्त्रियाँ पीताम्बर तथा पुष्पहार पहनती हैं । नवयौवना नारियाँ गेंद खेलती हैं ॥ ५ ॥ उनके शरीरकी सुगन्धिसे मस्त भौंरे गुंजार करते हैं और वह सुगन्धि सौ योजन तक फैलकर सारे प्रदेशको सुगन्धित किये रहती है ॥ ६ ॥ उस नगरीके बहुश्रुत निवासी घरोंसे निकलकर भगवान् श्रीकृष्णके विमल यश गा रहे थे । प्रद्युम्नने भी उसे सुना ॥७॥ केतुमाल-निवासी लोग कह रहे थे—शेषशायी विष्णुभगवान् देवताओंके प्रार्थना करनेपर संसारका कष्ट हरनेके लिए साक्षात् प्रधान पुरुष, ईश्वर एवं आदिदेव अखिल भुवनके रक्षार्थ अवतरे, उन पुरुषोत्तम कृष्ण भगवान्को नमस्कार है ॥ ८ ॥ जो जन्मके साथ ही माता-पिताको बन्धनमुक्त करके पिताके घरसे नन्दके घर गये । उस समय वे शिशुरूपमें थे । सो नन्दरानीने बड़े प्रेमसे उनका लालन-पालन किया । वे मंगलधाम थे । उन्होंने ही पूतनाको मारा था ॥ ९ ॥ उसी बाल्यावस्थामें शयन करते हुए शकट (छकड़ा) तोड़ डाला । अद्भुत दैत्य तृणावर्तकी पीठपर चढ़कर उसके प्राण ले लिये । बादमें उन्होंने माता यशोदाको अपना निजी रूप दिखाया । महामुनि गर्गने उनके लिए सुन्दर भाग्यलक्ष्मीकी भविष्यवाणी की ॥१०॥ नवनीतके चोर श्रीकृष्णको व्रजवासियोंने

वृंदावने स विचरन् सह वत्सगोपैर्वत्सासुरं च विनिपात्य कपित्थवृक्षैः ।
सद्यो विगृह्य खरतुण्डपुटे च दोर्भ्यां दैत्यं ददार स बकं तृणवत्तटिन्याम् ॥१२॥
संधारयंश्च शिशुभिर्बहुवत्ससंघान् वेणुं क्वणन्मदनमोहनवेषभृद्यः ।
गोपानघासुरमुखे प्रहिताञ्जुगोप गोगोपवत्सपवपुः स चकार सद्यः ॥१३॥
क्षेत्रज्ञ आत्मपुरुषो भगवाननंतः पूर्णः प्रधानपुरुषेश्वर आदिदेवः ।
धृत्वा वपुः स विहरन्व्रजबालकेषु संमोहयन्विधिसजो विचचार कृष्णः ॥१४॥
चिक्षेप धेनुकमसौ बलिनं बलेन ताले प्रगृह्य सहसा फणिकालियाख्यम् ।
बभ्राम वह्निमपिबद्दनुजं प्रलंबं सद्यो जघान स बली दृढमुष्टिना च ॥१५॥
संचारयन्व्रजवधूर्मधुरं क्वणन् यो वेणुं वने व्रजवधूनिजगीतकीर्तिः ।
दिव्यांबराणि स जहार वरांगनानां विप्रांगनाभिरभितः कृतभक्तभोजः ॥१६॥
देवे च वर्षति पशून्कृपया रिरक्षुर्गोवर्द्धनं प्रकृतबाल इवोच्छिलींध्रम् ।
बिभ्रद्गिरिं स गजराडिव कंजमेकहस्ते शचीपतिवचोभिरतः स्तुतोऽभूत् ॥१७॥
नंदं जुगोप वरुणात्स्वजनाय लोकं दिव्यं परं च तमसो दिवि दर्शयित्वा ।
श्रीरासमण्डलगतो व्रजसुन्दरीणां रेमे पुलिंदतटनीपुलिनेऽङ्गनाभिः ॥१८॥
मानं हरन्मदनयौवनमानिनीनामंतर्दधे व्रजवधूनिजगीतकीर्तिः ।
स्रग्वी मनोहरवपुर्विरहातुराणां साक्षाद्धरिर्मदनमोहन आविरासीत् ॥१९॥
वृन्दावने शबरराजवरांगनाभिर्विष्णुर्विभूतिभिरिवद्युभिरादिदेवः ।
रेमे स्तुतः सुरवरैः स च रासरंगे केयूरकुण्डलकिरीटविटंकवेषः ॥२०॥

बहुत प्यार किया। अत्यन्त कोमल और मनोहर बालरूपधारी श्रीकृष्ण जब दधिपात्र फोड़कर दही खा गये तो माताने उनको ऊखलसे बाँध दिया। छोटी-सी रस्सीसे बँधे ही बँधे उन्होंने जमलार्जुन वृक्ष उखाड़ डाले ॥ ११ ॥ वृन्दावनमें बछड़ों और गोपबालकोंके साथ विचरते समय उन्होंने वत्सासुरको मारकर उसीके शवसे कैथेके वृक्ष उखाड़े। तदनन्तर यमुनातटपर तीखी चोंचवाले बकासुरको तिनकेकी तरह चीर डाला ॥ १२ ॥ गोपबालकोंके साथ बछड़ोंके झुंड घेरते और वंशी बजाते हुए उन्होंने परम मोहक रूप धारण किया। अघासुरके मुखमें समाये हुए गोपबालकोंकी रक्षा की। बादमें ब्रह्माजी उन सभी गोपबालकों और बछड़ोंको चुरा ले गये तो भगवान् स्वयं गोपबालक तथा गाय-बछड़े बन गये ॥ १३ ॥ इस प्रकार क्षेत्रज्ञ, आत्मपुरुष भगवान्, अनन्त, पूर्ण, प्रधान पुरुषेश्वर और आदिदेव भगवानने मानव रूप धारण करके विहार करते हुए ब्रह्मा तथा गोपबालकोंको मोहमें डालकर उनके साथ व्रजमें विचरे ॥ १४ ॥ बादमें उन्होंने बलवान् धेनुकासुरको उठाकर तालके वृक्षपर दे मारा। कालिया नागको दण्ड देकर उसके प्रत्येक फणपर नृत्य किया। फिर उन्होंने दवानलका पान किया। उसके बाद बड़े भाई बलदेवके साथ जाकर अपने जोरदार घूँसेसे प्रलम्बासुरका वध किया ॥ १५ ॥ वनमें गौ चराते समय व्रजबालाओंको मोह लेनेवाली वंशी बजायी और व्रजकी ललनाओंने उनकी कीर्ति गायी। बादमें उन्होंने गोपियोंके वस्त्र चुराये और ब्राह्मणियोंका दिया हुआ भात खाया ॥ १६ ॥ जब इन्द्रने घनघोर वर्षा की, तब कृपा करके पशुओंकी रक्षाके लिए एक साधारण बालककी तरह उन्होंने गोवर्धन पर्वतको कठफुल्लेकी तरह उठा लिया और सात दिनों तक केवल एक हाथसे उसको वैसे ही उठाये रखा, जैसे कोई हाथी कमलका फूल उठाये रहे। तब हार मानकर इन्द्रने उनकी स्तुति की ॥ १७ ॥ वरुणके पाशमें बँधे नन्दजीको बचाकर सभी व्रजवासियोंको मायातीत वैकुण्ठधाम दिखाया। तदनन्तर यमुनातटपर रासमण्डल रचाकर सुन्दरी गोपियोंके साथ रमण किया ॥ १८ ॥ कामदेवके आवेगसे जिन व्रजवधूटियोंको अपने यौवनका अभिमान हो गया था, उनका अभिमान चूर करते हुए वे वहाँ ही अन्तर्धान हो गये। तब व्याकुल व्रजबालाओंने गोपीगीत गाया। जब वे बहुत ही विरहातुर हो गयीं, तब परम मनोहर

नंदं विमोक्ष्य फणिने प्रददौ च मोक्षं दिव्यं मणिं स च जहार ह शंखचूडात्।
गोपस्तुतो वृषभरूपधरं ह्यरिष्टं भूमौ निपात्य निजघान करेण शृङ्गे ॥२१॥
कंसः परं भयमवाप च तेन केशी संप्रेषितः सघनमेघवपुः प्रचंडः।
उत्सृज्य तं च तरसा पुनरापतंतं श्रीबाहुना मुखगतेन जघान कृष्णः ॥२२॥
यो नारदेन वहुवर्णितभाग्यलक्ष्मीर्व्योमासुरो न्यसुरकारि परेण येन।
अक्रूरवर्णितमहोदय आदिदेवो गोपीजनातिविरहातुरचित्तचौरः ॥२३॥
श्वाफल्कये हितकराय निजं स्वरूपमंतर्दधे जलचये स च दर्शयित्वा।
स प्राप तत्र मथुरोपवनं परेशो गोपालकैश्च सबलो मथुरां ददर्श ॥२४॥
स्वैरं चरन्मधुपुरे रजकं निकृत्य कृष्णः प्रदाय च वरानथ वायकाय।
मालाकृतं समनुकंप्य चकार कुब्जामृज्वीं धनुश्च सहसा नमयन्बभंज ॥२५॥
द्वारि द्विपश्च विनिहत्य नरेंद्र मल्लौ हत्वा प्रगृह्य विनिपात्य स रङ्गभूमौ।
कंसं हरिस्तु पितरावथ मोचयित्वा बंधान्नृपं पुरि चकार महोग्रसेनम् ॥२६॥
नंदं प्रसाद्य बहुदानकरो यदुस्तानाहूय तर्प्य सुधनैश्च निवेदयित्वा।
विद्यामधीत्य स ददौ प्रमृतं ह्यपत्यं कृत्वा वधं दनुजपश्चजनस्य कृष्णः ॥२७॥
गोपीजनान्समनुगृह्य स चोद्धवेनाक्रूरेण हास्तिनपुरे त्वथ पांडुपुत्रान्।
कृष्णो विजित्य बलिनं च जरासुतं च भस्मीचकार मुचुकुन्ददृशाऽऽत्मकालम्॥२८॥
निर्माय चाद्भुतपुरं स्थितयेऽत्र कृष्णो निन्ये च कुण्डिनपुरात्किल भीष्मकन्याम्।
पुत्रेण शंबरमरिं निजघान चादाद्राज्ञे मणिं युधि विजित्य स ऋक्षराजम् ॥२९॥

स्वरूप तथा वनमाला धारण करके उनके समक्ष प्रकट हो गये ॥ १९ ॥ वृन्दावनमें व्रजकी श्रेष्ठतम सुन्दरियोंके साथ वे वैसे ही रमे, जैसे अपनी विभूतियोंके साथ आदिदेव श्रीविष्णु रमे थे। देवता भी जिनकी स्तुति करते थे, उन भगवान्ने रासरंगमें केयूर (बाजूबन्द), कुण्डल और किरीटसे मनोहर श्रृंगार करके रमण किया ॥२०॥ उसके बाद उन्होंने नन्दको सर्पसे छुड़ाया और उस सर्पको मोक्ष प्रदान किया। फिर शंख-चूडसे दिव्य मणि छीनी। इसपर गोपोंने उनकी स्तुति की। तदनन्तर बैलरूपधारी अरिष्टासुरकी सींग पकड़-कर धरतीपर पटक दिया ॥ २१ ॥ कंसने उन भगवान्से अत्यन्त भयभीत होकर सघन मेघ सरीखे तुन्दिल तथा प्रचण्ड केशी दैत्यको भेजा। उस भीषण दैत्यको बड़े वेगसे अपनी ओर आते देखकर भगवान्ने उसके मुखमें अपना हाथ डालकर मार डाला ॥ २२ ॥ जिसका श्रीनारदजीने बहुत सुन्दर ढंगसे वर्णन किया है, बहुत पराक्रमसम्पन्न तथा भाग्यलक्ष्मीसे युक्त उस व्योमासुरको उन्होंने मार डाला। अक्रूर द्वारा वर्णित महोदय जिनका था, वे भगवान् कृष्ण विरहातुर गोपीजनोंके चितचोर थे ॥२३॥ अपने हितकारी अक्रूरको जलके भीतर दर्शन देकर अपना स्वरूप छिपा लिया। उसके बाद मथुरा पहुँचे और वहाँके एक उपवनमें टिके। फिर बलदेव तथा गोपालोंको साथ लेकर मथुराका अवलोकन करने चले ॥ २४ ॥ वहाँ इच्छानुसार विचरते समय कंसके धोबीको मार डाला और दरजीको वरदान दिया। फिर सुदामा मालीपर अनुकम्पा करके कुब्जाको सीधी किया और सहसा धनुषको झुकाकर तोड़ डाला ॥ २५ ॥ हे राजन्! द्वारपर खड़े कुबलयापीड तथा मुष्टिक-चाणूरप्रभृति बावन पहलवानोंको मारकर भगवान् कृष्णने कंसको रंगभूमिमें पटक दिया और उसके ऊपर चढ़ बैठे। उसे मारकर पिता-माता वसुदेव-देवकीको बन्धनमुक्त करके उग्रसेनको राज्य दिया ॥२६॥ उसके बाद नन्दजीको बहुत-सा धन देकर प्रसन्न किया और बहुतेरे यादवोंको ले जाकर मथुरामें बसाया। तदनन्तर उन्होंने विद्याध्ययन किया और पंचजन दैत्यको मारकर गुरुके मरे हुए पुत्रको वापस लाये ॥ २७ ॥ फिर उद्धवको भेजकर उन्होंने गोपीजनोंपर कृपा की। अक्रूरको हस्तिनापुर भेजकर पाण्डवोंको राजी करके बली जरासंधको परास्त किया। फिर अपने लिए कालस्वरूप कालयवनको मुचुकुन्दकी दृष्टिसे भस्म कराया

भामापतिः स च शिरः शतधन्वनस्तु हृत्वा ह्युवाह सवितुश्च सुतां परेशः ।
आवंत्यराजतनुजां स जहार कृष्णः सत्यां स्वयंवरगृहे वृषभान्दमित्वा ॥३०॥
कैकेयराजतनुजां स जहार भद्रां श्रीलक्ष्मणामखिलभद्रपतेः सुतां च ।
भौमं विजित्य सवलं युधि शस्त्रसंघैर्निन्ये च षोडशसहस्रवरांगनाश्च ॥३१॥
भामेच्छया सुरतरुं च सभां सुधर्मां शक्रं विजित्य स जहार कलत्रमित्रः ।
यो रुक्मिणं च निजघान बलेन गोष्ठ्यां बाणस्य बाहुनिचयं शतधाच्छिनत्सः ॥३२॥
तेनोग्रसेनक्रतवेऽथ जगद्विजेतुं संप्रेषितो निजसुतः किल शंबरारिः ।
योऽत्रागतो भुवि विजित्य नृपान्समस्तान् श्रीकेतुमालपतये च नमोऽस्तु तस्मै ॥३३॥

श्रीनारद उवाच

प्रसन्नः श्रीहरिः कार्ष्णिः कुंडले कटकानि च । हीरान् मणीन् गजानश्वान् ददौ तेभ्यो महामनाः ॥३४॥
पुर्यां मन्मथशालिन्यां व्यतिसंवत्सरो महान् । प्रद्युम्नाय वलिं प्रादान्नमस्कृत्य प्रजापतिः ॥३५॥
अथ कार्ष्णिर्महाबाहुर्दिव्यं कामवनं ययौ । जनैरगम्यं गम्यं च प्रजापतिदुहितृभिः ॥३६॥
सुंदरं मन्मथाक्रीडं वृतं कामास्त्रतेजसा । नारीणां यत्र पतति व्यसुर्गर्भो न वत्सरम् ॥३७॥

तदा परात्कामवनाद्विनिर्गतः श्रीपुष्पधन्वा नृप पंचसायकः ।
पीतांबरः श्यामतनुर्मनोहरस्ततान कोदंडगुणध्वनिं स्मरः ॥३८॥
यद्बाणतो यादवपुंगवाः स्वतः ससैनिकाः साश्वगजाः पदातिभिः ।
निपेतुरारात्किल कामविह्वलास्तद्बाणवेगस्य न वर्णनं भवेत् ॥३९॥

॥ २८ ॥ उसके बाद समुद्रमें अद्भुत नगरीका निर्माण कराया। वहाँ कुण्डिनपुरसे भीष्मककी पुत्रीको हर लाये और अपने पुत्र प्रद्युम्नके द्वारा शम्बरासुरका वध कराया। उसके बाद ऋक्षराज जाम्बवान्को परास्त करके जाम्बवतीसे विवाह किया और स्यमन्तक मणि लाकर उग्रसेनको दी ॥ २९ ॥ तदनन्तर सत्यभामाके पति श्रीकृष्णने शतधन्वाका सिर काटकर सूर्यतनया कालिन्दीके साथ विवाह किया। फिर सात बैलोंका दमन करके अवन्तीके नरेशकी पुत्री सत्याको हर लाये ॥ ३० ॥ फिर कैकयराजकी पुत्री भद्रा तथा अखिल-भद्रकी कन्या लक्ष्मणाको हर लाये। उसके बाद रणभूमिमें सेनासमेत भौमासुरको शस्त्रोंसे परास्त करके उसके यहाँसे सोलह हजार सुन्दरियोंको लाये ॥ ३१ ॥ बादमें सत्यभामाकी इच्छासे इन्द्रको जीतकर स्वर्गसे कल्पवृक्ष तथा सुधर्मा सभाको ले आये। उन्होंने गोष्टीसे बलदेवके हाथों रुक्मीका वध कराया और बाणासुरकी हजार भुजाओंके सौ-सौ टुकड़े कर डाले ॥ ३२ ॥ उन्हीं भगवान कृष्णने उग्रसेनका यज्ञ सम्पन्न करने और जगत्को जीतनेके लिए अपने पुत्र शम्बरारि प्रद्युम्नको भेजा है। प्रद्युम्न पृथ्वीके बहुतेरे राजाओं-को जीतकर केतुमाल वर्षमें आये हुए हैं। उनको हम प्रणाम करते हैं ॥ ३३ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन्! उनकी बातोंसे श्रीकृष्णपुत्र प्रद्युम्न बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें कुण्डल, कंकण, हीरे, मणि, मोती, घोड़े और हाथी दिये ॥ ३४ ॥ उस मन्मथशालिनीपुरीमें प्रद्युम्नका पूरा साल बीत गया। तब प्रजापतिने नमस्कार करके प्रद्युम्नको भेंट दी ॥ ३५ ॥ तदनन्तर महाबाहु प्रद्युम्न दिव्य कामवनमें गये। जो कामवन प्रजापति-की कन्याओंके लिए गम्य था, किन्तु अन्य लोगोंके लिए अगम्य ॥ ३६ ॥ वह कामवन कामदेवके शस्त्रोंसे भरा हुआ था। वहाँ पहुँची हुई स्त्रियोंका गर्भ निर्जीव होकर गिर पड़ता था और बादमें सालभरतक उनको पुनः गर्भाधान नहीं होता था ॥३७॥ तदनन्तर उस कामवनसे पुष्पधन्वा, पंचसायक, श्यामसुन्दर, पीताम्बर-धारी तथा मनोहर कामदेवने निकलकर अपने धनुषका टंकार किया ॥ ३८ ॥ बादमें कामदेवके बाणसे आहत होकर सभी यादव, उनके हाथी-घोड़े और पैदल सैनिक धरतीपर गिर गये। क्योंकि वे सब कामातुर हो उठे थे। कामदेवके बाणोंकी शक्तिका सही-सही वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ ३९ ॥ तदनन्तर जगदीश्व-

अथाशु कार्ष्णिर्जगदीश्वरेश्वरः प्रलीनतां प्राप जले जलं यथा ।
सद्यो विसिस्मुर्यदवः ससैनिका विज्ञाय पूर्णं नृप रुक्मिणीसुतम् ॥४०॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे मन्मथदेश विजयो नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

(दुष्ट दैत्यके वधकी कथा)

श्रीनारद उवाच

अथ कार्ष्णिर्महाबाहुः केतुमालं विजित्य सः । भद्राश्वं प्रययौ धन्वी खंडं योगसमृद्धिमत् ॥ १ ॥
यस्य सीमागिरिः साक्षाद्राजते गन्धमादनः । सीतानाम्नी यत्र गंगा वहंती पापनाशिनी ॥ २ ।
वेदक्षेत्रे महातीर्थे सर्वपापप्रमोचने । हयग्रीवो महाबाहुर्यत्र संनिहितो हरिः ॥ ३ ॥
भद्रश्रवा धर्मसुतस्तस्य सेवां करोति हि । गंगातीरस्य पुलिने प्रद्युम्नस्य महात्मनः ॥
बभूवुः शिबिरव्यूहा हेमांबरमनोहराः ॥ ४ ॥
भद्रश्रवा धर्मसुतो महात्मा भद्राश्वदेशाधिपतिर्महौजाः ।
प्रदक्षिणीकृत्य ननाम भक्त्या दत्वा बलिं कृष्णसुताय चाह ॥ ५ ॥

भद्रश्रवा उवाच

त्वं साक्षाद्भगवान्पूर्णः परिपूर्णतमः स्वयम् । साधूनां रक्षणार्थाय जगज्जेतुं विनिर्गतः ॥ ६ ॥
भगवञ्छंबरो नाम दैत्यः पूर्वं जितस्त्वया । तस्य भ्राता महादुष्टः कनीयानुत्कचः स्मृतः ॥ ७ ॥
गोकुले कृष्णचंद्रेण मारितः शकटस्थितः । तस्य भ्राता महादुष्टो ज्येष्ठोऽस्ति शकुनिर्बली ॥ ८ ॥
जेतुं योग्यस्त्वया देव नान्यैरपि कदाचन ।

श्रीप्रद्युम्न उवाच

कस्य वंशे समुद्भूतः शकुनिर्नाम दैत्यराट् ॥ ९ ॥
कस्मिन्पुरे स्थितिस्तस्य बलं किं वद धर्मज ।

रेश्वर प्रद्युम्न कामदेवमें वैसे ही विलीन हो गये, जैसे जल जलमें मिल जाता हैं। उनकी यह दशा देख सभी यादव प्रद्युम्नको पूर्ण परमेश्वर जानकर बहुत विस्मित हुए ॥ ४० ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायामेकत्रिंशोऽध्याय: ॥ ३१ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! तदनन्तर श्रीकृष्णसुत महाबाहु प्रद्युम्न केतुमाल खंडको जीतकर योगकी समृद्धियोंसे सम्पन्न भद्राश्वखंड गये ॥ १ ॥ जिसकी सीमाका पर्वत गन्धमादनपर्वत था। वहाँ सीता नामकी पापनाशिनी गंगा बहती है ॥ २ ॥ सब प्रकारके पापोंका नाशक वेदक्षेत्र वहाँ ही था। महाबाहु हयग्रीवभगवान् वहाँ नित्य विराजते हैं ॥ ३ ॥ धर्मपुत्र भद्रश्रवा उनकी सेवा करता है। वहाँ ही गंगाजीके किनारे महात्मा प्रद्युम्नका सुनहले वस्त्रोंसे निर्मित शिबिर लगा ॥ ४ ॥ धर्मपुत्र, भद्राश्वदेशके स्वामी तथा महातेजस्वी भद्रश्रवाने प्रद्युम्नकी प्रदक्षिणा और प्रणाम करके बड़ी भक्तिके साथ भेंट दी और कहा ॥ ५ ॥ भद्रश्रवा बोला—हे प्रभो ! आप पूर्ण परिपूर्णतम साक्षात् भगवान् हैं। सज्जनोंकी रक्षा तथा जगत्को जीतनेके लिए आप निकले हुए हैं ॥ ६ ॥ हे भगवन् ! पूर्वकालमें आप शम्बर नामके दैत्यको जीत चुके हैं। उसीका छोटा भाई उत्कच बड़ा दुष्ट दानव है ॥ ७ ॥ गोकुलमें भगवान् श्रीकृष्णने जिस शकटासुरको मारा था, उसका बड़ा भाई शकुनि भी बड़ा बलवान् और बड़ा दुष्ट है ॥ ८ ॥ हे देव ! उसे एकमात्र आप ही जीत सकते हैं—दूसरा कोई नहीं जीत सकता। प्रद्युम्न बोले—हे धर्मपुत्र ! वह दैत्यराज शकुनि किस वंशमें उत्पन्न

भद्रश्रवा उवाच

कश्यपस्य मुनेर्दित्यामादिदैत्यौ बभूवतुः ॥१०॥

हिरण्यकशिपुर्ज्येष्ठो हिरण्याक्षोऽनुजस्तथा । हिरण्याक्षस्य तस्यापि बभूवुर्नव पुत्रकाः ॥११॥
शकुनिः शंबरो हृष्टो भूतसंतापनो वृकः । कालनाभो महानाभो हरिश्मश्रुस्तथोत्कचः ॥१२॥
देवकूटाद्दक्षिणे हि जठरस्य गिरेरधः । पुरी चन्द्रावती नाम दैत्यानां दुर्गमंडिता ॥१३॥
शकुनिस्तत्र वसति भ्रातृभिः षड्भिरावृतः । यदा यदा हि मुनयो यज्ञारम्भं प्रकुर्वते ॥१४॥
तदा तदा हि तेनापि भंगोऽकारि यदूत्तम । यस्माच्च संति शक्राद्या उद्विग्नाः सात्वतांपते ॥१५॥
जेतुं योग्यस्त्वया देव देवध्रुग्दैत्यपुंगवः । त्वया जितं जगत्सर्वं भक्तानां शांतिकारणात् ॥१६॥
प्रद्युम्नाय नमस्तुभ्यं चतुर्व्यूहाय ते नमः । गोविप्रसुरसाधूनां छंदसां पतये नमः ॥१७॥

श्रीनारद उवाच

एवं संप्रार्थितः साक्षात्प्रद्युम्नो भगवान् हरिः । देवाय भद्रश्रवसे माभैष्टेत्यभयं ददौ ॥१८॥
अथ कार्ष्णिर्महाबाहुः स्वसैन्यपरिवारितः । पुरीं चंद्रावतीं गंतुं प्रस्थानमकरोत्तदा ॥१९॥
मन्मुखाच्छकुनिः श्रुत्वा प्रागच्छंतं यदूत्तमम् । दैत्यानां सदसि प्राह शूलमुद्यम्य दैत्यराट् ॥२०॥

शकुनिरुवाच

दिष्ट्या दिष्ट्या हि शत्रुर्मे प्रद्युम्नोऽत्र समागतः । जेतुं योग्यो मया दैत्या भ्रातुर्मय्यस्ति प्रागृणम् ॥२१॥
भ्राता मे शंबरो नाम येन पूर्वं च मारितः । तस्मात्तं घातयिष्यामि प्रद्युम्नं यदुभिः सह ॥२२॥
तस्माद्यात बलं तस्य विध्वस्तं कुरुतासुराः । पश्चात्पुरंदराधीशं घातयिष्यामि निर्जरान् ॥२३॥

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य दैत्यो हृष्टो महाबलः । आययौ संमुखे योद्धुं दैत्यकोटिसमावृतः ॥२४॥
प्रद्युम्नो भगवान्साक्षाल्लीलामानुषविग्रहः । महत्याः सर्वसेनाया गृध्रव्यूहं चकार ह ॥२५॥

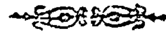
हुआ है ? वह कहाँ रहता है और उसमें कितना बल है ? भद्रश्रवाने कहा—महामुनि कश्यपकी पत्नी दितिसे दो आदिदैत्य जनमे । जिनमें हिरण्यकशिपु ज्येष्ठ और हिरण्याक्ष छोटा था । उन दोनोंमेंसे हिरण्याक्षके नौ पुत्र हुए ॥ ९–११ ॥ उनके नाम थे—शकुनि, शंबर, हृष्ट, भूतसन्तापन, वृक, कालनाभ, महानाभ, हरिश्मश्रु तथा उत्कच ॥ १२ ॥ देवकूट पर्वतके दाहिने ओर जठर पर्वतके नीचे दैत्योंकी चन्द्रावती पुरी है । उसमें दुर्ग भी है ॥ १३ ॥ अपने भाइयोंके साथ शकुनी वहीं रहता है । जब जब मुनिलोग यज्ञ आरम्भ करते हैं, तब तब हे भक्त वत्सल ! वह दैत्य यज्ञ भंग कर देता है । इन्द्रादि देवता भी उससे उद्विग्न रहते हैं ॥१४॥१५॥ हे देव ! देवताओंके शत्रु उस दैत्यको आप अवश्य जीतें । क्योंकि भक्तोंको शान्ति प्रदान करनेके लिए ही आपने सारे संसारको जीता है ॥ १६ ॥ हे प्रद्युम्न ! आपको नमस्कार है । हे चतुर्व्यूह ! आपको नमस्कार है । गौओं, ब्राह्मणों, देवताओं और साधुओंके आप स्वामी हैं । आपको नमस्कार है ॥ १७ ॥ नारदजी बोले—हे राजन् ! जब भद्रश्रवाने इस प्रकार प्रार्थना की, तब साक्षात् प्रद्युम्नभगवान्ने भद्रश्रवाको अभयदान देते हुए कहा—'हे देव ! आप किसी प्रकारका भय न करें' ॥ १८ ॥ इसके बाद महाबाहु प्रद्युम्नने अपनी सेना लेकर चन्द्रावती पुरीको प्रस्थान किया ॥ १९ ॥ मेरे (नारदके) मुखसे दैत्यराज शकुनिने प्रद्युम्नके आगमनकी बात सुनी तो दैत्योंकी सभामें त्रिशूल उठाकर कहा ॥ २० ॥ शकुनि बोला—हे दैत्य वीरो ! बड़ा अच्छा हुआ, जो मेरा शत्रु प्रद्युम्न यहीं आ रहा है । जैसे भी हो, मुझे उसको जीतना ही है । क्योंकि मेरे ऊपर मेरे भाई (शंबर) का ऋण है ॥ २१ ॥ पूर्वकालमें मेरे भाईको उसीने मारा था । अतएव समस्त यादवोंके साथ प्रद्युम्नको मैं मार डालूँगा ॥ २२ ॥ इससे आपलोग जाइए और उसकी सेनाको नष्ट कर डालिए । उसके बाद मैं देवताओं समेत इन्द्रको भी मारूँगा ॥ २३ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! शकुनिकी बात सुनकर महाबली दैत्यराज हृष्ट एक करोड़ दैत्योंकी सेना लेकर प्रद्युम्नके सम्मुख जा पहुँचा ॥ २४ ॥ तब लीलामानुष-

गृध्रचंचौ वर्तमानोऽनिरुद्धो धन्विनां वरः । ग्रीवायामर्जुनः पृष्ठे सांबो जांबवतीसुतः ॥२६॥
पादयोरुभयो राजन्नास्थितौ दीप्तिमद्गदौ । कार्ष्णिः साक्षात्तदुदरे पुच्छे भानुर्हरेः सुतः ॥२७॥
बभूव तुमुलं युद्धं सीतागंगातटे नृप । दैत्यानां यदुभिः सार्द्धमब्धीनामब्धिभिर्यथा ॥२८॥
बाणैस्त्रिशलैर्मुसलैर्मुद्गरैस्तोमरर्ष्टिभिः । वव्रुर्पुर्दानवाः सर्वे धाराभिरिव वारिदाः ॥२९॥
रुरोध सूर्यं चाकाशं सैन्यपादरजो भृशम् । राजन्स्ववाणं च यथा वारिदाः प्रावृडुद्भवाः ॥३०॥
वृको हर्षोऽनिलो गृध्रो वर्द्धनोऽन्नाद एव च । महाशः पवनो वह्निः क्षुदिश्च दशमः स्मृतः ॥३१॥
मित्रविंदात्मजा ह्येते युयुधुर्दानवैः सह । बाणांधकारे संजाते वृको नाम हरेः सुतः ॥३२॥
सर्वेषामग्रतः प्राप्तो धनुष्टंकारयन्मुहुः । दैत्यान्बिभेद बाणौघैः कुवाक्यैर्मित्रतामिव ॥३३॥
गजान् रथान् हयान् वीरान्पातयामास भूतले । निपेतुश्छिन्नकवचाश्छिन्नचापा रणांगणे ॥३४॥
वृकबाणैर्भिन्नपादा वृक्षा वातहता इव । अधोमुखा ऊर्ध्वमुखा बाणौघैश्छिन्नबाहवः ॥३५॥
रेजू रणांगणे राजन् भांडव्यूहा इवाहताः । द्विधाभूता गजा बाणैः पतिता रणमंडले ॥३६॥
विरेजुश्छुरिकाविद्धाः कूष्मांडशकला इव । तदैव हृष्टः संप्राप्तः सिंहारूढो महाबलः ॥३७॥
बिभेद कवचं तस्य सिंजिनीं दशभिः शरैः । चतुर्भिश्चतुरो वाहान्द्वाभ्यां सूतं ध्वजं तथा ॥३८॥
त्रिभी रथं च बाणानां विंशत्या दनुजाधिपः । छिन्नधन्वा वृको भूत्वा हताश्वो हतसारथिः ॥३९॥
अन्यं रथं समारूढो धनुर्जग्राह रोषतः । तावत्तस्य धनुर्हृष्टश्चिच्छेद समरेऽसुरः ॥४०॥
तदा गदां समादाय वृको यादवपुंगवः । तताड मूर्ध्नि पंचास्यं दैत्यं पृष्ठस्थितं पुनः ॥४१॥
मृगेंद्रः क्रोधसंपूर्णः समुत्पत्य रणांगणे । अनेकान्पातयामास नखैर्दंतैः करैरपि ॥४२॥
हुंकारं भीषणं कृत्वा ललजिह्वः स्फुरत्सटः । वृकं संपातयामास रंभादंडं गजो यथा ॥४३॥

देहधारी प्रद्युम्न भगवानने अपनी सारी सेनाका गृध्रव्यूह रचा ॥ २५ ॥ उस गृध्रके चंचुस्थानपर अनिरुद्ध, उसकी गर्दनपर अर्जुन और पीठपर जाम्बवतीसुत साम्ब खड़े हुए ॥ २६ ॥ उसके दोनों पैरोंकी जगह दीप्तिमान् और गद खडे हुए। उस गृध्रके पेटकी जगह स्वयं प्रद्युम्न और पूँछकी जगह श्रीकृष्णके पुत्र भानु खड़े हुए ॥ २७ ॥ हे राजन् ! इसके बाद सीतागंगाके तटपर दैत्यों तथा यादवोंमें वैसे ही घोर युद्ध हुआ, जैसे एक समुद्रका दूसरे समुद्रसे युद्ध होता हो ॥ २८ ॥ उसमें बाण, त्रिशूल, मुसल, मुद्गर आदि शस्त्रास्त्रोंकी ऐसी वर्षा होने लगी, जैसे मेघसे जलकी बूँदें बरसती हैं ॥२९॥ हे राजन् ! सैनिकोंके पैरोंकी धूलसे सूर्य और आकाश दोनों ऐसे ढँक गये, जैसे वर्षाके बादल आकाश तथा सूर्यको ढाँक लेते हैं ॥ ३० ॥ वृक, हर्ष, अनिल, गृध्र, वर्धन, अन्नाद, महाश, पावन, वह्नि और क्षुदि, मित्रविंदाके ये दसों पुत्र दैत्योंसे खूब लड़े। अविरल बाणवर्षासे जब घोर अन्धकार छा गया, तब श्रीकृष्णका पुत्र वृक सबसे आगे आया और धनुषका टंकार करता हुआ बाणोंसे दैत्योंको इस तरह बींधने लगा, जैसे कुवाक्योंसे मित्रता बिंध जाती है ॥ ३१–३३ ॥ वह वीर हाथियों, रथों, घोड़ों और वीर सैनिकोंको मार-मारकर धरतीपर गिराने लगा। तब जिन सैनिकोंके कवच तथा धनुष कट गये थे, वे वीर रणमें धराशायी हो गये ॥ ३४ ॥ वीर वृकके बाणोंसे जिनके हाथ-पैर कट गये थे, वे वीर नीचेको मुख करके गिर गये, जैसे जड़ कट जानेपर वृक्ष गिर जाते हैं ॥ ३५ ॥ उस रणांगणमें फूटे बर्तनोंकी तरह घायल योद्धा पड़े हुए थे। उस रणमें बाणोंकी मारसे दो-दो टुकड़े होकर पड़े हाथी छुरीसे कटे कोंहड़ेके टुकड़ों जैसे दीखने लगे। तभी हृष्ट नामका दैत्य सिंहपर चढ़कर रणभूमिमें आया ॥३६॥३७॥ आते ही उसने दस बाणोंसे वृकके धनुषकी प्रत्यंचा, चार बाणोंसे चारों घोड़े, दो बाणोंसे सारथी तथा तीन बाणोंसे ध्वजा काट डाली ॥ ३८ ॥ उसने बीस बाणोंसे वृकका रथ भी काट डाला। इस प्रकार वृकके धनुष, बाण, रथ, घोड़े, कवच तथा सारथी सब कट गये तो वह विरथ हो गया ॥ ३९ ॥ तब दूसरे रथपर बैठकर क्रुद्ध वृकने दूसरा धनुष सम्हाला। किन्तु वृकने हृष्ट दैत्यका वह धनुष भी काट डाला ॥४०॥ तब यादवश्रेष्ठ वृकने अपने पीछे खड़े पाँच मुखवाले हृष्ट दैत्यको गदासे मारा ॥४१॥ तभी हृष्टके सिंहने क्रोधसे उछल-उछलकर अपने नखों, दाँतों और

गृहीत्वा तु वृको दोर्भ्यां पातयित्वा महीतले । तस्योपरि नदंस्तस्थौ मल्लो मल्लं यथा नृप ॥४४॥
उत्पतंतं पुनः सिंहं चर्वयंतं तनुं बलात् । तताड मुष्टिना तं वै मित्रविंदात्मजो बली ॥४५॥
तस्य मुष्टिप्रहारेण केसरी पंचतां गतः । तदा क्रुद्धो हृष्टदैत्यः शूलं चिक्षेप सत्वरम् ॥४६॥
शूलं स्फुरन्महोल्काभं चिच्छेद त्वसिना वृकः । तीक्ष्णया तुंडया राजन्फणिनं गरुडो यथा ॥४७॥
हृष्टोऽपि स्वमसिं नीत्वा नादयन् स्वं महाबलम् । जघान तं वृकं मूर्ध्नि कंपयन् वसुधातलम् ॥४८॥
खड्गकोशे ततः खड्गमुपधार्य वृको बली । कंधरे स्वेन खड्गेन तं तताड स्फुरच्छ्रुचम् ॥४९॥
खड्गच्छिन्नं शिरस्तस्य दैत्यस्य पतितं भुवि । रेजे कमंडलुमिव सकिरीटं सकुंडलम् ॥५०॥
हृष्टे मृते तदा दैत्याः शेषा सर्वे पलायिताः । भयातुरा महाराज ययुश्चंद्रावतीं पुरीम् ॥५१॥
देवदुंदुभयो नेदुर्नरदुंदुभयस्तदा । श्रीवृकस्योपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे ॥५२॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसम्वादे हृष्टदैत्यवधो नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥



अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

(भूतसंतापन दैत्यका वध)

श्रीनारद उवाच

हृष्टं निपतितं श्रुत्वा शकुनिः क्रोधमूर्च्छितः । भ्रातॄन्संप्रेषयामास देवानां भयकारकान् ॥ १ ॥
भूतसंतापनो नाम गजमारुह्य निर्गतः । वृकः खरं समारुह्य कालनाभोऽथ सूकरम् ॥ २ ॥
महानाभो मत्तपुष्टं हरिश्मश्रुस्तिमिंगिलम् । वैजयंतं रथं जैत्रं मयदैत्यविनिर्मितम् ॥ ३ ॥
पंचयोजनविस्तीर्णं सहस्राश्वनियोजितम् । मायामयं कामगं च पताकाशतसंवृतम् ॥ ४ ॥

और पंजोंसे मारकर बहुतेरे वीरोंको गिरा दिया ॥ ४२ ॥ भीषण हुंकार करके जीभ लपलपाते हुए उस सिंहने वृकको भी वैसे ही गिरा दिया, जैसे कोई हाथी केलेके खंभेको गिरा दे ॥ ४३ ॥ किन्तु तुरन्त उठकर वृकने दोनों हाथोंसे पकड़कर सिंहको गिरा दिया और घोर गर्जन करके उसके ऊपर वैसे ही चढ़ बैठा, जैसे कोई पहलवान दूसरे पहलवानको पटककर चढ़ बैठता है ॥४४॥ किन्तु फिर उठकर बलपूर्वक शरीरको चबाते हुए सिंहको मित्रविन्दाके पुत्र वृकने बड़े जोरसे एक घूँसा मारा । उस घूँसेकी मारसे सिंह मर गया । तब हृष्ट दैत्यने कुपित होकर शीघ्र अपना त्रिशूल चलाया ॥ ४६ ॥ बड़ी मशालके समान चमकते हुए उस त्रिशूलको वीर वृकने अपनी तेज तलवारसे काट डाला, जैसे गरुड़ सर्पको तीखी चोंचसे काट डालते हैं ॥ ४५-४७ ॥ तब हृष्ट दैत्यने तलवार लेकर बहुत जोरसे गर्जन किया और वृकके मस्तकपर चला दी ॥४८॥ तब बलवान् वृकने उस प्रहारको अपनी तलवारकी म्यानपर रोककर एक तेज धारवाली तलवार हृष्टकी गर्दनपर चलायी ॥४९॥ इस प्रहारसे उसका सिर कटकर धरतीपर आ गिरा । किरीट और कुंडलयुक्त हृष्ट दैत्यका सिर कमंडलुकी भाँति शोभित हुआ ॥ ५० ॥ इस प्रकार हृष्टके मर जानेपर शेष दैत्य भयभीत होकर चन्द्रावती पुरीको भाग गये ॥ ५१ ॥ तब देवताओं तथा मनुष्योंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं और देवता प्रसन्न होकर वृकपर पुष्पवर्षा करने लगे ॥ ५२ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! हृष्ट दैत्यके मरणका समाचार सुनकर अतीव क्रुद्ध शकुनिने देवताओंको भी भयभीत करनेवाले भाइयोंको भेजा ॥ १ ॥ तदनुसार भूतसन्तापन दैत्य हाथीपर, वृकदैत्य गधेपर और कालनाभ दैत्य सुअरपर चढ़कर रणभूमिको चला ॥ २ ॥ महानाभ दैत्य मत्त एवं पुष्ट हाथीपर, हरिश्मश्रु दैत्य मगरपर और वैजयन्त दैत्य मयदानवके हाथों बने रथपर बैठकर चला ॥ ३ ॥ उस रथमें हजार घोड़े जुते थे, पांच योजन उसका विस्तार था, उसमें सौ पताकायें लगी थीं, वह रथ मायामय था और रथीकी

सहस्रकलशाढ्यं च मुक्तादामविलंवितम् । रत्नभूषणभूपाढ्यं शतचंद्रसमोज्ज्वलम् ॥ ५ ॥
सहस्रचक्रसंयुक्तं घंटाकारविभूषणम् । आरुह्य शकुनिः पश्चाद्योद्‌धुकामो विनिर्ययौ ॥ ६ ॥
अक्षौहिणीभिर्द्वादशभिर्दैत्यानां मैथिलेश्वर । धनुःस्वनैर्वीरशब्दैरश्वहेपारथस्वनैः ॥ ७ ॥
चीत्कारैर्हस्तिनामाशामण्डलं तु जगर्ज ह । दैत्यसेनाप्रयाणेन चकंपे मण्डलं भुवः ॥ ८ ॥
निपेतुर्गिरयोऽनेका विचेलुः सिंधवो नृप । निपातितार्गला देवैर्बभूवाश्वमरावती ॥ ९ ॥
तत्सैन्यं भीषणं दृष्ट्वा प्रद्युम्नो धन्विनां वरः । बली धैर्यधरः कार्ष्णिः प्राहेदं यदुपुंगवान् ॥१०॥

प्रद्युम्न उवाच

इदं शरीरं भुवि पांचभौतिकं फेनोपमं कर्मगुणादिनिर्मितम् ।
गतागतं कालवशं कदापि बुधा न शोचंति यथार्भकैः कृतम् ॥११॥
गच्छंति चोर्ध्वं किल सात्त्विका जना मध्ये च तिष्ठंति हि राजसा नराः ।
अधः प्रगच्छंति हि तामसाः परे मुहुर्मुहुस्ते विचरंति कर्मभिः ॥१२॥
विभेत्ययं वा किल सर्वतो यथा नेत्रभ्रमेणाचलतीव भूर्वृथा ।
तथा च सर्वं मनसा कृतं जगत्काचेऽर्भकं ह्यर्भक आवृतो यथा ॥१३॥
यथा सुखं मंडलवर्तिनां चलं तथाऽस्ति पातालनिवासिनामपि ।
ताऽमराणां क्रतुभिः कृतं स्मरेत्सर्वं त्यजेत्तत्तृणवत्परो जनः ॥१४॥
ऋतोर्गुणा देहगुणाः स्वभावा अहर्दिनं यांति यथा तथा जनाः ।
दृश्यं च यद्यत्र हि किंचिदस्ति यथा व्रजे गच्छति पांथसंगमम् ॥१५॥
दृष्टं यथा वस्तु यदोल्कया तथा परे गते किं ह्युभयप्रयोजनम् ।
विधाय मार्गं विचरेच्छिवस्य पश्यन्हि सर्वत्र हरिं परेश्वरम् ॥१६॥

इच्छाके अनुसार चलता था ॥ ४ ॥ उसमें हजार कलश लगे थे, वह मोतियोंकी मालासे अलंकृत था, रत्नोंके आभूषणोंसे आभूषित होनेके कारण वह चन्द्रमा जैसा उज्ज्वल दीखता था ॥ ५ ॥ उसमें हजार पहिये थे और बहुतेरे घंटोंका निनाद हो रहा था । उस रथपर सवार होकर दैत्यराज शकुनि लड़नेके लिए चला ॥ ६ ॥ हे मैथिलेश्वर ! दैत्योंकी बारह अक्षौहिणी सेना लेकर वह आया । धनुषका टंकार, वीरोंका सिंहगर्जन, घोड़ोंकी हिनहिनाहट, रथोंकी घड़घड़ाहट और हाथियोंके चिंघाड़से दसों दिशायें झंकृत हो उठीं । उस दैत्यसेनाके प्रयाणसे सारा भूमंडल काँप उठा ॥ ७ ॥ ८ ॥ इससे अनेक पर्वत गिर पड़े, समुद्र विचलित हो उठे और देवताओंने अमरावती पुरीके बेवड़े डाल दिये ॥ ९ ॥ उस भीषण सेनाको देखकर धनुर्धरोंमें अग्रणी तथा महाबली प्रद्युम्नने धीर-वीर यादवोंसे कहा ॥ १० ॥ प्रद्युम्न बोले— यह शरीर पंचतत्त्वका बना हुआ है, जलफेनके समान यह क्षणभंगुर है, कर्म तथा गुणसे इसका निर्माण हुआ है, यह आने-जानेवाला है, सदा कालके वशीभूत रहता है और यह शरीर बालकोंके खिलौने जैसा है । इसीसे बुद्धिमान् लोग इसके विषयमें सोच नहीं करते ॥ ११ ॥ सात्त्विक मनुष्य स्वर्ग जाते हैं, रजोगुणी मध्यमें रहते हैं और तमोगुणी लोग पातालको जाते हैं । ऐसे लोग अपने कर्मोंसे बार-बार धरतीपर आया-जाया करते हैं ॥ १२ ॥ जैसे नेत्रके घूमनेसे धरती व्यर्थ घूमती दीखती है, वैसे ही यह संसार मनःकल्पित है । इसको सब ओरसे भय है । अतएव जगत् सदा भयभीत रहता है, जैसे बालक दर्पणमें स्थित अपने रूपसे डरने लगता है ॥ १३ ॥ जैसे चक्रवर्ती राजाओंका सुख अस्थायी होता है, वही हाल पातालवासियोंका है । वैसे ही देवताओंके प्रीत्यर्थ किये जानेवाले यज्ञ-यागादिसे प्राप्त फलका सुख भी क्षणिक होता है । इसीसे भगवत्परायण भक्त जगत्के सुखोंको तृणवत् समझकर त्याग देते हैं ॥ १४ ॥ जैसे ऋतु तथा देहके गुण अनित्य होनेके कारण नित्य आते-जाते रहते हैं, वैसे ही लोग आते-जाते हैं । जैसे पथिकको मार्गमें साथी मिलते हैं और बिछुड़ जाते हैं, वैसे ही संसारमें जो कुछ भी दृश्य है, वह सब अनित्य है—मिथ्या है ॥ १५ ॥ जो भी वस्तु दीखती है, वह

यथेंदुरेको जलपात्रवृन्दगो यथाऽग्निरेको विदितः समिच्चये ।
तथा परात्मा भगवाननेकवत्सोऽन्तर्बहिः स्यात्सुकृतेषु देहिषु ॥१७॥
यो ज्ञाननिष्ठोऽतिविरागमाश्रितःश्रीकृष्णभक्तस्त्वनपेक्षकोऽपि यः ।
तपोवनं वाऽपि गृहं गृहं वनं स्पृशंति तं ते त्रिगुणा न सर्वतः ॥१८॥
ततो यतिस्त्वध्यगमत्परात्परं सुखी सदानन्दमयस्तु बालवत् ।
देहेन पश्यत्युत सर्वकारणं धृतं च वासो मदिरामदांधवत् ॥१९॥
सूर्योदये सर्वतमो विलीयते प्रदृश्यते वस्तु गृहे यथा जनैः ।
ज्ञानोदयेऽज्ञानतमः प्रलीयते संभ्राजते ब्रह्म परं तनौ तथा ॥२०॥
यथेन्द्रियाणां च पृथक् च वर्त्मभिर्नोन्नीयतेऽर्थस्त्रिगुणाश्रयः परः ।
एकं ह्यनंतस्य परस्य धाम तत्तथा मुनीनां किल शास्त्रवर्त्मभिः ॥२१॥
परं पदं केऽपि वदन्ति वैष्णवं के वापि वैकुण्ठपरं परेशम् ।
शांतिं च यत्केऽपि तमःपरं बृहत् कैवल्यमेके प्रवदन्ति धामके ॥२२॥
यदक्षरं केऽपि दिशं वदंति के गोलोकमाद्यं प्रवदन्त्यथापरे ।
केचिन्निकुञ्जं निजलीलयावृतं प्राप्नोति कृष्णस्य पदं च तन्मुनिः ॥२३॥

श्रीनारद उवाच

इति कार्ष्णेर्वचः श्रुत्वा सर्वे यादवपुङ्गवाः । शस्त्राणि जगृहुर्हृष्टा तज्ज्ञाने धैर्यवर्द्धने ॥२४॥
बभूव तुमुलं युद्धं दैत्यानां यदुभिः सह । सीतागङ्गातटे चाब्धौ रक्षसां कपिभिर्यथा ॥२५॥
रथिनो रथिभिस्तत्र पत्तिभिः पत्तयो नृप । अश्ववाहैरश्ववाहा युयुधुश्च गजा गजैः ॥२६॥

केचित्करींद्रा उन्मत्ता महामात्यैः प्रणोदिताः । गिरींद्रा इव दृश्यन्ते मुक्तानां मेघडंबरैः ॥२७॥
शुण्डादण्डैश्च फूत्कारैः सचीत्कारैः सशृङ्खलैः । पातयंतो रथानश्वान् वीरान् राजन् रणांगणे ॥२८॥
शुण्डादण्डैः संगृहीत्वा रथान्साश्वान्ससारथीन् । निपात्य भूमावुत्थाप्य चिक्षिपुश्चांबरे बलात् ॥२९॥
कांश्चिन्ममर्दुः पादाभ्यां संविदार्य करैर्दृढैः । सक्षताश्च गजा राजन्प्रधावंतो रणाङ्गणे ॥३०॥
सपक्षास्तुरगा राजन्नश्ववाहप्रणोदिताः । उल्लंघयन्तोऽथ रथान् गजकुम्भांतरे गताः ॥३१॥
केचिदश्वैर्महावीराः शक्तिहस्ता मदोत्कटाः । जघ्नुर्गजस्थान्नृपतीन्मृगेंद्रा इव यूथपान् ॥३२॥
अश्वारूढाः केऽपि सेनां संविदार्य विनिर्गताः । खड्गवेगैः पद्मवनं लीलाभिर्वायवो यथा ॥३३॥
केचित्परस्परं साश्वैरुत्पतन्तो रणाङ्गणे । खड्गैर्जघ्नुर्यथा क्रव्ये चंचुभिः पक्षिणोऽम्बरे ॥३४॥
केचित्खड्गैः परशुभिः केचिच्चक्रैः पदातयः । चिच्छिदुर्निशितैर्भल्लैः फलानीव शिरांसि च ॥३५॥
संग्रामजिद्बृहत्सेनः शूरः प्रहरणो विजित् । जयः सुभद्रो वामश्च सत्यकोऽश्वयुरेव हि ॥३६॥
भद्रायाश्च सुता ह्येते श्रीकृष्णस्यौरसाः शुभाः । सर्वेषामग्रतः प्राप्ता युयुधुर्दैत्यपुङ्गवैः ॥३७॥
भूतसंतापनो नाम गजारूढो महासुरः । यदुसैन्ये महाराज चक्रे नाराचदुर्दिनम् ॥३८॥
बाणांधकारे च कृते भूतसंतापनेन वै । संग्रामजित्तदा प्राप्तः श्रीकृष्णस्य सुतो बली ॥३९॥
विव्याध बाणशतकैर्भूतसंतापनं रणे । प्रलयार्णवसंघोषभीमसंघट्टनादिनीम् ॥४०॥
धनुर्ज्यां तस्य चिच्छेद भूतसंतापनो बली । संग्रामजिद्धनुश्चान्यद्गृहीत्वा स्वं तडित्प्रभम् ॥४१॥
सज्जं कृत्वा विधानेन शतं बाणान्समादधे । ते बाणास्तद्धनुर्ज्यां च कवचं लोहनिर्मितम् ॥४२॥
भित्वा छित्वा तनुं तस्य गजं भित्वाऽवनिं गताः । बाणप्रहारव्यथितः किंचिद्व्याकुलमानसः ॥४३॥

समुद्रके तटपर हुआ था ॥ २५ ॥ रथियोंसे रथी, पैदल सैनिकोंसे पैदल सैनिक, घुड़सवारोंसे घुड़सवार और हाथियोंसे हाथी लड़ने लगे ॥ २६ ॥ कुछ उन्मत्त हाथी महावतोंसे प्रेरित होकर मेघयुक्त पर्वतोंकी भाँति दीख रहे थे ॥ २७ ॥ हे राजन् ! वे हाथी अपनी सूँड़ोंकी फुंकारसे, चीत्कारसे और सिक्कड़ोंकी खनखनाहटसे रथों, घोड़ों तथा सैनिकोंको मार-मारकर गिराने लगे ॥ २८ ॥ उन हाथियोंने अश्वों और सारथियों समेत रथियोंको उठाकर भूमिपर पटका और फिर जोरसे उठाकर आकाशमें फेंक दिया ॥ २९ ॥ उन्होंने कुछ सैनिकोंको अपनी सूँड़ोंसे पकड़कर चीरा और अपने दोनों पैरोंसे मसल दिया। उनमेंसे कुछ घायल हाथी रणांगणमें दौड़ने लगे ॥३०॥ हे नृप ! कुछ उड़नेवाले घोड़े सवारोंकी प्रेरणासे रथोंको लाँघकर हाथियोंके मस्तकपर चढ़ गये ॥ ३१ ॥ कुछ बर्छीधारी घुड़सवार मदमत्त हाथियोंपर बैठे हुए राजाओंको इस तरह मारने लगे, जैसे सिंह हिरन अथवा हाथियोंको मारते हैं ॥ ३२ ॥ कुछ घुड़सवार वेगके साथ तलवारसे सेनाको काटते हुए बाहर निकल गये, जैसे वायु कमलवनको चीरकर निकल जाता है ॥ ३३ ॥ कुछ घुड़सवार उछल-उछलकर तलवारोंसे एक दूसरेको काट रहे थे। जैसे मांसाहारी पक्षी आकाशमें मांसके लिए परस्पर मार-काट करते हैं ॥ ३४ ॥ कुछ पैदल सैनिक तलवार, फरसा, चक्र तथा तीक्ष्ण भालेसे दूसरे सैनिकोंके सिर फलकी तरह काट रहे थे ॥ ३५ ॥ संग्रामजित्, बृहत्सेन, शूर, प्रहरण, विजित्, जय, सुभद्र, वाम, सत्यक और अश्वयु ये दस श्रीकृष्ण तथा भद्राके औरस पुत्र दैत्योंसे लड़नेके लिए आगे आये और आते ही वे वहाँके बड़े-बड़े दैत्योंसे लड़ने लगे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ उसी समय भूतसन्तापन नामका दैत्य हाथीपर चढ़कर आया, आते ही उसने अपनी विकराल बाणवर्षासे यादवोंकी सेनामें दुर्दिन (बरसातका दिन) उपस्थित कर दिया ॥ ३८ ॥ इस प्रकार भूतसन्तापन द्वारा दुर्दिन उपस्थित कर दिये जानेपर श्रीकृष्णका बलवान् पुत्र संग्रामजित् रणभूमिमें आया ॥ ३९ ॥ रणमें पहुँचते ही संग्रामजित्ने भूतसन्तापनको सौ बाण मारे। तभी प्रलयकालीन समुद्रसदृश गर्जन करनेवाली संग्रामजित्की प्रत्यंचाको भूतसन्तापनने काट दी। तत्काल संग्रामजित्ने बिजलीके समान चमकीला दूसरा धनुष ले लिया ॥४०॥४१॥ उसे विधिवत् चढ़ाकर संग्रामजित्ने भूतसन्तापनपर फिर सौ बाण छोड़े। भूतसन्तापनके धनुषकी प्रत्यंचा, लौहकवच तथा उसके शरीरको छेद और उसके हाथीको भेदकर वे बाण धरतीमें समा गये।

गजं स्वं नोदयामास भूतसंतापनो बली । कालांतकसमं नागं दृष्ट्वा संग्रामजिद्बली ॥४४॥
गृहीत्वा स्वमसिं दिव्यं संजघान रणांगणे । तस्य खड्गप्रहारेण शुण्डादंडो द्विधाऽभवत् ॥४५॥
चीत्कारमुत्कटं कुर्वन् मदं संस्रावयन्कटात् । भूतसंतापनं त्यक्त्वा भुवनं कंपयन् गजः ॥४६॥
निपातयन्महावीरान्घंटानादैर्नदन्मुहुः । न बलात्स्तंभितो दैत्यैः पुरीं चंद्रावतीं ययौ ॥४७॥
कोलाहलो महानासीद्व्रजन्नेवं गजे च्युते । भूतसंतापनश्चक्रं श्रीकृष्णस्य सुताय वै ॥४८॥
चिक्षेप निशितं शीघ्रं ग्रीष्ममार्तंडवत्स्फुरत् । तदागतं भ्रमद्दृष्ट्वा चक्रं भद्रात्मजो बली ॥४९॥
स्वचक्रेण महाराज लीलया शतधाऽच्छिनत् । जठरस्य गिरेः शृङ्गं समुत्पाट्य महासुरः ॥५०॥
चिक्षेप कृष्णपुत्राय नादयन् व्योममण्डलम् । संग्रामजिच्च तच्छृङ्गं गृहीत्वा भुजयोर्बलात् ॥५१॥
तताड तेन राजेंद्र भूतसन्तापनं रणे । भूतसन्तापनो दैत्यः सम्पूर्णं जठरं गिरिम् ॥५२॥
गृहीत्वा सङ्गरे तस्थावुद्भटो दैत्यपुङ्गवः । अनेन घातयिष्यामि त्वां रणे प्रवदन्मुखात् ॥५३॥
देवकूटं समुत्पाट्य गिरिं च श्रीहरेः सुतः । अनेन घातयिष्यामि त्वां रणे प्रवदन्मुखात् ॥५४॥
तस्थौ तत्सम्मुखे राजंस्तदद्भुतमिवाभवत् । क्षिपन्तं पर्वतं दैत्यं भूतसन्तापनं नृप ॥५५॥
तताड गिरिणा स्वेन रणे संग्रामजिद्बली । जठरो देवकूटश्च द्वौ गिरी दैत्यमस्तके ॥५६॥
पतितौ भूरिभाराढ्यौ वज्रसंघर्षनादिनौ ॥५७॥
भूतसन्तापनस्ताभ्यां पतितः पञ्चतां गतः । तज्ज्योतिः संग्रामजिति लीनं जातं विदेहराट् ॥५८॥
श्रीसंग्रामजितः सैन्ये नेदुर्दुंदुभयस्तदा । भद्रात्मजोपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे ॥५९॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे भूतसन्तापनदैत्यवधो नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

इस प्रहारसे महाबली भूतसन्तापन कुछ व्याकुल हो गया ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ तथापि भूतसन्तापनने अपने हाथीको आगे बढ़नेके लिए प्रेरित किया । कालान्तकके समान भीषण उस हाथीको देखकर बलवान् संग्रामजित्ने अपनी तीक्ष्ण धारवाली तलवार मारी । उस प्रहारसे कटकर हाथीकी सूँड़के दो टुकड़े हो गये ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ तब वह भयानक चीत्कार करता, गंडस्थलसे मद बहाता, बारम्बार घंटे बजाता, राहमें पड़नेवाले योद्धाओंको गिरा-गिराकर रौंदता तथा धरतीको कँपाता हुआ भूतसन्तापनको वहीं छोड़कर भागा । लोगोंने उसको रोकनेकी चेष्टा की, फिर भी नहीं रुका और सीधे चन्द्रावती पुरीको चला गया ॥४६॥४७॥ उस हाथीके इस प्रकार भागनेसे बड़ा कोलाहल मचा । उसी समय भूतसन्तापनने श्रीकृष्णके पुत्र संग्रामजित्पर बड़ा तीक्ष्ण और ग्रीष्मकालीन सूर्य जैसा तेजस्वी चक्र चला दिया । उस घूमते हुए चक्रको अपनी ओर आते देख भद्राके पुत्र संग्रामजित्ने अपने चक्रसे बीचमें ही सौ टुकड़े करके गिरा दिया । तब उस महान् असुरने जठर गिरिका एक विशाल शिखर उखाड़ लिया ॥४८–५०॥ और समस्त आकाशमण्डलको निनादित करते हुए उसने पर्वतशिखरको संग्रामजित्के ऊपर फेंका । किन्तु उसको उन्होंने अपनी भुजाओंपर रोक लिया और उसीसे भूतसन्तापनपर प्रहार कर दिया । तब भूतसन्तापन पूरा जठरपर्वत उखाड़कर रणभूमिमें खड़ा होगया और बोला—इसी पर्वतसे रणमें मैं तुम्हें मार डालूँगा ॥ ५१–५३ ॥ उसी समय श्रीकृष्णके पुत्र संग्रामजित्ने देवकूट पर्वतको उखाड़कर उस दैत्यसे कहा—इसी पहाड़से मैं तुम्हें मार डालूँगा । ऐसा कहकर वे उसके समक्ष खड़े हो गये । उनका यह साहस देखकर लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ । जैसे ही भूतसन्तापन पर्वतको फेंकनेके लिए उद्यत हुआ, तैसे ही बलवान् संग्रामजित्ने अपना देवकूट पर्वत उसके ऊपर पटक दिया । इस प्रकार जठर और देवकूट दोनों पहाड़ उस दैत्यके मस्तकपर गिरे ॥ ५४–५६ ॥ बहुत अधिक भारके कारण वे दोनों पर्वत वज्रपातके समान तड़तड़ाकर गिरे ॥ ५७ ॥ उन पहाड़ोंकी मारसे मरकर भूतसन्तापन धरतीपर गिर पड़ा और उसके शरीरसे निकली ज्योति संग्रामजित्में लीन हो गयी ॥ ५८ ॥ तत्काल संग्रामजित्की सेनामें

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

(वृक दैत्यके वधकी कथा)

श्रीनारद उवाच

संग्रामजिन्महायुद्धे भूतसन्तापने मृते । हाहाकारो महानासीद्दैत्यसेनासु मैथिल ॥ १ ॥
शकुनिर्वृकः कालनाभो महानाभस्तथैव च । हरिश्मश्रुश्च पञ्चैते सम्प्राप्ता रणमंडले ॥ २ ॥
कार्ष्णिः शकुनिनाऽयुद्धयदनिरुद्धो वृकेण वै । कालनाभेन साम्बस्तु महानाभेन दीप्तिमान् ॥ ३ ॥
हरिश्मश्रुवसुरेणापि भानुः कृष्णसुतो बली । सर्वेषामग्रतः प्राप्तोऽनिरुद्धो धन्विनां वरः ॥ ४ ॥
विभेद बाणैर्दैत्यांश्च वज्रेणेन्द्रो यथा गिरीन् । अनिरुद्धशरैर्दैत्याश्छिन्नपादांसजानवः ॥ ५ ॥
निपेतुर्मूर्च्छिता भूमौ वृक्षा वातहता इव । अनिरुद्धशरैस्तीक्ष्णैः संछिन्ना मेघडंबराः ॥ ६ ॥
छिन्नकुम्भा भिन्नशुंडाः पतिता रणमंडले । रुग्णदन्ताश्छिन्नकक्षाः शैला वज्रहता इव ॥ ७ ॥
द्विधाभूता गजाः पेतुः स्फुरत्काश्मीरकंचलाः । करिणां भिन्नकुम्भानां मुक्ता रेजुः स्फुरत्प्रभाः ॥ ८ ॥
बाणांधकारे राजेन्द्र रात्रौ तारागणा इव । प्रधर्षिताः केऽपि वीरा अनिरुद्धशरान्विताः ॥ ९ ॥
निपेतुर्मूर्छिता भूमौ तदद्भुतमिवाभवत् । केचित्कौ रथिनः पेतुस्तेषां शून्या रथाः स्थिताः १०॥
कपित्थस्य फलानीव हस्तिकोष्ठगतानि च । क्षणमात्रेण राजेन्द्र दैत्यानां वाहिनीषु च ॥११॥
नदी बभूव संग्रामे भीषणा क्षतजस्रवात् । द्विपग्राहा • चोष्ट्रखरकबंधास्यादिकच्छपा ॥१२॥
शिशुमाररथा केशशैवाला भुजसर्पिणी । करमीना मौलिरत्नहारकुण्डलशर्करा ॥१३॥
शस्त्रशक्तिच्छत्रशङ्खा चामरध्वजसैकता । रथाङ्गावर्तसंयुक्ता सेनाद्वयतटावृता ॥१४॥
शतयोजनविस्तीर्णा बभौ वैतरणी यथा । प्रमथा भैरवा भूता वेताला योगिनीगणाः ॥१५॥

विजयसूचक नगाड़े बजने लगे और देवता उनके ऊपर पुष्पवर्षा करने लगे ॥ ५९ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! जब संग्रामजित्के युद्धमें भूतसन्तापन मरा तो सारी दैत्यसेनामें महान् हाहाकार मच गया ॥ १ ॥ तब शकुनि, वृक, कालनाभ, महानाभ तथा हरिश्मश्रु ये पाँचों दैत्यवीर रणांगणमें आये ॥ २ ॥ वहाँ पहुँचते ही प्रद्युम्न और शकुनिमें, वृक और अनिरुद्धमें, कालनाभ और साम्बमें, महानाभ और दीप्तिमान्में और हरिश्मश्रु तथा भानुमें द्वन्द्वयुद्ध छिड़ गया। उनमें सर्वप्रथम धनुर्धरोंमें प्रमुख अनिरुद्ध आये ॥ ३ ॥ ४ ॥ वे अपने बाणोंसे दैत्योंको इस तरह बींधने लगे, जैसे इन्द्रने पर्वतोंको बींधा था। अनिरुद्धके बाणोंसे दैत्योंके पैर, कंधे और घुटने कट गये ॥ ५ ॥ जिससे वे सब मूर्छित हो-होकर वैसे ही गिर पड़े, जैसे वायुके प्रबल झोंकेसे वृक्ष गिर जाते हैं। अनिरुद्धके तीखे बाणोंसे मेघके समान भारी हाथी इन्द्रके वज्रसे मारे गये पर्वतोंके समान भूलुण्ठित हो गये। उनके मस्तक विदीर्ण हो गये, सूँड़ कट गयी, दाँत टूट गये और हौदा दूर जा गिरा ॥ ६ ॥ ७ ॥ जिनपर कश्मीरी कम्बलकी झूल लटक रही थी, वे हाथी दो-दो टुकड़े होकर गिर पड़े। उनके फटे हुए मस्तकोंसे बिखरे मोती इस प्रकार झलकने लगे ॥ ८ ॥ जैसे उस बाणवर्षाके अन्धकारमें आकाशके तारे चमक रहे हों। कितने ही दैत्यवीर अनिरुद्धके बाणोंसे धराशायी हो गये ॥ ९ ॥ बहुतेरे मूर्छित होकर भूमिमें लोट गये। इससे लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। कितने ही रथी धरतीपर गिर पड़े और उनके रथ वैसे ही सूने हो गये, जैसे हाथीके पेटमें पहुँचे हुए कैथेके फल। हे नरेन्द्र ! क्षणमात्रमें दैत्योंकी सेनामें रुधिरकी बड़ी भयंकर नदी बह चली। जिसमें हाथी ग्राह तथा ऊँट-गधे आदि पशुओंके धड़ और मुख कछुएके समान थे ॥ १०–१२ ॥ उस रक्तकी नदीमें रथ शिशुमार, केश सेवार, भुजायें सर्प, कटे हाथ मछली तथा मुकुट-हार-कुण्डल-कंकण उस नदीके पत्थर थे ॥ १३ ॥ शस्त्र शक्ति, छत्र शंख, ध्वजा बालू, रथके पहिये भ्रमर और उभयपक्षकी सेनायें उस नदीके तट थीं ॥ १४ ॥ सौ योजन विस्तृत

अट्टहासं प्रकुर्वंतो नृत्यंतो रणमण्डले । पिबन्तो रुधिरं शश्वत्कपालेन नृपेश्वर ॥१६॥
हरस्य मुण्डमालार्थं जगृहुस्ते शिरांसि च । सिंहारूढा भद्रकाली डाकिनीशतसंवृता ॥१७॥
भक्षयन्ती रणे दैत्यानट्टहासं चकार ह । विद्याधर्यस्त्वंबरस्था गंधर्व्योऽप्सरसस्तथा ॥१८॥
क्षात्रधर्मस्थितान् वीरान् वव्रिरे देवरूपिणः । परस्परं कलिर्भूत्वा तासां पत्यर्थमंबरे ॥१९॥
ममानुरूपो नायं व इति विह्वलचेतसाम् । केचिद्वीरा धर्मपरा रणरङ्गान्न चालिताः ॥२०॥
ययुर्विष्णुपदं दिव्यं भित्वा मार्तंडमण्डलम् । अनिरुद्धं रिपुं दृष्ट्वा केचिद्दैत्याः पलायिताः ॥२१॥
केचित्स्वं स्वं रणं त्यक्त्वा दुद्रुवुस्ते दिशो दश । तदा वृको महादैत्यः खरारूढो भयङ्करः ॥२२॥
आजगाम नदन् युद्धे धनुष्टङ्कारयन्मुहुः । अनिरुद्धस्यापि चायं सिंजिनीसहितं धनुः ॥२३॥
चिच्छेद दशभिर्बाणैर्वृकोऽपि रणदुर्मदः । छिन्नधन्वाऽनिरुद्धस्तु द्वितीयं धनुराददे ॥२४॥
चिच्छेद दशभिर्बाणैर्वृकचापं महाबलः । वृकस्त्रिशूलमुद्यम्य रुषा प्रस्फुरिताधरः ॥२५॥
ललज्जिह्वः प्रत्युवाचानिरुद्धं धन्विनां वरम् ।

वृकदैत्य उवाच

अद्यैव त्वां हनिष्यामि क्षत्रियं स्वस्थविक्रमम् । त्वया सेना हता मेऽद्य पश्य विक्रममद्भुतम्॥२६॥

अनिरुद्ध उवाच

ये वदन्ति मुखेनेह ते कुर्वंति न किंचन । अद्यैव त्वां हनिष्यामि पश्य मे विक्रमं परम् ॥२७॥
न चेत्त्वां घातयिष्यामि शृणुताच्छपथं मम । विप्रगोभ्रूणबालानां हत्या मे स्यात्सदैव हि ॥२८॥

श्रीनारद उवाच

वृकोऽपि शपथं कृत्वा खरारूढो महाबलः । जघान तं त्रिशूलेनानिरुद्धं धन्विनां वरम् ॥२९॥

वह रुधिरनदी वैतरणीके समान दृष्टिगोचर हुई। प्रमथ, भैरव, भूत, वेताल और योगिनीगण अट्टहास करते और नाचते हुए रणभूमिमें रुधिरको खोपड़ियोंमें भर-भरकर पी रहे थे ॥ १५ ॥ १६ ॥ साथ ही शिवजीकी मुण्डमालाके निमित्त मुंडोंका संचय भी करते चलते थे। सैकड़ों डाकिनियोंसे घिरी तथा सिंहपर सवार भद्रकाली रणांगणमें दैत्योंको भक्षण करती हुई अट्टहास कर रही थीं। उधर विमानोंपर बैठी हुई विद्याधरियाँ, गन्धर्वियाँ और अप्सरायें क्षात्रधर्मपरायण देवस्वरूप वीरोंको वरने और अपने मनका पति प्राप्त करनेके लिए परस्पर लड़ने लगीं ॥ १७–१९ ॥ उनमेंसे कोई कहती कि यह वर तो मेरे अनुरूप नहीं है, किन्तु तेरे योग्य है और यह मेरे अनुरूप है। ऐसा कहकर छीना-झपटी करते-करते वे विह्वल हो गयीं। बहुतेरे धर्मात्मा वीर रणभूमिसे नहीं हटे। मरणोपरान्त वे सूर्यमंडल भेदकर दिव्य विष्णुपदको प्राप्त हो गये। अनिरुद्धको शत्रुरूपमें सम्मुख उपस्थित देखकर बहुतेरे दैत्य रणांगणसे भाग गये ॥ २० ॥ २१ ॥ बहुतसे दैत्य अपना-अपना चालू युद्ध त्यागकर दसों दिशाओंमें भाग चले। तब बड़ा भयानक वृक नामका दैत्य गधेपर चढ़कर गर्जन-तर्जन करता हुआ आया। वह बारम्बार धनुष टंकार रहा था। सो रणमें आते ही उस रणदुर्मद दैत्यने अनिरुद्धका प्रत्यंचा समेत धनुष अपने दस बाणोंसे काट डाला। इस प्रकार धनुष कट जानेपर अनिरुद्धने दूसरा धनुष ले लिया ॥ २२–२४ ॥ और अपने दस बाणोंसे उन्होंने वृक दैत्यका धनुष काट दिया। तत्काल वृकने धनुष त्यागकर त्रिशूल ले लिया। उस समय उसकी जीभ लपलपा रही थी और होंठ फड़क रहे थे। उसने सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर अनिरुद्धसे कहा। वृक दैत्य बोला—स्वस्थ तथा पराक्रमसम्पन्न तुमको मैं आज मार डालूँगा। क्योंकि तुमने मेरी सेनाका वध किया है। अब मेरा अद्भुत पराक्रम देखो ॥ २५ ॥ २६ ॥ अनिरुद्ध बोले—जो लोग मुखसे बोलते हैं, वे कुछ नहीं करते। मैं अभी तुमको मार डालूँगा। तुम मेरा परम पराक्रम देखो ॥ २७ ॥ यदि मैं तुम्हें न मारूँ तो मेरी जो शपथ है, उसे सुनो। यदि तुमको न मारूँ तो ब्राह्मण, गौ, बालक तथा भ्रूण (गर्भस्थ शिशु) इनकी हत्याका पाप मुझको लगे ॥ २८ ॥ नारदजी बोले—हे राजन्! इसी प्रकार उस महाबली वृकने भी शपथ ली और गधेपर सवार होकर धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ अनिरुद्धको त्रिशूलसे मारा ॥ २९ ॥ किंतु

तच्छूलं वामहस्तेन गृहीत्वा कार्ष्णिनन्दनः । तताड सहसा राजन् वृकदैत्यं महाबलम् ॥३०॥
तदाऽसुरः कोपपूर्णो मुक्त्वाऽथ महतीं गदाम् । चूर्णयामास सहसा चानिरुद्धरथं बलात् ॥३१॥
प्राद्युम्निः शितधारेण खड्गेनारिभुजद्वयम् । चिच्छेद भिदुरेणाशु शैलपक्षौ यथा वृषा ॥३२॥
तदाऽभिन्नभुजो दैत्यः पद्भ्यामाकंपयन्भुवम् ॥३३॥
विस्तीर्णं वदनं कृत्वा ललज्जिह्वं भयङ्करम् । करालदंष्ट्रः प्रपिबन्नाकाशं दैत्यपुङ्गवः ॥३४॥
तिमिं तिमिंगिल इव प्राग्रसत्कार्ष्णिनन्दनम् । दैत्योदरे कृष्णपौत्रः श्रीकृष्णस्यानुकंपया ॥३५॥
न ममार महाराज कार्ष्णिर्मीनोदरे यथा । वृकोदरे यथा कृष्णो यथा गोपा ह्यघोदरे ॥३६॥
बकोदरे यथा कृष्णो यथा वृत्रोदरे वृषा । हाहाकारे तदा जाते यदुसैन्ये विदेहराट् ॥३७॥
गदो गदां समादाय बलदेवानुजो बली । तताड मस्तके दैत्यं वृकं नाम महाबलम् ॥३८॥
तदा हतशिरा दैत्यो रेजे क्षतजबिंदुभिः । गैरिकैर्जलधाराभिर्यथा विंध्याचलो नृप ॥३९॥
फाल्गुनः स्वमसिं नीत्वा तत्पादौ चांजसाऽहरत् । छिन्नांघ्रिः स पपातोर्व्यां छिन्नपक्षो यथा गिरिः ॥
अनिरुद्धस्तदुदरं भित्वा खड्गेन निर्गतः । जहार तच्छिरश्चायं यथा वज्रेण वृत्रहा ॥४१॥
तदा जयजयारावो यदुसैन्ये बभूव ह ।
देवदुन्दुभयो नेदुर्नरदुन्दुभयस्तथा ॥४२॥
अनिरुद्धोपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे ।
कथितं ह्यद्भुतं चैतत्किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥४३॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे नारदबहुलाश्वसंवादे वृकदैत्यवधो नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

उस त्रिशूलको अनिरुद्धने बायें हाथसे पकड़ लिया और उसीसे वृकपर प्रहार कर दिया ॥ ३० ॥ इससे अतीव क्रुद्ध होकर वृकने अपनी गदासे अनिरुद्धके रथको चूर्ण कर डाला ॥ ३१ ॥ तब प्रद्युम्नके पुत्र अनिरुद्धने अपनी तेज धारवाली तलवारसे वृकासुरकी दोनों भुजायें काट डालीं। जैसे पूर्वकालमें इन्द्रने अपने वज्रसे पर्वतोंके पंख काटे थे ॥ ३२ ॥ इस प्रकार भुजा कट जानेसे वह दैत्य पैरोंसे धरतीको कँपाता, मुँह फैलाकर अपनी भयंकर जीभ लपलपाता और कराल दाँत दिखाता हुआ वह दैत्य ऐसा भयंकर दिखायी पड़ा कि जैसे सारा आकाश पी जायगा ॥३३॥३४॥ तभी उसने अनिरुद्धको लील लिया, जैसे तिमि (ह्वेलमछली) को तिमिंगिल निगल जाय। इस प्रकार उस दैत्यके पेटमें पहुँचकर भी अनिरुद्ध श्रीकृष्णकी कृपासे मरे नहीं। जैसे उनके पिता प्रद्युम्न मगरके उदरमें तथा अघासुरके पेटमें ग्वालबालके साथ श्रीकृष्ण नहीं मरे थे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ हे विदेहराज! जैसे बकासुरके उदरमें श्रीकृष्ण और वृत्रासुरके पेटमें इन्द्र नहीं मरे थे, वैसे ही वृकदैत्यके उदरमें अनिरुद्ध नहीं मरे। किन्तु इस अप्रत्याशित घटनासे यादवोंकी सेनामें बड़ा हाहाकार मचा ॥ ३७ ॥ उसी समय बलदेवजीके छोटे भाई गदने महाबली वृकासुरके मस्तकपर अपनी गदाका प्रहार किया ॥३८॥ इससे उसका मस्तक फट गया और गिरते हुए रक्तकी धारासे वह वैसे ही शोभित हुआ, जैसे गेरूमिश्रित जलधारासे विन्ध्याचलकी शोभा होती है ॥३९॥ तभी अर्जुनने अपनी तलवारसे अनायास उसके पैर काट डाले। पैर कट जानेसे वह जमीनपर गिर पड़ा, जैसे कटे पंखका कोई पर्वत गिर पड़े ॥ ४० ॥ उसी समय अनिरुद्ध उसका उदर फाड़कर बाहर निकल आये और अपनी तलवारसे उसका सिर काट लिया, जैसे इन्द्रने अपने वज्रसे किसीका सिर काटा हो ॥ ४१ ॥ यह देखकर यादवोंकी सेनामें जय-जयकार होने लगा और देवताओं तथा मनुष्योंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं ॥ ४२ ॥ देवता अनिरुद्धके ऊपर फूल बरसाने लगे। हे मिथिलेश! यह अद्भुत कथा मैंने आपको सुनायी। अब और क्या सुनना चाहते हैं? ॥ ४३ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

(कालनाभ दैत्यका वध)

बहुलाश्व उवाच

अहो अत्यद्भुतं युद्धं मुने प्राद्युम्निना कृतम् । वृके हते महादैत्ये किं बभूव रणे पुनः ॥ १ ॥

श्रीनारद उवाच

वृकदैत्यं हतं वीक्ष्य कालनाभो महासुरः । क्रोडारूढो रणं प्रागाद्धनुष्टङ्कारयन्मुहुः ॥ २ ॥
अक्रूरं बाणविंशत्या गदं च दशभिः शरैः । अर्जुनं दशभिर्बाणैर्युयुधानं च पञ्चभिः ॥ ३ ॥
दशभिः कृतवर्माणं कार्ष्णिं बाणशतेन वै । अनिरुद्धं च विंशत्या दीप्तिमंतं च पञ्चभिः ॥ ४ ॥
सांबं च शतबाणैश्च विव्याध समरेऽसुरः । तद्बाणैर्व्याकुला वीरा बभूवुर्घटिकाद्वयम् ॥ ५ ॥
हयाश्च पञ्चतां प्राप्ताश्चूर्णीभूता रणाङ्गणे । तद्धस्तलाघवं दृष्ट्वा प्रसन्नो रुक्मिणीसुतः ॥ ६ ॥
कालनाभं साधुपदैः पूजयामास सङ्गरे । प्रद्युम्नः स्वं धनुर्नीत्वा बाणमेकं समादधे ॥ ७ ॥
कोदण्डमुक्तो विशिखस्तत्क्रोडं दीर्घरूपिणम् । समुन्नीय भ्रामयित्वा स्वर्लोके लक्षयोजनम् ॥ ८ ॥
आकाशात्पातयामास समुद्रे भीमनादिनि । प्रद्युम्नो भगवान्साक्षाद्द्वितीयं बाणमादधे ॥ ९ ॥
सोऽपि बाणः समुन्नीय कालनाभं महाबलम् । भ्रामयन्पातयामास चंद्रावत्यां बलात्पुरि ॥१०॥
कालनाभः प्रपतितः किंचिद्व्याकुलमानसः । गृहीत्वाऽथ गदां गुर्वीं लक्षभारविनिर्मिताम् ॥११॥
रणं प्राप्तो यदुबलं पोथयामास दैत्यराट् । गजान् रथान्हयान् वीरान् गदया वज्रकल्पया १२॥
पातयामास वेगेन महावातो यथा तरून् । कांश्चित्कराभ्यां प्रोन्नीय चिक्षेप गगने बलात्॥१३॥
अंबरात्ते निपेतुः कौ राजन् वर्षोपला इव । तदा गदां समादाय सांबो जांबवतीसुतः ॥१४॥
तताड मूर्ध्नि तं दैत्यं कालनाभं महासुरम् । तयोर्युद्धमभूद्घोरं गदाभ्यां रणमण्डले ॥१५॥

इतनी कथा सुनकर राजा बहुलाश्व बोले—हे महामुनि नारदजी ! प्रद्युम्नके पुत्र अनिरुद्धने बड़ा अद्भुत युद्ध किया । अब यह बताइए कि वृकासुरके मर जानेपर युद्धभूमिमें क्या हुआ ॥ १ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! वृक दैत्यके मरणका समाचार सुनकर महादैत्य कालनाभ गधेपर चढ़कर धनुषका टंकार करता हुआ युद्धस्थलीमें आया ॥ २ ॥ वहाँ पहुँचते ही उसने बीस बाण अक्रूरको, दस बाण गदको, दस बाण अर्जुनको और पाँच बाण युयुधान (सात्यकि) को मारा ॥ ३ ॥ इसी प्रकार उसने दस बाण कृतवर्माको, सौ बाण प्रद्युम्नको, बीस बाण अनिरुद्धको और पाँच बाण दीप्तिमान्को मारे ॥ ४ ॥ संग्राम करते हुए उसने सौ बाण साम्बको मारे । उन बाणोंकी मारसे सभी यादववीर दो घड़ीके लिए अधीर हो उठे ॥ ५ ॥ उनके घोड़े मर गये और रथ चूर-चूर हो गये । उसका हस्तलाघव देखकर प्रसन्न रुक्मिणीसुत प्रद्युम्नने रणभूमिमें उत्तम वाक्योंसे कालनाभकी बहुत सराहना की । उसके बाद प्रद्युम्नने अपना धनुष लेकर उसपर एक बाण चढ़ाया ॥ ६ ॥ ७ ॥ उनके धनुषसे छूटा हुआ बाण उसके दीर्घकाय गधेको उठाकर घुमाते हुए आकाशमें एक लाख योजन ऊपर ले गया ॥८॥ वहाँसे उस गधेको उसने भयंकर गर्जन करनेवाले समुद्रमें डाल दिया । इसके बाद प्रद्युम्नने दूसरा बाण लिया ॥ ९ ॥ उस बाणने कालनाभको उठा तथा घुमा-घुमाकर बड़े वेगसे चन्द्रावती पुरीमें फेंक दिया ॥ १० ॥ वहाँ वह जमीनपर जा गिरा । जिससे कुछ क्षणके लिए व्याकुल हो गया, किन्तु तनिक ही देर बाद वह लाख भारकी गदा लेकर फिर रणांगणमें आ धमका । उस वज्र-सरीखी गदासे वह पैदल सैनिकों, घोड़ों और हाथियोंको मार-मारकर वैसे ही धरतीपर गिराने लगा, जैसे तीव्र वेगकी वायु वृक्षोंको गिरा देती है । वीर कालनाभ किसी-किसीको तो हाथोंसे ही उठा-उठाकर आकाशमें फेंकने लगा ॥ ११–१३ ॥ आकाशसे वे लोग वर्षाके ओलोंकी भाँति धरतीपर गिरने लगे । तब गदा लेकर जाम्बवतीसुत साम्ब रणांगणमें आये ॥ १४ ॥ आते ही उन्होंने कालनाभके सिरपर एक गदा मारी, जिससे रण-

विस्फुलिंगान्क्षरंत्यौ द्वे गदे चूर्णीबभूवतुः । अन्ये गदे समादाय तस्थतुः सङ्गरे च तौ ॥१६॥
कालनाभस्तदा प्राह सांबं जांबवतीसुतम् । एकेनापि प्रहारेण हन्मि त्वां नात्र संशयः ॥१७॥
पूर्वं प्रहारं कुरु मे इति सांबोऽवदद्रणे । कालनाभोऽथ गदया सांबमूर्ध्नि तताड ह ॥१८॥
गदोपरि गदां नीत्वा सांबो जांबवतीसुतः । जघान गदया दैत्यं कालनाभमुरःस्थले ॥१९॥
गदया भिन्नहृदय उद्वमन् रुधिरं मुखात् । व्यसुः पपात भूपृष्ठे वज्राहत इवाचलः ॥२०॥
अभूज्जयजयारावः साधुवादः सतां नृप । देवदुन्दुभयो नेदुर्नरदुन्दुभयस्तथा ॥२१॥
सांबसेनोपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे । विद्याधर्यश्च गंधर्वा ननृतुश्च जगुर्मुदा ॥२२॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीविश्वजित्खंडे नारदबहुलाश्वसंवादे कालनाभदैत्यवधो नाम पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

(महानाभ दैत्यका वध)

श्रीनारद उवाच

कालनाभेऽथ पतिते महान् कोलाहलोऽभवत् । उष्ट्रारूढो महानाभो दैत्यः प्राप्तो रणाङ्गणे ॥ १ ॥
मुखादग्निं समसृजन्मायावी दैत्यपुङ्गवः । तेनाग्निना भूमिवृक्षा जज्वलुश्च दिशो दश ॥ २ ॥
वीराणां कंचुकोष्णीषकटिबन्धाङ्गरक्षकाः । प्रजज्वलुर्महाराज मुञ्जपुष्पप्रतूलवत् ॥ ३ ॥
समुद्रपट्टनभवैः पीतारुणसितासितैः । हरितैश्चित्रवर्णैश्च सूक्ष्मैः काश्मीरजैरपि ॥ ४ ॥
हेमरत्नखचद्भिश्च कम्बलैः सहिता गजाः । प्रजज्वलुर्मृधे राजन् वृक्षैः शैला इवाग्निना ॥ ५ ॥
शिखा रत्नैश्चामरैश्च हारैर्हैमैः परिच्छदैः । उत्पतन्तो हया युद्धे मृगा इव दवाग्निना ॥ ६ ॥
सैन्यं भयातुरं दृष्ट्वा दीप्तिमान् कृष्णनन्दनः । मायावह्निप्रशांत्यर्थं पर्जन्यास्त्रं समादधे ॥ ७ ॥

भूमिमें उन दोनोंका भीषण गदायुद्ध हुआ ॥ १५ ॥ अन्तमें चिनगारियाँ छोड़ती हुई वे दोनों गदायें चूर होकर दूर जा पड़ीं । उसके बाद वे दोनों वीर फिर गदा ले-लेकर रणभूमिमें खड़े हो गये ॥ १६ ॥ तब कालनाभने जाम्बवतीतनय साम्बसे कहा—मैं इस गदाके एक ही प्रहारसे तुम्हें मार डालूँगा । इसमें सन्देह नहीं है ॥ १७ ॥ साम्ब बोले—अच्छा, पहले तू ही मेरे ऊपर प्रहार कर । तब कालनाभने साम्बके सिरपर अपनी गदाका प्रहार किया ॥ १८ ॥ उस प्रहारको साम्बने अपनी गदापर रोक लिया और फिर कालनाभकी छातीपर गदा मारी ॥१९॥ इस प्रहारसे उसकी छाती फट गयी और मुखसे रुधिर फेंकता हुआ वह मरकर धरतीपर गिर गया, जैसे इन्द्रके वज्रसे मारा हुआ पर्वत गिर पड़ता है ॥ २० ॥ यह देखकर सज्जनोंके मुखसे जय-जयकार तथा धन्य-धन्यका निनाद उच्चरित होने लगा । देवताओं तथा मनुष्योंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं ॥ २१ ॥ साम्बकी सेनापर देवता फूल बरसाने लगे । विद्याधरियाँ नाचने लगीं और गन्धर्व गाने लगे ॥ २२ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

नारदजी बोले—हे राजन् ! कालनाभके मरनेपर बड़ा कोलाहल मचा । तब महानाभ दैत्य ऊँटपर चढ़कर रणांगणमें आया ॥१॥ वह मायावी दैत्य मुखसे अग्नि निकालता हुआ आया था । उस अग्निसे भूमिके वृक्ष और दसों दिशायें जलने लगीं ॥ २ ॥ सैनिकोंके कुरते, साफे, दुपट्टे तथा अँगरखे मूँजके पुष्प तथा रुईकी भाँति जलने लगे ॥ ३ ॥ समुद्री पाटसे बने रेशमी, पीले, लाल, सफेद और हरे काश्मीरी कम्बल, सुनहले तथा रत्नजटित झूलोंवाले हाथी इस प्रकार जलने लगे, जैसे वृक्षों समेत पर्वत दवाग्निसे जलने लगते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥ रत्नमयी कलँगी, चमर, सुनहले हार और जीन समेत जलते हुए घोड़े उछलने-कूदने लगे, जैसे दावानलसे झुलसते हुए मृग उछलते हैं ॥ ६ ॥ जब श्रीकृष्णके पुत्र दीप्तिमान्ने अपनी सेनाको अग्नि-

बाणाद्विनिर्गता मेघाः सांवर्तकगणा इव । ववृषुर्जलधाराभिर्नदन्तो भैरवं रवम् ॥ ८ ॥
आसारेण महाराज प्रावृट्कालोऽभवत्क्षितौ । पुंस्कोकिलाः कोकिलाश्च मयूराः सारसादयः ॥ ९ ॥
मंडूकाः प्रजगुर्गीर्भिरिंद्रगोपाश्च रेजिरे । इन्द्रचापेन दामिन्या मैथिलेन्द्र बभौ नभः ॥१०॥
इत्थं शांतिं गते वह्नौ महानाभो महासुरः । प्राहिणोन्निशितं शूलं रुषा दीप्तिमते त्वरम् ॥११॥
शूलं सर्पमिवायांतं दीप्तिमान् रोहिणीसुतः । चिच्छेद त्वसिना युद्धे फणिनं गरुडो यथा ॥१२॥
दशंतं चोद्भटं चोष्ट्रं महानाभस्य वाहनम् । दीप्तिमान्स्वेन खड्गेन संजघान रणाङ्गणे ॥१३॥
द्विधाभूतः पपातोर्व्यां खड्गसंछिन्नकंधरः । जगाम पञ्चतामुष्ट्रो महानाभस्य पश्यतः ॥१४॥
महानाभो महादैत्यो गजमारुह्य वेगतः । शूलहस्तः पुनः प्रागान्नादयन्व्योममण्डलम् ॥१५॥
दीप्तिमानश्वमारुह्य सैन्धवं चंचलासितम् । तडित्प्रभेण खड्गेन बभौ श्रीकृष्णनंदनः ॥१६॥
तुरंगं पार्ष्णिघातेन प्रोत्पतन् धरणीतलात् । आरूढो गजकुंभांतं गिरिशृंगं यथा हरिः ॥१७॥
खड्गेन शितधारेण दीप्तिमान्कृष्णनन्दनः । महानाभस्य सहसा शिरः कायादपाहरत् ॥१८॥
बाणवर्षं प्रकुर्वंतीं सेनां तस्य दुरात्मनः ।
जघान दीप्तिमान् सिंहो गजयूथं यथाऽसिना ॥१९॥
केचित्खड्गेनाभिहताः शेषा दैत्याः पलायिताः । देवा दीप्तिमतो मूर्ध्नि पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे ॥२०॥
जगुः किन्नरगंधर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः । ऋषयो मुनयो देवास्तुष्टुवुः श्रीहरेः सुतम् ॥२१॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे महानाभवधो नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

भयसे पीड़ित देखा तो उस मायामय अग्निकी शान्तिके लिए मेघास्त्रका प्रयोग किया ॥ ७ ॥ उस अस्त्रसे निकले सांवर्तकगणके मेघ भयंकर गर्जन करते हुए मूसलधार जल बरसाने लगे ॥ ८ ॥ जलधारा पड़नेसे वर्षाऋतुकी छटा छा गयी, जिससे कोयल तथा पपीहे बोलने लगे, मोर कुहुकने और सारस बोलने लगे ॥ ९ ॥ मेढक टर्राने लगे, गोपबहूटियाँ रेंगने लगीं और इन्द्रधनुष तथा बिजलीकी चमकसे गगनमण्डल शोभित हो उठा ॥ १० ॥ इस प्रकार जब अग्नि शान्त हो गयी, तब महानाभ असुरने रोहिणीके पुत्र दीप्तिमान्पर अपना तीक्ष्ण त्रिशूल चलाया ॥ ११ ॥ उस त्रिशूलको सर्पके समान आते देखकर दीप्तिमान्‌ने बीचमें ही अपनी तलवारसे वैसे ही काट डाला, जैसे गरुड सर्पको काट डालते हैं ॥ १२ ॥ अपने मुखसे काटनेके लिए उद्यत महानाभके ऊँटको दीप्तिमान्‌ने अपनी तलवारसे मारा ॥ १३ ॥ जिससे वह कटकर दो टुकड़े हो गया। तलवारसे उसकी गर्दन कट गयी थी। अतएव वह महानाभके देखते-देखते मर गया ॥ १४ ॥ तब दैत्य महानाभ हाथीपर चढ़ और त्रिशूल लेकर अपने गर्जनसे आकाशको मुखरित करता हुआ फिर रणमें आ गया ॥ १५ ॥ उस समय दीप्तिमान् एक सिन्धुदेशीय काले घोड़ेपर सवार हो और बिजली जैसी तलवार लेकर बड़ी शोभाको प्राप्त हुए ॥ १६ ॥ उसी समय दीप्तिमान्‌ने एड़ी लगाकर घोड़ेको उछाला तो वह महानाभके हाथीके माथेपर चढ़ गया, जैसे सिंह पर्वतपर चढ़ जाता है ॥१७॥ तभी श्रीकृष्णके पुत्र दीप्तिमान्‌ने अपनी तीक्ष्ण धारवाली तलवारसे महानाभका सिर काटकर धड़से अलग कर दिया ॥१८॥ तदनन्तर दुरात्मा महानाभकी सेनाको बाणवर्षा करते देख दीप्तिमान् उसे तलवारसे इस तरह मारने लगे, जैसे सिंह हाथियोंके झुण्डको मारता है ॥ १९ ॥ उसके कितने ही सैनिक दीप्तिमान्‌की तलवारसे कट गये। बाकी दैत्य भाग गये। तब देवता दीप्तिमान्‌पर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे ॥ २० ॥ किन्नर तथा गंधर्व गाने लगे और अप्सरायें नाचने लगीं। सभी ऋषि, मुनि और देवता श्रीकृष्णके पुत्र दीप्तिमान्‌की स्तुति करने लगे ॥ २१ ॥

इति श्रीगर्गसंहितायांविश्वजित्खंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

(श्रीकृष्णतनय भानुके हाथों हरिश्मश्रु दैत्यका वध)

श्रीनारद उवाच

महानाभं मृतं श्रुत्वा सेनां वीक्ष्य पलायिताम् । दैत्यस्तिमिंगिलारूढो हरिश्मश्रुः समाययौ ॥ १ ॥
हरिश्मश्रुस्तदा दैत्यो रुषा प्रस्फुरिताधरः । उवाच परुषं वाक्यं यादवानां च शृण्वताम् ॥ २ ॥

हरिश्मश्रुरुवाच

यूयं सर्वेऽपि मे शक्त्या मनुष्याः स्वल्पविक्रमाः । शस्त्रैर्जयंतो दीना वै पौरुषं किं भवादृशे ॥ ३ ॥
भवतां बलवान् कोऽपि विना शस्त्रं मया सह । करोतु मल्लयुद्धं वै पौरुषं येन दृश्यते ॥ ४ ॥

श्रीनारद उवाच

इत्थं दैत्यवचः श्रुत्वा दृष्ट्वा तत्प्रोद्भटं वपुः । सर्वे बभूवुस्ते तूष्णीं प्रशंसंतः परस्परम् ॥ ५ ॥
सर्वेषां पश्यतां भानुः सत्यभामात्मजो बली । त्यक्त्वा शस्त्राणि सहसा तस्थौ कृष्णं स्मरन्रणे ॥ ६ ॥
तिमिंगिलात्समुत्तीर्य हरिश्मश्रुर्महाबलः । तस्थौ तत्संमुखे राजन् भुजमास्फोट्य यत्नतः ॥ ७ ॥
भुजाभ्यां च भुजौ बद्ध्वा नोदनां चक्रतुर्बलात् । दंतैर्गजाविव वने प्रहरन्तौ परस्परम् ॥ ८ ॥
नोदयामास तं भानुं स दैत्यः शतयोजनम् । भुजाभ्यां राजराजेन्द्र सिंहः सिंहमिवौजसा ॥ ९ ॥
ततः पुनः कृष्णसुतो हरिश्मश्रुं महासुरम् । नोदयामास सहसा सहस्रं योजनं बलात् ॥१०॥
कंधरे स्वभुजां कृत्वा कटौ च विनिधाय तम् । भानुं जानौ संगृहीत्वा पातयामास दैत्यराट् ॥११॥
भानुस्तं पृष्ठदेशेऽपि सन्निधाय भुजौजसा । गृहीत्वा जंघयोर्दैत्यं पातयामास भूतले ॥१२॥
अथ तौ पुनरुत्थाय भुजावास्फोट्य तस्थतुः । त्वरं तौ बलिनौ राजन्सुपर्णफणिनाविव ॥१३॥
दैत्यो भुजौजसा नीत्वा भानुं श्रीकृष्णनन्दनम् । चिक्षेप धृत्वा चरणावाकाशे लक्षयोजनम् ॥१४॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! महानाभका मरण तथा उसकी सेनाको पलायित सुनकर हरिश्मश्रु दैत्य तिमिंगिल (ह्वेल मछलीको खा जानेवाले महामत्स्य) पर सवार होकर रणांगणमें आया ॥ १ ॥ मारे क्रोधके जिसके होंठ काँप रहे थे, वह हरिश्मश्रु दैत्य यादवोंको ललकारकर कठोर वचन बोला ॥ २ ॥ हरिश्मश्रुने कहा—तुम सब मनुष्य मेरी शक्तिके समक्ष तुच्छ बलवाले हो । तुम सब दीन हो । तुम लोग अपने शस्त्रोंके बलपर जीतते हो । तुममें पराक्रम ही कितना है ॥ ३ ॥ तुममें कोई ऐसा पराक्रमी है, जो बिना शस्त्रके मुझसे मल्लयुद्ध कर सके, जिससे तुम्हारे पुरुषार्थका पता लग पाये ॥ ४ ॥ नारदजी बोले—हे राजन् ! उस दैत्यका वचन सुन तथा उसकी लम्बी-चौड़ी काया देखकर सभी यादव उसकी सराहना करते हुए चुप हो गये ॥ ५ ॥ तब सभी लोगोंके देखते-देखते सत्यभामाका पुत्र महाबली भानु सब शस्त्रास्त्रोंको त्यागकर भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण करता हुआ युद्धभूमिमें खड़ा हो गया ॥ ६ ॥ महाबली हरिश्मश्रु भी तिमिंगिलसे उतरकर अपनी भुजा फटकारता हुआ भानुके सम्मुख आया ॥ ७ ॥ तब भुजाओंसे भुजायें मिलाकर भानु उसके साथ वैसे ही लड़ने लगे, जैसे हाथी दाँतोंसे लड़ते हैं । वे दोनों परस्पर कठोर प्रहार कर रहे थे ॥ ८ ॥ एक बार तो हरिश्मश्रु भानुको अपनी दोनों भुजाओंसे सौ योजन दूरतक वैसे ही ढकेल ले गया, जैसे कोई सिंह दूसरे सिंहको अपने पराक्रमसे ढकेल ले जाय ॥ ९ ॥ उसके बाद श्रीकृष्णके पुत्र भानु भी महान् असुर हरिश्मश्रुको सहसा हजार योजनतक ढकेल ले गये ॥ १० ॥ तभी भानुके कंधेपर अपना हाथ रखकर हरिश्मश्रुने उनको अपनो कमरपर रखा और घुटना पकड़कर गिरा दिया ॥ ११ ॥ भानुने भी उसे अपनी पीठपर रख तथा घुटना पकड़कर धरतीपर पटक दिया ॥ १२ ॥ इसके बाद वे दोनों फिर उठ खड़े हुए और वैसे ही भुजायें फटकारकर लड़ने लगे, जैसे गरुड़ और सर्प लड़ रहे हों ॥ १३ ॥ सहसा उस दैत्यने अपनी दोनों भुजाओंसे भानुके दोनों पैर पकड़कर आकाशमें एक लाख योजन दूर फेंक दिया ॥ १४ ॥

आकाशात्पतितो भानुः किंचिद्व्याकुलमानसः । प्रह्लाद इव शैलांगाद्रक्षितः कृपया हरेः ॥१५॥
हरिश्मश्रुं संगृहीत्वा दीर्घश्मश्रौ हरेः सुतः । भ्रामयित्वाऽथ चिक्षेप व्योम्नि तं लक्षयोजनम् १६॥
आकाशात्पतितः सोऽपि किंचिद्व्याकुलमानसः । मुखे कृत्वा स्वकं कूर्चं मुष्टिना तं तताड ह ॥१७॥
मुष्टामुष्टि रणं राजन् बभूव घटिकाद्वयम् । निष्पिष्टांगो हरिश्मश्रुर्ग्रावाणं भानुमूर्द्धनि ॥१८॥
चिक्षेप च महावेगाद्रक्ताक्षः क्रोधमूर्च्छितः । भानुर्द्रुमं संगृहीत्वा प्राक्षिपत्तस्य मस्तके ॥१९॥
सोऽपि द्रुमं संगृहीत्वा प्राहिणोद्भानुमूर्द्धनि । हरिश्मश्रुर्महादैत्यो रक्ताक्षः क्रोधमूर्च्छितः ॥२०॥
गजं गृहीत्वा शुण्डायां तेन भानुं तताड ह । भानुश्चान्यं गजं नीत्वा गृहीत्वा तद्गजं करे ॥२१॥
हरिश्मश्रुं महादैत्यं गजेनाभ्यहनद्दृढम् । चीत्कारमथ कुर्वंतं गजं नीत्वा निपात्य तम् ॥२२॥
तस्य दन्तौ समुत्पाट्य ताभ्यां भानुं तताड ह । भानुमाकाशवागाह कूर्चे मृत्युः किलास्य च ॥२३॥
वरेण शिवदत्तेन प्रोज्झितोऽयं महासुरः । इति श्रुत्वा वचो भानुर्धावन् क्रोधप्रपूरितः ॥२४॥
संगृहीत्वा भुजाभ्यां तं पादयोः प्रणदन्मुहुः । भ्रामयित्वा महाराज सर्वेषां पश्यतां सताम् ॥२५॥
पातयामास भूपृष्ठे कमण्डलुमिवार्भकः । मुखात्कूर्चं समुन्नीय समुत्पाट्य करौजसा ॥२६॥
तताड मुष्टिना मूर्ध्नि हरिश्मश्रुं महासुरम् । तदा मृत्युं गते दैत्ये हरिश्मश्रौ नृपेश्वर ॥२७॥
देवदुन्दुभयो नेदुर्नरदुन्दुभयस्तथा । अभूज्जयजयारावो ननृतुर्देवनायकाः ॥२८॥
प्रसन्ना दिविजा राजन्पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे । इत्थं श्रीकृष्णपुत्राणां विक्रमः परमाद्भुतः ॥२९॥
मया ते कथितः पुण्यः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥३०॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे हरिश्मश्रुदैत्यवधो नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

अथ अष्टत्रिंशोऽध्यायः

(महान् दैत्य शकुनिका युद्धवर्णन)

बहुलाश्व उवाच

हरिश्मश्र्वादिकान् भ्रातॄन् मृतान् ज्ञात्वा महासुरः। शकुनिः किं चकाराग्रे वद तन्मुनिसत्तम ॥ १ ॥

श्रीनारद उवाच

हरिश्मश्रौ हते राजन् शकुनिः क्रोधमूर्च्छितः। रणाङ्गणे प्राह दैत्यान् भ्रातृशोकपरिप्लुतः ॥ २ ॥

शकुनिरुवाच

हे पौलोमकालकेयाः सर्वे शृणुत मद्वचः। अहो दैवबलं येन किन्न भूयाद्विपर्ययः ॥ ३ ॥
कालनाभेन मे भ्रात्रा समुद्रमथने यमः। जितः पूर्वं सोऽपि दैवान्मनुष्यैरिह मारितः ॥ ४ ॥
शंबरः सूर्यजित्साक्षात्कार्ष्णिना शिशुना जितः। उत्कचः शक्रजेताऽपि महाबल महाबलः ॥ ५ ॥
सोऽपि बालेन कृष्णेन मारितो नारदाच्छ्रुतम्। समुद्रमथने पूर्वमसुराणां च पश्यताम् ॥ ६ ॥
वह्निर्जितो हि येनापि हृष्टः सोऽपि निपातितः। यस्याग्रे वरुणः पूर्वं युद्धभीतः पलायितः ॥ ७ ॥
भूतसंतापनः सोऽपि मारितस्तुच्छविक्रमैः।
येन पूर्वं महायुद्धे विक्रमैस्तोषितः शिवः ॥ ८ ॥
स वृको वृष्णिभिस्तुच्छैर्मारितः सङ्गरेऽत्र वै। महानाभेन मे भ्रात्रा दिवि वायुर्विनिर्जितः ॥ ९ ॥
मानुषैर्यादवैरत्र मारितः सोऽपि सांप्रतम्। हा दैव येन स्वर्लोके जितः शक्रसुतो बली ॥१०॥
निपातितः सोऽपि चात्र हरिश्मश्रुश्च मानवैः। तस्माद्यादवीं पृथ्वीं करिष्ये शपथो मम ॥११॥
जरासंधेन शाल्वेन दन्तवक्रेण धीमता। शिशुपालेन मित्रेण युष्माभिः सहितो ह्यहम् ॥१२॥
सुतलाच्च समाहूतैर्दानवैश्चण्डविक्रमैः। देवान् जेतुं गमिष्यामि बाणासुरसमन्वितः ॥१३॥
कार्ष्ण्यादीनुद्भटान्सर्वान्वृष्णीञ्जित्वा दुरात्मनः। सस्त्रीकानमरान्बद्ध्वा क्षिपे मेरुगुहामुखे ॥१४॥

राजा बहुलाश्व बोले—हे महामुनि नारद! हरिश्मश्रु आदि भ्राताओंका मरण सुनकर दैत्यराज शकुनिने क्या किया, सो बताइए ॥ १ ॥ नारदजी बोले—हे राजन्! जब हरिश्मश्रु मर गया, तब शकुनिको बड़ा कोध आया। मृत भ्राताओं शोकमें निमग्न शकुनिने दैत्योंके सम्मुख कहा—॥ २ ॥ हे पौलोम और कालकेय वीरो! आप सब लोग मेरी बात सुनें। अहो! दैवका बल बड़ा प्रबल होता है। वह क्या नहीं कर सकता ॥ ३ ॥ मेरे जिस भ्राता कालनाभने समुद्रमन्थनके समय यमराजको जीत लिया था, वह आज दैवात् मनुष्यके हाथों मारा गया ॥ ४ ॥ सूर्यको जीतनेवाले शम्बरासुरको श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्नने जीत लिया। इन्द्रको जीतनेवाले महाबली उत्कचको बालक कृष्णने मार डाला। ऐसा मैंने नारदजीके मुखसे सुना है। समुद्रमन्थनके समय देवताओंके देखते-देखते जिस हृष्टने अग्निको जीत लिया था, वह भी मार डाला गया। एक समय जिसके सामनेसे वरुणदेव भाग गये थे, उस भूतसन्तायनको इन तुच्छ पराक्रमी मनुष्योंने मार डाला। पूर्वकालके महायुद्धमें जिसने अपने पराक्रमसे साक्षात् शंकरजीको प्रसन्न कर लिया था ॥ ५–८ ॥ उस वीर वृकको इन तुच्छ यादवोंने मार डाला। मेरे भ्राता महानाभने स्वर्गमें जाकर वायुको जीता था ॥ ९ ॥ सो इन मानव यादवोंने अभी उसे भी मार डाला। हाय दैव! जिस वीरने स्वर्गमें जाकर इन्द्रके पुत्र बलवान् जयन्तको जीत लिया था ॥ १० ॥ उस वीर हरिश्मश्रुको भी यहाँ इन मनुष्योंने मार डाला। अतएव आज मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि इस पृथिवीको यादवोंसे शून्य कर दूँगा ॥ ११ ॥ जरासन्ध, शाल्व, बुद्धिमान् दन्तवक्र, मित्र शिशुपाल तथा आप सब वीरों और सुतललोकसे बुलाये गये परम पराक्रमी दानवों तथा बाणासुरको साथ लेकर मैं देवताओंको जीतने जाऊँगा ॥ १२ ॥ १३ ॥ प्रद्युम्न आदि उद्भट वीरों और दुरात्मा यादवोंको जीत तथा स्त्रियों समेत समस्त देवताओंको बाँधकर मैं सुमेरु पर्वतकी

गोविप्रसुरसाधूंश्च छन्दांसि च तपस्विनः । यज्ञं श्राद्धं तितिक्षूंश्च नानातीर्थकरान्पुनः ॥१५॥
हनिष्यामि न सन्देहश्चरिष्यामि सुखं ततः । धन्यः कंसो महावीर्यो देवानां विजयी बली ॥१६॥
न विद्यते भूमितले मित्रं मे परमः सुहृत् ।

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा शकुनिर्युद्धे दानवेंद्रो महाबलः ॥१७॥
आययौ सहसा दैत्यः प्रद्युम्नस्यापि संमुखे । महाधनुः समादाय लक्षभारसमं दृढम् ॥१८॥
मयेन निर्मितं तज्ज्याटंकारं स चकार ह । धनुष्टङ्कारशब्देन दिग्गजा बधिरीकृताः ॥१९॥
निपेतुर्गिरयोऽनेका विचेलुः सिंधवो नृप । ननाद सर्वं ब्रह्माण्डं चकंपे मण्डलं भुवः ॥२०॥
वीरोपरि गता वीरा ज्याघोषेणातिविह्वलाः । रणाद्विदुद्रुवुर्नागा उत्पतन्तो हया मृधे ॥२१॥
एवं पलायिताः सर्वे ह्यकस्माद्भयविह्वलाः । तदा गदादयो वीरा आजग्मुः स्यंदने स्थिताः ॥२२॥
धनुष्टंकारयन्तस्ते महाबलपराक्रमाः । शकुनिर्दशभिर्बाणैर्विव्याधार्जुनमाहवे ॥२३॥
गांडीवी सरथस्तस्माच्चतुष्क्रोशे पपात ह । गदं च बाणविंशत्या शकुनिर्युद्धदुर्मदः ॥२४॥
चिक्षेप सरथं राजन्नादयन् व्योममण्डलम् । चत्वारिंशच्छरैर्वीरोऽनिरुद्धं धन्विनां वरम् ॥२५॥
विव्याध सरथं राजन्नादयन् व्योममण्डलम् । साश्वो रथोऽनिरुद्धस्य षोडशक्रोशमास्थितः ॥२६॥
सांबं च शितबाणैश्च तताड शकुनिर्मृधे । सांबोऽपि सरथो राजन्नंबरे समरांगणात् ॥२७॥
द्वात्रिंशद्योजनं मार्गं निपपात विदेहराट् । कार्ष्णिं समागतं दृष्ट्वा शकुनिः क्रोधपूरितः ॥२८॥
सहसा बाणपटलैः संजघान रणांगणे । प्रद्युम्नस्य रथो राजन्सम्भ्रमन्घटिकाद्वयम् ॥२९॥
शतक्रोशे पपातोर्व्यां कमण्डलुरिवाहतः । सर्वे विसिस्मुः शकुनेर्बलं दृष्ट्वाऽथ यादवाः ॥३०॥
जघ्नुर्नानाविधैः शस्त्रैर्दैत्यमद्रिं यथा गजाः । गदोऽर्जुनोऽनिरुद्धस्तु सांबो जांबवतीसुतः ॥३१॥

कन्दरामें डाल दूँगा ॥ १४ ॥ उसके बाद गौ, ब्राह्मण, देवता, साधु, वेद, तपस्वी, यज्ञ, श्राद्ध, तितिक्षु तथा अनेकानेक तीर्थ करनेवालोंको मारकर मैं सन्देह रहित होकर सुखसे विचरूँगा । कंस धन्य था, देवताओंका विजयी था और असाधारण बलवान् था ॥ १५ ॥ १६ ॥ उसके समान प्रिय मेरा कोई मित्र नहीं है। नारदजी बोले—ऐसा कहकर दानवेन्द्र तथा महाबली शकुनि सहसा रणभूमिमें प्रद्युम्नके सम्मुख जा पहुँचा। उसके बाद लाख भारका विशाल धनुष लेकर उसकी मयनिर्मित प्रत्यंचा चढ़ाकर भीषण टंकार किया। जिससे सब दिग्गजोंके कान बहरे हो गये ॥ १७–१९ ॥ उस टंकारसे कितने पहाड़ ढह गये, समुद्र विचलित हो गये, सारा ब्रह्मांड झंकृत हो उठा और सारा भूमण्डल काँपने लगा ॥ २० ॥ वीर शकुनीके धनुपटंकारसे ही वीरोंके ऊपर वीर गिरने लगे, प्रत्यंचाके टंकारसे विह्वल हाथी युद्धक्षेत्रसे भाग गये और घोड़े डरकर उछल-कूद मचाने लगे ॥ २१ ॥ इस प्रकार अचानक रणांगणमें भगदड़ मच गयी और वहाँके सभी लोग भयसे विह्वल हो उठे। तब गद आदि यादववीर रथपर चढ़कर आये ॥ २२ ॥ महाबली और महापराक्रमी यादव जोरोंसे अपने-अपने धनुषका टंकार कर रहे थे। उसी समय शकुनिने अर्जुनको दस बाण मारे ॥ २३ ॥ उसकी इस मारसे रथसमेत अर्जुन चार कोस दूर जा गिरे। बादमें युद्धदुर्मद शकुनिने बीस बाण गदको मारे ॥ २४ ॥ यह प्रहार करके शकुनिने रथसहित गदको आकाशमण्डलमें फेंक दिया और जोरोंसे गर्जन करने लगा। उसी प्रकार धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ अनिरुद्धको सोलह कोस दूर फेंक दिया ॥ २५ ॥ २६ ॥ फिर उसने अपने तीक्ष्ण बाणोंसे साम्बको भी मारा। उसकी मारसे साम्ब भी रणभूमिसे आकाशमें बत्तीस योजन दूर चले गये। सहसा रणभूमिमें प्रद्युम्नको फिर उपस्थित देखकर शकुनि मारे क्रोधके तमतमा उठा ॥२७॥२८॥ तभी बाणोंके विशाल समूहसे उसने प्रद्युम्नको मारा। इससे प्रद्युम्नका रथ दो घड़ी आकाशमें घूमता हुआ सौ योजन दूर पृथिवीपर जा गिरा। शकुनिका ऐसा भीषण पराक्रम देखकर सब यादव बड़े विस्मयमें पड़ गये ॥ २९ ॥ ३० ॥ अब सभी यादव विविध प्रकारके शस्त्रोंसे शकुनिको मारने लगे, जैसे हाथी पर्वतोंपर

धनुष्टङ्कारयंतस्ते पुनर्युद्धं समागताः । अथ कार्ष्णिर्महाबाहुर्वायुवेगे रथे स्थितः ॥३२॥
धनुष्टंकारयन् राजन् प्राप्तोऽभूद्रणमण्डले । प्रलयार्णवसंघट्टभीमसंघर्षनादिनीम् ॥३३॥
धनुर्ज्यां शकुनेः कार्ष्णिश्चिच्छेद दशभिः शरैः । सहस्रैश्च सहस्राश्वान्रथं च विशिखैः शतैः ॥३४॥
सारथिं बाणविंशत्या पातयामास भूतले । ततो रथं समुत्थाप्य हयैरन्यैर्नियोजितम् ॥३५॥
अन्यं सूतं रथे कृत्वा रथमारुह्य दैत्यराट् । संदधे सिंजिनीं राजन् कोदण्डे चंडविक्रमे ॥३६॥
शतं बाणान्समाकृष्य निषंगात्पृष्ठतो गतान् । चापे निधाय कर्णांतमाकृष्य प्राह मन्मथम् ॥३७॥

शकुनिरुवाच

सर्वेषां घातयिष्यामि शत्रुमुख्यं मदोत्कटम् । पश्चात्सेनां हनिष्यामि यदूनां स्वस्थतेजसाम् ॥३८॥

प्रद्युम्न उवाच

सदा वयः कालबलेन देहिनां प्रयाति छायेव सुखे मुहुर्मुहुः ।
तथा च दुःखं च सुखं गतागतं घनावलिर्वायुबलेन खे यथा ॥३९॥
कृतां कृषिं सिंचति यां हि सर्वतश्छिनत्ति दात्रेण यथा कृषीवलः ।
तथा हि कालः स्वकृतां जनावलिं दुरत्ययः पाति गुणैर्विलुंपति ॥४०॥
इदं करिष्यामि करोमि भूयो ममेदमस्तीति तदेवमाब्रुवन् ।
अहं सुखी दुःखयुतः सुहृज्जनो लोकस्त्वहंकारविमोहितोऽसुर ॥४१॥
धन्यस्त्वं राजशार्दूल मुनीन् वाग्भिर्विडंबयन् । स्वभावो दुस्त्यजो नृणां पृथग्भूतस्त्रिभिर्गुणैः ॥४२॥

श्रीनारद उवाच

एवं ब्रुवाणावन्योन्यं प्रद्युम्नशकुनी मृधे । युयुधाते मैथिलेन्द्र शक्रवृत्राविव स्थितौ ॥४३॥
इति तौ धनुषो मुक्तान् विशिखान्सूर्यरश्मिवत् । चिच्छेद कार्ष्णिर्बाणेन कुवाक्येनेव मित्रताम् ॥४४॥

प्रहार करते हैं। तभी गद, अर्जुन, साम्ब और अनिरुद्ध अपना-अपना धनुष टंकारते हुए फिर युद्धभूमिमें आ गये, तदनन्तर प्रद्युम्न वायुके समान वेगवाले रथपर बैठकर अपने धनुषका टंकार करते हुए रणांगणमें आये। वहाँ पहुँचते ही प्रलयकालीन समुद्रकी भाँति गर्जन करनेवाली शकुनिके धनुषकी प्रत्यंचाको प्रद्युम्नने दस बाणोंसे काट डाला। इसी प्रकार उन्होंने हजार बाणोंसे शकुनिके हजार घोड़ों और सौ तीखे बाणोंसे उसके रथको चूर्ण कर दिया ॥ ३१–३४ ॥ बीस बाण मारकर उन्होंने उसके सारथीको भी समाप्त कर दिया। तब दूसरे रथमें दूसरे घोड़े जोत तथा दूसरे सारथीको लेकर दैत्यराज शकुनिने उस रथमें बैठकर अपने प्रचंड धनुषपर प्रत्यंचा चढ़ायी ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ उसके बाद अपने तरकससे सौ बाण निकालकर धनुषपर चढ़ाया और कानतक उसकी डोरी खींचकर प्रद्युम्नसे बोला—॥ ३७ ॥ अपने सब शत्रुओंमें मुख्य शत्रु तुमको मारकर मैं तुम्हारी सारी यादवी सेनाको मार डालूँगा ॥ ३८ ॥ प्रद्युम्न बोले—हे दैत्यराज! सदा ही प्राणीकी अवस्था कालके बलसे सुखमें छायाकी तरह पहुँचती है। जैसे वायुके बलसे आकाशमें मेघोंका दल आता-जाता रहता है, वैसे ही काल स्वरचित प्राणियोंके सुख-दुःखको बुलाता और खदेड़ता रहता है। वही उनकी रक्षा करता है और वही विनाश भी कर देता है ॥ ३९ ॥ जैसे किसान खेती करके उसे चारों ओरसे सींचता है और फसल पक जानेपर हँसुयेसे काटता है। उसी तरह काल अपने तीनों गुणोंसे निर्मित लोगोंको एक बार बढ़ाता है और बादमें उसे नष्ट कर देता है ॥ ४० ॥ मैं यह करूँगा, यह कर रहा हूँ, मेरे यह है, यह होगा। लोग कहते हैं कि मैं सुखी हूँ, मैं दुखी हूँ, यह मित्र है, वह शत्रु है आदि। हे असुर! इस प्रकार यह लोक अहंकारसे मोहित है ॥ ४१ ॥ शकुनि बोला—हे राजशार्दूल! आप धन्य हैं। आप अपनी वाणीसे मुनियोंका अनुकरण करते हैं। किन्तु मनुष्यजातिका स्वभाव बड़ा दुस्त्यज होता है और तीनों गुणोंसे पृथक् रहता है ॥ ४२ ॥ नारदजी बोले—हे राजन्! प्रद्युम्न तथा शकुनि परस्पर यह कहते हुए ऐसा युद्ध करने लगे, जैसा इन्द्र और वृत्रासुरमें हुआ था ॥ ४३ ॥ इस प्रकार वे दोनों धनुषसे छूटे हुए सूर्यकी किरणों जैसे

लक्षभारमयीं गुर्वीं गृहीत्वा महतीं गदाम् । जघान मूर्ध्नि प्रद्युम्नं शकुनिर्युद्धदुर्मदः ॥४५॥
प्रद्युम्नो भगवान्साक्षाद्गदया वज्रकल्पया । काचपात्रं यथा दण्डस्तद्गदां शतधाऽकरोत् ॥४६॥
अथ दैत्यो रुषाविष्टस्त्रिशूलं च स्फुरद्रुचा । प्रद्युम्नस्याहनन्मूर्ध्नि शब्दमुच्चैः समुच्चरन् ॥४७॥
त्रिशूलेन हरेः पुत्रस्त्रिशूलं शतधाऽच्छिनत् । कुंतं तीक्ष्णं शकुनये प्राहिणोद्रुक्मिणीसुतः ॥४८॥
कुंतेन विद्धहृदयः किंचिद्व्याकुलमानसः । परिघेण हरेः पुत्रं संतताड रणांगणे ॥४९॥
यमदण्डं ततो नीत्वा रुक्मिणीनंदनो बली । चूर्णीचकार दैत्यस्य परिघं परमाद्भुतम् ॥५०॥
चचालाश्वांश्च सहसा यमदण्डेन वेगतः । सारथिं स्यन्दनं दिव्यं पातयामास भूतले ॥५१॥
मृते मृत्युं गते साश्वे चूर्णीभूते रथे नृप । परिघे च महादैत्यः खड्गं जग्राह रोषतः ॥५२॥
प्रद्युम्नोऽपि महावीरो यमदण्डेन मैथिल । द्विधा चकार तत्खड्गं पन्नगं गरुडो यथा ॥५३॥
यमदण्डेन तं दैत्यं स्कंधे कार्ष्णिस्तताड ह । तस्याघातेन शकुनिः सद्यो मूर्च्छामवाप ह ॥५४॥
दैत्यसेनां विशेशाशु श्रीकृष्णः क्रोधमूर्च्छितः । निपातयन् महावीरान्वनं वैश्वानरो यथा ॥५५॥
गजांस्तुरंगांश्च रथान्दैत्यांस्तानाततायिनः । पातयामास यमवद्यमदण्डेन माधवः ॥५६॥

छिन्नपादाश्छिन्नमुखाश्छिन्नांगाश्छिन्नबाहवः ।
दैतेया दनुजा युद्धे मूर्च्छिता निधनं गताः ॥५७॥
यमरूपधरं दृष्ट्वा प्रद्युम्नं भीमविक्रमम् ।
त्यक्त्वा स्वं स्वं रणं केचिद्दुद्रुवुस्ते दिशो दश ॥५८॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीविश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे शकुनियुद्धवर्णनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥

तेजस्वी बाणोंको छोड़ने लगे। प्रद्युम्न शकुनिके बाणोंको उसी तरह काटने लगे, जैसे कुवाक्य मित्रताको नष्ट कर देते हैं ॥ ४४ ॥ तभी युद्धदुर्मद शकुनि लाख भारकी भारी गदा लेकर प्रद्युम्नके मस्तकपर मारी ॥ ४५ ॥ तब साक्षात् प्रद्युम्न भगवान्‌ने अपनी वज्रसरीखी गदासे शकुनिकी गदाको शीशेके पात्रकी तरह तोड़कर सौ टुकड़े कर दिये ॥ ४६ ॥ तब दैत्यपति शकुनिने अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपने चमचमाते हुए त्रिशूलसे प्रद्युम्नके सिरपर प्रहार किया और बहुत जोरसे गर्जन करने लगा ॥ ४७ ॥ किन्तु प्रद्युम्नने अपने त्रिशूलसे शकुनिके त्रिशूलको काटकर सौ टुकड़े कर दिये और एक भाला लेकर शकुनिको मारा ॥ ४८ ॥ उस भालेकी मारसे शकुनिकी छाती फट गयी, जिससे कुछ व्याकुल होकर शकुनिने अपने परिघसे प्रद्युम्नपर प्रहार किया ॥ ४९ ॥ तब रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्नने यमदण्ड लेकर उसीसे शकुनिके परिघको चूर कर दिया ॥ ५० ॥ उन्होंने उस यमदण्डसे ही दैत्य शकुनिके चंचल घोड़ों, सारथी तथा दिव्य रथको भी चूर-चूर कर डाला ॥ ५१ ॥ हे राजन्! इस प्रकार अश्वसहित सारथी, रथ तथा परिघके टूट जानेपर उस दैत्यने बड़े क्रोधके साथ हाथमें तलवार सम्हाली ॥ ५२ ॥ महावीर प्रद्युम्नने अपने यमदण्डसे उसके खड्गको काटकर दो टुकड़े कर दिये, जैसे गरुड़ सर्पको काट देते हैं ॥ ५३ ॥ उसी यमदण्डसे प्रद्युम्नने शकुनिके कन्धेपर प्रहार किया। उसकी मारसे शकुनि तत्काल मूर्छित होकर गिर पड़ा ॥ ५४ ॥ उसी समय क्रुद्ध भगवान् श्रीकृष्ण दैत्यसेनामें प्रविष्ट होकर बड़े बड़े वीरोंको वैसे ही मार-मारकर गिराने लगे, जैसे आग वनको जलाकर नष्ट कर देती है ॥ ५५ ॥ सैनिक क्षेत्रके हाथियों, घोड़ों, रथों और आततायी दैत्योंको श्रीकृष्ण अपने यमदण्डसे यमराजकी तरह मार-मारकर गिराने लगे ॥ ५६ ॥ उस यमदण्डकी मारसे बहुतोंके पैर, हाथ, सिर और भुजायें कट गयीं और बहुतेरे दैत्य और दनुज मूर्छित हो-होकर मर गये ॥ ५७ ॥ यमरूपधारी एवं भीषण पराक्रमी प्रद्युम्नको देखकर कुछ दैत्य रणभूमि त्यागकर दसों दिशाओंमें भाग गये ॥ ५८ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायामष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

अथ एकोनत्रिंशोऽध्यायः

(रणभूमिमें भगवान् कृष्णका आगमन)

श्रीनारद उवाच

शकुनिः पुनरुत्थाय स्वबलं वीक्ष्य पोथितम् । जग्राह स महाराज लक्षभारसमं धनुः ॥ १ ॥
निधाय बाणं निशितं कोदण्डे चण्डविक्रमे । कार्ष्णिं प्राह रणे राजञ्छकुनिर्दैत्यराड्बली ॥ २ ॥

शकुनिरुवाच

कर्म प्रधानं जगतीतले महत्कर्मैव साक्षाद्गुरुरीश्वरः प्रभुः ।
उच्चावचत्वं भवतीह कर्मणा तेनैव राजन् विजयः पराजयः ॥ ३ ॥
गवां सहस्रेषु यथा हि वत्सकः स्वमातरं विंदति पश्यतां सताम् ।
तथा हि येनापि कृतं शुभाशुभं नरेषु तिष्ठत्सु तमेव गच्छति ॥ ४ ॥
ततो विजेष्यामि दृढेन कर्मणा रिपुं भवन्तं शपथः कृतो मया ।
सद्यः कुरु त्वं प्रतिकारमेव तद्येनापि न स्याद्भुवि ते पराजयः ॥ ५ ॥

श्रीप्रद्युम्न उवाच

कर्म प्रधानं यदि मन्यसे भवान् कालं विना तर्हि फलं न विद्यते ।
कृते च पाके यदि विघ्नता क्वचित् सदा बलिष्ठं समयं विदुः परे ॥ ६ ॥
पाकप्रकारे सति पाकसाधनं कदापि कर्तारमृते न जायते ।
वदन्ति कर्तारमतः परं परे न कर्म कालं शृणु दैत्यपुंगव ॥ ७ ॥
योगं विदुः केपि यदा ह्ययोगतः कथं भवेत्कौ किल पाकसाधनम् ।
सर्वं हि वा योगमृते वृथा भवेत्काले तथा कर्मणि कर्तरि स्थिते ॥ ८ ॥
योगं तथा कर्मणि कर्तरि स्थिते काले विधिः सांख्यमृते वृथा भवेत् ।
पाकप्रकाराद्यविचारकृद्यदा न तर्हि पाकस्य यथा प्रसाधनम् ॥ ९ ॥
योगकर्मविधिकारकसंख्यैर्ब्रह्मपूरुषमृते न हि किंचित् ।
तं नमामि परिपूर्णतमांशं येन विश्वमखिलं विदितं खे ॥ १० ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! शकुनिने जब अपनी सेनाकी मरी हुई देखा तो लाख भारका धनुष हाथमें लिया ॥ १ ॥ उस प्रचंड धनुषपर तीक्ष्ण बाण चढ़ाकर दैत्यराज शकुनिने श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्न-से कहा ॥ २ ॥ शकुनि बोला—हे राजन् ! इस संसारमें कर्म ही मुख्य है। कर्म ही साक्षात् गुरु, ईश्वर और प्रभु है। कर्मसे ही उच्च और नीच पद प्राप्त होता है और कर्मसे ही जीत और हार होती है ॥ ३ ॥ जैसे हजारों गौओंके बीच बछड़ा अपनी माताको खोज लेता है। उसी प्रकार जिसने जो शुभाशुभ कर्म किये हैं, अन्य हजारों लोगोंके रहते हुए भी वह कर्म अपने कर्ताको ही प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ सो मैंने प्रतिज्ञा की है कि अपने दृढ़ कर्मसे अपने शत्रु प्रद्युम्नको जीतूँगा। अब तुम भी उसका ऐसा प्रतीकार करो कि जिससे संसारमें तुम्हारी पराजय न हो ॥ ५ ॥ प्रद्युम्न बोले—हे दैत्यराज ! यदि आप कर्मको ही प्रधान मानते हों तो कर्मका फल तो समयपर ही प्राप्त होता है। यदि कर्म करनेपर भी कोई विघ्न आ जाय तो बहुतेरे विद्वान् कालको ही बलवान् कहते हैं ॥ ६ ॥ हे दैत्यपुंगव ! फलनेके समयपर ही फल होता है, किन्तु वह किसी कर्ताके बिना नहीं होता। अतः बहुतसे लोग कर्ताकी ही प्रशंसा करते हैं और उसीको प्रधान मानते हैं। वे कर्मको मुख्य नहीं मानते ॥ ७ ॥ कुछ लोग योग (उद्योग) को प्रधान मानते हैं। उनका कहना है कि उद्योगके बिना संसारमें कोई कार्य नहीं सिद्ध होता। काल कर्मके वशमें रहता है, किन्तु उद्योगके बिना फलकी सिद्धि नहीं होती ॥ ८ ॥ ९ ॥ इसी प्रकार योग, कर्म, विधि, कारक तथा सांख्यके रहते हुए भी ब्रह्मपुरुषके बिना कोई

शकुनिरुवाच

हे प्रद्युम्न महाबाहो त्वं साक्षाज्ज्ञानशेवधिः । तव दर्शनमात्रेण नरो याति कृतार्थताम् ॥११॥
ये त्वत्संगं समासाद्य वार्तां कुर्वन्ति नित्यशः । तेषां तु महिमानं हि वक्तुं नालं चतुर्मुखः ॥१२॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा शकुनिर्दैत्यो मायावी दैत्यराड्बली । शिक्षितं मयदैत्येन रौरवास्त्रं समादधे ॥१३॥
महोरगा दंदशूका वृश्चिकाश्च विषोत्कटाः । कोटिशो गरुडा बाणान्नीलकंठाः कलापिनः ॥१४॥
तैर्दंशितं बलं सर्वं फूत्कारैर्मत्ततां गतम् । वीक्ष्य कार्ष्णिर्महाबुद्धिर्गरुडास्त्रं समादधे ॥१५॥
कोटिशो गरुडा बाणान्नीलकंठाः कलापिनः । अन्ये च पक्षिणो भीमा निर्गतास्तस्य पश्यतः१६॥
अग्रसन्नुरगान्युद्धे दन्दशूकान्सवृश्चिकान् । तीक्ष्णतुंडा बृहत्पक्षाः क्षणात्तेऽदृश्यतां गताः१७॥
दैत्योऽपि राक्षसीं मायां गांधर्वीं गौह्यकीं पुनः । पैशाचीं संदधे राजञ्छकुनिर्युद्धदुर्मदः ॥१८॥
तद्बाणनिर्गता भूतास्तथा प्रेताश्च कोटिशः । अंगारान्मुमुचुस्ते वै करालाः कृष्णरूपिणः ॥१९॥
ज्ञात्वाऽथ तामसीं मायां पैशाचीं मीनकेतनः । सत्त्वास्त्रं संदधे बाणे युद्धकांक्षी हरेः सुतः ॥२०॥

तस्माद्विनिर्गता राजन् कोटिशो विष्णुपार्षदाः ।
जघ्नुः पिशाचीं तां मायां पन्नगीं गरुडो यथा ॥२१॥

मायां दैत्योऽपि मायावी गौह्यकीं संदधे पुनः । संभूताः कोटिशो मेघा गर्जंतो भीमरूपिणः ॥२२॥
विष्ठां मूत्रं च रुधिरं मेदोमज्जास्थिवर्षिणः । ज्ञात्वाऽथ गौह्यकीं मायां प्रद्युम्नो भगवान्हरिः२३॥
तन्नाशार्थं महाराज कोलास्त्रं संदधे त्विषौ । तद्बाणाद्यज्ञवाराहो निर्गतो घर्घरस्वनः ॥२४॥
सटा विधूय वेगेन दंष्ट्रया तीक्ष्णया घनान् । विदारयन्रणे रेजे वेणून्मत्तगजो यथा ॥२५॥

दैत्योऽथ मायां गांधर्वीं चकार रणमण्डले । युद्धं न दृश्यते तद्वद्धेमसौधानि कोटिशः ॥२६॥
वस्त्रालंकारयुक्तानि बभूवुः पश्यतां सताम् । विद्याधर्यश्च गन्धर्वा गायन्तो नृत्यतत्पराः ॥२७॥
मृदंगतालवादित्रैर्मोहिनै रागमिश्रितैः । हावभावकटाक्षैश्च तोषयंत्यो जनान्नृप ॥२८॥
मोहिन्यः सुन्दरी रामाः श्यामाः कमललोचनाः । तासां लावण्यरागाभ्यां मोहं यातेषु वृष्णिषु ॥२९॥
गांधर्वीं मोहिनीं मायां ज्ञात्वा कार्ष्णिर्महाबलः । संदधे तत्प्रहारार्थे ज्ञानास्त्रं रणमण्डले ॥३०॥
ज्ञानोदये तदा जाते मोहनाशो नृपेश्वर । नाशं गतायां मायायां शकुनिः क्रोधमूर्च्छितः ३१॥
राक्षसीं संदधे मायां मायावी दैत्यपुंगवः । सपक्षैः पर्वतै राजन् क्षणात्तच्छादितं नभः ॥३२॥
महांधकारोऽभूत्पृथ्व्यां पराद्धं च घनैरिव । दग्धवृक्षशिलास्थीनि कबंधरुधिराणि च ॥३३॥
गदापरिघनिस्त्रिंशमुसलादीनि सर्वतः । अंबराद्भ्रमुः शैला मेघा इव विदेहराट् ॥३४॥
रक्षोगणाः शूलहस्ताश्छिन्धि भिंधीति वादिनः । यातुधानाश्च शतशो भक्षयन्तो द्विपान्हयान् ॥३५॥
सिंहव्याघ्रवराहाश्च दृश्यंते रणमण्डले । मर्दयन्तो नखैर्नागांश्चर्वयन्तो वपूंषि वै ॥३६॥
पलायमानं स्वबलं दृष्ट्वा कार्ष्णिर्महाबलः । जेतुं तां राक्षसीं मायां नृसिंहास्त्रं समादधे ॥३७॥
आविर्भूतो हरिः साक्षान्नृसिंहो रौद्ररूपधृक् । स्फुरत्सटो ललज्जिह्वो नखलांगूलभूषितः ॥३८॥
चलद्वालो भीषणास्यो हुङ्कारेणातिभीषणः । सिंहनादं च कुर्वन् वै संस्थितो रणमण्डले ॥३९॥
ननाद तेन ब्रह्मांडं सप्तलोकैर्बिलैः सह । विचेलुर्दिग्गजास्तारा राजद्भूखंडमण्डलम् ॥४०॥
गृहीत्वा ह्यंबरे शैलान्सवृक्षान्नखरैः खरैः । पातयामास भूपृष्ठे दैत्यानां च प्रपश्यताम् ॥४१॥
रक्षोगणान्संगृहीत्वा पाटयामास वेगतः । यातुधानगणान्पद्भ्यां स ममर्द हरिर्मृधे ॥४२॥
सिंहान्व्याघ्रान्वराहांश्च संविदार्य नखैः खरैः । चिक्षेप गगने विष्णुस्तत्रैवांतर्दधे पुनः ॥४३॥

इसके बाद उस दैत्यने गान्धर्वी मायाका सृजन किया, जिससे युद्ध अदृश्य हो गया और करोड़ों स्वर्णमहल दिखाई देने लगे ॥ २६ ॥ उन महलोंमें विविध वस्त्र और अलंकार विद्यमान थे, विद्याधरियाँ नाच रही थीं और गन्धर्व गा रहे थे ॥ २७ ॥ मनोमोहक रागोंमें मृदंग, ताल तथा नाना प्रकारके बाजे बज रहे थे। अप्सरायें हाव-भाव तथा कटाक्षोंसे दर्शकोंको सन्तुष्ट कर रही थीं ॥२८॥ उन मोहिनी, सुन्दरी, रामा, श्यामा और कमलनयनी अप्सराओंके लावण्यरागसे जब सब यादव मोहित हो गये ॥२९॥ तब उनकी गान्धर्वी मायाका मर्म समझकर महाबली प्रद्युम्नने उसके निवारणार्थ रणांगणमें ज्ञानास्त्रका संधान किया ॥ ३० ॥ हे राजन् ! उसका प्रयोग करते ही लोगोंके मोहका नाश हो गया। इस प्रकार मायाके नष्ट होनेपर दैत्यराज शकुनि मारे क्रोधके पागल हो गया ॥३१॥ उसके बाद उस मायावी दानवने राक्षसी मायाका विस्तार किया। जिससे अगणित पंखवाले पर्वतोंसे सारा गगनमण्डल आच्छादित हो गया ॥ ३२ ॥ समस्त पृथिवीपर घोर अन्धकार छा गया। तब जले हुए वृक्ष, कबन्ध (धड़), रुधिर, शिलाखंड और हड्डियोंकी वर्षा होने लगी। हे विदेहराज ! परिघ, निस्त्रिंश (तलवार) और मुसल चारों ओरसे बरसने और मेघोंके समान बड़े-बड़े पहाड़ आकाशमें उड़ने लगे ॥ ३३–३५ ॥ हाथोंमें त्रिशूल लिये राक्षसोंके झुंड 'काट डालो' 'मार डालो' ऐसा कहते हुए सैकड़ों हाथियों और मनुष्योंको नोचने-खाने लगे ॥ ३६ ॥ ऐसी स्थितिमें अपनी सेनाको भागती देख महाबली प्रद्युम्नने उस राक्षसी मायाको जीतनेके लिए नृसिंहास्त्रका संधान किया ॥ ३७ ॥ इससे रौद्ररूपधारी साक्षात् नृसिंहभगवान् प्रकट हो गये। उनकी गर्दनके बाल बिखरे हुए थे, जीभ लपलपा रही थी, नख और पूँछ भी शोभित हो रही थी ॥ ३८ ॥ उस समय उनकी पूँछ हिल रही थी। मुख बड़ा भयानक दीख रहा था। वे बार-बार हुंकार करके सिंहनाद कर रहे थे ॥ ३९ ॥ तभी उन्होंने भीषण गर्जन किया। जिससे सप्तलोकोंके साथ सारा ब्रह्माण्ड गूँज उठा। सभी दिग्गज विचलित हो गये। तारे और भूखण्ड चलायमान हो गये ॥ ४० ॥ दैत्योंके देखते-देखते नृसिंहभगवान् वृक्षोंसमेत पर्वतोंको अपने तीखे नखोंसे छिन्न-भिन्न करके पृथिवीपर फेंकने लगे ॥ ४१ ॥ राक्षसोंको पकड़-पकड़कर वे अपने

शकुनिरुवाच

हे प्रद्युम्न महाबाहो त्वं साक्षाज्ज्ञानशेवधिः। तव दर्शनमात्रेण नरो याति कृतार्थताम् ॥११॥
ये त्वत्संगं समासाद्य वार्तां कुर्वन्ति नित्यशः। तेषां तु महिमानं हि वक्तुं नालं चतुर्मुखः ॥१२॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा शकुनिर्दैत्यो मायावी दैत्यराड्बली। शिक्षितं मयदैत्येन शैखास्त्रं समादधे ॥१३॥
महोरगा दंदशूका वृश्चिकाश्च विषोत्कटाः। कोटिशो गरुडा बाणान्नीलकंठाः कलापिनः ॥१४॥
तैर्दंशितं बलं सर्वं फूत्कारैर्मत्ततां गतम्। वीक्ष्य कार्ष्णिर्महाबुद्धिर्गारुडास्त्रं समादधे ॥१५॥
कोटिशो गरुडा बाणान्नीलकंठाः कलापिनः। अन्ये च पक्षिणो भीमा निर्गतास्तस्य पश्यतः ॥१६॥
अग्रसन्नुरगान्युद्धे दन्दशूकान्सवृश्चिकान्। तीक्ष्णतुंडा बृहत्पक्षाः क्षणात्तेऽदृश्यतां गताः ॥१७॥
दैत्योऽपि राक्षसीं मायां गांधर्वीं गौह्यकीं पुनः। पैशाचीं संदधे राजञ्छकुनिर्युद्धदुर्मदः ॥१८॥
तद्बाणनिर्गता भूतास्तथा प्रेताश्च कोटिशः। अंगारान्मुमुचुस्ते वै करालाः कृष्णरूपिणः ॥१९॥
ज्ञात्वाऽथ तामसीं मायां पैशाचीं मीनकेतनः। सत्त्वास्त्रं संदधे बाणे युद्धकांक्षी हरेः सुतः ॥२०॥

तस्माद्विनिर्गता राजन् कोटिशो विष्णुपार्षदाः।
जघ्नुः पिशाचीं तां मायां पन्नगीं गरुडो यथा ॥२१॥

मायां दैत्योऽपि मायावी गौह्यकीं संदधे पुनः। संभूताः कोटिशो मेघा गर्जंतो भीमरूपिणः ॥२२॥
विष्ठां मूत्रं च रुधिरं मेदोमज्जास्थिवर्षिणः। ज्ञात्वाऽथ गौह्यकीं मायां प्रद्युम्नो भगवान्हरिः ॥२३॥
तन्नाशार्थं महाराज कोलास्त्रं संदधे त्विषौ। तद्बाणाद्यज्ञवाराहो निर्गतो घर्घरस्वनः ॥२४॥
सटा विधूय वेगेन दंष्ट्रया तीक्ष्णया घनान्। विदारयन्रणे रेजे वेणून्मत्तगजो यथा ॥२५॥

दैत्योऽथ मायां गांधर्वीं चकार रणमण्डले । युद्धं न दृश्यते तद्वद्धेमसौधानि कोटिशः ॥२६॥
वस्त्रालंकारयुक्तानि बभूवुः पश्यतां सताम् । विद्याधर्यश्च गन्धर्वा गायन्तो नृत्यतत्पराः ॥२७॥
मृदंगतालवादित्रैर्मोहनै रागमिश्रितैः । हावभावकटाक्षैश्च तोषयंत्यो जनान्नृप ॥२८॥
मोहिन्यः सुन्दरी रामाः श्यामाः कमललोचनाः । तासां लावण्यरागाभ्यां मोहं यातेषु वृष्णिषु ॥२९॥
गांधर्वीं मोहिनीं मायां ज्ञात्वा कार्ष्णिर्महाबलः । संदधे तत्प्रहारार्थे ज्ञानास्त्रं रणमण्डले ॥३०॥
ज्ञानोदये तदा जाते मोहनाशो नृपेश्वर । नाशं गतायां मायायां शकुनिः क्रोधमूर्च्छितः ३१॥
राक्षसीं संदधे मायां मायावी दैत्यपुंगवः । सपक्षैः पर्वतै राजन् क्षणात्तच्छादितं नभः ॥३२॥
महांधकारोऽभूत्पृथ्व्यां पराद्धं च घनैरिव । दग्धवृक्षशिलास्थीनि कबंधरुधिराणि च ॥३३॥
गदापरिघनिस्त्रिंशमुसलादीनि सर्वतः । अंबराद्धभ्रमुः शैला मेघा इव विदेहराट् ॥३४॥
रक्षोगणाः शूलहस्ताश्छिन्धि भिंधीति वादिनः । यातुधानाश्च शतशो भक्षयन्तो द्विपान्हयान् ॥३५॥
सिंहव्याघ्रवराहाश्च दृश्यंते रणमण्डले । मर्दयन्तो नखैर्नागांश्चर्वयन्तो वपूंषि वै ॥३६॥
पलायमानं स्वबलं दृष्ट्वा कार्ष्णिर्महाबलः । जेतुं तां राक्षसीं मायां नृसिंहास्त्रं समादधे ॥३७॥
आविर्भूतो हरिः साक्षान्नृसिंहो रौद्ररूपधृक् । स्फुरत्सटो ललज्जिह्वो नखलांगूलभूषितः ॥३८॥
चलद्वालो भीषणास्यो हुङ्कारेणातिभीषणः । सिंहनादं च कुर्वन् वै संस्थितो रणमण्डले ॥३९॥
ननाद तेन ब्रह्मांडं सप्तलोकैर्बिलैः सह । विचेलुर्दिग्गजास्तारा राजद्भूखंडमण्डलम् ॥४०॥
गृहीत्वा ह्यंबरे शैलान्सवृक्षान्नखरैः खरैः । पातयामास भूपृष्ठे दैत्यानां च प्रपश्यताम् ॥४१॥
रक्षोगणान्संगृहीत्वा पाटयामास वेगतः । यातुधानगणान्पद्भ्यां स ममर्द हरिर्मृधे ॥४२॥
सिंहान्व्याघ्रान्वराहांश्च संविदार्य नखैः खरैः । चिक्षेप गगने विष्णुस्तत्रैवांतर्दधे पुनः ॥४३॥

इसके बाद उस दैत्यने गान्धर्वी मायाका सृजन किया, जिससे युद्ध अदृश्य हो गया और करोड़ों स्वर्णमहल दिखाई देने लगे ॥ २६ ॥ उन महलोंमें विविध वस्त्र और अलंकार विद्यमान थे, विद्याधरियाँ नाच रही थीं और गन्धर्व गा रहे थे ॥ २७ ॥ मनोमोहक रागोंमें मृदंग, ताल तथा नाना प्रकारके बाजे बज रहे थे। अप्सरायें हाव-भाव तथा कटाक्षोंसे दर्शकोंको सन्तुष्ट कर रही थीं ॥२८॥ उन मोहिनी, सुन्दरी, रामा, श्यामा और कमलनयनी अप्सराओंके लावण्यरागसे जब सब यादव मोहित हो गये ॥२९॥ तब उनकी गान्धर्वी मायाका मर्म समझकर महाबली प्रद्युम्नने उसके निवारणार्थ रणांगणमें ज्ञानास्त्रका संधान किया ॥ ३० ॥ हे राजन् ! उसका प्रयोग करते ही लोगोंके मोहका नाश हो गया। इस प्रकार मायाके नष्ट होनेपर दैत्यराज शकुनि मारे क्रोधके पागल हो गया ॥३१॥ उसके बाद उस मायावी दानवने राक्षसी मायाका विस्तार किया। जिससे अगणित पंखवाले पर्वतोंसे सारा गगनमण्डल आच्छादित हो गया ॥ ३२ ॥ समस्त पृथिवीपर घोर अन्धकार छा गया। तब जले हुए वृक्ष, कबन्ध (धड़), रुधिर, शिलाखंड और हड्डियोंकी वर्षा होने लगी। हे विदेहराज ! परिघ, निस्त्रिंश (तलवार) और मुसल चारों ओरसे बरसने और मेघोंके समान बड़े-बड़े पहाड़ आकाशमें उड़ने लगे ॥ ३३–३५ ॥ हाथोंमें त्रिशूल लिये राक्षसोंके झुंड 'काट डालो' 'मार डालो' ऐसा कहते हुए सैकड़ों हाथियों और मनुष्योंको नोचने-खाने लगे ॥ ३६ ॥ ऐसी स्थितिमें अपनी सेनाको भागती देख महाबली प्रद्युम्नने उस राक्षसी मायाको जीतनेके लिए नृसिहास्त्रका संधान किया ॥ ३७ ॥ इससे रौद्ररूपधारी साक्षात् नृसिहभगवान् प्रकट हो गये। उनकी गर्दनके बाल बिखरे हुए थे, जीभ लपलपा रही थी, नख और पूँछ भी शोभित हो रही थी ॥ ३८ ॥ उस समय उनकी पूँछ हिल रही थी। मुख बड़ा भयानक दीख रहा था। वे बार-बार हुंकार करके सिहनाद कर रहे थे ॥ ३९ ॥ तभी उन्होंने भीषण गर्जन किया। जिससे सप्तलोकोंके साथ सारा ब्रह्माण्ड गूँज उठा। सभी दिग्गज विचलित हो गये। तारे और भूखण्ड चलायमान हो गये ॥ ४० ॥ दैत्योंके देखते-देखते नृसिहभगवान् वृक्षोंसमेत पर्वतोंको अपने तीखे नखोंसे छिन्न-भिन्न करके पृथिवीपर फेंकने लगे ॥ ४१ ॥ राक्षसोंको पकड़-पकड़कर वे अपने

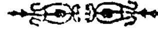
नाशं गतायां मायायां राक्षस्यां रुक्मिणीसुतः। शंखं दध्मौ विजयदं मौलेन्द्रं च रणांगणे ॥४४॥
अभूज्जयजयारावो दुन्दुभिध्वनिमिश्रितः। प्रद्युम्नस्योपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे ॥४५॥
स्वमायायां निर्गतायां शकुनिर्दैत्यपुंगवः। सरथः सैनिकैः सार्द्धं तत्रैवांतर्हितोऽभवत् ॥४६॥
मायां चकार दैतेयीं मयदैत्यप्रदर्शिताम्। हस्तिशुण्डासमां धारां वर्षंतोऽतितडित्स्वनाः ॥४७॥
सांवर्त्तकगणा मेघा आजग्मुः पश्यतां सताम्। क्षणात्सर्वे समुद्रास्ते चण्डवातेन वेपिताः ॥४८॥
क्षुभिता उर्मिसंघर्षावर्तैः प्लावितभूरुजाः। भूमण्डलं सपदि तत्प्लावितं चात्मभिः समम् ॥४९॥
दृष्ट्वाऽथ यादवाः सर्वे प्रापुस्तत्र भयं बहु। वदन्तो रामकृष्णेति विस्मृतस्वपराक्रमाः ॥५०॥
क्षणमात्रेण राजेंद्र तूष्णींभूताः पराजिताः। तदा कार्ष्णिर्महाबाहुः कोदण्डे चण्डविक्रमे ॥
वाणं निधाय सहसा श्रीकृष्णास्त्रं समादधे ॥५१॥

नवार्ककोटिद्युतिमन्महन्महो वीरं जयन्मैथिल वै दिशो दश।
समागतं तत्र कुशस्थलीपुरः स्वयं परं स्वार्थमिवात्मवांछितम् ॥५२॥
तस्मिन्परे तेजसि नूतनांबुदच्छविं सुवर्णांबुजरेणुवाससम्।
भृंगावलीकूजितकुन्तलावलिं स्रजं दधानं नववैजयन्तीम् ॥५३॥
श्रीवत्सरत्नोत्तमचारुवक्षसं चतुर्भुजं पद्मविशालवीक्षणम्।
स्फुरत्किरीटं वरहारनूपुरं लसन्नवार्कद्युतिहेमकुण्डलम् ॥५४॥
विलोक्य देवं यदवोऽतिहर्षिताः परं प्रणेमुः कृतहस्तसंपुटाः।
प्रचक्रिरे मैथिल पुष्पवर्षिणोऽमरा जयारावमतीव सर्वतः ॥५५॥

स दैत्यशकुनेः सज्जं कोदंडं प्राच्छिनन्नृपा। शार्ङ्गमुक्तेन तच्छार्ङ्गी वाणेनैकेन लीलया ॥५६॥

स छिन्नधन्वा शकुनिस्त्यक्त्वा युद्धं प्रधर्षितः । हेतिसंहतिमानेतुं ययौ चन्द्रावतीं पुरीम् ॥५७॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसम्वादे श्रीकृष्णागमनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥



अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

(रणभूमिमें गरुड़का आगमन)

श्रीनारद उवाच

दैत्ये गतेऽथ शकुनौ भगवान्कमलेक्षणः । कार्ष्ण्यादियादवान्सर्वानाहूयेत्थमुवाच ह ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच

दैत्योऽयं शकुनिः पूर्वं सुमेरोः पार्श्व उत्तरे । चतुर्युगं वर्जितान्नस्तपसाऽतोषयच्छिवम् ॥ २ ॥
चतुर्युगे व्यतीते तु साक्षाद्देवो महेश्वरः । प्रसन्नो दर्शनं दत्त्वा वरं ब्रूहीत्युवाच ह ॥ ३ ॥
नत्वाऽथ शकुनिर्दैत्यः कृतांजलिपुटः शनैः । हृष्टरोमाऽश्रुपूर्णाक्षः प्राह गद्गदया गिरा ॥ ४ ॥
मृतः सन्भूमिसंस्पर्शाद्भूयात्संजीवितः प्रभो । आकाशे मे मृतिर्देव मा भूयाद्घटिकाद्वयम् ॥ ५ ॥
दैत्येनोक्तो हरः साक्षाद्दत्वा तस्मै वरद्वयम् । पंजरस्थं शुकं दत्वा प्राह दैत्यं नताननम् ॥ ६ ॥
जीवकल्पं शुकं चैनं रक्ष दैत्य सदाऽनघ । अस्मिन्मृते च ज्ञातव्यं निधनं स्वं त्वयाऽसुर ॥ ७ ॥
इति दत्त्वा वरं तस्मै रुद्रश्चांतरधीयत । तस्मात्तस्य वधो दुर्गे भविष्यति शुके मृते ॥ ८ ॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा वीरसदसि भगवान्देवकीसुतः । सुपर्णं शीघ्रमाहूय प्राह प्रहसिताननः ॥ ९ ॥

श्रीभगवानुवाच

शृणु तार्क्ष्य महाबुद्धे गच्छ चंद्रावतीं पुरीम् । शतयोजनविस्तीर्णां दैत्यसेनासमाकुलाम् ॥१०॥
प्रासादैर्गगनस्पर्शैर्हेमरत्नमनोहरैः । विचित्रोपवनारामैः शोभितां दैत्यपुंगवैः ॥११॥
दुर्गे दुर्गे द्वारदेशे रक्षितां दैत्यपुंगवैः । तां द्रष्टुं गरुडो राजन्सूक्ष्मरूपं दधार ह ॥१२॥

शार्ङ्गधनुषके एक ही बाणसे शकुनिके धनुषको काट डाला ॥ ५६ ॥ इस प्रकार धनुष कट जानेसे भयभीत शकुनि रणभूमि त्यागकर नवीन शस्त्रास्त्र लेनेके लिए चन्द्रावती पुरीको चला गया ॥ ५७ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायामेकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

नारदजी बोले—हे राजन्! जब रणांगणसे शकुनि चला गया। तब भगवान् श्रीकृष्णने प्रद्युम्न आदि सब यादवोंको बुलाकर कहा ॥ १ ॥ भगवान् बोले—पूर्वकालमें इस शकुनि दैत्यने सुमेरुपर्वतके उत्तरी भागमें अन्न-जल त्यागकर चार युग तक तप करके शिवजीको प्रसन्न किया ॥ २ ॥ जब चारयुग बीत गया, तब साक्षात् शंकरभगवान् उसके समक्ष प्रकट हो गये और कहा कि वर माँग ॥ ३ ॥ तब शकुनिने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। उस समय उसके रोयें खड़े हो गये और आँखोंमें आँसू भर आये। तब गद्गद वाणीमें उसने कहा—॥ ४ ॥ भगवन्! यदि मैं मरूँ तो भूमिका स्पर्श होते ही फिर जीवित हो जाऊँ। आकाशमें भी मैं दो घड़ीतक न मरूँ ॥ ५ ॥ शकुनि दैत्यके ऐसा कहनेपर शिवजीने उसे दोनों वर दे दिये और पिंजड़ेमें एक तोता देकर कहा—॥ ६ ॥ अपने प्राणोंके सदृश इस तोतेकी सदा रक्षा करना। इसके मर जानेपर तुम अपनी मृत्यु समझना ॥ ७ ॥ ऐसा वरदान देकर शंकरजी तत्काल अन्तर्धान हो गये। सो किलेके भीतर विद्यमान तोतेके मर जानेपर ही इसका वध हो सकेगा ॥ ८ ॥ नारदजी बोले—हे राजन्! उस वीरसभामें देवकीनन्दन भगवान्कृष्ण गरुड़को बुलाकर हँसते हुए बोले ॥ ९ ॥ भगवान्ने कहा—हे तार्क्ष्य! हे महाबुद्धे! तुम शीघ्र चन्द्रावतीपुरी जाओ। उस पुरीका विस्तार सौ योजन है और उसमें दैत्योंकी सेना भरी हुई है ॥ १० ॥ उसमें बड़े ऊँचे-ऊँचे गगन-

अलक्षितो दैत्यवृंदैः पश्यन्प्रासादतोलिकाः । तेपूत्पतन्नुत्पतंश्च शकुनेर्मंदिरे गतः ॥१३॥
प्रेक्षन्शुकं दैत्यजीवं क्षणं तत्र स्थितोऽभवत् । युद्धार्थं दंशितं तत्र शकुनिं दैत्यपुंगवम् ॥१४॥
नानाशस्त्रधरं वीरं क्रोधपूरितमानसम् । गृहीत्वा तं परिकरे प्राह राजन्मदालसा ॥१५॥

मदालसोवाच

राजन्सर्वेऽपि सुहृदोऽनुकूला भ्रातरस्तव । मारिताः संगरे भर्त्तः प्रोद्भटा दैत्यपुंगवाः ॥१६॥
मा याहि योद्धुं यदुभिरागतो भगवान्हरिः । देहि तस्मै बलिं सद्यो येन श्रेयो ह्यवाप्स्यसि ॥१७॥

शकुनिरुवाच

हनिष्यामि यदून्सैन्यैर्मे हता भ्रातरो बलात् । मृत्युर्मे नास्ति भूमध्ये शिवस्यापि वरेण मे ॥१८॥
उपद्वीपे चंद्रनाम्नि मतंगे पर्वते शुभे । मे जीवरूपी तु शुको वर्तते सांप्रतं प्रिये ॥१९॥
शंखचूडेन सर्पेण रक्षितोऽहर्निशं शुकः । एतत्कोऽपि न जानाति कथं मृत्युश्च मे भवेत् ॥२०॥

श्रीनारद उवाच

शुकवार्तां ततः श्रुत्वा गरुडो दिव्यवाहनः । उपद्वीपं तु चंद्राख्यं गंतुं तस्मान्मनो दधे ॥२१॥
उत्पतन् गरुडो वेगात्समुद्रस्य तटे गतः । द्वीपं विचिन्वंश्चंद्राख्यमाकाशे विचरन् खगः ॥२२॥
शतयोजनविस्तीर्णे समुद्रे भीमनादिनि । पक्षिराट् सिंहलं प्राप लतावृंदमनोहरम् ॥२३॥
तत्र पप्रच्छ गरुडः किं नामास्य जनान्प्रति । सिंहलोऽयमिति श्रुत्वा गरुडः प्रोत्पतन् खगः ॥२४॥
लंकां प्राप्तो महावेगात्त्रिकूटशिखरे नृप । लंकां प्राप्य ततो वेगात्पांचजन्यं जगाम ह ॥२५॥
पांचजन्याब्धिनिकटे क्षुधितः पक्षिराड् बली । प्रसह्य मीनान् जग्राह तीक्ष्णया तुंडया भृशम् ॥२६॥
तत्र चक्रो महान्नक्रो लंघितो योजनद्वयम् । प्रचंडवेगो गरुडस्तीक्ष्णया तुंडया च तम् ॥२७॥

बलेन गरुडस्तस्य चकाराकर्षणं तटे । तयोराकर्षणं राजन्मिथोऽभूद्घटिकाद्वयम् ॥२८॥
प्रचंडवेगो गरुडस्तीक्ष्णया तुंडया च तम् । तताड पृष्ठे धृष्टांगं दंडेन यमराड्यथा ॥२९॥
नक्ररूपं विहायाशु सोऽभूद्विद्याधरो महान् । नत्वा श्रीगरुडं साक्षात्प्राह प्रहसिताननः ॥३०॥

विद्याधर उवाच

अहं विद्याधरः पूर्वं नाम्ना वै हेमकुंडलः । आकाशगंगायां स्नातुं गतो दिविजमंडले ॥३१॥
तत्र स्नानं प्रकुर्वंतं ककुत्थं मुनिसत्तमम् । पादे गृहीत्वा हास्येन जलांतर्गतवानहम् ॥३२॥
मां शशाप ककुत्थोऽपि त्वं नक्रो भव दुर्मते । मया प्रसादितः शीघ्रं प्रसन्नः सन् वरं ददौ ॥३३॥
तार्क्ष्यतुंडप्रहारेण नक्रत्वात्त्वं विमुच्यसे । तस्य शापादद्य मुक्तः कृपया तव सुव्रत ॥३४॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा च गते स्वर्गे विद्याध्रे हेमकुंडले । उड्डितो गरुडस्तस्मात्पक्षाभ्यां व्योममंडले ॥३५॥
हरिणाख्यं चोपद्वीपं प्राप्तवान् वेगतः खगः । अपांतरतमास्तत्र करोति विपुलं तपः ॥३६॥
तस्याश्रमे खगेशस्य पक्षचंद्रं पपात ह । तं दृष्ट्वा प्राह गरुडमपांतरतमा मुनिः ॥३७॥
पक्षं निधाय मे मूर्ध्नि गच्छ पक्षिन्यथासुखम् । पक्षं नीत्वा गतस्तार्क्ष्यो धृत्वा तन्मस्तके च तम्॥३८॥
तत्समानान्पक्षचन्द्राननेकान्स चदर्श ह । प्राहातिविस्मितं तार्क्ष्यमपांतरतमा मुनिः ॥३९॥
यदा यदा हि श्रीकृष्णावतारोऽभूत्तदा तदा । पक्षोऽपि गरुडस्यात्र पतत्येकः सदा खग ॥४०॥

कल्पे कल्पे कृष्णचंद्रावतारः पक्षः पक्षो मूर्ध्नि मे सोऽपि सोऽपि ।
आनंत्याद्वाऽऽद्यन्तवन्तं वदंति पक्षिन्मूर्ध्ना नौमि कृष्णाय तस्मै ॥४१॥

श्रीनारद उवाच

तच्छ्रुत्वा विस्मितस्तार्क्ष्यो नत्वा तं मुनिपुंगवम् । द्वीपं रमणकं प्रागादुत्पतन् व्योममंडलात् ॥४२॥

जो दो योजन लम्बा था, वह गरुडके पैर पकड़कर जलमें खींचने लगा। गरुड भी बड़े बलपूर्वक उसको किनारेकी ओर खींचने लगे। हे राजन्! उन दोनोंकी खींचतानी दो घड़ीतक चली ॥ २७ ॥ २८ ॥ सहसा प्रचण्ड वेगवाले गरुड़ने उस महानक्रकी पीठके ऊपर जोरसे अपनी पैनी चोंच मारी। जैसे यमराज अपने यमदण्डसे मारते हैं ॥ २९ ॥ तभी नक्ररूपको त्यागकर वह विद्याधर हो गया और गरुड़को प्रणाम करके प्रसन्न मुद्रामें बोला ॥ ३० ॥ उसने कहा—हे गरुड़जी! पूर्वजन्ममें मैं हेमकुण्डल नामका विद्याधर था। एक बार आकाशगंगामें स्नान करनेके लिए गया ॥ ३१ ॥ वहाँ ककुत्थ मुनि स्नान कर रहे थे। सो हँसी-हँसीमें मैं उनका पैर पकड़कर जलमें खींच ले गया ॥ ३२ ॥ इससे ककुत्थ मुनिने मुझे शाप दे दिया कि तू मगर हो जा। जब मैंने उन्हें प्रसन्न किया तो उन्होंने यह वरदान दिया कि जब गरुड़ तुम्हारी पीठमें चोंच मारेंगे, तब तुम इस नक्रयोनिसे छुटकारा पा जाओगे। सो हे सुव्रत! तुम्हारी कृपासे मैं आज शापमुक्त हो गया ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन्! ऐसा कहकर जब हेमकुण्डल विद्याधर चला गया, तब गरुड़जी अपने पंखोंसे आकाशमें उड़ गये ॥ ३५ ॥ बड़े वेगसे उड़ते हुए गरुड़जी हरिण द्वीपमें जा पहुँचे। वहाँ अपान्तरतमा मुनि प्रबल तप कर रहे थे ॥ ३६ ॥ उनके आश्रमपर गरुड़जीका एक पंख गिर गया। उसे देखकर अपान्तरतमा मुनिने कहा—॥ ३७ ॥ हे पक्षी! तुम मेरे मस्तकपर यह पंख रखकर सानन्द चले जाओ। उनके आदेशानुसार वह पंख मुनिके मस्तकपर रखकर चले ॥३८॥ उसी समय गरुड़जीको उनके माथेपर अपने पंखके समान बहुतेरे चन्द्रकयुक्त पंख उन्हें दिखायी पड़े। इससे उनको बहुत विस्मय हुआ। तब अपान्तरतमाने कहा—॥ ३९ ॥ जब-जब श्रीकृष्णका अवतार होता है, तब-तब गरुड़का एक-एक पंख मेरे सिरपर गिरता है ॥ ४० ॥ इसीसे मेरे मस्तकपर अगणित पंख पड़े हुए हैं। प्रत्येक कल्पमें श्रीकृष्णका अवतार होता है और उस अवतारमें मेरे माथेपर एक पंख आता है। इस तरह इन पंखोंकी संख्या अनन्त है। हे पक्षिन्! मैं मस्तक झुकाकर उन श्रीकृष्ण भगवान्‌को प्रणाम करता हूँ ॥ ४१ ॥ श्रीनारदजी बोले—

सर्पेभ्योऽपि बलिं नीत्वा द्वीपमावर्तकं गतः । तत्र दिव्ये सुधाकुंडे सुधां पीत्वा विराड् बली ॥४३॥
शुक्लद्वीपं तु संप्राप्तः पप्रच्छ द्वीपचंद्रभाक् । मया प्रणोदितः पक्षी प्रययावुत्तरां दिशम् ॥४४॥
चन्द्रद्वीपं तु संप्राप्तः पर्वते पतगेश्वरः । जलदुर्गं वह्निदुर्गं वैनतेयो ददर्श ह ॥४५॥
जलदुर्गं चंचुपुटे सर्वं कृत्वा विराड् बली । वह्निदुर्गं च तेनापि सांत्वयामास मैथिल ॥४६॥
दरीमुखे शयाना ये दैत्या लक्षं समुत्थिताः । तैः सार्द्धं समभूद्युद्धं ताक्ष्यस्य घटिकाद्वयम् ॥४७॥
कांश्चित्पादनखैर्युद्धे विददार खगेश्वरः । कांश्चिद्दैत्यान्स्वपक्षाभ्यां पातयामास भूतले ॥४८॥
कांश्चिच्चंचुपुटेनापि गृहीत्वा पक्षिराड् बली । पातयित्वा गिरेः पृष्ठे चिक्षेप गगने बलात् ॥४९॥
केचिन्मृतास्तथा शेषा दुद्रुवुस्ते दिशो दश । इत्थं दैत्यवधं कृत्वा दरीमध्ये गतः खगः ॥५०॥
चकार पादविक्षेपं शंखचूडोपरि स्फुरत् । शंखचूडोऽपि गरुडं दृष्ट्वा सोऽतिप्रधर्षितः ॥५१॥
शुकं जले पंजरस्थं शीघ्रं त्यक्त्वा पलायितः । चंचुदेशेन तं नीत्वा शुकं सद्यः सपंजरम् ॥५२॥
प्रोत्पतन्नंबरे राजन् युद्धे गन्तुं मनो दधे । पलायितानां दैत्यानां तावत्कोलाहलो महान् ॥५३॥
शुको नीतः शुको नीतो वदतामंबरे नृप । तच्छब्दो दिक्षु सैन्यानां गतशब्दस्तु शृण्वताम् ५४॥
दिवि भूमौ सर्वतोऽपि ब्रह्मांडेऽपि प्रपूरितः । शुको नीत इति श्रुत्वा शकुनिः शंकितोऽसुरैः ॥५५॥
शूलं धृत्वा ततः सद्यश्चंद्रावत्यां समुत्थितः । गरुडेन शुको नीतः श्रुत्वा क्रुद्धः समन्वयात् ॥५६॥
तच्छूलताडितस्ताक्ष्यों न जहौ मुखतः शुकम् । सप्तद्वीपान्सप्तसिंधून्निरीक्षन्स गतः खगः ॥५७॥
तमन्वधावद्दैत्येंद्रो दिक्षु दिक्षु नभोंतरे । भ्रमन्नागांतको राजन्नाकाशे कोटियोजनम् ॥५८॥
दैत्यत्रिशूलक्षतभृन्न जहौ मुखतः शुकम् । सपंजरः शुको राजन्नाकाशे लक्षयोजनम् ॥५९॥

पपातोपलवद्वेगात्सुमेरोर्गिरिमूर्द्धनि । पंजरोऽगात्खगस्तत्र विशीर्णोऽभूद्व्यसुः शुकः ॥६०॥
गरुडोऽथ महायुद्धे कृष्णपार्श्वं समागतः । दैत्यः खिन्नमना राजन्पुरीं चन्द्रावतीं ययौ ॥६१॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे गरुडागमो नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥

अथ एकचत्वारिंशोऽध्यायः

(भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा युक्तिपूर्वक शकुनिका वध)

श्रीनारद उवाच

दैत्यान् शेषान् समानीय नानायुद्धधरो बली । उच्चैःश्रवसमाहूय हयं दिव्यं मनोहरम् ॥ १ ॥
धनुष्टंकारयन्वीरः शकुनिः क्रोधमूर्च्छितः । आययौ संमुखे योद्धुं श्रीकृष्णस्यापि संमुखे ॥ २ ॥
पुनः प्राप्तं दैत्यसैन्यं शकुनिं युद्धदुर्मदम् । तं वीक्ष्य वृष्णयः सर्वे जगृहुः स्वायुधानि च ॥ ३ ॥
दैत्यानां यदुभिः सार्द्धं घोरं युद्धं बभूव ह । वीरैः संयुयुधुर्वीराः सिंहाः सिंहैरिवाहवे ॥ ४ ॥
सर्वेषामग्रतः प्राप्तः कोदंडं नादयन्मुहुः । शकुनिर्मेघवद्राजन् चक्रे नाराचदुर्दिनम् ॥ ५ ॥
बाणांधकारे संजाते भगवान् गरुडध्वजः । शार्ङ्गी शार्ङ्गेण धनुषा यथेंद्रेण घनो बभौ ॥ ६ ॥
श्रीकृष्णो भगवान्साक्षाच्छकुनेरसुरस्य च । चिच्छेद बाणपटलं बाणेनैकेन लीलया ॥ ७ ॥
आकृष्य कर्णपर्यंतं कोदंडं शकुनिर्मृधे । तताड दशभिर्बाणैः श्रीकृष्णहृदि मैथिल ॥ ८ ॥
प्रलयाब्धिमहावर्तभीमसंघर्षनादिनीम् । धनुर्ज्यां शकुनेः शौरिश्चिच्छेद दशभिः शरैः ॥ ९ ॥
मायावी शकुनिर्दैत्यः शतरूपी बभूव ह । युयोध हरिणा युद्धे सर्वेषां पश्यतां नृप ॥१०॥
सहस्राणि स्वरूपाणि धृत्वा साक्षाद्धरिः स्वयम् । युयुधे तेन दैत्येन तदद्भुतमिवाभवत् ॥११॥

॥ ५८ ॥ हे राजन्! लाख योजन ऊँचे आकाशमें जानेपर पिंजरे-सहित शुक पत्थरकी भाँति सुमेरुपर्वतके शिखरपर बड़े वेगसे गिरा। जिससे पिंजरा टूट गया और तोतेके प्राण-पखेरू उड़ गये ॥ ५९ ॥ ६० ॥ तदनन्तर गरुड उस महायुद्धमें श्रीकृष्णके पास चले गये। हे राजन्! दैत्य शकुनि खिन्न-चित्त होकर चन्द्रावतीपुरीमें लौट गया ॥ ६१ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायां चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन्! शेष दैत्योंको लेकर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र धारण किये बलवान् वीर शकुनि, दिव्य मनोहर अश्व उच्चैःश्रवापर आरूढ़ हो, क्रोधसे अचेत-सा होकर, धनुषका टंकार करता हुआ युद्ध करनेके लिये भगवान् श्रीकृष्णके सम्मुख आ गया ॥ १ ॥ २ ॥ रणदुर्मद दैत्य शकुनि तथा उसकी सेनाका पुनः आगमन देख समस्त वृष्णिवंशियोंने अपने-अपने आयुध उठा लिये ॥ ३ ॥ उस समय दैत्योंका यादवोंके साथ घोर युद्ध हुआ। वीरोंके साथ वीर इस तरह जूझने लगे, जैसे सिंहोंके साथ सिंह लड़ रहे हों ॥ ४ ॥ हे राजन्! मेघकी गर्जनाके समान बारंबार कोदण्डका टंकार करता हुआ शकुनि सबके आगे था। उसने बाणवर्षा द्वारा दुर्दिन उपस्थित कर दिया ॥५॥ बाणोंका अन्धकार छा जानेपर शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले भगवान् गरुड़ध्वज अपने उस धनुषसे उसी प्रकार सुशोभित हुए, जैसे इन्द्रधनुषसे मेघकी शोभा होती है ॥ ६ ॥ साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णने अपने एक ही बाणसे लीलापूर्वक असुर शकुनिके बाण-समूहोंको काट डाला ॥ ७ ॥ हे मिथिलेश्वर! युद्धमें अपने धनुषको कानतक खींचकर शकुनिने भगवान् श्रीकृष्णके हृदयमें दस बाण मारे ॥ ८ ॥ तब प्रलय-समुद्रके महान् आवर्तोंके भीषण संघर्षके समान गम्भीर नाद करनेवाली शकुनिके धनुषकी प्रत्यञ्चाको श्रीकृष्णने दस बाणोंसे काट डाला ॥ ९ ॥ हे नरेश्वर! मायावी दैत्य शकुनि सबके देखते-देखते सौ रूप धारण करके श्रीहरिके साथ युद्ध करने लगा ॥ १० ॥ तब साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण एक सहस्र रूप धारण करके उस दैत्यके साथ युद्ध करने लगे, वह अद्भुत-सी बात हुई ॥ ११ ॥

मयदैत्येन रचितं त्रिशूलं ज्वलनप्रभम् । भ्रामयित्वाऽथ हरये प्राहिणोद्दैत्यराड् बली ॥१२॥
ततः क्रुद्धो महाबाहुः परिपूर्णतमो हरिः । चिच्छेद तं तीक्ष्णतुंडं पन्नगं गरुडो यथा ॥१३॥
ततः क्रुद्धो महाबाहुर्गदां चिक्षेप मूर्द्धनि । हयात्तं पातयामास गदया वज्रकल्पया ॥१४॥
गदाप्रहारव्यथितः क्षणं मूर्च्छां गतोऽसुरः । गृहीत्वा स्वां गदां युद्धे युयुधे माधवेन वै ॥१५॥
तयोर्युद्धमभूद्घोरं गदाभ्यां रणमंडले । अभूच्चटचटारावो वज्रनिष्पेषवत्किल ॥१६॥
श्रीकृष्णगदया तस्य चूर्णीभूता गदा भुवि । विरेजेऽङ्गारवत्तत्र सर्वेषां पश्यतां मृधे ॥१७॥
गिरिदर्यां यथा सिंहौ वने मत्तौ गजावुभौ । रणमध्ये तथा तौ द्वौ युयुधाते परस्परम् ॥१८॥
श्रीकृष्णं नोदयामास शकुनिः शतयोजनम् । हरिस्तं प्रेषयामास सहस्रं योजनं भुवि ॥१९॥
गृहीत्वा भुजयोस्तं वै जंघाभ्यां भुवनेश्वरः । पातयामास भूपृष्ठे कमंडलुमिवार्भकः ॥२०॥
किंचिद्व्यथां गतो दैत्यो गृहीत्वा जारुधिंगिरिम् । प्राहिणोच्च दुराचारः शकुनिर्युद्धदुर्मदः ॥२१॥
समागतं गिरिं वीक्ष्य भगवान्कमलेक्षणः । जयशब्दं प्रकुर्वंतावन्योन्यं ताडयन् गिरिम् ॥२२॥
चूर्णयामासतू राजंस्तथा चंद्रावतीं पुरीम् । तदा दैत्योऽतिसंक्रुद्धो गृहीत्वा खड्गचर्मणी ॥२३॥
आययौ संमुखे राजञ्छ्रीकृष्णस्य महात्मनः । शार्ङ्गी शार्ङ्गं संगृहीत्वाऽथार्द्धचंद्रमुखं शरम् ॥२४॥
संदधे सहसा युद्धे ग्रीष्ममार्तंडसन्निभम् । शार्ङ्गमुक्तो दिव्यबाणो द्योतयन्मंडलं दिशाम् ॥२५॥
शकुनेर्मस्तकं छित्त्वा भूमिं भित्त्वा तलं गतः । व्यसुर्भूत्वा तदा दैत्यः पतितो रणमण्डले ॥२६॥
भूमिस्पर्शात्सजीवोऽभूत्क्षणमात्रेण मैथिल । करेणादाय मुंडं स्वं स्वकबंधे निधाय सः ॥२७॥

युद्धं कर्तुं समुत्तस्थौ तदद्भुतमिवाभवत् । इत्थं कृष्णेन निहतः सप्तवारं महासुरः ॥२८॥
भूमिस्पर्शात्सजीवोऽभूद्राहुवत्पुनरुत्थितः । एकाकी यादवकुलं संहारं कर्तुमुद्यतः ॥२९॥
विवेशाशु महादैत्यो वने वह्निरिव प्रभुः । सतुरंगान्महावीरान्सशस्त्रानुत्कटान् गजान् ॥३०॥
संगृहीत्वा भुजाभ्यां खं प्राक्षिपल्लक्षयोजनम् । कांश्चिद्गजान्मुखे धृत्वा स्कंधयोरुभयोरपि ॥३१॥
कक्षयोरुभयोर्दैत्यो बभौ कालाग्निरुद्रवत् । पद्भ्यां कराभ्यां दैत्यस्य त्रासं याते महामृधे ३२॥
हाहाकारो महानासीच्छ्रीकृष्णस्य महात्मनः । तदैव भगवान्साक्षाच्छ्रीकृष्णो विश्वरक्षकः ॥
सुदर्शनास्त्रं प्रायुंक्त साधूनां रक्षणाय वै ॥ ३३ ॥

तद्धस्तमुक्तं निशितं सुदर्शनं लयार्ककोटिद्युतिमज्ज्वलत्प्रभम् ।
जहार सद्यः शकुनेर्दृढं शिरो यथा च वृत्रस्य पविर्महामृधे ॥३४॥
तावद्गृहीत्वा शकुनिं महामृधे चिक्षेप सद्यो मृतमंबरे बलात् ।
उत्क्षेपणं भोः कुरुतेषुभिर्दिवि यदून् गिरा श्रीपतिरित्युवाच ॥३५॥

श्रीनारद उवाच

इत्थं हरेर्वचः श्रुत्वा सर्वे यादवपुंगवाः । अंबरात्प्रपतंतं ते तेडुर्बाणैः स्फुरत्प्रभैः ॥३६॥
दैत्यो दीप्तिमतो बाणैरंबरे शतयोजनम् । गतः कंदुकवद्राजन्नूर्ध्वं लोकस्य पश्यतः ॥३७॥
सांबस्यापि स बाणेन सहस्रं योजनं गतः । पुनस्तमापतंतं खाज्जघान त्विषुणाऽर्जुनः ॥३८॥
तेन बाणेन दैत्येंद्रो योजनं चायुतं गतः । अनिरुद्धस्य बाणेन लक्षयोजनमास्थितः ॥३९॥
प्रद्युम्नस्यापि बाणेन नियुतं योजनं गतः । पुनस्तमापतंतं खाद्वीक्ष्य योगेश्वरेश्वरः ॥४०॥
बाणं समादधे तेन गतः खे कोटियोजनम् । एवं खे संस्थिते दैत्ये व्यतीते प्रहरद्वये ॥४१॥

उठा। अपने कटे हुए मस्तकको अपने ही हाथसे धड़पर रखकर वह युद्ध करनेके लिये पुनः उठ खड़ा हुआ, यह अद्भुत-सी घटना घट गयी ॥२७॥ इस प्रकार श्रीकृष्णके हाथसे सात बार मारे जानेपर भी वह महान् असुर भूमिके स्पर्शसे जी गया तथा राहुकी भाँति फिर उठ खड़ा हुआ। अब वह अकेले ही यादव-कुलका संहार करनेके लिये उद्यत हुआ ॥ २८ ॥ २९ ॥ वनमें दावानलकी भाँति उस शक्तिशाली महादैत्यने तत्काल यादव-सेनामें प्रवेश किया। उसने घोड़ों और अस्त्र-शस्त्रोंसहित महावीर घुड़सवारों तथा मदमत्त हाथियोंको भुजाओंसे पकड़कर आकाशमें लाख योजन दूर फेंक दिया। किन्हीं हाथियोंका मुँह, किन्हींके दोनों कंधे तथा किन्हींके दोनों कक्ष पकड़कर फेंकता हुआ वह दैत्य कालाग्नि रुद्रके समान जान पड़ता था ॥ ३० ॥ ३१ ॥ उस दैत्यके दोनों पैरों और हाथोंने उस महासमरमें जब भारी आतङ्क उत्पन्न कर दिया और महात्मा श्रीकृष्णकी सेनामें जोरोंसे हाहाकार होने लगा, तब विश्वरक्षक साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णने साधु पुरुषोंकी रक्षाके लिये अपने अस्त्र सुदर्शनचक्रका प्रयोग किया ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ उनके हाथसे छूटा हुआ तीखा सुदर्शनचक्र प्रलयकालके कोटि सूर्योंकी दीप्तिमती प्रभासे प्रज्वलित हो उठा। उसने उस महायुद्धमें शकुनिके सुदृढ़ मस्तकको उसी तरह काट लिया, जैसे वज्रने वृत्रासुरका मस्तक काटा था ॥ ३४ ॥ तबतक भगवान् श्रीकृष्णने महासमरमें मरे हुए शकुनिको बलपूर्वक आकाशमें फेंक दिया। फिर श्रीपतिने यादवोंसे कहा—'तुमलोग इसके शरीरको बाणोंसे ऊपर-ही-ऊपर फेंकते रहो' ॥ ३५ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन्! श्रीहरिकी यह बात सुनकर समस्त यादवश्रेष्ठ वीर आकाशसे गिरते हुए उस दैत्यको चमकीले बाणोंसे ताड़ित करने लगे ॥ ३६ ॥ हे राजन्! दीप्तिमान्के बाणोंसे आहत हो वह दैत्य लोगोंके देखते-देखते गेंदकी भाँति सौ योजन ऊपर चला गया ॥ ३७ ॥ फिर साम्बके बाणका धक्का पाकर वह एक सहस्र योजन ऊपर चला गया। जब वह पुनः आकाशसे नीचे गिरने लगा, तब अर्जुनने अपने बाणसे उसपर चोट की ॥ ३८ ॥ उस बाणसे वह दैत्यराज दस हजार योजन ऊपर चला गया। तदनन्तर जब वह फिर नीचे आने लगा, तब अनिरुद्धके बाणने उसे लाख योजन ऊपर उछाल दिया ॥ ३९ ॥ इसके बाद प्रद्युम्नके बाणसे वह दस लाख योजन ऊपर उठ गया। तत्पश्चात् उसे पुनः आकाशसे नीचे गिरते देख योगेश्वरेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने उसपर बाण मारा, जिससे वह

द्वितीयेनापि बाणेन तं जघान हरिः स्वयम् । सबाणस्तं भ्रामयित्वा दिक्षु वै कोटियोजनम् ॥४२॥
समुद्रे पातयामास वातः पद्ममिव प्रभुः । एवं मृते तदा दैत्ये तज्ज्योतिर्निर्गतं स्फुरत् ॥४३॥
सर्वतोऽपि भ्रमद्राजन् श्रीकृष्णे लीनतां गतम् । तदा जयजयारावो दिवि भूमाववर्तत ॥४४॥
विद्याधर्य्यश्च गंधर्व्यो ननृतुः खे सुखान्विताः । जगुः किन्नरगंधर्वास्तुष्टुवुः सिद्धचारणाः ॥४५॥
ऋषयो मुनयः सर्वे प्रशशंसुर्हरिं परम् । ब्रह्मरुद्रेंद्रसूर्याद्याः सर्वे तत्र समागताः ॥४६॥
श्रीकृष्णस्योपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे ॥४७॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे नारदबहुलाश्वसंवादे शकुनिदैत्यवधो नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

(शकुनि आदिदैत्योंके पूर्व जन्मोंका परिचय)

श्रीनारद उवाच

पलायितेषु शेषेषु दैत्येषु रणमंडलात् । वीणावेणुमृदंगादीन्वादयन्दुंभीन्हरिः ॥ १ ॥
गीयमानो यादवेंद्रः सूतमागधवंदिभिः । स्वपुत्रैर्यादवैः सार्द्धं स्वसैन्यपरिवारितः ॥ २ ॥
शंखचक्रगदापद्मशार्ङ्गचापविराजितः । प्रविवेश सुरैः सार्द्धं पुरीं चंद्रावतीं प्रभुः ॥ ३ ॥
दुःखार्ता भर्तरि मृते रुदंती करुणं बहु । अंके गृहीत्वा शकुनेः सुतं राज्ञी मदालसा ॥ ४ ॥
श्रीकृष्णचरणे बालं निधायाशु कृतांजलिः । अश्रुपूर्णमुखी दीना हरिं नत्वा जगाद ह ॥ ५ ॥

मदालसोवाच

भारावताराय भुवि प्रभो त्वं जातो यदूनां कुल आदिदेव ।
प्रसिष्यसे यानि भवं निधाय गुणैर्न लिप्तोऽसि नमामि तुभ्यम् ॥ ६ ॥

मदात्मजं पालय भीतभीतमस्मुष्य हस्तं कुरु शीर्ष्णि देव।
भर्त्रा कृतं मे किल तेऽपराधं क्षमस्व देवेश जगन्निवास ॥ ७ ॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्तो भगवांस्तस्य मूर्ध्नि कृत्वा करद्वयम्। सर्वं चन्द्रावतीराज्यं ददौ तस्मै महामुनिः ॥ ८ ॥
दत्वा कल्पांतमायुष्यं भक्तिज्ञानं विरक्तिमत्। शकुनेः शिशवे कृष्णः स्वमालां प्रददौ शुभाम् ॥ ९ ॥
उच्चैःश्रवो हयो रत्नं कामधेनुः सुरद्रुमः। आहृता ये शकुनिना पुरा युद्धे पुरंदरात् ॥१०॥
पुरंदराय तान्प्रादात्प्रयत्नाच्छ्रीजनार्दनः। गोविप्रसुरसाधूनां छंदसां पालकः स्वयम् ॥११॥

बहुलाश्व उवाच

केऽमी दैत्याः पूर्वकाले शकुन्याद्या महाबलाः। देवर्षे मे परं चित्रं कस्मान्मोक्षमुपागताः ॥१२॥

श्रीनारद उवाच

ब्रह्मकल्पे पुरा राजन् गंधर्वेशः पुरावसुः। आसीत्तस्य शुभाः पुत्रा बभूवुर्नव चौरसाः ॥१३॥
कंदर्पसमलावण्या दिव्यभूषणभूषिताः। नित्यं जगुर्ब्रह्मलोके गीतवाद्यविशारदाः ॥१४॥
मंदारो मंदरो मंदो मंदहासो महाबलः। सुदेवः सुधनः सौधः श्रीभानुरिति विश्रुताः ॥१५॥
एकदा मोहतः पुत्रीं वाग्देवीं वीक्ष्य वेधसः। जहसुस्ते स्वमनसि पुरावसुसुताश्च ये ॥१६॥
सुरज्येष्ठापराधेन गता योनिं च तामसीम्। वाराहेऽथ हिरण्याक्षपत्न्यां ते जज्ञिरे नव ॥१७॥
शकुनिः शंबरो हृष्टो भूतसंतापनो वृकः। कालनाभो महानाभो हरिश्मश्रुस्तथोत्कचः ॥१८॥
एकदा गृहमायांतमपांतरतमं मुनिम्। नत्वा संपूज्य विधिवत्पप्रच्छुरिदमादरात् ॥१९॥

और प्रलयकाल आनेपर आप ही इसका संहार करेंगे; किन्तु कभी आप गुणोंसे लिप्त नहीं होते। मैं आपकी अनुकूलता प्राप्त करनेके लिये आपके चरणोंमें प्रणाम करती हूँ। मेरा बेटा बहुत डरा हुआ है। आप इसकी रक्षा कीजिये। हे देव! इसके मस्तकपर अपना वरद हस्त रखिये। हे देवेश! हे जगन्निवास! मेरे पतिने आपका जो अपराध किया है, उसे क्षमा कीजिये ॥ ६ ॥ ७ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन्! मदालसाके यों कहनेपर महामति भगवान् श्रीकृष्णने उस बालकके मस्तकपर अपने दोनों हाथ रखकर चन्द्रावतीका सारा राज्य उसे दे दिया ॥ ८ ॥ फिर कल्पपर्यन्तकी लम्बी आयु देकर वैराग्यपूर्ण ज्ञान एवं अपनी भक्ति प्रदान की। तदनन्तर उस शकुनिकुमारको श्रीकृष्णने अपने गलेकी सुन्दर माला उतारकर दे दी ॥ ९ ॥ शकुनिने पहले युद्धमें इन्द्रसे जो उच्चैःश्रवा घोड़ा, चिन्तामणि रत्न, कामधेनु और कल्पवृक्ष छीन लिये थे, वे सब श्रीजनार्दनने प्रयत्नपूर्वक देवेन्द्रको लौटा दिये; क्योंकि भगवान् स्वयं ही गौओं, ब्राह्मणों, देवताओं, साधुओं तथा वेदोंके प्रतिपालक हैं ॥ १० ॥ ११ ॥ बहुलाश्वने पूछा—हे देवर्षे! पूर्वकालमें ये महाबली शकुनि आदि दैत्य कौन थे और कैसे इन्हें मोक्षकी प्राप्ति हुई? इस बातको लेकर मेरे मनमें बड़ा आश्चर्य हो रहा है ॥ १२ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन्! पूर्वकालके ब्रह्मकल्पकी बात है, परावसु गन्धर्वोंका राजा था। उसके बड़े सुन्दर नौ औरस पुत्र हुए ॥ १३ ॥ वे सभी कामदेवके समान रूप-सौन्दर्यशाली, दिव्य भूषणोंसे विभूषित और गीत-वाद्य-विशारद थे तथा प्रतिदिन ब्रह्मलोकमें गान किया करते थे ॥ १४ ॥ उनके नाम थे—मन्दार, मन्दर, मन्द, मन्दहास, महाबल, सुदेव, सुधन, सौध और श्रीभानु ॥ १५ ॥ एक समय ब्रह्माजीने अपनी पुत्री वाग्देवता सरस्वतीको मोहपूर्वक देखा। विधाताके इस व्यवहारको लक्ष्य करके परावसुके पुत्र मन-ही-मन हँसने लगे ॥ १६ ॥ सुरश्रेष्ठ ब्रह्माके प्रति अपराध करनेके कारण उन्हें तामसी योनिमें जाना पड़ा। श्वेतवाराह-कल्प आनेपर वे नवों गन्धर्व हिरण्याक्षकी पत्नीके गर्भसे उत्पन्न हुए ॥ १७ ॥ उस समय उनके नाम इस प्रकार हुए—शकुनि, शम्बर, हृष्ट, भूत-सन्तापन, वृक, कालनाभ, महानाभ, हरिश्मश्रु तथा उत्कच ॥ १८ ॥ एक दिनकी बात है, अपने घरपर आये हुए अपान्तरतमा मुनिको नमस्कार करके उनकी ...जा

दैत्या ऊचुः

शृणु त्वं स्वमुखाद्‌ब्रह्मन् कैवल्येशो हरिः स्वयम् ।
ददाति मोक्षं भगवान् भक्तानां भक्तवत्सलः ॥२०॥

अस्माभिर्न कृता भक्तिरासुरीं योनिमास्थितैः । दुःसंगनिरतैर्दुष्टैः कथं मोक्षो भवेदिह ॥२१॥
उपायं वद नो ब्रह्मन्कल्याणस्य परस्य च । कल्याणार्थं विचरसि दीनानां जगति प्रभो ॥२२॥

अपांतरतमा उवाच

गुणानामपृथग्भावैर्ये भजंति हरिं परम् । ते ते प्रापुः परं दैत्या निर्गुणं मोक्षनायकम् ॥२३॥
ऐक्यं च सौहृदं स्नेहं भयं क्रोधं स्मयं तथा । विधाय पूर्वं सततं श्रीकृष्णे लीनतां गताः ॥२४॥
पृश्निगर्भस्य संबंधात्प्रजानां पतयो यथा । कायाधवः सौहृदाच्च स्नेहाच्च सुतपा मुनिः ॥२५॥
भयाद्धिरण्यकशिपुः क्रोधाद्वश्च पिताऽसुरः । स्मयाच्च श्रुतयः प्रापुर्योगिनां दुर्लभं परम् ॥२६॥
येन केनापि भावेन श्रीकृष्णे धारयेन्मनः । भक्तियोगेन तद्धाम यदेभिः प्राप्यते सुराः ॥२७॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वांतर्हिते राजन्नपांतरतमे मुनौ । चक्रुर्वैरं शकुन्याद्याः परिपूर्णतमे हरौ ॥२८॥
ते प्रापुर्वैरभावेन श्रीकृष्णं परमेश्वरम् । न चित्रं विद्धि राजेंद्र कीटः पेशस्कृतं यथा ॥२९॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे नारदबहुलाश्वसंवादे शकुन्यादिदैत्यानां पूर्वजन्मपरिचयो नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

(प्रद्युम्नका इलावृत देशपर विजय प्राप्त करके वेदनगर गमन)

श्रीनारद उवाच

इत्थं खंडं तु भद्राश्वं जित्वा श्रीयादवेश्वरः। यदुभिः सैनिकैः सार्द्धमिलावृतमथाययौ ॥ १ ॥

विभाति यत्रैव गिरींद्रराजो भूपद्मगोलस्य च कर्णिकेव।
स्फुरद्द्युतिः स्वर्णमयः सुमेरुः सुरालयो मैथिल रत्नसानुः ॥ २ ॥

तं सर्वतो मंदरमेरुसुंदरौ सुपार्श्व एवं कुमुदश्चतुर्थकः।
विभाति सैको गिरिभिर्नगेश्वरश्चतुष्पदार्थैश्च मनोरथा इव ॥ ३ ॥

जांबूनदं जंबुभवं हि यत्र यतः स्वतः सिद्धिभवं सुवर्णम्।
यत्रारुणोदाख्यनदी च जाता यद्वारिपानाद्भुवि नामयित्वम् ॥ ४ ॥

कदंबजा मधुधाराश्च पंच यासां तु पानेन नृणां कदापि।
शीतोष्णवैवर्ण्यपरिश्रमाद्या दौर्गन्ध्यभावा न भवंति राजन् ॥ ५ ॥

यदुद्भवाः कामदुघा नदाश्च रत्नान्नवासःशुभभूषणानि।
शय्यासनादीनि फलानि यानि दिव्यानि तानि त्वथ चार्पयंति ॥ ६ ॥

एवं च यत्रोर्ध्ववनं प्रसिद्धं संकर्षणो यत्र विराजतेऽथ।
शिवः सदाऽसौ रमते प्रियाभिः स्त्रीभावतां यांति जनास्तु तत्र ॥ ७ ॥

हैमांबुजैः शीतवसंतवायुभिः काश्मीरवृक्षैश्च लवंगजालैः।
देवद्रुमामोदमदांधषट्पदैरिलावृतं खंडमतीव रेजे ॥ ८ ॥

पश्यन् भुवं स्वर्णमयीं मनोहरां वैदूर्यरत्नांकुरवृंदचित्रिताम्।
इलावृतं पूर्णमलंकृतैः सुरैर्विजित्य खंडं जगृहे बलिं हरिः ॥ ९ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन्! इस प्रकार भद्राश्ववर्षपर विजय पाकर यादवेश्वर श्रीहरि यादव-सैनिकोंके साथ इलावृतवर्षको गये ॥ १ ॥ हे मिथिलेश्वर! इलावृतवर्षमें ही रत्नमय शिखरोंसे सुशोभित, देवताओंका निवासस्थान, दीप्तिमान् स्वर्णमय पर्वत गिरिराजाधिराज 'सुमेरु' है, जो भूमण्डलरूपी कमलकी कर्णिकाके समान शोभा पाता है ॥ २ ॥ उसके चारों ओर मन्दर, मेरु-मन्दर, सुपार्श्व तथा कुमुद— ये चार पर्वत शोभा पाते हैं। इन चारोंसे घिरा हुआ वह एक गिरिराज सुमेरु धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चार पदार्थोंसे युक्त मनोरथकी भाँति शोभा पाता है ॥ ३ ॥ उस इलावृतवर्षमें जम्बूफलके रससे उत्पन्न होनेवाला जाम्बूनद नामक स्वतःसिद्ध स्वर्ण उपलब्ध होता है। वहाँ जम्बूरससे 'अरुणोदा' नामकी नदी प्रकट हुई है, जिसका जल पीनेसे इस भूतलपर कोई रोग नहीं होता ॥ ४ ॥ हे राजन्! वहाँ कदम्बवृक्षसे उत्पन्न 'कादम्ब' नामक मधुकी पाँच धाराएँ प्रवाहित होती हैं, जिनके पीनेसे मनुष्योंको कभी सर्दी-गरमी, विवर्णता (कान्तिका फीका पड़ना), थकावट तथा दुर्गन्ध आदि दोष नहीं प्राप्त होते ॥ ५ ॥ उन मधु-धाराओंसे काम-पूरक नद प्रकट हुए हैं, जो मनुष्योंकी इच्छाके अनुसार रत्न, अन्न, वस्त्र, सुन्दर आभूषण, शय्या तथा आसन आदि जो-जो दिव्य पदार्थ हैं, उन सबको अर्पित करते हैं ॥ ६ ॥ इसी प्रकार वहाँ सुप्रसिद्ध 'ऊर्ध्व-वन' है, जहाँ भगवान् संकर्षण विराजते हैं और जिस वनमें भगवान् शिव स्वतः अपनी प्रेयसी ज्योतियोंके साथ रमण करते हैं तथा जिसमें गये हुए पुरुष तत्काल स्त्रीरूपमें परिणत हो जाते हैं ॥ ७ ॥ स्वर्णमय कमल, शीतल वसन्त वायु, केसरके वृक्ष, लवङ्गलताओंके समूह तथा देववृक्षोंकी सुगन्धके सेवनसे मदान्ध भ्रमर ये सब इलावृतवर्षकी अत्यन्त शोभा बढ़ाते हैं ॥ ८ ॥ वैदूर्यमणिके अङ्कुरोंसे विचित्र लगनेवाली वहाँकी मनोहर स्वर्णमयी भूमिको देखते हुए भगवान् श्रीहरिने अलंकारमण्डित देवताओंसे पूर्ण

श्रीशोभनो नाम पुरा कृतेन जामातृकोऽभून्मुचुकुंदभूभृतः ।
एकादशीं यः समुपोष्य भारते प्राप्तः स देवैः किल मंदराचले ॥१०॥
अद्यापि राज्यं कुरुते कुबेरवद्राज्ञः सुतोऽसौ किल चन्द्रभागया ।
नीत्वा बलिं देववरस्य संमुखे समाययौ मैथिल सुंदरः परः ॥११॥
प्रदक्षिणीकृत्य हरिं यदूत्तमं पादारविंदे पतितोऽथ शोभनः ।
भक्त्या प्रणम्याशु बलिं महात्मने दत्त्वा ययौ मैथिल मंदराचलम् ॥१२॥

बहुलाश्व उवाच

शोभने च नृपे याते भगवान्मधुसूदनः । अग्रे चकार किं देवो वद देवर्षिसत्तम ॥१३॥

श्रीनारद उवाच

सरोवरं परं दिव्यं तस्मिन्मन्दरसानुनि । सौवर्णपङ्कजं वीक्ष्य किरीटी प्राह माधवम् ॥१४॥

अर्जुन उवाच

कांचनीभिर्लताभिश्च सौवर्णैः पंकजैर्वृतम् । वद मां देवकीपुत्र कस्येदं कुंडमद्भुतम् ॥१५॥

श्रीभगवानुवाच

पृथुः पूर्वो राजराजः स्वायंभुवकुलोद्भवः । तताप स तपो दिव्यं तस्येदं कुण्डमद्भुतम् ॥१६॥
अस्य पीत्वा जलं सद्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते । स्नात्वा तद्धाम परमं याति पार्थ नरेतरः ॥१७॥

श्रीनारद उवाच

अत्रैव भगवान्साक्षात्तपोभूमिं जगाम ह । सरूपास्तत्र नृत्यंति सर्वास्ता ह्यष्टसिद्धयः ॥१८॥
ता वीक्ष्य चोद्धवः प्राह भगवंतं सनातनम् ।

उद्धव उवाच

कस्येयं सुतपोभूमिर्मन्दराचलसन्निधौ । मूर्तिमत्यो विराजंत्यः काः स्त्रियो वद हे प्रभो॥१९॥

श्रीभगवानुवाच

स्वायंभुवेन मनुना तपश्चात्र कृतं पुरा । तस्येयं सुतपोभूमिरद्यापि श्रेयसी बहु ॥२०॥

सदाऽत्रैव हि वर्तंते नारीरूपाष्टसिद्धयः। अत्र ग्रामस्य कस्यापि ततस्ताश्च भवंति हि ॥२१॥
अत्र क्षणेन तपसा देवत्वं याति मानवः। तपोभूमेश्च माहात्म्यं वक्तुं नालं चतुर्मुखः ॥२२॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा भगवान्कृष्णः स्वसैन्यपरिवारितः। जगाम प्रोत्कटान्देशान्दुन्दुभीन्नादयन्मुहुः ॥२३॥
हिरण्यकशिपुर्दैत्यो यत्र तेपे तपः पुरा। यत्र लीलावती नाम वर्तते कांचनी पुरी ॥२४॥
लीलावतीश्वरः साक्षाद्वीतिहोत्रो हुताशनः। नित्यं राज्यं प्रकुरुते मूर्तिमान् भुवि सुव्रतः ॥२५॥
सोऽपि श्रीकृष्णचंद्राय पुरुषाय महात्मने। बलिं दत्त्वा परां शश्वत्स्तुतिं चक्रे धनंजयः ॥२६॥
इत्थं पश्यन्देवदेवः सर्वं वर्षमिलावृतम्। जगाम वेदनगरं जंबूद्वीपं मनोरमम् ॥२७॥
मूर्तिमान् यत्र निगमो दृश्यते सर्वदैव हि। तत्सभायां सदा वाणी वीणापुस्तकधारिणी ॥२८॥
गायन्ती कृष्णचरितं सुभगं मंगलायनम्। उर्वशीपूर्वचित्याद्या नृत्यंत्यप्सरसो नृप ॥२९॥
हावभावकटाक्षैश्च तोषयन्त्यः श्रुतीश्वरम्। अहं विश्वावसुश्चैव तुंबुरुश्च सुदर्शनः ॥३०॥
तथा चित्ररथो ह्येते वादित्राणि मुहुर्मुहुः। वेणुवीणामृदङ्गानि मुरुयष्टियुतानि च ॥३१॥
तालदुन्दुभिभिः सार्द्धं वादयन्ति यथाविधि। ह्रस्वदीर्घप्लुतोदात्तानुदात्तस्वरिता नृप ॥३२॥
सानुनासिकभेदश्च तथा निरनुनासिकः। एतैरष्टादशैर्भेदैर्गीयन्ते श्रुतयः परैः ॥३३॥
मूर्तिमन्तो विराजंते तत्र वेदपुरे नृप। अष्टौ तालाः स्वराः सप्त तथा ग्रामत्रयं नृप ॥३४॥
वसन्ति वेदनगरे मूर्तिमन्तः सदैव हि। भैरवो मेघमल्लारो दीपको मालकंसकः ॥३५॥
श्रीरागश्चापि हिंडोलो रागाः षट् संप्रकीर्तिताः। पञ्चभिश्च प्रियाभिश्च तनुजैरष्टभिः पृथक् ॥३६॥
मूर्तिमन्तस्तु ते तत्र विचरन्ति नरेश्वर। भैरवो बभ्रुवर्णश्च मालकंसः शुकद्युतिः ॥३७॥

कहा—हे उद्धव! यहाँ पूर्वकालमें स्वायम्भुव मनुने तपस्या की थी। उन्हींकी यह सुन्दर तपोभूमि है, जो आज भी परम कल्याणकारिणी है ॥ २० ॥ यहाँ नारी-रूपधारिणी आठ सिद्धियाँ सदा विद्यमान रहती है। यहाँ जो कोई भी आ जाय, उसे आठों सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं ॥ २१ ॥ यहाँ एक क्षण भी तपस्या करके मानव देवत्व प्राप्त कर लेता है। चतुर्मुख ब्रह्मा भी इस तपोभूमिके माहात्म्यका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ २२ ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन्! श्रीकृष्ण अपनी सेनासे घिरे हुए और बारंबार दुन्दुभि बजवाते हुए उन अत्यन्त उत्कट प्रदेशोंमें गये, जहाँ पूर्वकालमें हिरण्यकशिपु दैत्यने तपस्या की थी और जहाँ लीलावती नामकी एक स्वर्णमयी नगरी है ॥ २३ ॥ २४ ॥ उस लीलावतीके स्वामी साक्षात् वीतिहोत्र नामधारी अग्नि हैं, जो उत्तम व्रतका पालन करते हुए नित्य मूर्तिमान् होकर राज्य करते हैं ॥ २५ ॥ उन धनंजयदेवने भी परम पुरुष परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रको भेंट देकर उनकी उत्तम स्तुति की ॥ २६ ॥ इस प्रकार सारे इलावृतवर्षका दर्शन करते हुए देवाधिदेव भगवान् श्रीकृष्ण वेदनगरमें गये, जो जम्बूद्वीपका एक मनोहर स्थान है ॥ २७ ॥ उस नगरमें भगवान् निगम (वेद) सदा मूर्तिमान् होकर दिखाई देते हैं। उनकी सभामें सदा वीणा-पुस्तकधारिणी वाग्देवता वाणी (सरस्वती) सुन्दर एवं मङ्गलके अधिष्ठान स्वरूप श्रीकृष्ण-चरितका गान करती हैं ॥ २८ ॥ हे नरेश्वर! उर्वशी और विप्रचित्ति आदि अप्सराएँ वहाँ नृत्य करती हैं और अपने हावभाव तथा कटाक्षोंद्वारा वेदेश्वरको रिझाती रहती हैं। मैं, विश्वावसु, तुम्बुरु, सुदर्शन तथा चित्ररथ—ये सब लोग वेणु, वीणा, मृदङ्ग, मुरुयष्टि आदि वाद्योंको खड़ताल एवं दुन्दुभिके साथ विधिवत् बजाया करते हैं। हे नरेश्वर! वहाँ ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित तथा सानुनासिक और निरनुनासिक—इन अठारह भेदोंके साथ स्तुतियाँ गायी जाती हैं। हे नरेश्वर! वेदपुरमें आठों ताल, सातों स्वर और तीनों ग्राम मूर्तिमान् होकर विराजते हैं ॥ २९–३४ ॥ वेदनगरमें राग-रागिनियाँ भी मूर्तिमती होकर निवास करती हैं। भैरव, मेघमल्लार, दीपक, मालकंस, श्रीराग और हिन्दोल—ये सब राग बताये गये हैं ॥ ३५ ॥ इनकी पाँच-पाँच स्त्रियाँ—रागिनियाँ हैं और आठ-आठ

मयूरश्रुतिसंयुक्तो मेघमल्लार एव हि । सुवर्णाभो दीपकश्च श्रीरागोऽरुणवर्णभृत् ॥३८॥
हिंडोलो दिव्यहंसाभो राजते मिथिलेश्वर ।

बहुलाश्व उवाच

तालानां च स्वराणां च ग्रामाणां मुनिसत्तम । नृत्यानां कति भेदा वै नामभिः सहितान् वद ॥३९॥

श्रीनारद उवाच

रूपकश्चर्चरीकश्च तालः परमठः स्मृतः । विराटकमठश्चैव मल्लकश्च झटिज्जुटा ॥४०॥
निषादर्षभगांधारषड्जमध्यमधैवताः । पञ्चमश्चेत्यमी राजन् स्वराः सप्त प्रकीर्तिताः ४१॥
माधुर्यमथ गांधारं श्रौव्यं ग्रामत्रयं स्मृतम् । रासं च तांडवं नाट्यं गांधर्वं कैन्नरं तथा ॥४२॥
वैद्याधरं गौह्यकं च नृत्यमाकूरसं नृप । हावभावानुभावैश्च दशभिश्चाष्टभेदवत् ॥४३॥
सारेगमपधनीति स्वरगम्यं पदं स्मृतम् । एतत्ते कथितं राजन् किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥४४॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे वेदनगरवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

(रागिनियों तथा रागपुत्रोंके नाम और वेदादिकों द्वारा भगवत्स्तुति)

बहुलाश्व उवाच

रागिणीनां च नामानि वद देवऋषे मम । तथा वै रागपुत्राणां त्वं परावरवित्तमः ॥ १ ॥

श्रीनारद उवाच

कालेन देशभेदेन क्रियया स्वरमिश्रया । भेदा बुधैः षट्पञ्चाशत्कोट्यो गीतस्य कीर्तिताः॥२॥
अंतर्भेदा अनंता हि तेषां सन्ति नृपेश्वर । विद्धयेनं रागमानन्दं शब्दब्रह्ममयं हरिम् ॥ ३ ॥
तस्मान्मुख्याश्च भेदाः कौ वदिष्यामि तवाग्रतः । भैरवी पिंगला शंकी लीलावत्यगरी तथा ॥ ४ ॥
भैरवस्यापि रागस्य रागिण्यः पञ्च कीर्तिताः । महर्षिश्च समद्रश्च पिंगलो [illegible] ॥ ५ ॥

विलावलश्च वैशाखो ललितः पञ्चमस्तथा । भैरवस्याष्ट पुत्रा ये गीयंते च पृथक् पृथक् ॥ ६ ॥
चित्रा जयजयावंती विचित्रा कथिता पुनः । व्रजल्लार्ध्यंधकाकारी रागिण्योऽपि मनोहराः ॥ ७ ॥
मेघमल्लाररागस्य कथिताः पञ्च मैथिल । श्यामकारः सोरठश्च नटो डायन एव च ॥ ८ ॥
केदारो व्रजरंहस्यो जलधारस्तथैव च । विहागश्चेत्यष्ट पुत्राः कथिताः पूर्वसूरिभिः ॥ ९ ॥
कंचुकी मंजरी टोडी गुर्जरी शाबरी तथा ॥१०॥
दीपकस्यापि रागस्य रागिण्यः पंच विश्रुताः । कल्याणः शुभकामश्च गौडकल्याण एव च ॥११॥
कामरूपः कान्हरेति रामसंजीवनस्तथा । सुखनामा मन्दहासः पुत्राश्चाष्टौ विदेहराट् ॥१२॥
रागस्य दीपकस्यापि कथिता रागपण्डितैः । गांधारी वेदगांधारी धनाश्री स्वर्मणिस्तथा ॥१३॥
गुणागरीति रागिण्यः पञ्चैता मैथिलेश्वर । मालकोशस्य रागस्य कथिता रागमण्डले ॥१४॥
मेघश्चमचलो मारुमाचारः कौशिकस्तथा । चन्द्रहारो घुंघुटश्च विहारो नन्द एव च ॥१५॥
मालकोशस्य रागस्य चाष्टपुत्राः प्रकीर्तिताः । वैराटी चैव कर्णाटी गौरी गौरावटी तथा ॥१६॥
चतुश्चन्द्रकला चैव रागिण्यः पञ्च विश्रुताः । श्रीरागस्यापि राजेन्द्र कथिताः पूर्वसूरिभिः ॥१७॥
सारङ्गः सागरो गौरो मरुत्पञ्चशरस्तथा । गोविन्दश्च हमीरश्च गीर्भीरश्च तथैव च ॥१८॥
श्रीरागस्यापि राजेन्द्र ह्यष्टौ पुत्रा मनोहराः । वसन्ती ऐरजा हेरी तैलंगी सुन्दरी तथा ॥१९॥
हिंडोलस्यापि रागस्य रागिण्यः पञ्च विश्रुताः । मङ्गलश्च वसन्तश्च विनोदः कुमुदस्तथा ॥२०॥
एवं च विहितो नाम विभासः स्वरमण्डलः । पुत्राश्चाष्टौ समाख्याता मैथिलेन्द्र विचक्षणैः ॥२१॥

बहुलाश्व उवाच

शब्दब्रह्म हरेः साक्षान्निगमस्य महात्मनः । रागमण्डल इत्येवं हिंडोलस्य पृथक् पृथक् ॥२२॥
अङ्गानि वद मे देव कानि कानि महीतले ।

श्रीनारद उवाच

मुखं व्याकरणं प्रोक्तं पिंगलः पाद उच्यते ॥२३॥

आगरी—ये भैरवरागकी पाँच रागिनियाँ बतलायी गयीं हैं। महर्षि, समृद्ध, पिङ्गल, मागध, बिलावल, वैशाख, ललित और पञ्चम—ये भैरवरागके भिन्न-भिन्न आठ पुत्र बतलाये गये हैं। ॥ ४–६ ॥ हे मिथिलेश्वर! चित्रा, जयजयवन्ती, विचित्रा, व्रजमल्लारी, अन्धकारी—ये मेघमल्लार रागकी पाँच मनोहारिणी रागनियाँ कही गयी हैं। श्यामकार, सोरठ, नट, उड्डायन, केदार, व्रजरहस्य, जलाधार और विहाग—ये मल्लार रागके आठ पुत्र प्राचीन विद्वानोंने बताये हैं ॥ ७–९ ॥ कञ्चुकीं, मञ्जरी, टोडी, गुर्जरी और शाबरी—ये दीपक रागकी पाँच रागनियाँ विख्यात हैं। हे विदेहराज! कल्याण, शुभकाम, गौड़कल्याण, कामरूप, कान्हरा, रामसंजीवन, सुखनामा और मन्दहास—ये दीपकरागके आठ पुत्र कहे गये हैं। हे मिथिलेश्वर! गान्धारी, वेदगान्धारी, धनाश्री, स्वर्मणि तथा गुणागरी—ये पाँच रागमण्डलमें मालकोश रागकी रागिनियाँ कही गयी हैं ॥१०–१४॥ मेघ, मचल, मारुमाचार, कौशिक, चन्द्रहार, घुंघुट, विहार तथा नन्द—ये मालकोश रागके आठ पुत्र बतलाये गये हैं ॥ १५ ॥ हे राजेन्द्र! वैराटी, कर्णाटी, गौरी, गौरावटी तथा चतुश्चन्द्रकाला—ये पुरातन पण्डितोंद्वारा कही गयी श्रीरागकी विख्यात पाँच रागिनियाँ हैं। हे महाराज! सारङ्ग, सागर, गौर, मरुत्, पञ्चशर, गोविन्द, हमीर तथा गीर्भीर—ये श्रीरागके आठ मनोहर पुत्र हैं। वसन्ती, एरजा, हेरी, तैलंगी और सुन्दरी—ये हिन्दोल रागकी पाँच रागिनियाँ प्रसिद्ध हैं। हे मैथिलेन्द्र! मङ्गल, वसन्त, विनोद, कुमुद, विहित, विभास, स्वर तथा मण्डल—विद्वानोंद्वारा ये आठ हिन्दोल रागके पुत्र कहे गये हैं ॥ १६–२१ ॥ बहुलाश्वने पूछा—शब्दब्रह्मस्वरूप श्रीहरिके साक्षात् स्वरूप महात्मा निगम (वेद) के, जो रागमण्डलमें हिन्दोलके नामसे विख्यात हैं, पृथक्-पृथक् अङ्ग इस भूतलपर कौन-कौन-से हैं—यह मुझे बतलाइये ॥ २२ ॥

मीमांसशास्त्रं हस्तौ च ज्योतिर्नेत्रं प्रकीर्तितम् । आयुर्वेदः पृष्ठदेशो धनुर्वेद उरःस्थलम् ॥२४॥
गाधर्वं रसनं विद्धि मनो वैशेषिकं स्मृतम् ॥२५॥
सांख्यं बुद्धिरहंकारो न्यायवादः प्रकीर्तितः । वेदांतं तस्य चित्तं हि वेदस्यापि महात्मनः ॥२६॥
रागरूपमिमं राजन् विहारं विद्धि मैथिल । एतत्ते कथितं राजन् किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥२७॥

बहुलाश्व उवाच

तस्मिन्वेदपुरे रम्ये किं चकार हरिः स्वयम् । एतन्मे वद देवर्षे त्वं साक्षाद्दिव्यदर्शनः ॥२८॥

श्रीनारद उवाच

आयांतं वेदनगरं श्रीकृष्णं यादवेश्वरम् । निगमोऽपि बलिं नीत्वा सरस्वत्या तया सह॥२९॥
गंधर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामतालैः स्वरैः सह । रागैः सभेदैः सहितः प्रणनाम कृतांजलिः ॥३०॥
प्रसन्नो भगवान्साक्षाद्देवदेवो जनार्दनः । वेदं प्राह यदूनां च सर्वेषां शृण्वतां सताम्॥३१॥

श्रीभगवानुवाच

निगम त्वं वरं ब्रूहि यत्ते मनसि वर्तते । दुर्लभं किं त्रिलोकेषु भक्तानां हर्षिते मयि ॥३२॥

वेद उवाच

यदि देव प्रसन्नोऽसि सर्वे ये मे सुपार्षदाः । तेषां देव निजं रूपं दर्शयात्र परेश्वर ॥३३॥
यद्रूपं ते च गोलोके स्वधाम्नि प्रस्फुरद्द्युतौ । वृंदावने च तद्रासे तस्य दर्शनकांक्षिणः ॥३४॥

श्रीनारद उवाच

श्रुत्वा वेदवचः कृष्णः परिपूर्णतमः स्वयम् । स्वरूपं दर्शयामास राधया सहितं परम् ॥३५॥
तद्रूपं सुंदरं दृष्ट्वा सर्वे वै मूर्च्छनां गताः । पूरिताः सात्त्विकैर्भावैर्विस्मृत्य स्वतनोः सुखम् ३६॥
तदापि हर्षिताः सर्वे वादित्रैर्मधुरस्वनैः । जगुस्तत्पुरतो राजन्ननृतुः पश्यतां सताम् ॥३७॥
यथा श्रुतं तथा दृष्टं माधुर्यं रूपमद्भुतम् । तथैव चक्रुर्वेदाद्या वर्णनं मैथिलेश्वर ॥३८॥

वेद उवाच

सज्ज्ञानमात्रं सदसत्परं बृहच्छश्वत्प्रशांतं विभवं समं महत् ।
त्वां ब्रह्म वंदे वसुदुर्गमं परं सदा स्वधाम्ना परिभूतकैतवम् ॥३९॥

सरस्वत्युवाच

महः परं त्वां किल योगिनो विदुः सविग्रहं तत्र वदंति सात्वताः ।
दृष्टं तु यत्ते पदयोर्द्वयं मे क्षेमस्य भूयान्महसामधीश्वरम् ॥४०॥

गन्धर्वा ऊचुः

श्यामं च गौरं विदितं स्वधाम्ना कृतं त्वया धाम निजेच्छया हि ।
विराजसे नित्यमलं च ताभ्यां घनो यथा मेचकदामिनीभ्याम् ॥४१॥

अप्सरस ऊचुः

यथा तमालः कलधौतवल्ल्या घनो यथा चंचलया चकास्ति ।
नीलोऽद्रिराजो निकषाश्मखन्या श्रीराधयाऽऽद्यस्तु तथा रमण्या ॥४२॥

ग्रामा ऊचुः

यस्य पदस्य परागं शंभू रमा कविदेवैः ।
इच्छति चेतसि राधा तं भज माधवपादम् ॥४३॥

ताला ऊचुः

येन बलिः सद्विहरेत्तद्बलिमेव हरेत् । तं भज पादं तु हरेश्चेतसि तप्ते कुहरे ॥४४॥

गाना ऊचुः

उत्क्षिपंति बहिर्दुःखं सन्तो यच्छरणं गताः । राधामाधवयोर्दिव्यं दधाम पदपंकजम् ॥४५॥

वे वाद्योंके मधुर शब्दोंके साथ सत्पुरुषोंके देखते-देखते भगवान्‌के समक्ष नाचने और गान करने लगे ॥ ३७ ॥ हे मैथिलेश्वर ! भगवान्‌का माधुर्यमय अद्‌भुत रूप जैसा सुना गया था, वैसा ही देखा गया और उसी प्रकार वेद आदिने (उसका नीचे दिये शब्दोंमें) वर्णन किया ॥३८॥ वेदने कहा—हे देव ! आप सत्स्वरूप, ज्ञानमात्र, सत्‌-असत्‌से परे, व्यापक, सनातन, *प्रशान्तरूप, विभवात्मक, सम, महत्, प्रकाशरूप, परम दुर्गम, परात्पर तथा अपने धाम (चिन्मय प्रकाश) द्वारा भ्रम एवं अज्ञानके अन्धकारको निरस्त करनेवाले 'ब्रह्म' हैं; आपको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३९ ॥ सरस्वती बोलीं—हे भगवन् ! योगीलोग आपको परम ज्योतिःस्वरूप जानते हैं, वहीं भक्तजन आपको चिन्मय विग्रहसे युक्त बताते हैं। इस समय जो आपके चरणारविन्दयुगल देखे गये हैं, वे समस्त ज्योतियोंके अधीश्वर हैं। वे सदा मेरे लिये कल्याणकारी हों ॥ ४० ॥ गन्धर्व बोले—हे प्रभो ! श्याम और गौर तेजके रूपमें अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित जो आपका तेजोमय स्वरूप है, वह आपने अपनी इच्छासे प्रकट किया है। उन्हीं युगल धामों (स्वरूपों) से आप नित्य उसी प्रकार पूर्णतया विराजित रहते हैं, जैसे मेघ श्याम वर्ण तथा बिजलीसे शोभा पाता है ॥ ४१ ॥ अप्सराओंने कहा—जैसे तमाल सुवर्णमयी लतासे, मेघ विद्युन्मालासे तथा नील गिरिराज जैसे सोनेकी खानसे सुशोभित होता है, उसी प्रकार आदिपुरुष तथा श्यामसुन्दर आप अपनी प्रेयसी श्रीराधारानीके नित्य साहचर्यसे शोभा पाते हैं ॥४२॥ तीनों ग्राम बोले—जिनके चरणारविन्दोंके पावन परागको शिव, रमा (लक्ष्मी), ज्ञानी पुरुष तथा देवताओं-सहित श्रीराधा अपने चित्तमें धारण करना चाहती हैं, माधवके उन चरण-कमलोंका सदा भजन करो ॥४३॥ तालोंने कहा—जिनके कारण राजा बलि सत्स्वरूप होकर प्रतिष्ठित हुए, उन्हीं भगवान्‌को वलि अर्पित करनी चाहिये। अपने संतप्त चित्तरूपी गुफामें श्रीहरिके उस चरणको ही प्रतिष्ठित करके उसकी सेवा करो ॥ ४४ ॥ गान (लय) बोले—संतजन जिनकी शरण लेकर दुःख और शोकको निकाल फेंकते हैं, श्रीराधा-माधवके उन दिव्य चरण-कमलोंको हम सदा हृदयमें धारण करें ॥ ४५ ॥ स्वर बोले—जो शरद्

स्वरा ऊचुः

शरद्विकचपंकजश्रियमतीव विद्वेपकं मिलिंदमुनिलेढितं कुलिशकंजचिह्नावृतम् ।
स्फुरत्कनकनूपुरं दलितभक्ततापत्रयं चलद्द्युतिपदद्वयं हृदि दधामि राधापतेः ॥४६॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे वेदादिस्तुतिवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

(रागिनियों तथा रागपुत्रोंके द्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति और भगवानका द्वारकाके लिए प्रस्थान)

श्रीनारद उवाच

भैरवाद्या रागगणाः पुरः प्राप्ता हरेः प्रभोः । रूपानुरूपावयवां तनुं दृष्ट्वाऽतिहर्षिताः ॥ १ ॥
यत्र यत्र च तेषां वै दृष्टिः प्राप्ता हरेस्तनौ । तत्र स्थिता च निर्गंतुं लावण्यान्न शशाक ह ॥ २ ॥
अहो श्रीकृष्णचन्द्रस्य रूपमत्यद्भुतं हरेः । दृष्ट्वोपवर्णनं तस्य चक्रुस्तेऽपि पृथक् पृथक् ॥ ३ ॥

भैरव उवाच

भज हरिजानुद्वयमिति लक्ष्मीः ॥ भजति सदांके कमलकराभ्याम् ॥ ४ ॥

मेघमल्लार उवाच

ऊरू विष्णो रम्भाखंडौ हेमस्तंभौ ध्याये वंद्यौ ।ओजः पूर्णौ शोभायुक्तौ वस्त्रापीतौ कृष्णस्योभौ॥ ५ ॥

दीपक उवाच

सकलसुखकरं कनकरुचिधरम् ॥ प्रथितहरिपदं भजत कटितले ॥ ६ ॥

मालकोश उवाच

कटी केशवस्या हरेरस्ति तत्र नृणां नेत्रयोर्दृष्टिमानं हरंति ।
परं कंपिता मंदगच्छत्समीरैः सुनम्रेण सा सर्वचेतोहरेत्थम् ॥ ७ ॥

श्रीराग उवाच

नाभेः सरः पुष्करकुण्डवच्च तल्लसत्त्रिवल्लयूर्मिमनोहरं पदम् ।
रोमावलिप्रोज्झितकामकाननं भजामि नित्यं हृदि राधिकापतेः ॥ ८ ॥

हिंडोल उवाच

अक्षरपंक्तिः किंन्वलिपंक्तिः पिप्पलपत्रे मोहनमाला ।
किं कमले यच्छ्यामलरेखा किं ह्युदरे रोमावलिरेखा ॥ ९ ॥

भैरवरागिण्य ऊचुः

पीतपटं यत् कृष्णहरेरिंद्रधनुर्वद्दीप्तियुतम् ।
काञ्चनशिल्पैश्चारुचितद्भजन्नृणां दुःखहरम् ॥१०॥

भैरवपुत्रा ऊचुः

चतुःसमुद्रा इव विश्वपूरका आनन्ददा एव चतुष्पदार्थवत् ।
ते बाहवो लोकवितानदण्डवज्जयन्ति भूधारणदिग्गजा इव ॥११॥

मेघमल्लाररागिण्य ऊचुः

अरुणविंबफलद्युतिमण्डितं भज हरेरधरं मधुरं मनः ।
नवजपादलमल्लसुविग्रहं सकलवल्लभभूमिपतेः प्रभोः ॥१२॥

मेघमल्लारपुत्रा ऊचुः

कर्पूरकेतकसुमौक्तिकहीरकाणां श्रीखंडचंद्रचपलामृतमल्लिकानाम् ।
तेषां रुचेश्च परिभावमकारि पूर्वं या दंतपंक्तिरमला स्मरतां परस्य ॥१३॥

दीपकरागिण्य ऊचुः

नयनयुगलजातं पातु नोऽहर्निशं ते मदनशरपरोक्षं सर्वलावण्यदीक्षम् ।
परिहृतसुरवृक्षं कोटिशो लक्षलक्षं निजजनकृतरक्षं दानदक्षं कटाक्षम् ॥१४॥

अत्यन्त कम्पित होने या लचकने लगती है। इस प्रकार वह सबके चित्तको हर लेनेवाली है। मैं विनम्र मस्तकसे उसकी वन्दना करता हूँ ॥ ७ ॥ श्रीराग बोला—राधिकावल्लभका जो नाभिसरोवर है, उसका मैं अपने हृदयमें प्रतिदिन ध्यान करता हूं। वह पुष्करकुण्डके समान शोभा पाता है। त्रिवलीरूप लहरोंसे उसकी मनोहरता बढ़ गयी है और वहाँकी रोमावलीने कामदेवके क्रीड़ा-काननको तिरस्कृत कर दिया है ॥ ८ ॥ हिण्डोल रागने कहा—उदरमें जो त्रिवलीकी पंक्ति है, वह क्या अक्षरोंकी पंक्ति (वर्णमाला) अथवा पीलपके पत्तेपर मोहन-माला दिखायी देती है ? क्या कमलदलपर कोई श्याम रेखा है या उदरमें यह रोमावलि फैली हुई है ? ॥ ९ ॥ भैरवरागकी रागनियाँ बोलीं—श्रीकृष्ण हरिका जो पीताम्बर है, वह दीप्तिमान् इन्द्रधनुष तो नहीं है ? सोनेके तारोंकी शिल्पकलाद्वारा वह मनोहर ढंगसे टँका हुआ है। उसका ही भजन करो, वह मनुष्योंका दुःख हर लेनेवाला है ॥ १० ॥ भैंरवके पुत्रोंने कहा—हे भगवन् ! आपकी चारों भुजाएँ चारों समुद्रोंके समान सम्पूर्ण विश्वको परिपूर्ण करनेवाली हैं, चार पदार्थोंके समान आनन्ददायिनी हैं, लोकरूपी चँदोवाके वितानमें दण्डका काम देती हैं तथा भूमिको धारण करनेमें दिग्गजोंके समान प्रतीत होती हैं ॥ ११ ॥ मेघमल्लारकी रागिनियाँ बोलीं—सर्ववल्लभ भूमिपति भगवान् श्रीहरिके मधुर अधरका, हे मन ! तू सदा चिन्तन कर। वह लाल रंगके बिम्ब-फलकी-सी कान्तिसे मण्डित है तथा नूतन जपाकुसुमके लाल दलोंकी भाँति उसका सुन्दर स्वरूप है ॥ १२ ॥ मेघमल्लारके बेटे बोले—परमेश्वर श्रीकृष्णकी जो निर्मल दन्त-पंक्ति है, उसका सदा ध्यान करो। उसने कपूर, केवड़ेके फूल, मोती, हीरे, श्रीखण्ड चन्दन, चन्द्रमा, चपला, अमृत तथा मल्लिका-पुष्पोंकी कान्तिको पहलेसे ही तिरस्कृत कर दिया है ॥ १३ ॥ दीपक रागकी रागिनियोंने कहा—हे भगवन् ! निजजनोंकी रक्षा करनेमें समर्थ तथा अभीष्ट वस्तु देनेमें दक्ष जो आपके युगल नयनोंका कृपाकटाक्ष है, वह रात-दिन हमारी

स्वरा ऊचुः

शरद्विकचपंकजश्रियमतीव विद्वेषकं मिलिंदमुनिसेवितं कुलिशकंजचिह्नावृतम् ।
स्फुरत्कनकनूपुरं दलितभक्ततापत्रयं चलद्द्युतिपदद्वयं हृदि दधामि राधापतेः ॥४६॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे वेदादिस्तुतिवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

(रागिनियों तथा रागपुत्रोंके द्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति और भगवानका द्वारकाके लिए प्रस्थान)

श्रीनारद उवाच

भैरवाद्या रागगणाः पुरः प्राप्ता हरेः प्रभोः । रूपानुरूपावयवां तनुं दृष्ट्वाऽतिहर्षिताः ॥ १ ॥
यत्र यत्र च तेषां वै दृष्टिः प्राप्ता हरेस्तनौ । तत्र स्थिता च निर्गंतुं लावण्यान्न शशाक ह ॥ २ ॥
अहो श्रीकृष्णचन्द्रस्य रूपमत्यद्भुतं हरेः । दृष्ट्वोपवर्णनं तस्य चक्रुस्तेऽपि पृथक् पृथक् ॥ ३ ॥

भैरव उवाच

भज हरिजानुद्वयमिति लक्ष्मीः ॥ भजति सदांके कमलकराभ्याम् ॥ ४ ॥

मेघमल्लार उवाच

ऊरू विष्णो रम्भाखंडौ हेमस्तंभौ ध्याये वंद्यौ ।ओजः पूर्णौ शोभायुक्तौ वस्त्रापीतौ कृष्णस्योभौ॥ ५ ॥

दीपक उवाच

सकलसुखकरं कनकरुचिधरम् ॥ प्रथितहरिपदं भजत कटितले ॥ ६ ॥

मालकोश उवाच

कटी केशवस्या हरेरस्ति तत्र नृणां नेत्रयोर्दृष्टिमानं हरंति ।
परं कंपिता मंदगच्छत्समीरैः सुनम्रेण सा सर्वचेतोहरेत्थम् ॥ ७ ॥

श्रीराग उवाच

नाभेः सरः पुष्करकुण्डवच्च तल्लसत्त्रिवल्ल्यूर्मिमनोहरं पदम् ।
रोमावलिप्रोज्झितकामकाननं भजामि नित्यं हृदि राधिकापतेः ॥ ८ ॥

हिंडोल उवाच

अक्षरपंक्तिः किंन्वलिपंक्तिः पिप्पलपत्रे मोहनमाला ।
किं कमले यच्छ्यामलरेखा किं ह्युदरे रोमावलिरेखा ॥ ९ ॥

भैरवरागिण्य ऊचुः

पीतपटं यत् कृष्णहरेरिंद्रधनुर्वद्दीप्तियुतम् ।
काञ्चनशिल्पैश्चारुचितद्भजन्नृणां दुःखहरम् ॥१०॥

भैरवपुत्रा ऊचुः

चतुःसमुद्रा इव विश्वपूरका आनन्ददा एव चतुष्पदार्थवत् ।
ते बाहवो लोकवितानदण्डवज्जयन्ति भूधारणदिग्गजा इव ॥११॥

मेघमल्लाररागिण्य ऊचुः

अरुणबिंबफलद्युतिमण्डितं भज हरेरधरं मधुरं मनः ।
नवजपादलमल्लसुविग्रहं सकलवल्लभभूमिपतेः प्रभोः ॥१२॥

मेघमल्लारपुत्रा ऊचुः

कर्पूरकेतककुसुमौक्तिकहीरकाणां श्रीखंडचंद्रचपलामृतमल्लिकानाम् ।
तेषां रुचेश्च परिभावमकारि पूर्वं या दंतपंक्तिरमला स्मरतां परस्य ॥१३॥

दीपकरागिण्य ऊचुः

नयनयुगलजातं पातु नोऽहर्निशं ते मदनशरपरोक्षं सर्वलावण्यदीक्षम् ।
परिहृतसुरवृक्षं कोटिशो लक्षलक्षं निजजनकृतरक्षं दानदक्षं कटाक्षम् ॥१४॥

अत्यन्त कम्पित होने या लचकने लगती है। इस प्रकार वह सबके चित्तको हर लेनेवाली है। मैं विनम्र मस्तकसे उसकी वन्दना करता हूँ ॥ ७ ॥ श्रीराग बोला—राधिकावल्लभका जो नाभिसरोवर है, उसका मैं अपने हृदयमें प्रतिदिन ध्यान करता हूँ। वह पुष्करकुण्डके समान शोभा पाता है। त्रिवलीरूप लहरोंसे उसकी मनोहरता बढ़ गयी है और वहाँकी रोमावलीने कामदेवके क्रीड़ा-काननको तिरस्कृत कर दिया है ॥ ८ ॥ हिण्डोल रागने कहा—उदरमें जो त्रिवलीकी पंक्ति है, वह क्या अक्षरोंकी पंक्ति (वर्णमाला) अथवा पीलपके पत्तेपर मोहन-माला दिखायी देती है ? क्या कमलदलपर कोई श्याम रेखा है या उदरमें यह रोमावलि फैली हुई है ? ॥ ९ ॥ भैरवरागकी रागनियाँ बोलीं—श्रीकृष्ण हरिका जो पीताम्बर है, वह दीप्तिमान् इन्द्रधनुष तो नहीं है ? सोनेके तारोंकी शिल्पकलाद्वारा वह मनोहर ढंगसे टँका हुआ है। उसका ही भजन करो, वह मनुष्योंका दुःख हर लेनेवाला है ॥ १० ॥ भैंरवके पुत्रोंने कहा—हे भगवन् ! आपकी चारों भुजाएँ चारों समुद्रोंके समान सम्पूर्ण विश्वको परिपूर्ण करनेवाली हैं, चार पदार्थोंके समान आनन्ददायिनी हैं, लोकरूपी चँदोवाके वितानमें दण्डका काम देती हैं तथा भूमिको धारण करनेमें दिग्गजोंके समान प्रतीत होती हैं ॥ ११ ॥ मेघमल्लारकी रागिनियाँ बोलीं—सर्ववल्लभ भूमिपति भगवान् श्रीहरिके मधुर अधरका, हे मन ! तू सदा चिन्तन कर। वह लाल रंगके बिम्व-फलकी-सी कान्तिसे मण्डित है तथा नूतन जपाकुसुमके लाल दलोंकी भाँति उसका सुन्दर स्वरूप है ॥ १२ ॥ मेघमल्लारके वेटे बोले—परमेश्वर श्रीकृष्णकी जो निर्मल दन्त-पंक्ति है, उसका सदा ध्यान करो। उसने कपूर, केवड़ेके फूल, मोती, हीरे, श्रीखण्ड चन्दन, चन्द्रमा, चपला, अमृत तथा मल्लिका-पुष्पोंकी कान्तिको पहलेसे ही तिरस्कृत कर दिया है ॥ १३ ॥ दीपक रागकी रागिनियोंने कहा—हे भगवन् ! निजजनोंकी रक्षा करनेमें समर्थ तथा अभीष्ट वस्तु देनेमें दक्ष जो आपके युगल नयनोंका कृपाकटाक्ष है, वह रात-दिन हमारी

दीपकपुत्रा ऊचुः

किं वा कुलिंगयुगलं नवपद्ममध्ये दुःखक्षयाय वसतां निशितासियुग्मम् ।
जैत्रं धनुर्जयति किं मकरध्वजस्य भ्रूमण्डलं किमथ चंद्रमुखे परस्य ॥१५॥

मालकोशरागिण्य ऊचुः

परिनृत्यति इन्दुमंडले फणिपत्न्याविव लोलकुण्डले ।
कमले मकरन्दनिर्भरे भ्रमरालीव सुगण्डमण्डले ॥१६॥

मालकोशपुत्रा ऊचुः

रविरेव खमण्डले किमु यदुभर्तुस्त्वथवा घने तडित् ।
अधितिष्ठति गण्डमण्डलं श्रुतिखण्डं कलधौतकुण्डलम् ॥१७॥

श्रीरागिण्य ऊचुः

कलिंगयोः खंजनयोः किलारादापत्यतां युद्धमभूदलीनाम् ।
तेषां गतः कीर उपःप्रफुल्ले चकास्ति पद्मेऽरुणविंबलिप्सुः ॥१८॥

श्रीरागपुत्रा ऊचुः

परिकरीकृतपीतपटं हरिं शिखिकिरीटनतीकृतकंधरम् ।
लगुडवेणुकरं चलकुंडलं पटुतरं नटवेषधरं भजे ॥१९॥

हिंडोलरागिण्य ऊचुः

अतसीकुसुमोपमेयकांतिर्यमुनाकूलकदम्बमध्यवर्ती ।
नवगोपवधूविहारशाली वनमाली वितनोतु मंगलानि ॥२०॥

हिंडोलपुत्रा ऊचुः

हरे मत्समः पातकी नास्ति भूमौ तथा त्वत्समो नास्ति पापापहारी।
इति त्वां च मत्वा जगन्नाथदेवं यथेच्छा भवेत्ते तथा मां कुरु त्वम् ॥२१॥

श्रीनारद उवाच

इति रागकृतं ध्यानं यः शृणोति पठेत्सदा। तन्नेत्रगोचरो याति भगवान् भक्तवत्सलः ॥२२॥
इत्थं स्वं दर्शनं दत्वा वेदादिभ्यो हरिः स्वयम्। बभूव पश्यतां तेषां शार्ङ्गपाणिश्चतुर्भुजः ॥२३॥
कृत्वा तु दर्शनं विष्णोर्गते देवे गणैः सह। सैन्ये सुतं शंबरारिं स्थापयित्वा यदूत्तमम् ॥२४॥
द्वारकां स्वां पुरीं गंतुं मनश्चक्रे परात्परः ॥२५॥

मञ्जीरघंटाकलकिंकिणीकलं सुकांस्यपात्रध्वनिना रथेन।
सुग्रीवमुख्यैः स च चञ्चलाश्वैर्नियोजितैर्मैथिल दारुकेण ॥२६॥
युतेन सद्रत्नमता श्रुतिस्वनैः प्रभंजनैजद्गरुडध्वजेन।
विहाय तं वेदपुरीं परात्मा ययौ पुरीं यादववृंदमंडिताम् ॥२७॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीविश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीकृष्णध्यानवर्णनं नाम पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४५॥

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

(यादव-गन्धर्वयुद्ध और बलराम द्वारा गन्धर्व-सेनाका संहार)

श्रीनारद उवाच

अथ कृष्णे भगवति पुरीं द्वारावतीं गते। प्रद्युम्नः सैनिकैः सार्द्धं नदं कामदुघं ययौ ॥ १ ॥
शतयोजनविस्तीर्णा गंधर्वाणां मनोहरा। वसंतमालती नाम्ना हेमरत्नमयी पुरी ॥ २ ॥
लवंगलतिकाजालैरेलाकाश्मीरदेशकैः। जातीफलादिजावित्रीश्रीखंडपारिजातकैः ॥ ३ ॥
मत्तालिनादिता भृंगैः शब्दिता चित्रपक्षिभिः। गंधर्वैं राजिता भव्यैर्नागैर्भोगवती यथा ॥ ४ ॥

हिण्डोलरागके पुत्रोंने कहा—हे हरे! भूतलपर मेरे समान पातकी नहीं है और आपके समान कोई पापापहारी भी नहीं है। इसलिये आपको जगन्नाथदेव मानकर मैं शरणमें आया हूँ। आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा मेरे प्रति कीजिये ॥ २१ ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन्! रागोंद्वारा किये गये उपर्युक्त ध्यानको जो सदा सुनता अथवा पढ़ता है तो भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण उसके नेत्रोंके समक्ष प्रकट हो जाते हैं। इस प्रकार वेद आदिको अपने स्वरूपका दर्शन कराके साक्षात् श्रीहरि उन सबके देखते-देखते चतुर्भुज शार्ङ्गपाणि बन गये ॥ २२ ॥ २३ ॥ इस प्रकार श्रीकृष्णका दर्शन करके जब देवतालोग अपने गणोंके साथ चले गये, तब सेनामें अपने पुत्र यदुकुलतिलक शम्बर-शत्रु प्रद्युम्नको स्थापित करके परात्पर भगवान् श्रीहरिने अपनी द्वारकापुरीमें जानेका विचार किया ॥२४॥२५॥ हे मिथिलेश्वर! उनके रथपर मञ्जीर, घंटा और किङ्किणीकी मधुर ध्वनि होने लगी। सुन्दर कांस्य-पात्र (झाँझ) की आवाज भी उसमें मिल गयी। दारुकने उस रथमें सुग्रीव आदि चञ्चल घोड़े जोत दिये ॥ २६ ॥ वह उत्तम रत्नयुक्त आभूषणोंसे सजाया गया था, उसके आगे वेद-मन्त्रोंका घोष भी होता था और उसके ऊपरका गरुडध्वज प्रभञ्जनके वेगसे फहरा रहा था। ऐसे रथके द्वारा वेदपुरीको छोड़कर परमात्मा श्रीहरि यादववृन्दसे मण्डित द्वारकापुरीको चले गये ॥ २७ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

नारदजी कहते हैं—हे राजन्! भगवान् श्रीकृष्णके द्वारकापुरीको चले जानेपर प्रद्युम्न अपने सैनिकोंके साथ कामदुघ नदके समीप गये ॥ १ ॥ वहाँ गन्धर्वोंकी मनोहारिणी हेमरत्नमयी वसन्तमालती नामकी नगरी है, जिसका विस्तार सौ योजनका है ॥ २ ॥ लवङ्ग-लताओंके समूह, इलायची, केसर, जाय-

पतंगो नाम तत्रैव गंधर्वेशो महाबलः । करोति राज्यं सुकृती शक्रवद्बलपौरुषम् ॥ ५ ॥
श्रुत्वा प्रद्युम्नमायातं दिग्जयार्थं विनिर्गतम् । गंधर्वैरुद्भटैर्युक्तो युद्धं कर्तुं मनो दधे ॥ ६ ॥
रथाश्वगजवर्गैश्च गंधर्वैर्दशकोटिभिः । पतङ्ग आगतो योद्धुं प्रद्युम्नस्यापि संमुखे ॥ ७ ॥
गंधर्वैर्यदुभिः सार्द्धं घोरं युद्धं बभूव ह । भल्लैर्गदाभिः परिघैर्मुद्गरैस्तोमरर्ष्टिभिः ॥ ८ ॥
बाणांधकारे संजाते पतङ्गोऽगतिरथो बली । धनुष्टंकारयन् प्राप्तो जगर्ज घनवद्बली ॥ ९ ॥
गदो गदां समादाय बलदेवानुजो बली । तद्बलं पोथयामास वज्रेणेंद्रो यथा गिरीन् ॥१०॥
गदस्य गदया केचिद्गंधर्वाः पतिता रणे । रथाश्चूर्णीकृताः सर्वे मातङ्गा भिन्नमस्तकाः ॥११॥
अश्वारूढाः केऽपि वीराः पतिता रणमूर्द्धनि । अधोमुखा ऊर्ध्वमुखा गंधर्वाश्छिन्नबाहवः ॥१२॥
क्षणमात्रेण तत्सैन्ये रुधिराणां नदी बभूव । प्रमथा हरमालार्थं शिरांसि जगृहुर्मृधे ॥१३॥
सिंहारूढा भद्रकाली डाकिनी शतसंवृता । कपालेनापि रुधिरं पिबंती दृश्यते मृधे ॥१४॥
एवं युद्धे गदकृते गन्धर्वाणां पलायताम् । गंधर्वेशस्तदा प्राप्तो हस्तिलक्षबलान्वितः ॥१५॥
गदं तताड गदया पतङ्गो हृदि मैथिल । गदोऽपि तं स्वगदया पतंगं हृदि चौजसा ॥१६॥
तयोश्च गदया युद्धं बभूव घटिकाद्वयम् । विस्फुलिंगान् क्षरंत्यौ द्वे गदे चूर्णीबभूवतुः ॥१७॥
लक्षभारसमां गुर्वीं गदामादाय सत्वरम् । गदं तताड शिरसि पतंगो रणदुर्मदः ॥१८॥
गदाप्रहारेण गदः क्षणं मूर्छामवाप ह । एवं कृते घोरमृधे पतंगेन महात्मना ॥१९॥
तदैव द्वारकापुर्यास्तेजःसंवर्त्तमागतम् । ददृशुर्यादवाः सर्वे कोटिमार्तंडसन्निभम् ॥२०॥

तस्मिंस्तेजसि गौरांगो बलदेवो महाबलः । आविर्बभूव सहसा भगवान् भक्तवत्सलः ॥२१॥
गंधर्वाणां बलं सर्वं समाकृष्य हलेन वै । तताड मुसलं क्रुद्धो बलो नीलांबरो बली ॥२२॥
रथान् गजांस्तुरंगांश्च वीराः शस्त्रभृतां वराः । निपेतुर्युगपत्सर्वे चूर्णिताश्चोपला इव ॥२३॥
पतंगो विरथस्तस्माद्भीतभीतः पुरीं ययौ । पुनर्योद्धुं यादवैश्च सेनाव्यूहं चकार ह ॥२४॥
शतयोजनविस्तीर्णां गंधर्वाणां महापुरीम् । वसंतमालतीं सर्वामुद्विदार्य हलेन वै ॥२५॥
विचकर्ष बलः क्रुद्धो नदे कामदुघे नृप । हाहाकारस्तदैवासीन्नगर्यां पतितैर्गृहैः ॥२६॥
तिर्यक्पोतमिवाघूर्णां नगरीं वीक्ष्य सत्वरम् । पतंगः सर्वगंधर्वैर्हर्षितः सत्कृतांजलिः ॥२७॥
खचिद्धेमसुवर्णानां मुक्तातोरणशालिनाम् । दशयोजनविस्तीर्णीकृतानां विश्वकर्मणा ॥२८॥
कामगानां पताकाभिर्युतानां कुंभकोटिभिः । सहस्रार्कप्रकाशानां विमानानां द्विलक्षकम् ॥२९॥
चतुर्लक्षं गवां चैव तुरंगाणां दशार्बुदम् । एलालवंगकाश्मीरजातीफलफलैः सह ॥३०॥
सुधाफलानां दिव्यानां कोटिशो भाजनानि च । नीत्वा बलिं समादाय दत्वा नत्वा प्रधर्षितः ॥३१॥
कृताञ्जलिः प्राह बलं बलभद्रप्रसादवित् ।

पतंग उवाच

राम राम महावीर्य न जाने तव विक्रमम् । यस्यैकमूर्ध्नि तिलकं दृश्यते भूमिमंडलम् ॥३२॥
देवाधिदेव भगवन् कामपाल नमोऽस्तु ते । नमोऽनंताय शेषाय साक्षाद्रामाय ते नमः ॥३३॥
जयजयाच्युत देव परात्पर स्वयमनंतदिगंतगतश्रुते ।
सुरमुनींद्रफणींद्रवराय ते मुसलिने बलिने हलिने नमः ॥३४॥

तेजपुञ्ज आ पहुँचा ॥ १९ ॥ समस्त यादवोंने करोड़ों सूर्योंके तुल्य तेजस्वी उस तेजपुञ्जको देखा ॥ २० ॥ उसके भीतरसे गोरे अङ्गवाले महाबली भक्तवत्सल भगवान् बलदेव सहसा प्रकट हो गये ॥ २१ ॥ नीलाम्बर-धारी और बलशाली बलरामने कुपित हो गन्धर्वोंकी सारी सेनाको हलसे खींचकर मुसलमें मारना आरम्भ किया ॥ २२ ॥ बहुत-से रथी, हाथियों और घोड़ोंको उन्होंने कालके गालमें पहुँचा दिया । शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ वीर सब-के-सब चूर-चूर हुए और पत्थरोंकी भाँति एक साथ ही भूतलपर बिखर गये ॥२३॥ पतंग भी रथहीन हो भारी भयके कारण वहाँसे वसन्तमालती पुरीमें चले गये और पुनः यादवोंसे युद्ध करनेके लिये सेनाका व्यूह बनाने लगे ॥ २४ ॥ हे नरेश्वर ! सौ योजन विस्तृत गन्धर्वोंकी सम्पूर्ण वसन्तमालती नामकी महापुरीको हलसे उखाटकर कुपित बलदेवजीने कामदुघ नदमें गिरानेके लिये खींचा । उस नगरीके भवन धड़ाधड़ धराशायी होने लगे । फिर तो तत्काल वहाँ हाहाकार मच गया ॥२५॥२६॥ अपनी नगरीको टेढ़ी या करवट लेती हुई नौकाकी भाँति डगमगाती देख पतंग सर्वथा पराभूत हो, तत्काल समस्त गन्धर्वोंके साथ हाथ जोड़, भेंट-सामग्रीके साथ वहाँ आ पहुँचा ॥ २७ ॥ उसने दो लाख ऐसे विमान बलदेवजीको भेंट किये, जो सुवर्णके समान कान्तिवाले तथा विविध रत्नोंसे जटित थे । मोतीकी वंदनवारें उनकी शोभा बढ़ाती थीं । विश्वकर्माने उन विमानोंको दस-दस योजन विस्तृत बनाया था । वे सभी विमान इच्छानुसार चलनेवाले तथा कोटि-कोटि कलशों एवं पताकाओंसे सुशोभित थे । उनसे सहस्रों सूर्योंके समान प्रकाश फैल रहा था ॥ २८ ॥ २९ ॥ चार लाख गौएँ, दस अरब घोड़े, इलायची, लवङ्ग, केसर और जायफलोंके साथ दिव्य अमृतफलोंसे भरे करोड़ों पात्र उपहारके रूपमें लाकर उन्होंने दिये ॥ ३० ॥ फिर वे नमस्कार करके तिरस्कृतकी भाँति हाथ जोड़कर बल-रामजीसे बोले, उन्हें बलभद्रजीके प्रभावका पूरा परिचय मिल गया था ॥३१॥ पतङ्गने कहा—हे राम ! महा-पराक्रमी हे बलराम ! मैंने आपके पराक्रमको पहले नहीं जाना था, इसीलिये अपराध कर बैठा । जिनके एक फनपर सारा भूमण्डल तिलके समान दिखायी देता है, उनके सामने कौन ठहर सकता है ॥ ३२ ॥ हे भगवन् ! हे कामपाल ! हे देवाधिदेव ! आपको नमस्कार है । साक्षात् अनन्त एवं शेषस्वरूप आप बलरामको बारंबार प्रणाम है ॥३३॥ हे अच्युत देव ! आपकी जय हो, जय हो । हे परात्पर ! हे साक्षात् अनन्त ! आपकी

श्रीनारद उवाच

एवं स्तुतः पतंगेन बलभद्रो महाबलः । प्रसन्नचेता गंधर्वं माभैष्टेत्यभयं ददौ ॥३५॥
स्थापयित्वा बले कार्ष्णिं प्रणतं यादवेश्वरः । यादवैः प्रस्तुतः शीघ्रं पुरीं द्वारावतीं ययौ ॥३६॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे वसंतमालतीकर्षणं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

(यादव-सेनाके साथ शक्रसखका युद्ध और उसकी पराजय)

श्रीनारद उवाच

प्रद्युम्नोऽथ महावीरो नादयन् जयदुंदुभिम् । यदुभिः सैनिकैः सार्द्धं मधुधारातटं ययौ ॥ १ ॥
सुवर्णाद्रितटीभूते वने वैश्रवसे शुभे । सुवर्णवर्णहंसाढ्ये कांचनीलतिकावृते ॥ २ ॥
हेमावतीषु द्रोणीषु देवदुर्गासु मैथिल । दानवानामगम्यासु गंगावेत्रवतीषु च ॥ ३ ॥
दानवेभ्यः प्रभीतानां क्वचित्स्वर्गात्पलायिनाम् । अष्टानां लोकपालानां निधयो यत्र संति हि ॥ ४ ॥
तत्र शक्रसखो देव आधिपत्याभिरक्षकः । श्रुत्वाऽऽगतं च प्रद्युम्नं युद्धं कर्तुं मनो दधे ॥ ५ ॥
प्रद्युम्नप्रेषितः साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तमः । पप्रच्छ दृष्टमार्गैश्च जनैस्तस्य पुरं ययौ ॥ ६ ॥
नत्वा देवं शक्रसखं सभायामुद्धवः प्रभुः । प्रद्युम्नकथितं प्राह विस्तरान्मंत्रिणां वरः ॥ ७ ॥

उद्धव उवाच

उग्रसेनो यादवेंद्रो द्वारकेशो नृपेश्वरः । जंबूद्वीपनृपान् जित्वा राजसूयं करिष्यति ॥ ८ ॥
तेन प्रणोदितो जेतुं रुक्मिणीनंदनो बली । जित्वा स भारतादीनि खंडानि स्वस्य तेजसा ॥ ९ ॥
अद्येलावृतं प्राप्तो जेतुं कार्ष्णिर्महाबलः । तस्मै यच्छ बलिं शीघ्रं कुलकौशलहेतवे ॥१०॥

कीर्ति दिगन्ततक फैली हुई है । आप समस्त देवताओं, मुनीन्द्रों और फणीन्द्रोंसे श्रेष्ठ हैं । हे मुसलधारी ! आप बलवान् हलधरको नमस्कार है ॥ ३४ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! पतङ्गके इस प्रकार स्तुति करनेपर महाबली बलभद्रजीका चित्त प्रसन्न हो गया । उन्होंने गन्धर्वको 'अब तुम मत डरो'—यों कहकर अभयदान दिया । तदनन्तर यादवेश्वर बलदेव अपने चरणोंमें पड़े हुए प्रद्युम्नको सेनाके संचालक-पदपर स्थापित करके, यादवोंसे प्रशंसित हो शीघ्र ही द्वारकापुरीको चले गये ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! तदनन्तर महावीर प्रद्युम्न अपनी विजय-दुन्दुभि बजवाते हुए यादव-सैनिकोंके साथ मधुधारा नदीके तटपर गये ॥ १ ॥ सुवर्णगिरिके किनारे कुबेरके सुन्दर वनमें, जो सुनहरे हंसों और काञ्चनी लतिकाओंसे सम्पन्न है, पहुँचे ॥ २ ॥ हे मिथिलेश्वर ! हिमालयकी गुफाएं देवताओंके लिये दुर्गका काम देती हैं । वहाँ दानवोंकी पहुँच नहीं हो पाती । वहाँ गङ्गातटवर्ती बेंतकी झाड़ियाँ छायी रहती हैं ॥ ३ ॥ कभी-कभी दानवोंसे डरकर स्वर्गसे भागे हुए आठों लोकपालोंकी निधियाँ वहाँ निवास करती हैं ॥ ४ ॥ शक्रसख नामक देव-शिरोमणि उस प्रान्तके अधिपति हैं । प्रद्युम्नका आगमन सुनकर उन्होंने उनके साथ युद्ध करनेका विचार किया ॥ ५ ॥ प्रद्युम्नके भेजे हुए बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ साक्षात् उद्धव मार्गदर्शी लोगोंसे रास्ता पूछते हुए शक्रसखकी नगरीमें गये ॥ ६ ॥ सभामें पहुँचकर मन्त्रिप्रवर प्रभु उद्धवने राजा इन्द्रसखको नमस्कार करके प्रद्युम्नकी कही हुई बातें विस्तारके साथ कह सुनायीं ॥ ७ ॥ उद्धव बोले—यादवोंके इन्द्र, द्वारकापुरीके स्वामी और राजाधिराज उग्रसेन जम्बूद्वीपके नरेशोंको जीतकर राजसूय यज्ञ करेंगे ॥ ८ ॥ उनके द्वारा दिग्विजयके लिये भेजे गये बलवान् रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्न अपने तेजसे भारत आदि वर्षोंको जीतकर आज ही इलावृतवर्षपर विजय पानेके लिये आये हैं । उन श्रीकृष्णकुमारका बल महान् है ।

न चेद्युद्धं हि भवता राजन्सर्वविदां वर ॥

शक्रसख उवाच

शृणु दूत सदा देवैः पूजितोऽहं नरैः किमु । सिद्धोऽहं वै महावीरो नागलक्षसमो बले ॥११॥
अष्टानां लोकपालानामाधिपत्याभिरक्षकः । कुबेर इव कोशाढ्यः पुरंदर इवोद्भटः ॥१२॥
उग्रसेनेन दातव्यं मह्यं चोपायनं परम् । पुरा तस्मै न दास्यामि यदुराजाय भूभृते ॥१३॥

उद्धव उवाच

यथा तिरस्कृतिं प्राप्तः कुबेरो यदुतेजसा । यथा शृंगारतिलकश्चैत्रदेशाधिपो बली ॥१४॥
शुभांगो हरिवर्षेश उत्तरेशो गुणाकरः । यथा दैत्यसखो राजा लंकेशो राक्षसेश्वरः ॥१५॥
संवत्सरः केतुमालः शकुन्याद्या महासुराः । तथाभूतस्त्वं हि राजन् बलिं तस्मै प्रदास्यसि ॥१६॥

श्रीनारद उवाच

इत्युद्धववचः श्रुत्वा क्रुद्धः शक्रसखो बली । उद्धवं प्रत्युवाचाथ शृणु भागवतोत्तम ॥१७॥
यावद्बलिं प्रदास्यामि तावत्त्वं संस्थितो भव । अन्यथा ते गतिर्नास्ति सत्यं सत्यं महामते ॥१८॥

उद्धव उवाच

वयं तु मंत्रिप्रवराः पूर्णज्ञानप्रदा वराः । मच्छिक्षणं न मन्यंते तेषां नो मंगलं भवेत् ॥१९॥

श्रीनारद उवाच

एवं स दृष्टरोधेन रोधयामास चोद्धवम् । उद्धवं नागतं राजन् यदूनामनुशोचताम् ॥२०॥
दिनानि कतिचित्तत्र व्यतीयुस्तमपश्यताम् । मन्मुखात्तदुपाकर्ण्य प्रद्युम्नो भगवान्हरिः ॥२१॥
जेतुं शक्रसखं प्रागात्त्रिपुरं त्र्यंबको यथा । यदुभिर्भ्रातृभिः सार्द्धं स सैन्यपरिवारितः ॥२२॥
सुवर्णाद्रिगुहाद्वारात्संप्राप्तो मकरध्वजः । वीरकोदण्डटंकारैर्दुन्दुभिध्वनिमिश्रितैः ॥२३॥

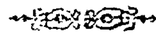
यदि आप अपने कुलकी कुशल चाहते हों तो शीघ्र उन्हें भेंट दीजिये ॥ ९ ॥ १० ॥ हे सर्वज्ञोंमें श्रेष्ठ नरेश ! यदि आप भेंट नहीं देंगे तो आपके साथ युद्ध अनिवार्य होगा। शक्रसख बोले—हे दूत ! सुनो। देवतालोग भी सदा मेरी पूजा करते हैं, फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या है। मैं सिद्ध हूँ, महावीर हूँ और एक लाख हाथियोंके समान बलवान् हूँ ॥ ११ ॥ आठों लोकपालोंके आधिपत्यका रक्षक हूँ। कुबेरके समान कोशसे सम्पन्न तथा इन्द्रके समान उद्भट शक्तिशाली हूँ ॥ १२ ॥ उग्रसेनको ही मुझे उत्तम उपायन भेंट करना चाहिये। मैंने पहले कभी किसीको भेंट नहीं दी है, इसलिये मैं तुम्हारे यदुराजको भी भेंट नहीं दूँगा ॥ १३ ॥ उद्धव बोले—यादवोंके तेजसे जैसे कुबेरको तिरस्कार प्राप्त हुआ है और उन्हें भेंट देनी पड़ी है; जैसे चैत्रदेशके बलवान् राजा शृङ्गारतिलकने भेंट दी है; हरिवर्षके राजा शुभाङ्ग, उत्तराखण्डके स्वामी गुणाकर, दैत्योंके सखा राक्षसराज लङ्कापति, संवत्सर, केतुमाल और शकुनि आदि बड़े-बड़े असुरोंने जैसे भेंट दी है, हे राजन् ! उसी तरह उन्हींकी-सी दुर्दशामें पड़नेपर आप भी प्रद्युम्नको भेंट देंगे ॥ १४–१६ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! उद्धवकी उपर्युक्त बात सुनकर बलवान् शक्रसखने कुपित हो उद्धवको इस प्रकार उत्तर दिया—'हे भगवद्भक्त-शिरोमणे ! सुनो। जबतक मैं भेंट न दूँ, तबतक तुम यहीं ठहरो। अन्यथा तुम जाने नहीं पाओगे। हे महामते ! मेरी यह बात सत्य है, सत्य है ॥ १७ ॥ १८ ॥ उद्धव बोले—हम मन्त्रियोंमें श्रेष्ठ और श्रेष्ठ ज्ञान प्रदान करनेवाले हैं। जो हमारी शिक्षा नहीं मानते, उनका मङ्गल नहीं होता ॥ १९ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! इस प्रकार शक्रसखने उद्धवको वहाँ नजरबंद कर लिया। उद्धवके नहीं लौटनेसे यदुवंशी लोग चिन्तित हो गये ॥ २० ॥ उन्हें देखे बिना उन सबके कई दिन बीत गये। तब मेरे मुखसे उद्धवजीके अवरोधका समाचार सुनकर भगवान् प्रद्युम्न हरि त्रिपुरासुरको जीतनेके लिये यात्रा करनेवाले महादेवजीके समान शक्रसखपर विजय पानेके लिये चले। उनके साथ समस्त यादव-बन्धु और सारी सेना थी ॥ २१ ॥ २२ ॥ प्रद्युम्नजी सुवर्णाद्रिकी गुफाके द्वारपर जा पहुँचे। दुन्दुभियोंकी ध्वनिसे मिश्रित वीर योद्धाओंके कोदण्डोंकी

अश्वहेषैर्हस्तिनादैर्विनेदुश्च दिशो दश। सैन्यपादरजोभिश्च युयुधे यादवैः सह ॥२४॥
बभूव तुमुलं युद्धं छादितं व्योममंडलम्। वीक्ष्य सर्वे मेरुदेवा भयं प्रापुर्नृपेश्वर ॥२५॥
अथ शक्रसखः क्रुद्धो रथारूढो महाबलः। अक्षौहिणीभिर्दशभिर्युयुधे यादवैः सह ॥२६॥
बभूव तुमुलं युद्धं देवानां यदुभिः सह। प्राकृतप्रलये राजन्नुदधीनां ध्वनिर्यथा ॥२७॥
शस्त्रांधकारे संजाते सारणो रोहिणीसुतः। बलदेवानुजो वीरो दंशितो गजसंस्थितः ॥२८॥
सर्वेषामग्रतः प्राप्तो धनुष्टंकारयन्मुहुः। तद्बलं पोथयामास बाणैः कोदंडनिर्गतैः ॥२९॥
श्रीसारणस्य बाणौघैः केचिद्वीरा द्विधाकृताः। तिर्यग्भूता रथा युद्धे निपेतुः पादपा इव ॥३०॥
गजानां भिन्नकुंभानां मौक्तिकान्यपतंस्तदा। बाणान्धकारे संजाते रात्रौ तारागणा इव ॥३१॥
संछिद्यमानैरश्वैश्च वीरैर्नागै रणांगणम्। बभौ भूतगणैर्युक्तं यथाऽऽक्रीडमुमापतेः ॥३२॥
सारणस्य बलं दृष्ट्वा सर्वे देवाः पलायिताः। संछिन्नभिन्नकोदंडा अभितः शीर्णकंचुकाः ॥३३॥
पलायमानं स्वबलं दृष्ट्वा शक्रसखो बली। धनुष्टंकारयन्प्राप्तो जगर्ज घनवद्बलात् ॥३४॥
अर्जुनं दशभिर्बाणैर्विंशत्या भानुमेव च। सांबं बाणशतैर्युद्धेऽनिरुद्धं च शतैः शरैः ॥३५॥
द्विशतैश्च गदं वीरं सहस्रैः सारणं तथा। तताड समरे वीरो धन्वी शक्रसखो बली ॥३६॥
तद्बाणैः सरथा वीरा बभ्रमुर्घटिकाद्वयम्। चक्रवत्कुंभकारस्य तदद्भुतमिवाभवत् ॥३७॥
हयाश्च पंचतां प्राप्ताः श्लथद्बंधा रथा भ्रमात्। रथिनः खिन्नमनसः सूता मूर्च्छां गता मृधे ॥३८॥
स चान्यं रथमारुह्य धनुष्टंकारयन्बलात्। धनुः शक्रसखस्यापि चिच्छेद दशभिः शरैः ॥३९॥

द्वाभ्यां सूतं शतैरश्वान्सहस्रैस्तद्रथं शरैः । चूर्णयामास राजेंद्र सांबो जांबवतीसुतः ॥४०॥
स च्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः । नागेंद्रं मत्तमारुह्य शूलं जग्राह रोषतः ॥४१॥
विव्याध सांबं शूलेन हृदि शक्रसखो बली । तेन घातेन सांबोऽपि किंचिद्व्याकुलमानसः ॥४२॥
योजने पादविक्षेपं कज्जलाद्रिसमप्रभम् । चतुर्योजनमुच्चांगं योजनार्द्धं रदद्वयम् ॥४३॥
महच्चीत्कारकुर्वंतं त्रिशुंडादंडमंडलैः । शृंखले पातयंतं तं चतुर्योजनविस्तृतैः ॥४४॥
गजान् वीरान्मर्दयंतं रथानश्वानितस्ततः । दंतैः पादैर्घातयंतं कालांतकयमोपमम् ॥४५॥
आगतं वीक्ष्य नागेंद्रं शत्रुणा नोदितं परम् । विचरंतं मृधाद्भीता यदुसेना विदुद्रुवुः ॥४६॥
गदो गदां समादाय बलदेवानुजो बली । जघान तद्गजं कुंभे गदया वज्रकल्पया ॥४७॥
तद्घातभिन्नकुंभो हि गजो युद्धे पपात ह । छिन्नपक्षो यथा शैलस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥४८॥
अथ शक्रसखो यावद्गदां जग्राह रोषतः । तावत्तताड दगया गदः शक्रसखं हृदि ॥४९॥
तेन घातेन सगजो पतितो मूर्छितोऽभवत् । पुनरुत्थाय स गदं भुजाभ्यां जगृहे मृधे ॥५०॥
गदशक्रसखौ युद्धे युयुधाते परस्परम् । रंगे मल्लाविव वने वन्यौ तौ वारणाविव ॥५१॥

भुजाभ्यां तं समुत्थाप्य बलदेवानुजो बली ।
चिक्षेप तत्पुरे वीरं बलात्तं शतयोजनम् ॥५२॥
तदा जयजयारावो यदुसैन्ये बभूव ह ।
जयदुंदुभयो नेदुः प्रशशंसुर्मुहुर्जनाः ॥५३॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसम्वादे शक्रसखयुद्धं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥



डाला ॥ ३९ ॥ दो बाणोंसे उसके सारथिको और सौ बाणोंसे घोड़ोंको यमलोक भेजकर सहस्र बाणोंद्वारा उसके रथको भी चूर-चूर कर दिया ॥ ४० ॥ धनुषके कट जाने तथा घोड़ों और सारथिके मारे जानेपर रथहीन शक्रसखने एक मतवाले गजराजपर आरूढ़ हो रोषपूर्वक शूल हाथमें ले लिया ॥ ४१ ॥ बलवान् शक्रसखने उस शूलसे साम्बकी छातीपर चोट की। उस आघातसे साम्बका मन कुछ व्याकुल हो गया ॥ ४२ ॥ शक्रसखका हाथी एक-एक योजनका डग भरता था। उसका रंग कज्जलगिरिके समान काला था। उसकी ऊँचाई चार योजनकी थी और उसके दो दाँत आधे योजनतक आगे निकले हुए थे ॥ ४३ ॥ वह बड़े जोरसे चिग्घाड़ता था। उसके चार-चार योजन विस्तृत तीन सूँड़ें थीं। उनके द्वारा वह साँकलोंको गिराता, हाथियों और वीरोंको कुचलता तथा रथों और घोड़ोंको अपने दाँतों और पैरोंसे विनष्ट करता हुआ काल, अन्तक और यमके समान दिखायी देता था ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ शत्रुसे प्रेरित उस महान् गजराजको आते और विचरते देख यादव-सैनिक भयभीत हो युद्धसे भाग चले ॥ ४६ ॥ उस समय बलदेवजीके छोटे भाई बलवान् गदने गदा लेकर उस वज्र-सरीखी गदासे उक्त गजराजके कुम्भस्थलपर बड़े जोरसे आघात किया। उस आघातसे उसका कुम्भस्थल फट गया और वह हाथी युद्धस्थलमें पंख कटे हुए पर्वतके समान ढह गया। वह अद्भुत-सी बात हुई ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ तदनन्तर शक्रसखने ज्यों ही रोषपूर्वक गदा उठानेकी चेष्टा की, त्यों ही गदने अपनी गदासे उसकी छातीमें चोट पहुँचायी ॥ ४९ ॥ उस आघातसे वह हाथीसहित गिर पड़ा और मूर्च्छित हो गया। फिर उठकर उसने युद्धस्थलमें दोनों हाथोंसे गदा उठायी ॥५०॥ अब गद और शक्रसख दोनों इस प्रकार परस्पर गदायुद्ध करने लगे, जैसे रङ्गशालामें दो मल्ल और जंगलमें दो हाथी लड़ रहे हों ॥ ५१ ॥ तब बलदेवके छोटे भाई बलवान् गदने अपनी दोनों भुजाओंसे उस वीरको उठा लिया और बलपूर्वक उसे सौ योजन ऊपर उसके नगरमें फेंक दिया ॥ ५२ ॥ उस समय यादव-सेनामें जय-जयकार होने लगी, विजयकी दुन्दुभियाँ बज उठीं और सब लोग बारंबार गदकी प्रशंसा करने लगे ॥ ५३ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायां सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

अथ अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

(प्रद्युम्नका लीलावतीपुरीके स्वयंवरमें सुन्दरीको प्राप्त करके द्वारकापुरीमें आगमन)

नारद उवाच

स्वपुरे पतितो मूर्छां गतः शक्रसखो भृशम् । उत्तस्थौ च क्षणं तत्र किंचिद्व्याकुलमानसः ॥ १ ॥
अथ कार्ष्णिं परं ब्रह्म ज्ञात्वा शक्रसखस्त्वरन् । स्वसकाशाद्बलं नीत्वा यदूनां च बलं ययौ ॥ २ ॥
ऐरावतकुलेभाश्च त्रिशुंडा दंडदंतिनः । चतुर्दंताः श्वेतवर्णाः सहस्राणि मदच्युतः ॥ ३ ॥
हेमाद्रिप्रभवा नागा योजनद्वयविग्रहाः । कोटिशः पर्वताकारा उन्मत्ता दिग्गजा इव ॥ ४ ॥
दिव्यास्या दिव्यगतयः कोटिशः कोटिशो नृप । शतार्बुदा रथा दिव्याः शातकौंभमयाः पराः ॥ ५ ॥
अयुतानि विमानानां योजनद्वयशालिनाम् । नियुतं कामधेनूनां पारिजातसहस्रकम् ॥ ६ ॥
करिदन्तखचित्स्तंभहेमरत्नखचितपदाः । मुक्तास्तडागसंवृद्धा गुणयंत्रस्फुरत्प्रभाः ॥ ७ ॥
मल्लिकामकरन्दार्द्राः शिरीष कुसुमाकुलाः । पयःफेननिभाः शय्याः कोटिशः सोपबर्हणाः ॥ ८ ॥
वितानानि विचित्राणि भित्तिवस्त्राणि कोटिशः । आसनानि मृदुस्पर्शचित्रवर्णानि सर्वशः ॥ ९ ॥
दीर्घाणि चोपबर्हाणि विश्वकर्मकृतानि च । मुक्तास्तबकहेमाद्यैः खचितानि सहस्रशः ॥१०॥
सहस्रशो जवनिकाः शिबिकाश्चैव कोटिशः । छत्राणां चामराणां च दिव्यसिंहासनैः सह ॥११॥
व्यजनानां तथा कोटी राज्यश्रीभूषणानि च । पीयूषाणां द्रोणकोटिः सुधर्मा च सभा तथा ॥१२॥
एवं च सर्वतोभद्रपद्मानीति सहस्रकम् । हीरकाणां च हरितां मुक्तानां च तथैव हि ॥१३॥
गोमेदानां कोटिभारा नीलकानां तथैव च । आदित्यचंद्रकांतीनां वैदूर्याणां सहस्रशः ॥१४॥
स्यमन्तकमणीनां च कोटिभाराः समागताः । तथा वै पद्मरागाणां भारा विद्ध्यर्बुदं नृप ॥१५॥

नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! अपने नगरमें गिरकर शक्रसख अत्यन्त मूर्च्छित हो गया। फिर उस मूर्च्छासे वह उठा। उठनेपर भी एक क्षणतक उसे बड़ी घबराहट रही ॥ १ ॥ तदनन्तर श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नको परब्रह्म जानकर शक्रसख बड़ी उतावलीके साथ अपने पाससे भेंट-सामग्री लेकर यादव-सेनाके समीप गया ॥ २ ॥ ऐरावतकुलमें उत्पन्न हुए तीन सूँड़ और चार दाँतवाले श्वेत रंगके एक हजार मदवर्षी हाथी, सुवर्णगिरिपर उत्पन्न दो योजन विस्तृत शरीरवाले तथा दिग्गजोंके समान उन्मत्त और पर्वताकार एक करोड़ हाथी, जिनके मुख दिव्य थे और जिनकी गति भी दिव्य थी, करोड़ोंकी संख्यामें उपस्थित किये गये। हे राजन् ! इन सबके साथ सोनेके बने हुए उत्तम दिव्य रथ भी थे, जिनकी संख्या सौ अरब थी ॥३-५॥ दस हजार विमान भेंटके लिये लाये गये, जो दो-दो योजन विस्तारसे सुशोभित थे। दस लाख कामधेनु गौएँ और एक हजार पारिजात वृक्ष प्रस्तुत किये गये ॥ ६ ॥ तड़ागोंमें परिपुष्ट हुए सीपके मोती, जो यन्त्रपर चढ़ाकर चमकाये गये थे तथा चमेलीके इत्रसे आर्द्र, शिरीष-कुसुमोंसे सज्जित तथा दूधके फेनकी तरह सफेद करोड़ों शय्याएँ लायी गयीं, जिनपर सुन्दर तकिये भी रखे गये थे ॥ ७ ॥ ८ ॥ हाथीके दाँतकी बनी हुई उनकी पाटियां रत्नोंसे जटित थीं और उनके पायोंमें भी सुवर्ण तथा रत्न जड़े गये थे। विचित्र वितान (चँदोवे) और दीवारोंपर लगाये जानेवाले वस्त्र करोड़ोंकी संख्यामें भेंट किये गये। छूनेमें कोमल एवं चितकबरे आसन तथा विश्वकर्माद्वारा रचित बड़े-बड़े तकिये दिये गये, जो मोतियोंके गुच्छों और सुवर्णरत्न आदिके द्वारा खचित थे। वे सब सहस्रोंकी संख्यामें थे ॥ ९ ॥ १० ॥ हजारों परदे, करोड़ों पालकियाँ, छत्र, चँवर और दिव्य सिंहासनोंके साथ करोड़ों व्यजन, जो राजलक्ष्मीके भूषण थे, प्रस्तुत किये गये ॥ ११ ॥ कोटि द्रोण अमृत, सुधर्मा सभा, सर्वतोभद्र मण्डल, सहस्रदल कमल, हीरे, पन्ने और मोती दिये गये। कोटि भार गोमेद और नीलम दिये गये, सहस्रों भार सूर्यकान्त, चन्द्रकान्त और वैदूर्य मणियोंके थे ॥ १२-१४ ॥ कोटि भार स्यमन्तक मणियोंके लाये गये थे। हे नरेश्वर ! पद्मराग मणिके भारोंकी संख्या एक अरब थी ॥१५॥

जांबूनदसुवर्णानां हाटकानां तथैव च । सुवर्णाद्रिसुवर्णानां कोटिभाराश्च कोटिशः ॥१६॥
राज्यं नवनिधीन्सर्वान्देवानां मैथिलेश्वर । अष्टानां लोकपालानामाधिपत्याधिरक्षकः ॥१७॥
नीत्वोद्धवं शक्रसखो दत्त्वैवं बलिमद्भुतम् । कौशल्यहेतवे कार्ष्णिं प्रणनाम कृतांजलिः ॥१८॥
तस्मै तुष्टः शंबरारिः प्रददौ रत्नमालिकाम् । संस्थाप्य राज्ये तं राजन्नेषा हि प्रकृतिः सताम् १९॥
इत्थं शक्रसखं जित्वा प्रद्युम्नाय बलिं ददौ । शिबिराणां समूहोऽभूदरुणोदानदीमनु ॥२०॥
महाधनखचिद्भिश्च वितानैः शतयोजनम् । पतत्पताकैर्दिव्याभैर्भून्यस्तविजयध्वजैः ॥२१॥
विरेजे शिबिरव्यूहो लहरीभिः पयोदधिः । आकाशादागतं तत्र गजारूढं पुरन्दरम् ॥२२॥
ससैन्यं सहसा राजन्दुंदुभिध्वनिसंयुतम् । संवीक्ष्य वेगतो वीरा जगृहुः शस्त्रसंहतिम् ॥२३॥
पुनरिंद्रं च तं ज्ञात्वा बभूवुर्हर्षिता नृपाः । श्रीप्रद्युम्नं सभामध्ये कथयन्मघवा तदा ॥२४॥
शृणु राजन्महाबाहो त्वं परावरवित्तमः । लीलावती नाम पुरी शुभा हेमाद्रिसानुषु ॥२५॥
विद्याधरेशः सुकृती तत्र राज्यं करोति हि । तत्कन्या सुंदरीनामा शतचन्द्रनिभा शुभा ॥२६॥
आगता देवताः सर्वास्तस्या राजन्स्वयंवरे । लोकपालास्तथा सर्वे संप्राप्ता दिव्यविग्रहाः ॥२७॥
यं दृष्ट्वा मूर्च्छिताऽहं स्यां स मे भर्ता भविष्यति । गिरेत्येवं प्रजल्पंती सुंदरं वरमिच्छती ॥२८॥
तत्रापि गच्छ सहसा भ्रातृभिः सह कौतुके । स्वयंवरं पश्य वरं देवलोकैश्च मण्डितम् ॥२९॥

श्रीनारद उवाच

तच्छ्रुत्वा भगवान्कार्ष्णिर्यादवैर्भ्रातृभिः सह । पुरन्दरेण सहसा पुरीं लीलावतीं ययौ ॥३०॥
विशालाजिरसंयुक्ते खचिद्रत्नमनोहरे । चन्दनागुरुकस्तूरीकुंकुमद्रवचर्चिते ॥३१॥

जाम्बूनद सुवर्ण, हाटक सुवर्ण तथा सुवर्णगिरिसे प्राप्त सुवर्णोंके भी कोटि-कोटि भार प्रस्तुत किये गये ॥१६॥ हे मैथिलेश्वर ! आठ लोकपालोंके आधिपत्यकी रक्षा करनेवाला शक्रसख अपना राज्य तथा देवताओंकी सम्पूर्ण निधियोंको भेंटके लिये लेकर उद्धवजीके साथ यादव-सेनाके पास गया और अपनी कुशलताके लिये वह अद्भुत भेंट अर्पित करके उसने प्रद्युम्नको हाथ जोड़कर प्रणाम किया ॥ १७ ॥ १८ ॥ शम्बरशत्रु प्रद्युम्नने संतुष्ट होकर उसे रत्नमाला अर्पित की और उस राज्यपर उसीको पुनः स्थापित कर दिया । हे राजन् ! सत्पुरुषोंका ऐसा ही स्वभाव होता है ॥ १९ ॥ इस प्रकार जिसने प्रद्युम्नको भेंट दी थी, उस शक्रसखको जीतकर वे सेनासहित आगे बढ़े । अब उनके सैनिकोंकी छावनी अरुणोदा नदीके तटपर पड़ी ॥ २० ॥ महामूल्य और रत्नोंसे जटित चँदोवे सौ योजनतक तन गये । वहाँ दिव्य पताकाएँ फहराने लगीं और वहाँकी भूमिपर विजय-ध्वजकी स्थापना हो गयी । उन ध्वजा-पताकाओंके कारण वह शिबिरसमूह उत्ताल तरंगोंसे युक्त महासागरकी भाँति शोभा पाने लगा ॥ २१ ॥ हे राजन् ! उसी समय आकाशसे ऐरावतपर चढ़े हुए देवराज इन्द्र सहसा सेनासहित वहाँ उतर आये । देवताओंकी दुन्दुभियाँ भी उनके साथ-साथ बजती आयीं । यह देख सम्पूर्ण यादववीरोंने बड़े वेगसे अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र उठा लिये ॥ २२ ॥ २३ ॥ देवराज इन्द्रको पहचानकर समस्त नरेश बड़े प्रसन्न हुए । उस समय इन्द्रने भरी सभामें प्रद्युम्नसे कहा—॥ २४ ॥ "हे महाबाहु नरेश ! तुम परावरवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हो, अतः मेरी बात सुनो । सुवर्णगिरिके शिखरोंपर लीलावती नामसे प्रसिद्ध एक सुन्दर पुरी है ॥ २५ ॥ वहाँ विद्याधरोंके राजा सुकृती राज्य करते हैं । उनकी एक सुन्दरी नामवाली कन्या है, जो सौ चन्द्रमाओंके समान रूप-लावण्यसे सुशोभित और परम सुन्दरी है ॥ २६ ॥ हे राजन् ! उसके स्वयंवरमें समस्त लोकपाल और देवता दिव्य रूप धारण करके आये हैं; किन्तु वह राजकन्या कहती है कि 'जिसको देखकर मैं मूर्छित हो जाऊँगी, वही मेरा पति होगा ।' यह बात कहकर वह सुन्दर वर पानेकी इच्छा रखती है ॥ २७ ॥ २८ ॥ तुम उस उत्सवमें भी अपने समस्त भाइयोंके साथ वहाँ चलो और देववृन्दसे मण्डित उस सुन्दर स्वयंवरको देखो" ॥ २९ ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! यह सुनकर भगवान् प्रद्युम्न अपने यदुवंशी भाइयोंसहित देवेन्द्रके साथ सहसा

मुक्तायुक्तैस्तोरणैश्च वितानैः सुमहाधनैः । जांबूनदासनैः साक्षादिंद्रलोक इवापरे ॥३२॥
तस्मिन्स्वयंवरे तस्थौ प्रद्युम्नो दिव्य आसने । गिरिशृंगे यथा सिंहः सर्वेषां पश्यतां नृप ॥३३॥
व्रजेशा मुनयस्तत्र देवा रुद्रगणास्तथा । मरुतो स्वयश्चैव वसवो ह्यग्नयोऽश्विनौ ॥३४॥
यमोऽथ वरुणः सोमो धनदः शक्र एव हि । सिद्धा विद्याधराश्चैव गंधर्वाः किन्नरास्तथा ॥३५॥
अन्ये समागताः सर्वे रत्नाभरणभूषिताः । जहुर्वैवाहिकीमाशां प्रद्युम्नं वीक्ष्य मैथिल ॥३६॥

सा सुंदरी तत्र सुरत्नमालया रतिं च रंभां क्षिपतीव निर्गता ।
वाणीं रमां रूपवतीं पुलोमजां विडंबयन्तीव बभौ वरांगना ॥३७॥
यां वीक्ष्य सर्वेषु सदःसु सर्वतो मोहं प्रयातेषु तथैव मैथिल ।
श्रीः सर्वलोकस्य च पश्यतो वरं विचिन्वती सा चपलेव चांबुदम् ॥३८॥
दिव्यांबरं पद्मदलायतेक्षणं प्रद्युम्नवीरं नरलोकसुन्दरम् ।
समेत्य मूर्च्छां समवाप सुन्दरी विद्याधरी सा पुनराप संज्ञाम् ॥३९॥
समुत्थिता सात्वतहर्षविह्वला तस्थौ सुमालां विनिधाय तद्गले ।
विद्याधरेशः सुकृती च सुन्दरीं सुतां ददौ मैथिल शंबरारये ॥४०॥
नदत्सु तूर्येषु तदैव निर्जरा न सेहिरे वीक्ष्य विवाहमंगलम् ।
तं सर्वतः संरुरुधुः स्वयंवरं प्रचण्डमेघा इव भास्करं परम् ॥४१॥
क्रोधावृतांस्तानमरान्धनुर्धरान् मदोद्धतान् वीक्ष्य हरेः स्वयंवरम् ।
श्रीकृष्णदत्तं सशरं धनुः स्वयं वरं गृहीत्वा यदुभिर्जगर्ज ह ॥४२॥

तच्चापमुक्तैर्विशिखैः स्फुरत्प्रभैश्छिन्नायुधा मैथिलशीर्णकंचुकाः ।
विदुद्रुवुस्ते च दिशो दशामरा नीहारमेघा इव सूर्यरश्मिभिः ॥४३॥
प्रद्युम्नो भगवान्साक्षादित्थं जित्वा स्वयंवरम् । विजित्येलावृतं खंडं भारतं गंतुमुद्यतः ॥४४॥
भ्रातृभिर्यदुभिः सैन्यैः सर्वमंत्रिजनैः सह । आययौ भारतं खंडं नादयन् जयदुंदुभीन् ॥४५॥
पश्यन्देशाननेकांश्च जंबूद्वीपजयो बली । आनर्तान्द्वारकान्देशान् प्राप्तोऽभूत्स हरेः सुतः ४६॥
प्रद्युम्नप्रेषितः साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तमः । प्रणनामोग्रसेनं तं सभायां श्रीहरिं बली ॥४७॥
वर्षे वर्षेऽपि यज्जातं जंबुद्वीपजयं तथा । तत्सर्वं हि यथायोग्यं कथयामास चोद्धवः ॥४८॥
श्रीकृष्णबलदेवाभ्यां सर्वैर्वृद्धजनैः सह । प्रद्युम्नं तं समानेतुमुग्रसेनो विनिर्गतः ॥४९॥
गीतवादित्रघोषेण ब्रह्मघोषेण भूयसा । मुक्तावर्षैर्लाजपुष्पैः पाठारवैः सुमङ्गलैः ॥५०॥

वारणेंद्रं पुरस्कृत्य सौवर्णैः कलशैर्नृप ।
गंधर्वैर्वारमुख्याभिः शंखदुन्दुभिवेणुभिः ॥५१॥
गंधाक्षतैर्हेमपात्रैः पुष्पधूपैर्यवांकुरैः ।
उग्रसेनः शंबरारेः संमुखं चाजगाम ह ॥५२॥
खड्गं नीत्वोग्रसेनस्य पुरो धृत्वा कृतांजलिः ।
ननाम कार्ष्णिर्यदुभिर्भ्रातृभिः सह मैथिल ॥५३॥
श्रीकृष्णं सबलं नत्वा सर्वान् वृद्धान्प्रणम्य च ।
गर्गाचार्यं ननामाशु प्रद्युम्नो मीनकेतनः ॥५४॥
संश्लाघ्याभ्यर्च्य विधिवद्ब्राह्मणैर्वेदसूक्तिभिः ।
आरोप्य वारणे कार्ष्णिमुग्रसेनः पुरीं ययौ ॥५५॥

बाणसहित श्रेष्ठ धनुषको हाथमें लेकर यादवोंके साथ सिंहनाद किया ॥ ४२ ॥ हे मिथिलेश्वर ! उनके धनुषसे छूटे हुए चमकीले बाणोंद्वारा देवताओंके अस्त्र-शस्त्र छिन्न-भिन्न हो गये और उनके कवचोंकी धज्जियाँ उड़ गयीं। जैसे सूर्यकी किरणोंसे कुहासेके बादल भाग जाते हैं, उसी प्रकार वे देवता दसों दिशाओंमें भाग खड़े हुए ॥४३॥ इस प्रकार साक्षात् भगवान् प्रद्युम्न स्वयंवर जीत और इलावृतखण्डपर विजय पाकर भारतवर्षको जानेके लिए उद्यत हुए ॥ ४४ ॥ भाइयों, यादवों, सैनिकों तथा समस्त मन्त्रीजनोंके साथ विजय-दुन्दुभि बजवाते हुए वे भारतखण्डमें आये ॥ ४५ ॥ अनेक देशोंको देखते हुए जम्बूद्वीपविजयी बलवान् वीर श्रीकृष्ण-कुमार क्रमशः आनर्तप्रदेशमें और द्वारकाके देशोंमें आये ॥४६॥ प्रद्युम्नके द्वारा पहले ही भेजे गये बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ साक्षात् उद्धवने राजसभामें पहुँचकर राजा उग्रसेनको तथा भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम किया ॥ ४७ ॥ प्रत्येक देशमें क्या-क्या हुआ और जम्बूद्वीपपर किस तरह विजय मिली, वह सारा वृत्तान्त उद्धवजीने यथोचित रूपसे कह सुनाया ॥ ४८ ॥ तब राजा उग्रसेन श्रीकृष्ण-बलदेव एवं सम्पूर्ण वृद्धजनोंके साथ प्रद्युम्नको लानेके लिये निकले। गीतवाद्योंकी ध्वनि तथा वेद-मन्त्रोंके गम्भीर घोषके साथ मोतियों, खीलों और फूलोंकी वर्षापूर्वक मङ्गलपाठ करते हुए लोग उनकी अगवानीके लिये आये ॥ ४९ ॥ हे नरेश्वर ! एक गजराजको आगे करके सोनेके कलश, गन्धर्व, अप्सराएँ, शङ्ख, दुन्दुभि, वेणु, सुगन्ध, अक्षत, सोनेके पात्र, फूल, धूप तथा जौके अङ्कुर साथ लिये राजा उग्रसेन प्रद्युम्नके सम्मुख आये ॥ ५०–५२ ॥ हे मैथिल ! श्रीकृष्णकुमारने यादव-बन्धुओंके साथ खड्ग ले जाकर महाराज उग्रसेनके सामने रख दिया और हाथ जोड़कर प्रणाम किया ॥५३॥ मीन-केतन प्रद्युम्नने श्रीकृष्ण-बलरामको मस्तक झुकाकर समस्त वृद्धजनोंको प्रणाम करनेके अनन्तर शीघ्र जाकर श्रीगर्गाचार्यके चरणोंमें नमस्कार किया ॥५४॥ राजा उग्रसेन भूरि-भूरि प्रशंसा करके, वैदिकमन्त्रों तथा ब्राह्मणोंके सहयोगसे विधिवत् पूजन करके, प्रद्युम्नको हाथीपर बिठाकर

मङ्गलं द्वारकायां च सर्वत्राभूद्गृहे गृहे ।
इत्थं नृप ते कथितं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥५६॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीविश्वजित्खंडे नारदबहुलाश्वसंवादे प्रद्युम्नद्वारकागमनं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

अथ एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

(राजसूय यज्ञमें ऋषियों, ब्राह्मणों, राजाओं, तीर्थों, क्षेत्रों, देवगणों तथा सुहृद्-सम्बन्धियोंका शुभागमन)

बहुलाश्व उवाच

कथं चकार विधिवद्राजसूयाध्वरं नृपः । एतन्मे ब्रूहि विप्रेन्द्र त्वं परावरवित्तमः ॥ १ ॥

श्रीनारद उवाच

अथोग्रसेनो नृपतिः सर्वधर्मभृतां वरः । श्रीकृष्णेन सहायेन क्रतुराजं चकार ह ॥ २ ॥

गर्गाद्यदुकुलाचार्यान्मुहूर्तं बोध्य यत्नतः ।
बंधुभ्यः प्रददौ राजन्सुहृद्भ्योऽपि निमंत्रणम् ॥ ३ ॥
भक्त्या परमयाऽऽहूता ऋषयो मुनयो द्विजाः ।
आजग्मुर्द्वारकां सर्वे पुत्रशिष्यैः समावृताः ॥ ४ ॥
वेदव्यासः शुकः साक्षान्मैत्रेयोऽथ पराशरः ।
पैलः सुमंतुर्दुर्वासा वैशंपायन इत्यपि ॥ ५ ॥
जैमिनिर्भार्गवो रामो दत्तात्रेयोऽसितो मुनिः ।
अंगिरा वामदेवोऽत्रिर्वसिष्ठः कण्व एव च ॥ ६ ॥
विश्वामित्रः शतानन्दो भारद्वाजोऽथ गौतमः ।
कपिलः सनकाद्याश्च विभांडश्च पतञ्जलिः ॥ ७ ॥
द्रोणः कृपः प्राड्विपाकः शांडिल्यो मुनिसत्तमः ।
अन्ये च मुनयो राजन्सशिष्याश्च समागताः ॥ ८ ॥
ब्रह्मा शिवो जंभभेदी देवा रुद्रगणास्तथा ।
आदित्या मरुतः सर्वे वसवो ह्यग्रयोऽश्विनौ ॥ ९ ॥

यमोऽथ वरुणः सोमो धनदो गणनायकः । सिद्धा विद्याधराश्चैव गंधर्वाः किन्नरादयः ॥१०॥
गंधर्वाप्सरसः सर्वा विद्याधर्य्यः समागताः । वेताला दानवा दैत्याः प्रह्लादो बलिना सह ॥११॥
रक्षोभिर्भीषणैः सार्द्धं लंकाधीशो विभीषणः । सर्वैश्च वानरैः सार्द्धं हनुमान् वायुनन्दनः ॥१२॥
ऋक्षैश्च दंष्ट्रिभिः सार्द्धं जांबवानृक्षराड् बली । सर्वैश्च पक्षिभिः सार्द्धं गरुडः पक्षिराड् बली ॥१३॥
सर्वैः सरीसृपैः सार्द्धं वासुकिर्नागराड् बली । गोरूपधारिणी पृथ्वी सर्वाभिः कामधेनुभिः ॥१४॥
सर्वैः शैलैर्मूर्तिमद्भिः सुमेरुश्च हिमाचलः । गुल्मवृक्षलताभिश्च वटः साक्षात्प्रयागराट् ॥१५॥
महानदीभिः सहिता श्रीगंगा यमुना नदी । पारावाराः सप्त तथा रत्नोपायनसंयुताः ॥१६॥
आजग्मुरुग्रसेनस्य राजसूयस्य चाध्वरे । सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा नवारण्या नवोषराः ॥१७॥
चतुर्दशैव गुह्यानि विख्यातानि महीतले । तीर्थराजः प्रयागश्च पुष्करं बद्रिकाश्रमः ॥१८॥
सिद्धाश्रमो विनशनं कुण्डैः सर्वैः सरोवरैः । वनानि दण्डकादीनि सर्वैश्चोपवनैः सह ॥१९॥
क्षेत्रैः समग्रैर्विमलैरेते तत्र समाययुः । श्रीमद्गोवर्द्धनो नाम गिरिराजो व्रजाद्गिरिम् ॥२०॥
वृन्दावनव्रजवनैः सरः कुण्डैः समाययौ । कीर्तिर्यशोमतिः साक्षाद्गोपीभिर्गोपिकेश्वरी ॥२१॥
श्रीराधा शिविकारूढा सखीसंघैश्च कोटिभिः । शतयूथश्च गोपीनां द्वारकां प्रययौ मुदा ॥२२॥

तासां वासो यत्र यत्र गोपीभूमिश्च साऽभवत् ।
तदङ्गराजसंजातं गोपीचन्दनमेव हि ॥२३॥
गोपीचंदनलिप्तांगो नरो नारायणो भवेत् ।
चतुर्वर्णास्तथा सर्वे आजग्मुस्तस्य चाध्वरे ॥२४॥
धृतराष्ट्रो बुद्धिचक्षुः साक्षाद्दुर्योधनः कलिः ।
शाल्वो भीष्मश्च कर्णश्च कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥२५॥

देवगण, आदित्यगण, मरुद्गण, समस्त वसुगण, अग्नि, दोनों अश्विनीकुमार, यम, वरुण, सोम, कुबेर, गणेश, सिद्ध विद्याधर, गन्धर्व तथा किंनर आदिका शुभागमन हुआ ॥ ५–१० ॥ गन्धर्व-सुन्दरियाँ, अप्सराएँ और समस्त विद्याधरियाँ वहाँ आयीं। वेताल, दानव, दैत्य, प्रह्लाद, बलि, भीषण राक्षसोंके साथ लङ्कापति विभीषण तथा समस्त वानरोंके साथ वायुनन्दन हनुमान् पधारे॥ ११ ॥ १२ ॥ ऋक्ष और दाढ़वाले वन्य पशुओंके साथ बलवान् ऋक्षराज जाम्बवान्‌का आगमन हुआ। समस्त पक्षियोंके साथ बलवान् पक्षिराज गरुड़ आये ॥ १३ ॥ सर्पगणोंको साथ लिये बलवान् नागराज वासुकि पधारे। सम्पूर्ण कामधेनुओंके साथ गोरूपधारिणी पृथ्वीका आगमन हुआ ॥ १४ ॥ समस्त मूर्तिमान् पर्वतोंके साथ मेरु और हिमालय पधारे। गुल्मों, वृक्षों और लताओंके साथ प्रयागके वृक्षराज अक्षयवटका शुभागमन हुआ ॥ १५ ॥ महानदियोंके साथ श्रीगङ्गा ओर यमुना नदी आयीं। रत्नोंकी भेंटके साथ सातों समुद्र पधारे ॥ १६ ॥ ये सब-के-सब उग्रसेनके राजसूय यज्ञमें सहर्ष आये। सात सागर, तीन ग्राम, नौ अरण्य, महीतलके नौ ऊसर, विख्यात चौदह गुह्य, तीर्थराज प्रयाग, पुष्कर, बदरिकाश्रम, सिद्धाश्रम, कुण्डों और समस्त सरोवरों-सहित विनशन (कुरुक्षेत्र), समस्त उपवनोंके साथ दण्डक आदि वन—वे सबके-सब समग्र विमल क्षेत्रोंके साथ वहाँ उपस्थित हुए ॥ १७–१९ ॥ व्रजसे श्रीमान् गिरिराज गोवर्धन, वृन्दावन, दूसरे-दूसरे वन, सरोवर तथा कुण्ड पधारे। रानी कीर्तिदा और गोपियोंके साथ गोपिकेश्वरी यशोदा पधारीं ॥ २० ॥ २१ ॥ अपने करोड़ों सखी-समूहोंके साथ शिविकारूढ़ा श्रीराधाका भी शुभागमन हुआ। गोपियोंके सौ यूथ भी द्वारकामें सानन्द पधारे ॥ २२ ॥ जहाँ आजकल गोपी-भूमि है, वहीं उन्हें ठहराया गया। उन्हींके अङ्गरागसे वहाँ गोपीचन्दन प्रकट हुआ। जिसके अङ्गमें गोपीचन्दन लग जाता है, वह मनुष्य नरसे नारायण हो जाता है ॥ २३ ॥ चारों वर्णोंके सभी लोग उस यज्ञमें उपस्थित हुए थे। प्रज्ञाचक्षु धृतराष्ट्र, कलिका अवतार

भीमोऽर्जुनोऽथ नकुलः सहदेवस्तथापरे ।
दमघोषो वृद्धशर्मा जयसेनो महानृपः ॥२६॥
धृष्टकेतुर्भीष्मकश्च नाग्नजित्कौशलेश्वरः ।
बृहत्सेनो धृतिः साक्षान्मैथिलेशः पितामहः ॥२७॥
अन्येऽपि तत्र राजानः सुहृत्संबंधिबांधवाः ।
सहस्त्रीभिस्तथा पौत्रैः पुत्रैराजग्मुरध्वरम् ॥२८॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे नारदबहुलाश्वसंवादे स्वजननिमंत्रणं नामैकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥४९॥

अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

(राजसूय यज्ञका मङ्गलमय उत्सव, देवताओं, ब्राह्मणों तथा अतिथियोंका दान-मानसे सत्कार)

श्रीनारद उवाच

अर्थसिद्धेरिव द्वारे रैवताद्रिसमुद्रयोः ।
मध्ये पिंडारके क्षेत्रे यज्ञारंभो बभूव ह ॥ १ ॥
पञ्चयोजनविस्तीर्णः कुण्डोऽभूत्तस्य चाध्वरे ।
योजनं ब्रह्मकुण्डस्तु गव्यूतिः पञ्च कुण्डकाः ॥ २ ॥
मेखलागर्त्तविस्तारवेदीभिर्निर्मिताः शुभाः ।
सहस्रहस्तमुच्चाङ्गो यज्ञस्तंभो बभौ महान् ॥ ३ ॥

होतारो दश लक्षाणि दश लक्षाणि दीक्षिताः । अध्वर्य्यवः पञ्चलक्षमुद्गातारस्तथाऽपरे ॥ ८ ॥
हस्तिशुण्डासमा धारा भुक्त्वाज्यस्य हुताशनः । अजीर्णं प्राप तद्यज्ञे चित्रं विबुध मैथिल ॥ ९ ॥
केऽपि जीवास्त्रिलोक्यां तु न बभूवुर्बुभुक्षिताः । सर्वे देवास्तु सोमेन ह्यजीर्णत्वमुपागताः ॥१०॥
रुचिमत्या धर्मपत्न्योग्रसेनो यदुराड् बली । अध्वरावभृथस्नानं तीर्थे पिंडारकेऽकरोत् ॥११॥
व्यासाद्यैर्मुनिभिः स्नातो विधिवद्वेदसूक्तिभिः । यथा दक्षिणया यज्ञो रुचिमत्या बभौ नृप ॥१२॥
देवदुन्दुभयो नेदुर्नरदुन्दुभयस्तथा । उग्रसेनोपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे ॥१३॥
गजानां हेमभाराणां नियुतानि चतुर्दश । शतार्बुदं हयानां तु यज्ञांते दक्षिणां पराम् ॥१४॥
कोटिशो नवरत्नानां महाहाराम्बरैः सह । गर्गाचार्याय मुनयो गृहोपस्करसंयुताम् ॥१५॥
उग्रसेनो ददौ राजा यादवेंद्रो महामनाः । गजानां तत्र साहस्रं हयानामयुतं तथा ॥१६॥
विंशद्भारं सुवर्णानां ब्राह्मणे ब्राह्मणे ददौ । मरुत्तस्य महायज्ञे त्यक्तपात्रा यथा द्विजाः ॥१७॥
तथोग्रसेनस्य क्रतौ संतुष्टा हर्षिता गताः । संतुष्टा देवताः सर्वाः प्राप्तभागा दिवं गताः ॥१८॥
भूरिद्रव्या वंदिनश्च जयारावा गृहं गताः । रक्षोदैत्या वानराश्च दंष्ट्रिणः पक्षिणस्तथा ॥१९॥
नागाः संतुष्टमनसः सर्वे स्वं स्वं गृहं ययुः । गावः शैला वृक्षसंघा नद्यस्तीर्थाश्च सिंधवः ॥२०॥

संतुष्टाः प्राप्तभागा ये ते सर्वे स्वं गृहं ययुः ।
राजानो ये समाहूताः पारिबर्हेण भूयसा ॥२१॥
पूजिता दानमानाभ्यां तेऽपि स्वं स्वं गृहं गताः ।
नंदाद्या गोपमुख्या ये श्रीकृष्णेन प्रपूजिताः ॥२२॥

उग्रसेनने क्रतुश्रेष्ठ राजसूय यज्ञकी दीक्षा ली ॥ ७ ॥ हे मैथिल ! उस यज्ञमें दस लाख होता, दस लाख दीक्षित अध्वर्यु और पाँच लाख उद्गाता थे ॥ ८ ॥ अग्निकुण्डमें हाथीकी सूँड़के समान मोटी घृतकी धारा गिरायी जाती थी, जिसे खा-पीकर अग्निदेवता अजीर्ण रोगके शिकार हो गये ॥ ९ ॥ उन दिनों तीनों लोकोंमें कोई भी जीव भूखे नहीं रह गये। सब देवता सोमपान करके अजीर्ण रोगीके रोगी हो गये ॥१०॥ अपनी धर्मपत्नी रुचिमतीके साथ बलवान् यादवराज उग्रसेनने पिण्डारक तीर्थमें यज्ञका अवभृथ-स्नान किया ॥ ११ ॥ वे व्यास आदि मुनीश्वरोंके साथ वेद-मन्त्रोंके द्वारा विधिपूर्वक नहाये। जैसे दक्षिणासे यज्ञकी शोभा होती है, उसी तरह रानी रुचिमतीके साथ राजा उग्रसेनकी शोभा हुई ॥ १२ ॥ देवताओं तथा मनुष्योंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं और देवता उग्रसेनके ऊपर फूल बरसाने लगे ॥ १३ ॥ सोनेके हारसे विभूषित चौदह लाख हाथी उग्रसेनने दान किये। सौ अरब घोड़े उन्होंने यज्ञान्तमें दक्षिणाके रूपमें दिये ॥१४॥ उन्होंने बहुमूल्य हारों और वस्त्रोंके साथ करोड़ों नवरत्न मुनिवर गर्गाचार्यको भेंट किये। साथ ही उन्हें घर-गृहस्थीके उपकरण भी अर्पित किये ॥ १५ ॥ महामनस्वी यादवेन्द्र राजा उग्रसेनने उस यज्ञमें एक हजार हाथी, दस हजार घोड़े और बीस भार सुवर्ण ब्रह्मा बने हुए ब्राह्मणको दिये ॥ १६ ॥ जैसे राजा मरुत्तके यज्ञमें ब्राह्मणलोग दक्षिणासे इतने संतुष्ट हुए थे कि अपने-अपने सुवर्णमय पात्र भी छोड़कर चल दिये थे, उसी प्रकार महाराज उग्रसेनके इस यज्ञमें भी ब्राह्मण संतुष्ट तथा हर्षोत्फुल्ल होकर अपने घर लौटे। अपने-अपने भागको पाकर संतुष्ट हुए सब देवता स्वर्गलोकको चले गये ॥ १७ ॥ १८ ॥ वंदीजनोंको भी बहुत द्रव्य दिया गया, जिससे जय-जयकार करते हुए वे अपने घर गये। राक्षस, दैत्य, वानर, दाढ़वाले पशु तथा पक्षी भी संतुष्ट होकर गये ॥ १९ ॥ समस्त नाग भी संतुष्टचित्त होकर अपने-अपने घर पधारे। गौएँ, पर्वत, वृक्ष-समुदाय, नदियाँ, तीर्थ तथा समुद्र—सबको अपना-अपना भाग प्राप्त हुआ और वे सब संतुष्ट होकर अपने-अपने स्थानको पधारे। जो राजे आमन्त्रित किये गये थे, उन्हें भी बहुत भेंट देकर दान-मानके द्वारा उनकी पूजा की गयी और वे सब संतुष्ट होकर अपने-अपने घर गये। नन्द आदि मुख्य-मुख्य गोपोंका पूजन स्वयं श्रीकृष्णने किया। वे सब लोग

हर्षिताः प्रेमदानाभ्यां तेऽपि सर्वे व्रजं ययुः । एतत्ते कथितं राजन्महायज्ञस्य मण्डलम् ॥२३॥
यत्र श्रीकृष्णचंद्रोऽस्ति तत्र किं सफलं न हि । ये शृण्वंति कथामेतां पठंति सततं नराः ॥२४॥
धर्मश्चार्थश्च कामश्च मोक्षस्तेषां प्रजायते ॥२५॥

पूर्णः परेशः परमेश्वरः प्रभुः पुनातु वो यः पुरुषः पुराणः ।
शृण्वन्ति ये तस्य कथां विचित्रां कुर्वंति तीर्थं स्वकुलं नरास्ते ॥२६॥
छलेन यज्ञस्य हरिः परेश्वरो भारं विदेहेश भुवोऽवतारयत् ।
योऽभूच्चतुर्व्यूहधरो यदोः कुले तस्मै नमोऽनंतगुणाय भूभृते ॥२७॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे नारदबहुलाश्वसंवादे उग्रसेनमहोदये राजसूययज्ञोत्सववर्णनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

मङ्गलमय उत्सवका वर्णन किया । जहाँ साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण हैं, वहाँ कौन-सा कार्य सफल नहीं होगा ? जो मनुष्य सदा इस कथाको पढ़ते और सुनते हैं, उन्हें धर्म अर्थ काम और मोक्ष—चारों पदार्थोंकी प्राप्ति होती है ॥ २३–२५ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण पूर्ण, परेश, परमेश्वर और पुराणपुरुष हैं—वे तुमको पवित्र करें। जो मनुष्य उनकी इस विचित्र कथाको सुनते हैं, वे अपने समस्त कुलको पवित्र कर देते हैं ॥२६॥ हे विदेहराज ! परमेश्वर श्रीहरिने यज्ञके बहाने समस्त भूतलका भार उतार दिया । जो यदुकुलमें चतुर्व्यूहरूप धारण करके प्रकट हुए, उन अनन्त-गुणशाली तथा भुवन-पालक परमेश्वरको नमस्कार है ॥ २७ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

॥ सम्पूर्णोऽयं विश्वजित्खण्डः ॥

* श्रीकृष्णः शरणं मम *

आचार्य-श्रीगर्गमहामुनिविरचिता—

श्रीगर्गसंहिता

'प्रियंवदा'ऽभिधया भाषाटीकयाऽऽटीकिता

(बलभद्रखण्डः ८)

अथ प्रथमोऽध्यायः

(श्रीबलभद्रजीके अवतारका कारण)

बहुलाश्व उवाच

श्रुतं तव मुखाद्ब्रह्मन् मंगलं परमाद्भुतम् । सुधाखंडात्परं मिष्टं खंडं विश्वजितं परम् ॥ १ ॥
परिपूर्णतमस्यापि श्रीकृष्णस्य महात्मनः । षोडशस्त्रीसहस्राणां पुत्रा दशदशाभवन् ॥ २ ॥
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च बभूवुः कोटिशो मुने । रजांसि भूमेर्गणयेन्न कविश्चेद्धरेः कुलम् ॥ ३ ॥
रेवत्यां बलदेवस्य रामस्यापि महात्मनः । पुत्रोदयः कथं नु स्यादेतन्मे ब्रूहि तत्त्वतः ॥ ४ ॥

श्रीनारद उवाच

बाढमुक्तं भगवतः संकर्षणस्याच्युताग्रजस्य बलभद्रस्य रामस्य कामपालस्य कथां सर्वथा तवाग्रे कथयिष्यामि ॥ ५ ॥ अथ कदाचित्प्राड्विपाको नाम मुनींद्रो योगीन्द्रो दुर्योधन-गुरुर्गजाह्वयं नाम पुरमाजगाम ॥ ६ ॥सुयोधनेन संपूजितः परमादरेण सोपचारेण महार्हसिंहासने स्थितोऽभूत् ॥७॥ तं प्रदक्षिणीकृत्य प्रणिपत्य कृतांजलिः पुरः स्थितो मनःसन्देहं स्मृत्वा धार्तराष्ट्र इति होवाच ॥८॥ संकर्षणः साक्षाद्बलभद्रः किं कारणात्कस्माल्लोकात्केन प्रार्थितो भूलोकानाजगाम येनेदं पुरं तिर्यग्भूतमभवत्तस्य मम गुरोर्गदाशिक्षाकरस्याहो तत्प्रभावं नितरां वदतात् ॥ ९ ॥

राजा बहुलाश्वने कहा—हे ब्रह्मन् ! आपके श्रीमुखसे मैंने अमृतकी अपेक्षा भी परम मधुर, मङ्गलमय, परम अद्भुत विश्वजित्खण्डका श्रवण किया ॥ १ ॥ महात्मा श्रीकृष्ण परिपूर्णतम भगवान् हैं, उनकी सोलह हजार पत्नियोंमेंसे प्रत्येकके दस-दस पुत्र हुए ॥ २ ॥ मुनिवर ! उनके फिर करोड़ों पुत्र और पौत्र उत्पन्न हुए। पृथ्वीके रजकण गिने जा सकते हैं, किंतु कोई विद्वान् कवि भी श्रीकृष्णके वंशजोंकी गणना करनेमें समर्थ नहीं है ॥ ३ ॥ महात्मा बलरामजीकी रेवती पत्नी थीं। उनके एक भी पुत्र क्यों नहीं हुआ ? कृपापूर्वक इसका रहस्य बताइये ॥ ४ ॥ श्रीनारदजी कहने लगे—तुम्हारा प्रश्न बहुत सुन्दर है। भगवान् अच्युतके बड़े भाई भगवान् संकर्षण कामपाल हैं। उन बलरामजीकी कथा मैं तुम्हारे सामने भलीभाँति वर्णन करूँगा ॥ ५ ॥ दुर्योधनके गुरु प्राड्विपाक नामक मुनि योगियोंके और मुनियोंके अधीश्वर थे। वे एक दिन हस्तिनापुर पधारे ॥ ६ ॥ दुर्योधनने महान् आदरके साथ उनका विविध उपचारोंके द्वारा सम्यक् प्रकारसे पूजन किया। फिर वे महामूल्यवान् सिंहासनपर विराजित हुए ॥७॥ दुर्योधनने उनकी वन्दना और प्रदक्षिणा की और हाथ जोड़कर उनके सामने बैठ गया। फिर अपने मनके संदेहका स्मरण करके उनसे कहा—॥ ८ ॥ 'भगवान् संकर्षण साक्षात् बलभद्रजीका इस भूमण्डलमें किस कारण और किनकी प्रार्थनासे शुभागमन हुआ ? उन्होंने मेरे नगरको उलटकर टेढ़ा कर दिया था। वे मेरे गुरु हैं। मुझको उन्होंने ही गदायुद्ध सिखलाया था। आप

प्राड्विपाक उवाच

युवराज कुरूद्वह यदुवरस्य प्रभावं शृणु यच्छ्रवणे पापहानिः परं भूयात् ॥ १० ॥ अस्मिन्द्वापरांते नृपव्याजदैत्यानीककोटिभिर्भूरिभराक्रान्ता भूर्गौर्भूत्वा स्वयंभुवं शरणं जगाम ॥११॥ तदुपचर्य सुरश्रेष्ठः सर्वसुरगणैः समूढो वैकुण्ठनाथं पुरस्कृत्य श्रीवामनवामपादांगुष्ठनखनिर्भिन्नोर्ध्वांडकटाहविवरमार्गेण बहिर्निर्गत्य कोटिशोंडनिचयं ब्रह्मद्रवे संप्रेक्षन् विरजातीरं प्राप्तवान् ॥ १२ ॥ अथाग्रेऽसंख्यकोटिमार्तंडज्योतिषां मण्डलमवेक्ष्य धाता नत्वा ध्यात्वा तत्रानंतं सहस्रवदनं संकर्षणं गुणलक्षणलक्षितं देवैः सह ददर्श ॥१३॥ तद्भोगकुण्डलीभूतोत्संगेवृन्दारण्यकालिंदीगोवर्द्धनाद्रिकुञ्जनिकुञ्जलतातरुपुञ्जगोपालगोपीगोकुलसंकुलं ललितं गोलोकं सर्वलोकनमस्कृतं समेत्य तत्र निजकुंजे निजाज्ञां नीत्वांतःप्राप्य साक्षात्परिपूर्णतमं स्वयं श्रीकृष्णचंद्रमसंख्यब्रह्मांडपतिं श्रीराधापतिं श्यामलच्छविं पीतांबरवनमालावंशीधरं क्वणत्कनकनूपुरकिंकिणीकटकांगदहारस्फुरत्कौस्तुभांगुलीयकैः सर्वतः परिस्फुरत्कोटिबालमार्तंडमण्डलं किरीटकुण्डलमण्डितगंडस्थलमलकालिभिर्विभ्राजमानमुखारविंदं नमस्कृत्य विधिः सर्वैः सर्वं भूभारवृत्तांतं कथयांबभूव ॥ १४ ॥ तेषां विज्ञप्तिं विज्ञाय भूमिभारहरणार्थं भगवान्स्वजनान् सर्वदेवान् यथातथमाज्ञां दत्त्वाऽनंतं सहस्रवदनमिति होवाच ॥१५॥ अङ्ग पुरा त्वमपि वसुदेवस्य देवक्यां भूत्वा रोहिण्युदरादाविर्भव पश्चाद्देवक्याः पुत्रतामहं प्राप्स्यामि ॥१६॥

इति श्रीगर्गसंहितायां बलभद्रखण्डे दुर्योधनप्राड्विपाकसम्वादे बलदेवावतारकारणं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

(बलरामजीके अवतारका उपक्रम)

प्राड्विपाक उवाच

इत्युक्तः सहस्रवदनो गंतुमभ्युदितः स्वसभायां स्थितोऽभूत् । तदैव सिद्धचारणगन्धर्वाः सर्वतस्तं नतकंधरा बभूवुः ॥ १ ॥ अथ सुमतिः सारथिर्दिव्यं रथं तालांकं साश्वं समानीय सम्मुखं स्थितोऽभूत् ॥ २ ॥ परसैन्यविदारणं मुसलं दैत्यदमनं हलं ते तूर्णं पुरस्तादुपतस्थतुः ब्रह्ममयं नाम वर्म चोपतस्थे ॥३॥ अथ तत्र श्रीबलभद्रसभायां सर्वेषां पश्यतां रमावैकुण्ठात्समागतः पाणिनिपतंजल्यादिभिर्मुनिभिः स्तूयमानः सहस्रफणमौलिविराजमानः सिद्धचारणचामरसंसेव्यमानः शेषस्तमनंतं संकर्षणं स्तुत्वा तद्विग्रहे संलीनोऽभूत् । ४ ॥ अथाजितवैकुण्ठात्समागतोऽजैकपादहिर्बुध्न्यबहुरूपमहदादिभिः संवेष्टितो घोरैः प्रेतविनायकैः संवेष्टितः शेषः सहस्रवदनः समागत्य स सभायामनंतं स्तुत्वा तस्मिन् संलीनोऽभूत् ॥ ५ ॥ अथ श्वेतद्वीपात्समागतः कुमुदकुमुदाक्षादिभिः पार्षदप्रवरैः संसेव्यमानः सहस्रफणमौलिविराजमानः सिताचलाभो नीलांबरो नीलकुंतलाभो भीमाभः सर्वेषां पश्यतामनंतविग्रहे सोऽपि संलीनोऽभूत् ॥ ६ ॥ अथ तदैवेलावृतखण्डात्समागतस्त्रीगणार्बुदसहस्रैर्भवानीनाथैः समावृतः शेषः सहस्रवदनमौलिमण्डलमण्डितः प्रस्फुरत्किरीटकटकांगदः सभामेत्यानंतविग्रहे संप्रलीनोऽभूत् ॥ ७ ॥ अथ पातालस्याधस्ताद्द्वात्रिंशद्योजनसहस्रांतरात्समागतो

अनन्तसे वे यों कहने लगे—॥ १५ ॥ 'हे अनन्त ! तुम पहले वसुदेवजीकी पत्नी देवकीके गर्भमें जाकर फिर रोहिणीके उदरसे प्रकट होओ । तदनन्तर मैं देवकीके पुत्रके रूपमें आविर्भूत होऊँगा' ॥ १६ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां बलभद्रखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

प्राड्विपाक मुनिने कहा—इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके कहनेपर हजार मुखवाले अनन्त जानेके लिये तैयार होकर अपनी सभामें जाकर विराजित हुए । उसी समय सिद्ध, चारण और गन्धर्वोंने आकर अत्यन्त विनीत भावसे सिर झुकाकर उन्हें नमस्कार किया ॥ १ ॥ इसके बाद तालके चिह्नसे सुशोभित ध्वजावाले दिव्य रथमें घोड़े जोतकर सुमति नामक सारथि उनके सम्मुख उपस्थित हुआ ॥ २ ॥ शत्रुकी सेनाका विदारण करनेवाला 'मुसल', दैत्योंका कचूमर निकालनेवाला 'हल' और ब्रह्ममय नामक 'कवच' भी उनके सामने आकर उपस्थित हो गया ॥ ३ ॥ तदनन्तर वहाँ सबके देखते-देखते बलभद्रजीकी सभामें श्रीशेषजी रमावैकुण्ठधामसे पधारे । उनके एक सहस्र फनोंपर मुकुट सुशोभित थे । सिद्ध, चारणगण तथा पाणिनि और पतञ्जलि आदि मुनि उनकी स्तुति कर रहे थे । ऐसे शेषजी आये और स्तुति करके संकर्षणके श्रीविग्रहमें विलीन हो गये ॥ ४ ॥ उसके बाद अजितवैकुण्ठसे सहस्रवदन शेषजीका वहाँ शुभागमन हुआ । वे अजैकपाद्, अहिर्बुध्न्य, बहुरूप, महद् आदि रुद्रोंसे घिरे हुए थे । भयंकर प्रेत और विनायक आदि उनके चारों ओर फैले थे । बलरामकी सभामें आकर शेषनागने उनका स्तवन किया और स्तवन करनेके पश्चात् वे उन्हींके शरीरमें विलीन हो गये ॥ ५ ॥ तदनन्तर श्वेतद्वीपसे कुमुद और कुमुदाक्ष आदि प्रधान पार्षदोंके द्वारा सेवित, हजार फनोंके ऊपर विराजमान मुकुटोंसे सुशोभित, नीलाम्बरधारी, श्वेतपर्वतके समान प्रभावाले, नील कुन्तलकी कान्तिसे मण्डित, भयंकर रूपवाले शेषजी पधारे और वे भी सबके देखते-देखते अनन्तके देहमें विलीन हो गये ॥ ६ ॥ फिर उसी समय इलावृतवर्षसे शेषजी आये । भगवती पार्वतीकी दासी करोड़ों स्त्रियोंके यूथ उनकी सेवा कर रहे थे । मुकुट-मण्डित हजार मुखोंवाले शेषजी चमचमाते हुए किरीट, कुण्डल और बाजूबंदसे सुशोभित थे । सभामें आकर वे भी भगवान् अनन्तके श्रीविग्रहमें प्रवेश कर गये । तदनन्तर पातालके बत्तीस हजार योजन नीचेसे शेषजी आये । वे हजार मुखवाले शेषजी 'भगवान्की तामसी' कलासे सम्पन्न थे । उन्होंने अनन्त सूर्योंके समान प्रकाशमान किरीट धारण कर रक्खा था । व्यास, पराशर, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, नारद, सांख्यायन, पुलस्त्य, बृहस्पति और मैत्रेय आदि महर्षियोंकी संनिधिसे

भगवतस्तामसीकलः साक्षात्सहस्रवदनकिरीटमार्तंडमण्डलमण्डितो वेदव्यासपराशरसनकसनन्दन-सनातनसनत्कुमारनारदसांख्यायनपुलस्त्यबृहस्पतिमैत्रेयादिमहर्षिभिः संशोभितो वासुकिमहाशंख-श्वेतधनंजयधृतराष्ट्रकुहककालियतक्षककंबलाश्वतरदेवदत्तादिभिर्नागेंद्रैश्चामरपाणिभिः संसेव्यमानो मृगमदागरुकुंकुमचंदनपङ्कावलिप्यमानाभिर्नागकन्याभिः सिद्धचारणगंधर्वविद्याधरगणैरुपगीयमानो हाटकेश्वरत्रिपुरबलकालकेयकलिनिवातकवचैरनुयायिभिः पुरःसरै रुद्रैकादशव्यूहैर्नाभिकामधेनुवरुणैः पश्चात्प्रयायिभिर्वीणावेणुमृदंगतालदुन्दुभिध्वनिशब्दायमानः फणींद्रो नागेंद्र इव तूर्णगतिर्विराजते यस्यैकफणे चेदं क्षितिमण्डलं सिद्धार्थ इव लक्ष्यते सोऽप्यागत्य महानन्तविग्रहे संलीनोऽभूत् ॥८॥ तच्चित्रं दृष्ट्वा तत्सभापार्षदाः सर्वे तं परिपूर्णतमं ज्ञात्वाऽवनता विस्मिता बभूवुः ॥९॥ अथानंतवदनो महानंतः संकर्षणो भगवान् पार्षदान् सिद्धानुवाच ॥१०॥ अहं भूमिभारहणार्थं भुवि गमिष्यामि तस्याद्यूयं यादवेषु भविष्यथ ॥११॥ भोः प्रबलोद्भटसुमते सारथे भवताऽत्रैव स्थीयतां शोकं मा कुरुतात् यदा युद्धार्थी त्वत्स्मरणं करिष्यामि तदा त्वं दिव्यं तालांकं रथं नीत्वा मत्समीपमागमिष्यसि ॥१२॥ हे हलमुसले यदा यदा युवयोः स्मरणं करिष्यामि तदा तदा मत्पुर आविर्भूते भवतम् ॥१३॥ भो वर्म त्वमपि चाविर्भव । हे मुनयः पाणिन्यादयो हे कोटिशो रुद्रा हे भवानीनाथ हे एकादश रुद्रा हे गन्धर्वा । हे वासुक्यादिनागेन्द्रा हे निवातकवचा हे वरुण हे कामधेनो भूम्यां भरतखंडे यदुकुलेऽवतरंतं मां यूयं सर्वे सर्वदा एत्य मम दर्शनं कुरुत ॥१४॥

प्राड्विपाक उवाच

इत्याज्ञप्ताः सर्वे स्वं स्वं धाम समाजग्मुः तेषु गतेषु नागकन्यायूथान् भगवाननन्तः प्राह-युष्माकमभिप्रायो मया ज्ञातस्तपसा गोपालानां गृहेषु जन्मानि प्राप्य मद्दर्शनं कुरुत ॥१५॥

कदाचित्कलिंदनंदिनीकूले विहारमाधुर्य्यमूले युष्माभिः सह रासमण्डलं करिष्यामि युष्माकं मनोरथः सफलो भविष्यति ॥१६॥ अथ निवातकवचानां राजा कलिः स्वामिपादकृतमस्तकांजलिः प्रदत्त-पुष्पावलिः श्रीभगवन्तं प्रत्युवाच ॥१७॥ अहं किं करिष्यामि मय्याज्ञां कुरु । भगवन् यत्र त्वं गमिष्यसि तत्राप्यहं गमिष्यामि ह वाव त्वद्वियोगेन महान् खेदो भविष्यति सहैव मां नय त्वं भक्तवत्सलोऽसि ॥१८॥ एवं संप्रार्थितो भगवाननन्तः कलिं राजानं स्वभक्तं प्रसन्नः प्रत्युवाच-सुखेन त्वं मत्सहेहागच्छ भरतखण्डे कौरवेन्द्राणां कुले धृतराष्ट्रस्य पुत्रो भूत्वा दुर्योधनो नाम चक्रवर्ती भविष्यसि त्वत्सहायमहं करिष्यामि गदाशिक्षां च दास्यामि ॥१९॥ इत्युक्तः कलिस्तं नमस्कृत्य स्वधाम गतवान् सैष कलिस्त्वं जातोऽसि विष्णुमायया स्वात्मानं न स्मरसि ॥२०॥

इति श्रीगर्गसंहितायां बलभद्रखंडे प्राड्विपाकदुर्योधनसंवादे संकर्षणगमनमंत्रो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

(ज्योतिष्मतीका उपाख्यान)

प्राड्विपाक उवाच

अथागता कोटिशरच्चंद्रमंडलप्रतीकाशा नागलक्ष्मीर्महारथस्या सखी कोटिमंडलमंडिता संकर्षणं महानंतं भर्तारं सभायां प्राह ॥ १ ॥ अहमपि त्वया सहैव भगवन् भुवमागमिष्यामि त्वद्वियोगातुरा प्राणान्न धारयामि ॥२॥ इति बाष्पकंठीं प्रियां संप्रेक्ष्य भगवाननंतः सर्वभक्तदुःख-निवारणो महेंद्रवारण इव भोगवारण इति होवाच ॥ ३ ॥ रंभोरु त्वं रेवतीविग्रहे संलीना भूत्वा भूलोकं भजतान्मा शोकं कुरुतात् ॥ ४ ॥ तच्छ्रुत्वा नागलक्ष्मीः प्रत्युवाच रेवती का कस्य सुता

दर्शन करना ॥ १५ ॥ किसी समय कालिन्दीके तटपर मनोहर रासमण्डलेमें तुम्हारे साथ रास करके मैं तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूँगा ।' ॥ १६ ॥ तदनन्तर निवातककवचोंके राजा कलिने हाथ जोड़कर प्रभुके चरण-कमलोंमें पुष्पाञ्जलि अर्पण की और भगवान्‌के चरणोंमें मस्तक टेककर कहा—॥१७॥ 'हे भगवन् ! मुझे आज्ञा दीजिये, मेरे लिये क्या काम होगा ? आप जहाँ पधारेंगे, वहाँ ही मैं भी चलूँगा । हे पिताजी ! आपके वियोगमें मुझे महान् दुःख होगा; आप भक्तवत्सल हैं, अतएव मुझे साथ ले चलिये ॥ १८ ॥ इस प्रकार प्रार्थना सुनकर भगवान् अनन्तने प्रसन्न होकर अपने भक्त कलिराजसे कहा—'तुम मेरे साथ सुखपूर्वक भारतवर्षमें चलो । तुम वहाँ कौरवकुलमें धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनके नामसे विख्यात चक्रवर्ती राजा बनो । मैं तुम्हारी सहायता करूँगा और तुम्हें गदायुद्ध सिखाऊँगा ।' ॥१९॥ इस प्रकार कहनेपर उन्हें नमस्कार करके राजा कलि अपने स्थानपर चला गया । उसी कलिस्वरूप तुमने दुर्योधनके रूपमें जन्म लिया है । भगवान् विष्णुकी मायासे तुमको अपने स्वरूपकी स्मृति नहीं है ॥ २० ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां बलभद्रखंडे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

प्राड्विपाक मुनिने कहा—तदनन्तर करोड़ों शारदीय चन्द्रमाओंकी कान्तिवाली स्वयं नागलक्ष्मी महान् रथपर सवार होकर वहाँ पधारीं । करोड़ों सखियाँ उनकी शोभा बढ़ा रही थीं । उन्होंने सभामें आकर अपने स्वामी महान् अनन्त भगवान् संकर्षणसे कहा—॥१॥ हे 'भगवन् ! मैं भी आपके साथ हो भूमण्डलपर चलूँगी । आपके वियोगकी व्यथा मुझे इतना व्याकुल कर देगी कि मैं अपने प्राणोंको नहीं रख सकूँगी ।' ॥ १ ॥ २ ॥ नागलक्ष्मीका गला भर आया था । भगवान् अनन्तने, जो समस्त जगत्‌के कारणके भी कारण हैं, भक्तोंका दुःखनिवारण करना ही जिनका स्वभाव है और जिनका श्रीविग्रह ऐरावतके समान वृहद् सर्परूप है, अपनी प्रियाकी यह दशा देखकर कहा—॥ ३ ॥ 'हे रम्भोरु ! तुम शोक मत करो । पृथ्वीपर जाकर रेवतीकी देहमें विलीन हो जाओ । वहाँसे फिर मेरी सेवामें उपस्थित हो जाओगी ।' ॥ ४ ॥ यह सुनकर

तच्छ्रुत्वा भूखंड उवाच

मत्तो बलवान्संकर्षणो भगवान् वर्तते । सोऽयं सदाऽनंतोऽनंतगुणार्णव आदिदेवो वासुदेवः सहस्रवदनो नागेंद्र इव भव्यवपुः कैलास इव शुक्लप्रकाशः कोटिसूर्यप्रतिभासः कोटिकंदर्पहारिलावण्येन विभ्राजमानः कमलपत्राक्षः कमलकर्णिकादिव्यविमलमालानिर्मलपरिलोभितमधुकरनिकरसंगीयमानः सिद्धचारणगंधर्वविद्याधरवरगणैरुपगीयमानः सुरासुरोरगमुनिगणैः संध्यायमानः सर्वोपरि विराजमान आस्ते ॥१५॥ यस्यैकस्मिन्मूर्ध्नि सगिरिसरित्समुद्रवनजीवकोटिमंडितं भूखंडमंडलमहं दृश्ये । यन्नामानुकीर्तनात्त्रिलोक्यां त्रैलोक्यघात्यपि कैवल्यं प्राप्नोति ॥१६॥ एवंप्रभावो भगवान् सर्वतो बलावान्सर्वकारणकारणः सर्वेश्वरो दुरंतवीर्य्यो मूले रसायाः स्थितस्तस्मात्परः कोऽपि नास्ति ॥१७॥

महानंत उवाच

इत्युक्त्वा गते भूखंडे चाक्षुषः कन्या ज्योतिष्मती मम माधुर्यप्रभावं विज्ञाय पित्राज्ञां गृहीत्वा विंध्याचले मत्प्राप्त्यर्थं वर्षाणां लक्षाणि ब्रह्मतपस्तेपे ॥१८॥ ग्रीष्मे पंचाग्नितप्ता वर्षासु सर्वासारधारिणी शिशिर आकंठमग्ना शीतोदके भूत्वा स्थंडिलशायिनी बभूव ॥१९॥

इति श्रीगर्गसंहितायां बलभद्रखंडे ज्योतिष्मत्युपाख्यानं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

(रेवतीका उपाख्यान)

श्रीमहानंत उवाच

अथ ज्योतिष्मतीं शतचंद्रप्रतीकाशां नवयौवनां सुंदरीं तपस्विनीं वीक्ष्य शक्रयमधनदाग्निवरुणसोमसूर्यमंगलबुधबृहस्पतिशुक्रशनयः सर्वे तद्रूपोद्दीपितकामसंमोहित चित्तास्तदाश्रममेत्य

हमसे अधिक बलवान् हैं ।' पर्वत इतना कहकर चले गये । तब राजाने भूमण्डलको बुलाकर कहा—'सच-सच बताओ, तुमसे भी अधिक कोई शक्तिसम्पन्न है या नहीं' ॥ १४ ॥ यह सुनकर भूमण्डलने कहा—'मुझसे अधिक बलवान् भगवान् संकर्षण हैं । वे नित्य अनन्त, अनन्त गुणोंके समुद्र हैं । वे आदिदेव हैं, वासुदेवरूप हैं, उनके हजार मुख हैं, उनका विग्रह गजराजके समान विशाल है, वे कैलासके सदृश उज्ज्वल प्रभाववाले हैं, करोड़ों सूर्योंके समान उनकी ज्योति है । वे सुन्दरतामें करोड़ों कामदेवोंके गर्वको चूर्ण करनेवाले हैं कमलपत्रके समान उनके सुन्दर नेत्र हैं । व दिव्य निर्मल कमल-कर्णिकाओंकी मालासे सुशोभित हैं, जिनके परिमलका पान करनेके लिये भ्रमरोंके यूथ गुंजार करते रहते हैं । सिद्ध, चारण, गन्धर्व और श्रेष्ट विद्याधरोंद्वारा जिनका यशोगान होता रहता है । देवता, दानव, सर्प और मुनिगण जिनका सदा आराधन करते हैं और जो सबसे ऊपर विराजमान हैं ॥ १५ ॥ जिनके एक मस्तकपर पर्वत, नदी, समुद्र, वन और करोड़ों-करोड़ों प्राणियोंसे अलंकृत अखण्ड भूमण्डल दिखायी देता है और तीनों लोकोंमें जिनका नाम कीर्तन करनेसे त्रिलोकीका वध करनेवाला पापी भी कैवल्य-मोक्षको प्राप्त कर लेता है—॥१६॥ ऐसे प्रभावसम्पन्न, समस्त कारणोंके कारण, सबके ईश्वर और सबसे अधिक शक्तिशाली भगवान् संकर्षण हैं । वे रसातलके मूलभागमें विराजमान हैं । उनसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है' ॥ १७ ॥ महानन्तने कहा—इस प्रकार कहकर भूमण्डलके चले जानेपर मेरे माधुर्य और प्रभावको जानकर ज्योतिष्मतीने पिताकी आज्ञा ली और मुझे प्राप्त करनेके लिये विन्ध्याचल पर्वतपर तप करने चली गयी । उसने लाख वर्षोंतक वहाँ तपस्या की ॥ १८ ॥ वह गर्मीके दिनोंमें पञ्चाग्निके बीचमें बैठकर तप करती, वर्षामें निरन्तर जल-धाराको सहन करती और सर्दीके दिनोंमें कण्ठपर्यन्त ठंडे जलमें डूबी रहती थी । वह तपस्याकालमें नीचे जमीनपर ही सोया करती थी ॥ १९ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां बलभद्रखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

तामूचुः ॥१॥ हे सुंदरि रंभोरु धन्याऽसि कस्यार्थं तपः करोषि ते वयस्तपोयोग्यं नास्ति मनोऽभिप्रायं स्वकमस्माकं वदेति तच्छ्रुत्वा ज्योतिष्मत्युवाच भगवाननंतः सहस्रवदनो मम भर्ता भूयादेतदर्थं तपस्तपामीति तद्वचः श्रुत्वा सर्वे जहसुः पृथक् पृथक् तेषां पूर्वमिंद्र इदमाह ॥ २ ॥

इंद्र उवाच

सर्पराजं वरं कर्तुं किं वृथा तपसे शुभे । देवराजं वरय मां स्वतः प्राप्तं शतक्रतुम् ॥ ३ ॥

यम उवाच

यमराजं वरय मां दण्डनेतारमागतम् । सर्वोत्तमा त्वं मत्पत्नी पितृलोके भविष्यसि ॥ ४ ॥

धनद उवाच

राजराजं हि मां विद्धि निधीशं हे वरांगने । त्वं भजाशु विशालाक्षि त्यज संकर्षणे रतिम् ॥ ५ ॥

अग्निरुवाच

सर्वदेवमुखं विद्धि सर्वयज्ञप्रतिष्ठितम् । भज मां त्वं विशालाक्षि विहायान्यत्र वासनाम् ॥ ६ ॥

वरुण उवाच

लोकपालं वरय मां पाशिनं यादसां पतिम् । सप्तानां हि समुद्राणां वैभवं पश्य भामिनि ॥ ७ ॥

सूर्य उवाच

जगच्चक्षुः सदाऽहं वै चंडांशुश्चाक्षुपात्मजे । विहाय पातालगतिं वर मां स्वर्णभूषणम् ॥ ८ ॥

सोम उवाच

द्विजराजश्चौषधीशो नक्षत्रेशः सुधाकरः । कामिनीबलदोऽहं वै भज मां गजगामिनि ॥ ९ ॥

मङ्गल उवाच

इयं मही हि मे माता पिता साक्षादुरुक्रमः । मङ्गलं भज मां भद्रे भूत्वा भूरि भवार्थिनी ॥१०॥

श्रीमहानन्तने कहा—तदनन्तर सैकड़ों चन्द्रमाओंके समान कान्तिवाली, तपस्यामें संलग्न, नवयौवना, सुन्दरी ज्योतिष्मतीपर इन्द्र, यम, कुवेर, अग्नि, वरुण, सूर्य, चन्द्रमा, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनैश्चरकी दृष्टि पड़ी। उसके रूपको देखकर उनके मनमें उसे प्राप्त करनेकी इच्छा उद्दीप्त हो उठी और वे सम्मोहितचित्त हो गये। तब उन्होंने ज्योतिष्मतीके आश्रमपर जाकर कहा—॥१॥ 'हे सुन्दरी! हे रम्भोरु! तुम धन्य हो। तुम किसके लिये तप कर रही हो? तुम्हारी अवस्था अभी तपके योग्य नहीं है। तुम अपने मनका अभिप्राय हमलोगोंके सामने प्रकट करो।' यह सुनकर ज्योतिष्मती बोली—'हजार मुखवाले भगवान् अनन्त मेरे स्वामी हों, मैं इसीलिये तप कर रही हूँ।' ज्योतिष्मतीकी यह बात सुनकर इन्द्रादि देवता हँस पड़े और अलग-अलग अपनी बात कहनेको तैयार हो गये। उनमें सबसे पहले इन्द्र यों बोले॥ २॥ इन्द्रने कहा—सर्पराजको स्वामी बनानेके लिये तुम व्यर्थ ही तप कर रही हो। मैं देवताओंका राजा हूँ। मैंने सौ अश्वमेध यज्ञ किये हैं और मैं स्वयं तुम्हारे सामने उपस्थित हूँ। तुम मुझे वरण कर लो॥ ३॥ यमराज बोले—मैं सारे जगत्के प्राणियोंका दण्डविधान करनेवाला यमराज हूँ। तुम मुझे वरण कर लो और पितृलोकमें मेरी सबसे श्रेष्ठ पत्नी होकर रहो॥ ४॥ कुवेरने कहा—हे वरानने! मैं सम्पूर्ण धनका स्वामी हूँ। तुम मुझे राजाधिराज समझो और संकर्षणके प्रति प्रीति छोड़कर शीघ्र मुझे पतिरूपमें वरण कर लो॥ ५॥ अग्निदेव बोले—हे विशाललोचने! मैं सम्पूर्ण यज्ञोंमें प्रतिष्ठित और समस्त देवताओंका मुख हूँ। अन्य सभीके प्रति वासनाका त्याग करके तुम मुझे भजो॥ ६॥ वरुणने कहा—हे भामिनी! मैं जलचरोंका स्वामी एवं लोकपाल हूँ। मेरे हाथमें सदा पाश रहता है। सातों समुद्रोंका ऐश्वर्य मेरा ही वैभव है। यह समझकर तुम मुझे पतिरूपमें वरण करो॥ ७॥ सूर्यदेवता बोले—हे चाक्षुपात्मजे! मैं जगत्का नेत्र हूँ। मेरी प्रचण्ड किरणें सर्वत्र व्याप्त रहती हैं। अतएव पातालमें रहनेवाले अनन्तका त्याग करके तुम स्वर्गके आभूषणस्वरूप मुझको वरण करो॥ ८॥ चन्द्रमाने कहा—मैं ओषधियोंका अधीश्वर, नक्षत्रोंका राजा, अमृतकी खान, ब्राह्मणश्रेष्ठ और कामिनियोंको बल प्रदान करनेवाला हूँ। हे गजगामिनि! तुम मेरी उपासना करो॥ ९॥ मङ्गल बोले—यह पृथ्वी मेरी माता है और साक्षात् उरुक्रम भगवान् मेरे पिता हैं। मेरा नाम मङ्गल है।

बुध उवाच

बुधोऽहं बुद्धिमान् वीरः कामिनीरसवर्द्धनः। विसृज्य सर्वनाकेशान् रमस्व त्वं मया सह ॥११॥

बृहस्पतिरुवाच

गीष्पतिर्धिषणोऽहं वै सुराचार्यो बृहस्पतिः। साक्षाद्देवगुरुर्लोके भज मां मन्यसे शुभे ॥१२॥

शुक्र उवाच

साक्षाद्दैत्यगुरुः काव्यो भार्गवोऽहं महामते। स्वश्रेयस्तु विचार्य्यैवं भव मद्भामिनी भृशम् ॥१३॥

शनिरुवाच

सर्वेषां बलवान् भद्रे अहं देवोपरि स्थितः। त्यज शोकं वरय मां लोकभस्मकरं दृशा ॥१४॥

महानन्त उवाच

अथ ज्योतिष्मती तेषां वचांसि श्रुत्वाऽरुणनेत्रा स्फुरदधरचलद्भ्रूभंगा प्रोद्यद्रोषाग्निप्रकर्षोच्छलच्छटा मां परं सस्मार परं क्रोधं च चकार ॥१५॥ तेन सखंडं महीमंडलं ब्रह्मांडमपि परं चाब्रह्मलोकान् दृढमेजत्सर्वतो महद्भयं बभूव ॥१६॥ तदैव शक्राद्याः शापभयभीताः प्रकंपिताः कृतबलिपाणयः पादपद्मे परितो निपेतुः पाहि पाहीति जगुस्तैरित्थं शांताऽपि ज्योतिष्मती पृथक् पृथक् तान् शशाप ॥१७॥

ज्योतिष्मत्युवाच

छलयितुमिह मां समागतस्त्वं भव खल पङ्गुरधःसमीक्षणश्च।
कृशतनुरतिकृष्णकुत्सिताभो भव सहसाऽसितमाषतैलभक्षी ॥१८॥
हे शुक्र अक्ष्णा भव काण आशु स्त्रीसंज्ञकस्त्वं भव गीष्पतेऽत्र।
हे सौम्य ते वारदिनं हि शून्यं वदन्ति गच्छन्ति न के कदाचित् ॥१९॥
हे मङ्गल त्वं भव वानराननो निशाकर त्वं भव राजयक्ष्मवान्।
त्वं भग्नदन्तो भव भो दिवाकर पाशिन् रुचिस्ते भवताज्जलंधरी ॥२०॥

हे कल्याणी! संसारके विपुल कल्याणकी कामना करनेवाली तुम मुझे अपना पति बना लो ॥ १० ॥ बुधने कहा—मैं बुद्धिमान्, शूरवीर और कामिनियोंके रसको बढ़ानेवाला बुध हूँ। तुम सब देवताओंका परित्याग करके मेरे साथ आनन्दका अनुभव करो ॥ ११ ॥ बृहस्पति बोले—'मैं देवताओंका आचार्य, बुद्धिमान् और वाणीका स्वामी साक्षात् बृहस्पति हूँ। हे शुभे! यह समझकर तुम मेरी उपासना करो ॥ १२ ॥ शुक्रने कहा—मैं दैत्योंका गुरु, भृगुके वंशमें उत्पन्न साक्षात् कवि हूँ। हे महाप्राज्ञे! तुम अपने कल्याणकी बात सोचकर मेरी भामिनी बन जाओ ॥ १३ ॥ शनि बोले—हे कल्याणी! मैं सबसे अधिक बलवान् हूँ। देवताओंके ऊपर भी मेरा प्रभाव है। अपनी दृष्टिसे सारे संसारको भस्म कर डालनेकी शक्ति मुझमें है। अतएव सारी चिन्ताओंका त्याग करके तुम मुझे पतिरूपमें वरण कर लो ॥ १४ ॥ भगवान् महानन्तने कहा—इन सबकी बात सुनते ही ज्योतिष्मतीके नेत्र लाल हो गये, उनका अधर काँपने लगा और भौंहें टेढ़ी हो गयीं। क्रोधकी आग भड़क उठी। फिर उन्होंने मेरा स्मरण किया और अत्यन्त क्रोधके आवेशमें आ गयीं ॥ १५ ॥ ज्योतिष्मतीके क्रोधसे ब्रह्मलोकसे लेकर पाताल एवं भूमण्डलसहित सारा ब्रह्माण्ड काँप उठा। सब ओर महान् भय छा गया ॥ १६ ॥ यह देखते ही शापके भयसे काँपते हुए इन्द्रादि देवताओंने सब दिशाओंसे पूजनकी सामग्री ली और ज्योतिष्मतीके चरण-कमलोंपर गिरकर वे 'बचाओ! बचाओ!!' चिल्लाने लगे। इन्द्रादि देवताओंके द्वारा इस प्रकार शान्त करनेका प्रयत्न करनेपर भी ज्योतिष्मतीने उन्हें पृथक्-पृथक् शाप दे दिया ॥ १७ ॥ ज्योतिष्मती बोली—शनि! तू दुष्ट है, मुझे छलनेके लिये यहाँ आया है। तू अभी पङ्गु हो जा। तेरी नीची दृष्टि हो जाय। तू अत्यन्त काला-कलूटा और दुबला-पतला हो जा, निन्दनीय काले उड़द खाया कर और काले तिलका तेल पिया कर ॥ १८ ॥ शुक्र! तू अभी एक आँखसे काना हो जा। बृहस्पति! तू स्त्रीभावको प्राप्त हो जा। बुध! तेरा वार (दिन) निष्फल हो जाय। बुधवारको किसीसे कुछ कहने और कहीं यात्रा

त्वं सर्वभक्षो भवतादुपर्बुध मनुष्यधर्मन् हृतपुष्पको भव ।
वैवस्वत त्वं बहुमानभङ्गो भवाशु युद्धे प्रबलेन रक्षसा ॥२१॥
मां हर्तुमागत्य सुराधम स्थितः करोषि निंदां परमात्मनो गिरा ।
तव प्रियां कोऽपि नृपो हरिष्यति करिष्यति स्वर्गसुखं गते त्वयि ॥२२॥
पाशेन बद्धं युधि निर्जितं त्वां बलाद्गृहीत्वा खलु कोऽपि राक्षसः ।
लंकां पुरीमेत्य दिवस्पते वै कारागृहेऽन्धे किल कारयिष्यति ॥२३॥

श्रीमहानन्त उवाच

अथ ह वाव तया शप्तानां देवानां मध्ये कुपितः शक्रोऽपि तां शशाप । कोपकारिणि संकर्षणं वरमपि प्राप्यात्र जन्मनि ह्यन्यत्र वा कदाचित्तव पुत्रोत्सवो माभूत् । एवमुक्त्वा शक्रोऽपि तत्तेजसा धर्षितः सर्वदेवगणैः सह स्वर्गं जगाम । पुनः सा तपस्तेपे ॥२४॥ अथ तत्तपो दृष्ट्वा ब्रह्मा ब्रह्मविद्भिर्ब्राह्मणैर्ब्राह्म्यादिभिः संवृतः सर्वजगत्कारणभूतः स्वभवनाद्धंसयानेनागतवान् ॥२५॥ अंबरे स्थित्वा तामाह हे ज्योतिष्मति चाक्षुषात्मजे त्वत्तपः सफलं जातं तेन सिद्धाऽसि परमहं प्रसन्नोऽस्मि वरं ब्रूहीति ॥२६॥ तच्छ्रुत्वाऽऽकण्ठजलाद्विनिर्गत्य ब्रह्माणं प्रणिपत्य स्तुत्वा कृतांजलिरित्यब्रवीत् । हे भगवन् यदि प्रसन्नोऽसि किलेह संकर्षणो भगवान् सहस्रवदनो मम वरो भूयादिति श्रुत्वा ह वाव विबुधर्षभः प्रत्युवाच ॥२७॥ हे पुत्रि तव मनोरथो दुर्लभोऽस्ति तथापि पूर्णं करिष्याम्यद्यैव वैवस्वतमन्वंतरः प्राप्तोऽस्ति ह्यस्य त्रिनवचतुर्युगविकल्पिते काले सति तत्र वरः संकर्षणो भगवान् भविष्यति ॥२८॥ तच्छ्रुत्वा ज्योतिष्मती ब्रह्माणमाह देवदेव भगवान् महान् कालो वर्तते मम

करनेपर सफलता नहीं मिलेगी ॥१९॥ मङ्गल ! तू बंदरके समान मुखवाला हो जा । चन्द्रमा ! तेरे राजयक्ष्माका रोग हो जाय । सूर्य ! तेरे दाँत टूट जायँ । वरुण ! तू जलंधर रोगका शिकार हो जा ॥ २० ॥ अग्नि ! तू सब कुछ खानेवाला बन जा । कुबेर ! तेरा पुष्पक विमान छिन जाय । यमराज ! बलवान् राक्षस युद्धमें तेरा मान भङ्ग करें और तू शक्तिशाली राक्षसोंसे युद्धमें हार जा ॥ २१ ॥ देवाधम इन्द्र ! तू मुझे हरनेके लिये आया है और अपने मुँहसे तूने परमात्माकी निन्दा की है । स्वर्गमें किसी राजाके द्वारा तेरी पत्नी शची हर ली जायगी, वह स्वर्ग-सुखका भोग करेगा और तू वहाँसे भगा दिया जायगा ॥ २२ ॥ अरे स्वर्गके राजा ! किसी राक्षसके द्वारा युद्धमें तेरी हार होगी । तू पाशमें बाँधा जायगा और वे लङ्कापुरीमें ले जाकर तुझे अन्धकारपूर्ण कारागारमें डाल देंगे ॥ २३ ॥ भगवान् महानन्त बोले—इस प्रकार ज्योतिष्मतीके द्वारा शापको प्राप्तकर देवताओंके बीच इन्द्र कुपित हो गये और इन्द्रने भी ज्योतिष्मतीको शाप देकर कहा—'हे कोपकारिणी ! संकर्षणको पतिके रूपमें प्राप्त करके भी इस जन्म अथवा दूसरे जन्ममें अथवा कभी तुम्हारे घरमें पुत्रोत्सव नहीं होगा ।' इन्द्र ज्योतिष्मतीके तेजसे बड़े तिरस्कृत हो गये थे । उन्होंने इस प्रकार कहकर सारे देवताओंके साथ स्वर्गकी यात्रा की और ज्योतिष्मती फिर तपस्यामें लग गयी ॥ २४ ॥ तदनन्तर सारे जगत्‌के कारणभूत ब्रह्माजीकी दृष्टि ज्योतिष्मतीके तपकी ओर गयी और वे हंसपर सवार होकर ब्रह्मविद् ब्राह्मणों और ब्राह्मी आदि शक्तियोंके साथ अपने भवनसे वहाँ पधारे ॥२५॥ आकाशमें ही स्थित होकर ब्रह्माने उनको सम्बोधन करके कहा—'हे ज्योतिष्मती और चाक्षुष मनुकी पुत्री ! तुम्हारा तप सफल हो गया । इस तपमें तुम सिद्ध हो गयी । मैं तुमपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ । तुम वर माँगो' ॥ २६ ॥ ब्रह्माजीकी बात सुनकर ज्योतिष्मती कण्ठपर्यन्त जलसे बाहर निकली । उसने ब्रह्माजीको प्रणाम किया, उनका स्तवन किया और वह हाथ जोड़कर कहने लगी—'भगवन् ! यदि निश्चय ही आप मुझपर प्रसन्न हैं तो हजार मुखवाले भगवान् संकर्षण मेरे पति हों, मुझे यही वर दीजिये ।' देवश्रेष्ठ ब्रह्माजीने यह सुनकर उत्तरमें कहा—॥२७॥ 'हे पुत्री ! तुम्हारा मनोरथ दुर्लभ है, तथापि मैं उसे पूर्ण करूँगा । आजसे ही वैवस्वत मन्वन्तर प्रारम्भ हुआ है । इसकी सत्ताईस चतुर्युगी बीत जानेपर भगवान् संकर्षण तुम्हारे पति होंगे ।' ॥ २८ ॥ यह सुनकर ज्योतिष्मतीने

मनोरथः शीघ्रं भूयात्त्वं सर्वकार्यं कर्तुं समर्थः न चेत्तुभ्यं शापं दास्यामि यथा देवेभ्यो दत्तः ॥२९॥ इति प्रोक्तो ब्रह्मा शापभीतः क्षणं विचार्य पुनराह—हे राजपुत्रि त्वमानर्तपतेरेव तस्य कुशस्थल्यां पुत्री भव। तस्मिन् जन्मनि त्रिनवचतुर्युगविकल्पितः कालः केनचित्कारणेन क्षणवद्भविष्यति इति तस्यै वरं दत्वा ब्रह्मा तत्रैवांतरधीयत ॥३०॥ अथ साऽप्यानर्तेषु कुशस्थलीपुरे रेवतस्य भार्यायां जन्म लेभे। तत्र ज्योतिष्मती रेवती नाम रूपौदार्य्यगुणमण्डिता नवशरत्कंजनेत्रा विवाहयोग्या बभूव ॥३१॥ तां रेवतः स्नेहेनांतःपुरे सभार्य उवाच कीदृशं वरमिच्छसीति वचः श्रुत्वा सा तदोवाच सर्वेषां बलवान्स मे वरो भूयात् ॥३२॥ इति श्रुत्वा राजा रेवतः सभार्योऽपि सुतां नीत्वा दिव्यं रथमारुह्य बलवन्तं वरं दीर्घायुषं परिप्रष्टुं लोकानुल्लंघ्य ब्रह्मलोकं गतवान् ॥३३॥ तत्र क्षणमा-स्थितोऽभूत्तेन क्षणेन भूलोकेऽद्यैव त्रिनवचतुर्युगविकल्पितः कालो जातः। साऽद्यैव ब्रह्मलोके वर्तते रंभोरु तस्यां त्वं संलीना भूत्वाऽऽवेशावतारिणी द्वारकां प्राप्य रमस्व ॥३४॥

प्राड्विपाक उवाच

इत्थं तद्वाक्यं श्रुत्वा नागलक्ष्मीः संकर्षणं भर्तारमनुज्ञाप्य ब्रह्मलोकमेत्य रेवतीविग्रहे स्वावेशं चकार ॥३५॥ अथ संकर्षणो भगवान् भूरि भूमिभारहरणार्थं लोकनमस्कृताद्गोलोकधामसकाशादवत-तारेदं बलभद्रस्य भगवत आगमनं मया ते कथितं सर्वदुरितापहरणं मंगलायनं युवराज कौरवेंद्र किं भूयः श्रोतुमिच्छसीति ॥३६॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीबलभद्रखंडे ज्योतिष्मत्युपाख्याने रेवत्युपाख्यानं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

ब्रह्माजीसे कहा—'हे देवदेव भगवन्! यह तो बड़ा लंबा समय है। आप सब कुछ करनेमें समर्थ हैं। अतएव मेरा मनोरथ शीघ्र पूर्ण कीजिये। नहीं तो जैसे मैंने देवताओंको शाप दिया है, वैसे ही आपको भी शाप दे दूँगी।' ॥ २९ ॥ ज्योतिष्मतीके इस प्रकार कहनेपर ब्रह्माजी शापके भयसे डर गये और क्षणभर विचार करनेके बाद बोले—'हे राजकुमारी! तुम आनर्त देशके राजा रेवतके यहाँ कन्या बनो। वे राजा कुशस्थलीमें विद्यमान हैं। इससे इसी जन्ममें तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो जायगा। किसी कारणसे सत्ताईस चतुर्युगीका समय एक घड़ीके समान बीत जायगा।' ज्योतिष्मतीको इस प्रकार वर देकर ब्रह्माजी वहीं अन्तर्धान हो गये ॥३०॥ तदनन्तर ज्योतिष्मतीने आनर्त देशमें कुशस्थलीके राजा रेवतकी पत्नीसे जन्म धारण किया। उस समय उसका नाम रेवती रक्खा गया। वह रूप, गुण और उदारतासे सुशोभित, नूतन कमलके समान नेत्रवाली रेवती विवाहके योग्य हो गयी ॥ ३१ ॥ एक दिन राजा रेवत अन्तःपुरमें अपनी भार्याके साथ बैठे थे। उन्होंने स्नेहवश कन्यासे कहा—'तुम कैसा वर चाहती हो, बताओ।' यह सुनकर उसी समय रेवतीने कहा—'जो सबसे बलवान् हों, वे ही मेरे पति हों' ॥ ३२ ॥ यह सुनकर राजा रेवत कन्याको लेकर, अपनी भार्याके साथ दीर्घायु तथा बलवान् वरकी खोजके लिये रथपर सवार हो सभी लोकोंको लाँघते हुए ब्रह्मलोक गये ॥ ३३ ॥ वहाँ घड़ीभर ठहरे। इतनेमें ही पृथ्वीलोकके सत्ताईस चतुर्युगोंका समय पूरा हो गया। महानन्तने नागलक्ष्मी-से कहा—'हे रम्भोरु! वह रेवती अब भी ब्रह्मलोकमें ही है। तुम उसकी देहमें प्रवेश कर जाओ और आवेशा-वतारिणी बनो। तदनन्तर द्वारकामें जाकर मेरे साथ आनन्दका उपभोग करना' ॥ ३४ ॥ प्राड्वि-पाक मुनि बोले—नागलक्ष्मीने महानन्तके इन वचनोंको सुनकर अपने स्वामी भगवान् संकर्षणकी आज्ञा ली और ब्रह्मलोकमें जाकर रेवतीके विग्रहमें प्रविष्ट हो गयी ॥३५॥ हे कौरवेन्द्र दुर्योधन! तदनन्तर भगवान् संकर्षण पृथ्वीका भार हरण करनेके लिये सर्वलोकनमस्कृत गोलोकधामसे पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए। यही भगवान् बलभद्रजीका आगमन-वृत्तान्त है। मैंने यह तुमको सुनाया है। यह समस्त पापोंका नाश करनेवाला और परम मङ्गलमय है। हे युवराज! अब आगे तुम क्या सुनना चाहते हो? ॥ ३६ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां बलभद्रखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

(श्रीबलराम और श्रीकृष्णका जन्म)

दुर्योधन उवाच

मुनींद्राहो अहं धन्योऽस्मि पुरा संकर्षणस्य भक्तोऽस्मि त्वया स्मारितो भगवतो वासुदेवस्य सप्रभावं माहात्म्यं परमाद्भुतं श्रुतमत्रावतारौ भूत्वा भूम्यां रामकृष्णौ पितुः पुरात्कथं व्रजे गतवंतौ व्रजवासिभिर्न ज्ञातौ कथमभूतां च तदुच्यताम् ॥ १ ॥

प्राड्विपाक उवाच

अथैकदा मथुरायां यदुपुर्यामुग्रसेनाग्रजो देवको देवकीं सुतां वसुदेवाय ददावथ वरवध्वोः प्रयाणकाले कंस उग्रसेनात्मजस्तयोः स्यंदनं नोदयामास ॥ २ ॥ तदैव देववाणी कंसमाह । रे यां वहसेऽस्याश्चाष्टमो गर्भो हि त्वां हनिष्यतीति श्रुत्वा स महासुरः कालनेमिसुतः कंसः खड्गपाणिर्भगिनीं हंतुं प्रवृत्तः ॥ ३ ॥ तदैव वसुदेवस्तं बोधयित्वा प्राहैनां मा मारयास्याः पुत्रान्समर्पयिष्ये यतस्ते भयं जातं ममापि । इति श्रुत्वा तद्वाक्यसारवित्कंसस्तौ कारागारे कारयित्वा निश्चिन्तोऽप्यभवत् ॥ ४ ॥ अथ देवक्याः प्रथमं जातं पुत्रं कंसाय वसुदेवः प्रददौ । तं सत्यवादिनं ज्ञात्वा कंसोऽर्भकं न जघान ॥ ५ ॥ अंकानां वामतो गतिस्तथा देवानां तस्मादयं वा शत्रुः सर्वे यादवा देवाः संति तव वधमिच्छंतीति नारदवाक्यात्पुनर्जातं जातमपि निर्जघान ॥ ६ ॥ अथ कंसभयात्पलायितानां यदूनां महान्कष्टो बभूव । अथ सप्तमो गर्भो देवक्या भगवाननंतो ह्यभवत् । तत्तेजः श्रीकृष्णाज्ञया योगमाया देवक्युदरात्संनिकृष्य वसुदेवस्य भार्यायां कंसभयाद्गोकुलस्थितायां रोहिण्यामर्पयितुमाजगाम ॥ ७ ॥ तत्रैते श्लोकाः—

देवक्याः सप्तमे गर्भे हर्षशोकविवर्द्धने। व्रजं प्रणीते रोहिण्यामनंते योगमायया॥
अहो गर्भः क्व विगत इत्यूचुर्माथुरा जनाः॥ ८॥
अथ व्रजे पंचदिनेषु भाद्रे स्वातौ च षष्ठयां च सिते बुधे च।
उच्चैर्ग्रहैः पंचभिरावृते च लग्ने तुलाख्ये दिनमध्यदेशे॥ ९॥
सुरेषु वर्षत्सु च पुष्पवर्षं घनेषु मुंचत्सु च वारिबिंदून्।
बभूव देवो वसुदेवपत्न्यां विभासयन्नंदगृहं स्वभासा॥१०॥
नंदोऽपि कुर्वञ्छिशुजातकर्म ददौ द्विजेभ्यो नियुतं गवां च।
गोपान्समाहूय सुगायकानां शब्दैर्महामंगलमाततान॥११॥

अथाष्टमो देवक्याः परिपूर्णतमो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रोऽवततार। तदैव तदाज्ञया निशीथे तं प्रेंखे निधाय नंदपत्न्यां जातायां योगनिद्रायां संसुप्ते जगति सति यमुनामुत्तीय महावनमेत्य यशोदाशयने सुतं निधाय तां सुतामादाय पुनर्वसुदेवो गृहानाययौ॥ १२॥ अथ कारागारे बालध्वनिं श्रुत्वा शत्रुभीतः कंसः समागत्य जातमात्रां कन्यां गृहीत्वा शिलापृष्ठे पातयामास॥१३॥ तदैव तद्धस्तात्समुत्पत्यांबरे योगनिद्रा भूत्वा सिद्धचारणगंधर्वविद्याधरमुनिगणैः स्तूयमाना कंसमिदमाह—हे खल तव पूर्वशत्रुर्यत्र क्व वा जातो वृथा देवकीवसुदेवौ दीनौ दुनोषीत्युक्त्वा सा विंध्याचलं जगाम॥ १४॥ इत्युक्तो विस्मितः कंसो देवकीं वसुदेवं च विमुच्य पूतनादीन् दैत्यान्समाहूय चानिर्दशान्निर्दशान्बालान्हंतुमाज्ञां चकार तेऽपि तथा चक्रुः॥ १५॥

गोकुलमें रहा करती थी। भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञा पाकर योगमाया भगवान् अनन्तको देवकीके उदरसे खींचकर वसुदेव-पत्नी रोहिणीके गर्भमें स्थापित करनेको तैयार हो गयीं॥ ७॥ यहाँ ये श्लोक हैं—देवकीका सातवाँ गर्भ एक ही साथ हर्ष और शोक बढ़ानेवाला था। योगमायाने उसे व्रजमें ले जाकर रोहिणीके गर्भमें स्थापित कर दिया। तब मथुराके लोगोंने कहा—'अहो! देवकीका गर्भ कहाँ चला गया? बड़े आश्चर्यकी बात है॥ ८॥ उसके पाँच दिन बाद भाद्रपद मासके शुक्लपक्षकी षष्ठी तिथिको, जो स्वाती नक्षत्र और बुधवारसे युक्त थी, मध्याह्नके समय, तुला लग्नमें, जब पाँच ग्रह उच्चके होकर स्थित थे, व्रजमें वसुदेवपत्नी रोहिणीके गर्भसे अपने तेजके द्वारा नन्द-भवनको उद्भासित करते हुए महात्मा बलरामजी प्रकट हुए॥ ९॥ उस समय मेघोंने जलबिन्दु बरसाये और देवताओंने पुष्पोंकी वृष्टि की॥ १०॥ नन्दजीने शिशुका जातकर्म-संस्कार करवाया। ब्राह्मणोंको दस लाख गौएँ दानमें दीं, फिर गोपोंको बुलाकर अच्छे-अच्छे गायकोंके संगीतके साथ महा-महोत्सव मनाया॥ ११॥ तदनन्तर देवकीके आठवें गर्भसे अर्द्धरात्रिके समय परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अवतीर्ण हुए। इधर उसी समय नन्दरानी यशोदाजीके गर्भसे कन्याके रूपमें योगमाया प्रकट हुई। योगमायाके प्रभावसे सारा जगत् सो गया था। तब भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे वसुदेवजी श्रीकृष्णचन्द्रको लेकर यमुनाके उस पार वृन्दावनमें पहुँच गये और यशोदाके शयनागारमें जाकर उन्होंने यशोदाकी गोदमें बालक श्रीकृष्णको सुला दिया और कन्याको लेकर वे अपने स्थानपर लौट आये॥ १२॥ इसके बाद कारागारमें बालककी रुदनध्वनि सुनायी पड़ी। शत्रुके भयसे डरा हुआ कंस तुरंत आ पहुँचा और उसने तत्काल उत्पन्न हुई उस कन्याको उठा लिया एवं उसे एक शिलापर पटक दिया॥ १३॥ ठीक उसी समय कंसके हाथसे छूटकर कन्या बड़े जोरसे उछली और ऊपर आकाशमें जाकर योगमायाके रूपमें परिणत हो गयी। सिद्ध, चारण, गन्धर्व और मुनिगण उनका स्तवन कर रहे थे। योगमायाने कंससे कहा—'रे दुष्ट! तेरा पूर्वका शत्रु कहीं उत्पन्न हो चुका है। तू इन बेचारे दीन वसुदेव-देवकीको व्यर्थ ही कष्ट दे रहा है?' इस प्रकार कहकर वे योगमाया विन्ध्याचलको चली गयीं॥ १४॥ योगमायाके इन वचनोंसे कंस बड़े आश्चर्यमें पड़ गया। फिर उसने देवकी और वसुदेवको छोड़ दिया और पूतना आदि दैत्योंको बुलाकर आज्ञा दी—'दस दिनके अंदर या बादमें पैदा हुए जितने भी बालक हों, सबको मार डालो।' कंसकी आज्ञा

अथ नंदोऽपि पुत्रजन्मोत्सवं श्रुत्वा महोत्सवं चकारैवं कंसभयमिषेण व्रजं प्राप्तौ रामकृष्णौ स्वमायायाऽलक्षितौ व्रजवासिनां कृपां कर्तुं जातमात्रावद्भुतां बाललीलां चक्रतुः। कौरवेन्द्र भूयः श्रोतुमिच्छसि किम् ॥ १६ ॥

इति श्रीगर्गसंहितायां बलभद्रखंडे श्रीबलभद्रश्रीकृष्णजन्मोत्सवो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

(प्राड्विपाक मुनिके द्वारा श्रीराम-कृष्णकी व्रजलीलाका वर्णन)

दुर्योधन उवाच

मुनींद्र रामोऽनंतोऽनंतलीलः श्रीकृष्णोऽपि च भूम्यां भूत्वा रराज। तस्य संक्षेपेण चरित्रं वद। व्रजे किं मथुरायां किं द्वारकायां किमत्र किमन्यत्र किं चकार ॥ १ ॥

प्राड्विपाक उवाच

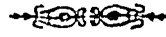
अथ ह वाव श्रीकृष्णो जातमात्रोऽद्भुतां लीलां पूतनामोक्षशकटासुरतृणावर्तवधयुतां विश्वरूपदर्शनदधिचौर्य्यब्रह्मांडदर्शनयमलार्जुनद्रुमखंडभंगादिसंयुक्तां दुर्वाससो मायादर्शनवैभवां श्रीमद्गर्गाचार्यवर्णितराधाकृष्णनामौदार्य्यमाहात्म्ययुक्तां सुरज्येष्ठकारितवृषभानुवरनंदिनीविवाहरासमंडलकथामंडितां चकार ॥ २ ॥ ततः श्रीवृंदावनागमने सति वत्सासुरबकासुराद्यसुराणां वधं कृत्वा गोपालैः सह गोचारणे वृंदावनादिवनेषु विचचार ॥ ३ ॥ अथ तालवने धेनुकासुरं खरस्वनं स्वपद्भ्यां ताडयंतं भुजदंडाभ्यां गृहीत्वा महाबलो बलदेवस्तालवृक्षे तं पातयित्वा पुनरापतंतं भूपृष्ठे पोथयामास। मूर्च्छितो भग्नमस्तकः सद्यस्तन्मुष्टिप्रहारेण निधनं जगाम ॥ ४ ॥ अथ श्रीकृष्णः कालियदमनदावाग्निपानादीनि चरित्राणि कृत्वा श्रीराधाप्रेमप्रकाशप्रीतिपरीक्षण-

वृंदावनविहारदानमानलीलाहावभावयुक्तां शंखचूडवधादिशिवासुर्य्युपाख्यानकथां कथनीयां लीलां चकार ॥ ५ ॥ अथैकदा गिरिराजपूजने कृते भग्नबलिरिंद्रः सांवर्तमेघमण्डलैर्व्रजमण्डले ववर्ष। तदा भगवान् भयातुरं व्रजं वीक्ष्य माभैष्टेत्यभयं दत्त्वा एककरेण गिरिराजं समुत्पाट्योच्छिलींध्रं बाल इव दधार ह वाव सप्तवर्षीयः सप्ताहं सुस्थिरं स्थितः ॥ ६ ॥ अथेन्द्रः सर्वदेवगणैर्भयभीतः श्रीकृष्णचंद्र-श्रीमत्पादारविंदद्वयं प्रणम्य किरीटेन नतः स्तुत्वा तदभिषेकं कृत्वा महेंद्रराट् सुरभिसुरमुनिभिः सार्द्धं स्वर्गं जगाम ॥ ७ ॥ तदद्भुतं गोवर्द्धनोद्धारणं दृष्ट्वा गोपा विसिस्म्युस्तेभ्यो मुक्तारोपणादि-वैभवं संदर्शयामासुः ॥ ८ ॥ अथ श्रुतिरूपर्षिरूपा मैथिला कौशलाऽयोध्यापुरवासिनी यज्ञसीता पुलिन्दकारमावैकुण्ठश्वेतद्वीपोर्ध्ववैकुण्ठाजितपदश्रीलोकाचलवासिनी सखी दिव्यादिव्यात्रिगुणवृत्ति-भूमिगोपीजनदेवश्रीजालंधरीबर्हिष्मतीपुरंध्रयप्सरःसुतलवासिनीनागेन्द्रकन्यादिभिर्गोपीयूथैः पृथक् पृथक् श्रीकृष्णो व्रजमण्डले रासमंडलं चकार ॥ ९ ॥ एकदा गाश्चारयन्सबलः श्रीकृष्णो गोपाल-बालैर्भांडीरे बाललीलां वाह्यवाहकलक्षणां कृतवान्। तत्र प्रलम्बो गोपरूपी दैत्यो विहारे विहारविजयं रामं स्वपृष्ठे निधायोवाह ॥१०॥ अथ ह वाव मथुरां गंतुमुद्यतं गिरींद्रस्य सदृशदेहं तमुद्वीक्ष्य पृष्ठगतो बलदेवो महाबलो रुषा मुष्टिना शिरसि महाद्रिं यथाद्रिभित्तताड तेन सद्यो विशीर्णमस्तको वज्रहतो गिरिरिव स दैत्यो भूम्यां निपपात ॥११॥ एकदा ग्रीष्मे मुंजारण्यगतासु गोषु गोपालेषु च सत्सु सद्यः संभूतो दावाग्निः प्रलयाग्निरिव ववृधे। ततः कृष्णरामेति वदतः पाहि पाहीति

शीघ्र ही उसको एक मुक्का मारा, जिससे उसके प्राण-पखेरू उड़ गये ॥४॥ तदनन्तर श्रीकृष्णने कालिया नागका दमन तथा दावाग्नि-पान आदि लीलाएँ कीं, फिर श्रीराधिकाजीके प्रति प्रेम प्रकाश करके उनके प्रेमकी परीक्षा ली, वृन्दावनमें विहार किया, हाव-भावयुक्त दानलीला मानलीला, शङ्खचूडादिका वध और शिवासुरि-उपाख्यान इत्यादिके प्रवचनकी बहुत-सी लीलाएँ कीं ॥ ५ ॥ तदनन्तर एक समय गोवर्धन-पूजा की गयी। इन्द्रने यज्ञभागसे वञ्चित होनेपर कुपित होकर सांवर्तक आदि मेघोंके द्वारा व्रजमण्डलपर घोर वर्षा आरम्भ करा दी। इससे सारे व्रजवासी भयसे व्याकुल हो गये। भगवान् श्रीकृष्णने उनको आतुर देखकर—'डरो मत' यों कहकर अभयदान दिया। फिर उन्होंने गिरिराज गोवर्धनको उखाड़कर, जैसे बालक छत्रक (कठफुल्ला) को उठा लेता है, ठीक वैसे ही गोवर्धनको अपने एक हाथपर उठाये और बिना हिले-डुले खड़े रहे ॥ ६ ॥ तब तो सम्पूर्ण देवताओंके साथ इन्द्र भयभीत हो गये और उन्होंने अत्यन्त नम्रताके साथ मुकुट झुकाकर भगवान् श्रीकृष्णके मङ्गलमय युगल चरणोंमें प्रणाम किया। उनकी स्तुति और अभिषेक किया। तदनन्तर कामधेनु सुरभि, देवता तथा मुनियोंके साथ वे स्वर्गको चले गये ॥ ७ ॥ गोवर्धन-धारणकी इस अद्भुत लीलाको देखकर सभी गोप अत्यन्त विस्मित हो गये। फिर श्रीकृष्णने खेतमें मोती आदिके बीज बोकर मोती उपजानेका चमत्कारमय ऐश्वर्य गोपोंको दिखलाया ॥ ८ ॥ तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णने श्रुतिरूपा, ऋषिरूपा, मैथिली, कोसलदेशनिवासिनी, अतोध्यावासिनी, यज्ञसीता, पुलिन्दका, रमावैकुण्ठवासिनी, श्वेतद्वीप-निवासिनी, ऊर्ध्ववैकुण्ठवासिनी, अजितपदवासिनी, श्रीलोकाचलनिवासिनी, दिव्या, अदिव्या, त्रिगुणवृत्ति, भूमि, गोपी, देवश्री, जालंधरी, बार्हिष्मती, पुरन्ध्री, अप्सरा, सुतलवासिनी और नागेन्द्रकन्या आदि गोपी-यूथोंके साथ पृथक्-पृथक् रास-मण्डलकी रचना की ॥ ९ ॥ एक समय श्रीबलरामजीके साथ श्रीकृष्णचन्द्र भाण्डीरवनमें गोपबालकोंके साथ गौएँ चराने गये। वहाँ जाकर एक दूसरेको ढोने और ढोवानेका खेल करने लगे। उस समय वहाँ प्रलम्बासुर नामका एक दैत्य गोप-बालकका वेश धारण करके खेलमें शामिल हो गया, बलरामजी उसपर विजयी हुए। अतः उन्हें पीठपर चढ़ाकर वह चलने लगा ॥१०॥ उन्हें लेकर वह गिरिराजके समान विशाल देहवाला असुर मथुराकी ओर जाना चाहता था, किन्तु उस असुरकी पीठ पर सवार अमित पराक्रमी श्रीबलदेवजीने, रोषमें भरकर जैसे इन्द्र किसी पर्वतपर प्रहार करें, वैसे ही उसके मस्तकपर मुष्टि-प्रहार किया। उस प्रहारसे वज्रकी चोट खाये हुए पहाड़की तरह उस असुरका सिर टूक-टूक हो गया और उसी क्षण वह भूमिपर गिर पड़ा ॥ ११ ॥ एक समय गरमीके दिनोंमें सभी गौएँ और गोपाल किसी

गोपालान् शरणं गतान् वीक्ष्य लोचनानि निमीलयताशु माभैष्टेत्युक्त्वा तमग्निमपिबत् ॥१२॥ अथ ह वाव भांडीराद्यमुनातीरे गोपालगोगणं नीत्वा प्राप्तोऽभूत्तत्राशोकवने यज्ञपत्न्यानीतं भोजनं कृतवान् ॥१३॥ अथ चैकदा व्रजे नन्दराजे वरुणग्रस्ते वरुणस्य मानभंगं कृत्वा नन्दादिभ्यो गोपेभ्योऽपि सर्वलोकनमस्कृतं वैकुण्ठं दर्शयामास ॥१४॥ अथांबिकावने श्रीकृष्णः सरस्वतीतीरे नन्दं ग्रसंतं सुदर्शनं सर्पं किलाखिललोकपालवन्दितेन श्रीमच्चरणारविंदेन स्पृष्ट्वा सर्पदेहात्तं मोचयामास ॥१५॥ अथ सबलः श्रीकृष्णो निलायनक्रीडायां चोररूपं व्योमासुरं कंससखं भुजदंडाभ्यां गृहीत्वा दशदिशासु भ्रामयन् भूपृष्ठे पोथयामास ॥१६॥ तथाऽरिष्टासुरं कंसप्रणोदितं वृषरूपं शृङ्गयोः समुद्धृत्य पातयामास । अथ नारदमुखाच्छ्रुतश्रीकृष्णकथेन कंसेन प्रणोदितं केशिनं श्रीकृष्णस्तन्मुखे स्वभुजप्रवेशेन संममर्देत्थमनेका लीलाः सहसा व्रजमंडले बलेन कारयामास ॥१७॥

इति श्रीगर्गसंहितायां बलभद्रखण्डे प्राड्विपाकदुर्योधनसंवादे रामकृष्णव्रजलीलावर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥



अथ सप्तमोऽध्यायः

(श्रीराम-कृष्णकी मथुरा-लीलाका वर्णन)

प्राड्विपाक उवाच

अथ मथुरायां रामकृष्णौ यानि चरित्राणि कृतवन्तौ तानि संक्षेपेण युवराज शृणुतात् । अथ कालनेमिसुतेन कंसेन प्रयुक्तोऽक्रूरो रामकृष्णौ समानेतुं व्रजमण्डलमागतवान् ॥ १ ॥ तत्र गंतु-

मभ्युद्यतं नन्दराजसूनुं वीक्ष्य गोपीगणा विरहातुरा बभूवुः। पृथक् पृथक् तानाश्वास्य भगवान्रथमारुह्य सबलोऽक्रूरेण यदुपुरीं गच्छन्मार्गे यमुनाजलेषु श्वाफल्काय स्वधाम दर्शयामास ॥ २ ॥ अथ पूर्वाह्णे मथुरोपवने स्थित्वाऽपराह्णे मथुरापुरीं सर्वतो ददर्श। अथ रामकृष्णौ देवौ पुराणौ पुरुषौ लीलया नटवरवेषधरौ दिदृक्षवः पौराश्च पुरंध्रयः कर्माणि त्यक्त्वा व्यधावन्नापगा उदधिमिव तौ कोटिकंदर्पहरं सौंदर्यं स्वं संदर्शयन्तौ चेतो हरन्तौ विचेरतुः स्म ॥ ३ ॥ अथ भगवान्राजमार्गे तद्याचितवस्त्राण्यदास्यंतं रजकं रंगकारं कराग्रेण सर्वेषां पश्यतां निर्जघान तथा वस्त्रवेषं कुर्वते वायकाय स्वसारूप्यं प्रादात् ॥ ४ ॥ ततः सैरंध्रीं कुब्जां त्रिवक्रां चंदनादानमिषेणर्व्वीं त्रिलोकसुन्दरीं कृत्वा ततो वैश्यजनान्समाभाष्य मथुरार्भकैः सहितो धनुःस्थले विवेश। अथ हेमचित्रं सप्ततालकं सहस्रशः पुरुषैर्नेतुमशक्यं बृहद्भारं चाष्टधातुमयलक्षभारसमं यज्ञमंडपधृतं कंसाय भार्गवेण दत्तं साक्षाच्छेषमिव कुंडलीभूतं कोदंडं वैष्णवं वीक्ष्य प्रसह्याददे ॥ ५ ॥ तदैव पश्यतां लोकानां सज्यं कृत्वा लीलयाऽऽकृष्य कर्णपर्यन्तं दोर्दंडाभ्यां यथेक्षुदंडं वेतंडः शुंडादंडेन कोदंडं मध्यतो बभंज ॥६॥ भज्यमानधनुष्टङ्कारेण सप्तलोकबिलैः सह सर्वं ब्रह्मांडं ननाद। ततस्तारा दिग्गजाश्च विचेलुः। सर्वं भूखंडमंडलं स्थालीव घटिकाद्वयमात्रं प्रचकंपे ॥ ७ ॥ अथापराह्णे रंगभूमिद्वारि द्विपं कुवलयापीडं समेत्य क्षणं बाललीलया युद्धं कृत्वा शुण्डादंडे संगृहीत्वा त्वितस्ततो भ्रामयित्वा बालकः कमंडलुमिव भूपृष्ठे तं पातयामास ॥ ८ ॥ तमित्थं निहत्य रंगभूमौ कंससभायां

जानेके लिये प्रस्तुत देखकर गोपियाँ विरहसे आतुर हो गयीं। भगवान्ने उन सबको अलग-अलग बुलाकर आश्वासन दिया। फिर बलरामजीसहित स्वयं रथपर सवार होकर अक्रूरजीके साथ मथुराकी ओर चले। जाते समय रास्तेमें यमुनाजी पड़ीं। उसके जलमें भगवान्ने अक्रूरको अपने तेज या धामके दर्शन कराये ॥२॥ तदनन्तर पूर्वाह्णके समय वे मथुरामें जा पहुँचे और अपराह्णकालतक मथुरापुरीको सब ओरसे देखते रहे। लीलारूपमें मनुष्यका वेष धारण किये हुए श्रीराम। कृष्ण साक्षात् पुराण-पुरुष हैं। मथुरा नगरीके सभी नर-नारियोंके मनमें उनके दर्शनका आनन्द प्राप्त करनेकी अभिलाषा उत्पन्न हो गयी और वे अपना सारा काम-धाम छोड़कर, जैसे नदियाँ समुद्रकी ओर दौड़ती हैं, वैसे ही उनकी ओर दौड़ पड़े। कोटि-कोटि कामदेवोंका दर्प चूर्ण करनेवाले भगवान् राम-कृष्णने अपना सौन्दर्य सबको दिखलाया और उन सबका मन हरण करते हुए वे स्वेच्छासे विचरण करने लगे ॥ ३ ॥ तदनन्तर राजमार्गमें भगवान्ने धोबी और रँगरेजसे कपड़ोंकी याचना की; परंतु उन्होंने जब वस्त्र नहीं दिये, तब सबके देखते-देखते ही हाथोंसे प्रहार करके धोबी और रँगरेज दोनोंको उस जीवनसे मुक्त कर दिया। तदनन्तर भगवान्को एक दर्जी मिला। उसने वस्त्रोंके द्वारा उनको सजाया और भगवान्ने उसे अपना सारूप्य प्रदान कर दिया ॥ ४ ॥ फिर कुब्जा सैरन्ध्री मिली। वह तीन जगहसे टेढ़ी थी। चन्दन ग्रहण करनेके बहाने भगवान्ने उसको सीधी कर दिया। वह तीनों लोकोंमें सुन्दरी बन गयी। तत्पश्चात् वहाँके वैश्य व्यापारियोंसे बातचीत की और कुछ बच्चोंको साथ लेकर, जहाँ कंसका धनुष रक्खा था, उस स्थानपर जा पहुँचे। वह धनुष स्वर्णसे मण्डित था और सात ताड़ वृक्षोंके बराबर उसकी लंबाई थी। हजारों पुरुषोंके द्वारा भी वह उठाया नहीं जा सकता था। वह धनुष अष्टधातुसे बना हुआ था, अत्यन्त भारी था और उसका बोझ लाख भारके समान था। कंसने वह धनुष परशुरामजीसे प्राप्त किया था। वह वैष्णव (भगवान् विष्णुसे सम्बन्ध रखनेवाला) धनुष साक्षात् भगवान् शेषके समान कुण्डलाकार था। भगवान् श्रीकृष्णने उसे देखा और बलपूर्वक उठा लिया ॥ ५ ॥ फिर सब लोगोंके देखते-देखते ही लीलापूर्वक उस धनुषको चढ़ाया और कानतक तानकर ले गये। तदनन्तर दोनों भुजाओंका सहारा लगाकर उसको बीचसे उसी प्रकार तोड़ डाला, जैसे हाथी अपनी सूँड़से गन्नेको तोड़ देता है ॥ ६ ॥ धनुषके टूटनेकी भयानक ध्वनिसे पातालसहित सप्तलोकमय सारा ब्रह्माण्ड गूँज उठा। तारे और दिग्गजगण अपने स्थानसे विचलित हो चले। इतना ही नहीं, सारा भूमण्डल दो घड़ीतक थालीकी तरह काँपता रह गया ॥ ७ ॥ अपराह्णके समय रङ्गशालाके द्वारपर कुवलयापीड़ हाथी दिखायी दिया।

हाहाकार आसीदहो वैरभावेन यं भजन्कंसोऽपि तस्य सारूप्यं भृंगिणः कीटक इव जगाम ॥१५॥ ततः कंसं मृतं सहसा वीक्ष्य समागतांस्तस्यानुजान् खड्गचर्मधरान् दृष्ट्वा बलभद्रो मुद्गरं नीत्वा सर्वतोऽभिजघान । तदा देवदुंदुभयो नेदुर्जयध्वनिश्चाभूद्देवाः पुष्पैर्ववृषुर्विद्याधर्यो ननृतुर्विद्याधरगंधर्व किन्नरा जगुः ॥ १६ ॥ अथ सर्वानाश्वास्य पितरौ विमोक्ष्योग्रसेनाय राज्यं दत्त्वोपवीतं प्राप्य संदीपनाद्विद्या अधीत्य तस्मै मृतं सुतं दक्षिणां दत्त्वा शंखं हत्वा मथुरामेत्य वसन् व्रजशांत्यै चोद्धवं प्रेषयित्वा पुनः स्वयं व्रजं गत्वा राधायै गोपीभ्यश्च दर्शनं दत्त्वा रासमध्ये ऋभुमोक्षं कृत्वा पुनर्मथुरायां माथुरेशो रराज । रामोऽपि कोलवधं कृत्वा तस्यां विरराजेति तयोर्मथुरायां सहस्रशः पवित्राणि चरित्राणि बभूवुः ॥ १७ ॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीबलभद्रखण्डे मथुरालीलावर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथ अष्टमोऽध्यायः

(श्रीराम-कृष्णकी द्वारकालीलाका वर्णन)

प्राड्विपाक उवाच

अथ युवराज धार्तराष्ट्र तयोर्द्वारिकालीलां संक्षेपेण शृणुतात् । ततः कंसस्य पारोक्ष्यं सौहृदं कुर्वतं समागतं जरासंधं जित्वा द्वारकाख्यं समुद्रे दुर्गं निर्माय तत्रैकरात्रेण ज्ञातीन्स-माधाय मुचुकुंददृशा कालं घातयित्वा पुनश्च रामकृष्णौ प्रवर्षणाद्रिमेत्य तस्माद्द्वारकायां जग्मतुः ॥ १ ॥ अथ ब्रह्मलोकात्समागतो रैवतः सुतां रत्नयुतां विधिवद्धलशालिने बलभद्राय

पड़े हुए गजराजको सिंह खींच रहा हो, वैसे ही वे कंसके शरीरको घसीटने लगे । इससे राजाओंमें हाहाकार मच गया । लोग कहने लगे—'अहो ! कैसे आश्चर्यकी बात है कि वैरभावसे स्मरण करनेवाला कंस भी उन प्रभुके सारूप्यको वैसे ही प्राप्त हो गया, जैसे कीड़ा भृङ्गीके रूपमें परिणत हो जाता है ॥ १५ ॥ कंसकी मृत्यु देखकर उसके छोटे भाई तत्काल ढाल-तलवार लेकर वहाँ आ डटे । उनपर बलभद्रजीकी दृष्टि पड़ी और उन्होंने मुद्गर उठाकर सब ओरसे प्रहार करते हुए सबको धराशायी कर दिया । तब देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं । सर्वत्र जय-जयकारकी ध्वनि होने लगी । देवताओंने पुष्पोंकी वर्षा की । विद्याधरियाँ नृत्य करने लगीं और विद्याधर, गन्धर्व तथा किंनर भगवान्‌का यशोगान करने लगे ॥ १६ ॥ तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णने सबको आश्वासन देकर माता-पिताको बन्धनमुक्त किया और उग्रसेनको राज्य सौंप दिया । फिर यज्ञोपवीत-संस्कार सम्पन्न होनेपर सांदीपनि मुनिके समीप जाकर उन्होंने समस्त विद्याओंका अध्ययन किया । दक्षिणारूपमें मरे हुए गुरुपुत्रोंको लाकर प्रदान किया और शङ्खासुरका वध किया । फिर वे मथुरामें आकर निवास करने लगे । व्रजकी व्यथाको दूर करनेके लिये भगवान्‌ने उद्धवको वहाँ भेजा । फिर स्वयं वहाँ जाकर रासमण्डलमें श्रीराधा और गोपियोंको अपने दर्शन कराये । रासमें ऋभु ऋषिको मुक्ति दी, फिर मथुरामें मथुरानरेशके सदृश कार्य करते हुए विराजमान हुए । बलरामजीने भी कोलासुरका वध करके मथुरापुरीमें शुभागमन किया । इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामकी हजारों-हजारों पवित्र और विचित्र लीलाएँ मथुरामें सम्पन्न हुईं ॥ १७ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां बलभद्रखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

प्राड्विपाक मुनिने कहा—हे युवराज दुर्योधन ! अब भगवान् श्रीबलराम और श्रीकृष्णकी द्वारका-लीलाओंको संक्षेपमें सुनो । हे धृतराष्ट्र-तनय ! जब कंसका देहावसान हो गया, तब उसके न रहनेपर भी उसके साथ अन्तरङ्ग मैत्रीका निर्वाह करनेके लिये जरासंध आया । भगवान्‌ने उसपर विजय प्राप्त की । तदनन्तर समुद्रके बीचमें द्वारका-दुर्गका निर्माण किया । फिर एक ही रात्रिमें अपने सारे बन्धु-बान्धवोंको वहाँ भेजकर उनके रहनेकी व्यवस्था की । कालयवनके आनेपर मुचुकुन्दद्वारा उसका वध कराया । तदनन्तर बलरामजी

दत्त्वा तपः कर्तुं बदर्याख्यं वनं गतवान् ॥ २ ॥ अथ श्रीकृष्णः शत्रूणां पश्यतां कुंडिनपुराद्रुक्मिणीं जहार तथा जांबवतीं सत्यभामां कालिंदीं मित्रविंदां नाग्निजितीं भद्रां लक्ष्मणां च भौमं हत्वा षोडशसहस्रं शतं च राजकन्या उवाह ॥ ३ ॥ राजन् भीष्मककन्यायां रुक्मिण्यां श्रीकृष्णस्य पुत्रः प्रथमं कामदेवावतारः पितृसमसुंदर आसीत् । तस्मादनिरुद्धः सुरज्येष्ठावतारोऽभूत् ॥ ४ ॥ अथैकदोग्रसेनराजसूयाध्वरे नागवल्लीं गृहीत्वा दिग्विजयार्थी निर्गतः प्रद्युम्नो यादवैर्भ्रातृभिः सह जंबूद्वीपे नवखंडविजयं कुर्वन् कामदुघनदसमीपे वसंतमालतीपुराधीशेन पतंगेन गंधर्वराजेन युयुधे ॥ ५ ॥ तत्र गदायुद्धे गदामादाय गदो बलदेवानुजो गदाधरं स्वगदया पतंगं तताड । सोऽपि तं हृदि चौजसा जघानेत्थं तयोर्गदायुद्धं घटिकाद्वयं बभूव । ततः पतंगगदाप्रहारेण गदो युद्धे क्षणं मूर्छां जगाम ॥ ६ ॥ तदा हाहाकारे जाते कोटिमार्तंडसन्निभो बलभद्र आविर्भूत्वा गंधर्वाणां सर्वं बलं हलाग्रेण समाकृष्य तदुपरि क्लिष्टमुशलताडनं चकार । तेन युगपत्सर्वं सैन्यं सभटद्विपरथं चूर्णीबभूव ॥ ७ ॥ अथ पतंगोऽपि विरथो भयभीतस्तस्मात्पुरीं गत्वा पुनर्योद्धुं यादवैः सेनाव्यूहं चकार । तच्छ्रुत्वा क्रुद्धो बलभद्रो गंधर्वाणां महापुरीं शतयोजनविस्तीर्णां वसंतमालतीनाम्नीं सर्वां हलेन संविदार्य सहसा कामदुघे नदे संकर्षणो विचकर्ष ॥ ८ ॥ अथ ह वाव पतितैर्गृहैर्हाहाकारे जाते तिर्यक्पोतमिवाघूर्णां समस्तां नगरीं वीक्ष्य गंधर्वैर्गंधर्वेशः पतंगः कृतांजलिर्धर्षितो विश्वकर्मकृतानां विमानानां द्विलक्षं गजानां चतुर्लक्षं चाश्वशतार्बुदं च दिव्यानां रत्नानां भारं दशशतार्बुदं च बलिं नीत्वा

और श्रीकृष्ण दोनों प्रवर्षण पर्वतपर गये और वहाँसे द्वारकाको प्रस्थान किया ॥ १ ॥ ब्रह्मलोकसे लौटे हुए राजा रेवतने रत्न आदि आभूषणोंसे अलंकृत कन्या रेवतीको लेकर आगमन किया और प्रतापी बलरामजीके हाथोंमें उसे सविधि समर्पण कर दिया। फिर राजा रेवत तप करनेके लिये बदरिकाश्रमको चले गये ॥ २ ॥ उसके बाद श्रीकृष्णने कुण्डिनपुर जाकर शत्रुओंके देखते-देखते रुक्मिणीका हरण किया एवं जाम्बवती, लक्ष्मणा एवं भौमासुरका वध करके सोलह हजार एक सौ राजकन्याओंका पाणिग्रहण किया ॥ ३ ॥ हे राजन् ! भीष्मककुमारी रुक्मिणीके गर्भसे भगवान् श्रीकृष्णके प्रथम पुत्र प्रद्युम्न हुए। वे कामदेवके अवतार अपने पिता श्रीकृष्णके समान ही सुन्दर हैं। इनसे अनिरुद्धका जन्म हुआ, जो ब्रह्माके अवतार हैं ॥ ४ ॥ तत्पश्चात् एक समय राजा उग्रसेनके यहाँ राजसूय यज्ञका प्रस्ताव हुआ और दिग्विजयके लिये प्रद्युम्नने बीड़ा उठा लिया। यादवों, तथा अपने भाइयोंके साथ उन्होंने विजययात्रा आरम्भ की और जम्बूद्वीपके नौ खण्डोंपर विजय प्राप्त करके कामदुघ नदके समीप पहुँचे। वहाँ वसन्तमालती नामकी नगरीके स्वामी गन्धर्वराज पतंगके साथ उनका युद्ध हुआ ॥ ५ ॥ गदा-युद्ध आरम्भ होनेपर बलदेवजीके छोटे भाई गदने गदाके द्वारा गदाधारी पतंगपर प्रहार किया। पतंगने भी गदाके द्वारा बड़े वेगसे गदके हृदयपर आघात किया। इस प्रकार दो घड़ीतक दोनोंका युद्ध होनेके पश्चात् पतंगकी गदाके प्रहारसे क्षणभरके लिये गदको मूर्छा आ गयी ॥ ६ ॥ उस समय हाहाकार मच गया और इसी बीच करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी बलभद्रजी वहाँ प्रकट हो गये। उन्होंने गन्धर्वोंकी सारी सेनाको हलकी नोकके द्वारा खींच लिया और उसके ऊपर कठोर मुशलका प्रहार करना आरम्भ कर दिया। इससे पतंगकी सारी सेना—शूरवीर योद्धा, हाथी और रथ सभी चूर-चूर हो गये ॥ ७ ॥ तब तो रथहीन पतंग भयभीत होकर अपने नगरको चला गया और यादवोंसे युद्ध करनेके लिये फिरसे व्यूहाकार सेना सजाने लगा। बलभद्रजीको जब इसका पता लगा, तब वे अत्यन्त क्रुद्ध होकर गन्धर्वोंकी वसन्तमालती नामकी उस विशाल नगरीको, जिसका विस्तार सौ योजन था, हलके द्वारा उखाड़ लिया और कामदुघ नदमें डुबा देनेके लिये उसे खींचने लगे ॥८॥ नगरीके महलों और घरोंका गिरना-ढहना आरम्भ हो गया। जिससे चारों ओर हाहाकार मच उठा। सारी नगरी समुद्रमें चक्कर खाती हुई टेढ़ी नावकी तरह घूमने लगी। यह देखकर गन्धर्वराज पतंग भयभीत हो गये और अपने गन्धर्व भाई-बन्धुओंके साथ हाथ जोड़कर बलभद्रजीके समीप उपस्थित हुए। उन्होंने विश्वकर्माके द्वारा निर्मित

बलशालिने बलाय दत्त्वा प्रदक्षिणीकृत्य प्रणनाम ॥ ९ ॥ अथ तथा सांबमोक्षार्थं बलभद्र इहागतो भवतां पश्यतां पुरमिदं हलाग्रेण संविदार्य श्रीगंगां साक्षात्संकर्षणो विचकर्ष । तथैव नागकन्याभिर्गोपीभिर्निर्मिते रासमंडले कालिंदीं हलाग्रेण विचकर्ष ॥ १० ॥ अथैकदा द्विविदो नाम वानरः सुग्रीवसचिवो भौमसखो नारदेन प्रेरितो हरिं योद्धुकामोऽवतरद्रैवतकाचलमेत्य बलेन घटिकाचतुष्टयं युयुधे । द्रुमदंडशिलामुष्टिभिर्विनिघ्नंतं तं बलभद्रो मुसलेन मूर्ध्नि निजघान । पुनर्न मृतं मुष्टिना घातयित्वा पलायंतं भुजदंडाभ्यां गृहीत्वा रैवतकाचलपृष्ठे पातयित्वाऽच्युताग्रजो दृढेन मुष्टिना हृदि तं तताड । तत्पतनेन सटंकः शैलेंद्रः कमंडलुरिव चकंपे ॥ ११ ॥ अथ ह वाव राजन्नद्य भवतां पांडवैः सह युद्धोद्यमं श्रुत्वा तीर्थाभिषेकव्याजेन ब्राह्मणैर्नागरैः सहितः पुराद्विनिर्गतो द्वारकां प्रदक्षिणीकृत्य सिद्धाश्रमप्रभासयोः स्नात्वा पश्चिमायां दिशि सरस्वतीप्रतिस्रोतः सैंधवारण्यजंबूमार्गोत्पलावर्तार्बुदहेमवंतसिंधूनुपस्पृश्य पृथग्बिंदुसरस्त्रितकूपसुदर्शनात्रितौशनसाग्नेयवायवसौदासगुहतीर्थश्राद्धदेवादीनि तीर्थानि स्नात्वोत्तरस्यां दिशि कैलासकरवीरमहायोगगणेशकौवेरप्राग्ज्योतिषरंगवल्लीसीतारामक्षेत्रचैत्रदेशवसंततिलकादशार्णभद्राकूर्मतीर्थपुष्पमालाचित्रवनचंद्रकांतानैःश्रेयसमनुपर्वतचक्षुःकामशालिनीकामवनवेदक्षेत्रसीतापृथुतीर्थतपोभूमिलीलावतीवेदनगरगांधर्वशक्रभीमरथीश्रीजाह्नवीकालिंदीहरिद्वारकुरुक्षेत्रमथुरापुष्करेषु स्नात्वा पुनस्तस्माच्छांभलं सौकरं प्राप्य चान्यानि कुर्वन् तीर्थानि साक्षात्संकर्षणो नैमिषारण्यं जगाम ॥ १२ ॥ तं समागतं वीक्ष्य शौनकादयो मुनयः समुत्थाय ववंदिरे चार्चयन् ॥ १३ ॥

दो लाख विमान, चार लाख हाथी, एक करोड़ घोड़े और दस करोड़ स्वर्ण तथा दिव्य रत्नोंका भार बलदेवजीकी सेवामें समर्पण करते हुए प्रदक्षिणा करके उनको प्रणाम किया ॥ ९ ॥ फिर साम्बको छुड़ानेके लिये बलरामजी यहाँ तुम्हारे हस्तिनापुरमें पधारे और तुम सबके सामने ही उन्होंने हलकी नोकसे तुम्हारे नगरको उखाड़ लिया और गङ्गामें डुबोनेके लिये खींचने लगे । फिर नागकन्यास्वरूपिणी गोपियोंके साथ रासमण्डलमें यमुनाजीको भी उन्होंने अपने हलकी नोकसे खींचा ॥१०॥ तदनन्तर, एक समयकी बात है, नारदजीकी प्रेरणासे भौमासुरका सखा और सुग्रीवका मन्त्री द्विविद नामक बंदर युद्ध करनेके लिये आया । रैवतक पर्वतपर बलरामजीके साथ चार घड़ीतक उसका युद्ध हुआ । वह वृक्षों और शिलाओंके द्वारा बलरामजीपर प्रहार कर रहा था । ऐसी स्थितिमें बलरामजीने मुसलके द्वारा उसके मस्तकपर चोट पहुँचायी; पर वह मरा नहीं और फिरसे बलरामजीको मुक्का मारनेके लिए दौड़ा । तब भगवान् अच्युतके बड़े भाई बलरामजीने अपने दोनों हाथोंसे उसे पकड़ लिया और रैवतक पर्वतपर दे मारा । फिर उसके हृदयमें बड़े जोरसे मुष्टि-प्रहार किया । जिससे बंदर नीचे गिर गया । उसके गिरनेसे वृक्षोंसहित सारा पर्वत कमण्डलुकी तरह काँपने लगा ॥११॥ हे प्रिय दुर्योधन ! तदनन्तर पाण्डवोंके साथ तुमलोगोंके युद्धका उद्योग सुनकर बलरामजी तीर्थयात्राके बहाने नागरिकों और ब्राह्मणोंको साथ लेकर द्वारकाकी प्रदक्षिणा करके पुरीसे बाहर निकले । फिर उन्होंने सिद्धाश्रम और प्रभासमें स्नान किया । पश्चिम दिशामें स्थित सरस्वती, प्रतिस्रोता, सैन्धवारण्य, जम्बूमार्ग, उत्पलावर्त, अर्बुद (आबू), हेमवन्त और सिन्धुनदमें पृथक्-पृथक् स्नान किया । तदनन्तर बिन्दुसर, त्रितकूप, सुदर्शन, अत्रितीर्थ, औशनस, आग्नेय, वायव, सौदास, गुहतीर्थ और श्राद्धदेव आदि तीर्थोंमें स्नान किया । तदनन्तर उत्तर दिशामें जाकर कैलास, करवीर, महायोग, गणेश, कौवेर, प्राग्ज्योतिष, रङ्गवल्ली, सीताराम आदि क्षेत्र, चैत्रदेश, वसन्ततिलक, दशार्ण, भद्र, कूर्मतीर्थ, पुष्पमाला, चित्रवन, चन्द्रकान्त, नैःश्रेयस, मनुपर्वत, चक्षु, कामशालिनी, कामवन, वेदक्षेत्र, सीता, पृथुतीर्थ, तपोभूमि, लीलावती, वेदनगर, गान्धर्व, शक्र, भीमरथी, श्रीजाह्नवी, कालिन्दी, हरिद्वार, कुरुक्षेत्र, मथुरा और पुष्कर आदि तीर्थोंमें स्नान किया । फिर वहाँसे संभलग्राम और सूकरक्षेत्र (सोरों) में गये । इस प्रकार तीर्थोंकी यात्रा करते हुए साक्षात् संकर्षण श्रीबलरामजी नैमिषारण्यमें पहुँचे ॥ १२ ॥ बलरामजीको आया देखकर शौनकादि मुनियोंने खड़े होकर

तत्र वेदव्यासशिष्यं रोमहर्षणमप्रत्युत्थायिनं वीक्ष्य करस्थेन कुशाग्रेण तं जघानेति तदा हाहेतिवादिनो मुनीन् वीक्ष्य लोकपावनोऽपि लोकसंग्रहार्थं द्वादश मासान् तीर्थस्नानेन विशुद्धये मनो दधे ॥ १४ ॥ तत्रेल्वलसुतो बल्वलो नाम दैत्य उपावृत्ते पर्वणि पांसुवर्षणप्रचंडेन वायुना पूयशोणितविण्मूत्रसुरामांसदुर्गन्धेन समागतः खे दृष्टोऽभूत् । अथ ललज्जिह्वं वज्रांगं भिन्नकज्ज-लांजनचयकृष्णं तप्तताम्रश्मश्रुभयंकरं ब्रह्मशांतये हलाग्रेण समाकृष्य गगनान्मुसलेन मूर्ध्नि बलभद्रस्तं तताड । तत्ताडनेनाकाशात्सोऽपि कमंडलुरिव व्यसुः पपात ॥ १५ ॥ अथ प्रसन्ना मुनयोऽपि रामं संस्तुत्यावितथाशिषः प्रयुज्य वृत्रघ्नं विबुधा इवाभ्यषिंचन् तैरभ्यनुज्ञातः सरयूकौशिकीमानसरोवरगंडकीगौतमीषु स्नात्वाऽयोध्यानंदिग्रामबर्हिष्मतीब्रह्मावर्तादीन्युपस्पृश्य तीर्थराजं प्रयागं जगाम । तत्रायुतगजदानं चकार ॥ १६ ॥ ततश्चित्रकूटविंध्याचलकाशीविपाशा-शोणमिथिलागयादिषु स्नात्वा गंगासागरसंगमं जगाम । तत्र सुवर्णशृंगांबरसंयुक्तं पृथक् सुवर्ण-रत्नभारसहितं गवां कोटिशतं ब्राह्मणेभ्यः प्रादात् । ततः क्रमशो दक्षिणस्यां दिशि महेन्द्राद्रिसप्त-गोदावरीवेणीपंपाभीमरथीस्कंदक्षेत्रश्रीशैलवेंकटकांचीकावेरीश्रीरंगर्षभाद्रिसमुद्रसेतुकृतमालाताम्र-पर्णीमलयाचलकुलाचलदक्षिणसिंधुफाल्गुनपंचाप्सरोगोकर्णशूर्पारकतापीपयोष्णीनिर्विंध्यादंडकरे वा माहिष्मत्यवंतिकादीनि तीर्थानि साक्षात्संकर्षणः करिष्यति स्म । ततस्त्वत्सहायार्थं विशसने चागमिष्यति ॥ १७ ॥ इदं बलभद्रचरित्रं पवित्रं सर्वपापाभिहरणं तीर्थयात्रावर्णनं नितरां मया वर्णितं सर्वमंगलकारणं कौरवेंद्र किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ १८ ॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीबलभद्रखंडे प्राड्विपाकदुर्योधनसंवादे द्वारकालीलावर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

उनको प्रणाम किया और उनकी अर्चना की ॥ १३ ॥ वहाँ वेदव्यासजीके शिष्य रोमहर्षणजी विराजमान थे। वे खड़े नहीं हुए। बलरामजीने यह देखकर हाथमें जो कुशा लिये हुए थे, उसीकी नोकसे मुनिको निहत कर दिया। यह देखकर सब मुनि हाहाकार करने लगे। बलरामजीने यह सब देखा। समस्त लोकोंको पवित्र करनेवाले होनेपर भी उन्होंने लोकसंग्रहके लिये अपनी शुद्धिकी कामनासे बारह महीनेतक तीर्थ-स्नान करनेका व्रत ले लिया ॥१४॥ वहाँ ही इल्वलका पुत्र बल्वल नामक दैत्य रहता था। वह नैमिषारण्यमें पर्वोके अवसरपर भयानक आँधीके साथ-साथ धूल तथा दुर्गन्धपूर्ण पीब, रुधिर, विष्ठा, मूत्र, मदिरा और मांस आदिकी वर्षा करता था। उसकी जीभ सदा लपलपाया करती थी। वज्रके समान दृढ़ उसके अङ्ग थे। कज्जल-गिरिके समान उसकी काली आकृति थी और तपाये हुए ताँबेके समान मूँछ-दाढ़ीवाला वह असुर बड़ा ही भया-नक दीख पड़ता था। ऋषि-ब्राह्मणोंकी शान्तिके लिये उस भयानक असुरको बलरामजीने आकाशमें खींचकर उसके मस्तकपर मुसलके द्वारा प्रहार किया। मुसलकी चोट लगते ही उसके प्राण निकल गये और वह आकाशसे कमण्डलुकी तरह नीचे गिर पड़ा ॥ १५ ॥ तदनन्तर प्रसन्नतासे खिले हुए मुखवाले मुनियोंने बल-रामजीका स्तवन किया, उनको बड़े-बड़े आशीर्वाद दिये और जिस प्रकार वृत्रासुरका वध करनेवाले इन्द्रका देवतालोगोंने अभिषेक किया था, उसी प्रकार बलरामजीका अभिषेक किया। तदनन्तर मुनियोंसे आज्ञा लेकर बलरामजीने सरयू, कौशिकी (कोसी), मानसरोवर, गण्डकी और गौतमी आदि तीर्थोंमें स्नान किया। फिर अयोध्या, नन्दिग्राम, बर्हिष्मती और ब्रह्मावर्त आदि तीर्थोंमें स्नान करके वे तीर्थराज प्रयागमें पधारे और वहाँ दस हजार हाथियोंका दान किया ॥ १६ ॥ तदनन्तर चित्रकूट, विन्ध्याचल, काशी, विपाशा, शोण, मिथिला और गया आदि तीर्थोंमें स्नान करके गङ्गासागर-संगमपर गये और वहाँ स्वर्णके सींगोंसे और सुन्दर वस्त्रोंसे सुशोभित सौ करोड़ गौएँ ब्राह्मणोंको दान दीं। प्रत्येक गौपर स्वर्ण और रत्नोंका भार पृथक् रूपसे लदा हुआ था। तदनन्तर वहाँसे दक्षिण दिशामें जाकर क्रमशः महेन्द्रादि पर्वत, सप्त गोदावरी, वेणी, पम्पा, भीमरथी, स्कन्दक्षेत्र, श्रीशैल, वेङ्कट, काञ्ची, कावेरी, श्रीरङ्ग, ऋषभाद्रि, समुद्रसेतु, कृतमाला,

अथ नवमोऽध्यायः

(श्रीबलरामजीकी रासलीलाका वर्णन)

दुर्योधन उवाच

मुनिशार्दूल भगवान्बलभद्रो नागकन्याभिर्गोपीभिः कदा कालिंदीकूले विजहार ॥ १ ॥

प्राड्विपाक उवाच

एकदा द्वारकानगराद्धितालांकं रथमास्थाय सुरान्दिदृक्षुः परमुत्कंठो नन्दराजगोकुलगोगोपालगोपीगणसंकुलः संकर्षण आगतश्चिरोत्कंठाभ्यां नन्दराजयशोदाभ्यां परिष्विक्तो गोपीगोपालगोभिर्मिलित्वा तत्र द्वौ मासौ वासन्तिकौ चावात्सीत् ॥ २ ॥ अथ च या नागकन्याः पूर्वोक्तास्ता गोपकन्या भूत्वा बलभद्रप्राप्त्यर्थं गर्गाचार्याद्बलभद्रपञ्चांगं गृहीत्वा तेनैव सिद्धा बभूवुः । ताभिर्बलदेव एकदा प्रसन्नः कालिंदीकूले रासमण्डलं समारेभे । तदैव चैत्रपूर्णिमायां पूर्णचन्द्रोऽरुणवर्णः संपूर्णं वनं रञ्जयन् विरेजे ॥ ३ ॥ शीतला मन्दयानाः कमलमकरंदरेणुवृंदसंवृताः सर्वतो वायवः परिववुः । कलिंदगिरिनन्दिनीचललहरीभिरानन्ददायिनी पुलिनं विमलं व्याचितं चकार । तथा च कुञ्जप्रांगणनिकुञ्जपुञ्जैः स्फुरल्ललितपल्लवपुष्पपरागैर्मयूरकोकिलपुंस्कोकिलकूजितैर्मधुपमधुरध्वनिभिर्व्रजभूमिर्विभ्राजमाना बभूव ॥ ४ ॥ तत्र क्वणद्घंटिकनूपुरः स्फुरन्मणिमयकटककटिसूत्रकेयूरहारकिरीटकुंडलयोरुपरि कमलपत्रैर्नीलांबरो विमलकमलपत्राक्षो यक्षीभिर्यक्षराडिव गोपीभिर्गोपराड् रासमण्डले

ताम्रपर्णी, मलयाचल, कुलाचल, दक्षिणसिन्धु, फाल्गुनतीर्थ, पंचाप्सर, गोकर्ण, शूर्पारक, तापी, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, दण्डक, रेवा, माहिष्मती और अवन्तिका आदि तीर्थोंका स्वयं भगवान् संकर्षणने सेवन किया। तत्पश्चात् तुम्हारी सहायताके लिये विशसन (कुरुक्षेत्र) में पधारेंगे ॥ १७ ॥ यह मैंने बलभद्रजीका परम पावन तीर्थयात्रा-चरित्र तुम्हारे सामने वर्णन किया । हे कौरवेन्द्र ! यह सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला और सर्वकल्याणकारी पवित्र प्रसङ्ग है । अब तुम और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ १८ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां बलभद्रखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

दुर्योधनने पूछा—हे भगवन् ! हे मुनिसत्तम ! भगवान् बलभद्रजीने नागकन्या गोपियोंके साथ यमुनाजीकेतटपर कब विहार किया था ? ॥१॥ प्राड्विपाक मुनि बोले—एक समयकी बात है, व्रजके सुहृद्-बन्धुओंको देखनेकी बलरामजीके मनमें बड़ी उत्कण्ठा पैदा हो गयी । तब वे अपने तालध्वजसे युक्त रथपर सवार होकर द्वारकासे निकले और गौओं, गोपालों तथा गोपियोंसे भरे गोकुलमें जा पहुँचे । नन्दराज और यशोदाजी भी बहुत दिनोंसे उन्हें देखनेके लिये उत्कण्ठित थीं, अतएव उन्होंने उनको हृदयसे लगा लिया । फिर बलभद्रजी गौओं, गोपियों और गोपालोंसे मिले और पूरे वसन्तके दो महीने उन्होंने वहाँ निवास किया ॥ २ ॥ पहले जिन नागकन्याओंके गोपी होनेका वर्णन आ चुका है, उन्होंने गर्गाचार्यजीसे बलभद्रजीका पञ्चाङ्ग प्राप्त करके उसे सिद्ध किया था । उसीके प्रभावसे बलभद्रजीने प्रसन्न होकर कालिन्दीके तटपर उनके साथ रासमण्डलमें रास-क्रीड़ा की । उस दिन चैत्रकी पूर्णिमा थी । अरुण वर्णके पूर्ण चन्द्र उदित होकर सारे वनको अपनी रंग-विरंगी किरणोंसे रञ्जित कर रहे थे ॥ ३ ॥ शीतल पवन कमलके मकरन्द और परागको लिये सर्वत्र मन्द-मन्द गतिसे प्रवाहित हो रहा था । आनन्ददायिनी यमुना अपनी चञ्चल लहरियोंसे निर्मल पुलिनभूमिको व्याप्त कर रही थी । कुञ्जोंकी प्राङ्गण-भूमि विविध निकुञ्जपुञ्जोंसे सुशोभित तथा चमचमाते हुए सुन्दर पल्लवों और पुष्पोंके परागसे आवृत थी । मोर और कोयल मधुर स्वरमें बोल रहे थे और मधुपान-मत्त मधुकरोंकी मधुर-ध्वनिसे मुखरित व्रजभूमि अत्यन्त शोभाको प्राप्त हो रही थी ॥ ४ ॥ बलरामजीके पैरोंमें नूपुरकी मधुर ध्वनि हो रही थी । चमकती हुई मणियोंके कड़े, करधनी, केयूर, हार, किरीट और कुण्डलोंसे वे अलंकृत थे । उनके वदनपर कमलदलकी छटा छा रही थी । वे नीलाम्बर धारण किये हुए थे । उनके विमल कमल-दलके समान नेत्र थे । ऐसे श्रीबलदेवजी यक्षिणियोंके साथ यक्षराजकी भाँति

रेजे ॥ ५ ॥ अथ वरुणप्रेषिता वारुणी देवी पुष्पभारगंधिलोभिमिलिंदनादितवृक्षकोटरेभ्यः पतंती सर्वतो वनं सुरभीचकार । तत्पानमदविह्वलः कमलविशालताम्राक्षो मकरध्वजावेशचलद्‌धुर्य्यङ्गभंगो विहारखेदप्रस्वेदांबुकणैर्गलद्‌गंडस्थलपत्रभङ्गो गजेंद्रगतिर्गजेन्द्रशुण्डादंडसमदोर्दंडमण्डितो गजीभिर्गजराजेन्द्र इवोन्मत्तः सिंहासने न्यस्तहलो मुसलपाणिः कोटींदुपूर्णमण्डलसंकाशः प्रोद्दमद्रत्नमञ्जीरप्रचलनूपुरप्रक्वणत्कनककिंकिणीभिः कंकणस्फुरत्ताटङ्कपुरटहारश्रीकंठांगुलीयशिरोमणिभिः प्रविडंबिनीकृतसर्पिणीश्यामवेणीकुन्तलललितगंडस्थलपत्रावलिभिः सुंदरीभिर्भगवान् भुवनेश्वरो विभ्राजमानो विरराज अथ च रेमे ॥ ६ ॥ अथ ह वाव कालिंदीकूलकांतारपर्यटनविहारपरिश्रमोद्यत्स्वेदबिंदुव्याप्तमुखारविंदः स्नानार्थं जलक्रीडार्थं यमुनां दूरात्स आजुहाव । ततस्त्वनागतां तटिनीं हलाग्रेण कुपितो विचकर्ष इति होवाच च ॥ ७ ॥ अथ मामवज्ञाय नायासि मयाहूताऽपि मुसलेन त्वां कामचारिणीं शतधा नेष्य एवं निर्भर्त्सिता सा भूरिभीता यमुना चकिता तत्पादयोः पतितोवाच ॥ ८ ॥ राम राम संकर्षण बलभद्र महाबाहो तव परं विक्रमं न जाने । यस्यैकस्मिन्मूर्ध्नि सर्षपवत्सर्वं भूखण्डमण्डलं दृश्यते । तस्य तव परमनुभावमजानंतीं प्रपन्नां मां मोक्तुं योग्योऽसि । त्वं भक्तवत्सलोऽसि ॥ ९ ॥ इत्येवं याचितो बलभद्रो यमुनां ततो व्यमुञ्चत्पुनः करेणुभिः करीव गोपीभिर्गोपराड् जले विजगाह । पुनर्जलाद्विनिर्गत्य तटस्थाय बलभद्राय सहसा यमुना चोपायनं नीलांबराणि हेमरत्नमयभूषणानि दिव्यानि च ददौ ह वाव तानि गोपीयूथाय पृथक् पृथक् विभज्य स्वयं नीलांबरे वसित्वा कांचनीं मालां नवरत्नमयीं धृत्वा महेंद्रो वारणेंद्र इव बलभद्रो विरेजे ॥ १० ॥ इत्थं कौरवेन्द्र यादवेन्द्रस्य रमतः सर्वा वासन्तिकीर्निशा व्यतीता बभूवुः ।

रासमण्डलमें गोपियोंके द्वारा घिरे हुए विराजित थे ॥ ५ ॥ तदनन्तर वरुणके द्वारा प्रेरित वारुणी देवी वृक्षोंके कोटरोंसे प्रकट होकर बहने लगीं । उस पुष्पासवकी सुगन्धसे सारा वन सुगन्धमय हो गया । मधुके लोभमें मधुकर-पुञ्ज मधुर गुंजार करने लगा । वारुणी-पानसे मदविह्वल तथा कमल-दलके समान विशाल और अरुण नेत्रवाले बलदेवजीके अङ्ग प्रेमावेशसे चञ्चल हो उठे । तदनन्तर लीला-विहारजन्य श्रमके कारण जलकणकी भाँति पसीनेकी बूँदें उनके मुखपर प्रकट हो गयीं और उन्होंने कपोलोंपर रचित चित्रकारीको धो दिया । तदनन्तर गजराजकी-सी चालवाले और गजेन्द्र ऐरावतकी सूँड़के समान विशाल भुजाओंवाले बलदेवजी गोपियोंके साथ वैसे ही क्रीड़ा करने लगे, जैसे उन्मत्त मातङ्ग हथिनियोंके साथ क्रीड़ा करता है । उनके सिंहस्कन्ध-तुल्य कंधेपर हल और हाथमें मुसल सुशोभित था । करोड़ों-करोड़ों पूर्ण चन्द्रमाओंकी प्रभाके समान उनका तेज छिटक रहा था । देदीप्यमान रत्नोंके मञ्जीर, चञ्चल नूपुर, मधुर शब्द करती हुई स्वर्णमयी किङ्किणी, कड़े, ताटङ्क, हार, श्रीकण्ठ, अंगूठियाँ और सिरपर दिव्य मणिभूषण सुशोभित थे । काली नागिनको लजानेवाली कृष्ण अलकावलीकी वेणीसे युक्त और कपोलोंपर चित्रित मनोहर पत्रावलियोंसे सुशोभित गोप सुन्दरियोंके साथ अखिल भुवनपति भगवान् बलरामजी वहाँ विराजित होकर रास-विहार करने लगे ॥ ६ ॥ फिर यमुनाके किनारे वनमें विचरण और क्रीड़ा करते हुए बलदेवजीके मुख-कमलपर पसीनेकी बूँदें दिखायी देने लगीं । तब उन्होंने स्नान तथा जल-क्रीड़ा करनेके लिये दूरसे ही यमुनाजीको पुकारा, परंतु वे नहीं आयीं । फिर तो बलदेवजीने क्रोधमें भरकर हलकी नोकसे यमुनाजीको खींच लिया और कहा—॥ ७ ॥ 'आज मैंने तुमको बुलाया, किंतु तुम मेरा अपमान करके नहीं आयीं । तुम मनमाना बर्ताव करनेवाली हो । अच्छा, अभी इस मुसलके द्वारा मैं तुम्हारे सौ टुकड़े कर देता हूँ ।' यमुनाजीको जब बलरामजीने इस प्रकार डाँटा, तब वे अत्यन्त भयभीत हो उनके चरणकमलोंपर गिर पड़ीं और बोलीं—॥ ८ ॥ 'हे लोकाभिराम राम ! हे संकर्षण ! हे बलभद्र ! हे महाबाहो ! मैं आपके असीम बल-पराक्रमको नहीं जानती थी । आपके ही मस्तकपर सारा भूखण्डमण्डल सरसोंके समान पड़ा रहता है । मैं आपके परम प्रभावसे अनभिज्ञ हूँ और आपकी शरणमें आयी हूँ । आप भक्तवत्सल हैं । मुझे छोड़ दीजिये ।' ॥ ९ ॥ इस प्रकार

भगवतो वलभद्रस्य हस्तिनापुरमिव वीर्य्यं सूचयतीव ह्यद्यापि च कुटवर्त्मना यमुना वहति । इमां रामस्य रासकथां यः शृणोति श्रावयति च स सर्वपापपटलं छित्वा तस्य परस्परसानन्दपदं प्रतियाति । किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ११ ॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीवलभद्रखंडे प्राड्विपाकदुर्योधनसंवादे रामरासक्रीडावर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः

(श्रीवलभद्रजीकी पूजापद्धति और पटल)

दुर्योधन उवाच

भगवन् गर्गाचार्येण गोपीयूथाय कथं दत्तं वलभद्रपञ्चाङ्गं तत्कृपया वदतात् । त्वं सर्वज्ञोऽसि ॥ १ ॥

प्राड्विपाक उवाच

कौरवेन्द्र एकदा गर्गाचार्यः कलिंदनन्दिनीं स्नातुं गर्गाचलाद्व्रजमंडलं चाजगाम । तत्रैकांते मरुल्लीलैंजल्ललितलतातरुपल्लवपुष्पगंधमत्तमिलिंदपुञ्जे कालिंदीकूलकलितनिकुंजे श्रीरामकृष्णध्यानतत्परं गर्गाचार्यं प्रणम्य नागेन्द्रकन्याः स्म इति जातिस्मरा गोपकन्याः श्रीमद्बलभद्रप्राप्त्यर्थं सेवनं पप्रच्छुस्तासां परमां भक्तिं वीक्ष्य पद्धतिपटलस्तोत्रकवचसहस्रनामानि गोपीयूथाय स प्रददौ । किं भूयस्त्वं तद्ग्रहणं कर्तुमिच्छसि वदतात् ॥ २ ॥

दुर्योधन उवाच

रामस्य पद्धतिं ब्रूहि यया सिद्धिं व्रजाम्यहम् । त्वं भक्तवत्सलो ब्रह्मन् गुरुदेव नमोस्तु ते ॥ ३ ॥

प्रार्थना करनेपर गोपराज वलभद्रजीने यमुनाको छोड़ दिया और हथिनियोंके साथ गजराजकी भाँति वे गोपियोंके साथ जलक्रीड़ा करने लगे। तदनन्तर उनके यमुनासे वाहर निकलनेपर यमुनाजीने आकर उन्हें वहुत-से नील वस्त्र और स्वर्ण तथा रत्नोंके आभूषण भेंट किये। हे दुर्योधन! वलरामजीने उन सव वस्त्राभूषणोंको पृथक्-पृथक् गोपियोंमें वाँट दिया और स्वयं नीलाम्बर तथा नवीन रत्नोंसे निर्मित स्वर्णमालाको धारण करके ऐरावतकी भाँति विराजमान हो गये ॥१०॥ हे कौरवेन्द्र ! इस प्रकार क्रीड़ारत यादवश्रेष्ठ वलरामजीने वसन्त ऋतुकी रात्रियोंको व्यतीत किया। जिस प्रकार हस्तिनापुरको देखनेपर भगवान् वलरामजीके पराक्रमका दर्शन होता है, उसी प्रकार आजतक यमुनाजी टेढ़े मार्गसे प्रवाहित होती हुई उनकी शक्तिको सूचित कर रही हैं। भगवान् वलरामजीके इस रासलीलाके प्रसङ्गको जो मनुष्य सुनता अथवा सुनाता है, वह सारे पापोंसे मुक्त होकर परमानन्द-पदको प्राप्त होता है। हे युवराज ! अव क्या सुनना चाहते हो ? ॥ ११ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां वलभद्रखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दुर्योधनने कहा—भगवन्! आप सर्वज्ञ हैं। यह वतानेकी कृपा कीजिये कि गोपियोंके यूथको श्रीगर्गाचार्यजीने वलभद्र-पञ्चाङ्ग किस प्रकार प्रदान किया था ॥ १ ॥ प्राड्विपाक मुनि वोले—हे कुरुराज! एक वार गर्गजी यमुना-स्नान करनेके लिये गर्गाचलसे चलकर व्रजपुरमें पधारे। यमुनाजीके तटकी ललित लताएँ पवनके प्रवाहसे हिल रही थीं। पुष्पोंके सौरभसे मत्त भ्रमरोंके समूह गुंजार कर रहे थे। इस प्रकारके यमुना-तटपर एक निकुञ्जके नीचे एकान्तमें श्रीगर्गाचार्य भगवान् वलराम और श्रीकृष्णका ध्यान करने लगे। उसी समय गोपियोंने आकर उनको प्रणाम किया। तभी उनको स्मरण हो आया कि हम पूर्वजन्मकी नागेन्द्रकन्याएँ हैं। तव उन्होंने वलभद्रजीको प्राप्त करनेके लिये गर्गजीसे सेवाका साधन पूछा। उन कन्याओंकी इस अनुपम भक्तिको देखकर उनके उद्देश्यकी सिद्धिके लिये गर्गजीने उनको पद्धति, पटल, स्तोत्र, कवच और सहस्रनाम—यह पञ्चाङ्ग-साधन प्रदान किया। अव वताओ, तुम और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ २ ॥

प्राड्विपाक उवाच

राममार्गस्य नियमं शृणु पार्थिवसत्तम । येन प्रसन्नो भवति बलभद्रो महाप्रभुः ॥ ४ ॥
सहस्रवदनो देवो भगवान् भुवनेश्वरः । न दानैर्न च तीर्थैश्च भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया॥ ५ ॥
सत्संगमेत्याशु शिक्षेद्भक्तिं वै श्रीहरेर्गुरोः । स सिद्धः कथितो जातं यस्य वै प्रेमलक्षणम् ॥ ६ ॥
ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय रामकृष्णेति च ब्रुवन् । नत्वा गुरुं भुवं चैव ततो भूम्यां पदं न्यसेत् ॥ ७ ॥
वार्य्युपस्पृश्य रहसि स्थितो भूत्वा कुशासने । हस्तावुत्संग आधाय स्वनासाग्रनिरीक्षणः ॥ ८ ॥
ध्यायेत्परं हरिं देवं बलभद्रं सनातनम् । गौरं नीलांबरं हृद्यं वनमालाविभूषितम् ॥ ९ ॥
एवं ध्यानपरो नित्यं प्रीत्यर्थं हलिनः प्रभोः । त्रिकालसंध्याकृच्छुद्धो मौनी क्रोधविवर्जितः ॥१०॥
अकामी गतलोभश्च निर्मोहः सत्यवाग् भवेत् । द्विवारं जलपानार्थी एकभुक्तो जितेन्द्रियः ॥११॥
क्षौमाम्बरो भूमिशायी भूत्वा पायसभोजनः । एवं निर्जितषड्वर्गो भवेदेकाग्रमानसः ॥१२॥
तस्य प्रसन्नो भवति सदा संकर्षणो हरिः । परिपूर्णतमः साक्षात्सर्वकारणकारणः ॥१३॥
इत्थं श्रीबलभद्रस्य कथिता पद्धतिर्मया । कौरवेन्द्र महाबाहो किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१४॥

दुर्योधन उवाच

मुनींद्र देवदेवस्य पटलं ब्रूहि मे प्रभोः । येन सेवां करिष्यामि तत्पदांबुजयोः सदा ॥१५॥

प्राड्विपाक उवाच

बलस्य पटलं गुह्यं विद्धि सिद्धिप्रदायकम् । एकांते ब्रह्मणा दत्तं नारदाय महात्मने ॥१६॥
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य कामबीजं ततः परम् । कालिंदीभेदनपदं संकर्षणमतः परम् ॥१७॥

दुर्योधनने कहा—हे ब्रह्मन् गुरुदेव ! आप भक्तवत्सल हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ । आप कृपया बलरामजीकी 'पद्धति'का वर्णन कीजिये, जिसे जानकर मैं सिद्धि प्राप्त कर सकूँ ॥ ३ ॥ प्राड्विपाक मुनि बोले—हे राजसत्तम ! जिससे महाप्रभु बलरामजी प्रसन्न हो जाते हैं, उस बलभद्र-पद्धतिके नियम सुनो ॥ ४ ॥ वे भगवान् बलदेवजी सहस्रमुखवाले हैं । समस्त भुवनोंके अधीश्वर हैं । बहुतसे दान और तीर्थ-सेवनसे भी उनकी प्राप्ति नहीं हो सकती । वे तो केवल 'अनन्य-भक्ति'से प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥ श्रीहरिके बड़े भाई उन बलरामजीकी भक्ति सत्सङ्गके द्वारा शीघ्र प्राप्त हो सकती है । जिनमें प्रेमलक्षणा भक्तिका उदय हो जाता है, वे ही सिद्ध पुरुष हैं ॥ ६ ॥ ब्राह्ममुहूर्तमें उठते ही भगवान् राम-कृष्णके नामोंका उच्चारण करे, फिर गुरुदेवको और पृथ्वीको (मनसे) प्रणाम करके पृथ्वीपर पैर रक्खे ॥ ७ ॥ तदनन्तर स्नान-आचमन करके निर्जनमें कुशासनपर बैठ जाय, दोनों हाथ गोदमें रख ले और अपनी नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि जमाकर परमदेव सनातन हरि भगवान् श्रीबलरामजीका ध्यान करे ॥ ८ ॥ उनका गौरवर्ण है । उन्होंने नीलाम्बर धारण कर रक्खा है । वे वनमालासे विभूषित हैं । बड़ी मनमोहन मूर्ति है । ऐसे हलधर भगवान् बलरामजीको प्रसन्न करनेके लिये नित्य उनका ध्यान करना चाहिये ॥ ९ ॥ साधकको चाहिये कि वह बाहर-भीतरसे पवित्र हो, मौन-धारण करे और क्रोधका त्याग करके तीनों कालमें संध्या-वन्दन करे ॥ १० ॥ मनमें कोई कामना, लोभ और मोह न रहे । सत्य भाषण करे । जितेन्द्रिय होकर एक बार केवल पायसका भोजन करे । दो बार जलपान करे ॥ ११ ॥ पवित्र रेशमी वस्त्र पहने और जमीनपर शयन करे । इस प्रकार छः शत्रुओंपर विजय प्राप्त करके एकाग्र मनसे भजन करनेपर सम्पूर्ण कारणोंके कारण परिपूर्णतम साक्षात् भगवान् श्रीसंकर्षणजी सदाके लिये प्रसन्न हो जाते हैं । हे महाबाहु कौरवराज ! इस प्रकार मैंने महात्मा बलभद्रजीकी 'पद्धति'का वर्णन किया, अब तुम और क्या सुनना चाहते हो ? ॥१२–१४॥ दुर्योधनने कहा—हे मुनिराज ! अब देवदेव बलरामजीका 'पटल' सुनाइये, जिसका साधन करके मैं सदा उनके चरण-कमलोंकी सेवा कर सकूँ ॥ १५ ॥ प्राड्विपाक मुनि बोले—भगवान् बलरामजीका पटल महान् गोपनीय और सिद्धि प्रदान करनेवाला है । इसे पहले ब्रह्माजीने एकान्त स्थानमें महात्मा नारदजीको दिया था ॥ १६ ॥ पहले प्रणव (ॐ) लिखकर फिर कामबीज (क्लीं) लिखना चाहिये । तत्पश्चात् 'कालिन्दीभेदन' और 'संकर्षण'—इन

चतुर्थ्यंतं द्वयं कृत्वा स्वाहां पश्चाद्विधाय च। मंत्रराजमिमं राजन् ब्रह्मोक्तं षोडशाक्षरम् ॥१८॥
जपेल्लक्षं व्रती भूत्वा सहस्राणि च षोडश। इहामुत्र परां सिद्धिं संप्राप्नोति न संशयः ॥१९॥
अथ जप्तस्य मंत्रस्य महापूजां समाचरेत्। द्वात्रिंशत्पत्रसंयुक्तं कर्णिकाकेसरोज्ज्वलम् ॥२०॥
भव्यं कंजं पञ्चवर्णं लिखित्वा स्थंडिले शुभे। तस्योपरि न्यसेद्राजन् हेमसिंहासनं शुभम् ॥
तस्मिन् श्रीबलदेवस्य परामर्चां प्रपूजयेत् ॥२१॥

ॐनमो भगवते पुरुषोत्तमाय वासुदेवाय संकर्षणाय सहस्रवदनाय महानन्ताय स्वाहा। अनेन मंत्रेण शिखाबंधनं कृत्वा सर्वतस्तं प्रणम्य तत्संमुखो भूत्वा स्वयं नतो भवेत्। ॐजयजयानंत बलभद्र कामपाल तालांक कालिंदीभंजन आविराविर्भूय मम संमुखो भवेति। अनेन मंत्रेणावाहनं कुर्यात्। ॐनमस्तेऽस्तु सीरपाणे हलमुसलधर रौहिणेय नीलांबर राम रेवतीरमण नमस्तेऽस्तु। अनेन मंत्रेणासनपाद्यार्घ्यस्नानमधुपर्कधूपदीपयज्ञोपवीत-नैवेद्यवस्त्राभूषणगंधपुष्पाक्षतपुष्पाञ्जलिनीराजनादीनुपचारान् प्रकल्पयेत्। ॐविष्णवे मधुसूदनाय वामनाय त्रिविक्रमाय श्रीधराय हृषी-केशाय पद्मनाभाय दामोदराय संकर्षणाय वासु-देवाय प्रद्युम्नायानिरुद्धायाधोक्षजाय पुरुषोत्तमाय श्रीकृष्णाय नमः। इति पादगुल्फजानूरुकट्यु-दरपार्श्वपृष्ठिभुजाकंधरनेत्रशिरांसि पृथक् पृथक् पूजयामीति मंत्रेण सर्वांगपूजां कुर्यात्। अथ शंख-

---

दो पदोंका चतुर्थ्यन्त लिखकर अन्तमें स्वाहा जोड़ देना चाहिये। यों करनेपर 'ॐ क्लीं कालिन्दीभेदनाय संकर्षणाय स्वाहा'—यह मन्त्र बन जाता है। यह षोडशाक्षर मन्त्रराज ब्रह्माजीके द्वारा कहा गया है ॥ १८ ॥ मनुष्यको व्रत लेकर इस मन्त्रका एक लाख सोलह हजार जप करना चाहिये। इस प्रकार करनेपर साधक इस लोक और परलोकमें परम सिद्धिको प्राप्त कर लेता है, इसमें कोई संदेह नहीं ॥ १९ ॥ मन्त्र-जपके बाद विशेष रूपसे महापूजा करनी चाहिये। (उसका विधान यह है—) हे राजन्! मनोरम स्थण्डिलपर कर्णिका-स्थित केसरोंसे उज्ज्वल बत्तीस दलोंवाला एक सुन्दर पाँच रंगका कमल अङ्कित करे। उसपर मङ्गलमय स्वर्ण-सिंहासन रक्खे। उसके ऊपर बलरामजीकी परम श्रेष्ठ मूर्तिको पधराकर उनकी भलीभाँति पूजा करे ॥ २० ॥ २१ ॥ 'ॐ नमो भगवते पुरुषोत्तमाय वासुदेवाय संकर्षणाय सहस्रवदनाय महानन्ताय स्वाहा'—इस मन्त्रसे शिखा-बन्धन करे। तत्पश्चात् श्रीबलरामजीको सब दिशाओंमें प्रणाम करके उनके सम्मुख अत्यन्त विनयपूर्वक बैठ जाय। फिर 'ॐ जय जयानन्त बलभद्र कामपाल तालाङ्क कालिन्दीभञ्जन आविराविर्भूय मम सम्मुखो भव।' इसको पढ़कर आवाहन करे। तदनन्तर 'नमस्तेऽस्तु सीरपाणे हलमुसलधर रौहिणेय नीलाम्बर राम रेवतीरमण नमस्तेऽस्तु।' इस मन्त्रके द्वारा आसन, पाद्य, अर्घ्य, स्नानीय, यज्ञोपवीत, वस्त्र, भूषण, गन्ध, अक्षत, पुष्प, मधुपर्क, धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्पाञ्जलि आदि उपचार प्रदान करे। तदनन्तर 'ॐ मधुसूदनाय वामनाय त्रिविक्रमाय श्रीधराय हृषीकेशाय पद्मनाभाय दामोदराय संकर्षणाय वासुदेवाय प्रद्युम्नायानिरुद्धायाधोक्षजाय पुरुषोत्तमाय श्रीकृष्णाय नमः।' —इस मन्त्रके द्वारा पाद, गुल्फ, जानु, ऊरु, कटि, उदर, पार्श्व, पीठ, भुजा, स्कन्ध, अधर, नेत्र और मस्तक आदि सर्वाङ्गकी पृथक्-पृथक् पूजा करे। इसके बाद शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, असि, धनुष, वेत्र, हल, मुसल, कौस्तुभ, वनमाला, श्रीवत्स, पीताम्बर, नीला-म्बर, वंशी, वेत्र, गरुडाङ्क और तालाङ्क ध्वजसे चिह्नित रथ, दारुक, सुमति, कुमुद, कुमुदाक्ष और श्रीदामा—इन शब्दोंके पहले ॐ और अन्तमें चतुर्थी विभक्ति लगाकर अन्तमें 'नमः' शब्द जोड़ दे। इससे 'ॐ शङ्खाय नमः', 'ॐ चक्राय नमः' आदि रूप बन जायगा। इन मन्त्रोंके द्वारा सबका पूजन करे। इसी प्रकार कमलके सब ओर अपने-अपने स्थानपर विष्वक्सेन, वेदव्यास, दुर्गा, गणेश, दिक्पाल और नवग्रह आदिका भी पृथक्-पृथक् पूजन करना चाहिये। तदनन्तर परिसमूहन आदि स्थालीपाकके विधानसे अग्नि-देवकी पूजा करके पूर्वोक्त 'ॐ क्लीं कालिन्दीभेदनाय संकर्षणाय स्वाहा।'—इस मन्त्रसे पचीस हजार आहुतियाँ दे। फिर इसी प्रकार 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'—इस द्वादशाक्षर मन्त्रसे आठ हजार और

बलाय बलभद्राय तालांकाय नमो नमः । नीलांबराय गौराय रौहिणेयाय ते नमः ॥ ६ ॥
धेनुकारिर्मुष्टिकारिः कूटारिर्बल्वलांतकः । रुक्म्यरिः कूपकर्णारिः कुम्भांडारिस्त्वमेव हि ॥ ७ ॥
कालिंदीभेदनोऽसि त्वं हस्तिनापुरकर्षकः । द्विविदारिर्यादवेंद्रो व्रजमंडलमंडनः ॥ ८ ॥
कंसभ्रातृप्रहंताऽसि तीर्थयात्राकरः प्रभुः । दुर्योधनगुरुः साक्षात्पाहि पाहि प्रभो त्वतः ॥ ९ ॥

जय जयाच्युतदेव परात्पर स्वयमनन्तदिगंतगतश्रुत ।
सुरमुनींद्रफणीन्द्रवराय ते मुसलिने बलिने हलिने नमः ॥१०॥
यः पठेत्सततं स्तवनं नरः स तु हरेः परमं पदमाव्रजेत् ।
जगति सर्वबलं त्वरिमर्दनं भवति तस्य धनं स्वजनं धनम् ॥११॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायां बलभद्रखण्डे बलभद्रस्तवराजवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

(बलभद्रस्तोत्र-कवच)

दुर्योधन उवाच

गोपीभ्यः कवचं दत्तं गर्गाचार्येण धीमता । सर्वरक्षाकरं दिव्यं देहि मह्यं महामुने ॥ १ ॥

प्राड्विपाक उवाच

स्नात्वा जले क्षौमधरः कुशासनः पवित्रपाणिः कृतमन्त्रमार्जनः ।
स्मृत्वाऽथ नत्वा बलमच्युताग्रजं संधारयेद्वर्मसमाहितो भवेत् ॥ २ ॥
गोलोकधामाधिपतिः परेश्वरः परेषु मां पातु पवित्रकीर्तनः ।
भूमण्डलं सर्षपवद्विलक्ष्यते यन्मूर्ध्नि मां पातु स भूमिमण्डले ॥ ३ ॥

॥ ५ ॥ भगवान् बलराम, बलभद्र और तालध्वजको मेरे बार-बार नमस्कार हैं। आप गौरवर्ण हैं, नीलाम्बर धारण किये हुए हैं, रोहिणीके कुमार हैं; आपको नमस्कार है ॥ ६ ॥ आप धेनुकासुर, मुष्टिकासुर, कूट, बल्वल, रुक्मी, कूपकर्ण और कुम्भाण्डके शत्रु और उनके संहारक हैं ॥७॥ आप कालिन्दीका भेदन करनेवाले, हस्तिनापुरका आकर्षण करनेवाले, द्विविद वानरका वध करनेवाले, यादवोंके राजा और व्रजमण्डलको सुशोभित करनेवाले हैं ॥ ८ ॥ आपने कंसके भाइयोंका वध किया है, आप सबके स्वामी और तीर्थोंमें भ्रमण करनेवाले हैं। आप दुर्योधनके साक्षात् गुरु हैं। हे प्रभो! मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ॥ ९ ॥ हे अच्युत! आपकी जय हो, जय हो। हे परात्पर देव! आप स्वयं अनन्त एवं दिशा-विदिशाओंमें कीर्तित हैं। आप देवता, मुनि और सर्पोंके स्वामियोंमें श्रेष्ठ हैं। हल तथा मुसलको धारण करनेवाले भगवान् बलरामजीको मेरे नमस्कार हैं ॥ १० ॥ जो मनुष्य इस स्तवराजका निरन्तर पाठ करता है, वह श्रीहरिके परमपदको प्राप्त होता है। जगत्में वह शत्रुका शमन करनेवाले सम्पूर्ण बलोंसे सम्पन्न हो जाता है और उसे धन तथा स्वजन प्रचुररूपसे प्राप्त रहते हैं ॥ ११ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां बलभद्रखण्डे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

दुर्योधनने कहा—हे महामुने! धीमान् गर्गाचार्यने गोपियोंको जो सब तरहसे रक्षा करनेवाला दिव्य कवच दिया था, आप उसे मुझको प्रदान कीजिये ॥ १ ॥ प्राड्विपाक मुनि बोले—मनुष्य जलमें स्नान करके रेशमी वस्त्र धारण करे, कुशासनपर बैठे और हाथमें कुशकी पवित्री पहनकर मन्त्रका शोधन करे। तदनन्तर अच्युताग्रज भगवान् बलरामजीका स्मरण करके उन्हें प्रणाम करे। फिर मनको एकाग्र करके मन्त्ररूपी कवचको धारण करे ॥ २ ॥ जो भगवान् गोलोकधामके अधिपति हैं, जिनका कीर्तन परम पवित्र है, वे परमेश्वर शत्रुओंसे मेरी रक्षा करें। जिनके मस्तकपर भूमण्डल सरसोंकी तरह प्रतीत होता है;

सेनासु मां रक्षतु सीरपाणिर्युद्धे सदा रक्षतु मां हली च ।
दुर्गेषु चाव्यान्मुसली सदा मां वनेषु संकर्षण आदिदेवः ॥ ४ ॥
कलिंदजावेगहरो जलेषु नीलांबरो रक्षतु मां सदाऽग्नौ ।
वायौ च रामोऽवतु खे बलश्च महार्णवेऽनन्तवपुः सदा माम् ॥ ५ ॥
श्रीवासुदेवोऽवतु पर्वतेषु सहस्रशीर्षा च महाविवादे ।
रोगेषु मां रक्षतु रौहिणेयो मां कामपालोऽवतु वा विपत्सु ॥ ६ ॥
कामात्सदा रक्षतु धेनुकारिः क्रोधात्सदा मां द्विविदप्रहारी ।
लोभात्सदा रक्षतु बल्वलारिर्मोहात्सदा मां किल मागधारिः ॥ ७ ॥
प्रातः सदा रक्षतु वृष्णिधुर्यः प्राह्णे सदा मां मथुरापुरेन्द्रः ।
मध्यंदिने गोपसखः प्रपातु स्वराट् पराह्णेऽवतु मां सदैव ॥ ८ ॥
सायं फणींद्रोऽवतु मां सदैव परात्परो रक्षतु मां प्रदोषे ।
पूर्णे निशीथे च दुरन्तवीर्यः प्रत्यूषकालेऽवतु मां सदैव ॥ ९ ॥
विदिक्षु मां रक्षतु रेवतीपतिर्दिक्षु प्रलंबारिरधो यदूद्वहः ।
ऊर्ध्वं सदा मां बलभद्र आरात्तथा समन्ताद्बलदेव एव हि ॥ १० ॥
अन्तः सदाऽव्यात्पुरुषोत्तमो बहिर्नागेन्द्रलीलोऽवतु मां महाबलः ।
सदांतरात्मा च वसन् हरिः स्वयं प्रपातु पूर्णः परमेश्वरो महान् ॥ ११ ॥
देवासुराणां भयनाशनं च हुताशनं पापचयेन्धनानाम् ।
विनाशनं विघ्नघटस्य विद्धि सिद्धासनं वर्मवरं बलस्य ॥ १२ ॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीबलभद्रखंडे स्तोत्रकवचवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

वे भगवान् भूमण्डलमें मेरी रक्षा करें ॥ ३ ॥ हलधरभगवान् सेनामें और युद्धमें सदा मेरी रक्षा करें। मुसलधारी भगवान् दुर्गमें और आदिदेव भगवान् संकर्षण वनमें मेरी रक्षा करें ॥ ४ ॥ यमुनाके प्रवाहको रोकनेवाले भगवान् जलमें और नीलाम्बरधारी भगवान् अग्निमें निरन्तर मेरी रक्षा करें। भगवान् राम वायु (आँधी)में मेरी रक्षा करें । शून्य (आकाश) में भगवान् बलदेव और महान् समुद्रमें अनन्तवपु भगवान् मेरी रक्षा करें ॥ ५ ॥ पर्वतोंपर भगवान् वासुदेव मेरी रक्षा करें। घोर विवादमें हजार मस्तकवाले प्रभु, रोगमें श्रीरोहिणीनन्दन तथा विपत्तिमें भगवान् कामपाल मेरी रक्षा करें ॥ ६ ॥ धेनुकासुरके शत्रु भगवान् काम (कामना) से मेरी सदा रक्षा करें। द्विविदपर प्रहार करनेवाले भगवान् क्रोधसे, बल्वलके शत्रु भगवान् लोभसे और जरासंधके शत्रु भगवान् मोहसे सदा मेरी रक्षा करें ॥ ७ ॥ भगवान् वृष्णिधुर्य प्रातःकालके समय, भगवान् मथुरापुरी-नरेश पूर्वाह्ण (पहर दिन चढ़े), गोपसखा मध्याह्नमें और स्वराट् भगवान् पराह्ण (दिनके पिछले पहर) में सदा मेरी रक्षा करें ॥ ८ ॥ भगवान् फणीन्द्र सायंकालमें तथा परात्पर प्रदोषके समय मेरी सदा रक्षा करें। मध्यरात्रि और प्रलयकालके समय भगवान् दुरन्तवीर्य मेरी सदा रक्षा करें ॥ ९ ॥ कोनोंमें रेवतीपति, दिशाओंमें प्रलम्बासुरके शत्रु, नीचे यदूद्वह, ऊपर बलभद्र और दूर अथवा पास सब दिशाओंमें भगवान् बलदेवजी मेरी सदा रक्षा करें ॥ १० ॥ भीतरसे पुरुषोत्तम और बाहरसे महाबल नागेन्द्रलील मेरी सदा रक्षा करें और पूर्ण परमेश्वर महान् हरि स्वयं सदा-सर्वदा मेरे हृदयमें निवास करते हुए उत्कृष्ट रूपमें सदा मेरी रक्षा करें ॥ ११ ॥ श्रीबलभद्रजीके इस उत्तम कवचको देवों तथा असुरोंके भयका नाश करनेवाला, पापरूप ईंधनको जलानेके लिये साक्षात् अग्निरूप और विघ्नोंके घटका विनाश करनेवाला सिद्धासनरूप समझें ॥ १२ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां बलभद्रखण्डे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

(बलभद्र-सहस्रनाम)

दुर्योधन उवाच

बलभद्रस्य देवस्य प्राड्विपाक महामुने । नाम्नां सहस्रं मे ब्रूहि गुह्यं देवगणैरपि ॥ १ ॥

प्राड्विपाक उवाच

साधु साधु महाराज साधु ते विमलं यशः । यत्पृच्छसे परमिदं गर्गोक्तं देवदुर्लभम् ॥ २ ॥

नाम्नां सहस्रं दिव्यानां वक्ष्यामि तव चाग्रतः । गर्गाचार्येण गोपीभ्यो दत्तं कृष्णातटे शुभे ॥ ३ ॥

ॐअस्य श्रीबलभद्रसहस्रनामस्तोत्रमंत्रस्य गर्गाचार्य ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः सङ्कर्षणः परमात्मा देवता बलभद्र इति बीजं रेवतीति शक्तिः अनंत इति कीलकं बलभद्रप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः ।

अथ ध्यानम्

स्फुरदमलकिरीटं किंकिणीकंकणार्हं चलदलककपोलं कुंडलश्रीमुखाब्जम् ।
तुहिनगिरिमनोज्ञं नीलमेघांबराढ्यं हलमुसलविशालं कामपालं समीडे ॥ ४ ॥

ॐ बलभद्रो रामभद्रो रामः सङ्कर्षणोऽच्युतः । रेवतीरमणो देवः कामपालो हलायुधः ॥ ५ ॥

नीलांबरः श्वेतवर्णो बलदेवोऽच्युताग्रजः । प्रलंबघ्नो महावीरो रौहिणेयः प्रतापवान् ॥ ६ ॥

तालांको मुसली हली हरिर्यदुवरो बली । सीरपाणिः पद्मपाणिर्लगुडी वेणुवादनः ॥ ७ ॥

कालिंदीभेदनो वीरो बलः प्रबल ऊर्ध्वगः । वासुदेवकलाऽनंतः सहस्रवदनः स्वराट् ॥ ८ ॥

वसुर्वसुमतीभर्ता वासुदेवो वसूत्तमः । यदूत्तमो यादवेन्द्रो माधवो वृष्णिवल्लभः ॥ ९ ॥

द्वारकेशो माथुरेशो दानी मानी महामनाः । पूर्णः पुराणः पुरुषः परेशः परमेश्वरः ॥१०॥

दुर्योधनने कहा—हे महामुनि प्राड्विपाकजी! भगवान् बलभद्रके सहस्रनामको, जो देवताओंके लिये भी गोपनीय—अज्ञात है, मुझसे कहिये ॥ १ ॥ प्राड्विपाक मुनि बोले—साधु, साधु महाराज! तुम्हारा यश सर्वथा निर्मल है। तुमने जिसके लिये प्रश्न किया है, वह परम देवदुर्लभ सहस्रनाम गर्गजीके द्वारा कथित है। उन दिव्य सहस्र नामोंका वर्णन मैं तुम्हारे सामने कर रहा हूँ। गर्गाचार्यजीने यमुनाजीके मङ्गलमय तटपर यह सहस्रनाम गोपियोंको प्रदान किया था ॥ २ ॥ इस बलभद्रसहस्रनाम-स्तोत्ररूपी मन्त्रके गर्गाचार्य ऋषि हैं, अनुष्टुप् छन्द है, परमात्मा संकर्षण देवता हैं, बलभद्र बीज हैं, रेवतीरमण शक्ति हैं, अनन्त कीलक हैं, श्रीबलभद्रकी प्रीतिके लिये इसका विनियोग है ॥ ३ ॥ इसको पढ़कर सहस्रनाम-पाठके लिये विनियोगका जल छोड़ दे। तत्पश्चात् इस प्रकार ध्यान करे—जिनका निर्मल किरीट दमक रहा है, जो करधनी तथा कङ्कणोंसे अलंकृत हैं, चञ्चल अलकावलीसे जिनके कपोल सुशोभित हैं, जिनका मुख-कमल कुण्डलोंसे देदीप्यमान है, जो हिमाचल गिरिके समान मनोहर एवं उज्ज्वल हैं तथा नीलाम्बर धारण किये हुए हैं। विशाल हल-मुसल धारण करनेवाले उन भगवान् कामपाल बलभद्रजीका मैं स्तवन करता हूँ ॥ ४ ॥

सहस्रनाम आरम्भ

१. ॐ बलभद्र, २. रामभद्र, ३. राम, ४. संकर्षण, ५. अच्युत, ६. रेवतीरमण, ७. देव, ८. कामपाल, ९. हलायुध ॥ ५ ॥ १०. नीलाम्बर, ११. श्वेतवर्ण, १२. बलदेव, १३. अच्युताग्रज, १४. प्रलम्बघ्न, १५. महावीर, १६. रौहिणेय, १७. प्रतापवान् ॥ ६ ॥ १८. तालाङ्क, १९. मुसली, २०. हली, २१. हरि, २२. यदुवर, २३. बली, २४. सीरपाणि, २५. पद्मपाणि, २६. लगुडी, २७. वेणुवादन ॥ ७ ॥ २८. कालिन्दीभेदन, २९. वीर, ३०. बल, ३१. प्रबल, ३२. ऊर्ध्वग, ३३. वासुदेवकला, ३४. अनन्त, ३५. सहस्रवदन, ३६. स्वराट् ॥ ८ ॥ ३७. वसु, ३८. वसुमती, ३९. भर्ता, ४०. वासुदेव, ४१. वसूत्तम, ४२. यदूत्तम, ४३. यादवेन्द्र,

परिपूर्णतमः साक्षात्परमः पुरुषोत्तमः । अनन्तः शाश्वतः शेषो भगवान्प्रकृतेः परः ॥११॥
जीवात्मा परमात्मा च ह्यंतरात्मा ध्रुवोऽव्ययः । चतुर्व्यूहश्चतुर्वेदश्चतुर्मूर्तिश्चतुष्पदः ॥१२॥
प्रधानं प्रकृतिः साक्षी संघातः संघवान् सखी । महामना बुद्धिसखश्चेतोऽहंकारआवृतः ॥१३॥
इन्द्रियेशो देवतात्मा ज्ञानं कर्म च शर्म च । अद्वितीयो द्वितीयश्च निराकारो निरञ्जनः ॥१४॥
विराट् सम्राट् महौघश्च धारः स्थास्नुश्चरिष्णुमान् । फणींद्रः फणिराजश्च सहस्रफणमण्डितः ॥१५॥
फणीश्वरः फणी स्फूर्तिः फूत्कारी चीत्करः प्रभुः । मणिहारो मणिधरो वितली सुतली तली ॥१६॥
अतली सुतलेशश्च पातालश्च तलातलः । रसातलो भोगितलः स्फुरद्दन्तो महातलः ॥१७॥
वासुकिः शंखचूडाभो देवदत्तो धनंजयः । कंबलाश्वो वेगतरो धृतराष्ट्रो महाभुजः ॥१८॥
वारुणीमदमत्तांगो मदघूर्णितलोचनः । पद्माक्षः पद्ममाली च वनमाली मधुश्रवाः ॥१९॥
कोटिकंदर्पलावण्यो नागकन्यासमर्चितः । नूपुरी कटिसूत्री च कटकी कनकांगदी ॥२०॥
मुकुटी कुण्डली दण्डी शिखण्डी खंडमंडली । कलिः कलिप्रियः कालो निवातकवचेश्वरः ॥२१॥
संहारकृद्रुद्रवपुः कालाग्निः प्रलयो लयः । महाहिः पाणिनिः शास्त्रभाष्यकारः पतञ्जलिः ॥२२॥
कात्यायनः पक्विमाभः स्फोटायन उरङ्गमः । वैकुंठो याज्ञिको यज्ञो वामनो हरिणो हरिः ॥२३॥
कृष्णो विष्णुर्महाविष्णुः प्रभविष्णुर्विशेषवित् । हंसो योगेश्वरः कूर्मो वाराहो नारदो मुनिः ॥२४॥
सनकः कपिलो मत्स्यः कमठो देवमंगलः । दत्तात्रेयः पृथुर्वृद्ध ऋषभो भार्गवोत्तमः ॥२५॥

धन्वन्तरिर्नृसिंहश्च कल्किर्नारायणो नरः । रामचन्द्रो राघवेन्द्रः कोशलेन्द्रो रघूद्वहः ॥२६॥
काकुत्स्थः करुणासिंधू राजेन्द्रः सर्वलक्षणः । शूरो दाशरथिस्त्राता कौशल्यानन्दवर्द्धनः ॥२७॥
सौमित्रिर्भरतो धन्वी शत्रुघ्नः शत्रुतापनः । निषंगी कवची खड्गी शरी ज्याहतकोष्ठकः ॥२८॥
बद्धगोधाङ्गुलित्राणः शंभुकोदण्डभंजनः । यज्ञत्राता यज्ञभर्ता मारीचवधकारकः ॥२९॥
असुरारिस्ताटकारिर्विभीषणसहायकृत् । पितृवाक्यकरो हर्षी विराधारिर्वनेचरः ॥३०॥
मुनिर्मुनिप्रियश्चित्रकूटारण्यनिवासकृत् । कबंधहा दण्डकेशो रामो राजीवलोचनः ॥३१॥
मतंगवनसंचारी नेता पंचवटीपतिः । सुग्रीवः सुग्रीवसखो हनुमत्प्रीतमानसः ॥३२॥
सेतुबन्धो रावणारिर्लंकादहनतत्परः । रावण्यरिः पुष्पकस्थो जानकीविरहातुरः ॥३३॥
अयोध्याधिपतिः श्रीमाँल्लवणारिः सुरार्चितः । सूर्यवंशी चंद्रवंशी वंशीवाद्यविशारदः ॥३४॥
गोपतिर्गोपवृंदेशो गोपो गोपीशतावृतः । गोकुलेशो गोपपुत्रो गोपालो गोगणाश्रयः ॥३५॥
पूतनारिर्बकारिश्च तृणावर्तनिपातकः । अघारिर्धेनुकारिश्च प्रलंबारिर्व्रजेश्वरः ॥३६॥
अरिष्टहा केशिशत्रुर्व्योमासुरविनाशकृत् । अग्निपानो दुग्धपानो वृंदावनलताश्रितः ॥३७॥
यशोमतीसुतो भव्यो रोहिणीलालितः शिशुः । रासमंडलमध्यस्थो रासमंडलमंडनः ॥३८॥
गोपिकाशतयूथार्थी शंखचूडवधोद्यतः । गोवर्द्धनसमुद्धर्ता शक्रजिद्व्रजरक्षकः ॥३९॥
वृषभानुवरो नंद आनन्दो नन्दवर्धनः । नन्दराजसुतः श्रीशः कंसारिः कालियांतकः ॥४०॥
रजकारिर्मुष्टिकारिः कंसकोदण्डभंजनः । चाणूरारिः कूटहंता शलारिस्तोशलांतकः ॥४१॥

---

१८८. पृथु, १८९. वृद्ध, १९०. ऋषभ, १९१. भार्गवोत्तम ॥ २५ ॥ १९२. धन्वन्तरि, १९३. नृसिंह, १९४. कल्कि, १९५. नारायण, १९६. नर, १९७. रामचन्द्र, १९८. राघवेन्द्र, १९९. कोसलेन्द्र, २००. रघूद्वह ॥२६॥ २०१. काकुत्स्थ, २०२. करुणासिन्धु, २०३. राजेन्द्र, २०४. सर्वलक्षण, २०५. शूर, २०६. दाशरथि, २०७. त्राता, २०८. कौसल्यानन्दवर्द्धन ॥ २७ ॥ २०९. सौमित्रि, २१०. भरत, २११. धन्वी, २१२. शत्रुघ्न, २१३. शत्रुतापन, २१४ निषङ्गी, २१५. कवची, २१६. खड्गी, २१७. शरी, २१८. ज्याहतकोष्ठक ॥ २८ ॥ २१९. बद्धगोधाङ्गुलित्राण, २२०. शम्भुकोदण्डभञ्जन, २२१. यज्ञत्राता, २२२. यज्ञभर्ता, २२३. मारीचवधकारक ॥ २९ ॥ २२४. असुरारि, २२५. ताडकारि, २२६. विभीषणसहायकृत्, २२७. पितृवाक्यकर, २२८. हर्षी, २२९. विराधारि, २३०. वनेचर ॥ ३० ॥ २३१. मुनि, २३२. मुनिप्रिय, २३३. चित्रकूटारण्यनिवासकृत्, २३४. कवन्धहा, २३५. दण्डकेश, २३६. राम, २३७. राजीवलोचन ॥ ३१ ॥ २३८. मतङ्ग, २३९. वनसंचारी, २४०. नेता, २४१. पञ्चवटीपति, २४२ सुग्रीव, २४३, सुग्रीवसखा, २४४. हनुमत्प्रीतमानस ॥ ३२ ॥ २४५. सेतुवन्ध, २४६. रावणारि, २४७. लंकादहनतत्पर, २४८. रावण्यरि, २४९. पुष्पकस्थ, २५०. जानकीविरहातुर ॥ ३३ ॥ २५१. अयोध्याधिपति, २५२. श्रीमान्, २५३. लवणारि, २५४. सुरार्चित, २५५. सूर्यवंशी, २५६. चन्द्रवंशी, २५७. वंशीवाद्यविशारद ॥ ३४ ॥ २५८. गोपति, २५९. गोपवृन्देश, २६०. गोप, २६१, गोपीशतावृत, २६२. गोकुलेश, २६३. गोपपुत्र, २६४. गोपाल, २६५. गोगणाश्रय ॥ ३५ ॥ २६६. पूतनारि, २६७. वकारि, २६८. तृणावर्तनिपातक, २६९. अघारि, २७०. धेनुकारि, २७१. प्रलम्बारि, २७२. व्रजेश्वर ॥ ३६ ॥ २७३. अरिष्टहा, २७४. केशिशत्रु, २७५. व्योमासुरविनाशकृत्, २७६. अग्निपान, २७७. दुग्धपान, २७८. वृन्दावनलता, २७९. आश्रित ॥ ३७ ॥ २८०. यशोमतीसुत, २८१. भव्य, २८२. रोहिणीलालित, २८३. शिशु, २८४. रासमण्डलमध्यस्थ, २८५. रासमण्डलमण्डन ॥ ३८ ॥ २८६. गोपिकाशतयूथार्थी, २८७. शङ्खचूडवधोद्यत, २८८. गोवर्द्धनसमुद्धर्ता, २८९. शत्रुजित्, २९०. व्रजरक्षक ॥ ३९ ॥ २९१. वृषभानुवर, २९२. नन्द, २९३. आनन्द, २९४. नन्दवर्द्धन, २९५. नन्दराजसुत, २९६. श्रीश, २९७. कंसारि, २९८. कालियान्तक ॥ ४० ॥ २९९. रजकारि, ३००. मुष्टिकारि, ३०१. कंसकोदण्डभञ्जन, ३०२. चाणूरारि, ३०३. कूटहन्ता, ३०४. शलारि, ३०५. तोशलान्तक ॥ ४१ ॥

कंसभ्रातृनिहन्ता च मल्लयुद्धप्रवर्तकः । गजहंता कंसहंता कालहंता कलंकहा ॥४२॥
मागधारियवनहा पांडुपुत्रसहायकृत् । चतुर्भुजः श्यामलांगः सौम्यश्चौपगविप्रियः ॥४३॥
युद्धभृदुद्धवसखा मन्त्री मन्त्रविशारदः । वीरहा वीरमथनः शंखचक्रगदाधरः ॥४४॥
रेवतीचित्तहर्ता च रेवतीहर्षवर्द्धनः । रेवतीप्राणनाथश्च रेवतीप्रियकारकः ॥४५॥
ज्योतिर्ज्योतिष्मतीभर्ता रेवताद्रिविहारकृत् । धृतिनाथो धनाध्यक्षो दानाध्यक्षो धनेश्वरः ॥४६॥
मैथिलार्चितपादाब्जो मानदो भक्तवत्सलः । दुर्योधनगुरुर्गुर्वीगदाशिक्षाकरः क्षमी ॥४७॥
मुरारिर्मदनो मन्दोऽनिरुद्धो धन्विनां वरः । कल्पवृक्षः कल्पवृक्षी कल्पवृक्षवनप्रभुः ॥४८॥
स्यमन्तकमणिर्मान्यो गांडीवी कौरवेश्वरः । कुभांडखंडनकरः कूपकर्णप्रहारकृत् ॥४९॥
सेव्यो रैवतजामाता मधुमाधवसेवितः । बलिष्ठपुष्टसर्वांगो हृष्टः पुष्टः प्रहर्षितः ॥५०॥

वाराणसीगतः क्रुद्धः सर्वः पौंड्रकघातकः ।
सुनन्दी शिखरी शिल्पी द्विविदांगनिषूदनः ॥५१॥

हस्तिनापुरसंकर्षी रथी कौरवपूजितः । विश्वकर्मा विश्वधर्मा देवशर्मा दयानिधिः ॥५२॥
महाराजच्छत्रधरो महाराजोपलक्षणः । सिद्धगीतः सिद्धकथः शुक्लचामरवीजितः ॥५३॥
ताराक्षः कीरनासश्च बिम्बोष्ठः सुस्मितच्छविः । करीन्द्रकरदोर्दंडः प्रचंडो मेघमण्डलः ॥५४॥
कपाटवक्षाः पीनांसः पद्मपादस्फुरद्द्युतिः । महाविभूतिर्भूतेशो बंधमोक्षी समीक्षणः ॥५५॥
चैद्यशत्रुः शत्रुसंधो दंतवक्त्रनिषूदकः । अजातशत्रुः पापघ्नो हरिदाससहायकृत् ॥५६॥
शालबाहुः शाल्वहन्ता तीर्थयायी जनेश्वरः । नैमिषारण्ययात्रार्थी गोमतीतीरवासकृत् ॥५७॥

गंडकीस्नानवान्स्रग्वी वैजयन्तीविराजितः । अम्लानपंकजधरो विपाशी शोणसंप्लुतः ॥५८॥
प्रयागतीर्थराजश्च सरयूः सेतुबन्धनः । गयाशिरश्च धनदः पौलस्त्यः पुलहाश्रमः ॥५९॥
गङ्गासागरसंगार्थी सप्तगोदावरीपतिः । वेणी भीमरथी गोदा ताम्रपर्णी वटोदका ॥६०॥
कृतमाला महापुण्या कावेरी च पयस्विनी । प्रतीची सुप्रभा वेणी त्रिवेणी सरयूपमा ॥६१॥
कृष्णा पंपा नर्मदा च गंगा भागीरथी नदी । सिद्धाश्रमः प्रभासश्च बिन्दुर्बिन्दुसरोवरः ॥६२॥
पुष्करः सैंधवो जंबू नरनारायणाश्रमः । कुरुक्षेत्रपती रामो जामदग्न्यो महामुनिः ॥६३॥
इल्वलात्मजहन्ता च सुदामासौख्यदायकः । विश्वजिद्विश्वनाथश्च त्रिलोकविजयी जयी ॥६४॥
वसन्तमालतीकर्षी गदो गद्यो गदाग्रजः । गुणार्णवो गुणनिधिर्गुणपात्रो गुणाकरः ॥६५॥
रंगवल्लीजलाकारो निर्गुणः सगुणो बृहत् । दृष्टः श्रुतो भवद्भूतो भविष्यच्चाल्पविग्रहः ॥६६॥
अनादिरादिरानन्दः प्रत्यग्धामा निरन्तरः । गुणातीतः समः साम्यः समदृङ् निर्विकल्पकः ६७॥
गूढाव्यूढो गुणो गौणो गुणाभासो गुणावृतः । नित्योऽक्षरो निर्विकारोऽक्षरोऽजस्रसुखोऽमृतः ॥६८॥
सर्वगः सर्ववित्सार्थः समबुद्धिः समप्रभः । अक्लेद्योऽच्छेद्य आपूर्णो शोष्यो दाह्यो निवर्तकः ६९॥
ब्रह्म ब्रह्मधरो ब्रह्मा ज्ञापको व्यापकः कविः । अध्यात्मकोऽधिभूतश्चाधिदैवः स्वाश्रयाश्रयः ॥७०॥
महावायुर्महावीरश्चेष्टारूपतनुस्थितः । प्रेरको बोधको बोधी त्रयोविंशतिको गणः ॥७१॥
अंशांशश्च नरावेशोऽवतारो भूपरि स्थितः । महर्जनस्तपःसत्यं भूर्भुवःस्वरिति त्रिधा ॥७२॥
नैमित्तिकः प्राकृतिक आत्यंतिकमयो लयः । सर्गो विसर्गः सर्गादिर्निरोधो रोध ऊतिमान् ॥७३॥

गोमतीतीरवासकृत् ॥ ५७ ॥ ४१८. गण्डकीस्नानवान्, ४१९. स्रग्वी, ४२०. वैजयन्तीविराजित, ४२१. अम्लान, ४२२. पङ्कजधर, ४२३. विपाशी, ४२४. शोणसंप्लुत ॥ ५८ ॥ ४२५. प्रयागतीर्थराज, ४२६. सरयू, ४२७. सेतुबन्धन, ४२८. गयाशिर, ४२९. धनद, ४३०. पौलस्त्य, ४३१. पुलहाश्रम ॥ ५९ ॥ ४३२. गङ्गासागर-सङ्गार्थी' ४३३. सप्तगोदावरीपति, ३३४. वेणी, ४३५. भीमरथी, ४३६. गोदा, ४३७. ताम्रपर्णी, ४३८. वटोदका ॥ ६० ॥ ४३९. कृतमाला, ४४०. महापुण्या, ४४१. कावेरी, ४४२. पयस्विनी, ४४३. प्रतीची, ४४४. सुप्रभा, ४४५. वेणी, ४४६. त्रिवेणी, ४४७. सरयूपमा ॥ ६१ ॥ ४४८. कृष्णा, ४४९. पम्पा, ४५०. नर्मदा, ४५१. गङ्गा, ४५२. भागीरथी, ४५३. नदी, ४५४. सिद्धाश्रम, ४५५. प्रभास, ४५६. बिन्दु, ४५७. बिन्दुसरोवर ॥ ६२ ॥ ४५८. पुष्कर, ४५९. सैन्धव, ४६०. जम्बू, ४६१. नरनारायणाश्रम, ४६२. कुरु-क्षेत्रपति, ४६३. राम, ४६४. जामदग्न्य, ४६५. महामुनि ॥ ६३ ॥ ४६६. इल्वलात्मजहन्ता, ४६७ सुदामा, ४६८. सौख्यदायक, ४६९. विश्वजित्, ४७०. विश्वनाथ, ४७१. त्रिलोकविजयी, ४७२. जयी ॥ ६४ ॥ ४७३. वसन्तमालतीकर्षी, ४७४. गद, ४७५. गद्य, ४७६. गदाग्रज, ४७७. गुणार्णव, ४७८. गुणनिधि, ४७९. गुणपात्री, ४८०. गुणाकर ॥ ६५ ॥ ४८१. रङ्गवल्ली, ४८२. जलाकार, ४८३. निर्गुण, ४८४. सगुण, ४८५. बृहत्, ४८६. दृष्ट, ४८७. श्रुत, ४८८. भवत्, ४८९. भूत, ४९०. भविष्यत्, ४९१. अल्पविग्रह ॥ ६६ ॥ ४९२. अनादि, ४९३. आदि, ४९४. आनन्द, ४९५. प्रत्यग्धामा, ४९६. निरन्तर, ४९७. गुणातीत, ४९८. सम, ४९९. साम्य, ५००. समदृक्, ५०१. निर्विकल्पक ॥ ६७ ॥ ५०२. गूढ, ५०३. व्यूढ, ५०४. गुण, ५०५. गौण, ५०६. गुणाभास, ५०७. गुणावृत, ५०८. नित्य, ५०९. अक्षर, ५१०. निर्विकार, ५११. क्षर, ५१२. अजस्रसुख, ५१३. अमृत ॥६८॥ ५१४. सर्वग, ५१५. सर्ववित्, ५१६. सार्थ, ५१७. समबुद्धि, ४१८. समप्रभ, ५१९. अक्लेद्य, ५२०. अच्छेद्य, ५२१. आपूर्ण, ५२२. अशोष्य, ५२३. अदाह्य, ५२४. अनिवर्तक ॥ ६९ ॥ ५२५. ब्रह्म, ५२६. ब्रह्मधर, ५२७. ब्रह्मा, ५२८. ज्ञापक, ५२९. व्यापक, ५३०. कवि, ५३१. अध्यात्म, ५३२. अधिभूत, ५३३. अधिदैव, ५३४. स्वाश्रय, ५३५. अश्रय ॥ ७० ॥ ५३६. महावायु, ५३७. महावीर, ५३८. चेष्टा, ५३९. रूपतनुस्थित, ५४०. प्रेरक, ५४१. बोधक, ५४२. बोधी, ५४३. त्रयोविंशतिकगण ॥ ७१ ॥ ५४४. अंशांश, ५४५. नरावेश, ५४६. अवतार, ५४७. भूपरिस्थित, ५४८. मह, ५४९. जन, ५५०. तप, ५५१. सत्य, ५५२. भू, ५५३. भुव, ५५४. स्व,

मन्वन्तरावतारश्च मनुर्मनुसुतोऽनघः । स्वयंभूः शांभवः शंकुः स्वायंभुवसहायकृत् ॥७४॥
सुरालयो देवगिरिर्मेरुर्हेमार्चितो गिरिः । गिरिशो गणनाथश्च गौरीशो गिरिगह्वरः ॥७५॥
विंध्यस्त्रिकूटो मैनाकः सुवेलः पारिभद्रकः । पतंगः शिशिरः कंको जारुधिः शैलसत्तमः ॥७६॥
कालंजरो बृहत्सानुर्दरीभृन्नंदिकेश्वरः । संतानस्तरुराजश्च मन्दारः पारिजातकः ॥७७॥
जयंतकृज्जयंतांगो जयन्तीदिग्जयाकुलः । वृत्रहा देवलोकश्च शशी कुमुदबांधवः ॥७८॥
नक्षत्रेशः सुधासिंधुर्मृगः पुष्यः पुनर्वसुः । हस्तोऽभिजिच्च श्रवणो वैधृतिर्भास्करोदयः ॥७९॥
ऐन्द्रः साध्यःशुभःशुक्लो व्यतीपातो ध्रुवःसितः । शिशुमारो देवमयो ब्रह्मलोको विलक्षणः ॥८०॥
रामो वैकुण्ठनाथश्च व्यापी वैकुण्ठनायकः । श्वेतद्वीपो जितपदो लोकालोकाचलाश्रितः ॥८१॥
भूमिवैकुण्ठदेवश्च कोटिब्रह्मांडकारकः । असंख्यब्रह्मांडपतिर्गोलोकेशो गवां पतिः ॥८२॥
गोलोकधामधिषणो गोपिकाकंठभूषणः । श्रीधरः श्रीधरो लीलाधरो गिरिधरो धुरी ॥८३॥
कुंतधारी त्रिशूली च बीभत्सी घर्घरस्वनः । शूलसूच्यर्पितगजो गजचर्मधरो गजी ॥८४॥
अंत्रमाली मुण्डमाली व्याली दंडकमण्डलुः । वेतालभृद्भूतसंघः कूष्मांडगणसंवृतः ॥८५॥
प्रमथेशः पशुपतिर्मृडानीशो मृडो वृषः । कृतांतकालसंघारिः कूटः कल्पांतभैरवः ॥८६॥
षडाननो वीरभद्रो दक्षयज्ञविघातकः । खर्पराशी विषाशी च शक्तिहस्तः शिवार्थदः ॥८७॥
पिनाकटंकारकरश्चलज्झंकारनूपुरः । पंडितस्तर्कविद्वान्वै वेदपाठी श्रुतीश्वरः ॥८८॥
वेदांतकृत्सांख्यशास्त्री मीमांसी कणनामभाक् । काणादिर्गौतमो वादी वादो नैयायिको नयः॥८९॥

॥ ७२ ॥ ५५५. नैमित्तिक, ५५६. प्राकृतिक, ५५७. आत्यन्तिकमय लय, ५५८. सर्ग, ५५९. विसर्ग, ५६०. सर्गादि, ५६१. निरोध, ५६२. रोध, ५६३. ऊतिमान् ॥ ७३ ॥ ५६४. मन्वन्तरावतार, ५६५. मनु, ५६६. मनुसुत, ५६७. अनघ, ५६८. स्वयम्भू, ५६९. शाम्भव, ५७०. शङ्कु, ५७१. स्वायम्भुवसहायकृत् ॥ ७४ ॥ ५७२. सुरालय, ५७३. देवगिरि, ५७४. मेरु, ५७५. हेम, ५७६. अर्चित, ५७७. गिरि, ५७८. गिरीश, ५७९. गणनाथ, ५८०. गौरी, ५८१. ईश, ५८२. गिरिगह्वर ॥ ७५ ॥ ५८३. विन्ध्य, ५८४. त्रिकूट, ५८५. मैनाक, ५८६. सुवेल, ५८७. पारिभद्रक, ५८८. पतंग, ५८९. शिशिर, ५९०. कङ्क, ५९१. जारुधि, ५९२. शैलसत्तम ॥ ७६ ॥ ५९३. कालञ्जर, ५९४. बृहत्सानु, ५९५. दरीभृत्, ५९६. नन्दिकेश्वर, ६९७. संतान, ५९८. तरुराज, ५९९. मन्दार, ६००. पारिजातक ॥ ७७ ॥ ६०१. जयन्तकृत्, ६०२. जयन्ताङ्ग, ६०३. जयन्ती, ६०४. दिक्, ६०५. जयाकुल, ६०६. वृत्रहा, ६०७. देवलोक, ६०८. शशी, ६०९. कुमुदबान्धव ॥ ७८ ॥ ६१०. नक्षत्रेश, ६११. सुधा, ६१२. सिन्धु, ६१३. मृग, ६१४. पुष्य, ६१५. पुनर्वसु, ६१६. हस्त, ६१७. अभिजित्, ६१८. श्रवण, ६१९. वैधृत, ६२०. भास्करोदय ॥ ७९ ॥ ६२१. ऐन्द्र, ६२२. साध्य, ६२३. शुभ, ६२४. शुक्ल, ६२५. व्यतीपात, ६२६. ध्रुव, ६२७. सित, ६२८. शिशुमार ६२९. देवमय, ६३०. ब्रह्मलोक, ६३१. विलक्षण ॥ ८० ॥ ६३२. राम, ६३३. वैकुण्ठनाथ, ६३४. व्यापी, ६३५. वैकुण्ठनायक, ६३६. श्वेतद्वीप, ६३७. अजितपद, ६३८. लोकालोकाचलाश्रित, ॥ ८१ ॥ ६३९. भूमि, ६४०. वैकुण्ठदेव, ६४१. कोटिब्रह्माण्डकारक, ६४२. असंख्यब्रह्माण्डपति, ६४३. गोलोकेश, ६४४. गवां पति ॥ ८२ ॥ ६४५. गोलोकधामधिषण, ६४६. गोपिकाकण्ठभूषण, ६४७. ह्रीधर, ६४८. श्रीधर, ६४९. लीलाधर, ६५०. गिरिधर, ६५१. धुरी ॥ ८३ ॥ ६५२. कुन्तधारी, ६५३. त्रिशूली. ६५४. बीभत्सी, ६५५. घर्घरस्वन, ६५६. शूलार्पितगज, ६५७. सूच्यर्पितगज, ६५८. गजचर्मधर, ६५९. गजी ॥ ८४ ॥ ६६०. अन्त्रमाली, ६६१. मुण्डमाली, ६६२. व्याली, ६६३. दण्डकमण्डलु, ६६४. वेतालभृत्. ६६५. भूतसंघ, ६६६. कूष्माण्डगणसंवृत ॥ ८५ ॥ ६६७. प्रमथेश, ६६८. पशुपति, ६६९. मृडानी, ६७०. ईश, ६७१. मृड, ६७२. वृष, ६७३. कृतान्तसंघारि, ६७४. कालसंघारि, ६७५. कूट, ६७६. कल्पान्तभैरव, ॥ ८६ ॥ ६७७. षडानन, ६७८. वीरभद्र, ६७९. दक्षयज्ञविघातक, ६८०. खर्पराशी, ६८१. विषाशी. ६८२. शक्तिहस्त, ६८३. शिव, ६८४. अर्थद, ॥ ८७ ॥ ६८५. पिनाकटंकारकर, ६८६. चलज्झंकारनूपुर, ६८७. पण्डित, ६८८. तर्क-विद्वान्, ६८९. वेदपाठी, ६९०. श्रुतीश्वर ॥ ८८ ॥ ६९१. वेदान्त-

वैशेषिको धर्मशास्त्री सर्वशास्त्रार्थतत्त्वगः । वैयाकरणकृच्छंदो वैय्यासः प्राकृतिर्वचः ॥९०॥
पाराशरीसंहितावित्काव्यकृन्नाटकप्रदः । पौराणिकः स्मृतिकरो वैद्यो विद्याविशारदः ॥९१॥
अलंकारो लक्षणार्थो व्यंग्यविद्धनवद्ध्वनिः । वाक्यस्फोटः पदस्फोटः स्फोटवृत्तिश्च सार्थवित्९२॥
शृंगार उज्ज्वलः स्वच्छोऽद्भुतो हास्यो भयानकः । अश्वत्थो यवभोजी च यवक्रीतो यवाशनः ॥९३॥
प्रह्लादरक्षकः स्निग्ध ऐलवंशविवर्द्धनः । गताधिरंबरीपांगो विगाधिर्गाधिनां वरः ॥९४॥
नानामणिसमाकीर्णो नानारत्नविभूषणः । नानापुष्पधरः पुष्पी पुष्पधन्वा प्रपुष्पितः ॥९५॥
नानाचंदनगंधाढ्यो नानापुष्परसार्चितः । नानावर्णमयो वर्णो नानावस्त्रधरः सदा ॥९६॥
नानापद्मकरः कौशी नानाकौशेयवेषधृक् । रत्नकंबलधारी च धौतवस्त्रसमावृतः ॥९७॥
उत्तरीयधरः पर्णो घनकंचुकसंघवान् । पीतोष्णीषः सितोष्णीषो रक्तोष्णीषो दिगंबरः ९८॥
दिव्यांगो दिव्यरचनो दिव्यलोकविलोकितः । सर्वोपमो निरुपमो गोलोकांकीकृतां गणः ॥९९॥
कृतस्वोत्संगगो लोकः कुण्डलीभूत आस्थितः । माथुरो माथुरादर्शी चलत्खंजनलोचनः ॥१००॥
दधिहर्ता दुग्धहरो नवनीतसिताशनः । तक्रभुक् तक्रहारी च दधिचौर्यकृतश्रमः ॥१०१॥
प्रभावतीबद्धकरो दामी दामोदरो दसी । सिकताभूमिचारी च बालकेलिर्व्रजार्भकः ॥१०२॥
धूलिधूसरसर्वांगः काकपक्षधरः सुधीः । मुक्तकेशो वत्सवृंदः कालिंदीकूलवीक्षणः ॥१०३॥
जलकोलाहली कूली पङ्कप्रांगणलेपकः । श्रीवृंदावनसंचारी वंशीवटतटस्थितः ॥१०४॥
महावननिवासी च लोहार्गलवनाधिपः । साधुः प्रियतमः साध्यः साध्वीशो गतसाध्वस १०५॥

कृत्, ६९२. सांख्यशास्त्री, ६९३. मीमांसी, ६९४. कणनामभाक्, ६९५. काणादि, ६९६. गौतम, ६९७. वादी, ६९८. वाद, ६९९. नैयायिक, ७००. नय, ॥ ८९ ॥ ७०१. वैशेषिक ७०२. धर्मशास्त्री, ७०३. सर्वशास्त्रार्थ-तत्त्वग, ७०४. वैयाकरणकृत्, ७०५. छन्द, ७०६. वैयास, ७०७. प्राकृति, ७०८. वचन ॥ ९० ॥ ७०९. पाराशरीसंहितावित्, ७१०. काव्यकृत्, ७११. नाटकप्रद, ७१२. पौराणिक, ७१३. स्मृतिकर, ७१४. वैद्य, ७१५. विद्याविशारद ॥ ९१ ॥ ७१६. अलंकार, ७१७. लक्षणार्थ, ७१८. व्यङ्ग्यवित्, ७१९. ध्वनिवित्, ७२०. ध्वनि, ७२१. वाक्यस्फोट, ७२२. पदस्फोट, ७२३. स्फोटवृत्ति, ७२४. रसार्थवित् ॥ ९२ ॥ ७२५. शृङ्गार, ७२६. उज्ज्वल, ७२७. स्वच्छ, ७२८. अद्भुत, ७२९. हास्य, ६३०. भयानक, ७३१. अश्वत्थ, ७३२. यवभोजी, ७३३. यवक्रीत, ७३४. यवाशन ॥ ९३ ॥ ७३५. प्रह्लादरक्षक, ७३६. स्निग्ध, ७३७. ऐलवंशविवर्धन, ७३८. गताधि, ७३९. अम्बरीषाङ्ग, ७४०. विगाधि, ७४१ गाधीनां वर ॥ ९४ ॥ ७४२. नानामणिसमाकीर्ण, ७४३. नानारत्नविभूषण, ७४४. नानापुष्पधर, ७४५. पुष्पी, ७४६. पुष्पधन्वा, ७४७. प्रपुष्पित ॥ ९५ ॥ ७४८. नानाचन्दनगन्धाढ्य, ७४९. नानापुष्परसार्चित, ७५०. नानावर्णमय, ७५१. वर्ण, ७५२. सदा नानावस्त्रधर ॥ ९६ ॥ ७५३. नानापद्माकर, ७५४. कौशी, ७५५. नानाकौशेयवेषधृक्, ७५६. रत्नकम्बलधारी, ७५७. धौतवस्त्रसमावृत ॥ ९७ ॥ ७५८. उत्तरीयधर, ७५९. पूर्ण, ७६०. घनकञ्चुकवान्, ७६१. संघवान्, ७६२. पीतोष्णीष, ७६३. सितोष्णीष, ७६४. रक्तोष्णीष, ७६५. दिगम्बर ॥ ९८ ॥ ७६६. दिव्याङ्ग, ७६७. दिव्यरचन, ७६८. दिव्यालोकविलोकित, ७६९. सर्वोपम, ७७०. निरुपम, ७७१. गोलोकाङ्कीकृताङ्गण ॥ ९९ ॥ ७७२. कृतस्वोत्सङ्गगोलोक, ७७३. कुण्डली, ७७४. भूत, ७७५. आस्थित, ७७६. माथुर, ७७७. मथुरा, ७७८. आदर्शी, ७७९. चलत्खञ्जनलोचन ॥ १०० ॥ ७८०. दधिहर्ता, ७८१. दुग्धहर, ७८२. नवनीतसिताशन, ७८३. तक्रभुक्, ७८४. तक्रहारी, ७८५. दधिचौर्यकृतश्रम ॥ १०१ ॥ ७८६. प्रभावतीबद्धकर, ७८७. दामी, ७८८. दामोदर, ७८९ दमी, ७९०. सिकताभूमिचारी, ७९१. बालकेलि, ७९२. व्रजार्भक ॥ १०२ ॥ ७९३. धूलिधूसरसर्वाङ्ग, ७९४. काकपक्षधर, ७९५. सुधी, ७९६. मुक्तकेश, ७९७. वत्सवृन्द, ७९८. कालिन्दीकूलवीक्षण ॥१०३॥ ७९९. जलकोलाहली, ८००. कूली, ८०१. पंकप्राङ्गणलेपक, ८०२. श्रीवृन्दावनसंचारी ८०३. वंशीवटतटस्थित ॥ १०४ ॥ ८०४. महावननिवासी, ८०५. लोहार्गलवनाधिप, ८०६. साधु, ८०७.

रंगनाथो विट्ठलेशो मुक्तिनाथोऽघनाशकः । सुकीर्तिः सुयशाः स्फीतो यशस्वी रंगरंजनः ॥१०६॥
रागपट्को रागपुत्रो रागिणीरमणोत्सुकः । दीपको मेघमल्हारः श्रीरागो मालकोशकः ॥१०७॥
हिन्दोलो भैरवाख्यश्च स्वरजातिस्मरो मृदुः । तालो मानप्रमाणश्च स्वरगम्यः कलाक्षरः ॥१०८॥
शमी श्यामी शतानन्दः शतयामः शतक्रतुः । जागरः सुप्त आसुप्तः सुषुप्तः स्वप्न उर्वरः ॥१०९॥
ऊर्जः स्फूर्जो निर्जरश्च विज्वरो ज्वरवर्जितः । ज्वरजिज्ज्वरकर्ता च ज्वरयुक् त्रिज्वरो ज्वरः ॥११०॥
जांबवान् जंबुकाशंकी जंबूद्वीपो द्विपारिहा । शाल्मलिः शाल्मलिद्वीपः प्लक्षःप्लक्षवनेश्वरः १११॥
कुशधारी कुशः कौशी कौशिकः कुशविग्रहः । कुशस्थलीपतिः काशीनाथो भैरवशासनः ॥११२॥
दाशार्हः सात्वतो वृष्णिर्भोजोंधकनिवासकृत् । अंधको दुन्दुभिर्द्योतः प्रद्योतः सात्वतां पतिः ॥११३॥
शूरसेनोऽनुविषयो भोजवृष्ण्यंधकेश्वरः । आहुकः सर्वनीतिज्ञ उग्रसेनो महोग्रवाक् ॥११४॥
उग्रसेनप्रियः प्रार्थ्यः पार्थो यदुसभापतिः । सुधर्माधिपतिः सत्त्वं वृष्णिचक्रावृतो भिषक् ॥११५॥
सभाशीलः सभादीपः सभाग्निश्च सभारविः । सभाचंद्रः सभाभासः सभादेवः सभापतिः ॥११६॥
प्रजार्थदः प्रजाभर्ता प्रजापालनतत्परः । द्वारकादुर्गसंचारी द्वारकाग्रहविग्रहः ॥११७॥
द्वारकादुःखसंहर्ता द्वारकाजनमंगलः । जगन्माता जगत्त्राता जगद्भर्ता जगत्पिता ॥११८॥
जगद्बंधुर्जगद्भ्राता जगन्मित्रो जगत्सखः । ब्रह्मण्यदेवो ब्रह्मण्यो ब्रह्मपादरजो दधत् ॥११९॥
ब्रह्मपादरजःस्पर्शी ब्रह्मपादनिषेवकः । विप्रांघ्रिजलपूतांगो विप्रसेवापरायणः ॥१२०॥
विप्रमुख्यो विप्रहितो विप्रगीतमहाकथः । विप्रपादजलर्द्रांगो विप्रपादोदकप्रियः ॥१२१॥

प्रियतम, ८०८. साध्य, ८०९. साध्वीश, ८१०, गतसाध्वस ॥ १०५ ॥ ८११. रङ्गनाथ, ८१२. विट्ठलेश, ८१३. मुक्तिनाथ, ८१४. अघनाशक, ८१५. सुकीर्ति, ८१६. सुयशा, ८१७. स्फीत, ८१८. यशस्वी, ८१९. रङ्गरञ्जन ॥ १०६ ॥ ८२०. रागपट्क, ८२१. रागपुत्र, ८२२. रागिणी, ८२३. रमणोत्सुक, ८२४. दीपक, ८२५. मेघमल्लार, ८२६. श्रीराग, ८२७. मालकोशक ॥ १०७ ॥ ८२८. हिन्दोल, ८२९. भैरवाख्य, ८३०. स्वरजातिस्मर, ८३१, मृदु, ८३२. ताल, ८३३. मान, ८३४. प्रमाण, ८३५. स्वरगम्य, ८३६. कलाक्षर ॥ १०८ ॥ ८३७. शमी, ८३८. श्यामी, ८३९. शतानन्द, ८४०. शतयाम. ८४१. शतक्रतु, ८४२. जागर, ८४३. सुप्त, ८४४ आसुप्त, ८४५. सुषुप्त, ८४६. स्वप्न, ८४७. उर्वर ॥ १०९ ॥ ८४८. ऊर्ज, ८४९. स्फूर्ज, ८५०. निर्जर, ८५१. विज्वर, ८५२. ज्वरवर्जित, ८५३. ज्वरजित्, ८५४. ज्वरकर्ता, ८५५. ज्वरयुक्, ८५६. त्रिज्वर, ८५७. ज्वर ॥ ११० ॥ ८५८. जम्बवान्, ८५९. जम्बुकाशंकी, ८६०. जम्बूद्वीप, ८६१. द्विपारिहा, ८६२. शाल्मलि, ८६३. शाल्मलिद्वीप, ८६४. प्लक्ष, ८६५. प्लक्षवनेश्वर ॥ १११ ॥ ८६६. कुशधारी, ८६७. कुश, ८६८. कौशी, ८६९, कौशिक, ८७०. कुशविग्रह, ८७१. कुशस्थलीपति, ८७२. काशीनाथ. ८७३. भैरवशासन ॥ ११२ ॥ ८७४. दाशार्ह, ८७५. सात्वत, ८७६. वृष्णि, ८७७. भोज, ८७८. अन्धकनिवासकृत्, ८७९, अन्धक, ८८०. दुन्दुभि, ८८१. द्योत, ८८२, प्रद्योत, ८८३. सात्वतांपति ॥ ११३ ॥ ८८४. शूरसेन, ८८५. अनुविषय, ८८६. भोजेश्वर, ८८७. वृष्णीश्वर, ८८८. अन्धकेश्वर, ८८९. आहुक, ८९०, सर्वनीतिज्ञ, ८९१. उग्रसेन, ८९२. महोग्रवाक् ॥ ११४ ॥ ८९३. उग्रसेनप्रिय, ८९४. प्रार्थ्य, ८९५. पार्थ, ८९६. यदुसभापति, ८९७. सुधर्माधिपति, ८९८. सत्त्व, ८९९. वृष्णिचक्रावृत, ९०० भिषक् ॥ ११५ ॥ ९०१. सभाशील, ९०२. सभादीप, ९०३. सभाग्नि, ९०४. सभारवि, ९०५. सभाचन्द्र, ९०६. सभाभास, ९०७. सभादेव, ९०८. सभापति ॥ ११६ ॥ ९०९. प्रजार्थद, ९१०. प्रजाभर्ता, ९११. प्रजापालनतत्पर, ९१२. द्वारकादुर्गसंचारी, ९१३. द्वारकाग्रहविग्रह ॥ ११७ ॥ ९१४. द्वारकादुःखसंहर्ता, ९१५. द्वारकाजनमङ्गल, ९१६. जगन्माता, ९१७. जगत्त्राता, ९१८. जगद्भर्ता, ९१९. जगत्पिता ॥ ११८ ॥ ९२०. जगद्बन्धु, ९२१. जगद्भ्राता, ९२२. जगन्मित्र, ९२३.जगत्सख, ९२४. ब्रह्मण्यदेव, ९२५. ब्रह्मण्य, ९२६. ब्रह्मपादरजो दधत् ॥ ११९ ॥ ९२७. ब्रह्मपादरजःस्पर्शी, ९२८. ब्रह्मपादनिषेवक, ९२९. विप्रांघ्रिजलपूताङ्ग, ९३०. विप्रसेवापरायण ॥ १२० ॥ ९३१. विप्रमुख्य, ९३२. विप्रहित, ९३३. विप्रगीतमहाकथ, ९३४.

विप्रभक्तो विप्रगुरुर्विप्रो विप्रपदानुगः । अक्षौहिणीवृतो योद्धा प्रतिमापंचसंयुतः ॥१२२॥
चतुरंगिराः पद्मवर्ती सामंतोद्धृतपादुकः । गजकोटिप्रयायी च रथकोटिजयध्वजः ॥१२३॥
महारथश्चातिरथो जैत्रं स्यंदनमास्थितः । नारायणास्त्री ब्रह्मास्त्री रणश्लाघी रणोद्भटः ॥१२४॥
मदोत्कटो युद्धवीरो देवासुरभयंकरः । करिकर्णमरुत्प्रेजत्कुंतलव्याप्तकुंडलः ॥१२५॥
अग्रगो वीरसंमर्दो मर्दलो रणदुर्मदः । भटः प्रतिभटः प्रोच्यो बाणवर्षी सुतोयदः ॥१२६॥
खड्गखंडितसर्वांगः षोडशाब्दः षडक्षरः । वीरघोषः क्लिष्टवपुर्वज्रांगो वज्रभेदनः ॥१२७॥
रुग्णवज्रो भग्नदंडः शत्रुनिर्भर्त्सनोद्यतः । अट्टहासः पट्टधरः पट्टराज्ञीपतिः पटुः ॥१२८॥
कलः पटहवादित्रो हुंकारो गर्जितस्वनः । साधुर्भक्तपराधीनः स्वतंत्रः साधुभूषणः ॥१२९॥
अस्वतंत्रः साधुमयः साधुग्रस्तमना मनाक् । साधुप्रियः साधुधनः साधुज्ञातिः सुधाघनः ॥१३०॥
साधुचारी साधुचित्तः साधुवासी शुभास्पदः । इति नाम्नां सहस्रं तु बलभद्रस्य कीर्तितम् ॥१३१॥
सर्वसिद्धिप्रदं नृणां चतुर्वर्गफलप्रदम् । शतवारं पठेद्यस्तु स विद्यावान् भवेदिह ॥१३२॥
इन्दिरां च विभूतिं चाभिजनं रूपमेव च । बलमोजश्च पठनात्सर्वं प्राप्नोति मानवः ॥१३३॥
गंगाकूलेऽथ कालिंदीकूले देवालये तथा । सहस्रावर्तपाठेन बलात्सिद्धिः प्रजायते ॥१३४॥
पुत्रार्थी लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् । बंधात्प्रमुच्यते बद्धो रोगी रोगान्निवर्तते ॥१३५॥
अयुतावर्तपाठे च पुरश्चर्याविधानतः । होमतर्पणगोदानविप्रार्चनकृतोद्यमात् ॥१३६॥
पटलं पद्धतिं स्तोत्रं कवचं तु विधाय च । महामंडलभर्ता स्यान्मंडितो मंडलेश्वरैः ॥१३७॥
मत्तेभकर्णप्रहिता मदगंधेन विह्वला । अलंकरोति तद्द्वारं भ्रमद्भृंगावली भृशम् ॥१३८॥

निष्कारणः पठेद्यस्तु प्रीत्यर्थं रेवतीपतेः । नाम्नां सहस्रं राजेंद्र स जीवन्मुक्त उच्यते ॥१३९॥
सदा वसेत्तस्य गृहे बलभद्रोऽच्युताग्रजः । महापातक्यपि जनः पठेन्नामसहस्रकम् ॥१४०॥
छित्त्वा मेरुसमं पापं भुक्त्वा सर्वसुखं त्विह । परात्परं महाराज गोलोकं धाम याति हि ॥१४१॥

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वाऽच्युताग्रजस्य बलदेवस्य पंचांगं धृतिमान् धार्तराष्ट्रः सपर्यया सहितया परया भक्त्या प्राड्विपाकं पूजयामास तमनुज्ञाप्याशिषं दत्त्वा प्राड्विपाको मुनींद्रो गजाह्वयात्स्वाश्रमं जगाम ॥ १४२ ॥ भगवतोऽनंतस्य बलभद्रस्य परब्रह्मणः कथां यः शृणुते श्रावयते तयाऽऽनंदमयो भवति ॥ १४३ ॥

इदं मया ते कथितं नृपेन्द्र सर्वार्थदं श्रीबलभद्रखंडम् ।
शृणोति यो धाम हरेः स याति विशोकमानंदमखंडरूपम् ॥ १४४ ॥

इति श्रीगर्गसंहितायां बलभद्रखंडे प्राड्विपाकदुर्योधनसंवादे बलभद्रसहस्रनामवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

रूप कर्म विधिवत् करता है, वह समस्त राजाओंसे घिरा रहता है ॥ १३६ ॥ १३७ ॥ मदकी गन्धसे विह्वल भ्रमर मतवाले हाथियोंके कानोंकी चपेटसे आहत हो उड़ते हुए उसके द्वारपर जाकर उसकी शोभा बढ़ाते रहते हैं ॥ १३८ ॥ हे राजेन्द्र ! यदि कोई मनुष्य निष्कामभावसे रेवतीरमण भगवान् बलभद्रजीकी प्रसन्नताके लिये इस सहस्रनामका पाठ करता है तो वह जीवन्मुक्त हो जाता है ॥ १३९ ॥ अच्युताग्रज बलभद्रजी सदा-सर्वदा उसके घरमें निवास करते हैं। हे महाराज ! घोर पापी मनुष्य भी यदि इस सहस्रनामका पाठ करता है तो उसके मेरुके समान सारे पाप कट जाते हैं और वह इस लोकमें सम्पूर्ण सुखोंका उपभोग करके अन्तमें परात्पर गोलोकधामको प्रयाण कर जाता है ॥ १४० ॥ १४१ ॥ नारदजी कहते हैं—अच्युताग्रज श्रीबलभद्रजीके इस पचांगको सुनकर धृतिमान् दुर्योधनने सेवा भाव तथा परम भक्तिके साथ प्राड्विपाक मुनिकी पूजा की। तदनन्तर मुनीन्द्र प्राड्विपाकजीने दुर्योधनको आशीर्वाद दे तथा उनकी अनुमति प्राप्त करके हस्तिनापुर अपने आश्रमको गमन किया ॥ १४२ ॥ परब्रह्म परमात्मा भगवान् अनन्त श्रीबलभद्रजीकी कथाको जो पुरुष सुनता अथवा सुनाता है, वह आनन्दमय बन जाता है ॥ १४३ ॥ हे नृपेन्द्र ! मैं आपके सामने सब मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले बलभद्रखण्डका वर्णन कर चुका। जो मनुष्य इसका श्रवण करता है, वह भगवान् श्रीहरिके शोकरहित अखण्ड आनन्दमय धामको प्राप्त हो जाता है ॥ १४४ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां बलभद्रखंडे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

सम्पूर्णोऽयं बलभद्रखण्डः

* श्रीकृष्णः शरणं मम *

आचार्य-श्रीगर्गमहामुनिविरचिता—

श्रीगर्गसंहिता

'प्रियंवदा'ऽभिधया भाषाटीकयाऽऽटीकिता

(विज्ञानखण्डः ९)

प्रथमोऽध्यायः

(द्वारकामें वेदव्यासजीका आगमन और उग्रसेनद्वारा उनका स्वागत-पूजन)

बहुलाश्व उवाच

हरेः श्रीकृष्णचंद्रस्य भक्तिमार्गस्तु यः परः । तंवदाशु मुने मह्यं येन भक्तो भवाम्यहम् ॥ १ ॥

श्रीनारद उवाच

भक्तिमार्गं वदिष्यामि वेदव्यासमुखाच्छ्रुतम् । येन प्रसन्नो भवति भगवान् भक्तवत्सलः ॥ २ ॥
शंखं विजित्य कृष्णेन भुजदंडबलोद्धृतम् । द्वारावत्यां सभा दिव्या सुधर्मा नाम मैथिल ॥ ३ ॥
यत्र मंडपदेशस्य वैदूर्यस्तंभपंक्तयः । राजंते कोटिशो राजन् विश्वकर्मविनिर्मिताः ॥ ४ ॥
पद्मरागखचिद्भूमौ श्रेण्यो वै विद्रुमाचिताः । यत्र चित्रवितानानि भ्राजंते मौक्तिकालिभिः ॥ ५ ॥
सिंहासनानि कुड्यानि कालमेघतडिद्द्युभिः । जांबूनदसुवर्णानां स्फुरत्कुण्डलकोटिभिः ॥ ६ ॥
बालार्करत्नकेयूरकांचीकंकणनूपुरैः । शतचंद्रप्रतीकाशाः स्फुरत्कुण्डलमण्डिताः ॥ ७ ॥
गायंति यत्र गंधर्व्यो विद्याधर्यो मुदान्विताः । नृत्यंत्यः कलवादित्रैः स्पर्द्धावित्यः परस्परम् ॥ ८ ॥
यस्याश्चतुर्षु कोणेषु देववृक्षैर्मनोरमैः । नंदनं सर्वतोभद्रं ध्रौव्यं चैत्ररथं वनम् ॥ ९ ॥
लक्षाणि यत्र राजेन्द्र सरांसि विमलानि च । सहस्रदलपद्मानि भ्रमरैः संकुलानि च ॥१०॥

राजा बहुलाश्वने कहा—हे मुने ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके उस भक्तिमार्गका, जो सर्वश्रेष्ठ है तथा जिसके प्रभावसे मैं भी भक्त बन जाऊँ, ऐसा वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ नारदजी बोले—हे राजन् ! वेदव्यासजीके मुखसे सुने हुए भक्तिमार्गका मैं वर्णन करता हूँ। यह वह मार्ग है, जिसपर चलनेसे भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण प्रसन्न हो जाते हैं ॥ २ ॥ हे जनकजी ! अपने भुजदण्डोंके बलसे उद्धत इन्द्रपर विजय प्राप्त करके भगवान् श्रीकृष्णने द्वारकामें सुधर्मा नामकी दिव्य सभाको प्रतिष्ठा की थी ॥ ३ ॥ हे राजन् ! विश्वकर्माके द्वारा रचे गये वैदूर्य-मणिके खंभोंकी करोड़ों पंक्तियाँ उसके मण्डपकी शोभा बढ़ाती थीं ॥ ४ ॥ वहाँकी भूमि पद्मराग मणिसे जड़ी गयी थी। उसपर मूँगेकी दीवालोंसे कई विभाग बने थे, जिनपर रंग-विरंगे चँदोवे शोभा दे रहे थे और मोतियोंकी झालरें लटकायी हुई थीं ॥ ५ ॥ उनको दीवालें सिंहासनके आकारकी थीं। उनपर काले मेघमें कौंधनेवाली बिजलीका-सा प्रकाश फैलानेवाले जाम्बूनद सुवर्णके करोड़ों चमचमाते हुए कलश सुशोभित थे ॥ ६ ॥ वहाँ प्रातःकालीन सूर्यकी भाँति चमकनेवाले रत्नमय केयूर, करधनी, कङ्कण और नूपुरोंसे सैकड़ों चन्द्रमाओंकी प्रभाको छिटकानेवाली गन्धर्वोंकी स्त्रियाँ हर्षमें भरकर गान किया करती थीं और सुमधुर वाद्योंके साथ विद्याधरियाँ परस्पर लाग-डाँट रखती हुई नृत्य करती थीं ॥ ७ ॥ ८ ॥ उसके चारों कोनोंमें मनोहर देववृक्षों सहित नन्दन, सर्वतोभद्र, ध्रौव्य एवं चैत्ररथ नामक वन सुशोभित थे ॥ ९ ॥

दशयोजनविस्तीर्णा पंचयोजनमूर्ध्वगा । एतादृशी सुधर्माऽऽस्ते पताकाध्वजमंडिता ॥११॥
यत्र प्रविष्टः पुरुष आत्मानं मन्यते परम् । यत्सिंहासनमासाद्य शक्रोऽहमिति मन्यते ॥१२॥
यच्चत्रैलोक्यचातुर्यं तस्य देहे प्रवर्तते । यावत्तिष्ठेत्तत्र तावदूर्मिषट्कं न चैव हि ॥१३॥
यावंतश्च जनास्तत्र प्रविशन्ति नरोत्तम । स्वप्रभावेण सहसा तावती सा प्रकाशते ॥१४॥
षट्पंचाशत्कोटिसंख्या यादवा यत्र सानुगाः । तच्चत्वरस्यैकदेशे दृश्यंते ते च मैथिल ॥१५॥
परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान्स्वयम् । यत्रास्ते तस्य राजेंद्र वर्णनं कः करोति हि ॥१६॥
अथ तस्यां सुधर्मायां यदुकोटिसमावृतः । उग्रसेनो गीयमानः सूतमागधवंदिभिः ॥१७॥
आकाशादागतः साक्षाद्वेदव्यासो महामुनिः । पाराशर्यो घनश्यामस्तडित्पिंगजटाधरः ॥१८॥
तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय यदुराजः कृतांजलिः । नत्वाऽऽसनं सोपचारं दत्त्वा तत्संमुखोऽभवत् ॥१९॥

उग्रसेन उवाच

अद्य मे सफलं जन्म सफलं गेहमद्य मे । अद्य मे सफलो धर्मो ब्रह्मंस्त्वय्यागते सति ॥२०॥
सदानंदेषु कुशलं कृष्णेनेष्टं भवत्सु हि । वद मे कुशलं देव येन स्वस्थो भवाम्यहम् ॥२१॥
यत्र यत्र व्रजंतस्ते त्वादृशाः साधवः प्रभो । तत्र तत्र भवेत्सिद्धिर्लौकिकी पारलौकिकी ॥२२॥
यत्र क्षणं स्थिताः संतस्तत्र साक्षात्स्वयं हरिः । किमु लोकगुणा ब्रह्मन्पाराशर्य महामुने ॥२३॥
मया तु पुण्यं यज्ञो वा किं कृतं पूर्वजन्मनि । येन वै द्वारकाराज्यं प्राप्तोऽहं मुनिपुङ्गव ॥२४॥
भवादृशा विप्रमुख्या गृहमायांति नित्यशः । तस्मात्परं हि सुकृतं जाने स्वस्य न संशयः ॥२५॥

हे महाराज ! उस सभाप्रदेशके अन्तर्गत स्वच्छ जलवाले लाखों सरोवर तथा भ्रमरोंसे भरपूर बहुत-से हजार दलवाले कमल खिले दिखायी पड़ते थे ॥१०॥ इस प्रकारकी वह सुधर्मा सभा ध्वजाओं एवं पताकाओंसे अलंकृत तथा दस योजनके विस्तारवाली थी। पाँच योजन उसकी ऊँचाई थी ॥ ११ ॥ उसमें गया हुआ पुरुष अपनेको सर्वश्रेष्ठ समझता है। जिसे वहाँका सिंहासन उपलब्ध हो जाता है, वह तो 'मैं इन्द्र हूँ'—यों कल्पना करने लगता है ॥ १२ ॥ त्रिलोकीमें जितने चातुर्य गुण हैं, वे सभी उस पुरुषके शरीरमें आकर रहने लगते हैं। वहाँ जितनी देर मनुष्य ठहरता है, उतनी देरतक शोक-मोह, जरा-मृत्यु तथा भूख-प्यास—ये छः प्रकारकी ऊर्मियाँ (विकार) उसके पास नहीं फटकतीं ॥ १३ ॥ हे महाराज ! जितने मनुष्य वहाँ प्रवेश करते हैं, उतनी ही बड़ी वह सभा अपने प्रभावसे दिखायी देने लगती है ॥ १४ ॥ हे जनकजी ! यादवोंकी संख्या छप्पन करोड़ थी। अनुचरोंसहित वे सभी यादव उक्त सभा-भवनके आँगनकी एक चौथाई भागमें ही समाये हुए दीख पड़ते थे ॥ १५ ॥ हे महाराज ! जहाँ साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ही विराजमान रहते थे, उस सभाका वर्णन कौन कर सकता है ॥ १६ ॥ उस सभामें एक दिन महाराज उग्रसेन विराजमान थे। करोड़ों यादव उन्हें घेरे हुए थे। सूत, मागध और वन्दियोंद्वारा महाराजका यशोगान हो रहा था ॥१७॥ तभी साक्षात् पराशरकुमार मुनिवर वेदव्यासजी आकाशमार्गसे वहाँ पधारे। उनके शरीरकी कान्ति मेघके समान श्यामल थी और वे बिजलीके समान पीली जटा धारण किये हुए थे ॥ १८ ॥ उन्हें देखकर यदुराज तुरंत उठ खड़े हुए और हाथ जोड़कर व्यास मुनिको प्रणाम किया। फिर उन्हें आसनपर बिठा तथा पूजाके उपचार समर्पित करके उनके सामने खड़े हो गये ॥ १९ ॥ राजा उग्रसेन बोले—हे ब्रह्मन् ! आज आपके यहाँ पधारनेपर मेरा जन्म, महल तथा धर्माचरण—सब कुछ सफल हो गया ॥ २० ॥ हे भगवन् ! आप जैसे सदा आनन्दस्वरूप महानुभावोंकी कुशल तो स्वयं श्रीकृष्णचन्द्रको अभीष्ट है। फिर भी अपनी कुशल कहिये, जिससे मैं निश्चिन्त हो जाऊँ। हे प्रभो ! आपके समान साधुपुरुष जहाँ-जहाँ जाते हैं, वहाँ-वहाँ लौकिकी और पारलौकिकी दोनों प्रकारकी सिद्धियाँ उपस्थित रहती हैं ॥२१॥२२॥ हे मुनिवर व्यासजी ! जहाँ संत पुरुष एक क्षण भी निवास करते हैं, वहाँ स्वयं श्रीहरि आ जाते हैं। हे ब्रह्मन् ! फिर लौकिक गुणोंकी तो बात ही क्या है ॥ २३ ॥ हे मुनिवर ! मैंने पूर्वजन्ममें कौन-सा पुण्य अथवा यज्ञ किया था, जिसके फलस्वरूप मुझे द्वारकाका राज्य प्राप्त हो गया ॥ २४ ॥ यही नहीं, आपके समान बड़े-बड़े

व्यास उवाच

धन्योऽसि राजशार्दूल धन्या ते विमला मतिः । परं कृतं त्वया राजन्सुकृतं पूर्वजन्मनि ॥२६॥
पुरा त्वं मरुतो राजन् कृत्वा यज्ञं जगज्जितम् । निष्कारणोऽभूर्मनसा प्रसन्नोऽभूद्धरिस्तदा ॥२७॥
अनिमित्तेन भावेन प्राप्तं चेदं परं तव । परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान्हरिः ॥२८॥
असंख्यब्रह्मांडपतिर्गोलोकेशः परात्परः । सोऽयं भक्त्या वशीभूतः स्ववशस्तव मंदिरे ॥२९॥
अहो भोजपते मुक्तिं ददाति भजतां हरिः । न कर्हिचिद्भक्तियोगं दुर्लभं विद्धि तं नृप ॥३०॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विज्ञानखंडे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे व्यासागमनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

(व्यासजीके द्वारा गतियोंका निरूपण)

उग्रसेन उवाच

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि तव वर्णननिर्वृतः । हृदुद्भूतं च संदेहं दूरीकर्तुं भवान् क्षमः ॥ १ ॥
कर्मणां सनिमित्तानां का गतिः किं च लक्षणम् । कति भेदा हि तेषां वै वद ब्रह्मन् यथा तथा ॥ २ ॥

व्यास उवाच

गुणैः सर्वाणि कर्माणि सनिमित्तानि संति हि । तान्येव चानिमित्तानि राजन् त्यक्तफलानि हि ॥ ३ ॥
सनिमित्तं च यत्कर्म बंधनं विद्धि यादव । अनिमित्तं च यत्कर्म मोक्षदं परमं शुभम् ॥ ४ ॥
सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः । तैर्व्याप्तं हि जगत्सर्वं सर्वार्थमिव विष्णुना ॥ ५ ॥
सत्त्वे प्रलीनाः स्वर्यांति नरलोकं रजोलयाः । तमोलयास्तु नरकं यांति कृष्णं हि निर्गुणाः ॥ ६ ॥

ब्राह्मण-देवता मेरे महलोंमें प्रतिदिन पधारते रहते हैं। इससे मैं अनुमान करता हूँ कि मैंने निःसंदेह सबसे वड़ा पुण्य किया है ॥ २५ ॥ व्यासजीने कहा—हे महाराज ! तुम धन्य हो तथा तुम्हारी निर्मल बुद्धिको भी धन्यवाद है। हे राजन् ! पूर्वजन्ममें तुमने सबसे बड़ा पुण्य किया है ॥२६॥ हे राजन् ! तुम्हारा नाम मरुत्त था। मनमें किसी भी प्रकारकी कामना न रखकर तुमने विश्वजित् नामका यज्ञ किया था। उससे भगवान् श्रीहरि प्रसन्न हुए ॥ २७ ॥ तुम्हारे निष्कामभावसे ही तुम्हें यह परम सौभाग्य प्राप्त हुआ है। श्रीकृष्णचन्द्र साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीहरि ही हैं। अनन्त ब्रह्माण्ड उनके अधीन हैं और वे परात्पर प्रभु गोलोकके स्वामी हैं। वे परम स्वतन्त्र होनेपर भी भक्तिके वशीभूत हो तुम्हारे महलोंमें विराजते हैं ॥ २८ ॥ २९ ॥ हे यदुराज ! यही बड़ी विचित्र बात है कि भजन करनेवालोंको भगवान् मुक्ति दे देते हैं, किंतु भक्तिका साधन कभी नहीं देते। हे राजन् ! इसलिये भक्तियोगको बहुत दुर्लभ समझो ॥ ३० ॥
इति श्रीगर्गसंहितायां विज्ञानखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

राजा उग्रसेन बोले—आपके द्वारा किये गये वर्णनको सुनकर मैं कृतकृत्य होकर आनन्दसे भर गया हूँ। आपने मेरे ऊपर बड़ी कृपा की। मेरे मनमें उठे हुए संदेहको दूर करनेमें आप ही समर्थ हैं ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! सकाम कर्मोंकी क्या गति होती है, उनका क्या लक्षण है और उनके कितने भेद हैं ? इसे तत्त्वतः कहनेकी कृपा कीजिये ॥ २ ॥ व्यासजीने कहा—हे राजन् ! गुणोंके साथ सम्बन्ध होनेसे सभी कर्म सकाम हो जाते हैं, किन्तु फलका त्याग कर देनेपर वे ही निष्काम हो जाते हैं ॥३॥ हे यदुराज ! जो सकाम कर्म है, उसे बन्धन समझो। जो निष्काम कर्म होता है, वह मोक्ष देनेवाला है। अतएव वह परम मङ्गलमय होता है ॥ ४ ॥ सत्त्व, रज और तम—इन तीन गुणोंकी उत्पत्ति प्रकृतिसे होती है। जैसे भगवान् विष्णुसे सारे पदार्थ व्याप्त हैं, उसी प्रकार गुणोंसे सम्पूर्ण विश्व ओतप्रोत है ॥ ५ ॥ सत्त्वगुणकी स्थितिमें जिनके प्राण निकलते हैं, वे स्वर्गलोकमें जाते हैं, रजोगुणमें प्रयाण करनेवाले नरलोकके अधिकारी होते हैं तथा तमोगुणकी अधिकतामें मरनेवालोंको नरककी यातना भोगनी पड़ती है। जो गुणोंके सम्बन्धसे

पंचाग्नितप्ता अतपन् ये राजन् व्रजवासिनः । लोकं सप्तऋषीणां तु ते यांति गतकल्मषाः ॥ ७ ॥
संन्यासाश्रमकर्तारस्त्रिदंडधृतपाणयः । जितेन्द्रियमनोधर्माः सत्यलोकं व्रजंति हि ॥ ८ ॥
अष्टांगयोगयोगींद्रा निर्मला ऊर्ध्वरेतसः । जनलोकं महर्लोकं यांति ते नात्र संशयः ॥ ९ ॥
यज्ञकर्ता शक्रलोके वसते शाश्वतीः समाः । दानी चांद्रमसं लोकं व्रती सौरं व्रजत्यलम् ॥१०॥
तीर्थयायी चाग्निलोकं सत्यसंधश्च वारुणम् । वैष्णवाश्चापि वैकुण्ठं शैवाः शैवं व्रजंति हि ॥११॥
पितॄन् यजंति ये नित्यं सुखैश्वर्यप्रजेप्सवः । दक्षिणेन पथाऽर्यम्णा पितृलोकं व्रजंति ते ॥१२॥
स्वर्लोकं वै तथा स्मार्ताः पंचपूजनसंयुताः । प्रजापतियजो यांति दक्षादींश्च प्रजापतीन् ॥१३॥
भूतानि यांति भूतेज्या यक्षान् यक्षयजस्तथा । ये यस्य भक्तास्तल्लोकान्यांति राजन्न संशयः॥१४॥
तथा पापरता राजन्दुःसंगवशवर्तिनः । यमलोकं च ते यांति निरयैर्दारुणैर्वृतम् ॥१५॥
पुनरावर्तिनो लोकाः सर्वे चाब्रह्मलोकतः । पुनरावर्तिनो लोकान् विद्धि राजन् महामते ॥१६॥
कर्मणां सनिमित्तानां मार्ग एष गतागतः । तावत्प्रमोदते स्वर्गे यावत्पुण्यं समाप्यते ॥१७॥
क्षीणपुण्यः पतत्यर्वागनिच्छन्कालचालितः । यादवेन्द्र महाबाहो तस्मात्कर्मफलं त्यजेत् ॥१८॥
भक्तो निष्कारणो भूत्वा ज्ञानवैराग्यसंयुतः । प्रेमलक्षणया वाचा हरिभक्तजनप्रियः ॥१९॥
भजेच्छ्रीकृष्णपादाब्जमभयं हंससेवितम् । यो मृत्युः सर्वलोकानां बलात्संहारकारकः ॥२०॥
स यत्र भगवद्धाम्नि गतः सन्मृत्युमाप्नुयात् ॥२१॥

उग्रसेन उवाच

सर्वे लोका हि भगवन्पुनरावर्तिनः स्मृताः । तेभ्यो जातं च वैराग्यं मनसो मे न संशयः ॥२२॥

रहित होते हैं, वे श्रीकृष्णको प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥ हे राजन् ! जिन्होंने वनवासी होकर पञ्चाग्नियोंका सेवनरूप तप किया है, वे निष्पाप होकर सप्तर्षियोंके लोकमें चले जाते हैं ॥ ७ ॥ जो संन्यास-आश्रमके नियमोंका पालन करनेवाले त्रिदण्डधारी हैं तथा जिन्होंने इन्द्रिय एवं मनके स्वभावपर विजय पा ली है, वे सत्यलोकके यात्री होते हैं ॥ ८ ॥ जो निर्मल चित्तवाले ऊर्ध्वरेता योगिराज अष्टाङ्गयोगका सेवन करते हैं, वे उसके प्रभावसे जनलोक अथवा महर्लोकमें जाते हैं—इसमें कुछ भी संदेह नहीं है ॥ ९ ॥ यज्ञका अनुष्ठान करनेवाला पुरुष बहुत वर्षोंतक इन्द्रलोकमें निवास पाता है। दानशील व्यक्ति चन्द्रलोकको और व्रतशील पुरुष सूर्यलोकको जाता है ॥ १० ॥ तीर्थोंकी यात्रा करनेवाले अग्निलोकको, सत्यप्रतिज्ञ वरुणलोकको, विष्णुके उपासक वैकुण्ठलोकको तथा शिवकी आराधना करनेवाले शिवलोकको प्रयाण करते हैं ॥ ११ ॥ जो सुख, ऐश्वर्य और संतानकी कामनासे नित्य पितरोंका पूजन करते हैं, वे दक्षिण-मार्गसे अर्यमाके साथ पितृलोकको चले जाते हैं ॥ १२ ॥ इसी प्रकार पाँच देवोंकी उपासना करनेवाले स्मार्तलोग स्वर्गलोकके अधिकारी होते हैं, प्रजापतियोंके उपासक दक्ष आदि प्रजापतियोंके लोकको जाते हैं, भूतोंको पूजनेवाले भूतलोकको और यक्षोंको पूजनेवाले यक्षलोकको प्रयाण करते हैं। हे राजन् ! जो जिसके भक्त होते हैं, वे उसीके लोकमें जाते हैं—इसमें कुछ भी संदेह नहीं है ॥ १३ ॥ १४ ॥ हे राजन् ! वैसे ही बुरे सङ्गके वशीभूत होकर पापमें रचे-पचे रहनेवाले लोग उस यमलोकमें जाते हैं, जो दारुण नरकोंसे घिरा हुआ है ॥ १५ ॥ हे महामते ! ब्रह्मलोकपर्यन्त जितने भी लोक हैं, उनमें जानेपर पुनरागमन होता है। हे राजन् ! इससे तुम समझ लो कि सम्पूर्ण लोक पुनरावर्ती हैं ॥ १६ ॥ सकाम-कर्मियोंकी यही गमनागमनरूपिणी गति होती है। जबतक जीवके पुण्य समाप्त नहीं होते, तबतक वह स्वर्गलोकमें विहार करता है ॥ १७ ॥ पुण्यके शेष हो जानेपर उसे न चाहनेपर भी कालकी प्रेरणासे नीचे गिरना पड़ता है। अतः हे महाबाहु यादवेन्द्र ! कर्मके फलका त्याग कर देना चाहिये ॥ १८ ॥ अतः मनुष्य ज्ञान और वैराग्यसे युक्त होकर निष्काम भक्त बन जाय। फिर प्रेमलक्षणा भक्तिके द्वारा भगवान् श्रीहरिके भक्तजनोंका प्रीतिपात्र बनकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरण-कमलोंकी, जो अभय प्रदान करनेवाले हैं और जो परमहंसोंद्वारा सेवित हैं, उपासना करनी चाहिये। जो हठपूर्वक समस्त लोकोंका संहार करनेवाली है, वह मृत्यु भी प्राणीके उस भगवद्धाममें

श्रीकृष्णधाम परमं यतो नावर्तते गतः । तल्लोकं वद मे ब्रह्मन् क्व चास्ते सर्वतः परम् ॥२३॥

श्रीव्यास उवाच

ब्रह्मांडेभ्यो बहिर्द्धाम श्रीकृष्णस्य महात्मनः । यद्गता न निवर्तंते तद्गोलोकं विदुः परम् ॥२४॥
ब्रह्मांडोऽयं जीवसंघः पञ्चाशत्कोटियोजनैः । विस्तृतः परतो ह्यस्यां शतकोटिविलंघितः ॥२५॥
यदंतरगतो राजन् लक्ष्यते परमाणुवत् । तदंतरगताश्चान्ये कोटिशो ह्यंडराशयः ॥२६॥
न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः । कामक्रोधश्च लोभश्च न मोहो यत्र याति च ॥२७॥
न यत्र शोको न जरा न मृत्युर्नार्तिरेव च । न प्रधानं न कालश्च विशंते च गुणाः कुतः ॥२८॥
शब्दब्रह्माप्यनिर्वाच्यं तद्वर्णयितुमक्षमः । श्रीकृष्णतेजःसंभूतास्तत्र संति च पार्षदाः ॥२९॥
अकिंचनाश्च ये दांताः शांता वै समचेतसः । श्रीकृष्णचंद्रपादाब्जमकरंदरसालयाः ॥३०॥
प्रेमलक्षणया भक्त्या सदा निष्कारणाः पराः । लोकानुल्लंघ्य तद्धाम यांति राजन्न संशयः ॥३१॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीविज्ञानखण्डे श्रीव्यासोग्रसेनसंवादे लोकगतिनिरूपणं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

(सकाम एवं निष्काम भक्तियोगका वर्णन)

उग्रसेन उवाच

श्रुतं तव मुखाद्ब्रह्मन् गुणकर्मगतिर्मया । पुनरावर्तिनो लोकास्तथा संति विनिश्चिताः ॥ १ ॥
निष्कारणाद्धरेः साक्षात्सेवनाद्धाम उत्तमम् । लभते दुर्लभं दिव्यं भक्तानां तच्छ्रुतं मया ॥ २ ॥

पहुँच जानेपर शान्त हो जाती है ॥१९–२१॥ राजा उग्रसेन बोले—हे भगवन् ! समस्त लोकोंको पुनरावर्ती कहा गया है। इस बातसे उन सभी लोकोंके प्रति मेरे अन्तःकरणमें निःसंदेह विराग उत्पन्न हो गया है ॥ २२ ॥ ब्रह्मन् ! जहाँ जाकर प्राणी वापस नहीं लौटता और जो सबसे परे हैं, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका वह परम धाम कहाँपर है—यह मुझे बतानेकी कृपा कीजिये ॥ २३ ॥ श्रीव्यासजीने कहा—जहाँ गये हुए प्राणी वहाँसे लौटते नहीं, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका वह धाम ब्रह्माण्डोंके बाहर है। विज्ञजन उसे ही उत्तम 'गोलोकधाम' कहते हैं ॥ २४ ॥ जीव-समूहसे भरा हुआ पचास करोड़ योजन विस्तृत यह ब्रह्माण्ड है। इसके आगे इससे दुगुनी अर्थात् सौ करोड़ योजन विस्तारवाली ब्रह्मद्रव नामकी जलराशि है, जिसमें यह ब्रह्माण्ड परमाणुके समान दिखायी पड़ता है। इसके अतिरिक्त उसमें करोड़ों ब्रह्माण्ड और हैं ॥ २५ ॥ उसके उस पार वह गोलोक है, जहाँ न सूर्यका प्रकाश है, न चन्द्रमाका और न अग्निका ही। काम, क्रोध, लोभ और मोहकी वहाँ गति ही नहीं है ॥ २६ ॥ वहाँ न शोक है, न बुढ़ापा है, न मृत्यु है और न पीड़ा है। वहाँ प्रकृति और काल भी नहीं हैं, फिर गुणोंका तो प्रवेश वहाँ हो ही कैसे सकता है ॥ २७ ॥ जो स्वयं अनिर्वाच्य है, वह शब्दब्रह्म (वेद) भी उस लोकका वर्णन करनेमें असमर्थ है। भगवान् श्रीकृष्णके तेजसे प्रकट हुए अनेक पार्षद वहाँ रहते हैं ॥ २८ ॥ हे राजन् ! जो इन्द्रियों तथा मनपर विजय पाये हुए अकिंचन भक्त हैं, अर्थात् सांसारिक प्राणिपदार्थोंमें जिनका कहीं कुछ भी ममत्व नहीं रह गया है, जो सबमें समान भाव रखनेवाले हैं, जो भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंके मकरन्द-रसमें सदा निमग्न रहते हैं तथा जो प्रेमलक्षणा भक्तिसे युक्त एवं सर्वदाके लिये कामनासे सर्वथा रहित हो गये हैं, वे ही समस्त लोकोंको लाँघकर उस उत्तम भगवद्धाममें जाते हैं—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है ॥२९–३१॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विज्ञानखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

राजा उग्रसेनने कहा—हे ब्रह्मन् ! गुण और कर्मकी गति आपके श्रीमुख में सुन चुका। सभी लोक आवागमनसे युक्त हैं, यह भी भलीभाँति निश्चित हो गया ॥ १ ॥ निष्कामभावसे साक्षात् श्रीहरिका सेवन करनेपर भक्तोंको वह उत्तम धाम, जो दिव्य एवं दूसरोंके लिये दुर्लभ है, मिलता है—यह भी

भक्तियोगः कतिविधो वद मे वदतां वर । येन प्रसन्नो भवति भगवान् भक्तवत्सलः ॥ ३ ॥

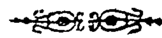
श्रीव्यास उवाच

द्वारावतीश धन्योऽसि श्रीकृष्णेष्टो हरिप्रियः । पृच्छसे भक्तियोगं त्वं धन्या ते विमला मतिः ॥ ४ ॥
यं श्रुत्वा निर्मलो भूयाद्विश्वघात्यपि पातकी । तं भक्तियोगं विशदं तुभ्यं वक्ष्यामि यादव ॥ ५ ॥
भक्तियोगो द्विधा राजन् सगुणश्चैव निर्गुणः । सगुणः स्याद्बहुविधो निर्गुणश्चैकलक्षणः ॥ ६ ॥
सगुणः स्याद्बहुविधो गुणमार्गेण देहिनाम् । तैर्गुणैस्त्रिविधा भक्ता भवन्ति शृणु तान्पृथक् ॥ ७ ॥
हिंसां दंभं च मात्सर्यं चाभिसंधाय भिन्नदृक् । कुर्याद्भावं हरौ क्रोधी तामसः परिकीर्तितः ॥ ८ ॥
यश ऐश्वर्यविषयानभिसंधाय यत्नतः । अर्चयेद्यो हरिं राजन् राजसः परिकीर्तितः ॥ ९ ॥
उद्दिश्य कर्मनिर्हारमपृथग्भाव एव हि । मोक्षार्थं भजते विष्णुं स भक्तः सात्त्विकः स्मृतः १०॥
जिज्ञासुरार्तो ज्ञानी च तथाऽर्थार्थी महामते । चतुर्विधा जना विष्णुं भजंते कृतमंगलाः ॥११॥
एवं बहुविधेनापि भक्तियोगेन माधवम् । भजंति सनिमित्तास्ते जनाः सुकृतिनः परे ॥१२॥
लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य तथा शृणु । तद्गुणश्रुतिमात्रेण श्रीकृष्णे पुरुषोत्तमे ॥१३॥
परिपूर्णतमे साक्षात्सर्वकारणकारणे । मनोगतिरविच्छिन्ना खंडिताऽहैतुकी च या ॥१४॥
यथाब्धावंभसा गंगा सा भक्तिर्निर्गुणा स्मृता । निर्गुणानां च भक्तानां लक्षणं शृणु मानद ॥१५॥
सार्वभौमं पारमेष्ठ्यं शक्रधिष्ण्यं तथैव च । रसाधिपत्यं योगर्द्धिं न वांछंति हरेर्जनाः ॥१६॥
हरिणा दीयमानं वा सालोक्यं यादवेश्वर । न गृह्णंति कदाचित्ते सत्संगानंदनिर्वृताः ॥१७॥
सामीप्यं ते न वांछंति भगवद्विरहातुराः । संनिकृष्टे न तत्प्रेम यथा दूरतरे भवेत् ॥१८॥

सुन लिया ॥ २ ॥ आप वर्णन करनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। अब मुझे यह बताइये कि भक्तियोग, जिसके प्रभावसे भक्तवत्सल भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं, कितने प्रकारका है ? ॥ ३ ॥ श्रीव्यासजी बोले— हे द्वारकानरेश ! तुम धन्य हो । तुम श्रीहरिके प्रेमी हो तथा भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारे इष्टदेव हैं। तुमने भक्तियोगके सम्बन्धमें प्रश्न किया है, इससे तुम्हारी निर्मल बुद्धि भी धन्य है ॥ ४ ॥ हे यादव ! जिसे सुनकर संसारका संहार करनेवाला घोर पापी भी शुद्ध हो जाता है, उस भक्तियोगका वर्णन विस्तार-पूर्वक मैं तुम्हें सुनाता हूँ ॥ ५ ॥ हे राजन् ! सगुण और निर्गुणके भेदसे भक्तियोग दो प्रकारका है। सगुणके अनेक भेद हैं और निर्गुणका एक ही लक्षण है ॥ ६ ॥ देहधारियोंके गुणानुसार सगुण भक्तिके विभिन्न प्रकार होते हैं। उन गुणोंसे युक्त तीन तरहके भक्त होते हैं । उनका वर्णन अलग अलग सुनो ॥ ७ ॥ जो भेददृष्टि रखनेवाला क्रोधी पुरुष हिंसा, दम्भ और मात्सर्यका आश्रय लेकर श्रीहरिकी भक्ति करता है, उसे 'तामस भक्त' कहा गया है ॥ ८ ॥ हे राजन् ! जो यश, ऐश्वर्य तथा इन्द्रियोंके विषयोंको लक्ष्य करके यत्नपूर्वक श्रीहरिकी उपासना करता है, उसकी गणना 'राजसिक' भक्तोंमें होती है ॥९॥ जो कर्मक्षयका उद्देश्य लेकर अभेद-दृष्टिसे मोक्षके लिये भगवान् विष्णुकी उपासना करता है, वह भक्त 'सात्त्विक' कहा जाता है ॥ १० ॥ हे महामते ! अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी—ये चार प्रकारके पुरुष भगवान् विष्णुका भजन करते हैं। इन्होंने स्वयं अपना कल्याण कर लिया है ॥ ११ ॥ यों भक्तियोगके अनेक प्रकार हैं। भक्तियोगके द्वारा जो श्रीहरिका पूजन करते हैं, वे सकाम भक्त भी बड़े सुकृती और पुण्यात्मा हैं ॥ १२ ॥ इसी प्रकार अब निर्गुण भक्तियोगका लक्षण सुनो । जैसे गङ्गाजीका जल स्वाभाविक ही समुद्रकी ओर प्रवाहित होता है, उसी प्रकार श्रवणमात्रसे साक्षात् परिपूर्णतम एवं सम्पूर्ण कारणोंके भी कारण भगवान् श्रीकृष्णके प्रति बिना कारण मनकी गति अविच्छिन्न एवं अखण्डितरूपसे प्रवाहित होने लगे, इसे 'निर्गुणभक्ति' कहा गया है। हे मानद ! अब निर्गुण भक्तोंके लक्षण सुनो ॥ १३–१५ ॥ भगवान्‌के उन भक्तोंकी अखण्ड भूमण्डलके राज्य, ब्रह्माके पद, इन्द्रासन, पातालके स्वामित्व तथा योगकी सिद्धियोंमें भी स्पृहा नहीं रहती ॥ १६ ॥ हे यादवेश्वर ! भगवदनुरागका आनन्द उनपर छाया रहता है, इसीलिये वे भगवान्‌के द्वारा दिये जानेपर भी सालोक्य मुक्तिको कभी स्वीकार नहीं

सारूप्यं दीयमानं वा समानत्वाभिमानिनः । नैरपेक्ष्यान्न वांछंति भक्तास्तत्सेवनोत्सुकाः ॥१९॥
एकत्वं चापि कैवल्यं न वांछंति कदाचन । एवं चेत्तर्हि दासत्वं क्व स्वामित्वं परस्य च ॥२०॥
निरपेक्षाश्च ये शांता निर्वैराः समदर्शिनः । आकैवल्याल्लोकपदग्रहणं कारणं विदुः ॥२१॥
नैरपेक्ष्यं महानंदं निरपेक्षा जना हरेः । जानंति हि यथा नासा पुष्पामोदं न चक्षुषी ॥२२॥
सकामाश्च तदानंदं जानंति हि कथंचन । रसकर्ता तथा हस्तो रसस्वादं न वेत्ति हि ॥२३॥
तस्माद्राजन्भक्तियोगं विद्धि चात्यंतिकं पदम् । भक्तानां निरपेक्षाणां पद्धतिं कथयामि ते ॥२४॥
स्मरणं कीर्तनं विष्णोः श्रवणं पादसेवनम् । अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥२५॥
कुर्वंति सततं राजन् भक्तिं ये प्रेमलक्षणाम् । ते भक्ता दुर्लभा भूमौ भगवद्भावभावनाः ॥२६॥
कुर्वन्तो महतोपेक्षां दयां हीनेषु सर्वतः । समानेषु तथा मैत्रीं सर्वभूतदयापराः ॥२७॥
कृष्णपादाब्जमधुपाः कृष्णदर्शनलालसाः । कृष्णं स्मरंति प्राणेशं यथा प्रोषितभर्तृकाः ॥२८॥
श्रीकृष्णस्मरणाद्येषां रोमहर्षः प्रजायते । आनंदाश्रुकलाश्चैव वैवर्ण्यं तु क्वचिद्भवेत् ॥२९॥
श्रीकृष्ण गोविंद हरे ब्रुवन्तः श्लक्ष्णया गिरा । अहर्निशं हरौ लग्नास्ते हि भागवतोत्तमाः ॥३०॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीविज्ञानखण्डे श्रीवेदव्यासोग्रसेनसंवादे निर्गुणभक्तियोगवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥



करते ॥ १७ ॥ दूर रहनेपर जैसा प्रेम होता है, समीप आनेपर वैसा नहीं होता, यह सोचकर वे निष्काम भक्त भगवान्‌के विरहमें व्याकुल रहना पसंद करते हैं, अतः सामीप्य मुक्तिकी भी इच्छा नहीं करते ॥ १८ ॥ किन्हीं भक्तोंको भगवान् सारूप्य मुक्ति देते हैं, किंतु निरपेक्ष होनेके कारण भक्त उसे भी स्वीकार नहीं करते। समानत्वकी अभिमति होनेपर भी केवल भगवान्‌की सेवाके प्रति ही उनकी उत्कण्ठा बनी रहती है ॥ १९ ॥ ऐसे भक्त एकत्व (सायुज्य) अथवा ब्रह्मके साथ एकतारूप कैवल्यको भी कभी नहीं लेते। उनका अभिप्राय यह है कि यदि ऐसा हो जाय तो स्वामी और सेवकके धर्ममें अन्तर ही क्या रह जायगा ॥ २० ॥ जो निरपेक्ष भक्त होते हैं, उनकी सबमें समान दृष्टि रहती है। उनका स्वभाव शान्त होता है और वे किसीसे वैर नहीं रखते। उनकी यह धारणा है कि कैवल्यसे लेकर सांसारिक समस्त पदोंका ग्रहण करना सकामभावके ही अन्तर्गत है ॥ २१ ॥ जिस प्रकार फूलोंकी गन्धको नासिका ही जानती है, आँखको उसका ज्ञान नहीं होता, ठीक वैसे ही निरपेक्षतारूप महान् आनन्दको भगवान्‌के निष्काम भक्त ही जानते हैं ॥ २२ ॥ जैसे रसको बनानेवाला हाथ रसके स्वादसे सदा अनभिज्ञ ही रहता है, उसी प्रकार सकाम भक्त कभी भी उस आनन्दको नहीं जान सकते ॥ २३ ॥ अतएव हे राजन्! इस भक्तियोगको ही तुम परम श्रेष्ठ पद समझो। अब निष्काम भक्तोंकी उपासना-पद्धतिका तुम्हारे सामने वर्णन करता हूँ ॥ २४ ॥ उसका स्वरूप है—भगवान् विष्णुका स्मरण, उनके नाम-गुणोंका कीर्तन, श्रवण, चरणोंकी सेवा, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और अपनेको भगवान्‌के चरणोंमें निवेदित कर देना ॥ २५ ॥ हे राजन्! जो निरन्तर भगवान्‌की प्रेमलक्षणा भक्ति करते हैं, वे भगवद्भावकी भावना करनेवाले भक्त जगत्‌में दुर्लभ हैं ॥ २६ ॥ जो बड़ोंके प्रति सम्मान, छोटोंके प्रति सब तरहसे दया तथा अपनी बराबरीवालोंके साथ मित्रताका बर्ताव करते हैं, सम्पूर्ण जीवोंपर जिनकी सदा दया बनी रहती है, जो भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंके मधुकर हैं, जिन्हें भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनकी लालसा बनी रहती है, जो अपने विदेशस्थ स्वामीको याद करनेवाली स्त्रीकी भाँति भगवान् श्रीकृष्णको याद करते रहते हैं, भगवान् श्रीकृष्णके स्मरणसे जिनका रोम-रोम पुलकित हो उठता है, नेत्रोंसे आनन्दकी अश्रुधारा बहने लगती है, भगवान्‌के विरहमें कभी-कभी जिनके शरीरका रंग बदल जाता है, जो मधुर वाणीसे 'श्रीकृष्ण ! गोविन्द ! हरे !' की रट लगाये रहते हैं तथा रातदिन भगवान् श्रीहरिमें जिनकी लगन लगी रहती है, वे ही भागवतोत्तम—भगवान्‌के उत्तम भक्त हैं ॥ २७–३० ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विज्ञानखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

(भक्त संतकी महिमाका वर्णन)

श्रीव्यास उवाच

खे वायौ सलिले वह्नौ मह्यां ज्योतिर्गणेषु च । श्रीकृष्णदेवं पश्यंतो हर्षिताश्च पुनः पुनः ॥ १ ॥
श्रीकृष्णो राधिकानाथः कोटिकंदर्पमोहनः । तन्नेत्रगोचरो याति ब्रुवञ्छ्रीनंदनंदनः ॥ २ ॥
सदानंदं च ते दृष्ट्वा प्रहसंति प्रहर्षिताः । क्वचिद्वदंति धावंति नंदंति च क्वचित्तथा ॥ ३ ॥
क्वचिद्गायंति नृत्यंति क्वचित्तूष्णीं भवंति च । कृष्णचंद्रस्वरूपास्ते कृतार्था वैष्णवोत्तमाः ॥ ४ ॥
तेषां दर्शनमात्रेण नरो याति कृतार्थताम् । न कालो न यमस्तेषां दंडं दातुं न च क्षमः ॥ ५ ॥
गदा कौमोदकी वामे दक्षिणे च सुदर्शनम् । अग्रे शार्ङ्गधनुः पश्चात्पांचजन्यो घनस्वनः ॥ ६ ॥
नंदकश्च महाखड्गः शतचंद्रेषवः शिताः । एतान्यायुधमुख्यानि तांश्च रक्षंत्यहर्निशम् ॥ ७ ॥
तथोपरि महापद्मं छायां कर्तुं पुनः पुनः । गरुडः पक्षवातेन श्रमहर्ता सतामपि ॥ ८ ॥
यत्र यत्र गताः संतस्तत्र तत्र स्वयं हरिः । तीर्थीकुर्वन् भूमिभागं श्रीमत्पादाब्जरेणुभिः ॥ ९ ॥
क्षणं यत्र स्थिताः संतस्तत्र तीर्थानि संति हि । तत्र कोऽपि मृतः पापी याति विष्णोः परं पदम् ॥ १० ॥
दूरात्संप्रेक्ष्य कृष्णेष्टा नाधयो व्याधयस्तथा । भूतप्रेतपिशाचाश्च पलायंते दिशो दश ॥ ११ ॥
नद्यो नदाः पर्वताश्च समुद्राश्च तथापरे । मार्गं ददुश्च साधुभ्योऽनपेक्षेभ्यः समंततः ॥ १२ ॥
साधूनां ज्ञाननिष्ठानां विरक्तानां महात्मनाम् । अजातशत्रूणां तेषां दुर्लभं पुण्यवर्जितैः ॥ १३ ॥
यस्मिन्कुले कृष्णभक्तो जायते ब्रह्मलक्षणम् । तत्कुलं विमलं विद्धि मलीमसमपि स्वतः ॥ १४ ॥

श्रीव्यासजी बोले—जो आकाश, वायु, जल, अग्नि, पृथ्वी तथा ग्रह-नक्षत्रों एवं तारागणोंमें भगवान् श्रीकृष्णकी झाँकी करते हुए बार-बार हर्षित होते हैं, करोड़ों कामदेवोंको मोहित करनेवाले राधा-नायक सर्वात्मा नन्दनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र उन भक्तोंके सामने बोलते हुए दृष्टिगोचर होने लगते हैं ॥ १ ॥ २ ॥ सदा आनन्दस्वरूप उन भगवान्का दर्शन प्राप्त करके वे अत्यन्त हर्षसे भर जाते हैं और ठहाका मारकर हँसने लगते हैं। वे कभी बोलते और कभी दौड़ लगाया करते हैं। कभी गाते, कभी नाचते और कभी चुप हो रहते हैं। भगवान् विष्णुके वे उत्तम भक्त कृतकृत्य हो गये रहते हैं। वे भगवान् श्रीकृष्णके स्वरूप ही होते है ॥ ३ ॥ उनके दर्शनमात्रसे मनुष्य कृतार्थ हो जाता है। काल अथवा यमराज—कोई भी उन्हें दण्ड देनेमें समर्थ नहीं होता ॥ ४ ॥ ५ ॥ ऐसे भक्तोंके वामभागमें कौमोदकी गदा, दक्षिणमें सुदर्शन चक्र, आगे शार्ङ्ग धनुष, पीछे बादलकी भाँति गर्जनेवाला पाञ्चजन्य शङ्ख, नन्दन नामकी महान् तलवार, शतचन्द्र नामक ढाल और अनेकों तीखे बाण—भगवान्के ये सभी प्रधान-प्रधान आयुध रात-दिन सजग रहकर उनकी रक्षा किया करते हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥ इसी प्रकार महान् कमल उनके ऊपर बारबार छाया करनेके लिये प्रस्तुत रहता है। उन संतपुरुषोंके श्रमको गरुड़जी अपने पंखोंकी हवासे दूर करते रहते हैं ॥ ८ ॥ जहाँ-जहाँ उपर्युक्त महात्मा पुरुषोंका गमन होता है, वहाँ-वहाँ स्वयं श्रीहरि पधारते हैं और अपने शोभायुक्त चरणकमलोंके परागसे उस भू-भागको तीर्थ बना देते हैं ॥ ९ ॥ जहाँ संतजन एक क्षण भी ठहरते हैं, वहाँ तीर्थोंका निवास हो जाता है। यदि उस स्थानपर किसी पापीका भी देहावसान हो जाय तो उसे भगवान् विष्णुका परमपद प्राप्त हो जाता है ॥ १० ॥ जिन्हें भगवान् श्रीकृष्ण इष्ट हैं, उनको दूरसे ही देखकर आधि-व्याधि, भूत, प्रेत और पिशाच दसों दिशाओंमें भाग खड़े होते हैं ॥ ११ ॥ अनपेक्ष साधु पुरुषोंको नदी, नद, पर्वत, समुद्र तथा दूसरे व्यवधान भी सब जगह मार्ग दे देते हैं ॥ १२ ॥ जो साधु हैं, ज्ञानमें निष्ठा रखनेवाले हैं, जिनका विषयोंसे विराग हो चुका है, जिनकी जगत्में किसीसे शत्रुता नहीं होती, ऐसे महात्मा पुरुषोंका दर्शन पुण्यहीन मनुष्योंके लिये अत्यन्त कठिन है ॥ १३ ॥ भगवान् श्रीकृष्णका भक्त जिस कुलमें उत्पन्न होता है, वह कुल स्वयं मलिन ही क्यों न हो, उसे तुम ब्राह्मणवंशकी भाँति अत्यन्त निर्मल समझो ॥ १४ ॥ हे राजन्! भगवान्

राजन् श्रीकृष्णभक्तस्तु पितॄन्दश कुलोद्भवान् । प्रियापक्षेऽपि दश च मातृपक्षे तथा दश ॥१५॥
पुरुषानुद्धरेद्राजन्निरयात्पापबंधनात् । साधुसंबंधिनश्चान्ये भृत्या दासाः सुहृज्जनाः ॥१६॥
शत्रवो भारवाहाश्च तद्गृहे पक्षिणस्तथा । पिपीलिकाश्च मशकास्तथा कीटपतङ्गकाः ॥१७॥
अब्रह्मण्येऽकृष्णसारे सौवीरे कीकटे तथा । म्लेच्छदेशेऽपि देवेश भक्तो लोकान्पुनाति हि ॥१८॥
सांख्ययोगं विना राजंस्तीर्थधर्ममखैर्विना । साधुसंसर्गिनस्तेऽपि प्रयांति हरिमन्दिरे ॥१९॥
इत्थं श्रीकृष्णभक्तानां माहात्म्यं कथितं मया । चतुःपदार्थदं नॄणां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥२०॥

उग्रसेन उवाच

परिपूर्णतमे साक्षाच्छ्रीकृष्णे परमात्मनि । दंतवक्रस्य दुष्टस्य ज्योतिर्लीनं बभूव ह ॥२१॥
अहो महदिदं चित्रं सायुज्यं महतामपि । योग्यं स्याद्विप्रमुख्येंद्र कथं चान्येन शत्रुणा ॥२२॥

श्रीव्यास उवाच

ममाहमिति वैषम्यं भूतानां त्रिगुणात्मनाम् । क्रोधाद्यैर्वर्तते राजन्न हरौ परमात्मनि ॥२३॥
हरौ केनापि भावेन मनो लग्नं करोति यः । याति तद्रूपतां सोऽपि भृंगिणः कीटको यथा ॥२४॥
स्नेहं कामं भयं क्रोधमैक्यं सौहृदमेव च । कृत्वा तन्मयतां यांति सांख्ययोगं विना जनाः॥२५॥
स्नेहान्नंदयशोदाद्या वसुदेवादयोऽपरे । कालाद्गोप्यो हरिं प्राप्ता न तु ब्रह्मतया नृप ॥२६॥
तद्रूपगुणमाधुर्यभावसंलग्नमानसाः । भयात्कंसस्तव सुतस्तत्सायुज्यं जगाम ह ॥२७॥
क्रोधादयं दंतवक्रः शिशुपालादयोऽपरे । ऐक्याच्च यादवा यूयं सौहृदाच्च वयं तथा ॥२८॥
तस्मात्केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत् । अहर्निशं हि स्मरणं भवेच्छत्रोर्न कर्हिचित् ॥२९॥

श्रीकृष्णका भक्त तो अपने पितृकुलके दस पुरुषोंको तार देता है। इतना ही नहीं, उसके मातृ-कुल तथा पत्नीकुलकी भी दस-दस पीढ़ियाँ नरकयातना एवं पापोंके बन्धनसे मुक्त हो जाती हैं ॥ १५ ॥ महात्मा पुरुषोंके सम्बन्धी, पोष्यवर्ग, नौकर, सुहृज्जन, शत्रु, भार ढोनेवाले, घरमें रहनेवाले पक्षी, चींटियाँ, मच्छर तथा कीट-पतङ्ग भी—सब पावन बन जाते हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥ देवेश्वर भगवान् श्रीकृष्णका भक्त ऐसे देशमें भी, जो ब्राह्मणोंके रहने योग्य नहीं है तथा जिसमें कृष्णसार मृग नहीं दिखायी देते अथवा सौवीर, कीकट, मगध एवं म्लेच्छोंके देशमें रहनेपर भी लोगोंको पवित्र करनेवाला होता है ॥ १८ ॥ हे राजन् ! जो संत पुरुषोंसे सम्बन्ध रखनेवाले हैं, वे ज्ञानयोग, धर्म, तीर्थ एवं यज्ञसे वर्जित होते हुए भी भगवान् श्रीहरिके मन्दिर (धाम) में चले जाते हैं ॥ १९ ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके भक्तोंकी महिमा मैंने कह सुनायी। इसके वर्णनसे ही मनुष्योंको चारों पदार्थ उपलब्ध हो जाते हैं। अब आगे क्या सुनना चाहते हो ? ॥ २० ॥ राजा उग्रसेनने पूछा—भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र साक्षात् परिपूर्णतम परमात्मा हैं। दुरात्मा दन्तवक्रकी ज्योति उनमें लीन हो गयी—ऐसी बात सुनी गयी है ॥ २१ ॥ हे विप्रवर ! यह महान् आश्चर्यकी बात है। क्योंकि महात्मा पुरुषोंको प्राप्त होने योग्य सायुज्य-पद अन्य किसी साधारण व्यक्तिको, और वह भी एक शत्रुको, कैसे सुलभ हो गया ? ॥ २२ ॥ श्रीव्यासजी बोले—हे राजन् ! 'यह मेरा है और यह मैं हूँ'—यह विषमता त्रिगुणात्मक प्राणियोंमें रहती है; क्योंकि वे काम-क्रोधादिमें रचे-पचे रहते हैं। परम प्रभु श्रीहरिके अन्दर ऐसी भावना नहीं होती ॥ २३ ॥ जो किसी भी भावसे भगवान्में अपना मन लगाता है, उसे श्रीहरिकी सरूपता उपलब्ध हो जाती है—ठीक उसी प्रकार, जैसे ध्यानसे कीड़ा भृङ्गीके रूपमें परिणत हो जाता है ॥२४॥ सांख्ययोगके साधनके विना भी मनुष्य स्नेह, काम, भय, क्रोध, एकता तथा सुहृदताका भाव रखकर भगवान्में तन्मयता प्राप्त कर लेते हैं ॥ २५ ॥ हे राजन् ! नन्द-यशोदा आदिने तथा वसुदेव आदि दूसरे-दूसरे लोगोंने स्नेहसे और गोपियोंने कामभावसे भगवान्को प्राप्त किया, न कि ब्रह्मभावनासे कारण यह है कि वे भगवान्के रूप, गुण एवं माधुर्यभावमें अपना मन भलीभाँति लगाये रहती थीं। तुम्हारे पुत्र कंसको भयके कारण उनका सायुज्य प्राप्त हुआ ॥ २६ ॥ २७ ॥ इस दन्तवक्रको और शिशुपाल आदि दूसरोंको क्रोधसे, तुम सभी यादवोंको एकता—सजातीयताके भावसे तथा हमलोगोंको सुहृदतासे भगवान् सुलभ हुए हैं ॥ २८ ॥ अतएव किसी भी

यत्प्रभावं हरौ तस्मात्कुर्वंति दनुजादयः ॥३०॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीविज्ञानखण्डे श्रीव्यासोग्रसेनसंवादे भक्तमाहात्म्यं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

(भक्तिकी महिमाका वर्णन)

श्रीवेदव्यास उवाच

वत्साघधेनुकबकाघककेशिकालारिष्टप्रलंबकपिबल्वलशंखशाल्वाः ।
वैरेण यं किमुत भक्तियुता नरेन्द्र प्रापुः परं प्रकृतिपूरुषयोः पुमांसम् ॥ १ ॥
पूर्वासुरावतिबलौ मधुकैटभाख्यौ स्वर्णाक्षहेमकशिपू च तथापरौ च ।
वैरं विधाय नृपं रावणकुंभकर्णौ विष्णोः किलापतुरलं परमं पदं हि ॥ २ ॥
के केन विष्णुपदमागतवंत आदौ प्रह्लादबाणबलियक्षविभीषणाद्याः ।
सत्संगसंगनिरता बहुमानपात्रश्रीमत्पदाब्जमकरंदरजोविलुब्धाः ॥ ३ ॥
देवर्षिगोष्पतिवसिष्ठपराशराद्याः सांख्यायनासितशुकाः सनकादयश्च ।
निष्कारणा भुवि चरंत्यरविंदनेत्र पादारविंदमकरंदमिलिंदमुख्याः ॥ ४ ॥
यन्मुत्कलांगभरतार्जुनमैथिलाश्च गाधिप्रियव्रतयदुप्रमुखांबरीषाः ।
निष्कारणाः परमहंसवराश्चरन्ति श्रीकृष्णचन्द्रचरितामृतपानमत्ताः ॥ ५ ॥
मंदोदरी च शबरी च मतङ्गशिष्यास्तारा तथात्रिवनिता निपुणा त्वहल्या ।
कुन्ती तथा द्रुपदराजसुता सुभक्ता एताः परं परमहंससमाः प्रसिद्धाः ॥ ६ ॥
सुग्रीववालिसुतवातसुतर्क्षराजनागारिगृध्रवरकाकभुशुण्डिमुख्याः ।
कुब्जाविदायकसुदामगुहादयोऽन्ये तत्संगमेत्य हरिभक्तवरा बभूवुः ॥ ७ ॥

कृष्णं न रोधयति धर्म तपो न योगः सांख्यं न यज्ञ उत तीर्थयमव्रतानि ।
छंदांसि पूर्तनियमावथ दक्षिणा च नेष्टं न दानमथ भक्तिमृते न कश्चित् ॥ ८ ॥
यज्ञव्रताध्ययनतीर्थतपोनियोगैरिष्टस्वधर्मनियमादिकसांख्ययोगैः ।
यत्प्राप्यते तदखिलं भवतीह भक्त्या भक्तेःपदं हि कर्हिचिन्न भवेत्किलैभिः॥ ९ ॥
उद्धारिणी यमपुरस्य च विश्वरूपादुत्तारिणी भवमहार्णववारिवेगात् ।
संहारिणी विषयसंचितकर्मणां च सत्कारिणी हरिपदस्य परात्परस्य ॥१०॥
श्रीकृष्णदर्शनरसोत्सुकभावराजदुद्यद्वसंतपरमोत्सवपंचमीयम् ।
दिव्या लतातिफलपल्लवभारनम्रा संराजते हि सततं कुसुमाकरस्य ॥११॥
संमोहकालघनमध्यतडित्स्फुरन्ती शास्त्रार्थदर्शवचसां पददीपिकेयम् ।
दीपावलिर्विजयते जयकार्तिकस्य जेतुं गुणान् विजयिनो दशमी जयस्य ॥१२॥
सांख्यं च योग इति पार्श्वगते हि दंडे कीलानि चात्र शतशो गुणभावभेदाः ।
अस्याः क्रमान्नवकथाश्रवणादयश्च श्रेणीयमस्ति सरला भगवत्पदस्य ॥१३॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विज्ञानखण्डे व्यासोग्रसेनसंवादे भक्त्युत्कर्षवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

(मन्दिर-निर्माण तथा विग्रहप्रतिष्ठा एवं पूजाकी विधि)

उग्रसेन उवाच

कर्मग्रहो गृहस्थोऽयं श्रीकृष्णस्य महात्मनः । सेवां वैकेन विधिना कुर्यात्तद्ब्रूहि मे मुने ॥ १ ॥

भक्त-महिलाएँ हो चुकी हैं। परमहंसोंके समान ही इनकी भी ख्याति है ॥ ६ ॥ सुग्रीव, अङ्गद, हनुमान्, जाम्बवान्, गरुड़, जटायु, काकभुशुण्डि आदि तिर्यक् योनियोंके संत, कुब्जा, वायक, सुदामा माली तथा निषाद आदि भी भक्तोंका सङ्ग पाकर श्रीहरिके उत्तम भक्त बन गये ॥ ७ ॥ धर्म, तप, योग, सांख्य, यज्ञ, तीर्थ-यात्रा, यम-नियम, चान्द्रायण आदि व्रत, वेदपाठ, दक्षिणा, पूजा अथवा दान—भक्तिके बिना ये कोई भी भगवान् श्रीकृष्णको वशमें नहीं कर सकते ॥ ८ ॥ यज्ञ, व्रत, स्वाध्याय, तप, तीर्थ, योग, पूजा, नियमादि और सांख्ययोग—इनसे जो फल मिलता है, वह सब-का-सब फल इस संसारमें भक्तिसे सुलभ है। इतना ही नहीं, भक्तिसे जिस पदकी उपलब्धि होती है, वह इन साधनोंसे कभी उपलब्ध नहीं हो सकता ॥ ९ ॥ यह भक्ति जगत्भरके पापोंसे अधमोंका उद्धार करनेवाली, जगत्से तारनेवाली, संसाररूपी महासागरके भव-जल-प्रवाहसे उबारनेवाली, विषयसेवनके द्वारा संचित कर्मोंका नाश करनेवाली तथा परात्पर परम प्रभु भगवान्का पद प्रदान करनेवाली है ॥१०॥ यह भक्ति भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनरूपी रसके प्रति औत्सुक्यसे सुशोभित तथा परम उत्सव मनानेके लिये वसन्तपञ्चमीके समान है। साथ ही यह प्रचुर फल एवं पल्लवोंके भारसे झुकी हुई वसन्तकालीन दिव्य लताके समान सदा शोभा पाती है ॥ ११ ॥ मोहरूपी काले बादलके बीच चमकती हुई बिजलीकी भाँति यह भक्ति शास्त्रोंमें छिपे हुए रहस्योंके वचनोंको प्रकट करनेवाली ज्योतिके समान है। इसे कार्तिककी विजयरूपा दीपावली तथा सर्वजयी गुणोंपर विजय पानेके लिये विजया दशमी भी कह सकते हैं ॥ १२ ॥ सांख्य और योग जिसके अगल-बगलमें लगे हुए डंडे हैं, सैकड़ों गुणों और भावोंके भेद जिसकी कीलें हैं, नवधा भक्तिके श्रवण-कीर्तन आदि जो नौ भेद हैं, वे ही जिसके बीचके दण्ड (पैर टिकनेके पाये) हैं, भगवद्धामको पहुँचानेवाली ऐसी यह सरल सीढ़ी है ॥ १३ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विज्ञानखण्डे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

भक्त्यंकुरो यस्य नास्ति वास्ति तस्य न वर्द्धते । तस्य केन प्रकारेण प्रसन्नः स्याद्धरिः स्वयम् ॥ २ ॥

श्रीव्यास उवाच

यदि भक्त्यंकुरो न स्यात्सत्संगेन स जायते । बलाद्विवर्द्धते तस्मात्सतां संगं समाचरेत् ॥ ३ ॥
कृष्णसेवाविधिं तुभ्यं वक्ष्यामि सुलभं परम् । यया गृहस्थोऽयं शीघ्रं श्रीकृष्णं प्राप्नुयान्नृप ॥ ४ ॥
आचार्य्यं कुलसंभूतं श्रीकृष्णध्यानतत्परम् । एतादृशं गुरुं कृत्वा सिद्धो भवति मानवः ॥ ५ ॥
गुरोः सेवाविधिं शिक्षेच्छ्रीकृष्णस्य महात्मनः ॥ ६ ॥
विष्णुदीक्षाविहीनस्य सर्वं भवति निष्फलम् । निर्गुरोर्दर्शनं कृत्वा हतपुण्यो भवेन्नरः ॥ ७ ॥
उत्तराभिमुखं शश्वत्कारयेद्धरिमंदिरम् । तत्र सिंहासनं प्रोच्चं सपीठं कुंभमण्डितम् ॥ ८ ॥
सच्चिदानन्द नाम स्यात्सोपानत्रयभूपितम् । महार्हवस्त्रैराच्छन्नं तत्र तुल्यासनं मृदु ॥ ९ ॥
पार्श्वोपबर्हणयुतं स्फुरद्धेमांबरावृतम् । नानाचित्रयुतैः कुड्यैरन्तःपटसमन्वितैः ॥ १० ॥
सर्वतोमंडलैस्तद्वत्तोरणैः समलंकृतम् । गवाक्षवारियंत्राढ्यं चतुःशालसुजालकैः ॥ ११ ॥
राजतप्रांगणो देशः सभामण्डपमण्डितः । तत्र प्रांगणमध्ये तु तुलसीमन्दिरं शुभम् ॥ १२ ॥
मन्दिरस्य बहिर्द्वारि कारयेद्दीपिकाद्वयम् । तथा वै कृत्रिमं राजन् सिंहद्वयमधिष्ठितम् ॥ १३ ॥
सुवर्णशिखरस्याधश्चक्रं च शिखरोपरि । द्वारेऽपि हरिनामानि प्रालेख्यानि शुभानि च ॥ १४ ॥
शंखं पद्मं गदां शार्ङ्गमालेख्यं भित्तिपार्श्वयोः । इपुधी च तथा बाणः सव्ये दक्षिण एव च ॥ १५ ॥
तथा मन्दिरपृष्ठे वै शतचंद्रं च नंदकम् । हलं च मुसलं चैव लेखनीयं प्रयत्नतः ॥ १६ ॥

राजा उग्रसेनने कहा—हे मुने ! गृहस्थ कर्म-ग्रहसे ग्रस्त रहता है। ऐसी कौन-सी विधि है, जिसके द्वारा कर्मासक्त गृहस्थ महात्मा श्रीकृष्णकी सेवा कर सके ? उसे कहनेकी कृपा कीजिये ॥ १ ॥ (साथ ही यह भी बताइये कि) जिसके जीवनमें भक्तिका अङ्कुर ही नहीं है अथवा है भी तो वह बढ़ता नहीं, ऐसे व्यक्तिसे स्वयं श्रीहरि किस प्रकार प्रसन्न हो सकते हैं ? ॥ २ ॥ श्रीव्यासजी बोले—यदि भक्तिका अङ्कुर न हो तो सत्पुरुषोंका सङ्ग करना चाहिये। सत्सङ्गसे वह अङ्कुर उत्पन्न होता और वेगसे बढ़ भी जाता है ॥ ३ ॥ हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्णके सेवनकी विधि, जिसके प्रभावसे साधारण गृहस्थ भी शीघ्र भगवान् श्रीकृष्णको प्राप्त कर सकता है और जो अत्यन्त सुलभ है, वह तुम्हें मैं बतलाता हूँ ॥ ४ ॥ जिनकी आचार्यके सत्कुलमें उत्पत्ति हुई हो तथा जो भगवान् श्रीकृष्णके ध्यानमें तत्पर हों, उनको गुरु बनाकर मनुष्य सिद्धि पाता है ॥ ५ ॥ मनुष्यको चाहिये कि वह ऐसे ही गुरुसे महात्मा श्रीकृष्णकी सेवा-विधि सीखे। जो भगवान् विष्णुकी दीक्षासे रहित है, उसका सब-कुछ निष्फल हो जाता है। गुरुहीन मानवका दर्शन करनेपर पुरुषका पुण्य नष्ट हो जाता है ॥ ६ ॥ ७ ॥ सनातन भगवान् श्रीहरिका मन्दिर उत्तरमुख बनवाना चाहिये। उसमें ऊँचा आसन स्थापित करके उसके ऊपर कलशसे सुशोभित पीठ स्थापित करे ॥ ८ ॥ उसमें तीन सीढ़ी बनाये, जिनके नाम सत्, चित् एवं आनन्द रक्खे। आसनको मूल्यवान् वस्त्रसे ढाँककर उसपर रूईकी गद्दी बिछा दे ॥ ९ ॥ उसके आस-पास तकिये लगाकर उन्हें स्वर्णके तारोंसे निर्मित वस्त्रसे ढाँक दे। दीवालोंपर भाँति-भाँतिके चित्र अङ्कित करे और भीतर पर्दा लगा दे ॥ १० ॥ सब ओर मण्डप बनाये तथा तोरण-बंदनवार, झरोखे, जलके फुहारे तथा जालियोंसे मन्दिरको खूब सजाया जाय ॥ ११ ॥ मन्दिरके आँगनमें चाँदीके सुन्दर सभामण्डप बनाये जायँ। वहाँ आँगनके बीच तुलसीका मनोहर चबूतरा हो ॥ १२ ॥ मन्दिरके बाहरी द्वारपर दो हाथी बनवाने चाहिये। हे राजन् ! वैसे ही बनावटी दो सिंह भी बैठा दे ॥ १३ ॥ मन्दिरका शिखर सोनेका हो। शिखरपर उसके नीचे चक्र बनवा दे। मन्दिरके द्वारपर अगल-बगल श्रीहरिके मङ्गलमय नाम लिखने चाहिये ॥ १४ ॥ दीवालपर एक ओर गदा, पद्म, शङ्ख और शार्ङ्गधनुष अङ्कित कराये। बायीं ओर तरकश और दाहिनी तरफ केवल बाणकी चित्रकारी बनवाये ॥ १५ ॥ मन्दिरके पिछले भागमें शतचन्द्र नामक ढाल, नन्दक नामवाली तलवार, हल और मुसल

सिंहासनस्य पृष्ठे तु गोप्यो गावस्तथैव च । गोपालास्तत्र सोपाने कपाटे विजयो जयः ॥१७॥
देहल्यां कल्पवृक्षश्च स्तम्भेषु च लतां शुभाम् । यत्र तत्र च कुड्येषु श्रीगंगा पापहारिणी ॥१८॥
वृंदावनं गोवर्द्धनं यमुनापुलिनानि च । तथा वै चीरहरणमालेख्यं रासमण्डलम् ॥१९॥
चित्रकूटः पञ्चवटी लेखनीयं प्रयत्नतः । रामरावणयोर्युद्धं जानकीहरणं विना ॥२०॥
दशावतारचित्राणि नरनारायणाश्रमः । सप्तपुर्य्यस्त्रयो ग्रामा नवारण्यं नवोषराः ॥२१॥
एवं लिखित्वा चित्राणि मन्दिरं कारयेद्बुधः । वंशीभावोद्यतकरं वक्रीभूतांघ्रिदक्षिणम् ॥२२॥
किशोराकृति कृष्णस्य रूपं सेव्यतमं स्मृतम् । तत्प्रतिष्ठां विधायाशु गुरुहस्तेन मंदिरे ॥२३॥
भक्तः परमया भक्त्या स्थापयेत्तत्परो भवेत् । तत्प्रसादे च रसनां घ्राणं च तुलसीदले ॥
न्यसेत्कर्णौ तत्कथायामेवं सेवापरो भवेत् ॥२४॥
अहर्निशं कृष्णसेवां यः करोति च भाववित् । तं प्रेमलक्षणं भक्तं विदुर्भागवतोत्तमाः ॥२५॥
अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च । राजन् श्रीकृष्णसेवायाः कलां नार्हंति षोडशीम् २६॥
श्रीकृष्णदेशिकस्यापि यः कुर्याद्दर्शनं नरः । कोटिजन्मकृतैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥२७॥
देहांते तं समानेतुं श्यामसुन्दरविग्रहाः । रथं नीत्वा प्रधावन्ति गोलोकात्कृष्णपार्षदाः॥२८॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विज्ञानखंडे व्यासोग्रसेनसंवादे हरिमंदिरप्रतिष्ठावर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

(नित्यकर्म और पूजा-विधिका वर्णन)

श्रीवेदव्यास उवाच

ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय कशिपोश्च मुदा नृप । गुरोर्नाम च गोविंदनामानि प्रवदन्मुहुः ॥ १ ॥

प्रयत्नपूर्वक अङ्कित कराये ॥ १६ ॥ सिंहासनकी पीठपर गोपियों तथा गौओंको, उसकी सीढ़ीपर गोपालोंको और किवाड़पर 'जय' एवं 'विजय' लिखे ॥ १७ ॥ देहलीपर कल्पवृक्ष, खंभोंपर मनोहर लताएँ, जहाँ-तहाँ दीवालोंपर पापनाशिनी गङ्गा, यमुना, वृन्दावन, गोवर्द्धन, चीरहरण तथा रास-मण्डल आदिके लीलाचित्र अङ्कित कराये ॥ १८ ॥ १९ ॥ फिर प्रयत्न करके चित्रकूट, पञ्चवटी, राम एवं रावणका युद्ध अङ्कित कराये, किंतु उसमें जानकी-हरणका प्रसङ्ग अङ्कित न कराया जाय ॥ २० ॥ दसों अवतारोंके चित्र, नरनारायणाश्रम (बदरिकाश्रम), सातों पुरियाँ, तीनों ग्राम, नौ वन और नौ ऊसर भूमिके चित्र अङ्कित कराये ॥ २१ ॥ बुद्धिमान् पुरुष इस प्रकारके चित्रोंको अङ्कित कराके मन्दिरका निर्माण कराये। तदनन्तर उसमें भगवान् श्रीकृष्णके विग्रहकी स्थापना करे। श्रीकृष्णकी किशोर अवस्था हो और वे हाथमें बाँसुरी लिये उसे बजाना ही चाहते हों तथा उनका दाहिना पैर टेढ़ा करके रक्खा हो—इस प्रकारका रूप सेवाके लिये सर्वोत्तम माना गया है। भक्त परम भक्तिके साथ इस प्रकारके विग्रहस्वरूपकी शीघ्र ही गुरुके द्वारा मन्दिरमें प्रतिष्ठा करा दे और फिर अत्यन्त भक्ति-भावके साथ सेवामें तत्पर हो जाय। जीभको भगवान्के प्रसादके रसमें, नासिकाको तुलसीदलकी सुगन्धमें और कानोंको भगवान्के कथा-श्रवणमें लगा दे। इस प्रकार सेवापरायण हो जाय ॥ २२–२४ ॥ भागवतोत्तम पुरुषोंका कहना है कि जो भावको जाननेवाला पुरुष रात-दिन श्रीकृष्णकी सेवा करता है, वही प्रेमलक्षणसम्पन्न उत्तम भक्त है ॥ २५ ॥ हे राजन्! एक हजार अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञ भगवान् श्रीकृष्णके सेवनकी सोलहवीं कलाके एक अंशके बराबर भी नहीं हैं ॥ २६ ॥ जो मनुष्य श्रीकृष्णचन्द्रकी लीलाकथा तथा सेवाके उपदेशकका भी दर्शन कर लेता है, वह करोड़ों जन्मके किये हुए पापोंसे छूट जाता है—इसमें कोई संशय नहीं है ॥ २७ ॥ देहावसान हो जानेपर उसे ले जानेके लिये श्यामसुन्दरके समान मनोहर विग्रहवाले भगवान् कृष्णके पार्षद

भूमिं नत्वा न्यसेत्पादं जलं स्पृष्ट्वा हरेर्जनः । उपविश्यासने शीघ्रं सकामो यो यथासुखम् ॥ २ ॥
हस्तावुत्संग आधाय श्वासजित्प्राणमास्थितः । ज्ञानमुद्राधरं शांतं श्रीगुरुं स्वस्तिकासनम् ॥ ३ ॥
ध्यात्वा कृष्णं परं ध्यायेद्भक्त एकाग्रमानसः । किशोरं श्यामलं हृद्यं वंशीवेत्रविभूषितम् ॥ ४ ॥
एवं कृत्वा हरेर्ध्यानं पुनर्गच्छेद्बहिःस्थलम् । तच्छौचं शृणु राजेन्द्र गृहस्थस्य यथातथम् ॥ ५ ॥
अश्वक्रांतेति मंत्रेण मृत्स्नया च जलेन च । एका लिंगे गुदे तिस्रस्तथा वामकरे दश ॥ ६ ॥
उभयोर्हस्तयोः सप्त तिस्रस्तिस्रः पदे पदे । एतस्य द्विगुणं प्रोक्तं ब्रह्मचारिवनस्थयोः ॥ ७ ॥
एतच्चतुर्गुणं प्रोक्तं यतीनां हरिसेविनाम् । तदर्धं रोगिपांथानां स्त्रीशूद्राणां तदर्धकम् ॥ ८ ॥
शौचकर्मविहीनस्य सकला निष्फलाः क्रियाः । मुखशुद्धिविहीनस्य मंत्रा न फलदाः स्मृताः ॥ ९ ॥
आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च । ब्रह्मप्रज्ञां च मेधां च त्वन्नो देहि वनस्पते ॥ १० ॥
इति मंत्रं समुच्चार्य कुर्याद्वै दन्तधावनम् । हरितहयमंत्रेण सूर्यं नत्वा कृतांजलिः ॥ ११ ॥
प्रणमेद्धरिभक्तांश्च प्रह्लादादीन्समाहितः । तुलसीमृत्तिकां नीत्वा ततः स्नानं समाचरेत् ॥ १२ ॥
पठितव्यं प्रयत्नेन श्रीगंगायमुनाष्टकम् । अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवंतिका ॥ १३ ॥
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः । शालिग्रामो महायोगे शंभलो हरिमन्दिरे ॥ १४ ॥
नंदिग्रामः कौशले तु त्रयो ग्रामाः प्रकीर्तिताः । दंडकं सैंधवारण्यं जंबुमार्गं च पुष्कलम् ॥ १५ ॥

गोलोकसे रथ लेकर दौड़ पड़ते हैं ॥ २८ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विज्ञानखण्डे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

श्रीव्यासजी बोले—हे राजन्! ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर भगवान् गोविन्द, गुरुदेव और कश्यप आदि ऋषियोंके नामोंका बारंबार उच्चारण करे ॥ १ ॥ तत्पश्चात् वह हरिभक्त भूमिको प्रणाम करके जमीनपर पैर रखे। फिर वह सकाम भक्त आचमन करके तत्काल आनन्दपूर्वक आसनपर बैठ जाय ॥ २ ॥ हाथोंको गोदमें रख तथा श्वास रोककर (गुरुदेवका) ध्यान करे—'भगवान् गुरुदेव ज्ञानमुद्रा धारण किये हुए हैं, उनका स्वरूप अत्यन्त शान्त है और वे स्वस्तिकासनसे विराज रहे हैं ॥ ३ ॥ यों गुरुदेवका ध्यान करनेके पश्चात् भक्त एकाग्र-मन होकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका ध्यान करे—'श्रीकृष्णचन्द्रकी अवस्था किशोर है, श्यामल श्रीविग्रह है, करोंमें वंशी एवं बेतसे विभूषित होकर अत्यन्त ही मनोहर हैं' ॥ ४ ॥ इस प्रकार श्रीहरिका ध्यान करनेके पश्चात् बाहर चला जाय। हे महाराज! गृहस्थ पुरुष कैसे पवित्र होता है—अब उस विधानको पूरा-पूरा सुनो ॥ ५ ॥ भक्त मिट्टी लेकर 'अश्वक्रान्ते' इत्यादि मन्त्रसे शौचके अन्तमें एक बार लिङ्गमें, तीन बार गुदामें, दस बार बायें हाथमें, सात बार दोनों हाथोंमें तथा तीन-तीन बार प्रत्येक पैरमें मिट्टी और जल लगाकर शुद्धि करे। ब्रह्मचारी और वानप्रस्थको इससे दूनी शुद्धि करनी चाहिये ॥६॥ ॥ ७ ॥ भगवान्की सेवा करनेवाले संन्यासीको शुद्धि इससे चौगुना करनेपर होती है। रोगी और पथिकोंकी इससे आधेसे तथा शूद्र एवं स्त्रीका उससे भी आधेसे पवित्र होनेका विधान है ॥ ८ ॥ शौच-कर्मसे रहित मनुष्यकी सारी क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं। मुखकी शुद्धि भी होनी चाहिये; क्योंकि मुखशुद्धिसे रहित मनुष्यको मन्त्र फल देनेवाले नहीं होते ॥ ९ ॥ 'हे वनस्पते! तुम मेरे लिये आयु, बल, वीर्य, यश, पुत्र, पशु, धन, ब्रह्मज्ञान और प्रज्ञा प्रदान करो।' ॥ १० ॥—इस मन्त्रका उच्चारण करके दातौन ग्रहण करे। बबूल, दूधवाले वृक्ष, कपास, निगुंण्डी, आँवला, वट, एरंड और दुर्गन्धयुक्त वृक्ष दातूनके लिये निषिद्ध हैं। फिर हाथ जोड़े हुए 'हरितहय' इस मन्त्रके उच्चारणपूर्वक भगवान् सूर्यको प्रणाम करे ॥ ११ ॥ तदनन्तर स्वस्थचित्त हो प्रह्लाद आदि भगवान् श्रीहरिके भक्तोंको प्रणाम करे और तुलसीकी मृत्तिका लगाकर स्नान करे ॥१२॥ स्नान करते समय 'श्रीगङ्गाष्टक' और 'यमुनाष्टक'का सविधि पाठ करना चाहिये। अयोध्या, मथुरा, मायावती (हरद्वार), काशी, काञ्ची, अवन्तिका (उज्जैन) और द्वारावतीपुरी (द्वारका)—ये सात पुरियाँ मोक्ष देनेवाली हैं (अतः इनका भी स्मरण करना चाहिये।) महायोगमें शालग्राम, हरिमन्दिरमें सम्भलग्राम और कोशलमें नन्दिग्राम—ये तीन ग्राम कहे गये हैं ॥ (इन तीन ग्रामोंका स्मरण

उत्पलावर्तमारण्यं नैमिषं कुरुजांगलम् । अर्बुदं हेमवंतं च नवारण्यानि वै विदुः ॥१६॥
एतानि तीर्थनामानि समुच्चार्य पुनः पुनः । इत्थं स्नात्वा ततो बिभ्रदंबरं क्षौममुत्तमम् ॥१७॥
द्वादशांस्तिलकान् बिभ्रदष्टमुद्राधरः परः । कृतसंध्यः शुचिर्मौनी गत्वा श्रीकृष्णमंदिरम् ॥१८॥
घंटावाद्यं जयारावं तलशब्दं विधाय च । उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविंद योगनिद्रां विहाय च ॥१९॥
उक्त्वापीमां स्मृतिं राजन् भक्त उत्थापयेद्धरिम् । मंगलार्तिं समादाय भ्रामयंस्तन्मुखोपरि ॥२०॥
निवेद्य बहुपक्वान्नं नत्वा नत्वा पुनः पुनः । ततः स्नानं कारयित्वा देशकालप्रभाववित् ॥२१॥
शृङ्गारं भावविकृत्वा वस्त्राभूषणमंगलैः । आर्तिक्यं तु ततः कृत्वा भोज्यान्नं च विधाय च ॥
ततो धृत्वा महाभोगं नानारसमयं परम् । महाभोगार्तिकं कृत्वा कारयेच्छयनं हरेः ॥२३॥
ततः प्रसादं परमं तुलसीगंधमिश्रितम् । भुञ्जीत यो हरेर्नित्यं स कृतार्थो न संशयः ॥२४॥
राजभोगार्तिकं कृत्वा कारयेच्छयनं हरेः । शंखनादेन विधिवद्भोगं धृत्वा यथाविधि ॥२५॥
ततः संध्यार्तिकं कृत्वा दुग्धादीन्विनिवेद्य च । ततः प्रदोषसमये पुनरार्तिकमाचरेत् ॥२६॥
धृत्वा भोगं परं मिष्टं कारयेच्छयनं हरेः । राजसी चैव राजेन्द्र राजसेवेयमस्ति वै ॥२७॥
सर्वं श्रीकृष्णचन्द्रस्य सेवासंलग्नमानसः । तारयित्वा कुलशतं याति चात्यंतिकं पदम् ॥२८॥
जन्माष्टमी च कृष्णस्य श्रीरामनवमी तथा । राधाष्टम्यन्नकूटं च द्वादशी वामनस्य च ॥२९॥
चतुर्दशी नृसिंहस्य तथाऽनन्तचतुर्दशी । एषु कालेषु कृष्णस्य महापूजां समाचरेत् ॥३०॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विज्ञानखण्डे व्यासोग्रसेनसंवादे राजसेवावर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥



करे)। दण्डकारण्य, सैन्धवारण्य, जम्बूमार्ग, पुष्कल, उत्पलावर्त, नैमिषारण्य, कुरुजाङ्गल, अर्बुद और हेमन्त—ये नौ अरण्य माने गये हैं ॥ १३–१६ ॥ इन सभी तीर्थोंके नाम बारबार उच्चारण करके स्नान करे। स्नानके बाद उत्तम रेशमी (अहिंसायुक्त) वस्त्र पहने। बारह तिलक और आठ मुद्राएँ धारण करे। फिर संध्या करके पवित्र हो मौन होकर भगवान् श्रीकृष्णके मन्दिरमें जाय ॥ १७ ॥ १८ ॥ घण्टा-ताली बजाकर, 'जय हो, जय हो' इत्यादि शब्दोंका उच्चारण करते हुए कहे—'उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द योगनिद्रां विहाय च' 'हे भगवान् गोविन्द! योगनिद्राका परित्याग करके उठिये—उठिये।' हे राजन्! भगवान्‌को उठानेका यह (स्मार्त) मन्त्र है ॥ १९ ॥ इसका उच्चारण करके श्रीहरिको जगाये। तत्पश्चात् मङ्गल आरती लेकर भगवान्‌के मुखपर घुमाये ॥ २० ॥ तदनन्तर देश एवं कालके प्रभावको जाननेवाला तथा भावका ज्ञाता वह भक्त (तदनुकूल हो) भगवान्‌को स्नान कराकर मङ्गलमय वस्त्राभूषणोंके द्वारा भगवान्‌का शृङ्गार करे ॥ २१ ॥ २२ ॥ भाँति-भाँतिके रसमय उत्तम भोज्य पदार्थोंका महाभोग निवेदन करके महाभोगकी आरती करे। तदनन्तर भगवान्‌को शयन कराये ॥ २३ ॥ इसके बाद तुलसीकी गन्धसे युक्त परम प्रसादको नित्यप्रति स्वयं ग्रहण करे। जो नित्य इस प्रकार भगवान्‌की पूजा करता करता है, वह कृतार्थ हो जाता है,—इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ २४ ॥ इसके बाद विधिवत् मध्याह्नका राजभोग निवेदन करके राजभोगकी आरती करे। फिर भगवान्‌को शयन कराये। दिनकी चार घड़ी शेष रहनेपर यथाविधि शङ्ख बजाकर श्रीहरिको उठाये। तदनन्तर संध्याकी आरती करके दूध आदि निवेदन करे। प्रदोषकाल आनेपर प्रदोषकी आरती करे ॥ २५ ॥ २६ ॥ रातमें उत्तम मिष्टान्नका भोग लगाकर श्रीहरिको शयन कराये। हे राजेन्द्र! यह राजसेवा है—राजाओंके लिये ही इस प्रकारकी सेवाका विधान है। अतः इसका नाम 'राजसी' है ॥ २७ ॥ भगवान् श्रीकृष्णकी सेवामें दत्तचित्त हो सम्यक् प्रकारसे लगा हुआ मनुष्य अपने सौ कुलोंको तारकर आत्यन्तिक परम पदको प्राप्त होता है ॥ २८ ॥ श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी, रामनवमी, राधाष्टमी, अन्नकूट, वामन-द्वादशी, नृसिंहचतुर्दशी तथा अनन्तचतुर्दशी—इन अवसरोंपर भगवान् श्रीकृष्णकी महापूजा करनी चाहिये ॥ २९ ॥ ३० ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विज्ञानखंडे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथ अष्टमोऽध्यायः

(पूजा-विधिका वर्णन)

व्यास उवाच

अथ स्नात्वा च कृत्वा च नित्यनैमित्तिकीं क्रियाम् । पञ्चवर्णसमायुक्तं शुद्धे स्थण्डिलमण्डले ॥ १ ॥
द्वात्रिंशद्दलसंयुक्तं कर्णिकाकेसरोज्ज्वलम् । विधाय कमलं स्थाप्यं विधिवद्वेदसूक्तिभिः ॥ २ ॥
कर्णिकायां न्यसेद्राजन्हरेः सिंहासनं शुभम् । तत्र राधां रमां स्थाप्य भूदेवीं विरजां तथा ॥ ३ ॥
तन्मध्ये स्थापयेत्साक्षाच्छ्रीकृष्णं पुरुषोत्तमम् । तथाऽष्टदलमध्ये तु राधिकाष्टसखीः शुभाः ॥ ४ ॥
ततोऽष्टदलमध्ये तु श्रीकृष्णस्य तथा सखीन् । तथा षोडशपर्णेषु सखीनां च द्वयं द्वयम् ॥ ५ ॥
कमलस्य च पार्श्वेषु शंखं चक्रं गदां तथा । पद्मं च नंदकं शार्ङ्गं बाणांश्च मुसलं हलम् ॥ ६ ॥
कौस्तुभं वनमालां च श्रीवत्सं नीलमंबरम् । पीतांबरं तथा वंशीं वेत्रं च स्थापयेद्बुधः ॥ ७ ॥
ततः पार्श्वेषु तालांकं गरुडांकं रथं तथा । सुमतिं दारुकं सूतं गरुडं कुमुदं तथा ॥ ८ ॥
चंडं चैव प्रचंडं च बलं चैव महाबलम् । कुमुदाक्षं बलं चैव स्थापयेद्यत्नतः सुधीः ॥ ९ ॥

तथा दिक्षु च दिक्पालान्संस्थाप्य च पृथक् पृथक् ।
विष्वक्सेनं शिवं मां च विधिं दुर्गां विनायकम् ॥१०॥

नवग्रहांश्च वरुणं तथा षोडश मातृकाः । तत्पद्माग्रे वीतिहोत्रं स्थंडिले स्थापयेद्बुधः ॥११॥
आवाहनमासनं च पाद्यमर्घ्यं विशेषतः । स्नानं च मधुपर्कं च धूपं दीपं तथैव च ॥१२॥
यज्ञोपवीतं वस्त्रं च भूषणं गंधमेव च । पुष्पं तथाऽक्षतांश्चैव नैवेद्यं च मनोहरम् ॥१३॥
आचमनं प्रदातव्यं तांबूलं दक्षिणां तथा । प्रदक्षिणां प्रार्थनां च तथा नीराजनं स्मृतम् ॥१४॥
नमस्कारं ततः कुर्यात्कर्मणा च पृथक् पृथक् । आवाहने तु पुष्पाणि आसने तु कुशद्वयम् ॥१५॥
पाद्ये श्यामां च दूर्वां च विष्णुक्रांतां तथैव च । सौगंधिकानि पुष्पाणि अर्घ्ये योग्यानि यादव ॥१६॥

श्रीव्यासजी बोले—तदनन्तर स्नान एवं नित्य-नैमित्तिक क्रियाका सम्पादन करके शुद्ध स्थण्डिलपर पाँच रंगोंसे युक्त मण्डल बनाये ॥ १ ॥ उसमें वेदमंत्रोच्चारणपूर्वक विधिवत् मङ्गलमय दिव्य उज्ज्वल कमलकी रचना करे । उसमें बत्तीस दल हों और वह केसर और कर्णिकासे युक्त हो ॥ २ ॥ हे राजन् ! कर्णिकाके ऊपर श्रीहरिका सुन्दर सिंहासन स्थापित करके उसपर राधा, रमा, भूदेवी और विरजाकी स्थापना करे ॥ ३ ॥ उन देवियोंके मध्यमें साक्षात् पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णको प्रतिष्ठित करे । कमलके आठ दलोंमें राधिकाजीकी मङ्गलमयी आठ सुन्दरी सखियाँ रहें ॥ ४ ॥ इसके बाद आठ दलोंमें भगवान् श्रीकृष्णके सखाओंकी स्थापना करे । इसी प्रकार सोलह दलोंपर सखियोंके दो-दो समुदाय रहें ॥ ५ ॥ फिर बुद्धिमान् मनुष्य कमलके समीप शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, नन्दक नामक तलवार, शार्ङ्गधनुष, बाण, हल, मुसल, कौस्तुभमणि, वनमाला, श्रीवत्स, नीलाम्बर, पीताम्बर, वंशी और बेंत—इन सबको स्थापित करे ॥ ६ ॥ ७ ॥ फिर उसके पार्श्वमें तालध्वज एवं गरुडध्वजसे युक्त रथ, सुमति एवं दारुक नामवाले सारथि, गरुड़, कुमुद, नन्द, सुनन्द, चण्ड, प्रचण्ड, बल, महाबल और कुमुदाक्षको विद्वान् पुरुष यत्नपूर्वक स्थापना करे ॥ ८ ॥ इसी प्रकार सब दिशाओंमें पृथक्-पृथक् दिक्पालोंको पधराना चाहिये । फिर वहीं विष्वक्सेन, शिव, ब्रह्मा, दुर्गा, लक्ष्मी, गणेश, नवग्रह, वरुण तथा षोडश मातृकाओंको आसन दे । कमलके अगले भागमें वेदीपर पण्डितजन वीतिहोत्रकी स्थापना करें ॥ ९–११ ॥ इसके बाद आवाहन करके आसन, पाद्य, विशेषार्घ्य, स्नान, यज्ञोपवीत, वस्त्र, चन्दन, अक्षत, मधुपर्क, फूल, धूप, दीप, आभूषण, स्वादिष्ट नैवेद्य, आचमन, ताम्बूल और दक्षिणा समर्पण करे । प्रदक्षिणा और प्रार्थना करके आरती करे ॥ १२–१४ ॥ फिर नमस्कार करे । हर एक कर्मके लिये अलग-अलग विधान है । आवाहनमें पुष्प, आसनमें दो कुशा और पाद्यमें श्यामादूर्वा और

चंदनोशीरकर्पूरकुंकुमागुरुमिश्रितम् । एतादृशं जलं योग्यं स्नाने राजन्महामते ॥१७॥
मधुपर्के ह्यामलकमरविंदं तथा मतम् । धूपे गंधाष्टकं देयं दीपे कर्पूरमेव च ॥१८॥
यज्ञोपवीतं पीतं च वस्त्रे पीतांबरं मतम् । भूषणे चैव सौवर्णं गंधे कुंकुमचन्दने ॥१९॥
तुलसीमंजरी पुष्पेऽक्षतेषु स्युस्तु तंडुलाः । नैवेद्ये तु रसाः षट् च भोगा नानाविधा मताः ॥२०॥
जले गंगाजलं योग्यं यमुनाजलमेव च । जातीफलं च कंकोलमंते चाचमने नृप ॥२१॥
तांबूले चोषणं त्वेला दक्षिणायां तु हाटकम् । प्रदक्षिणायां भ्रमणं घृतं नीराजने गवाम् ॥२२॥
प्रार्थनायां हरेर्भक्तिः प्रेमलक्षणसंयुता । नमस्कारे महाराज साष्टांगनतविग्रहः ॥२३॥
द्वादशाक्षरमंत्रेण शिखां बद्ध्वा शुचिः पुमान् । उपचारान्पुरस्कृत्य श्रीमुखे संमुखो भवेत् ॥२४॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विज्ञानखंडे व्यासोग्रसेनसंवादे महापूजाविधिवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः

(पूजोपचार तथा पूजन-प्रकारका वर्णन)

श्रीव्यास उवाच

उपचारस्य मंत्राणि वेदोक्तानि शुभानि च । तुभ्यं वक्ष्यामि राजेंद्र श्रृणुष्वैकाग्रमानसः ॥ १ ॥

अथावाहनम्

गोलोकधामाधिपते रमापते गोविंद दामोदर दीनवत्सल ।
राधापते माधव सात्वतां पते सिंहासनेऽस्मिन्मम संमुखो भव ॥ २ ॥

अथासनम्

श्रीपद्मरागस्फुरदूर्ध्वपृष्ठं महार्हवैदूर्यखचित्पदाब्जम् ।
वैकुण्ठ वैकुण्ठपते गृहाण पीतं तडिद्धाटककुम्भखण्डम् ॥ ३ ॥

अपराजिताका उपयोग करे। हे यादव ! अर्घ्यमें सुन्दर गन्धवाले पुष्प रखने चाहिये ॥ १४–१६ ॥ हे राजन् ! स्नानके जलमें चन्दन, खस, कपूर, कुङ्कुम और अगुरु मिलावे। हे महामते! इसी प्रकारका जल स्नानके लिये उत्तम होता है ॥ १७ ॥ मधुपर्कमें आँवला एवं कमल, धूपमें अष्टगन्ध और दीपमें कपूर देना चाहिये ॥ १८ ॥ पीले रंगका यज्ञोपवीत, वस्त्रमें पीताम्बर, भूषणके स्थानपर सोना और गन्धके स्थानपर कुङ्कुम तथा चन्दन देने चाहिये ॥ १९ ॥ फूलोंमें तुलसीकी मञ्जरी, अक्षतोंमें चावल और नैवेद्यमें नाना प्रकारके पक्वान्न और षट्रस भोज्य पदार्थ उत्तम माने गये हैं ॥ २० ॥ जलमें गङ्गाजल और यमुनाजल। हे राजन् ! भोजनोपरान्त आचमनके जलमें जायफल और कङ्कोल मिला दे ॥ २१ ॥ ताम्बूलमें लौंग और इलायची मिला दे। दक्षिणाके स्थानपर सुवर्ण अर्पण करे। प्रदक्षिणाके प्रकरणमें घूमना और आरतीमें गौका घृत लेना योग्य है ॥ २२ ॥ हे महाराज ! प्रार्थनामें भगवान् श्रीहरिकी प्रेमलक्षणयुक्त भक्ति करना और नमस्कारके स्थानपर अत्यन्त नम्र होकर साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम करना चाहिये ॥ २३ ॥ तदनन्तर पूजकको चाहिये कि वह पवित्र होकर द्वादशाक्षर मन्त्रसे शिखा बाँध ले और पूजाकी सभी सामग्रियाँ आगे रखकर भगवान्के सामने बैठ जाय ॥ २४ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विज्ञानखण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

श्रीव्यासजी बोले—हे महाराज ! पूजन-सामग्री अर्पण करनेके सुन्दर मन्त्र वेदोंमें कहे गये हैं। मैं तुम्हारे लिये उनका वर्णन करता हूँ। एकाग्र-मन होकर सुनो ॥ १ ॥ (इन मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए पूजा करनी चाहिये। मंत्रका अर्थ निम्नलिखित है।) हे गोविन्द ! आप गोलोकधामके स्वामी हैं। दीनोंपर दया करना आपका स्वभाव है। हे दामोदर ! आप लक्ष्मी एवं राधिकाजीके प्राणनाथ हैं। यादवोंके अधीश्वर हैं। हे माधव ! इस सिंहासनपर मेरे सामने आप विराजमान होइये ॥ २ ॥ हे वैकुण्ठपते ! इस आसनको आप

अथ पाद्यम्

परं स्थितं निर्मलरौक्मपात्रे समाहृतं बिंदुसरोवराद्धि ।
योगेश वेदेश जगन्निवास गृहाण पाद्यं प्रणमामि पादौ ॥ ४ ॥

अथ अर्घ्यम्

जलजचम्पकपुष्पसमन्वितं विमलमर्घ्यमनर्घदरस्थितम् ।
प्रतिगृहाण रमारमण प्रभो यदुपते यदुनाथ यदूत्तम ॥ ५ ॥

अथ स्नानम्

काश्मीरपाटीरविमिश्रितेन सुमल्लिकोशीरवता जलेन ।
स्नानं कुरु त्वं यदुनाथ देव गोविंद गोपालक तीर्थपाद ॥ ६ ॥

अथ मधुपर्कस्नानम्

मध्याह्नचंद्रार्कभवं मलापहं सितांगसंपर्कमनोहरं परम् ।
गृहाण विष्णो मधुपर्कमेनं संदृश्य पीतांबर सात्वतां पते ॥ ७ ॥

अथ वस्त्रम्

विभो सर्वतः प्रस्फुरत्प्रोज्ज्वलं च स्फुरद्रश्मिरम्यं परं दुर्लभं च ।
स्वतो निर्मितं पद्मकिंजल्कवर्णं गृहणांबरं देव पीतांबराख्यम् ॥ ८ ॥

अथ यज्ञोपवीतम्

सुवर्णाभमापीतवर्णं सुमंत्रैः परं प्रोक्षितं वेदविन्निर्मितं च ।
शुभं पंचकार्येषु नैमित्तिकेषु प्रभो यज्ञ यज्ञोपवीतं गृहाण ॥ ९ ॥

अथ भूषणम्

कनकरत्नमयं मयनिर्मितं मदनरुक्कदनं सदनं रुचाम् ।
उपसि पूपसुवर्णविभूषणं सकललोकविभूषण गृह्यताम् ॥१०॥

पीठपर नीलम चमक रहा है। पायोंमें वैदूर्यमणि (पुखराज) जड़ी गयी है। यह विजलीके समान चमकती है और सुवर्णकी कलशियोंसे युक्त है। कृपया आप इसे ग्रहण कीजिये ॥ ३ ॥ हे देवेश ! स्वच्छ सुवर्णके पात्रमें बिन्दुसरोवरसे लाकर उत्तम जल रक्खा गया है। हे योगेश ! आप जगत्के अधिष्ठाता हैं। मैं आपके चरणोंको प्रणाम करता हूँ। आप इस पाद्यको स्वीकार करें ॥४॥ हे रमा-रमण प्रभो ! हे यदुपते ! हे यदुनाथ ! हे यदूत्तम ! कमल तथा चम्पाके पुष्पोंसे समन्वित शुभ्र शङ्खमें भरे हुए इस निर्मल उत्तम अर्घ्यको ग्रहण करिए ॥ ५ ॥ हे गोविन्द ! आप यादवोंके स्वामी तथा गौओंकी रक्षा करनेवाले हैं। आपके चरण तीर्थस्वरूप हैं। हे भगवन् ! केसर, चन्दन, चमेली और खससे सुवासित यह जल है। आप इससे स्नान कीजिये ॥ ६ ॥ हे यदुपते ! आप पीताम्बर धारण करनेवाले हैं। आपके लिये मधुपर्क तैयार है। यह मध्याह्नके प्रचण्ड मार्तण्डके उत्तापजनित श्रमको दूर करनेवाला है। मिश्रीके मिल जानेसे यह अत्यन्त सुस्वादु हो गया है। हे भगवन् ! आप इसकी ओर दृष्टि डालकर इसे स्वीकार करनेकी कृपा करें ॥ ७ ॥ हे प्रभो ! पीताम्बर नामक वस्त्र प्रस्तुत है। इसकी प्रभा अत्यन्त उज्ज्वल है। इसकी किरणें सब ओर छिटक रही हैं। परम दुर्लभ यह वस्त्र अपने-आप बना हुआ है। कमलके केसर-जैसा इसका रंग है। कृपया आप इसे अंगीकार करें ॥ ८ ॥ हे भगवन् ! सुवर्णके समान चमचमाता हुआ हल्के पीले वर्णका यह यज्ञोपवीत है। उत्तम मन्त्रोंद्वारा भली-भांति इसका प्रोक्षण हुआ है। वेदज्ञ ब्राह्मणोंने इसकी रचना की है। पांच नैमित्तिक कर्मोंमें इसका उपयोग कल्याणप्रदायक होता है। हे प्रभो ! आप इसे ग्रहण कीजिये ॥ ९ ॥ हे अखिललोकविभूषण ! सोने एवं रत्नोंसे बना हुआ यह सुवर्णमय आभूषण उपस्थित है। यह मयके हाथकी कारीगरी है। कामदेवकी कान्तिको फीका करनेवाला यह प्रभाका भंडार है। हे भगवन् ! प्रातःकालीन सूर्यके समान चमचमाता

अथ गंधम्

संध्येंदुशोभं बहुमंगलं श्रीकाश्मीरपाटीरकपंकयुक्तम् ।
स्वमंडनं गन्धचयं गृहाण समस्तभूमण्डलभारहारिन् ॥११॥

अथाक्षतान्

ब्रह्मावर्ते ब्रह्मणा पूर्वमुप्तान् ब्राह्मैस्तोयैः सिंचितान्विष्णुना च ।
रुद्रेणाराद्रक्षितान् राक्षसेभ्यः साक्षाद्भूमन्नक्षतांस्त्वं गृहाण ॥१२॥

अथ पुष्पाणि

मंदारसन्तानकपारिजातकल्पद्रुमश्रीहरिचन्दनानाम् ।
गृहाण पुष्पाणि हरे तुलस्या मिश्राणि साक्षान्नवमंजरीभिः ॥१३॥

अथ धूपम्

लवंगपाटीरजचूर्णमिश्रं मनुष्यदेवासुरसौख्यदं च ।
सद्यः सुगंधीकृतहर्म्यदेशं द्वारावतीभूप गृहाण धूपम् ॥१४॥

अथ दीपम्

तमोहारिणं ज्ञानमूर्तिं मनोज्ञं लसद्वर्तिकर्पूरपूरं गवाज्यम् ।
जगन्नाथ देव प्रभो विश्वदीप स्फुरज्ज्योतिषं दीपमुख्यं गृहाण ॥१५॥

अथ नैवेद्यम्

रसैः शरैर्भेदविधिव्यवस्थितं रसै रसाढ्यं च यशोमतीकृतम् ।
गृहाण नैवेद्यमिदं सुरोचकं गव्यामृतं सुन्दर नन्दनन्दन ॥१६॥

अथ जलम्

गंगोत्तरीवेगबलात्समुद्धृतं सुवर्णपात्रेण हिमांशुशीतलम् ।
सुनिर्मलाभं ह्यमृतोपमं जलं गृहाण राधावरभक्तवत्सल ॥१७॥

यह आभूषण आप स्वीकार कीजिये ॥ १० ॥ सायंकालीन चन्द्रमाके समान शोभायमान, अनेक मङ्गलोंको देनेवाला, केसर एवं कपूरसे युक्त यह गन्धराशि आपका अलंकार है । सम्पूर्ण लोकोंके भारको दूर करनेवाले हे भगवन् ! आप इसे ग्रहण कीजिये ॥ ११ ॥ पहले ब्रह्माने ब्रह्मावर्त देशमें जिन्हें बोया था, भगवान् विष्णुने वेदमय जलसे जिनका सेचन किया तथा शंकरजीने समीप जाकर राक्षसोंसे जिनकी रक्षा की; हे भगवन् ! उन अक्षतोंको स्वयं आप ग्रहण कीजिये ॥ १२ ॥ हे भगवन् ! मन्दार, संतानक, पारिजात, कल्पवृक्ष और हरिचन्दनके ये पुष्प उपस्थित हैं । नूतन मञ्जरियोंके साथ तुलसीपत्रोंका भी इनमें सम्मिश्रण हुआ है, आप इन्हें ग्रहण करें ॥ १३ ॥ हे द्वारकाधीश ! जो लौंग एवं मलयागिरिके चूर्णसे मिश्रित है। देवता, दानव एवं मनुष्योंको आनन्दित करनेकी जिसमें शक्ति है तथा जो तत्काल महलोंको सुगन्धित बनानेवाला है, ऐसे धूपको आप ग्रहण कीजिये ॥ १४ ॥ हे प्रभो ! आप जगत्के स्वामी एवं विश्वको प्रकाशित करनेवाले हैं । अन्धकारका नाश करनेवाला ज्ञानस्वरूप यह प्रधान दीप आपके लिये तैयार है, जो वत्तियोंसे सजाया जाकर अत्यन्त मनोहर जान पड़ता है। यह गायके घीसे पूर्ण है। साथ ही इसमें कपूर भी छोड़ा गया है। हे भगवन् ! इस प्रकार चमचमाती हुई लौवाले इस दीपको स्वीकार करें ॥ १५ ॥ हे नन्दनन्दन ! षड्रससे युक्त एवं वेदोक्त विधिसे तैयार किया हुआ नैवेद्य आपके लिये उपस्थित है। यह रसोंसे भरपूर है और यशोदाजीने इसे बनाया है। स्वादिष्ट होनेके साथ गोघृतके प्रयोगसे यह अमृतमय बन गया है। अतः इसे आप ग्रहण कीजिये ॥ १६ ॥ हे भक्तवत्सल ! गङ्गोत्तरीकी वेगवती धारासे यत्नपूर्वक प्राप्त किया हुआ यह अमृतमय जल है, जो हिमालयके टुकड़ेकी भाँति शीतल है। यह सुवर्णके पात्रमें रखा गया है और इससे अति निर्मल आभा निकल रही है। हे राधावर ! आप इसे स्वीकार कीजिये। हे राधापते ! आप भगवती विरजाके स्वामी हैं। हे सर्वेश्वर ! आप लक्ष्मीजीके प्राणनाथ एवं भूमण्डलके अधीश्वर हैं।

अथाचमनम्

राधापते श्रीविरजापते प्रभो श्रियः पते सर्वपते च भूपते ।
कंकोलजातीफलपुष्पवासितं परं गृहाणाचमनं दयानिधे ॥१८॥

अथ तांबूलम्

जातीफलैलासुलवंगनागवल्लीदलैः पूगफलैश्च संयुतम् ।
मुक्तासुधाखादिरसारयुक्तं गृहाण तांबूलमिदं रमेश ॥१९॥

अथ दक्षिणा

नाकपालवसुपालमौलिभिर्वंदितांघ्रियुगल प्रभो हरे ।
दक्षिणां परिगृहाण माधव लोकदक्ष वरदक्षिणाय ते ॥२०॥

अथ नीराजनम्

प्रस्फुरत्परमदीप्तिमंगलं गोघृताक्तनवपंचवर्तिकम् ।
आर्तिकं परिगृहाण चार्तिहन् पुण्यकीर्तिविशदीकृतावने ॥२१॥

अथ नमस्कारः

नमोऽस्त्वनंताय सहस्रमूर्तये सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे ।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः ॥२२॥

अथ प्रदक्षिणा

समस्ततीर्थयज्ञदानपूर्तकादिजं फलम् । लभेत्परस्य शाश्वतं करोति यः प्रदक्षिणाम् ॥२३॥

अथ प्रार्थना

हरे मत्समःपातकी नास्ति भूमौ तथा त्वत्समो नास्ति पापापहारी ।
इति त्वं च मत्वा जगन्नाथ देव यथेच्छा भवेत्ते तथा मां कुरु त्वम् ॥२४॥

अथ स्तुतिः

संज्ञानमात्रं सदसत्परं महच्छश्वत्प्रशांतं विभवं समं महत् ।
त्वां ब्रह्म वंदे हि सुदुर्गमं परं सदा स्वधाम्ना परिभूतकैतवम् ॥२५॥

हे दयानिधे ! कङ्कोल, जायफल और पुष्पोंसे सुवासित यह उत्तम आचमनीय प्रस्तुत है । हे प्रभो ! इसे ग्रहण कीजिये ॥१७॥१८॥ हे रमेश ! जायफल, इलायची, लौंग, नागकेसर, सुपारी, मोतीकी भस्मके चूने और खैरके सारसे युक्त यह ताम्बूल स्वीकार कीजिये ॥ १९ ॥ हे प्रभो ! स्वर्गपाल और वसुपालोंके मुकुटोंसे आपके युगल चरण-कमलकी पूजा हुई है । आप दक्षिणाके पति हैं । प्राणियोंको धन प्रदान करनेमें आप बड़े कुशल हैं । हे भगवन् ! आप यह दक्षिणा ग्रहण करें ॥२०॥ हे आर्तिहन् ! श्रेष्ठ प्रकाशसे युक्त दीप्तिमयी यह माङ्गलिक आरती है । गायके घीसे भीगी हुई चौदह वर्त्तियाँ इसमें लगी हैं । अपनी पवित्र कीर्तिका विस्तार करनेवाले हे भगवन् ! आप इसे ग्रहण कीजिये ॥ २१ ॥ जो अनन्त हैं, जिनके हजारों विग्रह हैं, जिनके चरण, जंघा, बाहु, ऊरु, मस्तक एवं नेत्रोंकी संख्या भी हजारोंकी है, जो नित्य हैं, जिनके हजारों नाम हैं तथा जो करोड़ों युगोंको धारण करनेवाले हैं, उन परम पुरुष भगवान्‌के लिये मेरा नमस्कार है ॥ २२ ॥ जो मनुष्य परम प्रभु भगवान्‌की प्रदक्षिणा करता है, उसके लिये सम्पूर्ण तीर्थ, यज्ञ, दान तथा पूर्त (कुआँ, बावली, पोखरा आदि खुदवाने, बगीचा लगवाने आदिसे उत्पन्न हुआ) फल सुलभ हो जाता है ॥ २३ ॥ हे भगवन् ! जगत्‌में मेरे समान कोई पापी नहीं है और आपके समान कोई पापका हरण करनेवाला नहीं है । हे प्रभो ! यह समझकर, हे जगन्नाथ ! आपको जो उचित जान पड़े, वैसा ही मेरे साथ कीजिये ॥ २४ ॥ जो चेतनास्वरूप हैं, सत् एवं असत्‌से परे हैं, जो नित्य हैं, जिनका विराट् रूप है, जो शान्तमूर्ति हैं, ऐश्वर्यस्वरूप हैं, सर्वत्र सम हैं, जिन्हें पाना अत्यन्त कठिन है तथा जिन्होंने अपने

एवं संपूज्य देवेशमेभिर्मंत्रैर्महामते। प्रणम्य विष्णुं सर्वांगपूजां कुर्यात्प्रयत्नतः ॥२६॥
ॐ नमो नारायणाय पुरुषाय महात्मने। विशुद्धसत्त्वधीस्थाय महाहंसाय धीमहि ॥२७॥

इति मंत्रेण प्राणायामं कृत्वा

ॐ विष्णवे मधुसूदनाय वामनाय त्रिविक्रमाय श्रीधराय हृषीकेशाय पद्मनाभाय दामोदराय सङ्कर्षणाय वासुदेवाय प्रद्युम्नाय अनिरुद्धाय अधोक्षजाय पुरुषोत्तमाय श्रीकृष्णाय नमः। इति पादगुल्फजानूरुकट्युदरपृष्ठभुजाकंधरकर्णनासिकाऽधरनेत्रशिरःसु पृथक् पृथक् पूजयामीति सर्वांगपूजां कुर्यात्। तथा सखीसखशङ्खचक्रगदापद्मासिधनुर्बाणहलमुसलादीन् तथा कौस्तुभवनमालाश्रीवत्सपीतांबरनीलांबरवंशीवेत्रादीन् तथा तालांकगरुडांकरथदारुकसुमतिसारथिगरुडकुमुदनंदसुनंदचंडमहाबलकुमुदाक्षादीन्। प्रणवपूर्वेण चतुर्थ्यंतेन नमःसंयुक्तेन नाम्ना तथा विष्वक्सेनशिवविधिदुर्गाविनायकदिक्पालवरुणनवग्रहमातृकादीन्मंत्रैः पूजयेत्।
ॐ नमो वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च। प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥२८॥

इति मंत्रेण शतमाहुतीर्जुहुयात्।

देवं प्रदक्षिणीकृत्य महाभोगं निधाय च। प्रणमेद्दंडवद्भूमौ मंत्रमेतमुदीरयेत् ॥२९॥
ध्येयं सदापरिभवघ्नमभीष्टदोऽहं तीर्थास्पदं शिवविरंचिनुतं शरण्यम्।
भृत्यार्तिहन् प्रणतपाल भवाब्धिपोतं वंदे महापुरुष ते चरणारविंदम् ॥३०॥
इति नत्वा हरिं राजन्पुनर्नीराजनं हरेः। कारयेद्विधिवद्भक्तो हरिभक्तजनैः सह ॥३१॥
घटीवाद्यरणद्घंटाकांस्यवीणादिकीचकैः। करतालमृदङ्गाद्यैः कीर्तनं कारयेद्बुधः ॥३२॥

तेजसे मायाको सदा तिरस्कृत कर रक्खा है, उन आप परब्रह्मकी मैं वन्दना करता हूँ ॥ २५ ॥ हे महामते! इस प्रकार इन मन्त्रोंद्वारा देवेश्वर भगवान्‌की पूजा करे। फिर श्रीविष्णुको प्रणाम करके यत्नपूर्वक उनके सर्वाङ्गका पूजन करना चाहिये। 'ॐ नमो नारायणाय' मन्त्रका उच्चारण करके प्राणायाम करे। भगवान् विष्णु, मधुसूदन, वामन, त्रिविक्रम, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर, संकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, अधोक्षज और भगवान् पुरुषोत्तम श्रीकृष्णके लिये मेरा नमस्कार है। (यों नमस्कार करना चाहिये)। इसी प्रकार पैर, गुल्फ, जानु, ऊरु, कटि, पीठ, भुजा, कंधे, कान, नाक, अधर, नेत्र और भगवानके सिरकी मैं अलग-अलग पूजा करता हूँ—यों कहकर सर्वाङ्ग पूजा करनी चाहिये। फिर सखी, सखा, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, असि, धनुष, बाण, हल, मुसल, कौस्तुभमणि, वनमाला, श्रीवत्स, पीताम्बर, नीलाम्बर, वंशी, बेंत आदि तथा तालध्वज एवं गरुडध्वजसे युक्त रथ, दारुक और सुमति सारथी, गरुड, कुमुद, नन्द, सुनन्द, चण्ड, महाबल, कुमुदाक्ष आदि एवं विष्वक्सेन, शिव, ब्रह्मा, दुर्गा, गणेश, दिक्पाल, वरुण, नवग्रह और षोडश-मातृकाओंका आवाहन करे। इनके नामके साथ 'ॐकार लगाकर चतुर्थ्यन्तका प्रयोग करके 'नमः' शब्द जोड़ दे। तत्पश्चात् मन्त्रोंद्वारा इन सबका पूजन करे। ॐ नमो वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च। प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः' ॥ २६ ॥ २८ ॥—इस मन्त्रसे सौ बार आहुति देनी चाहिये। फिर भगवान्‌की प्रदक्षिणा करके महाभोग निवेदित करे। तत्पश्चात् पृथ्वीपर साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम करके यह मन्त्र पढ़े—'ध्येयं सदा' इत्यादि। (इसका भाव यह है—) जो निरन्तर ध्यान करने योग्य हैं, जिनके प्रभावसे अपमानित नहीं होना पड़ता, जो मनोरथको पूर्ण करनेवाले हैं, जो तीर्थोंके आधार हैं, शिव एवं ब्रह्माजीने जिनका स्तवन किया है, जो शरण देनेमें कुशल हैं, भृत्योंका दुःख दूर करना जिनका स्वभाव है, जो प्रणतजनोंका पालन करनेवाले तथा संसार-रूपी समुद्रके लिये जहाज हैं, ऐसे हे भगवान् पुरुषोत्तम! आपके चरण-कमलोंको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ २९ ॥ ॥३०॥ हे राजन्! इस प्रकार भक्त भगवान्‌को प्रणाम करके भगवद्भक्तोंके साथ विधिवत् पुनः आरती करे। उस समय विवेकी पुरुषको चाहिये कि घड़ी, घण्टा, वीणा, बाँसुरी, करताल और मृदङ्ग आदि बाजोंके साथ भगवान्‌के नामका कीर्तन करे ॥३१॥३२॥ उस समय भगवद्भक्तजन प्रेममें विह्वल होकर भगवान्‌के सामने

नृत्यन्ति श्रीहरेरग्रे भक्ता वै प्रेमविह्वलाः । जयध्वनिसमायुक्ताः सत्कथागानतत्पराः ॥३३॥
पुनः प्रभुं नमस्कृत्य मंदिरे तपनोज्ज्वले । शयनं कारयेत्सम्यक् श्रीकृष्णस्य महात्मनः ॥३४॥
एवं करोति श्रीकृष्णसेवां यो लग्नमानसः । प्रणमंति च तं राजन्देवताः स्वर्गसंभवाः ॥३५॥
सोऽपि राजेन्द्र नाकेऽपि पदं धृत्वा हरेर्जनः । अंते याति परं धाम गोलोकं योगिदुर्लभम् ॥३६॥
इति श्रीकृष्णसेवाया विधानं वर्णितं मया । चतुःपदार्थदं नृणां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥३७॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विज्ञानखंडे व्यासोग्रसेनसंवादे श्रीकृष्णसेवाविधानवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः

(परमात्माका स्वरूप-निरूपण)

उग्रसेन उवाच

सिद्धोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि त्वया श्रीकृष्णरूपिणा ।
श्रीकृष्णपद्धतिः साक्षाच्छ्रुता वै विधिवन्मया ॥ १ ॥
अहो लोका महामूढा लोभमोहमदान्विताः । नाप्नुवंति हि वैराग्यं भजंति न हरिं क्वचित् ॥ २ ॥
भगवन्नस्य जगतो मोहकारणमद्भुतम् । कथं जातं वद विभो कथमेतन्निवर्तते ॥ ३ ॥

व्यास उवाच

यथांभसि प्राप्तमदो विधोः खतस्तत्प्रेक्षते केवलमेव वेगतः ।
तथा हि विंबः परमस्य मायया ममेत्यहं भावगते प्रवर्तते ॥ ४ ॥
प्रधानकालाशयदेहजैर्गुणैः कुर्वन्विकर्माणि जनो निबद्ध्यते ।
काचेऽर्भकं सैकत एव जीवनं गुणे च सर्पं प्रतनोति सोऽक्षिभिः ॥ ५ ॥

नाचते हैं, उनके जय-जयकारकी ध्वनि प्रकट करते रहते हैं और भगवान्‌की सुन्दर लीला-कथाका गान करने लगते हैं ॥ ३३ ॥ तदनन्तर पुनः नमस्कार करके सूर्यके समान उज्ज्वल मन्दिरमें महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रको भलीभाँति शयन कराये ॥३४॥ हे राजन् ! इस प्रकार जो दत्तचित्त होकर भगवान् श्रीकृष्णकी सेवा करता है, उसे स्वर्गके रहनेवाले देवतालोग भी प्रणाम किया करते हैं ॥ ३५ ॥ हे महाराज ! वह श्रीहरिका भक्त भी मृत्युके अवसरपर स्वर्गमें पैर रखकर भगवान्‌के परमधाम गोलोकको, जो योगियोंके लिये भी दुर्लभ है, चला जाता है ॥ ३६ ॥ यह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी सेवाका विधान है। मैंने इसका वर्णनकर दिया। यह मनुष्योंको चारों पदार्थ देनेवाला है। अब तुम फिर क्या सुनना चाहते हो ? ॥ ३७ ॥
इति श्रीगर्गसंहितायां विज्ञानखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

राजा उग्रसेनने कहा—आप भगवान् श्रीकृष्णके स्वरूप हैं। आपने मेरे ऊपर बड़ी कृपा की। आपके श्रीमुखसे साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा-पद्धति विस्तारपूर्वक मैंने सुन ली ॥ १ ॥ इससे मैं सफल-जीवन हो गया। अहो ! प्राणियोंमें बड़ी मूर्खता भरी हुई है। वे लोभ, मोह और मदके कारण मतवाले हो गये हैं। इसीसे उनमें विराग उत्पन्न नहीं होता और न कभी वे भगवान्‌का भजन ही करते हैं ॥ २ ॥ हे भगवन् ! जगत्‌की यह मोहिका शक्ति बड़ी अद्भुत है। हे प्रभो ! यह मोह कैसे उत्पन्न हुआ और किस प्रकार इसकी निवृत्ति होगी, यह बतानेकी कृपा कीजिए ॥ ३ ॥ श्रीव्यासजी बोले—जिस प्रकार जलमें कई चन्द्रमा दिखायी पड़ते हैं, जलके चञ्चल वेगसे वे दृष्टिगोचर होते हैं, किंतु वास्तवमें कुछ नहीं होते, बिल्कुल प्रतिबिम्बमात्र हैं, ठीक वैसे ही परम प्रभुकी प्रतिबिम्बरूपा यह माया फैली हुई है। उसीके प्रभावसे 'मेरा और मैं' का भाव उत्पन्न हो जानेपर संसार कायम हो जाता है ॥ ४ ॥ माया, काल, अन्तःकरण और देहके गुणकी उत्पत्ति होती है। मनुष्य इनके द्वारा विपरीत कर्म करता हुआ बन्धनमें पड़ जाता है। इन्द्रियोंका ही यह प्रभाव है कि दर्पणमें बालक, बालूमें जल और रस्सीमें साँपका भान होने लगता

राजन् जगन्मोहमयं रजोमयं तमोमयं सत्त्वमयं तथा क्वचित् ।
मनोविलासं विकृतं च विभ्रमं विद्ध्याश्विदं लोलमलातचक्रवत् ॥ ६ ॥
इदं करिष्यामि करोम्यभूवं ममेदमस्तीति च वेदमाब्रुवन् ।
अहं सुखी दुःखयुतः सुहृज्जनो लोकस्त्वहंकारविमोहितो मतः ॥ ७ ॥

उग्रसेन उवाच

वद मे कृपया ब्रह्मँल्लक्षणं परमात्मनः । कतिधा कवयः कृष्णं वदंति जपवर्त्मनि ॥ ८ ॥
सनातनस्यात्र न मृत्युजन्मनी न शोकमोहौ न जरायुवादयः ।
अहंमदो व्याधियुतो भयं सुखं शुचः क्षुधेच्छा न रतिर्न चाधयः ॥ ९ ॥
आत्मा निरीहो ह्यतनुः स सर्वगो नाहंकृतिः शुद्धवलो गुणाश्रयः ।
स्वयं परो निष्कल आत्ममंगलो ज्ञानात्मको यो विदितो मुनीश्वरैः ॥१०॥
जागर्ति योऽस्मिञ्छयनं गते सति नायं जनो वेद स वेद तं हितम् ।
पश्यन्तमाद्यं पुरुषं हि यं जनो न पश्यति स्वच्छमलं च तं भजे ॥११॥
यथा नभोऽग्निः पवनो न सज्जते घटे न काष्ठे न रजोभिरावृतः ।
तथा पुमान्सर्वगुणैश्च निर्मलो वर्णैर्यथा स्यात्स्फटिकोपमोज्ज्वलः ॥१२॥
व्यंग्येन वा लक्षणया च वाक्पथैरर्थैः पदस्फोटपरायणैः परम् ।
न ज्ञायते तद्गुणिनोत्तमेन सद्वाच्यं ततो ब्रह्म कुतस्तु लौकिकैः ॥१३॥
वदन्ति केचिद्भुवि कर्मकर्तृ यत्कालं च केचित्परमेव शोभनम् ।
केचिद्विचारं प्रवदन्ति यच्च तद्ब्रह्मेति वेदांतविदो वदन्ति हि ॥१४॥

है ॥ ५ ॥ हे राजन् ! यह जगत् मोहमय है । इसमें रजोगुण और तमोगुण कूट-कूटकर भरे हैं । हुए कभी-कभी सत्त्वगुणका भी प्रादुर्भाव होता है । यह मनका विलास है, विकारमात्र है और भ्रमरूप है । अलातचक्रके समान यह शीघ्रतापूर्वक परिवर्तित होता रहता है—इस प्रकार जानो ॥ ६ ॥ 'मैंने यह कर दिया, यह करता हूँ और यह करूँगा, यह मेरा है, यह तेरा है, मैं सुखी हूँ, मैं दुःखमें पड़ गया; लोग मुझसे विना कारण प्रेम करनेवाले हैं'—इस प्रकार मनुष्य कहता रहता है। मेरा तो यह मत है कि मनुष्य अहंकारके कारण सुध-बुध खो बैठा है ॥ ७ ॥ राजा उग्रसेनने पूछा—हे ब्रह्मन् ! कृपापूर्वक मुझसे परमात्माके लक्षणोंका वर्णन कीजिये । साथ ही यह भी बताइये कि विद्वानोंने पूजा-पद्धतिमें भगवान् श्रीकृष्णके लक्षण कितने प्रकारके बतलाये हैं ? ॥ ८ ॥ श्रीव्यासजी बोले—सनातन प्रभु जन्म और मरणसे रहित हैं । शोक और मोह उनके पास भी नहीं फटकते । युवावस्था तथा बुढ़ापा आदिका कोई भेद उनमें नहीं है । अहंकार-मद, दुःख-सुख, भय, रोग, क्षुधा, पिपासा, कामना, रति और मानसिक व्याधि—इनके वे अविषय हैं ॥ ९ ॥ मुनीश्वरोंने जिस आत्माको पहचाना है, वह निरीह है, विना देहका है, सर्वत्र उसकी गति है, वह अहंकार-शून्य है, शुद्धवल है, उसमें सभी गुण रहते हैं, वह स्वतः सबसे परे है, निष्कल एवं स्वयं मङ्गलरूप है और ज्ञानका साकार विग्रह है ॥ १० ॥ वह आत्मा इस जगत्के सो जानेपर भी जागता रहता है । यह देहधारी मनुष्य उसे नहीं जानता, किंतु वह सबको जानता है । वही आद्यपुरुष है । वह सबको देखता है; किंतु यह प्राणी उसका साक्षात्कार नहीं कर पाता । उस स्वच्छ एवं मलसे रहित आत्माकी मैं उपासना करता हूँ ॥ ११ ॥ जिस प्रकार घटसे आकाश, काष्ठसे अग्नि एवं धूलसे पवन व्याप्त नहीं होता तथा रंगोंसे स्वच्छ स्फटिकमणिमें किसी प्रकारकी विरूपता नहीं आती, ठीक वैसे ही यह सनातन पुरुष गुणोंके रहते हुए भी उनसे लिप्यमान नहीं होता ॥ १२ ॥ वह 'सत्' शब्दसे वाच्य परमात्मा लक्षणा, व्यञ्जना, वाक्चातुरी, अर्थो, पदस्फोटपरायण शब्दों तथा सर्वोत्तम गुणियोंके द्वारा भी ज्ञानका विषय नहीं होता; फिर लौकिक प्राणी तो उसे जान ही कैसे सकता है ? ॥ १३ ॥ भूमण्डलपर उसे कितने लोग 'कर्ता', कितने 'कर्म', कितने 'काल', कितने 'परम सुन्दर' तथा कितने 'विचार' कहते हैं । परंतु वेदान्तज्ञानी तो उसे 'ब्रह्म' ही कहते

श्रीकृष्णमूर्तिः परमै रसैर्यथा यथा च भूमिर्भरतादिभिर्भृशम् ।
तथा हि शश्वन्मुनिगर्गसंहिता विभाति खंडैर्नवभिर्नृपेश्वर ॥२५॥
यथा हि रत्नैर्नवभिर्विराजते देवांगुलौ तप्तसुवर्णमुद्रिका ।
तथा चतुर्वर्गफलप्रदे विधौ सर्गैर्विसर्गैर्मुनिगर्गसंहिता ॥२६॥
नरेन्द्र शश्वन्मुनिसंहितां ये शृण्वंति भक्त्या हि जनाः पुनीताः ।
इहैव सौख्यं परमाप्नुवंतस्ततस्तु गोलोकपुरं प्रयांति ॥२७॥
कृत्वाऽथ पीतांबरवंदनं त्विमां शृणोति वंध्या बहुलालसा भृशम् ।
ह्रस्वेन कालेन गृहांगणे शिशून्सञ्चारयन्ती विचरत्यहर्निशम् ॥२८॥
रोगी पुमान् रोगगणात्प्रमुच्यते भीतो भयाद्बंधगतश्च बंधनात् ।
श्रुत्वा कथां निर्धन एति वैभवं मूर्खो भवेत्पंडित एव सत्वरम् ॥२९॥
यः कार्तिके मासि नृपः श्रिया युतःशृणोति शश्वन्मुनिगर्गसंहिताम् ।
स चक्रवर्ती भविता न संशयो नरेंद्रहस्तोद्धृतचारुपादुकः ॥३०॥
मनोजवैः सिंधुतुरङ्गमैर्नवैर्द्विपैश्च विंध्याचलसंभवैः परैः ।
वैतालिकोद्गीतयशा महीतले निषेवितो वारवधूजनैः सह ॥३१॥
सुवर्णश्रृङ्गं वरताम्रपृष्ठं सभूषणं रौप्यखुरं सवत्सम् ।
ददाति खंडं प्रति गोद्वयं यः प्राप्नोति सर्वं हि मनोरथं सः ॥३२॥
निष्कारणोऽसौ शृणुते विदेहराट् सर्वामिमां वै मुनिगर्गसंहिताम् ।
हृत्पुण्डरीके वसतेऽस्य सर्वदा श्रीकृष्णचंद्रो निजभक्तवत्सलः ॥३३॥

श्रीगर्ग उवाच

इत्युक्त्वा तमनुज्ञाप्य नारदो देवदर्शनः । सर्वेषां पश्यतां ब्रह्मन्नंबरं गतवान्मुनिः ॥३४॥

बलभद्र तथा विज्ञान—इन नौ खण्डोंमें इसका वर्णन हुआ है ॥ २४ ॥ हे महाराज ! जिस प्रकार नौ उत्तम रसोंसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका श्रीविग्रह विभूषित है तथा भारत आदि नौ वर्षोंसे पृथ्वी अत्यन्त सुशोभित है; ठीक वैसे ही इन नौ खण्डों द्वारा गर्गमुनिप्रणीत यह 'गर्ग-संहिता' निरन्तर शोभा पा रही है ॥ २५ ॥ जिस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी अँगुलियोंमें तपाये हुए सुवर्णकी मुद्रिका नौ रत्नोंसे अलंकृत है, वैसे ही चतुर्वर्गफल देनेवालीके रूपमें यह गर्ग-संहिता सर्ग और विसर्ग आदि नौ अङ्गोंसे सुशोभित है ॥ २६ ॥ हे महाराज ! जो पुरुष भक्तिपूर्वक निरन्तर मुनिप्रणीत गर्ग-संहिताका श्रवण करते हैं, उन्हें संसारमें प्रचुर सुख मिलता है और अन्तमें वे गोलोकधामको चले जाते हैं ॥ २७ ॥ यदि वन्ध्या स्त्री भी अनेक पुत्रोंकी उत्कट लालसासे युक्त हो पीताम्बरधर भगवान् श्रीकृष्णकी वन्दना करके इस संहिताका श्रवण करे तो वह शीघ्र ही अपने घरके आँगनमें बहुत-से बालकोंको घुमाती हुई निरन्तर उनके साथ-साथ घूमने जाती है ॥ २८ ॥ इस कथाको सुनकर रोगी मनुष्य रोगोंसे, भयभीत पुरुष भयसे तथा बन्धनप्राप्त पुरुष बन्धनसे मुक्त हो जाता है। निर्धनको विपुल सम्पत्ति मिल जाती है और मूर्ख तुरंत ही पण्डित हो सकता है ॥ २९ ॥ जो धनाढ्य राजा कार्तिकके महीनेमें मुनिप्रणीत 'गर्ग-संहिता' का श्रवण करता है, निस्संदेह वह चक्रवर्ती राजा हो जायगा और बड़े बड़े राजालोग उसकी चरणपादुकाको उठाकर यथास्थान रक्खेंगे ॥३०॥ वह मनकी चालके समान तेज चलनेवाले सिन्धुदेशवासी घोड़ों और विन्ध्यगिरिपर उत्पन्न होनेवाले विशाल हाथियोंसे सम्पन्न होगा। वैतालिक-वन्दीजन आदि उसका यशोगान करेंगे और वारवधूजन उसकीसेवा करेंगी ॥३१॥ जिसके सोनेके सींग हों, तांबेकी पीठ हो, चांदीके खुर हों और जिसे आभूषणोंसे सजाया गया हो—जो प्रत्येक खण्डको सुननेके बाद ऐसी दो गौओंका दान करता है, उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं ॥ ३२ ॥ हे जनकजी ! यदि कोई निष्कामभावसे समूची 'गर्ग-संहिता' का श्रवण करता है तो भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण उसके हृदय-कमलपर

बहुलाश्वो महाराजः श्रीकृष्णे लग्नमानसः । सर्वतस्तु कृतार्थोऽभूच्छ्रुत्वेमां संहितां हरेः ॥३५॥
तव प्रश्नोपरि ब्रह्मन्कथिता संहिता मया । श्रुता वा पाठिता कैश्चित्कोटियज्ञफलप्रदा ॥३६॥

श्रीशौनक उवाच

धन्योऽहं च कृतार्थोऽहं त्वत्संगेन महामुने । प्राप्नोमि परमां भक्तिं श्रीकृष्णप्रेमवर्द्धिनीम् ॥३७॥
विशदहृदि मुनीनां मानसे राजहंसः सकलसुखविराजन्नादमाधुर्य्यवंशः ।
जगति विकलदंशः शूरवंशावतंसः करबलहतकंसः पातु वः सत्प्रशंसः ॥३८॥
इत्युक्त्वा तान्मुनीन्सर्वान् गर्गाचार्यो महामुनिः। अनुज्ञाप्य प्रसन्नात्मा गंतुमभ्युद्यतोऽभवत् ॥३९॥
नवसर्गविसर्गाढ्यां स्वर्गभृद्गर्गसंहिताम् । चतुर्वर्गप्रदामुक्त्वा गर्गो गर्गाचलं ययौ ॥४०॥
शरद्विकचपङ्कजश्रियमतीव विद्वेषकं मिलिंदमुनिलेढितं कुलिशकञ्जचिह्नावृतम् ।
स्फुरत्कनकनूपुरं दलितभक्ततापत्रयं चलद्द्युतिपदद्वयं हृदि दधामि राधापतेः ॥४१॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विज्ञानखंडे श्रीनारदबहुलाश्वसम्वादांतर्गतव्यासोग्रसेनसंवादे परब्रह्मनिरूपणं नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

श्लोकसंख्या ७३४२, अध्यायसंख्या १९७

सदा निवास करने लगते हैं ॥ ३३ ॥ श्रीगर्गजी बोले—हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार कहकर दिव्यदर्शी भगवान् नारद मुनि राजा बहुलाश्वसे अनुमति लेकर सबके देखते-देखते आकाशमें चले गये ॥ ३४ ॥ तब महाराज बहुलाश्वने भगवान् श्रीहरिकी इस संहिताको सुनकर श्रीकृष्णचन्द्रमें मन लगाये हुए अपनेको भलीभाँति कृतकृत्य समझ लिया ॥ ३५ ॥ हे ब्रह्मन् ! तुम्हारे प्रश्न करनेपर मैंने यह संहिता कही है । विद्वानोंके द्वारा सुनने अथवा पाठ करानेसे भी यह करोड़ यज्ञोंका फल देनेवाली होती है ॥ ३६ ॥ श्रीशौनकजीने कहा—हे मुनिवर ! आपका सङ्ग मिल जानेपर मैं धन्य एवं कृतार्थ हो गया । साथ ही भगवान् श्रीकृष्णमें प्रेम बढ़ानेवाली उत्तम भक्ति भी मुझे प्राप्त हो गयी ॥ ३७ ॥ जो मुनियोंके विशाल हृदयरूपी मानसरोवरमें विचरनेवाले राजहंस हैं, सम्पूर्ण आनन्दोंसे पूर्ण मधुर नाद करनेवाली जिनकी बाँसुरी है, जिनकी कला संसारमें फैली हुई है, जिन्होंने शूरसेनके वंशमें अवतार धारण किया है तथा संत पुरुषोंने जिनकी प्रशंसा की है, वे अपने बाहुबलसे कंसका वध करनेवाले श्रीकृष्ण तुम्हारी रक्षा करें ॥ ३८ ॥ इस प्रकार मुनिवर गर्गाचार्यने सम्पूर्ण मुनियोंको आशीर्वाद दिया । साथ ही उनसे आज्ञा माँगी और प्रसन्नमन होकर जानेके लिये तैयार हो गये ॥ ३९ ॥ इस प्रकार सर्ग-विसर्ग आदि नौ अङ्गोंसे युक्त 'गर्ग-संहिता'का, जो स्वर्ग प्रदान करनेवाली तथा चारों पदार्थोंको देनेमें कुशल है, प्रतिपादन करके गर्गजी गर्गाचलपर चले गये ॥ ४० ॥ मैं भगवान् श्रीराधापतिके उन युगल चरणकमलोंको अपने हृदयमें स्थापित करता हूँ, जो शरद् ऋतुके विकसित कमलोंकी शोभा धारण करनेके कारण उनके अत्यन्त द्वेषपात्र हो रहे हैं, मुनिरूपी भ्रमर जिनका निरन्तर सेवन करते हैं, जो वज्र और कमलके चिह्नोंसे आवृत हैं, जिनपर सोनेके नूपुर चमक रहे हैं, जिन्होंने भक्तोंके तापका सदा निवारण किया है तथा जिनकी दिव्य ज्योति छिटक रही है ॥४१॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विज्ञानखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

सम्पूर्णोऽयं नवमो विज्ञानखण्डः

* श्रीकृष्णः शरणं मम *

आचार्य-श्रीगर्गमहामुनिविरचिता—

श्रीगर्गसंहिता

'प्रियंवदा'ऽभिधया भाषाटीकयाऽऽटीकिता

(अश्वमेधखण्डः १०)

प्रथमोऽध्यायः

(सुमेरुपर्वतपर गर्ग-वज्रनाभका संवाद)

(मंगलाचरणम्)

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥ १ ॥
नमः श्रीकृष्णचन्द्रायः नमः संकर्षणाय च । नमः प्रद्युम्नदेवायानिरुद्धाय नमो नमः ॥ २ ॥

श्रीगर्ग उवाच

सभायामागतं वीक्ष्य रोमहर्षणनन्दनम् । शौनकः परिपप्रच्छ प्रणिपत्याभिवाद्य च ॥ १ ॥

शौनक उवाच

त्वन्मुखात्सर्वशास्त्राणि पुराणानि महामते । नानाहरिचरित्राणि श्रुतानि विमलानि वै ॥ २ ॥
पुरा गर्गेण कथिता ममाग्रे गर्गसंहिता । राधामाधवयोर्यस्यां महिमा बहु वर्णितः ॥ ३ ॥
अद्याहं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तः कृष्णकथां पुनः । सर्वदुःखहरां सौते कथयस्व विचार्य च ॥ ४ ॥

श्रीगर्ग उवाच

अष्टाशीतिसहस्रैश्च मुनिभी रौमहर्षणिः । पृष्टः प्रोवाच कृष्णस्य स्मरन्पादांबुजं हरेः ॥ ५ ॥

सौतिरुवाच

अहो शौनक धन्योऽसि यस्य ते मतिरीदृशी । कृष्णचंद्रपद्वंद्वमकरंदस्पृहावती ॥ ६ ॥
संगमं वैष्णवानां च देवाः श्रेष्ठं वदंति हि । पापक्षयकरी यस्माच्छ्रीकृष्णस्य कथा भवेत् ॥ ७ ॥
अनंतं कृष्णचंद्रस्य चरितं कल्मपापहम् । किंचिज्जानाति ब्रह्मा च तथा किंचिदुमापतिः ॥ ८ ॥

सर्वश्री नारायण, नरोत्तम नर, देवी सरस्वती तथा व्यासजीको प्रणाम करनेके बाद ही जय अर्थात् भगवत्सम्बन्धी कथा कहनी चाहिये ॥ १ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र, संकर्षण (बलराम), प्रद्युम्नदेव तथा अनिरुद्ध भगवान्को नमस्कार है ॥ २ ॥ श्रीगर्गजी कहते हैं—रोमहर्षणतनय उग्रश्रवा मुनिको सभामें उपस्थित देखकर महर्षि शौनकने साष्टांग प्रणाम करके पूछा। शौनक बोले—हे महामते ! मैंने आपके मुखसे सभी शास्त्रों, पुराणों तथा श्रीहरिके विविध निर्मल चरित्र सुने। पूर्वकालमें गर्गमुनिने मुझे गर्गसंहिता सुनायी थी, जिसमें राधामाधवकी बड़ी महिमा गायी गयी है ॥ ३ ॥ आज मैं फिर आपके मुखसे वही सर्वदुःखहारिणी श्रीकृष्णकथा सुनना चाहता हूँ। आप विचार करके उसे कहिए ॥ ४ ॥ गर्गजीने कहा—इस प्रकार अट्ठासी हजार मुनियोंके पूछनेपर श्रीहरिके चरणकमलका स्मरण करके वे श्रीकृष्णकी कथा कहने लगे ॥ ५ ॥ उग्रश्रवा बोले—हे शौनक ! आप धन्य हैं। क्योंकि आपकी बुद्धि इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंकी प्राप्तिके लिए उत्सुक है ॥ ६ ॥ वैष्णवोंके संगको देवता भी श्रेष्ठ बताते हैं। क्योंकि उसमें पापोंको नष्ट करनेवाली श्रीकृष्णकी कथा होती है ॥ ७ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रकी अनन्त पापनाशिनी कथायें हैं। उनमेंसे कुछको ब्रह्मा तथा कुछ कथाओं

मशको मादृशः कोऽपि वासुदेवकथार्णवे। मोहिता न वदिष्यन्ति यत्र ब्रह्मादयः सुराः ॥ ९ ॥
श्रीगर्गो यादवेंद्रस्य ह्युग्रसेनस्य भूपतेः। अश्वमेधं क्रतुवरं दृष्ट्वा प्रत्याह चैकदा ॥१०॥
धन्यो राजा यादवेंद्रो यश्चकार क्रतूत्तमम्। श्रीकृष्णस्याज्ञया पुर्यां तेनाहं विस्मयं गतः ॥११॥
मया वै संहितायां च कथाः कृष्णस्य वर्णिताः। परिपूर्णतमस्यापि यथा दृष्टा यथा श्रुताः ॥१२॥
तस्यां वै वाजिमेधस्य कथा न कथिता मया। अद्याहं कथयिष्यामि हयमेधकथां पुनः ॥१३॥
यस्याः श्रवणमात्रेण नराणां हि कलौ युगे। भुक्तिं मुक्तिं च भगवाञ्छीघ्रमेव प्रयच्छति ॥१४॥
इत्युक्त्वा श्रीमुनिर्गर्गः कृष्णभक्त्या च शौनक। उग्रसेनस्य यज्ञस्य चरित्रं स ह्यचीक्लृपत् ॥१५॥
हयमेधचरित्रस्य सुमेरुर्नाम सुन्दरम्। धृत्वा गर्गस्तु भगवान्कृतकृत्योऽभवन्मुने ॥१६॥

कृत्वा कथामष्टदिनेन श्रीमुनिर्यदोर्गुरुर्बुद्धिमतांवरः परः।
अथाययौ वै मथुरां हरेः पुरीं व्रजं नृपेंद्रं च निरीक्षितुं खलु ॥१७॥

अंबरादागतं तत्र गर्गं ज्ञानवतां वरम्। वीक्ष्योत्थाय नमश्चक्रे वज्रनाभो द्विजैः सह ॥१८॥
स्वर्णसिंहासनं दत्त्वाऽवनिज्य तत्पदांबुजे। अर्चयित्वा पुष्पस्रग्भिर्मिष्टान्नं च न्यवेदयत् ॥१९॥
तत्पादसलिलं नीत्वा शीर्षे धृत्वा कृतांजलिः। भूत्वा श्रीवज्रनाभस्तु श्यामः पंकजलोचनः ॥२०॥
पुष्टदेहो वृहद्बाहुर्वीरः षोडशवार्षिकः। इति होवाच स्वगुरुं शतसिंहसमोद्भटः ॥२१॥

वज्रनाभ उवाच

नमस्तुभ्यं स्वागतं ते ब्रह्मन्किं करवाम ते। मन्ये त्वां भगवद्रूपं ब्रह्मर्षीणां वरं परम् ॥२२॥
गुरुर्विधिर्गुरू रुद्रो गुरुरेव बृहस्पतिः। गुरुर्नारायणः साक्षात्तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥२३॥
नराणां च मुनिश्रेष्ठ दर्शनं तव दुर्लभम्। अस्माकं नितरां देव विषयासक्तचेतसाम् ॥२४॥
गर्गाचार्य कुलाचार्य तेजस्विन् योगभास्कर। त्वद्दर्शनादपि वयं पाविताः सकुटुंबकाः ॥ २५ ॥

को शंकरजी जानते हैं ॥ ८ ॥ जिन श्रीकृष्णके कथासमुद्रमें ब्रह्मादिक देवता भी मोहित होकर गोते खाने लगते हैं और कुछ नहीं कह पाते, तब मुझ सरीखा तुच्छ व्यक्ति क्या कहेगा ॥९॥ एक समय यादवेन्द्र उग्रसेनके महान् अश्वमेध यज्ञको देखकर गर्गमुनिने कहा था कि यदुराज राजा उग्रसेन धन्य हैं। क्योंकि उन्होंने श्रीकृष्णकी आज्ञासे अश्वमेध यज्ञ किया है। सो देखकर मैं बड़ा विस्मित हूँ ॥ १० ॥ ११ ॥ मैंने अपनी गर्गसंहितामें परिपूर्णतम श्रीकृष्णकी आँखों देखी और आप्तजनोंसे सुनी हुई कथा कही है ॥ १२ ॥ किन्तु उसमें मैंने अश्वमेध यज्ञकी कथा नहीं कही थी। सो अब मैं पुनः अश्वमेधकी कथा कहूँगा ॥ १३ ॥ इस कथाके श्रवणमात्रसे भगवान् कलियुगके मनुष्योंको शीघ्र भोग और मोक्ष दोनों सुलभ कर देते हैं ॥ १४ ॥ हे शौनक! ऐसा कहकर गर्गमुनिने श्रीकृष्णकी भक्तिमें मग्न होकर यदुराज उग्रसेनके अश्वमेध यज्ञका वर्णन आरम्भ किया ॥ १५ ॥ भगवान् गर्ग अपनी गर्गसंहिताके सुमेरुस्वरूप सुन्दर अश्वमेधका वृत्तान्त कहकर कृतकृत्य हो गये ॥ १६ ॥ यादवोंके गुरु तथा बुद्धिमानोंके अग्रणी गर्गमुनि आठ दिनोंमें अपनी कथा कहकर मथुरेश वज्रनाभसे मिलनेके लिए मथुरा चले आये ॥ १७ ॥ ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ गर्गमुनिको नभपथसे आते देखकर विप्रोंके साथ वज्रनाभने उठकर नमस्कार किया ॥ १८ ॥ तत्काल उन्होंने मुनिका चरण धोया और स्वर्णसिंहासनपर बिठाला। फिर पुष्पमाला पहनाकर मिष्टान्न अर्पण किया ॥ १९ ॥ तदनन्तर उनका चरणोदक माथे चढ़ाया और कमलनयन तथा श्यामवपु वज्रनाभने दोनों हाथ जोड़कर मस्तकपर रक्खा ॥ २० ॥ परिपुष्टशरीर, षोडशवर्षीय, महाबाहु तथा सौ सिंहों सदृश पराक्रमी वज्रनाभ गर्गजीसे बोले ॥ २१ ॥ वज्रनाभने कहा—हे ब्रह्मन्! आपका स्वागत है। आपको प्रणाम है। कहिए, मैं आपकी क्या सेवा करूँ? ब्रह्मर्षियोंमें अग्रणी आपको मैं भगवान्का रूप मानता हूँ ॥ २२ ॥ हे गुरो! मैं आपको ब्रह्मा, शिव, बृहस्पति तथा साक्षात् नारायण मानता हूँ। आपको नमस्कार है ॥ २३ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ! साधारण मनुष्योंको आपका दर्शन दुर्लभ रहता है। फिर मुझ सरीखे विषयासक्त प्राणीको तो वह और भी दुर्लभ है ॥ २४ ॥ हे गर्गाचार्य!

श्रुत्वा यदूनामृषभस्य वाक्यं मुनींद्रवर्यस्तु महान्महात्मा ।
स्मरन्हरेः श्रीचरणारविंदं मुदा नृपेंद्रं निजगाद सद्यः ॥२६॥
युवराज महाराज यदुवंश शिरोमणे । त्वया साधु कृतं सर्वं पालिता पृथिवीजनाः ॥२७॥
स्थापितश्च त्वया वत्स धर्मो वै पृथिवीतले । विष्णुरातश्च ते मित्रं नृपाश्चान्ये वशाः स्मृताः ॥२८॥
धन्यस्त्वं राजशार्दूल धन्या ते मथुरा पुरी । धन्याश्च ते प्रजाः सर्वा धन्या वै व्रजभूश्च ते ॥२९॥
भुंक्ष्व भोगान्भजन्कृष्णं वलं प्रद्युम्नमेव च । अनिरुद्धं च निःशंको भूत्वा राज्यं कुरु प्रभो ॥३०॥

सूत उवाच

इति वाक्यं समाकर्ण्य गर्गस्य नृपसत्तमः । संकर्षणं च श्रीकृष्णं पितरं च पितामहम् ॥३१॥
विरहेण स्मरन्राजा चाश्रुपूर्णमुखोऽभवत् । तं नृपं दुःखितं दृष्ट्वा स्थितं भूमावधोमुखम् ॥३२॥
गर्गस्तु विस्मितः प्राह दुःखं प्रशमयन्निव ।

गर्ग उवाच

कस्माद्रोदिषि राजेंद्र भयं किं ते मयि स्थिते ॥३३॥
कारणं स्वस्य दुःखस्य वद सर्वं ममाग्रतः । इति तद्वचनं श्रुत्वा राजा न प्राह दुःखितः ॥३४॥
पुनः पृष्टश्च गुरुणा प्राह गद्गदया गिरा ।

राजोवाच

मां त्यक्त्वा यादवाः सर्वे कृष्णसंकर्षणादयः ॥३५॥
गता देव परं लोकं तेनाहं दुःखितोऽभवम् । स्वाम्यमात्यसुहृद्राष्ट्रकोशदुर्गवलानि च ॥
एकाकिनश्च मे ब्रह्मन्नेते प्रीतिकरा न हि ॥३६॥
मया चरित्रं कृष्णस्य न दृष्टं न श्रुतं वद । दृष्टो यादवसंहारः तस्माद्दुःखं न याति मे ॥३७॥
चतुर्व्यूहेन हरिणा या पुरी शोभिता पुरा । साऽपि मग्ना समुद्रे तु कृष्णो भक्तेः परं गतः ॥३८॥
कस्य हेतोः किमर्थं च जीवामि शिष्यवत्सल । अद्य यास्यामि गहनं राज्यं कर्तुं न मे मनः ॥३९॥

हे कुलाचार्य ! हे तेजस्विन् ! हे योगभास्कर ! आपके दर्शनसे सकुटुम्ब हम पवित्र हो गये ॥ २५ ॥ यदुश्रेष्ठ वज्रनाभके वचन सुनकर मुनिश्रेष्ठ गर्ग श्रीहरिके चरणारविन्दका स्मरण करके वोले—॥ २६ ॥ हे युवराज ! हे महाराज ! हे यदुवंशशिरोमणि ! यह आपने वहुत अच्छा किया, जो सव भूमंडलवासियोंको पाला ॥ २७ ॥ आप भूतलपर धर्मकी स्थापना की है । विष्णुरात राजा परीक्षित आपके मित्र हैं और सभी राजे आपके वशमें हैं ॥ २८ ॥ हे राजशार्दूल ! आप धन्य हैं, आपकी मथुरापुरी धन्य है, आपकी सारी प्रजा धन्य है और समस्त व्रजभूमि धन्य है ॥ २९ ॥ हे राजन् ! श्रीकृष्ण, वलदेव, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्धका भजन करते हुए आप निर्भय-भावसे राज्य करिए ॥ ३० ॥ सूतजी वोले—महामुनि गर्गके इन वचनोंको सुनकर नृपश्रेष्ठ वज्रनाभ वल-राम, पिता श्रीकृष्ण तथा पितामह (वसुदेव) के विरहकी वातका स्मरण करके अश्रुमुख हो उठे। इस प्रकार नीचे मुख करके दुःखित भावसे स्थित राजा वज्रनाभको देखकर जैसे उनका क्लेश दूर करनेका प्रयास करते हुए मुनि गर्गने कहा–राजन् ! मेरे रहते आप रो क्यों रहे हैं ? आपको क्या भय है ? ॥३१–३३॥ आपने मेरे समक्ष अपने दुःखका सव कारण कह सुनाइए । किन्तु उनके यह कहनेपर भी अत्यधिक खिन्न होनेके कारण राजा वज्रनाभ कुछ नहीं वोले ॥ ३४ ॥ किन्तु गुरु गर्गके पुनः प्रश्न करनेपर गद्गद वाणीमें राजाने कहा—हे गुरुदेव ! श्रीकृष्ण तथा संकर्षण आदि सभी प्रमुख यादव मुझे त्यागकर परलोक चले गये । इसीसे मैं दुखी हूँ । प्रभुत्व, मंत्री, सुहृद्वर्ग, खजाना, किला और अपार सेना इन सवसे मुझे चैन नहीं मिल रही है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ मैंने भगवान् कृष्णके चरित्र न देखे और न सुने । अव आप उन्हें कहिए । मैंने तो केवल यादवोंका विनाशमात्र देखा है । वह दुःख मेरे मनसे दूर नहीं होता ॥ ३७ ॥ चतुर्व्यूहस्वरूपधारी भगवान् कृष्णसे जो द्वारकापुरी शोभित थी, वह भी समुद्रमें डूव गयी और भगवान् स्वयं भी उस परली पार

सूत उवाच

ततो मुनीनामृषभो महात्मा श्रुत्वा गिरं यादवसत्तमस्य ।
संश्लाघ्य दुःखं शमयन् हि तुष्टो गर्गोऽब्रवीद्भूपतिवज्रनाभम् ॥४०॥

गर्ग उवाच

वृष्णिप्रवर मद्वाक्यं शृणु शोकविनाशनम् । सर्वपापहरं पुण्यं सावधानतया शुभम् ॥४१॥
यो राजते कुशस्थल्यां कृष्णचन्द्रो हरिः पुरा । विराजते स सर्वत्र भक्त्या तं पश्य भूपते ॥४२॥
अद्य ते कथयिष्यामि भुक्तिमुक्तिप्रदां कथाम् । शृणु त्वं वसुधानाथ श्रीकृष्णबलयोः पराम् ॥४३॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वा भगवान्गर्गो वज्राय स्वां च संहिताम् । कथयामास विप्रेंद्र पुण्यां नवदिनैः किल ॥४४॥

इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधचरित्रे सुमेरौ गर्गवज्रनाभसंवादे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

(गर्गमुनिद्वारा श्रीकृष्णलीलाका वर्णन)

सूत उवाच

इति श्रुत्वा वज्रनाभिर्मुनेः श्रीगर्गसंहिताम् । भृशं मुमोदाथ गुरुं प्रत्युवाच प्रणम्य च ॥ १ ॥
अद्य श्रीकृष्णचन्द्रस्य चरित्रं तु श्रुतं मया । त्वन्मुखान्मुनिशार्दूल तेन दुःखाश्च मे गताः ॥ २ ॥
मे मनस्तु कृपानाथ पुनः श्रोतुं हरेर्यशः । अतृप्तस्यापि कृष्णस्य वदस्व चरितं परम् ॥ ३ ॥
द्वावर्त्यामुग्रसेनेन हयमेधः कृतः पुरा । तच्चरित्रं वद मुने किंचित्पूर्वं श्रुतं मया ॥ ४ ॥
अनुव्रतानां शिष्याणां सुतानां च मुनीश्वर । ब्रूयुर्गुह्यमनापृष्टं गुरवः करुणामयाः ॥ ५ ॥

श्रीसूत उवाच

एवं भाषितमाकर्ण्य यादवानां गुरुर्मुनिः । प्रीतः प्रत्याह राजेन्द्रं स्मरन्पादांबुजं हरेः ॥ ६ ॥

पहुँच गये ॥ ३८ ॥ तब मैं क्यों और किसके लिए जीऊँ ? मैं आज ही सब कुछ त्यागकर किसी गहन वनमें चला जाऊँगा । अब राज-काजमें मेरा मन नहीं लगता ॥ ३९ ॥ सूतजी बोले—यह सुनकर मुनिश्रेष्ठ महात्मा गर्गने राजाकी सराहना की और बहुत प्रसन्न होकर उनका दुःख शमन करते हुए प्रसन्नतापूर्वक बोले ॥ ४० ॥ गर्गमुनिने कहा—हे वृष्णिप्रवर ! शोक नष्ट करनेवाला, सर्वपापहरी तथा पवित्र मेरी शुभ वाणी सुनिए ॥४१॥ जो भगवान् कृष्ण पहले केवल द्वारकापुरीमें विराजते थे, वे अब सर्वत्र विद्यमान हैं । हे राजन् ! उनको आप भक्तिकी दृष्टिसे देखिए ॥ ४२ ॥ आज मैं आपको भुक्ति-मुक्ति प्रदान करनेवाला श्रीकृष्ण तथा बलरामसे सम्बन्धित अत्युत्कृष्ट कथा सुनाऊँगा । हे राजन् उसे आप सुनिए ॥ ४३ ॥ सूतजी बोले—हे शौनक ! ऐसा कहकर गुरु गर्गने राजा वज्रनाभको नौ दिनोंमें अपनी पुनीत गर्गसंहिताकी कथा सुनायी ॥ ४४ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

श्रीसूतजी बोले—हे शौनक ! इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताकी कथा सुनकर राजा वज्रनाभ बहुत प्रसन्न हुए और गुरु गर्गको प्रणाम करके बोले—॥ १ ॥ आज आपके मुखसे मैंने श्रीकृष्णका चरित्र सुना । जिससे मेरे सब दुःख दूर हो गये ॥ २ ॥ तथापि हे कृपानाथ ! श्रीकृष्णका चरित्र सुननेसे मेरा मन अभी तृप्त नहीं हुआ है । अतएव आप पुनः श्रीकृष्णकी कथा कहिए ॥ ३ ॥ द्वारकापुरीमें राजा उग्रसेनने पूर्वकालमें अश्वमेध यज्ञ किया था । वह वृत्तान्त आप बताइए । बहुत समय पहले मैंने उसके विषयमें कुछ सुना था ॥ ४ ॥ हे मुनीश्वर ! अनुगत शिष्यों तथा पुत्रोंको दयालु गुरुजन गुप्त बातें भी बता देते हैं ॥ ५ ॥ श्रीसूतजी बोले—हे शौनक ! यादवोंके गुरु गर्ग राजा वज्रनाभकी बात सुनकर बड़े प्रसन्न मनसे भगवान्‌के चरणकमलका

गर्ग उवाच

धन्यस्त्वं कृष्णचन्द्रस्य पादयोर्भक्तिरीदृशी । जाता ते यादवश्रेष्ठ दिष्ट्या तु दुर्लभा नृणाम् ॥ ७ ॥
कथयाम्यत्र ते राजन्नितिहासं श्रृणुष्व वै । यस्य श्रवणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ८ ॥
द्वापरे पीडिता राजन् धरा भारेण पापिनाम् । ब्रह्माग्रे कथयामास सोऽपि श्रुत्वा हरिं ययौ ॥ ९ ॥
गत्वा च कथयामास श्रुत्वा श्रीराधिकापतिः । महीमाश्वास्य देवैश्च भारं हर्तुं मनो दधे ॥१०॥
विवाहो वसुदेवस्य मधुपुर्यामभूत्ततः । कंसबोधनषट्पुत्रवधः कंसभयं नृप ॥११॥
मायाज्ञामनुदेवादिस्तुतिः कृष्णसमुद्भवम् । वर्णनं रूपकृष्णस्य वसुदेवस्य संस्तुतिः ॥१२॥
देवक्यादिपुराकृत्यकथनं जगदीशितुः । गोकुलानयनं कन्यापातनं तद्विभाषणम् ॥१३॥
सांत्वनं वसुदेवस्य मोचनं भार्यया सह । कंसदुर्मंत्रदैत्येषु साधु बाल उपद्रवः ॥१४॥
प्रादुर्भूते व्रजे कृष्णे व्रजराजमहोत्सवः । मथुरागमनं नंदवसुदेवसमागमः ॥१५॥
पूतनासुपयःपानं नन्दगोपादिविस्मयः । शकटव्यत्यये दैत्यचक्रवातवधः शिशोः ॥१६॥
संलालने मुखे धात्र्या जृम्भणे विश्वदर्शनम् । रामकेशवयोर्नाम्नोः कारणं केलिरेतयोः ॥१७॥
धौर्त्यं गोपवधूगेहे प्रसङ्गान्मृद्भक्षणम् । दर्शनं विश्वरूपस्य नन्दभाग्यपुराकथा ॥१८॥
चौर्यं हैयङ्गवस्याथ बन्धनं दामभिर्बलात् । यमलार्जुनयोः शापो भङ्गश्चैव स्तुतिस्तयोः ॥१९॥
बालक्रीडोपनन्दादिमंत्रणं गमनं ततः । वृन्दावने तयोः क्रीडा वयस्यैर्वत्सचारिणोः ॥२०॥

ध्यान करके राजासे बोले ॥ ६ ॥ श्रीगर्गजीने कहा—हे यादवश्रेष्ठ ! श्रीकृष्णके चरणोंमें तुम्हारी ऐसी प्रगाढ़ भक्ति है । इसलिए तुम धन्य हो । क्योंकि ऐसी भक्ति मनुष्योंके लिए दुर्लभ ही होती है ॥ ७ ॥ इसी प्रगङ्गमें मैं तुम्हें एक ऐसा इतिहास सुना रहा हूँ, जिसके श्रवणमात्रसे प्राणी सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ८ ॥ द्वापरयुगमें पृथ्वी पापियोंके भारसे पीड़ित होकर ब्रह्माजीके पास गयी और उन्हें अपनी व्यथाकथा कह सुनायी । सो सुनकर ब्रह्माजी उसको साथ लेकर श्रीहरिकी शरणमें गये ॥९॥ उन्होंने भगवान्‌को सब हाल बताया । सो सुना तो श्रीहरिने पृथ्वीको आश्वस्त करके देवताओंके सहयोगसे उसका भार हरनेका निश्चय किया ॥ १० ॥ उसी बीच मथुरापुरीमें वसुदेवका विवाह हुआ । तभी कंसको यह आकाशवाणी सुनायी दी कि देवकीका आठवाँ पुत्र तुझे मारेगा । सो सुनकर कंसने वसुदेव-देवकीको कैद करके कारागारमें डाल दिया और उनके छः पुत्र मार डाले । तभीसे कंसको भयके कारण सर्वत्र श्रीकृष्ण दीखने लगे ॥ ११ ॥ उसके बाद भगवान्‌ने योगमायाको आज्ञा दी । तदनुसार उसने देवकीका गर्भ रोहिणीकी कोखमें प्रविष्ट करके स्वयं यशोदाजीके गर्भमें प्रविष्ट हो गयी । इस प्रकार भगवान्‌को देवकीके गर्भसे उत्पन्न देखकर देवताओं तथा वसुदेवने उनकी स्तुति की ॥ १२ ॥ फिर वसुदेव देवकीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त, भगवान् श्रीकृष्णको गोकुलमें पहुँचाने, योगमायाको मथुरा लाने, कंसका उसको उठाकर पत्थरपर पटकने तथा योगमायाका यह प्रतिवचन कि 'तुझे मारनेवाले महापुरुषका जन्म हो चुका है' ॥ १३ ॥ तदनन्तर कंसका वसुदेव-देवकीको सान्त्वना देकर कैदसे छोड़ना, फिर कंसका दुष्ट मंत्रियोंसे परामर्श करके बालकोंको मारनेका आदेश देना ॥ १४ ॥ व्रजमें भगवान्‌के अवतरित होनेपर व्रजराज नन्दके घरमें पुत्रजन्मोत्सवके उपलक्ष्यमें महोत्सव, नन्दका कंसको कर देनेके लिए मथुरा जाना और वहाँ वसुदेवसे मिलना ॥ १५ ॥ फिर श्रीकृष्णका पूतनाके प्राणोंसमेत उसका दूध पीते देखकर नन्द आदि गोपोंका विस्मित होना, बालक श्रीकृष्णका शकटासुर तथा तृणावर्तको मारना ॥ १६ ॥ फिर खेलाती हुई माताको श्रीकृष्णका जम्हाई लेकर अपने मुखमें समस्त विश्व दिखाना, दोनों भाइयोंका राम-कृष्ण नामकरण तथा उनकी बाललीलाका निरूपण ॥ १७ ॥ तदनन्तर श्रीकृष्णका गोपियोंके घरोंमें माखनचोरी आदिकी लीला करना, सहसा मिट्टी खानेके प्रसंगमें माताको अपना विश्वरूप दिखाना और नन्द-यशोदाके पूर्वजन्मका वृत्तान्त कथन ॥ १८ ॥ फिर श्रीकृष्णके माखनचोरी करते हुए पकड़े जानेपर यशोदाका उनको हठात् रस्सीसे बाँधना, यमलार्जुन वृक्षको गिराना, उनको प्राप्त नारदके शापका वर्णन और उन दोनों (कृष्ण-बलराम) की स्तुतिका निरूपण ॥ १९ ॥ फिर श्रीकृष्णकी बाललीलाका वर्णन,

वत्सासुरस्य च वधो बकाघासुरयोरपि । भोजनं सखिभिस्तीरे यमुनाया हरेर्मुदा ॥२१॥
वत्साद्याहरणं धात्रा कृष्णत्वं वत्सपालयोः । ब्रह्मणो गमनं पश्चात्स्तुतिः कृष्णरतिर्गतिः ॥२२॥
गोचारणे महाक्रीडा धेनुकादिवधस्तथा । व्रज आगमनं कृष्णगोपीनेत्रमहोत्सवः ॥२३॥
मृतान् विषांभःपानेन गोपान्हरिरजीवयत् । कालीयदमने स्तोत्रं तद्भार्याणां प्रलापनम् ॥२४॥
ह्रदे कालीयसम्बन्धकथनं वह्निमोचनम् । क्रीडाप्रलंबनिधनं दावाग्नेर्मोचनं गवाम् ॥२५॥
वर्षाशरद्वर्णनं च गोपीनां वचनामृतम् । व्रतं गोकुलकन्यानां वस्त्राणां हरणं मुदा ॥२६॥
वनभाग्यकथा गोपप्रार्थना प्रेषणं मखे । विप्रभार्याप्रसादश्च पश्चात्तापो द्विजन्मनाम् ॥२७॥
यागभङ्गो महेन्द्रस्य धृतिर्गोवर्धनस्य च । सुरेन्द्रगर्वहरणं गर्गजातकवर्णनम् ॥२८॥
गोपशङ्कापगमनमिंद्रधेन्वाभियाचितम् । नन्दस्य मोक्षणं गोपवैकुण्ठगमनं ततः ॥२९॥
पञ्चाध्यायनिशाक्रीडा सर्पान्नंदस्य मोक्षणम् । शङ्खचूडवधः पश्चाद्गोपीगीतं वृषार्दनम् ॥३०॥
कंसनारदसंवादः कंसाक्रूरकथा ततः । केशिनो निधनं कृष्णान्नारदर्षिकथा ततः ॥३१॥
व्योमासुरवधोऽक्रूरागमनं गोकुलेषु च । दर्शनानंदहृष्टात्मा रोमांचो गद्गदा गिरः ॥३२॥
संवादो रामकृष्णाभ्यां वर्णितं कंसचेष्टितम् । रामकृष्णप्रयाणं च तथा गोपीप्रलापनम् ॥३३॥
मथुरागमनं मध्ये ह्रदे कृष्णस्य दर्शनम् । स्तुतिः पुरा गतिः पश्चाद्दर्शनं पुरसंपदः ॥३४॥
रजकस्य शिरश्छेदो वायकस्य वरादयः । सुदाम्नो वरदानं च कुब्जासंदर्शनं हरेः ॥३५॥
धनुर्भंगः सैन्यवधः कंसदुर्हेतुदर्शनम् । रंगोत्सवः कुवलयापीडयुद्धविघातनम् ॥३६॥

उपनन्दादिकी सलाहपर उनका वृन्दावनगमन, वृन्दावनमें अपने मित्र गोपोंके साथ गौवें चरानेकी लीला ॥ २० ॥ वहाँ ही वत्सासुर, वकासुर तथा अघासुरका वध करना और यमुनाके पवित्र तटपर मित्रोंके साथ सहर्ष भोजन करना ॥ २१ ॥ फिर ब्रह्माका गोपबालकों-गौओं तथा बछड़ोंका चुराना, तब कृष्णका उन गोपबालकों, गौओं तथा बछड़ोंके रूपमें परिणत होना, यह देखकर ब्रह्माका श्रीकृष्णकी स्तुति करना, पुनः कृष्णका गोपबालकोंके साथ खेलते हुए वृन्दावन जाना ॥२२॥ फिर गोचारणरूपिणी महती लीलामें धेनुकासुर आदि असुरोंका वध, श्रीकृष्णका पुनः व्रजमें आगमन एवं गोपियोंके नेत्रोंको आनन्दित करना ॥ २३ ॥ फिर कालीदहका विषैला जल पीकर मरे हुए गोपों और गौओंको जिलाना, कालिया नागके दमनके अवसरपर नागपत्नियोंकी स्तुति तथा उनका विलाप ॥ २४ ॥ कालिय नागके यमुनानिवासका कारणकथन, अग्निसे गोपों और गौओंका बचाव, खेल-खेलमें प्रलम्बासुरका वध, मुंजवनमें दावानल पीकर गोपों तथा गौओंको बचाना ॥ २५ ॥ फिर वर्षा तथा शरद् ऋतुका वर्णन, गोपियोंके वचनामृतका श्रवण, गोकुलकी कन्याओंका कात्यायनीव्रत एवं उनके वस्त्रोंका अपहरण ॥ २६ ॥ फिर वृन्दावनके सौभाग्यका वर्णन, कृष्णका गोपोंको विप्रोंके यज्ञमें भोजन माँगनेके लिए भेजना, विप्रोंकी पत्नियोंपर भगवान्की अनुकम्पा और ब्राह्मणोंके पश्चात्तापका वर्णन ॥२७॥ कृष्ण द्वारा इन्द्रयज्ञको भंग करके गोवर्द्धन यज्ञका प्रवर्तन, इन्द्रका कोप, गोवर्धनधारण, इन्द्रका गर्वहरण और गोपोंके समक्ष महामुनि गर्गकी उक्तियोंका वर्णन ॥ २८ ॥ इससे गोपोंका संशय निवृत्त होना, इन्द्र और सुरभी गौका श्रीकृष्णकी स्तुति करना, फिर नन्दरायको वरुणलोकसे छुड़ाकर लाना और गोपोंको वैकुण्ठका दर्शन कराना ॥ २९ ॥ फिर पंचाध्यायीमें वर्णित रासलीला, सर्पके मुखसे नन्दकी मुक्ति, शंखचूडका वध, गोपीयुगलगीत और वृषासुरवधका वर्णन ॥ ३० ॥ फिर कंस-नारदसंवाद, कंस-अक्रूरसंवाद, श्रीकृष्णके हाथों केशीवध और नारद-कृष्णसंवाद ॥ ३१ ॥ फिर व्योमासुरवध, अक्रूरका वृन्दावनगमन, नन्द तथा अक्रूरमें वार्तालाप, अक्रूरका कृष्णदर्शनसे रोमांचित तथा गद्गद होना ॥ ३२ ॥ फिर अक्रूरका श्रीकृष्ण तथा बलरामसे वार्तालाप, अक्रूरका कृष्ण-बलरामको कंसके कार्यकलाप बताना, कृष्ण-बलरामका मथुराप्रस्थान और गोपियोंका करुण विलाप ॥ ३३ ॥ मथुरा जाते समय यमुनादहमें अक्रूरको श्रीकृष्णका दर्शन मिलना, फिर मथुरानगरीमें प्रवेश और उसके वैभवका वर्णन ॥ ३४ ॥ फिर भगवान् कृष्णके हाथों कंसके धोबीका सिर कटना, दरजी तथा सुदामा मालीको वरदान, कुब्जाको श्रीकृष्णका दर्शन ॥ ३५ ॥ फिर

दर्शनं रामकृष्णस्य पौराणां प्रेमवर्धनम् । मल्लानां निधनं रंगे कंसस्य सह बन्धुभिः ॥३७॥
पित्रोश्च सांत्वनं सर्वसुहृदां चैव तोषणम् । उग्रसेनाभिषेकं च नंदादिव्रजप्रेषणम् ॥३८॥
ईषद्द्विजातिसंस्कारं पठनं च गुरोर्गृहे । मृतपुत्रप्रदानं च गुरोः पंचजनार्दनम् ॥३९॥
पुनरागमनं शौरेर्मधुपुर्यां महोत्सवः । उद्धवप्रेषणं गोपीविलापपरिसांत्वनम् ॥४०॥
मेलनार्थं तु कृष्णस्यागमनं नंदगोकुले । पुनर्वै कोलदैत्यस्य वधः पश्चात्प्रकीर्तितः ॥४१॥
कुब्जारतिस्तथाऽक्रूरप्रेषणं गजसाह्वये । पांडवेषु च वैषम्यं धृतराष्ट्रस्य बोधनम् ॥४२॥

इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधचरित्रे सुमेरौ कृष्णलीलावर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

(श्रीकृष्णलीलाका वर्णन)

गर्ग उवाच

जामातृवधसंतप्तजरासंधचमूवधः । बहुशः सेनयोर्युद्धे द्वारकादुर्गकारणम् ॥ १ ॥
यवनस्य वधं दृष्ट्वा मुचुकुंदस्य संस्तुतिः । वरं दत्त्वा ततो म्लेच्छवधं कृत्वा धने ततः ॥ २ ॥
नीयमाने वने दृप्तजरासंधात्पलायनम् । रैवतो रेवतीं कन्यां बलदेवसमर्पणम् ॥ ३ ॥
रुक्मिणीप्रियसंदेशश्रवणादखिलान्नृपान् । निर्जित्य निर्गमो मगेहात् हृतवानंबिकागृहात् ॥ ४ ॥
नृपैः सांत्वनं चैद्यस्य ततो रुक्मीसमागमः । युद्धापेक्षापराधाद्वै मुंडनं तस्य कृष्णतः ॥ ५ ॥
रुक्मिणीदुःखशमनं रामवाक्याच्च मोक्षणम् । ततो विवाहो रुक्मिण्या विधिवत्स्वपुरे मुदा ॥ ६ ॥

श्रीकृष्णका रंगभूमिमें जाकर धनुष तोड़ना, कंसकी सेनाका संहार करना, कंसको अपशकुन दीखना, रंगभूमिके उत्सवका वर्णन, युद्धमें कुबलयापीडका वध ॥ ३६ ॥ मथुराके नागरिकोंको कृष्णदर्शन, उनके स्नेहातिरेकका वर्णन, चाणूर आदि कंसके पहलवानोंका वध और भ्राताओंसहित कंसका वध ॥ ३७ ॥ फिर श्रीकृष्णका वसुदेव-देवकीको ढाढ़स बँधाना, सब सुहृदोंको प्रसन्न करना, उग्रसेनका राज्यभिषेक और नन्द आदि गोपोंको व्रज भेजना ॥ ३८ ॥ बादमें कृष्ण-बलरामका द्विजातिसंस्कार करके गुरु संदीपनिके पास पढ़ना, फिर पंचजन दैत्यको मारकर गुरुके मृत पुत्रको लाकर देना ॥ ३९ ॥ वहाँसे दोनों भाइयोंका मथुरा आना, इसके उपलक्ष्यमें महोत्सव होना, कृष्णका उद्धवको नन्दगाँव भेजना, उन्हें देखकर गोपियोंका विलाप और उद्धवका उन्हें सान्त्वना देना ॥ ४० ॥ सुहृदोंसे मिलनेके लिए कृष्णका नन्दके गोकुलमें जाना और कोलदैत्यका वध करना वर्णित है ॥ ४१ ॥ फिर कुब्जाके साथ रमण, अक्रूरको हस्तिनापुर भेजना, वहाँ राजा धृतराष्ट्रका पांडवोंके प्रति विषम भेदभाव देखकर उन्हें समझानेका प्रसंग वर्णित है ॥४२॥ इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखंडे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

(श्रीकृष्णलीलाका वर्णन) गर्गमुनि बोले—फिर जामाताके वधसे सन्तप्त जरासन्धकी सेनाका वध वर्णित है। जब मथुरामें बहुत बार जरासन्ध तथा यादवी सेनाका युद्ध हुआ, तब भगवानने द्वारका दुर्गका निर्माण कराया ॥ १ ॥ कालयवनका वध देखकर मुचुकुन्द द्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति, फिर मुचुकुन्दको वरदान दे तथा म्लेच्छोंका वध करके श्रीकृष्णका उनसे प्राप्त प्रचुर धन लेकर जाना ॥ २ ॥ वनमें जाते समय अभिमानी जरासन्धसे छूटकर दोनों भाइयोंका द्वारका जाना, फिर राजा रैवतका अपनी कन्या रेवती बलरामको अर्पित करना ॥ ३ ॥ फिर रुक्मिणीका प्रिय सन्देश सुनकर श्रीकृष्णने सब राजाओंको पराजित करके अम्बिकामन्दिरसे रुक्मिणीका हरण किया ॥ ४ ॥ उसके बाद समस्त राजाओंका शिशुपालको समझाना, रुक्मी-कृष्णयुद्ध और रुक्मीको मुंडित करके विरूप करना ॥ ५ ॥ फिर बलदेवका रुक्मिणीको ढाढस बँधाकर रुक्मीको छुडाना और द्वारका आकर श्रीकृष्णके साथ रुक्मिणीका विधि

प्रद्युम्नोत्पत्तिकथनं हरणं सूतिकागृहात् । मायावत्योक्तवृत्तांतं शंबरस्य वधस्ततः ॥ ७ ॥
पुनरागमनं गेहे संतोषो द्वारकौकसाम् । सूर्यात्स्यमंतकप्राप्तिर्याचनं तस्य वै हरेः ॥ ८ ॥
तत्संबन्धात्प्रसेनस्य वधोऽकीर्तिर्हरेस्तथा । तन्मार्जनाय ऋक्षस्य गृहेषु गमनं हरेः ॥ ९ ॥
युद्धे ज्ञात्वा लोकनाथं जांबवत्याः समर्पणम् । सत्राजिताय च मणिः प्राप्ता श्रीहरिणा बिलात् ॥ १० ॥
विवाहः सत्यभामायाः पारिबर्हे तथा मणिः । रामेण सह कृष्णस्य गमनं हस्तिनापुरे ॥ ११ ॥
अक्रूरकृतवर्मभ्यां शतधन्वा तु प्रेरितः । सत्राजितं जघानाशु सोऽपि कृष्णेन मारितः ॥ १२ ॥
रामस्तु मिथिलायां च गदाशिक्षा सुयोधने । अक्रूरे मणिदानं च शक्रप्रस्थे हरिर्गतः ॥ १३ ॥
कालिन्द्या संगतिः शौरेर्विवाहः स्वपुरे ततः । विवाहो मित्रविन्दायाः सत्यायाश्च तथैव च ॥ १४ ॥
भद्राया लक्ष्मणायाश्च विवाहो हरिणा ततः । पारिजातं तु सत्यायै शक्रं जित्वा ददौ हरिः ॥ १५ ॥

वज्रनाभिरुवाच

प्रियायै दत्तवान्कस्माच्छक्रं जित्वा सुरद्रुमम् । श्रीकृष्णस्तत्कथां सर्वां मुने मे ब्रूहि विस्तरात् ॥ १६ ॥

श्रीगर्ग उवाच

पारिजातैककुसुमे चानीते नारदात्कदा । दत्ते सति श्रीरुक्मिण्यै सत्या तु दुःखिताऽभवत् ॥ १७ ॥
तां दृष्ट्वा कुपितां प्राह क्रोधागारगतां हरिः । मा शोचं कुरु दास्यामि पारिजातद्रुमं च ते ॥ १८ ॥

गर्ग उवाच

तदैव कथितं सर्वं कृष्णाग्रे भौमचेष्टितम् । शक्रेण श्रुत्वा भगवान्प्राह पश्यन्कृतांजलिम् ॥

श्रीकृष्ण उवाच

मत्प्रियां दुःखितां पश्य रुदन्तीं वृत्रसूदन ॥ १९ ॥
पारिजातस्य वृक्षार्थे किं करिष्याम्यहं वद । यदाऽस्यै पारिजातस्य वृक्षं दास्यसि त्वं हरे ॥ २० ॥

विवाह होना ॥ ६ ॥ प्रद्युम्नका जन्मवृत्तान्त, सूतिकागृहसे प्रद्युम्नका अपहरण, मायावतीका कहा पूर्वजन्म-सम्बन्धी इतिहास और शम्बरासुरका वध ॥ ७ ॥ तदनन्तर मायावतीके साथ प्रद्युम्नका द्वारका आगमन, इससे प्रसन्न पुरवासियोंका हर्षोल्लास, फिर सत्राजित्को सूर्यभगवान्से स्यमन्तक मणि मिलना और श्रीकृष्ण-का वह मणि माँगना ॥ ८ ॥ इसी प्रसंगमें प्रसेनका मरण, श्रीकृष्णका अपयश और उसे दूर करनेके लिए उनका जाम्बवान्के घर जाना ॥ ९ ॥ युद्धप्रसंगमें जाम्बवान्का श्रीकृष्णको भगवान् समझकर उन्हें अपनी पुत्री जाम्बवती अर्पित करना और स्यमन्तकमणि जाम्बवान्की कन्दरासे लाकर सत्रा-जित्को सौंपना ॥ १० ॥ फिर श्रीकृष्णके साथ सत्यभामाका विवाह और दहेजके रूपमें सत्राजित्का स्यमन्तकमणि उन्हें अर्पण करना और बलरामके साथ श्रीकृष्णका द्वारका जाना ॥ ११ ॥ फिर अक्रूर तथा कृतवर्माकी प्रेरणासे शतधन्वा द्वारा सत्राजित्का वध तथा इसी अपराधपर श्रीकृष्णके द्वारा शतधन्वाका वध वर्णित है ॥ १२ ॥ बलरामका मिथिलापुरी जाकर दुर्योधनको गदायुद्ध सिखाना, फिर अक्रूरको ही मणि सौंपकर भगवान्का इन्द्रप्रस्थ प्रस्थान ॥ १३ ॥ इन्द्रप्रस्थमें श्रीकृष्ण तथा कालिन्दीका समागम, द्वारका जाकर कालिन्दीके साथ भगवानका विवाह, फिर मित्रविन्दा तथा सत्याका विवाह वर्णित हुआ है ॥ १४ ॥ तदनन्तर श्रीकृष्णने इन्द्रको पराजित करके पारिजातका हरण किया और उसे सत्याके महलमें लगाया ॥ १५ ॥ इतनी कथा सुनकर वज्रनाभिने पूछा—हे महामुने ! इन्द्रको परास्त करके भगवान्ने देवद्रुम पारिजात सत्याको क्यों दिया ? कृपया श्रीकृष्णकी यह कथा आप मुझे विस्तारके साथ सुनाइए ॥ १६ ॥ श्रीगर्गजी बोले—एक दिन श्रीनारदजीने पारिजातका एक पुष्प भगवान् श्रीकृष्णको दिया । वह फूल उन्होंने रुक्मिणीको दे दिया । इससे सत्याको बहुत दुःख हुआ ॥ १७ ॥ जिससे कुपित होकर वे कोपभवनमें जा बैठीं । वहाँ जाकर भगवान्ने कहा—प्रिये ! तुम खेद न करो, मैं तुम्हें पारि-जातका वृक्ष ही लाकर दे दूँगा ॥ १८ ॥ श्रीगर्गजीने कहा—हे राजन् ! उसी समय इन्द्रने आकर श्रीकृष्णको भौमासुरका सब हाल बताया । सो सुनकर करबद्ध खड़े इन्द्रसे भगवान्ने कहा—हे वृत्रसूदन ! पारिजात

तदा भौमं ससैन्यं च हनिष्यामि न संशयः । कृष्णभाषितमाकर्ण्य प्रहसन्प्राह वासवः ॥२१॥

इन्द्र उवाच

पारिजातद्रुमाः सर्वे वर्तंते नन्दने च ये । गृहाण तान्स्वतः कृष्ण त्वं हत्वा नरकासुरम् ॥२२॥
तथाऽस्तु चोक्त्वा भगवान्सत्यभामासमन्वितः । गरुडस्कंधमारूढः प्राग्जोतिषपुरं ययौ ॥२३॥
सत्यभामा हरिं प्राह स्वर्गमिंद्रे गते सति ।

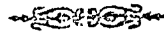
सत्योवाच

पूर्वं गृहाण शक्रात्त्वं द्रुमराजं जगत्पते ॥२४॥
कार्ये भूते सति हरे न करिष्यति त्वत्प्रियम् । प्रियावाक्यं समाकर्ण्य प्रियः प्राह प्रियां वचः ॥२५॥

श्रीकृष्ण उवाच

स परिजातं यदि न प्रदास्यति प्रयाच्यमानस्तु मयाऽमरेश्वरः ।
ततः शचीव्यासुदितानुलेपने गदां विमोक्ष्यामि पुरंदरोरसि ॥२६॥
इत्युक्त्वा भगवान्कृष्णो भौमासुरपुरं गतः । नानादुर्गैः सप्तभिश्च वेष्टितं च महासुरैः ॥२७॥
सर्वान्विभेद दुर्गान् वै गदाचक्रशरादिभिः । जघान मुरुदैत्यं च तत्पुत्राञ्शस्त्रसंयुतान् ॥२८॥
शस्त्रास्त्रवर्षं मुंचंतं ससैन्यं नरकं हरिः । क्षिप्त्वा चक्रं द्विधा चक्रे गरुडेन जघान च ॥२९॥
हत्वा भौमं जगन्नाथो वररत्नानि यादवः । जग्राह तत्र कन्यानां समूहं वै ददर्श ह ॥३०॥
दैत्यसिद्धनृपाणां च सहस्राणि च षोडश । शताधिकानि कन्याश्च प्रेषयामास स्वां पुरीम् ॥३१॥
गृहीत्वाऽथ मणिं छत्रं देवमातुश्च कुण्डले । पारिजातद्रुमार्थे वै ययाविंद्रपुरीं हरिः ॥३२॥

इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधचरित्रे सुमेरौ कृष्णकथावर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥



वृक्षके लिए मेरी प्रिया सत्या बहुत रो रही है । ऐसा दशामें मैं कर ही क्या सकता हूँ । हे हरे ! जब तुम उसे पारिजात वृक्ष प्रदान कर दोगे, तभी मैं सेनासमेत भौमासुरका वध करूँगा । इसमें सन्देह नहीं है । भगवान् श्रीकृष्णके वचन सुनकर हँसते हुए देवराज इन्द्रने कहा ॥ १९–२१ ॥ इन्द्र बोले—हे श्रीकृष्ण ! आप उस नरकासुर (भौमासुर)को मारकर नन्दनवनके सभी पारिजात (कल्पवृक्ष) ले लीजिए ॥ २२ ॥ इसपर 'तथास्तु' कहकर भगवान् श्रीकृष्ण सत्यभामाके साथ गरुड़पर सवार होकर प्राग्ज्योतिषपुर गये, जहाँ भौमासुर रहता था ॥२३॥ जब इन्द्र स्वर्ग चले गये, तब सत्यभामाने भगवान्से कहा । सत्यभामा बोलीं—हे जगत्पते ! हे प्रभो ! आप इन्द्रसे कल्पवृक्ष पहले ही ले लीजिए ॥ २४ ॥ क्योंकि काम पूरा हो जानेपर वह नहीं देगा । यह सुनकर श्रीकृष्ण अपनी प्रिया सत्यभामासे बोले ॥ २५ ॥ भगवान्ने कहा—यदि देवराज इन्द्र मेरे माँगनेपर पारिजात नहीं देगा तो शचीके स्तनोंके चन्दनसे लिप्त इन्द्रकी छातीपर मैं अपनी गदाका प्रहार करूँगा ॥ २६ ॥ यह कहकर भगवान् भौमासुरके नगरमें गये । वह नगर अग्नि, जल, वायु तथा विविध प्रकारके सात दुर्गों (किलों)से आवेष्टित था और बड़े-बड़े असुर उसकी रखवाली करते थे ॥ २७ ॥ वहां जाकर भगवान् श्रीकृष्णने अपने चक्र, गदा और बाणोंकी मारसे सब किलोंको ध्वस्त कर दिया और मुरदैत्य तथा शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित उसके पुत्रोंको मार डाला ॥ २८ ॥ तदनन्तर भीषण शस्त्रास्त्रकी वर्षा करते हुए सेना-समेत नरकासुरको उन्होंने अपने चक्रसे काटकर दो टुकड़े कर दिये । इसी बीच गरुड़ने उसकी सब सेना काट डाली ॥ २९ ॥ इस प्रकार जगत्पति यादवेश भगवान् श्रीकृष्णने भौमासुरको मारकर उसके सभी उत्तमोत्तम रत्न हस्तगत कर लिये और महलके भीतर जाकर उन्होंने कन्याओंका बहुत बड़ा समुदाय एकत्रित देखा ॥ ३० ॥ तत्काल उन्होंने उन दैत्यों, सिद्धों और अन्यान्य राजाओंकी सोलह हजार एक सौ कन्याओंको द्वारका भेज दिया ॥ ३१ ॥ इसके बाद इन्द्रके छत्र, मणि तथा देवमाता अदितिके दो कुण्डल लेकर पारिजात वृक्ष प्राप्त करनेके लिए भगवान् श्रीकृष्ण इन्द्रपुरी गये ॥ ३२ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

(इन्द्रपुरीसे पारिजात-हरणकी कथा)

गर्ग उवाच

गत्वा स्वर्गं तु शक्राय दत्त्वा छत्रं मणिं तथा । अदित्यै कुण्डले कृष्णो दत्त्वाऽभिप्रायमब्रवीत् ॥ १ ॥
अभिप्रायं हरेर्ज्ञात्वा वासवो न ददौ द्रुमम् । देवाञ्जित्वा तदा पारिजातं जग्राह माधवः ॥ २ ॥

सूत उवाच

इति श्रुत्वा कथां राजा यादवो विस्मयान्वितः । पप्रच्छ स्वगुरुं भूयः श्रद्दधानो हरेर्गुणे ॥ ३ ॥
ब्रह्मञ्शक्रस्तु देवेंद्रो जानन्कृष्णं हरिं परम् । अपराधं तु कृतवान्स कथं ब्रूहि तत्त्वतः ॥ ४ ॥
कृष्णाग्रे कथितं सत्यभामया शक्रचेष्टितम् । तस्मान्मे विस्तराद्युद्धमिन्द्रमाधवयोर्वद ॥ ५ ॥

गर्ग उवाच

अदित्या संस्तुतः कृष्णः शक्रवाक्याच्च नन्दनम् । वनं गत्वा पारिजातान्संददर्श बहून्द्रुमान् ॥ ६ ॥
तेषां मध्ये महावृक्षं मंजरीपुञ्जधारिणम् । क्षीरोदमथनाज्जातं पद्मगंधसमन्वितम् ॥ ७ ॥
सुराणां सुखदं ताम्रपल्लवैः परिवेष्टितम् । वने विभूषणं दिव्यं वरं स्वर्णसमत्वचम् ॥ ८ ॥
तं दृष्ट्वा माधवं प्राह सत्यभामा च मानिनी । एनं गृह्णाम्यहं कृष्ण श्रेष्ठं सर्वं वने द्रुमम् ॥ ९ ॥
इत्युक्तः प्रिययोत्पाट्य पारिजातं गरुत्मति । लीलयाऽऽरोपयामास प्रहसञ्जगदीश्वरः ॥१०॥
तदैव कुपिताः सर्वे वनपालाः समुत्थिताः । धनुर्बाणधराः कृष्णमूचुः प्रस्फुरिताधराः ॥११॥
इन्द्रप्रियाया वृक्षश्च हृतः कस्मात्त्वया नर । यदृच्छया किलास्माकं तृणीकृत्य क्व यास्यसि ॥१२॥
इन्द्राणीप्रीतये देवैः पुरा ह्युदधिमंथने । उत्पादितोऽयं न क्षेमी गृहीत्वैनं भविष्यसि ॥१३॥
गिरीणां येन सर्वेषां पक्षाः पूर्वं निपातिताः । तं किं वृत्रहणं वीरं जित्वा वृक्षं नयिष्यसि ॥१४॥

श्रीगर्गमुनि बोले—हे राजन् ! स्वर्गमें जाकर भगवान्ने इन्द्रको छत्र, मणि तथा देवमाता अदितिके दोनों कुण्डल देकर उन्हें पारिजातविषयक अपना अभिप्राय बताया ॥ १ ॥ भगवान्का अभिप्राय सुनकर भी इन्द्रने उनको पारिजात (कल्पवृक्ष) नहीं दिया। तब श्रीकृष्णने देवताओंको परास्त करके पारिजात प्राप्त किया ॥ २ ॥ सूतजी बोले—हे शौनक ! यह कथा सुनकर यादव वज्रनाभ बहुत विस्मित हुए और श्रीकृष्णका अन्य चरित्र सुननेकी इच्छासे उन्होंने कहा—॥ ३ ॥ हे ब्रह्मन् ! देवराज इन्द्र तो जानते थे कि श्रीकृष्ण साक्षात् ईश्वर हैं, तब उन्होंने ऐसा दुर्व्यवहार क्यों किया ? ॥ ४ ॥ श्रीकृष्णप्रिया सत्यभामा भी पहले ही इन्द्रको अपना अभिप्राय बता चुकी थीं। अतएव आप मुझे इन्द्र और श्रीकृष्णके युद्धका वृत्तान्त विस्तृतरूपसे बताइए ॥ ५ ॥ श्रीगर्गमुनि बोले—इन्द्रपुरी पहुँचनेपर देवमाता अदितिने भलीभाँति श्रीकृष्णकी स्तुति की। तदनन्तर इन्द्रकी ही प्रेरणासे वे नन्दनवनमें गये और वहाँ बहुतेरे पारिजात वृक्षोंको देखा ॥ ६ ॥ उन वृक्षोंके मध्य श्रीकृष्णने एक महावृक्ष देखा। उसपर मंजरियोंके पुंज लदे हुए थे और क्षीरसागरके मंथनसे उत्पन्न कमल जैसी सुगन्धि फैल रही थी ॥ ७ ॥ देवताओंको सुखदायक, लाल पत्तोंवाले, नन्दन वनके शृंगार तथा स्वर्ण सरीखी छालवाले उस वृक्षको देखकर सत्यभामाने कहा—हे प्रभो ! समस्त नन्दन वनके भूषण-स्वरूप इसी वृक्षको मैं लूँगी ॥८॥९॥ उनके ऐसा कहते ही हँसते हुए खेल-खेलमें श्रीकृष्णने उस वृक्षको उखाड़कर गरुड़की पीठपर रख लिया ॥ १० ॥ तभी नन्दनवनके सभी धनुर्बाणधारी रक्षक सहसा उठ खड़े हुए। क्रोधसे उनके होंठ काँप रहे थे। उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा—॥ ११ ॥ अरे मनुष्य ! तूने हम सबको तृणकी भाँति तुच्छ समझकर इन्द्राणीके प्रिय वृक्षको स्वेच्छासे क्यों उखाड़ लिया ? अब तू कहाँ जायगा ? ॥ १२ ॥ देखो, इन्द्राणीको प्रसन्न करनेके लिए देवताओंने समुद्रमंथनके समय इसको समुद्रसे निकाला था। सो तुम इसे लेकर कुशलतापूर्वक नहीं जा सकोगे ॥ १३ ॥ पूर्वकालमें जिन्होंने सब पर्वतोंके पंख काट डाले थे, उन वृत्रासुरको

तस्माद्गच्छ महावीर पारिजातं विहाय च । न दास्यामो द्रुमं तुभ्यं शक्रस्यानुचरा वयम् ॥१५॥
यदा दास्यति तुभ्यं वै पारिजातं पुरंदरः । न निषेधं करिष्यामो वनपाला वयं तदा ॥१६॥
तेषां भाषितमाकर्ण्य सत्यभामा रुषान्विता । तूष्णींभूते सति हरावभीता प्राह तान्नृप ॥१७॥

सत्योवाच

का शची पारिजातस्य कः शक्रो वा सुरेश्वरः । सामान्यः सर्वलोकानां यदीशोऽमृतमंथने ॥१८॥
समुत्पन्नः सुरः कस्मादेको गृह्णाति वासवः । यथा सुधा यथैवेंदुर्यथा श्रीर्वनचारिणः ॥१९॥
सामान्यः सर्वलोकस्य पारिजातस्तथा द्रुमः । भर्तृबाहुमहागर्वा रुणद्ध्येनं मृषा शची ॥२०॥
तत्कथ्यतामलं क्षान्त्या सत्याहारप्रतिद्रुमम् । कथ्यतां च द्रुतं गत्वा पौलोम्यै वचनं मम ॥२१॥
सत्यभामा वदत्येतदतिगर्वोद्धताक्षरम् । यदि त्वं दयिता भर्तुर्यदि वश्यः पतिस्तव ॥२२॥
मद्भर्तुर्हरतो वृक्षं तत्कारय निवारणम् । जानामि ते पतिं शक्रं युष्माञ्जानामि तत्त्वतः ॥२३॥
पारिजातं तथाप्येनं मानुषी हरयामि ते ।

गर्ग उवाच

कृष्णप्रियाया वचनं वनपाला निशम्य च ॥२४॥
इन्द्राणीनिकटं गत्वा प्रोचुः सर्वं यथोदितम् । रक्षकाणां वचः श्रुत्वा शची प्राह रुषान्विता ॥२५॥
कृष्णं निवारणार्थाय न यास्यंतं पुरंदरम् ॥

शच्युवाच

मदीयं पारिजातं वै माधवेन बलीयसा ॥२६॥
गृहीतं स्वप्रियार्थे वै त्वां तृणीकृत्य वज्रिणम् । तस्मान्मोचय वृक्षेशं पाकसूदन वृत्रहन् ॥२७॥
सत्यभामावशं कृष्णं विनिर्जित्य महारणे । त्वया वै पूर्वमद्रीणां पक्षा वज्रेण शातिताः ॥२८॥
भयं विसृज्य युद्धाय गच्छ तस्मात्सुरैर्वृतः । इति श्रुत्वा शचीवाक्यं शक्रो नमुचिसूदनः ॥२९॥

मारनेवाले वीर इन्द्रको जीतकर क्या तुम इस वृक्षको ले जा सकोगे ? ॥१४॥ अतएव हे महावीर ! तुम पारिजात वृक्षको यहीं छोड़कर चले जाओ । इन्द्रके अनुचर हम लोग पारिजात वृक्ष तुम्हें नहीं ले जाने देंगे ॥१५॥ यदि देवराज इन्द्र तुम्हें यह वृक्ष स्वयं दे दें, तब हम वनपाल तुम्हें ले जानेसे नहीं रोकेंगे ॥ १६ ॥ उनकी बात सुनकर देवी सत्यभामा कुपित हो उठीं । भगवान्‌को भी चुप देख निर्भीकभावसे उन्होंने उन वनपालोंसे कहा ॥ १७ ॥ सत्यभामा बोलीं—अरे ! इन्द्राणी अथवा देवराज इन्द्रका इस पारिजात वृक्षसे क्या सम्बन्ध ? यह तो समुद्रसे उत्पन्न हुआ है । अतएव इसपर सबका समान अधिकार है ॥ १८ ॥ ऐसी स्थितिमें अकेले इन्द्रका इसपर कैसे अधिकार होगा ? जैसे अमृत, चन्द्रमा और लक्ष्मीपर सबका हक है, वैसे ही यह वृक्ष भी सबका है । अपने पतिके बाहुबलका गर्व करके इन्द्राणी इसको ले जानेसे रोकती है तो वह मूर्ख है ॥१९॥२०॥ सो तुम लोग मुझे क्षमा न करके जाकर इन्द्राणीसे मेरी जबानी कह दो कि सत्यभामा पारिजात वृक्ष ले जा रही है ॥ २१ ॥ साथ ही वह बड़े गर्वके साथ कहती है कि यदि तू अपने पतिकी प्यारी हो और तेरा पति तेरे वशमें हो तो मेरा पति पारिजात वृक्षको ले जा रहा है, यदि रोक सक तो अपने पतिसे रुकवा । मैं तुम्हारे पति इन्द्र और तुमको भलीभाँति जानती हूँ ॥ २२ ॥ २३ ॥ मनुष्य होती हुई भी मैं पारिजात वृक्षको ले जा रही हूँ । गर्गमुनि बोले—कृष्णप्रिया सत्यभामाके वचन सुनकर सभी वनपाल भागकर इन्द्राणीके पास गये और सब बात यथावत् कह सुनायी । वनके रक्षकोंकी बात सुनकर इन्द्राणी श्रीकृष्णको रोकनेके लिए अनिच्छुक इन्द्रसे बहुत कुपित होकर बोलीं । शचीने कहा—हे स्वामिन् ! मेरे कल्पवृक्षको बलवान् कृष्णने अपनी प्रिया पत्नीके लिए हठात् हस्तगत कर लिया है । वे तुमको तृणकी भाँति तुच्छ समझते हैं । सो हे पाकसूदन ! हे वृत्रहन् ! जैसे भी हो, आप वृक्षराज पारिजात उनसे छीनिए ॥ २४–२७ ॥ सत्यभामाके वशवर्ती कृष्णको परास्त करके यह काम पूरा करिए । पूर्वकालमें आपने अपने वज्रप्रहारसे पर्वतोंके पंख फा।

न चकार तु युद्धाय मनो भयसमन्वितः । ततश्च बहुशः पत्न्या प्रेरितः कोपयुक्तया ॥३०॥
तदा कोपेन श्रीकृष्णं निन्दन्प्राह मदान्वितः ।

इन्द्र उवाच

येन ते पारिजातं वै गृहीतं सुन्दरानने ॥३१॥
मृधे तं पातयिष्यामि वज्रेण शतपर्वणा । इत्युक्त्वा वासवो राजन्नारुह्यैरावतं गजम् ॥३२॥
शुण्डादण्डैस्त्रिभिर्युक्तं रक्तकंबलमंडितम् । चतुर्भिः शोभितं दन्तैर्हिमाद्रिसदृशं शुभम् ॥३३॥
स्वर्णशृंखलया जुष्टं शुशुभे निर्जरैर्वृतः । तथा मरुद्गणाः सर्वे यमाग्निवरुणादयः ॥३४॥
रुद्राश्च द्वादशात्मानो वसवो धनदादयः । विद्याधराश्च गंधर्वाः साध्याः पितृगणादयः ॥३५॥
ततस्त्रिंशत्कोटिसंख्याः शक्रस्यानुचराः सुराः । एते समागताः क्रुद्धा योद्धुं श्रीकृष्णसंमुखे ॥३६॥
आहूताः केऽपि शक्रेण सहायार्थं तु स्वात्मनः । तथा तु नारदेनापि केचिद्देवास्तु प्रेषिताः ॥३७॥
ततः परिघनिस्त्रिंशगदाशूलपरश्वधैः । बभूवुस्त्रिदशाः सज्जाः शक्रे वज्रकरे स्थिते ॥३८॥

इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधचरित्रे सुमेरौ पारिजातहरणं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

(भगवान् श्रीकृष्णका पारिजातवृक्ष द्वारका लाना)

गर्ग उवाच

अथ दृष्ट्वा कृष्णचन्द्रो गजेन्द्रोपरि शोभितम् । इंद्रं देवपरीवारं युद्धाय समुपस्थितम् ॥ १ ॥
शंखं दध्मौ स्वयं कृष्णः शब्देनापूरयन्दिशः । मुमोच च शरव्रातं सहस्रायुधसंमितम् ॥ २ ॥
ततो दिशश्च गगनं दृष्ट्वा बाणशतान्वितम् । मुमुचुर्विबुधाः सर्वे शरांश्चक्रायुधोपरि ॥ ३ ॥
एकैकमस्त्रं शस्त्रं च सुरैर्मुक्तं सहस्रधा । स्वबाणैर्भगवान्कृष्णश्चिच्छेद नृप लीलया ॥ ४ ॥

डाले थे ॥ २८ ॥ अव आप निर्भय हो और देवताओंको साथ लेकर युद्धके लिए शीघ्र जाइए । नमुचि दैत्यके घातक इन्द्र शचीकी वात सुनकर भी भयभीत हो उन्होंने युद्धके लिए उत्साह नहीं दिखाया । इसपर अत्यन्त कुपित इन्द्राणीने उन्हें बहुत तरहसे उकसाया ॥ २९ ॥ ३० ॥ तव कुपित होकर इन्द्र बड़े घमंडसे श्रीकृष्णकी निन्दा करते हुए बोले । देवराजने कहा—हे सुमुखि ! जिसने तुम्हारे पारिजातका अपहरण किया है ॥ ३१ ॥ उसको मैं अपने शतपर्व वज्रसे रणभूमिमें मारूँगा । हे राजन् ! ऐसा कहकर इन्द्र अपने ऐरावत हाथीपर सवार हो गये ॥ ३२ ॥ ऐरावतके तीन सूँड़ें थीं और उसकी पीठपर लाल कम्वलका झूल पड़ा हुआ था । उसके चार दांत थे और वह हिमालयकी भाँति शुभ्र श्वेत वर्णका था ॥ ३३ ॥ सोनेके सिक्कड़ उसके पैरोंमें पड़े थे । जब देवताओंसे वह घिरा तो उसकी शोभा और बढ़ गयी । सभी मरुद्गण, यम, अग्नि तथा वरुण आदि देवता, ग्यारह रुद्र, वारह सूर्य, अष्टवसु, कुवेर, गन्धर्व, विद्यावर, साध्यगण और पितृगण आदि इन्द्रके अनुचर तैंतीस करोड़ देवता अत्यन्त कुपित होकर युद्ध करनेके लिए श्रीकृष्णके समक्ष आये ॥ ३४–३६ ॥ उनमेंसे कुछ देवताओंको इन्द्रने बुलाया था और कुछ देवता नारदजीके भेजे हुए थे ॥ ३७ ॥ जव इन्द्र हाथमें वज्र लेकर खड़े हुए तो सव देवता परिघ, निस्त्रिश, गदा, त्रिशूल, परश्वध (फरसा) आदि शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित हो गये ॥ ३८ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखण्डे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

गर्गमुनि बोले—हे राजन् ! भगवान् कृष्णने जब इन्द्रको ऐरावत हाथीपर सवार तथा समस्त देवताओंको युद्धके लिए सन्नद्ध देखा ॥ १ ॥ तब भीषण निनादसे सभी दिशाओंको पूरित करते हुए भगवानने अपना पांचजन्य शंख बजाया और हजारों आयुधोंसे भी भयंकर बाणसमूहकी वर्षा की ॥ २ ॥ सभी दिशाओं तथा समस्त गगनमंडलको अगणित बाणोंसे आच्छादित देखकर देवताओंने चक्रायुध श्रीकृष्णके ऊपर

पाशिनश्चाहिपाशं च चिच्छिदे पन्नगाशनः । यमराजेन प्रहितं दंडं लोकभयंकरम् ॥ ५ ॥
गदया पातयामास भूमौ कृष्णस्तु लीलया । चक्रेण धनदस्यापि शिबिकां तिलशो बहु ॥ ६ ॥
चकार कृष्णः सूर्यं च कोपदृष्ट्या हतौजसम् । महाग्निमागतं वीक्ष्य मुखेन च पपौ हरिः ॥ ७ ॥
ततो रुद्रगणैर्मुक्ताञ्शूलांश्चिच्छेद वै रुषा । चक्रेण च हरी रुद्रान्पातयामास बाहुना ॥ ८ ॥
ततो मरुद्गणा देवाः साध्या विद्याधरास्तथा । मुमुचुर्बाणपटलान्माधवोपरि भूपते ॥ ९ ॥
शरवर्षं प्रमुंचंतीं सेनां सर्वां समागताम् । विलोक्य सत्यभामा तु भयं प्राप तदा मृधे ॥१०॥
तां भीतां प्राह गोविंदः सत्ये त्वं मा भयं कुरु । आगतां शक्रसेनां वै हनिष्यामि न संशयः ॥११॥
इत्युक्त्वा भगवान्क्रुद्धो बाणैः शार्ङ्गधनुश्च्युतैः । ताडयामास विबुधान्क्रोष्टून्सिंहो नखैर्यथा ॥१२॥
ततः प्रत्याह गरुडं कंसहा कोपपूरितः । वैनतेय त्वया युद्धं न कृतं रणमंडले ॥१३॥
तच्छ्रुत्वा तु सभार्यं च स्कंधे संधारयन्हरिम् । कोपाद्विष्णुरथः सद्यः पक्षाभ्यां नखरांकुरैः ॥१४॥
तुंडेन भक्षयन्देवांस्ताडयन्विचचार वै । ततश्च दुद्रुवुर्देवा हन्यमाना गरुत्मता ॥१५॥
अथ बाणैर्महीपाल इंद्रोपेन्द्रौ महाबलौ । परस्परं च वर्षंतौ धाराभिरिव तोयदौ ॥१६॥
ऐरावतेन राजेंद्र सुपर्णो युयुधे तदा । गजस्तार्क्ष्यं तु दशनैर्जघान गरुडस्तथा ॥१७॥
गजं तु तुंडपक्षैश्च छिन्नं भिन्नं चकार ह । सुरैः समस्तैर्युयुधे वज्रिणा च यदूत्तमः ॥१८॥
भगवान्मघवंतं वै मघवा मधुसूदनम् । बाणैर्ववृषतुः क्रुद्धावन्योन्यविजिगीषिणौ ॥१९॥
छिन्नेष्वस्त्रेषु बाणेषु शस्त्रेष्वस्त्रेषु च त्वरम् । वज्रं जग्राह मघवा भगवाँश्चक्रमेव च ॥२०॥
हाहाकारस्तदेवासीत्त्रैलोक्ये सचराचरे । वज्रचक्रधरौ वीक्ष्य सुरेश्वरनरेश्वरौ ॥२१॥

बौछार आरम्भ कर दी ॥३॥ तब भगवान कृष्णने देवताओंके चलाये शस्त्रास्त्रोंको अपने बाणोंसे काटकर हजारों टुकड़े कर दिये ॥ ४ ॥ उसी समय गरुड़ने वरुणके पाशास्त्रको काट डाला। यमराज द्वारा प्रेरित लोकभयंकर यमदंडको भगवान कृष्णने अपनी कौमोदकी गदाकी मारसे भूमिपर गिरा दिया। अपने चक्रसे उन्होंने कुबेरकी पालकीको तिल-तिल करके छितरा दिया ॥ ५ ॥ ६ ॥ श्रीकृष्णने कुपित दृष्टिसे निहारकर सूर्यको निस्तेज कर दिया। उसी समय महान् अग्निको आते देखा तैसे ही उन्हें पी गये ॥ ७ ॥ इसके बाद बड़े क्रोधसे उन्होंने रुद्रगणोंके छोड़े हुए शूलोंको काटा और रुद्रोंको हाथसे ढकेलकर जमीनपर गिरा दिया ॥ ८ ॥ हे राजन्! इसके बाद सभी मरुद्गणों, साध्यों और विद्याधरोंने एक साथ भगवान् कृष्णपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ९ ॥ रणभूमिमें भीषण बाणवर्षा करती हुई सेनाको देखकर सत्यभामा भयभीत हो उठीं ॥ १० ॥ उन्हें डरी देखकर भगवान् कृष्णने कहा—हे सत्ये! तुम डरो नहीं। मैं यहाँ आयी हुई समस्त इन्द्रसेनाका संहार करूँगा। इसमें सन्देह नहीं है॥११॥ यह कहकर बड़े क्रोधके साथ उन्होंने अपने शार्ङ्गधनुषसे छूटे बाणोंके द्वारा देवताओंको इस प्रकार मार भगाया, जैसे सिंह सियारोंको नाखूनोंकी मारसे भगा देता है ॥ १२ ॥ तब कंसका वध करनेवाले श्रीकृष्ण क्रोधपूर्वक गरुड़से बोले—हे वैनतेय! तुमने संग्रामभूमिमें कुछ भी युद्ध नहीं किया ॥ १३ ॥ सो सुनकर भार्यासमेत श्रीकृष्णको अपने कंधेपर बिठाकर गरुड़ अतिशय क्रुद्ध भावसे अपने पंखों तथा नखोंसे देवताओंको मारते और मुखसे भक्षण करते हुए रणभूमिमें घूमने लगे। इस प्रकार गरुड़की भीषण मारसे व्यथित होकर सब देवता भाग खड़े हुए ॥ १४ ॥ १५ ॥ हे राजन्! इसके बाद इन्द्र और उपेन्द्र (कृष्ण) दोनों एक दूसरेपर इस प्रकार बाण बरसाने लगे, जैसे दो बादल जल बरसाते हों ॥ १६ ॥ उस समय गरुड़ गजराज ऐरावतसे भिड़ गये। जैसे ही उसने गरुड़पर अपने दाँतका प्रहार किया, तैसे ही गरुड़ने अपनी चोंच और पंखोंके प्रहारसे उसको लहूलुहान कर दिया। उधर सब देवताओंको साथ लेकर इन्द्र भगवान कृष्णसे जूझ रहे थे ॥ १७ ॥ १८ ॥ तब परस्पर एक दूसरेको जीतनेके लिए भगवान कृष्ण इन्द्रपर और इन्द्र श्रीकृष्णके ऊपर धुआँधार बाणवर्षा करने लगे ॥ १९ ॥ इस प्रकार जब दोनोंके सभी शस्त्रास्त्र कट गये, तब इन्द्रने वज्र और श्रीकृष्णने सुदर्शन चक्र सम्हाला ॥ २० ॥ वज्रधारी इन्द्र

न चकार तु युद्धाय मनो भयसमन्वितः । ततश्च बहुशः पत्न्या प्रेरितः कोपयुक्तया ॥३०॥
तदा कोपेन श्रीकृष्णं निन्दन्प्राह मदान्वितः ।

इन्द्र उवाच

येन ते पारिजातं वै गृहीतं सुन्दरानने ॥३१॥
मृधे तं पातयिष्यामि वज्रेण शतपर्वणा । इत्युक्त्वा वासवो राजन्नारुह्यैरावतं गजम् ॥३२॥
शुण्डादंडैस्त्रिभिर्युक्तं रक्तकंबलमंडितम् । चतुर्भिः शोभितं दन्तैर्हिमाद्रिसदृशं शुभम् ॥३३॥
स्वर्णशृंखलया जुष्टं शुशुभे निर्जरैर्वृतः । तथा मरुद्गणाः सर्वे यमाग्निवरुणादयः ॥३४॥
रुद्राश्च द्वादशात्मानो वसवो धनदादयः । विद्याधराश्च गंधर्वाः साध्याः पितृगणादयः ॥३५॥
ततस्त्रिंशत्कोटिसंख्याः शक्रस्यानुचराः सुराः । एते समागताः क्रुद्धा योद्धुं श्रीकृष्णसंमुखे ॥३६॥
आहूताः केऽपि शक्रेण सहायार्थं तु स्वात्मनः । तथा तु नारदेनापि केचिद्देवास्तु प्रेषिताः ॥३७॥
ततः परिघनिस्त्रिंशगदाशूलपरश्वधैः । बभूवुस्त्रिदशाः सज्जाः शक्रे वज्रकरे स्थिते ॥३८॥

इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधचरित्रे सुमेरौ पारिजातहरणं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

(भगवान् श्रीकृष्णका पारिजातवृक्ष द्वारका लाना)

गर्ग उवाच

अथ दृष्ट्वा कृष्णचन्द्रो गजेन्द्रोपरि शोभितम् । इंद्रं देवपरीवारं युद्धाय समुपस्थितम् ॥ १ ॥
शंखं दध्मौ स्वयं कृष्णः शब्देनापूरयन्दिशः । मुमोच च शरव्रातं सहस्रायुधसंमितम् ॥ २ ॥
ततो दिशश्च गगनं दृष्ट्वा बाणशतान्वितम् । मुमुचुर्विबुधाः सर्वे शरांश्चक्रायुधोपरि ॥ ३ ॥
एकैकमस्त्रं शस्त्रं च सुरैर्मुक्तं सहस्रधा । स्वबाणैर्भगवान्कृष्णश्चिच्छेद नृप लीलया ॥ ४ ॥

डाले थे ॥ २८ ॥ अब आप निर्भय हो और देवताओंको साथ लेकर युद्धके लिए शीघ्र जाइए । नमुचि दैत्यके घातक इन्द्र शचीकी बात सुनकर भी भयभीत हो उन्होंने युद्धके लिए उत्साह नहीं दिखाया । इसपर अत्यन्त कुपित इन्द्राणीने उन्हें बहुत तरहसे उकसाया ॥ २९ ॥ ३० ॥ तब कुपित होकर इन्द्र बड़े घमंडसे श्रीकृष्णकी निन्दा करते हुए बोले । देवराजने कहा—हे सुमुखि ! जिसने तुम्हारे पारिजातका अपहरण किया है ॥ ३१ ॥ उसको मैं अपने शतपर्व वज्रसे रणभूमिमें मारूँगा । हे राजन् ! ऐसा कहकर इन्द्र अपने ऐरावत हाथीपर सवार हो गये ॥ ३२ ॥ ऐरावतके तीन सूँड़ें थीं और उसकी पीठपर लाल कम्बलका झूल पड़ा हुआ था । उसके चार दाँत थे और वह हिमालयकी भाँति शुभ्र श्वेत वर्णका था ॥ ३३ ॥ सोनेके सिक्कड़ उसके पैरोंमें पड़े थे । जब देवताओंसे वह घिरा तो उसकी शोभा और बढ़ गयी । सभी मरुद्गण, यम, अग्नि तथा वरुण आदि देवता, ग्यारह रुद्र, बारह सूर्य, अष्टवसु, कुबेर, गन्धर्व, विद्याधर, साध्यगण और पितृगण आदि इन्द्रके अनुचर तैंतीस करोड़ देवता अत्यन्त कुपित होकर युद्ध करनेके लिए श्रीकृष्णके समक्ष आये ॥ ३४–३६ ॥ उनमेंसे कुछ देवताओंको इन्द्रने बुलाया था और कुछ देवता नारदजीके भेजे हुए थे ॥ ३७ ॥ जब इन्द्र हाथमें वज्र लेकर खड़े हुए तो सब देवता परिघ, निस्त्रिंश, गदा, त्रिशूल, परश्वध (फरसा) आदि शस्त्रोंसे सुसज्जित हो गये ॥ ३८ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

गर्गमुनि बोले—हे राजन् ! भगवान् कृष्णने जब इन्द्रको ऐरावत हाथीपर सवार तथा समस्त देवताओंको युद्धके लिए सन्नद्ध देखा ॥ १ ॥ तब भीषण निनादसे सभी दिशाओंको पूरित करते हुए भगवानने अपना पांचजन्य शंख बजाया और हजारों आयुधोंसे भी भयंकर बाणसमूहकी वर्षा की ॥ २ ॥ सभी दिशाओं तथा समस्त गगनमंडलको अगणित बाणोंसे आच्छादित देखकर देवताओंने चक्रायुध श्रीकृष्णपर बाणोंकी

पाशिनश्चाहिपाशं च चिच्छिदे पन्नगाशनः। यमराजेन प्रहितं दंडं लोकभयंकरम् ॥ ५ ॥
गदया पातयामास भूमौ कृष्णस्तु लीलया। चक्रेण धनदस्यापि शिबिकां तिलशो बहु ॥ ६ ॥
चकार कृष्णः सूर्यं च कोपदृष्ट्या हतौजसम्। महाग्निमागतं वीक्ष्य मुखेन च पपौ हरिः ॥ ७ ॥
ततो रुद्रगणैर्मुक्ताञ्शूलांश्चिच्छेद वै रुषा। चक्रेण च हरी रुद्रान्पातयामास बाहुना ॥ ८ ॥
ततो मरुद्गणा देवाः साध्या विद्याधरास्तथा। मुमुचुर्बाणपटलान्माधवोपरि भूपते ॥ ९ ॥
शरवर्षं प्रमुंचंतीं सेनां सर्वां समागताम्। विलोक्य सत्यभामा तु भयं प्राप तदा मृधे ॥१०॥
तां भीतां प्राह गोविंदः सत्ये त्वं मा भयं कुरु। आगतां शक्रसेनां वै हनिष्यामि न संशयः ॥११॥
इत्युक्त्वा भगवान्क्रुद्धो बाणैः शार्ङ्गधनुश्च्युतैः। ताडयामास विबुधान्क्रोष्टून्सिंहो नखैर्यथा ॥१२॥
ततः प्रत्याह गरुडं कंसहा कोपपूरितः। वैनतेय त्वया युद्धं न कृतं रणमंडले ॥१३॥
तच्छ्रुत्वा तु सभार्यं च स्कंधे संधारयन्हरिम्। कोपाद्विष्णुरथः सद्यः पक्षाभ्यां नखरांकुरैः ॥१४॥
तुंडेन भक्षयन्देवांस्ताडयन्विचचार वै। ततश्च दुद्रुवुर्देवा हन्यमाना गरुत्मता ॥१५॥
अथ बाणैर्महीपाल इंद्रोपेन्द्रौ महाबलौ। परस्परं च वर्षंतौ धाराभिरिव तोयदौ ॥१६॥
ऐरावतेन राजेंद्र सुपर्णो युयुधे तदा। गजस्तार्क्ष्यं तु दशनैर्जघान गरुडस्तथा ॥१७॥
गजं तु तुंडपक्षैश्च छिन्नं भिन्नं चकार ह। सुरैः समस्तैर्युयुधे वज्रिणा च यदूत्तमः ॥१८॥
भगवान्मघवंतं वै मघवा मधुसूदनम्। बाणैर्ववृषतुः क्रुद्धावन्योन्यविजिगीषिणौ ॥१९॥
छिन्नेष्वस्त्रेषु बाणेषु शस्त्रेष्वस्त्रेषु च त्वरम्। वज्रं जग्राह मघवा भगवाँश्चक्रमेव च ॥२०॥
हाहाकारस्तदैवासीत्त्रैलोक्ये सचराचरे। वज्रचक्रधरौ वीक्ष्य सुरेश्वरनरेश्वरौ ॥२१॥

बौछार आरम्भ कर दी ॥३॥ तब भगवान कृष्णने देवताओंके चलाये शस्त्रास्त्रोंको अपने बाणोंसे काटकर हजारों टुकड़े कर दिये ॥ ४ ॥ उसी समय गरुड़ने वरुणके पाशास्त्रको काट डाला। यमराज द्वारा प्रेरित लोकभयंकर यमदंडको भगवान कृष्णने अपनी कौमोदकी गदाकी मारसे भूमिपर गिरा दिया। अपने चक्रसे उन्होंने कुबेर-की पालकीको तिल-तिल करके छितरा दिया ॥ ५ ॥ ६ ॥ श्रीकृष्णने कुपित दृष्टिसे निहारकर सूर्यको निस्तेज कर दिया। उसी समय महान् अग्निको आते देखा तैसे ही उन्हें पी गये ॥ ७ ॥ इसके बाद बड़े क्रोधसे उन्होंने रुद्रगणोंके छोड़े हुए शूलोंको काटा और रुद्रोंको हाथसे ढकेलकर जमीनपर गिरा दिया ॥ ८ ॥ हे राजन् ! इसके बाद सभी मरुद्गणों, साध्यों और विद्याधरोंने एक साथ भगवान् कृष्णपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ९ ॥ रणभूमिमें भीषण बाणवर्षा करती हुई सेनाको देखकर सत्यभामा भयभीत हो उठीं ॥ १० ॥ उन्हें डरी देखकर भगवान् कृष्णने कहा—हे सत्ये ! तुम डरो नहीं। मैं यहाँ आयी हुई समस्त इन्द्रसेनाका संहार करूँगा। इसमें सन्देह नहीं है ॥११॥ यह कहकर बड़े क्रोधके साथ उन्होंने अपने शार्ङ्गधनुषसे छूटे बाणोंके द्वारा देवताओंको इस प्रकार मार भगाया, जैसे सिंह सियारोंको नाखूनोंकी मारसे भगा देता है ॥ १२ ॥ तब कंसका वध करनेवाले श्रीकृष्ण क्रोधपूर्वक गरुड़से बोले—हे वैनतेय ! तुमने संग्रामभूमिमें कुछ भी युद्ध नहीं किया ॥ १३ ॥ सो सुनकर भार्यासमेत श्रीकृष्णको अपने कंधेपर बिठाकर गरुड़ अतिशय क्रुद्ध भावसे अपने पंखों तथा नखोंसे देवताओंको मारते और मुखसे भक्षण करते हुए रणभूमिमें घूमने लगे। इस प्रकार गरुड़की भीषण मारसे व्यथित होकर सब देवता भाग खड़े हुए ॥ १४ ॥ १५ ॥ हे राजन् ! इसके बाद इन्द्र और उपेन्द्र (कृष्ण) दोनों एक दूसरेपर इस प्रकार बाण बरसाने लगे, जैसे दो बादल जल बरसाते हों ॥ १६ ॥ उस समय गरुड़ गजराज ऐरावतसे भिड़ गये। जैसे ही उसने गरुड़पर अपने दाँतका प्रहार किया, तैसे ही गरुड़ने अपनी चोंच और पंखोंके प्रहारसे उसको लहूलुहान कर दिया। उधर सब देवताओंको साथ लेकर इन्द्र भगवान कृष्णसे जूझ रहे थे ॥ १७ ॥ १८ ॥ तब परस्पर एक दूसरेको जीतनेके लिए भगवान कृष्ण इन्द्रपर और इन्द्र श्रीकृष्णके ऊपर धुआँधार बाणवर्षा करने लगे ॥ १९ ॥ इस प्रकार जब दोनोंके सभी शस्त्रास्त्र कट गये, तब इन्द्रने वज्र और श्रीकृष्णने सुदर्शन चक्र सम्हाला ॥ २० ॥ वज्रधारी इन्द्र

जग्राह वामहस्तेन क्षिप्तं वज्रं च वज्रिणा । न मुमोच हरिश्चक्रं तिष्ठ तिष्ठेत्युवाच च ॥२२॥
लज्जितं वज्रहीनं च ताक्ष्र्येण क्षतवाहनम् । भीतं पलायमानं चालोक्य सत्या जहास वै ॥२३॥
शची वीक्ष्यागतं शक्रं प्राह कोपेन पूरिता । एकाकिना माधवेन प्रधने तु विनिर्जितः ॥२४॥
महासैन्ययुतस्त्वं वै तस्मात्ते धिग्बलं सुर । अहं गत्वा रणे कृष्णं विनिर्जित्य सुरद्रुमम् ॥२५॥
मोचयामि न संदेहः पश्य त्वं च सुराधम ।

गर्ग उवाच

इत्युक्त्वा शिबिकां शीघ्रमारुह्य कुपिता शची ॥२६॥
योद्धुकामा ययौ राजन्पुनः सुरगणैर्वृता । तामागतां वीक्ष्य कृष्णो युद्धाय न दधे मनः ॥२७॥
ततः सत्या हरिं प्राह रुषा प्रस्फुरिताधरा । अद्य युद्धं करिष्यामि शच्या सार्द्धमहं प्रभो ॥२८॥
तच्छ्रुत्वा प्रहसन्कृष्णो दत्त्वा तस्यै सुदर्शनम् । स्थापयित्वा सुपर्णे च जग्राह द्युतरुं स्वयम् ॥२९॥
यदा हरिप्रिया क्रुद्धा युद्धं कर्तुं समागता । तदा सर्वत्र ब्रह्मांडे चासीत्कोलाहलो महान् ॥३०॥
भयं प्रापुः सुराः सर्वे विधिशक्रादयो नृप । तदैव गीष्पती राजन्नाययौ शक्रनोदितः ॥३१॥
आगत्य वारयामास योद्धुकामां पुलोमजाम् ।

बृहस्पतिरुवाच

शची शृणु मदीयं वै वचनं बहुबुद्धिदम् ॥३२॥
कृष्णस्तु भगवान्साक्षात्सत्यभामा च धीमती । तया सार्द्धं कथं युद्धं करिष्यसि हरिप्रिये ॥३३॥
तस्मादवज्ञां संत्यज्य ऋभुक्षे त्वं गृहं व्रज । सत्यां वै पारिजातं च दत्त्वा रक्ष सुरान्भयात् ॥३४॥
यद्भयाद्वाति पवनो वह्निर्दहति यद्भयात् । भयाद्यन्मृत्युश्चरति ब्रध्नो व्रजति यद्भयात् ॥३५॥
यस्माद्बिभेति ब्रह्मा वै कपर्दी च पुरंदरः । तं न जानासि कृष्णं वै भौमं हत्वा समागतम् ॥३६॥

तथा चक्रधारी श्रीकृष्णको देखकर सचराचर सारी त्रिलोकीमें हाहाकार मच गया ॥ २१ ॥ जब इन्द्रने भगवानपर वज्र चलाया, तब श्रीकृष्णने उसे बायें हाथसे पकड़ लिया। किन्तु भगवान्‌ने इन्द्रपर चक्र न चलाकर 'ठहरो-ठहरो' कहने लगे ॥ २२ ॥ तब वज्रहीन, लज्जित एवं जिनके हाथीको गरुड़ने घायल कर दिया था और जो बड़े वेगसे भागे जा रहे थे, उन देवराज इन्द्रको देखकर सत्यभामा बहुत हँसीं ॥ २३ ॥ उसी समय इन्द्रको इस प्रकार भागकर आते देख इन्द्राणी बड़े क्रोधसे बोलीं—अकेले कृष्णसे तुम रणभूमिमें हार गये ॥ २४ ॥ तुम्हारे पास इतनी बड़ी अजेय देवसेना थी। तुम्हारे पराक्रमको धिक्कार है। हे अधम देवता! अब मैं रणमें जाऊँगी और कृष्णको जीतकर पारिजात वृक्ष वापस ले आऊँगी ॥ २५ ॥ इसमें कोई सन्देह नहीं है, तुम मेरा पराक्रम देखो। गर्गमुनि बोले—हे राजन्! ऐसा कहकर कुपित इन्द्राणी पालकीमें जा बैठीं ॥ २६ ॥ तदनन्तर देवताओंकी सेना लेकर वे युद्ध करनेके लिए श्रीकृष्णके समक्ष जा पहुँचीं। इन्द्राणीको देखकर श्रीकृष्णने युद्धका विचार त्याग दिया ॥ २७ ॥ तभी अत्यधिक कुपित सत्यभामाने कहा—हे प्रभो! आज मैं स्वयं जाकर इन्द्राणीके साथ युद्ध करूँगी। उस समय क्रोधसे उनके होंठ काँप रहे थे ॥ २८ ॥ यह सुनकर हँसते हुए श्रीकृष्णने उन्हें सुदर्शन चक्र थम्हा दिया और गरुड़पर विठाकर पारिजात वृक्ष अपने हाथमें ले लिया ॥ २९ ॥ इस प्रकार जब हरिप्रिया सत्यभामा युद्धके लिए रणभूमिमें आयीं, तब समस्त ब्रह्माण्डमें कोलाहल मच गया ॥३०॥ ब्रह्मा तथा इन्द्रादि सभी देवता भयभीत हो उठे। उसी समय इन्द्रके भेजे हुए देवगुरु बृहस्पति रणमें आ पहुँचे ॥३१॥ आते ही उन्होंने युद्धके लिए उद्यत इन्द्राणीको रोका और कहा—हे शची! अत्यधिक बुद्धि प्रदान करनेवाला मेरा वचन सुनो ॥ ३२ ॥ ये श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान् हैं और सत्यभामा लक्ष्मी हैं। हे हरिप्रिये! उनके साथ तुम युद्ध कैसे करोगी? ॥ ३३ ॥ अतएव हे इन्द्राणी! यह दुराग्रह त्यागकर तुम अपने घर जाओ और सत्यभामाको कल्पवृक्ष देकर देवताओंका भय दूर करो ॥ ३४ ॥ जिसके भयसे वायु चलती है, अग्नि जलती है, मृत्यु मारती है और जिनके भयसे सूर्य प्रकाश करते हैं ॥ ३५ ॥ जिनसे ब्रह्मा, शिव और इन्द्र डरते हैं, उन श्रीकृष्णको आप नहीं जानतीं। वे अभी भौमासुरका वध

गर्ग उवाच

इति श्रुत्वा शची वाक्यं भामां कृष्णं च लज्जया । नत्वा जगाम सदनमात्मानं च विगर्हती ॥३७॥
ततः शक्रं नमंतं च व्रीडितं वीक्ष्य माधवः । उवाच शक्र मा व्रीडां गते च भिदुरे कुरु ॥३८॥
द्वंद्वयुद्धे हि चैकस्य भविष्यति पराजयः । इति श्रुत्वा च प्रोवाच वचनं पाकशासनः ॥३९॥

इन्द्र उवाच

यस्मिञ्जगत्सकलमेतदनादिमध्ये यस्माद्यतश्च न भविष्यति सर्वभूतात् ।
तेनोद्भवप्रलयपालनकारणेन व्रीडा कथं भवति देवि निराकृतस्य ॥४०॥
सकलभुवनसूतेर्मूर्तिरन्याऽतिसूक्ष्मा विदितसकलवेद्यैर्ज्ञायते यस्य नान्यैः ।
तमजमकृतमीशं शाश्वतं स्वेच्छयैनं जगदुपकृतिसत्यं को विजेतुं समर्थः ॥४१॥

इत्युक्त्वा सत्यभामां वै शक्रस्तूष्णीं बभूव ह । ततः प्रहस्य भगवान्प्राह गंभीरया गिरा ॥४२॥
भवान्देवाधिपः शक्र वयं भूमिनिवासिनः । क्षंतव्यमपराधं तद्भवता च कृतं मया ॥४३॥
भोः शक्र पारिजातश्च नीयतामुचितास्पदम् । गृहीतोऽयं मया सत्यभामावचनकारणात् ॥४४॥
गृहाण कुलिशं चेदं प्रहितं यत्त्वया मयि । तवैवास्त्रं शुनासीर तद्वैरिषु निवारणम् ॥४५॥

इन्द्र उवाच

कृष्ण किं मोहयसि मां नरोऽहमिति किं वद । जानीमस्त्वां जगन्नाथं न तु सूक्ष्मविदो वयम् ॥४६॥
योऽसि सोऽसि जगत्त्राण प्रवृत्तौ नाथ संस्थितिः। विश्वस्य शल्यनिष्कर्षं करोषि गरुडध्वज ॥४७॥
अयं च नीयतां कृष्ण पारिजातः कुशस्थलीम् । नरलोके त्वया त्यक्ते नायं संस्थास्यते भुवि ॥४८॥
आगमिष्यति गोविन्द स्वयमेव त्रिविष्टपम् ।

करके आये हैं ॥ ३६ ॥ गर्गमुनि बोले—हे राजन् ! देवगुरु बृहस्पतिके वचन सुनकर इन्द्राणी सत्यभामा तथा श्रीकृष्णको प्रणाम करके स्वयं अपनी निन्दा करती हुई अपने घर चली गयीं ॥ ३७ ॥ तदनन्तर लज्जित इन्द्रको प्रणाम करते देखकर भगवान् कृष्णने कहा—हे देवराज ! आप वज्रके व्यर्थ हो जानेपर लज्जित न हों ॥ ३८ ॥ क्योंकि दो व्यक्तियोंके युद्धमें एककी पराजय होती ही है । सो सुनकर इन्द्रने कहा । देवराज बोले—भगवन् ! जिसका न आदि है, न मध्य है और न अन्त है। जिसमें सारा जगत् समाया हुआ है, जिससे समस्त विश्वकी उत्पत्ति होती है और जो सृष्टि, पालन तथा संहारके कारण हैं, उनसे हारनेपर मुझे लज्जा क्यों आयेगी ॥ ३९ ॥ ४० ॥ जो अखिल विश्वके उत्पत्तिस्थान हैं, जिनकी एक अन्य अति सूक्ष्म-मूर्ति भी है, जो जानने योग्य सब बातोंको जानते हैं, उनके सिवाय अन्य कोई भी प्राणी उनके वास्तविक स्वरूपको नहीं जान सकता । जो सारे संसारका उपकार करते हैं, उन्हें जीतनेमें भला कौन समर्थ हो सकता है । क्योंकि वे अज हैं, स्वतः सिद्ध हैं, ईश्वर हैं और अनादि सिद्ध हैं ॥ ४१ ॥ सत्यभामासे ऐसा कहकर इन्द्र चुप हो गये । तब तनिक हँसकर भगवान् कृष्ण बड़ी गम्भीर वाणीमें बोले ॥ ४२ ॥ भगवान्ने कहा—हे देवराज! आप देवताओंके राजा हैं और हम भूमिके निवासी मनुष्य हैं । सो आप मेरे किये हुए अपराधको क्षमा कर दें ॥४३॥ हे इन्द्र ! इस पारिजात वृक्षको भी आप अपने अचल स्थानपर ले जाइए । सत्यभामाकी बातोंमें आकर मैंने इसका अपहरण किया था ॥ ४४ ॥ आपने जो वज्र मेरे ऊपर चलाया था, उसको भी लेते जाइए । हे शुनासीर ! यह आपका अस्त्र शत्रुओंका निवारक है ॥ ४५ ॥ इन्द्रने कहा—हे श्रीकृष्ण ! आप 'मैं मनुष्य हूँ' ऐसा कहकर मुझे मोहमें क्यों डाल रहे हैं ? मैं आपको अखिल विश्वका नायक मानता हूँ । इससे अधिक सूक्ष्म बातोंकी जानकारी मुझे नहीं है ॥ ४६ ॥ हे नाथ ! आप जो है, सो हैं । किन्तु इस जगत्की रक्षा आपसे ही होती है । हे गरुडध्वज ! इस जगत्के काँटेको आप ही निकालते हैं ॥ ४७ ॥ हे कृष्ण ! आप इस पारिजातको द्वारका ले जाइए । जब आप मानवलोक त्याग देंगे, तब यह धरतीपर नहीं रह सकेगा ॥ ४८ ॥ यह स्वयं पुनः स्वर्गलोकमें चला आयेगा । गर्गमुनि बोले—इन्द्रकी वाणी सुनकर

श्रीगर्ग उवाच

तच्छ्रुत्वा वज्रिणे वज्रं दत्त्वा सोऽप्याजगाम कौ ॥४९॥
द्वारकां द्वारकानाथः स्तूयमानः सुरेश्वरैः । उपाध्माय ततः कंबुं संस्थितो द्वारकोपरि ॥५०॥
उत्पादयामास मुदं द्वारकावासिनां नृप । सुपर्णादवतीर्याथ कृष्णो भामासमन्वितः ॥५१॥
पारिजातं च निष्कुटे स्थापयामास लीलया । जुष्टं सुरद्रुमं कृष्णो भ्रमरैः स्वर्गपक्षिभिः ॥५२॥
अथैकस्मिन्मुहूर्ते वै माधवे माधवः स्वयम् । उवाह राजकन्याश्च पृथग्गेहेषु धर्मतः ॥५३॥
षोडशस्त्रीसहस्राणि अष्टाधिकशतानि च । तावंति चक्रे रूपाणि परिपूर्णतमो हरिः ॥५४॥
एकैकस्यां दश दश कृष्णोऽजीजनदात्मजान् । यावत्य आत्मनो भार्या अमोघगतिरीश्वरः ॥५५॥

इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखंडे श्रीगर्ग-वज्रनाभसंवादे पारिजातानयनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

(श्रीकृष्णचरित्रका वर्णन)

श्रीगर्ग उवाच

पुनस्ते कथयिष्यामि यशः संक्षेपतो हरेः । चकार हास्यं भगवान्रुक्मिण्या सह चाद्भुतम् ॥ १ ॥
अनिरुद्धविवाहे चावधीद्भ्रात्रा तु रुक्मिणम् । ऊषास्वप्नकथा चित्रलेखया हरणं हरेः ॥ २ ॥
पौत्रस्य बन्धनं चापि बाणयादवसंयुगः । कृष्णशंकरयोर्युद्धे ज्वरसंस्तवनं ततः ॥ ३ ॥
बाणबाहुच्छिदो रुद्रस्तुतिर्बाणस्य रक्षणे । ऊषाप्राप्तिर्नृगाख्यानं बलस्य च व्रजागमम् ॥ ४ ॥
गोपीविलापो रामस्य स्तुतिर्गोपीभिरेव च । यमुनाकर्षणं काशीपतिपौंड्रकघातनम् ॥ ५ ॥
कृत्योत्पत्तिर्दाहनं च काश्याः कपिवधस्ततः । सांबस्य बन्धने रामविक्रमो गजसाह्वये ॥ ६ ॥

श्रीकृष्णने वज्र इन्द्रको दे दिया और वहाँसे द्वारका चले आये ॥ ४९ ॥ यहाँ आनेपर देवताओंने उनकी स्तुति की। तभी भगवान्‌ने अपना पांचजन्य शंख बजाकर अपने आगमनकी सूचना दी ॥ ५० ॥ ऐसा करके उन्होंने द्वारकावासियोंके मनमें हर्षका संचार कर दिया। इसके बाद वे सत्यभामाके साथ गरुड़की पीठसे नीचे उतरे ॥ ५१ ॥ फिर स्वर्गीय पक्षियों तथा भ्रमरोंसे सेवित पारिजातको उन्होंने सत्यभामाके महलवाले बगीचेमें लगा दिया ॥ ५२ ॥ तदनन्तर वैशाखमासमें एक दिन एक ही मुहूर्तमें भगवान् कृष्णने पृथक्-पृथक् घरोंमें भौमासुरके राजमहलसे लायी हुई सोलह हजार एक सौ राजकन्याओंका पाणिग्रहण किया ॥ ५३ ॥ उस समय भगवान्‌ने जितनी कन्यायें थीं, उतने ही रूप धारण किया था ॥ ५४ ॥ तदनन्तर अमोघगति भगवान्‌ने अपनी प्रत्येक पत्नीसे दस-दस पुत्र उत्पन्न किये ॥ ५५ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

उग्रसेनराजसूये जघान शकुनिं हरिः । नारदेन हरेर्लीलादर्शनं गृहमेधिनाम् ॥ ७ ॥
आह्निकं वासुदेवस्य राजदूतेन वै स्तुतिः । इन्द्रप्रस्थे च गमनमुद्धवेन च यादवैः ॥ ८ ॥
जरासन्धं च भीमेन निजघान गिरिव्रजे । सहदेवाभिषेकं च राजभिश्च कृता स्तुतिः ॥ ९ ॥
राजसूये हरेः पूजा शिशुपालवधस्तथा । दुर्योधनाभिमानस्य भंगः प्रद्युम्नशाल्वयोः ॥१०॥
युद्धं त्रिनवरात्रं च कृष्णस्यागमनं ततः । शाल्वस्य दन्तवक्रस्य तद्भ्रातुर्लीलया वधः ॥११॥
ततो गजाह्वये राजन्दुर्द्यूतेन च कौरवैः । विनिर्जितो भ्रातृयुक्तः सभार्यस्तु युधिष्ठिरः ॥१२॥
वनं जगाम संस्थाप्य पृथां च विदुरगृहे । गत्वाऽरण्ये निवासं वै चकार बहुभिर्दिनैः ॥१३॥
ततश्च पालयामास महीं दुर्योधनो मुदा । प्रजास्तं नाभ्यनन्दन्स्म पांडुपुत्रे गते सति ॥१४॥
अरण्ये वर्तमानान्वै पांडवान्दुःखकर्षितान् । मिलित्वाऽऽश्वासयामास ह्यनंतश्चैकदा हरिः ॥१५॥
दृष्ट्वाऽथ पांडवान्कृष्णो ह्याजगाम कुशस्थलीम् । उग्रसेनसुधर्मायां शशंस चेष्टितं च तत् ॥१६॥

तच्च श्रुत्वा यादवाश्च प्रोचुः सर्वे हि विस्मिताः ।

यादवा ऊचुः

किं कृतं धृतराष्ट्रेण दीना भ्रातृसुता अहो ॥१७॥
दुर्द्यूतेन विनिर्जित्याधर्मान्निष्कासिता गृहात् । स्वाधर्मेण विनश्यंति कौरवा राज्यलोलुपाः ॥१८॥
पांडवेभ्यस्तु भगवांस्तस्माद्दास्यति संपदम् ।

गर्ग उवाच

इति श्रुत्वा यादवानां वाक्यं च मधुसूदनः ॥१९॥
आययौ वै स्वभवनं सायंकाले नृपेश्वर । आगतं स्वात्मजं वीक्ष्य नमंतं देवकी मुदा ॥२०॥
दत्त्वाऽऽशिषं भोजनं च कारयामास वै सती ॥२१॥

वानरका वध और साम्बके कैद होनेपर हस्तिनापुरमें बलरामके बलका प्रदर्शन हुआ ॥ ६ ॥ राजा उग्रसेनके राजसूय यज्ञमें श्रीकृष्णने शकुनीका वध किया। बादमें नारदजीने श्रीकृष्णके अन्तःपुरमें भगवान्की गृहस्थी देखी ॥ ७ ॥ उसके बाद श्रीकृष्णकी दिनचर्याका वर्णन है। राजसभामें आकर राजदूतकी स्तुति और उद्धवकी सलाहपर भगवान्का यादवोंके साथ इन्द्रप्रस्थ प्रस्थान हुआ ॥ ८ ॥ वहाँसे राजगृह जाकर भगवान्ने भीमसेनके हाथों जरासंधका वध कराया और राजगृहका राज्य सहदेवको दिया। वहाँ अनेक राजाओंने उनकी स्तुति की ॥ ९ ॥ युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें श्रीकृष्णका पूजन, शिशुपालवध, दुर्योधनका मदमर्दन, सत्ताइस दिनोंतक प्रद्युम्नका शाल्वके साथ युद्ध, पुनः श्रीकृष्णका आगमन, द्वारका आकर भगवान्ने लीलापूर्वक शल्य, दन्तवक्र तथा उसके भ्राता विदूरथका वध किया ॥ १० ॥ ११ ॥ हे राजन्! हस्तिनापुरमें कौरवोंने कपटभरे जुएमें भाइयों समेत युधिष्ठिरको हरा दिया ॥ १२ ॥ तब युधिष्ठिर माता कुन्तीको विदुरके घर छोड़कर वनको चले गये और वहाँ बहुत दिनों तक निवास किया ॥ १३ ॥ युधिष्ठिरके चले जानेपर दुर्योधन बड़े हर्षसे राज्य करने लगा। किन्तु प्रजावर्गने पाण्डवोंके वनगमनका अभिनन्दन नहीं किया ॥ १४ ॥ वनमें निवास करते समय जब पाण्डव दुःखसे विह्वल थे, तब एक दिन भगवान्ने उनके पास जाकर उन्हें आश्वासन दिया ॥ १५ ॥ इस प्रकार पाण्डवोंसे मिलकर भगवान् कृष्ण द्वारका लौट आये और राजा उग्रसेनकी सुधर्मा सभामें सब वृत्तान्त कहा ॥ १६ ॥ सो सुनकर सभी यादव बहुत विस्मित हुए और उन्होंने कहा—अपने भाईके पुत्रोंके साथ धृतराष्ट्रने यह कैसा व्यवहार किया ॥ १७ ॥ उन्होंने कपटसे जुएमें हराकर पाण्डवोंको घरसे निकाल दिया। राज्यलोलुप कौरव अपने अधर्मसे ही नष्ट हो जायँगे ॥ १८ ॥ अब भगवान् दुर्योधनसे सारी सम्पत्ति लेकर पाण्डवोंको दे देंगे। गर्गमुनि बोले—हे राजन्! यादवोंकी बात सुनकर मधुसूदन कृष्ण सायंकालके समय अपने घर लौट आये। उन्हें आते और प्रणाम करते देख माता

ततः स चाययौ कृष्णः स्वस्त्रीणां मंदिराणि च । प्रियाभिः पूजितस्तत्र चकार शयनं किल ॥२२॥

इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखण्डे श्रीकृष्णचरित्रवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

(राजा उग्रसेनका अश्वमेधयज्ञोद्योग)

गर्ग उवाच

देवर्षिश्चैकदा राजन्दृष्ट्वा रामं च केशवम् । स्वर्वीणां वादयन्कृष्णगाथां गायन्समाययौ ॥ १ ॥
ब्रह्मलोकात्सर्वलोकान्पश्यन्भास्करसन्निभः । सार्कं तुंबुरुणा पिंगजटाभारेण शोभितः ॥ २ ॥
किंचिच्छ्यामो मृगाक्षश्च काश्मीरतिलकैर्युतः । पीतेन धौतवस्त्रेण तथा पीतांबरेण च ॥ ३ ॥
रंगवल्लीमालया च व्रजस्त्रीचंदनेन च । वृद्धः पंचदशाब्दैश्च मंडितः शुशुभे बहु ॥ ४ ॥
दृष्ट्वा तमागतं राजा शक्रसिंहासने स्थितः । सुधर्मायां स चोत्थाय नत्वा सिंहासनं ददौ ॥ ५ ॥
तदंघ्री चावनिज्याथ कृत्वा पूजनमुत्तमम् । तज्जलं मस्तके धृत्वा चोग्रसेनस्तमब्रवीत् ॥ ६ ॥

उग्रसेन उवाच

अद्य मे सफलं जन्म सफलं सदनं च मे । अद्य मे सफलश्चात्मा देवर्षे तव दर्शनात् ॥ ७ ॥
नमस्तस्मै भगवते नारदाय महात्मने । कामक्रोधविहीनाय ऋषीणां प्रवराय च ॥ ८ ॥
किमर्थमागतोऽसि त्वमाज्ञां कुरु ममोपरि । निशम्य वचनं तस्य ऋषिर्निर्जरदर्शनः ॥ ९ ॥
उवाच नृपशार्दूलं मनसा नोदितो हरेः ।

नारद उवाच

यादवेंद्र महाराज धन्यस्त्वं पृथिवीपते ॥१०॥
त्वद्भक्त्या कौ निवसति बलेन सह केशवः । राजसूयः क्रतुवरः पुरा मद्वचनात्त्वया ॥११॥

देवकीने बड़े मुदित मनसे आशीष दिया और भोजन कराया ॥ १९–२१ ॥ इसके बाद वे अपनी पत्नियोंके महलोंमें पधारे। वहाँ उनसे सत्कृत होकर भगवान् सो गये ॥ २२ ॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायामश्वमेधखंडे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

कृतः श्रीकृष्णकृपया द्वारकायां सुखेन च । येन त्रिलोके ते कीर्तिर्नृप विस्तारिता भुवि ॥१२॥
राजसूयाश्वमेधौ च कठिनौ मंडलेश्वरैः । हरिभक्तस्य राजेन्द्र सुलभौ चक्रवर्तिनः ॥१३॥
द्वयोर्मध्ये कृतश्चैको राजसूयस्त्वया नृप । तथा युधिष्ठिरेणापि कृतः कृष्णाज्ञया ततः ॥१४॥
द्वापरांते भारते तु हयमेधः क्रतूत्तमः । न कृतः केन राज्ञापि मुक्तिदस्त्वघनाशनः ॥१५॥
द्विजहा विश्वहा गोघ्नो वाजिमेधेन शुद्धयति । तस्माद्वरं च यज्ञानां हयमेधं वदंति हि ॥१६॥
निष्कारणं नृपश्रेष्ठ वाजिमेधं करोति यः । व्रजेत्सुपर्णकेतोः स सदनं सिद्धदुर्लभम् ॥१७॥
इति देवर्षिवचनमुग्रसेनो निशम्य च । हयमेधं यज्ञवरं कर्तुं चक्रे मतिं नृप ॥१८॥
तदैव सह रामेण कृष्णं वीक्ष्यागतं नृपः । पूजयित्वाऽऽसने स्थाप्य साकं च ऋषिणाब्रवीत् १९॥

उग्रसेन उवाच

देवदेव जगन्नाथ जगदीश जगन्मय । वासुदेव त्रिलोकेश शृणुष्व वचनं मम ॥२०॥
मत्पुत्रेण च कंसेन बालकाश्च सहस्रशः । विनाऽपराधेन हरे मारिताश्च महासुरैः ॥२१॥
तस्य मुक्तिश्च गोविंद कथं भवति पापिनः । कस्मिँल्लोके गतः कंसो बालघाती वदस्व मे ॥२२॥
तस्य पापेनाहमपि भीतोऽस्मि जगदीश्वर । पुत्रस्य पापेन पिता नरके पतति ध्रुवम् ॥२३॥
पितुः पापेन पतति निरये हि तथा सुतः । तस्माच्च किं करिष्येऽहमुपायं वद माधव ॥२४॥
कथितं नारदेनाद्य तच्छृणुष्व जगत्पते । विप्रहा विश्वहा गोघ्नो हयमेधेन शुध्यति ॥२५॥
तस्मिन् यज्ञे मनो मेऽस्ति यदि चाज्ञां प्रदास्यसि ।

गर्ग उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा मुदा मदनमोहनः ॥२६॥
मनसि प्राह संपश्यन्धरां भारेण पीडिताम् । अहो मया तु बहुशो धराभारोऽवतारितः ॥२७॥

कृपासे यज्ञोंमें श्रेष्ठ राजसूय यज्ञ किया था। उससे सारी त्रिलोकी और समस्त भूतलपर आपकी कीर्ति फैल गयी ॥ ११ ॥ १२ ॥ राजसूय और अश्वमेध ये दोनों यज्ञ बड़े-बड़े मंडलेश्वर राजाओंके लिए भी दुष्कर हैं, किन्तु हे राजेन्द्र ! भगवद्भक्त राजाओंके लिए ये दोनों ही सुगम हो जाते हैं ॥ १३ ॥ इन दोनोंमें एक राजसूय यज्ञ आपने किया। बादमें श्रीकृष्णकी आज्ञासे युधिष्ठिरने भी उसे किया ॥ १४ ॥ किन्तु द्वापरके अन्तमें भारतवर्षके किसी राजाने अश्वमेध यज्ञ नहीं किया। यह सर्वश्रेष्ठ, मुक्तिदायक और पापनाशक यज्ञ है ॥१५॥ द्विजघाती, विश्वघाती और गोघाती प्राणी भी इस यज्ञसे पवित्र हो जाता है। इसीसे यज्ञके मर्मज्ञोंने अश्वमेघ-को सब यज्ञोंसे श्रेष्ठ कहा है ॥ १६ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! जो मनुष्य निष्कामभावसे यह यज्ञ करता है, वह गरुड़-ध्वज भगवानके लोकको जाता है, जो बड़े-बड़े सिद्ध पुरुषोंके लिए भी दुर्लभ है ॥ १७ ॥ देवर्षि नारदके वचन सुनकर राजा उग्रसेनने अश्वमेध यज्ञ करनेका मनही मन संकल्प किया ॥ १८ ॥ उसी समय बलरामके साथ श्रीकृष्णको सभामें आते देख उग्रसेन उठ खड़े हुए और विधिवत् पूजन करके उनको सिंहासनपर बिठा-कर नारदजीके साथ बैठे उग्रसेन बोले ॥१९॥ राजाने कहा—हे देवदेव ! हे जगन्नाथ ! हे जगदीश ! हे जगन्मय ! हे वासुदेव ! हे त्रिलोकेश ! आप मेरी बात सुनिए ॥ २० ॥ मेरे पुत्र कंसने हजारों निरपराध बालकोंको महान् असुरोंके द्वारा मरवाया था ॥ २१ ॥ तब हे गोविन्द ! मेरे उस पापी पुत्र कंसको मोक्ष कैसे प्राप्त होगा ? मेरा बालघाती एवं पापी पुत्र कंस किस लोकमें गया है, सो बताइए ॥ २२ ॥ हे जगदीश्वर ! उस पापी पुत्रके पापोंसे मैं भी भयभीत हूँ। क्योंकि पुत्रके पापसे पिताको अवश्य नरकगामी होना पड़ता है ॥ २३ ॥ उसी प्रकार पिताके पापसे पुत्रको भी नरकमें जाना पड़ता है। सो हे माधव ! यह बताइए कि मैं क्या करूँ ॥ २४ ॥ हे जगतीपते ! अभी नारदजीने जो कहा है, सो सुनिए। इनका कहना है कि ब्रह्मघाती, विश्वघाती और गोघाती प्राणी भी अश्वमेध यज्ञसे पवित्र हो जाता है ॥ २५ ॥ यदि आप अनुमति दें तो मेरी भी वह अश्वमेध यज्ञ करनेकी इच्छा है। गर्गमुनि

महावीरैः पालनीयो वर्षमात्रं हयोत्तमः । अश्वस्यागमनं यावद्भविष्यति स्वके पुरे ॥४३॥
निवसेद्धैर्यसंयुक्तस्तावत्कर्ता प्रयत्नतः । यत्र यत्र पुरीषं च मूत्रं च कुरुते हयः ॥४४॥
कर्तव्यं हवनं विप्रैर्दातव्यं गोसहस्रकम् । संलिख्य कांचनं पत्रं स्वनामबलचिह्नितम् ॥४५॥
हयस्य भाले बद्ध्वा च कथनीयमिदं वचः । सर्वे शृणुत राजानो विमुक्तोऽस्ति हयो मया ॥४६॥
कश्चिद्भूयः श्यामकर्णं प्रतिगृह्णातु चेद्बलात् । गृह्णाति यस्तं मानेन स जेतव्यो बलात्स्वयम् ॥४७॥
विप्रा विंशतिसाहस्रा यज्ञादौ कीर्तिता नृप । वेदज्ञाः सर्वशास्त्रज्ञाः कुलीनाश्च तपस्विनः ॥४८॥
अत्र ते कथयिष्यामि समर्थस्त्वं शृणुष्व च । वाजिमेधे महाराज विप्राणां दीर्घदक्षिणाम् ॥४९॥
तुरगाणां सहस्रं च गजानां शतमेव च । द्विशतं स्यंदनानां च सहस्रं च गवां तथा ॥५०॥
विंशद्भारं सुवर्णानां प्रदातव्यं द्विजे द्विजे । यज्ञस्यादौ तथा चांते ईदृशी दक्षिणा मता ॥५१॥
असिपत्रव्रतं कृत्वा ब्रह्मचर्यसमन्वितः । कौ पत्न्या सार्द्धमेकत्र कुर्याच्च शयनं निशि ॥५२॥
वर्षमात्रं महाराज कर्तव्यं व्रतमीदृशम् । दीनानां च प्रदातव्यमन्नं वा बहुशो धनम् ॥५३॥
विधिनाऽनेन राजेंद्र क्रतुरेष भविष्यति । असिपत्रव्रतयुतो बहुपुत्रफलप्रदः ॥५४॥
भीष्मं विना हि मदनं को विजेतुं भवेन्नरः । तस्माद्भीता न कुर्वंति कठिनं चैनमद्भुतम् ॥५५॥
कामं प्रतिविजेतुं वै शक्तिस्ते विद्यते यदि । कुरु गर्गं समाहूय यज्ञारंभं नृपोत्तम ॥५६॥

इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखण्डे यज्ञोद्योगवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७ ॥

अथ अष्टमोऽध्यायः

(अश्वदर्शन)

श्रीगर्ग उवाच

इति तद्वाक्यमाकर्ण्य स्पष्टाक्षरसमन्वितम् । राजर्षिः प्राह देवर्षिं विस्मितः प्रहसन्निव ॥ १ ॥

यज्ञवेत्ता कहते हैं कि चैत्रशुक्ल पूर्णिमाको अश्वमेधका घोड़ा छोड़ना चाहिए ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ बड़े बड़े वीर पुरुष सालभर बड़ी चौकसीसे उसकी रक्षा करें, जबतक कि वह अपने नगरको न लौट आये ॥ ४३ ॥ तबतक यज्ञका यजमान भी बड़े धैर्यके साथ रहे । मार्गमें चलते समय वह अश्व जहाँ-कहीं लीद या मूत्र करे, वहाँ-वहाँ ब्राह्मणों द्वारा हवन कराये और एक हजार गौओंका दान करे। एक स्वर्णपत्र लिखकर उस घोड़ेके माथेपर बांध दे । उसपर यजमान अपना नाम और अपना पराक्रम अंकित करा दे ॥४४॥४५॥ साथ ही अश्वके रक्षक आपकी यह वाणी कहते चलें—हे राजाओ ! ध्यानसे सुनिए, यह घोड़ा हमने छोड़ा है ॥ ४६ ॥ यदि कोई मुझसे बलवान् राजा हो तो वह इस श्यामकर्ण घोड़ेको पकड़े । यदि कोई अभिमानी राजा उसे पकड़ ले तो बलप्रयोग करके उसको जीता जाय ॥ ४७ ॥ हे राजन् ! पहले जो बीस हजार ब्राह्मण इस यज्ञमें रखनेका कहे हैं, सो वे ब्राह्मण वेदज्ञ, शास्त्रज्ञ, कुलीन और तपस्वी होने चाहियें ॥ ४८ ॥ हे राजन् ! आप समर्थ हैं । इसीसे कह रहा हूँ। ध्यानसे सुनिए । हे महाराज ! अश्वमेध यज्ञमें ब्राह्मणोंको बड़ी बड़ी दक्षिणायें देनी चाहियें ॥ ४९ ॥ एक एक ब्राह्मणको एक एक हजार घोड़े, सौ सौ हाथी, दो दो सौ रथ, एक एक हजार गौ और बीस भार सुवर्णकी दक्षिणा यज्ञके आरम्भमें और इतनी ही दक्षिणा यज्ञान्तमें देनी चाहिये ॥ ५० ॥ ॥ ५१ ॥ यजमान ब्रह्मचर्य व्रतधारणपूर्वक असिपत्रव्रत करे। हे महाराज ! उस रोज यजमान अपनी पत्नीके साथ भूमिपर शयन करे ॥ ५२ ॥ इस प्रकार पूरे सालभर व्रत करे। इस अवसरपर दीनजनोंको अन्न तथा प्रचुर धन दे ॥ ५३ ॥ हे राजन् ! इसी विधिसे यह यज्ञ सम्पन्न होगा । यदि इसके साथ असिपत्रव्रत भी कर लिया जाय तो यह यज्ञ बहुपुत्रफलदायक हो जायगा ॥ ५४ ॥ जैसे भीष्मके सिवाय कामदेवको जीतने सामर्थ्य अन्य किसी पुरुषमें नहीं है, उसी तरह इस यज्ञको करना सबके वशकी बात नहीं है । ५५

राजोवाच

मुने यज्ञं करिष्येऽहं यज्ञयोग्यं तुरंगमम् । गत्वा ममाश्वशालायांश्च हयां त्वं विलोकय ॥ २ ॥
नृपस्य वचनं श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा च नारदः । वाजिशालां ययौ तेन दुग्धाभाञ्जलसन्निभान् ॥ ३ ॥
स गत्वा तत्र तुरगान्धूम्रवर्णान्मनोहरान् । श्यामवर्णान्कृष्णवर्णान्पिङ्गवर्णान्ददर्श वै ॥ ४ ॥
तथा चान्यत्र शालायां दुग्धाभाञ्जलसन्निभान् । हरिद्राभान्कुंकुमाभान्पलाशकुसुमप्रभान् ॥ ५ ॥
तथा चित्रविचित्राङ्गान्स्फटिकाभान्मनोजवान् । तथा चान्यत्र शालायां कौसुंभाभाञ्छुकप्रभान् ॥ ६ ॥
इंद्रगोपनिभान्नीलान्दिव्यान्नूर्गजिप्रभान् । सिंदूरांगान्मिश्रवर्णान्बालसूर्यसमान्नृप ॥ ७ ॥
ईदृशांश्च हयान्दृष्ट्वा नारदो विस्मयान्वितः । उवाच कृष्णसहितमुग्रसेनं हसन्निव ॥ ८ ॥

नारद उवाच

वाजिनस्ते महाराज सर्वे हि बहुसुंदराः । ईदृशा नैव स्वर्लोके पृथिव्यां च रसातले ॥ ९ ॥
वर्तंते वाजिशालायां कृष्णस्य कृपया तव । एकोऽपि श्यामकर्णस्तु तेषां मध्ये न दृश्यते ॥१०॥

श्रीगर्ग उवाच

निशम्य वाक्यं देवर्षेर्नृपस्तु दुःखितोऽभवत् । यज्ञो भविष्यति कथं मनसीति विचारयन् ॥११॥
उदासीनं नृपं दृष्ट्वा भगवान्मधुसूदनः । अवोचत्प्रहसन्वाक्यं मेघगंभीरया गिरा ॥१२॥

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु मद्वचनं राजन्सर्वं शोकं विहाय च । गत्वा ममाश्वशालां वै श्यामकर्णं विलोकय ॥१३॥
इत्युदीरितमाकर्ण्य कृष्णेन च सुरर्षिणा । हरेश्च वाजिशालां हि जगाम नृपसत्तमः ॥१४॥
ददर्श तां स गत्वा च यज्ञयोग्यान्सहस्रशः । श्यामकर्णान्पीतपुच्छांश्चन्द्रवर्णान्मनोजवान् ॥१५॥

सर्वांगसुंदरान्दिव्याँस्तप्तहेमसुखाञ्शुभान् । एतान्दृष्ट्वा हयान्राजा विस्मयं परमं गतः ॥१६॥
हर्षेण महता युक्तः कृष्णं नत्वाऽब्रवीद्वचः ।

राजोवाच

श्यामकर्णाश्च बहुशो मया चाद्य निरीक्षिताः ॥१७॥
दुर्लभं किं जगन्नाथ त्वद्भक्तानां धरातले । यथा मनोरथः पूर्वं प्रह्लादस्य ध्रुवस्य च ॥१८॥
आसीत्त्वत्कृपया कृष्ण तथा मम मनोरथः । इति श्रुत्वा हरी राजन् शार्ङ्गी भूपमवोचत ॥१९॥

श्रीकृष्ण उवाच

एकं त्वं श्यामकर्णानामश्वानां चन्द्रवर्चसाम् । गृहीत्वा नृपशार्दूल कुरु यज्ञं ममाज्ञया ॥२०॥

गर्ग उवाच

श्रुत्वा वाक्यं हरिं प्राह करिष्येऽहं क्रतूत्तमम् । इत्युक्त्वा तेन सहितो नारदेन सभां ययौ ॥२१॥
ततः कृष्णमनुज्ञाप्य नारदः सहतुंबुरुः । राजानमाशिषं दत्त्वा स्वयंभूसदनं ययौ ॥२२॥

इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखण्डे तुरंगदर्शनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः

(सुमेरु पर्वतपर गर्गमुनिका आगमन)

गर्ग उवाच

अथ राजा कुशस्थल्यां गते देवर्षिसत्तमे । स्वदूतान्प्रेषयामास मामानेतुं नृपेश्वरः ॥ १ ॥
त ऊचुरुग्रसेनस्य ममाग्रे वचनं नराः ।

दूता ऊचुः

देवदेव मुने ब्रह्मन्भूदेवानां शिरोमणे ॥ २ ॥
अस्माकं वचनं सर्वं कृपया शृणु विस्तरात् । कृष्णेच्छया द्वारकायामुग्रसेनेन भो मुने ॥ ३ ॥
निरूपितं क्रतुवरं तव शिष्येण धीमता । त्वमागच्छ मुने शीघ्रं तस्मिन् यज्ञमहोत्सवे ॥ ४ ॥

घोड़े देखे । वे सभी श्यामकर्ण तथा यज्ञके योग्य थे । उनकी पीली पूँछ थी । चन्द्रमाके सदृश उनका श्वेतवर्ण था और वे मनके समान वेगवान् थे ॥ १५ ॥ वे सर्वाङ्ग सुन्दर थे । उनके दिव्य तथा तपाये हुए सोनेकी भाँति मुखके थे । उन घोड़ोंको देखकर राजा उग्रसेन बहुत विस्मित हुए ॥ १६ ॥ बादमें बहुत प्रसन्न होकर उन्होंने श्रीकृष्णको प्रणाम किया और कहा—भगवन् ! आज मैंने बहुतेरे श्यामकर्ण घोड़े देखे ॥ १७ ॥ हे जगन्नाथ ! इस धरतीपर आपके भक्तोंको कौनसी वस्तु दुर्लभ हो सकती है—कोई नहीं । हे कृष्ण ! जैसे आपने प्रह्लाद तथा ध्रुवकी आकांक्षा पूर्ण की थी ॥ १८ ॥ उसी प्रकार मेरा मनोरथ भी पूर्ण होगा । उनकी बात सुनकर शार्ङ्गधनुर्धारी कृष्णने कहा । श्रीकृष्ण बोले—हे नृपशार्दूल ! इन चन्द्रमा सदृश शुभ्र घोड़ोंमेंसे कोई एक श्यामकर्ण घोड़ा लेकर आप मेरी आज्ञासे यज्ञ आरम्भ करिए ॥ १९ ॥ २० ॥ गर्गमुनि बोले—हे राजन् ! यह बात सुनकर उग्रसेनने कहा—मैं यह उत्तम यज्ञ अवश्य करूँगा । ऐसा कहकर वे नारदजी तथा श्रीकृष्णके साथ सभाभवनमें गये ॥ २१ ॥ तदनन्तर श्रीकृष्णसे अनुमति ले तथा उग्रसेनकी कामना पूर्ण करके तुम्बुरु-गंधर्वके साथ नारदजी ब्रह्मलोक चले गये ॥२२॥ इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

गर्गमुनि बोले—हे राजन् ! द्वारकापुरीसे नारदजीके चले जानेपर राजा उग्रसेनने मुझ (गर्ग) को बुलानेके लिए अपने दूत भेजे ॥ १ ॥ दूतोंने आकर कहा—हे देवदेव ! हे मुनिराज ! हे विप्रमुकुटमणि ! कृपया आप मेरी बातको ध्यानसे सुनिए । हे मुने ! आपके बुद्धिमान् शिष्य महाराज उग्रसेनने श्रीकृष्णके इच्छानुसार यज्ञोंमें उत्तम अश्वमेध यज्ञ आरम्भ किया है । उस यज्ञमहोत्सवमें आप शीघ्र चलिए ॥ २–४

श्रीगर्ग उवाच

तेषांमहं वचः श्रुत्वा जग्मिवान्द्वारकां पुरीम् । गर्गाचलान्नृपश्रेष्ठ यज्ञकौतुकसंयुतः ॥ ५ ॥
ततो दृष्टा पुरी दूराच्चानर्ते द्वारका मया । नानाद्रुमगणैर्जुष्टा नानाचोपवनैर्युता ॥ ६ ॥
नानातडागैर्वापीभिर्नानापक्षिगणैस्तथा । नीलरक्तसिताम्भोजैः पीतपद्मैः सरोवराः ॥
राजंते कुमुदैश्चैव शुक्लपुष्पैर्नृपेश्वर ॥ ७ ॥
बिल्वैः कदंबैर्न्यग्रोधैः शालैस्तालैस्तमालकैः । वकुलैर्नागपुन्नागैः कोविदारैश्च पिप्पलैः ॥
जम्बीरैर्हारसिंगारैराम्रैराम्रातकैरपि ॥ ८ ॥
केतकीभिर्गोस्तनीभिः कदलीभिश्च जंम्बुभिः । श्रीफलैः पिंडखर्जूरैः खदिरैः पत्रबिंदुभिः ॥ ९ ॥
अगरैस्तगरैश्चैव चन्दनै रक्तचन्दनैः । पलाशैश्च कपित्थैश्च प्लक्षैर्वेत्रैश्च वेणुभिः ॥१०॥
मल्लिकाभिर्यूथिकाभिर्मोदिनीभिर्महीरुहैः । तथा मदनबाणैश्च शहस्रांशुमुखद्रुमैः ॥११॥
प्रियावंशैर्गुल्मवंशैः कर्णिकारैश्च पुष्पितैः । सहस्राख्यैः कन्दुकैर्वै चागस्त्यैश्च सुदर्शनैः ॥१२॥
चन्द्राख्यैश्च कुन्दैश्च कर्णपुष्पैश्च दाडिमैः । अनुजीरैर्नागरंगैराडुकीजानकीफलैः ॥१३॥
पूगीफलैर्वदामैश्च तूलै राजादनैर्द्रुमैः । एलाभिः सेवतीभिश्च तथा वै देवदारुभिः ॥१४॥
ईदृशैश्च महावृक्षैः शोभिता नगरी हरेः । कूजंति यत्र राजेन्द्र मयूराः सारसाः शुकाः ॥१५॥
हंसाः पारावताश्चैव कपोताः कोकिलास्तथा । सारिकाश्चक्रवाकाश्च खंजनाश्चटकाः किल ॥१६॥
एते पक्षिगणाः सर्वे वैकुण्ठाच्च समागताः । कृष्ण कृष्णेति मधुरां वाणीं गायंति यत्र हि ॥१७॥
इत्थं पश्यन् व्रजन्राजन्ददर्श द्वारकामहम् । ताम्ररौप्यसुवर्णैश्च त्रिभिर्दुर्गैश्च वेष्टिताम् ॥१८॥
गिरिणा रैवतेनापि देववृक्षमयेन च । रत्नाकरेण गोमत्याऽऽवृतां परिखभूतया ॥१९॥
कृष्णस्य नगरीं रम्यां कृतकौतुकतोरणाम् । मुदायुक्तजनाकीर्णां सुवर्णभवनैर्युताम् ॥२०॥
तथा हाटकहट्टाभिः पताकाभिश्च मंडिताम् । विष्णोश्च मंदिरैः प्रोच्चैर्महेशस्यालयैर्युताम् ॥२१॥
यदुभिश्च महाशूरैर्विमानैश्च सहस्रशः । शतशृंगाटकैश्चैव कलशैर्भर्मकर्बुरैः ॥२२॥

हे नृपश्रेष्ट ! उनकी बात सुनकर मैं तत्काल गर्गाचलसे द्वारका पुरीको चल पड़ा । क्योंकि अश्वमेधकी बात सुनकर मेरी उत्सुकता बढ़ गयी थी ॥ ५ ॥ आनर्त देशमें पहुँचनेपर मैंने दूरहीसे द्वारकापुरी देखी । वह अनेक प्रकारके वृक्षोवाले बागोंसे घिरी हुई थी ॥ ६ ॥ उस पुरीमें अनेक सरोवर तथा बावड़ियाँ थीं । विविध पक्षियोंसे भरे तथा नील, लाल, सफेद और पीले रंगवाले कमलों तथा कुमुद एवं शुक्लपुष्पसे युक्त अनेक तड़ाग थे ॥ ७ ॥ हे राजन् ! बिल्व, कदम्ब, वट, पाकड़, शाल, ताल, तमाल, वकुल, नाग, पुन्नाग, कोविदार, पीपल, जम्बीर, हरसिंगार, आम, आमड़ा, केतकी, दाख, केले, जामुन, नारियल, पिंडखजूर, खैर, नीबू, अगर, तगर, चन्दन, लाल चन्दन, ढाक, कैथे, पाकड़, वेंत, बाँस, मल्लिका, जूही, मेदिनी, मदन-बाण, पियाबाँस, गुल्मबाँस, कर्णिकार, सहस्रकन्दुक, अगस्त्य, सुदर्शन, चन्द्रमा, कुन्द, कर्णपुष्प, अनार, अंजीर, नारंगी, आड़ू, सीताफल, सुपारी, बादाम, चिरौंजी, इलायची, सेवती, देवदारु आदि महान् वृक्षोंसे सुशोभित वह द्वारकापुरी थी । हे राजेन्द्र ! मोर, सारस तथा शुक पक्षी बोल रहे थे ॥ ८–१५ ॥ इसी प्रकार हंस, कबूतर, कोयल, कोकिल, मैना, चकवा, खंजन और गौरैया आदि सभी पक्षी साक्षात् वैकुंठधामसे वहाँ आये थे । वे हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! कहते हुए वे मधुर वाणी बोल रहे थे ॥ १६ ॥ १७ ॥ इस प्रकार विविध कौतुक देखते हुए मैंने ताम्र, चाँदी और सुवर्णके दुर्गसे घिरी हुई द्वारकापुरी देखी ॥ १८ ॥ देववृक्षसे भरा-पूरा और रत्नोंकी खानसे सम्पन्न रैवत पर्वत उसके पास ही था । गोमती नदी उस नगरीकी खाईंका काम कर रही थी ॥ १९ ॥ भगवान् कृष्णकी उस रमणीक नगरीमें घर-घर उत्सवकी झंडियाँ फहराया करती थीं । वहाँके नागरिक सब तरहसे प्रसन्न थे और सबके सुनहले भवन बने हुए थे ॥२०॥ वह सोनेकी हाट तथा पता-

रथ्याभिर्मंदुराभिश्च दंतिशालाभिरेव च । गोशालाभिश्च शालाभिः सुरौप्यपथिभिर्युताम् ॥२३॥
प्रासादैर्नवलक्षैश्च कृष्णस्य परमात्मनः । तथा षोडशसाहस्रैर्भवनैर्वेष्टितां पुरीम् ॥२४॥
द्वारे द्वारे द्वारकायां शूरा वीराश्च कोटिशः । रक्षंत्यहर्निशं राजन्सर्वशस्त्रधराः किल ॥२५॥
प्रगायंति जनाः सर्वे श्रीकृष्णबलदेवयोः । गृहे गृहे च नामानि शृण्वंति चरितानि च ॥२६॥
इत्थं विलोकयन्सर्वान्सुधर्मायामहं गतः । कृष्णेति पादुकारूढस्तुलसीमालया जपन् ॥२७॥
अथोग्रसेनो राजर्षिर्दृष्ट्वा मां च समागतम् । समुत्थाय मुदायुक्तः शक्रसिंहासनात्किल ॥२८॥
षट्पंचाशत्कोटिसंख्यैर्यादवैः सह भूपते । नत्वा सिंहासने स्थाप्य पूजयामास चाहुकः ॥२९॥
मदंघ्री चावनिज्याथ यादवानां च सन्निधौ । पादोदकं स्वशिरसि धृत्वा प्राह नृपेश्वरः ॥३०॥

उग्रसेन उवाच

विप्रेंद्र नारदमुखाच्छ्रुतं यस्य महत्फलम् । तं यज्ञमश्वमेधाख्यं करिष्येऽहं तवाज्ञया ॥३१॥
यस्यांघ्रिसेवया पूर्वे मनोरथमहार्णवम् । तेरुर्जगत्तृणीकृत्य स कृष्णश्चात्र वर्त्तते ॥३२॥

श्रीगर्ग उवाच

यादवेंद्र महाराज सम्यग्व्यसितं त्वया । हयमेधेन ते कीर्तिस्त्रिलोक्यां संभविष्यति ॥३३॥
कः प्रयास्यति रक्षार्थं तुरगस्य नृपेश्वर । बहवः शत्रवः संति तस्मात्त्वं निश्चयं कुरु ॥३४॥
वर्षमात्रं प्रकर्त्तव्यमसिपत्रव्रतं त्वया । तदा तु कुशलेनापि भविष्यति क्रतूत्तमः ॥३५॥
प्रद्युम्नेन राजसूये जिता सर्वा मही पुरा । तुरंगस्याद्य रक्षार्थं तं पुनः किं नियोक्ष्यसि ॥३६॥
इति मद्वचनं श्रुत्वा राजा चिंतापरायणः । ददर्श संस्थितं नृणां सर्वदुःखहरं हरिम् ॥३७॥

काओंसे सुसज्जित थी। विष्णु तथा शिवजीके ऊँचे-ऊँचे मन्दिर बने हुए थे ॥ २१ ॥ बड़े-बड़े वीर यादवों तथा हजारों विमानोंसे वह शोभित थी। सैकड़ों ऊँचे-ऊँचे मीनार थे और उनपर रंग-बिरंगे कलश जगमगा रहे थे ॥ २२ ॥ उसमें अनेक गलियाँ थीं। अनेक अश्वशाला, हस्तिशाला, गोशाला उस सभागृहमें विद्यमान थी। चाँदीकी लम्बी-चौड़ी सड़कें थीं ॥ २३ ॥ उस नगरीमें नौ लाख प्रासाद (बड़े भवन) और सोलह हजार महलोंसे वह पुरी घिरी हुई थी ॥ २४ ॥ द्वारकाके द्वार-द्वारपर शूरवीरोंका जमावड़ा रहता था और करोड़ों सब शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित वीर रात-दिन उस नगरीकी रक्षा कर रहे थे ॥ २५ ॥ वहाँके सभी नागरिक सदा श्रीकृष्ण और बलदेवका गुण गाया करते थे। घर-घरमें लोग उन्हींके नाम और उन्हींके चरित्र सुना करते थे ॥ २६ ॥ इस प्रकार सारी द्वारकापुरीकी शोभा निरखता तथा श्रीकृष्णकी पादुकापर चढ़ी तुलसीकी माला जपता हुआ मैं सुधर्मा सभामें गया ॥ २७ ॥ वहाँ मुझे उपस्थित देख राजर्षि उग्रसेन अपने सिंहासनसे उठ खड़े हुए। हे राजन्! छप्पन करोड़ यादवोंके साथ उठकर उन्होंने मुझे प्रणाम किया और सिंहासनपर बैठाकर मेरी पूजा की ॥ २८ ॥ २९ ॥ तदनन्तर सब यादवोंके समक्ष उन्होंने मेरे पैर धोये और चरणोदक माथे चढ़ाकर उन्होंने कहा ॥ ३० ॥ नृपेश्वर उग्रसेन बोले—हे द्विजराज! श्रीनारदजीके मुखसे मैंने जिसका महान् फल सुना है, वह अश्वमेध महायज्ञ मैं आपकी आज्ञासे करूँगा ॥ ३१ ॥ जिनके चरणोंकी सेवा करके पहलेके अनेक राजे जगत्को तृणवत् समझकर अपने मनोरथरूपी महासागरको पार कर गये, वे भगवान् कृष्ण यहाँ विद्यमान हैं ॥ ३२ ॥ गर्गमुनि बोले—हे महाराज यादवेन्द्र! आपका विचार उत्तम है। अश्वमेध यज्ञ करनेसे सारी त्रिलोकीमें आपकी कीर्ति फैल जायगी ॥ ३३ ॥ लेकिन पहले यह बताइए कि घोड़ेकी रक्षाके लिए साथमें कौन जायगा। आपके बहुतेरे शत्रु हैं, इसलिए घोड़ेके रक्षकका निर्णय कर लेना आवश्यक है ॥ ३४ ॥ पूरे सालभर आपको असिपत्रव्रत करना होगा। तभी वह महायज्ञ निर्विघ्न समाप्त हो सकेगा ॥ ३५ ॥ आपके राजसूय यज्ञमें तो प्रद्युम्नने सारी पृथिवीको जीता था। तब घोड़ेकी रक्षाके लिए क्या उन्हींको नियुक्त करिएगा ? ॥ ३६ ॥ हे राजन्! मेरी बात सुनकर राजा उग्रसेन चिन्तित हो उठे। तभी उन्होंने सब दुःख हरनेवाले भगवान कृष्णको वहाँ विराजमान देखा

तदैव भगवान्दृष्ट्वा शोकेनापूरितं नृपम् । तांबूलवीटकं नीत्वा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥३८॥

श्रीकृष्ण उवाच

भोः शूरा यादवाः सर्वे बलिनो रणकोविदाः । उग्रसेनस्य चाग्रे वै शृण्वन्तु मम भाषितम् ॥३९॥
यो मोचयति राजभ्यो हयमेधतुरंगमम् । महारथी मनस्वी च स मे गृह्णातु वीटकम् ॥४०॥
इति श्रुत्वा हरेर्वाक्यं यादवा युद्धकोविदाः । परस्परं प्रपश्यन्तो गतमानाः पुनः पुनः ॥४१॥
संस्थितो घटिकामात्रं रेजे तांबूलवीटकः । कृष्णस्य सुंदरे हस्ते यथा तामरसे शुकः ॥४२॥

ततश्च सर्वेषु गतेषु तूष्णीमुषापतिश्चापधरो महात्मा ।
प्रगृह्य तांबूलचयं नृपेन्द्रं नत्वा च कृष्णं निजगाद सद्यः ॥४३॥

श्रीअनिरुद्ध उवाच

अहं हि श्यामकर्णस्य राजन्येभ्यश्च पालनम् । करिष्यामि जगन्नाथ तस्मान्मां त्वं नियोजय ॥४४॥
न करिष्ये घोटकस्य पालनं यदि तच्छृणु । प्रतिज्ञां मम गोविंद दीनस्य दीनवत्सल ॥४५॥
ब्राह्मणीगमनात्क्षत्री वैश्यश्च शूद्र एव च । यां गतिं प्राप्नुयान्नूनं तामहं दुःखदायिनीम् ॥४६॥
विप्रं कृत्वा गुरुं पूर्वं पश्चात्तं यो न सेवते । स याति यां गतिं देव प्राप्नुयां तामहं ध्रुवम् ॥४७॥

गर्ग उवाच

इति तद्वाक्यमाकर्ण्य यादवा विस्मयं गताः । तदैव कृष्णः संतुष्टो जग्राह पौत्रमेव च ॥४८॥
ततो हरिः सुधर्मायामनिरुद्धं कृतांजलिम् । सर्वेषां शृण्वतां प्राह घननिर्ह्रादया गिरा ॥४९॥

श्रीकृष्ण उवाच

अनिरुद्ध तुरंगस्य वर्षमात्रं च पालनम् । राजन्येभ्यश्च कृत्वा त्वं पुनरागच्छ चात्र वै ॥५०॥

इति श्रीगर्गसंहितायां हयमेधचरित्रे सुमेरौ गर्गागमनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

॥३७॥ महाराज उग्रसेनको शोकाकुल देख श्रीकृष्णने पानका बीड़ा उठा लिया और हँसते हुए बोले ॥ ३८ ॥ भगवानने कहा—हे वीर यादवो ! आपलोग बड़े बलवान् और रणनिपुण हैं । महाराज उग्रसेनके समक्ष आप मेरी बात सुनें ॥ ३९ ॥ जो महारथी तथा मनस्वी वीर शत्रु-राजाओंसे अश्वमेध यज्ञके घोड़ेको छुड़ा सके, वह यह पानका बीड़ा ले ले ॥ ४० ॥ भगवानके वचन सुनकर सभी युद्धकोविद यादव परस्पर एक दूसरेका मुँह निहारते हुए हतप्रभ हो गये ॥ ४१ ॥ एक घड़ी तक वह पानका बीड़ा भगवानके सुन्दर हाथमें ही धरा रह गया । उस समय वह ऐसा लग रहा था, जैसे कमलपुष्पपर कोई तोता बैठा हुआ हो ॥ ४२ ॥ इस प्रकार जब सभी यादव चुपचाप बैठे रह गये, तब महात्मा, धनुर्धर एवं उषाके पति अनिरुद्धने पानका बीड़ा ले लिया और भगवान् कृष्ण तथा यादवेन्द्र उग्रसेनको प्रणाम करके बोले ॥ ४३ ॥ अनिरुद्धने कहा—हे जगन्नाथ ! मैं शत्रुर-जाओंसे इस घोड़ेकी रक्षा करूँगा । इसकी रक्षाके कामपर आप मुझे ही नियुक्त करिए ॥ ४४ ॥ हे गोविन्द ! यदि मैं इस घोड़ेकी रक्षा न करूँ तो हे दीनवत्सल ! मुझ दीनकी प्रतिज्ञा सुनिए—॥४५॥ ब्राह्मणीके साथ दुराचार करनेपर क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र मनुष्य जिस गतिको प्राप्त होता है, वही दुःखदायिनी गति मुझे प्राप्त हो ॥ ४६ ॥ कोई किसी विप्रको पहले गुरु बनाकर बादमें उसकी सेवा नहीं करता, उस प्राणीको जो गति प्राप्त होती हो, वही गति मुझे भी प्राप्त हो ॥ ४७ ॥ गर्गमुनि बोले—अनिरुद्धकी बात सुनकर यादव बहुत विस्मित हुए । तभी उनकी बातसे सन्तुष्ट होकर भगवान कृष्णने अपने पौत्र अनिरुद्धका हाथ थाम्ह लिया ॥ ४८ ॥ उस महती सुधर्मा सभामें हाथ जोड़कर खड़े अनिरुद्धसे मेघके समान गम्भीर वाणीमें भगवान् कृष्ण सबके समक्ष बोले ॥ ४९ ॥ श्रीकृष्णने कहा—हे अनिरुद्ध ! सालभर शत्रु-राजाओंसे अश्वकी रक्षा करके तुम फिर यहीं लौट आओ ॥ ५० ॥ इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखंडे 'प्रियंवदा'-भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः

(राजा उग्रसेन और रानी रुचिमतोका संवाद)

श्रीगर्ग उवाच

इति ब्रुवति श्रीकृष्णे हंसस्थश्चतुराननः । आजगाम कुशस्थल्यामीश्वरेण समन्वितः ॥ १ ॥
तत इन्द्रः कुबेरश्च यमो वरुण एव च । वायुर्वायुसखश्चैव नैर्ऋतश्च निशाकरः ॥ २ ॥
एते समाययू राजन्कृष्णदर्शनकांक्षया । ततश्च द्वादशादित्या वेतालाश्च मरुद्गणाः ॥ ३ ॥
विश्वेदेवाश्च साध्याश्च गंधर्वाः किन्नरास्तथा । विद्याधराश्च मुनयः श्रीकृष्णं द्रष्टुमाययुः ॥ ४ ॥
तत्रागतानां देवानामुग्रसेनेन माधवः । यथाविध्युपसंगम्य सर्वेषां मानमादधे ॥ ५ ॥
आसनेषूपविष्टेषु सभायां निर्जरेष्वथ । श्लाघां चकार सर्वेषां लीलानरवपुर्हरिः ॥ ६ ॥
अथ ब्रह्मा हरेः पार्श्वे स्थितः शक्रेण नोदितः । प्रत्युवाच जगन्नाथं बलभद्रसमन्वितम् ॥ ७ ॥

ब्रह्मोवाच

पौत्रस्ते बालकः कृष्ण राजन्येभ्यश्च पालनम् । कठिनं श्यामकर्णस्य करिष्यति कथं हरे ॥ ८ ॥
मा तं प्रेषय तस्मात्त्वं रक्षणाय हयस्य वै । विघ्नाश्च बहवः संति प्रद्युम्नं प्रेषयस्व च ॥ ९ ॥
संकर्षणं वा गोविन्द ह्यथवा रक्ष त्वं हयम् । इति तद्वचनं श्रुत्वा निजगौ प्रहसन्हरिः ॥१०॥

श्रीभगवानुवाच

अनिरुद्धो हठाद्याति मन्निषेधं न मन्यते । तस्मात्तन्निकटे गत्वा निषेधं कुरु यत्नतः ॥११॥
कृष्णस्य वाक्यमाकर्ण्य विधिश्चंद्रसमन्वितः । ययौ निवारणार्थायानिरुद्धं कार्ष्णिनन्दनम् ॥१२॥
यदागतौ समीपे तु सुरज्येष्ठकलानिधी । विग्रहे ह्यनिरुद्धस्य सद्यस्तौ लीनतां गतौ ॥१३॥
बभूवुर्विस्मिताः सर्वे शिवशक्रादयः सुराः । यादवा मुनयश्चैव ह्युग्रसेनादयो नृपाः ॥१४॥
वज्रनाभ त्वत्पितरं संस्तुवन्ति गणाः किल । परिपूर्णतमं तस्मादनिरुद्धं वदंति हि ॥१५॥

गर्गमुनि बोले—हे राजन् ! जब भगवान कृष्ण ऐसा कह रहे थे, तभी शंकरजीके साथ हंसारूढ ब्रह्माजी द्वारकामें जा पहुँचे ॥ १ ॥ इसके बाद इन्द्र, कुबेर, यम, वरुण, वायु, अग्नि, नैर्ऋत और चन्द्रमा ये सब श्रीकृष्णका दर्शन करनेके लिए वहाँ आये । तदनन्तर द्वादश आदित्य, वेताल, मरुद्गण, विश्वेदेव, साध्य, गन्धर्व, किन्नर, विद्याधर और मुनिगण भी भगवान् कृष्णका दर्शन करने आये ॥२–४॥ वहाँपर आये हुए देवताओंका उग्रसेन समेत भगवान कृष्णने विधिवत् सम्मान किया ॥ ५ ॥ सुधर्मा सभामें जब सब देवता अपने-अपने आसनपर बैठ गये, तब लीलाके लिए मानवतनुधारी भगवानने सबकी सराहना की ॥ ६ ॥ इसके बाद इन्द्रकी प्रेरणासे ब्रह्माजी भगवानकी बगलमें जा बैठे और बलरामके साथ विराजमान श्रीकृष्णसे बोले ॥ ७ ॥ ब्रह्माजीने कहा—हे हरे ! आपका पौत्र अनिरुद्ध अभी निरा बालक है । हे श्रीकृष्ण ! यह बड़े-बड़े शत्रुराजाओंसे अश्वमेधके घोड़ेकी रक्षा कैसे करेगा ? ॥ ८ ॥ हे भगवन् ! आप अश्वकी रक्षाके लिए उन्हें मत भेजिए । क्योंकि विघ्न बहुत हैं । अच्छा हो कि आप प्रद्युम्नको ही भेजिए ॥ ९ ॥ ऐसा न हो सके तो बलदेवको भेजिए या आप स्वयं जाइए । ब्रह्माजीके वचन सुनकर हंसते हुए श्रीकृष्णने कहा ॥ १० ॥ भगवान् बोले—हे ब्रह्मन् ! मैं क्या करूँ, अनिरुद्ध हठ करके अश्वकी रक्षाके लिए जा रहा है । मेरे निषेधवाक्यको वह नहीं मानता । अतएव आपको रोकना हो तो स्वयं जाकर उसको रोकें ॥ ११ ॥ श्रीकृष्णकी बात सुनकर ब्रह्मा और चन्द्रमा प्रद्युम्नतनय अनिरुद्धके पास गये ॥ १२ ॥ जब ब्रह्मा और चन्द्रमा अनिरुद्धके समीप पहुँचे तो जाते ही वे दोनों देवता अनिरुद्धके शरीरमें समा गये ॥ १३ ॥ यह घटना घटित होते देख इन्द्रादिक सभी देवता, सब यादव, समस्त मुनिजन तथा उग्रसेन आदि सब राजे बहुत विस्मित हुए ॥ १४ ॥ गर्गमुनि बोले—हे वज्रनाभ ! इसीसे सब मुनि आपके

गर्ग उवाच

अथोग्रसेनो नृपतिः सभातलादुत्थाय कृष्णं मनसा प्रणम्य च ।
स्वांतःपुरं सुन्दररत्नवेष्टितं जगाम राजन्क्रतुकौतुकावृतः ॥१६॥
गत्वा ह्यंतःपुरे राजा सुरेन्द्रसदनोपमे । पर्यंकस्थां रुचिमतीं शचीतुल्यां वराननाम् ॥१७॥
दासीभिः सेवितां राज्ञीं वस्त्रालंकारवेष्टिताम् । वीजितां चामरैः शुक्लैर्ददर्श नृपसत्तमः ॥१८॥
सा विलोक्यागतं तत्र स्वपतिं यादवेश्वरम् । उत्थाय चादरं राजश्चकार विधिना किल ॥१९॥
ततः स्थित्वा स पर्यंके वृष्णीशो स्वां प्रियां पराम् । प्रोवाच प्रहसन् वाण्या घनशब्दगभीरया ॥२०॥
हयमेधं करिष्येऽहं प्रिये कृष्णाज्ञयाऽद्य वै । नरो यस्य प्रतापेन लभते वाञ्छितं फलम् ॥२१॥

गर्ग उवाच

इति तद्वचनं श्रुत्वा पुत्रदुःखेन दुःखिता । स्मरंती कृपणा पुत्रान्प्रत्युवाच नृपेश्वरम् ॥२२॥

राज्ञ्युवाच

पुत्र दर्शनहीनाया राजन्मे सर्वसंपदः । न रोचंते सुरैः प्रार्थ्याः सुखेन त्वं क्रतुं कुरु ॥२३॥
यदि यज्ञप्रतापेन पुत्रो भवति सुन्दरः । तदा प्रसन्नचित्ताऽहं भविष्यामि नृपेश्वर ॥२४॥
तस्या वाक्यं समाकर्ण्य नृपः खिन्नमना ह्यभूत् । पुनराह प्रियां तत्र श्रद्धां श्राद्धसुरो यथा ॥२५॥

राजोवाच

शृणु भद्रे त्विमामाशां पुत्राणां बहुदुःखदाम् । त्यक्त्वा विमुक्तिदं साक्षात्कृष्णं भज परात्परम् ॥२६॥
अहं वृद्धस्तु त्वं वृद्धा कथं पुत्रो भविष्यति । तस्मादज्ञानजं शोकं त्यज बंधनकारणम् ॥२७॥
श्रुत्वा तु यादवेंद्रस्य वाक्यं विज्ञानदं परम् । राजन् रुचिमती प्राह यदूनां प्रवरं पतिम् ॥२८॥

रुचिमत्युवाच

राजन् यज्ञप्रतापेन प्राप्यते वाञ्छितं फलम् । अहं तु कामये द्रष्टुं हतपुत्रान्समागतान् ॥२९॥

पिता अनिरुद्धको परिपूर्णतम पुरुष कहते हैं ॥ १५ ॥ इसके बाद राजा उग्रसेन सभास्थलमें उठ खड़े हुए। उन्होंने मन ही मन भगवानको प्रणाम किया और आश्चर्यमें निमग्न हो सुन्दर रत्नोंसे निर्मित अपने महलको चले गये। किन्तु अश्वमेध यज्ञकी बात अब भी उनके मनमें कौतूहल उत्पन्न कर रही थी॥ १६ ॥ देवराज इन्द्रके समान भव्य रनिवासमें जाकर राजाने देखा कि इन्द्राणीके सदृश सुमुखी उनकी पत्नी रुचिमती पलंगपर बैठी हुई है। अनेक दासियाँ सेवा कर रही हैं। वह वस्त्राभूषणसे सजी हुई है और उसके ऊपर श्वेत चमर चल रहे हैं ॥ १७ ॥ १८ ॥ हे राजन्! रुचिमती अपने पतिको सम्मुख देख उठ खड़ी हुई और उनका विधिवत् सत्कार किया ॥ १९ ॥ तब उग्रसेन पलंगपर बैठ गये और हँसकर मेघजैसी गंभीर वाणी बोले— ॥ २० ॥ हे प्रिये! श्रीकृष्णकी आज्ञासे मैंने आज अश्वमेध यज्ञ करनेका निश्चय किया है। क्योंकि इस यज्ञके प्रतापसे मनुष्य अपना मनोवांछित फल प्राप्त कर लेता है ॥ २१ ॥ गर्गमुनिने कहा—राजा उग्रसेनकी बात सुनकर पुत्रदुःखसे दुःखिता रानी रुचिमती अपने पुत्रोंका स्मरण करती हुई बोली—॥ २२ ॥ हे राजन्! पुत्रदर्शनसे हीन मुझको ये सब सम्पत्तियाँ नहीं सुहातीं, जिन्हें देवता भी चाहते हैं। आप सानन्द यज्ञ करिए ॥ २३ ॥ यदि इस यज्ञके प्रतापसे मेरे सुन्दर पुत्र उत्पन्न हो तो मैं प्रसन्न हूँगी ॥ २४ ॥ रानी रुचिमतीकी बात सुनकर राजा उग्रसेन बहुत दुखी हुए और फिर रानीसे इस तरह बोले, जैसे श्राद्धदेव मनु बोल रहे हों ॥ २५ ॥ राजाने कहा—हे भद्रे! पुत्रकी आशा बड़ी दुःखदायिनी होती है। अतएव तुम पुत्रकी आशा छोड़कर मोक्षदायक परात्पर श्रीकृष्णका भजन करो ॥ २६ ॥ मैं वृद्ध हो गया हूँ और तुम भी वृद्धा हो। तब पुत्र कैसे होगा? अतएव अज्ञानजनित बंधनके कारणस्वरूप पुत्रकी आशा छोड़ दो ॥ २७ ॥ यादवेन्द्र उग्रसेनके ज्ञानदायक वाक्य सुनकर रानी रुचिमती अपने पतिसे बोली ॥ २८ ॥ रुचिमतीने कहा—हे राजन्! यदि उस यज्ञसे मनोवांछित फल प्राप्त होता है तो मैं अपने मरे हुए पुत्रोंको प्रत्यक्ष देखना चाहती

यदि त्वमीदृशं वाक्यं मृतानां दर्शनं कुतः । वदिष्यसि मदग्रे हि ततोऽन्यच्छृणु मन्मुखात् ॥३०॥
कृष्णेन दत्तं तत्पुत्रं गुरवे गुरुदक्षिणाम् । तद्वत्स्वपुत्रान्राजेंद्र कामये द्रष्टुमागतान् ॥३१॥

गर्ग उवाच

इति श्रुत्वाऽऽह्वयामास मां च कृष्णं बृहच्छ्रवाः । तयोः सपर्यां महतीमागताभ्यां चकार ह ॥३२॥
तौ पूजयित्वाऽभिप्रायं ताभ्यां सर्वं न्यवेदयत् । उग्रसेनस्य वाक्यं वै श्रुत्वा मद्वचनाद्धरिः ॥३३॥
उपशक्रो यथा शक्रं प्राह तद्वन्नृपेश्वर ।

श्रीभगवानुवाच

शृणु राजँस्तव सुताः प्रधने निहताः पुरा ॥३४॥
ते सर्वे दिव्यदेहेन वर्तन्ते दिवि देववत् । तस्मात्त्वं नृपशार्दूल पुत्रशोकं विहाय च ॥३५॥
अश्वमेधं क्रतुवरं कुरु धैर्येण भूपते । दर्शयिष्याम्यहं सर्वान् यज्ञस्यांते च ते सुतान् ॥३६॥
निशम्य कृष्णवचनमुर्वीशः स्वां प्रियां मुदा । आश्वास्य च शुभैर्वाक्यैः सुधर्मां सुजनैर्ययौ ॥३७॥
आगतं तु नृपं वीक्ष्य श्रीकृष्णेन समन्वितम् । दिक्पालाश्च प्रणेमुर्वै रामेशानादयः सुराः ॥३८॥
उग्रसेनस्य भूपस्य वज्रनाभे तपः परम् । किं वर्णयामि यं सर्वे श्रीकृष्णाद्या नमंति हि ॥३९॥
यादवेंद्रस्तु सर्वान् वै देवान्नत्वा विलज्जितः । शक्रसिंहासने दिव्ये नारुरोह विचारयन् ॥४०॥
तदैव कृष्णो भगवान्गृहीत्वा पाणिना नृपम् । स्वभक्तं स्थापयामास तस्मिन् वै वासवासने ॥४१॥

इति श्रीगर्गसंहितायां हयमेधखंडे राजराज्ञीसंवादे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथ एकादशोऽध्यायः

(अश्वमेधयज्ञके घोड़ेकी पूजा)

श्रीगर्ग उवाच

अथ राजा सुधर्मायां वासुदेवेन नोदितः । संस्थितानृत्विजो वव्रे मूर्ध्नाऽऽनम्य प्रसाद्य च ॥ १ ॥

हूँ ॥ २९ ॥ यदि आप यह कहें कि मरे हुए मनुष्यका दर्शन कैसे हो सकता है तो मेरा यह वचन सुनिए ॥ ३० ॥ भगवान् कृष्णने मरे हुए गुरुपुत्रको गुरुदक्षिणाके रूपमें दिया था। हे राजेन्द्र! उसी तरह मैं अपने मृत पुत्रोंको सम्मुख देखना चाहती हूँ ॥ ३१ ॥ गर्गमुनि कहते हैं—हे राजन्! अपनी रानीके वचन सुनकर राजा उग्रसेनने भगवान् कृष्ण तथा मुझको बुलवाकर बड़ी विधिसे पूजा की ॥ ३२ ॥ पूजनके पश्चात् उन्होंने हम दोनोंको अपना अभिप्राय बताया। उग्रसेनकी बात सुनकर मेरे कथनानुसार भगवान् इस प्रकार बोले, जैसे उपेन्द्र इन्द्रसे कुछ कह रहे हों। उन्होंने कहा—हे राजन्! सुनिए, आपके जो पुत्र रणमें मरे हैं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ वे सब दिव्य देह प्राप्त करके स्वर्गमें देवताओंकी तरह रह रहे हैं। अतएव हे नृपशार्दूल! आप पुत्रशोक त्याग दें ॥ ३५ ॥ और धैर्य धारण करके यज्ञोंमें श्रेष्ठ अश्वमेध यज्ञ करिए। हे राजन्! यज्ञके अन्तमें मैं आपके मृत पुत्रोंको दिखा दूंगा ॥ ३६ ॥ श्रीकृष्णकी बात सुनकर राजा उग्रसेनने अपनी पत्नीको आश्वस्त किया और सुजनोंके साथ सुधर्मा सभामे चले गये ॥ ३७ ॥ श्रीकृष्णके साथ उग्रसेनको आते देखकर सभी दिक्पालों, देवताओं, बलदेव तथा शंकरजीने नमन किया ॥ ३८ ॥ हे वज्रनाभ! मैं राजा उग्रसेनके तपका वर्णन कहांतक करूँ, जिनको भगवान् कृष्ण सरीखे महापुरुष भी प्रणाम करते हैं ॥ ३९ ॥ सभामें जाकर उग्रसेन सब देवताओंको प्रणाम करनेके बाद लज्जित होकर कुछ सोचते हुए इन्द्रके सिंहासन पर नहीं बैठे ॥ ४० ॥ तब भगवान्ने स्वयं अपने भक्त उग्रसेनका हाथ पकड़कर उन्हें इन्द्रासनपर बैठाया ॥ ४१ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

श्रीगर्गमुनि बोले—हे राजन्! इसके बाद सुधर्मा सभामें विराजमान राजा उग्रसेनने श्रीकृष्णकी

पराशरश्च व्यासश्च देवलश्च्यवनोऽसितः । शतानन्दो गालवश्च याज्ञवल्क्यो बृहस्पतिः ॥ २ ॥
अगस्त्यो वामदेवश्च मैत्रेयो लोमशः कविः । अहं क्रतुर्जैमिनिश्च वैशम्पायन एव च ॥ ३ ॥
पैलः सुमंतुः कण्वश्च भृगू रामोऽकृतव्रणः । मधुच्छंदा वीतहोत्रो कवषो धौम्य आसुरिः ॥ ४ ॥
जावालिर्वीरसेनश्च पुलस्त्यः पुलहस्तथा । दुर्वासाश्च मरीचिश्च ह्येकतश्च द्वितस्त्रितः ॥ ५ ॥
अंगिरा नारदश्चैव पर्वतः कपिलो मुनिः । जातूकर्ण्यो ह्युतथ्यश्च संवर्तश्च मृगीसुतः ॥ ६ ॥
शांडिल्यः प्राड्विपाकश्च कहोडः सुरतो मनुः । कचः स्थूलशिराश्चैव स्थूलाक्षः प्रतिमर्दनः ॥ ७ ॥
बकदाल्भ्यश्च कौडिन्यो रैभ्यो द्रोणः कृपस्तथा । प्रकटाक्षो यवक्रीतो वसुधन्वा च मित्रभूः ॥ ८ ॥
अपांतरतमो दत्तो मार्कंडेयो महामुनिः । जमदग्निः कश्यपश्च भरद्वाजश्च गौतमः ॥ ९ ॥
अत्रिर्मुनिर्वसिष्ठश्च विश्वामित्रः पतंजलिः । कात्यायनिः पाणिनिश्च वाल्मीक्याद्याश्च ऋत्विजः ॥
पूजिता यादवेंद्रेण प्रसन्नास्तेऽभवन्नृप । ततः सर्वे ऋत्विजश्च नृपमूचुर्निमंत्रिताः ॥११॥

मुनय ऊचुः

उग्रसेन महाराज सुरासुरनमस्कृत । यज्ञं कृष्णस्य कृपया कुरु सोऽपि भविष्यति ॥१२॥
इति तेषां वचः श्रुत्वा परितुष्टाखिलेंद्रियः । सर्वान्वै क्रतुसंभारानाजहारांधकेश्वरः ॥१३॥
ततः कृष्ट्वा यज्ञभूमिं विप्राः कनकलांगलैः । पिंडारके यथान्यायं दीक्षायां चक्रिरे नृपम् ॥१४॥
चतुर्योजनपर्यंतं विलिख्य बहुशो महीम् । यज्ञास्यार्थे नृपस्तत्र रचयामास मंडपान् ॥१५॥
योनिमेखलया युक्तं मध्यकुंडं विधाय च । तस्मिन्वै स्थापयामास विधिना जातवेदसम् ॥१६॥
रत्नानेकैर्विरचितां पताकाभिर्युतां सभाम् । मम वाक्याद्वज्रनाभे रचयामास चाहुकः ॥१७॥
अथ दृष्ट्वा सभां कृष्णो निजगौ स्वसुतं प्रति ।

श्रीकृष्ण उवाच

प्रद्युम्न शृणु मद्वाक्यं तन्निशम्य कुरु त्वरम् ॥१८॥

प्रेरणासे सभी उपस्थित ऋत्विजोंको मस्तक झुकाकर प्रणाम करनेके बाद उनका वरण किया ॥ १ ॥ उनमें थे—पराशर, व्यास, देवल, च्यवन, असित, शतानन्द, गालव, याज्ञवल्क्य, बृहस्पति, अगस्त्य, वामदेव, मैत्रेय, लोमश, शुक्राचार्य, गर्ग, क्रतु, जैमिनि, वैशंपायन, पैल, सुमन्तु, कण्व, भृगु, परशुराम, अकृतव्रण, मधुच्छन्दा, वीतिहोत्र, कवष, धौम्य, आसुरि ॥ २–४ ॥ जावालि, वीरसेन, पुलस्त्य, पुलह, दुर्वासा, मरीचि, एकत, द्वित, त्रित ॥ ५ ॥ अंगिरा, नारद, पर्वत, कपिल, जातूकर्ण्य, उतथ्य, संवर्त, ऋष्यश्रृंग, ॥ ६ ॥ शाण्डिल्य, प्राड्विपाक, कहोड, सुरत, मनु, कच, स्थूलशिरा, स्थूलाक्ष, प्रतिमर्दन ॥ ७ ॥ बकदाल्भ्य, कौण्डिन्य, रैभ्य, द्रोण, कृप, प्रकटाक्ष, यवक्रीत, वसुधन्वा, मित्रभू ॥ ८ ॥ अपान्तरतमा, दत्तात्रेय, महामुनि मार्कण्डेय, जमदग्नि, कश्यप, भरद्वाज, गौतम, ॥ ९ ॥ अत्रि, मुनि वसिष्ठ, विश्वामित्र, पतंजलि, कात्यायन, पाणिनि और वाल्मीकि आदि मुनि उस यज्ञके ऋत्विज वरण किये गये ॥ १० ॥ यादवेन्द्र उग्रसेनसे पूजित होकर वे सब ऋषि बहुत प्रसन्न हुए। तदनन्तर राजा उग्रसेनके द्वारा निमन्त्रित होकर उन मुनियोंने कहा ॥ ११ ॥ मुनि बोले—देवताओं तथा दैत्योंसे नमस्कृत हे महाराज उग्रसेन! आप निर्भय भावसे यज्ञ करिए। श्रीकृष्णकी कृपासे वह पूर्ण होगा ॥ १२ ॥ उन मुनियोंकी बात सुनकर सब इन्द्रियोंसे प्रसन्न उग्रसेनने यज्ञकी सामग्री जुटायी ॥ १३ ॥ तदनन्तर ब्राह्मणोंने सोनेके हलसे यज्ञभूमि जोती और पिंडारक क्षेत्रमें राजाको यज्ञकी दीक्षा दी गयी ॥१४॥ तब चार योजन भूमिको अनेक बार जोता गया। उसी स्थानपर राजाने यज्ञके मण्डपका निर्माण कराया ॥१५॥ मण्डपके मध्यभागमें योनि और मेखलायुक्त यज्ञकुंडकी रचना की गयी और राजा उग्रसेनने उस कुंडमें विधिवत् अग्निस्थापन किया ॥ १६ ॥ श्रीगर्गमुनि कहते हैं—हे वज्रनाभ! मेरे कथनानुसार राजाने उसी भूमिपर अनेकानेक ध्वजा-पताकाओंसे युक्त सभाभवन बनवाया ॥ १७ ॥ सभाभवन देखकर भगवान् कृष्णने अपने पुत्र प्रद्युम्नसे कहा—हे वत्स! तुम मेरी बात ध्यानसे सुनो और

गत्वा शस्त्रधरैः शूरैर्यत्नेन हयमानय ।

श्रीगर्ग उवाच

इति श्रुत्वा हरेर्वाक्यं प्रद्युम्नो धन्विनां वरः ॥१९॥

तथेत्युक्त्वा हयं नेतुं वाजिशालां जगाम ह । ततः कृष्णेन रक्षार्थं स्वपुत्राश्च हयस्य वै ॥२०॥
प्रेषिता वाजिशालायां भानुसांबादयो नृप । स गत्वा वाजिशालायां रुक्मिणीनन्दनो बली ॥२१॥
स्वर्णशृंखलया बद्धाञ्छ्यामकर्णान्सहस्रशः । विलोक्यैकं स्वहस्तेन यज्ञयोग्यं तुरंगमम् ॥२२॥
प्रहसन्मोचयामास बंधनान्नृप लीलया । सहयो निर्ययौ मुक्तो शालायाश्च शनैः शनैः ॥२३॥
रक्ताननो पीतपुच्छः श्यामकर्णो मनोहरः । स्रग्भिर्मुक्ताफलानाञ्च शोभितो दिव्यदर्शनः ॥२४॥
श्वेतातपत्रेण युतो चामरैः समलंकृतः । अग्रतो मध्यतश्चैव पृष्ठतश्च हरेः सुताः ॥२५॥
सेवंते हरिराजं वै सुराः सर्वे हरिं यथा । तथान्यै रक्षमाणस्तु मण्डलेशैस्तुरंगमः ॥२६॥
प्राप्तोऽथ मंडपं कुर्वन्खुरक्षततलां महीम् । नृपो वीक्ष्यागतं तत्र श्यामकर्णं मुदान्वितः ॥२७॥
प्रेषयामास मां राजन्क्रियाकर्तव्यतां प्रति । सोऽहं नृपं च संस्थाप्य रुचिमत्या समन्वितम् ॥२८॥
पिंडारके प्रयोगं वै कारयामास धर्मतः । नृपश्चैत्रे पूर्णिमायां दीक्षितोऽजिनसंवृतः ॥२९॥
असिपत्रव्रतं राजन्स चकार मदाज्ञया । अहं तु यादवेन्द्रस्य कुलपूज्यगुरुर्मुनिः ॥३०॥
सर्वेषां चैव विप्राणामाचार्यो ह्यभवं नृप । अथ विप्रा ब्रह्मघोषैः श्रीकृष्णस्याज्ञया स्थिताः ॥३१॥
सर्वे प्रपूजयामासुर्हेरंबादीन्सुरान्पृथक् । ततः सर्वे मुनिगणाः संस्थाप्य तुरगं नृप ॥
काश्मीरचन्दनेनापि पुष्पस्रग्भिश्च तंदुलैः ॥३२॥
नीराजनादिभिर्धूपैः सुधाकुण्डलकादिभिः । पूजयित्वा हयं भूपं दानार्थे तु ह्यनोदयन् ॥३३॥

उसके अनुसार शीघ्र सब काम पूरा करो ॥ १८ ॥ पहले शस्त्रधर वीरोंके साथ जाकर प्रयत्नपूर्वक घोड़ेको यहाँ ले आओ। गर्गमुनि कहते हैं—हे राजन्! श्रीकृष्णकी बात सुनकर धनुर्धरोंमें प्रमुख प्रद्युम्न 'तथास्तु' कहकर घोड़ेको लानेके लिए अश्वशाला गये। इधर भगवान् कृष्णने घोड़ेकी रक्षाके लिए भानु-साम्ब आदि अपने पुत्रोंको भेजते हुए कहा—जाओ, बड़ी सावधानीसे अश्वको यहाँ ले आओ। तदनुसार महावली रुक्मिणी-नन्दन प्रद्युम्नने वाजिशालामें जाकर स्वर्णशृंखलाओंमें बँधे हजारों श्यामकर्ण घोड़े देखे। उनमेंसे एक यज्ञयोग्य घोड़ेको देखकर हँसते हुए प्रद्युम्नने खेल-खेलमें शृंखलासे खोलकर छोड़ दिया। वह छूटा हुआ घोड़ा धीरे-धीरे अश्वशालाके बाहर निकल आया ॥ १९–२३ ॥ उसका लाल मुख था, पीली पूँछ थी, उसका एक कान श्यामवर्ण था, सारा शरीर मोतियोंकी मालाओंसे अलंकृत था और देखनेमें वह बड़ा दिव्य दीखता था ॥ २४ ॥ उसके ऊपर श्वेत छत्र लगा था। चँवर चल रहे थे। उसके आगे-पीछे और मध्यमें चलते हुए श्रीकृष्णके पुत्र उसकी रक्षा कर रहे थे ॥ २५ ॥ वे उस अश्वराजकी वैसी ही सेवा कर रहे थे, जैसे मनुष्य भगवान् विष्णुकी सेवा करते हैं। उनके अतिरिक्त अन्यान्य मंडलेश्वर भी उसकी चौकसीमें संलग्न थे ॥२६॥ धीरे-धीरे धरतीको अपने खुरसे विदीर्ण करता हुआ वह मंडपमें आया। इससे प्रसन्न होकर राजा उग्रसेनने अश्वको देखा ॥ २७ ॥ उसकी पूजाका विधि-विधान सम्पन्न करनेके लिए महाराजने मुझे नियुक्त किया। तब मैंने महारानी रुचिमतीके साथ महाराज उग्रसेनको पिंडारक क्षेत्रमें प्रतिष्ठित किया ॥ २८ ॥ वहाँ उग्रसेनने चैत्र शुक्ल पूर्णिमाको मृगचर्म धारण किया और यज्ञकी दीक्षा ली ॥ २९ ॥ तदनन्तर मेरी आज्ञासे राजाने असिपत्र व्रत किया। हे वज्रनाभ! यादवेश उग्रसेनका मैं कुलपूज्य गुरु रहा हूँ ॥ ३० ॥ इसीसे मैं यज्ञमें सब ब्राह्मणोंका आचार्य बना। इसके बाद भगवान् कृष्णकी आज्ञासे ब्राह्मणोंने वेदघोष आरम्भ किया ॥ ३१ ॥ बादमें विप्रोंने गणपति आदि देवताओंकी पृथक्-पृथक् पूजा करायी। तत्पश्चात् मुनियोंने उस घोड़ेको खड़ा करके केसर, चन्दन, फूलमाला, अक्षत, आरती, धूप-दीप तथा जलेबी प्रदान आदि विधियोंसे पूजन तथा शृंगार करके राजा उग्रसेनसे कहा कि अब आप दान करिए ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

ततः श्रुत्वाऽऽहुकः शीघ्रं पूर्वं मह्यं ददौ धनम् । एकलक्षं तुरंगाणां सहस्रं हस्तिनां तथा ॥३४॥
द्विसहस्रं रथानां च धेनूनां लक्षमेव च । शतभारं सुवर्णानामीदृशीं दक्षिणां नृपः ॥३५॥
निमंत्रितेभ्यो विप्रेभ्य उग्रसेनो नृपस्ततः । यथोक्तां दक्षिणां राजन्प्रददौ तां च त्वं शृणु ॥३६॥
घोटकानां सहस्रं च द्विपानां शतमेव च । रथानां द्विशतं चैव सहस्रं च गवां तथा ॥३७॥
विंशद्भारं च हेमानामीदृशीं दक्षिणां पुनः । अथागतेभ्यो विप्रेभ्यो नत्वा राजा विधानतः ॥३८॥
गजमेकं रथं गां च स्वर्णभारं च घोटकम् । एकैकस्मै च विप्राय दक्षिणां प्रददौ नृपः ॥३९॥
एवं कृत्वा तु दानं वै ललाटे तुरगस्य च । कमनीयं कुंकुमाद्यैः स्वर्णपत्रं बबंध ह ॥४०॥

तत्राहमुग्रसेनस्य प्रतापं वीर्यमूर्जितम् ।
ततोऽलिखं सभायां वै यादवानां च पश्यताम् ॥४१॥

चन्द्रवंशे यदुकुले उग्रसेनो विराजते । इन्द्रादयः सुरगणा यस्यादेशानुवर्तिनः ॥४२॥
सहायो यस्य भगवाञ्श्रीकृष्णो भक्तपालकः । अस्ति वै द्वारकापुर्यां तद्भक्त्या निवसन्हरिः ॥४३॥
तद्वाक्याद्धयमेधं स उग्रसेनो नृपेश्वरः । चक्रवर्ती हठाद्यज्ञं स्वयशोर्थे करोति हि ॥४४॥
मोचितस्तेन तुरगो हयानां प्रवरः शुभः । तद्रक्षकः कृष्णपौत्रोऽनिरुद्धो वृकदैत्यहा ॥४५॥

गजाश्वरथवीराणां सेनासंघसमन्वितः ।
राजानो ये करिष्यंति राज्यं कौ शूरमानिनः ॥४६॥

ते गृह्णंतु यज्ञहयं स्वबलात्पत्रशोभितम् । तं मोचयति धर्मात्मा गृहीतं च हयं नृपैः ॥४७॥
स्वबाहुबलवीर्येणानिरुद्धो लीलया हठात् । तस्यान्यथा च पदयोः पतित्वा यांतु धन्विनः ॥४८॥
इति पत्रे च लिखिते दध्मुः शंखान्यदूत्तमाः । कांस्यतालमृदंगाद्या नेदुर्भेर्यश्च गोमुखाः ॥४९॥
मंगलानि चरित्राणि श्रीकृष्णबलदेवयोः । गंधर्वास्तत्र गायंति ननृतुरप्सरसो मुदा ॥५०॥

सो सुनकर राजाने सर्वप्रथम मुझको दान दिया। जिसमें एक लाख घोड़े, एक हजार हाथी, दो हजार रथ, एक लाख गौ और सौ भार सोनेकी दक्षिणा दी ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ तदनन्तर आमंत्रित ब्राह्मणोंकी पूजा करके जो विधिसंगत दक्षिणा दी, सो सुनिए ॥ ३६ ॥ उसमें उन्होंने प्रत्येक आमंत्रित ब्राह्मणको एक-एक हजार घोड़े, दो-दो सौ हाथी, दो-दो सौ रथ, एक-एक हजार गौ और वीस-बीस भार सुवर्ण दक्षिणामें दी। विना निमंत्रणके आये हुए ब्राह्मणोंको विधिवत् प्रणाम करके राजाने प्रत्येक ब्राह्मणको एक-एक हाथी, एक-एक गौ, एक-एक रथ, एक-एक घोड़ा तथा एक-एक भार सोना दक्षिणामें दिया ॥ ३७–३९ ॥ इस प्रकार दान करके राजाने घोड़ेके माथेपर केसरिया चन्दनका तिलक लगाकर एक स्वर्णपत्र बाँधा ॥ ४० ॥ उस पत्रपर सब यादवोंके समक्ष राजा उग्रसेनका प्रताप, पराक्रम और उनकी ऊर्जस्विताका वर्णन करते हुए मैंने लिखा— ॥ ४१ ॥ चन्द्रवंश और यदुकुलमें प्रमुख महाराज उग्रसेन एक राजा हैं। इन्द्रादिक देवता भी इनकी आज्ञा-का पालन करते हैं ॥ ४२ ॥ भक्तपालक साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण इनके सहायक हैं और उग्रसेनके स्नेहसे ही वे द्वारका पुरीमें निवास करते हैं ॥ ४३ ॥ उन्हीं भगवान्की आज्ञासे राजाधिराज चक्रवर्ती महाराज उग्रसेन अपना यश विस्तृत करनेके लिए हठात् अश्वमेध यज्ञ कर रहे हैं ॥ ४४ ॥ उन्होंने अश्वमेध यज्ञका यह उत्तम श्यामकर्ण घोड़ा छोड़ा है। इसकी रक्षाके लिए श्रीकृष्णके पौत्र और वृक दैत्यका वध करनेवाले अनिरुद्ध नियुक्त किये गये हैं ॥ ४५ ॥ हाथी, घोड़े, रथ तथा वीरोंकी विशाल सेनासे युक्त जो राजे अपनेको शूरवीर समझते हों, वे इस पत्रालंकृत घोड़ेको अपने वलसे पकड़ें। राजाओं द्वारा पकड़े हुये इस घोड़ेको अनिरुद्ध अपने बाहुबलसे हठपूर्वक छुड़ायेंगे। जो राजे घोड़ेको न पकड़ें, वे अनिरुद्धके चरणोंपर गिरें ॥ ४६–४८ ॥ महामुनि गर्गके द्वारा लिखा हुआ यह पत्र जब घोड़ेके मस्तकपर बाँधा गया। तब सब यादवोंने शंख बजाये। उसके साथ विजयघंट तथा मृदंग-भेरी आदि बाजे भी बजे ॥ ४९ ॥ उस समय गन्धर्व श्रीकृष्ण

अथानिरुद्धं तुरगस्य पालने भूत्वा प्रसन्नः किल कार्ष्णिनन्दनम् ।
समादिदेशाच्युतसेव संस्थितं यदूत्तमानामधिपस्य पश्यतः ॥५१॥

इति श्रीगर्गसंहितायां हयमेधचरित्रे सुमेरौ हयपूजनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

(अनिरुद्धका विजयाभिषेक)

गर्ग उवाच

अथ राजा कुशस्थल्यां पूजयित्वा तुरंगमम् । मुमोच ब्रह्मघोषेण विधिना बद्धचामरम् ॥ १ ॥
सुधाकुण्डलिकाः सोऽपि भुक्त्वा तुरगराट् ततः । निर्ययौ स्वर्णमालाभिः शोभितः कुंकुमेन च ॥ २ ॥
रक्षणार्थं हयस्यार्थे चादरेण नृपेश्वरः । अनिरुद्धं वृकहणमूचे रक्षार्थमुद्यतम् ॥ ३ ॥

उग्रसेन उवाच

श्रीकृष्णपौत्र प्राद्युम्ने त्वया यत्कथितं वचः । पालनार्थे तुरंगस्य स्वेच्छया तत्कुरु त्वरम् ॥ ४ ॥
मद्राजसूये पूर्वं वै प्रद्युम्नेन जिता मही । त्वं तु शूरोऽसि बलवान्धन्वी तस्यात्मजो महान् ॥५॥
वृकस्तु शकुनेर्भ्राता महादैत्यो हतस्त्वया । राजानश्च जिताः सर्वे भीष्मो युद्धे हि तोषितः ॥ ६ ॥
अहो मृगांकलोकेशौ यस्मिन्संलीनतां गतौ । तस्मात्त्वामृषयः सर्वे परिपूर्णं वदंति हि ॥ ७ ॥
तस्मात्पालय त्वं वीर सेनया च परीवृतः । राजन्येभ्यश्च सर्वेभ्यो हयमेधतुरंगमम् ॥ ८ ॥
अर्भकान्विरथान्भीतान्प्रपन्नान्दीनमानसान् । सुप्तान्प्रमत्तानुन्मत्तानूणे तान्मा निपातय ॥ ९ ॥
श्रीकृष्णस्य प्रतापेन निर्विघ्नं तेऽस्तु कार्ष्णिज । साश्वस्त्वं पुनरागच्छ कुशली सेनयाऽन्वितः ॥१०॥

गर्ग उवाच

ततः श्रुत्वाऽनिरुद्धस्तु नृपस्य वचनं शुभम् । तथेत्युक्त्वा हयस्यापि पालनार्थं मनो दधे ॥११॥

तथा बलरामके चरित्र गाने लगे और अप्सरायें बड़े हर्षके साथ नाचने लगीं ॥ ५० ॥ तदनन्तर बड़े प्रसन्न मनसे उग्रसेनने सब यादवोंके समक्ष प्रद्युम्नके पुत्र अनिरुद्धको उस घोड़ेकी रक्षा करनेका आदेश दिया ॥ ५१ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

गर्गमुनि बोले—हे राजन् ! इसके बाद द्वारकापुरीमें राजा उग्रसेनने उस घोड़ेकी पूजा की और विधिवत् चमर बाँधा । फिर वेदमंत्रोच्चारण करके उसे छोड़ दिया ॥ १ ॥ स्वर्णमाला तथा केसरसे अलंकृत वह अश्व भी अमृत तुल्य मीठी जलेबियाँ खाकर चल पड़ा ॥ २ ॥ उसकी रक्षाके कार्यपर नियुक्त वृकासुरका वध करनेवाले अनिरुद्धसे राजा उग्रसेन बड़े आदरके साथ बोले ॥ ३ ॥ उग्रसेनने कहा—हे कृष्णपौत्र तथा प्रद्युम्नके पुत्र अनिरुद्ध ! उस समय अश्वरक्षाके सम्बन्धमें आपने जो बात कही थी, उसे अब स्वेच्छासे शीघ्र पूर्ण करिए ॥ ४ ॥ मेरे राजसूय यज्ञमें आपके पिता प्रद्युम्नने समस्त पृथिवी जीती थी । उन्हींके पुत्र आप भी शूरवीर, बलवान् और महान् धनुर्धर हैं ॥ ५ ॥ शकुनिके भाई बलवान् वृक दैत्यको आपने मारा था । संग्राममें सब राजाओंको जीता और अपने युद्ध कौशलसे आपने भीष्मपितामहको भी प्रसन्न किया था ॥ ६ ॥ अहो ! ब्रह्माजी और चन्द्रमा ये दोनों आपके तनमें लीन हो गये थे । इसी कारण सब ऋषि आपको परिपूर्ण पुरुष कहते हैं ॥ ७ ॥ अतएव हे वीर ! इस विशाल वाहिनीके साथ जाकर आप शत्रु राजाओंसे अश्वकी रक्षा करिए ॥ ८ ॥ बालकोंको, रथहीनोंको, भयभीत लोगोंको, शरणागतोंको, दीन-दुर्बल मनवालों-को, सोते हुए लोगोंको, प्रमत्त और उन्मत्त पुरुषोंको युद्धमें मत मारना ॥ ९ ॥ हे प्रद्युम्नतनय ! श्रीकृष्णके प्रतापसे आप सर्वत्र निर्विघ्न रहेंगे । अतएव सारी सेनाके साथ अश्वको लेकर कुशलपूर्वक लौट आयें ॥ १० ॥ गर्गमुनि कहते हैं—हे राजन् ! उग्रसेनके वचन सुनकर अनिरुद्धने बहुत अच्छा कहा और उस अश्वकी रक्षा करने-

अथानिरुद्धं ते विप्राः कृष्णचन्द्राज्ञया त्वरम् । तं मंत्रैः स्नापयित्वा च पूजां चक्रुर्मुदान्विताः ॥१२॥
अनिरुद्धस्य तिलकं कृत्वा राजा विधानतः । बलिं दत्त्वा च युद्धाय करवालं ददौ ततः ॥१३॥
शूरो ददौ रत्नमालां तस्मै शौरिश्च कुंडले । बलदेवश्च कवचं स्वचक्रं हरिरेव च ॥१४॥
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धाय कृष्णदत्तं धनुर्ददौ । तथा स्वतूणौ राजेंद्र तस्मै चाक्षयसायकौ ॥१५॥
स्वत्रिशूलात्समुत्पाद्य त्रिशूलं प्रमथाधिपः । उद्धवश्च किरीटं वै पीतवस्त्रं च देवकः ॥१६॥
प्रचेता नागपाशं च शक्तिं शक्तिधरः किल । श्वसनो व्यजने दिव्ये स्वदंडं यमराट् पुनः ॥१७॥
हीरहारं राजराजो परिघं तु धनंजयः । भद्रकाली गदां गुर्वीं ददौ कुन्तं दिवाकरः ॥१८॥
भूः पादुके योगमय्यौ पद्मं दिव्यं गणाधिपः । शंखं च दक्षिणावर्त्तमक्रूरो विजयप्रदम् ॥१९॥
सहस्रवाजिसंयुक्तं विश्वकर्मविनिर्मितम् । सहस्रचक्रं स्वर्णाढ्यं ब्रह्मांडांतर्बहिर्गतिम् ॥२०॥
छत्रेण शतकुंभैश्च पताकाभिः शतैरपि । शोभितं मेघनिर्घोषं घंटामंजीरनादितम् ॥२१॥
मनोवेगं महादिव्यं जैत्रं रत्नमयं रथम् । अनिरुद्धाय प्रददौ द्वारकायां पुरंदरः ॥२२॥
कंबुदुन्दुभयो नेदुः कांस्यवीणादयस्तदा । मृदंगवेणवो रागैर्जयध्वनिसमाकुलैः ॥२३॥
ब्रह्मघोषैर्लाजपुष्पैर्मुक्तावर्षसमन्वितैः । अनिरुद्धोपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे ॥२४॥

इति श्रीगर्गसंहितायां हयमेधखण्डेऽनिरुद्धविजयाभिषेको नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

(अश्वके साथ चलनेवाली सेनाका विवरण)

श्रीगर्ग उवाच

अथ नत्वा गुरून्सोऽपि प्रायात्प्रष्टुं च देवकीम् ।
रोहिणीं रुक्मिणीं भामामन्याः सर्वा हरिप्रियाः ॥ १ ॥

का निश्चय किया ॥ ११ ॥ तदनन्तर श्रीकृष्णकी आज्ञासे ब्राह्मणोंने अनिरुद्धको वैदिक मंत्रोंसे स्नान कराके बड़े हर्षके साथ उनका पूजन कराया ॥ १२ ॥ तदनन्तर राजा उग्रसेनने विधिवत् अनिरुद्धका तिलक किया और भेंट देकर युद्ध करनेके लिए एक खड्ग प्रदान किया ॥ १३ ॥ उसके बाद शूरसेनने रत्नमयी माला, वसुदेवने कुण्डल, बलरामने कवच, श्रीकृष्णने चक्र, प्रद्युम्नने श्रीकृष्णका दिया हुआ धनुष और अक्षय बाणोंसे भरे दो तरकस दिये ॥ १४ ॥ १५ ॥ प्रमथोंके अधिपति शंकरजीने अपने त्रिशूलसे निकालकर एक त्रिशूल अनिरुद्धको दिया। उद्धवने उन्हें किरीट और देवकीने पीला वस्त्र दिया ॥ १६ ॥ वरुणदेवने नागपाश, कार्तिकेयने शक्ति, पवनदेवने दो पंखे और यमराजने उनको यमदण्ड प्रदान किया ॥ १७ ॥ कुवेरने हीरेका हार, अर्जुनने परिघ, भद्रकालीने बड़ी भारी गदा और सूर्यने भाला दिया ॥ १८ ॥ पृथिवीने योगमयी पादुकायें अर्थात् खड़ाऊँ दिये, गणेशजीने दिव्य कमल और अक्रूरने विजय दिलानेवाला दक्षिणावर्त शंख दिया ॥ १९ ॥ देवराज इन्द्रने विश्वकर्माका बनाया, एक हजार घोड़े जुतने योग्य, एक हजार पहियोंयुक्त, ब्रह्माण्डके बाहर और भीतर जा सकनेवाला, सोनेका बना, स्वर्णछत्रसे अलंकृत, स्वर्णपताकाओं युक्त, मेघसरीखा शब्द करनेवाला, घण्टों तथा मंजीरोंसे शब्दायमान, मनके सदृश वेगवाला, बहुत दिव्य, सर्वत्र विजय दिलानेवाला और विविध रत्नोंसे खचित रथ अनिरुद्धको प्रदान किया ॥ २०–२२ ॥ जब अनिरुद्ध चले तो शंख, दुन्दुभी, कांस्य, मृदंग, वंशी आदि बाजे बजने लगे और सब ओरसे उनकी जयजयकार होने लगी ॥ २३ ॥ उस समय विप्रोंने वेदघोष किया, नगरकी नारियोंने उनपर धानके लावे तथा मोती बरसाये और देवताओंने गगनमण्डलसे उनपर पुष्पवर्षा की ॥ २४ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखण्डे भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

श्रीगर्गमुनि बोले—हे वज्रनाभ ! उसके पश्चात् अनिरुद्ध भी गुरुजनों, देवकी, रोहिणी, रुक्मिणी,

नत्वा रतिं रुक्मिवतीमहं गच्छाम्युवाच ह । राज्ञाऽऽदिष्टः पालनार्थं हयस्य सह यादवैः ॥ २ ॥
ताश्च गद्गदभाषिण्यस्तं परिष्वज्य कार्ष्णिजम् । आशिषं प्रददू राजंस्तस्मै च प्रणताय वै ॥ ३ ॥
नत्वा ताश्च ययौ सोऽपि भार्याणां भवनानि च । तमागतं स्वभर्तारं तिस्रः पत्न्यो विलोक्य च ॥ ४ ॥
आदरं तस्य ताश्चक्रुर्विरहात्खिन्नमानसाः । आश्वासयित्वा ताः सोऽपि चाजगाम सभां किल ५ ॥

गर्ग उवाच

अथाध्वरार्थे राजेन्द्र मुनिभिः कृतमंगलः । सर्वान्नृपान्गुरूंश्चैव नृपेन्द्रं शूरमेव च ॥ ६ ॥
वसुदेवं च हलिनं कृष्णं स्वपितरं तथा । अन्यांश्च यादवान्पूज्याननिरुद्धः प्रणम्य च ॥ ७ ॥
पूजितो नागरैः सर्वैर्धनुष्पाणिः शरी नृप । बद्धगोधांगुलित्राणः कवची कुण्डलावृतः ॥ ८ ॥
उपानद्गूढपादश्च पंचास्यसमविक्रमः । करवालधरश्चर्मी किरीटी शक्तिहस्तकः ॥ ९ ॥
महावीरः सुवर्णस्य ह्यलंकारैरलंकृतः । पुरंदररथेनापि निर्ययौ स्वपुराद्बहिः ॥ १० ॥
गीतवादित्रघोषेण ब्रह्मघोषेण कार्ष्णिजम् । यास्यंतं चामरैर्युक्तं ददृशुः पुरवासिनः ॥११॥
ततः श्रीकृष्णचंद्रेण प्रेषिता उद्धवादयः । भोजवृष्ण्यंधकमधुशूरसेनदशार्हकाः ॥१२॥
अथ राजा यदून्प्राहानिरुद्धस्य च यादवाः । सहायार्थं तु प्रधने वदतात्कः प्रयास्यति ॥१३॥
उग्रसेनवचः श्रुत्वा सांबो जांबवतीसुतः । सर्वेषां पश्यतां नत्वा नृपं वचनमब्रवीत् ॥१४॥

सांब उवाच

अनिरुद्धस्य राजेन्द्र सहायमहमेव च । महारणे च शत्रुभ्यः करिष्ये सर्वदा किल ॥१५॥
यद्यहं तस्य रक्षां वै न करिष्ये रणांगणे । प्रतिज्ञां मम राजेंद्र शृणुष्व सत्यवादिनः ॥१६॥
त्याज्यां तु दशमीविद्धां यः कुर्वैकादशीं नरः । प्रयाति यां गतिं राजंस्तामहं प्राप्नुयां ध्रुवम् ॥१७॥

गोहन्तॄणां गतिर्या तु या गतिर्ब्रह्मघातिनाम् । सा गतिर्मम भूयाद्धि न कुर्यां कर्म चेदिदम् ॥१८॥

गर्ग उवाच

इत्युक्त्वा वचनं सोऽपि ययौ चांतःपुरं ततः । नत्वा च मातरं सर्वमभिप्रायं न्यवेदयत् ॥१९॥
श्रुत्वा सा तं परिष्वज्य विरहाद्याशिषं ददौ । ततो मातॄस्तु ताः सर्वा नत्वा पत्नीगृहं गतः ॥२०॥
सा तमायांतमालोक्य लक्ष्मणा वरलक्षणा । दत्त्वासनं बाष्पकंठी न तु किंचिदुवाच ह ॥२१॥
आश्वासयित्वा तां सांबो ह्यभिप्रायमवर्णयत् । इति श्रुत्वा पतिं प्राह विरहात्खिन्नमानसा ॥२२॥

लक्ष्मणोवाच

अनिरुद्धस्य तुरगो रक्षणीयस्त्वया पते । युद्धं हि संमुखं कार्यं विमुखं न कदाचन ॥२३॥
त्वद्भ्रातॄणां स्त्रियः संति मानवत्यः सहस्रशः । संग्रामे यदि ते नाथ निशम्य च पराजयम् ॥२४॥
स्मितानना भविष्यंति दृष्ट्वा मां च तव प्रियाम् । तदा दुःखतमेनाथ मरणं तु भविष्यति ॥२५॥
श्रुत्वैतद्वचनं सांबो प्रत्युवाच प्रियां हसन् ।

सांब उवाच

प्रधने मम संप्राप्तं त्रैलोक्यं संमुखं किल ॥२६॥
श्रोष्यसे त्वं मया भद्रे सर्वं च विदलीकृतम् । यदि सांबो रणात्क्रूरो विमुखो जायते शुभे ॥२७॥
तदा सोऽस्तु स्वपापेन ब्रह्मविप्रविनिंदकः । पुनस्त्वहं न पश्यामि चन्द्राकारं तवाननम् ॥२८॥

गर्ग उवाच

इत्याश्वास्य प्रियां सांबो द्वितीयां च प्रयत्नतः ।
अभिमन्युं सुभद्रां च मिलित्वा निर्ययौ गृहात् ॥२९॥
चापी नैस्त्रिंशकः सज्जो स्यंदनी यादवैर्वृतः । प्रातश्चोपवने सांबोऽनिरुद्धो यत्र वर्त्तते ॥३०॥
ततः स्वभ्रातरः सर्वे श्रीकृष्णेन गदादयः । प्रेषिता आत्मजाश्चैव भानुर्दीप्तिमदादयः ॥३१॥

सर्वे हि धन्विनः शूरा दंशिता युद्धकोविदाः । चतुरंगबलोपेता निर्जग्मुः कोटिशः पुरात् ॥३२॥
तालहंसमीनबर्हिमृगराजध्वजै रथैः । दिव्यैश्च कनकांगैश्च चतुर्वाजिसमन्वितैः ॥३३॥
महोच्चैर्देवधिष्ण्याभैश्छत्रचामरसंयुतैः । सूर्याभैश्च सुवर्णस्य कुम्भैर्जालकतोरणैः ॥३४॥
रेजुः सर्वे कृष्णसुताः कुशस्थल्या विनिर्गताः । ततश्च निर्ययू राजन्हेमनीडाश्च हस्तिनः ॥३५॥
गोमूत्रचयसिंदूरकस्तूरीपत्रभृन्मुखाः । अंजनाभाः कज्जलाभा घनश्यामा मदच्युताः ॥३६॥
राजीवमूलसदृशाः शुक्लदंता मृगद्विपाः । महोच्चाः पर्वताकारा रणद्घंटा महोद्भटाः ॥३७॥
ऐरावतकुलेभाश्च तिस्रः शुण्डाश्च पांडुराः । चतुर्दंतास्तु कृष्णेन भौमान्नीताश्च निर्ययुः ॥३८॥

ध्वजयुक्ता लक्षगजा लक्षदुंदुभिसंयुताः ।
लक्षाः शून्या महामात्यैः स्वर्णकंबलमंडिताः ॥३९॥

ततः शूरैश्च संयुक्ता गजेंद्रा एककोटयः । इतस्ततो विरेजुस्ते बलेऽब्धौ मकरा यथा ॥४०॥
उत्पाट्य गुल्मान्छुंडैश्च क्षेपयंतो नभस्तले । महीं पादैः कपयंत आर्द्रीकृत्य मदैरपि ॥४१॥
प्रासाददुर्गशैलांगान्पातयंतः शिरःस्थलैः । रिपूणां च बलं सर्वं खण्डयंतो महाबलाः ॥४२॥
श्यामपीतकृष्णशुक्लरक्तवर्णैश्च कंबलैः । सुवर्णशृंखलैर्युक्ता रेजुरेतादृशा गजाः ॥४३॥
ततस्तुरंगमा ये वै नारदेन विलोकिताः । ते सर्वे निर्गता राजन्स्वर्णहारैश्च संयुताः ॥४४॥
केचिद्वै चंचलांगाश्च धूम्रवर्णा मनोहराः । श्यामवर्णाः पद्मवर्णाः कृष्णवर्णाः सुकंधराः ॥४५॥
दुग्धाभा घोटकाः केचित्तथा कीलालसन्निभाः । हरिद्राभाः कुंकुमाभाः पालाशकुसुमप्रभाः ॥४६॥

ने गद आदि अपने भाइयों तथा भानुमान्-दीप्तिमान् आदि पुत्र भेजे ॥ ३१ ॥ वे धनुर्धर वीर सिंहांकित ध्वजा-युक्त तथा स्वर्णाभरणधारी घोड़ोंसे जुते रथोंपर बैठकर वहाँ आये ॥ ३२ ॥ उनके अतिरिक्त अन्यान्य धनुर्धारी यादव योद्धा कवच धारण किये, दिव्य चतुरंगिणी सेनाके साथ तालहंस तथा मत्स्यध्वजसे युक्त चार घोड़ोंसे जुते रथोंपर बैठकर आये ॥ ३३ ॥ देवभवनों जैसे बहुत ऊँचे, छत्र-चमरयुक्त, सूर्यसदृश देदीप्यमान सुवर्णके कलशोंसे सम्पन्न और जालीदार तोरणयुक्त रथोंपर बैठकर श्रीकृष्णके अन्यान्य पुत्र द्वारकासे बाहर निकले। उसके बाद सुनहले हौदोंसे सजे हाथी निकले ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ गोमूत्र, सिन्दूर और कस्तूरी-मिश्रित रंगसे उनके मस्तकपर चित्रकारी की हुई थी। वे हाथी अंजन, काजल तथा मेघके समान श्यामवर्ण थे। उनके मस्तकसे मद चू रहा था ॥ ३६ ॥ कमलकी जड़के सदृश सफेद उनके दाँत थे। वे मृग सरीखे तेज भागनेवाले हाथी थे। वे पर्वत जैसे ऊँचे थे। उनकी पीठके घंटे बज रहे थे और वे सब बड़े ही ढीठ थे ॥ ३७ ॥ ऐरावतके कुलमें उत्पन्न उन हाथियोंकी तीन-तीन सूँड़ें थीं। चार-चार दाँत थे। भौमासुरको जीतकर भगवान् उन्हें लाये थे ॥ ३८ ॥ उनमेंसे एक लाख हाथियोंपर ध्वजायें थीं। एक लाख हाथियोंपर दुन्दुभी बज रही थी। सुनहले कामके झूलों-से सजे हाथियोंपर यादववीर सवार थे। इस प्रकार इधर-उधर घूमते हुए कुल मिलाकर एक करोड़ हाथी उस सेनारूपी समुद्रमें मगर जैसे दीख रहे थे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ वे अपनी सूँड़ोंसे वृक्षों और लताओंको उखाड़-उखाड़कर आकाशमें उछाल रहे थे और अपनी मदधारासे आर्द्र करते हुए वे पैरोंकी धमकसे धरतीको कँपा रहे थे ॥ ४१ ॥ वे अपने मस्तकसे प्रासादों, किलों तथा पर्वतकी चट्टानोंको ढहा रहे थे। वे महाबली हाथी समस्त शत्रुसेनाको रौंद डालनेमें समर्थ थे ॥ ४२ ॥ उनकी पीठपर काले, पीले, नीले, सफेद और लाल रंगकी झूलें पड़ी थीं और पैरोंमें सोनेके सिक्कड़ बँधे हुए थे। इन सब अलंकारोंसे वे हाथी बहुत सुन्दर लग रहे थे ॥ ४३ ॥ उनके बाद स्वर्णहारधारी वे घोड़े नगरसे बाहर निकले, जिन्हें पहले श्रीनारदजीने राजा उग्रसेनकी अश्वशालामें देखा था ॥ ४४ ॥ उनमें कुछ मनोहर घोड़े धूम्रवर्ण थे। उनके सभी अंग सदा चंचल रहते थे। सुन्दर कंधोंवाले कुछ घोड़े श्यामवर्ण, कुछ कमलवर्ण और कुछ कृष्णवर्ण थे ॥ ४५ ॥ कुछ घोड़े दूध जैसे श्वेत, कुछ जलवर्ण, कुछ हल्दी जैसे पीले, कुछ केसरिया रंग और कुछ टेसूके फूल सरीखे

केचिच्चित्रविचित्रांगाः स्फटिकांगा मनोजवाः । हरिद्वर्णास्ताम्रवर्णाः कौसुंमाभाः शुकप्रभाः ॥४७॥
इन्द्रगोपनिभा गौरा दिव्याः पूर्णेंदुसन्निभाः । सिन्दूरांगाश्चाग्निवर्णा रविबालसमप्रभाः ॥४८॥
एते तुरंगमा राजन्सर्वदेशात्समागताः ।
पुर्यां कृष्णप्रतापेन ते तु सर्वे विनिर्गताः ॥४९॥
कृष्णस्य वाजिशालासु ये वर्तंते च ते हयाः । वैकुण्ठवासिनश्चैव श्वेतद्वीपनिवासिनः ॥५०॥
केचिन्मयूरवर्णाश्च नीलकण्ठनिभास्तथा । विद्युद्वर्णास्तार्क्ष्यवर्णाः सर्वे पक्षैरलंकृताः ॥५१॥
शिखामणिधराः शुक्लचामरैः समलंकृताः । स्रग्भिर्मुक्ताफलानां च रक्तवस्त्रैर्विभूषिताः ॥५२॥
स्वर्णेन मंडिताः पुच्छमुखपट्टस्फुरत्प्रभाः ।
सर्वांगसुन्दरा दिव्या निर्गतास्ते सहस्रशः ॥५३॥
न स्पृशन्तः पदैर्भूमिं व्रजेते कृष्णहया नृप । चंचला वायुवेगाश्च मनोवेगा मनोहराः ॥५४॥
बुद्बुदेष्वतिगाश्चैव पङ्कजेषु भूपते । लूताजालेषु केचिद्वै चलंतः पारदं ह्यनु ॥५५॥
स्फारा वारिषु दृश्यंते निराधारा नृपेश्वर । अन्येऽपि निर्गता राजन्म्लेच्छदेशभवा हयाः ॥५६॥
शतयोजनगाश्चैव कोटिशः कोटिशो नृप । गर्तदुर्गनदीसौधशैलादींश्च हरेर्हयाः ॥
उल्लंघयंतो नृपते सर्वारास्ते तुरंगमाः ॥५७॥
ततश्च निर्ययुः सर्वे द्वारकायाः पदातिनः । धन्विनो दंशिताः शूरा महाबलपराक्रमाः ॥५८॥
खड्गचर्मधरा उच्चा लोहकंचुकमंडिताः । संग्रामे बहुशत्रूणां जेतारो गजसन्निभाः ॥५९॥
इत्थं विनिर्गतं सैन्यं यादवानां निरीक्ष्य च । देवदैत्यनराः सर्वे विस्मयं परमं गताः ॥६०॥

इति श्रीगर्गसंहितायां हयमेधचरित्रे यदुसैन्यनिर्गमनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

(अनिरुद्धका प्रस्थान)

गर्ग उवाच

अथ तन्मिलनार्थं वै उग्रसेनाज्ञया नृप । वसुदेवः कामपालः श्रीकृष्णः कार्ष्णिरेव च ॥ १ ॥
अन्येऽपि यादवा राजन्रथैः सर्वे विनिर्ययुः । गत्वाऽनिरुद्धं ददृशुः सेनया तु परीवृतम् ॥ २ ॥
प्रद्युम्नाय राजसूये या नीतिः कथिता पुरा । तां सर्वामनिरुद्धाय कथयामास माधवः ॥ ३ ॥
इति श्रुत्वा च कृष्णस्य शासनं सर्वयादवाः । शिरसा जगृहू राजन्ननिरुद्धादयो मुदा ॥ ४ ॥
अथ गर्गं मुनींश्चैव वसुदेवं हलायुधम् । श्रीकृष्णचन्द्रं कार्ष्णिं च प्राद्युम्निः प्रणनाम ह ॥ ५ ॥
वसुदेवरामकृष्णप्रद्युम्नाद्याः शुभाशिषम् । अनिरुद्धाय दत्त्वा च प्रविष्टास्ते पुरीं रथैः ॥ ६ ॥
अथानिरुद्धस्य हयो देशे देशे गतो नृप । न केऽपि जगृहुस्तं वै भयात्कृष्णस्य भूमिपाः ॥ ७ ॥
यत्र यत्र गतो वाजी तत्र तत्र ससैनिकः । कार्ष्णिजः पृष्ठतस्तस्य जेतुं शत्रून्गतः किल ॥ ८ ॥
इत्थं विलोकयन्राज्यानिरुद्धतुरंगमः । राजितां नर्मदातीरे ययौ माहिष्मतीं पुरीम् ॥ ९ ॥
चातुर्वर्ण्यसमाकीर्णामश्मदुर्गेण मंडिताम् । सदनैर्गगनस्पर्शैर्महेशस्यालयैर्वृताम् ॥१०॥
इन्द्रनीलेन राज्ञापि पालितां पञ्चयोजनाम् । शालैस्तालैस्तमालैश्च वटैर्बिल्वैश्च पिप्पलैः ॥११॥
तडागैश्चैव वापीभिर्घुष्टां पक्षिगणैस्तथा । ईदृशीं नगरीमश्वो ददर्शोपवने गतः ॥१२॥
इंद्रनीलस्य तनयो नाम्ना नीलध्वजो बली । पुर्य्याः सहस्रवीरैश्च मृगयार्थी विनिर्गतः ॥१३॥
ततो ददर्श तुरगं सपत्रं नृपनंदनः । प्रफुल्लिते चोपवने कदंबस्य तले स्थितम् ॥१४॥
चरंतं चामरैर्युक्तं सौरभेयीपयःप्रभम् । स्त्रीणां कुंकुमहस्तैश्च मुक्ताहारैरलंकृतम् ॥१५॥
हयं दृष्ट्वा राजसुतो स्ववाहादवतीर्य च । केशेषु तं निजग्राह हर्षेण नृप लीलया ॥१६॥

श्रीगर्गमुनि वोले—हे राजन् ! उसके वाद अनिरुद्धसे मिलनेके लिए राजा उग्रसेनके आज्ञानुसार वसुदेव, वलराम, श्रीकृष्ण, प्रद्युम्न और सब यादव अपने-अपने रथोमें वैठकर वागमें गये और सेनाके साथ विद्यमान अनिरुद्धको देखा ॥ १ ॥ २ ॥ श्रीकृष्णने पहले राजसूय यज्ञमें जो नीति प्रद्युम्नको वतायी थी, वही अनिरुद्धको भी वतायी ॥ ३ ॥ श्रीकृष्णकी उस नीतिको अनिरुद्ध आदि सव यादवोंने माथा झुकाकर अंगीकार किया ॥ ४ ॥ तदनन्तर गर्ग आदि मुनियों, वसुदेव, वलराम, श्रीकृष्ण तथा प्रद्युम्नको अनिरुद्धने प्रणाम किया ॥ ५ ॥ तव वसुदेव, वलराम, श्रीकृष्ण तथा प्रद्युम्न आदि गुरुजन अनिरुद्धको आशीर्वाद देकर रथोंसे द्वारकापुरी लौट गये ॥ ६ ॥ हे राजन् ! उसके वाद अनिरुद्धका घोड़ा धीरे-धीरे चलता हुआ अनेक देशोंमें गया, किन्तु श्रीकृष्णके भयसे किसी राजाने उसे नहीं पकड़ा ॥ ७ ॥ वह घोड़ा जहाँ-जहाँ गया, वहाँ-वहाँ सेनाके साथ अनिरुद्ध भी शत्रुओंको जीतनेके लिए गये ॥ ८ ॥ इस प्रकार अनेक राज्योंको देखता हुआ वह घोड़ा नर्मदाके तटपर वसी हुई माहिष्मती पुरीमें जा पहुँचा ॥ ९ ॥ उस पुरीमें चारों वर्णके लोग रहते थे। उसमें पत्थरका वना हुआ विशाल किला था। उसमें गगनचुम्वी भवन तथा शिवालय विद्यमान थे ॥१०॥ राजा इन्द्रनील उस पुरीके शासक थे। वह पुरी पाँच योजन विस्तृत थी। उसके उपवनमें शाल, ताल, तमाल, वट, वेल और पीपलके वृक्ष विद्यमान थे ॥ ११ ॥ वड़े-वड़े तड़ाग और वावलियाँ थीं, जिनमें नाना प्रकारके पक्षी वोल रहे थे। उसके उपवनमें पहुँचकर अनिरुद्धके घोड़ेने वह नगरी देखी ॥ १२ ॥ राजा इन्द्रनीलका पुत्र वलवान् नीलध्वज पुरीसे एक हजार वीरोंको साथ लेकर मृगयाके लिए गया हुआ था ॥१३॥ उस राजपुत्रने प्रफुल्लित उपवनमें कदम्वके नीचे अनिरुद्धके अश्वको देखा ॥ १४ ॥ वहाँ ही वह हरी-हरी घास चर रहा था। उसके दोनों ओर गायके दूध जैसे श्वेत दो चमर वँधे थे। उसके शरीरपर स्त्रियोंके हाथसे केसरके थापे लगे हुए थे और मोतियोंके हार शोभित थे ॥ १५ ॥ हे राजन् ! उस घोड़ेको देखते ही राज-

तत्पत्रं वाचयामास यादवेंद्रेण यत्कृतम् । द्वारकाधिपती राजा सर्वशूरशिरोमणिः ॥१७॥
नान्योऽस्ति तत्समःकोऽपि चक्रवर्तीबृहच्छ्रवाः । विमोचितस्तुरगराट् तेनासौ पत्रसंयुतः ॥१८॥
पाल्यमानोऽनिरुद्धेन गृह्णंतु सबला नृपाः । तस्यान्यथा प्रपद्योः पतित्वा यांतु क्षत्रियाः ॥१९॥
इत्यभिप्रायमालोक्य कोपेनाह नृपात्मजः । अनिरुद्धो धनुर्द्धारी धन्विनो न वयं स्मृताः ॥२०॥
मत्पितरि स्थिते मह्यां कस्तु गर्वं समाचरेत् ।

श्रीगर्ग उवाच

इत्युक्त्वा स हयं नीत्वा प्रययौ नृपसन्निधौ ॥२१॥
कथयामास वृत्तांतं पितुरग्रे हयस्य च । श्रुत्वा पुत्रस्य वचनमिंद्रनीलो महीश्वरः ॥२२॥
शिवभक्तो महामानी पुत्रं प्राह महाबलः ।

इंद्रनील उवाच

समर्थेन पुरा दत्तं राजसूये क्रतूत्तमे ॥२३॥
प्रद्युम्नाय बलिं किंचित्कुमंत्रिवचनान्मया । अद्यानिरुद्धस्तु हयं पालयन्पुनरागतः ॥२४॥
अहो दैवबलं येन किन्न भूयाद्विपर्य्ययः । गता वृद्धिं द्वारकायामल्पकालेन वृष्णयः ॥२५॥
तस्मात्सर्वान्विजेष्यामि कार्ष्णिजप्रमुखान्यदून् । श्यामकर्णं न दास्यामि तस्मै मानहृताय च ॥२६॥
पालयिष्यति मां युद्धे भक्त्या संतोषितः शिवः । इत्युक्त्वा सेनया युक्तो वीरो महिष्मतीपतिः ॥२७॥
स्वर्णदाम्ना हयं बद्ध्वा युद्धं कर्तुं मनो दधे । ततोऽनिरुद्धः संप्राप्तो तुरगं च विलोकयन् ॥२८॥
अक्षौहिणीशतयुतो नर्मदायास्तटे नृप । सांबो मधुबृहद्बाहुश्चित्रभानुर्वृकोऽरुणः ॥२९॥
संग्रामजित्सुमित्रश्च दीप्तिमान्भानुरेव च । वेदबाहुः पुष्करश्च श्रुतदेवः सुनंदनः ॥३०॥
विरूपश्चित्रबाहुश्च न्यग्रोधश्च कविस्तथा । एते समाययू राजन्ननिरुद्धसहायिनः ॥३१॥

गदश्च सारणोऽक्रूरः कृतवर्मा हि चोद्धवः । युयुधानः सात्यकिश्च शूरा एते च वृष्णयः ॥३२॥
सहायमनिरुद्धस्य कर्तुं सर्वे समागताः । स्थित्वा ते नर्मदातीरे भोजवृष्ण्यंधकादयः ॥३३॥
श्यामकर्णमपश्यंतस्त्वब्रुवन् विस्मयान्विताः । केन नीतः सपत्रश्च उग्रसेनस्य भूपतेः ॥३४॥
तस्मान्मित्राणि सोऽप्यत्र श्यामकर्णो न दृश्यते । राजसूये पुरा यस्मै नरदैत्यसुरादयः ॥३५॥
नवखंडाधिपाश्चैव निर्जिताश्च बलिं ददुः । यस्य वै शासनं चंडं तिरस्कृत्य कुधीर्नृपः ॥३६॥
तुरगं हृतवान्मानात्स स्तेनो दंडमर्हति । सर्वेषामिति वाक्यं तु श्रुत्वा दृष्ट्वा पुरीं पुरः ॥३७॥
उद्धवं मंत्रिणां श्रेष्ठं प्राह रुक्मवतीसुतः ।

अनिरुद्ध उवाच

नगरीयं नदीतीरे कस्य भूपस्य राजते ॥३८॥
तुरंगमो गतोऽस्त्यस्यामिति मन्ये त्वहं किल । इति तद्वाक्यमाकर्ण्य प्राह कृष्णसखो मुदा ॥३९॥

उद्धव उवाच

इंद्रनीलस्य नगरी नाम्ना माहिष्मती शुभा । महेशपूजनरता वर्णा यस्यां वसंति हि ॥४०॥
नृपेणानेन वृष्णीश नर्मदायास्तटे पुरा । द्वादशवर्षपर्यंतं पूजितो नर्मदेश्वरः ॥४१॥
ततः शिवः प्रसन्नोऽभूदुपचारैश्च षोडशैः । तस्मै स्वदर्शनं दत्त्वा वरार्थं तमनोदयत् ॥४२॥
महेशस्य वचः श्रुत्वा नृपो माहिष्मतीपतिः । भूत्वा कृतांजली रुद्रं प्राह गद्गदया गिरा ॥४३॥
ईशान त्वां नमस्येऽहं नर्मदेशं जगद्गुरुम् । पुरुषाणां सकामानां कामरूपसुरद्रुमम् ॥४४॥
त्वत्तः प्रदातुः कांक्षेऽहं वरमेतन्महेश्वर । देवदैत्यनरेभ्यस्त्वं रक्ष मां सर्वदा भयात् ॥४५॥
इति तद्वाक्यमाकर्ण्य कृत्तिवासा मुदान्वितः । तथाऽस्तु चोक्त्वा राजेंद्र ततश्चांतरधीयत ॥४६॥
तस्मादेष नृपः शूरो हयं तुभ्यं न दास्यति । विना युद्धेन रुद्रस्य वरात्कंदर्पनंदन ॥४७॥
इत्थमौपगवेर्वाक्यमनिरुद्धो निशम्य च । बली धैर्येण प्रत्याह यादवानां च शृण्वताम् ॥४८॥

भी वहाँ जा पहुँचे ॥ २९–३१ ॥ गद, सारण, अक्रूर, कृतवर्मा, उद्धव, युयुधान और सात्यकि ये यादव भी वहाँ आगये ॥ ३२ ॥ ये सभी वीर अनिरुद्धकी सहायताके लिये आये थे । सो नर्मदाके तटपर घोड़ेको न देखकर वे भोज, वृष्णि एवं अन्धकवंशी यादव बहुत विस्मित होकर परस्पर कहने लगे—भाइयो ! राजा उग्रसेनके पत्रसहित घोड़ेको न जाने कौन ले गया । क्योंकि वह यहाँ नहीं दिखायी देता । पहले राजसूय यज्ञमें जिन्हें सभी मनुष्यों, दैत्यों, देवताओं और नौ खंडके अधिपतियोंने हार मानकर भेंट दी थी, उन्हीं राजा उग्रसेनके प्रचंड शासनका तिरस्कार करके जो दुर्बुद्धि घोड़ेको ले गया है, वह अभिमानी और चोर दण्ड पानेके योग्य है । उनकी यह बात सुन और सामने माहिष्मती पुरीको देखकर मंत्रिप्रवर उद्धवसे अनिरुद्ध बोले—हे उद्धवजी ! नर्मदा नदीके तटपर यह किस राजाकी नगरी है ? ॥३३–३८॥ मैं समझता हूँ कि मेरा घोड़ा इसी नगरीमें गया है । अनिरुद्धकी बात सुनकर श्रीकृष्णके मित्र उद्धव प्रसन्न मनसे बोले ॥ ३९ ॥ उद्धवने कहा—हे वत्स ! यह राजा इन्द्रनीलकी माहिष्मती पुरी है । इसमें शंकरजीकी पूजा करनेवाले चारों वर्णके लोग रहते हैं ॥ ४० ॥ हे यदुराज ! इस राजा इन्द्रनीलने बारहवर्ष इसी नर्मदातटपर नर्मदेश्वर शिवका पूजन किया था ॥ ४१ ॥ षोडशोपचार पूजासे प्रसन्न होकर शिवजी इसके समक्ष प्रकट हो गये और वर माँगनेके लिए प्रेरित किया ॥ ४२ ॥ शिवजीकी बात सुनकर माहिष्मतीपति राजा इन्द्रनीलने हाथ जोड़कर गद्गद वाणीमें कहा—॥ ४३ ॥ हे ईशान ! नर्मदाके पति और जगद्गुरु आपको नमस्कार है । आप सकाम पुरुषोंकी कामनायें पूर्ण करनेवाले कल्पवृक्ष हैं ॥ ४४ ॥ आप सरीखे वरदायकसे मैं यही वर माँगता हूँ कि देवता, दानव और मानव जातिकी ओरसे उत्पन्न होनेवाले सभी भयोंसे आप मेरी रक्षा करें ॥४५॥ उसकी बात सुनकर कृत्तिवासा शंकरभगवानने बड़े हर्षसे 'तथास्तु' कहा और वहीं ही अन्तर्धान हो गये ॥४६॥ अतएव यह राजा बड़ा बलवान् है और इसे शिवजीका वर प्राप्त है । इससे यह युद्ध किये बिना घोड़ा नहीं देगा ॥ ४७ ॥ इस

अनिरुद्ध उवाच

नृपस्यैतस्य रुद्रस्तु सहायस्ते ह्युदाहृतः । तथा कृष्णस्तु भगवाञ्छृणु मंत्रिन्ममोपरि ॥४९॥
इत्युक्त्वा यादवैः सार्द्धं वीरो रुक्मवतीसुतः । हयस्य मोचनार्थं वै नृपं जेतुं मनो दधे ॥५०॥
ततः परिघनिस्त्रिंशगदाचापपरश्वधैः । बभूवुर्यादवाः सज्जाः प्राद्युम्नौ दंशिते स्थिते ॥५१॥

इति श्रीगर्गसंहितायां हयमेधखण्डे अनिरुद्धप्रयाणं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

(माहिष्मती पुरीपर अनिरुद्धकी विजय)

श्रीगर्ग उवाच

अथेन्द्रनीलस्य सुतो महाबलो ह्यक्षौहिणीभिस्त्रिभिरेव संयुतः ।
यदून्विजेतुं स्वपुराद्विनिर्गतो पितुश्च वाक्याद्बहुरोषपूरितः ॥ १ ॥
तमागतं वीक्ष्य नृपस्य पुत्रं श्रीकृष्णपौत्रस्तु धनुर्गृहीत्वा ।
युद्धं प्रकर्तुं प्रययौ स एको वृत्रं विजेतुं च यथा बिडौजाः ॥ २ ॥

गत्वाऽनिरुद्धः संग्रामे शत्रूणामुपरि त्वरम् । मुमोच बाणपटलान्सर्वेषां त्रासयन्मनः ॥ ३ ॥
ततश्च दुद्रुवुः सर्वे नीलकेतोश्च सैनिकाः । रणाद्भीताः स्वशंखं च दध्मौ प्रद्युम्ननंदनः ॥ ४ ॥
पलायमानां स्वां सेनां दृष्ट्वा नीलध्वजो बली । चापं टंकारयञ्छीघ्रमाययौ रणमंडले ॥ ५ ॥
सेनां स्वां नोदयामास पुनः सोऽपि धनुर्ज्यया । द्विषां मध्येऽनिरुद्धं तं दृष्ट्वा नीलध्वजो बली ॥ ६ ॥
धनुष्टंकारयन्प्राप्तो ह्यक्षौहिण्यावृतो रुषा । विंशद्बाणैर्नीलकेतुं पंचभिः पंचभी रथान् ॥ ७ ॥
अताडयद्गजांश्चैव तथा सुतुरगान्नरान् । भूम्यां निपेतुस्ते सर्वे सांबबाणैः प्रताडिताः ॥ ८ ॥
गजोपरि गजाः केचिद्रथोपरि रथास्तथा । हयोपरि हयाश्चैव नरोपरि नराश्च वै ॥ ९ ॥

तत्क्षणेनाप्यभूद्भूमी रुधिरौघपरिप्लुता । पतितैश्छिन्नभिन्नैश्च द्विपाश्वरथपत्तिभिः ॥१०॥
ततः प्रभग्नं स्वबलं विलोक्य नीलध्वजो भूपधनुर्गृहीत्वा ।
बाणान्विमुंचन्किल यादवानां जेतुं मनो यस्य स चागमद्वै ॥११॥
स गत्वा प्रधने राजन्दशबाणै रुषान्वितः । चापं सांबस्य चिच्छेद प्रेम दुर्वचनैरिव ॥१२॥
चतुर्भिश्चतुरो वाहान्द्वाभ्यां केतुं रथं शतैः । एकेन जघ्ने सूतं स इन्द्रनीलसुतो बली ॥१३॥
एवं कृत्वा च विरथं सांबं वै नृपनंदनः । पुनः समागतां तस्य सेनां बाणैर्जघान ह ॥१४॥
अथ नीलध्वजस्यापि सेना सर्वा समागता । यादवानां बलं संख्ये जघान निशितैः शरैः ॥१५॥
ततः समभवद्युद्धमुभयोः सेनयोर्मृधे । निस्त्रिंशैः परिघैर्बाणैर्गदापरुषशक्तिभिः ॥१६॥
सांबोऽन्यं रथमारुह्य सज्जं कृत्वा धनुर्दृढम् । तद्रथं चूर्णयामास शतबाणै रणे बली ॥१७॥
स च्छिन्नधन्वा विरथो गदामुद्यम्य वेगवान् । अभ्यधावद्रणे क्रुद्धो सांबस्योपरि मानद ॥१८॥
तदैव सांबः सहसाऽवतीर्याथ रथाद्गदाम् । नीत्वा नीलध्वजस्यापि संमुखे गतवान् रुषा ॥१९॥
तताड गदया सांबमागतं वीक्ष्य भूपजः । न चचाल प्रहारेण मालाहतगजो यथा ॥२०॥
ततः सांबस्तु गदया तताड नृपनन्दनम् । तत्प्रहारेण पतितो मूर्छां प्राप्तो रणे तु सः ॥२१॥
सैनिका दुद्रुवुस्तस्य हाहाकारं समुच्चरन् । ततो युद्धाय संक्रुद्ध इन्द्रनीलः समागतः ॥२२॥
साकमक्षौहिणीभ्यां च विमुंचन्धनुषा शरान् । तमागतं विलोक्याथ मधुः कृष्णसुतो बली ॥२३॥
धानुष्को विरथं चक्र इन्द्रनीलं शिलीमुखैः । सेनां समागतां तस्य युयुधानोऽर्जुनप्रियः ॥२४॥
शरैर्विव्याध समरे मैत्रीं दुर्वचनैरिव । ततश्च यादवैर्मुक्तो नृपो माहिष्मतीं ययौ ॥२५॥
गत्वा पुर्यां च दुःखार्तः सस्मार स्वपतिं शिवम् । अथ तस्मै शिवः साक्षाद्दत्वा दर्शनमुत्तमम् ॥२६॥

ऊपर हाथी, रथोंके ऊपर रथ, घोड़ोंपर घोड़े और पैदल सैनिकोंपर पैदल सैनिक गिर पड़े ॥ ९ ॥ इससे तत्काल रणभूमि रक्तसे भर गयी और मरकर गिरे हुए हाथियों, घोड़ों और पैदल सैनिकोंसे पट गयी ॥ १० ॥ यह देख नीलध्वजने धनुष हाथमें लेकर वाणवर्षा करते हुए यादवोंको जीतनेका निश्चय किया ॥ ११ ॥ तदनुसार उसने रणमें दस बाणोंसे साम्बके धनुषको इस तरह काटकर गिरा दिया, जैसे दुर्वाक्य प्रेमको काट देता है ॥१२॥ तब राजा इन्द्रनीलके बलवान् पुत्र नीलध्वजने चार बाणोंसे साम्बके घोड़े मारे, दो बाणोंसे उनकी पताका काटी, सौ बाणोंसे उनका रथ ध्वस्त किया और एक बाणसे सारथीको मार डाला ॥ १३ ॥ राजपुत्रने इस प्रकार साम्बको रथहीन करके पुनः आयी हुई साम्बकी सेनापर बाणोंकी झड़ी लगा दी ॥ १४ ॥ उसी समय नीलध्वजकी भी सेना आ गयी और वह आते ही यादवी सेनापर तीखे बाणोंकी वर्षा करने लगी ॥ १५ ॥ तब दोनों सेनायें खड्ग, परिघ, गदा, शक्ति और बाणोंसे परस्पर जूझने लगीं ॥ १६ ॥ तभी साम्बने भी दूसरे रथपर सवार हो और अपने दृढ़ धनुषपर प्रत्यंचा चढ़ाकर एक सौ बाणोंसे नीलध्वजका रथ ध्वस्त कर दिया ॥ १७ ॥ तब जिसका धनुष कट गया और रथ टूट गया था, वह राजपुत्र नीलध्वज बहुत कुपित होकर साम्बके ऊपर झपटा ॥ १८ ॥ तत्काल साम्ब भी रथसे कूद पड़े और गदा लेकर नीलध्वजकी ओर दौड़े ॥ १९ ॥ उसी समय राजपुत्र नीलध्वजने साम्बको एक गदा मारी, किन्तु उस प्रहारसे साम्ब तनिक भी विचलित नहीं हुए। जैसे भालेके प्रहारसे हाथी नहीं घबड़ाता ॥ २० ॥ तब साम्बने भी नील-ध्वजको एक गदा मारी। उस प्रहारसे वह मूर्छित होकर धरतीपर गिर गया ॥ २१ ॥ यह देखकर नीलध्वज-की सारी सेना भाग गयी। जिससे बड़ा हाहाकार मच गया। तब क्रुद्ध होकर राजा इन्द्रनील स्वयं युद्ध करनेके लिए युद्धभूमिमें आया ॥ २२ ॥ उसके साथ दो अक्षौहिणी सेना थी। उसने आते ही धनुषसे बाणवर्षा आरम्भ कर दी। उसे आया देखकर श्रीकृष्णके पुत्र मधु आ धमके ॥ २३ ॥ उन्होंने धनुषसे बाण मारकर राजा इन्द्रनीलको रथहीन कर दिया। उसकी सेनाको अर्जुनके प्रिय साथी सात्यकिने अपने बाणोंसे मार भगाया। जैसे दुर्वचन मित्रताको नष्ट कर देते हैं। उसके बाद यादवोंसे छुटकारा पाकर राजा इन्द्रनील

पप्रच्छ सर्ववृत्तांतं श्रुत्वा स तु न्यवेदयत् । इत्थं निशम्य वचनं प्रत्याह प्रमथेश्वरः ॥२७॥

शिव उवाच

शोकं मा कुरु राजेंद्र मद्वरोऽपि मृषा न हि । देवदैत्यनणः सर्वे त्वां विजेतुं न च क्षमाः ॥२८॥
एते कृष्णसुता राजञ्छ्रीकृष्णस्यांशसंभवाः । न देवा ये महाराज न दैत्या न च मानुषाः ॥२९॥
एतैर्विनिर्जितस्त्वं तु दुर्मना भव मा नृप । अपराधं तु कृष्णस्य कर्तुं नार्हसि भूपते ॥३०॥
समागतेभ्य एतेभ्यस्तस्मात्त्वं विधिना नृप । शीघ्रं प्रयच्छ भद्रं ते हयमेधतुरंगमम् ॥३१॥
इत्युक्त्वांतर्दधे रुद्रो नृपो ज्ञात्वा जगत्पतेः । माहात्म्यं च मुदा युक्तो गृहीत्वा क्रतुवाहनम् ॥३२॥
नीलध्वजेन सहितो रत्नान्यादाय भूरिशः । स्वर्णभारशतं चैव मतंगजसहस्रकम् ॥३३॥
नियुतं घोटकानां च ह्यादाय स्यंदनायुतम् । यत्रानिरुद्धः प्रययौ नमस्कर्तुं जनैर्वृतः ॥३४॥
अनिरुद्धस्य निकटे गत्वा राजा विधानतः । सर्वं निवेदयामास नत्वा वचनमब्रवीत् ॥३५॥

इन्द्रनील उवाच

नमः कृष्णाय रामाय प्रद्युम्नाय महात्मने । नमो नमोऽनिरुद्धाय सात्वतां प्रवराय च ॥३६॥
आदेशो दीयतां मह्यं किं करोम्यसुरार्दन । अनिरुद्धस्तु तं प्राह मया सह नृपोत्तम ॥३७॥
शत्रुभ्यश्च मित्रहयं पालय त्वं हि मामकम् ।

गर्ग उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा नृपो नृप ॥३८॥
नीलध्वजाय राज्यं तु दत्त्वा गंतुं मनो दधे ॥३९॥

इति श्रीगर्गसंहितायां हयमेधखण्डेऽनिरुद्धविजयवर्णनं नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

अपनी माहिष्मती पुरीमें भाग गया ॥ २४ ॥ २५ ॥ पुरीमें जाकर उसने बहुत दुखी होकर अपने इष्टदेव शंकरजीका स्मरण किया। तत्काल प्रकट होकर उन्होंने इन्द्रनीलको दर्शन दिया ॥ २६ ॥ उन्होंने सब हाल पूछा तो राजाने सब वृत्तान्त उन्हें सुना दिया। सो सुनकर प्रमथाधिपति शंकरजी बोले ॥ २७ ॥ शिवजीने कहा—हे राजेन्द्र ! आप शोक न करिए। मेरा वरदान व्यर्थ नहीं होगा। देवता, दानव और मानव ये कोई भी तुम्हें नहीं जीत सकते ॥ २८ ॥ हे राजन् ! ये अनिरुद्ध श्रीकृष्णके अंशसे जायमान हुए हैं। ये न देवता हैं, न दैत्य हैं और न मनुष्य ही हैं ॥ २९ ॥ इनसे हारकर आप अपना दिल न छोटा करिए। हे भूपते ! तुम्हें श्रीकृष्णका कोई अपराध नहीं करना चाहिए ॥ ३० ॥ अतएव यहाँ आये हुए इन यादवोंको आप इनका घोड़ा दे दीजिए ॥ ३१ ॥ ऐसा कहकर शिवजी अन्तर्धान हो गये। जगत्पति कृष्णका माहात्म्य जानकर राजा इन्द्रनील सहर्ष उस अश्वमेध यज्ञके घोड़े तथा पुत्र नीलध्वजको लेकर चल पड़े। बहुत-सा रत्न, एक सौ भार सुवर्ण, एक हजार मस्त हाथी, दस लाख घोड़े और दस हजार रथ ये सब उपहार लेकर राजा इन्द्रनील बहुतेरे लोगोंके साथ उस स्थानपर गया, जहाँ अनिरुद्ध विराजमान थे ॥ ३२-३४ ॥ अनिरुद्धके पास जाकर राजा इन्द्रनील सब वृत्तान्त निवेदन करता हुआ उन्हें प्रणाम करके बोला ॥ ३५ ॥ इन्द्रनीलने कहा—भगवान् कृष्ण, बलराम, महात्मा प्रद्युम्न और यादवोंके प्रमुख अनिरुद्धको नमस्कार है नमस्कार है ॥ ३६ ॥ हे असुरार्दन ! मुझे आज्ञा दीजिए। मैं आपकी क्या सेवा करूँ ? अनिरुद्धने कहा—हे नृपोत्तम ! मेरे साथ चलकर आप शत्रुओंसे इस अश्वकी रक्षा करिए। गर्गमुनि बोले—हे राजन् ! अनिरुद्धके वचन सुनकर राजा इन्द्रनीलने तथास्तु कहा ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ और अपने पुत्र नीलध्वजको राज-काज सौंपकर अनिरुद्धके साथ जानेको तैयार हो गया ॥ ३९ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

अथ षोडशोऽध्यायः

(चंपावतीविजय)

गर्ग उवाच

अथ मुक्तस्तु तुरगो देशान्सर्वान्विलोकयन् । उशीनरे च विषये प्राप्तश्चंपावतीं पुरीम् ॥ १ ॥
राज्ञा हेमांगदेनापि पालितां दुर्गमंडिताम् । चातुर्वर्ण्यजनाकीर्णां प्रासादैः परिवेष्टिताम् ॥ २ ॥
यत्र हेमांगदो राजा पुत्रेण हंसकेतुना । राज्यं करोति सुकृतिर्महाशूरजनैर्वृतः ॥ ३ ॥
गृहीतस्तेन तुरगोऽनिरुद्धस्य महात्मनः । स्वपुर्यां लीलया राजन् यादवानगणय्य च ॥ ४ ॥
बद्ध्वा हेमांगदो राजा स्वर्णदाम्ना च वाजिनम् । द्वारेषु च कपाटादीन्दत्त्वा क्रोधेन पूरितः ॥ ५ ॥
यादवानां विनाशाय दुर्गभित्तिषु मानद । शतघ्न्यश्च द्विलक्षाणि धृत्वा युद्धाय वै मनः ॥ ६ ॥
ततः प्राप्तोऽनिरुद्धस्तु ससैन्योऽश्वं विलोकयन् । चंपावत्या ह्युपवने शिबिरोऽभूच्च तस्य वै ॥ ७ ॥
अथ प्रद्युम्नतनयस्तत्रादृष्ट्वा तुरंगमम् । उद्धवं कृष्णचन्द्रस्य सखायमिदमब्रवीत् ॥ ८ ॥

अनिरुद्ध उवाच

कस्येयं नगरी मंत्रिन्केन नीतो हयो मम । त्वं जानासि महाबुद्धे कथयस्व विचार्य च ॥ ९ ॥
इत्थं निशम्य तद्वाक्यमुद्धवो बुद्धिसत्तमः । ज्ञात्वा वार्तां च शत्रूणामिदं वचनमब्रवीत् ॥१०॥

उद्धव उवाच

इयं चंपावती नाम्ना नगरी द्वारकेश्वर । हंसध्वजेन पुत्रेण यत्र हेमांगदो नृपः ॥११॥
करोति राज्यं तेनापि गृहीतस्तुरगस्तव । एष राजा महाशूरो यज्ञस्याश्वं न दास्यति ॥१२॥
पुर्यां स्थित्वा भुशुण्डीभिर्बहु युद्धं करिष्यति । न निर्गमिष्यति बहिर्युद्धाय स नृपः पुरात् ॥१३॥
तस्मात्तवेच्छा नृपते यथा भूयात्तथा कुरु । इति तद्वचनं श्रुत्वा स उवाच रुषाऽन्वितः ॥१४॥

अनिरुद्ध उवाच

अहं सर्वान्हनिष्यामि दुर्गयुक्तान्बहून्द्विपः । लौहशक्तिसमैर्बाणैः प्रहरार्द्धेन सत्तम ॥१५॥

गर्गमहामुनि बोले—हे राजन् ! वहाँसे छूटकर वह अश्व सभी देशोंको देखता हुआ उशीनर देशकी राजधानी चंपावती पुरीमें जा पहुँचा ॥१॥ विशाल किलेसे शोभित और राजा हेमांगद द्वारा पालित उस पुरीमें चारों वर्णके लोग निवास करते थे। वह चौतरफा परकोटों और राजमहलोंसे आवेष्टित थी ॥ २ ॥ वहाँ अपने पुत्र हंसकेतुके साथ राजा हेमांगद राज्य करता था। वह बड़ा धर्मात्मा राजा था और बड़े-बड़े वीर पुरुष उसकी रक्षा करते थे ॥ ३ ॥ वह राजा यादवोंको कुछ न समझते हुए अनिरुद्धके घोड़ेको पकड़कर अपनी नगरीमें ले गया ॥ ४ ॥ राजा हेमांगदने बड़े क्रोधसे उस घोड़ेको सुनहली रस्सीमे बाँध लिया और पुरीके सभी द्वार बन्द कराके यादवोंका संहार करनेके लिए किलेकी दीवारोंपर दो लाख तोप लगाकर लड़नेके लिए तैयार हो गया ॥ ५ ॥ ६ ॥ उसके बाद अश्वको खोजते हुए अपनी सेनाके साथ अनिरुद्ध आये और चंपावतीके उपवनमें उनकी सेनाका पड़ाव पड़ गया ॥ ७ ॥ प्रद्युम्नतनय अनिरुद्धको जब घोड़ा नहीं दिखायी दिया, तब श्रीकृष्णचन्द्रके सखा उद्धवसे वे यह वचन बोले ॥ ८ ॥ अनिरुद्धने कहा—हे मंत्रिवर ! यह किसकी नगरी है और मेरे घोड़ेको कौन ले गया है ? हे महाबुद्धे ! आप सब कुछ जानते है। अतः विचारकर हमे बताइए ॥ ९ ॥ अनिरुद्धकी बात सुन परम बुद्धिमान् उद्धव शत्रुकी गतिविधि समझकर बोले ॥ १० ॥ उद्धवने कहा—हे द्वारकेश ! यह चम्पावती नगरी है। हंसध्वजनामक पुत्रके साथ राजा हेमांगद इस नगरीमें राज्य करता है ॥ ११ ॥ उसी हेमांगदने आपके अश्वको पकड़ा है। यह राजा बड़ा बलवान् है। अतएव आपके घोड़ेको नहीं देगा ॥ १२ ॥ अपनी नगरीके भीतरसे ही यह तोप और बन्दूक द्वारा भीषण युद्ध करेगा। युद्ध करनेके लिए अपनी पुरीसे बाहर नहीं निकलेगा ॥ १३ ॥ हे राजन् ! आपकी जो इच्छा हो सो करिए। उद्धवकी बात सुन अनिरुद्ध क्रोधसे लाल होकर बोले। उन्होंने कहा—हे मंत्रिन् ! लोहनालके समान दृढ़ बाणोंसे

इत्थं तद्वाक्यमाकर्ण्य यादवः क्रोधपूरितः । पुरीं हंतुं ययौ शीघ्रं मुमोचेषूंश्च कोटिशः ॥१६॥
अंधकानां च वाणौघैः पुर्यां कोलाहलोऽप्यभूत् । शत्रवः शंकिताः सर्वे वीरा हंसध्वजादयः ॥१७॥
ततो नृपस्य वचनाद्वीरास्ते साहसेन वै । दुर्गभित्तिष्वथारुह्य यादवान्ददृशुर्बहिः ॥१८॥
दृष्ट्वा ते च भयं प्रापुः सन्नद्धान् यदुपुंगवान् । शस्त्रवर्षं प्रकुर्वन्तः सर्वतः परिमंडितान् ॥१९॥
तेभ्यः शतघ्नीर्व्यसृजंश्चतुर्दिक्षु च वह्निना । सर्वानेव हनिष्यामो न दास्यामो हयं वयम् ॥२०॥
अथानिरुद्धसेनायां हाहाकारो महानभूत् । विह्वला वृष्णयः सर्वे शतघ्नीभिः प्रताडिताः ॥२१॥
संछिन्नभिन्नसर्वांगाः केचिद्युद्धात्पलायिताः । केचिन्मूर्छां गता राजन्केचिद्वै निधनं गताः ॥२२॥
केचित्प्रज्वलिता युद्धे भस्मीभूतास्तथापरे । केचिद्वै पादहीनाश्च करहीना विबाहवः ॥२३॥
निःशस्त्राः पतिताश्चैव केचिज्ज्वलितकंचुकाः । हाहेति वादिनः केचिद्रामकृष्णेति वादिनः ॥२४॥
शतघ्नीभिर्विशीर्णांगा गजाः केचिन्मृधांगणे । दुद्रुवंतश्च पतिता मूर्छिता निधनं गताः ॥२५॥
उत्पतन्तो दुद्रुवंतश्छिन्नदेहास्तुरंगमाः । मृधे मृत्युं गताः केचिद्विशीर्णाः पतिता रथाः ॥२६॥
अग्निना पूरितं सर्वं यदुसैन्यं भयानकम् । दृष्ट्वाऽनिरुद्धः संग्रामे शुशोच संस्मरन्हरिम् ॥२७॥
ततः कृष्णस्य कृपया बुद्धिं प्राप्त उषापतिः । प्रतिशार्ङ्गं गृहीत्वा वै निषंगाच्छरमेव च ॥२८॥
नीत्वा निधाय कोदंडे पर्जन्यास्त्रं समादधे ॥२९॥
वाणे प्रमुक्ते सति वै बलाहकः समागतो वै यदुसैन्यमण्डले ।
जलं ववर्षाथ यदून्प्रपालयन्कृपीटयोनिं किल शांतयन्नृप ॥३०॥
ततस्तेऽग्निभयान्मुक्ताः शीतलांगाश्च वृष्णयः । श्लाघां कृत्वाऽनिरुद्धस्य युद्धं कर्तुं समुत्थिताः ३१॥
तान्प्रत्याहानिरुद्धस्तु ह्यहं यास्ये पुरीं प्रति । अर्वेण पक्षयुक्तेनैको विजेतुं द्विषां पतिम् ॥३२॥

मैं आधे पहरमें किलेके भीतर बैठे हुए सब शत्रुओंको मार डालूँगा ॥ १४ ॥ १५ ॥ अनिरुद्धकी यह वाणी सुनकर सभी यादव क्रुद्ध हो उठे और उस पुरीको नष्ट करनेके लिए एकसाथ करोड़ों वाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ १६ ॥ वीर अन्धकवंशी यादवोंकी वाणवर्षासे पुरीमें बड़ा कोलाहल मच गया। इससे हंसध्वज आदि सभी वीर चिन्तित हो उठे ॥ १७ ॥ तब राजा हेमांगदके कहनेपर बड़ा साहस करके उन्होंने किलेकी दीवारपर चढ़कर बाहर यादवोंकी भीड़ देखी ॥ १८ ॥ सब तरहसे लड़नेके लिए तैयार तथा शस्त्रवर्षा करते हुए यादवोंको देखकर वे लोग डर गये ॥ १९ ॥ तदनन्तर उन शत्रुओंने तोपोंसे गोले बरसाना आरम्भ कर दिया, जिससे चारों ओर आग लग गयी। शत्रु यह भी कहते जाते थे कि 'हम समस्त यादवोंको मार डालेंगे और घोड़ा नहीं देंगे' ॥ २० ॥ इससे अनिरुद्धकी सेनामें हाहाकार मच गया और तोपोंकी मार खाकर सब यादव बहुत व्यथित हुए ॥२१॥ जिनके सभी अंग छिन्न-भिन्न हो गये थे, ऐसे कुछ सैनिक रणभूमिसे भाग गये। कुछ मूर्छित हो गये और कुछ मर गये ॥ २२ ॥ कुछ उस युद्धमें जल गये और कुछ जलकर भस्म हो गये। कुछ सैनिक चरणहीन और कुछ हस्तहीन हो गये ॥ २३ ॥ कितने ही सैनिकोंके कवच जल गये, उनके हाथोंसे शस्त्र छूट गये, कितने हाय हाय और कितने हे कृष्ण ! हे बलराम ! ऐसा कहने लगे ॥ २४ ॥ तोपोंकी मारसे कितने ही हाथियोंके अंग छितरा गये, जिससे वे भागते हुए गिरकर मर गये ॥ २५ ॥ कितने ही घोड़ोंके अंग कट गये थे, जिससे भागते हुए वे गिरकर मर गये। कितने ही रथ चूर-चूर हो गये ॥ २६ ॥ यादवोंकी सारी सेना भयानक आगकी लपटमें आगयी। यह भीषण स्थिति देख अनिरुद्ध बहुत दुखी होकर श्रीकृष्णभगवानका स्मरण करने लगे ॥ २७ ॥ तब भगवानकी कृपासे उषापति अनिरुद्धको बुद्धि आयी, जिसके अनुसार उन्होंने तरकससे वाण निकालकर धनुषपर चढ़ाया और पर्जन्यास्त्रका प्रयोग कर दिया ॥ २८ ॥ २९ ॥ उस अस्त्रका उपयोग होते ही सहसा चारों ओरसे गर्जन करते हुए बादल घिर आये और अग्निको शान्त करती हुई यादवी सेनापर घनघोर वर्षा होने लगी ॥ ३० ॥ इससे सभी यादव अग्निभयसे मुक्त हुए और अंग शीतल हो जानेपर अनिरुद्धकी बड़ाई करके पुनः युद्ध करनेके लिए उठ खड़े हुए ॥३१॥ तब अनिरुद्धने उनसे कहा—

गर्ग उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य सांबाद्याः कृष्णनन्दनाः । प्रोचुः सर्वे च तं राजन्नष्टादश महारथाः ॥३३॥

हरिपुत्रा ऊचुः

गंतुं नार्हसि त्वं राजञ्शत्रूणां नगरीं प्रति । प्रयास्यामो वयं सर्वे विजेतुं चाततायिनम् ॥३४॥
इत्युक्त्वा कुपिताः सर्वे सहसाऽऽरुह्य घोटकान् । सपक्षान्धन्विनो वीरा दंशिता युद्धकोविदाः ॥३५॥
उल्लंघयित्वा प्राकारं पुर्यां प्राप्ता हरेः सुताः । गत्वा जघ्नुर्द्विषः सर्वान्बाणैरुरगसन्निभैः ॥३६॥
ते शत्रवस्तु सहसा नृपस्य वचनान्नृप । युद्धार्थे धन्विनः क्रुद्धा आगता एककोटयः ॥३७॥
तानगतान्बहून्वीरान्कुपितानुद्यतायुधान् । सांबो मधुर्बृहद्भानुश्चित्रभानुर्वृकोऽरुणः ॥३८॥
संग्रामजित्सुमित्रश्च दीप्तिमान्भानुरेव च । वेदबाहुः पुष्करश्च श्रुतदेवः सुनंदनः ॥३९॥
विरूपश्चित्रबाहुश्च न्यग्रोधश्च कविस्तथा । एते कृष्णसुताः सर्वे जघ्नुर्बाणैर्निरीक्ष्य च ॥४०॥
ततः पुर्यां च वीराणां रुधिरेण भयंकरा । नदी बभूव राजेंद्र पुरद्वाराद्विनिःसृता ॥४१॥
तामागतां नदीं घोरामनिरुद्धस्तु शंकितः । प्रत्युवाच रुषा राजन्मुखेन परिशुष्यता ॥४२॥
मत्पितृभ्रातरः सर्वे रणे किं निहता अहो । तस्मादस्मान्प्लावयितुं नदी घोरा समागता ॥४३॥
एतामग्निमयैर्बाणैः शोषयिष्ये न संशयः । पातयिष्यामि नगरीमहं गिरिसमैर्गजैः ॥४४॥
ततोऽनिरुद्धवचनाद्धस्तिपैर्लक्षहस्तिनः । महोच्चाश्च मदोन्मत्ताः कज्जलाद्रिसमप्रभाः ॥४५॥
करैर्गुल्मान्समुत्पाट्य क्षेपयंतश्च तत्पुरे । कंपयंतो भुवं पादैः पुरोपरि समागताः ॥४६॥
गत्वा ते कुंजराः सर्वे हेमांगदपुरीं रुषा । सर्वतः पातयामासुः शीघ्रं कुम्भस्थलैर्नृप ॥४७॥
कपाटाः पतिताः सर्वे द्वाराणां दृढशृंखलाः । दुर्गस्य पातिताः पुर्या गजैः पाषाणभित्तयः ॥४८॥

हे वीरों ! शत्रुको जीतनेके लिए पंखोंवाले घोड़ेपर सवार होकर मैं अकेला उस नगरीके भीतर जाऊँगा ॥ ३२ ॥ गर्गमुनि बोले—हे राजन् ! यह सुनकर साम्ब आदि श्रीकृष्णके महारथी अठारह पुत्रोंने कहा ॥ ३३ ॥ श्रीकृष्णके पुत्र बोले—हे राजन् ! शत्रुओंकी नगरीमें आप अकेले मत जाइए। उस आततायीको जीतनेके लिए हमलोग जायँगे ॥ ३४ ॥ ऐसा कह तथा पंखयुक्त घोड़ोंपर सवार होकर वे धनुर्धर तथा रण-कुशल यादव कवच धारण करके चल पड़े ॥ ३५ ॥ तत्काल परकोटेको लाँघकर भगवान् कृष्णके वे विज्ञ पुत्र नगरीके भीतर घुस गये और अपने सर्पाकार बाणोंसे शत्रुओंका वध करने लगे ॥ ३६ ॥ सहसा राजा हेमांगद-का आदेश पाकर एक करोड़ क्रुद्ध शत्रुसैनिक धनुष धारण करके युद्धके लिए आ धमके ॥ ३७ ॥ उन शस्त्रसज्ज कुपित वीरोंको आते देख साम्ब, मधु, बृहद्भानु, चित्रभानु, वृक, अरुण, संग्रामजित्, सुमित्र, दीप्तिमान्, भानु, वेदबाहु, पुष्कर, श्रुतदेव, सुनन्दन, विरूप, चित्रबाहु, न्यग्रोध और कवि ये अठारह महारथी कृष्णपुत्र बाणोंसे निर्दय प्रहार करने लगे ॥ ३८–४० ॥ उस समय नगरीके भीतर मृत वीरोंके रुधिरकी बड़ी भयंकर नदी बह चली। वहाँसे चलकर वह नदी नगरीके फाटकसे बाहर निकल आयी ॥ ४१ ॥ उस भीषण रुधिरकी नदीको बहती देखकर वीर अनिरुद्धके मनमें शंका हुई और उनका मुख सूख गया। तब हे राजन् ! बड़े क्रोधके साथ उन्होंने कहा—क्या मेरे पिताके सब भाई रणमें मारे गये ? उनके रुधिरकी यह भीषण रुधिरनदी क्या हमको बहानेके लिए यहाँ आयी है ? ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ अभी मैं अपने अग्निमय बाणोंसे इस नदीको सुखाकर अपने पर्वत सरीखे विशालकाय हाथियोंसे इस नगरीको ध्वस्त करा दूँगा ॥ ४४ ॥ तत्काल अनिरुद्धकी आज्ञा पाकर महावतोंने बड़े ऊँचे, मदोन्मत्त और कज्जलके पर्वत जैसे रंगवाले एक लाख हाथियोंको उस नगरीकी ओर हाँका ॥ ४५ ॥ आगे जाकर वे हाथी अपनी सूँड़ोंसे वहाँके वृक्षोंको उखाड़ उखाड़कर फेंकने तथा पैरोंकी धमकसे धरतीको कँपाने लगे ॥ ४६ ॥ इसके बाद वे क्रुद्ध हाथी अपने मस्तककी टक्करसे उस नगरीको चौत-रफा गिराने लगे ॥ ४७ ॥ उनके प्रहारसे महलोंके फाटक टूटकर गिर गये, उनकी साँकलें चूर-चूर हो गयीं

पातयित्वा कपाटादीन्दुर्गं चैव हरेर्गजाः । पुर्यां प्राप्ता नृपश्रेष्ठ रिपुगेहान्यपातयन् ॥४९॥
हाहाकारो महानासीच्चंपावत्यां तदैव हि । भयभीता जनाः सर्वे नृपाद्या विस्मयं गताः ॥५०॥
तदा तु धर्षितो राजा स्रजा बद्ध्वा करद्वयम् । संमुखे हरिपुत्राणामाययौ पाहि मां ब्रुवन् ॥५१॥
तमागतं नृपं वीक्ष्य रणे सांबस्तु धर्मवित् । भ्रातॄन्निवारयामास दीनहंतॄंश्च हस्तिपान् ॥५२॥
निवारयित्वा सर्वान्स राजानमिदमब्रवीत् ।

सांब उवाच

आगच्छ राजन्भद्रं ते नीत्वा मम तुरंगमम् ॥५३॥
गच्छानिरुद्धनिकटे ततः श्रेयो भविष्यति । इति श्रुत्वा स तद्वाक्यं नीत्वा यज्ञतुरंगमम् ॥
हरिपुत्रैर्युतो राजा निश्चक्राम पुराद्बहिः ॥५४॥
गत्वाऽनिरुद्धनिकटे साकं पुत्रेण भूपतिः । हयं निवेदयामास स्वर्णकोटिं च मानद ॥५५॥
अनिरुद्धस्तु राजेन्द्र नीतिविद्दीनवत्सलः । तत्करौ मालया बद्धौ मोचयित्वेदमब्रवीत् ॥५६॥
मया सह नृपश्रेष्ठ पालयैनं तुरंगमम् । राजन्येभ्यश्च शत्रुभ्यः कृष्णस्य प्रीतिहेतवे ॥५७॥
श्रुत्वाऽनिरुद्धस्य वचो महात्मा हेमांगदो बुद्धिमतां वरिष्ठः ।
दत्त्वा च राज्यं स्वसुताय प्रीत्या गंतुं मनस्तत्र चकार तेन ॥५८॥

इति श्रीगर्गसंहितायां हयमेधखण्डे चंपावतीविजयवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

(स्त्रीराज्यपर अनिरुद्धकी विजय)

गर्ग उवाच

अथानिरुद्धस्य हयो विमुक्तो यदुप्रवीरैश्च महोज्ज्वलांगः ।
उशीनराद्वीरवरान्प्रपश्यन्विनिर्गतः सोऽपि शनैः शनैश्च ॥ १ ॥

गये ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ उस समय चम्पावती नगरीमें महान् हाहाकार मच गया और वहाँके राजा हेमांगद तथा नगरनिवासी भयभीत तथा विस्मित हो उठे ॥ ५० ॥ इस प्रकार हाथियोंके प्रहारसे पुरीका भीषण विनाश होते देख राजा हेमांगद पुष्पमालासे अपने दोनों हाथ बाँधकर "मेरी रक्षा करिए" ऐसा कहता हुआ श्रीकृष्णके पुत्र साम्बके समक्ष आया ॥ ५१ ॥ इस प्रकार सामने उपस्थित राजा हेमांगदको देखकर धर्मात्मा साम्बने भीषण प्रहार करके दीन-हीन मनुष्योंको मारते हुए अपने भाइयों और महावतोंको रोक दिया ॥ ५२ ॥ उन्हें रोककर साम्बने राजा हेमांगदसे कहा । साम्ब बोले—आइए राजन् ! आपका कल्याण हो । अब मेरे घोड़ेको लेकर अनिरुद्धके पास जाइए, तभी आपका कल्याण होगा । साम्बकी यह बात सुनकर राजा हेमांगद श्रीकृष्णके पुत्रों और यज्ञीय घोड़ेके साथ पुरीसे बाहर निकला ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ अपने पुत्रके साथ अनिरुद्धके पास जाकर राजा हेमांगदने एक करोड़ स्वर्णमुद्रा तथा अश्वमेधके घोड़ेकी भेंट दी ॥ ५५ ॥ हे राजेन्द्र ! तब नीतिज्ञ अनिरुद्धने पुष्पमालासे बँधे राजा हेमांगदके दोनों हाथ खोलकर कहा—॥ ५६ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिए मेरे साथ चलकर आप शत्रुराजाओंसे इस घोड़ेकी रक्षा करिए ॥ ५७ ॥ बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ महात्मा हेमांगद अनिरुद्धके वचन सुनकर तत्काल अपने पुत्रको राज्यका भार सौंपकर बड़ी प्रसन्नतापूर्वक उनके साथ चलनेको तैयार हो गया ॥ ५८ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखण्डे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

श्री गर्गमुनि बोले—हे राजन् ! यादववीरोंका छोड़ा हुआ वह अत्युज्ज्वल घोड़ा बड़े-बड़े वीर राजाओं

एवं स विचरन्राजन्राष्ट्रे राष्ट्रे हयोत्तमः। नृपैश्च बहुभी राजन्गृहीतश्च विमोचितः ॥ २ ॥
इंद्रनीलं जितं श्रुत्वा तथा हेमांगदं नृपम्। नृपाश्चान्ये मण्डलेशाः प्राप्तं न जगृहुर्हयम् ॥ ३ ॥
वीरहीनान्बहून्देशान्विलोक्य तुरगोत्तमः। यदृच्छया नृपश्रेष्ठ स्त्रीराज्यं तु जगाम ह ॥ ४ ॥
राजन्यकन्या काचिद्वै सुरूपा नाम सुन्दरी। राज्यं सा कुरुते स्वैरं राजा तत्र न जीवति ॥ ५ ॥
तत्र देशे स्त्रियं प्राप्य यस्तां भजति कामतः। ऊर्ध्वं संवत्सराद्राजन्न कदापि स जीवति ॥ ६ ॥
तत्पुरे तुरगो गत्वा ह्युद्याने पुष्पसंकुले। लवंगलतिकावृन्दे स्वेलागंधसमाकुले ॥ ७ ॥
पक्षिभिर्मधुपैर्घुष्टे स्थितोऽभूच्चिंचिणीतले। ददृशुः स्त्रीजनाः सर्वे श्यामकर्णं मनोहरम् ॥ ८ ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा द्रष्टुं समागताः। हयं दृष्ट्वा स्त्रियो गत्वा स्वामिनीमवदन्नृप ॥ ९ ॥
श्रुत्वा राज्ञी रथे स्थित्वा छत्रचामरवीजिता। नारीकोटिसमायुक्ता हयं द्रष्टुं समाययौ ॥१०॥
अश्वं दृष्ट्वा च तत्पत्रं वाचयित्वा रुषान्विता। पुनः पुरे हयं बद्ध्वा युद्धं कर्तुं मनो दधे ॥११॥
काश्चिन्नार्यो गजारूढा रथारूढाः समाययुः। हयारूढास्तथा काश्चिद्दंशिताः शस्त्रसंयुताः ॥१२॥
ताः सर्वाः कुपिता वीक्ष्य शस्त्रवर्षं प्रकुर्वतीः। आगतो ह्यनिरुद्धस्तु हेमांगदमुवाच ह ॥१३॥

अनिरुद्ध उवाच

राजन्नेताश्च का नार्यो युद्धं कर्तुं समागताः। विस्तरेणापि कथय येन मे स्याच्छिवं त्विह ॥१४॥

हेमांगद उवाच

अत्र देशे च कुरुते राज्ञी राज्यं नृपेश्वर। न जीवति नृपो राज्ये तस्मात्स्त्रीभिः समन्विता १५॥
हयं गृहीत्वा ते सा च संग्रामं कर्तुमागता। इति श्रुत्वाऽनिरुद्धस्तु राजानमिदमब्रवीत् ॥१६॥

अनिरुद्ध उवाच

कस्मात्स्त्री कुरुते राज्यं राजा कस्मान्न जीवति। एतां विस्तरतो वार्तां यत्त्वं जानासि तद्वद ॥१७॥

को देखता हुआ धीरे-धीरे उशीनर देशसे बाहर निकला ॥ १ ॥ इस प्रकार अनेक राज्योंमें विचरण करता हुआ वह हयश्रेष्ठ बहुतेरे राजाओंके हाथों पकड़ा और छोड़ा गया ॥ २ ॥ राजा इन्द्रनील तथा राजा हेमांगदके पराजयकी बात सुनकर अन्य मण्डलेश्वर राजाओंने उस घोड़ेको नहीं पकड़ा ॥ ३ ॥ इस प्रकार बहुतेरे वीर-हीन देशोंको देखता हुआ वह अश्वश्रेष्ठ स्वेच्छासे स्त्रीराज्यमें जा पहुँचा ॥ ४ ॥ किसी राजाकी सुरूपा नामकी एक सुन्दरी कन्या उस राज्यका यथेच्छ शासन चलाती थी। क्योंकि वहाँ कोई राजा जीवित नहीं रहता ॥ ५ ॥ उस देशमें जो पुरुष किसी स्त्रीके साथ सहवास करता है, वह सालभरसे अधिक जीवमान नहीं रह पाता ॥ ६ ॥ उस नगरमें जाकर विकसित पुष्पोंसे भरे, लवंगलताओंकी झाड़ियोंसे व्याप्त, इलायचीकी सुगन्धिसे ओत-प्रोत, विविध पक्षियोंके कलरव और भौंरोंके गुञ्जारसे मुखरित एक उपवनमें इमली वृक्षके नीचे वह अश्व ठहरा। उस मनोहर श्यामकर्ण घोड़ेको वहाँकी स्त्रियोंने देखा ॥ ७ ॥ ८ ॥ वहांके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र जातिके लोग उसे देखने आये। हे राजन्! उस घोड़ेको देखकर स्त्रियोंने अपनी महा-रानीसे उसका गुणगान किया ॥ ९ ॥ यह सुनकर रानी अपने रथमें बैठी। उसके ऊपर छत्र तन गया और चमर चलने लगा। इस प्रकार करोड़ों स्त्रियोंके साथ वह घोड़ा देखने आयी ॥ १० ॥ वहां उस अश्वको देख तथा पत्र पढ़कर रानीको बड़ा क्रोध आगया। जिससे उसने तत्काल घोड़ेको अपने नगरमें बांधकर युद्ध करने-का निश्चय किया ॥ ११ ॥ तदनुसार कुछ स्त्रियाँ हाथियोंपर, कुछ रथोंपर और कुछ सशस्त्र स्त्रियाँ घोड़ोंपर बैठ तथा कवच पहनकर आयीं ॥ १२ ॥ कुपित होकर शस्त्रोंकी वर्षा करती हुई उन स्त्रियोंको देखकर अनिरुद्धने राजा हेमांगदसे कहा। अनिरुद्ध बोले—हे राजन्! ये स्त्रियां कौन हैं, जो यहां युद्ध करने आयी हैं। यह आप विस्तारपूर्वक बताइए कि ये कौन हैं, जिससे मेरा कल्याण हो ॥ १३ ॥ १४ ॥ राजा हेमांगदने कहा—हे नृपेश्वर! इस देशमें स्त्रियां ही राज्य करती हैं। क्योंकि यहां कोई राजा जीवित नहीं रहता। इसी कारण यहां-की रानी बहुतेरी स्त्रियोंके साथ आयी है और आपके अश्वको पकड़कर युद्ध करनेको तत्पर है। यह सुनकर अनिरुद्धने कहा ॥ १५ ॥ १६ ॥ वे बोले—हे राजन्! यहां स्त्रियां क्यों राज्य करती हैं और कोई राजा

इति तद्वाक्यमाकर्ण्य राजा हेमांगदोऽब्रवीत् । संस्मरन् याज्ञवल्क्यस्य स्वगुरोश्च पदांबुजम् ॥१८॥
यादवेंद्र पुरावृत्तं याज्ञवल्क्यमुखाच्छ्रुतम् । चंपकायां मया पूर्वं कथयिष्यामि तच्छृणु ॥१९॥
पुरा कृतयुगे राजन्नत्र देशे बभूव ह । नारीपाल इति ख्यातो राजा तु मंडलेश्वरः ॥२०॥
तस्यासीन्मोहिनी भार्या सिंहलद्वीपसंभवा । पद्मिनी हंसगमना पूर्णचंद्रनिभानना ॥२१॥
तस्याः सौंदर्यजलधौ मग्नो भूत्वा महीपतिः । अहर्निशमविज्ञाय रेमे तां शतवत्सरैः ॥२२॥
न चकार प्रजानां वै न्यायं कामेन मोहितः । तदा सर्वाः प्रजा राजन्बभूवुर्दुःखपीडिताः ॥२३॥
प्रजानां कदनं वीक्ष्य मोहिनी नृपवल्लभा । न्यायं चकार सर्वासां स्वशक्त्या यादवेश्वर ॥२४॥
एकदा तं नृपं द्रष्टुमष्टावक्रो महामुनिः । आजगाम नृपस्यापि प्राप्तश्चांतःपुरे किल ॥२५॥
तमागतं मुनिं दृष्ट्वा नृपः स्त्रीलग्नमानसः । विजहास कुरूपोऽयं कस्मात्प्राप्त इति ब्रुवन् ॥२६॥
ततो रुषा मुनिः प्राह शृणु मूढ नपुंसक । मुनीनां स्त्रीजितो भूत्वाऽपमानं किं करिष्यसि ॥२७॥
त्वद्देशे च सदा राज्यं नार्यः कुर्वन्तु नित्यशः । न जीवति नृपो राज्ये तस्माद्गच्छ त्वमालयात् ॥२८॥
अत्र देशे स्त्रियं प्राप्य यस्तां भजति नित्यशः । स तु संवत्सरांते वै न जीवति न संशयः ॥२९॥

गर्ग उवाच

इत्युक्त्वा स्वाश्रमं सोऽपि प्रययौ मुनिसत्तमः । गते मुनौ नृपस्तत्र क्लीबोऽभूत्तस्य शापतः ॥३०॥
सर्वं मुनिकृतं ज्ञात्वा गर्हयामास भूपतिः । आत्मानमात्मना चैव स दीनो दुःखदुःखितः ॥३१॥

नारीपाल उवाच

किं कृतं मंदभाग्येन स्त्रीजितेन मया ह्यहो । मुनीनां पूजनं त्यक्त्वा तथा निरययायिनम् ॥३२॥
अद्य मां पापिनं दुष्टं यमदूतैर्विलोकितम् । दृष्ट्वा वैतरणीयोग्यं कः प्रतापात्प्रमोक्ष्यति ॥३३॥

जीवित क्यों नहीं रहता । इस बातको आप अपनी जानकारीके अनुसार विस्तारसे बताइए ॥ १७ ॥ अनिरुद्धके वचन सुनकर राजा हेमांगद अपने गुरु याज्ञवल्क्यके चरणारविन्दका स्मरण करके बोले—॥ १८ ॥ हे यादवेन्द्र ! महर्षि याज्ञवल्क्यके मुखसे मैंने चंपावती पुरीके विषयका जो वृत्तान्त सुना था, वही कह रहा हूँ । सुनिए ॥ १९ ॥ पुराकालके सतयुगमें यहाँ नारीपाल नामका एक मण्डलेश्वर राजा था ॥ २० ॥ सिंहलद्वीपमें उत्पन्न मोहिनी उस राजाकी रानी थी। वह पद्मिनी, हंसगामिनी और चन्द्रमुखी थी ॥ २१ ॥ उसके सौंदर्यसमुद्रमें डूबे हुए राजा नारीपाल पूरे सौ वर्ष इस तरह रमण करते रहे कि उन्हें यह भी नहीं ज्ञात हो सका कि कब दिन हुआ और कब रात ॥ २२ ॥ इस प्रकार कामसे मोहित वह राजा प्रजाकी खोज-खबर लेना भी भूल गया । जिससे प्रजाको राजासे न्याय मिलना बन्द हो गया । इस कारण प्रजा बहुत व्यथित हो उठी ॥ २३ ॥ इस प्रकार प्रजाकी दुर्दशा देखकर राजाकी प्रेयसी रानी मोहिनी अपनी शक्तिके अनुसार स्वयं प्रजाका न्याय करने लगी ॥ २४ ॥ एक दिन महामुनि अष्टावक्र राजासे मिलने आये और सीधे अन्तःपुरमें चले गये ॥ २५ ॥ मुनिको आते देख स्त्रीमें जिसका मन रमा हुआ था, वह राजा नारीपाल उन्हें देखकर हँसा और कहने लगा कि यह कुरूप प्राणी यहाँ कैसे आ गया ? ॥ २६ ॥ इससे कुपित होकर महामुनि अष्टावक्रने कहा—अरे मूढ़ ! ओ नपुंसक ! स्त्रीका गुलाम बनकर तू मुनियोंका अपमान करेगा ? ॥ २७ ॥ जा, तेरे देशमें अब सदा स्त्रियाँ ही राज्य करेंगी । इस राज्यमें अब कोई राजा नहीं जियेगा । अतएव तू अभी इस घरसे निकल जा ॥ २८ ॥ इस देशमें जो पुरुष किसी स्त्रीके साथ नित्य रमण करेगा, वह एक सालके बाद अवश्य मर जायगा ॥ २९ ॥ गर्गमुनि बोले—हे राजन् ! ऐसा कहकर मुनिराज अष्टावक्र अपने आश्रमको चले गये । मुनिके चले जानेपर राजा नारीपाल उनके शापसे तत्काल नपुंसक हो गया ॥ ३० ॥ इसके बाद वह मुनि अष्टावक्रके प्रभावको जानकर स्वयं अपनी निन्दा करता हुआ वह बहुत दुःखित हो गया ॥ ३१ ॥ राजा नारीपालने कहा—हाय, मुझ स्त्रीजित् तथा मन्दभाग्यने मुनियोंका पूजन त्यागकर यह क्या किया । इस पापसे मुझको नरकमें जाना पड़ेगा ॥ ३२ ॥ अब मुझ पापी, दुष्ट, यमदूतों द्वारा अवलोकित तथा वैतरणीमें

इत्युत्वा स गृहं त्यक्क्त्वा विचचार वने वने । भजन्विमुक्तिदं विष्णुं लेभे चांते हरेः पदम् ॥३४॥
अत्र देशे च राजानो राज्यं शापभयान्विताः । न करिष्यंति नार्य्यश्च करिष्यंति न संशयः ॥३५॥

श्रीगर्ग उवाच

एवं तयोः कथयतोनार्यः क्रुद्धाः समागताः । व्यमुंचन्धनुषैर्बाणान्पुंश्चल्यः क्रोधपूरिताः ॥३६॥
ताः स्त्रीर्वीक्ष्यानिरुद्धस्तु विस्मितोऽभूद्भयान्वितः ।
कथं करिष्ये युद्धं वै स्त्रीभिः सार्द्धमिति ब्रुवन् ॥३७॥
तदैव तस्य निकटे सुरूपा मंडलेश्वरी । स्त्रीभिः प्राप्ता चानिरुद्धं दृष्ट्वा वचनमब्रवीत् ॥३८॥

राज्ञ्युवाच

तिष्ठ तिष्ठ रणे वीर कुरु युद्धं मया सह । सेनायुक्तस्तथापि त्वं किं शोचसि वृथा रणे ॥३९॥
अहं त्वां मानिनं जित्वा प्रधने वृष्णिभिर्युतम् । क्रीडामृगं करिष्यामि मदनज्वरपीडिता ॥४०॥
इति तस्या वचः श्रुत्वाऽनिरुद्धो भयविह्वलः । प्रत्याह दीनया वाचा सर्वविन्मंडलेश्वरीम् ॥४१॥
तुरगं कृष्णचंद्रस्य सर्वदेवेश्वरस्य च । मह्यं प्रयच्छ हे राज्ञि क्रतोरर्थे तु स्वेच्छया ॥४२॥
नाहं करिष्ये युद्धं वै त्वया सार्द्धं वरानने । गच्छ द्वारावतीं तस्माद्दर्शनार्थं हरेश्च वै ॥४३॥
यन्नामस्मरणाद्भद्रे नरो याति कृतार्थताम् । तस्य वै दर्शनस्यापि फलं किं कथयामि ते ॥४४॥
इति सा चानिरुद्धेन बोधिता निपुणेन वै । पूर्ववार्तां स्मरन्त्याह ब्रह्माणं मोहिनी यथा ॥४५॥

सुरूपोवाच

अहं पुराऽभवं देव स्वर्वेश्या पूर्वजन्मनि । मोहिनी नाम विख्याता कंजाङ्गा कंजलोचना ४६॥
एकदा हंसयानेन व्रजंतं पद्मसंभवम् । दृष्ट्वा तन्निकटे गत्वा भज मामित्युवाच ह ॥४७॥

जाने योग्य मुझ पामर प्राणीको कौन अपने तेजसे छुड़ायेगा ॥ ३३ ॥ ऐसा कहकर उसने घर त्याग दिया और भगवद्भजन करता हुआ वन-वन विचरने लगा। अन्तमें उसको विष्णुभगवान्‌का धाम प्राप्त हुआ ॥ ३४ ॥ हे महाराज ! शापके भयसे इस देशमें कोई राजा राज्य नहीं करता। भविष्यमें भी कोई यहाँ राज्य नहीं करेगा। अतएव स्त्रियाँ ही यहाँ राज्य करती हैं और भविष्यमें भी करेंगी। गर्गमुनि कहते हैं—हे राजन् ! इस प्रकार वे दोनों बात कर ही रहे थे कि इतनेमें अतिकुपित अगणित स्त्रियां अविरल बाणवर्षा करती हुई वहाँ आ पहुँची। उन्हें देखकर अनिरुद्ध भयभीत और विस्मित हो उठे। वे यह सोचने लगे कि मैं इन स्त्रियोंके साथ युद्ध कैसे करूँगा ? ॥३५–३७॥ उसी समय एक अति रूपवती स्त्री जो सबकी मण्डलेश्वरी महारानी थी, वह अपने साथ बहुतेरी स्त्रियोंको साथ लेकर वहाँ आयी। वह अनिरुद्धको देखकर बोली ॥ ३८ ॥ रानीने कहा—हे वीर ! आइए और रणभूमिमें खड़े होकर मेरे साथ युद्ध करिए। इतनी बड़ी सेना साथ रखकर आप रणभूमिमें शोक क्यों करते हैं ? ॥ ३९ ॥ समस्त यादवोंके साथ आप जैसे अभिमानी राजाको संग्राममें जीतकर कामज्वरसे पीडित मैं आपको अपना क्रीडामृग (खिलौनेका हिरन) बनाऊँगी ॥ ४० ॥ उसके वचन सुनकर अनिरुद्ध भयविह्वल हो उठे। सर्वज्ञ होते हुए भी वे बड़ी दीन वाणीमें मण्डलेश्वरीसे बोले—हे महारानी ! सब देवताओंके अधीश्वर कृष्णचन्द्रके इस घोड़ेको यज्ञपूर्तिके निमित्त आप मुझे दे दीजिए ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ हे सुमुखी ! मैं आपके साथ युद्ध नहीं करूँगा। अब आप भगवान कृष्णका दर्शन करनेके लिए द्वारका चली जाइए ॥ ४३ ॥ जिनके नामका स्मरण करके ही प्राणी कृतार्थ हो जाता है, उनके दर्शनका फल मैं कहाँतक कहूँगा ॥ ४४ ॥ समझानेमें निपुण अनिरुद्धने उसे इस प्रकार समझाया तो पूर्वकालकी बातका स्मरण करती हुई महारानी इस तरह बोली, जैसे ब्रह्मासे मोहिनीरूपधारी भगवान बोले थे ॥ ४५ ॥ सुरूपा बोली—हे देव ! पूर्वजन्ममें मैं स्वर्गकी अप्सरा थी। मेरा नाम मोहिनी था। उस समय मेरे सभी अंग कमल जैसे कोमल थे और कमल जैसे ही मेरे नेत्र थे ॥ ४६ ॥ एक दिन हंसकी सवारीपर बैठकर जाते हुए ब्रह्माजीको देखकर मैं उनके पास गयी और कहा कि आप चलकर मेरे

यदा न जगृहे ब्रह्मा शापं दत्त्वा तदा ह्यहम् । गत्वा ककुद्मतीतीरे चकार दुष्करं तपः ॥४८॥
तपसा तोषितो ब्रह्मा तपोंते च समागतः । तपस्विनीं प्रसन्नात्मा वरं ब्रूहीत्युवाच ह ॥४९॥
तच्छ्रुत्वा मोहिनी प्राह देवदेव नमोऽस्तु ते । वरं वरय लोकेश दीनां मां तपसिस्थिताम् ॥५०॥
यदि मां त्वं न गृह्णासि दुःखितां शरणागताम् । तदा रोषेण त्यक्ष्यामि तपसा च कृशां तनुम् ॥५१॥
इति श्रुत्वा विधिः प्राह शोकं मा कुरु भामिनि । अन्यजन्मनि ते भद्रे भविष्यति मनोरथः ॥५२॥
अहं पौत्रो भविष्यामि द्वारकायां हरेश्च वै । सुवर्णश्चानिरुद्धाख्यः स्त्रीराज्ये त्वं भविष्यसि ॥५३॥
ततो गृह्णामि त्वां भद्रे नानृतं वचनं मम । इति श्रुत्वा च तद्वाक्यं जाताऽहं पृथिवीतले ॥५४॥
ब्रह्मा त्वं यादवश्रेष्ठ मदर्थे च समागतः ।

गर्ग उवाच

वाक्यं तस्याः समाकर्ण्य यादवा विस्मयं ययुः ॥५५॥
अनिरुद्धस्तु धर्मात्मा प्रत्याह विमलं वचः ।

अनिरुद्ध उवाच

गच्छ श्रीद्वारकां भद्रे तत्र गृह्णामि त्वां प्रियाम् । अद्य यास्यामि तुरगं राजन्येभ्यश्च पालयन् ॥५६॥
ततः सा तस्य वाक्येन प्रमिलां मंत्रिणीं वराम् । राज्ये कृत्वा तुरंगं च दत्त्वा द्वारावतीं ययौ ॥५७॥

इति श्रीगर्गसंहितायां हयमेधखंडे स्त्रीराज्यविजयो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अथ अष्टादशोऽध्यायः

(यादवोंका विमानारोहण)

गर्ग उवाच

अथ मुक्तोऽनिरुद्धेन क्रतोर्वाजी पयःप्रभः । सिंहलद्वीपनिकटे विचचार यदृच्छया ॥ १ ॥

रमण करिए ॥ ४७ ॥ जब मेरी बात नहीं मानी, तब ब्रह्माजीको शाप देकर मैंने ककुद्मती नदीके तटपर जाकर दुष्कर तप किया ॥ ४८ ॥ मेरे तपसे प्रसन्न होकर ब्रह्माजी तपके अन्तमें मेरे पास आये और बहुत ही प्रसन्न मनसे उन्होंने कहा—वर माँगो ॥ ४९ ॥ सो सुनकर तपस्विनी मोहिनी बोली—हे देवदेव ! आपको नमस्कार है। हे लोकेश ! मैं यही वर माँगती हूँ कि मुझ तपस्विनीको आप अपनी भार्याके रूपमें वर लीजिए ॥ ५० ॥ यदि आप मुझ शरणागता दुखियाको न अंगीकार करेंगे तो क्रोधवश मैं तपस्यासे कृश अपना शरीर त्याग दूँगी ॥ ५१ ॥ यह सुनकर ब्रह्माजी बोले— हे भामिनी ! तुम शोक न करो। दूसरे जन्ममें तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण हो जायगी ॥ ५२ ॥ उस समय मैं द्वारकामें भगवान् श्रीकृष्णका पौत्र हूँगा, तब मेरा नाम अनिरुद्ध होगा। मेरा वर्ण दिव्य रहेगा और तुम स्त्रीराज्यकी महारानी होओगी ॥ ५३ ॥ उस समय मैं तुम्हारा पाणिग्रहण कर लूंगा। मेरा कथन झूठा नहीं होगा। उनकी बात सुनकर मैं पृथ्वीतलपर आकर जनमी ॥ ५४ ॥ हे यादवश्रेष्ठ ! आप ब्रह्मा हैं और मेरे लिए ही आप धरातलपर आये हैं। श्रीगर्गमुनि बोले— हे राजन् ! उस स्त्रीकी बात सुनकर सब यादव बहुत विस्मित हुए ॥ ५५ ॥ तब धर्मात्मा अनिरुद्ध रानीसे विमल वाणीमें बोले—हे भद्रे ! अब तुम यहांसे द्वारका चली जाओ। जब मैं लौटूँगा तो वहां ही तुम्हारा पाणिग्रहण करूँगा। अभी तो मैं शत्रु राजाओंसे इस अश्वकी रक्षा करनेके लिए जाऊँगा ॥ ५६ ॥ अनिरुद्धकी बात मानकर रानीने प्रमिला नामकी अपनी श्रेष्ठ मन्त्रिणीको राज्यासनपर बिठा और घोड़ा अनिरुद्धको सौंपकर वह द्वारका चली गयी ॥ ५७ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखंडे 'प्रियंवदा'-भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

तृषार्तस्तुरगस्तत्र दृष्ट्वा वापीं जलान्विताम् । वृक्षैश्च बहुभिर्गुप्तां दृष्ट्वा तोयं पपौ स्वयम् ॥ २ ॥
वाप्यामश्वं विलोक्याथ भीषणो नाम राक्षसः । वाचयित्वा च तत्पत्रं जग्राह तुरगं मुदा ॥ ३ ॥
तदैव यादवाः सर्वे तं पश्यन्तः समागताः । राक्षसेन गृहीतं वै ददृशुः क्रतुवाजिनम् ॥ ४ ॥
ततस्ते कौणपं प्राहुर्यादवा युद्धशालिनः ।

यादवा ऊचुः

कस्त्वं श्रीयादवेंद्रस्य ह्युग्रसेनस्य भूपतेः ॥ ५ ॥
सिंहस्य वस्तु क्रोष्टेव हयं नीत्वा क्व यास्यसि । तिष्ठ तिष्ठ रणं धूर्त अस्माभिः कुरु धैर्यतः ॥ ६ ॥
तुरगं मोचयिष्यामो वधिष्यामो रणे च त्वाम् । शकुनिर्भ्रातृसहितो नरको बाण एव च ॥ ७ ॥
कलंकश्चैव राजान एतेऽस्माभिर्विनाशिताः । तस्मान्न गणयिष्यामो युद्धे त्वां च तृणोपमम् ॥ ८ ॥
गच्छ गच्छ हयं दत्त्वा घातयामो न चेत्खलु । तेषां भाषितमाकर्ण्य भीषणः सुरभीषणः ॥ ९ ॥
शूली गदाधरः खड्गी तान्प्रत्याह रुषान्वितः ।

भीषण उवाच

के यूयं प्रतियोद्धारो मम भक्ष्या नराः स्मृताः ॥१०॥
संमुखे राक्षसानां ते किं करिष्यंति पौरुषम् । यदा विश्वजितं यज्ञं यादवेन कृतं पुरा ॥११॥
तदाऽहं कौणपाञ्नेतुं लंकायां च गतः किल । यदाऽहं राक्षसान्नीत्वा स्वपुर्यां च समागतः ॥१२॥
तदाऽश्रृणों नारदाद्वै यज्ञं पूर्णं बभूव ह । पुनर्वै हयमेधस्य प्रयासं च वृथा कृतम् ॥१३॥
युष्मत्सु मद्गृहीतं च तुरगं मोचयंति के । तस्माद्धयाशां त्यक्त्वा तु यूयं गच्छत गच्छत ॥१४॥
न चेत्सर्वान्प्रभक्ष्यंति चतुर्लक्षा ममानुगाः । अत्र स्थानात्समुद्रे तु पुरी द्वादशयोजने ॥१५॥
उपलंका च नाम्ना वै वर्त्तते मम निर्मिता । निशाचरगणैर्युक्ता सर्पभोगवती यथा ॥१६॥
इत्युक्त्वा स हयं नीत्वा सहसा स्वपुरीं ययौ । आकाशमार्गेण नृप शोकं चक्रुश्च यादवाः ॥१७॥

श्रीगर्गमुनि बोले—तदनन्तर दुग्ध सदृश उज्ज्वल एवं अनिरुद्धके द्वारा छोड़ा हुआ वह अश्व सिंहल द्वीपमें जा पहुँचा और वहाँ स्वच्छन्दतापूर्वक विचरने लगा ॥ १ ॥ उस समय वह प्यासा था। तत्काल उसने जलकी एक बावली देखी। वह वृक्षोंकी झुरमुटमें छिपी थी। सो वहाँ जाकर उसने जल पिया ॥ २ ॥ बावलीमें घोड़ेको देखकर भीषण नामके एक राक्षसने उसके माथेपर बँधा पत्र बाँचा और हर्षित होकर उसे पकड़ लिया ॥ ३ ॥ उसी समय घोड़ेको ढूँढ़ते हुए यादव लोग भी वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने घोड़ेको उसके कब्जेमें देखा ॥ ४ ॥ तब वे उस राक्षससे बोले—अरे तू कौन है ? यादवेन्द्र महाराज उग्रसेनके अश्वको सिंहकी वस्तुको सियारकी नाईं लेकर तू कहाँ जायगा ? तू खड़ा रह—खड़ा रह और धैर्यधारणपूर्वक हमसे युद्ध कर ॥ ५ ॥ ६ ॥ हम लोग तेरे हाथोंसे यह अश्व छुड़ाकर तेरा वध करेंगे। भ्राता सहित शकुनि, नरकासुर, बाणासुर और कलंक आदि राजाओंको हमने मारा है। अतएव रणमें हम तुझे तृण बराबर भी नहीं समझते ॥ ७ ॥ ८ ॥ सो तू मेरा घोड़ा देकर चला जा। अन्यथा हम तुझे मार डालेंगे। यादवोंकी बात सुनकर देवताओंके लिए भीषण शूल, गदा और खड्ग धारण किये हुए उस दैत्यने अतिशय क्रुद्ध होकर कहा। भीषणने कहा—हे यादवों! तुम लोग तो मेरे भक्ष्य मनुष्य हो, तब मुझसे कैसे लड़ोगे ? ॥ ९ ॥ १० ॥ राक्षसोंके समक्ष ये यादव क्या पुरुषार्थ करेंगे ? यादवेश उग्रसेनने जब विश्वजित् यज्ञ ठाना था ॥ ११ ॥ उस समय मैं राक्षसोंको लानेके लिए लंका गया हुआ था। वहाँसे जब अपनी नगरी लौटकर आया तो नारदजीके मुखसे सुना कि यज्ञ पूर्ण हो गया। ऐसी स्थितिमें उनके अश्वमेध यज्ञका प्रयास निरर्थक है ॥ १२ ॥ १३ ॥ तुममेंसे कौन ऐसा वीर है, जो मेरे हाथोंसे इस घोड़ेको छुड़ा सके ? अतएव अब घोड़ा पानेकी आशा त्यागकर तुम लोग यहाँसे चले जाओ—चले जाओ ॥ १४ ॥ अन्यथा मेरे चार लाख राक्षसगण तुम सबको खा जायँगे। यहाँसे बारह योजन दूर समुद्रमें मेरी नगरी है ॥ १५ ॥ उसका नाम [illegible]

अनिरुद्धस्ततः प्राह भोजराजतुरंगमम् । निशाचरेण नीतं वै मोचयामो वयं कथम् ॥१८॥
इति श्रुत्वा च सांबाद्याः प्रत्याहुर्नयकोविदाः । शोकं मा कुरु ते राजन्स्थितेष्वस्मासु किं भयम् ॥१९॥
हयाः सपक्षास्त्वत्सैन्ये विमानानि शरास्तथा । शूराः संति महावीरा लोकद्वयजिगीषवः ॥२०॥
अश्वैर्वयं गमिष्यामः सेतुं कृत्वाऽथवा शरैः । विष्णुदत्तेन वा राजञ्छत्रूणां नगरीं प्रति ॥२१॥
सर्वेषां वचनं श्रुत्वाऽनिरुद्धो धन्विनां वरः । उद्धवं मंत्रिणां श्रेष्ठं समाहूयेदमब्रवीत् ॥२२॥

अनिरुद्ध उवाच

किं करिष्याम्यहं मंत्रिञ्छ्यामकर्णे गते सति । त्वच्छासने भगवतः प्रेरितोऽहं वदस्व तत् ॥२३॥
मत्पितृभ्रातरः सर्वे उपायं प्रवदंति हि । यदि दास्यसि त्वं चाज्ञां तदा सर्वं करोम्यहम् ॥२४॥
उद्धवस्तद्वचः श्रुत्वा प्रत्युवाच विलज्जितः । अहं कृष्णस्य पुत्राणां पौत्राणां च विशेषतः ॥२५॥
सदा दासोऽस्मि नितरामाज्ञावर्ती वदामि किम् । यदिच्छा तव चैतेषां कुरु सा च भविष्यति ॥२६॥
ततः प्राहानिरुद्धस्तु यास्येऽहं दैत्यपत्तनम् । अक्षौहिणीदशयुतो विष्णुदत्तेन यादवाः ॥२७॥
सारणः कृतवर्मा च युयुधानश्च सात्यकिः । अक्रूरसहिता एते सेनां रक्षंतु चात्र हि ॥२८॥
इत्युक्त्वा स विमानं त्वारुरोह सह सेनया । अष्टादशैर्हरेः पुत्रैरुद्धवेन गदेन च ॥२९॥

रेजे ततो भास्करबिंबतुल्यं धनेशयानं स्वबलेन नीतम् ।
श्रीकृष्णपौत्रेण यदुप्रवीरैर्यथा च रामेण पुरा कपीन्द्रैः ॥३०॥

इति श्रीगर्गसंहितायां हयमेधखंडे विमानारोहणं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

अथ एकोनविंशोऽध्यायः

(बलासुरका आगमन)

श्रीगर्ग उवाच

अथ रुक्मवतीपुत्रो महत्या सेनया वृतः । उपलंकां विमानेन प्रययौ धनदो यथा ॥ १ ॥
यदुभिस्तत्र गत्वा स शरैराशीविषोपमैः । बभंज नगरीं राजन्वनान्युपवनानि च ॥ २ ॥
क्रीडास्थानानि द्वाराणि सदनाट्टालतोलिकाः । गोपुराणि विमानाग्रान्निपेतुः शस्त्रवृष्टयः ॥ ३ ॥
मुशलाः शक्तयश्चैव परिघाश्च शराः शिलाः । चण्डवायुरभूद्राजन्जसाऽऽच्छादिता दिशः ॥ ४ ॥
इत्यर्द्यमाना यदुभिर्भीषणस्य पुरी भृशम् । नाभ्यपद्यत कल्याणं यथा शाल्वैश्च द्वारिका ॥ ५ ॥
हाहाकारस्तदैवासीन्नगर्यां नृपसत्तम । असुरा भीषणाद्याश्च बभूवुर्भयविह्वलाः ॥ ६ ॥
बाध्यमानां च नगरीं दृष्ट्वा राक्षसपुंगवः । माभैष्टेत्यभयं दत्त्वा राक्षसैः सह निर्ययौ ॥ ७ ॥
ततः प्रववृते युद्धं यादवानां निशाचरैः । तत्पुर्यां चैव लंकायां कपिभी रक्षसां यथा ॥ ८ ॥
वृष्णीनां चैव बाणौघै राक्षसाश्छिन्नकंधराः । निपेतुस्ते समुद्रे वै वृक्षा वातहता इव ॥ ९ ॥
केचित्पृथिव्यां पतिताः केचित्पुर्यामधोमुखाः । केचिदूर्ध्वमुखा राजन्केचिद्वै पंचतां गताः ॥१०॥
तत्र तेषां शोणितेन दुर्नदी च भयंकरा । बभूव सा च दुष्पारा महावैतरणी यथा ॥११॥
तत्र तेषां बलं वीक्ष्य भीषणो विस्मयं गतः । तिरश्चीनेन नेत्रेण दृष्ट्वा प्राह यदूनिदम् ॥१२॥
भवद्भिश्च कृतं युद्धमाकाशान्निर्बलैरिव । अश्लाघनीयं च वृथा यूयं मानं करिष्यथ ॥१३॥
युष्माकं यदि देहेषु शक्तिश्चेद्विद्यते श्रृणु । महीतले तदागत्य मया कुरुत वै रणम् ॥१४॥
इत्याकर्ण्य वचः सोऽपि कार्ष्णिजः करुणामयः । विमानं भूतले कृत्वा प्रत्युवाच महासुरम् ॥१५॥

अनिरुद्ध उवाच

सहसा त्वं मया सार्द्धं रणं कुरु महारणे । किं विचारेण भवति भयं त्यक्त्वा महासुर ॥१६॥
इति तद्वाक्यमाकर्ण्य भीषणो भीमविक्रमः । धनुषा पंच नाराचांस्तस्योपरि मुमोच ह ॥१७॥
अनिरुद्धो निरीक्ष्याथ स्वबाणैस्तान्द्विधाऽकरोत् । चिच्छेद च धनुस्तस्य शरेणैकेन लीलया ॥१८॥
सोऽप्यन्यं धनुरादाय सज्जं कृत्वा निशाचरः । सर्पाकारैः शतशरैर्जघान कार्ष्णिनंदनम् ॥१९॥
रथस्तु तस्य सञ्चोऽभूत्सारथी पंचतां गतः । हया मृत्युं गताः सर्वे प्राद्युम्निर्मूर्च्छितोऽभवत् २०॥
तदैव वृष्णयः सर्वे स्फुरिताधरपल्लवाः । स्वनाथं पतितं दृष्ट्वा नृप मुंचन्तः समागताः ॥२१॥
तानागतान्बहून्दृष्ट्वा चापं धृत्वाऽसुरो रुषा । गदया पोथयामास दंष्ट्रयेव मृगान्हरिः ॥२२॥
गदाप्रहारव्यथिता यादवाः पतिता भुवि । संभिन्नच्छिन्नसर्वांगाः केचिन्निपतिता रणे ॥२३॥
ततो गृहीत्वा स्वगदां गदः संकर्षणानुजः । ताडयामास समरे भीषणस्य च मूर्द्धनि ॥२४॥
गदाप्रहारव्यथितः स पपात महीतले । चालयन् वसुधां राजन् यथा वज्रहतो गिरिः ॥२५॥
भीषणं पतितं दृष्ट्वा मूर्च्छितं भग्नशीर्षकम् । असुरास्ते गदं हंतुं प्राप्ताः शस्त्रधराः किल ॥२६॥
तान्सर्वान्पोथयामास गदया वज्रकल्पया । रामानुजो यथा राजन्नृसिंहो दंष्ट्रया गजान् ॥२७॥
अथोत्थितोऽनिरुद्धस्तु ब्रुवन्धन्वी क्षणेन वै । भीषणो मम शत्रुर्वै क्व गतः स महा खलः ॥२८॥
उत्थितं च हरेः पौत्रं दृष्ट्वा यादवपुंगवाः । चक्रुर्जयजयारावं देवाः सर्वे च हर्षिताः ॥२९॥
ततो नारदवाक्याद्वै बको नाम निशाचरः । भीषणस्य पिताऽरण्यात्क्रुद्धस्तत्राजगाम ह ॥३०॥
कज्जलाद्रिसमो राजन्तालवृक्षदशोत्थितः । ललज्जिह्वश्च दुर्नेत्रस्त्रिशूली च गदाधरः ॥३१॥
हस्तिनं वामहस्तेन गृहीत्वा च मुखेन वै । प्रभक्षन् रुधिराक्रांतः पिशाचसदृशो महान् ॥३२॥
पद्भ्यां तालप्रमाणाभ्यां कंपयन्पृथिवीतलम् । भयप्रदश्च देवानां जनकालो व्यदृश्यत ॥३३॥

तमायांतं विलोक्याथ शंकितास्तत्र यादवाः । प्रोचुः परस्परं सर्वे स्मृत्वा कृष्णपदांबुजम् ॥३४॥

यादवा ऊचुः

कोऽयं मित्राणि गदत निकटे च समागतः । महाबीभत्सरूपी वै कृतांत इव निर्भयः ॥३५॥
इति ब्रुवत्सु सर्वेषु आसीत्कोलाहलो महान् । प्रसन्नास्तं निरीक्ष्याथ बभूवुस्ते निशाचराः ॥३६॥
भीषणं मूर्छितं दृष्ट्वा बको राक्षसपुंगवः । शुशोच राजन्संग्रामे हा दैवेति मुहुर्वदन् ॥३७॥
ततो मूर्छां मुहूर्तेन विहाय भीषणो नृप । उत्थितस्तु ब्रुवन्वाक्यं गदः कुत्र गतो भयात् ॥३८॥
स्वपुत्रमुत्थितं दृष्ट्वा पुरुपादस्तु हर्षितः । आलिंग्याश्वासयामास सुवाक्यैर्वाक्यकोविदः ॥३९॥
भीषणः पितरं दृष्ट्वा सहायार्थं समागतम् । नमश्चक्रे महाराज भूत्वा स च प्रसन्नधीः ॥४०॥

इति श्रीगर्गसंहितायां हयमेधखण्डे बकागमनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

अथ विंशोऽध्यायः

(अनिरुद्धकी उपलंकापर विजय)

गर्ग उवाच

अथासुराणां मध्ये वै स्थित्वा राजन् रुपान्वितः । अभिप्रायं भीषणं च बकः पप्रच्छ राक्षसः ॥ १ ॥
किमर्थं यादवैः सार्द्धं युद्धमासीत्तृणोपमैः । त्वं च यत्र गतो मूर्छां राक्षसा निहता अहो ॥ २ ॥
इत्युक्तः स बकेनापि भूत्वा राजन्नवाङ्मुखः । हयमेधतुरंगस्य वार्तां सर्वामवर्णयत् ॥ ३ ॥
श्रुत्वा पुत्रस्य वचनं गृहीत्वा स्वगदां बकः । विवेश यदुसैन्ये वै ज्वलनस्तु यथा वने ॥ ४ ॥
पद्भ्यां ममर्द पाणिभ्यां यादवान्संमुखे गतान् । भुजाभ्यां गदया सिंहो प्रसुप्तांश्च मृगान्यथा ॥ ५ ॥
हयाँश्चिक्षेप गगने गजाँश्चैव रथाँस्तथा । नराँश्च भक्षयन् युद्धे शब्दं चक्रे बको बली ॥ ६ ॥

बकासुर वहाँ आया । वह मनुष्योंके लिए तो साक्षात् काल था ॥ ३१–३३ ॥ उसे आते देखकर सब यादव सशंक उठे और भगवान कृष्णके चरणकमलोंका स्मरण करते हुए परस्पर कहने लगे ॥ ३४ ॥ यादव बोले—हे मित्रो ! यह कौन हमारे समीप आ रहा है ? इसका स्वरूप बड़ा भयंकर है और यह कालके समान निर्भय है ॥ ३५ ॥ जब वे परस्पर ऐसा कह रहे थे, तभी बड़ा भारी कोलाहल मचा और राक्षस बकासुरको देखकर प्रसन्न हुए ॥ ३६ ॥ राक्षसश्रेष्ठ बकासुर भीषणको मूर्छित देख बार बार हा दैव कहकर रुदन करने लगा ॥ ३७ ॥ मुहूर्त भर बाद मूर्छा त्यागकर भीषण उठ खड़ा हुआ और कहने लगा कि मेरे डरसे गद कहाँ भाग गया ? ॥ ३८ ॥ अपने पुत्रको उठकर खड़ा देख बकासुर बहुत प्रसन्न हुआ । उसने उसको छातीसे लगाकर अच्छी-अच्छी बातोंसे आश्वस्त किया ॥ ३९ ॥ भीषण भी सहायताके लिए पिताको आया देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसे प्रणाम किया ॥ ४० ॥ इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

गर्गमुनि बोले—हे राजन् ! तब राक्षसोंके बीच खड़े होकर बकासुरने अपने पुत्र भीषणसे उसका अभिप्राय पूछा ॥ १ ॥ उसने कहा—हे पुत्र ! तृण जैसे तुच्छ यादवोंके साथ तुम्हारा युद्ध क्यों हुआ । जिसमें तुम मूर्छित हुए और बहुतेरे राक्षसोंके प्राण गये ॥ २ ॥ पिताके प्रश्न सुनकर नीचा मुख किये हुए भीषणने अश्वमेध यज्ञके घोड़ेका सब हाल कह सुनाया ॥ ३ ॥ पुत्रके वचन सुनकर बकासुर अपनी गदा लेकर यादवोंकी सेनामें उसी तरह पिल पड़ा, जैसे दावानल वनमें प्रविष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥ यादवी सेनाके बीच पहुँचकर वह असुर हाथों, पैरों और गदाकी मारसे यादवोंको इस तरह पीसने लगा, जैसे सिंह सोये हुए हिरनोंको पीस देता है ॥५॥ उसने बहुतेरे घोड़ों, हाथियों और रथोंको

ननाद तेन लोकैश्च विश्वं शब्देन यादव । जाता च बधिरीभूता पृथिव्यां जनमण्डली ॥ ७ ॥
अथ तस्यापि युद्धेन विपरीतेन यादवाः । हाहेतिवादिनः सर्वे बभूवुः खिन्नमानसाः ॥ ८ ॥
बाध्यमानां च स्वां सेनां राक्षसेन दुरात्मना । भृशं निरीक्ष्य तत्रोऽभूत्सांबो जांबवतीसुतः ॥ ९ ॥
गृहीत्वा पंच नाराचान्कोदंडे चण्डविक्रमः । निधायाशु मुमोचाथ बकस्योपरि मानद ॥१०॥
ते बाणास्तच्छरीरं वै भित्त्वा राजन्महीतलम् । विविशुस्ते तु गत्वा वै पपुर्भोगवतीजलम् ॥११॥
स हतस्तु शरै राजन्पपात चालयन्महीम् । पुनरुत्थाय च बको ननाद जलदस्वनः ॥१२॥
पुनर्जांबवतीपुत्रो जघ्ने तं पंचभिः शरैः । तैर्वागैर्विभ्रमन्सोऽपि लंकायां निपपात ह ॥१३॥
आगत्य त्रिशिखं रक्षस्त्रिशूलं ज्वलनप्रभम् । राजन्सांबाय चिक्षेप प्रसूनमिव हस्तिने ॥१४॥
त्रिशूलमागतं दृष्ट्वा सांबो बाणेन लीलया । चिच्छेद प्रधने शीघ्रं नागं नागांतको यथा ॥१५॥
ततो नीत्वा गदां गुर्वी बकस्तु रणदुर्मदः । सांबस्य तुरगान्राजञ्जघान सारथिं तथा ॥१६॥
रथं चैव पताकां च हत्वा सांबमुवाच ह । रथमन्यं समारुह्य युद्धं कुरु मया सह ॥१७॥
विरथं त्वामधर्मेण न हनिष्याम्यहं रणे । इत्यरितोऽसौ दैत्येन हसन्किंचिद्रुषान्वितः ॥१८॥
शीघ्रं जघान गदया हृत्कपाटे बकस्य च । गदाहतो बको युद्धे किंचिद्व्याकुलमानसः ॥१९॥
अगणय्य ततः सांबं यदुसैन्ये विवेश ह । स गत्वा तत्र गदया गजवाजिरथान्नरान् ॥२०॥
कौणपः पोथयामास मृगेंद्रस्तु यथा मृगान् । हाहाकारस्तदैवासीद्यदुसैन्ये नृपेश्वर ॥२१॥
ततो विलोक्य रोषेण राजन् रुक्मवतीसुतः । तत्रागतोऽभयं कुर्वन्रथेनाक्षौहिणीयुतः ॥२२॥

अनिरुद्ध उवाच

किं करिष्यसि हे मूढ त्यक्त्वा वीरस्य संमुखम् । भीतानां मारणे श्लाघा न भविष्यति तेऽसुर ॥२३॥

यदि शक्तिश्च त्वद्देहे विद्यते शृणु मद्वचः । मत्संमुखे समागत्य कुरु युद्धं प्रयत्नतः ॥२४॥
इति श्रुत्वाऽनिरुद्धस्य वाक्यं राजन्बकासुरः । रुषा स्फुरत्सर्प इव युद्धार्थं शीघ्रमाययौ ॥२५॥
आगतं तं विलोक्याथानिरुद्धो धन्विनां वरः । नाराचैर्दशभी राजञ्जघान प्रधने रुषा ॥२६॥
ते शरास्तच्छरीरं वै शीघ्रं भित्त्वा बहिर्गताः । पुनस्ते भीषणं भित्त्वा विविशुर्वै महीतलम् ॥२७॥
ततः पपात स बको भीषणेन समन्वितः । पृथिव्यां मूर्छितो भूत्वा यथा वज्रहतो गिरिः ॥२८॥
तदा जयजयारावो यदुसैन्ये बभूव ह । नेदुर्दुंदुभयश्चैव भेर्यः शंखाश्च गोमुखाः ॥२९॥
ततश्च राक्षसाः सर्वे क्रोधपूरितमानसाः । स्वनाथौ पतितौ दृष्ट्वा यदून्हंतुं समाययुः ॥३०॥
ततः समभवद्युद्धमुभयोः सेनयोर्मृधे । बाणैः खड्गैर्गदाभिश्च शक्तिभिर्भिंदिपालकैः ॥३१॥
राक्षसानां बलं तीव्रं दृष्ट्वा राजन्हरेः सुताः । अष्टादश च सांबाद्या निजघ्नुर्निशितैः शरैः ॥३२॥
तत्र तेषां च बाणौघैः कौणपाः पतिता मृधे । केचिन्मृत्युं गताः केचिद्दुद्रुवुर्जीवितैषिणः ॥३३॥
अथोत्थितो मुहूर्तेन बको राजन्भयङ्करः । त्वरं जगाम शत्रोश्चानिरुद्धस्य तु संमुखे ॥३४॥
तत्र गत्वा गदां गुर्वीं चिक्षेप तच्छिरोपरि । बाहुना च बको राजन्हतोऽसीति ब्रुवन् वचः ॥३५॥
तामागतां विलोक्याथ यमदंडेन माधवः । चिच्छेद सहसा राजन्कुवाक्येनेव मित्रताम् ॥३६॥
ततः क्रुद्धो बको युद्धे प्रसार्य मुखमण्डलम् । दुद्राव तं भक्षयितुं राहुश्चन्द्रमिव क्वचित् ॥३७॥
आगतं तं निरीक्ष्याथानिरुद्धो धन्विनां वरः । यमदंडं पुनर्नीत्वा ताडयामास तेन तम् ॥३८॥
ततो भग्नशिरा भूत्वा छुद्रमन्रुधिरं मुखात् । चालयन्वसुधां राजन्पतितो मूर्च्छितोऽभवत् ॥३९॥
ततश्च भीषणो रोषात्पितरं वीक्ष्य मूर्च्छितम् । परिघेण रणे राजन्निजघान तु यादवान् ॥४०॥
ततोऽनिरुद्धो बलवान्नागपाशेन रोषतः । चकर्ष भीषणं बद्ध्वा नागं विष्णुरथो यथा ॥४१॥

कर इन भयभीत लोगोंको मारनेमें तुम्हारी बड़ाई नहीं होगी ॥ २३ ॥ यदि तुम्हारे शरीरमें शक्ति हो तो मेरी बात मानो और मेरे समक्ष आकर प्रयत्नपूर्वक युद्ध करो ॥ २४ ॥ हे राजन् ! अनिरुद्धके वचन सुनकर बकासुर रोपसे सर्पकी तरह फुफकारता हुआ युद्धके लिए शीघ्र उनके सम्मुख जा डटा ॥ २५ ॥ उसको सामने पाकर धनुर्धरोंमें अग्रणी अनिरुद्धने बड़े क्रोधसे दस बाण मारे ॥ २६ ॥ वे बाण बकासुरका शरीर छेदकर बाहर निकलते हुए धरतीमें घुस गये ॥ २७ ॥ तब अपने पुत्र भीषणके साथ बकासुर मूर्छित होकर पृथिवीपर गिर गया, जैसे वज्रके आघातसे पर्वत गिर जाता है ॥ २८ ॥ उस समय यादवी सेनामें अनिरुद्ध-का जय जयकार होने लगा और दुन्दुभी, भेरी, शंख और गोमुख आदि बाजे बजने लगे ॥ २९ ॥ अपने दोनों स्वामियोंको धरतीपर पड़े देखकर बड़े क्रोधके साथ सब राक्षस यादवोंको मारनेके लिए दौड़ पड़े ॥ ३० ॥ इसके बाद दोनों सेनाओंमें युद्ध आरम्भ हो गया और बाण, खड्ग गदा तथा भिन्दिपाल आदि शस्त्रास्त्र चलने लगे ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! राक्षसोंका तीव्र बल देखकर साम्ब आदि श्रीकृष्णके अठारहों पुत्र अपने तीक्ष्ण बाणोंसे राक्षसोंको मारने लगे ॥ ३२ ॥ बाणोंकी मारसे कितने ही राक्षस मारे गये, बहुतेरे मूर्छित होकर गिर गये और बहुतसे राक्षस प्राण बचानेके लिए रणसे निकल भागे ॥ ३३ ॥ किन्तु क्षण ही भर बाद बकासुर उठ खड़ा हुआ और अपने शत्रु अनिरुद्धके समक्ष जा पहुँचा ॥ ३४ ॥ वहाँ जाकर अपनी बड़ी भारी गदा अनिरुद्धके सिरपर दे मारी और कहा कि अब तुम मर जाओगे ॥ ३५ ॥ उस गदाको प्रद्युम्नने यमदंडसे छिन्न-भिन्न कर दिया, जैसे कुवाक्य मैत्रीको नष्ट कर देते हैं ॥ ३६ ॥ इससे बकासुरको बड़ा क्रोध आया, [illegible] मुख फैलाकर वह अनिरुद्धको खा जानेके लिए बड़े वेगसे दौड़ा, जैसे चन्द्रमाको खानेके लिए [illegible] दौड़ता है ॥ ३७ ॥ उसे आते देख धनुर्धरोंमें अग्रणी अनिरुद्धने यमदंड लेकर उसीसे उसके ऊपर प्रहार [illegible]या ॥ ३८ ॥ उस प्रहारसे बकासुरका सिर फट गया और वह मुँहसे रुधिर फेंकता तथा धरतीको [illegible]ता हुआ मूर्छित होकर पृथिवीपर गिर गया ॥ ३९ ॥ तब हे राजन् ! उसके पुत्र भीषणने अपने पिताको [illegible] देख बड़े क्रोधसे रणभूमिमें यादवोंपर परिघसे प्रहार किया ॥ ४० ॥ तब बलवान् अनिरुद्धने [illegible]

तं बद्धं पाशिनः पाशैर्भग्नमानमधोमुखम् । विनिर्जितं हीनबलं सांबो वचनमब्रवीत् ॥४२॥
असुरेन्द्रानिरुद्धस्य हयमेधतुरंगमम् । शीघ्रं प्रयच्छ भद्रं ते पुरीं गत्वा विधानतः ॥४३॥
अनिरुद्धं हरेः पौत्रं श्रीकृष्णस्य महात्मनः । नृणां प्रदर्शयन् रूपं विचरंतं मिषेण च ॥४४॥
यं नमंति समागत्य देवदैत्यनराः सुराः । तं विद्धि कृष्णसदृशं नृणां पापप्रणाशनम् ॥४५॥
तेन त्वं निर्जितो युद्धे दुःखं मा कुरु राक्षस । अस्माभिः सहितो गच्छ कर्तुं कृष्णस्य दर्शनम् ॥४६॥

गर्ग उवाच

बोधितः सोऽपि सांबेन मुक्तः पाशैश्च वारुणैः । पुरीं गत्वा ददौ तस्मै द्रव्ययुक्तं तुरंगमम् ॥४७॥
ततः सोऽप्यनिरुद्धेन तुरंगस्य तु पालने । प्रार्थितो भीषणो राजन्प्रत्युवाच विचार्य तम् ॥४८॥

भीषण उवाच

यदा भवति चैतन्यो मत्पिता सुरपालक । तदाऽहं तस्य वचनादागमिष्ये न संशयः ॥४९॥

इतीरितोऽसौ किल भीषणेन प्रद्युम्नपुत्रः क्रतुवाहनं च ।
कृत्वा विमाने यदुसेनया वै स्वयं समारुह्य जगाम खं हि ॥५०॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डे उपलंकाविजयो नाम विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

अथ एकविंशोऽध्यायः

(भद्रावती-विजय)

गर्ग उवाच

ततः प्राप्तः स्वसेनायां विमानस्थ उषापतिः । शीघ्रं चाकाशमार्गेण नादयञ्जयदुन्दुभीन् ॥ १ ॥
दृष्ट्वा तानागतान्सर्वे ह्यक्रूराद्याश्च यादवाः । मिलित्वा कुशलं सर्वं पप्रच्छुस्ते न्यवेदयन् ॥ २ ॥
ततस्त्यक्त्वा विमूर्च्छां वै बकस्तु सहसोत्थितः । अदृष्ट्वा यादवांस्तत्र पत्रं पप्रच्छ रोषतः ॥ ३ ॥

ततः पित्रे भीषणो वै वार्तां सर्वामवर्णयत् । श्रुत्वा वचः प्राह बको रुषा प्रस्फुरिताधरः ॥ ४ ॥
अहं जानामि यदवो विमानेन कुशस्थलीम् । मद्भयाच्च गताः पुत्र यथा सिंहभयान्मृगाः ॥ ५ ॥
तस्मादयादवीं पृथ्वीं करिष्येऽहं न संशयः । हनिष्यामि यदून्सर्वान्गत्वा कृष्णस्य द्वारकाम् ॥६॥

भीषण उवाच

मन्युं नियच्छ भो राजन्नस्माकं समयो न हि । प्रसीदति यदा देवो तदा जेष्याम यादवान् ॥ ७ ॥

गर्ग उवाच

बोधितः सोऽपि पुत्रेण तूष्णीं भूत्वा बकासुरः । विचचार वने राजन् वनजंतून्प्रभक्षयन् ॥ ८ ॥

ततस्तुरंगं विधिनाऽभिषिच्य दानानि दत्त्वा द्विजपुंगवेभ्यः ।
विमोचयामास पुनर्जयाय प्रद्युम्नपुत्रो विजयो नृपेन्द्र ॥ ९ ॥
हयस्तु मुक्तः किल कार्ष्णिजेन स्वरं प्रकुर्वन्नृप धैवतं च ।
पश्यन्स देशान्बहुवीरयुक्तान्भद्रावतीं नाम पुरीं जगाम ॥१०॥

तत्र भद्रावतीमश्वो नानाचोपवनैर्वृताम् । गिरिदुर्गेण राजेंद्र तथा रजतमंदिरैः ॥११॥
महावीरजनैर्युक्तां यौवनाश्वेन पालिताम् । दृढां लौहकपाटैश्च नृपस्याग्रे स्थितोऽभवत् ॥१२॥
तं गृहीत्वा तु तस्यापि वार्तां ज्ञात्वा नृपेश्वरः । युद्धं कर्तुं च कुपितः ससैन्यो निर्ययौ पुरात् ॥१३॥
ससैन्यमागतं दृष्ट्वा यौवनाश्वं महाबलम् । आहूय मंत्रिणं प्राह कृष्णभक्तं हि कार्ष्णिजः ॥१४॥

अनिरुद्ध उवाच

कोऽयं समागतो मंत्रिन्संमुखे सह सेनया । हयहर्त्ता शत्रुमुख्यो तत्सर्वं कथयस्व च ॥१५॥

उद्धव उवाच

नृपोऽयं यौवनाश्वाख्यो मरुधन्वपतेः सुतः । अत्र राज्यं च कुरुते मृते पितरि सत्तम ॥१६॥
अयं षोडशवर्षीयो कुमंत्रिवचनाद्रणम् । करिष्यति महाराज मारणीयः स न त्वया ॥१७॥

बकासुर उठ बैठा । यादवोंको वहाँ अनुपस्थित देखकर बड़े रोषके साथ अपने पुत्रसे पूछा ॥ ३ ॥ इसपर भीषणने अपने पिताको सब बात बता दी । सो सुन बकासुरने बहुत क्रुद्ध होकर कहा—॥४॥ पुत्र ! मैं जानता हूँ कि यादव विमानसे द्वारका भाग गये हैं । जैसे सिंहके भयसे मृग भागते हैं ॥ ५ ॥ अतएव मैं निःसन्देह सारी पृथ्वी यादवहीन कर दूँगा । अब मै द्वारका पुरीमें जाकर सभी यादवोंको मार डालूँगा ॥ ६ ॥ भीषण बोला—हे राजन् ! आप अपना क्रोध रोकिए । यह समय हमारे अनुकूल नहीं है । जब देव हमपर प्रसन्न होगा, तब हम यादवोंको जीत लेगे ॥ ७ ॥ गर्गमुनि बोले—हे राजन् ! अपने पुत्रके समझानेपर बकासुर चुप होगया । उसके बाद वह वनजन्तुओंको खाता हुआ वनमें घूमने लगा ॥८॥ हे राजन् ! इधर अनिरुद्धने विधिवत् अभिषेक करके और ब्राह्मणोंको दान देकर पूजा की । तब घोड़ेको फिरसे छोड़ा ॥९॥ हे राजन् ! अनिरुद्धके हाथों छोड़ा हुआ वह अश्व पैरोंसे धैवत स्वर निकालता हुआ बहुतेरे वीरों युक्त अनेक देशोंमें घूमता-घूमता भद्रावती पुरीमें जा पहुँचा ॥ १० ॥ भद्रावतीपुरीके चारों ओर अनेक बाग-बगीचे थे । उसमें सब ओर पर्वतोंके दुर्ग और चाँदीके बहुतेरे मन्दिर थे ॥ ११ ॥ उस पुरीमे बड़े-बड़े वीर पुरुष निवास करते थे । राजा यौवनाश्व उसका पालन करते थे । उस पुरीमें जाकर वह घोड़ा राजाके समक्ष खड़ा हो गया ॥ १२ ॥ तब राजा यौवनाश्वने उसे पकड़ लिया और अति क्रुद्धभावसे सेना लेकर युद्ध करनेके लिए नगरसे बाहर निकला ॥ १३ ॥ महाबली राजा यौवनाश्वको आते देख अनिरुद्धने परम कृष्णभक्त उद्धवको बुलाकर कहा—॥ १४ ॥ अनिरुद्ध बोले—हे मंत्रिन् ! सेना साथ लिये हुए सामनेसे कौन आ रहा है ? यदि यह मेरे घोड़ेका चोर है तो मेरा मुख्य शत्रु है । सो सब बातें बताइए ॥ १५ ॥ उद्धव बोले—हे सत्तम ! यह मरुप्रदेशके स्वामीका पुत्र राजा यौवनाश्व है । पिताके मर जानेपर भद्रावतीपुरीका शासन यहीं कर रहा है ॥ १६ ॥ यह अभी सोलह वर्षका है । दुष्ट मंत्रियोंके बहकावेमें आकर यह युद्ध करेगा । हे महाराज ! इसे मारियेगा न

इति श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा यौवनाश्वेन कार्ष्णिजः । युद्धं चकार प्रधने यथा नागेन नागहा ॥१८॥
तं तु वै विरथं चक्रे हत्वा चाक्षौहिणीत्रयम् । प्रत्याह विमलं वाक्यं यौवनाश्वमुपापतिः ॥१९॥

अनिरुद्ध उवाच

राजन्प्रयच्छ तुरगं युद्धं कुरु न चेन्मया । वाक्यं श्रुत्वा हरेः पौत्रं ज्ञात्वा राजा भयान्वितः २०॥
अर्पयामास विधिना तस्मै यज्ञतुरंगमम् । भूत्वा कृतांजली राजा प्रार्थितस्तेन चाब्रवीत् ॥२१॥

यौवनाश्व उवाच

द्वारकायां यदा यज्ञो भविष्यति नृपेश्वर । तदाहं चागमिष्यामि कृष्णस्यांघ्री विलोकितुम् ॥२२॥
ततश्च कृत्वा तं राज्ये वंदितस्तेन कार्ष्णिजः । मुमुचे वाजिनं श्रेष्ठं विजयी विजयाय च ॥२३॥

इति श्रीगर्गसंहितायां हयमेधखण्डे भद्रावतीविजयो नामैकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

(अनिरुद्धका अवन्ती-गमन)

गर्ग उवाच

यदुप्रवीरस्य तुरंगमो वै विलोकयन्राजपुरं जगाम ।
निरीक्ष्य मार्गे सफरां नदीं च ह्यवंतिकाया विपिने स्थितोऽभूत् ॥ १ ॥
तदैव तत्रागतवान्महात्मा सान्दीपनिः कृष्णगुरुर्द्विजेन्द्रः ।
स्नातुं गृहाच्छ्रीतुलसीस्रजाढ्यः सधौतवस्त्रः प्रजपन्हि कृष्णम् ॥ २ ॥
ददर्श तत्रापि जलं पिबंतं तुरंगमं वै धवलं सपत्रम् ।
वाक्यं ब्रुवन्नेष कुतोश्व वाजी विमोचितः केन नृपेश्वरेण ॥ ३ ॥
तत्र स्नानं प्रकुर्वंतं दृष्ट्वा विंदुं नृपात्मजम् । हयस्यार्थे मुनिर्गत्वा नोदयामास तं नृप ॥ ४ ॥
ततः सवीरैर्बहुभिश्च राजन्राजाधिदेवीतनयश्च शूरः ।
जग्राह वाहं सहसा निरीक्ष्य नत्वा गुरुं तद्वचसा प्रसन्नः ॥ ५ ॥

हयं गृहीत्वा गुरवे दर्शयामास हर्षितः । स पत्रं वाचयित्वाऽऽह नृपं सांदीपनिर्मुदा ॥ ६ ॥

सांदीपनिरुवाच

उग्रसेनस्य तुरगं विद्धि प्राद्युम्निपालितम् । यदृच्छयाऽऽगतं राजन्कार्ष्णिजोऽत्रागमिष्यति ॥ ७ ॥
आगमिष्यंति बहवो यादवा युद्धशालिनः । मित्रविंदात्मजाश्चैव पश्यंतस्ते तुरंगमम् ॥ ८ ॥
पूजनीयास्त्वया सर्वे कृष्णचन्द्रस्य नन्दनाः । मद्वाक्याद्युद्धबुद्धिं त्वं त्यक्त्वा देहि तुरंगमम् ॥ ९ ॥
इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं धन्वी शूरो नृपात्मजः । हयं नेतुं मनो यस्य तत्र तूष्णीं बभूव ह ॥१०॥
तदैव यदुसेनायाः शब्दोऽभूल्लोकमानहा । महानादं दुंदुभीनां टंकारं धनुषां तथा ॥११॥
चीत्कारं दंतिनां चैव हयानां हेषणं तथा । झणत्कारं रथानां च वीराणां गर्जनं तथा ॥१२॥
शतघ्नीनां महाशब्दं लोकानां भयदायकम् । श्रुत्वा राजकुमारस्तु विस्मयं परमं गतः ॥१३॥
ततः समागताः सर्वे रथिभिश्च गजैर्हयैः । भोजवृष्ण्यंधकमधुशूरसेनदशार्हकाः ॥१४॥
रजोभिश्च नभो व्याप्तं कुर्वंतश्चलितां महीम् । केन नीतः कुत्र गतो हयः सर्वेऽब्रुवन्वचः ॥१५॥
ततश्च ददृशुः सर्वे घोटकं बद्धचामरम् । महाद्भुते चोपवने पुष्पितद्रुमसंकुले ॥१६॥
गृहीतं लीलया तत्र नृपपुत्रेण विंदुना । दृष्ट्वाऽनिरुद्धं निकटे गत्वा सर्वे ह्यवर्णयन् ॥१७॥
इति श्रुत्वाऽनिरुद्धस्तु विस्मितः प्रहसन्नृप । उद्धवं प्रेषयामास विन्दोः पार्श्वे च धर्मवित् ॥१८॥
ततः पुर्यां महाराज चासीत्कोलाहलो महान् । भयभीता जनाः सर्वे सेनां वीक्ष्य भयंकराम् ॥१९॥
अथ वै भ्रातरं द्रष्टुं ह्यनुविंदुर्भयान्वितः । कोटिवीरगणैः सार्द्धं स्वपुर्या निर्ययौ बहिः ॥२०॥
दृष्ट्वा यज्ञहयं तत्र सपत्रं च पयःप्रभम् । भ्रात्रा गृहीतं च भयान्निषेधं स चकार ह ॥२१॥

गुरु सान्दीपनिने अश्वमेधका घोड़ा पकड़नेके लिए उकसाया ॥ ४ ॥ महारानी राजाधिदेवीके वीर पुत्र राजकुमार विन्दुने बहुतेरे वीरोंको साथ लेकर सहसा घोड़ेको पकड़ लिया और बड़े प्रसन्न मनसे उसे ले जाकर गुरु सान्दीपनिको दिखाया । उसके मस्तकपर बँधा पत्र पढ़कर सान्दीपनि बहुत प्रसन्न हुए और बोले ॥ ५ ॥ ६ ॥ सान्दीपनिने कहा—राजकुमार ! यह अश्व महाराज उग्रसेनका है । अनिरुद्ध इसके रक्षक हैं । यह यहाँ अकस्मात् आ गया है । इसके पीछे अनिरुद्ध भी आ ही रहे होंगे ॥ ७ ॥ उनके साथ घोड़ेके रक्षक बहुतेरे युद्धवीर यादव तथा मित्रविन्दाके पुत्र भी आयेंगे ॥ ८ ॥ श्रीकृष्णके सभी पुत्र तुम्हारे पूज्य हैं । अतएव मेरे कहनेसे तुम युद्धबुद्धि त्यागकर उनका यज्ञीय अश्व लौटा दो ॥ ९ ॥ गुरुके वचन सुनकर वीर राजकुमार विन्दुने अश्व ले जानेका विचार त्याग दिया और चुप हो गया ॥ १० ॥ उसी समय लोकमानसको अपमानित करनेवाली यदुसेनाका घोष सुनायी दिया । धनुषोंका टंकार और दुन्दुभीकी गड़गड़ाहट भी सुनायी पड़ी ॥ ११ ॥ हाथियोंका चीत्कार, घोड़ोंकी हिनहिनाहट, रथोंकी झनकार, वीरोंके गर्जन और लोगोंके लिए भयदायक शतघ्नियों (तोपों) का महान् शब्द सुनकर राजकुमार विन्दुको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ १२ ॥ १३ ॥ तदनन्तर रथ तथा हाथी-घोड़ोंकी विशाल सेना साथ लिये हुए मधु, भोज, दशार्ह तथा शूरसेन वंशके राजे आये ॥१४॥ उनके पैरों द्वारा उड़ायी हुई धूलसे आकाश भर गया और धरती हिलने लगी । अरे ! घोड़ेको कौन ले गया ? वह कहाँ गया ? वे ऐसा कह रहे थे ॥ १५ ॥ तदनन्तर उन सभी यादवोंने अद्भुत ढंगसे खिले हुए पुष्पोंवाले वृक्षोंकी झुरमुटमें, जिसके कंधेपर चमर बँधा हुआ था, उस अश्वमेधके घोड़ेको खड़े देखा ॥१६॥ उसको खेल-खेलमें राजकुमार विन्दुने पकड़ रखा था । यह देखकर यादवोंने अनिरुद्धको बताया ॥ १७ ॥ ये सब बातें सुनकर अनिरुद्ध विस्मित हुए । बादमें हँसकर उन्होंने उद्धवको विन्दुके पास भेजा ॥ १८ ॥ उसी समय पुरीमें विकराल कोलाहल मच गया और उस भीषण यादवी सेनाको देखकर सब लोग डर गये ॥ १९ ॥ तदनन्तर अपने भाई विन्दुको देखनेके लिए भयातुर अनुविन्दु एक करोड़ वीरोंको साथ लेकर पुरीसे बाहर निकला ॥२०॥ आगे जाकर उसने देखा कि दूधके समान स्वेत वर्णके उस घोड़ेको विन्दुने

अनुविंदुरुवाच

यदूनां कृष्णदेवानां भ्रातर्मोचय घोटकम् । सम्बन्धस्य मिषेणापि कुलकौशलहेतवे ॥२२॥
यादवानां बलं पश्य देवदैत्यनरासुराः । पुरा यज्ञे राजसूये सर्वे भ्रातर्विनिर्जिताः ॥२३॥
इति तद्वाक्यमाकर्ण्य विन्दुर्ज्येष्ठोऽवधर्षितः । आगतं ह्युद्धवं दृष्ट्वा हयस्थं प्रत्युवाच ह ॥२४॥

विंदुरुवाच

मया गृहीतस्तुरगो मित्राणां मिलनाय च । तस्मान्निमंत्रिताः सर्वे स्थितिं कुरुत चात्र वै ॥२५॥
इति श्रुत्वोद्धवो राजन्विंदुं संश्लाघ्य हर्षितः । अनिरुद्धस्य निकटे गत्वा सर्वमुवाच ह ॥२६॥
श्रुत्वाऽनिरुद्धस्तद्वाक्यं भूत्वा राजन् प्रसन्नधीः । सेनयाऽवंतिकायां च नदीतीरेऽवसत्किल ॥२७॥
अनेके शिबिरा राजंस्तत्र वै दशयोजने । नानावर्णाः सकलशा ह्यभूवन्नद्भुताः शुभाः ॥२८॥
भक्ष्यं भोज्यं च लेह्यं च चोष्यमेतैश्च भोजनैः । आगतेभ्यश्च सर्वेभ्यो विंदुरर्हणमाहरत् ॥२९॥
तथा चैव तृणान्नादीन्पशुभ्यो दत्तवान्नृपः । ईदृग्विधं च सत्कारं वृष्णीनां स चकार ह ॥३०॥
नृपो राजाधिदेवी च द्वौ तथा नृपनंदनौ । भृशं मुमुदिरे सर्वे वीक्ष्य सर्वान्हरेः सुतान् ॥३१॥

ततो निशायां किल कार्ष्णिपुत्रो विद्यागुरुं च स्वपितामहस्य ।
आहूय नत्वाऽऽसनमेव दत्त्वा प्रत्याह कृत्वा वरपूजनं च ॥३२॥

भगवन्द्वारकायां च कृष्णवाक्यात्क्रतूत्तमम् । करोति हयमेधाख्यं चक्रवर्ती यदूत्तमः ॥३३॥
तस्मिन्क्रतुवरे ब्रह्मन्कृपां कृत्वा ममोपरि । त्वं तु गच्छ मुनिश्रेष्ठ पुत्रेण च समन्वितः ॥३४॥
अनिरुद्धस्य वचनं श्रुत्वा सांदीपनिर्मुनिः । कृष्णदर्शनकांक्षी च चलितुं स मनो दधे ॥३५॥

इति श्रीगर्गसंहितायां हयमेधखंडे अवंतिकागमनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

युगे युगे भवंत्येते दक्षाद्या नृपसत्तम । पुनश्चैव निरुद्ध्यंते विद्वाँस्तत्र न मुह्यति ॥१४॥
राजन्कृष्णः परं ब्रह्म यतः सर्वमिदं जगत् । जगच्चयो यत्र चेदं यस्मिँश्च लयमेष्यति ॥१५॥
तद्ब्रह्म परमं धाम सदसत्परमं पदम् । यस्य सर्वमभेदेन जगदेतच्चराचरम् ॥१६॥
स एव मूलप्रकृतिर्व्यक्तरूपी जगच्च सः । तस्मिन्नेव लयं सर्वं याति तत्रैव तिष्ठति ॥१७॥
यतः प्रधानपुरुषौ यतश्चैतच्चराचरम् । कारणं सकलस्यास्य स मे कृष्णः प्रसीदतु ॥१८॥
चतुर्युगेऽप्यसौ विष्णुः स्थितिव्यापारलक्षणः । युगव्यवस्थां कुरुते यथा राजेन्द्र तच्छृणु ॥१९॥
कृते युगे परं ज्ञानं कपिलादिस्वरूपधृक् । ददाति सर्वभूतात्मा सर्वभूतहिते रतः ॥२०॥
चक्रवर्तिस्वरूपेण त्रेतायामपि स प्रभुः । दुष्टानां निग्रहं कुर्वन्परिपाति जगत्त्रयम् ॥२१॥
वेदमेकं चतुर्भेदं कृत्वा स शतधा विभुः । करोति बहुलं भूयो वेदव्यासस्वरूपधृक् ॥२२॥
वेदांश्च द्वापरे न्यस्य कलेरंते पुनर्हरिः । कल्किस्वरूपी दुर्वृत्तान्मार्गे स्थापयति प्रभुः ॥२३॥
एवं कृष्णो जगत्सर्वं जगत्पाति करोति च । हंति चांतेष्वनंतात्मा नान्यस्माद्व्यतिरेकतः ॥२४॥
नमोऽस्तु हरये तस्मै यस्माद्भिन्नमिदं जगत् । ध्येयः स जगतामाद्यः स प्रसीदतु मेऽव्ययः ॥२५॥

तस्मान्नृपेंद्र हरिपौत्र मनोमयं च सर्वं विहाय जगतश्च सुखं च दुःखम् ।
मोक्षप्रदं सुरवरं किल सर्वदं त्वं द्वारावतीनरपतिं भज कृष्णचंद्रम् ॥२६॥
इति कृष्णस्य हरेश्च वृत्तसारं कथयति यश्च शृणोति भक्तियुक्तः ।
स विमलमतिरेति नात्ममोहं भवति च संसरणेषु भक्तियोग्यः ॥२७॥

इति श्रीगर्गसंहितायां हयमेधखंडे वैराग्यकथनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

उत्पत्ति होती है और प्रलय होता है, वह परब्रह्म ईश्वर एक ही है ॥१३॥ हे नृपसत्तम ! दक्षादिक तो युग-युगमें उत्पन्न होते और मर जाते हैं। किन्तु विद्वान् पुरुष इससे मोहित नहीं होते ॥ १४ ॥ हे राजन् ! ये श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं। जिनसे यह जगत् उत्पन्न हुआ, जो जगद्रूप हैं और जिनमें जगत् स्थित है, अन्तमें यह जगत् उन्हींमें लीन हो जायगा ॥ १५ ॥ ब्रह्म परम धाम, परमपद और कार्य-कारणसे परे रहता है। यह चराचर जगत् परब्रह्मसे पृथक् नहीं है ॥ १६ ॥ वह ब्रह्म ही मूल प्रकृति है। वही व्यक्त जगत् है। उसीमें लय होकर सब स्थित रहते हैं ॥ १७ ॥ जिनसे प्रकृति-पुरुष उत्पन्न हुए हैं, जिनसे यह चराचर जगत् जायमान हुआ और जो इन सबके प्रमुख कारण हैं, वे श्रीकृष्ण मुझपर प्रसन्न हों ॥ १८ ॥ चारों युगोंमें स्थितिरूप व्यापारको सम्पन्न करनेवाले विष्णु ही हैं। हे राजेन्द्र ! वे जिस तरह युगकी व्यवस्था करते हैं, सो सुनिए ॥ १९ ॥ सत्ययुगमें कपिल आदि रूप धारण करके सबके हितमें रत वे सर्वात्मा भगवान् लोगोंको परम उत्कृष्ट ज्ञान देते हैं ॥ २० ॥ त्रेतायुगमें वे ही प्रभु चक्रवर्ती राजा बनकर दुष्टोंका निग्रह करते हुए तीनों लोकोंका पालन करते हैं ॥ २१ ॥ वे ही विभु भगवान वेदव्यासका रूप धारण करके एक वेदके चार भाग करके फिर सौ भाग करते हैं ॥ २२ ॥ द्वापरमें वे फिर वेदोंका विभाजन करते हैं। कलियुगके अन्तमें वे कल्किरूप धारण करके दुराचारी लोगोंको सही राहपर लाते हैं ॥ २३ ॥ इस प्रकार श्रीकृष्ण ही इस जगत्को बनाते हैं, वे ही इसका पालन करते हैं और अन्तमें वे ही सबका संहार करते हैं। वास्तवमें तो वे इन सबसे पृथक् रहते हैं ॥ २४ ॥ जिनसे यह जगत् भिन्न है, उन भगवानको नमस्कार है। क्योंकि वे ही सब लोकोंकी आत्मा हैं और वे ही ध्यान करने योग्य हैं। अतएव वे अविनाशी भगवान् हमपर प्रसन्न हों ॥ २५ ॥ हे नृपेन्द्र ! हे श्रीहरिके पौत्र ! आप इस मनोमय जगत्के सुख-दुःखको त्यागकर मोक्षदायक, देवश्रेष्ठ, सर्वदायक और द्वारकेश श्रीकृष्णचन्द्रका ही भजन करिए ॥ २६ ॥ गुरु सांदीपनिके कहे हुए इस वृत्तसारको जो मनुष्य कहता या सुनता है, वह निर्मलबुद्धि मनुष्य भक्तियुक्त होकर कभी आत्ममोहको नहीं प्राप्त होता ॥ २७ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

(अनिरुद्धकी राजपुरपर विजय)

गर्ग उवाच

इतीदं वचनं श्रुत्वाऽनिरुद्धस्तु मुदान्वितः । निवेश्य कृष्णपदयोः स्वमनः प्राह तं मुनिम् ॥ १ ॥
गतः शत्रुश्च मे मोहस्त्वद्वाक्येनासिना विभो । अद्य त्वं गच्छ कृष्णस्य पुरीं पुत्रेण संयुतः ॥ २ ॥
तस्य वाक्यं समाकर्ण्य मुदा सांदीपनिर्मुनिः । कृष्णदत्तेन पुत्रेण रथस्थो द्वारकां ययौ ॥ ३ ॥
स पुर्य्यां रामकृष्णाभ्यामादरेण निवासितः । पूजितो यादवैः सर्वैर्भोजेंद्रेण विधानतः ॥ ४ ॥
अथ प्रद्युम्नतनयः श्यामकर्णं महोज्ज्वलम् । स्वर्णश्रृंखलया बद्धं मुमोच विजयाय च ॥ ५ ॥

हयश्च शीघ्रं प्रव्रजन्नृपेंद्र यशो ब्रुवन्राजपुरे गतः सः ।
यत्रानुशाल्वो नृपतिश्च राज्यं शाल्वस्य भ्राता कुरुते च नित्यम् ॥ ६ ॥

तत्र वै तुरगं प्राप्तमनुशाल्वो यदृच्छया । गृहीत्वा वाचयामास तत्पत्रं च प्रहर्षितः ॥ ७ ॥
अभिप्रायं निरीक्ष्यैव तिरश्चीनेन चक्षुषा । स्वसैनिकान्प्रत्युवाच रुषा प्रस्फुरिताधरः ॥ ८ ॥
दिष्ट्या दिष्ट्या शत्रवो मे सर्वे चात्र समागताः । घातयिष्यामि तान्सर्वान्यैर्मे भ्राता च मारितः ॥९॥
इत्युक्त्वा सेनया युक्तो निश्चक्राम पुराद्बहिः । अक्षौहिणीभिर्दशभिस्तृणीकृत्य तु यादवान् ॥१०॥
तदैव वृष्णयः सर्वे दृष्ट्वा सेनां समागताम् । बाणवर्षां प्रमुंचंतीं मुमुचुस्ते शरांश्च वै ॥११॥
उभयोः सेनयोर्युद्धं ततः समभवन्मृधे । खड्गैर्बाणैर्गदाभिश्च शक्तिभिर्भिंदिपालकैः ॥१२॥
पलायमानां स्वां सेनामनुशाल्वो महाबलः । वारयित्वा नदन् युद्धे चाजगाम रथेन वै ॥१३॥
तमागतं विलोक्याथ दीप्तिमान्कृष्णनन्दनः । तेन सार्द्धं रणं कर्त्तुं तदैव संमुखोऽभवत् ॥१४॥
दीप्तिमंतं रणे वीक्ष्य धनुषा दशभिः शरैः । तताडामर्षितः सोऽपि द्विपं द्वीपी नखैरिव ॥१५॥

ताडितस्तैः शरौघैस्तु रुधिरोक्षितबाहुना । नीत्वा शरासनं सद्यो बाणान्जग्राह रोषतः ॥१६॥
निधाय किल कोदंडे दश बाणान्मुमोच ह । ते शरास्तच्छरीरं वै भित्त्वा राजन्बहिर्गताः ॥१७॥
यथा तृणगृहं राजन्सहसा पन्नगाशनाः । तैर्बाणैर्निहतो युद्धेऽनुशाल्वो मूर्च्छितोऽभवत् ॥१८॥
ततस्तत्सैनिकाः सर्वे रुषा प्रस्फुरिताधराः । दीप्तिमंतं रणे जघ्नुश्चित्रशल्यैः शरैरपि ॥१९॥
तत्रागत्य हरेः पुत्रो भानुः सर्वान्निपूच्छरैः । नीहाराभ्रान्भानुरिव छिन्नभिन्नांश्चकार ह ॥२०॥
ततश्च दुद्रुवुः सर्वेऽनुशाल्वस्य तु सैनिकाः । तदैव तस्य मंत्री वै प्रचण्डो नाम रोषतः ॥२१॥
शक्त्या जघान समरे सत्यभामात्मजं नृप । भानोश्च हृदयं भित्त्वा सा विवेश महीतले ॥२२॥
स चापि मूर्च्छितो भूत्वा निपपात रथाद्रणे । स एवं कौतुकं वीक्ष्य सांबस्तत्र रुषा ज्वलन् ॥२३॥
शीघ्रं गृहीत्वा कोदंडमाजगाम रथेन वै । प्रचंडस्यं च रथं सांबः सतुरंगं ससारथिम् ॥२४॥
सध्वजं शतबाणैश्च सर्वं चूर्णीचकार ह । रथे भग्ने गदां नीत्वा प्रचण्डो रणदुर्मदः ॥२५॥
आजगाम रिपुं हंतुं पतंग इव पावकम् । आगतं तं विलोक्याथ चन्द्रार्काकारवर्चसा ॥२६॥
शरेणैकेन सांबस्तु जहार तच्छिरो मृधे । हाहाकारस्तदैवासीत्तत्सेनायां नृपेश्वर ॥२७॥
अथोत्थितोऽनुशाल्वस्तु मूर्च्छां त्यक्त्वा मुहूर्ततः । ददर्श मंत्रिणं तत्र सांबेन निहतं मृधे ॥२८॥
निरीक्ष्य रथमारुह्य धन्वी खड्गी च दंशितः । शिलीमुखैश्चतुर्भिश्च सांबस्य चतुरो हयान् ॥२९॥
द्वाभ्यां केतुं त्रिभिः सूतं पंचभिश्च शरासनम् । त्रिंशद्भिश्च शरैर्यानं जघान समरे नृपः ॥३०॥
स छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः । रथं चान्यं समारुह्य रेजे जांबवतीसुतः ॥३१॥
ततो गृहीत्वा कोदंडं शतबाणैरमर्षितः । तताड स रिपुं युद्धे सर्पं पक्षैर्यथा विराट् ॥३२॥
यानस्तस्यापि भग्नोऽभूत्तुरंगाः पंचतां गताः । सूतो मृत्युं गतो युद्धेऽनुशाल्वो मूर्च्छितोऽभवत् ३३॥

॥ १४ ॥ दीप्तिमान्‌को सामने देखकर अनुशाल्वने बड़े क्रोधसे उसे दस बाण मारे, जैसे सिंह अपने नखोंसे हाथीको मार डालता है ॥१५॥ उन बाणोंसे ताडित दीप्तिमान्‌ने अपनी रुधिराक्त भुजाओंसे धनुष उठाया और बड़े क्रोधके साथ बाण लिया ॥ १६ ॥ उन बाणोंको धनुषपर चढ़ाकर छोड़ा तो वे बाण अनुशाल्वके शरीरको भेदकर इस तरह पार निकल गये ॥ १७ ॥ जैसे बिमौटेमें सहसा गरुड़ घुस जायँ। उन बाणोंकी मारसे अनुशाल्व मूर्छित हो गया ॥ १८ ॥ तब क्रोधसे जिनके होंठ फड़क रहे थे, उन सैनिकोंने विविध प्रकारके बाण छोड़े ॥१९॥ उसी समय श्रीकृष्णके पुत्र भानुने वहाँ आकर सभी शत्रुओंको बाणोंसे इस प्रकार छिन्न-भिन्न कर दिया, जैसे कुहरेके मेघको सूर्य छिन्न-भिन्न कर देते हैं ॥ २० ॥ इसके बाद अनुशाल्वके सब सैनिक भाग गये। तब अनुशाल्वके मंत्री प्रचंडने बड़े क्रोधसे भानुपर शक्तिका प्रहार किया। वह भानुके हृदयको चीरकर धरतीमें समा गयी ॥ २१ ॥ २२ ॥ उस प्रहारसे भानु मूर्छित होकर पृथिवीपर गिर गये। यह कौतुक देखकर साम्ब रोषसे लाल हो गये ॥ २३ ॥ वे शीघ्र धनुष ले तथा रथपर बैठकर आये और आते ही अपने सौ बाणोंसे सारथी तथा प्रचण्डके ध्वजसहित रथको चूर-चूर करके गिरा दिया। तब रणदुर्मद प्रचण्ड रथको ध्वस्त देख गदा लेकर अपने शत्रु साम्बको मारनेके लिए आया। जैसे फतिंगा अग्निके समक्ष आता है। प्रचण्डको आते देखकर सूर्य तथा चन्द्रमाके सदृश तेजस्वी एक ही बाणसे साम्बने प्रचण्डका सिर काट लिया। यह देखकर प्रचण्डकी सेनामें हाहाकार मच गया ॥ २४-२७ ॥ मुहूर्त भर बाद मूर्छा त्यागकर जब अनुशाल्व उठा, तब उसने अपने मंत्री प्रचण्डको मरा हुआ देखा। क्योंकि साम्बने युद्धमें उसे मारकर गिरा दिया था ॥ २८ ॥ उसको देखकर अनुशाल्व रथपर बैठ तथा धनुष, खड्ग एवं कवच धारण करके अपने चार बाणोंसे साम्बके चारों घोड़े, दो बाणोंसे रथकी ध्वजा, तीन बाणोंसे सारथी, पाँच बाणोंसे धनुष और तीस बाणोंसे साम्बके रथको चूर-चूर कर दिया ॥ २९ ॥ ३० ॥ तब जिनका धनुष कट गया, रथ चूर्ण हो गया, घोड़े मर गये और सारथी भी मर चुका था, वे साम्ब दूसरे रथमें बैठकर शोभित हुए ॥ ३१ ॥ तदनन्तर हाथमें धनुष लेकर क्रुद्ध साम्बने इस प्रकार शत्रुको सौ बाण मारे, जैसे सर्पपर गरुड़ प्रहार करते

ततस्तत्सैनिकाः सर्वे गृध्रपक्षैः स्फुरत्प्रभैः । आशीविषसमैर्बाणैः सांबं जघ्नू रुषान्विताः ॥३४॥
सांबमेकं रणे वीक्ष्य मधुः कृष्णसुतो रुषा । पारावतसमेनापि हयेनागतवान्मृधे ॥३५॥
साकं सांबेन तान्सर्वान्निस्त्रिंशेन रिपून्खलान् । प्रहरार्द्धेन राजेन्द्र मारयन्विचचार ह ॥३६॥
ततोऽनुशाल्व उत्थाय दृष्ट्वा स्वस्य पराजयम् । सलिलेन शुचिर्भूत्वा हंतुं सर्वान्मनो दधे ॥३७॥
ब्रह्मास्त्रं संदधे रोषान्मयदैत्येन शिक्षितम् । अजानंस्तस्य नाशं च संप्राप्ते प्राणसंकटे ॥३८॥
तस्यापि दारुणं तेजो त्रींल्लोकान्प्रदहन्महत् । चचार ह्यंतरिक्षे च द्वादशादित्यसन्निभम् ॥३९॥
तत्तेजसा दुर्विषहेण सर्वे संदह्यमाना यदवश्च भीताः ।
प्राद्युम्निपार्श्वं प्रययुर्ब्रुवन्तो रक्षस्व दुःखान्नृहरे महात्मन् ॥४०॥
ततः कृत्वाऽभयं राजन् वीरो रुक्मवतीसुतः । ब्रह्मास्त्रेण तु ब्रह्मास्त्रं जहार प्रधने रुषा ॥४१॥
वह्न्यस्त्रं सोऽपि चिक्षेप वह्निना पूरितं नभः । दह्यमाना च भूस्तत्र ज्वालाभिरिव खांडवम् ॥४२॥
ततोऽनिरुद्धो बलवान् वारुणास्त्रं पुनर्दधे । प्रचंडमेघधाराभिर्वह्निः शीतलतां गतः ॥४३॥
मण्डूकाः कोकिलाश्चैव मयूराः सारसादयः । प्रत्यनंदन्महामेघैर्वर्षां ज्ञात्वा पुनः पुनः ॥४४॥
ततोऽनुशाल्वो मायावी पवनास्त्रं समादधे । दृष्ट्वाऽनिरुद्धो युयुधे पर्वतास्त्रेण सर्वतः ॥४५॥
ततो भारसहस्राढ्यं नीत्वा सोऽपि गदां मृधे । अनिरुद्धं शूरमणिं क्रुद्धो वचनमब्रवीत् ॥४६॥
त्वत्सैन्ये नास्ति राजेंद्र गदायुद्धविशारदः । यदि चास्ति तर्हि मह्यं तं तु शीघ्रं प्रदर्शय ॥४७॥
इति तद्वाक्यमाकर्ण्य गदाधारी गदो महान् । उवाच चाग्रतो भूत्वाऽनिरुद्धस्य प्रपश्यतः ॥४८॥
अत्र वै बहवः संति सर्वशस्त्रविशारदाः । मानं मा कुरु दैत्येंद्र त्वमेकाकी रणेऽसि हि ॥४९॥

है ॥ ३२ ॥ उन बाणोंके प्रहारसे अनुशाल्वका रथ चूर हो गया, घोड़े मर गये, सारथी मर गया और अनुशाल्व मूर्छित हो गया ॥ ३३ ॥ तब अनुशाल्वके सभी सैनिक गृध्रपंख युक्त, बड़े तीक्ष्ण, प्रकाशवान् तथा सर्पसदृश विषैले बाणोंसे साम्बपर प्रहार करने लगे ॥ ३४ ॥ साम्बको अकेला देखकर श्रीकृष्णका पुत्र मधु कबूतरके सदृश रंगवाले घोड़ेपर सवार होकर बड़े क्रोधके साथ रणभूमिमें आया ॥ ३५ ॥ साम्बके साथ मधु अपनी तलवारसे सभी दुष्टोंको मारता हुआ आधे पहर तक विचरता रहा ॥ ३६ ॥ इसके बाद मूर्छासे उठकर अनुशाल्वने अपनी पराजय देखी तो जलाभिषेकसे पवित्र होकर यह निश्चय किया कि मैं अपने सभी शत्रुओंको मार डालूँगा ॥ ३७ ॥ ऐसा निश्चय करके उसने मयदानवसे सीखे हुए ब्रह्मास्त्रको अपने धनुषपर चढ़ाया। वह उसके उपशमका उपाय नहीं जानता था। तथापि अपने प्राण बचानेके लिए उसका संघान किया ॥ ३८ ॥ उस ब्रह्मास्त्रका दारुण तेज तीनों लोकोंको भस्म करता हुआ द्वादश सूर्यके समान सारे अन्तरिक्षमें फैल गया ॥ ३९ ॥ उसके दुःसह तेजसे जलते हुए सभी यादव भयभीत हो उठे और हाहाकार करते हुए वे सब अनिरुद्ध की शरणमें जा पहुँचे और कहने लगे—हे नृहरे ! हे महात्मन् ! इस दुःखसे आप हमारी रक्षा करिए ॥ ४० ॥ हे राजन् ! रुक्मवतीतनय वीर अनिरुद्धने उनकी करुण वाणी सुनकर अभयदान दिया और तुरन्त अपने ब्रह्मास्त्र द्वारा शत्रुके ब्रह्मास्त्रको शान्त कर दिया ॥ ४१ ॥ तदनन्तर अनुशाल्वने अग्नि-अस्त्र छोड़ा, जिसकी लपटोंसे सारा नभमंडल भर गया और उसकी दाहसे पृथिवी जलने लगी ॥४२॥ तत्काल बलवान् अनिरुद्धने धनुषपर वारुणास्त्रका संधान किया, जिससे बादल घिर आये और मूसलाधार जल बरसने लगा, जिससे आग बुझ गयी ॥ ४३ ॥ इस प्रकार मेघ गर्जने तथा पानी बरसनेसे मोर, मेढक, कोयल तथा सारस आदि पक्षी वर्षा ऋतुका आगमन समझकर आनन्दित हो उठे ॥ ४४ ॥ उसके बाद मायावी अनुशाल्वने पवनास्त्रका प्रयोग किया, उसे देखकर अनिरुद्धने पर्वतास्त्रका संधान किया ॥ ४५ ॥ तब अनुशाल्व हजार भारकी भारी गदा लेकर बड़े क्रोधके साथ शूरशिरोमणि अनिरुद्धसे बोला—॥ ४६ ॥ हे राजेन्द्र ! तुम्हारी सेनामें क्या कोई वीर गदायुद्धमें निपुण नहीं है। यदि कोई हो तो मुझे दिखाओ ॥ ४७ ॥ उसकी यह बात सुनते ही बलदेवके छोटे भाई गद गदा लेकर अनुशाल्वके समक्ष जा पहुँचे और बोले—॥ ४८ ॥ हे

न मन्यसे त्वं मद्वाक्यं मया सार्कं रणेऽसुर । कुरु पूर्वं गदायुद्धं ततोऽन्यान्द्रष्टुमर्हसि ॥५०॥
इत्युक्त्वा स गदां नीत्वा लक्षभारमयीं दृढाम् । तथाऽनुशाल्वं जघ्ने तु मूर्ध्नि वक्षस्थले नृप ॥५१॥
अनुशाल्वस्तु गदया जघान समरे गदम् ।
ततोऽन्योन्यं गदाभ्यां च जघ्नतुः क्रोधमूर्च्छितौ ॥५२॥
ततो गदः समुत्थाप्यानुशाल्वं गगनेऽक्षिपत् ।
भ्रामयित्वा शतगुणं निपपात महीतले ॥५३॥
ततोऽनुशाल्व उत्थाय गृहीत्वा रोहिणीसुतम् । भूमौ ममर्द राजेंद्र तदद्भुतमिवाभवत् ॥५४॥
गदो गजं गृहीत्वैकमनुशाल्वोपरि चाक्षिपत् । तमामायांतं गजं नीत्वा चिक्षेप स बलानुजे ॥५५॥
जानुभिर्मुष्टिभिर्घोरैः प्रहारैस्तौ च जघ्नतुः । मर्दितौ तावुभौ मह्यां पतितौ मूर्च्छनां गतौ ॥५६॥
इति श्रीगर्गसंहितायां हयमेधखण्डे राजपुरविजयो नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

(बल्वल दैत्य द्वारा अनिरुद्धके अश्वका अपहरण)

गर्ग उवाच

एवं दृष्ट्वा तयोर्युद्धं यादवाः परसैनिकाः । ऊचुः परस्परं धन्योऽनुशाल्वस्तु गदो महान् ॥ १ ॥
इति ब्रुवत्सु सर्वेषु गदस्तत्रैव चोत्थितः । क्व गतः क्व गतः शत्रुर्हत्वा मां च ब्रुवन्रणात् ॥ २ ॥
ततोऽनुशाल्वं हस्तेन गृहीत्वाऽऽकृष्य रोषतः । अनिरुद्धस्य निकटे पातयामास वेगतः ॥ ३ ॥
पतितं मूर्च्छितं दृष्ट्वा ह्यनिरुद्धस्त्वधोमुखम् । कारयामास चैतन्यं व्यजनैः सलिलेन च ॥ ४ ॥
तदैव स प्रबुद्धोऽभूदनुशाल्वोऽसुरेश्वरः । दृष्ट्वाऽग्रे सुन्दरं सोऽपि कृष्णपौत्रं घनप्रभम् ॥ ५ ॥

दैत्येन्द्र ! सभी शस्त्रोंका उपयोग करनेमें कुशल बहुतेरे योद्धा यहाँ विद्यमान हैं। तुम घमंड मत करो। क्योंकि रणभूमिमें तुम अकेले हो ॥ ४९ ॥ यदि मेरी बातपर विश्वास न हो तो हे असुर ! पहले मेरे साथ गदायुद्ध करो। फिर किसी औरको ढूँढ़ना ॥ ५० ॥ ऐसा कहकर गदने लाख भारकी भारी गदा लेकर अनुशाल्वके मस्तक तथा छातीपर प्रहार किया ॥ ५१ ॥ उसी समय अनुशाल्वने भी गदपर अपनी गदासे प्रहार किया। इस प्रकार वे दोनों क्रोधसे मूर्छित वीर परस्पर एक दूसरेको मारने लगे ॥ ५२ ॥ सहसा गदने अनुशाल्वको उठाकर आकाशमें फेंक दिया और वहाँसे लौटनेपर उसे सौ बार घुमाकर धरतीपर दे मारा ॥ ५३ ॥ तत्काल अनुशाल्व उठ खड़ा हुआ और रोहिणीसुत गदको जमीनपर पटककर जीभर रौंदा। यह बड़ी अद्‌भुत बात हुई ॥ ५४ ॥ उसी समय गदने एक हाथी उठाकर अनुशल्वके ऊपर पटक दिया। उसे अपने ऊपर आते देखकर अनुशाल्वने बीचमें ही पकड़ लिया और उसे गदके ऊपर फेंक दिया ॥ ५५ ॥ फिर घुटनों और भयानक घूँसोंसे मारते हुए वे दोनों लड़ने लगे। इस प्रकार बहुत देरतक जूझनेके बाद वे दोनों मूर्छित होकर पृथिवीपर गिर गये ॥ ५६ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

गर्गमुनि बोले—हे राजन् ! उन दोनोंके भीषण युद्धको देखकर सभी यादव तथा शत्रुसैन्यके सैनिक परस्पर कहने लगे कि गद तथा अनुशाल्व दोनों ही धन्य हैं ॥ १ ॥ जब वे ऐसा कह रहे थे, तभी गद उठकर खड़े हो गये और कहने लगे कि मुझे मारकर मेरा शत्रु रणभूमिसे कहाँ भाग गया ॥२॥ उसी समय गदने अनुशाल्वको पकड़ लिया और बड़े क्रोधसे खींचकर अनिरुद्धके पास लेजाकर जोरसे पटक दिया ॥ ३ ॥ धरतीपर नीचे मुख करके मूर्छित पड़े अनुशाल्वको देखकर अनिरुद्धने पंखेकी हवा करायी और जलका छींटा दिलाकर सचेत कराया ॥ ४ ॥ जब वह असुरेश्वर होशमें आया तो अपने समक्ष मेघके सदृश सुन्दर अनिरुद्धको

नत्वा प्रत्याह वचनं त्वं तु मे प्राणरक्षकः । अनिरुद्ध हरेः पौत्र अपराधं क्षमस्व मे ॥ ६ ॥
ॐ नमो वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च । प्रद्युम्नाय नमस्तुभ्यमनिरुद्धाय ते नमः ॥ ७ ॥
गृहाण वै तुरंगं तमहं यास्यामि पालयन् । इत्युक्त्वा स्वपुरं गत्वा ददौ तस्मै तुरंगमम् ॥ ८ ॥
अयुतं हस्तिनां चैव हयानां नियुतं तथा । अर्द्धलक्षं रथानां च शिबिकानां सहस्रकम् ॥ ९ ॥
उष्ट्राणां हि सहस्रं च गवयानां सहस्रकम् । पंजरे संस्थितानां च सिंहानां द्विसहस्रकम् ॥१०॥
मृगयासारमेयाणां सहस्रं नृपसत्तम । शिबिराणां सहस्रं च शिञ्जिनां नियुतं तथा ॥११॥
जवनिकानामयुतं धेनूनां लक्षमेव च । सहस्रभारं स्वर्णानां रजतानां चतुर्गुणम् ॥१२॥
मुक्तानां भारमेकं चानिरुद्धाय ददौ नृपः । अनिरुद्धस्ततस्तस्मै मणिहारं ददौ मुदा ॥१३॥
अनुशाल्वः स्वराज्ये तु कृत्वा वै सचिवं वरम् । यादवैः सहितः सोऽपि देशानन्याञ्जगाम ह ॥१४॥
ततो विमुक्तस्तुरगो मणिकांचनभूषितः । देशानन्यान् वीरयुक्तान्पश्यन्बभ्राम भूपते ॥१५॥
अनुशाल्वं जितं श्रुत्वा यौवनाश्वं च भीषणम् । राजानोऽन्ये मंडलेशाः प्राप्तं न जगृहुर्हयम् ॥१६॥
इत्येवं भ्रमतस्तस्य तुरगस्य विशां पते । मासाश्च प्रगताः षड्वै तादृशाश्चावशेषिताः ॥१७॥
हयो मणिपुरेशेन गृहीतश्च विमोचितः । तथा रत्नपुरेशेन ह्यनिरुद्धभयान्नृप ॥१८॥
राष्ट्रान्सर्वानशूरांश्च विहाय तुरगोत्तमः । ययौ प्राचीं दिशं राजन्बल्वलो यत्र दैत्यराट् ॥१९॥
सोऽपि दैत्यो हयस्यापि वार्तां श्रुत्वा च नारदात् । यज्ञं शीघ्रं नाशयित्वा नैमिषाच्चाजगाम ह ॥२०॥

स्थितं त्रिवेण्यां सलिलं पिबंतं प्रयागतीर्थे क्रतुवाहनं च ।
विलोक्य राजन्किल बल्वलाख्यो जग्राह शीघ्रं ह्यगणय्य कृष्णम् ॥२१॥

तदैव वृष्णयः सर्वे दंडकं च व्यलोकयन् । चर्मण्वतीं समुत्तीर्य चित्रकूटं समाययुः ॥२२॥

देखकर उनके पैरोंपर लोट गया और बोला—आप तो मेरे प्राणरक्षक हैं। हे अनिरुद्ध ! हे भगवान् कृष्णके पौत्र ! आप मेरे अपराधको क्षमा करें ॥ ५ ॥ ६ ॥ वासुदेव, बलराम, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध इस चतुर्मूर्तिधारी आप ईश्वरको नमस्कार है ॥ ७ ॥ हे महाराज ! आप अपना अश्व लीजिए। मैं इसकी रक्षा करनेके लिए आपके साथ चलूँगा। यह कहकर वह अपने नगरमें गया और वहाँसे अश्व लाकर अनिरुद्धको सौंप दिया ॥ ८ ॥ उसके साथ दस हजार हाथी, दस लाख घोड़े, पचास हजार रथ, एक हजार पालकी, एक हजार ऊँट, एक हजार नीलगाय, पींजरेमें बन्द दो हजार सिंह, एक हजार शिकारी कुत्ते, एक हजार शिविर, दस हजार बाजे, दस हजार पर्दे, एक लाख गौ, एक हजार भार सोना, चार हजार भार चाँदी और एक भार मोती ये सभी वस्तुयें अनुशाल्वने भेंटके रूपमें अनिरुद्धको दीं और अनिरुद्धने बड़े हर्षसे उसको एक मणिहार दिया ॥ ९–१३ ॥ तदन्तर अनुशाल्व एक अच्छे मंत्रीको राज्यका भार सौंपकर यादवोंके साथ अन्यान्य देशोंकी यात्रापर चल पड़ा ॥ १४ ॥ हे राजन् ! मणि तथा कांचनसे विभूषित अश्वमेधका अश्व बड़े-बड़े वीरोंसे भरे-पूरे विविध देशोंको देखता हुआ घूमने लगा ॥ १५ ॥ अनिरुद्धके हाथों अनुशाल्व, यौवनाश्व और भीषण राक्षस इन तीनोंके पराजयकी बात सुनकर फिर किसी भी राजाने उस अश्वको नहीं रोका ॥ १६ ॥ इस प्रकार उस अश्वको घूमते-घूमते छ महीने बीत गये और छ महीने शेष रह गये ॥ १७ ॥ रास्तेमें मणिपुरके राजाने उसे पकड़ा और छोड़ दिया। उसी तरह रत्नपुरके राजाने भी अनिरुद्धके भयसे उसे पकड़कर छोड़ दिया ॥ १८ ॥ इस तरह चलते-चलते निर्बल देशोंको छोड़ पूर्व दिशामें जाकर अश्व उस स्थानपर पहुँचा, जहाँ बल्वल दैत्य रहता था ॥ १९ ॥ नैमिषारण्यमें नारदके मुखसे उस घोड़ेके आगमनकी बात सुनकर बल्वल बीच ही में अपना यज्ञ नष्ट करके वहाँ आ गया ॥ २० ॥ आते ही उसने प्रयागके त्रिवेणी तीर्थमें घोड़ेको जल पीते देखा। देखते ही उस असुरने श्रीकृष्णकी कोई पर्वाह न करके उस घोड़ेको पकड़ लिया ॥ २१ ॥ उधर सब यादव दण्डकारण्य होते हुए चम्बल

रामक्षेत्रे च दानानि कृत्वाऽश्वं चावलोकयन् । तस्यापि पृष्ठतो लग्ना आजग्मुस्तीर्थवासवम् ॥२३॥
ददृशुस्तत्र तुरगं सपत्रं यदुसत्तमाः । गृहीतं स्वबलाद्राजन्नसुरेण दुरात्मना ॥ २४॥
ततस्ते बल्वलं दृष्ट्वा नीलांजनचयोपमम् । योजनद्वयमुच्चांगमुग्रमंगारलोचनम् ॥२५॥
तप्तताम्रशिखाश्मश्रुदंष्ट्रोग्रभ्रुकुटीमुखम् । ब्रह्मद्रुहं ललज्जिह्वं गजायुतसमं बलम् ॥२६॥
तमूचुर्यादवा रोपात्स्फुरिताधरपल्लवाः । कस्त्वं यज्ञपशुं नीत्वा ह्यस्माकं च क्व यास्यसि ॥२७॥
तस्मान्मोचय तं शीघ्रं न चेद्धन्मो रणे च त्वाम् । इति श्रुत्वाऽसुरश्चाह वचः शृणुत मे नराः ॥२८॥

बल्वल उवाच

अहं तु बल्वलो दैत्यो देवानां दुःखदायकः । यस्याग्रे मानुषाः सर्वे भवंति भयविह्वलाः ॥२९॥
इति श्रुत्वा च यदवो जघ्नुर्बाणैश्च बल्वलम् । स हतस्तैश्च सहसा सहयोऽन्तर्दधे नृप ॥३०॥

इति श्रीगर्गसंहितायां हयमेधखंडे बल्वलेन तुरगहरणं नाम पंचविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥

अथ षड्विंशोऽध्यायः

(अश्वमेधीय अश्वके लिए यादवोंका पांचजन्य उपद्वीपगमन)

गर्ग उवाच

अथ सर्वे यदुगणा गते क्रतुपशौ नृप । शोकं चक्रुः क्व गच्छामः करिष्यामश्च किं भुवि ॥ १ ॥
न तत्प्रतिविधिं सर्वेऽनिरुद्धाद्या विदुस्ततः । तदा नारदरूपी वै भगवानागमन्नृप ॥ २ ॥
तमागतं मुनिं दृष्ट्वाऽनिरुद्धो यादवैर्वृतः । पूजयित्वासने स्थाप्य प्रीतः प्राह मुनीश्वरम् ॥ ३ ॥

अनिरुद्ध उवाच

भगवन् यज्ञतुरगो बल्वलेन दुरात्मना । नीतः कुत्र गतः सर्वं वद मे वदतां वर ॥ ४ ॥

नदी पार करके चित्रकूट पहुँचे ॥ २२ ॥ वहाँके रामक्षेत्रमें नाना प्रकारके दान देकर अश्वको देखते तथा उसके पीछे चलते हुए वे तीर्थराज प्रयाग गये ॥२३॥ वहाँपर यादवोंने देखा कि उनके सपत्र घोड़ेको एक दुष्ट असुरने हठात् पकड़ लिया है ॥ २४ ॥ नील अंजनके पर्वत सदृश काले, दो योजन ऊँचे, तप्त अंगार जैसे लाल नेत्रोंवाले, बड़े भयानक, तपाये हुए तामे जैसी शिखा तथा दाढ़ी-मूछवाले, बड़े ऊँचे दाँतोंवाले, उग्र भृकुटीयुक्त मुखवाले, विप्रद्रोही, लपलपाती जीभयुक्त, दस हजार हाथियों जैसे बलवान् बल्वल दैत्यको देखकर क्रोधसे जिनके होंठ फड़क रहे थे, उन यादवोंने कहा—अरे तू कौन है ? मेरे घोड़ेको लेकर तू कहाँ जायगा ? ॥ २५–२७ ॥ तू अभी मेरे घोड़ेको छोड़ दे, नहीं तो हम तुझे मार डालेंगे । यह सुनकर बल्वलासुरने कहा—हे मनुष्यो ! मेरी बात सुनो ॥ २८ ॥ बल्वल बोला—देवताओंका दुखदायक मैं बल्वल दैत्य हूँ । जिसे देखते ही सब मनुष्य भयविह्वल हो उठते हैं ॥ २९ ॥ यह सुनकर यादवोंने बाणोंसे उस दैत्यको मारा । उनसे मार खाकर सहसा वह घोड़े सहित वहीं अन्तर्धान हो गया ॥ ३० ॥ इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखंडे 'प्रियंवदा'-भाषाटीकायां पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

गर्गमुनि बोले—हे राजन् ! इस प्रकार अश्वके गायब हो जानेपर सभी यादव शोकाकुल हो उठे और सोचने लगे कि हम संसारमें कहाँ जायँ और क्या करें ॥ १ ॥ अनिरुद्ध आदि सभी लोग इस दुःखका कोई प्रतीकार नहीं खोज सके । उसी समय नारदरूपी भगवान् वहाँ आ गये ॥ २ ॥ मुनिको आते देख समस्त यादवोंसे घिरे हुए अनिरुद्ध उठ खड़े हुए । उन्होंने नारदजीको आसनपर बिठाकर भली भाँति पूजा की और प्रसन्नतापूर्वक अनिरुद्धने कहा ॥३॥ अनिरुद्ध बोले—भगवन् ! मेरे अश्वमेधीय घोड़ेको लेकर बल्वल दैत्य न जाने कहाँ चला गया है । हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ मुनिराज ! उसके विषयमें आप सब हाल बताइये ॥ ४ ॥

त्वं पर्यटन्नर्क इव त्रिलोकीं दिव्यदर्शनः । अन्तश्चरो वायुरिव ह्यात्मसाक्षी च सर्ववित् ॥
तस्मात्कथय सर्वं मे श्रुत्वा सोऽप्याह माधवम् ॥ ५ ॥

नारद उवाच

राजंस्तव तुरंगो वै बल्वलेन निवेशितः ॥ ६ ॥
उपद्वीपे पांचजन्ये सिंधुमध्ये नृपेश्वर । मृते मित्रे च शकुनौ यादवानां वधाय च ॥ ७ ॥
सुतलाच्च समाहूय दैत्यवृन्दान्महासुरः । राज्यं करोति तत्रापि शिवस्य वरदर्पितः ॥ ८ ॥
इति श्रुत्वाऽनिरुद्धस्तु वचः प्रोवाच शंकितः ।

अनिरुद्ध उवाच

तस्मै चन्द्रललामेन किं दत्तं प्रवरं वरम् ॥ ९ ॥
तन्ममाख्याहि देवर्षे कस्मात्संतोषितोऽभवत् । ततो बभाषे स मुनिः शृणु राजन् वचो मम ॥ १० ॥
कैलासे चैकदा दैत्यो ह्येकपादेन संस्थितः । वर्षद्वादशपर्यंतं तपश्चक्रे सुदारुणम् ॥ ११ ॥
ततश्च तोषितो देवो वरं ब्रूहीत्युवाच ह । तच्छ्रुत्वा स उवाचाथ सदाशिव नमोऽस्तु ते ॥ १२ ॥
महामृधे च मां देव पाययस्व कृपानिधे । तथास्तु चोक्त्वा देवस्तु तत्रैवांतर्दधे नृप ॥ १३ ॥
स दैत्यो पांचजन्यो वै राज्यं चक्रे बलात्ततः । स्वतस्तुभ्यं न तुरगं विना युद्धेन दास्यति ॥ १४ ॥
अनिरुद्धस्तु प्रोवाच हत्वा दुष्टं च बल्वलम् । ससैन्यं च मुनिश्रेष्ठ मोचयिष्ये तुरंगमम् ॥ १५ ॥
स शिवस्य वरेणापि यदि युद्धं करिष्यति । न पालयिष्यति मृधे शिवः कृष्णद्विपं खलम् ॥ १६ ॥
इत्युक्त्वा चानिरुद्धो वै प्रयाणार्थे जयाय च । यादवेभ्यश्च सर्वेभ्यः सहसाऽऽज्ञां चकार ह ॥ १७ ॥
ततोऽनुज्ञाप्य देवर्षिः युद्धकौतुकसंयुतः । ययौ चाकाशमार्गेण तत्र स्थानं नृपेश्वर ॥ १८ ॥
तदैव यादवाः सर्वे सज्जीभूता रुषान्विताः । स्नात्वा कृत्वा च दानानि तीर्थराजे विधानतः ॥ १९ ॥
उपद्वीपं ययू राजन्रथिभिश्च गजैर्हयैः । द्विलक्षा मार्गकाराश्च मार्गं चक्रुर्दिने दिने ॥ २० ॥

आप दिव्यदृष्टि पुरुष हैं और सूर्यभगवान्‌की तरह सारी त्रिलोकीमें नित्य घूमते रहते हैं। अन्तश्चारी वायुके सदृश आप आत्माके साक्षी और सर्वज्ञ हैं। अतएव उसका सब वृत्तान्त बताइए। यह सुनकर नारदजी भगवान् अनिरुद्धसे बोले ॥ ५ ॥ नारदजीने कहा—हे राजन्! आपके घोड़ेको बल्वलने ले जाकर समुद्रके पांचजन्य उपद्वीपमें रक्खा है। शकुनि दैत्य उसका भाई था, जिसे यादवोंने मार डाला था। उसीका बदला चुकाने और यादवोंको मारनेके लिए उसने घोड़ेका अपहरण किया है ॥ ६ ॥ ७ ॥ शिवजीके वरदानसे दर्पित महान् असुर बल्वल सुतल लोकसे बहुतेरे दैत्योंको लाकर वहाँ राज्य कर रहा है ॥ ८ ॥ नारदजीके वचन सुनकर सशंकभावसे अनिरुद्ध बोले। उन्होंने कहा—हे भगवन्! शंकरजीने उसको कौन-सा श्रेष्ठ वर दिया है ॥ ९ ॥ हे देवर्षे! उसने शिवजीको कैसे प्रसन्न किया, सो मुझसे कहिए। नारदजीने कहा—हे राजन्! सुनिए ॥ १० ॥ एक समय कैलास पर्वतपर उस दैत्यने एक पैरसे खड़े होकर बारह वर्षतक दारुण तपस्या की ॥ ११ ॥ इससे प्रसन्न होकर शिवजीने कहा—वर माँग। सो सुनकर बल्वल दैत्यने कहा—हे सदाशिव! आपको प्रणाम है ॥ १२ ॥ हे देव! बड़े-बड़े उसमें आप सदा मेरी रक्षा करें। मैं यही वरदान माँगता हूँ। तब 'तथास्तु' कहकर शंकरभगवान वहाँ ही अन्तर्धान हो गये ॥ १३ ॥ उसके बाद वह पांचजन्य दैत्यके साथ बलात् वहाँ राज्य कर रहा है। अतएव युद्धके विना वह आपको घोड़ा नहीं देगा ॥ १४ ॥ अनिरुद्धने कहा—हे भगवन्! मैं सेना समेत बल्वल दैत्यको मारकर अपने घोडेको छुड़ाऊँगा ॥ १५ ॥ यदि वह शिवजीके वरदानका स्मरण करके युद्ध करेगा तो युद्धमें शिवजी उस खल तथा कृष्णद्वेषीकी कदापि रक्षा नहीं करेंगे ॥ १६ ॥ ऐसा कहकर अनिरुद्धने विजयप्राप्तिके लिए यादवोंको वहाँसे प्रस्थान करनेकी आज्ञा दी ॥ १७ ॥ तदनन्तर यादवोंसे अनुमति लेकर नारदजी भावी युद्धका कौतुक देखनेके लिए आकाशमार्गसे युद्धभूमिपर जा पहुँचे ॥ १८ ॥ उसी समय यादवोंने तीर्थराज प्रयागमें विधिवत् स्नान-दान करके प्रस्थानकी

भिंदिपालैश्च सर्वत्र सेनायाः पूर्वमेव हि । सुखेन यत्र गच्छंति गजवाजितुरंगमाः ॥२१॥
पदातयश्च राजेंद्र मार्गे निष्कण्टके त्वरम् । इत्थं तु यदुसेनायाः शेषो भारेण पीडितः ॥
इति होवाच मनसि किं बभूव धरातले ॥२२॥
अनिरुद्धोऽग्रतो भूत्वाऽलक्षितः प्रययौ नृप ॥२३॥
हयरक्षापदेशाद्वै नाशयन्निव पापिनः । यत्र यत्र गतो राजन्हयस्यार्थे च कार्ष्णिजः ॥२४॥
तत्र तत्रोपशृण्वानः श्रीकृष्णस्य यशोऽखिलम् । श्लाघां ये वै करिष्यंति गोविंदबलदेवयोः ॥२५॥
ददौ तेभ्यश्च रत्नानि वस्त्राण्याभरणानि च । यत्किंचित्तस्य सैन्येषु वसुमात्रमनुत्तमम् ॥२६॥
तत्सर्वमददात्प्रीतः कृष्णगाथाहृताशयः । इत्थं शृण्वन्हरेर्गाथां काशीं पश्यन्गयां तथा ॥२७॥
कुर्वन्दानानि राजेन्द्र काष्ठां प्राचीं जगाम सः । इत्थं भयंकरीं सेनां यादवानां विलोक्य च ॥२८॥
गिरिव्रजपुराधीशः सहदेवस्तु शंकितः । भूत्वा कृतांजलिर्नीत्वा रत्नानि विविधानि च २९॥
अनिरुद्धस्य पदयोः पपात भयविह्वलः । अनिरुद्धस्ततस्तस्मै रत्नमालां ददौ मुदा ॥३०॥
राज्ये कृत्वा च तं शीघ्रं शरणागतवत्सलः । समन्वितो वृष्णिवरैर्जगाम कपिलाश्रमम् ॥३१॥
स्नात्वा च तत्रैव यदुप्रवीरो भागीरथीसागरसंगमे च ।
विलोक्य सिद्धं कपिलं मुनीन्द्रं ससेनया सोऽपि नमश्चकार ॥३२॥
तत्स्थानाद्दक्षिणस्यां सिंधुतीरे च तस्य वै । बभूवुः शिबिरा राजन्नुच्चाः प्रासादसन्निभाः ॥३३॥
शिबिरेष्वनिरुद्धाद्या यादवास्तत्र सानुगाः । चक्रुर्निवासं राजेन्द्र शूराः सर्वे जयैषिणः ॥३४॥

इति श्रीगर्गसंहितायां हयमेधखण्डे तुरगार्थसुपद्वीपगमनं नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

(समुद्रपर बाणोंसे सेतुबन्धन)

गर्ग उवाच

अथानिरुद्धो यदुराट् प्रातःकाले विशां पते । उद्धवं तु समाहूय प्राह गंभीरया गिरा ॥ १ ॥
कति दूरं पांचजन्यं तन्ममाख्याहि सत्तम । यस्मिन्मदीयो तुरगो नीतो दैत्येन वर्त्तते ॥ २ ॥
इत्युदाहृतमाकर्ण्य मंत्री कृष्णसुहृत्सखः । मनसा कृष्णपादाब्जं स्मृत्वा प्रोवाच माधवम् ॥३॥
प्रभो सर्वज्ञ भगवन्नहं त्वद्वाक्यगौरवात् । कथयिष्यामि लोकेश यथा मार्गे श्रुतं तथा ॥ ४ ॥
त्रिंशद्योजनविस्तीर्णात्सागरात्पारमेव च । उपद्वीपं पांचजन्यं दक्षिणेऽस्ति नृपेश्वर ॥ ५ ॥
उद्धवस्य वचः श्रुत्वाऽनिरुद्धो धन्विनां वरः । बली धैर्यधरः क्रुद्धो प्राहेदं यदुपुङ्गवान् ॥ ६ ॥

अनिरुद्ध उवाच

अहं यास्यामि पारं वै तस्माद्यादवसत्तमाः । सेतुं कुरुत शीघ्रं तु सागरस्य शरैरपि ॥ ७ ॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा यादवा युद्धकोविदाः । सागरे मुमुचुर्बाणान्प्रहसंतः परस्परम् ॥ ८ ॥
ततः सर्वे जलचरास्तीक्ष्णबाणैः प्रताडिताः । कोलाहलं प्रकुर्वंतो दुद्रुवुस्ते चतुर्दिशम् ॥ ९ ॥
न केषां प्रगता बाणाः पारं वै सागरस्य च । इति वै कथितं वाक्यं खस्थेन च सुरर्षिणा ॥१०॥
तदाऽक्रूरो हृदीकश्च सात्यकिश्चोद्धवो बली । कृतवर्मा सारणश्च युयुधानादयो नृप ॥११॥
हेमांगद इंद्रनीलोऽनुशाल्वाद्याश्च भूपते । गतमाना बभूवुर्वै नारदोक्तं निशम्य च ॥१२॥
ततोऽनिरुद्धो बलवान्स्मरन्कृष्णपदांबुजम् । प्रतिशार्ङ्गं गृहीत्वा वै दिव्यान्बाणान्मुमोच ह ॥१३॥
ततो दृष्ट्वा ऋषिः प्राह ह्यनिरुद्धशिलीमुखाः । पारं गत्वा समुद्रस्य विविशुस्ते च तत्तटम् ॥१४॥
इति श्रुत्वा ऋषेर्वाक्यं सांबदीप्तिमदादयः । मुमुचुस्ते शरान्राजंस्तेषां पारं गताः शराः ॥१५॥
शरेषु च शरा राजन्कोटिशः कोटिशः किल । विविशुर्वीक्ष्य सर्वेऽपि धन्विनो विस्मयं गताः ॥१६॥

श्रीगर्गमुनि बोले—हे राजन् ! प्रातःकालके समय यदुराज अनिरुद्धने उद्धवको बुलाकर गंभीर वाणीमें कहा—॥ १ ॥ हे सत्तम ! पांचजन्य द्वीप यहाँसे कितनी दूर है, जहाँ बल्वल दैत्यके द्वारा अपहृत मेरा घोड़ा है ॥ २ ॥ यह वाणी सुनकर मंत्री तथा श्रीकृष्णके सुहृद् और सखा उद्धव भगवान्‌के चरणकमलका स्मरण करके बोले—॥३॥ हे प्रभो ! आप सर्वज्ञ हैं । हे भगवन् । आपकी बातका गौरव बढ़ानेके लिए वहाँका जैसा मार्ग मैंने सुना है, वह हे लोकेश ! मैं आपको बताऊंगा ॥ ४ ॥ हे नृपेश्वर ! तीस योजन विस्तृत समुद्रके पार दक्षिण ओर पांचजन्य उपद्वीप है ॥ ५ ॥ उद्धवके वचन सुनकर श्रेष्ठ धनुर्धर, बली तथा धैर्यवान् अनिरुद्धने कुपित होकर यादवोंसे कहा ॥ ६ ॥ अनिरुद्ध बोले—हे श्रेष्ठ यादवो ! मैं सागरके उसपार जाना चाहता हूँ । अतएव आपलोग शीघ्र समुद्रपर बाणोंसे पुल तैयार करें ॥ ७ ॥ अनिरुद्धका आदेश पाकर व युद्धनिपुण यादव परस्पर हँसते हुए समुद्रपर सेतु बनानेके लिए बाण छोड़ने लगे ॥ ८ ॥ उनके बाणोंस पीडित होकर समुद्रके जलजन्तु कोलाहल करते हुए चारों दिशाओंमें भागने लगे ॥ ९ ॥ तभी आकाशमें विद्यमान देवर्षि नारदजीने कहा कि अभी किसी भी वीरका बाण समुद्रके पार नहीं पहुँचा है ॥ १० ॥ तब अक्रूर, हृदीक, सात्यकि, बलवान् उद्धव, कृतवर्मा, सारण, युयुधान, हेमांगद, इन्द्रनील एवं अनुशाल्व आदि सभी वीरोंका अभिमान श्रीनारदजीका कथन सुनकर नष्ट हो गया ॥ ११ ॥ १२ ॥ तब बलवान् अनिरुद्धने श्रीकृष्णके चरणकमलोंका स्मरण करके श्रीविष्णुके शार्ङ्गधनुष सरीखा धनुष लेकर दिव्य बाण छोड़े ॥ १३ ॥ उन्हें देखकर देवर्षिने कहा कि अनिरुद्धके बाण समुद्र पार जाकर उसके तटपर घुस गये हैं ॥ १४ ॥ श्रीनारदजीकी वाणी सुनकर साम्ब-दीप्तिमान् आदि यादवोंने भी बाण छोड़े । व सभी बाण समुद्र पार पहुंच गये ॥ १५ ॥ उस समय करोड़ों बाण अन्य बाणोंमें घुस गये । यह देखकर सभी धनुर्धर

चक्रुः सेतुं च ते सर्वे त्रिंशद्योजनलंबितम् । दृढं जलाच्चांतरिक्षमेकयोजनविस्तृतम् ॥१७॥
बद्ध्वा ततश्च ते सेतुं चतुर्भिः प्रहरैरपि । अनिरुद्धादयो रात्रौ सुषुपुः शिबिरेषु वै ॥१८॥
तस्मात्ते पुत्रपौत्राणां कृष्णस्य परमात्मनः । शूराणां कृष्णचिह्नानां किं बलं कथयाम्यहम् ॥१९॥

इति श्रीगर्गसंहितायां हयमेधखण्डे सेतुबंधनं नाम सप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥२७॥

अथ अष्टाविंशोऽध्यायः

(दैत्योंकी पारस्परिक मंत्रणा)

गर्ग उवाच

कृत्वा तु शौचादिकमेव कर्म प्रभातकाले यदुनन्दनश्च ।
जगाम पारं यदुभिश्च सिंधो रामो यथा वै कपिभिर्नृपेन्द्र ॥ १ ॥

ददृशुस्तत्र ते गत्वाऽनिरुद्धाद्याश्च यादवाः । उपद्वीपं पांचजन्यं शतयोजनविस्तृतम् ॥ २ ॥
राजते तत्र राजेन्द्र नाम्ना वै चासुरी पुरी । विंशद्योजनविस्तीर्णा दैत्यवृन्दसमाकुला ॥ ३ ॥
पुन्नागैर्नागचंपैश्च तिलकैर्देवदारुभिः । अशोकैः पाटलैराम्रैर्मंदारैः कोविदारकैः ॥ ४ ॥
निंबुजंबूकदंबैश्च प्रियालपनसैस्तथा । सालैस्तालैस्तमालैश्च मल्लिकाजातियूथिकैः ॥ ५ ॥
नीपैः कदंबैर्बकुलैश्चंपकैर्मदनाभिधैः । शोभिता नगरी रम्या रत्नप्रासादसंयुता ॥ ६ ॥
यदून्समागताञ्छ्रुत्वा मयं मायाविनं खलः । प्रेषयामास गणितुं यादवानां महात्मनाम् ॥ ७ ॥
स चापि शुकरूपेण गत्वा दृष्ट्वा यदूत्तमान् । आगत्य स्वपुरीमध्ये बल्वलं विस्मितोऽब्रवीत् ॥ ८ ॥

मय उवाच

कः करिष्यति संख्यां वै वृष्णीनां बलिनां नृप । नियुतानां च नियुतकोटिनाऽनास्ते स कार्ष्णिजः ॥९॥
सेतुं कृत्वा शरैः सिन्धोः प्राप्ताः सर्वे तवोपरि । तेषां पश्य बलं राजन्देवविस्मयकारकम् ॥१०॥

सागरस्य शरैः सेतुं न दृष्टं न श्रुतं कृतम् । वृद्धेन च मया राजंस्त्वदग्रेऽद्य विलोकितम् ॥११॥
राघवेण पुरा सेतुं पाषाणैर्द्रुमवेष्टितम् । स्वनाम्नश्च प्रतापेन लंकाया निकटे कृतम् ॥१२॥
तत्सर्वं च मया दृष्टमद्य दृष्टं हि चाद्भुतम् । श्रीकृष्णेन पुरा राजन्कंसाद्याः शकुनादयः ॥१३॥
मारिताः संगरे दैत्या नृपाः सर्वे विनिर्जिताः । कृष्णस्तु भगवान्साक्षाद्ब्रह्मणा प्रार्थितः पुरा ॥१४॥
गोलोकादागतो भूमौ भक्तानां रक्षणाय च । अकृतानां च नाशाय कुशस्थल्यां विराजते ॥१५॥
तस्माद्यदूत्तमाः सर्वेऽनिरुद्धाद्या महाबलाः । भीषणं च बकं जित्वा ह्यन्याञ्जित्वात्र चागताः॥१६॥
पुत्राः पौत्राश्च कृष्णस्य ज्ञातयश्च यदूत्तमाः । आकाशं जेतुमिच्छंति का वार्ता भूतलस्य च॥१७॥
अनिरुद्धाय तस्माद्वै तुरगं देहि बल्वल । दैत्यानां हतशेषाणां कुलकौशल्यहेतवे ॥१८॥
ततोऽनिरुद्धाय हयं च दत्त्वाऽसुरद्विषां वै सुखहेतवे च ।
श्रीकृष्णचंद्रं प्रभजंश्च भुंक्ष्व राज्यं स्वकीयं तपसा नु लब्धम् ॥१९॥
एवं शुभैश्च वचनैर्बोध्यमानोऽपि बल्वलः । निःश्वस्योवाच रोषेण मयं कृष्णपराङ्मुखः ॥२०॥

बल्वल उवाच

विना युद्धेन त्वं दैत्य कथं भीतो भविष्यसि । वदिष्यसि ममाग्रे त्वं शूरहास्यकरं वचः ॥२१॥
त्वं बुद्धिबलहीनश्च वृद्धत्वाच्छठतां गतः । तस्मात्त्वदीयं वचनं नाहं गृह्णामि सांप्रतम् ॥२२॥
यदि कृष्णो हरिः साक्षादेते कृष्णस्य वंशजाः । ममाग्रे शिवभक्तस्य किं करिष्यंति पौरुषम् ॥२३॥
भयं मा कुरु तस्मात्त्वं मायाः कुत्र गतास्तव । अहं तवाश्रयेणापि युद्धं कर्तुं व्रजामि वै ॥२४॥
अनिरुद्धो महाशूरः शूराः किं न वयं स्मृताः । स्थिते मयि महीमध्ये कोऽयं गर्वोऽभवन्महत् ॥२५॥
फलं गर्वस्य प्राप्नोतु मम निर्मुक्तसायकैः । अद्य मे निशिता बाणा अनिरुद्धं च मानिनम् ॥२६॥
प्रकुर्वंति रणे दैत्य रक्तांगं छिन्नकंचुकम् । यथा किंशुकवृक्षं वै वसंतदिवसाः किल ॥२७॥

॥१०॥ मुझ वृद्धने समुद्रपर बाणोंसे पुल बाँधनेकी बात न कभी सुनी और न आँखसे देखी थी, उसे आज मैंने अपने समक्ष देखी है ॥ ११ ॥ पूर्वकालमें राजा रामचन्द्रने वृक्षोंयुक्त पर्वतों द्वारा अपने नामके प्रतापसे लंकाके निकट एक सेतुका निर्माण किया था ॥ १२ ॥ उसके विषयमें तो मैंने सुना ही था, किन्तु इस अद्भुत पुलको तो अपनी आँखों देख लिया । पूर्वकालमें श्रीकृष्णने कंस-शकुनी आदि बहुतेरे दैत्योंको रणमें मारा और हराया था । श्रीकृष्ण तो साक्षात् भगवान् हैं । पूर्वकालमें ब्रह्माके प्रार्थना करनेपर गोलोकसे भूलोकमें वे अपने भक्तोंकी रक्षा तथा दुष्टोंका संहार करनेके लिए आये थे । अब वे द्वारका पुरीमें रहते हैं ॥ १३–१५ ॥ इसी कारण ये अनिरुद्ध आदि यादव इतने प्रबल हैं कि भीषण दैत्य, बकासुर तथा अन्यान्य राजाओंको जीतकर तुम्हारी पुरीमें आये हैं ॥ १६ ॥ श्रीकृष्णके पुत्र-पौत्र तथा उनके जातिबन्धु तो आकाशको जीतनेकी आकांक्षा करते हैं, तब पृथिवीको जीतना इनके लिए कौन बड़ी बात है ॥ १७ ॥ अतएव हे बल्वल ! मरनेसे बचे हुए दैत्योंके कुलकी कुशलताके लिए आप अनिरुद्धको उनका घोड़ा दे दीजिए ॥ १८ ॥ हे दैत्यपते ! दैत्योंके कल्याणार्थ अनिरुद्धको घोड़ा देकर आप श्रीकृष्णका भजन करते हुए तपस्यासे प्राप्त अपने राज्यकी रक्षा करिए ॥ १९ ॥ ऐसे शुभ वाक्योंसे समझानेपर भी श्रीकृष्णसे विमुख बल्वल क्रोधसे लम्बी साँस लेकर मय दानवसे बोला ॥ २० ॥ बल्वलने कहा—हे दैत्य ! युद्धके बिना ही तुम क्यों डर रहे हो ? मेरे सामने वीर पुरुषोंकी हँसाई करने योग्य बातें कैसे कहते हो ? ॥ २१ ॥ तुम बुद्धिबलसे हीन हो और बुढ़ापेके कारण सठिया गये हो । अतएव मैं तुम्हारी बात नहीं मानता ॥ २२ ॥ श्रीकृष्ण यदि साक्षात् भगवान् हैं तो ये कृष्णके वंशज मुझ शिवभक्तके आगे क्या पुरुषार्थ करेंगे ॥ २३ ॥ अतएव तुम डरो मत । हाँ, तुम्हारी सब माया कहाँ चली गयी ? मैं तो तुम्हारे भरोसे ही युद्ध करने जाता हूँ ॥ २४ ॥ अनिरुद्ध यदि महाशूर हैं तो क्या हम लोग शूर नहीं हैं । मेरे रहते इस धरतीपर शूरताका गर्व करनेवाला कौन है ? ॥ २५ ॥ आज मेरे द्वारा छोड़े गये बाणोंसे वह अपने गर्वका फल पायेगा । हे दैत्य ! आज मेरे तीक्ष्ण बाण अनिरुद्धका कवच

इत्थं विचार्य सहसा स उवाच महासुरम् ।

मय उवाच

अद्य त्वां च महावीरं न निषेधं करोम्यहम् ॥४३॥
युद्धं कुरु रणे गत्वा यदून्मारय सायकैः । अहमेव करिष्यामि युद्धं त्वद्वाक्यतो मृधे ॥
इत्युक्त्वा वचनं सोऽपि विरराम प्रहर्षयन् ॥४४॥
ऊर्ध्वकेशो नदः सिंहः कुशाम्बाद्याश्च मंत्रिणः । ऊचुः प्रकुपिताः सर्वे चत्वारो बल्वलं नृप ॥४५॥

मंत्रिण ऊचुः

पूर्वं वयं गमिष्यामो हंतुं सर्वान् यदूत्तमान् । बहुभिर्दिवसै राजन्संग्रामं न कृतं यतः ॥४६॥
चिन्तां मा कुरु राजेंद्र मयदैत्येन संयुतः । क्षणेन मारयिष्यामो कोटिशः कोटिशो नरान् ॥४७॥

गर्ग उवाच

तेषां भाषितमाकर्ण्य बल्वलस्तु मुदान्वितः । चकाराज्ञां नृपश्रेष्ठ रणार्थे रणकोविदः ॥४८॥

इति श्रीगर्गसंहितायां हयमेधखंडे दैत्यमन्त्रवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

अथ एकोनत्रिंशोऽध्यायः

(यादवों और असुरोंका युद्ध)

श्रीगर्ग उवाच

अथ युद्धाय राजेंद्र चत्वारः किल मंत्रिणः । दैत्यकोटिसमायुक्ता निर्जग्मुर्दंशिताः पुरात् ॥ १ ॥
सर्वे हि धन्विनः शूरा विद्याधरसमाः किल । खड्गैः शूलैर्गदाभिश्च परिघैर्मुद्गरैर्नृप ॥ २ ॥
एकघ्नीभिर्दशघ्नीभिः शतघ्नीभिर्भुशुण्डिभिः । कुंतैश्च भिंदिपालैश्च चक्रसायकशक्तिभिः ॥ ३ ॥
संयुताः सर्वशस्त्रैश्च लौहकंचुकमंडिताः । रथैर्गजैस्तुरंगैश्च गवयैर्महिषैर्मृगैः ॥ ४ ॥
उष्ट्रैः खरैः सूकरैश्च वृकैः सिंहैश्च क्रोष्टुभिः । महागृध्रैः शंखचिल्लैर्मकरैश्च तिमिङ्गिलैः ॥ ५ ॥
एतैश्च वाहनै राजन्संयुक्ता रणकर्कशाः । शंखदुंदुभिनादेन वीराणां गर्जनेन च ॥ ६ ॥
शतघ्नीनां च शब्देन चचाल वसुधा भृशम् । इत्थं भयंकरीं सेनामसुराणां विलोक्य च ॥ ७ ॥

धामको चले गये हैं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ऐसा विचार करके सहसा उसने महान् असुर बल्वलसे कहा। मय बोला—हे दैत्यराज ! तुम तो महान् वीर हो। अतएव मैं तुम्हें नहीं रोकूँगा ॥ ४३ ॥ अब रणभूमिमें जाकर लड़ो और अपने बाणोंसे यादवोंको मारो। तुम्हारे कथनानुसार मैं भी युद्ध करूँगा। इतना कहकर बल्वल-को प्रसन्न करता हुआ वह चुप हो गया ॥ ४४ ॥ तब ऊर्ध्वकेश, नद, सिंह और कुशाम्ब ये चारों मंत्री कुपित होकर बल्वलसे बोले ॥ ४५ ॥ मंत्रियोंने कहा—हे महाराज ! सभी उत्तम यदुवंशियोंको मारनेके लिए पहले हम चारों जायँगे। क्योंकि बहुत समयसे हमने युद्ध नहीं किया है ॥ ४६ ॥ हे राजेन्द्र ! आप चिन्ता न करिए। मय दानवको साथ लेकर हम करोड़ों मनुष्योंको मार डालेंगे ॥ ४७ ॥ श्रीगर्ग मुनि बोले—इस प्रकार चारों मंत्रियोंका कथन सुनकर परम प्रसन्न बल्वलने युद्धघोषणा कर दी ॥ ४८ ॥ इति श्रीगर्गसंहिता-यामश्वमेधखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायामष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

गर्गमुनि बोले—हे राजेन्द्र ! तदनन्तर बल्वलके चारों ही मंत्री एक करोड़ दैत्योंकी सेना लेकर और कवच धारण करके युद्ध करनेके लिए नगरसे बाहर निकले ॥ १ ॥ वे सभी दैत्य सेनानी धनुर्धर, विद्याधरोंके समान सुन्दर, खड्ग, त्रिशूल, गदा, परिघ, मुद्गर, कुन्त, भिन्दिपाल, चक्र, बाण, शक्ति आदि अनेकानेक शस्त्रास्त्रों तथा लोहकवच धारण किये हुए वे वीर रथ, हाथी, घोड़े, नीलगाय, महिष, मृग, ऊँट, गधे, सुअर, भेड़िये, सिंह, सियार, महागृध्र, शंखचील्ह, मगर तथा तिमिंगिलोंपर सवार होकर रणमें [illegible]

दारयंतु कपोलानि नाराचा मम हस्तिनाम् । हयान्पश्यंतु शतशो रुधिरौघपरिप्लुतान् ॥२८॥
पिबंतु योगिनीवृंदा रुधिराणि नृमस्तकैः । काली भवतु संतुष्टा मद्वैरिक्रव्यभक्षणैः ॥२९॥
मम बाहुबलं सर्वे पश्यंतु सुभटाः किल । महाकोदंडनिर्मुक्तभल्लकोटीर्विमुंचतः ॥३०॥
इति तद्वाक्यमाकर्ण्य मयो मायी महामतिः । जानन्कृष्णस्य माहात्म्यं मदांधं चेदमब्रवीत् ॥३१॥

मय उवाच

यदा विजेष्यसि रणे कृष्णपुत्रांश्च यादवान् । आगमिष्यति श्रीकृष्णो जेतुं त्वां वा बलश्च वै ॥३२॥
इति श्रुत्वा महादैत्यः सत्यं हितकरं वचः । कालपाशेन संबद्धो न जग्राह रुषा ज्वलन् ॥३३॥

बल्वल उवाच

ममारी रामकृष्णौ च शत्रवो वृष्णयश्च मे । तान्सर्वान्मारयिष्यामि यैर्मे मित्राश्च मारिताः ॥३४॥
हत्वा च यादवानत्र पश्चाद्यज्ञं करोम्यहम् । तस्य दिग्विजये नापिविजेष्यामि हरेः पुरीम् ॥३५॥

मय उवाच

मानं मा कुरु दैत्येन्द्र कालरूपस्तुरंगमः । प्राप्तस्तव पुरे हंतुं हतशेषान्महासुरान् ॥३६॥
अनिरुद्धशराः सर्वे सद्यस्तव पुरीं नृप । छिन्नां भिन्नां शूरहीनां करिष्यंति न संशयः ॥३७॥
हिरण्याक्षादयो दैत्या रावणाद्या निशाचराः । मारिता येन सः कृष्णो जातो यदुकुले श्रुतम् ॥३८॥
किंचिद्राज्यस्य मानेन त्वं न जानासि बल्वल । प्रयच्छ तुरगं तस्मै न युद्धसमयोऽस्ति हि ॥३९॥

बल्वल उवाच

अहं जानामि त्वद्वार्त्तां युद्धं तैर्न करिष्यसि । अनिरुद्धं गच्छ तस्मात्त्वं विभीषणवत्किल ॥४०॥

गर्ग उवाच

बल्वलस्य वचः श्रुत्वा मयो मायाविदां वरः । प्रतिव्योद्धुं तत्र दुःखमिदमेवान्वपद्यत ॥४१॥
वैरभावेन पूर्वं वै वैकुण्ठं बहवो गताः । निशाचराश्च दैत्याश्च तं भावं यः करोति हि ॥४२॥

इत्थं विचार्य सहसा स उवाच महासुरम् ।

मय उवाच

अद्य त्वां च महावीरं न निषेधं करोम्यहम् ॥४३॥

युद्धं कुरु रणे गत्वा यदून्मारय सायकैः । अहमेव करिष्यामि युद्धं त्वद्वाक्यतो मृधे ॥

इत्युक्त्वा वचनं सोऽपि विरराम प्रहर्षयन् ॥४४॥

ऊर्ध्वकेशो नदः सिंहः कुशाम्बाद्याश्च मंत्रिणः । ऊचुः प्रकुपिताः सर्वे चत्वारो बल्वलं नृप ॥४५॥

मंत्रिण ऊचुः

पूर्वं वयं गमिष्यामो हंतुं सर्वान् यदूत्तमान् । बहुभिर्दिवसै राजन्संग्रामं न कृतं यतः ॥४६॥

चिन्तां मा कुरु राजेंद्र मयदैत्येन संयुतः । क्षणेन मारयिष्यामो कोटिशः कोटिशो नरान् ॥४७॥

गर्ग उवाच

तेषां भाषितमाकर्ण्य बल्वलस्तु मुदान्वितः । चकाराज्ञां नृपश्रेष्ठ रणार्थे रणकोविदः ॥४८॥

इति श्रीगर्गसंहितायां हयमेधखंडे दैत्यमन्त्रवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

अथ एकोनत्रिंशोऽध्यायः

(यादवों और असुरोंका युद्ध)

श्रीगर्ग उवाच

अथ युद्धाय राजेंद्र चत्वारः किल मंत्रिणः । दैत्यकोटिसमायुक्ता निर्जग्मुर्दंशिताः पुरात् ॥ १ ॥

सर्वे हि धन्विनः शूरा विद्याधरसमाः किल । खड्गैः शूलैर्गदाभिश्च परिघैर्मुद्गरैर्नृप ॥ २ ॥

एकघ्नीभिर्दशघ्नीभिः शतघ्नीभिर्भुशुण्डिभिः । कुंतैश्च भिंदिपालैश्च चक्रसायकशक्तिभिः ॥ ३ ॥

संयुताः सर्वशस्त्रैश्च लौहकंचुकमंडिताः । रथैर्गजैस्तुरंगैश्च गवयैर्महिषैर्मृगैः ॥ ४ ॥

उष्ट्रैः खरैः सूकरैश्च वृकैः सिंहैश्च क्रोष्टुभिः । महागृध्रैः शंखचिल्लैर्मकरैश्च तिमिङ्गिलैः ॥ ५ ॥

एतैश्च वाहनै राजन्संयुक्ता रणकर्कशाः । शंखदुंदुभिनादेन वीराणां गर्जनेन च ॥ ६ ॥

शतघ्नीनां च शब्देन चचाल वसुधा भृशम् । इत्थं भयंकरीं सेनामसुराणां विलोक्य च ॥ ७ ॥

ामको चले गये हैं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ऐसा विचार करके सहसा उसने महान् असुर वल्वलसे कहा। मय ोला—हे दैत्यराज ! तुम तो महान् वीर हो। अतएव मैं तुम्हें नहीं रोकूँगा ॥ ४३ ॥ अब रणभूमिमें जाकर ड़ो और अपने वाणोंसे यादवोंको मारो। तुम्हारे कथनानुसार मैं भी युद्ध करूँगा। इतना कहकर वल्वल- ो प्रसन्न करता हुआ वह चुप हो गया ॥ ४४ ॥ तब ऊर्ध्वकेश, नद, सिंह और कुशाम्ब ये चारों मंत्री कुपित ोकर वल्वलसे बोले ॥ ४५ ॥ मंत्रियोंने कहा—हे महाराज ! सभी उत्तम यदुवंशियोंको मारनेके लिए पहले म चारों जायँगे। क्योंकि बहुत समयसे हमने युद्ध नहीं किया है ॥ ४६ ॥ हे राजेन्द्र ! आप चिन्ता न रिए। मय दानवको साथ लेकर हम करोड़ों मनुष्योंको मार डालेंगे ॥ ४७ ॥ श्रीगर्ग मुनि बोले—इस कार चारों मंत्रियोंका कथन सुनकर परम प्रसन्न वल्वलने युद्धघोषणा कर दी ॥ ४८ ॥ इति श्रीगर्गसंहिता- ामश्वमेधखंडे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायामष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

गर्गमुनि बोले—हे राजेन्द्र ! तदनन्तर वल्वलके चारों ही मंत्री एक करोड़ दैत्योंकी सेना लेकर ौर कवच धारण करके युद्ध करनेके लिए नगरसे बाहर निकले ॥ १ ॥ वे सभी दैत्य सेनानी धनुर्धर, ेद्याधरोंके समान सुन्दर, खड्ग, त्रिशूल, गदा, परिघ, मुद्गर, कुन्त, भिन्दिपाल, चक्र, बाण, शक्ति आदि नेकानेक शस्त्रास्त्रों तथा लोहकवच धारण किये हुए वे वीर रथ, हाथी, घोड़े, नीलगाय, महिष, मृग, ऊँट, ाधे, सुअर, भेड़िये, सिंह, सियार, महागृध्र, शंखचील्ह, मगर तथा तिमिंगिलोंपर सवार होकर रणमें बड़े

परस्परं च बाणौघैः केचिद्वीरा द्विधा कृताः । तिर्यग्भूता रथा युद्धे निपेतुः पादपा इव ॥
वीरोपरि गता वीरा हयोपरि हयाश्च वै ॥२५॥
उत्पेतुस्तत्र शूराणां कबंधाश्च भयंकराः । पातयंतो खड्गहस्ता हयान् वीरान्महारणे ॥२६॥
हस्तिनां भिन्नकुंभानां मौक्तिका निपपंति खात् । शस्त्रांधकारे प्रधने रात्रौ तारागणा इव ॥२७॥
ततश्च सेनयोर्मध्ये रुधिराणां नदी ह्यभूत् । वेतालाः शिवमालार्थं जगृहुस्ते शिरांसि च ॥२८॥
मृगेंद्रस्था महाकाली डाकिनीभिः समागता । कपालेनापि रुधिरं पिबंती दृश्यते मृधे ॥२९॥
डाकिन्यो रुधिरं तप्तं पाययंत्यः सुतान्मृधे । मारोदीरिति वादिन्यो नेत्राण्यपि तदामृजन् ॥३०॥
विद्याधर्यस्त्वंबरस्था गंधर्व्योऽप्सरसस्तथा । क्षत्रधर्मस्थिताञ्छूरान्वव्रिरे देवरूपिणः ॥३१॥
परस्परं कलिरभूत्तासां पत्यर्थसंवरे । ममानुरूपो नायं व इति विह्वलचेतसाम् ॥३२॥
केऽपि शूरा धर्मपरा रणाद्राजन्न चालिताः । जग्मुस्ते वैष्णवं लोकं भित्त्वा तपनमंडलम् ॥३३॥
केचिद्वीरा महायुद्धं दृष्ट्वा युद्धात्पलायिताः । तप्तवालुकमार्गेण जग्मुस्ते निरयं नृप ॥३४॥
एवं दैत्यान्महावीराञ्जघ्नुः सर्वे यदूत्तमाः । तथा यदून्महायुद्धे नानाशस्त्रैश्च दानवाः ॥३५॥
रणे मृत्युं गताः सर्वे राजन्दैत्याश्च कोटिशः । तथा मृत्युं गता युद्धे यादवाश्च सहस्रशः ॥३६॥
बाणांधकारे संजातेऽनिरुद्धो धन्विनां वरः । ऊर्ध्वकेशेन युयुधे यथा वृत्रेण वासवः ॥३७॥
नंदेन च गदो राजन्सिंहेन वृक एव च । कुशांबेन सांबो वै युयुधे रणमण्डले ॥३८॥
एवं परस्परं युद्धं बभूव तुमुलं महत् । ऊर्ध्वकेशस्तदा राजन्धनुष्टंकारयन्मुहुः ॥३९॥
कार्ष्णिजं ताडयामास नाराचैर्दशभिर्मृधे । तान्प्रचिच्छेद भगवान्धन्वी रुक्मवतीसुतः ॥४०॥
ऊर्ध्वकेशः पुनस्तस्य कवचे सायकान्दश । निचखान स्वर्णपुंखान्भित्त्वा वर्म तनौ गतान् ॥४१॥

कर रहे थे ॥ २३ ॥ सैनिकोंके पैरसे उड़ी धूलसे आकाश अन्धा हो गया। उस समय रणांगणमें अपना-पराया नहीं पहचाना जाता था ॥२४॥ पारस्परिक बाणवर्षासे कुछ वीर कट कर दो टुकड़े हो गये। रथ वृक्षोंकी तरह तिरछे होकर लुढ़क गये और वीरोंपर वीर तथा घोड़ोंपर घोड़े गिर गये ॥ २५ ॥ उस रणभूमिमें वीरोंके भयंकर कवन्ध (सिर रहित धड़) हाथमें खड्ग लेकर उठ खड़े हुए और वीरों तथा घोड़ोंको काटते हुए विचरने लगे ॥ २६ ॥ जिनके मस्तक विदीर्ण हो गये थे, उन हाथियोंके मस्तकसे निकले हुए मोती ऐसे बिखर गये, जैसे रात्रिके समय आकाशमें तारागण बिखर जाते हैं ॥ २७ ॥ तभी दोनों सेनाओंकी भिड़न्तसे रुधिरकी नदी बह निकली और वेताल वीरोंके मुंडोंको शिवजीकी मालाके लिए संग्रह करने लगे ॥ २८ ॥ सिंहपर सवार महाकाली डाकिनियोंके साथ आयीं और रणस्थलीमें कपालोंसे रुधिर पान करने लगीं ॥ २९ ॥ उस रणमें डाकिनियाँ अपने बच्चोंको गरम-गरम रुधिर पिलाती हुई 'बच्चे ! मत रोओ' ऐसा कहकर उनके आँसू पोंछने लगीं ॥ ३० ॥ आकाशमें खड़ी विद्याधरियाँ, गन्धर्वियाँ और अप्सरायें क्षात्रधर्मका पालन करके मृत अतएव अब देवरूपसे विद्यमान वीरोंको वरण करने लगीं ॥ ३१ ॥ पतिप्राप्तिके लिए उनमें परस्पर झगड़ा होने लगा। वीरोंको देखकर वे विह्वल नारियाँ कहने लगती थीं कि यह वीर मेरे लायक है—तेरे लायक नहीं है ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! कुछ धर्मात्मा वीर रणभूमिसे नहीं हटे। वे सूर्यमंडलको बेधकर विष्णुलोक चले गये ॥ ३३ ॥ कुछ वीर उस भीषण महायुद्धको देखकर भाग गये थे, वे तप्त बालुकाके मार्गसे नरकमें जा पड़े ॥ ३४ ॥ इस प्रकार महावीर दैत्योंको यादव तथा यादवोंको विविध शस्त्रोंसे दैत्य मारने लगे ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! उस युद्धमें करोड़ों दैत्य मारे गये तो हजारों यादव भी मरे ॥ ३६ ॥ घनघोर बाणवर्षासे जब सब ओर अन्धकार छा गया, तब धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ अनिरुद्ध ऊर्ध्वकेश दैत्यसे इस तरह लड़ने लगे, जैसे वृत्रासुरसे इन्द्र लड़े थे ॥ ३७ ॥ उसी समय नन्द दैत्यसे गद, सिंह दैत्यसे वृक और कुशाम्ब दैत्यसे साम्ब युद्ध करने लगे ॥ ३८ ॥ इस प्रकार यादवों तथा दैत्योंमें परस्पर बड़ा भीषण युद्ध हुआ। तब हे राजन् ! बार बार धनुषका टंकोर करते हुए ऊर्ध्वकेश दैत्यने अनिरुद्धको दस बाण मारे। उन बाणोंको

चतुर्भिश्च शरैस्तस्य जघान चतुरो हयान् । चिच्छेद बाणैर्विंशद्भिः कोदंडं सगुणं परम् ॥४२॥
अनिरुद्धस्य राजेंद्र बल्वलस्यानुगो बली । अनिरुद्धस्तु तं त्यक्त्वा रथं चान्यं समारुहत् ॥४३॥
शक्रदत्तं नृपश्रेष्ठ प्रतिशार्ङ्गधरो महान् । कृष्णदत्ते च कोदंडे शरमेकं निधाय च ॥४४॥
तद्रथे निचखानाथ रुषाढ्यो हस्तलाघवात् । सायकस्तद्रथं नीत्वा भ्रामयित्वा घटीद्वयम् ॥४५॥
गगनात्पातयामास काचपात्रं यथाऽर्भकः । अंगारवद्रथस्तस्य विशीर्णोऽभूद्धयाश्च वै ॥४६॥
समृताश्च नृपश्रेष्ठ पंचतां प्रापुरग्रतः । ऊर्ध्वकेशस्तु पतनान्मूर्च्छितोऽभूद्रणांगणे ॥४७॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डे यादवासुरसंग्रामवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः

(सिंह तथा कुशाम्ब दैत्यके बधकी कथा)

गर्ग उवाच

तदोत्थितश्चोर्ध्वकेशो रथं चान्यं समाश्रितः । अनिरुद्धस्य संग्रामे यावदायाति संमुखम् ॥ १ ॥
तावद्बभञ्ज निशितैर्नाराचैस्तद्रथं पुनः । स भग्नं स्यंदनं दृष्ट्वा पुनरन्यं समाश्रितः ॥ २ ॥
सोऽपि भग्नः शरैराशु कार्ष्णिजेन रणे नृप । एवं नव रथा भग्ना ऊर्ध्वकेशस्य वै रणे ॥ ३ ॥
ततः क्रुद्धो रणे दैत्यः शक्तिं चिक्षेप सत्वरम् । दृष्ट्वा तामागतां वीरो नाराचैर्दशधाऽच्छिनत् ॥ ४ ॥
ऊर्ध्वकेशस्तदा संख्ये स्थित्वा रुक्ममये रथे । आजगाम स वेगेनानिरुद्धं प्रतियोधितुम् ॥ ५ ॥
कार्ष्णिजं पंचभिर्बाणैस्ताडयामास हर्षितः । शरैस्तैर्निहतः सोऽपि कश्मलं परमं गतः ॥ ६ ॥
संक्रुद्धो धनुरुद्यम्य चित्रवाजाञ्छरान्दश । मुमोच हृदये तस्य सहसा हस्तलाघवात् ॥ ७ ॥

शरास्ते पपुरेतस्य रुधिरं बहुदारुणाः । पीत्वा पेतुर्यथा भूमौ कूटसाक्ष्यस्य पूर्वजाः ॥ ८ ॥
ऊर्ध्वकेशः पुनः क्रुद्धः तिष्ठ तिष्ठेति च ब्रुवन् । बाणैस्तु दशसंख्यैश्च तताड तस्य मूर्धनि ॥ ९ ॥
सायकास्तेऽनिरुद्धस्य ह्युष्णीषे परिनिष्ठिताः । विराजंतेस्म राजेंद्र दशशाखास्तरोरिव ॥१०॥
न विव्यथे स तैर्बाणैर्युद्धे रुक्मवतीसुतः । यथा पुष्पैश्च प्रहतो द्विरदो नृपसत्तम ॥११॥
बाणाञ्छतं स्वधनुषि निधायाकृष्य माधवः । चित्रवाजान्स्वर्णपुंखान्मुमोच बहुरोषतः ॥१२॥
ते बाणास्तस्य सर्वांगं भित्त्वा शीघ्रमधोगताः । रुधिराक्ता यथा राजन्कृष्णभक्तिपराङ्मुखाः ॥१३॥
शरसंघैश्च स हतो पंचतां प्रधने गतः । हाहाकारश्च तत्सैन्ये बभूव नृपसत्तम ॥१४॥
तदा जयजयारावो यादवानां बभूव ह । अनिरुद्धोपरि सुराः पुष्पवर्षां प्रचक्रिरे ॥१५॥
ऊर्ध्वकेशस्तु प्रधनाद्दिव्यदेहेन यादव । ययौ विमानमारुह्य स्वर्गं सुकृतिनां पदम् ॥१६॥
भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा नदः शोकेन पूरितः । कुञ्जरस्थो गदं बाणैः कुञ्जरस्थं जघान ह ॥१७॥
आगतान्सायकान्दृष्ट्वा धनुर्द्धारी गदो महान् । तान्प्रचिच्छेद बाणेनानिरुद्धस्य प्रपश्यतः ॥१८॥
नदस्तदैव संक्रुद्धो भ्रातृशोकपरिप्लुतः । अकरोद्विगजं बाणैः संग्रामे रोहिणीसुतम् ॥१९॥
गजस्तु शतबाणैश्च भिन्नाङ्गः पंचतां गतः । निपपात गदो भूमौ तदद्भुतमिवाभवत् ॥२०॥
ततः क्रुद्धो गदां नीत्वा हंतुं शत्रुं रणे गदः । आजगाम ज्वलच्छीघ्रं सिंहः सिंहं वने यथा ॥२१॥
आगतं तं गृहीत्वा तु शुण्डादंडेन तद्गजः । चिक्षेप स गदं राजन्नाकाशे शतयोजनम् ॥२२॥
पतितः खात्समुत्थाय शुण्डादंडं प्रगृह्य सः । पातयामास भूपृष्ठे भ्रामयित्वा गजं गदः ॥२३॥
गजो मृत्युं गतो युद्धे विस्मितोऽभून्महासुरः । जग्राह स्वगदां गुर्वीं श्लाघां कृत्वा गदस्य च ॥२४॥
शीघ्रं तमाह्वयामास गदं वीरं गदाधरम् । तथा सोऽपि नदं दैत्यं संग्रामार्थे विशां पते ॥२५॥
नदः प्रत्याह वचनं त्वं मनुष्योऽसि यादव । तस्माल्लज्जां करिष्यामि कथं युद्धं करिष्यसि ॥२६॥

मारे ॥ ७ ॥ अनिरुद्धके वे दारुण बाण उस दैत्यका रुधिर पीकर वैसे ही गिर पड़े, जैसे झूठी गवाही देनेवाले प्राणीके पूर्वज नरकमें जा गिरते हैं ॥ ८ ॥ तब ऊर्ध्वकेशने कुपित होकर 'खड़ा रह-खड़ा रह' ऐसा कहते हुए अनिरुद्धके मस्तकपर दस बाण मारे ॥ ९ ॥ वे बाण जाकर अनिरुद्धकी पगड़ीमें गड़ गये । तब वे ऐसे दीखने लगे, जैसे किसी वृक्षकी दस शाखायें हों ॥ १० ॥ हे नृपसत्तम ! उन बाणोंसे अनिरुद्धको कुछ भी क्लेश नहीं हुआ । जैसे पुष्पके प्रहारसे हाथी नहीं व्यथित होता ॥ ११ ॥ तब अनिरुद्धने विचित्र पंख तथा स्वर्ण-पुंखवाले सौ बाण धनुषपर चढ़ाकर बड़े क्रोधसे छोड़े ॥ १२ ॥ रुधिरसे सने हुए वे बाण ऊर्ध्वकेशके सभी अंगोंको भेदकर नीचे गिर गये । जैसे श्रीकृष्णभक्तिसे विमुख मनुष्य नरकमें जा गिरते हैं ॥ १३ ॥ उन बाणोंके आघातसे ऊर्ध्वकेश मर गया । इससे दैत्यसेनामें हाहाकार मच गया ॥ १४ ॥ यह देखकर यादव अनिरुद्धकी जयजयकार करने और देवता उनके ऊपर फूल बरसाने लगे ॥ १५ ॥ रणमें तन त्यागनेके कारण ऊर्ध्वकेश दिव्य देह धारण करके और विमानमें बैठकर पुण्यात्माओंके स्थान स्वर्गलोकको चला गया ॥ १६ ॥ अपने भाईको मरा देखकर शोकाकुल नद दैत्य हाथीपर बैठकर गदके ऊपर बाणवर्षा करने लगा ॥ १७ ॥ उसके बाणोंको आते देखकर धनुर्धर गदने अपने बाणोंसे नद दैत्यके सभी बाणोंको अनिरुद्धके समक्ष काट डाले ॥ १८ ॥ इससे नद और भी कुपित हो गया और अविरल बाण बरसाकर गदके हाथीको मार डाला ॥ १९ ॥ नद दैत्यके सौ बाणोंकी मारसे गदका हाथी मर गया । जिससे गद जमीनपर गिर गये । यह बड़े आश्चर्यकी बात थी ॥ २० ॥ इससे बहुत क्रुद्ध होकर नदको मारनेके लिए गद अपनी गदा लेकर आगे बढ़े । जैसे सिंहको मारनेके लिए कोई सिंह आगे बढ़े ॥ २१ ॥ इस प्रकार आये हुए गदको नदके हाथीने उठाकर सौ योजन दूर आकाशमें उछाल दिया ॥ २२ ॥ आकाशसे नीचे आते ही गद उछलकर खड़े हो गये और उस हाथीकी सूंड़ पकड़ और घुमाकर जमीनपर पटक दिया ॥ २३ ॥ जिससे हाथी मर गया । यह देख नद दैत्यको बड़ा आश्चर्य हुआ और गदकी प्रशंसा करके अपनी बहुत भारी गदा उठायी ॥ २४ ॥ गदाधर

पूर्वं प्रहारं कुरु मे पश्चात्त्वं तु न जीवसि । इति श्रुत्वा गदः प्राह यथा वृत्रं पुरंदरः ॥२७॥

गद उवाच

न किंचित्ते प्रकुर्वंति ये वदन्ति मुखेन वै । न वदंति रणे शूरा दर्शयंति पराक्रमम् ॥२८॥
इति श्रुत्वा नदः क्रुद्धो गदस्य हृदये नदन् । ताडयामास राजेन्द्र गरिष्ठां महतीं गदाम् ॥२९॥
गदया ताडितो वीरो न चचाल मृधे गदः । मदोन्मत्तो यथा हस्ती बालेन मालया हतः ॥३०॥
कथयामास वीराग्र्यो दानवं वीक्ष्य लज्जितम् । सहस्वैकं प्रहारं मे यदि वीरः परंतप ॥३१॥
इत्युक्त्वा निजघानाथ ललाटे गदया भृशम् । स चापि तं रुषा स्कंधे ताडयामास धर्मवित् ॥३२॥
एवं भृशं प्रकुर्वंतौ गदायुद्धविशारदौ । गदायुद्धं प्रकुर्वाणौ परस्परवधैषिणौ ॥३३॥
अन्योन्यघातविसतौ क्रोधयुक्तौ जयोद्यतौ । न को वै तत्र जीयेत न महीयेत कोऽपि तु ॥३४॥
भाले स्कंधे तथा मूर्ध्नि हृदि गात्रेषु सर्वतः । रुधिरौघप्लुतौ क्लिन्नौ किंशुकाविव पुष्पितौ ॥३५॥
तयोरासीन्महायुद्धं गदाभ्यामेव संयुगे । विस्फुलिंगान्क्षरंत्यौ द्वे गदे चूर्णीबभूवतुः ॥३६॥
तयोर्युद्धमभूद्घोरं बाहुभ्यां गददैत्ययोः । तदा रामानुजः क्रुद्धो भुजाभ्यामुपगृह्य तम् ॥३७॥
पातयामास भूपृष्ठे महिपं हरिराड्यथा । तदा दैत्यस्तु तस्यापि हृदि जघ्ने प्रमुष्टिना ॥३८॥
तदा सोऽपि शिरस्येकं मुष्टिं बद्ध्वा जघान ह । मुष्टिभिर्जानुभिः पादैस्तालस्फोटैश्च बाहुभिः ॥३९॥
परस्परं जघ्नतुस्तौ संदष्टाधरपल्लवौ । ततः क्रुद्धो रणे दैत्यो गदस्य चरणं बलात् ॥४०॥
गृहीत्वा भ्रामयित्वा च पातयामास भूतले । तदा गदः समुत्थाय गृहीत्वा चरणं रिपोः ॥४१॥
भ्रामयित्वा गजोपस्थे निजघान रुषा ज्वलन् । पुनर्दैत्यं समुत्थाय गृहीत्वा रोहिणीसुतम् ॥४२॥
चिक्षेप चौजसा राजन्गगने शतयोजनम् । पतितोऽपि स वज्रांगः किंचिद्व्याकुलमानसः ॥४३॥

गदको नदने ललकारा तो गदने भी नदको लड़नेके लिए बुलाया ॥ २५ ॥ तब नदने कहा—हे यादव ! तुम मनुष्य हो। अतएव मुझे यह सोचकर लाज आती है कि तुम मेरे साथ कैसे लड़ोगे ॥ २६ ॥ अच्छा, पहले तुम मेरे ऊपर प्रहार करो। बादमें मेरे प्रहारसे तो तुम मर ही जाओगे। सो सुनकर गद इस तरह बोले, जैसे इन्द्र वृत्रासुरसे बोले थे ॥ २७ ॥ गदने कहा—जो मुँहसे बहुत बोलते हैं, वे कुछ करते नहीं। वीर पुरुष रणमें बोलते नहीं, अपना पराक्रम दिखाते हैं ॥ २८ ॥ सो सुनकर नदको बड़ा क्रोध आया और गर्जन करके उसने गदकी छातीपर बड़ी भारी गदा मारी ॥ २९ ॥ उसके इस भीषण प्रहारसे गद तनिक भी विचलित नहीं हुए। जैसे किसी बालकके हाथों मालाका प्रहार होनेपर हाथी विचलित नहीं होता ॥ ३० ॥ इससे उस दैत्यको लज्जित देखकर वीरोंके अग्रणी गदने कहा कि यदि वीर हो तो अब मेरे एक प्रहारको तुम सहन करो ॥ ३१ ॥ यह कहकर गदने उसके मस्तकपर एक गदा मारी। हे धर्मज्ञ ! इससे कुपित होकर नदने गदके कन्धेपर प्रहार किया ॥ ३२ ॥ गदायुद्धमें निपुण वे दोनों वीर परस्पर एक दूसरेको मारनेके लिए निर्मम प्रहार करते रहे ॥ ३३ ॥ वे दोनों क्रुद्ध तथा जयके लिए सन्नद्ध वीर बड़ी देरतक लड़े, पर उनमेंसे न कोई जीता और न कोई हारा ॥ ३४ ॥ ललाट, कन्धे, मस्तक तथा छातीके घावोंसे निकले रुधिरसे नहाये हुए वे दोनों वीर पुष्पित पलाशवाले वृक्ष जैसे प्रतीत होते थे ॥ ३५ ॥ अब गद तथा नदमें द्वन्द्वयुद्ध होने लगा। उसमें गदने नदको दोनों हाथोंसे पकड़ तथा घुमाकर पृथ्वीपर ऐसे पटक दिया, जैसे सिंह महिषको पटक दे। तब नद दैत्यने गदकी छातीपर एक घूँसा मारा। तब गदने भी उस दैत्यके मस्तकपर एक घूँसा मारा। इस प्रकार घूँसों, घुटनों, पैरों, थप्पड़ों और बाहुओंसे परस्पर प्रहार करने लगे ॥ ३६–३९ ॥ वे दोनों क्रोधसे अपने होंठ काटते हुए भीषण आघात-प्रत्याघात कर रहे थे। तभी उस क्रुद्ध दैत्यने गदके पावँ पकड़ तथा घुमाकर धरतीपर दे मारा। तब गदने भी उठ तथा नदके पैर पकड़ और कई चक्कर घुमाकर एक हाथीके ऊपर फेंक दिया। उस समय वे मारे क्रोधके जल रहे थे। पुनः उस दैत्यने उठकर गदको पकड़ ॥ ४०–४२ ॥ और बड़े वेगसे घुमाकर आकाशमें सौ योजन दूर फेंक दिया। वहाँसे गिरकर वज्रां-

चिक्षेप गगने दैत्यं योजनानां सहस्रकम् । पतितोऽपि समुत्थाय पुनर्युद्धं चकार सः ॥४४॥
गदो नदं नदो गदं निजघ्नतुः परस्परम् । प्रमुष्टिभिश्च दारुणैर्महद्रणे नृपेश्वर ॥४५॥
दंडादंडि मुष्टामुष्टि केशाकेशि नखानखि । दंतादंत्युभयोर्युद्धं घोरमेवं बभूव ह ॥४६॥
इत्थं नियुद्धमानौ तौ प्रकुर्वंतौ रणं पुनः । पादे पादं हृदि हृदं करे करं मुखे मुखम् ॥४७॥
अन्योन्यमित्थं संलग्नौ परस्परवधैषिणौ । बलाक्रांतावुभौ तौ द्वौ पतितौ च मुमूर्च्छतुः ॥४८॥
इत्थं दृष्ट्वा तयोर्युद्धं यादवाश्चैव दानवाः । गदो धन्यो नदो धन्यः प्रोचुर्वाक्यमिदं नृप ॥४९॥
गदं निपतितं दृष्ट्वाऽनिरुद्धः शोकपूरितः । चैतन्यं कारयामास जलेन व्यजनेन च ॥५०॥
तदैव सोऽपि राजेन्द्र उत्थितः क्षणमात्रतः । क्व नदः क्व नदो यातो त्यक्त्वा युद्धं भयान्मम ॥५१॥
निरीक्ष्य दानवं तत्र मूर्छितं पंचतां गतम् । चक्रुर्जयजयारावं यादवाश्चैव देवताः ॥५२॥

इति श्रीगर्गसंहितायां हयमेधखंडे ऊर्ध्वकेशनददैत्यवधो नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

अथ एकत्रिंशोऽध्यायः

(सिंह तथा कुशाम्ब दैत्यके वधकी कथा)

गर्ग उवाच

स्वस्याः पराजयं दृष्ट्वा सिंहो दैत्यो रुषान्वितः । निजघान वृकं बाणै रथस्थं खरवाहनः ॥ १ ॥
दृष्ट्वा समागतान्बाणान्वृको वै कृष्णनन्दनः । चिच्छेद तान्स्वबाणैश्च लीलया प्रधने नृप ॥ २ ॥
पुनश्चिक्षेप बाणान्वै तांश्च चिच्छेद कृष्णजः । ततः क्रुद्धो रणे राजन्सिंहनामाऽसुरेश्वरः ॥ ३ ॥
शरासने समाधत्त वसुसंख्याञ्छिलीमुखान् । चतुर्भिस्तुरगान्वीरो वृकस्य ह्यनयत्क्षयम् ॥ ४ ॥
एकेन ध्वजमत्युग्रं चिच्छेद तरसा हसन् । एकेन सारथेः कायाच्छिरो भूमावपातयत् ॥ ५ ॥
एकेन सगुणं चापमच्छिनत्प्रधने रुषा । एकेन हृदि विव्याध वृकस्य वेगवान्नृप ॥ ६ ॥

सदृश दृढ़ अंगोंवाले गदको तनिक व्याकुलता आयी, किन्तु आवेशमें आकर उन्होंने उस दैत्यको पकड़ लिया और एक हजार योजन ऊँचे आकाशमें उछाल दिया। किन्तु इतनी ऊँचाईसे गिरकर भी वह पुनः युद्ध करने लगा ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ हे राजन्! अब गदने नदको और नदने गदको घूँसोंसे मारना आरम्भ कर दिया। उन दोनोंका दंडादंडि, दन्तादन्ति, मुष्टामुष्टि, नखानखि और केशाकेशि युद्ध होने लगा ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ बादमें फिरसे युद्ध करते हुए पाँवपर पाँव, छातीपर छाती, हाथोंमें हाथ और मुखपर मुख करके लड़ते-लड़ते वे दोनों मूर्छित हो गये ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ उनका युद्ध देखकर यादवोंने गदको और दानवोंने नद दैत्यको धन्यवाद दिया॥ ४९॥ सहसा गदको अचेत पड़े देख अनिरुद्ध शोकाकुल हो उठे और उन्होंने जलके छींटें और पंखेकी हवासे सचेत कराया ॥ ५० ॥ क्षण ही भर बाद गद उठ बैठे और बड़बड़ाने लगे—'नद कहां गया, नद कहां है? मेरे भयसे वह रण छोड़कर कहाँ भाग गया?' ॥ ५१ ॥ बादमें मूर्छित तथा मरे हुए नद दैत्यको देखकर सभी यादव तथा देवता उनकी जयजयकार करने लगे ॥ ५२ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखंडे 'प्रियंवदा'-भाषाटीकायां त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

श्रीगर्गमुनि बोले—हे राजन्! उसके बाद अपने पक्षकी पराजय देखकर सिंह दैत्य गधेपर बैठकर आया और अत्यधिक क्रोधसे उसने रथपर बैठे हुए श्रीकृष्णतनय वृकको बाणोंसे मारा ॥ १ ॥ हे नृप! उन बाणोंको आते देख श्रीकृष्णके पुत्र वृकने अपने बाणोंसे खेल-खेलमें काट डाला ॥ २ ॥ सिंहने फिर उनपर बाण चलाया और वृकने फिर उसके बाण काट डाले। इससे बहुत क्रुद्ध होकर असुरराज सिंहने अपने धनुष-पर एक साथ आठ बाण चढ़ाया। उनमेंसे चार बाणों द्वारा वृकके चार घोड़े मार डाले ॥ ३ ॥ ४ ॥ बादमें हँसते हुए उस वीरने एक बाणसे वृककी ध्वजा काट दी और एक बाणसे सारथीको मार डाला ॥ ५ ॥ उसने

तस्य कर्माद्भुतं दृष्ट्वा वीरा विस्मयमागताः । वृकस्तदैव सहसा दैत्यं शक्त्या जघान ह ॥ ७ ॥
सा शक्तिस्तत्तनुं भित्त्वा खरं भित्त्वा विनिर्गता । विवेश भूतले राजन्विवरं पन्नगो यथा ॥ ८ ॥
खरो मृत्युं गतस्तत्र दैत्यः शीघ्रं पपात ह । जगर्ज पुनरुत्थाय सिंहः सिंह इव स्फुटम् ॥ ९ ॥
गृहीत्वा विशिखं शूलं चिक्षेप स वृकोपरि । तमापतंतं जग्राह वृको वामकरेण वै ॥१०॥
तेनैव शत्रुं निजघान राजन्कृष्णस्य पुत्रो बहुरोषयुक्तः ।
निर्भिन्नदेहो निपपात भूमौ हाहा प्रकुर्वन्स जगाम मृत्युम् ॥११॥
हाहाकारस्तदैवासीद्दानवानां रणांगणे । पुष्पवर्षं सुराश्चक्रुः जयारावं यदूत्तमाः ॥१२॥
तदा कुशांवः संक्रुद्धो सांबादीन् यादवान्मृधे । रथस्थः शीघ्रमागत्य सर्वान्विव्याध सायकैः ॥१३॥
तस्य वाणैश्च बहवः पेतुश्छिन्ना महागजाः । तिर्यग्भूता रथा युद्धे तुरगाश्छिन्नकंधराः ॥१४॥
तथा पदातयस्तत्र शिरोहीना विबाहवः । इत्थं स मारयन्राजन्ननेकान्विचचार ह ॥१५॥
एवं पराक्रमं दृष्ट्वा सांबो जांबवतीसुतः । कुशांबं चाह्वयामास युद्धार्थे युद्धकोविदः ॥१६॥

सांब उवाच

आगच्छ वीर सहसा मया सह रणं कुरु । किमन्यैस्त्रासितैर्दीनैर्निहतैः कोटिभिर्नरैः ॥१७॥
इत्युक्तवन्तमालोक्य कुशांबः प्रहसन्बली । जघान हृदये तस्य वसुसंख्याञ्छिलीमुखान् ॥१८॥
तदमृष्यन्हरेः पुत्रः स्वकोदंडे दधञ्छरान् । तताड सप्तभिः शत्रुं दानवं वक्षसोंतरे ॥१९॥
उभौ समरसंरब्धावुभावपि जयैषिणौ । रेजाते तौ हि संग्रामे यथा षण्मुखतारकौ ॥२०॥
सांवः कुशांबं प्रधने कुशांबः सांबमेव च । अन्योन्यं सर्पसदृशैर्वाणैरपि ववर्षतुः ॥२१॥
वाणान्धनुषि संधाय शतसंख्यान्स्फुरत्प्रभान् । अकरोद्विरथं तैश्च सांबं छिन्नशरासनम् ॥२२॥

एक वाणसे वृकका धनुष तथा उसकी प्रत्यंचा काट दी। उसके बाद बड़े वेगके साथ उसने एक बाण वृककी छातीमें मारा ॥ ६ ॥ सिंह दैत्यके इस अद्भुत पौरुषको देखकर रणभूमिके सभी वीर बहुत चकित हुए। तभी वृकने सिंह दैत्यपर शक्तिका प्रहार किया ॥ ७ ॥ वह शक्ति सिंहदैत्य तथा उसके वाहन गधेको छेदकर विलमें जानेवाले सर्पकी तरह धरतीमें घुस गयी ॥ ८ ॥ इससे उसका गधा मर गया और वह दैत्य पृथ्वीपर गिर पड़ा। तनिक ही देरमें फिर उठकर उसने सिंहके समान गर्जन किया ॥ ९ ॥ सहसा सिंहदैत्यने वृकके ऊपर त्रिशूल चलाया, किन्तु उस त्रिशूलको वृकने बायें हाथसे पकड़ लिया ॥ १० ॥ तदनन्तर हे राजन्! श्रीकृष्णके पुत्र वृकने उसी त्रिशूलको सिंहदैत्यके ऊपर चलाया। इस प्रहारसे सिंहका सारा शरीर छितरा गया और वह हाहाकार करता हुआ मर गया ॥ ११ ॥ उस समय रणभूमिमें दानव हाय-हाय करने लगे। देवताओंने वृकपर फूल बरसाये और यादव जय-जयकार करने लगे ॥ १२ ॥ इससे कुशाम्ब दैत्यको बड़ा क्षोभ हुआ और रथपर बैठकर वह रणभूमिमें आया। आते ही वह साम्ब आदि यादवोंको वाणोंसे बींधने लगा ॥ १३ ॥ उसके वाणोंसे मरकर बहुतेरे हाथी गिर गये। रथ टेढ़े होकर उलट गये और कंधे कट जानेके कारण बहुतेरे घोड़े मर गये ॥ १४ ॥ इसी प्रकार मस्तक तथा भुजायें कट जानेसे बहुतेरे पैदल सैनिक मरकर गिर गये। इस प्रकार अनेकानेक वीरोंको मारता हुआ कुशाम्ब रणभूमिमें विचरने लगा ॥ १५ ॥ इस प्रकारका पराक्रम देखकर रणनिपुण जाम्बवतीसुत साम्बने कुशाम्बको ललकारा ॥ १६ ॥ साम्ब बोले—हे वीर! सहसा मेरे समीप आकर मुझसे लड़ो। अन्य भयभीत तथा दीन करोड़ों मनुष्योंका वध करनेसे क्या लाभ? ॥१७॥ ऐसा कहते हुए साम्बको देखकर हँसते हुए बलवान् कुशाम्बने उनकी छातीपर आठ बाण मारे ॥१८॥ उसके इस दुःसाहसको असह्य समझकर साम्बने धनुषपर सात वाण चढ़ाकर उसकी छातीपर मारा ॥ १९ ॥ विजयके इच्छुक दोनों वीर परस्पर युद्ध करते हुए ऐसे लग रहे थे, जैसे स्वामिकार्तिकेय और तारकासुर लड़ रहे हों ॥ २० ॥ तब साम्ब कुशाम्बको और कुशाम्ब साम्बको अपने सर्प सरीखे जहरीले वाणोंसे मारने लगे ॥ २१ ॥ सहसा कुशाम्बने अपने धनुषपर एक साथ सौ वाण चढ़ाकर उनकी मारसे साम्बका धनुष

स छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः । आरुरोह रथं चान्यं कुपितश्चापसंयुतः ॥२३॥

सांब उवाच

कुत्र यास्यसि त्वं दैत्य कृत्वा दीर्घं पराक्रमम् । क्षणमात्रं रणे स्थित्वा पश्य मे विक्रमं परम् ॥२४॥
इत्युक्त्वा सायकं चोग्रं स्वकोदंडे निधाय च । मंत्रयित्वा च मंत्रेण तद्रथे निचखान ह ॥२५॥
अलातचक्रवद्भूमौ तेन बाणेन तद्रथः । बभ्राम योजने शीघ्रं ससूतः सतुरंगमः ॥२६॥
भ्रमंतं सरथं दैत्यं दृष्ट्वा प्राह हसन्मुखः । सांबो जांबवतीपुत्रो बाणं कृत्वा शरासने ॥२७॥

सांब उवाच

त्वादृशाश्च महावीराः स्वर्गयोग्या भवंति हि । न राजंते महीमध्ये शक्रतुल्यपराक्रमाः ॥२८॥
तस्माच्च मम बाणेन द्वितीयेन दिवं व्रज । सरथस्त्वं सदेहश्च मत्कृपातोऽसुरेश्वर ॥२९॥
गगनप्रापकं चास्त्रमित्युक्त्वा विमुमोच सः । शरेण तेन सरथो विभ्रमन्भूतलान्नृप ॥३०॥
लोकान्बहूनतिक्रम्य जगाम रविमंडलम् । सहयः सूतसहितस्तत्र सूर्यस्य ज्वालया ॥३१॥
दग्धोऽभूत्तद्रथः सद्यो दैत्यो दग्धकलेवरः । पपात भूतले पुर्यां बल्वलस्य च सन्निधौ ॥३२॥
तस्मिन्निपतिते पापे गते मृत्युं च दानवे । हाहाकारं ततश्चक्रुर्दैत्याः सर्वे भयान्विताः ॥३३॥
यादवानां ततः सैन्ये नेदुर्दुंदुभयो मुहुः । पुष्पवर्षं मुदा चक्रुः सांबस्योपरि निर्जराः ॥३४॥

इति श्रीगर्गसंहितायां हयमेधखंडे सिंहकुशांबवधो नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

(सैन्यपालके पुत्रका निधन)

गर्ग उवाच

अथ वै बल्वलं दैत्यं शोचंतं कांचनासने । मयः प्रत्याह वचनं ज्येष्ठं कुंभश्रुतिर्यथा ॥ १ ॥
अद्य दृष्टं त्वया राजन् यदूनां बलमेव हि । दैत्यवृन्दैश्च निहताश्चत्वारो मंत्रिणस्तव ॥ २ ॥

काटकर रथ तोड़ दिया ॥ २२ ॥ इस प्रकार धनुष कट जाने, रथ टूट जाने और घोड़े तथा सारथीके मर जानेपर साम्ब बड़े क्रोधपूर्वक दूसरा धनुष लेकर दूसरे रथपर जा बैठे ॥ २३ ॥ साम्ब बोले—हे दैत्य ! इतना बड़ा पराक्रम करके अब तुम कहाँ जाओगे ? क्षणभर मेरे समक्ष रुककर मेरा पराक्रम देखो ॥ २४ ॥ ऐसा कहकर उन्होंने अपने धनुषपर एक बाण चढ़ाया और उसे मंत्रसे अभिमंत्रित करके कुशाम्बके रथपर चला दिया ॥ २५ ॥ उस बाणकी मारसे सारथी तथा घोड़ोंसमेत कुशाम्बका रथ योजनभरके घेरेमें घूमने लगा ॥ २६ ॥ रथ समेत कुशाम्ब दैत्यको घूमते देख हँसते हुए साम्बने धनुषपर बाण चढ़ाकर कहा ॥ २७ ॥ साम्ब बोले—हे दैत्यराज ! तुम्हारे जैसे महावीर योद्धा तो स्वर्गमें रहने योग्य होते हैं । इन्द्रसदृश पराक्रमी तुम जैसे वीर पृथ्वीपर नहीं अच्छे लगते ॥ २८ ॥ अतएव मेरे दूसरे बाणसे रथ तथा देह समेत तुम स्वर्ग चले जाओ । मेरी कृपासे तुम्हें स्वर्ग सुलभ हो जायगा ॥ २९ ॥ देखो, मेरा यह अस्त्र आकाशगामी है । ऐसा कहकर उन्होंने वह बाण छोड़ा । हे नृप ! उस बाणसे रथसहित कुशाम्ब घूमता और बहुतेरे लोकोंको लाँघता हुआ रविमण्डलमें जा पहुँचा । वहाँ सूर्यकी ज्वालासे घोड़ों सहित उसका रथ और उसका शरीर जल गया । ऐसी दशामें वह दैत्यपुरीमें बल्वलके पास आकर गिरा ॥ ३०—३२ ॥ उस पापी दानवके मरकर गिर जानेपर दैत्य भयभीत होकर हाहाकार करने लगे ॥ ३३ ॥ उधर यादवोंकी सेनामें दुन्दुभियाँ बजने लगीं और देवता साम्बके ऊपर फूल बरसाने लगे ॥ ३४ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखण्डे 'श्रीचंदन'-भाषाटीकायामेकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

श्रीगर्गमुनि बोले—हे महाराज ! इसके बाद शोकाकुल होकर बैठे पास जाकर मय दानव

अवशेपस्त्वमेवासि ह्यथवाऽहं च त्वत्पुरे । तस्मात्तवेच्छा दैत्येंद्र यथा भूयात्तथा कुरु ॥ ३ ॥
बल्वलः प्राह वचनमद्य यास्याम्यहं रणे । शीघ्रं हंतुं यदून्सर्वांस्त्वं गुप्तो भव मन्दिरे ॥ ४ ॥
हरिः कृष्णस्तु नंदस्य पुरा पुत्रः प्रकीर्तितः । वसुदेवो मन्यते तं मत्पुत्रोऽयं गतत्रपः ॥ ५ ॥
हैयंगवीनदुग्धाज्यदधितक्रादिकं तु सः । चोरयामास गोपीनां रसिको रासमण्डले ॥ ६ ॥
जरासुतभयात्सोऽपि समुद्रं शरणं गतः । मारितो मातुलो येन किं करिष्यति पौरुषम् ॥ ७ ॥
इति तद्वाक्यमाकर्ण्य मयः प्रकुपितोऽब्रवीत् ।

मय उवाच

यस्माद्बिभेति ब्रह्मा च शिवो माया पुरंदरः ॥ ८ ॥
भयदं निर्भयं कृष्णं तं विनिंदसि निंदक । कृष्णं निंदति यो मूढो ह्यज्ञानाच्च कुसंगतः ॥ ९ ॥
कुम्भीपाके स पतति यावद्वै ब्रह्मणो वयः ॥१०॥
चण्डपालशिशुपालमण्डलीभञ्जनं दनुजदर्पखण्डनम् ।
माधवं मदनमोहनं परं त्वं भजस्व कुलकौशलाय च ॥११॥
मयस्य वचनं श्रुत्वा ज्ञानं प्राप्तोऽपि बल्वलः । क्षणं विचार्य राजेंद्र प्रोवाच प्रहसन्निव ॥१२॥

बल्वल उवाच

जानाम्यहं विश्वपतिं च कृष्णं शेषं बलं वै मदनं च कार्ष्णिम् ।
अत्रागतं पद्मभवं हि चैषां वध्या वयं तेन हयो हृतोऽयम् ॥१३॥
एषां बाणैश्च निहतो यदाऽहं निधनं गतः । तदा सुखेन यास्यामि शीघ्रं विष्णोः परं पदम् ॥१४॥
पुरा च वैरभावेन वैकुण्ठं बहवो गताः । दानवा राक्षसाश्चैव तं च भावं करोम्यहम् ॥१५॥
इत्युक्त्वा दंशितो भूत्वा दानवानां शिरोमणिः । स्वसैन्यपालकं तूर्णं समाहूयेदमब्रवीत् ॥१६॥

बोला—॥ १ ॥ हे राजन् ! आपने यादवोंका बल देखा ? विपुल दैत्यसैनिकोंके साथ चार मंत्रियोंको उन्होंने मार डाला ॥ २ ॥ इस दैत्यपुरीमें आप और हम दो ही प्राणी जीवित बचे हैं। अब आपकी जो इच्छा हो सो करिए ॥ ३ ॥ यह सुनकर बल्वल बोला—अब मैं यादवोंको शीघ्र मार डालनेके लिए रणभूमिमें जाऊँगा। तुम अपने घरमें छिपकर बैठो ॥ ४ ॥ पहले कृष्ण नन्दका पुत्र कहलाया। उसको अब निर्लज्ज वसुदेव अपना पुत्र बताता है ॥ ५ ॥ मक्खन, दूध, घी, दही तथा छाँछ आदि वस्तुयें जिसने चुरायी हैं और रासमण्डलमें गोपियोंके प्रति जिसने रसिकता दिखायी है ॥ ६ ॥ जो कृष्ण जरासंधके भयसे मथुरा छोड़कर समुद्रकी शरणमें द्वारका चला गया और जिसने अपने मामाका बध किया है, वह भला कौनसा पुरुषार्थ करेगा ? ॥ ७ ॥ बल्वलकी बात सुनकर मय दानव अत्यन्त कुपित होकर बोला—अरे राक्षस ! ब्रह्मा, शिव, पार्वती और इन्द्र जिनसे डरते हैं, सबके लिए भयदायक किन्तु स्वयं सदा निर्भय रहनेवाले भगवान कृष्णकी तू निन्दा करता है ? अज्ञान और कुसंगके कारण ही प्राणी उनकी निन्दा करता है। ऐसा करनेवाला महामूढ माना जाता है ॥ ८ ॥ ९ ॥ ऐसा पापी ब्रह्माकी पूरी आयुपर्यन्त कुंभीपाक नरकमें रहता है ॥ १० ॥ चण्डपाल तथा शिशुपालकी मंडलीको छिन्न-भिन्न करनेवाले, दैत्योंका दर्प दलन करनेवाले, लक्ष्मीपति और कामदेवको भी मोहमें डाल देनेवाले भगवान कृष्णका भजन करो। इससे तुम्हारे कुलका कल्याण होगा ॥ ११ ॥ हे राजेन्द्र ! मयके वचन सुनकर ज्ञानको प्राप्त बल्वल हँसकर बोला ॥ १२ ॥ बल्वलने कहा—मैं विश्वपति कृष्ण, साक्षात् शेष भगवानके स्वरूप बलराम, कामदेवके स्वरूप प्रद्युम्न और साक्षात् ब्रह्माके स्वरूप अनिरुद्धको जानता हूँ। मुझे यह भी मालूम है कि इन्हींके हाथों मेरी मृत्यु होगी। यह सब समझकर मैंने उनका घोड़ा पकड़ा है ॥ १३ ॥ जब मैं इनके बाणोंसे आहत होकर मरूँगा, तब बड़े सुखसे शीघ्र परम पद पा लूँगा ॥ १४ ॥ पहले भी बहुतेरे दानव तथा राक्षस भगवान-से वैर करके वैकुण्ठधाम जा चुके हैं। इसीसे ही मैं भी उनके साथ वैरभाव रखता हूँ ॥ १५ ॥ दानवशिरोमणि

पटहेन ममाज्ञां त्वं पुर्यां देहि प्रयत्नतः । अनिरुद्धेन युद्धाय वीरेषु सैन्यपालक ॥१७॥
ये ममाज्ञां न मन्यन्ते ते वधार्हा रणं विना । आत्मजा वा भ्रातरो वा ह्यन्येषां चैव का कथा ॥१८॥
इति श्रुत्वा स तद्वाक्यं रथ्यां रथ्यां गृहे गृहे । पटहेनापि तस्याज्ञां घोषयामास वेगतः ॥१९॥
श्रुत्वा पटहनिर्घोषं दैत्याः शीघ्रं भयातुराः । गृहीत्वा सर्वशस्त्राणि ह्याजग्मुस्ते सभातलम् ॥२०॥
सैन्यपालस्ततः पूर्वं लक्षदैत्यैः समावृतः । रथेन कवची धन्वी निर्जगाम पुराद्बहिः ॥२१॥
दुर्नेत्रो दुर्मुखश्चैव दुःस्वभावश्च दुर्मदः । एते वै मंत्रिणां पुत्राश्चत्वारस्ते विनिर्ययुः ॥२२॥
मतंगजैर्महामत्तैश्चंचलांगैस्तुरंगमैः । रथैश्च देवधिष्ण्याभैर्विद्याधरसमैर्नरैः ॥२३॥
सद्यः कामगयानेन मयदत्तेन बल्वलः । स्वयं जगाम युद्धार्थे चतुर्लक्षैर्महासुरैः ॥२४॥
सैन्यपालस्य पुत्रस्तु भोजनं कुरुते गृहे । बुभुक्षितश्च युद्धाय शीघ्रं सोऽपि न निर्गतः ॥२५॥
नागतं तं विलोक्याथ सैन्ये बल्वलसैनिकाः । नृपाय कथयामासुस्तस्य वार्तां च शंकिताः ॥२६॥
ततस्तद्वचनाद्वीरा बद्ध्वा तं दामभी रुषा । नृपाग्रे चानयामासुः प्रफुल्लवदनेक्षणाः ॥२७॥
तं दृष्ट्वा भर्त्सयित्वा च बल्वलश्चण्डशासनः । भुशुण्डीं वदने चापि मारयामास वेगतः ॥२८॥
दैत्याः सर्वे भयं प्रापुर्वधं तस्य निरीक्ष्य च । सैन्यपालस्तु संग्रामे मृतं पुत्रं निशम्य च ॥२९॥
रथात्पपात दुःखार्तस्ताडयन्मस्तकं करैः । विललाप भृशं सोऽपि पुत्रदुःखेन दुःखितः ॥३०॥
हा पुत्र वीर पितरं त्यक्त्वा मां जरठं रणे । गतः शतघ्नीमार्गेण स्वर्गं मामविलोक्य च ॥३१॥
विना युद्धेन हे पुत्र क्व गतो नृपशासनात् । इत्येवं विलपंस्तत्र रुरोद रणमण्डले ॥३२॥
ततश्च मंत्रिणां पुत्राः शोचंतं प्रोचुरग्रतः ।

मंत्रिपुत्रा ऊचुः

रोदनं मा कुरु रणे शूरोऽसि त्वं तु पालक ॥३३॥

बल्वलने यह कह और कवच धारण करके अपने सेनापतिको बुलाकर कहा—॥ १६ ॥ हे सेनापते ! ढिंढोरे पिटवाकर तुम प्रयत्नपूर्वक मेरी यह आज्ञा सारे नगरमें प्रचारित कर दो कि सभी योद्धाओंको अनिरुद्धसे लड़ना पड़ेगा। सो सब लोग तैयार हो जायँ ॥ १७ ॥ जो कोई मेरी आज्ञा न माने, वह पुत्र तथा भ्राता ही क्यों न हो, विना युद्धके मार डाला जाय। तब औरोंके विषयमें क्या कहना है ॥ १८ ॥ तदनुसार सेनापतिने राजा बल्वलकी आज्ञाको ढिंढोरे पिटवाकर गली-गली और घर-घर घोषित करा दी ॥ १९ ॥ ढिंढोरेकी ध्वनि सुनते ही भयसे आतुर दैत्य शस्त्राशस्त्र ले-लेकर बल्वलकी सभामें जा पहुँचे ॥ २० ॥ तब सेनापति पहले एक लाख दैत्योंको लेकर रथपर बैठा और कवच धारण करके नगरसे बाहर निकला ॥ २१ ॥ सेनापतिके साथ दुर्नेत्र, दुर्मुख, दुःस्वभाव और दुर्मद ये चार मंत्रिपुत्र भी चले ॥ २२ ॥ मतवाले हाथी, चंचल घोड़े, विमान जैसे रथ तथा विद्याधरों जैसे सुन्दर सैनिकोंको साथ लेकर द्रुत गतिसे चलनेवाले मय दानवके दिये रथपर बैठकर चार लाख दैत्योंके साथ बल्वल चला ॥ २३ ॥ २४ ॥ उस समय सेनापतिका पुत्र भूखा था। सो भोजनके फेरमें घरपर ही रह गया। युद्धमें नहीं जा सका ॥ २५ ॥ उसको नहीं आया देखकर सैनिकोंने बल्वलसे कहा—महाराज ! सेनापतिका पुत्र नहीं आया है ॥ २६ ॥ सो सुनकर बल्वलने आज्ञा दी कि जाओ और उसे बाँधकर ले आओ। तदनुसार प्रसन्नमुख सैनिक उसे रस्सीमें बाँधकर राजा बल्वलके समक्ष ले आये ॥ २७ ॥ प्रचण्ड शासक बल्वलने उसकी भरपूर भर्त्सना की और उसके मुखपर भुशुण्डीका प्रहार करके मार डाला ॥ २८ ॥ इस प्रकार उसका वध देखकर सब सैनिक भयभीत हो गये। रणभूमिमें यह समाचार सुनकर सेनापति मूर्छित होकर रथसे नीचे गिर पड़ा। इसके बाद पुत्रमरणके दुःखसे बहुत दुखी होकर हाथोंसे अपना माथा पीटता हुआ वह विलाप करने लगा ॥ २९ ॥ ३० ॥ उसने कहा—हाय वीर ! हाय पुत्र ! मुझ बूढ़े पिताको छोड़ और बिना मिले शतघ्नी (बन्दूक) के मार्गसे तू स्वर्ग चला गया ॥ ३१ ॥ हाय, विना युद्ध किये ही राजाकी आज्ञासे तू कहाँ चला गया ? इस प्रकार विलाप करता हुआ

दुःखे कृते च त्वत्पार्श्वे नागमिष्यति वै मृतः । आजन्मतश्च जंतूनां मृत्युर्भवति सांप्रतम् ॥३४॥
धीरास्तत्र न शोचंति मूर्खाः शोचंति नित्यशः । गर्भेऽपि च मृताः केचित्केचिद्वै जन्ममात्रतः ॥३५॥
बालत्वे यौवनत्वे च वृद्धत्वे केचिदेव हि । केचिच्छस्त्रेण रोगेण दुःखेन पतनेन च ॥३६॥
सर्वे मृत्युं गमिष्यंति दैवात्कर्मवशा नराः । को वा कस्य पिता पुत्रः को वा कस्य प्रिया प्रसूः ३७॥
संयुनक्ति विधाता वै वियुनक्ति च कर्मणा । संयोगे परमानन्दो वियोगे प्राणसंकटम् ॥३८॥
शश्वद्भवति मूढस्य नात्मारामस्य निश्चितम् । आत्मघाती यदा भूत्वा प्राणांस्त्यजसि दुःखितः ३९॥
पुनर्जन्म च निरयं व्रजिष्यसि न संशयः । तस्माद्यदूत्तमैः सार्द्धं युद्धं कुरु महारणे ॥४०॥
क्षत्रियस्य परं श्रेयो धर्मयुद्धान्न विद्यते । धर्मयुद्धेन संग्रामे ये हताः शत्रुसंमुखे ॥४१॥
व्रजंति ते विष्णुपदं लोकान्सर्वान्विहाय च ।

गर्ग उवाच

एवं संबोधितो दैत्यैः शोकं सर्वं विहाय च ॥४२॥
सर्वान्वीरानागतांश्च ददर्श रोषपूरितः । दृष्ट्वा सर्वान्स संग्रामे शीघ्रं प्राह रुषा ज्वलन् ॥४३॥

इति श्रीगर्गसंहितायां हयमेधखण्डे सैन्यपालसुतवधो नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

(राजपुत्रकी जीवनप्राप्ति)

सैन्यपाल उवाच

अत्रागताश्च सर्वेऽपि धन्विनो युद्धदुर्मदाः । युवराजो नृपसुतो रणे चात्र न दृश्यते ॥ १ ॥
स किं करिष्यति गृहे मारयित्वा च मत्सुतम् । स भुशुण्डीमुखेनापि तन्मार्गं किं न यास्यति ॥ २ ॥

रणभूमिमें ही सेनापति बहुत रोया ॥ ३२ ॥ तदनन्तर बहुतेरे मंत्रिपुत्र सेनापतिके समक्ष गये और उन्होंने कहा—हे सैन्यपाल ! रुदन मत करिए—आप तो वीर पुरुष हैं ॥ ३३ ॥ इस प्रकार विलाप करनेसे आपका मृत पुत्र आपके पास नहीं आयेगा। संसारमें जन्म लेनेवाले प्रत्येक प्राणीकी मृत्यु अवश्य होती है ॥ ३४ ॥ अतएव धैर्यशाली पुरुष इस विषयमें शोक नहीं करते, किन्तु मूर्ख नित्य शोक किया करते हैं। कुछ बच्चे गर्भमें ही और कुछ जन्म लेनेके बाद मर जाते हैं। कुछ बाल्यावस्थामें, कुछ युवावस्थामें, कुछ वृद्धावस्थामें, कुछ लोग शस्त्रसे, कुछ रोगसे, कुछ दुःखसे और कुछ लोग गिरकर मर जाते हैं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ दैववश कर्मके वशीभूत होकर सभी लोग मरेंगे। कौन किसका पिता है और कौन किसकी प्रिय माता है ॥ ३७ ॥ कर्मानुसार विधाता सबका संयोग और वियोग कराता रहता है। संयोगमें सबको परम आनन्द और वियोगमें दुःख होता ही है ॥ ३८ ॥ किन्तु वे सुख-दुःख मूर्ख मनुष्योंको ही होते हैं। आत्माराम ज्ञानी पुरुषको सुख-दुःख नहीं होता। यदि आत्मघाती बनकर आप प्राण त्यागेंगे ॥ ३९ ॥ तब पुनर्जन्म तथा नरक ये दोनों आपको प्राप्त होंगे। इस लिए आप शोक त्यागकर इस महायुद्धमें इन यदूत्तमोंके साथ युद्ध करिए ॥ ४० ॥ क्षत्रियके लिए धर्मयुद्धसे बढ़कर कल्याणकारी और कोई भी मार्ग नहीं है। जो क्षत्रिय धर्मयुद्ध करके शत्रुके सम्मुख रणमें मरते हैं ॥ ४१ ॥ वे सब लोकोंको लाँघकर विष्णु भगवानके पदको प्राप्त होते हैं। गर्गमुनि बोले—हे राजन् ! इस प्रकार जब सब दैत्योंने समझाया, तब उसने शोक त्याग दिया ॥ ४२ ॥ इसके बाद उसने वहाँ आये हुए सभी वीरोंको रोषसे देखा। सबको संग्रामभूमिमें देखकर क्रोधसे जलता हुआ बोला ॥ ४३ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

सैन्यपाल बोला—सभी दुर्मद धनुर्धारी लोग तो युद्ध करनेके लिए यहाँ आ गये, किन्तु महाराजका पुत्र युवराज समर भूमिमें नहीं दीखता ॥ १ ॥ राजपुत्र घरमें पड़ा क्या कर रहा है। मेरे पुत्रको मरवाकर वह घरमें बैठा हुआ है तो क्या बन्दूकके मुखसे मरकर मेरे पुत्रके मार्गपर नहीं जायगा ? ॥ २ ॥

इत्युक्त्वा स्वसुतं वीरो दुःखादश्रुपरिप्लुतः । खिन्नः प्रत्याह मनसि प्रतिज्ञा किं कृता मया ॥१८॥
अहो विनाऽपराधेन सैन्यपालसुतो हतः । तेन पापेन मत्पुत्रो मरिष्यति न संशयः ॥१९॥
मोचयिष्ये यदि सुतं वीरं मृत्युमुखाद्बलात् । तदा मत्सैनिकाः सर्वे मां शपंति हसंति च ॥२०॥
शोचंतमित्थं नृपतिं च दुःखितं स्वपुत्रशोकेन तु खिन्नमानसम् ।
विलोक्य रोषेण ह्यसमर्पितो ह्युवाच वाक्यं किल सैन्यपालकः ॥२१॥

सैन्यपाल उवाच

एनं मारय शीघ्रं त्वं स्वपुत्रं च कुनन्दनम् । पश्चाद्भवति संग्रामो यादवानां च दानवैः ॥२२॥
त्वं सत्यवादी दैत्येंद्र इदं कर्म च दारुणम् । न करिष्यसि दुःखेन निरयस्ते भविष्यति ॥२३॥
सत्याद्रामसमं पुत्रं तत्याज कोशलेश्वरः । हरिश्चंद्रः प्रियां पुत्रं स्वात्मानं चैव भूपते ॥२४॥
बलिश्चैव महीं सर्वां जीवनं च विरोचनः । स्वकीर्तिं च शिबिश्चैव दधीचिः स्वतनुं तथा ॥२५॥
पृषध्रं तु गुरुश्चैव रंतिदेवश्च भोजनम् । आज्ञाभंगकरं पुत्रं तथा मारय त्वं नृप ॥२६॥
त्वया पूर्वं च यत्प्रोक्तं स्वपुत्रमपि भ्रातरम् । आज्ञाभंगकरं हन्मि शीघ्रमन्यस्य का कथा ॥२७॥
तस्मिन्देशे च वस्तव्यं यस्मिन्भूपश्च सत्यवाक् । तस्मिन्देशे न वस्तव्यं यस्मिन्भूपो ह्यसत्यवाक् २८॥

गर्ग उवाच

इति तद्वाक्यमाकर्ण्य बल्वलः खिन्नमानसः । मारणार्थं तु तस्यापि तस्मै चाज्ञां चकार ह ॥२९॥
ततो जगाम दुःखाढ्यो यदूनां संमुखे तु सः । सैन्यपालस्तु तस्याज्ञां तत्सुताग्रे न्यवेदयत् ॥३०॥
श्रुत्वा प्रत्याह वचनं शीघ्रं तस्मै कुनंदनः ।

राजपुत्र उवाच

कर्त्तव्या च नृपस्याज्ञा त्वया परवशेन वै ॥३१॥
रामेण तु हृतं शीर्षं स्वमातुः पितुराज्ञया । सैन्यपाल प्रतीतोऽहं कृता धर्मक्रिया मया ॥३२॥

मरणान्न भयं मह्यं शतघ्न्यां च निवेशय । इत्युक्त्वा राजपुत्रस्तु स्वकिरीटं तथांगदम् ॥३३॥
मुक्ताहारं स्वर्णहारं कुण्डले कटकानि च । ब्राह्मणेभ्यो ददौ सर्वं ते दुःखादाशिषं ददुः ॥३४॥
ततः स्नात्वा स तीर्थस्य लेपयित्वा च मृत्तिकाम् । तुलसीपल्लवं मालां मुखे कण्ठे निधाय च ॥३५॥
ब्रुवञ्छ्रीकृष्ण रामेति चकार स्मरणं हरेः । सैन्यपालस्तु तं शीघ्रं गृहीत्वा भुजयोर्बलात् ॥३६॥
कारयामास राजेंद्र शतघ्नीवदने रुषा । हाहाकारस्तदैवासीत्सैनिका रुरुदुर्भृशम् ॥३७॥
रुरोद वल्वलस्तत्र रुरुदुस्ते द्विजातयः । दृष्ट्वा शतघ्नीं तत्रापि प्रतप्तां मदपूरिताम् ॥३८॥
ताम्रगोलकसंयुक्तामग्नियुक्तां भयंकराम् । स राजपुत्रः श्रीकृष्णं सर्वव्यापिनमीश्वरम् ॥३९॥
अश्रुपूर्णमुखो भूत्वा प्रत्याह विमलं वचः ॥४०॥
कृष्णं मुकुन्दमरविंददलायताक्षं शंखेन्दुकुंददशनं नरनाथवेषम् ।
इंद्रादिदेवगणवंदितपादपद्मं प्राणप्रयाणसमये च हरिं स्मरामि ॥४१॥
श्रीकृष्ण गोविंद हरे मुरारे श्रीकृष्ण गोविंद कुशस्थलीश ।
श्रीकृष्ण गोविंद व्रजेश भूप श्रीकृष्ण गोविंद भयात्प्रपाहि ॥४२॥
स्मरणात्तव गोविन्द ग्राहान्मुक्तो मतंगजः । स्वायंभुवश्च प्रह्लादो ह्यंबरीषो ध्रुवस्तथा ॥४३॥
आनर्त्तश्चैव कक्षीवान्मृगेंद्राद्बहुला तथा । रैवतश्चंद्रहासश्च तथाऽहं शरणं गतः ॥४४॥
पूर्वं भवति मे मृत्युः संग्रामं च विना ह्यहो । न तोषितश्च प्रधनेऽनिरुद्धो विशिखैर्मया ॥४५॥
न तोषिता यादवाश्च न दृष्टाः कृष्णनंदनाः । शार्ङ्गमुक्तैश्च विशिखैर्न देहः शकलीकृतः ॥४६॥
कुनंदनस्य शूरस्य स्तेनस्येवाभवद्गतिः । त्वद्भक्तं मां च पापिष्ठास्तस्मात्सर्वे हसंति हि ॥४७॥
यं वीक्ष्य भूमौ च पलायते वै यमो मरिष्यंति विनायकाश्च ।
निरंकुशं कृष्णजनं च पूज्यं कथं शतघ्नी किल मां हनिष्यति ॥४८॥

गर्ग उवाच

इत्थं वदति शूरे वै सैन्यपालस्य चाज्ञया । शतघ्नीं मुमुचे कश्चिद्धाहाशब्दस्तदाऽभवत् ॥४९॥
स्मरणात्कृष्णचंद्रस्य चित्रमेकं बभूव ह । शतघ्नी शीतला जाता ज्वाला शांतिं गता नृप ५०॥
दृष्ट्वाऽऽश्चर्यं च तत्रापि जनाः सर्वे नृपादयः । विसिस्मू राजशार्दूल सैन्यपालस्तदाऽब्रवीत् ॥५१॥
शतघ्न्यां शुष्कमदिरा गोलकेन समन्विता । न विद्यते त्वसौ तस्मान्न मृतो रणमण्डले ॥५२॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा प्रोचुर्वीरा रुषान्विताः । अयं निष्किल्बिषः शूरः कृष्णभक्तो महामतिः ॥५३॥
रक्षितस्तेन दुःखाद्वै पुनर्हंतुं च नार्हसि । तेषां वाक्यं समाकर्ण्य सैन्यपालो रुषान्वितः ॥५४॥
ददर्श राजपुत्रं वै शतघ्नीवदने स्थितम् । जपंतं कृष्ण कृष्णेति स्रजा मीलितलोचनम् ॥५५॥
दृष्ट्वा तं च पुनर्हंतुं शतघ्नीं मुमुचे खलः । सा शतघ्नी तदा भिन्ना शब्दो वज्रनिपातवत् ॥५६॥
बभूव सैन्यपालस्तु गोलकेन मृतोऽभवत् । तथा तदनुगास्तस्य ज्वालया ज्वलिताः किल ॥५७॥
हाहाशब्दं प्रकुर्वंतो दुद्रुवुः केचिदेव हि । केचिद्वै बधिरीभूताः केचिद्धूमेन विह्वलाः ॥५८॥
ततश्च दृशुः सर्वे नृपपुत्रं च निर्भयम् । चक्रुर्जयजयारावं बल्वलाद्या नृपेश्वर ॥५९॥

दैत्या ऊचुः

यं च रक्षति श्रीकृष्णस्तं को भक्षति मानवः । भक्तं हंतुं चागतो यः स विनश्यति दैवतः ॥६०॥
तस्मात्कृष्णसमो नास्ति येनायं रक्षितो भयात् । सर्वे वयं नमस्यामस्तं कृष्णं भक्तवत्सलम् ॥६१॥

इति श्रीगर्गसंहितायां हयमेधखण्डे राजपुत्रजीवनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

(बल्वल दैत्यके साथ यादवोंका युद्ध)

गर्ग उवाच

अथ वै बल्वलः पुत्रं रोहयित्वा रथे मुदा । तेन सार्द्धंससैन्यस्तु युद्धार्थं प्रययौ त्वरम् ॥ १ ॥
नानाशस्त्रधराः सर्वे नानावाहनसंस्थिताः । नानाकंचुकसंयुक्ता नानारूपा भयंकराः ॥ २ ॥
गजेंद्रसदृशाः पुष्टा मृगेंद्रसमविक्रमाः । कंपयंतश्च पृथिवीं वृष्णीनां संमुखे ययुः ॥ ३ ॥
तानागतान्बहून्दैत्याननिरुद्धस्तु शंकितः । रक्षणार्थं च सर्वेषां चक्रव्यूहमकल्पयत् ॥ ४ ॥
सर्वतो यादवाः शूराः सर्वशस्त्रधराः किल । गजै रथैस्तुरंगैश्च बभूवुः परिमंडिताः ॥ ५ ॥
तेषां मध्ये स्थिता राजन्निंद्रनीलादयो नृपाः । अक्रूरकृतवर्माद्यास्तेषां मध्ये स्थिताः शुभाः ॥ ६ ॥
तेषां मध्ये च राजेंद्र गदाद्याः कृष्णभ्रातरः । तेषां मध्ये महावीराः सांबदीप्तिमदादयः ॥ ७ ॥
चक्रव्यूहं विनिर्माय चेदृशं तत्र भूपते । तन्मध्ये कार्ष्णिपुत्रस्तु दंशितः संस्थितोऽभवत् ८ ॥
बभूव तुमुलं युद्धं तत्र सिंधुतटे नृप । यदुभिर्दानवानां च ह्यब्धीनामब्धिभिर्यथा ॥ ९ ॥
रथिनो रथिभिस्तत्र गजवाहा गजैः सह । अश्ववाहैरश्ववाहा वीरा वीरैः परस्परम् ॥ १० ॥
युयुधुस्तीक्ष्णबाणैश्च खड्गचर्मगदर्ष्टिभिः । पाशैः परश्वधै राजञ्छतघ्नीभिर्भुशुण्डिभिः ॥११॥
हन्यमानाश्च यदुभिर्बल्वलस्य च सैनिकाः । सर्वे स्वं स्वं रणं त्यक्त्वा दुद्रुवुस्ते भयान्विताः १२॥
रुरोध गगनं सूर्यं सैन्यपादरजो भृशम् । अंधकारे महादैत्या रणात्सर्वे पराङ्मुखाः ॥१३॥
केचिन्निपतिताः कूपे केचिद्गर्ते ह्यधोमुखाः । केचित्तडागे वाप्यां वै यदूनां सायकैर्हताः ॥१४॥
ततो दृष्ट्वा बलं भग्नं बल्वलो रोषपूरितः । चतुर्भिर्मंत्रिणां पुत्रैः स्वपुत्रेणाजगाम ह ॥१५॥
अनिरुद्धो बल्वलेन तत्रायुद्ध्यन्महामृधे । दुर्नेत्रेण बृहद्बाहुर्दुर्मुखेनारुणो बली ॥१६॥

गर्गमुनि बोले—हे राजन् ! तदनन्तर बल्वल दैत्य सहर्ष पुत्रको रथपर बिठाकर सेनाके साथ बड़ी शीघ्रतापूर्वक युद्धके लिए चला ॥ १ ॥ उसके सैनिक विविध प्रकारके शस्त्र धारण किये, विविध वाहनों-पर सवार, अनेक प्रकारके कवच पहने और विविध प्रकारके भयंकर रूपवाले थे ॥ २ ॥ वे गजराजके समान हृष्ट-पुष्ट और सिंहसदृश बलवान् दानव पृथिवीको कँपाते हुए यादवोंके सम्मुख पहुँचे ॥ ३ ॥ उन बहुतेरे दैत्योंको सहसा आते देख सशंक अनिरुद्धने यादवोंकी रक्षाके लिए चक्रव्यूह बनाया ॥ ४ ॥ सब प्रकारके शस्त्र धारण किये हुए वीर यादव हाथी, घोड़े, रथ और घोड़ोंपर सवार होकर चारों ओर खड़े हो गये ॥ ५ ॥ उनके बीचमें इन्द्रनील आदि राजे खड़े हुए। उनके बीचमें अक्रूर और कृतवर्मा आदि यादव खड़े हुए ॥ ६ ॥ हे राजेन्द्र ! उनके मध्यमें गद आदि श्रीकृष्णके भ्राता और उनके भी मध्यमें साम्ब-दीप्तिमान् आदि महावीर यादव खड़े हुए ॥ ७ ॥ इस प्रकार चक्रव्यूहकी रचना करके सबके मध्य अनिरुद्ध स्वयं खड़े हुए ॥ ८ ॥ इसके बाद हे राजन् ! उस समुद्रतटपर दानवों और यादवोंमें ऐसा भीषण युद्ध आरम्भ हो गया, जैसे दो समुद्र लड़ रहे हों ॥ ९ ॥ तत्काल विशाल रणभूमिमें रथियोंका रथियोंसे, हाथीसवारोंका हाथीसवारोंसे, घुड़सवारोंका घुड़सवारोंसे और पैदल सैनिकोंका पैदल सैनिकोंसे घमासान युद्ध होने लगा ॥ १० ॥ तीक्ष्ण बाण, खड्ग, ढाल, गदा, फाँसी, फरसा, बन्दूक और तोपें चलने लगीं ॥ ११ ॥ यादवों द्वारा मारे हुए बल्वल-के सैनिक भयभीत हो उठे और रण छोड़कर भाग गये ॥ १२ ॥ उस समय सेनाके पैरोंसे उड़ी धूलने सूर्य और आकाशको ढँक लिया। उस अन्धकारके कारण सब दैत्य युद्धसे विमुख हो गये ॥ १३ ॥ कितने कुछ दैत्य कुएँमें गिर पड़े, कुछ नीचा मुख करके गढ़ेमें लुढ़क गये, कुछ तालावमें और बावड़ियोंमें जा गिरे ॥ १४ ॥ अपनी सेनाको भागते देख अत्यन्त कुपित बल्वल चार मंत्रिपुत्रों तथा एक अपने पुत्रको लेकर आ पहुँचा ॥ १५ ॥ उनके पहुँचते ही अनिरुद्ध बल्वलसे, बृहद्बाहु दुर्नेत्रसे, अरुण दुर्मुखसे, न्यग्रोध कुम्भनाभसे,

न्यग्रोधो दुःस्वभावेन दुर्मदेन कविस्तथा । कुनन्दनेन संग्रामे कृष्णपुत्रः सुनंदनः ॥१७॥
एवं बभूव संग्रामो देवविस्मयकारकः । प्रगतास्तत्र राजेंद्र सर्वे कार्तिकवासराः ॥१८॥
बल्वलः कुपितो राजन्धनुष्टंकारयन्मुहुः । इंद्रनीलं त्रिभिर्बाणैः षड्भिर्हेमांगदं मृधे ॥१९॥
अनुशाल्वं च दशभिरक्रूरं दशभिस्तथा । गदं द्वादशभिर्बाणैर्युयुधानं च पंचभिः ॥२०॥
पंचभिः कृतवर्माणमुद्धवं दशभिः शरैः । कार्ष्णिजं शतबाणैश्च विव्याध समरेऽसुरः ॥२१॥
तच्छरैः सरथाः सर्वे बभ्रमुर्घटिकाद्वयम् । तुरगाः पंचतां प्राप्ताश्चूर्णीभूता रथा रणे ॥२२॥
तद्धस्तलाघवं दृष्ट्वा यादवा विस्मयं गताः । रथानारुरुहुः सर्वेऽनिरुद्धाद्याश्च मानद ॥२३॥
बल्वलोऽपि ययौ राजन्नन्यान्वीरान्विलोकितुम् । अनिरुद्धस्ततः प्राह क्रोधादरुणलोचनः ॥२४॥
तिष्ठ तिष्ठ ममाग्रेऽद्य दर्शयित्वा पराक्रमम् । कुत्र यास्यसि हे दैत्य पश्य मन्निशिताञ्छरान् ॥२५॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा युवराजः कुनन्दनः । उवाच वचनं शीघ्रं बल्वलस्य च पश्यतः ॥२६॥

राजपुत्र उवाच

दैत्येंद्रं च रणे द्रष्टुं त्वं च नार्हसि कार्ष्णिज । तस्मान्मदीयं च बलं पूर्वं पश्य मृधांगणे ॥२७॥

अनिरुद्ध उवाच

त्वं बालोऽसि दैत्यपुत्र युद्धं कर्तुं च नार्हसि । तस्माच्च स्वगृहं गत्वा क्रीडनं कुरु कृत्रिमैः ॥२८॥

राजपुत्र उवाच

अत्र पश्य महावीरैर्बालस्य मम क्रीडनम् । गृहे यदि करिष्यामि तत्र कोपि न पश्यति ॥२९॥
इत्युक्त्वा चण्डकोदण्डे दधार शतसायकान् । तताड कार्ष्णिजं तैश्च रथस्थं दर्शयन्बलम् ॥३०॥
तैर्बाणैः सरथः सोऽपि ससूतः सतुरंगमः । विभ्रमन्नभमार्गेण पपात कपिलाश्रमे ॥३१॥
हाहाकारस्तदैवासीदनिरुद्धे गते सति । ततः क्रुद्धाश्च तं हंतुं सांबाद्या आययुर्मृधे ॥३२॥
आगतांस्तान्बहून्दृष्ट्वा युवराजः प्रहर्षितः । सांबं च दशभिर्बाणैः पंचभिश्च मधुं तथा ॥३३॥

कवि दुर्मदसे और श्रीकृष्णके पुत्र सुनन्द कुनन्दनसे लड़ने लगे ॥ १६ ॥ १७ ॥ इस प्रकार देवताओंको विस्मित करनेवाला वह युद्ध पूरे कार्तिक मास भर चलता रहा ॥ १८ ॥ लड़ते-लड़ते कुपित बल्वलने धनुषका टंकार करके तीन बाणोंसे इन्द्रनीलको और छ बाणोंसे हेमांगदको मारा ॥ १९ ॥ इसी तरह अनुशाल्वको दस, अक्रूरको दस, गदको बारह, सात्यकिको पाँच, कृतवर्माको पाँच, उद्धवको दस और अनिरुद्धको सौ बाण बल्वलने मारे ॥ २० ॥ २१ ॥ वे जिन-जिनको लगे, वे अपने-अपने रथों समेत दो घड़ी तक घूमते रहे। उनके रथ चूर-चूर हो गये और घोड़े मर गये ॥ २२ ॥ उस दैत्यका हस्तलाघव देखकर सभी यादव चकित हो गये। अनिरुद्ध आदि वीर दूसरे-दूसरे रथोंपर जा बैठे ॥ २३ ॥ अब बल्वल भी अन्य वीरोंको देखनेके लिए आगे बढ़ा। तब क्रोधसे आँखें लाल करके अनिरुद्ध बोले—हे दैत्य! तू आज अपना पराक्रम प्रदर्शित करता हुआ मेरे समक्ष खड़ा हो जा। अब तू कहाँ जायगा, मेरे तीक्ष्ण बाणोंका कौशल देख ॥ २४ ॥ ॥ २५ ॥ अनिरुद्धकी बात सुनकर बल्वलका कुनन्दन नामक युवराज बोला ॥ २६ ॥ राजपुत्र कुनन्दनने कहा—हे अनिरुद्ध! तुम दैत्येन्द्र बल्वलके पराक्रमको देखने योग्य नहीं हो। अतएव इस रणभूमिमें पहले मेरा पराक्रम देखो ॥ २७ ॥ अनिरुद्ध बोले—हे दैत्यपुत्र! तुम अभी बच्चे हो, इस कारण युद्ध नहीं कर सकते। तुम अपने घर जाकर खिलौनोंसे खेलो ॥ २८ ॥ राजपुत्र कुनन्दनने कहा—हे अनिरुद्ध! आज मुझ अबोध बालकका बड़े-बड़े वीरोंके साथ होनेवाला खेल देखो। यदि घरपर खेलूँ तो मेरे खेलको कोई नहीं देखेगा ॥२९॥ यह कहकर उसने अपने प्रचण्ड धनुषपर एक सौ बाण चढ़ाये और उन सबको रथारूढ़ अनिरुद्धके ऊपर छोड़ दिया ॥ ३० ॥ उन बाणोंकी मारसे रथ, सारथी तथा घोड़ों समेत अनिरुद्ध आकाशमें उड़ गये और घूमते-घूमते कपिलाश्रममें जा गिरे ॥ ३१ ॥ इस प्रकार अनिरुद्धके अलक्षित हो जानेपर यादवी सेनामें हाहाकार मच गया और युवराज कुनन्दनको मारनेके लिए सांब आदि योद्धा रणभूमिमें उतर आये ॥३२॥ उन्हें

बृहद्बाहुं त्रिभिर्बाणैश्चित्रभानुं च पंचभिः । वृकं च दशभिर्युद्धे सप्तभिश्चारुणं शरैः ॥३४॥
पंचभिः संग्रामजितं सुमित्रं च त्रिभिः शरैः । दीप्तिमंतं त्रिभिर्बाणैर्भानुं च दशभिर्मृधे ॥३५॥
वेदबाहुं पंचभिश्च पुष्करं सप्तभिः शरैः । अष्टभिः श्रुतदेवं च संमुखस्थं सुनन्दनम् ॥३६॥
विंशत्या सायकैस्तीक्ष्णैर्विरूपं दशभिस्तथा । चित्रबाहुं च नवभिर्न्यग्रोधं दशभिः शरैः ॥३७॥
कविं च नवभिर्बाणैस्तताड प्रधने बली । शंखं दध्मौ मुदायुक्तो नदन्मानी कुनन्दनः ॥३८॥
तद्बाणैर्विभ्रमंतश्च सरथाः सतुरंगमाः । पेतुः केचिद्योजने च पंचक्रोशे द्वियोजने ॥३९॥
हाहाकारे तदा याते सेनायां नृपसत्तम । रुरुदुर्यादवाः सर्वे रामकृष्णेति वादिनः ॥४०॥
तदा गदादयः सर्वे मुंचंतो निशिताञ्छरान् । इन्द्रनीलादयश्चैव ह्याजग्मुः क्रोधपूरिताः ॥४१॥
दृष्ट्वा समागतान् वीरान्राजपुत्रो महाबलः । विव्याध सायकैः सर्वे ह्यभूवन्मूर्च्छिता रणे ॥४२॥
तत्पश्चाद्यादवाञ्छूरान्बाणौघैर्बल्वलात्मजः । तताड तच्छरै राजन्बहवः पंचतां गताः ॥४३॥
संग्रामे तस्य बाणौघै रुधिराणां नदी ह्यभूत् । हस्तिनो यत्र मग्नाश्च सजीवास्ते म्रियंति च ॥४४॥
हाहाकारस्तदैवासीत्सेनायां च नभस्तले । महेन्द्रवरुणाद्याश्च भयं प्रापुश्च विस्मिताः ॥४५॥
जयं दृष्ट्वाऽसुराः सर्वे बभूवुर्मुदिताननाः ।

गर्ग उवाच

अथ वै मूर्च्छितं दृष्ट्वाऽनिरुद्धं कपिलो मुनिः ॥४६॥
हतयानं निपतितं शरनिर्भिन्नवक्षसम् । चकार तं तु चैतन्यं हस्तेन तपसा मुनिः ॥४७॥
ततः सोऽपि समुत्थाय सिद्धं नत्वा यदूत्तमः । सेतुमार्गेणाजगाम यदून्सर्वान्प्रहर्षयन् ॥४८॥
अथान्यं रथमारुह्य प्रतिशार्ङ्गधरो बली । निचखान शरं चैकं राजपुत्ररथे रुषा ॥४९॥
स शरस्तद्रथं नीत्वाससूतं सतुरंगमम् । चतुर्मुहूर्त्तपर्यंतं भ्रामयामास चाम्बरे ॥५०॥

आते देख युवराज बहुत प्रसन्न हुआ और तुरन्त दस बाण साम्ब तथा पाँच बाण मधुको मारा ॥ ३३ ॥ इसी प्रकार तीन बाण बृहद्बाहुको, पाँच बाण चित्रभानुको, दस बाण वृकको, सात बाण अरुणको, पांच बाण संग्रामजित्‌को, तीन बाण सुमित्रको, तीन बाण दीप्तिमान्‌को, दस बाण भानुको, पाँच बाण वेदबाहुको, सात बाण पुष्करको, आठ बाण श्रुतदेवको, बीस बाण सुनन्दनको, दस बाण विरूपको, नौ बाण चित्रबाहुको, दस बाण न्यग्रोधको और नौ बाण कविको राजपुत्र कुनन्दनने मारा। फिर भीषण गर्जन करते हुए अपना विजयसूचक शंख बजाया ॥ ३४–३८ ॥ उस कुनन्दनके बाणोंसे रथ और घोड़ों समेत घूमते हुए उन सब यादवोंमेंसे कोई एक योजन, कोई दो योजन और कोई पाँच कोस दूर जा गिरा ॥ ३९ ॥ इससे सारी यादवी सेनामें हाहाकार मच गया और 'हे राम—हे कृष्ण' ऐसा कहते हुए सब यादव रोने लगे ॥ ४० ॥ तब गदादिक तथा इन्द्रनील आदि सभी वीर अपने तीक्ष्ण बाणोंकी बौछार करते हुए बड़े क्रोधसे वहां आये ॥ ४१ ॥ महाबली राजपुत्र कुनन्दनने उन्हें आते देखा, तैसे ही बाणवर्षा करके उन सबको मूर्छित कर दिया ॥ ४२ ॥ इसके बाद अपनेको वीर समझनेवाले यादवोंको बल्वलके पुत्रने एक साथ बहुतसे बाण मारे। जिससे उनमेंसे बहुतेरे मर गये ॥ ४३ ॥ रणभूमिमें उसकी बाणवर्षासे रुधिरकी नदी बहने लगी। जिसमें डूब-डूबकर जीवित हाथी मरने लगे ॥ ४४ ॥ उस समय सेना तथा आकाशमें हाहाकार मच गया और इन्द्र-वरुण आदि देवता भी विस्मित तथा भयभीत हो उठे ॥ ४५ ॥ उधर अपनी विजय देखकर असुर प्रसन्न हो गये। गर्गमुनि बोले—हे राजन्! अनिरुद्धको मूर्छित देखकर कपिल मुनिने—जिनके घोड़े मर गये थे, जो धरतीपर बेहोश पड़े थे और बाणोंसे जिनका हृदय विदीर्ण हो गया था, उन अनिरुद्धको अपने तपोबल तथा हाथकी सहायतासे चैतन्य किया ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ तब यदुश्रेष्ठ अनिरुद्ध उठ खड़े हुए और कपिल मुनिको प्रणाम करके उसी सेतुके मार्गसे यादवोंको हर्षित करते हुए रणांगणमें आ गये ॥ ४८ ॥ तदनन्तर दूसरे रथमें बैठकर अनिरुद्धने प्रतिशार्ङ्ग नामका धनुष हाथमें लेकर बड़े क्रोधसे राजपुत्र कुनन्दनके रथमें एक बाण मारा ॥ ४९ ॥ उस

ततश्च ददृशुः सर्वे दानवाश्चैव वृष्णयः। गगने विभ्रमंतं वै सरथं च कुनंदनम् ॥५१॥
अथ सांबादयो वीरा रथानारुह्य वेगतः। अनुशाल्वादयश्चैवाजग्मुः सर्वे धनुर्धराः ॥५२॥

इति श्रीगर्गसंहितायां हयमेधखण्डे दैत्ययादवयुद्धवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

अथ पंचत्रिंशोऽध्यायः

(अनिरुद्धकी विजय)

गर्ग उवाच

अथ वै तत्र संग्रामेऽनुशाल्वो दुर्मुखेन च। युयुधे चेन्द्रनीलस्तु दुर्नेत्रेण दुरात्मना ॥ १ ॥
हेमांगदो दुर्मदेन दुःस्वभावेन सारणः। एवं परस्परं युद्धं बभूव रणमण्डले ॥ २ ॥
सारणो गदया दैत्यं मारयामास वेगतः। हेमांगदस्त्रिभिर्बाणैस्तताड दुर्मदं मृधे ॥ ३ ॥
स स्वबाणैर्मृधे तं तु सोऽपि शक्त्या जघान तम्।
इन्द्रनीलश्च दुर्नेत्रं जघान लीलया शरैः ॥ ४ ॥
दुर्मुखं चानुशाल्वो वै चकार विरथं शरैः। स चान्यं रथमारुह्य चक्रे तं विरथं शरैः ॥ ५ ॥
परिघेणानुशाल्वस्तु जघान दुर्मुखं मृधे। दुर्नेत्रे दुःस्वभावे च दुर्मुखे दुर्मदे हते ॥ ६ ॥
अवशेषा दुद्रुवुर्वै दैत्याः प्राणपरीप्सया। ततः पपात चाकाशाद्राजपुत्रश्च विभ्रमन् ॥ ७ ॥
मूर्च्छितोऽभूद्रणे राजन्नुद्वमन् रुधिरं मुखात्। रथश्चांगारवत्तस्य भग्नोऽभूत्तुरगा हताः ॥ ८ ॥
ततश्च बल्वलः क्रुद्धः पुत्रं दृष्ट्वा च मूर्च्छितम्। मुमोच धनुषा बाणाननिरुद्धाय वेगतः ॥ ९ ॥
तानागतान्दश शरान्दृष्ट्वा रुक्मवतीसुतः। स्वबाणैस्तीक्ष्णधारैश्च चिच्छेद स्वर्णभूषितैः ॥१०॥
ततो दैत्यो रुषाविष्टश्चापे धृत्वा पुनः शरम्। उवाच माधवं युद्धे प्रद्युम्नं शकुनिर्यथा ॥११॥

बाणने सारथी, रथ तथा घोड़ों समेत चार मुहूर्ततक आकाशमें घुमाया ॥ ५० ॥ तब सभी दानवों और यादवोंने आकाशमें घूमते हुए कुनन्दनको देखा ॥ ५१ ॥ तब साम्ब तथा अनुशाल्व आदि वीर रथारूढ़ हो धनुष ले-लेकर वहाँ आ पहुँचे ॥ ५२ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

बल्वल उवाच

अनेन बाणेन यदुप्रवीर धनुर्द्धरं त्वां रणमानिनं च।
मृधे हनिष्ये न वदाम्यसत्यं रक्षस्व प्राणान्यदि जीवितेच्छा ॥१२॥

सोऽपि श्रुत्वा स्वकोदंडे शरमेकं निधाय च। प्रत्याह प्रहसन्वाक्यं प्रद्युम्नः शकुनिं यथा ॥१३॥

अनिरुद्ध उवाच

कः केन हन्यते जंतुस्तथा कः केन रक्ष्यते। हनिष्यति सदा कालस्तथा रक्षति दुःखतः ॥१४॥
अहं करोमि कर्त्ताऽहं हर्त्ताऽहं पालकोऽप्यहम्। यो वदेच्चेदृशं वाक्यं स विनश्यति कालतः ॥१५॥
नाहं त्वां तु विजेष्यामि न विजेष्यसि त्वं तु माम्।
त्वां मां जेष्यति विश्वात्मा कालरूपो जगत्पतिः ॥१६॥
न जाने कस्य कुरुते जयं वा च पराजयम्। कालस्तं मनसा वंदे विजयार्थे च दानव ॥१७॥
तस्मादेव हि मनसा कालं हि बलिनां वरम्। मद्वाक्याच्च महाऽज्ञानं विहाय त्वं रणं कुरु ॥१८॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा बल्वलो विस्मयान्वितः। तमाह तोषितः प्रीतो यथा त्वाष्ट्रो मरुत्पतिम् ॥१९॥

बल्वल उवाच

कर्म प्रधानं भूमध्ये कर्मैव गुरुरीश्वरः। उच्चावचत्वं भवति कर्मणा वै यदूत्तम ॥२०॥
सहस्रेषु गवां वत्सः यथा विंदति मातरम्। तथा शुभाशुभं येन कृतं तिष्ठत्सु पश्यति ॥२१॥
ततो जेष्यामि संग्रामे भवंतं दृढकर्मणा। मया कृतश्च शपथः प्रतीकारं कुरु त्वरम् ॥२२॥

अनिरुद्ध उवाच

प्रधानं मन्यसे कर्म विना कालेन तत्फलम्। न विद्यते यथा पाके कृते स्याद्विघ्नता क्वचित् ॥२३॥
पाकप्रकारे पाकश्च विना कर्त्रा न जायते। तस्माद्वदंति कर्त्तारं कर्मकालात्परं वरम् ॥२४॥
स कर्त्ता कृष्णचंद्रस्तु गोलोकेशः परात्परः। येन वै निर्मिताः सर्वे ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥२५॥

चढ़ाकर अनिरुद्धसे इस तरह बोला, जैसे शकुनी प्रद्युम्नसे बोला था ॥ ११ ॥ बल्वलने कहा—हे यदुप्रवीर! धनुर्धर तथा रणाभिमानी तुमको मैं इसी बाणसे मारूँगा। यदि जीनेकी इच्छा हो तो प्राण बचाकर भाग जाओ ॥ १२ ॥ यह सुनकर अनिरुद्धने अपने धनुषपर बाण चढ़ाकर इस प्रकार कहा, जैसे प्रद्युम्नने शकुनीसे कहा था ॥ १३ ॥ अनिरुद्ध बोले—अरे मूर्ख! कौन किसको मारता है और कौन किसकी रक्षा करता है। काल ही मारता है और वही सबकी रक्षा करता है॥१४॥ सब कुछ मैं करता हूँ, मैं ही कर्ता और हर्ता हूँ, मैं पालक हूँ और मैं ही मारनेवाला हूँ, ऐसा कहनेवाले लोग कालके गालमें जाकर नष्ट हो जाते हैं ॥१५॥ न मैं तुमको जीतूँगा और न तुम मुझे जीतोगे। हम और तुम दोनोंको वह विश्वात्मा महाकालरूपी जगत्पति जीतेगा ॥ १६ ॥ मैं नहीं जानता कि वह किसकी जय और किसकी पराजय करेगा। हे बल्वल! अपनी विजयके लिए मैं मनसे उस कालकी वन्दना करता हूँ ॥ १७ ॥ अतएव हे दानव! कालको सबसे बलवान् समझ और अज्ञान त्यागकर मेरे साथ युद्ध करो ॥ १८ ॥ अनिरुद्धके वचन सुनकर बल्वल दैत्य बड़े विस्मयमें पड़ गया। तदनन्तर प्रसन्न होकर इस प्रकार बोला, जैसे वृत्रासुर इन्द्रसे बोला था ॥ १९ ॥ बल्वलने कहा—हे यदूत्तम! इस भूतलपर कर्म ही मुख्य है, कर्म ही गुरु और कर्म ही ईश्वर है। कर्मसे ही उच्च और नीच गति प्राप्त होती है ॥ २० ॥ जैसे हजारों गौओंके बीचमें बछड़ा अपनी माँको खोज लेता है, वैसे ही अपने कर्ताको शुभाशुभ कर्म खोज लेते हैं ॥ २१ ॥ अतएव अपने दृढ़ कर्मके द्वारा मैं तुम्हें परास्त करूँगा। क्योंकि मैंने ऐसी प्रतिज्ञा की है। अब तुम जो चाहो, सो प्रतीकार करो ॥ २२ ॥ अनिरुद्ध बोले—हे दैत्यराज! यदि तुम कालको त्यागकर कर्मको ही प्रधान मानते हो तो कर्म कालके विना फल दे ही नहीं सकता। जैसे कभी-कभी भोजन बनकर तैयार हो जानेपर भी भोजन करनेमें कोई विघ्न आजाता है ॥ २३ ॥ पाककार्यमें कर्ताके विना पाक (भोजन) बन ही नहीं सकता। अतएव काल और कर्मसे श्रेष्ठ कर्ताको ही कहते हैं ॥ २४ ॥ कर्ता

वल्वल उवाच

श्रीकृष्णपौत्र धन्यस्त्वमृषीन् वाक्यैर्विडंबयन् । त्रिभिर्गुणैः पृथग्भूतः स्वभावो दुस्त्यजो नृणाम् २६॥
सावधानतया चाद्य पश्य प्राणहरं शरम् । संप्राप्तं यादवश्रेष्ठ कृत्वा युद्धे मनः स्वकम् ॥२७॥
इत्युक्त्वा व्यसृजन्मायां स्वबाणेन मयस्य च । तदाऽभवत्तमस्तीव्रं तत्र कोऽपि न लक्ष्यते ॥२८॥
न च स्वीयो न पारक्यो विदामास जनान्बहून् । शिलाः पर्वततुंगाभाः पतंति सुभटोपरि ॥२९॥
वार्भिर्हताश्च सर्वेऽपि व्याकुलाश्च समंततः । विद्युतो विलसंत्यत्र गर्जन्ति वारिदा भृशम् ॥३०॥
वर्षंति रुधिरं चोष्णं मुंचंति सशकृज्जलम् । गगनात्पतमानानि कबंधानि शिरांसि च ॥३१॥
तदा व्याकुलिताः सर्वे परस्परभयातुराः । पलायनपरा जाताः संग्रामे च यदूत्तमाः ॥३२॥
तदाऽनिरुद्धः प्रधने स्मृत्वा कृष्णपदद्वयम् । मायां तां स विधूयाथ मोहनास्त्रेण लीलया ॥३३॥
तदा दिशः प्रसेदुस्ताः सूर्यस्त्वपरिवेषवान् । मेघा यथागतं याताश्चपलाः शांतिमागताः ॥३४॥
तदा दैत्यश्च पुरतो दृश्यते दानवैर्युतः । नानायुधधरो राजन्मायावी चण्डविक्रमः ॥३५॥
ब्रह्मास्त्रं संदधे क्रुद्धो यादवानां वधाय च । ब्रह्मास्त्रेण तु ब्रह्मास्त्रं जहार माधवः पुनः ॥३६॥
ततश्च वल्वलः क्रुद्धो गांधर्वीं मोहिनीं पराम् । विजयार्थे च संग्रामे मायां सोऽपि चकार ह ॥३७॥
गंधर्वनगरं यत्र दृश्यते नृपसत्तम । न दृश्यते च संग्रामः स्वर्णसौधानि कोटिशः ॥३८॥
बभूवुस्तत्र गंधर्व्यो नृत्यंत्यो गानतत्पराः । वीणातालमृदंगैश्च कलकंठैश्च कंदुकैः ॥३९॥
हावभावकटाक्षैश्च कटिवेणीनिदर्शनैः । तोषयन्त्यो जनान्सर्वान्सुन्दर्यः कञ्जलोचनाः ॥४०॥

गोलोकके स्वामी तथा परात्पर श्रीकृष्णचन्द्र ही हैं। उन्होंने ही ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवादि देवताओंको बनाया है ॥ २५ ॥ यह सुनकर बल्वल बोला—श्रीकृष्णके पौत्र होनेके नाते तुम तुम धन्य हो। तुम अपनी बातोंसे ऋषियोंकी भी विडम्बना कर रहे हो और सत्त्वादि तीनों गुणोंसे रहित हो। मनुष्यका स्वभाव दुस्त्यज होता है ॥ २६ ॥ अब सावधान होकर मेरे इस बाणको देखो, जो तुम्हारा प्राण हरण करनेवाला है। हे यादवश्रेष्ठ! अब अपना मन युद्धमें लगाओ और मेरे बाणको रोको ॥ २७॥ यह कहकर बाण छोड़नेके साथ बल्वलने मय दानवकी मायाका विस्तार किया, जिससे चारों ओर प्रबल अँधेरा छा गया। जिससे कुछ भी देखना दूभर हो गया ॥२८॥ लोगोंको यह भी नहीं ज्ञात हो सका कि कौन अपना है और कौन पराया। रणभूमिमें बड़े-बड़े वीरोंके ऊपर पर्वतों जैसी बड़ी-बड़ी चट्टानें बरसने लगीं ॥ २९॥ उसके ऊपरसे जलकी वर्षाके कारण सबलोग अत्यन्त व्याकुल हो उठे। सहसा बिजली गिरने लगी और मेघ गरजने लगे ॥ ३० ॥ तत्काल वे मेघ जलके साथ रुधिर बरसाने लगे। तनिक देर बाद आकाशसे मृत मनुष्योंके सिर तथा सिरविहीन धड़ गिरने लगे ॥३१॥ यह देखकर सबलोग व्याकुल तथा भयभीत हो उठे और बहुतेरे यादव वीर रणभूमिसे भागने लगे ॥ ३२ ॥ तब अनिरुद्धने भगवान कृष्णके दोनों चरणोंका स्मरण करके अपने मोहनास्त्रसे उस मायाको शान्त कर दिया ॥ ३३ ॥ इससे सभी दिशायें निर्मल हो गयीं, सूर्यका ऊपरी परिवेश मिट गया, मेघ जैसे आये थे वैसे ही चले गये और बिजलीकी कड़क तथा चमक भी समाप्त हो गयी ॥ ३४ ॥ इसके बाद अगणित दानवोंके साथ मायावी तथा प्रचण्ड पराक्रमी दैत्य बल्वल दिखायी पड़ा। वह विविध प्रकारके शस्त्रास्त्र धारण किये हुए था ॥ ३५ ॥ उस क्रुद्ध दैत्यने यादवोंका वध करनेके लिए अपने धनुषपर ब्रह्मास्त्रका संधान किया, किन्तु अनिरुद्धने अपने ब्रह्मास्त्रसे उसके ब्रह्मास्त्रको शान्त कर दिया ॥ ३६ ॥ इससे कुपित होकर बल्वलने विजयप्राप्तिके निमित्त रणभूमिमें अत्यन्त मोहमयी गान्धर्वी मायाका विस्तार किया ॥ ३७ ॥ हे नृपसत्तम! उस मायाके प्रभावसे गन्धर्वनगर दीखने लगे और करोड़ों सोनेके महल दिखायी देने लगे, किन्तु संग्रामस्थल कहीं नहीं दिखायी देता था ॥ ३८ ॥ उस मायाके प्रभावसे वहाँ नाचती-गाती हुई गन्धर्वियाँ दीखने लगीं। वीणा, मृदंग और तालियाँ बजने लगीं। कंदुक (गेंद) क्रीडा, हावभाव, कटाक्ष तथा कमर और वेणीके प्रदर्शनसे वे कमलनयनी सुन्दरियाँ वहाँ एकत्रित मनुष्योंको रिझाने लगीं ॥३९॥४०॥

तासां दृष्ट्वा च सौंदर्यं यादवाः स्मरविह्वलाः । ऊचुः परस्परं सर्वे धृत्वा शस्त्राणि भूतले ॥४१॥
वयं कुत्रागताः सर्वे स्वर्लोके किं तु दैवतः । यत्र नृत्यंति सुन्दर्यः कलकण्ठ्यो मनोहराः ॥४२॥
आसां लावण्यजलधौ वयं मग्नाः स्मरातुराः । कथं भविष्यति जयो रणं चात्र न दृश्यते ॥४३॥
इति ब्रुवत्सु सर्वेषु बल्वलः क्रोधपूरितः । शीघ्रं निस्त्रिंशमादाय हंतुं सर्वान्समाययौ ॥४४॥
आगत्य खड्गेन यदुप्रवीरान्विमोहितान्सोऽपि सहस्रशश्च ।
जघान युद्धे यदि ते निपेतुर्दृष्ट्वाऽनिरुद्धस्तु रुषा तमूचे ॥४५॥
किं करिष्यसि संग्रामेऽधर्मं सद्भिर्विगर्हितम् । मोहितानां मारणे च न श्लाघा ते भविष्यति ॥४६॥
यदि शक्तिः शरीरेऽस्ति मया सार्धं रणं कुरु ।
इति तद्वाक्यमाकर्ण्य बल्वलो बलदर्पितः । आजगाम पदातिर्वै खड्गचर्मधरो नदन् ॥४७॥
तमापतंतं स निरीक्ष्य रोषाद्रथादवप्लुत्य मनोजपुत्रः ।
कृतांतदण्डेन जघान दैत्यं यथा महेन्द्रो भिदुरेण शैलम् ॥४८॥
निर्भिन्नहृदयो दैत्यः पपात चालयन्महीम् । चतुर्वासरपर्यन्तं मूर्च्छितोऽभूद्रणांगणे ॥४९॥
तदा निपतिते दैत्ये माया शांतिं गता स्वतः । युद्धं प्रदृश्यते तत्र यादवा विस्मयं गताः ॥५०॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डेऽनिरुद्धजयो नाम पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

(बल्वल दैत्यके पुत्र कुनन्दनका वध)

गर्ग उवाच

कुनन्दनोऽपि संमूर्च्छां त्यक्त्वाऽगाद्रणमण्डले । रथस्थः क्रोधसंयुक्तः प्रवर्षन्धनुषा शरान् ॥ १ ॥
दृष्ट्वा तमागतं वीरोऽनिरुद्धः परवीरहा । पप्रच्छ सेवकांस्तस्य वार्तां रोषेण दीपितः ॥ २ ॥

उनका मोहक सौन्दर्य देखकर कामदेवकी मारसे विकल यादव अपने शस्त्रास्त्र पृथिवीपर रखकर आपसमें कहने लगे—॥ ४१ ॥ अरे ! हमलोग कहाँ आ गये ? यह स्वर्गलोक है या कोई अन्य देवलोक, जहाँ ये कलकंठी सुन्दरियाँ मनोहर नृत्य कर रही हैं ॥ ४२ ॥ अब कामबाणसे पीडित हम यादव इनके सौन्दर्यसमुद्रमें डूब गये हैं । रणभूमि तो यहाँ कहीं दीखती ही नहीं, तब हमारी विजय कैसे होगी ? ॥ ४३ ॥ वे यादव इस प्रकार परस्पर बात कर ही रहे थे, तभी क्रोधसे बावला बल्वल दैत्य हाथमें तलवार लेकर उन सबको मारनेके लिए आ धमका ॥ ४४ ॥ उसने वहाँ आते ही उन कामपीडित हजारों यादवोंको काट डाला । तब अनिरुद्धने क्रुद्ध होकर कहा—॥ ४५ ॥ अरे पापी ! सत्पुरुषोंसे निन्दित ऐसा अधर्म तू क्यों करता है ? ये लोग तो स्वयं इस समय काममोहित हैं, तब इनको मारनेसे तुम्हारी प्रशंसा नहीं होगी ॥ ४६ ॥ यदि तुम्हारे शरीरमें शक्ति हो तो मेरे साथ युद्ध करो। अनिरुद्धकी बात सुनकर बलदर्पित बल्वल क्रोधमें आकर दहाड़ता हुआ ढाल-तलवार लिये पैदल ही उनके समक्ष जा पहुँचा ॥ ४७ ॥ बड़े क्रोधके साथ बल्वलको आते देख कामदेवके पुत्र अनिरुद्धने रथसे उतरकर उसके ऊपर कालदंडसे इस तरह प्रहार किया, जैसे इन्द्रने पर्वतोंपर वज्रसे प्रहार किया था ॥ ४८ ॥ इस प्रहारसे बल्वल दैत्यका हृदय फट गया । वह धरतीको कँपाता हुआ वहाँ ही गिर गया और चार दिनोंतक अचेत पड़ा रहा ॥ ४९ ॥ उस दैत्यके गिरते ही उसकी सब माया शान्त हो गयी । रणभूमि स्पष्ट दीखने लगी और सब यादव आश्चर्यमें पड़ गये ॥ ५० ॥ इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखंडे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायां पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

श्रीगर्गमुनि बोले—हे राजन् ! इतनेमें कुनन्दन भी मूर्छा त्यागकर उठ बैठा और रथपर बैठकर धनुषसे बाण बरसाता हुआ रणभूमिमें आ पहुंचा ॥ १ ॥ उसे देख क्रुद्ध अनिरुद्धने पूछा—यह कौन

सेवकास्ते ततः प्रोचुरेप बल्वलनन्दनः । त्वया सार्द्धं महाराज युद्धं कर्तुं समागतः ॥ ३ ॥
श्रुत्वाऽनिरुद्धः प्रोवाच हनिष्येऽहं कुनन्दनम् । तदैव तमुवाचाथ कृष्णपुत्रः सुनन्दनः ॥ ४ ॥

सुनन्दन उवाच

राजन्कोऽयं दैत्यपुत्रः क्वेदं परिमितं बलम् । जेष्येऽहं त्वत्प्रतापेन तस्मादुगच्छाम्यहं प्रभो ॥ ५ ॥
राजञ्छृणु प्रतिज्ञां मे तवानंदप्रदायिनीम् । न चेत्कुनन्दनं जेष्ये बहुसंग्रामकोविदम् ॥ ७ ॥
यो गुरुं भवहर्त्तारं पितरं च न सेवते । यदघं तु भवेत्तस्य तन्मे भूयाज्जयेन वै ॥ ८ ॥
इति प्रतिज्ञामाकर्ण्यानिरुद्धस्तस्य भूपते । जहर्ष चित्ते तं वीरं निर्दिदेश रणं प्रति ॥ ९ ॥
इत्याज्ञप्तोऽनिरुद्धेन चैकाकी कृष्णनन्दनः । जगाम दंशितस्तत्र यत्रास्ते बल्वलात्मजः ॥१०॥
कुनन्दनस्तमाज्ञाय त्वागतं प्रधने रुषा । प्रत्युज्जगाम वीराग्रयो रथी शूरशिरोमणिः ॥११॥
अन्योन्यं तौ संमिलितौ रथस्थौ चापधारिणौ । रेजाते राजशार्दूल यथा दमनपुष्कलौ ॥१२॥
उभौ सायकभिन्नांगावुभौ रुधिरविप्लुतौ । मुञ्चंतौ शरकोटीश्च संधंतौ तरसा शरान् ॥१३॥
आदानेनैव सन्धानं मोचनं च न भूपते । दृश्येते तौ महाशूरौ कुण्डलीकृतकार्मुकौ ॥१४॥
तद्रथं राजपुत्रस्तु भ्रामकास्त्रेण शोभिना । भूतले भ्रामयामास कुंभकारस्य चक्रवत् ॥१५॥
भ्रांत्वा मुहूर्त्तमात्रं तु तद्रथो वाजिसंयुतः । स्थितिं लेभे ततः कार्ष्णिर्जवान तद्रथे शरम् ॥१६॥
सयानस्तेन बाणेन खे बभ्राम मतंगवत् । पपात क्वौ विशीर्णोऽभूद्यथा वै काचभाजनम् ॥१७॥
उत्थितः सोऽपि विरथो हताश्वो हतसारथिः । अन्यं रथं समारुह्य यावदायाति संमुखम् ॥१८॥
बभंज तावद्बाणैश्च तद्रथं कृष्णनन्दनः । एवं सप्त रथा भग्ना दैत्यपुत्रस्य वै रणे ॥१९॥
तदा कुनन्दनः संख्ये स्थित्वा याने विचित्रिते । आययौ नृप वेगेन कृष्णपुत्रं नियोधितुम् ॥२०॥

आगत्य दशभिर्बाणैस्ताडयामास तं मृधे । शरैस्तैः सोऽपि निहतः परं कश्मलतां गतः ॥२१॥
ततः स धनुरुद्यम्य गृहीत्वा दश सायकान् । मुमोच तस्य हृदये क्रुद्धः कृष्णात्मजो बली ॥२२॥
ते शरा रुधिरं पीत्वा निपेतुर्वै महीतले । यथा हि पितरो राजन्नरके कूटसाक्षिणः ॥२३॥
कुनंदनः सुनन्दनं सुनन्दनः कुनन्दनम् । महद्रणे महच्छरैर्निजघ्नतुः परस्परम् ॥२४॥
एवं हि तौ द्वौ शरभिन्नगात्रौ रक्ताप्लुतौ चापधरौ रुषाढ्यौ ।
प्रचक्रतुर्युद्धवरं शरैश्च कुशांबसांबाविव संयुगे वै ॥२५॥
ततः कृष्णात्मजो वीरः कोदंडे स्वर्णनिर्मिते । मृगांकार्द्धमुखं बाणं धृत्वा शीघ्रं तमब्रवीत् ॥२६॥

सुनन्दन उवाच

शृणु मद्वचनं वीर बाणेनानेन त्वच्छिरः । सद्यश्छिन्नं करिष्येऽहं शिरो रक्ष बली यदि ॥२७॥
यदि मद्वचनं सत्यं प्रधने त्वं न मन्यसे । तदा शृणु प्रतिज्ञां मे तव मृत्युविशूचिकाम् ॥२८॥
सतीं च गुरुपत्नीं च यो दूषयति कामतः । स याति यातनां यां वै यमराजस्य सन्निधौ ॥२९॥
सा यातना च मे भूयात्सत्यं मम प्रतिश्रुतम् । यः समर्थश्च स्वगुरुं पितरं च न पालयेत् ॥३०॥
तस्य पापं ममैवास्तु न हनिष्ये च त्वां रणे । इति श्रुत्वा च तद्वाक्यं दैत्य आह रुषा ज्वलन् ॥३१॥

राजपुत्र उवाच

बिभेमि नाहं रणात्संग्रामे शत्रुसम्मुखे । प्राणिनां चैव सर्वेषां मृत्युर्भवति सांप्रतम् ॥३२॥
यदि मुंचसि संग्रामे मद्वधार्थे महाशरम् । तदाऽहं स्वशरेणापि शीघ्रं छेद्मि न संशयः ॥३३॥
एकादश्यां च ये मानादन्नं भुंजंति भूतले । मातरं भ्रातृपत्नीं च भगिनीं च सुतां तथा ॥
पापं तेषां ममैवास्तु न छेद्मि यदि त्वच्छरम् ॥३४॥
इति तस्य वचः स्पष्टं श्रुत्वा शंकितमानसः । प्रत्युवाच पुनर्वाक्यं श्रीकृष्णं सोपि संस्मरन् ॥३५॥

सुनन्दन उवाच

मया कृष्णांघ्रियुगलं सेवितं मनसा यदि । कपटेन विना तर्हि सत्यं भूयाद्वचो मम ॥३६॥

विमानपर बैठकर बड़े वेगके साथ कृष्णपुत्रसे लड़ने आया ॥ २० ॥ आते ही उसने रणमें सुनन्दनको सात बाण मारे। इस प्रहारसे वे खिन्न हो उठे ॥ २१ ॥ तब क्रुद्ध कृष्णपुत्रने कुनन्दनकी छातीपर दस बाण मारे ॥ २२ ॥ वे बाण उसका रुधिर पीकर इस प्रकार धरतीपर आ गिरे, जैसे झूठी गवाही देनेवालेके पितर नरकमें जा गिरते हैं ॥ २३ ॥ इस प्रकार उस महायुद्धमें सुनन्दनने कुनन्दनपर और कुनन्दनने सुनन्दनपर भीषण प्रहार किये ॥ २४ ॥ उन बाणोंके आघात-प्रत्याघातसे लहू-लुहान और क्रोधसे तमतमाये हुए वे दोनों धनुर्धर वीर कुशाम्ब और साम्बकी तरह विकट बाणयुद्ध करने लगे ॥ २५ ॥ तब श्रीकृष्णके पुत्र सुनन्दन अपने सुवर्णके धनुषपर एक अर्धचन्द्राकार बाण चढ़ाकर बोले—॥ २६ ॥ हे वीर ! मेरा सत्य वचन सुनो। अभी इसी बाणसे मैं तुम्हारा सिर काटता हूँ। यदि तुम बली होओ तो अपनी रक्षा कर लो ॥ २७ ॥ यदि इस रणस्थलीमें तुम मेरी बात सच नहीं मानते तो तुम्हारी मृत्युकी सूचना देनेवाले मेरे वचन सुनो ॥ २८ ॥ जो पुरुष कामासक्त होकर गुरुकी पत्नीको दूषित करता है, उसे यमराजके यहाँ जो यातना मिलती हो, वही मुझे मिले। यह मेरी सत्य प्रतिज्ञा है। समर्थ होता हुआ भी जो पुरुष अपने गुरु तथा पिता-माताका पालन न करे, उसका पाप मुझे लगे, यदि मैं तुझे मार न डालूँ। सुनन्दनकी बात सुनकर रोषसे जलजलाता हुआ दैत्य कुनन्दन बोला ।। २९–३१ ॥ राजपुत्र कुनन्दनने कहा—मैं रणमें शत्रुके समक्ष मरनेसे नहीं डरता। क्योंकि सभी प्राणियोंको कभी न कभी मरना ही पड़ता है, तब मरनेसे क्या डर ॥ ३२ ॥ यदि मुझे मारनेके लिए तुम महाबाणका सन्धान करोगे तो मैं अपने बाणसे तुम्हारे बाणको अवश्य काटूँगा ॥ ३३ ॥ यदि मैं तुम्हारे इस बाणको न काट डालूँ तो एकादशीको अन्न खानेवाले तथा अपनी माता, भ्राताकी पत्नी और पुत्रीसे दुराचार करनेवालेको जो पाप लगता है, वह पाप मुझको लगे ॥ ३४ ॥ उसके इन स्पष्ट वाक्योंको सुन-

स्वपत्नीं च पिता वीर नान्यां पश्यामि कामतः । तेन सत्येन संग्रामे वाक्यं भूयादृतं मम ॥३७॥
इत्युक्त्वा सायकं तीक्ष्णं विमुमोच सुनन्दनः । मंत्रयित्वा च मंत्रेण महाकालानलोपमम् ॥३८॥
प्रमुक्तं वीक्ष्य विशिखं स्वबाणेन नृपात्मजः । सद्यश्चिच्छेद हि यथा सर्पं पक्षेण पक्षिराट् ॥३९॥
छिन्ने तस्मिञ्छरे राजन्हाहाकारस्तदाऽभवत् । चचाल पृथिवी लोकैर्देवास्ते विस्मयं गताः ॥४०॥
परार्द्धः पतितो बाणः पूर्वार्द्धः फलसंयुतः । शिरश्चिच्छेद दैत्यस्य तरोः स्कंधं यथा गजः ॥४१॥
किरीटकुण्डलैर्युक्तं पतितं तस्य मस्तकम् । निरीक्ष्य हाहाशब्दं वै चक्रुर्दैत्याश्च दुःखिताः ॥४२॥
कुनंदनकबंधस्तु शीघ्रमुत्थाय संयुगे । खड्गेन मुष्टिभिः पादैर्बहूञ्छत्रूञ्जघान ह ॥४३॥
ततश्च यदुसेनायां नेदुर्दुंदुभयो मुहुः । सुनंदनोपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे ॥४४॥

इति श्रीगर्गसंहितायां हयमेधखंडे दैत्यपुत्रवधवर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

(भैरव-मोहन)

वज्रनाभिरुवाच

कुनंदने हते ब्रह्मन्बल्वले मूर्च्छिते रणे । न कृतं तु सहायं वै रुद्रेण करुणात्मना ॥ १ ॥
कस्मान्न चागतो रुद्रो यज्ञः पूर्णः कथं भवेत् । कथं विमुक्तस्तुरगस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ २ ॥

सौतिरुवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा गर्गो ज्ञानवतां वरः । स्मृत्वा सर्वां कथां ब्रह्मन्नुवाच यदुसत्तमम् ॥ ३ ॥

गर्ग उवाच

बल्वले मूर्च्छिते राजन्हते शूरे कुनन्दने । महाकोपं शिवश्चक्रे प्रेरितस्तु सुरर्षिणा ॥ ४ ॥

आरुह्य नंदिनं क्रुद्धो भक्तरक्षाकरः शिवः । चन्द्ररेखां वहन्मूर्ध्नि जटाजूटांतरे नृप ॥ ५ ॥
सर्पहारैर्मुण्डहारैर्भस्मलिप्तो भयंकरः । दशबाहुः पञ्चमुखो नेत्रैः पञ्चदशैर्वृतः ॥ ६ ॥
सिंहचर्मांबरधरो मदमत्तो भयंकरः । त्रिशूलपट्टिशधरो धनुर्बाणधरः परः ॥ ७ ॥
कुठारपाशपरिघभिंदिपालैर्विभूपितः । सहस्ररविसंकाशः सर्वभूतगणावृतः ॥ ८ ॥
हंतुं सर्वान्वृष्णिवरान्कार्ष्णिजप्रमुखान्मृधे । कैलासादाययौ शीघ्रं चालयन्पृथिवीतलम् ॥ ९ ॥
कोलाहलो महानासीदाकाशे भूतले नृप । देवदैत्यनराः सर्वे भयं प्रापुश्च विस्मिताः ॥१०॥
सगणं सपरीवारमागतं वीक्ष्य शङ्करम् । क्रुद्धं प्रलयकर्तारं भयं प्रापुर्यदूत्तमाः ॥११॥
अनिरुद्धस्य च मुखं निस्तेजस्कमभूद्भयात् । चकंपे हृदयं तस्य दुःखितस्य रणांगणे ॥१२॥
ततः प्रत्याह वचनं निष्ठुरं सर्वयादवान् । शूलं गृहीत्वा हस्तेन गिरीशः क्रोधपूरितः ॥१३॥

शंकर उवाच

अनिरुद्धः क्व गतो गतः क्व सुनन्दनः । सांबादयः क्व गता भक्तं हत्वा कुनन्दनम् ॥१४॥
वल्वलं मूर्च्छितं कृत्वा मद्भक्तं दैत्यसत्तमम् । तस्यानुगान्मृधे हत्वा क्व यास्यंति वृष्णयः ॥१५॥
तस्मात्सर्वान्हनिष्यामि मद्भक्तानां रिपून्मृधे । अहं विष्णुर्विधिश्चैते भक्तं रक्षंति दुःखतः ॥१६॥

गर्ग उवाच

इत्युदीर्य्यानिरुद्धं स प्रेषयामास भैरवम् । त्वं हि योद्धुं गच्छ शूर कार्ष्णिजं जयिनं मृधे ॥१७॥
सुनंदनं नंदिनं च प्रेषयामास रोषतः । गदं च वीरभद्रं वै सांबं च शिखिवाहनम् ॥१८॥
भानुश्च भृङ्गिणं युद्धे विरूपाक्षः समादिशत् । यदूंश्च प्रेषयामास भूतप्रेतांस्ततः शिवः ॥१९॥
ततस्ते रुद्रवचनाद्भूतप्रेतविनायकाः । भैरवाः प्रमथाश्चैव वेताला ब्रह्मराक्षसाः ॥२०॥
उन्मादाश्चैव कूष्माण्डा आजग्मुः कोटिशो मृधे । भूतानि जघ्नुश्चांगारैर्यादवांश्च विनायकाः ॥२१॥
पट्टिशैर्भैरवाः शूलैः खट्वांगैः प्रमथाः किल । जनानश्वान्गृहीत्वा तु भक्ष्यंति ब्रह्मराक्षसाः ॥२२॥

और वीर कुनन्दनके मर जानेपर देवर्षि नारदकी प्रेरणासे शिवजीको बड़ा क्रोध आया ॥ ४ ॥ जिससे भक्तोंके रक्षक शिवजी नन्दीपर बैठकर द्वितीयाके चन्द्रमाकी रेखाको जटाजूटमें धारण किये हुए, सर्पहार तथा मुण्डमाल पहने, सब अंगोंमें भस्म लगाये, दस भुजायें, पाँच मुख, पन्द्रह नेत्र युक्त, बाघम्बर ओढ़े, मदमत्त, भयंकर, त्रिशूल-पट्टिश-धनुष-बाण-कुठार-पाश-परिघ और भिन्दिपाल इन शस्त्रास्त्रोंसे विभूषित, हजार सूर्यके समान दीप्तिमान्, सभी भूतगणोंको साथ लिये, संग्राममें अनिरुद्ध आदि सभी यादवोंको मारनेके लिए धरतीको कँपाते हुए कैलासपर्वतसे वहाँ आये ॥ ५–९ ॥ हे राजन् ! इससे आकाश और भूमिपर बड़ा भारी कोलाहल मचा और सब देव, दैत्य और मनुष्य विस्मित होकर भयभीत हो उठे ॥ १० ॥ अपने गणों तथा परिवार समेत क्रुद्ध तथा प्रलयंकर शिवजीको आये देखकर सब यादव भयभीत हो उठे ॥ ११ ॥ भयवश अनिरुद्धका मुख निस्तेज हो गया और दुःखसे उनका हृदय काँपने लगा ॥ १२ ॥ तभी कोपसे मूर्छित शिवजी हाथमें त्रिशूल लेकर सभी यादवोंसे यह निष्ठुर वाणी बोले—अनिरुद्ध और सुनन्दन कहाँ है ? मेरे भक्त कुनन्दनको मारकर साम्ब आदि यादव कहाँ गये ? ॥ १३ ॥ १४ ॥ मेरे भक्त और दैत्यसत्तम वल्वलको मूर्छित करके तथा उसके अनुयायियोंको मारकर यादव कहाँ जायँगे ? ॥ १५ ॥ अतएव जो मेरे भक्तोंके शत्रु हैं, उन सबको मैं मारूँगा। मैं, विष्णु और ब्रह्मा ये तीनों देवता सदा अपने भक्तोंकी रक्षा करते हैं ॥ १६ ॥ गर्गमुनि बोले—हे राजन् ! यह कहकर शिवजीने भैरव नामके गणसे कहा—हे वीर ! तू इस युद्धमें जीतनेवाले अनिरुद्धको मारनेके लिए जा ॥ १७ ॥ इसके बाद नन्दीनामके गणको सुनन्दनका वध करनेके लिए भेजा। उन्होंने बड़े क्रोधके साथ गदको जीतनेके लिए वीरभद्रको और साम्बको जीतनेके लिए कार्तिकेयको भेजा ॥ १८ ॥ भानुको जीतनेके लिए भृंगीको और समस्त यादवोंको जीतनेके लिए शिवजीने भूतों-प्रेतोंको भेजा ॥ १९ ॥ शंकर भगवान्की आज्ञा पाते ही करोड़ों भूत, प्रेत, विनायक, भैरव, प्रमथ, वेताल, ब्रह्मराक्षस, उन्माद और

केचित्प्रज्वलिता वीराः केचिद्वै भस्मतां गताः । अग्निना पूरितं सैन्यं कृष्णं केचित्स्मरंति हि ॥४१॥
सेनां भयातुरां दृष्ट्वाऽनिरुद्धो धन्विनां वरः । दधार विशिखं चापे ज्ञात्वा मायां विनिर्मिताम् ॥४२॥
मंत्रयित्वा च मंत्रेण पर्जन्यास्त्रेण सायकम् । मुमोच गगने शीघ्रं स्मरन्कृष्णपदांबुजम् ॥४३॥
शरे मुक्ते समागत्य मेघाः प्रववृषुर्जलम् । अग्निः शांतिं गतो राजन्यथा प्रावृट् तथा बभौ ॥४४॥
शिखंडिनः कोकिलाश्च चातकाः सारसादयः । मण्डूकाद्याश्च प्रजगुरिंद्रगोपा विरेजिरे ॥४५॥
पुरंदरस्य चापेन सौदामिन्या बभौ नभः । प्रयासं निष्फलं दृष्ट्वा भैरवो भैरवं रवम् ॥४६॥
चकार स्वमुखेनापि सर्वेषां त्रासयन्मनः । ननाद तेन ब्रह्मांडं सप्तलोकैर्बिलैः सह ॥४७॥
विचेलुर्दिग्गजास्तारा राजद्भूखण्डमण्डलम् । तदैव बधिरीभूता बभूवुः पतिता नराः ॥४८॥
पुनश्च भैरवः क्रुद्धो हस्तं हस्तेन पीडयन् । निष्पिषन्नधरं दंतैर्लेलिहानः स्वजिह्वया ॥४९॥
नेत्राभ्यां रक्तवर्णाभ्यां पश्यन्सर्पैर्विभूषितः । जग्राह परशुं तीक्ष्णं तृणीकृत्य यदूत्तमम् ॥५०॥
तदैव जृंभणास्त्रेणानिरुद्धो रणकोविदः । भैरवं मोहयामास श्रीकृष्ण इव शंकरम् ॥५१॥
तेनास्त्रेण रणे राजन्ननिरुद्धस्य पश्यतः । पपात भूतले रौद्रो जृंभितो निद्रितोऽभवत् ॥५२॥

इति श्रीगर्गसंहितायां हयमेधखण्डे भैरवमोहनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

अथ अष्टत्रिंशोऽध्यायः

(अनिरुद्ध आदिकी सहायताके लिए रणांगणमेंभगवान कृष्णका आगमन)

गर्ग उवाच

तदा मृत्युंजयः क्रुद्धो भैरवं वीक्ष्य निद्रितम् । वृषभं प्रेरयामास कार्ष्णिजं शूरमानिनम् ॥ १ ॥

से यादवी सेनाके पैदल सैनिक, रथ, घोड़े तथा हाथियोंके शरीर मूँजके फूलकी रुईकी भाँति जलने लगे ॥ ४० ॥ कुछ वीर एकदम जल गये, कुछ जलकर भस्म हो गये और देखते-देखते वह आग सारी सेनामें फैल गयी। उस समय कितने ही यादव श्रीकृष्णका स्मरण करने लगे ॥ ४१ ॥ अपनी सेनाको भयभीत देखकर धनुर्धरोंमें अग्रणी अनिरुद्धने अपने धनुषपर बाण चढ़ाया ॥ ४२ ॥ अनिरुद्धने उस बाणको पर्जन्यास्त्रसे अभिमंत्रित करके श्रीकृष्णके चरणकमलका स्मरण करते हुए छोड़ दिया ॥ ४३ ॥ बाणके छूटते ही मेघ आकर घनघोर जल बरसाने लगे। जिससे भैरव द्वारा प्रेरित आग शान्त हो गयी और ऐसा लगने लगा कि जैसे वर्षाऋतु आ गयी हो ॥ ४४ ॥ मोर, कोयल, पपीहे और सारस आदि पक्षी तथा मेढक बोलने लगे और धरतीपर वीरबहूटियाँ घूमने लगीं ॥ ४५ ॥ इन्द्रधनुष और बिजलीसे आकाश जगमगा उठा। इससे भैरवने अपना परिश्रम व्यर्थ होते देखकर बड़ा भयंकर गर्जन किया। सभीको त्रास देनेवाले उस भीषण गर्जनसे सप्तलोकों तथा सप्त बिलों समेत अखिल ब्रह्माण्ड गूँज उठा ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ जिससे भूखण्डमण्डल युक्त तारागण विचलित हो गये, दिग्गज चलायमान हो गये और धरतीके असंख्य मनुष्य बहरे होकर जमीनपर गिर पड़े ॥ ४८ ॥ फिर कुपित होकर हाथसे हाथ मसलते, दाँतोंसे अधर चबाते, जीभ लपलपाते, लाल-लाल आँखोंसे निहारते, सर्पोंके आभूषणसे भूषित भैरव यादवोंको तृणवत् समझते हुए अपना तीक्ष्ण परशु सम्हाला ॥ ४९ ॥ ५० ॥ उसी समय रणविज्ञ अनिरुद्धने अपने जृम्भणास्त्रसे भैरवको वैसे ही मोहित कर दिया, जैसे बाणासुरके युद्धमें श्रीकृष्णने शंकरजीको मोहमें डाल दिया था ॥ ५१ ॥ हे राजन्! उस जृंभणास्त्रसे अनिरुद्धके देखते-देखते भैरव निद्रित होकर भूमिपर गिर गये ॥ ५२ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखण्डे 'प्रियंवदा'-भाषाटीकायां सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

गर्गमुनि बोले—हे राजन्! भैरवको निद्रित देखकर शंकरजीको बड़ा क्रोध आया और जो

तदैव वृषभः कोपाच्छृंगाभ्यां मारयन्यदून् । दंतैः पश्चिमपादाभ्यां सेनायां विचचार ह ॥ २ ॥
त्वरं जघान शृंगेण संमुखस्थं सुनन्दनम् । शृंगेण भिन्नहृदयः पपात पंचतां गतः ॥ ३ ॥
तदाऽऽजगाम संक्रुद्धोऽनिरुद्धो गजसंस्थितः । धनुर्धरो दंशितश्च माभैर्माभैरिति ब्रुवन् ॥ ४ ॥
दृष्ट्वा तत्र हतं वीरं कृष्णपुत्रं सुनन्दनम् । प्राप्तो दुःखं मृधेऽत्यंतं कंपितः शोकपूरितः ॥ ५ ॥
हते तस्मिन्महावीरे शोचंतं तं शिवोऽब्रवीत् । मा कृथास्त्वं रणे शोकमनिरुद्ध महाबल ॥ ६ ॥
रणमध्ये पातनं च शूराणां कीर्तये स्मृतम् । तस्मात्त्वमपि संग्रामे मया युद्ध्यस्व यत्नतः ॥ ७ ॥
प्रयातानूक्षस्व गणान्ममाग्रे युद्धकांक्षया ।

गर्ग उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा शोकं त्यक्त्वा यदूत्तमः ॥ ८ ॥
निचखान पंच बाणान् शिवस्य मस्तके नृप । नाराचास्ते महेशस्य जटाजूटेषु निष्ठिताः ॥ ९ ॥
दृश्यंते गृध्रपक्षाढ्याः शाखा इव वनस्पतेः । ततो रुद्रः स्वकोदंडे बाणमेकं निधाय च ॥१०॥
चिच्छेद तेन सहसा तस्य चापस्य शिंजिनीम् । अनिरुद्धः पुनः शीघ्रं सज्यं कृत्वा धनुर्दृढम् ॥११॥
उग्रचापस्य चिच्छेद शिंजिनीं सायकेन च । ततः श्रुत्वा तयोर्युद्धमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥१२॥
विमानस्थाश्च शक्राद्या आजग्मुः कौतुकान्विताः । ऊचुः परस्परं खस्था निरीक्ष्य भयविह्वलाः ॥१३॥

देवा ऊचुः

अमू लोकत्रयस्यापि ह्युत्पत्तिलयकारकौ । एतयोश्च रणं तस्माद्विफलं रणमण्डले ॥१४॥
को विजेष्यति संग्रामं प्राप्स्यते कः पराजयम् ।

गर्ग उवाच

ततस्त्रिदिनपर्यंतं युद्धमासीत्तयोर्भृशम् ॥१५॥
पुनः शरासनं रुद्रः सज्जं कृत्वा रुषान्वितः । ब्रह्मास्त्रं संदधे तत्र लोकप्रलयकारकम् ॥१६॥

ब्रह्मास्त्रेण तु ब्रह्मास्त्रं सिदुरास्त्रेण पार्वतम् । पर्ज्जन्यास्त्रेण चाग्नेयमनिरुद्धो जहार ह ॥१७॥
तदा प्रकुपितोऽत्यंतं पिनाकी प्रज्वलन्निव । त्रिशिखेन त्रिशूलेन जघान कार्ष्णिनन्दनम् ॥१८॥
स त्रिशूलश्च तं भित्त्वा गजं भित्त्वा विनिर्गतः । स्थितोऽभूच्च तयोर्मध्ये ऊर्ध्वपुंख अधोमुखः ॥१९॥
गजो मृत्युं गतो युद्धेऽनिरुद्धो मूर्छितोऽभवत् । पेततुस्तौ च संलग्नौ भिन्नवक्षस्थलौ मृधे ॥२०॥
हाहाकारस्तदैवासीद्रुरुदुः सर्वयादवाः । रुद्रस्याग्रे यथा भीता यमस्याग्रे च पापिनः ॥२१॥
अनिरुद्धं निपतितं मृततुल्यं विमूर्च्छितम् । श्रुत्वा ययौ शंकितश्च सांबः स्कंदं विहाय च ॥२२॥
मूर्छितं यदुवीरं तु वीक्ष्य क्रोधपरिप्लुतः । अश्रुपूर्णमुखः सांबः शर्वं प्राह धनुर्द्धरः ॥२३॥
कस्मात्करिष्यसे रुद्र दानवानां हि पालनम् । हत्वाऽनिरुद्धं संग्रामे वीरं चैव सुनन्दनम् ॥२४॥
वेदे भागवते शास्त्रे पुरा विप्रैः श्रुतं मया । श्रीकृष्णाख्यं परं नित्यं शिवः सेवति वैष्णवः ॥२५॥
मृषा जातं हि तत्सर्वं कार्ष्णिजे पतिते सति । सुनन्दनः कृष्णसुतः सोपि युद्धे त्वया हतः ॥२६॥
वृथा करिष्यसे युद्धं धिक्त्वां तस्मान्महेश्वर । अहं त्वां पातयिष्यामि रणे कृष्णपराङ्मुखम् ॥२७॥
क्षुरप्रैः सायकैः शीघ्रं तिष्ठ तिष्ठ रणे शिव । एतद्वचः समाकर्ण्य प्रसन्नः शंकरोऽब्रवीत् ॥२८॥

शिव उवाच

धन्यस्त्वं यादवश्रेष्ठ सत्यं वदति नो भवान् । मन्नाथः कृष्णचन्द्रोऽयं देवदानववंदितः ॥२९॥
कुनंदने च निहते बल्वले मूर्च्छिते रणे । सहायार्थमहं वीर भक्तरक्षार्थमागतः ॥३०॥
सत्यं कर्तुं स्ववचनं किंचित्कोपेन पूरितः । करोमि प्रधने युद्धं भक्तप्रियचिकीर्षया ॥३१॥
इत्थं वदति भूतेशे सांबो रोषप्रपूरितः । तताड शीघ्रं चापेन क्षुरप्रैः सायकैर्मृडम् ॥३२॥

उन दोनोंमें तीन दिन युद्ध हुआ ॥ १५ ॥ बादमें कुपित शिवजीने अपना धनुष ले तथा उसपर तीनों लोकोंमें प्रलय मचा देनेवाला ब्रह्मास्त्र चढ़ाकर छोड़ा ॥ १६ ॥ किन्तु अनिरुद्धने अपने ब्रह्मास्त्रसे उनके ब्रह्मास्त्रको, पर्वतास्त्रको वज्रास्त्रसे तथा शिवजीके आग्नेयास्त्रको पर्जन्यास्त्र (मेघास्त्र) से शान्त कर दिया ॥ १७ ॥ इससे मारे क्रोधके आगकी तरह लाल होकर शिवजीने तीन शिखाओंवाले त्रिशूलसे अनिरुद्धपर प्रहार किया ॥ १८ ॥ वह त्रिशूल अनिरुद्ध तथा उनके हाथीको विदीर्ण करके निकल गया । इससे वह हाथी नीचे मस्तक और ऊपर पूँछ करके खड़ा हो गया ॥ १९ ॥ उस युद्धमें हाथी मर गया और अनिरुद्ध मूर्छित हो गये । क्योंकि शिवजीके त्रिशूलप्रहारसे उन दोनोंकी छाती फट गयी थी और दोनों रणभूमिपर गिर गये थे ॥ २० ॥ इससे बड़ा हाहाकार मचा और शिवजीके समक्ष सब यादव इस प्रकार रोने लगे, जैसे पापी लोग यमराजके समक्ष रोते हैं ॥ २१ ॥ अनिरुद्धको मृतककी तरह मूर्छित सुनकर सशंकभावसे साम्ब कार्तिकेयको छोड़कर उनके पास आये ॥ २२ ॥ यदुवीर अनिरुद्धको मूर्छित देख साम्ब बहुत क्रुद्ध हुए । इससे उनके नेत्रोंमें आँसू आ गये और उन्होंने शिवजीसे कहा—॥ २३ ॥ हे रुद्र ! संग्राममें अनिरुद्ध और सुनन्दनको मारकर आप दानवोंकी रक्षा कैसे करेंगे ? ॥ २४ ॥ मैंने वेदोंमें, भागवतमें तथा अन्यान्य शास्त्रोंमें पढ़ा और ब्राह्मणोंके मुखसे सुना था कि शिवजी नित्य परब्रह्म श्रीकृष्णका ही भजन करते हैं। इसीसे वे सर्वोत्तम वैष्णव हैं ॥ २५ ॥ किन्तु आज अनिरुद्धके गिरनेपर आपके वैष्णव होनेकी बात झूठी हो गयी । श्रीकृष्णके पुत्र सुनन्दनको भी आपने मार डाला, तब आपको वैष्णव कौन कहेगा ? ॥ २६ ॥ अब आप व्यर्थ लड़ रहे हैं । आपको धिक्कार है । इस तरह श्रीकृष्णसे विमुख हो जानेपर मैं आपको रणभूमिमें धराशायी कर दूँगा ॥२७॥ हे शिव ! ठहरिए, अभी मैं आपको अपने क्षुरप्र बाणोंसे मारकर गिरा दूँगा । साम्बकी बातें सुन, तो प्रसन्न होकर शंकरजी बोले ॥ २८ ॥ श्रीशिवजीने कहा—हे यादवश्रेष्ठ ! तुम धन्य हो । तुमने अभी जो कुछ कहा सो सत्य है । देवताओं और दानवोंके वन्दनीय श्रीकृष्ण ही मेरे प्रभु हैं ॥ २९ ॥ कुनन्दनके मरने और रणमें बल्वलके मूर्छित हो जानेपर सहायक बनकर मैं अपने भक्तकी रक्षा करने आया हूँ ॥ ३० ॥ अपनी बात सत्य करने और कुछ क्रोधके कारण रणभूमिमें अपने भक्तका कल्याण करनेके लिए ही मैं युद्ध कर रहा हूँ ॥ ३१ ॥ शिवजीके

तैर्बाणैर्निहतो रुद्रो न किंचित्कश्मलं गतः । यथा मतंगजः पुष्पैर्जग्राह स्वधनुः शिवः ॥३३॥
तताड निशितैर्बाणैर्युद्धे जांबवतीसुतम् । सांबः शिवं शिवः सांबं जघ्नतुस्तौ परस्परम् ॥३४॥
दृष्ट्वा युद्धं तयोर्लोकसंहारं मेनिरेऽमराः । भूतले गगने राजन्महान्कोलाहलोऽभवत् ॥३५॥
भीताश्च वृष्णयस्तत्र नाथं कृष्णं स्मरंति हि ॥३६॥

तदा हरिः श्रीयदुपालकश्च ज्ञात्वा यदूनां च महाविपत्तिम् ।
रथेन तत्रागतवान्नृपुघ्नो युक्तेन वै सूततुरंगमैश्च ॥३७॥
श्यामः किरीटी नवकंजनेत्रो नवार्ककोटिद्युतिमादधानः ।
कौमोदकीशंखरथांगपद्मकोदंडबाणैर्नियुतोऽसिधारी ॥३८॥
श्रीवत्सचिह्नेन तु कौस्तुभेन पीतांबरेणापि च मालयाऽऽढ्यः ।
नीलालकैः कुण्डलकङ्कणाद्यैर्विभूपितः कोटिमनोजतुल्यः ॥३९॥
समुद्रलङ्घिः सितफेनशीकरान्मुक्ताफलानीव च राजहंसकैः ।
सुग्रीवमुख्यैरतिवेगवत्तरैर्हयैर्युतः सुन्दरसामगायनैः ॥४०॥

दृष्ट्वा स्वनाथं यदवः स्वागतं हर्षविह्वलाः । बभूवुः सुखिनः सर्वे शीतभीता रविं यथा ॥४१॥
तदा जयजयारावो यदुसैन्ये बभूव ह । प्रचक्रिरे पुष्पवर्षं गगनस्थाश्च देवताः ॥४२॥
दृष्ट्वा सांबस्तु श्रीकृष्णं सहायार्थं समागतम् । पपात पादयोस्तस्य चापं त्यक्त्वा प्रहर्षतः ॥४३॥

इति श्रीगर्गसंहितायां हयमेधखण्डेऽनिरुद्धादिसाहाय्यार्थं श्रीकृष्णागमनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

अथ एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

(अनिरुद्ध-विजयवर्णन)

गर्ग उवाच

कृष्णं दृष्ट्वा हरस्तत्र भीतः शङ्कितमानसः । त्यक्त्वा चापत्रिशूलादीन्भक्त्या श्रीनाथमब्रवीत् ॥१॥

शंकर उवाच

ॐ अविनयमपनय विष्णो दमय मनः शमय विषयमृगतृष्णाम् ।
भूतदयां विस्तारय तारय संसारसागरतः ॥ २ ॥
दिव्यधुनीमकरंदे परिमलपरिभोगसच्चिदानंदे । श्रीपतिपदारविंदे भवभयखेदच्छिदे वंदे ॥ ३ ॥
सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्। सामुद्रो हि तरंगः क्वचन समुद्रो न तारंगः ॥ ४ ॥
उद्धृतनगनगभिदनुजदनुजकुलामित्रमित्रशशिदृष्टे ।
दृष्टे भवति प्रभवति न भवति किं भवतिरस्कारः ॥ ५ ॥
मत्स्यादिभिरवतारैरवतारवताऽवता वसुधाम् । परमेश्वर परिपाल्यो भवता भवतापभीतोऽहम्॥ ६ ॥
दामोदर गुणमंदिर सुन्दरवदनारविंद गोविन्द । भवजलधिमथनमंदर परमं दरमपनय त्वं मे ॥ ७ ॥
नारायण करुणामय शरणं करवाणि तावकौचरणौ। इति षट्पदी मदीये वदनसरोजे सदा वसतु ॥ ८ ॥
इति स्तुतः शङ्करेण प्रीतः संकर्षणानुजः । पप्रच्छ सर्वाभिप्रायं नमन्तं चन्द्रशेखरम् ॥ ९ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

किं कृतस्तेऽपराधो वै मत्पुत्रेण कुबुद्धिना । यतस्त्वया हतः संख्येऽनिरुद्धो मूर्च्छितः कृतः १०॥
हतं यदुबलं कस्मात्कस्मात्त्वं चागतो रणे । कस्माद्युद्धं च कृतवांस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥११॥
इत्थं श्रीकृष्णवचनं निशम्य प्रमथेश्वरः । उवाच लज्जितो भूत्वा विचार्य मधुसूदनम् ॥१२॥

शंकर उवाच

देवदेव जगन्नाथ राधिकेश जगन्मय । पाहि पाहि कृपाकारिन्निस्त्रपं मां कृतागसम् ॥१३॥
त्वं न जानासि किं देव कथयिष्यामि किं त्वहम् । भक्तस्य पालनं कर्तुं मायया तव मोहितः ॥१४॥
अहमागतवान्देव त्वं सर्वं क्षंतुमर्हसि । शास्ताऽहं सर्वलोकस्य मानादिति मया हरे ॥१५॥

गर्गमुनि बोले—हे राजन् ! श्रीकृष्णभगवानको रणमें उपस्थित देख शिवजी भयभीत तथा सशंक भावसे धनुष-त्रिशूल आदि शस्त्रास्त्र त्यागकर भगवान कृष्णसे बोले ॥ १ ॥ शंकरजीने कहा—हे विष्णो ! मेरे मनके अविनय (उच्छृंखलता) को दूर कर दीजिए। मेरे मनका दमन करिए। विषयरूपिणी मृगतृष्णाको शान्त कर दीजिए। समस्त प्राणियोंपर दयाका विस्तार करके मुझे संसारसागरसे पार करिए ॥ २ ॥ दिव्यधुनी (गंगाजी) के मकरंद तथा गन्धपरिभोगके सार सत्, चित् और आनन्दस्वरूप, संसारके भयको नष्ट करनेवाले श्रीपतिके चरणोंकी मैं वन्दना करता हूँ ॥ ३ ॥ हे नाथ ! भेदकी निवृत्ति हो जानेपर भी मैं आपका रहूँगा, किन्तु आप मेरे न होंगे। जैसे तरंग समुद्रकी होती है, किन्तु समुद्र तरंगका नहीं होता ॥ ४ ॥ जिन्होंने पर्वत उखाड़ फेंके थे, उन इन्द्रके अनुज, दैत्यकुलके शत्रु हे सूर्य-चन्द्र नेत्र ! जब आपके दर्शनसे ही संसारका प्रभाव नहीं रह जाता, तब आपपर संसारका प्रभाव कैसे हो सकता है ? ॥ ५ ॥ हे परमेश्वर ! मत्स्य आदि अवतार लेकर भूमिका पालन करनेवाले आपका मैं भी पालन करने योग्य सेवक हूँ। मैं संसारके तापसे भयभीत हूँ। मुझे बचाइए ॥ ६ ॥ हे दामोदर ! हे गुणोंके मन्दिर ! हे सुन्दर मुखकमल ! हे गोविन्द ! संसाररूपी समुद्रमंथनके लिए आप मन्दराचल हैं। वैकुंठधाममें आपका निवास है। आप मेरे दोषोंको दूर कर दीजिए ॥ ७ ॥ हे नारायण ! हे करुणामय ! मैंने आपके चरणोंकी शरण ली है। यह षट्पदी मेरे मुखकमलमें सदा निवास करे ॥ ८ ॥ इस प्रकार शिवजीके स्तुति करनेपर बलरामके अनुज श्रीकृष्ण प्रसन्न हुए और अपनेको प्रणाम करते हुए शंकरजीसे उनका अभिप्राय पूछा ॥ ९ ॥ श्रीकृष्ण बोले—हे शिवजी ! मेरे कुबुद्धि पुत्र सुनन्दनने क्या अपराध किया था, जो आपने उसे मार डाला और अनिरुद्धको मूर्छित क्यों कर दिया ? ॥१०॥ और फिर आपने यादवोंकी सेना क्यों मारी ? आप लड़ने क्यों आये और आपने युद्ध क्यों किया ? ये सब बताइए ॥११॥ श्रीकृष्णके ऐसे वचन सुन लज्जित होते हुए शिवजी सोच-समझकर बोले ॥ १२ ॥ शिवजीने कहा—हे देवदेव ! हे जगन्नाथ ! हे राधिकेश ! हे जगन्मय ! हे कृपाकारिन् ! मुझ निर्लज्ज और अपराधीकी रक्षा करिए—रक्षा करिए ॥ १३ ॥ हे देव ! आप मेरे सब अपराधोंको क्षमा कर दीजिए

मारिताः संगरे शूरा वृष्णयः कृष्णदेवताः । तस्मात्संतः स्वयं त्यक्त्वा परमैश्वर्यमीप्सितम् ॥१६॥
ध्यायंते सततं कृष्ण पादाब्जं ते निरापदम् । सुखं दुःखं नृणां तावद्यावत्कृष्णे न मानसम् ॥१७॥
कृष्णो मनसि सञ्जातो भेत्ति खड्गो दुरत्ययः । नराणां कर्मवृक्षाणां मूलच्छेदं करोति यः ॥१८॥
मद्भक्तिबलदर्पिष्ठा मत्प्रभुं त्वां यदूत्तमम् । न मन्यंते च ते सर्वे यास्यंति निरयं ध्रुवम् ॥१९॥
इत्युक्त्वा शंकरस्तूष्णीं भूत्वा कृष्णस्य पादयोः । पपात दंडवद्भक्त्या ह्यश्रुपूर्णाकुलेक्षणः ॥२०॥
उत्थाप्याश्वास्य तं रुद्रं पार्श्वतस्तत्प्रदर्शनात् । मिलित्वा भगवान्कृष्ण आलुलोक सुधार्द्रदृक् ॥२१॥
आह कृष्णः सुराः सर्वे कुर्वंति भक्तपालनम् । त्वया जुगुप्सितं कर्म किं कृतं भक्तपालने ॥२२॥
ममासि हृदये त्वं तु भवतो हृदये ह्यहम् । आवयोरंतरं नास्ति मूढाः पश्यंति दुर्धियः ॥२३॥
त्वां नमंति च मद्भक्तास्त्वद्भक्ता मां सदाशिव । ये न मन्यंति मद्वाक्यं यास्यंति नरकं च ते ॥२४॥
इत्युक्त्वा भगवान्कृष्णो हतं पुत्रं सुनन्दनम् । दृष्ट्या पीयूषवर्षिण्या जीवयामास संयुगे ॥२५॥
तत्पश्चादनिरुद्धस्य हृदयाच्छूलमेव च । शनैः शनैः समाकृष्य जीवयामास तं हरिः ॥२६॥
तत्पश्चाद्यादवान्सर्वान्निहतान्संयुगे भृशम् । अजीवयत्सुधादृष्ट्या कृष्णस्तु प्रभुरीश्वरः ॥२७॥
तावत्सदुंदुभिरवं पुष्पवृष्टिं दिवौकसः । उत्साहलक्षणां चक्रुः प्रसाद्य गरुडध्वजम् ॥२८॥
प्रभुं त्रैलोक्यनेतारं कृष्णं दृष्ट्वा यदूत्तमाः । उत्थाय संभ्रमाच्चक्रुर्जयारावं मुदान्विताः ॥२९॥
अथोत्थितो बल्वलस्तु महादेवेन रक्षितः । क्व गतश्चानिरुद्धो वै ब्रुवन्वाक्यं रुपान्वितः ॥३०॥

ततः शर्वेण दैत्यस्तु बोधितो वचनैः शुभैः ।
ज्ञात्वा कृष्णस्य माहात्म्यं मुदितोऽभून्महामनाः ॥३१॥

ततः प्रणम्य गोविंदं स्तुत्वा दैत्यस्तु बल्वलः । तुरगं प्रददौ राजन्बहुद्रव्येण संयुतम् ॥३२॥

ततो यज्ञहयं नीत्वा पुत्रपौत्रसमन्वितः । सेतुमार्गेण कृष्णस्तु प्रययौ पश्चिमां दिशम् ॥३३॥
कृष्णे गते भगवति राज्ये संस्थाप्य बल्वलम् । कैलासं प्रययौ रुद्रः सगणस्तु सभैरवः ॥३४॥
एतत्कृष्णचरित्रं तु ये शृण्वंति गृहे जनाः । तेषां सहायं भगवान्करिष्यति सदा हरिः ॥३५॥

इति श्रीगर्गसंहितायां हयमेधखंडेऽनिरुद्धविजयवर्णनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

(यादवोंकी व्रजयात्रा)

गर्ग उवाच

मुक्तस्तुरंगः कृष्णेन पत्रचामरभूषितः । प्रययौ स बहून्देशान्नेत्राभ्यां च विलोकयन् ॥ १ ॥
बल्वलं निर्जितं श्रुत्वा नानादेशाधिपा नृपाः । हयं न जगृहुः प्राप्तं श्रीकृष्णस्य भयान्नृप ॥ २ ॥
इत्थं व्रजन्भारते वै यदुवीरतुरंगमः । एकमासेन राजेंद्र प्राप्तोऽभूद्व्रजमण्डले ॥ ३ ॥
ततः कृष्णां समुत्तीर्य दृष्ट्वा वृन्दावनं वनम् । तमालस्य तले राजन्स्थितोऽभूद्धयसत्तमः ॥ ४ ॥
दूर्वां चरंतं तुरगं विलोक्य विहाय गास्ते किल गोपबालाः ।
समाययुस्ते नृप कौतुकेन हयस्य पार्श्वे करताडनैश्च ॥ ५ ॥
इति पश्यत्सु सर्वेषु श्रीदामा गोपनायकः । जग्राह लीलया राजश्चरंतं चंचलं हयम् ॥ ६ ॥
गोपाशेन हयं बद्ध्वा गले गोपैः समन्वितः । केनोत्सृष्टो वदन्वाक्यं नन्दस्य निकटं ययौ ॥ ७ ॥
आगतं वाजिनं दृष्ट्वा नन्दोऽपि हर्षपूरितः । तत्पत्रं वाचयित्वाऽऽह सर्वान्गद्गदया गिरा ॥ ८ ॥
उग्रसेनहयश्चैष पुरे मम समागतः । पालितो ह्यनिरुद्धेन मत्प्रपौत्रेण सर्वतः ॥ ९ ॥
गृह्णामि यज्ञतुरगं मित्राणां मिलनाय च । ततः प्रपौत्रं पश्यामि कृष्णाकारं प्रियंकरम् ॥१०॥

दैत्य श्रीकृष्णका महत्त्व समझकर मुदित हुआ ॥ ३१ ॥ तदनन्तर बल्वल दैत्यने श्रीकृष्णको प्रणाम करके प्रचुर द्रव्यके साथ वह अश्वमेधका घोड़ा लाकर दे दिया ॥ ३२ ॥ उस घोड़ेको लेकर पुत्र-पौत्रसहित श्रीकृष्ण सेतुमार्गसे पश्चिम दिशाको गये ॥ ३३ ॥ श्रीकृष्णके चले जानेपर शिवजी बल्वलको राजगद्दीपर बिठा तथा भैरवको साथ लेकर कैलास लौट गये ॥ ३४ ॥ जो लोग अपने घरमें श्रीकृष्णके इस चरित्रको सुनते हैं तो भगवान् श्रीकृष्ण सदा उनकी सहायता करते हैं ॥ ३५ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखंडे प्रियंवदा' भाषाटीकायामेकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

श्रीगर्गमुनि कहते हैं—हे राजन् ! उसके बाद श्रीकृष्णका छोड़ा हुआ पत्र और चामरसे विभूषित घोड़ा अनेक देशोंको नेत्रोंसे देखता हुआ आगे बढ़ा ॥ १ ॥ बल्वलको जीता गया सुनकर अनेक देशोंके नरेशोंमें श्रीकृष्णके भयसे किसीने उसे नहीं पकड़ा ॥२॥ हे यदुवीर ! इस प्रकार भारतमें एक मास घूमकर वह अश्व व्रजमण्डलमें जा पहुँचा ॥ ३ ॥ तदनन्तर यमुना पार करके उस घोड़ेने वृन्दावनको देखा और एक तमाल वृक्षकी छायामें रुक गया ॥ ४ ॥ वहांपर उस घोड़ेको दूब चरते देख गौवें चरानेवाले गोपबालक गौओंको छोड़कर ताली बजाते हुए उस घोड़ेके पास जा पहुँचे ॥ ५ ॥ वहाँ गोपबालक जब उसे देख रहे थे, तभी श्रीदामा नामक गोपेश्वरने उस चरते हुए चंचल घोड़ेको पकड़ लिया ॥ ६ ॥ गौ बांधनेके पगहेसे घोड़ेको बांधकर गोपोंसे घिरे श्रीदामा 'यह घोड़ा किसका है ?' ऐसा कहते हुए उसको लेकर नन्दरायके पास गये ॥ ७ ॥ घोड़ेको आया देख नन्दराय हर्षसे गद्गद हो गये और तुरन्त उसके गलेमें बंधे पत्रको पढ़वाया। तब बड़ी गद्गद वाणीमें बोले—॥ ८ ॥ भाइयो ! मेरे नगरमें आया हुआ यह घोड़ा राजा उग्रसेनका है। मेरा प्रपौत्र अनिरुद्ध इसका रक्षक है ॥ ९ ॥ जो अपने मित्रोंसे मिलनेके लिए मैं इसे पकड़ता हूँ। तभी मैं

इत्युक्त्वा नन्दराजस्तु द्रष्टुं गोपैः समन्वितः । कथयित्वा यशोदाग्रेऽभिप्रायं निर्ययौ पुरात् ॥११॥
तदैव यादवाः सर्वे भोजवृष्ण्यंधकादयः । हयस्य पृष्ठतो लग्रास्तत्राजग्मुर्नृपेश्वर ॥१२॥

विलोकयंतो नयपालतीर्थे तथा च मार्गे मिथिलामयोध्याम् ।
बर्हिष्मतीं चैव हि कान्यकुब्जं सांकर्षणं गोकुलमेव राजन् ॥१३॥
मार्त्तंडकन्यां मथुरां पुरीं च विराजते यत्र तु केशवश्च ।
वृंदावने नन्दपुरे नृपेंद्र समागताः कृष्णयुताश्च सर्वे ॥१४॥

नन्दग्रामं तत्र दृष्ट्वा रथस्थो नन्दनंदनः । सर्वेषामग्रतो भूत्वा ह्यययौ यादवैर्वृतः ॥१५॥
ददर्श तत्र पुरतो गोपालैः पितरं हरिः । संस्थितं तु पुरस्कृत्य वारणेन्द्रमलंकृतम् ॥१६॥
वादित्रैः शंखशब्दैश्च जयशब्दैर्नृपेश्वर । पुष्पालंकारकलशलाजाद्यैः परिभूषितम् ॥१७॥
ततश्च यादवाः सर्वे नेमुर्नंदं निरीक्ष्य च । हर्षाश्रुविप्लुता राजन्नुद्धवाद्याश्च तत्र वै ॥१८॥
तदैव नन्दराजस्य दक्षिणांगमथास्फुरत् । उवाच दृष्ट्वा मनसि ह्युत्तमं शकुनं नृप ॥१९॥
अद्य पश्यामि नेत्राभ्यां कृष्णं किं प्रियवादिनम् । यस्मान्ममाक्षिः स्फुरति दक्षिणश्च प्रियंकरः ॥२०॥
मन्नेत्रगोचरः कृष्णो यदा भूयात्तदा ह्यहम् । गवां लक्षं प्रदास्यामि ब्राह्मणेभ्यो ह्यलंकृतम् ॥२१॥
इत्युक्त्वा वचनं नंदो विरराम यदा नृप । तदाऽशृणोत्स्वपुत्रस्यागमनं व्रजवासिभिः ॥२२॥
श्रीकृष्णागमनं श्रुत्वा नन्दो विरहविप्लुतः । पश्यन्हरिं च सर्वेषां विचचार रुदन्निव ॥२३॥
वदन्कृष्णेति कृष्णेति गिरा गद्गदया भृशम् । हे कृष्णचन्द्र क्व गतो दुःखितं मां न पश्यसि ॥२४॥
ततो निरीक्ष्य पितरं श्रीकृष्णः पितृवत्सलः । अवप्लुत्य रथात्तूर्णं पपात चरणौ पितुः ॥२५॥
श्रीनन्दराजस्तनयं समुत्थाप्य चिरागतम् । स्नापयामास सलिलैः कृत्वा वक्षसि नेत्रयोः ॥२६॥
अक्षिभ्यां कृष्णचन्द्रस्तु मुमोचाश्रु घृणातुरः । श्रीदामादीन्सखीन्दृष्ट्वा पश्चात्प्रेमपरिप्लुतान् ॥२७॥

पृथक्पृथक्परिरेभे कृष्णप्रेमपरिप्लुतः । भक्तानां कोऽस्ति माहात्म्यमहो वक्तुं धरातले २८॥
नन्दाद्या रुरुदुर्गोपाः श्रीकृष्णाद्याश्च यादवाः । प्रवक्तुं न समर्थास्ते सर्वे विरहविक्लवाः ॥२९॥
अश्रुपूर्णमुखः कृष्णो गोपान्गद्गदया गिरा । सर्वानाश्वासयामास प्रेमानंदसमाकुलान् ॥३०॥
परिपूर्णतमं साक्षाच्छ्रीकृष्णं जगदीश्वरम् । तादृशं ददृशुः सर्वे यादृशो मथुरां गतः ॥३१॥
नवीननीरदश्यामं किशोरवयसं शिशुम् । शरत्प्रभातकमलकांतिमोचनलोचनम् ॥३२॥
शरत्पूर्णेन्दुशोभाढ्यं शोभास्वाच्छादनाननम् । कोटिमन्मथलावण्यं लीलानंदितसुन्दरम् ॥३३॥
सस्मितं मुरलीहस्तं द्विभुजं ह्यतिसुन्दरम् । तडिद्वस्त्रधरं देवं मत्स्यकुण्डलिनं हरिम् ॥३४॥
चन्दनोक्षितसर्वांगं कौस्तुभेन विराजितम् । आजानुमालतीमालावनमालाविभूषितम् ॥३५॥
मयूरपिच्छचूडं च सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलम् । पक्वबिंबाधरोष्ठं च नासिकोन्नतशोभनम् ॥३६॥
एवं कृष्णस्य राजेन्द्र रूपं नेत्रैर्व्रजौकसः । पपुरानन्दसंमग्नाः पीयूषं मानवा इव ॥३७॥
अनिरुद्धं ततो नन्दः सांबादींश्चैव यादवान् । आशिषं प्रददौ राजन्प्रीतः प्रेमपरिप्लुतः ॥३८॥
ततः सर्वैश्च यदुभिः पुत्रपौत्रसमन्वितः । विवेश स्वपुरं नन्दो गतदुःखो महामतिः ॥३९॥
अवप्लुत्य रथात्कृष्णः सांबाद्यैः परिभूषितः । त्वरं स्वमातुर्भवनमानंदं प्रददन्ययौ ॥४०॥
दृष्ट्वा स्वमातरं कृष्णो गृहद्वारे समागताम् । रुदतीं बाष्पकण्ठीं तां ननाम प्ररुदन्हरिः ॥४१॥
यशोदा तस्य जननी स्वप्राणेभ्यः प्रियं सुतम् । उपगूह्य ददौ तस्मै गिरा गद्गदयाऽऽशिषः ॥४२॥
नन्दस्तथोपनंदश्च तथा षड्वृषभानवः । वृषभानुवरश्चैव ह्येते द्रष्टुं समाययुः ॥४३॥
तत्रागतानां गोपानां श्रीकृष्णो यादवैर्वृतः । यथाविध्युपसंगम्य सर्वेषां मानमादधे ॥४४॥

श्रीकृष्णके भी नेत्रोंसे आँसू बरसने लगे । बादमें उन्होंने श्रीदामा आदि अपने सखाओंको भी प्रेमसागरमें सराबोर देखा ॥ २७ ॥ प्रेमरसमें मग्न श्रीकृष्ण अपने एक-एक मित्रसे अलग-अलग मिले। अहो ! भक्तोंकी महिमा बखाननेमें भूतलका कौन प्राणी समर्थ हो सकता है ? ॥ २८ ॥ नन्दादिक गोप और श्रीकृष्ण आदि सभी यादव रोने लगे । विरहव्यथासे व्यथित होनेके कारण वे मुखसे कुछ कह नहीं पाते थे ॥ २९ ॥ तब अश्रुपूर्ण नयनोंवाले श्रीकृष्ण गद्गद वाणीमें प्रेमसे आकुल सब गोपोंको आश्वासन देने लगे ॥ ३० ॥ उस समय परिपूर्णतम परमेश्वर श्रीकृष्णको सब गोपोंने उसी रूपमें विद्यमान देखा, जिस रूपमें वे वृन्दावनसे मथुरा गये थे ॥३१॥ नवीन मेघसरीखे श्याम, किशोर वयके बालक जैसे, शरत्कालके प्रभात-कमलको लज्जित करनेवाले नेत्रों युक्त, शरत्पूर्णिमाके पूर्ण चन्द्रमाकी शोभाको आच्छन्न करनेवाले मुखमण्डलसे विमंडित, करोड़ों कामदेवोंके लावण्यसे सम्पन्न, अपनी लीलासे सबको आनन्दित करनेवाले, मन्द मुसकानयुक्त, मुरली हाथमें लिये हुए, दो भुजाओंसे शोभित, अतिशय सुन्दर, बिजली जैसा चमकीला वस्त्र धारण किये, मकराकृति कुण्डल पहने, चन्दनसे सर्वाङ्गचर्चित, कौस्तुभ मणिसे अलंकृत कण्ठवाले, जानु (घुटने) तक लटकती मालतीकी माला तथा वनमाला धारण किये, मोरपंख तथा उत्तम रत्नोंके मुकुटसे अलंकृत, पक्व बिम्बफल जैसे होंठ और ऊँची नासिकासे शोभायमान श्रीकृष्णकी रूपसुधाको आनन्दमग्न होकर व्रजवासियोंने इस प्रकार पिया, जैसे जनसाधारणके लोग अमृत पीते हों ॥ ३२–३७ ॥ तभी प्रेमरसमें निमग्न नन्दने परम प्रसन्न होकर अनिरुद्ध और साम्बादि यादवोंको अनेकशः आशीर्वाद दिये ॥ ३८ ॥ तदनन्तर सब दुःखोंसे मुक्त महामति नन्दने अपने पुत्रों-पौत्रों और यादवोंके साथ नगरमें प्रवेश किया ॥ ३९ ॥ नन्दमहलके द्वारपर पहुँचकर, साम्बादि पुत्रोंसे सुशोभित श्रीकृष्ण रथसे उतरकर माता यशोदाके घरमें गये ॥ ४० ॥ घरके दरवाजेपर ही रोती तथा आँसुओंसे रुँधे गलेवाली माताको रोते हुए श्रीकृष्णने प्रणाम किया ॥ ४१ ॥ श्रीकृष्णकी जननी यशोदाने अपने प्राणोंसे प्रिय पुत्रको गले लगाकर गद्गद वाणीसे आशीर्वाद दिया ॥ ४२ ॥ उसी समय नन्द, उपनन्द, छः वृषभानु और वृषभानुवर ये सब श्रीकृष्णका दर्शन करने आये ॥ ४३ ॥

सिंहासने स्थितं राधा देवं मदनमोहनम् । हर्षाश्रूणि प्रमुंचंती जगौ गद्गदया गिरा ॥१०॥

राधोवाच

गोकुलं मथुरां त्यक्त्वा गतः कस्मात्कुशस्थलीम् । वद तन्मे हृषीकेश त्वं साक्षाद्गोकुलेश्वरः ॥११॥
क्षणं युगसमं नाथ जानामि त्वद्वियोगतः । घटीं मन्वंतरसमां द्विपरार्द्धसमं दिनम् ॥१२॥
कस्मिन्कुकाले विरहो मे बभूव च दुःखदः । येन त्वच्चरणौ देव न पश्यामि सुखप्रदौ ॥१३॥
यथा रामं तु सीतेव मानसं वरटेव च । तथा रासेश्वरं त्वां तु मानदं हि समुत्सहे ॥१४॥
सर्वं जानासि सर्वज्ञ किं दुःखं कथयाम्यहम् । शतवर्षं गतं नाथ वियोगो न गतो मम ॥१५॥
इत्युक्त्वा वचनं राजन्स्वामिनी स्वामिनं परम् । वियोगखिन्ना दुःखानि स्मरंती सा रुरोद ह ॥१६॥
दृष्ट्वा प्रियां रुदंतीं तां प्रियः प्राह प्रियं वचः । तस्याश्च शमयन्वाक्यैः कृष्णः कश्मलमेव च ॥१७॥

श्रीकृष्ण उवाच

न कर्त्तव्यस्त्वया राधे शोकश्च तनुशोषकः । तेजश्चैकं द्विधाभूतमावयोर्ऋषयो विदुः ॥१८॥
यत्राहं त्वं सदा तत्र यत्र त्वं ह्यहमेव च । वियोग आवयोर्नास्ति मायापुरुषयोर्यथा ॥१९॥
भेदं हि चावयोर्मध्ये ये पश्यंति नराधमाः । देहांते नरकान्राधे ते प्रयांति स्वदोषतः ॥२०॥
अथातस्त्वं तु मां राधे नित्यं द्रक्ष्यसि चांतिके । प्रभाते चक्रवाकीव चक्रवाकं प्रियंकरम् ॥२१॥
किंचित्कालेन दयिते गोपगोपीभिरेव च । सार्कं त्वयाऽक्षरं ब्रह्म श्रीगोलोकं व्रजाम्यहम् ॥२२॥

गर्ग उवाच

माधवस्य वचः श्रुत्वा गोपीभिः सह राधिका । प्रसन्ना पूजयामास रमेशं च रमा यथा ॥२३॥
श्रीराधया पुनः कृष्णो रासार्थं प्रार्थितो नृप । प्रसन्नो वृंदकारण्ये रासं कर्तुं मनो दधे ॥२४॥

इति श्रीगर्गसंहितायां हयमेधखण्डे राधाकृष्णमेलनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

किया और न कभी शय्यापर सोयीं । तबसे वे कभी हँसी भी नहीं ॥ ९ ॥ इस समय सिंहासनपर विराजमान मदनमोहन श्रीकृष्णको देखकर हर्षके आँसू बहाती हुई राधा गद्गद वाणीमें बोलीं । राधाने कहा—हे हृषीकेश ! गोकुल और मथुरा त्यागकर आप द्वारका क्यों चले गये, यह मुझे बतलाइए । आप तो साक्षात् गोकुलेश्वर ! हैं न ॥१०॥११॥ हे नाथ ! आपके वियोगमें मेरा एक क्षण युगके समान, एक घड़ी मन्वन्तरकी भाँति और दिन द्विपरार्ध सरीखा लगता है ॥ १२ ॥ हाय, किस कुसमयमें मुझे आपका दुखदायी वियोग प्राप्त हुआ था । जिसके कारण मुझे आपके सुखदायक चरणोंका दर्शन नहीं मिला ॥ १३ ॥ जैसे श्रीरामको सीता तथा मानसरोवरकी हंसिनी हंसको चाहती है, उसी प्रकार मानदायक आप रासेश्वरको मैं चाहती हूँ ॥ १४ ॥ आप सर्वज्ञ हैं । अतएव सब कुछ जानते हैं । तब मैं अपना दुःख आपको कैसे बताऊँ । हे नाथ ! सौ वर्ष बीत गये, पर मेरा वियोगदुःख दूर नहीं हुआ ॥ १५ ॥ हे राजन् ! अपने स्वामी श्रीकृष्णसे यह कहकर वियोगके दुःखमें डूबी हुई व्रजस्वामिनी राधा बीते दुःखोंका स्मरण करके रोने लगीं ॥ १६ ॥ अपनी प्रियतमा राधाको रोती देख भगवान् प्रिय वचन बोले । ऐसा करके वे राधाके दुःखको शान्त करनेका प्रयास कर रहे थे ॥ १७ ॥ श्रीकृष्णने कहा—हे राधे ! इस प्रकार शरीर सुखानेवाला शोक तुम्हें नहीं करना चाहिए । क्योंकि ऋषि लोग जानते हैं कि हमारा और तुम्हारा तेज एकाकार हो करके दो रूपोंमें दृष्टिगोचर होता है । वास्तवमें दो है नहीं ॥ १८ ॥ हे प्रिये ! जहाँ मैं रहता हूँ, वहाँ ही तुम भी रहती हो । जैसे प्रकृति और पुरुषका वियोग नहीं होता, वैसे ही मेरा और तुम्हारा वियोग कभी नहीं होता ॥ १९ ॥ जो नराधम हम दोनोंमें भेद देखते हैं, वे लोग अपने इस दोषसे शरीर त्यागनेपर नरकमें जा पड़ते हैं ॥ २० ॥ अबसे तुम मुझे सदा अपने पास ही देखोगी, जैसे प्रातःकालके समय चकवी अपने प्यारे चकवेको अपने पास देखती है ॥ २१ ॥ हे प्रिये ! कुछ ही समय बाद तुम्हें तथा गोपों और गोपियोंको अपने साथ लेकर मैं अक्षर ब्रह्मस्थान गोलोकधाम चला जाऊँगा ॥ २२ ॥ गर्गमुनि बोले—हे राजन् ! श्रीकृष्णके वचन सुनकर गोपियोंके साथ राधा बहुत प्रसन्न हुई

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

(वृन्दावनमें राधाकृष्णकी रासलीला)

श्रीगर्ग उवाच

हेमंते मासि पूर्वस्मिन्राकायां राधिकेश्वरः । वंशीं वशकरीं दध्मौ यथा वृन्दावने पुरा ॥ १ ॥
ध्वनिर्बभूव तस्याश्च सर्वेषामाहरन्मनः । निशम्य गोप्यः संखिन्नाः कामखेदेन तत्रसुः ॥ २ ॥
रुंधन्नंबुभृतश्चमत्कृतिपरं कुर्वन्मुहुस्तुंबरं ध्यानाद्धृतनयन्सनंदनमुखान्विस्मेरयन्वेधसम् ।
औत्सुक्याद्बलिभिर्बलिं चटुलयन्भोगींद्रमाघूर्णयन्भिंदन्नंडकटाहभित्तिमभितो बभ्राम वंशीध्वनिः ॥ ३ ॥
अथोदगाच्चंद्रमास्तु चर्षणीनां शुचो मृजन् । यथा प्रियाया राजेंद्र विदेशादागतः प्रियः ॥ ४ ॥
तदैव यमुना राजंस्तनुं दिव्यं दधार ह । वृन्दावनं गिरींद्रश्च व्रजभूमिश्च मानद ॥ ५ ॥

कृष्णा नदी जयति यत्र मणींद्रमुक्तामाणिक्यशुभ्रहरिता करतोलिकाभिः ।
वैदूर्यनीलकहरिद्धरिवज्रपीतसोपानमण्डपयुताभिरतिस्फुरन्ती ॥ ६ ॥
स्वच्छंदसूत्पतितमत्स्यगणैर्वहंती सच्छयामलेन वपुषाऽघगणं हरंती ।
उत्तुङ्गलोललहरी कमलैर्लसंती कृष्णा नदी जयति कृष्णगृहे लुठंती ॥ ७ ॥
गोवर्द्धनं भज गिरिं शतचंद्रयुक्तं मंदारचन्दनलतावृतकल्पवृक्षम् ।
श्रीरासमण्डलयुतं मणिमंडपाढ्यं कोटीरमंजुलनिकुंजकुटीरकोटिम् ॥ ८ ॥
वृन्दावनं च यमुनातटनीरतीरसंपृक्तमंदगमनैरतिगंधवातैः ।
तत्कंपितं च सुरभीकृतसर्वदेशं श्रीखंडकुंकुममृदागुरुचर्चितं तम् ॥ ९ ॥

और भगवानका इस प्रकार पूजन किया, जैसे लक्ष्मीजी विष्णुभगवानका पूजन करती हैं ॥ २३ ॥ बादमें राधाने रासलीला करनेके लिए अनुरोध किया तो भगवान भी वृन्दावनमें रास रचानेके लिए राजी हो गये ॥ २४ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखंडे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायामेकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

श्रीगर्गमुनि बोले—हे राजन् ! जैसे बाल्यकालमें हेमन्त ऋतुके प्रथम मास (कार्तिक) की पूर्णिमाको राधिकेश्वर श्रीकृष्णने अपनी लोकवशकरी वंशी बजायी थी, उसी प्रकार इस समय भी उन्होंने अपनी वंशी बजायी ॥ १ ॥ सबका मन हरनेवाली वंशीकी ध्वनि सुनकर गोपियाँ कामके आवेगसे त्रस्त हो उठीं ॥ २ ॥ उस वंशीकी ध्वनिसे समुद्रका वेग रुक गया, आकाशमें विविध चमत्कार दीखने लगे, सनकादि मुनियोंका ध्यान भंग हो गया, ब्रह्माजीको बड़ा आश्चर्य हुआ, बड़ी उत्कंठासे नाना प्रकारकी बलि (पूजा) देनेवाले राजा बलि चंचल हो गये और शेषनाग काँपने लगे। इस प्रकार जैसे समस्त ब्रह्माण्ड-कटाहको वह वंशीध्वनि छिन्न-भिन्न करने लगी ॥ ३ ॥ इसी समय विरही जनोंकी विरहव्यथा दूर करता हुआ चन्द्रमा उदित हो गया। जैसे परदेशसे लौटा हुआ पति अपनी पत्नीका शोक दूर करता है ॥ ४ ॥ हे राजन् ! उसी अवसरपर यमुनाने भी दिव्य तन धारण किया। इसी प्रकार वृन्दावन, गोवर्धन और समस्त व्रजभूमिने भी दिव्य रूप धारण कर लिया ॥ ५ ॥ उस समय उच्चकोटिके मणियों, मोती, माणिक, हीरा तथा पन्नाजटित परकोटों और वैदूर्य, नीलमणि, हीरे तथा पन्नाकी सीढ़ियोंवाले मणिमण्डपोंसे जगमगाती हुई यमुना बहुत ही सुन्दर लग रही थी ॥ ६ ॥ स्वेच्छासे उछलते मत्स्योंके समुदायसे सम्पन्न, ऊँची-ऊँची चंचल तरंगों तथा विविध प्रकारके कमलोंसे भरी-पूरी अपने श्यामल शरीरसे पामर प्राणियोंके पाप हरती हुई यमुना मन्थर गतिसे बह रही थी ॥ ७ ॥ उस गोवर्धन पर्वतका भजन करिए, जिसपर सौ चन्द्रमाका प्रकाश नित्य विद्यमान रहता है। जहाँ मन्दार, चन्दन तथा अनेक वल्लरियोंसे लिपटे कल्पवृक्षोंके जंगल हैं, जहाँ मणिमंडपोंसे अलंकृत अनेक रासमंडल हैं और जहाँ निकुंजकुटियाँयें विद्यमान हैं ॥ ८ ॥ यमुनाजीके तटपर जलसे सँटा, शीतल-मन्द-सुगन्धियुक्त वायु तथा चन्दन-केसरके पंकसे अनुलिप्त होनेसे सारा प्रदेश परम

जुष्टं वसन्तनवपल्लवपुष्परंगैर्मंदारचन्दनसुचम्पकनीपनिंबैः ।
आम्रातकाम्रपनसागुरुनागरंगैः श्रीतालपिप्पलवटैर्नवनारिकेलैः ॥१०॥
खर्जूरश्रीफललवंगविराजमानमंजीरशालकतमालकदंबयुक्तम् ।
सन्तानकुंदवदरीकदलीसिताढ्यं श्रीशाल्मलीवकुलकेतकिसच्छिरीषम् ॥११॥
सन्मोदिनीजलजवृन्दमनोहराभं वृन्दारकं वरवनं तुलसीलताढ्यम् ।
श्रीमल्लिकाऽमृतलतामधुमाधवीभिः संराजितं स्मर नृपेंद्र व्रजस्य मध्ये ॥१२॥
वंशीवटं च कलकंठविहंगमैश्च कृष्णातटे च पुलिनं किल वालुकाढ्यम् ।
श्रीपाटलैर्मधुककिंशुकसत्प्रियालैरौदुंबरैः क्रमुकद्राक्षकपित्थयुक्तम् ॥१३॥
श्रीकोविदारपिचुमंदलताऽर्जुनैश्च प्लक्षैरशोकसरलैः सुरदारुभिश्च ।
जंबूसुवेत्रनलकुब्जकस्वर्णयूथीपुन्नागनागकुटजैः कुरवैर्वृतं च ॥१४॥
चक्राह्वसारसशुकैः सितराजहंसैः कारंडवैश्च जलकुक्कुटकूजितं च ॥१५॥
दात्यूहकोकिलकपोतकनीलकण्ठैर्नृत्यन्मयूरकलराववृतं स्मर त्वम् ॥१६॥
श्यामाचकोरकलखंजनसारिकाभिः पारावतैर्भ्रमरतित्तिरतित्तिरीभिः ।
श्रीकांचनीमधुलतामधुयूथिकाभिः संवेष्टितं हरिणमर्कटमर्कटीभिः ॥१७॥
श्रीपद्मरागशिखरं च निकुंजगेहं श्रीकौस्तुभेंद्रमणिराजिविराजमानम् ।
कोटींदुमंडलवितानगणैश्च हैमैः श्रीपट्टसूत्ररचितैर्मणितोरणाढ्यम् ॥१८॥
मुक्तावृतैः कनकपीतपतत्पताकैः पारावतैः सितपतत्रिभिरावृतश्च ।
मंदारकुन्दकरवीरकयूथिकानां मालाविचित्ररचितं नवचंपकानाम् ॥१९॥
नागेशपद्महरिचंदनपल्लवानां श्रीमालतीकुरवकांचनयूथिकानाम् ।
मालाभिरावृतमनंगहरं गृहं तत्सद्रत्नदर्पणवृतं सितचामरैश्च ॥२०॥

सुरभित करनेवाला वृन्दावन भी धन्य है ॥ ९ ॥ जहाँ वसन्तकालीन नवपल्लवों तथा पुष्पोंसे मन्दार, चन्दन, चम्पा, कदम्ब, नीम, आमड़ा, आम, कटहर, नारंगी, ताल, पीपल, वट, नारियल, खजूर, बेल, लौंग, अंजीर, शाल, तमाल, कदम्ब, कल्पवृक्ष, कुन्दबेर, केला, सेमर, मौलसिरी, केतकी तथा सिरस वृक्षोंसे संम्पन्न वृन्दावन था ॥ १० ॥ ११ ॥ हे नृपेन्द्र ! सज्जनोंके मनको आनन्दित करनेवाले कमलवनसे मनोहर कान्तिवाली तुलसीकी लताओंसे युक्त, श्रीमल्लिका, अमृतलता, वासन्तीलता और माधवीलताओंसे अतिशय सुशोभित वृन्दावनका स्मरण करिए कि उसकी कितनी कमनीय शोभा रही होगी ॥ १२ ॥ वृन्दावनमें ही वंशीवट है, जिसपर विविध पक्षी विश्राम करते हैं। उसके पास ही शीतल वालुकायुक्त यमुनाजीका तट है। श्रीपाटल, महुआ, पलाश, प्रियाल, गूलर, सुपारी, दाख, कचनार, नीम, अर्जुन, पाकड़, अशोक, सरो, देवदारु, जामुन, बेंत, नरसल, कुब्जक, स्वर्णयूथी, पुन्नाग, नाग, गुडहर तथा कुरवकके वृक्ष उस वृन्दावनकी शोभा बढ़ाते हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥ वहाँ चकवा-चकवी, सारस, तोते, श्वेत राजहंस, राजहंसोंके बच्चे और जलकुक्कुट नित्य मधुर बोली बोलते रहते हैं ॥ १५ ॥ पपीहा, कोयल, कपोत, नीलकंठ और नृत्य करते हुए मयूरोंसे जहाँ शोर मचा रहता है, उस वृन्दावनका स्मरण करिए ॥ १६ ॥ श्यामा, चकोर, खंजन, मैना, कबूतर, भ्रमर, तीतर, तीतरी, कनकवेलि, मधुलता, जूही, हरिण तथा वानर-वानरीसे वह वृन्दावन सदा भरा रहता है ॥ १७ ॥ उसमें पुखराज मणिसे निर्मित शिखरोंवाला एक निकुंज-भवन है। जिसमें कौस्तुभमणि तथा इन्द्रनीलमणिकी पच्चीकारी की हुई है। वह करोड़ों चन्द्रमण्डलके सदृश चँदोवों,, सुनहले कामके वस्त्रों और मणिजटित तोरणोंसे सदा अलंकृत रहता है ॥ १८ ॥ मोतियोंके झालरोंयुक्त सोनेकी पीली पताकायें वहाँ सदा फहराती रहती हैं। अनेक जातिके कबूतर और हंस जैसे श्वेत पक्षी वहाँ सदा विद्यमान रहते हैं। मन्दार, कुन्द, करीर, जूही और नवीन चम्पाकी माला-

सिंहासनैश्च नवपल्लवपुष्पयुक्तैः शय्यासनैः कनकविद्रुमपादवृन्दैः ।
श्रीचंदनागुरुजलैर्मकरंदसंघैः कस्तूरिकामुदितकुंकुमचर्चितं तत् ॥२१॥
एजद्वसंततरुपल्लवसेव वातैः शीतैर्गजेंद्रगमनैः सुरभीकृतांगम् ।
एतादृशं हरिनिकुंजगृहं स्मर त्वं सन्नम्रशाखतरुयुक्तमतीव पुष्पैः ॥२२॥
श्रीवेणुगीतं बहुकामवर्द्धनं निशम्य सर्वा व्रजयोषितो नृप ।
श्रीकृष्णकांतेन गृहीतमानसा विसृज्य कर्माणि समाययुर्वने ॥२३॥
रुद्धा याः पतिभी राजन्कृष्णेन हृतमानसाः । स्थूलं शरीरं तास्त्यक्त्वा त्वरं कृष्णांतिकं ययुः २४॥
सिंहासने हेमदुकूलसंयुते मध्ये स्थितं सुन्दरनन्दनन्दनम् ।
श्रीसुन्दरी राधिकया समं परं गले दधानं मधुमालतीस्रजम् ॥२५॥
श्यामं प्रभातार्ककिरीटिनं हरिं स्फुरत्प्रभं श्रीमुरलीमनोहरम् ।
पीतांबरं मन्मथराशिमोहनं व्रजस्त्रियस्तं ददृशुः समागताः ॥२६॥
दृष्ट्वा प्रियाः प्रियतमं मत्स्यकुण्डलिनं हरिम् । गोप्यो मूर्च्छाँ गताः सद्यो भूप चालक्षितोद्यमाः २७॥
सांत्वयामास ताः कृष्णो मिष्टवाक्यैः सुधासमैः । तदा गोप्यो वनोद्देशे सर्वाश्चैतन्यतां गताः ॥२८॥
कृष्णं गद्गदया वाचा स्तुत्वा भीताः स्त्रियो वराः । त्यक्त्वा विरहजं दुःखं गोविंदं ददृशुः प्रियम् ॥२९॥
वृन्दावने भ्राजमाने मालतीवनसंकुले । दिव्यद्रुमलताजाले मधुपध्वनिनादिते ॥३०॥
विचचार हरिः साक्षाद्देवो मदनमोहनः । पद्माभं पद्महस्तेन गृहीत्वा राधिकाकरम् ॥३१॥
प्रहसन्भगवान्साक्षादाययौ यमुनातटम् । कृष्णातीरे निकुंजे वै श्रीकृष्णो निषसाद ह ॥३२॥

ओंसे वह सदा अलंकृत रहता है ॥ १९ ॥ नागदमन, कमल, चन्दनदल, मालती, कुरबक और स्वर्णयूथीकी मालाओंसे उसकी शोभा होती रहती है। कामदेवके भी मनको मोहनेवाला, रत्नजटित उत्तम दर्पणों तथा चामरोंसे वह निकुंजभवन अलंकृत रहता है ॥ २० ॥ उसमें नवीन कोमल पुष्पोंसे बने अनेक सिंहासन विद्यमान हैं। जिनके पाये मूँगेके बने हुए हैं। इसी प्रकार उस भवनमें अनेक शय्यासन भी हैं। श्रीचन्दनजल, अगरजल, पुष्प-मकरन्द, कस्तूरी और केसरके जलका उस निकुंजमें सदा छिड़काव किया जाता है ॥ २१ ॥ मन्द-मन्द पवनसे हिलते हुए वसन्तवृक्षके कोमल पत्तोंसे सुगन्धित अंगोंवाले भगवान्‌के उस निकुंजगृहका स्मरण करिए, जिसमें झुकी शाखाओंवाले अनगिनत वृक्ष नित्य पुष्प बरसाया करते हैं ॥ २२ ॥ उस निकुंजभवनमें जाकर भगवान् श्रीकृष्णने जब अपनी वंशी बजायी, तब समस्त व्रजबालायें वह वेणुगीत सुनते ही सारा काम-काज छोड़कर दौड़ पड़ीं। क्योंकि वंशीकी मधुर ध्वनि सुनाकर श्रीकृष्णने उनका मन हर लिया था ॥ २३ ॥ उनमेंसे जिन गोपियोंको उनके पतियोंने रोक लिया था, वे अपना स्थूल शरीर पतियोंके पास छोड़कर सूक्ष्मदेहसे अतिशीघ्र श्रीकृष्णके पास दौड़ आयीं। सुनहले कामके वस्त्र जिसपर बिछे थे, उस सिंहासनपर विराजमान भगवान् श्रीकृष्ण तथा सुन्दरी राधिकाके गलेमें मालतीकी माला सोह रही थी ॥ २४ ॥ २५ ॥ उस समय श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण प्रातःकालके सूर्यसदृश चमकीला किरीट पहने हुए थे। उनकी कान्ति चारों ओर फैल रही थी। उनकी मुरली उनके हाथमें विराज रही थी। वे मनोहर पीताम्बर पहने हुए थे। अपने अपार सौन्दर्यसे वे अनगिनत कामदेवोंका मन मथ रहे थे। ऐसे भगवान्‌को व्रजसुन्दरियोंने देखा ॥ २६ ॥ मत्स्याकृति कुण्डलधारी भगवान् श्यामसुन्दरको देखकर वे सभी व्रजबालायें मूर्छित हो गयीं। उनके कार्यकलाप रुक गये ॥२७॥ जब भगवान्‌ने मीठी वाणीसे उन्हें सान्त्वना दी, तब वे सचेत हुईं ॥ २८ ॥ तब गोपियोंने गद्गद वाणीसे उनकी स्तुति की। उसके बाद प्रियवियोगजनित दुःख दूर करके उन्होंने अपने प्रिय गोविन्दको देखा ॥ २९ ॥ मालतीवनसे व्याप्त वृन्दावनमें जहाँ दिव्य वृक्षों तथा लताओंके निकुंज थे और भ्रमर गुंजार रहे थे, वहाँ भगवान् मदनमोहन अपने करकमलसे राधाका करकमल पकड़कर धीरे-धीरे विचरने लगे ॥ ३० ॥ ३१ ॥ मन्द-मन्द हँसते हुए प्रभु वहाँसे चलकर यमुनाके तटपर पधारे। फिर तटवर्ती

तस्मिन्गृहे मधुपतेः शृणु गोपिकानां श्रीकृष्णचन्द्रचरणस्मरणावृतानाम् ।
झंकारनूपुरझणत्करकंकणानां मंजीररत्नविचलत्कटिकिंकिणीनाम् ॥३३॥
स्मेरद्युतिस्फुटचमत्कृतगंडदेशैः श्रीदंतपंक्तिविलसत्तडितालिलेशैः ।
कोटीरहारहरितांगदभूषितानां बालार्कमंडलविकुंडलमंडितानाम् ॥३४॥
तासां तु कापि युवती कथिता च मुग्धा मध्यापि कापि तरुणी रुचिरा प्रगल्भा ।
काचित्तरुं विनयती मधुरं हसंती काचित्सखी मदयुता सुवने व्रजंती ॥३५॥
संताड्य तामपि करेण तु काऽप्यधावत्संगृह्य काऽपि भुवने कमलैर्जघान ।
काचिच्छ्लथत्कनकहारमुपाजहार काचित्प्रमुक्तकवरी तु विहारमत्ता ॥३६॥
श्रीजाह्नवी च यमुना मधु माधवी च शीला रमा शशिमुखी विरजा सुशीला ।
चन्द्रानना च ललिता त्वचला विशाखा मायाऽल्प एव कथिता भवने त्वसंख्याः ॥३७॥
लीलातपत्रमतिमौक्तिकदामजालं नीत्वा चलंति मणिभूमिषु तत्र काश्चित् ।
श्रीचामरव्यजनदंडधरा वयस्याः काश्चिद्व्रजंति धृतपीतपतत्पताकाः ॥३८॥
नृत्यंति तत्र हरिवेषधरास्तु काश्चिद्वीणाकरा मधुरतालमृदंगहस्ताः ।
वंशीधराश्च वृषभानुसुताः सुवेषाः केयूरकुण्डलयुता मणिवेत्रहस्ताः ॥३९॥
सद्भावभावरसतालयुतस्मिताक्तैर्झंकारनूपुरयुतैर्विशदैः कटाक्षैः ।
संगीतनृत्यविदितैर्भ्रुकुटीविभंगै राधां हरिं च सततं परितोषयंत्यः ॥४०॥
तस्मिन्निकुञ्जभवने यमुनातटेऽपि वंशीवटे वनधरानिकटे हरिं तम् ।
श्रीराधया च गिरिराजतटं व्रजंतं नंदात्मजं च नटवेषधरं स्मर त्वम् ॥४१॥
श्रीपद्मरागनखदीप्तिपदारविन्दं झंकारनूपुरधरं स्फुरदंगदेशम् ।
कुर्वंतमेव तु पदारुणभूमिदेशं श्रीमत्परागसुरुचालसितस्ततस्तु ॥४२॥

निकुंजमें जा विराजे ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! उस वसन्तकालीन निकुंजमें नित्य श्रीकृष्णके चरणोंका स्मरण तथा नूपुरकी झंकार और कंकणोंकी रुनझुन करती तथा रत्नमयी करधनी कमरमें पहने गोपियोंके कुछ भेद बता रहा हूँ, सो सुनिए ॥ ३३ ॥ मन्द-मन्द हास्यकी द्युतिके साथ चमकते हुए कपोलों और शोभासे युक्त दंतपंक्तिसे सुशोभित बिजलीके सदृश सखियोंके वेषों तथा सुवर्णकेहार एवं बाजूबन्दसे भूषित और प्रातः-कालीन सूर्यमण्डलके समान कुण्डलोंसे विभूषित उन गोपियोंमें कुछ गोपियाँ मुग्धा, कुछ तरुणी और कुछ मध्या थीं। उनमें कोई सखी वृक्षको झुका रही थी, कोई हँस रही थी और कोई मदमत्ता सखी वनमें विचर रही थी ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ तभी कोई मदमाती सखी किसी अन्य सखीको एक धौल जमाकर भागी। कोई जलमें स्नान करती हुई सखीको पकड़कर कमलपुष्पसे मारने लगी। किसीने किसी सखीके ढीले हारको ले लिया। कोई सखी विहारमें मग्न रहनेके कारण अपने उलझे बालोंको भी नहीं सुलझा रही थी ॥ ३६ ॥ श्रीजाह्नवी, यमुना, मधुमाधवी, शील, रमा, शशिमुखी, विरजा, सुशीला, चन्द्रानना, ललिता, अचला, विशाखा और माया आदि असंख्य सखियाँ वहाँ विद्यमान थीं ॥३७॥ उनमेंसे कोई सखी लीलाछत्र और कोई मोतियोंका हार लिये उस मणिमय भूमिपर चल रही थी। उनमेंसे कोई चमर तथा कोई सखी पीली पताका हाथमें लिये थी ॥ ३८ ॥ कुछ गोपियाँ श्रीकृष्णका रूप धारण करके नाच रही थीं। कुछ गोपियाँ वीणा, कुछ मधुर ताल-वाद्य और कुछ मृदंग लिये थीं। कुछ सखियोंने शृंगार करके बाजूबन्द पहन रखा था। श्रीराधिका हाथमें वंशी लिये थीं। कुछ सखियाँ हाथमें मणिजटित वेत्र लिये थीं ॥ ३९ ॥ अपने उत्तम हाव-भाव, रस-तालयुक्त मधुर मुसकान, झंकारयुक्त नूपुरों, विशद कटाक्षों, संगीत-नृत्य तथा भृकुटिविलाससे प्रिया-प्रियतम (राधा-कृष्ण) को परितुष्ट करती हुई रास कर रही थीं ॥ ४० ॥ यमुनातटवर्ती उस निकुंजभवनमें विहार करके श्यामसुन्दर वंशीवट होते हुए श्रीराधाके साथ गोवर्धन पर्वतपर जाकर विचरने लगे। उस समय

लक्ष्मीकराब्जपरिलालितजानुदेशं रंभोरु पीतवसनं तु कृशोदराभम् ।
रोमावलिभ्रमरनाभिसरस्त्रिरेखं कांचीधरं भृगुपदं मणिकौस्तुभाढयम् ॥४३॥
श्रीवत्सहाररुचिरं नवमेघनीलं पीतांबरं करिकरस्फुटबाहुदण्डम् ।
रत्नांगदं च मणिकंकणपद्महस्तं श्रीराजहंसवरकंधरशोभमानम् ॥४४॥
श्रीकम्बुकण्ठललितं विलसत्कपोलं मध्यं तु निम्नचिबुकं किल कुन्ददंतम् ।
बिंबाधरं स्मितलसच्छुकचंचुनासं पीयूषकल्पवचनं प्रचलत्कटाक्षम् ॥४५॥
श्रीपुण्डरीकदलनेत्रमनंगलीलं भ्रूमण्डलस्मितगुणावृतकामचापम् ।
विद्युच्छटोच्छलितरत्नकिरीटकोटिं मार्तंडमंडलविकुण्डलमंडिताभम् ॥४६॥
वंशीधरं त्वहिविलोलगुडालकाढयं राधापतिं सजलपद्ममुखं चलंतम् ।
कंदर्पकोटिघनमानहरं कृशांगं वंशीवटे नटवरं भज सर्वथा त्वम् ॥४७॥
आरक्तरक्तनखचन्द्रपदाब्जशोभां मञ्जीरनूपुररणत्कटिकिंकिणीकाम् ।
श्रीघंटिकाक्वनककंकणशब्दयुक्तां राधां दधामि तरुपुञ्जनिकुञ्जमध्ये ॥४८॥
नीलांबरैः कनकरश्मितटस्फुरद्भिः श्रीभानुजातटमरुद्धतिचंचलांगैः ।
सूक्ष्मस्वरूपललितैरतिगौरवर्णां रासेश्वरीं भज मनोहरमंदहासाम् ॥४९॥
बालार्कमंडलमहांगदरत्नहारां ताटंकतोरणमणींद्रमनोहराभाम् ।
श्रीकण्ठभालसुमनोनवपंचदाम्नीं रत्नांगुलीयललितां व्रजराजपत्नीम् ॥५०॥
चूडामणिद्युतिलसत्स्फुरदर्द्धचंद्रां ग्रैवेयकालपनपत्रविचित्ररूपाम् ।
श्रीपट्टसूत्रमणिपट्टचलद्द्विदाम्नीं स्फूर्ज्जत्सहस्रदलपद्मधरां भजस्व ॥५१॥

वे नटवरवेष धारण किये हुए थे। ऐसे नन्दनन्दनका स्मरण करिए ॥ ४१ ॥ जिन चरणकमलोंके नख पुखराजमणिके समान देदीप्यमान हैं, जिनसे नूपुरोंकी झंकार निकल रही है और जिनके प्रत्येक अंग फड़क रहे हैं, उन श्रीचरणोंसे भूमिभागको अरुण करते हुए वे इधर-उधर विचरने लगे ॥ ४२ ॥ साक्षात् भगवती लक्ष्मीके करकंजसे परिलालित (दुलराये) जानुप्रदेश, कदलीके समान जंघाओंयुक्त, पीताम्बरधारी, बहुत सूक्ष्म उदर, पतली कमर, जिसमें रोमावलिकी भ्रमरी विद्यमान थी ऐसे अंगसे युक्त, सरोवर सदृश गंभीर नाभि, क्षुद्रघंटिकासे विभूषित, वक्षस्थलमें भृगुलता-चिह्नधारी, गलेमें कौस्तुभमणिधारी, श्रीवत्स तथा हारसे मनोहारी, नवल सजल मेघसदृश श्याम तथा पीतवसनधारी, शुण्डादण्डसदृश भुजदण्डसमन्वित, रत्नजटित बाजूबन्द तथा मणिमय कंकणधारी हाथोंवाले और राजहंसके समान भगवान उत्तम ग्रीवासे सुशोभित थे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ शंखके समान ललित उनका कंठ था, सुन्दर कपोल, कुछ निम्न चिबुक (ठोढ़ी), कुन्दकलीके समान दन्तपंक्ति, बिम्बफल जैसे होंठ, मन्द मुसकान युक्त मुख, तोतेकी चोंच जैसी नासिका, अमृत जैसी मीठी वाणी और चंचल कटाक्षसे वे सम्पन्न थे ॥ ४५ ॥ कमल जैसे उनके नेत्र थे, कामदेवके समान उनकी लीला थी, मन्द मुसकान भरा मुख था, कामदेवके धनुष जैसी भृकुटी थी, बिजली जैसी छटा फैलानेवाला रत्नजटित उनका किरीट था, करोड़ों सूर्यबिम्बों जैसा उनका प्रकाश था, कानोंमें कुण्डल झूल रहे थे ॥ ४६ ॥ हाथमें वंशी लिये, काली घुँघराली अलकावलीसे मण्डित, राधाके पति, कमलसदृश मुख, करोड़ों कामदेवोंके मदमर्दनकारी, वंशीवटके तले विराजमान और नटवर वेष धारण किये हुए श्रीकृष्णका सब प्रकारसे भजन करिए ॥४७॥ महावरसे रंगे नखों युक्त उनके चरण थे, जो मंजीर-नूपुरयुक्त करधनी पहने थीं, श्रीघंटिका तथा शब्दायमान कनककंकण जिनके हाथो में थे, जो वृक्षोंके निकुंजमें विराजमान थीं, उन राधिकाजीका मैं ध्यान करता हूँ ॥४८॥ अगले ग्यारह श्लोकोंमें श्रीराधिकाजीकीशोभावर्णन किया जा रहा है। सुवर्ण द्युति तथा यमुनाजलसे संस्पृष्ट वायुसे कम्पित सूक्ष्म नीलाम्बरधारिणी गौरवर्णा तथा मन्दमुसकानयुक्त रासेश्वरी राधारानीका भजन करिए ॥ ४९ ॥ उदयकालीन सूर्यमण्डलके समान चमकीला बाजूबन्द तथा हार धारण

श्रीबाहुकंकणलसत्कुचरत्नदीप्तिं श्रीनासिकाभरणभूषितगण्डदेशाम् ।
सद्यौवनालसगतिं कलसर्पवेणीं मध्येंदुकोटिवदनां स्फुटचंपकाभाम् ॥५२॥
सद्भावभावसहितां नवपद्मनेत्रां स्फूर्ज्जत्स्मितद्युतिकलां प्रचलत्कटाक्षाम् ।
कृष्णप्रियां ललितकुन्तलपुंजलाभां मंदारहारमधुरभ्रमरीरवाढ्याम् ॥५३॥
श्रीखंडकुंकुममृदाऽगुरुवारिसिक्तां श्रीबिंदुकीरुचिरपत्रविचित्रचित्राम् ।
संतानपत्ररुचिरामलसंजनाभां रासेश्वरीं गजगतिं भज पद्मिनीं ताम् ॥५४॥
एतादृशीं रतिवरां तु समेत्य कृष्णो गच्छन्निकुञ्जवनजालविलोकनाय ।
धावंति तत्र मणिछत्रधराश्च गोप्यो नीत्वा तथा चमरचारुपतत्पताकाः ॥५५॥
षड्रागमेव वरधैवतमध्यमाद्यैर्गायंतमादिपुरुषं भज नन्दपुत्रम् ।
षट्त्रिंशतस्तदनुवर्त्तितरागिणीनां वंशीरवेण ललितेन वरं व्रजं तम् ॥५६॥
शृंगारवीरकरुणाद्भुतहास्यरौद्रबीभत्सशांतकभयानकनित्ययुक्तम् ।
भक्तप्रियं व्रजवधूमुखपद्मभृंगं योगीन्द्रहृत्कमलविस्फुरदंघ्रियुग्मम् ॥५७॥
क्षेत्रज्ञमादिपुरुषं स्वधियज्ञरूपं सर्वेश्वरं सकलकारणकारणेशम् ।
कृष्णं हरिं प्रकृतिपूरुषयोः पुमांसं सर्वं निरस्तकपटं निजतेजसेह ॥५८॥
यं वै स्तुवंति शिवधर्मसुरेशशेषलोकेशसिद्धिदगणेशसुरादयोऽपि ।
राधारमाप्रकृतिभूविरजास्वराद्या वेदा भजंति सततं तमहं भजामि ॥५९॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायामश्वमेधखण्डे रासक्रीडायां द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

किये, ताटंक-तोरण तथा मणीन्द्र सरीखी कान्तिसे सम्पन्न, कंठ तथा माथेपर वेणी, वन्दी और झूमर धारण किये और रत्नजटित मुद्रिका पहने व्रजराज कृष्णकी पत्नी श्रीराधिका रानीको भजिए ॥ ५० ॥ चूड़ामणिकी दीप्तिसे देदीप्यमान, अर्धचन्द्र तथा अनेक कण्ठालंकारोंसे विचित्र रूपवती, श्रीपट्टसूत्र तथा मणिपट्टसे हिलती हुई दुलरी पहने और दमकते सहस्रदल कमलको धारण किये भगवती राधिकाको भजिए ॥ ५१ ॥ जिनकी श्रीसम्पन्न भुजाओंमें कंकण शोभित हैं, जिनके स्तनोंपर रत्नोंका प्रकाश पड़ रहा है, नासिकामें पड़े नकवेसरकी कान्तिसे जिनके कपोल दमक रहे हैं, उभरे हुए यौवनसे जिनकी गति मन्द पड़ गयी है, काली नागिनके समान मनोहर वेणी एवं सायंकालीन चन्द्रमाके समान मुख और नवविकसित चम्पकपुष्पसदृश अंगोंवाली राधारानीको भजिए ॥ ५२ ॥ सुन्दर हाव-भावयुक्त, नवीन कमलसरीखे नयनोंवाली, मन्द मुसकान तथा चंचल कटाक्षवाली, श्रीकृष्णकी प्रियतमा, केशोंकी ललित कान्तिसे युक्त तथा मन्दारहारपर भ्रमरियोंके मधुर गुंजारसे सम्पन्न राधिकाका भजन करिए ॥ ५३ ॥ श्रीखंड चन्दन, केसर और अगरके जलसे नहायी हुई तथा जिनके ललाटपर विन्दी तथा कपोलोंपर विचित्र पत्ररचना की गयी है, कल्पतरुके पत्तोंकी भाँति स्वच्छ नेत्रोंमें अंजनसे विराजित, गजगामिनी तथा रासेश्वरी, पद्मिनी नारीलक्षणा राधारानीको भजिए ॥ ५४ ॥ ऐसी रासेश्वरी राधाके समीप जाकर श्रीकृष्णने उन्हें अपने साथ लिया और निकुंजवनकी शोभा निरखनेके लिए चले । उनके पीछे-पीछे मणिजटित छत्र, चमर और फहराती पताकायें लिये गोपियाँ दौड़ीं ॥ ५५ ॥ धैवत-मध्यम आदि भेदोंसे युक्त छहों रागोंका गायन करनेवाले नन्दनन्दनका भजन करिए । जो अपनी वंशीकी ध्वनिके माध्यमसे छः रागों और छत्तीस रागिनियोंको गाते हुए वृन्दावनमें विचरते हैं ॥ ५६ ॥ शृंगार, वीर, करुणा, अद्भुत, हास्य, रौद्र, बीभत्स, शान्ति और भयानक इन नवों रसोंसे युक्त, भक्तोंके प्रिय, भ्रमरोंकी भाँति व्रजवधूटियोंके मुखकमलका मकरन्द पान करनेवाले और योगी लोग जिनके चरणकमलोंको अपने हृदयमें धारण करते हैं, उन श्रीकृष्णका भजन करिए ॥५७॥ क्षेत्रज्ञ, आदिपुरुष, अधियज्ञस्वरूप, सर्वेश्वर, समस्त कारणोंके भी कारण, श्रीकृष्ण, हरि, प्रकृति-पुरुष इन दोनोंमें पुरुषस्वरूप, अपने तेजसे सब तेजोंको निस्तेज

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

(वृन्दावनमें श्रीकृष्णकी रासलीला)

गर्ग उवाच

वृंदावने वृक्षलतालिसंकुले मंदानिले वीजति शीतले नृप ।
रंध्राणि वेणोः किल पूरयन्हरिर्मुहुर्हरत्येव दिवौकसां मनः ॥ १ ॥
वेणुगीतं ततः श्रुत्वा श्रीराधा कीर्तिनंदिनी । भुजाभ्यां नन्दसूनुं वै जग्राहानंगविह्वला ॥ २ ॥
गोकुलस्य चकोरीं तां कृष्णो गोकुलचन्द्रमाः । दृष्ट्वा कुसुमपर्यंके तया रेमे हरन्मनः ॥ ३ ॥
श्रीकृष्णस्य विहारेण ब्रह्मानन्देन स्वामिनी । मुदं लेभे महात्यंतं तथा स्वामी वशीकृतः ॥ ४ ॥
रमणीयं रतिकरं रासे रामा रमेश्वरम् । जगृहुः सर्वतो राजञ्छतयूथाश्च योषितः ॥ ५ ॥
ताभिः सार्द्धं हरी रम्यो रेमे वै रासमण्डले । तावद्रूपधरो राजन् यावत्यो व्रजयोषितः ॥ ६ ॥
विरहिण्यश्च ताः सर्वा विरहेण विहारिणः । ब्रह्मानंदेन सन्मर्त्या आनन्दं लेभिरे यथा ॥ ७ ॥
श्रीकराभ्यां श्रीकराभ्यां श्रीशः श्रीश्यामसुन्दरः । दधार हृदये सर्वास्ताभिर्भक्त्या वशीकृतः ॥ ८ ॥
स्वेदयुक्तान्याननानि तासां प्रीत्या व्रजेश्वरः । प्रामृजत्पीतवस्त्रेण किं वदामि तपःफलम् ॥ ९ ॥
विना सांख्येन योगेन तपसा श्रवणेन च । विना तीर्थेन दानेन प्राप्ताः कामेन ता हरिम् ॥१०॥
ततो गोपीजनाः सर्वा मानवत्यः परस्परम् । कुवाक्यं कथयामासुः कृष्णं तृप्ता विहारतः ॥११॥
अस्माँस्त्यक्त्वा पुरा कृष्णो गतः श्रीमथुरां पुरीम् । विलोकितुं रूपिणीश्च सुन्दरीः स्त्रीश्च सुन्दरः ॥१२॥
न दृष्टास्तेन सुंदर्यो जगाम द्वारकां पुनः । न दृष्टास्तेन तास्तत्र विवाहं कृतवान्पुनः ॥१३॥

करनेवाले, जिन्हें शिवजी, धर्मराज, इन्द्र, शेषनाग, सिद्धिदाता गणेश और सभी देवता, राधा, रमा, प्रकृति, भूदेवी, विरजा, सरस्वती तथा चारों वेद भजते हैं, उन्हीं श्रीकृष्णका भजन हम भी करते हैं ॥ ५८ ॥ ५९ ॥
इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

श्रीगर्गमुनि कहते हैं—हे राजन् ! उस वृन्दावनमें अनेक वृक्ष और लतायें विद्यमान थीं । उनपर भौंरे मँडरा रहे थे । मन्द-मन्द शीतल वायु वह रही थी । तभी वंशीके छिद्रोंको अपने मुखमारुतसे भरकर बजाते हुए श्रीकृष्ण बार-बार देवताओंका मन हरने लगे ॥१॥ श्रीकृष्णके उस वेणुगीतको सुनकर कीर्तिरानीकी दुलारी बेटी राधा कामातुरा होकर दोनों भुजाओंमें नन्दनन्दनको भरकर उनसे लिपट गयी ॥ २ ॥ गोकुलकी चकोरी राधाको गोकुलके चन्द्रमा श्रीकृष्ण पुष्पशय्यापर ले जाकर उनका मन हरते हुए रमण करने लगे ॥ ३ ॥ इस प्रकार भगवान्‌के साथ विहार करके व्रजस्वामिनी राधा ब्रह्मानन्दका अनुभवकरके आनन्दित हुईं । उसी प्रकार व्रजेश्वर श्रीकृष्ण भी प्रियाके वशवर्ती होकर परमानन्दित हुए ॥ ४ ॥ हे राजन् ! उस रासमण्डलमें रमणीय, रतिनिरत तथा रमेश्वर (लक्ष्मीपति = विष्णु) श्रीकृष्णको उन सैकड़ों यूथोंकी सखियोंने पकड़ लिया ॥ ५ ॥ तब जितनी गोपियाँ थीं, उतने रूप धारण करके श्रीकृष्ण रासमण्डलमें उन सबके साथ रमण करने लगे ॥ ६ ॥ वे चिरविरहिणी प्रजबालायें विहारी श्रीकृष्णके विहारसे इतनी आनन्दित हुईं, जैसे साधारण मनुष्य ब्रह्मानन्द प्राप्त करके आनन्दित होता है ॥ ७ ॥ तब श्रीश श्रीकृष्णने अपने श्रीसम्पन्न हाथोंसे आलिङ्गन करके उन गोपियोंको अपने हृदयमें स्थापित किया और गोपियोंने अपनी भक्तिसे उन्हें अपने वशमें कर लिया ॥ ८ ॥ तब व्रजेश्वर श्रीकृष्णने पसीनेसे भींगे गोपियोंके मुखको प्रेमपूर्वक अपने पीताम्बरसे पोंछा ॥ ९ ॥ सांख्य, योग, तप, श्रवण तथा तीर्थ-दानादि किये विना ही केवल सकामभावसे पूजकर वे गोपियें श्रीकृष्णको प्राप्त करनेमें सफल हो गयीं ॥ १० ॥ इस तरह श्रीकृष्णके साथ यथेच्छ विहार करके तृप्त वे मानवती व्रजबालायें भगवान्‌को तरह-तरहके कुवाक्य कहने लगीं ॥ ११ ॥ गोपियाँ बोलीं—पूर्वकालमें ये सुन्दर श्रीकृष्ण हमें छोड़कर नयी-नयी सुन्दरियोंको देखने मथुरापुरी चले गये ॥ १२ ॥ वहाँ जब कोई सुन्दरी नहीं दिखी तो द्वारकापुरी जा पहुँचे । वहाँ भी जब कोई नहीं मिली, तब नये-नये विवाह

रुक्मिणीं भीष्मकसुतां न मत्वा तां तु रूपिणीम् । पुनर्विवाहान्कृतवान्सहस्राणि च षोडश ॥१४॥
न मत्वा रूपिणीस्ताश्च शोकं कुर्वन्पुनः पुनः ।
व्रजमागतवान्सख्यः श्रीकृष्णोऽस्यान्विलोकितुम् ॥१५॥
दृष्ट्वा रूपाणि चास्माकं सर्वद्रष्टा रसेश्वरः । प्रसन्नोऽभूत्तथा सख्यो यथा रासे हरिः पुरा ॥१६॥
तस्माद्वयं च सर्वासां सुन्दरीणां वराः स्मृताः । सुनेत्राश्चंद्रवदनाः शश्वत्सुस्थिरयौवनाः ॥१७॥
अस्मत्तुल्याश्च रूपिण्यो नैव देवांगनाश्च खे । याभिः शीघ्रं कटाक्षैश्च कृष्णः कामी वशीकृतः १८॥
अहो वै येन हंसेन मुक्ताः पूर्वं प्रभक्षिताः । स एवान्यत्कथं वस्तु भक्षयिष्यति दुःखतः ॥१९॥
न संति मुक्ताः सर्वत्र संति मानसरोवरे । तथा वरस्त्रियो भूमौ न संति संति चात्र हि ॥२०॥

गर्ग उवाच

इति मानवतीनां च स्वात्मारामो जगत्पतिः । वचः श्रृण्वन्राधया च तत्रैवांतरधीयत ॥२१॥
निर्द्धनोऽपि धनं लब्ध्वा मानं प्रकुरुते नृप । यस्य नारायणः प्राप्तो तस्य किं कथयाम्यहम् २२॥

इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखंडे रासक्रीडायां त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

(रासलीला)

वज्रनाभिरुवाच

अद्भुतं कृष्णचरितं मया त्वन्मुखतः श्रुतम् । किं चक्रुर्गोपिकास्तासां स कथं दर्शनं ददौ ॥ १ ॥
तत्सर्वं मुनिशार्दूल मह्यं श्रद्धालवे वद । धन्यास्ते ये हि श्रृण्वंति कर्णे कृष्णकथां सदा ॥ २ ॥
मुखेन कृष्णचन्द्रस्य नामानि प्रजपंति हि । हस्तैः श्रीकृष्णसेवां वै ये प्रकुर्वंति नित्यशः ॥ ३ ॥

करने लगे ॥१३॥ सर्वप्रथम इन्होंने भीष्मकसुता रुक्मिणीके साथ ब्याह किया । किन्तु वे भी सुन्दरी नहीं जँचीं, तब एक साथ सोलह हजार कन्याओंके साथ विवाह किया ॥ १४ ॥ किन्तु इन्हें वे भी सुन्दरी नहीं जँचीं, तब बार-बार पछताकर हम लोगोंसे मिलनेके लिए वृन्दावन आये ॥ १५ ॥ हे सखियो ! सर्वदर्शी और साक्षात् लक्ष्मीके पति ये श्रीकृष्ण यहाँ हमारा रूप निरखकर वैसे ही प्रसन्न हुए, जैसे पूर्वकालके रासमें प्रसन्न हुए थे ॥ १६ ॥ अतएव हम गोपियाँ सभी सुन्दरियोंसे श्रेष्ठ हैं । क्योंकि हमारे नेत्र सुन्दर हैं, चन्द्रमा जैसा हमारा मुख है और हमारा यौवन सुस्थिर है ॥ १७ ॥ हमारे सदृश रूपवती स्वर्गकी देवांगनायें भी नहीं हैं । क्योंकि हमने अपने कटाक्षोंसे इन कामी कृष्णको अपने वशमें कर लिया है ॥ १८ ॥ अहो ! जिस राजहंसने पहले सदा मोती ही चुगे हों, वह कितना ही दुखी क्यों न हो, दूसरी चीज कैसे चुग सकता है ॥ १९ ॥ मोती सर्वत्र नहीं मिलते । वे केवल मानसरोवरमें मिलते हैं । उसी तरह सुन्दरी स्त्रियाँ अन्यत्र कहीं नहीं हैं, वे केवल व्रजमें ही हैं ॥ २० ॥ श्रीगर्गमुनि बोले—हे राजन् ! उन मानिनी गोपियोंके वचन सुनकर स्वात्माराम जगत्पति भगवान् श्रीकृष्ण राधाको लेकर अन्तर्धान हो गये ॥ २१ ॥ हे राजन् ! एक निर्धन मनुष्य भी धन पाकर अभिमानी बन जाता है, तब जिनको स्वयं भगवान् प्राप्त हो गये, उन व्रजबालाओंके अभिमानका क्या कहना है ? ॥ २२ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

इतनी कथा सुनकर राजा वज्रनाभ श्रीगर्गमुनिसे बोले—हे मुने ! मैंने आपके मुखसे यह बड़ा अद्भुत श्रीकृष्णचरित्र सुना । अब यह बताइए कि श्रीकृष्णके अन्तर्धान हो जानेपर गोपियोंने क्या किया और फिर कैसे श्रीकृष्णने उनको दर्शन दिया ? ॥१॥ हे मुनिशार्दूल ! मुझ श्रद्धालुको आप समस्त वृत्तान्त बताइए । क्योंकि संसारमें वे ही पुरुष धन्य हैं, जो नित्य श्रीकृष्णकी कथा सुनते रहते हैं ॥ २ ॥ जो सदा श्रीकृष्ण-

नित्यं कुर्वंति कृष्णस्य ध्यानं दर्शनमेव च । पादोदकं प्रसादं च ये प्रभुञ्जंति नित्यशः ॥ ४ ॥
इतीदृशेन भावेन श्रमेण जगदीश्वरम् । ये भजंति मुनिश्रेष्ठ ते प्रयांति हरेः पदम् ॥ ५ ॥
संसारे ये प्रभुञ्जंति भोगान्नानाविधान्मुने । श्रवणादीन्न कुर्वंति देहसौख्येन दुर्मदाः ॥ ६ ॥
ते चांते यमदूतैश्च गृहीताश्च भयानकैः । पतिताः कालसूत्रे वै यावद्रविनिशाकरौ ॥ ७ ॥

सूत उवाच

इत्युक्तवंतं राजानं प्रत्युवाच मुनीश्वरः । गद्गदस्वरया वाण्या प्रशंस्य चरितं हरेः ॥ ॥ ८ ॥

गर्ग उवाच

कृष्णे चांतर्हिते राजंस्त्वरं सर्वाश्च गोपिकाः । आचक्षाणाश्च तं तप्ताः हरिण्यो हरिणं यथा ॥ ९ ॥
अन्तर्हितं हरिं ज्ञात्वा गोप्यः सर्वाश्च पूर्ववत् । यूथीभूता विचिक्युर्वै सर्वतस्तं वने वने ॥१०॥
पप्रच्छुर्भूरुहान्सर्वान्मिलित्वा तु परस्परम् । हत्वा ह्यस्मान्कटाक्षेण क्व गतो नंदनन्दनः ॥११॥
तदस्माकं च वदत यूयं सर्वे वनेश्वराः । मार्तंडकन्ये त्वजिरे गोपालो गाश्च चारयन् ॥१२॥
नित्यं चकार लीलां तु स गतः कुत्र नो वद । शतशृंगगिरींद्रस्त्वं श्रीनाथेन धृतः पुरा ॥१३॥
वामहस्ते रक्षणार्थं वासवाद्व्रजवासिनाम् । न जहाति हरिस्त्वां तु स्वपुत्रं हृदयोद्भवम् ॥१४॥
स गतो वद कुत्रास्ते विहाय विपिने च नः । मयूराश्च हरिणा हे गावो हे मृगाः खगाः ॥१५॥
किरीटी ह्यलकी कृष्णो युष्माभिः किं विलोकितः । वदत सोऽपि कुत्रास्ते वने कस्मिन्मनोहरः ॥१६॥
एतैस्तु वाक्यैः संतुष्टाः कठिनास्तीर्थवासिनः । उत्तरं नैव दास्यंति सर्वे ते मोहिताः किल ॥१७॥

गर्ग उवाच

एवं सर्वा हि पृच्छन्त्यः कृष्णचन्द्रं वने वने । वदंत्यः कृष्ण कृष्णेति बभूवुस्तन्मयास्ततः ॥१८॥
चक्रुः कृष्णचरित्राणि तत्र कृष्णमयाः स्त्रियः । यमुनावालुकायां च पदानि ददृशुर्हरेः ॥१९॥

नामका मुखसे जप करते हैं और हाथोंसे भगवान्‌की सेवा किया करते हैं ॥ ३ ॥ जो नित्य श्रीकृष्णका ध्यान तथा दर्शन करते और उनका चरणोदक तथा प्रसाद पाते हैं ॥ ४ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार श्रम करके जो उन जगदीश्वरका भजन करते हैं, वे अन्तमें श्रीकृष्णके श्रीचरणोंमें स्थान पाते हैं ॥ ५ ॥ हे मुने ! जो संसारमें नाना प्रकारके भोग भोगते हुए देहसुखसे मदान्ध होकर भजन-श्रवण आदि नहीं करते ॥ ६ ॥ उन मनुष्योंको यमराजके भयानक दूत पकड़कर सूर्य-चन्द्रके अस्तित्वकाल पर्यन्तके लिए कालसूत्र नरकमें डाल देते हैं ॥ ७ ॥ श्रीसूतजी बोले—हे मुनियो ! ऐसा कहते हुए राजा वज्रनाभसे मुनीश्वर श्रीगर्ग गद्गद वाणीमें भगवच्चरित्रकी प्रशंसा करके बोले ॥८॥ श्रीगर्गमुनिने कहा—हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्णके अन्तर्धान हो जानेपर सभी गोपियाँ उन्हें न देखकर इस प्रकार खिन्न हुईं, जैसे हिरणको न देखकर हिरनी खिन्न होती है ॥ ९ ॥ उन्हें अन्तर्हित जानकर सब गोपियाँ पूर्ववत् यूथ बनाकर वन-वन ढूँढ़ने लगीं ॥ १० ॥ वे एक साथ वनोंके वृक्षोंके पास जाकर पूछने लगीं—हे वृक्षो ! अपने कटाक्षसे हमें मारकर नन्दनन्दन कहाँ गये ? ॥ ११ ॥ हे वनदेवताओं ! तुम हमको बताओ कि यमुनातटपर गायें चराने तथा नित्य नयी लीलायें करनेवाले श्रीकृष्ण कहाँ गये ? यह हमको बताओ। हे गिरिराज गोवर्धन ! तुम्हारे सैंकड़ों शिखर हैं और पूर्वकालमें श्रीकृष्णने तुमको उठाकर धारण किया था ॥ १२ ॥ १३ ॥ उस समय इन्द्रके कोपसे व्रजवासियोंके रक्षार्थ उन्होंने तुमको उठाया था। तबसे पुत्रके समान प्रिय मानते हुए वे तुम्हें कभी नहीं छोड़ते ॥ १४ ॥ तुम बताओ कि वनमें हमें त्यागकर श्रीकृष्ण कहाँ गये ? हे मयूरो ! हे मृगो ! हे गौओ ! हे पक्षियो ! हे हरिणो ! जो किरीट पहने हैं और जिनकी अलकें बिखरी हुई हैं, उन श्रीकृष्णको तुमने देखा है ? हमको यह बताओ कि हमारा चितचोर इस वनमें कहाँ छिपा हुआ है ? ॥ १५ ॥ १६ ॥ उनकी इन बातोंको सुनकर सन्तुष्ट होते हुए भी उन कठोर तीर्थवासियोंने उनको कोई उत्तर नहीं दिया ॥ १७ ॥ श्रीगर्गमुनि बोले—हे राजन् ! इस प्रकार वन-वनमें श्रीकृष्णको पूछती और हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! कहती हुई वे कृष्णमयी हो गयीं ॥ १८ ॥ श्रीकृष्णके प्रेममें पगी वे गोपियाँ उन्हींकी लीलायें गाने लगीं। सहसा उन्होंने यमुनाजीकी

वस्त्रेणाननमाच्छाद्य पृष्ठं दत्त्वा स्थिताऽभवत् । पुनराह हरिस्तां तु प्रिये गच्छ मया सह ॥३७॥
भजामि त्वामहं भद्रे वियोगार्ता तु वापतः । विहाय गोपीः सर्वाश्च लग्नास्त्वां तु भजाम्यहम्॥३८॥
त्वं तु मे स्कंधमारुह्य सुखं व्रज रहःस्थले । इत्युक्त्वा मानिनीं स्कंधयानमभीप्सतीम् ॥३९॥
त्यक्त्वा तां तद्वै राजन्स्वात्मारामः स्वलीलया । अन्तर्हिते भगवति सहसा सा वधूर्नृप ॥४०॥
अन्वतप्यत दुःखार्त्ता गतमाना रुरोद ह । ततस्तद्रोदनं श्रुत्वा वंशीवटतटे त्वरम् ॥४१॥
आजग्मुर्गोपिकाः सर्वा ददृशुस्तां च दुःखिताम् । चक्रुः स्त्रियस्तदंगेषु वायुं व्यजनचामरैः ॥४२॥
स्नापयित्वा तु तां प्रेम्णा काश्मीरसलिलेन च । सिषिचुर्मकरंदैस्तां चन्दनद्रवशीकरैः ॥४३॥
पुनर्वाक्यैः समाश्वास्य गोप्यः कर्मसु कोविदाः । निशम्य तन्मुखाख्यानं गोविंदस्य च मानतः ॥४४॥
मानिन्यो गोपिकाः सर्वा विस्मयं परमं ययुः । विहाय मानं ताः सर्वा आगत्य पुलिनं नृप ॥
स्वरैर्जगुः कृष्णगुणाँस्तदागमनहेतवे ॥४५॥

इति श्रीगर्गसंहितायां हयमेधखण्डे रासक्रीडायां चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

(रासक्रीडामें श्रीकृष्णका पुनरागमन)

गोप्य ऊचुः

अधरबिम्बविडंबितविद्रुमं मधुरवेणुनिनादविनोदितम् ।
कमलकोमलनीलमुखांबुजं तमपि गोपकुमारमुपास्महे ॥ १ ॥
श्यामलं विपिनकेलिलम्पटं कोमलं कमलपत्रलोचनम् ।
कामदं व्रजविलासिनीदृशां शीतलं मतिहरं भजामहे ॥ २ ॥

तं विलंचलितलोचनांचलं सालिकुड्मलितकोमलाधरम् ।
वंशवल्गितकरांगुलीमुखं वेणुनादरसिकं भजामहे ॥ ३ ॥
ईषदंकुरितदंतकुंडलं भूषणं भुवनमंगलश्रियम् । घोषसौरभमनोहरं हरेर्वेषमेव मृगयामहे वयम् ॥ ४ ॥
अस्तु नित्यमरविंदलोचनः श्रेयसे हि तु सुरार्चिताकृतिः ।
यस्य पादसरसीरुहामृतं सेव्यमानमनिशं मुनीश्वरैः ॥ ५ ॥
गोपकैः रचितमल्लसंगरं संगरे जितविदग्धयौवनम् ।
चिंतयामि मनसा सदैवतं दैवतं निखिलयोगिनामपि ॥ ६ ॥
उल्लसन्नवपयोदमेव तं फुल्लतामरसलोचनांचलम् ।
वल्लवीहृदयपश्यतोहरं पल्लवाधरमुपास्महे वयम् ॥ ७ ॥
यद्धनंजयरथस्य मण्डनं खंडनं तदपि सञ्चितैनसाम् ।
जीवनं श्रुतिगिरां सदामलं श्यामलं मनसि मेऽस्तु तन्महः ॥ ८ ॥
गोपिकास्तनविलोललोचनप्रांतलोचनपरंपरावृतम् ।
बालकेलिरसलालसं भृसं माधवं तमनिशं विभावये ॥ ९ ॥
नीलकण्ठकृतपिच्छशेखरं नीलमेघतुलितांगवैभवम् ।
नीलपंकजपलाशलोचनं नीलकुंतलधरं भजामहे ॥१०॥
घोषयोषिदनुगीतवैभवं कोमलस्वरितवेणुनिस्वनम् ।
सारभूतमभिरामसंपदां धाम तामरसलोचनं भजे ॥११॥
मोहनं मनसि शार्ङ्गिणं परं निर्गतं किल विहाय मानिनीः ।
नारदादिमुनिभिश्च सेवितं नंदगोपतनयं भजामहे ॥१२॥
श्रीहरिस्तु रमणीभिरावृतो यस्तु वै जयति रासमण्डले ।
राधया सह वने च दुःखितास्तं प्रियं हि मृगयामहे वयम् ॥१३॥

भजन करती हैं ॥ २ ॥ जिनकी पलकें सदा चंचल रहती हैं, कमलकलिकाकी नाईं कोमल जिनके अधर हैं, जिसके छिद्रोंपर उँगलियाँ धरी हैं, उस वंशीसे युक्त मुखवाले और वंशीवादनके रसिक प्राणेश्वर श्रीकृष्णका हम भजन करती हैं ॥ ३ ॥ तनिक निकली कुन्दकली जैसे दाँतोंयुक्त, कानोंमें कुण्डल पहने, समस्त विश्वके कल्याणकरी और व्रजघोषके सौरभसे मनोहर श्रीकृष्णके इसी वेषको हम ढूँढ रही हैं ॥ ४ ॥ कमलदलसदृश जिनके नेत्र हैं और स्वर्गके देवता भी जिनकी आकृतिको पूजते हैं, वे भगवान् कृष्ण नित्य हमारा कल्याण करें। जिनके चरणारविन्दके मकरन्दामृतका बड़े-बड़े मुनीश्वर सेवन करते हैं, वे प्रभु हमको शीघ्र दर्शन दें ॥ ५ ॥ गोपोंके साथ मल्लयुद्ध करनेवाले और समरमें सुनिपुण यौवनको परास्त करनेवाले श्रीकृष्णका हम सदा चिन्तन करती हैं। क्योंकि वे सभी योगियोंके इष्टदेव हैं ॥ ६ ॥ नवजलदके समान शोभासम्पन्न, विकसित कमलदलके सदृश पलकोंवाले, गोपियोंके चितचोर और आम्रके नवपल्लव सरीखे अधरोंवाले श्रीकृष्णकी हम उपासना करती हैं ॥ ७ ॥ जो अर्जुनके रथकी शोभा हैं, संचित पापराशिका क्षय करनेवाले और श्रुतिवाणीके जीवन श्रीकृष्णका श्यामसुन्दर तेजपुंज सदा हमारे मनमें बसा रहे ॥ ८ ॥ गोपियोंके स्तनपर जिनके चंचल नेत्र नाचा करते हैं, तथापि पलकें झुकी-सी रहती हैं और बालक्रीडामें लालसा रखनेवाले भगवान् माधवका हम सतत चिन्तन करती हैं ॥ ९ ॥ मोरपंखका मुकुट धारण किये, नील मेघके सौन्दर्यको अपने अंगोंमें सँजोये हुए, नीलकमलदलसदृश नयनोंयुक्त तथा काले केशधारी भगवान् कृष्णका हम भजन करती हैं ॥ १० ॥ गोपियाँ जिनके वैभवका गान करती हैं, जिनकी वंशीसे कोमल स्वर निकलते हैं, जो सम्पदाओंके परम धाम हैं और कमल सदृश जिनके नेत्र हैं, उनका हम भजन करती

देवदेव व्रजराजनन्दन देहि दर्शनमलं च नो हरे ।
सर्वदुःखहरणं च पूर्ववत्संनिरीक्ष्य तव शुल्कदासिकाः ॥१४॥
क्षितितलोद्धरणाय दधार यः सकलयज्ञवराहवपुः परम् ।
दितिसुतं विददार च दंष्ट्रया स तु भवोद्धरणाय क्षमोऽस्तु नः ॥१५॥
मनुमतान्द्रुचिजो दिविजैः सह वसु दुदोह धरामपि यः पृथुः ।
श्रुतिमपाहृतनमत्स्यवपुः परं स शरणं किल नोऽस्त्वशुभक्षणे ॥१६॥
अवहदब्धिमहो गिरिमूर्जितं कमठरूपधरः परमस्तु यः ।
असुहरं नृहरिः तमदंडयत्स च हरिः परमं शरणं च नः ॥१७॥
नृप बलिं छलयन्दलयन्नरीन्मुनिजनाननुगृह्य चचार यः ।
कुरुपुरं च हलेन विकर्षयन्यदुवरः स गतिर्मम सर्वथा ॥१८॥
व्रजपगून्गिरिराजमयोद्धरन्व्रजपगोपजनं च जुगोप यः ।
द्रुपदराजसुतां कुरुकश्मलाद्भवतु तच्चरणाब्जरतिश्च नः ॥१९॥
विषमहाग्निमहास्त्रविपद्गणात्सकलपांडुसुताः परिरक्षिताः ।
यदुवरेण परेण च येन वै भवतु तच्चरणः शरणं च नः ॥२०॥

मालां बर्हिमनोज्ञकुन्तलभरां वन्यप्रसूनोषितां शैलेयागुरुक्लृप्तचित्रतिलकां शश्वन्मनोहारिणीम् ।
लीलावेणुरवामृतैकरसिकां लावण्यलक्ष्मीमयीं बालां बालतमालनीलवपुषं वंदामहे देवताम् ॥२१॥

गर्ग उवाच

इति स्त्रीणां रुदंतीनां रेवतीरमणानुजः । आविर्बभूव चाहूतस्तासां मध्ये च भक्तितः ॥२२॥

इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखण्डे रासक्रीडायां कृष्णागमनं नाम पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

(रासक्रीडाकी सम्पूर्ति)

गर्ग उवाच

कृष्णं समागतं दृष्ट्वा ताः समुत्थाय हर्षिताः । चक्रुर्जयजयारावं गोप्यो दुःखं विसृज्य च ॥ १ ॥
दृष्ट्वा संमूर्च्छितां राधां गोपीभिः प्रार्थितो हरिः । चैतन्यार्थे व्रजे तत्र चकार मुरलीरवम् ॥ २ ॥
नोत्थितां राधिकां दृष्ट्वा श्रीराधावल्लभो हरिः । तस्यै संश्रावयामास वेणुगीतं पुनः पुनः ॥ ३ ॥
ततः समुत्थिता राधा स्मृत्वा दुःखं वियोगजम् । बभूव मूर्च्छिता राजन्माधवस्य प्रपश्यतः ॥ ४ ॥
ततः कृष्णस्य वचनात्सद्यश्चन्द्रानना सखी । चन्द्रावलीं प्रत्युवाच प्रसन्ना कृष्णवेणुना ॥ ५ ॥

चन्द्राननोवाच

कृष्णचन्द्रः पुरा निर्गतो मानतो ह्यागतः सोऽपि राधे युगांते पुनः ।
नाशयन्सर्वदुःखानि ते सन्निधौ संजगौ वेणुना देवकीनंदनः ॥ ६ ॥
छुंगछुंगे निनादं मृदंगे कलं वाद्यमाने सुरस्त्रीजनैः सेवितः ।
रासरम्यां गणे नृत्यकृन्माधवः संजगौ वेणुना देवकीनंदनः ॥ ७ ॥
चारुचामीकराभासिवासा विभुर्वैजयंतीभराभासितोरस्थलः ।
नंदवृन्दावने गोपिकामध्यगः संजगौ वेणुना देवकीनंदनः ॥ ८ ॥
चारुचंद्रावलीलोचनाचुंबितो गोपगोवृन्दगोपालिकावल्लभः ।
कंसवंशाटवीदाहदावानलः संजगौ वेणुना देवकीनंदनः ॥ ९ ॥
बालिकातालिकातालकालालयासंगसंदर्शितभ्रूलताविभ्रमः ।
गोपिकागीतदत्तावधानः स्वयं संजगौ वेणुना देवकीनंदनः ॥१०॥

लक्ष्मीमयी और बालतमालके समान नील तनुधारी देवताकी हम वन्दना करती हैं ॥ २१ ॥ श्रीगर्गमुनि कहते हैं—हे राजन् ! जब इस प्रकार रो-रोकर व्रजवनितायें भगवान्‌की स्तुति करके उन्हें बुला रही थीं, तभी बलरामके भाई भगवान कृष्ण उन गोपियोंकी भक्तिसे रीझकर तत्काल उनके मध्य प्रकट हो गये ॥ २२ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ५ ॥

श्रीगर्गमुनि बोले—हे राजन् ! भगवान् कृष्णको अपने बीच देख वे सभी गोपियाँ हर्षपूर्वक उठ खड़ी हुईं और सारा दुःख बिसारकर उनकी जय-जयकार करने लगीं ॥ १ ॥ वहाँ ही राधाको मूर्छित पड़ी देखकर गोपियोंने प्रार्थना की तो श्रीकृष्णने उन्हें सचेत करनेके लिए अपनी वंशी बजायी ॥ २ ॥ तब भी राधा नहीं उठीं तो राधावल्लभ श्रीकृष्णने बारंबार उन्हें वेणुगीत सुनाया ॥ ३ ॥ सो सुनकर राधा उठीं, किन्तु श्रीकृष्णके वियोगका दुःख स्मरण आते ही वे भगवान्‌के देखते-देखते पुनः मूर्छित हो गयीं ॥ ४ ॥ तदनन्तर भगवान् कृष्णके वेणुगीतसे प्रसन्न चन्द्रानना नामकी सखी चन्द्रावलीसे बोली ॥ ५ ॥ चन्द्राननाने कहा—हे राधे ! तुम्हारे मानसे रूठकर जो कृष्ण चले गये थे, जैसे एक युगान्तके बाद वे पुनः आ गये हैं। सभी क्लेशोंका नाश करते हुए उन्हीं देवकीनन्दनने तुम्हारे पास वंशी बजायी है ॥ ६ ॥ मृदंगका छुङ्ग-छुङ्ग निनाद हो रहा है और रासलीलाके रमणीक आँगनमें देवांगनाओंसे सेवित देवकीनन्दनने ही वंशी बजायी है ॥ ७ ॥ सुवर्णके समान चमचमाता पीताम्बर पहने और वैजयन्ती मालाके भारसे जिनका वक्षः-स्थल सुशोभित है, ऐसे भगवान्‌ने नन्दके वृन्दावनमें गोपियोंके मध्य वेणुगान किया है ॥ ८ ॥ सुन्दरी चन्द्रावलीके नयनोंसे चुम्बित, गोपों-गोपियों और गौओंके प्यारे, कंसके वंशरूपी वनको भस्म करनेवाले देवकीनन्दनने वेणु (वंशी) पर गायन गाया है ॥ ९ ॥ बालिकाओंकी तालियोंकी ताललीलामें आसक्त होकर जिन्होंने अपनी भ्रूलताका विभ्रम भली-भाँति दिखाया है और गोपियोंके गीतपर जिनका ध्यान ९७

मौलिमालांगदैः किंकिणीकुण्डलैर्भूषितो नंदनो नंदराजस्य च ।
प्रीतिकृत्सुन्दरो देवि प्रीत्या तव संजगौ वेणुना देवकीनंदनः ॥११॥
पारिजातं समुद्धृत्य राधावरो रोपयामास भामाभयादंगणे ।
वल्लवीवृन्दवृन्दारिकाकामुकः संजगौ वेणुना देवकीनंदनः ॥१२॥
ऋक्षराजं विनिर्जित्य नीत्वा मणिं संददौ भीतवद्भूमिनाथाय च ।
सोऽपि रासे समागत्य रासेश्वरो संजगौ वेणुना देवकीनंदनः ॥१३॥

गर्ग उवाच

इति श्रुत्वा राधिका तु महिमां वेणुवादिनः । प्रसन्ना हि समुत्थाय परिरेभे प्रियं प्रिया ॥१४॥
वृन्दावनेशो गोविंदो रेमे वृन्दावने वने । वृन्दावननिवासिन्या पश्यन्वृन्दावनद्रुमान् ॥१५॥
ततः कृष्णं च जगृहुः सर्वतो व्रजयोषितः । वर्षाकाले नृपश्रेष्ठ सौदामिन्यो यथा घनम् ॥१६॥
यावतीस्तत्र गोप्यश्च तावद्रूपधरो हरिः । यमुनापुलिनं राजँस्ताभिः साकं समाययौ ॥१७॥
बभूवुर्मुदिता नार्यो यथा च श्रुतयः पुरा । स्ववस्त्रैः कृष्णचन्द्राय ह्यासनं ता अचीक्लृपन् ।१८॥
श्रीराधारमणस्तस्मिन्नासने सह राधया । निषसाद ह्यहो राजंस्ताभिर्भक्त्या वशीकृतः ॥१९॥
गोलोके यादृशं रूपं दर्शयामास तादृशम् । गोपीनां राधया सार्द्धं कृष्णं त्रैलोक्यमोहनम् ।२०॥
दृष्ट्वा गोकुलचन्द्रस्य सुरूपं परमाद्भुतम् । स्वात्मानं नाविदन्गोप्यो ब्रह्मानन्देन निर्वृताः २१॥
स्थले कृत्वा विहारं तु विवेश यमुनाजलम् । ताभिर्भक्त्या वशीभूतो गोपीभिः सह राधया २२॥
वारां विहारं भगवान्स्त्रीभिः सार्द्धं चकार ह । मन्दाकिन्यां यथा शक्रो ह्यप्सरोभिर्वृतो दिवि २३॥
माधवो माधवीं राजन् माधवी माधवं जले । अन्योन्यं तौ सिषिचितुः सलिले सलिलैस्त्वरम् २४॥
कबरीकेशपाशाभ्यां प्रच्युतैः कुसुमैर्बभौ । यमुनाचित्रवर्णैश्च यथोष्णिङ्मुद्रिता नृप ॥२५॥

विद्याधर्यो देवपत्न्यः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे । प्रश्लथद्वस्त्रनीव्यस्ता मोहं प्राप्ताः स्मरातुराः ॥२६॥
अथ कृष्णो वारिलीलां कृत्वा वै लीलया युतः । जलान्निष्क्रम्य राजेंद्र गिरिं गोवर्द्धनं ययौ ॥२७॥
अनुजग्मुर्गोपिकास्तं सहचर्यो नृपेश्वर । काश्चिद्व्यजनहस्ताश्च काश्चिच्चामरवाहकाः ॥२८॥
काश्चित्तांबूलहस्ताश्च काश्चिद्दर्पणवाहकाः । काश्चिद्भूषणहस्ताश्च काश्चित्कुसुमवाहकाः ॥२९॥
काश्चिच्चंदनहस्ताश्च काश्चिद्भाजनवाहकाः । काश्चिद्यावकहस्ताश्च काश्चिदंबरवाहकाः ॥३०॥
काश्चिन्मृदंगहस्ताश्च काश्चित्कांस्यधराश्च वै । मुरयष्टिधराः काश्चित्काश्चिद्वीणाधराः पराः ॥३१॥
करतालकराः काश्चित्काश्चिद्गानपरायणाः । षट्त्रिंशद्रागरागिण्यो व्रजस्त्रीरूपधारकाः ॥३२॥
गोलोकाद्भारते पूर्वमागता राधया सह । जगुस्ता ननृतुस्तत्र श्रीराधेश्वरसन्निधौ ॥३३॥
ननर्त मध्ये तासां च कृष्णो मदनमोहनः । प्रगायन्वेणुना गीतं त्रिलोकीं मोहयन्हरिः ॥३४॥
वादित्रैः किंकिणीभिश्च वलयनूपुरकंकणैः । गीतैर्मिश्रितशब्दोऽभूत्तुमुलो रासमंडले ॥३५॥
देवाश्च देवपत्न्यश्च रासं दृष्ट्वा हरेरपि । बभूवुर्मूर्च्छिता राजन्गगने स्मरपीडिताः ॥३६॥
चंद्रिकायां तु चंद्रस्य चतुरश्चंचलश्चलन् । चंद्रावल्या बभौ चैव घनश्चंचल एव च ॥३७॥
राधायास्तत्र शृंगारं स्रग्भिर्यावककज्जलैः । चक्रे कमलपत्राद्यैर्गिरौ गिरिधरो महान् ॥३८॥
कुंकुमागुरुकस्तूरीचन्दनाद्यैश्च राधिका । चक्रे कमलपत्रं वै श्रीकृष्णस्यानने वरम् ॥३९॥
ततश्च सस्मिता राधा सस्मितं भगवन्मुखम् । पश्यन्ती नागवल्ल्याश्च वीटकं प्रददौ मुदा ॥४०॥
प्रियाप्रदत्तं तांबूलं बुभुजे नंदनंदनः । कृष्णदत्तं च तांबूलं चखाद राधिका मुदा ॥४१॥
कृष्णचर्विततांबूलं नीत्वा राधा बलात्पुनः । जघास भक्त्या सा शीघ्रं सती पतिपरायणा ॥४२॥

जल्दी-जल्दी जलके छींटे डालने लगीं ॥ २४ ॥ उस समय राधाके जूड़े तथा भगवान्‌के केशपाशसे गिरे विविध रंगके फूलोंसे यमुनाजी इस प्रकार शोभित हुईं, जैसे उन्होंने अनेक रंगके फूलोंकी बँधी पगड़ी पहन रक्खी हो ॥ २५ ॥ यह सुषमा देखकर विद्याधरियों तथा देवांगनाओंने उनपर फूल बरसाये। उस समय उनका कटिबन्धनवस्त्र खुल गया और वे कामातुरा हो उठीं ॥ २६ ॥ तदनन्तर जलविहारसे निवृत्त होकर वे जलसे बाहर निकल आये और वहाँसे गोवर्धनपर्वतकी ओर चले ॥ २७ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! सभी उनकी सहचरी गोपियाँ भी उनके पीछे-पीछे चलीं। उनमेंसे कोई सखी हाथमें पंखा लिये थी और कोई चमर चला रही थी ॥२८॥ कोई ताम्बूल, कोई दर्पण, कोई आभूषण और कोई सखी फूलोंकी झोली लिये थी ॥ २९ ॥ कोई चन्दन, कोई पूजापात्र, कोई महावर और कोई सखी कपड़े लिये थी ॥ ३० ॥ कोई सखी मृदंग, कोई कांस्यपात्र (विजयघंट), कोई मुरज और कोई सखी हाथमें वीणा लिये थी ॥ ३१ ॥ कोई हाथमें खड़ताल लिये थी, कोई गायन गा रही थी। उस समय ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे छहों राग और छत्तीसों रागिनियाँ व्रजबालाओंका रूप धारण करके वहाँ उतर आयी हैं ॥ ३२ ॥ वे गोपियाँ पूर्वकालमें राधाके साथ गोलोकसे भारत आयी थीं। यहाँ श्रीकृष्णके समक्ष उन्होंने अपना नृत्य-गान प्रस्तुत किया ॥ ३३ ॥ बादमें मदनमोहन श्रीकृष्णने इन गोपियोंके बीच जाकर नृत्य किया। अपनी वंशीसे गीत गाते हुए उन्होंने तीनों लोक मोह लिये ॥ ३४ ॥ विभिन्न प्रकारके वाद्य, किंकिणी, कंकण तथा नूपुरसे मिश्रित तुमुल निनाद सारे रासमण्डलमें गूँज उठा ॥ ३५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णके रासमण्डलको देख सभी देवता और देवांगनायें कामपीडित होकर मूर्छित हो गयीं ॥ ३६ ॥ चन्द्रमाकी चाँदनीमें चंचल श्रीकृष्ण चन्द्रावलीके साथ चलते हुए बिजलीयुक्त मेघके समान दीख रहे थे ॥ ३७ ॥ उसी गोवर्धन पर्वतपर उन्होंने माला, महावर, काजल तथा कमलकी पंखुड़ियोंसे राधाका शृंगार किया ॥ ३८ ॥ उसी तरह राधाने भी केसर, अगर, कस्तूरी, चन्दन और कमलपुष्पसे श्रीकृष्णके मुखका शृङ्गार किया ॥ ३९ ॥ तदनन्तर मुसकाती हुई राधाने मुसकाते हुए श्रीकृष्णके मुखमें पानका बीड़ा दिया ॥ ४० ॥ प्रियतमा राधाके बीड़ेको भगवान् खा गये और कृष्णके दिये बीड़ेको राधा बड़े हर्षसे खा गयीं ॥ ४१ ॥ सती तथा पतिपरायणा राधाने हठात् श्रीकृष्णके चबाये पानको लेकर भक्ति-

प्रियाचर्विततांबूलं ययाचे भगवान्हरिः । राधा ददौ न तं भीता पपात तत्पदांबुजे ॥४३॥
पद्मा पद्मावती नंदी आनन्दी सुखदायिनी । चंद्रावली चंद्रकला वंद्या ह्येता हरिप्रियाः ॥४४॥
वृन्दावने हरिस्ताभिर्वसंततुप्रपूरिते । नानाप्रकारं शृंगारं स चकार मनोजवत् ॥४५॥
काश्चित्पिबंति गोप्यस्तु श्रीकृष्णस्याधरामृतम् । काश्चिद्वालिंगनं चक्रुः कृष्णस्य परमात्मनः ॥४६॥
ततः कृष्णस्तु भगवान्गोपीनां कुचकुंकुमैः । सुवर्णवर्णो भूत्वा वै रेजे मदनमोहनः ॥४७॥
पुनर्गोपीजनैः सार्द्धं श्रीगोपीजनवल्लभः । रासं चकार राजेंद्र सुन्दरे कदलीवने ॥४८॥
एवं हेमन्तरजनी गोपीनां रासमण्डले । व्यतीता क्षणवद्राजन्नित्यानंदेन तत्र वै ॥४९॥
अथ नंदस्य सदनं रासं कृत्वा ययौ हरिः । वृषभानुपुरं राधा तथा गोप्यो गृहान्ययुः ॥५०॥
न जानंति व्रजे गोपा रासवार्तां हरेरपि । स्वान्स्वान्दारान्स्वपार्श्वस्थान्मन्यमाना नृपेश्वर ५१॥
इदं शृंगारचरितं राधामाधवयोः परम् । ये पठंति च शृण्वन्ति ते व्रजिष्यंति चाक्षरम् ॥५२॥

इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखंडे रासक्रीडासंपूर्तिर्नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

(भगवानका व्रजसे प्रस्थान)

गर्ग उवाच

इदं कृष्णस्य चरितं गुप्तं शास्त्रेषु वर्णितम् । मया तवाग्रे राजेंद्र अथान्यच्छृणु विस्तरात् ॥ १ ॥
एवं स्थित्वा दिनान्यष्टौ श्रीकृष्णो नंदपत्तने । आनंदं प्रददन्नृणां पुनर्गन्तुं मनो दधे ॥ २ ॥
यशोमती कृष्णमाता प्राणेभ्योऽपि प्रियं सुतम् । गन्तुमभ्युदितं दृष्ट्वा रुरोदोच्चैर्यथा पुरा ॥ ३ ॥
रुरुदुस्तत्र गोप्यश्च वाष्पपर्याकुलेक्षणाः । स्मरंत्यः पूर्वदुःखानि गेहे गेहे नृपेश्वर ॥ ४ ॥
यावत्यो व्रजनार्यश्च तावद्रूपधरो हरिः । पृथगाश्वासयामास तथा राधां स कोविदः ॥ ५ ॥

पूर्वक खा लिया ॥४२॥ जब भगवान्‌ने राधाके चवाये हुए पानकी माँग की, तब भयभीत राधाने नहीं दिया और उनके चरणोंपर गिर गयीं ॥ ४३ ॥ पद्मा, पद्मावती, नन्दी, आनन्दी, चन्द्रावती, चन्द्रकला और वंद्या ये भगवान् कृष्णकी प्रिय सखियाँ थीं ॥ ४४ ॥ वसन्त ऋतुसे परिपूर्ण वृन्दावनमें श्रीकृष्णने कामदेवके समान नाना प्रकारके शृंगार किये ॥ ४५ ॥ कुछ गोपियोंने श्रीकृष्णके अधरामृतका पान किया और कुछने भुजाओंमें भरकर दृढ़ आलिंगन किया ॥ ४६ ॥ गोपियोंके स्तनपर लगा केसर छूटकर भगवान्‌के शरीरमें लग गया, जिससे वे सुवर्णवर्णके होकर शोभित हुए ॥ ४७ ॥ फिर गोपीजनवल्लभ कृष्णने कदलीवनमें गोपियोंके साथ रास किया ॥ ४८ ॥ हे राजन् ! हेमन्त ऋतुकी वह लम्बी रात्रि गोपियोंके रास-विलासके आनन्दमें क्षणभरके समान बीत गयी ॥ ४९ ॥ इस प्रकार रास करके श्रीकृष्ण नन्दजीके घर गये। रास सम्पन्न हो जानेपर राधा वृषभानुके घर गयीं। बाकी गोपियाँ अपने-अपने घर चली गयीं ॥ ५० ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! व्रजके गोपोंको इस रासलीलाकी खबर भी नहीं हुई। क्योंकि गोपोंने अपनी-अपनी पत्नियोंको अपने पास ही विद्यमान समझ लिया था ॥ ५१ ॥ राधा-माधवके इस शृंगारचरितको जो लोग बाँचते या सुनते हैं, वे अन्तमें अक्षर धामको प्राप्त करते हैं ॥ ५२ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

श्रीगर्गमुनि बोले—हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्णका यह चरित्र शास्त्रोंमें गुप्त रूपसे वर्णित है। उसे मैंने आपको सुनाया। अब विस्तृत चरित्र सुनिए ॥ १ ॥ इस प्रकार लोगोंको आनन्दित करते हुए श्रीकृष्ण आठ दिन वृन्दावनमें रहे। फिर वहाँसे चलनेका विचार किया ॥२॥ श्रीकृष्णकी माता यशोदाने जब चलनेकी तैयारी देखी तो जैसे पहली यात्राके समय रुदन किया था, वैसे ही जोर-जोरसे रोने लगीं ॥ ३ ॥ नेत्रोंमें आँसू भरके गोपियाँ भी रोने लगीं। पूर्वकालीन वियोगकी बातोंका स्मरण करके घर-घरमें कोहराम मचे

मातरं प्राह भगवान्मातः शोकं तु मा कुरु । शीघ्रमत्रागमिष्यासि कारयित्वा क्रतूत्तमम् ॥ ६ ॥
त्वं न मन्यसे चेन्मातर्नित्यं द्रक्ष्यसि चांतिके । पुत्ररूपं च मां भक्त्या कृतांतभयभंजनम् ॥ ७ ॥
एवं तां तु समाश्वास्य निष्क्रम्य सदनाद्धरिः । गोपैर्युक्तोऽश्रुपूर्णाक्षः पौत्रसेनां जगाम ह ॥ ८ ॥
गत्वाऽनिरुद्धसेनायां यादवान्हयमोचने । ददावाज्ञां नृपश्रेष्ठ साक्षान्नारायणो हरिः ॥ ९ ॥
नोदितः कृष्णचन्द्रेण हयं संपूज्य यत्नतः । पुनर्मुमोच तत्पौत्रो विजयार्थे हि पूर्ववत् ॥१०॥
यादवाश्चानिरुद्धाद्या नंदं नत्वाऽश्रुपूरिताः । गंतुमारुरुहुः सर्वे वाहनानि च कृच्छ्रतः ॥११॥
कृष्णाकारान्कृष्णपुत्रान्कृष्णपौत्राँश्च सुन्दरान् । गंतुमभ्युदितान्सर्वान्कृष्णेन सहितान्यदून् ॥१२॥
दृष्ट्वा ते रुरुदुर्गोपा गोविंदविरहातुराः । स्मरंतः पूर्वदुःखानि शुष्ककंठौष्ठतालुकाः ॥१३॥
रुरोद नंदराजोऽपि बाष्पव्याकुललोचनः । न किंचिदूचे दुःखार्तो मुखेन परिशुष्यता ॥१४॥
सर्वानाश्वासयामास कृष्णोऽप्यश्रुपरिप्लुतः । आयास्य इति वाक्यैश्च मिलित्वा तु पृथक्पृथक् १५॥
चैत्रमासे यदा यज्ञो द्वारकायां भविष्यति । आह्वयिष्यामि गोपाला युष्मान्सर्वान्न संशयः १६॥
गोपाला गोकुले नित्यं गोपालं मां हि द्रक्ष्यथ । तस्मान्निवासं कुरुत अत्रैव व्रजमण्डले ॥१७॥
एवमाश्वास्य तैर्दत्तं पारिबर्हं प्रगृह्य च । नंदं नत्वा रथे स्थित्वा प्रायाद्वृष्णिवरैर्हरिः ॥१८॥
नन्दाद्या दुःखिता गोपाः कृष्णस्य चरणांबुजे । क्षिप्तं मनः पुनर्हर्तुमनीशा गोकुलं ययुः ॥१९॥
गोपा गोप्यश्च श्रीकृष्णं प्रेममग्नाश्च नित्यशः । समीपे नृप पश्यंति योगिनामपि दुर्लभम् ॥२०॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायामश्वमेधखण्डे व्रजादन्यत्र गमनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

गया ॥ ४ ॥ तदनन्तर जितनी गोपियाँ थीं, उतने ही रूप बनाकर भगवानने सबको समझाया। इसी तरह राधाको भी समझाया ॥ ५ ॥ इसके बाद माता यशोदासे उन्होंने कहा—माताजी! आप शोक न करें। यज्ञ सम्पन्न कराके मैं शीघ्र यहाँ चला आऊँगा ॥ ६ ॥ हे माता! यदि नहीं मानतीं तो कालके भयको भंजन करनेवाले पुत्ररूपमें आप मुझे सदा अपने पास देखेंगी ॥ ७ ॥ इस प्रकार माताको आश्वस्त करके आँखोंमें आँसू भरे भगवान् बाहर आये और गोपोंके साथ चलकर अपने पौत्र अनिरुद्धकी सेनामें जा पहुँचे ॥ ८ ॥ हे नृपश्रेष्ठ! अनिरुद्धकी सेनामें जाकर साक्षात् नारायण श्रीकृष्णने यादवोंको घोड़ा छोड़नेकी आज्ञा दी ॥ ९ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञासे अनिरुद्धने यत्नपूर्वक अश्वकी पूजा करके पूर्ववत् विजयप्राप्तिके लिए पुनः उसे छोड़ दिया ॥ १० ॥ तब अनिरुद्ध आदि यादवोंने आँखोंमें आँसू भरकर नन्दजीको प्रणाम किया और बड़ी कठिनाईसे यात्राके लिए अपने-अपने वाहनोंपर बैठे ॥ ११ ॥ श्रीकृष्णके ही आकारवाले उनके सुन्दर पुत्रों-पौत्रोंको जानेके लिए उद्यत देख भगवानके विरहसे व्यथित गोप रोने लगे। पहलेकी वियोगव्यथाका स्मरण करके उनके कंठ, होंठ तथा तालू सूख गये ॥ १२ ॥ १३ ॥ नेत्रोंमें आँसू भरके नन्दराज रोने लगे। दुःखार्त होनेके कारण उनका मुख सूख गया था। अतएव वे कुछ बोल नहीं सके ॥ १४ ॥ आँखोंमें आँसू भरे हुए श्रीकृष्णने भी सबको आश्वासन दिया। फिर 'हम शीघ्र आयेंगे।' यह कहते हुए सब गोपोंसे अलग-अलग मिले ॥ १५ ॥ साथ ही यह भी कहा कि चैत्रमासमें जब द्वारकामें यज्ञ होगा तो उसमें हम आप सभी लोगोंको अवश्य बुलायेंगे ॥ १६ ॥ हे गोपवृन्द! आप लोग नित्य गोकुलमें गोपालरूपसे हमको विद्यमान देखेंगे। अतः आप लोग इस व्रजमण्डलमें ही रहें ॥ १७ ॥ इस प्रकार सबको ढाढ़स बँधा और उनके दिये उपहारको अंगीकार करके श्रीकृष्णने नन्दराजको प्रणाम किया और रथपर बैठकर श्रेष्ठ यादवोंके साथ चल पड़े ॥ १८ ॥ नन्दादि दुःखित गोप भी श्रीकृष्णके चरणोंमें लिपटे अपने मनको वहाँसे हटानेमें असमर्थ होते हुए किसी तरह गोकुल लौटे ॥ १९ ॥ अब व्रजके सभी गोप तथा गोपियाँ प्रेममग्न होनेके कारण योगियोंके लिए भी दुर्लभ श्रीकृष्णको सदा अपने समीप देखने लगीं ॥२०॥ इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखंडे 'प्रियंवदा'-भाषाटीकायां सप्तचत्व

अथ अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

(कौरवोंका श्यामकर्ण घोड़ेको पकड़ना)

श्रीगर्ग उवाच

कृष्णां समुत्तीर्य ततः प्रपश्यञ्जगाम वाजी कुरुपत्तनश्च ।
करोति राज्यं नृपचक्रवर्त्ती वैचित्रवीर्यो बलवान्हि यत्र ॥ १ ॥
ततो ददर्श तुरगः कौरवाणां पुरं वरम् । तं नानोपवनैर्युक्तं तडागैश्च सरोवरैः ॥ २ ॥
दुर्गेण गङ्गया युक्तं तथा परिखया नृप । सुवर्णरौप्यसदनैर्महाशूरजनैर्वृतम् ॥ ३ ॥
सुयोधनस्य पुराद्विनिर्गतो हंतुं मृगान्वै वनगोचरान्नृप ।
ददर्श यज्ञस्य हयं सपत्रकं रथस्थितो वीरजनैर्विभूषितः ॥ ४ ॥
दृष्ट्वा तुरंगमं प्रीतः स्वरथादवतीर्य च । मानी दुर्योधनो राजंस्त्वरं जग्राह लीलया ॥ ५ ॥
कर्णभीष्मकृपद्रोणभूरिदुःशासनादिभिः । युक्तस्तद्भालपत्रं च वाचयामास हर्षितः ॥ ६ ॥
चंद्रवंशे यदुकुल उग्रसेनो विराजते । इन्द्रादयः सुरगणा यस्यादेशानुवर्तिनः ॥ ७ ॥
सहायो यस्य भगवाञ्छ्रीकृष्णो भक्तपालकः । अस्ति वै द्वारकापुर्यां तद्भक्त्या निवसन्हरिः ॥ ८ ॥
तद्वाक्याद्धयमेधं स उग्रसेनो नृपेश्वरः । चक्रवर्ती हठाद्यज्ञं स्वयशोऽर्थे करोति हि ॥ ९ ॥
मोचितस्तेन तुरगो हयानां प्रवरः शुभः । तद्रक्षकः कृष्णपौत्रोऽनिरुद्धो वृकदैत्यहा ॥१०॥
गजाश्वरथवीराणां सेनासंघसमन्वितः । राजानो ये करिष्यंति राज्यं कौ शूरमानिनः ॥११॥
ते गृह्णंतु यज्ञहयं स्वबलात्पत्रशोभितम् । तं मोचयति धर्मात्मा गृहीतं च हयं नृपैः ॥१२॥
स्वबाहुबलवीर्येणानिरुद्धो लीलया हठात् । तस्यान्यथा च पदयोः पतित्वा यांतु धन्विनः ॥१३॥

गर्ग उवाच

तत्पत्रं वाचयित्वैवं कौरवास्ते तु शत्रवः । ऊचुः परस्परं क्रुद्धा मानिनो रक्तलोचनाः ॥१४॥

श्रीगर्गमुनि बोले—हे राजन् ! यमुनाको पार करके वह अश्व मार्गके विविध प्रदेशोंको देखता हुआ कुरुपत्तनमें जा पहुँचा । जहाँ चक्रवर्ती राजा विचित्रवीर्यका बलवान् पुत्र धृतराष्ट्र राज्य करता था ॥१॥ तदनन्तर उस घोड़ेने कौरवोंका श्रेष्ठ नगर देखा । जो अनेक उपवनों, तडागों तथा सरोवरोंसे अलंकृत था ॥ २ ॥ उसके विशाल दुर्गकी खाईं गंगाजी थीं । उस नगरमें सोने-चाँदीके महल बने थे और बड़े-बड़े वीर पुरुष उसमें निवास करते थे ॥ ३ ॥ उस दिन बहुतेरे वीरोंके साथ दुर्योधन वनमें शिकार खेलनेके लिए गया हुआ था । वहाँ रथपर बैठे ही बैठे उसने उस यज्ञके घोड़ेको देखा, जिसके मस्तकपर पत्र बँधा था ॥ ४ ॥ घोड़ेको देखते ही दुर्योधन बड़ी प्रसन्नतापूर्वक रथसे उतर पड़ा और अनायास उसको पकड़ लिया ॥ ५ ॥ कर्ण, भीष्म, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, भूरि तथा दुःशासन आदिके समक्ष उस घोड़ेके मस्तकपर बँधे पत्रको पढ़वाया ॥ ६ ॥ उसमें लिखा था—चन्द्रवंशीय यदुकुलमें उत्पन्न राजा उग्रसेन हैं । इन्द्रादि देवता भी उनकी आज्ञाका पालन करते हैं ॥ ७ ॥ भक्तोंके पालक श्रीकृष्ण उनके सहायक हैं । उग्रसेनकी भक्तिसे प्रसन्न होकर वे द्वारकामें ही रहते हैं ॥ ८ ॥ उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णके परामर्शसे चक्रवर्ती राजा उग्रसेन अपने यशोविस्तारके लिए हठात् अश्वमेध यज्ञ कर रहे हैं ॥ ९ ॥ सभी अश्वोंमें श्रेष्ठ इस अश्वको उन्होंने छोड़ा है । श्रीकृष्णके पौत्र और वृक दैत्यको मारनेवाले अनिरुद्ध इसके रक्षक हैं ॥ १० ॥ उनके साथ हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिकोंकी विशाल सेना है । इस पृथ्वीके शासकोंमें जो राजे अपनेको वीर मानते हों, वे पत्रशोभित इस घोड़ेको अपने बलसे पकड़ें । इस पकड़े हुए घोड़ेको धर्मात्मा अनिरुद्ध हठात् अपने पराक्रमसे छुड़ायेंगे । अन्यथा वे धनुर्धर राजे राजा अनिरुद्धके चरणोंपर गिरें, उन्हें भेंट देकर स्वेच्छासे चले जायँ ॥ ११–१३ ॥ श्रीगर्गमुनि बोले—हे राजन् ! उस पत्रको

कौरवा ऊचुः

अहो किं लिखितं धृष्टैर्भालपत्रे हयस्य च । न संति किं हि राजानो यादवानां च संमुखे ॥१५॥
राजसूये पुराऽस्माभिर्यादवा ये विनिर्जिताः । हयमेधं करिष्यंति पुनस्ते गतबुद्धयः ॥१६॥
तस्मात्सर्वान्विजेष्यामो न दास्यामस्तुरंगमम् । पश्चाद्वयं करिष्यामो हयमेधं क्रतूत्तमम् ॥१७॥
क उग्रसेनः कः कृष्णो हयरक्षाकरस्तु कः । यादवैः सहिता ह्येते किं करिष्यंति पौरुषम् ॥१८॥
कृष्णाद्या यादवाः सर्वे विहाय मथुरां पुरीम् । गताः समुद्रं शरणं युद्धं त्यक्त्वा भयाच्च नः ॥१९॥
राज्यं दत्तं पुरा ह्येपामस्माभिश्च कृपान्वितैः । कृतघ्नास्ते च मन्यंते स्वात्मानं चक्रवर्त्तिनम् ॥२०॥
पांडवानां च सम्मानाद्यादवा न हि मारिताः । निष्कासिताश्च तेऽस्माभिः पांडवाः शत्रवः किल ।२१॥
यदूनद्य विनिर्जित्य संग्रामे च पलायितान् । दर्शयामश्चाहुकाय सहसा चक्रवर्तिताम् ॥२२॥
एवं श्रीकृष्णविमुखा वाचः सर्वे वदंति हि । तृप्तास्ते कौरवा राजञ्छ्रिया राजविभूतिभिः ॥२३॥
ततश्च जगृहुः सर्वे नानाशस्त्राणि वेगतः । हयं प्रवेशयामासुः पुरे तत्र तु संस्थिताः ॥२४॥
गते च तुरगे दूरं सांबः कृष्णेन नोदितः । त्वरं कृष्णां समुत्तीर्य गंभीरां मार्गदायिनीम् ॥२५॥
अक्षौहिणीभिर्दशभिः पृष्ठतो दंशितो रुपा । हस्तिनापुरमक्रूरयुयुधानादिभिर्ययौ ॥२६॥
एवं ते यादवाः सर्वे हस्तिनापुरसन्निधौ । आयाता हयहर्तॄंश्च कौरवान्ददृशुः स्थितान् ॥२७॥
ऊचुस्ते वीक्ष्य वलिनो लोकद्वयजिगीषवः । तान्सर्वांश्च तृणीकृत्य यादवाः कृष्णदेवताः ॥२८॥
अहो ववंध कश्चाश्वं कस्य हृष्टः कृतांतराट् । प्राप्स्यते कस्तु संग्रामे नाराचैः परमां व्यथाम् ॥२९॥
अहो वै किं न जानंति वृष्णीन्द्रं चक्रवर्तिनम् । उग्रसेनं राजराजं देवदानववंदितम् ॥३०॥
राजसूयस्य कर्त्तारमद्वितीयं नृपेश्वरम् । नृपाः स्वात्मविनाशाय गृह्णंति तुरगं ततः ॥३१॥

पढ़कर यादवोंके अभिमानी शत्रु कौरव आँखें लाल करके बड़े क्रोधसे आपसमें वोले—॥ १४ ॥ कौरवोंने कहा—अहो ! इन ढीठ यादवोंने घोड़ेके मस्तकपर वँधे पत्रमें क्या लिख मारा है । क्या यादवोंकी वरावरीका कोई राजा आज जगत्में नहीं है ? ॥ १५ ॥ राजसूय यज्ञमें जिन यादवोंको हमने हराया है, वे ही नष्टबुद्धि यादव अव अश्वमेध यज्ञ करेंगे ? ॥ १६ ॥ हमलोग सव यादवोंको जीतेंगे। इस घोड़ेको तो हम उन्हें कदापि न देंगे । आगे चलकर हम भी यज्ञोंमें श्रेष्ठ अश्वमेध करेंगे ॥ १७ ॥ उग्रसेन कौन है ? कृष्ण कौन है ? इस घोड़ेका रक्षक अनिरुद्ध कौन होता है ? सव यादव मिलकर भी हमारा क्या कर लेंगे ? ॥ १८ ॥ ये कृष्ण आदि यादव तो वे ही हैं, जो जरासन्धसे डरकर और हमारे भयसे अपनी मथुरापुरीको छोड़ समुद्रकी शरणमें जा पड़े हैं ॥१९॥ पूर्वकालमे हम लोगोंने ही कृपा करके उन्हें राज्य दिया था । किन्तु वे ही कृतघ्न आज अपनेको चक्रवर्ती समझते हैं ॥ २० ॥ पाण्डवोंके सम्वन्धको ध्यानमें रखकर ही हमने इन यादवोंको नहीं मारा था । वे शत्रु पाण्डव भी अव देशसे निकाल दिये गये हैं ॥ २१ ॥ युद्धके भगोड़े यादवोंको संग्राममें जीतकर हम उस यादव उग्रसेनको चक्रवर्तित्व दिखायेंगे ॥ २२ ॥ इस प्रकार घमंडी और राज्यलक्ष्मीके मदसे मत्त वे कौरव श्रीकृष्णके विरुद्ध वातें वकते रहे ॥ २३ ॥ इसके वाद कौरवोंने बड़े वेगसे अपने शस्त्रास्त्र सम्हाल लिये और अश्वमेध यज्ञके घोड़ेको नगरमें भेज दिया । फिर स्वयं लड़नेके लिए वहाँ ही खड़े हो गये ॥ २४ ॥ उधर जव घोड़ा वहुत दूर चला गया, तव श्रीकृष्णने साम्वको आज्ञा दी । तदनुसार साम्व तत्काल गम्भीर यमुना नदीको पार करके दस अक्षौहिणी सेनाको साथ ले तथा अतिशय कुपित हो अक्रूर-सात्यकी आदिके साथ हस्तिनापुर गये ॥ २५ ॥ २६ ॥ इस प्रकार यादव जव हस्तिनापुरके पास पहुँचे, तव घोड़ा पकड़नेवाले कौरवोंको लड़नेके लिए तैयार खड़े देखा ॥ २७ ॥ दोनों लोक जीतनेको उत्सुक तथा श्रीकृष्णके वशवर्ती यादव कौरवोंको तिनकेकी तरह तुच्छ समझकर वोले—॥ २८ ॥ अहो ! यह घोड़ा किसने वाँधा है ? किसपर यमराज प्रसन्न हैं ? आज रणमें कौन हमारे नाराच नामक वाणोंका लक्ष्य वनकर परम व्यथा भोगेगा ? ॥ २९ ॥ अहो ! देवताओं तथा दानवों द्वारा वंदित चक्रवर्ती राजा उग्रसेनको भी क्या ये कौरव नहीं ज...

ततश्च कौरवाः सर्वे रक्षणार्थं तु स्वात्मनः । क्रौंचव्यूहं विनिर्माय तत्र सर्वे हि संस्थिताः ॥ ६ ॥
आसीत्तस्य मुखे भीष्मो ग्रीवायां द्रोण एव च । पक्षयोः कर्णशकुनी तस्य पुच्छे सुयोधनः ॥ ७ ॥
मध्ये तस्य महासेना चतुरंगबलैर्युता । कृतं हि ददृशुर्व्यूहं क्रौंचं वै शत्रुदुर्जयम् ॥ ८ ॥
क्रौंचव्यूहं तत्र दृष्ट्वा यदवो युद्धशंकिताः । ऊचुर्हे सांब त्वमपि कुरु व्यूहं प्रयत्नतः ॥ ९ ॥
इति तेषां वचः श्रुत्वा सांबः संग्रामकोविदः । न चकार रणे व्यूहं कौरवानगणय्य च ॥१०॥
युद्धं कर्तुं प्रचलिते ते द्वे सेने यदा नृप । तदा मुहूर्तपर्यंतं चकंपे वसुधा भृशम् ॥११॥
जघ्नुर्भेर्यश्च शंखाश्च ह्युभयोः सेनयोस्तदा । टंकाराश्चैव चापानां श्रूयंते तत्र तत्र ह ॥१२॥
गर्जंति दन्तिनस्तत्र हया हेषंति तत्र ह । शब्दं शूराः प्रकुर्वंति नदंति रथनेमयः ॥१३॥
सैन्यपादरजोभिश्च ह्यंधकारोऽभवद्रणे । मलिनं गगनं भूत्वा सूर्यस्तत्र न दृश्यते ॥१४॥
उभयोः सेनयोर्युद्धं ततः समभवद्भृशम् । बाणैर्गदाभिः परिघैः शतघ्नीभिश्च शक्तिभिः ॥१५॥
परस्परं ते युयुधुराहवे निशितैः शरैः । गजा गजै रथा रथैर्हया हयैर्नरा नरैः ॥१६॥
शरांधकारे संजाते सांबो बाणैर्धनुर्द्धरः । रणे भीष्मेण युयुधेऽक्रूरः कर्णेन तत्र च ॥१७॥
युयुधानः शकुनिना द्रोणाचार्य्येण सारणः । दुर्योधनेन संग्रामे सात्यकिः शीघ्रमेव च ॥१८॥
बली दुःशासनेनापि कृतवर्मा तु भूरिणा । एवं परस्परं ह्यासीत्संग्रामो भयकारकः ॥१९॥
ततः सांबस्तु संक्रुद्धः सज्जं कृत्वा धनुर्दृढम् । टंकारयामास तदा शूराणां कंपयन्हृदि ॥२०॥
श्रीकृष्णं प्रथमं नत्वा मुमुचे सायकान्दश । तानागताञ्छरान्भीष्मश्चिच्छेद स्वशरैरपि ॥२१॥
रणे सांबः पुनस्तस्य कवचे सायकान्दश । निचखान स्वर्णमयान्नादं कृत्वा तु सिंहवत् ॥२२॥
चतुर्भिः सायकैस्तस्य निजघ्ने चतुरो हयान् । चिच्छेद बाणैर्दशभिस्तत्कोदंडं गुणान्वितम् ॥२३॥

हुई चली। वह दस अक्षौहिणी सेना अपने बलसे शत्रुओंको त्रस्त करती हुई आगे बढ़ी ॥ ४ ॥ वीर यादवोंसे विभूषित साम्बने उस सेनाको आती देखकर अपनी सेनाको आज्ञा दी ॥ ५ ॥ तदनन्तर कौरवोंने आत्मरक्षाके लिए क्रौंचव्यूहका निर्माण किया और सभी वीर यथास्थान खड़े हो गये ॥ ६ ॥ व्यूहके मुखपर भीष्म, गर्दनपर द्रोण, दोनों पंखोंपर कर्ण तथा शकुनी, पूँछपर दुर्योधन और मध्यमें चतुरंगिणी महासेना खड़ी हुई। इस प्रकार शत्रुके लिए दुर्जय व्यूहको यादवोंने देखा ॥ ७ ॥ ८ ॥ उसे देखकर यादव सशंक हो उठे और उन्होंने साम्बसे कहा—हे यादवेश ! आप भी अपने बचावके लिए व्यूहकी रचना करिए ॥ ९ ॥ उनकी बात सुन रणकोविद साम्बने कौरवोंको कुछ न समझकर व्यूहकी रचना नहीं की ॥ १० ॥ हे नृप ! कौरवों तथा यादवोंकी दोनों सेनायें जब युद्ध करने चलीं तो मुहूर्तभर धरती काँपती रही ॥ ११ ॥ उसी समय दोनों सेनाओंके नगाड़े तथा शंख बजने लगे और जगह-जगह वीरोंके धनुषोंका टंकोर सुनायी देने लगा ॥ १२ ॥ तभी हाथी चिघाड़ने और घोड़े हिनहिनाने लगे। रथोंकी खनखनाहट तथा वीरोंका गर्जन होने लगा ॥ १३ ॥ पैदल चलनेवाले सैनिकोंके पैरसे जो धूल उड़ी, उससे संग्रामभूमिमें अन्धकार छा गया। जिससे गगनमण्डल मलिन होकर सूर्यका दर्शन बन्द हो गया ॥ १४ ॥ तदनन्तर उन दोनों सेनाओंमें घमासान लड़ाई होने लगी। जिसमें बाण, गदा, परिघ, शतघ्नी तथा शक्तिका खुलकर उपयोग हुआ ॥ १५ ॥ वे योद्धा उस युद्धमें परस्पर तीक्ष्ण बाणोंसे जूझ रहे थे। हाथी हाथीसे, रथ रथसे, घोड़े घोड़ेसे और मनुष्य मनुष्यसे लड़ रहे थे ॥ १६ ॥ जब रणभूमिमें बाणवर्षासे अन्धकार छा गया, तब धनुर्धर साम्ब बाणों द्वारा भीष्मपितामहसे और अक्रूर कर्णसे लड़ने लगे ॥ १७ ॥ इसी तरह शकुनीसे युयुधान, द्रोणसे सारण और दुर्योधनसे सात्यकिका संग्राम होने लगा ॥ १८ ॥ बली दुःशासन और कृतवर्मा भूरिके साथ लड़ने लगे। इस प्रकार उन दोनों सेनाओंमें बड़ा भयानक युद्ध होने लगा ॥ १९ ॥ तदनन्तर अत्यन्त क्रुद्ध हो साम्बने एक सुदृढ़ धनुष लेकर वीरोंका हृदय कँपाते हुए टंकोर किया ॥ २० ॥ सर्वप्रथम श्रीकृष्णभगवानको नमस्कार करके उन्होंने दस बाण छोड़े। अपने पास आनेके पहले ही भीष्मने उन्हें अपने बाणोंसे काट डाला ॥ २१ ॥ तब साम्बने सिंहवत् गर्जन

स छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः । उत्थाय भीष्मः सहसा गदां जग्राह रोषतः ॥२४॥
सांबः प्राह त्वया सार्द्धं कथं युद्धं करोम्यहम् । पदातिना रथं चान्यं तुभ्यं दास्यामि संयुगे ॥२५॥
सशस्त्रं स्यंदनं युद्धे त्वं गृहाण कुरूद्वह । जय मां निस्त्रपं मूढं वृद्धस्त्वं पूज्य एव च ॥२६॥
स उवाच ततः सांबं क्रोधात्प्रस्फुरिताधरः । दंतान्दंतैर्लिहन्नोष्ठं जिह्वया रक्तलोचनः ॥२७॥
त्वद्दत्ते स्यंदने स्थित्वा यदा युद्धं करोम्यहम् । तदा भवति मेऽकीर्तिः पापं निरयमेव च ॥२८॥
प्रतिग्रहपरा विप्रा दातारश्च वयं स्मृताः । दत्तं राज्यं यदुभ्यश्च पुराऽस्माभिः कृपालुभिः ॥२९॥
श्रुत्वा तद्वचनं सांबः प्रत्युवाच रुषान्वितः । भयाद्राज्यं प्रदास्यंति राजानो मंडलेश्वराः ॥३०॥
निरीक्ष्य भूमौ शास्तारं संस्थितं चक्रवर्तिनम् । इत्येवं वाक्यमाकर्ण्य भीष्मः शूरशिरोमणिः ॥३१॥
जघान गदया गुर्व्या सांबवक्षस्थले नृप । गदाप्रहारव्यथितः सांबः संमूर्च्छितोऽभवत् ॥३२॥
सारथिस्तं रथे कृत्वाऽपोवाह शंकितो रणात् । कोलाहलस्तदैवासीद्यदुसैन्ये नृपेश्वर ॥३३॥
भीष्मोऽन्यं रथमारुह्य दंशितः सशरासनः । ययौ सुयोधनं शीघ्रं यादवान्मारयन्पथि ॥३४॥
संग्रामे तत्र राजेन्द्र सात्यकिश्च सुयोधनम् । चक्रे बाणैश्च विरथं गृध्रपक्षैः स्फुरत्प्रभैः ॥३५॥
विरथोऽपि रथं चान्यं स समारुह्य वेगतः । तं शत्रुं विरथं चक्रे शरैराशीविषोपमैः ॥३६॥
स चान्यं रथमारुह्य सात्यकिः शीघ्रविक्रमः । बाणेनैकेन तद्यानं चिक्षेप नृप योजनम् ॥३७॥
रथः पपात भूमध्ये सध्वजः सतुरंगमः । अंगारवद्विशीर्णोऽभून्मूर्च्छितोऽभूत्सुयोधनः ॥३८॥
तदा द्रोणस्तु संक्रुद्धो बाणेनाग्निमयेन च । जघान सात्यकिं युद्धे स्वशत्रुं तु विहाय वै ॥३९॥
रथस्तु तस्य दग्धोऽभूत्सतुरंगः ससारथिः । अभवन्मूर्च्छितः सोऽपि दग्धांगो बाणज्वालया ॥४०॥

कृतवर्मा ततः क्रुद्धो भूरिं जित्वा रणांगणे । आजगाम नदन्राजन्द्रोणोपरि रुषान्वितः ॥४१॥
स गत्वा प्रधने रोषाद्द्रोणाचार्यं शरैरपि । चक्रे पदातिनं वीरो निःशस्त्रं छिन्नकंचुकम् ॥४२॥
ततः कर्णस्तु संक्रुद्धस्त्यक्त्वाऽक्रूरं रणांगणे । तताड कृतवर्माणं शक्त्या शक्तीव तारकम् ॥४३॥
सा शक्तिस्तत्तनुं भित्त्वा विवेश धरणीतले । निर्भिन्नहृदयो भूत्वा कृतवर्मा पपात ह ॥४४॥
युयुधानस्ततः कोपान्निर्जित्य शकुनिं मृधे । कर्णस्योपरि राजेन्द्र ह्याजगाम रथेन च ॥४५॥
गत्वा शरासनेनापि मुमुचे सायकान्दश । वीक्ष्य तानागतान्कर्णो निजघान स्वसायकैः ॥४६॥
संघृष्टास्तत्र संग्रामे तयोर्बाणाः परस्परम् । विस्फुलिंगान्क्षरंतस्ते भ्रमन्तेऽलातचक्रवत् ॥४७॥
युयुधानस्ततः कोपात्कर्णस्य जगतीपते । जघान कवचे बाणान्काकपक्षयुताञ्छितान् ॥४८॥
ते शराः कर्णकवचे न लग्नाः पतिता भुवि । राजन्पापस्य कर्तारो न स्वर्गे निरये यथा ॥४९॥
ततः प्रहस्य कर्णस्तु युयुधानं च विस्मितम् । चकार विरथं युद्धे शरैर्नानास्त्रयोजितैः ॥५०॥
दुःशासनं बलिं चैव कृत्वा युद्धे विमूर्च्छितम् । आययौ संयुगे कर्णं रथेनानलवर्चसा ॥५१॥
आगतं बलिनं दृष्ट्वा कर्णो भास्करनंदनः । पवनास्त्रेण बाणेन तं चिक्षेप सवाहनम् ॥५२॥
पपात योजने सोऽपि सांबस्तत्रागमत्पुनः । अंधकारं शरैः कुर्वन्कौरवान्मारयन्रुषा ॥५३॥

इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखंडे यदुकुरुसंग्रामवर्णनं नामैकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

अथ पंचाशत्तमोऽध्यायः

(यादवोंकी हस्तिनापुरविजय)

गर्ग उवाच

तदैव वृष्णयः सर्वे भोजवृष्ण्यंधकादयः । माथुराः शूरसेनाद्याः समुत्तीर्य्य यमस्वसाम् ॥ १ ॥

किया ॥ ३९ ॥ इससे सारथि तथा घोड़ों समेत सात्यकिका रथ जल गया और बाणकी लपटोंसे जलकर वे स्वयं भी मूर्छित होकर गिर पड़े ॥४०॥ उसी समय कृतवर्मा रणमें भूरिको हराकर बड़े क्रोधसे गर्जन करते हुए द्रोणाचार्यपर टूट पड़े ॥ ४१ ॥ पास पहुँचकर उन्होंने रोषपूर्वक द्रोणाचार्यके रथको चूर करके उन्हें निःशस्त्र तथा कवचहीन कर दिया ॥ ४२ ॥ यह देख कर्ण अक्रूरको रणांगणमें छोड़कर कृतवर्मापर इस तरह शक्तिका प्रहार किया, जैसे स्वामिकार्तिकेयने तारकासुरको शक्तिसे मारा था ॥ ४३ ॥ वह शक्ति कृतवर्माका शरीर छेदकर धरतीमें घुस गयी और छाती फट जानेसे कृतवर्मा भूमिपर गिर पड़े ॥ ४४ ॥ उसी समय शकुनीको जीतकर युयुधान बड़े क्रोधसे अपने रथ द्वारा कर्णके पास आया ॥ ४५ ॥ पहुँचते ही उसने अपने धनुषसे दस बाण मारे, किन्तु कर्णने उनको अपने बाणोंसे काट डाला ॥४६॥ तब वे दोनों बाण आपसमें टकराये और आगकी चिनगारियाँ छोड़ते हुए फुलझड़ीकी तरह घूमने लगे ॥ ४७ ॥ हे राजन् ! इसके बाद युयुधानने बड़े क्रोधसे अपने काकपक्षयुक्त तीखे बाणोंसे कर्णके कवचपर प्रहार किया ॥ ४८ ॥ किन्तु वे बाण कवचमें न लगकर पृथिवीपर गिर गये । जैसे पापी लोग स्वर्ग न जाकर नरकमें जाते हैं ॥ ४९ ॥ तब कर्णने हँसकर विस्मित युयुधानको अनेक प्रकारके बाणोंसे मारकर रथहीन कर दिया ॥ ५० ॥ तदनन्तर युद्धमें दुःशासनको मूर्छित करके वायुके समान वेगवान् रथपर बैठकर बली नामका यादव कर्णकी ओर दौड़ा ॥ ५१ ॥ सूर्यसुत कर्णने जब बलीको अपनी ओर आते देखा तो अपने वायव्यास्त्रसे रथसमेत उसको दूर फेंक दिया ॥ ५२ ॥ इस मारसे बली यादव एक योजन दूर जा गिरा । उसी समय साम्ब फिर रणांगणमें आये । वे अपनी बाण-वर्षासे अन्धकार करते हुए कौरवोंको मार रहे थे ॥ ५३ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखंडे 'प्रियंवदा'भाषा-टीकायामेकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

श्रीगर्गमुनि बोले—हे राजन् ! उसी समय भोज, वृष्णि, अन्धक, माथुर और शूरसेनवंशी यादव

रजोभिश्च नभो व्याप्तं कुर्वंतश्च महीतलम् । चालयंतश्च बलिनो महासंग्रामकर्कशाः ॥ २ ॥
विलोकयंतस्तुरगं सर्वतस्ते महाबलाः । आजग्मुश्चानिरुद्धाद्याः श्रीकृष्णाद्या नृपेश्वर ॥ ३ ॥
वृष्णयस्तत्र युद्धस्य महाघोषं भयंकरम् । शरासनानां टंकारं शतघ्नीनां रवं तथा ॥ ४ ॥
शूराणां गर्जनं चैव शस्त्राणां चट्चटं तथा । कोलाहलं च हाकारं श्रुत्वा ते विस्मयं ययुः ॥ ५ ॥
मत्वा ते युद्धमासीद्वै यादवानां च कौरवैः । शंकिता अनिरुद्धाद्याः कृष्णाद्या आययुद्रुतम् ॥ ६ ॥
श्रीकृष्णमागतं दृष्ट्वाऽनिरुद्धाद्यैः समन्वितम् । ससैन्यं च सहायार्थं नेमुः सांबादयो नृप ॥ ७ ॥
कृष्णे समागते नेदुर्भेर्य्यः शंखाश्च गोमुखाः । पुष्पवर्षं जयारावं देवाश्चक्रुश्च यादवाः ॥ ८ ॥

दृष्ट्वाऽनिरुद्धं प्रधने समागतं ह्यक्षौहिणीभिः शतभिः समन्वितम् ।
प्रचालयंतं वसुधां महाबलं विदुद्रुवुस्ते तु भयाच्च कौरवाः ॥ ९ ॥

प्रलयाब्धिसमं सैन्यमंधकानां विलोक्य च । भीताश्च दुद्रुवुर्वैश्या गेहे गेहे कृतार्गलाः ॥१०॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या वृषलाः स्त्रीजनास्तथा । दुर्योधनं शपंतश्च रुरुदुर्निर्गता गृहात् ॥११॥
ततो विहाय मूर्च्छां वै मृधे दुःशासनाग्रजः । सद्यः सुप्त इवोत्तस्थौ यदुसैन्यं ददर्श ह ॥१२॥
दृष्ट्वा भयंकरां सेनां यादवानां सुयोधनः । स्वपुरं शंकितो भूत्वा पद्भ्यां भीतस्त्वरं ययौ ॥१३॥
कर्णभीष्मकृपद्रोणभूरिदुर्योधनादयः । सभायां धृतराष्ट्रं वै नत्वा सर्वमवर्णयन् ॥१४॥
स्वानां पराजयं श्रुत्वा यादवानां जयं तथा । कृष्णस्यागमनं चैव नृपो विदुरमब्रवीत् ॥१५॥

धृतराष्ट्र उवाच

अक्षौहिणीशतयुते वासुदेवे समागते । कुपितेऽद्य वयं वीर करिष्यामश्च किं वद ॥१६॥
नृपस्य वचनं श्रुत्वा प्रहस्य विदुरोऽब्रवीत् ।

विदुर उवाच

पुरा रामेण चैकेन कुपितेन गजाह्वयम् ॥१७॥

विकर्षितं च गंगायां तस्य भ्राता हि चागतः । हृत्कंजकोशाद्देवक्यां जातो यः स हरिर्नृप ॥१८॥
येन वै संयुगे राजन्कंसाद्याः शकुनादयः । मारिता बहवो दैत्या निर्जिताश्च नृपाः सुराः ॥१९॥
तस्माद्युद्धस्य समयो नास्ति राजन्विलोकय । कौरवैः श्यामकर्णं तु कृष्णाय दातुमर्हसि ॥२०॥
माभूत्कुरूणां वृष्णीनां कलहो नाशकारकः । एवं राजा बोधितस्तु विदुरेणानुजेन वै ॥२१॥
उवाच कौरवान्प्राज्ञो देशकालोचितं वचः ।

धृतराष्ट्र उवाच

गत्वा कृष्णस्य निकटे तुरगं दातुमर्हथ ॥२२॥
संमुखे देवदेवस्य युद्धं कर्तुं च नार्हथ । यादवानां सहायार्थमागतं कुपितं हरिम् ॥२३॥
यूयं प्रसन्नं कुरुत गत्वा तन्निकटं शनैः । कौरवेंद्रस्य वचनं कौरवास्ते निशम्य च ॥२४॥
विविधानुपचारांश्च गंधाक्षतयुतान्किल । गृहीत्वा दिव्यवस्त्राणि रत्नानि विविधानि च ।२५॥
वदंतः पुण्यनामानि रामकेशवयोर्मुदा । पद्भिर्विनिर्ययुः सर्वे कृष्णं द्रष्टुं भयान्विताः ॥२६॥
आगतान्कौरवान्दृष्ट्वा यादवाः क्रोधपूरिताः । नानाशस्त्राणि जगृहुस्तत्र युद्धाय वेगतः ॥२७॥
ऊचुस्तान्कौरवाः सर्वे वयं युद्धाय नागताः । करिष्यामश्च कृष्णस्य दर्शनं दुःखनाशनम् ॥२८॥
इति तेषां वचः श्रुत्वा यादवा विस्मयं गताः । कृष्णाय कथयामासुः कौरवाणां विचेष्टितम् ॥२९॥
ततः कृष्णस्य वचसा कौरवान्यदुसत्तमाः । आह्वाययामासुस्ते प्रीता निःशस्त्रानागतान्नृप ॥३०॥
आहूतास्ते तु हरिणा गत्वा श्रीकृष्णसन्निधौ । लज्जयाऽवाङ्मुखाः सर्वे प्रणम्योचुः पृथक्पृथक् ३१॥
पूर्वं द्रोण उवाचाथ कृष्णभद्र जगत्पते । रक्ष मां कौरवान्रक्ष मायया तव मोहितान् ॥३२॥

कृपाचार्य उवाच

मज्जन्मनः फलमिदं मधुकैटभारे मत्प्रार्थनीयमदनुग्रह एष एव ।
त्वद्भृत्यभृत्यपरिचारकभृत्यभृत्य भृत्यस्य भृत्य इति मां स्मर लोकनाथ ॥३३॥

ही कुपित हो हस्तिनापुरको हलसे खींचकर गंगाजीमें डुबा देना चाहा था। उन्हींके भाई कृष्ण आये हैं। उन्होंने देवकीके उदरकमलसे जन्म लिया है। हे राजन्! वे श्रीकृष्ण साक्षात् परमेश्वर हैं॥ १७॥ १८॥ हे राजन्! युद्धमें उन्होंने कंस-शकुनी आदि बहुतेरे दैत्योंको मार डाले हैं और देवताओं तथा राजाओंको जीता है॥ १९॥ अतएव हे राजन्! देखिए, यह युद्धका समय नहीं है। सभी कौरवोंको चाहिए कि वे श्यामकर्ण घोड़ा श्रीकृष्णको दे दें॥ २०॥ कौरवों तथा यादवोंका विनाशकारी कलह होना ठीक नहीं है। इस प्रकार छोटे भाई विदुरके समझानेपर बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्र देशकालके लिए उचित वचन बोले। धृतराष्ट्रने कहा—तुम सब लोग जाकर श्रीकृष्णको यह अश्वमेधका घोड़ा लौटा दो॥ २१॥ २२॥ देवताओंके भी देवता श्रीकृष्णके साथ तुम युद्ध नहीं कर सकते। यादवोंकी सहायताके लिए आये हुए कुपित कृष्णके पास जाकर उन्हें प्रसन्न करो। कौरवेन्द्र धृतराष्ट्रकी बात सुनकर वे कौरव चन्दन-अक्षतयुक्त विविध प्रकारके उपचार, दिव्य वस्त्र तथा अनेक प्रकारके रत्न ले-लेकर बलराम और कृष्णके पुनीत नामोंका उच्चारण करते हुए भयभीतभावसे पैदल ही श्रीकृष्णका दर्शन करने आये॥ २३–२६॥ कौरवोंको आये देखते ही यादव क्रोधसे तमतमा उठे और लड़नेके लिए नानाप्रकारके शस्त्रास्त्र सम्हाल लिये॥ २७॥ यह देखकर कौरवोंने कहा—हमलोग लड़ने नहीं, अपितु हम तो सभी दुःखोंके नाशक श्रीकृष्णका दर्शन करने आये हैं॥ २८॥ उनकी बात सुनकर यादव बहुत विस्मित हुए और उन्होंने जाकर भगवान कृष्णको कौरवोंका अभिप्राय बताया॥ २९॥ तदनन्तर श्रीकृष्णके कथनानुसार उन प्रसन्न यादवोंने उन निरस्त्र कौरवोंको बुलाया॥ ३०॥ इस प्रकार भगवानके बुलानेपर गये हुए यादव उनके समक्ष पहुँचकर लज्जासे नीचा मुख किये पृथक्-पृथक् प्रणाम करके बोले॥ ३१॥ सर्वप्रथम द्रोणाचार्यने कहा—हे कृष्णभद्र! हे जगत्पते! हमारी और कौरवोंकी रक्षा करिए। क्योंकि हमसब आपकी मायासे मोहित हैं॥ ३२॥ कृपाचार्य बोले—हे मधु-

कर्ण उवाच

भक्तस्यार्थे धनं क्षीणं स्वदारगतयौवनम् । स्वामिकार्ये गताः प्राणा अंते तिष्ठंतु माधव ॥३४॥

भूरिरुवाच

याचामहे वरद किंचिदनन्यलभ्यं नाथ प्रसीद सुमुखी यदि दिव्यदृष्टिः ।
अस्माभिरंजलिरयं विवशैर्निबद्ध एषैव मे भवतु देव भवांतरेऽपि ॥३५॥

दुर्योधन उवाच

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिर्जानामि पापं न च मे निवृत्तिः ।
केनापि देवेन हृदि स्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि ॥३६॥

यंत्रस्य गुणदोषेण क्षम्यतां मधुसूदन । अहं यन्त्रो भवान्यंत्री मम दोषो न दीयताम् ॥३७॥

भीष्म उवाच

रागांधगोपीजनचुंबिताभ्यां योगीन्द्रभोगींद्रनिवेशिताभ्याम् ।
आताम्रपंकेरुहकोमलाभ्यां चाभ्यां पदाभ्यामयमञ्जलिर्मे ॥३८॥

विदुर उवाच

आस्तेति विक्रयकृतां सुकृतानि तानि ये ब्रह्मबालमिव तत्परिपालयंति ।
यद्दैत्यदेवमुनिभिर्मनसाऽप्यगम्यं यन्नेति नेति च वदन्न हि वेद वेदः ॥३९॥

श्रीगर्ग उवाच

एवं संप्रार्थितः कृष्णः कौरवैः शरणागतैः । प्रीतः प्रत्याह तानाजन्मेघनिर्ह्रादया गिरा ॥४०॥

श्रीकृष्ण उवाच

आर्या शृणुत मद्वाक्यमहमागतवान् यतः । युद्धं वारयितुं चात्र नारदेन प्रणोदितः ॥४१॥
न मन्यन्ते ममाज्ञां वै मत्पुत्राश्च निरंकुशाः । दोर्घाणां च प्रकुर्वंति ह्यपराधं च दूषणम् ॥४२॥

कैटभके नाशक ! मेरे जन्मका यही फल है कि आप मुझपर कृपा करिए। यही मेरी प्रार्थना है। हे लोकनाथ ! मैं आपके भृत्योंके भृत्य और उनके सेवकोंके भृत्योंका भृत्य हूँ। ऐसा समझकर आप मेरा स्मरण करिए॥ ३३ ॥ कर्णने कहा—हे माधव ! मेरा धन आपके भक्तोंके लिए खर्च हो, मेरा यौवन अपनी पत्नीके सहवासमें क्षीण हो और मेरे प्राण स्वामीका कार्य करते-करते जायँ। ये ही तीनों मेरी कामनायें हैं ॥३४॥ भूरि बोला—हे नाथ ! हे वरद ! यदि आपकी दिव्य दृष्टि मुझपर दाहिन-दयाल हो तो मेरे ऊपर प्रसन्न हो जाइए। विवश होकर मैंने आपके समक्ष अपनी अंजलि फैलायी है। यह अवसर मुझे जन्म-जन्मान्तरमें भी प्राप्त होता रहे ॥ ३५ ॥ दुर्योधन बोला—हे प्रभो ! मैं धर्मको जानता हूँ, किन्तु उसमें मेरी प्रवृत्ति नहीं है। पापको भी मैं जानता हूँ, किन्तु उससे निवृत्ति नहीं होती। मेरे हृदयमें कोई देवता निवास करता है, वह जो कराता है मैं वही करता हूँ ॥ ३६ ॥ हे मधुसूदन ! मैं यंत्र हूँ और आप यन्त्री (यंत्रके संचालक) हैं। अतएव यंत्रके गुण-दोषको मत देखिए अर्थात् मुझसे कोई भूल हो जाय तो क्षमा कर दीजिए ॥ ३७ ॥ भीष्मपितामहने कहा—अनुरागसे अन्धी गोपियोंने जिन चरणोंका चुम्बन किया है और बड़े-बड़े योगिराज तथा भोगीन्द्र (शेष भगवान) जिनकी सेवा करते हैं, तनिक ताम्रवर्णके उन कमल सरीखे चरणोंको मैं हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ ॥ ३८ ॥ विदुरजी बोले—जो लोग बालककी तरह आपके ब्रह्मरूपकी आराधना करते हुए सदा ब्रह्मविचारमें लीन रहते हैं, उनके द्वारा होनेवाले सुकृत और दुष्कृत विक्रय की हुई वस्तुके समान होते हैं। अर्थात् जैसे बिकी हुई वस्तुपर विक्रेताका कोई स्वत्व नहीं रहता, उसी प्रकार ब्रह्मनिष्ठ पुरुषोंका किये हुए कर्मोंपर कोई स्वत्व नहीं रहता। जो ब्रह्म देवताओं-दैत्यों तथा मुनिजनोंके भी मनसे अगम्य है और 'नेति-नेति' कहकर वेद भी जिसे नहीं जानते, वह ब्रह्म आप ही हैं ॥ ३९ ॥ श्रीगर्गमुनि बोले—हे राजन् ! शरणागत कौरवोंके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर प्रसन्न होकर भगवान कृष्ण मेघके सदृश गम्भीर वाणीमें बोले ॥ ४० ॥ भगवानने कहा—हे आर्यगण ! मैं जिस लिए यहाँ आया हूँ, सो सुनिए। श्रीनारदजीने मुझे इस युद्धका

यूयं धन्याश्च मान्याश्च मिलनार्थं समागताः । सत्पुत्रैश्च कृतं यद्वै तत्सर्वं क्षन्तुमर्हथ ॥४३॥
उग्रसेनहयं वीराः कृपया च विमुच्यताम् । पालनार्थं तु तस्यापि यूयं गच्छत गच्छत ॥४४॥
यादवाः कौरवा मित्राः कलहं तु परस्परम् । प्रकर्तुं नैव चार्हन्ति पूर्वप्रेम विलोक्य च ॥४५॥
एवं ते कृष्णदेवेन मिष्टवाक्यैश्च तोषिताः । तुरगं च ददुः प्रीताः पारिबर्हेण संयुतम् ॥४६॥
दत्त्वा तुरंगमं सर्वे कौरवाः खिन्नमानसाः । स्वपुरं विविशू राजन्भीष्मो गन्तुं मनो दधे ॥४७॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायामश्वमेधखण्डे हस्तिनापुरविजयो नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥



अथ एकपंचाशत्तमोऽध्यायः

(अश्वमेधयज्ञीय अश्वका कुन्तलपुरगमन)

गर्ग उवाच

अथ कृष्णस्तु भगवान्यादवानां च पालनम् । कृत्वा मिलित्वा प्रययौ रथेनापि कुशस्थलीम् ॥ १ ॥
कृष्णे गतेऽनिरुद्धस्तु हयं संपूज्य यत्नतः । बंधनान्मोचयामास विजयार्थं नृपेश्वर ॥ २ ॥
मुक्तस्तुरंगः प्रययौ देशान्देशान्विलोकयन् । पृष्ठतस्तस्य राजेंद्र त्वरं जग्मुश्च वृष्णयः ॥ ३ ॥
दुर्योधनं जितं श्रुत्वा भूपास्तु तं तुरंगमम् । प्राप्तं न जगृहू राष्ट्रे कृष्णस्य बलिनो भयात् ॥ ४ ॥
अथाव्रजत्तुरंगोऽयं शृण्वन्पश्यन्नितस्ततः । संप्राप्तोऽभूद्द्वैतवने यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ ५ ॥
भ्रातृभिर्भार्यया सार्द्धं वनवासं करोति हि । तस्मिन्वने भीमसेनो वनद्वीपगणैः सह ॥ ६ ॥
नित्यं करोति क्रीडां वै बालः क्रीडनकैरिव । ददर्श तुरगं तत्र तं वनं गह्वरं महत् ॥ ७ ॥
न्यग्रोधाश्वत्थबिल्वैश्च खर्जूरपनसैस्तथा । वकुलैः सप्तपर्णैश्च तिंदुकैस्तिलकैरपि ॥ ८ ॥
शालैस्तालैस्तमालैश्च बदरीलोध्रपाटलैः । बब्बूरशाल्मलीवेणुपलाशादिभिरन्वितम् ॥ ९ ॥

वृत्तान्त बताया । सो इस युद्धको रोकनेके लिए ही मैं यहाँ आया हूँ ॥ ४१ ॥ मेरे पुत्र-पौत्र निरंकुश हो जानेके कारण मेरी बात नहीं मानते और महापुरुषोंके प्रति भी अपराध कर गुजरते हैं, यही इनका बड़ा दोष है ॥ ४२ ॥ हे वीरो ! आप धन्य हैं, मान्य हैं और स्वयं मुझसे मिलने आये हैं। मेरे पुत्रों तथा पौत्रोंने जो भी किया हो, उसे क्षमा कर दीजिए ॥ ४३ ॥ अब आपलोग उग्रसेनके यज्ञाश्वको छोड़ दें और उसकी रक्षा करनेके लिए आप सब भी यादवोंके साथ जायें ॥ ४४ ॥ यादव और कौरव तो सदाके मित्र हैं। सो पूर्वकालीन प्रेमको देखकर परस्पर कलह करने योग्य आप लोग नहीं हैं ॥ ४५ ॥ इस प्रकार जब भगवानने मीठी बातोंसे समझाया, तब कौरवोंने घोड़ा दे दिया और उसके साथ बहुतसी भेंटें भी दीं ॥ ४६ ॥ अश्व लौटानेपर कौरवोंको बड़ा खेद हुआ और वे अपने नगरको चले गये । उसके बाद भीष्म भी चले गये ॥४७॥

इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

श्रीगर्गमुनि बोले—हे राजन् ! उसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण यादवोंकी रक्षा करके कौरवोंसे मिल-भेंटकर अपने रथसे द्वारकापुरी चले गये ॥ १ ॥ उनके चले जानेपर अनिरुद्धने उस श्यामकर्ण अश्वका पूजन किया और विजययात्राके लिए उस घोड़ेको फिर छोड़ दिया ॥ २ ॥ छूटते ही वह अश्व फिर देश-देशान्तरोंको देखता हुआ आगे बढ़ा । वीर यादव भी शीघ्र उसके पीछे-पीछे चल पड़े ॥ ३ ॥ हे राजन् ! देशके अन्यान्य राजाओंने जब यादवोंसे दुर्योधनके पराजयकी बात सुनी तो बलवान् श्रीकृष्णके भयसे किसी भी राजाने घोड़ेको नहीं पकड़ा ॥ ४ ॥ इस प्रकार चलता और इधर-उधर देखता हुआ यह घोड़ा द्वैतवनमें जा पहुँचा, जहाँ राजा युधिष्ठिर थे ॥ ५ ॥ उन दिनों भाइयों तथा द्रौपदीको साथ लेकर वे वहाँ वनवास कर रहे थे । उस वनमें भीम हाथियोंके साथ इस प्रकार खेलते थे, जैसे बच्चा खिलौनोंसे खेलता है । उसी सघन वनमें यादवोंके श्यामकर्ण घोड़ेको भीमने देखा ॥ ६ ॥ ७ ॥ उस वनमें वट, पीपल, बेल, खजूर, कटहर, मौलसिरी...

आगतं घोटकं दृष्ट्वा दुर्जरे निर्जने वने। वराहमृगशार्दूलवृकसर्पगणैर्युते ॥१०॥
झिल्लीझंकारसंयुक्ते गृध्रचिल्लादिभिर्युते। वृते तथा भुजंगैश्च वल्मीकादर्द्धनिःसृतैः ॥११॥
शृगालमर्कमहिषगवयादिभिरन्विते। नीलगोगजभल्लूकमार्जारैर्वनमानुषैः ॥१२॥
युक्ते भयंकरे राजन्भीमो भीमपराक्रमः। अश्वं जग्राह केशेषु सपत्रं नृप लीलया ॥१३॥
केनोत्सृष्टं वदन्वाक्यं स्वाश्रमं प्रययौ शनैः। तदैव चानिरुद्धाद्या आजग्मुः सर्वयादवाः ॥१४॥
पश्यंतो यज्ञगन्धर्वमरण्ये नृप कृच्छ्रतः। दृष्ट्वा गृहीतं तुरगमूचुस्ते तु परस्परम् ॥१५॥
अहो वनचरो ह्येष दृश्यते भीमसेनवत्। बृहद्बाहुर्महापुष्टो महोच्चो रक्तलोचनः ॥१६॥
महागौरः कृच्छ्रधरो धूलिलिप्तो गदाधरः। इत्थं ब्रुवंतस्ते सर्वे पुनरूचुश्च तं जनम् ॥१७॥
कस्त्वं श्रीराजराजन्यहयं नीत्वा क्व यास्यसि। तस्मान्मोचय शीघ्रं त्वां न चेद्धन्मो शिलीमुखैः ॥१८॥
इति तद्वाक्यमाकर्ण्य हयं बद्ध्वा च गह्वरे। जगाम स्वगदां गुर्वीं भारायुतसमन्विताम् ॥१९॥
तया जघान संग्रामे यादवान्भीमविक्रमः। निपेतुर्वृष्णयस्तत्र भीमेन निहताश्च ये ॥२०॥
अनिरुद्धस्ततः क्रुद्धो दृष्ट्वा तस्य पराक्रमम्। सहस्रवारणान्मत्तान्नोदयामास शत्रवे ॥२१॥
ततः सादिग्गजैः सोऽपि भूभृच्छिखरसन्निभैः। पातितो धरणीपृष्ठे विषाणैरवपीड्यते ॥२२॥
ततो भीमः समुत्थाय क्रोधात्प्रस्फुरिताधरः। मत्तान्गजाञ्जघानाथ गदया वज्रकल्पया ॥२३॥
कांश्चिच्चिक्षेप गगने काँश्चिद्भूमौ व्यपोथयत्। काँश्चिन्ममर्द पादाभ्यां गजान्काँश्चिद्गजेषु च ॥२४॥
ततश्च दुद्रुवुः सर्वे वारणा भयविह्वलाः। तदाऽऽजगाम संक्रुद्धो गदस्तत्र गदाधरः ॥२५॥
गत्वा तत्सन्निधौ सोऽपि ज्ञात्वा भीमं तु शंकितः। उवाच नत्वा हे वीर कस्त्वं वद ममाग्रतः ॥२६॥

सप्तपर्ण, तेंदु, तिलक, शाल, ताल, तमाल, बेर, लोध, पाकड़, बबूल, सेमर, बाँस, पलाश आदि वृक्षोंसे भरा हुआ था ॥ ८ ॥ ९ ॥ उस दुर्जर और निर्जन वनमें वराह, मृग, शार्दूल, वृक (भेड़िये) और सर्प बहुतायतसे रहते थे। उसमें सदा झींगुरोंकी झंकार सुनायी देती थी। गीधों और चील्होंकी भी भरमार थी ॥ १० ॥ ११ ॥ सियार, बन्दर, भैंसे, नीलगाय, हाथी, भालू, वनबिलाव और वनमानुष इनसे भरे उस भयंकर वनमें उस घोड़ेको देखकर भीषण पराक्रमी भीमसेनने पकड़ लिया ॥ १२ ॥ १३ ॥ 'इसको किसने छोड़ा है ?' यह कहते हुए भीम उसे लिये हुए धीरे-धीरे अपने आश्रमको गये। उसी समय अनिरुद्ध आदि सब यादव भी वहाँ आ गये ॥ १४ ॥ उस यज्ञके घोड़ेको खोजते हुए यादव बड़ी कठिनाईसे वहाँ पहुँचे थे। किन्तु उसे वहाँ पकड़ा गया देखकर यादव परस्पर कहने लगे—॥ १५ ॥ अहो ! यह वनचर तो भीमसेनके समान वीर दीखता है। इसकी बड़ी-बड़ी भुजायें हैं, महापुष्ट शरीर है, ऊँचा कद है, लाल नेत्र हैं, अत्यन्त गौर वर्ण है, खन्ती-पिटारी लिये हुए है, इसका सारा शरीर धूलसे भरा है और गदा धारण किये हुए है, ऐसा कहते हुए यादव उससे बोले—॥ १६ ॥ १७ ॥ तुम कौन हो ? राजाओंके राजा उग्रसेनके इस घोड़ेको लेकर तुम कहाँ जाओगे ? इसको जल्दी छोड़ दो, नहीं तो हम तुम्हें अपने बाणोंसे मार डालेंगे ॥ १८ ॥ उन यादवोंकी बात सुनकर भीमने घोड़ेको एक कन्दरामें बाँध दिया और दस हजार भारकी भारी गदा हाथमें लेकर उनके पास गये ॥ १९ ॥ पहुँचते ही उन्होंने अपनी गदासे यादवोंको मारना आरम्भ कर दिया। भीमसेनके प्रहारसे सभी यादव धरतीपर गिर गये ॥ २० ॥ उनके पराक्रमको देखकर अनिरुद्ध बहुत क्रुद्ध हुए और एक हजार मतवाले गजराज उनके ऊपर छोड़ दिये ॥ २१ ॥ पर्वतशिखरोंके सदृश विशालकाय उन हाथियोंने भीमसेनको घेरकर अपने भीषण दन्त प्रहारसे जमीनपर गिरा दिया ॥ २२ ॥ तब क्रोधसे जिनके होंठ काँप रहे थे, वे भीमसेन उठ खड़े हुए और वज्रसरीखी गदासे मार-मारकर उन हाथियोंको धराशायी कर दिया ॥ २३ ॥ उनमेंसे कुछ हाथियोंको आकाशमें फेंक दिया, कुछको मारकर धरतीपर गिरा दिया, कुछको पैरोंसे मसल डाला और कितनोंको हाथियोंकी मारसे ही मार डाला ॥ २४ ॥ यह देखकर शेष हाथी भयभीत होकर भाग गये। तब अत्यन्त कुपित कृष्णपुत्र गद हाथमें गदा लेकर आये ॥ २५ ॥

सोऽब्रवीद्भीमसेनोऽहं जित्वा द्यूतेन हे गद । दुर्योधनेन रिपुणा पुरान्निष्कासिता वयम् ॥२७॥
अत्रस्थानाद्योजने तु भ्रातृभिश्च युधिष्ठिरः । करोति वनवासं वै ह्यहो दैवस्य मायया ॥२८॥
वने वर्षा गताश्चाष्टौ चत्वारस्त्ववशेषिताः । वर्षमात्रं करिष्यामोऽज्ञातवासं वयं पुनः ॥२९॥
अर्जुनस्तु गतः स्वर्गमाहूतो वासवेन च । अहं न जाने तु कदाऽऽगमिष्यति महीतले ॥३०॥
गद त्वं तु यदूनां च कुशलं कथयस्व नः । तुरगः कस्य भूपस्य किमर्थं यूयमागताः ॥३१॥
इत्युक्त्वा भीमसेनस्तु रुरोदाश्रुपरिप्लुतः । दुर्योधनकृतान्क्लेशान्संस्मरन्दुःखपूरितः ॥३२॥
इति श्रुत्वा स तद्वाक्यं तं समाश्वास्य दुःखितः । भीमाय कथयामास वार्तां सर्वां च विस्तरात् ॥३३॥
श्रुत्वा भीमस्तु मुदितोऽनिरुद्धाद्यैर्यदूत्तमैः । समन्वितस्तु प्रययौ धर्मपुत्रस्य सन्निधौ ॥३४॥
आगतान्यादवाञ्छ्रुत्वाऽजातशत्रुः प्रहर्षितः । आनेतुं निर्ययौ राजन्नकुलाद्यैः समन्वितः ॥३५॥
नेमुस्तं यादवाः सर्वे सोऽपि दत्त्वा वराशिषम् । निवासयामास मुदा सर्वान्द्वैतवने नृप ॥३६॥
आगतेभ्यश्च सर्वेभ्यो यथायोग्यं यथारुचि । प्रददौ भोजनं राजा स्थाल्या भास्करदत्तया ॥३७॥
उषित्वा रजनीमेकां प्रभाते कार्ष्णिनंदनः । क्रतोर्निमंत्रणं दत्त्वा पांडवेभ्यः परंतप ॥३८॥
यादवैः सहितः शीघ्रं मोचयित्वा तुरंगमम् । ययौ सारस्वतान्देशान् तुरगस्य च पृष्ठतः ॥३९॥
अशूराँश्च बहून्देशांस्त्यक्त्वा तुरगराट् ततः । स्वेच्छया विचरन्राजन् ययौ कौंतलकं पुरम् ॥४०॥
तस्मिन्पुरे महाराज चन्द्रहासश्च वैष्णवः । पालितो यः कुलिन्देन केरलाधिपतेः सुतः ॥४१॥
कृष्णदेवप्रसादेन राज्यं तत्र करोति हि । कथास्तस्यापि भक्तस्य राजञ्जैमिनिभारते ॥४२॥
अर्जुनाग्रे विस्तराद्वै नारदेन तु वर्णिताः । तस्मिन्पुरे नराः सर्वे कृष्णभक्ता वसंति हि ॥४३॥
ब्रह्मण्याः पुण्यकर्त्तारः परदारपराङ्मुखाः । स्वदारनिरताः सर्वे कृष्णपूजनतत्पराः ॥४४॥

जब समीप पहुँचे तो भीमसेनको कुछ पहचानकर उन्हें सन्देह हुआ तो प्रणाम करके गदने कहा—हे वीर! यह बताइए कि आप कौन हैं? ॥ २६ ॥ तब उस पुरुषने कहा—मैं भीमसेन हूँ। हे गद! छलसे जुएमें जीतकर शत्रु दुर्योधनने हमको नगरसे निकाल दिया है ॥ २७ ॥ यहाँसे एक योजन दूर भाइयोंके साथ युधिष्ठिर वनवास कर रहे हैं। अहो! दैवकी माया बड़ी प्रबल होती है ॥ २८ ॥ हमको इस वनमें रहते आठ वर्ष बीत गये, चार वर्ष अभी और बाकी हैं। उसके बाद एक वर्ष हमें अज्ञानवास करना पड़ेगा ॥ २९ ॥ इन्द्रके बुलावेपर अर्जुन स्वर्ग गये हैं। मैं नहीं जानता कि वे कब धरतीपर आयेंगे ॥ ३० ॥ हे गद! अब तुम यादवोंका कुशल-क्षेम बताओ। यह घोड़ा किसका है और तुम इसके साथ कैसे आये? ॥ ३१ ॥ यह कहकर भीमसेन आँसू बहाते हुए रोने लगे। क्योंकि दुर्योधनके दिये दुःखोंका उन्हें स्मरण हो आया था ॥ ३२ ॥ भीमसेनकी बात सुनकर गदको बड़ा क्लेश हुआ और उन्होंने भीमसेनको आश्वासन देकर अपना सब वृत्तान्त विस्तारसे कहा ॥ ३३ ॥ सो सुनकर भीमसेन बहुत प्रसन्न हुए और अनिरुद्ध आदि यदूत्तमोंको साथ लेकर राजा युधिष्ठिरके पास गये ॥ ३४ ॥ आगत यादवोंको देखकर राजा युधिष्ठिर प्रसन्न हुए और नकुल आदि भाइयोंको साथ लेकर यादवोंका स्वागत करने आये ॥ ३५ ॥ उनको सभी यादवोंने प्रणाम किया। युधिष्ठिरने भी सबको उत्तम आशीर्वाद दिये और बड़े हर्षपूर्वक द्वैतवनमें टिकाया ॥ ३६ ॥ सूर्यभगवान्की दी हुई स्थालीसे उन्होंने वहाँ आये हुए सभी लोगोंको उनकी रुचिके अनुसार यथायोग्य भोजन दिया ॥ ३७ ॥ हे राजन्! एक रात वहाँ रहकर अनिरुद्ध सबेरे ही पाण्डवोंको अश्वमेध यज्ञका निमंत्रण देकर शीघ्र घोड़ेको मुक्त कराके यादवोंके साथ उस अश्वके पीछे-पीछे सरस्वती नदीके तटवर्ती प्रदेशोंमें गये ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ बहुतेरे वीरविहीन देशोंको छोड़ता हुआ वह अश्वराज स्वेच्छासे विचरता-विचरता कुन्तलपुरमें जा पहुँचा ॥ ४० ॥ हे महाराज! उस नगरमें चन्द्रहास नामका एक वैष्णव राजा था। वह केरलनरेशका पुत्र था और कुलिन्दने उसको पाला था ॥ ४१ ॥ वह श्रीकृष्णदेवकी कृपासे वहाँ राज्य करता था। इस भक्तराजकी कथायें जैमिनिभारतमें लिखी हैं। नारदजीने अर्जुनको विस्तारके साथ इसकी कथाओंको सुनाया था।

गोविंदगाथां शृण्वंति पुराणानि तथैव च । जपंति तत्र नामानि राधामाधवयोर्मुदा ॥४५॥
तुलसीमालिकाभिश्च ह्यूर्ध्वपुंड्रधरा द्विजाः । गोपीचन्दनकाश्मीरैर्हरिमंदिरचर्चिताः ॥४६॥
श्यामविंदुधराः सर्वे श्रीधराः केचिदेव हि । तिलकैर्द्वादशैर्युक्ताश्चाष्टमुद्राधराः पराः ॥४७॥
गृहस्थाः शीतलां मुद्रां गोपीचन्दसंयुताम् । नित्यं विप्रादयो वर्णाः प्रभाते धारयन्ति हि ॥४८॥
अग्निसंस्कारणार्थं तु विरक्ताः केचिदेव हि । तप्तमुद्रां धारयंति केचित्संन्यासिनस्तथा ॥४९॥
तस्मिन्पुरे हयः पश्यन्प्राप्तोऽभूद्राजमंदिरे । यत्र राजति राजा तु चन्द्रहासश्च चन्द्रवत् ॥५०॥

इति श्रीगर्गसंहितायां हयमेधखंडे कौंतलपुरगमनं नामैकपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

अथ द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः

(यज्ञके अश्वका नारायणसरोवर पहुँचना)

गर्ग उवाच

समागतं यज्ञहयं विलोक्य श्रीचन्द्रहासो व्रजचन्द्रदासः ।
सद्यो गृहीत्वा किल तस्य पत्रं स वाचयामास तदैव हृष्टः ॥ १ ॥

तत्पत्रं वाचयित्वाऽऽह महाभागवतो नृप । अहो पश्यामि नेत्राभ्यां पौत्रं श्रीपरमात्मनः ॥ २ ॥
केन पुण्येन पूर्वेण कृष्णतुल्यं यदूत्तमम् । मया न दृष्टः श्रीकृष्णो मायामानुषविग्रहः ॥ ३ ॥
सहितः कार्ष्णिजेनाहं तस्माद्गच्छामि द्वारकाम् । तत्र पश्यामि श्रीकृष्णं बलं प्रद्युम्नमेव च ॥ ४ ॥
उग्रसेनं महाराजं श्रीकृष्णेनापि पूजितम् । इत्युक्त्वा निर्ययौ राजा ह्यनिरुद्धं विलोकितुम् ॥ ५ ॥
गृहीत्वा चोपचारांश्च गंधपुष्पाक्षतादिकान् । दिव्यवस्त्राणि रत्नानि गृहीत्वा तुरगं च सः ॥ ६ ॥
सर्वैः पुरजनैः सार्द्धं मालातिलकशोभितैः । गीतवादित्रघोषैश्च पद्भ्यां राजा जगाम ह ॥ ७ ॥

नगरके सभी निवासी श्रीकृष्णभक्त थे ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ वे ब्राह्मणभक्त, पुण्यकर्ता, परस्त्रीसे पराङ्मुख और अपनी पत्नीसे स्नेह करनेवाले थे। वे नित्य श्रीकृष्णका पूजन करते थे ॥ ४४ ॥ वे भगवान् श्रीकृष्णकी कथाओं और पुराणोंको सदा सुनते रहते थे। वे बड़े आनन्दसे राधामाधवका नाम जपते थे ॥ ४५ ॥ वहाँके ब्राह्मण तुलसीकी माला और ऊर्ध्वपुंड्र धारण करते थे। गोपीचन्दन और केसरसे उनके अंग लिप्त रहते थे ॥ ४६ ॥ सबके मस्तकपर श्याम विन्दु दीखता था। कुछ लोग श्री भी धारण करते थे। बारह तिलक और आठ मुद्रायें भी धारण करते थे ॥ ४७ ॥ वहाँके सभी गृहस्थ और चारों वर्णोंके लोग नित्य प्रातःकाल गोपीचन्दनकी शीतल मुद्रा धारण करते थे ॥ ४८ ॥ वहाँ कितने ही विरक्त संन्यासी अग्निसंस्कारके लिए तप्त मुद्रायें भी लगाते थे ॥ ४९ ॥ उस नगरके विविध दृश्योंको देखता हुआ घोड़ा राजमहलके द्वारपर जा पहुँचा, जहां चन्द्रमाकी तरह प्रकाशवान् राजा चन्द्रहास रहता था ॥ ५० ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां 'प्रियंवदा'भाषाटीकायामेकपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

श्रीगर्गमुनि बोले—हे राजन्! अश्वमेध यज्ञके घोड़ेको स्वेच्छया अपने द्वारपर खड़ा देख राजा चन्द्रहासने उसके मस्तकपर बँधा पत्र पढ़ा तो बहुत प्रसन्न हुआ ॥ १ ॥ पत्र पढ़कर उसने सोचा कि मैं धन्य हूँ। अहो! मैं पूर्वजन्मके किस पुण्यसे अपनी आँखों भगवान् श्रीकृष्णके पौत्रको देखूँगा, जो परमात्मा श्रीकृष्णके ही तुल्य हैं। मायामानुष-तनुधारी भगवान् कृष्णका दर्शन मैंने नहीं किया है ॥ २ ॥ ३ ॥ अतएव मैं अनिरुद्धके साथ ही द्वारका जाऊँगा। वहाँ श्रीकृष्ण, बलराम, प्रद्युम्न और श्रीकृष्णसे भी पूजित महाराज उग्रसेनका दर्शन करूँगा। ऐसा कहकर वह राजा तत्काल अनिरुद्धसे मिलनेके लिए चल पड़ा ॥ ४ ॥ गन्ध, अक्षत, पुष्प आदि उपचारों, दिव्य वस्त्रों और रत्नोंको भी साथ ले लिया ॥ ५ ॥ ६ ॥ माला-तिलकसे शोभित सभी पुरवासियोंके संग गीत-वाद्यके घोषोंके साथ पैदल चलकर वह अनिरुद्धका

आगतं तं नृपं दृष्ट्वा नागरैः सहितं नृप । अनिरुद्धो मुदायुक्तो मंत्रिणं चेदमब्रवीत् ॥ ८ ॥

अनिरुद्ध उवाच

कोऽयं राजा महामंत्रिन्सर्वैः पुरजनैः सह । आगतो मिलनार्थं वा तस्य वार्तां वदस्व नः ॥ ९ ॥

उद्धव उवाच

नृपोऽयं चंद्रहासाख्यो केरलाधिपतेः सुतः । मृतयोर्मातृपित्रोश्च कुलिंदेनानुपालितः ॥१०॥
आबाल्यात्कृष्णचन्द्रस्य भक्तस्तेनापि रक्षितः । दुष्टबुद्धेः प्रधानस्य सुतां यः परिणीतवान् ॥११॥
यस्मै कुन्तलको राजा राज्यं दत्त्वा वनं ययौ । तस्याख्यानं द्वारकायां मया कृष्णमुखाच्छ्रुतम् १२॥
यस्मै स्वदर्शनं दातुं श्रीकृष्णोऽत्रागमिष्यति । उद्धवस्य वचः श्रुत्वा विस्मितोऽभूद्यदूत्तमः ॥१३॥
गत्वाऽनिरुद्धनिकटे चन्द्रहासो जनैर्वृतः । श्यामकर्णं ददौ प्रीतो धनानि बहुशस्तथा ॥१४॥
गजानामर्द्धलक्षं च रथानां लक्षमेव च । तुरगाणामेककोटिं मुद्राणां हि सहस्रकम् ॥१५॥
गवयानां सहस्रं च शिबिकानां सहस्रकम् । धेनूनां दशलक्षं च शिञ्जानामयुतं तथा ॥१६॥
एककोटिं सुवर्णानां रौप्याणां च चतुर्गुणम् । लक्षमाभरणानां च माधवाय ददौ नृपः ॥१७॥

चन्द्रहास उवाच

नमोऽनिरुद्धाय सुरोत्तमाय श्रीकृष्णपौत्राय जनेश्वराय ।
प्रद्युम्नपुत्राय यदूत्तमाय देवाय पूर्णाय नमः पराय ॥१८॥

इति भक्तवचः श्रुत्वा प्रसन्नो मदनात्मजः । संश्लाघ्य प्रददौ तस्मै प्रदीप्तां रत्नमालिकाम् ॥१९॥
चन्द्रहासस्तु राजेन्द्र राज्ये कृत्वा तु मंत्रिणम् । स्वपुराद्यादवैः सार्द्धं गंतुं चालं मनोऽकरोत् ॥२०॥
उषित्वा तत्पुरे सर्वे ह्येकरात्रं यदूत्तमाः । प्रातःकाले ययू राजंश्चन्द्रहासेन संयुताः ॥२१॥
जगाम ह्यग्रतस्तेभ्यो तुरगः पत्रशोभितः । ततः सप्तवतीं दृष्ट्वा ह्यावर्त्तशतसंकुलाम् ॥२२॥

दर्शन करने आया ॥ ७ ॥ नागरिकोंके साथ आये हुए राजा चन्द्रहासको देखकर प्रसन्न अनिरुद्धने अपने मंत्रीसे कहा ॥ ८ ॥ अनिरुद्ध बोले—हे महामंत्रिन् ! यह कौन राजा है, जो अपने नगरनिवासियोंको साथ लेकर हमसे मिलने आया है ? इसका क्या विवरण है ॥ ९ ॥ महामंत्री उद्धवजी बोले—हे महाराज ! यह केरलाधिपतिका पुत्र है। सहसा माता-पिताके दिवंगत हो जानेपर कुलिन्दने इसको पाला है ॥ १० ॥ बाल्यकालसे ही यह श्रीकृष्णचन्द्रका भक्त था। इसीसे भगवानने ही इसकी रक्षा की है। इसने दुष्टबुद्धि नामक प्रधानकी पुत्रीसे विवाह किया है ॥ ११ ॥ राजा कुन्तल इसे अपना राज्य देकर वनको चले। इसका वृत्तान्त मैंने द्वारकामें कृष्णभगवानके मुखसे सुना था ॥ १२ ॥ इसको दर्शन देनेके लिए भगवान् कृष्ण स्वयं यहाँ आयेंगे। उद्धवकी बात सुनकर यदुश्रेष्ठ अनिरुद्ध बहुत विस्मित हुए ॥ १३ ॥ उसी समय अनिरुद्धके पास जाकर राजा चन्द्रहासने वह श्यामकर्ण घोड़ा तथा भेंटस्वरूप पुष्कल धनराशि प्रदान की ॥ १४ ॥ साथ ही पचास हजार हाथी, एक लाख रथ, एक करोड़ घोड़े, एक हजार स्वर्णमुद्रायें, एक हजार नीलगाय, एक हजार पालकियाँ, दस लाख गौ, दस हजार आवाज करनेवाले आभूषण, एक करोड़ भार सुवर्ण, चार करोड़ भार चाँदी और एक लाख भार आभूषण दिये ॥ १५–१७ ॥ चन्द्रहासने कहा—देवताओंमें उत्तम, श्रीकृष्णके पौत्र, जनसाधारणके ईश्वर, प्रद्युम्नके पुत्र, यदूत्तम तथा पूर्ण परात्पर परमेश्वर अनिरुद्ध भगवानको प्रणाम है ॥ १८ ॥ भक्त चन्द्रहासके वचन सुनकर कामदेवके पुत्र अनिरुद्ध बहुत प्रसन्न हुए और प्रशंसा करके उसको एक रत्नमयी माला प्रदान की ॥ १९ ॥ कभी हे राजेन्द्र ! चन्द्रहासने राज्यका भार अपने विश्वस्त मंत्रीको सौंप दिया और स्वयं यादवोंके साथ द्वारका जानेका निश्चय किया ॥ २० ॥ तदनन्तर सभी यादव एक रात कुन्तलपुरमें ही रहे और सवेरा होते ही राजा चन्द्रहासको साथ लेकर चल पड़े ॥ २१ ॥ वह पत्रशोभित अश्वमेधका घोड़ा उनके आगे-आगे चल रहा था। चलते-चलते वे लोग उस सप्तवती नदीके तटपर पहुँचे, जिसमें सैकड़ों आवर्त (भँवर) पड़ रहे थे ॥ २२ ॥ प्रद्युम्ननन्दन वीर अनिरुद्धने देखा कि वह नदी अपनी भीषण लहरोंसे तटको काट रही है, उसका वेग बड़ा भयानक है, जिससे उसे पार

तटं तरंगैर्निघ्नंतीं दीर्घवेगां दुरत्ययाम् । नौकाभिः संयुतां दृष्ट्वा वीरः प्रद्युम्ननन्दनः ॥२३॥
अक्षौहिणीशतयुतः पारं गंतुं मनो दधे । स पूर्वं गजमारुह्य सांबाद्यैः परिवेष्टितः ॥२४॥
नावं त्यक्त्वा नृपश्रेष्ठ प्रविवेश नदीजले । प्रथमं सलिलं तस्यां समलं च बभूव ह ॥२५॥
ततः पंकद्रवा भूमिश्चित्रमेतद्बभूव ह । हसंतो यादवाः सर्वे विस्मयं परमं ययुः ॥२६॥
अथ व्रजंस्तुरंगस्तु स जगाम शनैः शनैः । नारायणसरो यत्र मध्ये सिंधुसमुद्रयोः ॥२७॥
पपौ तीर्थजलं तत्र तुरगश्च तृषातुरः । ततस्तत्राययुः सर्वेऽनिरुद्धाद्या यदूत्तमाः ॥२८॥
धर्मद्वेषकरान्नीचान्म्लेच्छाञ्जित्वा मृधांगणे । दृष्ट्वा तुरंगमं तत्र स्नानं चक्रुः सरोवरे ॥२९॥

इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखण्डेऽश्वस्य नारायणसरोगमनं नाम द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

अथ त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

(उद्धवजीका द्वारका आगमन)

गर्ग उवाच

पश्यन्नृपान्महावीरानुग्रसेनतुरंगमः । विचरन्भारते वर्षे देशानन्याञ्जगाम ह ॥ १ ॥
एवं विचरतस्तस्य हयस्य च विशां पते । आगतः फाल्गुनो मासः सर्वेषां गृहदर्शकः ॥ २ ॥
आगतं फाल्गुनं दृष्ट्वा चानिरुद्धस्तु शंकितः । उवाच मंत्रिप्रवरमुद्धवं बुद्धिसत्तमम् ॥ ३ ॥

अनिरुद्ध उवाच

चैत्रे श्रीयादवेंद्रस्तु मंत्रिन् यज्ञं करिष्यति । वयं तु किं करिष्यामो दिवसा बहवो न हि ॥ ४ ॥
भूमौ तुरंगहर्त्तारो नृपाः के केऽवशेषिताः । तेषां च वद नामानि मह्यं शुश्रूषवे त्वरम् ॥ ५ ॥

उद्धव उवाच

न संति भूतले शूरा गगने संति वा हरे । तस्माद्यदुपुरीं गच्छ स्वर्णद्वारां च द्वारकाम् ॥ ६ ॥

कठिन है ॥ २३ ॥ हाँ, वहाँ बड़ी बड़ी नौकायें बँधी थीं। उन्हींके द्वारा अनिरुद्धने अपनी सौ अक्षौहिणी सेना पार ले जानेका निर्णय किया। सर्वप्रथम अनिरुद्ध नाव त्यागकर साम्ब आदि प्रमुख यादवोंके साथ हाथियों-पर सवार होकर नदीके जलमें उतरे। उनके उतरनेपर पहले नदीका जल गँदला हो गया ॥ २४ ॥ २५ ॥ उसके बाद कीचड़ भरा दलदल हो गया। यह कौतुक देखकर सब यादव हँसने लगे। साथ ही उन्हें बड़ा विस्मय भी हुआ ॥ २६ ॥ इस प्रकार सप्तवती नदी पार करके वह अश्व धीरे-धीरे चलता हुआ नारायणसर-पर पहुँचा, जो सिन्धुनद तथा समुद्रके बीच एक टापूमें विद्यमान था ॥ २७ ॥ वहाँ प्यासे घोड़ेने उस तीर्थका जल पिया। तबतक अनिरुद्ध आदि उत्तम यादव भी वहाँ आ गये ॥ २८ ॥ धर्मध्वंसी, नीच और म्लेच्छोंको रणभूमिमें परास्त करके आये हुए यादववीरोंने वहाँ घोड़ेको खड़ा देखकर नारायणसरोवरमें स्नान किया ॥ २९ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

श्रीगर्गमुनि बोले—हे राजन्! राजा उग्रसेनका घोड़ा बड़े-बड़े वीर राजाओंको देखता तथा भरतखण्डमें विचरता हुआ अन्य देशोंकी ओर अग्रसर हुआ ॥ १ ॥ हे महाराज! इस प्रकार उस घोड़ेके विचरते-विचरते फाल्गुनमास आ गया, जो सभी लोगोंको घरका स्मरण कराता है ॥ २ ॥ फाल्गुनमासका आगमन देख अनिरुद्ध सशंक होकर परम बुद्धिमान् और श्रेष्ठ मंत्री उद्धवसे बोले ॥ ३ ॥ अनिरुद्धने कहा—हे महामंत्रिन्! चैत्रमें यादवेन्द्र उग्रसेन अश्वमेध यज्ञ करनेवाले हैं। अब हम क्या करें? क्योंकि बहुत थोड़े दिन बाकी रह गये हैं ॥ ४ ॥ कृपया यह भी बताइए कि मेरे अश्वको पकड़नेवाले कितने राजे बाकी हैं। उनके नाम बताइए ॥ ५ ॥ उद्धवजी बोले—हे महाराज! पृथिवीपर तो अब इस घोड़ेको पकड़नेवाला कोई राजा नहीं बाकी है, अन्तरिक्षमें भले ही हो। अतएव अब आप यहाँसे स्वर्णद्वारसम्पन्न द्वारकापुरीको

इति तस्य वचः श्रुत्वा ह्यनिरुद्धः प्रहर्षितः । तस्यापि वचनं राजन्नश्वाग्रे पुनरब्रवीत् ॥ ७ ॥
एवं तद्वाक्यमाकर्ण्य सर्वज्ञाता तुरंगमः । प्रययौ द्वारकां शीघ्रं किष्किंधां हनुमानिव ॥ ८ ॥
तस्यापि पृष्ठतः शूरा दुद्रुवुस्ते तुरंगमैः । वायुवेगैर्मनोवेगैर्भानुसांबादयो नृप ॥ ९ ॥
गृहीत्वा तुरगं सर्वे बद्ध्वा तं स्वर्णदामभिः । सेनायामन्तरे कृत्वा शंकिताः स्वपुरीं ययुः ॥१०॥
गीतवादित्रघोषैश्च नादयंतश्च दुंदुभीन् । चालयंतश्च पृथिवीं त्रासयन्तः खलान्रिपून् ॥११॥
व्रजंतं यादवैः सार्द्धं तुरगं वीक्ष्य नारदः । दूतवत्कलहार्थाय प्रययौ शक्रसन्निधिम् ॥१२॥
तस्याग्रे कथयामास वाजिवार्तां स विस्तरात् । श्रुत्वा शक्रस्तु राजेंद्र हयं हर्तुं मनो दधे ॥१३॥
आययौ भूतले शीघ्रं द्रष्टुं भूत्वा तिरोहितः । अहो विष्णोर्मायया च सर्वे मुह्यंति देवताः ॥१४॥
कुवेरब्रह्मशक्राद्या भूजनानां तु का कथा । स गत्वा तत्र वृष्णीनां सेनां सर्वां ददर्श ह ॥१५॥
प्रलयाब्धिसमां रौद्रां वृतां शूरैश्च कोटिभिः । यादवानां महासेनामुद्भटां वीक्ष्य शंकितः ॥१६॥
ययौ कृष्णभयाद्राजञ्छीघ्रं शक्रोऽमरावतीम् । कृष्णदेवस्य कृपया युद्धस्याशां विसृज्य च ॥१७॥

अथ व्रजंती चतुरंगिणीभिः सेनाऽनिरुद्धस्य महात्मनश्च ।
गजै रथैर्वै तुरगैर्नरैश्च रेजे मघोनः पृतनेव स्वर्गे ॥१८॥

गजाः सर्वे पृथग्भूताः पृथग्भूता रथास्तथा । पृथग्भूतास्तुरंगाश्च पृथग्भूताः पदातयः ॥१९॥
अनुजग्मुर्द्वारकां ते हर्षिताः कृष्णपोतकाः । जंबूद्वीपस्य जेतारो लोकद्वयजिगीषवः ॥२०॥
अग्रे वाहं पुरस्कृत्य वादित्रैर्विविधैरपि । गीतनृत्यादिभी राजन्संयुक्तास्ते यदूत्तमाः ॥२१॥
अनिरुद्धस्तु सांबाद्यैरिंद्रनीलादिभिर्नृप । चन्द्राहासादिभिर्भूपैः सहस्रैरभिभूषितः ॥२२॥
सांबस्यानुमतेनापि चानर्त्ते संप्रविश्य च । उद्धवं प्रेषयामास द्वारकां योजनद्वयात् ॥२३॥

चलिए ॥ ६ ॥ उद्धवकी बात सुनकर अनिरुद्ध प्रसन्न हुए और जाकर उस घोड़ेको उद्धवकी बात सुनाते हुए कहा—अश्वराज ! अब कोई वीर शेष हो तो उसके यहाँ चलो, नहीं तो यहाँसे सीधे द्वारका चल दो ॥ ७ ॥ अनिरुद्धकी बात सुनकर वह सर्वज्ञ घोड़ा द्रुतगतिसे द्वारकाको चल पड़ा, जैसे रामका काम करके हनुमान्‌जी किष्किन्धा लौटे थे ॥ ८ ॥ उस अश्वके पीछे भानु-साम्ब आदि वीर यादव वायु तथा मनके समान वेगसे चलनेवाले घोड़ोंपर चढ़कर चले ॥ ९ ॥ बादमें उन्होंने श्यामकर्ण अश्वको सोनेकी रस्सियोंसे बाँधा तथा हाथसे पकड़ और सेनाके बीचमें करके सशंक चित्तसे द्वारकाकी ओर बढ़े ॥ १० ॥ गीत गाते, बाजे बजाते, नगाड़े गड़गड़ाते, धरती कँपाते और शत्रुओंके मनमें त्रास उत्पन्न करते हुए वे चले ॥ ११ ॥ यादवोंके साथ घोड़ेको जाते देखकर दूतके समान नारदजी लड़ाई करानेके लिए इन्द्रके पास जा पहुँचे ॥ १२ ॥ उन्होंने उस अश्वसे सम्बन्ध रखनेवाली सब बातें उन्हें विस्तारसे बता दीं। हे राजेन्द्र ! सो सुनकर इन्द्रने उस घोड़ेको चुरानेका विचार किया ॥ १३ ॥ तदनुसार इन्द्र छिपकर उस घोड़ेको देखनेके लिए पृथिवीपर आये। आश्चर्यकी बात तो यह है कि देवता भी विष्णुकी मायासे मोहित हो जाते हैं ॥ १४ ॥ जब कुबेर, ब्रह्मा और इन्द्रादिक देवता भी भगवानकी मायासे मोहमें पड़ जाते हैं, तब साधारण मनुष्योंकी तो बात ही क्या है। सो इन्द्रने धरतीपर यादवोंकी सारी सेना देखी ॥ १५ ॥ प्रलयकालीन समुद्र सदृश भीषण और करोड़ों वीरोंसे घिरी यादवोंकी उद्भट सेना देखकर इन्द्र घबरा गये ॥ १६ ॥ सो युद्धकी आशा त्याग भगवान कृष्णके भयसे डरकर इन्द्र अमरावतीपुरी चले गये ॥ १७ ॥ तदनन्तर चतुरंगिणी सेनासे युक्त महात्मा अनिरुद्धकी हाथी, घोड़े रथ तथा पैदल सैनिकोंकी सेना स्वर्गकी इन्द्रसेनाके समान दिखी ॥ १८ ॥ उस सेनामें हाथी अलग थे, रथ अलग थे, घोड़े अलग थे और पैदल सैनिक पृथक् थे ॥ १९ ॥ समस्त जम्बूद्वीपके विजेता और दोनों लोकोंको जीतनेके इच्छुक श्रीकृष्णके पुत्र बड़े हर्षित मनसे उस घोड़ेके पीछे-पीछे चल रहे थे ॥२०॥ घोड़ेको आगे करके विविध प्रकारके बाजे बजाते तथा नृत्य-गान करते हुए वे यदूत्तम द्वारकाकी ओर बढ़े जा रहे थे ॥ २१ ॥ तब साम्बादि यादवों, इन्द्रनील तथा चन्द्रहासादि हजारों राजाओंसे अनुगत अनिरुद्धने

उग्रसेन उवाचाथ गोविंदं हर्षपूरितः । आनेतं चानिरुद्धं वै गच्छ श्रीकृष्ण यादवैः ॥४०॥

इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखंडे उद्धवागमनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

अथ चतुष्पंचाशत्तमोऽध्यायः

(अश्वमेधीय अश्वका द्वारकामें पुनरागमन)

गर्ग उवाच

अथोग्रसेनवचनाद्वसुदेवादयो नृप । नेतुं विनिर्ययुः सर्वे ह्यनिरुद्धं समागतम् ॥ १ ॥
गजै रथैस्तुरंगैश्च शिबिकाभिर्यदूत्तमाः । श्रीकृष्णबलदेवाद्याः प्रद्युम्नाद्या नृपेश्वर ॥ २ ॥
उद्धवाद्या गजस्थाश्च हयं द्रष्टुं विनिर्गताः । देवकीप्रमुखा नार्यो मातरः कृष्णरामयोः ॥ ३ ॥
शिबिकाभिर्विचित्राभिर्निर्ययुर्नृपसत्तम । रुक्मिणीसत्यभामाद्या नार्यः कृष्णस्य एव हि ४ ॥
शिबिकाभिर्ययुः सर्वाः सहस्राणि च षोडश ।
लाजानां मौक्तिकानां च कुसुमानां नृपेश्वर । वर्षां कर्तुं ययुः शीघ्रं गजस्थाश्च कुमारिकाः ॥ ५ ॥
कलशैर्जलहारिण्यो निर्ययुर्जलपूरितैः । सौभाग्यवत्यो ब्राह्मण्यो गंधपुष्पाक्षतांकुरैः ॥ ६ ॥
वारांगनाश्च रूपिण्यो नृत्यं कर्तुं विनिर्ययुः । शोभिताः सर्वशृंगारैर्गायंत्यश्च गुणान्हरेः ॥ ७ ॥
शंखदुंदुभिनादेन ब्रह्मघोषेण यादवाः । वारणेंद्रं पुरस्कृत्य गर्गाद्यैर्मुनिभिर्युताः ॥ ८ ॥
विलोकयंतः स्वपुरीं पताकाभिश्च मंडिताम् । सिक्तमार्गां गंधजलैः रंभातोरणशोभिताम् ॥ ९ ॥
प्रदीप्तां मणिदीपैश्च वितानैर्विविधैरपि । दिव्यनारीनरैर्युक्तां सुवर्णसवनैर्वृताम् ॥१०॥
पक्षिणां कलशब्देन धूम्रेणागुरुगंधिना । शोभितां कृष्णनगरीं शक्रस्येवामरावतीम् ॥११॥
इत्थं विलोकयंतस्ते प्राप्ताः शीघ्रं च यादवाः । यत्रानिरुद्धः सहयो वर्त्तते सेनयाऽऽवृतः ॥१२॥
तान्दृष्ट्वा चानिरुद्धस्तु स्वरथादवतीर्य च । पुरस्कृत्य हयं चाग्रे नृपैः सार्द्धं समाययौ ॥१३॥

इसके बाद हर्षपूरित मनसे महाराज उग्रसेनने श्रीकृष्णसे कहा—हे श्रीकृष्ण ! अब आप सयादवअनिरुद्धको लाने जाइए ॥४०॥ इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

गर्गमुनि बोले—हे राजन् ! उग्रसेनका अनुरोध सुनकर वसुदेव आदि सभी यादव सीमापर आये हुए अनिरुद्धको लानेके लिए चले ॥ १ ॥ हाथी, रथ, घोड़े तथा पालकीमें बैठकर श्रीकृष्ण, बलदेव तथा प्रद्युम्न आदि द्वारकासे बाहर निकले ॥ २ ॥ उद्धव आदि यादव घोड़ेको देखनेके लिए हाथियोंपर बैठकर चले । श्रीकृष्ण-बलदेवकी मातायें देवकी आदि पालकियोंमें बैठकर अश्वमेधके अश्वको देखने चलीं । रुक्मिणी-सत्यभामा आदि श्रीकृष्णकी सोलहों हजार रानियाँ पालकीमें बैठकर वह घोड़ा देखनेके लिए चलीं । उनके ऊपर धानका लावा तथा मोतियोंकी वर्षा करनेके लिए कुमारी कन्यायें हाथियोंपर बैठकर चलीं ॥ ३–५ ॥ हे नृप ! सोहागिन ब्राह्मणियाँ जलसे भरे, गन्ध, अक्षत तथा पुष्प डाले हुए मंगलकलश लेकर आयी ॥६॥ रूप-वती वारांगनायें सब शृंगारोंसे शोभित हो भगवान कृष्णके गुण गाती हुई नाचनेके लिए निकल पड़ीं ॥ ७ ॥ द्वारकापुरीके शेष यादव शंख तथा दुन्दुभीके निनाद एवं वेदघोषके साथ एक गजराजको आगे करके गर्गादि मुनियोंके साथ चले ॥ ८ ॥ बहुतेरी पताकाओंसे मंडित, सुगन्धित जलसे सिंचे मार्गोवाली, केलेके खंभोंसे बने तोरणों द्वारा सुशोभित, मणिदीपों तथा विविध वितानोंसे जगमगाती, दिव्य नर-नारीसे भरी, सुवर्णके कलशोंसे झलमलाती, पक्षियोंके कलरवसे मुखरित, अगुरुके धुयेंसे सुरभित एवं इन्द्रकी अमरावतीपुरीके समान सुन्दर श्रीकृष्णकी द्वारकापुरीको देखते हुए वे वहाँ गये, जहाँ घोड़ेको साथ लिये हुए अनिरुद्ध रुके थे ॥ ९–१२ ॥ उन्हें देखते ही अ[illegible]द्ध रथसे उतर पड़े और घोड़ेको आगे करके अपने मित्रों तथा

ततः श्रीयदुराजस्तु सर्वान्दृष्ट्वा नृपान्यदून् । सर्वेषामादधे मानं यथायोग्यं यथाबलम् ॥३१॥
अनिरुद्धस्ततो नत्वा शीघ्रं भूत्वा कृतांजलिः । सर्वेषां शृण्वतां प्राह जंबूद्वीपपतिं नृपम् ॥३२॥

अनिरुद्ध उवाच

एनं पश्य महाराज इन्द्रनीलं नृपोत्तमम् । पादयोः पतितं प्रेम्णा समुत्थापय देववत् ॥३३॥
हेमांगदं चानुशाल्वं विन्दुं श्रीचन्द्रहासकम् । एनं देवव्रतं पश्य चागतं तव सन्निधौ ॥३४॥
मम रक्षाकरं पश्य सांबं जांबवतीसुतम् । रुद्रेण निहतं सां च पश्य कृष्णेन जीवितम् ॥३५॥
तथा रुद्रहतं पश्य जीवितं च सुनन्दनम् । अन्यान्पश्ययदून्सर्वान्कृष्णस्य कृपयाऽऽगतान् ३६॥
गृहाण यज्ञतुरगं निर्विघ्नेन समागतम् । दत्तं युद्धाय निस्त्रिंशं तं गृहाण नमोऽस्तु ते ॥३७॥
इति तद्वाक्यमाकर्ण्य यदुराजः प्रहर्षितः । संश्लाघ्य तं नृपाँश्चैव यथायोग्याशिषं ददौ ॥३८॥
पूजयित्वा नृपान्सर्वांस्ततो भीष्ममुवाच ह । एहि भीष्म मया सार्द्धं कुरु त्वं परिरंभणम् ॥३९॥
इत्युक्त्वा तं समुत्थाय परिरेभे यदूत्तमः । ततस्ते दानमानाभ्यां पूजिता यदवो नृपाः ॥४०॥
निवासं चक्रिरे प्रीता द्वारकायां गृहे गृहे । ततो दृष्ट्वाऽनिरुद्धं वै प्राप्तं सांबादिभिर्नृप ॥४१॥
देवकी रोहणी चैव रुक्मिण्याद्याः स्त्रियो वराः । अन्याश्च रुक्मवत्याद्याः परिष्वज्य मुदं ययुः ॥४२॥
सुरूपा रोचना ह्यूषा राजन्नेता मुदं गताः । सांबश्लाघां ततः श्रुत्वा सुयोधनसुता भृशम् ॥४३॥
मुदं ययौ स्वनेत्राभ्यां मुंचंती हर्षजं जलम् ।
बभूव मंगलं राजन्द्वारकायां गृहे गृहे । ससैन्ये नृपशार्दूल ह्यनिरुद्धे समागते ॥४४॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायामश्वमेधखण्डे द्वारकायां तुरगागमनं नाम चतुष्पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

मुनियोंके साथ यज्ञमण्डपमें बैठे और धुएँसे लाल नेत्रोंवाले महाराज उग्रसेनको देखकर अनिरुद्ध आदि यादव वाहनोंसे उतर पड़े और यज्ञके अश्वको आगे करके सहर्ष सभीने अलग-अलग उनको प्रणाम किया ॥ २७–३० ॥ तदनन्तर यदुराज उग्रसेन सभी राजाओं तथा यादवोंको देखकर उन सबका यथायोग्य सम्मान किया॥ ३१ ॥ तब अनिरुद्धने तुरन्त हाथ जोड़कर जम्बूद्वीपके अधिपति महाराज उग्रसेनको नमस्कार करके बोले ॥ ३२ ॥ अनिरुद्धने कहा—हे महाराज! राजाओंमें उत्तम राजा इन्द्रनीलको देखिए। यह आपके चरणोंमें पड़ा हुआ है। हे देव! आप इसको उठाइये ॥ ३३ ॥ तदनन्तर हेमांगद, अनुशाल्व, विन्दु, चन्द्रहास और देवव्रत भीष्मको देखिए, जो आपके आगे खड़े हैं ॥ ३४ ॥ मेरे रक्षक जाम्बवतीसुत साम्ब हैं। मुझे शिवजीने मार डाला था। बादमें श्रीकृष्ण भगवान्‌ने जिला दिया। उन भगवान्‌को देखिए ॥ ३५ ॥ फिर सुनन्दनको देखिये। इनको भी शिवने मार डाला था और भगवान् कृष्णने इनको भी जीवित किया था। इनके अतिरिक्त अन्यान्य यादवोंको देखिए, जो श्रीकृष्णकी कृपासे यहाँ आये हैं ॥ ३६ ॥ सकुशल लौटे हुए इस यज्ञीय अश्व तथा युद्धके लिए दिये हुए इस खड्गको ग्रहण करिए ॥ ३७ ॥ अनिरुद्धकी बात सुनकर यदुराज उग्रसेन बहुत प्रसन्न हुए और उनकी तथा सब राजाओंकी भूरि-भूरि प्रशंसा करके उन्हें यथोचित आशीष दिये ॥ ३८ ॥ इस प्रकार राजाओंका सम्मान करके उन्होंने भीष्मसे कहा—हे भीष्म! आइए, मुझसे गले लगकर मिलिए ॥ ३९ ॥ ऐसा कहकर उग्रसेनने भीष्मका आलिंगन किया। तदनन्तर दान-मानसे सत्कृत सभी यादव अत्यधिक प्रसन्न हुए। साम्बादिके साथ आये हुए अनिरुद्धको देखकर द्वारकाके घर-घरमें खुशी मनायी गयी ॥ ४० ॥ ४१ ॥ देवकी, रोहिणी, रुक्मिणी तथा रुक्मवती आदि स्त्रियाँ अनिरुद्धका आलिंगन करके बहुत प्रसन्न हुईं ॥ ४२ ॥ हे राजन्! सुरूपा, रोचना, उषा आदि भी बहुत खुश हुईं। दुर्योधनकी पुत्री लक्ष्मणा साम्बकी प्रशंसा सुनकर नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहाती हुई अत्यानन्दित हुई। हे राजन्! सेना समेत अनिरुद्धके लौटनेपर द्वारकाके घर-घरमें मंगलाचार किया गया ॥ ४३ ॥ ४४ ॥
इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां चतुष्पंचाशत्तमोऽध्यायः॥ ५४ ॥

अथ पंचपंचाशत्तमोऽध्यायः

(उग्रसेनके अश्वमेधयज्ञमें गोमतीके जलका आनयन)

गर्ग उवाच

अथ वै मण्डपे रम्ये द्वारैरष्टभिरन्विते । पतत्पताके कुण्डाढ्ये याज्ञिकैरष्टकैर्युते ॥ १ ॥
पलाशजैर्बिल्वजैश्च तथा श्लेष्मातकैर्नृप । वेदिकाभिस्तथा यूपैश्चषालैरपि भूषिते ॥ २ ॥
स्रुक्चर्मकुशमुसलोलूखलाद्यैर्विशांपते । अन्यैः संभृतसंभारैर्नानावस्तुभिरन्विते ॥ ३ ॥
उग्रसेनस्तु राजर्षिर्ऋषिभिर्वेदपारगैः । यादवैश्चामरावत्यां रेजे शक्र इवामरैः ॥ ४ ॥
आहूताः कृष्णचन्द्रेण गोपा नन्दादयस्ततः । वृषभानुवराद्यांश्च श्रीदामाद्याः समाययुः ॥ ५ ॥
यशोमती राधिका च ह्यन्याः सर्वा व्रजस्त्रियः । द्वारकामाययुः प्रीताः शिबिकाभी रथैरपि ॥ ६ ॥
आहूतो धृतराष्ट्रस्तु कौरवैश्च सुतैर्युतः । आजगाम कुशस्थल्यां नृपाश्चन्ये समागताः ॥ ७ ॥
युधिष्ठिरो भीमसेनश्चार्जुनो नकुलस्तथा । सहदेवो वनादेते ह्याजग्मुर्भार्यया सह ॥ ८ ॥
श्रीकृष्णेन समाहूताः प्रेषयित्वा च नारदम् । शक्रादयोऽष्टौ दिक्पाला वसवो रवयस्तथा ॥ ९ ॥
यज्ञे सनत्कुमाराद्या रुद्राश्चैकादशापि हि । मरुद्गणाश्च वेताला गंधर्वाः किन्नरास्तथा ॥१०॥
विश्वेदेवाश्च साध्याश्च सर्वे विद्याधरास्तथा । देवाश्च देवपत्न्यश्च गंधर्व्योऽप्सरसस्तथा ॥११॥
आजग्मुर्द्वारकां राजन्कृष्णदर्शनकांक्षया । कैलासश्च समाहूतः सर्वमंगलया शिवः ॥१२॥
सुतलाद्दैत्यवृन्दैश्च प्रह्लादो बलिरेव च । विभीषणो भीषणश्च मयो बल्वल एव च ॥१३॥
जांबवान्दंष्ट्रिभिः सार्द्धं हनूमान्वानरैर्युतः । पक्षिभिः पक्षिराट् तत्र तथा सर्पैश्च वासुकिः ॥१४॥
धेनुभिः सहिता राजन्धेनुरूपधरा धरा । मेरुः शैलैर्हिमगिरिर्वटः साक्षाद्द्रुमैर्वृतः ॥१५॥
रत्नाकरा रत्नयुता नदीभिः स्वर्धुनी तथा । तीर्थैः सर्वैश्च राजेंद्र तीर्थराजश्च पुष्करः ॥१६॥
एते सर्वे समाहूता आजग्मुर्मुदिताः क्रतौ । ततः कृष्णेन चाहूता व्रजभूमिः समागता ॥१७॥

गर्गमुनि बोले—हे राजन् ! अश्वमेधयज्ञके यज्ञमण्डपमें आठ द्वार थे। उसपर पताकायें फहरा रही थीं, अनेक कुण्ड बने हुए थे और अष्टकपाठी याज्ञिक जुटे हुए थे ॥ १ ॥ ढाक, बेल और निसोढ़ेके यज्ञस्तम्भ बने थे। वेदिका तथा चषाल (यज्ञस्तम्भोंके ऊपर लगे काष्ठकण्टक) से वह शोभित था ॥ २ ॥ स्रुवा, कुश, मूसल, ओखली आदि उपकरणोंसे वह भरा हुआ था ॥ ३ ॥ उस यज्ञमण्डपमें वेदपारगामी ऋषियों तथा वीर यादवोंसे महाराज उग्रसेन ऐसे शोभित थे, जैसे अमरावती पुरीमें इन्द्र देवताओंसे शोभित होते हैं ॥ ४ ॥ भगवान् कृष्णके बुलानेपर व्रजसे नन्द आदि, वृषभानु आदि तथा श्रीदामा आदि सब गोप आये ॥५॥ यशोदा, राधा तथा अन्यान्य व्रजवालायें भी पालकियों तथा रथोंपर बैठ-बैठकर बड़ी प्रसन्नतासे वहाँ आयीं ॥ ६ ॥ निमंत्रण पाकर कौरवेश महाराज धृतराष्ट्र भी अपने पुत्रोंके साथ द्वारका आये। अनेक अन्य राजे भी वहाँ आये ॥ ७ ॥ युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव भी भार्याके साथ द्वैतवनसे द्वारका आये ॥ ८ ॥ श्रीकृष्णने नारदजीको भेजकर इन्द्रादि आठों दिक्पालों, आठों वसुओं और द्वादश सूर्योंको भी उस यज्ञमें बुलवाया ॥९॥ सनत्कुमार, एकादशरुद्र, मरुद्गण, वेताल, गंधर्व, किन्नर, विश्वेदेव, साध्य, विद्याधर, सभी देवता और देवपत्नियाँ, गन्धर्वियाँ और अप्सरायें भी श्रीकृष्णके दर्शनकी लालसासे द्वारका आयीं। कैलासपर्वतसे सर्वमंगलाके साथ शिवजी भी बुलाये गये ॥ १०–१२ ॥ सुतललोकसे बहुतेरे दैत्योंके साथ प्रह्लाद तथा राजा बलि, विभीषण, भीषण, मय, बल्वल, बहुतेरे दाढ़वालोंके साथ जाम्बवान्, वानरोंके साथ हनुमान्, पक्षियोंके साथ पक्षिराज गरुड और सभी सर्पोंके साथ वासुकी नाग भी द्वारका आये ॥ १३ ॥ १४ ॥ सब गौओंके साथ गौका रूप धारण करके पृथिवी, बहुतेरे पर्वतोंके साथ हिमवान्, बहुतेरे वृक्षोंके साथ वटवृक्ष, अकूत रत्नोंके साथ सभी समुद्र, नदियोंके साथ गङ्गाजी, समस्त तीर्थोंके साथ तीर्थराज प्रयाग, पुष्करतीर्थ, इन सबको

कृष्णयज्ञोत्सवं द्रष्टुं यमुना शमनस्वसा । सर्वान्दृष्ट्वाऽऽगतान्प्रीतो वासयामास चाहुकः ॥१८॥
शिविरेषु मंदिरेषु विमानेषु वनेषु च । अथाचार्यः कृतो व्यासो बकदाल्भ्यो विधिर्मया १९॥
ऋत्विजश्च कृता दिव्या ये वै पूर्वं निमंत्रिताः । अथ यज्ञेऽनिरुद्धस्तु श्रीकृष्णस्येच्छया नृप ॥२०॥
विधेर्विधोश्च स्वस्यापि कृत्वा रूपत्रयं बभौ । दृष्ट्वा लीलां काष्णिजस्य देवाश्च यदवो नृपाः ॥२१॥
विस्मिताः कथयामासुः कर्णे कर्णे परस्परम् । व्यासः प्रत्याह राजानं शृणु यादवसत्तम ॥२२॥
उपविष्टा नृपा विप्रा यथास्थाने विभागशः । चतुष्षष्टिर्दम्पतीनां यांतु वै गोमतीतटे ॥२३॥
आहर्तुं सलिलं तस्या मयाऽऽदिष्टं यथोचितम् । अदित्या कश्यपश्चैव वसिष्ठोऽरुंधतीयुतः ॥२४॥
द्रोणाचार्यस्तु कृप्या च ह्यत्रिश्चैवानसूयया । रुक्मिण्या कृष्णचन्द्रस्तु रेवत्या राम एव च ॥२५॥
मायावत्या च प्रद्युम्न उषया काष्णिजस्तथा । सुभद्रयाऽर्जुनश्चैव सांबो लक्ष्मणया तथा ॥२६॥
तथा हेमांगदाद्याश्च यांतु वै स्वस्वभार्यया ।

श्रीगर्ग उवाच

एवं ते व्यासवचनात्सपत्नीका द्विजा नृपाः ॥२७॥
आनेतुं गोमतीतोयं प्रययुर्बद्धपल्लवाः । देवकीं रोहिणीं कुन्तीं गांधारीं च यशोमतीम् ॥२८॥
पुरस्कृत्य तु जग्राह कुंभो भैष्म्या युतो हरिः । तथा रामस्तु रेवत्या सस्त्रीका येऽपि भूमिपाः ॥२९॥
सुवर्णरौप्यकलशैः सपुष्पैश्च सपल्लवैः । रुक्मिण्या सहितं यांतं कृष्णं दृष्ट्वा समागमे ॥३०॥
नारदः कलहं कर्तुं सत्यभामागृहं ययौ । दृष्ट्वा चैकां हरेर्भार्यां संपृष्टः स तयाऽब्रवीत् ॥३१॥

नारद उवाच

आदरं सदने नास्ति सत्राजितसुते तव । गतः कृष्णस्तु रुक्मिण्या चाहर्तुं गोमतीजलम् ३२॥

बुलाया गया और ये सब प्रसन्न मनसे उस यज्ञमें आये। तदनन्तर श्रीकृष्णके आमंत्रणपर व्रजभूमि भी वहाँ आयी ॥ १५–१७ ॥ श्रीकृष्णका यज्ञोत्सव देखनेके लिए यमराजकी बहिन यमुना भी द्वारका आयी। उन सबको देखकर राजा उग्रसेनने प्रसन्न मनसे ठहरने आदिका प्रबन्ध किया ॥ १८ ॥ उन्हें शिविरों, मन्दिरों, विमानों और बगीचोंमें टिकाया गया। उस यज्ञमें व्यास, ब्रह्माजी और बकदाल्भ्य आचार्य बने ॥ १९ ॥ जिनको पहले आमंत्रित किया गया था, वे ऋषि ऋत्विक् बनाये गये। तदनन्तर हे राजन्! उस यज्ञमे भगवान् कृष्णकी इच्छासे अनिरुद्ध ब्रह्मा, चन्द्रमा तथा अपना स्वाभाविक स्वरूप इन तीन रूपोंसे शोभित हुए। अनिरुद्धकी यह लीला देखकर सभी देवता, यादव और अन्यान्य राजे बहुत विस्मित होकर परस्पर कानाफूसी करने लगे। तब व्यासजी राजा उग्रसेनसे बोले—हे यादवसत्तम! सुनिए ॥ २०–२२ ॥ यहाँपर जो राजे तथा विप्र अपने-अपने स्थानपर बैठे हैं, उनमेंसे चौंसठ दम्पती गोमतीके तटपर जायँ ॥ २३ ॥ वे मेरे आदेशानुसार गोमतीका जल लायें। उनमें अदितिके साथ कश्यप, अरुन्धतीके साथ वसिष्ठ, कृपीके साथ द्रोणाचार्य, अनुसूयाके साथ अत्रि, रुक्मिणीके साथ श्रीकृष्ण, रेवती सहित बलदेव, मायावतीके साथ प्रद्युम्न, उषाके साथ अनिरुद्ध, सुभद्राके साथ अर्जुन, लक्ष्मणाके साथ साम्ब तथा हेमांगद आदि राजे अपनी-अपनी पत्नियोंके साथ कुल चौंसठ दम्पती गोमतीका जल लाने जायँ। गर्गमुनि बोले—हे राजन्! व्यासजीका आदेश पाते ही सभी ब्राह्मण तथा राजे अपनी-अपनी पत्नियोंके साथ कलशोंमें पंचपल्लव बाँधकर जल लाने चले। देवकी, रोहिणी, कुन्ती, गान्धारी और यशोदाको आगे करके रुक्मिणीके साथ भगवान् कृष्णने जल भरनेके लिये सुवर्णका कलश लिया। उसी प्रकार रेवतीके साथ बलदेव तथा अन्यान्य राजाओंने अपनी-अपनी पत्नियोंको साथ लेकर जल भरनेके लिए कलश लिया ॥ २४–२९ ॥ उन सभी लोगोंके हाथमें पंचपल्लवयुक्त सोने या चाँदीके कलश विद्यमान थे। सबके आगे रुक्मिणीके साथ श्रीकृष्णको जाते देखकर नारदजीको कलहका एक उपाय सूझ गया। तदनुसार वे सत्यभामाके महलमें जा पहुँचे। उस समय महलमें वे अकेली थीं। सहसा नारदजीको देखकर उन्होंने उनके आगमनका कारण पूछा। तब नारदजी बोले ॥ ३० ॥ ३१ ॥ नारदजीने कहा—हे सत्यभामे! इस घरमें आपका कुछ भी

बहुभिर्याचिता त्वं तु पारिजातकहारिणी । कृष्णसंकल्पकरणी मणियुक्ता च मानिनी ॥३३॥
ईदृशीं त्वां वरारोहां गरुडोपरि गामिनीम् । विहाय भैष्म्या श्रीशः शोभां द्रष्टुं जगाम ह ॥३४॥
यस्याः पुत्रश्च प्रद्युम्नो यस्याः पौत्रोनिरुद्धकः । सा दर्शयति भो मातर्वार्तां मानं च गौरवम् ॥३५॥

गर्ग उवाच

इति श्रुत्वा प्राणनाथं रुक्मिण्या सहितं गतम् ॥३६॥

रुरोद दुःखिता राजन्सत्यभामा रुषान्विता । तदैव कृष्णो भगवाञ्ज्ञात्वा नारदचेष्टितम् ॥३७॥
सत्यभामागृहं शीघ्रं रूपेणैकेन चागमत् । गत्वा प्रत्याह वचनं सर्वज्ञाता रमेश्वरः ॥३८॥
न गतोऽहं समाजे वै रुक्मिण्या सहितः प्रिये । आगतो भोजनं कर्तुं गतो रामश्च भार्यया ॥३९॥
इति तद्वाक्यमाकर्ण्य सत्यभामा मुदं गता । भीतो नारद उत्थाय गेहं चान्यं जगाम ह ॥४०॥
गत्वा जांबवतीगेहं तस्याग्रे सर्वमब्रवीत् । श्रुत्वा हसंती सा प्राह मृषा मा वद हे मुने ॥४१॥
करोति शयनं गेहे श्रीनाथो भोजनांतरे । इति श्रुत्वा शंकितस्तु त्वरं निर्गत्य नारदः ॥४२॥

मित्रविंदागृहे गत्वा प्रत्युवाच विलोकयन् ।

नारद उवाच

न गताऽसि नृपस्थानं मातर्गेहे स्थिताऽसि किम् ॥४३॥

आहर्तुं गोमतीतोयं प्रयाति यत्र माधवः । भैष्मीं सत्यां जांबवतीं सह नेष्यति तत्र वै ॥४४॥

मित्रविंदोवाच

केशवस्य प्रियाः सर्वा गंताऽसौ यां विहाय च । सा न जीवति कृष्णस्तु पौत्रं लालयति गृहे ॥४५॥
ततो मुनिः समुत्थाय सर्वाणि मंदिराणि च । बभ्राम कृष्णभार्याणां सकृष्णानीत्यमन्यत ॥४६॥

पुनर्विचार्य देवर्षिर्गोपीनां संदिशाणि च । प्रययौ कथितुं वार्तां राधिकायै च मानद ॥४७॥
तत्र दीव्यंतमक्षैश्च राधया नंदनन्दनम् । गोपीभिः सहितं वीक्ष्य ऋषिर्गंतुं मनो दधे ॥४८॥
तदैव कृष्ण उत्थाय गृहीत्वा पाणिना मुनिम् । तत्रैव स्थापयामास पूजयित्वा यथाविधि ॥४९॥

श्रीकृष्ण उवाच

किं करिष्यसि विप्रेंद्र वृथा भ्रमसि मोहितः । गेहे गेहे स्वपत्नीनां मया त्वं तु विलोकितः ॥५०॥
मया धृतानि रूपाणि त्वद्भयादृषिसत्तम । नाहं दास्ये दमं तुभ्यं विप्रत्वात्प्रार्थयाम्यहम् ॥५१॥
सर्वेषां चैव देवोऽहं मम देवाश्च ब्राह्मणाः । ये द्रुह्यन्ति द्विजान्मूढाः संति ते मम शत्रवः ॥५२॥
ये पूजयंति विप्रांश्च मम भावेन भूजनाः । ते भुञ्जंति सुखं चात्र ह्यन्ते यास्यंति तत्पदम् ॥५३॥
मायया मम पुर्यां त्वं मोहितश्चापि मा खिदः । सर्वे मुह्यंति देवर्षे ब्रह्मरुद्रादयः सुराः ॥५४॥
इति तद्वाक्यमाकर्ण्य संस्तुतः स महामुनिः । आययौ मण्डपे तूष्णीं भूत्वा ऋत्विग्जनैर्वृते ॥५५॥
अथ ते गोमतीतीरं जग्मुः कृष्णादयो नृपाः । रुक्मिण्याद्याः स्त्रियश्चैव वादित्रैर्विविधैरपि ॥५६॥
नारीणां चैव वृन्देन गायंतीनां हरेर्यशः । वलयानां नूपुराणां शब्दोऽभून्मधुरध्वनिः ॥५७॥
पूजयित्वा जलसुरान्व्यासः सार्द्धं मया मुनिः । कलशं तोयसंयुक्तमनसूयाकरे ददौ ॥५८॥
ततश्च जगृहुः कुम्भान् रेवत्याद्याश्च योषितः । नोत्थिताः कलशाः सर्वे कोमलैश्च करैरपि ॥५९॥
धारयंति कथं कुम्भं पुष्पभारेण पीडिताः । ततश्च जहसू राज्ञ्यो नृपाणां च परस्परम् ॥६०॥
कथं यामो यज्ञवाटमित्यूचुः कलशैर्विना । रुक्मिण्याद्याः स्त्रियः सर्वास्ता ऊचुर्मनसा हरिम् ६१॥
हे श्रीकृष्ण जगन्नाथ भक्तकष्टविनाशन । सबलस्त्वं चक्रधारी ह्यस्मान्पालय संकटे ॥६२॥

तदनन्तर कुछ विचार करके गोपियोंके यहाँ चले। वही बात कहनेके लिए वे सर्वप्रथम राधाके पास गये ॥ ४७ ॥ किन्तु वहाँ उन्होंने भगवानको राधा तथा अन्यान्य गोपियोंके साथ चौपड़ खेलते देखा। तब नारदजीने वहाँसे अन्यत्र जानेका विचार किया ॥ ४८ ॥ तभी भगवान उठे और नारदजीको बैठाकर यथाविधि पूजन किया ॥ ४९ ॥ बादमें भगवान बोले—हे विप्रेन्द्र ! क्या करनेका विचार है ? मोहवश आप व्यर्थ चक्कर लगा रहे हैं। मैंने अपनी प्रत्येक पत्नीके घरमें आपको देखा है ॥ ५० ॥ हे ऋषिसत्तम ! आपके भयसे ही मैंने अपने अनेक रूप धारण किये हैं। हे विप्र ! मैं आपको दण्ड तो दे नहीं सकता। क्योंकि आप ब्राह्मण हैं हाँ, प्रार्थना कर सकता हूँ ॥ ५१ ॥ वैसे तो मैं सबका देवता हूँ, पर ब्राह्मण मेरे भी देवता हैं। जो लोग ब्राह्मणोंसे द्वेष करते हैं, वे मेरे शत्रु हैं ॥ ५२ ॥ जो संसारी लोग भगवद्भावसे ब्राह्मणोंकी पूजा करते हैं, वे इस लोकमें सब प्रकारके सुख भोगकर अन्तमें मेरे धामको प्राप्त करते हैं ॥५३॥ मेरी ही द्वारकापुरीमें आप मेरी मायासे मोहित हो गये। इसके लिए खेद मत करिए हे देवर्षे ! ब्रह्मा और शिवतक मेरी मायासे मोहित हो जाते हैं ॥५४॥ भगवान्की यह बात सुनकर महामुनि नारदजी चुपचाप ऋत्विग्जनोंसे भरे हुए यज्ञमण्डपमें जा बैठे ॥ ५५ ॥ तदनन्तर श्रीकृष्ण तथा अन्यान्य राजे और रुक्मिणी आदि महिलायें विविध वाद्योंके साथ गोमतीके तटपर पहुँचीं ॥ ५६ ॥ भगवानके गुण गाती हुई नारियोंके कंकणों तथा नूपुरोंकी मधुर ध्वनि हो रही थी ॥ ५७ ॥ तब मेरे (गर्गके) साथ वेदव्यासने जलके देवताओंका पूजन करके जलसे भरा हुआ कलश अनसूयाके हाथमें दे दिया ॥ ५८ ॥ तब रेवती आदि ललनाओंने जलकुम्भ अपने अपने हाथसे उठाना चाहा, किन्तु उनके कोमल हाथोंसे कलश नहीं उठ सके ॥ ५९ ॥ ठीक ही है, जो पुष्पके भारसे भी पीडित हो जाती हों, वे पानीसे भरा कलश कैसे उठा सकती थीं ? तदनन्तर वे सभी रानियाँ परस्पर हँसने लगीं ॥ ६० ॥ साथ ही यह भी सोचने लगीं कि जलकलशके विना हम लोग यज्ञमण्डपमें कैसे जायँगी। तब वे रुक्मिणी आदि रानियाँ मन ही मन भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण करके कहने लगीं—॥ ६१ ॥ हे श्रीकृष्ण ! हे जगन्नाथ ! हे भक्तकष्टविनाशन ! आप बलवान् और चक्रधारी

एवं ब्रुवंत्यो जगृहुः सकलान्भारवर्जितान् । स्वे स्वे शिरसि संधाय संयुक्तैर्मणिमौक्तिकैः ॥६३॥
यज्ञवाटं समाजग्मुर्नार्यः शीघ्रं सभर्तृकाः । यत्र भेर्यश्च शंखाद्या वाद्यंते पणवादयः ॥६४॥
आनीय गोमतीतोयं प्रापितास्तत्र ते नृप । श्यामकर्णेन सहिता यत्र वै यादवेश्वरः ॥६५॥

इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखंडे गोमतीजलानयनं नाम पंचपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

अथ षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

(यज्ञकी समाप्तिपर राजा उग्रसेनका अभिषेक)

गर्ग उवाच

उग्रसेनस्य यज्ञे वै हयमेधे महात्मनः । तस्यासन्परिचर्यायां बांधवाः प्रेमबंधनाः ॥ १ ॥
ततश्चकार यदुराण्नानाकर्मसु बांधवान् । भीमं महानसाध्यक्षं धर्मं धर्मस्य पालने ॥ २ ॥
शुश्रूषणे सतां जिष्णुं नकुलं द्रव्यसाधने । पूजने सहदेवं च धनाध्यक्षं सुयोधनम् ॥ ३ ॥
दाने च दानिनं कर्णं द्रौपदीं परिवेषणे । रक्षायां कृष्णपुत्रान्वै ह्यष्टादश महारथान् ॥ ४ ॥
युयुधानं विकर्णं च हृदीकं विदुरं तथा । अक्रूरमुद्धवं चैव नानाकर्मसु भूपतिः ॥ ५ ॥
कृत्वा प्रत्याह श्रीकृष्णं देव त्वं किं करिष्यसि । श्रुत्वा कृष्ण उवाचाथ ब्राह्मणानां करोम्यहम् ॥ ६ ॥
पादप्रक्षालनं राजन्निंद्रप्रस्थे कृतं मया । इति श्रुत्वा च ब्रह्माद्या जहसुर्भूजनास्तथा ॥ ७ ॥

गर्ग उवाच

इत्युक्त्वा भगवान्साक्षादृषीणां च तपस्विनाम् । पादप्रक्षालनं कृत्वा स्थापयामास तान्नृप ॥ ८ ॥
आसनेषूपविष्टास्ते वासांसि परिधाय च । तिलकैर्द्वादशैर्युक्ता दिव्याभरणभूषिताः ॥ ९ ॥
नानामतानां मालाभिर्युक्ताः कर्पूरवीटकान् । भक्त्वा ते रेजिरे यज्ञे देवा इव महीसराः ॥१०॥

ततोऽर्थिनो भिक्षवश्च विरक्ताश्च बुभुक्षिताः । कुर्वंति याचनां सर्वे दूरदेशात्समागताः ॥११॥
ददस्वान्नं ददस्वान्नं ददस्वान्नं नरेश्वर । उपानहश्च पात्राणि वस्त्राणि कंबलानि च ॥१२॥
उग्रसेनस्य यज्ञे वै मुनिवृंदैर्नृपैर्वृते । तेषां तां करुणां वाचं निशम्य यदुसत्तमः ॥१३॥
सुवर्णं रजतं चैव वस्त्राणि भाजनानि च । गजाश्वरथगोछत्रशिबिकादीनि हर्षितः ॥१४॥
येषां येषां प्रियं यद्वै तेभ्यस्तेभ्यो ददौ नृपः । उग्रसेनः कृतस्नानः क्रतुकर्मणि दीक्षितः ॥१५॥
असिपत्रव्रतधरो रुचिमत्या वशी ततः । विप्रा विंशतिसाहस्रा वेदशास्त्रविशारदाः ॥१६॥
व्यासगर्गादयश्चैव कारयंति क्रतूत्तमम् । हस्तिशुण्डासमा धारा ह्यग्निकुंडे पपात ह ॥१७॥
घृतस्य च नृपश्रेष्ठ मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः । तद्यज्ञे कृष्णकृपया ह्यनलोऽजीर्णतां ययौ ॥१८॥
ततः प्रोवाच वह्निस्तु सर्वेषां शृण्वतां नृपम् । प्रसन्नोऽहं प्रसन्नोऽहं पशुं मम प्रयच्छ वै ॥१९॥
निशम्य चाग्नेर्वचनं सभायां श्रीयादवेन्द्रो मुनिभिः समं च ।
बद्धं तुरंगं तपनीययूपे हिरण्यदाम्ना च तमाह भूपः ॥२०॥

उग्रसेन उवाच

अग्नेर्वाक्यं शृणु हय शुद्धं त्वां च पशुं क्रतोः । भक्षयिष्यति वह्निस्तु घृतैस्तृप्तोऽपि चाध्वरे ॥२१॥
नृपस्य वचनं श्रुत्वा श्यामकर्णस्तुरंगमः । कृष्णं विलोकयन्प्रीतः कंपयामास स्वाननम् ॥२२॥
ततो हयमतं ज्ञात्वा वेदव्यासः समं मया । मण्डपे मुनिभिर्युक्ते श्रीकृष्णाद्यैर्नृपैर्वृते ॥२३॥
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैर्यज्ञदिदृक्षुभिः । स्त्रीभिर्युतं प्रलंबघ्नं प्राह द्वैपायनो मुनिः ॥२४॥

व्यास उवाच

उत्तिष्ठ बलभद्र त्वं करवालं प्रगृह्य च । छिंधि कं वाजिनश्चाग्नेः प्रीतये ह्यधुना त्वरम् ॥२५॥
निहते तुरगे राम हवने च कृते सति । यज्ञावतारः कृष्णस्तु प्रसन्नो भवति क्रतौ ॥२६॥

गर्ग उवाच

एवं व्यासवचः श्रुत्वा बलः खड्गेन सत्वरम् । शिरो हयस्य चिच्छेद तच्छिरो गगनं ययौ ॥२७॥

तदनन्तर दूर-दूरसे आये अर्थी, भिक्षुक, विरक्त और बुभुक्षित लोग याचना करने लगे—॥ ११ ॥ हे नरेश्वर ! हमे अन्न दीजिए, अन्न दीजिए, अन्न दीजिए । साथ ही जूते, पात्र, वस्त्र और कंबल भी प्रदान करिए ॥ १२ ॥ मुनिसमुदायसे घिरकर बैठे हुए महाराज उग्रसेनने जब याचकोंकी करुण वाणी सुनी तो सोना, चाँदी, वस्त्र, पात्र, हाथी, घोड़े, रथ, गौ, छत्र और पालकी आदि जिसने जो माँगा, उसे वह वस्तु दी । तदनन्तर महाराज उग्रसेनने स्नान करके यज्ञकर्मकी दीक्षा ली ॥ १३–१५ ॥ तदनन्तर रानी रुचिमतीके साथ उन्होंने असिपत्र-व्रत धारण किया । वेद-शास्त्रविशारद बीस हजार ब्राह्मण तथा व्यास-गर्ग आदि आचार्य अश्वमेध यज्ञ कराने लगे । हाथीकी सूँड़ सरीखी मोटी घृतधारा अग्निकुंडमें गिरी । यह सब भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा थी । उस घृतधाराको पीकर अग्निदेवको अजीर्णरोग हो गया ॥ १६–१८ ॥ इसके बाद अग्निदेवने सबके समक्ष महाराज उग्रसेनसे कहा—हे राजन् ! मैं प्रसन्न हूँ । अब मुझे पशु प्रदान करिए ॥ १९ ॥ मुनियोंके साथ सभामें बैठे हुए यादवेन्द्र उग्रसेनने अग्निकी बात सुनकर सुवर्णके स्तम्भमें सुवर्णके ही रस्सेसे बँधे हुए श्यामकर्ण घोड़ेकी ओर निहारकर कहा ॥ २० ॥ उग्रसेन बोले—हे अश्व ! तुम अग्निकी बात सुनो । घृतधारासे तृप्त होकर भी अग्निदेव शुद्ध यज्ञपशु तुमको भक्षण करना चाहते हैं ॥ २१ ॥ उग्रसेनकी बात सुनकर प्रसन्न मनसे श्रीकृष्णका दर्शन करते हुए श्यामकर्ण अश्वने अपना मुख हिलाया ॥ २२ ॥ अश्वका अभिप्राय समझकर मेरे (गर्गके) साथ बड़े-बड़े मुनियों तथा श्रीकृष्ण आदि राजाओं समेत अनेक विद्वान् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा यज्ञ देखने आये हुए शूद्रों और स्त्रियोंसे भरी उस यज्ञस्थलीमें व्यासजीने बलदेवजी-से कहा—॥ २३ ॥ २४ ॥ हे बलभद्रजी ! उठिए और तलवार लेकर अग्निकी प्रसन्नताके लिए अति शीघ्र इस अश्वकी गर्दन काट डालिए ॥ २५ ॥ हे राम ! इस अश्वको मारकर अग्निमें हवन करनेसे यज्ञावतार भग-

गत्वार्द्धं नृपशार्दूल लीनं तद्रविमंडले । देवदैत्यनराः सर्वे तं दृष्ट्वा विस्मयं गताः ॥२८॥
हयस्य हृदये शूलं निजघान हसन्हरिः । मकरंदसमा धारा राजँस्तत्र विनिर्गता ॥२९॥
ततश्च निर्गता ज्योतिस्तुरगस्य कलेवरात् । पश्यतां चैव सर्वेषां विवेश मधुसूदने ॥३०॥
पश्चाद्भूत्वा च कर्पूरशरीरं पतितं पशोः । गात्राच्च्युता यथा राजन्विभूतिः शंकरस्य च ॥३१॥

दृष्ट्वा च कर्पूरसमूहमद्भुतं सभां सुगंधेन वृतां च द्वारकाम् ।
व्यासादयस्ते मुनयः प्रहर्षिता ऊचुर्नृपं वै क्रतुकर्मणि स्थितम् ॥३२॥

दिष्ट्या ते नृपशार्दूल सफलोऽभूत्क्रतूत्तमः । कर्पूरेणापि हवनं करिष्यामश्च त्वं कुरु ॥३३॥
इत्युक्त्वा ऋत्विजः सर्वे यज्ञकुंडे च तत्क्षणात् । घनसारं हि जुहुवुः पूर्वं यज्ञेश्वराय च ॥३४॥
यत्र यज्ञेश्वरः कृष्णश्चतुर्व्यूहधरः परः । रेजे पुत्रैश्च पौत्रैश्च तत्र किं दुर्लभं नृप ॥३५॥
तस्मिन्यज्ञे महेन्द्राय वचः प्रकथितं मया । गृहाण शक्र यज्ञेऽस्मिन्कर्पूरस्याहुतिं विभो ॥३६॥
एहि राज्ञार्पितां चैनां कलावग्रे हि दुर्लभाम् । इति श्रुत्वा च वचनं शक्रः प्रोवाच सस्मितम् ॥३७॥
पुनर्गृह्णामि मुनयो धर्मराजक्रतूत्तमे । कुलक्षये गजपुरे प्रदत्तामाहुतिं द्विजैः ॥३८॥
इति श्रुत्वा हरेर्वाक्यं सत्यं मत्वा मुनीश्वराः । सर्वान्देवान्नृपश्रेष्ठ ह्यध्वरे चाहुतिं ददुः ॥३९॥
अन्ये केऽपि न जानंति वज्रिणा कथितं च किम् । अग्नये स्वाहेति मन्त्रैश्च सर्वानेवाहुतीर्ददुः ॥४०॥
कर्पूरहवनेनापि प्रीतं विश्वं चराचरम् । उग्रसेनस्तु राजा वै निर्ऋणोऽभून्महाध्वरे ॥४१॥
यज्ञांतेऽवभृथस्नानमुग्रसेनो द्विजोत्तमैः । कृष्णाद्यैर्यादवैर्भूपैस्तीर्थे पिण्डारकेऽकरोत् ॥४२॥
भार्यया सहितः स्नात्वा वेदोक्तविधिना नृपः । धृत्वा क्षौमांबरं रेजे यज्ञो दक्षिणया यथा ॥४३॥

देवदुंदुभयो नेदुर्नरदुंदुभयस्तदा । उग्रसेनोपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे ॥४४॥
कारयित्वा स्वधापानं प्राशयित्वा यथाक्रमम् । सर्वेभ्यश्च पुरोडाशं दत्त्वा शेषमथासृजत् ॥४५॥
उग्रसेनं च वादित्रैस्तुष्टुवुर्वंदिनो मुदा । ततो नीराजनं चक्रुर्देवक्याद्याश्च योषितः ॥४६॥
अलंकाराश्च रत्नानि वस्त्राणि विविधानि च । नीराजनांते प्रददौ ताभ्यः प्रीतो नृपेश्वरः ॥४७॥

इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखंडे यज्ञपूर्तौ नृपस्याभिषेको नाम षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

अथ सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः

(विश्वभोज्य दक्षिणाका वर्णन)

गर्ग उवाच

ततः कृष्णेन भीमेन प्रार्थयित्वा द्विजान्नृपान् । भोजयामास यदुराड्भोजनैर्विविधैरपि ॥ १ ॥
सच्छष्कुलीपायसतण्डुलाभैः संयावकापूपसुसूपकाद्यैः ।
सत्फेणिकाद्यैस्तु निमन्त्य विप्रान्संभोजयामास विशेषमन्नम् ॥ २ ॥
शिखरिणीघृतपूरसुशक्तिकाः सुपटिनीदधिपूपकलप्सिकाः ।
सुघृतसुंदरचन्द्रसुहालिका बटकमोदकपर्पटकैरदात् ॥ ३ ॥
केचित्फलाशनास्तत्र शुष्कपर्णाशनास्तथा । केचिज्जलाशना विप्राः केचिद्दूर्वारसाशनाः ॥ ४ ॥
केचिद्वाताशना राजञ्जन्मतश्च तपस्विनः । भोजनानां च नामानि ते न जानंति विस्मिताः ॥ ५ ॥
भक्तं च मेनिरे केचिन्मालत्याः कुसुमानि च । मोदकाँश्च द्विजाः केचिदुदुंबरफलानि च ॥ ६ ॥
पायसं फेणिकां दृष्ट्वा चन्द्रबिंबं च मेनिरे । पर्पटान्फेणिका दृष्ट्वा पत्राणि किंशुकस्य वै ॥ ७ ॥
मेनिरेऽर्कफलानीति दृष्ट्वा च मधुशीर्षकान् । प्रलेहिकां लप्सिकां च ऋषयश्चंदनद्रवम् ॥ ८ ॥

रेशमी वस्त्र धारण करके अपनी रानीके साथ राजा उग्रसेन ऐसे शोभित हुए, जैसे दक्षिणाके साथ यज्ञभगवान शोभित हो रहे हों ॥४३॥ उस समय स्वर्गकी देवदुन्दुभियोंके साथ पृथिवीकी नरदुन्दुभियाँ भी बजीं और देवताओंने उग्रसेनके ऊपर पुष्पवर्षा की ॥ ४४ ॥ तदनन्तर राजाको स्वधापान तथा पुरोडाश प्राशन कराके यज्ञसे शेष अन्न क्रमशः सब लोगोंमें वितरित किया ॥ ४५ ॥ तब वन्दीजनोंने बाजे बजाकर राजा उग्रसेनकी स्तुति की और देवकी आदि सोहागिन स्त्रियोंने आरती उतारी ॥ ४६ ॥ आरतीके अन्तमें प्रसन्न मनसे राजा उग्रसेनने उनको विविध प्रकारके रत्न, आभूषण और वस्त्र प्रदान किये ॥ ४७ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

श्रीगर्गमुनि बोले—हे राजन् ! तब भगवान् श्रीकृष्ण तथा भीमसेनने प्रार्थनापूर्वक आमंत्रित करके राजाओंको विविध प्रकारके पकवानोंका भोजन कराया ॥ १ ॥ तदनन्तर ब्राह्मणोंको सादर निमंत्रित करके इमरती, जलेबी, खीर, मालपुये, दाल, कढ़ी, अच्छी फेनी और घेवर आदि विशेष प्रकारके पदार्थोंका भोजन कराया ॥ २ ॥ उनके अतिरिक्त शिखरिणी, घेवर, सुशक्तिका, सुपटिनी, दधिपूप, लस्सी, चन्द्रसुहालिका, बड़ा, मोदक तथा पापड़ आदि विविध पदार्थोंसे तृप्त किया ॥ ३ ॥ उन विप्रोंमेंसे कुछ केवल फल खाते थे, कुछ सूखे पत्ते खाते थे, कुछ केवल जल पीकर रहते थे और कुछ केवल दूबका रस पीकर रहते थे ॥ ४ ॥ कुछ जन्मजात तपस्वी केवल वायु पीकर रहते थे। वे भोज्य पदार्थोंका नामतक नहीं जानते थे। वहाँ परोसे गये पदार्थोंको देखकर उन्हें विस्मय होता था ॥ ५ ॥ चावलके भातको कुछ तपस्वियोंने मालतीके फूल समझे और लड्डूको गूलरका फल ॥ ६ ॥ खीर तथा फेनीको उन्होंने चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब समझा। पापड़ तथा फेनीको उन्होंने पलाशके पत्ते समझे ॥ ७ ॥ मधुशीर्षको मदारके फल समझे। कढ़ी और लप्सीको

दृष्ट्वा ते मिष्टचूर्णं वै वालुकां मुनिसत्तमाः । इति मत्वा द्विजाः सर्वे बुभुजुर्भोजनानि च ॥९॥
केचित्पिबंति दुग्धं तु केचिद्द्राक्षारसं तथा । केचिदाम्ररसं विप्राः प्रहसंति लुठंति वै ॥१०॥
ततः कृष्णस्तु भगवान्भीमेन प्रहसन्मुदा । चकार हास्यं विप्राणां संस्थितानां तपस्विनाम्॥११॥
भोजनानां च नामानि मुनयो वदत त्वरम् । तान्प्रयच्छामि युष्मभ्यं भीमेन सहितोऽप्यहम् ॥१२॥
श्रीकृष्णभीमयोर्वाक्यं निशम्य मुनिसत्तमाः । न किंचिदूचुर्मुदिताः प्रपश्यन्तः परस्परम् ॥१३॥

तैलंगकर्णाटकगुर्ज्जराद्यानन्यान्द्विजान्गौडसनाढ्यकादीन् ।
संपूज्य हेमांबररत्नवृन्दैर्नृपेश्वरो विप्रवरान्ननाम ह ॥१४॥

एकलक्षं हयानां च गजानां च सहस्रकम् । द्विसहस्रं रथानां च गवां लक्षं विधानतः ॥१५॥
शतभारं सुवर्णानामीदृशीं दक्षिणां नृप । उग्रसेनस्तु यज्ञांते पूर्वं सद्यं ददौ किल ॥१६॥
मदर्द्धं बकदाल्भ्याय ददौ व्यासाय वै तथा । तुरगाणां सहस्रं च गजानां शतमेव च ॥१७॥
द्विशतं स्यंदनानां च धेनूनां च सहस्रकम् । विंशद्भारं सुवर्णानामीदृशं दक्षिणां पुनः ॥१८॥
निमंत्रितेभ्यो विप्रेभ्य उग्रसेनो ददौ मुदा । गजमेकं रथं गां च स्वर्णभारं च घोटकम् ॥१९॥
द्विभारं रजतं चैव यादवेंद्रः प्रहर्षितः । ईदृशीं दक्षिणां राजन्ब्राह्मणे ब्राह्मणे ददौ ॥२०॥

महाध्वरे कृष्णपुरी तदा बभौ महीतले खे ह्यमरावती यथा ।
तदाऽऽगता मागधसूतकादयो वंदीजना गायकवारयोषितः ॥२१॥
तदा नृपद्वारि महोत्सवोऽभून्मृदंगवीणामुरयष्टिवेणुभिः ।
सुतालशंखानकदुंदुभिस्वनैः संगीतनृत्यादिकवाद्यगीतकैः ॥२२॥
जगुः सुकण्ठैर्ननृतुः सुतालैः संगीतगीताक्षरसामगीतैः ।
कौसुंभवस्त्राणि विचालयन्त्यः संगीतनृत्येन परिस्फुरंत्यः ॥२३॥
वन्दीजना मागधगायकाश्च ये चागतास्तेभ्य उपागतेभ्यः ।
प्रादाद्धिरण्यं बहुरत्नवृन्दं तथाऽऽगता ह्यप्सरसश्च ताभ्यः ॥२४॥

सूतेभ्यो मागधेभ्यश्च सर्वेभ्यो बहुलं धनम् । ववर्ष घनवद्राजा हयमेधप्रहर्षितः ॥२५॥
तत्पश्चाद्यादवेंद्रस्तु ह्युग्रसेनो महीश्वरः । नियुतं तुरगाणां च सहस्रं हस्तिनां तथा ॥२६॥
शिबिकानां शतं चैव कुण्डले कटकानि च । त्रिंशद्भारं सुवर्णानां भूपे भूपे ददौ मुदा ॥२७॥
द्विगुणेन यदून्सर्वान्नंदादींश्चैव भूपतिः । यशोदाद्याश्च गोप्यश्च देवक्याद्या यदुस्त्रियः ॥२८॥
रुक्मिण्याद्या राधिकाद्याः पट्टराज्ञ्यो हरेरपि । दिव्यांबरैरलंकारै राज्ञा सर्वाश्च तोषिताः ॥२९॥
पुनर्ददौ च गर्गाय राजा ग्रामशतं मुदा । स सर्वो ब्राह्मणेभ्यश्च प्रददौ हि क्रमादृषिः ॥३०॥
ततः संपूजयामास कृष्णं संकर्षणान्वितम् । वस्त्रालंकारतिलकैः स्रग्भिर्नीराजनादिभिः ॥३१॥
उवाच कृष्णः प्रहसन्महयं राजन्महाध्वरे । समर्थेन त्वया ह्यत्र न दत्तं किंचिदेव हि ॥३२॥
इति श्रुत्वा नृपः प्राह रामेण सह माधवः । यथोक्तां दक्षिणां शीघ्रं गृहाण जगदीश्वर ॥३३॥
इत्युक्त्वा प्रददौ राजा हर्षितः प्रेमविह्वलः । फलं सर्वं कृष्णकरे राजसूयाश्वमेधयोः ॥३४॥
तदा जयजयारावो द्वारकायां बभूव ह । सद्यः सुराश्च संतुष्टाः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे ॥३५॥
सर्वाश्च देवतास्तुष्टाः प्राप्तभागा दिवंगताः । रक्षोदैत्या दंष्ट्रिणश्च खगा मर्का बिलेशयाः ॥३६॥
शैला गावो वृक्षसंघा नद्यस्तीर्थानि सिन्धवः । संतुष्टाः प्राप्तभागा ये सर्वे स्वं स्वं गृहं गताः ॥३७॥
पूजिता दानमानाभ्यां राजानो ये समागताः । जग्मुः स्वं स्वं गृहं सैन्यैः कंपयन्तो महीतलम् ॥३८॥
सर्वे गोपाश्च नन्दाद्या यशोदाद्या व्रजस्त्रियः । कृष्णेन पूजिता राजन्विरहार्ता व्रजं ययुः ॥३९॥
एवं राजा यादवेंद्रो मनोरथमहार्णवम् । दुस्तरं च समुत्तीर्य हरिणाऽऽसीद्गतव्यथः ॥४०॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायामश्वमेधखण्डे विश्वभोज्यदक्षिणावर्णनं नाम सप्तपंचाशोऽध्यायः ॥५७॥

नुसार सामगान किया। कुसुमी रंगके वस्त्र उड़ा-उड़ाकर नृत्य करती हुई वे संगीतका प्रकाश फैलाने लगीं ॥ २३ ॥ वहाँ आये हुए वन्दीजन, मागध तथा गायकोंको महाराज उग्रसेनने सुवर्ण तथा अनेक रत्न दिये। जो वारांगनायें आयी थीं, उन्हें भी वही मिला ॥ २४ ॥ अश्वमेध यज्ञसे प्रहर्षित राजाने सूतों और मागधोंके बीच इतना अधिक धन बरसाया, जैसे मेघ जल बरसाते हैं ॥ २५ ॥ तत्पश्चात् यादवेन्द्र महाराज उग्रसेनने सहर्ष दस हजार घोड़े, एक हजार हाथी, सौ पालकी, कुण्डल, कंकण और तीस भार सुवर्ण इतनी-इतनी राशि प्रत्येक राजाको दी ॥ २६ ॥ २७ ॥ इनसे दुगुनी राशिका उपहार यादवों तथा नन्द आदि गोपोंको दिया। यशोदा आदि गोपियों, देवकी आदि यादवोंकी स्त्रियों, रुक्मिणी आदि श्रीकृष्णकी रानियों और राधा आदि सभी गोपियोंको उन्होंने दिव्य वस्त्रों और अलंकारोंसे सन्तुष्ट किया ॥ २८ ॥ २९ ॥ तदनन्तर राजा उग्रसेनने गर्गमुनिको प्रसन्नतापूर्वक सौ गावँ और दिये। किन्तु श्रीगर्गमुनिने वे सारे गाँव ब्राह्मणोंको दान दे दिये ॥ ३० ॥ तदनन्तर बलदेवके साथ श्रीकृष्णका भी उन्होंने वस्त्र, अलंकार, तिलक, माला और नीराजन आदिसे सत्कार किया ॥ ३१ ॥ तब हँसकर भगवान्‌ने कहा—हे राजन्! इस महायज्ञमें समर्थ होते हुए भी आपने मुझे कुछ नहीं दिया ॥ ३२ ॥ यह सुनकर राजा उग्रसेनने कहा—हे जगदीश्वर! बलदेवजी तथा आप जो चाहें, वह दक्षिणा ले लीजिए ॥ ३३ ॥ ऐसा कहकर प्रेमविह्वल और हर्षित राजा उग्रसेनने राजसूय और अश्वमेध यज्ञका सारा पुण्य भगवान्‌के हाथोंमें सौंप दिया ॥ ३४ ॥ उस समय सारी द्वारकापुरीमें राजा उग्रसेनका जयजयकार होने लगा और देवताओंने प्रसन्न होकर उनके ऊपर फूल बरसाये ॥ ३५ ॥ तदनन्तर जो देवता अपना भाग प्राप्त कर चुके थे, वे स्वर्ग चले गये। राक्षस, दैत्य, दंष्ट्राधारी जीव, पशु, पक्षी, वन्दर, बिलनिवासी सर्प आदि, पर्वत, गौ, वृक्षपुंज, नदियाँ, तीर्थ और समुद्र ये सब अपना-अपना भाग पाकर अपने-अपने स्थानोंको चले गये ॥३६॥३७॥ उनके आमंत्रणपर जो राजे आये थे, वे भी दान मानसे सम्मानित होकर अपनी-अपनी विशाल सेनासे धरतीको कँपाते हुए अपने स्थानको चल पड़े ॥ ३८ ॥ फिर नन्दादिक गोप और यशोदा आदि गोपियाँ, जिनका स्वयं श्रीकृष्णने पूजन किया था, वे सब श्रीकृष्णके

अथ अष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः

(राजा उग्रसेनका अपने कंसादि मृत पुत्रोंको देखना)

श्रीगर्ग उवाच

ततः सर्वे समाहूताः श्रीकृष्णेन महात्मना । वैकुण्ठादाययुः शीघ्रं कंसाद्या नव भ्रातरः ॥ १ ॥
दृष्ट्वा तानागतासर्वे विस्मयं परमं ययुः । ते समागत्य श्रीकृष्णं बलं प्रद्युम्नमेव च ॥ २ ॥
अनिरुद्धं च कंसाद्या नेमुः सर्वे पृथक्पृथक् । ददर्श चोग्रसेनस्तु सुधर्मायां सुतान्नृप ॥ ३ ॥
शक्रसिंहासनस्थो वै रुचिमत्या समन्वितः । कंसादीन्स्वसुतान्प्रीतः कृष्णाकारांश्चतुर्भुजान् । ४ ॥
शंखचक्रगदापद्मैर्भूषितान्पीतवाससः । कृष्णपार्श्वे स्थितान्पुत्रानाह्वयामास भूपतिः ॥ ५ ॥
ततः कृष्णस्तु भगवान्कंसादीन्प्राह सस्मितः । पश्य स्वमातापितरौ युष्माकं दर्शनोत्सुकौ ॥ ६ ॥
गत्वा समीपे हे वीरा यूयं नमत भक्तितः । इति कृष्णस्य वचनं कृष्णभृत्या निशम्य च ॥ ७ ॥
ऊचुः प्रहर्षिताः सर्वे कंकन्यग्रोधकादयः ।

कंसाद्या ऊचुः

ईदृशाः पितरोऽस्माकमीदृश्यो मातरश्च वै ॥ ८ ॥
बहवश्चाभवन्नाथ भ्रमतां तव मायया । हरिः पिता तु जीवस्य श्रुतिरेषा सनातनी ॥ ९ ॥
तस्माच्चान्यं न पश्यामो वयं त्वन्निकटे स्थिताः । पुरा विलोकितस्त्वं वै संग्रामे बलसंयुतः ॥१०॥
पश्चाज्जातौ द्वारकायां न दृष्टौ कार्ष्णिकार्ष्णिजौ । तमाद्द्रष्टुं चतुर्व्यूहं वयमत्र समागताः ॥११॥
श्रीकृष्णो बलभद्रश्च श्री प्रद्युम्न उषापतिः । परिपूर्णतमा एते ह्यहोऽस्माभिर्विलोकिताः ॥१२॥
केन पूर्वेण पुण्येन दृष्टो यो दुर्लभः सताम् । परिपूर्णश्च चतुर्व्यूहो न जानीमो वयं किल ॥१३॥

विरहसे व्यथित होकर व्रजको गयीं ॥ ३९ ॥ इस प्रकार यादवेन्द्र राजा उग्रसेन अपने मनोरथरूपी दुस्तर समुद्रके पार उतर गये और भगवान् श्रीकृष्णके प्रभावसे उनकी सब व्यथा दूर हो गयी ॥ ४० ॥ इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

गर्गमुनि बोले—हे राजन् ! तदनन्तर महात्मा कृष्णने राजा उग्रसेनके दिवंगत कंसादिक नौ पुत्रोंका आवाहन किया तो वे तत्काल वैकुण्ठलोकसे आकर उनके समक्ष खड़े हो गये ॥ १ ॥ उनको आया देखकर वहाँके सबलोग आश्चर्यमें पड़ गये। वहाँ आकर उन कंसादिकोंने श्रीकृष्ण, बलदेव, प्रद्युम्न और अनिरुद्धको अलग-अलग प्रणाम किया । हे राजन् ! राजा उग्रसेनने सुधर्मा सभामें आये हुए अपने कंसादि पुत्रोंको देखा ॥ २ ॥ ३ ॥ उस समय महाराज उग्रसेन अपनी रानी रुचिमतीके साथ इन्द्रासनपर बैठे हुए थे। उन्होने बड़ी प्रसन्नतासे अपने कंसादिक पुत्रोंको देखा । वे सब कृष्णके आकार और चतुर्भुज थे ॥ ४ ॥ वे शंख, चक्र, गदा और पद्मसे भूषित तथा पीतवसनसे सुशोभित होकर भगवानके पास खड़े थे । तभी राजा उग्रसेनने उन्हें अपने पास बुलाया ॥५॥ तब श्रीकृष्णने कंसादिकोंसे कहा—वहाँ जाओ और तुम्हें देखनेके लिए उत्कंठित अपने माता पिताके दर्शन कर लो ॥ ६ ॥ हे वीरो ! उनके पास जाकर बड़ी भक्तिसे प्रणाम करो । कृष्णकी बात सुनकर वे कंस-न्यग्रोध आदि कृष्णभक्त बड़े हर्षके साथ बोले। कंसादिकोंने कहा—हे नाथ ! आपकी मायाके चक्करमें पड़कर घूमते हुए हमने अबतक ऐसे-ऐसे बहुतेरे माता-पिता देखे हैं। वास्तवमें श्रीहरि ही जीवमात्रके पिता हैं, यह सनातनी श्रुति कहती है ॥ ७–९ ॥ अतएव आपके सिवाय हम और किसीको नहीं जानते । पूर्वकालमें हमने बलदेवजीके साथ आपको रणभूमिमें देखा था ॥ १० ॥ हमारे चले जानेपर द्वारकामें प्रद्युम्न और अनिरुद्धका जन्म हुआ । उन्हें हमने नहीं देखा था। सो आपके चतुर्व्यूह रूपको देखनेके लिए ही हम आये हैं ॥ ११ ॥ श्रीकृष्ण, बलभद्र, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इन परिपूर्णतम रूपोंको आज हमने देख लिया ॥ १२ ॥ पूर्वजन्मके न जाने किस पुण्यसे सज्जनोंके लिए भी दुर्लभ आपका हमने दर्शन पा लिया,

हे संकर्षण हे कृष्ण हे प्रद्युम्न उषापते । मूढानां नः कुबुद्धीनामपराधं क्षमस्व च ॥१४॥
गच्छ गोविंद वैकुण्ठं शून्यं ते धाम सुन्दरम् । धन्या त्वया द्वारका तु वैकुण्ठाच्च कृताधिका ॥१५॥
यदर्चितं ब्रह्मशचीशवह्निभिरादित्यगौरीशमरुद्यमादिभिः ।
पौलस्त्यतारेशजलेशपूजितं पादारविंदं सततं भजामहे ॥१६॥
मुनींद्रलक्ष्मीसुरभक्तसात्वतैः सुपूजितं चंदनगंधधूपकैः ।
लाजाक्षतैश्चांकुरपूगचर्चितं पादारविंदं सततं भजामहे ॥१७॥

गर्ग उवाच

इत्युक्त्वा ते च कंसाद्या वैकुंठं प्रययुर्नृप । सर्वेषां पश्यतां राजा विस्मितोऽभूत्सभार्यया ॥१८॥

इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखण्डे कंसादिदर्शनं नामाष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५८॥

अथ एकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः

(श्रीकृष्णसहस्रनामका वर्णन)

श्रीगर्ग उवाच

अथोग्रसेनो नृपतिः पुत्रस्याशां विसृज्य च । व्यासं पप्रच्छ संदेहं ज्ञात्वा विश्वं मनोमयम् ॥ १ ॥

उग्रसेन उवाच

ब्रह्मन्केन प्रकारेण हित्वा च जगतः सुखम् । भजेत्कृष्णं परं ब्रह्म तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ २ ॥

व्यास उवाच

त्वदग्रे कथयिष्यामि सत्यं हितकरं वचः । उग्रसेन महाराज शृणुष्वैकाग्रमानसः ॥ ३ ॥
सेवनं कुरु राजेंद्र राधाश्रीकृष्णयोः परम् । नित्यं सहस्रनामभ्यामुभयोर्भक्तितः किल ॥ ४ ॥
सहस्रनाम राधाया विधिर्जानाति भूपते । शंकरो नारदश्चैव केचिद्वै चास्मदादयः ॥ ५ ॥

उग्रसेन उवाच

राधिकानामसाहस्रं नारदाच्च पुरा श्रुतम् । एकांते दिव्यशिविरे कुरुक्षेत्रे रविग्रहे ॥ ६ ॥

यह हमें नहीं मालूम ॥ १३ ॥ हे संकर्षण ! हे कृष्ण ! हे प्रद्युम्न ! हे उषापते अनिरुद्ध ! आपलोग हम मूढ तथा कुबुद्धियोंके अपराध क्षमा कर दें ॥ १४ ॥ हे गोविन्द ! अब आप अपने वैकुंठधामको जाइए । आपके अभावमें वह सुन्दर लोक सूना पड़ा है । वैकुण्ठसे भी अधिक उत्तम आपके द्वारा निर्मित यह द्वारकापुरी धन्य है ॥ १५ ॥ ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि, सूर्य, शिव, मरुत्, यम, कुवेर, चन्द्रमा और वरुणके द्वारा पूजित आपके चरणोंको हम सदा भजते हैं ॥ १६ ॥ बड़े-बड़े मुनीन्द्रों, लक्ष्मी, सभी देवताओं तथा भक्तों द्वारा चन्दन, पुष्प, धूप, दीप, धानके लावा, अक्षत, दूर्वा और पूगीफलसे पूजित आपके चरणोंका हम निरन्तर भजन करते हैं ॥ १७ ॥ गर्गमुनि कहते हैं—हे राजन् ! ऐसा कहकर वे सभी कंसादि उग्रसेनके पुत्र सवके देखते-देखते वैकुण्ठधामको चले गये । यह देखकर अपनी भार्या रुचिमतीके साथ राजा उग्रसेन वहुत विस्मित हुए ॥ १८ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायामष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

गर्गमुनि वोले--हे राजन् ! उसके बाद राजा उग्रसेनने पुत्रकी आशा त्यागकर श्रीकृष्णकी कृपासे समस्त विश्वको मनोमय जानकर वेदव्यासके समक्ष अपने मनका सन्देह व्यक्त किया ॥ १ ॥ राजा उग्रसेनने कहा—हे ब्रह्मन् ! इस जगत्के सुखको त्यागकर परब्रह्म कृष्णका भजन कैसे करना चाहिए । सो मुझे विस्तार-के साथ वताइए ॥ २ ॥ व्यासजी वोले—हे महाराज उग्रसेन ! मैं आपके समक्ष सत्य और हितकर वचन कहूँगा । उसे आप एकाग्र मनसे सुनिए ॥ ३ ॥ हे राजेन्द्र ! आप राधा तथा श्रीकृष्णके सहस्रनामका भक्तिके साथ नित्य पाठ करते हुए उन्हीं दोनोंकी आराधना करिए ॥ ४ ॥ हे राजन् ! राधासहस्रनामको ब्रह्मा, शिव,

न श्रुतं नामसाहस्रं कृष्णस्याक्लिष्टकर्मणः । वद तन्मे च कृपया येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥ ७ ॥

गर्ग उवाच

श्रुत्वोग्रसेनवचनं वेदव्यासो महामुनिः । प्रशस्य तं प्रीतमना प्राह कृष्णं विलोकयन् ॥ ८ ॥

व्यास उवाच

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि सहस्रं नाम सुन्दरम् । पुरा स्वधाम्नि राधायै कृष्णेनानेन निर्मितम् ॥ ९ ॥

श्रीभगवानुवाच

इदं रहस्यं किल गोपनीयं दत्ते च हानिः सततं भवेद्धि ।
मोक्षप्रदं सर्वसुखप्रदं शं परं परार्थं पुरुपार्थदं च ॥१०॥
रूपं च मे कृष्णसहस्रनाम पठेत्तु मद्रूप इव प्रसिद्धः ।
दातव्यमेवं न शठाय कुत्र न दांभिकायोपदिशेत्कदापि ॥११॥
दातव्यमेवं करुणावृताय गुर्वंघ्रिभक्तिप्रपरायणाय ।
श्रीकृष्णभक्ताय सतां पराय तथा मदक्रोधविवर्जिताय ॥१२॥

ॐ अस्य श्रीकृष्णसहस्रनामस्तोत्रमंत्रस्य नारायणऋषिर्भुजंगप्रयातं छंदः श्रीकृष्णचन्द्रो देवता वासुदेवो बीजं श्रीराधा शक्तिः मन्मथः कीलकं श्रीपूर्णब्रह्मकृष्णचन्द्रभक्तिजन्यफलप्राप्तये जपे विनियोगः ॥

अथ ध्यानम्

शिखिमुकुटविशेषं नीलपद्मांगदेशं विधुमुखकृतकेशं कौस्तुभापीतवेशम् ।
मधुररवकलेशं शं भजे भ्रातृशेषं व्रजजनवनितेशं माधवं राधिकेशम् ॥१३॥

इति ध्यानम्

हरिर्देवकीनन्दनः कंसहंता परात्मा च पीतांबरः पूर्णदेवः ।
रमेशस्तु कृष्णः परेशः पुराणः सुरेशोऽच्युतो वासुदेवश्च देवः ॥१४॥

धराभारहर्त्ता कृती राधिकेशः परो भूवरो दिव्यगोलोकनाथः ।
सुदाम्नस्तथा राधिकाशापहेतुर्घृणी मानिनीमानदो दिव्यलोकः ॥१५॥
लसद्गोपवेषो ह्यजो राधिकात्मा चलत्कुंडलः कुंतली कुंतलस्रक् ।
रथस्थः कदा राधया दिव्यरत्नः सुधासौधभूचारणो दिव्यवासाः ॥१६॥
कदा वृन्दकारण्यचारी स्वलोके महारत्नसिंहासनस्थः प्रशांतः ।
महाहंसभैश्चामरैर्वीज्यमानश्चलच्छत्रमुक्तावलीशोभमानः ॥१७॥
सुखी कोटिकंदर्पलीलाभिरामः क्वणन्नूपुरालंकृतांघ्रिः शुभांघ्रिः ।
सुजानुश्च रंभाशुभोरुः कृशांगः प्रतापी भुशुंडासुदोर्दंडखंडः ॥१८॥
जपापुष्पहस्तश्च शातोदरश्रीर्महापद्मवक्षस्थलश्चन्द्रहासः ।
लसत्कुन्ददंतश्च बिंबाधरश्रीः शरत्पद्मनेत्रः किरीटोज्ज्वलाभः ॥१९॥
सखीकोटिभिर्वर्त्तमानो निकुञ्जे प्रियाराधया राससक्तो नवांगः ।
धराब्रह्मरुद्रादिभिः प्रार्थितः सद्भराभारदूरीकृतेऽर्थं प्रजातः ॥२०॥
यदुर्देवकीसौख्यदो बंधनच्छित्सशेषो विभुर्योगमायी च विष्णुः ।
व्रजे नन्दपुत्रो यशोदासुताख्यो महासौख्यदो बालरूपः शुभांगः ॥२१॥
तथा पूतनामोक्षदः श्यामरूपो दयालुस्त्वनोभञ्जनः पल्लवांघ्रिः ।
तृणावर्त्तसंहारकारी च गोपो यशोदायशोविश्वरूपप्रदर्शी ॥२२॥
तथा गर्गदिष्टश्च भाग्योदयश्रीर्लसद्बालकेलिः सरामः सुवाचः ।
क्वणन्नूपुरैः शब्दयुग्रिंगमाणस्तथा जानुहस्तैर्व्रजेशांगणे वा ॥२३॥

स्वामी ऐसे माधव भगवान्का मैं भजन करता हूँ ॥ १३ ॥ इस प्रकार ध्यान करके इन नामोंसे प्रार्थना करे—हरि, देवकीनन्दन, कंसहन्ता, पर अर्थात् सर्वोत्कृष्ट आत्मा, पीताम्बरधारी, परिपूर्ण देव, रमापति, कृष्ण (सबका मन खींच लेनेवाले), सबके नियन्ता, पुराण पुरुष, देवताओंके स्वामी, अच्युत (सदा एकाकार), वासुदेव (वसुदेवनन्दन), देव अर्थात् प्रकाशस्वरूप ॥ १४ ॥ पृथिवीका भार उतारनेवाले, कृती (बड़े काम करनेवाले), राधिकाके स्वामी, परात्पर, पृथ्वीपति, दिव्य गोलोकके स्वामी, सुदामा गोप तथा राधिकाके शापके हेतु, दयालु, मानिनियोंके मानदाता और दिव्यलोकरूप ॥ १५ ॥ सुन्दर गोपवेशधारी, जन्मरहित, राधिकाके आत्मा, हिलते हुए कुंडलोंवाले, लहराती अलकोंवाले, जिनकी अलकोंमें माला गुथी रहती है, राधाके साथ रथपर विराजमान, दिव्य रत्नोंसे विभूषित, श्वेत सौधपर विचरणशील, दिव्य वस्त्रधारी ॥१६॥ कभी-कभी वृन्दावन और कभी गोलोकमें विचरनेवाले, महान् रत्नोंसे जटित सिंहासनपर विराजमान, महान् हंसोंके समान श्वेत चमरोंसे वीज्यमान, चलायमान छत्र और मुक्तावलीसे सुशोभित ॥ १७ ॥ सुखस्वरूप, करोड़ों कामदेवोंकी लीलासे शोभायमान, शब्दायमान नूपुरोंसे जिनके चरण अलंकृत हैं, शुभदायक चरणोंवाले, सुन्दर जानुवाले, कदलीके खम्भे जैसे कोमल घुटनोंवाले, कृश अंगोंयुक्त, बड़े प्रतापी, हाथीकी सूँड़ सरीखी भुजाओंवाले ॥ १८ ॥ जपा (अढ़उल) पुष्पके समान लाल हथेलीवाले, कृश कमरवाले, महापद्म सदृश वक्षस्थलवाले, चन्द्रमाके सदृश निर्मल हास्य करनेवाले, कुन्दकली सरीखे शुभ्र दाँतोंवाले, बिम्बफल सरीखे लाल होठोंवाले, शरत्कालीन कमल जैसी आँखोंवाले, किरीटके प्रकाशमें उज्ज्वल कान्तिसे सम्पन्न ॥ १९ ॥ करोड़ों सखियोंके साथ रहनेवाले, निकुंजमें विद्यमान, अपनी प्यारी राधिकाके साथ रासलीलामें आसक्त, नूतन अंगोंयुक्त, पृथिवी-शिव तथा ब्रह्मादिकी प्रार्थनासे धरतीका भार उतारनेके लिए अवतरित होनेवाले ॥ २० ॥ यदुवंशके आभूषण, देवकी और वसुदेवका बन्धन काटनेवाले, सौख्यदायक शेषजीके साथ रहनेवाले, सर्वव्यापी, योगमायासे सम्पन्न, विष्णु, व्रजमें नन्दपुत्र तथा यशोदानन्दनके नामसे विख्यात, महासुखदायक, नित्य बालरूप तथा सुन्दर अंगोंसे युक्त ॥ २१ ॥ पूतनाके मोक्षदायक, श्यामस्वरूप, दयाशील,

दधिस्पृक्च हैयंगवीदुग्धभोक्ता दधिस्तेयकृद्दुग्धभुग्भांडभेत्ता ।
मृदं भुक्तवान्गोपजो विश्वरूपः प्रचण्डांशुचण्डप्रभामंडितांगः ॥२४॥
यशोदाकरैर्बंधनं प्राप्त आद्यो मणिग्रीवमुक्तिप्रदो दामबद्धः ।
कदा नृत्यमानो व्रजे गोपिकाभिः कदा नंदसन्नंदकैर्लाल्यमानः ॥२५॥
कदा गोपनन्दांकगोपालरूपी कलिंदांगजाकूलगो वर्त्तमानः ।
घनैर्मारुतैश्छिन्नभांडीरदेशे गृहीतो वरो राधया नन्दहस्तात् ॥२६॥
निकुञ्जे च गोलोकलोकागतेऽपि महारत्नसंघैः कदंबावृतेऽपि ।
तदा ब्रह्मणा राधिका सद्विवाहे प्रतिष्ठां गतः पूजितः साममन्त्रैः ॥२७॥
रसी रासयुङ्मालतीनां वनेऽपि प्रियाराधया राधिकार्थं रसेशः ।
धरानाथ आनन्दद: श्रीनिकेतो वनेशो धनी सुंदरो गोपिकेशः ॥२८॥
कदा राधया प्रापितो नंदगेहे यशोदा करैर्लालितो मंदहासः ।
भयी क्वापि वृन्दारकारण्यवासी महामंदिरे वासकृद्देवपूज्यः ॥२९॥
वने वत्सचारी महावत्सहारि बकारिः सुरैः पूजितोऽघारिनामा ।
वने वत्सकृद्गोपकृद्गोपवेषः कदा ब्रह्मणा संस्तुतः पद्मनाभः ॥३०॥
विहारी तथा तालभुग्धेनुकारी सदा रक्षको गोविषार्त्तिप्रणाशी ।
कलिंदांगजाकूलगः कालियस्य दमी नृत्यकारी फणेष्वप्रसिद्धः ॥३१॥
सलीलः शमी ज्ञानदः कामपूरस्तथा गोपयुग्गोपआनन्दकारी ।
स्थिरी ह्यग्निभुक्पालको बाललीलः सुरागश्च वंशीधरः पुष्पशीलः ॥३२॥

शकटभंजक, नवपल्लवसरीखे चरणोंयुक्त, तृणावर्तके संहारक, गोरक्षक, यशोदाके यशस्वरूप और विश्वरूप प्रदर्शित करनेवाले ॥ २२ ॥ गर्गमुनिके कथनानुसार भाग्योदयकी श्रीसे सम्पन्न, बालकेलिनिरत, सदा बलदेवके साथ रहनेवाले, सुन्दर वाणी बोलनेवाले, नूपुरोंके कलरवसे युक्त, नन्दके आंगनमें हाथों तथा घुटनोंसे रेंगनेवाले ॥ २३ ॥ दधिका स्पर्श करनेवाले, मक्खन खानेवाले, दूध पीनेवाले, गोपियोंकी मटकी फोड़नेवाले, मिट्टी खानेवाले, ओपसुत, विश्वरूप, सूर्यकी कान्तिसे मण्डित अंगोंवाले, ॥ २४ ॥ यशोदाके हाथों बँधनेवाले, सबके आदि, बंधनमें बँधे रहकर भी मणिग्रीवको मुक्त कर देनेवाले, गोपियोंके साथ नृत्य करनेवाले, नन्द तथा सन्नन्दके द्वारा लालित ॥ २५ ॥ नन्दगोपकी गोदमें खेलनेवाले, गोपरूपधारी, यमुनाजीके तटपर विचरनेवाले, प्रबल वायुके झोंकेसे ध्वस्त भांडीरवनमें नन्दके हाथसे राधिकाका पाणिग्रहण करनेवाले ॥ २६ ॥ जो गोलोकसे धरतीपर आये और विशाल रत्नराशि तथा कदम्बकी झाड़ियोंसे आवृत निकुंजमें राधिकाके साथ होनेवाले उत्तम विवाहमें ब्रह्माजीके गाये हुए साममंत्रसे प्रतिष्ठा प्राप्त करनेवाले ॥ २७ ॥ नौ रसोंसे सम्पन्न, मालती लताओंसे आवृत वनमें अपनी प्रिया राधाके साथ रास करनेवाले, पृथिवीके पति, नन्दके आनन्ददायक, श्रीके धाम, वनोंके स्वामी, धनी, सुन्दर, गोपिकाओंके स्वामी ॥ २८ ॥ कभी उन्हें राधाने नन्दके पास पहुँचाया था, यशोदाके हाथों लालित, मन्द हास्ययुक्त, भयभीत भावसे वृन्दावनमें रहनेवाले, महामन्दिरके निवासी, देवताओंके पूज्य ॥ २९ ॥ वनमें गोवत्स चरानेवाले, महान् वत्सासुरको मारनेवाले, बकासुरके शत्रु, देवताओं द्वारा पूजित, अघासुरके शत्रु, वनमें निवास करनेवाले, गोपोंका काम करनेवाले, गोपोंका वेष धारण करनेवाले, ब्रह्माजीके द्वारा संस्तुत, जिनके नाभिकमलसे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए थे ॥ ३० ॥ विहरणशील, तालफलभोक्ता, धेनुकासुरके शत्रु, सदा सबके रक्षक, गौओंकी विषजनित पीडा हरनेवाले, यमुनातटपर क्रीडासक्त, कालियनागका दमन करनेवाले, कालियनागके फनोंपर नाचनेवाले ॥ ३१ ॥ लीलानिरत, शान्तिसम्पन्न, ज्ञानदायक, कामपूरक, गोपोंके साथी, आनन्दकारी, स्थैर्ययुक्त, दावानल पान करनेवाले, बाललीलासे युक्त, वंशीपर सुन्दर राग गानेवाले,

प्रलंबप्रभानाशको गौरवर्णो बलो रोहिणीजश्च रामश्च शेषः।
बली पद्मनेत्रश्च कृष्णाग्रजश्च धरेशः फणीशस्तु नीलांबराभः ॥३३॥
महासौख्यदो ह्यग्निहारव्रजेशः शरद्ग्रीष्मवर्षाकरः कृष्णवर्णः।
व्रजे गोपिकापूजितश्चीरहर्ता कदंबे स्थितश्चीरदः सुंदरीशः ॥३४॥
क्षुधानाशकृद्यज्ञपत्नीमनस्पृक्कृपाकारकः केलिकृत्तोऽवनीशः।
व्रजे शक्रयागप्रणाशी मिताशी शुनासीरमोहप्रदो बालरूपी ॥३५॥
गिरेः पूजको नन्दपुत्रो ह्यगध्रः कृपाकृच्च गोवर्द्धनोद्धारिनामा।
तथा वातवर्षाहरो रक्षकश्च व्रजाधीशगोपांगनाशंकितः सन् ॥३६॥
अगेन्द्रोपरि शक्रपूज्यः स्तुतः प्राङ् मृषाशिक्षको देवगोविंदनामा।
व्रजाधीशरक्षाकरः पाशिपूज्योऽनुजैर्गोपजैर्दिव्यवैकुण्ठदर्शी ॥३७॥
चलच्चारुवंशीक्वणः कामिनीशो व्रजे कामिनीमोहदः कामरूपः।
रसाक्तो रसी रासकृद्राधिकेशो महामोहदो मानिनीमानहारी ॥३८॥
विहारीवरो मानहृद्राधिकांगो धराद्वीपगः खण्डचारी वनस्थः।
प्रियो ह्यष्टवक्रर्षिद्रष्टा सराधो महामोक्षदः पद्महारी प्रियार्थः ॥३९॥
वटस्थः सुरश्चन्दनाक्तः प्रसक्तो व्रजं ह्यागतो राधया मोहिनीषु।
महामोहकृद्गोपिकागीतकीर्त्ती रथस्थः पटी दुःखिताकामिनीशः ॥४०॥
वने गोपिकात्यागकृत्पादचिह्नप्रदर्शी कलाकारकः काममोही।
वशी गोपिकामध्यगः पेशवाचःप्रियाप्रीतिकृद्रासरक्तः कलेशः ॥४१॥
रसारक्तचित्तो ह्यनन्तस्वरूपः स्रजा संवृतो बल्लवीमध्यसंस्थः।
सुबाहुः सुपादः सुवेशः सुकेशो व्रजेशः सखावल्लभेशः सुदेशः ॥४२॥

वंशीधर, पुष्पधारी ॥ ३२ ॥ प्रलम्बासुरकी दीप्तिके नाशक, गौरवर्ण, बलदेव, रोहिणीतनय, राम, शेष, बलवान्, कमलनयन, श्रीकृष्णके अग्रज, धरतीके स्वामी, नागराज, नीलाम्बरधारी ॥ ३३ ॥ महासुखदायक, अग्निहारी, व्रजके प्रभु, शरद्-ग्रीष्म-वर्षाकारी, कृष्णवर्ण, व्रजमें गोपिकाओंसे पूजित, चीरहारी, कदम्बपर बैठकर गोपियों वस्त्र देनेवाले, व्रजसुन्दरियोंके स्वामी ॥ ३४ ॥ गोपोंकी भूख मिटानेवाले, यज्ञपत्नियोंके मन चुरानेवाले, कृपा करनेवाले, खेल करनेवाले, धरतीके स्वामी, व्रजमें इन्द्रके यज्ञको लुप्त करनेवाले, परिमित भोजन करनेवाले, इन्द्रको मोहमें डालनेवाले, बालरूपधारी ॥ ३५ ॥ पर्वतपूजक, नन्दके पुत्र, गोवर्धनपर्वत उठानेवाले, कृपा करनेवाले, गिरिधारी, भूपति, वायु और वर्षा दूर करनेवाले, सबके रक्षक, व्रजके ईश्वर, गोपियोंसे सशंक रहनेवाले ॥ ३६ ॥ गोवर्धन पर्वतपर इन्द्रसे पूजा पानेवाले, इन्द्रसे संस्तुत, पूर्वकालमें नन्दादिकोंको मृषा उपदेश देनेवाले, गोविन्ददेवनामधारी, व्रजराजके रक्षक, वरुणके भी पूज्य, अपने छोटे भाइयों तथा सखा गोपोंको वैकुण्ठ धाम दिखानेवाले ॥ ३७ ॥ चंचल, मनोमोहक वंशी बजानेवाले, कामिनियोंके स्वामी, व्रजकी गोपियोंको मोहमें डालनेवाले, साक्षात् कामरूप, रससे ओत-प्रोत, रसिक, रासकारी, राधिकाके स्वामी, महामोहदायक, मानहारी ॥ ३८ ॥ विहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ, मानहारी, राधिकाके अंग, भूतलपर जन्म लेनेवाले, खण्डचारी, वनवासी, सर्वप्रिय, अष्टावक्र ऋषिके द्रष्टा, राधाके साथ जाकर अष्टावक्र मुनिको मोक्ष प्रदान करनेवाले, अपनी प्रियतमाके लिये कमल चुरानेवाले, ॥ ३९ ॥ वटवृक्षपर विराजमान, देवताओंके देवता, चन्दनसे चर्चित, राधाकी आसक्तिवश व्रजमें आनेवाले, महामोहकारी, गोपियोंने जिनका यश गाया, रसमें स्थित, वशी तथा दुःखिता नारियोंके स्वामी ॥ ४० ॥ वनमें गोपियोंको त्यागनेवाले, गोपियोंको अपना चरणचिह्न दिखानेवाले, कलाकार, कामदेवको भी मोहमें डालनेवाले, जितेन्द्रिय

क्वणत्किंकिणीजालशृन्नूपुराढ्यो लसत्कंकणो ह्यंगदी हारभारः ।
किरीटी चलत्कुण्डलश्चांगुलीयस्फुरत्कौस्तुभो मालतीमंडितांगः ॥४३॥
महानृत्यकृद्रासरंगः कलाढ्यश्चलद्धारभो भामिनीनृत्ययुक्तः ।
कलिंदांगजाकेलिकृत्कुंकुमश्रीः सुरैर्नायिकानायकैर्गीयमानः ॥४४॥
सुखाढ्यस्तु राधापतिः पूर्णबोधः कटाक्षस्मिती वल्गितभ्रूविलासः ।
सुरम्योऽलिभिः कुन्तलालोलकेशः स्फुरद्बर्हकुन्दस्रजा चारुवेषः ॥४५॥
महासर्पतो नन्दरक्षापरांघ्रिः सदा मोक्षदः शंखचूडप्रणाशी ।
प्रजारक्षको गोपिकागीयमानः ककुद्मिप्रणाशप्रयासः सुरेज्यः ॥४६॥
कलिः क्रोधकृत्कंसमंत्रोपदेष्टा तथाऽक्रूरमन्त्रोपदेशी सुरार्थः ।
बली केशिहा पुष्पवर्षोऽमलश्रीस्तथा नारदाद्दर्शितो व्योमहंता ॥४७॥
तथाऽक्रूरसेवापरः सर्वदर्शी व्रजे गोपिकामोहदः कूलवर्ती ।
सती राधिकाबोधदः स्वप्नकर्त्ता विलासी महामोहनाशी स्वबोधः ॥४८॥
व्रजे शापतस्त्यक्तराधासकाशो महामोहदावाग्निदग्धः पतिश्च ।
सखीबन्धनान्मोचिताक्रूर आरात्सखीकंकणैस्ताडिताक्रूररक्षी ॥४९॥
रथस्थो व्रजे राधया कृष्णचन्द्रः सुगुप्तो गमी गोपकैश्चारुलीलः ।
जलेऽक्रूरसंदर्शितो दिव्यरूपो दिदृक्षुः पुरी मोहिनीचित्तमोही ॥५०॥
तथा रंगकारप्रणाशी सुवस्त्रः स्रजी वायकप्रीतिकृन्मालिपूज्यः ।
महाकीर्तिदश्चापि कुब्जाविनोदी स्फुरचण्डकोदंडरुग्णप्रचंडः ॥५१॥

गोपियोंके मध्य रहनेवाले, मीठी वाणी बोलनेवाले, अपनी प्रियाको प्रसन्न करनेवाले, रासलीलामें आसक्त, कलाओंके स्वामी ॥ ४१ ॥ रससे रंगीन चित्तवाले, अनन्तस्वरूप, मालाओंसे लदे, गोपियोंके बीच विराजमान, सुन्दर बाहुवाले, सुन्दर पैरोंवाले, सुन्दर वेशधारी, सुन्दर केशपाशसे सम्पन्न, प्रजाजनके प्रभु, सखा, वल्लभेश, सुदेश ॥ ४२ ॥ रुनझुन बोलनेवाली किंकिणी पहने, नूपुरसे शोभित चरणोंवाले, कंकणसे मंडित, बाजूबन्द-धारी, हारधारी, किरीटधारी, चंचल कुंडलधारी, अंगूठीसे शोभित, कौस्तुभ मणिसे देदीप्यमान, मालतीके पुष्पोंसे अलंकृत ॥ ४३ ॥ महारास करनेवाले, रासरंगमें निमग्न, कलाओंसे सम्पन्न, चंचल हारकी कान्तिसे शोभित, नारियोंके नृत्यसे युक्त, यमुनाजलविहारी, कुंकुमसरीखी शोभासे सोभित, देवनायकों तथा देवनायिकाओं द्वारा गीयमान गुणोंवाले ॥ ४४ ॥ सुखसे भरपूर, राधापति, पूर्ण ज्ञानी, कटाक्ष करके मुस्करानेवाले, चंचल भ्रूविलासयुक्त, सुरम्य, भ्रमरोंयुक्त केशोंसे युक्त, चंचल केशपाशवाले, सुन्दर मोरमुकुट और कुन्दकी मालासे अलंकृत वेषधारी ॥४५॥ महासर्पसे नन्दके प्राण बचानेवाले, सदा मोक्षदायक, शंखचूड-के नाशक, प्रजाके रक्षक, गोपियों द्वारा गीयमान कीर्तिवाले, ककुद्मीके नाशका प्रयास करनेवाले, देवताओंके भी पूज्य ॥ ४६ ॥ कलिके मूर्तिरूप, क्रोधकारी, कंस तथा अक्रूरको मंत्रोपदेश करनेवाले, देवताओंके काम बनानेवाले, बलवान्, केशी दैत्यका वध करनेवाले, पुष्पवर्णी, विमल श्रीसे सम्पन्न, नारदके कहनेपर व्योमा-सुरका वध करनेवाले ॥ ४७ ॥ अक्रूरकी सेवामें संलग्न, सर्वदर्शी, व्रजकी गोपियोंको मोहमें डालनेवाले, तटस्थ, सती राधिकाको ज्ञान देनेवाले स्वप्नको साकार करनेवाले, विलासी, महामोहनाशक, अपने ज्ञानमें मग्न ॥४८॥ शापके कारण राधाको व्रजका सान्निध्य त्यागनेवाले, राधा तथा कृष्ण दोनों महामोहकी दावाग्निमें जलनेवाले, अक्रूरको सखियोंके बन्धनसे छुड़ानेवाले, सखियोंके कंकणोंकी मारसे अक्रूरको बचानेवाले ॥ ४९ ॥ मथुरा जाते समय जब श्रीकृष्ण रथपर बैठे, तब राधा तथा गोप-गोपियोंने जिनको रोका, मनोहर लीला करनेवाले, मार्गमें अक्रूरका संशय दूर करनेके लिए यमुनाजलमें अपना दिव्य रूप दिखानेवाले, मथुराको देखते हुए उस पुरीकी सुन्दरियोंका मन मोहनेवाले ॥ ५० ॥ कंसके धोबीका वध करनेवाले, सुन्दर वस्त्र पहनकर सुदामा

भटार्त्तिप्रदः कंसदुःस्वप्नकारी महामल्लवेषः करींद्रप्रहारी ।
महामात्यहा रंगभूमिप्रवेशी रसाढ्यो यशःस्पृग्बली वाक्पटुश्रीः ॥५२॥
महामल्लहा युद्धकृत्स्त्रीवचोर्थी धरानायकः कंसहंता यदुः प्राक् ।
सदा पूजितो ह्युग्रसेनप्रसिद्धो धराराज्यदो यादवैर्मंडितांगः ॥५३॥
गुरोः पुत्रदो ब्रह्मविद्ब्रह्मपाठी महाशंखहा दंडधृक्पूज्य एव ।
व्रजे ह्युद्धवप्रेषितो गोपमोही यशोदाघृणी गोपिकाज्ञानदेशी ॥५४॥
सदा स्नेहकृत्कुब्जया पूजितांगस्तथाऽक्रूरगेहंगमी मंत्रवेत्ता ।
तथा पांडवप्रेषिताऽक्रूर एव सुखी सर्वदर्शी नृपानंदकारी ॥५५॥
महाक्षौहिणीहा जरासंधमानी नृपो द्वारकाकारको मोक्षकर्त्ता ।
रणी सार्वभौमस्तुतो ज्ञानदाता जरासंधसंकल्पकृद्धावदंघ्रिः ॥५६॥
नगादुत्पतद्द्वारिकामध्यवर्त्ती तथा रेवतीभूषणस्तालचिह्नः ।
यदू रुक्मिणीहारकश्चैद्यवेद्यस्तथा रुक्मिरूपप्रणाशी सुखाशी ॥५७॥
अनंतश्च मारश्च कार्ष्णिश्च कामो मनोजस्तथा शंबरारी रतीशः ।
रथी मन्मथो मीनकेतुः शरी च स्मरो दर्पको मानहा पंचबाणः ॥५८॥
प्रियः सत्यभामापतिर्यादवेशोऽथ सत्राजितप्रेमपूरः प्रहासः ।
महारत्नदो जांबवद्युद्धकारी महाचक्रधृक्खड्गधृग्रामसंधिः ॥५९॥
विहारस्थितः पांडवप्रेमकारी कलिंदांगजामोहनः खांडवार्थी ।
सखा फाल्गुनप्रीतिकृत्त्वग्रकर्त्ता तथा मित्रविंदापतिः क्रीडनार्थी ॥६०॥
नृपप्रेमकृद्गोजितः सप्तरूपोऽथ सत्यापतिः पारिबर्ही यथेष्टः ।
नृपैः संवृतश्चापि भद्रापतिस्तु विलासी मधोर्माननीशो जनेशः ॥६१॥

मालीकी माला धारण करनेवाले, दरजीको प्रसन्न करनेवाले, महाकीर्तिदायक, कुब्जासे प्रीति करनेवाले, कंसके प्रचंड महाधनुषको तोड़नेवाले ॥ ५१ ॥ कंसके वीरोंको कष्ट देनेवाले, कंसको दुःस्वप्न दिखानेवाले, महामल्ल जैसे वेश धारण करनेवाले, कुवलयापीड हाथीके वधकारी, कंसके महामात्यको मारकर कंसकी रंगभूमिमें पधारनेवाले, नौ रसोंसे सम्पन्न, यशके इच्छुक, बली, वाक्पटु, शोभासे सम्पन्न ॥ ५२ ॥ चाणूर आदि महामल्लोंको मारनेवाले, स्त्रीकी वातपर युद्ध करनेवाले, भूमिके स्वामी, कंसहन्ता, सदा सबसे पूजित, उग्रसेनके नामसे प्रसिद्ध राजाको राज्य देनेवाले, यादवोंसे पूजित ॥ ५३ ॥ गुरुके मृत पुत्रको लाकर देनेवाले, ब्रह्मज्ञ, वेदपाठी, महाशंखको मारनेवाले, दंडधर, पूजनीय, उद्धवको व्रज भेजनेवाले, गोपोंको मोहमें डालनेवाले, यशोदापर दया करनेवाले, गोपिकाओंको ज्ञानोपदेश देनेवाले ॥ ५४ ॥ सदा सबसे स्नेह करनेवाले, कुब्जासे पूजित, अक्रूरके घर जानेवाले, मन्त्रवेत्ता, अक्रूरको पांडवोंके पास भेजनेवाले, सदा सुखी, सर्वज्ञ, उग्रसेनको आनन्दित करनेवाले ॥ ५५ ॥ तेईस अक्षौहिणी सेनासे युक्त जरासंधको अनेक वार परास्त करके द्वारकापुरी बसानेवाले, मुचुकुन्दके मोक्षदाता, चक्रवर्ती राजाओं द्वारा संस्तुत, ज्ञानदाता, जरासंधकी कामना पूर्ण करनेके लिए मथुरा छोड़नेवाले ॥ ५६ ॥ प्रवर्षण पर्वतसे कूदकर द्वारका जानेवाले, रेवतीके आभूषण, तालचिह्नवाले, यदुवंशी, रुक्मिणीका हरण करनेवाले, चैद्य(शिशुपाल) के वेद्य, रुक्मीको कुरूप करनेवाले, सुखकी आशा रखनेवाले ॥ ५७ ॥ अनन्त, मार (कामदेव), कार्ष्णि, काम, मनोज, शम्बरारि, रतीश, मन्मथ, मीनकेतु, शरी, स्मर, दर्भक, मानहा, पंचबाण ॥ ५८ ॥ सर्वप्रिय, सत्यभामाके पति, यादवेश, सत्राजितका प्रेम पूर्ण करनेवाले, प्रहास, महारत्न (स्यमन्तकमणि) देनेवाले, जाम्बवान्‌से युद्ध करनेवाले, महाचक्रधारी, खड्ग धारण करनेवाले, रामसंधि ॥ ५९ ॥ विहारमें स्थित, पाण्डवोंसे प्रेम करनेवाले, कालिन्दीके मोहक, खांडव वनके मित्र, सखा अर्जुनसे प्रेम करनेवाले, अग्रकर्ता, मित्रविदाके पति, क्रीडाके इच्छुक ॥ ६० ॥ राजा नग्न-

शुनासीरमोहावृतः सत्यभार्यः सताक्ष्र्यो मुरारिः पुरीसंघभेत्ता ।
सुवीरः शिरःखण्डनो दैत्यनाशी शरी भौमहा चंडवेगः प्रवीरः ॥६२॥
धरासंस्तुतः कुंडलच्छत्रहर्त्ता महारत्नयुग्राजकन्याभिरामः ।
शचीपूजितः शक्रजिन्मानहर्त्ता तथा पारिजातोपहारी रमेशः ॥६३॥
गृही चामरैः शोभितो भीष्मकन्यापतिर्हास्यकृन्मानिनीमानकारी ।
तथा रुक्मिणीवाक्पटुः प्रेमगेहः सतीमोहनः कामदेवापरश्रीः ॥६४॥
सुदेष्णः सुचारुस्तथा चारुदेष्णोऽपरश्चारुदेहो बली चारुगुप्तः ।
सुती भद्रचारुस्तथा चारुचन्द्रो विचारुश्च चारू रथी पुत्ररूपः ॥६५॥
सुभानुः प्रभानुस्तथा चन्द्रभानुर्बृहद्भानुरेवाष्टभानुश्च सांबः ।
सुमित्रः क्रतुश्चित्रकेतुस्तु वीरोऽश्वसेनो वृषश्चित्रगुश्चंद्रबिंबः ॥६६॥
विशंकुर्वसुश्च श्रुतो भद्र एकः सुबाहुर्वृषः पूर्णमासस्तु सोमः ।
वरः शांतिरेव प्रघोषोऽथ सिंहो बलो ह्यूर्ध्वगोवर्द्धनोन्नाद एव ॥६७॥
महाशो वृकः पावनो वह्निमित्रः क्षुधिर्हर्षकश्चानिलोऽमित्रजिच्च ।
सुभद्रो जयः सत्यको वाम आयुर्यदुः कोटिशः पुत्रपौत्रप्रसिद्धः ॥६८॥
हली दंडधृग्रुक्मिहा चानिरुद्धस्तथा राजभिर्हास्यगोद्यूतकर्ता ।
मधुर्ब्रह्मसूर्बाणपुत्रीपतिश्च महासुन्दरः कामपुत्रो बलीशः ॥६९॥
महादैत्यसंग्रामकृद्यादवेशः पुरीभंजनो भूतसंत्रासकारी ।
मृधी रुद्रजिद्रुद्रमोही मृधार्थी तथा स्कंदजित्कूपकर्णप्रहारी ॥७०॥
धनुर्भंजनो बाणमानप्रहारी ज्वरोत्पत्तिकृत्संस्तुतस्तु ज्वरेण ।
भुजाछेदकृद्बाणसंत्रासकर्ता मृडप्रस्तुतो युद्धकृद्भूमिभर्त्ता ॥७१॥

जित्के प्रेमी, अपना सात रूप बनाकर सात बैलोंका दमन करनेवाले, सत्याके पति, पारिबर्ही, यथेष्ट राजाओंसे घिरे, भद्राके पति, विलासी, मधुमासको मानिनियोंके स्वामी, जनसाधारणके प्रभु ॥ ६१ ॥ इन्द्रके मोहसे आवृत, अपनी भार्याके साथ गरुड़की पीठपर बैठकर मुरदैत्यका वध करनेवाले, पुरीसंघके भेत्ता, सुवीरका सिर काटनेवाले, दैत्यनाशक, बाणधारी, भौमासुरके घातक, प्रचंड वेगवाले, अत्यन्त वीर ॥ ६२ ॥ जिनकी भूमिने स्तुति की, अदितिके कुंडल तथा छत्र लानेवाले, महारत्नोंसे युक्त, राजकन्याओंके प्रिय, इन्द्राणीसे पूजित, इन्द्रपर विजय प्राप्त करनेवाले, मानहर्ता, पारिजातका उपहार पानेवाले, लक्ष्मीके पति ॥ ६३ ॥ गृहस्थ, चमरसे शोभित, रुक्मिणीके पति, हास्यकारी, मानिनियोंका मान करनेवाले, रुक्मिणीकी बातोंका मर्म जाननेवाले, प्रेमके आगार, सतीको मोहमें डालनेवाले, कामदेवसे बढ़कर सुन्दर ॥ ६४ ॥ सुदेष्ण, सुचारु, चारुदेष्ण, चारुदेह, बली, चारुगुप्त, पुत्रवान्, भद्रचारु, चारुचन्द्र, विचारु, चारुरथी, पुत्ररूप ॥ ६५ ॥ सुभानु, प्रभानु, चन्द्रभानु, बृहद्भानु, अष्टभानु, साम्ब, सुमित्र, क्रतु, चित्रकेतु, वीर, अश्वसेन, वृष, चित्रगु, चद्रबिम्ब ॥ ६६ ॥ विशंकु, वसु, श्रुत, भद्र, एक, सुबाहु, वृष, पूर्णमास, सोम, वर, शान्ति, प्रघोष, सिंह, बल, ऊर्ध्वक, वर्धन, उन्नाद ॥ ६७ ॥ महाश, वृक, पावन, वह्नि, मित्र, क्षुधि, हर्षक, अनिल, अमित्रजित्, सुभद्र, जय, सायक, वाम, आयु, यदु, करोड़ों प्रसिद्ध पुत्रों-पौत्रोंवाले ॥ ६८ ॥ हलधारी, दण्डधृक्, रुक्मिहा, अनिरुद्ध, राजाओंके साथ, हँसी-हँसीमें गोद्यूत खेलनेवाले, मधु, ब्रह्मसू, बाणपुत्रीके पति, कामपुत्र, बलीश ॥६९॥ महान् दैत्योंसे संग्राम करनेवाले, यादवेश, पुरीभंजन, भूतोंके संत्रासकारी, युद्धेच्छुक, रुद्रसे लड़नेवाले, रुद्रको मोहमें डालनेवाले, संग्रामके लिए उद्यत, स्वामिकार्तिकेयको हरानेवाले, कूपकर्णके विनाशक ॥ ७० ॥ धनुषभंजक, बाणासुरका मान मर्दन करनेवाले, ज्वरको जन्म देनेवाले, ज्वर द्वारा संस्तुत, बाणासुरकी भुजायें काटनेवाले,

नृगं मुक्तिदो ज्ञानदो यादवानां रथस्थो व्रजप्रेमपो गोपमुख्यः ।
महासुन्दरीक्रीडितः पुष्पमाली कलिंदांगजाभेदनः सीरपाणिः ॥७२॥
महादंभिहा पौंड्रमानप्रहारी शिरश्छेदकः काशिराजप्रणाशी ।
महाक्षौहिणीध्वंसकृच्चक्रहस्तः पुरीदीपको राक्षसीनाशकर्त्ता ॥७३॥
अनंतो महीध्रः फणी वानरारिः स्फुरद्गौरवर्णो महापद्मनेत्रः ।
कुरुग्रामतिर्य्यग्गतो गौरवार्थः स्तुतः कौरवैः पारिबर्ही ससांबः ॥७४॥
महावैभवो द्वारकेशो ह्यनेकश्चलन्नारदः श्रीप्रभादर्शकस्तु ।
महर्षिस्तुतो ब्रह्मदेवः पुराणः सदा षोडशस्त्रीसहस्रस्थितश्च ॥७५॥
गृही लोकरक्षापरो लोकरीतिः प्रभुर्युग्रसेनावृतो दुर्गयुक्तः ।
तथा राजदूतस्ततो बंधभेत्ता स्थितो नारदप्रस्तुतः पांडवार्थी ॥७६॥
नृपैर्मंत्रकृद्‌द्व्युद्धवप्रीतिपूर्णो वृतः पुत्रपौत्रैः कुरुग्रामगंता ।
घृणी धर्मराजस्तुतो भीमयुक्तः परानंददो मंत्रकृद्धर्मजेन ॥७७॥
दिशाजिद्बली राजसूयार्थकारी जरासंधहा भीमसेनस्वरूपः ।
तथा विप्ररूपो गदायुद्धकर्ता कृपालुर्महाबंधनच्छेदकारी ॥७८॥
नृपैः संस्तुतो ह्यागतो धर्मगेहं द्विजैः संवृतो यज्ञसंभारकर्त्ता ।
जनैः पूजितश्चैद्यदुर्वाक्क्षमश्च महामोक्षदोऽरेः शिरश्छेदकारी ॥७९॥
महायज्ञशोभाकरश्चक्रवर्ती नृपानंदकारी विहारी सुहारी ।
सभासंवृतो मानहृत्कौरवस्य तथा शाल्वसंहारको यानहन्ता ॥८०॥
सभोजश्च वृष्णिर्मधुः शूरसेनो दशार्हो यदुहर्यंधको लोकजिच्च ।
द्युमन्मानहा वर्मधृग्दिव्यशस्त्री स्वबोधः सदा रक्षको दैत्यहंता ॥८१॥

शिवजीके द्वारा संस्तुत, युद्धकारी, भूमिके स्वामी ॥७१॥ राजा नृगका उद्धार करनेवाले, यादवोंके ज्ञानदाता, रथस्थ, व्रजके प्रेमकी रक्षा करनेवाले, गोपोंमें प्रमुख, महासुन्दरियोंके साथ क्रीड़ा करनेवाले, पुष्पमालाधारी, यमुनाभेदनकारी, हाथमें हल धारण करनेवाले ॥ ७२ ॥ महादम्भियोंके घातक, पौण्ड्रका मान हरने और उसका मस्तक काटनेवाले, काशिराजके वधकर्ता, महती अक्षौहिणी सेनाको ध्वस्त करनेवाले, हाथमें चक्र धारण करनेवाले, काशीपुरीको जलानेवाले, राक्षसी पूतनाका वध करनेवाले ॥ ७३ ॥ अनन्त, गोवर्धनधारी, शेषनाग, द्विविद वानरके शत्रु, गौरवर्ण, बड़े कमलसदृश नेत्रोंवाले, हस्तिनापुरको गंगामें डालनेको उद्यत होनेवाले, कौरवोंकी स्तुतिसे प्रसन्न होनेवाले, साम्बसहित, पारिबर्ह ग्रहण करनेवाले ॥ ७४ ॥ महावैभवशाली, द्वारकाके स्वामी, अनेक रूपोंवाले, चलते-फिरते नारदस्वरूप, श्रीप्रभाके दर्शक, महर्षियों द्वारा संस्तुत, ब्रह्माके देवता, पुराण (सनातन) पुरुष, सदा सोलह हजार स्त्रियोंके बीच रहनेवाले ॥ ७५ ॥ गृहस्थ, लोकरक्षापरायण, लोकरीतिके ज्ञाता, सबके प्रभु, उग्रसेनसे आवृत, दुर्गयुक्त, राजदूतों द्वारा संस्तुत, बन्धन काटनेवाले, नारदजीके द्वारा संस्तुत, पांडवोंके शुभचिन्तक, राजाओंसे मंत्रणा करनेवाले, उद्धवके प्रेमसे परिपूर्ण, पुत्र-पौत्रोंसे आवृत, हस्तिनापुर जानेवाले, दयालु, धर्मराज युधिष्ठिरके द्वारा संस्तुत, भीमसेनयुक्त, परम आनन्ददायक, धर्मराजके साथ मंत्रणा करनेवाले ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ दसों दिशायें जीतनेवाले, बलवान्, राजसूय यज्ञ सम्पन्न करनेवाले, जरासंधके घातक, भीमसेनस्वरूप, विप्ररूपसे गदायुद्ध करनेवाले, कृपालु,महान् बंधनोंको काटनेवाले ॥७८॥ राजाओं द्वारा संस्तुत, वे ब्राह्मणोंके साथ धर्मराज युधिष्ठिरके घर गये और उनके यज्ञकी सब सामग्री एकत्र की, जनसाधारणसे पूजित, शिशुपालके दुर्वचन सहने वाले, फिर उसका सिर काटकर मोक्ष प्रदान करनेवाले ॥७९॥ युधिष्ठिरके महायज्ञकी शोभा बढ़ानेवाले, चक्रवर्ती राजाओंके आनन्ददायक, विहरणशील, सुहारी, सभासे संवृत, दुर्योधनके मानहारी, शाल्वसंह

तथा दंतवक्रप्रणाशी गदा श्रृग्जगत्तीर्थयात्राकरः पद्महारः ।
कुशी सूतहंता कृपाकृत्स्मृतीशोऽमलो बल्वलांगप्रभाखंडकारी ॥८२॥
तथा भीमदुर्योधनज्ञानदाताऽपरो रोहिणीसौख्यदो रेवतीशः ।
महादानकृद्विप्रदारिद्र्यहा च सदा प्रेमयुक्श्रीसुदाम्नः सहायः ॥८३॥
तथा भार्गवक्षेत्रगंता सरामोऽथ सूर्योपरागश्रुतः सर्वदर्शी ।
महासेनया चास्थितः स्नानयुक्तो महादानकृन्मित्रसंमेलनार्थी ॥८४॥
तथा पांडवप्रीतिदः कुंतिजार्थी विशालाक्षमोहप्रदः शांतिदश्च ।
वटे राधिकाराधनो गोपिकाभिः सखीकोटिभी राधिकाप्राणनाथः ॥८५॥
सखीमोहदावाग्निहा वैभवेशः स्फुरत्कोटिकंदर्पलीलाविशेषः ।
सखीराधिकादुःखनाशी विलासी सखीमध्यगः शापहा माधवीशः ॥८६॥
शतं वर्षविक्षेपहृन्नंदपुत्रस्तथा नन्दवक्षोगतः शीतलांगः ।
यशोदाशुचः स्नानकृद्दुःखहंता सदा गोपिकानेत्रलग्नो व्रजेशः ॥८७॥
स्तुतो देवकीरोहिणीभ्यां सुरेंद्रो रहो गोपिकाज्ञानदो मानदश्च ।
तथा संस्तुतः पट्टराज्ञीभिराराद्धनी लक्ष्मणाप्राणनाथः सदा हि ॥८८॥
त्रिभिः षोडशस्त्रीसहस्रस्तुतांगः शुको व्यासदेवः सुमन्तुः सितश्च ।
भरद्वाजको गौतमो ह्यासुरिः सद्वसिष्ठः शतानन्द आद्यः सरामः ॥८९॥
मुनिः पर्वतो नारदो धौम्य इन्द्रोऽसितोऽत्रिर्विभांडः प्रचेताः कृपश्च ।
कुमारः सनंदस्तथा याज्ञवल्क्य ऋभुर्ह्यंगिरा देवलः श्रीमृकण्डः ॥९०॥
मरीचिः क्रतुश्चौर्वको लोमशश्च पुलस्त्यो भृगुर्ब्रह्मरातो वसिष्ठः ।
नरश्चापि नारायणो दत्त एव तथा पाणिनिः पिंगलो भाष्यकारः ॥९१॥

कारी, सौभ विमानके नाशक ॥८०॥ कृतवर्मा समेत, वृष्णि, शूरसेन, दशार्ह, यदु, अन्धक, लोकजित्, द्युमान्का मान हरनेवाले, कवचधारी, दिव्य शस्त्रधारी, आत्मज्ञानसे सम्पन्न, सदा सबके रक्षक और दैत्योंके नाशक ॥८१॥ दन्तवक्रके प्राणहारी, गदाधारी, जगतीतलके सभी तीर्थोंकी यात्रा करनेवाले, कमलकी मालासे सुशोभित, कुशसे सूतका वध करनेवाले, सबपर कृपा करनेवाले, स्मृतियोंके नियन्ता, निर्मल, बल्वलके अंगकी प्रभा नष्ट करनेवाले, ॥८२॥ भीम तथा दुर्योधनके ज्ञानदायक, रोहिणीको सुख देनेवाले, रेवतीरमण, महान् दानी, विप्र सुदामाका दारिद्र्य दूर करनेवाले, सदा प्रेमसे युक्त रहनेवाले, सुदामाके सहायक ॥८३॥ परशुरामके क्षेत्रमें जानेवाले, सूर्यग्रहणके समय कुरुक्षेत्रमें स्नानके बाद सब आत्मीयोंसे मिलनेवाले, वहाँ मित्रोंसे मिलकर महादान करनेवाले, ॥८४॥ पाण्डवोंको प्रेम प्रदान करनेवाले, पाण्डवोंका काम बनानेवाले, बड़े-बड़े नयनोंवाले, मोह तथा शान्तिके दाता, वटवृक्षमें राधिकाकी आराधना करनेवाले, करोड़ों गोपियों तथा राधिकाके प्राणनाथ ॥८५॥ सखियोंकी मोहरूपिणी दावाग्नि नष्ट करनेवाले, सभी वैभवोंके स्वामी, करोड़ों कामदेवोंकी लीलाओंसे युक्त, सखी राधिकाका दुःख दूर करनेवाले, विलासयुक्त, सखियोंके मध्यमें विराजमान रहने वाले, शाप नष्ट करने, माधवी (राधा) के स्वामी ॥८६॥ सौ वर्षकी वियोगव्यथा हरनेवाले, नन्दके पुत्र, नन्दके कण्ठका आलिंगन करनेवाले, शीतल अंगोंवाले, यशोदाको आनन्दाश्रुओंसे नहलानेवाले, सबका क्लेश हरनेवाले, गोपियोंके नयनोंमें निवास करनेवाले, व्रजके स्वामी ॥ ८७ ॥ देवकी तथा रोहिणीके द्वारा संस्तुत, गोपियोंके ज्ञान-मानदायक, अपनी पटरानियोंके द्वारा संस्तुत, सदाके लिए लक्ष्मणाके प्राणनाथ ॥८८॥ सोलह हजार स्त्रियों द्वारा संस्तुत, शुक, व्यास, सुमंतु, सित, भरद्वाज, गौतम, आसुरि, वसिष्ठ, शतानन्द, परशुराम ॥८९॥ पर्वतमुनि, धौम्य, इन्द्र, असित, अत्रि, विभाण्ड, प्रचेता, कृप, कुमार, सनन्द, याज्ञवल्क्य ऋभु, अंगिरा, देवल, श्रीमृकण्ड ॥९०॥ मरीचि, क्रतु, और्व, लोमश, पुलस्त्य, भृगु, ब्रह्मरात, वसिष्ठ, नर,

सकात्यायनो विप्रपातञ्जलिश्चाथ गर्गो गुरुर्गीष्पतिर्गौतमीशः ।
मुनिर्जाजलिः कश्यपो गालवश्च द्विजः सौभरिश्चर्ष्यशृंगश्च कण्वः ॥९२॥
द्वितश्चैकतश्चापि जातूकर्वश्च घनः कर्दमस्यात्मजः कर्दमश्च ।
तथा भार्गवः कौत्सकश्चारुणस्तु शुचिः पिप्पलादो मृकंडस्य पुत्रः ॥९३॥
सपैलस्तथा जैमिनिः सत्सुमन्तुर्वरो गांगलः स्फोटगेहः फलादः ।
सदा पूजितो ब्राह्मणः सर्वरूपी मुनीशो महामोहनाशोऽमरः प्राक् ॥९४॥
मुनीशस्तुतः शौरिविज्ञानदाता महायज्ञकृच्चाभृथस्नानपूज्यः ।
सदा दक्षिणादो नृपैः पारिवर्ही व्रजानंददो द्वारिकागेहदर्शी ॥९५॥
महाज्ञानदो देवकीपुत्रदश्चासुरैः पूजितोऽहींद्रसेनादृतश्च ।
सदा फाल्गुनप्रीतिकृत्सत्सुभद्राविवाहे द्विपाश्वप्रदो मानयानः ॥९६॥
श्रुवं दर्शको मैथिलेन प्रयुक्तो द्विजेनाशु राज्ञा स्थितो ब्राह्मणैश्च ।
कृती मैथिले लोकवेदोपदेशी सदा वेदवाक्यैः स्तुतः शेषशायी ॥९७॥
परीक्षावृतो ब्राह्मणैश्चामरेषु भृगुप्रार्थितो दैत्यहा चेशरक्षी ।
सखा चार्जुनस्यापि मानप्रहारी तथा विप्रपुत्रप्रदो धामगंता ॥९८॥
विहारस्थितो माधवीभिः कलांगो महामोहदावाग्निदग्धाभिरामः ।
यदुर्ह्युग्रसेनो नृपोऽक्रूर एव तथा चोद्धवः शूरसेनश्च शूरः ॥९९॥
हृदीकश्च सत्राजितश्चाप्रमेयो गदः सारणः सात्यकिर्देवभागः ।
तथा मानसः संजयः श्यामकश्च वृको वत्सको देवको भद्रसेनः ॥१००॥
नृपोऽजातशत्रुर्जयो माद्रिपुत्रोऽथ भीष्मः कृपो बुद्धिचक्षुश्च पांडुः ।
तथा शंतनुर्देवबाह्लीक एवाथ भूरिश्रवाश्चित्रवीर्यो विचित्रः ॥१०१॥
शलश्चापि दुर्योधनः कर्ण एव सुभद्रासुतो विष्णुरातः प्रसिद्धः ।
स जन्मेजयः पांडवः कौरवश्च तथा सर्वतेजा हरिः सर्वरूपी ॥१०२॥

नारायण, दत्त, पाणिनि, पिंगल, भाष्यकार ॥ ९१ ॥ कात्यायन, पतंजलि, गर्ग, बृहस्पति, गौतमीश, जाजलि, कश्यप, गालव, सौभरि, ऋष्यशृंग, कण्व ॥९२॥ द्वित, एकत, जातूकर्ण्य, घन, कर्दमके पुत्र कपिल और स्वयं कर्दम, भार्गव, कौत्स, आरुणि, शुचि, पिप्पलाद, मार्कण्डेय ॥ ९३ ॥ पैल, जैमिनि, सुमंतु, गांगल, स्फोटगेह, फलाद, सदा पूजित, ब्राह्मण, सर्वरूपी, मुनीश, महामोहनाशक प्रधान देवता ॥९४॥ बड़े-बड़े मुनियोंसे संस्तुत, वसुदेवको ज्ञानोपदेश देनेवाले, महायज्ञके कर्ता, अवभृथ स्नानसे पूजनीय, सदा दक्षिणा देनेवाले, राजाओंसे भेंट लेनेवाले, व्रजके आनन्ददाता, द्वारकाके गृहदर्शी ॥९५॥ महान् ज्ञानदाता, देवकीके मृत पुत्रोंको दिखानेवाले, असुरों द्वारा पूजित, राजा बलिसे सम्मान पानेवाले, सदा अर्जुनसे प्रीति करनेवाले, जिन्होंने सुभद्राके विवाहमें अर्जुनको हाथी-घोड़े आदि दिये ॥९६॥ मैथिल ब्राह्मण श्रुतदेवके ज्ञानोपदेशक, बहुतेरे ब्राह्मणों सहित राजा बहुलाश्वका मनोरथ पूर्ण करनेवाले, उन्हींको लौकिक तथा वैदिक उपदेश देनेवाले, वेदवाक्योंसे संस्तुत, शेषशय्यापर सोनेवाले ॥९७॥ भृगु आदि मुनियोंने सब देवताओंकी परीक्षा लेकर जिनके स्मरण-कीर्तनका निर्णय किया, भस्मासुरको भस्म करके जिन्होंने शिवजीकी रक्षा की, अपने सखा अर्जुनके भी गर्वको खर्व करनेवाले, जिन्होंने एक ब्राह्मणके मृत पुत्रोंको अपने वैकुण्ठधामसे लाकर दिया था ॥ ९८ ॥ माधवियोंके साथ विहारमें लीन, कलाके मूर्त स्वरूप, महान् मोहरूपी दावाग्निको जला डालनेमें समर्थ, यदुराज, उग्रसेन, अक्रूर, उद्धव, शूरसेन, शूर ॥ ९९ ॥ हृदीक, सत्राजित्, अप्रमेय, गद, सारण, सात्यकि, देवभाग, मानस, संजय, श्यामक, वृक, वत्सक, देवक, भद्रसेन ॥ १०० ॥ युधिष्ठिर, जय (अर्जुन), नकुल, सहदेव, भीष्म,

व्रजं ह्यागतो राधया पूर्णदेवो वरो रासलीलापरो दिव्यरूपी ।
रथस्थो नवद्वीपखण्डप्रदर्शी महामानदो गोपजो विश्वरूपः ॥१०३॥
सनन्दश्च नंदो वृषो वल्लभेशः सुदामाऽर्जुनः सौबलस्तोक एव ।
स कृष्णोंशुकः सद्विशालर्षभाख्यः सुतेजस्विकः कृष्णमित्रो वरूथः ॥१०४॥
कुशेशो वनेशस्तु वृंदावनेशस्तथा माथुरेशाधिपो गोकुलेशः ।
सदागोगणो गोपतिर्गोपिकेशोऽथ गोवर्द्धनो गोपतिः कन्यकेशः ॥१०५॥
अनादिस्तु चात्मा हरिः पूरुषश्च परो निर्गुणो ज्योतिरूपो निरीहः ।
सदा निर्विकारः प्रपञ्चात्परश्च स सत्यस्तु पूर्णः परेशस्तु सूक्ष्मः ॥१०६॥
द्वारकायां तथा चाश्वमेधस्य कर्त्ता नृपेणापि पौत्रेण भूभारहर्त्ता ।
पुनः श्रीव्रजे रासरंगस्य कर्त्ता हरी राधया गोपिकानां च भर्ता ॥१०७॥
सदैकस्त्वनेकः प्रभापूरितांगस्तथा योगमायाकरः कालजिच्च ।
सुदृष्टिर्महत्तत्त्वरूपः प्रजातः स कूटस्थ आद्यांकुरो वृक्षरूपः ॥१०८॥
विकारस्थितश्च ह्यहंकार एव स वै कारकस्तैजसस्तामसश्च ।
नमो दिक्समीरस्तु सूर्यः प्रचेतोऽश्विवह्निश्च शक्रो ह्युपेंद्रस्तु मित्रः ॥१०९॥
श्रुतिस्त्वक्च दृग्घ्राणजिह्वागिरश्च भुजामेढ्रकः पायुरंघ्रिः सचेष्टः ।
धराव्योमवार्मारुतश्चैव तेजोऽथ रूपं रसो गन्धशब्दस्पृशश्च ॥११०॥
सचित्तश्च बुद्धिर्विराट् कालरूपस्तथा वासुदेवो जगत्कृद्धृतांगः ।
तथांडे शयानः सशेषः सहस्रस्वरूपो रमानाथ आद्योऽवतारः ॥१११॥
सदा संगकृत्पद्मजः कर्मकर्त्ता तथा नाभिपद्मोद्भवो दिव्यवर्णः ।
कविर्लोककृत्कालकृत्सूर्यरूपो निमेषो भवो वत्सरांतो महीयान् ॥११२॥
तिथिर्वारनक्षत्रयोगाश्च लग्नोऽथ मासो घटी च क्षणः काष्ठिका च ।
मुहूर्तस्तु यामो ग्रहा यामिनी च दिनं चर्क्षमासागतो देवपुत्रः ॥११३॥

कृपाचार्य, धृतराष्ट्र, पाण्डु, शन्तनु, वाह्लीक, भूरिश्रवा, चित्रवीर्य, विचित्र ॥ १०१ ॥ शल, दुर्योधन, कर्ण, अभिमन्यु, परीक्षित, जनमेजय, सभी कौरव-पाण्डव, सर्वतेजा, सर्वरूपी भगवान श्रीकृष्ण ॥ १०२ ॥ इन सभी लोगोंके पूर्णदेव भगवान् कृष्ण व्रजमें आये और राधाके साथ रथपर विराजे, दिव्यरूपधारी भगवान, रासलीलामें तत्पर, रथमें बैठाकर अपनी प्रियाको नवों खण्ड दिखानेवाले, महामानदायक, गोपसुत, विश्वरूप ॥ १०३ ॥ सनन्द, नन्द, वृषभानु, सुदामा, अर्जुन, सुवल, तोक, वेदव्यास, शुक, विशाल, ऋषभ, तेजस्वी, वरूथक ॥ १०४ ॥ कुशेश, वनेश, वृन्दावनेश, गोकुलेश, गोगणेश, गोवर्धन, गोपति, कन्यकेश ॥ १०५ ॥ अनादि, आत्मा, हरि, पुरुष, पर, निर्गुण, ज्योतिरूप, निरीह, निर्विकार, प्रपंचसे परे, सत्यपूर्ण, परेश, सूक्ष्म, ॥ १०६ ॥ राजारूपसे द्वारकामें अश्वमेध यज्ञके कर्ता, पौत्ररूपसे धरतीका भार उतारनेवाले, पुनः व्रजमें आकर रासरंग करनेवाले, राधासमेत गोपियोंके भर्ता ॥ १०७ ॥ सदा एक होते हुए भी अनेक, प्रभासे पूरित अंगोंवाले, योगमायाका विस्तार करनेवाले, कालको भी जीतनेवाले, सुदृष्टि, महत्तत्त्वस्वरूप, प्रजात, कूटस्थ, जगत्‌के आदि अंकुर और वृक्षस्वरूप ॥ १०८ ॥ विकारोंमें स्थित रहनेवाले, वैकारिक, तैजस तथा तामस अहंकारस्वरूप, दिशा, वायु, सूर्य, वरुण, अश्विनीकुमार, अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र, मित्र, ॥ १०९ ॥ श्रवण, त्वचा, नेत्र, नासिका, जिह्वा, वाणी, भुजा, मेढ्र, पायु, अंघ्रि, भूमि, आकाश, जल, पवन, तेज, त्वचा, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्श ॥ ११० ॥ चित्त, बुद्धि, विराट्, कालरूप, वासुदेव, जगत्‌के रचयिता, अंडमें शयनकारी, सहस्रस्वरूप, रमानाथ, आद्य अवतार ॥ १११ ॥ सदा जगत्‌की उत्पत्ति करनेवाले ब्रह्मारूप,

कृतो द्वापरस्तु त्रितस्तत्कलिस्तु सहस्रं युगस्तत्र मन्वंतरश्च ।
लयः पालनं सत्कृतिस्तत्परार्द्धं सदोत्पत्तिकृद्व्यक्षरो ब्रह्मरूपः ॥११४॥
तथा रुद्रसर्गस्तु कौमारसर्गो मुनेः सर्गकृद्देवकृत्प्राकृतस्तु ।
श्रुतिस्तु स्मृतिः स्तोत्रमेवं पुराणं धनुर्वेद इज्याऽथ गांधर्ववेदः ॥११५॥
विधाता च नारायणः सत्कुमारो वराहस्तथा नारदो धर्मपुत्रः ।
मुनिः कर्दमस्यात्मजो दत्त एव स यज्ञोऽमरो नाभिजः श्रीपृथुश्च ॥११६॥
सुमत्स्यश्च कूर्मश्च धन्वंतरिश्च तथा मोहिनी नारसिंहः प्रतापी ।
द्विजो वामनो रेणुकापुत्ररूपो मुनिर्व्यासदेवः श्रुतिस्तोत्रकर्त्ता ॥११७॥
धनुर्वेदभाग्रामचन्द्रावतारः स सीतापतिर्भारहृद्रावणारिः ।
नृपः सेतुकृद्वानरेंद्रप्रहारी महायज्ञकृद्राघवेंद्रः प्रचण्डः ॥११८॥
बलः कृष्णचन्द्रस्तु कल्किः कलेशस्तु बुद्धः प्रसिद्धस्तु हंसस्तथाश्वः ।
ऋषींद्रोऽजितो देववैकुण्ठनाथो ह्यमूर्तिश्च मन्वन्तरस्यावतारः ॥११९॥
गजोद्धारणः श्रीमनुर्ब्रह्मपुत्रो नृपेन्द्रस्तु दुष्यंतजो दानशीलः ।
सदृष्टः श्रुतो भूत एवं भविष्यद्भवत्स्थावरो जंगमोऽल्पं महच्च ॥१२०॥
इति श्रीभुजङ्गप्रयातेन चोक्तं हरे राधिकेशस्य नाम्नां सहस्रम् ।
पठेद्भक्तियुक्तो द्विजः सर्वदा हि कृतार्थो भवेत्कृष्णचन्द्रस्वरूपः ॥१२१॥
महापापराशिं भिनत्ति श्रुतं यत्सदा वैष्णवानां प्रियं मंगलं च ।
इदं रासराकादिने चाश्विनस्य तथा कृष्णजन्माष्टमीमध्य एव ॥१२२॥
तथा चैत्रमासस्य राकादिने वाऽथ भाद्रे च राधाष्टमीसद्दिने वा ।
पठेद्भक्तियुक्तस्त्विदं पूजयित्वा चतुर्धा सुमुक्तिं तनोति प्रशस्तः ॥१२३॥

कर्मकर्ता, विष्णुके नाभिकमलसे उत्पन्न होनेके कारण दिव्य वर्णवाले, कवि, लोकनिर्माता, कालके रचयिता, सूर्यस्वरूप, निमेषरहित, जन्मरहित, वत्सरान्तस्वरूप, अति महान् ॥ ११२ ॥ तिथि, वार, नक्षत्र, योग, लग्न, मास, घटी, क्षण, काष्ठा, मुहूर्त, याम, ग्रह, दिन, नक्षत्रमालागत सूर्य ॥ ११३ ॥ सत्ययुग, द्वापर, त्रेता, कलियुग, सहस्रयुग, मन्वन्तर, लय, पालन, सत्कृति, परार्द्ध, सदा उत्पत्ति करनेवाले, अक्षर ब्रह्मस्वरूप ॥ ११४ ॥ रुद्रसर्ग, कौमार सर्ग, मुनियोंके स्रष्टा, देवसृष्टिकर्ता, प्राकृत जीवोंके स्रष्टा, श्रुति, स्तोत्र, पुराण, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद ॥ ११५ ॥ विधाता, नारायण, सनत्कुमार, वराह, नारद, धर्मपुत्र नर-नारायण, कर्दमके पुत्र कपिलमुनि, सुयज्ञ, ऋषभदेव, पृथु ॥ ११६ ॥ मत्स्य, कूर्म, धन्वन्तरि, मोहिनी, प्रतापी नृसिंह, द्विज वामन, रेणुकापुत्र परशुराम, श्रुतिस्तोत्रकर्ता व्यासदेव ॥ ११७ ॥ धनुर्वेदके ज्ञाता रामचन्द्र, सीतापति, पृथिवीका भार उतारनेवाले, रावणके शत्रु, मनुष्योंके पालक, सेतु बनानेवाले, वानरेन्द्र वालिको प्रहार करके मारनेवाले, महायज्ञकर्ता, राघवेन्द्र, बड़े प्रचण्ड ॥ ११८ ॥ बलदेव, कृष्णचन्द्र, कल्कि, कलाओंके प्रभु, बुद्ध तथा हंस नामसे भी प्रसिद्ध, हयग्रीव, ऋषीन्द्र, दत्त, अजित, वैकुण्ठनाथ, अमूर्ति, पृथक् पृथक् तत्तन्मन्वन्तरावतार ॥ ११९ ॥ गजका उद्धार करनेवाले, ब्रह्मा, मनु, दुष्यन्तके पुत्र (भरत), बड़े दानी तथा देखा-सुना, भूत, भविष्य, स्थावर, जंगम, छोटा और बड़ा जो कुछ भी है, वह सब भगवान् कृष्ण ही हैं ॥ १२० ॥ गर्गजी कहते हैं—हे राजन् ! भुजंगप्रयात छन्दमें भगवान् राधिकेशके ये हजार नाम कहे गये हैं। जो द्विज भक्तिपूर्वक इस कृष्णसहस्रनामका पाठ करता है, वह सर्वथा कृतार्थ होकर श्रीकृष्णस्वरूप हो जाता है ॥ १२१ ॥ जो इसको प्रेमसे सुनता है, वह अपने पापसमूह छिन्न-भिन्न कर देता है। यह सहस्रनाम सदा वैष्णवोंका प्रिय तथा मंगलरूप है। आश्विनशुक्ल पूर्णिमा अथवा श्रीकृष्णजन्माष्टमीको इसका पाठ करना चहिए ॥ १२२ ॥ चैत्रशुक्ल पूर्णिमा अथवा भाद्रपद कृष्णपक्षकी राधाष्टमीको इस पुस्तकका पूजन करके जो मनुष्य

पठेत्कृष्णपुर्यां च वृन्दावने वा व्रजे गोकुले वापि वंशीवटे वा ।
वटे वा क्षये वा तटे सूर्यपुत्र्याः स भक्तोऽथ गोलोकधाम प्रयाति ॥१२४॥
भजेद्भक्तिभावाच्च सर्वत्र भूमौ हरिं कुत्र चानेन गेहे वने वा ।
जहाति क्षणं नो हरिस्तं च भक्तं सुवश्यो भवेन्माधवः कृष्णचन्द्रः ॥१२५॥
सदा गोपनीयं सदा गोपनीयं सदा गोपनीयं प्रयत्नेन भक्तैः ।
प्रकाश्यं न नाम्नां सहस्रं हरेश्च न दातव्यमेवं कदा लंपटाय ॥१२६॥
इदं पुस्तकं यत्र गेहेऽपि तिष्ठेद्वसेद्राधिकानाथ आद्यस्तु तत्र ।
तथा षड्गुणाः सिद्धयो द्वादशापि गुणैस्त्रिंशतैर्लक्षणैस्तु प्रयांति ॥१२७॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायामश्वमेधखंडे श्रीकृष्णसहस्रनामवर्णनं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

अथ षष्टितमोऽध्यायः

(राधा-कृष्णका गोलोकारोहण)

श्रीगर्ग उवाच

इति श्रुत्वा व्यासमुखात्कृष्णनाम्नां सहस्रकम् । संपूज्य तं यादवेन्द्रो भक्त्या कृष्णे मनो दधे ॥ १ ॥
ततः स मिथिलायां च बहुलाश्वश्रुतदेवयोः । दत्त्वा स्वदर्शनं कृष्ण आययौ द्वारकां पुरीम् ॥ २ ॥
ततश्च पांडवाः सर्वे द्रौपद्या सह भार्यया । द्वारकाया विनिर्गत्य विचेरुस्ते वने वने ॥ ३ ॥
भुक्त्वा च वनवासं तेऽज्ञातवासं तथैव च । विराटनगरे सर्वे ससैन्यास्तेऽभवन्नृप ॥ ४ ॥
ततश्च कौरवाः सर्वे श्रीकृष्णेनापि प्रार्थिताः । न तेषां प्रददू राज्यमर्धार्द्धं च तदर्धकम् ॥ ५ ॥
पांडवानां कौरवाणां ज्ञात्वा युद्धं जनार्दनः । निरायुधोऽभूद्यात्रायां बलोऽहन्सूतबल्वलौ ॥ ६ ॥
ततः सर्वे कुरुक्षेत्रे धर्मक्षेत्रे प्रविश्य च । कौरवाः पांडवाश्चैव युद्धं चक्रुः परस्परम् ॥ ७ ॥

इसका पाठ करता है, उसको चारों प्रकारकी मुक्ति प्राप्त होती है ॥ १२३ ॥ मथुरा, वृन्दावन, व्रज तथा गोकुलमें अथवा वंशीवट, अक्षयवट तथा यमुनातटपर जो इसका पाठ करता है, वह भक्त अन्तमें गोलोकधामको जाता है ॥ १२४ ॥ अथवा भक्तिभावसे कहीं किसी भी भूमिपर वनमें या घरमें इस स्तोत्रका पाठ करनेवाले भक्तका साथ भगवान एक क्षणके लिए भी नहीं छोड़ते और माधव श्रीकृष्णचन्द्र सदाके लिए उसके वशमें हो जाते हैं ॥ १२५ ॥ यह स्तोत्र प्रयत्नके साथ सदा गोपनीय, सदा गोपनीय, सदा गोपनीय है। इसको कभी किसीसे नहीं कहना चाहिए और किसी लम्पट मनुष्यको तो यह स्तोत्र कदापि न बताये ॥१२६॥ यह पुस्तक जिस घरमें रहती है, वहाँ आद्य राधिकानाथ श्रीकृष्ण सदा निवास करते हैं। साथ ही छहों गुण, बारहों सिद्धियाँ और तीसों सुलक्षण वहाँ नित्य निवास करते हैं ॥ १२७ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायामेकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

श्रीगर्गमुनि कहते हैं—हे राजन् ! व्यासजीके मुखसे यह श्रीकृष्णसहस्रनाम सुनकर राजा उग्रसेनने व्यासजीका पूजन किया और भक्तिके साथ श्रीकृष्णचन्द्रमें मन लगाया ॥ १ ॥ तदनन्तर मिथिला जाकर श्रीकृष्ण राजा बहुलाश्व तथा श्रुतदेवको दर्शन देकर द्वारकापुरी चले गये ॥ २ ॥ तदनन्तर भार्या द्रौपदीके साथ सभी पाण्डव द्वारकासे चलकर वन-वन विचरने लगे ॥ ३ ॥ इस प्रकार वनवास तथा अज्ञातवास भुगतकर वे अपनी सेनाके साथ विराटनगर पहुँचे ॥ ४ ॥ यद्यपि भगवान्ने स्वयं हस्तिनापुर जाकर कौरवोंसे प्रार्थना की, फिर भी उन्होंने पाण्डवोंको राज्यके आधेका आधा राज्य भी नहीं दिया ॥ ५ ॥ जब भगवान्ने कौरवों और पाण्डवोंका युद्ध अवश्यम्भावी समझ लिया, तब उन्होंने उस युद्धमें शस्त्र न उठानेकी प्रतिज्ञा कर ली। उधर बलराम तीर्थयात्राको निकल पड़े। उसी यात्राके प्रसंगमें उन्होंने सूत तथा बल्वलको मार डाला

जयः कृष्णस्य कृपया पांडवानां बभूव ह । भारते च मृताः सर्वे कौरवाः कृतकिल्बिषाः ॥ ८ ॥
ततश्च नव वर्षाणि धर्मो राज्यं चकार ह । हयमेधत्रयं चक्रे तेन शुद्धोऽभवन्नृप ॥ ९ ॥
ततः कृष्णेच्छया राजन्द्वारकायां किलैकदा । यादवेभ्यश्च सर्वेभ्यो विप्रशापोऽभवन्महान् ॥१०॥
ततः कृष्णस्तु भगवान्प्रपन्नायोद्धवाय च । अश्वत्थे कथयामास श्रीमद्भागवतं परम् ॥११॥
ततो बभूव संग्रामो यादवानां परस्परम् । निहतास्ते प्रभासे वै शस्त्रैर्नानाविधैरपि ॥१२॥
बलः शरीरं मानुष्यं त्यक्त्वा धाम जगाम ह । देवाँस्तत्रागतान्दृष्ट्वा हरिरंतरधीयत ॥१३॥
व्रजे गत्वा हरिर्नंदं यशोदां राधिकां तथा ।
गोपान्गोपीर्मिलित्वाऽऽह प्रेम्णा प्रेमी प्रियान्स्वकान् ॥१४॥

श्रीकृष्ण उवाच

गच्छ नंद यशोदे त्वं पुत्रबुद्धिं विहाय च । गोलोकं परमं धाम सार्द्धं गोकुलवासिभिः ॥१५॥
अग्रे कलियुगो घोरश्चागमिष्यति दुःखदः । यस्मिन्वै पापिनो मर्त्या भविष्यंति न संशयः ॥१६॥
स्त्रीपुंसोर्नियमो नास्ति वर्णानां च तथैव च । तस्माद्गच्छाशु मद्धाम जरामृत्युहरं परम् ॥१७॥
इति ब्रुवति श्रीकृष्णे रथं च परमाद्भुतम् । पञ्चयोजनविस्तीर्णं पञ्चयोजनमूर्ध्वगम् ॥१८॥
वज्रनिर्मलसंकाशं मुक्तारत्नविभूषितम् । मन्दिरैर्नवलक्षैश्च दीपैर्मणिमयैर्युतम् ॥१९॥
सहस्रद्वयचक्रं च सहस्रद्वयघोटकम् । सूक्ष्मवस्त्राच्छादितं च सखीकोटिभिरावृतम् ॥२०॥
गोलोकादागतं गोपा ददृशुस्ते मुदान्विताः । एतस्मिन्नंतरे तत्र कृष्णदेहाद्विनिर्गतः ॥२१॥
देवश्चतुर्भुजो राजन्कोटिमन्मथसन्निभः । शंखचक्रधरः श्रीमाँल्लक्ष्म्या सार्द्धं जगत्पतिः ॥२२॥

॥ ६ ॥ तदनन्तर सभी कौरव और पाण्डव कुरुक्षेत्रमें एकत्र हुए और परस्पर युद्ध करने लगे ॥ ७ ॥ उस युद्धमें भगवान श्रीकृष्णकी कृपासे पाण्डवोंको विजय मिली। उस महाभारतके युद्धमें सभी पापी कौरव मारे गये ॥ ८ ॥ तदनन्तर धर्मराज युधिष्ठिरने नौ वर्षतक राज्य किया। उस अवधिमें उन्होंने तीन अश्वमेध यज्ञ करके अपनेको पवित्र किया ॥ ९ ॥ तत्पश्चात् हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्णकी इच्छासे द्वारकामें एक दिन यादवोंको ब्राह्मणोंका महान् शाप मिल गया ॥ १० ॥ तब भगवान श्रीकृष्णने शरणागत उद्धवको एक अश्वत्थ (पीपल) वृक्षके नीचे बैठकर श्रीमद्भागवतका उपदेश दिया ॥ ११ ॥ उसके बाद यादवोंका परस्पर भीषण संग्राम हुआ। उसमें नाना प्रकारके शस्त्रोंका उपयोग करके वे सब आपसमें ही कट मरे ॥ १२ ॥ तब बलदेव मानव देह त्यागकर अपने धामको चले गये। सहसा द्वारकामें देवताओंका आगमन देखकर भगवान् श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये ॥ १३ ॥ फिर भगवान् व्रजमें गये। वहाँ यशोदा, राधिका, गोपों तथा गोपियोंसे मिलकर प्रेमी श्रीकृष्ण बड़े प्रेमके साथ अपने सभी प्रियजनोंसे बोले ॥ १४ ॥ भगवान्‌ने कहा—हे बाबा नन्द और माता यशोदा ! अब आप लोग मेरे प्रति पुत्रबुद्धि त्यागकर समस्त गोकुलवासियोंके साथ मेरे गोलोक धामको जाइए ॥ १५ ॥ आगे चलकर घोर कलियुग आनेवाला है, जो सभी प्रजाजनोंको दुःख देगा। उस युगमें सभी मनुष्य पापी होंगे। इसमें सन्देह नहीं है ॥ १६ ॥ कलियुगमें स्त्रियों, पुरुषों और ब्राह्मणादि वर्णोंका कोई नियम नहीं रहता। अतएव आप लोग शीघ्र जरा-मरणका हरण करनेवाले मेरे धामको जाइए ॥ १७ ॥ भगवान श्रीकृष्णके ऐसा कहते ही पाँच योजन विस्तृत और पाँच ही योजन ऊँचा एक महान् रथ आया ॥ १८ ॥ वह केवल हीरोंका बना हुआ था और उसमें मोती तथा विभिन्न प्रकारके रत्न जड़े थे। उसमें नौ लाख भवन बने हुए थे और अगणित मणिमय दीप जगमगा रहे थे ॥ १९ ॥ उस रथमें दो हजार पहिये थे और दो ही हजार घोड़े जुते हुए थे। वह रथ महीन वस्त्रसे ढँका था और एक करोड़ सखियाँ उसे घेरे हुए थीं ॥ २० ॥ गोलोकसे आये उस रथको देखकर व्रजके गोप बहुत प्रसन्न हुए। इसी बीच श्रीकृष्णके शरीरसे एक देवता निकले ॥२१॥ उनके चार भुजायें थीं। करोड़ों कामदेव जैसा उनका सुन्दर स्वरूप था। वे शंख-चक्र धारण किये हुए थे। वे जगत्के पति विष्णुभगवान् थे और लक्ष्मीजी उनके साथ थीं ॥ २२ ॥

क्षीरोदं प्रययौ शीघ्रं रथमारुह्य सुंदरम् । तथा च विष्णुरूपेण श्रीकृष्णो भगवान्हरिः ॥२३॥
लक्ष्म्या गरुडमारुह्य वैकुण्ठं प्रययौ नृप । ततो भूत्वा हरिः कृष्णो नरनारायणावृषी ॥२४॥
कल्याणार्थं नराणां च प्रययौ बद्रिकाश्रमम् । परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो राधया युतः ॥२५॥
गोलोकादागतं यानमारुरोह जगत्पतिः । सर्वे गोपाश्च नन्दाद्या यशोदाद्या व्रजस्त्रियः ॥२६॥
त्यक्त्वा तत्र शरीराणि दिव्यदेहाश्च तेऽभवन् । स्थापयित्वा रथे दिव्ये नंदादीन्भगवान्हरिः ॥२७॥
गोलोकं प्रययौ शीघ्रं गोपालो गोकुलान्वितः । ब्रह्मांडेभ्यो बहिर्गत्वा ददर्श विरजां नदीम् ॥२८॥
शेषोत्संगे महालोकं सुखदं दुःखनाशनम् । दृष्ट्वा रथात्समुत्तीर्य सार्द्धं गोकुलवासिभिः ॥२९॥
विवेश राधया कृष्णः पश्यन्न्यग्रोधमक्षयम् । शतशृंगं गिरिवरं तथा श्रीरासमण्डलम् ॥३०॥
ततो ययौ कियद्दूरं श्रीमद्वृंदावनं वनम् । वनैर्द्वादशभिर्युक्तं द्रुमैः कामदुघैर्वृतम् ॥३१॥
नद्या यमुनया युक्तं वसंतानिलमंडितम् । पुष्पकुञ्जनिकुञ्जं च गोपीगोपजनैर्वृतम् ॥३२॥
तदा जयजयारावः श्रीगोलोके बभूव ह । शून्यीभूते पुरा धाम्नि श्रीकृष्णे च समागते ॥३३॥
ततश्च यदुपत्न्यश्च चितामारुह्य दुःखतः । पतिलोकं ययुः सर्वा देवक्याद्याश्च योषितः ॥३४॥
बंधूनां नष्टगोत्राणां चकार सांपरायिकम् । गीताज्ञानेन स्वात्मानं शांतयित्वा स दुःखतः ॥३५॥
अर्जुनः स्वपुरं गत्वा तमुवाच युधिष्ठिरम् । स राजा भ्रातृभिः सार्द्धं ययौ स्वर्गं च भार्यया ॥३६॥
प्लावयद्द्वारकां सिन्धू रैवतेन समन्विताम् । विहाय नृपशार्दूल गेहं श्रीरुक्मणीपतेः ॥३७॥
अद्यापि श्रूयते घोषो द्वार्वत्यामर्णवे हरेः । अविद्यो वा सविद्यो वा ब्राह्मणो मामकी तनुः ॥३८॥
विष्णुस्वामी रवेरंशः कलेरादौ महार्णवे । गत्वा नीत्वा हरेरर्चां द्वार्वत्यां स्थापयिष्यति ॥३९॥

वे देवता एक सुन्दर रथपर बैठकर क्षीरसागर चले गये। उसी प्रकार श्रीकृष्णभगवान् विष्णुरूप हो और लक्ष्मीके साथ गरुड़पर सवार होकर वैकुंठको चले गये। तदनन्तर श्रीहरि नर-नारायण होकर मनुष्योंके कल्याणार्थ बदरिकाश्रम चले गये। उसके बाद परिपूर्णतम श्रीकृष्ण श्रीराधाके साथ गोलोकसे आये हुए उस विशाल रथमें बैठकर गोलोक चले। तब नन्दादिक सभी गोप और यशोदा आदि व्रजकी स्त्रियाँ अपने-अपने शरीर त्यागकर दिव्यदेह हो गयीं। उसके बाद नन्दादिकोंको उस दिव्य रथमें बैठाकर भगवान गोपाल समस्त गोकुलको साथ लेकर गोलोक चले गये। सभी ब्रह्माण्डोंसे बाहर जाकर उन लोगोंने विरजा नदी देखी॥ २३–२८ ॥ वहाँ ही शेषनागकी गोदमें सुखदायक और दुःखनाशक एक महालोक देखा। उसे देखते ही रथसे उतरकर गोकुलवासियों तथा राधारानीके साथ श्रीकृष्ण अक्षयवट, शतशृंगपर्वत तथा समस्त रासमण्डलको देखते हुए उस महालोकमें प्रविष्ट हो गये ॥ २९ ॥ ३० ॥ तदनन्तर कुछ ही दूर आगे जाकर उन्होंने श्रीमद्वृन्दावन नामका एक वन देखा। जो बारह वनोंसे युक्त था और उसमें कल्पवृक्ष सरीखे वृक्ष लगे हुए थे ॥ ३१ ॥ वह वृन्दावन यमुना नदी, वसन्त पवन, पुष्पोंके कुंज-निकुंज तथा गोप-गोपीजनोंसे भरा हुआ था ॥ ३२ ॥ भगवानके गोलोकमें पहुँचते ही उनका जयजयकार होने लगा। अबतक भगवानके न रहनेसे वह सूना था ॥ ३३ ॥ तदनन्तर देवकी आदि यदुपत्नियाँ दुःखसे चितापर चढ़कर पतिलोकको चली गयीं ॥ ३४ ॥ फिर जिनके पुत्र नष्ट हो गये थे, उन यादवोंका और्ध्वदैहिक कृत्य अर्जुनने सम्पन्न किया। उन्होंने पहले गीताके ज्ञानसे समस्त दुःख दूर करके यह कार्य किया था ॥ ३५ ॥ तदनन्तर अर्जुनने अपने नगरमें जाकर महाराज युधिष्ठिरको सब बात बतायी। सो सुनकर अपने भ्राताओं तथा भार्याके साथ युधिष्ठिर स्वर्ग चले गये ॥३६॥ हे नृपशार्दूल! श्रीकृष्णके निजलोक चले जानेपर रुक्मिणीपति श्रीकृष्णके भवनको छोड़कर रैवतक पर्वत समेत सारी द्वारकापुरीको समुद्रने बहा दिया ॥ ३७ ॥ आज भी द्वारकामें समुद्रसे यह ध्वनि निकलती रहती है—ब्राह्मण चाहे पढ़ा हुआ हो या अपढ़ हो, वह मेरा शरीर है ॥ ३८ ॥ कलियुगके आदिमें सूर्यनारायणका अंश विष्णुस्वामी नामका एक भक्त होगा, जो समुद्रमें जाकर भगवान्‌की मूर्ति निकालेगा और

तं द्वारकेशं पश्यंति मनुजा ये कलौ युगे । सर्वे कृतार्थतां यांति तत्र गत्वा नृपेश्वर ॥४०॥
यः शृणोति चरित्रं वै गोलोकारोहणं हरेः । मुक्तिं यदूनां गोपानां सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४१॥

इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखण्डे राधाकृष्णयोर्गोलोकारोहणं नाम षष्टितमोऽध्यायः ॥६०॥

अथ एकषष्टितमोऽध्यायः

(एकादशीमाहात्म्य)

वज्रनाभिरुवाच

ब्रह्मन्नारायणः कृष्णो भगवान्प्रकृतेः परः । तस्य रूपं कथं श्यामं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १ ॥
त्वादृशा मुनयो ब्रह्मञ्जानंति चरितं हरेः । तथा कृष्णस्य देवस्य न वयं कर्ममोहिताः ॥ २ ॥

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तेन संस्तुतः स मुनिर्मुने । तत्त्वज्ञानाय तत्त्वज्ञः करुणः प्रत्यभाषत ॥ ३ ॥

गर्ग उवाच

श्यामं तु शृंगाररसस्य रूपं श्रीकृष्णदेवं कथितं मुनींद्रैः ।
लावण्यसंघाच्च तथोज्ज्वलत्वाच्छ्यामं सुरूपं हि तथा हरेश्च ॥ ४ ॥
यथा दूरतो दृश्यते श्यामरूपं घटायास्तथेदं नदस्यापि गर्ते ।
यथाऽऽकाशरूपं महच्छ्यामलं वा जलं चाम्बरं चोज्ज्वलं नापि कृष्णम् ॥ ५ ॥
यथा धौतवस्त्रे परे श्यामला हि छविर्दृश्यते चैव भावैः परस्य ।
तथा कोटिकंदर्पलीलाशयत्वाद्धरेः श्यामरूपं तु संतो वदंति ॥ ६ ॥

वज्रनाभिरुवाच

तव वाक्यान्मुनिश्रेष्ठ संदेहश्च गतो मम । अग्रे ब्रह्मन्कलिर्घोर आगमिष्यति भूतले ॥ ७ ॥
तस्मिन्मर्त्याः कीदृशाश्च भविष्यन्ति मुने वद । त्वं जानासि भविष्यं च तस्मात्त्वां प्रणमाम्यहम् ॥ ८ ॥

पुनः द्वारकामें उसे स्थापित करेगा ॥ ३९ ॥ हे नृपेश्वर ! जो मनुष्य कलियुगमें द्वारकापुरी जाकर द्वारकाधीशका दर्शन करेंगे, वे सर्वथा कृतार्थ हो जायँगे ॥ ४० ॥ जो मनुष्य भगवान्‌की गोलोकयात्रा तथा यादवों और गोपियोंकी मुक्तिका आख्यान सुनेंगे, वे सब पापोंसे छूट जायँगे ॥ ४१ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखंडे 'प्रियवंदा'भाषाटीकायां षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

इतनी कथा सुनकर राजा वज्रनाभ बोले—हे भगवान् ! प्रकृतिसे परे रहनेवाले भगवान् कृष्णका श्याम स्वरूप क्यों था ? इसका कारण बताइए ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! आप जैसे मुनि ही भगवान् कृष्णके चरित्रको जानते हैं । हम जैसे कर्ममोहित प्राणी उसे नहीं जानते ॥ २ ॥ सूतजी कहते हैं—हे मुने ! इस प्रकार स्तुति करके पूछे गये राजा वज्रनाभके प्रश्नको सुनकर तत्त्वज्ञानी और कारुणिक गर्गमुनि राजाको तत्त्वज्ञान प्राप्त करानेके लिए यह वचन बोले ॥ ३ ॥ गर्गमुनिने कहा—हे राजन् ! शृंगार-रसका स्वरूप श्याम है । शृंगार-रसके देवता श्रीकृष्ण ही हैं । अतएव लावण्यराशि तथा उज्ज्वल रस होनेके कारण श्रीकृष्णका श्याम स्वरूप है ॥ ४ ॥ जैसे बादलोंकी घटाका रूप दूरसे श्याम दीखता है, जैसे गढ़ेमें नदीका स्वरूप श्याम दिखायी देता है और जैसे आकाश श्याम दीखता है, किन्तु वास्तवमें आकाशका श्यामरूप नहीं है, बल्कि उनका उज्ज्वल वर्ण है ॥ ५ ॥ जैसे श्वेत वस्त्रमें श्याम छवि दिखायी देती है, वैसे ही कोटि-कन्दर्पलीलाके धाम होनेके कारण सन्तसमुदाय भगवानको श्यामरूप कहता है ॥ ६ ॥ राजा वज्रनाभ बोले—हे मुनिश्रेष्ठ ! आपकी बातसे मेरा संदेह दूर हो गया । हे ब्रह्मन् ! आगे चलकर घोर कलियुग आयेगा ॥ ७ ॥ हे मुने ! —

श्रीगर्ग उवाच

कलेर्दशसहस्राणि जगन्नाथस्तु तिष्ठति । तदर्द्धं जाह्नवीतोयं तदर्द्धं ग्रामदेवताः ॥ ९ ॥
ततः सर्वे भविष्यन्ति पापिनः कलिमोहिताः । नरकांस्ते प्रयास्यंति सर्वे चाल्पायुषो नराः ॥१०॥
विप्राः स्वकन्यां दास्यन्ति ब्राह्मणाय च मौल्यतः ।
क्षत्रियाश्चैव पुत्रीं स्वां मारयिष्यंति लोलुपाः ॥११॥
मृषा कुर्वंति वाणिज्यं वैश्या ब्रह्मस्वतत्पराः । शूद्राश्च म्लेच्छसंगेन दूषयिष्यंति ब्राह्मणान् ॥१२॥
ब्राह्मणाः शास्त्रहीनाश्च राज्यहीनाश्च क्षत्रियाः । वैश्याश्च द्रव्यहीना वै शूद्रा नाथस्य दुःखदाः ॥१३॥
दिने व्यवायनिरता विरता धर्मकर्मणि । स्त्रियः स्वच्छन्दगामिन्यः पुरुषा योनिलम्पटाः ॥१४॥
पितॄणामर्चनं चैव वेदानामृत्विजां तथा । विष्णोश्च वैष्णवानां च तुलस्याश्च गवां तथा ॥१५॥
न प्रायेण करिष्यंति मानवाः कलिमोहिताः । गणिकासु परस्त्रीषु परवित्तेषु मोहिताः ॥१६॥
एकवर्णा भविष्यंति महाशूद्रसमाः किल । सस्यहीना भवेत्पृथ्वी शिलावृष्ट्या निरंतरम् ॥१७॥
फलहीनोऽपि वृक्षश्च जलहीना सरित्तथा । प्रजाभिस्ताडितो भूपो भूपेन ताडिताः प्रजाः ॥१८॥

राजोवाच

केनोपायेन जीवानां कलौ मुक्तिर्भविष्यति । तन्ममाख्याहि विप्रेन्द्र त्वं परावरवित्तमः ॥१९॥

गर्ग उवाच

युधिष्ठिरो विक्रमश्च तथा वै शालिवाहनः । विजयाभिनन्दनश्च तथा नागार्जुनो नृपः ॥२०॥
तथा कल्किश्च भगवानेते वै शकबंधिनः । करिष्यंति कलौ भूपा धर्मस्थापनमेव च ॥२१॥
अभूद्युधिष्ठिरो राजा भविष्यंति नृपाश्च ते । अधर्मं नाशयिष्यंति भूत्वा वै चक्रवर्त्तिनः ॥२२॥
वामनश्च विधिः शेषः सनको विष्णुवाक्यतः । धर्मार्थहेतवे चैते भविष्यंति द्विजाः कलौ ॥२३॥
विष्णुस्वामी वामनांशस्तथा माध्वस्तु ब्रह्मणः । रामानुजस्तु शेषांशो निंबार्कः सनकस्य च ॥२४॥

युगमें कैसे मनुष्य होंगे ? आप भविष्यके ज्ञाता हैं, इसीसे मैं आपसे पूछता हूँ ॥ ८ ॥ गर्गजी बोले—हे राजन् ! कलियुगमें दस हजार वर्षतक जगन्नाथजी मानवलोकमें विद्यमान रहेंगे । उनसे आधे समय तक अर्थात् पाँच हजार वर्षतक गंगाजी और उनसे भी आधे समय अर्थात् ढाई हजार वर्षतक ग्रामदेवता धरतीपर रहेंगे ॥९॥ उसके बाद सभी मनुष्य कलिकालसे मोहित होकर पापी बन जायँगे । वे अल्पायु मनुष्य अन्तमें नरकगामी होंगे ॥१०॥ ब्राह्मण लोग मूल्य लेकर अपनी कन्या दूसरे ब्राह्मणको देंगे । क्षत्रिय लोभवश अपनी कन्याओंको मार डालेंगे ॥ ११ ॥ वैश्य ब्राह्मणोंतकका धन हड़प लेनेके लिए फाटका व्यापार करेंगे और शूद्र म्लेच्छोंके संसर्गमें आकर ब्राह्मणोंको दोष लगायेंगे ॥ १२ ॥ उस कलियुगमें ब्राह्मण शास्त्रविहीन, क्षत्रिय राज्यविहीन, वैश्य द्रव्यहीन और शूद्र अपने स्वामियोंके लिए दुखदायी हो जायँगे ॥ १३ ॥ उस युगके लोग दिनमें मैथुन करेंगे, वे धर्म-कर्मसे सर्वथा भ्रष्ट होंगे, स्त्रियाँ स्वेच्छाचारिणी होंगी और पुरुष योनिलम्पट होंगे ॥ १४ ॥ पितरों, वेदों, ऋत्विजों, विष्णु, वैष्णव, तुलसी तथा गौका पूजन कोई नहीं करेगा ॥ १५ ॥ कलिकालसे मोहित वे मनुष्य वेश्याओं, परनारियों तथा परद्रव्योंपर मोहित रहेंगे ॥ १६ ॥ महाशूद्रोंके समान सब केवल एक वर्णके हो जायँगे । निरन्तर ओलेकी वर्षासे पृथिवी अन्नविहीन हो जायगी ॥ १७ ॥ वृक्ष फलहीन और नदियाँ जलहीन हो जायँगी । उस युगमें प्रजा राजाको मारेगी और राजा प्रजाको मारेगा ॥ १८ ॥ यह सुनकर राजा वज्रनाभने पूछा—हे मुनिवर ! कलियुगके उन पामर प्राणियोंको मुक्ति कैसे मिलेगी । हे विप्रेन्द्र ! उनका मुक्तिका उपाय बताइए । क्योंकि आप भूत-भविष्यकी सब बातोंको जानते हैं ॥ १९ ॥ गर्गमुनि बोले—हे राजन् ! युधिष्ठिर, विक्रमादित्य, शालिवाहन, विजयाभिनन्दन, नागार्जुन और कल्कि भगवान् ये ही छः महापुरुष कलिमें धर्मकी स्थापना करेंगे ॥ २० ॥ २१ ॥ इन छहोंमें युधिष्ठिर हो चुके, शेष पाँच आगे होंगे और वे चक्रवर्ती राजे बनकर अधर्मका नाश करेंगे ॥ २२ ॥ वामन, ब्रह्माजी, शेषनाग और सनक मुनि ये विष्णु भगवानके कथनानुसार कलियुगमें धर्मकी स्थापनाके लिए ब्राह्मण बनेंगे ॥ २३ ॥ वामन भगवानके अंशसे

एते कलौ युगे भाव्याः संप्रदायप्रवर्त्तकाः । संवत्सरे विक्रमस्य चत्वारः क्षितिपावनाः ॥२५॥
संप्रदायविहीना ये मन्त्रास्ते निष्फलाः स्मृताः । तस्माच्च गमनं ह्यस्ति संप्रदाये नरैरपि ॥२६॥
पापक्षयकरी यत्र श्रीकृष्णस्य कथा भवेत् । वैष्णवैर्विप्रमुख्यैश्च नारायणपरायणैः ॥२७॥

कृते तु लिप्यते देशस्त्रेतायां ग्राम एव च ।
द्वापरे च कुलं प्रोक्तं कलौ कर्त्तैव लिप्यते ॥२८॥
ध्यायन्कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन् ।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम् ॥२९॥

कृते यद्दशभिर्वर्षैस्त्रेतायां हायनेन च । द्वापरे चैकमासेन ह्यहोरात्रेण तत्कलौ ॥३०॥
घोरे कलियुगे प्राप्ते सर्वधर्मविवर्जिते । वासुदेवपरा मर्त्यास्ते कृतार्था न संशयः ॥३१॥

ते सभाग्या मनुष्येषु कृतार्था नृप निश्चितम् ।
स्मरंति स्मारयंते ये हरेर्नामानि वै कलौ ॥३२॥
कृषिश्च सर्ववचनो णकारश्चात्मवाचकः ।
सर्वात्मा च परं ब्रह्म तेन कृष्णः प्रकीर्त्तितः ॥३३॥

संजप्य ब्रह्म परमं वेदसारं परात्परम् । परं नास्तीति नास्तीति कृष्ण इत्यक्षरद्वयम् ॥३४॥
तावद्गर्भे वसेत्कामी तावती यमयातना । तावद्गृही च भोगार्थी यावत्कृष्णं न सेवते ॥३५॥

नश्वरो विषयः सत्यं भोगश्च बन्धवो भुवि ।
स्वयं त्यक्ताः सुखायैव दुःखाय त्याजिताः परैः ॥३६॥

श्रुत्वा दैवान्महन्निंदां श्रीकृष्णस्मरणाद्बुधः । मुच्यते सर्वपापेभ्यो नान्यथा रौरवं व्रजेत् ॥३७॥
न काष्ठे विद्यते देवो न शिलायां न कांचने । यत्र भावस्तत्र हरिस्तस्माद्भावं हि कारयेत् ॥३८॥

विष्णुस्वामी, ब्रह्माजीके अंशसे माध्व, शेषके अंशसे रामानुज और सनकमुनिके अंशसे जायमान निम्बार्क होंगे ॥ २४ ॥ कलियुगमें ये अपना-अपना संप्रदाय प्रवर्तित करेंगे । ये विक्रम संवत्सरमें ही जन्म लेकर भूमिको पवित्र करेंगे ॥ २५ ॥ सम्प्रदायविहीन मंत्र निष्फल होते हैं । अतएव सब लोगोंको सम्प्रदायकी लीकपर चलना चाहिए ॥ २६ ॥ जहाँ वैष्णव तथा नारायणपरम्पराके प्रमुख ब्राह्मण श्रीकृष्णकी कथा कहते हैं, वहाँसे सभी पाप भाग जाते हैं ॥ २७ ॥ सत्ययुगमें पापका फल देशभरको भोगना पड़ता है, त्रेतामें एकके किये पापका फल गाँवभरको भोगना पड़ता है, द्वापरमें पापका फल कुलभरको और कलियुगमें पापका फल कर्ताको ही भोगना पड़ता है–अन्य लोगोंको नहीं ॥२८॥ सत्ययुगमें ध्यानसे, त्रेतामें यज्ञ करनेसे और द्वापरमें पूजन करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह कलियुगमें केवल भगवानके नामका कीर्तन करनेसे ही मिल जाता है ॥२९॥ सत्ययुगमें जो सिद्धि दस वर्षमें मिलती है, वह त्रेतामें एक वर्षमें, द्वापरमें एक मासमें और कलियुगमें एक अहोरात्र (दिन-रात) में प्राप्त हो जाती है ॥ ३० ॥ सब धर्मोंसे हीन कलियुगमें जो मनुष्य भगवान् कृष्णके अधीन रहते हैं, वे ही कृतार्थ होते हैं ॥ ३१ ॥ इस युगमें वे ही भाग्यवान् और कृतार्थ हैं, जो स्वयं हरिनामका कीर्तन करते तथा औरोंसे कराते हैं ॥ ३२ ॥ कृष्ण इस नाममें कृषिशब्द सर्ववाचक और णकार आत्मवाचक है । अतएव जो सर्वात्मा परब्रह्म सबको आनन्द देता हो, उसीको कृष्ण कहते हैं ॥३३॥ सब वेदोंके सारस्वरूप और जिससे दूर कुछ भी नहीं है, ऐसे 'कृष्ण' ये दो अक्षर ही परब्रह्म हैं ॥ ३४ ॥ गर्भमें प्राणी तभीतक रहता है, कामी पुरुषको तभीतक यममातना भोगनी पड़ती है और वह तभी तक गृही तथा भोगार्थी रहता है, जब तक श्रीकृष्णकी सेवा नहीं करता ॥ ३५ ॥ संसारके सभी विषयभोग और भाई-बन्धु नश्वर(विनाशशील) हैं। इसीसे ये सत्य नहीं हैं । यदि ये स्वेच्छासे त्याग दिये जायँ तो सुखदायी अन्यथा दुःखदायक होते हैं ॥ ३६ ॥ दैवेच्छासे यदि बड़ोंकी निन्दा सुनायी दे जाय तो श्रीकृष्णका स्मरण करनेसे सब पाप नष्ट हो जाते हैं । अन्यथा उसे रौरवनरकमें जाना पड़ता है ॥ ३७ ॥ देवता न काष्टमें रहते हैं, न शिलामें और न सुवर्ण-

सकृदुच्चरितं येन कृष्ण इत्यक्षरद्वयम् । बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ॥३९॥

सरोगता साधुजनेषु वैरं परोपतापो द्विजवेदनिंदा ।
अत्यन्तकोपः कटुका च वाणी नरस्य चिह्नं नरके गतस्य ॥४०॥
स्वर्गागतानामिह जीवलोके चत्वारि चिह्नानि सदा वसन्ति ।
दानप्रसंगो मधुरा च वाणी देवार्चनं ब्राह्मणपूजनं च ॥४१॥

राजोवाच

व्रतेषु किं वरं ब्रह्मन्सत्सु तीर्थेषु किं महत् । देवेषु पूजनीयेषु को मुख्यः कथयस्व नः ॥४२॥

गर्ग उवाच

एकादशी वरा ह्यस्ति व्रतेषु यदुनन्दन । भागीरथी च तीर्थेषु देवभक्तेषु वैष्णवः ॥४३॥
सुरेषु विष्णुर्भगवान्पूजनीयेषु श्रीगुरुः । इमां वार्तां न मन्यन्ते कुंभीपाके पतंति ते ॥४४॥

राजोवाच

एकादश्यास्तु माहात्म्यमन्येषां चैव मे मुने । कथयस्व प्रसादेन गुरुदेव नमोऽस्तु ते ॥४५॥

गर्ग उवाच

कथयिष्याम्यहं सर्वं शृणुष्व यदुनन्दन । एकादश्यां न भोक्तव्यमन्नं चैव फलं तथा ॥४६॥
यथोक्तविधिना कुर्य्यादेकादशीं मुदा नरः । तदा सा तस्य फलदा भवेत नृपसत्तम ॥४७॥

वज्रनाभिरुवाच

फलाहारं च कुर्वंति ये नरा हरिवासरे । तेषां गतिः का भवति तन्नो वर्णय विस्तरात् ॥४८॥

ऋषिरुवाच

समस्तं चोपवासेन यथोक्तं लभते फलम् । फलाहारेण चार्द्धं स्यात्किंचिन्न्यूनं जलेन च ॥४९॥
अन्नान्सर्वान्विवर्ज्जयित्वा गोधूमाद्यान्नृपेश्वर । एकादश्यां प्रकुर्वीत फलाहारं मुदा नरः ॥५०॥
अन्नं भुनक्ति यो राजन्नेकादश्यां नराधमः । इह लोके स चांडालो मृतः प्राप्नोति दुर्गतिम् ॥५१॥

जहाँ भाव रहता है, वहीं भगवान रहते हैं । अतएव मनुष्य भावसे हीन कभी भी न हो ॥३८॥ जिस मनुष्यने एक बार भी 'कृष्ण' इस दो अक्षरोंका नाम ले लिया, उसने मानो मोक्षप्राप्तिके लिए कमर कस ली ॥ ३९ ॥ सदा रोगी रहना, औरोंको दुख देना, साधुजनोंसे वैर करना, ब्राह्मणों तथा वेदोंकी निन्दा करना, अत्यन्त क्रुद्ध होना और कड़वी बात बोलना ये सब चिन्ह नरकगामी पुरुषके होते हैं ॥ ४० ॥ स्वर्गसे इस धरतीपर आये मनुष्योंमें ये चार चिन्ह विद्यमान रहते हैं । जैसे—दान करनेसे प्रसन्न होना, मधुर वाणी बोलना, देव-पूजन और ब्राह्मणोंका पूजन करना ॥४१॥ यह सुनकर राजा वज्रनाभने पूछा—हे ब्रह्मन् ! व्रतोंमें कौनसा व्रत मुख्य है, सत्तीर्थोंमें कौनसा तीर्थ बड़ा है और पूजनीय देवताओंमें कौन मुख्य है, यह बताइए ॥ ४२ ॥ श्रीगर्ग-मुनि बोले—हे यदुनन्दन ! व्रतोंमें एकादशी व्रत मुख्य है, तीर्थोंमें भागीरथी गंगा और देवभक्तोंमें वैष्णव मुख्य होता है ॥ ४३ ॥ देवताओंमे विष्णुभगवान मुख्य हैं और पूज्योंमें गुरु मुख्य हैं । जो इस बातको सही नहीं मानते, वे कुंभीपाक नरकमें जाते हैं ॥ ४४ ॥ राजा वज्रनाभने कहा—हे मुने ! एकादशी तथा अन्यान्य व्रतोंका माहात्म्य बताइए । हे गुरुदेव ! आपको नमस्कार है ॥ ४५ ॥ श्रीगर्गमुनि बोले—हे यदुनन्दन ! मैं वही बात कह रहा हूँ, सुनिए । एकादशीको न अन्न खाय और न कोई फल ॥ ४६ ॥ हे नृपसत्तम ! प्रसन्न मनसे विधिवत् एकादशीका व्रत करनेसे ही वह फलदायिनी होती है ॥४७॥ राजा वज्रनाभने पूछा—हे मुने ! जो लोग एकादशीको फलाहार करते हैं, उनकी क्या गति होती है । यह मुझे विस्तारसे बताइए ॥ ४८ ॥ श्रीगर्गमुनि बोले—हे राजन् ! जो यथोक्त विधिसे व्रत करते हैं, उन्हें पूरा फल मिलता है । जो फलाहार करके व्रत करते हैं, उन्हें आधा फल मिलता है और जो जल पीकर व्रत करते हैं, उन्हें उससे कुछ ही कम फल प्राप्त होता है ॥ ४९ ॥ हे नृपेश्वर ! गेहूँ आदि सभी अन्नोंको त्यागकर एकादशीको प्रसन्नतापूर्वक फलाहार करे ॥ ५० ॥ हे राजन् ! जो नराधम मनुष्य एकादशीको अन्न खाते हैं, वे इहलोकमें चाण्डाल माने जाते हैं और

दधि दुग्धं तथा मिष्टं कूटं कर्कटिकां तथा । वास्तूकं पद्मसूलं च रसालं जानकीफलम् ॥५२॥
गंगाफलं पत्रनिंबून्दाडिमश्च विशेषतः । शृंगाटकं नागरंगं सैंधवं कदलीफलम् ॥५३॥
आम्रातकमार्द्रकं च तूलं च बदरीफलम् । जंबूफलमामलकं पटोलं त्रिकुशं तथा ॥५४॥
रतालू शर्कराकंदमिक्षुदंडं तथैव च । द्राक्षादीनि हि चान्यानि पवित्रं फलं तथा ॥५५॥
एकवारं च राजेंद्र भोक्तव्यं हरिवासरे । तृतीये प्रहरेऽतीते प्रस्थस्य च पलस्य च ॥५६॥
द्विजाय चार्द्धदातव्यमर्द्धमात्मनि भोजनम् । द्विवारं जलमश्नीयादेकवारं फलं तथा ॥५७॥
समाचरेज्जागरणं पूजयित्वा जनार्दनम् । द्विवारं वा त्रिवारं वा यो नरो हरिवासरे ॥५८॥
करोति च फलाहारं तस्य किंचित्फलं न हि । अन्नभुक्तेन यत्पापं जातं पंचदशैर्दिनैः ॥५९॥
एकादश्युपवासेन तत्सर्वं विलयं भवेत् । भोजनं ब्राह्मणे दत्त्वा ह्युपवासं समाचरेत् ॥६०॥
श्रुत्वा तस्याश्च माहात्म्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
द्रव्यार्थी लभते द्रव्यं सुतार्थी लभते सुतम् । मोक्षार्थी लभते मोक्षमेकादश्या व्रतेन वै ॥६१॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायामश्वमेधखण्डे एकादशीमाहात्म्यं नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥६१॥

अथ द्विषष्टितमोऽध्यायः

(सूमेरुकी सम्पूर्ति)

गर्ग उवाच

तपः कृतं पुरा येन दुर्जरं पूर्वजन्मनि । इह लोके च तस्याशु गुरोर्भक्तिर्हि जायते ॥ १ ॥
गुरोः सेवां न कुरुते स्वगुरुं यो न मन्यते । यः समर्थश्च पतति कुंभीपाके च सर्वदा ॥ २ ॥
गुरोरभक्तं प्रगतं दृष्ट्वा गोघ्नो भवेन्नरः । स्नात्वा गंगां च यमुनां तदा भवति निर्मलः ॥ ३ ॥
द्रव्यलाभस्तु शिष्यस्य भवेद्वै यत्र यत्र च । दशांशं च गुरोस्तस्मिन्गृहद्रव्ये तथा हि नः ॥ ४ ॥

तं भुंजति बलाच्छिन्यो न दास्यति गुरुं पृथक् । स महारौरवं याति हीनः सर्वसुखैरिह ॥ ५ ॥
हरौ कुर्वंति ये नित्यं भक्तिं च नवलक्षणाम् । संसारसागरं राजंस्ते तरंति सुखेन वै ॥ ६ ॥

ज्ञातिं विद्यां महत्त्वं च रूपं यौवनमेव च ।
यत्नेन परिवर्ज्जेत पंचैते भक्तिकंटकाः ॥ ७ ॥

भक्त्या कृष्णस्य राजेन्द्र प्रसादं चरणोदकम् । ये गृह्णंति भवेयुर्भूपावना नात्र संशयः ॥ ८ ॥

गंगा पापं शशी तापं दैन्यं कल्पतरुर्हरेत् ।
पापं तापं तथा दैन्यं सद्यः साधुसमागमः ॥ ९ ॥

तावद्भ्रमंति संसारे पितरः पिंडतत्पराः । यावद्वंशे सुतः कृष्णभक्तियुक्तो न जायते ॥१०॥
स किंगुरुः स किंतातः स किंपुत्रः स किंसखा । स किंराजा स किंबंधुर्न दद्याद्यो हरौ मतिम् ॥११॥

विद्याधनागारकलाभिमानिनो रूपादिदारासुतनित्यबुद्धयः ।
दृष्ट्वाऽन्यदेवान्फलकामिनश्च जीवन्मृतास्ते न भजंति केशवम् ॥१२॥

हयमेधचरित्रस्य सुमेरुः कथितो मया । व्यासः कृष्णचरित्रैश्च तवाग्रे नृपसत्तम ॥१३॥
यस्य श्रवणमात्रेण कृष्णभक्तिर्भविष्यति । नराणां नृपशार्दूल शोकमोहभयापहा ॥१४॥
अनेन चरितेनापि लभते वांछितं फलम् । धनं धान्यं सुतं भक्तिं तथा शत्रुक्षयं नरः ॥१५॥

तस्माद्भजाशु राजेन्द्र श्रीकृष्णं जगदीश्वरम् ।
भक्त्या गृहे वा विपिने ज्ञात्वा विश्वं मनोमयम् ॥१६॥

आयुस्ते नरवीर वर्द्धतु सदा हेमंतरात्रिर्यथा लोकानां प्रियदर्शनो भव सदा हेमंतसूर्यो यथा ।
शत्रूणामतिदुःसहो भव सदा हेमंततोयं यथा नाशं यांतु तवारयोऽपि सततं हेमंतपद्मं यथा ॥१७॥

सूत उवाच

इति श्रुत्वा वज्रनाभिर्हर्षितः प्रेमविह्वलः । स्मरन्कृष्णस्य माहात्म्यं नत्वा गुरुमथाब्रवीत् ॥१८॥

राजोवाच

धन्योऽहं च कृतार्थोऽहं भवता करुणात्मना । श्रुत्वा कृष्णस्य माहात्म्यं लग्नं कृष्णे च नो मनः ॥१९॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वा पूजयामास गर्गाचार्य्यं नृपोत्तमः । गन्धाक्षतैः पुष्पहारैस्तथा जालकमालया ॥२०॥
गजैः रथैस्तुरंगैश्च शिविकाभिश्च मंदिरैः । रौप्याणां चैव भारैश्च स्वर्णभारैश्च शौनक ॥२१॥
तथा रत्नैश्च ग्रामैश्च ह्यात्मना हर्षपूरितः । प्रदक्षिणाप्रणामैश्च तथा नीराजनादिभिः ॥२२॥

सूत उवाच

ततश्च गर्ग उत्थाय दत्त्वा वज्राय चाशिषम् । भूपेन वंदितः सोऽपि ययौ दक्षिणया युतः ॥२३॥
स गत्वा यमुनातीरे तीर्थे विश्रांतिसंज्ञके । माथुरेभ्यश्च विप्रेभ्यो मुनिः सर्वं धनं ददौ ॥२४॥
गर्गवाक्यात्ततो वज्रो मथुरायां मुनीश्वरैः । चकार हयमेधं वै यथा नागपुरेश्वरः ॥२५॥
ततः स मथुरायां च दीर्घविष्णुं च केशवम् । वृन्दावने च गोविंदं हरिदेवं गिरीश्वरे ॥२६॥
गोकुले गोकुलेशं च गोकुलाद्योजने वलम् । स्थापयामास वज्रस्तु हरेश्च प्रतिमाश्च षट् ॥२७॥
वलस्य प्रतिमाश्चान्याः पञ्च वै व्रजमण्डले । नृणां शुभाय वज्रस्तु स्थापयामास हर्षितः ॥२८॥
अब्दाश्चतुःसहस्राणि कलौ पञ्च शतानि च । गते गिरिवरे हि श्रीनाथः प्रादुर्भविष्यति ॥२९॥
तं पूजयिष्यति व्रजे विष्णुस्वामी रवेस्तनुः । वल्लभाद्याश्च तच्छिष्याश्चान्ये गोकुलस्वामिनः ३०॥
श्रीमद्भागवतान्मुक्तिं दृष्ट्वा वज्रः परीक्षितः । वैराग्येणापि मुनयो राज्यं त्यक्तुं मनो दधे ॥३१॥
तदाऽऽययौ चौपगविर्नरनारायणाश्रमात् । पादुकां मस्तके बिभ्रत्कृष्णचन्द्रस्य वैष्णवः ॥३२॥
भूपेन वंदितः सोऽपि प्रत्युत्थानासनादिभिः । कथयामास वज्राग्रे श्रीमद्भागवतं मुदा ॥३३॥

दायी हों और जैसे हेमन्तमें कमलोंका नाश हो जाता है, उसी तरह आपके शत्रुओंका नाश हो जाय ॥ १७ ॥ श्रीसूतजी बोले—हे मुने ! यह वृत्तान्त सुनकर राजा वज्रनाभ प्रेमविह्वल होकर बहुत हर्षित हुए। भगवान् श्रीकृष्णकी महिमाका स्मरण करते हुए गुरु गर्गमुनिको प्रणाम करके वे बोले ॥ १८ ॥ राजाने कहा—हे मुनिराज ! इतनी दिव्य श्रीकृष्णकी कथा सुनाकर आपने मुझे कृतार्थ कर दिया। अब मैं धन्य हूँ। यह कथा सुननेमे हमारा मन श्रीकृष्णके चरणोंमें लग गया है ॥ १९ ॥ सूतजी कहते हैं—हे शौनक ! ऐसा कहकर नृपसत्तम वज्रनाभने गुरु गर्गका गन्ध, अक्षत, पुष्पहार तथा मोतियोंकी मालासे पूजन किया ॥ २० ॥ साथ ही उन्होंने हाथी, घोड़े, रथ, पालकी, मकान, चाँदियों तथा सोनेके भार, रत्नराशि और ग्राम भी उन्हें दिये। तदनन्तर हर्षसे पूर्ण राजा वज्रनाभने प्रदक्षिणा, प्रणाम तथा आरती आदि करके उनको प्रसन्न किया ॥ २१ ॥ २२ ॥ सूतजी कहते हैं—हे शौनक ! उसके बाद गर्गमुनि उठ खड़े हुए। उन्होंने प्रणाम करते हुए राजा वज्रनाभको आशीर्वाद दिया और दक्षिणा लेकर चले गये ॥२३॥ वहाँसे यमुनातटवर्ती विश्रान्ति-तीर्थमें जाकर गर्गमुनिने राजासे प्राप्त सारा धन मथुराके ब्राह्मणोंको दे दिया ॥ २४ ॥ गर्गजीके कथनानुसार राजा वज्रनाभने भी मुनीश्वरोंके साथ मथुरामें वैसा ही अश्वमेध यज्ञ किया, जैसे पहले हस्तिनापुरके प्रभु युधिष्ठिरने किया था ॥ २५ ॥ तदनन्तर उन्होंने मथुरामें दीर्घविष्णु तथा केशवदेव, वृन्दावनमें गोविन्ददेव, गिरिराज गोवर्धनपर हरिदेव, गोकुलमें गोकुलेश और गोकुलसे एक योजन दूर बलदाऊजी इस प्रकार कुल छः भगवानके श्रीविग्रहों (प्रतिमा) की स्थापना की ॥ २६ ॥ २७ ॥ बादमें राजा वज्रनाभने लोककल्याणके लिए व्रजमण्डलमें बलदेवकी पाँच प्रतिमायें और स्थापित कीं ॥ २८ ॥ कलियुगके चार हजार पाँच सौ वर्ष बीतनेपर गिरिराज गोवर्धनपर श्रीनाथजी प्रकट होंगे ॥ २९ ॥ सूर्यके अवतार विष्णुस्वामी श्रीनाथजीकी पूजा करेंगे। उसके बाद वल्लभाचार्य आदि उनके शिष्य और उनके बाद गोकुलके निवासी ही उनका पूजन करेंगे ॥ ३० ॥ तदनन्तर श्रीमद्भागवत सुनकर मुक्ति प्राप्त करनेवाले राजा परीक्षितका स्मरण करके राजा वज्रनाभने वैराग्यसे राज्य त्यागनेका संकल्प किया ॥ ३१ ॥ उसी समय श्रीकृष्णचन्द्रकी पादुकाओंको मस्तकपर धरे प्रमुख वैष्णव उद्धवजी नारायणाश्रमसे वहाँ आये ॥३२॥ तत्काल खड़े होकर राजा वज्रनाभने

श्रुत्वोद्धवाद्भागवतं वज्रः प्रोवाच हर्षितः । श्रुता मया पुरा तात सुसभायां परीक्षितः ॥३४॥
समाधिभाषा व्यासस्य शुकदेवेन वर्णिता । पुनस्त्वयाऽपि कथिता कृतार्थोऽहं बभूव ह ॥३५॥
इत्युक्त्वा वज्रनाभिस्तु स्वराज्यं प्रतिबाहवे । दत्त्वा जगाम गोलोकं विमानेनापि चोद्धवः ॥३६॥
चकार राज्यं धर्मेण मथुरायां च दक्षिणे । प्रतिबाहुः सुतस्तस्य चोत्तरे जनमेजयः ॥३७॥

अग्रे कलियुगो ब्रह्मन्नागमिष्यति दारुणः ।
परंतु चैकं निर्वाहं दृश्यते पापनाशनम् ॥३८॥

यावद्भागवतं शास्त्रं यावद्गोकुलस्वामिनः । यावद्गोवर्द्धनो गंगा तावत्कलियुगं न हि ॥३९॥
भारतानां च खंडानां जंबूद्वीपे यथा मुने । मध्ये संराजते मेरुः सौवर्णः पद्मपुष्पवत् ॥४०॥
तथा गोलोकखण्डानां संहितायां महामुने । हयमेधचरित्रस्य मध्ये मेरुर्विराजते ॥४१॥
अस्या श्रवणमात्रेण विप्रहा गुरुतल्पगः । स्त्रीराजपितृगोहन्ता मुच्यते सर्वपातकैः ॥४२॥
विप्रस्तु लभते विद्यां राज्यं राजन्य एव च । श्रवणाच्च धनं वैश्यो धर्मं शूद्रस्तथैव च ॥४३॥

नदीषु च यथा गंगा देवेषु भगवान्यथा ।
तीर्थेषु वै तीर्थराज इयं वै संहितासु च ॥४४॥

अस्याः श्रवणमात्रेण तृप्तिं याति नरोत्तमः । न सज्जेतान्यशास्त्रेषु यथा भगवतान्मुने ॥४५॥
तस्माद्भजत पादाब्जं श्रीकृष्णस्य महात्मनः । कल्याणार्थं च मुनयो भक्तदुःखहरस्य च ॥४६॥

श्रीगर्ग उवाच

इति श्रुत्वा शौनकाद्या मुनयश्चरितं हरेः । श्लाघां वै सूतपुत्रस्य चक्रुर्हर्षितमानसाः ॥४७॥
संसारसागरे मग्नं दीनं मां करुणानिधे । कालग्रहगृहीतांगं त्राहि विष्णो नमोऽस्तु ते ॥४८॥

अनुगृह्णीष्व नः साधो त्वं ह्यनाथस्य वल्लभः ।
त्रैलोक्यस्याभयं दद्याद्यथा स्वामी तथा कुरु ॥४९॥
श्रीगुरोः कृपया हि श्रीमदनमोहनसेवया । बभूव वाङ्मम हरेस्तया चरितमीरितम् ॥५०॥
वाल्मीक्याद्याश्च व्यासाद्या लघूक्तां कवितां मम ।
पश्यन्तु दृष्ट्वा यूयं चापराधं क्षंतुमर्हथ ॥५१॥
श्रीमाधवं व्रजपतिं नवमेघगात्रं राधापतिं सुरपतिं मुरलीधरञ्च ।
भक्तार्तिहञ्च परमार्थमनन्तदेवं कृष्णं नमामि शिरसा मनसा च भक्त्या ॥५२॥
षड्विंशच्च शता रामा त्रिसप्ताशीतिसुप्रियाः । श्लोकाश्चरित्रमेरोर्वै श्रीकृष्णस्य महात्मनः ॥५३॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायामश्वमेधखण्डे सुमेरुसंपूर्तिर्नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥६२॥

कालरूपी ग्रहने पकड़ लिया है । हे विष्णो ! उससे मुझे बचाइए । आपको नमस्कार है ॥ ४८ ॥ हे साधो ! आप अनाथोंके प्रिय हैं, सो मेरे ऊपर कृपा करिए । जिससे सबके प्रभु समस्त त्रिलोकीको अभयदान दें, ऐसा करिए ॥ ४९ ॥ श्रीगुरुकी कृपा और मदनमोहन भगवानकी सेवासे मेरी वाणी प्रस्फुटित हुई, जिससे मैंने यह श्रीकृष्णचरित्र कहा ॥ ५० ॥ वाल्मीकि तथा व्यास आदि महाकवि मेरी इस नन्हींसी कविताको देखें और मुझसे जो अपराध हुआ हो, उसको क्षमा कर दें ॥ ५१ ॥ श्रीमाधव, व्रजपति, नव जलदके समान श्यामवर्ण, राधापति, सुरपति, मुरलीधर, भक्तोंकी पीडा हरनेवाले, परमार्थदायक और अनन्तदेव श्रीकृष्ण-भगवानको मस्तक झुकाकर मैं मन और भक्तिके साथ प्रणाम करता हूँ ॥५२॥ सुमेरुस्वरूप इस अश्वमेधखण्डमें बड़े प्रिय सत्ताइस सौ सत्ताइस श्लोक हैं, जिनमें श्रीकृष्णके गुण गाये गये हैं ॥ ५३ ॥ इति श्रीगर्गसंहिताया-मश्वमेधखंडे गोण्डामण्डलान्तर्गतसिसईग्रामवास्तव्येन पं० रामदत्तपाण्डेयात्मजेन पाण्डेयरामतेजशास्त्रिणा विरचितायां 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

यदक्षरं पदं भ्रष्टं मात्राहीनं यद्भवेत् ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव प्रसीद परमेश्वर ॥

श्रीकृष्णार्पणमस्तु ।

मुद्रक—सोमारुराम गौरीशंकर प्रेस, मध्यमेश्वर, वाराणसी ।

श्रुत्वोद्धवाद्भागवतं वज्रः प्रोवाच हर्षितः । श्रुता मया पुरा तात सुसभायां परीक्षितः ॥३४॥
समाधिभाषा व्यासस्य शुकदेवेन वर्णिता । पुनस्त्वयाऽपि कथिता कृतार्थोऽहं बभूव ह ॥३५॥
इत्युक्त्वा वज्रनाभिस्तु स्वराज्यं प्रतिबाहवे । दत्त्वा जगाम गोलोकं विमानेनापि चोद्धवः ॥३६॥
चकार राज्यं धर्मेण मथुरायां च दक्षिणे । प्रतिबाहुः सुतस्तस्य चोत्तरे जनमेजयः ॥३७॥

अग्रे कलियुगो ब्रह्मन्नागमिष्यति दारुणः ।
परंतु चैकं निर्वाहं दृश्यते पापनाशनम् ॥३८॥

यावद्भागवतं शास्त्रं यावद्गोकुलस्वामिनः । यावद्गोवर्द्धनो गंगा तावत्कलियुगं न हि ॥३९॥
भारतानां च खंडानां जंबूद्वीपे यथा मुने । मध्ये संराजते मेरुः सौवर्णः पद्मपुष्पवत् ॥४०॥
तथा गोलोकखण्डानां संहितायां महामुने । हयमेधचरित्रस्य मध्ये मेरुर्विराजते ॥४१॥
अस्या श्रवणमात्रेण विप्रहा गुरुतल्पगः । स्त्रीराजपितृगोहन्ता मुच्यते सर्वपातकैः ॥४२॥
विप्रस्तु लभते विद्यां राज्यं राजन्य एव च । श्रवणाच्च धनं वैश्यो धर्मं शूद्रस्तथैव च ॥४३॥

नदीषु च यथा गंगा देवेषु भगवान्यथा ।
तीर्थेषु वै तीर्थराज इयं वै संहितासु च ॥४४॥

अस्याः श्रवणामात्रेण तृप्तिं याति नरोत्तमः । न सज्जेतान्यशास्त्रेषु यथा भगवतान्मुने ॥४५॥
तस्माद्भजत पादाब्जं श्रीकृष्णस्य महात्मनः । कल्याणार्थं च मुनयो भक्तदुःखहरस्य च ॥४६॥

श्रीगर्ग उवाच

इति श्रुत्वा शौनकाद्या मुनयश्चरितं हरेः । श्लाघां वै सूतपुत्रस्य चक्रुर्हर्षितमानसाः ॥४७॥
संसारसागरे मग्नं दीनं मां करुणानिधे । कालग्रहग्रहीतांगं त्राहि विष्णो नमोऽस्तु ते ॥४८॥